

दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ७

(जुलाई)

पृष्ठ १ से १८५८

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी. चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता
२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता
२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता
३. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता
४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता
५. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता
६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता
७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता
८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता
९. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति	
माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रितिकर दिवाकर	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
६. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अतउ रहमान मसूदी	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा- प्रथम	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री करुणेश सिंह पवार
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४७. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. गौतम चौधरी
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री डोनादि रमेश

६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
६५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन इदरिशी
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्रा
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिजवी
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
९४. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
९५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
९६. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
९७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
९८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल

अंकित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 791	अरविंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 272
अंगद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 709	अरुण कुमार द्विवेदी एवं अन्य बनाम श्री भारत भूषण खन्ना एवं अन्य	पृष्ठ- 714
अजीत कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 546	अरुण कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड, लखनऊ	पृष्ठ- 389
अनूप कुमार सक्सेना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 1799	अर्जुन प्रसाद एवं अन्य बनाम गणेश प्रसाद एवं अन्य	पृष्ठ- 1286
अब्दुल खालिक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य	पृष्ठ- 319	आरजीके इंडस्ट्रीज एलएलपी 144, नई दिल्ली बनाम यूपीपीसीएल लखनऊ एवं अन्य	पृष्ठ- 1120
अभिषेक कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1752	इरशाद खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 697
अमर बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 91	उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवेन्द्र @ डबलू एवं अन्य	पृष्ठ- 1102
अमित गुप्ता बनाम गुलाब चंद्र कनोडिया	पृष्ठ- 1600	उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राधा चरण मृतक एवं एक अन्य	पृष्ठ- 1061
अरविंद अग्रवाल एवं अन्य बनाम तनवीर अहमद एवं अन्य	पृष्ठ- 847	उदय प्रताप सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1182
अरविंद कुमार पांडे बनाम यूपी. राज्य और अन्य	पृष्ठ- 370	उषा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 251
अरविंद कुमार, लेखपाल, तहसील- बहेड़ी, जिला: बरेली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ- 417	ओ.पी. त्रिवेदी बनाम अध्यक्ष, भागीरथ ग्रामीण बैंक व अन्य	पृष्ठ- 421

ओमकार लोहिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 199	केशव प्रसाद एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य	पृष्ठ- 439
ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, सदर बाजार शाहजहांपुर बनाम श्रीमती हसीन बानो @ बूटी एवं अन्य	पृष्ठ- 137	खुरशीद अहमद बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1 आजमगढ़ और अन्य	पृष्ठ- 265
कपिल देव पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 668	गंगा प्रसाद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 32
कल्याण सिंह बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य	पृष्ठ- 832	गगन पाल सिंह आहूजा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1267
काजिम मेहंदी बनाम जुबेदिया बेगम एवं अन्य	पृष्ठ- 529	गायत्री प्रसाद प्रजापति बनाम प्रवर्तन निदेशालय के माध्यम से प्रतिनिधि सहायक निदेशक लखनऊ	पृष्ठ- 734
किशन कुमार पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1414	गोविंद @ अरविंद एवं अन्य बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 690
किशोर-एक्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 203	छावनी बोर्ड मेरठ एवं अन्य बनाम अनुज सिंह एवं अन्य	पृष्ठ- 237
कुणाल चावला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 767	जया जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 705
कुल भूषण मिश्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1772	जावेद आलम बनाम राम प्रताप यादव एवं अन्य	पृष्ठ- 28
कुसुम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1359	जे.एम.हाउसिंग लिमिटेड, नोएडा बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर, यू.पी. लखनऊ	पृष्ठ-1136
कृष्ण कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 377		

[डॉ. अमिताभ कुमार गुप्ता बनाम अवध बिहारी निगम](#)

पृष्ठ- 1177

[डॉ. एस.सी. अस्थाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 1786

[डॉ. दिव्या नंद यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 637

[डॉ. बी. के. यादव @ बिप्लव कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 1197

[तारावती @ मुना बनाम डी.डी.सी. उन्नाव व अन्य](#)

पृष्ठ- 260

[दिनेश चंद्र वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 1678

[दीपक जोशी बनाम सहायक महाप्रबंधक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया](#)

पृष्ठ- 1502

[देवानंद पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#)

पृष्ठ- 38

[धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य](#)

पृष्ठ- 55

[नन्हे लाल कनौजया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 1382

[नीलम देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य](#)

पृष्ठ- 256

[नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, सिविल लाइंस, इलाहाबाद बनाम श्री सत्य नारायण केसरवानी एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 157

[नैपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 1706

[न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अनिल कुमार एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 115

[पथिराम एवं अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 140

[परमानंद सिरूमल तहलरामामी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य](#)

पृष्ठ- 886

[पवन कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 875

[प्रबंध समिति, वैदिक कन्या इंटर कॉलेज, दादरी, जनपद: गौतम बुद्ध नगर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 1577

[प्रबंधन समिति, दारूल उल्म समाधिया और अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 506

[प्रभाकांत एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 517

[प्रमोद शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ- 468

प्रवीण कुमार मिश्रा बनाम डॉ. गौरव मिश्रा एवं अन्य	पृष्ठ- 1006	मंटू वर्मा @ विवेक वर्मा बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 583
प्रो. अमर नाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 405	महाप्रबंधक, मेसर्स इलाहाबाद दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लिमिटेड, जिला इलाहाबाद बनाम सुरेश चंद्र मिश्रा	पृष्ठ- 183
बजरंगी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-1038	माता प्रसाद तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1019
बाबूनंदन एवं अन्य बनाम बगल यादव एवं अन्य	पृष्ठ- 191	मुकुंद सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 591
बृजेश कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1058	मुदिता बाजपेयी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1552
बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम कैदीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य	पृष्ठ- 1233	मुन्नी लाल बनाम मोहम्मद रफीक किदवई एवं अन्य	पृष्ठ- 1200
बॉबी आनंद @ योगेश आनंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 208	मृत्युंजय @ टिंकू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 621
ब्रह्मा नंद मौर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य	पृष्ठ- 286	मोहन यादव @ विवेक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 66
भगल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 613	मोहम्मद खालिद @ खालिद बनाम भारत संघ और अन्य	पृष्ठ- 536
भारत संघ और अन्य बनाम मनोज पाल और अन्य	पृष्ठ- 395	मोहित उपाध्याय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 1472
मंजीत सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 872	यश कुमार वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ- 994

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम अपर जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ एवं अन्य	पृष्ठ- 1684	राम प्रताप उर्फ प्रताप यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 644
रईस अहमद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 234	राम प्रेम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 908
रमेश @ पुन्ना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 1480	रामविलास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 1026
राकेश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 660	रामेश्वरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ- 801
राकेश कुमार एवं अन्य बनाम छोटे लाल एवं अन्य	पृष्ठ- 1075	रीना एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 281
राज कुमार @ राजेंद्र श्रीवास एवं अन्य बनाम मोहम्मद कौकब अजीम रिजवी एवं अन्य	पृष्ठ- 1014	रोहित यादव @ रवि और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 680
राज कुमार बिंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 865	रोहित लाल बनाम मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण एवं अन्य	पृष्ठ- 1070
राजीव रंजन श्रीवास्तव बनाम सहायक निदेशक प्रवर्तन निदेशालय, जोनल कार्यालय, लखनऊ	पृष्ठ- 804	लियाकत अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 7
राम देव बनाम परस नाथ सिंह एवं अन्य	पृष्ठ- 1484	वाहिद अली बनाम नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो लखनऊ	पृष्ठ- 925
राम नरेश वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ- 487	विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम यू.पी. राज्य और अन्य	पृष्ठ- 495
राम प्रकाश अचारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 74	विजेंद्र कपूर एवं अन्य बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 456
		विनोद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 558

शाखा प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, संबद्ध बनाम श्री नागेन्द्र तिवारी एवं अन्य	पृष्ठ- 843	श्रीमती हसीना बेगम एवं अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बरेली एवं अन्य	पृष्ठ- 144
शिवेंद्र वशिष्ठ बनाम यू.पी. राज्य	पृष्ठ- 401	संजय कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम श्री मुरारी लाल एवं अन्य	पृष्ठ-111
शैलेन्द्र सैनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 61	संजय गुप्ता बनाम सुरेश कुमार मिश्रा एवं अन्य	पृष्ठ- 1350
शैलेश कुमार शुक्ला बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ- 1651	संदीप कुमार गर्ग एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 1475
श्याम बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ- 786	सत्यम सिंह बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 603
श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी एवं अन्य बनाम इस्माइल खान एवं अन्य	पृष्ठ- 348	सलमान हाशमी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 898
श्रीमती चैन मुनि बनाम इलाहाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य	पृष्ठ- 513	सालिक सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 79
श्रीमती दीप शर्मा एवं अन्य बनाम श्रीमती बीनू शर्मा एवं अन्य	पृष्ठ- 823	सी/एम अंजुमन इंतेजामिया मसाजिद वाराणसी बनाम श्रीमती राखी सिंह एवं अन्य	पृष्ठ- 941
श्रीमती मदरेश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य	पृष्ठ- 98	सुरेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ- 362
श्रीमती रानी गौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ- 813	सुशील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 752
श्रीमती रानी गौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ- 818	हमीदुन्निशा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य	पृष्ठ- 302

(2023) 7 ILRA 6

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आपराधिक अपील संख्या 12 वर्ष 1999

लियाकत अली

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :

रिषाद मुर्तजा, आलोक सिंह, सैयद महफूजुर
रहमान, विकास विक्रम सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - मादक पदार्थ तथा
मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धाराएँ
8/21, 42 एवं 50 - शस्त्र अधिनियम, 1959
- धारा 25/4 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील -
कठोर कारावास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -
धाराएँ 313, 437-क - अपीलकर्ता की
व्यक्तिगत तलाशी में प्रतिबंधित मादक पदार्थ
तथा चाकू बरामद किया गया - उक्त वस्तुओं
के रखने हेतु अनुज्ञप्ति प्रस्तुत करने को कहा
गया, वैध दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल
रहा - गिरफ्तारी स्थल पर बरामदगी पंचनामा
उदयत किया गया तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट
अंकित की गई - आरोप तय किए गए -
अभियोजन पक्ष ने केवल अभियोजन पक्ष
साक्षी 1 तथा अभियोजन पक्ष साक्षी 2 को
प्रस्तुत किया - अपीलकर्ता का तर्क था कि

व्यस्त सार्वजनिक स्थान से बरामदगी होने के
अतिरिक्त कोई सार्वजनिक साक्षी प्रस्तुत नहीं
किया गया, पुलिस द्वारा अपेक्षित प्रक्रियात्मक
चरणों में पर्याप्त त्रुटियाँ थीं तथा अनुसंधान
अधिकारी द्वारा तलाशी और जब्ती संबंधी
वैधानिक प्रावधानों की अवहेलना की गई -
पुलिस के पास वजन मापने का कोई उपकरण
नहीं था तथा बरामद वस्तुओं के वजन के
संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।
(प्रस्तर 2, 3, 4, 5, 10)

यह प्रत्यक्ष रूप से स्थापित है कि उपनिरीक्षक,
जो कि एक महत्वपूर्ण साक्षी थे तथा जिन्होंने
बरामदगी पंचनामा उदयत किया था, को
अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं
किया गया तथा इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण
भी प्रदान नहीं किया गया - अभियोजन पक्ष
साक्षी 1 तथा अभियोजन पक्ष साक्षी 2 की
साक्ष्य के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि
अपीलकर्ता को मजिस्ट्रेट अथवा राजपत्रित
अधिकारी के समक्ष तलाशी की मांग करने का
अधिकार, के विषय में कोई सूचना नहीं दी गई
जो मादक पदार्थ तथा मनःप्रभावी पदार्थ
अधिनियम की धारा 50 का गम्भीर उल्लंघन
हैं - यदि प्रतिबंधित मादक पदार्थ तथा चाकू
की बरामदगी धारा 50 के प्रतिकूल की गई है,
तो संपूर्ण अभियोजन पक्ष की कहानी
संदेहास्पद हो जाती है और अपीलकर्ता
दोषमुक्त का हकदार है - आक्षेपित आदेश
निरस्त किया जाता है। (प्रस्तर 19, 24, 25)

अपील स्वीकृत की जाती है। (ई-13)

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

1) अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री विकास विक्रम सिंह और श्री सैयद महफूजुर रहमान को राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के रूप में सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2) प्रस्तुत अपील अपर सत्र एवं जिला न्यायाधीश, आठवीं, जिला लखनऊ द्वारा सत्र विचारण संख्या-110 वर्ष 1994 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 29.10.1998 के विरुद्ध दायर की गई है, जो केस अपराध संख्या-352 वर्ष 1994, थाना हजरतगंज जिला लखनऊ से उत्पन्न हुआ है, जिसमें अपीलार्थी लियाकत अली को नारकोटिक्स ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट 1985, (इसके बाद 'एन.डी.पी.एस. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 8/21 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है और 10 साल के कठोर कारावास के साथ 1,00,000/ रुपये के जुर्माने के साथ और जुर्माना अदा न करने पर वह आगे 2 साल के साधारण कारावास की सजा काटेगा और उपरोक्त सजा के अलावा, केस अपराध संख्या-353 वर्ष 1994, थाना-हजरतगंज, जिला लखनऊ, अपीलकर्ता को शस्त्र अधिनियम 1959 की धारा 25/4 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और साधारण कारावास के एक वर्ष के लिए सजा सुनाई गई है। दोनों सजाएं साथ-साथ चलाने का आदेश दिया गया था।

3) संक्षेप में अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 23.03.1994 को 11:45 बजे, अपीलकर्ता/अभियुक्त को पुलिस ने गौरा कब्रिस्तान की सीमा पर गिरफ्तार किया था

और उसके कब्जे से एक चाकू के साथ-साथ 500 ग्राम स्मैक बरामद की गई थी। चाकू के साथ-साथ प्रतिबंधित / स्मैक रखने का लाइसेंस दिखाने के लिए सामना किए जाने पर, आरोपी-अपीलकर्ता कोई भी वैध दस्तावेज पेश करने में विफल रहा। इंस्पेक्टर सुनील कुमार मिश्रा ने घटनास्थल पर फ़र्द बरामदगी तैयार किया, जिसके आधार पर हेड कांस्टेबल हरफूल वर्मा ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी और आरोपी-अपीलकर्ता के पास अवैध हथियार और प्रतिबंधित पदार्थ रखने के संबंध में जी.डी. में प्रविष्टि की, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और विवेचना उप-निरीक्षक एस.एस. हुसैन द्वारा की गई और विवेचना पूरी नहीं होने के कारण, जांच उप-निरीक्षक, आर.के. तिवारी को सौंपी गई थी, लेकिन कुछ कारणों से भी, वह जांच पूरी नहीं कर सके और फिर विवेचना वी.के. त्रिवेदी को सौंपी गई, जिन्होंने जांच पूरी करने के बाद और विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के आधार पर यह पता लगाया कि अपीलकर्ता के कब्जे से बरामद प्रतिबंधित स्मैक है, अपीलकर्ता के खिलाफ एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 8/21 और शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत आरोप पत्र दायर किया।

4) एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 8/21 और शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत अपराध के लिए आरोप विचारण न्यायालय द्वारा तैयार किए गए थे और इसे अपीलकर्ता को पढ़ा गया जिसे उसने अस्वीकार कर दिया और विचारण का दावा किया।

5) अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए उप-निरीक्षक सदानंद राय (अ०सा०-1) और कांस्टेबल सतेंद्र पचौरी (अ०सा०-2) को पेश किया। उपरोक्त दो गवाहों के अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा इस कारण से कोई अन्य गवाह पेश नहीं किया गया था कि विचारण न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने दस्तावेजी साक्ष्य के प्रमाणीकरण को स्वीकार कर लिया था।

अभियोजन पक्ष के गवाह के निष्कर्ष के बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया गया जहां उसने अभियोजन से इनकार किया और कहा कि उसके कब्जे से कोई बरामदगी नहीं की गई थी और सभी दस्तावेज उसे झूठा फंसाने के मकसद से धोखाधड़ी से तैयार किए गए थे।

7) अभियोजन की कहानी का खंडन करने के लिए, निसार (ब०सा०-1) और इकरार अहमद (ब०सा०-2) की अपीलकर्ता द्वारा जांच की गई और थानाध्यक्ष, हजरतगंज को दिनांक 22/23 की रात 22/23 के टेलीग्राम की एक प्रति भी एक साक्ष्य के रूप में पेश की गई जिसमें यह कहा गया था कि रात को लगभग 1-2 बजे, कुछ पुलिस कर्मियों ने इकरार और लियाकत अली को बुलाया और दोनों को पुलिस कर्मियों ने इस बहाने से ले लिया कि थाने के निरीक्षक ने उन्हें बुलाया है। उपरोक्त के अलावा, अपीलकर्ता की ओर से कोई अन्य सबूत पेश नहीं किया गया है।

8) मुकदमे के समापन के बाद, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को एन.डी.पी.एस.

अधिनियम की धारा 8/21 और शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत दोषी ठहराया और उसे आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत उपरोक्त सजा सुनाई।

9) आक्षेपित निर्णय से व्यथित होकर इस अपील को दायर किया दी गई है।

10) अपीलकर्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि वह निर्दोष है और पुलिस द्वारा इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि पुलिस ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के अनिवार्य प्रावधान का भी पालन नहीं किया है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि उक्त बरामदगी के बावजूद कोई सार्वजनिक गवाह पेश नहीं किया गया था, जो कथित तौर पर एक व्यस्त सार्वजनिक स्थान पर किया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रक्रियात्मक कदमों में पर्याप्त कमजोरियां हैं जो पुलिस द्वारा की जानी चाहिए थीं और विवेचनाधिकारी द्वारा तलाशी और जब्ती के संबंध में वैधानिक प्रावधानों की अवहेलना की गई है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि तथ्य की बात के रूप में अपीलकर्ता को वर्ष 22/23.03.1994 की रात लगभग 02:00 बजे थाना-हजरतगंज की पुलिस द्वारा अवैध रूप से गिरफ्तार किया गया था और बाद में, उसे 23.03.1994 को प्रस्तुत आपराधिक मामले में झूठा फंसाया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि घटना की तारीख और प्रथम

सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की तारीख से संबंधित कॉलम में ओवर-राइटिंग है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पुलिस तौल का कोई उपकरण नहीं ले जा रही थी और इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि बरामद वस्तुओं के वजन का आकलन कैसे किया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि 06.06.1999 की रिपोर्ट में रासायनिक विश्लेषण द्वारा मादक पदार्थ के प्रतिशत का आकलन नहीं किया गया था। उन्होंने कहा कि कथित बरामदगी वर्ष 23.03.1994 है और नमूना 16.05.1994 को फॉरेंसिक प्रयोगशाला में पहुंच गया और देरी के लिए कोई संभाव्य/तर्कसंगत स्पष्टीकरण नहीं है और पुलिस द्वारा एन.डी.पी.एस. अधिनियम के प्रावधान का पूर्ण उल्लंघन है क्योंकि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 का उल्लंघन किया गया है और साथ ही एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 42 का भी पुलिस द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है।

11) अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा किया है और निम्नलिखित पैराग्राफ का उल्लेख किया है: -

1) विजयसिंह चंदूभा जडेजा बनाम गुजरात राज्य, (2021) 1 एस.सी.सी. 609 और पैराग्राफ 29, 30 और 32 का उल्लेख किया है जो यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

-

29. "पूर्वगामी चर्चा के मद्देनजर, हमारा दृढ़ विचार है कि

एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत अधिकार जिस उद्देश्य के साथ एक सुरक्षा उपाय के माध्यम से संदिग्ध को प्रदान किया गया है, अर्थात् शक्ति के दुरुपयोग की जांच करना, निर्दोष व्यक्तियों को नुकसान से बचाना और कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा झूठे मामलों को गढ़ने या थोपने के आरोपों को कम करना। अधिकार प्राप्त अधिकारी की ओर से यह अनिवार्य होगा कि वह तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लिए जाने के उसके अधिकार से अवगत कराए। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि जहां तक एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) की उप-धारा (1) के तहत अधिकृत अधिकारी के दायित्व का संबंध है, यह अनिवार्य है और इसके सख्त अनुपालन की आवश्यकता है। प्रावधान का अनुपालन करने में विफलता अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगी और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगी यदि इसे केवल इस तरह की तलाशी के दौरान अभियुक्त के व्यक्ति से अवैध वस्तु की बरामदगी के आधार पर दर्ज किया जाता है। इसके बाद, संदिग्ध उक्त प्रावधान के तहत उसे प्रदान किए गए अधिकार का

प्रयोग करने का विकल्प चुन सकता है या नहीं भी कर सकता है।

30. पुनः राष्ट्रपति चुनाव में देखा गया है, यह न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे प्रावधान के संपूर्ण दायरे पर सावधानीपूर्वक ध्यान देकर विधायिका के वास्तविक इरादे को समझें। "हर कानून को खोलने की कुंजी कानून का कारण और भावना है, यह दुश्मनी है, कानून निर्माता का इरादा कानून में ही व्यक्त किया गया है, जिसे समग्र रूप से लिया गया है।

32. हम यह भी महसूस करते हैं कि यद्यपि धारा 50 अधिकार प्राप्त अधिकारी को ऐसे व्यक्ति (संदिग्ध) को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने का विकल्प देती है, लेकिन पूरी कार्यवाही के लिए प्रामाणिकता, पारदर्शिता और साख प्रदान करने के लिए, पहली बार में, प्रयास यह होना चाहिए कि संदिग्ध को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए, जिसे किसी भी अन्य अधिकारी की तुलना में आम आदमी का अधिक विश्वास प्राप्त हो। यह न केवल तलाशी की कार्यवाही में वैधता जोड़ेगा, बल्कि यह अभियोजन को भी मजबूत कर सकता है।

2) आपराधिक अपील संख्या-437 वर्ष 1997 से उत्पन्न मुन्नान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 05.01.2021 को फैसला किया गया और पैराग्राफ 16, 17, 18 और 19 को संदर्भित किया गया है जो यहां उद्धृत हैं: -

"16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के महत्व पर चर्चा की है। पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 2378 में, उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के अनिवार्य प्रावधानों के महत्व और दायरे पर विस्तार से चर्चा की है:

"55. उपरोक्त तर्क और चर्चा के आधार पर, निम्नलिखित निष्कर्ष उत्पन्न होते हैं:

(1) कि जब कोई सशक्त अधिकारी या पूर्व सूचना पर कार्य करने वाला सम्यक प्राधिकृत अधिकारी किसी व्यक्ति की तलाशी लेने वाला हो तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह धारा 50 की उपधारा (1) के अधीन अपने अधिकार के बारे में संबंधित व्यक्ति को खोज करने के लिए निकटतम राजपत्रित अधिकारी या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जाए जाने के बारे में सूचित करे। हालाँकि, ऐसी जानकारी आवश्यक रूप से लिखित रूप में नहीं हो सकती है;

(2) संबंधित व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लिए जाने के उसके अधिकार के अस्तित्व के बारे में सूचित करने में विफलता किसी अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह का कारण बनेगी;

(3) कि किसी सशक्त अधिकारी द्वारा पूर्व सूचना पर, व्यक्ति को उसके अधिकार की सूचना दिए बिना की गई तलाशी, यदि वह ऐसी अपेक्षा करता है, तो उसे तलाशी के लिए राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाया जाएगा और यदि वह ऐसा विकल्प चुनता है, तो राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी तलाशी करने में विफल रहने पर, विचारण को समाप्त नहीं कर सकता है, लेकिन अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगा और दोषसिद्धि, किसी अभियुक्त की सजा को समाप्त कर देगा; जहां अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों के उल्लंघन में की गई तलाशी के दौरान उसके व्यक्ति से बरामद अवैध वस्तु के कब्जे के आधार पर ही दोषसिद्धि दर्ज की गई है:

(4) कि वास्तव में अपराधियों से समाज की रक्षा करने की आवश्यकता है। सुरक्षा में सामाजिक मंशा को नुकसान होगा यदि अपराध करने वाले व्यक्तियों को छोड़ दिया जाता है क्योंकि उनके खिलाफ सबूत का इलाज किया जाना है जैसे कि

यह मौजूद नहीं है। इसलिए, इसका उत्तर यह है कि जांच एजेंसी को कानून द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया का ईमानदारी से पालन करना चाहिए और ऐसा करने में विफलता को उच्च अधिकारियों द्वारा गंभीरता से देखा जाना चाहिए और संबंधित अधिकारी के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए गंभीरता से देखा जाना चाहिए ताकि जांच प्राधिकारी की ओर से ढिलाई को रोका जा सके। हर मामले में अंतिम परिणाम महत्वपूर्ण है लेकिन इसे प्राप्त करने के साधन शंका से ऊपर रहना चाहिए। उपाय बीमारी से भी बदतर नहीं हो सकता। यदि अदालत को तलाशी अभियान के दौरान जांच एजेंसी द्वारा किए गए अराजकता के कृत्यों को माफ करते हुए देखा जाता है, तो न्यायिक प्रक्रिया की वैधता संदेह के घेरे में आ सकती है और कानून के प्रति सम्मान को भी कम कर सकता है और न्याय प्रशासन से अविवेकपूर्ण रूप से समझौता करने का प्रभाव हो सकता है। इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती। एक अभियुक्त निष्पक्ष सुनवाई का हकदार है। एक अनुचित परीक्षण के परिणामस्वरूप एक दोषसिद्धि न्याय की हमारी अवधारणा के विपरीत है। विचारण में धारा 50 द्वारा किए गए रक्षोपायों के उल्लंघन में एकत्र किए गए साक्ष्य का उपयोग विचारण को अनुचित बना देगा।

(5) कि धारा 50 में प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों का विधिवत पालन किया गया है या नहीं, न्यायालय द्वारा विचारण में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अवधारित किया जाना होगा। उस मुद्दे पर खोजना, एक तरह से या दूसरा, दोषसिद्धि या बरी करने के आदेश को दर्ज करने के लिए प्रासंगिक होगा। अभियोजन पक्ष को विचारण के दौरान यह स्थापित करने का अवसर दिए बिना कि धारा 50 के उपबंधों और विशेष रूप से उसमें उपबंधित रक्षोपायों का विधिवत अनुपालन किया गया था, दांडिक विचारण को कम करने की अनुमति नहीं होगी;

(6) कि जिस संदर्भ में तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति के लाभ के लिए धारा 50 में संरक्षण शामिल किया गया है, हम कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं कि धारा 50 के प्रावधान अनिवार्य हैं या निर्देशात्मक, लेकिन, यह मानते हैं कि संबंधित व्यक्ति को उसके अधिकार के बारे में सूचित करने में विफलता जैसा कि धारा 50 की उपधारा (1) से उत्पन्न होता है, निषिद्ध संदिग्ध वस्तु की बरामदगी और एक अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा को कानून में त्रुटिपूर्ण और अस्थिर कर सकता है;

(7) कि अधिनियम की धारा 50 में उपबंधित सुरक्षोपायों का उल्लंघन करते हुए की गई तलाशी के दौरान अभियुक्त के व्यक्ति से जब्त की

गई अवैध वस्तु का उपयोग अभियुक्त पर निषिद्ध पदार्थ के अवैध कब्जे के प्रमाण के साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है, हालांकि उस तलाशी के दौरान बरामद की गई किसी अन्य सामग्री पर अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किया जा सकता है, अन्य कार्यवाही में, एक अभियुक्त के खिलाफ, एक अवैध खोज के दौरान उस सामग्री की बरामदगी के बावजूद;"

(महत्व सन्निविष्ट)

17. विजयसिंह चंदूभा जडेजा बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 2011 एस.सी.77 में एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के दायरे पर चर्चा करते हुए, उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने यह देखते हुए कि अभियुक्त को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने की उसकी इच्छा को सूचित करना पर्याप्त नहीं है, लेकिन संबंधित अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त को अधिनियम की धारा 50 के अपने अधिकार के बारे में अवगत कराए, यथा:

"22. पूर्वगामी चर्चा के मददेनजर, हमारा दृढ़ मत है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत अधिकार जिस उद्देश्य के साथ, एक सुरक्षा उपाय के माध्यम से, संदिग्ध को प्रदान किया गया है, अर्थात् शक्ति के दुरुपयोग की जांच करना, निर्दोष व्यक्तियों को नुकसान से बचाना और कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा झूठे

मामलों को गढ़ने या थोपने के आरोपों को कम करना, अधिकार प्राप्त अधिकारी की ओर से यह अनिवार्य होगा कि वह तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लिए जाने के उसके अधिकार से अवगत कराए। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि जहां तक एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 की उप-धारा (1) के तहत अधिकृत अधिकारी के दायित्व का संबंध है, यह अनिवार्य है और इसके सख्त अनुपालन की आवश्यकता है। प्रावधान का अनुपालन करने में विफलता अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगी और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगी यदि इसे केवल इस तरह की तलाशी के दौरान अभियुक्त व्यक्ति से अवैध वस्तु की बरामदगी के आधार पर दर्ज किया जाता है। इसके बाद, संदिग्ध उक्त प्रावधान के तहत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करने का विकल्प चुन सकता है या नहीं भी कर सकता है। जैसा कि पुनः राष्ट्रपति चुनाव में देखा गया है, यह अदालतों का कर्तव्य है कि वे प्रावधान के पूरे दायरे पर ध्यान देकर विधानमंडल के वास्तविक इरादे को समझें। "हर कानून को खोलने की कुंजी कानून का कारण और भावना है, यह दुश्मनी है, कानून निर्माता का इरादा कानून में ही व्यक्त किया गया है, जिसे समग्र रूप से लिया गया है।

हमारी राय है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकता के साथ "पर्याप्त अनुपालन" की अवधारणा जोसेफ फर्नांडीज (उपरोक्त) और प्रभा शंकर दुबे (उपरोक्त) में उक्त धारा के जनादेश में पेश और पढ़ी गई है, न तो धारा 50 की उपधारा (1) की भाषा से पैदा हुई है और न ही यह बलदेव सिंह के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित हुक्म के अनुरूप है। यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं है कि यह प्रश्न कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं और धारा 50 की आवश्यकता को पूरा किया गया है, परीक्षण का विषय है। इस संबंध में कोई पूर्ण सूत्र निर्धारित करना न तो संभव होगा और न ही व्यवहार्य होगा। हमें यह भी लगता है कि हालांकि धारा 50 सशक्त अधिकारी को ऐसे व्यक्ति (संदिग्ध) को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने का विकल्प देती है, लेकिन पूरी कार्यवाही को प्रामाणिकता, पारदर्शिता और साख प्रदान करने के लिए, पहली बार में, एक प्रयास यह होना चाहिए कि संदिग्ध को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए। जिसे किसी भी अन्य अधिकारी की तुलना में आम आदमी का अधिक विश्वास प्राप्त हो। यह न केवल तलाशी की कार्यवाही में वैधता जोड़ेगा, बल्कि यह अभियोजन पक्ष को भी

मजबूत कर सकता है।
(सन्निविष्ट)

(महत्व

18. आरिफ खान @ आगा खान बनाम उत्तराखंड राज्य ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 2123 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के अनिवार्य प्रावधान के अनुपालन के महत्व पर चर्चा करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"21. एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 का सही दायरा और उद्देश्य क्या है, धारा 50 के तहत अधिकारियों को प्रदत्त कर्तव्य, दायित्व और शक्तियां क्या हैं और क्या धारा 50 की आवश्यकताओं का अनुपालन अनिवार्य है या निर्देशिका, अब एकीकृत नहीं है और अब पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह (1999) 6 एस.सी.सी. 172 में इस न्यायालय की संविधान पीठ के दो निर्णयों द्वारा तय किए गए हैं: (ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 2378) और विजयसिंह चंदूभा जडेजा (ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 77) (उपरोक्त)

22. वास्तव में, विजयसिंह चंदूभा जडेजा (ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 77) (उपरोक्त) के मामले में दिए गए बाद के संविधान पीठ के फैसले ने इस विषय पर पिछले सभी मामले कानून को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त प्रश्नों का निपटारा किया है।

23. विजयसिंह चंदूभा जडेजा (ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 77) (उपरोक्त) में उनके आधिपत्य ने माना

है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकताएं अनिवार्य हैं और इसलिए, धारा 50 के प्रावधानों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। यह माना जाता है कि पुलिस अधिकारी की ओर से यह अनिवार्य है कि वह धारा 50 के तहत तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को उसके अधिकार से अवगत कराए, जिसकी तलाशी केवल राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष की जाएगी। यह माना जाता है कि अधिकृत अधिकारी की ओर से यह भी उतना ही अनिवार्य है कि वह संदिग्ध को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के अपने अधिकार के अस्तित्व से अवगत कराए, यदि उसके द्वारा ऐसा आवश्यक हो और इसके लिए सख्त अनुपालन की आवश्यकता है। यह फैसला सुनाया जाता है कि संदिग्ध व्यक्ति एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के तहत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करने का विकल्प चुन सकता है या नहीं भी कर सकता है, लेकिन जहां तक अधिकारी का संबंध है, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के तहत उस पर एक दायित्व डाला जाता है कि वह संदिग्ध को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के अपने अधिकार से अवगत कराए। (अशोक कुमार शर्मा बनाम राजस्थान राज्य, 2013(2) एस.सी.सी. 67 और नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो बनाम सुखदेव राज सोढ़ी, 2011(6) एस.सी.सी. 392)

भी देखें: (ए.आई.आर. 2011 एस.सी.1939)। (महत्व सन्निविष्ट)

19. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि अधिनियम की धारा 50 के विशिष्ट जनादेश के उल्लंघन में प्रतिबंधित नशीले पदार्थों को बरामद किया गया था, तो अभियोजन की पूरी कहानी संदिग्ध हो जाती है और अपीलकर्ता बरी होने का हकदार है। "

3) राम प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक अपील संख्या-357 वर्ष 1999 से उद्भूत वाद में 22.05.2020 को फैसला किया गया और पैराग्राफ 16, 17 और 18 का उल्लेख किया गया है जो यहां उद्धृत हैं: -

"16. पुलिस कर्मियों या अधिकारियों द्वारा इस अधिनियम के दुरुपयोग की जांच करने के लिए एन.डी.पी.एस. अधिनियम में गंभीर दंड का प्रावधान किया गया है और कुछ सुरक्षा उपायों विशेष रूप से एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 को इस अधिनियम में शामिल किया गया है कि संदिग्ध व्यक्ति की तलाशी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष की जानी चाहिए। इसी प्रकार एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 55 और 57 में यह प्रावधान है कि जब्त की गई प्रतिबंधित सामग्री को थानाध्यक्ष द्वारा सुरक्षित अभिरक्षा में रखा जाए और गिरफ्तारी और जब्ती की रिपोर्ट 48 घंटे के भीतर तत्काल सुपीरियर अधिकारी को भेजी जाए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विजयसिंह चंदूभा जडेजा बनाम गुजरात राज्य, 2010(2) ई.एफ.आर. 755 में, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के महत्व और प्रासंगिकता पर चर्चा करते हुए, पैरा-22 में, निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"22. पूर्वगामी चर्चा के मददेनजर, हमारा दृढ़ मत है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत अधिकार जिस उद्देश्य के साथ, एक सुरक्षा उपाय के माध्यम से, संदिग्ध को प्रदान किया गया है, अर्थात् शक्ति के दुरुपयोग की जांच करना, निर्दोष व्यक्तियों को नुकसान से बचाना और कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा झूठे मामलों को गढ़ने या थोपने के आरोपों को कम करना, अधिकार प्राप्त अधिकारी की ओर से यह अनिवार्य होगा कि वह तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लिए जाने के उसके अधिकार से अवगत कराए। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि जहां तक धारा 50 एन.डी.पी.एस. अधिनियम की उप-धारा (1) के तहत अधिकृत अधिकारी के दायित्व का संबंध है, यह अनिवार्य है और इसके सख्त अनुपालन की आवश्यकता है। प्रावधान का अनुपालन करने में विफलता अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगी और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगी यदि इसे केवल इस तरह की तलाशी के दौरान अभियुक्त के व्यक्ति से अवैध वस्तु की बरामदगी

के आधार पर दर्ज किया जाता है। इसके बाद, संदिग्ध उक्त प्रावधान के तहत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करने का विकल्प चुन सकता है या नहीं भी कर सकता है। जैसा कि पुनः राष्ट्रपति चुनाव (1974)2 एस.सी.सी. 33 में देखा गया है, यह अदालतों का कर्तव्य है कि वे प्रावधान के पूरे दायरे पर ध्यान देकर विधानमंडल के वास्तविक इरादे को प्राप्त करें। "हर कानून को खोलने की कुंजी कानून का कारण और भावना है, यह दुश्मनी है, कानून निर्माता का इरादा कानून में ही व्यक्त किया गया है, जिसे समग्र रूप से लिया गया है। हमारी राय है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकता के साथ "पर्याप्त अनुपालन" की अवधारणा जोसेफ फर्नांडीज (उपरोक्त) और प्रभा शंकर दुबे (उपरोक्त) में उक्त धारा के जनादेश में पेश और पढ़ी गई है, न तो धारा 50 की उपधारा (1) की भाषा से पैदा हुई है और न ही यह बलदेव सिंह के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित हुकम के अनुरूप है। यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं है कि यह प्रश्न कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं और धारा 50 की आवश्यकता को पूरा किया गया है, परीक्षण का विषय है। इस संबंध में कोई पूर्ण सूत्र निर्धारित करना न तो संभव होगा और न ही व्यवहार्य होगा। हमें यह भी लगता है कि हालांकि धारा

50 सशक्त अधिकारी को ऐसे व्यक्ति (संदिग्ध) को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने का विकल्प देती है, लेकिन पूरी कार्यवाही को प्रामाणिकता, पारदर्शिता और साख प्रदान करने के लिए, पहली बार में, एक प्रयास यह होना चाहिए कि संदिग्ध को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए। जिसे किसी भी अन्य अधिकारी की तुलना में आम आदमी का अधिक विश्वास प्राप्त हो। यह न केवल तलाशी की कार्यवाही में वैधता जोड़ेगा, बल्कि यह अभियोजन पक्ष को भी मजबूत कर सकता है।
(महत्त्व सन्निविष्ट)

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम परमानंद और अन्य, (2014)2 एस.सी.सी. (क्रि) 563, फिर से पैराग्राफ -17 में, निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"हमारी राय में, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत उपलब्ध अधिकार का एक संयुक्त संचार अभियुक्त को धारा 50 के उद्देश्य को ही विफल करेगा। जिस व्यक्ति की तलाशी होने वाली है, उसे उक्त अधिकार का संचार खोखली औपचारिकता नहीं है। इसका एक उद्देश्य है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अधिकांश अपराधों में कड़ी सजा होती है और इसलिए, निर्धारित प्रक्रिया का सावधानीपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। झूठी संलिप्तता की संभावना के खिलाफ अभियुक्त के लिए

ये न्यूनतम सुरक्षा उपाय उपलब्ध हैं। इस अधिकार का संचार प्रकट, स्पष्ट और व्यक्तिगत होना चाहिए। अभियुक्त को इस तरह के अधिकार के अस्तित्व से अवगत कराया जाना चाहिए। इस अधिकार का बहुत कम महत्व होगा यदि लाभार्थी इसके अस्तित्व के बारे में ज्ञान के अभाव में इसका उपयोग करने में सक्षम नहीं है। अधिकार का एक संयुक्त संचार स्पष्ट या असमान नहीं हो सकता है। यह भ्रम पैदा कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप अधिकार कमजोर हो सकता है। इसलिए, हमारा विचार है कि अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से सूचित किया जाना चाहिए कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत, उसे निकटतम राजपत्रित अधिकारी या निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार है। परमजीत सिंह मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और धर्मवीर लेखराम शर्मा मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया यही दृष्टिकोण हमारी मंजूरी के साथ मिलता है।

4) विजय जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2013) 14 एस.सी.सी. 527 और पैराग्राफ 10, 11, 12 और 13 का उल्लेख किया है जो यहां उद्धृत किए गए हैं: -

"10. दूसरी ओर, जितेंद्र मामले [जितेंद्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2004)10 एस.सी.सी. 562: 2004 एस.सी.सी.

(क्रि) 2028] में इस न्यायालय के फैसले को पढ़ने पर, हम पाते हैं कि इस न्यायालय ने यह विचार किया है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अपराध के मुकदमे में, अभियोजन पक्ष के लिए ठोस सबूतों द्वारा स्थापित करना आवश्यक था कि प्रतिबंधित वस्तुओं की कथित मात्रा को जब्त किया गया था अभियुक्त और इस तथ्य को साबित करने के लिए सबसे अच्छा सबूत परीक्षण के दौरान पेश करना है, जब्त की गई सामग्री को भौतिक वस्तुओं के रूप में और जहां कथित रूप से जब्त की गई प्रतिबंधित सामग्री का उत्पादन नहीं किया जाता है और अभियोजन पक्ष द्वारा निषिद्ध सामग्री का उत्पादन करने में विफलता के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है, केवल मौखिक साक्ष्य कि अभियुक्त से सामग्री जब्त की गई थी, विशेष रूप से एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अपराध बनाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा जब पंचान गवाह मुकर गए हैं। फिर से, अशोक [अशोक बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2011)5 एस.सी.सी. 123: (2011)2 एस.सी.सी. (क्रि) 547] में इस न्यायालय ने पाया कि अभियुक्त के कब्जे से जब्त कथित मादक पाउडर को विचारण न्यायालय के समक्ष सामग्री प्रदर्शन के रूप में पेश नहीं किया गया था और इसके गैर-उत्पादन के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं था और इस न्यायालय ने माना कि इसलिए कब्जे से जब्त किए गए

पदार्थ के साथ फोरेंसिक रिपोर्ट को जोड़ने के लिए कोई सबूत नहीं था अपीलकर्ता का।

प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि जब्त किए गए प्रतिबंधित सामान को एक सूटकेस में पेश किया गया था, अ०सा०-11 के साक्ष्य के विपरीत है, जो निम्नलिखित प्रभाव से है:

"81. नोट- स्टोर सामग्री से एक बड़ा सूटकेस जिस पर संख्या-466/05 लिखा गया है, सीलिंग सामग्री की सील के साथ एक सफेद कपड़े में प्राप्त हुआ है। इसमें ताला नंबरों का होता है और ताला नहीं खुल रहा होता है इस वजह से एजीपी को ताला खोलने के लिए किसी तकनीकी व्यक्ति को बुलाने का निर्देश दिया जाता है, इस पर एजीपी ने श्री शकूर को बुलाया था जिन्होंने व्यक्त किया था कि ताला नंबरों का है और खोला नहीं जा सकता, इसे तोड़ा जा सकता है। मामले में साक्ष्य सामग्री महत्वपूर्ण है और इसलिए ताला तोड़ने का निर्देश दिया गया, ताला खोला गया। ओपनिंग पर सूटकेस में कपड़े में लिपटा एक बड़ा पैकेट मिला लेकिन कपड़ा फटा हुआ है और नीले रंग की पॉलीथिन दिख रही है जिसमें कपड़े हैं। जो कपड़ा नीले रंग की पॉलीथिन पर लपेटा हुआ है, उस पर कोई सील दिखाई नहीं दे रही है, न ही कोई विवरण देखा जा रहा है, क्योंकि कपड़ा गीला है, दूषित स्थिति में है और फटा हुआ है और उस पर कोई नोट नहीं है।

पॉलीथिन में 5 पेंट और 5 शर्ट हैं जो गीली स्थिति में हैं।

111. आज मैं यह नहीं कह सकता कि बाकी पदार्थ किस रंग के बैग में पैक किया गया था। विजय जैन के पास से जो सामग्री जब्त की गई थी, उसमें से 25-25 ग्राम के दो नमूने बनाकर बी-1 और बी-2 अंकित किए गए थे, जिन्हें गवाह को दिखाया गया जब उसने कहा कि उन्हें साइट पर विजय जैन के पास मिली सामग्री से निकाला गया था। साइट पर दो नमूनों और बाकी सामग्री के अलावा कोई अन्य पैकेट नहीं बनाया गया था। उक्त दोनों पैकेट जो न्यायालय में प्रस्तुत किए गए हैं, उन्हें सील कर दिया गया है और उन पर जब्ती चिट नहीं चिपका है, बी-1 और बी-2 पैकेट दिखाया और पूछा कि थाने की सील चिपका दी गई है, तब गवाह ने कहा कि थाने की सील चिपका दी गई है, फिर गवाह ने कहा कि यह तहसीलदार, इंदौर की मुहर है। बाकी पदार्थ और मोबाइल को छोड़कर विजय के पास से जब्त की गई अन्य सामग्री अदालत में जमा की जाती है। यह सच है कि मैंने स्टोर के इंचार्ज को सील करने के लिए मोबाइल नहीं दिया था। आज मैं नहीं कह सकता कि वह मोबाइल कहां है।

इस प्रकार अदालत के सामने एकमात्र सबूत यह था कि जिस सूटकेस को खोलने पर कथित तौर पर प्रतिबंधित सामान रखा गया

था, उसमें कपड़े में लपेटा गया केवल एक बड़ा पैकेट था और कपड़ा फटा हुआ था और एक नीले रंग की पॉलिथीन थी जिसमें कपड़े थे। सूटकेस में किसी भी ब्राउन शुगर के अंसां-11 के साक्ष्य में कोई उल्लेख नहीं है। हालांकि, इस बात के सबूत हैं कि 25-25 ग्राम के नमूने तैयार किए गए थे जो गवाहों को दिखाए गए थे और बी-1 और बी-2 चिह्नित किए गए थे, लेकिन हम पाते हैं कि अंसां-3 ने अपनी जांच में अदालत के समक्ष कहा है कि ये नमूने उसकी उपस्थिति में तैयार नहीं किए गए थे और अंसां-2 ने अदालत के समक्ष कहा है कि गवाहों को उस स्थान पर नहीं ले जाया गया था जहां सामग्री जब्त की गई थी।

12. इस प्रकार हमारा विचार है कि चूंकि अभियोजन पक्ष ने न्यायालय के समक्ष ब्राउन शुगर का उत्पादन नहीं किया है और अपीलकर्ताओं से कथित रूप से जब्त की गई ब्राउन शुगर के गैर-उत्पादन के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है और गवाहों के साक्ष्य के रूप में (अंसां-2 और अंसां-3) सामग्री की जब्ती अपीलकर्ताओं के कब्जे से ब्राउन शुगर की जब्ती स्थापित नहीं करती है, अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने वाले विचारण न्यायालय के फैसले और दोषसिद्धि को बनाए रखने वाले उच्च न्यायालय के फैसले टिकाऊ/पुख्ता नहीं हैं।

परिणामता: हम इन अपीलों को स्वीकार करते हैं और विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय के आक्षेपित फैसले को रद्द करते हैं। अपीलकर्ता जेल में बताए जा रहे हैं। यदि

किसी अन्य मामले के संबंध में आवश्यकता नहीं होती है तो उन्हें तुरंत रिहा कर दिया जाएगा।

5) जितेन्द्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2004) 10 एस.सी.सी. 562 और पैराग्राफ 6, 9 और 10 का उल्लेख किया है जो यहां उद्धृत किए गए हैं: -

पीठ ने कहा, "हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण टिकाऊ/पुख्ता नहीं है। मुकदमे में अभियोजन पक्ष के लिए ठोस सबूतों द्वारा यह स्थापित करना आवश्यक था कि आरोपी के कब्जे से चरस और गांजा की कथित मात्रा जब्त की गई थी। सबसे अच्छा सबूत जब्त की गई सामग्री होगी जिसे परीक्षण के दौरान पेश किया जाना चाहिए था और भौतिक वस्तुओं के रूप में चिह्नित किया जाना चाहिए था। उन्हें उत्पादन करने में इस विफलता के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। केवल उनकी विशेषताओं और पंचनामा के उत्पादन के रूप में मौखिक साक्ष्य अभियोजन पक्ष पर निहित भारी बोझ का निर्वहन नहीं करता है, विशेष रूप से जहां अपराध एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत कड़ी सजा के साथ दंडनीय है। इस मामले में, हम देखते हैं कि पंचान मुकर गए हैं, इसलिए पंचनामा और कुछ नहीं बल्कि संबंधित पुलिस अधिकारी द्वारा लिखा गया एक दस्तावेज है। प्रतिपरीक्षा में बचाव पक्ष द्वारा दिया गया सुझाव ध्यान देने योग्य है। अभियोजन पक्ष के गवाहों को यह सुझाव दिया गया था कि

घर की मकान मालकिन ने पुलिस के साथ मिलकर आरोपियों को उस घर से बेदखल करने के लिए झूठा मामला दर्ज किया था जिसमें वे रह रहे थे। अंत में, हम देखते हैं कि विवेचनाधिकारी से भी पूछताछ नहीं की गई थी। इस पृष्ठभूमि के खिलाफ, यह कहना कि पंचान गवाहों के मुकर जाने के बावजूद, विवेचनाधिकारी की जांच न करने और जब्त दवाओं का उत्पादन न करने के बावजूद, एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत दोषसिद्धि अभी भी कायम रह सकती है, दूर की कौड़ी है।

9. सभी परिस्थितियों के संचयी प्रभाव को देखते हुए, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री उचित संदेह से परे आरोप को साबित नहीं करती है। हमारा विचार है कि रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री पर अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराना असुरक्षित होगा। वे निश्चित रूप से संदेह के लाभ के हकदार हैं।

परिणामता: हम अपील की अनुमति देते हैं, उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय के फैसले को रद्द करते हैं और अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को रद्द करते हैं। अपीलकर्ता जितेंद्र को निर्देश दिया जाता है कि यदि किसी अन्य मामले में इसकी आवश्यकता नहीं है तो उसे तुरंत हिरासत से रिहा किया जाए।

6) अशोक @ डांगरा जायसवाल, (2011) 5 एस.सी.सी. 123 और पैराग्राफ 10, 11, 12 और 13 को संदर्भित किया है जो यहां उद्धृत हैं: -

"10. कथित मादक पदार्थ की जब्ती 8-3-2005 को शाम 11.45 बजे की गई थी। जब्त पदार्थ से लिए गए नमूने 10-3-2005 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला को ड्राफ्ट के साथ भेजे गए थे, तथापि, विधि विज्ञान जांच के लिए भेजे गए नमूने उस तारीख को विधि विज्ञान प्रयोगशाला में जमा नहीं किए गए थे लेकिन वे नमूने मसौदे में किसी गलती अथवा मसौदे के संबंध में कुछ पूछताछ के कारण 12.3.2005 को वापस थाना आ गए। नमूने मसौदे में आवश्यक सुधार करने और/अथवा प्रश्न का उत्तर देने के बाद 14.3.2005 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला को वापस भेज दिए गए थे और उसी तारीख को नमूने विधि विज्ञान प्रयोगशाला में स्वीकार कर लिए गए थे। 8.3.2005 की देर शाम को जब्ती के समय से लेकर 14.3.2005 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला में उनके जमा होने तक यह स्पष्ट नहीं है कि नमूने कहाँ रखे गए थे अथवा कितने लोगों द्वारा और किस तरीके से हैंडल किए गए थे।

11. विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट 21-3-2005 को आई, और उस आधार पर पुलिस ने 31-3-2005 को अभियुक्त के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया, लेकिन अपीलकर्ता सहित अभियुक्त से जब्त कथित मादक पदार्थ लगभग दो महीने बाद 28-5-2005 को मालखाने में जमा किया गया था। इस बीच जब्त पदार्थ कहाँ रखा गया, इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

12. अंतिम लेकिन कम से कम नहीं, अपीलकर्ता सहित अभियुक्त के कब्जे से जब्त कथित नशीले पदार्थ पाउडर को भौतिक प्रदर्शन के रूप में विचारण न्यायालय के समक्ष कभी भी पेश नहीं किया गया था और एक बार फिर इसके गैर-उत्पादन के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। इस प्रकार, फॉरेंसिक रिपोर्ट को उस पदार्थ से जोड़ने के लिए कोई सबूत नहीं है जो अपीलकर्ता या अन्य अभियुक्त के कब्जे से जब्त किया गया था।

यहां ध्यान दिया जा सकता है कि जितेंद्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2004) 10 एस.सी.सी. 562: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 2028], इसी तरह के तथ्यों पर इस न्यायालय ने माना कि अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री उचित संदेह से परे अभियुक्तों के खिलाफ आरोप को साबित नहीं करती है और उस आधार पर उनकी सजा को बनाए रखना असुरक्षित होगा। जितेंद्र [(2004) 10 एस.सी.सी. 562: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 2028] में, न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया और अवधारित किया: (एस.सी.सी. pp. 564-65, पैरा-5-6)

"5. यह साबित करने के लिए सबूत कि आरोपी के कब्जे से चरस और गांजा बरामद किया गया था, पुलिस अधिकारियों और पंचान गवाहों के सबूत शामिल थे। पंचान गवाह मुकर गए। इस प्रकार, हम पाते हैं कि राजेंद्र पाठक (अ.सा.-7), अंगद सिंह (अ.सा.-8) और सब-इंस्पेक्टर डी.जे राय (अ.सा.-6) की गवाही के अलावा,

आरोपी के कब्जे से ड्रग्स की बरामदगी के बारे में कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। आरोपियों के कब्जे से कथित तौर पर जब्त किए गए चरस और गांजे को विचारण न्यायालय के समक्ष भी पेश नहीं किया गया, ताकि उन्हें विधि विज्ञान प्रयोगशाला में भेजे गए नमूनों से जोड़ा जा सके। मुकदमे में पुलिस अधिकारियों की दिलचस्पी भरी गवाही के अलावा ऐसी कोई सामग्री पेश नहीं की गई है, जिससे यह पता चले कि आरोपी के कब्जे से चरस और गांजा जब्त किया गया था या फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला में भेजे गए नमूने आरोपी के कब्जे से जब्त की गई दवाओं से लिए गए थे। हालांकि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि आरोपी की हिरासत से कथित रूप से जब्त किए गए चरस और गांजा को न तो अदालत में पेश किया गया था, न ही लेख के रूप में चिह्नित किया गया था, जो किया जाना चाहिए था। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए विवाद को खारिज कर दिया कि यह दोषसिद्धि को समाप्त नहीं करेगा क्योंकि यह साबित हो गया था कि नमूने रासायनिक परीक्षक को ठीक से सील स्थिति में भेजे गए थे और वे चरस और गांजा पाए गए। उच्च न्यायालय ने कहा, 'अदालत के समक्ष इन वस्तुओं का उत्पादन न करना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है। बचाव पक्ष ने भी मुकदमे के दौरान इस बात पर जोर नहीं दिया कि इन वस्तुओं का उत्पादन किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने धारा 465 द०प्र०स० पर भरोसा करते हुए कहा कि

भौतिक वस्तु का गैर-उत्पादन केवल एक प्रक्रियात्मक अनियमितता थी और इससे अभियुक्त को पूर्वाग्रह नहीं हुआ।

दवाओं का उत्पादन न करने के बावजूद, एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत दोषसिद्धि अभी भी कायम रह सकती है, दूर की कौड़ी है।

6. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अस्थिर है। मुकदमे में अभियोजन पक्ष के लिए ठोस सबूतों द्वारा यह स्थापित करना आवश्यक था कि आरोपी के कब्जे से चरस और गांजा की कथित मात्रा जब्त की गई थी। सबसे अच्छा सबूत जब्त की गई सामग्री होगी जिसे परीक्षण के दौरान पेश किया जाना चाहिए था और भौतिक वस्तुओं के रूप में चिह्नित किया जाना चाहिए था। उन्हें उत्पादन करने में इस विफलता के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। केवल उनकी विशेषताओं और पंचनामा के उत्पादन के रूप में मौखिक साक्ष्य अभियोजन पक्ष पर निहित भारी बोझ का निर्वहन नहीं करता है, विशेष रूप से जहां अपराध एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत कड़ी सजा के साथ दंडनीय है। इस मामले में, हम देखते हैं कि पंचान मुकर गए हैं, इसलिए पंचनामा और कुछ नहीं बल्कि संबंधित पुलिस अधिकारी द्वारा लिखा गया एक दस्तावेज है। प्रतिपरीक्षा में बचाव पक्ष द्वारा दिया गया सुझाव ध्यान देने योग्य है। अभियोजन पक्ष के गवाहों को यह सुझाव दिया गया था कि घर की मकान मालकिन ने पुलिस के साथ मिलकर आरोपियों को उस घर से बेदखल करने के लिए झूठा मामला दर्ज किया था जिसमें वे रह रहे थे। अंत में, हम देखते हैं कि विवेचनाधिकारी से भी पूछताछ नहीं की गई थी। इस पृष्ठभूमि के खिलाफ, यह कहना कि पंचान गवाहों के मुकरने के बावजूद, विवेचनाधिकारी की जांच न करने और जब्त

12) दूसरी ओर, राज्य की ओर से पेश होने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वे पुलिस कर्मी हैं और आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता नहीं है और यह कानून का एक स्थापित प्रावधान है कि केवल गवाह की एकांत गवाही पर, दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश अच्छी तरह से तर्कसंगत, अच्छी तरह से चर्चा की गई है और इसकी पुष्टि की जा सकती है।

13) पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित तथ्य और कानून चर्चा के लिए उभरते हैं।

14) रिकॉर्ड पर उपलब्ध जानकारी और सामग्री पर चर्चा करने से पहले, नारकोटिक्स ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 के कड़े प्रावधानों के बारे में जानकारी होना प्रासंगिक है, जो कि मात्रा से संबंधित अपराधों के लिए 10 साल से कम नहीं है, जिसमें न्यूनतम 1,00,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है। गंभीर दंड की प्रकृति और अधिनियम के सख्त कानूनों के कारण, अधिनियम के दुरुपयोग को रोकने के लिए कुछ सुरक्षा उपाय भी प्रदान

किए गए हैं और बार-बार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी उपरोक्त कानूनों पर चर्चा की है और अपना निष्कर्ष दिया है।

15) सजा की गंभीरता और कठोरता को देखते हुए अधिनियम के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के तहत कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं, जो निम्नानुसार हैं: -

"50. वे शर्तें जिनके अधीन व्यक्तियों की तलाशी ली जाएगी।

(1) जब धारा 42 के अधीन सम्यक् रूप से प्राधिकृत कोई अधिकारी, धारा 41, धारा 42 या धारा 43 के उपबंधों के अधीन किसी व्यक्ति की तलाशी लेने वाला है तो वह, यदि ऐसा अपेक्षित हो, ऐसे व्यक्ति को अनावश्यक विलम्ब के बिना धारा 42 में वर्णित विभागों में से किसी के निकटतम राजपत्रित अधिकारी के पास या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जाएगा।

(2) यदि ऐसी माँग की जाती है तो अधिकारी उस व्यक्ति को तब तक निरुद्ध कर सकेगा जब तक कि वह उसे उपधारा (1) में निर्दिष्ट राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं ला सकता।

(3) राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष ऐसा कोई व्यक्ति लाया जाता है, यदि उसे तलाशी के लिये कोई युक्तियुक्त आधार दिखाई नहीं देता है तो वह उस व्यक्ति को आरोपमुक्त कर देगा किन्तु अन्यथा वह निदेश देगा कि तलाशी की जाए।

(4) किसी भी महिला को छोड़कर किसी भी महिला की तलाशी नहीं ली जाएगी। [(5) जब धारा 42 के अधीन सम्यक् रूप से प्राधिकृत

किसी अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाना तब तक संभव नहीं है जब तक कि उस व्यक्ति की तलाशी लिए जाने की संभावना न हो और वह किसी स्वापक औषधि या मनप्रभावी पदार्थ, या नियंत्रित पदार्थ या वस्तु या दस्तावेज के कब्जे से भाग जाए, वह, ऐसे व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाने के बजाय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 100 के तहत प्रदान किए गए व्यक्ति की तलाशी लेने के लिए आगे बढ़ सकता है।

(6) उपधारा (5) के अधीन तलाशी किए जाने के पश्चात्, अधिकारी ऐसे विश्वास के कारणों को अभिलिखित करेगा जिनके लिए ऐसी तलाशी अपेक्षित थी और उसकी एक प्रति बहतर घंटे के भीतर अपने निकटतम सरकारी वरिष्ठ अधिकारी को भेजेगा।

16) इस मामले के तथ्य पर आते हुए, माना जाता है कि अपीलकर्ता की व्यक्तिगत तलाशी से उसके द्वारा पहने गए पतलून से प्रतिबंधित मादक पदार्थ और चाकू बरामद किया गया था। उपरोक्त के अलावा, गिरफ्तारी के स्थान पर एक फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया था और अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

17) एस.आई. सदानंद राय की विचारण न्यायालय के समक्ष अ०सा०-1 के रूप में जांच की गई और विचारण न्यायालय के समक्ष दिए गए अपने बयान में कि पुलिस सूचनाकर्ता के

इनपुट पर, पुलिस पहले ही गोरा कब्रिस्तान पहुंच गई और एक व्यक्ति को पाया। उसे जब पुलिस द्वारा रोका गया, तो उसने भागने की कोशिश की, लेकिन उसे पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया और सिंघाही निवासी लियाकत अली, थाना फखरपुर, बहराइच के रूप में उसकी पहचान का खुलासा किया। उसके द्वारा पहनी गई पैंट की जेब से और चाकू व प्रतिबंधित पदार्थ बरामद किया गया। यह गवाही दी गई थी कि घटना के स्थान से गुजरने वाले कई व्यक्तियों से बरामदगी का गवाह बनने का अनुरोध किया गया था, लेकिन उन सभी ने इनकार कर दिया और इसलिए पुलिस के समक्ष तलाशी ली गई थी कि अपीलकर्ता को सूचित किया गया था कि उसे किसी भी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष खोजा जा सकता है, लेकिन अपीलकर्ता ने इस बहाने से इनकार कर दिया कि उसके कब्जे से निषिद्ध वस्तु बरामद की गई है, इसलिए उसे किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह भी कहा गया कि कथित बरामद मादक पदार्थ 500 ग्राम स्मैक था जिसे सील कर दिया गया है।

18) कांस्टेबल सतेंद्र पचौरी को विचारण न्यायालय के समक्ष अ०सा०-2 के रूप में जांच की गई है और अपने बयान में उन्होंने कहा है कि पुलिस सूचनाकर्ता द्वारा प्रदान की गई एक इनपुट पर कि एक व्यक्ति के पास प्रतिबंधित नशीले पदार्थ और अवैध हथियार हैं, पुलिस गोरा कब्रिस्तान पहुंची, जहां एक व्यक्ति पाया गया और रोका जा रहा था, उसने भागने की कोशिश की लेकिन पुलिस द्वारा उसे पकड़

लिया गया। यह गवाही दी गई थी कि कई व्यक्तियों से बरामदगी का गवाह बनने का अनुरोध किया गया था, लेकिन सभी ने इनकार कर दिया और उपरोक्त परिस्थितियों में, तलाशी केवल पुलिस के समक्ष आयोजित की गई थी। गवाह द्वारा यह कहा गया था कि अपीलकर्ता को सूचित किया गया था कि उसकी तलाशी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष अवधारित की जा सकती है, लेकिन अपीलकर्ता ने इसके लिए इनकार कर दिया कि चूंकि उसे अब गिरफ्तार किया जा रहा है, इसलिए उसे किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष पेश करने का कोई उद्देश्य नहीं है।

19) प्रस्तुत मामले में, माना जाता है कि एस.आई सुनील कुमार मिश्रा, जो अभियोजन पक्ष के सबसे महत्वपूर्ण गवाह हैं, जिन्होंने फ़र्द बरामदगी तैयार किया था, की अभियोजन पक्ष द्वारा जांच नहीं की गई है और अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण भी नहीं दिया गया है, कि इस स्टार गवाह से पूछताछ क्यों नहीं की गई है। इस प्रकार उपरोक्त के मददेनजर, अपीलकर्ता द्वारा दी गई खोज की चिंता संदिग्ध हो जाती है।

20) यह भी उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत मामले में, अभियोजन पक्ष एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के अनिवार्य प्रावधान के अनुपालन को साबित करने में विफल रहा है।

21) उल्लेखनीय है कि पुलिस कर्मियों या अधिकारियों द्वारा इस अधिनियम के दुरुपयोग की जांच के लिए एन.डी.पी.एस. अधिनियम में

गंभीर दंड का प्रावधान किया गया है और इस अधिनियम में कुछ सुरक्षा उपायों विशेष रूप से एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 को शामिल किया गया है कि संदिग्ध व्यक्ति की तलाशी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष की जानी चाहिए। इसी प्रकार एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 55 और 57 में यह प्रावधान है कि जब्त की गई प्रतिबंधित सामग्री को थानाध्यक्ष द्वारा सुरक्षित अभिरक्षा में रखा जाए और गिरफ्तारी और जब्त की रिपोर्ट 48 घंटे के भीतर तत्काल सुपीरियर अधिकारी को भेजी जाए।

22) उपरोक्त संबंध में, विजयसिंह चंदूभा जडेजा बनाम गुजरात राज्य (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण ने पैरा-22 में एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के महत्व और प्रासंगिकता पर जोर दिया है, जिसमें कहा गया है कि "पूर्वगामी चर्चा के मददेनजर, हम दृढ़ राय के हैं कि जिस उद्देश्य के साथ एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत अधिकार है, संदिग्ध को एक सुरक्षा उपाय के रूप में प्रदान किया गया है, अर्थात् शक्ति के दुरुपयोग की जांच करने के लिए, निर्दोष व्यक्तियों को नुकसान से बचाने के लिए और कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा झूठे मामलों को गढ़ने या थोपने के आरोपों को कम करने के लिए, सशक्त अधिकारी की ओर से यह अनिवार्य होगा कि वह तलाशी लेने के लिए इच्छित व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के अपने अधिकार से अवगत कराए। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि जहां तक एन.डी.पी.एस. अधिनियम की

धारा 50 की उप-धारा (1) के तहत अधिकृत अधिकारी के दायित्व का संबंध है, यह अनिवार्य है और इसके सख्त अनुपालन की आवश्यकता है। प्रावधान का अनुपालन करने में विफलता अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगी और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगी यदि इसे केवल इस तरह की तलाशी के दौरान अभियुक्त के व्यक्ति से अवैध वस्तु की बरामदगी के आधार पर दर्ज किया जाता है। इसके बाद, संदिग्ध उक्त प्रावधान के तहत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करने का विकल्प चुन सकता है या नहीं भी कर सकता है। जैसा कि पुनः राष्ट्रपति चुनाव (1974)2 एस.सी.सी. 33 में देखा गया है, यह अदालतों का कर्तव्य है कि वे प्रावधान के पूरे दायरे पर ध्यान देकर विधानमंडल के वास्तविक इरादे को प्राप्त करें। "हर कानून को खोलने की कुंजी कानून का कारण और भावना है, यह दुश्मनी है, कानून निर्माता का इरादा कानून में ही व्यक्त किया गया है, जिसे समग्र रूप से लिया गया है। हमारी राय है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकता के साथ "पर्याप्त अनुपालन" की अवधारणा जोसेफ फर्नांडीज (उपरोक्त) और प्रभा शंकर दुबे (उपरोक्त) में उक्त धारा के जनादेश में पेश और पढ़ी गई है, न तो धारा 50 की उपधारा (1) की भाषा से पैदा हुई है और न ही यह बलदेव सिंह के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित हुक्म के अनुरूप है। यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं है कि यह प्रश्न कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं और धारा 50 की आवश्यकता को पूरा किया गया है, परीक्षण का विषय है। इस संबंध में कोई पूर्ण सूत्र निर्धारित करना न तो संभव होगा और न ही व्यवहार्य

होगा। हमें यह भी लगता है कि हालांकि धारा 50 सशक्त अधिकारी को ऐसे व्यक्ति (संदिग्ध) को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने का विकल्प देती है, लेकिन पूरी कार्यवाही को प्रामाणिकता, पारदर्शिता और साख प्रदान करने के लिए, पहली बार में, एक प्रयास यह होना चाहिए कि संदिग्ध को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए। जिसे किसी भी अन्य अधिकारी की तुलना में आम आदमी का अधिक विश्वास प्राप्त हो। यह न केवल तलाशी की कार्यवाही में वैधता जोड़ेगा, बल्कि यह अभियोजन पक्ष को भी मजबूत कर सकता है।

23) इसके अलावा राजस्थान राज्य बनाम परमानंद और अन्य, (2014)2 एस.सी.सी. (क्रि) 563 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-17 में फिर से कहा है कि "हमारी राय में, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत उपलब्ध अधिकार का एक संयुक्त संचार अभियुक्त को धारा 50 के बहुत ही उद्देश्य को विफल करेगा। जिस व्यक्ति की तलाशी होने वाली है, उसे उक्त अधिकार का संचार खोखली औपचारिकता नहीं है। इसका एक उद्देश्य है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अधिकांश अपराधों में कड़ी सजा होती है और इसलिए, निर्धारित प्रक्रिया का सावधानीपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। झूठी संलिप्तता की संभावना के खिलाफ अभियुक्त के लिए ये न्यूनतम सुरक्षा उपाय उपलब्ध हैं। इस अधिकार का संचार प्रकट, स्पष्ट और व्यक्तिगत होना चाहिए। अभियुक्त को इस तरह के अधिकार के अस्तित्व से अवगत

कराया जाना चाहिए। यदि लाभार्थी इसके अस्तित्व के बारे में ज्ञान के अभाव में इसका उपयोग करने में सक्षम नहीं है, इस अधिकार का बहुत कम महत्व होगा। अधिकार का एक संयुक्त संचार स्पष्ट या असमान नहीं हो सकता है। यह भ्रम पैदा कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप अधिकार कमजोर हो सकता है। इसलिए, हमारा विचार है कि अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से सूचित किया जाना चाहिए कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50(1) के तहत, उसे निकटतम राजपत्रित अधिकारी या निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार है। परमजीत सिंह मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और धर्मवीर लेखराम शर्मा मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया यही दृष्टिकोण हमारी मंजूरी के साथ मिलता है।

24) प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने के अपने वैधानिक अधिकार के बारे में कभी सूचित नहीं किया गया था और ऐसा होने के नाते, यह न्यायालय पाता है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 का घोर उल्लंघन है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के जनादेश के उल्लंघन में प्रतिबंधित नशीले पदार्थों की बरामदगी की गई है, तो पूरी अभियोजन कहानी संदिग्ध हो जाती है और अपीलकर्ता बरी होने का हकदार हो जाता है।

25) चूंकि न्यायालय पाता है कि अपीलकर्ता के कब्जे से निषिद्ध की बरामदगी संदिग्ध है, इसलिए इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि अपीलकर्ता के कब्जे से चाकू की बरामदगी भी संदिग्ध है।

26) इस प्रकार मेरा विचार है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है। विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों पर ठीक से चर्चा नहीं की है और एन.डी.पी.एस. अधिनियम के प्रावधानों सहित कानून के स्थापित सिद्धांत के खिलाफ आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित किया है। अपीलकर्ता बरी होने का हकदार है। आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जा सकता है और तदनुसार, अपील की अनुमति दी जा सकती है।

27) उपरोक्त के मद्देनजर, केस क्राइम संख्या-352 वर्ष 1994 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-110 वर्ष 1994 में अपर सत्र एवं जिला न्यायाधीश, आठवीं, जिला लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 29.10.1998 के आक्षेपित निर्णय और आदेश और नारकोटिक्स ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 की धारा 8/21 और आर्म्स एक्ट, 1959 के 25/4, थाना-हजरतगंज जिला लखनऊ, के तहत केस अपराध संख्या-353 वर्ष 1994 को रद्द किया जाता है और आरोपी अपीलकर्ता को बरी किया जाता है। नतीजतन, अपील की अनुमति दी जाती है।

28) संहिता की धारा 437-ए के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता-लियाकत अली को विचारण न्यायालय के समक्ष 20,000 रुपये की राशि का व्यक्तिगत बांड और दो विश्वसनीय जमानतदार प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है, जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी होगा, साथ ही यह वचन भी देगा कि इस फैसले के खिलाफ विशेष अनुमति याचिका दायर करने के लिए अपीलकर्ता लियाकत अली, इसकी सूचना प्राप्त होने पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे।

29) अपीलकर्ता जमानत पर है। उसका व्यक्तिगत मुचलका रद्द किया जाता है और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है।

30) निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को तुरंत भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 21

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील धारा 372 दंड प्रक्रिया

संहिता संख्या 31 सन 2023

जावेद आलम

...अपीलकर्ता

बनाम

राम प्रताप यादव एवं अन्य

.....प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता :

सज्जाद हुसैन

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 308/34, 323/34, 504 एवं 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील - अभियोजन पक्ष के अनुसार, दिनांक 18.03.2016 को जब वादी/अपीलकर्ता का पुत्र अपने घर सरसों की फसल से भरी वाहन खींचकर आ रहा था, तो प्रतिपक्षी संख्या 1 के खेत में खड़ी सौंफ की फसल उसमें फँस गई, इस पर अभियुक्तगण ने उसे अपशब्द कहे, तत्पश्चात जब अपीलकर्ता पुनः खेत से फसल लेने जा रहा था, तब अभियुक्तगण ने उसके साथ मारपीट की- उसकी चीख-पुकार सुनकर वादी तथा उसके पारिवारिक सदस्य घटनास्थल पर पहुँचे, तब अभियुक्तगण वहाँ से भाग गए एवं वादी तथा उसके अन्य पारिवारिक सदस्यों को प्राणघातक धमकी दी - अभियुक्तगण के विरुद्ध लिखित रिपोर्ट पुलिस द्वारा पंजीकृत की गई। (प्रस्तर 3)

अपीलकर्ता का तर्क था कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों का यथोचित मूल्यांकन नहीं किया गया, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्तों के विरुद्ध अपराध सिद्ध कर दिया गया था, परंतु साक्षियों के कथनों पर विचार किए बिना ही विवादित निर्णय पारित कर दिया गया। (प्रस्तर 5)

निर्णीत किया गया कि आपराधिक मुकदमा अभियुक्तगण की निर्दोषता की धारणा के साथ प्रारंभ होती है - अभियुक्तगण के दोषमुक्त हो जाने के पश्चात यह पूर्वधारणा और अधिक सुदृढ़ हो जाती है - दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप हेतु प्रबल एवं ठोस कारणों का होना आवश्यक है - अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण संभाव्य एवं युक्तिसंगत था, जो कि समुचित कारणों पर आधारित था। (प्रस्तर 11, 12)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-13)

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सज्जाद हुसैन और राज्य के विद्वान ए.जी.ए.- । श्री हरि शंकर वाजपेयी को सुना गया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. दं0प्र0सं0 की धारा 372 के तहत वर्तमान अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता, जावेद आलम ने, सत्र परीक्षण संख्या 281/2016, राज्य बनाम राम प्रताप यादव और अन्य में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश- I, अंबेडकर नगर द्वारा दिनांक 21.02.2023 को पारित निर्णय और आदेश को चुनौती दी है, जो मुकदमा अपराध संख्या 83/2016, धारा 308/34, 323/34, 504, 506 भा0दं0सं0 के तहत, पुलिस स्टेशन जलालपुर, जिला अंबेडकर नगर से उत्पन्न हुआ है, जिसमें विपक्षी संख्या 1 और 2 को उनके खिलाफ लगाए गए धारा 308/34 भा0दं0सं0 के तहत आरोपों से बरी

कर दिया गया और उन्हें धारा 323/34, 504, 506 भा0दं0सं0 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया और उन्हें परिवीक्षा अवधि के लिए प्रत्येक को 30,000/- रुपये के निजी बंध पत्र प्रस्तुत करने पर रिहा कर दिया।

3. अभियोजन पक्ष के कथनानुसार दिनांक 18.03.2016 को लगभग 11:00 बजे जब परिवादी का पुत्र जावेद आलम (वर्तमान अपीलकर्ता) सरसों की फसल से लदी गाड़ी खींचकर अपने घर आ रहा था, तभी विपक्षीगण संख्या 1-रामप्रताप के खेत में खड़ी सौंफ की फसल आ गयी, जिस पर आरोपीगण गाली-गलौज करने लगे, तत्पश्चात जब परिवादी का पुत्र फसल लेने के लिए पुनः अपने खेत पर जा रहा था, तो आरोपीगण सुधांशु व कौशल्या ने उसे घेर लिया तथा लाठी, डंडा व लोहे की रॉड से हमला कर दिया। चीख-पुकार पर जब परिवादी व उसके परिवार के सदस्य मौके पर पहुंचे तो आरोपीगण परिवादी व उसके अन्य परिवार के सदस्यों को धमकाते हुए वहां से भाग गये। इस लिखित रिपोर्ट पर पुलिस द्वारा आरोपियों के विरुद्ध प्रकरण दर्ज किया गया। प्रकरण कायम होने के पश्चात आरोपियों ने धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अपने कथनों में अपने दोष से इन्कार किया तथा मुकदमा चलाये जाने का दावा किया।

4. अवर न्यायालय ने प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के बाद दिनांक 21.02.2023 को आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित किया।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन नहीं किया, अभियोजन पक्ष ने साक्ष्यों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध अपराध को सफलतापूर्वक साबित कर दिया तथा आरोपी द्वारा गवाहों के बयान तथा अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित प्रकरण पर विचार किए बिना ही अनुमानों तथा अटकलों के आधार पर निर्णय पारित कर दिया गया।

6. विद्वान ए.जी.ए.-I ने दलील दी है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं दिखाई देती है, इसलिए वर्तमान अपील खारिज की जा सकती है।

7. मैंने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना है तथा विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश का अध्ययन किया है।

8. वर्तमान प्रकरण में अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए गवाहों द्वारा दिए गए बयानों और घायलों की चोट रिपोर्ट से मैंने पाया कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि संबंधित अपराध आरोपी द्वारा किया गया है। इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं दिखती।

9. इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया कि दोषमुक्ति के खिलाफ अपील दोषसिद्धि के खिलाफ अपील से अलग आधार पर होती है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने साधु शरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2016) 4 एससीसी 357 के प्रकरण में हाल ही में दिए गए फैसले में इस अंतर पर विचार किया है और पैराग्राफ संख्या 20 और 21 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"20. आम तौर पर, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील हमेशा दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील से बिलकुल अलग रही है। दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में जहां अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की धारणा प्रबल होती है, अपीलीय न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में केवल तभी हस्तक्षेप करेगा जब तथ्य और कानून में विकृति हो। हालांकि, हमारा मानना है कि न्यायालय का सर्वोपरि विचार पर्याप्त न्याय करना और न्याय की चूक से बचना है जो किसी अपराध के दोषी अभियुक्त को दोषमुक्त करने से उत्पन्न हो सकती है। दोषी को दोषमुक्त करने से न्याय की चूक किसी निर्दोष को दोषसिद्ध करने से कम नहीं है। इस न्यायालय ने दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के दायरे के संबंध में सिद्धांतों को स्पष्ट करते हुए, संबाशिवा बनाम केरल राज्य 1998 एससीसी (सीआरआई) 1320 में कहा है:

7. बरी किए जाने के खिलाफ अपील में अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के दायरे के संबंध में सिद्धांत अच्छी

तरह से तय हैं। दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील से कम नहीं हैं। लेकिन जहाँ रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर दो दृष्टिकोण उचित रूप से संभव हैं, वहाँ अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण के स्थान पर अपना दृष्टिकोण नहीं रख सकता। केवल तभी जब अभियुक्त को दोषमुक्त करने में ट्रायल का दृष्टिकोण रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य पर विचार करने और उससे निष्कर्ष निकालने में स्पष्ट रूप से गलत पाया जाता है, तब अपीलीय न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है।"

21. न्यायालय ने कई मामलों में यह सुसंगत दृष्टिकोण अपनाया है कि बरी किए जाने के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय के पास बरी किए जाने के आदेश पर आधारित समस्त साक्ष्यों की समीक्षा करने तथा उन पर पुनर्विचार करने के लिए कानून में कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। यदि अपीलीय न्यायालय, जांच करने पर पाता है कि अवर न्यायालय का निर्णय गलत विचारों पर आधारित है तथा कानून की स्थापित स्थिति के विरुद्ध है, तो ऐसे आदेश में अपीलीय न्यायालय का हस्तक्षेप अनिवार्य है।"

10. उपर्युक्त दिशा-निर्देशों के आलोक में, इस निर्णय पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए कि क्या अवर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर संभावित दृष्टिकोण था या यह पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण निर्णय है, जिसमें कोई गुण-दोष नहीं है।

11. आपराधिक मुकदमा अभियुक्तों की निर्दोषता की धारणा के साथ आगे बढ़ता है। अभियुक्तों के बरी होने के साथ ही निर्दोषता की यह धारणा पुख्ता हो जाती है। इसलिए बरी करने के फैसले में हस्तक्षेप करने के लिए बहुत मजबूत और ठोस कारण मौजूद होने चाहिए।

12. अभियोजन पक्ष के प्रकरण की उपरोक्त कमजोरी को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि अवर न्यायालय ने उल्लेख किया है, मेरा मानना है कि अवर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित और तार्किक दृष्टिकोण था, जो वैध कारणों पर आधारित है। अवर न्यायालय के फैसले को अवैध, अतार्किक और असंभव नहीं कहा जा सकता है और यह अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर आधारित नहीं है या गलत विचारों पर आधारित है और कानून की स्थापित स्थिति के खिलाफ है। इसलिए, यह न्यायालय संतुष्ट है कि इस अपील में सफलता की बिल्कुल भी उम्मीद नहीं है और तदनुसार, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. तदनुसार, वर्तमान अपील खारिज की जाती है।

14. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

15. इस निर्णय की प्रति अनुपालन हेतु अवर न्यायालय को प्रेषित की जाए।

16. अवर न्यायालय का अभिलेख, यदि कोई हो, संबंधित न्यायालय को वापस लौटा दिया जाए।

(2023) 7 ILRA 24

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजिवे शुक्ला

आपराधिक अपील संख्या 1041 वर्ष 2001

गंगा प्रसाद एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

एम.सी. यादव, अनिल कुमार तिवारी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 363 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - कठोर कारावास अभियोगकर्ता ने प्राथमिकी में वर्णित किया कि उसका पुत्र अभियुक्त की पुत्री से विवाहित है, परन्तु किसी विवाद के कारण उसकी पुत्रवधू अभियुक्त के निवास स्थान पर रह रही थी और उसके पुत्र

के पास नहीं आ रही थी -घटना की तिथि से एक माह पूर्व, अपीलार्थियों ने यह धमकी दी थी कि वे अभियोगकर्ता की पुत्री का अपहरण कर लेंगे - दिनांक 28.05.1994 को जब अभियोगकर्ता की पुत्री नाश्ते का सामान लाने जा रही थी, अपीलार्थियों ने उसकी पुत्री को बहलाया-फुसलाया और अपने साथ ले गए - पीड़िता की आयु 11 वर्ष थी, अभियोगकर्ता ने तलाश किया किन्तु उसका पता नहीं चल सका - अन्वेषण के उपरान्त आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया - साक्ष्यों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने उन्हें दोषसिद्ध किया। (प्रस्तर 2, 4, 6)

न्यायालय द्वारा निर्णय प्राथमिकी घटना के 19 दिन पश्चात पंजीकृत की गई - अभियोजन साक्षी 1, पीड़िता की माता ने अपनी गवाही में वर्णित किया कि घटना की तिथि से 15-20 दिन पश्चात वह बरामद हुई थी, जबकि अभियोजन साक्षी 2, पीड़िता ने वर्णित किया कि वह अभियुक्त के घर केवल 9-10 दिन रही, तत्पश्चात अपीलार्थी उसे लखनऊ ले गए और वापस अपने घर आ गए - अभियोजन साक्षी 4, पीड़िता की बहन ने वर्णित किया कि जब उसका पता नहीं चला तो उसके पिता ने प्राथमिकी अंकित करवाई और 25 दिन पश्चात वह अपने माता-पिता के घर लौट आई - कथनों में विरोधाभास जब सम्पूर्ण तथ्य एवं परिस्थितियों के साथ देखा जाता है, तो वह महत्वपूर्ण हो जाता है - अपीलार्थियों के झूठे फंसाए जाने की संभावना है क्योंकि अभियोगकर्ता और अभियुक्त के परिवारों के मध्य विवाद था - आक्षेपित आदेश निरस्त किया गया। (प्रस्तर 17, 18, 21)

अपील स्वीकृत हुई। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति मंजिवे शुक्ला द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. अपीलार्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. मुझे अभिलेख से पता चलता है कि अपीलार्थी संख्या 1 की पहले ही मृत्यु हो चुकी है और अपीलार्थी संख्या 1 के संबंध में वर्तमान अपील को इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 26.02.2020 के आदेश के तहत पहले ही खारिज कर दिया गया है।

3. अपीलार्थी संख्या 2 ने वर्तमान अपील के माध्यम से 9वें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 744/1996 (राज्य बनाम गंगा प्रसाद एवं अन्य) में पारित दिनांक 06.11.2001 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत अपीलार्थी संख्या 2 को धारा 363 आई.पी.सी. के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उसे 5,000/- रुपये के जुर्माने के साथ पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, साथ ही यह शर्त भी रखी गई है कि जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उसे एक वर्ष का साधारण कारावास भुगतना होगा।

4. अभियोजन पक्ष की संक्षेप में कहानी यह है कि वादी राम भरोसे ने दिनांक 16.06.1994

को समय लगभग 15:20 बजे थाना कृष्णा नगर, लखनऊ में प्राथमिकी दर्ज कराई, जो **मुकदमा अपराध संख्या 384/1994 धारा 363 व 366 आई.पी.सी.** के अंतर्गत पंजीकृत हुआ। प्राथमिकी में वादी ने कहा है कि वह 55 घा/छा/138(खा), नया सरदारी खेड़ा, थाना कृष्णा नगर, लखनऊ का निवासी है तथा उसके पुत्र गंगा प्रसाद का ससुर व गंगा प्रसाद का भाई सोहन लाल ग्राम पैगम्बर नगर, थाना मवई, जिला बाराबंकी के निवासी हैं। प्राथमिकी में वादी ने आगे कहा है कि उसके पुत्र रंजीत कुमार की शादी गंगा प्रसाद की पुत्री से हुई थी, लेकिन किसी विवाद के कारण उसकी पुत्रवधू गंगा प्रसाद के घर पर रह रही है तथा उसके पुत्र के पास नहीं आ रही है, इसलिए गंगा प्रसाद वादी से नाराज है। वादी ने यह भी कहा है कि घटना की तारीख से लगभग एक महीने पहले गंगा प्रसाद और सोहन लाल उसके घर आए और धमकी दी कि वे उसकी बेटी ब्रह्म कुमारी का अपहरण कर लेंगे, इसलिए पूरा परिवार डर गया। प्राथमिकी में आगे कहा गया है कि दिनांक 28.05.1994 को सुबह करीब 7:00 बजे जब वादी की बेटी ब्रह्म कुमारी नाशते का कुछ सामान लाने के लिए आस-पास जा रही थी, तो उक्त गंगा प्रसाद और सोहन लाल आए और उसकी बेटी को बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गए। पीड़िता की उम्र 11 साल है और वादी ने आगे कहा कि उसने अपनी बेटी की तलाश की और आरोपियों से भी पूछताछ की लेकिन वह उसकी बेटी का पता नहीं लगा सका, इसलिए वह पुलिस को सूचना दे रहा है।

5. यहां यह उल्लेखनीय है कि उक्त लड़की ब्रह्म कुमारी कुछ समय बाद अपने पिता के घर वापस आ गयी।

6. पुलिस ने जांच के बाद गंगा प्रसाद और सोहन लाल के खिलाफ धारा 363 और 366 आई.पी.सी. के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। चूंकि अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे, इसलिए मामला सत्र न्यायालय को भेज दिया गया और मुकदमा शुरू हुआ।

7. विचारण के दौरान, पी.डब्लू.-1, श्रीमती प्रेमा देवी, पी.डब्लू.-2, ब्रह्म कुमारी, पी.डब्लू.-3, श्री राम भरोसे, पी.डब्लू.-4, संतोष कुमारी, पी.डब्लू.-5, आरक्षी खुशी राम, पी.डब्लू.-6, श्री राम जी मिश्रा (विवेचक) और पी.डब्लू.-7, श्री आर.एस. तोमर (विवेचक) की गवाही दर्ज की गई।

8. तत्पश्चात अपीलार्थी की ओर से दो बचाव गवाह डी.डब्लू.-1, श्रीमती नीलम, डी.डब्लू.-2, श्री सुन्दर सिंह पेश किये गये।

9. पी.डब्लू.-1, श्रीमती प्रेमा देवी जो पीड़ित लड़की की माँ है, ने अपनी गवाही में कहा है कि जब उसकी बेटी ब्रह्म कुमारी आस-पास के इलाके में नाशते का कुछ सामान लाने गई थी, तो गंगा प्रसाद और सोहन लाल ने उसकी बेटी को बहला-फुसलाकर अपने घर जिला बाराबंकी ले गए। उन्होंने आगे कहा कि घटना के समय ब्रह्म कुमारी की उम्र 10-11 साल थी। श्रीमती प्रेमा देवी ने अपनी गवाही में कहा कि लड़की ब्रह्म कुमारी को घटना की तारीख से 15-20 दिन बाद बरामद किया गया था।

10. पी.डब्लू. 2, पीड़िता, ब्रह्म कुमारी ने अपनी गवाही में यह कथन किया है कि गंगा प्रसाद और सोहन लाल उसके भाई के ससुर हैं। उसने आगे यह कथन किया है कि घटना दिनांक को गंगा प्रसाद और सोहन लाल ने उसे यह कहकर बहलाया कि वे उसे कुछ देंगे और उसे अपने घर ले गये। ब्रह्म कुमारी ने आगे कहा कि जब उसने उक्त गंगा प्रसाद और सोहन लाल के साथ जाने से मना कर दिया तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हें कुछ देंगे और फिर तुम अपने घर चली जाओ। ब्रह्म कुमारी ने आगे स्पष्ट रूप से कहा कि वह लगभग 9-10 दिनों तक बाराबंकी में गंगा प्रसाद और सोहन लाल के घर पर रही और उसके बाद वे उसे वापस लाये और लखनऊ के आलमबाग चौराहे पर छोड़ दिया और कहा कि अब तुम अपने घर जाओ और उसके बाद वह अपने घर चली गयी। पी.डब्लू. 2 ने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि गंगा प्रसाद और सोहन लाल दोनों ने उसके साथ कोई अभद्रता नहीं की है।

11. पी.डब्लू. 4, संतोष कुमारी जो ब्रह्म कुमारी की बहन है, ने अपने बयान में कहा है कि ब्रह्म कुमारी 25 दिन बाद उसके घर वापस आई थी।

12. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपरोक्त गवाही और अभिलेख पर उपलब्ध अन्य साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि गंगा प्रसाद और सोहन लाल ने भारतीय दंड संहिता की धारा 363 के अंतर्गत दंडनीय अपराध किया है और इसलिए दिनांक 6.11.2001 के निर्णय और

आदेश द्वारा उन्हें पांच वर्ष के कठोर कारावास और 5,000/- रुपये प्रत्येक के जुर्माने की सजा सुनाई है।

13. अपीलार्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर तर्क दिया है कि प्राथमिकी वादी द्वारा पुलिस स्टेशन में दिनांक 16.06.1994 को समय 15:20 बजे दर्ज कराई गई थी और सभी अभियोजन पक्ष के गवाहों ने कहा है कि घटना दिनांक 28.05.1994 को हुई थी, जिसका अर्थ है कि प्राथमिकी घटना की तारीख के 19 दिन बाद दर्ज कराई गई थी, जबकि पी.डब्लू. 2, ब्रह्म कुमारी (पीड़िता) ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह गंगा प्रसाद और सोहन लाल के घर में केवल 9-10 दिनों के लिए रही थी और उसके बाद वह अपने पिता के घर वापस आ गई थी, इसलिए यह स्पष्ट रूप से प्रकट है कि अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी, मनगढ़ंत और बाद में सोची गई है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि चूंकि वादी और अभियुक्तगण रिश्तेदार हैं और लड़की अपनी मर्जी से गंगा प्रसाद और सोहन लाल के साथ जिला बाराबंकी में उनके घर गई थी और जब वह 9-10 दिन बाद वापस आई तो वादी ने दिनांक 16.06.1994 को प्राथमिकी दर्ज कराई।

14. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी जोर देकर तर्क दिया है कि इस तथ्य के संबंध में अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में गंभीर विरोधाभास है कि कितने दिनों के बाद लड़की अपने माता-पिता के घर वापस आई। पी.डब्लू. 1, माँ ने अपने

बयान में कहा है कि लड़की 15-20 दिनों के बाद बरामद हुई थी जबकि लड़की, ब्रह्म कुमारी ने अपने बयान में कहा है कि वह खुद 9-10 दिनों के बाद अपने घर वापस आई थी। चूंकि प्राथमिकी दर्ज करने में 19 दिनों की देरी हुई है, इसलिए अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही के बीच उपरोक्त विरोधाभास सबसे महत्वपूर्ण है और अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी को संदिग्ध बनाता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है कि माँ और पीड़िता के बयान में एक और विरोधाभास है यानी माँ ने कहा है कि पीड़िता बरामद हो गई है जबकि लड़की ने कहा है कि वह खुद अपने माता-पिता के घर वापस आई है।

15. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर भी जोर दिया है कि वादी के पास वर्तमान मामले में राम प्रसाद और सोहन लाल को झूठा फंसाने का मकसद है क्योंकि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वादी के बेटे और राम प्रसाद की बेटी के वैवाहिक संबंधों में कुछ विवाद था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह कहते हुए अपनी दलीलें समाप्त की हैं कि परिस्थितियों की समग्रता में, यह स्पष्ट रूप से प्रकट है कि अपीलार्थी नंबर 2 को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और इसके अलावा अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित नहीं कर पाया है और इसलिए, सत्र परीक्षण संख्या 744/1996 में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 6.11.2001 का निर्णय और आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

16. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में कोई विरोधाभास नहीं है और अभियोजन पक्ष ने अपना मामला उचित संदेह से परे साबित कर दिया है और इसलिए, विद्वान परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 6.11.2001 के निर्णय और आदेश को इस न्यायालय द्वारा बरकरार रखा जाना चाहिए।

17. मैंने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकीलों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंदी दलीलों पर विचार किया है। मैंने पाया कि वादी यानी पीड़िता के पिता ने दिनांक 16.06.1994 को लगभग समय 15:20 बजे पुलिस स्टेशन कृष्णा नगर में प्राथमिकी दर्ज कराई थी और घटना की तारीख 28.05.1994 और समय सुबह 7:00 बजे है, इसलिए, घटना के ठीक 19 दिन बाद प्राथमिकी दर्ज की गई है। मैंने पाया कि पी.डब्ल्यू. 1, श्रीमती प्रेमा देवी, जो पीड़िता की मां हैं, ने अपनी गवाही में यह कहा है कि लड़की को घटना की तारीख से लगभग 15-20 दिन बाद बरामद किया गया था, जबकि पी.डब्ल्यू. 2, ब्रह्म कुमारी (पीड़िता) ने अपनी गवाही में कहा है कि वह गंगा प्रसाद और सोहन लाल के घर में केवल 9-10 दिन ही रही और उसके बाद वे उसे लखनऊ ले गए और वह अपने घर वापस आ गई।

18. पी.डब्ल्यू. 2, ब्रह्म कुमारी ने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि जब उसके पिता ने पुलिस में प्राथमिकी दर्ज कराई, तभी गंगा प्रसाद और सोहन लाल उसे लखनऊ लेकर आए और वह अपने माता-पिता के घर पहुंच

सकी। मैंने यह भी पाया कि पी.डब्लू. 4, पीड़िता की बहन ने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि जब ब्रह्म कुमारी का पता नहीं चल पाया, तब उसके पिता ने पुलिस में प्राथमिकी दर्ज कराई और फिर घटना की तारीख से लगभग 25 दिन बाद ब्रह्म कुमारी अपने माता-पिता के घर वापस आ गई।

19. अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही से ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता ब्रह्म कुमारी 9-10 दिनों तक गंगा प्रसाद और सोहन लाल के घर में रही और उसके बाद वह अपने माता-पिता के घर वापस आ गई और उसके बाद ही वादी ने प्राथमिकी दर्ज कराई क्योंकि घटना की तारीख और प्राथमिकी दर्ज करने की तारीख में 19 दिनों का अंतर है। यह भी प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के संबंध में अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में गंभीर विरोधाभास हैं क्योंकि मां ने कहा है कि लड़की 15-20 दिनों के बाद बरामद हुई थी, बहन (पी.डब्लू. 4) संतोष कुमारी ने कहा है कि पीड़िता 25 दिनों के बाद अपने घर वापस आई थी जबकि पीड़िता ने स्वयं कहा है कि वह 9-10 दिनों के बाद अपने घर वापस आई थी।

20. साक्ष्यों में उपरोक्त विरोधाभास तब बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है जब प्राथमिकी दर्ज करने में 19 दिनों की देरी हुई और इसके अलावा अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों ने कहा है कि लड़की प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही माता-पिता के घर आई है।

21. मुझे लगता है कि पीड़िता की मां यानी पी.डब्लू. 1 ने यह बयान दिया है कि लड़की

को बरामद कर लिया गया है जबकि अभियोजन पक्ष के सभी अन्य गवाहों ने कहा है कि लड़की खुद अपने घर वापस आई थी। मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों के साथ यह विरोधाभास महत्वपूर्ण हो जाता है। मुझे यह भी लगता है कि वर्तमान मामले में गंगा प्रसाद और सोहन लाल को गलत तरीके से फंसाए जाने की संभावना है क्योंकि निश्चित रूप से वादी परिवार और गंगा प्रसाद और सोहन लाल के परिवार के बीच कुछ विवाद था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में उपरोक्त गंभीर विरोधाभासों और वर्तमान मामले में गंगा प्रसाद और सोहन लाल को गलत तरीके से फंसाए जाने की संभावना को नजरअंदाज कर दिया है और गंगा प्रसाद और सोहन लाल को दोषी करार दिया है और सजा सुनाई है।

22. मेरा विचार है कि अभियोजन पक्ष की कहानी संदेह के घेरे में है और अभियोजन पक्ष गंगा प्रसाद और सोहन लाल के खिलाफ उचित संदेह से परे अपना मामला साबित नहीं कर सका है, इसलिए अपीलार्थी संख्या 2 संदेह का लाभ पाने का उत्तरदायी है।

23. उपर्युक्त कारणों को देखते हुए, यह आपराधिक अपील स्वीकार की जाती है।

24. सत्र परीक्षण संख्या 744/1996 में 9वें अपर सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा दिनांक 6.11.2001 को पारित निर्णय और आदेश, जिसके तहत सोहन लाल को धारा 363

आई.पी.सी. के तहत दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई थी, को रद्द कर दिया गया।

25. अपीलार्थी संख्या 2 पहले से ही जमानत पर है। अपीलार्थी संख्या 2 के जमानतदारों को एतद्वारा उन्मोचित किया जाता है।

26. इस निर्णय और निचली अदालत के अभिलेख की प्रतिलिपि आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित अदालत को वापस भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 28

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजिवे शुक्ला,

आपराधिक अपील संख्या 1119 वर्ष 2001

देवानंद पांडे

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

अविनाश श्रीवास्तव

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - कठोर कारावास तथा जुर्माना - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 164, 200

और 313 - शिकायतकर्ता (पीड़िता का भाई) ने प्राथमिकी में अंकित कराया कि अपीलकर्ता और सह-आरोपी उसकी बहन को बहला-फुसलाकर ले गए - पीड़िता की उम्र 14 वर्ष है और वह नाबालिग है - वह अपने साथ नकदी और आभूषण ले गई थी - जांच के दौरान, गवाहों की मौजूदगी में पुलिस को ज्ञात हुआ कि पीड़िता सड़क पर जा रही थी, उसके बैग में आभूषण थे - जांच पूरी करने के पश्चात पुलिस ने आरोप पत्र दाखिल किया - विचारण न्यायालय ने आरोप निर्धारित किए और उसे दोषी सिद्ध किया। (प्रस्तर 3, 4, 6)

पीड़िता का प्रारंभिक कथन कि उसे धमकी दी गई थी और अपीलकर्ता द्वारा भागने के लिए बहकाया गया था, विचारण न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय पाया गया है क्योंकि वर्णित परिस्थितियों से यह बिल्कुल असंभव है कि अगर एक लड़की को केवल एक आदमी द्वारा धमकी देकर ले जाया जा रहा था और वह भारी यातायात और लोगों वाली सड़कों से गुजर रही थी, तो वह कोई शोर नहीं मचाएगी और किसी व्यक्ति से शिकायत नहीं करेगी और तदनुसार, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त को धारा 366 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराध से मुक्त कर दिया। (प्रस्तर 26)

घटना की तिथि पर पीड़िता की आयु के संबंध में अभियोजन साक्षी - 1 और अभियोजन साक्षी - 2 की गवाही झूठी थी, चिकित्सीय परीक्षण में उसकी आयु 18 वर्ष ज्ञात हुई तथा जिरह में उसके भाई द्वारा दिए गए बयान के

अनुसार उसकी आयु 21 वर्ष थी तथा पीड़िता ने अपने बयान में वर्णित किया कि उसकी आयु 19 वर्ष है तथा उसने अपनी ईच्छानुसार अपीलकर्ता से विवाह किया है, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 363, भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराध से मुक्त कर दिया। (प्रस्तर 27)

विचारण न्यायालय ने अभियोक्ता की गवाही को अविश्वसनीय पाया, इसलिए किसी भी पुष्टिकारक साक्ष्य के अभाव में, अपीलकर्ता को धारा 376, भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दोषी सिद्ध और सजा निर्धारित करते समय विधि और तथ्यों की स्पष्ट त्रुटि थी (प्रस्तर 34)

अपील स्वीकृत हुई। (ई-13)

माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजिवे शुक्ला

1. अपीलकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अविनाश श्रीवास्तव और राज्य की ओर से पेश अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री बलराम सिंह को सुना।

2. इस आपराधिक अपील के माध्यम से अपीलकर्ता ने सत्र परीक्षण संख्या-90/93 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-XI, फैजाबाद द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.11.2001 को चुनौती दी है, जिसके तहत अपीलकर्ता को धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उसे 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ 10 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, इस शर्त के

साथ कि जुर्माना की राशि जमा करने में विफलता की स्थिति में, वह छह महीने के कठोर कारावास की सजा कटेगा।

3. शिकायतकर्ता (पीड़ित के भाई) ने थाना-तरुण, जिला फैजाबाद में एक प्राथमिकी दर्ज की, जिसे धारा 363/366 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या-218 वर्ष 1992 के रूप में दर्ज किया गया था। उक्त प्राथमिकी में शिकायतकर्ता ने कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता पुत्र सूर्यभान पांडे और रोहित कुमार पांडे पुत्र राम बहोर पांडे, निवासी ग्राम विद्यापुर गयासपुर, थाना तरुण, जिला फैजाबाद उसकी बहन को बहला-फुसलाकर ले गए थे। शिकायतकर्ता ने प्राथमिकी में आगे कहा है कि उसकी बहन की उम्र लगभग 14 साल है और वह नाबालिग है। प्राथमिकी में आगे कहा गया है कि उसकी बहन अपने साथ नकदी और गहने भी ले गई थी। प्राथमिकी में शिकायतकर्ता ने कहा है कि उसने अपनी बहन की तलाश करने की कोशिश की लेकिन वह लापता है, इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाए और पुलिस उसकी बहन को तलाश करे।

4. उक्त प्राथमिकी दर्ज होने के बाद संबंधित थाने की पुलिस ने जांच शुरू की। दिनांक 5-1-1993 को सायं लगभग 7 बजे गवाहों मदन मोहन मिश्र और मोहम्मद अली खान की उपस्थिति में यह निर्णय लिया गया। जुनैद खान पुलिस को पता चला कि पीड़िता गांव सैदपुर के दक्षिण कब्रिस्तान के पास सड़क पर ग्राम पांडेय का पुरवा की ओर जा रही थी और उसके बाद उससे पूछताछ कर उसके बैग की तलाशी ली गई तो पता चला कि बैग में

जेवरात है। फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया और चिकित्सीय परीक्षण के बाद पीड़िता को उसके पिता को सौंप दिया गया।

5. पुलिस ने जांच पूरी करने के बाद आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० के तहत और आरोपी रोहित कुमार पांडे के खिलाफ धारा 363/34 और 366/34 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दाखिल किया।

6. विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० के तहत और आरोपी रोहित कुमार पांडे के खिलाफ धारा 363/34 और 366/34 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए। सुनवाई के दौरान अ०सा०-1 (पीड़ित का भाई), अ०सा०-2 (पीड़ित), अ०सा०-3 डॉ. मीरा श्रीवास्तव, अ०सा०-4 डॉ. डी.आर. भुवन और अ०सा०-5 सब इंस्पेक्टर एम.एल. खान की गवाही दर्ज की गई।

7. इसके बाद धारा 313 द०प्र०स० के तहत दोनों आरोपियों के बयान दर्ज किए गए।

8. अ०सा०-1 (पीड़ित के भाई) ने मुकदमे के दौरान दर्ज अपनी गवाही में गवाही दी है कि रात 2/3.11.1992 को वह अपने घर के बाहर सो रहा था और उसकी बहन घर के अंदर सो रही थी। जब वह रात में उठा और घर के अंदर गया तो पाया कि उसकी बहन वहां नहीं थी और उस समय रात के करीब 2.30 बज रहे थे। अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में आगे कहा है कि उसकी बहन की उम्र 14 साल थी और उसने अपनी बहन की तलाश करने की

कोशिश की लेकिन उसका पता नहीं लगाया जा सका। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी रोहित कुमार पांडे और आरोपी अपीलकर्ता उनके गांव के रहने वाले हैं और दोनों उसके घर आते थे और उसकी बहन से भी बात करते थे। उसने यह भी कहा कि उसने उन्हें अपनी बहन से बात नहीं करने का निर्देश दिया था। उन्होंने कहा कि जब उनकी बहन का पता नहीं लगाया जा सका, तो उन्हें विश्वास हो गया कि रोहित और आरोपी अपीलकर्ता ने उनकी बहन को बहला-फुसलाकर 200 रुपये नकद और गहने भी ले लिए हैं। जब उसकी बहन का पता नहीं चल सका तो अगले दिन उसने थाने जाकर प्राथमिकी दर्ज कराई। उन्होंने यह भी कहा है कि घटना के समय उनकी मां और पिता घर में मौजूद नहीं थे क्योंकि उनकी मां अयोध्या गई थीं और उनके पिता उनकी सेवा के लिए सूरत में थे।

9. अ०सा०-1 शिकायतकर्ता ने अपनी जिरह में गवाही दी है कि घटना के समय उसकी उम्र लगभग 25 वर्ष थी। उसने आगे कहा है कि उसकी दो छोटी बहनें हैं जिनका नाम सरोज कुमारी और दूसरी पीड़िता है। सरोज कुमारी उनसे दो साल छोटी थी और पीड़िता सरोज कुमारी से दो साल छोटी थी।

10. अ०सा०-2 (पीड़िता) ने विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज अपनी गवाही में कहा है कि वह आरोपी अपीलकर्ता और रोहित को जानती है, जो गांव विद्यापुर के निवासी हैं और आरोपी अपीलकर्ता का विवाह पहले ही हो चुका था। उसने आगे गवाही दी है कि उसके पिता सूरत में सेवा में हैं। अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में

यह भी कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता और रोहित उसे धमकी देकर उसे अपने साथ ले गए थे। आरोपी अपीलकर्ता और रोहित घटना से पहले अक्सर उसके घर आते थे और आरोपी अपीलकर्ता उसके पिता का दूर का भाई है। आरोपी अपीलकर्ता की शादी एक साल पहले ही हो चुकी थी लेकिन आरोपी अपीलकर्ता कहता था कि वह उससे बहुत प्यार करता है और उसकी शादी गलत जगह पर हुई है और वह आगे कहता था कि वह पीड़िता के साथ शादी करेगा। अ०सा०-2 की मां को आरोपी अपीलकर्ता और पीड़िता के बीच बातचीत के बारे में पता चला और फिर उसने आरोपी अपीलकर्ता को अपने घर न आने का निर्देश दिया। घटना के दिन उनकी मां अयोध्या में थीं। अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में आगे कहा है कि घटना की तारीख को रात लगभग 2.00 बजे, दरवाजे पर दस्तक हुई और उसने दरवाजा खोला, फिर आरोपी अपीलकर्ता ने उसे धमकी दी और जबरन उसे अपनी साइकिल पर फैजाबाद ले गया और रोहित भी उसके साथ चला गया। उसने यह भी कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा दी गई धमकी के कारण वह अपने साथ 200 रुपये नकद और आभूषण ले गई। रोहित फैजाबाद में रुका और उसके बाद आरोपी अपीलकर्ता उसे साइकिल पर अयोध्या ले गया और फिर उसे हनुमान मंदिर ले गया और जबरन सिंदूर उसके बालों में लगा दिया। अ०सा०-2 ने आगे कहा है कि रात में वह और आरोपी अपीलकर्ता अयोध्या स्टेशन पर रुके थे और अगले दिन वह उसे बाराबंकी ले गया और वहां वह स्टेशन पर रही और 5.11.1992 को वह उसे बाराबंकी में अदालत परिसर में ले गया और कहा कि उन्हें लिखित में शादी

करनी चाहिए और आगे कहा कि उसे अपनी उम्र 20 साल बतानी चाहिए और वह अपनी पहली शादी के बारे में कुछ नहीं बताएगा। अदालत में आरोपी अपीलकर्ता ने पीड़िता को धमकी देकर कुछ सादे कागजों पर उसके हस्ताक्षर करवाए। इसके बाद, आरोपी अपीलकर्ता अ०सा०-2 को दिल्ली ले गया और वहां वह किसी कॉलोनी के एक कमरे में चला गया और उसी दिन रात जब आरोपी अपीलकर्ता ने अ०सा०-2 को अकेला पाया, तो उसने उसे धमकी दी और उसकी इच्छा के विरुद्ध यौन संभोग किया। अ०सा०-2 ने अपने बयान में आगे कहा कि जब भी वह विरोध करता था, आरोपी अपीलकर्ता धमकी देता था और कहता था कि वह उसे अकेला छोड़कर चला जाएगा। अ०सा०-2 ने अपने बयान में यह भी कहा है कि घटना की तारीख के बाद वह लगभग दो महीने तक आरोपी अपीलकर्ता के साथ रही और उस अवधि के दौरान जब वह हर रात कॉलोनी में रहती थी, आरोपी अपीलकर्ता उसके साथ जबरन संभोग करता था। दो महीने बाद वह उसे दिल्ली से बाराबंकी ले आया और उसे टेम्पो लेने और गांव सैदपुर जाने के लिए कहा और वहां अपने मौसा राम कुमार से संपर्क करने के लिए कहा, जो उसे किसी परिचित के घर पर रहने की व्यवस्था करेगा और आगे पैसे की व्यवस्था करने के लिए आरोपी अपीलकर्ता गांव विद्यापुर में अपने घर गया और पूछा कि वह कल आएगा। अ०सा०-2 ने यह भी कहा है कि टेम्पो से निकलने के बाद जब वह गांव पांडेय का पुरवा की ओर बढ़ रही थी, तभी थाने के इंस्पेक्टर उसके पिता के साथ आए और जीप की रोशनी की मदद से उन्होंने उसे पकड़ लिया और

उसके बाद बरामदगी का मेमो तैयार किया गया और चिकित्सीय जांच के बाद उसे उसके पिता को सौंप दिया गया।

11. यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि हालांकि अ०सा०-2 (पीड़िता) ने मुकदमे के दौरान दर्ज अपनी गवाही में घटना के समय अपनी उम्र के बारे में कुछ नहीं कहा है, लेकिन धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान 16.1.1993 को दर्ज किया गया था और उक्त बयान में उसने कहा है कि उसकी उम्र 15-16 वर्ष थी।

12. अ०सा०-3 डॉ मीरा श्रीवास्तव, आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, महिला अस्पताल, फैजाबाद ने परीक्षण के दौरान दर्ज की गई अपनी गवाही में कहा है कि उसने 7.1.1993 को पीड़िता की चिकित्सा जांच की थी और चिकित्सा परीक्षा में यह पाया गया है कि उसका हाइमन पुराना फटा हुआ था और दो उंगलियां आसानी से उसके निजी अंग में डाली जा सकती हैं। अ०सा०-3 ने आगे कहा है कि एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार पीड़िता की उम्र 18 वर्ष थी और इसके अलावा, बलात्कार के संबंध में कोई राय नहीं दी जा सकती क्योंकि लड़की को संभोग करने की आदत थी।

13. अ०सा०-4 डॉ डी.आर भुवन, वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी (एक्स-रे) ने परीक्षण के दौरान दर्ज अपनी गवाही में गवाही दी है कि पीड़ित की दाहिनी कोहनी और दाहिनी कलाई का एक्स-रे 8.1.1993 को किया गया था और एक्स-रे रिपोर्ट के आधार पर पीड़िता की उम्र 18 वर्ष पाई गई थी।

14. अंत में, अ०सा०-5 सब इंस्पेक्टर एम.एल खान, प्रभारी चौकी शहजादपुर, कोतवाली अकबरपुर की गवाही दर्ज की गई है और उन्होंने पुलिस द्वारा प्रस्तुत किए गए अलग-अलग कागजात साबित किए हैं।

15. इसके बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज किए गए। आरोपी अपीलकर्ता ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने पीड़िता को न तो कोई धमकी दी थी और न ही उसे दूर ले जाने के लिए प्रलोभन दिया था और आगे वह अपनी मर्जी से उसके साथ गई थी। आरोपी अपीलकर्ता ने यह भी कहा है कि उसने पीड़िता को उसके साथ संभोग करने के लिए कोई धमकी नहीं दी और जब भी संभोग हुआ तो यह उसकी सहमति से था। आरोपी अपीलकर्ता ने यह भी कहा है कि घटना की तारीख पर पीड़िता बालिग थी और घटना के बाद उसने पीड़िता के भाई और अन्य के खिलाफ मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बाराबंकी की अदालत में एक शिकायत केस संख्या-3219/92 भी दायर किया था, जिसमें धारा 200 द०प्र०स० के तहत उसका बयान 27.11.1992 को दर्ज किया गया था। द०प्र०स० की धारा 200 के तहत दर्ज उपरोक्त बयान में पीड़िता ने कहा है कि उसकी उम्र 19 वर्ष है और उसने यह भी कहा है कि उसने अपनी मर्जी से आरोपी अपीलकर्ता के साथ शादी की थी। आरोपी अपीलकर्ता ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बाराबंकी की अदालत में दायर मामला संख्या-3219/92 में धारा 200 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता के बयान की प्रमाणित प्रति भी दायर की है। सुविधा के लिए, द०प्र०स० की धारा 200 के तहत दर्ज

पूर्वोक्त बयान निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"नकल बयान अन्तर्गत 200
CrPC.....(पीड़िता)

..... (पीड़िता) उम्र 19 साल निवासिनी मो० काशीपुर कस्बा व थाना रुदौली जिला बाराबंकी ने सशपथ बयान किया कि मेरे पिता रामचन्द्र वाहर सूरत में रहते हैं जिनकी बिना इजाजत के मेरे भाई सुधीर कुमार पाण्डेय व मेरे चाचा सत्यनरायन व मेरी माँ परमेश्वरी एक अज्ञात आदमी के हाथ बेच देना चाहते थे इसके लिए मैं तैयार नहीं थी, मेरा मूल रूप से निवास विद्यापुर थाना तारुन जिला फैजाबाद है लेकिन मुल्जिमान बराबर दबाव डाल रहे थे कि मेरी मर्जी के हिसाब से चलो नहीं तो मार डालेंगे। इसी डर के कारण मैं दिनांक 2.11.92 को अपनी मर्जी से बिना किसी जोर दबाव के अपने एक रिस्तेदार मो० काशीपुर कस्बा व थाना रुदौली जिला बाराबंकी के घर आई और उनसे मैंने घटना बाकयदा बतायी और अपने रिस्तेदार से अनुरोध किया कि अब हम मुल्जिमानों के घर नहीं जायेंगे क्योंकि मेरे पिता जी घर पर नहीं हैं। तब मेरे रिस्तेदारों ने देवानन्द पुत्र सूर्यभान जो मेरे गांव विद्यापुर के रहने वाले हैं को रुदौली बुलाया और सबके

सामने देवानन्द से शादी करना तय कर लिया और मैंने गवाहों के सामने अपनी मर्जी से शादी कर लिया।

आज से 15 दिन हुए जब शाम पांच बजे उपरोक्त मुल्जिमान मेरे रहने के स्थान मो० काशीपुर आये इनके साथ तीन अज्ञात आदमी भी थे और फिर दबाव डाला और मर्जी के खिलाफ मुल्जिमानों ने थप्पड़ों से मारा और मार कर लापता करने की धमकी दिया। मुझे मुल्जिमानों से जान का खतरा है। देवानन्द ने मुझे भगाया नहीं बल्कि मैंने अपनी मर्जी से उनसे शादी किया है। इस घटना की रिपोर्ट मैंने पुलिस कप्तान को दिया है। सुनकर तस्दीक किया।

ह०-.....(पीड़िता) ह०-
कोर्ट स० मुख्य न्यायिक
सी.जे.एम दण्डाधिकारी बाराबंकी
बाराबंकी 27.11.92
27.11.92

विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही और धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अभियुक्तों के बयानों पर विचार किया है। विचारण न्यायालय ने पाया है कि हालांकि पीड़िता ने अपनी गवाही में कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता और रोहित ने उसे धमकी दी थी और उसे बहला-फुसलाकर ले गए थे लेकिन मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से पता

चलता है कि आरोपी अपीलकर्ता के साथ जाते समय पीड़िता 200/- रुपये नकद और उसके घर से आभूषण ले गई। इसके बाद, वह आरोपी अपीलकर्ता की साइकिल पर फैजाबाद गई और आगे वह फैजाबाद से अयोध्या के लिए साइकिल पर चली गई। अयोध्या में आरोपी अपीलकर्ता और पीड़िता हनुमान मंदिर गए और वहां आरोपी अपीलकर्ता ने सिंदूर को अपने बालों में लगा लिया था। पीड़िता रात में अयोध्या स्टेशन पर रुकी और अगले दिन आरोपी अपीलकर्ता के साथ बाराबंकी आई और स्टेशन पर रुकी। इसके बाद, 5.11.1992 को वह आरोपी अपीलकर्ता के साथ अदालत गई और वहां उसने कुछ सादे कागजात पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद, पीड़िता आरोपी अपीलकर्ता के साथ दिल्ली चली गई और दिल्ली में किसी कॉलोनी में एक कमरे में रही और वहां उनमें संभोग हुआ और दिल्ली में कुछ समय रहने के बाद, आरोपी अपीलकर्ता उसे वापस बाराबंकी ले गया और जब वह बाराबंकी से किसी स्थान पर जा रही थी तो उसे पुलिस ने पकड़ लिया और उसके पिता को सौंप दिया गया। गांव से फैजाबाद, फैजाबाद से अयोध्या, अयोध्या से बाराबंकी, बाराबंकी से दिल्ली और दिल्ली से बाराबंकी की उपरोक्त यात्रा के दौरान, पीड़िता आरोपी अपीलकर्ता के साथ थी और कई व्यक्तियों की उपस्थिति वाले कई स्थानों से गुजरी होगी, लेकिन उसने कभी भी रोने या किसी व्यक्ति से संपर्क करने का कोई प्रयास नहीं किया ताकि यह बताया जा सके कि आरोपी अपीलकर्ता ने किसी भी तरह की धमकी दी थी और वह अपीलकर्ता उसके द्वारा दी गई धमकी के तहत आरोपी के साथ गई थी। इसलिए, मामले के तथ्यों और

परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय ने पाया कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा कोई धमकी नहीं दी गई थी और पीड़िता अपनी मर्जी से आरोपी अपीलकर्ता के साथ घूम रही थी।

17. विचारण न्यायालय ने घटना की तारीख को पीड़िता की उम्र के संबंध में रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरे सबूतों पर विचार किया है और हालांकि पीड़िता के भाई और पीड़िता ने खुद धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में कहा है कि घटना की तारीख को पीड़िता नाबालिग थी, लेकिन डॉक्टरों द्वारा की गई चिकित्सीय परीक्षण से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि चिकित्सीय परीक्षण की तारीख को पीड़िता, पीड़िता के भाई ने अपने बयान और जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना की तारीख को उसकी उम्र लगभग 25 वर्ष थी। उसकी दो छोटी बहनें हैं; अगली बहन उससे दो साल छोटी है और पीड़िता अगली बहन से दो साल छोटी है, इस प्रकार, उसके भाई के संस्करण के अनुसार घटना की तारीख को पीड़ित की उम्र 21 वर्ष थी। उपरोक्त साक्ष्यों के मददेनजर, विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि घटना की तारीख पर पीड़ित बालिग था।

18. विचारण न्यायालय ने उपरोक्त निष्कर्षों के मददेनजर अंततः आरोपी अपीलकर्ता और रोहित को धारा 363 और 366 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए बरी कर दिया है।

19. इसके बाद विचारण न्यायालय ने माना है कि पीड़िता ने मुकदमे के दौरान दर्ज की गई

अपनी गवाही में कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता ने उसकी सहमति के बिना उसके साथ यौन संभोग किया था और यहां तक कि उसे आरोपी अपीलकर्ता द्वारा धमकी दी गई थी और विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि एक बार पीड़िता ने कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता ने उसकी सहमति के बिना और उसे धमकी देकर उसके साथ यौन संभोग किया था। उसके कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है और तदनुसार, आरोपी अपीलकर्ता धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता को धारा 376 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया है और उसे 10 साल के कठोर कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई है।

20. अपीलकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि मुकदमे के दौरान दर्ज अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने पूरी तरह से झूठी कहानी सुनाई है। यहां तक कि विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके साथ भागने और उससे शादी करने के लिए दी गई धमकी के संबंध में पीड़िता द्वारा दी गई गवाही बिल्कुल झूठी है क्योंकि उसने आरोपी अपीलकर्ता के साथ कई स्थानों पर यात्रा की और उसने कभी कोई शोरगुल नहीं उठाया या उसने कभी भी सड़कों पर मौजूद अन्य व्यक्तियों से कोई मदद नहीं मांगी। विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के संस्करण और पीड़िता के बयान को उसकी उम्र के संबंध में बिल्कुल गलत पाया है क्योंकि

चिकित्सीय परीक्षण में डॉक्टरों ने पीड़िता की उम्र 18 साल पाई है और आगे उसके भाई की गवाही के अनुसार, वह घटना की तारीख को 21 साल की थी।

21. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि एक बार भागने के लिए उसे दी गई धमकियों के संबंध में पीड़िता की गवाही और उसकी उम्र के संबंध में अविश्वसनीय पाया गया है, तो उसकी गवाही का हिस्सा कि उसे आरोपी अपीलकर्ता द्वारा धमकी के तहत और उसकी सहमति के बिना संभोग के लिए रखा गया था, तब तक विश्वास नहीं किया जा सकता जब तक कि कुछ पुष्ट सबूत न हों और प्रस्तुत मामले में यह पीड़िता की गवाही का केवल एक टुकड़ा है और कोई अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य नहीं है और इसलिए, विचारण न्यायालय ने धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए अपीलकर्ता को दोषी ठहराते हुए स्पष्ट अवैधता की है।

22. दूसरी ओर, राज्य की ओर से पेश अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चूंकि पीड़िता ने कहा है कि यौन संभोग आरोपी अपीलकर्ता द्वारा धमकी के तहत और उसकी सहमति के बिना किया गया था, इसलिए विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता को धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया है।

23. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और मैंने मामले के रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया है।

24. मुझे लगता है कि पीड़िता ने मुकदमे के दौरान दर्ज की गई अपनी गवाही में गवाही दी है कि उसे आरोपी अपीलकर्ता और रोहित द्वारा धमकी दी गई थी और इस तरह वह आरोपी अपीलकर्ता के साथ गई थी। उसने आगे कहा है कि वह अपने घर से आरोपी अपीलकर्ता के साथ साइकिल पर फैजाबाद गई थी। इसके बाद, फैजाबाद से अयोध्या साइकिल पर और फिर अयोध्या में वह आरोपी अपीलकर्ता के साथ हनुमान मंदिर गई, जहां आरोपी अपीलकर्ता ने धमकी दी और उसके बालों में 'सिंदूर' लगा दिया। उसने आगे कहा है कि अयोध्या से वह बाराबंकी आई और बाराबंकी में वह आरोपी अपीलकर्ता के साथ अदालत परिसर में गई और वहां धमकी देकर उसने कुछ सादे कागजात पर हस्ताक्षर किए। उसने आगे कहा है कि इसके बाद वह आरोपी अपीलकर्ता के साथ दिल्ली चली गई और कुछ दिनों के लिए किसी कॉलोनी में एक कमरे में रही और वहां आरोपी अपीलकर्ता ने धमकी दी और उसकी सहमति के बिना उसके साथ यौन संबंध बनाए।

25. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 363, 366 और 376 भ०द०वि० के तहत दर्ज मामलों में, पीड़ित लड़की की गवाही सर्वोपरि है और एक बार पीड़िता की गवाही बिना किसी विरोधाभास के होती है, तो उक्त गवाही ही आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त है, लेकिन जहां यह पाया जाता है कि पीड़िता द्वारा सुनाई गई कहानी बिल्कुल असंभव है और शुरू से ही पीड़ित गलत बयान दे रही है, तो उसकी गवाही को निश्चित रूप से अदालत द्वारा अतिरिक्त सावधानी से देखा जाना

चाहिए और उक्त परिस्थिति में, धारा 363, 366 और 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोपी को दोषी ठहराने के लिए अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य भी आवश्यक हैं।

26. मुझे लगता है कि पीड़िता का प्रारंभिक संस्करण कि उसे धमकी दी गई थी और आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके साथ भागने के लिए लुभाया गया था, विचारण न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय पाया गया है क्योंकि अभियोजन की कहानी में वर्णित परिस्थितियां यह बिल्कुल असंभव बनाती हैं कि यदि एक लड़की को केवल एक आदमी द्वारा धमकी देकर ले जाया जा रहा है और वह भारी यातायात और व्यक्तियों वाली सड़कों से गुजर रही है, तब वह कोई शोर गुल नहीं मचाएगी और किसी भी व्यक्ति से शिकायत नहीं करेगी और तदनुसार, विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता और रोहित को धारा 366 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध से बरी कर दिया है।

27. मुझे यह भी पता चला है कि विचारण न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि घटना की तारीख को पीड़िता की उम्र के बारे में अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही बिल्कुल झूठी है क्योंकि चिकित्सा जांच में पीड़िता की उम्र 18 वर्ष पाई गई है और उसके भाई के बयान के अनुसार उसकी जिरह में दी गई थी कि वह घटना की तारीख को लगभग 21 वर्ष की थी और आगे पीड़िता ने खुद को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बाराबंकी की अदालत में एक शिकायत मामला संख्या-3219/92 दायर किया जिसमें धारा 200 द०प्र०स० के

तहत दर्ज किए गए अपने बयान में उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसकी उम्र 19 वर्ष है और इस तरह विचारण न्यायालय ने आरोपी को धारा 363 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध से बरी कर दिया है।

28. पूर्वोक्त से, यह बहुत आसानी से निकाला जा सकता है कि विचारण के दौरान दर्ज की गई पीड़िता की गवाही को विचारण न्यायालय द्वारा स्वयं अविश्वसनीय/असंभव पाया गया है और इसलिए, उसकी गवाही के एक छोटे से टुकड़े पर भरोसा करने और धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराने का शायद ही कोई अवसर है। यह भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण साक्ष्य है जो विचारण न्यायालय में रिकॉर्ड पर था और यहां तक कि अभियुक्तों ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में उक्त साक्ष्य के बारे में भी कहा है कि पीड़ित ने खुद घटना के बाद एक शिकायत केस संख्या-3219/92, पीड़िता बनाम पीड़िता के भाई और अन्य यानी उसके भाई के खिलाफ दायर किया था जिसमें धारा 200 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया गया था। न्यायालय ने दिनांक 27.11.1992 को एक मामले में अपने निर्णय को स्वीकार किया है और उक्त बयान में उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसकी आयु 19 वर्ष है और उसने अपनी मर्जी से आरोपी अपीलकर्ता से विवाह किया है। विभिन्न शिकायत मामले में धारा 200 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता का उपरोक्त बयान स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उसकी शादी आरोपी अपीलकर्ता के साथ उसकी मर्जी से हुई थी।

29. तथ्यों को जब समग्रता में देखा जाता है तो स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है कि परीक्षण के दौरान दर्ज की गई पीड़िता की गवाही विश्वास को प्रेरित नहीं करती है और बिल्कुल अविश्वसनीय/असंभव पाई गई है, इसलिए इन परिस्थितियों में उसकी गवाही का एक टुकड़ा कि आरोपी अपीलकर्ता ने उसे धमकी दी और उसकी सहमति के बिना उसके साथ संभोग किया, वह भी पीड़िता की सहमति के बिना धमकी और संभोग के संबंध में कोई पुष्ट सबूत के बिना, उस पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता है और इसलिए, विचारण न्यायालय ने बिना किसी पुष्टिकारक साक्ष्य के उसकी गवाही के एक टुकड़े पर भरोसा करते हुए प्रकट अवैधता की है।

30. एक बार जब यह पाया जाता है कि पीड़ित शुरू से ही झूठे साक्ष्य दे रही है, तो उसके साक्ष्य के एक बहुत छोटे से टुकड़े पर तब तक भरोसा नहीं किया जा सकता जब तक कि कुछ अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य न हों। प्रस्तुत मामले में, शुरू से ही अभियोजन की पूरी कहानी विचारण न्यायालय द्वारा ही झूठी पाई गई है, इसलिए जब तक कि कुछ अन्य ठोस पुष्ट साक्ष्य न हों, अभियुक्त को केवल मुकदमे के दौरान दर्ज गवाह की गवाही के एक बहुत छोटे टुकड़े पर भरोसा करके दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2007 (सीआरएलजे) 3992 में रिपोर्ट किए गए बलदेव साव बनाम झारखंड राज्य के मामले में दिए गए अपने फैसले में स्पष्ट रूप से कहा है

कि एक बार अभियोजन पक्ष का संस्करण अविश्वसनीय/असंभव पाया गया है, तो अभियुक्त को केवल पीड़ित के एक छोटे से सबूत पर भरोसा करके दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है: -

"4. प्रस्तुत अपील को मुख्य रूप से इस आधार पर दायर किया दी गई है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के मामले की असंभवता पर विचार नहीं किया है। यह भी दावा किया गया कि डॉक्टर (अ०सा०-3) को बलात्कार का कोई संकेत नहीं मिला और घटना के संभावित गवाह के अभाव में, विचारण न्यायालय द्वारा अभियोक्ता के एकमात्र बयान पर भरोसा गलत है। अपीलकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पीपीएन राँय ने प्रस्तुत किया कि इस झूठे अभियोजन के पीछे का कारण अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयानों के दौरान स्वीकार किया है। अधिवक्ता के अनुसार, विवेचनाधिकारी की अनुपस्थिति में, बचाव पक्ष पूर्वाग्रह से ग्रसित हो गया है। इसलिए, अपीलकर्ता को आरोपों से बरी किया जा सकता है।

5. मैंने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों का अध्ययन किया है।

अभियोजन की कहानी अ०सा०-1, पीड़ित के एकमात्र बयान पर निर्भर करती है। उसके अनुसार, अपीलकर्ता दिलीप साव के साथ पानी के बहाने घर में घुस गया और जबरन बलात्कार किया, जबकि उसके घर में कोई नहीं था। उसने घटना का विवरण दिया है और उसके बाद कहा कि वह बेहोश हो गई थी। उनके वर्जन के अनुसार, जब उनकी भाभी कुछ घंटों के बाद लौटी, तो जब उन्होंने पूरी घटना अपने भाभी और भाई को सुनाई तो उन्हें होश आ गया। उसने आगे स्वीकार किया कि उसी रात वे इचक थाना गए जहां उसका बयान रणविजय सिंह ने प्रदर्श-1 के माध्यम से दर्ज किया। हालांकि, उसने जिरह के दौरान स्वीकार किया कि उसका भाई अ०सा०-2 हेमराज तुरी भारतीय दंड संहिता की धारा 395 के तहत एक मामले में आरोपी था, जिसमें अपीलकर्ता का पिता था। तुलसी तुरी ने अपने भाई के खिलाफ सबूत दिए हैं। उसने पैरा-20 के तहत स्वीकार किया कि उसके माता-पिता के साथ-साथ दो अन्य भाई भी जीवित थे। उनके वर्जन के मुताबिक, उन्हें पहली बार संभोग का यह अनुभव हुआ है

और वह रेप के दौरान घायल हो गई थीं। तथापि, अ०सा०-3 डा कल्पना शरण द्वारा इस तथ्य का विरोध किया गया है, जिन्होंने पाया कि हाइमन पुरानी फटी पाई गई और उसमें दो उंगलियां जा सकती थीं, और 13-4-1996 को बलात्कार का कोई संकेत नहीं है। उसे अपने शरीर के अन्य हिस्सों पर कोई चोट नहीं मिली अ०सा०-2, अभियोक्ता का भाई घटना का सुनी-सुनाई गवाह है। उनके अनुसार पैरा-11 के तहत अपीलार्थी के पिता ने उनके खिलाफ चोरी का मामला दर्ज करवाया है। उन्होंने अपने शरीर पर उसकी चोटों के बारे में अभियोक्ता का समर्थन किया। उन्होंने पीड़िता के साथ थाने जाने वाले चार लोगों के नाम बताए। तथापि, आरोप पत्र में नामजद किए जाने के बावजूद विचारण न्यायालय के समक्ष किसी अन्य गवाह की जांच नहीं की गई है।

6. विचारण न्यायालय ने इन सभी तथ्यों पर विचार किया और पैरा-9 से 11 के माध्यम से चर्चा की है। हालांकि, उन्होंने अभियोक्ता के एकमात्र सबूत पर भरोसा किया है और अपीलकर्ता को इस तथ्य के बावजूद दोषी ठहराया है कि

अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने अ०सा०-2(?) के खिलाफ एक आपराधिक मामले के चलते परिवारों के बीच दुश्मनी स्वीकार की है जिसमें अपीलकर्ता के पिता ने उसके खिलाफ गवाही दी है। विचारण न्यायालय ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3/4 के तहत अपराध के बारे में संस्करण पर अविश्वास किया है, लेकिन अभियोजन पक्ष के संस्करण को स्वीकार करते हुए दावा किया कि उसे पहली बार संभोग के अधीन किया गया है, डॉक्टर (अ०सा०-3) ने उसका खंडन किया। डॉक्टर को उसके निजी अंगों पर हिंसा का कोई निशान नहीं मिला, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण के खिलाफ है।

7. ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों और परिस्थितियों में जहां परिवारों के बीच पिछली दुश्मनी स्वीकार की गई है और अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करने के लिए किसी भी सबूत के अभाव में कि अ०सा०-1 को दो व्यक्तियों द्वारा बलात्कार के अधीन किया गया है, मैं पाता हूं और मानता हूं कि प्रस्तुत मामले के

तथ्यों में अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ आरोपों को सभी उचित संदेहों से परे साबित करने में सक्षम नहीं है। तदनुसार, प्रस्तुत अपील में योग्यता है और अनुमति दी जानी चाहिए।

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2020)3 एस.सी.सी. 443 में रिपोर्ट किए गए संतोष प्रसाद @ संतोष कुमार बनाम बिहार राज्य के मामले में दिए गए अपने 14 फरवरी, 2020 के फैसले में अभियोक्ता की एकमात्र गवाही के आधार पर अभियुक्त की दोषसिद्धि के मुद्दे पर विचार किया है और माना है कि जहां अभियोक्ता द्वारा सुनाई गई कहानी संदेह के घेरे में पाई गई है, फिर उसकी गवाही के एक टुकड़े को धारा 376 भ०द०वि० के तहत आरोपी की सजा का आधार नहीं बनाया जा सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्णय दिया है कि अभियोक्ता की गवाही को स्टर्लिंग गवाह की परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है और उसके बाद ही उक्त गवाही को अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाया जा सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय का संगत भाग निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

"5. हमने संबंधित पक्षों के अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है।

5.1 हमने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों और आदेशों के साथ-साथ अभियुक्त को दोषी ठहराने वाले विचारण न्यायालय के

आदेशों पर विस्तार से विचार किया है। हमने मौखिक और दस्तावेजी दोनों तरह के रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर भी विस्तार से विचार किया है।

5.2 निचली दोनों अदालतों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों और आदेशों से, ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता को पूरी तरह से अभियोक्ता (अ०सा०-5) के बयान पर भरोसा करते हुए दोषी ठहराया गया है। न तो कोई स्वतंत्र गवाह और न ही चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हैं। अ०सा०-1 की गवाही से यह रिकॉर्ड में आया है कि दोनों पक्षों के बीच भूमि विवाद चल रहा था। यहां तक कि जिरह में भी अ०सा०-5 अभियोक्ता ने स्वीकार किया था कि संतोष (आरोपी) के साथ उसकी दुश्मनी थी। अभियोक्ता को चिकित्सा जांच के लिए डॉ. रेणु सिंह - चिकित्सा अधिकारी और अ०सा०-7 डॉ. रेणु सिंह द्वारा चोट की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। चोट की रिपोर्ट में, कोई शुक्राणु के साथ-साथ आर.बी.सी. और डब्ल्यू.बी.सी. नहीं पाए गए। डॉ. रेणु सिंह, अ०सा०-7 चिकित्सा अधिकारी ने अपने बयान में विशेष रूप से राय दी है और कहा कि उन्हें पीड़िता के शरीर पर कोई हिंसा के निशान नहीं मिले। उसने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि बलात्कार का कोई भौतिक या रोग संबंधी सबूत नहीं है। यह सच है कि इसके बाद उसने कहा कि बलात्कार की संभावना

से इंकार नहीं किया जा सकता है (जैसा कि मुख्य परीक्षा में कहा गया है)। तथापि, प्रतिपरीक्षा में उसने कहा है कि बलात्कार का कोई भौतिक अथवा रोग संबंधी साक्ष्य नहीं था।

5.3 विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के अनुसार, पेटीकोट पर रक्त समूह और पेटीकोट पर वीर्य अनिर्णायक बताया गया है। इसलिए, रिकॉर्ड पर उपलब्ध एकमात्र सबूत अभियोक्ता का बयान होगा। यह विवादित नहीं हो सकता है कि केवल अभियोक्ता के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि हो सकती है। हालांकि, सबूत विश्वसनीय और भरोसेमंद होना चाहिए। इसलिए, अब हम अभियोक्ता के साक्ष्य की जांच करते हैं और विचार करते हैं कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियोक्ता के बयान के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराना सुरक्षित है, विशेष रूप से जब न तो चिकित्सीय परीक्षण/साक्ष्य समर्थन करते हैं और न ही अन्य गवाह समर्थन करते हैं और यह रिकॉर्ड पर आया है कि दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी थी।

5.4 अभियोक्ता के साक्ष्य पर विचार करने से पहले, राजू (उपरोक्त) और संदीप राय @ दीपू के मामलों में इस न्यायालय के निर्णय, अपीलकर्ता-अभियुक्त की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए जाने की आवश्यकता है, को संदर्भित और विचार किया जाना आवश्यक है।

5.4.1 राजू (उपरोक्त) के मामले में, यह इस न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 11 और 12 में निम्नानुसार देखा और अवधारित किया गया है:

"11. यह नहीं अनदेखा किया जा सकता है कि बलात्कार पीड़ित को सबसे बड़ा संकट और अपमान देता है, लेकिन साथ ही बलात्कार का झूठा आरोप अभियुक्त को समान संकट, अपमान और नुकसान भी पहुंचा सकता है। अभियुक्तों को झूठे फंसाने की संभावना से भी बचाया जाना चाहिए, खासकर जहां बड़ी संख्या में आरोपी शामिल हों। इसके अलावा, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि व्यापक सिद्धांत यह है कि एक घायल गवाह घटना के समय मौजूद था और आमतौर पर ऐसा गवाह वास्तविक हमलावरों के बारे में झूठ नहीं बोलेगा, लेकिन यह मानने के लिए कोई अनुमान या कोई आधार नहीं है कि ऐसे गवाह का बयान हमेशा सही होता है या बिना किसी अलंकरण या अतिशयोक्ति के होता है।

12. गुरमीत सिंह मामले [(1996) 2 एस.सी.सी. 384: 1996 एस.सी.सी. (क्रि) 316] में 1983 में दंड संहिता की धारा 375 और 376 में संशोधन के लिए संदर्भ दिया गया है, जिससे बलात्कार से संबंधित दंडात्मक प्रावधानों को और अधिक कठोर बना दिया गया है, और कथित बलात्कार के मामले में सहमति से यौन संबंध के

आरोपों के संबंध में उठाए जाने वाले अनुमान के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 114-ए का भी संदर्भ दिया गया है। हालांकि यह महत्वपूर्ण है कि धारा 113-ए और 113-बी को भी उसी संशोधन द्वारा साक्ष्य अधिनियम में डाला गया था, जिसके द्वारा अभियुक्तों के खिलाफ आत्महत्या और दहेज हत्या के मामलों में कुछ अनुमान लगाए गए हैं। इस प्रकार, ये दो धाराएं अभियोजन के पक्ष में एक स्पष्ट अनुमान लगाती हैं, लेकिन बलात्कार के संबंध में कोई समान धारणा नहीं है क्योंकि धारा 114-ए के तहत अनुमान इसकी प्रयोज्यता में बेहद प्रतिबंधित है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जहां तक बलात्कार के आरोपों का संबंध है, एक अभियोक्ता के साक्ष्य की जांच एक घायल गवाह के रूप में की जानी चाहिए, जिसकी मौके पर उपस्थिति संभावित है, लेकिन यह कभी नहीं माना जा सकता है कि उसके बयान को बिना किसी अपवाद के सुसमाचार सत्य के रूप में लिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उसके बयान को इस सिद्धांत पर सबसे अच्छा माना जा सकता है कि आमतौर पर कोई घायल गवाह झूठ नहीं बोलेगा या किसी व्यक्ति को झूठ नहीं फंसाएगा। हमारा मानना है कि यह इन सिद्धांतों के तहत है कि इस मामले और इस तरह के अन्य मामलों की जांच करने की आवश्यकता है।

5.4.2 राय संदीप उर्फ दीपू (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय के पास यह विचार करने का अवसर था कि किसे "स्टर्लिंग गवाह" कहा जा सकता है। पैरा-22 में, यह देखा गया है और निम्नानुसार अवधारित किया गया है: "22- हमारी सुविचारित राय में, "स्टर्लिंग गवाह" एक बहुत ही उच्च गुणवत्ता और क्षमता का होना चाहिए, जिसका संस्करण, इसलिए, अनुपलब्ध होना चाहिए। ऐसे गवाह के संस्करण पर विचार करने वाली अदालत को बिना किसी हिचकिचाहट के इसे अपने अंकित मूल्य के लिए स्वीकार करने की स्थिति में होना चाहिए। ऐसे गवाह की गुणवत्ता का परीक्षण करने के लिए, गवाह की स्थिति सारहीन होगी और जो प्रासंगिक होगा वह इस तरह के गवाह द्वारा दिए गए बयान की सत्यता है। जो अधिक प्रासंगिक होगा वह प्रारंभिक बिंदु से अंत तक बयान की निरंतरता होगी, अर्थात्, उस समय जब गवाह प्रारंभिक और अंततः अदालत के सामने बयान देता है। यह स्वाभाविक और अभियुक्त के अभियोजन पक्ष के मामले के अनुरूप होना चाहिए। ऐसे गवाह के संस्करण में कोई छल-कपट नहीं होना चाहिए। गवाह को किसी भी लंबाई की जिरह का सामना करने की स्थिति में होना चाहिए और चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो और किसी भी परिस्थिति में घटना के तथ्य, शामिल व्यक्तियों के साथ-साथ इसके अनुक्रम

के बारे में किसी भी संदेह के लिए जगह नहीं देनी चाहिए। इस तरह के संस्करण का अन्य सहायक सामग्री में से प्रत्येक के साथ सह-संबंध होना चाहिए जैसे कि की गई बरामदगी, इस्तेमाल किए गए हथियार, किए गए अपराध का तरीका, वैज्ञानिक साक्ष्य और विशेषज्ञ राय। उक्त संस्करण को लगातार हर दूसरे गवाह के संस्करण के साथ मेल खाना चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में लागू परीक्षण के समान होना चाहिए, जहां अभियुक्त को उसके खिलाफ कथित अपराध का दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में कोई लापता लिंक नहीं होना चाहिए। केवल अगर इस तरह के गवाह का संस्करण उपरोक्त परीक्षण के साथ-साथ लागू होने वाले अन्य सभी समान परीक्षणों को अर्हता प्राप्त करता है, तो क्या यह माना जा सकता है कि ऐसे गवाह को "स्टर्लिंग गवाह" कहा जा सकता है, जिसका संस्करण अदालत द्वारा बिना किसी पुष्टि के स्वीकार किया जा सकता है और जिसके आधार पर दोषी को दंडित किया जा सकता है। अधिक सटीक होने के लिए, अपराध के मुख्य स्पेक्ट्रम पर उक्त गवाह का संस्करण बरकरार रहना चाहिए, जबकि अन्य सभी परिचर सामग्री, अर्थात्, मौखिक, दस्तावेजी और भौतिक वस्तुओं को सामग्री विवरणों में उक्त संस्करण से मेल खाना

चाहिए ताकि अदालत को अपराध कथित आरोप के अपराधी को दोषी ठहराने के लिए अन्य सहायक सामग्री को छलनी करने के लिए मुख्य संस्करण पर भरोसा करने के लिए सक्षम बनाया जा सके।

5.4.3 कृष्ण कुमार मलिक बनाम भारत संघ के मामले में, हरियाणा राज्य (2011)7 एस.सी.सी. 130 के मामले में, यह देखा गया है और इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि इसमें कोई संदेह नहीं है, यह सच है कि बलात्कार के अपराध के लिए दोषी अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए, अभियोक्ता का एकमात्र साक्ष्य पर्याप्त है बशर्ते कि यह विश्वास को प्रेरित करता है और पूरी तरह से भरोसेमंद, बेदाग प्रतीत होता है और स्टर्लिंग गुणवत्ता का होना चाहिए।

5.5 पूर्वोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, इस बात पर विचार किया जाना आवश्यक है कि क्या अभियोक्ता के एकमात्र साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराना सुरक्षित है? क्या अभियोक्ता का सबूत विश्वास को प्रेरित करता है और बिल्कुल भरोसेमंद, बेदाग और स्टर्लिंग गुणवत्ता का प्रतीत होता है?

6. अभियोक्ता के बयान के माध्यम से जाने और विचार करने के बाद, हम पाते हैं कि इसमें अहम विरोधाभास हैं। न केवल भौतिक विरोधाभास हैं, बल्कि जिस तरह से

कथित घटना हुई है, वह भी अभियोक्ता के संस्करण के अनुसार विश्वसनीय नहीं है। मुख्य अभियोक्ता ने जिरह में कहा है कि गिरी हुई चारदीवारी को कूदने के बाद अभियोक्त अंदर आया और उसके बाद अभियोक्त ने बलात्कार किया। उसने कहा है कि उसने मोबाइल की रोशनी से आरोपी की पहचान की। हालांकि कोई मोबाइल बरामद नहीं हुआ है। यहां तक कि रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि एक टूटी हुई परिसर की दीवार थी। उन्होंने आगे कहा है कि सुबह 10 बजे वह थाना गई और मौखिक शिकायत दी। हालांकि विवेचनाधिकारी के मुताबिक लिखित शिकायत दी गई थी। यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि यहां तक कि प्राथमिकी भी शाम 4:00 बजे दर्ज की जाती है। अपने बयान में, शिकायतकर्ता ने शांति देवी, अ०सा०-1 और अन्य के नाम का उल्लेख किया है। हालांकि शांति देवी ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। इसलिए, जब हमने अ.सा.-5 - अभियोक्त्री के संस्करण का परीक्षण किया, तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उक्त गवाह "स्टर्लिंग गवाह" के किसी भी परीक्षण को पारित करने में विफल रहा है। शिकायत देने के बारे में उनके बयान में भिन्नता है। प्राथमिकी में देरी रही है। चिकित्सीय परीक्षण अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करती है। विधि विज्ञान

प्रयोगशाला रिपोर्ट भी अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं करती है। जैसा कि स्वीकार किया गया है, भूमि के संबंध में दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी/विवाद था। जिस तरह से घटना हुई है वह विश्वास करने योग्य नहीं है। इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम पाते हैं कि अभियोक्ता के एकमात्र संस्करण अ०सा०-5 को अंकित मूल्य पर एक सुसमाचार सत्य के रूप में नहीं लिया जा सकता है और किसी अन्य सहायक साक्ष्य के अभाव में, अपीलकर्ता और अभियोक्त को दी गई सजा को बनाए रखने की कोई गुंजाइश नहीं है।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के माध्यम से निर्धारित कानून, स्पष्ट शब्दों में, यह प्रदान करता है कि यदि अभियोक्ता की गवाही विरोधाभासों से भरी हुई पाई गई है, तो दोषसिद्धि अभियोक्ता की गवाही के कुछ टुकड़े पर आधारित नहीं हो सकती है जब तक कि अभियोक्ता के संस्करण का समर्थन करने के लिए पुष्टिकारक साक्ष्य न हो।

34. प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय ने पाया है कि अभियोक्ता की गवाही अविश्वसनीय/असंभव है, इसलिए, किसी भी पुष्टिकारक साक्ष्य के अभाव में, विचारण न्यायालय ने धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए अपीलकर्ता को

दोषी ठहराते और सजा देते समय कानून और तथ्यों की स्पष्ट त्रुटि की है।

35. मैं पाता हूं और मानता हूं कि प्रस्तुत मामले के तथ्यों में अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपीलकर्ता के खिलाफ आरोपों को साबित करने में सक्षम नहीं है। तदनुसार, प्रस्तुत अपील में योग्यता है और अनुमति दी जानी चाहिए।

36. पूर्वोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, इस आपराधिक अपील की अनुमति दी जाती है। 11वें अपर सत्र न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा सत्र विचारण संख्या-90/93 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.11.2001 को अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उसे 5,000/- रुपये के जुर्माने के साथ वर्ष 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। अपीलकर्ता को धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए उसके खिलाफ लगाए गए आरोप से बरी किया जाता है।

37. अपीलकर्ता पहले से ही जमानत पर है, इसलिए, उसके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और ज़ामिना को उन्मोचित किया जाता है।

38. निचली अदालत के रिकॉर्ड को आवश्यक अनुपालन के लिए इस आदेश की एक प्रति के साथ संबंधित विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 7 ILRA 40

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 1699 वर्ष 2022

धीरेंद्र

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

....उत्तरदाता

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्रद्धा वर्मा, अजीत कुमार, शौनक सिंह, सुधीर कुमार, सुहैल काशिफ

उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376-डी और 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(वी) - आई.टी. (संशोधन) अधिनियम, 2008 - धारा 66-ई, 67-ए - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 - जमानत खारिज होने के विरुद्ध अपील - प्रारम्भ में वर्तमान अभियुक्त/अपीलकर्ता और दो अन्य नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध तीन दिवस की अत्यधिक और अस्पष्ट विलम्ब के पश्चात प्राथमिकी अंकित की गई - अपीलकर्ता के विरुद्ध बलात्कार का कोई आरोप नहीं है और उसके विरुद्ध केवल

आरोप यह है कि जब अन्य दो आरोपी अभियोक्ता के साथ बलात्कार कर रहे थे, तब उसने वीडियो बनाया था, जिन्हें पूर्व में ही जमानत पर मुक्त किया जा चुका है - जांच पूर्ण होने के पश्चात तीनों नामित आरोपियों के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया - पीड़िता बालिग थी, उम्र करीब 20 साल - पीड़िता की मेडिकल प्रतिवेदन अपराध के आधार की पुष्टि नहीं करती - जांच एजेंसी द्वारा कोई मोबाइल फोन बरामद नहीं किया गया और न ही ऐसे मोबाइल फोन से कोई कथित वीडियो क्लिप बरामद की गई - अपीलकर्ता 26.03.2022 से कारागाह में निरुद्ध है - मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों, साक्ष्य की प्रकृति, पूर्व से बिताई गई हिरासत की अवधि पर विचार करने के पश्चात, मुकदमे को शीघ्र निर्णय की सम्भावना नहीं हैं, इस प्रकार आक्षेपित आदेश को रद्द किया गया। (प्रस्तर 5, 14, 15)

अपील स्वीकृत हुई। (ई-13)

माननीय न्यायमूर्ति, शमीम अहमद

1. श्री सुहैल काशिफ के साथ श्री सुधीर कुमार, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ताओं तथा श्री अशोक कुमार सिंह, राज्य-विपक्षी पक्ष संख्या 1 के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया और संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया गया।
2. इस न्यायालय ने दिनांक 19.07.2022 के आदेश द्वारा विपक्षी पक्ष संख्या 1 को नोटिस जारी करते हुए विद्वान ए.जी.ए. को

प्रति शपथ पत्र दाखिल करने के लिए समय प्रदान किया था।

3. दिनांक 03.08.2022 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार विपक्षी पक्ष संख्या 2 को नोटिस तामील हो चुका है परंतु आज तक न तो विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से कोई अधिवक्ता उपस्थित हुआ है और न ही उसकी ओर से कोई प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है। यहां तक कि राज्य की ओर से भी आज तक कोई प्रति शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान ए.जी.ए. तथा विपक्षी पक्ष संख्या 2 कोई प्रति शपथ पत्र दाखिल करने में रुचि नहीं रखते हैं।

4. उपरोक्त परिस्थितियों में, चूंकि मामला जमानत से संबंधित है, इस न्यायालय के पास वर्तमान अपील पर निर्णय लेने के लिए अंतिम बहस के लिए आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

5. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत वर्तमान आपराधिक अपील विद्वान विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), बाराबंकी की अदालत द्वारा जमानत आवेदन संख्या 1008 of 2022 (धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित दिनांक 05.05.2022 और 05.07.2022 के आक्षेपित आदेशों के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जो केस क्राइम संख्या 86 of 2022, धारा 376-डी, 506 भा.द.सं. सहपठित धारा 3(2)(V) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम और धारा 67-ए आई.टी. (संशोधन) अधिनियम से उत्पन्न

हुआ है, और जमानत आवेदन संख्या 1639 of 2022 (धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य), जो केस क्राइम संख्या 86 of 2022, धारा 66-ई आई.टी. (संशोधन) अधिनियम से उत्पन्न हुआ है, जो पुलिस स्टेशन- जैदपुर, जिला- बाराबंकी से संबंधित है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता के दोनों जमानत आवेदनों को खारिज कर दिया गया है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 376-डी, 506 भा.द.सं. सहपठित धारा 3(2)(V) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम और धारा 67-ए आई.टी. (संशोधन) अधिनियम के तहत वर्तमान अपीलकर्ता सहित तीन व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज की गई थी, वह भी देरी का कारण बताए बिना अत्यधिक देरी के बाद। सभी आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे कथन है कि वर्तमान अपीलकर्ता के विरुद्ध केवल यह आरोप है कि उसने अभियोक्त्री का वीडियो बनाया जबकि अन्य दो आरोपी अभियोक्त्री के साथ बलात्कार कर रहे थे, जबकि कोई कैमरा या मोबाइल फोन बरामद नहीं किया गया है। इस प्रकार, अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाया गया संपूर्ण आरोप झूठा और मनगढ़ंत है जो अभियोक्त्री द्वारा दुश्मनी के कारण लगाया गया है क्योंकि अपीलकर्ता के परिवार के सदस्यों और अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों के बीच दुश्मनी है।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि दो आरोपी जिनके विरुद्ध अभियोक्त्री ने उनके द्वारा उस पर बलात्कार किए जाने का आरोप लगाया है, उन्हें पहले ही इस न्यायालय की दो अलग-अलग समकक्ष पीठों द्वारा दिनांक 05.05.2023 और 19.06.2023 को आपराधिक अपील संख्या 1082 of 2022 (मोहित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य) और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 820 of 2022 (विजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेशों के द्वारा जमानत पर रिहा किया जा चुका है, और चूंकि अपीलकर्ता के विरुद्ध केवल यह आरोप है कि उसने पीड़िता का वीडियो बनाया जबकि अन्य दो आरोपी पीड़िता के साथ बलात्कार कर रहे थे, इसलिए अपीलकर्ता का मामला उपरोक्त दो आरोपियों की तुलना में बेहतर स्थिति में है। दोनों आदेश अभिलेख पर ले लिए गए हैं।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे कथन है कि पीड़िता की छोटी चचेरी बहन भी घटना के दिन मौजूद थी जो इस घटना के बारे में अपने परिवार के सदस्यों को सूचित करने के लिए गई थी। उन्होंने कहा कि पीड़िता द्वारा बताई गई कहानी स्वयं ही असंभव है क्योंकि आरोपी/अपीलकर्ता, जो तीन की संख्या में थे, किसी को भी घटनास्थल से इतनी आसानी से बचकर निकलने की अनुमति नहीं देंगे ताकि वह जाकर अपने परिवार के सदस्यों को घटना के बारे में सूचित कर सके। उन्होंने आगे कहा कि पीड़िता वयस्क है, जिसकी आयु लगभग 20 वर्ष है। पीड़िता की चिकित्सा रिपोर्ट अपराध

के किए जाने के तरीके की पुष्टि नहीं करती है। उन्होंने यह भी कहा है कि जांच एजेंसी द्वारा कोई मोबाइल फोन बरामद नहीं किया गया है, न ही किसी ऐसे मोबाइल फोन से कोई कथित वीडियो क्लिप बरामद या पुनः प्राप्त किया गया है जो अभियोजन की कहानी को झुठलाता है।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे कथन है कि आरोपी/अपीलकर्ता 26.03.2022 से जेल में बंद है, जिसका कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है, और यदि अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और वह परीक्षण में भी पूर्ण सहयोग करेगा। उन्होंने आगे कहा है कि अपीलकर्ता द्वारा गवाहों या वर्तमान मामले के तथ्यों से परिचित किसी अन्य व्यक्ति को धमकाने या दबाव डालने की कोई संभावना नहीं है।

11. उपरोक्त कारणों से, अपीलाथी के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि वर्तमान आपराधिक अपील स्वीकार किए जाने योग्य है और विद्वान विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), बाराबंकी द्वारा जमानत आवेदन संख्या 1008 वर्ष 2022 (धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 05.05.2022 और 05.07.2022 को पारित आदेश, जो अपराध संख्या 86 वर्ष 2022 से उत्पन्न हुआ है, जो धारा 376-डी, 506 भारतीय दंड संहिता के साथ पठित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(V) और सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन)

अधिनियम की धारा 67-ए के अंतर्गत है, और जमानत आवेदन संख्या 1639 वर्ष 2022 (धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में, जो अपराध संख्या 86 वर्ष 2022 से उत्पन्न हुआ है, जो सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम की धारा 66-ई के अंतर्गत है, जो थाना-जैदपुर, जिला-बाराबंकी से संबंधित है, निरस्त किए जाने योग्य हैं और परिणामस्वरूप, अभियुक्त/अपीलाथी विचारण की लंबितता के दौरान जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार है।

12. अपीलाथी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की मिथ्यता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य तर्क भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं। उन परिस्थितियों का भी विस्तार से उल्लेख किया गया है जो, अधिवक्ता के अनुसार, अभियुक्त के झूठे फंसाए जाने का कारण बनीं। अपीलाथी की ओर से यह आश्वासन दिया गया है कि वह कानूनी प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए तैयार है और जब भी आवश्यकता होगी, वह न्यायालय के समक्ष विश्वासपूर्वक उपस्थित होगा और न्यायालय द्वारा उस पर लगाई जाने वाली सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए भी तैयार है। यह भी बताया गया है कि अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 26.03.2022 से जेल में है तथा न्यायालय में मामलों के भारी लंबित होने के कारण, विचारण के शीघ्र समापन की कोई संभावना नहीं है।

13. इसके विपरीत, विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता ने यह तर्क देते हुए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया है कि अपराध में अभियुक्त/अपीलाथी की सक्रिय भागीदारी है। अतः,

अभियुक्त/अपीलाथी जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार नहीं है और वर्तमान आपराधिक अपील खारिज किए जाने योग्य है। हालांकि, वे अभियुक्त/अपीलाथी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अन्य तथ्यात्मक तर्कों का खंडन करने में असमर्थ रहे हैं।

14. अपीलाथी के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता की सुनवाई और अभिलेख के अवलोकन के पश्चात, यह स्पष्ट होता है कि प्रारंभ में वर्तमान अभियुक्त/अपीलाथी और दो अन्य नामजद अभियुक्तों, नामतः मोहित और विजय के विरुद्ध तीन दिनों के अनुचित और अस्पष्टीकृत विलंब के बाद धारा 376-डी, 506 भारतीय दंड संहिता, 67-ए सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(V) के अंतर्गत प्राथमिकी दर्ज की गई थी। अन्वेषण के समापन पर, अपीलाथी सहित सभी तीन नामजद अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 376 डी, 506 भारतीय दंड संहिता और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(v), तथा सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम की धारा 66-ई के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल किया गया था। पीड़िता वयस्क है, जिसकी आयु लगभग 20 वर्ष है। पीड़िता की चिकित्सा रिपोर्ट अपराध के घटित होने के तरीके की पुष्टि नहीं करती। अन्वेषण एजेंसी द्वारा कोई मोबाइल फोन बरामद नहीं किया गया है, न ही किसी ऐसे मोबाइल फोन से कोई कथित वीडियो क्लिप बरामद या पुनः प्राप्त की गई है। अभियुक्त/अपीलाथी 26.03.2022 से जेल

में बंद है और उसका कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है।

15. न्यायपीठ के समक्ष किए गए प्रस्तुतीकरण के प्रकाश में अभिलेख का अवलोकन करने के पश्चात और इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों का समग्र दृष्टिकोण लेने के बाद, साक्ष्य की प्रकृति, पहले से ही बिताई गई हिरासत की अवधि, विचारण के शीघ्र समापन की असंभावना और साथ ही साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की संभावना को इंगित करने वाली किसी भी ठोस सामग्री के अभाव में और यह तथ्य विचार करते हुए कि वर्तमान अपीलाथी के विरुद्ध बलात्कार का कोई आरोप नहीं है और उसके विरुद्ध केवल यह आरोप लगाया गया है कि जब अन्य दो अभियुक्त पीड़िता के साथ बलात्कार कर रहे थे तो उसने घटना का वीडियो बनाया, इसके अतिरिक्त दो अन्य नामजद अभियुक्त जिनके विरुद्ध पीड़िता ने उनके द्वारा उस पर बलात्कार किए जाने का आरोप लगाया है, उन्हें इस न्यायालय के दो अलग-अलग समान स्तर के खंडपीठों द्वारा पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है और अपीलाथी का मामला उपरोक्त दो अभियुक्तों की तुलना में बेहतर स्थिति में है, इसके अतिरिक्त पीड़िता की चिकित्सा रिपोर्ट अपराध के घटित होने के तरीके की पुष्टि नहीं करती, न ही अन्वेषण एजेंसी द्वारा कोई मोबाइल फोन बरामद किया गया है, न ही किसी ऐसे मोबाइल फोन से कोई कथित वीडियो क्लिप बरामद या पुनः प्राप्त की गई है, इसके अतिरिक्त यह तथ्य विचार करते हुए कि अपीलाथी 26.03.2022 से जेल में है और अब उसने हिरासत की पर्याप्त अवधि पूरी कर

ली है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के व्यापक अधिदेश और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **दत्ताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2018) 3 एससीसी 22** में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस विचार का है कि निचली अदालत ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करने में विफल रही है, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोनों आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं।

16. तदनुसार, अपील **स्वीकार** की जाती है। परिणामस्वरूप, विद्वान विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), बाराबंकी द्वारा जमानत आवेदन संख्या 1008 वर्ष 2022 (धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 05.05.2022 और 05.07.2022 को पारित आदेश, जो अपराध संख्या 86 वर्ष 2022 से उत्पन्न हुआ है, जो धारा 376-डी, 506 भारतीय दंड संहिता के साथ पठित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(V) और सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम की धारा 67-ए के अंतर्गत है, और जमानत आवेदन संख्या 1639 वर्ष 2022 (धीरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में, जो अपराध संख्या 86 वर्ष 2022 से उत्पन्न हुआ है, जो सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम की धारा 66-ई के अंतर्गत है, जो थाना-जैदपुर, जिला-बाराबंकी से संबंधित है, एतद्वारा **उलट दिए जाते हैं और निरस्त किए जाते हैं।**

17. अपीलाथी, **धीरेंद्र** को अपराध संख्या 86 वर्ष 2022, जो धारा 376-डी, 506 भारतीय

दंड संहिता के साथ पठित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(V) और सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम की धारा 67-ए के अंतर्गत है, और अपराध संख्या 86 वर्ष 2022, जो सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम की धारा 66-ई के अंतर्गत है, जो थाना-जैदपुर, जिला-बाराबंकी से संबंधित है, में निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) अपीलाथी संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि के दो जमानतदारों के साथ एक व्यक्तिगत मुचलका प्रस्तुत करेगा।

(ii) अपीलाथी दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय-33 की धारा 437 की उपधारा 3 के अंतर्गत निष्पादित मुचलके की निम्नलिखित शर्तों का कड़ाई से पालन करेगा और उपस्थित होगा:-

(क) अपीलाथी इस अध्याय के अंतर्गत निष्पादित मुचलके की शर्तों के अनुसार उपस्थित होगा।

(ख) अपीलाथी उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका वह अभियुक्त है, या जिसके किए जाने का संदेह है, या जिसके किए जाने का उस पर संदेह है, और

(ग) अपीलाथी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं देगा ताकि उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की जा सके।

(iii) अपीलाथी जांच/विचारण में सहयोग करेगा।
 (iv) अपीलाथी इस आशय का एक शपथ पत्र दाखिल करेगा कि जब गवाह न्यायालय में उपस्थित हों तो वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर किसी स्थगन की मांग नहीं करेगा। इस शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, विचारण न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर कानून के अनुसार आदेश पारित करे।

(v) अपीलाथी प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष या तो व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित रहेगा। उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के अंतर्गत उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है।

(vi) यदि विचारण के दौरान अपीलाथी जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, तो उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की जाती है और अपीलाथी ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के अंतर्गत कानून के अनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही शुरू करेगा।

(vii) अपीलाथी विचारण न्यायालय के समक्ष (i) मामले की शुरुआत, (ii) आरोप तय करने और

(iii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित

तिथियों पर उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में अपीलाथी की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह ऐसी चूक को जमानत की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के रूप में माने और कानून के अनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही करे।

18. विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह उपरोक्त मामले के विचारण को आज से एक वर्ष की अवधि के भीतर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के प्रावधानों का कड़ाई से पालन करते हुए, पक्षकारों को किसी अनावश्यक स्थगन की अनुमति दिए बिना, यदि कोई अन्य कानूनी बाधा न हो तो, शीघ्र पूरा करे।

(2023) 7 ILRA 45

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 2205 वर्ष 2022

शैलेन्द्र सैनी

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

वाशु देव मिश्रा

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी

अपील खारिज। (ई-13)

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 354, 323, 504, 506, 376, 313, 328 और 392 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(V) - जमानत खारिज किए जाने के विरुद्ध अपील - अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप है कि उसने प्रवंचना करके और विवाह का झूठा आश्वासन देकर बलात्कार किया - अपीलकर्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि अभियोक्ता वयस्क थी और उसकी सहमति से अपीलकर्ता ने शारीरिक संबंध स्थापित किया। (प्रस्तर 2, 3)

अपीलकर्ता ने अभियोक्ता के साथ अनेक बार बलात्कार किया, या तो उसे कुछ विषाक्त पदार्थ दिए या फिर विवाह का झूठा आश्वासन दिया, यहाँ तक कि प्राथमिकी के अनुसार अभियोक्ता गर्भवती थी और अपीलकर्ता के कहने पर उसका जबरन गर्भपात कराया गया - अभियोक्ता का विवाह किसी अन्य व्यक्ति के साथ हुआ था - अपीलकर्ता ने उसे कभी भी स्वतंत्र नहीं छोड़ा और हमेशा उसे उसके पति और ससुराल वालों को नग्न तस्वीरें और वीडियो देने की धमकी दी और अभियोक्ता की विवाह के पश्चात उसने कई बार जबरदस्ती शारीरिक संबंध स्थापित किए - उसने अपीलकर्ता से सभी तस्वीरें, वीडियो और पेन ड्राइव वापस करने का अनुरोध किया, लेकिन आरोपी ने इनकार कर दिया - अपीलकर्ता ने जघन्य अपराध किया है और वह किसी भी तरह की राहत प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है। (प्रस्तर 9, 10)

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री वासु देव मिश्रा, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी, राज्य की विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री शिखा सिन्हा को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14-ए(2) के अंतर्गत वर्तमान दांडिक अपील, विद्वान विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, लखनऊ द्वारा जमानत आवेदन संख्या 6984 वर्ष 2022 (सीएनआर संख्या यूपीएलकेओ10119882022), अपराध संख्या 0537 वर्ष 2022, धाराओं 354, 323, 504, 506, 376, 313, 328, 392 भारतीय दंड संहिता और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(v) के अंतर्गत, थाना चिनहट, जिला लखनऊ में पारित आदेश दिनांक 05.09.2022 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी का जमानत आवेदन निरस्त किया गया है।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि अपीलार्थी निर्दोष है और वर्तमान मामले में झूठे तौर पर फंसाया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में पीड़िता द्वारा लगाए गए आरोपों के अनुसार कोई ऐसी घटना नहीं हुई है। यह विवाह का झूठा वादा करने का

मामला है और दोनों पक्ष सहमत थे। इस प्रकार, बलात्कार का आरोप झूठा है, यद्यपि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(v) के किसी भी तत्व का आवेदक के विरुद्ध आकर्षण नहीं होता है। पीड़िता वयस्क है और उसकी सहमति से अपीलार्थी द्वारा शारीरिक संबंध बनाए गए थे। अतः, संपूर्ण आरोप झूठा और मनगढ़ंत है। इसलिए, वर्तमान अपील स्वीकृत की जाए और अपीलार्थी को जमानत पर रिहा किया जाए।

इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी तथा राज्य-विपक्षी संख्या 1 की विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री शिखा सिन्हा ने जमानत की प्रार्थना का विरोध किया और निवेदन किया कि प्रथम दृष्टया, प्रथम सूचना रिपोर्ट के सरल पठन से संज्ञेय अपराध बनता है। इस मामले में, अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है। पीड़िता ने अपीलार्थी द्वारा कुछ नशीला पदार्थ देकर कई बार बलात्कार करने और पीड़िता से धन की मांग करने का गंभीर आरोप लगाया है। यद्यपि वह गर्भवती थी और अपीलार्थी के दबाव में गर्भपात करवाया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, पीड़िता का विवाह किसी अन्य व्यक्ति से भी संपन्न हुआ था। वहां भी अपीलार्थी ने दबाव डाला और पीड़िता के पति को नग्न तस्वीरें और वीडियो भेजने की धमकी दी, जो उसने पीड़िता के साथ पहले शारीरिक संबंध के समय बलपूर्वक प्राप्त किए थे। पीड़िता ने कथित वीडियोग्राफ और तस्वीरों को, यहां तक कि पेन ड्राइव को भी वापस करने का

अनुरोध किया, लेकिन अपीलार्थी ने इनकार कर दिया और उसे गंभीर परिणामों की धमकी दी। अतः, वर्तमान अपील निरस्त की जाए और अपीलार्थी इस न्यायालय से कोई राहत पाने का हकदार नहीं है।

अपने तर्क के समर्थन में, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी ने डॉ. धुराम मुरलीधर सोनार: (2019) 18 एससीसी 191 के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवलोकन किया है कि बलात्कार और सहमति से किए गए यौन संबंध के बीच एक स्पष्ट अंतर है और, ऐसे मामलों में, यह बहुत सावधानीपूर्वक जांचा जाना चाहिए कि क्या शिकायतकर्ता वास्तव में पीड़िता से विवाह करना चाहता था या उसके दुर्भावनापूर्ण इरादे थे और उसने केवल अपनी वासना को संतुष्ट करने के लिए इस प्रभाव का झूठा वादा किया था, क्योंकि बाद वाला धोखाधड़ी या छल के दायरे में आता है। उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों का संदर्भ देते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया है:

"इस प्रकार, बलात्कार और सहमति से किए गए यौन संबंध के बीच एक स्पष्ट अंतर है। न्यायालय को ऐसे मामलों में बहुत सावधानी से जांच करनी चाहिए कि क्या शिकायतकर्ता वास्तव में पीड़िता से विवाह करना चाहता था या उसके दुर्भावनापूर्ण इरादे थे और उसने केवल अपनी वासना को संतुष्ट करने के लिए इस प्रभाव का झूठा वादा किया था, क्योंकि बाद वाला धोखाधड़ी या छल के दायरे में आता है। एक वादे का मात्र उल्लंघन और एक झूठे

वादे को पूरा न करने के बीच भी अंतर है। यदि अभियुक्त ने केवल अभियोजक पक्ष को यौन कृत्यों में लिप्त करने के इरादे से वादा नहीं किया था, तो ऐसा कृत्य बलात्कार की श्रेणी में नहीं आएगा। ऐसा मामला हो सकता है जहां अभियोजक पक्ष अभियुक्त के प्रति अपने प्रेम और जुनून के कारण यौन संबंध बनाने के लिए सहमत हो, न कि केवल अभियुक्त द्वारा पैदा किए गए भ्रम के कारण, या जहां कोई अभियुक्त, ऐसी परिस्थितियों के कारण जिनका उसने पूर्वानुमान नहीं लगाया था या जो उसके नियंत्रण से बाहर थीं, हर इरादा होने के बावजूद उससे विवाह करने में असमर्थ था। ऐसे मामलों को अलग तरह से देखा जाना चाहिए। यदि शिकायतकर्ता का कोई दुर्भावनापूर्ण इरादा था और यदि उसके गुप्त मकसद थे, तो यह बलात्कार का स्पष्ट मामला है। पक्षों के बीच स्वीकृत सहमति से शारीरिक संबंध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत अपराध नहीं माना जाएगा।"

यह एक स्थापित दृष्टिकोण रहा है कि पीड़िता द्वारा यौन संबंध के लिए दी गई सहमति स्वैच्छिक है या "तथ्य के भ्रम" के अधीन दी गई है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। सहमति के प्रश्न पर विचार करते समय, न्यायालय को अपने समक्ष उपलब्ध साक्ष्य और परिवेश की परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए, इससे पहले कि वह किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन यह ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि अपराध के प्रत्येक तत्व को सिद्ध करने का भार अभियोजन पक्ष पर है। अभियोजन पक्ष

को ऐसा सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा जो उचित संदेह से परे यह अनुमान उत्पन्न करे कि आरोपी का शुरुआत से ही पीड़िता से विवाह करने का कोई इरादा नहीं था और उसके द्वारा किया गया वादा उसकी जानकारी में झूठा था।

12. शिकायतकर्ता के विद्वान वकील ने आगे यह तर्क दिया कि **अनुराग सोनी बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2019) 13 एससीसी 1:एआईआर 2019 एससी 1857** मामले में, आरोपी का कभी भी पीड़िता से शादी करने का इरादा नहीं था; उसने अभियोजक को शादी करने का झूठा वादा/वादे दिए और इस झूठे वादे पर उसने अभियोजक के साथ शारीरिक संबंध बनाए; पीड़िता ने शुरू में विरोध किया, हालांकि, आरोपी के इस झूठे वादे पर भरोसा करते हुए कि वह उससे शादी करेगा, उसने सहमति दी, और इसलिए, उसकी सहमति को तथ्य के गलत धारणा पर आधारित सहमति कहा जा सकता है। वर्तमान मामले में, अभियोजक एक शिक्षित लड़की थी जो बी. फार्मसी में पढ़ रही थी। इसलिए, यह विश्वसनीय नहीं है कि अपीलकर्ता की शादी किसी अन्य महिला के साथ तय होने की जानकारी होने के बावजूद, वह और उसके परिवार के सदस्य आरोपी पर शादी करने का दबाव बनाते रहेंगे और अभियोजक शारीरिक संबंध के लिए सहमति देगी। यहां तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114ए पर विचार करते हुए, जो बाद में जोड़ी गई है, एक अनुमान है और अदालत यह मानेगी कि उसने आरोपी के साथ शारीरिक संबंध के लिए सहमति दी थी, आरोपी द्वारा दिए गए वादे

पर भरोसा करते हुए कि वह उससे शादी करेगा। शुरुआत से ही, आरोपी द्वारा अभियोकत्री से शादी करने का वादा एक झूठा वादा था और शुरू से ही आरोपी का अभियोकत्री से शादी करने का कोई इरादा नहीं था क्योंकि उसकी शादी प्रियंका सोनी के साथ पहले से ही तय थी और, इसके बावजूद, वह वादा/झूठा वादा देता रहा और पीड़िता को शारीरिक संबंध के लिए सहमति देने के लिए बहकाता रहा। सर्वोच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर कानून पर चर्चा करने के बाद निम्नानुसार माना:

"उपरोक्त निर्णयों का सार और सारांश यह होगा कि यदि यह स्थापित और सिद्ध हो जाता है कि शुरुआत से ही आरोपी, जिसने पीड़िता को शादी का वादा किया था, का शादी करने का कोई इरादा नहीं था और पीड़िता ने आरोपी के इस आश्वासन पर कि वह उससे शादी करेगा, यौन संबंध के लिए सहमति दी, तो ऐसी सहमति को आईपीसी की धारा 90 के अनुसार तथ्य की गलत धारणा पर प्राप्त सहमति कहा जा सकता है और, ऐसे मामले में, ऐसी सहमति अपराधी को माफ नहीं करेगी और ऐसे अपराधी को आईपीसी की धारा 375 में परिभाषित बलात्कार का अपराधी माना जा सकता है और आईपीसी की धारा 376 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है।"

अतः, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के दृष्टिगत, यह सहमति का मामला नहीं है। इस प्रकार, यह बलात्कार की श्रेणी में आता है और माननीय

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, वर्तमान अपील निरस्त की जानी चाहिए।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के पश्चात और अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि अपीलार्थी ने पीड़िता के साथ कई बार या तो कोई नशीला पदार्थ देकर या विवाह का झूठा वादा करके बलात्कार किया, यद्यपि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, अभियोकत्री गर्भवती थी और वर्तमान अपीलार्थी के कहने पर जबरन गर्भपात कराया गया। किसी तरह, अभियोकत्री का विवाह किसी अन्य व्यक्ति से हो गया। वहाँ भी अपीलार्थी ने उसे मुक्त नहीं छोड़ा और हमेशा उसे नग्न तस्वीरें और वीडियो उसके पति और ससुराल वालों को देने की धमकी देता रहा और पीड़िता के विवाह के बाद भी कई बार जबरन शारीरिक संबंध बनाने का प्रयास किया, जिसने अभियोकत्री का पूरा जीवन नरक बना दिया। इस प्रकार, उसके पास कोई विकल्प नहीं था परंतु उसने अपीलार्थी से सभी तस्वीरें, वीडियोग्राफ और पेन ड्राइव लौटाने का अनुरोध किया, लेकिन अपीलार्थी ने इसके लिए मना कर दिया।

अतः, न्यायालय की राय में, अपीलार्थी ने एक जघन्य अपराध किया है और वह इस न्यायालय से कोई राहत पाने का हकदार नहीं है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अनुराग सोनी (उपरोक्त)** के मामले में और **डॉ. धुवराम मुरलीधर सोनार (उपरोक्त)** के मामले में भी अवलोकित किया था कि यदि बलात्कार धोखा देकर और विवाह का झूठा वादा करके किया जाता है, तो अपीलार्थी किसी राहत का

हकदार नहीं है। अतः, इस न्यायालय की राय में, निचली अदालत का आक्षेपित आदेश दिनांक 05.09.2022 न्यायोचित है। इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। अपील खारिज किए जाने योग्य है।

तदनुसार, अपीलार्थी द्वारा दायर की गई अपील खारिज की जाती है।

फाइल अभिलेखागार में भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 48

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद जे

आपराधिक अपील संख्या 2378 वर्ष 2022

मोहन यादव @ विवेक यादव अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

माता प्रसाद यादव, अभिषेक सिंह यादव, शिव शशांक

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 342, 376, 504 और 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा

3(2)(V) - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164 - जमानत निरस्त किए जाने के विरुद्ध अपील - दुर्भावनापूर्ण आशय - अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप कि विवाह का झूठा आश्वासन करके अभियोक्ता के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किया - अपीलकर्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि अभियोक्ता बालिग थी, सहमति देने वाली पक्ष थी और परिणाम जानती थी कि अपीलकर्ता द्वारा विवाह का आश्वासन किसी भी स्तर पर तोड़ा जा सकता है लेकिन वह संबंध में बनी रही - अपीलकर्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी के और अभियोक्ता के कथन के अनुसार, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अंतर्गत कोई तत्व लागू नहीं होता, क्योंकि घटना कक्ष में हुई थी, न कि सार्वजनिक स्थान पर। (प्रस्तर 2, 4, 5, 10)

प्राथमिकी में अभियोक्ता ने स्वीकार किया कि वह पिछले छह महीने से अपीलकर्ता के साथ संबंध में थी और उसकी उम्र 20 वर्ष थी और इस प्रकार वह वयस्क थी - प्राथमिकी में बलात्कार का आरोप और चिकित्सीय प्रतिवेदन के अवलोकन के पश्चात पीड़िता के कथन को नष्ट कर दिया गया, जिसमें चिकित्सक ने तर्क दिया कि पीड़िता के निजी अंगों पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं प्रतीत हुई, न ही चिकित्सक ने यौन उत्पीड़न के संबंध में कोई निश्चित राय प्रस्तुत की और मूत्र गर्भावस्था परीक्षण नकारात्मक आया - दोनों पक्ष सहमति पक्ष हैं और शारीरिक संबंध प्रबलता से नहीं स्थापित किया गया था और हिरासत की पर्याप्त अवधि के दृष्टिगत,

आक्षेपित आदेश को खारिज कर दिया गया।
(प्रस्तर 15)

रिपोर्ट में अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपित कोई
ऐसी घटना नहीं हुई।

अपील स्वीकृत। (ई-13)

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

1. श्री माता प्रसाद यादव, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता और श्री सतेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, राज्य-विपक्षी पक्ष के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना और संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया।

2. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14-ए (2) के अंतर्गत वर्तमान आपराधिक अपील विद्वान विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), सुलतानपुर की न्यायालय द्वारा जमानत आवेदन संख्या 2800/2022 : मोहन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में पारित दिनांक 02.09.2022 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जो अपराध संख्या 262/2022, धारा 342, 376, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (v) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, थाना अखंड नगर, जिला सुलतानपुर से उत्पन्न हुआ है, जिसके द्वारा अपीलार्थी की जमानत याचिका खारिज कर दी गई है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि अपीलार्थी निर्दोष है और वर्तमान मामले में झूठे तौर पर फंसाया गया है। प्रथम सूचना

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष के अनुसार अभियोजन पक्ष और अपीलार्थी पिछले छह महीनों से संबंध में थे और वे एक दूसरे से प्यार करते थे और शादी करने के लिए तैयार थे। उन्होंने आगे कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट अपीलार्थी और एक नामित व्यक्ति तथा एक अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ दर्ज की गई थी, लेकिन जांच के बाद राजपति यादव और एक अन्य व्यक्ति के नाम हटा दिए गए और केवल अपीलार्थी के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया। अभियोजन पक्ष ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में इस तथ्य को स्वीकार किया कि वह पिछले छह महीनों से अपीलार्थी के साथ संबंध में थी और अपीलार्थी ने शादी का वादा किया था और यह शादी का झूठा वादा था और जबरदस्ती शारीरिक संबंध बनाया गया था। अभियोजन पक्ष ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपनी उम्र 20 वर्ष स्वीकार की है और इस प्रकार वह वयस्क है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष वयस्क थी और वह एक सहमति पक्ष थी और वह अच्छी तरह से जानती थी कि शादी का वादा किसी भी स्तर पर अपीलार्थी द्वारा तोड़ा जा सकता है लेकिन इस तथ्य को जानने के बावजूद वह अपीलार्थी के साथ संबंध में रहना जारी रखी और अभियोजन पक्ष के कथन के अनुसार, अपीलार्थी ने अभियोजन पक्ष के साथ शारीरिक संबंध बनाया, इस प्रकार कहानी

झूठी और गढ़ी हुई प्रतीत होती है और वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के परिवार के सदस्यों द्वारा बनाए गए दबाव के तहत दर्ज की गई है।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष ने अपने बयान में जो धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए थे, प्रथम सूचना रिपोर्ट के समान संस्करण को दोहराया लेकिन इस तथ्य का विवाद नहीं किया कि वह पिछले छह महीनों से अपीलार्थी के साथ संबंध में थी और अपीलार्थी ने शादी का वादा किया था।

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि बलात्कार का आरोप जो प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाया गया था और पीड़िता के बयानों में भी जो धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए थे, पीड़िता की चिकित्सा रिपोर्ट के अवलोकन के बाद ध्वस्त हो गया, जिसमें संबंधित डॉक्टर ने राय दी है कि पीड़िता के गुप्तांगों पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं पाई गई, न ही डॉक्टर ने यौन उत्पीड़न के संबंध में कोई निश्चित राय दी है और मूत्र गर्भावस्था परीक्षण नकारात्मक आया। चिकित्सा रिपोर्ट के अनुसार अभियोजन पक्ष की उम्र लगभग 20 वर्ष है।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि ऐसा कोई वादा कभी नहीं किया गया था और यदि अभियोजन पक्ष से कोई वादा किया भी गया हो, तो वह वयस्क थी और परिणामों को बहुत अच्छी तरह से जानती थी।

अपने तर्कों के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2019) 9 एससीसी 608 के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है और पैरा 17 और 21 पर निर्भर किया है, जो इस प्रकार हैं:

"17. उदय बनाम कर्नाटक राज्य में शिकायतकर्ता एक कॉलेज जाने वाली छात्रा थी जब आरोपी ने उससे शादी करने का वादा किया था। शिकायतकर्ता के बयान में, उसने स्वीकार किया कि वह जानती थी कि प्रस्तावित विवाह के लिए शिकायतकर्ता और आरोपी दोनों के परिवारों से काफी विरोध होगा। उसने आरोपी के साथ यौन संबंध बनाए लेकिन फिर भी अपने परिवार से संबंध को गुप्त रखा। न्यायालय ने देखा कि इन परिस्थितियों में आरोपी का शिकायतकर्ता से शादी करने का वादा शिकायतकर्ता के आरोपी के साथ यौन संबंध बनाने के निर्णय के लिए तत्काल प्रासंगिक नहीं था, जो अन्य कारकों से प्रेरित था: [(2003) 4 एससीसी 46]।

25. इस मामले में अभियोजन पक्ष के सामने एक और कठिनाई है। इस प्रकृति के मामले में धारा 90 भारतीय दंड संहिता के लागू होने के लिए दो शर्तें पूरी होनी चाहिए। पहला, यह दिखाया जाना चाहिए कि सहमति तथ्य के गलत धारणा के तहत दी गई थी। दूसरा, यह

साबित किया जाना चाहिए कि जिस व्यक्ति ने सहमति प्राप्त की, वह जानता था, या उसके पास यह मानने का कारण था कि सहमति ऐसी गलत धारणा के परिणामस्वरूप दी गई थी। हमें गंभीर संदेह है कि शादी का वादा अभियोजन पक्ष को अपीलार्थी के साथ यौन संबंध बनाने की सहमति देने के लिए प्रेरित किया। वह जानती थी, जैसा कि हमने पहले भी देखा है, कि जाति के विचारों के कारण अपीलार्थी के साथ उसकी शादी मुश्किल थी। प्रस्ताव को दोनों परिवारों के सदस्यों से कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। इसलिए एक स्पष्ट संभावना थी, जिसके बारे में वह स्पष्ट रूप से जागरूक थी, कि अपीलार्थी के वादे के बावजूद शादी हो भी सकती है और नहीं भी। सवाल अभी भी बना हुआ है कि यदि ऐसा था, तो क्या अपीलार्थी जानता था, या उसके पास यह मानने का कारण था, कि अभियोजन पक्ष ने उसके साथ यौन संबंध बनाने की सहमति केवल इस विश्वास के परिणामस्वरूप दी थी, जो उसके वादे पर आधारित था, कि वे समय के साथ शादी कर लेंगे। इस तथ्य को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है। इसके विपरीत, मामले की परिस्थितियां इस निष्कर्ष का समर्थन करने की ओर

जाती हैं कि अपीलार्थी के पास यह मानने का कारण था कि अभियोजन पक्ष द्वारा दी गई सहमति एक दूसरे के लिए उनके गहरे प्यार का परिणाम थी। यह विवादित नहीं है कि वे गहराई से प्यार करते थे। वे अक्सर मिलते थे, और ऐसा लगता है कि अभियोजन पक्ष ने उसे ऐसी स्वतंत्रता की अनुमति दी जो, यदि कभी, केवल उस व्यक्ति को दी जाती है जिससे कोई गहरे प्यार में होता है। यह भी महत्वहीन नहीं है कि अभियोजन पक्ष रात के 12 बजे चुपके से अपीलार्थी के साथ एक एकांत स्थान पर गई। ऐसे मामलों में आमतौर पर होता है, जब दो युवा व्यक्ति पागलपन में प्यार करते हैं, कि वे एक दूसरे से कई बार वादा करते हैं कि चाहे जो हो जाए, वे शादी कर लेंगे (जोर दिया गया)।

21. प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप अपने आप में यह संकेत नहीं देते कि अपीलार्थी द्वारा किया गया वादा झूठा था, या यह कि शिकायतकर्ता ने इस वादे के आधार पर यौन संबंध बनाए। प्रथम सूचना रिपोर्ट में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि जब अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता से विवाह का वादा किया, तो यह बुरे इरादे से या उसे धोखा देने के उद्देश्य से किया गया था। अपीलार्थी द्वारा सन 2008 में किए

गए वादे को सन 2016 में पूरा न करने का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि वादा स्वयं झूठा था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप यह दर्शाते हैं कि शिकायतकर्ता को सन 2008 से ही अपीलार्थी से विवाह करने में बाधाओं के अस्तित्व की जानकारी थी, और यह कि उनके विवाह का मामला विवादित हो जाने के बहुत बाद तक भी वह और अपीलार्थी यौन संबंध बनाते रहे। यहां तक कि उसके बाद भी, शिकायतकर्ता अपीलार्थी की तैनाती के स्थानों पर उससे मिलने और रहने के लिए यात्रा करती रही और उसे अपने निवास पर सप्ताहांत बिताने की अनुमति देती रही। प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप इस मामले को झुठलाते हैं कि वह अपीलार्थी के विवाह के वादे से धोखा खाई थी। अतः, यदि शिकायतकर्ता के बयानों में उल्लिखित तथ्यों को पूर्णतः स्वीकार भी कर लिया जाए, तो भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के तहत कोई अपराध घटित नहीं हुआ है।"

इस प्रकार, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को देखते हुए, अपीलार्थी द्वारा अभियोजन पक्ष को किया गया विवाह का वादा अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित मामले के अनुसार सद्भावना में किया

गया है और यह बलात्कार की श्रेणी में नहीं आता क्योंकि अभियोजन पक्ष की सहमति थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन और धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज अभियोजन पक्ष के बयानों से यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्ष सहमत पक्ष हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि शारीरिक संबंध जबरदस्ती बनाया गया था, इस प्रकार अपीलार्थी को दुर्भावनापूर्ण इरादे से फंसाया गया है।

9. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान माननीय उच्चतम न्यायालय के हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य के मामले में दिए गए निर्णय की ओर आकर्षित किया है, जो (2020) 10 एससीसी में प्रतिवेदित है, जिसमें पैरा 15 में स्वर्ण सिंह और अन्य बनाम राज्य (2008) 8 एससीसी 435 में पारित निर्णय पर निर्भर करते हुए यह माना गया है:

"प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, सूचनादाता के साथ दुर्व्यवहार के आरोप उसके भवन की चार दीवारों के भीतर थे। यह सूचनादाता का मामला नहीं है कि घटना के समय घर में जनता का कोई सदस्य (न ही केवल रिश्तेदार या मित्र) मौजूद था। इसलिए, मूल तत्व कि शब्द सार्वजनिक दृष्टि में किसी स्थान पर कहे गए थे, स्थापित नहीं होता। आरोप पत्र के साथ संलग्न गवाहों की सूची में, कुछ गवाहों का नाम दिया गया है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे व्यक्ति भवन की

चार दीवारों के भीतर मौजूद थे। अपराध के भवन की चार दीवारों के भीतर होने का आरोप है। इसलिए, स्वर्ण सिंह में इस न्यायालय के निर्णय को देखते हुए, यह सार्वजनिक दृष्टि में स्थान नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट और/या आरोप पत्र के अनुसार भवन की चार दीवारों के भीतर किसी के मौजूद होने की बात नहीं कही गई थी।"

10. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए कथनों से और बयान के अवलोकन से भी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत कोई तत्व अपीलार्थी के विरुद्ध आकर्षित नहीं होता है, क्योंकि अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना एक कमरे में हुई है और न कि किसी सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृष्टि में।

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि आरोपी/अपीलार्थी 03.08.2022 से जेल में बंद है, जिसका कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है, और यदि अपीलार्थी को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और वह परीक्षण में भी पूर्ण सहयोग करेगा। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि अपीलार्थी द्वारा गवाहों या वर्तमान मामले के तथ्यों से परिचित किसी अन्य व्यक्ति को धमकाने या दबाव डालने की कोई संभावना नहीं है।

12. उपरोक्त कारणों से, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि वर्तमान आपराधिक अपील स्वीकार किए जाने योग्य है और विद्वान विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), सुलतानपुर द्वारा जमानत आवेदन संख्या 2800/2022 : मोहन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में दिनांक 02.09.2022 को पारित आदेश, जो अपराध संख्या 262/2022, धारा 342, 376, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (v) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, थाना अखंड नगर, जिला सुलतानपुर से उत्पन्न हुआ है, निरस्त किए जाने योग्य है और परिणामस्वरूप, आरोपी/अपीलार्थी परीक्षण की लंबितता के दौरान जमानत पर रिहा किए जाने योग्य है।

13. अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की मिथ्यता प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य निवेदन भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों ने आरोपी के झूठे फंसाव की ओर ले गई, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। अपीलार्थी की ओर से आश्वासन दिया गया है कि वह कानूनी प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए तैयार है और जब भी आवश्यक होगा, न्यायालय के समक्ष ईमानदारी से उपस्थित होगा और न्यायालय द्वारा उचित समझी जाने वाली सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए भी तैयार है। यह भी बताया गया है कि आरोपी का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 03.08.2022 से जेल में है तथा न्यायालय में मामलों की भारी लंबितता के कारण परीक्षण के शीघ्र समापन की कोई संभावना नहीं है।

14. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने यह निवेदन करके प्रार्थना का जोरदार विरोध किया है कि अपराध में आरोपी/अपीलार्थी की सक्रिय भागीदारी है। अतः, आरोपी/अपीलार्थी जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार नहीं है और वर्तमान आपराधिक अपील खारिज किए जाने योग्य है। हालांकि, वह आरोपी/अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य तथ्यात्मक निवेदनों का खंडन करने में असमर्थ रहे हैं।

15. न्यायपीठ पर किए गए निवेदनों के प्रकाश में अभिलेख का अवलोकन करने के बाद और इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों का समग्र दृष्टिकोण लेने के बाद, साक्ष्य की प्रकृति, पहले से ही भुगती गई निरोध की अवधि, परीक्षण के शीघ्र समापन की असंभावना और साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की संभावना को इंगित करने वाली किसी ठोस सामग्री के अभाव में और यह विचार करते हुए कि अभियोजन पक्ष ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में इस तथ्य को स्वीकार किया कि वह पिछले छह महीनों से अपीलार्थी के साथ संबंध में थी और अपनी आयु 20 वर्ष स्वीकार की है और इस प्रकार वह वयस्क है, प्रथम सूचना रिपोर्ट में तथा धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज पीड़िता के बयानों में लगाया गया बलात्कार का आरोप भी पीड़िता की चिकित्सा रिपोर्ट के अवलोकन के बाद खारिज हो गया, जिसमें संबंधित डॉक्टर ने राय दी है कि पीड़िता के गुप्तांगों पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं पाई गई, न ही डॉक्टर ने यौन उत्पीड़न के संबंध में कोई निश्चित राय दी है और मूत्र गर्भावस्था परीक्षण

नकारात्मक आया, प्रथम सूचना रिपोर्ट और धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज अभियोजन पक्ष के बयानों के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्ष सहमत पक्ष हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि शारीरिक संबंध जबरदस्ती बनाया गया था और आगे यह तथ्य विचार करते हुए कि अपीलार्थी 03.08.2022 से जेल में है और अब तक पर्याप्त अवधि का निरोध कर चुका है और आगे भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के व्यापक अधिदेश और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दातारामसिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2018) 3 एससीसी 22, प्रमोद सूर्यभानुपवार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2019) 9 एससीसी 608, हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य (2020) 10 एससीसी में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस विचार का है कि निचली अदालत ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करने में विफल रही है, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोनों आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं।

16. तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है। परिणामस्वरूप, विद्वान विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), सुलतानपुर द्वारा जमानत आवेदन संख्या 2800/2022 : मोहन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में दिनांक 02.09.2022 को पारित आदेश, जो अपराध संख्या 262/2022, धारा 342, 376, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (v) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, थाना अखंड नगर, जिला

सुलतानपुर से उत्पन्न हुआ है, एतद्वारा उलट दिया जाता है और निरस्त किया जाता है।

17. अपीलार्थी, मोहन यादव, को अपराध संख्या 262/2022, धारा 342, 376, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (v) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, थाना अखंड नगर, जिला सुलतानपुर में निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) अपीलार्थी संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि के दो जमानतदारों के साथ एक व्यक्तिगत बांड प्रस्तुत करेगा।

(ii) अपीलार्थी दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय-33 की धारा 437 की उपधारा 3 के तहत निष्पादित बांड की निम्नलिखित शर्तों का कड़ाई से पालन करेगा और उपस्थित होगा:-

(क) अपीलार्थी इस अध्याय के तहत निष्पादित बांड की शर्तों के अनुसार उपस्थित होगा।

(ख) अपीलार्थी उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका वह आरोपी है, या जिसके आयोग का संदेह है।

(ग) अपीलार्थी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से रोकने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं देगा या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(iii) अपीलार्थी जांच/परीक्षण में सहयोग करेगा।

(iv) अपीलार्थी इस आशय का एक शपथ पत्र दाखिल करेगा कि वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर, जब गवाह न्यायालय में उपस्थित हों, कोई स्थगन नहीं मांगेगा। इस शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, विचारण न्यायालय के

लिए इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर कानून के अनुसार आदेश पारित करना खुला होगा।

(v) अपीलार्थी प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित रहेगा। उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के तहत उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है।

(vi) यदि अपीलार्थी परीक्षण के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, तो उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी की जाती है और अपीलार्थी ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तब विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के तहत कानून के अनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही शुरू करेगा।

(vii) अपीलार्थी (i) मामले के उद्घाटन, (ii) आरोप तय करने और (iii) धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तिथियों पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में अपीलार्थी की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए ऐसी चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर कानून के अनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही करना खुला होगा।

18. विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह उपरोक्त मामले के

परीक्षण को आज से एक वर्ष की अवधि के भीतर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के प्रावधानों का कड़ाई से पालन करते हुए, पक्षकारों को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना, यदि कोई अन्य कानूनी बाधा न हो तो, शीघ्र पूरा करे।

(2023) 7 ILRA 54

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल

आपराधिक संशोधन संख्या 2 वर्ष 2023

राम प्रकाश अचारी पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

आशीष चतुर्वेदी, अनिलेश तिवारी, देश दीपक सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, राज कुमार

(क) आपराधिक कानून - पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 - धारा 19(4) - पुनरीक्षण, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 13 - तलाक, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 - पत्नियों, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश, घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 - धारा 12 -

दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए, 323, 504 - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अनुसार, दूसरा विवाह शून्य है और उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इस प्रकार का विवाह अवैध हैं, परन्तु फिर भी वे अनैतिक नहीं हैं और आर्थिक रूप से निर्भर महिला को इस आधार पर भरण-पोषण से वंचित नहीं किया जा सकता - पत्नी शब्द की व्याख्या - पत्नी शब्द को व्यापक और विस्तृत अर्थ प्रदान किया जाना चाहिए - इसमें वे मामले भी सम्मिलित हों जहाँ एक पुरुष और महिला दीर्घकाल तक पति-पत्नी के रूप में साथ रह रहे हैं। (प्रस्तर - 10)

रखरखाव याचिका धारा 15-बी के अंतर्गत आवेदक/पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत - पारिवारिक न्यायालय द्वारा खारिज - प्रतिपक्षी संख्या 2 विधिवत विवाहिता पत्नी - पति जीवित है - उनका विवाह किसी भी न्यायालय द्वारा समाप्त नहीं हुई - आवेदन संख्या 22-बी प्रस्तुत - दावा - पुनरीक्षणकर्ता ने उसके साथ विवाह संपन्न किया, अपने प्रथम विवाह तथा दो पुत्रों के तथ्य छिपाए - प्रस्तुत साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि प्रतिपक्षी संख्या 2 पुनरीक्षणकर्ता के साथ पत्नी के रूप में रह रही है - उसके प्रथम पति से तलाक की वैधता तथा पुनरीक्षणकर्ता से उसके विवाह की वैधता परीक्षण के दौरान प्रमाणित की जानी है। (प्रस्तर - 2, 6, 9)

न्यायनिर्णय: प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा भरण-पोषण आवेदन को मामले की योग्यता पर विचार किए बिना प्रारम्भ में ही खारिज नहीं

किया जाना चाहिए, क्योंकि यह साक्ष्य का मामला है। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन संख्या 15-बी पर पारित पारिवारिक न्यायालय के आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या अनियमितता नहीं है। (प्रस्तर - 11)

पुनरीक्षण खारिज किया गया। (E-7)

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष चतुर्वेदी एवं श्री देश दीपक सिंह, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार पाण्डेय तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(4) के अंतर्गत यह आपराधिक पुनरीक्षण अपर प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फैजाबाद द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 388/2016 (प्रियंका अचारी बनाम राम प्रकाश अचारी) में पारित दिनांक 22.09.2022 के आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके द्वारा पुनरीक्षणकर्ता द्वारा संबंधित अवर न्यायालय में प्रस्तुत आवेदन संख्या 15-बी, जिसमें विपक्षी संख्या 2 द्वारा भरण-पोषण का दावा करते हुए दायर याचिका की स्थिरता को चुनौती दी गई थी, को खारिज कर दिया गया है।

3. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि धारा 125 दं०प्र०सं० के स्थापित कानून के अनुसार केवल कानूनी रूप से विवाहित

पत्नी ही अपने पति से भरण-पोषण का दावा कर सकती है। अपर प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फैजाबाद ने विपक्षी संख्या 2 के आधार कार्ड को ही इस निष्कर्ष पर पहुंचने का एकमात्र आधार अभिनिर्धारित किया कि विपक्षी संख्या 2 प्रथम दृष्टया पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी है। विपक्षी संख्या 2 लवकुश नामक व्यक्ति की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी है। शुक्ला और तलाक का आदेश हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत प्रक्रिया के अनुसार नहीं लिया गया है। विपक्षी संख्या 2 ने खुद को पुनरीक्षणकर्ता की दूसरी पत्नी बताया है और उसकी पहली शादी के विघटन का कोई सबूत संबंधित अवर न्यायालय में कभी पेश नहीं किया गया। इसलिए अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश विकृत है और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के खिलाफ है, इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए।

4. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विपक्षी संख्या 2 पुनरीक्षणकर्ता की वैधानिक रूप से विवाहित पत्नी है, क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता और विपक्षी संख्या 2 का विवाह 08.06.2010 को दोनों परिवारों और उनके रिश्तेदारों आदि की उपस्थिति में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार उनकी सहमति से संपन्न हुआ था और विवाह के समय विपक्षी संख्या 2 के पिता ने अपनी क्षमता के अनुसार उपहार दिए थे। यह भी तर्क दिया गया कि पुनरीक्षणकर्ता ने यह तथ्य उजागर नहीं किया है कि सीताराम पांडे की पुत्री लीलावती पांडे पुनरीक्षणकर्ता की पहली पत्नी थी और 21.06.2009 को अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद पुनरीक्षणकर्ता ने 08.06.2010 को

विपक्षी संख्या 2 के साथ विवाह संपन्न किया। विपक्षी संख्या 2 की पहली शादी 10.05.2005 को लवकुश शुक्ला के साथ हुई थी और कुछ विवाद के कारण दोनों ने आपसी सहमति के आधार पर तलाक लेने का फैसला किया और दोनों पक्षों द्वारा न्यायाधीश पारिवारिक न्यायालय, न्यायालय संख्या 3, अहमदाबाद गुजरात की न्यायालय में विवाह विच्छेद की याचिका दायर की गई थी। इसके बाद 15.01.2007 को दोनों पक्षों द्वारा विवाह विच्छेद की याचिका के निष्पादन के लिए आवेदन पेश किया गया और 15.01.2007 के आदेश के तहत उनका विवाह विच्छेद हो गया। इसके बाद पुनरीक्षणकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 के साथ विवाह संपन्न कराया। आधार कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, बैंक की पास बुक आदि में पुनरीक्षणकर्ता का नाम विपक्षी संख्या 2 के पति के रूप में दर्ज है और उसकी प्रतियां जवाबी हलफनामे के साथ दाखिल की गई हैं। पुनरीक्षणकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों ने विपक्षी संख्या 2 को 02.08.2011 को लगभग 5.00 बजे शारीरिक रूप से परेशान किया और मारा रात में वह अपने माता-पिता के घर पहुंची और अपने परिवार के सदस्यों को पूरी कहानी बताई। इसके बाद, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला फैजाबाद में घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के तहत शिकायती मुकदमा संख्या 1232 / 2011 दर्ज किया गया था। पुनरीक्षणकर्ता वेद प्रकाश अचारी और दीपक अचारी के भाई द्वारा आपत्ति दर्ज की गई थी और एसीजेएम -3 अयोध्या ने विपक्षी संख्या 2 के पक्ष में दिनांक 12.04.2017 को आदेश पारित किया था। पुनरीक्षणकर्ता के भाइयों वेद प्रकाश अचारी और दीपक अचारी ने

अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 9, फैजाबाद की न्यायालय में एक आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 41/2017 दायर किया, जो दिनांक 29.09.2017 के आदेश के तहत गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, विपक्षी संख्या 2 ने मुकदमा अपराध संख्या 1224/2011, धाराओं 498-ए, 323, 504, भा0दं0सं0 और धारा 3/4 डीपी एक्ट, थाना कोतवाली, जिला फैजाबाद के तहत दर्ज किया है, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता और अन्य के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया है। पुनरीक्षणकर्ता की दूसरी कानूनी रूप से विवाहित पत्नी होने के नाते, धारा 125 दं0प्र0सं0 के तहत वर्तमान आवेदन भरण-पोषण के लिए पेश किया गया था, जिसमें पहली शादी के विघटन के बारे में सभी तथ्यों का खुलासा किया गया था, जिस पर अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फैजाबाद द्वारा विचार किया गया था और 22.09.2022 को उचित आदेश पारित किया गया था। विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है, इसलिए पुनरीक्षणकर्ता खारिज किए जाने योग्य है।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की परस्पर विरोधी दलीलें सुनी हैं तथा अभिलेख का अवलोकन किया है।

6. आवेदक/पुनरीक्षणकर्ता द्वारा सम्बन्धित न्यायालय में प्रार्थना पत्र 15-बी प्रस्तुत किया गया है, जिसमें तर्क दिया गया है कि प्रियंका अचारी (विपरीत पक्ष सं. 2) लवकुश

शुक्ला की विधिक रूप से विवाहित पत्नी है। लवकुश शुक्ला जीवित हैं तथा उनका विवाह अभी तक किसी न्यायालय द्वारा विघटित नहीं हुआ है। पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी लीलावती अचारी की मृत्यु वर्ष 2009 में हो गई थी, जिनके दो बच्चे अभिनव अचारी तथा आयुषी अचारी हैं। विद्वान अपर प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फैजाबाद ने पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा विरोधी पक्ष सं. 2 के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों पर विचार किया। इसके विपरीत विरोधी पक्ष सं. 2 ने विचारण न्यायालय में प्रार्थना पत्र सं. 22-बी प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि पुनरीक्षणकर्ता ने अपनी पहली शादी तथा दो पुत्रों के तथ्य को छिपाते हुए उसके साथ विवाह किया है तथा वह पुनरीक्षणकर्ता के साथ उसकी विधिक रूप से विवाहित पत्नी के रूप में रह रही है।

7. विद्वान विचारण न्यायालय ने आधार कार्ड, वोटर कार्ड तथा एसबीआई बैंक की पास बुक, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता का नाम विपक्षी संख्या 2 के पति के रूप में अंकित है, पर भरोसा करते हुए अभिनिर्धारित किया कि विपक्षी संख्या 2 स्पष्ट रूप से पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी है। आक्षेपित निर्णय में यह भी उल्लेख किया गया है कि विपक्षी संख्या 2 का आधार कार्ड, जो तैयार करवाया गया था, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है। वोटर कार्ड (अनुलग्नक संख्या 2) से पता चलता है कि विपक्षी संख्या 2 के पति के नाम के रूप में राम प्रकाश अचारी का उल्लेख है तथा वोटर कार्ड स्वयं 14.10.2010 को जारी

किया गया था। आधार कार्ड में भी वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता का नाम विपक्षी संख्या 2 के पति के रूप में अंकित है। तथापि, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि पुनरीक्षणकर्ता की ओर से प्रस्तुत आवेदन पर विपक्षी संख्या 2 का आधार कार्ड निरस्त कर दिया गया है। अनुलग्नक क्रमांक 1 पारिवारिक न्यायालय क्रमांक 3, अहमदाबाद गुजरात द्वारा दिनांक 15.01.2007 को पारित आदेश है, जिसके द्वारा संबंधित न्यायालय ने तलाक के समझौते के आधार पर मामले को खारिज कर दिया था। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह पत्र तलाक का आदेश नहीं है। इस पत्र में यह खुलासा नहीं किया गया है कि कौन सा मामला खारिज किया गया है। तलाक का समझौता जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न नहीं है। हालाँकि, यह अनुलग्नक क्रमांक 3 से पता चलता है, जो कि एसीजेएम-3, फैजाबाद द्वारा दिनांक 12.04.2017 को पारित आदेश है कि केस क्रमांक 1224/2011 को 100/- रुपये के गैर न्यायिक स्टॉप पर समझौते के आधार पर खारिज कर दिया गया था। यह सच है कि तलाक का आदेश रिकॉर्ड में नहीं है, लेकिन पुनरीक्षणकर्ता ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि विरोधी पक्ष क्रमांक 2 उसके साथ नहीं रह रहा था

8. विपक्षी संख्या 2 ने अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र के साथ परिशिष्ट संख्या 2 दाखिल किया, जो कि राम कृष्ण आचारी (पुनरीक्षणकर्ता के सगे भाई) के पुत्र दीपक अचारी का बयान है, जिसमें उन्होंने शपथपूर्वक कहा है कि

"रामप्रकाश आचारी मेरा सगा भाई है। परन्तु मैं तथा मेरी पत्नी कृष्णा माँ विमला व भाई वेद प्रकाश अलग रहते हैं। यदि रामप्रकाश ने दिनांक 08-06-10 को हिन्दू रीति के मुताबिक प्रियंका आचारी से शादी किया था दोनों के बीच किसी मामले को लेकर मतभेद हो गया जिस कारण प्रियंका आचारी को भाई रामप्रकाश ने छोड़ दिया है। रामप्रकाश हम लोगो से अलग रहता है। जिस कारण प्रियंका द्वारा लिखाया गया एफ.आई.आर. में हम लोगो को झूठा नामित कर दिया गया है। इस प्रकार जुर्म से इनकार करना बताया।" विपक्षी क्रमांक 2 के अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट क्रमांक 4 में स्टेट बैंक की पासबुक है, जिसमें प्रियंका अचारी को राम प्रकाश अचारी की पत्नी दर्शाया गया है। पूरक जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में कुछ तस्वीरें भी संलग्न हैं।

9. प्रस्तुत सम्पूर्ण साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि विपक्षी संख्या 2 पुनरीक्षणकर्ता के साथ उसकी पत्नी के रूप में रह रही है। विपक्षी संख्या 2 का अपने पहले पति से तलाक तथा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के साथ विवाह की वैधता, मुकदमे के समय प्रस्तुत किये जाने वाले साक्ष्य का विषय है। इस स्तर पर यह नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता कि पक्षकारों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। विपक्षी संख्या 2 का आधार कार्ड, जिसे पुनरीक्षणकर्ता के आवेदन पर निरस्त किया गया है, वर्ष 2010 में जारी किया गया था तथा पुनरीक्षणकर्ता ने कभी भी पक्षकारों के बीच वर्तमान विवाद उत्पन्न होने तक आधार कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, एसबीआई की बैंक पासबुक में विपक्षी संख्या 2 के पति के रूप में अपना नाम हटाने का प्रयास नहीं किया।

10. "रमेशचंद्र रामप्रतापजी डागा बनाम रामेश्वरी रमेशचंद्र डागा" मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अनुसार, दूसरा विवाह अमान्य है और अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ऐसे विवाह अवैध हैं, लेकिन फिर भी वे अनैतिक नहीं हैं और आर्थिक रूप से आश्रित महिलाओं को इस आधार पर भरण-पोषण से वंचित नहीं किया जा सकता है। चनमुनिया बनाम वीरेंद्र कुमार सिंह कुशवाहा मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पत्नी शब्द के अर्थ की व्याख्या की और कहा कि पत्नी शब्द की व्यापक और विस्तृत व्याख्या की जानी चाहिए, जिसमें वे मामले भी शामिल होंगे जहां एक पुरुष और महिला लंबे समय तक पति-पत्नी के रूप में रह रहे हैं।

11. वर्तमान परिदृश्य में जब पुनरीक्षणकर्ता का विवाह लीलावती से हुआ था, जिनकी मृत्यु वर्ष 2009 में हो गई तथा विपक्षी संख्या 2 ने विवाह विच्छेद के संबंध में न्यायालय में समझौता पत्र दाखिल किया तथा न्यायालय में विवाह विच्छेद का अनुबंध दाखिल करने के पश्चात उसने वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के साथ विवाह कर लिया। अब यह साक्ष्य का विषय है कि विपक्षी संख्या 2 भरण-पोषण पाने का हकदार है या नहीं। इसलिए, प्रारम्भ में यह नहीं कहा जा सकता कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत भरण-पोषण प्रार्थना पत्र को मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना प्रारम्भ से ही खारिज कर दिया जाना चाहिए। विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में उपर्युक्त तथ्यों पर विचार किया है। अतः पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र संख्या

15-बी पर अपर प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फैजाबाद द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या अनियमितता नहीं है, इसलिए पुनरीक्षण में कोई गुण-दोष नहीं है तथा यह खारिज किए जाने योग्य है।

12. तदनुसार, वर्तमान पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 58

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजिवे शुक्ला

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 435 वर्ष 2007

सालिक सिंह एवं अन्य पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

..... प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता:

सुलभ कुमार श्रीवास्तव

प्रतिपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

राज्य अधिवक्ता

(ए) आपराधिक विधि - भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 34, 323, 325 एवं 504 - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - अपराध में अभियुक्त को धारा 34 भारतीय दण्ड संहिता की सहायता से आरोपित करने हेतु - अभियोजन को यह प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने

होते हैं कि समस्त अभियुक्तों की अपराध करने की समान मंशा थी। (प्रस्तर - 31)

(बी) आपराधिक विधि - भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 34 - समान अभिप्राय की पूर्ति में अनेक व्यक्तियों द्वारा कृत कृत्य - धारा 34 भारतीय दण्ड संहिता यह अपेक्षित करती है कि अभियुक्त तथा उस व्यक्ति के मध्य, जिसे अपराध हेतु उत्तरदायी निर्धारित किया जा रहा है, समान अभिप्राय हो - जब तक समान अभिप्राय एवं सहभागिता दोनों उपस्थित न हों, धारा 34 भारतीय दण्ड संहिता का प्रवर्तन नहीं किया जा सकता - केवल यह साक्ष्य कि कुछ अभियुक्तगण मुख्य अभियुक्त के साथ थे, जिसने मृतक को गम्भीक चोट पहुँचाई, धारा 34 की प्रयोज्यता को आकर्षित नहीं करेगा। (प्रस्तर - 23,24,25,27) पुनरीक्षणकर्ताओं के दोषसिद्धि - दोषसिद्धियों का धारा 323/34 एवं 325/34 में रूपांतरण - अभियोजन के पास अपराध करने हेतु समान अभिप्राय अथवा पूर्ववर्ती मन्थन का कोई साक्ष्य नहीं है - अपीलीय न्यायालय द्वारा पुनरीक्षणकर्ताओं की दोषसिद्धि में धारा 34 भारतीय दण्ड संहिता को सम्मिलित किया गया - यह धारा 323 एवं 325 भारतीय दण्ड संहिता का उल्लंघन करता है -

पुनरीक्षणकर्ताओं ने सन् 1992 से कोई अपराध नहीं किया है और न ही किसी अपराध में दोषसिद्ध हुए हैं - अपराध सन् 1992 में हुआ - 30 वर्ष से अधिक काल व्यतीत हो चुका है - दोनों पुनरीक्षणकर्ता की मृत्यु हो चुकी है - दोनों की आयु 60 वर्ष से अधिक थी। (प्रस्तर - 2, 29, 31, 37)

न्यति:- पुनरीक्षणकर्ताओं की दोषसिद्धि निरस्त की गई है। परीक्षण न्यायालय का निर्णय धारा 323 एवं 325 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन समर्थित किया गया है। अपीलीय न्यायालय द्वारा पुनरीक्षणकर्ताओं को धारा 504 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन दोषमुक्त दोषमुक्त सिद्ध किया गया। पुनरीक्षणकर्ता, अपराधियों के परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के लाभ के अधिकारी हैं। (प्रस्तर - 32, 33, 38)

पुनरीक्षण आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-7)

माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजिवे शुक्ला

1. पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता श्री सुलभ कुमार श्रीवास्तव और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता सुश्री ममता पांडे को सुना।

2. पुनरीक्षणकर्ताओं ने प्रथम अपर सिविल न्यायधीश, जूनियर डिवीजन/न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोंडा द्वारा केस संख्या-622/06/94 [राज्य बनाम आत्मा सिंह (मृतक) और अन्य] में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 9.03.2007 को चुनौती देते हुए प्रस्तुत पुनरीक्षण दायर किया है, जिसके तहत पुनरीक्षणकर्ताओं को धारा 323, 325 और 504 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है। पुनरीक्षणकर्ताओं ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या-4, गोंडा द्वारा आपराधिक अपील संख्या-14 वर्ष 2007 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2007 को भी चुनौती दी है जिसमें धारा 323, 325 और 504

भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं की उपरोक्त सजा को धारा 323/34 और 325/34 भ०द०वि० के तहत सजा में बदल दिया गया है।

3. प्रकरण का संक्षिप्त तथ्य यह है कि थाना तरबगंज, जिला गोंडा में धारा 323 एवं 504 भ०द०वि० के अन्तर्गत एन0सी0आर0 क्रमांक 147 वर्ष 1992 के अन्तर्गत आपराधिक प्रकरण दर्ज किया गया था। बाद में धारा 325 भ०द०वि० जोड़ी गई और विवेचना के बाद पुलिस ने सक्षम अदालत के समक्ष आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

4. आरोपी आत्मा, सलिक, अमर बहादुर और राज बहादुर के खिलाफ धारा 323/34, 325/34 और 504 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए। सभी आरोपियों ने अदालत के समक्ष कहा कि वे उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों के दोषी नहीं हैं और मुकदमे की मांग की।

5. विचारण के दौरान अ०सा०-1, श्रीमती पुष्पा, अ०सा०-2, हीरा देवी, अ०सा०-3, डॉ. एस.सी.विश्वास, अ०सा०-4, डॉ.जी.एन. प्रसाद एवं अ०सा०-5, राम लखन तिवारी (पुलिस कर्मी) की गवाही दर्ज की गई। आरोपियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए और आरोपी ने ब.सा.-1, ब्रज बहादुर सिंह को भी पेश किया और उसकी गवाही भी दर्ज की गई।

6. अ०सा०-1, श्रीमती पुष्पा ने गवाही दी कि 3.7.1992 को लगभग 5:00 बजे, वह गांव, ब्रह्मस्थान बौरीहा, थाना-तरबगंज, जिला गोंडा

में अपने घर के अंदर थी। उसने अपनी मां की आवाज सुनी और उसके बाद वह अपने घर के बाहर मौके पर पहुंची और पाया कि सभी आरोपी उसकी मां को पीट रहे थे और जब उसने उसे बचाने की कोशिश की, तो सभी आरोपियों ने अ०सा०-1 को पीटना शुरू कर दिया। अ०सा०-1 ने यह भी गवाही दी कि उसके घर का 'सहान' पूर्वी तरफ है और आरोपी का घर उसके घर के उत्तरी तरफ है। आरोपियों ने 'सहान' जमीन पर 'झाखरा' डाल दिया था और जब उसकी मां उक्त 'झाखरा' को हटाने गई तो सभी आरोपियों ने उसकी पिटाई की जिससे उसकी मां को चोटें आईं और जब उसने अपनी मां को बचाने की कोशिश की तो उन्होंने भी उसकी पिटाई की और उसे भी चोटें आईं।

7. अ०सा०-2, हीरा देवी ने गवाही दी कि लगभग साढ़े तीन वर्ष पूर्व उक्त जमीन हड़पने के इरादे से आरोपी ने उसके घर के सामने आबादी की जमीन पर झाखरा डाल दिया और जब वह उस 'झाखरा' को हटाने गई तो आरोपी ने उसे लाठी-डंडा से पीटना शुरू कर दिया और जब उसकी बेटी पुष्पा उसे बचाने आई तो आरोपी ने भी उसकी पिटाई की और अभद्र भाषा का इस्तेमाल किया। अ०सा०-2, हीरा देवी ने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि आरोपी और याचिकाकर्ता के पति के बीच भूमि विवाद था। अ०सा०-2 हीरा देवी ने अपनी जिरह में यह भी कहा कि उसे लाठी, मुट्ठी, और लात के छह वार किए गए। उसने आगे कहा कि आरोपी राज बहादुर द्वारा दिए गए लाठी के वार के कारण उसका हाथ टूट गया।

8. अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही के अलावा, अन्य अभियोजन गवाहों के बयान भी दर्ज किए गए थे। अपने बचाव में आरोपी ब्रज बहादुर सिंह ने ब.सा.-1 पेश किया और उसकी गवाही भी दर्ज की गई।

9. प्रथम अपर सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोंडा ने विचारण के दौरान दर्ज साक्ष्यों पर विचार किया और अंततः पाया कि अभियुक्त धारा 323, 325, 504 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के दोषी हैं और इस तरह निर्णय और आदेश दिनांक 9.03.2007 के तहत उन्हें धारा 323, 325, 504 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया।

10. विचारण के दौरान, चूंकि अभियुक्त आत्मा सिंह और राज बहादुर की मृत्यु हो गई थी, इसलिए उक्त दोनों अभियुक्तों के संबंध में विचारण समाप्त कर दिया गया।

11. विचारण न्यायालय ने सालिक राम सिंह और अमर बहादुर सिंह को धारा 325 भ०द०वि० के तहत तीन साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माना, धारा 323 भ०द०वि० के तहत एक साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माने और धारा 504 भ०द०वि० के तहत दो साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई। अदालत ने ये भी कहा कि जुर्माने में चूक के स्थिति में प्रत्येक आरोपी को छह-छह माह का कारावास भुगतना होगा, और सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

12. विचारण न्यायालय ने दोनों अभियुक्तों को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ इस आधार पर देने से इनकार कर दिया कि उन्होंने श्रीमती हीरा देवी और उनकी बेटी पुष्पा को पीटा है और श्रीमती हीरा देवी की हड्डी भी तोड़ दी है।

13. अंसा०-1 और अंसा०-2 की गवाही और दिनांक 9.03.2007 के निर्णय और आदेश के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि न तो अभियोजन पक्ष ने आपराधिक कृत्य के बारे में अभियुक्त के सामान्य इरादे के संबंध में कोई सबूत पेश किया और न ही विचारण न्यायालय प्रश्नगत अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों के सामान्य इरादे के बारे में मामले की परिस्थितियों से निष्कर्ष निकाल सका। इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने धारा 323/34, 325/34 और 504 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराने के बजाय, आरोपी को धारा 323, 325 और 504 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराया।

14. प्रथम अपर सिविल न्यायधीश (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोंडा द्वारा केस संख्या-622/06/94 में पारित उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 9.03.2007 को सालिक सिंह और अमर बहादुर सिंह द्वारा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या-4, गोंडा की अदालत में अपील दायर करके चुनौती दी गई थी और उक्त अपील को आपराधिक अपील संख्या-14 वर्ष 2007 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

15. अपीलीय न्यायालय ने माना कि विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 323/34, 325/34 और 504 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए और मुकदमे के दौरान दर्ज अंसा०-1 और अंसा०-2 की गवाही पर विचार किया। अपीलीय न्यायालय ने 19.07.2007 को उपरोक्त आपराधिक अपील संख्या-14 वर्ष 2007 में अंतिम आदेश पारित किया।

16. अपीलीय न्यायालय विचारण के दौरान दर्ज अंसा०-1 और अंसा०-2 की गवाही पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि चूंकि सभी अभियुक्तों ने श्रीमती हीरा देवी और उनकी बेटी पुष्पा को पीटा है, इसलिए सभी अभियुक्तों का अपराध करने का सामान्य इरादा था। इस प्रकार, अपीलकर्ता धारा 323/34 और 325/34 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी हैं। अपीलीय अदालत ने अपने फैसले और आदेश दिनांक 19.07.2007 में आगे एक निष्कर्ष दर्ज किया गया कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 9.03.2007 में एक लिपिकीय त्रुटि थी क्योंकि विचारण न्यायालय ने धारा 323/34 और 325/34 और 504 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए थे और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, धारा 323/34, 325/34 और 504 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि नहीं की जा सकती थी और इसलिए, अपीलीय न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2007 के तहत उक्त लिपिकीय त्रुटि को ठीक किया और अपीलकर्ताओं को धारा 323/34 और 325/34

भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और उपरोक्त धाराओं के तहत विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा को भी बरकरार रखा।

17. जहां तक धारा 504 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि का संबंध था, अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य के मूल्यांकन पर पाया कि धारा 504 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध अपीलकर्ताओं के खिलाफ नहीं बनता है, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा उक्त धारा के तहत दोषसिद्धि को रद्द कर दिया गया है।

18. पूर्वोक्त परिस्थितियों में, पुनरीक्षणकर्ताओं ने प्रस्तुत पुनरीक्षण दायर किया है।

19. पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलीय न्यायालय रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं होने के बिना, यह निष्कर्ष दर्ज नहीं कर सकता था कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.03.2007 के दोषसिद्धि आदेश में धारा 34 भ०द०वि० के साथ-साथ धारा 323 और 325 भ०द०वि० का उल्लेख न करना एक लिपिकीय त्रुटि है। पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि हालांकि अभियुक्त के खिलाफ धारा 323/34, 325/34 और 504 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे, लेकिन चूंकि अभियोजन पक्ष ने अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों के सामान्य इरादे को साबित करने के लिए सबूत नहीं दिए, इसलिए, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को केवल धारा 323 325 और 504 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया है।

20. पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि न तो अ०सा०-1 और न ही अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में कहा है कि सभी अभियुक्तों का अपराध करने का कोई सामान्य इरादा था और आगे अभियोजन पक्ष द्वारा कोई सबूत नहीं दिया गया है कि अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों के दिमाग की किसी भी तरह की पूर्व-बैठक थी; इसलिए, अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में किसी भी सबूत के अभाव में, विचारण न्यायालय के लिए धारा 323/34 और 325/34 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराने का कोई अवसर नहीं था। इस तरह, अपीलीय न्यायालय, इस धारणा पर कि चूंकि चारों आरोपियों ने हीरा देवी और उनकी बेटी पुष्पा को पीटा था, इसलिए, आवश्यक रूप से सभी आरोपियों का अपराध करने का सामान्य इरादा था, पुनरीक्षणकर्ताओं को भ०द०वि० की धारा 323/34 और 325/34 के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता था।

21. पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने भी जोरदार तर्क दिया है कि अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियुक्त, राज बहादुर द्वारा दिए गए लाठी प्रहार के कारण उसका हाथ टूट गया था और इसलिए, जब तक कि अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में कोई सबूत नहीं था सामान्य इरादे और प्रश्नगत अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों के दिमाग की पूर्व-बैठक के संबंध में, अपीलीय न्यायालय के लिए धारा 323/34 और 325/34 भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं को दोषी ठहराने का कोई अवसर नहीं हो सकता था।

22. मैंने पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए अधिवक्ता, राज्य के लिए अपराध शासकीय अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय के रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया है।

23. निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, इस न्यायालय के लिए धारा 34 भ०द०वि० पर एक नज़र डालना आवश्यक है जिसे निम्नानुसार निकाला गया है:

"34. सामान्य आशय को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा किए गए कार्य-जब कोई आपराधिक कार्य सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी तरह उत्तरदायी होता है जैसे कि वह अकेले उसके द्वारा किया गया था।"

24. पूर्वोक्त धारा 34 भ०द०वि० का एक मात्र अवलोकन, यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि उक्त धारा केवल तभी लागू होगी जब आपराधिक कृत्य के लिए सभी अभियुक्तों का सामान्य इरादा मौजूद हो।

25. इससे पहले कि एक व्यक्ति को धारा 34 भ०द०वि० के प्रावधानों के तहत किसी अन्य द्वारा किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त और उत्तरदायी ठहराए जाने वाले व्यक्ति के बीच पूर्व-व्यवस्थित

योजना के अर्थ में सामान्य इरादा था, जिसने अपराध का गठन करने वाले अधिनियम में किसी तरह से भाग लिया था। जब तक सामान्य इरादा और भागीदारी दोनों मौजूद नहीं हैं, धारा 34 भ०द०वि० लागू नहीं की जा सकती है।

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने क्रिएलजे 234 (वी 80 सी 91) 1974 में रिपोर्ट किए गए श्योदान और अन्य बनाम राजस्थान राज्य के मामले में दिए गए अपने निर्णय और आदेश में माना है कि सामान्य इरादे के निष्कर्ष तक कभी नहीं पहुंचा जाना चाहिए जब तक कि यह आवश्यक न हो, मामले की परिस्थितियों से घटाया जा सके। अपराध स्थल पर अभियुक्तों की उपस्थिति और बिना किसी सामग्री के या पूर्व तय कार्यक्रम के प्रत्यक्ष प्रमाण के बिना घटना के बाद उनके भाग जाने को अभियुक्त की बेगुनाही के साथ असंगत नहीं कहा जा सकता है। पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है:

5. इसके बाद बाकी दो आरोपियों अमीलाल और किशनलाल का मामला बना हुआ है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में केवल यह कहा गया था कि इन व्यक्तियों ने रूपराम को चुनौती दी थी, जब वह ऊंट की पीठ पर थे। मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष ने एक भौतिक तथ्य पेश करके अपने मामले में सुधार किया है कि उन्होंने शोओदान को रूपराम पर गोली चलाने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप कभी नहीं

लगाया गया था। इसके अलावा, उपदेश के रूप में, चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य एक समान नहीं हैं। रूपराम घायल ने निश्चित रूप से गवाहों द्वारा श्योदान को उस पर गोली चलाने के लिए उकसाया है, लेकिन कनीराम अ०सा०-2 और चुनीराम अ०सा०-3 ने केवल यह कहा था कि केवल किशनलाल ने शिवदान को रूपराम पर गोली चलाने के लिए उकसाया था और अमीलाल केवल हाथ में लाठी लिए खड़ा था। सभी गवाहों ने कहा है कि आरोपी गली में खड़े थे। उन्होंने गवाही नहीं दी है कि क्या वे एक साथ आए थे और किस समय गली में आए थे। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने इन दो अभियुक्तों द्वारा गोली चलाने से पहले उपदेश के संस्करण को सही तरीके से खारिज कर दिया था। हालांकि, उन्होंने इन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 34 भ०द०वि० के तहत मामला बनाने के लिए प्रासंगिक परिस्थितियों के आधार पर उन्हें दोषी ठहराया है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा इंगित पहली परिस्थिति यह है कि किशनलाल और अमीलाल गली में घटना के समय आरोपी शोदान के साथ थे और उनकी उपस्थिति सामान्य नहीं थी और उनकी राय में वे रूपराम का इंतजार कर रहे थे ताकि उसका लाभ उठाया जा सके। यह सच हो सकता है कि घटना के समय सभी आरोपी व्यक्ति गली में थे। लेकिन यह नहीं

कहा जा सकता है कि उनकी उपस्थिति असामान्य थी। वे उसी गाँव के निवासी थे जो एक छोटा गाँव था और गाँव की गली में मौजूद होना असामान्य नहीं कहा जा सकता है जो ग्रामीणों के उपयोग के लिए थी। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अनुमान के दायरे में प्रवेश किया है जब उन्होंने देखा है कि वे रूपराम की प्रतीक्षा कर रहे थे ताकि उनका लाभ उठाया जा सके। यह केवल एक अनुमान है जो रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है। गली में इन व्यक्तियों की उपस्थिति को उनकी मासूमियत के साथ असंगत नहीं कहा जा सकता है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा बताई गई दूसरी परिस्थिति यह है कि ये दोनों आरोपी श्योदान के साथ घटनास्थल से चले गए। यह सबूत में नहीं है कि वे एक साथ आए थे। यह सच है कि गवाहों ने गवाही दी है कि जब कुछ पड़ोसी मौके पर पहुंचे तो तीनों दक्षिण की ओर भाग गए। राज्य के अधिवक्ता ने इस परिस्थिति पर जोर दिया और कहा कि यह दिखाने के लिए एक प्रासंगिक और पर्याप्त परिस्थिति थी कि उनके पास एक प्री-कॉन्सर्ट था और रूपराम को चोट पहुंचाने के सामान्य इरादे को साझा किया। उस संबंध में, राज्य के अधिवक्ता ने मामंद बनाम सम्राट पर भरोसा किया। ए.आई.आर. 1946 पीसी 45=(47 क्रि एलजे 344) और राज्य वी।

इफ्तिखारखान, ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 863 = (1973 क्रि एलजे 636)। दूसरी ओर, श्री काशीनाथ जोशी ने पांडुरंग बनाम भारत संघ मामले में इन दो मामलों में अंतर करने की मांग की है। बनाम हैदराबाद राज्य, ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 216=(1955 क्रि एलजे 572) और बनवारी वी। उत्तर प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1198 = (1962 (2) क्रि एलजे 278)। ए.आई.आर. 1946 पीसी 45=(47 क्रि एलजे 344) में प्रिवी काउंसिल के उनके आधिपत्य ने एक सामान्य इरादे को स्थापित करने के लिए एक साथ भागने के तथ्य को एक विचार के रूप में लिया। लेकिन यह एकमात्र परिस्थिति नहीं थी, लेकिन इससे कहीं अधिक था। उस मामले में इस बात के सबूत थे कि तीनों आरोपी एक साथ आए थे। इस बात के भी प्रमाण थे कि वे सभी एक साथ भाग गए थे। ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 863=(1973 क्रि एलजे 636) में भी इस बात के सबूत थे कि घटना के समय आरोपी एक साथ आए थे और वे करीबी सहयोगी थे और फ़ाइरिंग खत्म होने के बाद वे एक साथ भाग गए थे। व्यक्तियों को दोषी ठहराने के लिए विशेष मामले के तथ्यों को अंधाधुंध रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। मामले को अपने तथ्यों पर गौर करना चाहिए और एक मामले में तथ्यों की समानता का उपयोग दूसरे

में तथ्य के निष्कर्ष को निर्धारित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में, सिवाय इसके कि आरोपी घटना के समय गली में मौजूद थे और वे फ़ाइरिंग के बाद भाग गए थे, यह स्थापित करने के लिए कोई निर्णायक परिस्थिति नहीं है कि आरोपी का पूर्व निर्धारित कार्यक्रम था और रूपराम को चोट पहुंचाने का सामान्य इरादा साझा किया था। यह साबित नहीं हुआ है कि आरोपी शिवदान के करीबी सहयोगी थे और न ही यह साबित हुआ है कि वे एक साथ आए थे। यह निश्चित रूप से सच है कि वे फ़ाइरिंग के बाद दक्षिण की ओर भाग गए थे, लेकिन यह अभियोजन पक्ष का सुझाव नहीं है कि वे एक साथ दौड़े थे। फ़ाइरिंग के बाद उनका भागना एक निर्णायक परिस्थिति नहीं हो सकती है जिसे अन्य परिकल्पनाओं पर समझाया जा सकता है। गोली मारने के बाद एक साथ भागना ग्रामीणों से खुद को बचाने की वृत्ति से प्रेरित हो सकता था, जो सोच सकते थे कि ये दोनों आरोपी व्यक्ति भी घटना में शामिल थे। पांडुरंग के मामले ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 216= (1955 क्रि एलजे 572) में की गई टिप्पणियों को निकालना लाभदायक होगा, जो मेरे सामने विवाद पर काफी प्रकाश डालते हैं-

"प्रस्तुत मामले में, किसी भी पूर्व बैठक का कोई सबूत नहीं है, हम इस

बारे में कुछ नहीं जानते हैं कि उन्होंने हमले से पहले क्या कहा या किया था, यहां तक कि तुरंत पहले भी नहीं लेकिन प्रिवी काउंसिल को फिर से उद्धृत करने के लिए: सामान्य इरादे के निष्कर्ष तक कभी नहीं पहुंचा जाना चाहिए जब तक कि यह आवश्यक न हो, मामले की परिस्थितियों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है। लेकिन यह कहना परिस्थितिजन्य साक्ष्य के बारे में सामान्य नियम को पुनः पेश करने से अधिक नहीं है, क्योंकि इस वर्ग के मामलों के लिए साक्ष्य का कोई विशेष नियम नहीं है। सबसे नीचे, यह हर मामले में तथ्य का सवाल है और, हालांकि परिस्थितियां समान हैं, एक मामले में तथ्यों को दूसरे में तथ्यों पर निष्कर्ष निर्धारित करने के लिए एक मिसाल के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। जो कुछ भी आवश्यक है वह या तो पूर्व निर्धारित कार्यक्रम का प्रत्यक्ष प्रमाण होना चाहिए, या परिस्थितियों का प्रमाण होना चाहिए जो आवश्यक रूप से उस निष्कर्ष की ओर ले जाता है, या, जैसा कि हम इसे समय-सम्मानित तरीके से रखना दायर किया करते हैं, दोषी ठहराने वाले तथ्य अभियुक्त की निर्दोषता के साथ असंगत होने चाहिए और किसी अन्य उचित परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए।

प्रिवी काउंसिल के उनके आधिपत्य द्वारा निर्धारित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए और जैसा कि उच्चतम

न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है, यह कहने के लिए संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि पूर्व समझौते का कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं है और परिस्थितिजन्य साक्ष्य ऐसे नहीं हैं जो आवश्यक रूप से इन दो अभियुक्तों के अपराध के निष्कर्ष को स्थापित करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इन व्यक्तियों की मौके पर उपस्थिति और फ़ाइरिंग के बाद बिना किसी सामग्री के उनके भाग जाने को इन अभियुक्तों की बेगुनाही के साथ असंगत नहीं कहा जा सकता है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश भी, जब उन्होंने इन अभियुक्तों की चूक का इस्तेमाल उनके खिलाफ एक प्रासंगिक परिस्थिति के रूप में हस्तक्षेप करने के लिए किया, सही नहीं थे। श्योदान द्वारा एक गोली चलाई गई थी और हस्तक्षेप का सवाल नहीं उठ सकता था। दूसरी ओर, हिंसा करने या आपराधिक बल दिखाने के लिए उनकी चूक इस मामले के तथ्यों में उनके पक्ष में एक परिस्थिति है। नतीजतन, यह नहीं कहा जा सकता है कि इन दोनों आरोपियों के खिलाफ मामला किसी भी तरह के संदेह से परे साबित होता है।

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने परिछात और अन्य बनाम भारत संघ के मामले में दिए गए अपने फैसले में, मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1972 उच्चतम न्यायालय ने

निर्णय दिया है कि मन की पूर्व बैठक और किसी पूर्व नियोजित योजना या प्रश्नगत लड़ाई में अभियुक्त व्यक्तियों की भागीदारी के किसी साक्ष्य के अभाव में उन्हें धारा 34 की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि आपराधिक कृत्य पूर्व नियोजित योजना के अनुसार एक साथ किया गया है। केवल यह साबित करना कि कुछ अभियुक्त व्यक्ति मुख्य अभियुक्त के साथ थे, जिसने मृतक को घातक चोट पहुंचाई थी, धारा 34 की प्रयोज्यता को आकर्षित नहीं करेगा।

28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त निर्णय के प्रासंगिक हिस्से को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"20. सत्र न्यायालय ने अविश्वास किया कि अपीलकर्ता सुन्नू और सीताराम ने अपीलकर्ता गंगू को काशीराम को बल्लम झटका देने के लिए उकसाया था। अपीलकर्ता पारीछात, सुन्नू और सीताराम ने किसी को पीटा या आघात नहीं किया। भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अर्थ के भीतर सामान्य इरादा पूर्व नियोजित योजना का तात्पर्य है। मन की पूर्व बैठक और किसी भी पूर्व नियोजित योजना या लड़ाई में सुन्नू और सीताराम की भागीदारी का कोई सबूत नहीं होने के कारण, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। काशीराम की मौत का कारण बनने के लिए पारीछात का

गंगू के साथ सामान्य इरादा नहीं कहा जा सकता था और पारीछात को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। यदि वे डमरू को बेदखल करना चाहते थे और यदि वे डमरू को बेदखल करने के लिए वहां गए थे और यदि गंगू ने काशीराम को मार डाला और अपीलकर्ताओं पारीचत, सुन्नू और सीताराम को काशीराम को मारने के सामान्य इरादे के भीतर नहीं लाया जा सकता था। ऐसी कोई पूर्व-नियोजित योजना साबित नहीं हुई है। यह भी साबित नहीं हुआ है कि पूर्व-व्यवस्थित योजना के अनुसार कोई आपराधिक कृत्य किया गया है। कई व्यक्ति एक साथ एक आदमी पर हमला कर सकते हैं और प्रत्येक का एक ही इरादा हो सकता है, अर्थात्, मारने का इरादा और प्रत्येक व्यक्तिगत रूप से एक अलग घातक झटका दे सकता है और फिर भी भारतीय दंड संहिता की धारा 34 द्वारा आवश्यक सामान्य इरादा नहीं होगा क्योंकि पूर्व-नियोजित योजना बनाने के लिए मन की कोई पूर्व बैठक नहीं थी। इस तरह के मामले में, प्रत्येक व्यक्ति को जो भी चोट लगी है, उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा, लेकिन किसी को भी किसी अन्य के कार्य के लिए परोक्ष रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता है; और अगर अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर सकता कि उसका

अलग झटका घातक था, तो उसे हत्या का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

22. भारतीय दंड संहिता की धारा 34 तब तक लागू नहीं होगी जब तक कि पहले यह स्थापित न हो जाए कि एक आपराधिक कृत्य कई व्यक्तियों द्वारा किया गया था, दूसरा, अपराध करने के लिए एक सामान्य इरादा और एक पूर्व-व्यवस्थित योजना थी और तीसरा यह कि उस सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में अपराध के कमीशन में भागीदारी थी। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं परीछात, सुन्नू और सीताराम को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 सपठित धारा 326 के तहत दोषी ठहराने में गलती की। उनकी सजाओं को दरकिनार किया जाता है। उच्च न्यायालय को पारीछात, सुन्नू और सीताराम के बरी होने को रद्द करते हुए धरम बल्लभ और पारीछात के बीच दुश्मनी, धरम बल्लभ के खिलाफ दुर्जी द्वारा स्थापित मामला, धर्म बल्लभ के खिलाफ पारीछात द्वारा लगाए गए आरोपों, धरम बल्लभ के खिलाफ शिकायत की जांच में राम लखन शर्मा के शत्रुतापूर्ण और असंगत रवैये पर विचार करना चाहिए था। यदि अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 149 सपठित धारा 147, 447 और 302 के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता है और उन्हें बरी कर दिया जाता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा बरी किए जाने के फैसले को तब तक रद्द नहीं किया जा सकता जब तक कि अभियुक्त को बरी करने में सत्र न्यायालय स्पष्ट रूप से गलत नहीं था या गलत दृष्टिकोण नहीं रखता था या गंभीर अन्याय नहीं करता था। उच्च न्यायालय

द्वारा बरी किए जाने को रद्द करना अपने आप में गलत और त्रुटिपूर्ण था। उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 34 सपठित धारा 326 के तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में भी गलती की। फसल काटने के समय केवल गंगू के साथ रहने से काशीराम की हत्या के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के किसी भी आवेदन को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

29. न तो श्रीमती हीरा देवी (अ०सा०-2) और न ही उनकी बेटी, पुष्पा (अ०सा०-1) ने अपनी परीक्षण में गवाही दी है कि अपराध करने के संबंध में अभियुक्त की कोई पूर्व-नियोजित योजना थी और न ही अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों का कोई सामान्य इरादा था। मैंने पाया कि अभियोजन पक्ष ने यह साबित करने के लिए कोई सबूत भी नहीं दिया कि सभी आरोपियों का इरादा एक जैसा था या अपराध करने के लिए सभी आरोपियों के दिमाग की पूर्व-बैठक थी।

30. अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में किसी भी सबूत के अभाव में या यहां तक कि अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित करने के लिए कि सभी अभियुक्तों का सामान्य इरादा था या प्रश्नगत अपराध करने के लिए दिमाग की पूर्व-बैठक थी, अपीलीय न्यायालय अपने दम पर यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था कि प्रश्नगत अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों का सामान्य इरादा था।

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निर्णयों में, यह स्पष्ट रूप से

माना गया है कि धारा 34 भ०द०वि० की मदद से अपराध के लिए अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए, अभियोजन पक्ष को यह साबित करने के लिए सबूत पेश करना चाहिए कि अपराध करने के लिए सभी अभियुक्तों का सामान्य इरादा था, जबकि प्रस्तुत मामले में अभियोजन पक्ष ने कोई सबूत नहीं दिया और अ०सा०-1 और अ.सा.-2 की गवाही में कुछ भी नहीं है। सभी अभियुक्तों के सामान्य इरादे और मन की पूर्व-बैठक या अपराध के कमीशन के संबंध में किसी भी पूर्व-व्यवस्थित योजना के बारे में, इस तरह, अपीलीय न्यायालय ने धारा 323 और 325 भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं की सजा में धारा 34 भ०द०वि० जोड़ते हुए एक अवैधता की है।

32. उपरोक्त चर्चा और तर्क के मद्देनजर, धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 323 भ०द०वि० और धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 325 भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं की दोषसिद्धि को रद्द किया जाता है और विचारण न्यायालय द्वारा धारा 323 और 325 भ०द०वि० के तहत दिनांक 9.03.2007 के निर्णय और आदेश के तहत किए गए पुनरीक्षणकर्ताओं की सजा को बरकरार रखा जाता है।

33. जहां तक धारा 504 भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं/अपीलकर्ताओं को दोषमुक्त करने के अपीलीय न्यायालय के आदेश का संबंध है, इसे एतद्द्वारा बरकरार रखा जाता है।

34. पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि यदि धारा 323 और 325 भ०द०वि० के तहत

पुनरीक्षणकर्ताओं की सजा बरकरार रखी जाती है तो वे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के संरक्षण के हकदार हैं क्योंकि उक्त दोषसिद्धि से पहले, उन्हें किसी भी सक्षम न्यायालय द्वारा किसी भी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया गया है।

35. पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि अपीलीय न्यायालय ने सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ देने से इनकार कर दिया है और केवल इस कारण से कि श्रीमती हीरा देवी और उनकी बेटी, पुष्पा को चोटें आई हैं, अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम 1958 की धारा 4 का लाभ से इनकार कर दिया गया है।

36. पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि विचाराधीन अपराध 3.07.1992 को हुआ था और राज बहादुर सहित दो आरोपी, जिनके लाठी प्रहार से श्रीमती हीरा देवी का हाथ टूट गया था, पहले ही मर चुके हैं और तब से लगभग 30 साल बीत चुके हैं और पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया है, इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस स्तर पर, पुनरीक्षणकर्ता अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के लाभ के हकदार हैं।

37. मैंने अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के तहत संरक्षण के संबंध में पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दी

गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से, मुझे लगता है कि प्रश्नगत अपराध वर्ष 1992 में हुआ था और तब से 30 साल बीत चुके हैं और न तो पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा कोई अपराध किया गया है और न ही उन्हें किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है। विचाराधीन अपराध से पहले भी, पुनरीक्षणकर्ताओं को किसी भी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया गया है। मैंने यह भी पाया है कि राज बहादुर, जिसके लाठी प्रहार से श्रीमती हीरा देवी का हाथ टूट गया था, पहले ही मर चुका है और एक अन्य दोषी आत्मा सिंह की भी मृत्यु हो चुकी है। आज की तारीख में दोनों पुनरीक्षणकर्ता 60 वर्ष से अधिक आयु के हैं।

38. संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों में, मेरा विचार है कि पुनरीक्षणकर्ता अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के लाभ के हकदार हैं और इसलिए, धारा 325 भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं को तीन साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माने और धारा 323 के तहत एक वर्ष के कठोर कारावास और 1000/- रुपये के जुर्माने के साथ सजा देने के बजाय, प्रत्येक को 20000/- रुपये के दो बांड दाखिल करने होंगे, इस आशय के व्यक्तिगत बांड के साथ कि वे कोई अपराध नहीं करेंगे और अच्छे व्यवहार के होंगे और एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति बनाए रखेंगे। यदि पूर्वोक्त शर्तों में से किसी का उल्लंघन होता है, तो पुनरीक्षक नियमानुसार मजिस्ट्रेट के समक्ष सजा भुगतने के लिए स्वयं को अधीन करेंगे। दोषियों द्वारा उपरोक्त बांड इस फैसले की तारीख से दो महीने के भीतर दायर किए जाएंगे।

39. पुनरीक्षणकर्ता की सजा के संबंध में पुनरीक्षण को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

40. इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ विचारण न्यायालय और अपीलीय अदालत के रिकॉर्ड को आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

(2023) 7 ILRA 67

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजिवे शुक्ला

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 484 वर्ष 2007

अमर बहादुर सिंह पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

सुशील कुमार सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 244 - अभियोजन पक्ष के लिए साक्ष्य - खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 - धारा 7/16 - कुछ खाद्य पदार्थों के विनिर्माण, बिक्री आदि का प्रतिषेध / दंड, धारा 2 (आइए) (एम), 16 (1) (ए) (आई) - धारा

16 (1) (ए) (आई) के अंतर्गत किसी अपराध के लिए अभियुक्त को दंडित करने के लिए - अभियोजन पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा और यह साबित करना होगा कि प्राथमिक खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता या शुद्धता निर्धारित मानकों से कम हो गई है या इसके घटक परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं के अधीन मात्रा में मौजूद नहीं हैं, दोनों ही मामलों में अभियुक्त द्वारा की गई मिलावट के कारण और गुणवत्ता या शुद्धता में ऐसी गिरावट प्राकृतिक कारणों से नहीं है। (प्रस्तर - 15)

(बी) खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 - धारा 2 (आईए) (एम) में उपबंध - दूध को अपमिश्रित घोषित किए जाने के लिए - अभियोजन को यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वसा की प्रतिशत मात्रा, जो निर्धारित मानकों से कम पाई गई, वह निर्धारित परिवर्तनशीलता की सीमाओं के अधीन नहीं थी तथा यह कमी प्राकृतिक या मानवीय कारणों से उत्पन्न नहीं हुई थी। (प्रस्तर - 16)

(बी) खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 - धारा 2 (आईए) (एम) में उपबंध - दूध को अपमिश्रित घोषित किए जाने के लिए - अभियोजन को यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वसा की प्रतिशत मात्रा, जो निर्धारित मानकों से कम प्राप्त हुई, वह निर्धारित परिवर्तनशीलता की सीमाओं के अधीन नहीं थी तथा यह कमी प्राकृतिक या मानवीय कारणों से उत्पन्न नहीं हुई थी। (प्रस्तर - 16)

पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध परिवाद - परिवाद पर संज्ञान - खाद्य निरीक्षक ने स्वयं को दंड

प्रक्रिया संहिता की धारा 244 के अंतर्गत परीक्षण हेतु प्रस्तुत किया तथा जिरह भी की - विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध आरोप निर्धारित किए - अभियोजन ने वसा की प्रतिशतता के मानक हेतु अनुमन्य परिवर्तनशीलता की सीमा के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया - चूँकि गाय के दूध में वसा का स्तर प्रत्येक गाय में भिन्न-भिन्न होता है - यह साक्ष्य भी प्रस्तुत नहीं किया गया कि दूध के नमूने में वसा की कमी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा किए गए अपमिश्रण के कारण है - जिसे प्राकृतिक कारणों या मानवीय कारणों के कारण नहीं आरोपित किया जा सकता। (प्रस्तर - 16)

निर्णीत: विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय ने गाय के दूध में वसा प्रतिशत के मानक में परिवर्तनशीलता के संबंध में अभियोजन के साक्ष्यों की कमी पर विचार नहीं किया। यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि दूध के नमूने में वसा की कमी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा किए गए अपमिश्रण के कारण है, तथा यह कमी प्राकृतिक या मानवीय नियंत्रण वाले कारणों से नहीं हुई। परिणामस्वरूप, केवल इस आधार पर कि दूध में वसा का प्रतिशत निर्धारित मानक से 14% कम था, दूध के नमूने को अपमिश्रित नहीं प्रतिपादित किया जा सकता। पुनरीक्षणकर्ता को दोषी सिद्ध करने और उसे छह माह कठोर कारावास तथा जुर्माना देने वाले निर्णय और आदेश रद्द किए जाते हैं। (प्रस्तर - 17)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-7)

माननीय न्यायमूर्ति मंजिवे शुक्ला

1. पुनरीक्षक के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. पुनरीक्षक ने यह पुनरीक्षण दायर किया है जिसमें आपराधिक मामला संख्या 4423/2003 (राज्य बनाम अमर बहादुर सिंह) में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 27.05.2005 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत पुनरीक्षक को खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उसे 1,000/- रुपये के जुर्माने के साथ छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, सुल्तानपुर द्वारा दिनांक 22.08.2007 को पारित निर्णय और आदेश जिसके तहत आपराधिक अपील संख्या 49/2005 (अमर बहादुर सिंह बनाम यू.पी. राज्य) को खारिज कर दिया गया है।

3. पुनरीक्षक के विरुद्ध अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर के न्यायालय में शिकायती वाद दायर किया गया, जो खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के अंतर्गत आपराधिक वाद संख्या 4423/2003 के रूप में पंजीकृत किया गया।

4. वादिया श्रीमती किरन यादव ने शिकायत में कहा है कि वह खाद्य निरीक्षक हैं और उन्होंने दिनांक 09.08.2003 को समय 11:00 बजे

पुलिस स्टेशन लम्भुआ, जिला सुल्तानपुर के पास पुनरीक्षक अमर बहादुर सिंह को 30 लीटर दूध बिक्री के लिए ले जाते हुए पाया। दूध में मिलावट का संदेह होने पर उन्होंने पुनरीक्षक अमर बहादुर सिंह को अपना परिचय दिया और 9/- रुपये का भुगतान करके 750 मिली दूध खरीदा। शिकायत में आगे कहा गया है कि उपरोक्त दूध को तीन बराबर भागों में वितरित किया गया और तीन साफ बोतलों में डाला गया और प्रत्येक बोतल में 40% फार्मेलिन की 20-20 बूंदें डाली गईं और उसके बाद प्रत्येक बोतल पर ढक्कन लगा दिए गए और तीनों नमूनों को ठीक से सील कर दिया गया। एक नमूना लखनऊ में लोक विश्लेषक को भेजने के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सुल्तानपुर के कार्यालय में जमा किया गया। शिकायत में आगे कहा गया कि बाद में लोक विश्लेषक, उत्तर प्रदेश सरकार ने उक्त नमूने की परीक्षण करने के बाद अपने पत्र दिनांक 26.08.2003 द्वारा अपनी रिपोर्ट भेजी और उक्त रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि दूध में वसा गाय के दूध के लिए निर्धारित वसा के मानक से 14% कम पाई गई है।

5. विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उपरोक्त शिकायत पर संज्ञान लिया, तत्पश्चात वादिया, खाद्य निरीक्षक, श्रीमती किरन यादव ने धारा 244 सी.आर.पी.सी. के तहत अपनी परीक्षण कराई और उनसे जिरह भी की गई।

6. उपरोक्त आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 03.12.2004 को पुनरीक्षक के विरुद्ध खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के

अंतर्गत आरोप तय किए। पुनरीक्षक ने स्वयं को निर्दोष बताया, इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय ने सुनवाई शुरू की।

7. पुनरीक्षक का बयान भी धारा 313 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज किया गया

8. विद्वान विचारण न्यायालय ने खाद्य निरीक्षक, श्रीमती किरण यादव की गवाही पर विचार किया और उनके कथन को पूर्णतः सही पाया। इसके अलावा विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि उत्तर प्रदेश सरकार के लोक विश्लेषक ने श्रीमती किरण यादव द्वारा एकत्रित दूध के नमूने की परिक्षण के बाद अपनी रिपोर्ट दी है कि दूध के नमूने में वसा गाय के दूध के लिए निर्धारित वसा के मानक से 14% कम पाई गई है, इसलिए, पुनरीक्षक को खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है और इसलिए उसे 1,000/- रुपये के जुर्माने के साथ छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई जाती है।

9. पुनरीक्षक ने आपराधिक मामला संख्या 4423/2003 में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 27.05.2005 के उपरोक्त निर्णय एवं आदेश को आपराधिक अपील संख्या 49/2005 (अमर बहादुर सिंह बनाम राज्य) अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, सुल्तानपुर के समक्ष दायर करके चुनौती दी।

10. विद्वान अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार

किया है और उसके बाद दिनांक 22.08.2007 को आदेश पारित किया है, जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभियोजन पक्ष ने खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 16(1)(ए)(आई) के तहत आरोपी के खिलाफ अपना मामला साबित कर दिया है और इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 27.05.2005 के निर्णय और आदेश द्वारा दी गई सजा और दोषसिद्धि किसी भी तरह से अवैध नहीं है।

11. मैं पाता हूँ कि अभियोजन पक्ष ने विचारण के दौरान अपना मामला लोक विश्लेषक, उत्तर प्रदेश सरकार की रिपोर्ट पर आधारित किया है, जिसमें कहा गया है कि नमूना दूध में, गाय के दूध के लिए निर्धारित वसा के मानक से 14% कम वसा पाई गई थी, लेकिन अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय के समक्ष कोई सबूत नहीं दिया कि पुनरीक्षक ने दूध में कुछ मिलावट की है और इस प्रकार नमूना दूध में वसा का प्रतिशत गाय के दूध के लिए निर्धारित वसा के मानक से कम हो गया है।

12. सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के कुछ प्रावधानों को देखना आवश्यक है, इसलिए उन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

“7. कुछ खाद्य पदार्थों के विनिर्माण, विक्रय आदि का प्रतिषेध।— कोई भी व्यक्ति स्वयं या अपनी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विक्रय के लिए विनिर्माण, भंडारण, विक्रय या वितरण नहीं करेगा—

(i) कोई भी मिलावटी खाद्य पदार्थ;

(ii) कोई भी गलत ब्रांड वाला खाद्य पदार्थ;

(iii) कोई खाद्य पदार्थ जिसके विक्रय के लिए लाइसेंस निर्धारित किया गया है, लाइसेंस की शर्तों के अनुसार ही;

(iv) कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री लोक स्वास्थ्य के हित में खाद्य (स्वास्थ्य) प्राधिकरण द्वारा फिलहाल प्रतिबंधित की गई है;

(v) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के किसी अन्य उपबंध का उल्लंघन करते हुए कोई खाद्य पदार्थ बेचना; या

(vi) कोई भी मिलावट।

“16. दंड.— (1) उपधारा (1ए) के उपबंधों के अधीन रहते हुए यदि कोई व्यक्ति—

(क) चाहे स्वयं या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भारत में किसी खाद्य वस्तु का आयात करता है या विक्रय के लिए विनिर्माण करता है या भंडारण, विक्रय या वितरण करता है—

(i) जो धारा 2 के खंड (ia) के उपखंड (m) के अर्थ में मिलावटी है या उस धारा के खंड (ix) के अर्थ में गलत ब्रांड वाला है या जिसकी बिक्री इस अधिनियम के किसी प्रावधान या इसके अधीन बनाए गए किसी

नियम या खाद्य (स्वास्थ्य) प्राधिकरण के आदेश के अंतर्गत निषिद्ध है;

(ii) उप-खंड (i) में निर्दिष्ट खाद्य पदार्थ के अलावा, इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के किसी भी प्रावधान के उल्लंघन में; या

(ख) स्वयं या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भारत में किसी ऐसे अपमिश्रण का आयात या विक्रय के लिए विनिर्माण या भंडारण, विक्रय या वितरण करता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है; या

(ग) किसी खाद्य निरीक्षक को इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत नमूना लेने से रोकता है; या

(घ) किसी खाद्य निरीक्षक को इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन उसे प्रदत्त किसी अन्य शक्ति का प्रयोग करने से रोकता है; या

(ई) किसी खाद्य पदार्थ का निर्माता होने के नाते, उसके कब्जे में या उसके अधिभोग में किसी परिसर में कोई ऐसा अपमिश्रण है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है; या

(च) केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक या किसी लोक विश्लेषक

द्वारा किए गए परीक्षण या विश्लेषण की किसी रिपोर्ट या प्रमाण-पत्र या उसके किसी अंश का उपयोग किसी खाद्य पदार्थ के विज्ञापन के प्रयोजन के लिए करता है; या

(छ) चाहे स्वयं या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, विक्रेता को उसके द्वारा बेची गई किसी खाद्य वस्तु के संबंध में लिखित रूप में झूठी वारंटी देता है,

वह धारा 6 के उपबंधों के अधीन दण्डनीय होने के अतिरिक्त कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम नहीं होगी किन्तु जो तीन वर्ष तक की हो सकेगी, तथा जुर्माने से, जो एक हजार रुपए से कम नहीं होगा, दण्डनीय होगा:

13. उपर्युक्त धारा 16 (1) (ए) (आई) में यह प्रावधान है कि उप-धारा (1ए) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, यदि कोई व्यक्ति स्वयं या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भारत में कोई खाद्य वस्तु आयात करता है या बिक्री के लिए विनिर्माण करता है या भंडारण, बिक्री या वितरण करता है जो धारा 2 के खंड (आईए) के उप-खंड (एम) के अर्थ में मिलावटी है, तो उसे कम से कम छह महीने के कारावास से, जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकेगा, दंडित किया जाएगा और जुर्माना 100 रुपये से कम नहीं होगा।

14. अब धारा 2 (ia) (m) पर गौर करना आवश्यक है जो निम्नानुसार उद्धृत है:-

“(m) यदि वस्तु की गुणवत्ता या शुद्धता निर्धारित मानक से कम है या उसके घटक ऐसी मात्रा में मौजूद हैं जो परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं के भीतर नहीं हैं, किन्तु जो उसे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं बनाती हैं:

बशर्ते कि जहां प्राथमिक खाद्य पदार्थ होने के कारण वस्तु की गुणवत्ता या शुद्धता निर्धारित मानकों से कम हो गई हो या उसके घटक ऐसी मात्रा में मौजूद हों जो दोनों ही मामलों में परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं के भीतर न हो, जो केवल प्राकृतिक कारणों से हो और मानव एजेंसी के नियंत्रण से परे हो, तो ऐसी वस्तु को इस उप-खंड के अर्थ में मिलावटी नहीं माना जाएगा।

15. धारा 2(ia)(m) से जुड़े प्रावधान के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 16(1)(a)(i) के तहत अपराध के लिए अभियुक्त को दंडित करने के लिए अभियोजन पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा और यह साबित करना होगा कि प्राथमिक खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता या शुद्धता निर्धारित मानकों से कम हो गई है या इसके घटक परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं के भीतर मात्रा में मौजूद नहीं हैं, दोनों ही मामलों में अभियुक्त द्वारा की गई मिलावट के कारण और गुणवत्ता या

शुद्धता में ऐसी गिरावट प्राकृतिक कारणों से नहीं है।

16. अभियोजन पक्ष ने गाय के दूध में वसा के प्रतिशत के मानक के बारे में स्वीकार्य भिन्नता सीमाओं (यदि कोई हो) के संबंध में कोई सबूत नहीं दिया है क्योंकि निश्चित रूप से गाय से गाय में वसा का स्तर अलग-अलग होता है। इसके अलावा अभियोजन पक्ष ने कोई सबूत भी नहीं दिया है कि संशोधनकर्ता से लिए गए दूध के नमूने में जो वसा की कमी पाई गई है, वह केवल उसके द्वारा की गई मिलावट के कारण है और वसा की उक्त कमी प्राकृतिक कारणों और मानव एजेंसी के नियंत्रण से परे किसी भी कारण से नहीं हो सकती है। धारा 2(ia)(m) से जुड़ी शर्त यह स्पष्ट करती है कि प्राथमिक खाद्य पदार्थ यानी दूध को मिलावटी घोषित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर यह साबित करना अनिवार्य है कि वसा का प्रतिशत जो निर्धारित मानकों से नीचे गिर गया है, परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं के भीतर नहीं था और इसके अलावा उक्त कमी प्राकृतिक कारणों और मानव एजेंसी के नियंत्रण से परे कारणों के कारण नहीं थी।

17. वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय ने यह नहीं माना है कि अभियोजन पक्ष ने गाय के दूध में वसा के प्रतिशत के मानक में परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं (यदि कोई हो) के संबंध में कोई सबूत नहीं दिया है और इस बात का भी कोई सबूत नहीं दिया है कि प्रश्नगत नमूने में वसा की कमी संशोधनकर्ता द्वारा

की गई मिलावट का परिणाम है और इसके अलावा वसा के प्रतिशत की उक्त कमी किसी प्राकृतिक कारण या मानव एजेंसी के नियंत्रण से परे किसी कारण से नहीं थी। धारा 2 (ia)(m) के साथ संलग्न प्रावधान के तहत अपेक्षित किसी भी सबूत के अभाव में, संशोधनकर्ता से लिए गए दूध के नमूने को केवल इस कारण से मिलावटी नहीं कहा जा सकता है कि दूध में वसा का प्रतिशत निर्धारित मानक से 14% कम था।

18. उपर्युक्त कारणों के मददेनजर, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 27.05.2005 का निर्णय और आदेश, जिसमें खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के अंतर्गत पुनरीक्षक को दोषी ठहराया गया और उसे 1,000/- रुपये के जुर्माने के साथ छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और आपराधिक अपील संख्या 49/2005 में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय नंबर 2, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 22.08.2007 का निर्णय और आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं और तदनुसार, उन्हें रद्द किया जाता है।

19. पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है। पुनरीक्षक को उपरोक्त आरोप से दोषमुक्त किया जाता है।

20. पुनरीक्षक पहले से ही जमानत पर है। पुनरीक्षक के पक्ष में दी गई जमानतें मुक्त मानी जाएंगी। 21. इस निर्णय की प्रति

आवश्यक जानकारी एवं अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 72

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनिर जे

प्रथम अपील से आदेश संख्या: 243 वर्ष 1995

श्रीमती मदरेश एवं अन्य ... अपीलकर्तागण
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं
अन्य ... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री देवेन्द्र सिंह, श्री प्रविन्द्र सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री समीर शर्मा, श्री सुनील कुमार मिश्रा,
श्री विकास सहाय

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 166, 168 एवं 173 - दुर्घटना में मृत्यु - प्रतिकर की स्वीकृति - भावी संभावनाएँ मृतक की आयु लगभग 36 वर्ष थी - नियमावली 1998 के नियम 220-क(3) के अनुसार, मृतक 40 वर्ष अथवा उससे कम आयु श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है, जिससे उसके आश्रितजन को उसकी आय में 50% तक भावी संभावनाओं की वृद्धि जोड़ने का अधिकार प्राप्त होता है - अभिकर्ता को दिया गया प्रतिकर परिवर्तित किया गया तथा प्रतिकर की

राशि बढ़ाकर ₹5,82,980/- निर्धारित की गई - उक्त धनराशि पर दावा याचिका की स्थापना की तिथि से लेकर भुगतान की तिथि तक 7% वार्षिक की दर से साधारण ब्याज देय होगा - प्रतिकर की संपूर्ण बढ़ी हुई राशि अभिकर्ताओं को इस प्रकार देय होगी कि 60% राशि विधवा को देय होगी तथा शेष 40% राशि चार अन्य अभिकर्ताओं में समान रूप से वितरित की जाएगी। (प्रस्तर 1 से 25)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति जे जे मुनीर

1. यह मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 48 वर्ष 1992 के दावेदारों द्वारा की गयी अपील है, जिसमें मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग की गई है।

2. दावेदार-अपीलकर्ताओं के अनुसार, जो मृतक राजवीर सिंह के आश्रित हैं, मृतक, 2 दिसंबर, 1991 को मारुति कार, पंजीकरण संख्या डीएनसी -2281 पर सवार होकर रूड़की से मेरठ की ओर जा रहे थे। वह राज कुमार और कुछ अन्य लोगों के साथ कार पर यात्रा कर रहे थे। कार सड़क के नियम के अनुसार और नियंत्रित गति से चल रही थी। शाम सात बजकर चालीस मिनट पर, जैसे ही कार ग्राम सिवाया पहुंची, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम (संक्षेप में, 'यूपीएसआरटीसी') की स्वामित्व वाली एक बस, जिसका पंजीकरण संख्या यूएचएन-2268 थी, विपरीत दिशा से आई। इसे करीब 70 किलोमीटर प्रति घंटे की

तेज रफ्तार और लापरवाही से चलाया जा रहा था। इसने मारुति कार को टक्कर मार दी, जिससे कई लोग घायल हो गए। राज कुमार नामक व्यक्ति की मौके पर ही मौत हो गई। गंभीर रूप से घायल राजवीर सिंह को मेडिकल कॉलेज अस्पताल में भर्ती कराया गया। दिनांक 03/04.12.1991 को उन्होंने अंतिम सांस ली। दुर्घटना के बारे में पुलिस में प्राथमिकी दर्ज कराई गई, जिसके बाद मामला दर्ज किया गया। राजवीर सिंह के शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया, जो पीएल शर्मा अस्पताल, मेरठ में किया गया।

3. दावेदार- अपीलकर्ताओं (संक्षेप में, 'दावेदारों') के अनुसार, मृतक उत्तर प्रदेश पुलिस में एक कांस्टेबल था और उसके निधन के समय उसकी उम्र साढ़े छत्तीस वर्ष थी। वह एक स्वस्थ व्यक्ति थे और जीवन के सामान्य क्रम में उन्होंने अपना 85वां जन्मदिन मनाया होता। मृतक को प्रति माह कुल 1961/- रुपये वेतन मिलता था। राजवीर सिंह के असामयिक निधन के कारण, दावेदार निराश्रित हो गए हैं और आय के स्रोत के बिना रह गए हैं। दावेदारों को उनके प्यार और स्नेह से भी वंचित कर दिया गया है। तदनुसार, 8,10,000/- रुपये के मुआवजे का दावा किया गया था।

4. यूपीएसआरटीसी, जो दावा याचिका की विपक्षी संख्या 1 और इस अपील की प्रतिवादी संख्या 1 है, की ओर से एक लिखित बयान दायर किया गया था। यूपीएसआरटीसी ने सामान्यतः दावा याचिका में आरोपों से इनकार किया है। दुर्घटना के विवरण से इनकार किया गया है, जिससे राजवीर सिंह की मृत्यु हो गई।

यह कहा गया है कि दुर्घटना के तथ्य को स्थापित करने का बोझ दावेदारों पर है। यूपीएसआरटीसी का यह भी मानना है कि दुर्घटना बस चालक की लापरवाही के कारण नहीं हुई, बल्कि यह सहभागी लापरवाही का मामला है, जहां बस चालक और मारुति कार के चालक को दायित्व समान अनुपात में साझा करना चाहिए। यह भी दलील दी गई कि मांगा गया मुआवजा अत्यधिक और आधारहीन है। मामले में आगे दलील दी गई कि मुआवजा दावेदारों को लॉटरी या अप्रत्याशित लाभ के रूप में नहीं मिल सकता है।

5. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, शाखा कार्यालय हरिद्वार की ओर से, मंडल प्रबंधक, बेगम ब्रिज, मेरठ, जो कि दावा याचिका में विपक्षी पक्ष संख्या 4 और यहां प्रतिवादी संख्या 4 हैं, और जो मारुति कार के बीमाकर्ता हैं, के माध्यम से एक लिखित बयान दायर किया गया था। उपरोक्त बीमा कंपनी ने यह रुख अपनाया कि मुआवजे का हकदार बनने के लिए दुर्घटना के तथ्य और अन्य सभी आवश्यक चीजों को स्थापित करना दावेदारों का दायित्व है। बीमा कंपनी का कहना था कि कार लापरवाही से नहीं चलाई जा रही थी और वह दुर्घटना के लिए जिम्मेदार नहीं थी। यह अकेले हमलावर बस थी, जिसे उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। बीमा कंपनी ने भी कहा कि मांगा गया मुआवजा बहुत ज्यादा है।

6. पक्षों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या प्रश्नगत दुर्घटना दिनांक 02.12.1991 को सायं 7.40 बजे

शिवाया, थाना दौराला, मेरठ के जंगल में बस संख्या यूएचएन-2268 एवं मारुति कार संख्या डीएनसी 2282 के चालकों द्वारा तेज गति से लापरवाही पूर्वक वाहन चलाने से घटित हुई थी? यदि हां, तो इसका असर।

2. क्या दावेदार कोई मुआवजा प्राप्त करने के हकदार हैं? यदि हां, तो कितना और किस पक्ष से?

7. दावेदारों की ओर से, विधवा श्रीमती मद्रेश से अभियोजन साक्षी-1 के रूप में पूछताछ की गई, जबकि दुर्घटना के चश्मदीद कांस्टेबल अजय पाल सिंह से अभियोजन साक्षी-2 के रूप में पूछताछ की गई। दावेदारों के दस्तावेजी साक्ष्य में, प्राथमिकी की प्रति, आरोप पत्र, साइट योजना, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट और मृतक के वेतन प्रमाण पत्र के अलावा उसके हाई स्कूल प्रमाणपत्र दाखिल किए गए थे। यूपीएसआरटीसी की ओर से, बस चालक, राज कुमार को गवाह के कटघरे में पेश किया गया और बचाव साक्षी-1 के रूप में पूछताछ की गई।

8. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि दावा याचिका, निश्चित रूप से, दावेदारों द्वारा अधिकरण के समक्ष रखी गई है और यूपीएसआरटीसी द्वारा बचाव किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य तीन विपक्षी पक्षों ने अधिकरण के समक्ष दावे का अधिक विरोध नहीं किया है। इस न्यायालय के समक्ष, दावेदारों द्वारा अपील का समर्थन किया गया और यूपीएसटीआरसी की ओर से विरोध किया

गया। अन्य कोई भी पक्ष इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई में उपस्थित नहीं हुआ।

9. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवींद्र सिंह और यूपीएसआरटीसी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विकास सहाय को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 2 से 4 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

10. निचली न्यायालय के रिकॉर्ड का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया गया है।

11. चूंकि यह अपील मुआवजे में वृद्धि के दावे तक सीमित है, इसलिए यह न्यायालय अकेले मुद्दा संख्या 2 पर अधिकरण के निष्कर्षों की जांच करने का प्रस्ताव करता है। पहले मुद्दे पर निष्कर्षों के बारे में कोई संदेह नहीं है।

12. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि ट्रिब्यूनल ने '15' के बजाय '12' का गुणक लागू करने में इस तथ्य के कारण विधिक गलती की है कि विधवा को 500-600/- रु. प्रति माह पारिवारिक पेंशन मिल रही थी। उनका कहना है कि विधवा को देय पेंशन कानूनी रूप से कटौती योग्य नहीं है, या किसी भी तरह से निर्भरता की मात्रा निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि अधिकरण ने मृतक की भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी नहीं दिया है। साथ ही, संपत्ति के नुकसान और पर्याप्त अंतिम संस्कार खर्च के अलावा प्रत्येक दावेदार को कंसोर्टियम के नुकसान के लिए कुछ भी नहीं दिया गया है।

13. दूसरी ओर, यूपीएसआरटीसी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विकास सहाय ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है और कहा है कि यह एक उचित निर्णय है, जिसमें छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए।

14. मुआवज़ा तय करने और न्यायपूर्ण निर्णय पारित करने के लिए, निर्धारित किया जाने वाला सबसे बुनियादी आंकड़ा मृतक की मासिक आय है। इस मामले में खुशी की बात यह है कि मृतक एक सरकारी कर्मचारी था, जिसकी आय, चाहे अधिक हो या कम, कानून और समाज द्वारा एक प्रकार के विश्वास, भरोसे और श्रद्धा के साथ स्वीकार की जाती है, जो कि सबसे अमीर व्यक्तियों को भी प्राप्त नहीं है। इस मामले में मृतक की आय का अचूक प्रमाणीकरण पुलिस उपाधीक्षक, हरिद्वार द्वारा किया गया है, जिन्होंने प्रमाण पत्र दिनांक 20.12.1991, कागज संख्या 38-ग जारी किया गया है। हमने उक्त प्रमाणपत्र का अवलोकन किया है। इसमें मृतक की आय 1961 रुपये दर्शायी गयी है। इसलिए, मृतक की मासिक आय रु. 1961/- मानी जाएगी, वार्षिक आय रु. 23,532/- होगी।

15. मृतक अपने पीछे पांच आश्रितों को छोड़ गया है, जिसमें उसकी विधवा श्रीमती मदरेश, दो नाबालिग बेटियां, कु. कल्पना एवं कु. अल्पना, जिनकी उम्र क्रमशः 13 और 11 वर्ष है, और दो बेटे, मास्टर अतुल और मास्टर पिंटू, जिनकी आयु क्रमशः 8 वर्ष और 4 वर्ष है, शामिल हैं। मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए कटौती की मात्रा निर्धारित करने के लिए, जीवित परिवार के

सदस्यों की संख्या निर्धारित करने के सिद्धांत के अनुसार, यूपी मोटर वाहन नियम, 1998(संक्षेप में, '1998 के नियम') का नियम 220-ए (2) (iii) मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। नियम कहता है कि खंड (ii) में परिवार के सदस्यों की संख्या की गणना के उद्देश्य हेतु, एक नाबालिग आश्रित को आधी इकाई के रूप में गिना जाएगा। इसलिए, मृतक के चार बच्चे दो आश्रित होंगे, जबकि विधवा एक होगी। इस प्रकार, यह मानना होगा कि मृतक के परिवार में तीन आश्रित सदस्य थे। 1998 के नियमों के नियम 220-ए(2)(ii) के अनुसार, जीवित बच्चे लोगों की निर्भरता को निर्धारित करने के लिए एक विवाहित व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत और रहने के खर्चों में कटौती, जहां उसके आश्रित 2 से 3 के मध्य हो, एक तिहाई होगी।(श्रीमती) सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य,(2009) 6 एससीसी 121, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 2 से 3 है, के फैसले के पैराग्राफ संख्या 30 में मृतक के जीवन-यापन के खर्च के लिए समान कटौती की परिकल्पना की गई है। इस प्रकार, इस मामले में, मृतक की वार्षिक आय में से, एक तिहाई व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए काटा जाना चाहिए।

16. निर्भरता निकालने के लिए विचार किया जाने वाला अगला मुद्दा उपयुक्त गुणक को लागू करना है। रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 42 में सरला वर्मा (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट के मार्गदर्शन के अनुसार, 36-40 वर्ष की आयु वर्ग के मृतक आश्रितों के लिए, लागू गुणक '15' है। इधर, मृतक की उम्र साढ़े छत्तीस वर्ष

थी। उसकी उम्र के बारे में कोई संदेह नहीं है क्योंकि हाई स्कूल सर्टिफिकेट पेपर नंबर 40-ख के रूप में रिकॉर्ड पर है। हाई स्कूल प्रमाणपत्र में मृतक की जन्म तिथि 1 जुलाई, 1955 दिखाई गई है। उनके निधन के समय, 03/04.12.1991 को, मृतक की आयु 36 वर्ष या जैसा कि अधिकरण का कहना है, साढ़े छत्तीस वर्ष होगी। इसलिए, लागू गुणक स्पष्ट रूप से '15' होगा न कि '12', जैसा कि अधिकरण द्वारा लागू किया गया है। अधिकरण ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य का जिक्र करते हुए कम गुणक को अपनाया है कि विधवा को 500-600/- रुपये की पारिवारिक पेंशन मिल रही है। यह तथ्य कि विधवा को पारिवारिक पेंशन मिल रही है, दावेदारों की निर्भरता की गणना के उद्देश्य से बिल्कुल अप्रासंगिक है। इस संबंध में, इस मुद्दे पर कानून आधिकारिक तौर पर विमल कंवर और अन्य बनाम किशोर दान और अन्य, (2013) 7 एससीसी 476 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित किया गया है, जहां यह कहा गया है:

18. पहला मुद्दा यह है कि "क्या दावेदारों द्वारा प्राप्य भविष्य निधि, पेंशन और बीमा, मोटर वाहन अधिनियम की परिधि में आते हैं जिन्हें कटौती के लिए उत्तरदायी 'आर्थिक लाभ' कहा जाएगा"।

19. उपरोक्त मुद्दा हेलेन सी. रेबेलो बनाम महाराष्ट्र एसआरटीसी [(1999) 1 एससीसी 90: 1999 एससीसी (सीआरआई) 197] मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार के

लिए आया था। उक्त मामले में, इस न्यायालय ने माना कि भविष्य निधि, पेंशन, बीमा और इसी तरह कोई भी नकदी, बैंक शेष, शेयर, सावधि जमा आदि सभी एक "आर्थिक लाभ" हैं जो किसी की मृत्यु के कारण उसके उत्तराधिकारियों द्वारा प्राप्य हैं, लेकिन इन सबका केवल आकस्मिक मृत्यु के कारण घटित होने वाले कानून के तहत प्राप्य राशि से कोई संबंध नहीं है। ऐसी राशि मोटर वाहन अधिनियम की परिधि में नहीं आएगी जिसे कटौती के लिए "आर्थिक लाभ" कहा जाएगा। इस न्यायालय का अवलोकन और निष्कर्ष निम्नलिखित था: (एससीसी पृष्ठ 111-12, पैरा 35)

“35. मोटे तौर पर, हम भविष्य निधि की प्राप्ति की जांच कर सकते हैं जो किसी कर्मचारी द्वारा उसकी सेवा के दौरान किए गए योगदान में से एक आस्थगित भुगतान है। ऐसे कर्मचारी या उसके उत्तराधिकारी आकस्मिक मृत्यु हो या न हो, यह राशि प्राप्त करने के हकदार हैं। यह राशि सुरक्षित है, प्राप्त होना निश्चित है, जबकि मोटर वाहन अधिनियम के तहत राशि अनिश्चित है और केवल घटना के घटित होने पर ही प्राप्त की जा सकती है, जो नहीं भी घटित हो सकती है। इसी

प्रकार, पारिवारिक पेंशन भी एक कर्मचारी द्वारा अपने परिवार के लाभ के लिए उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारियों द्वारा प्राप्त सेवा शर्तों के अनुसार सेवा में उसके योगदान के रूप में अर्जित की जाती है। आकस्मिक मृत्यु के अलावा भी उत्तराधिकारियों को पारिवारिक पेंशन मिलती है। दोनों के बीच कोई सह-संबंध नहीं है। इसी प्रकार, जीवन बीमा पॉलिसी या तो बीमाधारक को या बीमाकर्ता के उत्तराधिकारियों को बीमाकर्ता के साथ अनुबंध के कारण प्राप्त होती है, जिसके लिए बीमाधारक प्रीमियम के रूप में योगदान देता है। यह बीमाधारक द्वारा भी प्राप्य है यदि वह सभी प्रीमियमों का भुगतान करने के बाद परिपक्वता तक जीवित रहता है। मृत्यु के मामले में, बीमाकर्ता भुगतान किए गए प्रीमियम के लिए अनुबंध की शर्तों के अनुसार, वारिसों को राशि का भुगतान करने की क्षतिपूर्ति करता है। पुनः, यह राशि दावेदार को किसी आकस्मिक मृत्यु के कारण नहीं बल्कि अन्यथा बीमाधारक की मृत्यु पर प्राप्त होती है। अनुबंध की शर्तों के अनुसार राशि प्राप्त करने के लिए मृत्यु

केवल एक कदम या आकस्मिकता है। इसी प्रकार कोई भी नकदी, बैंक बैलेंस, शेयर, सावधि जमा इत्यादि हालांकि किसी की मृत्यु के कारण उत्तराधिकारियों द्वारा प्राप्य एक आर्थिक लाभ है, लेकिन इन सभी का किसी कानून के तहत प्राप्य राशि के साथ कोई सह-संबंध नहीं है, जो केवल आकस्मिक मौत के कारण होता है। ऐसी राशि मोटर वाहन अधिनियम की परिधि में कैसे आ सकती है जिसे कटौती के लिए 'आर्थिक लाभ' कहा जा सकता है। जब हम हानि और लाभ के सिद्धांत की तलाश करते हैं, तो यह एक समान और एक ही स्तर पर होना चाहिए, जिसमें उनके बीच संबंध, परस्पर संबंध हो और जिसमें किसी भी सह-संबंध की कोई झलक न हो। बीमाधारक (मृतक) अपने स्वयं के पैसे का योगदान करता है जिसके लिए उसे वह राशि मिलती है जिसका दुर्घटना के कारण लापरवाही के लिए दोषी के खिलाफ गणना किए गए मुआवजे से कोई संबंध नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, अधिनियम के तहत मुआवजे के रूप में प्राप्य राशि चोट या मृत्यु के कारण बिना किसी

योगदान के है, तो बीमाधारक के योगदान के माध्यम से प्राप्त राशि का फल मोटर वाहन अधिनियम के तहत प्राप्य राशि से कैसे काटा जा सकता है? इस अधिनियम के तहत यह राशि उसे बिना किसी अंशदान के प्राप्त होती है। जैसा कि हमने कहा है, मोटर वाहन अधिनियम के तहत देय मुआवजा वैधानिक है जबकि जीवन बीमा पॉलिसी के तहत प्राप्य राशि संविदात्मक है।"

17. इसलिए, हमारी राय में, अधिकरण ने '15' के उचित गुणक को अपनाने के बजाय उसे '12' तक कम करने में गलती की।

18. जहां तक मृतक की भविष्य की संभावनाओं का सवाल है, उसकी उम्र 36 वर्ष या उसके आसपास थी। 1998 के नियमों के नियम 220-ए(3) के अनुसार, मृतक 40 वर्ष और उससे कम आयु की श्रेणी में आता है, जो उसके आश्रितों को उसके वेतन के 50% की सीमा तक उसकी आय में भविष्य की संभावना जोड़ने का अधिकार देता है।

19. यह मुद्दा कि क्या भविष्य की संभावनाओं का निर्णय **राष्ट्रीय बीमा कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य, (2017) 16 एससीसी 680** या 1998 के नियमों के नियम 220-ए (3) में निर्णय द्वारा शासित होगा, विचार के लिए सुप्रीम कोर्ट के समक्ष **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला**

शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822 में आया। उर्मिला शुक्ला (सुप्रा) में, यह स्थापित किया गया :

"9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर, किसी भी तरह से, तत्काल मामले में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है, वह यह है कि क्या इसके आवेदन में, नियम 220ए के उप-नियम 3 (iii) को प्रतिबंधित दायरा दिया जाना चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तब प्रणय सेठी के मामले में निर्णय ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को कोई भी चुनौती नहीं दी गई थी। उन मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा है, को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में किसी निर्धारक सिद्धांत

के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक साधन ने कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलील को अस्वीकार करते हैं और अधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के इस अपील को खारिज करते हैं।"

20. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, भविष्य की संभावनाओं के निर्धारण का अधिकार नियम 220-ए(3) द्वारा शासित होगा, न कि प्रणय सेठी (उपरोक्त) में निर्धारित सिद्धांतों द्वारा।

21. यूपीएसआरटीसी की ओर से आग्रह किया गया कि 1998 के नियमों के नियम 220-ए(3) वर्तमान मामले पर लागू नहीं होंगे, क्योंकि उन्हें 26 सितंबर, 2011 से लागू किया गया था, जबकि इस मामले में दुर्घटना वर्ष 1991 में हुई थी। यह प्रश्न **सुशील कुमार और अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लोजैस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य 2017(35) एलसीडी 1311** के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष विचार के लिए आया। **सुशील कुमार (उपरोक्त)** में यह स्थापित किया गया था:

"31. घायल/मृतक की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए कानूनी अदालतों के विभिन्न निर्णयों के मददेनजर उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 में नियम 220-ए शामिल किया गया था। यह मुआवजे के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए घायल/मृतक की उम्र के आधार पर उसकी वास्तविक आय में उसकी आय का एक निश्चित प्रतिशत जोड़ने का प्रावधान करता है। उपरोक्त नियम दिनांक 26.09.2011 को दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले लागू हुआ, हालांकि दुर्घटना उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले दिनांक 08.05.2010 को हुई थी।

32. उपरोक्त के मददेनजर यह तर्क उठाया जा रहा है कि दिनांक 26.09.2011 को लागू हुई नियमावली का नियम 220-ए, दिनांक 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम सरूप बनाम मुंशी एआईआर 1963 एससी 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

34. ऊपर व्यक्त दृष्टिकोण का सर्वोच्च न्यायालय ने मुला बनाम

गोधू एआईआर 1971 एससी 89 में पालन किया था।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत एआईआर 1966 एससी 1423 में न्यायालय ने इस प्रकार कहा था: -यदि नया कानून ऐसी भाषा में बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से लंबित मामलों को भी लेता है, तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय को भी इस प्रकार व्यक्त किये गये इरादे पर ध्यान देना चाहिए और अपील की अदालत प्रथम अदालत के फैसले के बाद भी ऐसे कानून को प्रभावी कर सकती है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह एआईआर 1974 एससी 2068 में कानून में बदलाव को प्रभाव किसी अपील के लंबित रहने के दौरान दिया गया था, क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई वरिष्ठ न्यायालय द्वारा मुकदमे की दोबारा सुनवाई की प्रकृति में है।

37. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में ही लक्ष्मी नारायण गुड़न एवं अन्य बनाम निरंजन मोदक एआईआर 1985 एससी 111 में यह माना गया कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षकारों के अधिकार की रक्षा करेगा।

38. उपरोक्त निर्णय का पालन इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) एडव्ल्यूसी 2620 के मामले में किया था, जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में एक मामला था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए, ताकि पक्षकारों के अधिकारों की रक्षा की जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के मददेनजर आईसीआईसीआई लोम्बार्ड (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा व्यक्त की गई राय अच्छे कानून के अनुरूप नहीं है क्योंकि यह, यह निर्धारित करने में ऊपर उल्लिखित निर्णयों को ध्यान में नहीं रखता है, कि नियमावली का नियम 220-ए, जो दिनांक 26.09.2011 को लागू हुआ था, उक्त तिथि से पहले हुई दुर्घटना पर केवल इस कारण से लागू नहीं होगा क्योंकि नियम को विशेष रूप से भूतलक्षी प्रकृति का नहीं बताया गया था।"

22. **सुशील कुमार** मामले में उपरोक्त उल्लिखित कानून को खारिज करने हेतु, किसी बड़ी पीठ या सर्वोच्च न्यायालय का कोई भी निर्णय इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया है। इस प्रकार, इस मामले में मृतक को

देय मुआवजे के निर्धारण के लिए, 1998 के नियमों के प्रावधानों को यहां और अन्यत्र लागू करने में कोई कठिनाई नहीं है।

जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।

23. दावेदार पारंपरिक मदों के तहत मुआवजा प्राप्त करने के हकदार हैं। यह मुद्दा फिर से **प्रणय सेठी** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों हेतु विचार का विषय था, जहां यह माना गया :

“48. इस पहलू को स्पष्ट करने और उचित रूप से बताने की आवश्यकता है। पारंपरिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। जैसा कि न्यायालय ने त्रिलोक चंद्रा [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्रा, 1996 4 एससीसी 362] में कहा था, उक्त अनुसूची दोषपूर्ण पाई गई है। हाल ही में, पुट्टम्म बनाम केएल नारायण रेड्डी [पुट्टम्म बनाम केएल नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45 : (2014) 4 एससीसी (सिविल) 384 : (2014) 3 एससीसी (आपराधिक) 574] में इसे यह कहकर दोहराया गया है: (एससीसी पृष्ठ 80, पैरा 54)

“54. ... हमारा मानना है कि 1994 में अधिनियमित की गई दूसरी अनुसूची अब जीवन यापन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई

49. जहां तक गुणक या गुण्य का सवाल है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उस विषय को शांत कर दिया गया है। दूसरी अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु की स्थिति में सामान्य क्षति का भी प्रावधान है। यह इस प्रकार है :

“3. सामान्य क्षति (मृत्यु के मामले में):

(i)	अंतिम संस्कार व्यय	₹ 2000
(ii)	कंसोर्टियम की हानि, यदि लाभार्थी पति/पत्नी है तो	₹ 5000
(iii)	संपत्ति की हानि	₹ 2500
(iv)	चिकित्सा व्यय (बिल/वाउचर द्वारा समर्थित मृत्यु के पूर्व हुए वास्तविक व्यय, किंतु इससे अधिक नहीं)	₹ 15000”

ऊपर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य क्षति देय होगी:

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन के पश्चात यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्रा मामले में निर्णय [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्रा, (1996) 4 एससीसी 362] से शुरू करते हुए, दूसरी अनुसूची का अनुसरण नहीं किया गया है और इसमें कोई संशोधन भी नहीं किया गया है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित

रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने देखा है, विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियाँ प्रदान की गई हैं। राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013)9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179 : (2013) 3 एससीसी (आपराधिक) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में कंसोर्टियम के लिए 1,00,000 रुपये की राशि प्रदान की गई थी। जैसा कि हम राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013)9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179 : (2013) 3 एससीसी (आपराधिक) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] से पाते हैं, कंसोर्टियम के अनुदान की न्यायोचितता टिप्पणी पर आधारित है जैसा कि हमने यहां पहले भी प्रस्तुत किया है।

51. उपरोक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक मदों के तहत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक मदों का सवाल है, हमें राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013)9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179 : (2013) 3 एससीसी (आपराधिक) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में व्यक्त विचार से सहमत होना मुश्किल लगता है। इसने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000 रुपये, कंसोर्टियम के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन की हानि के

लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। नाबालिग बच्चों की देखभाल की हानि से संबंधित मद मौजूद नहीं है। हालाँकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013)9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179 : (2013) 3 एससीसी (आपराधिक) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421 : (2012) 3 एससीसी (सिविल) 726 : (2012) 3 एससीसी (आपराधिक) 160 : (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167] को संदर्भित करता है, किंतु अनुसरण करता नहीं दिखता है। कहने की जरूरत नहीं है कि पारंपरिक और प्रचलित मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को परिमाणित करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में एक अचूक नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अचूक नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए,

हमारा मानना है कि उचित रकम तय की जाए। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त मदों पर दोबारा विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरावलोकन तथ्य-केन्द्रित या मात्रा-केन्द्रित नहीं होना चाहिए। हमारा मानना है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है उसे हर तीन साल में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन साल की अवधि में वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन मदों के संबंध में एकरूपता आएगी।"

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

24. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहू राम और अन्य, (2018)18 एससीसी 130, में कंसोर्टियम के नुकसान के लिए मुआवजे के निर्णय के सवाल पर सुप्रीम कोर्ट ने विचार किया था। **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त), में यह स्थापित किया गया था:

“21. प्रणय सेठी [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680 : (2018) 3 एससीसी (सिविल) 248 : (2018) 2 एससीसी (आपराधिक)

205] के मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विभिन्न मदों जिनके अंतर्गत मृत्यु के मामले में मुआवजा दिया जाना है का निपटारा किया। इनमें से एक प्रमुख है संघ का नुकसान। कानूनी भाषा में, "संघ" एक सारगर्भित शब्द है जिसमें "पति-पत्नी संघ", "अभिभावक संघ" और "संतान संबंधी संघ" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक का साथ, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत पति या पत्नी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179 : (2013) 3 एससीसी (आपराधिक) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]

21.1. स्पाउसल कंसोर्टियम को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित पति या पत्नी को "प्रत्येक वैवाहिक संबंध में साथ, समाज, सहयोग, स्नेह और दूसरे की सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजे की अनुमति देता है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979)]

21.2. माता-पिता की असामयिक मृत्यु पर "माता-पिता की सहायता,

सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" के नुकसान के लिए माता-पिता का संघ बच्चे को दिया जाता है।

21.3. संतान संबंधी कंसोर्टियम किसी बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजे का माता-पिता का अधिकार है। एक दुर्घटना में एक बच्चे की मौत से मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा होती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, सहयोग और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

25. इन परिस्थितियों में, यह अपील सफल होने योग्य है और न्यायसंगत मुआवजा देने के लिए, विवादित निर्णय को निम्नानुसार परिवर्तित और संशोधित किया जाएगा:

- (i) मासिक आय (मृतक की) = 1961
 (ii) वार्षिक आय (मृतक की) = 1961×12
 = 23532
 (iii) वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (मासिक आय x 50%) =
 $23532 + 11766$ = 35298
 (iv) वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के

लिए एक तिहाई कटौती = 35298 - 11766
 = 23532

(v) कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x लागू गुणक = 23532×15 = 352980

(vi) पारंपरिक मदों के प्रति दावेदार का अधिकार =

संपत्ति का नुकसान + अंत्येष्टि व्यय + आश्रितों का संघ =

$15000 + 15000 + 40000 \times 5$

= 230000

इसलिए कुल मुआवजा रु. 352980 + रु. 230000 के रूप में निर्धारित होगा = 582980

26. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को संशोधित किया जाता है और दिया गया मुआवजा बढ़ाकर रु. 5,82,980/- किया जाता है। उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर होने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। बढ़े हुए मुआवजे की पूरी राशि दावेदारों को इस प्रकार देय होगी कि मुआवजे का 60% विधवा को मिलेगा, और शेष 40% में से, अन्य चार दावेदार समान रूप से हिस्सा लेंगे। आक्षेपित निर्णय या इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के अनुसार यूपीएसआरटीसी द्वारा अधिकरण में पहले से जमा की गई कोई भी धनराशि, निर्णय के अनुसार समायोजित की जाएगी। लागत रहित।

(2023) 7 ILRA 81

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर

जे

प्रथम अपील से आदेश संख्या 316 वर्ष 1997

संजय कुमार शर्मा एवं अन्य... अपीलकर्तागण

बनाम

श्री मुरारी लाल एवं अन्य ... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री माधव जैन

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री ए.के. शुक्ल

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 173 - दुर्घटना में मृत्यु - प्रतिकर की स्वीकृति - मृतक की आयु 30 वर्ष थी, वह एक चिकित्सक के साथ कार्यरत एक औषध-संयोजक था, जिसने अपने पश्चात माता, पिता, विधवा, एक पुत्र तथा दो पुत्रियों को आश्रित के रूप में छोड़ गया है - न्यायाधिकरण ने उसकी आय 1200 रुपये /- प्रति माह निर्धारित की, 1/3 भाग की कटौती की, 16 का गुणक अपनाया, ₹10,000/- गैर-वित्तीय क्षतिपूर्ति के रूप में सम्मिलित किया गया, तथा 12% की दर से ब्याज प्रदान किया - ₹1200/- प्रति माह की आय को न्यून नहीं कहा जा सकता, इसे यथावत रखा गया, 40% भावी संभावनाएँ सम्मिलित की जाएंगी -

सारला वर्मा के निर्णय के अनुसार 17 का गुणक स्वीकार्य होगा। ₹50,000/- गैर-वित्तीय क्षतिपूर्ति हेतु - कुल प्रतिकर राशि: ₹2,78,480/- - बढ़ी हुई राशि पर ब्याज की दर 7% होगी, जो दावा याचिका दाखिल करने की तिथि से देय होगी, जैसा कि वर्ष 1997 में दर प्रचलित थी। (प्रस्तर 1 से 18)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। (ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति डॉ कौशल जयेन्द्र ठाकर

1. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री माधव जैन और उत्तरदाताओं के अधिवक्ता श्री ए. के. शुक्ल को सुना और अभिलेखों अवलोकन किया।

2. यह अपील, दावेदारों के इशारे पर, एम.ए.सी केस संख्या-206 ऑफ 1993 में एमएसी/7वें-अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, आगरा (इसके बाद "ट्रिब्यूनल" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय और अवाई दिनांक 8.11.1996 को चुनौती देती है। दुर्घटना विवाद में नहीं है। बीमा कंपनी पर निर्धारित देयता विवाद में नहीं है। मृतक की उम्र को लेकर कोई विवाद नहीं है। बीमा कंपनी और मालिक ने फैसले को चुनौती नहीं दी है। मौखिक आपत्ति ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई 12% पर ब्याज देने के लिए है। इस अपील में विचार करने के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या दिया गया मुआवजा कानून की स्थापित कानूनी स्थिति के मद्देनजर सिर्फ मुआवजा है।

3. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य हैं कि 21.03.1993 को मृतक राजकुमार शर्मा आगरा से साइकिल से अपने गांव पतौली जा रहे थे। जब वह गांव बंट सुचेता और ग्राम पथौली के पास पहुंचा तो सामने से एक मेटाडोर आ रहा था, जिस पर नं. यू.पी. 80 ए 9317 चालक द्वारा संचालित तेज और लापरवाही से मृतक की साइकिल को टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप मृतक गंभीर रूप से घायल हो गया। उन्हें इलाज के लिए एस.एन अस्पताल ले जाया गया, लेकिन डॉक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया।

4. मृतक राजकुमार शर्मा दुर्घटना की तारीख यानी 21.03.1993 को 30 वर्ष का था, एक डॉक्टर के साथ काम करने वाला एक कंपाउंडर था, जो अपने पीछे अपनी मां, पिता, विधवा, एक बेटा और दो बेटियों को छोड़ गया है। ट्रिब्यूनल ने उनकी आय को 1200/- रुपये प्रति माह माना है, 1/3 की कटौती की है, 16 का गुणक दिया है, गैर-आर्थिक क्षति के लिए 10,000/- रुपये जोड़े हैं और 12% की दर से ब्याज दिया है।

5. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री माधव जैन द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतक 2500/- रुपये प्रति माह कमा रहा था और इसका 40% भविष्य में आय के नुकसान में जोड़ा जाना चाहिए और 17 का गुणक दिया जाना चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए राशि का 1/4 हिस्सा काट लिया जाना चाहिए क्योंकि मृतक के चार कानूनी प्रतिनिधि बचे थे। दी गई ब्याज दर उचित और उपयुक्त है।

6. प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री ए.के.शुक्ल द्वारा प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आय के किसी भी प्रमाण के अभाव में 2500/- रुपये प्रति माह को दुर्घटना के वर्ष में कंपाउंडर की आय नहीं माना जा सकता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि भविष्य में आय के नुकसान को देने का कोई सवाल ही नहीं है क्योंकि कानून ने इसकी सदस्यता नहीं ली है और दिया गया गुणक न्यायसंगत और उचित है। अधिवक्ता के अनुसार 12% पर दिया गया ब्याज अत्यधिक दिया जाता है। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि मामला 1997 से 2022 तक लंबित रहा और केवल 27.02.2023 को, अपील के ज्ञापन की एक प्रति प्रतिवादी को दी गई थी और इसलिए लक्कम्मा बनाम यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ए.आई.आर. 2021 एस.सी. 3301 के फैसले को देखते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि एम.वी. अधिनियम की धारा 171 के तहत ब्याज का आदेश उक्त अवधि के लिए नहीं दिया जाना चाहिए जहां बीमा कंपनी गलती पर नहीं थी और अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने मामले को बोर्ड पर सूचीबद्ध नहीं कराने और वर्ष 2023 तक नोटिस जारी करने में पूरी तरह से लापरवाही बरती।

7. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री माधव जैन और बीमा कंपनी के अधिवक्ता श्री ए.के. शुक्ल दो दावेदार जो संख्या में दो हैं, वे प्रोफार्मा उत्तरदाता हैं, हालांकि जिन्हें मूल रूप से दावेदार के रूप में पेश किया गया था, जिन्हें इस फैसले से भी फायदा होगा।

8. रु. 1200/- प्रतिमाह की आय को निम्न पक्ष पर नहीं कहा जा सकता है, इसे बनाए रखा जाता है, इस मासिक आय का 40% जोड़ना होगा। दुर्घटना के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी इसलिए सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम (2009)6 एस.सी.सी. 121 के निर्णय के अनुसार रु. 50,000/- गैर आर्थिक क्षति के लिए 17 का गुणक स्वीकार्य होगा।

8. इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजे की गणना नीचे दी गई है:

i. आय : रु.1200/-

ii. भविष्य की संभावनाओं के लिए प्रतिशत: 40% अर्थात् रु.480/-

iii. कुल आय : रु. 1200 + 480 = रु. 1680/-

iv. 1/3 की कटौती के बाद आय : रु. 1120/-

v. वार्षिक घाटा : रु. 1120 x 12 = रु. 13,440/-

vi- लागू गुणा: 17

vii- कुल हानि : 13, 440 x 17 रुपये = 2,28,480 रुपये

xii. गैर-आर्थिक शीर्ष के तहत राशि: रु.50,000/-

xiii. कुल मुआवजा : 2,78,480/-

9. यह इस न्यायालय को ब्याज दर के सबसे दिलचस्प प्रश्न पर ले जाता है क्योंकि 1992 से इस न्यायालय में कई मामले बिना नोटिस जारी किए लंबित हैं, बिना किसी मामले को एक बार भी सूचीबद्ध किए बिना, क्या यह रजिस्ट्री की ओर से मामलों को सूचीबद्ध करने और/या वकीलों की ओर से विफलता है। मैं इस बात की तह

में नहीं जाना चाहता लेकिन तथ्य यह है कि यह अपील 1997 से बीमा कंपनी को नोटिस जारी किए बिना लंबित पड़ी है। क्या बीमा कंपनी को ब्याज की भारी देयता के साथ दुखी किया जाना चाहिए। एम.वी. अधिनियम, 16988 की धारा 171 निम्नानुसार निर्धारित करती है: -

"171. ब्याज का अधिनिर्णय, जहां कोई दावा अनुज्ञात किया जाता है -- जहां कोई दावा अधिकरण इस अधिनियम के अधीन किए गए प्रतिकर के लिए दावे की अनुज्ञा देता है, वहां ऐसा अधिकरण निदेश दे सकेगा कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त साधारण ब्याज का संदाय भी ऐसी दर पर और ऐसी तारीख से किया जाएगा जो दावा करने की तारीख से पहले न हो, जैसा कि वह इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे।

10. बढ़ी हुई राशि पर ब्याज दावा याचिका दायर करने की तारीख से 7% होगा क्योंकि यह वर्ष 1997 में रैपो दर होगी। इसके बाद, उस अवधि के लिए जिसके लिए यह नोटिस दिए बिना भी लंबित रहा है, कुल राशि पर 2% की सीमांत ब्याज दर तय की जाएगी, उसके बाद, फिर से यह बीमा कंपनी को इस न्यायालय के समक्ष प्रतिनिधित्व करने की तारीख से 7% होगी।

11. चूंकि मामला लगभग 2 दशकों से लंबित है, इसलिए सावधि जमा में कोई राशि नहीं रखी जाएगी। अवयस्क बच्चे अब तक बालिग हो चुके होंगे, बेटियों की शादी हो चुकी होगी, उन्हें बुलाया जाएगा और उनके हिस्से के

अनुपात की राशि का भुगतान एवी पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012(1) जीएलएच (एस.सी.), 442 के फैसले के मददेनजर ट्रिब्यूनल द्वारा अकाउंट पेयी चेक द्वारा किया जाएगा।

12. जब मामले की सुनवाई हुई तो मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं दिया गया।

13. उपर्युक्त के मददेनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय और निर्णय पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर ब्याज के साथ अतिरिक्त राशि जमा करेगी जैसा कि ऊपर निर्देशित किया गया है।

14. ट्रिब्यूनल की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह पहले घाटे की न्यायमूर्ति फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। एवी पद्मा (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

15. श्रीमती हंसगुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, 2007(2) जीएलएच 291 में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष से वित्तीय

वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50 रुपये से अधिक है, (iii) के अंतर्गत बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194क (3)(ix) के अंतर्गत यथा उपबंधित 'स्त्रोत पर कर कटौती' शीर्ष के अंतर्गत समुचित राशि की कटौती करने की हकदार है और यदि ब्याज की राशि किसी वित्तीय वर्ष में 50,000/- रुपये से अधिक नहीं होती है तो इस अधिकरण की रजिस्ट्री को निदेश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाणपत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति प्रदान करे। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय ने आदेश संख्या 23 वर्ष 2001 (श्रीमती सुदेसना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य) से प्रथम अपील में समीक्षा आवेदन संख्या 1 वर्ष 2020 में राशि का वितरण करते समय दोहराया है।

16. अधिकरण द्वारा उपर्युक्त याचिका में यहां किए गए संशोधन के अनुसार तदनुसार नया अधिनिर्णय लिया जाए। राज्य में ट्रिब्यूनल इस न्यायालय के निर्देश का पालन करेंगे, जैसा कि यहां उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, इसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और एवी पद्मा (उपरोक्त) के फैसले को देखना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए इसे लागू किया जाना है।

17. ट्रिब्यूनल बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा। भारत संघ और

अन्य ने दिनांक 27.1.2022 के आदेश के तहत मुआवजा रखने के उद्देश्य के रूप में दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि 10 वर्ष बीत चुके हैं, इसलिए राशि बिना एफडीआर के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जाए।

18. रिकॉर्ड ट्रिब्यूनल को वापस भेजा जाए।

19. यह न्यायालय इस पुरानी अपील का निपटारा करने के लिए अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री माधव जैन और उत्तरदाताओं के अधिवक्ता श्री ए.के. शुक्ल का आभारी है।

(2023) 7 ILRA 84

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

प्रथम अपील से आदेश संख्या 613 वर्ष 2019

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

.....अपीलकर्ता

बनाम

अनिल कुमार एवं अन्य प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

आंचल मिश्रा

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

रवींद्र प्रताप सिंह

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम,
1988 - धारा 173 - मुआवज़े में वृद्धि -

मृतका की मृत्यु दुर्घटना में हुई - वह एक गृहिणी थी और उसकी आय चाय की दुकान से 5,000/- रुपये प्रति माह है - भविष्य की संभावनाओं की दिशा में 25 प्रतिशत जो 1,250/- रुपये प्रति माह होगी, आय ₹6,250/- प्रतिमाह हो जाएगी - इसमें से यदि 1/3 व्यक्तिगत व्यय के लिए घटा दिया जाए और इसे 2,100/- रुपये प्रति माह पूर्णांकित किया जाए, तो शुद्ध आय [6,250-2,100 रुपये] 4,150/- रुपये प्रति माह होगी। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय *सारला वर्मा (उपर्युक्त)* के अनुसार 15 का गुणक अपनाया गया, मुआवज़े की राशि ₹7,47,000/- होगी, जिसमें वैवाहिक सहचर्यता, संपत्ति की हानि और अंतिम संस्कार व्यय ₹70,000/- जोड़ने पर अंतिम पुरस्कार ₹8,17,000/- होगा - न्यायाधिकरण ने व्यक्तिगत खर्चों की कटौती नहीं की, इसके बावजूद न्यायाधिकरण ने वैवाहिक सहचर्यता, संपत्ति की हानि और अंतिम संस्कार व्यय के लिए ₹70,000/- की राशि प्रदान की और अंततः दावा कर्ताओं को ₹7,45,000/- की कुल राशि प्रदान की। (प्रस्तर 1 से 47)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह

1. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के तहत बीमा कंपनी मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-VI, जिला बाराबंकी द्वारा दावा याचिका संख्या-81 वर्ष 2018 में पारित दिनांक 07.08.2019 के पंचाट को चुनौती देते हुए अपील में आई है।

2. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री आंचल मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि 01.11.2016 को श्रीमती सुनीता की मृत्यु पर, एक दावा याचिका संख्या-81 वर्ष 2016 दायर की गई थी। दावा याचिका के कथन से संकेत मिलता है कि श्रीमती सुनीता पीछे की सवारी होने के नाते अपने पति अनिल कुमार के साथ अपनी मोटरसाइकिल पर यात्रा कर रही थी, जिसका संख्या- यूपी 32 एचएफ 8507 था। उक्त दंपती जहां मकरपुर पेट्रोल पंप, थाना-लोनी कटरा, जिला बाराबंकी के निकट पहुंचा था, वहीं दोषी ट्रक जिसका नं-यूपी 83 एच 9611 था, को लापरवाही से चलाया जा रहा था, ने उनकी गाड़ी को ठोकर मारी जिसके परिणामस्वरूप श्रीमती सुनीता को गंभीर चोटें आईं और उनकी मौके पर ही मौत हो गई।

3. आगे यह दलील दी गई कि श्रीमती सुनीता एक कुशल गृहिणी थीं और एक चाय स्टाल भी चला रही थीं और उक्त चाय स्टाल से प्रति माह 6,000/- रुपये कमाने में सक्षम थीं और उन्होंने घरेलू काम में योगदान दिया और इसका मूल्य 3,000/- रुपये प्रति माह था और परिणामस्वरूप नुकसान 9000/- प्रति माह रुपये दर्शाया गया था। मृतका के परिवार में उनके पति अनिल कुमार, बेटा प्रमोद कुमार और एक बेटा प्रिया हैं।

4. दावा याचिका का विरोध किया गया और दलीलों के आदान-प्रदान पर, ट्रिब्यूनल ने छह मुद्दों को तैयार किया। मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, ट्रिब्यूनल ने यह निष्कर्ष दिया कि जिस दुर्घटना के कारण श्रीमती सुनीता की मृत्यु हुई,

वह एक ट्रक यूपी 83 एच 9611 के तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। यह भी माना गया कि ट्रक का न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के साथ विधिवत बीमा किया गया था और इसके चालक के पास वैध और निर्वाह ड्राइविंग लाइसेंस था, हालांकि, मुआवजे की गणना करते समय, ट्रिब्यूनल ने 3,000 रुपये प्रति माह की अनुमानित आय को अपनाया, जिस पर भविष्य की संभावनाओं के लिए 25% जोड़ा गया था और यह देखते हुए कि मृतक की आयु 40 वर्ष थी, एक गुणक वर्ष 15 को अपनाया गया था और उसके बाद कंसोर्टियम के नुकसान, संपत्ति की हानि, अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 70,000/- रुपये की राशि जोड़ी गई थी और इस प्रकार दावेदारों-उत्तरदाताओं के पक्ष में 7% ब्याज के साथ 7,45,000/- रुपये की कुल राशि 07.08.2019 के पंचाट के माध्यम से दी गई है जिसे चुनौती दी जा रही है।

5. बीमा कंपनी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि ट्रिब्यूनल ने दो मामलों में गलती की है: -

(i) वैयक्तिक व्ययों के लिए कोई कटौती नहीं की गई है जो उस तरीके से स्पष्ट है जिसमें निर्गम संख्या-(vi) का निर्णय लिया जा चुका है।

(ii) अधिकरण ने गलत गुणक वर्ष 15 को अपनाने में भी गलती की है बल्कि गुणक वर्ष 14 को अपनाया जाना चाहिए था।

6. यह आगे विस्तार से बताया गया है कि चूंकि मृतक की किसी भी आय को साबित करने के लिए कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया

गया था, इसलिए, यहां तक कि जो कल्पित आय ली गई है, वह भी अधिक है और परिणामस्वरूप पंचाट को बढ़ाया जाता है और आवश्यक रूप से संशोधित करने की आवश्यकता होती है।

7. दावेदार-प्रतिवादी संख्या-1, 2 और 3 के अधिवक्ता श्री रवींद्र प्रताप सिंह ने उपरोक्त प्रस्तुतियों का विरोध किया है और आग्रह किया है कि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत दावा याचिका में प्राथमिक आवश्यकता ट्रिब्यूनल पर एक उचित और सम्मत मुआवजे का पता लगाने के लिए एक कर्तव्य डालती है।

8. यह आग्रह किया जाता है कि दावेदारों की ओर से विशिष्ट साक्ष्य का नेतृत्व किया गया था ताकि यह इंगित किया जा सके कि मृतका एक चाय की दुकान चला रही थी जहाँ से वह प्रति माह 6,000/- रुपये कमाती थी। आगे यह बताया गया है कि वह एक कुशल गृहिणी भी थी जिसने घर में योगदान दिया था और यह विशेष रूप से साक्ष्य सहित दावा याचिका में दलील दी गई थी और इसके बावजूद, ट्रिब्यूनल ने बिना किसी आधार के केवल 3,000 रुपये प्रति माह की काल्पनिक आय ली है और इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है कि मृतक एक चाय स्टाल चला रहा था और उससे उत्पन्न आय भी थी।

9. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतक की आयु 40 वर्ष मान ली गई है जिसे विशेष रूप से दावा याचिका में बताया गया था और साथ ही शव परीक्षण रिपोर्ट से पुष्टि की गई

थी और इसके खिलाफ कोई विरोधाभासी सामग्री नहीं थी और इस प्रकार सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के डिकटम के अनुसार 40 वर्ष की आयु में, (2009)6 एस.सी.सी. 121, अपनाया जाने वाला उपयुक्त गुणक 15 है जिसे दावा अधिकरण द्वारा नोट किया गया है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिकरण ने गलत गुणक को अपनाने में गलती की है।

10. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इस तथ्य के अलावा चूंकि श्रीमती सुनीता की दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी और वह अपने पति और दो बच्चों को छोड़ गई थी, तदनुसार, मैग्मा जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1546 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में कंसोर्टियम को सम्मानित किया जाना चाहिए था, अर्थात यह कहना कि पति संघ का हकदार होगा और दोनों बच्चे हकदार थे अधिकरण द्वारा इस पहलू की अनदेखी की गई है।

11. यह भी बताया गया है कि पूर्वोक्त परिस्थिति में यदि मृतक की उचित आय ली गई थी, इस तथ्य के साथ युग्मित कि उपयुक्त कंसोर्टियम प्रदान किया जाता है, तो ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई राशि न्यायसंगत और उचित होगी और फिर भी यदि व्यक्तिगत खर्चों के लिए समायोजन किया जाता है तो अपीलीय न्यायालय को हस्तक्षेप करने के लिए राजी करने की मात्रा में बहुत अंतर नहीं होगा जो पर्याप्त न्याय और उचित और पर्याप्त

मुआवजा दिया गया है। इसलिए, पंचाट केवल गणितीय गणना या तकनीकी कारणों से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

12. जवाब में, बीमा कंपनी के अधिवक्ता ने बताया है कि यह बीमा कंपनी की अपील है जो पूर्वोक्त मामलों पर पंचाट की मात्रा का आकलन कर रही है। दावेदारों-प्रतिवादियों ने न तो कोई अपील दायर की है और न ही कोई आपत्ति दायर की है और इस प्रकार उन्हें इस आधार पर पंचाट में वृद्धि के लिए कोई भी सबमिशन करने से रोका जाता है कि ट्रिब्यूनल ने मृतक की उचित आय नहीं ली है और कंसोर्टियम को भी उचित रूप से प्रदान नहीं किया गया है। अतिरिक्त, प्रतिवादी विवाद नहीं करते हैं कि ट्रिब्यूनल को व्यक्तिगत खर्चों के प्रति समायोजन करना चाहिए था, जो नहीं किया गया है, फलस्वरूप, अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

13. न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन भी किया है।

14. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों के प्रकाश में, प्रस्तुत अपील में इस न्यायालय के विचार के लिए जो मुद्दे उठते हैं, वे हैं: -

(i) क्या दावेदारों द्वारा दायर आदेश 41 नियम 22 सी.पी.सी. के तहत किसी भी क्रॉस अपील के अभाव में, यह न्यायालय दावेदारों के इशारे पर पंचाट की वृद्धि के संबंध में प्रस्तुतियों पर विचार कर सकता है, जबकि यह बीमा कंपनी है जिसने पंचाट को अधिक होने के आधार पर चुनौती दी है।

(ii) क्या अधिकरण द्वारा यथा निर्धारित राशि उचित मुआवजा है?

15. उपर्युक्त दो मुद्दों का उत्तर देने के लिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 में निहित कुछ वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देना आवश्यक होगा।

16. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 165 दावा अधिकरण के गठन का प्रावधान करती है और मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 मुआवजे के लिए आवेदन करने के तरीके से संबंधित है।

17. पूर्वोक्त अधिनियम के मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 169 दावा अधिकरण की प्रक्रिया और शक्तियों के लिए प्रदान करती है और यह विशेष रूप से प्रदान करती है कि धारा 168 के तहत जांच करने में, दावा अधिकरण किसी भी नियम के अधीन हो सकता है जो इस संबंध में बनाया जा सकता है ऐसी सारांश प्रक्रिया का पालन कर सकता है जैसा कि वह उचित समझता है और इसके पास साक्ष्य लेने के उद्देश्य से शपथ और गवाह की उपस्थिति को लागू करने और दस्तावेजों के उत्पादन की खोज को मजबूर करने के लिए दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी।

18. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 168 में विशेष रूप से प्रावधान है कि अधिनियम की धारा 166 के तहत किए गए मुआवजे के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, दावा अधिकरण बीमाकर्ता और संबंधित पक्षों को

नोटिस देने के बाद और सुनवाई का कोई अवसर देने के बाद, दावे की जांच कर सकता है और मुआवजे की राशि का निर्धारण कर सकता है जो उचित प्रतीत होता है और व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्दिष्ट कर सकता है मुआवजा किसे देय होगा और वह राशि भी निर्दिष्ट करेगा जो दुर्घटना में शामिल वाहन के मालिक या बीमाकर्ता या चालक द्वारा या सभी के द्वारा, जैसा भी मामला हो, भुगतान किया जाएगा।

19. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के तहत उच्च न्यायालय में पंचाट के खिलाफ अपील की जाती है। उत्तर प्रदेश राज्य में सरकार ने उत्तर प्रदेश मोटर यान नियमावली, 1998 तैयार की है और दावों से संबंधित मामले नियम 204 से 222 के अध्याय 9 में शामिल किए गए हैं।

20. यह भी देखा जाएगा कि दावा अधिकरण का प्राथमिक कर्तव्य एक उचित और सम्मत मुआवजे का पता लगाने और उस पर पहुंचने के लिए जांच करना है। इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, जांच अवधारित की जाती है और पक्षों के लिए ट्रिब्यूनल को उचित मुआवजे पर पहुंचने में मदद करने के लिए अपने साक्ष्य का नेतृत्व करना खुला है। एक बार, ट्रिब्यूनल द्वारा एक मुआवजा निर्धारित किया गया है, यह या तो पक्षों में से किसी के लिए भी अपील दायर करके पंचाट को स्वीकार करने या चुनौती देने के लिए खुला है।

21. ट्रिब्यूनल द्वारा पारित पंचाट क्वांटम सहित विभिन्न मामलों पर एक पीड़ित पक्ष

द्वारा चुनौती दी जा सकती है। यदि किसी पक्षकार (दावेदार के अलावा) द्वारा किसी आधार पर अपील दायर की गई है तो यदि दावेदार पंचाट की गई राशि से असंतुष्ट हैं, तो उन्हें हमेशा यह अधिकार है कि वे या तो अलग अपील दायर करके या आदेश 41 नियम 22 सी.पी.सी. के तहत क्रॉस आपत्ति दायर करके पंचाट में वृद्धि की मांग कर सकते हैं।

22. जहां एक पक्ष (दावेदार के अलावा) अपीलीय न्यायालय और दावेदार के समक्ष मुआवजे की मात्रा के आधार पर पूरी तरह से पंचाट पर हमला करता है, जिसके पास क्रॉस आपत्ति दाखिल करने का अधिकार है, लेकिन वह कोई क्रॉस-ऑब्जेक्शन या क्रॉस अपील दायर नहीं करता है, तो स्थिति बदल जाएगी। ऐसी स्थिति में क्या अपीलीय न्यायालय को केवल सीमित मापदंडों के भीतर अपील का आकलन और जांच करने की आवश्यकता है, जैसा कि अपीलकर्ताओं द्वारा मात्रा पर निर्णय का विरोध करने का आग्रह किया गया है या यह अपीलीय न्यायालय के लिए खुला है, यदि अपील की सुनवाई के दौरान, यह पाता है कि ट्रिब्यूनल द्वारा मुआवजा उचित रूप से नहीं दिया गया है, तो क्या वह उस मुआवजे की तुलना में इतना अधिक मुआवजा दे सकता है जो कि अधिकरण और जिस पर पहले से ही हमला किया जा चुका है और अपील में इसे चुनौती दी जा रही है।

23. उक्त प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए, इस विषय पर कुछ निर्णयों पर एक नज़र डालना उचित होगा। न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रिशा देवी और अन्य में इस

न्यायालय की एक डिवीजन बेंच; 2017 (3) एडीजे 685 ने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 33 के प्रावधानों के संदर्भ में इस मुद्दे पर विचार किया और उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है: -

"18. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिया गया दूसरा तर्क कि दावेदार द्वारा क्रॉस-अपील के अभाव में बीमा कंपनी द्वारा दायर अपील में मुआवजे की राशि को बढ़ाया नहीं जा सकता है, वह भी बिना किसी बल के है।

19. अपील न्यायालय की शक्ति निर्धारित करने वाली सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 33 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अपीलीय न्यायालय के पास कोई डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी जिसे पारित किया जाना चाहिए था, जैसा कि मामला अपेक्षित हो, और इस शक्ति का प्रयोग सभी या किसी प्रतिवादी या पक्षकारों के पक्ष में किया जा सकता है, हालांकि वे कोई अपील या आपति दर्ज नहीं कर सकते हैं। संहिता का आदेश XLI नियम 33 निम्नानुसार है:

"33. अपील न्यायालय की शक्ति - अपीलीय न्यायालय को कोई डिक्री पारित करने और कोई आदेश देने की शक्ति होगी जो पारित की गई है या की जानी चाहिए थी और ऐसी आगे या अन्य डिक्री या आदेश पारित करने या

बनाने की शक्ति होगी जैसा कि मामला अपेक्षित हो, और इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा इस बात के होते हुए भी किया जा सकेगा कि अपील डिक्री के केवल भाग के रूप में है और सभी के पक्ष में प्रयोग की जा सकेगी या उत्तरदाताओं या पक्षों में से कोई भी, हालांकि ऐसे उत्तरदाताओं या पक्षों ने कोई अपील या आपति दायर नहीं की हो सकती है [कोई भी, जहां क्रॉस-वाद में डिक्री हुई है या जहां एक वाद में दो या दो से अधिक डिक्री पारित की गई हैं, सभी या किसी भी डिक्री के संबंध में प्रयोग किया जा सकता है, हालांकि इस तरह के डिक्री के खिलाफ अपील दायर नहीं की जा सकती है]

[परन्तु अपीलीय न्यायालय धारा 35-क के अधीन किसी ऐसी आपति के अनुसरण में कोई आदेश नहीं करेगा जिस पर उस न्यायालय ने, जिसकी डिक्री से अपील की जाती है, ऐसा आदेश देने का लोप कर दिया है या मना कर दिया है।

20. आदेश XLI नियम 33 सी.पी.सी. के प्रावधानों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा महंत धनगीर बनाम मदन मोहन, 1987 पूरक एस.सी.सी. 528: ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 54 के मामले में निम्नलिखित शब्दों में समझाया गया था:

"नियम 33 के तहत शक्ति का स्वीप न केवल अपीलकर्ता और प्रतिवादी के

बीच, बल्कि प्रतिवादी और सह-उत्तरदाताओं के बीच किसी भी प्रश्न को निर्धारित करने के लिए पर्याप्त है। अपीलीय न्यायालय कोई भी डिक्री या आदेश पारित कर सकता है जिसे मामले की परिस्थितियों में पारित किया जाना चाहिए था। अपीलीय अदालत इस तरह के अन्य डिक्री या आदेश भी पारित कर सकती है जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है। नियम 33 आदेश 41 में प्रयुक्त शब्द "जैसा कि मामला अपेक्षित हो सकता है" को व्यापक मायनों में रखा गया है ताकि अपीलीय न्यायालय न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कोई आदेश या डिक्री पारित कर सके। फिर क्या बाधा होनी चाहिए? हमें कोई नहीं मिलती हैं। हम कोई उदार व्याख्या नहीं कर रहे हैं। नियम अपने आप में काफी उदार है। एकमात्र बाधा जो हम देख सकते हैं, वह ये हो सकती है: कि निचली अदालत के समक्ष पक्षकार अपीलीय न्यायालय के समक्ष होने चाहिए। उठाया गया प्रश्न निचली अदालत के फैसले से उचित रूप से उत्पन्न होना चाहिए। यदि ये दो आवश्यकताएं हैं, तो अपीलीय न्यायालय निचली अदालत के निर्णय या डिक्री के किसी भी हिस्से के खिलाफ किसी भी आपत्ति पर विचार कर सकता है। अपील के लिए किसी भी पक्ष द्वारा आग्रह किया जा सकता है। यह सच है कि नियम 33 के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्ति

विवेकाधीन है। लेकिन यह पक्षों के बीच पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए आग्रह किए गए सभी प्रश्नों को निर्धारित करने के लिए न्यायिक विवेक का एक उचित अभ्यास है। न्यायालय को केवल तकनीकी पहलुओं पर उस विवेक का प्रयोग करने से इनकार नहीं करना चाहिए।

21. दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाइ अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी, (1999)8 एस.सी.सी. 229: ए.आई. आर. 2000 एस.सी.43 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बाद के फैसले में उसी विचार को फिर से दोहराया गया है।

22. हमारा विचार है कि आदेश XLI नियम 33 के प्रावधानों में निर्धारित शर्तें प्रस्तुत मामले में संतुष्ट हैं। दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाइ अंडरटेकिंग (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि जब ऐसी परिस्थितियां मौजूद होती हैं जिनके लिए नियम 33 द्वारा प्रदत्त विवेक के प्रयोग की आवश्यकता होती है, तो अदालत को अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में कमी नहीं पाई जा सकती है।

23. इस प्रकार अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा इस संबंध में दिए गए तर्क में खड़े होने के लिए कोई बल नहीं है और ये बनाए रखने योग्य नहीं है।

24. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती नीलम जायसवाल और अन्य में इस न्यायालय के समक्ष इसी तरह का मुद्दा उठाया गया था; 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन (इला) 85 जिसमें मुद्दा यह था कि क्या बीमा कंपनी द्वारा मात्रा के अलावा किसी अन्य आधार पर अपील की गई अपील में और दावेदारों द्वारा किसी भी क्रॉस अपील के अभाव में क्या न्यायालय आदेश 41 नियम 22 सी.पी.सी. और आदेश 41 नियम 33 सी.पी.सी. के तहत प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में राशि बढ़ाने में न्यायसंगत होगा। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की सहायता से न्यायालय द्वारा इस पर विस्तार से विचार किया गया और अंत में इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया:

"28. पूर्वोक्त स्थिति को देखने के लिए एक और कोण है। रेशा देवी (उपरोक्त) के मामले में उत्तरदाताओं के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय में यह देखा जाएगा कि अपील बीमा कंपनी द्वारा दायर की गई थी। बीमा कंपनी के अधिवक्ता की प्रस्तुति डिवीजन बेंच के फैसले के पैरा-4 में नोट की गई है और इसके अवलोकन से, यह इंगित करेगा कि बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए माननीय डिवीजन बेंच के समक्ष प्रश्न मात्रा पर था; क्योंकि यह तर्क दिया गया था कि

ट्रिब्यूनल द्वारा अपनाया गया गुणक उच्च पक्ष पर था और तदनुसार मुआवजा अत्यधिक था।

29. यह पूर्वोक्त परिस्थिति में है, जहां मात्रा का प्रश्न डिवीजन बेंच के समक्ष था और ऐसी परिस्थिति में इस तथ्य पर विचार करते हुए कि डिवीजन बेंच ने पाया कि पंचाट निचली तरफ था, आदेश 41 नियम 33 सी.पी.सी. के तहत शक्ति लागू की थी और गैर-आर्थिक क्षति को जोड़कर पंचाट को बढ़ाया है। इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि डिवीजन बेंच के समक्ष तथ्य पूरी तरह से अलग थे; चूंकि मात्रा का मुद्दा विशेष रूप से बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए उच्च न्यायालय के समक्ष था और अपील के रूप में कार्यवाही की निरंतरता है और ट्रिब्यूनल को मुआवजे का पता लगाने के लिए एक जांच करने की आवश्यकता है जो उचित और निष्पक्ष है, इसलिए उपरोक्त परिस्थितियों में जहां डिवीजन बेंच इस निष्कर्ष पर पहुंची कि बीमा कंपनी यह तर्क दे रही थी कि पंचाट अत्यधिक था, लेकिन यह पाया गया कि यह निचली तरफ (कम स्तर पर) था, इसलिए दावेदारों द्वारा क्रॉस अपील दायर नहीं करने के बावजूद पर्याप्त न्याय करने के लिए डिवीजन बेंच ने आदेश 41 नियम 33 सी.पी.सी. के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया और इसे बढ़ाया।

25. यह न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल होगा यदि इसने सौरभ जैन बनाम एबीपी डिजाइन में आदेश 41 नियम 22 सी.पी.सी. और आदेश 41 नियम 33 सी.पी.सी. के तहत अपीलीय न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के फैसले 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन 552 पर ध्यान नहीं दिया; जिसमें मुद्दा यह था कि क्या बेहतर न्यायालय एक प्रतिकूल निष्कर्ष पर विचार कर सकता है, भले ही एक क्रॉस आपति दायर नहीं किया गया हो और इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"27. उपरोक्त अधिकारियों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि सी.पी.सी. के आदेश XLI नियम 22 में निर्धारित सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत याचिकाओं पर लागू किया जा सकता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत न्याय करने के लिए इस न्यायालय की व्यापक शक्तियां हैं। चूंकि सी.पी.सी. के आदेश XLI नियम 22 में सिद्धांत 'पीड़ित पक्ष' के अलावा अन्य पक्ष को उनके खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए प्रदान करके न्याय के कारण को आगे बढ़ाता है, इसलिए यह न्यायालय आदेश XLI नियम 22 सी.पी.सी. से रंग निकाल सकता है और

निष्कर्षों पर आपतियों की अनुमति दे सकता है।

28. उपर्युक्त से यह स्थापित किया गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि निचली अदालत के प्रतिकूल निष्कर्षों को चुनौती देने के लिए प्रति-आपति के ज्ञापन के रूप में बनाया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, हम ध्यान दें कि अपीलकर्ता ने इस आधार पर मुकदमे पर विचार करने के लिए विचारण न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर आपति जताई थी कि यहाँ निषेधाज्ञा और घोषणात्मक राहत नहीं दी जा सकती थी। हालांकि विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के पक्ष में एक डिक्री पारित की, लेकिन उसने अधिकार क्षेत्र के सवाल पर अपीलकर्ता के खिलाफ फैसला सुनाया था। इस निष्कर्ष को अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष प्रति-आपति के ज्ञापन के रूप में चुनौती नहीं दी गई थी। उच्च न्यायालय के फैसले में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि अपीलकर्ता या एमडीए द्वारा अधिकार क्षेत्र की कमी की दलील दी गई थी। इस अदालत के सामने, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष दायर जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया है। इस प्रकार, हमारे सामने रिकॉर्ड से जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि क्षेत्राधिकार का आधार केवल अपीलकर्ता द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष उठाया गया था, न कि उच्च न्यायालय के समक्ष। वास्तव में, इस न्यायालय को एक याचिका पर निर्णय लेना होगा, जो हमारे सामने चुनौती में उच्च न्यायालय के निर्णय का हिस्सा नहीं थी।

29. अनुच्छेद 136 के तहत एक विशेष अनुमति याचिका में इस न्यायालय के समक्ष उठाए जा रहे नए आधारों के संबंध में, हम ध्यान देते हैं कि उच्चतम न्यायालय नियम 2013 के आदेश 21 नियम 3(सी) के तहत, एसएलपी को अदालत के समक्ष दलीलों तक ही सीमित रखा जाना है, जिसके आदेश को चुनौती दी गई है। हालांकि, अदालत की अनुमति के साथ, सुनवाई के समय अतिरिक्त आधार का आग्रह किया जा सकता है।

*****-----*****

32. मोस्ट रेव पीएमए मेट्रोपॉलिटन बनाम मोरन मार मार्थोमा 17 में भी, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने सी.पी.सी. की धारा 9 के तहत मुकदमे की विचारणीयता के रूप में एक आपति पर विचार किया, इसके बावजूद कि याचिका निचली अदालतों के समक्ष नहीं उठाई गई थी। न्यायालय ने कहा कि किसी भी स्तर पर बार या अधिकार क्षेत्र की कमी की दलील पर विचार किया जा सकता है, क्योंकि अधिकार क्षेत्र के बिना पारित आदेश या डिक्री कानून में कोई नहीं है।

*****-----*****

34. कानून की स्थिति के आधार पर, हम इसे अपीलकर्ता को हमारे सामने अधिकार क्षेत्र के आधार को उठाने की अनुमति देने के लिए पाते हैं। जमीन को उठाने की अनुमति देने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि यह कानून का एक शुद्ध प्रश्न है और मामले के कोर पर हमला करता है। अब हम इस तर्क के गुणों की ओर मुड़ेंगे। “

26. प्रस्तावों के लाभप्रद पठन से, जैसा कि ऊपर विचार किए गए निर्णयों में देखा गया है, जाहिरा तौर पर, जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह यह तथ्य है कि एक बार किसी भी पक्ष द्वारा अपीलीय न्यायालय के समक्ष मुआवजे/मात्रा का मुद्दा उठाया गया है, तो अपीलीय न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य हो जाता है कि मुआवजा पर्याप्त रूप से और उचित रूप से दिया गया है या नहीं। मोटर वाहन अधिनियम के तहत दावा याचिका पर विचार करने के पीछे का पूरा लोकाचार न्यायसंगत और उचित मुआवजा देना है। इसे इस संदर्भ में देखा जाना चाहिए कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, मुआवजा कम नहीं होना चाहिए, लेकिन साथ ही यह दावेदारों के लिए एक बोनस भी नहीं होना चाहिए। इन दो बाहरी परिधि के भीतर, यह ट्रिब्यूनल का कर्तव्य है और इसलिए अपीलीय न्यायालय के लिए भी एक सही लेंस और परिप्रेक्ष्य के साथ क्वांटम के मुद्दे का न्याय करना है ताकि दावेदारों को उचित और सम्मत मुआवजा दिया जाए जो व्यावहारिक और वास्तविकता के करीब है।

27. उपरोक्त विचार किए गए निर्णयों की सुर्खियों में, इस न्यायालय की स्पष्ट राय है कि जहां किसी भी पक्ष द्वारा अपील दायर की जाती है, दावेदारों के अलावा, जो भी आधार पर मात्रा पर हमला करता है, ऐसे मामले में, भले ही, दावेदार ने क्रॉस आपति या वृद्धि के लिए एक अलग अपील दायर नहीं की हो फिर भी, यह देखना अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया मुआवजा न्यायसंगत और उचित है। इसका निर्धारण

करते समय, भले ही, अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई राशि कम है, उसके पास किसी भी क्रॉस आपति के अभाव में भी पंचाट को बढ़ाकर उचित और न्यायसंगत मुआवजा देने का सभी अधिकार क्षेत्र है, क्योंकि अपीलकर्ता जो न्यायालय के समक्ष है, पहले ही मात्रा का मुद्दा उठा चुका है और अपीलकर्ता के तर्कों/तर्कों पर विचार कर रहा है। अपीलीय न्यायालय को मात्रा के संबंध में अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना है जो तब ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई राशि से अधिक राशि भी प्रदान कर सकता है। ऐसी स्थिति में, अपीलकर्ता के लिए यह कहना खुला नहीं है कि राशि को बढ़ाया नहीं जा सकता क्योंकि पंचाट को कोई चुनौती नहीं दी गई है। इस तथ्य पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है कि अधिनिर्णय की मात्रा को चुनौती दी गई है और इस पर निर्णय लिया जाना है और उपयुक्त मामले में, अपीलीय न्यायालय न्यायोचित और उचित मुआवजा प्रदान करने के लिए ऐसे आदेश पारित करने के लिए अपने भंडार में शक्तियों का उपयोग कर सकता है।

28. इस प्रकार, अपीलीय न्यायालय इस तरह के क्रम को अपनाने में न्यायसंगत होगा। तथापि, यह पूरी तरह से एक अलग स्थिति होगी जहां पंचाट को क्वांटम के अलावा, किसी अन्य आधार पर चुनौती दी जाती है फिर, जबकि दावेदारों ने कोई क्रॉस आपति दर्ज नहीं की है, फिर बहस के दौरान मुआवजे में वृद्धि के बारे में मुद्दा यदि दावेदारों के इशारे पर किया जाता है, अपीलीय न्यायालय इस पर विचार करने से इनकार कर सकता है जब तक

कि दावेदार द्वारा एक स्पष्ट मामला नहीं बनाया जाता है, जो आदेश 41 नियम 33 सी.पी.सी. के मापदंडों के भीतर अपने मामले को लाकर किसी भी अपील या क्रॉस अपील को दायर करने में विफल रहे थे, जैसा कि सौरभ जैन (उपरोक्त), रिशा देवी (उपरोक्त) और नीलम जायसवाल (उपरोक्त) में निर्णय की सहायता से ऊपर चर्चा की गई थी।

29. इस मुद्दे को एक और दृष्टि से देखा जा सकता है, जहां बीमा कंपनी मुआवजे के अनुदान पर अपील दायर करती है, दावेदार को क्रॉस अपील या क्रॉस आपति दाखिल किए बिना भी उस राशि का बचाव करने का अधिकार है जो पहले ही ट्रिब्यूनल द्वारा दी जा चुकी है। मामले में यदि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, दावेदार यह औचित्य साबित करने में सक्षम है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया मुआवजा न्यायसंगत और उचित है, दावेदार के लिए क्रॉस अपील या क्रॉस आपति दर्ज करना आवश्यक नहीं है। इस पहलू पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रंजना प्रकाश और अन्य बनाम मंडल प्रबंधक और अन्य में भी विचार किया गया है; (2011) 14 एस.सी.सी. 639 जिसमें पैराग्राफ संख्या-6 से 8 में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"6. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने दावेदारों के तर्कों को नजरअंदाज करके एक त्रुटि की है। यह सच है कि दावेदारों ने ट्रिब्यूनल के पंचाट को इस आधार पर चुनौती नहीं दी थी कि ट्रिब्यूनल भविष्य की संभावनाओं पर ध्यान देने और मृतक

की वार्षिक आय में 30% जोड़ने में विफल रहा था। लेकिन दावेदारों को 23,134 रुपये मासिक आय के रूप में लिए जाने से कोई परेशानी नहीं हुई। इसलिए ट्रिब्यूनल के फैसले को चुनौती देने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन जहां मालिक/बीमाकर्ता द्वारा दायर अपील में, यदि उच्च न्यायालय ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे को कम करने का प्रस्ताव करता है, तो दावेदार निश्चित रूप से ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे की मात्रा का बचाव कर सकते हैं, पंचाट में अन्य त्रुटियों या चूक को इंगित करके, जिस पर ध्यान दिया जाता है, यह दर्शाता है कि मुआवजे के रूप में दी गई राशि को कम करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, मालिक/बीमाकर्ता द्वारा अपील में, अपीलकर्ता निश्चित रूप से एक विवाद रख सकता है कि यदि किसी भी कारण से आय से 30% काटा जाना है, तो 30% भविष्य की संभावनाओं के लिए भी जोड़ा जाना चाहिए, ताकि दिया गया मुआवजा कम न हो। तथ्य यह है कि दावेदारों ने स्वतंत्र रूप से पंचाट को चुनौती नहीं दी थी, इसलिए ये अन्य आधारों पर उनके बचाव के रास्ते में नहीं आएगा। इसका मतलब केवल यह होगा कि मालिक/बीमाकर्ता द्वारा अपील में, दावेदार किसी भी क्रॉस-अपील या क्रॉस-ऑब्जेक्शन के अभाव में किसी भी नए आधार पर आग्रह करके मुआवजे में वृद्धि की मांग करने के हकदार नहीं होंगे।

7. यह सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 से भी प्रवाहित होता है जो एक अपीलीय अदालत को किसी भी आदेश को पारित करने में सक्षम बनाता है जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया जाना चाहिए था और इस तरह के आगे या अन्य आदेश देने के लिए जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है, भले ही प्रतिवादी ने कोई अपील या क्रॉस-ऑब्जेक्शन दायर नहीं किया हो। यह शक्ति अपीलीय अदालत को सौंपी गई है ताकि वह पक्षों के बीच पूर्ण न्याय कर सके। आदेश 41 नियम 33 हालांकि पंचाट को अधिक प्रभावी बनाने या अन्य आधारों पर पंचाट को बनाए रखने या लाभ या दायित्व साझा करने के लिए मुकदमेबाजी के लिए अन्य पक्षों को बनाने के लिए सेवा में रखा जा सकता है, लेकिन बड़ी या उच्च राहत प्राप्त करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जहां दावेदार वाहन के मालिक और बीमाकर्ता के खिलाफ मुआवजे की मांग करते हैं और ट्रिब्यूनल केवल मालिक के खिलाफ पंचाट देता है, मालिक द्वारा क्वांटम को चुनौती देने की अपील पर, अपीलीय अदालत बीमाकर्ता को संयुक्त रूप से और मालिक के साथ, अलग-अलग मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बना सकती है, भले ही दावेदारों ने बीमाकर्ता के खिलाफ राहत न देने को चुनौती नहीं दी हो, जैसा भी हो।

8. जहां मुआवजे की मात्रा को चुनौती देते हुए अपील दायर की जाती है, चाहे अपील कोई दायर करे, उच्च न्यायालय के लिए उपयुक्त प्रक्रिया तथ्यों की जांच करना और प्रासंगिक सिद्धांतों को लागू करके, उचित मुआवजे का निर्धारण करना है। यदि इसके द्वारा निर्धारित मुआवजा ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे से अधिक है, तो यदि यह दावेदारों द्वारा है, उच्च न्यायालय अपील की अनुमति देगा; और यदि यह मालिक / बीमाकर्ता द्वारा है, अपील को खारिज कर देगा। इसी प्रकार, यदि उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मुआवजा ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे से कम है, तो उच्च न्यायालय दावेदारों द्वारा वृद्धि के लिए किसी भी अपील को खारिज कर देगा, लेकिन मालिक/बीमाकर्ता द्वारा कटौती के लिए किसी भी अपील की अनुमति देगा। उच्च न्यायालय स्पष्ट रूप से मुआवजे को कम करने के लिए मालिक/बीमाकर्ता द्वारा अपील में मुआवजे को बढ़ा नहीं सकता है, न ही यह मुआवजे को बढ़ाने की मांग करने वाले दावेदारों द्वारा अपील में मुआवजे को कम कर सकता है।

30. कानूनी चश्मे के माध्यम से प्रकाश (तथ्यों) को देखने के बाद, यह न्यायालय पंचाट की मात्रा की जांच करने के लिए इच्छुक है कि क्या ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई राशि न्यायसंगत और निष्पक्ष है और यदि यह पाया जाता है कि राशि कम है तो न्यायालय इसे

बढ़ाने में न्यायसंगत होगा और यदि अपीलकर्ता का तर्क सही प्रतीत होता है तो न्यायालय के पास भी मुआवजे को कम करने के लिए शक्ति है और यदि मुआवजा उचित और सम्मत है, तो न्यायालय हस्तक्षेप करने से इनकार भी कर सकता है। इस प्रकार, पहले मुद्दे का उत्तर सकारात्मक में दिया जाता है।

31. पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत मामले के तथ्यों पक्षों के लिए अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रस्तुतियाँ के विपरीत में देखा जाता है, तो यह बीमा कंपनी द्वारा मात्रा का आकलन करने के लिए एकमात्र आधार है कि वहाँ व्यक्तिगत खर्च की ओर कोई कटौती की गई है कि पाया जाएगा और गुणक उच्च पक्ष पर है और ट्रिब्यूनल ने बजाय 14 के 15 के गुणक वर्ष को अपनाने में गलती की है।

32. दूसरी ओर, दावेदारों के अधिवक्ता की दलील यह है कि मृतक एक चाय स्टाल चलाने में लगी हुई थी और उक्त उद्यम से प्रति माह 6,000/- रुपये कमा रहा थी और एक कुशल गृहिणी के रूप में घर में भी योगदान दे रहा थी। ट्रिब्यूनल ने पाया कि मृतक द्वारा चाय की दुकान चलाने के बारे में कोई दस्तावेजी सबूत नहीं था और यह देखते हुए कि दावाकर्ता-गवाह ने कहा था कि चाय की दुकान मृतक के पति अनिल कुमार द्वारा चलाई जा रही थी, परिणामस्वरूप, इसने केवल 3,000 रुपये प्रति माह की काल्पनिक आय को अपनाया।

33. शुरुआत में, एक सिद्धांत के रूप में यह सच है और सही है कि मुआवजे का निर्धारण

करते समय एक ट्रिब्यूनल को व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती करने की भी आवश्यकता होती है। अब, यह कहने के बाद, यह जांचना सार्थक होगा कि क्या न्यायालय ने अनुमानित आय के रूप में प्रति माह 3,000/- रुपये के आंकड़े पर पहुंचने के लिए रिकॉर्ड पर उपलब्ध भौतिक साक्ष्य की सही का मूल्यांकन किया है।

34. दावा याचिका के अवलोकन से, यह इंगित करता है कि यह स्पष्ट रूप से दलील दी गई है कि मृतक एक चाय स्टाल चला रही थी और उक्त उद्यम से लगभग 6,000/- रुपये प्रति माह कमा रही थी। एक कुशल गृहिणी होने के नाते उनके योगदान के रूप में 3,000/- रुपये लिए गए हैं और इस प्रकार याचिका में दावा की गई राशि 9,000/- रुपये प्रति माह के आधार पर है।

35. दावेदारों की ओर से, मृतक के पुत्र प्रमोद कुमार की जांच की गई और अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा और दोहराया कि उनकी मां एक कुशल गृहिणी थीं और एक चाय स्टाल चलाती थीं जहां से वह प्रति माह 6,000/- रुपये कमा रही थीं और परिवार के लिए रोटी कमाने वाली भी थीं। जिरह के दौरान उनसे एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया जिसमें उन्होंने अपने बयान को दोहराया और सकारात्मक रूप से पुष्टि की कि उनकी मां चाय की दुकान चला रही थीं और वह उस से 6,000 रुपये कमाती थीं।

36. यह मृतक द्वारा चाय की दुकान चलाने और उससे प्रति माह 6,000/- रुपये की कमाई के तथ्य को इंगित करता है क्योंकि कोई

विपरीत साक्ष्य नहीं दिया गया था। हालांकि, ट्रिब्यूनल ने पंचाट में यह दर्ज करने में त्रुटि की कि दावेदार-गवाह द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि पिता यानी अनिल कुमार उपरोक्त चाय की दुकान चला रहे हैं और इसलिए यह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मृतक चाय की दुकान नहीं चला रही थी और मुआवजे की गणना के लिए प्रति माह 3,000 रुपये की अनुमानित आय को अपनाया।

37. इस स्तर पर, दावेदार-गवाह प्रमोद कुमार द्वारा जिरह में दिए गए बयान पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा कि उसकी मां एक चाय की दुकान चला रही थी और वह प्रति माह 6,000/- रुपये कमा रही थी और उसके पिता जीवित हैं और अब चाय की दुकान उसके पिता द्वारा चलाई जा रही है। बेहतर मूल्यांकन के लिए विवरण के प्रासंगिक भाग को तैयार संदर्भ के लिए पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

मेरी माता जी कुशल गृहिणी थी और चाय की दुकान चलती थी। मैं पढ़ाई करता हूँ। मेरे अलावा मेरी एक बहन प्रियायश सैनी हैं, जो अविवाहित हैं। पढ़ाई कर रही हैं। मेरे पिताजी अभी जीवित हैं। अब चाय की दुकान पिताजी चलते हैं। सारा खर्चा घर का इसी चाय की दुकान से चला था। इस समय भी चल रहा है।

38. यह उपरोक्त कथन इंगित करेगा कि दुर्घटना वर्ष 2016 में हुई थी जहां श्रीमती

सुनीता की मृत्यु हो गई थी लेकिन बयान वर्ष 2019 में दिया गया था। इस परिप्रेक्ष्य में, दावेदार गवाह का साक्ष्य दर्शाता है कि दावेदार-गवाह की मां एक अच्छी गृहिणी थी और एक चाय की दुकान चला रही थी। गवाह के पिता जीवित थे। उन्होंने कहा, अब (बल दिया गया) मेरे पिता चाय की दुकान चलाते हैं। यह कथन इंगित करता है कि दुर्घटना से पहले मृतका चाय की दुकान चला रही थी और उसकी मृत्यु के बाद पिता अनिल कुमार चाय की दुकान चला रहे थे। इस गवाही को खंडित करने या इस तथ्य का खंडन करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि सुनीता चाय की दुकान चला रही थी और वह इससे प्रति माह 6,000 रुपये कमाने में सक्षम थी।

39. अब, जहां तक एक गृहिणी के योगदान का संबंध है, मामले के इस पहलू को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कीर्ति और अन्य बनाम ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 2021 (2) एस.सी.सी. 166 में बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है। न्यायमूर्ति एन.वी रमना द्वारा लिखित पूरक लेकिन सहमति की राय में, और उसका प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है: -

17. स्थितियों की दो अलग-अलग श्रेणियां हैं जिनमें अदालत आमतौर पर पीड़ित की अनुमानित आय निर्धारित करती है। पहली श्रेणी उन मामलों से संबंधित है जिनमें पीड़िता कार्यरत थी, लेकिन दावेदार अदालत के समक्ष अपनी वास्तविक आय साबित करने में सक्षम नहीं हैं। ऐसी स्थिति में, अदालत रिकॉर्ड पर मौजूद

सबूतों के आधार पर पीड़िता की आय का "अनुमान" लगाती है, जैसे कि पीड़िता और उसके परिवार के जीवन की गुणवत्ता, उस क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति की सामान्य कमाई, पीड़ित की योग्यता, और अन्य विचार।

18. मामलों की दूसरी श्रेणी उन स्थितियों से संबंधित है जिसमें न्यायालय को एक गैर-कमाई पीड़ित, जैसे कि एक बच्चे, एक छात्र या एक गृहिणी की आय का निर्धारण करने के लिए कहा जाता है। कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसे मामलों में मुआवजे की मात्रा निर्धारित करना बेहद मुश्किल है।

*****-----*****.

20. गैर-कमाई पीड़ितों की एक श्रेणी जिसे अदालतों को अक्सर गृहिणियों के लिए मुआवजे की गणना करने के लिए कहा जाता है। आर्थिक आधार पर गृहिणियों के लिए मुआवजे का अनुदान, जैसा कि प्रस्तुत मामले में है, इस न्यायालय द्वारा पहले भी कई अवसरों पर विचार किया गया है। लता वाधवा बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने यह निर्णय दिया था। बिहार राज्य [लता वाधवा बनाम बिहार राज्य, (2001)8 एस.सी.सी. 197] ने एक समारोह के दौरान आग के पीड़ितों के लिए मुआवजे से निपटते हुए, गृहिणियों को घर में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और उनकी उम्र के आधार पर

मुआवजा दिया। इस न्यायालय ने, उस मामले में, निम्नानुसार अवधारित किया: (एस.सी.सी. पीपी 209-10, पैरा-10)

"10. जहां तक मृतक गृहिणियों का संबंध है, किसी भी डेटा के अभाव में और जैसा कि गृहिणियां कोई आय अर्जित नहीं कर रही थीं, उनके द्वारा घर को प्रदान की गई सेवाओं के आधार पर मुआवजे का निर्धारण करने का प्रयास किया गया है। गृहिणियों के आयु वर्ग के आधार पर, उपयुक्त गुणक लागू किया गया है, लेकिन गृहिणियों द्वारा घर को प्रदान की जाने वाली सेवाओं के मूल्य का अनुमान, जो कुछ के मामलों में 12,000 रुपये प्रति वर्ष और दूसरों के लिए 10,000 रुपये है, हमें बहुत कम प्रतीत होता है। यह सच है कि जिन दावेदारों को मुआवजे के निर्धारण के लिए डेटा देना चाहिए था, उन्होंने ऐसी गृहिणियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के मूल्य का अनुमान लगाने के लिए डेटा प्रदान करके किसी भी तरह से सहायता नहीं की। लेकिन इस तरह के आंकड़ों के अभाव में भी और पूरे परिवार के प्रबंधन के लिए गृहिणियों द्वारा प्रदान की जाने वाली विविध सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, यहां तक कि एक मामूली अनुमान पर भी, प्रति माह 3000 रुपये और 36,000 रुपये प्रति वर्ष होना चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)

*****-----*****

.....25. व्यक्तियों द्वारा घरेलू काम के लिए समर्पित समय और प्रयास की, जो पुरुषों की तुलना में महिलाओं की अधिक संभावना रखते हैं, आश्चर्य की बात नहीं है जब कोई एक गृहिणी द्वारा की जाने वाली गतिविधियों की अधिकता पर विचार करता है। एक गृहिणी अक्सर पूरे परिवार के लिए भोजन तैयार करती है, किराने का सामान और अन्य घरेलू खरीदारी की जरूरतों का प्रबंधन करती है, घर और उसके आसपास की सफाई और प्रबंधन करती है, सजावट, मरम्मत और रखरखाव का काम करती है, बच्चों की जरूरतों की देखभाल करती है और घर के किसी भी वृद्ध सदस्य, बजट का प्रबंधन करती है और बहुत कुछ। ग्रामीण परिवारों में, वे अक्सर मवेशियों की देखभाल के अलावा खेत में बुवाई, कटाई और रोपाई गतिविधियों में भी सहायता करते हैं [देखें अरुण कुमार अग्रवाल [अरुण कुमार अग्रवाल बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2010)9 एस.सी.सी. 218: (2010)3 एस.सी.सी. (सीआईवी) 664: (2010)3 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1313]; नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम दीपिका [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम दीपिका, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन मैड 828] हालांकि, उपरोक्त सभी के बावजूद,

यह धारणा कि गृहिणियां "काम" नहीं करती हैं या वे घर में आर्थिक मूल्य नहीं जोड़ते हैं, एक समस्याग्रस्त विचार है जो कई वर्षों से कायम है और इसे दूर किया जाना चाहिए।

*****-----*****-----*****

-----***

....30. इसलिए, एक गृहिणी के लिए अनुमानित आय तय करने का मुद्दा, अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करता है। यह उन महिलाओं की भीड़ की मान्यता है जो इस गतिविधि में लगी हुई हैं, चाहे वह पसंद से हो या सामाजिक/सांस्कृतिक मानदंडों के परिणामस्वरूप। यह बड़े पैमाने पर समाज को संकेत देता है कि कानून और देश की अदालतें गृहिणियों के श्रम, सेवाओं और बलिदानों के मूल्य में विश्वास करती हैं। यह इस विचार की स्वीकृति है कि ये गतिविधियां परिवार की आर्थिक स्थिति और राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में बहुत वास्तविक तरीके से योगदान करती हैं, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि इसे पारंपरिक रूप से आर्थिक विश्लेषण से बाहर रखा गया हो। यह बदलते दृष्टिकोण और मानसिकता तथा हमारे अंतर्राष्ट्रीय कानून दायित्वों का प्रतिबिंब है। और, सबसे महत्वपूर्ण बात, यह सामाजिक समानता के संवैधानिक दृष्टिकोण

और सभी व्यक्तियों के लिए जीवन की गरिमा सुनिश्चित करने की दिशा में एक कदम है।

31. इस सवाल पर लौटते हुए कि गृहिणी की ऐसी काल्पनिक आय की गणना कैसे की जाए, कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं हो सकता है। यह समझा जाना चाहिए कि ऐसे मामलों में अदालत द्वारा उन सभी कार्यों के लिए अनुमानित आर्थिक मूल्य तय करने का प्रयास है जो एक गृहिणी करती है, हालांकि यह कार्य असंभव हो सकता है। अदालतों को तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए ऐसे मामलों में न्यायोचित मुआवजा देने के विचार को ध्यान में रखना चाहिए। [देखें आर.के मलिक बनाम किरण पाल [देखें आर.के मलिक बनाम किरण पाल, (2009)14 एस.सी.सी.1, पैरा-9: (2009) 5 एस.सी.सी. (सीआईवी) 265: (2010)1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1265]।

*****-----*****-----*****

....38. इसलिए भविष्य की संभावनाओं को प्रदान करने के पीछे तर्क अब केवल पेशे के प्रकार के बारे में नहीं है, चाहे वह स्थायी हो या अन्यथा, हालांकि प्रदान किया गया प्रतिशत अभी भी उसी पर निर्भर है। भविष्य की संभावनाओं को जीवन की वास्तविकताओं, विशेष रूप से मुद्रास्फीति, व्यक्तियों की अपनी परिस्थितियों और उनके प्रियजनों को बेहतर बनाने की खोज, बढ़ती मजदूरी दरों और काम की गुणवत्ता पर अनुभव के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए प्रदान करना अब अदालत के कर्तव्य का एक हिस्सा है।

39. उपर्युक्त तर्क को ध्यान में रखते हुए, पहले उल्लिखित मामलों की पहली श्रेणी में अदालत द्वारा निर्धारित काल्पनिक आय के संबंध में स्थिति काफी स्पष्ट है, जहां पीड़ित को नियोजित साबित किया जाता है लेकिन दावेदार अदालत के समक्ष आय साबित करने में असमर्थ हैं। एक बार जब पीड़ित किसी उद्यम में कार्यरत साबित हो जाता है, तो आवश्यक परिणाम यह है कि वे आय अर्जित करेंगे। यह स्पष्ट है कि भविष्य की संभावनाओं को प्रदान करने के संबंध में कोई तर्कसंगत अंतर केवल इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि उनकी आय साबित नहीं हुई थी, खासकर जब अदालत ने उनकी काल्पनिक आय निर्धारित की है।

*****-----*****

..... 41. इसलिए, उपरोक्त के आधार पर, मुआवजे के अनुदान के प्रयोजनों के लिए, गृहणियों के लिए अनुमानित आय की गणना और उनके संबंध में भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के मुद्दे के बारे में कुछ सामान्य टिप्पणियां की जा सकती हैं, जिन्हें निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

41.1. एक गृहिणी के संबंध में, आर्थिक आधार पर मुआवजे का अनुदान, कानून का एक स्थापित प्रस्ताव है।

41.2. गृहकार्य की लैंगिक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, पुरुषों की तुलना में महिलाओं के भारी प्रतिशत के साथ, एक गृहिणी की काल्पनिक आय का निर्धारण विशेष महत्व प्राप्त करता है। यह गृहणियों के काम, श्रम

और बलिदान की मान्यता बन जाता है और बदलते दृष्टिकोण का प्रतिबिंब बन जाता है। यह हमारे देश के अंतर्राष्ट्रीय कानून दायित्वों और सामाजिक समानता और सभी के लिए गरिमा सुनिश्चित करने के हमारे संवैधानिक दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने में भी है।

41.3. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, एक गृहिणी की अनुमानित आय को संगत करने के लिए अदालत द्वारा विभिन्न तरीकों को नियोजित किया जा सकता है।

41.4. अदालत को विधि का चयन करते समय, और काल्पनिक आय तय करते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ही उचित है, न तो मुआवजे का आकलन बहुत रूढ़िवादी रूप से, न ही बहुत उदारतापूर्वक किया गया है।

41.5. ऐसे मामलों में गणना की गई अनुमानित आय पर भविष्य की संभावनाओं को प्रदान करना, केवल मुआवजे का एक घटक है।

40. एक व्यक्ति एक घर निर्माता या ऐसे अन्य समान व्यक्तियों जहां साबित आय की स्थापना के लिए कोई उपाय नहीं कर रहे हैं, मामलों में मुआवजे की गणना के बारे में मुद्दा भी राजेंद्र सिंह और अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था. और अन्य 2020(7) एस.सी.सी. 256 और संबंधित भाग निम्नानुसार पढ़ता है: -

9. पहली मृतका लगभग 30 वर्ष की एक गृहिणी थी। लता वाधवा बनाम बिहार राज्य [लता वाधवा बनाम बिहार राज्य, (2001) 8 एस.सी.सी. 197] के मामले में, इस न्यायालय ने कहा था कि गृहिणियों द्वारा प्रदान की जाने वाली विविध सेवाओं पर विचार करते हुए, यहां तक कि एक मामूली अनुमान पर भी, 34 से 59 वर्ष के आयु वर्ग के बीच की गृहिणी की आय जो जीवन में सक्रिय थी, का मूल्यांकन 36,000 रुपये प्रति वर्ष किया जाना चाहिए। 62 से 72 वर्ष की आयु वर्ग की बुजुर्ग महिलाओं के संबंध में भी एक अंतर तैयार किया गया था, जो उम्र और अनुभव से गृहिणी कर्तव्यों के निर्वहन में अधिक कुशल होंगी, और उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का मूल्य 20,000 रुपये प्रति वर्ष लिया गया है।

10. अरुण कुमार अग्रवाल बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [अरुण कुमार अग्रवाल बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2010)9 एस.सी.सी. 218: (2010)3 एस.सी.सी. (सीआईवी) 664: (2010)3 एस.सी.सी. (सीआरआई)1313] में, ट्रिब्यूनल ने गृहिणी की अनुमानित आय का आकलन 5000 रुपये प्रति माह किया, लेकिन बिना किसी तर्क या दलील के निष्कर्ष निकाला कि वह एक गैर-कमाई करने वाली सदस्य थी और इसे घटाकर 2500 रुपये कर दिया, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा [अरुण कुमार अग्रवाल बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एफ.ए.एफ.ओ संख्या-2408 वर्ष 2003, आदेश दिनांक 30-4-2004 (इला)] की गई थी। इसे अस्वीकार करते हुए और मूल्यांकन की गई आय को बहाल करते हुए,

इस न्यायालय ने पैरा-26 और 27 में निम्नानुसार देखा: (एस.सी.सी. पीपी 237- 38)

"26. भारत में अदालतों ने माना है कि घर में पत्नी द्वारा किया गया योगदान अमूल्य है और पैसे के संदर्भ में इसकी गणना नहीं की जा सकती है। पत्नी द्वारा बच्चों और अपने पति के प्रति सच्चे प्यार और स्नेह के साथ प्रदान की जाने वाली मुफ्त सेवाओं और घरेलू मामलों के प्रबंधन को दूसरों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के साथ बराबरी नहीं की जा सकती है। एक पत्नी/माँ घड़ी के हिसाब से काम नहीं करती है। वह पूरे दिन और रात परिवार की निरंतर उपस्थिति में रहती है जब तक कि वह नियोजित नहीं होती है और उसे विशेष घंटों के लिए नियोक्ता के काम में भाग लेने की आवश्यकता होती है। वह पति और बच्चों की सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखती है जिसमें भोजन पकाना, कपड़े धोना आदि शामिल हैं। वह छोटे बच्चों को पढ़ाती है और उनके भविष्य के जीवन के लिए उन्हें अमूल्य मार्गदर्शन प्रदान करती है। एक गृहस्वामी या नौकरानी घर के काम कर सकती है, जैसे खाना पकाना, कपड़े और बर्तन धोना, घर को साफ रखना, आदि, लेकिन वह कभी भी उस पत्नी/माँ का विकल्प नहीं हो

सकती है जो अपने पति और बच्चों को निस्वार्थ सेवा प्रदान करती है।

27. पत्नी/माता द्वारा परिवार अर्थात् पति और बच्चों को प्रदान की गई सेवाओं के बदले में कोई राशि निर्धारित करना संभव नहीं है। तथापि, आश्रितों को मुआवजा प्रदान करने के प्रयोजन के लिए गृहिणी/माता की सेवाओं के संबंध में कुछ आर्थिक अनुमान लगाए जाने होते हैं। उस संदर्भ में, "सेवाओं" शब्द को एक व्यापक अर्थ दिया जाना आवश्यक है और मृतका द्वारा अपने बच्चों को एक माँ के रूप में और उसके पति को एक पत्नी के रूप में दी गई व्यक्तिगत देखभाल और ध्यान के नुकसान को विचार में रखते हुए इसका अर्थ लगाया जाना चाहिए। वे मृतका द्वारा दी गई मुफ्त सेवाओं की हानि के बदले में पर्याप्त मुआवजे के हकदार हैं। आश्रितों को देय राशि को इस आधार पर कम नहीं किया जा सकता है कि दादी जैसे कुछ करीबी रिश्तेदार परिवार को कुछ सेवाएं प्रदान करने के लिए स्वेच्छा से दे सकते हैं जो मृतका पहले ही से दे रही थी।

..... 12. दूसरा मृतक लगभग 12 वर्ष की आयु का एक स्कूल जाने

वाला बच्चा था। उसके पास सभी सामान्य मानवीय आकांक्षाओं के साथ जीवन में आगे देखने के लिए एक पूरा भविष्य था। वह बहुत ही कम उम्र में इससे पहले कि वह अपने सभी उतार-चढ़ाव के साथ जीवन की सुंदरता और खुशियों को समझना शुरू कर सके, उसकी बगैर किसी गलती के, दुर्घटना के कारण समय से पहले मर गया। बचपन में असामयिक मानव जीवन की हानि को कभी भी कमाई के नुकसान या अकेले मौद्रिक नुकसान के रूप में नहीं मापा जा सकता है। बच्चे के नुकसान से जुड़े भावनात्मक जुड़ाव परिवार पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकते हैं जिसे कल्पना और समझने की आवश्यकता है। अतः जीवन में अपेक्षाओं की हानि के लिए मुआवजा देकर किए गए गलत कार्य के लिए गैर-आर्थिक क्षति प्रदान करना आवश्यक है।

13. निस्संदेह बच्चे के जीवन से वंचित होने से लगी चोट को मापना बहुत मुश्किल है। भविष्य भी अनिश्चितताओं से भरा हुआ है। इसलिए, अदालतों ने मुआवजा देने में स्थिरता और एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए आंकड़े को मापने में कठिनाइयों को दूर करने के लिए "न्यायसंगत मुआवजा" शब्द का उपयोग किया

है। यह निर्धारण पीड़ित या दावेदार की वित्तीय स्थिति पर निर्भर नहीं करेगा, बल्कि मृतक की क्षमता और सामर्थ्य पर निर्भर करेगा कि अगर वह जीवित रहती वह दावेदारों को जीवन में खुशी प्रदान कर सकती थी। मुआवजा भावी खुशी के नुकसान के लिए है जो दावेदार को आनंद मिलता अगर बच्चे की मृत्यु उक्त उम्र में नहीं हुई होती। चूंकि बच्चा एक स्कूल में पढ़ रहा था और जीवन में अवसर निस्संदेह उसके लिए लाजिमी होंगे क्योंकि साल बीतते गए होंगे, भविष्य की संभावनाओं के संबंध में मुआवजा भी दिया जाना चाहिए। यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि शिक्षा केवल बेहतर संभावनाओं और उज्ज्वल भविष्य के साथ बेहतर विकास और परिपक्वता का कारण बनती, जिसके लिए गैर-आर्थिक क्षति के तहत मुआवजा दिया जाना चाहिए। (देखें आर.के. मलिकवी.किरण पाल[आर.के. मलिकव.किरण पाल, (2009)14 एस.सी.सी.1: (2009) 5 एस.सी.सी. (सीआईवी) 265: (2010)1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1265]।

41. प्रस्तुत मामले के रिकॉर्ड पर तथ्यों और सबूतों के संदर्भ में पूर्वोक्त निर्णयों के आदेश को लागू करते हुए, इस न्यायालय की स्पष्ट

राय है कि ट्रिब्यूनल ने 3,000/- रुपये प्रति माह को काल्पनिक आय के रूप में लेने में गलती की क्योंकि इस न्यायालय ने पाया कि चाय की दुकान के माध्यम से कमाई के बारे में तथ्य स्पष्ट रूप से गवाहों के साक्ष्य द्वारा स्थापित किया गया था, जिनकी जिरह की गई थी, लेकिन इससे उनके बयानों पर संदेह करने के लिए कुछ भी प्रतिकूल नहीं हो सकता था। हालांकि, भले ही एक गृहिणी के मामले में अनुमानित आय का आकलन किया जाना था और यह देखते हुए कि दुर्घटना वर्ष 2016 में हुई थी, तब भी 6,000/- रुपये प्रति माह की राशि आधार के रूप में अपनाने के लिए एक बेहतर आंकड़ा था जैसा कि राजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने गृहिणी के मामले में 6000/- रुपये की अनुमानित आय भी ली थी,

42. समग्र स्थिति का समग्र दृष्टिकोण के साथ आकलन करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि मृतका की अनुमानित आय 5,000/- रुपये प्रति माह सुरक्षित रूप से ली जानी चाहिए थी। दावेदार वर्ष 25% की दर से भविष्य की संभावनाएं प्रदान करने के भी हकदार थे। यह सच है कि यहां तक कि उस मामले में जहां काल्पनिक आय का आकलन किया जाता है, ट्रिब्यूनल को व्यक्तिगत खर्चों के लिए समायोजन करने की आवश्यकता होती है और इस मामले में जहां तीन आश्रित थे, तदनुसार, 1/3 कटौती की जानी चाहिए थी।

43. इस हद तक, बीमा कंपनी के लिए अधिवक्ता की प्रस्तुति उचित है और इस न्यायालय ने भी पाया कि ट्रिब्यूनल ने

व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती नहीं करने में गलती की, इसके बावजूद ट्रिब्यूनल ने कंसोर्टियम के लिए 70,000/- रुपये की राशि प्रदान की, संपत्ति का नुकसान और अंतिम संस्कार खर्च और अंत में दावेदारों को कुल 745,000/- रुपये की राशि प्रदान की।

44. हालांकि, अगर यह न्यायालय आय के रूप में 5,000/- रुपये प्रति माह (चाय की दुकान से आय और मृतक की गृहिणी के रूप में गणना) लेने वाले मुआवजे की गणना करता है और भविष्य की संभावनाओं के लिए 25% जोड़ता है जो 1,250/- रुपये प्रति माह होगा, तो आय @ 6,250/- रुपये प्रति माह होगी। इससे, यदि व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 कटौती की जाती है और इसे 2,100/- रुपये प्रति माह तक राउन्ड ऑफ कर दिया जाता है, तो शुद्ध आय [Rs. 6,250-2,100] Rs. 4,150/- प्रति माह होगी। सरला वर्मा (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार गुणक वर्ष 15 को अपनाते हुए, मुआवजे की राशि 7,47,000/- रुपये होगी, जिसमें कंसोर्टियम की राशि और संपत्ति और अंतिम संस्कार के खर्च की हानि, यदि 70,000/- रुपये में जोड़ी जाती है, तो अंततः पंचाट 8,17,000/- रुपये पर रखा जाएगा।

45. एक बार फिर यदि इसे पुनः दोहराया जाता है, तो यह पाया जाएगा कि ट्रिब्यूनल ने व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती किए बिना अभी तक 7,45,000 / यदि कटौती की गई होती तो ट्रिब्यूनल की राशि घटकर लगभग 5,20,000/- रुपये रह जाती। दूसरी ओर बढ़ी हुई आय पर

पुनर्गणना करने पर, निर्धारित राशि 8,17,000/- रुपये है।

46. अब, यह न्यायालय न्यायसंगत और उचित मुआवजे का आकलन करने के नाजुक कार्य को निर्धारित करने के लिए तैयार है। क्या गणितीय गणनाओं को दायर की दी जानी चाहिए या साक्ष्य सहित तथ्यों और समग्र परिस्थितियों पर विचार करना और व्यावहारिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ सही और व्यवस्थित पद्धति को अपनाना और यह भी ध्यान में रखते हुए कि पहले से दी गई राशि और जिसे प्रदान किया जा सकता है, के बीच का अंतर केवल लगभग 72,000/- रुपये है, जबकि उत्तरदाताओं ने पंचाट में वृद्धि की मांग नहीं की और अपीलकर्ता के तर्क को स्वीकार करने पर और दिए गए पर ट्रिब्यूनल द्वारा अपनाई गई आधार आय पर यदि कटौती की जाती है तो राशि बेहद अनुपातहीन होगी।

47. इस प्रकार, पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में और विस्तृत चर्चा और कारणों के लिए, यह न्यायालय, विभिन्न कारणों से जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, ट्रिब्यूनल द्वारा प्रदत्त पंचाट की मात्रा में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है। दावा याचिका संख्या-81 वर्ष 2018 में पारित दिनांक 07.08.2019 के पंचाट की पुष्टि की जाती है। तदनुसार, अपील खारिज की जाती है। तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा। इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में इस न्यायालय या ट्रिब्यूनल के समक्ष जमा की गई कोई भी राशि, यदि कोई हो, दावेदारों-उत्तरदाताओं के पक्ष में जारी करने

के लिए दावा न्यायाधिकरण को शीघ्रता से प्रेषित की जाएगी।

(2023) 7 ILRA 100

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर

प्रथम अपील आदेश संख्या 655 वर्ष 2005

ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, सदर
बाजार शाहजहांपुर

.....अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती हसीन बानो @ बूटी एवं अन्य

.....प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री विकार अहमद अंसारी, श्री आशुतोष वैश्य

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री बी.बी. जौहरी

ए. दीवानी विधि - कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 - धारा 4ए - आयुक्त द्वारा प्रतिकर की स्वीकृति 7% की ब्याज दर पर की गई है - दावा कर्ताओं द्वारा प्रतिकर पर 7% की ब्याज दर प्रदान किये जाने को चुनौती देते हुए प्रतिकर याचिका दाखिल की गई है, जो कि कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 के प्रावधानों के विरुद्ध है - मृतक की मृत्यु गोली लगने से हुई - वह ट्रक पर सहायक था - सेवा के दौरान हत्या रोजगार

दुर्घटना है - अतः उक्त प्रश्न बीमा कंपनी के विरुद्ध उत्तरित किया जाता है - प्रदत्त राशि पर दुर्घटना की तिथि से बीमा कंपनी द्वारा ब्याज में अंतर की जमा की तिथि तक 12% साधारण ब्याज की विधिक दर लागू होगी - दावा कर्ता की प्रतिकर याचिका स्वीकृत की जाती है। (प्रस्तर 1 से 12)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर

1. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता एवं प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. इस अपील के माध्यम से, बीमा कंपनी ने डब्ल्यूसीए संख्या 5/डब्ल्यूसीए/2003 में कर्मकार मुआवजा आयुक्त/सहायक श्रम आयुक्त/, शाहजहांपुर द्वारा पारित निर्णय और अधिनिर्णय दिनांक 25.1.2005 को चुनौती दी है।

3. आयुक्त द्वारा पारित अधिनिर्णय को दावेदार द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न उठाते हुए चुनौती दी गई है:

"क) क्या विद्वान कामगार मुआवजा आयुक्त द्वारा प्रतिकर मुआवजा क्षतिपूर्ति प्रदान करना न्यायोचित था जबकि हत्या का कारण रोजगार के दौरान या उससे उत्पन्न होने वाले कार्य से कोई संबंध नहीं रखता था?

ख) क्या रोजगार और हत्या की घटना के बीच कोई निकटतम संबंध न होने पर भी इसे कर्मकार प्रतिकर अधिनियम

की धारा 3 के अंतर्गत दुर्घटना माना जा सकता है?

ग) क्या विद्वान कर्मकार प्रतिकर आयुक्त / सहायक श्रम आयुक्त द्वारा प्रतिकर की देय राशि पर 7% ब्याज प्रदान करना न्यायोचित था?

घ) क्या कर्मकार प्रतिकर आयुक्त बीमाकर्ता के विरुद्ध ब्याज देने का निर्णय लेने में न्यायोचित था, क्योंकि बीमाकर्ता, जिसने नियोक्ता को क्षतिपूर्ति करने का दायित्व लिया था, स्वयं नियोक्ता नहीं था, चूंकि धारा 4ए(3) केवल नियोक्ता के विरुद्ध लागू की जा सकती थी, जबकि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम की धारा 31 किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध लागू होती है?

4. दावेदारों ने 7% की दर से ब्याज प्रदान किए जाने को चुनौती देते हुए प्रति-आपत्ति दायर किया है जो कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 के प्रावधानों के विरुद्ध है। विधि का प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम, 1923 की धारा 4ए के प्रावधानों के विरुद्ध आयुक्त ब्याज प्रदान कर सकता है। दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने उत्तराखंड उच्च न्यायालय के रवींद्र सिंह नेगी बनाम कर्मकार प्रतिकर आयुक्त एवं अन्य, 2005(106) एफएलआर 808 के निर्णय पर निर्भर किया है।

5. विधि के प्रश्नों को समझने के लिए, यह स्पष्ट है कि दुर्घटना न तो रोजगार के कारण हुई और न ही रोजगार के दौरान। अभिलेख से प्राप्त तथ्यात्मक

परिदृश्य यह है कि 20.11.2002 को जब ट्रक चलाया जा रहा था, कुछ अपराधी एक एल.पी. कार से आए, उन्होंने चालक-1 और ट्रक के मालिक को मृत देखा, (?) जिससे चालक और माल के मालिक की मौके पर ही मृत्यु हो गई और दावेदारों के पुत्र इरफान की मृत्यु गोली लगने के कारण अस्पताल में उपचार के दौरान हुई। मृतक इरफान सहायक के रूप में कार्यरत था। शव-परीक्षण रिपोर्ट दर्शाती है कि मृतक की मृत्यु गोली लगने के कारण हुई। साक्ष्य दर्शाता है कि वह ट्रक पर सहायक था। मुद्दा संख्या 1, 2 और 3 पर तथ्य के निष्कर्ष तथ्य के निष्कर्ष हैं और इसलिए तथाकथित महत्वपूर्ण विधि के प्रश्न 'क' और 'ख' उच्चतम न्यायालय के रीता देवी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ला (एससी) 2000 499 के निर्णय से आच्छादित हैं, जिसमें कहा गया है कि कार्य के दौरान हत्या एक रोजगार दुर्घटना है। अतः, उक्त प्रश्न का उत्तर बीमा कंपनी के विरुद्ध दिया जाता है।, 0

6. जहां तक प्रश्न (ग) का संबंध है, बीमा कंपनी और दावेदारों दोनों ने आपत्ति उठाई है इसलिए दोनों अधिवक्ताओं के निवेदनों पर विचार करना होगा।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि विद्वान आयुक्त कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923/ की धारा 4क के अनुसार वैधानिक ब्याज से कम ब्याज प्रदान नहीं कर सकता था। ऐसा सशर्त आदेश आयुक्त द्वारा नहीं दिया जा सकता। यह कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण है।

8. दावेदार द्वारा उठाया गया एकमात्र आधार यह है कि आयुक्त कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 4क के प्रावधानों के अलावा ब्याज प्रदान नहीं कर सकता था, जो इस प्रकार है:

“4ए. प्रतिकर, देय होने पर भुगतान और चूक के लिए जुर्माना।—

(1) धारा 4 के अंतर्गत, देय होते ही प्रतिकर का भुगतान कर दिया जाएगा।

(2) उन मामलों में जहां नियोक्ता दावा किए गए सीमा तक प्रतिकर के लिए दायित्व स्वीकार नहीं करता है, वह उस सीमा तक अनंतिम भुगतान करने के लिए बाध्य होगा जिस सीमा तक वह दायित्व स्वीकार करता है, और ऐसा भुगतान आयुक्त के पास जमा किया जाएगा या कर्मकार को किया जाएगा, जैसा भी मामला हो, कर्मकार के किसी और दावा करने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना।

(3) जहां कोई नियोक्ता इस अधिनियम के अंतर्गत देय प्रतिकर का भुगतान देय होने की तिथि से एक माह के भीतर करने में चूक करता है, वहां आयुक्त -
(क) निर्देश देगा कि नियोक्ता बकाया राशि के अतिरिक्त, उस पर देय राशि पर बारह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से या ऐसी उच्चतर दर से जो किसी अनुसूचित बैंक की उधार दर के अधिकतम से अधिक न हो, जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट किया जाए, साधारण ब्याज का भुगतान करेगा; और

(ख) यदि, उसकी राय में, विलंब के लिए कोई औचित्य नहीं है, तो निर्देश देगा कि नियोक्ता बकाया राशि और उस पर ब्याज के अतिरिक्त, दंड के रूप में ऐसी राशि के पचास प्रतिशत से अनधिक अतिरिक्त राशि का भुगतान करेगा:

परंतु यह कि खंड (ख) के अंतर्गत दंड के भुगतान का आदेश नियोक्ता को यह दर्शाने का उचित अवसर दिए बिना नहीं दिया जाएगा कि यह क्यों न पारित किया जाए।

स्पष्टीकरण - इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए, "अनुसूचित बैंक" का अर्थ है वह बैंक जो तत्समय भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 (1934 का 2) की द्वितीय अनुसूची में सम्मिलित है।
[(3क) उप-धारा (3) के अंतर्गत देय ब्याज और दंड कर्मकार या उसके आश्रित को, जैसा भी मामला हो, भुगतान किया जाएगा।]]

9. उपरोक्त विधि का प्रश्न अब उच्चतम न्यायालय के ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी बनाम सिबी जॉर्ज और अन्य, 2012 (4) टी.ए.सी. 4 (एस.सी.) के निर्णय के मद्देनजर रेस इंटेग्रा नहीं रहा है जो घटना के बाद के समय का है, जिसमें यह माना गया है कि ब्याज का भुगतान करने का दायित्व बीमा कंपनी पर है। अपील के ज्ञापन में उल्लिखित अन्य सभी आधार तथ्यों के प्रश्न के दायरे में हैं और इन मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं, अतः इस

न्यायालय द्वारा इनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है क्योंकि यह न्यायालय अपने दृष्टिकोण में उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 7470 वर्ष 2009 नॉर्थ ईस्ट कर्नाटक रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन बनाम श्रीमती सुजाता में दिनांक 2.11.2018 को पारित निर्णय, गोल्ला राजन्ना इत्यादि इत्यादि बनाम डिवीजनल मैनेजर और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी) और मयान बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 एसीजे 524 से सुदृढ़ है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने माना है कि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत सिद्ध न हों और जब तक कि कोई विधि का प्रश्न शामिल न हो।

10. न्यायाधिकरण ने केवल तभी ब्याज प्रदान किया जब एक माह के भीतर भुगतान न किया जाए, यह निष्कर्ष इस न्यायालय के आदेश के विरुद्ध है। यह न्यायालय अपने दृष्टिकोण में इस न्यायालय द्वारा आदेश से प्रथम अपील संख्या 2126 वर्ष 2019 (सुनीता मिश्रा और अन्य बनाम एम.टी.जी. इन्फ्रा पावर प्राइवेट लिमिटेड और अन्य) में दिनांक 13.9.2019 को पारित निर्णय से सुदृढ़ है।

11. अपील खारिज की जाती है क्योंकि विधि के प्रश्नों का उत्तर अपीलार्थी के विरुद्ध दिया गया है। दावेदार का प्रतिवाद स्वीकार किया जाता है।

12. अधिनिर्णीत राशि पर दुर्घटना की तिथि से लेकर बीमा कंपनी द्वारा ब्याज में अंतर

जमा किए जाने तक 12% साधारण ब्याज लगेगा जो कि ब्याज की वैधानिक दर है।

13. दावेदारों को राशि तत्काल भुगतान की जाए।

14. अभिलेख आयुक्त को प्रेषित किया जाए।

(2023) 7 ILRA 103

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर

प्रथम अपील आदेश संख्या 757 वर्ष 1998

पथिराम एवं अन्य अपीलकर्तागण

बनाम

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं

अन्य प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री आर.के. पोरवाल

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री शशि कांत श्रीवास्तव

क. सिविल विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 173 - प्रतिपूरक में वृद्धि - मृतक अपने पीछे 6 आश्रित छोड़ गया है - दुर्घटना के समय मृतक की आयु 35 वर्ष थी - न्यायाधिकरण ने उसकी आय 500 रुपये प्रतिमाह आकलित किया है जो इस न्यायालय के अनुसार दुर्घटना के वर्ष में न्यूनतम 1,000 रुपये प्रतिमाह होगी क्योंकि वह श्रम कार्य और

कृषि कार्य करती थी - मृतक की आयु 31-35 वर्ष के मध्य थी, प्रणय सेठी में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत आय का 40% जोड़ना होगा - यथासंभव मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती का संबंध है, मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह 1/4 होना चाहिए - सरला वर्मा में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत लागू गुणक 16 होगा क्योंकि मृतक की आयु 31-35 वर्ष के मध्य थी - मृतक की वार्षिक आय 1,000 रुपये निर्धारित की जाती है। 12,000/- नियम 220-ए(3) 1998 के अनुसार भावी संभावनाओं के लिए 40% जोड़ा गया तथा गुणक 16 लागू किया गया - इस प्रकार, कुल प्रतिपूरक 7% की दर से 2,71,600 रुपये स्वीकृत किया गया। (प्रस्तर 1 से 14)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता आर.के. पोरवाल एवं प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि कांत श्रीवास्तव को सुना तथा आक्षेपित निर्णय और आदेश का अवलोकन किया।

2. यह अपील, दावेदारों की ओर से, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरणय चौथे अपरजिला न्यायाधीश, इटावा (जिसे आगे 'न्यायाधिकरण' कहा गया है इसके बाद से 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा एम.ए.सी. संख्या 402 of 1995 में पारित

किए गए दिनांक 16.4.1998 के निर्णय और अधिनिर्णय को चुनौती देती है, जिसमें 12% की दर से ब्याज सहित 98,000/- रुपये की राशि मुआवजे के रूप में दी गई थी।

3. दुर्घटना विवादास्पद नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा तय किया गया लापरवाही का मुद्दा विवादास्पद नहीं है। वाहन प्रतिवादी-बीमा कंपनी के साथ बीमित है यह विवादास्पद नहीं है। प्रत्यर्थी ने उन पर लगाए गए दायित्व को चुनौती नहीं दी है। इस न्यायालय द्वारा तय किया जाने वाला एकमात्र मुद्दा है, दिए गए मुआवजे की मात्रा।

4. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा कम है क्योंकि मृतक - रामवती को अपीलकर्ता की पत्नी बताया गया है जो मजदूरी और कृषि के व्यवसाय में लगी हुई थी। मृतक ने अपने पीछे अपने पति और पांच बच्चों को छोड़ा है और न्यायाधिकरण ने उसकी आय केवल 500/- रुपये प्रति माह मानी है तथा 16 का गुणक प्रदान किया है। न्यायाधिकरण ने अंतिम संस्कार के खर्चों के लिए केवल 2,000 रुपये की मामूली राशि मंजूर की है क्योंकि दुर्घटना 18.6.1995 को हुई थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि **लता वाधवा बनाम बिहार राज्य एआईआर 2001 SC 3218** के अनुसार 1995 में मृतक की आय 3,000/- रुपये प्रति माह यानी 36,000/- रुपये प्रति वर्ष मानी जा सकती है, जिसमें चूंकि मृतका 35 वर्ष से कम आयु की थी, इसलिए 40% जोड़ा जाना

चाहिए, क्योंकि वह छह व्यक्तियों द्वारा जीवित थी, ¼ घटाया जाना चाहिए और 16 का गुणक दिया जाना चाहिए। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि **नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 0 सर्वोच्च (एससी) 1050** के निर्णय के अनुसार गैर-विशिष्ट नुकसान के लिए हर्जाना दिए जा सकते हैं जिसे हर तीन वर्षों में 10% की वृद्धि के साथ पूर्वव्यापी रूप से लागू किया गया है।

5. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि कांत श्रीवास्तव ने निवेदन किया है कि न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित आय उचित और ठीक है। हालांकि, वे यह नहीं बता सके कि भविष्य का नुकसान जो नहीं दिया गया है, वो उचित रूप से दिया गया है अथवा नहीं। जहां तक गुणक का संबंध है, उन्होंने कहा कि वह **सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, 2009 लॉसूट (एससी)** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आधार पर तय किया जा सकता है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी मौखिक प्रत्याक्षेप में निवेदन किया है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया 12% की दर से ब्याज बहुत अधिक है और इसे कम किए जाने की आवश्यकता है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और तथ्यात्मक आंकड़ों पर विचार किया। इस न्यायालय ने पाया कि दुर्घटना 18.6.1995 को हुई थी जिसमें रामवती की मृत्यु हो गई जो दुर्घटना के समय 35 वर्ष की

आयु की थी। न्यायाधिकरण ने उसकी आय 500/- रुपये प्रति माह आंकी है जो इस न्यायालय के अनुसार, दुर्घटना के वर्ष में, कम से कम 1,000/- रुपये प्रति माह होगी क्योंकि वह मजदूरी और कृषि के व्यवसाय में थी। जिसमें मृतक 31-35 की आयु वर्ग में थी, आय का 40% जोड़ना होगा **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के मददेनजर और यहां तक कि पहले 1960 के रुझान में **गोबाल्ड मोटर सर्विस लिमिटेड और अन्य बनाम आर.एम.के वेलुस्वामी और अन्य, 1962 एससीआर(1) 929** शीर्षक वाले मामले में भी, 40% की वृद्धि दी जा सकती है। जहां तक मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती का संबंध है, यह मामले के तथ्यों को देखते हुए 1/4 होनी चाहिए। लागू होने वाला गुणक 16 होगा **सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम, (2009) 6 एससीसी 121** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के मददेनजर क्योंकि मृतक 31-35 वर्ष की आयु वर्ग में थी।

7. कुल देय मुआवजा पुनः गणना की गई है और निम्नानुसार संगणित किया गया है:

- i. वार्षिक आय रु.12,000/- (रु.1,000/- प्रति माह)
- ii. भविष्य की संभावनाओं के लिए प्रतिशतता: 40% अर्थात रु.4800/-
- iii. कुल आय: रु.12,000 + रु.4800/- = रु.16,800/-
- iv. व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/4 की कटौती के बाद आय: रु.12,600/
- v. लागू गुणक: 16

vi. निर्भरता की हानि: रु.12,600/- x
16 = रु.2,01,600/-

vii. गैर-आर्थिक शीर्षों के तहत राशि:
रु.70,000/-

viii. कुल मुआवजा: रु.2,71,600/-

8. ब्याज के मुद्दे के संबंध में, यह न्यायालय अपील में प्रत्यर्थी बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए मौखिक प्रति-आपत्ति से सहमत है कि ब्याज 12% की दर से नहीं दिया जाना चाहिए था। अतः, न्यायाधिकरण द्वारा दी गई उपरोक्त राशि पर दावा याचिका दायर करने की तिथि से निर्णय तक 7% की दर से ब्याज लगेगा और बढ़ी हुई राशि पर दावा याचिका दायर करने की तिथि से राशि जमा करने तक 6% की दर से ब्याज लगेगा।

9. मामले की सुनवाई के दौरान मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं उठाया गया।

10. उपरोक्त को देखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित मानी जाएगी। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित राशि जमा करेगी तथा दावेदार को वितरित करेगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि में से घटा दिया जायेगा। अभिलेख और कार्यवाही तुरंत न्यायाधिकरण को वापस भेजी जाए।

11. न्यायाधिकरण के रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह पहले न्यायालय शुल्क, यदि कुछ बचा हो, तो उतनी राशि को काटे। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442 में निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही ग्रामीण।

12. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा श्रीमती हंसागुरी पी. लाधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291 में निर्धारित अनुपात को देखते हुए, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित कुल ब्याज की राशि को वित्तीय वर्ष से वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक हो जाता है, तो बीमा कंपनी/मालिक, आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'टैक्स डिडक्टेड एट सोर्स'('स्रोत पर कर कटौती') शीर्षक के तहत उचित राशि की कटौती करने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं होती है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाणपत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। इस उच्च न्यायालय ने आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 (श्रीमती

सुदेष्णा और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य) की समीक्षा आवेदन संख्या 1/2020 में उपरोक्त दृष्टिकोण को राशि वितरण करते समय दोहराया है।

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

प्रथम अपील आदेश संख्या 1011 वर्ष 2000

13. उपरोक्त याचिका में न्यायाधिकरण द्वारा यहां किए गए संशोधन के अनुसार नया अधिनिर्णय दिया जाए। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देश का पालन करेंगे, जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण/ वितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता तथा **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना है।

श्रीमती हसीना बेगम एवं अन्य

.....अपीलकर्तागण

बनाम

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बरेली एवं अन्य

.....प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री पी.के. अग्रवाल, श्री राम सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

14. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश में जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हित की रक्षा करना है। चूंकि लंबी अवधि बीत चुकी है, इसलिए राशि बिना एफडीआर के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जाए।

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 173 - प्रतिपूरक में वृद्धि - मृतक के पीछे पाँच आश्रित रह गए थे - दावेदारों ने ₹4,00,000/- प्रतिपूरक के साथ 18% वार्षिक ब्याज की मांग की थी। मृतक की आयु 31 वर्ष थी और वह एक जीप में सहायक तथा स्वामी का साझेदार के रूप में कार्य करता था - दो वयस्क आश्रितों में मृतक की विधवा पत्नी एवं माता थीं तथा तीन अल्पवयस्क आश्रित उसके संतान थे - नियम 220-ए (2) (iii), नियमावली 1998 के अनुसार, नाबालिग आश्रितों को आधी इकाई के रूप में निर्धारित करते हुए कुल आश्रितों की संख्या साढ़े तीन होती है - इसे 'चार' तक पूर्णांकित या युक्तिसंगत बनाया जाएगा - सरला वर्मा मामले में पारित निर्णय के अनुसार 4-6 के ब्रैकेट में आश्रितों को छोड़कर विवाहित

15. यह न्यायालय इस मामले को निपटाने के लिए दोनों अधिवक्ताओं की आभारी है।

(2023) 7 ILRA 107

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

पुरुष के लिए, एक-चौथाई की कटौती की जानी चाहिए। मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए- न्यायाधिकरण ने मृतक की आय का लगभग दो-पांचवां भाग, जो न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित किया गया है, अर्थात् 2000 रुपये की मात्राबद्ध कटौती का निर्देश दिया है। इसलिए, यह न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाता है कि न्यायाधिकरण ने व्यक्तिगत व्यय के लिए अत्यधिक कटौती का आदेश दिया है, जिसे एक चौथाई की कटौती द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए- अपनाया जाने वाला उपयुक्त गुणक '16' है- न्यायाधिकरण ने '15' के गुणक को लागू करने में त्रुटि की- मृतक की वार्षिक आय 36,000 रुपये निर्धारित की जाती है, 1998 के नियम 220-ए (3) के अनुसार भविष्य की संभावनाओं के लिए 50% जोड़ा जाता है और गुणक 16 लागू किया जाता है- इसलिए, कुल प्रतिपूरक 878000 रुपये @ 7% प्रदान किया जाता है। (प्रस्तर 1 से 47)

(ख) (I) वैवाहिक सहवास सामान्यतः पति-पत्नी के संबंध से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो जीवित बचे जीवनसाथी को “संगति, समाज, सहयोग, स्नेह और प्रत्येक वैवाहिक संबंध में दूसरे की सहायता” की क्षति के लिए प्रतिकर की अनुमति देता है। [ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979)]

(ख) (II) पितृ-मातृ सहवास बच्चे को माता-पिता की असामयिक मृत्यु पर प्रदान किया जाता है, “माता-पिता की सहायता, सुरक्षा,

स्नेह, संगति, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण” की क्षति के लिए।

(ख) (III) संतान सहवास वह अधिकार है जिसके अंतर्गत माता-पिता को संतान की दुर्घटनाजन्य मृत्यु की स्थिति में प्रतिकर प्राप्त होता है। किसी दुर्घटना में संतान की मृत्यु माता-पिता एवं मृतक के परिवार को गम्भीर आघात एवं पीड़ा पहुंचाती है। माता-पिता के लिए जीवनकाल में संतान से वंचित होना सबसे बड़ी पीड़ा होती है। संतान को उनके प्रेम, स्नेह, संगति तथा पारिवारिक इकाई में उनकी भूमिका के लिए मूल्यवान माना जाता है। (प्रस्तर 27)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। (E-6)

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

1. यह एक वादियों की अपील है जो मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, बरेली द्वारा दिनांक 26.04.2000 को पारित आदेश और अधिनिर्णय से उत्पन्न हुई है, जिसमें मुआवजे की वृद्धि की मांग की गई है।

2. मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 305 वर्ष 1999 स्वर्गीय शकील अहमद के पांच आश्रितों - दो वयस्क और तीन नाबालिग - की ओर से मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण /जिला न्यायाधीश, बरेली के समक्ष दिनांक 21.04.1999 को ट्रक संख्या यूपी-22-6933 के मालिक और बीमाकर्ता से उसकी मोटर दुर्घटना में मृत्यु के लिए मुआवजा मांगते हुए दायर की

गई थी। वादियों के अनुसार, 2 अप्रैल, 1999 को, शकील अहमद जीप संख्या यूपी-25-5646 पर सवार थे। वह शाम के लगभग साढ़े पांच बजे, सड़क के एक किनारे पर जीप खड़ी करके यात्रियों को उतार रहे थे। इसी बीच, ट्रक संख्या यूपी-22-6933, जो लापरवाही से और तेज गति से चलाई जा रही थी, कीछा की ओर से आई और शकील अहमद से टकरा गई। वह गंभीर रूप से घायल हो गए। शकील को चिकित्सा सहायता के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, बहेड़ी ले जाया गया और फिर वहां से उपचार के लिए जिला अस्पताल, बरेली ले जाया गया। उपचार के दौरान, उन्होंने चोटों के कारण दम तोड़ दिया।

3. पांच वादी-अपीलार्थी (संक्षेप में, 'वादीगण') के अनुसार, शकील अहमद एक स्वस्थ और मेहनती युवा व्यक्ति थे। उनकी अचानक मृत्यु ने परिवार को बर्बाद कर दिया। वादीगण ने 18% वार्षिक ब्याज के साथ 4,00,000/- रुपये की राशि का मुआवजा मांगा। वादीगण का मामला यह है कि शकील अहमद की उम्र 30 वर्ष थी और वह जीप पर मालिक के सहायक और साझेदार के रूप में काम करते थे। अपराधी ट्रक का बीमा यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं. लि. के माध्यम से उसके प्रभागीय प्रबंधक, रामपुर गार्डन, बरेली (संक्षेप में, 'बीमाकर्ता') के पास कवर नोट संख्या 706310 के तहत किया गया था, जो 08.01.1999 से 07.01.2000 तक वैध था। बीमाकर्ता को दावा याचिका में विपक्षी संख्या 1 और इस अपील में प्रत्यर्थी संख्या 1 के रूप में शामिल किया गया था। अपराधी ट्रक एक खलील अहमद के स्वामित्व में था, जिसे दावा याचिका में विपक्षी

संख्या 2 और इस अपील में प्रत्यर्थी संख्या 2 के रूप में शामिल किया गया था। वह ट्रक का पंजीकृत मालिक है और इसके बाद उसे 'मालिक' कहा जाएगा।

4. मालिक ने एक लिखित कथन दाखिल किया, जहां उसने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वह अपराधी ट्रक का पंजीकृत मालिक है। उसने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि 02.04.1999 को, ट्रक कीछा से बरेली जा रहा था। इसे नियंत्रित गति से, अपने चालक द्वारा उचित सावधानी के साथ चलाया जा रहा था। जीप चालक लापरवाही से वाहन चला रहा था। अपराधी ट्रक का बीमा बीमाकर्ता के पास एक कवर नोट के तहत किया गया था जो 08.01.1999 से 07.01.2000 तक वैध था। अपराधी ट्रक का चालक राजेश कुमार था, जिसके पास 16.04.2000 तक वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। उसने ट्रक चलाने में किसी भी तरह से लापरवाही नहीं की थी। यह तर्क दिया गया कि चूंकि अपराधी ट्रक का बीमा किया गया था, यदि मालिक के लिए कोई देयता पाई जाती है, तो उसे बीमाकर्ता द्वारा पूरा किया जाना चाहिए।

5. बीमाकर्ता ने एक अलग लिखित कथन दाखिल किया और दुर्घटना के तथ्य से इनकार किया। उन्होंने मृतक की उम्र, व्यवसाय और आय से इनकार किया है। यह भी इनकार किया गया है कि वादीगण मृतक पर आश्रित थे। यह भी दावा किया गया है कि मृतक के सभी कानूनी प्रतिनिधियों को पक्षकार नहीं बनाया गया है और, इसलिए, दावा याचिका आवश्यक पक्षकार के गैर-जोड़ के कारण

दोषपूर्ण है। एक और दावा यह उठाया गया है कि अपराधी ट्रक के चालक को पक्षकार नहीं बनाया गया, जो फिर से गैर-जोड़ का कारण बनता है। दुर्घटना अपराधी ट्रक के चालक की लापरवाही के कारण नहीं हुई थी और, इसलिए, बीमाकर्ता उत्तरदायी नहीं हैं। मालिक पंजीकरण, फिटनेस प्रमाणपत्र के बिना और बीमा पॉलिसी की शर्तों के विपरीत अपराधी ट्रक का संचालन कर रहा था। ट्रक के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। वादीगण एक बढ़ा-चढ़ाकर दावा लेकर आए हैं। बीमाकर्ता के अनुसार, दावा याचिका खारिज किए जाने योग्य थी।

6. पक्षकारों के अभिवचनों पर, न्यायाधिकरण ने निम्नलिखित मुद्दे तय किए:

"1. क्या 02.04.1999 को, शाम के लगभग 5:30 बजे, बहेड़ी बाईपास पर, ट्रक संख्या यूपी-22-6933, जो अपने चालक द्वारा लापरवाही से, बेपरवाही से और तेज गति से चलाई जा रही थी, कीछा की ओर से आते हुए, शकील से टकरा गई, जिसके कारण उनकी मृत्यु हो गई?

2. क्या दुर्घटना के समय, प्रश्नगत वाहन के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था?

3. क्या दुर्घटना के समय, प्रश्नगत वाहन का वैध रूप से विपक्षी संख्या 1, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं. लि. के साथ बीमा किया गया था?

4. क्या दावा याचिका वाहन संख्या यूपी-22-6933 के चालक को पक्षकार न

बनाने के कारण आवश्यक पक्षकार के गैर-जोड़ के कारण दोषपूर्ण है?

5. क्या वादीगण मुआवजे के हकदार हैं? यदि हां, तो कितना और किस विपक्षी से?"

7. वादीगण ने दावा याचिका के समर्थन में अभियोजन शाक्षी -1 हसीमा बेगम, मोहम्मद इस्लाम अभियोजन शाक्षी -2 और सलीम अभियोजन शाक्षी -3 की परीक्षा की। वादीगण ने दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में दस्तावेजों की एक सूची, जिस पर पेपर नंबर 17-ग लिखा था, के माध्यम से छह दस्तावेज प्रस्तुत किए, जिनमें अपराधी ट्रक के कवर नोट की एक फोटोस्टेट प्रति, ट्रक चालक के ड्राइविंग लाइसेंस की एक फोटोस्टेट प्रति, अपराधी ट्रक के लिए भुगतान किए गए कर की एक फोटोस्टेट प्रति और ट्रक का फिटनेस प्रमाणपत्र शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, एक अन्य सूची के माध्यम से, जिस पर पेपर नंबर 24-ग लिखा था, नौ अन्य दस्तावेज दाखिल किए गए, जिनमें एफ.आई.आर. की एक प्रमाणित प्रति, आरोप पत्र की एक प्रमाणित प्रति और पोस्टमार्टम रिपोर्ट की एक प्रमाणित प्रति शामिल हैं। बीमाकर्ता ने बीमा पॉलिसी की एक सत्य प्रति दाखिल की, लेकिन कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

8. मुद्दा संख्या 1 का उत्तर वादीगण के पक्ष में दिया गया, यह निर्धारित करते हुए कि दुर्घटना की तिथि और समय पर, मृतक की मृत्यु अपराधी ट्रक के चालक द्वारा लापरवाह और असावधानीपूर्ण ड्राइविंग के कारण हुई थी।

मुद्दा संख्या 2 का उत्तर बीमाकर्ता के विरुद्ध दिया गया, यह निर्धारित करते हुए कि दुर्घटना की तिथि पर, राजेश कुमार, अपराधी ट्रक के चालक के पास एक वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। इसी प्रकार, मुद्दा संख्या 3 का निर्णय भी बीमाकर्ता के विरुद्ध किया गया, यह निर्धारित करते हुए कि दुर्घटना की तिथि पर, अपराधी ट्रक का बीमा बीमाकर्ता के साथ किया गया था। मुद्दा संख्या 4 का निर्णय भी वादीगण के पक्ष में और बीमाकर्ता के विरुद्ध किया गया, यह निर्धारित करते हुए कि यह अपराधी ट्रक के चालक को पक्षकार न बनाने के कारण आवश्यक पक्षकार के गैर-जोड़ के कारण दोषपूर्ण नहीं था।

9. मुद्दा संख्या 5 का उत्तर देते हुए, न्यायाधिकरण ने मृतक की आय 2000/- रुपये प्रति माह निर्धारित की, और व्यक्तिगत एवं जीवन व्यय के लिए 800/- रुपये की कटौती करके, 1200/- रुपये की मासिक निर्भरता निर्धारित की। न्यायाधिकरण ने कुल मूल निर्भरता 2,16,000/- रुपये निर्धारित करने के लिए '15' का गुणक लागू किया। विधवा को सहवास की हानि, अंत्येष्टि खर्च और संपत्ति की हानि के लिए 10,000/- रुपये की एकमुश्त राशि प्रदान की गई। तदनुसार, वादीगण को 2,26,000/- रुपये की राशि का मुआवजा प्रदान किया गया, जिसमें विधवा को 1,10,000/- रुपये, मृतक की माता को 26,000/- रुपये और तीन नाबालिग बच्चों को प्रत्येक को 30,000/- रुपये का विभाजन किया गया। उक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर करने की तिथि से वसूली तक 10% वार्षिक दर से ब्याज देने का आदेश दिया गया। नाबालिगों को प्रदान किए

गए मुआवजे को एक राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा में रखने का निर्देश दिया गया, जो नाबालिगों के वयस्क होने तक वहां रखा जाएगा।

10. श्री राम सिंह, वादीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना। मालिक या बीमाकर्ता की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ, हालांकि दिनांक 18.10.2022 के आदेश द्वारा सेवा पर्याप्त मानी गई थी।

11. इस न्यायालय के समक्ष इस अपील में केवल एक ही मुद्दा उठाया गया है, जो प्रदान किए गए मुआवजे की अपर्याप्तता है।

12. न्यायाधिकरण ने तर्क दिया है कि मृतक जीप पर एक सहायक था। वह पंजीकृत मालिक के साथ जीप पर यात्रियों को किराए पर ले जाने के व्यवसाय में एक साझेदार भी था। वादीगण के अनुसार, वह 3500/- रुपये प्रति माह कमाता था। न्यायाधिकरण ने अभियोजन शाक्षी -1, मृतक की पत्नी के बयान को देखा है, जिसने कहा है कि उसका पति जीप चलाकर 3500/- रुपये की आय प्राप्त करता था।

13. न्यायाधिकरण ने अभियोजन शाक्षी -2, मोहम्मद इस्लाम, जीप के पंजीकृत मालिक के साक्ष्य को भी देखा है। मोहम्मद इस्लाम ने अपने बयान में कहा है कि मृतक जीप की देखभाल करता था और मौखिक समझौते के अनुसार एक साझेदार था। वाहन के संचालन में शामिल खर्चों को काटने के बाद, पंजीकृत मालिक के अनुसार, मृतक उसके साथ लाभ

को बराबर साझा करता था। मृतक अपने लिए 4000-4500/- रुपये प्रति माह बचाता था। जिरह में, न्यायाधिकरण ने नोट किया है कि मोहम्मद इस्लाम, अभियोजन शाक्षी -2 ने कहा है कि मार्च, 1999 के महीने में, आखिरी बार, शकील ने उसे 3500/- रुपये की राशि का भुगतान किया था। न्यायाधिकरण ने यह भी नोट किया है कि इस गवाह ने कहा है कि उसके पास मासिक आय को दर्ज करने वाला एक रजिस्टर था, लेकिन उसने इसे साक्ष्य में पेश नहीं किया।

14. न्यायाधिकरण ने निष्कर्ष निकाला है कि यह सभी साक्ष्य यह साबित करते हैं कि मृतक जीप संख्या यूपी-25-5646 पर काम करता था और दुर्घटना की तिथि पर भी, वह यात्रियों को उतार रहा था। यह भी माना गया है कि शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, मृतक की आयु 32 वर्ष थी। किसी भी दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में, न्यायाधिकरण ने राय दी है कि मृतक की आय 2000/- रुपये प्रति माह निर्धारित की जानी चाहिए, जिसमें से 800/- रुपये वह खुद पर खर्च करता था। जैसा कि पहले ही मुआवजे की गणना के बारे में उल्लेख किया जा चुका है, न्यायाधिकरण ने अंततः वादीगण को 2,26,000/- रुपये की राशि का हकदार माना।

15. वादीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि मृतक की आय 3500/- रुपये होने के बारे में एक अचुनौतीपूर्ण कथन है। उक्त आय जीप के संचालन से अर्जित लाभ का आधा हिस्सा है, जिसके मालिक मोहम्मद इस्लाम थे। मोहम्मद इस्लाम ने कहा

है कि मृतक 4000-4500/- रुपये प्रति माह कमाता था। विधवा ने कहा है कि वह 3500/- रुपये कमाता था। इसलिए, न्यायाधिकरण का यह कहना कि मृतक 2000/- रुपये प्रति माह कमाता था, न्यायाधिकरण के न्यायाधीश का एक इप्से डिक्रिस्ट (स्वयं का कथन) से अधिक कुछ नहीं है।

16. मृतक की पत्नी ने, बीमाकर्ता की ओर से की गई जिरह में, इस स्थिति पर कायम रहा है कि उसका पति 3500/- रुपये प्रति माह कमाता था, जिसे उसने वेतन के रूप में वर्णित किया है। गवाह स्पष्ट रूप से एक शिक्षित महिला नहीं होने के कारण, वह यह नहीं समझ पाई होगी कि मृतक पंजीकृत मालिक के साथ यात्रियों को ले जाने के लिए जीप के संचालन से अर्जित लाभ साझा कर रहा था। जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि जिरह में, मृतक की आय 3500/- रुपये प्रति माह होने के दावे को अविश्वसनीय ठहराने के लिए कुछ नहीं कहा गया है। मोहम्मद इस्लाम, अभियोजन शाक्षी -2, ने अपने बयान में मृतक की मासिक आय 4000-4500/- रुपये बताई है। अपनी जिरह में, उन्होंने यह तथ्य सामने रखा है कि मार्च, 1999 के महीने में, मृतक ने उन्हें 3500/- रुपये की राशि का भुगतान किया था। जीप के पंजीकृत मालिक, अभियोजन शाक्षी -2 और मृतक के बीच बराबर का बंटवारा होने के कारण, मृतक ने भी मार्च, 1999 के महीने के दौरान उतनी ही राशि कमाई होगी।

17. यह न्यायालय इस राय का है कि मृतक और दुर्भाग्यपूर्ण जीप के पंजीकृत मालिक द्वारा

एक साथ किए गए काम की प्रकृति में, बही-खाता, लेखा पुस्तकें, तुलन-पत्र या कर रिटर्न के रखरखाव की अपेक्षा मुश्किल से की जा सकती है। न्यायालय इस कठोर वास्तविकता से मुंह नहीं मोड़ सकता कि बहुत सी आर्थिक गतिविधियां, विशेष रूप से बीते दिनों में, दर्ज लेनदेन के औपचारिक तंत्र के बाहर होती थीं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जीविका कमाने के लिए ये गतिविधियां नहीं थीं। चाहे कितना भी अवैध हो, निजी वाहनों के रूप में पंजीकृत वाहन, विशेष रूप से जीप, हमेशा से कम से कम इस राज्य में, किराए या पुरस्कार के लिए यात्रियों को ले जाने के लिए राजमार्गों पर दिखाई देते रहे हैं। उन्होंने कुछ लोगों को परिवहन के साधन प्रदान किए हैं और दूसरों को एक व्यवसाय। हम नहीं जानते कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप को वाणिज्यिक वाहन के रूप में पंजीकृत किया गया था या नहीं। हम मान लेते हैं कि नहीं किया गया था। फिर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि जीप का उपयोग यात्रियों को ले जाकर वाणिज्यिक लाभ के लिए नहीं किया जा रहा था, जिससे पंजीकृत मालिक और मृतक दोनों को एक निश्चित आय प्राप्त होती थी। शताब्दी के मोड़ पर समकालीन मानकों के अनुसार, एक अकुशल श्रमिक लगभग 100/- रुपये प्रतिदिन कमाता था। यह आंकड़ा 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक के शुरुआती वर्षों में एक अकुशल श्रमिक के लिए स्वीकार किया गया था।

18. मृतक एक आकस्मिक श्रमिक नहीं था, बल्कि एक ऐसा व्यक्ति था जो मोटर वाहन का उपयोग करके, पंजीकृत मालिक के साथ लाभ साझा करते हुए, किराए या पुरस्कार के लिए यात्रियों को सेवा प्रदान करने में लगा हुआ था। इन परिस्थितियों में, सबसे रुढ़िवादी

अनुमान पर, यह न्यायालय इस राय का है कि मृतक को घातक मोटर दुर्घटना में उसकी मृत्यु के समय 3000/- रुपये प्रति माह की मासिक आय के साथ सुरक्षित रूप से क्रेडिट किया जा सकता है। हम तदनुसार निर्णय करते हैं।

19. यह इस मासिक आय के आधार पर है कि यह न्यायालय वादीगण की निर्भरता और मुआवजे का निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ता है। 3000/- रुपये की मासिक आय 36,000/- रुपये की वार्षिक आय के बराबर होगी।

20. मृतक ने पांच आश्रितों को पीछे छोड़ा, जिनके बारे में कोई संदेह नहीं है कि वे उसके आश्रित थे। दो वयस्क उसकी विधवा और माता थीं, और तीन नाबालिग, उसके बच्चे थे। उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में '1998 के नियम') के नियम 220-ए (2)(iii) के अनुसार, नाबालिग आश्रितों को आधी इकाई के रूप में गिनते हुए, आश्रितों की कुल संख्या साढ़े तीन होगी। इसे पूर्णांकित या युक्तिसंगत करके 'चार' कर दिया जाएगा। **सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121** में दिए गए निर्णय के अनुसार, एक विवाहित पुरुष के लिए, जो 4-6 की श्रेणी में आश्रितों को पीछे छोड़ जाता है, मृतक के व्यक्तिगत और जीवन व्यय की ओर एक-चौथाई की कटौती का निर्देश दिया जाना चाहिए। न्यायाधिकरण ने 800/- रुपये की मात्रात्मक कटौती का निर्देश दिया है, जो न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित मृतक की आय का लगभग दो-पंचमांश है, अर्थात् 2000/- रुपये। इसलिए, यह न्यायालय यह

निर्णय करता है कि न्यायाधिकरण ने व्यक्तिगत व्यय के लिए अत्यधिक कटौती का आदेश दिया है, जिसे एक-चौथाई की कटौती से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

21. न्यायाधिकरण ने '15' का गुणक लागू किया है। मृतक को 32 वर्ष का माना गया था। सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 40 में दी गई तालिका के अनुसार 31-35 वर्ष की आयु वर्ग के पीड़ित के लिए, अपनाए जाने वाला उपयुक्त गुणक '16' है। इसलिए, न्यायाधिकरण ने '15' का गुणक लागू करने में त्रुटि की।

22. वादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला मुद्दा भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी न देने का है। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के मददेनजर, भविष्य की संभावनाओं को घातक मोटर दुर्घटनाओं के पीड़ितों के मामलों में भी प्रदान किया जाना है, जो स्व-नियोजित हैं या निश्चित वेतन पर काम करते हैं। निश्चित रूप से यह प्रश्न उठेगा कि भविष्य की संभावनाएं, जिनके लिए वादीगण हकदार हैं, प्रणय सेठी (उपरोक्त) में निर्धारित कानून द्वारा या 1998 के नियमों के नियम 220-ए(3) द्वारा शासित होंगी। यह मुद्दा अब न्यू इंडिया एश्योरेंस कं. लि. बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822 में दिए गए निर्णय के मददेनजर रेस इंटेग्रा नहीं है, जहां यह अवलोकन किया गया है:

"9. यह ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान मामले में नियमों की वैधता को किसी भी तरह से प्रश्नगत नहीं किया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है, वह यह है कि क्या इसके अनुप्रयोग में, नियमों के नियम 220ए के उप-नियम 3(iii) को सीमित दायरा दिया जाना चाहिए या इसे पूरी तरह से कार्य करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी में इस बिंदु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के अनुसार "उचित मुआवजा" तक पहुंचने के दृष्टिकोण से की गई थी।

11. यदि एक सांविधिक साधन के रूप में एक संकेतक उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल व्यवहार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के निर्णय को ऐसे सांविधिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने वाला नहीं माना जा सकता, विशेष रूप से जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के अधीन नहीं रखा गया था। प्रणय सेठी में कहे गए अनुसार 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में मृतक के मामलों में 15% के निर्धारण को अधिकतम नहीं माना जा सकता। सांविधिक व्यवस्था में किसी भी शासी सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि किसी सांविधिक लिखत/ साधन ने एक ऐसा फार्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे सांविधिक लिखत/ साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी

चाहिए जब तक कि सांविधिक लिखत अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्क को अस्वीकार करते हैं और न्यायाधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और इस अपील को बिना किसी लागत के आदेश के खारिज करते हैं।

23. इसलिए, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि उत्तर प्रदेश राज्य में भविष्य की संभावनाओं को 1998 के नियमों के नियम 220-ए(3) के अनुसार मात्रात्मक किया जाना चाहिए, न कि प्रणय सेठी में दिए गए सिद्धांतों के अनुसार।

24. अगला मुद्दा जो उठता है वह यह है कि क्या 1998 के नियमों का नियम 220-ए(3), जो अधिसूचना संख्या 777/XXX4-2011-4(3)-2010 दिनांक 26 सितंबर, 2011 यानी उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियम, 2011 के द्वारा लागू हुआ, क्या यह संशोधन से बहुत पहले हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा। यह मुद्दा इस न्यायालय के एक खंडपीठ के विचार के लिए सुशील कुमार और अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लोजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2017 (35) एलसीडी 1311 में आया था। सुशील कुमार (उपरोक्त) में यह माना गया है:

"31. नियम 220-ए को उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 में घायल/मृतक के भविष्य की संभावनाओं

के लिए लाभ प्रदान करने के लिए विभिन्न न्यायालयों के निर्णयों के मददेनजर जोड़ा गया था। यह मुआवजे के निर्धारण के उद्देश्य से घायल/मृतक की वास्तविक आय में उसकी आयु के आधार पर आय के कुछ प्रतिशत के जोड़ के लिए प्रावधान करता है। उपरोक्त नियम 26.09.2011 को दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले प्रभावी हुआ, हालांकि दुर्घटना 08.05.2010 को उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले हुई थी।

32. उपरोक्त के मददेनजर यह तर्क दिया जा रहा है कि नियमों का नियम 220-ए जो 26.09.2011 को प्रभावी हुआ, वह 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम स्वरूप बनाम मुंशी एआईआर 1963 एससी 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षों के अधिकारों को कवर करेगा।

34. उपरोक्त व्यक्त किए गए विचार का पालन सर्वोच्च न्यायालय ने मूला बनाम गोधु एआईआर 1971 एससी 89 में किया था।

35. दयावती बनाम इंदरजीत एआईआर 1966 एससी 1423 में न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की थी:- यदि नया कानून ऐसी भाषा में बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट आशय से, लंबित मामलों को भी शामिल करता है,

तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपील न्यायालय को भी इस तरह व्यक्त किए गए इरादे पर ध्यान देना चाहिए, और अपील न्यायालय प्रथम दृष्टया न्यायालय के निर्णय के बाद भी ऐसे कानून को प्रभावी कर सकता है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह एआईआर 1974 एससी2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को प्रभाव दिया गया क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा मुकदमे की पुनः सुनवाई की प्रकृति में होती है।

37. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में लक्ष्मी नारायण गुइन और अन्य बनाम निरंजन मोदक एआईआर 1985 एससी 111 में यह माना गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षों के अधिकार को कवर करेगा।

38. उपरोक्त निर्णय का पालन इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यू.पी. स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) एडव्ल्यूसी 2620 में किया था जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों से संबंधित एक मामला था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षों के अधिकारों को कवर किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के मददेनजर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा आईसीआईसीआई लोम्बार्ड (उपरोक्त) में व्यक्त किया गया विचार अच्छा कानून नहीं है क्योंकि यह उपरोक्त संदर्भित निर्णयों को ध्यान में नहीं रखता है, यह मानते हुए कि नियमों का नियम 220-ए जो 26.09.2011 को प्रभावी हुआ, वह केवल इस कारण से उक्त तिथि से पहले हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा कि नियम को विशेष रूप से पूर्वव्यापी प्रकृति का नहीं बताया गया था।"

25. सुशील कुमार (उपरोक्त) में खंडपीठ द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, जो स्पष्ट रूप से इस न्यायालय को बाध्य करता है, भविष्य की संभावनाओं का पुरस्कार 1998 के नियमों के नियम 220-ए(3) के अनुसार किया जाना है, इस तथ्य के बावजूद कि दुर्घटना संशोधन से पहले हुई थी। यहाँ, मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी और नियम 220-ए(3) के अनुसार, भविष्य की संभावनाओं की ओर उसकी आय में 50% का जोड़ होना चाहिए।

26. अगला प्रश्न जो विचार के लिए उठता है वह है परंपरागत शीर्षों के तहत दावेदारों की हकदारी। **प्रणय सेठी** में, यह माना गया है:

"48. इस पहलू को स्पष्ट किए जाने और उपयुक्त रूप से कहे जाने की आवश्यकता है। परंपरागत राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। उक्त अनुसूची को त्रिलोक चंद्र [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक

चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] में न्यायालय द्वारा दोषपूर्ण पाया गया है। हाल ही में, पुट्टम्म बनाम के.एल. नारायण रेड्डी [पुट्टम्म बनाम के.एल. नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45 : (2014) 4 एससीसी (सिव) 384 : (2014) 3 एससीसी (क्रि) 574] में इसे पुनः दोहराया गया है, जिसमें कहा गया है : (एससीसी पृ. 80, पैरा 54)

"54. ... हम मानते हैं कि दूसरी अनुसूची जैसी 1994 में अधिनियमित की गई थी, अब बदली हुई परिस्थितियों के कारण अप्रासंगिक, अतार्किक और अव्यावहारिक हो गई है, जिसमें वर्तमान जीवन यापन की लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा शामिल हैं।"

49. जहां तक गुणक या गुण्य का संबंध है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया है। दूसरी अनुसूची का पैरा 3 भी मृत्यु के मामले में सामान्य नुकसान के लिए प्रावधान करता है। यह इस प्रकार है:

"3. सामान्य नुकसान (मृत्यु के मामले में):

निम्नलिखित सामान्य नुकसान ऊपर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त देय होंगे:

(i)	अंतिम संस्कार खर्च	रु. 2000
(ii)	साथी की हानि, यदि लाभार्थी जीवनसाथी है	रु. 5000
(iii)	संपत्ति की	रु. 2500

	हानि	
(iv)	चिकित्सा खर्च - मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक खर्च जो बिल/वाउचर द्वारा समर्थित हों	लेकिन रु. 15,000 से अधिक न हों"

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्र [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] के निर्णय से शुरू करके दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है और इसमें कोई संशोधन नहीं हुआ है। परंपरागत नुकसान राशि को उपयुक्त रूप से निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है।

51. उपरोक्त आधार पर, न्यायालय ने परंपरागत शीर्षों के तहत मुआवजा देने की प्रथा का पुनरावलोकन किया है।

52. जहां तक परंपरागत शीर्षों का संबंध है, हमें राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 179 : (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में व्यक्त किए गए विचार से सहमत होने में कठिनाई होती है। इसने अंतिम संस्कार खर्च के लिए 25,000 रुपये, साथी की हानि के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन की हानि के लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। देखभाल की हानि और नाबालिग बच्चों से

संबंधित शीर्षक मौजूद नहीं है। हालांकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 179 : (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कं. लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421 : (2012) 3 एससीसी (सिव) 726 : (2012) 3 एससीसी (क्रि) 160 : (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167] का उल्लेख करता है, यह उसका पालन करता नहीं दिखता। परंपरागत और पारंपरिक शीर्षों को, कहने की आवश्यकता नहीं है, प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह स्वीकार्य मापदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षों को मात्रात्मक किया जाना चाहिए। किसी भी मात्रात्मकता का एक उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। न्यायालय इससे अनजान नहीं रह सकता। इस पहलू में एक अंगूठे का नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अंगूठे का नियम लागू नहीं किया जाता, तब तक अत्यधिक भिन्नता होगी जिसमें किसी भी प्रकार की संगतता की कमी होगी जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश

अमार्गदर्शित होने की संभावना है। इसलिए, हमें लगता है कि उचित राशि तय करना उचित है। हमें लगता है कि परंपरागत शीर्षों पर उचित आंकड़े, अर्थात्, संपत्ति की हानि, साथी की हानि और अंतिम संस्कार खर्च क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त शीर्षों का पुनरावलोकन करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरावलोकन तथ्य-केंद्रित या मात्रा-केंद्रित नहीं होना चाहिए। हमें लगता है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है उसे हर तीन साल में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाए और वृद्धि तीन साल की अवधि में 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा मानने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन शीर्षों के संबंध में संगतता आएगी।"

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

27. साथी की हानि के लिए क्या मुआवजा दिया जाना है और किन दावेदारों को, यह मुद्दा था जिस पर सर्वोच्च न्यायालय ने मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहूरू राम और अन्य, (2018) 18 एससीसी 130 में विचार किया था, जहां यह माना गया:

"21. इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने प्रणय सेठी [नेशनल इंश्योरेंस कं. लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680 : (2018) 3 एससीसी (सिव) 248 : (2018) 2

एससीसी (क्रि) 205] में मृत्यु के मामले में मुआवजा देने के विभिन्न शीर्षों पर विचार किया। इनमें से एक शीर्ष साथी की हानि है। कानूनी भाषा में, "कंसोर्टियम" एक व्यापक शब्द है जिसमें "पति-पत्नी का कंसोर्टियम", "माता-पिता का कंसोर्टियम", और "संतान का कंसोर्टियम" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक की कंपनी, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक नुकसान है। एक जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे : [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 179 : (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]

21.1. पति-पत्नी का कंसोर्टियम
आमतौर पर पति-पत्नी के संबंध से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित जीवनसाथी को "हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की कंपनी, समाज, सहयोग, स्नेह और सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजे की अनुमति देता है। [ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979)]

21.2. माता-पिता का कंसोर्टियम
माता-पिता की समय से पहले मृत्यु पर बच्चे को दिया जाता

है, "माता-पिता की सहायता, संरक्षण, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" के नुकसान के लिए।
21.3. संतान का कंसोर्टियम
बच्चे की दुर्घटनावश मृत्यु के मामले में माता-पिता को मुआवजे का अधिकार है। एक बच्चे की मृत्यु का कारण बनने वाली दुर्घटना मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत बड़ा आघात और पीड़ा पहुंचाती है। एक माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल के दौरान अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए मूल्यवान माना जाता है।
(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

28. न्यायाधिकरण ने नाबालिग दावेदारों को देय मुआवजे को एक राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा में रखने का निर्देश दिया था जब तक कि नाबालिग वयस्कता प्राप्त न कर लें। नाबालिगों में से सबसे छोटा, जो दावा याचिका दायर करने के समय दो वर्ष का था, अब लगभग 25 वर्ष का होगा। अन्य उससे बड़े होंगे। इसलिए, अब देय मुआवजे के किसी भी हिस्से को सावधि जमा में निवेश करने का निर्देश आवश्यक नहीं है।

29. उपरोक्त निष्कर्ष के मददेनजर, इस अपील में दावेदारों को देय मुआवजे को

संशोधित किया जाता है और निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जाना होगा:

(i) मासिक आय (मृतक की)

$$= 3000$$

(ii) वार्षिक आय (मृतक की) = 3000×12

$$= 36000$$

(iii) वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं
(वार्षिक आय $\times$ 50%) = $36000 + 18000$

$$= 54000$$

(iv) वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के

लिए एक चौथाई कटौती = $54000 - 13500$

$$= 40500$$

(v) कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता $\times$ लागू

$$\text{गुणक} = 40500 \times 16 = 648000$$

(vi) परंपरागत शीर्षों के तहत दावेदार की हकदारी = संपत्ति की हानि + अंतिम संस्कार खर्च + आश्रितों का कंसोर्टियम = $15000 + 15000 + 40000 \times 5 = 230000$

इसलिए, कुल मुआवजा, 648000 रुपये + 230000 रुपये = 878000

की राशि होगी

30. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को संशोधित किया जाता है और दिए गए मुआवजे को बढ़ाकर 8,78,000/- रुपये किया जाता है। उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर करने की तिथि से वसूली तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। आक्षेपित आदेश के अनुसरण में बीमाकर्ताओं द्वारा न्यायाधिकरण के पास पहले से जमा की गई कोई भी धनराशि इसके विरुद्ध समायोजित की जाएगी।

दावेदारों के बीच विभाजन के लिए न्यायाधिकरण के निर्देश यथावत रहेंगे, लेकिन अब मुआवजे को किसी भी प्रकार की सावधि जमा में निवेश करने की आवश्यकता नहीं होगी। यह प्रत्येक दावेदार और/या उनके कानूनी प्रतिनिधियों को उनकी हकदारी के अनुसार उस तरीके से देय होगा जैसा कि न्यायाधिकरण निर्देशित करे।

(2023) 7 ILRA 117

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आदेश संख्या 1394 वर्ष 2006 से प्रथम

अपील

के साथ

क्रॉस अपील/क्रॉस आपत्ति संख्या 65668 वर्ष 2013

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, सिविल लाइंस, इलाहाबाद

बनाम

श्री सत्य नारायण केसरवानी एवं अन्य

.....प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री कोमल मेहरोत्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री राम सिंह, श्री विनय कुमार चतुर्वेदी

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम,

1988 - धारा 173 - प्रतिकर में वृद्धि -

घातक दुर्घटना - मृतक टैंकर के पहियों के नीचे कुचला गया और मौके पर ही मृत्यु हो गई - दावा याचिका मृतक के पिता द्वारा दायर की गई, जिन्होंने स्वयं तथा मृतक की माता, दो आश्रितों के लिए प्रतिकर की मांग की - मृतक की आयु 25 वर्ष थी तथा वह चावल विक्रय के व्यवसाय में संलग्न था - मृतक की वार्षिक आय 36,000/- रुपये मानी गई - भविष्य की संभावनाओं के लिए 50% जोड़ा गया नियम 220-ए(3) 1998 के अनुसार - गुणक 18 लागू किया गया - अतः कुल प्रतिकर ₹5,96,000/- 7% की दर से प्रदान किया गया (प्रस्तर 1 से 47 तक)।

बी. पुत्र सान्निध्य वह अधिकार है जो माता-पिता को संतान की आकस्मिक मृत्यु की स्थिति में प्रतिकर प्राप्त करने हेतु प्राप्त होता है। एक दुर्घटना जो किसी संतान की मृत्यु का कारण बनती है, मृतक के माता-पिता एवं परिवार के लिए अत्यंत आघात एवं पीड़ा का कारण बनती है। माता-पिता के लिए जीवनकाल में अपनी संतान को खोना सबसे बड़ी पीड़ा होती है। संतान को उनके प्रेम, स्नेह, संगति तथा पारिवारिक इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है। (प्रस्तर 45)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

1. यह अपील मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के तहत एमएसीपी संख्या

407/2004 में पारित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 13, इलाहाबाद दिनांक 28.02.2006 के निर्णय और आदेश के खिलाफ निर्देशित है।

2. अपील बीमा कंपनी की ओर से है, जिसका कहना है कि वे उत्तरदायी नहीं हैं।

3. दावेदारों, जो अपील के प्रतिवादी हैं, की ओर से क्रॉस ऑब्जेक्शन नंबर 65668 सन् 2013 लाया गया है, जिसमें कहा गया है कि दिया गया मुआवजा अपर्याप्त है और इसे बढ़ाया जाना चाहिए।

4. यह निर्णय अपील और क्रॉस ऑब्जेक्शन दोनों पर निर्णय करेगा।

5. दावा याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि दिनेश कुमार केसरवानी चावल की खुदरा बिक्री के व्यवसाय में लगे हुए थे। दिनांक 08.07.2004 को वह सोमनाथ केसरवानी नामक व्यक्ति के साथ साइकिल पर सवार होकर पुलिस स्टेशन सैनी, जिला कौशांबी से शिव कुटी, इलाहाबाद की ओर जा रहे थे। वे सड़क के नियम के अनुसार साइकिल चला रहे थे। दोपहर करीब 12 बजकर 20 मिनट पर फाफामऊ छोर की ओर से एक गैस टैंकर सड़क के पास आया। इसका रजिस्ट्रेशन नंबर HR-29GA-0320 था। टैंकर को उसके ड्राइवर द्वारा तेज गति एवं लापरवाही से चलाया जा रहा था। फाफामऊ पुल पर उक्त टैंकर केसरवानी की तरफ आया और उनकी साइकिल में टक्कर मार दिया। दिनेश कुमार केसरवानी

टैंकर के पहिए के नीचे कुचल गए और उनकी मौत पर ही मौत हो गई। दावा याचिका मृतक के पिता सत्य नारायण केसरवानी द्वारा दायर की गई थी, जिसमें उन्होंने अपने और मृतक की मां श्रीमती निर्मला देवी, दो आश्रितों, जिनका भरण पोषण दिनेश कुमार केसरवानी के ऊपर था, के लिए मुआवजे का दावा किया था।

दावा किया गया कि मृतक की उम्र 25 साल थी और वह चावल बेचने का कारोबार करता था। वह एक स्व-रोज़गार व्यक्ति था, जो प्रति माह 6000/- रुपये कमाता था।

6. आपतिजनक टैंकर के मालिक, तारा चंद गोयल को दावा याचिका में विपक्षी नंबर 1 के रूप में शामिल किया गया था और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एम.जी. मार्ग, सिविल लाइंस, इलाहाबाद हमलावर टैंकर के बीमाकर्ता थे। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी (अपीलकर्ता) और तारा चंद गोयल (प्रतिवादी नंबर 3) को इसके बाद क्रमशः 'बीमाकर्ता' और 'मालिक' के रूप में संदर्भित किया जाएगा। इस अपील के लंबित रहने तक प्रतिस्थापित किए गए पिता के कानूनी प्रतिनिधियों सहित मृतक के पिता और माता को 'दावेदार' के रूप में संदर्भित किया जाएगा, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा आवश्यक न हो। दावेदारों ने कुल 12,55,000/- रुपये के मुआवजे की मांग की।

7. मालिक ने आम तौर पर दावेदारों के मामले को नकारते हुए एक लिखित बयान दायर किया। यह तर्क दिया गया है कि हमलावर

टैंकर बीमाकर्ताओं के पास बीमाकृत है और दुर्घटना की जानकारी बीमाकर्ताओं को दी गई थी। हमलावर टैंकर के पास राष्ट्रीय परमिट था और वह फिट और सड़क पर चलने लायक था। टैंकर के ड्राइवर के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। यह हादसा मृतक के लापरवाही से साइकिल चलाते समय हुआ। यह मृतक ही था, जो अपनी लापरवाही से टैंकर के पहिये के नीचे आ गया। लिखित बयान के साथ, मालिक ने आठ दस्तावेज दाखिल किए, जिसमें पावर ऑफ अटॉर्नी, बीमाकर्ताओं को भेजा गया नोटिस, पंजीकरण प्रमाण पत्र, परमिट, फिटनेस प्रमाण पत्र, बीमा कवर की एक प्रति, ड्राइविंग लाइसेंस और पांच साल का परमिट शामिल है।

8. बीमाकर्ताओं ने आम तौर पर दावेदारों के मामले को नकारते हुए एक अलग लिखित बयान दायर किया। अतिरिक्त दलीलों में कहा गया कि याचिका के साथ पंजीकरण पुस्तिका, ड्राइविंग लाइसेंस और आपतिजनक टैंकर के परमिट के अलावा अन्य कागजात दाखिल नहीं किए गए हैं। नुकसान के लिए किए गए मुआवजे के दावे को झूठा और फर्जी बताते हुए कहा गया कि कोई दुर्घटना हुई ही नहीं। यह तर्क दिया गया कि दावेदारों ने दावा याचिका के समर्थन में आवश्यक दस्तावेज और अन्य जानकारी नहीं दी है। जो मुआवजा मांगा गया है वह अनुपातहीन है। इस आशय की एक याचिका भी दायर की गई थी कि दुर्घटना के समय आपतिजनक टैंकर को बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों के खिलाफ चलाया जा रहा था, जिससे दावेदारों या मालिकों को बीमाकर्ताओं से वसूली करने का अधिकार नहीं था। पैराग्राफ संख्या 29 में, यह कहा गया है

कि दुर्घटना के समय, हमलावर टैंकर के ड्राइवर के पास उस विशेष प्रकार का वाहन चलाने के लिए वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, जो हमलावर था। इन दलीलों पर बीमाकर्ताओं ने अपने दायित्व से मुक्त होने का अनुरोध किया।

9. पक्षकारों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या दिनांक 08.07.2004 को दोपहर लगभग 12.20 बजे, थाना शिव कुटी, जिला इलाहाबाद की स्थानीय सीमा के अंतर्गत गंगा ब्रिज, फाफामऊ पर, वाहन पंजीकरण संख्या HR-29GA-0320 को तेज गति और लापरवाही से चला रहे ड्राइवर ने दिनेश कुमार केसरवानी को उस समय टक्कर मार दी जब वह साइकिल चला रहा था, जिससे वह घायल हो गया और उसकी मृत्यु हो गई?

2. क्या दुर्घटना मृतक की विशेष लापरवाही के कारण हुई?

3. क्या दुर्घटना के समय, संबंधित वाहन के ड्राइवर के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था?

4. क्या दुर्घटना के समय, संबंधित मोटर वाहन का बीमा विपक्षी पक्षकार, बीमा कंपनी द्वारा नियमानुसार किया गया था?

5. क्या दावेदार कोई मुआवजा प्राप्त करने के हकदार हैं, यदि हाँ, तो किससे?”

10. दावेदारों ने दस्तावेजों की एक सूची के माध्यम से आठ कागजात दाखिल किए, जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट, आरोप पत्र, साइट मैप, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट, तकनीकी निरीक्षण रिपोर्ट, पंजीकरण प्रमाण पत्र, बीमा पॉलिसी और ड्राइविंग लाइसेंस की एक प्रति शामिल है।

11. मौखिक गवाही में, दावेदारों ने दो दावेदारों में से एक पीडब्लू-1, सत्य नारायण की जांच की। इसके अलावा, सोमनाथ केसरवानी से पीडब्लू-2 के रूप में पूछताछ की गई।

12. मालिकों की ओर से ड्राइविंग लाइसेंस की कॉपी दाखिल की गई। बीमाकर्ताओं ने 24.02.2006 को अपने जांचकर्ता की एक रिपोर्ट दायर की, जिसने ड्राइविंग लाइसेंस के बारे में संबंधित क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी से एक प्रमाण पत्र के साथ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो यहां विचार का विषय है।

13. मुद्दा संख्या 1 का निर्णय दावेदारों के पक्ष में और मालिक तथा बीमाकर्ताओं के विरुद्ध किया गया। मुद्दा संख्या 2 का निर्णय भी दावेदारों के पक्ष में और बीमाकर्ताओं तथा मालिक के विरुद्ध यह कहते हुए दिया गया कि इसमें मृतक की कोई लापरवाही नहीं थी, जिसके कारण दुर्घटना हुई। हालांकि कुछ हिचकिचाहट भरी टिप्पणियों के साथ मुद्दा संख्या 3 का निर्णय भी दावेदारों के पक्ष में और बीमाकर्ताओं के विरुद्ध किया गया, लेकिन अंत में यह माना गया कि बीमाकर्ता अपने स्वयं के जांचकर्ता की रिपोर्ट के अलावा किसी भी सबूत से यह साबित नहीं कर सके कि लाइसेंस जाली या फर्जी था। मुद्दा संख्या

4 का निर्णय भी दावेदारों और मालिक के पक्ष में और बीमाकर्ताओं के विरुद्ध यह कहते हुए सुनाया गया कि दुर्घटना की तिथि पर, बीमाकर्ताओं के साथ हमलावर टैंकर का विधिवत बीमा किया गया था।

14. मुद्दा संख्या 5, जो मुआवजे से संबंधित है और दावेदार जिसके हकदार हैं, पर निर्णय करते समय, ट्रिब्यूनल ने मृतक को प्रतिदिन 100/- रुपये की दैनिक आय और छह दिनों की छुट्टी/गैर-कार्य दिवसों के लिए भत्ता दिया। मासिक आय 2400/- रुपये निर्धारित की गई थी। व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए कटौती का आदेश एक तिहाई, यानी 800/- रुपये की सीमा तक दिया गया था, जिससे दावेदारों के लिए 1600/- रुपये प्रति माह की निर्भरता वापस आ गई।

इसलिए, वार्षिक आय 19,200/- रुपये निर्धारित की गयी। मृतक के पिता की उम्र 49 साल थी और उसकी मां की उम्र 46 साल थी। ट्रिब्यूनल ने मृतक के बजाय दावेदारों की उम्र के आधार पर '13' के गुणक को अपनाया। उस गुणक को अपनाते हुए, 2,49,600/- रुपये का मुआवजा दिया गया, जिसमें अंत्येष्टि व्यय में 2000/- रुपये की राशि जोड़ दी गई। इस प्रकार, कुल मुआवजा, जो दिया गया था, 2,51,600/- रुपये की राशि थी, जिसमें दावा याचिका संस्थित होने की तारीख से वसूली तक, सालाना 6% साधारण ब्याज लगाया गया था। ट्रिब्यूनल द्वारा देय संपूर्ण मुआवजे को दावेदारों के बीच समान रूप से साझा करने का निर्देश दिया गया था।

15. बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कोमल मेहरोत्रा, दावेदारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राम सिंह और मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विनय कुमार चतुर्वेदी को सुना।

16. विद्वान अधिवक्ता श्री राम सिंह को आपत्तियों के समर्थन में और श्री कोमल मेहरोत्रा और श्री विनय कुमार चतुर्वेदी को उत्तर में सुना गया है।

17. श्री कोमल मेहरोत्रा का तर्क है कि बीमाकर्ता इस मामले में उत्तरदायी नहीं हैं, क्योंकि ड्राइवर हजरत अली नाम का एक व्यक्ति था। उसके पास वैध लाइसेंस नहीं था। इस ड्राइवर के लिए ड्राइविंग लाइसेंस की एक फोटोस्टेट कॉपी, जो प्रदान की गई थी, जब लाइसेंसिंग अथॉरिटी, राजकोट, गुजरात, जिसने कथित तौर पर इसे जारी किया था, से सत्यापित की गई, तो पता चला कि संबंधित नंबर पर ड्राइविंग लाइसेंस किसी हरसब भाई के नाम पर जारी किया गया था। ट्रिब्यूनल के समक्ष ड्राइविंग लाइसेंस सत्यापन रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। यह इंगित किया गया है कि दायर की गई रिपोर्ट के साथ, एक आवेदन, पेपर नंबर 26-जीए, यानी 22 फरवरी, 2006 का आवेदन पेश किया गया था, जिसमें ट्रिब्यूनल से लाइसेंसिंग अथॉरिटी से मूल रिकॉर्ड तलब करने का अनुरोध किया गया था। यह बताया गया है कि 24 फरवरी, 2006 के एक आदेश के माध्यम से, ट्रिब्यूनल ने लाइसेंस सत्यापन रिपोर्ट को रिकॉर्ड पर रखने का निर्देश दिया, लेकिन लाइसेंसिंग प्राधिकरण, राजकोट से रिकॉर्ड तलब करने के लिए कोई आदेश पारित

नहीं किया। यह तर्क दिया गया है कि मुद्दा संख्या 3 पर निर्णय लेते समय, ट्रिब्यूनल ने यह मानने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है कि चूंकि बीमाकर्ताओं ने यह दिखाने के लिए जांचकर्ता की रिपोर्ट रिकॉर्ड पर प्रस्तुत किया है कि ड्राइविंग लाइसेंस नकली था, जबकि दावेदारों ने इसकी एक प्रति प्रस्तुत की और लाइसेंस नकली होने के बारे में बीमाकर्ताओं का मामला स्वीकार नहीं किया जा सका। दिनांक 2 सितंबर, 2005 की जांचकर्ता की रिपोर्ट के साथ, लाइसेंसिंग प्राधिकरण, राजकोट से ड्राइविंग लाइसेंस सत्यापन रिपोर्ट भी मूल रूप से दायर की गई थी। तर्क यह है कि बीमाकर्ताओं ने यह सभी साक्ष्य सबूत पेश करके यह दिखाने के अपने दायित्व से मुक्ति पा ली कि मालिक द्वारा ड्राइवर के लिए दावा किया गया लाइसेंस नकली था। इतने सारे सबूतों के साथ, यह दावेदारों या मालिक पर था कि वह खंडन में प्रमुख सबूतों के जरिए यह साबित करे कि लाइसेंस असली था। यह कहा गया है कि ऐसे तथ्यों के सामने, बीमाकर्ताओं को मालिक से वसूली का अधिकार दिया जाना चाहिए क्योंकि पॉलिसी का उल्लंघन हुआ था।

18. दावा किए गए मुआवजे के बारे में यह तर्क दिया गया है कि मृतक के चावल की खुदरा बिक्री के व्यवसाय में लाभकारी रूप से नियोजित होने का कोई सबूत नहीं है। इसलिए, बीमाकर्ताओं के अनुसार, उन्हें प्रति वर्ष अधिकतम 15,000/- रुपये की अनुमानित आय का श्रेय दिया जा सकता है। ट्रिब्यूनल ने मृतक के लिए 19,200/- रुपये की वार्षिक आय का पता लगाने में गलती की।

19. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री राम सिंह ने बीमाकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलों का खंडन किया है। उनका कहना है कि मालिक के लिए लाइसेंस की एक फोटोस्टेट कॉपी, उसका पूरा विवरण देना ही काफी है। वह इस बात पर जोर देते हैं कि ड्राइवर के पास जो लाइसेंस था वह नकली था, बीमाकर्ताओं पर लाइसेंसिंग प्राधिकारी या उनके किसी अधिकारी, जिसने लाइसेंस के बारे में प्रमाण पत्र जारी किया था, से रिकॉर्ड तलब करना सुनिश्चित करने का दायित्व था, जिसके आधार पर लाइसेंस को नकली करार दिया गया। एक बार समन किये जाने पर अधिकारी को प्रमाणपत्र साबित करना होगा और खुद जिरह करनी होगी। ऐसा तब होता है जब साक्ष्यात्मक बोझ के अर्थ में, बीमाकर्ताओं के बोझ को मालिक और दावेदारों पर डाला या स्थानांतरित किया जा सकता है।

20. लाइसेंस की वैधता के बिंदु पर, मालिक के विद्वान अधिवक्ता, श्री विनय कुमार चतुर्वेदी ने दावेदारों के रुख का समर्थन किया है। उन्होंने यह भी कहा कि लाइसेंस के विवरण को देखते हुए, प्रमाणपत्र को साबित करने के उद्देश्य से लाइसेंसिंग प्राधिकरण के कार्यालय से कुछ अधिकारी को बुलाना मालिक पर निर्भर था, जिस पर बीमाकर्ता भरोसा करते हैं।

21. जहां तक अपील का सवाल है, पक्षकारों के विवाद का जोर ड्राइवर के पास मौजूद लाइसेंस की वैधता और उन मानकों के बारे में है जिनके द्वारा इसे नकली या असली साबित किया जाना चाहिए। बेशक, संबद्ध प्रश्न, लाइसेंस की वैधता को दूर करने या इसकी

वास्तविकता की पुष्टि करने का बोझ कौन उठाएगा, सुनवाई के दौरान विस्तार से पूछा गया है।

22. अपने कथन के समर्थन में, श्री मेहरोत्रा ने यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती शशि प्रभा शर्मा एवं अन्य, 2015 (4) टीएसी 650 (आल) मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है। स्पष्ट रूप से, उक्त पूर्ण पीठ एक बहुत ही अलग प्रश्न पर विचार करती है, जो उस मामले को मानते हुए मालिक से वसूली के तरीके के बारे में अधिक चिंतित है जहां निर्देश भुगतान करने और वसूली करने का है। इसलिए, उक्त प्राधिकरण बीमाकर्ताओं को अधिक सहायता नहीं देता है।

23. अगला निर्णय जिस पर बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अवलम्ब लिया है वह नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम छल्ला उपेन्द्र राव, (2004) 8 एससीसी 517 है। छल्ला उपेन्द्र राव (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति के अवधारणा इस आशय की है कि जहां कोई परिवहन वाहन बिना परमिट के चलता है, यह मोटर वाहन अधिनियम की धारा 149(2) का उल्लंघन है और बीमाकर्ताओं को बचाव प्रदान करता है। उस मामले में, यह अवधारित किया गया कि बीमाकर्ताओं को भुगतान करने और वसूली करने का अधिकार होगा। इस न्यायालय की समझ से, यहां यह बिल्कुल भी शामिल मुद्दा नहीं है।

24. श्री मेहरोत्रा ने श्री केदार सिंह बनाम सरला देवी और अन्य, 2019 के एफएफओ

संख्या 2261, 27.09.2021 को दिए गए निर्णय में इस न्यायालय के एक अप्रतिवेद्य निर्णय पर अवलम्ब लिया है। श्री केदार सिंह (उपरोक्त) में मेरे आदरणीय भाई सिद्धार्थ की कुछ टिप्पणियाँ हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। श्री केदार सिंह मामले में, माननीय न्यायमूर्ति द्वाया निम्नानुसार अवधारित किया गया:

“16. प्रतिवादी संख्या 4/रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि मुद्दा संख्या 3 पर निर्णय लेते समय ट्रिब्यूनल ने सही ढंग से आगे बढ़ाया है और निष्कर्ष दर्ज किया है कि ट्रक के ड्राइवर के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। दुर्घटना के समय रिकॉर्ड पर ड्राइविंग लाइसेंस नकली पाया गया था। मुद्दा संख्या 3 पर निष्कर्ष का एक मात्र अवलोकन यह दर्शाता है कि ड्राइविंग लाइसेंस (ड्राइविंग लाइसेंस संख्या 2222/आरजे/2005) की मात्र फोटोकॉपी रिकॉर्ड पर लाने के अलावा मालिक/अपीलकर्ता द्वारा कोई अन्य साक्ष्य दायर नहीं किया गया था। ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा न तो मूल ड्राइविंग लाइसेंस रिकॉर्ड में लाया गया और न ही उसने इसे प्रमाणित करने के लिए कटघरे में प्रवेश किया। यहां तक कि ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा ड्राइवर की जांच भी नहीं की गई। बीमा

कंपनी ने अपनी ओर से ड्राइविंग लाइसेंस (डीएल नंबर 2222/आरजे/2005) की वैधता की जांच की और परिणामस्वरूप ट्रिब्यूनल के समक्ष फॉर्म 54 के तहत संबंधित आर.टी.ओ. से प्राप्त रिपोर्ट दायर की। फॉर्म 54 पर प्राप्त रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि ड्राइविंग लाइसेंस नं. 2222/आरजे/2005 किसी कृष्ण गोपाल के पक्ष में जारी किया गया था, न कि कथित अपराधी ड्राइवर यानी भोला के नाम पर। इस प्रकार ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा दायर भोला के ड्राइविंग लाइसेंस की फोटोकॉपी एक नकली दस्तावेज थी। यह कानून का एक स्थापित प्रस्ताव है कि फॉर्म 54 एक सार्वजनिक दस्तावेज है जिसके लिए किसी गवाह की जांच करके औपचारिक सबूत की आवश्यकता नहीं होती है....

18. आगे की सुनवाई के दौरान ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता ने पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य, (2018) 3 एससीसी, 208 और पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 2013 (6) एडब्ल्यूसी 5736 मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया। इन दोनों निर्णयों पर ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा अवलम्ब लिया गया है जो

वास्तव में बीमा कंपनी/प्रतिवादी के रुख का समर्थन करते हैं। पप्पू (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय ने ड्राइविंग लाइसेंस के प्रमाण के भार के मानदंड निर्धारित किए हैं।

19. पप्पू (उपरोक्त) मामले में पैरा-13 में यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि "बीमा कंपनी को तभी उत्तरदायी बनाया जाएगा जब मूलभूत तथ्य दोषी वाहन के मालिक द्वारा प्रस्तुत और साबित किए जाएंगे।"

20. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न तो ट्रक के मालिक/आवेदक ने अपराधी वाहन के ड्राइवर (भोला) का मूल ड्राइविंग लाइसेंस रिकॉर्ड में लाया और न ही उसने ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता साबित करने के लिए कटघरे में प्रवेश किया। वास्तव में ड्राइवर को भी ट्रिब्यूनल के सामने पेश नहीं किया गया। ऐसी परिस्थितियों में केवल ड्राइविंग लाइसेंस की फोटोकॉपी दाखिल करने से ट्रक का मालिक/अपीलकर्ता अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाएगा। इसके विपरीत बीमा कंपनी/प्रतिवादी ने अपनी ओर से विधिवत फॉर्म 54 दाखिल किया था, जिसने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्थापित किया था कि मालिक प्रतिवादी द्वारा रिकॉर्ड पर लाया गया दस्तावेज एक

नकली, जाली, धोखाधड़ी और मनगढ़ंत दस्तावेज़ था।

21. जहां तक पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन (उपरोक्त) मामले का सवाल है, इसे आसानी से पहचाना जा सकता है और यह वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता है। पेप्सू (उपरोक्त) के मामले में बीमा कंपनी लाइसेंस जारी करने के लिए बनाए गए रजिस्टर की एक फोटोकॉपी रिकॉर्ड में लेकर आई थी। रिपोर्ट स्वयं निर्णायक नहीं थी क्योंकि इसमें उल्लेख किया गया था कि रजिस्टर गायब हो सकता है। लेकिन वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में फॉर्म 54 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि ड्राइविंग लाइसेंस कथित अपराधी ड्राइवर, यानी भोला के अलावा एक अलग व्यक्ति के नाम पर जारी किया गया था।

22. उपरोक्त के अलावा, पेप्सू (उपरोक्त) मामले में बीमाधारक/नियोक्ता ने ड्राइवर के रोजगार की प्रक्रिया के दौरान ड्राइवर का ड्राइविंग परीक्षण किया था और वास्तव में उसे प्रशिक्षण भी दिया था। मामले के उक्त पहलू की विधिवत पैरवी की गई और मालिक/बीमाधारक द्वारा कटघरे में प्रवेश करके इसे साबित किया गया। वर्तमान मामले के विशिष्ट

तथ्यों और परिस्थितियों में, ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष या इस अदालत के समक्ष उस मामले के लिए ऐसा कोई दावा या प्रयास नहीं किया गया था। उन्होंने केवल ड्राइवर भोला के ड्राइविंग लाइसेंस की एक फोटोकॉपी दाखिल की, जो उन्हें सबूत के बोझ से मुक्त नहीं करेगी।

29. ट्रिब्यूनल द्वारा ट्रक ड्राइवर के ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता को खारिज करने के ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दूसरी दलील के संबंध में, इस अदालत ने पाया कि ड्राइवर, भोला के ड्राइविंग लाइसेंस की केवल फोटोकॉपी मालिक/अपीलकर्ता द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष रिकॉर्ड पर लाया गया था। वाहन मालिक यह साबित करने के लिए ट्रिब्यूनल के समक्ष कभी भी गवाह के सामने पेश नहीं हुआ कि ड्राइविंग लाइसेंस उसे उसके ड्राइवर भोला ने दिया था और वह संतुष्ट था कि यह असली है। उन्होंने यह भी साबित नहीं किया कि उन्होंने यह देखने का प्रयास किया कि ड्राइवर गाड़ी चलाने में सक्षम है या नहीं। उन्हें ट्रिब्यूनल के समक्ष यह साबित करना था कि उन्होंने ड्राइवर को नियुक्त करने में उचित सावधानी बरती थी, जो वाहन चलाने के लिए योग्य और सक्षम

था। बीमाकर्ता और बीमाधारक के बीच दायित्व एक योग्य और सक्षम ड्राइवर को नियुक्त करते समय वाहन के मालिक द्वारा बरती गई उचित देखभाल पर निर्भर करता है। इन बुनियादी तथ्यों को वाहन के मालिक द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष साबित करना आवश्यक है ताकि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष बीमा कंपनी की देनदारी से खुद को बचाया जा सके।“

25. ऋषि पाल सिंह बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 (3) एसीसी 556 में उच्चतम न्यायालय के एक हालिया फैसले में, मोटर वाहन दुर्घटना दावे में लाइसेंस की वैधता के संबंध में सबूत के भार के विषय में मालिक, बीमाकर्ता और दावेदार के बीच प्रश्न को माननीय न्यायमूर्ति के विचार के लिए उठाया गया था, जहां यह अवधारित किया गया था:

“10. वाहन के मालिक से अपेक्षा की जाती है कि वह ड्राइविंग कौशल को सत्यापित करे और ड्राइवर नियुक्त करने से पहले ड्राइविंग लाइसेंस की वास्तविकता को सत्यापित करने के लिए लाइसेंसिंग प्राधिकारी के पास न दौड़े। इसलिए, एक बार जब मालिक संतुष्ट हो जाता है कि ड्राइवर वाहन चलाने में सक्षम है, तो उसके बाद मालिक से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह

ड्राइवर को जारी किए गए ड्राइविंग लाइसेंस की वास्तविकता को सत्यापित करे।“

26. ऋषि पाल सिंह (उपरोक्त) एक ऐसा मामला था जहां ड्राइविंग लाइसेंस असली नहीं पाया गया था, लेकिन तथ्य यह थे कि मालिक ने ट्रिब्यूनल के समक्ष शपथपत्र पर गवाही दी थी कि ड्राइवर को नियुक्त करने से पहले, उन्होंने ड्राइवर का ड्राइविंग परीक्षण किया और उसके ड्राइविंग कौशल को संतोषजनक पाया। अपनी जिरह में मालिक ने कहा कि ड्राइवर दुर्घटना की तारीख से तीन साल पहले से उसके यहां कार्यरत था। मालिक अपनी जिरह में इस तथ्य पर कायम रहा कि उसने ड्राइवर को नौकरी पर रखने से पहले उसका ड्राइविंग टेस्ट लिया था। मामले की एक विशेषता यह थी कि मालिक ने कहा कि ड्राइविंग लाइसेंस ड्राइवर से प्राप्त किया गया था और यह नागालैंड में एक लाइसेंसिंग प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया था, लेकिन मालिक ने इसे साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। ट्रिब्यूनल और उच्च न्यायालय ने माना कि मालिक ने आरोप लगाया कि ड्राइवर के पास नागालैंड का लाइसेंस था, लेकिन उसने इसे पेश नहीं किया। इसलिए, बीमा कंपनी मालिक से वसूली करने की हकदार थी। जैसा कि निर्णय की रिपोर्ट से पता चलेगा, विशेष अनुमति द्वारा अपील में माननीय न्यायमूर्ति के समक्ष ट्रिब्यूनल के रिकॉर्ड मांगे गए थे। रिकॉर्ड से पता चला कि दावेदार द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष ड्राइवर का लाइसेंस पेश किया गया था। उस लाइसेंस की सत्यता की जांच की गई और जो रिपोर्ट सौंपी गई, उसमें लाइसेंसिंग अथॉरिटी, मंडी, हिमाचल

प्रदेश राज्य द्वारा जारी किया जाने वाला ड्राइविंग लाइसेंस असली नहीं पाया गया। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में ही ऋषि पाल सिंह मामले में निम्नानुसार अवधारित किया गया:

“5. इस प्रकार, केवल दावेदार ही लाइसेंसिंग अथॉरिटी मंडी द्वारा जारी लाइसेंस पर निर्भर था। वह असली नहीं पाया गया। मालिक का यह कथन कि लाइसेंस नागालैंड का था, बिना किसी सहायक दस्तावेज़ के है और इस प्रकार इसका कोई मतलब नहीं है। तथ्य यह है कि टेस्ट लेने के बाद ड्राइवर नियुक्त करने के बाद, अपीलकर्ता से लाइसेंसिंग प्राधिकारी से यह पूछताछ करने की अपेक्षा नहीं की गई थी कि उसे दिखाया गया ड्राइविंग लाइसेंस वैध है या नहीं।

6. यदि मालिक ने कहा है कि ड्राइवर ने नागालैंड से ड्राइविंग लाइसेंस प्रस्तुत किया था, लेकिन रिकॉर्ड पर ऐसा कोई लाइसेंस प्रस्तुत नहीं किया गया था, तो यह स्पष्ट रूप से मालिक की ओर से एक गलती है। हालाँकि, ऐसे पहलू का उपयोग बीमा कंपनी को मालिक से राशि वसूलने की स्वतंत्रता देने के लिए नहीं किया जा सकता है, जब दावेदार द्वारा प्रस्तुत किया गया ड्राइविंग लाइसेंस वास्तव में उना, हिमाचल प्रदेश का था। यह कहा जा सकता है कि फाल्सस इन यूएनओ,

फाल्सस इन ऑम्निबस (एक चीज में झूठ, हर चीज में झूठ) यह सिद्धांत भारत में लागू नहीं है। इसलिए, भले ही बयान का एक हिस्सा कि ड्राइवर ने नागालैंड से लाइसेंस बनाया है, सही नहीं है और यह पूरी तरह से अप्रासंगिक है।

27. इस प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं है कि यदि यह बीमाकर्ताओं का मामला है कि ड्राइवर के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं है, तो इसे साबित करने का भार बीमाकर्ताओं पर है। लेकिन, इससे पहले कि उस भार को बीमाकर्ताओं पर डाला जा सके, उल्लंघन करने वाले टैंकर के मालिक को इससे मुक्त होने की जिम्मेदारी है, जिसके लिए उसे अपनी जानकारी में तथ्यों को प्रस्तुत करने और साबित करने की आवश्यकता होती है कि ड्राइवर वह व्यक्ति था जिसे उसने वाहन चलाने के लिए अधिकृत किया था, और मालिक के विश्वास में, दुर्घटना के समय उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। **पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य, (2018) 3 एससीसी 208** मामले में, यही वह प्रश्न था जो सर्वोच्च न्यायालय के विचार के लिए आया था, जहां यह अवधारित किया गया था:

“12. इस न्यायालय ने नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एससीसी 297: 2004 एससीसी (क्रि) 733] मामले में मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 149(2)(क)(ii) के

तहत बीमा कंपनी को उपलब्ध बचाव पर ध्यान दिया है। बीमा कंपनी यह बचाव करने की हकदार है कि अपराधी वाहन किसी अनधिकृत व्यक्ति द्वारा चलाया गया था या वाहन चलाने वाले व्यक्ति के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। बीमा कंपनी पर जिम्मेदारी तभी आएगी जब उल्लंघन करने वाले वाहन का मालिक दलील देगा और अपनी जानकारी में बुनियादी तथ्य साबित कर देगा कि हमलावर वाहन के चालक को वाहन चलाने के लिए अधिकृत किया गया था और संबंधित समय पर उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था।”

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

28. **पप्पू (उपरोक्त)** मामले में तथ्यों के संदर्भ में कुछ और टिप्पणियाँ हैं, जिसके कारण माननीय न्यायमूर्ति ने ड्राइवर के ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता को समाप्त करने के लिए बीमाकर्ता के भार को अस्तित्व में आने से पहले ड्राइवर के ड्राइविंग लाइसेंस और वाहन चलाने के लिए उसके प्राधिकरण के बारे में मालिक के प्रारंभिक भार या दायित्व की जांच के बारे में निर्णय लिया। इन तथ्यों का उल्लेख **पप्पू** की रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 13 में किया गया है, जो इस प्रकार है:

“13. वर्तमान मामले में, आपत्तिजनक वाहन के प्रतिवादी 1 मालिक ने लिखित बयान में केवल एक अस्पष्ट दलील दी कि

आपत्तिजनक वाहन संख्या डीआईएल 5955 को वैध ड्राइविंग लाइसेंस रखने वाला व्यक्ति चला रहा था। उन्होंने ड्राइवर का नाम और उसके अन्य विवरण का खुलासा नहीं किया। इसके अलावा, प्रतिवादी 1 ने कटघरे में प्रवेश नहीं किया या इस याचिका के समर्थन में किसी गवाह से पूछताछ नहीं की। प्रतिवादी 2 बीमा कंपनी ने लिखित बयान में स्पष्ट रूप से उस याचिका का खंडन किया है और यह भी दावा किया है कि आपत्तिजनक वाहन किसी अधिकृत व्यक्ति द्वारा नहीं चलाया गया था और उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। प्रतिवादी 1 आपत्तिजनक वाहन के मालिक ने जोगिंदर सिंह के ड्राइविंग लाइसेंस के अलावा कोई सबूत पेश नहीं किया, दलीलों में या सबूत में कोई विशिष्ट रुख नहीं अपनाया गया कि वही जोगिंदर सिंह, वास्तव में, संबंधित समय पर प्रश्नगत वाहन चलाने के लिए अधिकृत था।..... लिखित बयान में ड्राइवर के नाम का खुलासा किए बिना या इस तथ्य को साबित करने के लिए कोई सबूत पेश किए बिना कि समर्थन में प्रस्तुत ड्राइविंग लाइसेंस की प्रति उस व्यक्ति की थी, जो वास्तव में इसके लिए अधिकृत था। प्रासंगिक समय पर

आपतिजनक वाहन चलाने पर, वाहन के मालिक के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने स्वयं को अपने दायित्व से मुक्त कर लिया है। बीमा कंपनी तभी उत्तरदायी बनेगी जब ऐसे मूलभूत तथ्य आपतिजनक वाहन के मालिक द्वारा पेश किए जाएंगे और साबित किए जाएंगे।"

29. पप्पू मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 13 का बाद वाला भाग फिर से मूलभूत तथ्यों के प्रमाण के बारे में कानून का प्रतिपादन करता है, जिसे मालिक द्वारा लाइसेंस की वैधता के बारे में अपने दायित्व का निर्वहन करने के लिए बीमाकर्ता को बुलाए जाने से पहले निर्वहन करना होता है। उपरोक्त दृष्टिकोण का पालन इस न्यायालय द्वारा श्री केदार सिंह के मामले में किया गया है और बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा ब्रांच मैनेजर, न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम कौशल्याबाई और अन्य, प्रथम अपील संख्या 259 सन् 2003, दिनांक 30 सितंबर 2022 को दिए गए एक अप्रतिवेद्य निर्णय में भी किया गया है।

30. इस संबंध में, रुक्मणि और अन्य बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी और अन्य, (1998) 9 एससीसी 160, मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है, जो मोटर वाहन अधिनियम, 1939 के तहत उत्पन्न होने वाला मामला था। रुक्मणी (उपरोक्त) मामले में, माननीय न्यायमूर्ति के एक बहुत ही संक्षिप्त निर्णय में, यह अवधारित किया गया था:

"2. उच्च न्यायालय द्वारा मुआवजे के दावे के संबंध में बीमा कंपनी को इस आधार पर दायित्व से मुक्त कर दिया गया है कि ड्राइवर के पास कोई वैध लाइसेंस नहीं था। उच्च न्यायालय ने कहा है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 96(2)(ख)(ii) के अनुसार, यदि बीमा कंपनी का तर्क है कि वाहन के ड्राइवर के पास कोई वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, तो इसे स्थापित करने का दायित्व बीमा कंपनी पर है। हालाँकि, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बीमा कंपनी द्वारा इस दायित्व का निर्वहन किया गया था।

3. हमने एकमात्र साक्ष्य देखा है जो बीमा कंपनी ने याचिका के समर्थन में प्रस्तुत किया था। यह दुर्घटना की जांच करने वाले पुलिस निरीक्षक का साक्ष्य है। अपने साक्ष्य में, पीडब्लू 1, जो पुलिस निरीक्षक था, ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा, "मेरी जाँच से पता चला कि प्रथम प्रतिवादी ने उपरोक्त स्कूटर चलाने का लाइसेंस प्रस्तुत नहीं किया था। मेरे मांगने के बाद भी प्रथम प्रतिवादी ने लाइसेंस जमा नहीं किया क्योंकि उसके पास लाइसेंस नहीं था।" अपनी जिरह में उन्होंने कहा है कि मोटर वाहन निरीक्षक को यह जांचना आवश्यक है कि

लाइसेंस है या नहीं, लेकिन उसने मोटर वाहन निरीक्षक को सूचित नहीं किया था कि प्रतिवादी संख्या 1 के पास लाइसेंस नहीं था क्योंकि उसे लगा कि यह आवश्यक नहीं है। हमारे विचार में, यह साक्ष्य बीमा कंपनी पर डाले गए दायित्व को उतारने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसने वाहन के ड्राइवर को तलब नहीं किया। सड़क परिवहन प्राधिकरण की ओर से कोई रिकार्ड भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में, बीमा कंपनी ने मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 96(2)(ख)(ii) के तहत उस पर डाले गए दायित्व का निर्वहन नहीं किया है। इसलिये, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और ट्रिब्यूनल के आदेश को बहाल किया जाता है। तदनुसार अपील को अनुमति दी जाती है। लागत के लिए कोई आदेश नहीं।"

31. **रुक्मणी** मामले में सिद्धांत बीमा कंपनी के सामान्य दायित्व के बारे में है जिसे स्थापित करना है कि यदि वे ऐसा आरोप लगाते हैं तो ड्राइवर के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, लेकिन स्पष्ट रूप से यह **पप्पू** मामले में बताए गए बुनियादी तथ्यों को स्थापित करने के लिए मालिक के कंधों पर निर्भर जांच के प्रमाण-दायित्व के बारे में बात तय नहीं करता है। इसलिए इस मामले में

रुक्मणी मामले का फैसला समग्र आधार पर मालिक के बचाव में नहीं आएगा, जब तक कि यह नहीं दिखाया जाएगा कि मालिक ने ड्राइवर के ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता और आपत्तिजनक टैंकर को चलाने के उसके अधिकार के बारे में बुनियादी तथ्य स्थापित कर लिए हैं।

32. **यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी बनाम लेहरू और अन्य (2003) 3 एससीसी 338, नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य, (2004) 3 एससीसी 297, न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी बनाम कमला और अन्य, (2001) 4 एससीसी 342**, और सबसे ऊपर **रुक्मणी**, मामलों में सिद्धांतों का पूरा दायरा, एक मोटर दुर्घटना दावे के संदर्भ में सिद्धांतों को निर्धारित करता है, जिसका मालिक ट्रिब्यूनल के समक्ष पेश होता है। उन सभी मामलों में, सिद्धांत का एक हिस्सा मालिक को बहुत उदार कवर प्रदान करता है, जहां नकली ड्राइविंग लाइसेंस के मामले में, मालिक एक मामले के साथ आगे आता है कि वह ड्राइविंग लाइसेंस के स्पष्ट कार्यकाल के अनुसार चला गया था, जो था रोजगार के समय ड्राइवर द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया और उसके बाद उसके ड्राइविंग कौशल के लिए ड्राइवर का परीक्षण किया गया, जिसे उसने यथोचित रूप से कुशल पाया। यदि मालिक ट्रिब्यूनल के समक्ष अपनी गवाही से उक्त तथ्य साबित कर देता है, तो ड्राइविंग लाइसेंस, चाहे कितना भी नकली हो, बीमाकर्ता को वसूली का अधिकार नहीं दे सकता। फिर भी, मालिक के लिए सुरक्षात्मक सिद्धांत का यह हिस्सा लागू होने से पहले, इसका दूसरा

भाग यह बताता है कि पप्पू मामले में क्या कहा गया था कि मालिक द्वारा दलील देने और अपनी जानकारी के भीतर बुनियादी तथ्यों को साबित करने के बाद जिम्मेदारी बीमाकर्ता पर स्थानांतरित हो जाएगी कि उल्लंघन करने वाले वाहन के ड्राइवर को वाहन चलाने के लिए उसके द्वारा अधिकृत किया गया था और माननीय न्यायमूर्ति के शब्दों को उद्धृत करने के लिए प्रासंगिक समय पर वैध ड्राइविंग लाइसेंस था।

33. यह उपरोक्त सिद्धांतों के संदर्भ में है कि पक्षकारों के मामले को जिस तरह से प्रस्तुत किया गया है और साबित करने की मांग की गई है, उसके परीक्षण की आवश्यकता है। मालिक ट्रिब्यूनल के सामने पेश हुआ और एक लिखित बयान दाखिल किया। वह आगे सुनवाई में उपस्थित नहीं हुआ, कठघरे में शपथ पर गवाही नहीं दी या शपथपत्र पर साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। इसमें कोई संदेह नहीं है, उसने अपने लिखित बयान के साथ कुछ दस्तावेज दाखिल किए हैं, जिसमें ड्राइवर के ड्राइविंग लाइसेंस की फोटोकॉपी, दोषी टैंकर का पंजीकरण प्रमाण पत्र, राष्ट्रीय परमिट, पांच साल का परमिट, फिटनेस प्रमाण पत्र और बीमा कवर शामिल है। इसके अलावा, मूल रूप में पावर ऑफ अटॉर्नी भी लिखित बयान के साथ संलग्न की गई थी। मालिक द्वारा दायर किए गए लिखित बयान में एक शब्द भी नहीं है कि उसने ड्राइवर को भर्ती करने से पहले उसका ड्राइविंग लाइसेंस देखा हो और उसकी स्पष्ट अवधि के बारे में जाना हो। यह भी दलील नहीं दी गई कि उसने ड्राइवर के ड्राइविंग कौशल का परीक्षण किया था और उसे

कुशल पाया था। मालिक के लिखित बयान में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है। चूंकि मालिक ने शपथपत्र या कठघरे में कोई सबूत नहीं दिया, इसलिए यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उसने ड्राइवर या उसके ड्राइविंग लाइसेंस के बारे में कुछ नहीं कहा।

34. बीमाकर्ताओं ने अपनी ओर से अपने स्वयं के जाँचकर्ता द्वारा दिनांक 02.09.2005 को लिखित एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें कागज संख्या 28-ग है, जिसमें कहा गया है कि प्रश्नगत ड्राइविंग लाइसेंस को लाइसेंसिंग प्राधिकारी, आरटीओ, भुज के साथ सत्यापित किया गया था, जिन्होंने प्रमाणित किया है कि लाइसेंस संख्या MH0260547, मालिक द्वारा बताये गए लाइसेंस की फोटो कॉपी पर दिया गया नंबर किसी हरसब भाई के नाम पर जारी किया गया था। जांचकर्ता की रिपोर्ट क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी, भुज के एक प्रमाण पत्र के साथ संलग्न है, जो मालिक द्वारा बताये गए संबंधित लाइसेंस नंबर के संदर्भ में लाइसेंस धारक का नाम हरसब भाई प्रमाणित करता है। लाइसेंस की वैधता को खत्म करने के लिए बीमाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज, यदि बीमाकर्ता वास्तव में दायित्व का निर्वहन करते हैं, तो शायद ही इसका निर्वहन करेंगे। कारण यह है कि आर.टी.ओ., भुज के कार्यालय से उस प्रमाणपत्र को साबित करने के लिए कोई भी प्रस्तुत नहीं किया गया जिस पर बीमाकर्ता अवलम्ब लेते हैं। लेकिन, ये सभी मुद्दे अप्रासंगिक हैं क्योंकि प्रमाण-दायित्व कभी भी बीमाकर्ताओं पर स्थानांतरित नहीं किया गया था, जिससे उन्हें लाइसेंस साबित करने की आवश्यकता होती थी, क्योंकि मालिक

ने कभी भी बुनियादी तथ्यों की पैरवी नहीं की थी और न ही उन्हें शपथपत्र या मौखिक सुनवाई पर अपनी गवाही से साबित किया था। इसलिए, बीमाकर्ताओं की विफलताएं अप्रासंगिक और अस्वीकार्य हैं।

35. अन्य साक्ष्य जो मालिक ने लिखित बयान के साथ संलग्न किए हैं और जिनके बारे में कोई विवाद नहीं है, निश्चित रूप से यह दर्शाता है कि वाहन का विधिवत बीमा किया गया था और वैध कागजात के आधार पर चलाया गया था। इसलिए, यह एक ऐसा मामला है, जहां बीमाकर्ताओं को उनके दायित्व से पूरी तरह मुक्त नहीं किया जा सकता है, लेकिन उन्हें मालिक से वसूली का अधिकार दिया जाना चाहिए। इसे तदनुसार अवधारित किया जाता है।

36. अब, दूसरा सवाल जो उठता है वह मुआवजे के बारे में है, जिसके दावेदार हकदार हैं। दावेदारों द्वारा दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग करते हुए प्रति-आपत्ति की गई है। दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इसे बढ़ाया जाना चाहिए, जबकि मालिक और बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता एक स्वर में कहते हैं कि ट्रिब्यूनल ने उचित निर्णय पारित किया है। ट्रिब्यूनल ने मृतक की आय पर प्रतिदिन 100/- रुपये की निर्भरता निकाली है। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से पता चलता है कि मृतक चावल की खुदरा बिक्री करता था। ऐसा कोई कारण नहीं है कि किसी भी व्यवसायी की आय, चाहे वह किसी भी पैमाने की हो, दैनिक आधार पर आंकी जाए। दैनिक आधार पर आय रेटिंग की प्रणाली दैनिक-रेटिंग

वाले मजदूरों पर लागू होती है, खासकर जब बात महीने से कुछ दिनों के आराम की छूट की आती है। आय के आकलन के लिए इस प्रकार का दृष्टिकोण सामान्य रूप से आकस्मिक मजदूरों से जुड़ा है जिनकी महीने के सभी दिनों में कोई व्यस्तता नहीं होती है, और किसी भी स्थिति में सप्ताहांत या अन्य गैर-कार्य दिवसों में छुट्टी के दिन कार्य करना पड़ता है। किसी भी प्रकार का व्यवसायी, विशेष रूप से खुदरा विक्रेता, कमाई के दैनिक कार्यक्रम से बंधा नहीं है। उसकी आय का आकलन मासिक आधार पर किया जाना चाहिए या मासिक विभाजन के आधार पर पूरे वर्ष के लिए किया जाना चाहिए। मृतक यहां साइकिल से घूम-घूम कर चावल की खुदरा बिक्री कर रहा था। इसलिए, वह एक ऐसा व्यक्ति था जो उस बाजार व्यवस्था में भी कमाई नहीं कर रहा था जहाँ 'बंद' दिनों के बारे में बाजार के नियम थे।

37. मृतक अविवाहित था और अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता था। मृतक अपने जीवन के अंतिम चरण में मात्र 25 वर्ष का एक युवक था। पीडब्लू-1, मृतक के पिता सत्य नारायण की गवाही से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मुख्य परीक्षा में उन्होंने दावा किया है कि मृतक चावल की खुदरा बिक्री के अपने व्यवसाय से प्रति माह 6000/- रुपये कमाता था। दरअसल, उस दिन भी वह साक्षी के भतीजे के साथ फाफामऊ बाजार से वापस लौट रहा था। जिरह में बीमाकर्ताओं के कहने पर बताया गया कि मृतक झलवा में चावल की खुदरा बिक्री करता था। उक्त व्यवसाय को पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है। चावल की

बिक्री और खरीद से संबंधित कोई रसीद रिकॉर्ड पर दर्ज नहीं है, न ही गवाह के पास ऐसी रसीदें थीं। यह तर्कसंगत है कि शहर के अर्ध-शहरी हिस्से में चावल की खुदरा बिक्री करके अपनी आजीविका कमाने वाले व्यक्ति के लिए कोई खाता या बैलेंस-शीट नहीं होगी। इस तरह के खुदरा विक्रेताओं से बैलेंस-शीट जैसे रिकॉर्ड बनाए रखने या आयकर रिटर्न दाखिल करने की उम्मीद करना ट्रिब्यूनल के अवास्तविक दृष्टिकोण के विश्वासघात के अलावा कुछ नहीं है। साथ ही, बैलेंस-शीट, रसीदें, खाते, रजिस्टर या रिटर्न जैसे रिकॉर्ड का रखरखाव न करना इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकता कि वह व्यक्ति उस उम्र में अपने परिवार का देखभाल करते हुए लाभदायक व्यवसाय में रहा होगा। जब संगठित क्षेत्र के बाहर के व्यवसायों के मुनाफे के आकलन की बात आती है तो उन्हें नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता; जब उन्हें भुगतान करने का समय आता है।

38. मृतक की मृत्यु वर्ष 2004 में हुई और उसकी आय के लिए 6000/- रुपये का आंकड़ा लगभग प्रभावी रूप से चुनौती रहित हो गया है। मृतक की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ट्रिब्यूनल द्वारा किए गए गैर-कार्य दिवसों के लिए, बिना किसी कटौती के, उसके लिए 3000/- रुपये की मासिक आय मानना उचित होगा। इससे सालाना 36,000 रुपये की आय होगी। ट्रिब्यूनल ने मृतक के जीवन यापन और व्यक्तिगत खर्च के लिए एक तिहाई की कटौती की है। **सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121** मामले में निर्धारित कानून के अनुसार, मृतक अविवाहित है और रहने और

व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती आधी होगी; एक तिहाई नहीं। ट्रिब्यूनल ने '13' का गुणक अपनाया है। साक्ष्यों के अनुसार मृतक 25 वर्ष का युवक था। **सरला वर्मा (उपरोक्त)** मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 40 में निर्धारित तालिका के अनुसार, '18' का गुणक अपनाना उचित है। ट्रिब्यूनल ने मृतक के माता-पिता की उम्र के आधार पर '13' के गुणक को अपनाने में गलती की है। तदनुसार, यह कटौती की जाने वाली और गुणक को अपनाए जाने के बारे में मानी जाती है।

39. ट्रिब्यूनल द्वारा भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कुछ भी निर्णय नहीं दिया गया है। इस मुद्दे पर **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680** मामले में संविधान पीठ ने विचार किया है, जहां भविष्य की संभावनाओं का लाभ स्व-रोजगार वालों को भी दिया गया है। **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** मामले में निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

“56. मूल मुद्दा उन मृतकों के मामलों में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण है जो स्व-रोजगार में हैं या एक निश्चित वेतन पर हैं। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121 : (2009) 2 एससीसी (सिव) 770 : (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] ने दावेदारों को भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने का लाभ प्राप्त करने के लिए रिकॉर्ड पर सामग्री लाने की अनुमति देते हुए एक अपवाद तैयार किया है।

इसने, अपने आप में, उक्त श्रेणी के संबंध में किसी भी भविष्य की संभावना की अनुमति नहीं दी है।

57. उत्सुकतापूर्वक विचार करने के बाद, हम यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि जब हम मानकीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो वास्तव में उक्त सिद्धांत को स्व-रोज़गार वाले या निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति पर लागू न करने का कोई औचित्य नहीं है। मृत्यु के समय वास्तविक आय के सिद्धांत का पालन करना और गुणक के निर्धारण के उद्देश्य से आय में भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कोई राशि नहीं जोड़ना अन्याय होगा। मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि यह विधि अधिनियम की धारा 168 के तहत बताए गए उचित मुआवजे के दायरे में आ जाए। ऐसे मृतक के मामले में जिसने वार्षिक वेतन वृद्धि के अंतर्निहित अनुदान के साथ स्थायी नौकरी की थी, एक स्वीकार्य निश्चितता है। लेकिन यह कहना कि मृतक के कानूनी प्रतिनिधि जो एक निश्चित वेतन पर थे, मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के लाभ के हकदार नहीं होंगे, अनुचित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि उस घटना

में दोनों के बीच अंतर की कसौटी एक ओर निश्चितता और दूसरी ओर स्थिरता होगी। कोई यह समझ सकता है कि तुलनात्मक माप एक ओर निश्चितता है और दूसरी ओर अनिश्चितता है लेकिन ऐसी धारणा भ्रामक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्य वृद्धि स्व-रोज़गार व्यक्ति को प्रभावित करती है; और इसके अलावा जीविका के लिए अपनी आय बढ़ाने के लिए हमेशा निरंतर प्रयास करना पड़ता है। स्थायी नौकरी पर वेतनभोगी व्यक्ति की क्रय क्षमता जब वेतन वृद्धि और वेतन संशोधन या सेवा शर्तों में किसी अन्य बदलाव के कारण बढ़ती है, तो कर्मचारियों से बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए वेतन बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र में हमेशा प्रतिस्पर्धात्मक रवैया रहता है। इसी प्रकार, एक व्यक्ति जो स्व-रोज़गार करता है, वह अपने संसाधन जुटाने और अपने शुल्क/मानदेय बढ़ाने के लिए बाध्य है ताकि वह समान सुविधाओं के साथ रह सके। यह धारणा रखना कि उसके स्थिर रहने की संभावना है और उसकी आय स्थिर रहेगी, मानवीय दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखती है।

यद्यपि यह उचित प्रतीत हो सकता है कि स्थायी नौकरी वाले व्यक्ति के मामले के विपरीत मौजूदा आय में भविष्य की संभावनाओं के अलावा निश्चितता नहीं हो सकती है, फिर भी उक्त धारणा वास्तव में स्वीकार्यता के लायक नहीं है। हमारा मानना है कि उस प्रतिशत के संबंध में कुछ हद तक अंतर हो सकता है जो उन कानूनी प्रतिनिधियों के संबंध में है जो मृतक की ओर से दावा करते हैं, जिनके पास स्व-रोज़गार या निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति की तुलना में स्थायी नौकरी थी। लेकिन निश्चितता की कथित कमी की बुनियाद पर मानकीकरण के सिद्धांत को लागू न करना जमीनी हकीकत की उलझनों से बेखबर रहने के समान होगा। और, इसलिए, डिग्री-परीक्षण अनिवार्य है। जब तक डिग्री-परीक्षण लागू नहीं किया जाता और इसे स्थापित करने के लिए सबूत पेश करने की जिम्मेदारी पक्षों पर नहीं छोड़ी जाती, यह अनुचित और असमान होगा। डिग्री-परीक्षण में प्रतिशत की अंतर्निहित अवधारणा होनी चाहिए। संचयी कारकों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, समय बीतने, बदलते समाज, कीमत में वृद्धि, मूल्य सूचकांक में बदलाव, जीवन के एक विशेष स्वरूप का पालन करने

के लिए मानवीय दृष्टिकोण, भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की स्थापित आय का 40% अतिरिक्त और जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम है तो 25% की अतिरिक्त वृद्धि उचित होगी जहां मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के बीच हो।

58. विवाद यहीं खत्म नहीं होता। सवाल अभी भी बना हुआ है कि क्या मृतक की उम्र 50 वर्ष से अधिक होने पर कोई बढ़ोतरी नहीं की जानी चाहिए। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सिव) 770: (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] ने कोई राशि न जोड़ना उचित समझा और रेशमा कुमारी [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एससीसी 65: (2013) 4 एससीसी (सिव) 191: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई)] मामले में इसे मंजूरी दे दी गई। इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि वेतन समान नहीं रहता है। जब कोई व्यक्ति स्थायी नौकरी में होता है तो किसी न किसी कारण से तरक्की होती ही रहती है। एक सामान्य नियम के रूप में यह कहना कि 50 वर्षों के बाद कोई वृद्धि नहीं होगी, एक अस्वीकार्य अवधारणा होगी। हमारा मानना है कि यदि मृतक की आयु 50 से

60 वर्ष के बीच है तो 15% अतिरिक्त होना चाहिए और उसके बाद कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार, स्व-रोज़गार या निश्चित वेतन वाले व्यक्ति के मामले में, 50 से 60 वर्ष की आयु के बीच 10% अतिरिक्त होना चाहिए। उपरोक्त मानदंड इसलिए तय किया गया है ताकि न्यायाधिकरणों और अदालतों के दृष्टिकोण में एकरूपता बनी रहे।”

40. अगला प्रश्न जो उत्तर के लिए आता है वह यह है कि । क्या भविष्य की संभावनाएं, जिनके दावेदार हकदार होंगे, **प्रणय सेठी** मामले या उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में, 1998 का नियम) के नियम 220-क (3) में निर्धारित कानून के अनुसार निर्धारित की जाएंगी। इसका उत्तर **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822** मामले में सर्वोच्च न्यायालय की राय से मिलता है, जहां यह अवधारित किया गया था:

"9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मौजूदा मामले में किसी भी तरह से नियमों की वैधता पर सवाल नहीं उठाया गया है और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है वह यह है कि क्या इसके आवेदन में, नियमों के नियम 220क के उप-नियम 3(iii) को

प्रतिबंधित दायरा दिया जाना चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी के मामले पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के मामले में ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने का निर्णय नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। ऐसे मामलों में जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी के मामले में कहा गया है, 15% के निर्देश को अधिकतम सीमा के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी शासी सिद्धांत के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक यंत्र ने कोई ऐसा सिद्धांत तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक यंत्र को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि

वैधानिक यंत्र अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलील को खारिज करते हैं और ट्रिब्यूनल के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के इस अपील को खारिज करते हैं।"

41. अतः इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्तर प्रदेश राज्य में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण नियमावली 1998 के नियम 220-क(3) के अनुसार किया जाना है।

42. सवाल यह है कि नियमावली 1998 के नियम 220-क(3), जो दिनांक 1.4.2019 से लागू हुआ, संशोधन से बहुत पहले हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा, अब इसमें कोई अनिर्णित विषय नहीं रह गया है। **सुशील कुमार और अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लोजैस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2017 (35) एलसीडी 1311** मामले में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने अवधारित किया है:

"31. घायल/मृतक की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए कानून अदालतों के विभिन्न निर्णयों के मददेनजर उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 में नियम 220-क शामिल किया गया था। यह मुआवजे के निर्धारण के

प्रयोजनों के लिए घायल/मृतक की उम्र के आधार पर उसकी वास्तविक आय में उसकी आय का एक निश्चित प्रतिशत जोड़ने का प्रावधान करता है। उपरोक्त नियम दिनांक 26.09.2011 को दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले लागू हुआ, हालांकि दुर्घटना उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले 08.05.2010 को हुई थी।

32. उपरोक्त के मददेनजर यह तर्क उठाया जा रहा है कि दिनांक 26.09.2011 को लागू हुए नियमावली का नियम 220-क दिनांक 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम सरूप बनाम में मुंशी एआईआर 1963 एससी 553 मामले में यह प्रतिपादित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

34. ऊपर व्यक्त दृष्टिकोण का सर्वोच्च न्यायालय ने मुला बनाम गोधु एआईआर 1971 एससी 89 मामले में पालन किया था।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत एआईआर 1966 एससी 1423 मामले में अदालत ने इस प्रकार अवधारित किया था:- यदि नया कानून ऐसी भाषा में बोलता है, जो

स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से लंबित मामलों को भी लेता है, तो ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय को भी व्यक्त किए गए इरादे का ध्यान रखना चाहिए, और अपीलीय न्यायालय प्रथम दृष्टया न्यायालय के फैसले के बाद भी ऐसे कानून को प्रभावी कर सकती है।

36. अमरजीत कौर बनाम में प्रीतम सिंह एआईआर 1974 एससी 2068 मामले में प्रभाव किसी अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव के लिए दिया गया था क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा मुकदमे की दोबारा सुनवाई की प्रकृति में है।

37. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में ही लक्ष्मी नारायण गुइन एवं अन्य बनाम निरंजन मोदक एआईआर 1985 एससी 111 मामले में यह अवधारित किया गया कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षकारों के अधिकार को रक्षित करेगा।

38. उपरोक्त निर्णय का पालन यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) एडब्ल्यूसी 2620 में इस न्यायालय की एक डिवीजन

बेंच द्वारा किया गया था जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में एक मामला था और यह अवधारित किया गया कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए। खाता ताकि पार्टियों के अधिकारों को कवर किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के मददेनजर आई सी आई सी आई लोम्बार्ड (उपरोक्त) में इस अदालत की डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त किया गया विचार अच्छे कानून के अनुरूप नहीं है क्योंकि यह दिनांक 26.09.2011 को लागू नियमावली के नियम 220-क को ध्यान में नहीं रखता है और उक्त तिथि से पहले हुई दुर्घटना पर केवल इस कारण से लागू नहीं होगा कि नियम विशेष रूप से पूर्वव्यापी प्रकृति का नहीं बताया गया था।"

43. **सुशील कुमार (उपरोक्त)** मामले में डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, जो स्पष्ट रूप से इस न्यायालय को बाध्य करता है, भविष्य की संभावनाओं का आदेश नियमावली 1998 के नियम 220-क (3) के अनुसार किया जाना है, इसके बावजूद तथ्य यह है कि दुर्घटना संशोधन से पहले हुई थी। नियम 220-क(3), मृतक की उम्र के आधार पर, जो कि 40 वर्ष से काफी कम है, दावेदारों को भविष्य की संभावनाओं के तहत

उसकी आय में 50% जोड़ने का अधिकार होगा।

44. इसमें अभी भी यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि औपचारिक भाग के तहत दावेदारों की पात्रता क्या होगी। इस मुद्दे पर **प्रणय सेठी** मामले के सिद्धांत स्पष्ट हैं, जहां निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

“48. इस पहलू को स्पष्ट करने और उचित रूप से बताने की आवश्यकता है। औपचारिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। जैसा कि न्यायालय ने त्रिलोक चन्द्र [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चन्द्र, (1996) 4 एससीसी 362] मामले में अवधारित किया है, उक्त अनुसूची दोषपूर्ण पाई गई है। हाल ही में, पुट्टम्मा बनाम केएल नारायण रेड्डी [पुतम्मा बनाम केएल नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45: (2014) 4 एससीसी (सिव) 384: (2014) 3 एससीसी (सीआरआई) 574] मामले में इसे यह कहकर दोहराया गया है: (एससीसी पृष्ठ 80, पैरा 54)

“54. ... हमारा मानना है कि वर्ष 1994 में अधिनियमित की गई दूसरी अनुसूची अब जीवन यापन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए परिदृश्य के

कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।

49. जहां तक गुणक या गुण्य का सवाल है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उस पर रोक लगा दी गई है। दूसरी अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु की स्थिति में सामान्य क्षति का भी प्रावधान है। यह इस प्रकार है:

“3.सामान्य क्षति (मृत्यु के मामले में):

ऊपर उल्लिखित मुआवज़े के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य क्षतियाँ देय होंगी:

(i)	अंतिम संस्कार का खर्च	2000/- रुपये
(ii)	जीवनसाथी की हानि, यदि लाभार्थी पति या पत्नी है	5000/- रुपये
(iii)	संपत्ति की हानि	2500/- रुपये
(iv)	चिकित्सा व्यय - मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक व्यय बिल/वाउचर द्वारा समर्थित लेकिन इससे अधिक नहीं	15,000 /- रुपये”

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्र [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] मामले में निर्णय से लेकर दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया

गया है और इसमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। औपचारिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने देखा, विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियाँ प्रदान की गई हैं। राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] मामले में जीवनसाथी के लिए 1,00,000/- रुपये की राशि दी गई थी। जैसा कि हम राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] मामले में पता चलता है, जीवनसाथी के अनुदान का औचित्य अवलोकन पर आधारित है जैसा कि हमने यहां पहले भी दोहराया है।

51. उपरोक्त आधार पर, न्यायालय ने औपचारिक मदों के तहत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक औपचारिक मदों का सवाल है, हमें राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव)

179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] मामले में व्यक्त विचार से सहमत होना मुश्किल लगता है। इसने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000/- रुपये, जीवनसाथी के नुकसान के लिए 1,00,000/- रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के नुकसान के लिए 1,00,000/- रुपये दिए हैं। देखभाल की हानि और नाबालिग बच्चों से संबंधित मद मौजूद नहीं है। हालाँकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सिव) 726: (2012) 3 एससीसी (सीआरआई) 160: (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167] मामले को संदर्भित करता है, यह उसी का पालन नहीं करता प्रतीत होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि औपचारिक और पारंपरिक मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के

निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को मात्राबद्ध करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में स्पष्ट नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक स्पष्ट नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, ट्रिब्यूनल और अदालतों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमारा मानना है कि यह उचित रकम तय करने जैसा प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, जीवनसाथी की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000/- रुपये, 40,000/- रुपये और 15,000/- रुपये होने चाहिए। उक्त मदों पर दोबारा विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरावलोकन तथ्य-केन्द्रित या क्वांटम-केन्द्रित नहीं होना चाहिए। हमारा मानना है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित

की है उसे हर तीन साल में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन साल की अवधि में वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन मदों के संबंध में एकरूपता आएगी।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

45. जीवनसाथी के नुकसान के मुआवजे के सवाल पर सर्वोच्च न्यायालय ने **मैग्मा जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहू राम और अन्य, (2018) 18 एससीसी 130** मामले में विचार किया था, जहां यह अवधारित किया गया है:

"21. प्रणय सेठी [नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680: (2018) 3 एससीसी (सिव) 248: (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 205] मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विभिन्न मदों पर विचार किया जिसके तहत मृत्यु के मामले में मुआवजा दिया जाना है। इनमें से एक मद है जीवनसाथी की हानि। कानूनी भाषा में, "जीवनसाथी" एक सारगर्भित शब्द है जिसमें "पति-पत्नी जीवनसाथी", "अभिभावक जीवनसाथी" और "फिलियल जीवनसाथी" शामिल हैं। जीवनसाथी के अधिकार में मृतक का साथ, देखभाल, मदद, आराम,

मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत पति या पत्नी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]

21.1. पति-पत्नी जीवनसाथी को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित पति या पत्नी को "साथ, समाज, सहयोग, स्नेह और हर वैवाहिक रिश्ते में दूसरे की सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजे की अनुमति देता है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी(5वां संस्करण, 1979)।]

21.2. माता-पिता की असामयिक मृत्यु पर "माता-पिता की सहायता, सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" के नुकसान के लिए माता-पिता का साथ बच्चे को दिया जाता है।

21.3. फिलियल जीवनसाथी किसी बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजे का माता-पिता का अधिकार है। एक दुर्घटना में एक बच्चे की मौत से मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत

सदमा और पीड़ा होती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, सहयोग और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।

(न्यायालय द्वारा जोर)

46. उचित मुआवजे के मुद्दे को ध्यान में रखते हुए, आदेश को निम्नलिखित तरीके से संशोधित करना होगा:

(i) मासिक आय (मृतक की) = 3000

(ii) वार्षिक आय (मृतक की) = 3000 x 12
= 36000

(iii) वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ
(वार्षिक आय x 50%) = 36000 + 18000
= 54000

(iv) वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - प्रति
आधी कटौती मृतक का निजी खर्च
= 54000 - 27000
= 27000

(v) कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x लागू
गुणक
= 27000 x 18 = 486000

(vi) दावेदार का अधिकार पारंपरिक मद =
संपत्ति की हानि + अंत्येष्टि व्यय + आश्रितों का
खर्च

कंसोर्टियम = 15000 + 15000 + 40000 x 2
= 110000

इसलिए, कुल मुआवजा 486000 रुपये
+ 110000 होगा

486000 रुपये + 110000 रुपये
= 596000

47. परिणामस्वरूप, अपील और प्रति-आपत्तियाँ दोनों आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को संशोधित किया गया है और यह आदेश दिया गया है कि जहां मालिक फैसले को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होगा, वहीं बीमाकर्ता पहली बार में फैसले को पूरा करने के लिए बाध्य होंगे और फिर ट्रिब्यूनल के समक्ष विविध कार्यवाही के माध्यम से मालिक से वसूली करेंगे। दिया गया मुआवजा बढ़कर 5,96,000/- रुपये हो जाएगा। उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर होने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। आक्षेपित निर्णय या इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के अनुसार बीमाकर्ताओं द्वारा ट्रिब्यूनल में पहले से जमा की गई कोई भी धनराशि, निर्णय के खिलाफ समायोजित की जाएगी। फैसले में ट्रिब्यूनल के अन्य निर्देश यथावत रहेंगे।

48. लागत आसान है।

न्यायालय संख्या- 64

वाद :- क्रॉस अपील/क्रॉस ऑब्जेक्शन संख्या - 65668 सन् 2013

अपीलकर्ता:- सत्य नारायण केसरवानी और अन्य

प्रतिवादी:- नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:- श्री राम सिंह, अधिवक्ता

प्रतिवादी के अधिवक्ता:- श्री कोमल मेहरोत्रा एवं श्री विनय कुमार चतुर्वेदी, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

1. आंशिक रूप से स्वीकृत।

2. आदेशों के लिए, एफएफओ संख्या 1394 सन् 2006 में पारित तिथि का मेरा आदेश देखें।

(2023) 7 ILRA 135

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 3250 वर्ष 2004

महाप्रबंधक, मेसर्स इलाहाबाद दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लिमिटेड, जिला इलाहाबाद

.....अपीलकर्ता

बनाम

सुरेश चंद्र मिश्रा

.....प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री गणेश दत्त मिश्रा, श्री सी.डी. मिश्रा

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री सुशील कुमार श्रीवास्तव, श्री श्याम नारायण, श्री सुधांशु नारायण, श्री एस.डी. ओझा

ए. दीवानी मामला-कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923-धारा 30-आयुक्त ने 9% ब्याज दर के साथ 1,38,340/- रुपए का

प्रतिकर दिलाया है-चुनौती-दावेदार जब काम पर था, उस समय वह मंच की सीढ़ियों से नीचे गिर गया-दावेदार/प्रतिवादी के बाएं निचले अंग पर कई चोटें आईं और उसकी रीढ़ की हड्डी भी क्षतिग्रस्त हो गई-दुर्घटनावश गिरने के कारण विकलांगता संदेह से परे साबित हुई और कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 4(1)(सी) के प्रावधानों के तहत-इस मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मूल दावेदार की मृत्यु हो गई-राशि बिना ब्याज के पहले ही जमा कर दी गई है-दावेदार कम से कम अधिनियम की धारा 4(2)(ए) के अनुसार पात्र होंगे, जहां कर्मचारी को वास्तविक चिकित्सकीय व्यय तथा दावाकर्ता को पीड़ा व आघात के लिए राशि प्रदान की जाए -अतः, इस न्यायालय के आदेशानुसार, दावा आवेदन दाखिल करने से लेकर भुगतान तक 12% ब्याज सहित 35000/- रुपए की राशि, क्योंकि राशि सावधि जमा में है, मृतक कर्मचारी के वैध उत्तराधिकारियों को 30 दिनों के भीतर भुगतान और वितरित किया जाए। (प्रस्तर 1 से 18)

बी. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 4 (1) (सी) के प्रावधान जो इस प्रकार हैं:

(i)जहां स्थायी आंशिक (i) किसी चोट के मामले में, अनुसूची I के भाग II में निर्दिष्ट चोट के कारण विकलांगता उत्पन्न होती है, वहां मुआवजे का ऐसा प्रतिशत जो स्थायी पूर्ण विकलांगता के मामले में देय होता, जैसा कि उसमें निर्दिष्ट है कि वह उस चोट के कारण उपार्जन क्षमता की हानि की कितनी प्रतिशत मानी गई है; तथा"

(ii) अनुसूची I में निर्दिष्ट न की गई चोट के मामले में, स्थायी पूर्ण विकलांगता के मामले में देय मुआवजे का ऐसा प्रतिशत जो चोट के कारण स्थायी रूप से हुई कमाई करने की क्षमता की हानि (योग्य चिकित्सा व्यवसायी द्वारा निर्धारित) के अनुपात में हो; स्पष्टीकरण I.-- जहां एक ही दुर्घटना के कारण एक से अधिक चोटें लगी हों, इस शीर्ष के अंतर्गत देय मुआवजे की राशि एकत्रित की जाएगी, लेकिन किसी भी मामले में इतनी नहीं कि वह उस राशि से अधिक हो जो चोटों के कारण स्थायी पूर्ण विकलांगता होने पर देय होती; स्पष्टीकरण II.-- उप-खंड (ii) के प्रयोजनों के लिए कमाई करने की क्षमता की हानि का आकलन करते समय, योग्य चिकित्सा व्यवसायी अनुसूची I (प्रस्तर 9) में निर्दिष्ट विभिन्न चोटों के संबंध में उपार्जन क्षमता की हानि के प्रतिशतों का यथोचित रूप से ध्यान रखना होगा।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति डा. कौशल जयेंद्र ठाकर

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गणेश दत्त मिश्रा और श्री एस.डी. ओझा, दावेदार के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. यह प्रथम अपील आदेश अपीलकर्ता-जी.एम.दुग्ध संघ इलाहाबाद, कामगार मुआवजा आयुक्त/सहायक श्रम आयुक्त, इलाहाबाद द्वारा 2001 के डब्ल्यूसी केस संख्या 46 में पारित आदेश दिनांक 28.9.2004 से व्यथित होकर,

जिसके द्वारा विद्वान आयुक्त ने 9% ब्याज की दर के साथ 1,38,340/- रुपये का मुआवजा दिया है, द्वारा श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923 (इसके बाद 'अधिनियम, 1923 के रूप में संदर्भित) की धारा 30 के तहत दायर की गई है।

3. वर्तमान मामले के तथ्य यह हैं कि यह रिकॉर्ड से पाया गया है कि जो दावेदार अपीलकर्ता द्वारा नियोजित थे, उनकी दुर्घटना हो गई। दिनांक 19.8.1999 ...?... को जब दावेदार नौकरी पर था उस समय वह प्लेटफार्म की सीढ़ी से नीचे गिर गया। दावेदार/प्रतिवादी को उसके बाएं निचले अंग पर कई चोटें आईं और उसकी रीढ़ की हड्डी भी क्षतिग्रस्त हो गई। प्रतिवादी कंपनी ने दावेदार को अस्पताल पहुंचाया जहां दावेदार को भर्ती कराया गया और वह 19.8.1999 से 24.8.1999 तक अस्पताल में रहा। एक महीने की अवधि के लिए दावेदार को आराम की सलाह दी गई थी। दावेदार की उम्र 38 वर्ष थी और उसका वेतन लगभग 2000/- रुपये प्रति माह था। डॉक्टरों की राय में शरीर की विकलांगता 60% है। दावेदारों ने चिकित्सा व्यय के लिए लगभग 15,000/- रुपये खर्च किए और मजदूरी के नुकसान के रूप में 1,15,000/- रुपये का दावा किया। नोटिस बी जारी करने पर अपीलकर्ता/मालिक ने दावा आवेदन का जवाब दिया कि कर्मचारी परिसर में नहीं बल्कि कारखाने के पास स्थित एक चाय की दुकान पर घायल हुआ था और इसलिए दावेदार किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं था। दावेदार ने खुद से जिरह की जबकि अपीलकर्ता ने करीब पांच गवाहों से जिरह की। अपीलकर्ता ने

आयुक्त से दलील दी कि वर्ष 1997 में दावेदार वाहन दुर्घटना के कारण घायल हो गया था, और चिकित्सा प्रमाण पत्र उस समय की चोटों से संबंधित है। दावेदार ने अपने प्रत्युत्तर में इस बात का खंडन किया कि वह अपीलकर्ता के परिसर में घायल नहीं हुआ था। आयोग ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया कि चोटें फैक्ट्री परिसर के बाहर हुई थीं, यह मानते हुए कि चोट परिसर में लगी थी, और अपीलकर्ता के खिलाफ मुआवजा देने की दावा याचिका स्वीकार कर ली, क्योंकि फैक्ट्री के अधिकारी के द्वारा उसे अस्पताल ले जाया गया था। दावेदार को पहले प्रीति नर्सिंग होम में ले जाया गया, फिर जीवन ज्योति अस्पताल में ले जाया गया। गवाही देने आए अधिकारियों को पता नहीं है कि हादसा किस वक्त हुआ, लेकिन मानवता के नाते दावेदार अस्पताल ले गए। चिकित्सा प्रमाण-पत्र के अनुसार यह नियोक्ता/अपीलकर्ता के लिए एक गवाह, पार्थसारथी की गवाही थी। यह गणना 60% विकलांगता और 9% दर के पर आधारित थी। आयुक्त ने अनुसूची के अनुसार मुआवजा दिया था।

4. इस अपील को स्वीकार करते हुए और नोटिस जारी करते हुए न्यायालय ने 1.12.2004 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

“स्वीकृत।

केवल आर.पी.ए.डी. द्वारा प्रत्ययार्थियों को पूर्व दिनांक पर वापस करने योग्य नोटिस जारी करें।

अपील में उठने वाले अन्य कानूनी आधारों के अलावा कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न यह है:

(i) क्या कामगार मुआवजा आयुक्त ने कमाई का कोई नुकसान हुए बिना और दावेदार/विपरीत पक्ष द्वारा कमाई क्षमता की वास्तविक हानि की जांच किए बिना मुआवजा देने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है, जैसा कि धारा -4 (1)) (सी) (ii) कर्मकार मुआवजा अधिनियम, 1923 के अनुसार आवश्यक है?

यद्यपि न्यायालय की राय थी कि इस मामले का अंतिम निर्णय अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे पर किया जाए, दावेदार-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की और जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय दिया गया। प्रत्युत्तर हलफनामा, यदि कोई हो, उसके बाद चार सप्ताह के भीतर दाखिल किया जा सकता है।

स्थगन आवेदन उपरोक्त अवधि समय की समाप्ति के तुरंत बाद सूचीबद्ध किया जाएगा।

अगले आदेश तक, श्रमिक मुआवजा आयुक्त, इलाहाबाद, सहायक श्रम आयुक्त, इलाहाबाद द्वारा डब्ल्यू.सी. में पारित आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय दिनांक 28.9.2004 का संचालन 2001 के वाद संख्या 46 (सुरेश चंद्र मिश्रा बनाम महाप्रबंधक, मेसर्स इलाहाबाद दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लिमिटेड, इलाहाबाद) पर रोक रहेगी। उपरोक्त निर्णयों और दिनांक 28.9.2004 के फैसले के अनुसरण में नियोक्ता द्वारा जमा की गई राशि का वितरण नहीं किया जाएगा

और संबंधित प्राधिकारी द्वारा एक सावधि जमा खाते में निवेश किया जाएगा जिसमें न्यूनतम अवधि के लिए अधिकतम ब्याज और मूलधन और ब्याज दोनों होंगे। इसे उपरोक्त समान शर्तों पर पुनर्निवेशित किया जा सकता है और यह इस न्यायालय द्वारा बाद में पारित किसी भी आदेश के अधीन होगा।"

5. इस न्यायालय ने तथ्यों और कानून के आधार पर केवल एक कानूनी प्रश्न को तैयार किया। हालाँकि, कानून के प्रश्न अपीलकर्ता द्वारा तैयार किए जाते हैं, जिनकी संख्या सात है, इसलिए उन पर निर्णय नहीं लिया जाना है, लेकिन श्री गणेश दत्त मिश्रा, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सभी प्रश्नों पर सभी तर्क दिए गए हैं। उक्त प्रश्न यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:-

"(i) क्या देवेन्द्र स्वरूप और यू.एन. सिंह के मौखिक साक्ष्यों और रिकॉर्ड पर दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार न करने और के.एम. पांडे प्रोडक्शन मैनेजर, जगपाल सिंह फैक्ट्री मैनेजर और पार्थ सारथी कंप्यूटर अकाउंटेंट के मौखिक साक्ष्यों पर अविश्वास करने के किसी भी कारण का उल्लेख न करने से कर्मकार मुआवजा आयुक्त द्वारा दर्ज निष्कर्ष गलत हो गया है?

(ii) क्या कर्मकार मुआवजा आयुक्त ने प्रतिवादी/अपीलकर्ता के मामले और मौखिक और दस्तावेजी सबूतों पर विचार न करके कानूनी गलती की है कि मेडिकल प्रमाणपत्र नवंबर, 1997 में दावेदार/विपरीत पक्ष की दुर्घटना का परिणाम है?

(iii) क्या चोट नवंबर, 1997 और 19.8.1999 को किसी दुर्घटना के कारण लगी थी जो उसके रोजगार के दौरान उत्पन्न नहीं हुई थी?

(iv) क्या कामगार मुआवजा आयुक्त ने कमाई का कोई नुकसान किए बिना और दावेदार/विपरीत पक्ष द्वारा कमाई क्षमता की वास्तविक हानि की जांच किए बिना मुआवजा देने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है, जैसा कि धारा -4 (1) (सी) (ii) कर्मकार मुआवजा अधिनियम, 1923 के अनुसार आवश्यक है?

(v) क्या कामगार मुआवजा आयुक्त ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है और कामगार मुआवजा आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत लिखित तर्क में उठाए गए बिंदुओं और तर्कों पर विचार नहीं किया है और फैसला सुनाया है और विवादित आदेश/निर्देश विवेक के गैर-प्रयोग पर आधारित है?

(vi) क्या कामगार मुआवजा आयुक्त ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है, नवंबर 1997 में दुर्घटना के संबंध में मैं कामगार/प्रतिपक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाल रहा हूं।

(vii) क्या कर्मकार/प्रतिपक्ष द्वारा इस आशय से कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि वह नवंबर, 1997 में मैं द्वारा घायल हो गया था, जो बिना किसी दलील के है और कर्मकार मुआवजा आयुक्त ने उस पर भरोसा करके कानून और क्षेत्राधिकार संबंधित गलती की है?

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि श्रमिक मुआवजा आयुक्त द्वारा

दर्ज किया गया निष्कर्ष कि दावेदार/विपरीत पक्ष 29.8.1999 को फैक्ट्री परिसर में घायल हो गया था और रोजगार से उत्पन्न हुआ था, विकृत है और मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार न करने पर तथा स्वामी/अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर आधारित है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि कर्मकार मुआवजा आयुक्त ने के.एम. पांडे प्रोडक्शन मैनेजर, जगपाल सिंह फैक्ट्री मैनेजर और पार्थ सारथी कंप्यूटर अकाउंटेंट की गवाही पर अविश्वास करने का कोई कारण न बता कर रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि की है और कर्मकार मुआवजा आयुक्त ने भी तत्कालीन महाप्रबंधक देवेन्द्र स्वरूप के मौखिक साक्ष्य पर और श्री यू.एन. सिंह मैनेजर (एडमिन) और दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श ई-1 को रिकॉर्ड पर प्रदर्श ई-19 प्रदर्शित करने के लिए विचार करने में विफल रहे।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि कमाई का कोई नुकसान नहीं हुआ है। दावेदार उक्त पद पर बना रहा और इस पहलू पर विचार नहीं किया और अपीलकर्ता के तर्क पर विचार न करने से आदेश सुभेद हो गया है क्योंकि इसमें विकृति आ गई है।

8. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि दुर्घटनावश गिरने के कारण विकलांगता उचित संदेह से परे साबित हो गई है और श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923 की धारा 4(1)(सी) के प्रावधानों के तहत यह एक रोजगार क्षति है जो

दावेदार को मुआवजे के रूप में जाना जाने वाला दावा करने का हकदार बनाती है।

9. कर्मकार मुआवजा अधिनियम, 1923 की धारा 4 (1) (सी) के प्रावधान जो इस प्रकार हैं:-

(सी) जहां स्थायी आंशिक (i) चोट के मामले में अनुसूची के भाग II में निर्दिष्ट चोट 1 के परिणामस्वरूप विकलांगता होती है, मुआवजे का ऐसा प्रतिशत जो स्थायी पूर्ण विकलांगता के मामले में देय होता जैसा कि उसमें निर्दिष्ट है उस चोट के कारण कमाई क्षमता की हानि का प्रतिशत होना, और

(ii) अनुसूची I में निर्दिष्ट नहीं की गई चोट के मामले में, स्थायी पूर्ण विकलांगता के मामले में देय मुआवजे का ऐसा प्रतिशत जो चोट से कमाई क्षमता की हानि (जैसा कि योग्य चिकित्सा व्यवसायी द्वारा मूल्यांकन किया गया है) के अनुपात में हो ; स्पष्टीकरण I.-- जहां एक ही दुर्घटना के कारण एक से अधिक चोटें होती हैं, इस मद के तहत देय मुआवजे की राशि को एकत्रित किया जाएगा, लेकिन किसी भी मामले में ऐसा नहीं होगा कि उस राशि से अधिक हो जो स्थायी पूर्ण विकलांगता के परिणामस्वरूप आई चोटों से देय होती। स्पष्टीकरण II.-- उप-खंड (ii) के प्रयोजनों के लिए अर्जन क्षमता के नुकसान का आकलन करने में, योग्य चिकित्सा व्यवसायी को अनुसूची 1 में निर्दिष्ट विभिन्न चोटों के संबंध में अर्जन क्षमता के नुकसान के प्रतिशत का उचित ध्यान रखना होगा;

10. सबसे पहले, कामगार मुआवजा आयुक्त के फैसले के खिलाफ अपील पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के दायरे पर चर्चा करना प्रासंगिक है। 2009 की सिविल अपील संख्या 7470 में सर्वोच्च न्यायालय उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाथा, 2.11.2018 को निर्णीत फैसला इस प्रकार है:

"9. शुरुआत में, एक स्थापित सिद्धांत होने के नाते हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं कि यह प्रश्न कि क्या कर्मचारी दुर्घटना का शिकार हुआ, क्या दुर्घटना रोजगार के दौरान हुई, क्या यह रोजगार से उत्पन्न हुई, कैसे और दुर्घटना किस प्रकार हुई, दुर्घटना के कारण किसकी लापरवाही थी; क्या कर्मचारी और नियोक्ता के बीच कोई संबंध था, कर्मचारी की आयु और मासिक वेतन क्या था, दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मृत कर्मचारी पर कितने आश्रित हैं, क्या कर्मचारी द्वारा कोई बीमा कवरेज प्राप्त किया गया था तथा नियोक्ता द्वारा घटना को कवर करना आदि कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जो दावा याचिका में आयुक्त के उचित निर्णय के लिए तब उठते हैं जब किसी कर्मचारी को उसके रोजगार के दौरान कोई शारीरिक चोट लगती है या उसकी मृत्यु हो जाती है और वह अपने एलआरएस पर अधिनियम के तहत मुआवजे का दावा करने के लिए अपने नियोक्ता पर मुकदमा करता है।

10. उपरोक्त प्रश्न मूलतः तथ्यात्मक प्रश्न हैं और इसलिए, उन्हें साक्ष्य की सहायता से सिद्ध किया जाना आवश्यक है। एक बार जब वे किसी भी तरह से साबित हो जाते हैं, तो

उस पर दर्ज निष्कर्ष तथ्य के निष्कर्ष माने जाते हैं।"

11. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे इस प्रकार निर्णय दिया:

"15. ऐसी अपील को प्रवेश के प्रश्न पर यह पता लगाने के लिए सुना जाता है कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं। अपील में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और उच्च न्यायालय द्वारा एक परीक्षा की आवश्यकता है। यदि कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, तो उच्च न्यायालय योग्यता के आधार पर अंतिम सुनवाई के लिए अपील को स्वीकार कर लेगा अन्यथा इस कारण से खारिज कर देगा कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है।

16. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हुए हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में ऊपर दिए गए सारवान प्रश्नों पर कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं था। दूसरे शब्दों में, हमारे विचार में, आयुक्त ने पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर मामले में उत्पन्न होने वाले सभी भौतिक प्रश्नों का उचित निर्णय लिया और प्रतिवादी को देय मुआवजे का सही निर्धारण किया। इसलिए, तथ्यों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा इसकी सही पुष्टि की गई।

17. मामले के इस दृष्टिकोण में, नीचे दिए गए दो न्यायालयों के तथ्य संगामी निष्कर्ष

होने के कारण इस न्यायालय पर बाध्यकारी हैं। अन्यथा भी, हमें किसी भी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर किसी भी हस्तक्षेप के लिए मांग करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। कोई भी तथ्यात्मक निष्कर्ष या तो विकृत या मनमाना नहीं पाया गया या बिना किसी सबूत के आधारित या कानून के किसी भी प्रावधान के खिलाफ नहीं पाया गया। हम तदनुसार इन निष्कर्षों को कायम रखते हैं।

12. जहां तक की चोट कहां लगी, और लगी या नहीं, इसके बारे में निष्कर्ष का सवाल है, क्योंकि ये तथ्यात्मक निष्कर्ष हैं। इसलिए, उक्त आधार विफल रहता है और अपीलकर्ता के विरुद्ध उत्तर दिया जाता है। जहां तक विकलांगता से संबंधित प्रश्न का सवाल है, यह तथ्य का प्रश्न है और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के मददेनजर, यह न्यायालय उक्त मुद्दे पर तब तक विचार नहीं कर सकता, जब तक कि यह साबित न हो जाए कि विद्वान आयुक्त का निष्कर्ष बिल्कुल विकृत है। . इस मामले में, निचली अदालत ने चिकित्सा साक्ष्य पर विचार किया है जो दर्शाता है कि विकलांगता हुई थी। इस प्रकार, रुपये का मुआवजा अनुदान. 1,38,340/- भागफल के अनुसार खराब नहीं कहा जा सकता। बल्कि आयुक्त द्वारा दी गई ब्याज दर वैधानिक ब्याज दर से कम है।

13. गोल्ला राजन्ना आदि आदि बनाम में। डिविजनल मैनेजर और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी) और मायन बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 एसीजे 524 में भी, शीर्ष अदालत ने माना है कि श्रमिक मुआवजा

अधिनियम की धारा 30 के तहत, उच्च न्यायालय इस तथ्य क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं और न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि इसमें कानून का प्रश्न शामिल न हो। सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एसीजे 526 मामले में फैसला भी इस न्यायालय को विद्वान आयुक्त के तर्कसंगत निर्णय में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देंगे।

14. अपील के ज्ञापन में उल्लिखित अन्य सभी आधार तथ्यों के प्रश्न के दायरे में हैं और इन पर आयुक्त के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस न्यायालय ने केवल कानून के प्रश्न पर अपील स्वीकार की है, इसलिए निष्कर्ष में बदलाव नहीं हैं। यह न्यायालय 2009 के उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम सिविल अपील संख्या 7470 में पारित शीर्ष न्यायालय के निर्णय से अपने दृष्टिकोण में मजबूत हुआ है। श्रीमती सुजाता ने 2.11.2018 को फैसला किया, गोल्ला राजन्ना आदि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी) और मायन बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 एसीजे 524 जिसमें शीर्ष अदालत ने माना है कि श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923 की धारा 30 के तहत उच्च न्यायालय इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है जब तक तथ्य के निष्कर्ष विकृत साबित न हो जाएं और जब तक इसमें कानून का कोई प्रश्न शामिल न हो।

15. इसमें अपीलकर्ता के तर्क के रूप में आयुक्त के आदेश में एक विकृति आ गई है कि दावेदार ने आय की हानि साबित नहीं की है और वह नौकरी में बना हुआ है और वह डायरी में काम कर रहा था और उनका वेतन 16.4.2000 को बढ़ गया है, इसलिए आय में कोई हानि नहीं हुई है। आयुक्त केवल एक तथ्य का सहारा नहीं ले सकते थे कि दुर्घटना परिसर में हुई थी। पात्रता के अगले अंग पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है सिवाय इस तथ्य के कि वह अस्पताल में भर्ती थे।

16. अपील मंजूर करनी होगी. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा श्री चनप्पा नागप्पा मुचलगोड़ा बनाम डिविजनल मैनेजर, न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2019(0) सुप्रीम (एससी) 1347 और शकुंतला चंद्रकांत श्रेष्ठी बनाम प्रभाकर मौरती गरवली और अन्य, 2006 (0) सुप्रीम (एससी) 1105 अपीलकर्ता के लाभ के लिए और मोहम्मद याकूब बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, मुरादाबाद के माध्यम से यूपीएसआरटीसी, 2003 (97) एफएलआर 224 में इस उच्च न्यायालय के फैसले के लिए सुनिश्चित करेगा।

17. इस अपील पर विचार करते समय और इस मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मूल दावेदार की मृत्यु हो गई है। राशि बिना ब्याज के पहले ही जमा की जा चुकी है। दावेदार कम से कम अधिनियम की धारा 4(2)(ए) के अनुसार हकदार होंगे, जहां कर्मचारी को दावेदार को वास्तविक चिकित्सा व्यय और मानसिक आघात दिया जाना है। इसलिए, दावा आवेदन दाखिल करने से लेकर संवितरण तक 12%

ब्याज के साथ 35000/- रुपये की राशि, क्योंकि इस न्यायालय के आदेश के अनुसार राशि सावधि जमा में है, का भुगतान किया जाए और मृत कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों को वितरित किया जाए। इस दलील का कि इस चोट के कारण दावेदार को पदोन्नति नहीं दी गई, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उत्तर नहीं दिया गया और अब जब मूल दावेदार की मृत्यु हो गई है तो इस पहलू पर विचार करने के लिए मामले को ट्रिब्यूनल में भेजना उपयोगी नहीं होगा और इसलिए जब तक सावधि जमा में रखी गई राशि लौटाते हुए, कानून के अनुसार 12% ब्याज के साथ 35000/- रुपये देने होंगे और प्रतिवादी 10,000/- रुपये की लागत का हकदार होगा।

18. अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अंतरिम राहत, यदि कोई हो, को ऊपर बताए अनुसार संशोधित किया गया है। रजिस्ट्री इस आदेश को कर्मकार मुआवजा आयुक्त को अग्रेषित करेगी जो दावेदारों को तुरंत बुलाएगा और इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से 30 दिनों के भीतर उक्त राशि पर अर्जित ब्याज के साथ सावधि जमा में रखी गई राशि का भुगतान करेगा।

19. न्यायालय. यह न्यायालय इसमें सहायता करने के लिए दोनों वकीलों का आभारी है।

(2023) 7 ILRA 142

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश संख्या 4050 वर्ष 2017 से प्रथम

अपील

बाबूनंदन एवं अन्य

.....अपीलकर्ता

बनाम

बग्गल यादव एवं अन्य

..... प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सुनील कुमार, श्री दया शंकर

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, श्री राधाकृष्ण कुमार सिन्हा

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 धारा 173-मुआवजे में वृद्धि-घातक दुर्घटना-मृतक की आयु लगभग 18 वर्ष, न्यायाधिकरण द्वारा मात्र 26,500/रु. का मुआवजा प्रदान किया गया -अपीलीय न्यायालय ने न्यूनतम वेतन 35,000/-रु. प्रतिवर्ष लिया तथा भविष्य की संभावनाओं के लिए 50% जोड़ा-व्यक्तिगत व्यय के लिए 50% की कटौती तथा 18 का गुणक लागू करने के पश्चात, आश्रितता की कुल हानि 4,72,500/-रु. हुई तथा विभिन्न परम्परागत क्षतियों के लिए 70,000/-रु. जोड़े गए-5,42,000/-रु. के मुआवजे की पात्रता-7% ब्याज तथा विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा तय किया गया भुगतान का तरीका न्यायसंगत तथा विधिसम्मत है तथा इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (प्रस्तर 1 से 33)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

I. प्रस्तावना:

1. वर्तमान अपील विद्वान मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, आजमगढ़' द्वारा दिनांक 01.02.2007 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 04/2022 में आंशिक रूप से दावेदारों के दावे को अनुमति प्रदान करने वाले अधिनिर्णय से उत्पन्न होती है।

II विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रत्यर्थियों का मामला:

2. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों का संक्षेप में तर्क यह था कि मृतक की मृत्यु 02.01.1998 को हुई एक दुर्घटना में लगी चोटों से हुई थी, और ट्रक पंजीकरण संख्या यूपी 52 ए/2047 के चालक की लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। हमलावर वाहन का बीमा प्रत्यर्थी संख्या 3 - बीमा कंपनी द्वारा किया गया था। उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, मृतक विद्यालय से अपने घर लौटते समय दुर्घटना का शिकार हो गया। दावेदार मृतक श्याम नारायण के माता-पिता हैं। मृत्यु के समय मृतक की आयु 18 वर्ष थी।

III विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा प्रदान किया गया मुआवजा:

3. विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 01.02.2007 के आक्षेपित निर्णय में मुआवजा दिया, जिसे

1. इसके बाद से विद्वान न्यायाधिकरण के रूप में संदर्भित

नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:

क्रमांक	मद	न्यायाधिकरण द्वारा अधिनिर्धारित राशि
1	मासिक आय	500/-
2	वार्षिक आय	6000/-
3	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती	6000 का 1/3 = 2000
4	गुणक	11
5	निर्भरता का पूर्ण नुकसान	2000x11 = 22000/-
6	पारंपरिक मद (ए) समूह का नुकसान (बी) परिसंपत्ति का नुकसान (सी) अंत्येष्टि व्यय	4500/-
7	सम्पूर्ण मुआवजा	22000+4500= 26500-
8	ब्याज	6%

4. दावेदार वर्तमान अपील के माध्यम से मुआवजा में वृद्धि की मांग करते हैं।

IV पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क:

5. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री दया शंकर का कहना है कि मुआवजा की गणना सही ढंग से नहीं की गई थी। विद्वान न्यायाधिकरण ने विधि को समझने में गलती

की और गलत तरीके से आय की गणना की, एक अवैध गुणक लागू किया और भविष्य की संभावनाओं के संबंध में अधिनिर्णय करने में लापरवाही की, जो कि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य ± के साथ नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के विरोध में है। दावेदार अधिक राशि के हकदार थे।

6. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार सिन्हा उक्त तर्कों पर संतोषजनक ढंग से विरोध नहीं करते हैं।

V. विचार हेतु विवादक:

7. अपने तर्कों को रखने के बाद, संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि इन अपीलों में केवल निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए आते हैं:

क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने इन मदों के तहत मुआवजा का निर्धारण करते समय गलती की है : आय, भविष्य की संभावनाएं, गुणक का अनुप्रयोग, पारंपरिक मद और ब्याज ? यदि हां, तो दावेदार कितनी राशि के हकदार हैं?

2. 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822

3. 2017(16) एससीसी 680

और कमाई नहीं कर रहे होते हैं। इसके अलावा, भले ही वे कमा रहे हों, ऐसे तथ्यों का

समर्थन करने वाले दस्तावेजी साक्ष्य मिलना मुश्किल है।

VI. मृतक की आय का विवादक:

8. भुगतान किए जाने वाले मुआवजा का निर्धारण करते समय बालक की आय का प्रश्न तथ्यों और विधि का एक जटिल प्रश्न है। कई मामलों में बालक पूरी तरह से अपने माता-पिता पर निर्भर होते हैं

9. मोटर वाहन अधिनियम बालकों को दो श्रेणियों में विभाजित करता है, अर्थात् 15 वर्ष से कम आयु के बालक और उससे अधिक आयु के बालक । पूर्व वर्ग में, 15,000/- रुपये की प्रति वर्ष अनुमानित आय विधि में निर्धारित है। हालाँकि, विभिन्न न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा राशि को बढ़ाकर प्रति वर्ष 30,000/-रु. कर दिया गया था। 15 वर्ष से अधिक उम्र के बालकों को विधायिका द्वारा एक अलग वर्ग के रूप में माना जाता है। यह मोटर वाहन अधिनियम की अनुसूची II में गुणक प्रणाली के साथ पठित सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य से स्पष्ट है जो बाद की श्रेणी में मृत बालक की आय की गणना को नियंत्रित करते हैं।

10. 15 वर्ष से अधिक उम्र के बालकों के लिए गुणक प्रणाली का अनुप्रयोग इस तथ्य की विधायी मान्यता है कि हालांकि उस आयु वर्ग के बालक वास्तव में कमाई नहीं कर रहे हैं और अपने माता-पिता पर निर्भर हैं, लेकिन उन्होंने एक निश्चित नियोजन क्षमता हासिल कर ली है। नियोजन क्षमता में बालकों द्वारा

औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक माध्यमों या सामाजिक-आर्थिक परिवेश से हासिल किए गए विभिन्न कौशल शामिल होते हैं जो उन्हें पारिवारिक आय अर्जित करने या उसमें योगदान करने की क्षमता प्रदान करते हैं। नियोजन क्षमता उम्र के साथ बढ़ती है और शिक्षा, व्यावसायिक कौशल का अधिग्रहण (वंशानुगत हो सकता है), घरेलू कामों में सहायता करने की क्षमता आदि द्वारा निर्धारित की जा सकती है। नियोजन क्षमता ऐसे मामलों में आय की गणना और मुआवजा के अनुदान का आधार बन जाती है।

11. मुआवजा देने की न्यायशास्त्रीय नींव टैफ वेले रेलवे बनाम जेनकिंस में हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा रखी गई थी जिसमें मुआवजा देने का आधार आर्थिक लाभ की उम्मीद थी, न कि मृतक को मिलने वाली वास्तविक आय।

4 2009 (6) एससीसी 121

5 1913 एसी 1

12. टैफ वेले (उपर्युक्त) में लॉर्ड एटकिंसन ने विधिक स्थिति इस प्रकार निर्धारित की:

'...बस यह आवश्यक है कि वाद चलाने वाले व्यक्ति को आर्थिक लाभ की उचित उम्मीद होनी चाहिए। यह बिल्कुल सच है कि यह उम्मीद का अस्तित्व एक तथ्य के निष्कर्ष से है - तथ्य का एक आधार होना चाहिए जिससे निष्कर्ष उचित रूप से निकाला जा सके; लेकिन मैं इस प्रस्ताव से अपनी बलपूर्वक असहमति व्यक्त करना चाहता हूं कि यह आवश्यक है कि ऐसे दो तथ्य हैं जिनके बिना निष्कर्ष नहीं

निकाला जा सकता है, पहला, कि मृतक ने अतीत में पैसा कमाया था और दूसरा, यह कि उसने वादी को सहारा देने में योगदान किया था। निस्संदेह, ये साक्ष्य के सारगर्भित हिस्से हैं, लेकिन ये केवल साक्ष्य के हिस्से मात्र हैं; और मुझे लगता है कि आवश्यक निष्कर्ष, उनके अलावा और उनसे भिन्न परिस्थितियों से निकाला जा सकता है।

13. न्यायिक प्राधिकारियों ने पहले उद्धृत किया है कि नाबालिग बालकों की मृत्यु के मामलों में मुआवजा देने के लिए अनुमानित आय के रूप में 30,000/- प्रति वर्ष तय की गई है। [संदर्भ: मीना देवी बनाम. नुनु चंद महतो @ नेमचंद महतो और अन्य⁷]

14. जबकि मीना देवी (उपर्युक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा तय की गई राशि कई मामलों में मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करती है, लेकिन किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना स्थापित नियम के रूप में लागू होने वाले न्यायिक मानक का गठन नहीं कर सकती है।

15. मीना देवी (उपर्युक्त) में ऊपर चर्चित विभिन्न कारकों के आलोक में नियोजन क्षमता की जांच करके मृत नाबालिग बालक की आय निर्धारित करने के लिए तथ्यों और साक्ष्यों की प्रासंगिक जांच करने के कर्तव्य से न्यायालय को मुक्त नहीं किया गया है।

16. कौशल का अधिग्रहण औपचारिक प्रशिक्षण या योग्यता को प्रमाणित करने वाले प्रमाणपत्र पर निर्भर नहीं करता है। कौशल विभिन्न

माध्यमों से और अनौपचारिक तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा परिवेश जहां ऐसे कौशलों का दैनिक आधार पर अभ्यास किया जाता है, बालक को ऐसे कौशल अपनाने की अनुमति देता है।

6 2022 (4) टीएसी 371

17. हमारी जनसंख्या का भारी बहुमत अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्रों में संलग्न है। उनके पास अपनी आय का पुख्ता दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है। हालाँकि, न्यायालय ऐसे मामलों में आय निर्धारित करने के लिए विश्वसनीय मानदंड लागू कर सकती हैं। कौशल और ज्ञान प्राप्त करके बालक विभिन्न गतिविधियाँ कर सकते हैं जो परिवार के भाग्य को मजबूत करेंगी। इसके कई रूप हो सकते हैं जैसे उज्ज्वल शैक्षणिक रिकॉर्ड वाले युवा छात्र ट्यूशन ले सकते हैं। एक छात्र जिसने व्यावसायिक कौशल विकसित किया है, वह संबंधित कार्य करके परिवार की आय में योगदान कर सकता है। इसके अलावा बालक घरेलू कामकाज और कृषि गतिविधियों में भी मदद कर सकते हैं।

18. मृतक की शैक्षणिक योग्यता स्थापित की गई। घर के कामों में उसका योगदान सिद्ध हो गया। नियोजन क्षमता निर्धारित करने और मृतक की आय तय करने के लिए ये महत्वपूर्ण कारक हैं।

19. विद्वान न्यायाधिकरण ने आय 6000/- प्रति वर्ष रुपये निर्धारित की। यह निर्धारण विकृत है। विद्वान न्यायाधिकरण ने यांत्रिक

रूप से आय तय करके और इस संबंध में सुसंगत पूछताछ करने में विफल रहकर विधि के अनुसार त्रुटि की।

20. अपनी उम्र और शिक्षा के आधार पर, मृतक ने एक निश्चित रोजगार क्षमता प्राप्त कर ली थी, जिसे गैरकानूनी रूप से नजरअंदाज कर दिया गया था। नियोजन क्षमता वह न्यूनतम आय होगी जो एक व्यक्ति अपने कौशल और परिवेश के आधार पर बाजार से प्राप्त करेगा।

21. मृतक 18 वर्ष का युवा सक्षम और शिक्षित वयस्क था और वह छोटे बालकों को ट्यूशन लेने या शिक्षा प्रदान करने की क्षमता रखता था। अतः वह कुशल श्रमिक की श्रेणी में आ जायेगा।

22. इस मामले के तथ्यों में, न्यूनतम वेतन रु. 35,000/- प्रति वर्ष उचित एवं न्यायसंगत राशि है जिसे मृतक की आय माना जा सकता है।

VII भविष्य की संभावनाएं:

23. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के अनुसार की

7 (इसके बाद "यूपी नियमावली 1998 के रूप में संदर्भित)

जानी चाहिए। नियमावली का नियम 220A - 3 (iii) प्रासंगिक है और यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“(3) मृतक की भविष्य की संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा:

“(i) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50%।”

अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक दस्तावेज को तब तक परिचालन करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक दस्तावेज अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

24. यूपी नियम, 1998 न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आए थे। उर्मिला शुक्ला (उपर्युक्त) में नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य' सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया: “10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में “उचित मुआवजा ” पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

(प्रभाव)

25. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 प्रणय सेठी (उपर्युक्त) या सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य 10 में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। प्रणय सेठी (उपर्युक्त) में भविष्य की संभावनाएं यूपी नियम, 1998 पर ध्यान दिए बिना निर्धारित की गई। इस तथ्य पर उर्मिला शुक्ला (उपर्युक्त) में ध्यान केंद्रित किया गया था:

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के मामले में निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के रूप में नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था । उन मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है, को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी शासकीय सिद्धांत के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक दस्तावेज ने कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या

“8. श्री राव द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रणय सेठी मामले में निर्णय यह नहीं दर्शाता है कि

8 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822

9 2017 (16) एससीसी 680

10 2009 (6) एससीसी 121

न्यायालय का ध्यान नियम 3 (iii) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकृष्ट किया गया था, जो वेतन में 15% की तुलना में 20% जोड़ने पर विचार करता है जिसे प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में बताया गया है। उनके तर्क में, चूंकि वैधानिक लिखित स्थापित किया गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी के निर्णय को ऐसे

वैधानिक नियम के आवेदन को सीमित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए। "

प्रणय सेठी (उपर्युक्त) में निम्नानुसार तय किया गया था:

26. उ.प्र. नियम, 1998 प्रकृति में वैधानिक हैं और उनका संचालन प्रणय सेठी (उपर्युक्त) द्वारा बाधित नहीं किया गया है। यू.पी. नियम, 1998 में कानून की शक्ति है और यह उचित मामलों में पूरी ताकत से लागू होगा। यू.पी. नियम, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (उपर्युक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में अधिक लाभकारी हैं। प्रणय सेठी (उपर्युक्त) में हिस्सेदारी यूपी नियम, 1998 द्वारा पात्र लाभार्थियों पर प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकती।

27. इसके मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि दावेदार/प्रत्यर्थी यूपी नियम, 1998 के अनुसार भविष्य की संभावनाओं के तहत वेतन में 50% वृद्धि के हकदार हैं। अधिनिर्णय में आवश्यक परिवर्तन तदनुसार किए जाएंगे।

VIII विभाजित गुणक का अनुप्रयोग:

28. दुर्घटना के समय मृतक की उम्र 18 वर्ष थी। सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य ' सपठित प्रणय सेठी (उपर्युक्त) के अनुसार लागू गुणक 18 है।

IX पारंपरिक मदों की गणना:

29. विवादित अधिनिर्णय में पारंपरिक मदों के तहत निर्धारित राशि प्रणय सेठी (उपर्युक्त) से भिन्न है। पारंपरिक मदों को

"54. ... कहने की आवश्यकता नहीं है कि पारंपरिक और परंपरागत मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह एक स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के

11 2009 (6) एससीसी 121

विपरीत, उक्त मदों को परिमाणित करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में अनुभवसिद्ध नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक स्थापित नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमें लगता है कि उचित रकम तय करना तार्किक है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि परम्परागत मदों पर वाजिब रकम अर्थात् संपत्ति की हानि, सहायता संघ की हानि और अंत्येष्टि व्यय क्रमशः 15000/-, 40000/- और 15000/- होना चाहिए। (15000/-, 40000/- अन्त्येष्टि व्यय)"

30. प्रणय सेठी (उपर्युक्त) में निर्धारित पारंपरिक मदों के तहत आंकड़े इस मामले के

तथ्यों पर लागू होंगे। अधिनिर्णय तदनुसार संशोधित किया गया है।

X. ब्याज:

31. 7% का ब्याज और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा तय किया गया भुगतान का तरीका उचित और वैध है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

XI. मुआवजा का निर्धारण जिसके दावेदार हकदार हैं:

32. पिछली चर्चा के मद्देनजर, मुआवजा की वह राशि जिसके दावेदार हकदार हैं और उन्हें अधिनिर्णीत की गई है, वह नीचे सारणीबद्ध है:

i. दुर्घटना की तिथि	- 02.01.1998
ii. मृतक का नाम	-श्याम नारायण
iii. मृतक की उम्र	-18 वर्ष
iv. मृतक का व्यवसाय	- छात्र
v. मृतक की आय	- 35000/- प्रति वर्ष
vi. दावेदारों का नाम, उम्र और मृतक के साथ संबंध:	

क्रमांक	नाम	आयु	रिश्ता
1	बाबुनन्दन		पिता
2	प्यारी देवी		माँ

vii मुआवजा की गणना

क्रमांक	मद	राशि (रुपये में)
1	वार्षिक आय (ए)	₹.35000/-
2	भविष्य की संभावनाएँ (बी)	35000/- का 50% = 17500/-
3	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (ए+बी)	35000 + 17500 = 52,500/-

	= सी)	
4	व्यक्तिगत खर्चों के लिए लिए कटौती (डी) (सी का 50%)	52,500/- का 50% = 26,250/-
5	निर्भरता की वार्षिक हानि (ई)	(सी-डी = ई) 26,250/-
6	गुणक (एफ)	18
7	निर्भरता का पूर्ण नुकसान (ई * एफ)	26,250 x 18 = 4,72,500/-
8	पारंपरिक मद: (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) संपत्ति का नुकसान (सी) अंत्येष्टि व्यय	70,000/-
9	सम्पूर्ण मुआवजा	5,42,500/-
10	ब्याज	7%

XII निष्कर्ष एवं दिशा-निर्देश:

33. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

34. मुआवजा की वह राशि जो दावेदारों को दी गई है, बीमा कंपनी द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण समक्ष तीन महीने की अवधि के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि दे देगा। दावेदारों को पहले ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को समायोजित किया जाएगा।

35. इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा जमा की गई राशि विद्वान विचारण न्यायालय को प्रेषित की जाएगी जो इसे दावेदारों के पक्ष में जारी करेगी।

(2023) 7 ILRA 148

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन धारा 482 संख्या 6136 वर्ष 2023

ओमकार लोहिया

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री राकेश कुमार श्रीवास्तव

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

दांडिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -

धारा 200, 202 और 482 - परक्राम्य

लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138: -

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन - समन

आदेश तथा संपूर्ण कार्यवाही को निरस्त

करने हेतु - शिकायत - प्रतिवादी संख्या 2

द्वारा धारा 138 परक्राम्य लिखत

अधिनियम के अधीन दाखिल की गई -

धोखाधड़ी और कपट का अपराध - इस

आधार पर चेक का अनादर करना कि

'आहरणकर्ता के हस्ताक्षर भिन्न हैं' - समन

आदेश - न्यायालय का मत है कि, किसी

भी आहरणकर्ता द्वारा निर्गत किए गए चेक

में संरचनात्मक त्रुटि के कई कारण हो

सकते हैं, जो या तो सद्भावनापूर्ण, अनजाने

में या कपटपूर्ण और दुर्भावनापूर्ण हो सकते

हैं - हस्ताक्षर और अपूर्ण हस्ताक्षर में अंतर

संरचनात्मक त्रुटियों की कई श्रेणियों में से

कोई नहीं है और इस तरह के संरचनात्मक

त्रुटि का कारण परीक्षण का विषय है जिसे

साक्ष्य के परिशीलन के उपरांत ही निर्धारित

किया जा सकता है - आवेदक द्वारा उक्त

रचनात्मक त्रुटि को आधार बनाकर केवल

अपने आपराधिक दायित्व से बचने हेतु

आक्षेपित आदेश के निरस्तीकरण की प्रार्थना

की गई है, जबकि उसने भुगतान हेतु

धनराशि की उत्तरदायित्वहीनता अथवा

शिकायतकर्ता की किसी देनदारी अथवा ऋण

संबंधी कोई प्रतिवाद नहीं किया है -

निर्धारित किया जाता है कि शिकायत धारा

138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के

अंतर्गत की गई है। अधिनियम को उच्च

न्यायालय द्वारा धारा 482 दंड प्रक्रिया

संहिता को आधार निर्धारित कर निरस्त

नहीं किया जा सकता है, यदि तथ्यों के

विवादित प्रश्न शामिल हैं, जिन पर पक्षकारों

द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष संबंधित

साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के पश्चात निर्णय

करने की आवश्यकता है - तदनुसार,

आवेदन निरस्त किया जाता है। (प्रस्तर 10,

11, 12)

धारा 482 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन निरस्त

किया गया। (ई-11)

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री राकेश कुमार

श्रीवास्तव, राज्य के लिए अपर शासकीय

अधिवक्ता श्री के.पी पाठक को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आवेदन 30.01.2020 के सम्मन आदेश के साथ-साथ शिकायत केस संख्या-08 वर्ष 2020, (नेत्रपाल अवाना बनाम ओंकार लोहिया) की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जो परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881, थाना-फेज-II नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर में धारा 138 के तहत अतिरिक्त अदालत संख्या-3, गौतम बुद्ध नगर में लंबित है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक के खिलाफ परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की, जिसमें कहा गया कि आवेदक और प्रतिपक्षी संख्या-2 एक दूसरे को जानते हैं और 10.06.2018 को, आवेदक प्रतिपक्षी संख्या-2 के घर आया और 10 लाख रुपये के लिए अनुरोध किया, जिसकी उसे जरूरत थी। उक्त राशि उसे 20.06.2018 को प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा इस शर्त के साथ दी गई थी कि आवेदक द्वारा छह महीने के भीतर उसे वापस कर दिया जाएगा। इसके बाद, दिसंबर, 2018 में, जब प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक को पैसे वापस करने के लिए कहा, तो आवेदक ने इलाहाबाद बैंक, शाखा-भंगेल, फेज-II नोएडा, गौतमबुद्ध नगर से 10,00,000 रुपये का चेक जारी किया था, जिस पर चेक संख्या-035621 दिनांक 16.07.2019 था। इसके प्राप्त होने पर, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 16.07.2019 को नकदीकरण के लिए संबंधित

बैंक के समक्ष इसे प्रस्तुत किया है, लेकिन 17.07.2019 को "ड्रॉअर सिग्नेचर डिफर" (हस्ताक्षर न मिलने) के कारण इसे अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त जानकारी प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा आवेदक को दी गई थी, लेकिन आवेदक ने प्रतिपक्षी संख्या-2 से ली गई राशि को वापस करने से इनकार कर दिया। इसके बाद, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने पंजीकृत डाक के माध्यम से 26.07.2019 को आवेदक को कानूनी नोटिस भेजा, जो आवेदक को 27.07.2019 को प्राप्त हुआ है। नोटिस के बाद न तो किसी राशि का भुगतान किया गया और न ही आवेदक द्वारा जवाब प्रस्तुत किया गया, इसलिए, वर्तमान शिकायत 21.08.2019 को दायर की गई है। इसके बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने द०प्र०स० की धारा 200 और 202 के तहत बयान दर्ज करने के बाद अधिनियम की धारा 138 के तहत दिनांक 30.01.2020 के आदेश के तहत आवेदक को तलब किया।

4. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक निर्दोष है और उसे प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने चेक पर हस्ताक्षर पर विवाद किया और कहा कि आवेदक द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-2 को ऐसा कोई चेक नहीं दिया गया था, इसलिए धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत शिकायत की सामग्री गायब है और इसलिए, कार्यवाही स्पष्ट रूप से परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 के तहत बनाए रखने योग्य नहीं है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि उसी राशि का एक और चेक, जिसे पृष्ठ 43 पर अलग-अलग हस्ताक्षर के साथ रखा गया है, बैंक के समक्ष रखा गया है और अस्वीकृत कर दिया गया है, जिसके लिए

एक और शिकायत भी दर्ज की गई है। इस प्रकार, सम्मन आदेश के साथ-साथ पूरी कार्यवाही को रद्द किया जाना चाहिए।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री के.पी पाठक ने प्रस्तुत किया है कि चेक में आवेदक के हस्ताक्षर में अंतर बहुत अच्छी तरह से 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध को बनाता है क्योंकि मेसर्स लक्ष्मी डाइकेम बनाम गुजरात राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने (2012) 13 एस.सी.सी. 375 में रिपोर्ट किया है कि चेक के अस्वीकृत के लिए बैंक का ऐसा कोई तकनीकी कारण या समर्थन करता है; धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अभियोजन को प्रभावित/अयोग्य नहीं करता है और धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध का गठन करेगा। वह आगे प्रस्तुत करता है कि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सम्मन आदेश कानूनी है और कानून की नजर में सही है और इस स्तर पर, केवल एक प्रथम दृष्टया मामला देखा जाना है और शिकायत को शुरुआत पर ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि यदि चेक विवादित है, तो परीक्षण के समय इसे देखा जा सकता है। पृष्ठ 43 पर रखा गया चेक अलग-अलग चेक संख्या और अलग-अलग लेनदेन से संबंधित है, इसलिए, कानून के तहत अनुमति के अनुसार धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत एक और शिकायत दर्ज की गई है। इसलिए, प्रस्तुत आवेदन खारिज किया जा सकता है।

6. मैंने पक्षकारों के वकीलों द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का भी अध्ययन किया है।

7. आगे की कार्यवाही से पहले, सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के कुछ निर्णयों का संदर्भ देना उचित है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने एन.आई. अधिनियम की धारा 138 से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं, जो इस प्रकार हैं: -

- i) सीसी अलवी हाजी बनाम पलापेट्टी मुहम्मद और अन्य, (2007) 6 एस.सी.सी. 555 में रिपोर्ट किया गया;
- ii) अजीत सीड्स लिमिटेड बनाम के गोपाला कृष्णैया, 2014-12 एस.सी.सी. 685 में रिपोर्ट किया गया;
- iii) भारत बैरल एंड ड्रम मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारेलाल, (1999) 3 एस.सी.सी. 35 में रिपोर्ट किया गया;
- iv) बसलिंगप्पा बनाम मुदिबसप्पा (2019) 5 एस.सी.सी. 418 में रिपोर्ट किया गया;
- v) किशन राव बनाम शंकरगौडा, (2018) 8 एस.सी.सी. 165;
- vi) रंजीत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य निर्णय 31.01.2020 को 482 संख्या-47282 वर्ष 2019 के तहत आवेदन में पारित किया गया।

9. इस मुद्दे के बारे में कानून जहां अहरणकर्ता के हस्ताक्षर अधूरे थे या अलग-अलग हस्ताक्षर थे, लक्ष्मी डाइकेम बनाम

गुजरात राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (2012) 13 एस.सी.सी. 375 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि यदि चेक को "अहरणकर्ता के हस्ताक्षर अलग" के कारण अस्वीकार कर दिया गया है, यह एक दंडनीय अपराध भी होगा और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आपराधिक कार्यवाही को आकर्षित करेगा।

10. स्थापित कानूनी स्थिति के मददेनजर, जैसा कि ऊपर देखा गया है, यह स्पष्ट है कि इस स्तर पर, केवल एक प्रथम दृष्टया मामला देखा जाना है और शिकायत को शुरुआत में ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय का मानना है कि किसी भी आहर्ता द्वारा जारी किए गए चेक में संरचनात्मक दोष के कई कारण हो सकते हैं, जो या तो वास्तविक, अनजाने में या बेईमानी से और दुर्भावनापूर्ण हो सकते हैं। यह कहना बहुत अनुचित होगा कि किसी भी आहर्ता द्वारा जारी किए गए किसी भी चेक के प्राप्तकर्ता को पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि चेक में कोई संरचनात्मक दोष है या नहीं और आगे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्या इस तरह की संरचनात्मक त्रुटि पूर्वोक्त कारणों में से किसी का परिणाम है। इस तरह की संरचनात्मक खामियां ज्यादातर मामलों में चेक के प्राप्तकर्ता के संज्ञान में आ सकती हैं, जब बैंक द्वारा चेक को उसके अनादरण के कारणों का उल्लेख करते हुए पृष्ठांकन के साथ अस्वीकृत के रूप में लौटा दिया जाता है। हस्ताक्षरों और अपूर्ण हस्ताक्षर में अंतर संरचनात्मक दोषों की कई श्रेणियों में से एक है और ऐसे संरचनात्मक दोष का

कारण परीक्षण का मामला है और साक्ष्य की मूल्यांकन के बाद निर्णय लिया जाना आवश्यक है।

11. प्रस्तुत मामले में, आवेदक ने इस तरह के संरचनात्मक दोष की दलील को केवल अपने आपराधिक दायित्व से छुटकारा पाने के लिए लिया है, बिना भुगतान करने के लिए राशि की गैर-देयता या शिकायतकर्ता के रुख का खंडन करने के लिए शिकायतकर्ता के किसी भी ऋण या अन्य दायित्व की दलील के बारे में कोई दलील दिए बिना, प्रश्न में आक्षेपित आदेश को रद्द करने की मांग की है।

12. यह अच्छी तरह से तय है कि शिकायत को रद्द करने के उद्देश्य से, उच्च न्यायालय अभियुक्त के बचाव में नहीं देख सकता है। अदालत को केवल यह देखने की आवश्यकता है कि क्या शिकायत में किए गए कथनों और शिकायतकर्ता द्वारा पेश किए गए प्रासंगिक विवरणों के आधार पर, आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के आधार हैं। धारा 482 द०प्र०स० के तहत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और बड़ी सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। यह अदालत को अपनी मर्जी और चापलूसी के अनुसार मनमाने ढंग से कार्य करने की अनुमति नहीं देता है। इस स्तर पर, न्यायालय गुण-दोष में नहीं जा सकते और इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि कोई मौजूदा ऋण या देयता नहीं है और लेहाजा शिकायत को रद्द कर दें। इसलिए, मूल कानून यह है कि यदि तथ्यों के विवादित प्रश्न शामिल हैं, जिन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष पक्षों द्वारा

संबंधित साक्ष्य के नेतृत्व में निर्णय लेने की आवश्यकता है, निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट एक्ट की धारा 138 के तहत शिकायत को उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० का सहारा लेकर रद्द नहीं किया जा सकता है।

13. ऊपर की गई चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय ने पाया कि संबंधित न्यायालय द्वारा पारित 30.01.2020 के सम्मन आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। इसलिए, आक्षेपित सम्मन आदेश के साथ-साथ पूर्वोक्त मामले की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार किया जाता है, क्योंकि मुझे इस पूर्व-परीक्षण चरण में अदालत की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग नहीं दिखता है।

14. पूर्वोक्त के मद्देनजर, आवेदन तदनुसार, खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 151

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 6596 वर्ष
2023

किशोर-एक्स

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री सुशील शुक्ला, श्री आदित्य प्रकाश सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

दांडिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -

धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 -

धाराएं 120-बी, 419, 420, 467, 468

एवं 471 - किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 -

धारा 18(3): दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन - आक्षेपित

आदेश को निरस्त करने तथा विद्वान्

मजिस्ट्रेट को प्रकरण को किशोर न्याय बोर्ड

के समक्ष स्थानांतरित करने हेतु निर्देश देने

की प्रार्थना - प्राथमिकी अज्ञात व्यक्तियों के

विरुद्ध - छद्मवेश द्वारा धोखाधड़ी का

अपराध - विवेचना के पश्चात बरामदगी -

आरोप पत्र अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध

प्रेषित - सभी अभियुक्तों के विरुद्ध संज्ञान

ग्रहण - आवेदक द्वारा नियमित जमानत

प्रार्थना पत्र दाखिला करते हुए स्वयं को

किशोर बताया गया - न्यायालय ने

निर्धारित किया कि आरोपित अपराध की

तिथि पर आवेदक की आयु लगभग 16

वर्ष थी एवं उसे विद्वान् किशोर न्याय बोर्ड

द्वारा पारित आदेश द्वारा किशोर घोषित

किया जा चुका है - अतः विद्वान् मजिस्ट्रेट

को यह निर्देशित किया जाता है कि

वर्तमान वाद की पत्रावली को किशोर न्याय

बोर्ड/बाल न्यायालय को प्रेषित करें, जो

अधिनियम, 2015 की धारा 18(3) के

अनुसार आवेदक के विरुद्ध मुकदमा

प्रवर्तित का अधिकार है- परिणामस्वरूप,

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (प्रस्तर

11, 13, 14, 15)

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

माननीय न्यायाधीश शेखर कुमार यादव,

1. मैंने प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुशील शुक्ला और श्री आदित्य प्रकाश सिंह, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए., श्री आर.पी. मिश्रा को सुना है तथा अभिलेख पर उपलब्ध तात्विक तथ्य का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन प्रार्थी द्वारा आईपीसी की धारा 419, 420, 467, 468, 471 और 120-बी के अधीन मुकदमा अपराध संख्या 483/2016, पुलिस स्टेशन खुर्जा नगर, जिला बुलन्दशहर से उत्पन्न आपराधिक मामला संख्या 3431/2016 के संबंध में विद्वान एसीजेएम, खुर्जा, जिला बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 03.02.2023 के आदेश को रद्द करने के लिए और किशोर न्याय बोर्ड, बुलन्दशहर द्वारा पारित दिनांक 18.05.2022 का आदेश का अनुपालन करने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट को निर्देश देने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के अधीन दायर किया गया है ताकि उपरोक्त वाद का विचारण किशोर न्याय (बच्चों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (एतस्मिन्नपश्चात् “अधिनियम, 2015” के रूप में संदर्भित) की धारा 18 (3) के अधीन बालक न्यायालय/पॉक्सो न्यायालय, बुलंदशहर को अंतरित किया जाये, जिसके पास अधिकार क्षेत्र है।

3. संक्षेप में, तथ्य यह है कि दिनांक 30.06.2016 को प्रतिपक्ष संख्या 2 ने यह आरोप लगाते हुए अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध

एफआईआर दर्ज कराई कि प्रदूषण बोर्ड, यूपी से उसके कोल्ड स्टोरेज के संचालन के लिए एनओसी प्राप्त करने का झूठा वादा करके, सूचक/प्रतिपक्ष संख्या 2 से अज्ञात व्यक्ति द्वारा 40 लाख रुपये की ठगी की गई, जिसने उसे उक्त राशि को किसी बैंक खाते में जमा करने के लिए कहा, जिसके बाद माननीय मुख्यमंत्री के ओएसडी का उसकी मदद करने का वादा किया गया था। यह भी आरोप लगाया गया है कि सूचक/प्रतिपक्ष संख्या 2 ने तीन चेक जारी किए अर्थात् चेक संख्या 408173 दिनांक 22.06.2016 की राशि 20 लाख रुपये, चेक संख्या 408174 दिनांक 22.06.2016 की राशि 10 लाख रुपये और चेक संख्या 408175 दिनांक 24.06.2016 राशि 10 लाख रुपये। सूचक/प्रतिपक्ष संख्या 2 द्वारा कुल 40 लाख रुपये आर.टी.जी.एस. के माध्यम से खाता संख्या 20321300148, भारतीय स्टेट बैंक, सी.ओ.जी बाजार, आगरा में जमा कराये गये। यह भी आरोप है कि जब सूचक/प्रतिपक्ष संख्या 2 ने उक्त खाते के बारे में पूछताछ की, तो पता चला कि उक्त खाता नरेंद्र सिंह पुत्र अनिल सिंह, मकान नंबर 144, नई आबादी, ताज नगरी, ताजगंज, आगरा मोबाइल नंबर 8171978713 के नाम से खोला गया है। तब से सूचक/प्रतिपक्ष संख्या 2 ने कई बार संपर्क किया लेकिन आरोपी व्यक्ति ने कोई जवाब नहीं दिया। इसके बाद, सूचक/प्रतिपक्ष संख्या 2 ने समाजवादी कार्यालय, लखनऊ से संपर्क किया और आशीष यादव नामक व्यक्ति से मुलाकात की, जिसने कहा कि उसने कभी फोन नहीं किया और किसी ने उसका नाम बताकर उससे पैसे ठग लिए हैं।

4. एफआईआर दर्ज करने के बाद उपरोक्त मामले की जांच की गई और जांच के दौरान यह पाया गया कि कथित अपराध को कारित करने में कुल आठ लोग शामिल थे। सह-अभियुक्त रहीस एवं अन्य दो सह-अभियुक्तों जिसमें प्रार्थी शामिल है, को 24.07.2016 को गिरफ्तार किया गया और उनके संयुक्त कब्जे से 5.5 लाख रुपये बरामद किए गए। जांच के निष्कर्ष के बाद, अन्वेषण अधिकारी ने प्रार्थी सहित सभी आठ अभियुक्तों के विरुद्ध 10.09.2016 को आरोप पत्र दायर किया। आरोप पत्र के आधार पर, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 16.09.2016 के आदेश के अधीन संज्ञान लिया और सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही आरम्भ की। प्रार्थी ने किशोर होने का दावा करते हुए नियमित जमानत याचिका दायर की थी, जिसे दिनांक 19.10.2016 के आदेश द्वारा तब तक अनुमति दी गई थी जब तक कि बोर, प्रार्थी की आयु के निर्धारण के संबंध में क्रियात्मक और लंबित निर्णय ले। अंततः, किशोर न्याय बोर्ड, बुलन्दशहर द्वारा पारित दिनांक 18.05.2022 के आदेश द्वारा प्रार्थी को किशोर घोषित कर दिया गया।

5. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 18.05.2022 के आदेश द्वारा प्रार्थी को किशोर घोषित किया गया था और कथित अपराध के समय, प्रार्थी की आयु 16 वर्ष 9 महीने और 7 दिन थी और इसका अर्थ है कि प्रार्थी की उम्र 16 वर्ष से अधिक थी लेकिन 18 वर्ष से कम थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि किशोर घोषित करने के बाद, प्रार्थी के अभिभावक ने 26.08.2022 को

विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट खुरजा, बुलंदशहर के समक्ष एक आवेदन दायर किया था, जिसमें वर्तमान मामले के विचारण की कार्यवाही की फाइल को अलग करने और प्रार्थी के विरुद्ध मामले के विचारण के लिए उस न्यायालय के समक्ष इसकी फाइल भेजने की प्रार्थना की गई थी जिसके पास अधिकार क्षेत्र है लेकिन इसे दिनांक 03.02.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिया गया आक्षेपित आदेश अवैध है और प्रार्थी /अपराधी किशोर के विरुद्ध वर्तमान मामले के विचारण की कार्यवाही आगे जारी रखना अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) के अधीन दिए गए कानून के स्पष्ट आदेश का उल्लंघन होगा। प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान आवेदन के समर्थन में दायर शपथपत्र के अनुलग्नक 11 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें मुख्य मजिस्ट्रेट ने दिनांक 27.06.2022 के पत्र के माध्यम से विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से मामले को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष भेजने के लिए उचित आदेश पारित करने का अनुरोध किया था, लेकिन विद्वान मजिस्ट्रेट ने फाइल को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष भेजने के बजाय, आक्षेपित आदेश पारित कर दिया, इसलिए, यह आवेदन दायर किया गया।

6. अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने बरुण चंद्र ठाकुर बनाम मास्टर भोलू और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 870 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

7. समानान्तर रूप में, विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता ने प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का पुरजोर विरोध किया है।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

9. प्रस्तुतियों से निपटन के लिए कार्यवाही आगे बढ़ाने से पहले, किशोर न्याय (बच्चों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) और 19 का उल्लेख करना उचित होगा।

“18 (3). जहां बोर्ड धारा 15 के अधीन प्रारम्भिक निर्धारण के पश्चात् यह आदेश पारित करता है कि उक्त बालक का, वयस्क के रूप में विचारण करने की आवश्यकता है, वहां बोर्ड मामले के विचारण को ऐसे अपराधों के विचारण की अधिकारिता वाले बालक न्यायालय को अंतरित करने का आदेश दे सकेगा।

19. बालक न्यायालय की शक्तियां।

(1) धारा 15 के अधीन बोर्ड से प्रारम्भिक निर्धारण प्राप्त होने के पश्चात्, बालक न्यायालय यह विनिश्चय कर सकेगा कि-

(i) बालक का दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंधों के अनुसार वयस्क के रूप में विचारण करने की आवश्यकता है और वह विचारण के पश्चात् इस धारा और धारा 21 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, बालक की विशेष आवश्यकताओं, ऋजु विचारण

के सिद्धांतों तथा बालक हितैषी वातावरण बनाए रखते हुए समुचित आदेश पारित कर सकेगा;

(ii) बालक का वयस्क के रूप में विचारण की कोई आवश्यकता नहीं है और बोर्ड के रूप में जांच की जा सकती है तथा धारा 18 के उपबंधों के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकेगा।

(2) बालक न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बालक को जो विधि का उल्लंघन करने वाले बालक से संबंधित अंतिम आदेश में बालक के पुनर्वास के लिए व्यक्तिगत देख-रेख योजना को सम्मिलित किया जाएगा, जिसके अंतर्गत परिवीक्षा अधिकारी या जिला बालक संरक्षण एकक या सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा की गई अनुवर्ती कार्रवाई भी है।

(3) बालक न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बालक को जो विधि का उल्लंघन करते पाया जाता है, इक्कीस वर्ष की आयु का होने तक सुरक्षित स्थान पर भेजा जाए और तत्पश्चात्, उक्त व्यक्ति को जेल में स्थानांतरित कर दिया जाएगा:

परंतु बालक को, सुरक्षित स्थान पर उसके ठहरने की कालावधि के दौरान, सुधारात्मक सेवाएं जिनके अंतर्गत शैक्षणिक सेवाएँ, कौशल विकास, जैसे परामर्श देने, व्यवहार उपांतरण चिकित्सा जैसी वैकल्पिक चिकित्सा और मनश्चिकित्सीय भी है, उपलब्ध करवायी जाएंगी।

(4) बालक न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि सुरक्षित स्थान पर बालक की प्रगति का मूल्यांकन करने और यह सुनिश्चित करने के लिए की करना होगा कि बालक से वहां किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया गया है, यथा

अपेक्षित परीक्षा अधिकारी या जिला बालक संरक्षण एकक या सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा प्रत्येक वर्ष एक आवधिक अनुवर्ती रिपोर्ट दी जाए।

(5) उप-धारा (4) के अधीन दी गई रिपोर्ट अभिलेख और अनुवर्तन के लिए, जैसा अपेक्षित हो, बालक न्यायालय को भेजी जाएगी।

10. अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) की उपबंधों के अनुसार, मजिस्ट्रेट के पास प्रार्थी-अभियुक्त को किशोर घोषित करने के पश्चात् फाइल को अपने पास रोकने की कोई शक्ति नहीं है तथा किसी अभियुक्त/अपराधी किशोर, जिसका वयस्क के रूप में विचारण करने का आकलन किया गया है, उसका विचारण अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) के अनुसार केवल बालक न्यायालय/पाँक्सो न्यायालय के समक्ष ही हो सकता है।

11. लेकिन वर्तमान मामले में, कथित अपराध कारित करने के समय अभियुक्त-प्रार्थी की उम्र 16 वर्ष 9 महीने और 7 दिन थी, अतः, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 18.05.2022 के आदेश के अधीन अभियुक्त-प्रार्थी को किशोर घोषित किया गया था। अभियुक्त-प्रार्थी को किशोर घोषित करने के बाद, मुख्य मजिस्ट्रेट ने न्यायानुसार विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से मामले को किशोर न्याय बोर्ड/बालक न्यायालय के समक्ष भेजने हेतु उचित आदेश पारित करने का अनुरोध किया, लेकिन विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने इस पर कोई ध्यान न देते हुए, इसे यह कहते हुए खारिज कर दिया

कि चूंकि वर्तमान मामले की फाइल उनकी न्यायालय में अंतरित कर दी गई है, इसलिए, वह मामले की सुनवाई को जारी रखेंगे।

12. हाल ही में, बरुण चंद्र ठाकुर (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार पाया है:

“81. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि प्रारम्भिक निर्धारण करने की शक्ति क्रमशः धारा 15 और 19 के अधीन बोर्ड और बालक न्यायालय में निहित है। धारा 18(3) के अधीन किसी मामले को संदर्भित किए जाने पर बालक न्यायालय, फिर भी स्वतः ही, यह जांच करेगा कि क्या बालक का वयस्क के रूप में विचारण किया जाना चाहिए या नहीं, और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि बालक का वयस्क के रूप में विचारण नहीं किया जाना चाहिए तो वह स्वयं बोर्ड के रूप में जांच करेगा तथा धारा 18 के अधीन उचित आदेश पारित करेगा। इस प्रकार, प्रारम्भिक निर्धारण करने की शक्ति बोर्ड और बालक न्यायालय के पास है। यह न्यायालय प्रारम्भिक निर्धारण की प्रक्रिया पर विचार नहीं कर सकता है। यह न्यायालय केवल इस बात की जांच करेगा कि क्या प्रारम्भिक निर्धारण इस प्रकार किया गया है या नहीं जैसा कि कानून के अधीन अपेक्षित किया गया है। यहां तक कि उच्च न्यायालय भी, धारा 102 के अधीन पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते हुए, बोर्ड या बालक न्यायालय के निर्णय का परीक्षण केवल उसकी वैधता या औचित्य के संबंध में करेगा। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सीमित तात्विक तथ्यों पर विचार करने के

बाद, इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि मामले पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और जिसके लिए, उसने मामले को नए सिरे से निर्णय लेने से पहले अतिरिक्त सबूत लाने और बालक को पर्याप्त अवसर प्रदान करने के लिए आगे के निर्देशों के साथ बोर्ड के समक्ष भेज दिया है।"

13. मुख्य मजिस्ट्रेट के दिनांक 27.06.2022 के पत्र के अवलोकन से स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि अभियुक्त-प्रार्थी को किशोर घोषित करने के बाद, उन्होंने विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से मामले को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष भेजने के लिए उचित आदेश पारित करने के लिए अनुरोध किया है और विद्वान मजिस्ट्रेट को दिनांक 27.06.2022 के अपेक्षा अनुरोध का अनुपालन करना चाहिए था जिसमें वर्तमान मामले की फ़ाइल को किशोर न्याय बोर्ड को अंतरित करने के लिए कहा गया था ताकि बोर्ड उक्त फ़ाइल को बालक न्यायालय/पॉक्सो न्यायालय को अंतरित कर सके जो अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) के अधीन अभियुक्त-प्रार्थी के विरुद्ध ऐसे मामले के विचारण का अधिकार क्षेत्र रखता हो, लेकिन विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने फ़ाइल को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष भेजने के बजाय, आक्षेपित आदेश पारित कर दिया है।

14. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अधीन वर्तमान आवेदन को अनुमति दी गई है। विद्वान एसीजेएम, खुर्जा, जिला बुलन्दशहर द्वारा पारित दिनांक

03.02.2023 के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है।

15. परिणामतः, विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित वर्तमान मामला किशोर न्याय (बच्चों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) के मद्देनजर बालक न्यायालय को अंतरित कर दिया जाता है। संबंधित मजिस्ट्रेट को किशोर न्याय बोर्ड/बालक न्यायालय को वर्तमान मामले की फाइल भेजने का निर्देश दिया गया है, जो अधिनियम, 2015 की धारा 18 (3) के अनुसार प्रार्थी के विरुद्ध मामले के विचारण का अधिकार क्षेत्र रखता है।

(2023) 7 ILRA 155

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

आवेदन धारा 482 संख्या 7631 वर्ष 2008

बॉबी आनंद @ योगेश आनंद आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री पुनीत कुमार गुप्ता, श्री ए.पी. पॉल, श्री अनिल तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री राहुल चतुर्वेदी, श्री सुरेश चंद्र पांडे

दांडिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं 200, 210, 210(1) एवं 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएं 381, 420, 511 एवं 420 - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धाराएं 118, 138, 139 एवं 142(2): दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन - आपराधिक कार्यवाही की समस्त कार्यवाही को निरस्त करने हेतु - प्राथमिकी, जिसे प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा प्रतिशोधवश प्रतिक्रियात्मक रूप में अंकित कराया गया - धोखाधड़ी एवं कपट का अपराध - चेक का अनादर - विवेचना - आरोप पत्र - समन आदेश - पूर्व में आवेदक ने बैंक को यह सूचित करते हुए शिकायत की थी कि उसके कार्यालय से दो चेक चोरी हो गए हैं, और तत्पश्चात मुंबई में भारतीय दंड संहिता की धारा 381, 420 सहपठित धारा 34 के अंतर्गत प्राथमिकी अंकित कराई - उक्त आपराधिक कार्यवाही में प्रतिपक्षीगण ने मुंबई उच्च न्यायालय से अग्रिम जमानत प्राप्त की - स्वयं को कानूनी सुरक्षा प्रदान करने हेतु, प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दुर्भावनापूर्वक वर्तमान शिकायत मथुरा में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत दाखिल की गई - न्यायालय का अभिमत है कि यदि इस प्रकार की प्रवृत्तियों पर कठोरता से अंकुश न लगाया गया, तो न्यायिक प्रक्रिया की पवित्रता गम्भीर रूप से प्रभावित होगी - प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान् अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से प्रस्तुत विद्वान् अपर शासकीय अधिवक्ता की दलीलों में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता तथा उनके द्वारा उद्धृत न्याय निर्णय वर्तमान प्रकरण की तथ्यात्मक परिस्थिति से भिन्न हैं - यह ज्ञात होता है कि आवेदक के विरुद्ध आरंभ की गई

वर्तमान कार्यवाही न केवल दुर्भावनापूर्ण है, अपितु न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है - अतः आक्षेपित कार्यवाही निरस्तीकरण योग्य है - परिणामस्वरूप, आवेदन स्वीकार किया जाता है। (अनुच्छेद 66, 67, 68)

धारा 482 के तहत आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

1. आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता अनिल तिवारी, श्री ए.पी. पॉल द्वारा सहायता प्राप्त, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री सुरेश चंद्र पांडे, और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को एन.आई. एक्ट की धारा 138 के तहत मुकदमा संख्या 235/IX (दीना नाथ चतुर्वेदी बनाम मां शेरवाली प्रोडक्शन और अन्य) की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जो न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा की अदालत में लंबित है।

आवेदक का मामला:

3. आवेदक ने थाना-ओशिवारा, मुंबई में दिनांक 31.10.2002 को एक शिकायत पत्र दिया था जिसमें उसने सूचित किया था कि उसके कार्यालय से 210547 और 210546 नंबर वाले दो चेक चोरी हो गए थे। आवेदक ने अपने बैंक अर्थात् पंजाब एंड सिंध बैंक, जुहू शाखा, मुंबई को उसी पत्र दिनांक 31.10.2002 (संगलग्नक संख्या-1) के माध्यम से भी सूचित किया है,

जिसमें उसने बैंक को उपर्युक्त चेकों को क्लियर न करने के लिए सूचित किया था। 01.01.2003 को बैंक से एक फोन कॉल प्राप्त हुआ कि उसके दिनांक 31.10.2002 के पत्र में उल्लिखित चेकों में से एक निकासी के लिए बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। आवेदक ने तुरंत वरिष्ठ पुलिस निरीक्षक, ओशिवारा से संपर्क किया और धारा 381, 420 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत प्रतिपक्षियों के खिलाफ प्राथमिकी नंबर 1/2003 दिनांक 01.01.2003 (अनुलग्नक संख्या-2) दर्ज किया।

4. 11.03.2003 को आवेदक द्वारा दर्ज की गई उपरोक्त प्राथमिकी के प्रतिवाद के रूप में, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक (अनुलग्नक संख्या-3) के खिलाफ एक शिकायत दर्ज की, जिसमें आरोप लगाया गया कि आवेदक ने 10 साल पहले शिकायतकर्ता से 30 लाख रुपये उधार लिए थे और निपटान के बाद, आवेदक ने 13.12.2002 को चेक नंबर 210547 दिया और उसे बाउंस कर दिया गया।

5. इससे पहले 22.02.1998 को प्रतिपक्षी संख्या-2 ने नोटरी स्टाम्प पेपर पर एक शपथ पत्र (संगलग्नक संख्या-4) दिया था जिसमें कहा गया था कि "मेसर्स मां शरावली प्रोडक्शन" नामक फर्म में उनका कोई हकदारी या हित नहीं है और उक्त फर्म से संबंधित सभी संपत्ति और देनदारियां आवेदक अर्थात् श्री बाँबी आनंद @ योगेश आनंद की हैं।

6. प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा उक्त शिकायत प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने 28

मार्च, 2003 को धारा 200 द०प्र०स० के तहत शिकायतकर्ता का बयान (अनुलग्नक संख्या-5) दर्ज किया, जो विरोधाभासी है और अभियोजन मामले में संदेह पैदा करता है। उसके बाद 1 मई, 2003 को, संबंधित मजिस्ट्रेट ने रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री को बिना देखे और बिना दिमाग लगाए, उस पर संज्ञान लिया और आवेदक को यांत्रिक तरीके से सम्मन किया। (संगलग्नक संख्या-6)

7. दूसरी ओर, आवेदक द्वारा दर्ज प्राथमिकी संख्या 1/2003 दिनांक 01.01.2003 में, विवेचनाधिकारी ने अध्याय XII द०प्र०स० के तहत जांच पूरी करने के बाद प्रतिपक्षी संख्या-2 और उनके सहयोगियों, संतोष, राकेश चतुर्वेदी और मनोज चतुर्वेदी के खिलाफ अंधेरी, मुंबई में दसवीं मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट कोर्ट के समक्ष आपराधिक केस नंबर 371/टी.डब्ल्यू /2004 में आरोप पत्र प्रस्तुत किया। एक अभियुक्त संतोष को पुलिस ने दिनांक 22-01-2003 को गिरफ्तार किया और मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट-X द्वारा उसे जमानत दे दी गई। इसके बाद प्रतिपक्षी संख्या 2 और अन्य सह-अभियुक्तों ने सत्र न्यायालय, ग्रेटर मुंबई के समक्ष अग्रिम जमानत याचिका दायर की और इसे दिनांक 19.09.2003 (संगलग्नक संख्या-7) के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। निचली अदालत द्वारा अग्रिम जमानत की अस्वीकृति के बाद, प्रतिपक्षी संख्या-2 और अन्य सह-अभियुक्तों ने माननीय उच्च न्यायालय, बॉम्बे से संपर्क किया और अदालत ने एक वर्णनात्मक आदेश पारित किया जिसमें उल्लेख किया गया है कि प्रतिपक्षी और अन्य सह-अभियुक्त विवेचनाधिकारी को तत्काल

दूसरा चेक जमा करने का वचन देते हैं।
(अनुलग्नक संख्या-8)

8. प्रतिपक्षी संख्या-2 और अन्य सह-अभियुक्तों ने अग्रिम जमानत का आदेश प्राप्त करते समय माननीय बॉम्बे हाईकोर्ट के समक्ष दिए गए अपने स्वयं के वचन का पालन नहीं किया और खुद को बचाने के लिए, पक्ष संख्या-2 के विपरीत एक जवाबी प्रतिक्रिया के रूप में दुर्भावनापूर्ण रूप से न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा के समक्ष धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत वर्तमान शिकायत दायर की।

9. माननीय बॉम्बे हाईकोर्ट के आदेश के अनुपालन के लिए, वरिष्ठ पुलिस निरीक्षक, ओशिवारा, मुंबई ने विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें अनुरोध किया गया था कि उन्हें उक्त चेक को जब्त करने की अनुमति दी जाए क्योंकि यह मुख्य घटक है और उक्त मामले का प्रासंगिक मामला अंधेरी में विद्वान दसवीं मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, मुंबई के समक्ष लंबित है। (संलग्नक संख्या 9)

10. संबंधित मजिस्ट्रेट, मथुरा ने बिना सोचे-समझे और रिकॉर्ड में मौजूद सामग्रियों को देखे बिना, वर्तमान शिकायत पर संज्ञान लिया और धारा 210 द०प्र०स० की प्रक्रिया की अनदेखी की, जबकि उपधारा (1) में प्रावधान है कि जब किसी मामले में पुलिस रिपोर्ट (इसके बाद शिकायत मामले के रूप में संदर्भित) के अलावा अन्यथा स्थापित

किया जाता है, और उसके द्वारा की गई जांच या विचारण के दौरान उसे मजिस्ट्रेट को पेश किया जाता है कि जो उसके द्वारा की गई जांच या विचारण की विषय-वस्तु है, पुलिस द्वारा उस अपराध के संबंध में जांच प्रगति पर है, तो मजिस्ट्रेट ऐसी जांच या मुकदमे की कार्यवाही पर रोक लगाएगा और जांच करने वाले पुलिस अधिकारी से मामले पर रिपोर्ट मांगेगा। हालांकि, वर्तमान मामले में, संबंधित मजिस्ट्रेट, मथुरा ने संज्ञान लेने के बाद आवेदक को तलब किया, जो पूरी तरह से अवैध, मनमाना और धारा 210 द०प्र०स० (1) के तहत निर्धारित कानून के स्थापित सिद्धांत के खिलाफ है।

11. उपरोक्त पैराग्राफ के संबंध में, आवेदक आगे स्पष्ट करता है कि जब वर्तमान अपराधों से संबंधित मुद्दा विचाराधीन है और निपटान के लिए लंबित है, तो उसी आधार पर समानांतर कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है और इसे धारा 210 (1) द०प्र०स० के प्रावधान के अनुसार एक साथ सुना जाना आवश्यक है।

12. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की श्रेणी के अनुसार, यह एक स्पष्ट कानून है कि एक ही पक्ष के बीच क्रॉस केस के मामलों में कार्यवाही की नकल से बचने के लिए और विभिन्न अदालतों से आने वाले विरोधाभासी निर्णयों से बचने के लिए यह वांछनीय है कि कार्यवाही एक के बाद एक ही अदालत द्वारा आयोजित की जाए। इसलिए, विद्वान मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करना कानून में अस्थिर हो जाता है और इसे रद्द किया जाना चाहिए (संदर्भ: नाथी लाल और अन्य बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1990 एस.सी.सी 145)।

13. क्षेत्राधिकार के बिंदु पर भी विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स को देखते हुए प्रक्रिया का आदेश जारी करने में गलती की। शिकायत के अवलोकन से संकेत मिलता है कि यह शिकायतकर्ता यानी प्रतिपक्षी का रुख रहा है कि शुरुआत से ही व्यावहारिक रूप से पूरा लेनदेन बॉम्बे में हुआ था, इसलिए, उसके पास प्रक्रिया जारी करने का अधिकार क्षेत्र कभी नहीं था। मथुरा में चेक जमा कराने और वहां से नोटिस जारी करने के अलावा मथुरा में और कुछ नहीं हुआ है। वास्तव में शिकायतकर्ता द्वारा लिए गए रुख के अनुसार अनादरित चेकों की सूचना उसे बॉम्बे में अपने निवास पर प्राप्त हुई है, इसलिए, यह स्पष्ट है कि चेक केवल मथुरा में जमा किया गया था, जिसका एकमात्र उद्देश्य आवेदक को दूरस्थ और दूर के स्थान पर उपस्थित होने के लिए परेशान करना था, जहां उसके पास अपना बचाव करने के लिए कोई संबंध, कनेक्शन या आधार नहीं है। इसलिए, इस आधार पर प्रक्रिया का आदेश रद्द किया जा सकता है क्योंकि यह प्रतिपक्षी के लिए न्याय के साधन के बजाय आवेदक के लिए उत्पीड़न का साधन बन गया है। प्रतिपक्षी संख्या-2 बॉम्बे से काम कर रहा है। अतीत में भी प्रतिपक्षी संख्या-2 हमेशा बॉम्बे में स्थित थी; इसलिए, वह मथुरा में शिकायत दर्ज करने के बजाय बॉम्बे में शिकायत दर्ज कर सकते थे।

14. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, आवेदक ने दिनांक 09.12.2003

के आवेदन के माध्यम से विद्वान मजिस्ट्रेट, मथुरा के समक्ष आपति प्रस्तुत की, लेकिन इसे उनके आदेश दिनांक 28.06.2004 द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि यह पोषणीय नहीं है और विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 210(1) द०प्र०स० (संगलग्नक संख्या-10) की प्रक्रिया की अनदेखी की।

15. दिनांक 28.06.2004 के आदेश के तहत, विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 204 द०प्र०स० के तहत आपति को इस आधार पर खारिज कर दिया कि सम्मन आदेश को धारा 204 द०प्र०स० के तहत वापस नहीं लिया जा सकता है। आक्षेपित आदेश दिनांक 28.06.2004 के खिलाफ, आवेदक ने पुनरीक्षण संख्या 2886 वर्ष 2004 दायर की, लेकिन दिनांक 04.01.2008 के आदेश के तहत, माननीय उच्च न्यायालय ने कहा है कि उपरोक्त राहत पुनरीक्षण में नहीं दी जा सकती है।

16. इस बीच, प्रतिपक्षी संख्या-2 बॉम्बे में मजिस्ट्रेट कोर्ट में आरोपी के रूप में पेश होने लगा, जहां बॉम्बे पुलिस द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया था। विद्वान लोक अभियोजक ने दिनांक 07.02.2005 के अपने आदेश के तहत उन चेकों की वसूली के लिए तलाशी वारंट जारी करने की मांग की, जो प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा चुराए गए थे और अंततः जालसाजी का अपराध करके बैंक में प्रस्तुत किए गए थे। यह उल्लेखनीय है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 08.02.2005 को एक आदेश जारी किया था, जिसके तहत उन्होंने घर की तलाशी और प्रश्नगत दोनों

चेकों की वसूली के लिए एक तलाशी वारंट जारी किया था।

17. पुलिस ने सर्च वारंट को निष्पादित नहीं किया, इसलिए आवेदक को खुद को न्याय दिलाने के लिए हर तरफ और बहुत ज्यादा भागदौड़ करनी पड़ी। आवेदक को तब एहसास हुआ कि कुछ भी नहीं निकलेगा, इसलिए उसने सत्र न्यायालय मुंबई में प्रधान न्यायाधीश के समक्ष एक विविध आवेदन दायर किया। विद्वान न्यायाधीश ने दिनांक 21.02.2007 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत पुलिस को वारंट निष्पादित करने के लिए एक स्पष्ट निर्देश दिया गया था और साथ ही विद्वान न्यायाधीश ने यह निर्देश दिया था कि वारंट के निष्पादन की रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर विचारण तीन से चार महीने की अवधि के भीतर समाप्त हो जाएगा। उक्त आदेश को पहले ही विद्वान मजिस्ट्रेट को सूचित कर दिया गया और उन्होंने पुलिस को इसके निष्पादन के लिए आवश्यक निर्देश दिए। अभियुक्त यानी प्रतिपक्षी संख्या-2 ने मजिस्ट्रेट कोर्ट में कार्यवाही में भाग लिया और वे बॉम्बे में सत्र न्यायालय द्वारा पारित आदेश से बहुत अच्छी तरह से अवगत थे, लेकिन उन्होंने चुप रहना चुना। अभियुक्तों की शरारत का अंदाजा उनकी ओर से सर्वव्यापी चुप्पी से लगाया जा सकता है। प्रतिपक्षी संख्या-2 कभी भी चेक के बारे में अदालत को सूचित करने के लिए नहीं आया। वारंट की तामील में पुलिस के सुस्त रवैये के कारण उसे वास्तव में लाभ मिल रहा था। साथ ही, आवेदक, जो शिकायतकर्ता के रूप में खड़ा है, असहाय है

क्योंकि उसे अदालत की सहायता करने के अवसर से वंचित कर दिया गया है। विद्वान मजिस्ट्रेट का यह मत था कि पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संस्थित किसी मामले में सूचना देने वाले को अपने अधिवक्ता को नियुक्त करके न्यायालय को संबोधित करने का अधिकार नहीं है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने हमेशा राज्य अभियोजक के माध्यम से अभ्यावेदन पर जोर दिया है। आवेदक दुष्चक्र में फंस गया, जिसके कारण, वह वारंट के निष्पादन के कारण बॉम्बे में मामले को आगे बढ़ाने में सक्षम नहीं रहा।

आवेदक की ओर से लिखित तर्क

18. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रश्नगत चेक अस्वीकृत किया गया था और अन्यथा खाते के माध्यम से देय था और इसलिए, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 142 (2) (बी) के अनुसार, मथुरा न्यायालय के पास अपराध का विचारण करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है।

19. यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह धारा 200 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में प्रतिपक्षी संख्या-2 का मामला स्वीकार किया गया है कि चेक उसे मेसर्स ए.बी.सी पिक्चर्स प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स ए.बी.सी फिल्मस, कामुद फिल्मस के व्यक्तिगत दायित्व और सामूहिक दायित्व के निर्वहन के लिए दिया गया था और एन.आई. अधिनियम की धारा 138 को सामूहिक दायित्व या तीसरे पक्ष के दायित्व का निर्वहन करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

20. यह मानते हुए कि स्वीकार नहीं किया जा रहा है, तो भी एन.आई. अधिनियम की धारा 138 की कार्यवाही को बनाए नहीं रखा जा सकता है क्योंकि एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तत्व वर्तमान मामले के तथ्यों में पूरे नहीं होते हैं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि धारा 138 एन.आई. अधिनियम संयुक्त / सामूहिक दायित्व के बारे में बात नहीं करता है। यहां तक कि एक संयुक्त/सामूहिक दायित्व के मामले में, व्यक्तिगत व्यक्तियों के मामले में, एक व्यक्ति के अलावा एक अन्य व्यक्ति जिसने उसके द्वारा बनाए गए खाते पर चेक तैयार किया है, धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

21. इस याचिका के समर्थन में आवेदक के अधिवक्ता ने अलका खांडू अवाड बनाम अमर श्यामप्रसाद मिश्रा के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय पर भरोसा किया है, जो (2021)2 PUN-LR1 में रिपोर्ट किया गया है। हितेन सागर बनाम आई.एम.सी लिमिटेड के मामले में बॉम्बे हाईकोर्ट के फैसले पर भी भरोसा किया गया है। और एक अन्य ने लॉ फाइंडर डॉक्टर आईडी # 9631 में रिपोर्ट किया है जिसमें यह माना गया है कि "बी" की देयता के निर्वहन में 'ए' द्वारा जारी किया गया चेक-चेक का अनादर- 'ए' उत्तरदायी नहीं है - 'ए' उत्तरदायी हो सकता है यदि उसने एक समझौते द्वारा 'बी' की देयता खुद पर ले ली हो।

22. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि मथुरा में संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत वर्तमान शिकायत दर्ज करते

समय, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने मजिस्ट्रेट के सामने जान-बूझकर छुपाया कि मुंबई की अदालत में उसी विवादित चेक के संबंध में एक आपराधिक मुकदमा लंबित है, जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-2 और अन्य को आरोप-पत्र दिया गया है और धारा 381, 420, 511 सपठित 34 भ०द०वि० के तहत उनके खिलाफ आरोप तय किए गए हैं। कहने की जरूरत नहीं है, महाराष्ट्र राज्य पुलिस ने चोरी किए गए चेक के संबंध में एक वाद सी.सी नंबर 2201205/पी.डब्लू/2006 अंधेरी, मुंबई में मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट-10 की अदालत के समक्ष लंबित है। अपनी याचिका के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने दिल्ली उच्च न्यायालय की तरुणा बत्रा बनाम शिखा के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसे लॉ फाइंडर डॉक आईडी # 218864 में रिपोर्ट किया गया है।

23. यह प्रस्तुत किया जाता है कि विवादित चेक को 31.10.2002 को अदाकर्ता बैंक को चोरी/लापता होने की सूचना दी गई थी और आवेदक द्वारा भुगतान रोकने का निर्देश दिया गया था। चेक को बाद में "भुगतान रोकें" टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था। ऐसे मामलों में धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत दायित्व आकर्षित नहीं किया जा सकता है। उक्त याचिका के लिए, आवेदक के अधिवक्ता ने के. सदनंदन बनाम सतीश कुमार और अन्य (2016) 1 एन.आई.जे 93 में रिपोर्ट किए गए केरल उच्च न्यायालय के फैसले के साथ-साथ राज कुमार खुराना बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जो लॉ फाइंडर डॉक आईडी # 192011 में रिपोर्ट

किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि यदि बैंक द्वारा इस आधार पर भुगतान से इनकार कर दिया गया है कि खाताधारक ने चेक खो जाने/चोरी होने की सूचना दी है, तो धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं बनता है।

24. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 01.05.2003 का सम्मन आदेश एक प्रोफार्मा आदेश था और बिना दिमाग लगाए पारित किया गया था। धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत जे.एम.एफ.सी कोर्ट, मथुरा में विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा सम्मन जारी करना अवैध, मनमाना और कानून के स्थापित सिद्धांतों के खिलाफ था क्योंकि उन्होंने रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार नहीं किया, रिकॉर्ड पर सबूतों की जांच नहीं की और अपने निष्कर्ष के लिए कोई कारण नहीं दिया है क्योंकि धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत दंड प्रावधानों पर सख्त विचार का अभाव है यानी धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध का गठन करने के लिए आवेदक के अधिवक्ता ने मेसर्स पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो लॉ फाइंडर डॉक आईडी # 40157 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या-26 में कहा है कि "आरोपी को बुलाने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश को उसके दिमाग के प्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए - शिकायतकर्ता द्वारा केवल दो गवाहों की परीक्षा पर्याप्त नहीं है; मजिस्ट्रेट को सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होती है और वह

खुद भी शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से सवाल पूछ सकता है ताकि आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए जवाब मिल सके और फिर जांच की जा सके कि क्या आरोपी द्वारा प्रथम दृष्टया कोई अपराध किया गया था।

25. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह अच्छी तरह से तय कानून है कि पक्षों के बीच लेनदेन की प्रकृति के बारे में प्रश्नगत शिकायत में आवश्यक कथन के अभाव में, शिकायत अधूरे बयान पर बनाए रखा नहीं जा सकता है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि शिकायतकर्ता को लेनदेन के पूरे इतिहास और लेनदेन के परिणामस्वरूप पक्षों के बीच मुकदमेबाजी का वर्णन करना चाहिए। यदि शिकायतकर्ता अदालत के समक्ष अपनी शिकायत में चेक के सभी महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और विवरणों को नहीं रखता है, तो उसकी शिकायत का संज्ञान भुगतना पड़ता है। जो साफ हाथों (सही तथ्यों) के साथ नहीं आता है उसे भुगतना पड़ता है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने घोषणा की है कि संबंधित लेनदेन के संबंध में अपेक्षित दलील के अभाव में (अर्थात चेक के विवरण की अनुपस्थिति, चेक की तारीख और वर्ष के विवरण की अनुपस्थिति, चेक के बैंक के नाम के विवरण की अनुपस्थिति, चेक नंबर के विवरण की अनुपस्थिति और उस समय या वर्ष की अनुपस्थिति जब उक्त ऋण अग्रिम दिया गया था, आदि) धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत शिकायत को रद्द करना उचित है। अपनी याचिका के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने ओमनी प्लास्ट

प्राइवेट लिमिटेड बनाम स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जो लॉ फाइंडर डॉक्टर आईडी # 659121 में रिपोर्ट किया गया है।

26. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा अंत में यह प्रस्तुत किया जाता है कि एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत वैधानिक नोटिस 27.01.2003 को प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा भेजा गया है अर्थात् देना बैंक, मथुरा से चोरी किए गए चेक नंबर 210547 के अस्वीकृत होने की सूचना की तारीख से 15 दिनों की अवधि के बाद। इसलिए, मांग नोटिस के समय सीमा से परे होने के कारण इस पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि कार्रवाई का कारण 25-01-2003 और 26-01-2003 को समाप्त हो गया था। इसलिए मथुरा में दायर शिकायत रद्द की जा सकती है। उस संबंध में निर्भरता टॉमी जैकब कट्टिकरन बनाम डॉ थॉमस मैन जाली के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर रखी गई है जो लॉ फाइंडर डॉक्टर आईडी # 39681 में रिपोर्ट की गई है।

27. पूर्वोक्त की संचयी शक्ति पर, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या-2/प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा शुरू की गई पूरी आपराधिक कार्यवाही न केवल अवैध है, बल्कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों के प्रयोग में रद्द किया जा सकता है।

प्रतिपक्षियों का मामला

28. प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक और उसकी कंपनी, मां शेरावली प्रोडक्शन लिमिटेड के खिलाफ एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की। शिकायत में लगाए गए आरोप हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक और उसकी फर्मों को विभिन्न तिथियों पर 30,00,000 रुपये की राशि दी, जिसके लिए आवेदक ने पंजाब एंड सिंध बैंक, जुहू, मुंबई के अपने खाता संख्या 2622 से चेक नंबर 210457 जारी किया और उसे अस्वीकार कर दिया गया और प्रतिपक्षी ने आवेदक को नोटिस दिया जिसके लिए उसने भुगतान करने से इनकार कर दिया, इसलिए वर्तमान शिकायत दर्ज की गई थी।

29. वर्तमान मामला दिनांक 13.12.2002 के चेक से संबंधित है, जिसे 26.12.2002 को बैंक में प्रस्तुत किया गया था, जिसे 13.01.2003 को अस्वीकृत कर दिया गया था। दिनांक 28-03-2003 को एक मामला दायर किया गया और विद्वान न्यायालय ने आवेदक को 01-05-2003 को तलब किया और तब से आवेदक द्वारा अपनाई गई टालमटोल संबंधी युक्तियों के कारण मामला लंबित है।

30. यह उल्लेख करना उचित होगा कि आवेदक ने दिनांक 01.05.2003 के सम्मन आदेश के खिलाफ इस माननीय न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2886 वर्ष 2004 दायर किया, जिसे खारिज कर दिया गया था क्योंकि नए सिरे से आवेदन दायर करने की कोई स्वतंत्रता दिए बिना, दबाव नहीं

डाला गया था क्योंकि उक्त आवेदन पोषणीय नहीं था। आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2886 वर्ष 2004 में पारित आदेश दिनांक 18.04.2008 की एक प्रति।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से लिखित सबमिशन के साथ-साथ राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता

31. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक ने बचाव ये तर्क दिया कि वर्तमान मामले में जारी चेक चोरी हो गया और एक प्राथमिकी पंजीकृत की गई और उसने बैंक को भुगतान रोकने का निर्देश दिया। उन्होंने एच.एम.टी वॉचेज लिमिटेड बनाम एम.ए आबिदा और अन्य (2015) 11 एस.सी.सी 776 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें यह माना गया है कि भुगतान रोकने पर धारा 138 एन.आई. अधिनियम के प्रावधान भी लागू होते हैं और कार्यवाही को रद्द करने की मांग करने वाले आवेदन में आरोपी के तथ्यात्मक बचाव पर विचार नहीं किया जा सकता है।

32. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि उन मामलों में जहां चेक को "भुगतान रोकने" या आहर्ता के निर्देशों के कारण अनादरित किया गया था, चेक के बारे में एक अनुमान अधिनियम की धारा 139 के तहत उत्पन्न होगा। उस संबंध में निर्भरता लक्ष्मी डाइकेम बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2012) 13 एस.सी.सी 375 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर रखी गई है। उन्होंने गोप्लास्ट (प्रा) लिमिटेड बनाम

चिको उर्सुला डिसूजा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। (2003)3 एस.सी.सी 232, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि 'भुगतान रोकने के निर्देश' और परिणामस्वरूप पोस्ट-डेटेड चेक का अनादरण धारा 138 के प्रावधान को आकर्षित करता है।

33. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि चोरी किए गए चेक का बचाव धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन के माध्यम से उच्च न्यायालय में कार्यवाही को रद्द करने की मांग नहीं की जा सकती है क्योंकि यह तथ्य का प्रश्न है, क्योंकि इस माननीय न्यायालय द्वारा बिमल कुमार नोपानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2006 (55) ए.सी.सी 399 के मामले में अवधारित किया गया है। प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता आगे जोड़ताराम के. पटेल बनाम गुजरात राज्य और अन्य, मनु/जीजे/0036/1998 के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हैं, जिसमें यह माना गया है कि चोरी किए गए चेक का बचाव धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन द्वारा उच्च न्यायालय में नहीं लिया जा सकता है।

34. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि किसी भी दर पर, जब भी तथ्यों पर विवाद होता है, तो सबूतों को तौलकर सच्चाई को उभरने दिया जाना चाहिए (संदर्भ: राजेशभरी मुलजीभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य (2020) 3 एस.सी.सी 794)। नवीन

सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021(7) एडीजे 431 के मामले में इस माननीय न्यायालय ने माना कि कार्यवाही को तथ्यात्मक अवज्ञा के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है और भुगतान रोकने पर एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के प्रावधान भी लागू होते हैं।

35. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि यह साबित करने का बोझ कि कोई मौजूदा ऋण या देयता नहीं है, मुकदमे में निर्वहन किया जाना है (संदर्भ: एम.एम.टी.सी. लिमिटेड के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ और एक अन्य बनाम मेडचल केमिकल्स एंड फार्मा (पी) लिमिटेड और (2002)1 एस.सी.सी-234)।

36. इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि सम्मन आदेश के चरण में, जब तथ्यात्मक विवाद को अभी तक विचारण न्यायालय द्वारा प्रचारित और विचार नहीं किया गया है। प्रथम दृष्टया धारणा के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारण के अधीन आपराधिकता के एक तत्व को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है। इसलिए, जब कार्यवाही प्रारंभिक अवस्था में है, तो आपराधिक प्रक्रिया को विफल करना उचित नहीं है। उस संबंध में भरोसा रतीश बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार) और अन्य, मनु/एस.सी/0542/2022 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर रखा गया है।

उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी संख्या पर प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि

संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आवेदक को बुलाने के आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, साथ ही पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में भी इसकी पुष्टि की गई है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि चोरी किए गए चेक एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के अपराध का गठन नहीं करने का आधार नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार, वर्तमान आवेदन खारिज करने योग्य है।

37. मैंने आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

मुद्दा यह है कि क्या धारा 138 एन.आई. अधिनियम वर्तमान मामले के तथ्यों और इस न्यायालय के निष्कर्ष में लागू होता है

38. वर्तमान आवेदन के अभिलेखों से यह स्वीकार किया गया है कि आवेदक ने अपने बैंक मेसर्स रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड को भी सूचित किया है। (ख) मेसर्स पंजाब एंड सिंध बैंक, जुहू शाखा, मुंबई ने दिनांक 31-10-2002 के उसी पत्र (संलग्नक सं 1) के माध्यम से बैंक को सूचित किया था कि उपर्युक्त चेकों का भुगतान न करें।

39. सुलभ संदर्भ के लिए दिनांक 31.10.2002 के पत्र में किए गए कथनों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"एए शेरावली प्रोडक्शंस से दिनांक: 31.10.2002 1/603 मारी गोल्ड सी एच एस

लिमिटेड 6 वीं मंजिल न्यू लिंक रोड थाना-
ओशिवारा के सामने अंधेरी (पश्चिम) मुंबई-
400 053 प्रबंधक पंजाब और सिंध बैंक प्रिय
सर/मैडम रे: हमारा चालू खाता संख्या: 2664"

यह मेरी कंपनी के एकाउंटेंट द्वारा हमारे ध्यान
में लाया गया है कि हमारे चेक नंबर: 210546
और 210547 जो मेरे कर्मचारियों की अभिरक्षा
में मेरे द्वारा हस्ताक्षरित छोड़ दिए गए थे
क्योंकि मैं यात्रा में व्यस्त था, चोरी हो गए हैं।
मैं, आपके बैंक को निर्देश देता हूँ कि यदि
आपके बैंक द्वारा उपरोक्त चेक प्राप्त किए
जाते हैं तो उनका भुगतान तुरंत रोक दें, और
तुरंत मुझे इसकी सूचना दें।

यदि हमें कोई अन्य चेक गायब हो जाता है तो
हम आपको इसकी सूचना देंगे। कृपया
आवश्यक कारवाही करें। आपका, शैरावली
प्रोडक्शंस"

40. यह भी रिकॉर्ड से स्वीकार किया जाता है
कि 01.01.2003 को बैंक से एक फोन कॉल
प्राप्त हुआ था कि 31.10.2002 के उनके पत्र
में उल्लिखित चेकों में से एक बैंक के समक्ष
मंजूरी के लिए प्रस्तुत किया गया था। आवेदक
ने तुरंत वरिष्ठ पुलिस निरीक्षक, ओशिवारा से
संपर्क किया और धारा 381, 420 सपठित
धारा 34 भ०द०वि० के तहत प्रतिपक्षियों के
खिलाफ प्राथमिकी नंबर 1/2003 दिनांक
01.01.2003 (अनुलग्नक संख्या-2) दर्ज
करवाया।

41. दोनों पक्षों द्वारा स्थापित मामले के गुणों
पर कोई राय व्यक्त करने से पहले, परक्राम्य

लिखत अधिनियम की धारा 118, 138 और
139 को पुनः पेश करना सार्थक होगा, जो यहां
नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"118. परक्राम्य लिखतों के बारे में अनुमान -
जब तक इसके विपरीत साबित नहीं हो जाता,
निम्नलिखित अनुमान लगाए जाएंगे: -

(क) विचार का - कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत
को विचार के लिए बनाया या तैयार किया गया
था, और यह कि ऐसे प्रत्येक लिखत, जब इसे
स्वीकार किया गया है, अनुमोदन किया गया
है, बातचीत की गई है या स्थानांतरित किया
गया है, स्वीकार किया गया था, विचार के
लिए बातचीत की गई थी या स्थानांतरित की
गई थी;

(ख) आज तक - कि तारीख को प्रभावित करने
वाले प्रत्येक परक्राम्य लिखत को ऐसी तारीख
को बनाया या तैयार किया गया था;

(ग) स्वीकृति के समय के रूप में - कि
विनिमय के प्रत्येक स्वीकृत बिल को उसकी
तारीख के बाद और उसकी परिपक्वता से पहले
उचित समय के भीतर स्वीकार किया गया था;

(घ) हस्तांतरण के समय के रूप में - कि एक
पराक्रम्य लिखत/साधन के हर हस्तांतरण
अपनी परिपक्वता से पहले किया गया था;

(ई) इंडोर्समेंट के आदेश के रूप में - कि एक
पराक्रम्य लिखत/साधन पर दिखाई देने वाले
इंडोर्समेंट उस क्रम में किए गए थे जिसमें वे
उस पर दिखाई देते हैं;

(च) टिकटों के रूप में - कि एक खोया हुआ वचन पत्र, विनिमय बिल या चेक पर विधिवत मुहर लगाई गई थी;

(छ) वह धारक नियत समय में एक धारक है - कि एक पराक्रम्य लिखत/साधन का धारक नियत समय में धारक है:

बशर्ते, जहां उपकरण अपने वैध मालिक से, या उसके वैध हिरासत में किसी भी व्यक्ति से, किसी अपराध या धोखाधड़ी के माध्यम से प्राप्त किया गया है, या किसी अपराध या धोखाधड़ी के माध्यम से निर्माता या उसके स्वीकर्ता से प्राप्त किया गया है, या गैरकानूनी विचार के लिए, यह साबित करने का बोझ कि धारक नियत समय में धारक है।

138. खाते में निधियों की अपर्याप्तता आदि के लिए चेक का अनादरण। - जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूरे या आंशिक रूप से निर्वहन के लिए उस खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए बैंक के साथ उसके द्वारा बनाए गए खाते पर आहरित कोई चेक, बैंक द्वारा अवैतनिक लौटाया जाता है, या तो उस खाते के क्रेडिट में पड़ी है, राशि चेक का भुगतान करने के लिए अपर्याप्त होने के कारण या यह उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली राशि से अधिक है, ऐसे व्यक्ति को अपराध करने के लिए समझा जाएगा और, इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, [एक अवधि जिसे दो साल तक बढ़ाया जा सकता है], या जुर्माने

से जो चेक की राशि के दोगुने तक बढ़ाया जा सकता है, या दोनों के साथ दंडित किया जाएगा: बशर्ते कि इस धारा में निहित कुछ भी लागू नहीं होगा जब तक-

(ए) चेक उस तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर बैंक को प्रस्तुत किया गया है, जिस पर इसे तैयार किया गया है या इसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो;

(ख) आदाता या धारक, चेक के नियत समय में, जैसा भी मामला हो, चेक के आहर्ता को लिखित रूप में नोटिस देकर चेक की अवैतनिक के रूप में चेक की वापसी के बारे में बैंक से उसके द्वारा जानकारी प्राप्त होने के भीतर, उक्त राशि के भुगतान की मांग [तीस दिनों के भीतर] करता है; और

(ग) इस तरह के चेक का आहर्ता उक्त नोटिस की प्राप्ति के पंद्रह दिनों के भीतर, चेक के नियत समय में प्राप्तकर्ता को या धारक को, जैसा भी मामला हो, उक्त राशि का भुगतान करने में विफल रहता है।

स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, "ऋण या अन्य देयता" का अर्थ है कानूनी रूप से लागू ऋण या अन्य देयता।

139. धारक के पक्ष में उपधारणा--यह माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि चेक के धारक ने धारा 138 में निर्दिष्ट प्रकृति का चेक किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्ण या आंशिक रूप से निर्वहन के लिए प्राप्त किया है।

42. एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत बनाई गई कानूनी कथा, जब बैंक द्वारा एक चेक अवैतनिक वापस कर दिया जाता है, निम्नानुसार समझाया गया है:

"उपरोक्त प्रावधान के एक नंगे अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इसके कारण एक कानूनी कल्पना बनाई गई है। एक कानूनी कथा, जैसा कि सर्वविदित है, हालांकि पूर्ण प्रभाव देने की आवश्यकता होती है, इसकी अपनी सीमाएं होती हैं। इसका सहारा संविधि में उल्लिखित उद्देश्य के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं लिया जा सकता है।

आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम एपी पेंशनर्स एसोसिएशन (2005) 13 एस.सी.सी 161 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"... दूसरे शब्दों में, आमतौर पर एक नियम से निकलने वाले सभी परिणामों को, यदि नियम अन्यथा उसके संचालन को सीमित नहीं करता है, प्रभावी किया जाएगा। यदि नियम स्वयं इसके संचालन पर एक सीमा प्रदान करता है, तो कानूनी कल्पना से बहने वाले परिणामों को निर्धारित सीमाओं के प्रकाश में समझना होगा। इस प्रकार, श्री ललित द्वारा सुझाए गए कानूनी कल्पना को सरल रूप से समझना संभव नहीं है।

11. अधिनियम की धारा 138 में दंडात्मक प्रावधान का प्रदान करता है। एक कानूनी कल्पना के कारण बनाए गए एक दंड प्रावधान

को सख्त करना चाहिए। (देखें आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता एवं अन्य, (2009)1 एस.सी.सी 516) और डीसीएम फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम जेएन सरीन एवं अन्य। (2008 (2) के.एल.टी 762 (एस.सी) = (2008) 8 एस.सी.सी1)। तैयार की गई कानूनी कल्पना के संदर्भ में अधिनियमित ऐसा दंडात्मक प्रावधान तब लागू होगा जब बैंक द्वारा चेक को भुगतान किए बिना लौटा दिया जाएगा। ऐसा भुगतान न किया जाना: (i) इसलिए हो सकता है क्योंकि उस खाते में जमा धनराशि चेक को जमा करने के लिए अपर्याप्त है, या (ii) यह उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली व्यवस्था की गई राशि से अधिक हो सकती है।

इसके तहत कार्यवाही शुरू करने से पहले, सभी कानूनी आवश्यकताओं का पालन किया जाना चाहिए। अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि उक्त प्रावधान के तहत अपराध करने के सभी अवयवों का अनुपालन किया गया है।

अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को लागू करने के लिए पैरामीटर, इस प्रकार, सीमित होने के कारण, हमारी राय है कि बैंक की ओर से चेक का सम्मान करने से इनकार करने से मामला अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों के दायरे में नहीं आएगा।

12. अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय अदालत को केवल शिकायत याचिका में लगाए गए

आरोपों और शिकायतकर्ता और उसके गवाहों के सबूत, यदि कोई हो, पर विचार करने की आवश्यकता थी।

43. पराक्रम्य लिखत/साधन अधिनियम की धारा 138 के तहत अधिनियमित दंड प्रावधान से पता चलता है कि एक कानूनी दायित्व तब लागू होगा जब आहरित बैंक द्वारा अवैतनिक एक चेक वापस कर दिया जाता है। यह स्पष्ट करता है कि, बैंक द्वारा ऐसा गैर-भुगतान या तो हो सकता है: (i) उस खाते में जमा राशि चेक को जमा करने के लिए अपर्याप्त होने के कारण, या (ii) यह उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली व्यवस्था की गई राशि से अधिक हो सकता है। कार्यवाही से पहले, उसमें उल्लिखित कानूनी आवश्यकताओं का पालन किया जाना चाहिए और अदालत को आश्वस्त करना चाहिए कि अपराध के सभी अवयवों का अनुपालन किया गया है। इसलिए यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को लागू करने के लिए पैरामीटर सीमित होने के कारण, बैंक की ओर से चेक का सम्मान करने से इनकार करने से मामला अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों के दायरे में नहीं आएगा।

44. उपर्युक्त सीमा को ध्यान में रखते हुए, यहां प्रश्न यह है कि क्या बैंक द्वारा चेक को इस आधार पर लौटाया जाता है कि "चेक खो जाने की रिपोर्ट" एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के दायरे में आएगा। उपरोक्त उक्ति में सीमाएं प्रदान की गई हैं। इसलिए, बैंक की ओर से चेक का भुगतान करने से इनकार

करने से मामला धारा 138 एन.आई. अधिनियम के दंड प्रावधानों के भीतर नहीं आएगा। वर्तमान मामले में शामिल तथ्य और मुद्दे राज कुमार खुराना बनाम (एनसीटी दिल्ली) राज्य और (2009) 6 एस.सी.सी 72 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर पूरी तरह से लागू होते हैं।

45. पैराग्राफ संख्या 10 से 12 में राज कुमार खुराना के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"10. उपर्युक्त प्रावधान के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इसके कारण एक कानूनी कल्पना बनाई गई है। एक कानूनी कथा, जैसा कि सर्वविदित है, हालांकि इसको पूर्ण प्रभाव देने की आवश्यकता होती है, परन्तु इसकी अपनी सीमाएं होती हैं। इसका सहारा संविधि में उल्लिखित उद्देश्य के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं लिया जा सकता है। आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य राज्य बनाम एपी पेंशनर्स एसोसिएशन और अन्य। [(2005) 13 एस.सी.सी 161] में इस न्यायालय ने अवधारित किया:

"दूसरे शब्दों में, आमतौर पर एक नियम से बहने वाले सभी परिणामों को, यदि नियम अन्यथा उसके संचालन को सीमित नहीं करता है, प्रभावी किया जाएगा। यदि नियम स्वयं इसके संचालन पर एक सीमा प्रदान करता है, तो कानूनी कल्पना से निकलने वाले परिणामों को निर्धारित सीमाओं के प्रकाश में समझना होगा। इस प्रकार, श्री ललित द्वारा सुझाए गए

कानूनी कल्पना को सरल रूप से समझना संभव नहीं है।

11. अधिनियम की धारा 138 में दंडात्मक प्रावधान का प्रावधान है। एक कानूनी कल्पना के कारण बनाए गए एक दंड प्रावधान को सख्त करना चाहिए... इसलिए इसके तहत कार्यवाही शुरू करने से पहले, सभी कानूनी आवश्यकताओं का पालन किया जाना चाहिए। अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि उक्त प्रावधान के तहत अपराध करने के सभी अवयवों का अनुपालन किया गया है।

12. इस प्रकार, अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को लागू करने के लिए पैरामीटर सीमित होने के कारण, हमारी राय है कि बैंक की ओर से चेक का सम्मान/भुगतान करने से इनकार करने से मामला अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों के दायरे में नहीं आएगा।

46. ऊपर चर्चा के अनुसार कानूनी प्रस्ताव के मददेनजर, इस न्यायालय का विचार है कि अधिनियम की धारा 138 के आवश्यक तत्वों में वर्तमान मामले के तथ्यों की कमी है क्योंकि चोरी/खोने के चेक का मामला एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के दायरे में नहीं आता है, इस प्रकार धारा 138 एन.आई. अधिनियम ऐसे मामलों में लागू नहीं होगा।

वर्तमान मामले के तथ्यों, निष्कर्षों और इस न्यायालय के निष्कर्षों में धारा 210 द०प्र०स० (1) की प्रयोज्यता:

47. अभिलेखों से यह पता चलता है कि दो चेक नंबर 210547 और 210546 चोरी होने के कारण, आवेदक ने 31 अक्टूबर, 2002 को संबंधित बैंक को एक पत्र लिखा जिसमें अनुरोध किया गया कि वे उन्हें न दें या भुनाएं न करें और जब बैंक ने उन्हें टेलीफोन पर सूचित किया कि चेक नंबर 210547 बैंक के समक्ष उसकी निकासी/नकदीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया था, तब आवेदक ने 01 जनवरी, 2003 को शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध धारा 381, 420 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत मुंबई के थाना-ओशिवारा में प्राथमिकी 01/2003 दर्ज की और उसी चेक यानी चेक नंबर 210547 के अनादरण/भुगतान न करने के लिए वर्तमान शिकायत शिकायतकर्ता द्वारा 11 मार्च को दायर की गई है। आवेदक के खिलाफ 2003 में मामला दर्ज किया गया है। मुंबई में थाना-ओशिवारा में केस क्राइम नंबर 1/2003 में, जांच के बाद और अंततः, शिकायतकर्ता और अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों, संतोष, राकेश चतुर्वेदी और मनोज चतुर्वेदी के खिलाफ मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट-10, अंधेरी, मुंबई की अदालत के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिस पर संज्ञान लिया गया था और आपराधिक मामला संख्या 371/टी.डब्ल्यू/2004 दर्ज किया गया था, उसके बाद सह-आरोपी संतोष को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे संबंधित अदालत ने जमानत दे दी। प्रतिपक्षी संख्या-2 और सह-अभियुक्त राकेश चतुर्वेदी और मनोज चतुर्वेदी ने बॉम्बे हाईकोर्ट के समक्ष अग्रिम जमानत याचिका दायर की और उन्हें बॉम्बे हाईकोर्ट के संबंधित न्यायालय द्वारा 3 नवंबर, 2003 के आदेशों के तहत

अग्रिम जमानत याचिका संख्या 3963 वर्ष 2003 (दीनानाथ चतुर्वेदी और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य) में अग्रिम जमानत दे दी गई। मुंबई उच्च न्यायालय के दिनांक 3 नवंबर, 2003 के आदेश का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है:

"3. यह देखा गया है कि आवेदकों ने पहले ही शिकायतकर्ता के खिलाफ चेक के अनादरण के लिए आपराधिक मामला दर्ज करवाया था और शिकायतकर्ता के इशारे पर, 2003 का सी.आर नंबर 1 भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के सपठित धारा 381 और 420 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए मुंबई के थाना-ओशिवारा में मामला दर्ज है। आवेदकों को गिरफ्तारी की आशंका है।

4. आवेदकों के खिलाफ दर्ज शिकायत की विषय वस्तु दो चेक हैं जो कथित रूप से शिकायतकर्ता के कार्यालय से चोरी किए गए हैं और उनमें से एक या दोनों उत्तर प्रदेश के मथुरा में एक अदालत में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शुरू की गई कार्यवाही का विषय हैं। विवेचनाधिकारी के निर्देश पर विद्वान ए.पी.पी. का कहना है कि शेष चेक भी आवेदकों द्वारा उसे प्रस्तुत नहीं किया गया है और इसलिए, जाली हस्ताक्षर के आरोपों को ध्यान में रखते हुए, उनकी हिरासत में पूछताछ आवश्यक है।

5.....

6. इसलिए यह निर्देश दिया जाता है कि आवेदक की गिरफ्तारी में उसे 50,000 रुपये (पचास हजार रुपये) की राशि में जमानत पर

रिहा किया जाएगा, जिसमें समान राशि के लिए एक विलायक जमानत होगी, और इस शर्त पर कि सभी आवेदक कल से दो सप्ताह की अवधि के लिए या कल 2.00 से 6.00 बजे के बीच थाना-ओशिवारा में विवेचनाधिकारी को रिपोर्ट करेंगे। और उनमें से कोई भी उक्त विवेचनाधिकारी की अनुमति के बिना ग्रेटर बॉम्बे जिले के क्षेत्रों को नहीं छोड़ेगा।

7. आवेदक यह भी वचन देता है कि वह दूसरा चेक तत्काल विवेचनाधिकारी के पास जमा कर देगा।

8. यह आदेश चार सप्ताह की अवधि के लिए या पूछताछ पूरी होने तक, जो भी बाद में हो, वैध होगा, और यह केवल एन.सी.आर संख्या 01/2003 का ही संचालित होता है।

48. मुंबई उच्च न्यायालय के 3 नवंबर, 2003 के आदेश और उसके समक्ष दिए गए वचन के बावजूद, शिकायतकर्ता ने उक्त चेक को 2003 के केस एन.सी.आर नंबर 01 के विवेचनाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया है।

49. उपरोक्त के अलावा, 3 नवंबर, 2003 को बॉम्बे उच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, थाना ओशिवारा, मुंबई के वरिष्ठ पुलिस निरीक्षक ने संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा के समक्ष 18 जून, 2004 को मुंबई उच्च न्यायालय के आदेश के साथ एक आवेदन दायर किया, जिसमें अनुरोध किया गया था कि उन्हें चेक जब्त करने की अनुमति दी जाए, जिसे कथित रूप से अनादरित चेक माना जाता है, जिसके लिए शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2

द्वारा आवेदक के खिलाफ 24 नवंबर, 2003 को वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है, क्योंकि उक्त चेक मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट-10, अंधेरी, मुंबई के समक्ष लंबित आपराधिक मामला संख्या 371/टी.डब्ल्यू/2004 का मुख्य घटक और प्रासंगिक दस्तावेज है, लेकिन वर्तमान शिकायत मामले में मथुरा में संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। वर्तमान शिकायत मामले में मथुरा में संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा सम्मन आदेश पारित करने के बाद, आवेदक ने 9 दिसंबर, 2003 के आवेदन के माध्यम से आपत्ति दर्ज की कि जब वर्तमान अपराधों से संबंधित मुद्दा विचाराधीन है और निपटान के लिए लंबित है, तो उसी के आधार पर समानांतर कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है और इन दोनों को एक धारा (1) से धारा 210 द०प्र०स० के अंतर्गत एक साथ चुने जाने की आवश्यकता है; लेकिन उक्त प्रावधानों की अनदेखी करते हुए, संबंधित मजिस्ट्रेट ने दिनांक 28 जून, 2004 के आदेश के तहत आवेदक की उक्त आपत्ति को खारिज कर दिया, जिसकी पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा 4 जनवरी, 2008 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई थी।

50. उक्त मुद्दे को हल करने के लिए, उप-धारा (1) को धारा 210 द०प्र०स० में पुनः पेश करना सार्थक होगा, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"210. एक ही अपराध के संबंध में शिकायत का मामला होने और पुलिस जांच होने पर प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए।

(1) जब किसी पुलिस रिपोर्ट (जिसे इसके पश्चात् शिकायत मामला कहा गया है) से अन्यथा संस्थित किसी मामले में, मजिस्ट्रेट द्वारा की गई जांच या विचारण के दौरान मजिस्ट्रेट को यह बताया जाता है कि उस अपराध के संबंध में पुलिस द्वारा अन्वेषण प्रगति पर है जो उसके द्वारा की गई जांच या विचारण की विषय-वस्तु है, मजिस्ट्रेट ऐसी जांच या मुकदमे की कार्यवाही पर रोक लगाएगा और जांच करने वाले पुलिस अधिकारी से मामले पर रिपोर्ट मांगेगा।"

51. पूर्वोक्त तथ्य और धारा 210 द०प्र०स० (1) के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि मथुरा में संबंधित मजिस्ट्रेट ने न केवल बॉम्बे हाईकोर्ट के 3 नवंबर, 2003 और 24/28 जून, 2004 के आदेशों की अवज्ञा की है, जो कि उच्च न्यायालय है बल्कि वर्तमान आपराधिक मामले में आगे बढ़ते समय धारा 210 (1) द०प्र०स० के प्रावधानों की भी अनदेखी की है, इस तथ्य के बावजूद कि वर्तमान शिकायत मामले को जन्म देने वाला चेक आपराधिक मामला संख्या 371/टी.डब्ल्यू/2004 में मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट-10, अंधेरी, मुंबई के समक्ष लंबित एक केस प्रॉपर्टी है और इसकी जब्ती के लिए, 24 नवंबर, 2003 को वरिष्ठ पुलिस निरीक्षक थाना-ओशिवारा, मुंबई द्वारा उनके समक्ष एक आवेदन किया गया है। इसलिए, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि धारा 210 द०प्र०स० (1) के अनुसार वर्तमान शिकायत में आगे की कार्यवाही अवैध है।

मुद्दा यह है कि क्या वर्तमान आपराधिक कार्यवाही जवाबी प्रतिक्रिया का मामला है या नहीं? और इस न्यायालय के निष्कर्ष:

52. यह भी रिकॉर्ड से सामने आया है कि 1 जनवरी, 2003 को, आवेदक ने शिकायतकर्ता और तीन सह-अभियुक्तों के खिलाफ चेक चोरी के लिए 2003 की प्राथमिकी नंबर 01 दर्ज की, जिसमें धारा 34 भ०द०वि० के सपठित धारा 381, 420 के तहत मुंबई के थाना-ओशिवारा में आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, सभी अभियुक्तों को अग्रिम जमानत/नियमित जमानत प्रदान की गई। यह भी सामने आया है कि दो महीने और ग्यारह दिनों के बाद यानी 11 मार्च, 2003 को उपरोक्त प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, शिकायतकर्ता ने मथुरा में मजिस्ट्रेट के संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदक के खिलाफ चेक नंबर 210547 के अनादरण के लिए धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत वर्तमान शिकायत दर्ज की। इसका अर्थ है कि वर्तमान शिकायत मामला आवेदक द्वारा उपरोक्त प्राथमिकी दर्ज करके शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही के लिए जवाबी प्रतिक्रिया का मामला है।

53. सर्वोच्च न्यायालय ने जवाबी प्रतिक्रिया या कहर/प्रतिशोध के मामले पर विचार करते हुए मेसर्स आयशर ट्रैक्टर लिमिटेड और अन्य बनाम हरिहर सिंह और अन्य, 2009 (1) जे.आई.सी 245 (एस.सी) ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"7. अंतिम मामले से निपटने में, ऐसे मामले के बीच अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है

जहां कोई कानूनी सबूत नहीं है या जहां सबूत हैं जो स्पष्ट रूप से किए गए आरोपों के साथ असंगत हैं, और एक ऐसा मामला जहां कानूनी सबूत हैं, जो मूल्यांकन करने पर, आरोपों का समर्थन कर सकते हैं या नहीं। संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय आमतौर पर इस बात की जांच शुरू नहीं करेगा कि विचाराधीन साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं या क्या इसकी उचित मूल्यांकन पर आरोप कायम नहीं होगा। यह विचारण न्यायाधीश का कार्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायिक प्रक्रिया उत्पीड़न या अनावश्यक उत्पीड़न का साधन नहीं होनी चाहिए। न्यायालय को विवेक का प्रयोग करने में चौकस और विवेकपूर्ण होना चाहिए और प्रक्रिया जारी करने से पहले सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, ऐसा न हो कि यह किसी निजी शिकायतकर्ता के हाथों में किसी भी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से परेशान करने के लिए प्रतिशोध का एक साधन हो। साथ ही, यह धारा अभियोजन पक्ष को शॉर्ट-सर्किट करने और उसकी अचानक मौत लाने के लिए एक अभियुक्त को सौंपा गया उपकरण नहीं है। संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग का दायरा और मामलों की श्रेणियां जहां उच्च न्यायालय किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए संज्ञेय अपराधों से संबंधित अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है, इस न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल [1992 (1) एस.सी.सी 335] में कुछ विस्तार से निर्धारित किया गया था। हालांकि, सावधानी का एक नोट जोड़ा गया

था कि शक्ति का संयम से, और वह भी दुर्लभतम मामलों में, प्रयोग किया जाना चाहिए। इस न्यायालय द्वारा इंगित निदर्शों श्रेणियां इस प्रकार हैं: (एस.सी.सी पी.पी 378-79, पैरा 102)

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हुए एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।

(3) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध ही हैं वहां किसी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के अधीन विचारित है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही संस्थित की जाती है) के किसी उपबंध में संस्था पर और कार्यवाहियों को जारी रखने और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट उपबंध है, वहां व्यथित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावोत्पादक निवारण का उपबंध करने पर स्पष्ट विधिक प्रतिबंध लगा हुआ है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

8. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास मौजूद शक्तियां बहुत व्यापक हैं और शक्ति की प्रचुरता के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। न्यायालय को यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित है। एक वैध अभियोजन को दबाने के लिए निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। किसी राज्य की

सर्वोच्च अदालत होने के नाते उच्च न्यायालय को आमतौर पर ऐसे मामले में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां पूरे तथ्य अधूरे और धुंधले हैं, खासकर जब सबूत एकत्र नहीं किए गए हैं और अदालत के समक्ष पेश नहीं किए गए हैं और इसमें शामिल मुद्दे, चाहे तथ्यात्मक हों या कानूनी, परिमाण के हैं और पर्याप्त सामग्री के बिना उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखे जा सकते हैं। बेशक, उन मामलों के संबंध में कोई कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है जिनमें उच्च न्यायालय किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रद्द करने के अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा। उच्च न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह शिकायतकर्ता के मामले का विश्लेषण सभी संभावनाओं के आलोक में करे ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या दोषसिद्धि टिकाऊ होगी और ऐसे परिसर में, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्यवाही को रद्द किया जाना है। इसके समक्ष सामग्री का आकलन करना और यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि शिकायत पर आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। शिकायत पर शुरू की गई कार्यवाही में, कार्यवाही को रद्द करने के लिए निहित शक्तियों का प्रयोग केवल उस मामले में किया जाता है जहां शिकायत किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है या तुच्छ, कष्टप्रद या दमनकारी है। यदि शिकायत में लगाए गए आरोप उस अपराध का गठन नहीं करते हैं जिसका संज्ञान मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया है, तो यह उच्च न्यायालय के लिए संहिता की धारा के तहत निहित शक्तियों के प्रयोग में इसे रद्द करने के लिए खुला है। हालांकि, यह आवश्यक नहीं है कि मुकदमे से

पहले मामले का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या मामला दोषसिद्ध या बरी हो जाएगा। शिकायत को पूरी तरह से पढ़ा जाना चाहिए। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि शिकायतकर्ता की शपथ पर दिए गए बयान के आलोक में आरोपों पर विचार करने पर कि अपराध या अपराधों के अवयवों का खुलासा किया गया है और यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि शिकायत दुर्भावनापूर्ण, तुच्छ या कष्टप्रद है, तो उस स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं होगा। जब थाना में एक सूचना दर्ज की जाती है और एक अपराध दर्ज किया जाता है, तो सूचनादाता की दुर्भावना माध्यमिक महत्व की होगी। यह जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और अदालत में पेश किए गए सबूत हैं जो आरोपी व्यक्ति के भाग्य का फैसला करते हैं। सूचनादाता के खिलाफ दुर्भावना के आरोपों का कोई परिणाम नहीं है और कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है।

9. इन पहलुओं को कर्नाटक राज्य बनाम एम. देवेंद्रप्पा [2002 (3) एस.सी.सी 89] में भी उजागर किया गया था।

10. मामला भजन लाल के मामले (उपरोक्त) की श्रेणी (7) में इंगित मापदंडों के भीतर आता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तथ्यात्मक परिदृश्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कार्यवाही अपीलकर्ताओं द्वारा शुरू की गई कार्यवाही के प्रतिवाद के रूप में शुरू की गई थी। इस तरह की कार्यवाही को जारी रखना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और

कुछ नहीं होगा। तदनुसार कार्यवाही को रद्द किया जाता है।

54. आयशर ट्रेक्टर (उपरोक्त) के मामले में पूर्वोक्त तथ्य और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की गहन जांच और मूल्यांकन पर, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि शिकायत दर्ज करके वर्तमान आपराधिक कार्यवाही प्रतिशोध लेने के लिए गढ़ी गई है, जिसकी अनुमति नहीं है।

मुद्दा यह है कि क्या प्रतिपक्षी संख्या-2/शिकायतकर्ता ने वर्तमान शिकायत मामले को दर्ज करने में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्य को छिपाया है या नहीं?

55. आवेदक के अधिवक्ता की इस दलील की जांच करने के लिए कि शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्य को छुपाया है अर्थात् 11 मार्च को वर्तमान शिकायत मामला दर्ज करने में अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मुंबई के थाना-ओशिवारा में धारा 381, 420 सपठित धारा 381, 420 के तहत शिकायतकर्ता और तीन सह-अभियुक्तों के खिलाफ प्राथमिकी नंबर 01/2003 से उत्पन्न आपराधिक मामले की लंबितता, 11 मार्च 2003 में संबंधित मजिस्ट्रेट, मथुरा के न्यायालय के समक्ष धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत, इसे पुनः पेश करना सार्थक होगा, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

“महोदय,

संक्षेप में परिवादी का आरोप है कि परिवादी ऐ.बी.सी. पिक्चर्स प्रा०लि० का निदेशक है तथा ए०बी०सी० फिल्मस का सह भागीदार है तथा फमोड फिल्मस में परिवादी के परिजन सह भागीदार है इस प्रकार परिवादी अपने परिजनों सहित चलचित्रों से सम्बन्धित व्यवसाय करता है. परिवादी अपनी के०एच०यू०एफ० का कर्ता भी है।

यह कि अभियुक्त बॉबी आनन्द उपरोक्त भी माँ शेरावाली प्रोडक्सन के नाम से फिल्म प्रोडक्सन का कार्य करते हैं। तथा अपनी उपरोक्त फर्म के प्रोपराईटर होने के नाते फर्म के प्रत्येक क्रियाकलाप के लिए पूर्ण रूपेणजिम्मेदार हैं और दायित्व वहां करते हैं तथा एक ही व्यवसाय में रहने के कारण परिवादी व अभियुक्त एक दूसरे के पूर्व परिचित थे तथा अभियुक्त एक दूसरे के पूर्व परिचित थे तथा अभियुक्त बॉबी आनन्द ने परिवादी से और भी नजदीकियाँ बढ़ा रखी थी।

यह कि अभियुक्त ने परिवादी को उपरोक्त नजदीकियों के कारण विश्वास में लेकर अपने व्यवसाय में अचानक धनराशि की आवश्यकता पड़ते रहने की समस्या से अवगत कराया और स्वयं के पास पर्याप्त धनराशि का आभाव बतलाते हुए समय समय पर ऋण के रूप में धनराशि प्राप्त करने और सुविधानुसार ब्याज सहित चूका दिए जाने का विश्वास दिलाया और यह भी आश्वासन दिया कि परिवादी की सुविधा के अनुसार अभियुक्त उन्हें ऋण राशि ऐडा करने की एवज में चेक

प्रदान कर देगा. जिससे ऋण राशि चुकायी जा सके।

यह कि उपरोक्त क्रम में परिवाद ने अपनी ए.बी.सी. पिकचर्स प्र०लि० से विभिन्न तारीखी १३,८५,०००/- रु० (तेरह लाख पिचासी हजार रुपये), ए.बी.सी. फिल्मस से ९,१०,०००/- रु० (नौ लाख दस हजार रुपये), कामोद फिल्मस से २०९०००/- रु० (दो लाख नौ हजार रुपये), तथा स्वयं परिवादी ने ४,९६०००/- रु० (चार लाख छियानवे हजार रुपये) विभिन्न तिथिओं पर अभियुक्त के मामले पर उसे ऋण के रूप में प्रदान किये जो कुल ३०,००,०००/- रु० (तीस लाख रुपये) की राशि थी। परिवादी द्वारा उपरोक्त ऋण राशि चूका दिये जाने के अनुरोध पर अभियुक्त ने खुद के द्वारा दिये गये विश्वास के अनुरूप ३०,००,०००/- रु० (तीस लाख रुपये) की राशि का एक चेक अपनी फर्म माँ शेरावाली प्रोडक्सन के खाता संख्या-२६६२ पंजाब एण्ड सिंध बैंक जूहू आम्बपाली बिल्डिंग शॉपिंग सेंटर मुम्बई का एक चेक संख्या २१०५४७ दिनांकित १३.१२.०२ स्वयं के हस्ताक्षर करके परिवादी के पक्ष में जारी कर उपरोक्त ऋण की अदायगी की एवज में प्रदान कर दिया और पुनः विश्वास दिलाया कि उपरोक्त चेक की उसकी वैधता के दौरान भुगतान हेतु बैंक में प्रस्तुत करने पर अवश्य ही भुगतान हो जावेगा। यह कि इसी विश्वास के अनुसार परिवादी ने भुगतान हेतु उपरोक्त चेक अपनी बैंक देना बैंक मथुरा के अपने खाता संख्या ४१२ में भुगतान हेतु दिनांक २६.१२.०२ को जमा किया किन्तु उपरोक्त चेक का भुगतान नहीं हो सका और वह चेक अवमानित हो गया जिसकी सूचना परिवादी को उसकी बैंक द्वारा

प्रेषित मीमो द्वारा रजिस्टर्ड डाक दिनांक १३.१.०३ की मुम्बई निवास पर हुई।

यह कि परिवादी ने अभियुक्त को अपने एडवोकेट श्री उमाकान्त चतुर्वेदी द्वारा दिनांक २७.०१.०३ को रजिस्टर्ड वकील नोटिस द्वारा उपरोक्त बैंक का भुगतान प्राप्त के १५ दिन के अन्दर परिवादी को कर दिए जाने को आगाह किया।

यह कि उपरोक्त नोटिस दिनांक ३.२.०३ को अभियुक्त को प्राप्त हुआ तथा अभियुक्त ने उपरोक्त नोटिस का जवाब अपने एडवोकेट श्रीमती सोनिया सूद के माध्यम से १२.२.०३ को प्रेषित भी कराया तथा किसी भी प्रकार की देनदारी की इन्कार भी कर दिया।

यह कि इस प्रकार अभियुक्त के खाते में न तो चेक का भुगतान किये जाने हेतु पर्याप्त धनराशि थी और न उसमें आज तक परिवादी को चेक की राशि का भुगतान ही किया।

यह कि इस प्रकार अभियुक्त का कृत्य नेगोशियेविल इन्स्ट्रूमेन्ट एक्ट धारा-१३८ की हद को पहुँचता है।

अतः श्रीमान जी से निवेदन है कि अभियुक्त को तलब कर दंडित करने की कृपा करें."

56. शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या 2 की उपरोक्त शिकायत के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता ने आवेदक के खिलाफ वर्तमान आपराधिक कार्यवाही को जन्म देते हुए

धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत इस तरह की शिकायत दर्ज करने में न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा की अदालत में साफ नियत से नहीं संपर्क किया है और उसी चेक के अनादरण के लिए मुंबई में उसके खिलाफ लंबित उपरोक्त आपराधिक मामले के महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्य को भी छिपाया है, जो पूर्वोक्त आपराधिक मामले में विषय वस्तु है।

का दोषी है तो उसके मामले पर योग्यता के आधार पर विचार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, एक वादी "तथ्यों का पूर्ण और सच्चा प्रकटीकरण" करने के लिए बाध्य है। उक्त मामले का निर्णय करते समय, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने किंग बनाम जनरल कमिशनर 1917) 1 केबी 486 में निर्णय पर भरोसा किया था, जिसमें यह निम्नानुसार देखा गया है: -

57. मेसर्स तिलोकचंद मोतीचंद और अन्य बनाम एचबी मुंशी और अन्य में, ए.आई.आर 1970 एस.सी 898 में रिपोर्ट किया गया; ए.आई.आर 1977 एस.सी 781 में हरियाणा राज्य बनाम करनाल डिस्टलरी की रिपोर्ट के संबंध में; और सबिया खान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1999) 1 एस.सी.सी 271 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि पूर्णत गलत याचिका दायर करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और ऐसे वादी से हल्के ढंग से निपटा जाना अपेक्षित नहीं है क्योंकि यदि किसी गुप्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए भ्रामक और गलत कथन वाली याचिका दायर की जाती है तो वह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

58. ए.आई.आर 1996 एस.सी 1947 में रिपोर्ट किए गए कृषि और प्रक्रिया खाद्य उत्पाद बनाम ओसवाल एगो फुरेन और अन्य में, सर्वोच्च न्यायालय ने महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को छिपाकर दायर एक मामले में गंभीर आपत्ति की थी और माना था कि यदि कोई याचिकाकर्ता बहुत महत्वपूर्ण तथ्य को दबावे

"जहां एक नियम या अन्य प्रक्रिया के लिए इस न्यायालय में एक पक्षीय आवेदन किया गया है, यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदन के समर्थन में हलफनामा स्पष्ट नहीं था और तथ्यों को निष्पक्ष रूप से नहीं बताता था, लेकिन उन्हें इस तरह से कहा गया था कि न्यायालय को सही तथ्यों के रूप में गुमराह किया जा सके, न्यायालय को अपनी सुरक्षा के लिए और अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, अपनी योग्यता की परीक्षा के साथ आगे बढ़ने से इनकार करना चाहिए..."

59. अब्दुल रहमान बनाम प्रसोनी बाई और अन्य, ए.आई.आर 2003 एस.सी 718 में; (2004) 7 एस.सी.सी 166 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब भी न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है, तो न्यायालय द्वारा आगे बढ़ने से इनकार करना और पक्ष को राहत देने से इनकार करना न्यायोचित होगा। यह नियम न्यायालयों की आवश्यकता से विकसित किया गया है

ताकि वादी को धोखा देकर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोका जा सके। हालांकि, दबा तथ्य इस अर्थ में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत होना चाहिए कि अगर इसे दबाया नहीं गया होता, तो यह मामले की योग्यता के आधार पर किसी भी तथ्य तक पहुंचाता।

60. केडी शर्मा बनाम सेल में, (2008) 12 एस.सी.सी 481 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अनुच्छेद 32 के तहत सुप्रीम कोर्ट का अधिकार क्षेत्र और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है और यह जरूरी है कि याचिकाकर्ता को रिट कोर्ट के पास जाने के लिए साफ नियत से आना चाहिए और बिना कुछ छिपाए या दबाए और अदालत के समक्ष उचित राहत पाने के लिए सभी तथ्यों को सामने रखना चाहिए। यदि प्रासंगिक और महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का कोई स्पष्ट प्रकटीकरण नहीं है या याचिकाकर्ता अदालत को गुमराह करने का दोषी है, तो उसकी याचिका को दावे के गुणों पर विचार किए बिना दहलीज पर खारिज किया जा सकता है। इसी कानून को जी. जयश्री बनाम भगवानदास एस. पटेल (2009) 3 एस.सी.सी 141 में दोहराया गया था।

61. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार माना है कि झूठे हलफनामे दाखिल करना और महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को छिपाना न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप है और इस तरह यह न्यायालय

की आपराधिक अवमानना है। ए.आई.आर 1995 एस.सी 1795 में रिपोर्ट किए गए धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य में, जिसमें पैराग्राफ 39 और 40 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"39. इसलिए, प्रश्न जिस पर अब हमारे विचार की आवश्यकता है, यह है कि प्रतिपक्षियों के खिलाफ क्या कार्रवाई की जानी चाहिए।

40. न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 2 (सी) किसी भी मामले के प्रकाशन (चाहे शब्दों, बोले गए या लिखित या संकेतों या दृश्य प्रतिनिधित्व या अन्यथा द्वारा) के रूप में आपराधिक अवमानना को परिभाषित करती है या किसी अन्य कार्य को करने के लिए (1) किसी भी न्यायालय के अधिकार को कम करने या निंदा करने या कम करने की प्रवृत्ति रखती है: (2) पूर्वाग्रह या हस्तक्षेप करना इस प्रकार, कोई भी आचरण, जिसमें न्याय के प्रशासन या न्यायिक कार्यवाही के नियत पाठ्यक्रम में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति होती है, आपराधिक अवमानना के बराबर है।"

62. सुंकारा लक्ष्मीनरसम्मा और अन्य बनाम सागी सुब्बा राजू एवं अन्य। (2009) 7 एस.सी.सी 460 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि जानबूझकर झूठा हलफनामा दाखिल करना एक अवमानना है और असाधारण लागत लगाई जानी चाहिए।

63. अफजल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य में (1) एस.सी 328 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ-32 में निम्नानुसार निर्णय दिया:

"32. सवाल यह है कि क्या उसने इस न्यायालय की कार्यवाही में अवमानना की है? धारा 2 (बी) "न्यायालय की अवमानना" को किसी भी नागरिक या आपराधिक अवमानना के रूप में परिभाषित करती है। धारा 2 (सी) में परिभाषित "आपराधिक अवमानना" का अर्थ है किसी अन्य तरीके से न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप। एक पक्ष द्वारा एक अनुकूल आदेश प्राप्त करने के लिए कार्यवाही के लिए जानबूझकर किया गया एक गलत या भ्रामक बयान न्यायिक कार्यवाही के उचित प्रक्रिया के साथ पूर्वाग्रह या हस्तक्षेप करेगा।"

64. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य ए.आई.आर 1995 एस.सी 1795 में सुप्रीम कोर्ट ने पैराग्राफ-40 में निम्नानुसार अवधारित किया:

"40. इस प्रकार, कोई भी आचरण जिसमें न्याय के प्रशासन या न्यायिक कार्यवाही के नियत प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति होती है, आपराधिक अवमानना के कमीशन के बराबर है।"

65. साबिया खान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (1999)1 एस.सी.सी 271 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि पूर्णतः गलत याचिका दायर करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और ऐसे वादी से हल्के ढंग से निपटा जाना अपेक्षित नहीं है।

66. पूर्वोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय को आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए सबमिशन में सार मिलता है कि इस न्यायालय को प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए वादी द्वारा किसी भी प्रयास को प्रतिकूल रूप से देखना चाहिए। यदि ऐसे प्रयासों से सख्ती से नहीं निपटा गया तो न्यायिक प्रक्रिया की पवित्रता गंभीर रूप से समाप्त हो जाएगी। आवेदक जैसे वादी जो सच्चाई या न्यायालय की प्रक्रियाओं के साथ स्वतंत्रता लेते हैं, उन्हें आने वाले परिणामों के बारे में कोई संदेह नहीं होना चाहिए। दूसरों को न्यायिक उदारता की आशा में या गलत उम्मीद पर उसी रास्ते पर नहीं चलना चाहिए। असाधारण लागत अपरिहार्य है, और यहां तक कि आवश्यक भी है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि मुकदमेबाजी में, जैसा कि हमारे देश में प्रचलित कानून में है, सच्चाई पर कोई प्रीमियम नहीं है। वर्तमान आपराधिक कार्यवाही को जन्म देते हुए न्यायालय के समक्ष धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज करके शिकायतकर्ता ने महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्य को छुपाया है और उसने सही नियत से अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया है, उसका शिकायत मामला न केवल इस आधार पर खारिज किया जा सकता है, बल्कि उसे मिसाली लागत के साथ दंडित किया जाना चाहिए।

67. पूर्वोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श की संचयी ताकत पर, इस न्यायालय को प्रतिपक्षी संख्या 2 और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रस्तुतिकरण में

कोई सार नहीं मिलता है और यह भी पता चलता है कि उनके द्वारा भरोसा किए गए मामले कानून वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से अलग हैं। इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि आवेदक के खिलाफ शुरू की गई वर्तमान आपराधिक कार्यवाही न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है। इस प्रकार, उपर्युक्त शिकायत मामले की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है।

68. तदनुसार, न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा की अदालत में लंबित धारा 138 एन.आई. अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला मथुरा के तहत शिकायत केस संख्या 235/IX वर्ष 2003 (दीना नाथ चतुर्वेदी बनाम मां शेरवाली प्रोडक्शन और अन्य) की कार्यवाही रद्द की जाती है।

69. तदनुसार, आवेदन की अनुमति दी जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 176

मूल अधिकार क्षेत्र
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 16870
वर्ष 2023

रईस अहमद एवं अन्य

.....आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य विपरीत पक्ष

आवेदकगण के अधिवक्ता:

श्री उमैर महमूद

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता., श्री विवेक पांडे

ए. दांडिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 -

धाराएं 498-ए, 323, 506 - दहेज निषेध

अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 तथा मुस्लिम

महिला (विवाह अधिकारों का संरक्षण)

अधिनियम, 2019 की धारा 3/4 - आपराधिक

कार्यवाही के संपूर्ण निरस्तीकरण की याचिका -

सऊदी अरब से दूरभाष के माध्यम से तीन

तलाक दिए जाने का आरोप - मध्यस्थता

विफल - प्रकरण डायरी में ऐसे तथ्य उपलब्ध

हैं जो भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए,

1961 के अधिनियम की धारा 3/4 तथा 2019

के अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराधों

की प्रथम दृष्टया पुष्टि करते हैं - इस

न्यायालय के लिए यह निर्धारित करना संभव

नहीं है कि आरोप सत्य हैं अथवा असत्य,

क्योंकि ये सभी तथ्य आवेदकों के विवादित

प्रतिरक्षा से संबंधित हैं - आरोप सत्य भी हो

सकते हैं और पूर्णतः असत्य भी - इसका

निर्णय परीक्षण न्यायालय द्वारा विचारण की

प्रक्रिया में ही किया जा सकता है, जिसमें दोनों

पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त

होगा - (प्रस्तर 1 से 9 तक)

बी. तीन तलाक का उच्चारण, जो कि अत्यंत

निंदनीय एवं विधायिका द्वारा समाप्त किए

जाने योग्य माना गया है, उस पर विधिक दायित्वों के साथ सख्ती से अमल किया जाना आवश्यक है। समाज में व्याप्त किसी प्रथा का उन्मूलन समय लेता है, और यदि विधायी प्रयास को प्रोत्साहित न किया जाए, तो उस प्रथा के बने रहने एवं अधिनियम के केवल मृत अक्षर बनकर रह जाने की प्रबल संभावना बनी रहती है। (प्रस्तर 7)

आवेदन निरस्त किया गया। (ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति श्री जे. जे. मुनीर

1- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'कोड') की धारा 482 के तहत यह आवेदन दायर किया गया है, जिसमें केस संख्या-5381 वर्ष 2023, राज्य बनाम मोहम्मद अली खान की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई है। अज़ीम और अन्य (केस अपराध संख्या-233 वर्ष 2022 से उत्पन्न) भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भ०द०वि०') की धारा 498ए, 323, 506 के तहत, दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 (संक्षेप में 'अधिनियम वर्ष 1961') और मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 (संक्षेप में 'अधिनियम वर्ष 2019') की धारा 3/4, थाना-सिवहारा, जिला बिजनौर के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बिजनौर के न्यायालय में लंबित है।

2- प्रारंभ में यह ध्यान दिया जा सकता है कि आवेदक संख्या-1 से 6 को धारा 498 ए, 323, 506 भ०द०वि० और अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 3/4 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए

आरोपित किया गया है, जबकि आवेदक संख्या-7, जो शिकायतकर्ता पक्षकार श्रीमती रुखसार का पति है, को धारा 498 ए, 323 भ०द०वि०, अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 3/4 और अधिनियम वर्ष 2019 की धारा 3/4 के तहत आरोपित किया गया है।

3- पति के खिलाफ आरोप है कि 15.01.2022 को शाम करीब 04:00 बजे उसने तीन तलाक का उच्चारण किया, जिससे शादी खत्म हो गई। ट्रिपल मोड में यह तलाक टेलीफोन पर सुनाया गया था। शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी ने आवेदक संख्या-1 से 7 द्वारा क्रूरता की शिकायत की है, जिसमें उक्त आवेदक भी शामिल हैं, जो उसे उसके ससुराल से बाहर कर देते हैं। सभी आवेदकों द्वारा दहेज की मांग का मामला है, जिसमें 15 लाख रुपये की नकद राशि भी शामिल है। शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी का पति सऊदी अरब में रहता है और काम करता है। छेड़छाड़ और बलात्कार के संबंध में कुछ अन्य आरोप थे, लेकिन जांच के दौरान इन्हें साबित नहीं किया गया। हालांकि, जांच के दौरान, आवेदक संख्या-1 से 6 के खिलाफ धारा 498 ए, 323 भ०द०वि० और अधिनियम 1961 की धारा 3/4 के तहत दंडनीय अपराधों का खुलासा किया गया था, और आवेदक संख्या-7 के खिलाफ धारा 498 ए, 323 भ०द०वि०, अधिनियम वर्ष 1961 की धारा 3/4 और अधिनियम वर्ष 2019 की धारा 3/4 के तहत खुलासा किया गया था। पुलिस ने विवेचना के बाद विवेचना दाखिल कर दी है।

4- इस न्यायालय ने दिनांक 08.05.2023 के आदेश के तहत इस आवेदन पर विचार किया

और शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी के पति को, जिसे कार्यवाही लंबित थी, आवेदक संख्या-7 के रूप में आवेदन के लिए बुलाया। वह देश से दूर है, सऊदी अरब में सेवारत है। इस न्यायालय के दिनांक 08.05.2023 के आदेश के अनुपालन में, शिकायतकर्ता के पति के बजाय, उसके ससुर अदालत के समक्ष उपस्थित हुए, और ऐसा ही शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी ने भी किया। पक्षों को उसी दिन न्यायालय-एनेक्स मध्यस्थता केंद्र में भेजा गया था, इस निर्देश के साथ कि केंद्र शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी के पति को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से पक्षों के बीच विवाद को हल करने की संभावना का पता लगा सकता है। मध्यस्थता केंद्र की दिनांक 18.05.2023 की रिपोर्ट से पता चलता है कि आवेदक संख्या-1 और प्रतिपक्षी संख्या-2 केंद्र के समक्ष पेश हुए, और इसी तरह शिकायतकर्ता के प्रतिपक्षी के पति, मो. अजीज ने वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए मध्यस्थता को यह कहते हुए समाप्त कर दिया कि पक्ष मध्यस्थता के लिए तैयार नहीं हैं।

5- आवेदकों के अधिवक्ता श्री उमैर महमूद, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री विवेक पांडे और राज्य के अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री शशि शेखर तिवारी को सुना।

6- पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने पर, इस न्यायालय ने पाया कि केस डायरी में ऐसी सामग्री है, जो प्रथम दृष्टया धारा 498 ए भ०द०वि०, अधिनियम वर्ष 1961 के 3/4 और अधिनियम वर्ष 2019 के 3/4 के तहत अपराधों को दर्शाती है। इस न्यायालय के लिए, जैसा कि अधिवक्ता चाहता है, आरोपों की सच्चाई का निर्धारण करना

संभव नहीं है, जो सभी आवेदकों के विवादित बचाव का गठन करते हैं। आरोप सही या काफी असत्य हो सकते हैं। विचारण न्यायालय को विचारण आयोजित करने पर इसका निर्धारण करना होगा, जिसमें दोनों पक्ष सबूत पेश करेंगे। निस्संदेह, आरोप सिद्ध करना अभियोजन पक्ष का काम है।

7- यह विशेष रूप से देखा गया है कि आवेदक संख्या-7 के खिलाफ लगाए गए अपराधों में से एक ट्रिपल तालक की घोषणा है। यह अपराध मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के तहत बनाया गया है, जो भारत के नागरिकों के एक विशेष वर्ग के बीच ट्रिपल तालक की घोषणा की शरारत को दबाने के लिए अधिनियमित किया गया है। इस प्रथा को दमनकारी माना गया है, और विधायिका ने इसे कानून द्वारा दंडनीय अपराध बनाकर दबाने का फैसला किया है। इसलिए, तीन तलाक की घोषणा से जुड़े अपराध के लिए उदारतापूर्वक हस्तक्षेप करना और अभियोजन को विफल करना विधायिका द्वारा हाल ही में पेश किए गए एक कानून को कमजोर करना होगा ताकि समाज में काफी समय से प्रचलित शरारत को कम किया जा सके। चूंकि तीन तलाक की घोषणा को पूर्णतः अवांछनीय माना जाता है और विधायिका द्वारा इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए, इसलिए इस कानून को पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए। समाज में एक प्रचलित प्रथा को मिटाने में बहुत समय लगता है, और यदि विधायी प्रयास को प्रोत्साहित नहीं किया जाता है, तो परंपरा के जीवित रहने की संभावना होगी और कानून एक मृत पत्र शेष

है, और जैसा कि यह न्यायालय ऐसा होने नहीं देगा।

8- उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों में, आक्षेपित कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं है।, परिणामतः, आक्षेपित कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

9- परिणामस्वरूप, संहिता की धारा 482 के तहत यह आवेदन विफल हो जाता है और खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 178

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार

उपाध्याय,

माननीय ओम प्रकाश शुक्ला, जे.

विशेष अपील संख्या 337 वर्ष 2023

छावनी बोर्ड मेरठ एवं अन्य अपीलकर्ता
बनाम

अनुज सिंह एवं अन्य प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

संजीव सिंह, अजय कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

गौरव मेहरोत्रा, ए.एस.जी.आई., अनंत खन्ना,
चिन्मय मिश्रा, लालता प्रसाद मिश्रा

ए. सेवा विधि - बर्खास्तगी - छावनी कोष सेवक नियमावली, 1937 - नियम 11(2)(vi) - न्यायिक पुनरीक्षण किसी निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं है, बल्कि यह उस प्रकार की समीक्षा है जिसमें यह देखा जाता है कि निर्णय किस प्रकार लिया गया - भारत के संविधान के प्रस्तर 226 के अधीन न्यायालय द्वारा अनुशासनिक कार्यवाही में हस्तक्षेप तब किया जा सकता है जब अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अभिलेखित निष्कर्षों में कोई विकृति पाई जाए। (प्रस्तर 6, 19)

कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनिक जाँच के संदर्भ में, यदि अनुशासनिक/अपील प्राधिकारी अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है और यदि संबंधित प्राधिकारी द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण एक संभाव्य दृष्टिकोण है, तो भारत के संविधान की प्रस्तर 226 द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसे निष्कर्षों में इस न्यायालय द्वारा किया जाने वाला हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए। (प्रस्तर 19)

वर्तमान प्रकरण में, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलेखित नहीं किया गया है कि अनुशासनिक कार्यवाही किसी नियम या विधि के अनुसार संपादित नहीं की गई। विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अनुशासनिक कार्यवाही के दौरान अपनाई गई प्रक्रिया में कोई त्रुटि, अवैधता अथवा अनियमितता भी नहीं पाई। विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन न किए जाने के संबंध में भी

कोई निष्कर्ष अभिलेखित नहीं किया गया है।
(प्रस्तर 20)

बी. यदि अनुशासनिक प्राधिकारी या अपील प्राधिकारी द्वारा अभिलेखित निष्कर्ष किसी वैध साक्ष्य पर आधारित हैं, जिस पर निष्कर्ष आधारित किए जा सकते हैं, तो भारत के संविधान के प्रस्तर 226 के अंतर्गत इस न्यायालय द्वारा उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता में प्रवेश करना अनुमत नहीं होगा। (प्रस्तर 21)

भारत के संविधान के प्रस्तर 226 एवं 227 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा और यदि जांच विधि एवं लागू नियमों के अनुसार संपादित हुई हो, तो उसके निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। उच्च न्यायालय तब हस्तक्षेप नहीं करेगा जब कोई वैध साक्ष्य ऐसा हो जिस पर निष्कर्ष आधारित किए जा सकते हैं। दंड के अनुपात की सिद्धांत का उपयोग केवल तब किया जा सकता है जब कर्मचारी को दिए गए दंड से न्यायालय का विवेक आहत हो। (प्रस्तर 19)

अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जो दूर-दूर तक संकेत दे कि इस प्रकरण में प्रतिपक्षी संख्या 1/याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान किसी प्रक्रिया में कोई त्रुटि, अनियमितता, अवैधता, उल्लंघन या नियमों का उल्लंघन हुआ हो। अभिलेख से ऐसी कोई त्रुटि सामने न आने के कारण, विद्वान् एकल न्यायाधीश को अनुशासनिक और अपील प्राधिकारियों द्वारा

अभिलेखित निष्कर्षों में इस हद तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था कि वह अपने स्वयं के निष्कर्ष स्थापित करता। (प्रस्तर 21)

रिट-ए संख्या 14919/2021 में पारित दिनांक 27.04.2023 के निर्णय एवं आदेश को निरस्त किया जाता है।

विशेष अपील स्वीकृत (ई-4)

अनुसरण किए गए उदाहरण:

1. यू.ओ.आई. बनाम पी. गुनासेकरन, (2015) 2 एससीसी 610
2. भगत राम बनाम सेंट एच.पी. एवं अन्य, (1983) 2 एससीसी 422 (प्रस्तर 6)
3. एसआर तिवारी बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, (2013) 6 एससीसी 602 (प्रस्तर 6)
4. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम बोडुपल्ली गोपालस्वामी, (2011) 13 एससीसी 553 (प्रस्तर 6)
5. चरणजीत लांबा बनाम कमांडिंग ऑफिसर, सेना दक्षिणी कमान एवं अन्य, (2010) 11 एससीसी 314 (प्रस्तर 6)
6. बीसी चतुर्वेदी बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, (1985) 6 एससीसी 749 (प्रस्तर 6)
7. रंजीत ठाकुर बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, (1987) 4 एससीसी 611 (प्रस्तर 6)
8. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य, (2009) 2 एससीसी 570 (प्रस्तर 6)
9. सेंट कर्ण और अन्य बनाम एन. गंगाराज, MANU/SC/0187/2020 (प्रस्तर 19)

वर्तमान याचिका विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 27.04.2023 के निर्णय और आदेश का विरोध करती है, जिसके तहत प्रतिपक्षी संख्या 1/याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका को स्वीकार कर लिया गया है और सेवा से बर्खास्तगी के दंड के दिनांक 14.08.2019 के आदेश और छावनी बोर्ड के दिनांक 14.08.2019 के संकल्प के साथ-साथ दंड आदेश के खिलाफ अपील को खारिज करने वाले अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, दिनांक 01.06.2021 को रद्द कर दिया गया है।

(माननीय देवेंद्र कुमार उपाध्याय, न्यायमूर्ति एवं माननीय ओम प्रकाश शुक्ला, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया)

(1) अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री संजीव सिंह, श्री अजय कुमार सिंह और सुश्री शताब्दी शुक्ला की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश चन्द्र मिश्रा, डॉ एल.पी. मिश्रा, श्री गौरव मेहरोत्रा, श्री रोहित अग्रवाल, श्री चिन्मय मिश्रा और हमने प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से श्री अनन्त खन्ना तथा प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री निशांत शुक्ला को सुना तथा इस विशेष अपील में हमारे समक्ष प्रस्तुत अभिलेख का अवलोकन किया।

(2) न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए, यह अंतर-न्यायालय अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 27.04.2023 के निर्णय और आदेश पर सवाल उठाती है, जिसके तहत

प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट-ए संख्या 14919/2021 को अनुमति दी गई है और सेवा से बर्खास्तगी के दंड के दिनांक 14.08.2019 के आदेश और छावनी बोर्ड के दिनांक 14.08.2019 के संकल्प के साथ-साथ दंड आदेश के खिलाफ अपील को खारिज करने वाले अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, दिनांक 01.06.2021 को रद्द कर दिया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को अनुमति देते हुए अपीलकर्ता-छावनी बोर्ड, मेरठ को प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता को उस पद पर सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करने का भी निर्देश दिया है, जिस पर वह अपनी बर्खास्तगी से पहले काम कर रहा था।

(3) अपीलकर्ताओं-प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से तर्क दिया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 27.04.2023 को पारित अपील के तहत आदेश इस कारण से संधारणीय नहीं है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने पूर्ण विभागीय जांच के समापन के बाद पारित सेवा से बर्खास्तगी के आदेश के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के दायरे से परे अपने अधिकार क्षेत्र का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। अपीलकर्ताओं-प्रतिवादियों की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य किया है, क्योंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने साक्ष्यों की नए सिरे से सराहना करके अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज

किए गए निष्कर्षों में अपने स्वयं के निष्कर्षों को प्रतिस्थापित किया है जो कि जहां तक अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित मामलों की न्यायिक समीक्षा का संबंध है, स्वीकार्य नहीं है।

(4) यह भी तर्क दिया गया है कि जांच करने के दौरान अपनाई गई प्रक्रिया में किसी भी दोष के बारे में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लौटाए गए किसी भी निष्कर्ष के अभाव में, सजा के आदेश को रद्द नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार उन्होंने तर्क दिया है कि प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही अनुशासनात्मक कार्यवाही को विनियमित करने वाले नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार की गई थी और चूंकि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किसी भी अनियमितता या किसी भी कानूनी प्रावधानों के उल्लंघन की ओर इशारा नहीं किया गया है, इसलिए अपील के तहत आदेश टिकाऊ नहीं है।

(5) श्री मिश्रा ने यह भी तर्क दिया है कि एक बार जब रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 'कदाचार' के संबंध में दिए गए निष्कर्षों को रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों द्वारा समर्थित किया जाता है, तो सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय को उचित नहीं ठहराया जा सकता है। अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह

भी तर्क दिया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों द्वारा समर्थित नहीं किया गया है और इस प्रकार अपील के तहत निर्णय को विशेष रूप से इस कारण से बरकरार नहीं रखा जा सकता है कि प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता के खिलाफ शिकायत किए गए विभिन्न कृत्य स्पष्ट रूप से सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के प्रावधानों के अनुसार कदाचार के बराबर हैं। इस दृष्टिकोण से, यह दलील दी गई है कि अपील के तहत आदेश संधारणीय नहीं है और तदनुसार अपील को अनुमति दी जानी चाहिए।

(6) इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य विद्वान अधिवक्ता की सहायता से डॉ एल पी मिश्रा ने तर्क दिया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश कानूनी स्थिति से अवगत थे कि न्यायिक समीक्षा अपीलीय क्षेत्राधिकार का विकल्प नहीं हो सकती है और इस प्रकार उन्होंने पक्षों की प्रस्तुतियों पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह एक ऐसा प्रकरण था जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृति के दोष से ग्रस्त थे। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि यह कानून का अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ (यूओआई) बनाम पी गुनासेकरन [2015 (2) एससीसी 610]** प्रकरण में प्रतिपादित किया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में इस

न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप स्वीकार्य है यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कुछ विकृति है। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, डॉ मिश्रा ने विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया है जो हैं (i) **भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** [(1983) 2 एससीसी 442], (ii) **एसआर तिवारी बनाम भारत संघ और अन्य** [(2013) 6 एससीसी 602], (iii) **भारत संघ और अन्य बनाम बोडुपल्ली गोपालस्वामी** [(2011) 13 एससीसी 553], (iv) **चरणजीत लांबा बनाम कमांडिंग ऑफिसर, सेना दक्षिणी कमान और अन्य** [(2010) 11 एससीसी 314]। (v) **बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ और अन्य** [(1995) 6 एससीसी 749], (vi) **रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ और अन्य** [(1987) 4 एससीसी 611] और (vii) **रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य** [(2009) 2 एससीसी 570]।

(7) प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने इस दलील को पुष्ट करने के लिए कुछ अन्य निर्णयों का भी हवाला दिया है कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति के दायरे में है कि यह न्यायालय विभागीय कार्यवाही के मामलों में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों में भी हस्तक्षेप कर सकता है, यदि निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं या वे साक्ष्य की गलत व्याख्या पर आधारित हैं या वे विकृत हैं। इन निर्णयों का हवाला इस बात पर जोर देने के लिए भी दिया गया है कि आनुपातिकता का सिद्धांत विभागीय कार्यवाही

में पारित ऐसे आदेश की जांच करते समय इस न्यायालय के समक्ष दंड आदेश को चुनौती देने का आधार हो सकता है।

(8) प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से दलील यह है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया है जो रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य की सही सराहना पर आधारित है और इस प्रकार सेवा से बर्खास्तगी की सजा के आदेश को भी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रद्द कर दिया गया है। इस दृष्टिकोण से, प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता की ओर से दलील यह है कि इस विशेष अपील में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए और यह विशेष अपील खारिज किए जाने योग्य है।

(9) हमने संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर गहन विचार किया है।

(10) इस अपील में शामिल मुद्दे के उचित न्यायनिर्णयन के लिए, हम कुछ तथ्यों पर ध्यान देना उचित समझते हैं। प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता, प्रासंगिक समय पर, छावनी अधिशासी अभियंता के पद पर तैनात था और इंजीनियरिंग अनुभाग का प्रमुख था। अपीलकर्ताओं-प्रतिवादियों का यह प्रकरण है कि प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता, छावनी बोर्ड, मेरठ के इंजीनियरिंग अनुभाग में 24 वर्षों तक सेवा करने के कारण मेरठ छावनी के तथ्यों और परिस्थितियों से अच्छी तरह वाकिफ था ,

हालांकि, उसके द्वारा की गई चूक के कारण अनधिकृत निर्माण और अतिक्रमण इस हद तक हुआ कि मेरठ छावनी की भौगोलिक तस्वीर बदल गई। कुछ आरोपों के संबंध में, प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता को 20.12.2013 को एक आरोप पत्र जारी किया गया था, जिसमें आरोपों के सात लेख और प्रत्येक आरोप के समर्थन में कदाचार के आरोप का विवरण शामिल था हालांकि, वह धारा 147, 302/34 आईपीसी के तहत दिनांक 09.07.2016 को दर्ज एक आपराधिक प्रकरण के अनुसरण में जेल में रहे। चूंकि वह जेल में थे, इसलिए 27.07.2016 को उनके खिलाफ निलंबन का आदेश पारित किया गया और उक्त निलंबन आदेश 11.01.2018 तक जारी रहा, उसके बाद इसे रद्द कर दिया गया।

(11) प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता ने 30.06.2017 को आरोप पत्र के प्रति बचाव का एक विस्तृत लिखित बयान प्रस्तुत किया। उन्होंने आरोप के प्रत्येक लेख के संबंध में जांच अधिकारी के समक्ष दिनांक 18.08.2018 को लिखित संक्षिप्त विवरण भी प्रस्तुत किया। जांच अधिकारी ने जांच करने के बाद 13.03.2019 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता को आरोप सं. 1 से 5 के संबंध में कदाचार का दोषी पाया गया। आरोप सं. 6 आंशिक रूप से सिद्ध पाया गया, जबकि आरोप सं. 7 सिद्ध नहीं पाया गया। जांच रिपोर्ट प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता को दी गई, जिन्होंने 17.06.2019 को जांच रिपोर्ट पर अपना स्पष्टीकरण/ टिप्पणियां/ लिखित प्रस्तुतिकरण प्रस्तुत किया।

(12) छावनी अधिनियम, 2006 और संबंधित नियमों के प्रावधानों के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी होने के नाते छावनी बोर्ड ने जांच रिपोर्ट और प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता द्वारा जांच रिपोर्ट पर दिए गए उत्तर/अभ्यावेदन पर विचार किया और सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया कि प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त किया जाए। सेवा से बर्खास्तगी के उक्त निर्णय के खिलाफ नियमों के संबंधित प्रावधानों के तहत अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील की गई, हालांकि, अपीलीय प्राधिकारी ने पाया कि प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता के खिलाफ पहला आरोप साबित नहीं हुआ, जबकि आरोप सं. 2 से 5 भी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा साबित पाए गए। अपीलीय प्राधिकारी ने आरोप सं. 6 के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी से भी सहमति व्यक्त की, जहां उन्होंने प्रतिवादी सं. 1/याचिकाकर्ता को आंशिक रूप से दोषी पाया। इस प्रकार अपीलीय प्राधिकारी ने छावनी निधि सेवक नियम, 1937 के नियम 11(2)(vi) के अनुसार सेवा से बर्खास्तगी के प्रमुख दंड को कम करके अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा में बदल दिया।

(13) छावनी बोर्ड के उक्त निर्णय और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता द्वारा रिट-ए संख्या 14919/2021 दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई है जो हमारे समक्ष अपील के अधीन है।

(14) उपर्युक्त पृष्ठभूमि तथ्यों में, यदि हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित

निर्णय और आदेश पर विचार करते हैं, तो हम पाते हैं कि तथ्यों, आरोप पत्र की विषय-वस्तु और आरोपों के समर्थन में जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया है, उन पर ध्यान देने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने संबंधित पक्षों द्वारा की गई दलीलों पर भी ध्यान दिया है और अनुशासनात्मक कार्यवाही में न्यायिक समीक्षा के दायरे से संबंधित सिद्धांत पर भी ध्यान दिया है और उसका अवलोकन किया है। इस प्रकार विद्वान एकल न्यायाधीश ने टिप्पणी की है कि ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा निर्णय लेने की प्रक्रिया से संबंधित है और यह देखने के लिए है कि क्या यह विकृत, अवैध है या यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत गैर-मनमानापन के परीक्षण को पूरा करने में विफल रहता है।

(15) तथापि, अनुशासनात्मक मामलों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के दायरे को नियंत्रित करने वाले उपरोक्त सिद्धांतों का अवलोकन करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्येक आरोप के संबंध में जांच रिपोर्ट का विश्लेषण किया है और जांच अधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही पर भी विचार किया है।

(16) जांच रिपोर्ट तथा सेवा से बर्खास्तगी के दंड का आदेश भी रिकॉर्ड में है। जांच अधिकारी ने प्रत्येक आरोप के संबंध में रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य तथा प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विस्तार से विचार किया है तथा उसमें उल्लिखित

निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने भी पूरे प्रकरण पर विचार किया है तथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजों तथा साक्ष्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष दिए हैं। इसी प्रकार, अपीलीय प्राधिकारी ने भी प्रत्येक आरोप के संबंध में रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य पर विचार किया है तथा इस प्रकार वह कुछ आरोपों के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने अपने अंतिम निष्कर्ष में बर्खास्तगी के दंड को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के दंड में घटा दिया है।

(17) विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि इस प्रकरण में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने केवल जांच अधिकारी के प्रस्तुतीकरण के आधार पर निष्कर्ष निकाला है और प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता द्वारा किए गए बचाव के संबंध में कोई विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है। हालांकि, हमारी सुविचारित राय में यह निष्कर्ष रिकॉर्ड के विरुद्ध है क्योंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट और प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर सहित जांच कार्यवाही के रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर स्पष्ट रूप से चर्चा की है। हमने यह भी देखा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के संबंध में यह निष्कर्ष भी दर्ज किया है कि दूसरे से पांचवें आरोप से निपटने के दौरान, अपीलीय प्राधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि पर्यवेक्षण के कर्तव्य से किसी भी प्रकार के मामूली विचलन को गंभीरता से लिया जाना चाहिए और इसके अलावा अपीलीय प्राधिकारी ने यह भी

अभिनिर्धारित किया है कि अधीनस्थ/तकनीकी कर्मचारियों द्वारा कर्तव्यों का अप्रभावी निष्पादन प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता को उसके कर्तव्यों के गैर-निष्पादन के लिए दोषमुक्त नहीं करता है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अपील के तहत निर्णय में यह देखा गया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने 'पर्यवेक्षक' या 'पर्यवेक्षण करना' शब्द के शब्दकोश अर्थ के आधार पर अपना निष्कर्ष निकाला है और उन्होंने कहीं भी यह नहीं अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता किसी भी तरह से अवैध निर्माण या फसलों की अवैध खेती में सक्रिय रूप से शामिल था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा है कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष गलत हैं क्योंकि 'पर्यवेक्षण करना' या 'पर्यवेक्षण करना' शब्द के शब्दकोश अर्थ की सहायता केवल तभी ली जा सकती है जब पर्यवेक्षी भूमिका और पर्यवेक्षी कर्तव्यों को निर्दिष्ट नहीं किया गया हो, जबकि वर्तमान प्रकरण में कर्तव्यों की प्रकृति स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट और विस्तृत थी, जहां अवैध निर्माण के लिए प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता को कोई भूमिका नहीं सौंपी गई थी और रिपोर्टिंग की भूमिका विशेष रूप से जूनियर इंजीनियर श्री केए गुप्ता, श्री पीयूष गौतम और श्री विनोद गुप्ता के साथ-साथ श्री रोशन ज़मीर, ड्राफ्ट्समैन को सौंपी गई थी। इस प्रकार विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया है कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश गलत और विकृत है।

(18) अनुशासनात्मक कार्यवाही में अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय

प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष को विकृत या गलत कहे जाने के लिए, हमारी राय में, यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अनुशासनात्मक प्राधिकारी या यहां तक कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा किए गए निर्णय पर अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका नहीं ले सकता है। तथ्यों के निष्कर्षों में विकृतियां, जैसा कि सर्वविदित है, केवल तभी उत्पन्न होती हैं जब किसी प्राधिकारी या न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया कोई निष्कर्ष बिना किसी साक्ष्य या साक्ष्य की गलत व्याख्या या अस्वीकार्य साक्ष्य की स्वीकृति या मुद्दे से संबंधित किसी साक्ष्य की अज्ञानता पर आधारित न हो। अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में, जैसा कि अच्छी तरह से स्थापित है, साक्ष्य के सख्त नियम का कोई अनुप्रयोग नहीं होता है। तदनुसार, केवल इसी कारण से इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा या न्यायिक जांच की शक्ति का प्रयोग करते

(19) एक ही सांस में, हम यह भी देखते हैं कि किसी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक जांच के प्रकरण में यदि अनुशासनात्मक / अपीलीय प्राधिकारी किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है जो रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित है और यदि संबंधित प्राधिकारी द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक प्रशंसनीय दृष्टिकोण है, तो इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त अपनी शक्ति के तहत ऐसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए।

इस संबंध में कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एन. गंगाराज [मनु/एससी/0187/2020] के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है। उक्त फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामलों में न्यायिक समीक्षा के दायरे से संबंधित संपूर्ण कानून की समीक्षा की है और स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय से अपील नहीं है, बल्कि जिस तरीके से निर्णय लिया जाता है उसकी समीक्षा है। भारत संघ बनाम पी. गुणसेकरन (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय का हवाला देते हुए, यह देखा गया है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत, उच्च न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा और न ही जांच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करेगा, यदि यह कानून और लागू नियमों के अनुसार किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि उच्च न्यायालय साक्ष्य की पर्याप्तता या उसकी विश्वसनीयता पर भी विचार नहीं करेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई आगे की टिप्पणियां हैं कि यदि कोई कानूनी साक्ष्य है जिस पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं तो उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा। यह भी देखा गया है कि दंड की आनुपातिकता के सिद्धांत का सहारा केवल तभी लिया जा सकता है जब कर्मचारी को दी गई सजा न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर दे। एन. गंगाराज (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निर्णय के पैराग्राफ 6 से 13 नीचे उद्धृत किए गए हैं : -

“6. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार किया है तथा निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध हो गए हैं।

7. हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए दंड के आदेश में न्यायाधिकरण द्वारा हस्तक्षेप स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है। संवैधानिक न्यायालय या न्यायाधिकरण को दी गई न्यायिक समीक्षा की शक्ति अपीलीय प्राधिकारी की नहीं है।

8. आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम एस. श्री राम राव मनु/एससी/0222/ 1963: AIR 1963 SC 1723 में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के निर्णय पर अपील करने वाला न्यायालय नहीं है। यह निर्धारित करने के लिए चिंतित है कि क्या जांच उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है, और उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है, और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं किया गया है। न्यायालय ने निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया:

“7. ... संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय किसी लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के निर्णय पर अपील की न्यायालय के रूप में गठित नहीं है: इसका

संबंध यह निर्धारित करने से है कि क्या जांच उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है, और उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है, और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं किया गया है। जहां कुछ सबूत हैं, जिन्हें जांच करने का कर्तव्य सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और जो सबूत उचित रूप से इस निष्कर्ष का समर्थन कर सकते हैं कि दोषी अधिकारी आरोप का दोषी है, अनुच्छेद 226 के तहत रिट के लिए याचिका में साक्ष्य की समीक्षा करना और साक्ष्य पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है।”

9. बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ और अन्य मनु/एससी/0118/ 1996: (1995) 6 एससीसी 749 में, फिर से, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति किसी निर्णय से अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित व्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि अधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचे वह न्यायालय की नज़र में आवश्यक रूप से सही हो। न्यायालय/न्यायाधिकरण अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और साक्ष्य पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

“12. न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की

समीक्षा है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित व्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि अधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचे वह न्यायालय की दृष्टि में आवश्यक रूप से सही हो। जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोपों पर जांच की जाती है, तो न्यायालय/अधिकरण यह निर्धारित करने के लिए चिंतित होता है कि क्या जांच किसी सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया गया था। चाहे निष्कर्ष या निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित हों, जांच करने की शक्ति रखने वाले अधिकारी के पास तथ्य या निष्कर्ष पर पहुंचने का अधिकार, शक्ति और अधिकार होता है। लेकिन वह निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित होना चाहिए। न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही तथ्य या साक्ष्य के प्रमाण के नियम, जैसा कि इसमें परिभाषित किया गया है, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं। जब अधिकारी यह स्वीकार करता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष उससे समर्थन प्राप्त करते हैं, तो अनुशासनात्मक अधिकारी यह मानने का हकदार है कि दोषी अधिकारी आरोप का दोषी है। न्यायालय/न्यायालय न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने तथा साक्ष्य पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है, जहाँ प्राधिकारी ने अपराधी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ असंगत तरीके से की हो या जाँच के तरीके को

निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन किया हो या जहाँ अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष या निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित न हो। यदि निष्कर्ष या निष्कर्ष ऐसा हो जिस पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी नहीं पहुँच सकता, तो न्यायालय/न्यायालय निष्कर्ष या निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, तथा राहत को इस प्रकार ढाल सकता है कि वह प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों के लिए उपयुक्त हो।

13. अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है। जहाँ अपील प्रस्तुत की जाती है। अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य या दंड की प्रकृति का पुनर्मूल्यांकन करने की व्यापक शक्ति होती है। अनुशासनात्मक जांच में, कानूनी साक्ष्य का सख्त प्रमाण और उस साक्ष्य पर निष्कर्ष प्रासंगिक नहीं होते हैं। साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता को न्यायालय/अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एचसी गोयल [मनु/एससी/0271/ 1963 : (1964) 4 SCR 718] में, इस न्यायालय ने पृष्ठ 728 पर अभिनिर्धारित किया कि यदि साक्ष्य पर विचार करने के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष गलत है या रिकॉर्ड के आधार पर स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है या किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो उत्प्रेषण रिट जारी की जा सकती है।

10. बॉम्बे उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार बनाम शशिकांत एस. पाटिल और अन्य के माध्यम से प्रकरण में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित

किया कि विभागीय अधिकारियों के निर्णय में हस्तक्षेप की अनुमति है, यदि ऐसे अधिकारियों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए या ऐसी जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए कार्यवाही की हो। यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया :

“16. ऐसा लगता है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इस प्रकरण को ऐसे देखा है जैसे कि यह उच्च न्यायालय के प्रशासनिक/ अनुशासनात्मक प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ अपील हो। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए विभागीय अधिकारियों के निर्णय में हस्तक्षेप की अनुमति दी जा सकती है, यदि ऐसे प्राधिकरण ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए या ऐसी जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए कार्यवाही की हो या यदि प्राधिकरण का निर्णय प्रकरण के साक्ष्य और गुण-दोष से परे विचारों से प्रभावित हो, या यदि प्राधिकरण द्वारा निकाला गया निष्कर्ष, पहली नज़र में, पूरी तरह से मनअभिनिर्धारित किया या मनमानी हो कि कोई भी उचित व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता, या उपरोक्त के समान आधार हो। लेकिन हम इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते कि विभागीय प्राधिकरण (इस प्रकरण में उच्च न्यायालय की अनुशासन समिति) तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है, यदि जांच ठीक से की गई है। स्थापित कानूनी स्थिति यह है कि यदि

कोई कानूनी साक्ष्य है जिस पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष विचारणीय विषय नहीं है।"

11. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर बनाम नेमी चंद नलवाया मनु/एससी/0411/ 2011 : (2011) 4 SCC 584 में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करेंगे और घरेलू जांच में प्रस्तुत साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेंगे, न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करेंगे कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर दूसरा दृष्टिकोण संभव है। यदि जांच निष्पक्ष और उचित तरीके से की गई है और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीय प्रकृति का प्रश्न विभागीय जांच में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा। न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :

"7. अब यह अच्छी तरह से तय हो चुका है कि अदालतें अपीलीय न्यायालय के रूप में काम नहीं करेंगी और घरेलू जांच में पेश किए गए सबूतों का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेंगी, न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करेंगी कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर एक और दृष्टिकोण संभव है। यदि जांच निष्पक्ष और उचित तरीके से की गई है और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीय प्रकृति का सवाल विभागीय जांच में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा। इसलिए, अदालतें विभागीय जांच में दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेंगी, सिवाय इसके कि ऐसे

निष्कर्ष बिना किसी सबूत के आधारित हों या जहां वे स्पष्ट रूप से विकृत हों। विकृतियों का पता लगाने के लिए परीक्षण यह देखना है कि क्या न्यायाधिकरण उचित रूप से कार्य करते हुए रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर ऐसे निष्कर्ष या निष्कर्ष पर पहुंच सकता था। हालांकि, अदालतें अनुशासनात्मक मामलों में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करेंगी, यदि प्राकृतिक न्याय या वैधानिक नियमों के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया हो या यदि आदेश मनमाना, मनमानी, दुर्भावनापूर्ण या बाहरी विचारों पर आधारित पाया गया हो। (देखें बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ मनु/एससी/0118/ 1996: (1995) 6 एससीसी 749, भारत संघ बनाम जी. गणयुथम मनु/एससी/0834/1997: (1997) 7 एससीसी 463 और बैंक ऑफ इंडिया बनाम डेगाला सूर्यनारायण मनु/एससी/0399/1999: (1999) 5 एससीसी 762, बॉम्बे उच्च न्यायालय बनाम शशिकांत एस. पाटिल मनु/एससी/0603/1999: (2001) (sic 2000) 1 एससीसी 416)

xx xx xx

12. यह तथ्य कि आपराधिक न्यायालय ने बाद में प्रतिवादी को संदेह का लाभ देकर बरी कर दिया, किसी भी तरह से पूरी की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को अमान्य नहीं करेगा और न ही दोष के निष्कर्ष या परिणामी दंड की वैधता को प्रभावित करेगा। आपराधिक कार्यवाही में आवश्यक सबूत के मानक विभागीय जांच में आवश्यक सबूत के मानक से भिन्न होने के कारण, एक ही आरोप और साक्ष्य दोनों कार्यवाहियों में अलग-अलग परिणाम दे सकते हैं, अर्थात् विभागीय

कार्यवाही में दोष का निष्कर्ष और आपराधिक कार्यवाही में संदेह का लाभ देकर बरी होना। यह तब और भी अधिक होता है जब आपराधिक कार्यवाही की तुलना में विभागीय कार्यवाही घटना के समय के अधिक निकट होती है। आपराधिक न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों का पहले से संपन्न घरेलू जांच पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। एक कर्मचारी जो जांच में निष्कर्षों और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दिए गए दंड को चुनौती न देकर अंतिम रूप लेने देता है, वह कई वर्षों के बाद इस आधार पर निर्णय को चुनौती नहीं दे सकता कि बाद में, आपराधिक न्यायालय ने उसे बरी कर दिया है।”

13. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम पी. गुनासेकरन मनु/एससी/1068/ 2014 : (2015) 2 SCC 610 नामक एक अन्य निर्णय में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि साक्ष्यों की पुनः समीक्षा करते समय उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकता। न्यायालय ने यह मानदंड निर्धारित किया कि उच्च न्यायालय को अनुशासनात्मक कार्यवाही में कब हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए:

13. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय निम्नलिखित कार्य नहीं करेगा:

- (i) साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करना;
- (ii) जांच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना, यदि जांच विधि के अनुसार की गई हो ;
- (iii) साक्ष्य की पर्याप्तता की जांच करना ;
- (iv) साक्ष्य की विश्वसनीयता की जांच करना ;

(v) यदि कोई कानूनी साक्ष्य हो जिस पर निष्कर्ष आधारित हो तो हस्तक्षेप करना।

(vi) तथ्य की त्रुटि को सही करना, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न प्रतीत हो;

(vii) दण्ड की आनुपातिकता पर विचार करें जब तक कि इससे उसकी अंतरात्मा को आघात न पहुंचे।

13. दूसरी ओर प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इलाहाबाद बैंक बनाम कृष्ण नारायण तिवारी मनु/एससी/0006/2017: (2017) 2 SCC 308 के रूप में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी किसी ऐसे निष्कर्ष को दर्ज करता है जो किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या ऐसा निष्कर्ष जो अनुचित रूप से प्राप्त हुआ है, तो रिट न्यायालय अनुशासनात्मक कार्यवाही के निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है। हमें नहीं लगता कि उस परीक्षण के आधार पर भी, न्यायाधिकरण या उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है। यह कोई सबूत नहीं होने या निष्कर्षों के गलत होने का प्रकरण नहीं है। प्रतिवादी के कदाचार का दोषी होने के निष्कर्ष में केवल इस आधार पर हस्तक्षेप किया गया है कि विभाग के साक्ष्य में विसंगतियां हैं। साक्ष्य में विसंगतियां इसे बिना सबूत का प्रकरण नहीं बनाती हैं। जांच अधिकारी ने साक्ष्य की सराहना की है और यह निष्कर्ष दिया है कि प्रतिवादी कदाचार का दोषी है।”

(20) जब हम इस प्रकरण में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का विश्लेषण उपरोक्त कानूनी सिद्धांतों के प्रकाश में करते हैं, तो हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही किसी नियम या कानून के अनुसार नहीं की गई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी संख्या 1/ याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान अपनाई गई प्रक्रिया में कोई दोष या अवैधता या अनियमितता भी नहीं पाई है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के संबंध में भी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निष्कर्ष नहीं लौटाए गए हैं।

(21) इसके विपरीत, रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो दूर से भी यह इंगित कर सके कि प्रतिवादी संख्या 1/याचिकाकर्ता के खिलाफ इस प्रकरण में अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान कोई प्रक्रियात्मक चूक या कोई अनियमितता या अवैधता या किसी नियम का उल्लंघन हुआ है। रिकॉर्ड से ऐसी किसी चूक के सामने न आने पर, हमारी सुविचारित राय में, विद्वान एकल न्यायाधीश को अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में अपने स्वयं के निष्कर्षों को प्रतिस्थापित करने की सीमा तक प्रवेश नहीं करना चाहिए था। जब हम ऐसा कहते हैं, तो हमारा यह कहने का मतलब नहीं है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित ऐसे

किसी भी प्रकरण में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की अनुमति नहीं है, हालाँकि, जहाँ तक अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों का संबंध है, इसका दायरा बहुत सीमित है। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, पी. गुनासेकरन (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय पहले ही यह मान चुका है कि साक्ष्य की पर्याप्तता या यहां तक कि साक्ष्य की विश्वसनीयता पर भी इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए विचार करने की अनुमति नहीं होगी, यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष कुछ कानूनी साक्ष्य पर आधारित हैं, जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं।

(22) उपर्युक्त कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश से सहमत नहीं हैं, जो हमारे समक्ष अपीलाधीन है।

(23) परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है और रिट-ए संख्या 14919/2021 में पारित दिनांक 27.04.2023 के निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है।

(24) हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 7 ILRA 188

मूल अधिकार क्षेत्र
सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

याचिका ए संख्या 2878 वर्ष 2014

उषा देवी याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
सालिक राम यादव

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., नदीम मुर्तजा

ए. सेवा कानून - अनुकंपा नियुक्ति -
सेवानिवृत्त कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों
को अनुकंपा नियुक्ति देने का कोई प्रावधान
नहीं हो सकता।

याचिकाकर्ता के पति दिनांक 20.07.2002 को प्रतिपक्षियों के अधीन वरिष्ठ लिपिक के पद पर कार्य करते समय लापता हो गए थे। उनकी वास्तविक सेवानिवृत्ति की तिथि 30.04.2006 थी। याचिकाकर्ता द्वारा यह घोषणा प्राप्त करने हेतु सक्षम न्यायालय के समक्ष वाद दाखिल किया गया था कि याचिकाकर्ता के पति मृत घोषित किए जाएं। उक्त घोषणा दिनांक 23.02.2011 को निर्गत की गई। जब तक यह घोषणा निर्गत हुई, तब तक याचिकाकर्ता के

पति सेवानिवृत्त हो चुके थे। याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति की मांग को विभाग द्वारा दिनांक 10.07.2013 के आदेश के माध्यम से इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि जब सक्षम न्यायालय द्वारा दिनांक 23.02.2011 को घोषणा दी गई, उस समय तक याचिकाकर्ता के पति सेवानिवृत्त हो चुके थे और इस प्रकार सेवानिवृत्त कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों को अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने का कोई अवसर नहीं था। (प्रस्तर 7)

बी. साक्ष्य अधिनियम, 1872 : धारा 108 - मृत्यु की अनुमानात्मक धारणा - मृत्यु की विशिष्ट तिथि को सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो उस तथ्य की स्थापना के आधार पर कोई अधिकार दावा करता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 यह दर्शाती है कि जब कोई व्यक्ति सात वर्षों तक सुना नहीं गया हो, तो उसकी मृत्यु की अनुमान लगाया जा सकता है, परंतु मृत्यु का सटीक समय अनुमान का विषय नहीं है, बल्कि साक्ष्य का विषय है, और यह सिद्ध करने का दायित्व उस व्यक्ति पर है, जो उस अधिकार की स्थापना का दावा करता है, जिसके लिए वह तथ्य आवश्यक है। (प्रस्तर 10, 11)

वर्तमान वाद में, यह याचिकाकर्ता है जो अनुकंपा नियुक्ति हेतु यह दावा प्रस्तुत कर रही है कि याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु उनकी वास्तविक सेवानिवृत्ति तिथि, अर्थात् 30.04.2006 से पूर्व ही हो गई थी, क्योंकि वह दिनांक 20.07.2002 को लापता हो गए थे। तथापि, संपूर्ण याचिका में कहीं भी याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु की वास्तविक

तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है और न ही किसी सक्षम न्यायालय द्वारा निर्गत किसी भी घोषणा से कोई विशिष्ट तिथि स्पष्ट होती है कि याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु किस तिथि को हुई। याचिकाकर्ता के पति की वास्तविक मृत्यु तिथि के तथ्य के बारे में प्रश्न विवादित बना हुआ है। (प्रस्तर 12, 13, 14)

रिट याचिका निरस्त की गई। (ई-4)

निम्नलिखित उदाहरण:

1. जिशान खान बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक एवं अन्य, 2012 मुकदमा (इलाहाबाद) 1265, 02.03.2012 को निर्णय (प्रस्तर 5)
2. एन. जयलक्ष्मी अम्माल एवं अन्य बनाम आर. गोपाला पाथर एवं अन्य, 1995 सप (1) एससीसी 27 (प्रस्तर 5)
3. दर्शन सिंह एवं अन्य बनाम गुज्जर सिंह एवं अन्य, (2002) 2 एससीसी 62 (प्रस्तर 5)
4. लाल चंद मारवाड़ी बनाम महंत रामरूप गिर, एआईआर 1926 पीसी 9 (प्रस्तर 11)

वर्तमान याचिका दिनांक 10.07.2013 के आदेश को (भुगतान बकाया को छोड़कर) चुनौती देती है तथा मृतक आश्रित सेवा नियम के अंतर्गत नियुक्ति के लिए और सभी परिणामी लाभों के लिए निर्देश की प्रार्थना करती है।

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन, द्वारा प्रदत्त)

1. याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा का पक्ष रखते हुए अधिवक्ता श्री प्रशस्त पुरी को सुना गया।

2. इस मामले की सुनवाई दिनांक 05.07.2023 को विस्तार से हुई थी। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर मामले की सुनवाई आज के लिए तय की गई थी।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री सालिक राम यादव को विस्तार से सुना गया।

4. याची द्वारा निम्नलिखित राहत के लिए यह याचिका दायर की गई है:

"(1). प्रत्यर्थी सं 2 द्वारा पारित भुगतान बकाया को छोड़कर दिनांक 10.07.2013 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।

(2) एक रिट, निर्देश आदेश जारी करें, जो प्रत्यर्थियों को आदेश दे कि वे याची को उसके पति के स्थान पर मृतक आश्रित भर्ती नियामवली के तहत नियुक्त करें और उसे सभी परिणामी लाभ का भुगतान करें।"

5. मामले के तथ्य निम्नानुसार हैं:-

अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने वाली विधवा याची 10.07.2013 के आदेश से व्यथित है, जिसकी प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक

क्रमांक 1 में है, जिसके द्वारा याची की अनुकंपा नियुक्ति का दावा खारिज कर दिया गया है। अस्वीकृति का आधार यह है कि याची का पति प्रत्यर्थियों के अधीन वरिष्ठ लिपिक के रूप में काम करते हुए दिनांक 20.07.2002 को लापता हो गया था। उनकी सेवानिवृत्ति की तिथि 30.04.2006 थी, जबकि सक्षम न्यायालय द्वारा याची के पति को मृत घोषित करने की घोषणा दिनांक 23.02.2011 को जारी की गई थी और इस प्रकार, जब तक सक्षम न्यायालय द्वारा घोषणा दी गई, तब तक याची का पति पहले ही सेवानिवृत्त हो चुका था, परिणामस्वरूप वह अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र नहीं है।

याची ने **जीशान खान बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक एवं अन्य 2012 मुकदमा (आल) 1265** के मामले में इस न्यायालय के दिनांक 02.03.2012 को निर्णीत निर्णय पर भरोसा करते हुए अस्वीकृति के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत इस न्यायालय ने इसी प्रकार के एक मामले में माना था कि मृत्यु की धारणा सेवानिवृत्ति की तिथि से पहले उत्पन्न होगी, जब विभाग ने स्वयं लापता कर्मचारी की सेवानिवृत्ति बकाया राशि का भुगतान कर दिया हो और इस मामले में भी चूंकि सेवानिवृत्ति बकाया राशि का भुगतान कर दिया गया है, इसलिए याची के पति की मृत्यु की धारणा उसके लापता होने की तिथि अर्थात् दिनांक 20.07.2002 से संबंधित होगी।

दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा का पक्ष रखते हुए अधिवक्ता श्री प्रशाथ पुरी ने एन.

जयलक्ष्मी अम्मल एवं अन्य बनाम आर. गोपाला पाथर एवं अन्य 1995 (1) एससीसी 27 और दर्शन सिंह एवं अन्य बनाम गुज्जर सिंह एवं अन्य (2002) 2 एससीसी 62 मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि हालांकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 में मृत्यु की धारणा इंगित की गई है, जहां किसी व्यक्ति की सात वर्षों तक सुनवाई नहीं हुई है, लेकिन मृत्यु का सही समय धारणा का विषय नहीं है, बल्कि साक्ष्य का है और यह साबित करने का भार कि मृत्यु सात वर्षों के भीतर किसी विशेष समय पर हुई है, उस व्यक्ति पर है, जो यह स्थापित करने के अधिकार का दावा करता है

उपर्युक्त टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए, श्री पुरी का तर्क यह है कि वर्तमान मामले के तथ्यों में, जहां याची के पति का लापता होना जुलाई, 2002 में हुआ था और वह दिनांक 30.04.2006 को सेवानिवृत्त हुए थे, जबकि अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने के समय सक्षम न्यायालय की घोषणा 23.02.2011 है, याची के पति पहले से ही सेवानिवृत्त थे और उनकी सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले याची के पति की मृत्यु का सही समय इंगित करने के लिए कोई सबूत नहीं है और परिणामस्वरूप अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं होगा क्योंकि अनुकंपा नियुक्ति का दावा केवल मृतक कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों द्वारा किया जा सकता है, जिनकी मृत्यु सेवा करने के दौरान हो जाती है, लेकिन इस विशेष मामले में कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के बाद

अनुकंपा नियुक्ति पर कोई विचार नहीं किया जा सकता था।

जिशान खान (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि उक्त मामले में भी इस न्यायालय का विचार है कि चूंकि सेवानिवृत्ति बकाया राशि संबंधित कर्मचारी की वास्तविक सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले ही चुका दी गई है, इसलिए यह माना जाएगा कि उक्त कर्मचारी अपनी सेवानिवृत्ति से पहले ही सेवानिवृत्त हो गया था, इसलिए कानूनी उत्तराधिकारी अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का हकदार होगा। इस मामले में भी हालांकि सेवानिवृत्ति बकाया राशि संबंधित कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के काफी बाद में चुकाई गई है। फिर भी यह देखते हुए कि उक्त सेवानिवृत्ति बकाया राशि कर्मचारी के लापता होने की तारीख से दो वर्ष बाद प्रासंगिक नियमों के अनुसार चुकाई जानी थी। परिणामस्वरूप, यह माना जाना चाहिए कि कर्मचारी की मृत्यु उसके लापता होने के दो वर्ष बाद हुई। यह तारीख वास्तविक सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले की होगी। परिणामस्वरूप, याची अनुकंपा नियुक्ति के लिए हकदार होगा।

6. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा मामले के अभिलेख का अवलोकन किया गया।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों और अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि याची का पति प्रत्यर्थियों के अधीन वरिष्ठ लिपिक के पद पर कार्यरत

रहते हुए दिनांक 20.07.2002 को लापता हो गया था। उसकी वास्तविक सेवानिवृत्ति तिथि 30.04.2006 थी। याची ने सक्षम न्यायालय के समक्ष यह घोषित करने के लिए वाद दायर किया था कि याची का पति मर चुका है। दिनांक 23.02.2011 को घोषणा जारी की गई। घोषणा जारी होने तक याची का पति सेवानिवृत्त हो चुका था। याची के अनुकंपा नियुक्ति के दावे को विभाग द्वारा दिनांक 10.07.2013 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि चूंकि याची का पति दिनांक 20.07.2002 को लापता हो गया था, जबकि उसकी वास्तविक सेवानिवृत्ति की तिथि दिनांक 30.04.2006 थी, अतः दिनांक 23.02.2001 को सक्षम न्यायालय द्वारा घोषणा दिए जाने तक याची के पति सेवानिवृत्त हो चुके थे और ऐसे में सेवानिवृत्त कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों को अनुकंपा नियुक्ति देने का कोई अवसर नहीं हो सकता था।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता के मामले का मुख्य आधार इस न्यायालय द्वारा **जीशान खान (उपरोक्त)** के मामले में पारित किया गया निर्णय है। उक्त मामले में, इस न्यायालय ने यह विचार करने के बाद कि विभाग ने संबंधित कर्मचारी की वास्तविक सेवानिवृत्ति तिथि से बहुत पहले ही सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान कर दिया था, जो लापता भी हो गया था, यह निष्कर्ष निकाला था कि विभाग ने स्वयं ही कर्मचारी को सेवानिवृत्ति तिथि से बहुत पहले ही मृत मान लिया था और परिणामस्वरूप यह माना कि अनुकंपा नियुक्ति स्वीकार्य होगी।

9. हालांकि, इस मामले में ऊपर बताए गए तथ्यों के अनुसार, यह स्पष्ट है कि याची के पति दिनांक 30.04.2006 को सेवानिवृत्त हुए होंगे और सक्षम न्यायालय ने 23.02.2011 को उनकी मृत्यु की घोषणा की है, जो याची के पति की सेवानिवृत्ति की तारीख के बहुत बाद की तारीख है। सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान याची के पति की सेवानिवृत्ति की वास्तविक तारीख के बाद किया गया है।

10. सर्वोच्च न्यायालय ने **आर. गोपाल पठार (उपरोक्त)** तथा **गुज्जर सिंह (उपरोक्त)** के मामले में स्पष्ट रूप से माना है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के अंतर्गत मृत्यु की धारणा तब बनती है, जब किसी व्यक्ति की सात वर्षों तक सुनवाई नहीं हुई हो, लेकिन मृत्यु का सही समय धारणा का विषय नहीं है, बल्कि साक्ष्य का विषय है और यह साबित करने का दायित्व कि मृत्यु सात वर्षों के भीतर किसी विशेष समय पर हुई है, उस व्यक्ति पर है, जो यह सिद्ध करने का अधिकार रखता है कि वह तथ्य आवश्यक है।

11. इसी प्रकार, **लाल चंद मारवाड़ी बनाम महंत रामरूप गिर** के मामले में प्रिवी काउंसिल ने एआईआर 1926 पीसी 9 में रिपोर्ट की, एक मामला जिसे इस न्यायालय ने जीशान खान (उपरोक्त) के मामले में संदर्भित किया है, ने भी माना है कि यदि व्यक्ति के बारे में 7 वर्षों तक नहीं सुना गया है, तो कानून की धारणा है कि उसकी मृत्यु हो चुकी है; लेकिन उस अवधि के भीतर किस समय उसकी मृत्यु हुई, यह धारणा का विषय नहीं है, बल्कि साक्ष्य का है

और यह साबित करने का भार कि मृत्यु सात वर्षों के भीतर किसी विशेष समय पर हुई थी, उस व्यक्ति पर है जो उस स्थापना के अधिकार का दावा करता है जिसके लिए यह तथ्य आवश्यक है।

12. इस न्यायालय ने **जिशान खान (उपरोक्त)** मामले में जिन कई निर्णयों पर भरोसा किया है, उनमें यह स्पष्ट है कि मृत्यु की विशिष्ट तिथि को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर है जो उस तथ्य को स्थापित करने के अधिकार का दावा करता है। वर्तमान मामले में, यह याची है जो यह दावा करके अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपना दावा पेश करने की कोशिश कर रही है कि याची के पति की मृत्यु उनकी वास्तविक सेवानिवृत्ति तिथि दिनांक 30.04.2006 से पहले ही हो गई थी, वह दिनांक 20.07.2002 को लापता हो गए थे।

13. **आर. गोपाला पाथर (उपरोक्त)**, **गुज्जर सिंह (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और **लाल चंद मारवाड़ी (उपरोक्त)** के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि मृत्यु की वास्तविक तिथि साबित करने का अनुमान याची पर होगा। हालांकि, पूरी याचिका में कहीं भी याची के पति की मृत्यु की वास्तविक तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है और न ही किसी सक्षम न्यायालय की घोषणा से कोई वास्तविक तिथि सामने आ रही है कि याची के पति की मृत्यु किस तिथि को हुई थी।

14. यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए यह पाता है कि याची के पति की वास्तविक जन्मतिथि के तथ्य के संबंध में प्रश्न आक्षेपित बना हुआ है।

15. उपर्युक्त विवेचना को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को दिनांक 10.07.2013 के आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं दिखती है और तदनुसार रिट याचिका खारिज की जाती है।

16. तथापि, याची को अपने पति की मृत्यु की वास्तविक तिथि के संबंध में घोषणा के लिए सक्षम न्यायालय में जाने की स्वतंत्रता होगी।

(2023) 7 ILRA 192

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट ए संख्या 18566 वर्ष 2021

नीलम देवी

.....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अजय माधवन

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, गौरव मेहरोत्रा,
प्रशस्त पुरी, प्रशस्त पुरी

सेवा विधि - उत्तर प्रदेश सहकारी समितियाँ
अधिनियम, 1965 - धारा 122 - उत्तर प्रदेश
सहकारी समिति के कर्मचारी सेवा
विनियमावली, 1975 - विनियम 104 -
अनुकंपा नियुक्ति - विवाहित पुत्री की पात्रता -
नियम 104 में केवल 'अविवाहित पुत्री' को
'परिवार' की परिभाषा में सम्मिलित किया गया
- वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय दिया गया
कि यदि अनुकंपा नियुक्ति राज्य सरकार के
कर्मचारियों की पुत्रियों को, उनकी वैवाहिक
स्थिति पर ध्यान किए बिना उपलब्ध कराई
गई है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि यह
लाभ उत्तर प्रदेश राज्य की सहकारी समिति में
सेवाकृत मृतक कर्मचारियों की पुत्रियों को न
प्रदान किया जाए - श्रीमती विमला श्रीवास्तव
प्रकरण पर आधारित। (प्रस्तर 7 एवं 8)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

1. हमारे समक्ष प्रस्तुत इस प्रकरण के तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि अनुकंपा नियुक्ति के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून की स्पष्ट घोषणा के बावजूद राज्य अभी भी लैंगिक न्याय के प्रति उदासीन कैसे हो सकता है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय माधवन, राज्य प्रत्यर्थीगण का

प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान राज्य अधिवक्ता सुश्री रानी सिंह, उ०प्र० सहकारी ग्रामीण विकास बैंक लिमिटेड का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री गौरव मेहरोत्रा के होल्डिंग ब्रीफ और उ०प्र० सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशस्त पुरी को सुना गया।

3. याचिकाकर्ता के पिता प्रत्यर्थी-बैंक में सहायक शाखा लेखाकार के पद पर कार्यरत थे, जिनकी दुर्भाग्यवश सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई और तदनुसार याचिकाकर्ता ने उनकी पुत्री होने के नाते अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया। हालांकि, जैसा कि याचिकाकर्ता ने दावा किया है, अनुकंपा नियुक्ति को केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि वह मृतक कर्मचारी की विवाहित पुत्री है। उ०प्र० सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 (जिसे आगे 'विनियम 1975' कहा जाएगा) के विनियम 104 में निहित प्रावधानों के अनुसार, केवल अविवाहित पुत्री ही अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र है, विवाहित पुत्री नहीं। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के दावे को दिनांक 29.01.2021 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया, जिसे इस रिट याचिका में हमारे समक्ष चुनौती दी गई है। अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने के उक्त आदेश को चुनौती देने के अलावा, याचिकाकर्ता ने विनियम 1975 के विनियम 104 में आने वाले 'अविवाहित' शब्द को निरस्त करने के लिए एक उचित रिट जारी करने की भी प्रार्थना की है।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा विनियम 1975 के विनियम 104 में संशोधन करने का प्रस्ताव रखा गया था, तथापि, उक्त प्रस्ताव को राज्य सरकार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है तथा उक्त आशय की सूचना राज्य सरकार द्वारा विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय को भेज दी गई है, जो दिनांक 27.03.2023 के पत्र में निहित है। उक्त पत्र दिनांक 27.03.2023 को अभिलेख में दर्ज किया गया है।

5. उत्तर प्रदेश राज्य में सहकारी समितियों के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने के लिए, उ०प्र० सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा उ०प्र० सहकारी समिति अधिनियम, 1965 (जिसे आगे '1965 अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 122 में निहित प्रावधानों के अनुसार विनियम तैयार किए गए हैं, जो बोर्ड को सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले विनियम बनाने के लिए सशक्त बनाता है, हालांकि, ऐसे विनियम राज्य सरकार के अनुमोदन के अधीन हैं। यह 1965 अधिनियम की धारा 122 द्वारा निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए है कि बोर्ड द्वारा राज्य सरकार के अनुमोदन से 1975 के विनियम बनाए गए हैं और यह 1965 अधिनियम की धारा 122 की आवश्यकता के अनुसार है कि विनियम 1975 के विनियम 104 में संशोधन बोर्ड द्वारा प्रस्तावित किया गया था, हालांकि, राज्य सरकार ने उक्त प्रस्ताव को अपना अनुमोदन देने से इनकार कर दिया है।

6. 1975 के विनियमन 104 में मृतक कर्मचारियों के आश्रितों की भर्ती का प्रावधान है। उक्त विनियमन 104 में एक नोट संलग्न है, जिसके अनुसार "परिवार" में मृतक कर्मचारी की पत्नी/पति, बेटे और अविवाहित या विधवा बेटियाँ शामिल हैं। बोर्ड द्वारा संशोधन में बेटियों को उनकी वैवाहिक स्थिति के बावजूद शामिल करने का प्रस्ताव था, हालाँकि, उक्त संशोधन को राज्य सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है।

7. इस समय, हम देख सकते हैं कि जहाँ तक राज्य सरकार के कर्मचारियों का सवाल है, अनुकंपा नियुक्तियाँ उत्तर प्रदेश में सरकारी कर्मचारियों के आश्रितों की भर्ती नियम, 1974 में उपलब्ध वैधानिक नुस्खों द्वारा शासित होती हैं। उक्त नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए हैं और शुरू में "परिवार" शब्द की परिभाषा के अंतर्गत, इन नियमों में 'अविवाहित बेटियाँ' भी शामिल नहीं थीं। हालाँकि, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने कई मामलों में, जिसमें रिट याचिका रिट-सी संख्या 60881/2015, **श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** शामिल है, 04.12.2015 को राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू डाइंग इन हार्नेस नियम के नियम 2 (सी)(iii) में "अविवाहित" शब्द को हटा दिया। विमला श्रीवास्तव के प्रकरण में फैसले की समानता इस न्यायालय के एक खंडपीठ द्वारा 23.12.2015 को विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 863/2015 (नेहा श्रीवास्तव बनाम उ०प्र० राज्य और अन्य) में दिए गए फैसले द्वारा एक अन्य व्यक्ति, अर्थात् नेहा श्रीवास्तव को दी गई थी। नेहा श्रीवास्तव के

प्रकरण में खंडपीठ द्वारा दिए गए उक्त फैसले को राज्य सरकार ने विशेष अनुमति याचिका संख्या 22646/2016 दाखिल करके माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उठाया था, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 23.07.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया था। नेहा श्रीवास्तव के प्रकरण में राज्य सरकार की विशेष अनुमति याचिका को खारिज करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के बाद, जहाँ तक राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में अनुकंपा नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले नियमों का संबंध है, दिनांक 12.11.2021 की अधिसूचना के माध्यम से उक्त नियमों में संशोधन लाया गया है। उक्त संशोधन के अनुसार, "परिवार" में अब बेटियाँ भी शामिल हैं, चाहे उनकी वैवाहिक स्थिति कुछ भी हो। राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में 12.11.2021 को अधिसूचित संशोधित नियम नीचे उद्धृत हैं: -

उत्तर प्रदेश सरकार

कार्मिक अनुभाग-2

अधिसूचना

विविध

संख्या 6/XII-1973-कार्मिक-2-2021टी.सी.-IV

दिनांक लखनऊ, 12 नवम्बर, 2021

संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल संशोधन की दृष्टि से निम्नलिखित नियम बनाते हैं। उत्तर प्रदेश हार्नेस नियम, 1974 में मरने वाले सरकारी कर्मचारियों के आश्रितों की भर्ती:

उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारियों के आश्रितों की भर्ती

हार्नेस में मृत्यु (बारहवां संशोधन) नियम,

2021

संक्षिप्त शीर्षक और प्रारंभ

1.(1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (बारहवां संशोधन) नियमावली, 2019 है।

(2) ये तुरन्त प्रवृत्त होंगे।

नियम-2 में संशोधन

2. उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 के नियम-2 में नीचे स्तम्भ-1 में दिए गए विद्यमान खण्ड (ग) के स्थान पर स्तम्भ-2 में दिया गया खण्ड रख दिया जाएगा, अर्थात्:-

कॉलम-1

मौजूदा धारा

(सी) "परिवार" में मृतक सरकारी कर्मचारी के निम्नलिखित संबंधी शामिल होंगे :-

(i) पत्नी या पति;

(ii) पुत्र/दत्तक पुत्र;

(iii) अविवाहित पुत्रियां, अविवाहित दत्तक पुत्रियां, विधवा पुत्रियां और विधवा पुत्रवधू;

(iv) मृतक सरकारी कर्मचारी पर आश्रित अविवाहित भाई, अविवाहित बहनें और विधवा माता, यदि मृतक सरकारी कर्मचारी अविवाहित था;

(v) ऐसे लापता सरकारी कर्मचारी के उपर्युक्त रिश्तेदार , जिन्हें सक्षम न्यायालय द्वारा "मृत" घोषित कर दिया गया हो :

परन्तु यदि मृतक सरकारी सेवक के उपर्युक्त किसी भी सम्बन्धी का कोई व्यक्ति उपलब्ध न हो या शारीरिक एवं मानसिक रूप से अयोग्य पाया जाए और इस प्रकार सरकारी सेवा में नियोजन के लिए अपात्र हो, तो केवल

ऐसी स्थिति में ही "परिवार" शब्द में मृतक सरकारी सेवक के उस पर आश्रित पौत्र एवं अविवाहित पौत्रियां भी सम्मिलित होंगी।

कॉलम-2

इसके द्वारा प्रतिस्थापित खंड

(सी) "परिवार" में मृतक सरकारी कर्मचारी के निम्नलिखित रिश्तेदार शामिल होंगे :-

(i) पत्नी या पति;

(ii) पुत्र/दत्तक पुत्र;

(iii) पुत्रियाँ (दत्तक पुत्रियाँ सहित) और विधवा पुत्रवधूएँ,

(iv) मृतक सरकारी कर्मचारी पर आश्रित अविवाहित भाई, अविवाहित बहनें और विधवा माता, यदि मृतक सरकारी कर्मचारी अविवाहित था;

(v) ऐसे लापता सरकारी कर्मचारी के उपर्युक्त रिश्तेदार , जिन्हें सक्षम न्यायालय द्वारा "मृत" घोषित कर दिया गया हो:

परन्तु यदि मृतक सरकारी सेवक के उपर्युक्त किसी भी सम्बन्धी का कोई व्यक्ति उपलब्ध न हो या शारीरिक एवं मानसिक रूप से अयोग्य पाया जाए और इस प्रकार सरकारी सेवा में नियोजन के लिए अपात्र हो, तो केवल ऐसी स्थिति में ही "परिवार" शब्द में मृतक सरकारी सेवक के उस पर आश्रित पौत्र एवं अविवाहित पौत्रियां भी सम्मिलित होंगी।

आज्ञा से,

(डॉ. देवेश चतुर्वेदी)

अपर मुख्य सचिव।

8. इस प्रकार, जब हम इस प्रकरण के तथ्यों पर गौर करते हैं, तो हमें कोई उचित कारण नहीं मिलता कि संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा 1975 सेवा विनियमन के विनियमन 104 में संलग्न

नोट में संशोधन करने के प्रस्ताव को राज्य सरकार द्वारा क्यों अस्वीकार किया जा सकता है। यदि राज्य सरकार के कर्मचारियों की बेटियों को उनकी वैवाहिक स्थिति के बावजूद अनुकंपा नियुक्ति उपलब्ध कराई गई है, तो ऐसा कोई कारण नहीं दिखता है कि उत्तर प्रदेश राज्य में सहकारी समिति में सेवा करने वाले मृतक कर्मचारियों की बेटियों को ऐसा लाभ देने से मना क्यों किया जाए। सेवा की शर्तें 1965 अधिनियम की धारा 122 में निहित प्रावधानों के अनुसार बनाए गए वैधानिक नुस्खों द्वारा शासित होती हैं। हम यह देखकर निराश हैं कि संस्थागत बोर्ड द्वारा भेजे गए प्रस्ताव को मंजूरी नहीं दी गई है, हालांकि राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में प्रावधान में संशोधन किया गया है, जहां "परिवार" में अब बेटियों को उनकी वैवाहिक स्थिति के बावजूद शामिल किया गया है। यह नहीं माना जा सकता कि विनियम 104 में संशोधन के लिए संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा भेजे गए प्रस्ताव को खारिज करते समय राज्य को विमला श्रीवास्तव और नेहा श्रीवास्तव (पूर्वोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले की जानकारी नहीं थी। यह समझना भी मुश्किल है कि नेहा श्रीवास्तव के प्रकरण में राज्य द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया गया है, जिससे मृतक कर्मचारियों की सभी बेटियों को उनकी वैवाहिक स्थिति के बावजूद अनुकंपा नियुक्ति का लाभ देने का रास्ता साफ हो गया है, इस तथ्य पर किसी का ध्यान क्यों नहीं गया।

9. उपर्युक्त कारणों से, यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है और उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 के

विनियम 104 में संलग्न नोट में प्रयुक्त शब्द "अविवाहित" को निरस्त किया जाता है।

10. तदनुसार, हम प्रत्यर्थी बैंक के महाप्रबंधक (प्रशासन) द्वारा पारित दिनांक 29.01.2021 के आदेश को भी रद्द करते हैं, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक 2 में निहित है।

11. परिणामस्वरूप, हम यह भी निर्देश देते हैं कि याचिकाकर्ता के दावे पर इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर उसे ऐसे दावे के लिए पात्र मानते हुए अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किया जाएगा।

12. हम प्रत्यर्थी बैंक के संबंधित प्राधिकारी को स्पष्ट निर्देश देते हैं कि वह याचिकाकर्ता के दावे पर इस आदेश में निर्धारित अवधि के भीतर निर्णय करेगा, क्योंकि मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से लगभग चार वर्ष की समयावधि बीत चुकी है।

(2023) 7 ILRA 196

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

रिट बी संख्या 32911 वर्ष 2019

तारावती @ मुना

.....याचिकाकर्ता

बनाम

डी.डी.सी. उन्नाव व अन्य

....प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता

के

अधिवक्ता:

अनूप श्रीवास्तव

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, योगेंद्र नाथ यादव,
दिलीप कुमार पांडे

ए. चकबंदी कानून - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 19(च) - चक का आवंटन - सड़क किनारे चक - सहखातेदार का अधिकार - सभी सहखातों को क्षेत्रिय अधिकारी द्वारा खड़जा की तरफ चक आवंटित किए गए थे - अपील में याचिकाकर्ता का चक पीछे की तरफ आया है, जबकि अन्य सहखातों को खड़जा की तरफ चक आवंटित किए गए थे - वैधानिकता को चुनौती दी गई - निर्णीत किया गया कि यदि मूल जोत सड़क की तरफ है और बंटवारा नहीं हुआ है तो, सभी सहखातों का पूर्ण जोत पर अधिकार होगा, इसलिए चक इस प्रकार निर्धारित किये जाएं कि सभी सहखातों को सड़क की तरफ चक प्राप्त हों सकें और उसमें सुधार भी हो, जब तक कि कोई विधिक बाधा न हो या अंकित किए जाने वाले कारणों से ऐसा करना संभव न हो। (प्रस्तर 3 और 9)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-1)

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनूप श्रीवास्तव को सुना गया। प्रत्यर्थी सं. 1 व 2 के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता

तथा प्रत्यर्थी सं. 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडेय उपस्थित हुए। पर्याप्त नोटिस तामील होने के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह याचिका अनुबंध सं. 2 में निहित बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 09.01.2019 के आदेश तथा रिट याचिका के अनुबंध सं. 1 में निहित उप निदेशक, चकबंदी, उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 21.10.2019 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 2 को खड़जा के किनारे गाटा सं. 751 वाली उनकी मूल जोत पर चक आवंटित किए गए थे। प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा प्रस्तुत अपील में प्रत्यर्थी सं. 3 को भूखंड के दक्षिण दिशा में चक आवंटित किया गया है, इसलिए याची का चक पीछे की तरफ आ गया है, जबकि सभी हिस्सेदारों को खड़जा की तरफ चक आवंटित किए जाने चाहिए थे। यह आदेश याची को अवसर दिए बिना दिनांक 09.01.2019 को पारित कर दिया गया। याची ने उप संचालक चकबंदी के समक्ष पुनरीक्षण वाद प्रस्तुत किया, जिसमें विशेष तर्क दिया गया कि याची और प्रत्यर्थी सं. 3 को खड़जा की तरफ उनकी जोत पर चक आवंटित किए गए थे, इसलिए चकबंदी अधिकारी द्वारा काटे गए चक बरकरार रखे जाएं।

4. उन्होंने आगे कहा कि याची ने हंसराज बनाम मेवालाल 2019 (142) आरडी 812, के

मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को संलग्न करते हुए एक आवेदन भी प्रस्तुत किया था; लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों और याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार किए बिना, उप संचालक चकबंदी ने दिनांक 21.10.2019 के एक अनाख्यापक आदेश द्वारा पुनरीक्षण को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 3 को उनकी मूल जोत पर चक दिए गए हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए विवश है।

5. उपरोक्त के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उप संचालक चकबंदी और बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा पारित आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं और चकबंदी अधिकारी द्वारा दिनांक 28.11.2018 के आदेश के माध्यम से आवंटित चकों को बनाए रखा जाना चाहिए।

6. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विचार किया तथा इस याचिका के अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

7. सहायक चकबंदी अधिकारी ने याचिकाकर्ता, जो चकदार सं. 223 है तथा प्रत्यर्थी सं. 3, जो चकदार सं. 443 है, को पूर्व से पश्चिम गाटा सं. 751 पर चकों का प्रस्ताव दिया था। प्रत्यर्थी सं. 3 ने चकबंदी अधिनियम, 1953 (एतश्मिनपश्चात 1953 का अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 21(1) के अंतर्गत चकबंदी अधिकारी के समक्ष आपत्ति दर्ज कराई तथा

भूखंड के दक्षिणी ओर अपने चक का दावा किया। आपत्ति पर विचार किया गया तथा दिनांक 28.11.2018 के आदेश के माध्यम से गांव के अभिलेखों तथा मानचित्र पर विचार करने के पश्चात उसे खारिज कर दिया गया। प्रत्यर्थी सं. 3 ने बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के समक्ष अधिनियम, 1953 की धारा 21(2) के अंतर्गत अपील की थी। बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने दिनांक 09.01.2019 के आदेश के माध्यम से इस आधार पर अपील स्वीकार की कि चकबंदीकर्ता की रिपोर्ट के अनुसार याची की जोत गाटा सं. 751 के दक्षिणी तरफ है, लेकिन याची का चक उत्तर से पूर्व की ओर बना दिया गया है। याची ने उप संचालक चकबंदी के समक्ष इस आधार पर पुनरीक्षण प्रस्तुत किया था कि बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा संदर्भित स्थल निरीक्षण एकपक्षीय है और याची को बिना किसी सूचना के चकबंदी अधिकारी द्वारा खड़जा की तरफ दोनों पक्षों के चक काटे गए हैं और बंदोबस्त अधिकारी चकों के संशोधन के कारण याची को चकबंदी अधिकारी द्वारा आवंटित चक पर स्थित उसके पेड़ों और चक्की से वंचित होना पड़ेगा।

8. पुनरीक्षण प्राधिकारी अर्थात् उप संचालक चकबंदी, उन्नाव द्वारा अनुलग्नक सं. 1 में दिए गए दिनांक 21.10.2019 के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि याची द्वारा उठाए गए आधारों पर पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया है और पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनरीक्षण को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया है कि याची और प्रत्यर्थी सं. 3 को चक उनकी मूल जोत पर आवंटित किए गए हैं।

9. अधिनियम 1953 की धारा 19(एफ) में प्रावधान है कि प्रत्येक खातेदार को, जहां तक संभव हो, वह भूखंड आवंटित किया जाता है जिस पर उसकी सिंचाई का निजी स्रोत या कोई अन्य सुधार मौजूद है, साथ ही आसपास का क्षेत्रफल उसके द्वारा मूल रूप से धारित भूखंडों के मूल्यांकन के बराबर है, इसलिए चक आवंटित करते समय प्राधिकारी को वैधानिक प्रावधान पर विचार करना होगा और इस बात पर भी विचार करना होगा कि याची द्वारा किया गया कोई सुधार उसे दिए गए चक पर मौजूद है या नहीं। इस मामले में याची दावा कर रहा है यदि मूल जोत सड़क की ओर है और बंटवारा नहीं हुआ है, तो सभी सह-हिस्सेदारों का पूरी जोत पर अधिकार होगा, इसलिए चकों को इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि सभी सह-हिस्सेदारों को अपने सुधार के साथ सड़क की ओर के चक मिल सकें, जब तक कि कोई कानूनी बाधा न हो या दर्ज किए जाने वाले कारणों से ऐसा करना संभव न हो।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हंसराज बनाम मेवालाल (उपरोक्त)** के मामले में माना है कि यदि सह-हिस्सेदार हैं और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 176 के अंतर्गत विभाजन नहीं हुआ है, तो जब तक धारा 176 के अनुसार जोत का विभाजन नहीं हो जाता, तब तक भूखंड के प्रत्येक सह-हिस्सेदार का जोत पर अधिकार है, इसलिए चकबंदी अधिकारी द्वारा पिच रोड पर सह-हिस्सेदारों को किया गया आवंटन न्यायोचित था और उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। प्रासंगिक प्रस्तर 11 एवं 12 नीचे उद्धृत हैं:-

"11. एक और कारण है जिसके कारण बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी एवं उप संचालक चकबंदी के आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी, अर्थात् अपीलार्थी एवं प्रत्यर्थी दोनों ही भूखण्ड सं. 677 के सह-हिस्सेदार थे। यद्यपि पक्षकारों के पास आपसी समझौते से भूखण्ड के कुछ भाग थे, फिर भी जोत का कोई विभाजन नहीं हुआ था। यह ध्यान देने योग्य है कि कृषि जोत का विभाजन उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 176 के अन्तर्गत कार्यवाही प्रारम्भ करके किया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"176. भूमिधर या सिरदार की जोत विभाज्य है। (1) भूमिधर अपनी जोत के [विभाजन] के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। (2) प्रत्येक ऐसे वाद में संबंधित गांव सभा को पक्षकार बनाया जाएगा। जब तक जोत का विभाजन धारा 176 के अनुसार नहीं हो जाता, तब तक भूखंड के प्रत्येक सह-हिस्सेदार को उस पर अधिकार होगा।

12. किसी भी पक्षकार का यह कहना नहीं है कि जोत का विभाजन धारा 176 के अंतर्गत प्राप्त आदेश द्वारा किया गया हो। सभी सह-हिस्सेदारों को संबंधित भूखंड पर अधिकार था और जोत का विभाजन कानून के अनुसार नहीं किया गया था। पिच रोड पर भूखंड के एक हिस्से पर आवंटन के अधिकार का दावा करने में अपीलकर्ता पूरी तरह से न्यायोचित था। सहायक चकबंदी अधिकारी ने पक्षों को चकों का प्रस्ताव इस प्रकार दिया है कि सभी को पिच रोड पर चक मिले। चकबंदी अधिकारी ने अपीलकर्ता को सड़क से दूर दक्षिणी ओर

रखकर और प्रतिवादियों के पक्ष में पिच रोड पर चक आवंटित करके चकों के आवंटन को उलट दिया है, जिसे चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी ने सही ढंग से उलट दिया था, जो एक न्यायसंगत आदेश था जिसके द्वारा राम मिलन को चक दिया गया था, जिसमें वह क्षेत्र भी शामिल था जहां वह भूखंड के उत्तर-पूर्वी भाग पर मकान बना रहा था। अपीलकर्ता को उसके पम्पिंग सेट सहित एक क्षेत्र आवंटित किया गया था और चक का एक हिस्सा पिच रोड पर आवंटित करके, अन्य प्रतिवादियों को इस तरह से चक आवंटित किया गया था कि सभी को उनकी चक पिच रोड पर मिली थी। बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी और उप निदेशक चकबंदी के आदेश को रद्द करने का कोई उचित कारण नहीं था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी और उप निदेशक चकबंदी ने अपने आदेश पारित करते समय मौके का निरीक्षण भी किया था और उनके द्वारा पारित आदेश मौके के निरीक्षण के आधार पर थे। उच्च न्यायालय ने अधिनियम 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए चकबंदी अधिकारी के आदेश को बहाल करके रिट याचिका को अनुमति देने में त्रुटि की, जो एक अनुचित आदेश था। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी के आदेश द्वारा इस तरह से चक बनाने में इक्विटी समायोजित की गई थी कि प्रत्येक सह-हिस्सेदार का चक पिच रोड पर था, जिस आदेश में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी अपीलकर्ता ने पुनर्विचार याचिका दायर की जिसे भी उच्च न्यायालय ने दिनांक 20.01.2014 को खारिज कर दिया।"

11. आक्षेपित आदेश बिना कारण बताए पारित किए गए हैं तथा उप निदेशक चकबंदी ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों पर विचार किए बिना तथा यह कारण बताए बिना आदेश पारित कर दिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधार मान्य क्यों नहीं हैं, जबकि कारण बताना यह दर्शाने के लिए आवश्यक है कि आदेश सोच-समझकर पारित किया गया है तथा आधार मान्य क्यों नहीं हैं। चकबंदी प्राधिकारियों को आपत्तियों तथा आधारों पर विचार करना होता है तथा कारण बताकर ही विचार किया जा सकता है, इसलिए प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों में वे कारण अवश्य शामिल होने चाहिए जिन पर आदेश का आक्षेप करने के लिए उठाए गए आधार मान्य नहीं हैं, इसलिए किसी विवाद का निर्णय करने के लिए कारण आवश्यक हैं।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ग्राम पंचायत, गांव- कानोन्दा, तहसील बहादुरगढ़, जिला- रोहतक बनाम निदेशक, चकबंदी, हरियाणा, चंडीगढ़ एवं अन्य 1989 अनूपूरक 5 एससीसी 465 के मामले में कहा है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि चकबंदी अधिकारी, जिसने योजना तैयार की है या इसकी पुष्टि की है या संशोधित या पुनर्विभाजन किया है, प्रभावित पक्ष द्वारा इस पर आपत्ति की स्थिति में, उसे आपत्तियों पर विचार करना होता है और आवश्यक निहितार्थ के रूप में, कारण बताना होता है और रिकॉर्ड में कारण शामिल होने चाहिए और वह मनमाना निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं है और कारण बताना विवेक के प्रयोग के लिए अनिवार्य है।

13. उपरोक्त के मद्देनजर, और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 09.01.2019 और उप संचालक, चकबंदी, उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 21.10.2019 के आक्षेपित आदेश कानून की नजर में संधारणीय नहीं हैं और प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा दायर अपील पर पुनर्विचार करने और कानून के अनुसार पक्षों को अवसर प्रदान करने के बाद एक नया आदेश पारित करने के निर्देश के साथ रद्द किए जाने योग्य हैं।

14. रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। दिनांक 09.01.2019 और दिनांक 21.10.2019 के आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाते हैं। मामला बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, उन्नाव को वापस भेजा जाता है, ताकि अपील सं. 66 सन् 2019; रमा कांत बनाम तारावती और अन्य पर शीघ्रता से विधि के अनुसार पक्षकारों को अवसर प्रदान करने के पश्चात नए सिरे से निर्णय लिया जा सके। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 200

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.06.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट सी संख्या 17356 वर्ष 2023

खुर्शीद अहमद

.....याचिकाकर्ता

बनाम

अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1 आजमगढ़ और अन्य प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शांतनु खरे

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री आनंद भास्कर श्रीवास्तव, स्थायी अधिवक्ता, श्री प्रभाकर अवस्थी

ए. स्थानीय निकाय विधि - उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12-सी - प्रधान का निर्वाचन - मतों की पुनर्गणना - प्रारूप प्रपत्र 36 जिसमें मतपत्रों की संख्या तथा डाले गए मतों का विवरण था, प्रस्तुत नहीं किया जा सका - अन्य प्रत्याशियों के शपथपत्रों एवं दावे के अतिरिक्त, निर्वाचन याचिकाकर्ता अपने तर्क सिद्ध करने के संबंध में कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं कर सका कि कुल डाले गए मतों की संख्या 1170 थी - प्रभाव - अभिप्रेत कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने, अभिलेखों को तलब किए बिना अथवा निर्वाचन अधिकारी से कोई स्पष्टीकरण लिए बिना, मामले को बिना विलम्ब में निस्तारित किया और बिना किसी युक्तियुक्त आधार अथवा निष्कर्ष के यह निर्णीत किया कि मान्य मतों की संख्या में त्रुटि थी और पुनर्गणना का आदेश पारित कर दिया - पुनर्गणना का आदेश केवल अनुमान के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता, अपितु इसके लिए सामग्री एवं साक्ष्य पर आधारित आधार होना चाहिए जिससे पुनर्गणना का मामला बनता हो, किन्तु ऐसा आधार

आक्षेपित आदेश में उपलब्ध नहीं है - श्रीमती सजीदा के मामले पर आधारित।

रिट याचिका निस्तारित की गई। (ई-1)

न्यायपीठ: माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

1. वर्तमान मामला दिनांक 19.04.2021 को आयोजित ग्राम पंचायत जोगियाबीर, क्षेत्र पंचायत अजमतगढ़, तहसील सगड़ी, जिला आजमगढ़ के प्रधान पद के लिए हुए चुनाव के संबंध में एक चुनावी विवाद से उत्पन्न हुआ है।

2. यह विवादित नहीं है कि इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता निर्वाचित उम्मीदवार है जबकि प्रत्यर्थी-3 चुनाव में उपविजेता रहा तथा जीत का अंतर केवल एक वोट का था। शेष निजी प्रत्यर्थीगण ने भी चुनाव में भाग लिया है।

3. प्रत्यर्थी-3 (चुनाव-याचिकाकर्ता) ने यू.पी. पंचायत राज अधिनियम, 1947 (एतदपश्चात "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित) की धारा 12-सी के अंतर्गत एक चुनाव याचिका संख्या 6727/2021 (कम्प्यूटरीकृत केस सं0 टी.202115060706727) दायर करके विहित प्राधिकारी से पुनर्मतगणना के आदेश और चुनाव याचिकाकर्ता को निर्वाचित उम्मीदवार घोषित करने की प्रार्थना की है। चुनाव याचिका के पैराग्राफ सं0 3 व 4 प्रासंगिक होने के कारण निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

"3. यह कि दिनांक 19.04.2021 को मतदान संपन्न हुआ। मतदान के समय प्रतियाची प्रथम पक्ष के द्वारा मौके पर न रहने वाले व्यक्तियों एवं बाहर रहने वाले व्यक्तियों के भी वोट डाल दिया गया। चुनाव सम्पन्न कराने के लिए कुल तीन बूथ बनाये गये, बूथ नं0 1 पर 1 ता 4 वार्ड में 313, बूथ नं0 2 पर 5 से 8 वार्ड में 376 एवं बूथ नं0 3 पर 9 से 13 वार्ड में 481 मत पड़े यानी कुल 1170 मत पड़े।

4. यह कि दिनांक 02.05.2021 को मतगणना करायी गयी। मतगणना में हम याची को 255, प्रतियाची प्रथम को 256, प्रतियाची नं0 3 को 11 मत 9 को 113 मत, 4 को 112 मत, 5 को 02, 6 को 51, 7 को 17, 8 को 001, 09 को 68, 10 को 137, 11 की 72 एवं 12 को 01 मत प्राप्त दिखाया गया है। 71 मत अवैध रहा। कुल 1167 मत मतगणना में दिखाये गये। 3 मतपत्र गायब कर दिया गया, जो मतपत्र गायब किये गये थे हम याची के पक्ष में थे यदि वे गायब नहीं किये जाते तो निश्चित ही हम याची निर्वाचित होते।"

(बल दिया गया)

4. उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि विवाद यह है कि कुल मतों की संख्या 1167 थी या 1170?

5. निर्वाचित उम्मीदवार ने चुनाव याचिका पर जवाब दाखिल किया है, जिसमें चुनाव याचिका में किए गए कथनों सहित ऊपर उल्लिखित कथनों को अस्वीकार किया गया है तथा अतिरिक्त वक्तव्य में यह स्पष्ट रूप से

कहा गया है कि कोई भी मतपत्र नहीं हटाया गया तथा संपूर्ण मतगणना शांतिपूर्ण और निष्पक्ष तरीके से हुई।

6. विहित प्राधिकारी ने तर्कों के आधार पर निम्नलिखित वाद बिन्दु विरचित किए:

“1. क्या प्रस्तुत चुनाव याचिका की सुनवाई का क्षेत्राधिकार इस न्यायालय को प्राप्त है?

2. क्या वर्तमान चुनाव याचिका में मतगणना के समक्ष याची के पक्ष में 255 मत या विपक्षी को 256 मतपत्र मिले?

3. क्या मतगणना में कुल मतों की संख्या 1170 थी। जब कि मतगणना के समय चुनाव अधिकारी द्वारा 1167 मत पत्र की गणना की गयी तथा तीन मत पत्रों की गणना नहीं की गयी। तो याचितक में इसका प्रभाव?

4. क्या याची व उसके मतगणना एजेंट द्वारा शिकायत की गई लेकिन उनकी बातों को अनसुना कर दिया गया?

5. क्या पीठासीन अधिकारी चुनाव अधिकारी द्वारा घोषित परिणाम में ओवर राइटिंग कर 1168 के स्थान पर 1167 मत पत्र दिखाया गया है?

6. क्या पीठासीन अधिकारी द्वारा तीन मतों को वैध या अवैध घोषित किया गया है?

7. क्या याची पुनः मतगणना कराने का अधिकारी है?”

7. विहित प्राधिकारी ने पक्षकारों के साक्ष्य तथा चुनाव अधिकारी के कार्यालय द्वारा उपलब्ध कराए गए दस्तावेजों के आधार पर प्रासंगिक वाद बिन्दु सं0 3, 4, 5, 6 एवं 7 का निस्तारण किया तथा आदेश दिनांकित 03.10.2022 द्वारा चुनाव याचिका को खारिज

कर दिया। आदेश का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“वाद बिन्दु सं० 3, 4, 5, 6, 7 एक दूसरे से संबंधित है। अतः इनका निस्तारण एक साथ किया जाता है। ग्राम प्रधान पद हेतु डाले गए मतपत्रों की सं० 1167 है। जिसमें विधिमान्य मतों की कुल सं० 1096 है। प्रतिक्षेपित (खारिज/रद्द) मतों की सं० 71 है। इस प्रकार प्रतियाची प्रथम पक्ष खुर्शीद अहमद 1 मत से विजयी घोषित हुए। प्रधान पद हेतु कुल 13 उम्मीदवार थे जिनके प्राप्त वैध मतों का योग 1096 होता है। याची व उसके एजेंट द्वारा मतगणनों के सम्बन्ध में शिकायत के बाबत कोई प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, इसके विपरीत उसका यह कथन कि पुनर्मतगणना की बात अनसुनी कर दी गई, जो कि विश्वसनीय नहीं है। पीठासीन अधिकारी (चुनाव अधिकारी) द्वारा घोषित परिणाम के बाबत ओवरराइटिंग करने के बाबत कोई साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया गया। तीन मतों को अवैध या वैध घोषित करने के बारे में भी कोई कोई ठोस साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया गया। याची द्वारा अपनी याचिका में प्रधान पद हेतु संपन्न निर्वाचन को अवैध या अनियमित घोषित कर पुनः चुनाव कराये जाने व पुनर्मतगणना कराने दोनों की मांग की गयी है, याची की ओर से कोई भी विश्वस्नीय अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत न किये जाने की दशा में याची के कथनों में बल प्रतीत नहीं होता है। पुनः मतगणना कराने हेतु कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है। अतः वाद बिन्दु सं० 3, 4, 5, 6, 7 नकारात्मक निर्णित किया जाता है।”

(बल दिया गया)

8. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर चुनाव याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण सं० 161/2022 दायर किया तथा इसे आक्षेपित आदेश दिनांकित 06.05.2023 द्वारा स्वीकार कर लिया गया, जिसके द्वारा उपर्युक्त आदेश दिनांकित 03.10.2022 को अपास्त कर दिया गया तथा 30 दिनों के भीतर मतों की पुनर्गणना के लिए निर्देश पारित किया गया।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शांतनु खरे की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने कथन किया कि पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्मतगणना का आदेश बिना किसी विधिक रूप से पोषणीय आधार के पारित किया जाना अवैध था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि यदि पुनरीक्षण प्राधिकारी संतुष्ट नहीं है या इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि कुछ प्रासंगिक सामग्री/दस्तावेजों पर विहित प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था, तो सही तरीका यह था कि मामले को नए सिरे से तय करने के लिए विहित प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाए।

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी कथन किया कि पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश मुख्यतः दो आधारों पर पारित किया गया है। सर्वप्रथम, राज्य चुनाव आयोग ने प्रोफार्मा फॉर्म 36 उपलब्ध नहीं कराया है और द्वितीय, प्रोफार्मा फॉर्म 46 के नंबर के साथ-साथ डाले गए कुल वोटों की संख्या अर्थात् 1167 पर ओवरराइटिंग की गई थी तथा अन्य उम्मीदवारों की ओर से शपथपत्र दाखिल किए गए थे कि डाले गए कुल वोटों की संख्या 1170 थी न कि 1167।

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अंत में प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पुनर्मतगणना के आदेश पारित करने के लिए दिए गए कारण किसी भी सामग्री पर आधारित नहीं हैं, सिवाय इसके कि ओवरराइटिंग थी। कोई विशेष निष्कर्ष नहीं दिया गया कि डाले गए वोटों की कुल संख्या 1170 थी न कि 1167। कथित ओवरराइटिंग ने चुनाव परिणाम पर कोई ठोस प्रभाव नहीं डाला है क्योंकि इसमें कोई विवाद नहीं है कि संख्या 1167 उम्मीदवारों के पक्ष में डाले गए कुल वोटों की सही संख्या है, जिसमें उक्त फॉर्म में उल्लिखित अवैध घोषित किए गए वोटों की संख्या भी शामिल है। उप-जिला निर्वाचन अधिकारी, आजमगढ़ के अनुसार, फॉर्म 36 उपलब्ध नहीं था, इसलिए यह किसी दस्तावेज को रोकने का मामला नहीं था और उक्त फॉर्म में केवल मतपत्रों की संख्या का विवरण है, इसलिए इसका चुनाव विवाद के गुण-दोष पर कोई असर नहीं है क्योंकि अन्य प्रासंगिक प्रोफार्मा फार्म उपलब्ध थे। उन्होंने **राम आधार सिंह बनाम जिला जज, गाजीपुर व अन्य 1985 एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.एल.एल. 246** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय का अवलम्ब लिया है, जिसका पैरा 18 यहां पुनः प्रस्तुत है:

“18. जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत उठने वाले मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मतपत्रों के निरीक्षण के संबंध में बताए गए सिद्धांत को यू.पी. पंचायत राज अधिनियम के प्रावधानों के तहत निस्तारित किए गए चुनाव याचिका पर लागू करते हुए, इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता है कि

उक्त अधिनियम के अंतर्गत चुनाव याचिका पर सुनवाई करने वाले प्राधिकारी को मतपत्रों को देखने या निरीक्षण करने का निर्देश देने से पूर्व, निम्नलिखित दो शर्तें एक साथ मौजूद होनी चाहिए:

(1) यह कि चुनाव को रद्द करने की याचिका में वे आधार शामिल हैं जिन पर प्रत्यर्थी के चुनाव पर सवाल उठाया जा रहा है और साथ ही उन परिस्थितियों का सारांश भी है जो ऐसे आधार पर चुनाव पर सवाल उठाने को उचित ठहराने के लिए आरोपित की गई हैं; तथा

(2) प्रथम दृष्टया, प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्रियों के आधार पर वह संतुष्ट है कि ऐसे आधार के अस्तित्व पर विश्वास करने का आधार है तथा विवाद का निर्णय करने तथा पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए ऐसा निरीक्षण करना अनिवार्य है।”

12. प्रत्यर्थी-3 (चुनाव-याचिकाकर्ता) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी ने उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध किया है। उन्होंने कथन किया कि उप-जिला चुनाव अधिकारी ने प्रोफार्मा फॉर्म 36 की प्रति उपलब्ध नहीं कराई है तथा इस तरह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज को दबा दिया गया है। यह वह दस्तावेज है जिसमें डाले गए वोटों की संख्या का विवरण दिया गया है। विहित प्राधिकारी ने अभिलेखों पर मौजूद प्रासंगिक मुद्दों और सामग्री पर विचार नहीं किया है तथा चुनाव याचिका में किए गए विशिष्ट कथन पर ध्यान नहीं दिया है, इसलिए पुनरीक्षण प्राधिकारी ने उक्त आदेश में हस्तक्षेप करके सही किया और साथ ही कारणों

के आधार पर, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनर्मतगणना के लिए उचित रूप से आदेश पारित किया है तथा आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

13. राज्य-प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आनंद भास्कर श्रीवास्तव ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि प्रोफार्मा फॉर्म 36 की प्रति विहित प्राधिकारी को उपलब्ध नहीं कराई गई थी क्योंकि यह अभिलेख में उपलब्ध नहीं थी और अन्य सभी प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध कराए गए थे।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

15. प्रतिद्वंद्वी कथनों पर विचार करने से पूर्व इस न्यायालय द्वारा श्रीमती साजिदा बनाम सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट, कैराना जिला शामली व अन्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.एल.एल. 11 में पारित निर्णय के कुछ पैराग्राफ प्रासंगिक होने के कारण नीचे उल्लिखित हैं-

“12. यह सुस्थापित है कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना महत्वपूर्ण है, जो कि पवित्र है और तुच्छ, अस्पष्ट तथा अनिश्चित आरोपों के कारण इसके उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए तथा निरीक्षण की अनुमति देने से पूर्व, निर्वाचित उम्मीदवार के विरुद्ध लगाए गए आरोप स्पष्ट एवं विनिर्दिष्ट होने चाहिए तथा उन्हें भौतिक तथ्यों

के पर्याप्त कथनों द्वारा समर्थित होना चाहिए (देखें, भाभी बनाम शिव गोविंद व अन्य, ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 2217 और राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवाई व अन्य, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1249)। न्यायालयों को प्रदत्त विवेक का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए कि चुनाव याचिकाकर्ता को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री निकालने के लिए एक भटकती हुई जांच में शामिल होने में सक्षम बनाया जा सके।

13. चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में दावा किया है कि उसके पक्ष में दिए गए वोट निर्वाचित उम्मीदवार के पक्ष में दिए गए वोटों के बंडल में डाल दिए गए थे और गिनती के दौरान जब चुनाव याचिकाकर्ता को पता चला कि उसके पक्ष में दिए गए वोटों की संख्या 990 है और निर्वाचित उम्मीदवार के पक्ष में दिए गए वोटों की संख्या 993 है तथ्य निरस्त किए गए वोटों की संख्या 157 है, तो उसने आपत्ति जताई तथा पुनर्मतगणना के लिए प्रार्थना की परन्तु चुनाव अधिकारी ने ध्यान नहीं दिया। आगे दावा किया गया है कि 157 खारिज किए गए वोटों के बंडल में कुछ वैध वोट भी शामिल थे।”

“16. यह तय है कि पुनर्मतगणना का आदेश मात्र इसी के लिए और अस्पष्ट आरोपों के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता है, बिना यह बताए कि मतगणना में कोई विशिष्ट अनियमितता हुई है या यह चुनाव परिणाम को वास्तव में किस प्रकार प्रभावित करेगी। वर्तमान मामले में चुनाव याचिका के मुख्य

भाग में वैध मतों के अवैध निरस्तीकरण के संबंध में अस्पष्ट दावे किए गए हैं, जो चुनाव याचिकाकर्ता की जांच में या अन्यथा उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर प्रमाणित नहीं हैं। पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करके उचित तर्क प्रस्तुत करने होंगे कि किसी विशिष्ट अनियमितता या अवैधता से चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है। सुस्थापित विधिक प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं है कि एक नियम के रूप में दलीलों पर आधारित राहत नहीं दी जानी चाहिए (देखें, अरिकला नरसा रेड्डी (उपरोक्त)।” (बल दिया गया)

16. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने केवल एक वोट से ग्राम प्रधान का चुनाव जीता है। चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में यह आधार लिया है कि डाले गए कुल मतों की संख्या 1170 थी न कि 1167। यह भी विवाद में नहीं है कि प्रारूप फार्म 46 के अनुसार कुल वैध मतों की संख्या 1096 थी जबकि अस्वीकृत मतों की संख्या 71 थी जिससे कुल डाले गए मतों की संख्या 1167 होती है।

17. पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा लिए गए आधारों में से एक यह है कि प्रारूप फार्म 46 की संख्या पर ओवरराइटिंग थी तथा साथ ही कुल डाले गए मतों की संख्या अर्थात् 1167, पर भी ओवरराइटिंग थी, हालांकि दोनों ओवरराइटिंग का कोई महत्व नहीं होगा, क्योंकि यह विवादित नहीं है कि उक्त प्रारूप फार्म में उल्लिखित मतों की संख्या अस्वीकृत

मतों की संख्या के साथ 1167 हो जाएगी तथा फार्म की संख्या पर ओवरराइटिंग का भी कोई असर नहीं होगा क्योंकि यह चुनाव याचिकाकर्ता का मामला नहीं था कि दस्तावेज असली नहीं था।

18. जो मुद्दा व्यथित करने वाला प्रतीत होता है, वह जिला चुनाव अधिकारी के कार्यालय से जारी पत्र दिनांकित 09.09.2022 है कि प्रोफार्मा फॉर्म 36, अर्थात एक दस्तावेज जिसमें मतपत्रों और डाले गए मतों की संख्या का विवरण होता है, कार्यालय में उपलब्ध नहीं था। यह वह फॉर्म है जिसमें चुनाव अधिकारी द्वारा प्राप्त मतपत्रों की संख्या के साथ-साथ किसी कारण से अप्रयुक्त या अस्वीकृत मतपत्रों की संख्या और मतपेटी में डाले गए मतों की संख्या का विवरण दिया होता है। वर्तमान मामले में बिन्दु कि डाले गए मतों की संख्या 1170 थी या 1167, उक्त प्रोफार्मा फॉर्म 36 द्वारा पुनः सत्यापित किया जा सकता है, हालांकि, यह स्वीकृत है कि चुनाव अधिकारी ने इसे इस आधार पर इसे अभिलेख पर नहीं रखा है कि यह उपलब्ध नहीं था। चुनाव याचिकाकर्ता ने भी अपने दावे के संबंध में कोई सामग्री नहीं रखी है कि कुल डाले गए मतों की संख्या 1170 थी, सिवाय अन्य उम्मीदवारों के दावे और शपथपत्रों के, जिन्होंने चुनाव में भाग लिया है।

19. वर्तमान मामले में दोनों प्राधिकरणों, अर्थात विहित प्राधिकारी तथा पुनरीक्षण प्राधिकारी ने मामले में जल्दबाजी की है। विहित प्राधिकारी ने मामले के प्रासंगिक सामग्रियों और पहलू पर ध्यान दिए बिना,

अर्थात अभिलेखों से यह सत्यापित किए बिना कि डाले गए कुल वोटों की संख्या 1170 या 1167 थी, चुनाव याचिका को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया, हालांकि, उक्त कार्य नहीं किया गया था या ऐसा प्रतीत होता है कि यह नहीं किया जा सकता था क्योंकि प्रोफार्मा फॉर्म 36 उपलब्ध नहीं था।

20. विहित प्राधिकारी को चुनाव अधिकारी को अभिलेख के साथ बुलाने का अधिकार था, हालांकि, ऐसा कार्य नहीं किया गया। इसी प्रकार, पुनरीक्षण प्राधिकारी ने हालांकि विहित प्राधिकारी द्वारा की गई त्रुटियों को दर्ज किया, अर्थात इसने डाले गए कुल वोटों की संख्या में अंतर के आरोप पर ध्यान नहीं दिया है, हालांकि, इसने मामले के कुछ पहलुओं पर गलती से ध्यान दिया है जो प्रासंगिक नहीं हो सकते हैं, जैसे प्रोफार्मा फॉर्म 46 पर या कुल डाले गए वोटों की संख्या पर ओवरराइटिंग। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, कोई गणना त्रुटि नहीं है, इसलिए, उक्त ओवरराइटिंग से चुनाव के नतीजे के पर कोई ठोस प्रभाव नहीं पड़ेगा। तथापि, एक दस्तावेज जिसे निश्चित रूप से अभिलेख पर रखा जाना आवश्यक है वह प्रश्नगत चुनाव का प्रोफार्मा फॉर्म 36 है।

21. पुनरीक्षण अधिकारी ने बिना अभिलेख तलब किए या चुनाव अधिकारी से स्पष्टीकरण लिए मामले की जांच की और बिना किसी उचित आधार या निष्कर्ष के इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वैध मतों की संख्या में त्रुटि थी और पुनर्मतगणना का आदेश पारित कर दिया। जैसा कि **श्रीमती साजिदा (उपरोक्त)** में कहा

गया है, पुनर्मतगणना का आदेश अनुमान के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता है, अपितु सामग्री एवं साक्ष्य पर आधारित एक ऐसा आधार होना चाहिए जिससे पुनर्मतगणना का मामला बनता हो, हालांकि, ऐसा आधार विवादित आदेश में अनुपस्थित है।

22. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि दोनों प्राधिकारियों ने मामले में जल्दबाजी की है और प्रासंगिक दस्तावेज, अर्थात् प्रोफार्मा फार्म 36 को अभिलेख पर रखे बिना ही निर्णय ले लिया तथा इन परिस्थितियों में पुनरीक्षण प्राधिकारी को चुनाव याचिका को नए सिरे से विचार के लिए विहित प्राधिकारी को वापस भेज देना चाहिए था, इस निर्देश के साथ कि जिला निर्वाचन अधिकारी के कार्यालय से प्रोफार्मा फार्म 36 सहित अभिलेख मंगाए जाएं, तथापि, चूंकि इसका पालन नहीं किया गया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश में त्रुटि उत्पन्न हो गई है।

23. उपरोक्त के दृष्टिगत, पुनर्मतगणना के लिए पारित निर्देश दिनांकित 06.05.2023 अपास्त किया जाता है और आदेश के प्रभावी भाग को इस सीमा तक संशोधित किया जाता है कि विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 03.10.2022 को अपास्त किया जाता है तथा चुनाव याचिका को विहित प्राधिकारी के पास नए सिरे से निस्तारित करने के लिए वापस भेजा जाता है, इस निर्देश के साथ कि विहित प्राधिकारी जिला निर्वाचन अधिकारी, आजमगढ़ के कार्यालय से प्रश्नगत चुनाव के प्रारूप फार्म 36 की प्रति सहित अभिलेखों को तलब करने के लिए उचित

आदेश पारित करेगा और यदि आवश्यक हो तो संबंधित अधिकारी को यू.पी. पंचायत राज (चुनाव विवादों का निस्तारण) नियम, 1994 के नियम 4 के अनुसार साक्ष्य देने के लिए बुला सकता है। विहित प्राधिकारी विधि अनुसार शीघ्रता से, अधिमानतः आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर नया आदेश पारित करेगा।

24. तदनुसार रिट याचिका को उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ निस्तारित किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 206

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अजहर हुसैन
इदरीसी

जेल अपील संख्या 86 वर्ष 2019

अरविंद

.....अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

जेल से, श्री राकेश कुमार गुप्ता (ए/सी)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

सहायक शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 - धारा 3(1) - दोषसिद्धि के विरुद्ध

अपील - कठोर कारावास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - अभियोजन की कथानक के अनुसार, मुखबिर की सूचना एवं स्वीकृत गिराह सारणी के आधार पर, दिनांक 06.11.2014 को अपीलार्थी सहित सह-आरोपियों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गई - आरोप है कि अभियुक्त अपीलार्थी एक संगठित गिराह के सदस्य हैं, जो व्यक्तिगत लाभ हेतु सामूहिक बलात्कार, हत्या, अपहरण एवं अपराध के साक्ष्य मिटाने जैसे अपराध कर अवैध धन वसूल करते हैं - परीक्षण न्यायालय द्वारा आरोप निर्धारित किए गए - अपीलार्थी का यह अभिवाद है कि अभियोजन पक्ष के गवाह पुलिसकर्मी हैं, उनकी गवाही विश्वसनीय नहीं है - प्रकरण में कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं था - आरोपित दंड कठोर था, जिसे पूर्व में व्यतीत की गई अवधि में रूपांतरित किया जाना उचित था। (प्रस्तर 4, 12, 17)

अभिप्रेत, कि कारागार अधीक्षक द्वारा निर्गत अभिरक्षा प्रमाणपत्र के अनुसार, अपीलार्थी वास्तव में क्षमादान सहित 9 वर्ष, 4 माह तथा 12 दिन अर्थात् लगभग एक दशक तक कारागार में निरुद्ध रहा, तथापि निर्णय की तिथि तक वह लगभग 9 वर्ष 7 माह की अवधि तक कारावास में रहा - अपीलार्थी अपने दंड की अवधि पूर्ण करने की स्थिति पर था - वह दीर्घकाल तक कारावास में रहा परन्तु उसके विरुद्ध कोई प्रतिकूल आचरण प्रतिवेदित नहीं हुआ - अभियुक्त के सुधार होने की पर्याप्त संभावना है तथा वह सामाजिक परिवेश की मुख्यधारा में पुनः सम्मिलित होकर समाज के विकास में योगदान दे सकता है - ऐसे परिस्थितियों में, दंड को पूर्व में व्यतीत की गई

अवधि तक सीमित करना, न्याय के उद्देश्य की पूर्ति करेगा। (प्रस्तर 31)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की गई। (ई-13)

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी

1. अपीलकर्ता के लिए विद्वान एमिकस क्यूरी श्री राकेश कुमार गुप्ता और विद्वान ए.जी.ए. को सुना एवं अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. यह अपील अभियुक्त अपीलकर्ता अरविंद द्वारा मामला अपराध संख्या 532/2014 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 87/2015 (राज्य बनाम अरविंद एवं अन्य) में धारा 3(1) यूपी गैंगस्टर एवं असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 (इसके बाद "गैंगस्टर अधिनियम" के रूप में संदर्भित), पुलिस स्टेशन बुढ़ाना, जिला मुजफ्फरनगर के विरुद्ध दायर की गयी है जिसके तहत अपीलकर्ता को धारा 3 (1) गैंगस्टर अधिनियम के तहत दस साल की सजा और 15,000/- रुपये के जुर्माने के साथ दोषी ठहराया गया था जुर्माना अदा न करने पर पांच माह अतिरिक्त कारावास भुगतने का आदेश दिया गया।

3. इस प्रकार, दिनांक 16.05.2019 के आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, आरोपी अपीलकर्ता अरविंद ने यह अपील दायर की। यह जोड़ा जा सकता है कि 05 आरोपी थे और उनके खिलाफ विचारण न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया था। वर्तमान

अपील अभियुक्त-अपीलकर्ता अरविन्द द्वारा प्रस्तुत की गयी है। इस प्रकार, वर्तमान अपील केवल अपीलकर्ता अरविंद के संबंध में सुनी जाती है।

4. संक्षेप में, अभियोजन की कहानी का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि मुखबिर की सूचना के आधार पर एस.एच.ओ. धनंजय मिश्रा एवं अनुमोदित गैंग चार्ट दिनांक 06.11.2014 को अपीलार्थी द्वारा सहअभियुक्तों के साथ घटित किये गये कथित अपराधों के संबंध में अभियुक्तगण अरविन्द, प्रमोद, मोनू उर्फ राकेश, परवीन एवं सैकी उर्फ हर्षवर्द्धन के विरुद्ध अपराध संख्या 532/2014 के रूप में मामला (F.I.R.) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत पंजीकृत किया गया। यह एफ.आई.आर. में आरोप लगाया गया था कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं का एक संगठित गिरोह है, जिसके आधार पर गिरोह व्यक्तिगत लाभ के लिए सामूहिक बलात्कार, हत्या, अपहरण और अपराध के साक्ष्य मिटाने जैसे अपराध कर अवैध धन की उगाही करता है और इस कारण से आम जनता उनके आतंक में घिरी हुई है।

5. गैंग चार्ट के आधार पर चिक एफ.आई.आर. पंजीकृत किया गया था और प्रविष्टियाँ कैमी जी.डी. में दर्ज की गईं और जिसकी कार्बन कॉपी भी उसी प्रक्रिया में तैयार की गई थी। जांच एस.एच.ओ. अजय पाल गौतम को सौंपी गई।

6. जांच अधिकारी ने गवाहों के बयान दर्ज किए, घटना स्थल का निरीक्षण करने के बाद

साइट प्लान तैयार किया और उचित जांच के बाद, उन्होंने सक्षम प्राधिकारी से अभियोजन के लिए मंजूरी भी प्राप्त की और उचित जांच पूरी करने के बाद उपरोक्त आरोपी/अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 2/3 गैंगस्टर एक्ट के तहत प्रस्तुत किया।

7. विचारण न्यायालय ने धारा 3(1) गैंगस्टर एक्ट, 1986 के तहत आरोप तय किए। आरोपी/अपीलकर्ता ने आरोपों को खारिज कर दिया, "दोषी नहीं होने" का अनुरोध किया और "मुकदमा चलाए जाने" का दावा किया।

8. आरोपों को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित गवाहों की जांच करने वाले निम्नलिखित प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को प्रस्तुत किया गया: -

क्र.सं.	गवाहों के नाम	पीडब्लू की संख्या
1.	इंस्पेक्टर धनंजय मिश्रा, सूचनादाता	पीडब्लू-1
2.	जयपाल	पीडब्लू-2
3.	एच. सी.पी. 202 राजकीर्ति सिंह	पीडब्लू-3
4.	सतपाल सिंह	पीडब्लू-4
5.	परब सिंह	पीडब्लू-5
6.	प्रताप सिंह	पीडब्लू-6

7.	कांस्टेबल अरुण मलिक	पीडब्लू-7
8.	एच.सी.पी. 197 माँगरम	पीडब्लू-8
9.	इंस्पेक्टर अजय पाल गौतम, आई.ओ.	पीडब्लू-9

9. अभियोजन के प्रत्यक्षदर्शी गवाहों का समर्थन करने के लिए निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किए गए और अभियोजन पक्ष के प्रत्यक्षदर्शी गवाहों द्वारा साबित किए गए।

क्र.सं.	विवरण	प्रदर्श संख्या	द्वारा सिद्ध किया गया
1.	केस अपराध संख्या 258/2014 में आरोप पत्र की प्रति	प्रदर्श क- 1	पीडब्लू-1
2.	2014 के केस अपराध संख्या 259 में आरोप पत्र की प्रति	प्रदर्श क- 2	पीडब्लू-1
3.	समय चार्ट	प्रदर्श क- 3	पीडब्लू-1
4.	चिक एफ.आई.आर.	प्रदर्श क- 4	पीडब्लू-1

5.	केस क्राइम नंबर 258/2018 की चिक एफ.आई.आर. की प्रति	प्रदर्श क- 5	पीडब्लू-2
6.	जी.डी. की कार्बन कॉपी	प्रदर्श क- 6	पीडब्लू-3
7.	केस क्राइम नंबर 259/2018 की चिक एफ.आई.आर. की प्रति	प्रदर्श क-7	पीडब्लू-4
8.	जी.डी. 37 की कार्बन कॉपी	प्रदर्श क- 8	पीडब्लू-8
9.	जी.डी. 33 की फोटोकॉपी	प्रदर्श क-9	पीडब्लू-8
10.	केस क्राइम नंबर 259/2014 की चिक एफ.आई.आर. की प्रति	प्रदर्श क-10	पीडब्लू-8
11।	एस.एस.पी. मुजफ्फरनगर को पत्र,	प्रदर्श क-11	पीडब्लू-9
12.	अभियोग पक्ष प्रतिबंध	प्रदर्श क-12	पीडब्लू-9

13.	आरोप पत्र	प्रदर्शक-13	पीडब्लू-9

10. अभियोजन साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद, आरोपी/अपीलकर्ता से सीआरपीसी की धारा 313 के तहत जांच की गई, जिसमें उसने कहा कि अभियोजन का पूरा मामला झूठा है। उन्होंने कहा कि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा उनके खिलाफ झूठे आरोप लगाए गए हैं और पक्षपात के कारण झूठा मामला दर्ज किया गया है।

11. बचाव पक्ष ने केस अपराध संख्या 258/2014 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 173/2015 (राज्य बनाम अरविन्द एवं अन्य) में धारा 364, 302, 201, 376(डी), 34 आई.पी.सी. के तहत में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 15, जिला मुजफ्फरनगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.04.2018 की प्रति के रूप में और अपराध संख्या 259/2014 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 172/2015 (राज्य बनाम अरविंद और अन्य), धारा 302, 201/34 आई.पी.सी. के तहत अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 15, मुजफ्फरनगर द्वारा एस.टी. में पारित आदेश दिनांक 24.04.2018 की प्रति के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए हैं।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अभियोजन पक्ष के गवाह पुलिस कर्मी हैं, इसलिए उनकी गवाही विश्वसनीय नहीं है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान में भौतिक विरोधाभास हैं। वर्तमान मामले में

अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया है। गैंग चार्ट में अपीलार्थी के विरुद्ध दर्शाए गए मुकदमे झूठे हैं। अपीलकर्ता द्वारा किये गये कथित मामलों का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। विचारण न्यायालय का फैसला कानून की नजर में कायम नहीं रह सका। अपीलकर्ता बरी किए जाने का पात्र है और तदनुसार, उसकी अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

13. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का विरोध किया और तर्क दिया कि गैंग चार्ट में उल्लिखित मामलों में से अपीलकर्ता को केस अपराध संख्या 258/ 2014 में धारा 364 आईपीसी और 259/2014 के तहत धारा 302, 201 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया है। अपीलकर्ता आजीवन कारावास की सजा काट रहा है। अपीलकर्ता आदतन अपराधी है और विभिन्न मामलों में दोषी है। अपीलकर्ता ने सामूहिक बलात्कार, हत्या, डकैती, अपहरण आदि जैसे समाज के खिलाफ अपराध करने और साक्ष्य छुपाने के लिए एक गिरोह का गठन किया है। इस प्रकार अपीलकर्ता ने समाज में भय और आतंक का माहौल पैदा कर दिया। वह एक कट्टर अपराधी है और आम तौर पर कोई भी उसके खिलाफ सबूत पेश करने की हिम्मत नहीं करता। बचाव पक्ष अपने मामलों में मुखबिर के साथ कोई पिछली दुश्मनी स्थापित नहीं कर सका। अतः इस संबंध में बचाव पक्ष का तर्क मान्य नहीं है। अभियोजन पक्ष ने उनके खिलाफ आरोपों को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है। विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं है, इसलिए अपील खारिज होने योग्य है।

14. विद्वानों द्वारा दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए अपीलकर्ता और विद्वान ए.जी.ए. के अधिवक्ता इस स्तर पर अभियोजन और बचाव पक्ष के साक्ष्यों की संक्षिप्त चर्चा प्रतीत होती है, जो सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवश्यक है।

15. पी.डब्ल्यू.-1 इंस्पेक्टर धनंजय मिश्रा, पी.डब्ल्यू.-2 जयपाल, पी.डब्ल्यू.3 हेड मोहरीर राज कीर्ति सिंह, पी.डब्ल्यू.4 सतपाल सिंह, पी.डब्ल्यू.5 परब सिंह और पी.डब्ल्यू.6 प्रताप सिंह ने अपनी जांच में अभियोजन पक्ष का पूरा समर्थन किया है। बचाव पक्ष अपनी जिरह में कोई ठोस विरोधाभास नहीं बता सका।

16. गैंग चार्ट में उल्लिखित सभी मामलों में शिकायतकर्ता और संबंधित गवाहों से भी पूछताछ की गई, जिन्होंने अपनी जांच में गैंग चार्ट की सत्यता को साबित किया। गैंग चार्ट को अभियोजन की मंजूरी प्राप्त करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था जिसे सही तरीके से मंजूरी दी गई थी और इसे पी.डब्ल्यू-9 द्वारा प्रदर्शक-12 के रूप में साबित किया गया है। उपरोक्त परिस्थितियों में बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य उसके पक्ष को मजबूत नहीं कर सके। अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप उचित संदेह से परे स्थापित हैं और विद्वान विचारण न्यायालय ने उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3 (1) के तहत अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है।

17. उपरोक्त के मद्देनजर, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आरोपी अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों पर विवाद नहीं किया। उन्होंने दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी और अपना तर्क केवल सजा के संबंध में ही सीमित रखा। उन्होंने तर्क दिया कि लगाई गई सजा बहुत कठोर है जिसे संशोधित/घटाई गई अवधि तक घटाया जाना चाहिए।

18. विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क का विरोध किया और तर्क दिया कि अपीलकर्ता एक कट्टर अपराधी है और वह अपराधी है उसके खिलाफ जघन्य अपराधों का इतिहास है, इसलिए वह सजा देने में किसी तरह की नरमी का हकदार नहीं है। विद्वान निचली अदालत द्वारा दी गई सजा बिल्कुल निष्पक्ष और उचित तथा अपराध की गंभीरता के अनुसार है।

19. उपरोक्त के मद्देनजर, सवाल यह है कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसमें संशोधन की आवश्यकता है।

20. इस स्तर पर, सजा के बारे में संक्षिप्त कानूनी जानकारी अनिवार्य है। अपराध के मामलों में सजा सुनाना एक महत्वपूर्ण कार्य है। डायरी संख्या 21596/2020 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या -/ 2022 राजस्थान राज्य बनाम बरवारी लाल एवं अन्य मे, शीर्ष अदालत का जिक्र सतीश कुमार जनयंती लाल दबगर बनाम गुजरात राज्य (2015) 7 एससीसी 359, के मामले में अवधारित किया है कि सजा देने के पीछे का उद्देश्य और औचित्य प्रतिशोध, अक्षमता, पुनर्वास और

निवारण भी है। आपराधिक कानून का एक मुख्य उद्देश्य अपराध की प्रकृति और गंभीरता तथा अपराध करने के तरीके के अनुरूप उचित, पर्याप्त, न्यायसंगत और आनुपातिक सजा देना है।

21. भारत में कोई संरचित सजा नीति नहीं है। हालाँकि, स्वाभाविक रूप से, भारतीय संसद ने कोई सजा नीति निर्धारित नहीं की है **मलिमथ समिति (2003) और माधव मेनन समिति (2008)** भारतीय समाज की बदलती परिस्थितियों में सजा नीति की आवश्यकता पर जोर दिया है। ऐसी किसी नीति के अभाव में सजा देना न्यायालयों के समक्ष चिंता का विषय रहा है।

22. **एलिस्टर एंथोनी परेरा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012), एससीसी 648**, में शीर्ष अदालत ने इसका अवलोकन किया है। "इस प्रकार, अपराध के सबूत पर किसी आरोपी को सजा देने का कोई सख्त फॉर्मूला नहीं है। अदालतों ने कुछ सिद्धांत विकसित किए हैं: सजा के दोहरे उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए निवारण और सुधार से सम्बन्धित सिद्धांत एवं कौन सी सजा न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगी यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और अदालत को अपराध की गंभीरता, अपराध का मकसद, अपराध की प्रकृति और अन्य सभी संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए।

23. सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों का अवलोकन करने से पता चलता है कि हमारे देश का आपराधिक

न्यायशास्त्र सुधारात्मक है, न कि प्रतिशोधात्मक, क्योंकि अदालत का मानना है कि प्रत्येक आरोपी को सुधारा जा सकता है और उसे सुधारने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए। उन्हें मुख्य सामाजिक में लाने के लिए सुधार का अवसर दिया गया धारा।

24. **मो. गियासुद्दीन बनाम. आंध्र प्रदेश राज्य, [आईआर 1977 एससी 1926]** में सज़ा सुनाने में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह देखा है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, फोकस व्यक्ति में दंडविद्या में रुचि है और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है, जो बिगड़ चुके व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है आपराधिकता और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है, इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंकवाद' के दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति का क्रूर कारावास केवल पैदा करता है। यदि आपको किसी

व्यक्ति को दंडात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते।"

25. देवनारायण मंडल बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257] के मामले में 'उचित सजा' शब्द की व्याख्या की गई थी जिसके तहत निम्नलिखित धारित किया गया था:-

"सज़ा या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होनी चाहिए। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, कृत्य का तरीका सजा देने में अपराध, उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता है।

26. रवादा शशिकला बनाम. एपी राज्य एआईआर 2017 एससी 1166, में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णयों का उल्लेख किया **जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532]**, **गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734]**, **सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323]**, **पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441]**, और **राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]**,

"दोहराया कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक तंत्र या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, आचरण अभियुक्तों की संख्या, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, सजा देने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना हर अदालत का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को सजा पर विचार करते समय न केवल पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि पूरे समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए उचित दंड, समग्र रूप से समाज पर अपराध का प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना उद्देश्य होना चाहिए कानून का, जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के

तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।"

27. इस प्रकार, कई मामलों में इस मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। शीर्ष अदालत ने बार-बार इस संबंध में दिशानिर्देशों के बारे में आगाह किया है।

28. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में प्रचलित आपराधिक न्यायशास्त्र जो कि सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए।

29. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर

है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

30. उपरोक्त कानूनी परिदृश्य की पृष्ठभूमि में इसका उल्लेख किया गया है वर्तमान अपील में, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराते हुए उसे दस साल के कठोर कारावास और उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के तहत 15,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई।

31. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी, बल्कि अदालत से प्रार्थना की कि सजा को उस अवधि तक कम कर दिया जाए, जो पहले ही अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गई ज़ेरोक्स कॉपी रिकॉर्ड में है। उनका कहना है कि उनके खिलाफ 6.11.2014 को एफआईआर दर्ज की गई है। जेल अधीक्षक, बरेली द्वारा 15.3.2023 को जारी हिरासत प्रमाण पत्र के अनुसार, अपीलकर्ता वास्तव में 9 साल, 4 महीने और 12 दिनों की अवधि के लिए जेल में बंद है, हालांकि, उस तारीख को लगभग एक दशक फैसले की तारीख तक वह लगभग 9 साल और 7 महीने से कैद में है। इस प्रकार अपीलकर्ता अपनी सजा की अवधि लगभग पूरी करने के कगार पर है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि अपीलकर्ता लगभग 35 वर्ष का युवा है। वह

इतनी लंबी अवधि तक जेल में था लेकिन संबंधित जेल अधीक्षक द्वारा किसी प्रतिकूल आचरण की सूचना नहीं दी गई है। इस प्रकार, आरोपी के सुधारने और सामाजिक परिवेश की मुख्यधारा में शामिल होने और समाज के विकास में योगदान देने की उचित संभावना है। इन परिस्थितियों में, उसकी सजा को पहले ही काट ली गई अवधि तक कम करना, न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा।

32. परिणामस्वरूप, त्वरित अपील होती है आंशिक रूप से अनुमति निम्नलिखित निर्देशों के साथ:-

(i) अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के संबंध में विद्वान निचली अदालत के दिनांक 16.5.2019 के फैसले की पुष्टि की जाती है और वह बरकरार रहेगा।

(ii) विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दी गई दस साल की कठोर कारावास की सजा के संबंध में अपीलकर्ता द्वारा पहले से ही भुगती गई अवधि में संशोधन किया गया है।

(iii) जुर्माने की राशि रु. 15,000/- का जुर्माना और इसकी डिफॉल्ट अवधि बरकरार रहेगी।

(iv) तदनुसार, अपीलकर्ता को तुरंत रिहा किया जाए।

(v) अपीलकर्ता को जुर्माने की पूरी राशि, यदि पहले से जमा नहीं की गई है, इस फैसले की तारीख से चार महीने के भीतर जमा करनी होगी।

(vi) निर्णय की एक प्रति आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को भेजी जाएगी।

(vii) विचारण न्यायालय का रिकॉर्ड तुरंत वापस भेजा जाए।

(viii) . न्यायालय को अपनी बहुमूल्य सहायता प्रदान करने के लिए विद्वान न्याय मित्र श्री राकेश कुमार गुप्ता, अधिवक्ता को 5,000/- रुपये की राशि प्रदान किए जाएं।

(2023) 7 ILRA 212

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन

रिजवी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 5252 वर्ष 2022

रीना एवं एक अन्य ...पुनरीक्षणकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री सत्येंद्र नारायण सिंह, श्री पंकज कुमार मिश्रा

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री संजय मिश्रा

(अ) आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 325, 504 एवं 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 319 - अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही निर्गत की शक्ति- धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति प्रयोग के

लिए सर्वोच्च न्यायालय का परीक्षण - केवल उस समय किसी व्यक्ति के विरुद्ध सशक्त एवं ठोस साक्ष्य होने पर तो शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए - लागू किया जाने वाला परीक्षण वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, जिसे आरोप निर्धारण के समय लागू किया जाता है - धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत विवेचक को दिए गए गवाहों के कथन के आधार पर यह निष्कर्ष अंकित करने में विश्वास नहीं किया जा सकता अभियुक्त घटना स्थल पर उपस्थित नहीं हो सकता था - न्यायालय को साक्ष्य के आधार पर यह प्रतीत होना चाहिए कि कोई ऐसा व्यक्ति, जो अभियुक्त के रूप में नामित नहीं है, अपराध किया हुआ प्रतीत होता है - न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक नहीं है कि उसने अपराध किया है - केवल यह प्रतीत होने कि आवश्यकता है कि उसने कोई अपराध किया है। (प्रस्तर - 8)

प्रथम सूचना प्रतिवेदन में पुनरीक्षकों एवं अन्य व्यक्तियों पर हमला करने का आरोप लगाया गया - घायल - चिकित्सीय प्रतिवेदन अभिलेख का भाग हैं - घायल ने आरोपों का समर्थन किया - घटना में पुनरीक्षकों की संलिप्तता - जांच अधिकारी ने ग्रामीणों के कथनों के आधार पर पुनरीक्षकों को दोषमुक्त कर दिया - घायल साक्षी ने पुनः अपने कथन में पुनरीक्षकों की संलिप्तता को दोहराया - अभियोजन पक्ष का दावा कि सभी अभियुक्तों ने हमला कर चोटें पहुंचाई - प्रथम सूचक/अभियोजन द्वारा धारा 319 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया - मजिस्ट्रेट द्वारा पुनरीक्षकों को सह-अभियुक्तों के साथ अपराध

हेतु विचारण का सामना करने के लिए तलब किया गया - फलस्वरूप, तत्काल पुनरीक्षण। (प्रस्तर - 2, 7)

निर्णय:- अभिलेख में पर्याप्त और ठोस साक्ष्य विद्यमान हैं जो आरोप निर्धारण के समय प्रयोग होने वाले प्रारंभिक प्रमाण से अधिक हैं, परन्तु इस स्तर तक संतुष्टि नहीं है कि यदि साक्ष्य का प्रत्याख्यान न किया गया तो वह दोषसिद्धि हो जाएगी, और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण पर उचित प्रतीत होता है। धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पुनरीक्षकों अभियुक्त को तलब करने के लिए पर्याप्त आधार है। आक्षेपित समन आदेश में कोई अवैधता या दोष नहीं है। (प्रस्तर - 9, 10)

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी.

1. पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत पूरक शपथपत्र को अभिलेख पर लिया गया है।
2. पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह, राज्य के लिए विद्वान एजीए व विपक्षी पक्ष संख्या 2 / प्रथम सूचना प्रदाता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय मिश्रा को सुना।
3. यह आपराधिक पुनरीक्षण मुकदमा अपराध संख्या 633 / 2009 अंतर्गत धारा 323, 325, 504, 506 भा.दं.सं., थाना भरथना, जिला

इटावा से उत्पन्न आपराधिक वाद संख्या 623 / 2012 (राज्य बनाम बलराम और अन्य) में ए.सी.जे.एम. न्यायालय संख्या 1, इटावा द्वारा पारित आदेश दिनांकित 13.10.2022 के विरुद्ध दाखिल किया गया है। आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वान मजिस्ट्रेट ने प्रथम सूचना प्रदाता / अभियोजन पक्ष के प्रार्थना पत्र पर दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए भा.दं.सं. की धारा 323, 325, 504, 506 के तहत अपराध के लिए सह-अभियुक्त के साथ पुनरीक्षणकर्तागण को विचारण का सामना करने के लिए समन किया गया है।

4. विपक्षी संख्या 2 यानी अनुज कुमार ने 27.12.2009 को सुबह 9 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट यह आरोप लगाते हुए दर्ज कराया कि दिनांक 27.12.2009 को सुबह लगभग 7 बजे शिकायतकर्ता की मां राम सखी देवी और भाई प्रमोद कुमार गोबर इकट्ठा कर रहे थे तभी बलराम सिंह, श्रीमती गोपश्री, रूबी और रीना ने शिकायतकर्ता की मां और भाई के साथ हाथापाई शुरू कर दी और उन्होंने उनके साथ मारपीट की, जिससे उसकी मां के सिर में चोट आई, उनका बायां हाथ भी टूट गया, उनके सिर से खून बहने लगा। प्रमोद कुमार का बायां हाथ भी टूट गया। ओमकार सिंह और रुकम सिंह ने उन्हें बचाया। अभियुक्तगण गाली-गलौज व जान से मारने की धमकी देते हुए मौके से भाग गए। विवेचना के उपरांत केवल बलराम सिंह एवं श्रीमती गोपश्री के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया। पुनरीक्षणकर्तागण रूबी व रीना को दोषमुक्त कर दिया गया। विचारण के दौरान, अनुज

कुमार को पी.डब्ल्यू. 1 और राम सखी को पी.डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षित किये जाने के उपरांत, प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 319 दं.प्र.सं. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया था जिसे आक्षेपित आदेश द्वारा स्वीकार किया गया है।

5. पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में सामान्य आरोप हैं और पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तों की कोई विशिष्ट भूमिका नहीं बतायी गई है। परिवार के सभी सदस्यों को फंसाया गया है जबकि किसी की कोई विशेष भूमिका नहीं बतायी गई है। विवेचना अधिकारी ने स्वतंत्र गवाहों के बयान अंकित किए हैं जिन्होंने कथन किया है कि दोनों लड़कियां (पुनरीक्षणकर्तागण) विद्यालय जाने वाली थीं और विद्यालय जाने के लिए गई थीं। गवाहों और अन्य साक्ष्य पर विचार करने के उपरांत, विवेचना अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुनरीक्षणकर्तागण की संलिप्तता नहीं पाई गई, इसलिए उन्हें आरोप पत्र से दोषमुक्त कर दिया गया। आगे यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि चोटिल राम सखी / पी.डब्ल्यू. 2 को माथे पर एक चोट, दाहिनी बांह पर एक चोट और कलाई के जोड़ पर एक चोट है। उनकी एक्स-रे रिपोर्ट में दाहिने हाथ में फ्रैक्चर का पता चला है। दूसरे घायल प्रमोद कुमार को एक चोट, एक अन्तःक्षति और एक खरोंच आई है। उनकी एक्स-रे रिपोर्ट एनएडी है। इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोप पूरी तरह से झूठे व मनगढ़ंत हैं। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि वादी, अनुज कुमार/पी.डब्ल्यू. 1 घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है, उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट में

पुनरीक्षणकर्तागण-अभियुक्तगण की संलिप्तता के बारे में कुछ भी नहीं बताया है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने केवल राम सखी / पी.डब्ल्यू. 2 के बयान पर यांत्रिक ढंग से पुनरीक्षणकर्तागण को समन किया है। घटना के समय, पुनरीक्षणकर्तागण नाबालिग थे और हाई स्कूल प्रमाणपत्र मय अंकपत्र के अनुसार, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 की जन्म तिथि 10.08.1996 है और हाई स्कूल अंकपत्र के अनुसार, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 की जन्म तिथि 11.10.1993 है। दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र केवल उन पुनरीक्षणकर्तागण के वैवाहिक जीवन को परेशान करने के लिए दुर्भावनापूर्ण इरादे से दायर किया गया है जो अब विवाहित हैं। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों और सामग्रियों के विरुद्ध है। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने स्पष्ट अवैधानिकता की है जो रिकॉर्ड पर स्पष्ट है। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि शीर्ष न्यायालय ने कई मामलों में अभिनिर्धारित किया है कि दं. प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत समन करने की शक्ति एक असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए जहां स्थिति की ऐसी मांग हो। संतुष्टि का स्तर प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है। विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा कोई निष्कर्ष अंकित नहीं किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर पुनरीक्षणकर्तागण को दोषी ठहराए जाने की संभावना है। अतः आदेश त्रुटिपूर्ण है एवं पोषणीय नहीं है। विद्वान

मजिस्ट्रेट ने निम्नलिखित वाद कानूनों पर भरोसा जताया है: - (i) हरदीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य 2014 0 सुप्रीम (एससी) 27 और (ii) पेरियासामी और अन्य बनाम एस नल्लासामी 20190 सुप्रीम (एससी) 284

6. विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्तागण का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में स्पष्ट आरोप के साथ दर्ज किया गया है कि वे भी घटना स्थल पर मौजूद थे और अपराध के कारित करने में भाग लिया था। उन्होंने राम सखी/पी.डब्ल्यू.2 व प्रमोद कुमार पर हमला किया जिससे वे घायल हो गये। वादी - अनुज कुमार और दोनों घायलों ने विवेचना के दौरान अपने बयानों में प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों की पुष्टि की है, लेकिन विवेचना अधिकारी ने अनुचित तरीके से केवल पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तगण को लाभ पहुंचाने के लिए इसे नजरअंदाज कर दिया और उन्हें दोषमुक्त कर दिया। इस घटना में राम सखी/पी.डब्ल्यू.2 और प्रमोद कुमार दोनों को चोटें आई हैं। राम सखी/पी.डब्ल्यू.2 की चोट गंभीर प्रकृति की है। वादी, अनुज कुमार को पी.डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षित किया गया है, जबकि चोटिल राम सखी से पी.डब्ल्यू.2 के रूप में परीक्षित किया गया है और उन्होंने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों की फिर से पुष्टि की है। इसलिए पुनरीक्षणकर्तागण के विरुद्ध अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य हैं और विद्वान परीक्षण न्यायालय ने उचित आदेश पारित किया है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

7. पुनरीक्षणकर्तागण को प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्त के रूप में नामित किया गया है। ऐसा आरोप है कि पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तगण ने प्रथम सूचना रिपोर्ट के अन्य नामित अभियुक्तगण के साथ मिलकर वादी के भाई और मां, प्रमोद कुमार और राम सखी / पी.डब्ल्यू. 2 पर हमला किया। प्रमोद कुमार और राम सखी चोटिल हो गए और उनका चिकित्सीय परीक्षण किया गया और उनका चिकित्सीय आख्या अभिलेख का हिस्सा है। राम सखी / पी. डब्ल्यू. 2 को दाहिनी बांह फ्रैक्चर के रूप में गंभीर चोट लगी है। वादी घटना का चश्मदीद गवाह नहीं हो सकता है, लेकिन दोनों चोटिल प्रमोद कुमार और राम सखी, दोनों ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत अंकित किए गए अपने बयानों में प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों का समर्थन किया है और घटना में पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तगण सह अभियुक्तों के साथ शामिल होने का कथन किया है। विवेचना अधिकारी ने कुछ ग्रामीणों के बयानों के आधार पर पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तगण को दोषमुक्त कर दिया है। चोटिल साक्षीगण में से एक, राम सखी को परीक्षण न्यायालय के समक्ष पी.डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षित किया गया है, उन्होंने अपने पिछले बयानों को दोहराया है और घटना में पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तगण की संलिप्तता के बारे में कहा है। अभियोजन पक्ष का मामला है कि सभी अभियुक्तगण ने लाठी, डंडा लेकर राम सखी और प्रमोद कुमार पर हमला किया, जिससे वे चोटिल हो गये।

8. दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों को लागू करने के लिए शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिद्धांत भी शामिल है कि केवल तभी, जब किसी व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और ठोस साक्ष्य हों, उक्त शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। लागू किया जाने वाला परीक्षण वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, जिसे आरोप तय करने के समय लागू किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने राजेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य ए.आई. आर. 2007 एससी 2786 में अभिनिर्धारित किया है कि धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत विवेचना अधिकारी को दिए गए साक्षीगण के बयान पर यह निष्कर्ष निकालते समय भरोसा नहीं किया जा सकता है कि जिन अभियुक्तगण पर मुकदमा चलाने की मांग की गई थी, वे घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायालय को साक्ष्य के आधार पर ऐसा लगना चाहिये कि जिसका नाम अभियुक्त के रूप में नहीं लिया गया है, वह अपराध करता प्रतीत होता है। न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होने की ज़रूरत नहीं है कि उसने एक अपराध किया है। उसे केवल यह प्रतीत होना चाहिए कि उसने एक अपराध किया है।

9. अतः तथ्यों के वर्तमान सेट पर शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि चोटिल साक्षी की गवाही के रूप में, पुनरीक्षणकर्तागण-अभियुक्तगण की मात्र संभावना से अधिक मजबूत सबूत हैं। इसकी तुलना में विवेचना अधिकारी ने जिन साक्ष्यों के आधार पर पुनरीक्षणकर्तागण-अभियुक्तगण को दोषमुक्त

किया है, वह काफी कमजोर प्रकृति के हैं। अभिलेख पर पर्याप्त और ठोस साक्ष्य हैं जो प्रथम दृष्टया मामले से कहीं लेकिन इस अधिक हैं जैसा कि आरोप तय करते समय इस्तेमाल किया गया था, हद तक संतुष्टि की कमी है कि अगर साक्ष्य का खंडन नहीं किया गया तो दोषसिद्धि हो सकती है और यह शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण में खरा उतरता है।

10. विद्वान परीक्षण न्यायालय ने एक विस्तृत और तर्कसंगत आदेश के साथ प्रार्थना पत्र को स्वीकार किया है। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सभी तथ्य, साक्ष्य व अन्य सामग्रियों को सुनाया है तथा इसका विश्लेषण करने के बाद, यह निष्कर्ष निकाला है कि पुनरीक्षणकर्तागण - अभियुक्तगण को दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत समन करने के लिए पर्याप्त आधार है। आक्षेपित समन आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

11. तदनुसार, पुनरीक्षण को खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 216

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 795 वर्ष 2002

ब्रह्मा नंद मौर्य

.....अपीलकर्ता

बनाम

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं
अन्य प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री एस.एन. त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अमरेश सिन्हा, श्री अनुभव सिन्हा

ए. दीवानी विधि - मोटर यान अधिनियम, 1988 - धारा 173 - प्रतिकर में वृद्धि - अपीलकर्ता ने एक गम्भीर अपंगता सहन की है जिसमें उसे अपना पैर खोना पड़ा है - उसके बाएं जांघास्थि का शीर्ष चोट के कारण बुरी तरह से टूटा - इसके परिणामस्वरूप की गई शल्य चिकित्सा प्रक्रिया के दौरान, जांघास्थि शीर्ष को पृथक कर दिया गया, जो कूल्हे की संधि से जुड़ा होता है - फलस्वरूप, दावेकर्ता की टांग एक इंच और आधा छोटी हो गई - इससे दावेकर्ता को संचलन में पर्याप्त कठिनाई हुई - उसके दाहिने हाथ की मध्यमा उंगली मुड़ गई - कूल्हे की संधि विस्थापित हो गई क्योंकि उसका शीर्ष टूटा था - नियम 220-ए (3), नियमावली 1998, के तथ्यों पर अनुप्रयोग के अनुसार, दावेकर्ता की आयु 47 वर्ष थी, अर्थात् 40 से 50 वर्ष की आयु श्रेणी में - भविष्य की संभावनाओं की दृष्टि से 30 प्रतिशत की वृद्धि जोड़ी गई तथा 13 का गुणक लागू किया गया - कुल प्रतिकर राशि को वृद्धिकर 7,72,149 रुपये किया गया - आक्षेपित निर्णय जो न्यायाधिकरण द्वारा पारित किया गया था, उसमें संशोधन किया गया और धनराशि पर

दावा याचिका की प्रस्तुति तिथि से लेकर वसूली तक 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की साधारण ब्याज दर से ब्याज देय होगा (प्रस्तर 1 से 33)।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

बी. वर्तमान वाद में प्रतिकर की गणना करते समय न्यायालय को इस तथ्य के प्रति सचेत रहना होगा कि अपीलकर्ता ने एक गम्भीर अपंगता सहन की है, जिसमें उसने अपने दोनों हाथों की उपयोगिता की हानि सहन की है। किसी व्यक्ति के लिए जो श्रमसाध्य कार्यों में संलग्न हो, यह कल्पना करना भी कठिन नहीं कि हाथों की हानि, अर्जन की क्षमता की पूर्ण समाप्ति है। कुछ भी - कम से कम इस वाद के तथ्यों में - खोए हुए हाथों की पुनः प्राप्ति नहीं कर सकता। परन्तु प्रतिकर की मात्रा विधि का यह वास्तविक प्रयास प्रदर्शित करनी चाहिए कि वह व्यक्ति की गरिमा की पुनःस्थापना हेतु है। हमारे प्रतिकर निर्धारण के मापदंड इतने न्यून नहीं होने चाहिए कि कोई यह प्रश्न प्रस्तुत करे कि क्या हमारी विधि मानवीय जीवन को कोई मूल्य देती है। यदि ऐसा है, जैसा कि उसे करना चाहिए, तो उसे हानि की पीड़ा और कष्ट की वेदना के लिए एक यथार्थवादी प्रतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए। प्रतिकर की राशि विधि द्वारा प्रदत्त दान नहीं है। अधिकारों के विमर्श में, वे विधि के अंतर्गत दावे के अधिकार हैं। हमारी विधिक चर्चाओं को, व्यक्ति की संरक्षकात्मक अधीनता से हटाकर, मानव गरिमा से निहित प्रवर्तनीय अधिकारों के उद्घोष की ओर अग्रसर होना चाहिए। (प्रस्तर 28)

1. मुआवज़ा बढ़ाने की यह अपील मोटर दुर्घटना के घायल-पीड़ित ब्रह्मा नंद मौर्य, एमएसीपी संख्या 418/1996 के दावेदार द्वारा दायर की गई है। वह मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/विशेष न्यायाधीश (आवश्यक वस्तु अधिनियम), गोरखपुर के फैसले और मुआवज़ा से व्यथित है, जिसके बारे में उसका कहना है कि मोटर दुर्घटना के कारण उसे हुई क्षति और दुख के लिए उसे अपर्याप्त मुआवज़ा दिया गया है जो कि 29 अप्रैल 1996 को हुआ था।

2. दावा याचिका में प्रस्तुत तथ्य इस प्रकार हैं: ब्रह्मा नंद मौर्य ग्राम बेलाडार, पोस्ट शिवपुर, जिला गोरखपुर के मूल निवासी हैं। 28 अप्रैल 1996 को वह अपनी बहन के यहां बलसाढ़ गया था। अगले दिन यानी 29 अप्रैल, 1996 को वह जीप संख्या उ.प्रके-8702 पर सवार होकर घर लौट रहे थे। वह चालक के पास बैठा था। सुबह करीब 11.30 बजे जब जीप ग्राम पलाहीपार के पास पहुंची और दुर्गा मंदिर के पास थी, तभी चालक लापरवाही से वाहन को तेज गति से चला रहा था, जिससे जीप अनियंत्रित हो गई और एक पेड़ से जा टकराई। हादसा जीप चालक की लापरवाही से हुआ। ब्रह्मा नंद मौर्य (बाद में 'दावेदार' के रूप में संदर्भित) को जिला अस्पताल, गोरखपुर के आपातकालीन अनुभाग में भर्ती कराया गया था। चूंकि उनकी चिकित्सीय स्थिति बिगड़ गई,

इसलिए वहाँ के डॉक्टरों ने आशा खो दी। फिर उन्हें जीवन ज्योति मेडिकल सेंटर, कसया रोड, बेलिया हाता, गोरखपुर में हड्डी रोग विशेषज्ञ डॉ. एस.सी. कौशिक की देखभाल में भर्ती कराया गया। चोट के कारण उनके बायीं जाँघ की हड्डी का शीर्ष भाग बुरी तरह टूट गया था। आगामी सर्जिकल ऑपरेशन के दौरान, जाँघ की हड्डी का शीर्ष भाग हटा दिया गया, जो कूल्हे के जोड़ से जुड़ा हुआ है। परिणामस्वरूप, दावेदार का पैर डेढ़ इंच छोटा हो गया। इससे दावेदार को आने-जाने में काफी परेशानी हुई। उसके दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुली मुड़ी हुई थी। सिर की हड्डी टूटने से कूल्हे का जोड़ अपनी जगह से हट गया।

3. दावेदार को इस कारण निरंतर पीड़ा झेलनी पड़ती है। दावेदार 29.04.1996 से 30.04.1996 तक जिला अस्पताल में और फिर 30.04.1996 से 26.06.1996 तक डॉ. एस.सी. कौशिक के नर्सिंग होम में भर्ती रहा। 26.06.1996 से 26.07.1996 के बीच डॉ. एस.सी. कौशिक ने दावेदार से उसके घर पर पांच बार मुलाकात की। ये दौरें दावेदार की कीमत पर थे। इनमें से प्रत्येक दौरे के दौरान, डॉ. कौशिक दावेदार की ड्रेसिंग आदि करेंगे। दावेदार के अनुसार, वह विभिन्न मर्दों के तहत 9 लाख रुपये से अधिक के मुआवजे का हकदार था। यह आग्रह किया गया कि वह वर्ष 1974 में एक अधिवक्ता के रूप में नामांकित हुए थे और उनकी वकालत की कार्य 6000 रुपये प्रति माह थी। इसके अलावा, वह खेती से प्रति माह 4000 रुपये कमा लेते थे। दुर्घटना के कारण विकलांग होने के बाद, उनकी सारी आय समाप्त हो गई। वह चार महीने तक

बिस्तर पर रहे। उनकी कार्य 22 साल की अवधि में चली, जो सब बर्बाद हो गई। उनके ग्राहक अलग-अलग चैंबरों में चले गए। दावेदार अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र है। विकलांगता के कारण खेती आदि करने के लिए घर पर कोई नहीं बचा है। दावेदार ने दावा किया कि उसे अत्यधिक शारीरिक और मानसिक पीड़ा हुई है। उसका भविष्य अंधकारमय हो गया था।

4. राम नक्षत्र सिंह की ओर से एक लिखित बयान दायर किया गया था, जिसमें दलील दी गई थी कि वह आपतिजनक जीप का मालिक नहीं है। दुर्घटना होने से बहुत पहले, उन्होंने जीप आदया प्रसाद पांडे को बेच दी थी, जो उनके नाम पर स्थानांतरित हो गई थी। इसलिए राम नक्षत्र सिंह ने कहा कि इस मामले में उनकी कोई देनदारी नहीं है। राम नक्षत्र सिंह को दावा याचिका में विपक्षी पक्ष संख्या 1 और अपील में प्रतिवादी संख्या 2 के रूप में शामिल किया गया था।

5. आदया प्रसाद पांडे को दावा याचिका में विपरीत पक्ष संख्या 2 और इस अपील में प्रतिवादी संख्या 3 के रूप में शामिल किया गया था। इसके बाद उसे स्वामी कहा जाएगा। उन्होंने अलग से एक लिखित बयान दर्ज किया और इस तथ्य को स्वीकार किया कि वह हमलावार जीप के पंजीकृत मालिक थे। यह कहा गया है कि उपरोक्त जीप दिनांक 29.04.1996 को प्रातः 11.30 बजे पुलिस स्टेशन खजनी की स्थानीय सीमा के भीतर किसी भी दुर्घटना का शिकार नहीं हुई थी और न ही उक्त वाहन पर कोई घायल

व्यक्ति सवार था। दुर्घटना के दिन जीप किशुन का पुत्र राम कृपाल चला रहा था, जिसके पास ड्राइविंग का कई वर्षों का अनुभव था। दुर्घटना की तिथि पर उसके पास वैध और प्रभावी चालक अनुज्ञापतिथा। मालिक के अनुसार, दावेदार को किसी अन्य घटना में चोटें लगी थीं। उन्होंने मुआवज़ा वसूलने के लिए बिना किसी आधार के जीप के खिलाफ़ दावा पेश किया था। दुर्घटना की तारीख पर हमलावार जीप के खिलाफ कोई प्र.सूरि दर्ज नहीं की गई थी। इसे परामर्श और पूर्वचिन्तन के बाद महीनों बाद दर्ज किया गया था। दावेदार को कोई चोट नहीं आई। जिस तरह की चोटों का वर्णन किया गया है वह सरासर गलत और मनगढ़ंत है। दुर्घटना की तिथि पर, दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमा यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, दावा याचिका में विपक्षी पक्ष संख्या 3 और अपील के प्रतिवादी संख्या 1 से किया गया था। उपरोक्त बीमा कंपनी को इसके बाद 'बीमाकर्ता' के रूप में जाना जाएगा। जीप का बीमा बीमाकर्ता के पास कवर नोट संख्या 206178 के तहत किया गया था, जो 10.10.1995 से 10.10.1996 तक वैध था। चालक एक आवश्यक पक्ष था और उसे पक्षकार नहीं बनाया जा रहा था, दावा याचिका कुसयोजन के लिए खराब थी (लिखित बयान में इसे गलत तरीके से वर्णित किया गया है, जिसे नॉन-सयोजन होना चाहिए)। मालिक का दावा किया कि दावेदार ने कभी भी उसकी जीप पर यात्रा नहीं की, लेकिन यदि अधिकरण की राय है कि उसकी जीप दुर्घटना में शामिल थी, तो इसका बोझ बीमाकर्ताओं को वहन करना होगा।

6. बीमाकर्ताओं ने अपना लिखित बयान दिनांक 06.01.1998 दाखिल किया। दुर्घटना के तथ्य को नकार दिया गया, साथ ही हमलावार जीप की संलिप्तता को भी नकार दिया गया। वैकल्पिक रूप से यह दलील दी गई कि अंतिम दलील से पूर्वग्रह हुए बिना, यदि यह साबित हो जाता है कि दुर्घटना दुर्भाग्यपूर्ण जीप से ही कारित हुई थी, तो यह बीमाकर्ताओं का मामला था कि जीप को लापरवाही से और उतावलेपन से नहीं चलाया जा रहा था। मालिक ने अभागी जीप का रखरखाव नहीं किया था। दुर्घटना के दिन यह सड़क पर चलने लायक नहीं थी। यह बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों के विरुद्ध किया जा रहा था। गाड़ी का बीमा भी कराने से इंकार कर दिया गया। बीमाकर्ताओं ने कहा कि न तो मालिक ने बीमा पॉलिसी की मूल प्रति अदालत में दाखिल की है और न ही बीमाकर्ताओं को सौंपी है। बीमाकर्ताओं की ओर से यह भी कहा गया कि यदि मालिक ने साबित कर दिया है कि प्रीमियम का भुगतान किया गया है और बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-वीबी का अनुपालन किया गया है, तो केवल उसी स्थिति में बीमा पॉलिसी उन्हें बाध्य करेगी; अन्यथा नहीं। दावेदार को लगी चोटें, यदि कोई थीं, सामान्य थीं और नियमित चिकित्सा सहायता के बाद ठीक हो गईं। दावा किया गया मुआवज़ा अत्यधिक और बहुत ज्यादा है। दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक के पास मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में, 'अधिनियम') के तहत परिकल्पित वैध और प्रभावी चालक अनुज्ञापतिनहीं था। तदनुसार, बीमाकर्ता उक्त कारण से बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी नहीं थे। यह

दलील दी गई कि दावेदार पर पुख्ता सबूतों से यह साबित करने का भार है कि वह क्षतिग्रस्त जीप पर यात्रा कर रहा था। बीमाकर्ताओं के कथन के अनुसार, दावा याचिका खारिज किए जाने योग्य है

7. पार्टियों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या दिनांक 29.04.1996 को समय लगभग 11:30 बजे थाना खजनी, जिला गोरखपुर के अंतर्गत आने वाले ग्राम पलहीपार की सीमा में दुर्गा मंदिर के पास जीप संख्या UPK-8702 चालक की तेज गति व लापरवाही के कारण एक पेड़ से टकरा गयी जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्मा नंद मौर्य को जीवन के लिए खतरा और गंभीर चोट लगी और इन चोटों के कारण वह विकलांग हो गए?

2. क्या दुर्घटना के समय चालक के पास वैध चालक अनुज्ञापतिथा?

3. क्या दुर्घटना के समय, संबंधित वाहन का बीमा विपरीत पक्ष संख्या 3 के साथ किया गया था?

4. क्या दुर्घटना के समय वाहन का उपयोग बीमा पॉलिसी की शर्तों के विपरीत किया जा रहा था?

5. दावेदार किस मुआवजे का हकदार है और किस विपरीत पक्ष से?

6. कोई राहत, जिसका दावेदार हकदार हो सकता है?

8. दावा याचिका के समर्थन में, दावेदार ने खुद को अभि.साक्ष्य-1, राम बचन को अभि.साक्ष्य-2 और डॉ. एस.सी. कौशिक को

अभि.साक्ष्य-3 के रूप में जांचा। बीमाकर्ताओं के लिए अन्वेषक राधा मोहन धर द्विवेदी से उनकी ओर से बचाव.साक्ष्य-1 के रूप में पूछताछ की गई और आर.टी.ओ., गोरखपुर के कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक संजय कुमार सिन्हा की बचाव.साक्ष्य-2 के रूप में जांच की गई।

9. दावेदार ने अपने दस्तावेजी साक्ष्य में कागज संख्या 59-जी वाली एक सूची के माध्यम से 28 दस्तावेजों को अभिलेख में रखा। इनमें प्र.सूरि की कॉपी, नक्श नज़ीर, चार्जशीट और साधरण दैनंदिनी शामिल हैं। दस्तावेज में दावेदार के मेडिकल कागजात और दवाओं की खरीद दिखाने वाले रसीदे भी शामिल हैं। एक अन्य सूची, 124-जीए के माध्यम से, दावेदार का जन्म प्रमाण पत्र दायर किया गया था। एक अन्य सूची, 68-ग, अपने साथ कागज संख्या 69-ग ले गई, जो दावेदार के पंजीकरण प्रमाणपत्र की एक प्रमाणित प्रति है जो एक अधिवक्ता के रूप में उसके नामांकन को दर्शाती है। इसके अलावा, एक अन्य सूची के माध्यम से, कागज संख्या 70-जीए पर दावेदार का विकलांग प्रमाण पत्र दायर किया गया था। राम कृपाल और बलराम मिश्रा के चालक अनुज्ञापतिसे संबंधित क्षेत्रीय परिवहन कार्यालयकार्यालय से एक रिपोर्ट अभिलेख। पर लाने के लिए कागजात संख्या 95-जीए वाले दस्तावेजों की एक सूची दायर की गई थी। दस्तावेज संख्या 16-ग, कागज संख्या 17-ग की एक सूची द्वारा, दस्तावेज संख्या 90-ग, कागज संख्या 91-ग से 92-ग की एक और सूची, दस्तावेज संख्या 100-ग, कागज संख्या 101 की सूची -ग और दस्तावेज संख्या

86-ग, कागज़ संख्या 87-ग से 88-ग/2 की एक सूची दायर की गई थी। ये सभी दस्तावेज रजिस्ट्रेशन और बीमा से संबंधित हैं।

10. अधिकरण ने वाद विंदू संख्या 1 को सकारात्मक और दावेदार के पक्ष में फैसला सुनाया, यह मानते हुए कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक ने अपनी घोर लापरवाही, तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चलाकर गांव पलाहीपार के पास पेड़ से टकराकर दुर्घटना का कारण बना जिसके परिणामस्वरूप दावेदार को जीवन के लिए खतरा और गंभीर चोटें लगीं, जिसके कारण वह विकलांग हो गया। वाद विंदू संख्या 2, 3 और 4 का बीमाकर्ताओं के विरुद्ध निर्णय लिया गया, यह मानते हुए कि दुर्घटना की तारीख पर, चालक के पास वैध और प्रभावी चालक अनुज्ञापति, दुर्घटना ग्रस्त जीप का बीमा बीमाकर्ताओं के पास था और वाहन का उपयोग बीमा पॉलिसी की शर्तों के अनुसार किया जा रहा था।

11. इस अपील में अकेले वाद विंदू संख्या 5 और 6 के निष्कर्षों पर आपत्ति जताई गई है। ये मुआवजे की मात्रा से संबंधित हैं जिसके लिए दावेदार को अधिकरण द्वारा हकदार माना गया है। अधिकरण ने चिकित्सा व्यय के लिए कुल रु. 35,149/- का आदेश दिया, जिसमें अस्पताल के बिल और दवाओं की खरीद शामिल है। अधिकरण ने दावेदार की कानूनी अभ्यास से आय 5000/- रुपये प्रति माह मानी, लेकिन कृषि से उसकी आय को यह कहते हुए नकार दिया कि इसे साबित करने के लिए कोई दस्तावेज नहीं है। उनकी कार्य से वंचित होने की कुल अवधि चार महीने तय की

गई थी, आय की हानि के लिए उन्हें 20,000/- रुपये का मुआवजा दिया गया था। वाहन और विशेष आहार पर खर्च के लिए 10,000/- रुपये की राशि प्रदान की गई है। दर्द एवं पीड़ा के मद में 10,000/- रुपये की राशि प्रदान की गई है। 80% स्थायी विकलांगता प्रमाणपत्र के बारे में अधिकरण ने पाया कि दावेदार लंगड़ाकर चलता है। यह तर्क कि दावेदार को 80% की सीमा तक आय का नुकसान हुआ है, अस्वीकार कर दिया गया। अधिकरण ने कहा कि दावेदार ने अभि.साक्ष्य-1 के रूप में गवाही देते हुए स्वीकार किया था कि उसकी विकलांगता के कारण उसकी कार्य को 50% का झटका लगा था। इसलिए, कार्यात्मक विकलांगता के कारण कमाई क्षमता के नुकसान का आकलन 2500/- रुपये प्रति माह किया गया, जिससे 30,000/- रुपये का वार्षिक नुकसान हुआ। अर्जन क्षमता के नुकसान की सजा दस साल की अवधि के लिए दी गई है। इस प्रकार, अधिकरण द्वारा कुल मुआवजा 3,75,149/- रुपये निर्धारित किया गया था। उक्त मुआवजा दावा याचिका संस्थित होने की तिथि से वसूली होने तक 9% वार्षिक ब्याज के साथ भुगतान करने का आदेश दिया गया है।

12. दावेदार के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एन. त्रिपाठी और बीमाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेश सिन्हा का वादधरक अधिवक्ता श्री अनुभव सिन्हा को सुना । मालिक की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

13. किसी चोट के मामले में देय क्षति का पता लगाने के लिए, जिसके परिणामस्वरूप

स्थायी विकलांगता के होने का दावा किया जाता है, इस मुद्दे के दृष्टिकोण को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को राज कुमार बनाम अजय कुमार और अन्य, (2011) 1 एससीसी 343 में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है, जहां इसे रेखांकित किया गया है “12. इसलिए, अधिकरण को पहले यह तय करना होगा कि क्या कोई स्थायी विकलांगता है और यदि हां, तो ऐसी स्थायी विकलांगता की सीमा क्या है। इसका मतलब यह है कि अधिकरण को साक्ष्य के संदर्भ में विचार करना और निर्णय लेना चाहिए:

- (i) क्या विकलांगता स्थायी है या अस्थायी;
- (ii) यदि विकलांगता स्थायी है, चाहे वह स्थायी पूर्ण विकलांगता हो या स्थायी आंशिक विकलांगता;
- (iii) यदि विकलांगता प्रतिशत को किसी विशिष्ट अंग के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है, तो अंग की ऐसी विकलांगता का प्रभाव पूरे शरीर की कार्यप्रणाली पर पड़ता है, अर्थात् व्यक्ति को होने वाली स्थायी विकलांगता होती है। यदि अधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि कोई स्थायी विकलांगता नहीं है तो आगे बढ़ने और भविष्य की कमाई क्षमता के नुकसान का निर्धारण करने का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन यदि न्यायाधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि स्थायी विकलांगता है तो वह इसकी सीमा का पता लगाने के लिए आगे बढ़ेगा। चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर अधिकरण दावेदार की स्थायी विकलांगता की वास्तविक सीमा का पता लगाने के बाद, यह निर्धारित करेगा कि क्या ऐसी स्थायी विकलांगता ने उसकी कमाई की क्षमता को प्रभावित किया है या प्रभावित करेगा।

13. वास्तविक कमाई क्षमता पर स्थायी विकलांगता के प्रभाव का पता लगाने में तीन चरण शामिल हैं। अधिकरण को पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि दावेदार स्थायी विकलांगता के बावजूद कौन सी गतिविधियाँ कर सकता है और स्थायी विकलांगता के परिणामस्वरूप वह क्या नहीं कर सकता है (यह जीवन की सुविधाओं के नुकसान के तहत मुआवजा देने के लिए भी प्रासंगिक है) . दूसरा चरण दुर्घटना से पहले उसके व्यवसाय, पेशे और काम की प्रकृति, साथ ही उसकी उम्र का पता लगाना है। तीसरा चरण यह पता लगाना है कि क्या (i) दावेदार किसी भी प्रकार की आजीविका कमाने में पूरी तरह से अक्षम है, या (ii) क्या स्थायी विकलांगता के बावजूद, दावेदार अभी भी उन गतिविधियों और कार्यों को प्रभावी ढंग से कर सकता है, जो वह पहले कर रहा था, या (iii) क्या उसे अपनी पिछली गतिविधियों और कार्यों के निर्वहन से रोका या प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन वह कुछ अन्य या कम पैमाने की गतिविधियाँ और कार्य कर सकता है ताकि वह कमाता रहे या अपनी आजीविका कमाता रहे।

14. उदाहरण के लिए, यदि किसी दावेदार का बायां हाथ काट दिया जाता है, तो स्थायी शारीरिक या कार्यात्मक विकलांगता का आकलन लगभग 60% किया जा सकता है। यदि दावेदार चालक या बढ़ई था, तो कमाई क्षमता का वास्तविक नुकसान वस्तुतः सौ प्रतिशत हो सकता है, यदि वह न तो गाड़ी चलाने में सक्षम है और न ही बढ़ईगिरी करने में सक्षम है। दूसरी ओर, यदि दावेदार सरकारी

सेवा में एक क्लर्क था, तो उसके बाएं हाथ के नुकसान के परिणामस्वरूप रोजगार की हानि नहीं हो सकती है और उसे अभी भी एक क्लर्क के रूप में जारी रखा जा सकता है क्योंकि वह अपने लिपिक कार्यों को कर सकता है; और उस स्थिति में कमाई की क्षमता का नुकसान 100% नहीं होगा जैसा कि चालक या बढई के मामले में होता है, न ही 60% होगा जो कि वास्तविक शारीरिक विकलांगता है, लेकिन बहुत कम होगा। वास्तव में,

यदि दावेदार सरकारी सेवा में बना रहता है, तो "भविष्य की कमाई के नुकसान" के तहत कोई मुआवजा देने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, हालांकि उसे अपना हाथ खोने के परिणामस्वरूप सुविधाओं के नुकसान के तहत मुआवजा दिया जा सकता है। कभी-कभी घायल दावेदार को सेवा में जारी रखा जा सकता है, लेकिन पद या नौकरी से जुड़े कर्तव्यों के निर्वहन के लिए उपयुक्त नहीं पाया जा सकता है।

जिसे वह पहले अपनी विकलांगता के कारण धारण कर रहा था, और इसलिए उसे कम परिलब्धियों के साथ किसी अन्य उपयुक्त लेकिन कम पद पर स्थानांतरित किया जा सकता है, ऐसी स्थिति में कम हुई कमाई क्षमता को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की कमाई क्षमता के नुकसान के तहत एक सीमित मुआवजा होना चाहिए।

14. फिर से, राज कुमार (पूर्वोक्त) में, जिन शीर्षों के तहत स्थायी प्रकृति की व्यक्तिगत

चोट के मामले में क्षति दी जानी है, यह निर्धारित किया गया है:

"6. व्यक्तिगत चोट के मामलों में जिन मदों के तहत मुआवजा दिया जाता है वे निम्नलिखित हैं:

आर्थिक क्षति (विशेष क्षति)

(i) उपचार, अस्पताल में भर्ती, दवाएँ, परिवहन, पौष्टिक भोजन और विविध व्यय से संबंधित व्यय।

(ii) कमाई की हानि (और अन्य लाभ) जो घायल को होती अगर वह घायल नहीं होता, जिसमें शामिल हैं:

(ए) उपचार की अवधि के दौरान कमाई का नुकसान;

(बी) स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई का नुकसान।

(iii) भविष्य के चिकित्सा व्यय।

गैर-आर्थिक क्षति (सामान्य क्षति)

(iv) चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए क्षति।

(v) सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि)।

(vi) जीवन की उम्मीद में कमी (सामान्य दीर्घायु में कमी)।

नियमित व्यक्तिगत चोट के मामलों में, मुआवजा केवल शीर्ष (i), (ii)(a) और (iv) के तहत दिया जाएगा। ऐसा केवल चोट के गंभीर मामलों में ही होता है, जहां दावेदार के साक्ष्य की पुष्टि करने वाले विशिष्ट चिकित्सा साक्ष्य हैं, कि स्थायी विकलांगता, भविष्य के चिकित्सा व्यय, सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि) और जीवन की उम्मीद की हानि के कारण भविष्य की कमाई के नुकसान से संबंधित किसी भी शीर्ष (ii) (बी), (iii), (v) और (vi) के तहत मुआवजा दिया जाएगा।

15. अब, इस मामले में, दावेदार एक अधिवक्ता है, जो पिछले 22 वर्षों से जिला न्यायालय में कार्य कर रहा था, जब वह दुर्घटना का शिकार हो गया। जाहिर तौर पर, वह अच्छी कार्य कर रहा था और दावा करता था कि वह प्रति माह 6000 रुपये कमाएगा। अधिकरण ने इसका आकलन 5000 रुपये प्रति माह किया है। उनके व्यवसाय की अवधि को देखते हुए, अधिकरण द्वारा उक्त निष्कर्ष को बधित करने का कोई कारण नहीं है, खासकर, जब मूल्यांकन की गई आय दावेदार के पेशे और परिस्थितियों को देखते हुए एक उचित आंकड़ा है और दावेदार के दावे से बहुत अलग नहीं है। अधिकरण ने उपचार की अवधि के दौरान कमाई की हानि के मद में चार महीने की अवधि के लिए आय की कुल हानि पाई है। दावेदार ने अपनी गवाही में कहा है कि चोटों के कारण वह एक वर्ष की अवधि के लिए

अभ्यास से बाहर हो गया था। अधिकरण ने उक्त दावे पर इस टिप्पणी के साथ विश्वास नहीं किया कि दावा याचिका में उपचार का विवरण तीन महीने की अवधि से अधिक नहीं है और इसलिए, इसमें शामिल उपचार और चोटों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, आय की कुल हानि की अवधि चार महीने होगी। यह न्यायालय अधिकरण के उपरोक्त आकलन से सहमत नहीं है। अपनी गवाही में, दावेदार ने इस प्रकार कहा है:

दुर्घटना मे आयी चोटो के कारण मे ु 7-8 माह तक चलने फिरने मे असमर्थ था। दो माह वैशाखी पर चले उसके बाद अब भी छडी से चलता हूं साल भर बाद मै धीरे-2 कचहरी आने लगा।"

16. अभि.साक्ष्य-1 की जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसके मुख्य परीक्षण में किए गए उसके किसी भी दावे को, जैसा कि ऊपर बताया गया है, खारिज कर सके। दावेदार को लगी चोट गंभीर थी, जहां उसकी बायीं जाँघ की हड्डी का शीर्ष भाग बुरी तरह से टूट गया था, और उसके एक हिस्से को शल्य चिकित्सा द्वारा हटाना पड़ा, जिससे पैर डेढ़ इंच छोटा हो गया। चोट की प्रकृति, जिसके प्रभाव का दावेदार ने वर्णन किया है, उस पर संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। दावेदार ने कहा है कि पहले चरण में वह 7-8 महीने तक चलने-फिरने में असमर्थ था। इसके बाद दो महीने तक बैसाखी के सहारे चलना पड़ा। इसके बाद दावेदार ने एक छड़ी का सहारा लिया और एक साल के बाद अदालत जाना शुरू कर दिया।

17. एक अधिवक्ता समाज के लिए एक संपत्ति है और एक अधिवक्ता का प्रशिक्षण पेशे में लंबे और कठिन वर्षों के बाद आता है। बार के सदस्यों के बीच यह एक सामान्य व्यवहार है कि एक बार प्रशिक्षित, अनुशासित और पेशे में आत्मसात हो जाने के बाद, उन्हें अदालत में अपने पेशेवर कर्तव्यों से दूर रहना मुश्किल लगता है। काम पर वापस लौटने के लिए क्रमिक सामान्य स्थिति में वर्णित दावेदार की अनुपस्थिति की अवधि आत्मविश्वास को प्रेरित करती है और उस समय की अवधि के बारे में सही संस्करण प्रतीत होती है, जिसके दौरान दावेदार को मजबूरी के कारण काम से दूर रहना पड़ा था। इसलिए, इस न्यायालय को यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दावेदार को एक वर्ष की अवधि के लिए अभ्यास की कुल हानि और परिणामस्वरूप आय की कुल हानि हुई। इस तथ्य को देखते हुए कि दुर्घटना के समय दावेदार की आय 5000/- रुपये प्रति माह आंकी गई है, एक वर्ष की अवधि में गणना की गई आय की कुल हानि 60,000/- रुपये होगी।

18. निर्धारण का अगला प्रमुख स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई के नुकसान के बारे में है। अधिकरण ने भविष्य की कमाई के नुकसान का आकलन करते समय विकलांगता प्रमाण पत्र पर गौर किया है, जहां दिखाई गई स्थायी विकलांगता 80% है। इस न्यायालय ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, गोरखपुर के कार्यालय में डॉक्टरों के एक बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 16.09.1996 के विकलांगता प्रमाण पत्र पर भी गौर किया, जिसमें वर्णित विकलांगता "एफ का एफयूसी

सिर 80% छोटा होने के कारण लंगड़ा कर रह गया" है। प्रमाणपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि दावेदार को स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है, जाहिरा तौर पर उसके निचले अंगों में से एक में 80% की सीमा तक और स्थायी लंगड़ापन विकसित हो गया है।

19. एक अधिवक्ता के पेशे के लिए न केवल मानसिक तत्परता और क्षमताओं की आवश्यकता होती है, बल्कि घूमने-फिरने, ग्राहकों से बात करने, आयोगों और निरीक्षणों पर जाने के लिए शारीरिक फिटनेस की भी आवश्यकता होती है, जो कि दावेदार की तरह की विकलांगता से बुरी तरह प्रभावित होगा। हालाँकि, अधिकरण ने दावेदार के दावे की गवाही को तुरंत स्वीकार कर लिया है कि उसने 50% विकलांगता के कारण अपनी कार्य खो दी है। अब, यह दावेदार द्वारा एक तथ्य के बारे में स्वीकारोक्ति है जो उसके दावे को कमजोर करने का काम कर सकता है, इसे सुरक्षित रूप से स्वीकार किया जा सकता है। अधिकरण ने बिल्कुल यही किया है और इस न्यायालय को असहमत होने का कोई कारण नहीं दिखता है। इसलिए, स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई का स्थायी नुकसान 2500/- रुपये प्रति माह होगा।

20. किसी अज्ञात कारण से, अधिकरण ने वस्तुतः '10' के गुणक को लागू करते हुए, इस हानि को 10 वर्ष की अवधि तक सीमित करने का निर्णय लिया है। दावेदार ने खुद को 47 वर्ष का होने का दावा किया है, एक ऐसा तथ्य जिसका खंडन या विवाद नहीं किया गया है।

इसलिए, यह न्यायालय यह पता लगाने के लिए आगे बढ़ता है कि दुर्घटना के समय दावेदार 47 वर्ष का था। दुर्भाग्य से, अधिकरण ने दावेदार की उम्र के बारे में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। जन्मतिथि प्रमाण पत्र अभिलेख पर दर्ज किया गया था और अधिकरण के फैसले में दस्तावेजों की एक सूची के साथ दायर किए गए दस्तावेज के रूप में शॉर्टलिस्ट किया गया था, जिसमें कागज नंबर 124-ग था। हैरानी की बात यह है कि कागज नंबर 124-जीए वाले दस्तावेजों की सूची अभिलेख में है, लेकिन उसके साथ कोई दस्तावेज नहीं है। इसलिए, यह न्यायालय दावा याचिका में निर्विवाद दावे को स्वीकार करने के लिए आगे बढ़ता है कि दावेदार 47 वर्ष का था, जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है।

21. सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121 मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार, 46-50 वर्ष के आयु वर्ग के व्यक्ति के लिए, लागू गुणक '13' है। इसलिए, स्थायी विकलांगता के कारण दावेदार की भविष्य की कमाई के नुकसान को '13' के गुणक को अपनाकर गुणा किया जाना चाहिए; '10' नहीं जैसा कि अधिकरण ने किया है। इससे उन शर्तों का निष्कर्ष निकलेगा जिनके आधार पर स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई के नुकसान की गणना की जानी है।

22. विचार किया जाने वाला अगला मुद्दा आर्थिक क्षति या विशेष क्षति, या उपचार, अस्पताल में भर्ती, दवाओं, परिवहन, पौष्टिक

भोजन और विविध व्यय से संबंधित खर्चों के तहत मुआवजा है। अधिकरण ने अस्पताल में खर्च के लिए 25,660/- रुपये का फैसला सुनाया है। उक्त राशि दिनांक 26.08.1996 को जीवन ज्योति केन्द्र में किये गये व्यय के वाउचर-सह-रसीद, कागज संख्या 63- ग/15 के आधार पर प्रमाणित की गयी है। दस्तावेज पर अस्थिरोग सर्जन डॉ. एस.सी. कौशिक के हस्ताक्षर हैं। वह दस्तावेज को साबित करने के लिए गवाह-बॉक्स में उपस्थित हुए और अधिकरण ने इसे साबित कर दिया। इसलिए, अधिकरण ने अस्पताल में भर्ती होने के उपरोक्त खर्च को स्वीकार कर लिया है। इसी तरह, खरीदी गई दवाओं के कैश-मेमो के अवलोकन पर, अधिकरण ने दवाओं से संबंधित व्यय के मद में 9489/- रुपये की राशि का फैसला सुनाया है। कुल मिलाकर 10,000/- रुपये की राशि पौष्टिक भोजन पर किए गए खर्च और दावेदार के स्वास्थ्य लाभ के दौरान एक परिचारक की सेवाओं के लिए किए गए भुगतान के लिए प्रदान की गई है।

23. जहां तक उपचार, अस्पताल में भर्ती होने और दवाओं से संबंधित खर्चों के मुआवजे का सवाल है, इस न्यायालय को अधिकरण से असहमत होने का कोई कारण नहीं मिलता है। हालाँकि, जहाँ तक पौष्टिक भोजन और परिचारक की सेवाओं पर खर्च किए गए पैसे का सवाल है, दावेदार की गवाही में जो कुछ सामने आया है वह यह है कि वह अपने दम पर चल-फिर भी नहीं सकता था या बिना सहायता के अपने कपड़े भी नहीं पहन सकता था। दावा याचिका में, दावेदार ने पौष्टिक भोजन और एक परिचारक की सेवाओं के लिए

20,000/- रुपये का दावा किया है। यह न्यायालय यह सोचने में इच्छुक है कि दावेदार को लगी चोटों की प्रकृति को देखते हुए दावा उचित है। पौष्टिक भोजन और एक परिचारक की सेवाओं के खर्च के मद में दावा 10,000/- रुपये से बढ़ाकर 20,000/- रुपये किया जाना चाहिए।

24. जहां तक गैर-आर्थिक क्षति या सामान्य क्षति का सवाल है, अधिकरण द्वारा दर्द, पीड़ा और आघात के लिए क्षति के लिए कुल 10,000/- रुपये का मुआवजा दिया गया है। दावेदार ने गैर-आर्थिक मदों के तहत 5,35,000/- रुपये की राशि की मांग की है। इसके अलावा, जीवन की आशा की हानि के लिए 20,000/- रुपये की राशि का दावा किया गया है। अधिकरण ने चोट के परिणामस्वरूप जीवन की उम्मीद की हानि या जीवन अवधि कम होने के संबंध में कुछ भी फैसला नहीं दिया है। दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ने काजल बनाम जगदीश चंद और अन्य, (2020) 4 एससीसी 413 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा है कि दर्द और पीड़ा के लिए मुआवजे को कई गुना बढ़ाया जाना चाहिए, जितना कि काजल (पूर्वोक्त) में), दिया गया मुआवजा 3,00,000/- रुपये से बढ़ाकर 15,00,000/- रुपये कर दिया गया। काजल में निर्णय का न्यायमूर्ति गणो की निम्नलिखित अवलोकन को दर्शाता है:

“26. दर्द, पीड़ा, सुविधाओं की हानि के तहत गैर-आर्थिक क्षति की बात करें तो उच्च न्यायालय ने इस लड़की को केवल 3,00,000

रुपये का मुआवजा दिया है। मल्लिकार्जुन बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड में, (2014) 14 एससीसी 396: (2015) 1 एससीसी (सिव) 335: (2015) 1 एससीसी (सीआरआई) 372: (2013) 10 स्केल 668], इस न्यायालय ने इस मद के तहत मुआवजा के मुद्दे पर विचार करते हुए कहा कि यदि विकलांगता 90% से अधिक है तो यह कम से कम 6,00,000 रुपये होनी चाहिए। जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, 100% शारीरिक विकलांगता के अलावा, युवा लड़की गंभीर असंयम से पीड़ित है, वह गंभीर हिस्टीरिया से पीड़ित है और सबसे ऊपर, उसके पास नौ महीने के बच्चे का मस्तिष्क बचा है। . यह एक ऐसा मामला है जहां सामान्य नियम से हटना पड़ता है और इस बच्चे द्वारा सहा गया दर्द और पीड़ा ऐसी है कि कोई भी मुआवजा इसकी भरपाई नहीं कर सकता है।

27. वर्तमान मामले जैसे मामले में मुआवजे का आकलन करते समय एक कारक जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए वह यह है कि दावा केवल एक बार ही दिया जा सकता है। दावेदार बाद में मुआवजा में वृद्धि के लिए यह प्रार्थना करते हुए अदालत में वापस नहीं आ सकता कि कुछ अतिरिक्त खर्च किया गया है। इसलिए, 100% विकलांगता के मामले में मुआवजे का आकलन करने वाली अदालतों या न्यायाधिकरणों को, विशेष रूप से जहां मानसिक विकलांगता भी हो, मुआवजा देते समय मामले पर उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए। यह राशि प्रदान करते समय हम न केवल शारीरिक विकलांगता बल्कि मानसिक विकलांगता और कई अन्य कारकों को भी

ध्यान में रख रहे हैं। यह बच्चा जीवन भर बिस्तर पर पड़ा रहेगा। उसकी मानसिक उम्र नौ महीने के बच्चे जितनी होगी। प्रभावी रूप से, जब तक उसका शरीर बढ़ेगा, वह एक छोटी बच्ची ही रहेगी। हम एक ऐसी लड़की से निपट रहे हैं जो शारीरिक रूप से एक महिला बन जाएगी लेकिन मानसिक रूप से 9 महीने की बच्ची बनकर रहेगी। यह लड़की अपने दोस्तों के साथ खेलना मिस कर देगी। वह संवाद नहीं कर सकती; वह जीवन के सुखों का आनंद नहीं ले सकती; वह कार्टून या फिल्मों देखकर भी खुश नहीं हो सकती; वह बचपन की मौज-मस्ती, जवानी का उत्साह खो देगी; वैवाहिक जीवन का सुख; उसके ऐसे बच्चे नहीं हो सकते जिन्हें वह प्यार कर सके, पोते-पोतियों की तो बात ही छोड़ दें। उसे कोई आनंद नहीं मिलेगा। उसका एक वनस्पति अस्तित्व है। इसलिए, हमें लगता है कि मामले के अजीब तथ्यों और परिस्थितियों में, मामले पर बहुत रूढ़िवादी दृष्टिकोण रखने के बाद भी, इस बच्चे के दर्द और पीड़ा के लिए देय राशि कम से कम 15,00,000 रुपये होनी चाहिए।

25. इस न्यायालय की राय में, काजल में दर्द और पीड़ा के लिए मुआवजे का आकलन 100% विकलांगता के अत्यंत चरम तथ्यों पर आगे बढ़ता है, जहां युवा लड़की को आने वाले समय में हमेशा के लिए बिस्तर पर ही रहना पड़ा और नौ महीने की मानसिक उम्र में उसकी मानसिक क्षमता का विकास उसे रोकने के लिए हमेशा के लिए कमजोर हो गया। इस न्यायालय की राय में, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति गणो द्वारा निर्धारित सिद्धांत, यहां

दावेदार के लिए बिल्कुल भी सहायक नहीं होगा।

26. मोहम्मद सबीर उर्फ शब्बीर हुसैन बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, उ.प्र राज्य सड़क परिवहन निगम, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1701 में, दावेदार एक कबाड़ी था, जो अपने मूल स्थान नूर पुर, गजरोला से दिल्ली के लिए बस में यात्रा कर रहा था। बस खड़े टैंपो से टकरा गई। परिणामस्वरूप दावेदार को चोटें आईं। विकलांगता प्रमाण पत्र में दिखाया गया कि दावेदार को अन्य चोटों के अलावा उसके दाहिने निचले अंग में 70% स्थायी विकलांगता हुई है। उस मामले में दावेदार की स्थायी विकलांगता उसके दाहिने निचले अंग के विच्छेदन के कारण उत्पन्न हुई थी। यह सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य द्वारा आयोजित उस संदर्भ में था कि दावेदार के लिए कार्यात्मक विकलांगता, जो एक वेतनभोगी व्यक्ति नहीं था, बल्कि एक स्व-रोज़गार व्यवसायी था, का मूल्यांकन 60% किया जाना चाहिए। उपरोक्त पृष्ठभूमि में दर्द और पीड़ा के लिए मुआवजा 2,00,000/- रुपये निर्धारित किया गया था। मुआवजे की विभिन्न मदों के तहत मूल्यांकन उच्चतम न्यायालय द्वारा दावेदार की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए किया गया था, जिसे समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का व्यक्ति माना गया था। मोहम्मद सबीर उर्फ शब्बीर हुसैन (पूर्वोक्त) मामले में सुप्रीम कोर्ट की निम्नलिखित टिप्पणियाँ प्रासंगिक हैं:

“27. हमारी राय है कि दावेदारों को हुई स्थायी विकलांगता के मामलों में मुआवजा देते समय,

अदालतों को मामले को समग्रता में देखना चाहिए और दावेदारों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर विचार करना चाहिए। यहां अपीलकर्ता समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग से आता है।

28. यह लगभग सार्वभौमिक रूप से देखा गया है कि हाशिए पर रहने वाली पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को अक्सर शारीरिक विकलांगताओं के कारण भेदभाव की एक अतिरिक्त परत का सामना करना पड़ता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के व्यक्तियों को पहले से ही सामाजिक पूंजी की कमी के कारण गंभीर भेदभाव का सामना करना पड़ता है, और अक्सर एक नई विकलांगता इस तरह के भेदभाव को जोड़ती है। ऐसी परिस्थितियों में, न्याय के सार को बनाए रखने के लिए, यह न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है कि वह कम से कम दावेदार को उस स्थिति में यथासंभव बहाल करे, जिस स्थिति में वह विकलांगता की घटना से पहले था, और ऐसा करने के लिए उसे उदार तरीके से मुआवजा देना चाहिए।

27. इस मामले में, दावेदार को 50% स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है, जहां वह स्थायी रूप से लंगड़ा हो गया है, जिससे न केवल अधिवक्ता के रूप में पहले की तरह काम करने की उसकी क्षमता खराब हो गई है, बल्कि उसके जीवन की गुणवत्ता भी प्रभावित हुई है। अब वह जो भी कदम उठाता है, वह दुर्घटना से पहले जो कदम था उससे अलग होने के कारण, कुल मिलाकर उसके जीवन की गुणवत्ता हमेशा के लिए खराब हो जाएगी।

इसलिए, जबकि दावेदार का मामला **मोहम्मद सबीर उर्फ शब्बीर हुसैन** के न्यायमूर्ति गणों से पहले की तुलना में दर्द और पीड़ा के मूल्य के लिए थोड़ा कम कठोर हो सकता है, यह अभी भी दावेदार के लिए भारी दर्द और पीड़ा का बयान है। दूसरा कारक, जिसे **मोहम्मद सबीर उर्फ शब्बीर हुसैन** के मामले में ध्यान में रखा गया है, वह समाज का आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग है, जिससे दावेदार उस मामले में आता था। यहां दावेदार एक अधिवक्ता है, जिसे समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का व्यक्ति नहीं माना जा सकता है। फिर भी, इस तथ्य को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता कि समकालीन समाज में अधिवक्ता बिना किसी सामाजिक समर्थन के भारी दबाव में काम करते हैं। राज्य विधिक परिषद द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक सुरक्षा सीमांत है। समाज द्वारा प्रदान की जाने वाली एक अलग तरह की सामाजिक सुरक्षा कम है, जिसे संकट में बार के एक सदस्य के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होगी, एक ऐसा व्यक्ति जिसे वे अन्यथा जीवन के हर मंदा में मदद के लिए देखते हैं। इसलिए, स्थायी विकलांगता और इसमें शामिल दर्द और पीड़ा को देखते हुए, दावेदार इस मद के तहत 1,50,000/- रुपये के मुआवजे का हकदार है।

28. अब, भविष्य की संभावनाओं के मुआवजा पर विचार करने की बारी है, दावेदार को खोई हुई आय के कारण हकदार माना जाना चाहिए। किसी दुर्घटना के कारण स्थायी विकलांगता से पीड़ित एक स्व-रोज़गार व्यक्ति के मामले में भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए मुआवजे के मुआवजा के सवाल ने **जगदीश**

बनाम मोहन और अन्य (2018) 4 एससीसी 571 मामले में सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। **जगदीश (पूर्वोक्त)** में, दावेदार एक बर्द्ध था, दुर्घटना के समय उसकी उम्र 24 वर्ष थी। उक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में, उच्चतम न्यायालय ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680, जगदीश** मामले में संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा:

"13. प्रणय सेठी (पूर्वोक्त) में संविधान पीठ के फैसले में, इस न्यायालय ने माना है कि भविष्य की संभावनाओं का लाभ केवल उन लोगों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए जिनके पास स्थायी नौकरी है और यह स्व-रोज़गार व्यक्तियों तक भी विस्तारित होगा। स्व-रोज़गार वाले व्यक्ति के मामले में, स्थापित आय का 40 प्रतिशत अतिरिक्त किया जाना चाहिए, जहां दुर्घटना के समय पीड़ित की उम्र 40 वर्ष से कम थी। इसलिए, वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए 2400/- रुपये की वृद्धि का हकदार होगा।

14. वर्तमान मामले में गणना करते समय, अदालत को इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि अपीलकर्ता को एक गंभीर विकलांगता का सामना करना पड़ा है जिसमें उसे अपने दोनों हाथों के उपयोग का नुकसान हुआ है। शारीरिक गतिविधियों में लगे व्यक्ति के लिए, यह समझने के लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है कि हाथों का खोना कमाने की क्षमता से पूरी तरह वंचित होना है। कुछ भी नहीं - कम से कम इस मामले के तथ्यों में - खोए

हुए हाथों को बहाल कर सकता है। लेकिन मुआवजे का माप किसी प्राणी की गरिमा को बहाल करने के लिए कानून के वास्तविक प्रयास को प्रतिबिंबित करना चाहिए। मुआवजे के हमारे पैमाने इतने खराब नहीं होने चाहिए कि कोई यह सवाल उठाए कि क्या हमारा कानून मानव जीवन को महत्व देता है। यदि ऐसा होता है, जैसा कि होना भी चाहिए, तो इसे नुकसान के दर्द और पीड़ा के आघात के लिए एक यथार्थवादी प्रतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए। मुआवजे का मुआवजा कानून की खैरात नहीं है। अधिकारों की चर्चा में, वे कानून के तहत अधिकार का गठन करते हैं। कानून के बारे में हमारी बातचीत को व्यक्ति की पितृसत्तात्मक अधीनता से हटकर मानवीय गरिमा के आंतरिक रूप में लागू करने योग्य अधिकारों के दावे की ओर स्थानांतरित होना चाहिए।"

29. उत्तर प्रदेश राज्य में, भविष्य की संभावनाओं में वृद्धि का मुद्दा **प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)** में कानून के तहत परिकल्पित पैमाने द्वारा शासित नहीं है, बल्कि उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में '1998 के नियम') द्वारा शासित है।

30. न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822 में, यह निर्धारित किया गया था:

"9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर, किसी भी तरह से, तत्काल मामले में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र सवाल यह है कि हमें इस बात

पर विचार करने के लिए कहा गया है कि क्या इसके प्रकरण में, नियमावली के नियम 220ए के उप-नियम 3(iii) को प्रतिबंधित दायरा दिया जाना चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में निर्णय ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित नहीं किया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। ऐसे मामलों में जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है, 15% के निर्धारण को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी शासी सिद्धांत के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक उपकरण ने कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक उपकरण को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक उपकरण अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलील को अस्वीकार करते हैं और अधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा

अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के इस अपील को खारिज कर देते हैं।"

31. 1998 के नियमावली के नियम 220-ए(3) को यहां तथ्यों पर लागू करने पर, दावेदार की आयु 47 वर्ष है, अर्थात्, 40-50 वर्ष की आयु सीमा में, उसकी खोई हुई आय में भविष्य की संभावनाओं के लिए 30% की वृद्धि की जानी है।

32. तदनुसार, मुआवजे को निम्नलिखित तरीके से संशोधित और बढ़ाया गया है:

(i) उपचार, अस्पताल में भर्ती और दवाओं से संबंधित खर्च = 35149

(ii) पौष्टिक भोजन और परिचारक शुल्क के लिए मुआवजा = 20000

(iii) इलाज की अवधि (एक वर्ष) के दौरान कमाई का नुकसान = $5000 \times 12 = 60000$

(iv) स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई का नुकसान (मासिक आय $\times 12 \times$ लागू गुणक) = $2500 \times 12 \times 13 = 390000$

(v) खोई हुई आय + भविष्य की संभावनाओं का 30% = $390000 + 117000 = 507000$

(vi) दर्द, पीड़ा और आघात के लिए हर्जाना = 150000

इसलिए, कुल मुआवजा
35149+20000+60000+507000 +
150000 = 772149 रुपये होगा।

श्रीमती सीमा मिश्रा, श्री अशोक कुमार
 जायसवाल, श्री सुनील कुमार मिश्रा, श्री
 सिद्धार्थ जायसवाल

33. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अधिकरण द्वारा पारित विवादित फैसले को संशोधित किया गया है और दिया गया मुआवजा बढ़ाकर 7,72,149/- रुपये कर दिया गया है। उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर होने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। विवादित फैसले के तहत बीमाकर्ताओं द्वारा अधिकरण में पहले से जमा की गई कोई भी धनराशि समायोजित की जाएगी। लागत नहीं।

(2023) 7 ILRA 228

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

**प्रथम अपील से आदेश संख्या 1326 वर्ष
 2003**

हमीदुन्निसा एवं अन्य अपीलकर्तागण

बनाम

**उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं
 अन्य प्रतिपक्षीगण**

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री शार्वे सिंह, श्री शार्वे सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

अ. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 173 - प्रतिकर की वृद्धि - दावेदारों की संख्या सात है - दावेदारों में मृतक की विधवा प्रौढ़ है जबकि छह बच्चे सभी नाबालिग हैं। उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के नियम 220-ए (2)(iii) का प्रयोग करते हुए, प्रत्येक संतान को आधी इकाई माना जाएगा - छह संतानों की गणना तीन आश्रितों के रूप में की जाएगी - इस प्रकार विधवा तथा छह अल्पवयस्क संतानें कुल चार आश्रित होंगे - सरला वर्मा मामले में निर्धारित नियम के अनुसार दावेदार आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4-6 होने पर एक चौथाई की कटौती के हकदार हैं। सरला वर्मा मामले में पूर्वोक्त नियम के अनुसार, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4-6 है, वहां एक चौथाई की कटौती की अनुमति है - इसलिए, मृतक की आय का एक तिहाई हिस्सा व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए कटौती का निर्देश देने वाला न्यायाधिकरण का निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण है। न्यायाधिकरण ने '16' का गुणक अपनाया है - सरला वर्मा निर्णय के प्रस्तर संख्या 40 में उल्लिखित तालिका के अनुसार 36-40 वर्ष की आयु वर्ग के लिए स्वीकार्य गुणक '15' है, न की '16'। अतः कुल प्रतिकर ₹9,17,500/- होगा। न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में संशोधन किया जाता है और लोक न्यायालय में निर्धारित किये गए उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम के भाग के प्रतिकर को 50

प्रतिशत घटाने के पश्चात स्वामी द्वारा देय प्रतिकर की राशि वृद्धिकर 4,587,50 रुपये कर दिया जाता है। (प्रस्तर 1 से 28)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

1. दावेदारों की यह अपील इलाहाबाद के जिला न्यायाधीश श्री एस.सी. बोस, जो मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के रूप में आसीन हैं, के मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं0 411/1999 में पारित निर्णय व मुआवजा दिनांकित 06.01.2003 से उत्पन्न हुई है।

2. मृतक इंसानुल हक दिनांक 13.04.1999 को जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 से यात्रा कर रहे थे। सांय करीब 7.30 बजे, थाना मऊ आइमा, जिला इलाहाबाद (अब प्रयागराज) की स्थानीय सीमा के भीतर गनसियारी नामक एक गांव के पास, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम (संक्षेप में, 'यू.पी.एस.आर.टी.सी.') की स्वामित्व वाली बस, जिसका पंजीकरण संख्या यू.जी.एच.-471 है, जो इलाहाबाद से अयोध्या जा रही थी, ने जीप को टक्कर मार दी। दुर्घटना के परिणामस्वरूप इंसानुल हक को चोटें आईं, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। जिस कथित जीप से इंसानुल हक यात्रा कर रहे थे, उसका मालिक आलोक पांडे था तथा ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, इलाहाबाद द्वारा उसका बीमा किया गया था। दावेदारों की संख्या सात है, अर्थात् हमीदुन्निसा (पत्नी) आयु लगभग 40 वर्ष, टीटो (पुत्र) आयु लगभग 16 वर्ष, गुलजार

(पुत्र) आयु लगभग 15 वर्ष, रेशम (पुत्री) आयु लगभग 12 वर्ष, सरवर (पुत्र) आयु लगभग 9 वर्ष, गुलशेर (पुत्र) आयु लगभग 5 वर्ष तथा कुलसुम (पुत्र) आयु लगभग 7 वर्ष।

3. दावेदारों का मामला यह है कि मृतक पावरलूम मैकेनिक था तथा स्वयं पावरलूम का स्वामी था। उसकी आय 5000/- रुपये प्रतिमाह थी। सभी दावेदार मृतक की आय पर निर्भर थे। इसलिए दावेदारों ने 10,00,000/- रुपये मुआवजे की मांग की है।

4. यू.पी.एस.आर.टी.सी., दुर्भाग्यपूर्ण जीप के स्वामी आलोक पांडे तथा ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, जो जीप के बीमाकर्ता हैं, प्रत्येक की ओर से अलग-अलग लिखित कथन दाखिल किया गया। जीप के स्वामी और बीमाकर्ताओं को इसके बाद क्रमशः 'स्वामी' एवं 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा।

5. यू.पी.एस.आर.टी.सी. ने मोटे तौर पर यह रुख अपनाया कि दुर्घटना जीप चालक की लापरवाही के कारण हुई, जबकि स्वामी का यह रुख था कि दुर्घटना बस चालक की तेज व लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई। यह भी कथन किया गया कि दुर्घटना की तिथि को दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमाकर्ता से वैध रूप से बीमित थी। बीमाकर्ताओं ने उन सभी बातों का एक पुष्ट तथा असंगत खंडन किया, जिनके लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराया गया था। उन्होंने दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमा होना, यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस व दुर्भाग्यपूर्ण जीप के बीच दुर्घटना होना से इंकार किया तथा इस तथ्य से भी इंकार किया कि चालक के पास

वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। संक्षेप में, बीमाकर्ताओं ने जीप के स्वामी को किसी भी देयता के संबंध में क्षतिपूर्ति करने के अपने दायित्व से इनकार किया, जो उस पर आवंटित हो सकती है।

6. पक्षकारों के तर्कों पर, निम्नलिखित वाद बिन्दु तैयार किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या दिनांक 13.04.1999 को सांय लगभग 7.30 बजे, कथित दुर्घटना जीप संख्या यू.पी.70एन-7479 के तेज तथा लापरवाही से वाहन चलाने के कारण हुई थी?

2. क्या जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 तथा बस संख्या यू.जी.एच.-471 से जुड़ी कथित दुर्घटना दोनों वाहनों की लापरवाही के कारण हुई थी? यदि हाँ, तो किस वाहन की गलती है तथा किस सीमा तक?

3. क्या जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 का स्वामित्व आलोक पांडे के पास है और उसका ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी से बीमा है?

4. क्या दुर्घटना की तिथि को चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था?

5. क्या जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 का संचालन विधि, नियमों और उसके पंजीकरण के अनुसार किया जा रहा था?

6. क्या दावेदार मुआवजे के हकदार हैं? यदि हाँ, तो कितना और किस पक्ष से?

7. दावेदार किस राहत के हकदार हैं?”

7. न्यायाधिकरण ने वाद बिन्दु सं0 1 व 2 का एक साथ निस्तारण किया और माना कि दुर्घटना में बस और दुर्भाग्यपूर्ण जीप दोनों की समान रूप से लापरवाही थी। वाद बिन्दु सं0 3

का उत्तर स्वामी तथा दावेदारों के पक्ष में दिया गया, जिसमें माना गया कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप स्वामी की थी तथा बीमाकर्ताओं के पास वैध रूप से बीमाकृत थी। बीमाकर्ताओं की स्वीकृति पर न्यायाधिकरण द्वारा इस मुद्दे का उत्तर इस प्रकार दिया गया। वाद बिन्दु सं0 5 का निस्तारण इस प्रकार किया गया कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप को स्वामी के नाम पर निजी उपयोग के लिए वाहन के रूप में पंजीकृत माना गया। एक और निष्कर्ष यह है कि दुर्घटना की तिथि पर, दुर्भाग्यपूर्ण जीप का उपयोग यात्रियों को ले जाने के लिए किया जा रहा था। इसलिए, इस मुद्दे पर निष्कर्ष रूप में यह माना गया कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप को उसके पंजीकृत उपयोग के अनुसार संचालित नहीं किया जा रहा था। वाद बिन्दु सं0 4 का उत्तर देते हुए न्यायाधिकरण ने माना कि अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार, दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक शिव शंकर के पास एक वैध ड्राइविंग लाइसेंस था, जो मात्र निजी वाहन चलाने के लिए वैध था। लाइसेंस यात्रियों को ले जाने वाले वाणिज्यिक वाहन चलाने के लिए अनुमोदित नहीं था। वाद बिन्दु सं0 6 व 7 को एक साथ निस्तारित किया गया। दावेदारों को इंसानुल हक की मृत्यु के कारण मुआवजे का हकदार माना गया।

8. न्यायाधिकरण ने माना कि हालांकि दावेदारों ने कहा कि मृतक एक पावरलूम मैकेनिक था, जिसके पास एक पावरलूम था, जिससे उसे 5000/- रुपये प्रति माह की आय होती थी, परन्तु मृतक की आय या पावरलूम के स्वामित्व का कोई साक्ष्य नहीं है, जिसका दावा उसके लिए किया गया था। यह देखा गया

कि दावेदारों द्वारा उक्त तथ्य के बारे में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। यह टिप्पणी की गई है कि मृतक के पावरलूम मैकेनिक होने के तथ्य को दूसरे पक्ष द्वारा भी विशिष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है। न्यायाधिकरण द्वारा यह देखा गया है कि मृतक, जिसकी आयु 40 वर्ष पाई गई, उसकी आयु वर्ग तथा कार्य करने की क्षमता को देखते हुए, उसे न्यूनतम 3000/- रुपये मासिक आय का श्रेय दिया जाना चाहिए। यह इस आधार पर है कि न्यायाधिकरण ने दावेदारों की निर्भरता की गणना करने के लिए कार्यवाही की।

9. न्यायाधिकरण ने मृतक की आय में से एक तिहाई की कटौती उसके व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए करने का आदेश दिया। तदनुसार, आश्रितता की गणना के लिए मृतक की मासिक आय 2000 रुपये मानी गई। मृतक की आयु को ध्यान में रखते हुए 16 का गुणक अपनाया गया। उपरोक्त आधार पर न्यायाधिकरण द्वारा 3,84,000 रुपये की कुल मूल आश्रितता निर्धारित की गई, जिसके दावेदार हकदार माने गए। उक्त धनराशि पर दावा संस्थित करने की तिथि से 10% प्रति वर्ष की दर से ब्याज देने का निर्देश दिया गया। न्यायाधिकरण ने इस तथ्य को संज्ञान में लिया कि दावेदारों ने दिनांक 04.03.2001 को आयोजित लोक अदालत में यू.पी.एस.आर.टी.सी. के साथ समझौता कर लिया है तथा यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध अपने सभी दावों के परिसमापन के रूप में कुल 60,000 रुपये की राशि मुआवजे के रूप में स्वीकार कर ली है। तदनुसार, यह माना गया

कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा दावेदारों को कुछ भी देय नहीं है।

10. न्यायाधिकरण ने यह माना है कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. से 60,000 रुपये प्राप्त करने के बाद देय कुल मुआवजे 3,84,000/- में से 50% उक्त राशि से काट लिया जाएगा, जिससे दावेदार 1,92,000/- रुपये मुआवजे के हकदार होंगे, जो स्वामी द्वारा देय होगा। बीमाकर्ताओं को इस आधार पर उन्मोचित कर दिया गया कि नीति का उल्लंघन हुआ था। न्यायाधिकरण ने विभिन्न दावेदारों के मध्य मुआवजे का बंटवारा किया है, जिसमें सबसे बड़ी राशि 42,000/- रुपये विधवा श्रीमती हमीदुन्निशा को देने का निर्देश दिया गया है।

11. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री शारवे सिंह, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार जायसवाल के होल्डिंग ब्रीफ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ जायसवाल तथा यू.पी.एस.आर.टी.सी. की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार मिश्रा को सुना। स्वामी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, यद्यपि अधिवक्ता सुश्री सीमा मिश्रा का नाम वाद सूची में छपा है।

12. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया कि इस मामले में अंशदायी लापरवाही का सिद्धांत लागू नहीं होता, क्योंकि यह समग्र लापरवाही का मामला है। अंशदायी लापरवाही के निष्कर्ष के बावजूद दावेदार 50% देयता को विभाजित करते हुए दोनों वाहनों में से किसी से भी वसूली करने के लिए स्वतंत्र हैं। इसके पश्चात यह कथन किया गया कि

बीमा पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन, जिसे न्यायाधिकरण ने दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक के ड्राइविंग लाइसेंस को वाणिज्यिक यात्री वाहन चलाने के लिए अनुमोदित नहीं किए जाने के कारण पाया है, बीमाकर्ताओं को पॉलिसी पर पूर्ण रूप से दोषमुक्ति का हकदार नहीं बनाता। इसके बजाय, यह बीमाकर्ताओं को दावेदारों को भुगतान करने के बाद वसूली का अधिकार प्रदान करता है। दावेदारों ने मृतक की आय को 3000/- रुपये प्रति माह मानने के न्यायाधिकरण के निष्कर्ष की भी आलोचना की है, जिसमें उसकी आय के बारे में साक्ष्य को अनदेखा किया गया है। यह भी कहा गया है कि न्यायाधिकरण ने मृतक की भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में नहीं रखा है। व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती की आलोचना बहुत अधिक किए जाने के रूप में की गई है। यह भी कहा गया है कि न्यायाधिकरण अंतिम संस्कार व्यय के अलावा, प्रेम और स्नेह की हानि के लिए कुछ भी देने में विफल रहा है।

13. यू.पी.एस.आर.टी.सी. के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि वे बड़े हुए मुआवजे के लिए दावेदारों को कुछ भी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, क्योंकि दावेदारों ने यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध अपने दावे के पूर्ण निपटारे में लोक अदालत के समक्ष दिनांक 04.03.2001 को 60,000/- रुपये की धनराशि स्वीकार कर ली है।

14. दूसरी ओर, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जीप चालक का लाइसेंस केवल निजी वाहन के लिए है, जिसमें वाणिज्यिक वाहन चलाने के लिए कोई

अनुमोदन नहीं है, यह पॉलिसी का मौलिक उल्लंघन है, जो बीमाकर्ताओं को न्यायाधिकरण के आदेशानुसार पूर्ण दोषमुक्ति का अधिकार देता है।

15. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत कथनों पर विचार किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि स्वामी या बीमाकर्ताओं द्वारा कोई अपील नहीं की गई है। यह सही है कि जहां तक दावेदारों का प्रश्न है, यह समग्र लापरवाही का मामला है, क्योंकि मृतक उन वाहनों में से एक पर सवार था, जिसकी लापरवाही के कारण यह दुर्घटना हुई। दावेदार किसी भी पक्ष से वसूली करने के लिए स्वतंत्र हैं, जो कि अंशदायी लापरवाही में पाया गया है। लापरवाही के बंटवारे और उससे भी बढ़कर मुआवजा देने की जिम्मेदारी का मुद्दा एक तरफ स्वामी और बीमाकर्ताओं और दूसरी तरफ यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच का मामला है। यह इस अपील में कोई मुद्दा ही नहीं है।

16. इस मामले में जो बात अलग है वह यह है कि दावेदारों के अधिकार फिर भी दो भागों में विभाजित हो गए हैं, एक हिस्सा स्वामी एवं बीमाकर्ताओं के विरुद्ध तथा दूसरा यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध। दावेदारों एवं यू.पी.एस.आर.टी.सी. के मध्य दिनांक 04.03.2001 को लोक अदालत में दायर एक समझौता अभिलेखों पर है, जिसे लोक अदालत ने उसी दिन स्वीकार कर लिया था। लोक अदालत के समक्ष समझौते की शर्तें दर्शाती हैं कि दावेदारों ने यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध अपने दावे में कुल 60,000/- रुपये की राशि पर समझौता किया है। दावेदारों एवं

यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच उपरोक्त समझौता कागज सं0 14-ग के रूप में अभिलेख में है, जिसके पृष्ठ भाग पर लोक अदालत द्वारा पारित आदेश है। इसका परिणाम यह है कि दावेदारों द्वारा वृद्धि के लिए वर्तमान अपील स्वामी एवं बीमाकर्ताओं के विरुद्ध उनके दावे तक ही सीमित है।

17. इस न्यायालय की राय है कि न्यायाधिकरण ने दुर्भाग्यपूर्ण जीप और यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस के मध्य 50% की सीमा तक अंशदायी लापरवाही का निष्कर्ष दिया है, इसलिए इस निष्कर्ष को बदलना मुश्किल है, क्योंकि दावेदारों द्वारा इस न्यायालय के संज्ञान में कोई सकारात्मक साक्ष्य नहीं लाया गया है, जिससे पता चल सके कि यह दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक की ओर से लापरवाही का एक अलग% था या यह शत-प्रतिशत उसकी गलती थी। अन्यथा भी, अब उस निष्कर्ष को बदलना संभव नहीं होगा, क्योंकि इसके आधार पर दावेदारों ने लोक अदालत के समक्ष यू.पी.एस.आर.टी.सी. के साथ मामले का निपटारा कर लिया है। इसलिए, अब जो दावा आगे बढ़ता है, वह स्वामी तथा बीमाकर्ताओं तक ही सीमित है।

18. इस न्यायालय द्वारा मुआवजे में जो भी वृद्धि दी जाती है, तो वह निर्धारण के 50% तक सीमित होगी, शेष 50% यू.पी.एस.आर.टी.सी. के साथ समझौते के अनुसार तय किया जाएगा।

19. अगला प्रश्न यह है कि क्या न्यायाधिकरण द्वारा बीमाकर्ताओं को उनके

दायित्व से उचित रूप से मुक्त कर दिया गया है या क्या यह ऐसा मामला है जहाँ बीमाकर्ताओं को स्वामी से वसूली के अधिकार के साथ दिए गए मुआवजे की भरपाई करने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। यह सत्य है कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक के पास जो ड्राइविंग लाइसेंस था, वह मोटरसाइकिल और हल्के मोटर वाहन चलाने का लाइसेंस था, जो किसी व्यक्ति को निजी वाहन चलाने के लिए अधिकृत करता है। लाइसेंसिंग प्राधिकरण द्वारा लाइसेंसधारी को यात्रियों को ले जाने वाले वाणिज्यिक हल्के मोटर वाहन चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया गया था।

20. न्यायाधिकरण ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि अभिलेखों पर उपलब्ध तथ्य एवं साक्ष्य दर्शाते हैं कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप में निःशुल्क यात्री सवार थे, हालांकि दावेदार की मुख्य परीक्षा के बदले में दायर हमीदुन्निशा के शपथपत्र में स्पष्ट रूप से ऐसा कुछ नहीं कहा गया है कि मृतक किसी तरह का किराया चुकाने के बाद वाहन में सवार हुआ था। यह न्यायालय इस मुद्दे पर न्यायाधिकरण से सहमत है। इसका कारण यह है कि प्रत्यक्ष तौर पर स्वामी ने लिखित बयान में कोई विशेष तर्क नहीं दिया है कि वह यात्रियों को निःशुल्क रूप से ले जा रहा था या मृतक या उसके परिवार और स्वामी के मध्य किसी प्रकार का व्यक्तिगत संबंध दिखाने के लिए परिस्थितियों प्रदर्शित कर रहा था। जीप में ऐसे यात्री सवार थे जो स्वामी से संबंधित नहीं थे, जिससे यात्रियों के निःशुल्क परिवहन के बारे में अनुमान लगाया जाना चाहिए। इस अनुमान का खंडन करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी

नहीं है कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप में सवार यात्री, जिनमें से कोई भी स्वामी या उसके परिचितों या दोस्तों से संबंधित नहीं लगता है, निःशुल्क थे। जीप को स्पष्ट रूप से किराए के लिए यात्री वाहन के रूप में चलाया जा रहा था।

21. इस संबंध में न्यायालय का निष्कर्ष इस प्रतिष्ठित तथ्य के न्यायिक संज्ञान पर भी आधारित होना चाहिए कि इस प्रकार के वाहनों को हमेशा किराए के लिए यात्री वाहन के रूप में उपयोग किया जाता है, हालांकि वे निजी वाहनों के रूप में पंजीकृत होते हैं। इसलिए, न्यायालय ने पाया कि जीप के चालक के पास वैध लाइसेंस नहीं हो सकता है, जो उसे वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले यात्री वाहनों को चलाने के लिए अधिकृत करता है, फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमा बीमाकर्ताओं द्वारा किया गया था। साथ ही, ड्राइविंग लाइसेंस ऐसा नहीं था जिसे वाणिज्यिक या यात्री वाहन चलाने के लिए अनुमोदित किया गया था, यह बीमा पॉलिसी का उल्लंघन है जो बीमाकर्ताओं को पॉलिसी के अनुसार मूल रूप से क्षतिपूर्ति करने के अपने दायित्व से मुक्त होने का अधिकार देता है। परन्तु, उन्हें दावेदारों को भुगतान करने और स्वामी से वसूली करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

22. शमन्ना व अन्य बनाम डिवीजनल मैनेजर, ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड व अन्य, (2018) 9 एस.सी.सी. 650 में, प्रासंगिक तथ्य यह थे कि मृतक एक जीप से यात्रा कर रहा था, जिसे उसके चालक द्वारा लापरवाही से चलाया जा रहा था। वाहन का

दरवाजा अचानक खुल गया तथा मृतक वाहन से बाहर गिर गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। मृतक एक युवा व्यक्ति था तथा उसके माता-पिता ने मुआवज़े की मांग की। न्यायाधिकरण ने मुआवज़ा देने का आदेश दिया तथा भुगतान करने और वसूली करने का निर्देश दिया, क्योंकि दुर्घटना के समय जीप चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। बीमा कंपनी तथा दावेदारों की अपील पर, माननीय उच्च न्यायालय ने मुआवज़ा बढ़ा दिया, परन्तु भुगतान करने और वसूली करने के निर्देश को अपास्त कर दिया। यह ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जब दावेदारों की विशेष अनुमति याचिका पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एस.सी.सी. 297 में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए शमन्ना (उपरोक्त) में कहा:-

“11. वर्तमान मामले में, “भुगतान करें और वसूल करें” के लाभ से वंचित करने के लिए, जो बात माननीय उच्च न्यायालय के लिए काफी मायने रखती है, वह है नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी (नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785): (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), में दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किए गए वृहदपीठ का संदर्भ, जिसमें निर्णयों की शुद्धता पर संदेह किया गया है, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए बीमा कंपनी को मुआवज़ा राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है, भले ही

बीमा कंपनी का भुगतान करने का कोई दायित्व नहीं हो। पार्वथनेनी मामले में (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785: (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इंगित किया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 142 इस प्रकार के मामलों को आच्छादित नहीं करता है तथा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 786, पैरा 5)

“5. यदि बीमा कंपनी के पास भुगतान करने का दायित्व नहीं है, तो, उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न्यायालय के आदेश से मुआवजा राशि का भुगतान करने तथा बाद में इसे वाहन स्वामित्व से वसूलने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है।”

12. पार्वथनेनी मामले में उपरोक्त संदर्भ (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785: (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), का निस्तारण दिनांक 17-09-2013 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2018) 9 एस.सी.सी. 657) को तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विधिक प्रश्नों को उचित मामले में तय किए जाने के लिए स्वतंत्र रखते हुए किया गया है।

13. चूंकि पार्वथनेनी मामले (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785: (2009) 3 एस.सी.सी.

(सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), में वृहदपीठ के संदर्भ को उचित मामले में निस्तारित किए जाने के लिए विधिक प्रश्नों को निस्तारित किए जाने को स्वतंत्र रखते हुए किया गया है, वर्तमान में स्वर्ण सिंह मामले (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एस.सी.सी. 297: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 733), का निर्णय, जो कि लक्ष्मी नारायण धुत (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण धुत, (2007) 3 एस.सी.सी. 700: (2007) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 142), तथा अन्य मामलों में कायम है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय, जिसमें बीमा कंपनी को दावेदारों को दिए गए मुआवजे की राशि का भुगतान करने और उसके बाद, संबंधित वाहन स्वामी से इसे वसूलने का निर्देश दिया गया है, स्वर्ण सिंह (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एस.सी.सी. 297: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 733), तथा और लक्ष्मी नारायण धुत (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण धुत, (2007) 3 एस.सी.सी. 700: (2007) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 142), मामलों में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अनुरूप है। जबकि, हमारे विचार में, माननीय उच्च न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी को वाहन स्वामी से भुगतान करने और वसूलने का निर्देश दिया गया था। माननीय उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय (शमन्ना बनाम लक्ष्मण, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 6928), जिसमें बीमा कंपनी को दायित्व से उन्मोचित कर दिया गया था तथा दावेदारों को वाहन

स्वामी से मुआवजा वसूलने का निर्देश दिया गया था, को अपास्त किया जाता है तथा न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय को बहाल किया जाता है।

14. जहां तक वाहन स्वामी से धनराशि की वसूली का प्रश्न है, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नंजप्पन (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नंजप्पन, (2004) 13 एस.सी.सी. 224: 2005 एस.सी.सी. (क्रि) 148), के निर्णय के अनुसार बीमा कम्पनी वसूली करेगी, जिसमें इस न्यायालय ने माना था कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 226, पैरा 8)

“8. बीमित व्यक्ति से धनराशि वसूलने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को मुकदमा दायर करने की आवश्यकता नहीं होगी। वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष कार्यवाही आरंभ कर सकता है, चूंकि बीमाकर्ता तथा स्वामी के मध्य विवाद न्यायाधिकरण के समक्ष निर्धारण का विषय था तथा वाद बिन्दु स्वामी के विरुद्ध तथा बीमाकर्ता के पक्ष में तय किया गया है।”

23. इसलिए, इस न्यायालय का मत है कि स्वामी के लिए जो भी दायित्व पाया जाता है, बीमाकर्ता दिए गए मुआवजे को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होंगे और न्यायाधिकरण को आवेदन करके स्वामी से उसे वसूल करेंगे।

24. इससे न्यायालय के लिए यह प्रश्न रह जाता है कि न्यायाधिकरण द्वारा मुआवजे का निर्धारण वैध रूप से किया गया है या नहीं। दावेदारों ने वृद्धि की मांग की है और कहा है

कि निर्धारित मुआवजा बहुत कम है। उनका कहना है कि यह स्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है।

25. मुआवजे की गणना करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मृतक की मासिक आय है। न्यायाधिकरण ने मृतक को एक उत्पादक व्यक्ति माना है, जिसके पास अपनी आजीविका कमाने की एक प्रकार की क्षमता है। उसकी आय भी ऐसी मानी गई है, जो उसे अपनी आजीविका कमाने में सक्षम बनाती है। न्यायाधिकरण ने मृतक के पावरलूम मैकेनिक होने के बारे में परिस्थितियों पर ध्यान दिया है, एक तथ्य जिसे दूसरे पक्ष ने अस्वीकार नहीं किया है। हालांकि, मृतक के पावरलूम स्वामी होने के मामले को साक्ष्य के अभाव में निरस्त कर दिया गया है। परिस्थितियों की समग्रता में, न्यायाधिकरण ने मृतक के लिए 3000/- रुपये की मासिक आय निर्धारित की है। हम न्यायाधिकरण द्वारा किए गए उपरोक्त मूल्यांकन से सहमत हैं।

26. मृतक की आय 3000/- रुपये प्रतिमाह तथा तार्किक रूप से 36,000/- रुपये प्रतिवर्ष थी। इस तथ्य के दृष्टिगत कि उसके आश्रितों की संख्या सात है, जो सभी दावेदार हैं, व्यक्तिगत तथा जीवन-यापन व्यय के लिए कटौती तदनुसार की जानी चाहिए।

27. दावेदारों में से मृतक की विधवा वयस्क है जबकि सभी छह बच्चे नाबालिग हैं। उ.प्र. मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में, 1998 के नियम) के नियम 220-ए (2)(iii) का प्रयोग करते हुए, प्रत्येक बच्चे को आधा

इकाई माना जाएगा, तथा, इसलिए, छह बच्चों को तीन आश्रितों के रूप में गिना जाएगा। इस प्रकार, गणना करते हुए, विधवा एवं छह नाबालिग बच्चे कुल चार आश्रितों होंगे। **सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम व अन्य, (2009) 6 एस.सी.सी. 121** के पैरा सं0 30 में निर्धारित नियम के अनुसार, 4-6 होने के कारण दावेदार आश्रित परिवार के सदस्यों की श्रेणी में रखे जाने के हकदार हैं। **सरला वर्मा** (उपरोक्त) में पूर्वोक्त नियम **एक-चौथाई** की कटौती को मंजूरी देता है जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4-6 है। इसलिए, मृतक की आय का एक तिहाई हिस्सा व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए काटने का निर्देश देने वाला न्यायाधिकरण का निर्णय त्रुटिपूर्ण है।

28. न्यायाधिकरण ने '16' का गुणक अपनाया है। **सरला वर्मा** की रिपोर्ट के पैरा सं0 40 की तालिका के अनुसार 36-40 वर्ष की आयु वर्ग के लिए अपनाया जाने वाला गुणक '15' है, न कि '16'।

29. दावेदार भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने के भी हकदार हैं, जो अब सेवा वर्ग के लिए आरक्षित नहीं हैं। इन्हें स्व-नियोजित या निश्चित वेतन पर काम करने वालों पर भी लागू किया जाना चाहिए, जैसा कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी व अन्य (2017) 16 एस.सी.सी. 680** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के अनुसार है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में यह माना गया है:-

“56. सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा उन मृतकों के मामले में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण है जो स्व-रोजगार या निश्चित वेतन पर हैं। **सरला वर्मा (सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770: (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 1002**, ने एक अपवाद बनाया है, जो दावेदारों को भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने का लाभ पाने के लिए अभिलेखों पर सामग्री प्रस्तुत करने की अनुमति देता है। इसने, उक्त श्रेणी के संबंध में, किसी भी भविष्य की संभावनाओं की अनुमति नहीं दी है।

57. अपने गहन विचार-विमर्श के बाद, हम यह सोचते हैं कि जब हम मानकीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो स्व-रोजगार वाले या निश्चित वेतन पाने वाले व्यक्ति पर उक्त सिद्धांत को लागू न करने का वास्तव में कोई औचित्य नहीं है। मृत्यु के समय वास्तविक आय के सिद्धांत का पालन करना तथा गुणनफल के निर्धारण के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कोई राशि नहीं जोड़ना अन्यायपूर्ण होगा। मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि यह अधिनियम की धारा 168 के अंतर्गत निर्धारित न्यायोचित मुआवजे की परिधि के भीतर आ सके। ऐसे मृतक के मामले में जो वार्षिक वेतन वृद्धि के साथ स्थायी नौकरी पर था, एक स्वीकार्य निश्चितता है। परन्तु यह कहना कि निश्चित वेतन पर रहने वाले मृतक के विधिक प्रतिनिधि मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के लाभ के

हकदार नहीं होंगे, अनुचित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि उस घटना में दोनों के बीच अंतर का मानदंड एक ओर निश्चितता और दूसरी ओर स्थिरता होगी। कोई यह समझ सकता है कि तुलनात्मक माप एक ओर निश्चितता और दूसरी ओर अनिश्चितता है, परन्तु ऐसी धारणा भ्रामक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्य वृद्धि स्वरोजगार करने वाले व्यक्ति को प्रभावित करती है; तथा इसके अतिरिक्त जीविका के लिए अपनी आय बढ़ाने का हमेशा एक निरंतर प्रयास रहता है। स्थायी नौकरी में वेतनभोगी व्यक्ति की क्रय क्षमता जब वेतन वृद्धि एवं वेतन संशोधन या सेवा शर्तों में किसी अन्य परिवर्तन के कारण बढ़ जाती है, तो कर्मचारियों से बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए वेतन बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र में हमेशा एक प्रतिस्पर्धात्मक रवैया रहता है। इसी प्रकार, एक व्यक्ति जो स्वरोजगार करता है, वह अपने संसाधनों को जुटाने तथा अपने शुल्क/फीस बढ़ाने के लिए बाध्य होता है ताकि वह उन्हीं सुविधाओं के साथ रह सके। यह धारणा रखना कि वह स्थिर रहेगा और उसकी आय स्थिर रहेगी, मानवीय दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखता है। हालांकि यह उचित लग सकता है कि स्थायी नौकरी वाले व्यक्ति के मामले के विपरीत मौजूदा आय के अलावा भविष्य की संभावनाओं के बारे में निश्चितता नहीं हो सकती है, फिर भी उक्त धारणा वास्तव में स्वीकृति के योग्य नहीं है। हम यह सोचते हैं कि मृतक की ओर से दावा करने वाले विधिक प्रतिनिधियों के संबंध में प्रतिशत के संबंध में कुछ हद तक अंतर हो सकता है,

जिनके पास स्थायी नौकरी थी तथा जो व्यक्ति स्वरोजगार या निश्चित वेतन पर है। परन्तु निश्चितता की कथित कमी के आधार पर मानकीकरण के सिद्धांत को लागू नहीं करना जमीनी हकीकत के तत्वों से अनजान बने रहने के समान होगा। तथा, इसलिए, डिग्री-परीक्षण अनिवार्य है। जब तक डिग्री-परीक्षण लागू नहीं किया जाता है तथा पक्षकारों को स्थापित करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए नहीं छोड़ा जाता है, तब तक यह अनुचित और असमान होगा। डिग्री-परीक्षण में प्रतिशत की अंतर्निहित अवधारणा होनी चाहिए। संचयी कारकों को ध्यान में रखते हुए, जैसे समय बीतना, समाज में बदलाव, कीमतों में वृद्धि, मूल्य सूचकांक में बदलाव, जीवन के एक विशेष स्वरूप का पालन करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण, आदि, जहां मृतक 40 वर्ष से कम था वहां मृतक की स्थापित आय का 40% भविष्य की संभावनाओं के लिए जोड़ना तथा जहां मृतक 40 से 50 वर्ष की आयु के बीच था, वहां 25% जोड़ना उचित होगा।

58. विवाद यहीं समाप्त नहीं होता। यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या मृतक की आय 50 वर्ष से अधिक होने पर कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। सरला वर्मा (सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770: (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 1002, कोई राशि नहीं जोड़ना उचित समझते हैं तथा यही बात रेशमा कुमारी (रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एस.सी.सी. 65: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 191: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 826, में भी अनुमोदित की गई है। इस तथ्य

का न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि वेतन समान नहीं रहता है। जब कोई व्यक्ति स्थायी नौकरी में होता है, तो किसी न किसी कारण से हमेशा वेतन में वृद्धि होती रहती है। एक सामान्य नियम बना देना कि 50 वर्ष के बाद कोई वृद्धि नहीं होगी, एक अस्वीकार्य अवधारणा होगी। हम यह सोचने के लिए प्रवृत्त हैं कि यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के बीच है तो 15% की वृद्धि होनी चाहिए और उसके बाद कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार, स्व-रोजगार या निश्चित वेतन पर काम करने वाले व्यक्ति के मामले में, 50 से 60 वर्ष की आयु के बीच 10% की वृद्धि होनी चाहिए। उपर्युक्त मानदंड इसलिए तय किया गया है ताकि न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के दृष्टिकोण में एकरूपता हो सके।”

30. विचार करने के लिए अगला बिंदु यह है कि क्या भविष्य की संभावनाएं, जिसके लिए दावेदार हकदार हैं, प्रणय सेठी या उ.प्र. मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में, 1998 के नियम) के नियम 220-ए(3) में निर्धारित कानून द्वारा शासित होंगी। **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला व अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 822** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत यह बिन्दु अब अनिर्णीत नहीं रहा है, जहां यह देखा गया था:-

“9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर किसी भी तरह से वर्तमान मामले में प्रश्न नहीं उठाया गया था तथा इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है, वह यह है कि क्या इसे

लागू करने में, नियम 220 ए के उप-नियम 3(iii) को सीमित क्षेत्र दिया जाना चाहिए या इसे पूर्ण रूप से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी में इस बिन्दु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के अनुसार ‘उचित मुआवजे’ पर पहुंचने के दृष्टिकोण से की गई थी।

11. यदि कोई संकेत वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में लिए गए निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के रूप में नहीं लिया जा सकता है, विशेषकर जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के अंतर्गत नहीं रखा गया हो। ऐसे मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है, अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासकीय सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक साधन ने एक सूत्र तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे वैधानिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन को अन्यथा अमान्य नहीं पाया जाता है।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत कथन को निरस्त करते हैं और न्यायाधिकरण के साथ-साथ माननीय उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि

करते हैं और हर्जे के संबंध में कोई आदेश दिए बिना इस अपील को खारिज करते हैं।”

31. यह अभी भी विचारणीय है कि क्या अधिसूचना सं० 777/XXX-4-2011-4(3)-2010 दिनांकित 26 सितंबर, 2011 अर्थात् उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियम, 2011 द्वारा प्रस्तुत किए गए 1998 के नियमों का नियम 220-ए(3) संशोधन से पूर्व हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा। इस मुद्दे का उत्तर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लॉजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड व अन्य, 2017 (35) एल.सी.डी. 1311** में दिया गया था। **सुशील कुमार** (उपरोक्त) में, यह माना गया:-

“31. घायलों/मृतकों की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधिक न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के दृष्टिगत उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 में नियम 220-ए डाला गया था। यह मुआवजे के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए घायलों/मृतकों की आयु के आधार पर उनकी वास्तविक आय में घायलों/मृतकों की आय का कुछ प्रतिशत जोड़ने का प्रावधान करता है। उपरोक्त नियम दिनांक 26.09.2011 को दावा याचिका के निर्णय के पश्चात परन्तु अपील दायर करने से पहले लागू हुआ, हालांकि दुर्घटना उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले दिनांक 08.05.2010 को हुई थी।

32. उपरोक्त के दृष्टिगत यह तर्क दिया जा रहा है कि नियम 220-ए जो दिनांक

26.09.2011 को प्रभावी हुआ, उस दुर्घटना पर लागू नहीं होगा जो दिनांक 08.05.2010 को हुआ था।

33. राम सरूप बनाम मुंशी ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षों के अधिकारों को आच्छादित करेगा।

34. ऊपर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण का पालन माननीय सर्वोच्च ने मूला बनाम गोधू ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 89 में किया था।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1423 में न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में देखा था:- यदि नया कानून ऐसी भाषा बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से, लंबित मामलों को भी सम्मिलित करता है, तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय को भी व्यक्त अभिप्राय पर ध्यान देना चाहिए तथा अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टांत के न्यायालय के निर्णय के पश्चात भी इस तरह के कानून को प्रभावी किया जा सकता है।

36. प्रीतम सिंह ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान विधिक परिवर्तन को प्रभावी माना गया क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के अंतर्गत अपील की सुनवाई वरिष्ठ न्यायालय द्वारा मुकदमे की पुनः सुनवाई की प्रकृति की होती है।

37. उपरोक्त निर्णयों के प्रकाश में ही लक्ष्मी नारायण गुड़न व अन्य बनाम निरंजन मोदक ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 111 में यह माना गया कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षों के अधिकार शामिल होंगे।

38. उपर्युक्त निर्णय का अनुपालन इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उ.प्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा व अन्य, 2003 (4) ए.डब्ल्यू.सी. 2620 में किया गया था, जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों से संबंधित मामला था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में परिवर्तन को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षों के अधिकारों को आच्छादित किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के दृष्टिगत, आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण उचित विधि नहीं है, क्योंकि इसमें उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में नहीं रखा गया है, जिसमें कहा गया है कि दिनांक 26.09.2011 को प्रभावी हुए नियमों का नियम 220-ए उक्त तिथि से पूर्व हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा, केवल इस कारण से कि नियम को पूर्वव्यापी प्रकृति का नहीं बताया गया है।”

32. **सुशील कुमार** (उपरोक्त) में खंडपीठ द्वारा निर्धारित कानून इस न्यायालय को बाध्य

करता है और इसलिए, भविष्य की संभावनाओं की गणना नियम, 1998 के नियम 220-ए(3) के अनुसार की जानी चाहिए, भले ही दुर्घटना संशोधन से बहुत पहले हुई हो। नियम 220-ए(3) में प्रावधान है कि जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम है, वहां भविष्य की संभावनाओं के लिए उसकी आय में 50% जोड़ा जाना चाहिए।

33. इसके अलावा पारंपरिक मदों के अंतर्गत न्यायाधिकरण द्वारा कोई भी मुआवजा नहीं दिए जाने से संबंधित एक मुद्दा यह भी उठाया गया है। यहां पुनः, **प्रणय सेठी** के मामले में कानून स्पष्ट है, जहां यह देखा गया है:-

“48. इस पहलू को स्पष्ट और उचित रूप से कहा जाना चाहिए। पारंपरिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। उक्त अनुसूची को दोषपूर्ण पाया गया है जैसा कि न्यायालय ने त्रिलोक चंद्र (यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम त्रिलोक चंद्र (1996) 4 एस.सी.सी. 362), में कहा है। हाल ही में, पुट्टम्म बनाम के.एल. नारायण रेड्डी (पुट्टम्म बनाम के.एल. नारायण रेड्डी, (2013) 15 एस.सी.सी. 45: (2014) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 384: (2014) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 574), में यह बताते हुए दोहराया गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 80, पैरा 54)

“54. हम मानते हैं कि 1994 में लागू की गई दूसरी अनुसूची अब जीवन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए

परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।”

49. जहां तक गुणक या गुण्य का संबंध है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उसे रोक दिया गया है। दूसरी अनुसूची का पैरा 3 मृत्यु की स्थिति में सामान्य हर्जाने का भी प्रावधान करता है। यह इस प्रकार है:-

“3. सामान्य हर्जाना (मृत्यु की स्थिति में):

ऊपर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य हर्जाना देय होगा:

(i)	अंतिम संस्कार व्यय	2000 रुपये
(ii)	सह-व्यवस्था की हानि, यदि लाभार्थी पति या पत्नी है तो	5000 रुपये
(iii)	संपत्ति की हानि	2500 रुपये
(iv)	चिकित्सा व्यय - बिलों/वाउचरों द्वारा समर्थित मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक खर्च परन्तु 15,000 रुपये से अधिक नहीं	15000 रुपये”

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्र (यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम त्रिलोक चंद्र

(1996) 4 एस.सी.सी. 362), के निर्णय से लेकर दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है तथा इसमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हम देखते हैं, विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियां दी गई हैं। राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, में सह-व्यवस्था हेतु 1,00,000 रुपये की राशि दी गई थी। सह-व्यवस्था प्रदान करने का औचित्य, जैसा कि हम राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, से पाते हैं, उस अवलोकन पर आधारित है जिसे हमने पहले पुनः प्रस्तुत किया है।

51. उपर्युक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक शीर्षों के अंतर्गत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक मदों का सवाल है, हम राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, में व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होना कठिन पाते हैं। इसने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए

25,000 रुपये, सह-व्यवस्था की हानि के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन की हानि के लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। देखभाल और नाबालिग बच्चों के नुकसान से संबंधित मद उपस्थित नहीं है। यद्यपि राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, संतोष देवी (संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एस.सी.सी. 421: (2012) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 726: (2012) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 160: (2012) 2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 167, ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह इसका पालन करता है। परंपरागत तथा पारंपरिक शीर्ष, कहने की आवश्यकता नहीं है, % के आधार पर निर्धारित नहीं किए जा सकते क्योंकि वह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्ष को परिमाणित किया जाना चाहिए। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि को ध्यान में रखना होगा। न्यायालय इससे अनभिज्ञ नहीं रह सकता। इस विषय में एक सामान्य नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक कि सामान्य नियम लागू नहीं होता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता का अभाव होने के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप न्यायाधिकरणों

और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमें लगता है कि उचित रकम तय करना सही है। हमें लगता है कि पारंपरिक शीर्ष, अर्थात् संपत्ति की हानि, सह-व्यवस्था की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित संख्या क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त शीर्ष पुनः विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। परन्तु पुनः विचार तथ्य-केंद्रित या मात्रा-केंद्रित नहीं होना चाहिए। हमें लगता है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है, उसे हर तीन वर्ष में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए तथा तीन वर्ष की अवधि में यह वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा मानने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन मदों के संबंध में एकरूपता आएगी।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

34. अगला विचारणीय बिन्दु सह-व्यवस्था की हानि के लिए दिए जाने वाले मुआवजे का है। यह बिन्दु **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहूरु राम व अन्य, (2018) 18 एस.सी.सी. 130** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तिगण के समक्ष विचारार्थ आया। मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में, यह माना गया है:-

“21. प्रणय सेठी (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एस.सी.सी. 680: (2018) 3 एस.सी.सी.

(सिविल) 248: (2018) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 205), में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विभिन्न मर्दों का निपटारा किया, जिनके अंतर्गत मृत्यु के मामले में मुआवजा दिया जाना है। इनमें से एक मद सह-व्यवस्था की हानि है। विधिक भाषा में, 'सह-व्यवस्था' एक संक्षिप्त शब्द है, जिसमें 'वैवाहिक सह-व्यवस्था', 'पैतृक सह-व्यवस्था' और 'पुत्रवत् सह-व्यवस्था' सम्मिलित हैं। सह-व्यवस्था के अधिकार में मृतक की कंपनी, देखभाल, सहायता, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149)

21.1. वैवाहिक सह-व्यवस्था को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित जीवनसाथी को "हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की कंपनी, समाज, सहयोग, स्नेह और सहायता" की हानि के लिए मुआवजा देने की अनुमति देता है। (ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979)।

21.2 माता-पिता की अकाल मृत्यु पर बच्चे को "माता-पिता की सहायता, सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" की हानि के लिए पैतृक सह-व्यवस्था दिया जाता है

21.3 संतान सह-व्यवस्था, बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में माता-पिता का मुआवजा पाने का अधिकार है। दुर्घटना में बच्चे की मृत्यु होने से मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा होती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

35. चूंकि दावेदारों को देय मुआवजे के लिए देयता का 50% यू.पी.एस.आर.टी.सी. के हिस्से में विभाजित किया गया था, जिसके साथ दावेदारों ने लोक अदालत के समक्ष अपने दावे को पूरी तरह से तथा अंतिम रूप से निपटाया है, इसलिए पुनरीक्षण पर जो भी मुआवजा देय पाया जाता है, वह स्वामी तथा/या बीमाकर्ताओं द्वारा अकेले 50% की सीमा तक देय होगा। चूंकि यह माना गया है कि मुआवजा पहले बीमाकर्ताओं द्वारा देय है, इसलिए बीमाकर्ता स्वामी द्वारा देय सीमा तक पुरस्कार को संतुष्ट करने के लिए उत्तरदायी हैं, साथ ही अधिनिर्णय को निष्पादित करने वाले न्यायाधिकरण के समक्ष किए जाने वाले विविध आवेदन के माध्यम से स्वामी से वसूलने की स्वतंत्रता है।

36. उपर्युक्त निष्कर्ष के दृष्टिगत, दावेदारों को देय मुआवजा निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जाएगा:

(i)	मासिक आय (मृतक की)	= 3000
(ii)	मासिक आय + भविष्य की संभावनाएं (मासिक आय x 50%) = 3000 + 1500	= 4500
(iii)	वार्षिक आय (मृतक की) 4500 x 12	= 54000
(iv)	वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत व्यय के प्रति एक-चौथाई कटौती = 54000 - 13500	= 40500
(v)	कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x लागू गुणक = 40500 x 15	= 607500
(vi)	पारंपरिक मदों के प्रति दावेदारों की पात्रता = संपदा की हानि + अंतिम संस्कार व्यय + आश्रितों की सह-व्यवस्था = 15000 + 15000 + 40000 x 7	= 310000
	इस प्रकार, कुल मुआवजा रु. 607500 + रु. 310000	= 917500
	लोक अदालत में निपटाए गए यू.पी.एस.आर.टी.सी. के हिस्से में विभाजित मुआवजे का 50% घटाकर = 917500/2	= 458750

2. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित विवादित निर्णय को संशोधित किया जाता है तथा दिए गए तथा देय मुआवजे को बढ़ाकर **4,58,750/- रूपए** किया जाता है। उपरोक्त धनराशि बीमाकर्ताओं द्वारा प्रथम दृष्टया देय होगी तथा उन्हें न्यायाधिकरण के समक्ष प्रकीर्ण आवेदन के माध्यम से स्वामी से वसूलने की स्वतंत्रता होगी। उक्त धनराशि पर दावा याचिका प्रस्तुत करने की तिथि से वसूली तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। आक्षेपित अधिनिर्णय के अनुसार स्वामी द्वारा न्यायाधिकरण में पहले से जमा की गई धनराशि को अधिनिर्णय के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा। मुआवजे का पारस्परिक बंटवारा न्यायाधिकरण द्वारा निर्देशित समान अनुपात में किया जाएगा। हर्जा नहीं।

(2023) 7 ILRA 242

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 1446 वर्ष
2003

अब्दुल खालिक एवं अन्य अपीलकर्तागण
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं
अन्य प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता :

नहीं, श्री शार्वे सिंह

प्रतिपक्षीकरण के अधिवक्ता :

श्रीमती सीमा मिश्रा, श्री अशोक कुमार जायसवाल, श्री सुनील कुमार मिश्रा, श्री सिद्धार्थ जायसवाल

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 173 - प्रतिकर में वृद्धि - दावेदारों की संख्या तीन है - जहां तक संघ का संबंध है, दावेदार की मां को किसी प्रकार की आश्रयिता प्राप्त नहीं निर्धारित किया गया है, उन्होंने अपनी पुत्री को खोया है, और वह पुत्रीय संग-साथ के लिए पात्र होंगी - जहां तक नाबालिग दावेदार का संबंध है, वह माता-पिता संघ की पात्र होगी- दावेदारों में, मृतक के चाचा जिन्हें मृतक का कोई आश्रित नहीं माना गया है, उन्हें संग-साथ के मद में कोई प्रतिकर प्राप्त नहीं होगा - वह ऐसी किसी भी स्वीकृत श्रेणी में नहीं सम्मिलित किये जाते जिनमें संग-साथ की क्षति के लिए प्रतिकर देय होता है - अतः कुल प्रतिकर ₹5,96,000/- होगा - न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में संशोधन किया जाता है और स्वामी द्वारा देय प्रतिकर की राशि ₹2,98,000/- तक वृद्धि की जाती है, जो कि लोक न्यायालय में निर्धारित किए गए उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम के भाग के प्रतिकर का 50 प्रतिशत घटाने के पश्चात देय है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

1. यह इलाहाबाद के जिला न्यायाधीश श्री एस.सी. बोस, जो मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के रूप में आसीन हैं, के दिनांक 06.01.2003 के मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं0 410/1999 में पारित निर्णय एवं अधिनिर्णय से उत्पन्न दावेदारों की अपील है। दावेदार दिए गए मुआवजे में वृद्धि चाहते हैं।

2. मृतक गुलशन बानो दिनांक 13.04.1999 को जीप संख्या यू.पी.-70एन.-7479 से यात्रा कर रही थी। सांय लगभग 7.30 बजे, थाना मऊ आड़मा, जिला इलाहाबाद (अब प्रयागराज) की स्थानीय सीमा के भीतर गनसियारी नामक गाँव के पास, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम (संक्षेप में, यू.पी.एस.आर.टी.सी.) की बस संख्या यू.जी.एच.-471, जो इलाहाबाद से अयोध्या जा रही थी, ने जीप को टक्कर मार दी। दुर्घटना के परिणामस्वरूप, श्रीमती गुलशन बानो को चोटें आईं, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। उपरोक्त जीप, जिस पर गुलशन बानो यात्रा कर रही थी, आलोक पांडे नामक व्यक्ति की थी और ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, इलाहाबाद द्वारा बीमाकृत थी। दावेदार तीन हैं, अर्थात् अब्दुल खालिक, आयु लगभग 45 वर्ष, मृतक का एक चाचा, श्रीमती हमीदुन्निसा, आयु लगभग 40 वर्ष, जो मृतक की माँ है एवं शाईस्ता, मृतक की नाबालिग पुत्री, आयु लगभग 8 माह। इसके बाद उन्हें 'दावेदार' कहा जाएगा, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक तलाकशुदा थी और उसके पति की ओर से कोई दावा नहीं किया गया है।

3. दावेदारों का मामला यह है कि मृतका एक महिला थी, जो घर पर रहती थी और सिलाई आदि का उत्पादक कार्य करती थी, जिससे उसे 5000/- रुपये प्रति माह की आय होती थी। सभी दावेदार मृतका की आय पर निर्भर थे। इसलिए दावेदारों ने 10,00,000/- रुपये की क्षतिपूर्ति की मांग की है।

4. यू.पी.एस.आर.टी.सी., दुर्भाग्यपूर्ण जीप के स्वामी आलोक पांडे तथा ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, जो जीप के बीमाकर्ता हैं, की ओर से प्रत्येक की ओर से अलग-अलग लिखित कथन दाखिल किया गया। जीप के स्वामी और बीमाकर्ताओं को इसके बाद क्रमशः 'स्वामी' एवं 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा।

5. यू.पी.एस.आर.टी.सी. ने मोटे तौर पर यह रुख अपनाया कि दुर्घटना जीप चालक की लापरवाही के कारण हुई, जबकि स्वामी का यह रुख था कि दुर्घटना बस चालक की तेज व लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई। यह भी कथन किया गया कि दुर्घटना की तिथि को दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमाकर्ता से वैध रूप से बीमित थी। बीमाकर्ताओं ने उन सभी बातों का एक पुष्ट तथा असंगत खंडन किया, जिनके लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराया गया था। उन्होंने दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमा होना, यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस व दुर्भाग्यपूर्ण जीप के बीच दुर्घटना होना से इंकार किया तथा इस तथ्य से भी इनकार किया कि चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। संक्षेप में, बीमाकर्ताओं ने जीप के स्वामी को किसी भी देयता के संबंध में क्षतिपूर्ति करने के अपने

दायित्व से इनकार किया, जो उस पर आवंटित हो सकती है।

6. पक्षकारों के तर्कों पर, निम्नलिखित वाद बिन्दु तैयार किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या दिनांक 13.04.1999 को सांय लगभग 7.30 बजे, कथित दुर्घटना जीप संख्या यू.पी.70एन-7479 के तेज तथा लापरवाही से वाहन चलाने के कारण हुई थी?

2. क्या जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 तथा बस संख्या यू.जी.एच.-471 से जुड़ी कथित दुर्घटना दोनों वाहनों की लापरवाही के कारण हुई थी? यदि हाँ, तो किस वाहन की गलती है तथा किस सीमा तक?

3. क्या जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 का स्वामित्व आलोक पांडे के पास है और उसका ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी से बीमा है?

4. क्या दुर्घटना की तिथि को चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था?

5. क्या जीप संख्या यू.पी.-70एन-7479 का संचालन विधि, नियमों और उसके पंजीकरण के अनुसार किया जा रहा था?

6. क्या दावेदार मुआवजे के हकदार हैं? यदि हाँ, तो कितना और किस पक्ष से?

7. दावेदार किस राहत के हकदार हैं?”

7. न्यायाधिकरण ने वाद बिन्दु सं0 1 व 2 का एक साथ निस्तारण किया और माना कि दुर्घटना में बस और दुर्भाग्यपूर्ण जीप दोनों की समान रूप से लापरवाही थी। वाद बिन्दु सं0 3 का उत्तर स्वामी तथा दावेदारों के पक्ष में दिया गया, जिसमें माना गया कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप

स्वामी की थी तथा बीमाकर्ताओं के पास वैध रूप से बीमाकृत थी। बीमाकर्ताओं की स्वीकृति पर न्यायाधिकरण द्वारा इस मुद्दे का उत्तर इस प्रकार दिया गया। वाद बिन्दु सं0 5 का निस्तारण इस प्रकार किया गया कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप को स्वामी के नाम पर निजी उपयोग के लिए वाहन के रूप में पंजीकृत माना गया। एक और निष्कर्ष यह है कि दुर्घटना की तिथि पर, दुर्भाग्यपूर्ण जीप का उपयोग यात्रियों को ले जाने के लिए किया जा रहा था। इसलिए, इस मुद्दे पर निष्कर्ष रूप में यह माना गया कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप को उसके पंजीकृत उपयोग के अनुसार संचालित नहीं किया जा रहा था। वाद बिन्दु सं0 4 का उत्तर देते हुए न्यायाधिकरण ने माना कि अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार, दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक शिव शंकर के पास एक वैध ड्राइविंग लाइसेंस था, जो मात्र निजी वाहन चलाने के लिए वैध था। लाइसेंस यात्रियों को ले जाने वाले वाणिज्यिक वाहन चलाने के लिए अनुमोदित नहीं था। वाद बिन्दु सं0 6 व 7 को एक साथ निस्तारित किया गया। दावेदारों को गुलशन बानो की मृत्यु के कारण मुआवजे का हकदार माना गया।

8. यह पाया गया कि उसके पति ने कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया था और यह दिखाने के लिए एक शपथपत्र था कि मृतका के पति ने उसे तलाक दे दिया था। मृतका की आय, जिसका दावा उसके द्वारा निजी तौर पर सिलाई आदि के काम से किए गए कार्य से किया गया था, न्यायाधिकरण द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। एक टिप्पणी है कि मृतका की 5000/- रुपये प्रति माह की आय होने के तथ्य को मालिक, यू.पी.एस.आर.टी.सी. और

बीमाकर्ताओं की ओर से नहीं बताया गया है। यह भी देखा गया है कि मृतका की आय दिखाने के लिए अभिलेखों पर कुछ भी नहीं है।

9. यह टिप्पणी की गई है कि मृतका तलाकशुदा थी, यह विश्वास करने योग्य है कि वह अपनी आजीविका के लिए काम कर रही होगी। इन टिप्पणियों के बावजूद, मृतका की दावा की गई आय, या उस मामले में किसी भी पर्याप्त आय को छूट दी गई है। न्यायाधिकरण ने मृतका के लिए न्यूनतम आय 15,000/- रुपये प्रतिवर्ष निर्धारित की है। इस आधार पर न्यायाधिकरण ने दावेदारों को देय मुआवजा निर्धारित किया है। मृतका की आय का एक तिहाई हिस्सा उसके व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए काटा गया है। मृतक की आयु 22 वर्ष होने का अनुमान लगाया गया है, क्योंकि दावा किया गया था कि उसकी आयु 22 वर्ष है और शव परीक्षण रिपोर्ट में उसकी आयु 21 वर्ष निर्धारित की गई थी। न्यायाधिकरण ने 1,70,000/- रुपये के मूल मुआवजे पर पहुंचने के लिए '17' का गुणक प्रयोग किया है। दावा याचिका संस्थित होने की तिथि से वसूली तक 10% साधारण ब्याज के अलावा कुछ भी नहीं दिया गया है।

10. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री शारवे सिंह, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार जायसवाल के होल्टिंग ब्रीफ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ जायसवाल तथा यू.पी.एस.आर.टी.सी. की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार मिश्रा को सुना। स्वामी की ओर से कोई भी उपस्थित

नहीं हुआ, यद्यपि अधिवक्ता सुश्री सीमा मिश्रा का नाम वाद सूची में छपा है।

11. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया कि इस मामले में अंशदायी लापरवाही का सिद्धांत लागू नहीं होता, क्योंकि यह समग्र लापरवाही का मामला है। अंशदायी लापरवाही के निष्कर्ष के बावजूद दावेदार 50% देयता को विभाजित करते हुए दोनों वाहनों में से किसी से भी वसूली करने के लिए स्वतंत्र हैं। इसके पश्चात यह कथन किया गया कि बीमा पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन, जिसे न्यायाधिकरण ने दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक के ड्राइविंग लाइसेंस को वाणिज्यिक यात्री वाहन चलाने के लिए अनुमोदित नहीं किए जाने के कारण पाया है, बीमाकर्ताओं को पॉलिसी पर पूर्ण रूप से दोषमुक्ति का हकदार नहीं बनाता। इसके बजाय, यह बीमाकर्ताओं को दावेदारों को भुगतान करने के बाद वसूली का अधिकार प्रदान करता है। दावेदारों ने मृतक की आय को 15,000/- रुपये प्रतिमाह मानने के न्यायाधिकरण के निष्कर्ष की भी आलोचना की है, जिसमें उसकी वास्तविक आय के बारे में साक्ष्य को अनदेखा किया गया है। यह भी कहा गया है कि न्यायाधिकरण ने मृतक की भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में नहीं रखा है। व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती की आलोचना बहुत अधिक किए जाने के रूप में की गई है। यह भी कहा गया है कि न्यायाधिकरण अंतिम संस्कार व्यय के अलावा, प्रेम और स्नेह की हानि के लिए कुछ भी देने में विफल रहा है।

12. यू.पी.एस.आर.टी.सी. के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि वे बड़े हुए

मुआवजे के लिए दावेदारों को कुछ भी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, क्योंकि दावेदारों ने यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध अपने दावे के पूर्ण निपटारे में लोक अदालत के समक्ष दिनांक 04.03.2001 को 60,000/- रुपये की धनराशि स्वीकार कर ली है।

13. दूसरी ओर, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जीप चालक का लाइसेंस केवल निजी वाहन के लिए है, जिसमें वाणिज्यिक वाहन चलाने के लिए कोई अनुमोदन नहीं है, यह पॉलिसी का मौलिक उल्लंघन है, जो बीमाकर्ताओं को न्यायाधिकरण के आदेशानुसार पूर्ण दोषमुक्ति का अधिकार देता है।

14. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत कथनों पर विचार किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि स्वामी या बीमाकर्ताओं द्वारा कोई अपील नहीं की गई है। यह सही है कि जहां तक दावेदारों का प्रश्न है, यह समग्र लापरवाही का मामला है, क्योंकि मृतक उन वाहनों में से एक पर सवार था, जिसकी लापरवाही के कारण यह दुर्घटना हुई। दावेदार किसी भी पक्ष से वसूली करने के लिए स्वतंत्र हैं, जो कि अंशदायी लापरवाही में पाया गया है। लापरवाही के बंटवारे और उससे भी बढ़कर मुआवजा देने की जिम्मेदारी का मुद्दा एक तरफ स्वामी और बीमाकर्ताओं और दूसरी तरफ यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच का मामला है। यह इस अपील में कोई मुद्दा ही नहीं है।

15. इस मामले में जो बात अलग है वह यह है कि दावेदारों के अधिकार फिर भी दो भागों

में विभाजित हो गए हैं, एक हिस्सा स्वामी एवं बीमाकर्ताओं के विरुद्ध तथा दूसरा यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध। दावेदारों एवं यू.पी.एस.आर.टी.सी. के मध्य दिनांक 04.03.2001 को लोक अदालत में दायर एक समझौता अभिलेखों पर है, जिसे लोक अदालत ने उसी दिन स्वीकार कर लिया था। लोक अदालत के समक्ष समझौते की शर्तें दर्शाती हैं कि दावेदारों ने यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरुद्ध अपने दावे में कुल 60,000/- रुपये की राशि पर समझौता किया है। दावेदारों एवं यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच उपरोक्त समझौता कागज सं० 14-ग के रूप में अभिलेख में है, जिसके पृष्ठ भाग पर लोक अदालत द्वारा पारित आदेश है। इसका परिणाम यह है कि दावेदारों द्वारा वृद्धि के लिए वर्तमान अपील स्वामी एवं बीमाकर्ताओं के विरुद्ध उनके दावे तक ही सीमित है।

16. इस न्यायालय की राय है कि न्यायाधिकरण ने दुर्भाग्यपूर्ण जीप और यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस के मध्य 50% की सीमा तक अंशदायी लापरवाही का निष्कर्ष दिया है, इसलिए इस निष्कर्ष को बदलना मुश्किल है, क्योंकि दावेदारों द्वारा इस न्यायालय के संज्ञान में कोई सकारात्मक साक्ष्य नहीं लाया गया है, जिससे पता चल सके कि यह दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक की ओर से लापरवाही का एक अलग प्रतिशत था या यह शत-प्रतिशत उसकी गलती थी। अन्यथा भी, अब उस निष्कर्ष को बदलना संभव नहीं होगा, क्योंकि इसके आधार पर दावेदारों ने लोक अदालत के समक्ष यू.पी.एस.आर.टी.सी. के साथ मामले का निपटारा कर लिया है।

इसलिए, अब जो दावा आगे बढ़ता है, वह स्वामी तथा बीमाकर्ताओं तक ही सीमित है।

17. इस न्यायालय द्वारा मुआवजे में जो भी वृद्धि दी जाती है, तो वह निर्धारण के 50% तक सीमित होगी, शेष 50% यू.पी.एस.आर.टी.सी. के साथ समझौते के अनुसार तय किया जाएगा।

18. अगला प्रश्न यह है कि क्या न्यायाधिकरण द्वारा बीमाकर्ताओं को उनके दायित्व से उचित रूप से मुक्त कर दिया गया है या क्या यह ऐसा मामला है जहाँ बीमाकर्ताओं को स्वामी से वसूली के अधिकार के साथ दिए गए मुआवजे की भरपाई करने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। यह सत्य है कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप के चालक के पास जो डाइविंग लाइसेंस था, वह मोटरसाइकिल और हल्के मोटर वाहन चलाने का लाइसेंस था, जो किसी व्यक्ति को निजी वाहन चलाने के लिए अधिकृत करता है। लाइसेंसिंग प्राधिकरण द्वारा लाइसेंसधारी को यात्रियों को ले जाने वाले वाणिज्यिक हल्के मोटर वाहन चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया गया था।

19. न्यायाधिकरण ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि अभिलेखों पर उपलब्ध तथ्य एवं साक्ष्य दर्शाते हैं कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप में निःशुल्क यात्री सवार थे, हालांकि दावेदार की मुख्य परीक्षा के बदले में दायर हमीदुन्निशा के शपथपत्र में स्पष्ट रूप से ऐसा कुछ नहीं कहा गया है कि मृतक किसी तरह का किराया चुकाने के बाद वाहन में सवार हुआ था। यह न्यायालय इस मुद्दे पर न्यायाधिकरण से

सहमत है। इसका कारण यह है कि प्रत्यक्ष तौर पर स्वामी ने लिखित बयान में कोई विशेष तर्क नहीं दिया है कि वह यात्रियों को निःशुल्क रूप से ले जा रहा था या मृतक या उसके परिवार और स्वामी के मध्य किसी प्रकार का व्यक्तिगत संबंध दिखाने के लिए परिस्थितियों प्रदर्शित कर रहा था। जीप में ऐसे यात्री सवार थे जो स्वामी से संबंधित नहीं थे, जिससे यात्रियों के निःशुल्क परिवहन के बारे में अनुमान लगाया जाना चाहिए। इस अनुमान का खंडन करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि दुर्भाग्यपूर्ण जीप में सवार यात्री, जिनमें से कोई भी स्वामी या उसके परिचितों या दोस्तों से संबंधित नहीं लगता है, निःशुल्क थे। जीप को स्पष्ट रूप से किराए के लिए यात्री वाहन के रूप में चलाया जा रहा था।

20. इस संबंध में न्यायालय का निष्कर्ष इस प्रतिष्ठित तथ्य के न्यायिक संज्ञान पर भी आधारित होना चाहिए कि इस प्रकार के वाहनों को हमेशा किराए के लिए यात्री वाहन के रूप में उपयोग किया जाता है, हालांकि वे निजी वाहनों के रूप में पंजीकृत होते हैं। इसलिए, न्यायालय ने पाया कि जीप के चालक के पास वैध लाइसेंस नहीं हो सकता है, जो उसे वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले यात्री वाहनों को चलाने के लिए अधिकृत करता है, फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण जीप का बीमा बीमाकर्ताओं द्वारा किया गया था। साथ ही, ड्राइविंग लाइसेंस ऐसा नहीं था जिसे वाणिज्यिक या यात्री वाहन चलाने के लिए अनुमोदित किया गया था, यह बीमा पॉलिसी का उल्लंघन है जो बीमाकर्ताओं को पॉलिसी के अनुसार मूल रूप से क्षतिपूर्ति करने के अपने

दायित्व से मुक्त होने का अधिकार देता है। परन्तु, उन्हें दावेदारों को भुगतान करने और स्वामी से वसूली करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

21. **शमन्ना व अन्य बनाम डिवीजनल मैनेजर, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड व अन्य, (2018) 9 एस.सी.सी. 650** में, प्रासंगिक तथ्य यह थे कि मृतक एक जीप से यात्रा कर रहा था, जिसे उसके चालक द्वारा लापरवाही से चलाया जा रहा था। वाहन का दरवाजा अचानक खुल गया तथा मृतक वाहन से बाहर गिर गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। मृतक एक युवा व्यक्ति था तथा उसके माता-पिता ने मुआवज़े की मांग की। न्यायाधिकरण ने मुआवज़ा देने का आदेश दिया तथा भुगतान करने और वसूली करने का निर्देश दिया, क्योंकि दुर्घटना के समय जीप चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। बीमा कंपनी तथा दावेदारों की अपील पर, माननीय उच्च न्यायालय ने मुआवज़ा बढ़ा दिया, परन्तु भुगतान करने और वसूली करने के निर्देश को अपास्त कर दिया। यह ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जब दावेदारों की विशेष अनुमति याचिका पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एस.सी.सी. 297** में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए शमन्ना (उपरोक्त) में कहा:-

“11. वर्तमान मामले में, “भुगतान करें और वसूल करें” के लाभ से वंचित करने के लिए, जो बात माननीय उच्च न्यायालय के लिए काफी मायने रखती है, वह है नेशनल इंश्योरेंस

कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785): (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), मैं दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किए गए वृहदपीठ का संदर्भ, जिसमें निर्णयों की शुद्धता पर संदेह किया गया है, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए बीमा कंपनी को मुआवजा राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है, भले ही बीमा कंपनी का भुगतान करने का कोई दायित्व नहीं हो। पार्वथनेनी मामले में (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785: (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इंगित किया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 142 इस प्रकार के मामलों को आच्छादित नहीं करता है तथा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 786, पैरा 5)

“5. यदि बीमा कंपनी के पास भुगतान करने का दायित्व नहीं है, तो, उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न्यायालय के आदेश से मुआवजा राशि का भुगतान करने तथा बाद में इसे वाहन स्वामित्व से वसूलने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है।”

12. पार्वथनेनी मामले में उपरोक्त संदर्भ (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785: (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009)

3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), का निस्तारण दिनांक 17-09-2013 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2018) 9 एस.सी.सी. 657) को तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विधिक प्रश्नों को उचित मामले में तय किए जाने के लिए स्वतंत्र रखते हुए किया गया है।

13. चूंकि पार्वथनेनी मामले (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पार्वथनेनी, (2009) 8 एस.सी.सी. 785: (2009) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 568: (2009) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 943), मैं वृहदपीठ के संदर्भ को उचित मामले में निस्तारित किए जाने के लिए विधिक प्रश्नों को निस्तारित किए जाने को स्वतंत्र रखते हुए किया गया है, वर्तमान में स्वर्ण सिंह मामले (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एस.सी.सी. 297: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 733), का निर्णय, जो कि लक्ष्मी नारायण धुत (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण धुत, (2007) 3 एस.सी.सी. 700: (2007) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 142), तथा अन्य मामलों में कायम है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय, जिसमें बीमा कंपनी को दावेदारों को दिए गए मुआवजे की राशि का भुगतान करने और उसके बाद, संबंधित वाहन स्वामी से इसे वसूलने का निर्देश दिया गया है, स्वर्ण सिंह (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह, (2004) 3 एस.सी.सी. 297: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 733), तथा और लक्ष्मी नारायण धुत (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण धुत, (2007) 3 एस.सी.सी. 700: (2007) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 142), मामलों में

इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अनुरूप है। जबकि, हमारे विचार में, माननीय उच्च न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी को वाहन स्वामी से भुगतान करने और वसूलने का निर्देश दिया गया था। माननीय उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय (शमन्ना बनाम लक्ष्मण, 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 6928), जिसमें बीमा कंपनी को दायित्व से उन्मोचित कर दिया गया था तथा दावेदारों को वाहन स्वामी से मुआवजा वसूलने का निर्देश दिया गया था, को अपास्त किया जाता है तथा न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय को बहाल किया जाता है।

14. जहां तक वाहन स्वामी से धनराशि की वसूली का प्रश्न है, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नंजप्पन (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नंजप्पन, (2004) 13 एस.सी.सी. 224: 2005 एस.सी.सी. (क्रि) 148), के निर्णय के अनुसार बीमा कम्पनी वसूली करेगी, जिसमें इस न्यायालय ने माना था कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 226, पैरा 8)

“8. बीमित व्यक्ति से धनराशि वसूलने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को मुकदमा दायर करने की आवश्यकता नहीं होगी। वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष कार्यवाही आरंभ कर सकता है, चूंकि बीमाकर्ता तथा स्वामी के मध्य विवाद न्यायाधिकरण के समक्ष निर्धारण का विषय था तथा वाद बिन्दु स्वामी के विरुद्ध तथा बीमाकर्ता के पक्ष में तय किया गया है।”

22. इसलिए, इस न्यायालय का मत है कि स्वामी के लिए जो भी दायित्व पाया जाता है, बीमाकर्ता दिए गए मुआवजे को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होंगे और न्यायाधिकरण को आवेदन करके स्वामी से उसे वसूल करेंगे।

23. इससे न्यायालय के लिए यह प्रश्न रह जाता है कि न्यायाधिकरण द्वारा मुआवजे का निर्धारण वैध रूप से किया गया है या नहीं। दावेदारों ने वृद्धि की मांग की है और कहा है कि निर्धारित मुआवजा बहुत कम है। उनका कहना है कि यह स्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है।

24. मुआवजे की गणना करने हेतु प्रथम निर्धारक मृतका की मासिक आय है; या उस मामले में, उसकी वार्षिक आय। न्यायाधिकरण ने मृतका को एक उत्पादक व्यक्ति माना है जो अपने लिए कुछ कमाती था, परन्तु शपथपत्र पर हमीदुन्निशा के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया, जहां उसने शपथपत्र के पैरा सं0 6 में दावा किया है कि मृतका एक दर्जी के रूप में काम करती थी और 5000/- रुपये प्रति माह कमाती थी। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हमीदुन्निशा ने अपनी मौखिक साक्ष्य के बदले शपथपत्र दिनांकित 19.07.2002 दिया है, परन्तु स्वामी या बीमाकर्ताओं द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है; यहां तक कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा भी नहीं। इसलिए, उसकी गवाही अभिलखों पर अखंडित है। आम तौर पर, अखंडित गवाही को स्वीकार किया जाना चाहिए, परन्तु इसे आँख मूंदकर स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। इसे निष्पक्ष निर्णय के पैमाने पर रखा जाना चाहिए, अन्य तथ्यों,

परिस्थितियों और समकालीन मानवीय अनुभव के आधार पर इसे पूरी तरह से या जितना स्वीकार किया जा सकता है उतना विश्वास करना चाहिए।

25. न्यायाधिकरण ने माना है कि मृतका एक तलाकशुदा महिला थी तथा इसलिए उसके किसी तरह के उत्पादक कार्य में संलग्न होने की संभावना है। इसी आधार पर न्यायाधिकरण ने अनुमान लगाया है तथा मृतका की आय 15,000 रुपये प्रति वर्ष निर्धारित की है।

26. एक महिला, मुख्यतः एक गृहिणी की आय के संबंध में, **अरुण कुमार अग्रवाल व अन्य बनाम नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड व अन्य, (2010) 9 एस.सी.सी. 218** में सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं। **अरुण कुमार अग्रवाल (उपरोक्त)** में इस बिन्दु पर पूर्व प्राधिकार की समीक्षा के पश्चात्, यह माना गया है:-

“26. भारत में न्यायालयों ने माना है कि पत्नी द्वारा घर में दिया गया योगदान अमूल्य है और इसे पैसे के संदर्भ में नहीं आंका जा सकता है। पत्नी द्वारा बच्चों और अपने पति के प्रति सच्चे प्रेम एवं स्नेह के साथ की गई निःशुल्क सेवाएं तथा घरेलू मामलों का प्रबंधन, दूसरों द्वारा की गई सेवाओं के बराबर नहीं हो सकता है। एक पत्नी/माँ घड़ी के हिसाब से काम नहीं करती है। वह दिन-रात परिवार की निरंतर सेवा में लगी रहती है, जब तक कि वह नौकरी पर न हो तथा उसे नियोक्ता के काम पर विशिष्ट घंटों के लिए उपस्थित होना आवश्यक न हो। वह पति और बच्चों की सभी

ज़रूरतों का ख्याल रखती है, जिसमें खाना बनाना, कपड़े धोना आदि शामिल हैं। वह छोटे बच्चों को पढ़ाती है तथा उनके भविष्य के जीवन के लिए उन्हें अमूल्य मार्गदर्शन प्रदान करती है। एक सेविका या नौकरानी घर के काम कर सकती है, जैसे खाना पकाना, कपड़े और बर्तन धोना, घर को साफ रखना आदि, परन्तु वह कभी भी एक पत्नी/माँ का विकल्प नहीं हो सकती जो अपने पति और बच्चों की निस्वार्थ सेवा करती है।

27. पत्नी/माँ द्वारा परिवार अर्थात् पति एवं बच्चों को दी गई सेवाओं के बदले में कोई राशि निर्धारित करना संभव नहीं है। हालाँकि, आश्रितों को मुआवज़ा देने के उद्देश्य से, गृहिणी/माँ की सेवाओं का कुछ आर्थिक अनुमान लगाया जाना चाहिए। उस संदर्भ में, “सेवाओं” शब्द को एक व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए तथा मृतका द्वारा एक माँ के रूप में अपने बच्चों तथा एक पत्नी के रूप में अपने पति को दी गई व्यक्तिगत देखभाल एवं ध्यान की हानि को ध्यान में रखते हुए इसकी व्याख्या की जानी चाहिए। वे मृतका द्वारा दी गई निःशुल्क सेवाओं की हानि के बदले में पर्याप्त मुआवज़ा पाने के हकदार हैं। आश्रितों को देय राशि को इस आधार पर कम नहीं किया जा सकता है कि दादी जैसे कोई करीबी संबंधी परिवार को कुछ सेवाएँ देने के लिए स्वेच्छा से आगे आ सकता है जो मृतका पहले से दे रही थी।

28. लता वाधवा बनाम बिहार राज्य (2001) 8 एस.सी.सी. 197, में इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिकाओं में

उठाए गए विभिन्न मुद्दों पर विचार किया, जिसमें दिनांक 03.03.1989 को हुई आग लगने की दुर्घटना के पीड़ितों को मुआवजे के भुगतान से संबंधित मुद्दा भी शामिल था, जिसके परिणामस्वरूप 60 लोगों की मृत्यु हो गई तथा 113 लोग घायल हो गए थे। अंतरिम आदेश दिनांकित 15.12.1993 द्वारा, इस न्यायालय ने भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री वाई.वी. चंद्रचूड़ से पीड़ितों को देय मुआवजे की राशि सहित विभिन्न मुद्दों पर विचार करने का अनुरोध किया। यद्यपि याचिकाकर्ताओं ने न्यायमूर्ति श्री वाई.वी. चंद्रचूड़ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर आपत्ति दर्ज की, परन्तु न्यायालय ने उसे खारिज कर दिया और रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। गृहिणी को मुआवजे के भुगतान के मुद्दे पर, न्यायालय ने टिप्पणी की:- (एस.सी.सी. पृ. 209-10, पैरा 10)

“10. जहाँ तक मृतका गृहिणियों का प्रश्न है, किसी भी आंकड़े के अभाव में तथा चूँकि गृहिणियाँ कोई आय अर्जित नहीं कर रही थीं, इसलिए उनके द्वारा घर को दी गई सेवाओं के आधार पर मुआवज़ा निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। गृहिणियों के आयु वर्ग के आधार पर, उचित गुणक प्रयोग किया गया है, परन्तु गृहिणियों द्वारा घर को दी गई सेवाओं के मूल्य का अनुमान, जो कुछ मामलों में 12,000 रुपये प्रतिवर्ष तथा अन्य के लिए 10,000 रुपये प्रतिवर्ष है, हमें बहुत कम लगता है। यह सही है कि दावेदारों, जिन्हें मुआवज़ा निर्धारित करने के लिए आंकड़े देना चाहिए था, ने ऐसी गृहिणियों द्वारा दी गई सेवाओं के मूल्य का अनुमान लगाने के लिए

आंकड़े प्रदान करके किसी भी तरह से सहायता नहीं की। परन्तु ऐसे आंकड़ों के अभाव में तथा पूरे परिवार के प्रबंधन के लिए गृहिणियों द्वारा दी गई विविध सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, मामूली अनुमान पर भी, 3000 रुपये प्रति माह तथा 36,000 रुपये प्रति वर्ष होना चाहिए। यह 34 से 59 वर्ष की आयु के बीच की उन सभी गृहिणियों पर लागू होगा जो जीवन में सक्रिय थीं। इसलिए, प्रदत्त मुआवजे की पुनर्गणना की जानी चाहिए, जिसमें प्रति वर्ष दी गई सेवाओं का मूल्य 36,000 रुपये माना जाएगा और उसके पश्चात गुणक लागू किया जाएगा, जैसा कि पहले ही लागू किया गया है, तथा जहाँ तक पारंपरिक राशि का संबंध है, रिपोर्ट के अंतर्गत दिए गए 25,000 रुपये के बजाय इसे 50,000 रुपये होना चाहिए। जहाँ तक 62 से 72 वर्ष की आयु की बुजुर्ग महिलाओं का संबंध है, उनके द्वारा दी गई सेवाओं का मूल्य 10,000 रुपये प्रति वर्ष लिया गया है और लागू गुणक आठ है। हालांकि, लागू गुणक सही है, परन्तु 10,000 रुपये प्रति वर्ष की दर से दी गई सेवाओं का मूल्य न्यायसंगत नहीं माना जा सकता है और इसलिए, हम इसे बढ़ाकर 20,000 रुपये प्रति वर्ष करते हैं। इसलिए, उनके मामले में, मुआवजे की कुल राशि को प्रति वर्ष 20,000 रुपये की सेवाओं के मूल्य के रूप में लेते हुए तथा पहले से लागू गुणक को लागू करने के बाद और उसके बाद पारंपरिक आंकड़े में 50,000 रुपये जोड़ते हुए फिर से निर्धारित किया जाना चाहिए।”

(बल दिया गया)

29. लता वाधवा मामले (2001) 8 एस.सी.सी. 197, के निर्णय को एम.एस. ग्रेवाल बनाम

दीप चंद सूद (2001) 8 एस.सी.सी. 151: 2001 एस.सी.सी. (क्रि) 1426, में अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया था ताकि स्कूल के शिक्षकों की लापरवाही के कारण डूबने से स्कूली बच्चों की मौत से जुड़े एक मामले में 5 लाख रुपये के मुआवजे के पुरस्कार की पुष्टि की जा सके। नगर निगम ग्रेटर बॉम्बे बनाम लक्ष्मण अय्यर (2003) 8 एस.सी.सी. 731: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 252, में दो न्यायाधीशों की पीठ ने मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 110-ए और 110-बी के अंतर्गत मुआवजे प्रदान करने के बिन्दु का निस्तारण करते समय लता वाधवा मामले (2001) 8 एस.सी.सी. 197 तथा एम.एस. ग्रेवाल मामले (2001) 8 एस.सी.सी. 151: 2001 एस.सी.सी. (क्रि) 1426, के निर्णयों का उल्लेख किया।

30. ए. राजम बनाम एम. माणिक्य रेड्डी 1989 ए.सी.जे. 542 (ए.पी.), में, माननीय न्यायमूर्ति एम. जगन्नाथ राव (जो वो तब थे) ने मृतका पत्नी/माँ के आश्रितों को मुआवज़ा देने से संबंधित मामलों में “सेवाओं” शब्द को व्यापक अर्थ देने की वकालत की। उस निर्णय में की गई कुछ टिप्पणियों को नीचे उद्धृत किया गया है:-

“गृहिणी या माँ की मृत्यु के परिणामस्वरूप पति और बच्चों को होने वाली हानि की गणना परिवार को ‘सेवाओं’ की हानि का अनुमान लगाकर की जानी चाहिए, यदि भविष्य में ऐसी सेवाओं को स्वतंत्र रूप से प्रदान किए जाने की उचित संभावना थी, परन्तु मृत्यु के कारण ऐसा नहीं हो सका। यह ध्यान रखना चाहिए

कि इस तरह से नियोजित किया जाने वाला कोई भी विकल्प गृहिणी जितना किफायती नहीं होगा। प्रतिस्थापित सेवाओं को प्राप्त करने के मूल्य के अलावा, प्रतिस्थापन को आवास या भोजन देने का खर्च भी गणना किया जाना चाहिए। इस योग से, वह खर्च घटाया जाना चाहिए जो परिवार अन्यथा मृतका गृहिणी के लिए खर्च कर रहा होता।

गृहिणी की ‘सेवाओं’ का आकलन करते समय, ‘सेवाओं’ शब्द के अर्थ को संकीर्ण अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए, अपितु इसे व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए तथा मृतका द्वारा एक माँ के रूप में अपने बच्चों और एक पत्नी के रूप में अपने पति के प्रति “व्यक्तिगत देखभाल तथा ध्यान” की हानि को ध्यान में रखना चाहिए। अधिनिर्णय केवल इसलिए कम नहीं हो जाता है क्योंकि दादी जैसी कोई करीबी रिश्तेदार स्वैच्छिक सेवाएं देने के लिए तैयार है।”

33. चंद्र सिंह बनाम गुरमीत सिंह (2003) 7 ए.डी. 222 (डेल), कृष्ण गुप्ता बनाम मदन लाल (2002) 96 डी.एल.टी. 829, कप्तान सिंह बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2004) 112 डी.एल.टी. 417, तथा अमर सिंह ठुकराल बनाम संदीप छतवाल (2004) 112 डी.एल.टी. 478, में, दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल तथा खंडपीठ ने अधिनियम के अंतर्गत मुआवज़ा देने के उद्देश्य से लता वाधवा मामले (2001) 8 एस.सी.सी. 197 में इस न्यायालय के निर्णय को लागू करने से इनकार कर दिया। कृष्ण गुप्ता बनाम मदन लाल (2002) 96 डी.एल.टी. 829, में उच्च

न्यायालय की खंडपीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की:- (डी.एल.टी. पृष्ठ 834, पैरा 24)

मानदंड को अपनाया तथा फिर अवलोकन किया:- (डी.एल.टी. पृष्ठ 487, पैरा 35)

“24. लता वाधवा (2001) 8 एस.सी.सी. 197, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को हमारे विचार से, इस मामले में लागू नहीं कहा जा सकता। मोटर वाहन अधिनियम, 1939 अपने आप में संपूर्ण संहिता थी। यह न केवल पीड़ित तथा/या उसके विधिक उत्तराधिकारियों को मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न शारीरिक चोट या मृत्यु के मामले में मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है, अपितु इसके लिए फोरम तथा इसके लिए मुआवजा देने के साधन व प्रणाली भी प्रदान किए गए हैं। ऐसी स्थिति में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लेना अनुचित होगा, जो पूर्णतः अलग तथ्य की स्थिति में दिया गया था तथा जिसके संबंध में कोई वैधानिक मुआवजा उपलब्ध नहीं था। लता वाधवा (2001) 8 एस.सी.सी. 197, एक ऐसे मामले में तय किया गया था जिसमें एक उत्सव के दौरान आग लग गई थी। टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड का दायित्व विवादित नहीं था। उस मामले में प्राप्त विशिष्ट विशेषता को ध्यान में रखते हुए मुआवजा दिया गया था, जिसका मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत देय वैधानिक मुआवजे से कोई लेना-देना नहीं है।”

34. अमर सिंह ठुकराल बनाम संदीप छतवाल (2004) 112 डी.एल.टी. 478, में, दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने गृहिणी की मृत्यु के मामले में मुआवजा देने के उद्देश्य से मजदूरी की न्यूनतम दरों के

“35. चूंकि गृहिणी के अपने घर में योगदान का आकलन करने की कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं है, इसलिए वर्तमान जैसे मामलों में, दिल्ली में मजदूरी की न्यूनतम दरों के अनुसार एक कुशल श्रमिक के वेतन का अवलम्ब लिया जाना चाहिए। हालांकि, यह कठोर लग सकता है, अगर एक गृहिणी को नीचा नहीं दिखा रहा है, तो किसी भी वैधानिक दिशानिर्देश की अनुपस्थिति में शायद ही कोई अन्य विकल्प उपलब्ध हो।

35. हमारे विचार में, एक मृत पत्नी/माँ, जिसकी कोई नियमित आय नहीं है, के आश्रितों को देय मुआवजे की गणना, उसकी सेवाओं की तुलना एक सेविका या नौकर या कर्मचारी, जो एक निश्चित अवधि के लिए काम करता है, से करना अत्यधिक अनुचित, अन्यायपूर्ण और अनुपयुक्त है। पत्नी/माँ द्वारा पति और बच्चों को दी गई निःशुल्क सेवाओं की तुलना किसी कर्मचारी की सेवाओं से नहीं की जा सकती तथा ऐसी सेवाओं के मूल्य का अनुमान लगाने के लिए कोई साक्ष्य या आंकड़ा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। गृहिणी की मृत्यु पर पति व बच्चों द्वारा झेली गई व्यक्तिगत देखभाल तथा ध्यान की हानि को धन के संदर्भ में मापना लगभग असंभव है। अपने विवेक से, विधानमंडल ने, 1994 में ही, मुआवजे की गणना के उद्देश्य से, एक गैर-कमाऊ व्यक्ति की काल्पनिक आय 15,000 रुपये प्रति वर्ष तथा पति/पत्नी के मामले में,

कमाने वाले/जीवित पति/पत्नी की 1/3 आय निर्धारित की थी।

36. हालांकि धारा 163-ए उन मामलों पर लागू नहीं होती है जिनमें अधिनियम की धारा 166 के अंतर्गत मुआवजे के लिए दावा दायर किया जाता है, गैर-कमाऊ गृहिणी/मां के आश्रितों को देय मुआवजे के निर्धारण के लिए किसी अन्य निश्चित मानदंड के अभाव में, द्वितीय अनुसूची के खंड 6 में निर्दिष्ट मानदंडों पर अवलम्ब लेना उचित होगा तथा फिर केरल एस.आर.टी.सी. बनाम सुसम्मा थॉमस (1994) 2 एस.सी.सी. 176: 1994 एस.सी.सी. (क्रि) 335, यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम त्रिलोक चंद्र (1996) 4 एस.सी.सी. 362, सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 1002, में इस न्यायालय के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, एक उपयुक्त गुणक लागू करना उचित होगा तथा साथ ही लता वाधवा मामले (2001) 8 एस.सी.सी. 197 से मार्गदर्शन लिया जाए। एक कुशल कर्मचारी को देय न्यूनतम मजदूरी अवलम्ब लेकर मुआवजे की गणना करने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय की विभिन्न पीठों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण हमारे अनुमोदन हेतु उपर्युक्त नहीं है क्योंकि एक गृहिणी/माँ की निःशुल्क सेवाओं की तुलना एक कुशल कर्मचारी के काम से करना सबसे अवास्तविक है।”

27. एक गैर-कामकाजी गृहिणी की आय के बारे में कानून, जिसकी 22 वर्ष की आयु में एक मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई तथा जिसके बारे में उसके परिवार ने दावा किया था

कि वह कढ़ाई और बुनाई के काम से प्रति माह 900 रुपये कमा रही थी, जितेंद्र खिमशंकर त्रिवेदी व अन्य बनाम कसम दाउद कुंभार व अन्य, (2015) 4 एस.सी.सी. 237 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार का विषय था। जितेंद्र खिमशंकर त्रिवेदी (उपरोक्त) में, यह माना गया:-

“7. स्वीकृत रूप से, दावेदारों ने अपने दावे को पुष्ट करने के लिए साक्षीगण की केवल मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत की कि मृतका स्वनियोजित थी तथा 900 रुपये प्रतिमाह कमा रही थी। श्रीमती गोदावरीबेन खिमशंकर त्रिवेदी, सास तथा श्री खिमशंकर रघुराम त्रिवेदी, ससुर ने इस आशय की साक्ष्य दी है कि दुर्घटना के समय मृतका सिलाई, कढ़ाई और बुनाई का काम करती थी और 900 रुपये प्रतिमाह कमाती थी। उन्होंने आगे यह भी कहा कि उनकी बेटियाँ भी वही काम कर रही थीं, जो मृतका जयवंतीबेन जितेन्द्र त्रिवेदी कर रही थी तथा उनकी बेटियाँ 3000 रुपये प्रति माह कमा रही थीं तथा अगर मृतका जीवित होती, तो वह भी 3000 रुपये प्रति माह कमा रही होती।

8. न्यायाधिकरण ने पाया कि कच्छ जिले में कढ़ाई का काम, सिलाई का काम और स्थानीय पारंपरिक कढ़ाई का काम अच्छा चल रहा है तथा अगर मृतका जीवित होती तो वह 1500 रुपये प्रति माह कमा रही होती। व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 कटौती करके तथा 18 का गुणक अपनाते हुए न्यायाधिकरण ने 2,16,000 रुपये (1000 x 12 x 18 रुपये) पर आश्रितता की हानि की गणना की है। हालांकि अपनी प्रतिपरीक्षा में श्रीमती

गोदावरीबेन खिमशंकर त्रिवेदी तथा खिमशंकर रघुराम त्रिवेदी ने गवाही दी कि उन्होंने वाउचर और खाता बही नहीं रखी थी, न्यायाधिकरण का यह तर्क कि कच्छ जिले में कढ़ाई और सिलाई का काम अच्छा चल रहा है और मृतका 1500 रुपये प्रति माह से कम नहीं कमाती थी, उचित है। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यर्थागण ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं दिया है कि मृतका कोई कढ़ाई या सिलाई का काम या ऐसा कुछ नहीं कर रही थी। ऐसे में, न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्षों के आलोक में, मृतक की आय को 1500 रुपये से घटाकर 1350 रुपये प्रति माह करने में उच्च न्यायालय का निर्णय उचित नहीं था।

10. यह मानते हुए भी कि जयवंतीबेन जितेन्द्र त्रिवेदी कढ़ाई और सिलाई का काम करके स्व-नियोजित नहीं थीं, यह तथ्य बचता है कि वह एक गृहिणी थीं। गृहिणी द्वारा किए गए घरेलू काम का मुद्दीकरण करना कठिन है। माँ/पत्नी की सेवाएँ 24 घंटे उपलब्ध रहती हैं तथा उनकी इयूटी कभी तय नहीं होती। न्यायालयों ने माना है कि घर में पत्नी द्वारा दिया गया योगदान अमूल्य है तथा इसे पैसे के रूप में नहीं आंका जा सकता। एक गृहिणी/गृहिणी घड़ी के हिसाब से काम नहीं करती है तथा वह पूरे परिवार की निरंतर उपस्थिति में रहती है तथा गृहिणी द्वारा प्रदान की गई ऐसी सेवाओं को निर्भरता की हानि की गणना करते समय आवश्यक रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस प्रकार, अन्यथा भी, मृतक जयवंतीबेन जितेन्द्र त्रिवेदी को गृहिणी मानते हुए, उनकी आय 3000 रुपये प्रति माह तय करना उचित है।

11. गृहिणी की सेवाओं को मान्यता देते हुए तथा यह कि घरेलू सेवाओं को धन के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए, अरुण कुमार अग्रवाल बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2010) 9 एस.सी.सी. 218: (2010) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 664: (2010) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 1313, में इस न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 246, पैरा 62-63)

“62. धन मूल्यों को लागू करने का विकल्प, इन सेवाओं के उत्पादन में लगने वाले समय को मापना है तथा इनकी तुलना उन वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में लगने वाले समय से करना है जो व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य हैं। यह स्वीकार करना होगा कि लंबे समय में, घर में महिलाओं द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं अर्थव्यवस्था में श्रम की आपूर्ति को बनाए रखती हैं तथा सामाजिक ताने-बाने को बुनकर एवं अच्छी स्थिति को बनाए रखते हुए मानव समाज को बनाए रखती हैं। यदि हम इन सेवाओं को हल्के में लेंगे तथा इन्हें कोई महत्व नहीं देंगे, तो इससे मानव क्षमताओं तथा सामाजिक ताने-बाने दोनों में गिरावट के रूप में अप्रत्याशित लागत बढ़ सकती है।

63. संपूर्ण भारत में महिलाओं द्वारा किया जाने वाला घरेलू काम प्रति वर्ष 612.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक है (इवेंजेलिकल सोशल एक्शन फोरम एवं हेल्थ ब्रिज, पृष्ठ 17)। हम अक्सर भूल जाते हैं कि गृहिणी के रूप में घरेलू काम करने में महिलाओं द्वारा बिताया गया समय, वह समय है जिसे वे वेतनभोगी काम या अपनी शिक्षा के

लिए समर्पित कर सकती हैं। उनके काम के प्रति संवेदनशीलता और मान्यता की यह कमी मुख्य रूप से महिलाओं की गरीबी की उच्च दर तथा समाज में उनके परिणामी उत्पीड़न के साथ-साथ विभिन्न शारीरिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं में योगदान देती है। न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को सड़क दुर्घटनाओं की शिकार गृहणियों के लिए मुआवज़ा निर्धारित करने तथा 'उचित मुआवज़ा' तय करने के नाम पर राशि निर्धारित करने में इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

13. न्यायसंगत तथा उचित मुआवज़ा देने के लिए मृतक की आय 3000 रुपये प्रति माह मानी जाती है। व्यक्तिगत व्यय के लिए 1/3 भाग घटाने पर मृतक द्वारा परिवार को दिया जाने वाला योगदान 2000 रुपये प्रति माह आंका जाता है। मृतका जयवंतीबेन की मृत्यु के समय आयु लगभग 22 वर्ष थी, इसलिए अपनाया जाने वाला उचित गुणक 18 है। 18 के गुणक को अपनाने पर आश्रितता की कुल हानि 4,32,000 रुपये (2000 x 12 x 18 रुपये) आंकी गई है। पारंपरिक मर्दों के अंतर्गत मुआवज़ा प्रदान करने के संबंध में, न्यायाधिकरण ने संपत्ति की हानि के लिए 5000 रुपये तथा अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 3000 रुपये, कुल 8000 रुपये दिए हैं। माननीय उच्च न्यायालय ने 15,000 रुपये का पारंपरिक हर्जाना दिया है, अर्थात् संपत्ति की हानि के लिए 10,000 रुपये तथा अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 5000 रुपये। अधीनस्थ न्यायालयों ने सह-व्यवस्था की हानि तथा प्रेम व स्नेह के लिए कोई मुआवज़ा नहीं

दिया है। राजेश बनाम राजबीर सिंह (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, तथा जीजू कुरुविला बनाम कुंजुजम्मा मोहन (2013) 9 एस.सी.सी. 166: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 849 में, इस न्यायालय ने सह-व्यवस्था की हानि के लिए 1,00,000 रुपये तथा प्रेम व स्नेह की हानि के लिए 1,00,000 रुपये की पर्याप्त राशि प्रदान की है। उसी के अनुसरण में, इस मामले में सह-व्यवस्था की हानि के लिए 1,00,000 रुपये तथा नाबालिग बच्चों के प्रेम व स्नेह की हानि के लिए 1,00,000 रुपये प्रदान किए जाते हैं। संपत्ति की हानि व अंतिम संस्कार के खर्च के लिए, माननीय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए 15,000 रुपये के मुआवज़े के आदेश को बरकरार रखा गया है। इस प्रकार, दावेदार कुल 6,47,000 रुपये के मुआवज़े के हकदार हैं।”

28. मृतका 22 वर्ष की एक युवा महिला थी, यह एक ऐसा तथ्य है जिस पर कोई विवाद नहीं है। वह कपड़े सिलती थी या कुछ और करती थी, यह उसकी आय के बारे में निर्णायक नहीं है। मृतका अपने जीवन के बहुत ही उत्पादक चरण में थी तथा तलाक़शुदा थी। उस पर एक छोटी पुत्री आश्रित थी तथा वे अपनी मां व चाचा के साथ रह रहे थे। न्यायाधिकरण ने इस न्यायालय द्वारा पूर्व में जो टिप्पणी की है, उसके अनुसार सही माना है कि मृतका अपने लिए आजीविका कमाने तथा अपनी बेटी व अपनी मां, जिनके साथ वह रह रही थी, का भरण-पोषण करने के लिए किसी लाभदायक व्यवसाय में लगी होगी। मां द्वारा

शपथपत्र के रूप में समर्थक साक्ष्य है, जिसमें कहा गया है कि मृतका दर्जी का काम करती थी। संभवतः, मां का तात्पर्य यह है कि वह अपने ग्राहकों से मिलने वाले लाभ या पारितोषिक के लिए घर पर कपड़े और परिधान सिलती थी।

29. सामान्यतः मृतक की माँ हमीदुन्निशा के अप्रतिवादित शपथपत्र को स्वीकार किया जाना चाहिए था, परन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, शपथपत्र में अप्रतिवादित कथन की सत्यता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसके अलावा कोई अन्य साक्ष्य नहीं है, जैसे मृतका के परिश्रम के लिए मजदूरी की रसीद या उसके द्वारा किए गए काम से संबंधित किसी भी तरह की रसीद। असंगठित श्रम क्षेत्र में, विशेष रूप से घर पर किए जाने वाले सिलाई तथा हस्तशिल्प के काम के अनुसार, औपचारिक साक्ष्य जैसे खाता बही या रसीदें या बैलेंस-शीट दिखाने वाले बहीखाते कभी भी अपेक्षित साक्ष्य नहीं होते। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शपथपत्र में जो कुछ भी कहा गया है, उसे हर शब्द के लिए सच मान लिया जाए। आय के बारे में मौखिक या शपथपत्र पर दी गई साक्ष्य, जिस पर दावे आधारित हैं, अतिरंजित और बढ़ा-चढ़ाकर बताई जाती है। साथ ही, मृतक जो काम कर रहा था तथा समग्र परिस्थितियों के अनुसार, वर्ष 1999 में 5000/- रुपये प्रति माह की आय विश्वसनीय नहीं लगती, परन्तु प्रासंगिक समय अवधि के दौरान प्राप्त मजदूरी को देखते हुए, न्यायालय की राय में, मृतक द्वारा प्रति माह अर्जित की जाने वाली राशि 3000/- रुपये प्रति माह सुरक्षित रूप से स्वीकार की जा सकती है। यह

उपर्युक्त आधार पर है कि दावेदारों की निर्भरता का आकलन किया जाना है।

30. दावेदारों की संख्या तीन है, जिनमें से एक मृतका की नाबालिग संतान है तथा दूसरी उसकी मां है। संतान के दावे को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है। जहां तक मां का सवाल है, उसका पति इंसानुल हक भी उसी वाहन में सवार होकर उसी दुर्घटना का शिकार हुआ था। वह पावरलूम मैकेनिक था तथा उसका अपना पावरलूम था, जिसे वह अपनी आजीविका चलाने के लिए व्यवसाय में लगाता था। हमीदुन्निशा ने इंसानुल हक के अन्य आश्रितों के साथ मिलकर उसी दुर्घटना में उसकी मृत्यु के लिए मुआवजा पाने के लिए दावा याचिका सं० 411/1999 दायर की है। इसलिए वह स्पष्ट रूप से इंसानुल हक की आश्रित है, गुलशन बानो की नहीं। जबकि हमीदुन्निशा गुलशन बानो पर किसी भी तरह की आश्रितता का दावा करने की हकदार नहीं है, परन्तु स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, गुलशन बानो उसकी बेटी है, इसलिए वह संतान सह-व्यवस्था की हानि के कारण कुछ मुआवजे की हकदार होगी। संतान सह-व्यवस्था के मुद्दे पर इस निर्णय में बाद में इस बिंदु से संबंधित प्राधिकारी के संदर्भ में चर्चा की जाएगी।

31. अन्य दावेदार, मृतका के चाचा अब्दुल खालिक, उसके पिता के भाई हैं। वह 45 वर्ष का अपेक्षाकृत युवा व्यक्ति है, जो अभी भी अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ अवस्था पर है। कोई कारण नहीं है कि उसे अपनी तलाकशुदा भतीजी का आश्रित माना जाए, जो अपने पति

से अलग होने के बाद अपने माता-पिता के परिवार के साथ रह रही थी।

32. इसलिए, इस न्यायालय का मत है कि जबकि मृतका की माँ उसकी उत्तराधिकारी हो सकती है, जो संतान सह-व्यवस्था की हानि के लिए कुछ मुआवजे की हकदार है, मृतक द्वारा छोड़ा गया एकमात्र आश्रित जो निर्भरता के आधार पर मुआवजे की मांग करने का हकदार है, वह मृतका की नाबालिग संतान शाइस्ता है।

33. 3000/- रुपये प्रति माह की आय के अनुसार मृतका को 36,000/- रुपये की वार्षिक आय का श्रेय दिया जाएगा। अब, मृतका के व्यक्तिगत तथा जीवन-यापन के खर्चों के लिए की जाने वाली कटौती पर विचार किया जाता है। इस मुद्दे पर मानक माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय **सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम व अन्य (2009) 6 एस.सी.सी. 121** है। **सरला वर्मा (उपरोक्त)** में रिपोर्ट के पैरा सं0 30 में व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए कटौती के सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं। इस मामले में कठिनाई इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि विवाहित व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती आश्रितों की संख्या 2-3 के लगभग होने से शुरू होती है। **सरला वर्मा** में एकमात्र आश्रित के मामले से निपटा नहीं गया है।

34. इसलिए, जब मृतक अपने पीछे एकमात्र आश्रित छोड़ जाता है तो कटौती क्या होगी, यह उत्तर देने हेतु प्रश्न है। यह मुद्दा माननीय कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष **मैनेजर, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम टी.**

चंद्रनायका व अन्य, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 2295 में विचार हेतु आया था। **सरला वर्मा** में मार्गदर्शन का हवाला देते हुए, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने **टी. चंद्रनायका** (उपरोक्त) में कथन किया:-

“9. जैसा कि अपीलकर्ता श्रीमती मंजुला एन. तेजस्वी के विद्वान अधिवक्ता ने बल दिया, यह देखा गया है कि न्यायाधिकरण ने मृतका की 7,000 रुपये प्रति माह की आय में से उसके व्यक्तिगत और जीवन यापन खर्च के लिए कोई राशि नहीं काटी है। यद्यपि मृतका एक विवाहित महिला थी, परन्तु वह अपने पीछे केवल एक ही आश्रित छोड़ गई है, अर्थात् उसका पति। उसके दोनों बेटे 35 वर्ष से अधिक आयु के बालिग हैं तथा स्वतंत्र रूप से कमाई कर रहे हैं तथा अपने परिवारों की देखभाल कर रहे हैं। इसलिए, चूंकि मृतका अपने पीछे एकमात्र आश्रित-अपने पति को छोड़ गई है, व्यक्तिगत तथा जीवन यापन खर्च के लिए अपनाई जाने वाली कटौती 1/2 पर ली जानी चाहिए।

यह दृष्टिकोण **सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम: (2009) 6 एस.सी.सी. 121**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से समर्थित है। उक्त फैसले का प्रासंगिक पैरा निम्नानुसार है:-

“30. हालांकि कुछ मामलों में व्यक्तिगत तथा जीवन-यापन व्यय के लिए की जाने वाली कटौती की गणना त्रिलोक चंद्र में दर्शाई गई इकाइयों के आधार पर की जाती है, परन्तु सामान्य प्रथा मानकीकृत कटौती लागू करने

की है। इस न्यायालय के बाद के कई निर्णयों पर विचार करने के पश्चात, हमारा विचार है कि जहां मृतक विवाहित था, मृतक के व्यक्तिगत तथा जीवन-यापन व्यय के लिए कटौती एक-तिहाई (1/3) होनी चाहिए, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 2 से 3 है। एक चौथाई (1/4) जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4 से 6 है, तथा एक पांचवां (1/5) जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या छह से अधिक है।”

(बल दिया गया)

इसका तात्पर्य यह है कि जब मृतक का केवल एक आश्रित होता है, तो मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए कटौती के रूप में 1/2 ली जानी चाहिए।

सरला वर्मा में उपरोक्त दृष्टिकोण को लागू करते हुए, न्यू इंडिया एश्योरेस कंपनी लिमिटेड बनाम श्री डेविड टी. (आई.एल.आर. 2012 कर 2859) के मामले में विधि को संक्षेप में निर्धारित किया गया है, जिसमें प्रासंगिक पैरा इस प्रकार हैं:-

“7. न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय तथा अधिनिर्णय के अवलोकन के पश्चात तथा अभिलेखों पर उपलब्ध मौखिक तथा अभिलेखीय साक्ष्य की पुनः मूल्यांकन के पश्चात, मेरा विचार है कि न्यायाधिकरण ने मृतक की मासिक आय 3,000 रुपये उचित रूप से निर्धारित की है, परन्तु मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 काटने तथा मृतका के पति की आयु के आधार पर गुणक अपनाने के बजाय मृतका के व्यक्तिगत खर्चों

के लिए 50% काटने तथा गुणक अपनाने के लिए मृतका की आयु लेने में गलती की है, जैसा कि अपीलकर्ता-बीमाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सही प्रकार से इंगित किया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सुस्थापित विधि के आलोक में, कई मामलों में, जब भी कोई एकमात्र दावेदार होता है, तो 50% कटौती की जानी चाहिए। तदनुसार, मैं मृतक की मासिक आय 3,000 रुपये मानता हूं तदनुसार, यदि उसके व्यक्तिगत खर्चों के लिए 3,000 रुपये में से 50% (अर्थात् 1,500 रुपये) काट लिया जाए, तो शुद्ध आय 1,500 रुपये प्रति माह होगी। चूंकि मृतका के पति की आयु लगभग 70 वर्ष थी, इसलिए न्यायाधिकरण द्वारा अपनाए गए गुणक ‘10’ के मुकाबले माननीय सर्वोच्च न्यायालय सरला वर्मा के मामले के निर्णय के अनुसार उचित लागू गुणक ‘5’ है। इस प्रकार, आश्रितता की हानि के लिए न्यायाधिकरण द्वारा प्रदत्त मुआवजा 2,40,000 रुपये के मुकाबले 90,000 रुपये (अर्थात् 1,500 रुपये x 12 x ‘5’) होगा।

10. उपरोक्त निर्णयों के दृष्टिगत, मैं पाता हूं कि ‘आश्रितता की हानि’ मद के अंतर्गत दिए गए मुआवजे के पहलू पर न्यायाधिकरण के निर्णय पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है तथा व्यक्तिगत एवं जीवन यापन के खर्चों के लिए कटौती 50% की जाएगी।

इसलिए, ‘आश्रितता की हानि’ के लिए देय मुआवजा 3,78,000/- रुपये (1/2 x 7000 x 9 x 12) होगा, जबकि न्यायाधिकरण द्वारा 7,56,000/- रुपये का मुआवजा दिया गया था।

हालांकि, न्यायाधिकरण द्वारा अन्य पारंपरिक मर्दों के अंतर्गत दिया गया मुआवजा उचित व न्यायसंगत है तथा इसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, दावेदार-प्रत्यर्थी न्यायाधिकरण द्वारा प्रदत्त 7,96,000/- रुपये के मुकाबले कुल 4,18,000/- रुपये (केवल चार लाख अठारह हजार रुपये) के मुआवजे के हकदार हैं।”

35. माननीय कर्नाटक उच्च न्यायालय के गीता हुकुमचंद बागेवाड़ी बनाम सुंदरवा शिवराय नाइखे व अन्य, एम.एफ.ए. सं0 20759/2020 (एम.वी.-डी.), दिनांक 15.04.2019 को निर्णीत एक और हालिया निर्णय में भी इसी तरह का तर्क अपनाया गया है, जहां माननीय न्यायमूर्ति बी.एम. श्याम प्रसाद ने कहा:-

“8. एकमात्र आश्रित के मामले में व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती के संबंध में तर्क, सरला वर्मा व अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम व अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित है, जो 2009 6 एस.सी.सी. 121 में सूचित किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती 1/3 होनी चाहिए, जब मृतक के आश्रित दो या तीन हों तथा 1/4 यदि आश्रित 4 से 6 के बीच हों तथा 1/5 यदि आश्रित 6 से अधिक हों। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती के इस प्रश्न पर, उपरोक्त सरला वर्मा के मामले में निर्णय के आलोक में विचार किया है, यदि मृतक का एकमात्र आश्रित जीवित है तथा व्यक्तिगत खर्चों के लिए 50% की कटौती की है। यह

न्यायालय बीमाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के मात्र इस तर्क से सहमत हो सकता है कि एकमात्र आश्रित के मामले में व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती आय की 50% (या 1/2) होनी चाहिए क्योंकि यह तर्कसंगत है कि यदि आश्रितों की संख्या 2 या 3 है तो स्वीकार्य कटौती 1/3 होनी चाहिए, यदि मृतक का एकमात्र आश्रित है तो कटौती समान नहीं हो सकती। दो दावेदारों में से, दावेदार सं0 1 पत्नी है, तथा दूसरा दावेदार एक वयस्क पुत्र है। इसलिए, केवल पत्नी ही आश्रित के रूप में योग्य होगी। इस प्रकार व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती आय की 50% (या 1/2) होनी चाहिए। इस प्रकार, इस संबंध में बीमाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क स्वीकार किए जाते हैं।”

36. माननीय कर्नाटक उच्च न्यायालय के दो विद्वान एकल न्यायाधीशों के निर्णय, अत्यंत सम्मान के साथ, अपने तर्क में बहुत अर्थपूर्ण नहीं हैं कि एकल आश्रित के मामले में व्यक्तिगत खर्चों के लिए 50% की कटौती क्यों की जानी है। इस न्यायालय की समझ से, यह तर्क कुंवारे व्यक्ति के मामले की तुलना में थोड़े अलग आधार पर आगे बढ़ेगा, जहां **सरला वर्मा** में 50% कटौती का नियम है। कुंवारे व्यक्तियों के मामले में नियम का कारण यह है कि वे खुद पर अधिक खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं बजाय विवाहित व्यक्तियों के जिन्हें परिवार की ज़िम्मेदारियाँ उठानी होती हैं। एकल आश्रित के मामले में, मृतक द्वारा अपनी आय को अपने तथा आश्रित के बीच समान रूप से साझा करने की संभावना व्यक्तिगत तथा जीवन-यापन व्यय के लिए

50% कटौती रखने के लिए एक वैध आधार के रूप में काम कर सकती है। अन्यथा भी, व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती निर्धारित करने के लिए इकाई प्रणाली को अपनाते हुए, मृतका तथा एकमात्र आश्रित को दो इकाइयों के रूप में माना जा सकता है, जिससे मृतक के व्यक्तिगत व्यय के लिए 50% कटौती का सुरक्षित अनुमान लगाया जा सकता है।

37. मृतका की आयु 22 वर्ष थी, जहां लागू गुणक पुनः सरला वर्मा (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैरा सं0 40 में तालिका द्वारा शासित होगा। उसे 21-25 वर्ष की आयु वर्ग में रखा जाएगा, जहां लागू गुणक '18' है। अतः न्यायाधिकरण ने '17' का गुणक अपनाकर त्रुटि की है।

38. दावेदार भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने के भी हकदार हैं, जो अब सेवा वर्ग के लिए आरक्षित नहीं हैं। इन्हें स्व-नियोजित या निश्चित वेतन पर काम करने वालों पर भी लागू किया जाना चाहिए, जैसा कि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी व अन्य (2017) 16 एस.सी.सी. 680 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के अनुसार है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में यह माना गया है:-

“56. सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा उन मृतकों के मामले में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण है जो स्व-रोजगार या निश्चित वेतन पर हैं। सरला वर्मा (सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770: (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 1002, ने एक अपवाद बनाया

है, जो दावेदारों को भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने का लाभ पाने के लिए अभिलेखों पर सामग्री प्रस्तुत करने की अनुमति देता है। इसने, उक्त श्रेणी के संबंध में, किसी भी भविष्य की संभावनाओं की अनुमति नहीं दी है।

57. अपने गहन विचार-विमर्श के बाद, हम यह सोचते हैं कि जब हम मानकीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो स्व-रोजगार वाले या निश्चित वेतन पाने वाले व्यक्ति पर उक्त सिद्धांत को लागू न करने का वास्तव में कोई औचित्य नहीं है। मृत्यु के समय वास्तविक आय के सिद्धांत का पालन करना तथा गुणनफल के निर्धारण के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कोई राशि नहीं जोड़ना अन्यायपूर्ण होगा। मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि यह अधिनियम की धारा 168 के अंतर्गत निर्धारित न्यायोचित मुआवजे की परिधि के भीतर आ सके। ऐसे मृतक के मामले में जो वार्षिक वेतन वृद्धि के साथ स्थायी नौकरी पर था, एक स्वीकार्य निश्चितता है। परन्तु यह कहना कि निश्चित वेतन पर रहने वाले मृतक के विधिक प्रतिनिधि मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के लाभ के हकदार नहीं होंगे, अनुचित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि उस घटना में दोनों के बीच अंतर का मानदंड एक ओर निश्चितता और दूसरी ओर स्थिरता होगी। कोई यह समझ सकता है कि तुलनात्मक माप एक ओर निश्चितता और दूसरी ओर अनिश्चितता है, परन्तु ऐसी धारणा भ्रामक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्य वृद्धि

स्वरोजगार करने वाले व्यक्ति को प्रभावित करती है; तथा इसके अतिरिक्त जीविका के लिए अपनी आय बढ़ाने का हमेशा एक निरंतर प्रयास रहता है। स्थायी नौकरी में वेतनभोगी व्यक्ति की क्रय क्षमता जब वेतन वृद्धि एवं वेतन संशोधन या सेवा शर्तों में किसी अन्य परिवर्तन के कारण बढ़ जाती है, तो कर्मचारियों से बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए वेतन बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र में हमेशा एक प्रतिस्पर्धात्मक रवैया रहता है। इसी प्रकार, एक व्यक्ति जो स्वरोजगार करता है, वह अपने संसाधनों को जुटाने तथा अपने शुल्क/फीस बढ़ाने के लिए बाध्य होता है ताकि वह उन्हीं सुविधाओं के साथ रह सके। यह धारणा रखना कि वह स्थिर रहेगा और उसकी आय स्थिर रहेगी, मानवीय दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखता है। हालांकि यह उचित लग सकता है कि स्थायी नौकरी वाले व्यक्ति के मामले के विपरीत मौजूदा आय के अलावा भविष्य की संभावनाओं के बारे में निश्चितता नहीं हो सकती है, फिर भी उक्त धारणा वास्तव में स्वीकृति के योग्य नहीं है। हम यह सोचते हैं कि मृतक की ओर से दावा करने वाले विधिक प्रतिनिधियों के संबंध में प्रतिशत के संबंध में कुछ हद तक अंतर हो सकता है, जिनके पास स्थायी नौकरी थी तथा जो व्यक्ति स्वरोजगार या निश्चित वेतन पर है। परन्तु निश्चितता की कथित कमी के आधार पर मानकीकरण के सिद्धांत को लागू नहीं करना जमीनी हकीकत के तत्वों से अनजान बने रहने के समान होगा। तथा, इसलिए, डिग्री-परीक्षण अनिवार्य है। जब तक डिग्री-परीक्षण लागू नहीं

किया जाता है तथा पक्षकारों को स्थापित करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए नहीं छोड़ा जाता है, तब तक यह अनुचित और असमान होगा। डिग्री-परीक्षण में प्रतिशत की अंतर्निहित अवधारणा होनी चाहिए। संचयी कारकों को ध्यान में रखते हुए, जैसे समय बीतना, समाज में बदलाव, कीमतों में वृद्धि, मूल्य सूचकांक में बदलाव, जीवन के एक विशेष स्वरूप का पालन करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण, आदि, जहां मृतक 40 वर्ष से कम था वहां मृतक की स्थापित आय का 40% भविष्य की संभावनाओं के लिए जोड़ना तथा जहां मृतक 40 से 50 वर्ष की आयु के बीच था, वहां 25% जोड़ना उचित होगा।

58. विवाद यहीं समाप्त नहीं होता। यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या मृतक की आय 50 वर्ष से अधिक होने पर कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। सरला वर्मा (सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770: (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 1002, कोई राशि नहीं जोड़ना उचित समझते हैं तथा यही बात रेशमा कुमारी (रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एस.सी.सी. 65: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 191: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 826, में भी अनुमोदित की गई है। इस तथ्य का न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि वेतन समान नहीं रहता है। जब कोई व्यक्ति स्थायी नौकरी में होता है, तो किसी न किसी कारण से हमेशा वेतन में वृद्धि होती रहती है। एक सामान्य नियम बना देना कि 50 वर्ष के बाद कोई वृद्धि नहीं होगी, एक अस्वीकार्य अवधारणा होगी। हम यह सोचने के लिए प्रवृत्त

हैं कि यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के बीच है तो 15% की वृद्धि होनी चाहिए और उसके बाद कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार, स्व-रोजगार या निश्चित वेतन पर काम करने वाले व्यक्ति के मामले में, 50 से 60 वर्ष की आयु के बीच 10% की वृद्धि होनी चाहिए। उपर्युक्त मानदंड इसलिए तय किया गया है ताकि न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के दृष्टिकोण में एकरूपता हो सके।”

39. विचार करने के लिए अगला बिंदु यह है कि क्या भविष्य की संभावनाएं, जिसके लिए दावेदार हकदार हैं, प्रणय सेठी या उ.प्र. मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में, 1998 के नियम) के नियम 220-ए (3) में निर्धारित कानून द्वारा शासित होंगी। न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला व अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 822 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत यह बिन्दु अब अनिर्णीत नहीं रहा है, जहां यह देखा गया था:-

“9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर किसी भी तरह से वर्तमान मामले में प्रश्न नहीं उठाया गया था तथा इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है, वह यह है कि क्या इसे लागू करने में, नियम 220 ए के उप-नियम 3 (iii) को सीमित क्षेत्र दिया जाना चाहिए या इसे पूर्ण रूप से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी में इस बिन्दु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के

अनुसार ‘उचित मुआवजे’ पर पहुंचने के दृष्टिकोण से की गई थी।

11. यदि कोई संकेत वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में लिए गए निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के रूप में नहीं लिया जा सकता है, विशेषकर जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के अंतर्गत नहीं रखा गया हो। ऐसे मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है, अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासकीय सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक साधन ने एक सूत्र तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे वैधानिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन को अन्यथा अमान्य नहीं पाया जाता है।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत कथन को निरस्त करते हैं और न्यायाधिकरण के साथ-साथ माननीय उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और हर्जे के संबंध में कोई आदेश दिए बिना इस अपील को खारिज करते हैं।”

40. यह अभी भी विचारणीय है कि क्या अधिसूचना सं0 777/XXX-4-2011-4(3)-2010 दिनांकित 26 सितंबर, 2011 अर्थात् उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियम,

2011 द्वारा प्रस्तुत किए गए 1998 के नियमों का नियम 220-ए(3) संशोधन से पूर्व हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा। इस मुद्दे का उत्तर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लॉजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड व अन्य, 2017 (35) एल.सी.डी. 1311** में दिया गया था। सुशील कुमार (उपरोक्त) में, यह माना गया:-

“31. घायलों/मृतकों की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधिक न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के दृष्टिगत उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 में नियम 220-ए डाला गया था। यह मुआवजे के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए घायलों/मृतकों की आयु के आधार पर उनकी वास्तविक आय में घायलों/मृतकों की आय का कुछ% जोड़ने का प्रावधान करता है। उपरोक्त नियम दिनांक 26.09.2011 को दावा याचिका के निर्णय के पश्चात परन्तु अपील दायर करने से पहले लागू हुआ, हालांकि दुर्घटना उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले दिनांक 08.05.2010 को हुई थी।

32. उपरोक्त के दृष्टिगत यह तर्क दिया जा रहा है कि नियम 220-ए जो दिनांक 26.09.2011 को प्रभावी हुआ, उस दुर्घटना पर लागू नहीं होगा जो दिनांक 08.05.2010 को हुआ था।

33. राम सरूप बनाम मुंशी ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में

बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षों के अधिकारों को आच्छादित करेगा।

34. ऊपर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण का पालन माननीय सर्वोच्च ने मूला बनाम गोधू ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 89 में किया था।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1423 में न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में देखा था:- यदि नया कानून ऐसी भाषा बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से, लंबित मामलों को भी सम्मिलित करता है, तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय को भी व्यक्त अभिप्राय पर ध्यान देना चाहिए तथा अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टांत के न्यायालय के निर्णय के पश्चात भी इस तरह के कानून को प्रभावी किया जा सकता है।

36. प्रीतम सिंह ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान विधिक परिवर्तन को प्रभावी माना गया क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के अंतर्गत अपील की सुनवाई वरिष्ठ न्यायालय द्वारा मुकदमे की पुनः सुनवाई की प्रकृति की होती है।

37. उपरोक्त निर्णयों के प्रकाश में ही लक्ष्मी नारायण गुड़न व अन्य बनाम निरंजन मोदक ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 111 में यह माना गया कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षों के अधिकार शामिल होंगे।

38. उपर्युक्त निर्णय का अनुपालन इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उ.प्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा व अन्य, 2003 (4) ए.डब्ल्यू.सी. 2620 में किया गया था, जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों से संबंधित मामला था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में परिवर्तन को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षों के अधिकारों को आच्छादित किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के दृष्टिगत, आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण उचित विधि नहीं है, क्योंकि इसमें उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में नहीं रखा गया है, जिसमें कहा गया है कि दिनांक 26.09.2011 को प्रभावी हुए नियमों का नियम 220-ए उक्त तिथि से पूर्व हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा, केवल इस कारण से कि नियम को पूर्वव्यापी प्रकृति का नहीं बताया गया है।”

41. **सुशील कुमार** (उपरोक्त) में खंडपीठ द्वारा निर्धारित विधि इस न्यायालय को बाध्य करती है तथा इसलिए, भविष्य की संभावनाओं की गणना नियम 1998 के नियम 220-ए(3) के अनुसार की जानी चाहिए, भले ही दुर्घटना संशोधन से बहुत पहले हुई हो। नियम 220-ए(3) में प्रावधान है कि जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम है, वहां भविष्य की संभावनाओं के लिए उसकी आय में 50% जोड़ा जाना चाहिए।

42. इसके अलावा पारंपरिक मर्दों के अंतर्गत न्यायाधिकरण द्वारा कोई भी मुआवजा नहीं दिए जाने से संबंधित एक मुद्दा यह भी उठाया गया है। यहां पुनः, **प्रणय सेठी** के मामले में कानून स्पष्ट है, जहां यह देखा गया है:-

“48. इस पहलू को स्पष्ट और उचित रूप से कहा जाना चाहिए। पारंपरिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। उक्त अनुसूची को दोषपूर्ण पाया गया है जैसा कि न्यायालय ने त्रिलोक चंद्र (यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम त्रिलोक चंद्र (1996) 4 एस.सी.सी. 362), में कहा है। हाल ही में, पुट्टम्म बनाम के.एल. नारायण रेड्डी (पुट्टम्म बनाम के.एल. नारायण रेड्डी, (2013) 15 एस.सी.सी. 45: (2014) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 384: (2014) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 574), में यह बताते हुए दोहराया गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 80, पैरा 54)

“54. हम मानते हैं कि 1994 में लागू की गई दूसरी अनुसूची अब जीवन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।”

49. जहां तक गुणक या गुण्य का संबंध है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उसे रोक दिया गया है। दूसरी अनुसूची का पैरा 3 मृत्यु की स्थिति में सामान्य हर्जाने का भी प्रावधान करता है। यह इस प्रकार है:-

“3. सामान्य हर्जाना (मृत्यु की स्थिति में):

ऊपर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य हर्जाना देय होगा:

(i)	अंतिम संस्कार व्यय	2000 रुपये
(ii)	सह-व्यवस्था की हानि, यदि लाभार्थी पति या पत्नी है तो	5000 रुपये
(iii)	संपत्ति की हानि	2500 रुपये
(iv)	चिकित्सा व्यय - बिलों/वाउचरों द्वारा समर्थित मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक खर्च परन्तु 15,000 रुपये से अधिक नहीं	15000 रुपये

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्र (यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम त्रिलोक चंद्र (1996) 4 एस.सी.सी. 362), के निर्णय से लेकर दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है तथा इसमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हम देखते हैं, विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियां दी गई हैं। राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, में सह-व्यवस्था हेतु 1,00,000 रुपये की राशि दी गई थी। सह-व्यवस्था प्रदान करने का औचित्य, जैसा कि हम राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4

एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, से पाते हैं, उस अवलोकन पर आधारित है जिसे हमने पहले पुनः प्रस्तुत किया है।

51. उपर्युक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक शीर्षों के अंतर्गत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक मदों का सवाल है, हम राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, में व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होना कठिन पाते हैं। इसने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000 रुपये, सह-व्यवस्था की हानि के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन की हानि के लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। देखभाल और नाबालिग बच्चों के नुकसान से संबंधित मद उपस्थित नहीं है। यद्यपि राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149, संतोष देवी (संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एस.सी.सी. 421: (2012) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 726: (2012) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 160: (2012) 2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 167, ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह इसका पालन करता है। परंपरागत तथा

पारंपरिक शीर्ष, कहने की आवश्यकता नहीं है, प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किए जा सकते क्योंकि वह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षों को परिमाणित किया जाना चाहिए। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि को ध्यान में रखना होगा। न्यायालय इससे अनभिज्ञ नहीं रह सकता। इस विषय में एक सामान्य नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक कि सामान्य नियम लागू नहीं होता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता का अभाव होने के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमें लगता है कि उचित रकम तय करना उचित है। हमें लगता है कि पारंपरिक शीर्षों, अर्थात् संपत्ति की हानि, सह-व्यवस्था की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित संख्या क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त शीर्षों पुनः विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। परन्तु पुनः विचार तथ्य-केंद्रित या मात्रा-केंद्रित नहीं होना चाहिए। हमें लगता है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है, उसे हर तीन वर्ष में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए तथा तीन वर्ष की अवधि में यह वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा मानने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन मदों के संबंध में एकरूपता आएगी।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

43. अगला विचारणीय बिन्दु सह-व्यवस्था की हानि के लिए दिए जाने वाले मुआवजे का है। यह बिन्दु **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहूरु राम व अन्य, (2018) 18 एस.सी.सी. 130** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तिगण के समक्ष विचारार्थ आया। **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) में, यह माना गया है:-

“21. प्रणय सेठी (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एस.सी.सी. 680: (2018) 3 एस.सी.सी. (सिविल) 248: (2018) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 205), में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विभिन्न मदों का निपटारा किया, जिनके अंतर्गत मृत्यु के मामले में मुआवजा दिया जाना है। इनमें से एक मद सह-व्यवस्था की हानि है। विधिक भाषा में, ‘सह-व्यवस्था’ एक संक्षिप्त शब्द है, जिसमें ‘वैवाहिक सह-व्यवस्था’, ‘पैतृक सह-व्यवस्था’ और ‘पुत्रवत् सह-व्यवस्था’ सम्मिलित हैं। सह-व्यवस्था के अधिकार में मृतक की कंपनी, देखभाल, सहायता, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी. 54: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 179: (2013) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 817: (2014) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 149)

21.1. वैवाहिक सह-व्यवस्था को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित जीवनसाथी को “हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की कंपनी, समाज, सहयोग, स्नेह और सहायता” की हानि के लिए मुआवजा देने की अनुमति देता है। (ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979)।

21.2 माता-पिता की अकाल मृत्यु पर बच्चे को “माता-पिता की सहायता, सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण” की हानि के लिए पैतृक सह-व्यवस्था दिया जाता है

21.3 संतान सह-व्यवस्था, बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में माता-पिता का मुआवजा पाने का अधिकार है। दुर्घटना में बच्चे की मृत्यु होने से मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा होती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

44. इस न्यायालय की राय में, जहाँ तक सह-व्यवस्था का संबंध है, हालाँकि दावेदारों के बीच, दावेदार माँ को किसी भी आश्रितता का हकदार नहीं माना गया है, उसने अपनी बेटी खो दी है तथा इसलिए, वह संतान संबंधी सह-व्यवस्था की हकदार होगी। जहाँ तक नाबालिग दावेदार का संबंध है, वह निश्चित रूप से पैतृक सह-व्यवस्था की हकदार होगी। दावेदारों में, मृतका के चाचा (पिता के भाई), जिन्हें मृतका

का किसी भी प्रकार का आश्रित नहीं माना गया है, सह-व्यवस्था के लिए भी किसी भी प्रकार के हकदार नहीं हैं। वह किसी भी ऐसी ज्ञात श्रेणी में नहीं आते हैं, जहाँ सह-व्यवस्था की हानि के लिए मुआवजा दिया जाना है।

45. चूंकि दावेदारों को देय मुआवजे के लिए देयता का 50% यू.पी.एस.आर.टी.सी. के हिस्से में विभाजित किया गया था, जिसके साथ दावेदारों ने लोक अदालत के समक्ष अपने दावे को पूरी तरह से तथा अंतिम रूप से निपटारा है, इसलिए पुनरीक्षण पर जो भी मुआवजा देय पाया जाता है, वह स्वामी तथा/या बीमाकर्ताओं द्वारा अकेले 50% की सीमा तक देय होगा, जिसमें से अधिकांश भाग नाबालिग दावेदार को मिलेगा, सह-व्यवस्था को छोड़कर, जिसके लिए दावेदार माँ भी हकदार होगी। जिस तरह से इस न्यायालय ने माना है, दावेदारों तथा यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच आश्रितता के 50% के लिए जो भी मुआवजा तय किया गया है, नाबालिग दावेदार को छोड़कर कोई भी दावेदार उक्त राशि का हकदार नहीं होगा। लोक अदालत के समक्ष, कुल 60,000/- रुपये स्वीकार करते हुए, मुआवजे के उस हिस्से के संबंध में नाबालिग दावेदार के हितों को और अधिक सुरक्षित करना बहुत कठिन है। यह न्यायालय यह आशा और विश्वास करती है कि दावेदार की माँ, जो नाबालिग दावेदार की दादी है, एक बड़ी माँ होने के नाते नाबालिग दावेदार के हितों पर दखल नहीं देगी तथा इसे सुरक्षित रखने के लिए प्रयास करेगी। यू.पी.एस.आर.टी.सी. के साथ समझौते के परिणामस्वरूप मुआवजे के जिस भाग पर मृतका के चाचा ने दावा किया है तथा प्राप्त

किया है, उसे भी उनके अपने विवेक पर छोड़ना ही बेहतर होगा।

46. चूंकि यह माना गया है कि मुआवजा प्रथम बार में बीमाकर्ताओं द्वारा देय है, बीमाकर्ता स्वामी देय सीमा तक अधिनिर्णय को संतुष्ट करने के लिए उत्तरदायी हैं, जिसमें अधिनिर्णय को निष्पादित करने वाले न्यायाधिकरण के समक्ष किए जाने वाले प्रकीर्ण आवेदन के माध्यम से स्वामी से वसूलने की स्वतंत्रता है।

47. उपर्युक्त निष्कर्ष के दृष्टिगत, दावेदारों को देय मुआवजा निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जाएगा:

(i)	मासिक आय (मृतका की)	= 3000
(ii)	मासिक आय + भविष्य की संभावनाएं (मासिक आय x 50%) = 3000 + 1500	= 4500
(iii)	वार्षिक आय (मृतका की) 4500 x 12	= 54000
(iv)	वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतका के व्यक्तिगत व्यय के प्रति 50% कटौती = 54000 - 27000	= 27000
(v)	कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x लागू गुणक = 27000 x 18	= 486000
(vi)	पारंपरिक मर्दों के प्रति दावेदारों की पात्रता = संपदा की हानि + अंतिम	= 110000

संस्कार व्यय + आश्रितों की सह-व्यवस्था = 15000 + 15000 + 40000 x 2	
इस प्रकार, कुल मुआवजा रु. 486000 + रु. 110000	= 596000
लोक अदालत में निपटाए गए यू.पी.एस.आर.टी.सी. के हिस्से में विभाजित मुआवजे का 50% घटाकर = 596000/2	= 298000

48. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित विवादित निर्णय को संशोधित किया जाता है तथा दिए गए तथा देय मुआवजे को बढ़ाकर **2,98,0000/- रुपए** किया जाता है। उपरोक्त धनराशि बीमाकर्ताओं द्वारा प्रथम दृष्टया देय होगी तथा उन्हें न्यायाधिकरण के समक्ष प्रकीर्ण आवेदन के माध्यम से स्वामी से वसूलने की स्वतंत्रता होगी। उक्त धनराशि पर दावा याचिका प्रस्तुत करने की तिथि से वसूली तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। आक्षेपित अधिनिर्णय के अनुसार स्वामी द्वारा न्यायाधिकरण में पहले से जमा की गई धनराशि को अधिनिर्णय के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा।

49. न्यायाधिकरण द्वारा आदेशित मुआवजे के आपसी बंटवारे को अपास्त किया जाता है तथा उसके स्थान पर यह निर्देश दिया जाता है

कि दावेदारों को देय कुल मुआवजे में से, नाबालिग दावेदार पूरी राशि का हकदार होगा, सिवाय 20,000/- रुपये (संतान सह-व्यवस्था का 50%) की राशि के, जो दावेदार हमीदुन्निशा को देय होगी। दावेदार अब्दुल खालिक को भुगतान किए जाने के लिए निर्देशित 10,000/- रुपये की राशि, यदि पहले ही भुगतान की जा चुकी है, तो नाबालिग दावेदार को 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित वापस की जाएगी। इसी प्रकार, दावेदार श्रीमती हमीदुन्निशा को देय 25,000/- रुपये की राशि, यदि भुगतान की जा चुकी है, तो नाबालिग दावेदार को उसी दर पर ब्याज सहित वापस की जाएगी, इस शर्त के अधीन कि वापसी की स्थिति में 20,000/- रुपये की राशि दावेदार श्रीमती हमीदुन्निशा के पक्ष में समायोजित की जाएगी।

50. हर्जा नहीं।

(2023) 7 ILRA 264

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 2482 वर्ष

2003

श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी एवं अन्य.....अपीलकर्तागण

बनाम

इस्माइल खान एवं अन्य

....प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री एम.पी. सर्राफ, श्री गुलरेज़ खान, श्री कार्तिकेय सरन, श्री परवेज़ हुसैन खान, श्री सतीश चंद्र दुबे

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

सुश्री ज्योत्सना श्रीवास्तव, श्री एस.डी. ओझा, श्री अरविंद कुमार, श्री जे.एच. खान

ए. दीवानी विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 166, 168 एवं 173 - प्रतिकर की वृद्धि - मृतक की आयु का निर्धारण - मृतक, जिसने 31 वर्ष की आयु पूर्ण नहीं की थी तथा हाई स्कूल प्रमाण-पत्र के अनुसार लगभग दो माह कम आयु का था - उसे 30 वर्ष आयु का निर्धारित किया जाना अपेक्षित है - सारला वर्मा वाद में निर्धारित 26-30 वर्ष की आयु श्रेणी के लिए 17 का गुणक लागू किया गया - अतः अधिकरण द्वारा 12 का गुणक अपनाया जाना त्रुटिपूर्ण था, जो कि 17 का गुणक होना चाहिए - नियम 220-ए (3) पूर्वप्रभावी रूप से लागू होता है, यद्यपि दुर्घटना संशोधन से काफी पूर्व घटित हुई थी - नियम 220-ए (3) मृतक की आय में भविष्य की संभावनाओं की दृष्टि से 50 प्रतिशत की वृद्धि का प्रावधान करता है - अतः अधिकरण द्वारा पारित निर्णय में संशोधन किया जाता है और प्रदत्त प्रतिकर की राशि ₹8,35,000/- तक वृद्धि की जाती है। उपर्युक्त धनराशि दावा याचिका की प्रविष्टि की तिथि से वास्तविक भुगतान तक 7 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज की दर से देय होगी। (प्रस्तर 1 से 31)

अपील आंशिए रूप से स्वीकृत की जाती है।
(ई-6)

माननीय न्यायमूर्ति, जे. जे. मुनीर

1. यह मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अन्तर्गत एक दावेदार की अपील है, जिसमें एक घातक मोटर दुर्घटना के मामले में मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, झाँसी द्वारा दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग की गई है।

2. दावा याचिका, 2000 की एमएसीपी संख्या 315 होने के नाते, स्वर्गीय एसके चतुर्वेदी की विधवा श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी और स्वर्गीय एसके चतुर्वेदी के बेटे राज कुमार चतुर्वेदी द्वारा दायर की गई थी, जिसमें संजय चतुर्वेदी के निधन के कारण मुआवजे की मांग की गई थी, जिनकी मृत्यु 25/26.07.2000 की मध्यरात्रि में एक सड़क दुर्घटना में हो गई थी। श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी मृतक की मां हैं जबकि राज कुमार चतुर्वेदी उनके भाई हैं। श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी को ट्रिब्यूनल के समक्ष दावेदार-याचिकाकर्ता नंबर 1 के रूप में सूचीबद्ध किया गया था और वह इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता नंबर 1 हैं। राज कुमार चतुर्वेदी ट्रिब्यूनल के समक्ष दावेदार-याचिकाकर्ता नंबर 2 थे और इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता नंबर 2 हैं। इसके बाद श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी और राज कुमार चतुर्वेदी को 'दावेदार' के रूप में संदर्भित किया जाएगा, जबतक कि संदर्भ के लिए किसी भिन्न या व्यक्तिगत संदर्भ की आवश्यकता न हो।

3. दावेदारों के अनुसार, 25/26.07.2000 की दरमियानी रात करीब डेढ़ बजे राज कुमार

चतुर्वेदी अपने भाई और एक अंकुर लाल के साथ मारुति कार संख्या यूपी - 93जी- 0711 पर सवार होकर कानपुर से झाँसी की ओर जा रहे थे। वे घर की ओर जा रहे थे। कार दिवंगत संजय कुमार चतुर्वेदी चला रहे थे। वह सड़क के नियम के अनुसार अपनी तरफ चल रहा था। जैसे ही कार पुलिस स्टेशन मोठ, जिला झाँसी की स्थानीय सीमा के अंतर्गत ग्राम सेमरी के पास पहुँची, एक ट्रक, जिसका पंजीकरण संख्या एमपी-08 ए-6294 है, झाँसी की ओर से सड़क के पास आया, जिसका चालक लापरवाही से और बेहूदगी से तेज गति से चला रहा था। ट्रक, सड़क के गलत दिशा में मुड़ते हुए, कार को सीधी, लेकिन दाहिनी ओर से टक्कर मार दी। टक्कर से संजय और राज कुमार चतुर्वेदी, दावेदार नंबर 2 गंभीर रूप से घायल हो गए। कार में सवार दूसरे यात्री अंकुर लाल को सामान्य चोटें आईं। अंकुर लाल ने मृतक के घर फोन पर हादसे की सूचना दी। इससे मृतक और घायल दावेदार के परिवार के लोग मौके पर पहुंच गए और सुबह करीब साढ़े छह बजे दोनों को मेडिकल कॉलेज पहुंचाया। दोनों को आपातकालीन सुविधा में ले जाया गया, जहां मृतक, जो उस समय जीवित था और दूसरे दावेदार, राज कुमार चतुर्वेदी को भर्ती किया गया था। दोनों की जांच की गई और उनकी हालत चिंताजनक थी। परिवार के सदस्यों ने पाया कि दोनों घायलों को उचित इलाज और देखभाल नहीं मिल रही है, तो वे उन्हें सुधा नर्सिंग होम ले गए। 04.08.2000 तक संजय का इलाज सुधा नर्सिंग होम में किया गया, जब शाम 7.30 बजे उन्हें सर्जरी के लिए निर्मल अस्पताल ले जाया गया। उनके पेट में कुछ रक्तसावी चोटों की देखभाल के

लिए शल्य चिकित्सा प्रक्रिया के दौरान, उन्होंने अंतिम सांस ली। दूसरे दावेदार, राज कुमार चतुर्वेदी को उनके घायल अंग पर प्लास्टर चढ़ाकर 10.08.2000 को सुधा नर्सिंग होम से छुट्टी दे दी गई। ऐसा कहा जाता है कि संजय चतुर्वेदी एक स्वस्थ व्यक्ति थे और राजीव कोचिंग सेंटर में पढ़ाकर प्रति माह 6000 रुपये कमा लेते थे। वह कमाए गए पैसों को अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करने में खर्च करता था।

4. दावेदारों का मामला है कि श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी के पति और राज कुमार चतुर्वेदी के पिता की 06.04.2000 को असामयिक मृत्यु हो गई थी। वह यूपी पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड में एक कार्यकारी अभियंता के रूप में कार्यरत थे। दिवंगत संजय चतुर्वेदी ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया था और उनका दावा स्वीकार कर लिया गया था। यूपी पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने जरूरी औपचारिकताएं पूरी कर ली थीं। दिवंगत संजय चतुर्वेदी ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया था और उनका दावा स्वीकार कर लिया गया था। यूपी. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कर ली थीं। संजय चतुर्वेदी सहायक अभियंता के पद पर नियुक्त होने वाले थे। वह पारीछा थर्मल पावर प्रोजेक्ट में अपने नियुक्ति पत्र का इंतजार कर रहे थे, उक्त पद पर नियुक्ति पर, उन्हें शुरुआत में प्रति माह 14,750/- रुपये का वेतन मिलेगा। दावेदारों को उक्त नियुक्ति के लाभ से वंचित किया गया है और उन्हें उसी आधार पर मुआवजा दिया जाना चाहिए। मृतक की माँ पहले ही

अपने पति की असामयिक मृत्यु से पीड़ित थी और अब उसके सामने अपने बेटे की मृत्यु का संकट मंडरा रहा था। इस वजह से उन्हें गहरा सदमा लगा है और उन्हें इलाज की जरूरत है। मृतक के अस्पताल में भर्ती होने और इलाज के दौरान 20,000/- रुपये की राशि खर्च की गई। दावेदारों ने कंसोर्टियम के नुकसान के कारण मुआवजे की भी प्रार्थना की। श्रीमती उर्मिला चतुर्वेदी के लिए मुआवजे में कुल 21,06,000/- रुपये और राज कुमार चतुर्वेदी के लिए रु. 9,16,000/- की राशि, कुल मिलाकर रु.30,22,000/- की राशि, दावा याचिका की स्थापना की तारीख से वसूली तक 15% प्रति वर्ष ब्याज के साथ की मांग की गई थी।

5. इस्माइल खान, विपक्षी नंबर 1, आपत्तिजनक ट्रक का मालिक है जबकि इकबाल खान ड्राइवर है। उन्हें दावा याचिका के विपरीत पक्ष संख्या 1 और 2 और अपील के प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। इस्माइल खान को इसके बाद 'मालिक' और इकबाल खान, 'ड्राइवर' के रूप में जाना जाएगा। अपराधी ट्रक का बीमा द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के महाप्रबंधक, सिविल लाइन्स, झाँसी के माध्यम से किया गया था। वे अपराधी ट्रक के बीमाकर्ता हैं और इसके बाद उन्हें 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा।

6. मालिक और ड्राइवर की ओर से एक संयुक्त लिखित बयान दायर किया गया था, जहां दावा याचिका में मामले को आम तौर पर अस्वीकार कर दिया गया था। अतिरिक्त दलीलों में, यह दावा किया गया कि दुर्घटना में हमलावर ट्रक शामिल नहीं था। दावेदारों ने दुर्घटना को

गलत तरीके से प्रस्तुत किया है, जिसमें दोषी ट्रक भी शामिल है। बदकिस्मत कार किसी अन्य वाहन से टकरा गई थी, जिससे संजय की मौत हो गई। साथ ही यह भी दलील दी गई कि दावा किया गया मुआवजा बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। ड्राइवर ने कोई दुर्घटना नहीं की। दुर्घटना की तिथि पर, दोषी ट्रक का बीमाकर्ताओं के पास बीमा कराया गया था।

7. बीमाकर्ताओं ने आम तौर पर दावे को अस्वीकार करते हुए अपना लिखित बयान दायर किया। उन्होंने अतिरिक्त दलीलों में कहा है कि यह कहना गलत है कि दुर्घटना से पहले संजय चतुर्वेदी एक स्वस्थ व्यक्ति थे या वह कोचिंग मास्टर के रूप में काम करके प्रति माह 6000 रुपये कमा रहे थे। दावा किया गया मुआवजा बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। हमलावर ट्रक को एक अनाधिकृत व्यक्ति चला रहा था। इसमें दोनों चालकों की ओर से लापरवाही बरती गई। मारुति कार के मालिक और उसके बीमाकर्ताओं को पक्षकार नहीं बनाया गया है। मृतक की उम्र 31 वर्ष नहीं थी और न ही वह लाभकारी नौकरी पर था। उनकी प्रति माह 6000 रुपये की आय नहीं थी। मारुति कार एक अनाधिकृत व्यक्ति चला रहा था। बीमाकर्ताओं के अनुसार दावा खारिज किये जाने योग्य था।

8. पार्टियों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“(1) क्या दिनांक 25/26.07.2000 को रात्रि लगभग 1.30 बजे, दावेदारों का पुत्राभाई, संजय कुमार चतुर्वेदी अपनी कार पंजीकरण संख्या यूपी-93जी-0711 पर नियंत्रित गति

से जा रहे थे। उनका पक्ष, जब थाना मोठ की स्थानीय सीमा के अंतर्गत ग्राम सेमरी के पास, ट्रक क्रमांक एमपी-08ए-6294, सड़क के झांसी छोर से आगे बढ़ रहा था, जिसे विपरीत पक्ष क्रमांक 2 द्वारा तेज गति, लापरवाही से चलाया गया और लापरवाही से, सड़क के गलत तरफ चला गया और मारुति कार को दाहिनी ओर से टक्कर मार दी, जिससे मृतक, संजय और दावेदार नंबर 2 गंभीर रूप से घायल हो गए और अन्य यात्री, अंकुर लाल को साधारण चोटें आईं और वह इलाज के दौरान, वह (संजय) * मर गया?

(2) क्या उक्त दुर्घटना की तिथि पर, उक्त ट्रक के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था? यदि हां तो इसका प्रभाव क्या होगा?

(3) क्या उक्त दुर्घटना की तिथि पर, उक्त ट्रक का वैध बीमा पॉलिसी के तहत बीमा कंपनी / विपरीत पक्ष संख्या 3 के साथ बीमा किया गया था? यदि हां तो इसका प्रभाव क्या होगा?

(4) क्या दावेदार कोई मुआवजा प्राप्त करने के हकदार हैं? यदि हाँ, तो कितना और किससे?”

[* स्पष्टीकरण के लिए न्यायालय द्वारा जोड़ा गया]

9. दावेदारों ने दस्तावेजों की एक सूची दाखिल की है, जिसमें दस्तावेज संख्या 8सी 1, एफआईआर की एक फोटोस्टेट कॉपी, मेडिकल

रिपोर्ट, डिस्चार्ज टिकट, हाई स्कूल प्रमाण पत्र, बी.ई. डिग्री, राजीव कोचिंग सेंटर से प्रमाण पत्र, आवेदन पत्र और मृत्यु प्रमाण पत्र की एक नोटरीकृत प्रति शामिल है। दस्तावेजों की एक अन्य सूची के माध्यम से, दस्तावेज संख्या 35 सी 1, एफआईआर की प्रमाणित प्रतियां, आरोप पत्र, तकनीकी रिपोर्ट, मृत्यु प्रमाण पत्र की एक नोटरीकृत प्रति, पंचायतनामा, कागजात सारांश, जांच रिपोर्ट, कैश मेमो और दिवंगत संजय चतुर्वेदी से संबंधित ड्राइविंग लाइसेंस की एक नोटरीकृत प्रति को रिकॉर्ड पर लाया गया। दस्तावेज संख्या 31 सी2 वाली एक सूची के माध्यम से, चोट रिपोर्ट की एक फोटोस्टेट कॉपी, जिसमें संजय को लगी चोटों को दर्शाया गया था, रिकॉर्ड में दर्ज की गई थी। दस्तावेजों की एक और सूची दस्तावेज संख्या 44सी 1, के साथ 20.09.2000 का मूल वेतन प्रमाण पत्र भी है। दस्तावेजों की सूची, दस्तावेज संख्या 57 सी1 के साथ, आरोप-पत्र की एक प्रमाणित प्रति रिकॉर्ड पर लाई गई है। एक अन्य सूची, 68सी1 के माध्यम से, राज कुमार के बयान की प्रमाणित प्रतियां दाखिल की गई हैं, इसके अलावा पॉलिसी कवर नोट नंबर 60112, दस्तावेज संख्या 75 - जीए और ड्राइविंग लाइसेंस नंबर 1-8/99/एसयूपी- वीए-1- 262/96 की फोटोस्टेट कॉपी भी शामिल है। (दस्तावेज संख्या 76 - जीए) ।

10. दावेदारों ने अपने मामले के समर्थन में पीडब्लू - 1 अंकुर लाल, पीडब्लू- 2 फूल चंद, पीडब्लू-3 राजीव गुप्ता, पीडब्लू-4 मधुकर चतुर्वेदी और पीडब्लू-5, राज कुमार चतुर्वेदी से पूछताछ की।

11. बिन्दु संख्या 1 का निर्णय दावेदारों के पक्ष में किया गया, जबकि बिन्दु संख्या 2 और 3 का निर्णय मालिक के पक्ष में और बीमाकर्ताओं के विरुद्ध किया गया। इस अपील में, पार्टियों द्वारा दबाया गया एकमात्र मुद्दा मुआवजे की मात्रा के बारे में है, यानी बिन्दु संख्या 4 ।

12. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री परवेज हुसैन खान और बीमाकर्ताओं की ओरसे पेश अधिवक्ता श्री एसडी ओझा को सुनाते हुए श्री रामानुज पांडे, अधिवक्ता को सुना। मालिक व चालक की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

13. न्यायाधिकरण ने स्पष्ट रूप से राजीव कोचिंग सेंटर द्वारा दिनांक 20.09.2000 को जारी वेतन प्रमाण पत्र, दस्तावेज संख्या 45C2 पर अविश्वास किया है, जिसमें मृतक का मासिक वेतन 6000/- रुपये दिखाया गया है। मृतक के लिए उक्त आय पर बिना किसी ठोस निष्कर्ष के और केवल बीमाकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलों का हवाला देकर अविश्वास किया गया है। मृतक की आय के बारे में न्यायाधिकरण की जांच में केवल इतना कहा गया है कि रिकॉर्ड पर कोई प्रामाणिक सबूत नहीं है कि मृतक को यूपी में सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त किया जाने वाला था। राज्य विद्युत बोर्ड, न्यायाधिकरण द्वारा यह टिप्पणी की गई है कि मृतक की नियुक्ति की संभावनाओं को साबित करने के लिए जो कुछ भी रिकॉर्ड पर लाया गया है वह इस उद्देश्य के लिए किया गया उसका आवेदन है। हालांकि वरिष्ठ विभागीय अधिकारियों का ऐसा

कोई आदेश नहीं है जिससे यह पता चले कि वास्तव में मृतक की नियुक्ति होने वाली थी।

14. फिर टिप्पणी की गई कि चिकित्सकीय दस्तावेज के अनुसार मृतक की उम्र लगभग 28-30 वर्ष थी। फिर ट्रिब्यूनल द्वारा एक रहस्यमय निष्कर्ष निकाला गया, जो एक बहुत ही अतार्किक धारणा पर आधारित था, कि मृतक की आय 24,000/- रुपये प्रति वर्ष होगी। जहाँ तक श्रीमती की बात है, मृतक की मां उर्मिला चतुर्वेदी का कहना है कि उनकी आय लगभग 50 वर्ष है। राज कुमार चतुर्वेदी मृतक के भाई हैं। न्यायाधिकरण की राय में, यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि राज कुमार मृतक पर निर्भर था।

15. न्यायाधिकरण ने ज्ञान चंद जैन और अन्य बनाम परमानंद और अन्य, 2003 (1) टीएसी 490 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का हवाला दिया है, जहां 26 वर्षीय अविवाहित पुरुष की मृत्यु के मामले में, मां और पिता की आय क्रमशः 48 और 55 वर्ष थी, इसलिए '12' का गुणक उपयुक्त माना गया। न्यायाधिकरण ने उक्त गुणक को अपनाया है। यह मानते हुए कि मृतक की आय 24,000/- रुपये प्रति वर्ष है, एक-तिहाई व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए काटा गया है और दो-तिहाई को मृतक की मां के लिए उपलब्ध वार्षिक निर्भरता माना जाता है। '12' के गुणक को अपनाते हुए, 1,92,000/- रुपये की राशि पर निर्भरता की गणना की गई है। इसमें अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 2000/- रुपये और संपत्ति के नुकसान के लिए 2500/- रुपये की राशि जोड़ी गई है। इस प्रकार,

न्यायाधिकरण ने दावा याचिका की स्थापना की तारीख से वसूली तक 8% ब्याज के साथ मृतक की मां को मुआवजे के रूप में 1,96,500/- रुपये का भुगतान किया है। किये गये अवाई में दावेदार श्रीमती को 50,000/- रुपये की धनराशि अदा करने का आदेश दिया गया है। एक राष्ट्रीयकृत बैंक पर आहरित अकाउंट पेयी चेक के माध्यम से, और शेष राशि को तीन साल की अवधि के लिए एक राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा में निवेश करने का निर्देश दिया गया, जिस पर त्रैमासिक ब्याज मृतक की मां को देय होगा। मृतक के भाई का दावा खारिज कर दिया गया है।

16. पार्टियों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, जैसा कि पहले ही ऊपर टिप्पणी की गई है, इस न्यायालय ने मृतक की दावा की गई आय पर अविश्वास करने के कारणों को मुश्किल से ही पाया है और जो भी कारण दिए गए हैं, वे बिल्कुल गूढ़ और संक्षिप्त हैं। दावेदारों ने उस कोचिंग सेंटर से एक प्रमाण पत्र लगाया है, जहां मृतक पढ़ाता था, जिसमें उसकी आय 6000 रुपये प्रति माह दिखाई गई थी। यह तथ्य कि वेतन रजिस्टर में कोचिंग सेंटर के मालिक को भी समान वेतन प्राप्त करते हुए दिखाया गया है, कोचिंग सेंटर द्वारा मृतक को वेतन के लिए किए गए भुगतान की प्रामाणिकता को खारिज नहीं करता है। अपने मुख्य परीक्षण में, पीडब्लू-3 राजीव गुप्ता ने मृतक को वेतन प्रमाण पत्र और 6000/- रुपये प्रति माह की राशि का वेतन भुगतान साबित किया है। उन्होंने दिनांक 20.09.2000 के प्रमाणपत्र पर अपने हस्ताक्षर सिद्ध किये हैं। अपनी जिरह में, निस्संदेह, पीडब्लू- 3 ने

स्वीकार किया है कि कोचिंग सेंटर पंजीकृत नहीं है और वह पिछले तीन वर्षों से खाता रजिस्टर या बैलेंस शीट नहीं लाया है। हालाँकि, उन्होंने कहा है कि वह आयकर का भुगतान करते हैं, लेकिन उन्होंने कहा कि वह पिछले दो वर्षों से आयकर मूल्यांकन साथ नहीं लाए हैं। गवाह ने आम तौर पर इस तथ्य का समर्थन किया है कि संजय कुमार चतुर्वेदी नामित कोचिंग संस्थान में पढ़ाते थे, और रजिस्टर और वेतन प्रमाण पत्र असली थे।

17. छोटे-छोटे या युवा कोचिंग सेंटर्स में रिकॉर्ड का अनियमित रखरखाव होना आम बात है। जिस समय यह घटना संबंधित है, उस समय कई छोटे निजी उद्यमों द्वारा आयकर का भुगतान न करना कोई असामान्य घटना नहीं थी। देखने वाली बात यह है कि मृतक की योग्यता को देखते हुए, उसे कोचिंग सेंटर से जो वेतन मिलने का दावा किया गया है, वह बिल्कुल भी अतिरंजित आंकड़ा नहीं है। इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि पिछले कुछ दशकों से, ऐसे बहुत सारे कोचिंग सेंटर हैं, जिन्होंने शिक्षा की औपचारिक प्रणाली को लगभग पीछे छोड़ दिया है, जिनमें लोग ज्यादा भरोसा नहीं करते हैं, खासकर, जब वे कुछ प्रतिस्पर्धी प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हों। इंजीनियरिंग पाठ्यक्रमों में प्रवेश आदि के लिए। असंगठित क्षेत्र में स्वरोजगार करने वालों के लिए, उनकी शिक्षा और परिस्थितियों के आधार पर, आय के बारे में कुछ प्रकार का आकलन करना होगा।

18. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, मृतक एक इंजीनियरिंग स्नातक था और यह

विश्वसनीय कि वह राजीव कोचिंग सेंटर में पढ़ा रहा था, यह तथ्य पीडब्लू-3 द्वारा साबित किया गया है। चूंकि कोचिंग सेंटर के लिए आयकर रिटर्न या आकलन के अलावा कोई रिकॉर्ड, जैसे बैलेंस शीट या खाता रजिस्टर प्रस्तुत नहीं किया गया है, यह न्यायालय मृतक की आय को 5000/- रुपये प्रति माह रखना सुरक्षित मानता है। तदनुसार, यह अभिनिर्धारित किया जाता है। मृतक की मासिक आय को देखते हुए वार्षिक आय 60,000/- रुपये होगी।

19. न्यायाधिकरण ने मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों में से एक-तिहाई की कटौती करने में गलती की है। मृतक कुंवारा था, और कुंवारे लोगों के व्यक्तिगत और रहने के खर्चों के लिए कटौती के संबंध में सिद्धांतों के अनुसार चल रहा था, जैसा कि सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित किया गया था। आय का 50% व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए काटा जाना है; 'एक तिहाई' नहीं। इस न्यायालय को यहां यह अवश्य कहना चाहिए कि मृतक का भाई, जो एक परिपक्व और स्वतंत्र व्यक्ति है, किसी भी तरह से उसके आश्रितों में से एक नहीं है। इस संबंध में न्यायाधिकरण के निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है।

20. न्यायाधिकरण ने दावेदार, जो मृतक की मां है, की उम्र के आधार पर '12' का गुणक लगाया है। मृतक के हाई स्कूल प्रमाणपत्र के अनुसार, उसकी मृत्यु की तारीख को स्पष्ट रूप

से उसकी उम्र 30 वर्ष, 9 महीने 25 दिन थी। पूर्ण वर्षों से अधिक आयु की गणना को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत, अतिरिक्त महीनों के साथ, ने शशिकला और अन्य बनाम गंगा- लक्ष्मम्मा और अन्य, (2015) 9 एससीसी 150 में सुप्रीम कोर्ट का ध्यान आकर्षित किया है। शशिकला (उपरोक्त) में, यह देखा गया:

“16. जहां तक उपयुक्त गुणक का सवाल है, डाइविंग लाइसेंस के अनुसार मृतक की जन्म तिथि 16-6-1961 थी। दुर्घटना की तारीख यानी 14-12-2006 को, मृतक की उम्र 45 साल 5 महीने और 28 दिन थी और न्यायाधिकरण ने उम्र 46 साल मानी है। चूंकि मृतक ने केवल 45 वर्ष पूरे किए हैं, इसलिए उच्च न्यायालय ने मृतक की आयु को 45 वर्ष सही माना है और 14 के गुणक को अपनाया है जो उचित गुणक है और वही बरकरार रखा गया है। निर्भरता का कुल नुकसान 16,82,310 रुपये (1,20,165 × 14 रुपये) आंका गया है।”

21. शाखा प्रबंधक, फ्यूचर जनरल इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बेंगलुरु बनाम वर्षा एस.एल.ए 2019 एससीसी ऑनलाइन कर 3498 मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने कहा है:

“44. अगला विवाद मौजूदा मामले में लागू किए जाने वाले उचित गुणक के संबंध में है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री ए. एन. कृष्णास्वामी का तर्क है कि मृतक की उम्र 40 साल 7 महीने 5 दिन थी और इसलिए, वह 41 साल का था न कि 40

साल का और इसलिए, 41 से 45 साल के आयु वर्ग के लिए लागू गुणक '14' है। मौजूदा मामले में इसे लागू करना था, लेकिन न्यायाधिकरण ने '15' का गुणक लागू किया है, जो 35-40 वर्ष के आयु वर्ग के लिए है।

45. दावेदारों के लिए विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि गुणक लागू करने के प्रयोजन के लिए पूर्ण आयु को ध्यान में रखा जाना चाहिए न कि चालू आयु को। मौजूदा मामले में, मृतक एथेंद्रनाथ ने 41 साल नहीं बल्कि 40 साल पूरे कर लिए थे। हो सकता है कि वह 40 साल और उसके कुछ महीने बाद के हों, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने 41 साल पूरे कर लिए हैं। इसलिए, दावेदारों के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि गुणक '15' को ट्रिब्यूनल द्वारा सही ढंग से लागू किया गया है।

(न्यायालय द्वारा जोर)

22. अभी हाल ही में, केरल उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने पी.ओ. मीरा और अन्य बनाम आनंद पी. नाइक और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन केर 546 के पास इस मुद्दे पर विचार करने का अवसर था, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है:

“33. श्री. राजन पी. कालियाथ ने तर्क दिया कि चूंकि माधवन 50 वर्ष की आयु पूरी कर चुके थे और 51 वर्ष के थे, इसलिए ट्रिब्यूनल द्वारा अपनाया गया '11' का गुणक सही है। उन्होंने यह भी तर्क दिया

कि, यदि उपरोक्त व्याख्या का पालन नहीं किया जाता है, तो 50 - 51 वर्ष के बीच आयु वर्ग में एक शून्यता आ जाएगी। पहली नज़र में यह तर्क आकर्षक लग सकता है, लेकिन निम्नलिखित कारणों से इसे स्वीकार करना कठिन है।

37. सरला वर्मा की तालिका को पढ़ने से किसी भी अटकल के लिए कोई जगह नहीं बचती है कि जब मृतक/घायल 51 वर्ष की आयु पूरी कर लेगा तभी गुणक '13' से '11' पर आएगा, न कि तब जब मृतक/घायल की आयु 50 वर्ष हो जाती है और वह उक्त आयु अपने 51 वें जन्मदिन की पिछली रात तक चलती है। (माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रभु दयाल सेसमा बनाम राजस्थान राज्य [(1986) 4 एससीसी 59 भारतीय बहुमत अधिनियम, 1875 पर और इस न्यायालय द्वारा जैसन वी. जॉर्ज बनाम केरल राज्य [2019 (5) में दी गई व्याख्या पढ़ें] केएचसी 115] किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2005 पर, किसी व्यक्ति की उम्र की गणना करते समय)। दूसरे शब्दों में, गुणक का चयन करने की अनिवार्य शर्त तालिका में उल्लिखित निर्दिष्ट आयु की प्राप्ति है, न कि आयु का अगले समूह में जाना। यह भी ध्यान देने योग्य है कि, प्रणय सेठी में, भविष्य की संभावनाओं को पुरस्कृत करने की उम्र को तीन समूहों में विभाजित किया गया है, यानी 16 - 39, 40 - 49 और 50 - 59 / इसलिए, यदि बीमाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क है मान लिया जाए तो यही शून्यता

25, 30 जा की उम्र में भी पैदा होगी। गुणक का चयन करने के लिए 35, 40, 50, 55, 60 और 65 और भविष्य की संभावनाओं को पुरस्कृत करने के लिए 39, 49 और 59 की आयु। यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत प्रतिष्ठापित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून का पालन करने के लिए बाध्य है और अच्छी तरह से स्थापित व्याख्या के साथ एक अलग व्याख्या या छेड़छाड़ नहीं करने के लिए बाध्य है।

23. इस प्रकार, यह स्पष्ट होगा कि मृतक, जिसने अपने हाई स्कूल प्रमाणपत्र के अनुसार, 31 वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी और उस उम्र से लगभग दो महीने कम था, को 31 वर्ष का नहीं माना जा सकता है। उसे 30 साल का मानना होगा।

24. 26-30 वर्ष की आयु वर्ग के लिए लागू गुणक, जैसा कि सरला वर्मा (सुप्रा) '17' में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 40 में तालिका में दिया गया है, है। बेशक, माता-पिता की उम्र के आधार पर गुणक लागू करने का कानून में कोई आधार नहीं है। उस सिद्धांत को बहुत पहले ही छोड़ दिया गया है और सरला वर्मा इस बिंदु पर एक विशेषज्ञ हैं, जिसका गुणक के चयन के लिए सार्वभौमिक रूप से पालन किया गया है। इसलिए, ट्रिब्यूनल ने '12' के गुणक को अपनाने में स्पष्ट रूप से गलती की, जो कि '17' होना चाहिए।

25. विचारणीय अगला प्रश्न मृतक की भविष्य की संभावनाओं के बारे में है, जिसका आग्रह

दावेदारों द्वारा किया गया है। नेशनल इंशोरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार, भविष्य की संभावनाएं उन व्यक्तियों के मामलों में स्वीकार्य हैं, जो स्व-रोज़गार हैं या जो निश्चित वेतन पर काम कर रहे हैं। अब यह कानून नहीं रहा कि भविष्य की संभावनाएं केवल सरकारी सेवाओं में वेतनभोगी वर्ग या आकर्षक निजी क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए आरक्षित हैं। इस संबंध में, प्रणय सेठी (सुप्रा) में होल्डिंग का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां यह देखा गया

“56. स्व-रोज़गार या निश्चित वेतन पर रहने वाले मृतकों के मामलों में मुख्य मुद्दा भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण है। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सिव) 770 : (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] ने दावेदारों को रिकॉर्ड पर सामग्री लाने की अनुमति देते हुए एक अपवाद बनाया है। भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने का लाभ प्राप्त करें। इसने, अपने आप में, उक्त श्रेणी के संबंध में किसी भी भविष्य की संभावना की अनुमति नहीं दी है।

57. अपना उत्सुकतापूर्वक विचार करने के बाद, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि जब हम मानकीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो वास्तव में उक्त सिद्धांत को स्व-रोज़गार वाले या निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति पर लागू न

करने का कोई औचित्य नहीं है। मृत्यु के समय वास्तविक आय के सिद्धांत का पालन करना और गुणक के निर्धारण के उद्देश्य से आय में भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कोई राशि नहीं जोड़ना अन्याय होगा। मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि यह विधि अधिनियम की धारा 168 के तहत बताए गए उचित मुआवजे के दायरे में आ जाए। ऐसे मृतक के मामले में जिसने वार्षिक वेतन वृद्धि के अंतर्निहित अनुदान के साथ स्थायी नौकरी की थी, एक स्वीकार्य निश्चितता है। लेकिन यह कहना कि मृतक के कानूनी प्रतिनिधि जो एक निश्चित वेतन पर थे, मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के लाभ के हकदार नहीं होंगे, अनुचित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि उस घटना में दोनों के बीच अंतर की कसौटी एक ओर निश्चितता और दूसरी ओर स्थिरता होगी। कोई यह समझ सकता है कि तुलनात्मक माप एक ओर निश्चितता है और दूसरी ओर अनिश्चितता है लेकिन ऐसी धारणा भ्रामक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्य वृद्धि स्व-रोज़गार व्यक्ति को प्रभावित करती है; और इसके अलावा जीविका के लिए अपनी आय बढ़ाने के लिए हमेशा निरंतर प्रयास करना पड़ता है। स्थायी नौकरी पर वेतनभोगी व्यक्ति की क्रय क्षमता जब वेतन वृद्धि और वेतन संशोधन या सेवा शर्तों में किसी अन्य बदलाव के कारण बढ़ती है, तो कर्मचारियों से बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए वेतन बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र में हमेशा

प्रतिस्पर्धात्मक रवैया रहता है। इसी प्रकार, एक व्यक्ति जो स्व-रोज़गार है, वह अपने संसाधन जुटाने और अपने शुल्क शुल्क बढ़ाने के लिए बाध्य है ताकि वह समान सुविधाओं के साथ रह सके। यह धारणा रखना कि उसके स्थिर रहने की संभावना है और उसकी आय स्थिर रहेगी, मानवीय दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखती है। यद्यपि यह उचित प्रतीत हो सकता है कि स्थायी नौकरी वाले व्यक्ति के मामले के विपरीत मौजूदा आय में भविष्य की संभावनाओं के अलावा निश्चितता नहीं हो सकती है, फिर भी उक्त धारणा वास्तव में स्वीकार्यता के लायक नहीं है। हम यह सोचने के इच्छुक हैं कि मृतक की ओर से दावा करने वाले कानूनी प्रतिनिधियों के संबंध में या उनके लिए लागू प्रतिशत के संबंध में कुछ हद तक अंतर हो सकता है, जिनके पास स्व-रोज़गार वाले व्यक्ति की तुलना में स्थायी नौकरी थी। या एक निश्चित वेतन पर, लेकिन निश्चितता की कथित कमी की बुनियाद पर मानकीकरण के सिद्धांत को लागू न करना जमीनी हकीकत की उलझनों से बेखबर रहने के समान होगा। और, इसलिए, डिग्री - परीक्षण अनिवार्य है। जब तक डिग्री - परीक्षण लागू नहीं किया जाता और इसे स्थापित करने के लिए सबूत पेश करने की जिम्मेदारी पक्षों पर नहीं छोड़ी जाती, यह अनुचित और असमान होगा। डिग्री - परीक्षण में प्रतिशत की अंतर्निहित अवधारणा होनी चाहिए। संचयी कारकों को

ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, समय बीतने, बदलते समाज, मूल्य में वृद्धि, मूल्य सूचकांक में बदलाव, जीवन के एक विशेष पैटर्न का पालन करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण, आदि, स्थापित आय का 40% अतिरिक्त भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की संख्या और जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी, वहां 25% की वृद्धि उचित होगी, जहां मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के बीच थी।

58. विवाद यहीं खत्म नहीं होता। सवाल अभी भी बना हुआ है कि क्या मृतक की उम्र 50 वर्ष से अधिक होने पर कोई बढ़ोतरी नहीं की जानी चाहिए। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121 : (2009) 2 एससीसी (सिव) 770 : (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] कोई भी राशि न जोड़ना उचित समझती है और इसे रेशमा कुमारी [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एससीसी 65 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 191: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 826] में मंजूरी दे दी गई है। इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि वेतन समान नहीं रहता है। जब कोई व्यक्ति स्थायी नौकरी में होता है तो किसी न किसी कारण से तरक्की होती ही रहती है। एक सामान्य नियम के रूप में यह कहना कि 50 वर्षों के बाद कोई वृद्धि नहीं होगी, एक अस्वीकार्य अवधारणा होगी। हमारा मानना है कि यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के बीच है तो 15% अतिरिक्त होना चाहिए और उसके बाद

कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार, स्व-रोज़गार या निश्चित वेतन वाले व्यक्ति के मामले में, 50 से 60 वर्ष की आयु के बीच 10% अतिरिक्त होना चाहिए। उपरोक्त मानदंड इसलिए तय किया गया है ताकि न्यायाधिकरणों और अदालतों के दृष्टिकोण में एकरूपता बनी रहे।”

26. उत्तर प्रदेश राज्य में, भविष्य की संभावनाएं उत्तर प्रदेश के नियम 220-ए (3) द्वारा शासित होती हैं। मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में, 1998 के नियम) जैसा कि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा आयोजित किया गया था। इसलिए, गणना 1998 के नियमों के साथ अनुसार की जानी है, न कि प्रणय सेठी के सिद्धांतों के साथ।

27. सुशील कुमार और अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लोजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2017 (35) एलसीडी 1311 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले के बाद, 1998 के नियमों के नियम 220-ए (3), जिसे अधिसूचना संख्या 777/ XXX-4-2011-4(3)-2010 दिनांक 26 सितंबर, 2011 यानी उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियमावली, 2011, द्वारा पेश किया गया था, संशोधन से बहुत पहले हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होती है। नियम 220-ए (3) में मृतक की आयु का 50% भविष्य की संभावनाओं के लिए जोड़ने का प्रावधान है, जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी। वर्तमान मामले में, दावेदार, श्रीमती उर्मिला

चतुर्वेदी को, इस प्रकार मृतक की आयु में 50% जोड़ने का हकदार माना जाता है।

28. पारंपरिक प्रमुखों के तहत मुआवजा देने का मुद्दा फिर से प्रणय सेठी में विचार का विषय था, जहां यह माना गया है:

“48. इस पहलू को स्पष्ट करने और उचित रूप से बताने की आवश्यकता है। पारंपरिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। जैसा कि न्यायालय ने त्रिलोक चंद्रा [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्रा, (1996) 4 एससीसी 362] मामले में कहा था, उक्त अनुसूची दोषपूर्ण पाई गई है। हाल ही में पुट्टम्मा बनाम के. एल. नारायण रेड्डी [पुत्तम्मा वी. के. एल. नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45 : (2014) 4 एससीसी (सिव) 384: (2014) 3 एससीसी (सीआरआई) 574] इसे यह कहकर दोहराया गया है: (एससीसी पृष्ठ 80, पैरा 54)

“54.... हमारा मानना है कि 1994 में अधिनियमित की गई दूसरी अनुसूची अब जीवन यापन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।

49. जहां तक गुणक या गुणात्मक का सवाल है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उस पर रोक लगा दी गई है। दूसरी अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु की स्थिति में सामान्य क्षति का भी प्रावधान है। यह इस प्रकार है:

“3. सामान्य क्षति (मृत्यु के मामले में):

ऊपर उल्लिखित मुआवज़े के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य क्षतियाँ देय होंगी:

(i)	अंतिम संस्कार का खर्च	Rs 2000
(ii)	यदि लाभार्थी पति या पत्नी है तो कंसोर्टियम की हानि	Rs 5000
(iii)	संपत्ति की हानि	Rs 2500
(iv)	चिकित्सा व्यय - मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक व्यय बिल / वाउचर द्वारा समर्थित लेकिन इससे अधिक नहीं	Rs 15,000”

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्रा [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्रा, (1996) 4 एससीसी 362] मामले में निर्णय से लेकर दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है और उसी में कोई संशोधन नहीं हुआ है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने देखा, विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियाँ प्रदान की गई हैं। राजेश

[राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 179 : (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में कंसोर्टियम के लिए 1,00,000 रुपये की राशि प्रदान की गई थी। कंसोर्टियम के अनुदान का औचित्य, जैसा कि हम राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 179 : (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] से पाते हैं, अवलोकन पर आधारित है जैसा कि हमने यहां पहले भी दोहराया है।

51. उपरोक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक मर्दों के तहत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक मर्दों का सवाल है, हमें राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 एससीसी (सिव) 179 : (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में व्यक्त विचार से सहमत होना मुश्किल लगता है। इसने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000 रुपये, कंसोर्टियम के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। देखभाल की हानि और नाबालिग बच्चों से संबंधित शीर्ष मौजूद नहीं है। हालांकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54 : (2013) 4 (15) एससीसी (सिव) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई)

817 : (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी को संदर्भित करता है [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सिव) 726 : (2012) 3 एससीसी (सीआरआई) 160: (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167], यह उसका पालन होता नहीं दिख रहा है. कहने की जरूरत नहीं है कि पारंपरिक और पारंपरिक प्रमुखों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को मात्राबद्ध करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे बेखबर नहीं रह सकती. इस पहलू में एक अचूक नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अंगूठे का नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण और अदालतों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमारा मानना है कि यह उचित रकम तय करने जैसा प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त प्रमुखों पर दोबारा विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरावलोकन तथ्य- केंद्रित

या क्वांटम - केंद्रित नहीं होना चाहिए। हमारा मानना है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है उसे हर तीन साल में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन साल की अवधि में वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन प्रमुखों के संबंध में एकरूपता आएगी।"

(न्यायालय द्वारा जोर)

29. फिर कंसोर्टियम के नुकसान के कारण दिए जाने वाले मुआवजे का सवाल है। यहां, मृतक दावेदार नंबर 1 का बेटा था और इसलिए, वह मैग्मा जनरलइंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहू राम और अन्य (2018) 18 एससीसी 130 मामले में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के अनुसार फिलिअल कंसोर्टियम के पुरस्कार की हकदार होगी ।

30. उपरोक्त निष्कर्ष के मद्देनजर इस अपील में दावेदार मां को देय मुआवजा संशोधित किया गया है और निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जाएगा:

(i)	मासिक आय (मृतक की)	=	5000
(ii)	वार्षिक आय (मृतक की) 5000×12	=	60000
(iii)	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ	=	90000

	(वार्षिक आय x 50%) = 60000 + 30000		
(iv)	वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए 50% कटौती = 90000-45000	=	45000
(v)	कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x एप्लाइड गुणक = 45000 x 17	=	765000
(vi)	पारंपरिक मदों के प्रति दावेदार का अधिकार = संपत्ति का नुकसान + अंत्येष्टि व्यय + आश्रितों का संघ 15000 + 15000 + 40000	=	70000
	इसलिए, कुल मुआवजा ₹.765000 + ₹.70000 होगा	=	835000

बीमाकर्ताओं द्वारा ट्रिब्यूनल में पहले से जमा की गई कोई भी राशि, इसके विरुद्ध समायोजित की जाएगी। दिए गए मुआवजे को सावधि जमा में निवेश करने के लिए ट्रिब्यूनल के निर्देश को रद्द कर दिया जाएगा और इस पुरस्कार द्वारा बढ़ाए गए पूरे मुआवजे का भुगतान बैंक उपकरण या इलेक्ट्रॉनिक हस्तांतरण के माध्यम से, निष्पादन पक्ष पर न्यायाधिकरण के निर्देश द्वारा नियमों के तहत या उसके अनुसार किया जाएगा।

32. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2023) 7 ILRA 276

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 2874 वर्ष 2010

सुरेश कुमार

.....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिपक्षी

31. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित विवादित फैसले को संशोधित किया गया है और दिया गया मुआवजा बढ़ाकर 8,35,000/- रुपये कर दिया गया है। उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर होने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय या अंतरिम आदेशों के अनुसार,

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

ए.पी. सिंह, अमरेंद्र प्रताप सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

ए. सेवा विधि - विनियमीकरण - उत्तर प्रदेश संग्रह पेशकार सेवा नियमावली, 2004 - नियम 5(1) - 15 - समूह-'घ' कर्मचारी सेवा

नियमावली, 1985 - उत्तर प्रदेश संग्रह पेशकार सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2016 - प्रतिस्थापित नियम 5(ii) के द्वितीय उपबंध के अनुसार - सामयिक संग्रह पेशकार का पद राज्य की सेवा के अंतर्गत एक श्रेणी-4 / समूह- 'घ' पद है, अतः समूह- 'घ' कर्मचारी सेवा नियमावली, 1985 में श्रेणी-4 पद हेतु निर्धारित न्यूनतम आयु सीमा लागू होगी और तदनुसार किसी भी प्रकार से याची द्वारा वयस्कता प्राप्त करने से पूर्व की गई सेवाओं को गणना में नहीं लिया जा सकता। (प्रस्तर 27)

वर्तमान वाद में यह स्पष्ट है कि याची ने तहसील बी.के.टी. में मात्र एक वर्ष तीन माह एवं छह दिन की अवधि तक कार्य किया है। उसने तहसील मलिहाबाद में 11-02-1991 से 11-03-1991 की अवधि के मध्य सामयिक संग्रह पेशकार के रूप में एक माह अठारह दिन तक कार्य किया। हाईस्कूल प्रमाण-पत्र में याची की जन्मतिथि 23-03-1977 अंकित है, अतः जिस समय उसने तहसील मलिहाबाद में कार्य करना प्रारम्भ किया, वह अल्पवयस्क था और इस कारण तहसील मलिहाबाद में की गई सेवा को याची की कार्यावधि में सम्मिलित नहीं किया जा सकता, अतः याची ने कुल 3½ फसली वर्षों की सेवा की है। यद्यपि उपर्युक्त वर्णित अवधि को भी याची की सेवा में सम्मिलित कर लिया जाए, तो भी याची की वरिष्ठता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। (प्रस्तर 26, 27)

अभिलेखों के अवलोकन से स्पष्ट है कि याची से कनिष्ठ व्यक्तियों पर विचार नहीं किया गया है तथा उन्हें 50 प्रतिशत आरक्षण के

अन्तर्गत संग्रह पेशकार के पद पर नियुक्त नहीं किया गया है। तहसील बी.के.टी. के सामयिक संग्रह पेशकारों की दिनांक 02.09.2009 की अंतिम वरिष्ठता सूची में याची का नाम क्रम संख्या 13 पर अंकित है तथा उक्त सूची में क्रम संख्या 12 पर अंकित व्यक्ति राम किशोर ने याची से अधिक एक वर्ष पांच माह एवं एक दिन की सेवा की है, अतः याची द्वारा की गई सेवा, जिसमें तहसील मलिहाबाद में की गई सेवा अर्थात् 48 दिवस भी सम्मिलित हैं, राम किशोर की सेवा से कम है, अतः दिनांक 03.09.2009 के आक्षेपित आदेश में कोई भी अनियमितता अथवा अवैधानिकता प्रतीत नहीं होती। (प्रस्तर 28)

रिट याचिका निरस्त की जाती है। (ई-4)

वर्तमान याचिका, प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 03.09.2009 के आदेश को चुनौती देती है तथा यह प्रार्थना करती है कि प्रतिपक्षीगण को यह निर्देशित किया जाए कि वे याची को 50 प्रतिशत आरक्षण के अंतर्गत संग्रह पेशकार के पद पर नियुक्त करने हेतु पुनः विचार करें तथा तहसील मलिहाबाद, जनपद लखनऊ में याची द्वारा सामयिक संग्रह पेशकार के रूप में की गई सेवा की गणना यथोचित तिथि से करते हुए सेवा के सभी लाभ प्रदान करें।

(माननीय न्यायमूर्ति इशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. श्री ए.पी. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें श्री अमरेंद्र प्रताप सिंह, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सहायता प्रदान की, तथा

प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अतिरिक्त सी.एस.सी. को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्प्रेषण की प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जो रिट याचिका के संलग्नक-1 के रूप में संलग्न दिनांक 03.09.2009 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करे, साथ ही परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की अतिरिक्त प्रार्थना की है जो प्रत्यर्थीगण, विशेष रूप से प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश दे कि वे याचिकाकर्ता को संग्रह चपरासी (कलेक्शन पियन) के पद पर 50% कोटा के अंतर्गत नए सिरे से विचार करें और नियुक्त करें, जिसमें उसके द्वारा तहसील मलिहाबाद, जिला लखनऊ में मौसमी संग्रह चपरासी (सीजनल कलेक्शन पियन) के रूप में प्रदान की गई सेवा को नियत तिथि से सेवा के सभी लाभों के साथ गिना जाए।

3. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार हैं:

क्र.सं.	मामले के प्रासंगिक तथ्य
क.	याचिकाकर्ता को 11.02.1991 को तहसील मलिहाबाद, जिला लखनऊ में मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में नियुक्त किया गया था।
ख.	वर्ष 1995 में, बखशी का तालाब (बी.के.टी.), लखनऊ नामक एक नई तहसील का निर्माण किया गया, जिसके परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता का क्षेत्र, जहाँ वह मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में कार्यरत था, नव निर्मित तहसील के क्षेत्र में आ गया।

ग.	याचिकाकर्ता ने तहसील बी.के.टी. में मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में कार्य किया और चार से अधिक फसलें पूरी कर ली थीं। अतः, वह 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर नियमित नियुक्ति के लिए पूर्णतः पात्र है।
घ.	14.07.2008 को, याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका संख्या 6793 (एस/एस) 2007 दायर की गई थी, जिसका अंतिम निपटारा प्रत्यर्थीगण को 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर नियमित नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के नाम पर विचार करने का निर्देश देकर किया गया था।
ङ.	05.02.2010 को, याचिकाकर्ता द्वारा एक अवमानना याचिका दायर की गई थी, जिसे निष्फल के रूप में खारिज कर दिया गया क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर नियमित नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करते हुए आदेश पारित कर दिया था।
च.	दिनांक 03.09.2009 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर नियमित नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार कर दिया।
छ.	अतः, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि दिनांक 03.09.2009 का आक्षेपित आदेश बिना किसी कारण और तर्क के पारित किया गया है और यह दुर्भावनापूर्ण प्रकृति का है तथा कानून के किसी प्राधिकार के बिना है। उन्होंने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश कानूनी रूप से टिकाऊ नहीं है क्योंकि

प्रत्यर्थी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता द्वारा तहसील मलिहाबाद, जिला लखनऊ में मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में प्रदान की गई सेवा की गणना नहीं की है, जबकि यह उत्तर प्रदेश संग्रह चपरासी सेवा नियमावली, 2004 के नियम 15 के दृष्टिगत अनिवार्य है।

5. उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 03.09.2009 का आक्षेपित आदेश अनुमानों और अटकलों पर तथा कल्पना के आधार पर पारित किया गया है। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता अपने द्वारा मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में प्रदान की गई सेवाओं की गणना करते हुए 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर नियमित नियुक्ति हेतु अपने दावे पर विचार किए जाने का हकदार है।

6 . उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों पर 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर विचार किया गया है और उन्हें नियुक्त किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता को बाह्य विचारों के आधार पर नियमित नियुक्ति से वंचित कर दिया गया है।

7. दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त सी.एस.सी. ने तर्क दिया कि 03.09.2009 को एक चयन समिति का गठन किया गया था, जिसने संग्रह चपरासियों के रूप में चयन हेतु मौसमी संग्रह चपरासियों के मामलों पर विचार किया और दिनांक 03.09.2009 का आक्षेपित आदेश पारित किया, जो न्यायोचित और वैध है।

8. उन्होंने आगे तर्क दिया कि तहसील बी.के.टी. और जिला लखनऊ में संग्रह चपरासियों के 29 स्वीकृत पद हैं जिनमें से, उक्त चयन समिति की बैठक के समय 18 संग्रह चपरासी कार्यरत थे। 18 कार्यरत संग्रह चपरासियों में से, एक संग्रह चपरासी, नामतः श्री राजवीर जेल में है और 6 संग्रह चपरासी इस न्यायालय के आदेशों के तहत कार्यरत हैं। 12 संग्रह चपरासियों की नियुक्ति सीधी भर्ती के माध्यम से की गई है और एक सीधे भर्ती किए गए संग्रह चपरासी, नामतः स्व. श्री प्रमोद कुमार की मृत्यु हो गई और उनके स्थान पर उनकी पत्नी श्रीमती प्रतिमा तिवारी को नियुक्ति प्रदान की गई है।

9. उन्होंने आगे तर्क दिया कि 2004 के नियमों के नियम 5(1) के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार, संग्रह चपरासियों के 50% पद मौसमी संग्रह अमीनों के लिए आरक्षित हैं। नियम 5(ii) प्रावधान करता है कि सेवा में पदों पर भर्ती ऐसे मौसमी संग्रह चपरासियों में से की जाएगी, जिन्होंने कम से कम चार फसली वर्षों तक संतोषजनक रूप से काम किया है और जिनकी आयु चयन किए जाने वाले वर्ष के जुलाई के पहले दिन 45 वर्ष से अधिक नहीं है।

10. उन्होंने आगे कहा कि संबंधित सरकारी आदेशों के अनुसार, संग्रह चपरासियों की स्वीकृत संख्या का 3% रिक्त रखा जाना चाहिए और तदनुसार, तहसील बीकेटी में संग्रह चपरासी का एक पद रिक्त रखा गया है, इसलिए 10 रिक्तियां हैं जिनके विरुद्ध चयन किया जाना है।

11. उन्होंने कहा कि विधिवत गठित चयन समिति ने संग्रह चपरासी के पद पर चयन के लिए याची के मामले पर विचार किया है और पाया कि याची ने निम्नलिखित अवधि के लिए काम किया था:

सेवा अवधि	कार्य अवधि	फसली वर्ष
23-02-1996 से 31-02-1996	0 वर्ष - 1 माह 06 दिन	1/2
25-05-1996 से 30-06-1996	0 वर्ष - 01 माह 27 दिन	1/2
01-09-1996 से 30-09-1996	0 वर्ष - 01 माह 0 दिन	
06-01-1997 से 31-03-1997	0 वर्ष - 02 माह 27 दिन	1/2
05-08-1997 से 30-09-1997	0 वर्ष - 01 माह 27 दिन	1/2
16-01-1998 से 31-03-1998	0 वर्ष - 02 माह 16 दिन	1/2
14-07-2005 से 31-08-2005	0 वर्ष - 01 माह 13 दिन	1/2
22-01-2007 से 31-03-2007	0 वर्ष - 02 माह 10 दिन	1/2
कुल:	01 वर्ष -03 माह - 06 दिन	3 & 1/2

उन्होंने कहा कि उपरोक्त चार्ट से यह स्पष्ट है कि याची ने तहसील बीकेटी में केवल एक वर्ष तीन माह और छह दिन की अवधि के लिए काम किया है। उसने 11-02-1991 से 11-03-1991 के बीच की अवधि में तहसील मलिहाबाद में एक माह और अठारह दिनों की

अवधि के लिए मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में काम किया।

12. उन्होंने आगे कहा कि याची की जन्मतिथि हाई स्कूल प्रमाणपत्र में 23-03-1977 उल्लिखित है, इसलिए जब याची ने तहसील मलिहाबाद में काम करना शुरू किया, तब वह नाबालिग था और इस प्रकार, तहसील मलिहाबाद में उसके द्वारा प्रदान की गई सेवा की अवधि को याची की कार्य अवधि में नहीं गिना जा सकता है, इसलिए याची ने 3 & 1/2 फसली वर्षों के लिए काम किया है।

13. उपरोक्त के अतिरिक्त, उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि उक्त अवधि को भी याचिकाकर्ता के कार्यकाल में शामिल किया जाए, तो भी याचिकाकर्ता की वरिष्ठता स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। मौसमी संग्रह चपरासी का पद राज्य सेवा के अंतर्गत एक श्रेणी IV / समूह-ग पद है, इसलिए समूह-ग कर्मचारी सेवा नियम, 1985 में श्रेणी IV पद कर्मचारियों के लिए निर्धारित न्यूनतम आयु सीमा लागू होगी और तदनुसार, किसी भी तरह से याचिकाकर्ता द्वारा वयस्कता की आयु प्राप्त करने से पहले प्रदान की गई सेवाओं को ध्यान में नहीं लिया जा सकता। उन्होंने प्रस्तुत किया कि रिट याचिका गलत धारणा पर आधारित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है।

14. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह प्रस्तुतीकरण कि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों को नियमितीकरण के लिए विचार किया गया है, भी गलत धारणा पर आधारित

है। इस संबंध में, उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान अनुलग्नक- सीए2 की ओर आकर्षित किया है।

15. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि तहसील बीकेटी के मौसमी संग्रह चपरासियों की दिनांक 02.09.2009 की अंतिम वरिष्ठता सूची में, याचिकाकर्ता का नाम क्रमांक 13 पर है और प्रस्तुत किया कि राम किशोर नामक व्यक्ति, जो उक्त सूची में क्रमांक 12 पर है, ने याचिकाकर्ता से 01 वर्ष 05 माह और 01 दिन अधिक कार्य किया है और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई सेवाएं, तहसील मलिहाबाद में प्रदान की गई सेवाओं यानी 48 दिनों को भी शामिल करते हुए, उससे कम हैं, अतः याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं दिया जा सकता।

16. अंत में उन्होंने प्रस्तुत किया कि चूंकि मौसमी संग्रह चपरासी के 10 पद हैं और यदि 10 पदों पर नियमित चयन किया जाता है, तो याचिकाकर्ता वरिष्ठता सूची में 13वें स्थान पर होने के कारण नियमित नहीं हो पाएगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 08.11.2006 के शासनादेश के अनुसार, जो मौसमी संग्रह चपरासियों के नियमितीकरण के लिए मानदंड प्रदान करता है, यह प्रावधान करता है कि मौसमी संग्रह चपरासियों की वरिष्ठता सूची उनके कार्य दिवसों के आधार पर तैयार की जाएगी और यह आगे प्रावधान करता है कि संतोषजनक सेवा का अर्थ पिछले चार फसली वर्षों में औसतन 70% वसूली है और चूंकि याचिकाकर्ता का मामला उक्त शासनादेश के अंतर्गत नहीं आता है, चयन समिति ने सही

ढंग से याचिकाकर्ता के नाम की सिफारिश नियमित चयन के लिए नहीं की है।

17. जवाबी हलफनामे के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा तहसील मलिहाबाद में प्रदान की गई सेवाओं को ध्यान में नहीं लिया गया है और चयन समिति द्वारा उसकी उम्मीदवारी को गलत तरीके से अस्वीकार कर दिया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मौसमी संग्रह चपरासी की नियुक्ति के लिए कोई न्यूनतम या अधिकतम आयु सीमा नहीं है। उन्होंने जोड़ा कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा तहसील मलिहाबाद में प्रदान की गई सेवाओं को ध्यान में लिया जाए, तो यह 509 दिन होगी और उसी के आधार पर, याचिकाकर्ता के मामले पर विचार किया जाना चाहिए।

18. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के माध्यम से जानकारी मिली कि 50% कोटा के तहत संग्रह चपरासी के 11 पद उपलब्ध हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि वैधानिक नियमों को शासनादेश द्वारा अधिक्रमित नहीं किया जा सकता और याचिकाकर्ता का चयन वैधानिक नियमों के आधार पर किया जाना चाहिए।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों के जवाब में, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उ.प्र. संग्रह चपरासी सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2016 के प्रतिस्थापित

नियम 5(ii) के द्वितीय परंतुक में यह प्रावधान है कि, "..... परंतु यह और कि उत्तर प्रदेश संग्रह चपरासी सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2016 के प्रारंभ होने की तिथि पर उपलब्ध सभी मौजूदा रिक्तियाँ, केवल एक बार के उपाय के रूप में, खंड (ii) में निर्धारित आवश्यक योग्यताएँ रखने वाले मौसमी संग्रह चपरासियों में से चयन समिति द्वारा चयन के माध्यम से भरी जाएंगी....."

उक्त प्रावधान के अनुसरण में जिला स्तर पर अंतिम वरिष्ठता सूची तैयार और प्रकाशित की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम क्रमांक 74 पर है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने उक्त वरिष्ठता सूची के विरुद्ध कोई आपत्ति दर्ज नहीं की है, इसलिए, वह कानून की दृष्टि में अंतिम हो गई है।

20. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 08.09.2010 के शासनादेश के खंड 2 में यह निर्धारित किया गया है कि भविष्य में श्रेणी-IV पद पर कोई और भर्ती (कनिष्ठ श्रेणी के तकनीकी पदों के अलावा) नहीं की जाएगी और रिक्त होने वाले सभी श्रेणी-IV पद केवल आउटसोर्सिंग द्वारा भरे जाएंगे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 15.03.2012 के शासनादेश के माध्यम से तत्काल प्रभाव से सभी नियुक्तियों पर प्रतिबंध (लोक सेवा आयोग के माध्यम से की जाने वाली और माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश के तहत की जाने वाली नियुक्तियों को छोड़कर) लगा दिया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 08.09.2010 और 15.03.2012 के शासनादेशों से छूट दिनांक 07.10.2016 के शासनादेश के माध्यम से

प्रदान की गई थी, जो उ.प्र. संग्रह चपरासी सेवा नियमावली, 2004 में वर्ष 2016 में किए गए संशोधन के अनुसार नियमितीकरण कोटा के तहत संग्रह चपरासी के पद पर मौसमी संग्रह चपरासियों की भर्ती के संबंध में थी। इसके बाद, दिनांक 30.10.2017 का एक शासनादेश भी जारी किया गया था, जिसके द्वारा दिनांक 30.05.2008 के शासनादेश के तहत प्रदान की गई आयु में छूट को निरस्त कर दिया गया था।

21. तत्पश्चात, जिला लखनऊ के तहसीलदारों ने दिनांक 14.03.2018 के पत्र के माध्यम से मौसमी संग्रह चपरासियों को संग्रह चपरासी के रूप में नियमित करने के लिए राज्य सरकार से मार्गदर्शन मांगा और इस संबंध में 07.04.2018 को एक अनुस्मारक भी भेजा गया था और उसके अनुसरण में, राज्य सरकार ने दिनांक 13.06.2018 के पत्र के माध्यम से मुख्य सचिव की अध्यक्षता में 10.04.2018 को एक बैठक बुलाई, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि मौसमी संग्रह एक श्रेणी - IV पद है और पहले यह प्रावधान किया गया था कि श्रेणी - IV पद केवल आउटसोर्सिंग के माध्यम से भरे जाएंगे। उ.प्र. संग्रह चपरासी सेवा नियमावली, 2016 और दिनांक 07.10.2016 के शासनादेश को निरस्त कर दिया जाए और श्रेणी - IV पदों को दिनांक 08.02.2010 के शासनादेश के अनुसार भरा जाए।

22. उपरोक्त प्रस्तुतियों के जवाब में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मौसमी संग्रह चपरासियों का नियमितीकरण तहसील स्तर पर किया जाना

है, न कि जिला स्तर पर। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश सरकार ने दिनांक 26.02.2019 के शासनादेश के माध्यम से प्रावधान किया है कि नियम लागू रहेंगे और दिनांक 07.10.2016 का शासनादेश प्रभावी रहेगा और नियमों को कार्यकारी आदेशों द्वारा बदला नहीं जा सकता। उन्होंने प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार ने दिनांक 27.02.2019 और 22.02.2019 के शासनादेशों के माध्यम से नियमों के अनुसार मौसमी संग्रह चपरासियों के नियमितीकरण के लिए निर्देश जारी किए और आयु में छूट प्रदान की और याचिकाकर्ता ने ऊपरी आयु सीमा पार नहीं की है।

23. उपरोक्त प्रस्तुतियों के जवाब में, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने दिनांक 14.11.2022 के पूरक प्रतिशपथ पत्र के आधार पर प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 05.10.2016 की एक अधिसूचना जारी की गई है, जिसमें प्रावधान किया गया है कि संग्रह चपरासियों का 100% नियमितीकरण एक बार के उपाय के रूप में चयन समिति के माध्यम से चयन द्वारा किया जाएगा और उसके अनुसरण में, चयन समिति की सिफारिशों के आधार पर, 48 मौसमी संग्रह चपरासियों का चयन 10.12.2020 को किया गया है और नियमों में निहित प्रावधानों के तहत 50% संग्रह चपरासियों के नियमितीकरण के संबंध में, उस पर विचार केवल जिला स्तर पर गठित चयन समिति द्वारा ही संभव है।

24. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने विभिन्न तिथियों पर कार्य किया है और उसका नाम जिला स्तरीय

वरिष्ठता सूची में क्रमांक 74 पर है और 2016 के नियमों के अनुसरण में, संग्रह चपरासियों के 48 पदों पर 100% नियमितीकरण की कार्यवाही की गई है और वरिष्ठता सूची में क्रमांक 62 तक के उपलब्ध मौसमी संग्रह चपरासियों को नियमित किया गया है।

25. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

26. मामले के समग्र विचार और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन पर, यह प्रतिबिंबित होता है कि ऊपर वर्णित चार्ट से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने तहसील बीकेटी में केवल एक वर्ष तीन माह और छह दिन की अवधि के लिए कार्य किया है। उसने तहसील मलिहाबाद में 11-02-1991 से 11-03-1991 की अवधि के बीच एक माह और अठारह दिन की अवधि के लिए मौसमी संग्रह चपरासी के रूप में कार्य किया। हाई स्कूल प्रमाणपत्र में उल्लिखित याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 23-03-1977 है, इसलिए जब उसने तहसील मलिहाबाद में कार्य करना शुरू किया, तब वह नाबालिग था और इस प्रकार, तहसील मलिहाबाद में उसके द्वारा प्रदान की गई सेवा की अवधि की गणना याचिकाकर्ता की कार्य अवधि में नहीं की जा सकती, इसलिए याचिकाकर्ता ने 3 & 1/2 फसली वर्ष कार्य किया है।

27. यहां तक कि यदि ऊपर प्रदान की गई अवधि को भी याचिकाकर्ता के कार्य में शामिल

किया जाता है, तो याचिकाकर्ता की वरिष्ठता स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। मौसमी संग्रह चपरासी का पद राज्य की सेवा के अंतर्गत एक श्रेणी IV / समूह -ग पद है, इसलिए समूह -ग कर्मचारी सेवा नियम, 1985 में श्रेणी IV पद कर्मचारियों के लिए निर्धारित न्यूनतम आयु सीमा लागू होगी और तदनुसार, किसी भी तरह से याचिकाकर्ता द्वारा वयस्कता प्राप्त करने से पहले प्रदान की गई सेवाओं को ध्यान में नहीं लिया जा सकता।

28. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा लिया गया आपत्ति कि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों को 50% कोटा के अंतर्गत संग्रह चपरासी के पद पर विचार किया गया है और नियुक्त किया गया है, यह अभिलेख के अवलोकन पर स्पष्ट है कि तहसील बीकेटी के मौसमी संग्रह चपरासियों की दिनांक 02.09.2009 की अंतिम वरिष्ठता सूची में याचिकाकर्ता का नाम क्रमांक 13 पर है और व्यक्ति, नामतः राम किशोर, जो उक्त सूची में क्रमांक 12 पर है, ने याचिकाकर्ता से 01 वर्ष 05 माह और 01 दिन अधिक कार्य किया है, इसलिए तहसील मलिहाबाद में प्रदान की गई सेवाओं सहित याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई सेवाएं यानी 48 दिन भी उससे कम हैं, इसलिए रिट याचिका के अनुलग्नक-1 के रूप में संलग्न आक्षेपित आदेश दिनांक 03.09.2009 में कोई अनियमितता या अवैधता प्रतीत नहीं होती है।

29. रिट याचिका में कोई दम नहीं है और इसे एतद्वारा खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 282

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2023

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह
के समक्ष

रिट-ए संख्या 3292 सन् 2023

अरविंद कुमार पांडे याचिकाकर्ता
बनाम
यू.पी. राज्य और अन्य प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: रवि सिंह, राज
कुमार सिंह सूर्यवंशी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी.,
अखिलेश कुमार पाण्डेय

ए. सेवा कानून - निलंबन - उत्तर प्रदेश
सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील)
नियमावली, 1999 -नियम 4 - उत्तर प्रदेश
माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का
निवारण) आदेश 1981 - उत्तर प्रदेश
माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम,
1982 - धारा 18 एवं 33-सी(2)(ए) - राज्य
सरकार का यह कर्तव्य है कि वह किसी
सरकारी कर्मचारी द्वारा उसकी सेवा अवधि के
दौरान अर्जित अवैध धन का पता लगाए तथा
ऐसे कर्मचारी के विरुद्ध उचित कार्रवाई करे।
(पैरा 22)

याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों
तथा उसकी स्थिति, पहुंच एवं संसाधनों को
ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने उसे

निलंबित कर दिया है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या मनमानी है, जिसके लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। (पैरा 20)

शिक्षा के व्यवसायीकरण ने शिक्षा के मूल्य को खत्म कर दिया है। परिणामस्वरूप, व्यवस्था में शिक्षा माफिया और नकल माफिया हैं। स्कूल और कॉलेज लाभ कमाने वाले प्रतिष्ठान बन गए हैं। शिक्षा व्यवस्था को साफ करना राज्य और समाज की जिम्मेदारी है। (पैरा 19)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

वर्तमान याचिका में निलंबन और अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के खिलाफ 15.04.2023 के आदेश का विरोध किया गया है। साथ ही, 18.04.2023 के आदेश के तहत संयुक्त शिक्षा निदेशक, अयोध्या मंडल, अयोध्या का प्रभार श्री मनोज कुमार द्विवेदी, मंडलीय संयुक्त निदेशक, कानपुर को अतिरिक्त प्रभार के रूप में दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि सिंह और राज्य प्रतिवादी राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा को सुना।

2. याचिकाकर्ता श्री अरविंद कुमार पांडे ने संयुक्त शिक्षा निदेशक, अयोध्या मंडल, अयोध्या के पद पर रहते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान याचिका दायर करते हुए आदेश दिनांक 15.04.2023 जिसके द्वारा उसको उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 (जिसे आगे "नियम, 1999" कहा जाएगा) के नियम 4 के तहत उन्हें निलंबित किया गया और अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ की गयी है, को निरस्त करने की प्रार्थना की गयी है। याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.04.2023 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके तहत संयुक्त शिक्षा निदेशक, अयोध्या मंडल, अयोध्या का प्रभार श्री मनोज कुमार द्विवेदी, मंडलीय संयुक्त निदेशक, कानपुर को अतिरिक्त प्रभार के रूप में दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता ने कथित तौर पर असंगत विचार के लिए अपनी शक्ति का पूर्णतः दुरुपयोग करके 122 शिक्षकों को नियमित कर दिया था, जिन्हें दिनांक 07.08.1993 के बाद कई स्कूलों / कॉलेजों की प्रबंधन समितियों द्वारा अवैध रूप से नियुक्त किया गया था, और ये शिक्षक वेतन के भुगतान के संबंध में इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के आधार पर ही वेतन प्राप्त कर रहे थे। याचिकाकर्ता ने कथित तौर पर असंगत विचार के लिए और दिनांक 22.03.2016 की अधिसूचना के खिलाफ कई स्कूलों / कॉलेजों की प्रबंधन समितियों के साथ आपराधिक साजिश में उक्त 122 शिक्षकों की सेवाओं को नियमित कर दिया था।

4. इन अवैध नियमितीकरणों के खिलाफ, श्री शशि कांत पांडे, सहायक शिक्षक, पी.डी. इंटर कॉलेज, सोनियासा, रसूलाबाद, अयोध्या ने पत्र दिनांक 05.12.2022 द्वारा शिकायत की तथा श्री शैलेश कुमार सिंह, सहायक अध्यापक, निवासी ग्राम कोपा, पोस्ट-अलीपुर, जिला-सुल्तानपुर द्वारा दिनांक 20.01.2023 को एक अन्य शिकायत भी राज्य सरकार को याचिकाकर्ता द्वारा शिक्षकों के अवैध नियमितीकरण के संबंध में प्राप्त हुई।

5. राज्य सरकार ने उक्त दोनों शिकायतों की यथार्थता, सत्यता एवं वास्तविकता का पता लगाने के उद्देश्य से दिनांक 20.01.2023 के आदेश द्वारा आयुक्त, अयोध्या मण्डल, अयोध्या को उक्त दोनों शिकायतों में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जांच कराने का निर्देश दिया। आयुक्त, अयोध्या मण्डल, अयोध्या ने दिनांक 27.02.2023 के पत्र द्वारा एक तीन सदस्यीय जांच समिति गठित की, जिसमें (1) श्री सुनील कुमार शुक्ला, अपर आयुक्त (प्रशासन), (2) श्री नीरज श्रीवास्तव, अपर निदेशक, कोषागार एवं पेंशन, अयोध्या मण्डल, अयोध्या तथा (3) श्री अरविन्द कुमार जॉन, संयुक्त विकास आयुक्त, अयोध्या शामिल हैं, से याचिकाकर्ता के विरुद्ध दोनों शिकायतों में लगाए गए आरोपों की जांच करने तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा।

6. तीन सदस्यीय जांच समिति ने दिनांक 03.03.2023 को अपनी रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला कि श्री अरविंद कुमार पांडे-याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित

अंतरिम आदेशों के अनुपालन में ऐसे शिक्षकों को नियमित किया था, जो वेतन प्राप्त कर रहे थे। यह भी संज्ञान में आया कि दिनांक 22.03.2016 की अधिसूचना के अनुसार, राज्य सरकार ने निर्देश दिया था कि जिन शिक्षकों की नियुक्ति उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निवारण) आदेश 1981 के अनुसार या उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 की धारा 18 के अनुसार नहीं हुई है, वे नियमितीकरण के हकदार नहीं होंगे। याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा जारी उक्त निर्देशों का पालन नहीं किया था और प्रबंधकों द्वारा अवैध रूप से नियुक्त शिक्षकों की सेवाओं को नियमित कर दिया था।

7. याचिकाकर्ता ने एक सुनियोजित कदम उठाते हुए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना और बिना समिति गठित किए अपने हस्ताक्षरों से 34 शिक्षकों का नियमितीकरण रद्द कर दिया, ताकि इन 34 शिक्षकों को उच्च न्यायालय से राहत मिल सके। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता की सोची-समझी रणनीति के अनुसार इन 34 शिक्षकों ने बिना उचित प्रक्रिया का पालन किए याचिकाकर्ता द्वारा पारित उनके नियमितीकरण को रद्द करने के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय से राहत प्राप्त कर ली थी।

8. यह ध्यान देना प्रासंगिक है कि कई स्कूलों / कॉलेजों की प्रबंध समितियों द्वारा तदर्थ आधार पर नियुक्त शिक्षकों के नियमितीकरण पर विचार करने के लिए, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड)

अधिनियम, 1982 की धारा 33-सी (2) (ए) के तहत चार सदस्यीय समिति गठित की थी, जिसमें (ए) संयुक्त शिक्षा निदेशक, (बी) मंडलीय उप शिक्षा निदेशक, (सी) मंडलीय सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), अयोध्या क्षेत्र, अयोध्या और (डी) संबंधित जिले के जिला विद्यालयों के निरीक्षक शामिल हैं। इस तरह की समितियां राज्य के प्रत्येक मंडल के लिए गठित की गई हैं। याचिकाकर्ता ने समिति का गठन तो किया, किन्तु उसमें राज्य सरकार द्वारा निर्देशित व्यक्तियों के स्थान पर, उनके द्वारा नामित सदस्यों को उक्त समिति का हिस्सा जिसमें राज्य सरकार द्वारा निर्देशित व्यक्तियों के स्थान पर, उनके नामित सदस्य उक्त समिति का हिस्सा थे और याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.08.1993 के बाद कई स्कूलों/कॉलेजों की प्रबंध समितियों द्वारा अवैध रूप से नियुक्त तदर्थ शिक्षकों के नियमितीकरण के लिए उनके हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए।

9. याचिकाकर्ता के अवैध, मनमाने एवं दुर्भावनापूर्ण आचरण को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को नियमावली 1999 के नियम 4 के अन्तर्गत दिनांक 15.04.2023 के आदेश द्वारा निलम्बित कर दिया तथा नियमावली 1999 के नियम 7 के अन्तर्गत उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ की।

10. कार्यालय जाप दिनांक 01.05.2023 द्वारा श्री पवन कुमार, निदेशक, (आई.ए.एस.) समाज कल्याण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को जांच अधिकारी नामित किया गया। नियुक्ति

के अनुमोदन से कार्यालय जापन दिनांक 01.05.2023 के माध्यम से याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी किया गया जिसमें दुर्भावना से शिक्षकों के अवैध नियमितीकरण के पांच आरोप शामिल किये गए।

11. याचिकाकर्ता को उक्त आरोप पत्र पर अपना जवाब दाखिल करने के लिए पंद्रह दिन का समय दिया गया। राज्य सरकार ने कार्यालय जापन दिनांक 10.05.2023 के माध्यम से जिला- अंबेडकरनगर, अयोध्या और सुल्तानपुर में 34 तदर्थ शिक्षकों के अवैध नियमितीकरण के आरोप सहित पूरक आरोप पत्र जारी किया। राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता द्वारा अपनी सरकारी सेवा के दौरान अवैध रूप से अर्जित चल और अचल संपत्तियों की जाँच के संबंध में दिनांक 10.05.2023 के पत्र के माध्यम से सतर्कता जांच भी गठित की। सतर्कता विभाग याचिकाकर्ता द्वारा अपनी सेवा अवधि के दौरान आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने के संबंध में प्राप्त विभिन्न शिकायतों के आधार पर एक स्वतंत्र जांच कर रहा है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि सिंह ने कहा कि आक्षेपित निलंबन आदेश अवैध है। याचिकाकर्ता पर विद्यालयों की प्रबन्ध समितियों द्वारा नियुक्त 122 शिक्षकों को नियमित करने के लिए गबन या रिश्वत लेने का कोई आरोप नहीं है। उन्होंने आगे कहा है कि यदि आरोप सिद्ध भी हो जाते हैं तो भी उनको कोई दीर्घ दण्ड नहीं दिया जा सकता है, इसलिए याचिकाकर्ता को दिनांक 15.04.2023 के आदेश के तहत निलंबित करना पूरी तरह

से अन्यायपूर्ण, अवैध और मनमाना है। चूंकि, नियमितीकरण समिति के कुछ सदस्यों ने अपनी सदस्यता वापस ले ली थी और इसलिए याचिकाकर्ता ने उनके स्थान पर अन्य लोगों को नामित किया था। यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता ने नियमितीकरण के लिए समिति गठित करने में अवैध रूप से काम किया। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा अभ्यर्थियों के नियमितीकरण के लिए गठित समिति के माध्यम से अधिकृत किया गया था कि यदि किसी अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई छिपाव या कूटरचित बात पाई जाती है तो याचिकाकर्ता ऐसे अभ्यर्थियों का नियमितीकरण रद्द कर सकता है, इसलिए याचिकाकर्ता ने ऐसे 34 शिक्षकों का नियमितीकरण रद्द कर दिया है। निलंबन आदेश एक नियमित प्रशासनिक आदेश नहीं होना चाहिए। किसी कर्मचारी को कदाचार की गंभीरता या दोषी कर्मचारी पर लगाए गए आरोपों की प्रकृति के आधार पर निलंबित किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों को देखकर, ऐसा प्रतीत होता है कि आदेश एक नियमित प्रशासनिक आदेश के रूप में पारित किया गया है, इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए।

13. दूसरी ओर, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा ने याचिकाकर्ता की ओर से की गई प्रार्थना का विरोध किया तथा कहा कि याचिकाकर्ता ने 122 अध्यापकों को अवैध रूप से नियमित करने तथा उसके बाद रिट न्यायालय में उन्हें लाभ पहुंचाने के लिए 34 अध्यापकों के नियमितीकरण को अवैध रूप से रद्द करने में

अत्यन्त अवैध, मनमाना तथा दुर्भावनापूर्ण तरीके से कार्य किया है। उन्होंने आगे कहा कि यदि आरोप सिद्ध हो जाते हैं तो उन्हें दीर्घ दंड भुगतना पड़ेगा। याचिकाकर्ता द्वारा अर्जित प्रभाव, संसाधन तथा अर्जित धन को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने सुविचारित निर्णय के तहत उसे निलम्बित किया है तथा उसके द्वारा सेवा अवधि के दौरान अर्जित की गई अपार धन-संपत्ति की स्वतंत्र सतर्कता जांच के आदेश दिए हैं।

14. मैंने पक्षकारों की ओर से की गई दलीलों पर विचार किया है।

15. भारत में 'माफिया' शब्द काफी प्रचलित है। राजनीति में बाहुबली और माफिया हैं, जिन्होंने अपराध की कमाई से अकूत संपत्ति अर्जित की है और उनका आतंक कानून का पालन करने वाले नागरिकों के दिलों और मानस में गहराई तक समाया हुआ है। माफियाओं की उपश्रेणियाँ हैं, जैसे भू-माफिया, नकल माफिया और शिक्षा माफिया आदि। सरकारी कर्मचारियों में भी शिक्षा माफिया हैं, जिन्हें शीघ्र समाप्त करने की आवश्यकता है।

16. व्यक्ति और समाज के जीवन में शिक्षा का महत्व अनादि काल से माना जाता रहा है। भारतीय परंपरा में अशिक्षित व्यक्ति को पशु के समान माना जाता है, क्योंकि शिक्षा के बिना वह अपने भौतिक स्वरूप से ऊपर नहीं उठ पाएगा। इसलिए, यह मान्यता है कि शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का दो बार जन्म होता है, पहला शारीरिक रूप से और दूसरा आध्यात्मिक रूप से। शिक्षा के बिना कोई

ज्ञान अर्जित नहीं कर सकता। ज्ञान का उपयोग विश्व के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। शिक्षा भारतीय सभ्यता की आत्मा है। शिक्षा मनुष्य को उसकी क्षमता का एहसास कराने और उसे अपने जीवन में उत्कृष्ट योगदान देने के लिए सशक्त और सक्षम बनाने का एक साधन है।

17. भारतीय पौराणिक कथाओं में भी मनुष्य के लिए शिक्षा का महत्व और महत्व निम्नलिखित संस्कृत श्लोकों में वर्णित किया गया है:-

“विद्याविहीना बहवोऽपि पुत्राः
कल्पायुषः सन्तु पितुः किमेतैः
।

क्षयिष्णुना वाऽपि कलावता वा
तस्यः प्रमोदः शशिनेव सिन्धोः
॥१॥ ”

Transliteration-

Vidyavihīnā Bahavoapi
Putrāḥ Kalpāyusaḥ Santu
Pituh

Kimetaiḥ

Kṣayiṣṇunā Vāapi Kalāvata
Vā Tasyaḥ Pramodaḥ
Śaśineva Sindhoh

हिंदी अनुवाद-

बहुत से पुत्रों का क्या लाभ जो बिना किसी ज्ञान के मूर्ख हों, परन्तु जिनकी आयु लम्बी हो। दूसरी ओर, यदि वे विभिन्न कलाओं में निपुण हों, परन्तु जिनकी आयु कम हो, तो वे अपने पिता को अत्यधिक प्रसन्नता प्रदान करते हैं। ठीक वैसे ही जैसे चाँद सागर को देता है।

“विद्या प्रशस्यते लोकैः विद्या
सर्वत्र गौरवा ।

विद्या लभते सर्व विद्वान्
सर्वत्र पूज्यते ॥२॥”

Transliterations-

Vidya Praśasyate Lokaiḥ
Vidya Sarvatra Gauravā

Vidyaya Labhate Sarvaṁ
Vidvāna Sarvatra Pujyate
॥

हिंदी अनुवाद-

ज्ञान की प्रशंसा सभी करते हैं, ज्ञान को सर्वत्र महान माना जाता है, ज्ञान की सहायता से व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर सकता है, विद्यवान् व्यक्ति का सर्वत्र सम्मान होता है।

"न चौरहार्यं न च राजहार्यं न
च भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।

व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥३॥"

Transliterations-

Na Caurahāryam Na Ca
Rājahāryam Na Ca
Bhrātṛbhājyam Na Ca

Bhārakāril

Vyaye Kṛte Vardhat Eva
Nityam Vidyāadhanam
Sarvadhana Pradhānam||

हिंदी अनुवाद-

इसे न तो चोर लूट सकता है, न ही राजा
छीन सकता है, भाई इसे बांट सकते हैं और
न ही यह खर्च करने से घटती है। शिक्षा
जितनी अधिक खर्च की जाती है, उतनी ही
बढ़ती है।

18. स्वामी विवेकानंद ने कहा था " लोगों को
शिक्षित करो और उनका उत्थान करो, तभी
राष्ट्र का निर्माण संभव है" । शिक्षा को मानव
जीवन के चार उद्देश्यों अर्थात् धर्म, अर्थ,
कर्म और मोक्ष को प्राप्त करने का महत्वपूर्ण
साधन माना जाता है। ज्ञान की प्रशंसा सभी
करते हैं, ज्ञान को सर्वत्र महान माना जाता है,
ज्ञान के बल पर सब कुछ प्राप्त किया जा
सकता है और ज्ञानी व्यक्ति का सर्वत्र
सम्मान होता है।

19. दुर्भाग्य से शिक्षा का व्यवसायीकरण नब्बे
के दशक से सबसे अधिक तीव्र गति से शुरू
हुआ। शिक्षा के व्यवसायीकरण ने शिक्षा के
मूल्य को ही समाप्त कर दिया है।
परिणामस्वरूप, व्यवस्था में शिक्षा माफिया
और नकल माफिया पैदा हो गए। स्कूल और
कॉलेज लाभ कमाने वाले प्रतिष्ठान बन गए हैं।
शिक्षा व्यवस्था को स्वच्छ बनाना राज्य और
समाज की जिम्मेदारी है।

20. याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों
और उसकी स्थिति, पहुंच और संसाधनों को
ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने उन्हें
निलंबित कर दिया है। मुझे नहीं लगता कि
आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता या मनमानी
है जिसके लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद
226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में
इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

21. इसके मददेनजर, वर्तमान याचिका को
खारिज किया जाता है। राज्य सरकार को
याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई
अनुशासनात्मक कार्यवाही को आज से चार
माह की अवधि के भीतर शीघ्रता से पूरा करने
का निर्देश दिया जाता है और गृह विभाग, उत्तर
प्रदेश सरकार को भी याचिकाकर्ता के खिलाफ
शुरू की गई स्वतंत्र सतर्कता जांच को आज से
तीन माह की अवधि के भीतर शीघ्रता से पूर्ण
करने और तदनुसार आवश्यक कार्रवाई करने
का निर्देश दिया जाता है।

22. राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि वह
किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा उसकी सेवा
अवधि के दौरान अर्जित अवैध धन का पता

लगाए और ऐसे कर्मचारी के खिलाफ उचित कार्रवाई करे।

23. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक कार्रवाई के लिए अपर मुख्य सचिव / प्रमुख सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को प्रेषित की जाए।

(2023) 7 ILRA 287

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

के समक्ष

रिट-ए संख्या 3814 सन् 2022

और

रिट-ए संख्या 1305 सन् 2022 और 1514

सन् 2022

कृष्ण कुमार एवं अन्य याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रत्यर्थीगण

**याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता: समीर कालिया,
श्रीदीप चटर्जी**

**प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., राज
कुमार उपाध्याय (आर.के. उपाध्याय), रत्नेश
चंद्र, तुषार वर्मा**

**ए. सेवा कानून - नियुक्ति - पदोन्नति - उत्तर
प्रदेश लोक निर्माण विभाग "समूह-ख" सिविल
अभियंत्रण सेवा नियमावली - 2004 - नियम
5 - सार्वजनिक निर्माण विभाग संगणक**

**नियमावली, 1968 - नियम 5 - 19; उत्तर
प्रदेश सार्वजनिक निर्माण विभाग परिवहन
अधिष्ठापन सेवा नियमावली, 1984 - नियम
5 - नियम 5 - नियम 5, 2004 के अनुसार
सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर
पदोन्नति के लिए पात्रता, अयोग्यता की
अस्वीकृति के अधीन वरिष्ठता के आधार पर
अवर अभियंता (तकनीकी)/कम्प्यूटर के पद पर
सात वर्ष की मौलिक सेवा है। याचिकाकर्ता और
निजी विपक्षी एक ही कैडर यानी अवर
अभियंता (तकनीकी) से संबंधित हैं।
याचिकाकर्ताओं को अवर अभियंता
(तकनीकी)/कम्प्यूटर के पद पर सीधे नियुक्त
किया गया था, जबकि निजी विपक्षी को
नियम, 1968 के तहत उक्त पद पर पदोन्नत
किया गया था। एक सामान्य वरिष्ठता सूची
है, जिसे चुनौती नहीं दी गई है। (पैरा 34)**

**बी. आगे पदोन्नति के उद्देश्य के लिए वर्ग के
भीतर वर्ग नहीं हो सकता है - नियम, 1968
नियम, 1984 के अधिनियमन के बाद निरस्त
नहीं किए गए हैं और वे कानून की किताब में
पूरी तरह से मौजूद हैं - नियम, 1968
ड्राफ्ट्समैन के पद से अवर अभियंता
(तकनीकी)/कम्प्यूटर के पद पर पदोन्नति के
लिए पात्रता और प्रक्रिया प्रदान करते हैं।
नियम, 1984 के तहत ड्राफ्ट्समैन यानी हेड
ड्राफ्ट्समैन को पदोन्नति का एक और रास्ता
बनाया गया है। ड्राफ्ट्समैन के पद से अवर
अभियंता (तकनीकी)/कम्प्यूटर के पद पर विरोधी
पक्षों की पदोन्नति के बाद, याचिकाकर्ताओं
और अवर अभियंता (तकनीकी) के ऐसे
पदोन्नत लोगों का कैडर एक हो गया यानी
अवर अभियंता (तकनीकी) का कैडर। (पैरा 35)**

सी. न्यायालय पदोन्नति के लिए कोई नई योग्यता निर्धारित नहीं कर सकता, जो कानून/प्रासंगिक सेवा नियमों के अंतर्गत निर्धारित नहीं है। इस न्यायालय ने अवर अभियंता (तकनीकी) के सीधे नियुक्त व्यक्तियों द्वारा दायर रिट-ए संख्या 15161 सन् 2021 में अवर अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर की अंतिम वरिष्ठता सूची से अठारह पात्र उम्मीदवारों के नाम सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए लोक सेवा आयोग को भेजने का निर्देश दिया था। उक्त निर्देश के अनुपालन में पदोन्नति के लिए पात्र विपक्षीयों के नाम पदोन्नति के लिए लोक सेवा आयोग को भेजे गए आक्षेपित अध्याचन में शामिल किए गए हैं। उक्त अध्याचन में कोई अवैधता नहीं है तथा यह वैधानिक निर्देशों के अनुरूप है। (पैरा 36)

दिनांक 28.5.2022 के आक्षेपित अध्याचन में कोई त्रुटि नहीं पाई गई है, क्योंकि इसे नियम 5(2) नियम, 2004 के शासनादेश के अनुसार ही भेजा गया है। (पैरा 37)

रिट-ए संख्या 3814 सन् 2022 तथा 1514/2022 को खारिज किया जाता है।

रिट-ए संख्या 1305 सन् 2022 को स्वीकार किया जाता है। (ई-4)

वर्तमान याचिका में राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 28.5.2022 के आदेश का विरोध किया गया है, जिसके माध्यम से सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति करने के लिए अवर

अभियंता (तकनीकी) के साथ-साथ अवर अभियंता के सीधे भर्ती के नामों सहित पात्रता सूची उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को भेजी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान रिट याचिकाओं के समूह में शामिल मुख्य विवाद उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग में सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग "समूह-ख" सिविल अभियांत्रिकी सेवा नियमावली, 2004 (संक्षेप में 'नियमावली, 2004') के अंतर्गत प्रदान किए गए 50% कोटे के तहत पदोन्नति से संबंधित है।

2. ये रिट याचिकाएँ याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई हैं, जो कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) हैं। कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) का संवर्ग दो प्रकार के कनिष्ठ अभियंताओं से बना है (i) कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर जिन्हें सार्वजनिक निर्माण विभाग संगठक सेवा नियमावली, 1968 (संक्षेप में 'नियमावली, 1968') के तहत उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग में नियुक्त किया गया था, जिन्हें उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती द्वारा कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के रूप में नियुक्त किया गया था; और (ii) जिन्हें प्रारंभ में ड्राफ्ट्समैन के रूप में नियुक्त किया गया था, जिनके पास औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) से किसी भी व्यापार (सिविल/ मैकेनिकल/ ड्राफ्ट्समैन) में दो वर्षीय अभियांत्रिकी डिप्लोमा

या नियमावली, 1968 के तहत निर्धारित कोई अन्य योग्यता थी और, नियमावली, 1968 के भाग-VI (नियम 19) में निहित प्रावधानों के अनुसार, जिन्हें ड्राफ्ट्समैन के रूप में दस वर्ष की मूल सेवा प्रदान करने के बाद उनके लिए निर्धारित 20% कोटे के तहत कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के रूप में पदोन्नत किया गया था और विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के अधीन (विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने की शर्त वर्ष 1975 में शिथिल कर दी गई थी) उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग की सिफारिशों के अनुसार।

3. नियमावली, 1968 में वर्ष 1992 में संशोधन किया गया, जिसके द्वारा पदोन्नति कोटा 20% से बढ़ाकर 50% कर दिया गया। नियमावली, 1968 के भाग-VI (नियम 19) में ड्राफ्ट्समैन को कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर पदोन्नति की पात्रता और प्रक्रिया प्रदान की गई है। ड्राफ्ट्समैन के पद पर नियुक्ति उत्तर प्रदेश सार्वजनिक निर्माण विभाग रेखांकन अधिष्ठान सेवा नियमावली, 1984 (संक्षेप में 'नियमावली, 1984') के तहत की जाती है। उक्त नियमावली का नियम 5 भर्ती के स्रोत को निर्धारित करता है और नियम 8 ड्राफ्ट्समैन के पद पर नियुक्ति के लिए योग्यता निर्धारित करता है। नियमावली, 1984 के नियम 8 के तहत निर्धारित योग्यता उत्तर प्रदेश बोर्ड से हाई स्कूल परीक्षा या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अन्य समकक्ष परीक्षा और उक्त नियमावली के परिशिष्ट-ग में निर्धारित कोई अन्य योग्यता है। उक्त नियमावली, 1984 का परिशिष्ट-ग निम्नानुसार पढ़ा जाएगा:

"देखें नियम 8(2)

ड्राफ्ट्समैन के पद के लिए आवश्यक प्रमाणपत्र

(1) ड्राफ्ट्समैन का प्रमाणपत्र जो की

(i)(क) थॉम्पसन कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, रुड़की या रुड़की विश्वविद्यालय या उत्तर प्रदेश या उत्तर प्रदेश में मान्यता प्राप्त किसी अन्य संस्थान या किसी अन्य राज्य से; या
(ii) सांस्कृतिक कार्य एवं वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार से वास्तुकला डिजाइन और ड्राफ्ट्समैन में डिप्लोमा; या
(iii) उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड से वास्तुकला सहायक में डिप्लोमा या किसी अन्य राज्य से समान डिप्लोमा; या

(iv) किसी विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित सिविल इंजीनियरिंग या ड्राफ्ट्समैन में डिप्लोमा; या

(v) प्रशिक्षण और रोजगार निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा स्थापित आईटीआई से ड्राफ्ट्समैन (सिविल) या मैकेनिकल में डिप्लोमा या किसी अन्य राज्य के मान्यता प्राप्त संस्थान से समान डिप्लोमा।"

4. याचिकाकर्ताओं ने राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए दिनांक 28.5.2022 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके माध्यम से पदोन्नत कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) के नामों के साथ-साथ कनिष्ठ अभियंता के सीधी भर्ती वालों के नामों को शामिल करते हुए पात्रता सूची सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति करने के लिए उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को अग्रेषित की गई है।

5. श्री एस.के. कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें श्री/श्रीमती समीर कालिया, श्रीदीप

चटर्जी, अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्रदान की गई है, जो रिट-ए संख्या 3814 of 2022 और 1514 of 2022 में याचिकाकर्ताओं के लिए उपस्थित हुए हैं, ने प्रस्तुत किया है कि हालांकि याचिकाकर्ताओं को कंप्यूटर के रूप में नियुक्त किया गया था, लेकिन राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए दिनांक 16.6.1973 के कार्यालय ज्ञापन के अनुसार, अभियांत्रिकी में डिप्लोमा धारक कंप्यूटरों को कनिष्ठ अभियंता (कंप्यूटर) के रूप में नामित किया गया था क्योंकि उनके पद का नामकरण कनिष्ठ अभियंता (कंप्यूटर) में बदल दिया गया था। सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा धारक याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के माध्यम से कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर सीधी भर्ती हैं।

6. नियमावली, 1968 का नियम 5 कंप्यूटर/कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद के लिए भर्ती के स्रोत को निर्धारित करता है, जिसमें सीधी भर्ती के साथ-साथ पदोन्नति भी शामिल है। नियम 5 का उप-नियम (2) प्रदान करता है कि मुख्य अभियंता यह निर्णय लेंगे कि किस स्रोत/फीडर पद से कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति की जानी है और पदोन्नति नियमावली, 1968 के अध्याय-VI में निहित प्रावधानों के अनुसार की जानी है। नियमावली, 1968 के नियम 5 और 19 का संयुक्त पठन यह स्पष्ट करेगा कि ड्राफ्ट्समैन एकमात्र फीडर पद नहीं है जिससे कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति की जा सकती है, बल्कि यह मुख्य अभियंता का विशेषाधिकार भी है कि वे कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति के लिए स्रोत/फीडर पद का निर्णय लें।

7. नियमावली, 1968 का नियम 19 केवल कुछ आवश्यक पात्रता शर्तें निर्धारित करता है जो ड्राफ्ट्समैन को पदोन्नति के लिए विचार करने हेतु पूरी की जानी चाहिए, इस प्रकार, नियमावली, 1968 के नियम 5 और 19 का सामंजस्यपूर्ण पठन यह स्पष्ट करेगा कि कंप्यूटर/कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर पदोन्नति के लिए स्रोत/फीडर पद ड्राफ्ट्समैन के अलावा कोई अन्य पद भी हो सकता है जैसा कि मुख्य अभियंता द्वारा निर्णय लिया जाए।

8. नियमावली, 1968 के नियम 5(2) की वैधता को सिविल विविध रिट याचिका संख्या 9 of 1981 दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना की गई थी कि पदोन्नति कोटा को 100% तक बढ़ाया जाए जैसा कि सिंचाई, जल विद्युत और ग्रामीण अभियांत्रिकी सेवा विभागों में उपलब्ध था। इस न्यायालय ने उक्त रिट याचिका को दिनांक 26.7.1984 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया, हालांकि, राज्य सरकार को पदोन्नति के कोटे को बढ़ाने के प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए खुला छोड़ दिया। उक्त रिट याचिका में, राज्य ने यह रुख अपनाया था कि ड्राफ्ट्समैन का पद एक गैर-तकनीकी पद है और सेवा में दक्षता बनाए रखने के लिए ड्राफ्ट्समैन से कंप्यूटर/कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) तक पदोन्नति के लिए 20% का प्रतिशत निर्धारित किया गया था। उक्त निर्णय के बाद, राज्य सरकार ने 13.8.1984 को सभी उपलब्ध नियमों और आदेशों के अधिक्रमण में नियमावली, 1984 बनाई, जो ड्राफ्ट्समैन, प्रधान ड्राफ्ट्समैन,

ट्रेसर, वास्तुकला ड्राफ्ट्समैन और वास्तुकला प्रधान ड्राफ्ट्समैन की सेवा की शर्तों और निबंधनों को विनियमित करती थी।

9. श्री कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि नियमावली, 1984 के लागू होने पर, नियमावली, 1968 के नियम 19 के तहत ड्राफ्ट्समैन से कंप्यूटर/कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर पदोन्नति का मार्ग निरस्त हो गया। नियमावली, 1984 के लागू होने के बाद, उक्त नियमों या इससे पूर्व नियुक्त ड्राफ्ट्समैन रेखांकन अधिष्ठान सेवा के सदस्य बन गए, जो नियमावली 1968 के तहत विनियमित सेवा से एक अलग सेवा है। निजी विपक्षी पक्षकारों को नियमावली, 1984 के लागू होने के बाद ड्राफ्ट्समैन के पद पर नियुक्त किया गया था और, इसलिए, वे विशेष रूप से उत्तर प्रदेश सार्वजनिक निर्माण विभाग रेखांकन अधिष्ठान सेवा के सदस्य थे। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि 2.7.1992 को नियमावली, 1968 में संशोधन लाया गया, जिसके द्वारा कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति कोटा 20% से बढ़ाकर 50% कर दिया गया। हालांकि, यह ड्राफ्ट्समैन को नियमावली, 1968 के तहत पदोन्नति के लिए पात्र नहीं बनाएगा क्योंकि कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति के लिए फीडर पद का स्रोत निर्धारित करना मुख्य अभियंता का एकमात्र विशेषाधिकार है। ड्राफ्ट्समैन के लिए पदोन्नति का मार्ग नियमावली, 1984 के नियम 5 के तहत ही प्रदान किया गया है, जिसके तहत निजी विपक्षी पक्षकारों को

नियुक्त किया गया है अर्थात प्रधान ड्राफ्ट्समैन के पद पर पदोन्नति।

10. श्री कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि निजी विपक्षी पक्षकारों की कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति अवैध थी और, इसलिए, उक्त पदोन्नति को बारह वर्षों के बाद भी चुनौती देना अत्यधिक विलंब या अवहेलना के आधार पर बाधित नहीं होगा क्योंकि सेवा न्यायशास्त्र में प्रतिकूल कब्जे या होल्डिंग ओवर की कोई अवधारणा नहीं है। निजी विपक्षी पक्षकार अधिकतम कंप्यूटर के पद पर पदोन्नत किए जा सकते थे और, इसलिए, कंप्यूटर के बजाय उन्हें दिया गया कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) का नामकरण पूरी तरह से अवैध है। नियमावली, 1968 कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति के लिए प्रावधान करती है, न कि कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर। 1973 के सरकारी आदेश के अनुसार, वे कंप्यूटर, जिनके पास अभियांत्रिकी में डिप्लोमा है, को कनिष्ठ अभियंता के रूप में नामित किया जाता है। प्रस्तुति यह है कि यदि यह मान भी लिया जाए कि नियमावली, 1984 के प्रख्यापन के बाद, ड्राफ्ट्समैन की कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति का मार्ग अभी भी नियमावली, 1968 के तहत उपलब्ध है, तब भी पदोन्नति केवल कंप्यूटर के पद पर हो सकती है और वे ड्राफ्ट्समैन, जिनके पास अभियांत्रिकी में डिप्लोमा है, को कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के रूप में नामित किया जाएगा।

11. श्री कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग समूह-ख सिविल अभियंता सेवा नियमावली, 2004 (नियमावली, 2004) के तहत, सहायक अभियंता (सिविल) के 50% पदों को मूल रूप से नियुक्त कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) में से भरा जाना है, जिन्होंने भर्ती वर्ष के पहले दिन सात वर्ष की मूल सेवा पूरी कर ली हो। इन 50% में से, 50% पदोन्नति कोटा के 90% पद कनिष्ठ अभियंता (सिविल) द्वारा भरे जाने हैं और 50% का 10% सीधे कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) द्वारा भरा जाना है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि निजी विपक्षी पक्षकार डिप्लोमा धारक नहीं हैं और वे नियमावली, 1968 के तहत कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति के बाद भी कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) नहीं हैं और वे केवल कंप्यूटर हैं। नियमावली, 2004 का नियम 5 कंप्यूटरों से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति का प्रावधान नहीं करता है और, इसलिए, कंप्यूटरों के नामों को, जो डिप्लोमा धारक नहीं हैं, अपात्रता सूची में शामिल करना नियमावली, 2004 के नियम 5 के विपरीत है।

12. श्री कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि मुख्य अभियंता/विभागाध्यक्ष ने उन व्यक्तियों के नाम, जिन्हें 2010 से पहले कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर सीधी भर्ती किया गया था और जिनकी वरिष्ठता काफी पहले ही अंतिम रूप दे दी गई थी, 26.8.2021 को पदोन्नति के लिए राज्य सरकार को अग्रेषित किए हैं। हालांकि 18 पद उपलब्ध थे, लेकिन केवल पांच सीधी

भर्ती कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) पदोन्नति के लिए पात्र पाए गए और इन पांच व्यक्तियों को दिनांक 30.11.2021 के सरकारी आदेश द्वारा सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति दी गई है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी जोर दिया है कि आज तक पदोन्नत कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) को कभी भी सहायक अभियंता (सिविल) के पदों पर पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया गया है।

13. इस न्यायालय द्वारा रिट ए संख्या 15161 of 2021 में 7.1.2022 को पारित आदेश के अनुसरण में, मुख्य अभियंता ने 24.2.2022 को सीधी भर्ती किए गए कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) के नाम अग्रेषित किए। उपरोक्त आदेश को कुछ कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) द्वारा चुनौती दी गई थी, जिन्होंने रिट-ए संख्या 1305 of 2022 दायर करके सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा होने का दावा किया था।

14. श्री कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट-ए संख्या 1514 of 2022 में राज्य की ओर से दाखिल प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 18 का भी हवाला दिया है, जिसमें निजी विपक्षी पक्षकारों को कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर दी गई पदोन्नति को चुनौती दी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने कहा है कि नियमावली, 1984 के तहत, ड्राफ्ट्समैन की पदोन्नति प्रधान ड्राफ्ट्समैन के पद पर की जानी है और उक्त नियमों के तहत, सहायक अभियंता के पद पर आगे पदोन्नति का कोई प्रावधान नहीं है और, इसलिए, ड्राफ्ट्समैन सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए पात्र नहीं थे।

15. राज्य सरकार ने 'यू' टर्न लिया है और दिनांक 8.4.2022 और 13.4.2022 के आदेशों के माध्यम से मुख्य अभियंता को निर्देश दिया है कि सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर भर्ती चाहे सीधे की जाए या पदोन्नति के माध्यम से, वह नियमावली, 2004 के नियम 5 के प्रावधानों के अनुसार की जानी है। उक्त निर्देश के अनुपालन में, मुख्य अभियंता ने पदोन्नत कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) के नामों को सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए अग्रेषित किया है। रिट-ए संख्या 1514 of 2022 में दाखिल प्रति शपथपत्र में ड्राफ्ट्समैन संवर्ग को एक गैर-तकनीकी संवर्ग स्वीकार करने के बावजूद, राज्य सरकार ने 28.5.2022 को सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को सूची भेजी है, जिसमें निजी विपक्षी पक्षकारों के नाम शामिल हैं। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि ड्राफ्ट्समैन, जो सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत होने के लिए पात्र नहीं हैं, को अवैध रूप से कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर पदोन्नत किया गया था और, इसलिए, उनके नामों को सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत किए जाने वाले पात्र व्यक्तियों की सूची से हटा दिया जाना चाहिए।

16. दूसरी ओर, श्री वी.के. बाजपेयी, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि "ड्राफ्ट्समैन" शब्द का अर्थ एक ऐसा व्यक्ति है, जो मशीनरी या संरचनाओं के योजना और स्केच बनाता है। नियमावली, 1984 के तहत ड्राफ्ट्समैन के रूप में नियुक्ति के लिए

उल्लिखित और निर्धारित तकनीकी योग्यता के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि ड्राफ्ट्समैन का संवर्ग एक तकनीकी संवर्ग है और ड्राफ्ट्समैन की योग्यता और कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर की योग्यता के बीच केवल यह अंतर है कि ड्राफ्ट्समैन के पद पर प्रारंभिक नियुक्ति के लिए, आईटीआई या नियमावली, 1984 के परिशिष्ट-ग में उल्लिखित अन्य संस्थानों से दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम आवश्यक है, जबकि कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के लिए, तीन वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम आवश्यक है। दोनों अर्थात् कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर और ड्राफ्ट्समैन तकनीकी संवर्ग हैं।

17. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि नियमावली, 1984 के अधिनियमन से, नियमावली, 1968 लोप नहीं हुई। नियमावली, 1968 ड्राफ्ट्समैन के पद से कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता और प्रक्रिया निर्धारित करती है। नियमावली, 1968 में वर्ष 1992 में संशोधन किया गया, जिसके द्वारा कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद के लिए पहले का 20% पदोन्नति कोटा बढ़ाकर 50% कर दिया गया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि नियमावली, 1984 ड्राफ्ट्समैन के लिए एक और पदोन्नति का मार्ग प्रदान करती है अर्थात् प्रधान ड्राफ्ट्समैन, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि नियमावली, 1968 निरस्त हो गई और ड्राफ्ट्समैन की कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति संभव नहीं है। कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर ड्राफ्ट्समैन की पदोन्नति

के बाद, वे उसी संवर्ग का हिस्सा बन जाते हैं अर्थात् कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर और उनकी पदोन्नति नियमावली, 2004 के नियम 5 के अनुसार सीधे नियुक्त कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के साथ विचार की जानी है और आगे पदोन्नति के प्रयोजनों के लिए वर्ग के भीतर कोई वर्ग नहीं हो सकता।

18. श्री बाजपेयी ने आगे प्रस्तुत किया है कि ड्राफ्ट्समैन कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर अपनी पदोन्नति के बाद और भर्ती वर्ष के प्रथम दिन को कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर सात वर्ष पूरे करने पर, सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए पात्र हो जाते हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि सीधी भर्ती वाले कनिष्ठ अभियंताओं (तकनीकी) ने रिट-ए संख्या 15161 of 2021, मनोज कुमार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य दायर करके इलाहाबाद में इस न्यायालय से संपर्क किया था और इस न्यायालय ने दिनांक 7.1.2022 के आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका का निपटारा निम्नलिखित आदेश द्वारा किया था:

"उपरोक्त को देखते हुए, इसलिए, सहायक अभियंता (सिविल) के शेष 18 रिक्त पदों के विरुद्ध आगे की सिफारिशों के संबंध में कोई विवाद नहीं रहता है, यदि 24 अगस्त, 2021 को पहले की गई सिफारिशों में किए गए नोट के अनुसार किया जाता है कि वरिष्ठता सूची के अंतिम रूप देने के लिए 18 रिक्त पदों पर पदोन्नति प्रक्रिया रोक दी गई थी। तदनुसार,

यह आदेश दिया जाता है कि संबंधित प्रतिवादी कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) की अंतिम रूप दी गई वरिष्ठता सूची से 18 रिक्त पदों के विरुद्ध आगे 18 उम्मीदवारों के नाम उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग, प्रयागराज को कानून के अनुसार कड़ाई से उक्त प्रयोजन के लिए निर्धारित मानदंडों को देखते हुए अग्रेषित करेंगे और फिर उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग तदनुसार पदोन्नति के मामले को अंतिम रूप देने के लिए आगे बढ़ेगा। उपरोक्त आदेशानुसार उपयुक्त सिफारिशें उपयुक्त प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से 15 दिनों की अवधि के भीतर की जाएंगी। उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, यह याचिका निपटाई जाती है।" +2

19. दिनांक 7.1.2022 के उक्त निर्णय के बाद, मुख्य अभियंता द्वारा राज्य सरकार को कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए अग्रेषित पूर्व प्रस्ताव दिनांक 10.2.2022, जिसमें केवल सीधी भर्ती वाले कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के नाम थे, का परीक्षण कार्मिक और नियुक्ति विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किया गया। पत्र दिनांक 8.4.2022 के माध्यम से, सरकार ने मुख्य अभियंता (डिजाइन और योजना) को रिट-ए संख्या 15161 of 2021 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 7.1.2022 के आदेश के अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए नियमावली, 2004 के नियम 5 के अधिदेश के अनुसार प्रस्ताव उपलब्ध कराने के लिए लिखा। जबकि मांग पत्र अग्रेषित करने की उपरोक्त प्रक्रिया चल रही थी, मनोज कुमार सिंह और अन्य ने

अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 3107 of 2022 दायर किया, जिसमें रिट ए संख्या 15161 of 2021 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 7.1.2022 के आदेश की अवज्ञा का आरोप लगाया गया था और, इस न्यायालय ने 26.5.2022 को मुख्य अभियंता/विभागाध्यक्ष, उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग को अवमानना नोटिस जारी किया।

20. उपरोक्त परिस्थितियों में, दिनांक 28.5.2022 का मांग पत्र इस न्यायालय द्वारा दिनांक 7.1.2022 के आदेश द्वारा जारी किए गए निर्देश के अनुसार उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को अग्रेषित किया गया था, जिसमें कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) संवर्ग में उनकी वरिष्ठता के आधार पर पात्र उम्मीदवारों {कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)} के नाम का उल्लेख किया गया था, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि वे सीधी भर्ती वाले हैं या पदोन्नत {कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)}, उन्हें नियमावली, 2004 के नियम 5(ii) के अधिदेश के अनुसार एक वर्ग के रूप में मानते हुए।

21. श्री बाजपेयी ने आगे प्रस्तुत किया है कि राज्य प्राधिकारियों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए वैधानिक नियमों के अधिदेश के अनुसार कार्य किया है और जब तक नियमों में संशोधन/परिवर्तन नहीं किया जाता, प्राधिकारी नियमों से विचलित नहीं हो सकते। भेजा गया मांग पत्र नियमावली, 2004 के अनुसार कड़ाई से है और

वर्तमान रिट याचिकाओं में कोई योग्यता नहीं है, जिन्हें खारिज किया जाना चाहिए।

22. श्री रत्नेश चंद्र, निजी विपक्षी संख्या 6 और 8 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विपक्षी संख्या 6 और 8, जिन्हें क्रमशः 6.3.1999 और 20.10.1987 को ड्राफ्ट्समैन के रूप में नियुक्त किया गया था, को क्रमशः 13.8.2003 और 22.3.2010 को कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर पदोन्नत किया गया था, और उनकी पदोन्नति को आज तक कभी चुनौती नहीं दी गई है। कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) की अनंतिम वरिष्ठता सूची 11.6.2008 को जारी की गई थी और अंतिम वरिष्ठता सूची 10.8.2010 को जारी की गई थी। याचिकाकर्ताओं ने कभी भी उक्त वरिष्ठता सूची को चुनौती नहीं दी और न ही विपक्षियों को उक्त वरिष्ठता सूची में रखे जाने पर आपत्ति जताई। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं के लिए यह उचित नहीं है कि वे नियमावली, 2004 के अनुसार कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए पात्र उम्मीदवारों की सूची में निजी विपक्षी संख्या 6 और 8 के शामिल होने को चुनौती दें।

23. श्री रत्नेश चंद्र ने आगे प्रस्तुत किया है कि पहले भी तीन व्यक्तियों, नामतः भगेरू राम, नारायण सिंह जगपाल और बाबू लाल को, जो 10.8.2010 की वरिष्ठता सूची में क्रमशः क्रमांक 143, 144 और 167 पर रखे गए थे और जिनकी नियुक्ति ड्राफ्ट्समैन के

रूप में हुई थी, सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत किया गया था।

24. दूसरी वरिष्ठता सूची 4.6.2020 को प्रकाशित की गई थी, जो 14.9.2021 को अंतिम रूप दी गई थी। याचिकाकर्ताओं और निजी प्रतिवादी पक्षों को उक्त वरिष्ठता सूची में कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर उनकी सेवा की अवधि के अनुसार रखा गया है। केवल चार कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी), जिनकी प्रारंभिक नियुक्ति ड्राफ्ट्समैन के रूप में हुई थी, कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद से उपलब्ध रिक्तियों के विरुद्ध सहायक अभियंता (सिविल) के पदों पर पदोन्नति के लिए पात्र हैं। ऐसा शायद ही कभी हुआ है कि ड्राफ्ट्समैन के पद से उम्मीदवार सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत हो सके क्योंकि वे ड्राफ्ट्समैन के पद से कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद पर बहुत देर से पदोन्नत होते थे और इसलिए वे सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के पात्र नहीं हो सकते थे। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि वर्ष 2010 से आज तक, ड्राफ्ट्समैन संवर्ग से कोई भी कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत नहीं किया जा सका क्योंकि ड्राफ्ट्समैन संवर्ग में कोई भी सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए पात्र नहीं था।

25. 1968, 1984 और 2004 के नियमों के संबंध में, विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता श्री रत्नेश चंद्र ने विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी.के. बाजपेयी के तर्कों को अपनाया है।

26. श्री रत्नेश चंद्र, निजी विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि वर्तमान रिट याचिकाएँ 2004 के नियमों में संशोधन को लागू करने के उद्देश्य से दायर की गई हैं, जिसमें एक प्रस्ताव किया गया है कि जहाँ तक सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति का संबंध है, वह केवल उन व्यक्तियों को दी जानी चाहिए, जिनके पास किसी विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग की डिग्री है या उनके पास सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी संस्थान से सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा हो। तथापि, 2004 के नियमों में आज तक संशोधन नहीं किया गया है। इन नियमों को वैसे ही लागू किया जाना है जैसे वे कानून की किताब में मौजूद हैं। 2004 के नियम सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए इंजीनियरिंग में डिप्लोमा या डिग्री की कोई योग्यता या पात्रता निर्धारित नहीं करते हैं। पात्रता यह है कि एक जूनियर इंजीनियर (तकनीकी) ने सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए उक्त पद पर सात वर्ष की मूल सेवा पूरी की हो। पदोन्नति का मानदंड वरिष्ठता है, जो अयोग्य के निरस्तीकरण के अधीन है।

27. श्री रत्नेश चंद्र ने आगे प्रस्तुत किया है कि यह न्यायालय वैधानिक नियमों में संशोधन के लिए परमादेश जारी नहीं कर सकता क्योंकि नियमों में संशोधन करना कार्यपालिका का विशेषाधिकार है। इस न्यायालय को विधायी शक्ति अपने हाथ में नहीं लेनी चाहिए। किसी पद के लिए योग्यता और पात्रता निर्धारित करना नियोक्ता का काम है, न कि न्यायालय का। जहाँ तक जूनियर इंजीनियर (तकनीकी)

के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति का संबंध है, एकमात्र मानदंड जूनियर इंजीनियर (तकनीकी) के पद पर सात वर्ष की मूल सेवा है, जूनियर इंजीनियर (तकनीकी) की डिग्री, डिप्लोमा या किसी अन्य योग्यता के निरपेक्ष। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि इन रिट याचिकाओं में कोई दम नहीं है, जो खारिज किए जाने योग्य हैं।

28. श्री तुषार वर्मा, विद्वान अधिवक्ता जो विपक्षी पक्ष संख्या 10 और 11 के लिए उपस्थित हुए हैं, ने भी श्री रत्नेश चंद्र, विपक्षी पक्ष संख्या 6 और 8 के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को अपनाया है।

29. श्री जी.सी. वर्मा, रिट-ए संख्या 1514 of 2022 में विपक्षी पक्ष संख्या 4 से 8 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विपक्षी पक्षों को 1968 के नियमों के तहत जूनियर इंजीनियर (तकनीकी) के पद पर पदोन्नत किया गया था और उनकी जूनियर इंजीनियर (तकनीकी) के पद पर पदोन्नति को बारह वर्ष बीत जाने के बाद चुनौती नहीं दी जा सकती। याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति भी 1968 के नियमों के तहत क्रमशः 22.7.2010 और 19.11.2013 के नियुक्ति पत्रों द्वारा की गई थी। विपक्षी पक्षकारों को दिनांक 22.3.2010 के आदेश द्वारा पदोन्नत किया गया था। विपक्षी पक्षकारों की पदोन्नति के समय, याचीगण कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के संवर्ग में उत्पन्न भी नहीं हुए थे और इसलिए, वे इस विलंबित चरण में विपक्षी पक्षकारों की पदोन्नति को चुनौती नहीं दे सकते।

30. विपक्षी संख्या 4 से 8 के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा ने आगे निवेदन किया है कि ये विपक्षी पक्षकार डिप्लोमाधारी हैं और अन्यथा भी वे सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत होने के हकदार हैं। इन विपक्षी पक्षकारों ने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 1305 of 2022 दायर की है, जिसमें उन्होंने मुख्य अभियंता (डिजाइन और योजना), लोक निर्माण विभाग, उ.प्र., लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 10.2.2022 के आदेश को निरस्त करने की प्रार्थना की है, साथ ही एक परमादेश रिट जारी करने की प्रार्थना की है जो विपक्षी पक्षकारों को निदेश दे कि वे कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता सूची तैयार करें, जो कि नियमावली, 2004 के नियम 5 के साथ पठित नियम 16 के अनुसार हो, जो कि मुख्य अभियंता विभागाध्यक्ष, लोक निर्माण विभाग, उ.प्र., लखनऊ द्वारा जारी दिनांक 14.9.2021 की वरिष्ठता सूची के अनुसार हो, और भर्ती वर्ष 2021-22 के लिए अठारह पदों के विरुद्ध सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए याचीगणों के मामले पर विचार करें। याचीगणों के स्वयं के कथन के अनुसार भी, विपक्षी पक्षकार सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत होने के लिए योग्य हैं।

31. विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा ने आगे निवेदन किया है कि याचीगण की नियुक्ति 1968 के नियमों के तहत की गई थी, जबकि विपक्षी पक्षों को उक्त नियमों के तहत पदोन्नत किया गया

था। याचीगण उक्त नियमों को चुनौती दिए बिना 1968 के नियमों के तहत की गई नियुक्तियों और पदोन्नतियों को चुनौती नहीं दे सकते। इसलिए उन्होंने निवेदन किया है कि इन रिट याचिकाओं में कोई दम नहीं है और इस न्यायालय के दिनांक 7.1.2022 के निर्णय और आदेश के निर्देशानुसार, कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति दिनांक 10.8.2010 की वरिष्ठता सूची से पात्र कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) से की जानी है। इसलिए उन्होंने रिट-ए संख्या 3814 / 2022 और 1514 / 2022 को खारिज करने की प्रार्थना की है।

32. लोक सेवा आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. उपाध्याय ने निवेदन किया है कि लोक सेवा आयोग एक औपचारिक पक्षकार है। हालांकि, उन्होंने निवेदन किया है कि चयन वर्ष 2021-22 के लिए कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए अनुपूरक विभागीय पदोन्नति समिति आयोजित करने के लिए दिनांक 28.5.2022 के सरकारी पत्र के संदर्भ में, आयोग के दिनांक 9.1.2023 और 8.2.2023 के पत्रों के अनुसार सरकार द्वारा कुछ विसंगतियों को दूर किया जाना आवश्यक था, लेकिन आज तक सरकार ने उन विसंगतियों को दूर नहीं किया है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि लोक सेवा आयोग को वैधानिक नियमों का पालन करना है। एक बार जब सरकार बताई गई विसंगतियों को दूर कर देती है, तो लोक सेवा आयोग सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के

लिए राज्य सरकार द्वारा अग्रेषित वरिष्ठता सूची से पात्र उम्मीदवारों की पदोन्नति की सिफारिश करेगा।

33. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की ओर से प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

34. नियमावली, 2004 के नियम 5 के अनुसार सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति की पात्रता कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर सात वर्ष की मूल सेवा है, जो वरिष्ठता के आधार पर अयोग्य के निरस्तीकरण के अधीन है। याचिकाकर्ता और निजी विपक्षी पक्षकार एक ही संवर्ग यानी कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) से संबंधित हैं। याचिकाकर्ताओं की सीधी नियुक्ति कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर हुई थी, जबकि निजी विपक्षी पक्षकारों को नियम, 1968 के तहत उक्त पद पर पदोन्नत किया गया था। एक सामान्य वरिष्ठता सूची है, जो अविवादित रही है।

35. इसके मददेनजर, मुझे याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कालिया के इस तर्क में कोई विशेष दम नहीं दिखता कि नियम, 1984 के अधिनियमन के बाद नियम, 1968 निरस्त हो गए। नियम, 1968 ड्राफ्ट्समैन के पद से कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता और प्रक्रिया प्रदान करते हैं। नियम, 1984 के तहत, ड्राफ्ट्समैन के लिए पदोन्नति का एक और मार्ग यानी मुख्य ड्राफ्ट्समैन बनाया गया है, लेकिन नियम, 1968 निरस्त नहीं हुए हैं और

कानून की किताब में अभी भी मौजूद हैं। विपक्षी पक्षकारों को ड्राफ्ट्समैन के पद से कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर के पद पर पदोन्नत किए जाने के बाद, याचिकाकर्ताओं और ऐसे पदोन्नत कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) का संवर्ग एक हो गया यानी कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) का संवर्ग। आगे की पदोन्नति के उद्देश्य से एक वर्ग के भीतर दूसरा वर्ग नहीं हो सकता।

36. न्यायालय पदोन्नति के लिए कोई नई योग्यता निर्धारित नहीं कर सकता, जो कानून/संबंधित सेवा नियमों के तहत निर्धारित नहीं है। इस न्यायालय ने रिट-ए संख्या 15161 वर्ष 2021 में, जो कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी) के सीधी भर्ती वालों द्वारा दायर की गई थी, कनिष्ठ अभियंता (तकनीकी)/कंप्यूटर की अंतिम वरिष्ठता सूची से अठारह योग्य उम्मीदवारों के नाम सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए लोक सेवा आयोग को भेजने का निर्देश दिया था। उक्त निर्देश के अनुपालन में, विपक्षी पक्षों के नाम, जो पदोन्नति के लिए योग्य हैं, को आक्षेपित मांगपत्र में शामिल किया गया है जो पदोन्नति के लिए लोक सेवा आयोग को भेजा गया है। मुझे नहीं लगता कि उक्त मांगपत्र किसी अवैधता से ग्रस्त है या वैधानिक प्रावधान के विरुद्ध है।

37. इसके मददेनजर, मुझे दिनांक 28.5.2022 के आक्षेपित मांगपत्र में कोई त्रुटि नहीं मिलती क्योंकि यह नियमावली, 2004 के नियम 5(2) के अधिदेश के अनुसार सख्ती से भेजा गया है।

38. तदनुसार, मुझे रिट-ए संख्या 3814 वर्ष 2022 और 1514 वर्ष 2022 में कोई सारतत्व नहीं मिलता, जिन्हें एतद्वारा खारिज किया जाता है, जबकि रिट-ए संख्या 1305 वर्ष 2022 को स्वीकार किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 297

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

के समक्ष

रिट-ए संख्या 4279 सन् 2023

अरुण कुमार श्रीवास्तव याचिकाकर्ता

बनाम

प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण

निगम लिमिटेड, लखनऊ ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री संगम सिंह, श्री अंकुर जायसवाल

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता: श्री विवेक सरन

ए. सेवा कानून - सेवानिवृत्ति बकाया - वेतन बकाया - ग्रेच्युटी - पेंशन और ग्रेच्युटी अब सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों को उनकी सेवानिवृत्ति पर वितरित की जाने वाली कोई सौगात नहीं है, बल्कि उनके हाथों में मूल्यवान अधिकार और संपत्ति बन गई है और इसके निपटान और संवितरण में किसी भी तरह की दोषपूर्ण देरी के लिए वास्तविक भुगतान तक वर्तमान बाजार दर पर ब्याज का भुगतान करना होगा। (पैरा 11)

सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों के भुगतान में देरी पर पर्याप्त ब्याज देना होगा। जहाँ तक वेतन के भुगतान में देरी का सवाल है, नियोक्ता पर कर्मचारी को मुआवजा देने का अधिक दायित्व है। दोनों मामलों में दंडात्मक ब्याज दिया जाना चाहिए। (पैरा 11)

चूंकि प्रत्येक सरकारी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की तिथि पहले से ही ज्ञात होती है, इसलिए अपेक्षित जानकारी एकत्र करने और दस्तावेज (एल.पी.सी. (अंतिम वेतन प्रमाण पत्र) और एन.एल.सी. (कोई देयता प्रमाण पत्र)) जारी करने की प्रक्रिया सेवानिवृत्ति की तिथि से कम से कम एक सप्ताह पहले पूरी कर ली जानी चाहिए ताकि सरकारी कर्मचारी को ग्रेज्युटी राशि का भुगतान उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि या अगले दिन किया जा सके और पेंशन का भुगतान अगले महीने की समाप्ति पर किया जा सके। (पैरा 11)

बी. यदि कोई कर्मचारी विभिन्न स्टेशनों पर कार्य करता है तथा उसकी सेवा पुस्तिका उन सभी स्टेशनों पर जाती है, तो जिस प्रकार प्रत्येक ए.सी.आर. तथा अन्य टिप्पणियां लिखी जाती हैं, उसी प्रकार उसका मासिक वेतन तथा अन्य देय राशि भी उन स्टेशनों पर पोस्ट की जानी चाहिए तथा समय पर उसे उपलब्ध कराई जानी चाहिए। (पैरा 10)

वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के वेतन और सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के बकाया भुगतान में देरी बिल्कुल भी औचित्यहीन है। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने विभिन्न स्टेशनों पर सेवा की थी, और इसलिए, उनके सेवा रिकॉर्ड को उन स्टेशनों पर सत्यापित किया जाना था,

यह निगम का दायित्व है, याचिकाकर्ता का नहीं। याचिकाकर्ता को इस देरी के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि इसका दोष पूरी तरह से निगम के कंधों पर है। यह अकल्पनीय है कि कर्मचारी के सेवा में रहने के दौरान कुछ समय के लिए वेतन का भुगतान उसकी सेवानिवृत्ति के बाद किया जाएगा। इसी तरह, सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के भुगतान में भी अनुचित रूप से देरी की गई है और दस साल बाद भुगतान किया गया है। (पैरा 10)

उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड के प्रबंध निदेशक को एक परमादेश जारी किया जाता है, जिसमें उन्हें याचिका में वर्णित कुल धनराशि पर 10% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ उस तिथि से ब्याज का भुगतान करने का आदेश दिया जाता है, जिस दिन से याचिका में उल्लिखित अवैतनिक परिलब्धियों के प्रत्येक मद की देय तिथि थी, उस समय तक की गणना की जाती है जब तक कि संबंधित भुगतान वास्तव में नहीं किया गया था। (पैरा 12)

रिट याचिका स्वीकृत की गई। (ई-4)

पूर्ववर्ती मिसाल:

सेंट ऑफ केरल एवं अन्य बनाम एम. पद्मनाभन नायर, (1985) 1 एससीसी 429 (पैरा 11)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

पक्षकारों ने शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया है।

2. स्वीकार किया जाता है।

3. तुरन्त सुनवाई की जाएगी।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

4. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री संगम सिंह और एकमात्र प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक सरन को सुना गया।

याचिकाकर्ता को 31.8.2009 को सेवानिवृत्त होने के बाद भी सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ जारी नहीं किए गए हैं। प्रतिवादी संख्या 2 याचिकाकर्ता के दावे की जांच करेगा और 3 महीने के भीतर उचित आदेश पारित करेगा। यदि याचिकाकर्ता को किसी भी राशि की रिहाई का हकदार पाया जाता है, तो उसे बिना किसी और देरी के तुरंत जारी किया जाएगा।

5. याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड का पूर्व कर्मचारी है। उन्हें शुरू में निगम की सेवा में उप-इंजीनियर (सिविल) के रूप में नियुक्त किया गया था। अपनी नियुक्ति के दौरान उन्हें पूरे राज्य में विभिन्न स्टेशनों पर तैनात किया गया। याचिकाकर्ता 31.08.2009 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उप अभियंता के पद से सेवानिवृत्त हो गया। बेशक, उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं हुई या नियोक्ताओं को उसके सेवानिवृत्ति के बाद के बकाये के विरुद्ध कोई दावा नहीं करना पड़ा। यह भी विवाद का विषय नहीं है कि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति से पहले, 04.06.2009 को निगम के नई दिल्ली स्थित कार्यालय द्वारा एक नो इयूज सर्टिफिकेट जारी किया गया था, जो याचिकाकर्ता की अंतिम पोस्टिंग का स्थान है। याचिकाकर्ता को पहले भी शिकायत करनी थी। सेवानिवृत्ति के बाद, उनकी सेवानिवृत्ति देय राशि के साथ-साथ सेवानिवृत्ति की तिथि पर मिलने वाले वेतन का बकाया भी नहीं चुकाया गया। इसके कारण याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 5590/2019 दायर की, जिसे इस न्यायालय के एक बहुत ही सामान्य आदेश द्वारा, निम्नलिखित आदेश के अनुसार, 03.02.2010 को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया:

उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

6. दिनांक 03.02.2010 का आदेश पारित होने और संभवतः याचिकाकर्ता द्वारा प्रमाणित प्रति के रूप में प्राप्त होने के बाद, निगम को किसी भी आधिकारिक चैनल के माध्यम से कोई संचार नहीं किए जाने के कारण, इसका अनुपालन नहीं किया गया, जिसके कारण याचिकाकर्ता ने दिनांक 08.03.2010, 18.05.2010 और 12.06.2010 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, जो वस्तुतः निगम का ध्यान इस न्यायालय के दिनांक 03.02.2010 के आदेश की ओर आकर्षित करने की मांग करते थे, जिसका उल्लेख पहले किया गया था।

7. चूंकि अनुपालन में कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए याचिकाकर्ता को अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 3433/2010 के तहत हमारे अवमानना क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए इस न्यायालय में याचिका दायर करनी पड़ी। अवमानना मामले में निगम या निगम

की ओर से उत्तरदायी अधिकारी को इस न्यायालय के आदेशों का पालन करने के लिए नोटिस जारी किया गया। अवमानना मामले में जारी किए गए नियम के लंबित रहने तक, निगम ने याचिकाकर्ता को विभिन्न मदों के अंतर्गत सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का भुगतान किया, जिसमें वेतन, ग्रेच्युटी और अवकाश नकदीकरण का बकाया शामिल है। वेतन के बकाये का भुगतान विभिन्न अवधियों के लिए किया गया था, जिनका भुगतान नहीं किया गया था और इन अवधियों का पूरा विवरण याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ 14 में सारणीबद्ध रूप में दिया गया है। इस तालिका के अवलोकन से पता चलता है कि दस अलग-अलग समयावधियों के लिए वेतन का बकाया भुगतान किया गया था, जबकि विभिन्न मदों के अलावा, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभ देय थे।

8. याचिकाकर्ता का कहना है कि यद्यपि पैरा 14 में दर्शाई गई विभिन्न धनराशियों का भुगतान उन्हें किया गया है, लेकिन भुगतान में दस वर्ष का अस्पष्ट और दोषपूर्ण विलंब किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता ने अब इस धनराशि पर ब्याज का दावा किया है, जिसे रोक लिया गया है। याचिकाकर्ता ने अपनी सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि तथा वेतन के बकाया भुगतान में हुई देरी के कारण ब्याज के लिए अपने दावे को लागू करने का प्रयास किया, जबकि वेतन का भुगतान सेवा के दौरान किया जाना चाहिए था, तथा इस मामले को एक बार फिर निगम के समक्ष प्रस्तुत किया।

निगम ने पुनः, बकाया राशि पर ब्याज के भुगतान के लिए याचिकाकर्ता की याचिका पर ध्यान न देते हुए, पात्रता की समयावधि से बहुत अधिक भुगतान कर दिया। व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 2435/2022 के तहत इस न्यायालय के अवमानना क्षेत्राधिकार का आह्वान किया। उक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान, निगम ने बाद में अवमानना आवेदन पर सुनवाई करते हुए न्यायालय के समक्ष अपना पक्ष रखा कि याचिकाकर्ता को मिलने वाली सभी बकाया राशि का भुगतान कर दिया गया है। इस न्यायालय की, अवमानना के मामले में, इस अवसर पर यह राय थी कि रिट पक्ष के आदेश में कोई ब्याज नहीं दिया गया था, इसलिए अवमानना का कोई मामला नहीं बनता था। तदनुसार, दिनांक 11.11.2022 के आदेश द्वारा अवमानना आवेदन को खारिज कर दिया गया। फिर भी, ऐसा होने से पहले, 31.12.2021 को, आक्षेपित आदेश द्वारा, निगम ने याचिकाकर्ता के दावे को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि उन्होंने याचिकाकर्ता के अवैतनिक वेतन के सभी बकाए का भुगतान कर दिया है जो निगम के विभिन्न स्टेशनों पर उसकी सेवा के बदले में बकाया था।

9. इस मामले में 17.05.2023 के आदेश के तहत निगम को नोटिस जारी किया गया, जिसमें उनसे रिटर्न दाखिल करने को कहा गया। निगम की ओर से अधिवक्ता श्री विवेक सरन द्वारा दायर प्रति शपथपत्र में, रिट याचिका के पैरा 14 के उत्तर में कहा गया है कि सेवा अवधि के दौरान याचिकाकर्ता निगम की दस विभिन्न इकाइयों में तैनात था, और

सेवानिवृत्ति के बाद, उसके वेतन/बकाया का भुगतान किया गया है। प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 14 में आगे कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता की सेवा पुस्तिका अधूरी थी, इसलिए रिकॉर्ड एकत्र करने और उसे पूरा करने में समय लगा। इसलिए, याचिकाकर्ता के बकाया वेतन और सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के भुगतान में देरी इसी कारण हुई बताई जा रही है। संक्षेप में, यह वह बचाव है जिसे निगम ने ब्याज देने से इंकार करने वाले आक्षेपित आदेश को उचित ठहराने के लिए अपनाया है। निगम ने अपने आदेश में याचिकाकर्ता की बकाया राशि पर ब्याज का भुगतान करने से इंकार करने के औचित्य के बारे में कुछ भी नहीं कहा है, जिसका भुगतान काफी देरी से किया गया है।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, यह न्यायालय इस राय पर पहुंचा है कि याचिकाकर्ता के वेतन और सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के बकाया भुगतान में देरी बिल्कुल औचित्यहीन है। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता ने विभिन्न स्टेशनों पर सेवा की थी, और इसलिए, उसके सेवा अभिलेखों का सत्यापन उन स्टेशनों पर किया जाना था, यह निगम का दायित्व है, याचिकाकर्ता का नहीं। इस विलम्ब के लिए याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि इसका दोष पूरी तरह से निगम के कंधों पर है। यदि कोई कर्मचारी विभिन्न स्टेशनों पर कार्य करता है और उसकी सेवा पुस्तिका उन सभी स्टेशनों पर जाती है, तो जिस प्रकार प्रत्येक एसीआर व अन्य टिप्पणियां लिखी जाती हैं, उसी प्रकार उसका मासिक वेतन व अन्य देय राशि भी उन

स्टेशनों पर पोस्ट की जानी चाहिए तथा उसे समय पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए। यह अकल्पनीय है कि किसी कर्मचारी को सेवाकाल के दौरान दिए गए वेतन का भुगतान उसकी सेवानिवृत्ति के बाद किया जाएगा। संभवतः, विभिन्न स्थानों पर वेतन प्राप्त करने के मामले में याचिकाकर्ता को होने वाली देरी सार्वजनिक रोजगार की पहचान है, जहां नियोक्ता, नियोक्ता से कहीं अधिक होता है। इस मामले में निगम जैसे सार्वजनिक रोजगार में, यह केवल इतना ही नहीं है कि नियोक्ता एक स्वामी या एक साधारण नियोक्ता से नौकर के रिश्ते में खड़ा होता है। सार्वजनिक नियोक्ता प्राधिकारियों की तरह व्यवहार करते हैं, जिन्हें कर्मचारी सेवा में रहते हुए किसी भी तरह से परेशान नहीं करना चाहते। बात यहां तक पहुंच सकती है कि यदि किसी कर्मचारी को लंबे समय तक वेतन नहीं दिया जाता है, तो कर्मचारी का मानना है कि विवेक ही वीरता का श्रेष्ठ अंग है और उसे अपना वेतन नहीं मांगना चाहिए, अन्यथा वह प्राधिकारियों के क्रोध का शिकार हो जाएगा, जो कि सार्वजनिक नियोक्ता हैं। निरपवाद रूप से, इन निगमों का नेतृत्व राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किया जाता है, जिन्हें अपनी भूमिका को सिविल प्रशासकों से अलग करना कठिन लगता है, तथा वाणिज्यिक व्यवसाय करने वाले निगमों में कार्यरत नियोक्ताओं के बीच अंतर करना कठिन होता है, जहां कर्मचारियों के कल्याण का ध्यान अलग तरीके से रखना होता है। किसी भी स्थिति में, भले ही यह विशुद्ध रूप से सरकारी रोजगार हो, किसी भी नियोक्ता को इस तरह से व्यवहार करने की अनुमति नहीं है तथा किसी कर्मचारी का वेतन

रोककर रखना चाहिए, जिसका भुगतान उसे सेवानिवृत्ति के बाद ही किया जाना चाहिए। यहाँ भी यही मामला है। याचिकाकर्ता को दस अलग-अलग स्टेशनों पर तैनात रहने के दौरान अलग-अलग समय के लिए वेतन मिला है, जबकि वह सेवानिवृत्त हो चुका है। यह न्यायालय यह नहीं कहेगा कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है। यह न्यायालय कहेगा कि यह दोषपूर्ण है और इसके लिए दण्ड मिलना चाहिए। इसी प्रकार, सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों के भुगतान में भी अनुचित देरी की गई है तथा इनका भुगतान दस वर्ष बाद किया गया है।

11. केरल राज्य एवं अन्य बनाम एम.

पद्मनाभन नायर मामले में तय ग्रेच्युटी का भुगतान सेवानिवृत्ति के अगले दिन किया जाना है। सर्वोच्च न्यायालय तथा देश भर के विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों में यह बात तय की गई है कि सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों के भुगतान में देरी पर पर्याप्त ब्याज अवश्य देना चाहिए। जहाँ तक वेतन भुगतान में देरी का सवाल है, नियोक्ता पर कर्मचारी को मुआवजा देने का अधिक दायित्व है। दोनों मामलों में दंडात्मक ब्याज दिया जाना चाहिए। सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के भुगतान में देरी के मामले में ब्याज और दंडात्मक ब्याज के अधिनिर्णय के संबंध में, एम पद्मनाभन नायर (उपरोक्त) में यह निर्णय दिया गया था:

1. पेंशन और ग्रेच्युटी अब सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों को उनकी सेवानिवृत्ति पर वितरित की जाने वाली कोई सौगात नहीं रह गई है, बल्कि इस न्यायालय के निर्णयों के तहत, ये

उनके हाथों में मूल्यवान अधिकार और संपत्ति बन गई है तथा इनके निस्तारण और वितरण में किसी भी प्रकार की दोषपूर्ण देरी के लिए वास्तविक भुगतान होने तक वर्तमान बाजार दर पर ब्याज का भुगतान करना होगा।

2. आमतौर पर देरी संबंधित विभागों से एलपीसी (अंतिम वेतन प्रमाण पत्र) और एनएलसी (कोई देयता प्रमाण पत्र) प्रस्तुत न किए जाने के कारण होती है, लेकिन ये दोनों दस्तावेज ऐसे मामलों से संबंधित हैं, जिनका रिकॉर्ड संबंधित सरकारी विभागों के पास होगा। चूंकि प्रत्येक सरकारी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की तारीख पहले से ही ज्ञात होती है, इसलिए हम यह समझने में असफल रहे हैं कि अपेक्षित जानकारी एकत्र करने और इन दो दस्तावेजों को जारी करने की प्रक्रिया सेवानिवृत्ति की तारीख से कम से कम एक सप्ताह पहले पूरी क्यों नहीं की जानी चाहिए, ताकि सरकारी कर्मचारी को ग्रेच्युटी राशि का भुगतान उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख या अगले दिन किया जा सके और पेंशन का भुगतान अगले महीने की समाप्ति पर किया जा सके। किसी सरकारी कर्मचारी को उसकी सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद सेवानिवृत्ति बकाया राशि का शीघ्र भुगतान करने की आवश्यकता पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता है और यह निर्देश देना अनुचित नहीं होगा कि वर्तमान बाजार दर पर इन बकाया राशि पर दंडात्मक ब्याज का भुगतान करने की देयता सेवानिवृत्ति की तारीख से दो महीने की समाप्ति पर शुरू होनी चाहिए।

12. इन परिस्थितियों में, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकृत की जाती है। प्रबंध

निदेशक, उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड को एक परमादेश जारी किया जाता है, जिसमें उन्हें पैरा 14 में वर्णित कुल धनराशि पर 10% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ उस तिथि से ब्याज का भुगतान करने का आदेश दिया जाता है, जिस दिन पैरा 14 में तालिका में उल्लिखित अवैतनिक परिलब्धियों की प्रत्येक मद देय होती है, उस समय तक की गणना की जाती है जब तक कि संबंधित भुगतान वास्तव में नहीं किया जाता है।

13. चूंकि अलग-अलग समयावधियों में विलम्बित भुगतानों की 25 विभिन्न मदों पर ब्याज की गणना करना शामिल है, इसलिए इस मामले को इस न्यायालय के महानिबन्धक के समक्ष रखा जाए, जिसके समक्ष दोनों पक्ष उपस्थित होंगे और खातों की गणना करेंगे। महानिबन्धक, इस न्यायालय के आदेशों के अनुसार, देय कुल राशि को प्रमाणित करेगा, और उक्त राशि, किसी भी आपत्ति के अधीन जो पक्षकार न्यायालय के समक्ष करना चाहें, निगम द्वारा याचिकाकर्ताओं को दो महीने की अवधि के भीतर देय अंतिम राशि होगी।

14. इस आदेश की एक प्रति प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड तथा महानिबन्धक को आवश्यक अनुपालन हेतु प्रेषित की जाए।

(2023) 7 ILRA 301

**मूल क्षेत्राधिकार
दीवानी पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023 और
25.05.2023**

**माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार - IV,
रिट-ए संख्या 4654 सन् 2023**

**भारत संघ और अन्य ...याचिकाकर्तागण
बनाम**

मनोज पाल और अन्य ...प्रत्यर्थीगण

**याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता: श्री अनुपम
कुमार**

**प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: श्री पवनेश तिवारी,
डॉ. डी.के. तिवारी**

**ए. सेवा कानून - निलंबन - कानून की व्याख्या
- केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और
अपील) नियम, 1965 - नियम 10(6);
औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा
17 - कंपनी अधिनियम, 1956 - धारा 108 -
यह पता लगाने के लिए परीक्षण कि कोई
प्रावधान अनिवार्य है या निर्देशात्मक। जिन
सिद्धांतों के लिए प्रावधान किया गया है,
उसकी प्रकृति, प्रावधान बनाने में विधानमंडल
की मंशा और प्रावधान की भाषा पर विचार
किया जाना चाहिए। 'करेगा' या 'कर सकता है'
शब्द की व्याख्या करते समय, यह तय करना
कि अनिवार्य है या निर्देशात्मक, न्यायालय को
विधानमंडल की वास्तविक मंशा का पता
लगाना होगा, इसके लिए उसे कानून के पूरे
दायरे पर ध्यान देना होगा। (पैरा 16, 18)
विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या नियम 10 के
उपनियम (7) के साथ पढ़ा जाए तो उपनियम**

(6) में 'करेगा' शब्द अनिवार्य है या रिट याचिका खारिज की गई। (ई-4) निर्देशात्मक। (पैरा 15)

निषेध और नकारात्मक शब्द शायद ही कभी निर्देशात्मक हो सकते हैं। यह सटीक रूप से कहा गया है कि आदेश का पालन करने का एक तरीका है और वह है निषिद्ध कार्य को करने से पूरी तरह बचना। इसलिए, जब कानून अनिवार्य होता है तो नकारात्मक निषेधात्मक और अनन्य शब्द विधायी इरादे के संकेत होते हैं। (पैरा 19, 20)

नियम 1965 के नियम 10 के उपनियम (7) के अधिदेश से, प्रावधान को अनिवार्य बनाते हुए नकारात्मक और निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नब्बे दिन की अवधि समाप्त होने के बाद, निलंबन का आदेश नियम की दृष्टि में वैध नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, नियम के संचालन द्वारा निलंबन आदेश समीक्षा समिति की सिफारिश पर सक्षम प्राधिकारी के आदेश के अभाव में निलंबन को अमान्य कर देता है। (पैरा 21)

वर्तमान मामले में, सक्षम प्राधिकारी ने डाकघर की तरह काम करते हुए समीक्षा समिति की सिफारिशों को केवल संप्रेषित किया है, न तो निलंबन के आदेश को स्वीकार किया है और न ही निरस्त किया है। इस बारे में कोई विचार नहीं किया गया है कि समीक्षा समिति की सिफारिश को स्वीकार किया जाए या नहीं। सक्षम प्राधिकारी को निलंबन को बढ़ाने या रद्द करने के लिए आदेश पारित करना होगा, यद्यपि आदेश का कथनात्मक एवं कारणयुक्त होना आवश्यक नहीं है। (पैरा 22)

पूर्ववर्ती मिसाल:

1. सी. ब्राइट बनाम जिला कलेक्टर एवं अन्य, 2021 (2) एससीसी 392 (पैरा 16)
2. रेमिंगटन रैंड ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम वर्कमेन, एआईआर 1968 एससी 224 (पैरा 17)
3. मन्नालाल खेतान बनाम केदार नाथ खेतान, (1860) 30 एलजे अध्याय 379 (पैरा 19)
4. रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम म्यूनिसिपल बोर्ड, रामपुर, एआईआर 1965 एससी 895 (पैरा 19)
5. भीखराज जयपुरिया बनाम यू.ओ.आई., एआईआर 1962 एससी 113 (पैरा 19)
6. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम ए.के. पांडे, (2009) 10 एससीसी 552 (पैरा 20)

वर्तमान याचिका में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 10.11.2023 के आदेश को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और मूल आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री वीके तिवारी को सुना।
2. याचिकाकर्ता-भारत संघ/डाकघर विभाग, इस रिट याचिका द्वारा केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 10 नवंबर 2023 को चुनौती दे रहा है, जिसके तहत अधिकरण के समक्ष प्रथम

प्रतिवादी को निलंबित करने वाला आक्षेपित निलंबन आदेश इस कारण से रद्द कर दिया गया कि केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली 1965 के नियम 10 के उप-नियम (6) का अनुपालन नहीं किया गया था। आदेश का प्रभावी भाग इस प्रकार है:

"24. चूंकि निलंबन आदेश दिनांक 25.11.2019 को औपचारिक आदेश के माध्यम से 90 दिनों की समाप्ति के भीतर विस्तारित नहीं किया गया था, इस प्रकार सीसीएस (सीसीए) नियमावली 1965 के नियम 6 और 7 के तहत निर्धारित प्रक्रियाओं का स्पष्ट रूप से खंडन किया गया, जहां 90 दिनों की समाप्ति के बाद निलंबन आदेश का बाद में विस्तार इसे वैध नहीं करेगा क्योंकि समीक्षा बैठक के प्रस्ताव को जारी करना मात्र, प्रारंभिक अवस्था में पारित निलंबन आदेश के विस्तार के औपचारिक आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है। इस सामान्य कारण से और माननीय सर्वोच्च न्यायालय और माननीय उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, पर विचार करते हुए, और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ इसकी तुलना करते हुए, मेरा विचार है कि आवेदक द्वारा ली गई दलील स्वीकार किये जाने योग्य है।

25. तदनुसार, वर्तमान मूल आवेदन को स्वीकार किया जाता है और आक्षेपित आदेश दिनांक 25.11.2019 रद्द किया जाता है। इसके अलावा, प्रतिवादियों को आवेदक के खिलाफ जारी किए निलंबन आदेश दिनांक

25.11.2019 से पूर्व उसके द्वारा संपादित किए जा रहे मूल कर्तव्यों पर, स्थापित नियमों और प्रक्रियाओं के अनुसार सभी परिणामी लाभों के साथ, बहाल करने का निर्देश दिया जाता है।"

3. प्रतिवादी कर्मचारी/मूल आवेदक डाक सहायक के रूप में काम कर रहा था, उसे डाकघरों के अधीक्षक, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 25 नवंबर 2009 द्वारा निलंबित कर दिया गया था। नियमावली 1965 के नियम 10 में नियुक्ति प्राधिकारी या कोई अन्य प्राधिकारी जिसके वह अधीनस्थ है या अनुशासनिक प्राधिकारी या सामान्य या विशेष आदेश के माध्यम से उस संबंध में अधिकृत किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा, निलंबन का प्रावधान है।

4. दिनांक 3 जनवरी 2004 को शामिल किये गए उप-नियम (6) में यह प्रावधान है कि इस नियम के तहत किए गए या किए माने गए निलंबन की समीक्षा उस प्राधिकारी द्वारा की जानी चाहिए जो समीक्षा समिति की सिफारिश पर निलंबन के आदेश की तारीख से नब्बे दिन की समाप्ति से पहले निलंबन को संशोधित या रद्द करने के लिए सक्षम है।

5. सक्षम प्राधिकारी को समीक्षा समिति की सिफारिश पर निलंबन को बढ़ाने या रद्द करने का आदेश पारित करना आवश्यक है। नियम में निलंबन के विस्तार का भी प्रावधान है, हालांकि, निलंबन एक बार में 180 दिनों से अधिक की अवधि के लिए नहीं होना चाहिए। उप-नियम (7) में आगे यह प्रावधान है कि

नियम के तहत किया गया निलंबन नब्बे दिनों की अवधि के बाद वैध नहीं होगा, जब तक कि इसे समीक्षा के बाद बढ़ाया न जाए।

संबंध में सक्षम प्राधिकारी ने निलंबन को बढ़ाने अथवा निरस्त करने संबंधी कोई आदेश पारित नहीं किया था।

6. नियम 10 के उप-नियम (6) और (7) का उद्धरण इस प्रकार है:

"6. इस नियम के तहत किए गए या किए माने गए निलंबन के आदेश की समीक्षा उस प्राधिकारी द्वारा की जाएगी जो इस उद्देश्य के लिए गठित समीक्षा समिति की सिफारिश पर निलंबन के आदेश की तारीख से नब्बे दिनों की समाप्ति से पहले निलंबन को संशोधित या रद्द करने के लिए सक्षम है और निलंबन को बढ़ाने या रद्द करने के आदेश पारित करेगा। निलंबन की विस्तारित अवधि की समाप्ति से पहले बाद की समीक्षाएं की जाएंगी। निलंबन का विस्तार एक बार में एक सौ अस्सी दिनों से अधिक की अवधि के लिए नहीं होगा।

7. उप-नियम (5) (ए) में निहित किसी भी बात के बावजूद, इस नियम के उप-नियम (1) या (2) के तहत किए गए या किए माने गए निलंबन का आदेश नब्बे दिनों की अवधि के बाद वैध नहीं होगा जब तक कि इसे नब्बे दिनों की समाप्ति से पहले समीक्षा के बाद आगे की अवधि के लिए विस्तारित नहीं किया जाता है।"

7. पत्रावली के अवलोकन के पश्चात विद्वान अधिकरण की राय थी कि नियम 10 के उपनियम (6) के अधिदेश का अनुपालन नहीं किया गया था क्योंकि समीक्षा समिति की अनुशंसा पर निलंबन आदेश के

8. वाराणसी पश्चिम मंडल में दिनांक 20 फरवरी 2020 को आयोजित निलंबन मामलों की समीक्षा समिति की बैठक के कार्यवृत्त को पत्रावली में रखा गया है।

9. तीन सदस्यों की समीक्षा समिति ने प्रतिवादी/मूल आवेदक के मामले पर विचार किया तथा मामले की गंभीरता को देखते हुए समिति ने दिनांक 23 फरवरी 2020 से अगले 180 दिनों के लिए, अर्थात् निलंबन आदेश की तिथि (25 नवंबर, 2019) से नब्बे दिनों की समाप्ति के पश्चात, अधिकारी का निलंबन जारी रखने की अनुशंसा की।

10. समीक्षा समिति के उसी कार्यवृत्त पर, सक्षम प्राधिकारी अर्थात् अधीक्षक डाकघर, वाराणसी ने समीक्षा समिति की अनुशंसा की प्रति प्रतिवादी/मूल आवेदक एवं अन्य पदाधिकारियों को मार्क करते हुए हस्ताक्षर किया। दूसरे शब्दों में, सक्षम प्राधिकारी ने नियमावली 1965 के नियम 10 के उपनियम (6) के अनुसार समीक्षा समिति की अनुशंसा पर निलंबन बढ़ाने या रद्द करने का कोई आदेश पारित नहीं किया।

11. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि समीक्षा समिति की प्रति अग्रेषित करते हुए हस्ताक्षर करने से समीक्षा समिति की अनुशंसा को स्वीकार कर लिया जाना, माना जाएगा।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील योग्यता से रहित है, और नियमावली 1965 के नियम 10 के उपनियम (6) एवं (7) को गलत ढंग से पढ़कर किया गया है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा कर्मचारी को अनुशंसा अग्रेषित करने मात्र से सक्षम प्राधिकारी द्वारा निलंबन को स्वीकार या रद्द करना नहीं माना जा सकता।

13. उप-नियम (6) में यह अनिवार्य किया गया है कि समीक्षा समिति की सिफारिश पर निलंबन को स्वीकार या निरस्त करने के लिए आदेश पारित किया जाना चाहिए। नियम 10 के उप-नियम (6) और (7) को इस तरह से तैयार किया गया है कि यह नियम अनिवार्य हो जाता है। यदि निलंबन आदेश को नब्बे दिनों के भीतर बढ़ाया या निरस्त नहीं किया जाता है, तो नकारात्मक परिणाम स्वतः ही आ जाते हैं, अर्थात्, नियमावली 1965 के उप-नियम 5(ए) में निहित किसी भी बात के बावजूद, नब्बे दिनों के बाद निलंबन वैध नहीं होगा।

14. उप-धारा (6) में यह अभिव्यक्ति प्रयुक्त की गई है कि प्राधिकारी द्वारा निलंबन की 'समीक्षा की जाएगी'। निर्धारित समय के भीतर निलंबन की समीक्षा करने में विफलता की स्थिति में होने वाले परिणामों को ध्यान में रखते हुए समीक्षा अनिवार्य रूप से की जानी आवश्यक है।

15. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उपनियम (6) में 'करेगा' शब्द नियम 10 के उपनियम

(7) के साथ पढ़ा जाए तो यह अनिवार्य है या निर्देशात्मक।

16. सी. ब्राइट बनाम जिला कलेक्टर और अन्य में, सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि 'करेगा' या 'कर सकता है' शब्द अनिवार्य है या निर्देशात्मक, इसकी व्याख्या करते समय, न्यायालय को विधान के संपूर्ण दायरे पर सावधानीपूर्वक ध्यान देकर विधानमंडल की वास्तविक मंशा का पता लगाना होगा। पैरा-8 इस प्रकार है:

“संविधि की व्याख्या का एक सुस्थापित नियम यह है कि किसी संविधि में “करेगा” शब्द का उपयोग, अनिवार्य रूप से यह नहीं दर्शाता है कि हर मामले में यह अनिवार्य है कि जब तक संविधि के शब्दों का शाब्दिक रूप से पालन नहीं किया जाता है, कार्यवाही या कार्यवाही का परिणाम, अमान्य होगा। यह कहना हमेशा सही नहीं होता है कि यदि “कर सकता है” शब्द का उपयोग किया गया है, तो संविधि केवल इस अर्थ में अनुमेय या निर्देशात्मक है कि उन प्रावधानों का पालन न करने से कार्यवाही अमान्य नहीं होगी और जब कोई संविधि “करेगा” शब्द का उपयोग करती है, तो प्रथम दृष्टया, यह अनिवार्य है, लेकिन न्यायालय संविधि के संपूर्ण दायरे पर सावधानीपूर्वक ध्यान देकर विधायिका के वास्तविक इरादे का पता लगा सकता है। संविधि के संदर्भ और योजना की जांच किए बिना सभी परिस्थितियों में केवल संविधि के शाब्दिक निर्माण का सिद्धांत संविधि के उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है।”

17. **रेमिंगटन रैंड ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम वर्कमैन** में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 17, जो श्रम न्यायालय द्वारा पंचाट के प्रकाशन के लिए तीस दिन की समय-सीमा निर्धारित करती है, अन्य बातों के साथ-साथ, निर्देशात्मक है, क्योंकि तीस दिनों की अवधि के भीतर पंचाट का प्रकाशन न करने पर कोई दंड नहीं लगता है।

18. यह पता लगाने के लिए परीक्षण, कि कोई प्रावधान अनिवार्य है या निर्देशात्मक, जिन सिद्धांतों के लिए प्रावधान बनाया गया है, उसकी प्रकृति, प्रावधान बनाने में विधायिका का इरादा और प्रावधान की भाषा पर विचार किया जाना चाहिए।

19. **मन्नालाल खेतान बनाम केदार नाथ खेतान** में, कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 108 पर विचार करते समय, **रजा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम म्यूनिसिपल बोर्ड, रामपुर** का हवाला देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि निषेध और नकारात्मक शब्द बहुत कम ही निर्देशात्मक हो सकते हैं। यह उचित रूप से कहा गया है कि आदेश का पालन करने का एक तरीका है और वह है निषिद्ध कार्य करने से पूरी तरह बचना। इसलिए, जब कानून अनिवार्य होता है तब नकारात्मक, निषेधात्मक और अपवर्जी शब्द विधायी मंशा के सूचक होते हैं। (संदर्भ : भीखराज जयपुरिया बनाम भारत संघ)

20. पूर्वोक्त प्राधिकारी को **भारत संघ एवं अन्य बनाम ए.के. पांडे** में संदर्भित किया गया था। दूसरे शब्दों में, नकारात्मक या निषेधात्मक शब्दों के बाद 'करेगा' शब्द सामान्यतः प्रावधान की अनिवार्य मंशा के सूचक होते हैं।

21. तदनुसार, नियमावली 1965 के नियम 10 के उपनियम (7) के अधिदेश से, नकारात्मक और निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग प्रावधान को अनिवार्य बनाता है। नब्बे दिन की समाप्ति के बाद, निलंबन का आदेश नियम की दृष्टि में वैध नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, नियम के संचालन से निलंबन आदेश, समीक्षा समिति की सिफारिश पर सक्षम प्राधिकारी के आदेश के अभाव में निलंबन को अवैध बना देता है।

22. वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार, सक्षम प्राधिकारी ने डाकघर की तरह काम करते हुए समीक्षा समिति की सिफारिशों को केवल संप्रेषित किया है, और निलंबन के आदेश को स्वीकार या निरस्त नहीं किया है। इस बारे में कोई विचार नहीं किया गया है, कि समीक्षा समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया जाए या नहीं। सक्षम प्राधिकारी को निलंबन को बढ़ाने या निरस्त करने के लिए आदेश पारित करना होगा, हालांकि आदेश को स्पष्ट और तर्कपूर्ण होना ज़रूरी नहीं है।

23. हमें याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कोई दम नहीं दिखता।

24. रिट याचिका में कोई दम नहीं होने के कारण, उसे **खारिज किया जाता है**।

25. कोई खर्च नहीं।

(2023) 7 ILRA 306

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

के समक्ष

रिट-ए संख्या 5435 सन् 2010

शिवेंद्र वशिष्ठ

....याचिकाकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: विशाल वर्मा

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., महेंद्र प्रताप,
संजय भसीन

ए. सेवा कानून - नियुक्ति - समान स्थिति वाले चयनित उम्मीदवारों को पद पर शामिल होने की अनुमति देने में भेदभाव की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह स्पष्ट है कि एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था और याचिकाकर्ता को जारी किए गए नियुक्ति पत्र के आधार पर छह अन्य व्यक्तियों के साथ, चार व्यक्तियों अर्थात् नीरज कुमार गुप्ता, संतोष कुमार उपाध्याय, संजीव सिंह और सीमा वर्मा को मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ में शामिल होने दिया गया था। बाद में, 22.05.2009 के आदेश के तहत उनकी नियुक्ति रद्द कर दी गई। इसके बाद, कई रिट याचिकाओं में इस न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप, प्रतिवादियों द्वारा 22.05.2009 के आदेश को

वापस ले लिया गया और उपर्युक्त चार व्यक्तियों को उनके संबंधित पद पर फिर से शामिल होने की अनुमति दी गई। हालांकि, याचिकाकर्ता, जिसका नाम उपरोक्त सूची में क्रम संख्या 4 पर है, को तकनीकी आधार पर शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई है। इस तथ्य को स्वयं प्रति-शपथपत्र में स्वीकार किया गया है कि चार व्यक्तियों को शुरू में उच्च अधिकारियों के निर्देश पर शामिल होने की अनुमति दी गई थी। इसलिए, इस तरह के भेदभाव को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती। (पैरा 13)

यदि उपर्युक्त चारों व्यक्ति एक ही विज्ञापन के तहत एक ही चयन का हिस्सा थे और उन्हें एक ही नियुक्ति पत्र के तहत पद पर शामिल होने की अनुमति दी गई थी, तो याचिकाकर्ता को अपने संबंधित पद पर शामिल होने की अनुमति नहीं देने का कोई कारण नहीं है। (पैरा 14)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-4)

वर्तमान याचिका में प्रत्यर्थीगण को 24.02.2009 के नियुक्ति आदेश के अनुसरण में और 16.07.2010, 22.02.2010 और 23.03.2010 के निर्णयों और आदेशों के आलोक में फार्मासिस्ट के पद पर काम करने की अनुमति देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने का अनुरोध किया गया है, जिसमें प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को ज्वाइनिंग लेटर जारी करने और 15.07.2010 के अभ्यावेदन पर विचार करने और निर्णय लेने का निर्देश दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री विशाल वर्मा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी-राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति के एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है जो प्रत्यर्थियों को दिनांक 24.02.2009 के नियुक्ति आदेश के अनुसरण में फार्मासिस्ट के पद पर कार्य करने की अनुमति देने का निर्देश देता है, साथ ही प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ता को कार्यग्रहण पत्र जारी करने का निर्देश देता है, और एक अतिरिक्त प्रार्थना के साथ परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है जो प्रत्यर्थियों को दिनांक 15.07.2010 के अभ्यावेदन पर विचार करने और निर्णय लेने का और दिनांक 16.07.2010, 22.02.2010 एवं 23.03.2010 के निर्णयों और आदेशों के प्रकाश में याचिकाकर्ता को पद पर कार्य करने की अनुमति देने का निर्देश देता है।

3. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार हैं:

क्र.सं.	मामले के प्रासंगिक तथ्य
क.	दिनांक 29.08.2008 को चिकित्सा शिक्षा एवं प्रशिक्षण महानिदेशक (संक्षेप में, "डीजीएमई"), लखनऊ द्वारा राजकीय मेडिकल कॉलेज, कन्नौज में फार्मासिस्ट के पद के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया था।
ख.	दिनांक 21.01.2009 को एक

	अधिसूचना जारी की गई थी कि सभी आवेदक जिनके पास फार्मसी के डिप्लोमा में 62% अंक हैं, वे दिनांक 28.01.2009 से 03.02.2009 तक उपस्थित होंगे।
ग.	दिनांक 02.02.2009 को, डीजीएमई द्वारा याचिकाकर्ता को अन्य छह व्यक्तियों के साथ फार्मासिस्ट के पद के लिए साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए एक बुलावा पत्र भेजा गया था और उसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता साक्षात्कार में उपस्थित हुआ।
घ.	दिनांक 18.02.2009 को, मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ के प्राचार्य द्वारा डीजीएमई को एक पत्र पृष्ठांकित किया गया था जिसमें मेडिकल कॉलेज, कन्नौज की प्रतीक्षा सूची से विभिन्न पदों को भरने के लिए कहा गया था।
ङ.	दिनांक 24.02.2009 को, मेडिकल कॉलेज, कन्नौज द्वारा याचिकाकर्ता को अन्य छह व्यक्तियों के साथ मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ में फार्मासिस्ट के पद पर कार्यग्रहण करने के लिए एक नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता को कार्यग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई, हालांकि, चार व्यक्तियों को उक्त नियुक्ति पत्र के अनुसरण में कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई थी।
च.	दिनांक 22.05.2009 को, उन चार व्यक्तियों की नियुक्ति, जिन्होंने सेवा में कार्यग्रहण कर लिया था, रद्द कर दी गई।

छ.	दिनांक 25.06.2009 को, माननीय उच्च न्यायालय ने दिनांक 22.05.2009 के निरस्तीकरण आदेश पर रोक लगा दी और चारों व्यक्तियों को दिनांक 04.11.2009 को पुनः कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई।
ज.	दिनांक 15.07.2010 को, याचिकाकर्ता ने संबंधित अधिकारियों को एक अभ्यावेदन दिया, जो विचाराधीन पड़ा हुआ है और आज तक कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।
झ.	अतः, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

छोड़कर चार व्यक्तियों को उक्त पद पर पुनः कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई है और इस संबंध में याचिकाकर्ता ने अभ्यावेदन भी किया है, जो लंबित पड़ा है और उस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई है। इसलिए, प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ता को वंचित करके भेदभावपूर्ण नीति अपनाते हुए चुन-चुन कर फार्मूला अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

7. दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 29.08.2008 का विज्ञापन मेडिकल कॉलेज, कन्नौज में उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए फार्मासिस्ट के पद सहित पदों के संबंध में प्रकाशित किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसे डॉ. आर.के. गुप्ता, मेडिकल कॉलेज, कन्नौज के प्राचार्य द्वारा मेडिकल कॉलेज, कन्नौज में नियुक्तियों के लिए तैयार की गई प्रतीक्षा सूची से नियुक्त किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने कभी भी मेडिकल कॉलेज, कन्नौज के प्राचार्य को मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ के लिए उम्मीदवारों की नियुक्ति करते हुए ऐसे नियुक्ति पत्र जारी करने का अधिकार नहीं दिया था और वह ऐसा करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं था।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद की गई थी और याचिकाकर्ता ने चयन समिति का सामना किया है और उसे नियुक्ति पत्र जारी किया गया है और प्रत्यर्थियों की ओर से किसी भी चूक/तकनीकी आपत्ति के आधार पर याचिकाकर्ता को वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध छिपाव या धोखाधड़ी का कोई आरोप नहीं था, इसलिए उसे पद पर कार्यग्रहण करने की अनुमति न देकर पंगु नहीं किया जाना चाहिए।

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के साथ अन्य छह व्यक्तियों को जारी किए गए नियुक्ति पत्र में याचिकाकर्ता का नाम क्रमांक 4 पर है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि इस माननीय न्यायालय के आदेश के तहत, याचिकाकर्ता को

8. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के समान स्थिति वाले व्यक्तियों, नामतः संतोष कुमार उपाध्याय, नीरज गुप्ता, संदीप कुमार सिंह और सुश्री सीमा वर्मा ने नियुक्ति पत्र की फोटोकॉपी प्रस्तुत की और उन्हें उच्च अधिकारियों द्वारा जारी निर्देशों के आधार पर पद पर कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई थी।

उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने न तो नियुक्ति पत्र की मूल प्रति प्रस्तुत की है और न ही वह उसके पास उपलब्ध है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि नियुक्ति पत्रों में 15 दिनों के भीतर कार्यग्रहण करने की एक शर्त थी, और 15 दिनों के भीतर कार्यग्रहण न करने की स्थिति में, वह स्वतः ही रद्द हो जाएगा, इसलिए याचिकाकर्ता इतने लंबे समय के बाद उसका लाभ नहीं ले सकता।

9. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि समान स्थिति वाले व्यक्तियों को दी गई नियुक्ति प्रत्यर्थियों द्वारा रद्द कर दी गई थी, जिस पर इस माननीय न्यायालय ने विभिन्न रिट याचिकाओं में रोक लगा दी थी, हालांकि, याचिकाकर्ता का मामला उन उम्मीदवारों के साथ शामिल नहीं है, क्योंकि न तो याचिकाकर्ता ने प्रश्नगत पद पर कार्यग्रहण किया और न ही उसकी नियुक्ति किसी भी समय रद्द की गई। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने एक वर्ष और दो महीने से अधिक समय के बाद रिट याचिका दायर की है, इसलिए कोई वाद हेतुक नहीं रहता और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

10. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि मेडिकल कॉलेज, कन्नौज के प्राचार्य मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ में एक कर्मचारी की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त प्राधिकारी नहीं हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ में उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए कोई प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, क्योंकि न तो कोई विज्ञापन जारी किया गया था और न ही साक्षात्कार द्वारा चयन, नियुक्ति पत्र और

कार्यग्रहण नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा किया गया था।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिउत्तर शपथपत्र के आधार पर प्रस्तुत किया कि डीजीएमई को राज्य में चल रहे किसी भी राजकीय मेडिकल कॉलेज में रिक्ति भरने का पूर्ण अधिकार क्षेत्र है। याचिकाकर्ता को अन्य छह व्यक्तियों के साथ मेडिकल कॉलेज, कन्नौज के प्राचार्य द्वारा दिनांक 24.02.2009 को मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ में फार्मासिस्ट के पद पर कार्यग्रहण करने के लिए एक नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 24.2.2009 के नियुक्ति पत्र की प्रामाणिकता अन्य चार व्यक्तियों, नामतः नीरज कुमार गुप्ता, संतोष कुमार उपाध्याय, संजीव सिंह और सीमा वर्मा के कार्यग्रहण से ही सिद्ध होती है और प्रत्यर्थियों ने तकनीकी आपत्तियों के आधार पर याचिकाकर्ता को कार्यग्रहण से इनकार किया है।

12. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

13. अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था और याचिकाकर्ता को अन्य छह व्यक्तियों के साथ जारी किए गए नियुक्ति पत्र के आधार पर, ऊपर नामित चार व्यक्तियों को मेडिकल कॉलेज, आजमगढ़ में कार्यग्रहण दिया गया था। बाद में, उनकी नियुक्ति दिनांक 22.05.2009 के आदेश द्वारा रद्द कर दी गई थी। तत्पश्चात, कई रिट

याचिकाओं में इस न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप, दिनांक 22.05.2009 का आदेश प्रत्यर्थियों द्वारा वापस ले लिया गया था और पूर्वोक्त चार व्यक्तियों को अपने-अपने पद पर पुनः कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई थी। हालांकि, याचिकाकर्ता, जिसका नाम उपरोक्त सूची में क्रमांक 4 पर है, को तकनीकी कारणों के आधार पर कार्यग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई है। यह तथ्य स्वयं प्रतिशपथ पत्र में स्वीकार किया गया है कि चार व्यक्तियों को प्रारंभ में उच्च अधिकारियों के निर्देशों पर कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई थी। इसलिए, इस प्रकार के भेदभाव को जारी रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

14. यदि उपरोक्त चार व्यक्ति एक ही विज्ञापन के तहत एक ही चयन का हिस्सा थे और उन्हें एक ही नियुक्ति पत्र के तहत पद पर कार्यग्रहण करने की अनुमति दी गई थी, तो याचिकाकर्ता को उसके संबंधित पद पर कार्यग्रहण करने की अनुमति न देने का कोई अवसर नहीं है।

15. उपरोक्त दर्ज किए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और एतद्वारा स्वीकार की जाती है।

16. परमादेश की प्रकृति का एक रिट जारी किया जाता है जो प्रत्यर्थी संख्या 2 को मामले की जांच करने का निर्देश देता है और यदि याचिकाकर्ता का मामला उपरोक्त व्यक्तियों, नामतः संतोष कुमार उपाध्याय, नीरज गुप्ता, संदीप कुमार सिंह और सुश्री सीमा वर्मा के समान है, तो उसे भी इस आदेश की प्रमाणित

प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर कार्यग्रहण दिया जाएगा।

17. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 309

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.05.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

के समक्ष

रिट-ए संख्या 5750 सन् 2023

प्रो. अमर नाथ

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सुश्री ममता, सुश्री जिजासा सिंह

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री एम.एन. सिंह, श्री फुजैल अहमद अंसारी

ए. सेवा कानून - भर्ती - आरक्षण - उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 - धारा 3(5) - रोस्टर आरक्षण के अनुरूप ही लागू होगा तथा यदि उसे सेवानिवृत्ति के पश्चात सृजित अथवा किसी कारण से रिक्त हुए पदों से उत्पन्न होने वाली वर्षवार रिक्तियों को उचित रूप से मान्यता देनी है तो उसे प्रत्येक श्रेणी के लिए उपलब्ध आरक्षण के अनुसार सख्ती से भरा जाना होगा। (पैरा 7)

जो पद आरक्षित वर्ग के लिए हैं, वे केवल आरक्षित वर्ग को ही दिए जाएंगे जब तक कि आरक्षित रोस्टर बिंदु आरक्षित वर्ग द्वारा अधिगृहीत नहीं किए जाते हैं। यदि राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सा महाविद्यालय के प्राचार्य की कुल संवर्ग क्षमता, जो संख्या में 8 है, में से 2 पद आरक्षित हैं तो उस स्थिति में, आरक्षित वर्ग अर्थात् विशेष रूप से अनुसूचित जाति के लिए 21% के अनुपात में आरक्षण उपलब्ध होगा जो 25% से अधिक होगा, इसके अलावा, रोस्टर जो 100 बिंदु रोस्टर है और आरक्षित वर्ग के साथ-साथ अनारक्षित वर्ग के लिए उपलब्ध पदों का विभाजन 8 पदों (कुल संवर्ग क्षमता) के लिए लागू होगा, 100 बिंदु रोस्टर के संदर्भ में पुनर्गणना की जानी है, और इस प्रकार, राज्य सरकार के परामर्श से यू.पी. लोक सेवा आयोग द्वारा शुरू की गई पूरी कवायद यह नहीं दर्शाती है कि अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित पद के लिए 21% की अधिकतम सीमा को कभी भी बाधित किया गया है। (पैरा 15)

बी. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का प्रारंभिक आधार प्रत्यर्थीगण की यह कार्रवाई है कि उन्होंने सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल के पद के लिए 4 पदों को विशेष रूप से अनारक्षित श्रेणी के लिए अधिसूचित किया है, जो अनारक्षित श्रेणी के पक्ष में आरक्षण की अधिकतम 50% सीमा को पार कर जाएगा और यह इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ (एआईआर 1993 एससी 477) के मामले में निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धांतों के विपरीत है। (पैरा 18)

आरक्षित वर्ग, विशेषकर अनुसूचित जाति के लिए लागू आरक्षण 21% है, जो अंशतः घटकर 1.68 हो जाता है, तथा इस प्रकार, 8 में से 1 पद अनुसूचित जाति के आरक्षित वर्ग के उम्मीदवार के लिए आरक्षित रखा जाना है, तथा तथ्यात्मक विवरण के अनुसार, श्री सुरेश चंद्र पहले से ही राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सा महाविद्यालय में प्राचार्य के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे हैं, तथा इस प्रकार, 21% के तहत अनिवार्य आरक्षण का कड़ाई से अनुपालन किया जा रहा है। (पैरा 19)

जहां तक रोस्टर के आवेदन का सवाल है, इसे आरक्षित श्रेणी, अनारक्षित श्रेणी और अन्य पिछड़े वर्गों में पदों के विवर्गीकरण के माध्यम से भी लागू किया जाता है। यह स्वीकार किया जाने वाला तथ्य है कि अनुसूचित जाति के तहत आरक्षित श्रेणी द्वारा पहले से ही एक पद पर कब्जा किया गया है और अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत भी दो पदों पर कब्जा है और इस तरह, अनारक्षित श्रेणी के लिए चार पदों के लिए जारी की गई अधिसूचना को अवैध नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 20)

सी. शब्द और वाक्यांश - 'पद', 'रिक्तियाँ' - आरक्षण प्रदान करने वाले कार्यकारी निर्देशों में अक्सर इस्तेमाल किए जाने वाले 'पद' और 'रिक्तियाँ' शब्द काफी समस्याग्रस्त हैं। 'पद' शब्द का अर्थ है नियुक्ति, नौकरी, कार्यालय या रोजगार। ऐसा पद जिस पर किसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है। 'रिक्तियाँ' का अर्थ है खाली पद या कार्यालय। इन दो अभिव्यक्तियों के स्पष्ट अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'रिक्तियाँ' होने के लिए 'पद' का अस्तित्व होना

चाहिए। कैडर-स्ट्रेन्थ को हमेशा कैडर में शामिल पदों की संख्या से मापा जाता है। नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के अधिकार का दावा केवल कैडर में किसी पद के संबंध में किया जा सकता है। परिणामस्वरूप आरक्षण का प्रतिशत कैडर-स्ट्रेन्थ बनाने वाले पदों की संख्या के संबंध में निर्धारित किया जाना चाहिए। आरक्षण के प्रतिशत को संचालित करने में 'रिक्तियाँ' की अवधारणा का कोई महत्व नहीं है। (पैरा 6)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

पूर्ववर्ती मिसालें

1. उ० प्र० राज्य एवं अन्य बनाम संगम नाथ पाण्डेय एवं अन्य, उ० प्र० लोक सेवा आयोग बनाम मनोज कुमार सिंह एवं अन्य से संबद्ध, 2012 (2) एस० सी० सी० 105 (पैरा 6)
2. एम.आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य, 1963 एआईआर (एससी) 649 (पैरा 13)
3. आर.के. सभरवाल और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 1995 (2) एससीसी 745 (पैरा 15)
4. इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ, एआईआर 1993 एससी 477 (पैरा 18)

वर्तमान याचिका में केवल उत्तर प्रदेश चिकित्सा विभाग (आयुर्वेदिक विभाग) के संबंध में दिनांक 02.02.2023 के रोलिंग विज्ञापन संख्या डी-1/ई-1/2023 को चुनौती दी गई है तथा प्रतिवादी संख्या 2 को निर्देश देने का अनुरोध किया गया है कि वह तदनुसार लागू उचित आरक्षण नीति पर विचार करने के

पश्चात प्रिंसिपल पदों के लिए नया विज्ञापन जारी करें।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1 - याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री ममता की ओर से विद्वान अधिवक्ता सुश्री जिग्यासा सिंह, प्रतिवादी संख्या 1 और 4 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र कुमार त्रिपाठी और प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री फुजैल अहमद अंसारी को सुना।

2 - वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है : -

"ए) उत्तर प्रदेश चिकित्सा विभाग (आयुर्वेदिक विभाग) के संबंध में रोलिंग विज्ञापन संख्या डी-1/ ई-1/2023 दिनांक 02.02.2023 को रद्द करने के लिए अभिलेख की मांग करते हुए उत्प्रेषण लेख के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। केवल (रिट याचिका का अनुलग्नक-1)

बी) प्रतिवादी संख्या 2 को उत्तर प्रदेश चिकित्सा विभाग (आयुर्वेदिक विभाग) के संबंध में विज्ञापन संख्या डी-1/ई-1/2023 दिनांक 02.02.2023 के संबंध में लागू उचित आरक्षण नीति पर विचार करने के बाद प्रधान पद के लिए एक नया विज्ञापन जारी करने का आदेश देने के लिए परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। या याचिकाकर्ता

का अभ्यावेदन/ पत्र दिनांक 17.02.2023 (रिट याचिका का परिशिष्ट संख्या 5) तय करें।"

3 - याचिकाकर्ता का मामला यह है कि सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के प्रधानाचार्य की कैडर शक्ति संख्या 8 में है और इस प्रकार, यदि 4 पदों के लिए रिक्ति का विज्ञापन करने की अधिसूचना होती है जो विशेष रूप से अनारक्षित श्रेणी के लिए है तो आरक्षण नीति का उल्लंघन करेगी। जो अनुसूची के साथ आक्षेपित विज्ञापन अधिसूचना के माध्यम से विज्ञापित चार पदों में से कम से कम एक पद आरक्षित करने के लिए लागू है। उस स्थिति में, विज्ञापन अधिसूचना दिनांक 02.02.2023 कानूनन खराब है।

4 - याचिकाकर्ता की ओर से उठाए गए तर्कों को प्रमाणित करने के लिए याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अदालत को अवगत कराया कि किसी भी मामले में आरक्षण 50% से अधिक नहीं किया जा सकता है, यदि इसे अनारक्षित श्रेणी के लिए अधिसूचित किया गया है। मामला यह है कि अधिसूचित 100% रिक्तियां विशेष रूप से अनारक्षित श्रेणी के लिए हैं।

5 - आवेदन के अभाव में 1994 अधिनियम¹ के तहत परिभाषित 100 अनुसूची बिन्दु लागू होगा जो स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है कि दूसरे, चौथे, छठे और आठवें पद केवल अनारक्षित श्रेणी से भरे जाएंगे।

¹ उत्तर प्रदेश लोक सेवा (एससी, एसटी और ओबीसी के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994

6 - याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम संगम नाथ पांडे व उत्तर प्रदेश से जुड़े अन्य, लोक सेवा आयोग बनाम मनोज कुमार सिंह एवं अन्य² के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भी भरोसा किया। उपर्युक्त निर्णय का उद्धरण जो उस तात्कालिक मामले से संबंधित है जिसमें अनुसूची के साथ आरक्षण के अंश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है, यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है : -

"25. यह निर्धारित करने के लिए कि बैकलॉग रिक्तियां कितनी होंगी, उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम 1994 जो अधिनियम क्रमांक 1/2002 द्वारा यथासंशोधित है, के प्रासंगिक प्रावधानों पर एक नजर डालना आवश्यक है।

"2 (डी) किसी रिक्ति के संबंध में "भर्ती का वर्ष" का अर्थ उस वर्ष की पहली जुलाई से शुरू होने वाली बारह महीने की अवधि है जिसके भीतर सीधी भर्ती की प्रक्रिया हो जिसके लिए ऐसी रिक्ति शुरू की जाती है।

3. धारा 3 का संशोधन - मूल अधिनियम की धारा 3 में -

(ए) उपधारा (1) , (2) और (3) के लिए निम्नलिखित उप- धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:-

² [2012 (2) एससीसी 105]

(1) सार्वजनिक सेवाओं और पदों में, सीधी भर्ती के चरण में रिक्तियों का निम्नलिखित प्रतिशत आरक्षित किया जाएगा, जिन पर उप-धारा (5) में निर्दिष्ट अनुसूची के अनुसार भर्ती की जानी है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित व्यक्ति -

(ए) अनुसूचित जाति के मामले में इक्कीस प्रतिशत

(बी) अनुसूचित जनजातियों के मामले में दो प्रतिशत

(सी) अन्य पिछड़े नागरिकों के वर्ग के मामले में सत्ताईस प्रतिशत

बशर्ते कि खंड के तहत अनुसूची II में आरक्षण निर्दिष्ट नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों की श्रेणी पर लागू नहीं होगा :

बशर्ते कि सभी श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए रिक्तियों का आरक्षण भर्ती के किसी भी वर्ष में उस वर्ष की कुल रिक्तियों के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगा और साथ ही उन सेवाओं की संवर्ग संख्या के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगा जिनमें भर्ती की जानी है।

(2) यदि भर्ती के किसी भी वर्ष के संबंध में उप- धारा (1) के तहत किसी भी श्रेणी के व्यक्तियों के लिए

आरक्षित कोई रिक्ति खाली रह जाती है, तो ऐसी रिक्ति को आगे बढ़ाया जाएगा और उसी वर्ष या अगले वर्ष में विशेष भर्ती के माध्यम से भरा जाएगा। या रिक्ति के एक अलग वर्ग के रूप में भर्ती के वर्षों और रिक्ति के ऐसे वर्ग को भर्ती के उस वर्ष की रिक्तियों के साथ नहीं माना जाएगा जिसमें यह भरा गया है और कुल रिक्तियों के पचास प्रतिशत आरक्षण की सीमा निर्धारित करने के उद्देश्य से भी उस वर्ष की उपधारा (1) में किसी भी विपरीत बात के होते हुए भी;

(3) जहां उप- धारा (2) के तहत की गई तीन विशेष भर्तियों के बाद भी अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित कोई रिक्ति खाली रहती है तो ऐसी रिक्ति अनुसूचित जाति के व्यक्तियों में से भरी जा सकती है।

(बी) (i) उपधारा (3- ए), (3- बी) को हटा दिया जाएगा;

(ii) उपधारा (4) को हटा दिया जाएगा;

(सी) उप- धारा (5) के लिए, निम्नलिखित उप-अनुभाग प्रतिस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :-

"(5) राज्य सरकार उप- धारा (1) के तहत आरक्षण लागू करने के लिए एक अधिसूचित आदेश द्वारा, सार्वजनिक सेवा या पद की कुल संवर्ग संख्या को

शामिल करते हुए एक अनुसूची जारी करेगी जिसमें आरक्षित बिंदुओं को दर्शाया जाएगा और इस प्रकार जारी किया गयी अनुसूची उप- धारा (1) में उल्लिखित व्यक्तियों की विभिन्न श्रेणियों के लिए आरक्षण प्राप्त होने तक साल- दर- साल चालू खाते के रूप में लागू किया जाएगा और उसके बाद अनुसूची और चालू खाते का संचालन समाप्त हो जाएगा। और जब उसके बाद सार्वजनिक सेवा या पद पर कोई रिक्ति निकलती है तो उसे उस श्रेणी के व्यक्तियों में से भरा जाएगा, जिसका पद अनुसूची में है।

उपरोक्त के अवलोकन से पता चलता है कि अधिनियम , अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों के पक्ष में सार्वजनिक सेवाओं और पदों में आरक्षण की सीमा और उससे जुड़े या उसके आकस्मिक मामलों को नियंत्रित करता है। यह एक स्व- निहित तंत्र भी प्रदान करता है कि पदों को 100 अनुसूचित बिन्दु के अनुसार विभिन्न श्रेणियों के बीच कैसे वितरित किया जाएगा।"

माननीय सुप्रीम कोर्ट ने आगे स्पष्ट किया कि आरक्षण के अनुरूप सख्ती से लागू होगा और यदि सेवानिवृत्ति के बाद सृजित या किसी भी कारण से खाली हुए पदों से उत्पन्न होने वाली वर्षवार रिक्ति को उचित रूप से वही श्रेय दिया जाना है तो प्रत्येक श्रेणी के लिए उपलब्ध आरक्षण को सख्ती से भरा जाना चाहिए और उस पर विस्तार से चर्चा की गई है जिसे यहां नीचे दिया गया है : -

"38. वर्ष-वार और कैडर-वार रिक्तियों की पहचान करने का कार्य राज्य द्वारा विज्ञापन जारी करने से पहले किया जाना चाहिए था, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही ढंग से देखा था। अनुसूची प्रणाली शुरू करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए प्रदान किए गए आरक्षण का प्रतिशत प्रभावी ढंग से और तेजी से प्राप्त किया जाता है। यह केवल तभी किया जा सकता है जब संबंधित विभाग संवर्ग में वर्ष- वार रिक्तियों की पहचान करता है। एक बार रिक्तियों की पहचान हो जाने के बाद, यह सुनिश्चित करने के लिए अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि चयन प्रक्रिया तेजी से पूरा किया जाना है । सभी श्रेणियों के उम्मीदवारों को अनिश्चितता से बचने के लिए यह आवश्यक है।

7 - उपर्युक्त संदर्भित निर्णय में, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने भरोसा किया, आरक्षण के संबंध में रिक्ति की स्थिति, जिसे 1994 के अधिनियम के तहत परिभाषित 100 अनुसूचित बिन्दु के अनुसरण में बनाए गए अनुसूची के अनुसार लागू किया जाना है,

39. यदि रिक्तियां उचित समय के भीतर नहीं भरी जाती हैं तो सामान्य श्रेणी के साथ- साथ आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। अनुचित देरी के परिणामस्वरूप, भर्ती के एक विशेष वर्ष में आने वाले कुछ विशेष पदों के लिए आवेदन

करने के लिए कुछ उम्मीदवारों को हमेशा अधिक उम्र होने का खतरा रहेगा। पदों को भरने में अनावश्यक सुस्ती से भर्तियों में उनकी वरिष्ठता, पुष्टिकरण और पदोन्नति के संबंध में अनिश्चितता और अराजकता भी पैदा होगी। ऐसी स्थिति केवल अपरिहार्य मुकदमेबाजी को जन्म देती है, जो कई वर्षों तक चलती है। यह मामला ऐसी ही खराब स्थिति का प्रतीक है।

40. हमारी राय में, वर्तमान मामले में, राज्य सरकार को आरक्षित श्रेणियों के लिए उपलब्ध पदों के उचित सत्यापन पर आवश्यक चयन प्रक्रिया शुरू करनी चाहिए थी। केवल लोक सेवा आयोग को अधियाचन भेजना ही पर्याप्त नहीं था। चयन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए राज्य के लिए लोक सेवा आयोग के साथ मामले को आगे बढ़ाना आवश्यक था। अन्यथा अनुसूची प्रणाली और चालू खाता शुरू करने का उद्देश्य पूरी तरह से विफल हो जाएगा। हम यहां आर.के. सभरवाल (पूर्व) के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को दोहरा सकते हैं। उपरोक्त प्रकरण में अनुसूची प्रणाली के संचालन के संबंध में निम्नानुसार पाया गया :-

"5. हम याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए दूसरे तर्क में काफी ताकत देखते हैं। विवादित सरकारी निर्देशों के तहत प्रदान किए गए आरक्षण को प्रत्येक विभाग में बनाए जाने वाली अनुसूची के अनुसार संचालित किया जाना है। अनुसूची को वर्ष-दर-वर्ष चालू खाते का स्वरूप में लागू किया गया है। "चालू खाता" का

उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों को उनके आरक्षित पदों का प्रतिशत प्राप्त हो। आक्षेपित निर्देशों में "चालू खाता" की अवधारणा की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि इसके परिणामस्वरूप अत्यधिक आरक्षण न हो। "16% पद..." अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्ग के सदस्यों के लिए आरक्षित हैं। 100 से अधिक पदों में जो क्रम संख्या 1, 7, 15, 22, 30, 37, 44, 51, 58, 65, 72, 80, 87 और 91 पर आते हैं, को अनुसूचित जाति के लिए अनुसूची में आरक्षित और निर्धारित किया गया है। अनुसूची बिंदु 26 और 76 पिछड़ा वर्ग के सदस्यों के लिए आरक्षित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जब किसी संवर्ग में भर्ती शुरू होती है तो फिर अनुसूची में निर्धारित 14 पदों को अनुसूचित जाति के सदस्यों से ही भरा जाना है। उदाहरण के लिए पहली पोस्ट संवर्ग अनुसूचित जाति में जाना चाहिए और उसके बाद उक्त वर्ग 7वें, 15वें, 22वें और उसके बाद 91वें पद तक का हकदार है। जब किसी संवर्ग में कुल पदों की संख्या अनुसूची के संचालन द्वारा भरी जाती है तो आक्षेपित निर्देशों द्वारा परिकल्पित परिणाम प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, 100 पदों के संवर्ग में जब अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों के लिए अनुसूची में निर्धारित पद भरे जाते हैं तो आरक्षित श्रेणियों के लिए

प्रदान किए गए आरक्षण का प्रतिशत हासिल हो जाता है। इसके बाद अनुसूची संचालित करने का हमें कोई औचित्य नजर नहीं आता। "चल रहा खाता" केवल तब तक संचालित होना है जब तक कि विवादित निर्देशों के तहत प्रदान किया गया कोटा पूरा नहीं हो जाता, उसके बाद नहीं। एक बार पदों का निर्धारित प्रतिशत भर जाने के बाद पर्याप्तता की संख्यात्मक परीक्षा पूरी हो जाती है और उसके बाद अनुसूची नहीं बचती है। आरक्षण का प्रतिशत राज्य सेवाओं में पिछड़े वर्गों का वांछित प्रतिनिधित्व है और उनकी जनसंख्या के संबंध में निकाले गए अनुपात के आधार पर जनसांख्यिकीय अनुमान के अनुरूप है। पदों का संख्यात्मक कोटा कोई बदलती हुई सीमा नहीं है, बल्कि दिमाग के समुचित उपयोग के साथ एक आंकड़े का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, पिछड़े वर्गों और सामान्य वर्ग को अवसर की समानता सुनिश्चित करने का एकमात्र तरीका यह है कि अनुसूची को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जाए जब तक कि संबंधित नियुक्त/ पदोन्नत व्यक्ति अनुसूची में उनके लिए निर्धारित पदों पर कब्जा न कर लें। इसके बाद अनुसूची और "चालू खाता" का संचालन समाप्त हो जाना चाहिए। प्रारंभिक पद भरने के बाद संवर्ग में निकलने वाली रिक्तियों में कोई कठिनाई नहीं होगी। जब भी किसी विशेष पद पर कोई रिक्ति होती

है, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी, तो उसे उस श्रेणी में से भरना होगा, जिसका पद अनुसूची में है। उदाहरण के लिए, अनुसूची बिंदु 1, 7, 15 पर पद धारण करने वाले अनुसूचित जाति के व्यक्ति सेवानिवृत्त हो जाते हैं तो इन स्थानों को अनुसूचित जाति के व्यक्तियों में से भरा जाना है। इसी प्रकार, यदि अंक 8 से 14 या 23 से 29 पर पद धारण करने वाले व्यक्ति सेवानिवृत्त हो जाते हैं तो ये स्थान सामान्य वर्ग से भरे जाएंगे। इस प्रक्रिया का पालन करने से आरक्षण के प्रतिशत में न तो कमी होगी और न ही अधिकता।

6. आरक्षण प्रदान करने वाले कार्यकारी निर्देशों में अक्सर उपयोग की जाने वाली अभिव्यक्तियाँ 'पद' और 'रिक्तियाँ' कुछ-कुछ संदिग्ध हैं। 'पद' शब्द का अर्थ नियुक्ति, नौकरी, अधिकार या रोजगार है। वह पद जिस पर किसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है। 'रिक्ति' का अर्थ है खाली पद या अधिकार। दोनों अभिव्यक्तियों का स्पष्ट अर्थ यह स्पष्ट करता है कि 'रिक्तता' उत्पन्न करने के लिए अस्तित्व में एक 'पद' होना चाहिए। कैडर- संख्या हमेशा कैडर में शामिल पदों की संख्या से मापी जाती है। नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के अधिकार का दावा केवल एक संवर्ग में एक पद के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। परिणामस्वरूप आरक्षण का

प्रतिशत कैडर- संख्या बनाने वाले पदों की संख्या के संबंध में निकाला जाना है। आरक्षण के प्रतिशत को संचालित करने में 'रिक्ति' की अवधारणा की कोई प्रासंगिकता नहीं है।

7. जब एक कैडर में सभी अनुसूचित बिंदु भर जाते हैं तो आरक्षण का आवश्यक प्रतिशत प्राप्त हो जाता है। एक बार जब कुल कैडर में आरक्षण नीति के अनुसार अनुसूचित जाति/जनजाति और पिछड़े वर्गों का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो जाता है, तो उसके बाद कैडर में उत्पन्न होने वाली रिक्तियों को उन व्यक्तियों की श्रेणी से भरा जाना चाहिए जिनके पास संबंधित रिक्तियां हैं। न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी को इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ (1992 सप्लिमेंट (3) एससीसी 217) में बहुमत के लिए बोलते हुए देखा गया जो निम्नवत है : (एससीसी पृष्ठ 737, पैरा 814)

"1000 पदों को समावेश करने वाली एक इकाई/ सेवा/ कैडर लें। अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण 50% है, जिसका अर्थ है कि 1000 पदों में से 500 पदों पर इन वर्गों के सदस्यों का कब्जा होना चाहिए, यानी 270 पदों पर अन्य पिछड़ा वर्ग, 150 पर अनुसूचित जाति और 80 पर अनुसूचित जनजाति का। एक निश्चित समय पर मान लीजिए इकाई/ सेवा/

श्रेणी में ओबीसी के सदस्यों की संख्या 220 से कम केवल 50 है, इसी प्रकार संख्या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या 130 और 75 से कम क्रमशः केवल 20 और 5 है। यदि संपूर्ण सेवा/संवर्ग को एक इकाई के रूप में लिया जाता है और बैकलॉग को पूरा करने की मांग की जाती है, तो खुली प्रतिस्पर्धा का चैनल बनाना होगा जब तक कि सभी पिछड़े वर्गों के सदस्यों की संख्या 500 तक नहीं पहुंच जाती, यानी, जब तक कि उनमें से प्रत्येक के लिए निर्धारित कोटा पूरा नहीं हो जाता। इसमें कई साल लग सकते हैं क्योंकि हर साल रिक्तियों की संख्या अधिक नहीं बढ़ती। इस बीच खुली प्रतियोगिता श्रेणी के सदस्य आयु-वर्जित और अयोग्य हो जाएंगे। उनके मामले में अवसर की समानता महज मृगतृष्णा बन कर रह जायेगी। यह याद रखना चाहिए कि खंड (1) द्वारा गारंटीकृत अवसर की समानता देश के प्रत्येक नागरिक के लिए है, जबकि खंड (4) सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के पक्ष में विशेष प्रावधान करने पर विचार करता है। दोनों को एक दूसरे के विरुद्ध संतुलित होना चाहिए। किसी को भी दूसरे पर ग्रहण लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उपरोक्त कारण से हमारा मानना है कि 50% के नियम को लागू करने के उद्देश्य से एक वर्ष को इकाई के रूप में लिया जाना चाहिए, न कि संवर्ग,

सेवा या इकाई की पूरी संख्या जैसा भी मामला हो।

42. ऊपर वर्णित तथ्य यह दर्शाते हैं कि वर्तमान मामले की स्थिति क्या है जो कि लगभग वैसा ही है जैसा कि इंद्रा साहनी (पूर्व) के मामले में इस न्यायालय द्वारा दर्शाया गया था।

43. इसलिए, हम दोहराते हैं कि विभाग के लिए संवर्ग के लिए वर्ष-वार रिक्तियों की पहचान करना आवश्यक है। कुछ उम्मीदवारों को अपात्र होने से बचाने के लिए पदों को तेजी से भरना भी आवश्यक है क्योंकि वे अधिक उम्र के हो सकते हैं। यही कारण है कि धारा 3 में भर्ती के वर्ष के साथ-साथ चयन की प्रक्रिया को भी महत्व दिया गया है।

44. हमारी राय में, अधिकारी आरक्षण नीति को अक्षरशः लागू करने में अपने दृष्टिकोण में काफी लापरवाह रहे हैं। हालाँकि, हम इस तथ्य से अवगत हैं कि कई वर्षों से रिक्त पड़े 367 पद केवल आरक्षित श्रेणियों के लिए हैं। इनकी गणना विभिन्न श्रेणियों के लिए आरक्षित प्रतिशत के आधार पर की गई है। उपरोक्त पदों के पृथक्करण में किसी भी अनारक्षित श्रेणी को उन पदों से वंचित नहीं किया जाएगा जो वैध रूप से उनके हिस्से में आने चाहिए। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि न्याय के हित में, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों में, यह मांग की गई है

कि विशेष भर्ती के लिए 367 पदों को अलग करने में राज्य सरकार द्वारा अपनाई गयी कार्य प्रणाली में गड़बड़ी नहीं की जानी चाहिए।

8 - इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता के साथ-साथ आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल पद के लिए चार रिक्त पदों की भर्ती के लिए जारी विज्ञापन अधिसूचना का समर्थन किया। जो आरक्षित वर्ग के लिए उपलब्ध आरक्षण के अनुरूप और 100 अनुसूची बिंदु के अनुरूप है, जिसे संवर्ग की ताकत को भरने के समय लागू करना अनिवार्य है, जिसकी संख्या केवल 8 है।

9 - मामले की सुनवाई के समय जो महत्वपूर्ण पहलू बताया गया है वह यह है कि प्राचार्य, राजकीय आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज की कुल संवर्ग संख्या केवल 8 है, जिसमें अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित श्रेणी के अनुसार अधिकतम सीमा 21% है। यह 1.68 पदों पर आता है जिसे 1994 के अधिनियम के तहत सख्ती से परिभाषित किया गया है जैसा कि धारा 3(1) के तहत उल्लिखित है जिसे यहां नीचे भी उद्धृत किया गया है :-

"3. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के पक्ष में आरक्षण - [(1) सार्वजनिक सेवाओं और पदों में, सीधी भर्ती के चरण में रिक्तियों का निम्नलिखित प्रतिशत आरक्षित किया जाएगा, जिन पर भर्ती की

जानी है अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में उपधारा (5) में निर्दिष्ट अनुसूची के अनुसार बनाया गया-

(ए) अनुसूचित जाति के मामले में इक्कीस प्रतिशत:

(बी) अनुसूचित जनजाति के मामले में दो प्रतिशत;

(सी) नागरिकों के अन्य पिछड़ा वर्ग के मामले में सत्ताईस प्रतिशत

बशर्ते कि खंड (सी) के तहत आरक्षण अनुसूची II में निर्दिष्ट नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों की श्रेणी पर लागू नहीं होगा:

बशर्ते कि सभी श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए रिक्तियों का आरक्षण भर्ती के किसी भी वर्ष में उस वर्ष की कुल रिक्तियों के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगा और साथ-साथ उस सेवा की संवर्ग संख्या के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगा जिस सेवा के लिए भर्ती की जानी है।"

10 - आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए रुख की पुष्टि करते हुए, जिन्होंने 1994 अधिनियम की धारा 3 (5) का भी उल्लेख किया, जो स्पष्ट रूप से कहती है कि राज्य सरकार धारा 3 की उपधारा (1) के तहत आरक्षण लागू करेगी, एक अधिसूचित आदेश द्वारा एक अनुसूची जारी करें, जो समाप्त होने तक लगातार लागू रहेगा।

11 - यह भी स्वीकृत तथ्य एवं स्थिति है जिसे ध्यान में रखना होगा कि यदि अंश 1.68 आता है तो आरक्षित वर्ग के लिए केवल एक ही पद उपलब्ध होगा।

12 - विद्वान स्थायी अधिवक्ता विशिष्ट निर्देशों के साथ आए, जिन्हें अभिलेखों से लिया गया है कि आरक्षित श्रेणी के एक पद पर पहले ही कब्जा कर लिया गया है, जिसमें एक नियमित पदधारी प्रिंसिपल, सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है और इस प्रकार, चयन के लिए अनारक्षित श्रेणी के चार पद के लिए अधिसूचना जारी की गई है। और उसी पोस्ट के लिए जो उस रूप में उचित है और 1994 के अधिनियम के कड़ाई से अनुपालन में है।

13 - प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अपनाया गया पूरा रुख भी एम.आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य³ और आर.के. सभरवाल और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य⁴ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए फैसलों पर आधारित है।

14 - पक्षों के विद्वान वकीलों द्वारा दी गई दलीलों पर उचित विचार करने और दोनों वकीलों द्वारा उद्धृत निर्णयों को ध्यान में रखते हुए तत्काल मामले को केवल दो आधारों पर सिद्ध किया जानी चाहिए : -

³ [1963 एआईआर (एससी) 649]

⁴ [1995 (2) एससीसी 745]

(i) क्या अधिसूचित पदों की संख्या आरक्षित श्रेणी के लिए उपलब्ध आरक्षण के अनुरूप है?

(ii) विज्ञापन अधिसूचना के तहत अधिसूचित प्रिंसिपल के पदों की कुल संवर्ग संख्या भर दी गई है, जिसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है, क्या यह अनुसूची को पूरा कर रहा है या नहीं?

15 - उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश से जुड़े संगम नाथ पांडे, लोक सेवा आयोग बनाम मनोज कुमार सिंह (पूर्व) के मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है कि जो पद आरक्षित वर्ग के लिए हैं, वे केवल आरक्षित वर्ग को ही दिए जाएंगे, जब तक कि आरक्षित अनुसूची बिंदु पर आरक्षित वर्ग का कब्जा न हो, लेकिन साथ ही कोई ऐसा पद हो। आरक्षण की सीमा को पार करने के संबंध में कोई अफवाह और याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा बताए गए मामले में प्रिंसिपल, सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज की कुल संवर्ग शक्ति में से दो पद आरक्षित करने के संबंध में, जो उस मामले में संख्या में 8 है, आरक्षण आरक्षित श्रेणी के लिए उपलब्ध होगा अर्थात् विशेष रूप से अनुसूचित जाति के लिए 21% से अधिक 25% तक। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उल्लिखित अनुसूची जो कि 100 अनुसूची बिन्दु है और आरक्षित श्रेणी के साथ-साथ अनारक्षित श्रेणी के लिए उपलब्ध पदों का विभाजन कुल 8 पदों के लिए लागू होगा। राजकीय आयुर्वेदिक मेडिकल

कॉलेज के प्राचार्य के पद की संवर्ग संख्या की गणना 100 अनुसूची बिन्दु के अनुसार की जानी है, और इस प्रकार, राज्य सरकार के परामर्श से उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा शुरू की गई पूरी कवायद यह नहीं दर्शाती है कि अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित पद के लिए 21% की अधिकतम सीमा में कभी भी हस्तक्षेप किया गया है।

16 - याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा संदर्भित निर्णय के सम्बन्ध को पहले ही विश्वसनीयता दी जा चुकी है और उत्तरदाताओं की कार्यवाही सख्ती से उसी के अनुरूप है।

17 - प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा जिन दो निर्णयों पर भरोसा किया गया है। आर.के. सभरवाल (पूर्व) के मामले पर पहले ही संगम नाथ पांडे (पूर्व) के फैसले में चर्चा की जा चुकी है, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने भरोसा किया था और उसी पर पहले से ही पिछले पैराग्राफ में चर्चा की गई है और उत्तरदाताओं की कार्यवाही सख्ती से उसी के अनुसार है। दोबारा दोहराने की जरूरत नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एम.आर. बालाजी (पूर्व) में पारित निर्णय के बाद, जो पूरी तरह से आरक्षण की अधिकतम सीमा पर आधारित है, वह वर्तमान याचिका में विज्ञापन अधिसूचना को चुनौती देने के समय विवाद में नहीं है।

18 - वर्तमान याचिका पर लगाए गए आदेश को चुनौती देने का प्रारंभिक आधार, विशेष रूप से अनारक्षित श्रेणी के लिए सरकारी आयुर्वेदिक

7.इला अरविंद कुमार लेखपाल तहसील बहेड़ी जिला बरेली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 417

मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल के पद के लिए चार पदों को अधिसूचित करने के रूप में उत्तरदाताओं की कार्यवाई है, जो अनारक्षित वर्ग के पक्ष में 50% आरक्षण की अधिकतम सीमा से अधिक होगी। और यह **इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ⁵** के मामले में निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धांतों के समान है।

19 - उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आरक्षित वर्ग के लिए विशेष रूप से अनुसूचित जाति के लिए लागू आरक्षण 21% है जो 1.68 के अंश में कम हो जाता है और इस प्रकार, 8 में से एक पद को आरक्षित रखा जाना है। आरक्षित श्रेणी का उम्मीदवार अनुसूचित जाति का है और विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए तथ्यात्मक विवरण के अनुसार, श्री सुरेश चंद्र पहले से ही सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे हैं और इस प्रकार, 21% अनिवार्य आरक्षण का कड़ाई से अनुपालन होता है।

20 - जहां तक अनुसूची के आवेदन का सवाल है, इसे आरक्षित श्रेणी, अनारक्षित श्रेणी और अन्य पिछड़े वर्गों में पदों के डी-वर्गीकरण के माध्यम से भी लागू किया जाता है। यह स्वीकृत तथ्य है जिसे याचिका में वर्णित किया गया है और साथ ही विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा निर्देशों के माध्यम से अवगत कराया गया है कि एक पद पर पहले से ही अनुसूचित जाति के तहत आरक्षित श्रेणी का कब्जा है और अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत

दो पदों पर भी कब्जा कर लिया गया है और इस तरह अनारक्षित वर्ग के लिए चार पदों के लिए जारी अधिसूचना को अवैध नहीं कहा जा सकता।

21 - उपरोक्त टिप्पणियों के मददेनजर, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 7 ILRA 318

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 6376 सन् 2023

अरविंद कुमार, लेखपाल, तहसील- बहेड़ी,

जिला: बरेली

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आदर्श शुक्ला,
श्री प्रभाकर अवस्थी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सेवा कानून - निलंबन - अनुशासनात्मक कार्यवाही - उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन एवं अपील) नियम, 1999 - नियम 7 - निलंबन आदेश केवल याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर विचार करने के बाद ही पारित किया जा सकता है। निलंबन आदेश केवल धारणा के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, निलंबन आदेश पारित करते समय, अनुशासनात्मक

⁵ (एआईआर 1993 एससी 477)

प्राधिकारी को अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए अपराधी के खिलाफ निलंबन पारित किया गया है या नहीं, यह निर्धारित करने के लिए अपने स्वतंत्र और मुक्त मन का उपयोग करके अपने विवेक का प्रयोग करना होगा। (पैरा 4, 5)

वर्तमान मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निलंबन का आदेश केवल तहसीलदार की सिफारिश पर पारित किया गया है, जिन्हें निष्पक्ष जांच के संचालन के लिए दिनांक 27.02.2023 के आदेश द्वारा जांच अधिकारी के रूप में नामित किया गया है, जिसमें जांच अधिकारी द्वारा यह माना गया है कि यदि याचिकाकर्ता उस स्थान पर सेवाएं देता रहेगा जहां वह वर्तमान में तैनात है, तो वह सबूतों से छेड़छाड़ कर सकता है जिससे निष्पक्ष जांच नहीं हो सकेगी। (पैरा 10)

चूंकि निलंबन की सिफारिशें याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के तहत जांच अधिकारी द्वारा की गई हैं, न कि किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा, जो अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित नहीं है, इसलिए आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। (पैरा 11, 12)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

मिसाल प्रतिष्ठित

वी.एन. दैपुरिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 58619 सन् 2015, दिनांक 27.10.2015 को निर्णीत (पैरा 7, 9, 10)

वर्तमान याचिका में उप मंडल मजिस्ट्रेट- बहेड़ी, बरेली द्वारा पारित दिनांक 21.03.2023 के निलंबन आदेश का विरोध किया गया है। तथा प्रतिवादियों को निर्देश देने का अनुरोध किया गया है कि वे लेखपाल-तहसील-बहेड़ी, जिला-बरेली के रूप में याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कार्यकाल में बाधा न डालें तथा उन्हें पूरा वेतन भी दें।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी वकील श्री अनुराग पांडे को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:-

"i. मामले के रिकॉर्ड मंगाने और सब डिविजनल मजिस्ट्रेट-बहेड़ी, बरेली द्वारा पारित आक्षेपित निलंबन आदेश दिनांक 21.03.2023 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 12)।

ii. प्रतिवादियों को आदेश या निर्देश जारी कर आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता के लेखपाल-तहसील-बहेड़ी, जिला-बरेली के रूप में शांतिपूर्ण कार्य में बाधा न डालें और उन्हें हर महीने पूरा वेतन भी दें, जब भी वेतन देय हो।"

7.इला अरविंद कुमार लेखपाल तहसील बहेड़ी जिला बरेली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 419

3. याची का कहना है कि नायब तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट तथा तहसीलदार द्वारा अनुमोदित रिपोर्ट के आधार पर उसके विरुद्ध लगाए गए कुछ आरोपों के आधार पर उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली 1999 के नियम 7 के अंतर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई, जिसमें आरोप पत्र याची को तामील कराया गया तथा उसका जवाब भी दिया गया। इसके बाद, तहसीलदार द्वारा जांच शुरू की गई है, जिन्हें याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप तय करने के समय दिनांक 27.02.2023 के आदेश द्वारा जांच अधिकारी के रूप में नामित और नियुक्त किया गया है।

4. दिनांक 21.03.2023 को तहसीलदार/जांच अधिकारी द्वारा सूचित किया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा साक्ष्यों से छेड़छाड़ की पर्याप्त संभावनाएं हैं और इस प्रकार, निष्पक्ष जांच के संचालन के लिए उसे निलंबित किया जा सकता है।

5. जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट प्राप्त होने पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी होने के नाते, प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 21.03.2023 को आदेश पारित किया, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता की सेवाओं को निलंबित कर दिया गया है और इसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है, ठीक इसी आधार पर कि निलंबन आदेश केवल याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर विचार करने के बाद ही पारित किया जा सकता है। निलंबन आदेश केवल अनुमान के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता।

6. इसके अलावा, निलंबन आदेश पारित करते समय, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपने स्वतंत्र और मुक्त मन से यह निर्धारित करते हुए अपने विवेक का प्रयोग करना होगा कि क्या अपराधी के विरुद्ध पारित निलंबन याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों को पुष्ट करने के लिए आवश्यक है या नहीं।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा रिट ए संख्या 58619/2015 (वी.एन. दैपुरिया बनाम उ.प्र. राज्य और 3 अन्य) में दिनांक 27.10.2015 को दिए गए निर्णय पर अवलम्ब लिया है। निर्णय का प्रभावी एवं निर्णायक भाग नीचे उद्धृत है:-

"उपर्युक्त उद्धृत प्रावधानों के मापदंडों पर, विचाराधीन निलंबन आदेश यह इंगित करता है कि वर्तमान मामले में राज्य सरकार को तथ्यात्मक स्थिति से अवगत करा दिया गया था और याचिकाकर्ता के खिलाफ रिपोर्ट से अवगत कराए जाने पर, राज्य सरकार ने अपने स्तर पर एक आदेश पारित किया, जिसमें उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ता को तत्काल प्रभाव से निलंबित कर दिया जाना चाहिए और यूपी सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली 1999 के नियम 7 के तहत अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जानी चाहिए। उक्त पत्र की प्राप्ति के पश्चात, अपर शिक्षा निदेशक (बेसिक), उ.प्र., इलाहाबाद, नियुक्ति प्राधिकारी ने निलंबन आदेश पारित करने की कार्यवाही की है तथा निलंबन आदेश के माध्यम से नियुक्ति प्राधिकारी ने इस तथ्य

का स्पष्ट उल्लेख किया है कि निलंबन के उक्त प्राधिकार का प्रयोग उनके द्वारा राज्य सरकार द्वारा 30.09.2015 को लिए गए निर्णय के अनुसरण में किया जा रहा है। वर्तमान मामले में वास्तविक स्थिति यह है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को निलंबित करने का अनिवार्य निर्देश देकर नियुक्ति प्राधिकारी से विवेकाधिकार छीन लिया है, जबकि ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी के अनुसार 'विवेकाधिकार' का अर्थ है, "व्यक्तिगत निर्णय: स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति"। नियुक्ति प्राधिकारी ने स्वतंत्र विचार नहीं किया है तथा राज्य सरकार के निर्देश पर निलंबन के अधिकार का प्रयोग किया है। डॉ. अरविंद कुमार राणा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2007 (4) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने, नियमों के उसी सेट के संदर्भ में, यह दृष्टिकोण अपनाया है कि निलंबन का अधिकार केवल सिफारिश पर प्रयोग नहीं किया जा सकता है, नियुक्ति प्राधिकारी अपने स्वतंत्र विचार का प्रयोग करने के लिए बाध्य है, नियम 4 (1) का पहला प्रावधान अनिवार्य है और नियुक्ति प्राधिकारी को लगाए गए आरोपों की गंभीरता के बारे में प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने और यह विचार करने के लिए बाध्य करता है कि क्या अंततः यह बड़ी सजा देने में सहायक होगा। तदनुसार, मामले के तथ्यों के आधार पर इस प्रकार का निलंबन आदेश पारित करना उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 4(1) का उल्लंघन माना जाना चाहिए, क्योंकि प्रथम दृष्टया नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है। इसे देखते हुए, इस संक्षिप्त

आधार पर निलंबन का आदेश रद्द किया जाता है, लेकिन हम नियुक्ति प्राधिकारी को अपने स्वतंत्र विचार का प्रयोग करने तथा यदि तथ्य और परिस्थितियां उचित हों तो निलंबन का नया आदेश पारित करने का निर्णय लेने का अधिकार देते हैं।

तदनुसार, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।"

8. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया तथा प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 21.03.2023 के आदेश का समर्थन किया।

9. वी.एन. दैपुरिया (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार की सिफारिश पर निलंबन आदेश को अवैध माना गया है और इसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के विवेक का प्रयोग किए बिना और निलंबन के कारणों, निर्देशों और राज्य सरकार द्वारा दी गई सिफारिशों को दर्ज किए बिना ही पारित किया गया है।

10. इस न्यायालय की माननीय खंडपीठ द्वारा दिया गया निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होता, क्योंकि मामला थोड़ा अलग है। वर्तमान मामले में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निलंबन का आदेश केवल तहसीलदार की संस्तुति पर पारित किया गया है, जिन्हें निष्पक्ष जांच के लिए दिनांक 27.02.2023 के आदेश के तहत जांच अधिकारी के रूप में

नामित किया गया है, जिसमें जांच अधिकारी द्वारा यह माना गया है कि यदि याचिकाकर्ता अपनी वर्तमान पोस्टिंग की सेवाओं में बना रहेगा, तो वह सबूतों से छेड़छाड़ कर सकता है, जिससे निष्पक्ष जांच नहीं हो सकती।

11. जांच अधिकारी द्वारा की गई सिफारिश, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस मामले पर अवलम्ब लिया गया है, उससे भिन्न है और इस प्रकार, वी.एन. दैपुरिया का मामला वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है, क्योंकि निलंबन की सिफारिशें जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के तहत की गई हैं, न कि किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा, जो कि अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित नहीं है, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उल्लिखित मामले में है।

12. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, दिनांक 21.03.2023 के आदेश में हस्तक्षेप की शायद ही कोई गुंजाइश है, जिसने वर्तमान याचिका पर सवाल उठाया था और इस तरह, रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार **खारिज** की जाती है।

13. तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 2, याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को अंतिम रूप देने के लिए यथासंभव शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार महीने की अवधि के भीतर, हर कदम उठा सकता है।

14. तथापि यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में उपरोक्त निर्देशों पर पहुंचने के लिए हर संभव सहायता प्रदान करेगा।

(2023) 7 ILRA 321

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

के समक्ष

रिट-ए संख्या 8256 सन् 1992

ओ.पी. त्रिवेदी

...याचिकाकर्ता

बनाम

अध्यक्ष, भागीरथ ग्रामीण बैंक व अन्य

.....प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: एम.के. शुक्ला, आशीष मिश्रा, देव राज सिंह, के.सी. जौहरी, रमेश कुमार श्रीवास्तव, वी.पी. मिश्रा, विजय कुमार

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., ए.के. चतुर्वेदी

ए. सेवा कानून - बर्खास्तगी - सेवा लाभ - भागीरथ ग्रामीण बैंक कर्मचारी सेवा विनियमन, 1980 - अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित होती है। पहला चरण तब समाप्त होता है, जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचता है, जांच अधिकारी रिपोर्ट देते हैं और दोषी कर्मचारी इसका जवाब देते हैं। दूसरा चरण तब

शुरू होता है, जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्ष के आधार पर दंड लगाने का फैसला करता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही को छोड़ने का फैसला करता है, तो दूसरा चरण भी नहीं आता है। (पैरा 23)

जबकि रिपोर्ट में निष्कर्ष के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का अधिकार जांच के पहले चरण के दौरान उचित अवसर का हिस्सा है, इससे पहले कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी रिपोर्ट में निष्कर्ष पर विचार करे। पहला अधिकार निर्दोषता साबित करने का अधिकार है। प्रस्तावित दंड पर प्रतिनिधित्व करने का अवसर समाप्त कर दिया गया है, न कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर प्रतिनिधित्व करने का अवसर। जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, दंड देने वाले प्राधिकारी का यह दायित्व है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करे। (पैरा 23)

वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को 10-02.1983 को 12 महीने की अवधि के लिए परीवीक्षा पर जूनियर क्लर्क के पद पर चयनित और नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ राशि के गबन का आरोप लगाया गया है। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 08.05.1984 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया, जिसके बाद 09.07.1994 को आरोप-पत्र जारी किया गया, जिसमें बैंक के पैसे के गबन, अनुशासन का उल्लंघन और आलस्य तथा कर्तव्यों के निर्वहन में जानबूझकर लापरवाही के कुछ आरोप दर्शाए गए। 11.02.1991 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की सेवाएं बर्खास्त कर दी गईं,

जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित/बरकरार रखा गया। (पैरा 24)

बी. घरेलू/अनुशासनात्मक जांच में प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है, यह बात लंबे समय से स्थापित है। यहां तक कि प्राकृतिक न्याय के पालन की आवश्यकता वाले कोई विशिष्ट वैधानिक नियम नहीं हैं, फिर भी प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है। प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी कर्मचारी के साथ ऐसी कार्यवाही में उचित व्यवहार किया जाए, जिसके परिणामस्वरूप उसे सेवा से बर्खास्त/निकालने सहित कोई सज़ा दी जा सकती है। प्राकृतिक न्याय के नियमों की यह बुनियादी आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप उसे कोई बड़ी सज़ा दी जा सकती है। (पैरा 27)

यदि कोई जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से दूषित होती है, तो उसे उचित आंतरिक जांच नहीं कहा जा सकता। (पैरा 22) अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप पर अपना निर्णय लेने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट को अस्वीकार करना, कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए उचित अवसर से वंचित करना है और यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। जब जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं होता है, तो दोषी कर्मचारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में कर्मचारी के दोषी या

निर्दोष होने के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार है। यह अधिकार कर्मचारी के अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ खुद का बचाव करने के अधिकार का एक हिस्सा है। (पैरा 25, 26)

वर्तमान मामले में, बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले, न तो याचिकाकर्ता को कोई कारण बताओ नोटिस दिया गया है और न ही 10.12.2019 की जांच रिपोर्ट दी गई है। याचिकाकर्ता को सेवाओं से बर्खास्त करने के लिए 11.02.2019 के आदेश जारी करने से पहले कोई पर्याप्त अवसर भी नहीं दिया गया है। 10.12.2019 की जांच रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 11.2.2019 को दंड आदेश पारित किया। जांच रिपोर्ट देना अनिवार्य है ताकि दोषी को जवाब देने का अवसर मिल सके। यदि ऐसा नहीं किया गया है और बड़ी सजा देने का आदेश पारित किया गया है, तो कानून की नजर में उक्त सजा आदेश टिकने लायक नहीं है। इसलिए, मामले को किसी भी कोण से देखा जाए, प्रत्यर्थागण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश शून्य और अमान्य हैं, सिवाय इसके कि वे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हैं। (पैरा 28)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-4)

पूर्ववर्ती मिसाल:

1. उत्तरांचल बनाम खड़क सिंह, (2008) 8 एससीसी 236 (पैरा 14)

2. चमोली जिला सहकारी बैंक बनाम रघुनाथ सिंह राणा, एआईआर 2016 एससी 2510 (पैरा 14)

3. ओम प्रकाश गौड़ बनाम उत्तर प्रदेश, 2019 4 एडीजे 386 (पैरा 14)

4. विकल्प कुमार बनाम उत्तर प्रदेश, 2019 (11) एडीजे 267 (पैरा 14)

वर्तमान याचिका में 11.02.1992 और 08.09.1992 के बर्खास्तगी आदेशों को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा दिया प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री रमेश कुमार श्रीवास्तव और प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री धर्मेन्द्र दीक्षित द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ए.के. चतुर्वेदी को सुना।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

"(ए) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी कर प्रतिपक्षियों को निर्देश दे सकता है कि वे याचिकाकर्ता को भागीरथ ग्रामीण बैंक, जिला सीतापुर में जूनियर क्लर्क के पद पर बने रहने की अनुमति दें;

(ख) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करेगा जिसमें प्रतिपक्षियों को वे सभी सेवा लाभ देने का आदेश दिया जाएगा जो याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों को दिए गए हैं;

(ग) याचिकाकर्ता की सेवा को खारिज करते हुए क्रमशः दिनांक 11.2.1992 और 8.9.1992 को सेवाओं से याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश को अपास्त करने और रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जो रिट याचिका के अनुबंध संख्या 6 और 9 में निहित है।

(घ) ऐसी प्रकृति और रीति में कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी या पारित करें जो मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और समीचीन समझी जाए; और

(ङ) लागत सहित रिट याचिका की अनुमति दें।

3. मामले के तथ्य यह हैं कि 28.12.1979 को याचिकाकर्ता को टर्म अपॉइंटमेंट के लिए तीस दिनों की अवधि के लिए नियुक्त किया गया था और उसके बाद उसे 60 दिनों और 90 दिनों के लिए नियुक्त किया गया था और उक्त प्रभाव के नियुक्ति पत्र उक्त अवधि के लिए जारी किए गए थे। इस संबंध में समय-समय पर याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे। इसके बाद, याचिकाकर्ता का साक्षात्कार 10.1.1983 को सुबह 11.00 बजे आयोजित किया गया था। और याचिकाकर्ता को 10.2.1983 को जूनियर क्लर्क के पद पर 354-550 रुपये के वेतनमान प्लस महंगाई भत्ते में चुना और नियुक्त किया गया और उसे बारह महीने की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रखा गया।

एक श्री डी.एस. मिश्रा, जो बैंक की उस शाखा के प्रबंधक थे, जिसमें याचिकाकर्ता जूनियर

क्लर्क के रूप में काम कर रहा था, ने याचिकाकर्ता के प्रति दुर्भावनापूर्ण इरादा विकसित किया और याचिकाकर्ता, जो उसके अधीन काम कर रहा था, उसने याचिकाकर्ता को कई बार अलग-अलग तरीकों से परेशान किया और यह भी आरोप लगाया कि याचिकाकर्ता कथित राशि के गबन के लिए जिम्मेदार है जबकि याचिकाकर्ता को (उस) समय कोई ज्ञान नहीं था।

प्रतिपक्षियों ने कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया और याचिकाकर्ता को बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले जांच रिपोर्ट की प्रति भी नहीं दी गई और याचिकाकर्ता को दिनांक 11.2.1991 के आदेश के जारी होने से पहले याचिकाकर्ता को उसकी सेवाओं से बर्खास्त करने से पहले कोई पर्याप्त अवसर भी नहीं दिया गया। भागीरथ ग्रामीण बैंक कर्मचारी सेवा विनियम, 1980 में विशिष्ट उल्लेख है कि ये विनियम अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए कर्मचारियों अथवा विशेष संविदा पर भर्ती किए गए व्यक्तियों पर लागू नहीं होते हैं।

याचिकाकर्ता ने सेवा से याचिकाकर्ता की उक्त बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ दिनांक 25.3.1991 को अपनी अपील भी प्रस्तुत की, जिसे भी 8.9.1982 को बिना किसी कारण और गैर आख्यापित आदेश के पारित किए पारित किया गया है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों ने सबसे अवैध, मनमाने और भेदभावपूर्ण तरीके से, याचिकाकर्ता को सेवाओं से बर्खास्त कर दिया, जो भारत के संविधान

के अनुच्छेद 14 और 16 में निहित प्रावधानों का उल्लंघन है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि कर्मचारी सेवा विनियमन, 1980 याचिकाकर्ता को आवेदन के लिए उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है जो अस्थायी रूप से या विशेष अनुबंध पर कार्यरत था।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि कर्मचारी सेवा विनियमन, 1980 के तहत विशिष्ट प्रावधान है कि ऐसे नियमों को उन कर्मचारियों पर लागू नहीं किया जाए, जिन्हें दैनिक मजदूरी पर अस्थायी रूप से नियोजित किया गया है या विशेष अनुबंध पर भर्ती किया गया है।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि कर्मचारी सेवा विनियमन, 1980 के तहत विशिष्ट प्रावधान है कि ऐसे नियमों को उन कर्मचारियों पर लागू नहीं किया जाए जिन्हें दैनिक मजदूरी पर अस्थायी रूप से नियोजित किया गया है या विशेष अनुबंध पर भर्ती किया गया है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था और वह विशेष अनुबंध पर था, जब उक्त राशि, जैसा कि प्रतिपक्षियों द्वारा आरोप लगाया गया था, रिकॉर्ड में नहीं दिखाया गया था।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों ने याचिकाकर्ता की

सेवाओं को खारिज करने का आदेश पारित करने से पहले उसके मांगने के बावजूद याचिकाकर्ता को दस्तावेज नहीं दिए। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को उसकी बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों ने आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले निष्कर्ष या जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान नहीं की। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों ने वर्ष 1981, 1982 के लिए उपस्थिति रजिस्टर नहीं दिया, यह दिखाने के लिए कि न तो वह रोजगार में थे और न ही वह इयूटी पर थे, जब प्रतिपक्षियों द्वारा कहा गया था, कथित विसंगति और कथित गबन किया गया है।

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जांच रिपोर्ट नहीं देना याचिकाकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करना है और इसे दंडित करने वाले प्राधिकारी द्वारा भी माना जाता है, इसलिए याचिकाकर्ता जांच रिपोर्ट की प्रति का हकदार है।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट दी जाती है तो परिणाम अलग होगा और जांच रिपोर्ट नहीं देना याचिकाकर्ता के लिए पूर्वाग्रह का कारण बनता है। इसके बाद उन्होंने कहा कि जांच रिपोर्ट न देने से दंड प्राधिकारी को अभ्यावेदन न देने के कारण पूर्वाग्रह पैदा हुआ।

13. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि विवेचनाधिकारी ने याचिकाकर्ता के

आरोप-पत्र और बचाव पक्ष के संक्षिप्त विवरण के जवाब पर विचार नहीं किया है, इसलिए रिपोर्ट प्रकृति में विकृत है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सजा का आदेश गैर आख्यापक है क्योंकि याचिकाकर्ता के आरोप पत्र और बचाव के संक्षिप्त विवरण पर विचार नहीं किया गया है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के खिलाफ पारित किया गया है।

14. अपनी दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:

(i) उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह 2008 खंड 8 एस.सी.सी. पृष्ठ-236 में रिपोर्ट किया गया

(ii) चमोली जिला सहकारी बैंक बनाम रघुनाथ सिंह राणा ए.आई.आर. 2016, उच्चतम न्यायालय पृष्ठ 2510 में रिपोर्ट किया गया।

(iii) ओम प्रकाश गौड़ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 खंड 4 एडीजे पृष्ठ 386 में रिपोर्ट;

(iv) विकल्प कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 (11) एडीजे पृष्ठ 267 में रिपोर्ट;

15. दूसरी ओर, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता बैंक की नेरी कलां शाखा में तैनात था, तो अध्यक्ष को कुछ गंभीर शिकायतें मिली थीं और इस तरह, याचिकाकर्ता को 8.5.1984 को निलंबित कर दिया गया था, जिसके बाद 9.7.1994 को एक आरोप पत्र दिया गया था जिसमें बैंक के पैसे

के गबन, अनुशासन और अकर्मण्यता का उल्लंघन और कर्तव्यों के निर्वहन में जानबूझकर लापरवाही के आरोपों का संकेत दिया गया था।

16. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता पर बैंक के किसी भी अधिकारी द्वारा किसी भी राशि का गबन करने के लिए दबाव नहीं डाला गया था। सामान्य विवेक का कोई भी व्यक्ति कभी भी दूसरे के निर्देशों का पालन करके अपनी सेवा को खतरे में नहीं डालेगा जब तक कि उसका आत्म-उद्देश्य दुर्भावनापूर्ण न हो।

17. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को दिनांक 2.1.1990 की आरोप पत्र जारी की गई थी जिसमें गबन आदि के आरोप थे और बाद में याचिकाकर्ता को 3.1.1990 को निलंबित कर दिया गया था।

18. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की आपूर्ति न करने से क्या पूर्वाग्रह हुआ है। यदि कोई पूर्वाग्रह इंगित नहीं किया जा सकता है तो सजा के आदेश को रद्द नहीं किया जाएगा। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता ने पहले ही दिनांक 25.3.1991 की अपील को दायर किया देते हुए दिनांक 10.2.1990 की जांच रिपोर्ट के निष्कर्षों को आत्मसात करने का अवसर प्राप्त कर लिया है और पहले इस न्यायालय के समक्ष किसी भी तरह से उक्त निष्कर्षों पर हमला नहीं किया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि उसके साथ पूर्वाग्रह हुआ है। इस

प्रकार, दिनांक 11.2.1991 का दंड आदेश बुरा और अवैध नहीं है।

19. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि ब्रह्मावली शाखा, सीतापुर के तत्कालीन प्रबंधक ने मिलीभगत की और दोनों ने बैंक के पैसे का दुरुपयोग किया और बैंक को धोखा दिया।

20. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि 10.12.1990 की जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद और 11.2.1991 के बर्खास्तगी आदेश से पहले कानून के प्रावधानों के तहत व्यक्तिगत सुनवाई के किसी अवसर की आवश्यकता नहीं है। प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि 10.12.1990 की जांच रिपोर्ट की प्रति याचिकाकर्ता को बर्खास्तगी आदेश दिनांक 11.2.1991 के माध्यम से दी गई थी।

21. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर सामग्री के साथ-साथ याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि न्याय निर्णयों का अवलोकन किया है।

22. प्रस्तुत रिट याचिका में शामिल विवाद को हल करने के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का ऑपरेटिव हिस्सा निम्नानुसार है:

(आई) स्टेट ओएफ उत्तरंचल बनाम खरक सिंह (उपरोक्त):

10. एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित निम्नलिखित टिप्पणियां और सिद्धांत कामगार और अन्य प्रासंगिक हैं:

"... ... प्रस्तुत मामले में, पहली गंभीर दुर्बलता जिससे जांच प्रभावित होती है, वह इस तथ्य से आगे बढ़ती है कि तीन जांच अधिकारियों ने दावा किया कि उन्होंने खुद मलक राम के कथित कदाचार को देखा था। श्री कोलाह का तर्क है कि यदि प्रबंधक और अन्य अधिकारियों ने मलक राम को कदाचार का कार्य करते हुए देखा, तो यह स्वयं उन्हें आंतरिक जांच करने से अयोग्य नहीं ठहराएगा। हम इस तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि कोई अधिकारी स्वयं किसी कामगार के कदाचार को देखता है, तो यह वांछनीय है कि जांच किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए जो आक्षेपित घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा नहीं करता है। जैसा कि हमने बार-बार जोर दिया है, आंतरिक जांच ईमानदारी से और सदाशयी रूप से की जानी चाहिए ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि किसी विशेष कर्मचारी के विरुद्ध लगाया गया आरोप साबित होता है या नहीं, और इसलिए, यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि ये जांचें खोखली औपचारिकताएं न बन जाएं। यदि कोई अधिकारी दावा करता है कि उसने स्वयं किसी कर्मचारी के खिलाफ कथित कदाचार देखा है, तो निष्पक्षता से यह देखने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि जांच करने का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा गया है। विवेचनाधिकारी द्वारा दावा किया गया ज्ञान जांच की पूरी कार्यवाही को कैसे

दूषित कर सकता है, यह वर्तमान जांच से ही स्पष्ट होता है।

. इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि आंतरिक जांच में, नियोक्ता को पहले आरोपित कामगार के खिलाफ साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कदम उठाने चाहिए, कामगार को उक्त साक्ष्य की जिरह करने का अवसर देना चाहिए और फिर कामगार से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण देना चाहता है। हमें ऐसा लगता है कि औद्योगिक कर्मचारियों के खिलाफ आंतरिक जांच में यह उचित नहीं है कि जांच शुरू होने पर, कर्मचारी को उसके खिलाफ कोई अन्य सबूत पेश करने से पहले ही बारीकी से जिरह की जानी चाहिए। ऐसे औद्योगिक मामलों में अवधारित आंतरिक पूछताछ से निपटने में, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अधिकांश मामलों में, कर्मचारियों के अनभिज्ञ होने की संभावना है, और इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें वर्तमान जांच कार्यवाही में अपनाए गए तरीके से जिरह के जोखिम के लिए उजागर न करें। इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि श्री सुले यह तर्क देने में सही हैं कि वर्तमान जांच कार्यवाही में अपनाया गया प्रक्रिया, जिसके द्वारा मलक राम से शुरुआत में विस्तार से जिरह की गई थी, इस जांच में एक और कमजोरी है।

15. उपर्युक्त निर्णयों से निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर सामने आएंगे:

- (i).....
- (ii).....
- (iii).....

(iv) जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे बढ़ने से पहले, अनुशासनात्मक/दण्डित प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति तथा विवेचनाधिकारी द्वारा जिन सभी संबंध सामग्रियों पर भरोसा किया गया है, उन्हें उपलब्ध कराए ताकि वह अपने विचार, यदि कोई हों, प्रस्तुत कर सकें।

(ii) चमोली जिला सहकारी बैंक (उपरोक्त):

18. यह भी नोट करना प्रासंगिक है कि दिनांक 04.02.1993 को उत्तर प्रस्तुत करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 04.05.1993 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया जिसमें कर्मचारी/प्रतिपक्षी सं-1 को अपना जवाब प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। जब विवेचनाधिकारी की नियुक्ति की गई थी, तो जांच करना अनिवार्य था और जांच किए बिना और कर्मचारी/प्रतिपक्षी सं-1 को कोई जांच रिपोर्ट दिए बिना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी कोई दंड देने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था। अपीलकर्ता-बैंक द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन केवल औपचारिकता नहीं है, खासकर तब जब वैधानिक प्रावधान विशेष रूप से प्रदान करते हैं कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की उचित टिप्पणियों के साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी।

19. घरेलू/अनुशासनात्मक जांच में प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है, यह लंबे समय से स्थापित है। इस न्यायालय ने माना है कि यहां तक कि प्राकृतिक न्याय के पालन की आवश्यकता के लिए कोई विशिष्ट वैधानिक नियम नहीं हैं, प्राकृतिक न्याय का अनुपालन

आवश्यक है। कुछ अवयवों को जांच के आयोजन का अभिन्न अंग माना गया है। सुर एनामेल एंड स्टैम्पिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय। (1964)3 एस.सी.आर. 616 में रिपोर्ट किए गए उनके कामगारों ने निम्नलिखित निर्धारित किया है:-

“एक जांच को तब तक ठीक से आयोजित नहीं माना जा सकता जब तक कि, (i) कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के बारे में स्पष्ट रूप से सूचित नहीं किया गया है, (ii) गवाहों की जांच की जाती है - आमतौर पर कर्मचारी की उपस्थिति में - आरोपों के संबंध में, (iii) कर्मचारी को गवाहों से जिरह करने का उचित अवसर दिया जाता है, (iv) उसे अपने बचाव में गवाहों की जांच करने का उचित अवसर दिया जाता है, यदि वह किसी पर भी ऐसा चाहता है प्रासंगिक मामला और (v) विवेचनाधिकारी अपनी रिपोर्ट में उसी के कारणों के साथ अपने निष्कर्षों को दर्ज करता है।

20. सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से भारतीय स्टेट बैंक बनाम आरके जैन और अन्य (1972)4 एस.सी.सी. 304 में रिपोर्ट किया कि यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से जांच दूषित हो जाती है या यदि दोषी को अपना बचाव करने का कोई उचित अवसर प्रदान नहीं किया जाता है, तो इसे प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार आयोजित उचित आंतरिक जांच के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। पैराग्राफ 23 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया था:-

“जैसा कि इस न्यायालय ने आनंद बाजार पत्रिका (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में जोर दिया है। इसके कर्मकार, (1964)3 एस.सी.आर. 601, एक कर्मचारी की सेवा की समाप्ति प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार अवधारित एक उचित आंतरिक जांच से पहले होनी चाहिए। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से दूषित होती है या यदि किसी दोषी को अपना बचाव करने के लिए कोई उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया था, तो इसे प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार अवधारित उचित आंतरिक जांच के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है.....

21. उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम खड़क सिंह (2008)8 एस.सी.सी. 236 में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय में प्राकृतिक न्याय के विभिन्न रूपों की जांच करने का अवसर था, जिन्हें विभागीय जांच में निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने पहले के निर्णयों पर ध्यान दिया जहां सिद्धांत निर्धारित किए गए थे कि जांच कैसे की जानी है। पैराग्राफ 9, 10, 11, 12, 13 और 15 को संदर्भित करना उपयोगी है, जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए हैं: -

“9. उपरोक्त प्रस्तुतियों की शुद्धता का विश्लेषण करने से पहले, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख करना उपयोगी है कि जांच कैसे की जानी है और किन प्रक्रियाओं का पालन किया जाना है।

10. एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित निम्नलिखित टिप्पणियां और सिद्धांत वर्कमेन और अन्य [1964] 3 एस.सी.आर. 652 प्रासंगिक हैं:

"प्रस्तुत मामले में, पहली गंभीर दुर्बलता जिससे जांच प्रभावित होती है, वह इस तथ्य से आगे बढ़ती है कि तीन जांच अधिकारियों ने दावा किया कि उन्होंने खुद मलक राम के कथित कदाचार को देखा था। श्री कोलाह का तर्क है कि यदि प्रबंधक और अन्य अधिकारियों ने मलक राम को कदाचार का कार्य करते हुए देखा, तो यह स्वयं उन्हें आंतरिक जांच करने से अयोग्य नहीं ठहराएगा। हम इस तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि कोई अधिकारी स्वयं किसी कामगार के कदाचार को देखता है, तो यह वांछनीय है कि जांच किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए जो आक्षेपित घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा नहीं करता है। जैसा कि हमने बार-बार जोर दिया है, आंतरिक जांच ईमानदारी से और सदाशयी रूप से की जानी चाहिए ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि किसी विशेष कर्मचारी के विरुद्ध लगाया गया आरोप साबित होता है या नहीं, और इसलिए, यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि ये जांचें खोखली औपचारिकताएं न बन जाएं। यदि कोई अधिकारी दावा करता है कि उसने स्वयं किसी कर्मचारी के खिलाफ कथित कदाचार देखा है, तो निष्पक्षता से यह देखने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि

जांच करने का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा गया है। विवेचनाधिकारी द्वारा दावा किया गया ज्ञान जांच की पूरी कार्यवाही को कैसे दूषित कर सकता है, यह वर्तमान जांच से ही स्पष्ट होता है।

इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि आंतरिक जांच में, नियोक्ता को पहले आरोपित कामगार के खिलाफ साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कदम उठाने चाहिए, कामगार को उक्त साक्ष्य की जिरह करने का अवसर देना चाहिए और फिर कामगार से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण देना चाहता है। हमें ऐसा लगता है कि औद्योगिक कर्मचारियों के खिलाफ आंतरिक जांच में यह उचित नहीं है कि जांच शुरू होने पर ही कर्मचारी के खिलाफ कोई अन्य साक्ष्य पेश करने से पहले ही उसकी बारीकी से जिरह की जाए। ऐसे औद्योगिक मामलों में अवधारित घरेलू जांचों से निपटने में, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अधिकांश मामलों में, कर्मचारियों के अनभिज्ञ होने की संभावना है, और इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें वर्तमान जांच कार्यवाही में अपनाए गए तरीके से जिरह के जोखिम के लिए उजागर न किया जाए। इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि श्री सुले यह तर्क देने में सही हैं कि वर्तमान जांच कार्यवाही में अपनाया गया प्रक्रिया, जिसके द्वारा मलक राम से शुरुआत में विस्तृत रूप से जिरह की गई थी, इस जांच में एक और दुर्बलता का गठन करती है।

11) ईसीआईएल बनाम बी करंकर (1993) 4 एस.सी.सी. 727 में, यह अवधारित किया गया था:

"(1) जहां विवेचनाधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अलावा अन्य है, अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में टूट जाती है। पहला चरण तब समाप्त होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य, विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट और दोषी कर्मचारी के जवाब के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचता है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकरण अपने निष्कर्षों के आधार पर जुर्माना लगाने का निर्णय लेता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण अनुशासनात्मक कार्यवाही को छोड़ने का निर्णय लेता है, तो दूसरे चरण तक भी नहीं पहुंचा जाता है।

जबकि रिपोर्ट में निष्कर्षों के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अधिकार जांच के प्रथम चरण के दौरान उपलब्ध युक्तियुक्त अवसर का भाग है अर्थात् अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा रिपोर्ट में दिए गए निष्कर्षों पर विचार करने से पहले, प्रस्तावित शास्ति के विरुद्ध कारण बताओ अधिकार दूसरे चरण से संबंधित है जब अनुशासनिक प्राधिकारी ने रिपोर्ट में निष्कर्षों पर विचार किया है और कर्मचारी और अपने निष्कर्षों के आधार पर दंड देने का प्रस्ताव करता है। पहला अधिकार है बेगुनाही साबित करने का अधिकार। दूसरा अधिकार या तो कोई जुर्माना या कम दंड के लिए अनुरोध करना है, हालांकि अपराध के बारे में निष्कर्ष स्वीकार किया जाता है। यह

दूसरे चरण में प्रयोग किए जाने वाले दूसरे अधिकार है जिसे बयालीसवें संशोधन द्वारा छीन लिया गया था। दूसरे चरण में प्रस्तावित शास्ति के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी करना और नोटिस के उत्तर पर विचार करना और शास्ति पर निर्णय लेना शामिल है। जो छूट दी जाती है वह प्रस्तावित दंड पर अभ्यावेदन देने का अवसर है न कि विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट पर अभ्यावेदन करने का अवसर। उत्तरार्द्ध अधिकार हमेशा वहाँ होता था। लेकिन संविधान के बयालीसवें संशोधन से पूर्व, जिस समय इसका प्रयोग किया जाना था, वह दूसरे चरण अर्थात् शास्ति पर विचार करने के चरण तक आस्थगित रहा। उस समय तक, यह निष्कर्ष कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी कर्मचारी के अपराध और लगाए जाने वाले दंड दोनों के संबंध में पहुंच सकता है, केवल अस्थायी थे। संविधान के बयालीसवें संशोधन के बाद जो कुछ हुआ है वह उस समय को आगे बढ़ाना है जिस पर विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट के खिलाफ कर्मचारी के प्रतिनिधित्व पर विचार किया जाएगा। अब, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को आरोपों के संबंध में अपने अपराध या निर्दोषता के संबंध में अपने निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले रिपोर्ट के खिलाफ कर्मचारी के प्रतिनिधित्व पर विचार करना होगा।

* * *

अनुच्छेद 311(2) कहता है कि कर्मचारी को "उसके खिलाफ आरोपों के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर" दिया जाएगा। विवेचनाधिकारी जैसे तीसरे व्यक्ति द्वारा दिए गए आरोपों पर निष्कर्ष, विशेष रूप

से जब वे साक्ष्य से साबित नहीं होते हैं या सबूतों की अनदेखी करके या इसे गलत तरीके से निकालकर पहुंचते हैं, तो वे स्वयं नए अवांछित आरोप बन सकते हैं। अनुच्छेद 311(2) का प्रावधान प्रभावी रूप से अलग-अलग दायरे के दो क्रमिक चरणों को स्वीकार करता है। चूंकि दंड जांच के बाद प्रस्तावित किया जाना है, जो प्रभावी जांच अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा की जानी है (विवेचनाधिकारी केवल उसका प्रतिनिधि है जिसे जांच करने और उसकी सहायता करने के लिए नियुक्त किया गया है), विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट पर कर्मचारी का उत्तर और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा ऐसे उत्तर पर विचार करना भी ऐसी जांच का एक अभिन्न अंग है।

इसलिए, जब विवेचनाधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं हैं, तो दोषी कर्मचारी को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में कर्मचारी के अपराध या निर्दोषता के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार है। यह अधिकार कर्मचारी के अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ खुद का बचाव करने के अधिकार का एक हिस्सा है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपों पर अपना निर्णय लेने से पहले विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट से इनकार करना, कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए उचित अवसर से वंचित

करना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

15. उपर्युक्त निर्णयों से निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर सामने आएंगे:

(i).....

(ii).....

(iii).....

(iv) जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे बढ़ने से पहले, अनुशासनात्मक/दण्डित प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति और विवेचनाधिकारी द्वारा जिन सभी संबद्ध सामग्रियों पर भरोसा किया गया है, उन्हें उपलब्ध कराए ताकि वह अपने विचार, यदि कोई हों, प्रस्तुत कर सकें।

(iii) ओम प्रकाश गोंड (उपरोक्त): -

6. न केवल उपरोक्त बल्कि याचिकाकर्ता के खिलाफ 26.02.2001 को एक एकपक्षीय जांच पूरी की गई, क्योंकि मूल जांच रिपोर्ट की प्रति अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पेश की गई थी। चूंकि जांच रिपोर्ट दिनांक 26-07-2001 की है और इसे बाद में अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, इसलिए अनुशासनिक प्राधिकारी ने कानून के अंतर्गत यथा अनिवार्य स्पष्टीकरण मांगने वाले याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिए बिना दिनांक 29-03-2001 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया।

13. हाल ही में चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम रघुनाथ सिंह राणा और अन्य, ए.आई.आर. 2016 एस.सी. 2510 में इस विषय पर पूरे कानून की समीक्षा की गई है और दोहराया गया है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ सिद्धांतों को निम्नानुसार निकाला है:

"i) पूछताछ सदाशयी रूप से की जानी चाहिए और यह देखने के लिए ध्यान रखा जाना चाहिए कि पूछताछ खाली औपचारिकताएं न बन जाएं।

ii) यदि कोई अधिकारी किसी भी घटना का गवाह है जो जांच का विषय है या यदि जांच किसी अधिकारी की रिपोर्ट पर शुरू की गई थी, तो सभी निष्पक्षता में उसे विवेचनाधिकारी नहीं होना चाहिए। यदि विवेचनाधिकारी की नियुक्ति के बाद उक्त पद का पता चलता है तो जांच के दौरान यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि जांच करने का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा जाए।

(iii) जांच में, नियोक्ता/विभाग को आरोपित कर्मकार/दोषी के विरुद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम कदम उठाने चाहिए और उसे नियोक्ता के साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। इसके बाद ही कर्मकार/दोषी से पूछा जाए कि क्या वह कोई साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है और उसके विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण देने के लिए कहा जाए।

(iv) जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे कार्यवाही करने से पहले, अनुशासनात्मक /दण्डित प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति और विवेचनाधिकारी द्वारा जिन सभी संबद्ध सामग्रियों पर भरोसा किया गया है, उन्हें उपलब्ध कराए ताकि वह अपने विचार, यदि कोई हों, प्रस्तुत कर सकें।

15. इसके अलावा, दिनांक 26.03.2001 की जांच रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई थी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को सख्ती से कानून के अनुसार सुनवाई का दूसरा अवसर प्रदान किए बिना दिनांक 29.03.2001 को सजा आदेश पारित किया क्योंकि सजा आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट के साथ कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था।

16. इस मुद्दे के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मेरा विचार है कि 29.03.2001 का आक्षेपित दंड आदेश कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना पारित किया गया है। अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो निर्धारित मानदंडों के अनुसार विभागीय जांच किए बिना दंड आदेश पारित किया गया है और यह पूर्णतः एकपक्षीय विभागीय जांच है, इसलिए इसे रद्द किया जा सकता है।

(इ) विकल्प कुमार (उपरोक्त):-

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में पारित किया गया है, क्योंकि आक्षेपित आदेश पारित

करने से पहले, याचिकाकर्ता को किसी भी प्रकार की सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। उन्हें जांच रिपोर्ट की प्रति सहित कोई प्रासंगिक दस्तावेज प्रदान नहीं किया गया है, और उन्हें मौखिक सुनवाई का अवसर भी नहीं दिया गया है, इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश खराब है और इसे रद्द किया जा सकता है। यह आगे तर्क दिया गया था कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के संकल्प के मद्देनजर एक डिग्री कोर्स और एक सर्टिफिकेट कोर्स को एक साथ करने के खिलाफ कोई रोक नहीं है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षियों के समक्ष धोखाधड़ी या गलत तरीके से पेश नहीं किया है।

10. इस प्रश्न का उत्तर पहले दिए जाने की आवश्यकता है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान किए बिना याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने का आक्षेपित आदेश पारित करना उचित था और आगे क्या नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं।

13. विवेचनाधिकारी ने 10.9.2018 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। अनुशासन प्राधिकारी यानी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने जांच रिपोर्ट के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की और इसकी प्रति की आपूर्ति किए बिना और प्रस्तावित सजा के खिलाफ कोई कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना, दिनांक 10.9.2018 को उनकी सेवाओं को समाप्त करने का आदेश पारित किया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा

आरोपों पर अपना निर्णय लेने से पहले जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान करने में विफलता, कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए उचित अवसर से वंचित करना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन है।

14. नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी कर्मचारी के साथ कार्यवाहियों में उचित व्यवहार किया जाए जिससे बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित दंड दिया जा सकता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों की यह मूलभूत आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारी को बड़ी सजा दी जा सकती है। इस प्रकार, अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त हो गई।

15. भारत संघ और अन्य बनाम मोहम्मद अली खान 1991 एससीसी 588 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में यह व्यवस्था दी है कि उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के लिए दोषी को जांच रिपोर्ट उपलब्ध कराना अनिवार्य है। यदि दोषी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट प्रदान किए बिना बड़ी शास्ति लगाने वाला दंड आदेश पारित किया गया है, तो उक्त दंड आदेश कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है। संबंधित पैराग्राफ निम्नानुसार हैं: -

"14. यह न्यायालय मजहरुल इस्लाम हाशमी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1979) 4 एस.सी.सी.

537: 1980 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 54] ने बताया:

उन्होंने कहा, 'हर व्यक्ति को पता होना चाहिए कि उसे क्या मिलना है और उसे उस मामले को पूरा करने का अवसर मिलना चाहिए। विधायिका, हालांकि, इन सिद्धांतों के संचालन को स्पष्ट रूप से या निहित रूप से बाहर कर सकती है। लेकिन इस तरह के किसी भी बहिष्कार के अभाव में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को साबित करना होगा।

15. संविधान के अनुच्छेद 311(2) की योजना से दूसरे अवसर को हटाने का अपना अभ्यावेदन करने के मामले में दोषी को रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने से कोई लेना-देना नहीं है। यद्यपि अनुच्छेद 311(2) में जांच के दूसरे चरण को संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया है, फिर भी दोषी को विवेचनाधिकारी के इस निष्कर्ष के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अधिकार है कि आरोप या कुछ आरोप सिद्ध हो गए हैं और दोषी को ऐसे आरोपों का दोषी ठहराया गया है। जांच रिपोर्ट के प्रभाव को समाप्त करने के लिए या दंड देने के मामले में विवेचनाधिकारी की सिफारिशों को पूरा करने के लिए, रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है और दोषी की पीठ के पीछे कुछ सामग्री का उपयोग करके कार्यवाही को पूरा करना एक ऐसी स्थिति है जिसे उचित प्रक्रिया द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। जबकि कानून द्वारा प्राकृतिक न्याय के आवेदन को पूरी तरह से खारिज या छोटा किया जा सकता है; यहां कुछ भी नहीं किया गया है जिसे प्राकृतिक

न्याय को कार्यवाही से बाहर रखने के रूप में लिया जा सकता है और इस तरह की जांच के लिए लागू प्राकृतिक न्याय के नियमों को बनाने वाले इस न्यायालय की घोषणाओं की श्रृंखला बयालीसवें संशोधन से प्रभावित नहीं होती है। इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रस्तावित सजा के मामले में सिफारिश के साथ जांच रिपोर्ट की एक प्रति की आपूर्ति, यदि कोई हो, प्राकृतिक न्याय के नियमों के भीतर होगी और इसलिए, दोषी इसकी एक प्रति की आपूर्ति का हकदार होगा। बयालीसवें संशोधन से इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

17. विभिन्न उच्च न्यायालयों में ऐसे कई निर्णय हुए हैं, जिन्होंने बयालीसवें संशोधन के बाद यह विचार किया है कि अब जांच रिपोर्ट की एक प्रति दोषी अधिकारियों को प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। यहां तक कि कुछ अवसरों पर इस न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। चूंकि हम एक अलग निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं, इसलिए विभिन्न उच्च न्यायालयों में विपरीत दृष्टिकोण अपनाने वाले निर्णयों को अब अच्छा कानून नहीं बनाने के रूप में लिया जाना चाहिए। हमें इस दृष्टिकोण को लेने वाले इस न्यायालय के समन्वय या बड़ी पीठ का कोई निर्णय नहीं दिखाया गया है। इसलिए, इस न्यायालय में किसी भी दो-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा इसके विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचने को भी अब अच्छा कानून बनाने के रूप में नहीं लिया जाएगा, लेकिन इसका भावी अनुप्रयोग होगा और इस आधार पर कोई भी सजा चुनौती देने के लिए खुली नहीं होगी।

18. हम यह स्पष्ट करते हैं कि जहां कहीं भी कोई विवेचनाधिकारी रहा है और उसने जांच के समापन पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें दोषी को किसी विशेष सजा के प्रस्ताव के साथ सभी या किसी भी आरोप का दोषी ठहराया गया है या नहीं, दोषी ऐसी रिपोर्ट की एक प्रति का हकदार है और, यदि वह ऐसा चाहता है, इसके खिलाफ अभ्यावेदन करने का भी हकदार होगा; और रिपोर्ट प्रस्तुत न करना प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन होगा और अंतिम आदेश को इसके बाद चुनौती देने के लिए उत्तरदायी बनाया जाएगा।

17. आक्षेपित आदेश यह भी प्रतिबिंबित करेगा कि यह इस आरोप पर आगे बढ़ता है कि एक ही वर्ष के लिए एक साथ दो परीक्षाओं में उपस्थित होकर, याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी की है और प्रतिपक्षी-विभाग की छवि को कम किया है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने संबंधित सेवा आचरण नियमों का उल्लंघन करते हुए भी काम किया।

18. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा दिया गया तर्क स्पष्ट रूप से अस्थिर है क्योंकि याचिकाकर्ता की सेवा को नियंत्रित करने वाला ऐसा कोई प्रावधान न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया है, जो ऐसे किसी भी कर्मचारी को एक साथ दो परीक्षाओं में जाने से रोक सकता है। वास्तव में याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के दिनांक 28.12.2012 के संकल्प पर भरोसा किया है, जिसके तहत एक निर्णय लिया गया था कि "नियमित मोड के तहत डिग्री प्रोग्राम

करने वाले छात्र को एक ही विश्वविद्यालय या अन्य संस्थानों से नियमित या खुले और दूरस्थ मोड में अधिकतम एक प्रमाणपत्र/ डिप्लोमा /उन्नत डिप्लोमा/ पीजी डिप्लोमा कार्यक्रम, सर्टिफिकेट कोर्स के साथ करने की अनुमति दी जा सकती है।

21. पिछले पैराग्राफ में उद्धृत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह से लागू होता है।

23. उपर्युक्त निर्णयों के महज़ अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में खत्म होती है। पहला चरण समाप्त होता है, जब अनुशासनिक प्राधिकारी साक्ष्य, जांच अधिकारियों की रिपोर्ट के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचता है और दोषी कर्मचारी इसका उत्तर देते हैं। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकरण अपने निष्कर्ष के आधार पर जुर्माना लगाने का निर्णय लेता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण अनुशासनात्मक कार्यवाही को छोड़ने का निर्णय लेता है, तो दूसरे चरण तक भी नहीं पहुंचा जाता है।

यह भी स्पष्ट है कि रिपोर्ट में निष्कर्ष के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का अधिकार जांच के पहले चरण के दौरान उचित अवसर का हिस्सा है, इससे पहले कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी रिपोर्ट में निष्कर्ष को ध्यान में रखता है। पहला अधिकार है बेगुनाही साबित करने का अधिकार। जो छूट दी जाती है वह प्रस्तावित दंड पर अभ्यावेदन करने का अवसर

है न कि विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट पर अभ्यावेदन करने का अवसर। जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने के लिए दंड प्राधिकारी की ओर से यह आवश्यक है।

24. रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को 10.2.1983 को जूनियर क्लर्क के पद पर 12 महीने की अवधि के लिए परीक्षा पर चुना और नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ एक निश्चित राशि के गबन का आरोप लगाया गया है। इसके बाद, याचिकाकर्ता को दिनांक 8.5.1984 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया, जिसके बाद 9.7.1994 को एक आरोप पत्र लगाया गया, जिसमें बैंक के पैसे के गबन, अनुशासन और अकर्मण्यता के उल्लंघन और कर्तव्यों के निर्वहन में जानबूझकर लापरवाही के कुछ आरोपों का उल्लेख किया गया था। दिनांक 11-02-1991 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की सेवाओं को बर्खास्त कर दिया गया है जिसे अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित/बरकरार रखा गया है।

रिकॉर्ड के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले, न तो याचिकाकर्ता को कोई कारण बताओ नोटिस दिया गया है और न ही जांच रिपोर्ट की प्रति दी गई है। याचिकाकर्ता को सेवाओं से बर्खास्त करने के लिए दिनांक 11.2.1991 के आदेश के जारी होने से पहले याचिकाकर्ता को कोई पर्याप्त अवसर भी नहीं दिया गया है। दिनांक 10-12-1990 की जांच रिपोर्ट अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष

प्रस्तुत की गई थी और अनुशासनिक प्राधिकारी ने विधि के अनुसार याचिकाकर्ता को सुनवाई का दूसरा अवसर प्रदान किए बिना दिनांक 11-2-1991 को दंड आदेश पारित किया था क्योंकि दंड आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट के साथ कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था। इस मामले को देखते हुए, कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना और निर्धारित मानदंडों के अनुसार विभागीय आचरण किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं। पक्षों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कानून रिपोर्ट मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह से लागू होती हैं।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा यह बार-बार देखा गया है कि जब विवेचनाधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं है, तो दोषी कर्मचारी को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में कर्मचारी के अपराध या निर्दोषता के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार है। यह अधिकार कर्मचारी के अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ खुद का बचाव करने के अधिकार का एक हिस्सा है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप पर अपना निर्णय लेने से पहले विवेचनाधिकारी की रिपोर्ट से इनकार करना, कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए उचित अवसर से वंचित करना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

26. यह भी देखा गया है कि जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे बढ़ने से पहले, अनुशासनात्मक/दंडनीय प्राधिकारी की ओर से यह आवश्यक है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति और विवेचनाधिकारी द्वारा भरोसा की गई सभी संबंधित सामग्रियों की एक प्रति प्रदान करे ताकि वह अपना विचार, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने में सक्षम हो सके।

27. नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी कर्मचारी के साथ कार्यवाहियों में उचित व्यवहार किया जाए जिससे बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित दंड दिया जा सकता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों की यह मूलभूत आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारी को बड़ी सजा दी जा सकती है। इस प्रकार अनुशासनात्मक कार्यवाही विफल हो गई।

28. तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कानून रिपोर्ट की समग्रता पर विचार करते हुए, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि इसका उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के लिए दोषी को जांच रिपोर्ट प्रदान करना अनिवार्य है। यदि दोषी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट प्रदान किए बिना बड़ी शास्ति लगाने वाला दंड आदेश पारित किया गया है, तो उक्त दंड आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है। इसलिए, मामले को किसी भी कोण से देखा जाना है, प्रतिपक्षियों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश,

इस तथ्य के अलावा कि वे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन कर रहे हैं, शून्य और निश्चित है।

29. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। दिनांक 11.2.1992 और 8.9.1992 के आदेश एतद्वारा अपास्त किए जाते हैं।

30. हालांकि यह स्पष्ट किया जाता है कि चूंकि यह आदेश इस कारण से पारित किया जा रहा है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच नहीं की गई है और कानून के अनुसार सख्ती से निष्कर्ष निकाला गया है, इसलिए, संबंधित प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता के पक्ष में, यदि यह ऐसा वांछित है, उचित आदेश पारित करे और उसे तुरंत सेवा में बहाल करे और वह विभागीय जांच करने के लिए स्वतंत्र है; लेकिन जांच रिपोर्ट जारी करने के चरण से कानून के अनुसार सख्ती से। याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान की जाएगी और उसे कारण बताओ नोटिस पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा, जो याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की प्रति, यदि कोई हो, के साथ पंद्रह दिनों के भीतर दिया जा सकता है और याचिकाकर्ता उसके बाद एक महीने की अधिकतम अवधि के भीतर कारण बताओ नोटिस पर अपना स्पष्टीकरण दर्ज करेगा। इसके बाद संबंधित प्राधिकारी अंतिम आदेश पारित करेगा और याचिकाकर्ता को तुरंत सूचित करेगा।

(2023) 7 ILRA 334

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ,

के समक्ष

रिट-बी संख्या 1601 सन् 1976

केशव प्रसाद एवं अन्य ...याचिकाकर्तागण
बनाम

उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री वी.डी. ओझा,
श्री संजीव सिंह, श्री जेड.ए. सिद्धीकी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: श्री जी.सी. द्विवेदी,
श्री आर.पी. मिश्रा, एस.सी., श्री एस.के. तिवारी,
श्री एस.पी. शुक्ला, श्री सिद्धार्थ शुक्ला, श्री
त्रिपाठी बी.जी. भाई, श्री यू.सी. मिश्रा

ए. चकबंदी कानून - उत्तर प्रदेश चकबंदी
अधिनियम, 1953 - धारा 9-ए(2) - सिविल
प्रक्रिया संहिता, 1908 - ओ. XXIII आर. 3 -
समझौता डिक्री के आधार पर राजस्व अभिलेख
में सुधार की मांग - उत्तर प्रदेश चकबंदी एवं
कानून व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा
229-बी के तहत एक वाद में समझौता डिक्री
पारित की गई थी - याचिकाकर्तागण ने अपने
अधिवक्ता के पक्ष में वकालतनामा निष्पादित
किया था और उसी तिथि को उनके अधिवक्ता
द्वारा समझौता पर हस्ताक्षर किए गए थे और
समझौता डिक्री भी पारित की गई थी -
अनुमति - सीपीसी की धारा ओ. XXIII आर.
3 का उद्देश्य समझाया गया - माना गया कि

न्यायालय के समक्ष अपने मुवक्किल की ओर
से अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित समझौता
कानूनन और सभी उद्देश्यों के लिए वैध है
और ऐसे अधिवक्ता के मुवक्किल ऐसे समझौते
को निष्पादित करने के अपने अधिवक्ता के
अधिकार पर विवाद नहीं कर सकते हैं -
सीपीसी की धारा ओ. XXIII, आर. 3 का
उद्देश्य सहमति से मुकदमेबाजी समाप्त करके
पक्षों के बीच मुकदमेबाजी को कम करना है।
(पैरा 23)

बी. चकबंदी कानून - उत्तर प्रदेश चकबंदी
अधिनियम, 1953 - धारा 48 - पुनरीक्षण
शक्ति - दायरा - उप संचालक चकबंदी को
अभिलेख पर साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के
पश्चात अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत
तथ्य और विधि से सम्बन्धित मुद्दे पर
निर्णय लेने की बहुत व्यापक शक्ति है - राम
जीत के मामले पर भरोसा किया गया - निर्णय
दिया गया कि पुनरीक्षण न्यायालय का निर्णय
दो न्यायालयों या प्राधिकारियों द्वारा किए गए
कार्यों के पुनर्मूल्यांकन के निर्णय की तरह
आरंभ, अंत और अंत होना चाहिए - आक्षेपित
आदेश तीसरी बार में लिखे गए मूल निर्णय की
तरह है। यह अपीलीय न्यायालय द्वारा कही
गई बात से सहमत होने और अवर न्यायालय
द्वारा कही गई बात से असहमत होने का कोई
कारण नहीं देता - उच्च न्यायालय ने चकबंदी
अधिकारी के आदेश को बरकरार रखते हुए
अपीलीय न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय
के आदेश को निरस्त कर दिया। (पैरा 32, 34
और 35)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अशफी लाल बनाम श्रीमती। कोइली (मृत) एल.आर.एस. द्वारा; 1995 (4 एससीसी) 163
2. इब्ने हसन बनाम हसीना बीबी और अन्य; मनु/0198/1984
3. बंदे शिव शंकर श्रीनिवास प्रसाद बनाम रवि सूर्यप्रकाश बाबू और अन्य; मनु/एपी/07/2015
4. राम कुमार एवं अन्य। बनाम डीडीसी, गौतम बुद्ध नगर एवं अन्य; 2010 (2) एडीजे 74
5. वाई. स्लीबाचेन बनाम अधीक्षण अभियंता; 2015 (5) एससीसी 747
6. बायरम पेस्टनजी गारीवाला बनाम यू.ओ.आई.; 1991 कानून (एससी)-9-21
7. बक्शी देव राज (2) एवं अन्य बनाम सुधीर कुमार; (2011) 8 एससीसी 679
8. आर्चीज ग्रीटिंग्स एंड गिफ्ट्स लिमिटेड बनाम गर्ग प्लास्टिक, (दिल्ली) लॉ फाइंडर डॉक आईडी # 64115
9. कृष्ण गजानन वेदेश्वर बनाम नारायण गजानन वेदेश्वर, लॉ फाइंडर डॉक आईडी # 165030
10. राम नाथ बनाम श्रीमती मुन्नी; लखनऊ लॉ रिपोर्ट, फरवरी, 1976, पृष्ठ 32 से 58
11. रिट बी संख्या 42465/1999; राम जीत एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, जौनपुर एवं अन्य 31.05.2013 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई है, जिसमें अपील संख्या 71 से 74 में सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बस्ती के निर्णय

और आदेश दिनांक 25.09.1972 तथा पुनरीक्षण संख्या 47 से 50 में उप संचालक चकबंदी, बस्ती द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.06.1976 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

2. यह रिट याचिका उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 9-ए(2) के तहत आपतियों से उद्भूत है। ये आपतियाँ कुल छह हैं। विवादित भूमि में गाटा संख्या 12, 14, 115, 70, 196, 11 और 111 शामिल हैं, जो सभी ग्राम तरैना, परगना बांसी पूर्वी, जिला बस्ती में स्थित हैं। इनमें से, इस याचिका पर प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5, क्रमशः, चुल्हाई के सभी पुत्रों, राम लगन, राम लाल और विजय बहादुर द्वारा तीन अलग-अलग आपतियां दायर की गईं। उपरोक्त तीनों आपतियां एक ही और समान वाद हेतुक तथा एक ही अनुतोष के लिए दायर की गई थीं, अर्थात्, गाटा संख्या 12, 14 और 115 (उपरोक्त) से संबंधित राजस्व प्रविष्टियों को न्यायिक अधिकारी, बांसी, जिला बस्ती द्वारा वाद संख्या 270/1959 में धारा 229-बी के अंतर्गत पारित समझौता डिक्री, दिनांक 23.11.1959 के अनुसार ठीक किया जाए।

3. याचिकाकर्ताओं की ओर से दो आपतियां दर्ज की गई थीं। इनमें से पहली आपति गाटा संख्या 70 और 196 से संबंधित थी, तथा इसमें दर्ज खातेदारों के साथ सह-काश्तकारी अधिकार का दावा किया गया था। दूसरी आपति में गाटा संख्या 11 और 111 में 1/6 हिस्सा मांगा गया था।

4. छः आपत्तियों में से अंतिम आपत्ति कोडई, प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर की गई थी, जिसमें उन्होंने सम्पूर्ण खाता संख्या 11 और 111 पर इस आधार पर दावा किया था कि याचिकाकर्ताओं का उनमें कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, तथा उक्त खाता संख्याएं छठे प्रतिवादी की स्व-अर्जित संपत्ति हैं।

5. चकबंदी अधिकारी ने दिनांक 18.01.1969 के आदेश के तहत प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 अर्थात् राम लगन, राम लाल और विजय बहादुर द्वारा खाता संख्या 12, 14 और 15 के संबंध में दायर आपत्तियों को खारिज कर दिया, जिनका प्रतिनिधित्व अब उनके कानूनी प्रतिनिधि प्रतिवादी संख्या 3/1, 4/1 और 5/1 कर रहे हैं। प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के खाता संख्या 70 और 196 के दावे को भी इस निर्देश के साथ खारिज कर दिया गया कि राजस्व रिकॉर्ड में उनके पक्ष में की गई प्रविष्टियां मिटा दी जाएं। दूसरी ओर, खाता संख्या 70 और 196 से संबंधित याचिकाकर्ताओं की आपत्तियों को स्वीकार कर लिया गया और उन्हें दर्ज खातेदारों के साथ सह-खातेदार के रूप में दर्ज करने का आदेश दिया गया। इसी प्रकार, खाता संख्या 111 और खाता संख्या 11 से संबंधित याचिकाकर्ताओं की अन्य आपत्तियों को इस निर्देश के साथ स्वीकार कर लिया गया कि उनके नाम, शिव मंगल, शिव मूरत और शिव बरन, जो उस समय अपने अभिभावक और मां के माध्यम से नाबालिग थे, के साथ-साथ मनोरथ पुत्र लाल बिहारी, राम दुलारे और हरिहर पुत्र नागेश्वर के नाम भी सह-हिस्सेदार के रूप में दर्ज किए जाएं। कोडई द्वारा दायर छठी आपत्ति को भी

स्वीकार कर लिया गया और उसे खाता संख्या 12, 115, 70, 196, 111 के अलावा आराजी संख्या 725, जिसका माप 0-14-8 है, जो खाता संख्या 11 का हिस्सा है, में एक तिहाई हिस्सा प्रदान किया गया।

6. छठी आपत्ति का निर्धारण करने वाले चकबंदी अधिकारी के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 अर्थात् राम लगन, राम लाल और विजय बहादुर द्वारा चार अपीलें दायर की गईं। ये अपील संख्या 71, 72, 73 एवं 74 सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बस्ती की फाइल पर हैं। अपीलों पर सुनवाई हुई तथा सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा दिनांक 25.09.1972 के निर्णय एवं आदेश द्वारा उन्हें स्वीकृत किया गया। चकबंदी अधिकारी के दिनांक 18.01.1969 के निर्णय एवं आदेश को निरस्त कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं के नाम खाता संख्या 12, 14, 115, 70, 196, 11 और 111 के अलावा आराजी संख्या 725, जिसका माप 0-14-8 है, खाता संख्या 11 (संक्षेप में विवादित भूमि) के भाग से हटाने का निर्देश दिया गया और उनके स्थान पर प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5, राम लगन, राम लाल और विजय बहादुर के नाम दर्ज करने का आदेश दिया गया। यह आदेश दिया गया कि याचिकाकर्ताओं को आवंटित हिस्सा प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 को चकबंदी अधिकारी द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुसार आवंटित किया जाए।

7. याचिकाकर्ताओं ने सहायक बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के आदेश दिनांक

25.09.1972 को उप संचालक चकबंदी, बस्ती के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसके चार पुनरीक्षण संख्या 47, 48, 49 और 50 याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किये गये। इस आदेश को प्रतिवादी संख्या 6, कोडाई द्वारा भी संशोधन संख्या 135 के तहत चुनौती दी गई। अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत प्रस्तुत सभी पांच पुनरीक्षणों पर सुनवाई की गई तथा उप संचालक चकबंदी, बस्ती द्वारा दिनांक 23.06.1976 के निर्णय एवं आदेश द्वारा उन्हें खारिज कर दिया गया।

8. व्यथित होकर, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह और प्रतिवादी संख्या 3/1, जय प्रकाश, जिन्होंने अकेले ही इस रिट याचिका का सुनवाई में विरोध किया है, की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिपाठी बी.जी. भाई को सुना गया।

10. रिकार्ड को सही करने के लिए, यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इन कार्यवाहियों के आरंभ में, प्रतिवादी संख्या 10, शिव बरन की ओर से इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 25.09.1977 को एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया था, लेकिन सुनवाई के समय उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

11. पक्षों के बीच विवाद न्यायिक अधिकारी, बांसी, जिला बस्ती द्वारा तय किए गए धारा 229-बी के तहत वाद संख्या 270/1959 में दर्ज 23.11.1959 के समझौते की वैधता के

इर्द-गिर्द केंद्रित है। ऐसा कहा जाता है कि एक ओर याचिकाकर्ताओं और दूसरी ओर प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 ने उक्त समझौता किया था जिसके आधार पर न्यायिक अधिकारी ने वाद संख्या 270/1959 में निर्णय सुनाया था। चकबंदी अधिकारी के समक्ष प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 द्वारा दिनांक 23.11.1959 को किए गए समझौते की वैधता को याचिकाकर्ताओं द्वारा धोखाधड़ीपूर्ण बताते हुए चुनौती दी गई। चकबंदी अधिकारी ने मुद्दा संख्या 2 पर अपने निष्कर्षों के माध्यम से उक्त मामले का निस्तारण किया और याचिकाकर्ताओं के पक्ष में फैसला सुनाया। उन्होंने समझौते को धोखाधड़ी का परिणाम मानते हुए खारिज कर दिया और इसलिए, यह बेकार है। इसी आधार पर चकबंदी अधिकारी ने याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के बीच मूल वर्ष में जो प्रविष्टियाँ थीं, उन्हें बहाल करने का निर्देश दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि वाद में किया गया समझौता मूल वर्ष से संबंधित खतौनी में दर्ज नहीं किया गया था और इस आधार पर प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 ने विवादित भूमि से संबंधित समझौता डिक्री दिनांक 23.11.1959 के आधार पर दर्ज किए जाने के अधिकारों का दावा किया था। हालाँकि, इस दावे को चकबंदी अधिकारी ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि समझौता धोखाधड़ीपूर्ण है।

12. चकबंदी अधिकारी ने मोटे तौर पर यह तर्क दिया है कि यदि समझौता वास्तविक होता तो वाद संख्या 270/1959 में दाखिल वकालतनामा पर याचिकाकर्ताओं केशव प्रसाद, राम सुमेर के हस्ताक्षर होते जबकि अंगूठे का

निशान दूसरे याचिकाकर्ता अयोध्या प्रसाद का होता लेकिन जिस दिन वकालतनामा पर हस्ताक्षर किए गए थे, समझौता ज्ञापन का सत्यापन भी किया गया था। हालाँकि, समझौता ज्ञापन पर याचिकाकर्ताओं के हस्ताक्षर नहीं हैं। इसके बजाय, इस पर उनके वकील श्री गिरजा शंकर मुख्तार के हस्ताक्षर हैं। चकबंदी अधिकारी की राय में यह बात उनकी समझ से परे है कि याचिकाकर्ता केशव प्रसाद व दो अन्य जो उस दिन न्यायालय में उपस्थित थे, उनसे समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर क्यों नहीं कराए गए, जबकि समझौता के दूसरे पक्ष ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए थे। चकबंदी अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला है कि इन तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वकालतनामे पर दो याचिकाकर्ताओं के हस्ताक्षर तथा वकालतनामे पर अयोध्या प्रसाद के अंगूठे का निशान तीन व्यक्तियों के नहीं हैं। यह भी टिप्पणी की गई है कि धारा 229बी के तहत मुकदमे के सम्मन, याचिकाकर्ताओं को कभी भी नहीं दिए गए, जो प्रतापगढ़ में रहते थे, जबकि न्यायालय बस्ती में स्थित था। चकबंदी अधिकारी ने यह भी कहा कि अधिनियम की धारा 9ए(2) के तहत कार्यवाही में उनके समक्ष प्रस्तुत विभिन्न आवेदनों पर प्रथम याचिकाकर्ता केशव प्रसाद के हस्ताक्षर वकालतनामे पर किए गए हस्ताक्षरों से मेल नहीं खाते। चकबंदी अधिकारी ने यह भी माना कि प्रतिवादी संख्या 6 प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के साथ मिलीभगत रखता है, क्योंकि उक्त प्रतिवादी को कुछ भूखंड संख्याओं में कुछ अधिकार दिए गए हैं, जिनका विवरण चकबंदी अधिकारी द्वारा मुद्दा संख्या 2 में

दिए गए निष्कर्षों में याचिकाकर्ताओं के प्रति पूर्वाग्रह के आधार पर दिया गया है। चकबंदी अधिकारी ने समझौते से पक्षों को होने वाले लाभों से उत्पन्न होने वाली संभावनाओं का मूल्यांकन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि समझौता वास्तविक नहीं है, ऐसा निष्कर्ष निकालने के अन्य कारण भी हैं।

13. अपीलीय न्यायालय ने वाद संख्या 270/1959 में दायर समझौते दिनांक 23.11.1959 की वास्तविकता के बारे में निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों को पलटते हुए यह माना कि उन्होंने केशव प्रसाद द्वारा दायर दिनांक 18.11.1967, 14.10.1968 और 24.10.1968 के आवेदनों पर गौर किया था, इन सभी आवेदनों पर उनके हस्ताक्षर एक दूसरे से मेल नहीं खाते हैं। चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी के अनुसार केशव प्रसाद ने चकबंदी अधिकारी के समक्ष आदेश पत्र पर हस्ताक्षर भी किए हैं और वे हस्ताक्षर उल्लिखित आवेदनों पर किए गए उनके हस्ताक्षरों से बिल्कुल भिन्न हैं। इसलिए, बंदोबस्त अधिकारी ने यह राय व्यक्त की कि इन कार्यवाहियों के प्रारंभ से ही याचिकाकर्ता केशव प्रसाद ने निचली अदालत में किए गए अपने हस्ताक्षरों को छिपाने के लिए एहतियात बरती थी, ताकि वे वाद संख्या 270/1959 में दायर किए गए समझौता दिनांक 23.11.1959 पर किए गए उनके हस्ताक्षरों से मेल न खाएं। बंदोबस्त अधिकारी ने यह भी माना कि अन्य दो याचिकाकर्ताओं, राम सुमेर और अयोध्या प्रसाद ने चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्यवाही में प्रस्तुत किसी भी आवेदन पर अपने अंगूठे का निशान या हस्ताक्षर नहीं किए हैं। चकबंदी

के बंदोबस्त अधिकारी ने तर्क के एक अन्य आधार पर अपने फैसले को पलटने का औचित्य सिद्ध किया है। उन्होंने टिप्पणी की है कि याचिकाकर्ताओं केशव प्रसाद, अयोध्या प्रसाद और राम सुमेर द्वारा न्यायिक अधिकारी, बस्ती के समक्ष दिनांक 09.12.1968 को दायर एक बहाली आवेदन की प्रति मौजूद है, जिसमें मुकदमे में उनके द्वारा पारित समझौते के आधार पर डिक्री को रद्द करने की मांग की गई है। आगे यह भी टिप्पणी की गई है कि केशव प्रसाद और अन्य ने उपरोक्त बहाली आवेदन को अनुमति देने वाला कोई आदेश दायर नहीं किया है। उक्त तथ्य से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त बहाली आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है।

14. इसके अतिरिक्त, चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि उन्होंने दिनांक 23.11.1959 के समझौते तथा उन कार्यवाहियों में दाखिल उसी तारीख के वकालतनामे का अवलोकन किया है। उन्होंने माना है कि केशव प्रसाद, राम सुमेर, अयोध्या प्रसाद, नोखे, राज दुलारे, हरिहर की ओर से श्री गिरजा शंकर मुख्तार ने समझौता पत्र दाखिल किया था। चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी के अनुसार, इनमें से किसी भी व्यक्ति ने श्री गिरजा शंकर मुख्तार से पूछताछ करने का साहस नहीं किया, जिससे यह साबित हो सके कि न्यायिक अधिकारी के समक्ष मुकदमे में वह उनके वकील नहीं थे। अपने तर्क को पुष्ट करते हुए, बंदोबस्त अधिकारी ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि दिनांक 23.11.1959 की समझौता डिक्री को खाता संख्या 70 और 96

में शामिल कर लिया गया था। अपीलीय न्यायालय की राय में यह तथ्य दर्शाता है कि समझौते पर आधारित डिक्री को राजस्व पत्रों में प्रभावी किया गया था, लेकिन गलती से इसे उन दो खातों को छोड़कर अन्य खातों में शामिल नहीं किया गया था।

15. अपीलीय न्यायालय ने अपने समक्ष प्रस्तुत दो फिंगर प्रिंट विशेषज्ञों की असंगत रिपोर्टों पर भी विचार किया है। इन रिपोर्टों और उन्हें साबित करने के लिए फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ श्री लीला राम जगत्यानी और एक अन्य विशेषज्ञ अशोक कश्यप द्वारा दिए गए बयानों की चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी द्वारा जांच की गई है। उन्होंने कहा कि लीला राम की रिपोर्ट श्री अशोक कश्यप की रिपोर्ट से अधिक विश्वसनीय है। यह भी उल्लेख किया गया है कि विशेषज्ञों द्वारा की गई तुलना 1959 के समझौते की पटकथा लिखे जाने के दस वर्ष बाद की है। इस अवधि के दौरान, केशव प्रसाद और राम सुमेर पांडे के हस्ताक्षरों में कुछ परिवर्तन होंगे, यह एक ऐसा तथ्य है जो 1959 के वाद संख्या 270 में दायर समझौते की वैधता को कम नहीं करेगा। इन निष्कर्षों के आधार पर अपीलीय न्यायालय ने चकबंदी अधिकारी के आदेश को उलट दिया है।

16. पुनरीक्षण न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षणों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि वाद संख्या 270/1959 में दायर समझौता वास्तविक था और इस पर केशव प्रसाद, राम सुमेर और अयोध्या के हस्ताक्षर हैं, जिन्हें गिरजा शंकर, अधिवक्ता द्वारा विधिवत सत्यापित किया गया था। उप निदेशक चकबंदी

ने आगे कहा कि विवाद में समझौता निरस्तीकरण योग्य है तथा इसे रद्द करने का क्षेत्राधिकार केवल सिविल न्यायालय को है।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह ने तर्क दिया कि समझौते की वैधता के संबंध में चकबंदी अधिकारी का निष्कर्ष कानून के अनुरूप था। वाद संख्या 270/1959 में किया गया समझौता कपटपूर्ण था, इसलिए चकबंदी अधिकारी ने चकबंदी कार्यवाही में, जो कि पूर्वोक्त वाद कार्यवाही के बाद की थी, सही रूप से यह माना कि यह समझौता पक्षकारों पर बाध्यकारी नहीं है। उन्होंने दलील दी कि न्यायालय के समक्ष कोई कार्यवाही शुरू करके इसे रद्द कराने की कोई आवश्यकता नहीं थी। चूंकि यह समझौता धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, इसलिए इससे पक्षों के बीच किसी प्रकार का पुनर्न्यायिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। उन्होंने **अशर्फी लाल बनाम श्रीमती कोइली (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि, 1995 (4 एससीसी) 163** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलम्ब लिया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया था कि एक सक्षम न्यायालय का निर्णय सामान्यतः कार्यवाही के पक्षकारों पर बाध्यकारी होता है और यह उन्हीं पक्षों के बीच बाद की कार्यवाही में पूर्वन्याय के रूप में कार्य करता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 के अंतर्गत एक अपवाद जोड़ा गया है, जिसके अनुसार किसी वाद या अन्य कार्यवाही में कोई भी पक्षकार यह दर्शा सकता है कि कोई निर्णय और आदेश, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 40, 41 और 42 के अंतर्गत सुसंगत है और जिसे प्रतिकूल पक्षकार द्वारा ऐसे न्यायालय

द्वारा दिया गया साबित कर दिया गया है जो उसे देने के लिए सक्षम नहीं है या जिसे धोखाधड़ी या मिलीभगत से प्राप्त किया गया है, उस पर बाध्यकारी नहीं है। उन्होंने कहा कि धोखाधड़ी या मिलीभगत से प्राप्त निर्णय 'पूर्वन्याय' के रूप में कार्य नहीं करता है और कार्यवाही में शामिल पक्षों पर बाध्यकारी नहीं होता है। ऐसे निर्णय को बाद की कार्यवाही में उस पक्ष द्वारा टाला जा सकता है जो यह दिखाने में सक्षम है कि यह निर्णय धोखाधड़ी या मिलीभगत से प्राप्त किया गया था। इसे रद्द कराने के लिए अलग से कार्यवाही शुरू करना आवश्यक नहीं है। इसके अलावा केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें पैराग्राफ 32 में उसी प्रस्ताव को दोहराया गया है। **इब्ने हसन बनाम हसीना बीबी एवं अन्य तथा एमएनयू/0198/1984** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया गया है, जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ को इस प्रश्न पर विचार करने तथा पैराग्राफ 6 से 11 के संदर्भ में इसका उत्तर इस प्रकार देने का अवसर मिला था जो इस प्रकार है:

"6. दोनों न्यायिक निर्णयों के बीच स्पष्ट असंगति पाते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित प्रश्न को राय के लिए खंडपीठ को संदर्भित कर दिया।

"क्या डिफ्री के किसी पक्षकार या ऐसे पक्षकार के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति को साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 के अंतर्गत धोखाधड़ी या मिलीभगत के आधार पर डिफ्री के प्रभाव से बचने की अनुमति दी जा सकती है?"

अतः यह मामला उपरोक्त प्रश्न पर अपनी राय देने के लिए हमारे समक्ष आया है। पक्षकारों के अधिवक्ताओं की बात सुनने के बाद हम इस राय पर पहुंचे हैं कि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए। अब हम इस राय के पक्ष में अपने कारण बताने जा रहे हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 44 को "न्यायालय के निर्णय, जब प्रासंगिक हों" शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है। वर्तमान मामले में हमारा संबंध धारा 40 और 44 से है, न कि धारा 41 और 42 से। यहां तक कि धारा 43 भी हमारे समक्ष प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर देने में कुछ हद तक प्रासंगिक होगी। अतः सुविधा के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 40, 43 और 44 का हवाला दिया जा रहा है। धारा 43 के नीचे दिए गए उदाहरण हटा दिए गए हैं:

"40. दूसरे वाद या विचारण को वर्जित करने के लिए सुसंगत पूर्व निर्णय--किसी ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व, जो विधि द्वारा किसी न्यायालय को किसी वाद का संज्ञान लेने या विचारण करने से निवारित करता है, सुसंगत तथ्य है, जब प्रश्न यह है कि क्या ऐसे न्यायालय को ऐसे वाद का संज्ञान लेना चाहिए या ऐसा विचारण करना चाहिए।

43. धारा 40 से 42 में वर्णित निर्णयों आदि के अलावा, जब सुसंगत हों- धारा 40, 41 और 42 में वर्णित निर्णयों, आदेशों या डिक्री के अलावा, निर्णय आदि तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व विवादक तथ्य न हो, या इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान के तहत सुसंगत न हो।

44. निर्णय प्राप्त करने में, या न्यायालय की सक्षमता में कपट या सांठगांठ साबित की जा सकेगी - किसी वाद या अन्य कार्यवाही में कोई पक्षकार यह दर्शित कर सकेगा कि कोई निर्णय, आदेश या डिक्री, जो धारा 40, 41 या 42 के अधीन सुसंगत है, और जो प्रतिपक्षी द्वारा साबित कर दिया गया है, ऐसे न्यायालय द्वारा दिया गया था, जो उसे देने के लिए सक्षम नहीं था, या कपट या सांठगांठ द्वारा प्राप्त की गई थी।"

7. पूर्ववर्ती निर्णयों को आगामी मुकदमों में साक्ष्य के रूप में तभी पढ़ा जा सकता है जब वे धारा 40, 41 और 42 में से किसी के अंतर्गत प्रासंगिक हों। इसमें उल्लिखित निर्णयों के अलावा अन्य निर्णय धारा 43 के मद्देनजर अप्रासंगिक होंगे जब तक कि वे धारा 43 के उत्तरार्द्ध में संदर्भित निर्णयों की श्रेणी में नहीं आते।

इसके अतिरिक्त, धारा 44 के मद्देनजर धारा 40, 41 और 42 में संदर्भित निर्णय प्रासंगिक नहीं होंगे यदि यह स्थापित हो जाए कि वे ऐसे न्यायालय द्वारा दिए गए थे जो उन्हें देने के लिए सक्षम नहीं था या धोखाधड़ी या मिलीभगत से प्राप्त किए गए थे।

8. साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 में 'रेस जुडिकाटा' शब्द का प्रयोग किए बिना भी रेस जुडिकाटा के परिणामों का उल्लेख किया गया है। धारा 40 के कारण ही कोई निर्णय, जिस पर किसी पक्ष द्वारा अपने 'पूर्व न्यायिक तर्क' के समर्थन में बाद के मुकदमे में भरोसा किया जाता है, प्रासंगिक हो जाता है और उसे साक्ष्य

के रूप में पढ़ा जा सकता है। पिछला निर्णय, पहले के वाद के पक्षकारों के बीच तथा ऐसे किसी पक्षकार के माध्यम से स्वामित्व का दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच रिस जुडिकाटा के रूप में कार्य करता है। जब साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 किसी पश्चातवर्ती वाद के किसी पक्षकार को यह साबित करने की अनुमति देती है कि उक्त धारा का कोई भी तत्व उस निर्णय के संबंध में भी सिद्ध होता है जो धारा 40 के अधीन सुसंगत है, तब इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता कि ऐसा निर्णय भी, जो अन्यथा पूर्वन्याय के रूप में कार्य करेगा तथा जिसे उस वाद के पक्षकारों द्वारा, जिसमें ऐसा निर्णय दिया गया था, या किसी ऐसे पक्षकार के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों द्वारा टाला जाना संभव नहीं होगा, उनके द्वारा टाला जा सकता है यदि धारा 44 का कोई भी तत्व सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में ऐसा निर्णय प्रासंगिक नहीं होगा और यह पूर्वन्याय की दलील का आधार नहीं बन सकता। हमारा दृष्टिकोण इस न्यायालय की एक खंडपीठ के निर्णय से समर्थित है, जिसके सदस्य न्यायमूर्ति सुलेमान थे, जिन्होंने माउंट पार्वती बनाम गजराय (एआईआर 1937 ऑल 28) मामले में साहिब राय (एआईआर 1927 ऑल 494) (उपरोक्त) के मामले का फैसला किया था। व्हाइट मामले में धारा 11, सी.पी.सी. के दायरे से संबंधित मामले में यह अवधारित किया गया कि "सबसे पहले, किसी भी पक्ष के लिए यह दर्शाना हमेशा उपलब्ध होता है कि निर्णय धोखाधड़ी या मिलीभगत से प्राप्त किया गया था या अधिकारिता का अभाव था और ऐसे मामलों में हमारी राय है कि धारा 11 लागू नहीं होगी।"

9. इस दृष्टिकोण को सही मानने का एक और कारण भी है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, चौधरी मोहम्मद अफजल (एआईआर 1947 लाहौर 117) (उपरोक्त) के मामले में न्यायमूर्ति राम लाल के निर्णय को बेली राम एंड ब्रदर्स (एआईआर 1948 पीसी 168) (उपरोक्त) के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा समर्थन और अनुमोदन दिया गया था। किशन चंद बनाम राम बाबू (1964 ऑल एलजे 389) : (एआईआर 1965 ऑल 65) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना है कि संविधान के बाद भी न्यायिक समिति द्वारा घोषित कानून उच्च न्यायालय का ही कानून बना रहेगा जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय अन्यथा निर्णय न दे। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विपरीत निर्णय लेने संबंधी कोई भी जानकारी हमारे संज्ञान में नहीं लाई गई है। इस मामले के दृष्टिकोण से, साहिब राय (एआईआर 1927 ऑल 494) (उपरोक्त) और श्रीमती चौहान (एआईआर 1971 ऑल 439) (उपरोक्त) के मामलों में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीशों द्वारा विपरीत दृष्टिकोण अपनाए गए निर्णयों को खारिज किया जाता है।

10. तथापि, हम यह इंगित कर सकते हैं कि चूंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 में धारा 43 का उल्लेख नहीं है, इसलिए धारा 43 के बाद के भाग में निहित अपवाद के अंतर्गत निर्णय अभी भी प्रासंगिक होगा, अर्थात् "जब तक कि ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व विवादक तथ्य न हो, या इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत प्रासंगिक न हो।" भले ही यह धारा 44 के कारण अधिनियम की धारा 40, 41 और 42

के अंतर्गत प्रासंगिक न हो। इस प्रकार, यदि विबंधन के तत्व सिद्ध हो जाते हैं तो भी प्रतिवादी अपीलकर्ता वाद संख्या 126/1952 में दिए गए निर्णय के प्रभाव से बचने की स्थिति में नहीं होगा। इस दृष्टिकोण को दरबारी लाल बनाम महबूब अली मियां (एआईआर 1927 ऑल 538 (2)) में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय से समर्थन मिलता है।

11. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, हमें संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर यह है कि डिक्री का कोई पक्षकार या ऐसे पक्षकार के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति को, साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 के तहत, धोखाधड़ी या मिलीभगत के आधार पर डिक्री के प्रभाव से बचने की अनुमति दी जा सकती है और यह दावा किया जा सकता है कि उक्त डिक्री पर धारा 40 द्वारा परिकल्पित उद्देश्य के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता है, जिसमें उक्त अधिनियम की धारा 44 में धारा 40 को शामिल करने के मद्देनजर, पूर्व न्यायिकता की दलील के लिए आधार प्रदान करना शामिल है। हालाँकि, चूँकि धारा 43 को उक्त अधिनियम की धारा 44 में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए यदि एस्टोपल के तत्व सिद्ध हो जाते हैं तो एस्टोपल की दलील का समर्थन करने के लिए मिलीभगत वाला डिक्री अभी भी प्रासंगिक होगा।”

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि यह निष्कर्ष कि समझौता जापन पर केशव प्रसाद के हस्ताक्षर और उनके वास्तविक हस्ताक्षर में अंतर था, एक निरर्थक निष्कर्ष है। दस वर्ष के बाद हस्तलेख विशेषज्ञ

संबंधित गवाह के समसामयिक हस्ताक्षर /हस्तलेख के अभाव में सही राय नहीं दे सकता। उन्होंने बंदे शिव शंकर श्रीनिवास प्रसाद बनाम रवि सूर्य प्रकाश बाबू एवं अन्य एमएनयू/एपी/07/2015 में हैदराबाद उच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है, जिसमें उक्त उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस मुद्दे पर विचार किया था और कहा था कि-

“जाली हस्ताक्षरों से संबंधित मामलों में तुलनात्मक हस्ताक्षर न केवल समान महत्व के दस्तावेजों से प्राप्त किए जाने चाहिए, बल्कि यदि संभव हो तो उन दस्तावेजों से भी प्राप्त किए जाने चाहिए जो विचाराधीन दस्तावेजों के लगभग समकालीन हों।

एक वयस्क की लिखावट में समय बीतने के साथ-साथ स्पष्ट रूप से लगातार बदलाव दिखाई देगा। ऐसी परिस्थितियों में कई वर्षों की अवधि में लिखे गए हस्ताक्षरों का पूरा सेट दस्तावेज परीक्षक के लिए अमूल्य साबित होगा।

जब कोई गंभीर बीमारी होती है, तो हस्ताक्षर में अक्सर बहुत ही कम समय में उल्लेखनीय परिवर्तन आ जाता है और यदि किसी संदिग्ध वसीयत की तिथि मृत्यु के दिन के आसपास की है, तो इस अवधि को कवर करने वाले मानक (निश्चित रूप से वास्तविक) हस्ताक्षर आवश्यक हैं, ताकि हस्ताक्षर की प्रामाणिकता या अन्यथा के विश्वसनीय सबूत स्थापित किए जा सकें।

सामान्यतः, एक सामान्य वयस्क के मामले में, बुनियादी लेखन आदतें धीरे-धीरे बदलती हैं। इसलिए, विवादित लेखन से दो या तीन साल पहले या बाद में लिखी गई सामग्री संतोषजनक मानकों के रूप में काम करती है, लेकिन जैसे-जैसे मानकों की तिथि और प्रश्नगत सामग्री के बीच वर्षों का अंतराल बढ़ता जाता है, मानकों में कम प्रतिनिधि होने की प्रवृत्ति होती है। परिणामस्वरूप, विवादित मामले से संबंधित तिथि के निकट कुछ मानक (निश्चित रूप से वास्तविक लेखन/हस्ताक्षर) प्राप्त करने का प्रयास हमेशा किया जाना चाहिए।

उपरोक्त रिपोर्ट से उभरकर आए विशेषज्ञों की राय का सार यह है कि तुलना के लिए हमेशा समकालीन हस्तलेखों/हस्ताक्षरों का होना आवश्यक नहीं है। तथापि, एक सामान्य नियम के रूप में, स्वीकार्य हस्तलेखों/हस्ताक्षरों की तुलना विवादित हस्तलेखों/हस्ताक्षरों से करना वांछनीय होगा, जो एक दूसरे से 2 या 3 वर्ष की सीमा के भीतर आते हों। इसलिए, इस बारे में कोई निश्चित मानदंड नहीं हो सकता कि दो हस्तलेखों/हस्ताक्षरों के बीच समय अंतराल के कारण तुलना कब की जा सकती है या नहीं की जा सकती है। जैसा कि ऊपर उद्धृत विशेषज्ञों ने कहा है, विभिन्न अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना होगा। प्रत्येक मामला समय अंतराल, हस्तलेख/हस्ताक्षर में परिवर्तन, दो सेटों के बीच संबंध स्थापित करने की क्षमता तथा अंततः, विशेषज्ञ की स्वयं की राय कि क्या दोनों सेटों की तुलना की जा सकती है, से संबंधित अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इसलिए न्यायालय विवादित हस्तलेखों/हस्ताक्षरों की तुलना स्वीकृत हस्तलेखों/हस्ताक्षरों से करने

की मांग करने वाले आवेदन पर इस आधार पर विचार करने से इंकार नहीं कर सकता कि दोनों हस्तलेखों/हस्ताक्षरों के बीच काफी समय बीत चुका है।“

19. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अंत में यह दलील दी गई कि हस्तलेख विशेषज्ञ के समक्ष केशव प्रसाद द्वारा उसी अवधि के बारे में हस्ताक्षरित कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया, जिससे उनके हस्ताक्षर की सत्यता का पता लगाया जा सके। दस वर्ष से अधिक समय के पश्चात् उनके हस्ताक्षर में परिवर्तन होना निश्चित था, अतः अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाई गई सम्पूर्ण प्रक्रिया विधि के अनुरूप नहीं थी, तथा ऐसे हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को बंदोबस्त अधिकारी एवं उप निबन्धक चकबंदी, बस्ती द्वारा याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध नहीं माना जाना चाहिए था। उन्होंने दलील दी कि जब केशव प्रसाद, राम सुमेर और अयोध्या प्रसाद अदालत में उपस्थित थे और उसी तारीख को वकालतनामा निष्पादित किया था, तो उन्हें अदालत के समक्ष उपस्थित होने और स्वयं समझौता करने के लिए क्यों नहीं कहा गया, इस पर अपीलीय और पुनरीक्षण अदालतों ने विचार नहीं किया। याचिकाकर्ताओं का स्पष्ट मामला यह है कि उन्होंने कभी ऐसा कोई समझौता नहीं किया और समझौता ज्ञापन अनधिकृत था तथा सीपीसी के नियम 3 के साथ आदेश XXIII के प्रावधानों के अनुरूप नहीं था। राम कुमार एवं अन्य बनाम डीडीसी, गौतम बुद्ध नगर एवं अन्य, [2010 (2) एडीजे 74] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया

है, जिसमें इस न्यायालय ने सीपीसी के आदेश XXIII, नियम 3 की व्याख्या की है और माना है कि न्यायालय के समक्ष समझौता वैध होना चाहिए और न्यायालय को पूर्वोक्त समझौते के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी। उन्होंने दलील दी कि वर्तमान मामले में, न्यायालय ने समझौता तो दर्ज कर लिया, लेकिन इस बात पर कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई कि समझौता वैध था और संदेहास्पद नहीं था। उन्होंने कहा कि चकबंदी के अपीलीय एवं पुनरीक्षण न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश विधि के अनुरूप नहीं हैं तथा निरस्त किये जाने योग्य हैं तथा चकबंदी अधिकारी का निर्णय बरकरार रखा जाना चाहिए।

20. प्रतिवादी संख्या 3/1 के विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिपाठी बी.जी. भाई ने दलील दी है कि दोनों पक्षों के पूर्वज समान हैं, उनमें से कुछ लोग जिला प्रतापगढ़ में रहने लगे तथा कुछ लोग गांव बिलौली, जिला-बस्ती में ही रह गए तथा वहीं रहते रहे। उन्होंने आगे कहा कि विवादित संपत्ति याचिकाकर्ता पक्ष के केशव प्रसाद और अन्य के नाम पर दर्ज है, इसलिए उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के तहत कार्यवाही प्रतिवादियों द्वारा विवादित भूखंडों और कुछ अन्य भूखंडों से याचिकाकर्ताओं के नाम हटाने और विवादित संपत्ति पर उनके नाम दर्ज करने के लिए शुरू की गई थी। दोनों पक्षों ने दिनांक 23.11.1959 को उप-विभागीय अधिकारी के समक्ष कानूनी समझौता किया था और समझौते के आधार पर उसी दिन आदेश पारित किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं द्वारा उप-खण्ड अधिकारी के समक्ष एक बहाली

आवेदन दायर किया गया था जिसे खारिज कर दिया गया था और दिनांक 23.11.1959 का समझौता/आदेश अंतिम रूप से पारित हो गया था। चूंकि मूल वर्ष में याचिकाकर्ताओं का नाम दर्ज था, इसलिए प्रतिवादियों ने समझौता दिनांक 23.11.1959 के आधार पर उनके नाम दर्ज करने के लिए चकबंदी अधिकारी के समक्ष आपत्ति दायर की। चकबंदी अधिकारी ने समझौते पर अवैध रूप से विश्वास नहीं किया, तथापि अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों ने चकबंदी अधिकारी के रुख को सही किया और उसके आदेश को अपास्त कर दिया। उन्होंने दलील दी है कि अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों का यह निष्कर्ष कि 23.11.1959 का समझौता वैध था, कानून के अनुरूप है। उन्होंने **वाई स्लीबाचेन बनाम अधीक्षण अभियंता डब्ल्यूआरओ/पीडब्ल्यूडी, 2015 (5) एससीसी 747** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया था कि एक अधिवक्ता अपने मुवक्किलों की ओर से समझौता कर सकता है, जब उसे किसी मामले में पेश होने के लिए अपने मुवक्किलों से पावर ऑफ अटॉर्नी/प्राधिकार मिल जाता है। समझौते पर अधिवक्ता/परामर्शदाता का हस्ताक्षर वैध माना जाएगा, भले ही सीपीसी के आदेश XXIII, नियम 3 के अनुसार समझौता लिखित रूप में होना चाहिए तथा पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय के **1991 के एलएडब्लूएस (एससी)-9-21 के बायरम पेस्टनजी गारीवाला बनाम यूनिन बैंक ऑफ इंडिया** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 38, 39 और 40 पर अवलम्ब लिया गया है।

21. इसके अलावा, बक्शी देव राज (2) एवं अन्य बनाम सुधीर कुमार (2011) 8 एससीसी 679 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलम्ब लिया गया है। **आर्चीज ग्रीटिंग्स एंड गिफ्ट्स लिमिटेड बनाम गर्ग प्लास्टिक, (दिल्ली) लॉ फाइंडर डॉक आईडी # 64115** के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर अवलम्ब लिया गया है।

22. अंतिम रूप से कृष्ण गजानन वेदेश्वर बनाम नारायण गजानन वेदेश्वर, लॉ फाइंडर डॉक आईडी #165030 के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है।

23. प्रतिद्वंद्वी तर्कों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि इस कानूनी प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि न्यायालय के समक्ष अपने मुवक्किल की ओर से अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित समझौता कानून की दृष्टि से तथा सभी प्रयोजनों के लिए वैध है और ऐसे अधिवक्ता के मुवक्किल ऐसे समझौते को निष्पादित करने के लिए अपने अधिवक्ता के प्राधिकार पर विवाद नहीं कर सकते हैं। तथापि, स्थिति भिन्न हो जाती है जब धोखाधड़ी, गलत बयानी आदि का आरोप एक पक्ष के पक्षकारों के अधिवक्ता तथा दूसरे पक्ष के स्वयं पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित समझौते के निष्पादन में लगाया जाता है, जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ है। यह अभिलेख में है कि विवादित समझौते के निष्पादन की तिथि 23.11.1959 को याचिकाकर्ता न्यायालय में उपस्थित थे, उन्होंने उसी दिन अपने वकील के पक्ष में वकालतनामा निष्पादित किया था और

उसी तिथि अर्थात् 23.11.1959 को समझौते पर एक ओर उनके अधिवक्ता तथा दूसरी ओर दूसरे पक्ष द्वारा हस्ताक्षर किये गये तथा समझौता डिक्री पारित की गयी। सीपीसी के आदेश XXIII, नियम 3 का उद्देश्य सहमति से मुकदमेबाजी समाप्त करके पक्षों के बीच मुकदमेबाजी को कम करना है। सर्वोच्च न्यायालय ने बायरम पास्टोनजी गारीवाला बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (उपरोक्त) के मामले में माना है कि अपने मुवक्किल द्वारा विधिवत् अधिकृत अधिवक्ता द्वारा एग्रीमेन्ट या समझौते पर हस्ताक्षर करने से मुकदमेबाजी में लगने वाले समय की हानि कम होती है और मुवक्किल की ओर से समझौते पर हस्ताक्षर करके पक्षकार को होने वाली असुविधा से बचा जा सकता है। हालाँकि, अधिवक्ता द्वारा किया गया ऐसा कृत्य निंदनीय नहीं होना चाहिए, जैसा कि बायरम पास्टोनजी गारीवाला (उपरोक्त) के निर्णय के पैरा 37 में कहा गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया है:

“तथापि, हम यह जोड़ना चाहेंगे कि वकील के लिए यह विवेकपूर्ण होगा कि वह निहित प्राधिकार पर कार्य न करें, सिवाय तब जब परिस्थितियों की अनिवार्यता के कारण ऐसा करना आवश्यक हो, जिसमें समझौते या समझौते द्वारा मुकदमे का तत्काल समायोजन आवश्यक हो और पक्षकार के हस्ताक्षर बिना अनावश्यक विलम्ब के प्राप्त न किए जा सकें। इन दिनों जब संचार आसान और त्वरित हो गया है, ऐसी आकस्मिकता शायद ही कभी उत्पन्न हो। एक बुद्धिमान और सावधान अधिवक्ता, निस्संदेह

सभी प्रकार की आकस्मिकताओं पर विचार करने के लिए, पहले से ही लिखित रूप में आवश्यक प्राधिकार से स्वयं को सुसज्जित कर लेगा, ताकि उसके अधिकार या निष्ठा पर कभी संदेह न हो। ये आवश्यक सावधानियां वकील की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की रक्षा करने के साथ-साथ कानूनी पेशे की प्रतिष्ठा और गरिमा को भी बनाए रखेंगी।"

24. यह न्यायालय चकबंदी अधिकारी के निर्णय का अध्ययन करने के पश्चात पाता है कि धारा 229बी के तहत दायर मुकदमे में पारित समझौता दिनांक 23.11.1959, जो मुकदमा संख्या 270/1959 है, विवाद में है। याचिकाकर्ता, जो मुकदमे में प्रतिवादी थे, जिला-बस्ती के नहीं, बल्कि जिला-प्रतापगढ़ के निवासी थे। चकबंदी अधिकारी ने निष्कर्ष दर्ज किया है कि एक ही वकालतनामे पर कोडई, शिव मंगल, राम दुलारे, केशव प्रसाद, अयोध्या और राम सुमेर ने एक साथ हस्ताक्षर किए हैं, जबकि उनके हित एक न होकर अलग-अलग थे। चकबंदी अधिकारी ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि उपरोक्त सभी व्यक्तियों ने विवादित समझौता कराने में याचिकाकर्ता केशव प्रसाद व अन्य के विरुद्ध मिलीभगत की थी तथा कार्यवाही की थी। समझौता होने से याचिकाकर्ता केशव प्रसाद, अयोध्या और राम सुमेर को छोड़कर सभी पक्षकारों को लाभ मिला। चकबंदी अधिकारी ने आगे यह निष्कर्ष भी दर्ज किया कि राम लगन आदि ने कोडई आदि के साथ मिलीभगत की है। चकबंदी अधिकारी कोडई के समक्ष राम दुलारे ने राम लगन का हिस्सा स्वीकार किया तथा कहा कि समझौता सही था। चकबंदी अधिकारी ने पाया

कि चूंकि भूखंड संख्या 725, 211, 765, 864, 83 व 136 पर याचीगण केशव प्रसाद, अयोध्या व राम सुमेर का नाम निरस्त कर शिव मंगल व अन्य का नाम दर्ज कर दिया गया तथा भूखंड संख्या 54 आदि पर राम लगन आदि का नाम दर्ज कर दिया गया, इसलिए सभी ने मिलीभगत कर संयुक्त वकालतनामा दाखिल कर याचीगण केशव प्रसाद व अन्य की भूमि हड़पने में सफल हो गए। उन्होंने दलील दी कि राम लगन व अन्य का विवादित भूखंडों पर कोई अधिकार या हक नहीं था, उनके अधिकार व हक विवादित समझौते के आधार पर ही विकसित हुए थे, इसलिए समझौता गैरकानूनी माना गया तथा चकबंदी अधिकारी ने इसे याचिकाकर्ताओं पर बाध्यकारी नहीं माना।

25. इस न्यायालय का मानना है कि चकबंदी अधिकारी के उपरोक्त निष्कर्षों पर निपटान अधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया है और न ही उन्हें अपास्त किया गया है। बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने फिंगर प्रिंट विशेषज्ञों की रिपोर्ट मांगी है, जिसमें भिन्नता होना स्वाभाविक है, क्योंकि वर्ष 1959 में जब समझौता हुआ था, तब से काफी समय बीत चुका था और समझौते पर केशव प्रसाद और राम सुमेर के हस्ताक्षर भिन्न थे। अपीलीय न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी दर्ज किया कि कुछ खतों के संबंध में समझौता प्रभावी हो गया था, लेकिन गलती से शेष खतों में इसे प्रभावी नहीं किया गया। अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालय दोनों ने माना है कि याचिकाकर्ताओं ने 23.11.1959 के समझौते को वापस लेने के लिए बहाली आवेदन दायर

किया था, लेकिन चूंकि उपरोक्त आवेदन पर पारित आदेश के संबंध में रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है, इसलिए दोनों न्यायालयों ने माना कि उनका बहाली आवेदन खारिज कर दिया गया था और इसलिए पक्षों के बीच समझौता अंतिम हो गया।

26. यदि समझौता याचिकाकर्ताओं की जानकारी और सहमति के बिना धोखाधड़ी से निष्पादित किया गया था, तो इच्छुक पक्षों द्वारा एक बहाली आवेदन भी दायर किया जा सकता था और अभियोजन की कमी के कारण या याचिकाकर्ताओं की जानकारी के बिना उस पर दबाव न डालकर उसे खारिज भी कराया जा सकता था। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता को दिनांक 23.11.1959 को याचिकाकर्ताओं का वकालतनामा मिला जिसे उन्होंने उसी तारीख को दाखिल किया और उन्होंने उनकी ओर से समझौता भी उसी तारीख को दाखिल किया और समझौता आदेश भी उसी तारीख को पारित करवाया। अधिवक्ता का आचरण स्पष्ट रूप से संदेह के घेरे में आता है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **बायरम पास्टोनजी गारीवाला के मामले में पैरा 37 (उपरोक्त)** में कहा है। न्यायालय द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि पक्षकारों द्वारा स्वतंत्र सहमति से तथा बिना किसी अनुचित प्रभाव और धोखाधड़ी के समझौता किया गया था।

27. पुनरीक्षण न्यायालय ने **लखनऊ, विधि रिपोर्ट, फरवरी, 1976, पृष्ठ 32 से 58, राम नाथ बनाम श्रीमती मुन्नी** में दर्ज मामले पर अवलम्ब लिया है और अवधारित किया है कि

दिनांक 23.11.1959 की डिक्री शून्यकरणीय थी और इसलिए केवल सिविल न्यायालय को उसे रद्द करने का क्षेत्राधिकार था और जब तक इसे सक्षम न्यायालय द्वारा रद्द नहीं कर दिया जाता, तब तक यह पक्षकारों के लिए बाध्यकारी होगी। पुनरीक्षण न्यायालय ने आगे कहा कि दिनांक 23.11.1959 को विवादित समझौता डिक्री पारित होने के बाद इसे रद्द करने के लिए 09.12.1968 को आवेदन दायर किया गया था। दोनों पक्ष आवेदन के परिणाम के बारे में सूचित नहीं कर सके, इसलिए यह अनुमान लगाया गया कि उपरोक्त आवेदन खारिज कर दिया गया। यदि मामला लंबित होता तो इसका साक्ष्य चकबंदी अधिकारी के समक्ष दाखिल किया जाता। तीसरा, पुनरीक्षण न्यायालय ने बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के समक्ष प्रस्तुत दो फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ रिपोर्ट पर विचार किया और याचिकाकर्ताओं के खिलाफ रिपोर्ट पर विश्वास किया। याचिकाकर्ताओं के पिता, अर्थात् मुसई का मृत्यु प्रमाण पत्र पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया ताकि यह साबित किया जा सके कि 23.11.1959 की समझौता डिक्री पारित होने के समय वह जीवित थे और इसलिए याचिकाकर्ताओं को समझौता करने का कोई अधिकार नहीं था। मुसई का मृत्यु प्रमाण पत्र दाखिल किया गया, जिससे उसकी मृत्यु 14.09.1964 को साबित हुई, लेकिन पुनरीक्षण न्यायालय ने पाया कि यद्यपि मृत्यु प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया है, लेकिन ऐसी कोई प्रति जारी नहीं की गई।

28. इस न्यायालय का मानना है कि चकबंदी के उप निदेशक द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष

कि इस न्यायालय के कुछ निर्णय के आधार पर 23.11.1959 की डिक्री को रद्द करने के लिए वाद दायर किया जाना आवश्यक है, कानून के अनुरूप नहीं है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, यदि कोई दस्तावेज धोखाधड़ी या गलत बयानी के माध्यम से प्राप्त किया गया साबित हो जाता है, तो उसे बाद की कार्यवाही में नजरअंदाज किया जा सकता है, जैसा कि **अशर्फी लाल (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा और **इब्ने हसन (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा माना गया है। पुनरीक्षण न्यायालय का दूसरा निष्कर्ष कि समझौता डिक्री दिनांक 23.11.1959 को वापस लेने के लिए दायर किया गया बहाली/वापस लेने का आवेदन खारिज माना जाता है क्योंकि दोनों पक्षों ने कोई आदेश प्रस्तुत नहीं किया है, सही नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं का मामला शुरू से ही यह था कि उन्हें वाद संख्या 70/1959 के दाखिल होने के बारे में कभी पता ही नहीं था, बहाली का दाखिल होना प्रतिवादियों के ज्ञान में था। उपर्युक्त वाद का अभिलेख तलब करने के बजाय, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी तथा उप निदेशक चकबंदी ने यह मान लिया कि इस प्रकार का बहाली/वापस लेने का आवेदन खारिज कर दिया गया है। यदि इसे खारिज भी कर दिया गया तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 के तहत कानूनी याचिका प्रभावित नहीं होगी।

29. हस्ताक्षरित विशेषज्ञ रिपोर्ट के संबंध में तीसरा निष्कर्ष भी कानून के अनुरूप नहीं था, जैसा कि इस निर्णय में पहले चर्चा की गई है। डिक्री के बाद याचिकाकर्ताओं के पिता मुसई

की मृत्यु के संबंध में अंतिम निष्कर्ष बहुत प्रासंगिक नहीं है क्योंकि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता यह साबित करती है कि याचिकाकर्ताओं के कथित अधिवक्ता का आचरण निष्पक्ष नहीं था। वकील की नियुक्ति, वकील द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से समझौता निष्पादित करना तथा उसी तिथि अर्थात् 23.11.1959 को आदेश या समझौता पारित करना संदेह के घेरे में है।

30. इस मामले से विदा लेने से पहले, यह न्यायालय यह मानता है कि कानून की यह स्थापित स्थिति है कि अपील मूल न्यायालय की कार्यवाही की ही निरंतरता है। सामान्यतः अपीलीय क्षेत्राधिकार में कानून के साथ-साथ तथ्य पर पुनः सुनवाई शामिल होती है और इसका आह्वान पीड़ित व्यक्ति द्वारा किया जाता है। प्रथम अपील अपीलकर्ता का एक मूल्यवान अधिकार है और इसमें विचारण न्यायालय द्वारा तय किए गए तथ्य और विधि के सभी प्रश्न पुनर्विचार के लिए उपलब्ध हैं। इसलिए, प्रथम अपीलीय न्यायालय से अपेक्षित है कि वह सभी मुद्दों पर स्वयं विचार करे तथा कारण बताते हुए मामले का निर्णय करे।

31. प्रथम अपील न्यायालय को कानून के सभी मुद्दों के साथ-साथ तथ्य और पक्षों द्वारा प्रस्तुत मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करने के बाद ही अपने निष्कर्ष दर्ज करने चाहिए। प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में सचेत बुद्धिमत्ता प्रदर्शित होनी चाहिए तथा सभी मुद्दों और विवादों पर तर्कों

द्वारा समर्थित निष्कर्ष दर्ज होने चाहिए। जब अपीलीय न्यायालय साक्ष्य के संबंध में निचली अदालत के विचारों से सहमत हो जाता है, तो उसे साक्ष्य के प्रभाव को दोबारा बताने या निचली अदालत द्वारा दिए गए कारणों को दोहराने की आवश्यकता नहीं होती। सामान्यतः परीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों से सामान्य सहमति व्यक्त करना ही पर्याप्त होगा। तथापि, जहां वह इससे असहमत है, वहां विस्तृत कारण दिए जाने की आवश्यकता है, जो कि इस मामले में नहीं किया गया है, जैसा कि ऊपर विचार किया गया है। अपीलीय न्यायालय ने हस्तलेखन विशेषज्ञ की रिपोर्ट के रूप में नए साक्ष्य तलब किए तथा चकबंदी अधिकारी के निष्कर्षों पर चर्चा किए बिना तथा उन्हें खारिज किए बिना अपील पर निर्णय दे दिया।

32. पुनरीक्षण न्यायालय भी कानून द्वारा उसे प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करने में विफल रहा है। अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत उप संचालक चकबंदी की पुनरीक्षण शक्तियों के व्यापक दायरे को इस न्यायालय द्वारा राम जीत एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, जौनपुर एवं अन्य, रिट-बी संख्या 42465/1999, दिनांक 31.05.2013 को निर्णीत, में अनुमोदित किया गया है, जहां यह माना गया है:

"राम दुलार बनाम डीडीसी और अन्य, 1994 (सप्लीमेंट) (2) एससीसी 198, प्रीतम सिंह बनाम डीडीसी और अन्य, (1996) 2 एससीसी 270, शिव नंद बनाम डीडीसी और अन्य, (2000) 3 एससीसी 103, गुलजार सिंह बनाम

डीडीसी और अन्य, (2009) 12 एससीसी 590 में सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार अवधारित किया है कि उप संचालक चकबंदी को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने के पश्चात अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत तथ्य और विधि दोनों से संबंधित मुद्दे पर निर्णय लेने की व्यापक शक्ति प्राप्त है। इसके अलावा अधिनियम की धारा 48 में स्पष्टीकरण III जोड़ा गया है, जो 10.11.1980 से पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू है, जो यह प्रावधान करता है कि इस धारा के तहत किसी भी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जांच करने की शक्ति में किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष, चाहे वह तथ्य या कानून का हो, की जांच करने की शक्ति शामिल है और इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की शक्ति भी शामिल है।"

33. इस मामले का एक और पहलू है, जो बहुत महत्वपूर्ण है, वह है चकबंदी उपनिदेशक द्वारा अपना निर्णय लिखने का तरीका।

34. पुनरीक्षण न्यायालय का निर्णय, नीचे की दो अदालतों या प्राधिकारियों द्वारा किए गए कार्यों के पुनर्मूल्यांकन के निर्णय की तरह आरंभ होना, पूरा होना और समाप्त होना चाहिए। पुनर्मूल्यांकन का दृष्टिकोण पर्यवेक्षी होना चाहिए, न कि खुली अपीलीय। हो सकता है कि अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण के मामले में, पुनर्मूल्यांकन का मानक पारंपरिक रूप से पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से जुड़े मानक से अधिक व्यापक हो। लेकिन, फिर भी एक पुनरीक्षण न्यायालय,

नीचे के दो प्राधिकारियों के निष्कर्षों का संदर्भ लिए बिना, उनकी पुष्टि किए बिना या उन्हें उलटे बिना, प्रथम दृष्टया न्यायालय की तरह अपना निर्णय नहीं लिख सकता है। वर्तमान मामले में, आक्षेपित निर्णय ने ठीक यही किया है। यह तीसरी बार लिखे गए मूल निर्णय जैसा लगता है। इसमें अपीलीय न्यायालय द्वारा कही गई बात से सहमत होने और ट्रायल कोर्ट द्वारा कही गई बात से असहमत होने का कोई कारण नहीं दिया गया है। इसने अपने स्वयं के तर्क और नए आधार देते हुए कहा कि विवाद में समझौता डिक्री शून्यकरणीय थी और सक्षम न्यायालय द्वारा उसे अपास्त किया जाना आवश्यक था। इसने इस बात पर विचार नहीं किया है कि अपीलीय अदालत ने निचली अदालत द्वारा दर्ज निष्कर्षों पर विचार किया है या नहीं। इसने स्वयं भी निचली अदालतों के दोनों निर्णयों के पुनर्मूल्यांकन के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं किया है।

34. उपरोक्त विचार के मददेनजर, यह न्यायालय पाता है कि रिट याचिका में चुनौती दिए गए बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बस्ती और उप निदेशक चकबंदी, बस्ती द्वारा पारित आदेश कायम नहीं रखे जा सकते और एतद्वारा इन्हें रद्द किया जाता है।

35. चकबंदी अधिकारी का आदेश बरकरार रखा जाता है।

36. रिट याचिका के अनुमति दी जाती है।

(2023) 7 ILRA 348

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

के समक्ष

रिट-सी संख्या 4426 सन् 2023

विजेंद्र कपूर एवं अन्य ...याचिकाकर्तागण
बनाम

यू.पी. राज्य एवं अन्य ... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता: श्री देवेश कुमार शुक्ला

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री संजय सिंह

ए. बैंकिंग कानून - दंड प्रक्रिया संहिता 1973 - धारा 102 - दायरा - बैंक खाते को फ्रीज करना - खाते को फ्रीज करने का आधार एथिल अल्कोहल और रेक्टिफाइड स्पिरिट की बिक्री के कारण हुई शराब त्रासदी के मामले में याचिकाकर्ताओं की संलिप्तता है - माना गया कि धारा 102 का दायरा और उद्देश्य जांच में मदद करना और पुलिस अधिकारी को शिकायत किए गए आरोप को साबित करने के लिए सबूत इकट्ठा करने में सक्षम बनाना है - आगे माना गया कि एक बार जांच पूरी हो जाने और पुलिस रिपोर्ट संबंधित अदालत को सौंप दिए जाने के बाद वह व्यक्ति जिसका खाता जांच के दौरान फ्रीज किया गया है, सीआरपीसी की धारा 102 (3) के अनुसार संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष बैंक खाते को फ्रीज करने के लिए आवेदन कर सकता है। - उच्च न्यायालय ने

याचिकाकर्ता को तीस्ता अतुल सीतलवाड़ के मामले के आलोक में खाते को फ्रीज करने के लिए संबंधित अदालत के समक्ष आवेदन करने की अनुमति दी। [पैरा 3, 11, 16 (viii) और 17]

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. महाराष्ट्र राज्य बनाम तापस डी. नियोगी; (1999) 7 एससीसी 685 (पैरा 6 और 12)
2. एम.टी. एनरिका लेक्सी बनाम डोरम्मा; (2012) 6 एससीसी 760 (पैरा 14)
3. तीस्ता अतुल सीतलवाड़ बनाम गुजरात राज्य; (2018) 2 एससीसी 372 (पैरा 20 और 26)
4. नेवादा प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2019) 20 एससीसी 119 (पैरा 28 से 34 और 42)

(न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

और

न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री देवेश कुमार शुक्ला, श्री राजीव गुप्ता, राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता - और प्रतिवादी संख्या 4 / बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह को सुना।

2. याचिकाकर्ता संख्या 1 याचिकाकर्ता संख्या 2 का पति है। उन्होंने निम्नलिखित अनुतोषों की प्रार्थना करते हुए वर्तमान रिट याचिका योजित की है:

"i. प्रतिवादी संख्या -3 द्वारा पारित 18-06-2021 के आदेश को निरस्त करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश करें, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के बैंक खाते पर रोक लगा दिया गया है।

ii. याचिकाकर्ता के खाते पर लगी रोक हटाने हेतु उचित आदेश पारित करने के लिए प्रतिवादी प्राधिकारियों को परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

iii. प्रतिवादी प्राधिकारियों के साथ ही साथ बैंक को परमादेश की प्रकृति में एक रिट, निर्देश आदेश जारी करें कि उसके बैंक खाते के शांतिपूर्ण उपयोग में किसी भी तरह से हस्तक्षेप न करें।"

3. दिनांक 18.06.2021 के आदेश द्वारा, अलीगढ़ के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक ने याचिकाकर्ताओं के संयुक्त बचत बैंक खाते पर इस आधार पर रोक लगा दिया गया है कि एथिल अल्कोहल और रेक्टिफाइड स्पिरिट की बिक्री के कारण जहरीली शराब त्रासदी के प्रकरण में याचिकाकर्ताओं की कुछ सहभागिता अभिलिखित की गयी है और विचारण प्रचलित है। रिट याचिका की पत्रवाली के अनुसार, याचिकाकर्ताओं का संयुक्त बचत बैंक खाता वह बचत बैंक खाता है जिससे याचिकाकर्ता आवास ऋण के लिए अपनी मासिक किस्त का भुगतान करते हैं। 04.07.2021 को बचत बैंक खाते में शेष राशि 1354.58 रुपये (क्रेडिट) थी। याचिकाकर्ता संख्या 1 के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 224/2021 थाना हरदुआगंज में धारा 60 ए, 62 यूपी आबकारी अधिनियम और धारा 120-बी, 272, 273, 304, 420, 467, 468 और 471 भादव्सं० के अंतर्गत आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया है।

4. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने संयुक्त अभियोजन निदेशक, अलीगढ़ द्वारा अग्रेषित संबंधित पुलिस थाने के निर्देशों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, जिसे पत्रवाली में रखा गया है।

5. निर्देशों के पैराग्राफ 4, 5, 15 और 16 में उत्तरदाताओं ने निम्नानुसार कहा है:

“4. प्रस्तर संख्या-4 में याची का कथन है कि याचीगण का संयुक्त खाता संख्या-6563000100013382 पंजाब नेशनल बैंक रामघाट रोड शाखा में है, जिसमें याचीगण का आधार कार्ड सं०-5842 5760 7982 व मो० सं०- 8477036000 पंजीकृत है। परन्तु यह कथन असत्य है कि याची संख्या-1 को अवैध शराब विक्रय के आपराधिक मुकदमों में झूठा फँसाया गया है। बल्कि सत्यता यह है कि याची, गिरोहबंद, सरकश, हिस्ट्रीशीटर, अपनी फैक्ट्री में वरदान इंक एण्ड सालवेण्ट प्रा० लि० पता डी 132-133 सै०-1 यू०पी०एस०आई०डी०सी० ताला नगरी जनपद अलीगढ़ में हैंड सेनेटाइजर व अन्य उत्पादनों के निर्माण की आड़ में मिथाइल एल्कोहल / रेक्टिफाइड स्प्रिट व अन्य कई प्रकार के हानिकारक रासायनिक कैमीकलों जैसे मानव जीवन के लिये घातक पदार्थों से भरे हुये 203 (नाप 200 ली० प्रत्येक ड्रम) ड्रमों के भारी भरकम स्टॉक को अवैध देशी शराब अपमिश्रण करने वाले माफियाओं को चोरी छिपे बिना किसी अधिकारिता के अवैध रूप से राजस्व को हानि पहुँचा कर आपूर्ति करने वाला अपराधी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वर्ष 2021 में थाना हरदुआगंज पुलिस द्वारा प्रशासनिक

उच्चाधिकारियों के आदेशानुसार मु०अ०सं०-224/2021 में दबिश देकर याची की उपरोक्त फैक्टरी से एथाइल एल्कोहल/रेक्टिफाइड स्प्रिट, जैसे मानव जीवन के लिये उच्च स्तरीय घातक रसायन से भरे हुए 203 ड्रम व कुछ ड्रमों में कई प्रकार के हानिकारक रासायनिक कैमीकल भरे हुये बरामद किये गये हैं, तथा विशेषण से ज्ञात हुआ है कि याची मानव जीवन लिये अति घातक उपरोक्त रसायनों को जनपद के शराब माफियाओं को अवैध व अनुचित लाभ प्राप्ति हेतु मँहगे दामों में विक्रय करना पाया गया है। याची के उक्त कृत्य से जनपद में अवैध अपमिश्रित देशी मदिरा के चोरी छिपे कारोबार में जबरदस्त उछाल आया है, जिसके कारण जनपद में काफी निर्दोष गरीब लोगों की मृत्यु हो गयी है तथा काफी संख्या में गंभीर रूप से बीमार हुये हैं। तथा आँखों की रोशनी चली गयी है, याची द्वारा आपूर्ति किये गये उक्त रसायन से निर्मित अवैध अपमिश्रित जहरीली नकली देशी शराब के सेवन से निरीह व निर्दोष लोगों के साथ सिसरोई ईंट भट्टा शराब मजदूर काण्ड जैसी घटनाएं अमल में आयीं हैं। इसके विरुद्ध जनपद के विभिन्न थानों में लम्बा आपराधिक इतिहास में आपराधिक मुकदमे पंजीकृत हैं।

5. प्रस्तर संख्या-5 में याची का कथन है कि उपरोक्त खाता याची की दुकान से संबंधित नहीं है शराब व्यवसाय की खरीद विक्री से संबंधित अलग एमाउण्ट संचालित है। उक्त वर्तमान बैंक खाते का संबंध याची के शराब कारोबार संबंधी व्यवसायिक लेन देन से नहीं है। इस संबंध में कथन करना है कि उक्त कथन का संबंधित याचीगण के वर्तमान बैंक

खाते से संबंधी बैंक लेन देन से है, जिसके संबंध में याचीगण के अतिरिक्त यह वास्तविकता कोई नहीं जान सकता कि याचीगण द्वारा खाते में से किया गया लेन देन किस मद में व्यय किया जा रहा है।

15. प्रस्तर संख्या-15 में अंकित याचीगण का कथन है कि फ्रीज खाता केस प्रापटी न होने के कारण धारा-102 CrPc के प्राविधानुसार अवैध है तथा मान० न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किये जाने योग्य है। इस संबंध में कथन करना है उक्त कथन कानून से संबंधित है कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

16. प्रस्तर संख्या-16 में अंकित याचीगण का कथन है कि याचीगण उच्चस्तरीय रेजीडेंसियल पिलर हैं तथा प्रश्नगत खाते को डिफ्रीज करने हेतु दर-दर भटक रहे हैं। परन्तु यह कथन असत्य है कि याचीगण को उत्पीड़ित रखने की गरज से अकारण ही उनकी प्रार्थना को हवा में उड़ा दिया गया है। बल्कि सत्यता यह है कि शासन/प्रशासन द्वारा आदेश याची संख्या-1 द्वारा जिले के सम्पूर्ण शासन/प्रशासन व जनता जनार्दन को हिला देने वाले आपराधिक कृत्य के कारण जारी किया गया है जो जिला स्तर के उच्चतम अधिकारीगण द्वारा क्षेत्रीय सामाजिक शान्ति व कानून व्यवस्था को बनाये रखने हेतु जारी किया गया है। अतः उपरोक्त बैंक शाखा को उक्त आदेश के विरुद्ध जाकर याचीगण के प्रार्थना पत्र को स्वीकार करने का कानूनन कोई अधिकार नहीं है।”

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102 में निम्नानुसार प्रावधान है:

"102. किसी संपत्ति को जब्त करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति।

(1) कोई भी पुलिस अधिकारी किसी भी संपत्ति को जब्त कर सकता है जो कथित तौर पर चोरी हो सकती है या संदिग्ध हो सकती है, या जो उन परिस्थितियों में पाई जा सकती है जो किसी अपराध के होने का संदेह पैदा करती हैं।

(2) ऐसा पुलिस अधिकारी, यदि किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के अधीनस्थ है, तो उस अधिकारी को जब्ती की सूचना तुरंत देगा।

(3) उपधारा (1) के अधीन कार्य करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी जब्ती की सूचना उस मजिस्ट्रेट को देगा, जिसके पास क्षेत्राधिकार है और जहां जब्त की गई संपत्ति ऐसी है कि उसे आसानी से न्यायालय में नहीं ले जाया जा सकता है, 2 [या जहां ऐसी संपत्ति की अभिरक्षा के लिए उचित आवास प्राप्त करने में कठिनाई हो, या जहां पुलिस अभिरक्षा में संपत्ति को निरंतर बनाए रखना अन्वेषण के उद्देश्य से आवश्यक नहीं समझा जाए। वह किसी भी व्यक्ति को उसकी अभिरक्षा तब दे सकता है जब वह आवश्यक होने पर न्यायालय के समक्ष संपत्ति को प्रस्तुत करने के लिए बांड वचन दे सकता है और इसके निस्तारण के विषय में न्यायालय के अगले आदेशों को प्रभावी कर सकता है:

[परन्तु जहां उप-धारा (1) के अंतर्गत जब्त की गई संपत्ति तेजी से और प्राकृतिक क्षय के अधीन है और यदि ऐसी संपत्ति के कब्जे का हकदार व्यक्ति अज्ञात या अनुपस्थित है

और ऐसी संपत्ति का मूल्य पांच सौ रुपये से कम है, तो इसे पुलिस अधीक्षक के आदेशों और धारा 457 और 458 के प्रावधानों के अंतर्गत नीलामी द्वारा तुरंत बेचा जा सकता है। जितना हो सके व्यावहारिक रूप से, ऐसी बिक्री की शुद्ध आय पर लागू करें।"

7. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102 की उपधारा (1) किसी भी पुलिस अधिकारी को किसी भी संपत्ति को जब्त करने का अधिकार देती है जो कथित तौर पर चोरी की हो सकती है या संदिग्ध हो सकती है, या जो उन परिस्थितियों में पायी जा सकती है जो किसी अपराध के होने का संदेह उत्पन्न करती हैं। उपधारा (2) के अंतर्गत ऐसे पुलिस अधिकारी, यदि किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के अधीनस्थ है, तो उस अधिकारी को जब्ती की रिपोर्ट तुरंत करने की आवश्यकता होती है।

9. उपधारा (3) में प्रावधान है कि उपधारा (1) के अधीन कार्य करने वाला अधिकारी जब्ती की सूचना उस मजिस्ट्रेट को देगा, जिसके पास क्षेत्राधिकार है और जहां जब्त की गयी संपत्ति ऐसी है कि उसे आसानी से न्यायालय में नहीं पहुंचाया जा सकता है या जहां ऐसी संपत्ति की अभिरक्षा के लिए उचित आवास प्राप्त करने में कठिनाई होती है, या जहां पुलिस अभिरक्षा में संपत्ति को निरंतर बनाए रखना अन्वेषण के उद्देश्य से आवश्यक नहीं समझा जा सकता है, वह किसी भी व्यक्ति को उसके बंध पत्र के निष्पादन पर उसकी अभिरक्षा दे सकता है कि जब भी आवश्यक हो, वह संपत्ति को न्यायालय के

समक्ष प्रस्तुत करे और उसके निस्तारण के संबंध में न्यायालय के अगले आदेशों को प्रभावी करे।

10. उप-नियम (3) का परंतुक जो उपधारा (1) के अंतर्गत जब्त की गयी ऐसी संपत्ति की स्थिति से संबंधित है, जो तेजी से और प्राकृतिक क्षय के अधीन है।

11. इस प्रकार, किसी अपराध के होने के बारे में संदेह पैदा करने वाले बैंक खाते सहित संपत्ति को अन्वेषण अधिकारी द्वारा जब्त किया जा सकता है या वह किसी भी व्यक्ति के ऐसे बैंक खाते के संचालन को प्रतिबंधित कर सकता है जो किसी भी अपराध के होने का संदेह उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में पाया जा सकता है। धारा 102 का विस्तार और उद्देश्य अन्वेषण में मदद करना और सहायता करना है और एक पुलिस अधिकारी को आरोप पत्र में शिकायत और स्थापित आरोप को साबित करने के लिए पेश किए जाने वाले सबूत एकत्र करने में सक्षम बनाना है। धारा 102 की उपधारा 1 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब्त की गयी संपत्ति चोरी होने का संदेह होना चाहिए या जो उन परिस्थितियों में पाई जा सकती है जो किसी भी अपराध के होने का संदेह पैदा करती हैं।

12. **महाराष्ट्र राज्य बनाम तापस डी. निओगी (1999) 7 एससीसी 685** (पैराग्राफ 6 और 12) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"6. धारा 102 की उप-धारा (1) को पढ़ने से संकेत मिलता है कि पुलिस अधिकारी के पास

किसी भी संपत्ति को जब्त करने की शक्ति है जो किसी भी अपराध के होने का संदेह पैदा करने वाली परिस्थितियों में पाई जा सकती है। विधायिका ने "कोई संपत्ति" और "कोई अपराध" शब्द का उपयोग करने के बाद प्रावधानों की प्रयोज्यता को किसी भी अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए अपराधों को कवर करने के लिए पर्याप्त व्यापक बना दिया है। लेकिन धारा 102 (1) की प्रयोज्यता के लिए दो पूर्व शर्तें हैं कि यह "संपत्ति" होनी चाहिए और दूसरी बात, उक्त संपत्ति के संबंध में किसी भी अपराध के होने का संदेह होना चाहिए। इस प्रकरण के इस दृष्टिकोण में विचार के लिए उठने वाले दो और प्रश्न हैं कि क्या किसी अभियुक्त के बैंक खाते या उसके संबंध को धारा 102 सीआरपीसी की उप-धारा (1) के अर्थ के भीतर "संपत्ति" कहा जा सकता है और दूसरा, क्या परिस्थितियां विद्यमान हैं, जिससे इसके संबंध में किसी अपराध के होने का संदेह पैदा होता है।

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102 के अंतर्गत जब्ती की शक्ति के संबंध में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए अलग-अलग विचारों पर विचार करने के बाद, और क्या बैंक खाते को उक्त धारा 102 (1) के अर्थ के भीतर "संपत्ति" माना जा सकता है, हम आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की कोई संकीर्ण व्याख्या करने का कोई औचित्य नहीं देखते हैं। यह सर्वविदित है कि सार्वजनिक कार्यालयों में भ्रष्टाचार इतना व्यापक हो गया है कि इसका सामना करना कठिन हो गया है। फिर न्यायालयों द्वारा मुकदमे को पूरा करने में लगने वाला समय एक और कारक है जिसे

आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 102 के प्रावधानों और उसमें निहित अंतर्निहित उद्देश्य की व्याख्या करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए, जैसे कि यदि अभियुक्त के बैंक खाते को जब्त करने का कोई आदेश नहीं दिया जा सकता है, तो बैंक में जमा पूरा पैसा जो अंततः मुकदमे में माना जाता है। अवैध रिश्वत की राशि को आरोपी द्वारा वापस लिया जा सकता है और न्यायालय उक्त धन प्राप्त करने के लिए शक्तिहीन होगी, जिसका सार्वजनिक अधिकारी के रूप में आरोपी द्वारा किए गए अपराध के साथ कोई सीधा संबंध है। इसलिए, हमें यह विचार करने के लिए सहमत किया जाता है कि आरोपी या उसके किसी भी रिश्तेदार का बैंक खाता आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 102 के अर्थ के भीतर "संपत्ति" है और अन्वेषण के दौरान एक पुलिस अधिकारी उक्त खाते के संचालन को जब्त या प्रतिबंधित कर सकता है यदि ऐसी संपत्ति का उस अपराध के साथ सीधा संबंध है जिसके लिए पुलिस अधिकारी अन्वेषण कर रहा है। कर्नाटक, गुवाहाटी और इलाहाबाद उच्च न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए विपरीत दृष्टिकोण सही कानून का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। यह भी देखा जा सकता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत, धारा 13 की उपधारा (2) के अंतर्गत जुर्माना लगाने के प्रकरण में, विधायिकाओं ने प्रावधान किया है कि जुर्माने की राशि तय करते समय अदालतें उस राशि या संपत्ति के मूल्य को ध्यान में रखेंगी जो आरोपी व्यक्ति ने अपराध करके प्राप्त की है या जहां दोषसिद्धि धारा (ई) में निर्दिष्ट अपराध के लिए है। धारा 13 की उप-धारा (1), आर्थिक

संसाधन या संपत्ति जिसके लिए आरोपी व्यक्ति संतोषजनक रूप से खाता देने में असमर्थ है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102 के अंतर्गत जब्ती की शक्ति के संबंध में हमारे द्वारा दी गई व्याख्या ऊपर उल्लिखित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 16 में निहित विधायिका की मंशा के अनुसार है। उपरोक्त परिसर में, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि बॉम्बे उच्च न्यायालय ने यह कहने में गलती की कि पुलिस अधिकारी बैंक खाते को जब्त नहीं कर सकता था या बैंक अधिकारी को कोई निर्देश जारी नहीं कर सकता था, जो आरोपी के खाते को संचालित करने से रोकता है। यद्यपि हमने कानून निर्धारित किया है, लेकिन जहां तक वर्तमान प्रकरण का संबंध है, लागू आदेश पहले ही प्रभावी हो चुका है और अभियुक्त अपना खाता संचालित कर रहा है, और इसलिए, हम इसमें हस्तक्षेप नहीं करते हैं।"

13. एमटी एनरिका लेक्सी बनाम डोरम्मा, (2012) 6 एससीसी 760 (पैरा 14) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 102 के विषयवस्तु, उद्देश्य और विस्तार की व्याख्या की, और निम्नानुसार कहा:

14. अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारी धारा 102 के अंतर्गत किसी भी संपत्ति को जब्त कर सकता है यदि ऐसी संपत्ति कथित रूप से चोरी हो जाती है या चोरी होने का संदेह होता है या अन्वेषण के अंतर्गत अपराध का उद्देश्य है या अपराध के साथ सीधा संबंध है जिसके लिए पुलिस अधिकारी अन्वेषण कर रहा है।

ऐसी संपत्ति जिसे अपराध होने का संदेह न हो, जिसकी अन्वेषण पुलिस अधिकारी द्वारा की जा रही हो, उसे जब्त नहीं किया जा सकता है। संहिता की धारा 102 के अंतर्गत, पुलिस अधिकारी ऐसी संपत्ति को जब्त कर सकता है जो धारा 102 (1) द्वारा आच्छादित है और कोई अन्य नहीं।

14. तीस्ता अतुल सीतलवाड़ बनाम गुजरात राज्य (2018) 2 एससीसी 372 (पैराग्राफ 20 और 26) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 102 के दायरे और प्रभाव पर विचार किया, और महाराष्ट्र राज्य बनाम तापस डी. निओगी (सुप्रा) के प्रकरण में निर्धारित कानून का पालन किया:

"20. जहां तक बैंक खातों को फ्रीज करने के लिए अनुदेश जारी करने की प्रक्रिया का संबंध है, यह देखा गया है कि संहिता की धारा 102 के अनुसार 21-11-2014 को संबंधित मजिस्ट्रेट को सूचना देकर इसका पालन किया गया है। धारा 102 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो खाताधारक को उसके बैंक खाते को जब्त करने से पहले पूर्व सूचना देना अनिवार्य करता है। मजिस्ट्रेट ने यह देखने के बाद कि शशिकांत डी. कार्णिक बनाम बॉम्बे हाईकोर्ट में बॉम्बे हाईकोर्ट की खंडपीठ द्वारा दिए गए सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है। विनोदकुमार रामचंद्रन वल्लुवर प्रकरण में बॉम्बे हाईकोर्ट की पूर्ण पीठ के फैसले के संदर्भ में महाराष्ट्र राज्य को खारिज कर दिया गया है, जो उस तर्क को सही ढंग से खारिज करता है। बॉम्बे हाईकोर्ट की पूर्ण पीठ ने कहा है कि धारा 102

के अंतर्गत किसी व्यक्ति को उसके बैंक खाते को कुर्क करने की कार्रवाई से पहले या साथ में नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है। आदर्श कॉप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड भारत संघ, बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने एक बार फिर इस मुद्दे पर विचार किया और इस तर्क को खारिज कर दिया कि खाताधारक को उसके बैंक खाते को जब्त करने से पहले पूर्व नोटिस दिया जाना आवश्यक था। न्यायालय ने यह भी कहा कि बैंक खाता केवल आरोपी का नहीं होना चाहिए, बल्कि यह कोई भी खाता हो सकता है जो अपराध होने के बारे में संदेह पैदा करता हो। इस तरह लिया गया दृष्टिकोण हमारी प्रशंसा करता है।

संबंधित न्यायालय में पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत होने के बाद, अपीलकर्ताओं के लिए बैंक खातों को डीफ्रीज करने के लिए आवेदन करना और संबंधित न्यायालय को राजी करना होगा कि उक्त बैंक खाते अन्वेषण के उद्देश्य के लिए आवश्यक नहीं हैं, जैसा कि संहिता की धारा 102 की उप-धारा (3) में प्रावधान किया गया है। यह संबंधित न्यायालय के लिए खुला होगा कि वह अन्वेषण एजेंसी को सुनने के बाद कानून के अनुसार उस अनुरोध पर विचार करे, जिसमें प्रकरण की तथ्य स्थिति में आवश्यक शर्तें लागू करना भी शामिल है।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

26. यद्यपि दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में खातों के विवरण और वाउचर का विज्ञापन दिया है, हम प्रकरण पर विचार करते समय इसका विश्लेषण करना आवश्यक नहीं समझते हैं और न ही प्रकरण की अन्वेषण के लंबित रहने तक उक्त बैंक खातों को डीफ्रीज करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा दिए गए आवेदन से उत्पन्न होता है। निर्विवाद रूप से, अन्वेषण अभी भी प्रगति पर है। अपीलकर्ताओं को अन्वेषण एजेंसी को अपनी स्थिति स्पष्ट करनी होगी और अन्वेषण पूरी होने के बाद, अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर मामला आगे बढ़ सकता है। अन्वेषण एजेंसी द्वारा इस संदेह पर विचार किया जाएगा कि अपीलकर्ताओं ने कैसे भारी धनराशि का विनियोजन किया, जो वास्तव में 2002 के दंगों के दुर्भाग्यपूर्ण पीड़ितों को वितरित किया जाना था। इसके अलावा, एक बार अन्वेषण पूरी हो जाने और

15. नेवादा प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा निदेशक बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2019) 20 एससीसी 119 (पैराग्राफ 28 से 34 और 42) के प्रकरण में, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार कहा:

"28. संहिता की धारा 102 की उप-धारा (1) का पहला भाग उस संपत्ति से संबंधित है जो कथित रूप से चोरी हो सकती है या चोरी होने का संदेह हो सकता है। अचल संपत्ति निश्चित रूप से चोरी नहीं की जा सकती है और इस हिस्से में नहीं आ सकती है। दूसरा भाग उस संपत्ति से संबंधित है जो एक पुलिस अधिकारी को उन परिस्थितियों में मिल सकती है जो किसी अपराध के होने का संदेह पैदा करती हैं। हम पहले ही पीके परमार [पीके परमार बनाम भारत संघ, 1992 एससीसी ऑनलाइन डेल 136: 1992 क्रि एलजे 2499] में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख कर चुके हैं।

सभरवाल [स्वर्ण सभरवाल बनाम पुलिस (2018) 1 एससीसी (सीआरआई) 718] में आयोग, 1987 एससीसी ऑनलाइन डेल 221: 1988 क्रि एलजे 241] और जगदीश चंदर [जगदीश चंदर बनाम राज्य, 1989 एससीसी ऑनलाइन डेल 403: (1990) 40 डीएलटी 233] ने स्पष्ट किया है और एक प्रतिबंधित और संकीर्ण तरीके से दूसरे भाग को लागू करने की आवश्यकता को परिभाषित किया है। तथापि, हमें [तीस्ता अतुल] सीतलवाड़ बनाम गुजरात राज्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 6283] के निर्णय के विरुद्ध अपील तीस्ता अतुल सीतलवाड़ बनाम गुजरात राज्य [तीस्ता अतुल सीतलवाड़ बनाम गुजरात राज्य, (2018) 2 एससीसी 372: (2018) 1 एससीसी (सीआरआई) 718], में इस न्यायालय के एक निर्णय के बारे में पता चला है। गुजरात उच्च न्यायालय ने उस स्थिति से निपटा था जब खातों को फ्रीज करने का कार्य अपराध की अगली कड़ी था क्योंकि अपराध का पता पहले ही चल गया था। गुजरात उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप न करके और डीफ्रीजिंग का निर्देश देकर कुछ हद तक विपरीत दृष्टिकोण अपनाया, यह देखते हुए कि भले ही अन्वेषण एजेंसी की शुरुआत में जब्त करने की कार्रवाई नियमित न हो, न्यायालय अन्वेषण एजेंसी द्वारा पर्याप्त सामग्री के संग्रह से अनजान नहीं हो सकती है जो संहिता की धारा 102 के अंतर्गत अपनी कार्यवाही को सही ठहराती है। इसके अलावा जब अन्वेषण एक ठोस बिंदु पर आगे बढ़ गई थी, तो इस तरह के तर्कों के आधार पर बैंक खातों पर लगी रोक हटाने से अन्वेषण ठप हो जाएगी जो न्याय के हित में नहीं होगी। तीस्ता अतुल सीतलवाड़ बनाम गुजरात राज्य (2018) 2 एससीसी 372:

(2018) 1 एससीसी (सीआरआई) 718] में तथ्यात्मक मैट्रिक्स का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय ने कहा कि अन्वेषण अधिकारी के पास उन परिस्थितियों को इंगित करने वाली सामग्री थी, जिन्होंने अपराध होने का संदेह पैदा किया था, विशेष रूप से अन्वेषण के अंतर्गत, और इसलिए संहिता की धारा 102 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग कानून में वैध होगा क्योंकि इसका उपयोग उसी प्रावधान की उप-धाराओं (2) और (3) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद किया गया था।

29. धारा 102 के अंतर्गत संपत्ति को जब्त करने का प्रावधान है। अचल संपत्ति को उसके सख्त अर्थों में जब्त नहीं किया जा सकता है, हालांकि अचल संपत्ति से संबंधित शीर्षक आदि के दस्तावेजों को जब्त किया जा सकता है, हिरासत में लिया जा सकता है और पेश किया जा सकता है। अचल संपत्ति को कुर्क किया जा सकता है और लॉक/सील भी किया जा सकता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि "जब्त" शब्द में कुर्की और सीलिंग की ऐसी कार्रवाई शामिल होगी। इस अर्थ और तरीके से अचल संपत्ति की जब्त के लिए कानून में अचल संपत्ति के कब्जे में व्यक्ति के कब्जे की आवश्यकता होगी, जब तक कि कोई दावेदार न हो, जो दुर्लभ होगा। संहिता की धारा 102 की भाषा इस व्याख्या का समर्थन नहीं करती है कि पुलिस अधिकारी के पास कब्जे में किसी व्यक्ति को बेदखल करने और उसे जब्त करने के लिए अचल संपत्ति पर कब्जा करने की शक्ति है। पुलिस अधिकारी को संहिता की धारा 102 के अंतर्गत इस व्यक्ति या निहित शक्ति को विधायिका द्वारा प्रदान नहीं किए जाने की

अनुपस्थिति में, हम संकोच करेंगे और यह नहीं मानेंगे कि इस शक्ति का अनुमान लगाया जाना चाहिए और जब्ती करने की शक्ति में निहित है।

30. व्याख्या के उद्देश्य के लिए संहिता की धारा 102 का दायरा और उद्देश्य समान रूप से महत्वपूर्ण है, जो अन्वेषण में मदद करना और सहायता करना है और पुलिस अधिकारी को आरोप पत्र में शिकायत किए गए आरोप को साबित करने के लिए सबूत एकत्र करने और मिलान करने में सक्षम बनाना है। यह धारा पुलिस अधिकारी द्वारा की जाने वाली अन्वेषण से संबंधित प्रावधानों का एक हिस्सा है। चार्जशीट दायर होने के बाद, अभियोजन पक्ष नेतृत्व करता है और दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए सबूत पेश करता है। धारा 102 अपने आप में एक सक्षम प्रावधान नहीं है जिसके द्वारा पुलिस अधिकारी न्याय करने के लिए संपत्ति को जब्त करने और संपत्ति को एक ऐसे व्यक्ति को सौंपने के लिए कार्य करता है जिसे पुलिस अधिकारी लगता है कि सही और सच्चा मालिक है। यह धारा 102 के पीछे के उद्देश्य, धारा में शब्दों के उपयोग और संहिता की धारा 451 से 459 के अंतर्गत आपराधिक न्यायालय को प्रदत्त शक्ति के दायरे और दायरे से स्पष्ट है।

31. धारा 102 में "ऐसी परिस्थितियां जो किसी अपराध के होने का संदेह पैदा करती हैं" शब्द किसी पुलिस अधिकारी द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए एक दृढ़ राय या निर्णय / खोज का उल्लेख नहीं करता है कि

"किसी संपत्ति" को जब्त करने की आवश्यकता है या नहीं। "संदेह" शब्द "उचित विश्वास" या "संतुष्टि" की तुलना में एक कमजोर और व्यापक अभिव्यक्ति है। पुलिस अधिकारी एक अन्वेषक है और एक निर्णायक या निर्णय निर्माता नहीं है। यही कारण है कि अनुसूचित अपराधों के मामलों में धन और अचल संपत्तियों की कुर्की से निपटने के लिए अध्यादेश लागू किया गया था।

32. यदि हम पुलिस अधिकारी को केवल "किसी अपराध के होने के संदेह" पर अचल संपत्ति को "जब्त" करने की अनुमति देते हैं, तो इसका मतलब यह होगा कि पुलिस अधिकारी को केवल अनुमान और अनुमान के आधार पर बेदखल करने आदि की कठोर और चरम शक्ति दी जाए, जो अब तक प्रयोग नहीं किया गया है। हमारे सामने शायद ही ऐसा कोई मामला आया हो जहां कुर्की आदेश के अंतर्गत अचल संपत्ति जब्त की गई हो, जिसे पुलिस अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 102 के अंतर्गत जब्ती आदेश के रूप में माना गया हो। कारण स्पष्ट है। अचल संपत्ति के शीर्षक, कब्जे, आदि से संबंधित विवाद सिविल विवाद हैं जिन्हें सिविल अदालतों में तय और निर्णय ति किया जाना है। हमें दूसरे पक्ष पर दबाव बनाने के लिए सिविल विवादों को आपराधिक मामलों में बदलने के किसी भी प्रयास को हतोत्साहित और रोकना चाहिए (देखें बिनोद कुमार बनाम बिहार राज्य [बिनोद कुमार बनाम बिहार राज्य, (2014) 10 एससीसी 663: (2015) 1 एससीसी (सीआरआई) 203]। इस प्रकार, यह कहना उचित नहीं होगा कि संहिता की धारा 102

एक पुलिस अधिकारी को अचल संपत्ति, भूमि, भूखंड, आवासीय घर, सड़कों या इसी तरह की संपत्तियों को जब्त करने का अधिकार देती है। आपराधिक मुकदमेबाजी की प्रकृति को देखते हुए, पुलिस अधिकारी द्वारा कुर्की और बेदखली के रूप में अचल संपत्ति की इस तरह की जब्ती से पूछताछ और परीक्षण के दौरान पेश किए जाने वाले सबूत/सामग्री एकत्र करने के लिए अन्वेषण की सुविधा नहीं होगी।

33. जहां तक अचल संपत्ति के कब्जे का संबंध है, संहिता की धारा 145 और 146 के रूप में विशिष्ट प्रावधानों को कानून के अनुसार और उसके अनुसार लागू किया जा सकता है। संहिता की धारा 102 एक सामान्य प्रावधान नहीं है जो पुलिस अधिकारी को मुकदमे के दौरान आपराधिक न्यायालय में पेश करने में सक्षम होने के लिए अचल संपत्ति को जब्त करने में सक्षम बनाता है और अधिकृत करता है। हालांकि, यह पुलिस अधिकारी को अचल संपत्ति से संबंधित मालिकाना हक के दस्तावेजों/कागजात को जब्त करने से नहीं रोकेगा, क्योंकि यह अचल संपत्ति की जब्ती से भिन्न और अलग है। संपत्ति के भौतिक और कानूनी कब्जे और शीर्षक से संबंधित विवादों और मामलों पर एक सिविल न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए।

34. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, संदर्भ का उत्तर यह कहते हुए दिया जाता है कि संहिता की धारा 102 के अंतर्गत किसी भी संपत्ति को जब्त करने की पुलिस

अधिकारी की शक्ति, जो किसी भी अपराध के होने का संदेह पैदा करने वाली परिस्थितियों में पाई जा सकती है, में अचल संपत्ति को कुर्क करने, जब्त करने और सील करने की शक्ति शामिल नहीं होगी।

42. धारा 102 एक सदी से अधिक समय से विधिक पुस्तक में है। धारा 102 दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 550 से मेल खाती है। एक सदी से अधिक समय से न्यायालयों ने "किसी भी संपत्ति" शब्द को चल संपत्ति [टेक्सटाइल ट्रेडर्स सिंडिकेट लिमिटेड बनाम यूपी राज्य, 1959 एससीसी ऑनलाइन ऑल 207 : एआईआर 1960 ऑल 405], [कुरियाचन चाको बनाम केरल राज्य, 2012 एससीसी ऑनलाइन केरल 31708: (2012) 3 केएलजे 620] 2016 एससीसी ऑनलाइन पैट 2900: (2016) 3 पैट एलजेआर 464] के रूप में पढ़ा है और इसके विपरीत कोई निर्णय हमारे ध्यान में नहीं लाया गया था। तापसडी. निओगी बनाम महाराष्ट्र राज्य [महाराष्ट्र बनाम तापस डी. निओगी, (1999) 7 एससीसी 685: 1999 एससीसी (सीआरआई) 1352] के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास रखा गया है। । उस प्रकरण में, प्रश्न पूर्णतया अलग था और इस न्यायालय ने केवल यह तय किया कि एक अभियुक्त का बैंक खाता धारा 102 के अर्थ के भीतर संपत्ति थी। न्यायालय ने चल या अचल संपत्ति के प्रश्न पर विचार नहीं किया और इसलिए, यह निर्णय लागू नहीं होगा।

सीआरपीसी की धारा 102 के सादे पठन से और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निर्णयों में निर्धारित कानून के

अवलोकन से उत्पन्न कानूनी स्थिति को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

(i) पुलिस अधिकारी के पास "किसी भी" संपत्ति को फ्रीज करने की शक्ति है या तो चोरी की गई है या जो किसी भी अपराध के होने का संदेह पैदा करने वाली परिस्थितियों में पाई जा सकती है। 'कोई संपत्ति' और 'कोई अपराध' शब्दों का उपयोग करके, विधायिका ने धारा 102 की प्रयोज्यता को किसी भी अधिनियम के अंतर्गत किसी भी अपराध को कवर करने के लिए पर्याप्त व्यापक बना दिया है।

(ii) सीआरपीसी की धारा 102 की प्रयोज्यता के लिए पूर्व शर्तें हैं:

(a) कि एक संपत्ति होनी चाहिए और

(b) उस संपत्ति को कथित रूप से चोरी किया गया है या संदेह है या जो उन परिस्थितियों में पाया जा सकता है जो किसी भी अपराध के होने का संदेह पैदा करते हैं।

(iii) निस्संदेह, एक बैंक खाता सीआरपीसी की धारा 102 (1) के अंतर्गत "संपत्ति" के अर्थ के भीतर कवर किया गया है।

(iv) अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारी सीआरपीसी की धारा 102 के अंतर्गत किसी भी संपत्ति को जब्त कर सकता है यदि:

(a) ऐसी संपत्ति चोरी होने का आरोप है या

(b) चोरी होने का संदेह है या

(c) अन्वेषण के अधीन अपराध का उद्देश्य है या

(d) इसका अपराध करने से सीधा संबंध है जिसके लिए पुलिस अधिकारी अन्वेषण कर रहा है

(v) जहां तक बैंक खातों को फ्रीज करने के लिए अनुदेश जारी करने की प्रक्रिया का संबंध है, पुलिस अधिकारी को खाते पर ऐसी रोक की सूचना संबंधित मजिस्ट्रेट को देनी होती है।

(vi) बैंक खाते को फ्रीज करने के लिए बैंक को निर्देश जारी करने से पहले बैंक खाते को फ्रीज करने से पहले खाताधारक को कोई पूर्व सूचना जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(vii) सीआरपीसी की धारा 102 के अंतर्गत अचल संपत्ति को उसके सख्त अर्थों में जब्त नहीं किया जा सकता है, हालांकि अचल संपत्ति से संबंधित शीर्षक के दस्तावेजों को जब्त किया जा सकता है। धारा 102 के अंतर्गत किसी अचल संपत्ति को कुर्क करने, जब्त करने और सील करने की शक्ति शामिल नहीं होगी।

(viii) एक बार अन्वेषण पूरी हो जाने और संबंधित न्यायालय में पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के बाद, जिस व्यक्ति के खाते को अन्वेषण के दौरान फ्रीज कर दिया गया है, उसके लिए सीआरपीसी की धारा 102 (3) के संदर्भ में संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष बैंक खाते को डीफ्रीज करने के लिए आवेदन करने और संबंधित न्यायालय को राजी करने का

विकल्प खुला है कि उक्त बैंक खाता अन्वेषण के उद्देश्य से आवश्यक नहीं है। यदि ऐसा आवेदन दायर किया जाता है, तो संबंधित न्यायालय कानून के अनुसार अनुरोध पर विचार करेगा, और अन्वेषण एजेंसी को सुनने के बाद, आवेदन की अनुमति दे सकता है और ऐसे बैंक खाते को निर्मुक्त करने का निर्देश दे सकता है। ऐसा करते समय, संबंधित न्यायालय प्रकरण के तथ्यों और स्थितियों में आवश्यक शर्तें लगा सकता है।

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल,
माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार,
के समक्ष

रिट-सी संख्या 6415 सन् 2023

और

रिट-सी संख्या 3217 सन् 2023

प्रमोद शर्मा एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

17. चूंकि यह पक्षों का मामला माना जाता है कि एक आरोप पत्र पहले ही दायर किया जा चुका है, इसलिए, हम याचिकाकर्ताओं को तीस्ता अतुल सीतलवाड़ (सुप्रा) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में अपने बैंक खाते को जारी करने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदन करने की अनुमति देते हैं।

18. यदि याचिकाकर्ताओं द्वारा संबंधित न्यायालय/मजिस्ट्रेट के समक्ष ऐसा आवेदन दायर किया जाता है, तो संबंधित न्यायालय/मजिस्ट्रेट द्वारा विधि के अनुसार, प्राथमिकता से आवेदन प्रस्तुत करने की तिथि से दो महीने के भीतर निर्णय लिया जाएगा।

19. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 357

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.05.2023

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता: श्री अनिल कुमार शुक्ला, श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री रमेश कुमार

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री महेश नारायण सिंह, श्री रवि प्रकाश पांडे

दीवानी विधि - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धारा 11(2), 18 और 28ए - उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण (मुआवजे का निर्धारण और समझौते द्वारा अवार्ड की घोषणा), 1997 मुख्य मुद्दे: 1. क्या याचिकाकर्ता जिन्होंने बिना विरोध के करार नियमावली के तहत मुआवजा स्वीकार कर लिया, वे अन्य दावेदारों के लिए संदर्भ न्यायालय द्वारा निर्धारित बढ़े हुए मुआवजे का दावा कर सकते हैं? 2. क्या अधिनियम के तहत केवल "हितधारक व्यक्ति" होना धारा 28ए के तहत मुआवजे के पुनर्निर्धारण का दावा करने के लिए पर्याप्त है? निर्णय: याचिकाकर्ताओं ने बिना विरोध के मुआवजा स्वीकार कर लिया है, वे अधिनियम के अर्थ में "पीड़ित व्यक्ति" नहीं हैं और इसलिए वे बढ़े हुए मुआवजे का दावा नहीं कर

सकते। जिन याचिकाकर्ताओं ने बिना आपत्ति के मुआवजा प्राप्त किया, वे अधिनियम के तहत "पीड़ित व्यक्ति" की परिभाषा से बाहर हैं। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 में धारा 28ए को शामिल किए जाने से पहले ही सम्पूर्ण कार्यवाही पूरी हो चुकी थी। "हितबद्ध व्यक्ति" होने से भूमिस्वामी को स्वतः ही मुआवजे के पुनर्निर्धारण का अधिकार नहीं मिल जाता; उन्हें "पीड़ित" भी होना चाहिए।

खारिज। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बबुआ राम व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1995) 2 एससीसी 689
2. विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम लक्ष्मणबाबू गायकवाड़ व अन्य, दिनांक 14.11.2006 का निर्णय
3. रणवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2016 एससी 3753
4. ईश्वरीलाल प्रेमचंद शाह व अन्य बनाम गुजरात राज्य व अन्य, (1996) 4 एससीसी 174
5. कैनाश राम कोचर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2011 (8) एडीजे 9

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार, द्वारा प्रदत्त)

1. चूंकि दोनों याचिकाओं में कानून का संयोजित प्रश्न शामिल है, इसलिए इसका निर्णय एक संयुक्त आदेश द्वारा किया जा रहा है।

2. स्पष्टता के लिए रिट-सी संख्या-6415 वर्ष 2023 को एक प्रमुख याचिका के रूप में माना जा रहा है।

3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान याचिका 28 फरवरी, 2023 को प्रस्तुत की गई थी और 3.3.2023 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

पीठ ने कहा, याचिकाकर्ता द्वारा धारा 28ए के तहत आवेदन खारिज करने का आदेश इंगित करता है कि याचिकाकर्ताओं ने भूमि अधिग्रहण कानून की धारा 11(2) के तहत कलेक्टर द्वारा तैयार फैसले को स्वीकार कर लिया है। इसलिए, मुद्दा यह है कि क्या करार नियामवाली के तहत मुआवजा स्वीकार करने के बाद, याचिकाकर्ता संदर्भ अदालत के फैसले के तहत निर्धारित उच्च मुआवजे का दावा कर सकते हैं, जो ऐसे व्यक्तियों द्वारा दायर किया गया था जिन्होंने पंचाट स्वीकार नहीं किया था।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के लिए प्रार्थना करता है और उसे दिन के लिए स्थगन दिया जाता है ताकि वह अपनी दलील देने के लिए केस का अवलोकन कर सके।

जैसा कि प्रार्थना की गई थी, इस मामले को 20.03.2023 को नए सिरे से रखें।

4. इसके बाद मामला 21.4.2023 को लिया गया जिसमें इस न्यायालय ने एक आदेश पारित किया जो नीचे दिया गया है: -

"केस पुकार गया। याचिकाकर्ताओं की ओर से मामले पर बल देने के लिए कोई भी पेश नहीं हुआ।"

श्री अपूर्व हजेला, विद्वान स्थायी अधिवक्ता राज्य प्रतिवादियों के लिए उपस्थित होते हैं।

इस मामले को अतिरिक्त वाद सूची में 27.04.2023 को दोपहर 02:00 बजे रखें।

5. आज जब मामला उठाया गया है, तो कोई भी प्रमुख रिट याचिका या संबंधित रिट याचिका में उपस्थित नहीं हुआ, इसके बावजूद कि पहले भी रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता उपस्थित नहीं थे। चूंकि दोनों मामले एक साथ जुड़े हुए हैं और उन्हें 27.4.2023 को दोपहर 2.00 बजे तय की गई तारीख के रूप में रखने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ताओं के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, अतः राज्य-उत्तरदाताओं के लिए श्री अपूर्व हजेला विद्वान स्थायी अधिवक्ता और श्री एम.एन सिंह, जो तीसरे प्रतिवादी, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण, गाजियाबाद के लिए उपस्थित हुए, को सुनने के बाद, अदालत मामलों का फैसला करने के लिए आगे बढ़ रही है।

6. प्रमुख रिट याचिका में रिट याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि, वे तहसील लोनी, परगना और जिला गाजियाबाद में स्थित भूमि के कुछ टुकड़े के दर्ज मालिक होने का दावा करते हैं। दलीलों के अनुसार, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894(संक्षेप में अधिनियम, 1894) के प्रावधानों के तहत उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू की गई थी।

अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत होने वाली अधिसूचना 9.2.1962 को जारी की गई थी। अधिग्रहीत भूमि का कब्जा 26.5.1963 को लिया गया था, 236.7735 एकड़ भूमि के लिए 1.2.1964 को पंचाट दिया गया था और 7,35,707.24 रुपये का कुल मुआवजा दिया गया था।

7. रिट याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि मुआवजा शुरू में पहली बेल्ट के लिए 1.92 रुपये प्रति वर्ग गज, दूसरी बेल्ट के लिए 0.96 रुपये प्रति वर्ग गज और तीसरी बेल्ट के लिए 0.48 रुपये प्रति वर्ग गज दिया गया था जो अपर्याप्त पाया गया था, इसलिए विभिन्न दावेदारों द्वारा जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद के समक्ष अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत संदर्भ दिए गए।

8. यह रिट याचिकाकर्ताओं का मामला है, कि उन्होंने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत कोई आपत्ति नहीं की। भूमि मालिकों (रिट याचिकाकर्ताओं नहीं) की आपत्तियों को एल.ए.आर. नंबर 172 वर्ष 1989 के रूप में पंजीकृत किया गया था जो अन्य भूमि अधिग्रहण संदर्भों से जुड़ा था और एल.ए.आर. नंबर 172 वर्ष 1989 और एल.ए.आर. नंबर 18 वर्ष 1989 में पारित आदेश दिनांक 10.4.1992 के आधार पर, संदर्भ अदालत ने मुआवजे को 40 रुपये प्रति वर्ग गज तक बढ़ा दिया। दावेदारों को अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत अधिग्रहण की तारीख से वर्ष 12% प्रति वर्ष की दर से गणना की गई अतिरिक्त राशि का भी हकदार बनाया गया था, अर्थात् 9.2.1962 से 26.5.1993 को

कब्जा लेने की तारीख तक, अधिग्रहित की जाने वाली भूमि के बाजार मूल्य पर 30% की दर से क्षति पूर्ति राशि, जबकि दावेदारों को लेने की तारीख से @ 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज प्राप्त करने का, कब्जे और @ 15% प्रति वर्ष 26.5.1964 से छह सप्ताह की अवधि के भीतर किए गए भुगतान की तारीख तक, प्रश्न में पंचाट के पारित होने से, अधिकार दिया गया था।

विकास प्राधिकरण ने दीवानी अपील संख्या-1710 वर्ष 2016, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम राम कृष्ण (मृत) और अन्य को दायर करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जो संबंधित अपीलों के साथ निर्णय और आदेश दिनांक 23 फरवरी, 2016 को मुआवजे का निर्धारण @ रु.42.50 प्रति वर्ग गज के आधार पर तय किया गया था।

9. रिट याचिका के पैराग्राफ 8 में रिट याचिकाकर्ताओं ने यह रुख अपनाया है कि उन्होंने संदर्भ न्यायालय के पंचाट के आधार पर मुआवजे की राशि के पुनर्निर्धारण के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28 ए के तहत एक आवेदन को प्राथमिकता दी है। यह भी रिट याचिकाकर्ताओं का मामला है कि संदर्भ न्यायालय के दिनांक 10.4.1992 के आदेश के विरुद्ध तीसरे प्रतिवादी, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण, गाजियाबाद ने इस न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1894 की धारा 54 के तहत अपील दायर की, जिसे प्रथम अपील संख्या-525 वर्ष 1992, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम राम कृष्ण (मृत) के रूप में पंजीकृत किया गया था और भूमि मालिकों ने भी मुआवजे में वृद्धि के लिए अपील दायर की थी जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ ने 1.12.2014 को खारिज कर दिया।

11. हालांकि, 2.5.2022 को दूसरे प्रतिवादी, कलेक्टर/(एडीएम) एलए, गाजियाबाद ने अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के तहत रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर किए गए आवेदन को अस्वीकार करने की कार्यवाही की।

12. उक्त आदेश पर सवाल उठाते हुए, रिट याचिकाकर्ताओं ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहतों के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की:

"I. भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-2) की धारा 28A के तहत दायर किए गए आवेदन संख्या-67 वर्ष 1992 पर प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा पारित दिनांक 02.05.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी करें।

10. प्रथम अपील संख्या-525 वर्ष 1992, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम राम कृष्ण (मृत) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 1.12.2014 के खिलाफ संबंधित अपीलों के साथ, तीसरे प्रतिवादी, गाजियाबाद

II. परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें उत्तरदाताओं को प्रथम अपील संख्या-525 वर्ष 1992 में इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश और दीवानी अपील संख्या-1710 वर्ष

2016, (जीडीए बनाम राम किशन और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के आलोक में मुआवजे का पुनः निर्धारण करने का निर्देश दिया गया हो।

III. एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और न्यायसंगत समझता है।

IV. याचिकाकर्ता को रिट याचिका की लागत प्रदान करें।

13. रिट याचिका में दलीलों से पता चलता है कि दूसरे प्रतिवादी, कलेक्टर/एडीएम (एलए) के दिनांक 2.5.2022 के आदेश को चुनौती देने का मुख्य आधार है। गाजियाबाद अधिनियम, 1894 की धारा 28 के तहत होने वाली कार्यवाही में इस आधार पर है कि एक बार रिट याचिकाकर्ताओं की भूमि को उसी अधिसूचना द्वारा अधिग्रहण के लिए रखा गया था, जिसके बाद दावेदारों की भूमि जिन्होंने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत आवेदन किया था, बढ़ी हुई क्षतिपूर्ति के अनुदान में परिणत हुई, तो रिट याचिकाकर्ता समान रूप से स्थित होने के कारण अधिनियम, 1894 की धारा 28 ए के प्रावधानों के मददेनजर बढ़ा हुआ मुआवजा पाने के हकदार हैं।

14. रिट याचिका में यह भी कहा गया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28 ए एक लाभकारी धारा है जो अदालत के फैसले के आधार पर मुआवजे की राशि को फिर से

निर्धारित करने के लिए अदालत को बाध्य करती है और यह इस तथ्य पर निर्भर नहीं है कि क्या भूमि मालिक ने विरोध के तहत या बिना विरोध के मुआवजा स्वीकार किया है। उक्त प्रावधान को आकर्षित करने के लिए सामग्री यह है कि जिस भूमि का अधिग्रहण किया जाता है, वह उसी अधिसूचना से संबंधित होनी चाहिए, जिसे अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत संदर्भ की मांग करते समय अन्य भूमि मालिकों के प्रस्ताव पर उच्च मुआवजे का हकदार बनाया गया था।

16. श्री अपूर्व हजेला ने स्थायी अधिवक्ता सीखा, जो राज्य-उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित होते हैं, प्रस्तुत करते हैं कि दूसरे प्रतिवादी, कलेक्टर/एडीएम (एलए) गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश किसी भी अवैधता से ग्रस्त नहीं है, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक बार रिट याचिकाकर्ताओं के स्वयं के कहने के अनुसार, उन्होंने एक समझौते (करार नियमवाली) के संदर्भ में बिना किसी विरोध के अधिनियम की धारा 11(2) के तहत मुआवजा स्वीकार कर लिया है, फिर वे यह व्यथित व्यक्तियों की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगा कि वे अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अंतर्गत लाभ का दावा कर सकें।

16. बबुआ राम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में निर्णय पर भी भरोसा किया गया है और (1995)2 एस.सी.सी. 689 में एक अन्य रिपोर्ट किया गया है, इसके बाद विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम लक्ष्मणबाबू गायकवाड़ और अन्य के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच

के फैसले का फैसला 14 नवंबर 2006 को किया गया, रणवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 2016 उच्चतम न्यायालय 3753 में रिपोर्ट किया गया, ईश्वरीलाल प्रेमचंद शाह और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (1996)4 एस.सी.सी. 174, और कैनाश राम कोचर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2011 में रिपोर्ट किया गया (8) ए.डी.जे. 9, रिट-सी 16574 वर्ष 2017 प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 में रिपोर्ट किया गया।

17. रिट याचिका में उठाए गए मुद्दों पर विचार करने से पहले, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देना उचित होगा जो प्रश्नगत मुद्दे से संबंधित हैं: -

3(ख) अभिव्यक्ति "इच्छुक व्यक्ति" के अंतर्गत वे सभी व्यक्ति हैं जो इस अधिनियम के अधीन भूमि के अर्जन के कारण प्रतिकर में हित का दावा करते हैं; और एक व्यक्ति को भूमि में रुचि रखने वाला माना जाएगा यदि वह भूमि को प्रभावित करने वाले सुखभोग में रुचि रखता है।

(1) इस प्रकार नियत दिन पर, या किसी अन्य दिन जिस पर जांच स्थगित कर दी गई है, कलेक्टर उन आपत्तियों (यदि कोई हो) की जांच करने के लिए आगे बढ़ेगा, जो किसी भी इच्छुक व्यक्ति ने धारा 8 के तहत किए गए मापों के लिए धारा 9 के तहत दिए गए नोटिस के अनुसरण में कहा है, और भूमि के मूल्य में [धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख को, उप-धारा (1)], और

मुआवजे का दावा करने वाले व्यक्तियों के संबंधित हितों में और उसके तहत एक पंचाट देगा-

(i) भूमि का सही क्षेत्रफल;

(ii) वह मुआवजा जो उनकी राय में भूमि के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए; और

(iii) उक्त प्रतिकर का उन सभी व्यक्तियों के बीच विभाजन जो भूमि में रुचि रखते हैं या माना जाता है, जिनके बारे में, या जिनके दावों के बारे में उसके पास जानकारी है, चाहे वे क्रमशः उसके समक्ष उपस्थित हुए हों या नहीं:

बशर्ते कि इस उपधारा के तहत कलेक्टर द्वारा उपयुक्त सरकार या ऐसे अधिकारी के पूर्व अनुमोदन के बिना कोई पंचाट नहीं दिया जाएगा, जैसा कि उपयुक्त सरकार इस संबंध में अधिकृत कर सकती है:

बशर्ते कि उपयुक्त सरकार के लिए यह निर्देश देना सक्षम होगा कि कलेक्टर ऐसे मामलों के वर्ग में इस तरह के अनुमोदन के बिना ऐसा पंचाट दे सकता है जैसा कि उपयुक्त सरकार इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकती है।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, यदि कार्यवाही के किसी भी चरण में, कलेक्टर का समाधान हो जाता है कि भूमि में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति जो उसके समक्ष उपस्थित हुए थे, उन्होंने उपयुक्त सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित प्रपत्र में कलेक्टर के पंचाट में शामिल किए जाने

वाले मामलों पर लिखित रूप में सहमति व्यक्त की है, आगे पूछताछ किए बिना वह कर सकता है, तो इस तरह के समझौते की शर्तों के अनुसार एक पंचाट करें.

(3) उपधारा (2) के अधीन किसी भूमि के लिये प्रतिकर का अवधारण किसी भी रीति से इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अनुसार उसी स्थान में या अन्यत्र अन्य भूमियों की बाबत प्रतिकर के अवधारण को प्रभावित नहीं करेगा।

(4) रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (16 वर्ष 1908) में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (2) के अधीन किया गया कोई करार उस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए दायी नहीं होगा।

(1) कोई भी इच्छुक व्यक्ति जिसने अधिनिर्णय स्वीकार नहीं किया है, कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा, यह अपेक्षा कर सकता है कि मामले को कलेक्टर द्वारा न्यायालय के अवधारण के लिए भेजा जाए, चाहे उसकी आपत्ति भूमि की माप, या मुआवजे की राशि, या जिन व्यक्तियों को यह देय है, या इच्छुक व्यक्तियों के बीच मुआवजे का विभाजन के बारे में हो।

(2) आवेदन उन आधारों को बताएगा जिन पर पंचाट पर आपत्ति ली गई है:

बशर्ते कि ऐसा प्रत्येक आवेदन किया जाएगा-

(ए) यदि इसे बनाने वाला व्यक्ति कलेक्टर के पंचाट की तारीख से छह सप्ताह के भीतर

अपना पंचाट देते समय कलेक्टर के समक्ष उपस्थित या प्रतिनिधित्व करता था;

(ख) अन्य मामलों में, धारा-12, उप-धारा (2) के तहत कलेक्टर से नोटिस प्राप्त होने के छह सप्ताह के भीतर, या कलेक्टर के पंचाट की तारीख से छह महीने के भीतर, जो भी अवधि पहले समाप्त हो जाएगी।

28क- न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की रकम का पुनर्निर्धारण-(1) जहां इस भाग के अधीन किसी अधिनिर्णय में, न्यायालय आवेदक को धारा 11 के अधीन कलेक्टर द्वारा दी गई रकम से अधिक प्रतिकर की कोई रकम अनुज्ञात करता है, वहां धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना द्वारा कवर की गई अन्य सभी भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति, उप-धारा (1) और जो कलेक्टर के पंचाट से भी व्यथित हैं, इस बात के बावजूद कि उन्होंने धारा 18 के तहत कलेक्टर को लिखित आवेदन नहीं किया था, न्यायालय के पंचाट की तारीख से तीन महीने के भीतर कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा यह अपेक्षा की जा सकती है कि उन्हें देय मुआवजे की राशि न्यायालय द्वारा दिए गए मुआवजे की राशि के आधार पर फिर से निर्धारित की जा सकती है:

बशर्ते कि तीन महीने की अवधि की गणना में, जिसके भीतर कलेक्टर को एक आवेदन इस उप-धारा के तहत किया जाएगा, जिस दिन पंचाट सुनाया गया था और पंचाट की एक प्रति प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय को बाहर रखा जाएगा.

(2) कलेक्टर, उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर, सभी इच्छुक व्यक्तियों को नोटिस देने और उन्हें सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् जांच करेगा और आवेदकों को संदेय प्रतिकर की रकम अवधारित करने वाला अधिनिर्णय देगा।

(3) कोई भी व्यक्ति जिसने उप-धारा (2) के तहत पंचाट स्वीकार नहीं किया है, कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा, यह अपेक्षा कर सकता है कि मामले को कलेक्टर द्वारा न्यायालय के निर्धारण के लिए निर्देशित किया जाए और धारा 18 से 28 के प्रावधान, जहां तक हो सके, ऐसे संदर्भ पर लागू होंगे क्योंकि वे धारा 18 के तहत एक संदर्भ पर लागू होते हैं।

उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण

(मुआवजे का निर्धारण और समझौते द्वारा पंचाट की घोषणा), 1997

संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ-(1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम उत्तर प्रदेश भूमि अर्जन (प्रतिकर का अवधारण और करार द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा) नियम, 1997 है

(2) इनका विस्तार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश तक होगा।

(3) वे राजपत्र में उनके नाम होने की तारीख से प्रवृत्त होंगे।

2. वह निकाय या विभाग, जिसके लिए भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा है, कार्यवाही का कोई भी चरण भूमि स्वामियों के साथ अधिग्रहण के अधीन भूमि के नियमों और शर्तों और शर्तों का निपटान कर सकता है और कलेक्टरों के सामने उपस्थित हो सकता है और इस प्रकार निपटाए गए निबंधनों और निर्देशों तथा मुआवजे की समाप्ति और समझौते के अनुसार अधिनिर्णय की घोषणा के लिए इसकी तत्परता और इच्छा दर्शाते हुए एक आवेदन कर सकता है। कलेक्टर, यदि संतुष्ट हो, तो अधिग्रहण के तहत भूमि में रुचि रखने वालों को नोटिस जारी करेगा ताकि वे अपनी लिखित रूप में समझौते को निष्पादित करने की इच्छा, और जदीनेस्स (?) पंचाट में शामिल किए जाने वाले एटर्स (?) पर व्यक्त कर सकें।

3. कलेक्टर, पक्षों को सुनने के बाद, और यह पता चलने पर कि भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति तैयार हैं और समझौते को पूरा करने के लिए तैयार हैं, अनुमति तब तक प्रदान कर सकते हैं जब तक कि लिखित रूप में दिए जाने वाले कारणों के लिए वह इसे अस्वीकार करने का निर्णय नहीं लेता।

4. (1) कलेक्टर, जहां वह अनुमति देता है, पंजीकृत डाक द्वारा भूमि में रुचि रखने वाले लोगों को समझौते के निष्पादन के लिए तारीख, समय और फीता के बारे में सूचित करेगा।

(2) करार को इन नियमों के साथ संलग्न प्रपत्र में निष्पादित किया जाएगा, जिसमें

इस समझौते ने इस संवत् के
अनुरूप..... दिन को दिन वर्ष
20.....मध्य (1) (2)

..... आदि इसके बाद मालिक/मालिक कहा जाता है (जो अभिव्यक्ति जब तक संदर्भ या अर्थ के प्रतिकूल नहीं होगी, तब तक उसके उत्तराधिकारी, निष्पादक और प्रशासक शामिल नहीं हैं) और (1)..... (2).

..... आदि।।।।।।।।।।।।।।।।।।।। इसके बाद इच्छुक पक्ष/पक्षों को बुलाया जाएगा, जो अभिव्यक्ति तब तक संदर्भ या अर्थ के प्रतिकूल नहीं होगी जब तक कि उसके संदर्भ या अर्थ के प्रतिकूल न हो, जिसमें उनके उत्तराधिकारियों और समनुदेशिती (यदि कोई इच्छुक पक्ष नहीं है तो बाहर निकाला जाना है) और उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के माध्यम से कार्य करना..... इसके बाद दूसरे भाग की 'सरकार' कहा जाता है;

और जबकि निम्नलिखित भूमि/भूमि में स्वामी/स्वामियों और इच्छुक पक्षकारों/पक्षकारों के अधिकार, स्वामित्व और हित जिन्हें इसके बाद उक्त भूमि/भूमि कहा जाता है, नीचे निर्दिष्ट हैं:

(क)

(ख)

अब, इसलिए, मालिक/मालिक और/या इच्छुक पक्ष/पार्टियां एतद्द्वारा सरकार से निम्नानुसार सहमत / सहमत हैं:

(1)

(2)

(3) कि मालिक/मालिक और इच्छुक पक्ष मुआवजे के रूप में पूर्वोक्त के रूप में सहमत राशि के अलावा किसी भी राशि का दावा नहीं करेंगी और बिना किसी विरोध के इसे स्वीकार करेंगी:

(4) यदि इसके बाद या अधिनिर्णय के अनुसार मुआवजे के भुगतान के बाद यह पता चलता है कि मालिक/मालिक और/या इच्छुक पक्ष/पक्षकार भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा दी गई मुआवजे की पूरी राशि के लिए बिल्कुल भी हकदार नहीं हैं या अनन्य रूप से हकदार नहीं हैं (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है; और सरकार को उक्त भूमि/भूमि के संबंध में इस समझौते की शर्तों के अनुसार, जैसा कि अंत में उल्लेख किया गया है, और सरकार को किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी मुआवजे का भुगतान करना अपेक्षित है, मालिक/स्वामियों और इच्छुक पक्षकार उसे/उनके द्वारा प्राप्त संपूर्ण धनराशि अथवा भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा यथानिर्धारित की गई राशि सरकार को वापस करने की मांग करेंगे। जैसा कि उसके द्वारा वापसी योग्य है और किसी भी नुकसान या क्षति की सभी कार्यवाही और क्षमताओं के खिलाफ या उसे/उन्हें भुगतान के कारण सरकार द्वारा किए गए किसी भी लागत, शुल्क या खर्च और मालिक/मालिकों और इच्छुक पक्ष/पक्षों को भुगतान के कारण 9% की दर से ब्याज का भुगतान करना होगा पहले वर्ष के लिए वापसी योग्य राशि पर और बाद के वर्षों के लिए वर्ष 15% की दर से;

5)

6)

7)

8)

18. यह रिट याचिकाकर्ताओं का अपना मामला है, कि अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी करते समय अधिनियम, 1894 के प्रावधानों के तहत रिट याचिकाकर्ताओं की भूमि के अधिग्रहण की कार्यवाही 9.2.1962 को की गई थी, भूमि का कब्जा 26.5.1963 को लिया गया था और 1.2.1964 को पंचाट किया गया था। दूसरे प्रतिवादी के अधिनियम, 1894 की धारा 28A के तहत आक्षेपित आदेश स्वयं एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज करता है कि रिट याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों ने उत्तरदाताओं के साथ निष्पादित एक समझौते (करण नियमवाली) के अनुसरण में स्वयं पंचाट स्वीकार किया है।

19. निर्धारण के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या रिट याचिकाकर्ता इस आधार पर बड़े हुए मुआवजे का दावा कर सकते हैं कि कानून की अदालत के आदेश के अनुसार अन्य सह-भूमि मालिकों को अधिक मुआवजे का भुगतान किया गया था।

20. अधिनियम, 1894 की धारा 11 दो भागों में है। उप-धारा (1) के संदर्भ में पहले भाग में मुआवजा देने के लिए आने वाले विभिन्न मापदंडों को ध्यान में रखते हुए कलेक्टर द्वारा आवश्यक पूछताछ करने के बाद पंचाट पारित करने के लिए सहारा लेते समय अपनाई जाने वाली प्रक्रिया की परिकल्पना की गई है। दूसरा भाग, धारा 11(2) कलेक्टर द्वारा जांच और अधिनिर्णय से संबंधित है, एक आकस्मिकता

को पूर्व मानता है जिसमें कार्यवाही के किसी भी चरण में पहले भाग में निहित किसी बात के होते हुए भी, कलेक्टर संतुष्ट है कि भूमि में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति जो उसके समक्ष उपस्थित हुए थे, ने लिखित रूप में कलेक्टर के पंचाट में शामिल किए जाने वाले मामले पर लिखित रूप में सहमति व्यक्त की है। उपयुक्त प्राधिकारी, कलेक्टर को आगे की जांच करने और समझौते की शर्तों के अनुसार एक पंचाट घोषित करने के लिए आगे बढ़ने का अधिकार है।

21. तथ्य के रूप में अधिनियम, 1894 की धारा 11 की उप-धारा (2) कलेक्टर द्वारा किए गए प्रस्ताव और पंचाट की शर्तों पर भूमि मालिक द्वारा उक्त प्रस्ताव की स्वीकृति पर निर्भर है जिसमें भूमि मालिक को भुगतान की जाने वाली मुआवजे की राशि भी शामिल है।

22. इसके अलावा, अधिनियम, 1894 की धारा 18 में एक ऐसे व्यक्ति के उदाहरण पर न्यायालय के संदर्भ पर विचार किया गया है जो इच्छुक है और जिसने कलेक्टर को एक लिखित आवेदन दाखिल करते समय पंचाट स्वीकार नहीं किया है, जिसमें मामले को कलेक्टर द्वारा संदर्भित करने की आवश्यकता होती है व्यक्तियों को मुआवजे की राशि के संबंध में न्यायालय के निर्धारण के लिए, जिसे यह देय है या इच्छुक व्यक्तियों को मुआवजे की राशि का विभाजन।

23. इसके बाद अधिनियम, 1894 की धारा 28A आती है जो न्यायालय के अधिनिर्णय के

आधार पर मुआवजे की राशि के पुनर्निर्धारण से संबंधित है।

24. अधिनियम, 1894 की धारा 28A प्रदान करती है कि एक पंचाट की घोषणा के अनुसरण में, न्यायालय एक आवेदक को अधिनियम, 1894 की धारा 11 के तहत कलेक्टर द्वारा दी गई राशि से अधिक मुआवजे की राशि की अनुमति देता है, अधिनियम 1894 की धारा 4(1) के तहत एक ही अधिसूचना द्वारा कवर की गई अन्य सभी भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति, और जो अधिनिर्णय से व्यथित हैं, वे इस बात के होते हुए भी कि उन्होंने कलेक्टर के पंचाट की तारीख से तीन महीने के भीतर कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत कलेक्टर को आवेदन नहीं किया था, यह अपेक्षा करते हैं कि उन्हें देय मुआवजे की राशि न्यायालय द्वारा दिए गए मुआवजे की राशि के आधार पर पुनर्निर्धारित की जा सकती है।

25. अधिनियम, 1894 की धारा 28क में प्रयुक्त "व्यथित" शब्द पूरे मुद्दे को समाप्त कर देते हैं। यद्यपि व्यथित शब्द को अधिनियम, 1894 में परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन व्यथित की परिभाषाएं विभिन्न शब्दकोशों से ली जानी हैं जिनका प्रायः उल्लेख किया जाता है।

26. अधिनियम, 1894 की धारा 11(2), धारा 18 और 28 ए के एक संयुक्त पढ़ने से पता चलता है कि पीड़ित शब्द को मुआवजे के अनुरूप और संयोजन में पढ़ा जाना है। धारा

11(2) एक अपवाद है और यह "बावजूद" शब्द के साथ शुरू होता है जिसका प्रभाव ओवरराइडिंग होता है।

27. विधायिका शांत, सचेत और उन आकस्मिकताओं से बेखबर थी जो तब उत्पन्न हो सकती थीं जब भूमि मालिकों के एक वर्ग ने अधिग्रहण की कार्यवाही के साथ-साथ उन्हें दिए जा रहे मुआवजे की राशि के संबंध में पंचाट को चुनौती देने वाली लंबी कानूनी लड़ाई में प्रवेश करने का इरादा नहीं किया था और बदले में अधिग्रहित भूमि के बदले मुआवजे का निपटान करना चाहता था, इस प्रकार इन परिस्थितियों ने अधिनियम, 1894 की धारा 11 धारा में उप-धारा (2) को सम्मिलित किया।

28. जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, अधिनियम, 1894 की धारा 11 की उपधारा (2) "उपधारा (1) में निहित किसी बात के बावजूद" शब्द से शुरू होती है, जिसका अर्थ है कि इसका एक अधिभावी प्रभाव है ताकि भूमि मालिकों को एक रास्ता दिया जा सके जिनकी भूमि मुआवजे के संबंध में उनके मुद्दों को निपटाने के लिए समझौते के तरीके से बातचीत में प्रवेश करने के लिए अधिग्रहित की जा रही है। धारा 11(2) (करार नियमवाली) के तहत परिकल्पित समझौते को 1894 अधिनियम की धारा 11(2) से वैधानिक समर्थन प्राप्त है। विशेष रूप से उक्त समझौता अनुबंध अधिनियम, 1872 के प्रावधानों की भी पुष्टि करता है और इस प्रकार इसे एक संपन्न अनुबंध बनाने के लिए निहित सिद्धांत लागू होते हैं, अर्थात्, एक पक्ष द्वारा एक प्रस्ताव

जारी करना और दूसरे पक्ष द्वारा उसी की स्वीकृति।

29. फिर भी, स्वतंत्रता के बाद अधिनियम-1894 की धारा 55 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल ने उत्तर प्रदेश भूमि अर्जन (मुआवजे का निर्धारण और समझौते द्वारा पंचाट की घोषणा), 1997 को बनाने की कृपा की, जिसमें एक विशिष्ट शर्त थी, कि सहमति और समझौते के माध्यम से भूमि मालिक द्वारा स्वीकार की गई मुआवजे की राशि अंतिम होगी और यह विरोध के बिना होगी।

30. यद्यपि अधिनियम, 1894 में "व्यथित" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, परंतु "इच्छुक व्यक्ति" शब्द को धारा 3 अधिनियम, 1894 के उपखंड (ख) के अधीन परिभाषित किया गया है।

31. "इच्छुक व्यक्ति" को सौंपी गई परिभाषा के अनुसार, इसमें अधिनियम के तहत भूमि के अधिग्रहण के कारण किए जाने वाले मुआवजे में ब्याज का दावा करने वाले सभी व्यक्ति शामिल हैं और एक व्यक्ति को भूमि में रुचिबद्ध माना जाएगा यदि वह भूमि को प्रभावित करने वाले सुखभोग में रुचि रखता है।

प्र.32. शब्द "इच्छुक व्यक्ति" धारा 11 और धारा 18 की उप-धारा (1) और (2) में जगह पाता है। तथापि, अधिनियम, 1894 की धारा 28क में इच्छुक व्यक्तियों शब्द के अलावा व्यथित शब्द कार्यरत हैं। शब्द "अन्य सभी भूमि में रुचि रखने वाला व्यक्ति" और

कलेक्टर के पंचाट से "व्यथित" महत्वपूर्ण हैं और वे विवाद को नियंत्रित करने के लिए हैं। केवल एक इच्छुक व्यक्ति होने के नाते भूमि मालिक को मुआवजे के पुनर्निर्धारण के लिए वास्तव में कवर नहीं किया जाएगा क्योंकि इसके साथ ही उसे "व्यथित" भी होना चाहिए। "इच्छुक व्यक्ति" और साथ ही पीड़ित दोनों शब्दों को सम्मिलित करने का मूल उद्देश्य इस तथ्य से संबंधित है कि किसी व्यक्ति की रुचि हो सकती है, लेकिन पीड़ित पक्ष होने के लिए उसे कानूनी कार्रवाई को गति देने के लिए कानूनी चोट का सामना करना चाहिए। चूंकि रिट याचिकाकर्ता एक ऐसे वर्ग से संबंधित हैं, जिन्होंने बिना किसी विरोध के मुआवजा प्राप्त किया है, इसलिए वे एक इच्छुक व्यक्ति हो सकते हैं, लेकिन वे पीड़ित व्यक्तियों की परिभाषा के भीतर नहीं आते हैं।

33. अधिनियम, 1894 की धारा 28 में नियोजित शब्द 'व्यथित' पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बबुआ राम और अन्य (उपरोक्त) के मामले में विस्तार से विचार किया गया है, जिसमें निम्नलिखित के रूप में देखा गया है:

16. क्रापा रंगिया बनाम विशेष उप कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण में इस न्यायालय ने देखा कि अधिग्रहण की कार्यवाही में, एक ही इलाके में और पड़ोसी इलाके में स्थित भूमि जब समान तुलनीय लाभों के पास होती है, तो पूर्व भूमि के मालिक मुआवजे की उसी दर के हकदार होते हैं जो अन्य भूमि के मालिकों के रूप में उच्च न्यायालय के फैसले द्वारा निर्धारित किया गया था जो अन्यथा अंतिम हो गया

था, यह असमान और भेदभावपूर्ण होगा। दूसरे शब्दों में, समान प्रकार और समान गुणवत्ता आदि रखने वाली भूमि के मालिक अपनी भूमि के मुआवजे के भुगतान में समानता के हकदार हैं। धारा 28-क(1) का उद्देश्य समान अधिग्रहीत भूमि के लिए समान मुआवजा प्राप्त करने के मामले में धारा 18(1) और धारा 31(2) के दूसरे परंतुक द्वारा उत्पन्न बाधा को दूर करना है। समान रूप से अधिग्रहीत भूमि के लिए समान मुआवजा सभी इच्छुक व्यक्तियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, यदि उनकी भूमि उसी अधिसूचना के तहत अधिग्रहित की जाती है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई मालिक धारा 18(1) के तहत अधिकार और उपाय का लाभ उठाने में विफल रहता है, तो धारा 28-ए(1) धारा 4(1) के तहत और उसी पंचाट के तहत उसी अधिसूचना द्वारा कवर की गई किसी अन्य भूमि के मालिक को देने वाले न्यायालय के पंचाट के आधार पर अपनी भूमि के लिए उसे देय मुआवजे के पुनर्निर्धारण के लिए एक अतिरिक्त अधिकार और उपाय प्रदान करता है। अपने पड़ोसी भूस्वामी को उच्चतर मुआवजे का भुगतान आवेदक को उसकी भूमि के लिए उसे देय मुआवजे के पुनर्निर्धारण का दावा करने के लिए व्यथित व्यक्ति बनाता है। इसलिए, इस संदर्भ में, व्यथित व्यक्ति का अर्थ उस व्यक्ति से होगा जिसे कानूनी चोट लगी थी या जिसे अन्यायपूर्ण रूप से वंचित किया गया है या किसी चीज से वंचित किया गया है, जिसे वह सामान्य क्रम या समान लाभ में प्राप्त करने में रुचि रखता है या मुआवजे के लिए उसके स्वामित्व का गलत प्रभाव पड़ता है।

(17. कोलिन के अंग्रेजी शब्दकोश में, 'व्यथित' शब्द को "विशेष रूप से किसी व्यक्ति के कानूनी अधिकारों का उल्लंघन करके" अन्यायपूर्ण रूप से सुनिश्चित करने के लिए परिभाषित किया गया है। वेबस्टर के व्यापक शब्दकोश में, पृष्ठ-28 पर अंतर्राष्ट्रीय संस्करण, पीड़ित व्यक्ति को "दुर्व्यवहार के अधीन, चोट या अन्याय महसूस करने" के लिए परिभाषित किया गया है। घायल, जैसा कि कानूनी निर्णय से किसी के अधिकारों पर प्रतिकूल रूप से उल्लंघन होता है"। स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश में, 5 वां संस्करण, वॉल्यूम 1, पृष्ठ 83-84, पीड़ित व्यक्ति का अर्थ है "कानूनी अर्थों में घायल या क्षतिग्रस्त व्यक्ति"। ब्लैक के लॉ डिक्शनरी में, 6 वां संस्करण पृष्ठ 65 पर, व्यथित को इस अर्थ में परिभाषित किया गया है कि हानि या चोट का सामना करना; शापित; घायल" और पीड़ित व्यक्ति का अर्थ परिभाषित किया गया है:

"वह जिसका कानूनी अधिकार किसी ऐसे कार्य द्वारा आक्रमण किया गया है जिसकी शिकायत की गई है, या जिसका आर्थिक हित किसी डिक्री या निर्णय से प्रत्यक्ष और प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। वह जिस पर संपत्ति का अधिकार स्थापित किया गया हो या उसका विनिवेश किया गया हो । 'व्यथित' शब्द एक पर्याप्त शिकायत, कुछ व्यक्तिगत, आर्थिक या संपत्ति के अधिकार से इनकार करने, या बोझ या दायित्व के एक पक्ष पर थोपने को संदर्भित करता है।

18. इसलिए, पीड़ित व्यक्ति को वह होना चाहिए जिसे दीवानी न्यायालय द्वारा सुनाए

गए निर्णय के कारण कानूनी शिकायत का सामना करना पड़ा है, जिसमें अधिग्रहित भूमि के लिए अपने समान अधिक मुआवजा दिया गया है, जबकि उसे अधिनियम की धारा 31 सपठित धारा 18 के संचालन के कारण अपनी भूमि के लिए इस तरह के उच्च मुआवजे से वंचित किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी अधिग्रहीत भूमि में उसके आर्थिक हित को सीधे और प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया गया है। इस प्रकार वह धारा 28-ए(1) के तहत उसे प्रदत्त अधिकार और उपाय का लाभ उठाने का हकदार हो जाता है ताकि कलेक्टर/एल.ए.ओ द्वारा दी गई राशि से अधिक मुआवजा प्राप्त करने के अपने वंचित अधिकार को पूरा किया जा सके। श्री जी. एल सांधी, वरिष्ठ अधिवक्ता और उनके साथियों के तर्क की स्वीकृति, कि जिन व्यक्तियों ने विरोध के तहत अपनी भूमि के लिए मुआवजे का भुगतान प्राप्त किया, लेकिन धारा 18 के तहत अधिकार और उपाय का लाभ उठाने में विफल रहे, जो धारा 28ए(1) के तहत उच्च मुआवजा प्राप्त करने के लिए आस-पास की भूमि के भूस्वामियों की सफलता के लिए इंतजार कर रहे हैं, क्योंकि पीड़ित व्यक्ति गरीबों और अस्पष्ट लोगों को लूटता है जो अपनी गरीबी या अज्ञानता के कारण लुटते हैं; जो धारा 18 के तहत अधिकार और उपाय का लाभ उठाने में विफल रहा है? और न केवल समान रूप से स्थित व्यक्तियों के समान वर्ग के बीच अविवेकपूर्ण भेदभाव पैदा करता है, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 14 को अत्यधिक अन्यायपूर्ण और मनमाना उल्लंघन करेगा, इसके अलावा इसके उद्देश्यों और कारणों के कथन और वित्तीय ज्ञापन में प्रतिपादित कानून

के स्पष्ट एनीमेशन के उल्लंघन में होगा। इस संदर्भ में, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने उद्देश्यों और कारणों के कथन और वित्तीय जापन को यह जानने के लिए देखा है कि वह क्या है जिसने विधेयक के पुरस्थापन को प्रेरित किया लेकिन धारा 28ए(1) की व्याख्या करने में सहायता के रूप में नहीं। इसलिए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि धारा 4(1) के तहत प्रकाशित उसी अधिसूचना के तहत अधिग्रहित भूमि में कोई भी इच्छुक व्यक्ति जो धारा 31(2) के दूसरे बी परंतुक सपठित धारा 18(1) के तहत अधिकार और उपाय प्राप्त करने में विफल रहा, जब उसी अधिसूचना द्वारा कवर की गई अन्य भूमि के मालिक को धारा 18 के तहत दीवानी न्यायालय के द्वारा किए गए संदर्भ पर अधिनियम की धारा 28-ए(1) के तहत पीड़ित व्यक्ति बन जाता है।

19. अगला प्रश्न यह है कि धारा 28-ए के तहत तीन महीने की सीमा की अवधि कब शुरू होती है और क्या एक ही अधिसूचना द्वारा कवर की गई भूमि के संबंध में अलग-अलग समय पर दीवानी न्यायालय द्वारा किए गए क्रमिक फैसले धारा 28-ए के तहत आवेदन करने के लिए कार्रवाई के अलग-अलग कारण प्रस्तुत करते हैं। आइए हम धारा 28-ए (1) में निर्दिष्ट "इस भाग के तहत एक पंचाट" शब्दों के अर्थ पर विचार करें जो अधिनियम का भाग III है। उस हिस्से का स्वामित्व अदालत और उसकी प्रक्रिया के संदर्भ से शुरू होता है। 'न्यायालय' का अर्थ है मूल क्षेत्राधिकार का एक प्रमुख दीवानी अदालत या अधिनियम के तहत अदालत के कार्यों को करने के लिए नियुक्त

एक विशेष न्यायिक अधिकारी जैसा कि पहले से ही स्पष्ट हो गया है। धारा 18 के तहत किए गए संदर्भ पर मुआवजे का निर्धारण करने में किन मामलों पर विचार किया जाना है, धारा 23 में विस्तृत है, जबकि इस तरह के मुआवजे का निर्धारण करने में उपेक्षित किए जाने वाले मामलों को धारा 24 में दर्शाया गया है। धारा 26 की उप-धारा (2) के संचालन से, मुआवजे की राशि का निर्धारण करने वाले पंचाट को एक डिक्री माना जाएगा, जबकि इस तरह के प्रत्येक पंचाट के आधार के बयान को सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजन के लिए निर्णय माना जाता है। भाग III के उपरोक्त दृष्टिकोण यह स्पष्ट करते हैं कि न्यायालय का अधिनिर्णय उस भाग में मूल क्षेत्राधिकार के दीवानी अदालत का है। यह धारा 54 के तहत अपील के उद्देश्य से एक डिक्री है जो अधिनियम (विविध) के भाग VIII में आती है। सी.पी.सी. की धारा 2(2) में परिभाषित डिक्री उच्च न्यायालय की डिक्री है, जिसे सी.पी.सी. के आदेश 45 सपठित अनुच्छेद 132, 133 और 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जाएगी। इसलिए, धारा 28-ए की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय का निर्णय केवल मूल क्षेत्राधिकार के दीवानी अदालत या धारा 18 के तहत प्राप्त संदर्भ पर अधिनियम के तहत ऐसे न्यायालय के कार्यों का पालन करने वाले न्यायिक अधिकारी का पंचाट है और अधिनियम की धारा 26 के तहत सुनाया गया निर्णय और डिक्री है।

चूंकि, धारा 54 या इस न्यायालय के तहत उच्च न्यायालय का निर्णय और डिक्री अधिनियम के भाग III में नहीं आती है,

इसलिए उन्हें धारा 28-ए की उप-धारा (1) के तहत परिकल्पित निर्णय से बाहर रखा गया है। अतः व्यक्ति इच्छुक व्यक्ति केवल दीवानी अदालत या न्यायिक अधिकारी के अधिनिर्णय के आधार पर अपनी अधिग्रहीत भूमि के लिए मुआवजे के पुनर्निर्धारण के लिए धारा 28-क के अधीन आवेदन करने के अधिकार और उपाय का हकदार है, जो धारा 26 के अधीन एक निर्णय और डिक्री है; जब ऐसा अधिनिर्णय धारा 11 के अधीन कलेक्टर द्वारा दी गई राशि से अधिक प्रतिकार प्रदान करता है। जब इस तरह का आवेदन पीड़ित व्यक्ति द्वारा लिखित रूप में किया जाता है, तो इस तथ्य के बावजूद कि उसने बिना किसी विरोध के धारा 31 के तहत मुआवजा प्राप्त किया है और धारा 18 के तहत संदर्भ के अधिकार और उपाय का लाभ नहीं उठाया है, धारा 28-ए (1) के तहत मुआवजे का पुनर्निर्धारण किया जाना आवश्यक है।

34. उक्त निर्णय के बाद लक्ष्मणबाबू गायकवाड़ (उपरोक्त) के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया था: -

24. हमारी सुविचारित राय में, जब अधिनियम की धारा 11(2) के तहत सहमति पंचाट का विकल्प चुनने वाला भूमि में रुचि रखने वाला व्यक्ति, अधिनियम की धारा 23(1) सपठित धारा 18 के तहत मुआवजे की वृद्धि के लिए किसी भी संदर्भ की मांग करने का हकदार नहीं है, और दीवानी न्यायालय के पंचाट के आधार पर मुआवजे की राशि के पुनर्निर्धारण का दावा करने के लिए 'पीड़ित व्यक्ति' नहीं हो सकता है।

25. समझौते की शर्तों के अनुसार अधिनियम की धारा 11(2) के तहत दिया गया पंचाट अधिनियम के तहत एक वैध पंचाट है। इसमें एक 'कंपोजिशन डीड' के सभी तत्व हैं, एक ऐसा विलेख जिसके द्वारा एक पक्ष दूसरे के साथ मिश्रित होता है। यह शब्द आमतौर पर तब उपयोग किया जाता है जब देनदार और लेनदार के बीच समझौता होता है। इसका सीधा सा मतलब है कि देनदार द्वारा लेनदार के साथ निर्दिष्ट राशि का भुगतान करने के लिए किया गया एक समझौता और जिसे लेनदार द्वारा उनके पूरे दावों की संतुष्टि में स्वीकार किया जाता है, जो भी इस प्रकार प्रदान किया जाता है। एक लेनदार ने किए गए प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है, उसके बाद यह तर्क नहीं दे सकता है कि वह अपने दावों से अन्यायपूर्ण रूप से वंचित था और फिर मामले को कानूनी मुकदमे में उठा सकता है। एस.वी. बागी बनाम कर्नाटक राज्य 87 एसटीसी 138 के मामले में इस मामले में एक मामला कानून का निर्णय किया गया है, यह समझाते हुए कि क्या एक व्यक्ति, जिसने रचना का विकल्प चुना था, उसे एक पीड़ित व्यक्ति कहा जा सकता है, ने कहा है कि, "एक व्यक्ति, जिसने अभियोजन और दंड के बदले रचना का विकल्प चुना था, आदि, एक पीड़ित व्यक्ति नहीं हो सकता है।" इसके अलावा, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने कहा है, कि "शमन की प्रक्रिया केवल तभी पूरी होती है जब जिस धन पर सहमति होती है वह वास्तव में हाथ बदल जाती है। यदि ऐसा है, तो कभी भी ऐसी स्थिति नहीं हो सकती है जहां जिस व्यक्ति ने अधिनियम के तहत अपराध किया है या जिस पर उचित रूप से संदेह है, वह पीड़ित व्यक्ति हो सकता है

35. फिर भी, रणवीर सिंह (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 11 में निम्नानुसार देखा-

11. ऊपरी तौर पर उपरोक्त तर्क आकर्षक प्रतीत होते हैं, लेकिन धारा 11 के साथ-साथ धारा 23 के गहन विश्लेषण पर पाया जाता है कि इसमें कोई गुण नहीं है। धारा 23 अदालत के मार्गदर्शन के लिए है, जिसे मुआवजे का नए सिरे से निर्धारण करने का अधिकार क्षेत्र मिलता है, अगर पंचाट के खिलाफ कोई विरोध होता है और भुगतान विरोध के साथ प्राप्त होता है। यह धारा, धारा 11 के तहत कलेक्टर द्वारा उचित मुआवजे के निर्धारण को नियंत्रित नहीं करती है, जिसके लिए कलेक्टर को मुआवजे का दावा करने वाले व्यक्ति के माप और हितों जैसे विभिन्न मुद्दों पर आपत्तियाँ (यदि कोई हो) की जांच करने की आवश्यकता होती है और फिर कलेक्टर को एक पंचाट बनाने की आवश्यकता होती है जो, अन्य बातों के साथ, प्रतिबिंबित करने के लिए आवश्यक है। "मुआवजा जो उनकी राय में भूमि के लिए अनुमति दी जानी चाहिए। लेकिन धारा 11 की उपधारा (2) को नोटिस करना अधिक उपयुक्त और प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:

"उप-धारा (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, यदि कार्यवाही के किसी भी चरण में, कलेक्टर संतुष्ट है कि भूमि में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति जो उसके समक्ष उपस्थित हुए थे, उन्होंने कलेक्टर के पंचाट में शामिल किए जाने वाले मामलों पर उपयुक्त सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित प्रपत्र पर लिखित रूप में सहमति व्यक्त की है वह आगे

पूछताछ किए बिना, इस तरह के समझौते की शर्तों के अनुसार एक पंचाट कर सकता है।

धारा 11 की यह उपधारा (2) एक गैर-बाधा खंड से शुरू होती है जो इसे उप-धारा (1) की आवश्यकताओं से मुक्त बनाती है यदि भूमि में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति लिखित रूप में सहमत हैं कि कलेक्टर के पंचाट में किन मामलों को शामिल किया जाना चाहिए। इसके बाद कलेक्टर आगे की जांच किए बिना समझौते के अनुसार एक पंचाट देने के लिए सक्षम है। इस तरह के स्पष्ट प्रावधान को ध्यान में रखते हुए जो पंचाट में शामिल किए जाने वाले सभी मामलों को निर्धारित करने के लिए समझौते की अनुमति देता है, सहमति पंचाट में सभी समावेशन और चूक को पक्षों के समझौते के आधार पर माना जाना चाहिए और समझौते के माध्यम से निर्धारित अंतिम राशि को कम से कम संबंधित भूमि के लिए दावेदार को देय वैधानिक ब्याज सहित पूरी तरह से न्यायसंगत मुआवजे के रूप में लिया जाना चाहिए। चूंकि सहमत मुआवजे की राशि किसी अतिरिक्त राशि का दावा न करने की स्पष्ट शर्त के साथ बिना किसी विरोध के स्वीकार की जाती है, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि सहमति पंचाट में परिलक्षित मुआवजे में समझौते की तारीख तक ब्याज सहित सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा गया है। इसके अलावा, वृद्धि के लिए संदर्भ प्राप्त करने का अधिकार बिना किसी विरोध के मुआवजे को स्वीकार करने से खो जाता है, खासकर जब एक समझौता होता है कि भूमि मालिक मुआवजे के रूप में सहमत राशि के अलावा किसी भी राशि का दावा नहीं करेगा

और बिना किसी विरोध के मुआवजे को स्वीकार करेगा। ऐसी परिस्थितियों में सहमत राशि को न्यायोचित मुआवजे के रूप में माना जाना चाहिए जिसमें किसी भी प्रकार की वृद्धि या प्रतिस्थापन की अनुमति न हो। दूसरे शब्दों में, न केवल वृद्धि की मांग करने के अधिनियम के तहत उपाय खो जाता है, बल्कि कार्रवाई का मूल कारण भी गायब हो जाता है जब भूमि मालिक सहमति पंचाट के लिए सहमत होता है और मुआवजे की राशि बिना किसी विरोध के स्वीकार कर ली जाती है।

36. ईश्वरीलाल प्रेमचंद शाह (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास अतिरिक्त राशि के भुगतान के संबंध में अधिनियम, 1894 की धारा 11(2) के तहत दर्ज किए गए समझौते के आयात पर विचार करने का अवसर था जो पक्षों के बीच दर्ज समझौते का हिस्सा और पार्सल नहीं था। निम्नलिखित अवलोकन किया गया था: -

9. गुजरात राज्य और अन्य बनाम दया शामजी भाई और अन्य AIR 1996 एस.सी.133 में इस न्यायालय ने इसी तरह के तर्कों पर विचार किया था और माना था कि एक बार जब पक्षकार अधिनियम की धारा 11(2) के तहत सहमत हो जाते हैं, तो भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पास धारा 11(2) के तहत उसके संदर्भ में पंचाट पारित करने की शक्ति होती है और यह कि पंचाट में, क्षति पूर्ति और अतिरिक्त राशि जब तक कि यह पक्षों के बीच अनुबंध का हिस्सा न हो, ब्याज का भुगतान शामिल नहीं है। इस मामले में तथ्यों पर भी यही अनुपात लागू होता है। समझौतों में उपरोक्त खंडों को ध्यान में रखते

हुए अपीलकर्ता अधिनियम के प्रावधानों के तहत सांत्वना, ब्याज और अतिरिक्त राशि के रूप में अतिरिक्त राशि के भुगतान के हकदार नहीं हैं।

37. जहां तक कनाश राम कोचर (उपरोक्त) के मामले का संबंध है, यह मानता है कि धारा 18 के तहत संदर्भ प्राप्त करने का अधिकार और पात्रता केवल तभी उत्पन्न होगी जब पंचाट की गैर-स्वीकृति के लिए मालिक के इरादे से लिखित रूप में विरोध के तहत मुआवजे की राशि प्राप्त हुई हो। पैराग्राफ 20 और 21 निम्नलिखित देखे गए:

"20. इसलिए संदर्भ प्राप्त करने का अधिकार और हकदारी, तब उत्पन्न होगी जब लिखित रूप में विरोध के तहत मुआवजे की राशि प्राप्त हुई थी जो पंचाट की गैर-स्वीकृति के मालिक के इरादे को प्रकट करेगी। धारा 11(2) गैर-बाधा खंड के एक गैर-बाधा के साथ खुलती है "उप-धारा (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद" यह प्रदान करता है कि यदि कार्यवाही के किसी भी चरण में, कलेक्टर संतुष्ट है कि भूमि में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति जो उसके समक्ष उपस्थित हुए हैं, उपयुक्त सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित प्रपत्र में कलेक्टर के पंचाट में शामिल किए जाने वाले मामलों पर लिखित रूप में सहमत हुए हैं, आगे पूछताछ किए बिना, इस तरह के समझौते की शर्तों के अनुसार एक पंचाट करें। उप-धारा (4) के आधार पर, "पंजीकरण अधिनियम, 1908 में निहित किसी बात के बावजूद, उप-धारा (2) के तहत किया गया कोई समझौता उस अधिनियम के तहत पंजीकरण

के लिए उत्तरदायी नहीं होगा"। इसलिए समझौते के संदर्भ में धारा 11(2) के तहत दिया गया अधिनिर्णय, धारा 18 के तहत संदर्भ की आवश्यकता को कम करने वाली सहमति के साथ एक पंचाट है।

21. उपरोक्त मामला स्पष्ट रूप से बताता है कि एक बार एक समझौता 6 द्वारा दर्ज किया गया था, मुआवजा प्राप्त करने के लिए आपति का प्रश्न नहीं उठता है और उन्हें धारा 18 के तहत संदर्भ का अधिकार है। संगप्पा दयावप्पा बिरादर और अन्य, का मामला भी सहमति पंचाट था।

38. प्रकाश (उपरोक्त) के मामले में निर्णय पर राज्य के उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता यह बताती है कि एक बार करार नियामवाली के अनुसार मुआवजा प्राप्त हो जाने के बाद धोखाधड़ी के संबंध में प्रश्न रिट क्षेत्राधिकार में उठाए जाने के लिए खुला नहीं है क्योंकि उक्त उद्देश्य के लिए प्रभावित पक्ष के पास दीवानी वाद दायर करने का उपाय है। उक्त निर्णय मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है, विशेष रूप से जब धोखाधड़ी के आरोप पर समझौते को कोई चुनौती नहीं दी जाती है।

39. एक अन्य मुद्दा जिस पर इस स्तर पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, वह यह है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28क को अधिनियम संख्या-68 वर्ष 1984 द्वारा 24.9.1984 से अंतःस्थापित किया गया था। रिट याचिका में दी गई दलीलों के अनुसार, 9.2.1962 को अधिनियम की धारा 4(1) के

तहत अधिसूचना जारी करते समय अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसका कब्जा 26.5.1963 को लिया गया था और 1.2.1964 को पंचाट घोषित किया गया था, इस प्रकार अधिनियम 1894 की धारा 28 ए के अंतःस्थापन से पहले संपूर्ण अधिग्रहण कार्यवाही समाप्त हो गई थी। इसके अलावा, एक बार एक विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि रिट याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों ने पहले ही अपनी स्वतंत्र इच्छा और खुली आंखों पर समझौते के अनुसार मुआवजे को स्वीकार कर लिया है, तो परिस्थितियों में भी, अन्यथा भी रिट याचिकाकर्ता अधिनियम, 1894 की धारा 28 ए को लागू करने के हकदार नहीं हैं।

40. विशेष रूप से दोनों मामलों में, अर्थात् मुआवजा स्वीकार करते समय पीड़ित पक्ष के अनुपस्थिति होने की स्थिति में और आगे अधिनियम, 1894 की धारा 28 ए के सम्मिलन से पहले पूरी की गई पूरी कार्यवाही के कारण, रिट याचिकाकर्ता बढ़े हुए मुआवजे के हकदार नहीं हैं।

41. तदनुसार, हम यह नहीं पाते हैं कि दूसरे प्रतिवादी, कलेक्टर/(एडीएम) एल.ए, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश, अधिनियम, 1894 की धारा 28 ए के तहत रिट याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने से किसी भी पेटेंट अवैधता या कानून की वृष्टि से ग्रस्त है।

42. तदनुसार रिट याचिका खारिज की जाती है।

43. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 372

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
के समक्ष

रिट-सी संख्या 11008 सन् 2023

राम नरेश वर्मा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अनंत विजय,
श्री इशिर श्रीपत, श्री प्रमोद कुमार श्रीवास्तव,
श्री शिव सिंह, श्री राहुल श्रीपत (वरिष्ठ
अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. स्थानीय निकाय - उत्तर प्रदेश पंचायत राज
अधिनियम, 1947 - धारा 95 (1)(जी) - उत्तर
प्रदेश पंचायत राज (प्रधानों, उपप्रधानों एवं
सदस्यों को हटाया जाना) जांच नियम, 1997
- नियम 3, 4 एवं 5 - प्रधान को हटाया जाना
- प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों की जब्ती -
प्रारंभिक जांच - खंड विकास अधिकारी ने जांच
समिति गठित की, जिसकी रिपोर्ट पर जिला
मजिस्ट्रेट ने शक्तियों को जब्त करने का
आदेश पारित किया - अनुमति - माना गया
कि नियम 2(सी) के तहत जांच अधिकारी
अर्थात् जिला पंचायत राज अधिकारी या जिला
मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किसी अन्य जिला
स्तरीय अधिकारी द्वारा प्रारंभिक जांच किए

जाने की आवश्यकता है, जो वर्तमान मामले में
आयोजित नहीं की गई है - एक निर्वाचित
प्रतिनिधि को केवल और सख्ती से कानून के
अनुसार ही हटाया जा सकता है - दिनांक
14.11.2022 की जांच रिपोर्ट को केवल खंड
विकास अधिकारी अर्थात् लोक सेवक द्वारा की
गई शिकायत माना जा सकता है - उच्च
न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को कानूनन
गलत घोषित करते हुए उसे रद्द कर दिया।
(पैरा 24, 26, 27 और 28)

बी. कानून की व्याख्या - परिपत्र - अधिनियम
और नियमों के प्रावधानों के साथ विरोधाभास -
प्रयोज्यता - माना गया, दिनांक 28.02.2014
का परिपत्र प्रासंगिक अधिनियम और नियमों
के प्रावधानों पर हावी नहीं हो सकता क्योंकि
उसका कोई वैधानिक बल नहीं है। (पैरा 25)

सी. अभ्यास और प्रक्रिया - भारत का संविधान,
1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - ग्राम प्रधान के
खिलाफ कार्रवाई से उत्पन्न मामला - गाँव
सभा के सदस्य का अधिकार क्षेत्र - अभियोग
की मांग - अनुमति - उच्च न्यायालय ने गाँव
सभा के सदस्य के रूप में दावा करने वाले
व्यक्ति के अभियोग आवेदन को खारिज कर
दिया - नरेंद्र कुमार के मामले पर भरोसा किया
गया। (पैरा 2 और 3)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. नरेंद्र कुमार बनाम सेंट ऑफ यू.पी. और
अन्य; 2013(1) एडीजे 228

2. रिट सी संख्या 30938/2018; महमूद अंसारी बनाम सेंट ऑफ यू.पी. और अन्य 21.12.2018 को तय हुआ

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. यह पक्षकार आवेदन गांव सभा के एक सदस्य द्वारा दायर किया गया है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि गाँव सभा का सदस्य याचिका दायर नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास कोई अधिकार नहीं है और उसने **नरेंद्र कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य 2013(1) एडीजे 228** के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है और रिपोर्ट की।

3. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, पक्षकार आवेदन को **खारिज** कर दिया गया है।

रिट याचिका पर आदेश

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राहुल श्रीपत, विद्वान अधिवक्ता श्री इशिर श्रीपत और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. गिरि को सुना गया। विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री ऋषि कुमार की सहायता से राज्य-प्रतिवादियों के लिए अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता नियुक्त हुए।

2. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, जिला-चित्रकूट द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.03.2023 को रद्द करने, ग्राम प्रधान के कर्तव्य का निर्वहन रूप में

याचिकाकर्ता की प्रशासनिक और वित्तीय शक्ति को जब्त करने और तीन सदस्यों की समिति नियुक्त करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को ग्राम-पहाड़ी बुजुर्ग, जिला-चित्रकूट में ग्राम प्रधान के रूप में सामान्य रूप से निर्वाचित किया गया था।

वर्ष 2021 में पंचायत चुनाव हुआ। इसके बाद संबंधित खंड विकास अधिकारी द्वारा गौशाला के रखरखाव में कुछ अनियमितताएं पाई गईं, इसलिए मामले की जांच के लिए खंड विकास अधिकारी ने इसे तीन सदस्यीय समिति को सौंपा और तदनुसार समिति ने दिनांक 29.11.2022 को पत्र द्वारा रिपोर्ट/शिकायत प्रस्तुत कर मुख्य विकास अधिकारी, चित्रकूट को सूचित किया कि ग्राम प्रधान एवं ग्राम पंचायत अधिकारी "स्वच्छ भारत मिशन" के तहत कार्यों में रुचि नहीं ले रहे हैं। उपरोक्त शिकायत दिनांक 14.11.2022 के साथ-साथ पत्र दिनांक 29.11.2022 को जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जिन्होंने धारा 95 (1) के अनुसार कर्तव्य के प्रति लापरवाही के संबंध में प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने के बाद दिनांक 30.12.2022 के आदेश के तहत 95 (1) (जी) उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के तहत, याचिकाकर्ता को 28 दिनों के भीतर प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए नोटिस जारी करें। उपरोक्त नोटिस दिनांक

30.12.2022 के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने पंजीकृत डाक दिनांक 16.01.2023 के माध्यम से स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, जो 23.01.2023 को जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट के कार्यालय में प्राप्त हुआ। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट ने खंड विकास अधिकारी की शिकायत के आधार पर पाया कि याचिकाकर्ता प्रथम दृष्टया अपने पद का दुरुपयोग करने का दोषी था और वह पूरी तरह से संलग्न कर्तव्य और जिम्मेदारियों को पूरा करने में विफल रहा। उनके पद पर नियुक्त किया गया और दिनांक 23.03.2023 को आदेश पारित कर "अधिनियम, 1947" के तहत वित्तीय और प्रशासनिक कार्यों को करने की उनकी शक्ति को जब्त कर लिया गया। इसलिए वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यूपी की धारा 95 (1)(जी) के प्रावधानों के अनुसार। पंचायत राज अधिनियम, 1947, जो प्रधान को हटाने का प्रावधान करता है, जिला मजिस्ट्रेट को निर्वाचित प्रधान को हटाने का आदेश पारित करने और अंतिम जांच लंबित रहने तक अधिकार है। वित्तीय और प्रशासनिक कार्य तीन सदस्यों वाली एक समिति द्वारा किए जाने हैं, जैसा कि "अधिनियम, 1947" की धारा 95(1)(जी) के प्रावधानों में दर्शाया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान यूपी पंचायत राज (प्रधानों, उप-प्रधानों और सदस्यों को हटाना) जांच नियम, 1997 (इसके बाद "नियम" के रूप में संदर्भित) के नियम 3 की ओर आकर्षित किया है, जो

किसी शिकायतकर्ता द्वारा की गई शिकायत के लिए शिकायतकर्ता के हलफनामे के साथ-साथ किसी अन्य व्यक्ति के हलफनामे का विधिवत समर्थन किया जाना चाहिए, जिससे जानकारी प्राप्त हुई हो।

5. उक्त नियमों का नियम 4 उस तरीके का प्रावधान करता है जिसमें जिला मजिस्ट्रेट नियम 3 में संदर्भित शिकायत की प्राप्ति के बाद आगे बढ़ेगा। नियम 4 का प्रावधान यह है कि नियम 3 में संदर्भित एक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट एक जांच का आदेश देंगे जिसे 'प्रारंभिक जांच' के रूप में जाना जाता है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि मामले में उचित जांच के लिए प्रथम दृष्टया कोई मामला है या नहीं। उक्त जांच जांच अधिकारी द्वारा की जानी है। जांच अधिकारी का पद नियमों की धारा (2) (सी) में परिभाषित किया गया है, जो जांच अधिकारी का मतलब उप पंचायत राज अधिकारी या किसी अन्य जिला स्तर के अधिकारी को परिभाषित करता है, जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किया जाता है।

6. यहां नियम, 1997 के नियम 2 (सी) को उद्धृत करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है: -
"जांच अधिकारी" का तात्पर्य जिला पंचायत राज अधिकारी या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किसी अन्य जिला स्तरीय अधिकारी से है।"

7. नियमों के विशिष्ट प्रावधानों के मद्देनजर, याचिकाकर्ता के वकील ने तर्क दिया है कि नियम अनिवार्य हैं और जांच अधिकारी जिसने

जांच की है और जिसकी जांच पर विवादित आदेश पारित किया गया है, वह सक्षम अधिकारी नहीं है, और इस प्रकार, एक ऐसी जांच पर आधारित आक्षेपित आदेश जो क्षेत्राधिकार के बिना है, कानून की नजर में खराब माना जा सकता है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्तमान मामले में, यह खंड विकास अधिकारी है, जिसने प्रारंभिक जांच करने के लिए एक समिति का गठन किया है, जो उपरोक्त नियम के प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है क्योंकि खंड विकास अधिकारी नहीं हो सकता है नियम 1997 के परिभाषित नियम 2(सी) के अनुसार जांच अधिकारी के रूप में लिया गया।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम, 1947 की धारा 95 (1) (जी) के प्रावधानों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो यह प्रदान करता है कि ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई जांच में और इस तरह से, जैसा कि हो सकता है निर्धारित है, प्रथम दृष्टया किसी प्रधान या उप-प्रधान को वित्तीय और अन्य अनियमितताएं करते हुए पाया जाता है, तो ऐसे प्रधान या उप-प्रधान को वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों और कार्यों का प्रयोग और प्रदर्शन करना बंद कर दिया जाएगा, जब तक कि वह आरोपों से मुक्त नहीं हो जाता। अंतिम जांच राज्य सरकार द्वारा नियुक्त ग्राम पंचायत के तीन सदस्यों वाली एक समिति द्वारा की जाएगी।

10. उपरोक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि कथित प्रारंभिक जांच नियम 1997 में दिए गए तरीके से नहीं की गई है, इसलिए, विवादित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। तथापि उपरोक्त को नजरअंदाज करते हुए खण्ड विकास अधिकारी द्वारा गठित समिति द्वारा की गई जांच की माने तो ग्राम प्रधान द्वारा की गई किसी भी वित्तीय अनियमितता के संबंध में जिलाधिकारी, चित्रकूट द्वारा प्रथम दृष्टया कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है। इस प्रकार उपरोक्त आधार पर भी विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता।

11. अपनी दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने *महमूद अंसारी बनाम यूपी राज्य , रिट-सी संख्या 30938/ 2018 का निर्णय 21.12.2018* के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। उन्होंने अंततः कहा कि प्रथम दृष्टया, याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप अधिनियम 1947 की धारा 95(1)(जी) के किसी भी खंड का आह्वान नहीं करते हैं इस प्रकार दिनांक 23.03.2023 का आक्षेपित आदेश निरस्त किये जाने योग्य है।

12. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि नियम 1997 के नियम 3 (6) के मददेनजर लागू आदेश में कोई अवैधता नहीं है। यहां नियम 1997 के नियम 3 को उद्धृत करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"3. शिकायतों से संबंधित प्रक्रिया- (1) प्रधान या उप-प्रधान के खिलाफ शिकायत करने वाला कोई भी व्यक्ति अपनी शिकायत राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सशक्त किसी अधिकारी को भेज सकता है।

(2) उप-नियम (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक शिकायत के साथ शिकायतकर्ता के अपने समर्थन में शपथ-पत्र तथा उन सभी व्यक्तियों के शपथ-पत्र भी संलग्न होंगे, जिनसे उसने आरोप से संबंधित तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का दावा किया है, तथा नोटरी के समक्ष सत्यापित किए गए होंगे, साथ ही आरोप से संबंधित उसके कब्जे या शक्ति में सभी दस्तावेज भी संलग्न होंगे।"

(3) इस नियम के तहत प्रत्येक शिकायत और हलफनामे के साथ-साथ किसी भी अनुसूची या अनुबंध को क्रमशः दलीलों और हलफनामों के सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निर्धारित तरीके से सत्यापित किया जाएगा।

(4) शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत की कम से कम तीन प्रतियां और उसके प्रत्येक अनुलग्नक प्रस्तुत किए जाएंगे।

(5) ऐसी शिकायत जो इस नियम के किसी भी पूर्ववर्ती प्रावधान का अनुपालन नहीं करती है, उस पर विचार नहीं किया जाएगा।"

(6) यदि किसी लोक सेवक द्वारा प्रधान या उपप्रधान के विरुद्ध शिकायत की जाती है, तो

इस नियम के पूर्वगामी प्रावधानों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं होगा।"

13. इसलिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि वर्तमान मामले में जहां शिकायत खंड विकास अधिकारी द्वारा की गई है, जिसने यह सत्यापित करने के लिए कि क्या याचिकाकर्ता अधिनियम द्वारा लगाए गए कर्तव्य को निभाने में विफल रहा है, तीन सदस्यीय समिति का गठन किया है। जिसमें पाया गया कि संबंधित ग्राम पंचायत बुजुर्ग में 395 गोवंश (गोवंश) को मंडी समिति परिसर, पहाड़ी में संरक्षित किया गया था, लेकिन 14.11.2022 को सुबह लगभग 10:00 बजे उन्हें भगा दिया गया।, इसलिए याचिकाकर्ता ने उपरोक्त गौशाला के कामकाज में सहयोग नहीं किया है। इस प्रकार खंड विकास अधिकारी द्वारा मुख्य विकास अधिकारी के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट के समक्ष प्रस्तुत की गई उपरोक्त रिपोर्ट को लोक सेवक द्वारा शिकायत के रूप में लिया जा सकता है। इसलिए नियम 1997 के नियम 3 (6) के अनुसार इसे शिकायत के रूप में माना जा सकता है।

14. इस तथ्य के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क के संबंध में कि प्रधान की वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों को तब तक जब्त नहीं किया जा सकता जब तक कि वित्तीय अनियमितताएं न हों, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि धारा 95(1)(छ) अधिनियम, 1947 में ही "अन्य अनियमितताएं" शब्द शामिल है, उपरोक्त स्थिति जिसमें याचिकाकर्ता ने अपने

कर्तव्यों का पालन नहीं किया है और अपने पद का दुरुपयोग किया है। इसलिए, उपरोक्त प्रावधान वर्तमान मामले के तथ्यों में आकर्षित होता है। उन्होंने कोर्ट का ध्यान रूल की ओर खींचा है

अधिनियम, 1947 का 95(1)(जी), जो इस प्रकार है:-

"95. निरीक्षण-(1) राज्य सरकार कर सकती है (g) ग्राम पंचायत या संयुक्त समिति या भूमि प्रबंधक समिति के प्रधान, उप-प्रधान या सदस्य, या पंचायत के पंच न्याय, सहायक सरपंच या सरपंच को हटा सकता है यदि वह -

i- लगातार तीन से अधिक बैठकों या बैठकों में पर्याप्त कारण के बिना अनुपस्थित रहता है।

ii किसी भी कारण से कार्य करने से इंकार कर देता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है या यदि उस पर नैतिक अधमता से जुड़े किसी अपराध का आरोप लगाया जाता है या उसे बदल दिया जाता है।

iii अपने पद का दुरुपयोग किया है या इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए कानूनों द्वारा लगाए गए कर्तव्यों को पूरा करने में लगातार विफल रहा है या उसकी इस तरह की अवमानना सार्वजनिक हित में बाधनीय नहीं है, या

(iii)-ए धारा 11-ए की उप-धारा (2) या उप-धारा (5) या धारा 12 के तहत आरक्षण का लाभ लिया है, जैसा भी मामला हो, उसके द्वारा

हस्ताक्षरित झूठी घोषणा के आधार पर कहा गया है कि वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या पिछड़ा वर्ग, जैसा भी मामला हो, का सदस्य है)

iv-सहायक सरपंच या न्याय पंचायत का सरपंच होने के नाते राजनीति में सक्रिय भाग लेता है, या

v- धारा 5-ए के खंड (ए) से (एम) में उल्लिखित किसी भी अयोग्यता से ग्रस्त है;

बशर्ते कि, ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई जांच में और ऐसे तरीके से, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, प्रधान या उप-प्रधान को प्रथम दृष्टया वित्तीय और अन्य अनियमितताएं करते हुए पाया जाता है, तो ऐसे प्रधान या उप-प्रधान को वित्तीय कार्य करना और कार्यान्वित करना बंद कर दिया जाएगा और प्रशासनिक शक्तियां और कार्य, जो अंतिम जांच में आरोपों से मुक्त होने तक, राज्य सरकार द्वारा नियुक्त ग्राम पंचायत के तीन सदस्यों वाली एक समिति द्वारा प्रयोग और निष्पादित किए जाएंगे।"

15. इसलिए, उनका कहना है कि वर्तमान स्थिति में, याचिकाकर्ता ने गौशाला के उचित कामकाज को देखने का अपना कर्तव्य नहीं निभाया है, जहां से मवेशियों को चराया जाता था, इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

17. उन्होंने राज्य सरकार द्वारा सभी जिला मजिस्ट्रेटों को जारी परिपत्र दिनांक 28.02.2014 के पैरा 3 की ओर भी न्यायालय

का ध्यान आकर्षित किया है, जो इस प्रकार है।-

"3. प्रारंभिक जांच के आधार पर या अन्यथा जहाँ राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट की यह राय हो कि धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (छ) के प्रतिबन्धात्मक खंड के अधीन किसी प्रधान या उप प्रधान के विरुद्ध जांच की जानी चाहिए अर्थात् की गयी किसी प्रारंभिक जांच में प्रधान प्रथम दृष्टया वित्तीय और अन्य अनियमितता का दोषी पाया जाए, यहां ऐसा प्रधान वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का संपादन नहीं करेगा और जब तक की वह अंतिम जांच में आरोपों से मुक्त न हो जाये, ऐसी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का संपादन राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त नियुक्त ग्राम पंचायत के तीन सदस्यों की एक समिति द्वारा किया जायेगा"

17. उपरोक्त परिपत्र के अनुसार, प्रधान की वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियां जब्त की जा सकती हैं, जब राज्य सरकार/जिला मजिस्ट्रेट प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करता है और प्रारंभिक जांच या अन्यथा के आधार पर पाता है कि प्रधान ने वित्तीय और अन्य गलतियों की हैं। अनियमितताएँ. इसलिए, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या विकृति नहीं पाई जाती है, इसलिए इस न्यायालय को किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

18. उपरोक्त निवेदन पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दिनांक 28.02.2014 का परिपत्र ज्ञात स्थिति पर

आधारित है अधिवक्ता के पास वैधानिक बल नहीं है क्योंकि वह बस हैके विरुद्ध जांच करते समय दिशानिर्देशों/निर्देशों का पालन किया जाना चाहिए शिकायत पर प्रधान द्वारा नियमावली 1997 के नियम 3 के प्रावधानों के अनुसार की गई।

19. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

20. अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि खण्ड विकास अधिकारी ने याचिकाकर्ता के आचरण की जांच करने के लिए एक समिति का गठन किया है और इसे जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट के समक्ष रखा गया है, जिस पर भरोसा करते हुए विवादित आदेश पारित किया गया है।

21. इस न्यायालय का मानना है कि यद्यपि उपरोक्त शिकायत को नियम 3 में संदर्भित शिकायत या रिपोर्ट की प्राप्ति पर एक लोक सेवक, जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट द्वारा नियम, 1997 के नियम 3 के अनुसार उचित शिकायत माना जा सकता है। या अन्यथा, जांच अधिकारी को यह पता लगाने के लिए प्रारंभिक जांच करने का आदेश दें कि क्या मामले में औपचारिक जांच के लिए प्रथम दृष्टया कोई मामला है। नियमावली, 1997 के नियम 5 के तहत, जहां जिला मजिस्ट्रेट की राय है, नियम 4 के उप-नियम (2) में संदर्भित रिपोर्ट के आधार पर या अन्यथा, कि प्रधान या उप-प्रधान के खिलाफ जांच की जानी चाहिए - प्रधान या सदस्य, वह तुरंत एक तीन सदस्यीय

समिति का गठन करेगा और एक आदेश द्वारा पहले से नामित जांच अधिकारी के अलावा किसी अन्य जांच अधिकारी को जांच करने के लिए कहेगा। प्रारंभिक जांच करने के लिए जांच अधिकारी जिला पंचायत राज अधिकारी या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित कोई अन्य जिला स्तरीय अधिकारी होना चाहिए।

22. इसलिए, यह जांच की जानी है कि क्या अधिनियम की धारा 95(1)(जी) के तहत आदेश पारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियमों के उपरोक्त प्रावधानों का पालन किया गया था।

23. अभिलेखों से पता चलता है कि कुछ शिकायत प्राप्त होने पर खंड विकास अधिकारी ने उसे सत्यापित करने के लिए एक तीन सदस्यीय समिति का गठन किया और समिति की रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष रखी गई, जिसके आधार पर, आदेश दिया गया है।

24. नियमावली, 1997 के नियम 2 (सी) के तहत विचार किए गए एक जांच अधिकारी अर्थात् जिला पंचायत राज अधिकारी या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किसी अन्य जिला स्तरीय अधिकारी द्वारा की जाने वाली प्रारंभिक जांच आयोजित नहीं की गई है। वर्तमान मामले में, जिला मजिस्ट्रेट को नियम, 1997 के नियम 2 (सी) के तहत परिभाषित जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर ही अंतिम जांच करने के लिए प्रथम दृष्टया संतुष्टि मिल सकती है।

25. जहां तक आदेश में उल्लिखित परिपत्र दिनांक 28.02.2014 का संबंध है, न्यायालय की राय है कि यह संबंधित अधिनियम और नियमों के प्रावधानों पर लागू नहीं हो सकता क्योंकि इसका कोई महत्व नहीं है। वैधानिक बल और मुख्य सचिव/राज्य सरकार द्वारा जारी एक निर्देश होने के नाते प्रधान के खिलाफ जांच करते समय सभी जिला मजिस्ट्रेटों द्वारा इसका पालन किया जाना चाहिए।

26. इस न्यायालय ने पाया कि खंड विकास अधिकारी द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट के समक्ष रखी गई दिनांक 14.11.2022 की रिपोर्ट को नियम 3 के उप-नियम (6) के अनुसार उचित शिकायत माना जा सकता है, इसलिए जिला मजिस्ट्रेट, चित्रकूट को चाहिए कि प्रारंभिक जांच करने के लिए नियम 1997 के नियम 2 (सी) के तहत एक जांच अधिकारी नियुक्त करें।

27. अधिनियम और नियमों के अवलोकन के बाद न्यायालय का स्पष्ट मत है कि निर्वाचित प्रतिनिधि को केवल और केवल कानून के अनुसार ही हटाया जा सकता है और इस संबंध में निर्वाचित प्रतिनिधि को हटाने के लिए जो कानून है, उसकी व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए। दिनांक 14.11.2022 की जांच रिपोर्ट को केवल खंड विकास अधिकारी यानी लोक सेवक द्वारा की गई शिकायत के रूप में माना जा सकता है। हालाँकि, आक्षेपित आदेश में त्रुटि इस हद तक स्पष्ट है कि गठित जाँच समिति नियमावली, 1997 के नियम 2-सी और आदेश के अनुरूप नहीं है

आक्षेप दिनांक 14.11 2022 की उक्त जांच रिपोर्ट पर आधारित है, इसलिए, आक्षेपित आदेश को कानून की दृष्टि से खराब माना जाता है।

28. उपरोक्त के मददेनजर, याचिकाकर्ता की वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों को जब्त करने वाले प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.03.2023 को रद्द कर दिया गया है, हालांकि, जिला मजिस्ट्रेट/क्लेक्टर, यानी प्रतिवादी संख्या 2 को आगे बढ़ने के लिए निर्देशित किया जाता है। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने पर 15 दिनों के भीतर नियम, 1997 के नियम 2-सी के अनुसार एक जांच समिति का गठन करके नए सिरे से जांच करें या एक जांच अधिकारी नियुक्त करें, जो इसके बाद मामले में जांच करेगा। जिला मजिस्ट्रेट अन्य राजस्व अधिकारियों/प्राधिकरणों की सहायता से अगले चार सप्ताह की अवधि के भीतर जांच रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट को उपलब्ध करा सकता है और प्रस्तुत कर सकता है। ऐसी जांच रिपोर्ट के आधार पर, उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम, 1947 की धारा 95 (1) (जी) के प्रावधान के तहत नियम, 1997 के साथ पठित वित्तीय और प्रशासनिक निर्णय लिया जाएगा। याचिकाकर्ता की शक्तियां जब्त करने की आवश्यकता है या नहीं? परिणाम तदनुसार, कानून के अनुसार होंगे।

29. उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

30. कार्यालय को इस आदेश की एक प्रति विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता को देने का निर्देश दिया जाता है, जो इस आदेश को तुरंत प्रतिवादी संख्या 2 जिलाधिकारी, चित्रकूट को सूचित करेगा।

(2023) 7 ILRA 378

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

के समक्ष

रिट-सी संख्या 12380 सन् 2023

विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन

...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य

... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अभिजीत मुखर्जी, सुश्री सुष्मिता मुखर्जी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री दिनेश कुमार मिश्रा

ए. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226
- रिट - सुने जाने का अधिकार - समाज के चुनाव विवाद से उत्पन्न मामला - समाज का कोई सदस्य किस हद तक मामले का विरोध कर सकता है - माना गया कि समाज के किसी सदस्य के पास उप रजिस्ट्रार, चिट्स फर्म और सोसायटी के समक्ष शिकायत करने का अधिकार है और वह वैध रूप से रिट याचिका का विरोध कर सकता है। (पैरा 9)

बी. स्थानीय निकाय कानून - सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - धारा 25(1) - दायरा - चुनाव विवाद - उप रजिस्ट्रार का अधिकार क्षेत्र - उप रजिस्ट्रार ने मामले को विहित प्राधिकारी को संदर्भित किया - वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय दिया गया कि यदि उत्तर प्रदेश में पंजीकृत किसी सोसायटी के पदाधिकारी के चुनाव या पद पर बने रहने के संबंध में कोई विवाद उठाया जाता है, तो उसका निर्णय केवल धारा 25(1) के तहत विहित प्राधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए, न कि रजिस्ट्रार द्वारा, सिवाय इसके कि विहित प्राधिकारी का निर्णय दीवानी मुकदमे के परिणाम के अधीन हो - अखिल भारतीय परिषद के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 14 और 15)

सी. स्थानीय निकाय कानून - यूपी अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व और रखरखाव का संवर्धन) अधिनियम, 2010 - मॉडल उपनियम - सोसायटी का चुनाव - प्रबंध बोर्ड के केवल 1/3 पदों का चुनाव हुआ - अनुमति - प्रबंध बोर्ड के सभी 10 पदों के लिए वार्षिक आधार पर नियमित चुनाव कराना सभी बोर्ड सदस्यों को निवासियों के प्रति लगातार जवाबदेह बनाता है - यह सोसायटी प्रशासन के लोकतांत्रिक आधार को सुरक्षित करता है - प्रबंध बोर्ड के सभी 10 पदों को भरने के लिए चुनाव न कराना 26.02.2022 के चुनावों को अमान्य करता है। (पैरा 26 और 34)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अखिल भारतीय परिषद एवं अन्य बनाम सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी एवं चिट्स, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी एवं अन्य; एआईआर 1988 इला. 236

2. ग्राम शिक्षा सुधार समिति, जूनियर हाई स्कूल, स्कंदरा व अन्य बनाम रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, उत्तर प्रदेश, लखनऊ व अन्य; 2010 (7) एडीजे 643 (डीबी)

3. विशेष अपील संख्या 1224 सन् 2018; प्रबंधन बोर्ड, विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 11.03.2019 को तय

4. दीवानी अपील संख्या 1442 सन् 2020; प्रबंधन बोर्ड, विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 11.02.2020 को तय

5. कुन्हायमद व अन्य बनाम केरल राज्य व अन्य; (2000) 6 एससीसी 359

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक रूपरेखा में ढाला जा रहा है

I	प्रस्तावना
II	विद्वान परामर्शदाताओं की प्रस्तुतियाँ
III	लोकस स्टैंडर्ड (सुने जाने का अधिकार)

IV	तथ्य
V	विचार हेतु उठने वाले मुद्दे
VI	निर्धारित प्राधिकारी को अपार्टमेंट अधिनियम और मॉडल उपनियम के तहत दिये गए संदर्भ की वैधता
VII	चुनाव: विश्लेषण
VIII	इस न्यायालय द्वारा स्पेशल अपील संख्या 1224 सन 2018 में दर्ज किये गये और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील नं. 1442 सन 2020 में दिया गया निर्णय
IX	निष्कर्ष एवं दिशा-निर्देश

I. प्रस्तावना

2. आक्षेपित आदेश दिनांक 29.10.2022 द्वारा प्रतिवादी नंबर 2-डिप्टी रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटीज एंड चिट्स, मेरठ ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1860 की धारा 25(1) के तहत याचिकाकर्ता-सोसाइटी का चुनावी विवाद विहित प्राधिकारी/उपविभागीय मजिस्ट्रेट/प्रतिवादी क्रमांक 3 को संदर्भित किया।

3. आक्षेपित आदेश दिनांक 08.02.2023 द्वारा प्रतिवादी क्रमांक 3 उपजिलाधिकारी, गाजियाबाद/विहित प्राधिकारी ने उप रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटी एवं चिट्स, मेरठ द्वारा दिये गए संदर्भ पर निर्णय लेते समय सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 25(1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता-सोसाइटी के बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट के 26.06.2022 को आयोजित चुनाव को अमान्य

घोषित कर दिया है। उक्त आक्षेपित किए गये आदेश में आगे उप रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटी एवं चिट्स, मेरठ को विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के प्रबंधन बोर्ड में सभी 10 पदों पर चुनाव करवाने के लिए निर्देशित किया गया।

4. आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2-उप रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटी और चिट्स, मेरठ ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 25(2) के तहत विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के निदेशक मंडल के सभी 10 पदों पर चुनाव कराने का निर्देश दिया है। उक्त आदेश अनुविभागीय अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट/विहित प्राधिकारी के आदेश दिनांकित 08.02.2023 के अनुपालन में पारित किया गया।

5. आक्षेपित आदेश दिनांक 08.02.2023 से पता चलता है कि वार्षिक चुनाव दिनांकित 26.06.2022 प्रबंधन बोर्ड के सभी 10 पदों के स्थान पर केवल तीन पदों पर ही कराए गए।

II. प्रस्तुतियाँ

6. श्री अभिजीत मुखर्जी, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश पर सवाल उठाते हुए निम्नलिखित दलीलें दी हैं-

(i) विहित प्राधिकारी को किया गया संदर्भ गैरकानूनी था।

(ii) उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व एवं अनुरक्षण का संवर्धन) अधिनियम, 2010

मॉडल उपनियमों के साथ पढ़ने पर एक वार्षिक आधार पर केवल प्रबंधन बोर्ड के पदों पर 1 /3 (10 में से 3) के लिए चुनाव होगा।

(iii) प्रबंधन बोर्ड के 2/3 सदस्यों पर वार्षिक चुनाव का सामना करने का दायित्व नहीं है।

(iv) कोई भी पदाधिकारी दो वर्ष से अधिक समय तक लगातार पद पर नहीं रहा।

(v) प्रतिवादी संख्या 5 को इस मामले में कोई अधिकार नहीं है।

7. श्री विनीत गर्ग-प्रतिवादी संख्या 5 ने व्यक्तिगत रूप से आक्षेपित आदेशों के समर्थन में और याचिकाकर्ता के कार्यों के विरुद्ध: निम्नलिखित प्रार्थना की है-

(i) प्रतिवादी संख्या 5 विंडसर अपार्टमेंट में एक फ्लैट का मालिक है और सोसायटी का सदस्य है।

(ii) संदर्भ सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(1) के दायरे में था।

(iii) उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व एवं अनुरक्षण का संवर्धन) अधिनियम, 2010 और मॉडल उपनियमों के अनुसार प्रबंधन बोर्ड के सभी 10 पदों पर वार्षिक आधार पर चुनाव कराना अनिवार्य है।

(iv) दिनांक 26.02.2022 के चुनाव उक्त अधिनियम एवं मॉडल उपनियम के संगत नहीं हैं।

(v) प्रबंधन बोर्ड में कई ऐसे व्यक्ति बने हुए हैं जो पिछले दो वर्षों से चुनावों कराए जाने से बचते रहे हैं।

8. राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रतिवादी संख्या 5 के तर्कों को अपनाते हुए आक्षेपित आदेशों का बचाव किया

III. सुने जाने का अधिकार

9. प्रतिवादी सं.5 विंडसर मेनर पार्क अपार्टमेंट में एक फ्लैट मालिक है। वह विंडसर मेनर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के सदस्य हैं। उनके पास उप रजिस्ट्रार, चिट्स फर्म्स और सोसायटी मेरठ के समक्ष शिकायत करने का अधिकार था और वे वैध रूप से रिट याचिका में अपना पक्ष रख सकते हैं।

IV तथ्य

10. इस मामले में तथ्य एक संकीर्ण दायरे तक ही सीमित हैं। विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के नाम और शैली के तहत चलने वाली एक सोसाइटी सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत है। प्रबंधन बोर्ड जो सोसाइटी के मामलों को देखता है वह निर्वाचित निकाय होता है जिस में 10 सदस्य शामिल हैं। याचिकाकर्ता- सोसाइटी बोर्ड की संरचना का प्रबंधन है: अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष और प्रबंधन बोर्ड के छह सदस्य।

11. उक्त सोसायटी के प्रबंधन बोर्ड के विभिन्न कार्यालयों के लिए चुनाव समय-समय

पर होता रहा है। प्रबंधन बोर्ड के सभी 10 पदों को भरने के लिए चुनाव 09.07.2020 को डिप्टी रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसाइटीज एवं चिट्स, मेरठ द्वारा आयोजित किया गया था एवं परिणाम 16.09.2020 को घोषित किया गया। हालाँकि, वर्ष 2021 में सदस्यों द्वारा उस वर्ष सेवानिवृत्त हुए रिक्त किये गये केवल तीन पदों के लिये ही चुनाव कराये गये और प्रबंधन बोर्ड के सभी 10 पदों के लिए चुनाव नहीं हुआ था। चुनाव परिणाम 26.06.2021 को घोषित किये गये थे।

12. साल 2022 में भी यही प्रक्रिया दोहराई गई। प्रबंधन बोर्ड के लिए 2022 के वार्षिक चुनाव में केवल 3 पदों को भरने के लिए अधिसूचना जारी की गई जो प्रबंधन बोर्ड के उक्त सदस्यों की सेवानिवृत्ति के कारण वार्षिक रूप से रिक्त हो गए थे। उक्त 3 पदों पर 2022 के चुनाव के परिणाम की घोषणा 26.06.2022 को की गई। 2021 और 2022 के चुनाव प्रबंधन बोर्ड द्वारा आयोजित किए गए थे।

V विचार हेतु उत्पन्न होने वाले मुद्दे

13. विचार के लिए उठने वाले मुद्दे हैं:-

I. क्या उप रजिस्ट्रार फर्म, सोसायटी और चिट्स, मेरठ-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा विहित प्राधिकारी/ उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद प्रतिवादी संख्या 3 को दिया गया संदर्भ सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(1) के तहत वैध था?

II. क्या उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व एवं अनुरक्षण का संवर्धन) अधिनियम, 2010 और इसके अंतर्गत बनाए गए मॉडल उपनियम दिनांकित 16 नवंबर, 2011 की योजना के अनुसार वार्षिक आधार पर प्रबंधन बोर्ड के सभी 10 पदों पर चुनाव होने चाहिए ?

III. क्या प्रबंधन बोर्ड द्वारा सेवानिवृत्तियों के कारण उत्पन्न हुई वार्षिक रूप से निकाली गई रिक्तियां जो कि कुल पदों की $\frac{1}{3}$ हैं और पदों पर कराए गए चुनाव उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व एवं अनुरक्षण का संवर्धन) अधिनियम, 2010 और इसके अंतर्गत बनाए गए मॉडल उपनियम दिनांकित 16 नवंबर, 2021 के अनुरूप थे ?

VI. निर्धारित प्राधिकारी को किए गए संदर्भ की वैधता

14. उप रजिस्ट्रार, फर्म सोसाइटीज एंड चिट्स, मेरठ-प्रतिवादी नंबर 2 के समक्ष रखा गया विवाद सोसायटी के प्रबंधन बोर्ड के चुनाव और उक्त सोसाइटी के निर्वाचित पदाधिकारियों के पद पर बने रहने से संबंधित है। विधायिका ने एक विशिष्ट फोरम बनाया है और सोसाइटीज में चुनावी विवादों के निर्धारण के लिए सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 25(1) के तहत सावधानीपूर्वक विहित प्राधिकारी को चिन्हित किया है।

15. कानूनी मैडेट स्पष्ट है। अच्छे अधिकारियों के द्वारा कानून तय किया जाए। इस नैरेटिव को मजबूत करने के

लिए कुछ केसेज का बिन्दुवार संदर्भ लाभदायक हो सकता है। इस न्यायालय ने आल इंडिया काउंसिल और अन्य बनाम असिस्टेंट रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसाइटीज और चिट्स, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी और अन्य के केस में सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(1) के दायरे की व्याख्या करते हुए यह कहा:

"7. इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि जहां तक उत्तर प्रदेश में पंजीकृत सोसायटी के पदाधिकारियों के चुनाव या उनके पद पर बने रहने के संबंध में विवाद या संदेह है तो ऐसे विवादों के निर्धारण के लिए विधायिका ने एक विशिष्ट फोरम बनाया है और इसके लिए धारा 25 के तहत एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की है। इसके अतिरिक्त इन केसेज के निर्धारण के लिए विशेष रूप से व्यक्त या अन्यथा कोई अन्य प्रावधान नहीं है। यह तथ्यशुदा कानून है कि यहां की तरह जहां विधायिका एक विशिष्ट फोरम का सृजन विशेष वर्ग के अंतर्गत आने वाले मामलों के निर्धारण के लिए करती है और इसके निर्धारण के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया भी निर्धारित करती है तो ऐसे विवादों का निर्धारण केवल उस फोरम और उस कानून में निर्धारित तरीके से ही किया जा सकता है अन्यथा नहीं। इसलिए, यदि कोई विवाद उत्तर प्रदेश में पंजीकृत किसी सोसायटी के पदाधिकारी के चुनाव या पद पर बने रहने के संबंध में उठाया गया है तो इसका निर्धारण धारा 251 के तहत निर्धारित प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा ना कि रजिस्ट्रार द्वारा हालांकि निर्धारित प्राधिकारी का निर्णय सिविल वाद के निर्णय के अधीन होगा।

[यह भी देखें: ग्राम शिक्षा सुधार समिति, जूनियर हाई विद्यालय, स्कन्दरा, जिला कानपुर देहात एवं अन्य वि रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसाइटीज एवं चिट्स, उ.प्र., लखनऊ एवं अन्य 2]

16. आक्षेपित आदेश दिनांक 29.10.2022 से पता चलता है कि सोसायटी के चुनावों की वैधता और साथ ही चुनाव में निर्वाचित पदाधिकारियों के पद पर बने रहने को लेकर विवाद खड़ा हो गया था।

17. उप रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटी एवं चिट्स, मेरठ ने आक्षेपित आदेश दिनांक 29.10.2022 पारित करके चुनाव विवाद को विहित प्राधिकारी को संदर्भित करके सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(1) के तहत इसमें निहित शक्तियों का विधिपूर्वक प्रयोग किया है और इस न्यायालय द्वारा आल इंडिया काउंसिल (ऊपर वर्णित) & ग्राम शिक्षा सुधार समिति (ऊपर वर्णित) में प्रतिपादित कानून के अनुरूप इसमें कार्य किया है।

VII. अपार्टमेंट अधिनियम के तहत चुनाव और मॉडल उपनियम: विश्लेषण

18. गगनचुंबी अपार्टमेंट संस्कृति के परिचय के बाद समाज और राष्ट्रों द्वारा सामना की जाने वाली दुविधा को सिंगापुर के पूर्व प्रधान मंत्री ली कुआन द्वारा अपने संस्मरण में विस्तार से वर्णन किया गया है।

19. ऊंची-ऊंची अपार्टमेंट सोसायटियों का प्रसार वर्तमान आर्थिक वास्तविकताओं को

प्रतिबिंबित करता है और भविष्य की सामाजिक चुनौतियाँ का संकेत देता है।

विधायिका अपार्टमेंट जीवन के विघटनकारी प्रभाव और ऐसे समाजों में काम करने की जटिलताओं से अवगत थी। ऐसी अपार्टमेंट सोसायटियों के मामलों के नियमन की आवश्यकता

समय के साथ महसूस की गई और उसने विधायिका को उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व एवं अनुरक्षण का संवर्धन) अधिनियम, 2010 (इसके बाद इसे अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 लिखा जाएगा) अधिनियमित करने के लिए प्रेरित किया । और इसके तहत सरकार द्वारा माँडल उपनियम दिनांकित 16 नवंबर, 2011 अधिसूचित किये गये। उक्त सोसायटी के प्रबंधन बोर्ड के चुनाव की स्कीम अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 और उसके तहत बने माँडल उपनियम द्वारा शासित और विनियमित होती है।

20. विधायिका ने सोसायटी के प्रबंधन बोर्ड में विभिन्न पदों पर चुनाव के लिए योजना अधिनियमित करते समय अपार्टमेंट के प्रशासन से संबंधित मुद्दों को ध्यान में रखा और उन्हें एक संपन्न समुदाय की जरूरतों के अनुरूप बनाया हैं। अपार्टमेंट सोसायटी का संविधान लोकतांत्रिक और उसकी कार्यप्रणाली पारदर्शी है।

[3 तीसरी दुनिया से पहली दुनिया तक ली कुआन यू द्वारा- "कठिन समायोजन अपरिहार्य थे

हास्यास्पद थे, यहाँ तक कि बेतुके परिणाम भी। कई सुअर पालक अपने सूअरों को छोड़ना बर्दाश्त नहीं कर सके और उन्होंने उन्हें पाला उनके ऊंचे-ऊंचे अपार्टमेंट थे। कुछ लोग अपने सूअरों को सहलाते हुए सीढ़ियों तक चढ़ते दिखे! एक परिवार, एक जोड़ा जिसमें 12 लोग हैं। ओल्ड एयरपोर्ट रोड पर एक झोपड़ी से एक नए एचडीबी अपार्टमेंट में जा रहे बच्चे रसोई में पालने के लिए दर्जनों मुर्गियां और बत्तखें लेकर आए। माँ ने उन्हें प्रवेश करने से रोकने के लिए के बैठक कक्ष के प्रवेश द्वार पर एक लकड़ी का गेट बनवाया। शाम को, बच्चे चारे के लिए बाहर घास के मैदानों में केंचुए और कीड़ों की तलाश करते थे। उन्होंने ऐसा 10 साल तक किया जब तक कि वे दूसरे अपार्टमेंट में नहीं चले गए"

21. अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 के प्रासंगिक प्रावधान और उसके अंतर्गत सरकार द्वारा अधिसूचित माँडल उपनियम दिनांकित 16 नवंबर 2011 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 की धारा 2(एफ)-"बोर्ड" का अर्थ अपार्टमेंट मालिकों के एक संघ का प्रबंधन बोर्ड है जो उपनियमों के अंतर्गत इसके सदस्यों द्वारा चुना गया है।

अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 की धारा 2 (एच)
 - "उपनियम" का अर्थ इस अधिनियम के तहत बनाए गए उपनियम हैं;

मॉडल उपनियमों का खंड 4 एसोसिएशन के सदस्य-

(1) वे सभी व्यक्ति जिन्होंने कॉन्डोमिनियम में (उस सोसायटी) अपार्टमेंट खरीदे हैं..... और अपार्टमेंट का एक विलेख निष्पादित किया है स्वतः एसोसिएशन के सदस्य बन जाएंगे और हजार रुपये के प्रवेश शुल्क का भुगतान करेंगे। प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक को उपनियमों एक प्रति प्राप्त होगी

(2) अपार्टमेंट की बिक्री, वसीयत या हस्तांतरण पर, खरीदार, अनुदान प्राप्तकर्ता या विरासत में प्राप्त करने वाला या हस्तांतरिती स्वतः एसोसिएशन का सदस्य बन जाएगा और एक हजार रुपये के प्रवेश शुल्क के भुगतान पर सदस्य के रूप में शामिल किया जाएगा।

मॉडल उपनियमों का खंड 13 वार्षिक बैठकें
 - पहली एसोसिएशन की बैठक...(तारीख) को होगी...उसके बाद एसोसिएशन की वार्षिक बैठकें किस तिथि को आयोजित की जाएंगी इसका निर्णय एसोसिएशनले सकता है। ऐसी बैठकों में प्रबंधन बोर्ड अपार्टमेंट मालिकों के मतपत्र द्वारा उपनियम 23 के तहत चुना जाएगा करेगा। अपार्टमेंट मालिक एसोसिएशन के कार्य व्यवहार से संबंधित ऐसे अन्य कार्य भी तय कर सकते हैं जो उचित रूप से उनके सामने आते हैं।

मॉडल उपविधि का खंड 18 एसोसिएशन का प्रबंधन - एसोसिएशन के मामले एक बोर्ड द्वारा शासित होंगे। प्रबंधन बोर्ड में न तो 4 से कम, न ही 10 से अधिक लोग शामिल होंगे जिसे सदस्यों द्वारा सामान्य सभा की बैठक में साधारण बहुमत से गठित एवं निर्वाचित किया जाएगा। एसोसिएशन के प्रधान पदाधिकारी एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, एक सचिव और एक कोषाध्यक्ष होंगे ये सभी बोर्ड द्वारा और उसी में से चुने जाएंगे। बोर्ड एक सहायक सचिव, सहायक कोषाध्यक्ष और ऐसे अन्य पदाधिकारी जिन्हें बोर्ड आवश्यक समझे नियुक्त कर सकता है।

मॉडल उपविधि का खंड 26. चुनाव एवं कार्यकाल-

(i) एसोसिएशन की वार्षिक आम बैठक, प्रत्येक वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही पहली बार आयोजित की जाएगी जो अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव और कोषाध्यक्ष सहित न तो 4 से कम और न ही 10 से अधिक सदस्यों का चयन एसोसिएशन के सदस्यों में से करेगी। किसी सदस्य के चयन में यह शर्त रहेगी कि उस सदस्य को अपने पूर्व कार्यकाल में अपने पद का दुरुपयोग करने के लिए दोषी न पाया गया हो। बोर्ड के पदाधिकारी पद ग्रहण करने की तिथि से एक वर्ष तक पद पर रहेंगे और वे पुनः चुनाव के लिए पात्र होंगे। बशर्ते कि एक व्यक्ति एक ही पद पर लगातार 2 वर्ष से अधिक नहीं रह सकते।

(जोर दिया गया)

(ii) बोर्ड द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाएगी जिससे यह सुनिश्चित हो कि बोर्ड के एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष सेवानिवृत्त होते रहें।

(iii) पदाधिकारी तब तक पद पर बने रहेंगे जब तक उनके उत्तराधिकारी निर्वाचित होकर अपनी पहली बैठक आयोजित न करें।

22. किसी अपार्टमेंट मालिकों के एसोसिएशन कंपंजीकरण की आवश्यकता और उपनियमों को अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 की धारा 14 में दिया गया है।

23. उपरोक्त वैधानिक योजना की निम्नलिखित विशिष्ट विशेषताएं हैं :

(I) प्रबंधन बोर्ड 10 निर्वाचित सदस्य होते हैं। (अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 की धारा 2(एफ) देखें)

(II) प्रबंधन बोर्ड का कार्यकाल एक वर्ष है। निर्वाचित कार्यालय का कार्यकाल समाप्त होने के बाद संपूर्ण बोर्ड को चुनाव का सामना करना पड़ता है। प्रबंधन बोर्ड के सभी दस पदों पर चुनाव वार्षिक आधार पर किया जाएगा।

(III) प्रबंधन बोर्ड को वार्षिक आधार पर अपने एक तिहाई सदस्यों को सेवानिवृत्त करने की व्यवस्था करनी होगी।

(IV) एक ही पद पर किसी व्यक्ति की दो वर्ष से अधिक समय तक बने रहने पर प्रतिबंध है।

(V) पदाधिकारी अपने पद पर अपने उत्तराधिकारी के निर्वाचित होकर उनकी पहली बैठक होने तक बने रहते हैं। इससे सोसाइटी में शून्यता की स्थिति नहीं पैदा होती और अस्तित्व और कामकाज में निरंतरता सुनिश्चित होती है।

24. उक्त कानूनी चुनाव योजना में दो मुख्य पहलू स्पष्ट हैं। प्रबंधन बोर्ड में सभी 10 पदों को भरने के लिए वार्षिक आधार पर चुनाव कराने का नियम। और दूसरा निर्वाचित कार्यालय के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार प्रतिबंधों के अधीन है।

25. चुनाव की कानूनी योजना सभी निवासियों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी सहभागी संस्कृति को प्रोत्साहित करती है और व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने वाले किसी भी विशिष्ट वर्ग से व्यक्तिगत सदस्यों की महत्वाकांक्षाओं से परहेज करती है।

26. सभी 10 पदों पर वार्षिक आधार पर नियमित चुनाव प्रबंधन बोर्ड सभी बोर्ड सदस्यों को निवासियों के प्रति लगातार जवाबदेह बनाता है। शासित की सहमति समाज के शासन का आधार है और बोर्ड इसकी वैधता चुनाव से प्राप्त करता है। सभी पदों को भरने के लिए वार्षिक चुनाव

प्रबंधन बोर्ड के लोकतांत्रिक समाज प्रशासन का आधार सुरक्षित करता है और निवासियों/ सदस्यों को अपने सामाजिक दायित्व के लिए सामुदायिक कार्यक्रम में भाग लेने को सचेत भी करता है।

27. चुनाव लड़ने के अधिकार को प्रतिबंधित करके और कूलिंग पीरियड द्वारा समुदाय की आवश्यकता को स्वार्थी आकांक्षाओं पर प्राथमिकता दी गई है। बोर्ड के एक तिहाई सदस्यों को प्रतिवर्ष सेवानिवृत्त होना होगा और वे उस वर्ष चुनाव नहीं लड़ सकते। उसी प्रकार इसके बाद पदाधिकारियों को कार्यालय में लगातार दो वर्ष रहने के बाद चुनावी मैदान में उतरने से रोक दिया गया है। उक्त सदस्यों को प्रतिवर्ष चुनावी मैदान से बाहर करने से हर साल मतदाताओं को चुनने के लिए अधिवक्ताओं की संख्या बढ़ती है, अलग-अलग विचारधारा के लोग शामिल होते हैं और बोर्ड में नए चेहरों को शामिल करके इसकी संरचना भी बदलती है।

28. चुनाव के अधिकार सामुदायिक जीवन में व्यापक भागीदारी करने के लिए रचा गया है लेकिन इससे यह भी सुनिश्चित होता है कि राजनीति दैनिक जीवन पर एकाधिकार स्थापित न करे। प्रबंधन बोर्ड के सभी पदों को भरने के लिए नियमित रूप से चुनाव कराया जाना और प्रतिबंधात्मक रूप से कानून द्वारा पात्र बनाए गए लोगों द्वारा चुनाव लड़ना सहयोगात्मक प्रयासों से उत्पन्न अंतरसंबंध को बढ़ावा देता है और पेशेवर राजनीतिक प्रक्रियाओं द्वारा बनने वाली दरारों से बचाता है।

29. चुनाव की उक्त योजना और चुनाव अधिकार उन तत्वों को मिलाता है जो एक सुरक्षित समुदाय में सामंजस्यपूर्ण वातावरण को आकार देने के लिए आवश्यक हैं और सामान्य समस्याओं के सामूहिक समाधान तथा कुशल संचालन प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

VIII. इस न्यायालय द्वारा विशेष अपील संख्या 1224 ऑफ 2018 और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील सं. 1442 सन 2020 में दर्ज किया गया निर्णय।

30. विशेष अपील क्रमांक 1224 सन 2018 (प्रबंधन बोर्ड, विंडसर पार्क रेजिडेंट्स

कल्याण संघ बनाम यूपी राज्य और अन्य) में दिनांक 11.03.2019 को दिया गया निर्णय

याचिकाकर्ता के पक्ष में नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 11.02.2020 को सिविल अपील नं.1442 ऑफ 2020 (प्रबंधन बोर्ड, विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम यूपी राज्य और अन्य) में। उक्त निर्णय का परीक्षण करते हुए (विशेष अपील क्रमांक 1224 ऑफ 2018) में इस न्यायालय की विद्वान खंडपीठ द्वारा दर्ज किये गए निर्णय से एक विपरीत दृष्टिकोण अपनाया और इस प्रकार अवधारित किया:

"8. इसलिए, हम आदेश दिनांकित 13.03.2018 जो उप रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसाइटीज एवं चिट्स, मेरठ द्वारा पारित किया गया और उससे उत्पन्न सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द करना उचित समझते हैं जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.11.2018 द्वारा एवं उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.03.2019 द्वारा इसकी पुष्टि की गई है और निर्देश देते हैं कि इस मामले पर रजिस्ट्रार द्वारा पुनर्विचार किया जाए और दोनों पक्षों को सुनने के बाद चुनाव

कराने के लिए उचित आदेश पारित किया जाए। चुनाव होने तक प्रश्नगत एसोसिएशन के प्रबंधन का कार्यभार रजिस्ट्रार या तो स्वयं या किसी विधिवत अधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से संभालेंगे। रजिस्ट्रार पार्टियों के उसके समक्ष उपस्थित होने की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर एक आदेश पारित कर सकते हैं। हम ये निर्देश भी देते हैं कि प्रबंधन बोर्ड के चुनाव कानून के अनुसार उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा आयोजित किए जाएं और पदाधिकारियों के लिए आगे भी चुनाव कानून के अनुसार उचित प्राधिकारी द्वारा कराए जाएं।

31. इस न्यायालय की विद्वान खण्डपीठ का निर्णय **विंडसर (उपरोक्त)** के सुप्रीम कोर्ट के फैसले में विलय हो गया है। [देखें: **कुन्हायमद और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य**]

IX. निष्कर्ष एवं दिशा-निर्देश

32. ये स्वीकृत तथ्य हैं कि 26.02.2022 को ही प्रबंधन बोर्ड में एक तिहाई पद भरने के लिए चुनाव हुए थे। प्रबंधन बोर्ड के $\frac{2}{3}$ सदस्य 2022 में हुए वार्षिक चुनाव से बचे रहे।

33. रिकॉर्ड में मौजूद तथ्य यह स्थापित करते हैं कि चुनाव की यह शांति और अवैध पद्धति 2021 से प्रचलन में है और इसकी वजह से प्रबंधन बोर्ड के कुछ सदस्य वार्षिक चुनाव लड़े बिना दो साल बोर्ड में बने रहें। इसके अलावा यह भी कोई निश्चितता से नहीं कहा जा सकता कि इन सदस्यों को चुनाव का सामना करना पड़ेगा। याचिकाकर्ता द्वारा अपनाए गए चुनाव की व्यवस्था एक

विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग पैदा करती है जो निर्वाचित कार्यालय में जमे हुए हैं लेकिन चुनावी प्रतिस्पर्धा से बचते हैं और निर्वाचित प्रतिनिधियों की जवाबदेही से इनकार करते हैं। विधायिका ने इस बुराई पर अंकुश लगाने के लिए अथक प्रयास किया तथा अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 पारित किया और इसके तहत 16 नवंबर, 2011 के मॉडल उपनियम अधिसूचित किए गए।

34. उपरोक्त कथानक के मददेनजर प्रबंधन बोर्ड के सभी 10 पदों को भरने के लिए चुनावों का न कराया जाना दिनांक 26.02.2022 को हुए चुनाव को अप्रभावी बनाता है। चुनाव दिनांकित 26.02.2022 अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 और उसमें अधिसूचित मॉडल उपनियमों दिनांकित 16 नवंबर 2011 के प्रावधान का उल्लंघन करते हैं अतः उन्हें आक्षेपित आदेश दिनांक 08.02.2023 द्वारा कानूनी रूप से रद्द किया गया था इसलिए नये सिरे से चुनाव कराने हेतु दिनांक 08.02.2023 का आक्षेपित आदेश दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

35. आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 उप रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटी एवं चिट्स, मेरठ प्रतिवादी क्रमांक 2 द्वारा विहित प्राधिकारी/उपमंडल मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के निर्देश एवं आदेश दिनांक 08.02.2023 के अनुपालन में जिसे बरकरार रखा गया है और सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 25(2) द्वारा प्रदत्त सोसायटी में चुनाव करवाने की शक्तियों के कानूनी इस्तेमाल में पारित किया गया। उक्त आदेश को दी गई चुनौती भी विफल अवधारित की जाती है।

36. न्याय के हित में यह न्यायालय उत्तरदाताओं को निम्नलिखित निर्देशों का पालन करने का आदेश देता है :

(I) प्रतिवादी नंबर 2-डिप्टी रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, मेरठ सोसायटी के प्रबंधन बोर्ड में 10 पदों को भरने के लिए चुनाव करवाएंगे। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों की अवधि के भीतर चुनाव की योजना को अधिसूचित किया जाएगा और चुनाव उसी तरीके से कराए जाएंगे जिस तरीके से फैसले के पहले भाग में चर्चा की गई है।

(II) जिला प्रशासन, सोसाइटी के निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण चुनाव कराए जाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करेगा।

(III) प्रबंधन बोर्ड में 10 पदों के लिए चुनाव भविष्य में प्रतिवर्ष इस निर्णय के आलोक में और अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 और इसके अंतर्गत अधिसूचित मॉडल उपनियम दिनांकित 16 नवंबर, 2011 के अनुसार आयोजित किये जाएंगे।

37. रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है और उपरोक्त टिप्पणियों के अधीन खारिज की जाती है।

38. रजिस्ट्री को इस आदेश की एक प्रति डिप्टी रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटीज एवं चिट्स, मेरठ को अनुपालन हेतु भेजने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 7 ILRA 386

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र,

के समक्ष

रिट-सी संख्या 19080 सन् 2023

प्रबंधन समिति, दारुल उलूम समाधिया और
अन्य। ...याचिकाकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य. ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता: श्री जीतेन्द्र कुमार सिंह, श्री अभिषेक भूषण, श्री अनिल भूषण (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री रफीक अहमद खान

ए. स्थानीय निकाय कानून - सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - उपनियमों में संशोधन - दिनांक 25.12.2021 की बैठक की वैधता पर सवाल - धोखाधड़ी करने का आरोप - प्रभाव - सहायक रजिस्ट्रार ने याचिकाकर्ताओं के कहने पर पंजीकृत पदाधिकारियों की सूची और सोसायटी के आरोपित उपनियमों को यह निष्कर्ष दर्ज करके खारिज कर दिया कि ये दस्तावेज फर्जी दस्तावेजों के आधार पर प्राप्त किए गए थे - वैधता को चुनौती दी गई - माना गया कि, एक बार जब कुदरत उल्लाह और अन्य ने इस आशय के हलफनामे प्रस्तुत किए थे कि दिनांक 25.12.2021 की बैठक सहित बैठकें वास्तव में आयोजित नहीं हुई थीं और बैठक में कथित रूप से उपस्थित व्यक्तियों के हस्ताक्षर फर्जी थे, तो सहायक

रजिस्ट्रार द्वारा न केवल 25.12.2021 की बैठक के संबंध में बल्कि उसके बाद आयोजित कार्यवाही के संबंध में भी टिप्पणियां करना उचित था। (पैरा 2 और 9)

रिट याचिका खारिज (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रेक्स बनाम डचेस ऑफ किंग्स्टन; 2 स्मिथ एल.सी. 687
2. किंच बनाम वालकॉट; 1929 अपील मामले 482
3. परांजपे बनाम कनाडे; आईएलआर 6 बॉम्बे 148
4. लक्ष्मी चरण साहा बनाम नूर अली; आईएलआर 38 कलकत्ता 936
5. मणींद्र नाथ मित्रा बनाम हरि मंडल; 24 कलकत्ता वीकली नोट्स 133
6. एस्माइल-उद-दीन बिस्वास एवं अन्य बनाम शजोरन नेसा बेवा एवं अन्य; 132 भारतीय मामले 897
7. नेमचंद टांटिया बनाम किशिनचंद चेलाराम (इंडिया) लिमिटेड; 63 कलकत्ता साप्ताहिक नोट्स 740
8. एस.पी. चेंगलवरया नायडू (मृत) एल.आर.एस बनाम जगन्नाथ (मृत) एल.आर.एस एवं अन्य; (1993) सप्लिमेंटरी 3 एस सी.आर. 422
9. राम प्रीति यादव बनाम उत्तर प्रदेश हाई स्कूल एवं इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड तथा अन्य; (2003) सप्लिमेंटरी 3 एस.सी.आर. 352
10. आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम टी. सूर्यचन्द्र राव (2005) 6 एस.सी.सी. 149

11. पैच बनाम वार्ड; 1867 (3) एल.आर. चांसरी अपील 203
12. भाऊराव दगडू परलकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2005) 7 एस.सी.सी. 605
13. हमज़ा हाजी बनाम केरल राज्य जे.टी. 2006 (8) एस.सी. 215

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अनिल भूषण, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री जितेंद्र कुमार सिंह ने की, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 3 का अधिवक्ता प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी को सुना।
2. वर्तमान रिट याचिका के तहत आदेश दिनांक 10.04.2023 को चुनौती दी गई है जिसके तहत सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, झाँसी ने 2023 की रिट सी संख्या 1887 (सी/एम दारुल उलूम) में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों को आगे बढ़ाया है। (समदिया और 2 अन्य बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य), ने याचिकाकर्ताओं के आदेश पर पंजीकृत पदाधिकारियों की सूची सोसायटी के विवादित उपनियमों के भी यह निष्कर्ष दर्ज करके रद्द किया गया कि इसे फर्जी दस्तावेजों के आधार पर प्राप्त किया गया था।
3. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कथन इस आशय का है कि सोसायटी के चुनाव वर्ष

2021 में सात पदाधिकारियों के एक निकाय से हुए थे और सूची 25.03.2022 को पंजीकृत की गई थी, जिसके बाद, उप-नियम में संशोधन किए गए थे। 11 पदाधिकारियों की सूची द्वारा कानून और इसे 30.12.2022 को सहायक रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा एक शिकायत दर्ज की गई थी और उसके बाद, शिकायत पर निर्णय लेने के लिए इस न्यायालय से एक निर्देश मांगा गया था और यह उक्त शिकायत के अनुसरण में है और यह निर्देश दिया गया है कि आदेश पारित किया गया है। आगे तर्क दिया गया है कि जहां तक शिकायत का सवाल है, यह दिनांक 25.12.2021 की बैठक के संबंध में थी कि उक्त बैठक कानून के अनुसार आयोजित नहीं की गई थी; सोसायटी के अध्यक्ष कुदरत उल्लाह को इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी और कार्यवाही में उनके हस्ताक्षर जाली थे। शिकायत में कई अन्य आरोप भी लगाए गए थे और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, शिकायत का दायरा दिनांक 25.12.2021 की बैठक की वैधता की जांच करने तक सीमित थी, जबकि, सहायक रजिस्ट्रार ने अपनी शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन करते हुए दायरे से परे जाने का आरोप लगाया है। शिकायत और वास्तव में, पहले के निर्णय की समीक्षा की गई है जिसके तहत पदाधिकारियों की सूची 25.03.2022 को पंजीकृत की गई थी और आगे की कार्यवाही 08.09.2022 और 07.10.2022 को आयोजित की गई थी।

4. दिनांक 25.12.2021 की बैठक के संबंध में यह तर्क दिया गया है कि उस समय सात सदस्य थे, जिनमें से पांच उपस्थित थे और इसलिए, कोरम पूरा होने के कारण, बैठक कानून के अनुसार आयोजित की गई थी और कुछ निर्णय लिए गए थे, जिसमें उपाध्यक्ष और प्रबंधक के इस्तीफे का निर्णय भी शामिल था, क्योंकि वे बीमार थे और अपने कर्तव्यों का पालन करने और निर्वहन करने में असमर्थ थे। आगे यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है और यहां तक कि प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा दायर किए गए दस्तावेज भी याचिकाकर्ताओं को प्रदान नहीं किए गए थे।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी ने रिट याचिका के 'अनुलग्नक संख्या 17' में निहित दिनांक 25.12.2021 की बैठक की कार्यवाही का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि उक्त कार्यवाही की प्रारंभिक दो पंक्तियाँ स्पष्ट रूप से बताती हैं कि बैठक सोसायटी के अध्यक्ष के रूप में कुदरत उल्लाह की अध्यक्षता में आयोजित की गई थी, लेकिन पूरी कार्यवाही में उनके नाम का कोई संदर्भ नहीं है, सिवाय इसके कि उन्हें फिर से निर्वाचित/नामांकित किया गया था। पदाधिकारियों की सूची में, कोर्ट को दिखाया गया कि पिछली बैठक की कार्यवाही भी उपाध्यक्ष ने पढ़ी थी और एजेंडा नंबर 2 भी उनके द्वारा ही रखा गया था। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि यदि कुदरत उल्लाह अध्यक्ष के रूप में बैठक में उपस्थित थे, तो उपराष्ट्रपति के लिए बैठक की कार्यवाही

संचालित करने का कोई अवसर नहीं था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि दिनांक 25.12.2021 की बैठक से पहले, मोहम्मद अनीस उपाध्यक्ष थे और उनके पिता नूर मोहम्मद प्रबंधक थे, जबकि उक्त बैठक में, इन दोनों पदों/पदाधिकारियों का पद उलट दिया गया था। बता दें कि नूर मोहम्मद को उपाध्यक्ष और मोहम्मद अनीस को प्रबन्धक चुना गया।

6. उन्होंने आगे कहा कि उक्त कार्यवाही के आधार पर, उप-कानूनों में संशोधन करने सहित बाद की कार्यवाही आयोजित की गई थी और चूंकि शिकायतकर्ताओं ने अपना आवेदन प्रस्तुत किया था। सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष इस आशय का शपथ पत्र दिया गया कि दिनांक 25.12.2021 की बैठक में कुदरत उल्लाह के हस्ताक्षर भी गढ़े गए और जाली थे, पूरी कार्यवाही शून्य थी।

7. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह तर्क देकर आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है कि एक बार जब याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई धोखाधड़ी शिकायत और प्रतिस्पर्धी उत्तरदाताओं द्वारा दायर दस्तावेजों के अनुसार सहायक रजिस्ट्रार के ध्यान में आ गई, तो बैठक दिनांक 25-12-2021 के अनुसरण में पूरी कार्यवाही, को रद्द करना उचित था।

8. पार्टियों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैंने पाया कि उपनियमों में संशोधन करने के साथ-साथ बाद की कार्यवाही आयोजित करने का आधार दिनांक 25.12.2021 की बैठक में हुआ है। उक्त दस्तावेज के अवलोकन से पता चलता है कि

इस तथ्य के अलावा कि बैठक कुदरत उल्लाह की अध्यक्षता में आयोजित की गई थी, यह उल्लेख किया गया था कि उपाध्यक्ष और प्रबंधक ने अपनी बीमारी और निर्वहन में असमर्थता के कारण अपना इस्तीफा सौंप दिया था। बैठक में कर्तव्यों एवं कार्यों के निष्पादन तथा उनके त्यागपत्र स्वीकार किये गये। आश्चर्य की बात यह है कि जिन व्यक्तियों के इस्तीफे स्वीकार कर लिए गए थे, उन्हें उसी बैठक में फिर से नामांकित किया गया, लेकिन पदाधिकारी पद के उलटे विवरण के साथ। न्यायालय इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करता है कि जब ये लोग अपने कर्तव्यों का पालन करने में सक्षम नहीं थे तो किसी ने उन्हें फिर से समिति/सोसायटी में शामिल करने के लिए क्यों प्रेरित किया।

9. उपरोक्त पहलू को नजरअंदाज करते हुए भी, मुझे लगता है कि एक बार कुदरत उल्लाह और अन्य लोगों ने इस आशय का शपथ पत्र प्रस्तुत किया था कि दिनांक 25.12.2021 की बैठक सहित बैठकें वास्तव में आयोजित नहीं की गई थीं और बैठक में कथित रूप से उपस्थित व्यक्तियों के हस्ताक्षर गढ़े गए थे, सहायक रजिस्ट्रार को न केवल दिनांक 25.12.2021 की बैठक के संबंध में टिप्पणियां करने में उचित ठहराया गया था, बल्कि इसके संबंध में भी उसके बाद की कार्यवाही।

10. यह सर्वविदित है कि धोखाधड़ी सबसे गंभीर कार्य को भी दूषित कर देती है। डी ग्रे, सी.जे. रेक्स बनाम डचेस ऑफ किंग्स्टन 12 स्मिथ एल.सी. 687] में देखा कि 'धोखाधड़ी' एक आंतरिक, संपार्श्विक कार्य है, जो न्याय की

अदालतों की सबसे गंभीर कार्यवाही को दूषित करता है। लॉर्ड कोक का कहना है कि यह चर्च संबंधी और लौकिक सभी न्यायिक कृत्यों से बचता है।

12. **केर ऑन फ्रॉड एंड मिस्टेक में**, यह कहा गया है कि "इस नियम को लागू करने में, यह मायने नहीं रखता कि आक्षेपित निर्णय किसी अवर या क्षेत्र के उच्चतम न्यायालय द्वारा सुनाया गया है, लेकिन सभी मामलों में यह समान है प्रत्येक न्यायालय, चाहे वह उच्च या निम्न हो, किसी भी निर्णय को अमान्य मानने के लिए सक्षम है जिसे स्पष्ट रूप से प्रकट धोखाधड़ी द्वारा प्राप्त किया गया दिखाया जा सकता है।"

13. यह भी स्पष्ट है जैसा कि **किंच बनाम वालकॉट [1929 अपील मामले 482]** में दर्शाया गया है कि कि यह धोखाधड़ी से दूषित डिक्ली के एक पक्ष की शक्ति में होगा कि वह सीधे अदालत में आवेदन कर सके जिसने उसे इसे खाली करने का आदेश दिया था। केर के अनुसार, "किसी निर्णय पर महाभियोग चलाने की कार्रवाई को बनाए रखने के लिए, वास्तविक धोखाधड़ी दिखाई जानी चाहिए; लंबी देरी के बाद सभी घटनाओं में केवल रचनात्मक धोखाधड़ी पर्याप्त नहीं है, लेकिन इस तरह के निर्णय को केवल इस सबूत के आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा कि फैसला झूठी गवाही से प्राप्त किया गया था।"

(सातवां संस्करण देखें, पृष्ठ 416-417)

14. **कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम, खंड 49, पैराग्राफ 265** में, यह है स्वीकार किया कि, "अभिलेख

न्यायालयों या सामान्य क्षेत्राधिकार के पास अपने स्वयं के निर्णयों को रद्द करने या रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति है"। अनुच्छेद 269 में, यह आगे कहा गया है, "निर्णय प्राप्त करने में धोखाधड़ी या मिलीभगत इसे खोलने या खाली करने के लिए पर्याप्त आधार है, यहां तक कि उस अवधि के बाद भी जिस पर इसे प्रस्तुत किया गया था, बशर्ते कि धोखाधड़ी मामले की सुनवाई के लिए बाहरी और संपार्श्विक हो न कि कोई कार्रवाई में वास्तव में या संभावित रूप से मुद्दा है।"

यह भी कहा गया है: "अदालत में की गई धोखाधड़ी हमेशा निर्णय को रद्द करने का आधार होती है, क्योंकि जहां अदालत को भौतिक परिस्थितियों के बारे में धोखा दिया जाता है या गुमराह किया जाता है, या इसकी प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप ऐसा निर्णय दिया जाता है जो नहीं होता। यदि मामले का पूरा आचरण निष्पक्ष रहा हो तो दिया जाए"।

15. **अमेरिकी न्यायशास्त्र, द्वितीय संस्करण, खंड 46, पैराग्राफ 825** में कहा गया है, "वास्तव में, किसी निर्णय के साथ धोखाधड़ी का संबंध किसी निर्णय के संचालन में इक्विटी कोर्ट द्वारा हस्तक्षेप के मुख्य कारणों में से एक है। इस तरह की राहत देने में इक्विटी की अदालतों की शक्ति अंतर्निहित है, और इस आधार पर निर्णयों के खिलाफ न्यायसंगत राहत के लिए लगातार आवेदन सामान्य कानून की अदालतों में नए मुकदमे देने की प्रथा शुरू होने से पहले इक्विटी में किए गए थे। जहां धोखाधड़ी शामिल है, वहां यह है कुछ मामलों में, यह माना गया है कि

अपील, त्रुटि, या सर्टिओरारी द्वारा कानून में एक उपाय फैसले से इक्विटी में राहत को नहीं रोकता है। न ही, यह कहा गया है, क्या कोई कारण है कि धोखाधड़ी से प्राप्त निर्णय विषय नहीं हो सकता है न्याय से संतुष्ट होने के बावजूद इक्विटी में कार्रवाई द्वारा सीधा हमला।"

16. भारत में कानून अलग नहीं है. **परांजपे बनाम कनाडे [आईएलआर 6 बॉम्बे 148]**, यह माना गया कि कोई भी न्यायालय किसी भी फैसले या आदेश को रद्द करने के लिए हमेशा सक्षम है, अगर यह साबित हो जाए कि ऐसा निर्णय या आदेश स्पष्ट धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था। **लक्ष्मी चरण साहा बनाम नूर अली (आईएलआर 38 कलकत्ता 936)**, यह माना गया कि धोखाधड़ी से प्रभावित होने के कारण पहले के निर्णय पर सवाल उठाने वाले मुकदमे की सुनवाई में न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल इस बात की जांच तक सीमित नहीं था कि क्या प्रतिवादी की धोखाधड़ी से वादी को पिछले मुकदमे में अपना मामला ठीक से रखने से रोका गया था। डिक्री की प्राप्ति में धोखाधड़ी हुई थी या नहीं यह निर्धारित करने के लिए न्यायालय को पूरे मामले की जांच करनी चाहिए।

17. **मणीन्द्र नाथ मित्रा बनाम हरि मंडल (24 कलकत्ता साप्ताहिक नोट्स 133)**, न्यायालय ने धोखाधड़ी से पूर्व निर्णय के खराब होने की दलील को बरकरार रखने से पहले साबित किए जाने वाले तत्वों की व्याख्या की। कोर्ट ने कहा-

"इस प्रश्न के संबंध में कि धोखाधड़ी क्या है जिसके लिए डिक्री को रद्द किया जा सकता

है, दो प्रस्ताव अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं। पहला यह है कि हालांकि यह दिखाने की अनुमति नहीं है कि न्यायालय (पूर्व मुकदमे में) से गलती हुई थी, यह दिखाया जा सकता है कि उसे गुमराह किया गया था, दूसरे शब्दों में जहां किसी पक्ष की धोखाधड़ी से न्यायालय को जानबूझकर गुमराह किया गया है, और अपना निर्णय प्राप्त करने के इरादे से न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की गई है, तो यह उसके निर्णय को खराब कर देगा। दूसरा यह है कि किसी डिक्री को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि इसे झूठे साक्ष्यों द्वारा प्राप्त किया गया है।"

18. **एस्माइल-उद-दीन बिस्वास और अन्य बनाम शाजोरान नेसा बेवा और अन्य [132 भारतीय मामले-897]** में उसी उच्च न्यायालय द्वारा स्थिति को दोहराया गया था। यह माना गया कि यह दिखाया जाना चाहिए कि अदालत में कार्यवाही के संबंध में धोखाधड़ी की गई थी और डिक्री को अदालत में किसी प्रकार की धोखाधड़ी का अभ्यास करके प्राप्त किया गया दिखाया जाना चाहिए। **नेमचंद टांटिया बनाम में. किशिनचंद चेलाराम (इंडिया) लिमिटेड [63 कलकत्ता साप्ताहिक नोट्स 740]**, यह माना गया था कि एक डिक्री को एक नई कार्रवाई द्वारा फिर से खोला जा सकता है जब इसे पारित करने वाली अदालत ने धोखाधड़ी से गुमराह किया हो, लेकिन इसे तब दोबारा नहीं खोला जा सकता जब न्यायालय बस गलत है; जब झूठे सबूतों पर भरोसा करके डिक्री पारित की गई, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अदालत को गुमराह किया गया था।

19. इस प्रश्न पर अधिकारियों को गुणा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह मामला विभिन्न अवसरों पर सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया है। **एस.पी. चेंगलवरैया नायडू (मृत) एलआर बनाम जगन्नाथ(मृत) एलआर एवं अन्य [(1993) पूरक 3 एससीआर 422]**, इसमें न्यायालय ने कहा कि,

"यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि अदालत में धोखाधड़ी करके प्राप्त कोई निर्णय या डिक्री कानून की नजर में अमान्य और गैर-स्थायी है। प्रथम न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा ऐसा निर्णय / डिक्री- है इसे हर अदालत द्वारा अमान्य माना जाएगा, चाहे वह श्रेष्ठ हो या निम्न। इसे किसी भी अदालत में चुनौती दी जा सकती है, यहाँ तक कि संपाश्विक कार्यवाही में भी।"

न्यायालय ने कहा कि उस मामले में उच्च न्यायालय पूरी तरह से गलती पर था जब उसने कहा कि वादी पर एक सच्चे मामले के साथ अदालत में आने और उसे सच्चे सबूतों से साबित करने का कोई कानूनी कर्तव्य नहीं था। माननीय न्यायमूर्तियों ने कहा, "कानून की अदालतें पक्षों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए हैं। जो भी अदालत में आता है, उसे साफ हाथ लेकर आना चाहिए। हम यह कहने के लिए बाध्य हैं कि अक्सर, अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपत्ति हड़पने वाले, कर चोर, बैंक ऋण चोर, और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्ति अदालत-प्रक्रिया को अवैध-लाभ को अनिश्चित काल तक बनाए रखने के लिए एक सुविधाजनक लीवर पाते हैं। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि एक व्यक्ति, जिसका मामला झूठ पर आधारित है, उसे न्यायालय जाने का कोई

अधिकार नहीं है। मुकदमे के किसी भी चरण में उसे सरसरी तौर पर बाहर किया जा सकता है।"

20. **राम प्रीति यादव बनाम उ०प्र० हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा और अन्य बोर्ड [(2003) सप्लिमेंट। 3 एससीआर 352]**, सर्वोच्च न्यायालय ने लाजरस एस्टेट्स लिमिटेड बनाम बेस्ली [(1956) 1 ऑल ईआर 341] से संबंधित मार्ग को उद्धृत करने के बाद और एलआर द्वारा एस.पी. चेंगलवरैया नायडू (मृत) एलआर जगन्नाथ (मृत) एलआर एवं अन्य में दोहराया कि धोखाधड़ी सभी न्यायिक कृत्यों से बचती है। **ए.पी. और अन्य राज्य बनाम टी. सूर्यचंद्र राव [(2005) 6 एससीसी 149]**, सुप्रीम कोर्ट ने पहले के फैसलों का हवाला देते हुए कहा कि किसी महत्वपूर्ण दस्तावेज को छिपाना भी अदालत के साथ धोखाधड़ी के समान हो सकता है। इसने **लाजरस एस्टेट्स लिमिटेड बनाम बेस्ली (उपरोक्त)** में लॉर्ड डेनिंग की टिप्पणियों को भी उद्धृत किया।

"न्यायालय का कोई भी निर्णय, किसी मंत्री का कोई भी आदेश, तब टिकने की अनुमति नहीं दी जा सकती अगर वह धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया हो। धोखाधड़ी सब कुछ उजागर कर देती है।"

21. **स्टोरीज़ इक्विटी ज्यूरिस्पूडेंस, 14वें संस्करण, खंड 1, पैराग्राफ 263** के अनुसार: "धोखाधड़ी वास्तव में, इक्विटी कोर्ट के अर्थ में, सभी कृत्यों, चूकों और छिपावों को उचित रूप से शामिल करती है जिसमें कानूनी या न्यायसंगत कर्तव्य, विश्वास, या विश्वास का

उल्लंघन शामिल है, उचित रूप से भरोसा किया गया है, और दूसरे के लिए हानिकारक है, या जिसके द्वारा दूसरे का अनुचित और अचेतन लाभ उठाया जाता है।"

22. **पैच बनाम वार्ड (1867 (3) एल.आर. चांसरी अपीलस 203], सर जॉन रोल्ट, एल.जे.** ने माना कि: "धोखाधड़ी वास्तविक सकारात्मक धोखाधड़ी होनी चाहिए, पार्टियों और न्यायालय को मामले के वास्तविक तथ्यों से अनभिज्ञ रखने के लिए एक सोची-समझी और जानबूझकर की गई साजिश होनी चाहिए, और उस युक्ति से उस डिक्री को प्राप्त करना।"

23. **भाऊराव दगडू परलकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य। [2005 (7) एससीसी 605]** में उच्चतम न्यायालय ने माना कि "किसी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ को छिपाना भी अदालत के साथ धोखाधड़ी के समान होगा। हालाँकि, लापरवाही धोखाधड़ी नहीं है, यह धोखाधड़ी का सबूत हो सकती है।"

24. उपरोक्त प्राधिकारियों पर शीर्ष न्यायालय द्वारा जेटी 2006 (8) एससी 215 में रिपोर्ट किए गए **हमजा हाजी बनाम केरल राज्य** के मामले में विचार किया गया है।

25. सहायक रजिस्ट्रार, हालांकि कानून की अदालत नहीं है, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत अर्ध न्यायिक या प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग करता है, इसलिए यहां ऊपर उल्लिखित कानून का अनुपात तत्काल रिट याचिका को जन्म देने वाली कार्यवाही पर भी लागू होगा।

26. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की यह दलील कि सहायक रजिस्ट्रार ने अपनी शक्ति और अधिकार क्षेत्र से परे यात्रा की है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय को प्रभावित नहीं करता है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा की गई शिकायत का दायरा दिनांक 25.12.2021 की बैठक की वैधता की जांच करना था और, एक बार, ठोस तर्क सौंपा गया था और जैसा कि इस न्यायालय ने उक्त कार्यवाही को ध्यान में रखते हुए देखा था कि यह कमजोरियों से भरा था मुझे आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं दिखता।

27. रिट याचिका में योग्यता नहीं है और तदनुसार, इसे **खारिज** कर दिया गया है।

(2023) 7 ILRA 392

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.07.2023

**माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा,
माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,
के समक्ष**

रिट-सी संख्या 24761 सन् 2003

श्रीमती चैन मुनि

...याचिकाकर्ता

बनाम

इलाहाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य

.....प्रत्यर्थीगण

**याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री जे.पी. पांडे
प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: श्री एस.के. द्विवेदी**

दीवानी कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 265 - उत्तर प्रदेश नगर नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 - धारा 15(2-ए) - प्राधिकरण विकास शुल्क, म्यूटेशन शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क लगाने का हकदार होगा - निर्णय: विकास प्राधिकरण मानचित्र स्वीकृत करते समय केवल बाह्य विकास शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क की मांग कर सकता है तथा विकास प्राधिकरण द्वारा कोई अन्य शुल्क/प्रभार नहीं मांगा जा सकता है। अन्य शुल्कों की वसूली, जिनका उल्लेख अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) के अंतर्गत नहीं है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 के अंतर्गत आती है। अनुच्छेद 265 स्पष्ट रूप से कानून के अनुसार और/या कानून के तहत प्रावधान के अलावा कर/शुल्क/प्रभार लगाने पर रोक लगाता है। विकास प्राधिकरण द्वारा जारी डिमांड नोटिस जिसमें याचिकाकर्ता को बाह्य विकास शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क के अलावा अन्य शुल्क और प्रभार जैसे परमिट शुल्क, सब-डिवीजन शुल्क, निरीक्षण शुल्क और खुले क्षेत्र का जुर्माना जमा करने के लिए कहा गया है, को रद्द कर दिया गया (पैरा 8, 9)

अनुमति दी गई। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मथुरा वृंदावन विकास प्राधिकरण एवं अन्य बनाम राजेश शर्मा एवं अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 530
2. श्री कृष्ण कांत वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के जिला न्यायाधीश के माध्यम से

सचिव नगर विकास एवं अन्य (रिट सी संख्या 9617 सन् 2010) दिनांक 24.05.2023

3. रवि अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश के जिला न्यायाधीश के माध्यम से सचिव एवं अन्य (रिट सी संख्या 36358 सन् 2013) दिनांक 4.7.2023

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह
देशवाल, द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षों के विद्वान वकील को सुना।
2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.5.2003 के मांग नोटिस को चुनौती दी है जो याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मानचित्र को मंजूरी देने के समय इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा उसे जारी किया गया था।
3. इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा जारी उक्त मांग नोटिस में परमिट शुल्क, जल शुल्क, स्टैकिंग शुल्क, उप-विभाजन शुल्क, विकास शुल्क, निरीक्षण शुल्क और खुला क्षेत्र जुर्माना की मांग की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने उपरोक्त मांग नोटिस को इस आधार पर चुनौती दी है कि विकास प्राधिकरण द्वारा केवल उन्हीं शुल्कों/फीस की मांग की जा सकती है जो यूपी शहरी योजना और विकास अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1973" कहा गया) के संदर्भ में हो।

इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि विकास प्राधिकरण द्वारा मानचित्र को मंजूरी देते समय केवल वही शुल्क/शुल्क लगाया जा सकता है जिसके लिए अधिनियम, 1973 धारा के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए विकास प्राधिकरण और राज्य सरकार को अधिकृत करता है अधिनियम, 1973 का 41 विकास प्राधिकरण को ऐसे शुल्क/शुल्क लगाने के लिए अधिकृत/अनुमति नहीं दे सकता है जो अधिनियम, 1973 में उल्लिखित नहीं हैं। अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"15(2-ए) प्राधिकरण विकास शुल्क, उत्परिवर्तन शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क ऐसे तरीके से और ऐसी दरों पर लगाने का हकदार होगा जैसा कि निर्धारित किया गया है: बशर्ते कि किसी ऐसे क्षेत्र के संबंध में, जो विकसित नहीं किया जा रहा है या प्राधिकरण द्वारा विकसित नहीं किया गया है, लगाई गई स्टैकिंग फीस की राशि उस स्थानीय प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दी जाएगी, जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर ऐसा क्षेत्र स्थित है।"

5. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने **मथुरा वृन्दावन विकास प्राधिकरण और एक और बनाम राजेश शर्मा और अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 530** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि धारा 15(2-ए) , 1973 अधिनियम में उल्लिखित आरोपों को छोड़कर, अर्थात् विकास शुल्क/प्रभार, उत्परिवर्तन शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क, के अलावा विकास प्राधिकरण

द्वारा कोई अन्य शुल्क नहीं लगाया जा सकता है।

6. हमने याचिकाकर्ता के वकील द्वारा संदर्भित मांग नोटिस और निर्णयों का अध्ययन किया है और याचिकाकर्ता के वकील के तर्क में बल पाया है कि विकास प्राधिकरण के पास बाहरी विकास शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क के अलावा अन्य शुल्क मांगने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) बहुत स्पष्ट रूप से उन शुल्कों को निर्धारित करती है जो विकास प्राधिकरण द्वारा लगाए जा सकते हैं जैसे विकास शुल्क, उत्परिवर्तन शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क, इसलिए, यहां तक कि राज्य सरकार भी धारा 41 अधिनियम, 1973 के तहत विकास प्राधिकरण को उन शुल्कों को लगाने के लिए निर्देश या अनुमति जारी नहीं कर सकता है जो अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) में उल्लिखित नहीं हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी **मथुरा वृन्दावन विकास प्राधिकरण (सुप्रा)** के निर्णय में पैराग्राफ संख्या 23, 24 और 25 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"23. इन परिस्थितियों में, अधिनियम, 1973 की धारा 41 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य विकास प्राधिकरणों को अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) के तहत प्रदान किए गए शुल्क/चार्जस के अलावा अन्य शुल्क लगाने की अनुमति/स्वीकृति देने वाले आदेश जारी नहीं कर सकता था। इस स्तर पर, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि धारा 15(2-ए) के तहत प्रदान की गई फीस/प्रभार की वसूली, उन सभी को अधिनियम, 1973 की धारा 2 के

तहत विशेष रूप से परिभाषित किया गया है। ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसे अन्य शुल्क लगाना भारत के संविधान के अनुच्छेद 265 से प्रभावित है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 265 के अनुसार, कानून और/या कानून के तहत दिए गए प्रावधानों के अलावा कोई कर/शुल्क/प्रभार नहीं लगाया जाएगा। इन परिस्थितियों में और उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने लेआउट योजना, उप-विभाजन शुल्क, प्रभाव शुल्क इत्यादि को मंजूरी देते समय निरीक्षण शुल्क/पर्यवेक्षण शुल्क लगाने के माध्यम से विभिन्न मांग नोटिसों को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

24. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों से, यूपी राज्य के विभिन्न विकास प्राधिकरणों द्वारा विकास शुल्क/फीस लगाए जाने की पुष्टि की जाती है। रेखा रानी (सुप्रा) (सिविल अपील संख्या 4489/2014) के मामले में विकास शुल्क/फीस की वसूली को रद्द करने और किनारे करने के उच्च न्यायालय के फैसले को इस हद तक रद्द किया जाता है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश, मंजूरी लेआउट योजना, उप-विभाजन शुल्क, प्रभाव शुल्क इत्यादि (इसके अलावा विकास शुल्क/फीस) प्रदान करते समय मांग नोटिस/अन्य शुल्क/शुल्क, की एतद्वारा पुष्टि की जाती है अर्थात् निरीक्षण शुल्क/पर्यवेक्षण शुल्क, को रद्द कर दिया गया है।

25. यह देखा गया है और निर्देशित किया गया है कि विकास शुल्क/फीस और धारा 15(2-ए) के तहत प्रदान किए गए शुल्कों के अलावा संबंधित मूल रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा पहले

ही भुगतान की गई कोई भी राशि, अब संबंधित मूल रिट याचिकाकर्ताओं को आज से बारह महीने की अवधि के भीतर, निश्चित रूप से विकास शुल्क/फीस समायोजित करने के बाद, प्रति वर्ष ब्याज 6% के साथ वापस कर दी जाएगी। यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने बेहतर शुल्क लगाने पर कुछ भी व्यक्त नहीं किया है, जो अन्यथा अधिनियम, 1973 की धारा 35 के तहत स्वीकार्य है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि रिफंड का आदेश केवल उन मूल रिट याचिकाकर्ताओं/व्यक्तियों के संबंध में लागू होगा जिन्होंने डिमांड नोटिस को चुनौती दी है और जो उच्च न्यायालय के समक्ष थे। यह भी देखा गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि यदि किसी व्यक्तिगत/मूल रिट याचिकाकर्ता के पास कोई अन्य शिकायत है, तो उनके लिए स्वतंत्र कार्यवाही के माध्यम से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना खुला होगा।"

7. इस न्यायालय ने श्री कृष्ण कांत वर्मा और अन्य बनाम स्टेट ऑफ यूपी थू सेक्रेटरी नगर विकास और अन्य (रिट सी नंबर 9617 ऑफ 2010) के फैसले में 24.05.2023 को और साथ ही रवि अग्रवाल बनाम स्टेट ऑफ यूपी थू सचिव और 4 अन्य (2013 की रिट सी संख्या 36358) को 4.7.2023 को फैसला सुनाते हुए मथुरा वृन्दावन विकास प्राधिकरण (सुप्रा) के फैसले पर भरोसा करते हुए समान मांग नोटिस को रद्द कर दिया था।

8. इस न्यायालय का सुविचारित विचार है कि अधिनियम, 1973 की धारा 15(2-ए) के तहत उल्लेखित नहीं किए गए अन्य लगाये गये

शुल्क भारत के संविधान के अनुच्छेद 265 से प्रभावित हैं क्योंकि अनुच्छेद 265 स्पष्ट रूप से कानून के अनुसार और/या कानून के तहत प्रदान किए गए को छोड़कर कर/शुल्क/फीस लगाने पर रोक लगाता है। इसलिए, विकास प्राधिकरण मानचित्र स्वीकृत करते समय केवल बाह्य विकास शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क की मांग कर सकता है और विकास प्राधिकरण द्वारा किसी अन्य शुल्क/फीस की मांग नहीं की जा सकती है।

9. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा जारी दिनांक 30.5.2003 को मांग नोटिस, जहां तक यह याचिकाकर्ता को बाहरी विकास शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क के अलावा अन्य शुल्क और फीस जमा करने के लिए कहता है, को रद्द कर दिया जाता है और नोटिस, जहां तक बाहरी विकास शुल्क, स्टैकिंग शुल्क और जल शुल्क की मांग करता है, वैध है और याचिकाकर्ता इसका भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

10. याचिकाकर्ता द्वारा की गई कोई भी जमा राशि, उन मदों के तहत, जिनके लिए इस न्यायालय द्वारा मांग नोटिस को रद्द कर दिया गया है, आज से तीन महीने की अवधि के भीतर, इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता को 6% प्रति वर्ष साधारण ब्याज के साथ वापस कर दिया जाय।

11. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका को स्वीकृति दी जाती है।

(2023) 7 ILRA 395

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

के समक्ष

धारा 482 संख्या 398 सन् 2023 के अंतर्गत

आवेदन

और

धारा 482 संख्या 8168 सन् 2023 के अंतर्गत

आवेदन

प्रभाकांत एवं अन्य

...आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

आवेदकगण के अधिवक्ता: श्री शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी, श्री अनुजराग दुबे

विपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं

- 161, 173(2) एवं 482 - उत्तर प्रदेश राजस्व

संहिता, 2006 - धाराएं 4(14), 67, 67(1),

67(2), 145 एवं 210 - सार्वजनिक संपत्ति

क्षति निवारण अधिनियम, 1984 - धाराएं

2(बी), 3, 3(2)ए, 4, 5 एवं 6:- धारा 482 के

तहत आवेदन - संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही के

साथ-साथ आरोप-पत्र और आक्षेपित समन

आदेशों को चुनौती देना - सरकारी भूमि पर

अतिक्रमण - प्रथम सूचना रिपोर्ट - विवेचना -

आरोप पत्र - क्या आरोप-पत्रित अभियुक्तों को

इस प्रकार आरोपित किया जा सकता है कि

उन्होंने केन्द्रीय सरकार/राज्य सरकार अथवा

किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण अथवा उसके उपक्रम की भूमि पर अतिक्रमण करके अनुचित रूप से अधिकार एवं कब्जा कर लिया अथवा शरात की - न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि - अपराध की गंभीरता और उसकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए जिसमें कोई आपराधिकता नहीं है और उपयुक्त उपाय यही होगा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 67 के तहत तथाकथित अतिक्रमणकारी के खिलाफ कार्यवाही की जाए और विवादित भूमि का सीमांकन कराया जाए - यह मामला पूरी तरह से संबंधित राजस्व प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में आता है कि वह कानून के प्रावधानों के अनुसार पूरी कार्रवाई करने के बाद जुर्माना, यदि कोई हो, लगा सकता है - माना, - पिछले अवसरों पर विभिन्न कार्यवाहियों में इस न्यायालय की विभिन्न पीठों के कम से कम एक दर्जन मामलों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है और मुद्रित प्रोफार्मा पर संज्ञान लेने की इस प्रथा की निंदा की है, लेकिन ऐसा लगता है कि संबंधित मजिस्ट्रेट इस न्यायालय के निर्देशों की बार-बार पूरी तरह से अवहेलना करते हुए अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना मुद्रित प्रोफार्मा पर संज्ञान ले रहे हैं - यह पूरी तरह से अस्वीकार्य है - परिणामस्वरूप, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत ये आवेदन (पैरा - 19, 22, 23, 24)

धारा 482 के तहत आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सार्वजनिक और निजी संपत्तियों के विनाश के संबंध में, बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य (2009 खंड 5 एससीसी 212)

2. कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2018 खंड 10 एससीसी 713),
3. अब्दुल रशीद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 एससीसी ऑनलाइन ऑलडी. 2819,
4. भूषण कुमार बनाम सेंट (एनसीटी ऑफ दिल्ली), 2012 खंड 5 एससीसी 424),
5. सुनील भारती मितल बनाम सीबीआई, एआईआर 2015 एससी 923.

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

(1) धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत इन दोनों आवेदनों में याचिकाकर्ता संबंधित निचली अदालतों द्वारा आरोपी-आवेदकों को सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3(2)ए के तहत समन/संज्ञान आदेशों की वैधता पर प्रश्न उठा रहे हैं। चूंकि दोनों याचिकाओं में एक समान विधिक प्रश्न शामिल है कि संबंधित मजिस्ट्रेटों द्वारा पारित संज्ञान में लिए गए आदेश विधि की नजर में टिकने योग्य नहीं हैं क्योंकि उन्हें न्यायिक बुद्धि के बिना मुद्रित प्रपत्र पर पारित किया गया है। इसलिए, इन परिस्थितियों में, इन दोनों याचिकाओं पर इस सामान्य निर्णय द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

(2) संबंधित आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग दुबे और नितिन शर्मा, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री सतेंद्र तिवारी, फ़राज़ काज़मी और अजय कुमार शर्मा को सुना गया। मामले के संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया गया।

(3) इसमें शामिल विवाद को समझने के लिए मुद्दे के तथ्यात्मक पहलुओं और संबंधित कार्यवाहियों पर गहन दृष्टि डालना आवश्यक है।

(4). धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 398/2023 के तथ्य:

वर्तमान आवेदन के माध्यम से इस न्यायालय की असाधारण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वाद संख्या 1588/2018 (राज्य बनाम भवरपाल सिंह एवं अन्य), दिनांक 20.6.2016 का आरोप पत्र, जो वाद अपराध संख्या 149/2016, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3(2)ए के अंतर्गत, थाना तिर्वा, जिला-कन्नौज से उत्पन्न है, की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की जा रही है, जो अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिला-कन्नौज के न्यायालय में लंबित है और दिनांक 27.10.2018 का समन/संज्ञान आदेश है।

(5) इस मामले का सार यह है कि आवेदक ने अन्य सह-ग्रामीणों के साथ मिलकर गाटा संख्या 2029 (मि.) क्षेत्रफल 0.490 हेक्टेयर पर स्थित तालाब की भूमि पर कथित रूप से अतिक्रमण कर लिया है। इस संबंध में विपक्षी संख्या 2 द्वारा दिनांक 22.3.2016 को 16.50 बजे आवेदक और 21 अन्य के विरुद्ध अज्ञात समय और घटना की तारीख के लिए प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी।

(ए) प्राथमिकी दर्ज होने के बाद मामले के जांच अधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा-नजरी तैयार किया। इसके अलावा, मामले

के जांच अधिकारी ने दिनांक 21.4.2016 को धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत तत्कालीन ग्राम प्रधान का बयान दर्ज किया। जांच अधिकारी ने मामले की गहराई से जांच किए बिना और विवादित भूमि की उचित माप किए बिना, बहुत ही सतही और औपचारिक तरीके से, दिनांक 20.6.2016 को धारा 173(2) सी.आर.पी.सी. के तहत एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। धारा 173(2) सी.आर.पी.सी. के तहत प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के बाद, आजकल प्रचलित प्रथा के अनुसार, विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कन्नौज ने एक मुद्रित प्रपत्र पर, रिक्त स्थान भरने के बाद, दिनांक 27.10.2018 को आवेदकों और अन्य के खिलाफ सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 (संक्षिप्तता के लिए इसे 'पीडीपीपी अधिनियम' के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 3(2) ए के तहत अपराधों का संज्ञान लिया है। आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपराध का संज्ञान लेते समय न्यायिक विवेक का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया गया है।

(बी) यहाँ यह बताना दिलचस्प है कि संबंधित मजिस्ट्रेट ने अपने संज्ञान आदेश में आरोपित अभियुक्तों का नाम तक नहीं लिया है और उन्हें आपराधिक मुकदमे का सामना करने के लिए नहीं कहा है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यह संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पूरी तरह से विवेक का प्रयोग न करने की पराकाष्ठा है, जिन्होंने संज्ञान आदेश में अभियुक्तों का नाम तक नहीं लिया है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़ता से प्रस्तुत किया है कि विभिन्न निर्णयों के

माध्यम से इस न्यायालय ने बार-बार एक मुद्रित प्रपत्र पर बहुत ही सतही और औपचारिक तरीके से संज्ञान लेने की इस प्रथा की निंदा की है। आगे यह भी कहा गया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट को कम से कम उन व्यक्तियों का नाम तो बताना चाहिए था जिनके खिलाफ वह पीडीपीपी अधिनियम की धारा 3(2)ए के तहत कथित अपराध के लिए मुकदमा चलाने जा रहे हैं। चूंकि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा जिस प्रकार से संज्ञान लिया गया था, उससे सभी आरोपी व्यक्तियों को यह पता नहीं था कि उनके विरुद्ध ऐसी कोई कार्यवाही लंबित है और यह पता चलने के बाद ही, सभी आरोपियों ने कथित संज्ञान आदेश की सत्यता के बारे में पूछताछ करने के लिए अपने स्थानीय अधिवक्ताओं से संपर्क किया है।

(6). आपराधिक विविध वाद संख्या 8168/2023 अंतर्गत धारा 482 के तथ्य :

वर्तमान 482 आवेदन में, नौ आवेदक हैं, जो संयुक्त रूप से आरोप पत्र संख्या 406/2018 दिनांक 03.09.2018 और आपराधिक वाद संख्या 8511/2022 (राज्य बनाम साजिद और अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही, वाद अपराध संख्या 0432/2018, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3 के अंतर्गत, थाना कैराना, जिला शामली से उत्पन्न, साथ ही दीवानी न्यायाधीश(प्रवर प्रभाग)/अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शामली द्वारा पारित संज्ञान और समन आदेश दिनांक 04.10.2018 पर हमला कर रहे हैं।

(क) अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि बालेश्वर दास (क्षेत्रीय लेखपाल) ने दिनांक 27.7.2018 को पुलिस स्टेशन कैराना, जिला शामली में एक प्राथमिकी दर्ज कराई थी, जिसे मुकदमा अपराध संख्या 0432/2018 के रूप में सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3 के तहत पंजीकृत किया गया था। प्राथमिकी से यह स्पष्ट है कि यह अशरफ और जमीला के नाम सहित 11 नामजद आरोपियों के रूप में पंजीकृत थी, जिनकी प्राथमिकी दर्ज होने से बहुत पहले मृत्यु हो गई थी। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, पुलिस ने एक सतही औपचारिक जांच की है और सूचक जाहिद और राजस्व निरीक्षक आशुतोष कुमार के बयानों को सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज करने के बाद अपना अभ्यास कार्य पूरा कर लिया है, जिन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया है, जैसा कि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है कि नामित आरोपियों ने खाता नंबर 176 से गुजरने वाले सार्वजनिक नाले और खाता नंबर 177 से गुजरने वाले चक रोड पर अतिक्रमण कर लिया है और उक्त अतिक्रमण वाली भूमि पर अपनी फसल उगा रहे हैं। इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें अतिक्रमण हटाने के लिए तहसीलदार द्वारा दी गई चेतावनी को नजरअंदाज कर दिया है, उन्होंने प्रश्नगत संपत्ति पर अपना कब्जा बनाए रखा है। मामले के जांच अधिकारी ने दिनांक 03.9.2018 को घटनास्थल का दौरा किया है और दर्ज किया है कि आरोपी व्यक्तियों की कृषि भूमि और सार्वजनिक नाले के साथ-साथ चक रोड के बीच कोई सीमांकन नहीं था। इससे, जांच अधिकारी ने अनुमान लगाया है

कि आरोपी व्यक्तियों ने भूमि पर अतिक्रमण किया है और उसी पर खेती कर रहे हैं। यह अनुमान शब्दशः निराधार और मनमाना है। हालांकि आरोपी व्यक्तियों ने अपनी कृषि भूमि को चक रोड और सार्वजनिक नाले से सटा हुआ पाया है, लेकिन कोई सीमांकन रेखा नहीं है, इसलिए, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि खेतों के साथ-साथ चक रोड को सीमांकित करने वाली सीमाएं धुंधली हो सकती हैं और इसकी पहचान सुनिश्चित नहीं की जा सकती है।

(ख) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि मामले के जांच अधिकारी के पास भूमि का सीमांकन करने के लिए कोई तंत्र नहीं है तथा प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्तगणों ने अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किया है तथा भूमि पर अतिक्रमण किया है। जांच अधिकारी से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह भूमि की भौतिक पैमाइश करेगा तथा उसका सीमांकन कराएगा। इस पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि सम्पूर्ण विवाद का मूल कारण विशुद्ध रूप से राजस्व विवाद है तथा इसमें कोई आपराधिकता नहीं जुड़ सकती है। परन्तु मामले के जांच अधिकारी ने प्राथमिकी के आरोपों को सुनिश्चित किए बिना ही निर्धारित रेखा पर कार्यवाही करते हुए आवेदकों के विरुद्ध दिनांक 3.9.2018 को पी.डी.पी.पी. अधिनियम की धारा 3(2)ए के अन्तर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया। तर्क यह है कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शामली द्वारा पुनः मुद्रित प्रपत्र पर यह उल्लेख किए बिना कि उनके

द्वारा किस धारा के अन्तर्गत संज्ञान लिया गया है, आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया गया। यह संज्ञान आदेश दिनांक 04.10.2018 को रिक्त स्थान भरने के बाद एक मुद्रित प्रपत्र पर पारित किया गया था, जो इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है कि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पूरी तरह से मष्तिष्क का उपयोग नहीं किया गया है। इस प्रथा की माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में निंदा की गई है, लेकिन ऐसा लगता है कि उन निर्णयों का संबंधित मजिस्ट्रेट के लिए कोई महत्व नहीं है और वह अभी भी पुराने तरीके से आगे बढ़ रहे हैं और संज्ञान ले रहे हैं।

विधिक चर्चा :

(7). उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों से, वर्तमान मामले में शामिल निम्नलिखित विधि प्रश्न विचारार्थ सामने आए हैं:

(i) क्या आरोप-पत्रित अभियुक्तों पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि उन्होंने केन्द्र सरकार/राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण या निगम या केन्द्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम या उसके उपक्रम द्वारा स्थापित संस्था की भूमि पर अतिक्रमण करके गलत कब्जा या हानि की है।

(ii) सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 के उद्देश्य और कारण।

(iii) सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3 तथा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता एवं नियमावली की धारा 67।

(iv) क्या मामले के जांच अधिकारी को प्रश्नगत भूमि पर वास्तविक भौतिक माप लेने तथा यह घोषित करने का अधिकार है कि आरोपी आवेदक ही भूमि के वास्तविक अतिक्रमणकर्ता थे।

(v) प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों को देखते हुए, इसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा विवादित भूमि की वास्तविक भौतिक माप के बाद ही ठीक किया जा सकता है।

(vi) क्या संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा रिक्त स्थान भरकर मुद्रित प्रपत्र पर अपराधों का संज्ञान लेना न्यायोचित था।

आइये इस मुद्दे के विधिक पहलुओं की एक-एक करके जांच करें।

(8) आवेदकों के खिलाफ प्राथमिकी में लगाए गए आरोप हैं कि वे स्थानीय प्राधिकरण से संबंधित विवादित भूमि पर गलत तरीके से कब्जा कर रहे हैं, यह तब तक हानि या गलत कब्जे के दायरे में नहीं आ सकता है, जब तक कि संबंधित अधिकारी द्वारा इसकी वास्तविक भौतिक माप नहीं की जाती है। जांच अधिकारी द्वारा तैयार की गई नक्शा-नजरी केवल इस तथ्य का वर्णन है कि आवेदक विवादित भूमि पर अपनी खेती कर रहे हैं, लेकिन जांच अधिकारी तब तक इसका फैसला नहीं कर सकते जब तक कि सक्षम राजस्व अधिकारी द्वारा माप की प्रक्रिया के बाद वास्तविक सीमांकन नहीं किया जाता है और इसकी पहचान स्थापित नहीं की जाती है। इस महत्वपूर्ण कड़ी के अभाव में, यह निश्चित रूप

से नहीं कहा जा सकता है कि आरोप-पत्रित आरोपियों ने अपनी सीमा का विस्तार किया है और दूसरों की भूमि पर अतिक्रमण किया है।

(9). सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 को लागू करने का मुख्य उद्देश्य और विचार दंगों और सार्वजनिक हंगामे के दौरान होने वाली तोड़फोड़ और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की गतिविधियों पर अंकुश लगाना है। अधिकारियों को सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने के मामलों से निपटने में सक्षम बनाने के लिए विधि को मजबूत करने की आवश्यकता महसूस की गई। पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 की धारा 2(बी) के तहत परिभाषित "सार्वजनिक संपत्ति" का अर्थ है कोई भी संपत्ति, चाहे वह अचल हो या चल (किसी भी तंत्र सहित) जो केंद्र या राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण या किसी निगम या केंद्र, प्रांतीय या राज्य अधिनियम या उसके उपक्रम द्वारा स्थापित किसी संस्था के स्वामित्व में हो या उसके कब्जे में हो या उसके नियंत्रण में हो। पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 की धारा 3 में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति जो उक्त धारा में उपधारा (2) में निर्दिष्ट प्रकृति सहित किसी भी 'सार्वजनिक संपत्ति' के संबंध में कोई कार्य करके हानि करता है, उसे पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 की धारा 3 की उपधारा (1) और उपधारा (2) के अनुसार संपत्ति की प्रकृति के आधार पर कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा। धारा 4 में आग या विस्फोटक पदार्थ द्वारा सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने वाली 'हानि' के लिए सजा का प्रावधान है। इस प्रकार,

पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 एक विशेष अधिनियम है, जो आंदोलन, बंद, हड़ताल आदि के नाम पर किसी भी दंगे या सार्वजनिक प्रदर्शन के दौरान विनाश या क्षति सहित बर्बरता का कोई कार्य करके उक्त अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत किए गए अपराध के लिए दंडित करने के लिए अधिनियमित किया गया है। पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 की धारा 2(ए) के तहत "हानि" को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 425 के समान है। धारा 6 एक अपवादी खंड है जो कहता है कि अधिनियम, 1984 इसके तहत किए गए अपराध को आच्छादित करता है और इसके प्रावधान किसी भी अन्य विधि के अतिरिक्त हैं जो इस अधिनियम के अलावा अपराधी के खिलाफ किसी भी कार्यवाही (चाहे जांच के माध्यम से या अन्यथा) के लिए प्रदान करता है या शुरू किया जा सकता है। अधिनियम, 1984 के तहत अपराध करने या आरोपी व्यक्ति द्वारा की गई जमानत के लिए प्रार्थना के निपटान के संबंध में विशेष प्रावधान पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 की धारा 5 के तहत प्रदान किए गए हैं। प्रावधान अपराध करने के दोषी पाए गए व्यक्ति को सार्वजनिक संपत्ति को हुए नुकसान या क्षति का भुगतान करने के लिए बाध्य करते हैं। इस प्रकार, यह अधिनियम, सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान, हानि या विनाश के विशिष्ट क्षेत्र को आच्छादित करता है तथा ऐसे नुकसान की वसूली उस व्यक्ति/व्यक्तियों से करता है, जो आंदोलन, बंद, हड़ताल आदि के नाम पर किसी सार्वजनिक प्रदर्शन के दौरान ऐसे नुकसान के लिए दोषी पाया जाता है।

(10) **सार्वजनिक और निजी संपत्तियों के विनाश बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, 2009(5) एस.सी.सी. 212** के वाद में विभिन्न घटनाओं को गंभीरता से लेते हुए, जहाँ आंदोलन, बंद, हड़ताल और इसी तरह के नाम पर बड़े पैमाने पर सार्वजनिक और निजी संपत्तियों को नष्ट किया गया था, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान कार्यवाही शुरू की गई थी और ऐसे मामलों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए पी.डी.पी.पी. अधिनियम के विधिक प्रावधानों को मजबूत करने पर सुझाव देने के लिए दो समितियों की नियुक्ति की गई थी। दो समितियों की सिफारिशों पर विचार किया गया और यह पाया गया कि सुझाव अत्यंत महत्वपूर्ण थे और वे पर्याप्त दिशानिर्देश हैं जिन्हें अपनाने की आवश्यकता है। उनके कार्यान्वयन के लिए प्रभावी कदम उठाने का काम उचित अधिकारियों पर छोड़ दिया गया।

(11) **कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 2018 (10) एससीसी 713** में हाल के एक फैसले में, उपयुक्त अधिकारियों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन करने और लागू करने के लिए एक परमादेश जारी करने की राहत मांगी गई थी, "सार्वजनिक और निजी संपत्तियों का विनाश:", बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शनों और प्रदर्शनों में सार्वजनिक और निजी संपत्तियों के विनाश को रोकने के लिए किए जाने वाले उपायों के संबंध में और इस तरह के प्रदर्शन और विरोध के दौरान सार्वजनिक और निजी संपत्तियों को हुए नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति तय करने और वसूलने के तौर-तरीकों के बारे में।

(12) **कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी** में यह माना गया कि उक्त निर्णय में उल्लेखित समिति की सिफारिशें इस मुद्दे की व्यापकता को दर्शाती हैं और यदि इन्हें पूरी तरह से लागू किया जाए तो व्यक्तियों और संपत्तियों के खिलाफ होने वाली हिंसा के अभिशाप को दूर करने में काफी मदद मिलेगी। जहां तक उक्त सिफारिशों के कार्यान्वयन का प्रश्न है, केंद्र ने राज्यों को सलाह दी है कि वे इसका अक्षरशः पालन करें। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त दोनों निर्णयों में की गई सिफारिशों को लागू करने के निर्देश जारी किए गए। **कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी** में केंद्र और राज्य सरकार दोनों को जल्द से जल्द ऐसा करने का निर्देश जारी किया गया।

(13) उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984 को लागू करने का अंतर्निहित उद्देश्य और विचार उन व्यक्तियों को लाभ प्रदान करना है या बड़े पैमाने पर विरोध, प्रदर्शन, हड़ताल, आंदोलन में सार्वजनिक और निजी संपत्तियों के विनाश को रोकने के लिए एक उपयुक्त उपचारात्मक कार्रवाई करना है और इस तरह सार्वजनिक और निजी संपत्तियों को नुकसान पहुंचाना है, **कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी** (उपरोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के अनुसार राज्य सरकारों को उपरोक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफारिशों को पूरा करने और लागू करने के लिए एक समिति बनाने की स्वतंत्रता दी गई थी। तदनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य ने भी संपत्ति के संबंध में हड़ताल, बंद, दंगे, सार्वजनिक

हंगामा, विरोध प्रदर्शन आदि के दौरान सार्वजनिक और निजी संपत्ति को हुए नुकसान की वसूली और जुर्माना लगाने के प्रावधान के उद्देश्य से "उत्तर प्रदेश सार्वजनिक और निजी संपत्ति को नुकसान की वसूली नियम, 2020" अधिसूचित किया है। उक्त नियमों में नुकसान की जांच करने तथा उससे संबंधित मुआवजा देने के लिए दावा न्यायाधिकरण के गठन का प्रावधान है।

(14) अब मुद्दे के एक अन्य पहलू पर आते हुए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए न्यायालय का ध्यान उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 67 के प्रावधानों की ओर आकर्षित किया है, जो ग्राम पंचायत की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने, दुर्विनियोजन और गलत कब्जे से बचाने की शक्ति के बारे में बताता है:-

(i) *जहां इस संहिता के उपबंधों के अधीन किसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकारी को सौंपी गई या सौंपी गई समझी गई कोई संपत्ति क्षतिग्रस्त हो जाती है या उसका दुर्विनियोजन हो जाता है, या जहां कोई ग्राम पंचायत या अन्य प्राधिकारी इस संहिता के उपबंधों के अधीन किसी भूमि पर कब्जा लेने का हकदार है और ऐसी भूमि पर उक्त उपबंधों के अनुसार नहीं बल्कि अन्यथा कब्जा किया जाता है, वहां भूमि प्रबंधक समिति या अन्य प्राधिकारी या संबंधित लेखपाल, जैसा भी मामला हो, निर्धारित तरीके से संबंधित सहायक जिलाधिकारी को सूचित करेगा।*

(ii) *जहां उपधारा (i) के अधीन प्राप्त सूचना से या अन्यथा सहायक*

जिलाधिकारी को यह विश्वास हो जाता है कि उपधारा (i) में निर्दिष्ट किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाया गया है या उसका दुर्विनियोजन किया गया है, या कोई व्यक्ति इस संहिता के उपबंधों के उल्लंघन में उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी भूमि पर अधिभोग कर रहा है, वहां वह संबंधित व्यक्ति को कारण बताने के लिए अधिसूचना जारी करेगा कि उससे अधिसूचना में विनिर्दिष्ट राशि से अधिक न होने वाली क्षति, दुर्विनियोजन या गलत अधिभोग के लिए प्रतिकर क्यों न वसूल किया जाए और उसे ऐसी भूमि से क्यों न बेदखल कर दिया जाए।

(iii) यदि वह व्यक्ति, जिसे उप-धारा (ii) के अधीन अधिसूचना जारी किया गया है, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट समय के भीतर या सहायक जिलाधिकारी द्वारा इस संबंध में दी गई विस्तारित अवधि के भीतर कारण बताने में असफल रहता है, या यदि दर्शाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है, तो सहायक जिलाधिकारी निर्देश दे सकता है कि ऐसे व्यक्ति को भूमि से बेदखल कर दिया जाए, और उस प्रयोजन के लिए वह ऐसा बल प्रयोग कर सकता है या करवा सकता है, जो आवश्यक हो, और निर्देश दे सकता है कि संपत्ति की क्षति या दुर्विनियोजन या गलत कब्जे के लिए, जैसा भी मामला हो, मुआवजे की रकम ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाए।

(iv) यदि सहायक जिलाधिकारी की राय है कि कारण बताने वाला व्यक्ति उपधारा (ii) के अधीन अधिसूचना में निर्दिष्ट

नुकसान या दुर्विनियोजन या गलत कब्जे कारित करने का दोषी नहीं है, तो वह अधिसूचना का उन्मोचन कर देगा।

(v) उपधारा (iii) या उपधारा (iv) के अधीन सहायक जिलाधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर जिलाधिकारी को अपील कर सकेगा।

(vi) इस संहिता के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, और इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस धारा के अधीन उपखंड अधिकारी का प्रत्येक आदेश, उपधारा (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

(vii) इस धारा के अधीन की गई किसी कार्रवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी, जैसी विहित की जाए।

स्पष्टीकरण.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "भूमि" शब्द में उस पर खड़े वृक्ष और भवन सम्मिलित होंगे।"

(15) इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2016 के नियम 67(1) के अन्तर्गत सहायक जिलाधिकारी का यह दायित्व है कि वह उचित समझे, जांच करें तथा निम्नलिखित मुद्दों के सम्बन्ध में आगे जानकारी प्राप्त करें:

(क) हुई क्षति या दुर्विनियोजन या गलत कब्जे का पूर्ण विवरण, जिसमें गांव, भूखंड संख्या, क्षेत्र, सीमा, क्षतिग्रस्त या दुर्विनियोजन की गई संपत्ति और उसका बाजार मूल्य का ब्यौरा शामिल हो;

(ख) ऐसी क्षति, दुर्विनियोजन या गलत कब्जे के लिए जिम्मेदार व्यक्ति का पूरा पता तथा माता-पिता का नाम;

(ग) गलत कब्जे, क्षति या दुर्विनियोजन की अवधि तथा संबंधित भूखंडों की मिट्टी का वर्ग;

(घ) क्षतिग्रस्त या दुर्विनियोजित संपत्ति का मूल्य, जिलाधिकारी द्वारा निर्धारित क्षेत्रीय दरों पर गणना की जाएगी तथा राशि क्षतिपूर्ति के रूप में वसूल की जायेगी।

(16). इस प्रकार, उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता के अनुसार, संबंधित क्षेत्र का सहायक जिलाधिकारी ही विवादित भूमि का सीमांकन करने तथा उसे आवेदक द्वारा अतिक्रमण घोषित करने में निर्णायक भूमिका निभाने वाला प्राधिकारी है। आपराधिक मामलों के जांच अधिकारी का इस कार्य से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं है। धारा 67(2) में सम्पूर्ण प्रक्रिया निर्धारित की गई है कि कथित अतिक्रमणकारी से उत्तर प्राप्त होने के पश्चात ही सहायक आयुक्त/उपखंड अधिकारी को संबंधित व्यक्ति द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से अधिक न होने का कारण बताते हुए आदेश पारित करना होता है। विवादित भूमि से बेदखली संबंधित व्यक्ति द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के निस्तारण के पश्चात ही दर्ज की जा सकती है, जिसमें प्राकृतिक न्याय के प्रमुख सिद्धांत के अनुरूप उक्त स्पष्टीकरण का निस्तारण करते हुए सुविचारित तथा सुस्पष्ट आदेश पारित किया जाना होता है। अधिनियम में स्वयं यह प्रावधान है कि संपत्ति के नुकसान या दुर्विनियोजन या गलत कब्जे के लिए मुआवजे की राशि, जैसा भी मामला

हो, ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाए के रूप में वसूल की जा सकती है। राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210, परिषद् या आयुक्त को अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा विनिश्चित किसी कार्यवाही का अभिलेख मंगाने की पर्यवेक्षी शक्ति प्रदान करती है, जिसमें कोई अपील नहीं होती है, ताकि वह ऐसे वाद या कार्यवाही में पारित किसी आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर सके।

(17). राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की कार्यवाही किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ की जा सकती है जो उस पर गलत तरीके से कब्जा कर रहा है या उक्त संपत्ति को नुकसान पहुंचाता है या उसका दुरुपयोग करता है। राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत बेदखली की कार्यवाही की प्रकृति, हालांकि, संक्षिप्त प्रकृति की है। दावा किए गए पक्षों के अधिकार, यदि किसी विवाद को जन्म देते हैं जिसमें तथ्य के प्रश्नों पर न्यायनिर्णयन की आवश्यकता होती है, तो ऐसे व्यक्ति के खिलाफ घोषणा के लिए वाद स्थापित किया जाना चाहिए। ग्राम सभा अपने अधिकार की घोषणा के लिए या कोई और राहत पाने के लिए यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 145 के तहत वाद स्थापित कर सकती है। इस तरह के वाद की स्थापना के मामले में, संबंधित न्यायालय द्वारा वाद की संपत्ति की बर्बादी, क्षति या अलगाव को रोकने के लिए एक अस्थायी निषेधाज्ञा दी जा सकती है। राजस्व संहिता, 2006 एक विशेष अधिनियम है जो संहिता की धारा 4(14) के अंतर्गत

परिभाषित 'भूमि' से संबंधित विधि का प्रावधान करता है।

(18) जहां तक ग्राम सभा की भूमि पर अवैध अतिक्रमण, क्षति या अतिचार के लिए आपराधिक कार्यवाही का संबंध है, वह की जा सकती है, लेकिन यह विवादित भूमि पर पक्षों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन के अधीन होगी क्योंकि उक्त निर्धारण केवल राजस्व न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है।

मुद्रित प्रपत्र पर गुप्त/आह्वाहन आदेश की वैधता:

(19). उपरोक्त के अतिरिक्त, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान उस विवादित आह्वाहन आदेश की ओर आकर्षित किया है जिसके तहत संबंधित मजिस्ट्रेट ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के बार-बार निर्देशों के बावजूद, मुद्रित प्रपत्र पर अपराधों का संज्ञान लेकर पुरानी परंपरा का पालन किया है। यहां यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि पिछले अवसरों पर विभिन्न कार्यवाहियों में इस न्यायालय की विभिन्न पीठों के कम से कम एक दर्जन मामलों ने मुद्रित प्रपत्र पर संज्ञान लेने की इस प्रथा की निंदा की है, लेकिन ऐसा लगता है कि संबंधित मजिस्ट्रेट इस न्यायालय के निर्देशों की बार-बार पूरी तरह से अवहेलना करते हुए अभी भी अपने न्यायिक मष्तिष्क का इस्तेमाल किए बिना मुद्रित प्रपत्र पर संज्ञान ले रहे हैं। यह पूरी तरह से अस्वीकार्य है और इसकी कड़े शब्दों में निंदा की जाती है। संबंधित सत्र प्रभागों के सत्र न्यायाधीशों से

अपेक्षित है कि वे इस मामले को देखें और एक विशिष्ट आदेश जारी करें कि संज्ञान आदेश में न्यायिक मष्तिष्क का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

(20). माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अब्दुल रशीद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद 2819** के मामले में यह उल्लेख किया है, जिसमें यह माना गया है कि न्यायिक आदेश को यांत्रिक तरीके से पारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, चाहे वह मुद्रित प्रपत्र में रिक्त स्थान भरकर हो या सादे कागज़ पर आदेश की पूर्वनिर्मित मुहर आदि चिपकाकर। ऐसी प्रवृत्ति की निंदा की जानी चाहिए और इसे जारी रहने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह न केवल मामले के तथ्यों के प्रति न्यायिक मानसिकता की कमी को दर्शाता है, बल्कि स्थापित न्यायिक मानदंडों के भी विरुद्ध है।

(21). इसी तरह **भूषण कुमार बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), 2012 5 एससीसी 424** के मामले में, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को आह्वाहन पत्र जारी करने के कारणों को स्पष्ट रूप से बताने के लिए बाध्य नहीं करती है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, तो आह्वाहन पत्र जारी किया जा सकता है। "कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार" अभिव्यक्ति के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सुनील भारती मित्तल बनाम**

केंद्रीय जांच ब्यूरो, एआईआर 2015 एससी 923 के मामले में निम्नानुसार माना है:

"47. हालांकि, धारा में वर्णित "कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार" शब्द अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द ही हैं जो पर्याप्त रूप से सुझाव देते हैं कि उचित विचार-विमर्श के बाद ही कोई राय बनाई जानी चाहिए कि उक्त अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और ऐसी राय बनाने का उल्लेख आदेश में ही किया जाना चाहिए...."

(22). जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपराध की गंभीरता और उसकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जिसमें कोई आपराधिकता नहीं है, उचित उपाय यही होगा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 67 के तहत दोषी तथाकथित अतिक्रमणकारी के खिलाफ कार्यवाही की जाए और विवादित भूमि का सीमांकन कराया जाए। यह मामला विशेष रूप से संबंधित राजस्व अधिकारी के अधिकार क्षेत्र में आता है कि वह उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 67 के तहत विधि के प्रावधानों के अनुसार पूरी प्रक्रिया के बाद जुर्माना, यदि कोई हो, लगाए।

(23). इस प्रकार, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुनने के पश्चात तथा उपर्युक्त मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों और विधि की सहायता से तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, मुझे सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के तहत इन आवेदनों को स्वीकार करने

तथा विवादित आहवाहन पत्र /संज्ञान आदेशों के साथ-साथ इसमें चुनौती दी गई कार्यवाही को रद्द करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। तदनुसार, आरोपित आहवाहन पत्र /संज्ञान आदेश दिनांक 27.10.2018 तथा मुकदमा संख्या 1588/2018 (राज्य बनाम भवरपाल सिंह एवं अन्य) की सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही, आरोप पत्र दिनांक 20.6.2016, जो मुकदमा अपराध संख्या 149/2016, धारा 3(2)ए सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, थाना तिर्वा, जिला-कन्नौज से उत्पन्न है, जो अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिला-कन्नौज के न्यायालय में लंबित है तथा दीवानी न्यायाधीश (प्रवर प्रभाग)/अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शामली द्वारा पारित आहवाहन पत्र/संज्ञान आदेश दिनांक 04.10.2018 तथा फौजदारी मुकदमा संख्या 8511/2022 (राज्य बनाम साजिद एवं अन्य) की सम्पूर्ण कार्यवाही, जो मुकदमा अपराध संख्या 406/2018 दिनांक 03.09.2018 से उत्पन्न है सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3 के अंतर्गत पुलिस स्टेशन कैराना, जिला शामली में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 0432/2018 को निरस्त किया जाता है।

(24). धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत वर्तमान आवेदन स्वीकार किए जाते हैं। इस आदेश की टिप्पणियों का सख्ती से पालन करने के बाद, अगले चार महीनों के भीतर संबंधित अदालत द्वारा नए सिरे से विचार करने के लिए मामले को वापस भेजा जाता है।

(2023) 7 ILRA 404

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

के समक्ष

धारा 482 संख्या 1968 सन् 2018 के अंतर्गत
आवेदन

काजिम मेहंदी

...आवेदक

बनाम

जुबेदिया बेगम एवं अन्य

... विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता: विजय कुमार पांडे

विपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता,
अनिल कुमार शर्मा, अरविंद कुमार, बजुल
सिद्दीकी, मोहम्मद अब्बास जैदी, शिवेंद्र प्रताप
सिंह

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156 (3), 200, 202 और 482 - यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 210, 171 और 172: - धारा 482 के तहत आवेदन - आवेदक के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को चुनौती देना - शिकायत - जाली और मनगढ़ंत मृत्यु प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का आरोप - एक विवाद की कार्यवाही के दौरान जो पूरी तरह से दीवानी प्रकृति का है और पक्षों के बीच कई मुकदमे लंबित हैं - न्यायालय को पता चलता है कि, - प्रथम दृष्टया पक्षों के बीच दीवानी विवाद लगता है लेकिन जहां तक मृत्यु प्रमाण पत्र तैयार करने की बात है, यह

जानबूझकर और बेईमानी से तैयार किया गया था, इसलिए इसे रद्द कर दिया गया - माना गया, - यह सामान्य कानून है कि गवाहों की गवाही की इस न्यायालय द्वारा जांच नहीं की जा सकती है और उन गवाहियों को निराधार पाते हुए मुकदमे का भाग्य तय करना इस स्तर पर उचित नहीं है और इसके अलावा आपराधिक और दीवानी कार्यवाही चल सकती है क्योंकि इसके अलग-अलग परिणाम हैं - इसलिए, अदालत को इस मामले में कोई गुण-दोष नहीं मिला - तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 21, 22, 23, 24

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई -11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. देवेंद्र और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य (2009 खंड 7 एससीसी 495),
2. इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य (2007 सीओएल 12 एससीसी 1),

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय कुमार पांडे, विपक्षी के लिए श्री अनिल कुमार शर्मा और बजुल कमर सिद्दीकी, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री निर्मल कुमार पांडे को सुना और अभिलेखों पर प्रस्तुत तथ्यों का अवलोकन किया।

2. आपराधिक वाद संख्या 6395/2017, श्रीमती जुबेदा बेगम बनाम काजिम मेहंदी में

न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्याय कक्ष संख्या- 2, सीतापुर द्वारा दिनांक 06.03.2018 को पारित आदेश को रद्द करने के लिए प्रार्थना के साथ तत्काल आवेदन दायर किया गया है, और आपराधिक मामला संख्या 6395/2017, श्रीमती जुबेदा बेगम बनाम काज़िम मेहंदी में न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्याय कक्ष संख्या- 2, सीतापुर द्वारा दिनांक 06.03.2018 को पारित आदेश के संचालन और कार्यान्वयन पर रोक लगाने की प्रार्थना की गई है।

3. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि दिनांक 15.04.1990 को, नगर पालिका परिषद, महमूदाबाद, सीतापुर के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन के आधार पर, तकी हुसैन की मृत्यु के संबंध में याचिकाकर्ता को जारी किए गए मृत्यु प्रमाण पत्र के संबंध में जांच की गई थी, जिसमें तकी हुसैन की मृत्यु की तारीख दिनांक 02.04.1993 दर्शाई गई थी। उन्होंने आगे कहा कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि राजा हुसैन की बेटी की मृत्यु दिनांक 06.04.2007 को हुई थी और तहसीलदार ने कुछ गलत धारणा के तहत और यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 171 और 172 के प्रावधानों को गलत तरीके से पढ़ते हुए तकी हुसैन को उत्तराधिकारी मान लिया है, जो कनीज राजा की मृत्यु की तारीख पर जीवित नहीं थे, इसके बाद आवेदक-याचिकाकर्ता ने तहसीलदार के दिनांक 27.01.2015 के आदेश के खिलाफ यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 210 के तहत मामला दायर किया, जिससे यह

मुद्दा उठा कि कनीज राजा की मृत्यु की तारीख यानी दिनांक 07.04.2007 को जो उत्तराधिकार खुला था, उस समय तकी हुसैन जीवित नहीं थे। अतः वर्तमान आवेदक बहन का पुत्र होने के नाते कनीज हसन की मृत्यु के समय जीवित था और इस प्रकार निकटतम वारिस होने के नाते विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अपील स्वीकार कर ली और तहसीलदार द्वारा दिनांक 27.01.2015 को पारित आदेश को रद्द कर दिया और उसी के विरुद्ध पुनरीक्षण दाखिल किया गया जिसे पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 07.09.2015 को खारिज कर दिया और उसके बाद दिनांक 26.05.2015 को नामांतरण का दावा भी उठाया गया। उन्होंने कहा कि इस बीच नगर पालिका परिषद के पूर्व अध्यक्ष की मिलीभगत से जारी किया गया मृत्यु प्रमाण पत्र रद्द करवा दिया गया और उसके विरुद्ध वर्तमान आवेदक ने इस न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की है जो विचाराधीन है। उन्होंने कहा कि चूंकि वर्तमान आवेदक मृतक कनीज राजा के निकटतम वारिस हैं और इसलिए उनके पक्ष में कोई जाली या मनगढ़ंत मृत्यु प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि वास्तव में यह एक ऐसा विवाद है जो पूरी तरह से दीवानी प्रकृति का है और पक्षों के बीच कई मुकदमे लंबित हैं और इस मुद्दे पर अंतिम रूप से फैसला होने के बाद ही इसका फैसला किया जा सकता है जो विभिन्न चरणों में विचाराधीन है।

4. इस तथ्य पर आगे ध्यान देते हुए कि दिनांक 06.03.2018 का आदेश तथ्यों पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किए बिना पारित किया

गया है क्योंकि विद्वान विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है कि वर्तमान आवेदक मृतक का निकटतम उत्तराधिकारी है और इस प्रकार, कनीज़ राजा की मृत्यु के बाद, उसने नामांतरण के लिए आवेदन किया।

5. उन्होंने कहा कि विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को भी नजरअंदाज कर दिया है कि वर्तमान आवेदक के लिए किसी भी प्रकार का जाली या मनगढ़ंत मृत्यु प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि विधि के अनुसार वह मृतक का विधिक उत्तराधिकारी है। अपनी दलील जोड़ते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 06.03.2018 का आदेश पूरी तरह से कारण बताए बिना पारित किया गया है।

6. अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, उन्होंने देवेन्द्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2009) 7 एस.सी.सी. पेज 495 में प्रतिवेदित निर्णय पर भरोसा रखा है और उपखण्ड 24 का हवाला दिया है।

7. उपखण्ड 24 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

विधि के उपर्युक्त प्रस्तावों के संबंध में कोई विवाद नहीं है। हालांकि, अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि उच्च न्यायालय आमतौर पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप, भले ही अंकित मूल्य पर दिए गए हों और पूरी तरह से सही माने गए हों, कोई अपराध नहीं

बनाते हैं। जब प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप या जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य अपराध के तत्वों को संतुष्ट नहीं करते हैं, तो उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को आपराधिक न्यायालय में बिना वजह परेशान करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे।

8. पूर्वोक्त का हवाला देते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकांशतः यह माना है कि उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को यदि कोई सार नहीं है तो आपराधिक न्यायालय में परेशान करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे

9. उन्होंने इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य (2007) 12 एस.सी.सी. 1 में प्रतिवेदित निर्णय का अवलम्बन लिया है और उपखण्ड 42 का हवाला दिया है।

10. उपखण्ड 42 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

उपरोक्त खंड को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि परिभाषा में दो अलग-अलग प्रकार के कार्य हैं जिन्हें करने के लिए धोखे में आए व्यक्ति को प्रेरित किया जा सकता है। पहले प्रकार के कार्यों में उसे किसी व्यक्ति को संपत्ति देने के लिए धोखे से या बेईमानी से प्रेरित किया जा सकता है। दूसरे प्रकार के कार्यों में कुछ ऐसा करना या न करना शामिल है, जिसे धोखा दिया गया व्यक्ति नहीं करता या करने से नहीं चूकता, अगर उसे ऐसा धोखा न दिया गया होता। पहले

प्रकार के मामलों में, प्रेरित करना धोखाधड़ी या बेईमानी से होना चाहिए। दूसरे प्रकार के कार्यों में, प्रेरित करना जानबूझकर किया जाना चाहिए, लेकिन धोखाधड़ी या बेईमानी से होना जरूरी नहीं है। किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि वादा करते समय उसका इरादा धोखाधड़ी या बेईमानी का था। बाद में वादा पूरा न करने से यह नहीं माना जा सकता कि उसका शुरू से ही वादा तोड़ने का दोषपूर्ण इरादा था।

11. उपर्युक्त का हवाला देते हुए, उन्होंने कहा कि इरादा किसी व्यक्ति के आपराधिक और नागरिक कृत्य को दर्शाने के लिए एक महत्वपूर्ण बिंदु है। उन्होंने कहा कि सर्वोच्च न्यायालय ने भी माना है कि धोखाधड़ी और छल को एक बार किया गया कहा जा सकता है, ऐसे व्यक्ति का धोखाधड़ी या बेईमान इरादा था। उन्होंने कहा कि आवेदक द्वारा किसी लाभ के संबंध में कोई सवाल ही नहीं था और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि कथित अपराध करने के लिए आवेदक का कोई आपराधिक इरादा था।

12. अपनी दलील का समापन करते हुए उन्होंने कहा कि चूंकि मामला दीवानी वाद के तहत विचाराधीन है और विद्वान विचारण न्यायालय ने उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना कि मामला पूरी तरह से दीवानी प्रकृति का है और दिनांक 06.03.2018 को आदेश पारित कर दिया है, इसलिए उसे रद्द किया जा सकता है।

13. विपक्षी के अधिवक्ता ने पूर्वोक्त दलीलों का पुरजोर विरोध किया है और कहा है कि वर्तमान आवेदक ने नामांतरण के लिए एक आवेदन दिया था, जिसके तहत तकी हुसैन का मृत्यु प्रमाण पत्र संलग्न किया गया था। उन्होंने कहा कि एक बार जब इसे दीवानी न्यायाधीश, कनिष्ठ श्रेणी, महमूदाबाद, सीतापुर के न्यायालय में चुनौती दी गई, तो तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद दिनांक 12.05.2015 को आदेश पारित किया गया, जबकि इस तथ्य पर चर्चा की गई कि तकी मोहम्मद का मृत्यु प्रमाण पत्र फर्जी है जो की नामांतरण प्रार्थनापत्र के क्रियान्वयन के समय प्रस्तुत किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 13.07.2023 का पूरक हलफनामा दिया है जिसमें निर्णय और आदेश दिनांक 12.05.2015 की छायाप्रति संलग्न है, जिसे अभिलेख पर लिया गया है।

14. सुनवाई के दौरान ध्यान आकर्षित किया गया कि विचारण न्यायालय ने नगर पालिका परिषद, मेदमुदाबाद, सीतापुर के कार्यकारी अधिकारी को तकी हुसैन के मृत्यु प्रमाण पत्र के संबंध में अपनी आख्या प्रस्तुत करने का निर्देश दिया और उसके जवाब में, यह सूचित किया गया कि वर्तमान आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया मृत्यु प्रमाण पत्र जाली है और उसे रद्द कर दिया गया है। पूर्वोक्त आदेश के प्रासंगिक अनुच्छेद को यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

यदि वादीगण एवं प्रति वादी गण के द्वारा प्रस्तुत अभि लेखीय साक्ष्य प उनके द्वारा प्रस्तुत तर्कों को देखा जाए तो प्रस्तुत बाद में

श्री तकी हुसैन के सम्बन्ध में प्रति वादी गण द्वारा मृत्यु प्रमाण पत्र 42 ग-1 दाखिल किया गया है। जिसमें श्री तकी हुसैन की मृत्यु की तिथि 15.04.1990 अंकित है। जबकि वादीगण द्वारा तकी हुसैन का मृत्यु प्रमाण पत्र 48 ग-1 दाखिल किया गया है, जिसमें उनकी मृत्यु की तिथि दि० 02.04.1993 अंकित है। न्यायालय द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए अधिशाषी अधिकारी नगर पालिका परिषद महमूदाबाद सीतापुर को पत्र का० सं० 60 ग-2 में लिखा गया कि जो उभय पक्ष द्वारा एक ही व्यक्ति तकी हुसैन के दो मृत्यु प्रमाण पत्र दाखिल किये गये हैं, उनकी प्रमाणिकता क्या है। इसके अलोक में अधिशाषी अधिकारी नगरपालिका परिषद महमूदाबाद, सीतापुर की आख्या 61 ग-2 प्राप्त हुआ, जिन्होंने अपनी आख्या दी कि श्री तकी हुसैन के मृत्यु की तिथि 15.04.1990 गलत है, इस मृत्यु प्रमाण पत्र को कार्यालय के पत्र सं० 125 दि० 26.03.2015 द्वारा निरस्त किया जा चुका है। इस प्रकार श्री तकी हुसैन के मृत्यु की तिथि 02.04.1993 ही सही है तथा मृत्यु की तिथि 15.04.1990 पूर्णतया गलत है।

15. इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने दलील दी कि निर्णय और कार्यकारी अधिकारी की आख्या से प्रथम दृष्टया स्पष्ट है कि तकी मोहम्मद का मृत्यु प्रमाण पत्र, जो पेश किया गया था, जाली पाया गया और इसलिए, उसके बाद शिकायतकर्ता द्वारा जो शिकायत दर्ज की गई, उसे शिकायत मामले के रूप में माना गया, शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान दर्ज किए गए और तकी मोहम्मद के जाली मृत्यु प्रमाण

पत्र तैयार करने के संबंध में आरोप के संबंध में कोई विचलन नहीं है।

16. विपक्षी के उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि आदेश दिनांक 06.03.2018 के प्रथम दृष्टया अवलोकन से यह पता चलता है कि तथ्य और कारणों पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। उन्होंने आगे कहा कि आदेश पारित करते समय विद्वान विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान पर भी गौर किया है, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज किया गया था।

17. तर्कों का समापन करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आपराधिक और दीवानी कार्यवाही एक साथ चल सकती है, और एक बार जब कार्यकारी अधिकारी की आख्या से प्रथम दृष्टया यह पता चलता है कि मृत्यु प्रमाण पत्र जाली है और उसे रद्द कर दिया गया है, तो विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 06.03.2018 को पारित आदेश, विधि के प्रावधानों का पालन करते हुए रद्द किया जाता है और इस प्रकार, इसे अपास्त नहीं किया जा सकता।

18. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों का कड़ा विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.03.2018 के आदेश का विरोध किया गया है और लगभग पांच साल बीत चुके हैं और दिनांक 12.01.2023 के बाद, इस आवेदन में कोई

अंतरिम आदेश नहीं है। अपनी दलील जोड़ते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आपराधिक कार्यवाही से ही यह स्पष्ट है कि आवेदक द्वारा जाली प्रमाण पत्र तैयार किया गया था और बाद में इसे नगर पालिका परिषद के कार्यकारी अधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया था, इसके अलावा गवाहों और शिकायतकर्ता के बयान बरकरार हैं और उनमें कोई विचलन नहीं लगता है। इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय के पास शिकायतकर्ता और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज गवाहों के बयान पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है यानी मृत्यु प्रमाण पत्र तैयार करने के बाद आपराधिक इरादा प्रथम दृष्टया स्पष्ट है कि इसे गलत लाभ के लिए तैयार किया गया था और इस प्रकार, इस स्तर पर यह तय नहीं किया जा सकता है कि गवाहों और शिकायतकर्ता का बयान गलत है क्योंकि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.03.2018 के आहूत आदेश में कोई त्रुटि नहीं है।

19. अपने तर्कों को आगे रखते हुए, उन्होंने कहा कि इस न्यायालय के समक्ष तथ्यात्मक विवाद उठाया गया है, जिस पर इस स्तर पर विचार नहीं किया जा सकता और उसकी जांच नहीं की जा सकती तथा इसके अलावा, दीवानी और आपराधिक कार्यवाही के अपने परिणाम हैं और यह एक साथ चल सकता है क्योंकि इस बिंदु पर विधि बहुत स्पष्ट है, दीवानी मामले के संबंध में पक्षों के बीच कोई विवाद हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उपरोक्त विवाद के आधार पर व्यक्तियों को जालसाजी करने की अनुमति है। इसलिए,

उनका कहना है कि आवेदक किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

20. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह सामने आता है कि वर्तमान आवेदक के खिलाफ आपराधिक मामला इस आरोप के साथ शुरू किया गया है कि उसने संपत्ति को विरासत में लेने के उद्देश्य से तकी हुसैन का जाली मृत्यु प्रमाण पत्र तैयार किया है, और शिकायतकर्ता द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दाखिल किया गया था जिसे शिकायत मामले के रूप में माना गया था, जिसमें शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे। बयानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वे शिकायतकर्ता के कथन का समर्थन करते हैं तथा उसमें कोई विचलन नहीं है

21. निस्संदेह, प्रथम दृष्टया पक्षों के बीच दीवानी विवाद प्रतीत होता है लेकिन जहां तक वर्तमान आवेदक द्वारा तकी हुसैन का मृत्यु प्रमाण पत्र तैयार कराने का संबंध है, यह प्रथम दृष्टया दर्शाता है कि इसे जानबूझकर और बेईमानी से तैयार किया गया था। नगर पालिका परिषद, महमूदाबाद, सीतापुर के अधिशासी अधिकारी ने पत्र संख्या 125 दिनांक 26.03.2015 द्वारा जाली मृत्यु प्रमाण पत्र को रद्द कर दिया। यह तथ्य सिविल वाद संख्या 101/2015 में पारित अंतरिम आदेश दिनांक 12.05.2015 से स्पष्ट है, जो पूरक शपथ पत्र दिनांक 13.07.2023 के साथ संलग्न है, जिसमें कार्यवाही के दौरान इस तथ्य का

सत्यापन भी कराया गया था, जबकि नगर पालिका परिषद, महमूदाबाद, सीतापुर के अधिशासी अधिकारी से आख्या मांगी गई थी, जिसमें बताया गया था कि तकी हुसैन का मृत्यु प्रमाण पत्र, जिसमें मृत्यु की तारीख 15.07.1990 दिखाई गई थी, गलत था

जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का प्रश्न है कि आवेदक विधि के अनुसार वारिस है और तकी मोहम्मद की मौत के संबंध में किसी भी तरह के जाली दस्तावेज जमा करने की जरूरत नहीं थी, यह दलील टिकने लायक नहीं है, क्योंकि तब वर्तमान आवेदक के लिए जाली मृत्यु प्रमाण पत्र जमा करने का क्या मौका था, जो दर्शाता है कि उसके द्वारा गलत तरीके से लाभ की कुछ उम्मीद थी।

22. दलीलों के समर्थन में, आवेदक ने **देवेन्द्र और अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य और इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य (सुप्रा)** के निर्णयों का भी हवाला दिया है, जो इस मामले के लिए समीचीन नहीं हैं क्योंकि गलत तरीके से लाभ के लिए मृत्यु प्रमाण पत्र तैयार करने और उसे सार्वजनिक प्राधिकरण के समक्ष जमा करने से धोखाधड़ी और बेईमानी का इरादा स्पष्ट है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामलों में बहुत स्पष्ट रूप से 'कोई गलत काम करने का इरादा और धोखाधड़ी या बेईमानी का इरादा' को अलग किया है। उपरोक्त निर्णयों के अनुसार यह बहुत स्पष्ट रूप से माना गया है कि उच्च न्यायालय यह सुनिश्चित करेंगे कि आपराधिक अभियोजन को उत्पीड़न के साधन

के रूप में उपयोग नहीं किया जाए, लेकिन दूसरी ओर यह भी माना गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत निहित अधिकार क्षेत्र का संयमित और सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए। यह भी माना गया है कि कोई कठोर नियम नहीं हो सकता है और प्रत्येक मामले पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि वास्तविक शिकायत, आशय और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, हस्तक्षेप नहीं की जाएगी। इस न्यायालय ने यह भी पाया है कि आवेदक के अधिवक्ता यह प्रदर्शित करने में भी विफल रहे हैं कि कोई संज्ञेय अपराध कैसे नहीं बनता है क्योंकि गवाहों और शिकायतकर्ता के बयान बरकरार हैं और प्रथम दृष्टया एक अभिलेख है जिसे जाली कहा जाता है और आवेदक लाभार्थी प्रतीत होता है।

23. यह सामान्य विधि है कि गवाहों की गवाही की जांच इस न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती है और यह निष्कर्ष देते हुए कि वे गवाही निराधार हैं, विचारण का भाग्य तय करना इस स्तर पर उचित नहीं है और इसके अलावा आपराधिक और दीवानी कार्यवाही जारी रह सकती है क्योंकि इसके अलग-अलग परिणाम होते हैं।

24. निर्णय देने से पहले, यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियों का विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित आपराधिक मामले संख्या 6395/2017 की योग्यता पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

25. उपरोक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं पर विचार करते हुए, इस न्यायालय को इस मामले में कोई योग्यता नहीं दिखती है और इस प्रकार, तत्काल आवेदन को **खारिज** कर दिया जाता है।

(2023) 7 ILRA 409

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

के समक्ष

**धारा 482 संख्या 6191 सन् 2023 के अंतर्गत
आवेदन**

**मोहम्मद खालिद @ खालिद ...आवेदक
बनाम**

भारत संघ और अन्य ... विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता: अनिल कुमार पांडे

**विपक्षीगण के अधिवक्ता: एस एम सिंह
रायकवार**

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 211, 215, 464 एवं 482, - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 302 एवं 323 - स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 8 एवं 21: - आवेदन - आरोप पत्र रद्द करने के लिए - हत्या का अपराध - स्वेच्छा से चोट पहुंचाने की सजा - प्रथम सूचना रिपोर्ट - तलाशी और गिरफ्तारी - वसूली ज़ापन - जांच - आरोप

तय करना - एनबीडब्ल्यू - आरोप तय करने में चूक/त्रुटि का प्रभाव - विचारण न्यायालय के समक्ष वर्तमान आवेदक की नियमित उपस्थिति के बाद भी, केवल एक दिन की देरी के लिए गैर जमानती वारंट जारी किया गया है, जो बहुत कठोर है - आवेदक यह वचन दे कि वह प्रत्येक तारीख पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा और वह कोई अनावश्यक स्थगन नहीं लेगा और इसलिए, आवेदक के खिलाफ जारी एनबीडब्ल्यू प्रभावी नहीं हो सकता है - अदालत को पता चलता है कि, जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 215 के प्रावधान की बात है, जब तक कि अभियुक्त को ऐसी चूक से गुमराह नहीं किया जाता है या उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है, त्रुटियों को बाद के चरण में सुधारा जा सकता है अपील या पुनरीक्षण के स्तर पर भी त्रुटि को सुधारने के लिए तंत्र प्रदान करता है - इस प्रकार, न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि यदि अभियुक्त को कोई भौतिक पूर्वाग्रह नहीं पहुँचाया जाता है, तो 'आरोप' में त्रुटि और चूक को सुधारा जा सकता है - और यह भी सामान्य कानून है कि यदि अभियुक्त को कोई पूर्वाग्रह नहीं पहुँचाया जाता है, तो 'आरोप' के निर्धारण में त्रुटि से दोषसिद्धि पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता में निर्धारित प्रक्रिया का उद्देश्य न्याय के हित को पूरा करना है, न कि अंतहीन तकनीकीताओं के आधार पर उसे विफल करना - न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि और अवैधता नहीं मिलती है - तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 21, 22, 24

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

8/21एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत दर्ज शिकायत के आधार पर शुरू किया गया था।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. कम्मरी ब्रह्मैया और अन्य बनाम लोक अभियोजन, उच्च न्यायालय, आंध्र प्रदेश (1999 खंड 2 एससीसी 522),
2. कामिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2019 खंड 12 एससीसी 600),
3. संतोष कुमारी बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य (2011 खंड 9 एससीसी 234)।

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा आज दायर किया गया पूरक हलफनामा अभिलेख पर लिया गया है।
2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार पांडे, विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम. सिंह रोयेक्वार को सुना गया और अभिलेख पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया गया।
4. इस प्रार्थना पत्र के माध्यम से आवेदक ने अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या- 09/विशेष न्यायाधीश एन.डी.पी.एस. अधिनियम , लखनऊ द्वारा आपराधिक मुकदमा संख्या 194/2015 (यूनियन ऑफ इंडिया बनाम नसरीन बानो व अन्य) में दिनांक 23.3.2022 को लगाए गए आरोप का विरोध किया है, जो कि सी.बी.एन. अपराध संख्या 8/2014 में विपक्षी द्वारा धारा

5. अभियोजन की कहानी के अनुसार तथ्यात्मक आव्यूह यह है कि दिनांक 13.12.2014 को मुखबिर के माध्यम से सूचना प्राप्त करते हुए सह-अभियुक्त नसरीन बानो को प्रतिबंधित पदार्थ के साथ गिरफ्तार किया गया था और प्राप्ति जापन तैयार करते समय पुलिस टीम ने बयान भी दर्ज किया, जिसमें आवेदक का नाम प्रकाश में आया। आवेदक के घर की तलाशी दिनांक 28.4.2015 को ली गई लेकिन विभाग के अधिकारी कोई प्रतिबंधित पदार्थ या आपत्तिजनक सामग्री बरामद नहीं कर सके। विचारण न्यायालय ने जांच अधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र पर दिनांक 5.6.2015 को संज्ञान लिया था, जिस पर आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष आपत्ति जताई थी और उसे नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता देते हुए अलग रखा गया था और उसके बाद, आवेदक के अनुसार, विधि की प्रक्रिया का पालन किए बिना नया आदेश पारित किया गया था। दिनांक 22.12.2021 को आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया गया और वह विचारण कार्यवाही में भाग लेते हुए विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता रहा। इसके बाद दिनांक 22.2.2022 को आवेदक का विचारण सह-आरोपी नसरीन बानो से अलग कर दिया गया और आवेदक को वारंट-बी के जरिए तलब किया गया। दिनांक 23.3.2022 को आरोप तय किया गया, हालांकि न तो आवेदक को आरोपों की सामग्री बताई गई और न ही आरोपों में उसका नाम

ही उल्लेख किया गया, जो कि आदेश से ही स्पष्ट है, हालांकि आवेदक ने उसी दिन आरोप के आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं। इस आवेदन में दिनांक 23.3.2022 के आरोप के आदेश को चुनौती दी गई है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 23.3.2022 का आरोपित आदेश आरोपों की विषय-वस्तु में वर्तमान आवेदक का नाम उल्लेख किए बिना पारित किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि उक्त आदेश पर वर्तमान आवेदक के हस्ताक्षर हैं, लेकिन उन्हें आरोपों की विषय-वस्तु के बारे में नहीं बताया गया है, जबकि ऐसा नहीं है कि वर्तमान आवेदक ने अपने विरुद्ध शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही से परहेज किया है, क्योंकि वह उक्त आदेश के बाद प्रत्येक तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो रहा है। इसके अलावा उन्होंने प्रस्तुत किया कि वास्तव में, आरोपित आदेश पारित करते समय विचारण न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 211 के तहत निर्धारित प्रावधानों का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है। आरोपित आदेश की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, उन्होंने कहा कि सह-आरोपियों में से एक नसरीन बानो का नाम उसमें उल्लेखित है क्योंकि आरोप केवल नसरीन बानो के खिलाफ तय किए गए हैं और केवल यह दावा करके कि वर्तमान आवेदक के हस्ताक्षर आरोप तय करने के आदेश पर हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि धारा 211 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का अनुपालन किया गया है।

7. उन्होंने आगे कहा कि विचारण न्यायालय जल्दबाजी में आगे बढ़ रहा है, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि दिनांक 7.7.2023 को आरोप तय करने के तुरंत बाद, दिनांक 10.7.2023 के आदेश के अनुसार गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है, हालांकि आवेदक का ऐसा कोई इतिहास नहीं है कि उसने कभी विचारण न्यायालय की कार्यवाही से परहेज किया हो और यहां तक कि इस बात की कोई आशंका भी नहीं है कि वह आपराधिक कार्यवाही से भाग जाएगा। इस प्रकार, दलील यह है कि दिनांक 23.3.2022 का आरोप का आदेश विधि की नजर में दोषपूर्ण है और इसे रद्द किया जा सकता है।

8. विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम. सिंह रॉयकवार ने उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध किया है तथा प्रस्तुत किया है कि दिनांक 23.3.2022 का आदेश, जिसके द्वारा आरोप तय किए गए हैं, सही तरीके से पारित किया गया है। उन्होंने बताया कि वर्तमान आवेदक के हस्ताक्षर हैं तथा इस प्रकार, उनके पास यह कहने का कोई कारण नहीं है कि आरोप आवेदक के संज्ञान में नहीं लाए गए थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि असावधानी के कारण दिनांक 23.3.2022 के आदेश में वर्तमान आवेदक का नाम नहीं लिखा जा सका तथा बाद में इसे सही कर दिया गया। आवेदक लगभग एक वर्ष से अधिक समय तक विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता रहा। 'आरोप' में त्रुटियों का प्रभाव दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 215 में दिया गया

है दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 215 जो इस प्रकार है:-

"215. **त्रुटियों का प्रभाव।** आरोप में बताए जाने वाले अपराध या विशिष्टियों को बताने में कोई त्रुटि, और अपराध या उन विशिष्टियों को बताने में कोई चूक, मामले के किसी भी चरण में महत्वपूर्ण नहीं मानी जाएगी, जब तक कि अभियुक्त वास्तव में ऐसी त्रुटि या चूक से गुमराह नहीं हुआ हो, और इससे न्याय की विफलता हुई हो।"

9. पूर्वोक्त प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि यह इतने शब्दों में प्रदान किया गया है कि इस अध्याय में की गई त्रुटि को सुधारा जा सकता है जब तक कि अभियुक्त वास्तव में ऐसी त्रुटि या चूक से गुमराह नहीं हुआ हो, और इससे न्याय की विफलता हुई हो। उन्होंने आगे कहा कि त्रुटि को भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 464 के तहत अपील या पुनरीक्षण के स्तर पर सुधारा जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 464 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"464. **आरोप तैयार करने में चूक, या अनुपस्थिति, या त्रुटि का प्रभाव।**

(1) सक्षम अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा कोई निष्कर्ष, सजा या आदेश केवल इस आधार पर अवैध नहीं माना जाएगा कि कोई आरोप तैयार नहीं किया गया था या आरोपों में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर, जिसमें आरोपों का कोई गलत संयोजन भी शामिल है, जब तक कि अपील,

पुष्टि या पुनरीक्षण न्यायालय की राय में वास्तव में न्याय की विफलता हुई है।

(2) यदि अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण न्यायालय की यह राय है कि वास्तव में न्याय में विफलता हुई है, तो वह-

(क) आरोप विरचित करने में चूक के मामले में, आरोप विरचित करने का आदेश दे सकता है और आरोप विरचित करने के तुरंत बाद से ही सुनवाई की संस्तुति कर सकता है;

(ख) आरोप में त्रुटि, चूक या अनियमितता के मामले में, विरचित आरोप पर जिस भी तरीके से वह उचित समझे, नए सिरे से सुनवाई करने का निर्देश दे सकता है:

बशर्ते कि यदि न्यायालय की यह राय है कि मामले के तथ्य ऐसे हैं कि साबित किए गए तथ्यों के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध कोई वैध आरोप नहीं लगाया जा सकता है, तो वह दोषसिद्धि को रद्द कर देगा।

10. उपर्युक्त प्रावधान यह प्रदान करते हैं कि यदि अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण न्यायालय की राय है कि वास्तव में न्याय की विफलता हुई है, तो वह आरोप तैयार करने में चूक के मामले में आदेश दे सकता है कि आरोप तैयार किया जाए और आरोप तैयार करने के तुरंत बाद बिंदु से परीक्षण की सिफारिश की जाए और आरोप में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के मामले में, जिस भी तरीके से वह ठीक समझे, एक नए परीक्षण को निर्देश दे सकता है।

11. उन्होंने कहा कि वास्तव में विधायिका के मन में यह बात थी कि न्यायालय द्वारा आरोप तय करते समय, विचारण न्यायालय द्वारा किसी भी त्रुटि/चूक के मामले में त्रुटियों को कैसे सुधारा जा सकता है, इसलिए, ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि आरोप में त्रुटि को सुधारा नहीं जा सकता।

12. अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने कम्मरी ब्रह्मैया एवं अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय (1999) 2 एससीसी 522 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला दिया है और इसके उपखण्ड 6 का संदर्भ दिया, जिसे इस प्रकार उद्धृत किया गया है: -

"6. उपर्युक्त धारा अनिवार्य शर्तों में है और यह विशेष रूप से उन मामलों में क्या किया जाना है, जहां आरोप तय नहीं किया गया है या आरोप तय करने में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता है, प्रदान करती है। धारा की स्पष्ट शर्तों से, यह कहा जा सकता है कि निष्कर्ष, सजा या आदेश केवल उन मामलों में अलग रखा जा सकता है, जहां तथ्य ऐसे हैं कि साबित किए गए तथ्यों के संबंध में अभियुक्त के खिलाफ कोई वैध आरोप नहीं लगाया जा सकता है। दूसरे, यदि तथ्य ऐसे हैं कि आरोप तय किया जा सकता है और फिर भी इसे तय नहीं किया गया है, लेकिन न्याय की कोई विफलता नहीं हुई है, वास्तव में इसके कारण ऐसा हुआ है, तो सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के निष्कर्ष, सजा या आदेश को उस आधार पर अलग नहीं रखा जाना चाहिए। तीसरे, यदि आरोप तय न करने या आरोप तय

करने में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण न्याय की विफलता हुई है, तो मामले की पुनः सुनवाई उप-धारा (2) के तहत प्रदान किए गए निर्देश के अनुसार की जानी चाहिए।"

13. प्रस्तुतीकरण यह है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन घटनाओं का निपटारा किया है, जहां किसी अपराध में आरोप तय नहीं किए गए हैं या आरोप तैयार करने में त्रुटि, चूक या अनियमितता है, इस प्रकार कई शब्दों में माना जाता है कि यदि किसी अपराध में आरोप तय न करके न्याय की विफलता होती है या किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 464 की उप-धारा 2 के तहत मामले का पुनः परीक्षण निर्देशित किया जाना है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह ध्यान में रखते हुए कि पूरी कार्यवाही निरर्थक नहीं हो सकती है, कार्यप्रणाली प्रदान की गयी है और इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसकी व्याख्या करते हुए पूर्वोक्त फैसले के माध्यम से इसे बरकरार रखा है।

14. **कामिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2019) 12 एससीसी 600** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए उन्होंने पैरा 11, 14, 16 और 18 का उल्लेख किया, जो निम्नानुसार हैं:

"11. आरोप की अनुपस्थिति केवल तभी दोषसिद्धि को दूषित करेगी जब उसने अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह पैदा किया हो और वास्तव में ऐसा हुआ हो। विली (विलियम)

स्लेनी बनाम मध्य प्रदेश राज्य में, संविधान पीठ ने "अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह" और "न्याय की विफलता" की अवधारणा को समझाया और निम्नानुसार माना: -

"6. इससे पहले कि हम अपना प्रत्युत्तर प्रस्तुत करें और संहिता के प्रावधानों की जांच करें, हम यह देखने के लिए रुकेंगे कि संहिता एक प्रक्रिया संहिता है और सभी प्रक्रियात्मक कानूनों की तरह, न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए बनाई गई है, न कि अंतहीन तकनीकियों की शुरुआत करके उन्हें निराश करने के लिए। संहिता का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी आरोपी व्यक्ति को कुछ अच्छी तरह से स्थापित और अच्छी तरह से समझी जाने वाली रेखाओं

के साथ पूर्ण और निष्पक्ष सुनवाई मिले जो प्राकृतिक न्याय की हमारी धारणाओं के अनुरूप हो। यदि वह ऐसा करता है, यदि उस पर सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाता है, यदि उसे बताया जाता है और वह स्पष्ट रूप से उस अपराध की प्रकृति को समझता है जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया जा रहा है, यदि उसके खिलाफ मामला पूरी तरह से और निष्पक्ष रूप से उसे समझाया जाता है और उसे अपना बचाव करने का पूरा और निष्पक्ष अवसर दिया जाता है, तो, बशर्ते कि कानून के बाहरी स्वरूपों का 'पर्याप्त' अनुपालन हो, प्रक्रिया में मात्र गलतियाँ, मुकदमे में मात्र महत्वहीन त्रुटियाँ और चूक संहिता द्वारा भ्रष्ट मानी जाती हैं और मुकदमा तब तक दूषित नहीं होता जब तक कि अभियुक्त पर्याप्त पूर्वाग्रह नहीं दिखा सकता।

मोटे तौर पर यही वह मूल सिद्धांत है जिस पर संहिता आधारित है।" (जोर दिया गया)

14. "न्याय की विफलता" अभिव्यक्ति के अर्थ पर विचार करने के बाद और विली स्लेनी और गुरबचन सिंह में संविधान पीठ को संदर्भित करने के बाद, इस न्यायालय ने मेन पाल बनाम हरियाणा राज्य में, निम्नानुसार माना: (मेन पाल का वाद, एससीसी पृ. 137-138, पैरा 15-17)

"15. शमनसाहब एम. मुल्तानी बनाम कर्नाटक राज्य मामले में, इस न्यायालय ने धारा 464 दंड प्रक्रिया संहिता में आने वाले "न्याय की विफलता" शब्द के अर्थ पर विचार किया। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया की

22. ... आरोप में कोई चूक या अनियमितता होने पर भी दोषसिद्धि वैध होगी, बशर्ते कि इससे न्याय की विफलता न हुई हो।

23. ... आपराधिक न्यायालय, विशेष रूप से प्रवर न्यायालय को यह पता लगाने के लिए गहन जांच करनी चाहिए कि क्या वास्तव में न्याय की विफलता हुई है या यह केवल दिखावा है।.....'

16. उपरोक्त सिद्धांतों को इस न्यायालय के कई निर्णयों में दोहराया गया है, जिनमें पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम लाइसल हक, आंध्र प्रदेश राज्य बनाम ठक्कदिराम रेड्डी, दलबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, दुमपाल चंद्र रेड्डी बनाम निमकयाला बालिरेड्डी और शनिचर शनि बनाम बिहार राज्य शामिल हैं।

17. इस मामले से संबंधित संहिता की धारा 212, 215 और 464 से संबंधित निम्नलिखित सिद्धांत उक्त कथनों से स्पष्ट हो जाते हैं:

(i) आरोप तय करने का उद्देश्य अभियुक्त को यह स्पष्ट जानकारी देना है कि उसके खिलाफ क्या मुकदमा चलाया जा रहा है और उसे किन आवश्यक तथ्यों का सामना करना है। आरोप में तारीख, समय, स्थान और जिस व्यक्ति के खिलाफ अपराध किया गया था, उसका विवरण भी शामिल होना चाहिए, जो अभियुक्त को उस मामले की जानकारी देने के लिए पर्याप्त हो, जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है।

(ii) अभियुक्त निश्चितता और सटीकता के साथ यह जानने का हकदार है कि उसके खिलाफ आरोप की सही प्रकृति क्या है और जब तक उसे ऐसा ज्ञान नहीं होगा, तब तक उसका बचाव पक्षपातपूर्ण होगा। जहां अभियुक्त पर एक व्यक्ति के खिलाफ अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, लेकिन प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर, उसे किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ अपराध करने के लिए दोषी ठहराया जाता है, इसके संबंध में आरोप तय किए बिना, अभियुक्त पक्षपातपूर्ण होगा, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता होगी। लेकिन जहां आरोप में कोई त्रुटि थी और अभियुक्त को उस त्रुटि के बारे में पता था, वहां कोई पक्षपात या न्याय की विफलता नहीं होगी। इस प्रकार के ज्ञान का अनुमान बचाव से लगाया जा सकता है, अर्थात् यदि अभियुक्त के बचाव से यह पता चले कि वह वास्तविक आरोप के विरुद्ध

अपना बचाव कर रहा था, न कि गलत आरोप के विरुद्ध।

(iii) दोष के रूप में पूर्वाग्रह के प्रश्न पर निर्णय करते समय, न्यायालयों को व्यापक दृष्टि से कार्य करना चाहिए तथा तकनीकी पहलुओं पर नहीं बल्कि विषयवस्तु पर ध्यान देना चाहिए, तथा उनकी मुख्य चिंता यह होनी चाहिए कि क्या अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई मिली, क्या वह जानता था कि उसके विरुद्ध क्या मुकदमा चलाया जा रहा है, क्या उसके विरुद्ध स्थापित किए जाने वाले मुख्य तथ्य उसे निष्पक्ष तथा स्पष्ट रूप से समझाए गए थे, तथा क्या उसे अपना बचाव करने का पूर्ण तथा निष्पक्ष अवसर दिया गया था।" (जोर दिया गया)

16. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में आरोप-पत्र तैयार न किए जाने से पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है। यह निर्णय करने के लिए कि क्या न्याय में विफलता हुई है, यह जांचना सुसंगत है कि क्या अभियुक्त को उस अपराध के मूल तत्वों की जानकारी थी जिसके लिए उसे दोषी ठहराया जा रहा है तथा क्या उन्हें समझाया गया था तथा क्या उसे बचाव करने का निष्पक्ष अवसर मिला था। मुद्दे का सार यह है कि क्या इस मामले में, धारा 302 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आरोप-पत्र तैयार न किए जाने से अपीलकर्ता/अभियुक्त की दोषसिद्धि प्रभावित हुई है।

18. जैसा कि ऊपर से देखा जा सकता है, धारा 302 के साथ धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप तय नहीं किया गया था। लेकिन यह

साबित करना आरोपी पर निर्भर है कि आरोप तय करने में चूक न्याय की विफलता के कारण हुई है। हालांकि धारा 302 के साथ धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत विशिष्ट आरोप तय नहीं किया गया था, अपीलकर्ता/आरोपी के खिलाफ दायर आरोप पत्र का सार स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आरोपी

पर धारा 302 के साथ धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए आरोप लगाया गया है, जैसा कि निम्नलिखित से देखा जा सकता है: -

"महोदय, दिनांक 03.01.1986 को, शिकायतकर्ता पुलिस स्टेशन कोतवाली आया और मौखिक रूप से बताया कि उसकी भतीजी नल से पानी लेने गई थी। उसे आरोपियों ने छेड़ा था, लेकिन समाज में सम्मान के कारण उन्होंने इसे मुद्दा नहीं बनाया। हालाँकि, वहाँ एक भयंकर झगड़ा हुआ था। उसने अपनी भतीजी को शांत किया। मैं आदिल और अखलाक के साथ आज शाम करीब 04.00 बजे जोगीपुराट स्थित अपनी दुकान पर जा रहा था, जब हम लालपुर मंदिर के पास पहुंचे, तो कॉलम नंबर 2 और 3 में उल्लिखित आरोपी वहां मौजूद थे। कामिल ने डंडा लिया हुआ था, नासिर ने हाँकी ली हुई थी और राशिद ने अपने हाथों में चाकू लिया हुआ था। उन्होंने हमें घेर लिया। उन्होंने मेरे भतीजे आदिल को गाली दी। आदिल ने गाली देने का विरोध किया और कहा कि अगर तुम ऐसे ही करते रहे तो अच्छा नहीं होगा। इस पर आरोपियों ने मेरे भतीजे पर डंडे से हमला कर दिया। मैंने अपने भतीजे को बचाने के लिए

कामिल से डंडा छीन लिया। आरोपी नासिर और आदिल ने मेरे भतीजे को पकड़ लिया और राशिद ने उसके सीने में चाकू घोंप दिया। मेरा भतीजा जमीन पर बैठ गया और उसकी हालत बिगड़ने लगी। मैं उसे अस्पताल ले गया, जहां उसकी मौत हो गई। इस सूचना के आधार पर वाद अपराध संख्या 2/86 धारा 302/323/34 भारतीय दंड संहिता के तहत मामला दर्ज किया गया। आरोपी राशिद और अन्य को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। आरोपी कामिल अभी उपलब्ध नहीं है और उसके खिलाफ जांच जारी है। इन आरोपियों के खिलाफ धारा 302/323/34 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया है। दिनांक 13.01.1986।" (जोर दिया गया)

तैयार किए गए आरोपों में, भले ही अपीलकर्ता और आरोपी नासिर पर केवल धारा 323 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप लगाए गए थे, आरोप पत्र का सार स्पष्ट रूप से पहले आरोपी राशिद के साथ अखलाक की हत्या करने में उनके समान इरादे को साझा करने का आरोप लगाता है।"

15. सर्वोच्च न्यायालय ने आरोप तय करने में चूक के मुद्दे से सम्बंधित वाद को निपटाते समय माना है कि अपील और पुनरीक्षण के स्तर पर भी इसे सुधारा जा सकता है।

16. संतोष कुमारी बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य 2011) 9 एससीसी 234 के वाद में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले

का आगे जिक्र करते हुए। (उपखण्ड 17 और 18 का अवलम्बन लिया है , जो इस प्रकार है:

"17. सभी प्रक्रियात्मक विधियों की तरह, दंड प्रक्रिया संहिता न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बनाई गई है, न कि केवल तकनीकी बातों से उन्हें निराश करने के लिए। यह अपने कुछ प्रावधानों को महत्वपूर्ण मानता है, लेकिन अन्य को नहीं, और बाद के प्रावधानों का उल्लंघन एक सुधार योग्य अनियमितता है जब तक कि अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह न हो। यह आरोप में त्रुटियाँ या यहाँ तक कि आरोप की पूर्ण अनुपस्थिति को सुधार योग्य श्रेणी में रखता है। इसीलिए हमारे पास दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 215 और 464 जैसे प्रावधान हैं।

18. आरोप का उद्देश्य अभियुक्त को उस मामले की सूचना देना है जिसका उस पर आरोप लगाया गया है और यह अधिकार क्षेत्र को नहीं छूता है। इसलिए, यदि आवश्यक जानकारी उसे अन्य तरीकों से दी जाती है और कोई पूर्वाग्रह नहीं है, तो आरोप का निर्धारण अमान्य नहीं होता है। विधि के इस हिस्से का आवश्यक हिस्सा शब्दों का कोई तकनीकी सूत्र नहीं बल्कि वास्तविकता है, क्या मामले को अभियुक्त को समझाया गया था और क्या वह समझता था कि उसके खिलाफ क्या वाद चलाया जा रहा है। भारतीय दंड संहिता की धारा 34, 114 और 149 वास्तविक प्रतिभागियों, सहायकों और एक सामान्य उद्देश्य या एक सामान्य इरादे से

प्रेरित लोगों के संबंध में विभिन्न कोणों से देखे गए आपराधिक दायित्व को प्रदान

करती है; और जैसा कि इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने विली स्लेवी बनाम मध्य प्रदेश राज्य एस.सी.आर. के पृष्ठ 1189 में समझाया है, आरोप एक मिश्रित आरोप है जिसमें प्रत्यक्ष दायित्व और रचनात्मक दायित्व शामिल है, बिना यह निर्दिष्ट किए कि कौन सीधे उत्तरदायी हैं और किसे रचनात्मक रूप से उत्तरदायी बनाया जाना है।"

17. उपर्युक्त निर्णय के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यदि अभियुक्त को अन्य तरीकों से आवश्यक सूचना दी जाती है और उसे कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है, तो आरोपों का निर्धारण अमान्य नहीं हो सकता क्योंकि आरोप का उद्देश्य अभियुक्त को मामले की सूचना प्रदान करना है।

18. विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि आवेदक को कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है क्योंकि उसे अन्यथा पता था कि उसके खिलाफ आरोप तय किए गए हैं क्योंकि उसने 'आरोप' के आदेश पर अपने हस्ताक्षर किए हैं। उन्होंने आगे कहा कि यह एक तथ्य है कि वर्तमान आवेदक ने अभियोजन पक्ष के कुछ गवाहों की भी जांच की है और लगभग एक वर्ष बीत गया है, लेकिन उसने इस समयावधि के भीतर यह आपत्ति नहीं उठाई। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अब दिनांक 7.7.2023 के आदेश के अनुसार अतिरिक्त आरोप तय किए गए हैं। और, इस प्रकार, आवेदक द्वारा उठाई गई प्रत्येक शिकायत बेकार है। आवेदक द्वारा उठाई गई शिकायत गैर-जरूरी आधार पर है और, इस

प्रकार, तत्काल आवेदन में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

19. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख के अवलोकन के बाद, यह पता चलता है कि दिनांक 23.3.2022 को आरोप तय किए गए थे, जिसमें एक सह-आरोपी नसरिन बानो का नाम उल्लेखित है, लेकिन आवेदक का नाम जगह नहीं पाता है। यह भी स्पष्ट है कि आवेदक, अर्थात्, मोहम्मद खालिद के हस्ताक्षर आरोप के आदेश पर हैं और इस तथ्य को आवेदक के अधिवक्ता द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों को पेश किया गया था और आवेदक द्वारा उनकी जांच की गई थी, जिसका अर्थ है कि 'आरोपों' के निर्धारण के संबंध में तथ्य वर्तमान आवेदक के ज्ञान में बहुत अच्छी तरह से थे। इस न्यायालय ने यह भी पाया है कि बाद में, दिनांक 7.7.2023 के आदेश के अनुसार, अतिरिक्त आरोप तय किए गए और विचारण न्यायालय इस मामले में आगे बढ़ रहा है।

20. यह सर्वोच्च न्यायालय के कई फैसलों के साथ-साथ धारा 215 और धारा 464 के तहत परिकल्पित दंड प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों से उभर कर आता है, जो कहता है कि चूक या त्रुटि को पुनरीक्षण और अपील के चरण में भी सुधारा जा सकता है। जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 215 के प्रावधानों का संबंध है, यह स्पष्ट रूप से कहता है कि जब तक अभियुक्त को ऐसी चूक से गुमराह नहीं किया जाता है या उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है, तब तक त्रुटियों को बाद के चरण

में सुधारा जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 464 का प्रावधान अपील या पुनरीक्षण के चरण में भी त्रुटि को सुधारने के लिए तंत्र प्रदान करता है।

21. इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि यदि अभियुक्त को कोई तात्त्विक पूर्वाग्रह नहीं पहुँचाया जाता है, तो 'आरोप' में त्रुटि और चूक को सुधारा जा सकता है। यह भी एक सामान्य कानून है कि यदि अभियुक्त को कोई पूर्वाग्रह नहीं पहुँचाया जाता है, तो 'आरोप' तैयार करने में त्रुटि दोषसिद्धि को प्रभावित नहीं करेगी, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता में निर्धारित प्रक्रिया न्याय के हित के उद्देश्यों को पूरा करने के उद्देश्य से है, न कि अंतहीन तकनीकी आधार पर इसे विफल करने के लिए। प्रत्येक आपराधिक कानून विकसित, प्रारूपित और प्रख्यापित किया जाता है ताकि यह अभियुक्त, राज्य और समाज के लिए निष्पक्ष रहे, क्योंकि यही अंतिम उपलब्धि है। अभियुक्त को पहुँचाए गए पूर्वाग्रह पर विचार करते समय विचारण न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए, ताकि कोई भी अन्याय न हो सके।

22. उपर्युक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, मुझे दिनांक 7.7.2023 के आदेश के अनुसार, इसमें सुधार किए जाने के बाद, आरोपित आदेश में कोई त्रुटि और अवैधानिकता प्रतीत नहीं होती है, इसलिए, इस आवेदन में कोई योग्यता नहीं है।

23. परिणामस्वरूप, आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

24. तथापि, यह कहा गया है कि वर्तमान आवेदक की विचारण न्यायालय के समक्ष नियमित उपस्थिति के पश्चात भी, केवल एक दिन की देरी के लिए गैर जमानती वारंट जारी किया गया है, जो बहुत कठोर है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्तमान आवेदक वचन देता है कि वह प्रत्येक तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा तथा वह कोई अनावश्यक स्थगन नहीं लेगा, इसलिए आवेदक के विरुद्ध जारी गैर जमानती वारंट को भी प्रभावी नहीं किया जा सकता है।

25. विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने उचित रूप से प्रस्तुत किया है कि उन्हें उपरोक्त प्रार्थना के अनुसार कोई आपत्ति नहीं है, यद्यपि आवेदक को विचारण कार्यवाही में सहयोग करने का निर्देश दिया जा सकता है।

26. उपरोक्त प्रस्तुतियों के मद्देनजर, दिनांक 10.7.2023 के आदेश द्वारा जारी गैर जमानती वारंट को स्थगित रखा जाता है। आवेदक की आगे गैर उपस्थिति के मामले में, विचारण न्यायालय को नए सिरे से सहारा लेने की स्वतंत्रता है।

27. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि उपरोक्त दिए गए निष्कर्षों का विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित मामले के गुण-दोष पर कोई असर नहीं होगा।

(2023) 7 ILRA 417

मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.06.2023

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ
के समक्ष

धारा 482 संख्या 37458 सन् 2016 के
अंतर्गत आवेदन

अजीत कुमार गुप्ता ... आवेदक
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता: श्री आशुतोष शर्मा

विपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता,
श्री राहुल मिश्रा, श्री संजय मिश्रा

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 2(एच), 156(1), 156(3), 173(2), 173(8), 231 एवं 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420, 467, 468, 120-बी एवं 471 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा - 25 - संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - धारा - 54 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद - 21: - धारा 482 के तहत आवेदन - संपूर्ण कार्यवाही के साथ पूरक आरोप-पत्र और आक्षेपित समन आदेश को रद्द करने के लिए - शिकायत - प्रथम सूचना रिपोर्ट - धोखाधड़ी और बेईमानी का अपराध - मूल्यवान सुरक्षा की जालसाजी - जांच - आरोप-पत्र, जिसमें आवेदन और अन्य सह-अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया - आगे की जांच - पूरक आरोप-पत्र - समन आदेश - अदालत को पता चलता है कि, विपक्षी संख्या 2 की मां और सह-अभियुक्त के बीच दीवानी विवाद लंबित है - बेशक, आवेदक विवादित संपत्ति का न तो

विक्रेता है और न ही खरीदार, सह-अभियुक्त संपत्ति का इच्छित खरीदार है और आवेदक पर केवल विपक्षी संख्या 2 की मां द्वारा सह-अभियुक्त के पक्ष में कथित रूप से निष्पादित बिक्री के समझौते का गवाह होने का आरोप है - आवेदक ने दावा किया कि विवादित बिक्री के समझौते में केवल उसके नाम का उल्लेख बड़े अक्षरों में साक्षी के रूप में किया गया है, उसने उस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं - संपत्ति में उसका कोई हित नहीं था - यह सह-अभियुक्त है जो विवादित संपत्ति पर काबिज है -माना गया कि, सह-आरोपी के पक्ष में विपक्षी संख्या 2 की मां द्वारा कथित रूप से निष्पादित किए गए अपंजीकृत विक्रय समझौते को कथित रूप से सत्यापित करने के लिए आवेदक पर कोई आपराधिक दायित्व नहीं लगाया जा सकता है, जब तक कि धारा 120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत साजिश का आरोप न हो - इसलिए, आवेदक के खिलाफ की गई जांच सह-आरोपी के बयान के आधार पर है और इसके आधार पर पूरक आरोप-पत्र प्रस्तुत करना कानून के अनुसार था - लेकिन अभिलेख पर मौजूद तथ्यों के आरोपों से आवेदक के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है - आवेदन स्वीकार किया जाता है। (पैरा - 18, 19, 21)

धारा 482 के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली और अन्य (2013 खंड 5 एससीसी 762),

2. विनुभाई हरिभाई मालवीय और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2019 खंड 17 एससीसी 1),

3. पीतांबरन बनाम केरल राज्य और अन्य (आपराधिक अपील संख्या 1381/2023),

4. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992 सप. (1) एससीसी 335),

5. रामा चौधरी बनाम बिहार राज्य (2009 खंड 6 एससीसी 346),

6. धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य (2016 खंड 4 एससीसी 160),

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत यह आवेदन **मुकदमा अपराध संख्या 203/2014, धारा 420, 467, 468, 471 आई.पी.सी., पुलिस थाना जूही और जिला कानपुर नगर** में मामले की पूरी कार्यवाही के साथ पूरक आरोप पत्र दिनांक 28.8.2016 और सम्मन आदेश दिनांक 28.9.2016 को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर किया गया है।

2. विपक्षी संख्या 2 द्वारा दिनांक 02.6.2014 को पुलिस थाना में एक प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि वह पिछले 11 वर्षों से अमेरिका में रह रही है। आवेदक अजीत कुमार गुप्ता और सह-अभियुक्त नरेंद्र कुमार सिंह और कन्हैया गुप्ता ने अपराधियों की मदद से कानपुर के ट्रांसपोर्ट नगर के आनंदपुरी में स्थित उसके घर पर कब्जा कर लिया है। यह भी आरोप लगाया गया कि आरोपियों ने अपने अवैध कब्जे को सही ठहराने के लिए फर्जी दस्तावेज तैयार

किए हैं। उसकी माँ ने कभी भी उनके पक्ष में किसी भी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर नहीं किए और उनके हस्ताक्षर अंकीय निरूपण (डिजिटल) रूप से बनाए गए हैं। उक्त प्राथमिकी विपक्षी संख्या 2 द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका से राज्य के मुख्यमंत्री को एक पत्र भेजे जाने के बाद दर्ज की गई थी।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि जांच के पश्चात पुलिस द्वारा आरोप पत्र संख्या 38/16 दिनांक 27.5.2016 केवल सह-अभियुक्त नरेन्द्र कुमार सिंह के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया तथा आवेदक को दोषमुक्त कर दिया गया। सह-अभियुक्त के कहने पर पुलिस द्वारा आगे की जांच की गई तथा पूरक आरोप पत्र संख्या 38-ए/16 दिनांक 28.8.2016 अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, न्याय कक्ष संख्या 2/अतिरिक्त न्यायाधीश, कानपुर नगर के समक्ष दाखिल किया गया, जिसने दिनांक 28.9.2016 को इसका संज्ञान लिया तथा आवेदक को तलब किया। विवादित मकान पर सह-अभियुक्त नरेन्द्र कुमार सिंह विपक्षी संख्या 2 की मां द्वारा दिनांक 31.5.2004 को किए गए विक्रय अनुबंध के आधार पर काबिज है। अनुबंध में आवेदक का नाम स्पष्ट अक्षरों में बिना किसी हस्ताक्षर के अंकित है, जो कि अनुबंध का साक्षी है। विपक्षीगण संख्या 2 की माता एवं सह-अभियुक्त नरेन्द्र कुमार सिंह के मध्य दीवानी विवाद लंबित है। पूरक आरोप पत्र में आवेदक को केवल सह-अभियुक्त नरेन्द्र कुमार सिंह के कथन के आधार पर आरोपित किया गया है तथा उसके विरुद्ध पूरक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। इसके आधार पर निम्न न्यायालय ने आवेदक को तलब किया है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि यदि यह मान भी लिया जाए कि आवेदक ने गवाह के रूप में विवादित विक्रय अनुबंध पर हस्ताक्षर किए हैं, तब भी यह 100/- रुपए के डाक टिकट पर लिखा अपंजीकृत दस्तावेज है तथा इसके आधार पर आवेदक या किसी सह-अभियुक्त के पक्ष में संपत्ति का कोई स्वामित्व पारित नहीं हुआ है। आवेदक का दावा है कि उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मामले में आगे की जांच मजिस्ट्रेट के किसी आदेश के बिना की गई और आवेदक के खिलाफ अवैध रूप से पूरक आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। उन्होंने इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.1.2023 के आदेश की ओर ध्यान दिलाया है जिसमें संबंधित मजिस्ट्रेट से प्रत्यावेदन माँगा गया था कि क्या न्यायालय द्वारा आगे की जांच के लिए कोई निर्देश दिया गया था या नहीं। मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने दिनांक 15.4.2023 को प्रत्यावेदन भेजकर सूचित किया है कि मामले के अभिलेख में जांच अधिकारी द्वारा इस मामले में आगे की जांच का निर्देश देने वाला कोई आदेश नहीं पाया गया है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि अनधिकृत आगे की जांच के आधार पर आवेदक के खिलाफ पूरक आरोप-पत्र दाखिल करना कानून की दृष्टि से गलत है। **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली और अन्य (2013)5 एससीसी 762** के वाद में अपनाए

गए इस तरह के कदम की निंदा की गई है और सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि:

“40. संहिता के प्रावधानों और पूर्वोक्त विभिन्न निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, हम संहिता की धारा 173(2) को धारा 173(8) और धारा 156(3) के साथ पढ़ने पर मजिस्ट्रेट की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकालेंगे:

40.1. मजिस्ट्रेट को पुलिस प्रतिवेदन के आधार पर शुरू किए गए मामले में 'पुनः जांच' या 'नए सिरे से जांच' (डी-नोवो) का निर्देश देने का कोई अधिकार नहीं है।

40.2. संहिता की धारा 173(6) के अनुसार मजिस्ट्रेट को पुलिस प्रतिवेदन दर्ज करने के बाद 'आगे की जांच' का निर्देश देने का अधिकार है।

40.3. उपरोक्त (2) में व्यक्त किया गया दृष्टिकोण भगवंत सिंह वाद(उपरोक्त) में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा बताए गए विधि के सिद्धांत के अनुरूप है और इस प्रकार वरीयता के सिद्धांत के अनुरूप है।

40.4. न तो संहिता की योजना और न ही इसमें कोई विशिष्ट प्रावधान मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को रोकता है। धारा 173(2) की भाषा को इस तरह से प्रतिबंधात्मक रूप से नहीं समझा जा सकता कि मजिस्ट्रेट को ऐसी शक्तियों से वंचित किया जा सके, खासकर धारा 156(3) के प्रावधानों और धारा 173(8) की भाषा के संदर्भ में। वास्तव में, ऐसी शक्ति को धारा 173(8) की भाषा में पढ़ा जाना चाहिए।

40.5. संहिता एक प्रक्रियात्मक दस्तावेज है, इसलिए, इसे एक ऐसा निर्माण प्राप्त होना चाहिए जो न्याय के कारण को आगे बढ़ाए और विधायी उद्देश्य को प्राप्त किया जाए। यह तर्क नहीं है कि विधायिका ने प्रतिवेदन दर्ज करने के बाद भी पुलिस को आगे की जांच करने की शक्ति प्रदान की, लेकिन न्यायालय की शक्ति को इस हद तक कम करने का इरादा था कि जहां मामले के तथ्य और न्याय के उद्देश्य की मांग है, वहां भी न्यायालय जांच एजेंसी को आगे की जांच करने का निर्देश नहीं दे सकता है जो वह स्वयं कर सकता है।

40.6. यह एक स्वामित्व प्रक्रिया रही है कि पुलिस को 'आगे की जांच' जारी रखने और पूरक आरोपपत्र दाखिल करने के लिए न्यायालय की अनुमति लेनी पड़ती है। इस दृष्टिकोण को इस न्यायालय ने कई निर्णयों में मंजूरी दी है। यह इस तरह से उस दृष्टिकोण का समर्थन करता है जिसे हम वर्तमान मामले में अपना रहे हैं।

(जोर दिया गया)

XXXXXXXXXXXXXX

49. अब, हम एक और महत्वपूर्ण पहलू की जांच कर सकते हैं कि धारा 173(8) के प्रावधानों को न्यायालयों और जांच संस्थाओं द्वारा किस तरह समझा और लागू किया गया है। यह सच है कि हालांकि संहिता की धारा 173(8) के प्रावधानों में न्यायालय की अनुमति से 'आगे की जांच' करने या पूरक प्रतिवेदन दाखिल करने की कोई विशिष्ट आवश्यकता नहीं है, लेकिन जांच संस्थाओं ने न केवल इसे

समझा है बल्कि इसे कानूनी प्रथा के रूप में अपनाया भी है कि 'आगे की जांच' करने और न्यायालय की अनुमति से 'पूरक प्रतिवेदन' दाखिल करने के लिए न्यायालयों की अनुमति ली जाए। न्यायालयों ने, कुछ निर्णयों में, इसी तरह का दृष्टिकोण भी अपनाया है। 'आगे की जांच' करने और/या 'पूरक प्रतिवेदन' दाखिल करने के लिए न्यायालय की पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता को समझना होगा, और यह संहिता की धारा 173(8) के प्रावधानों का एक आवश्यक निहितार्थ है। समकालीन व्याख्या (कंटेम्पोरेनिया एक्सपोजिटियो) का सिद्धांत ऐसे व्याख्या में पूरी तरह सहायक होगा, क्योंकि जो मामले लंबे समय से समझे और क्रियान्वित किए जा रहे हैं, तथा ऐसे अभ्यास जो कानून द्वारा समर्थित हैं, उन्हें व्याख्यात्मक प्रक्रिया के भाग के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

50. इस तरह के दृष्टिकोण का समर्थन दो अलग-अलग दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। सबसे पहले, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वरीयता के सिद्धांत के माध्यम से, क्योंकि अक्सर अदालतों ने इस तरह का दृष्टिकोण अपनाया है, और, दूसरा, जांच संस्थाओं ने भी इस सिद्धांत को समझा और लागू किया है। जिन मामलों को कानूनी अभ्यास के रूप में समझा और लागू किया जाता है और जो कानून के मूल नियम के विपरीत नहीं हैं, वे अच्छे अभ्यास होंगे और इस तरह की व्याख्या समकालीन व्याख्या (कंटेम्पोरेनिया एक्सपोजिटियो) के सिद्धांत की सहायता से स्वीकार्य होगी। अन्यथा भी, अदालत से ऐसी अनुमति लेने से न्याय के उद्देश्य पूरे होंगे

और संदिग्ध/आरोपी के खिलाफ पर्याप्त सुरक्षा भी मिलेगी।”

6ए. आवेदक के अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में विनुभाई हरिभाई मालवीय एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2019) 17 एससीसी 1 मामले का भी हवाला दिया है, जिसमें कहा गया है:

“38. इन निर्णयों में न्यायालय द्वारा कोई उचित कारण नहीं दिया गया है कि प्रक्रिया जारी होने पर मजिस्ट्रेट की आगे की जांच का आदेश देने की शक्ति अचानक क्यों समाप्त हो जाती है, और एक अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होता है, जबकि साथ ही, अपराध की आगे की जांच करने की पुलिस की शक्ति तब तक जारी रहती है जब तक मुकदमा शुरू नहीं हो जाता। ऐसा दृष्टिकोण इस न्यायालय के पहले के निर्णयों, विशेष रूप से, सकीरी (उपरोक्त), समाज परिवर्तन समुदाय (उपरोक्त), विनय त्यागी (उपरोक्त) और हरदीप सिंह (उपरोक्त) के अनुरूप नहीं होगा; हरदीप सिंह (उपरोक्त) ने स्पष्ट रूप से माना है कि आपराधिक मुकदमा संज्ञान लेने के बाद शुरू नहीं होता है, बल्कि आरोप तय होने के बाद ही शुरू होता है। इस न्यायालय के हाल के निर्णयों में जिस बात को बिल्कुल भी महत्व नहीं दिया गया है, वह है संविधान का अनुच्छेद 21 और यह तथ्य कि अनुच्छेद निष्पक्ष और न्यायपूर्ण जांच से कम कुछ नहीं मांगता है। यह कहना कि निष्पक्ष और न्यायपूर्ण जांच से यह निष्कर्ष निकलेगा कि पुलिस के पास धारा 173(8) के तहत मजिस्ट्रेट की मंजूरी के अधीन, आरोप तय होने तक अपराध की आगे जांच करने की

शक्ति बनी रहेगी, लेकिन मजिस्ट्रेट का पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र अचानक पूर्व-परीक्षण कार्यवाही के बीच में ही समाप्त हो जाता है, यह न्याय का उपहास होगा, क्योंकि कुछ मामलों में आगे की जांच की आवश्यकता हो सकती है ताकि किसी निर्दोष व्यक्ति को गलत तरीके से आरोपी के रूप में आरोपित न किया जाए या किसी प्रथम दृष्टया दोषी व्यक्ति को इस तरह से न छोड़ा जाए। मजिस्ट्रेट की शक्तियों के बारे में इस तरह के संकीर्ण और प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण का कोई औचित्य नहीं है, खासकर जब ऐसी शक्तियाँ धारा 156(3) के साथ धारा 156(1), धारा 2(एच) और सी.आर.पी.सी. की धारा 173(8) में पाई जाती हैं, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, और यह आपराधिक मामले की प्रगति के सभी चरणों में परीक्षण वास्तव में शुरू होने से पहले उपलब्ध होगी। न्याय के हित में यह भी होगा कि प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर मजिस्ट्रेट द्वारा स्वयं इस शक्ति का प्रयोग किया जाए। आगे जांच का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं, यह विद्वान मजिस्ट्रेट के विवेक पर निर्भर है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर और कानून के अनुसार इस विवेक का प्रयोग करेगा। यदि, उदाहरण के लिए, नए तथ्य सामने आते हैं जो कुछ व्यक्तियों को दोषी ठहराने या दोषमुक्त करने की ओर ले जाते हैं, तो सच्चाई तक पहुंचना और आपराधिक मामले में पर्याप्त न्याय करना आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने में और देरी होने से बचने से ज्यादा महत्वपूर्ण है, जैसा कि हसनभाई वलीभाई कुरैशी (उपरोक्त) में माना गया था। इसलिए, जिस हद तक अमृतभाई शंभूभाई पटेल (उपरोक्त), अतुल राव

(उपरोक्त) और बिकाश रंजन राउत (उपरोक्त) के निर्णयों ने इसके विपरीत माना है, वे खारिज हो गए हैं। इसमें यह भी जोड़ने की जरूरत नहीं है कि रणधीर सिंह राणा बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1997) 1 एस.सी.सी. 361 और रीता नाग बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (2009) 9 एस.सी.सी. 129 भी खारिज हो गए हैं।

7. अंत में पीताम्बरन बनाम केरल राज्य और अन्य (आपराधिक अपील संख्या 1381/2023) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के फैसले पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है:

“19. किसी जिले का मुख्य पुलिस अधिकारी पुलिस अधीक्षक होता है जो भारतीय पुलिस सेवा का अधिकारी होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिला पुलिस प्रमुख का आदेश संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किए गए आदेश के समान नहीं होता है। विनय त्यागी (उपरोक्त) का हवाला देते हुए, इस न्यायालय ने देवेंद्र नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य 9 में टिप्पणी की कि आगे की जांच के लिए या पूरक प्रतिवेदन दाखिल करने के लिए न्यायालय की अनुमति लेने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, लेकिन जांच संस्थाओं ने न केवल इसे ऐसा समझा है बल्कि इसे कानूनी आवश्यकता के रूप में अपनाया भी है। समकालीन व्याख्या (कंटेम्पोरेनिया एक्सपोज़िटियो) का सिद्धांत उन मामलों की ऐसी व्याख्या में सहायता करता है जिन्हें लंबे समय से समझा और एक विशेष तरीके से लागू किया गया है ताकि व्याख्यात्मक प्रक्रिया

में स्वीकार किया जा सके। दूसरे शब्दों में, आगे की जांच या पूरक प्रतिवेदन दाखिल करने के लिए अनुमति की आवश्यकता कानून के भीतर स्वीकार की जाती है और इसलिए इसका अनुपालन किया जाना आवश्यक है।”

8. यह भी तर्क दिया गया है कि सह-आरोपी नरेंद्र कुमार सिंह के स्वीकारोक्ति के आधार पर आवेदक का आरोप साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के तहत गलत है। अंत में **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप (1) एससीसी 335** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए तर्क दिया गया है कि भले ही प्राथमिकी और पूरक आरोप-पत्र में लगाए गए सभी आरोपों को सही माना जाए, लेकिन अपीलकर्ता के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है।

9. विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता ने आवेदक तथा विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों का पुरजोर विरोध किया है।

10. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि पुलिस को आगे की जांच के लिए महानगर मजिस्ट्रेट से अनुमति की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने दलील दी है कि पुलिस के पास जांच करने की असीमित शक्ति है और ऐसी जांच धारा 173 (2) सी.आर.पी.सी. के तहत आरोप-पत्र दाखिल होने और मजिस्ट्रेट द्वारा उस पर संज्ञान लिए जाने के बाद भी जारी रह सकती है। **रामा चौधरी बनाम बिहार राज्य, (2009) 6 एससीसी 346** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर

भरोसा किया गया है जिसमें यह माना गया है कि:

“अन्य उप-धाराओं के अलावा, हम उप-धारा (8) के बारे में बहुत चिंतित हैं जो इस प्रकार है:-

“(8) इस धारा की कोई बात किसी अपराध के संबंध में उपधारा (2) के अधीन प्रतिवेदन मजिस्ट्रेट को भेजे जाने के पश्चात आगे की जांच को रोकने वाली नहीं समझी जाएगी और जहां ऐसी जांच के पश्चात पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी मौखिक या दस्तावेजी अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करता है, वहां वह ऐसे साक्ष्य के संबंध में मजिस्ट्रेट को निर्धारित प्ररूप में अतिरिक्त प्रतिवेदन या कई प्रतिवेदन भेजेगा; और उपधारा (2) से (6) के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसी प्रतिवेदन या कई प्रतिवेदन के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उपधारा (2) के अधीन भेजी गई प्रतिवेदन के संबंध में लागू होते हैं।”

8) उपर्युक्त प्रावधान को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपधारा (2) के तहत मजिस्ट्रेट को भेजी गई प्रतिवेदन पर ध्यान दिए बिना, यदि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करता है, तो यह उसका कर्तव्य है कि वह उसे निर्धारित प्रपत्र में ऐसे साक्ष्य के संबंध में अतिरिक्त प्रतिवेदन के साथ मजिस्ट्रेट को भेजे।

9) उपर्युक्त प्रावधान यह भी स्पष्ट करता है कि आगे की जांच अनुमेय है, लेकिन पुनः जांच निषिद्ध है। कानून आगे की जांच के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति लेने को अनिवार्य नहीं बनाता है। आरोप-पत्र दाखिल

होने के बाद भी आगे की जांच करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है। बिना पूर्व अनुमति के पुनः जांच निषिद्ध है। दूसरी ओर, आगे की जांच अनुमेय है।

10) धारा 173 की उपधारा (2) और उपधारा (8) को सरलता से पढ़ने से यह स्पष्ट है कि जांच पूरी होने पर उपधारा (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी, पुलिस को धारा 173 की उपधारा (8) के तहत "आगे" जांच करने का अधिकार है, लेकिन "नई जांच" या "पुनः जांच" का नहीं। "आगे" का अर्थ अतिरिक्त; अधिक; या पूरक है। इसलिए, "आगे" जांच पहले की जांच की निरंतरता है, न कि नई जांच या फिर से जांच जो पहले की जांच को पूरी तरह से खत्म कर दे। धारा 173 की उपधारा (8) में स्पष्ट रूप से परिकल्पना की गई है कि आगे की जांच पूरी होने पर, जांच एजेंसी को मजिस्ट्रेट को "आगे" रिपोर्ट भेजनी होगी, न कि ऐसी जांच के दौरान प्राप्त "आगे" सबूतों के बारे में नई रिपोर्ट।

11) जैसा कि हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2004) 5 एस.सी.सी. 347 में कहा गया है, आगे की जांच के लिए मुख्य विचार सत्य तक पहुंचना और वास्तविक और पर्याप्त न्याय करना है। आगे की जांच के लिए जांच एजेंसी के हाथ केवल देरी के आधार पर नहीं बांधे जाने चाहिए। दूसरे शब्दों में, केवल यह तथ्य कि मुकदमे को समाप्त करने में और देरी हो सकती है, आगे की जांच के रास्ते में नहीं आना चाहिए, अगर इससे न्यायालय को सत्य तक पहुंचने और वास्तविक और पर्याप्त और

साथ ही प्रभावी न्याय करने में मदद मिलती है।

12) यदि हम उपरोक्त विधिक सिद्धांतों पर विचार करें तो पूरक आरोप-पत्र में नामित गवाहों को बुलाने के विचारण न्यायालय के दिनांक 19.02.2008 के आदेश में कोई त्रुटि नहीं की जा सकती है। यह सही है कि पूछताछ और जांच के बाद दिनांक 11.03.2004 को आरोप तय किए गए और उसके बाद विचारण के दौरान लगभग 21 गवाहों की जांच की गई। इस बीच, पुलिस ने कुछ नई सामग्रियों के साथ पूरक आरोप-पत्र प्रस्तुत किया और पूरक आरोप-पत्र के आधार पर अभियोजन पक्ष ने लंबित सत्र परीक्षण संख्या 63/2004 में अभियोजन पक्ष के गवाहों के रूप में उनकी जांच के लिए आरोपपत्र में नामित व्यक्तियों को बुलाने के लिए दिनांक 12.01.2008 को विचारण न्यायालय में एक आवेदन दायर किया। आवेदन के सावधानीपूर्वक अध्ययन के बाद विचारण न्यायालय ने दिनांक 19.02.2008 के आदेश द्वारा इसे अनुमति दे दी और पूरक आरोप-पत्र में नामित गवाहों को बुलाया।

13) कानून आगे की जांच के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति लेने का आदेश नहीं देता है। यह स्थापित विधि है कि आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद भी आगे की जांच करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है। [के. चंद्रशेखर बनाम केरल राज्य और अन्य, (1998) 5 एससीसी 223 के अनुसार] आगे की जांच में एकत्र की गई सामग्री को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि इसे

परीक्षण के चरण में दायर किया गया है। तथ्य और परिस्थितियाँ दर्शाती हैं कि आगे की जांच के दौरान जिन गवाहों की जांच की गई है, उन्हें बुलाने के लिए विचारण न्यायालय पूरी तरह से न्यायसंगत है। सी.आर.पी.सी. की धारा 231 से यह भी स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में पेश करने का हकदार है, भले ही ऐसे व्यक्ति का नाम पहले के आरोप-पत्र में न हो। पूरक आरोप-पत्र के आधार पर गवाहों को बुलाने के दौरान विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा उन सभी प्रासंगिक पहलुओं पर ध्यान दिया गया है। उच्च न्यायालय द्वारा संशोधन को सही ढंग से खारिज करके इसकी सही सराहना की गई। हम उक्त निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत हैं।”

11. अंततः विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 4 एस.सी.सी. 160** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है, जो इस प्रकार है:-

18. इस संदर्भ में, हम जांच से संबंधित वैधानिक योजना पर गौर कर सकते हैं। धारा 173 सी.आर.पी.सी. जांच करने वाले पुलिस अधिकारी को अपराध का संज्ञान लेने के लिए अधिकृत मजिस्ट्रेट के पास जांच पूरी होने पर रिपोर्ट दाखिल करने का अधिकार देती है। धारा 173(8) सी.आर.पी.सी. धारा 173(2) सी.आर.पी.सी. के तहत प्रतिवेदन दाखिल करने के बाद भी प्रभारी अधिकारी को आगे की जांच करने का अधिकार देती है, अगर उसे मौखिक या दस्तावेजी सबूत मिलते हैं। इस प्रकार, धारा 173(8) सी.आर.पी.सी. के तहत पुलिस अधिकारी की शक्ति अप्रतिबंधित है। कहने की

जरूरत नहीं है कि मजिस्ट्रेट के पास हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है, लेकिन जांच अधिकारी के लिए अदालत को सूचित करना उचित होगा। रामा चौधरी बनाम बिहार राज्य 4 में ऐसा कहा गया है।

18. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली 5 के वाद में, जिसमें दो न्यायाधीशों की पीठ ने भगवंत सिंह बनाम कमिश्नर ऑफ पुलिस 4 (2009) 6 एससीसी 346 5 (2013) 5 एससीसी 762 पुलिस 6 के निर्णय का संदर्भ लेने के बाद इस प्रकार माना है:-

“हालांकि, इन निर्णयों में बताए गए सिद्धांतों पर विचार करने के बाद, हमारा मानना है कि जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 173(2) के तहत रिपोर्ट दाखिल की जाती है, उसे कानून के तहत “आगे की जांच” करने का निर्देश देने और पुलिस को एक अतिरिक्त या पूरक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कहने का अधिकार है। भगवंत सिंह मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने स्पष्ट शब्दों में उस सिद्धांत को कहा है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।”

19. उक्त मामले में यह प्रश्न उठा था कि क्या मजिस्ट्रेट पुनः जांच का निर्देश दे सकता है। उक्त मुद्दे पर विचार करते हुए न्यायालय ने यह माना है कि :-

“इस स्तर पर, हम आपराधिक न्यायशास्त्र के एक और सुस्थापित सिद्धांत को भी बता सकते हैं कि उच्च न्यायालयों को संहिता की धारा 482 या यहां तक कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत “आगे की जांच”, “नवीन ” या “नए सिरे से” और यहां तक कि

"पुनः जांच" का निर्देश देने का अधिकार है। "नवीन ", "नए सिरे से" और "पुनः जांच" समानार्थी अभिव्यक्तियां हैं और कानून में उनका परिणाम एक ही होगा। उच्च न्यायालयों को एक संस्था से दूसरी संस्था को जांच स्थानांतरित करने की शक्ति भी दी गई है, बशर्ते न्याय के उद्देश्य ऐसी कार्रवाई की मांग करें। बेशक, यह भी एक स्थापित सिद्धांत है कि इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालयों द्वारा बहुत संयम से और बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए।" [जोर दिया गया] और फिर:-

"मजिस्ट्रेट को "आगे की जांच" का निर्देश देना चाहिए या नहीं, यह फिर से एक ऐसा मामला है जो किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। विद्वान मजिस्ट्रेट या सक्षम अधिकार क्षेत्र वाला उच्च न्यायालय किसी दिए गए मामले के तथ्यों के आधार पर "आगे की जांच" या "पुनः जांच" का निर्देश देगा। जहां मजिस्ट्रेट केवल आगे की जांच का निर्देश दे सकता है, वहीं उच्च अधिकार क्षेत्र वाली अदालत किसी दिए गए मामले के तथ्यों के आधार पर आगे की जांच, पुनः जांच या यहां तक कि नए सिरे से जांच का निर्देश दे सकती है। यह अदालत का विशिष्ट आदेश होगा जो जांच की प्रकृति निर्धारित करेगा।"

12. प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुनने और अधिवक्ता-संघ में उद्धृत प्राधिकारियों के माध्यम से विचार करने के पश्चात, इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामले में, निर्णय किए जाने वाला पहला प्रश्न यह है कि (i) क्या जांच अधिकारी द्वारा सह-अभियुक्त

के विरुद्ध एक बार आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात आगे की जांच करने और पूरक आरोप-पत्र दाखिल करने की कार्रवाई कानून में अनुमेय है या नहीं। दूसरा प्रश्न, जिस पर निर्णय किए जाने की आवश्यकता है, वह है (ii) क्या बिक्री के लिए समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले मात्र को उसी अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जो कथित रूप से बिक्री के लिए समझौते के लाभार्थी, इस मामले में सह-अभियुक्त द्वारा किया गया है।

13. पहले प्रश्न पर आगे बढ़ते हुए, यह न्यायालय पाता है कि **विनय त्यागी** (उपरोक्त) और **पीतांबरन** (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आगे की जांच करने या पूरक प्रतिवेदन दाखिल करने के लिए मजिस्ट्रेट की अनुमति की आवश्यकता है, जबकि **रामा चौधरी** (उपरोक्त), **हसनभाई वलीभाई कुरैशी** (उपरोक्त), **धर्मपाल** (उपरोक्त) के मामलों में विपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए अन्य निर्णयों के समूह के निर्णय अन्यथा प्रदान करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के दूसरे समूह में यह अनिवार्य किया गया है कि धारा 173(8) सी.आर.पी.सी. जांच अधिकारी को धारा 173(2) सी.आर.पी.सी. के तहत प्रतिवेदन दाखिल करने के बाद भी आगे की जांच करने का अधिकार देता है, अगर उसे आगे कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य मिलता है। मजिस्ट्रेट से जांच अधिकारी को आगे की जांच के लिए किसी आदेश की आवश्यकता नहीं है।

14. इस न्यायालय ने पाया कि **विनय त्यागी** (उपरोक्त) और **पीतांबरन** (उपरोक्त) के मामले

में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में **रामा चौधरी (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के कानून पर विचार नहीं किया गया है। **धरमपाल (उपरोक्त)** के फैसले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई यह टिप्पणी कि जांच अधिकारी के लिए यह उचित होगा कि वह आगे की जांच करने से पहले अदालत को सूचित करे जैसा कि **रामा चौधरी (उपरोक्त)** में कहा गया है, अभिलेख से पुष्टि नहीं होती है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत **विनुभाई हरिभाई मालवीय और अन्य (उपरोक्त)** का निर्णय एक अलग मुद्दे पर है कि क्या मजिस्ट्रेट के पास धारा 173(2) सी.आर.पी.सी. के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी आगे की जांच का आदेश देने का विवेकाधिकार है या नहीं।

15. वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट की आगे की जांच का आदेश देने की शक्ति विवाद में नहीं है। विवाद यह है कि क्या जांच अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना आगे की जांच कर सकता है या नहीं। धारा 173 (8) के अवलोकन से पता चलता है कि यह प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के बाद जांच अधिकारी द्वारा आगे की जांच करने का प्रावधान करता है। इसमें ऐसा करने के लिए मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति का कहीं भी प्रावधान नहीं है। **रामा चौधरी (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इसी पर भरोसा किया है। **हसनभाई वलीभाई कुरैशी (उपरोक्त)** के फैसले में इसने माना है कि मजिस्ट्रेट के किसी भी आदेश के बिना जांच अधिकारी द्वारा आगे की जांच करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत भी सर्वोच्च

न्यायालय ने **विनय त्यागी (उपरोक्त)** के मामले में माना है कि यह स्वामित्व की प्रक्रिया रही है कि पुलिस को 'आगे की जांच' जारी रखने और पूरक आरोप-पत्र दाखिल करने के लिए न्यायालय की अनुमति लेनी होती है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में अनुमोदित किया है। अधिवक्ता-संघ में उद्धृत दोनों समूहों के निर्णय समान शक्ति वाली पीठों के हैं।

16. उपर्युक्त विचार के मद्देनजर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए पहले प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है और माना जाता है कि आगे की जांच करने और आवेदक के खिलाफ पूरक आरोप पत्र दायर करने में जांच अधिकारी की ओर से कोई गलती नहीं थी।

17. अब दूसरे प्रश्न पर विचार करते हुए, यह न्यायालय पाता है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 के अवलोकन से स्पष्ट रूप से साबित होता है कि अचल संपत्ति की बिक्री के लिए एक अनुबंध केवल एक अनुबंध है कि ऐसी संपत्ति की बिक्री पक्षों के बीच तय शर्तों पर होगी। यह अपने आप में ऐसी संपत्ति में कोई हित या भार नहीं बनाता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि बेचने का एक समझौता इच्छुक खरीदार के पक्ष में कोई अधिकार या शीर्षक नहीं बनाता है। यह केवल एक दस्तावेज है जो उसमें निर्दिष्ट नियमों और शर्तों को पूरा करने पर विक्रेता से बिक्री का एक और दस्तावेज प्राप्त करने का अधिकार बनाता है। इस तरह के एक समझौते के बल पर, एक खरीदार संपत्ति का मालिक

नहीं बन जाता है। स्वामित्व विक्रेता के पास रहता है। यह विक्रेता द्वारा बिक्री विलेख के निष्पादन पर ही खरीदार को हस्तांतरित किया जाएगा

18. बेशक, आवेदक विवादित संपत्ति का न तो विक्रेता है और न ही खरीदार। सह-अभियुक्त, नरेंद्र कुमार सिंह, संपत्ति का इच्छित खरीदार है और आवेदक पर केवल सह-अभियुक्त, नरेंद्र कुमार सिंह के पक्ष में विपक्षी संख्या 2 की मां द्वारा कथित रूप से निष्पादित बिक्री समझौते का गवाह होने का आरोप है। बिक्री समझौते का गवाह केवल विक्रेता और खरीदार द्वारा उसके समक्ष दस्तावेज के उचित निष्पादन की गवाही देता है। यह न्यायालय आगे पाता है कि बिक्री समझौते या किसी अन्य दस्तावेज के सत्यापनकर्ता गवाह पर तब तक आपराधिक मुकदमा नहीं चलाया जा सकता जब तक कि धारा 120-बी आई.पी.सी. के तहत साजिश का आरोप न हो। गवाह के लिए यह जानना जरूरी नहीं है कि दस्तावेज में क्या लिखा है। वह उसके समक्ष दस्तावेज के उचित निष्पादन का गवाह है। वर्तमान मामले में, आवेदक का दावा है कि विवादित बिक्री समझौते में सत्यापनकर्ता गवाह के रूप में केवल उसका नाम बड़े अक्षरों में उल्लेख किया गया है। उसने उस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। संपत्ति में उसका कोई हित नहीं था और न ही वह उस पर काबिज है। विवादित संपत्ति पर सह-अभियुक्त का कब्जा है, आवेदक का नहीं। आवेदक को कथित अपराध के लिए तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता था, जब यह पाया जाता कि विवादित संपत्ति में उसका कुछ हित था और उसने केवल अपने हित की रक्षा के लिए बिक्री

समझौते को सत्यापित किया था। यहाँ ऐसा नहीं है।

19. इसलिए यह स्पष्ट है कि सह-आरोपी नरेंद्र कुमार सिंह के पक्ष में विपक्षी संख्या 2 की मां द्वारा कथित रूप से निष्पादित एक अपंजीकृत बिक्री समझौते को कथित रूप से सत्यापित करने के लिए आवेदक पर कोई आपराधिक दायित्व नहीं लगाया जा सकता है। ऊपर तैयार किए गए दूसरे प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

20. **भजन लाल बनाम हरियाणा राज्य (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से वे मानदंड निर्धारित किए हैं जिनके तहत किसी अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही रद्द की जा सकती है और यह मामला भी उसी के अंतर्गत आता है।

21. यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि सह-अभियुक्त नरेन्द्र कुमार सिंह के बयान के आधार पर आवेदक के खिलाफ आगे की जांच की गई तथा उसके आधार पर पूरक आरोप-पत्र प्रस्तुत करना कानून के अनुसार था, लेकिन अभिलेख पर मौजूद तथ्यों तथा बिक्री के लिए समझौते के निष्पादन के सुसंगत कानून के आधार पर आवेदक के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। इसलिए पूरक आरोप-पत्र दिनांक 28.8.2016 तथा समन आदेश दिनांक 28.9.2016 को निरस्त किया जाता है।

22. आवेदन स्वीकार किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 426

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला,
के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 559 सन् 1996

विनोद एवं अन्य ...अपीलकर्तागण
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता: श्री जी.एस.
चतुर्वेदी, श्री अनुराग शुक्ला

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता,
श्री जितेन्द्र शंकर पाण्डेय, सुश्री सीमा सिंह

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34, 307/34 और 323/34 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - कठोर कारावास - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 145 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313 - अभियोजन पक्ष के अनुसार, पी.डब्ल्यू.-1 पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 का चचेरा भाई था - तीनों के पास अलग-अलग कृषि भूमि है, जैसा कि पी.डब्ल्यू.2 के साक्ष्य से स्पष्ट है - अभियुक्त कृषि भूमि खरीदना चाहता था, लेकिन इसे पी.डब्ल्यू.-2 ने खरीद लिया - तनावपूर्ण संबंध केवल पी.डब्ल्यू.-2 के खिलाफ था, लेकिन उसने जिरह में कहा कि न तो किसी ने उसे पीटने के लिए उकसाया और न

ही किसी ने उसे पीटा है - इसके अलावा अपीलकर्ता संख्या 1 ने बदला लेने के लिए बात कही - उसके अनुसार, "बदला" का मतलब है कि अपीलकर्ता संख्या 1 फसल काटने नहीं देगा - फसल काटने के मुद्दे पर उनके बीच विवाद उत्पन्न हुआ - अपराध करने का मकसद संदिग्ध प्रतीत होता है - रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो तनावपूर्ण संबंधों के आरोप के अलावा, कोई अन्य कारण था - जिरह में पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 घटना के समय मौके पर मौजूद थे और रेखपाल सिंह ने पीडब्लू-2 पर गोली नहीं चलाई और पीडब्लू-2 को नहीं पीटा तथा अपीलकर्ता नंबर 1 को पीटने के लिए उकसाया - पीडब्लू-3 ने अपीलकर्ता नंबर 1 को उकसाने की भूमिका साँपी जिसने बदला लेने के लिए पीटने के लिए उकसाया - अपीलकर्ताओं के खिलाफ मृतक को मारने के लिए उकसाने का आरोप नहीं लगाया गया है। (पैरा 35, 36, 37)

मृतक की हत्या के लिए अपराध के पहले या उसके दौरान रची गई पूर्व साजिश को स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है - पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 के साक्ष्य इस बात के अनुरूप हैं कि अपीलकर्ता संख्या 1 ने पीडब्लू-3 के दाहिने हाथ पर लाठी से साधारण चोटें पहुंचाई थीं और अपीलकर्ता संख्या 2 ने पीडब्लू-3 के बाएं हाथ और घायल सांवलिया के पैर पर लाठी से साधारण चोटें पहुंचाई थीं और पीडब्लू-4 द्वारा चोटों को साबित किया गया। (पैरा 38, 51)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मलखान सिंह बनाम राज्य (1975) 3 एससीसी 311 (पैरा 7)
2. परसा राजा मणिक्याला राव और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (2003) 12 एससीसी 306 (पैरा 11 और 12)
3. सुरेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य. (2001) 3 एससीसी 673, (पैरा 24 और 40)
4. लल्लन राय बनाम बिहार राज्य, (2003) 1 एससीसी 268, (पैरा 22)
5. छोटा अहिरवार बनाम एम.पी. राज्य, (2020) 4 एससीसी 126, (पैरा 24)
6. बरेंद्र कुमार घोष बनाम किंग एम्परर, एआईआर 1925 पीसी 1
7. महबूब शाह बनाम एम्परर, एआईआर 1945 पीसी 118
8. रामबिलास सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य, (1989) 3 एससीसी 605, (पैरा 7)
9. कृष्णन एवं अन्य बनाम केरल राज्य, (1996) 10 एससीसी 508, (पैरा 15)
10. सुरेन्द्र चौहान बनाम एम.पी. राज्य, (2000) 4 एससीसी 110, (पैरा 11)
11. गोपी नाथ @ झल्लर बनाम यू.पी. राज्य, (2001) 6 एससीसी 620, (पैरा 8)
12. रमेश सिंह @ फोट्टी बनाम ए.पी. राज्य, (2004) 11 एससीसी 305, (पैरा 12)
13. नंद किशोर बनाम एम.पी. राज्य, (2011) 12 एससीसी 120, (पैरा 20 से 23)
14. श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2012) 7 एससीसी 646, (पैरा 87)
15. जसदीप सिंह @ जस्सू बनाम पंजाब राज्य, (2022) 2 एससीसी 545 (पैरा 19 से 27)

16. गुलाब बनाम यू.पी. राज्य, (2022) 12 एससीसी 677 (पैरा 20, 23, 27.1, 27.2, 27.3, 27.4 और 28)
17. नागराजा बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 17 एससीसी 277 (पैरा 18 और 19)

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, विपक्षी/राज्य के लिए, विद्वान ए.जी.ए. श्रीमती मंजू ठाकुर, और सूचनाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री जितेंद्र शंकर पांडेय को सुना।
2. यह अपील सत्र न्यायाधीश, मथुरा द्वारा सत्र विचारण संख्या 167/1993 में दिनांक 09.02.1996 को पारित निर्णय और आदेश को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जिसमें अभियुक्त रेखपाल को धारा 302, 307/34 और 323/34 भा.द.सं. के अपराधों के लिए, अभियुक्त विनोद को धारा 302/34, 307/34 और 323 भा.द.सं. के अपराधों के लिए और अभियुक्त प्रमोद और मनोज को धारा 302/34, 307/34 और 323/34 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषी ठहराया गया था। अभियुक्त रेखपाल ने अलग से एक दांडिक अपील संख्या 575/1996 (रेखपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर की थी, जो उसकी मृत्यु के कारण दिनांक 03.04.2019 के आदेश द्वारा उपशमित हो गई। वर्तमान दांडिक अपील तीन अभियुक्तों नामतः विनोद पुत्र रेखपाल, प्रमोद

पुत्र रग्घी @ रघुबीर और मनोज पुत्र नत्थी द्वारा दायर की गई है। वर्तमान अपील के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त अपीलार्थी संख्या 3 मनोज की मृत्यु हो गई और इस प्रकार दिनांक 09.12.2019 के आदेश द्वारा अभियुक्त अपीलार्थी मनोज के संबंध में अपील उपशमित हो गई। अतः, वर्तमान अपील जीवित है और विद्वान अधिवक्ता द्वारा केवल अपीलार्थी संख्या 1 और 2, नामतः विनोद पुत्र रेखपाल और प्रमोद पुत्र रग्घी @ रघुबीर के लिए प्रस्तुत की जा रही है।

और पीटने के लिए उकसाया। प्रमोद ने संवलिया को पीटना शुरू कर दिया और जब पीड़ित संवलिया को बचाने के लिए भागे, तब विनोद ने प्रमोद से देशी पिस्तौल छीन ली और मुनेश पाल @ मुनिया पर गोली चला दी। तत्पश्चात रेखपाल ने अपनी डी.बी.बी.एल. बंदूक से ओम प्रकाश की पीठ पर गोली मारी। परिणामस्वरूप ओम प्रकाश की मौके पर ही मृत्यु हो गई। गोली की आवाज सुनकर जब लोग मौके पर आने लगे, तब चारों अभियुक्त भाग गए।

तथ्य:-

3. वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अभियोजन के अनुसार, दिनांक 17.10.1992 को लगभग दोपहर 3:00 बजे घायल चश्मदीद गवाह-अभियोजन शाक्षी -1 भीकमपाल सिंह पुत्र राज पाल सिंह, मृतक ओम प्रकाश, घायल चश्मदीद गवाह अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल सिंह पुत्र संवल सिंह और घायल चश्मदीद गवाह अभियोजन शाक्षी -3 मुनेश पाल @ मुनिया पुत्र संवल सिंह अपने-अपने कृषि क्षेत्रों पर काम करने के बाद अपने घरों की ओर लौट रहे थे और जब वे एक जिमीपाल की कृषि भूमि के पास सार्वजनिक रास्ते पर पहुंचे, तब अभियुक्त रेखपाल डी.बी.बी.एल. बंदूक के साथ, उसका रिश्तेदार मनोज पुत्र नत्थी देशी पिस्तौल के साथ, प्रमोद पुत्र रघुबीर @ रग्घी देशी पिस्तौल और लाठी के साथ और विनोद पुत्र रेखपाल एक लाल रंग की बुलेट मोटरसाइकिल पर आए जो अभियुक्त विनोद पुत्र रेखपाल द्वारा चलाई जा रही थी। मोटरसाइकिल को उपरोक्त पीड़ितों के पास रोका गया। अभियुक्त विनोद ने बदला लेने

4. मामले के समर्थन में, अभियोजन पक्ष ने तीन चश्मदीद गवाहों, नामतः भीकमपाल सिंह अभियोजन शाक्षी -1, शेषपाल सिंह अभियोजन शाक्षी -2 और मुनेश पाल @ मुनिया अभियोजन शाक्षी -3 की परीक्षा की। औपचारिक गवाहों, अर्थात् अभियोजन शाक्षी -4 डॉ. डी.एस. वर्मा जिन्होंने मुनेश पाल पुत्र संवल सिंह की चोटों का चिकित्सकीय परीक्षण किया, अभियोजन शाक्षी -5 विवेचक अधिकारी अमरजीत सिंह, एस.एच.ओ. नरौली, मथुरा, अभियोजन शाक्षी -6 हेड कांस्टेबल रमेश चंद्र जिन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, अभियोजन शाक्षी -7 द्वितीय विवेचक अधिकारी श्री उमेश कुमार सिंह, एस.एच.ओ. थाना कागरोल आगरा और अभियोजन शाक्षी -8 डॉ. आर.सी. शर्मा जिन्होंने ओम प्रकाश (मृतक) के शव का पोस्टमार्टम किया, की परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा की गई। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने तीन चश्मदीद गवाहों और पांच औपचारिक गवाहों की परीक्षा की। अभियुक्तों के बयान धारा 313, दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिलिखित किए गए। बचाव पक्ष की

ओर से, तीन गवाहों अर्थात बचाव शाक्षी-1 डॉ. आर.बी. शर्मा जिन्होंने अभियुक्त रेखपाल सिंह और विनोद की चोटों का परीक्षण किया, बचाव शाक्षी-2 मतिंद्र भारद्वाज, सर्जन जिन्होंने शकुंतला पत्नी रेखपाल सिंह की चोटों का परीक्षण किया और बचाव शाक्षी-3 लदन सिंह, की परीक्षा की गई। विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले की सुनवाई की और सभी चार अभियुक्तों, नामतः रेखपाल सिंह, विनोद, प्रमोद और मनोज को दोषी ठहराया और आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 09.02.1996 में उल्लिखित दंड दिया। व्यथित होकर, अपीलार्थीगण ने वर्तमान अपील दायर की है।

अभिवचन:-

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निम्नलिखित अभिवचन करते हैं:-

(i) मकसद की पूर्ण अनुपस्थिति है। वास्तविक घटना वह थी जो अभियुक्त रेखपाल सिंह ने अपने दिनांक 24.02.2005 के बयान में धारा 313 द.प्र.सं. के अंतर्गत कही थी। अभियोजन शाक्षी -1, अभियोजन शाक्षी -2 और अभियोजन शाक्षी -3 चश्मदीद गवाह नहीं हैं। अभियोजन शाक्षी -1, अभियोजन शाक्षी -2 या अभियोजन शाक्षी -3 को देशी पिस्तौल से कोई चोट नहीं लगी थी। अभियोजन शाक्षी -1, अभियोजन शाक्षी -2 और अभियोजन शाक्षी -3 के साक्ष्य असंगत हैं।

(ii) अभियोजन पक्ष धारा 302/307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत कथित अपराध के लिए सामान्य आशय को सिद्ध करने में पूर्णतः

विफल रहा है। सामान्य आशय के अभाव में, अभियुक्त अपीलार्थी संख्या 1 और 2 को धारा 302 या 307 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

(iii) अभियोजन पक्ष का संपूर्ण मामला मिथ्या पर आधारित है और अपीलार्थीगण को झूठा फंसाया गया है। अभियोजन शाक्षी -1, 2 और 3 का साक्ष्य सामान्य आशय को सिद्ध नहीं करता।

(iv) अभियोजन पक्ष अभियुक्त रेखपाल सिंह, विनोद और एक शकुंतला, रेखपाल सिंह की पत्नी द्वारा प्राप्त चोटों की व्याख्या करने में पूर्णतः विफल रहा है, जो अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक है।

(v) धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत कोई मामला नहीं बनता है।

6. विद्वान ए.जी.ए. ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश का समर्थन किया।

7. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अभियुक्तों द्वारा किए गए अपराध का उद्देश्य यह था कि अभियोजन शाक्षी -2 ने घटना की तिथि से लगभग एक वर्ष पूर्व एक भूमि खरीदी थी, जिसे अभियुक्तगण खरीदना चाहते थे और रेखपाल ने उस भूमि के संबंध में दाखिल-खारिज की कार्यवाही का विरोध किया। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को संदेह से परे साबित कर दिया है और इसलिए

आक्षेपित निर्णय और आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

विवेचना और निष्कर्ष:-

8. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अपील के अभिलेख का अवलोकन किया है।

9. चश्मदीद गवाह अभियोजन शाक्षी -1 भीकमपाल सिंह और मृतक ओम प्रकाश सगे भाई बताए गए हैं। चश्मदीद गवाह अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल सिंह पुत्र संवल सिंह, अभियोजन शाक्षी -3 के चचेरे भाई हैं। मुनेश पाल उर्फ मुनिया पुत्र संवलिया को घायल चश्मदीद गवाह बताया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, पहली चोट संवलिया को लगी थी, जिसकी अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा नहीं की गई। इस प्रकार, अभियोजन के अनुसार प्रश्नगत घटना में ओम प्रकाश की मृत्यु हो गई और मुनेश पाल उर्फ मुनिया तथा संवल सिंह (संवलिया) घायल हुए, जिनकी जांच अभियोजन शाक्षी -4 डॉ. डी.एस. वर्मा द्वारा 17.10.1992 को सिविल डिस्पेंसरी बलदेव में की गई और निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

मुनेशपाल उर्फ मुनिया की चोटें:-

"1. सिर के बाईं ओर, बाएं कान से 3-3/4 ऊपर 2"x1/10" का हड्डी तक गहरा लैसरेटेड घाव।

2. बाएं हाथ के बाहरी मध्य भाग पर 1-1/4"x-1/4" का खरोंच युक्त चोट (नील)।

3. दाहिने हाथ के निचले बाहरी भाग पर 1-1/2"x-1/2" की खरोंच।

संवलिया की चोटें:-

बाएं पैर के अगले मध्य भाग पर 1 1/2" x 1/2" की चोट (नील)।

10. अभियुक्तगण रेखपाल सिंह, विनोद और मनोज को घटना के दिन अर्थात् 17.10.1992 को लगभग शाम 06:30 बजे विवेचक अधिकारी एस.आई. अमरजीत सिंह द्वारा बिना किसी प्रतिरोध के गिरफ्तार किया गया और रेखपाल सिंह से एक लाइसेंसी डी.बी.बी.एल. बंदूक तथा अभियुक्त विनोद से कथित रूप से एक बारह बोर की देसी पिस्तौल और कुछ कारतूस बरामद किए गए। अभियुक्त मनोज से लगभग चार बालिशत, चार अंगुल लंबी एक लकड़ी की लाठी (डंडा) बरामद की गई। उसी दिन लगभग शाम 06:30 बजे उनसे बुलेट मोटरसाइकिल, जिसका पंजीकरण संख्या यू.एच.एल. 5211 था, भी बरामद की गई। अभियुक्तों को थाने लाया गया। अपने प्रतिपरीक्षण साक्ष्य में, अभियोजन शाक्षी -6 ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि अभियुक्त रेखपाल सिंह की चोटों को विवेचक अधिकारी और दरोगा की उपस्थिति में थाने में जी.डी. में दर्ज किया गया था। उन्होंने कहा कि रेखपाल सिंह की चोटें मामूली थीं और इसलिए उन्हें चिकित्सा परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया, हालांकि अभियुक्त रेखपाल सिंह और विनोद का चिकित्सा परीक्षण जिला अस्पताल, मथुरा में बचाव शाक्षी-1 डॉ. आर.बी. शर्मा, चिकित्सा अधिकारी द्वारा किया गया और अभियुक्त रेखपाल सिंह की पत्नी, यानी श्रीमती शकुंतला का परीक्षण 22.10.1992 को जिला अस्पताल, मथुरा में बचाव शाक्षी-2 डॉ. मतिंद्र भारद्वाज, सर्जन द्वारा किया गया। चिकित्सा परीक्षण

रिपोर्ट के अनुसार, अभियुक्तगण रेखपाल सिंह, विनोद और शकुंतला की चोटें निम्नानुसार थीं:-

अभियुक्त रेखपाल की चोटें:-

1. बाएं अग्रबाहु के बाहरी भाग पर कलाई जोड़ से 4 सेमी ऊपर 2 सेमी x 1.5 सेमी का पपड़ीदार खरोंच। पपड़ी दृढ़ है।
2. बाएं पैर के अगले भाग के निचले 2/3 हिस्से पर 2 सेमी x 1.5 सेमी का पपड़ीदार खरोंच।
3. दाहिने पैर के अगले भाग पर 1 सेमी x 0.3 सेमी x त्वचा की गहराई का फटा घाव, जिसके चारों ओर दाहिने पैर के अगले भाग के निचले 2/3 हिस्से में 4 सेमी x 2 सेमी के आकार की खरोंच है।
4. दाहिने पैर के मध्य भाग पर टखने के जोड़ से 3 सेमी ऊपर 1 सेमी x 1 सेमी की खरोंच।

अभियुक्त विनोद की चोटें:-

1. दाहिने कंधे के सामने 2 सेमी x 1-5 सेमी के क्षेत्र में खरोंच। सतह दृढ़ और सूखी हुई है।
2. दाहिने कोहनी जोड़ के मध्य भाग पर 1.5 सेमी लंबी रेखीय खरोंच।
3. बाईं ओर पीठ पर श्रोणि शिखर से 3 सेमी ऊपर और बगल में 1.5 सेमी x 1 सेमी का दृढ़, सूखा हुआ फटा घाव।
4. दाहिने घुटने के जोड़ के सामने के क्षेत्र में 1.5 सेमी x 1/2 सेमी की खरोंच।

शकुंतला की चोटें:-

1. बाएं अग्रबाहु के डिस्टल भाग पर अल्ना पक्ष में 3 सेमी x 2.5 सेमी आकार की आघातजन्य सूजन। रंग गहरा भूरा है।
2. बाईं कोहनी के जोड़ के पार्श्व भाग में 4

सेमी x 3 सेमी की आघातजन्य सूजन। रंग गहरा भूरा है।

3. बाएं छाती के निचले भाग की पीठ पर 6 सेमी x 2.5 सेमी आकार की पपड़ीदार खरोंचयुक्त नील। रंग गहरा भूरा है।
4. दाहिनी छाती के निचले भाग की पीठ पर 4 सेमी x 2 सेमी आकार की पपड़ीदार खरोंचयुक्त नील। रंग गहरा भूरा है।

11. बचाव शाक्षी -1 और बचाव शाक्षी -2, दोनों ने उपरोक्त तीनों अभियुक्तों की चोटों को प्रमाणित किया है और चोटों को मामूली बताया है।

12. अभियोजन शाक्षी -3 मुनेश पाल उर्फ मुनिया और एक संवलिया की चोटों को अभियोजन शाक्षी -4 डॉ. डी.एस. वर्मा ने प्रमाणित किया, जिन्होंने यह राय दी कि मुनेश पाल उर्फ मुनिया की चोट संख्या 2 और 3 घर्षण या कुंद हथियार से लगी मामूली चोटें हैं और चोट संख्या 1 पर निगरानी की आवश्यकता है। अपने साक्ष्य में, उन्होंने आगे कहा कि मुनेश पाल उर्फ मुनिया की चोट संख्या 1 और 2 लाठी से लग सकती हैं। उन्होंने कहा कि चोट संख्या 3 गोली के रगड़ने से लग सकती है लेकिन अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने स्वीकार किया कि यह चोट छरों से नहीं लग सकती और यह चोट स्वयं की गई हो सकती है। संवल सिंह की चोटों के संबंध में, उन्होंने कहा कि चोट कुंद वस्तु से लगी मामूली चोट है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष का यह मामला कि अभियुक्त विनोद ने बारह बोर की देसी पिस्तौल से मुनेश पाल उर्फ मुनिया पर गोली

चलाई, चिकित्सा रिपोर्ट से समर्थित नहीं है। बारह बोर की देसी पिस्तौल से लगी कोई चोट न तो मुनेश पाल उर्फ मुनिया के शरीर पर पाई गई और न ही यह साबित की जा सकी। इस प्रकार, अभियुक्त विनोद द्वारा मुनेश पाल उर्फ मुनिया पुत्र संवलिया को चोट पहुंचाने के लिए देसी पिस्तौल का उपयोग अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं किया जा सका।

13. मृतक ओम प्रकाश का शव-परीक्षण अभियोजन शाक्षी -8 डॉ. आर.सी. शर्मा द्वारा 18.10.1992 को 12 बजे किया गया और डॉक्टर द्वारा मृतक ओम प्रकाश के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटें पाई गईं:

1. छाती की पीठ पर (स्कैपुलर क्षेत्र के ठीक सामने कंधे के नीचे ऊपर की ओर और मध्य रेखा से 10 सेमी पार्श्व (बाएं) में) 5.5 सेमी x 7 सेमी (साढ़े पांच x सात) के क्षेत्र में कई अग्निशस्त्र के घाव, प्रवेश का आकार 1.5 सेमी x 1 सेमी से 3.5 सेमी x 2 सेमी तक भिन्न हैं, हड़डी (ऊपर नोट किए गए पांच सहित कुल पांच घाव) ।

छाती की दाहिनी ओर स्कैपुलर क्षेत्र के ऊपरी भाग से पांच धातु के छर्रे भी बरामद किए गए।

डॉक्टर ने यह राय दी कि मृत्यु लगभग एक दिन पहले हुई होगी और उन्होंने आंतों में पेस्टी भोजन पाया। डॉक्टर ने यह भी राय दी कि मृतक की मृत्यु मृत्यु-पूर्व चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी।

14. शव-परीक्षण रिपोर्ट को अभियोजन शाक्षी - 8 ने प्रमाणित किया, जिन्होंने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी राय दी कि हथियार बारह फीट से अधिक की दूरी से चलाया गया होगा। उन्होंने यह भी कहा कि मृतक के शरीर से पांच बड़े छर्रे (प्रदर्श 23 से 27) मिले थे। उन्होंने यह भी कहा कि कोई कालिख नहीं थी और हथियार मृतक के पीछे की ओर से चलाया गया होगा।

15. अपने प्रतिपरीक्षण साक्ष्य में, अभियोजन शाक्षी -5 ने कहा है कि उसने साइट प्लान में वह स्थान नहीं दिखाया है जहां से बंदूक चलाई गई थी और क्या जमीन पर खून मिला था। उसने यह भी कहा कि उसने साइट प्लान में जमीन पर मिले खून के बारे में उल्लेख नहीं किया है। उसने कहा कि उसने बंदूक और कारतूसों को बैलिस्टिक विशेषज्ञ को परीक्षण के लिए नहीं भेजा है। बचाव शाक्षी -3 हेड कांस्टेबल लादन सिंह, सदर मालखाना, मथुरा ने कहा है कि बरामद बंदूक को बैलिस्टिक विशेषज्ञ को परीक्षण के लिए भेजने के संबंध में मालखाना रजिस्टर में कोई प्रविष्टि नहीं है। विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा बरामद बंदूक और कारतूसों के संबंध में कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट दाखिल नहीं की गई।

धारा 34: सामान्य आशय:-

16. भारतीय दंड संहिता की धारा 34 इस प्रकार है:

"34. कई व्यक्तियों द्वारा सामान्य आशय की पूर्ति में किए गए कार्य - जब कई व्यक्तियों

द्वारा सामान्य आशय की पूर्ति में कोई आपराधिक कार्य किया जाता है, तो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी प्रकार उत्तरदायी होगा मानो वह अकेले उसके द्वारा किया गया हो।"

17. मलखान सिंह बनाम राज्य (1975) 3 एस.सी.सी. 311 (पैरा-7) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह माना कि भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अंतर्गत कोई विकारी दायित्व एक अभियुक्त पर दूसरे अभियुक्त द्वारा मृतक को मारने के लिए चलाई गई गोली के लिए नहीं लगाया जा सकता है, जब अभियुक्तों के बीच साझा सामान्य आशय की पूर्ति का अभाव हो, क्योंकि गोली चलाने का आशय साझा नहीं किया गया था।

18. परासा राजा मणिक्याला राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2003) 12 एस.सी.सी. 306 (पैरा 11 और 12) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा 34 आई.पी.सी. के संदर्भ में "सामान्य आशय" के अर्थ की व्याख्या की और निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"11. इस धारा का वास्तविक अर्थ यह है कि यदि दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से जानबूझकर कोई सामान्य कार्य करते हैं, तो यह वैसा ही है जैसे उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से किया हो। यह आपराधिक न्यायशास्त्र का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय सह-षड्यंत्रकारियों के बीच भेद नहीं कर सकते, और न ही वे जांच कर सकते हैं,

भले ही यह संभव हो, कि अपराध में प्रत्येक ने क्या भूमिका निभाई। जहां पक्षकार एक सामान्य उद्देश्य के साथ एक सामान्य लक्ष्य को निष्पादित करने के लिए जाते हैं, वहां प्रत्येक व्यक्ति उनके सामान्य उद्देश्य के निष्पादन और पूर्ति में प्रत्येक अन्य के कार्य के लिए जिम्मेदार बन जाता है; क्योंकि उद्देश्य सामान्य है, इसलिए जिम्मेदारी भी सामान्य होनी चाहिए। सभी मुख्य अपराध के दोषी हैं, केवल दुष्प्रेरण के नहीं।..... भागीदारी हर मामले में शारीरिक उपस्थिति द्वारा होनी आवश्यक नहीं है। शारीरिक हिंसा से जुड़े अपराधों में, सामान्यतः अपराध स्थल पर उपस्थिति आवश्यक हो सकती है, लेकिन ऐसा अन्य अपराधों के मामले में नहीं है जब अपराध विभिन्न कृत्यों से मिलकर बनता है जो अलग-अलग समय और स्थानों पर किए जा सकते हैं। इस धारा की प्रयोज्यता के लिए हर मामले में अपराधी की अपराध स्थल पर शारीरिक उपस्थिति शर्तों में से एक नहीं है। इस धारा के प्रावधानों के तहत किसी व्यक्ति को दूसरे के कृत्यों के लिए जिम्मेदार ठहराने से पहले, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि (i) दोनों के बीच पूर्व-नियोजित योजना के रूप में एक सामान्य मंशा थी, और (ii) जिस व्यक्ति को इस प्रकार जिम्मेदार ठहराया जाना है, उसने अपराध को गठित करने वाले कृत्य में किसी न किसी रूप में भाग लिया था। जब तक सामान्य मंशा और भागीदारी दोनों मौजूद नहीं हैं, यह धारा लागू नहीं हो सकती।"

12. "सामान्य मंशा" का तात्पर्य पूर्व-नियोजित योजना और उस पूर्व-नियोजित योजना के अनुसरण में मिलकर कार्य करने से है। इस

धारा के तहत एक विशिष्ट पूर्व योजना के रूप में पूर्व सहमति को साबित करना आवश्यक नहीं है। एक विशेष परिणाम लाने की सामान्य मंशा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में कई व्यक्तियों के बीच मौके पर भी विकसित हो सकती है। हालांकि सामान्य मंशा मौके पर विकसित हो सकती है, फिर भी यह अपराध के अंजाम से पहले की होनी चाहिए, जो एक पूर्व-नियोजित योजना और पूर्व सहमति को दर्शाती है। (कृष्णा गोविंद पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य (एआईआर 1963 उच्चतम न्यायालय 1413) देखें)। अमृत सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य (1972) क्रि.ला.ज. 465 (उच्चतम न्यायालय) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सामान्य मंशा पूर्व सहमति की पूर्वकल्पना करती है। यह सावधानी बरतनी चाहिए कि एक समान या सदृश मंशा को सामान्य मंशा के साथ भ्रमित न किया जाए; इन दोनों के मध्य की विभाजक रेखा प्रायः अत्यंत सूक्ष्म होती है, तथापि यह विभेद वास्तविक एवं सारवान है, और यदि इसकी उपेक्षा की जाती है तो न्याय की विफलता का कारण बनेगी। सामान्य मंशा के गठन हेतु यह आवश्यक है कि उनमें से प्रत्येक की मंशा शेष सभी को ज्ञात हो तथा उनके द्वारा साझा की जाए। निःसंदेह, एक व्यक्ति की भी मंशा को साबित करना एक कठिन कार्य है और, इसलिए, व्यक्तियों के समूह की सामान्य मंशा को दर्शाना और भी अधिक कठिन है। परंतु कार्य कितना भी कठिन हो, अभियोजन पक्ष को ऐसे तथ्यों, परिस्थितियों एवं अभियुक्तों के आचरण के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करने चाहिए जिनसे उनकी सामान्य मंशा को सुरक्षित रूप से समझा जा सके।

मकसूदन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर 1983 उच्चतम न्यायालय 126) में यह अवलोकित किया गया कि अभियोजन पक्ष को ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने चाहिए जिनसे अभियुक्तों की सामान्य मंशा को सुरक्षित रूप से समझा जा सके। अधिकांश मामलों में इसे कृत्य, आचरण अथवा विचाराधीन मामले की अन्य सुसंगत परिस्थितियों से अनुमानित किया जाना होता है। यह निष्कर्ष पर पहुंचने में कि क्या अभियुक्तों की ऐसे अपराध को करने की सामान्य मंशा थी जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध किया जा सके, परिस्थितियों की समयता पर विचार किया जाना चाहिए। मामलों के तथ्य एवं परिस्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं और प्रत्येक मामले का निर्णय अंतर्निहित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। क्या कोई कृत्य सामान्य मंशा के अनुसरण में है, यह तथ्य का विषय है, विधि का नहीं। भाबा नंदा शर्मा एवं अन्य बनाम असम राज्य (एआईआर 1977 उच्चतम न्यायालय 2252) में यह अवलोकित किया गया कि अभियोजन पक्ष को ऐसे तथ्यों को साबित करना चाहिए जो यह अनुमान न्यायोचित ठहराएं कि कृत्यों के सभी प्रतिभागियों ने उस आपराधिक कृत्य को करने की सामान्य मंशा साझा की थी जो अंततः एक या अधिक प्रतिभागियों द्वारा किया गया। किसी व्यक्ति की अपने सहयोगियों द्वारा अपराध किए जाने के समय केवल उपस्थिति, स्वयं में उसके मामले को धारा 34 के क्षेत्राधिकार में लाने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब तक कि उसके विरुद्ध अभिकल्पों की समानता साबित न की जाए (मलखान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर

1975 उच्चतम न्यायालय 12) देखें। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में, "(फर्थरेंस)" शब्द को 'आगे बढ़ाने में मदद करने की क्रिया' के रूप में परिभाषित किया गया है। इस परिभाषा को अपनाते हुए, रसेल कहते हैं कि "यह भविष्य में किसी प्रभाव को उत्पन्न करने वाली किसी प्रकार की सहायता या मदद को दर्शाता है" और यह जोड़ते हैं कि किसी भी कार्य को अंतिम आपराधिक कृत्य के फर्थरेंस में किया गया माना जा सकता है यदि वह उस आपराधिक कृत्य को प्रभावी करने के उद्देश्य से जानबूझकर उठाया गया कदम है। (रसेल ऑन क्राइम 12वां संस्करण, खंड I, पृष्ठ 487 और 488)। शंकरलाल कचराभाई और अन्य बनाम गुजरात राज्य (एआईआर 1965 एससी 1260) में इस न्यायालय ने "फर्थरेंस" शब्द की व्याख्या 'उन्नति या प्रोन्नति' के रूप में की है। (महत्व सन्नविष्ठ)

19. सुरेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2001) 3 एससीसी 673 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:-

"24. अतः धारा के तहत दायित्व को तय करने के लिए सह-अभियुक्त द्वारा कोई कार्य, चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, किया जाना अनिवार्य है। लेकिन यदि किसी व्यक्ति द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाता है, भले ही उसकी अपराध को पूरा करने के लिए दूसरों के साथ सामान्य मंशा हो, धारा 34 भा.द.सं. का उस व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए आव्हान नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, वह अभियुक्त जो केवल सामान्य मंशा को अपने मन में रखता है, लेकिन घटनास्थल पर

कोई कार्य नहीं करता है, उसे धारा 34 भा.द.सं. की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

xxx xxx xxx

40. धारा 34 में प्रयुक्त "कार्य" शब्द कार्यों की एक श्रृंखला को एक एकल कार्य के रूप में दर्शाता है। कानून के तहत जो आवश्यक है वह यह है कि सामान्य मंशा साझा करने वाले अभियुक्त व्यक्तियों को घटनास्थल पर शारीरिक रूप से उपस्थित होना चाहिए और यह दिखाया जाना चाहिए कि उन्होंने उस आपराधिक कृत्य से स्वयं को अलग नहीं किया जिसके लिए उन्होंने सामान्य मंशा साझा की। धारा 34 के तहत दोषिता को केवल घटनास्थल से दूरी के आधार पर बाहर नहीं किया जा सकता। हालांकि, रचनात्मक मंशा की धारणा पर केवल तभी पहुंचा जा सकता है जब न्यायालय, न्यायिक सेवा के साथ, यह मान सके कि अभियुक्त को सामान्य मंशा के फर्थरेंस में जो परिणाम हुआ उसकी पूर्वकल्पना की होगी।"

(महत्व सन्नविष्ठ)

20. लल्लन राय बनाम बिहार राज्य [(2003) 1 एससीसी 268] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना: -

"22. उपरोक्त चर्चा अंततः इस प्रभाव पर समाप्त होती है कि कानून की आवश्यकता घटनास्थल पर उपस्थित होने पर सामान्य मंशा साझा करना है। केवल घटनास्थल से दूर होने से अभियुक्त बरी नहीं हो सकता - हालांकि यह विचाराधीन मामले की तथ्य

स्थिति पर निर्भर करता है और इसके लिए कोई स्थिर नियम नहीं बनाया जा सकता।" (महत्व सन्नविष्ट)

21. छोटा अहिरवार बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2020) 4 एससीसी 126] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"24. धारा 34 के तहत दायित्व का सार आपराधिक कृत्य में भाग लेने वाले व्यक्तियों के मन की एक विशेष परिणाम लाने के लिए एक साथ सहमति है, जो सहमति घटनास्थल पर भी विकसित की जा सकती है जैसा कि लल्लन राय बनाम बिहार राज्य, (2003) 1 एससीसी 268 में माना गया है। विशेष अपराध करने की सामान्य मंशा होनी चाहिए। सामान्य मंशा गठित करने के लिए, यह पूर्णतया आवश्यक है कि प्रत्येक अभियुक्त की मंशा बाकी अभियुक्तों को ज्ञात होनी चाहिए।" (महत्व सन्नविष्ट)

22. बरेंद्र कुमार घोष बनाम किंग एम्परर (एआईआर 1925 पीसी 1) के मामले में, निम्नानुसार माना गया:

धारा 34 के शब्दों को इस अत्यंत सीमित अर्थ में पढ़कर उनका सार नहीं निकाला जाना चाहिए। धारा 33 के अनुसार, धारा 34 में एक आपराधिक कृत्य में कई कृत्यों की श्रृंखला शामिल है, और इसके अतिरिक्त, "कृत्य" में कार्य न करना भी शामिल है, उदाहरण के लिए, अपनी आंखों के सामने हो रही हत्या को

रोकने के लिए हस्तक्षेप न करना। धारा 37 के अनुसार, जब कोई अपराध कई कृत्यों के माध्यम से किया जाता है, तो जो कोई भी उन कृत्यों में से किसी एक को करके, चाहे अकेले या किसी अन्य व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से, उस अपराध के किए जाने में जानबूझकर सहयोग करता है, वह उस अपराध को करता है। यदि अपीलकर्ता ने दरवाजे के बाहर खड़े होकर कुछ नहीं किया, तो यह याद रखना चाहिए कि अपराधों में, अन्य चीजों की तरह, "वे भी सेवा करते हैं जो केवल खड़े रहते हैं और प्रतीक्षा करते हैं"। धारा 38 के अनुसार, जब कई व्यक्ति किसी आपराधिक कृत्य के किए जाने में संलग्न या संबंधित हों, तो वे उस कृत्य के माध्यम से विभिन्न अपराधों के दोषी हो सकते हैं। एक साथ पढ़े जाने पर, ये धाराएँ उचित रूप से स्पष्ट हैं। धारा 34 कई व्यक्तियों द्वारा किए गए अलग-अलग कृत्यों, समान या विविध, से संबंधित है; यदि ये सभी एक सामान्य आशय को आगे बढ़ाने के लिए किए जाते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति उन सभी के परिणाम के लिए उत्तरदायी है, मानो उसने उन्हें स्वयं किया हो, क्योंकि धारा के उत्तरार्ध में "वह कृत्य" और "कृत्य" में पूरी कार्रवाई शामिल होनी चाहिए जो पहले भाग में 'एक आपराधिक कृत्य' द्वारा कवर की गई है, क्योंकि वे उसका संदर्भ देते हैं। धारा 37 प्रदान करती है कि जब कई कृत्य इस प्रकार किए जाते हैं कि वे मिलकर एक अपराध के किए जाने का परिणाम देते हैं, तो उनमें से किसी एक को करना, अपराध में सहयोग करने के आशय से (जो सभी के लिए समान आशय से अलग हो सकता है), कर्ता को अपराध के किए जाने के लिए दंडित किए जाने का उत्तरदायी बनाता है।

धारा 38 एक अपराध के लिए एक दंड के विकल्प के रूप में विभिन्न अपराधों के लिए विभिन्न दंडों का प्रावधान करती है, चाहे आपराधिक कृत्य के किए जाने में संलग्न या संबंधित व्यक्ति एक आशय या दूसरे द्वारा गतिशील किए गए हों।"

23. महबूब शाह बनाम एम्परर (एआईआर 1945 PC 118) के मामले में, निम्नानुसार माना गया:

"धारा 34 की सहायता का सफलतापूर्वक आह्वान करने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि शिकायत किए गए आपराधिक कृत्य को अभियुक्त व्यक्तियों में से एक द्वारा सभी की सामान्य मंशा के फर्थरेंस में किया गया था; यदि यह दिखाया जाता है, तो अपराध के लिए दायित्व किसी भी एक व्यक्ति पर उसी तरह लगाया जा सकता है जैसे कि कार्य अकेले उसके द्वारा किया गया हो।
....."

24. रामबिलास सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य [(1989) 3 एससीसी 605] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"7... यह सत्य है कि धारा 34 या धारा 149 भा.द.सं. के तहत व्यक्तियों को परोक्ष रूप से दोषी ठहराने के लिए, यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि उनमें से प्रत्येक ने प्रत्यक्ष कार्यों में भाग लिया था। फिर भी, यह दर्शाने के लिए सामग्री होनी चाहिए कि एक या अधिक अभियुक्तों का प्रत्यक्ष कार्य या कार्य सभी अभियुक्तों की सामान्य मंशा के फर्थरेंस

में या गैरकानूनी सभा के सदस्यों के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किए गए थे..."
(महत्व सन्नविष्ट)

25. कृष्णन और अन्य बनाम केरल राज्य [(1996) 10 एससीसी 508] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"15. प्रश्न यह है कि क्या दंड संहिता की धारा 34 को लागू करने के लिए अभियोजन पक्ष के लिए प्रत्यक्ष कार्य के किए जाने को स्थापित करना अनिवार्य है। यह निस्संदेह सत्य है कि न्यायालय यह जानना चाहता है कि क्या संबंधित व्यक्ति ने विचाराधीन सामान्य मंशा साझा की थी। प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यक्ष कार्य को हमेशा स्थापित किया जाना चाहिए? मेरा मत है कि धारा 34 को लागू करने की अनुमति देने के लिए प्रत्यक्ष कार्य की स्थापना कानून की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह धारा तब आकर्षित होती है जब "एक आपराधिक कृत्य कई व्यक्तियों द्वारा सभी की सामान्य मंशा के फर्थरेंस में किया जाता है"। इसलिए, अभियोजन पक्ष को जो स्थापित करना होता है वह यह है कि सभी संबंधित व्यक्तियों ने सामान्य मंशा साझा की थी। सामान्य मंशा के साझाकरण के संबंध में न्यायालय का मन संतुष्ट हो जाता है जब प्रत्येक अभियुक्त के संबंध में प्रत्यक्ष कार्य स्थापित हो जाता है। लेकिन फिर, ऐसा मामला हो सकता है जहां साबित हुए तथ्य स्वयं सामान्य मंशा के साझाकरण की बात करते हों: अर्थात् परिस्थितियां स्वयं बोलती हैं।"

26. सुरेंद्र चौहान बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2000) 4 एससीसी 110] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"11. धारा 34 के तहत एक व्यक्ति को अपराध को सुगम बनाने या बढ़ावा देने के उद्देश्य से अपराध के वास्तविक करने के समय शारीरिक रूप से उपस्थित होना चाहिए, जिसका करना संयुक्त आपराधिक उद्यम का लक्ष्य है...."

27. गोपी नाथ उर्फ झल्लर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2001) 6 एससीसी 620] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"8. सामान्य मंशा के फर्थरेंस में सामान्य मंशा या संबंधित व्यक्ति की मंशा को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य से या मामले की परिस्थितियों और पक्षकारों के आचरण से निकाले गए निष्कर्षों से साबित किया जा सकता है। किसी भी स्थिति में, अंतिम निर्णय अनिवार्य रूप से प्रत्येक मामले की परिस्थितियों से निकाले जा सकने वाले निष्कर्षों पर निर्भर करेगा।"

(महत्व सन्नविष्ट)

28. रमेश सिंह उर्फ फोट्टी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2004) 11 एससीसी 305] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"12. ... आपराधिक दायित्व के मामले में एक सामान्य सिद्धांत के रूप में यह उस व्यक्ति की प्राथमिक जिम्मेदारी है जो वास्तव में अपराध करता है और केवल वही व्यक्ति जिसने अपराध किया है दोषी ठहराया जा सकता है। दंड संहिता में धारा 34 को शामिल करके विधायिका ने आपराधिक कृत्य करने में संयुक्त दायित्व का सिद्धांत निर्धारित किया। उस दायित्व का सार अभियुक्तों को जोड़ने वाली एक सामान्य मंशा के अस्तित्व में पाया जाता है जो ऐसी मंशा के फर्थरेंस में एक आपराधिक कृत्य करने की ओर ले जाती है। इस प्रकार, यदि कृत्य एक सामान्य मंशा का परिणाम है, तो प्रत्येक व्यक्ति जिसने उस सामान्य मंशा के साथ आपराधिक कृत्य किया, वह किए गए अपराध के लिए जिम्मेदार होगा, चाहे उसका उसके करने में जो भी हिस्सा रहा हो....."

(महत्व सन्नविष्ट)

29. नंद किशोर बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2011) 12 एससीसी 120] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"20. इस धारा को पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि धारा को निम्नलिखित रूप से विभाजित किया जा सकता है:

(क) आपराधिक कृत्य कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है;

(ख) ऐसा कृत्य सभी की सामान्य मंशा के फर्थरेंस में किया जाता है; और

(ग) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कृत्य के लिए

उसी प्रकार उत्तरदायी है जैसे कि वह अकेले उसके द्वारा किया गया हो।

दूसरे शब्दों में, ये तीन तत्व न्यायालय को यह निर्धारित करने में मार्गदर्शन करेंगे कि क्या एक अभियुक्त को धारा 34 की सहायता से दोषी ठहराया जा सकता है। जबकि पहले दो वे कृत्य हैं जो आरोप्य हैं और अभियुक्त के कार्यों के रूप में साबित किए जाने हैं, तीसरा परिणाम है। आपराधिक कृत्य और सामान्य मंशा के सिद्ध होने पर, कानून की काल्पनिकता द्वारा, उस कृत्य को प्रत्येक व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से किए जाने की आपराधिक जिम्मेदारी उत्पन्न होगी। धारा 34 भा.द.सं. के अनुसार, आपराधिक कृत्य कई व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए। इस धारा के इस भाग में "किया गया" शब्द पर जोर दिया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि धारा 34 के प्रावधानों का पालन करते हुए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने से पहले, उस व्यक्ति ने अन्य व्यक्तियों के साथ कुछ किया होना चाहिए। आपराधिक कृत्य के निष्पादन में कुछ व्यक्तिगत भागीदारी आवश्यक होगी। धारा 34 की सहायता से आरोपित पूरे समूह के प्रत्येक व्यक्तिगत सदस्य को, इसलिए, संयुक्त कार्य में भागीदार होना चाहिए जो उनकी संयुक्त गतिविधि का परिणाम है।

21. धारा 34 के तहत, प्रत्येक व्यक्तिगत अपराधी आपराधिक कृत्य से जुड़ा होता है जो अपराध को गठित करता है, शारीरिक रूप से और मानसिक रूप से भी यानी वह न केवल उसमें भागीदार होता है जिसे सामान्य कृत्य कहा गया है बल्कि उसमें भी जिसे सामान्य मंशा कहा जाता है, और इसलिए, इन दोनों

संदर्भों में उसकी व्यक्तिगत भूमिका गंभीर खतरे में पड़ जाती है हालांकि यह व्यक्तिगत भूमिका एक सामान्य योजना का हिस्सा हो सकती है जिसमें अन्य लोगों ने भी उसके साथ जुड़कर एक समान या भिन्न भूमिका निभाई है। लेकिन सामान्य आशय का उल्लेख करते हुए, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि न्यायालयों को एक ओर "सामान्य आशय" और दूसरी ओर आपराधिक न्यायशास्त्र में समझे जाने वाले "आपराधिक मनःस्थिति" (मेंस रेया) के बीच के सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखना चाहिए। सामान्य आशय, आपराधिक मनःस्थिति के समान या समरूप नहीं है। बाद वाला पहले वाले के साथ संयोगवश या सहवर्ती हो सकता है, लेकिन वे अलग-अलग और भिन्न हैं।

22. धारा 34 रचनात्मक आपराधिक दायित्व से भी संबंधित है।

23. ऐसे मामलों से निपटते समय न्यायालय को ध्यान में रखने वाला एक अन्य पहलू यह है कि सामान्य मंशा या मानसिक स्थिति और शारीरिक कृत्य, दोनों घटनास्थल पर पहुंच सकते हैं और अनिवार्य रूप से ऐसे अपराध को करने की किसी पूर्वनिर्धारित योजना का परिणाम नहीं हो सकते। यह हमेशा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा..." (महत्व सन्नविष्ट)

30. श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(2012) 7 एससीसी 646] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"87. धारा 34 भा.द.सं. वहां लागू होती है जहां दो या अधिक अभियुक्त मौजूद हों और दो कारकों को स्थापित किया जाना चाहिए यानी सामान्य मंशा और अपराध में अभियुक्त की भागीदारी। "सामान्य मंशा" वाक्यांश का अर्थ एक पूर्व-निर्धारित योजना और उस योजना के अनुसरण में कार्य करना है, इस प्रकार, सामान्य मंशा कृत्य के करने से पहले किसी समय बिंदु पर मौजूद होनी चाहिए। एक विशेष कृत्य को प्रभावी करने की सामान्य मंशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों के संदर्भ में कई व्यक्तियों के बीच तत्क्षण भी विकसित हो सकती है।"

31. जसदीप सिंह उर्फ जस्सू बनाम पंजाब राज्य (2022) 2 एससीसी 545 (पैरा 19 से 27) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 34 भा.द.सं. से संबंधित अपने विभिन्न पूर्व निर्णयों पर विचार किया और निम्नानुसार माना:

"19. धारा 34 भा.द.सं. पर आगे विचार करने से पहले, धारा 33 भा.द.सं. पर एक नज़र बेहतर समझ दे सकती है। धारा 33 भा.द.सं. कई कृत्यों को एक एकल कृत्य के रूप में अपनी परिधि में लाती है। इसलिए, धारा 34 से 39 भा.द.सं. को आकर्षित करने के लिए, कई व्यक्तियों द्वारा किए गए कृत्यों की एक श्रृंखला एक एकल कृत्य से संबंधित होगी जो एक आपराधिक अपराध गठित करती है।

20. धारा 34 भा.द.सं. एक सामान्य मंशा के अनुसरण में, एक व्यक्ति द्वारा किए गए एक आपराधिक कृत्य को दूसरों में समाहित और आरोपित करके एक मान्य कल्पना बनाती है।

न्यायालय की संतुष्टि के लिए सामान्य मंशा को साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है।

21. जो आवश्यक है वह सामान्य मंशा का प्रमाण है। इस प्रकार, सामान्य मंशा के बिना एक अपराध हो सकता है, जिस स्थिति में धारा 34 भा.द.सं. लागू नहीं होती।

24. सामान्यतः, शारीरिक रूप से किए गए अपराध में, धारा 34 भा.द.सं. के तहत आरोपित अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक होती है, विशेष रूप से उस मामले में जहां अभियुक्त को आरोपित कृत्य उकसाने/ प्रोत्साहित करने का है। हालांकि, कुछ अपवाद हैं, विशेष रूप से जब एक अपराध विभिन्न समय और स्थानों पर किए गए विविध कृत्यों से मिलकर बनता है।

25. "फर्थरेंस" शब्द भविष्य में एक प्रभाव उत्पन्न करने में सहायता या मदद के अस्तित्व को दर्शाता है। इस प्रकार, इसे उन्नति या प्रोन्नति के रूप में समझा जाना चाहिए।

26. ऐसे मामले हो सकते हैं जहां सामान्य रूप से सभी कृत्य धारा 34 भा.द.सं. के दायरे में नहीं आएंगे, बल्कि केवल वे ही आएंगे जो पर्याप्त संबद्धता वाली सामान्य मंशा के फर्थरेंस में किए गए हैं। जब हम इरादे की बात करते हैं तो यह प्रस्तावित अपराध के लिए आवश्यक किसी भी मौजूदा तथ्य के ज्ञान की पर्याप्तता के साथ आपराधिकता में से एक होना चाहिए। इस तरह का इरादा उपरोक्त

अपेक्षित ज्ञान के साथ किसी अपराध को अंजाम देने में सहायता, प्रोत्साहन, प्रचार और सुविधा प्रदान करना है।

27. सामान्य मंशा के अस्तित्व को साबित करना स्पष्ट रूप से अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है। हालांकि, एक न्यायालय को किसी व्यक्ति को धारा 34 भा.द.सं. के तहत आरोपित करने से पहले साक्ष्य का विश्लेषण और मूल्यांकन करना होता है।" केवल सामान्य इरादे पर बिना किसी कार्रवाई के धारा 34 भा.द.सं. लागू नहीं हो सकती है। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां कोई व्यक्ति अपराध करने का सामान्य इरादा बनाने में सक्रिय भागीदार होने के बावजूद बाद में वास्तव में इससे पीछे हट सकता है। बेशक, यह भी अदालत के विचाराधीन तथ्यों में से एक है।

इसके अलावा, तथ्य यह है कि सभी आरोपियों पर धारा 34 भा.द.सं. के साथ अपराध का आरोप लगाया गया है। स्वयं को या दूसरों को हतोत्साहित किए बिना अपराध को अंजाम देने के लिए उपस्थित होना एक प्रासंगिक परिस्थिति हो सकती है, बशर्ते पूर्व सामान्य इरादा विधिवत साबित हो। एक बार फिर, यह एक ऐसा पहलू है जिस पर अदालत के सामने रखे गए सबूतों पर गौर करना जरूरी है। ऐसे मामले में जहां अदालत के समक्ष पर्याप्त सबूत उपलब्ध हों, बचाव पक्ष की ओर से विशेष रूप से ऐसी याचिका दायर करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है।"

(महत्व सन्नविष्ट)

32. गुलाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एससीसी 677 (पैरा 20, 23, 27.1, 27.2, 27.3, 27.4 और 28), में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"23. वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जहां अग्नेयास्त्र या कारतूस की बरामदगी के बावजूद, अभियोजन पक्ष बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पेश करने में विफल रहा। इसलिए, एक बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पेश करने में विफलता जो यह प्रमाणित कर सके कि घातक चोटें एक विशेष हथियार से लगी थीं, प्रत्यक्षदर्शी गवाहों के विश्वसनीय साक्ष्य को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

27. धारा 34 के अंतर्निहित मौलिक सिद्धांतों पर जोर देते हुए, इस न्यायालय ने माना कि:

27.1 धारा 34 एक अलग अपराध नहीं बनाती, बल्कि रचनात्मक दायित्व का एक सिद्धांत है;

7.2 एक अपराध के लिए संयुक्त दायित्व वहन करने के लिए वास्तव में किए गए कार्य के लिए अभियुक्त व्यक्तियों के बीच एक पूर्व-व्यवस्थित और पूर्व-ध्यानित सहमति होनी चाहिए;

27.3 कृत्य और पूर्व-ध्यान के बीच लंबा अंतराल नहीं हो सकता और योजना अचानक बनाई जा सकती है। धारा 34 के लागू होने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करे कि कृत्य एक विशेष व्यक्ति द्वारा किया गया था; और

27.4 यह प्रावधान उन मामलों को कवर करने के लिए है जहां कई व्यक्ति एक साथ कार्य करते हैं और मामले के तथ्यों पर, अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना संभव नहीं है कि वास्तव में अपराध किसने किया।"

(महत्व सन्नविष्ट)

33. नागराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 17 एससीसी 277 (पैरा 18 और पैरा 19) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"18. धारा 34 भा.द.सं. के प्रावधानों को लागू करने के लिए, कम से कम दो कारकों को स्थापित किया जाना चाहिए; (1) सामान्य मंशा, और (2) एक अपराध के करने में अभियुक्त की भागीदारी। उपरोक्त उद्देश्य के लिए हालांकि व्यक्तिगत अभियुक्त को कोई प्रत्यक्ष कृत्य आरोपित करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन फिर भी परोक्ष दायित्व के सिद्धांत को लागू करके किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने से पहले न केवल अपराध में उसकी भागीदारी साबित की जानी चाहिए बल्कि सामान्य मंशा की उपस्थिति भी स्थापित की जानी चाहिए। यह सच है कि सामान्य इरादे के गठन को साबित करने के लिए, प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो सकते हैं, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उक्त प्रावधान को आकर्षित करने के लिए, अभियोजन पक्ष यह साबित करने के लिए एक बाध्य कर्तव्य है कि प्रतिभागियों ने एक सामान्य इरादा साझा किया था। यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि केवल अभियुक्त की उपस्थिति से ही भा.द.सं. की धारा 34 के

प्रावधान को लागू नहीं होंगे। उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अन्य कारकों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। अभियुक्त व्यक्ति एक-दूसरे से संबंधित नहीं थे; उनका कोई पारिवारिक संबंध नहीं था; उनके अलग-अलग व्यवसाय हैं। यह स्थापित नहीं किया गया है कि वे मृतक के प्रति कोई सामान्य शत्रुता रखते थे।

19. अभियोजन पक्ष के गवाहों में से एक द्वारा दिया गया सामान्य और अस्पष्ट बयान मकसद साबित नहीं करेगा यह सच हो सकता है कि सामान्य मंशा अचानक घटनास्थल पर विकसित हो सकती है लेकिन उस उद्देश्य के लिए, घटना की उत्पत्ति साबित की जानी चाहिए। अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि झगड़ा क्यों और कैसे शुरू हुआ। अभियोजन पक्ष यह भी साबित नहीं कर पाया है कि आरोपी संख्या 1 मृतक के साथ झगड़े की शुरुआत से पहले ही लोहे की रॉड क्यों ले जा रहा था या यह कि अपीलकर्ता को इसकी जानकारी थी। यह भी नहीं दिखाया गया है कि वह अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ मृतक पर हमला करने आया था। अपीलकर्ता को सामान्यतः अपने कार्यस्थल पर ही होना अपेक्षित था। इसलिए, घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति की पर्याप्त व्याख्या की गई है।"

(महत्व सन्नविष्ट)

34. इस प्रकार, धारा 34 भा.द.सं. कोई अलग अपराध नहीं बनाती है, बल्कि यह रचनात्मक दायित्व का एक सिद्धांत है। किसी अपराध के लिए संयुक्त दायित्व वहन करने के लिए वास्तव में किए गए कार्य के लिए आरोपी व्यक्तियों के बीच पूर्व-व्यवस्थित और पूर्व-

ध्यानित सहमति होनी चाहिए। धारा 34 भा.द.सं. की प्रयोज्यता के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करे कि कोई कार्य किसी विशेष व्यक्ति द्वारा किया गया था, क्योंकि यह प्रावधान उन मामलों को कवर करने के लिए है जहां कई व्यक्ति एक साथ कार्य करते हैं और मामले के तथ्यों के आधार पर। इस प्रकार, जब कई व्यक्तियों द्वारा सभी की सामान्य मंशा के अनुसरण में कोई आपराधिक कृत्य किया जाता है, तो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कृत्य के लिए उसी प्रकार उत्तरदायी है जैसे कि वह अकेले उसके द्वारा किया गया हो। "फरदरेन्स" शब्द भविष्य में किसी प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायता या सहायता की मौजूदगी को इंगित करता है। इस प्रकार, इसे प्रगति या प्रोन्नति के रूप में समझा जाना चाहिए। "सामान्य मंशा" शब्दों का तात्पर्य पूर्व-व्यवस्थित योजना और पूर्व-व्यवस्थित योजना के अनुसरण में कार्य करने से है। किसी विशेष परिणाम को लाने की सामान्य मंशा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में कई व्यक्तियों के बीच मौके पर भी विकसित हो सकती है। हालांकि सामान्य मंशा मौके पर विकसित हो सकती है, यह अपराध के अंजाम से पहले समय के बिंदु पर होनी चाहिए जो पूर्व-व्यवस्थित योजना और पूर्व सहमति को दर्शाती हो। सामान्य मंशा गठित करने के लिए, यह आवश्यक है कि उनमें से प्रत्येक की मंशा बाकी सभी को ज्ञात हो और उनके द्वारा साझा की जाए।

सामान्य मंशा का अनुमान कार्य, आचरण या मामले के अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों से

लगाया जाना चाहिए। यह निर्धारित करने में कि क्या आरोपी व्यक्तियों की ऐसे अपराध को करने की सामान्य मंशा थी जिसके लिए उन्हें दोषी ठहराया जा सकता है, परिस्थितियों की समग्रता पर विचार किया जाना चाहिए। इसलिए, धारा 34 भा.द.सं. के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि (क) आपराधिक कृत्य कई व्यक्तियों द्वारा किया गया है; (ख) ऐसा कृत्य सभी की सामान्य मंशा के अनुसरण में किया गया है; और (ग) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कृत्य के लिए उसी प्रकार उत्तरदायी है जैसे कि वह अकेले उसके द्वारा किया गया हो। जबकि पहले दो कृत्य आरोपी के कार्यों के रूप में आरोप्य हैं और साबित किए जाने चाहिए, तीसरा परिणाम है। एक बार जब आपराधिक कृत्य और सामान्य मंशा साबित हो जाती है, तब कानून की काल्पनिकता से, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से किए गए उस कृत्य का आपराधिक दायित्व उत्पन्न होगा। लेकिन एक ओर "सामान्य मंशा" और दूसरी ओर आपराधिक न्यायशास्त्र में समझे जाने वाले "मैंस रिया" के बीच के सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखना चाहिए। सामान्य मंशा मैंस रिया के समान या समरूप नहीं है। मैंस रिया "सामान्य मंशा" के साथ संयोगवश या सहवर्ती हो सकता है लेकिन वे भिन्न और अलग हैं। सामान्य मंशा या मानसिक स्थिति और भौतिक कृत्य, दोनों मौके पर पहुंच सकते हैं और अनिवार्य रूप से ऐसे अपराध को करने की किसी पूर्व-निर्धारित योजना का परिणाम नहीं हो सकते हैं, लेकिन यह हमेशा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। ऐसी मंशा का उद्देश्य उपरोक्त आवश्यक ज्ञान के साथ

अपराध के अंजाम में सहायता, प्रोत्साहन, प्रचार और सुविधा प्रदान करना है। एक मात्र सामान्य मंशा स्वयं में धारा 34 भा.द.सं. को आकर्षित नहीं कर सकती है, अनुसरण में कार्य के बिना। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां कोई व्यक्ति अपराध करने की सामान्य मंशा बनाने में सक्रिय भागीदार होने के बावजूद, बाद में वास्तव में इससे पीछे हट जाए। सामान्य मंशा के अस्तित्व को साबित करने का कर्तव्य अभियोजन पक्ष का है। यह न्यायालय के लिए है कि वह उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर इसका निर्धारण करे। धारा 34 भा.द.सं. का यह प्रभाव है कि यदि दो या अधिक व्यक्ति जानबूझकर कोई सामान्य कार्य संयुक्त रूप से करते हैं, तो यह वैसा ही है जैसे उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से किया हो। सामान्य मंशा की उपस्थिति या सामान्य मंशा का साझा करना धारा 34 भा.द.सं. को लागू करने की पूर्व शर्त है। यदि किसी दिए गए मामले में, गोली चलाने की सामान्य मंशा साझा नहीं की गई थी, तो धारा 34 भा.द.सं. के तहत किसी आरोपी पर दूसरे आरोपी द्वारा मृतक को मारने के लिए चलाई गई गोली के लिए प्रतिनिधिक दायित्व नहीं लगाया जा सकता है, जब आरोपियों के बीच साझा की गई सामान्य मंशा के अनुसरण की अनुपस्थिति में गोली चलाने की सामान्य मंशा साझा नहीं की गई थी।

35. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अभियोजन शाक्षी -1 भीकमपाल सिंह, अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल सिंह और अभियोजन शाक्षी -3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया के

चचेरे भाई हैं। तीनों के पास अलग-अलग कृषि भूमि है जैसा कि अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल सिंह के साक्ष्य से स्पष्ट है, जिन्होंने अपनी जिरह में कहा कि उन्होंने, उनके भाइयों और मृतक ओम प्रकाश ने अपनी-अपनी कृषि भूमि से बाजरा काटा है और उन्होंने और उनके पिता ने एक बीघा बाजरा काटा है जबकि ओम प्रकाश और भीकमपाल सिंह ने तीन-चौथाई बीघा बाजरा काटा है। अभियोजन शाक्षी -2 ने अपनी जिरह में कहा है कि:

“..... “..... मेरी मुलजिमान से खेत की रंजिश है। और कोई रंजिश नहीं है। उस जमीन का दाखिल खारिज का मुकदमा लक्ष्मी से चला था जिसे मुलजिमान ने चलवाया था। उससे मुलजिमान ने अपने नाम से कोई एतराज नहीं दाखिल नहीं किया था। लेकिन लक्ष्मी की पैरवी करते थे। मैंने दरोगा जी को बताया था कि मुलजिमान वही खेत खरीदना चाहते थे जो मैंने खरीदा है। खेत का झगड़ा कत्ल से 3-4 महीने पहले का था। पुरानी इनसे कोई रंजिश नहीं है ”

मैंने और मेरे भाइयों ने बाजरा काटा था। ओम प्रकाश ने भी बाजरा काटा था। उसने अपने खेत में काटा था और मैंने अपने खेत में काटा था।

चारों मुलजिमान एक मोटर साईकिल से आये थे। उस पर एक लम्बी सीट थी। चारों एक ही लम्बी सीट पर थे। मैंने मुलजिमानों को मय हथियार के एक खेत की दूरी पर आते देख लिया। मुलजिमान ने 5-6, 7-8 कदम की दूरी से मोटर साईकिल रुकी, उतर कर कहा कि

मारो सालो को। ओमप्रकाश, मुनेश और सोवलिया साथ-साथ थे और उससे 2-4 कदम की दूरी पर हम लोग थे। फिर उन्होंने तुरन्त मारना शुरू कर दिया इसखिलये भागने का मौका ही नहीं था। सबसे पहले मेरे पिता को लाठीयों से मारा था। पास आकर मेरे पिता को लाठी से मारा। उस समय बाकी मुलजिमान मेरे पिता के पास ही थे। मुनेश को लाठी और तमन्चा दोनों से मारा था। मुनेश को एक ने लाठी मारी और दूसरे ने तमन्चा आगे पीछे मारा। जैसे ही लाठी मारी, तुरन्त ही फायर हो गया। हम लोग आगे बचाने के लिये बड़े भागे नहीं।

जिस समय लाठी से मुनेश और समलिया को मार रहे थे उस समय रेखपाल 6-7 कदम की दूरी पर था। वहीं से उसने फायर कर दिया। मुझे किसी ने नहीं मारा और न किसी ने मारने के लिये कहा। विनोद ने यह कहा था कि बदला ले लो। उसका मतलब था कि खेत को हम कटने नहीं देंगे। मैंने पिछली तारीख को अदालत को ब्यान दिया था कि मोटर साईकिल हम लोगों के पास आकर रुकी तो विनोद बोला आज बदला ले लो। इस पर प्रमोद ने मोटर साईकिल से उतर कर सोवल सिंह को मारना शुरू कर दिया। बदला लेने वाली बात विनोद ने मोटर साईकिल से उतरते हुए कही थी। मुनेश को पहले लाठी लगी तमन्चा फिर मारा। मुनेश को केवल एक लाठी मारी थी। लाठी मारने वाले मुनेश के पास से हटा नहीं था। मुनेश पर 2-4 कदम से फायर किया था। उस समय हम लोग मुनेश के पास ही थे चीख पुकार कर रहे थे। मुनेश पर दो फायर हुआ थे। एक मनोज ने एक विनोद ने किया

था। मुनेश को एक फायर सिर में लगा था और एक हाथ में लगा था। किसी ने भी रेखी व उसकी पत्नी को नहीं मारा था। मैंने उनके शरीर पर चोट नहीं देखी। मुझे मालूम पड़ा था कि रेखी उसी दिन गिरफ्तार हो गया। यह नहीं मालूम कि वह थाने रिपोर्ट करने गया था तभी गिरफ्तार हुआ था। मौके पर कोई छरां, टिकली या कारतूस नहीं मिला था। दरोगा जी ने केवल एक जगह से खून वाली मिट्टी ली थी।”

36. इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के अपने मामले के अनुसार, तनावपूर्ण संबंध कुछ कृषि भूमि के कारण था जो अभियोजन शाक्षी -2 द्वारा खरीदी गई थी। तनावपूर्ण संबंध का कथित कारण यह बताया गया है कि आरोपी उक्त भूमि खरीदना चाहते थे लेकिन वह अभियोजन शाक्षी -2 द्वारा खरीदी गई। इस प्रकार तनावपूर्ण संबंध का कथित कारण केवल अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल के विरुद्ध हो सकता था, लेकिन अभियोजन शाक्षी -2 ने स्वयं अपनी जिरह में कहा है कि न तो किसी ने उसे मारने के लिए उकसाया और न ही किसी ने उसे मारा। उसने यह भी कहा कि आरोपी विनोद ने बदला लेने की बात कही। उसने अपनी जिरह में आगे कहा कि "बदला" शब्द से उसका मतलब था कि वह (विनोद) फसल काटने नहीं देगा। यह कथन दर्शाता है कि कुछ फसल काटने के मुद्दे पर दो समूहों के बीच कुछ विवाद उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपियों के विरुद्ध प्रश्नगत अपराध के लिए निर्दिष्ट किए गए उद्देश्य की मूल उत्पत्ति स्वयं संदेहास्पद प्रतीत होती है। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ नहीं है

जो यह दर्शाता हो कि उपरोक्त तनावपूर्ण संबंध के आरोप के अलावा, तनावपूर्ण संबंध का कोई अन्य कारण है। अभियोजन शाक्षी -1 ने अपनी जिरह में कहा है कि जब घटना हुई तब अभियोजन शाक्षी -2 मौके पर मौजूद था और आरोपी रेखपाल सिंह ने अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल पर गोली नहीं चलाई और किसी ने शेषपाल को नहीं मारा। उसने आरोप लगाया कि आरोपी विनोद ने मारने के लिए उकसाया। अपनी जिरह में, उसने कहा कि *“उस दिन या उससे पहले हमारा मुलजिमान से कोई झगड़ा नहीं हुआ था।”* अभियोजन शाक्षी -3 मुनेश पाल उर्फ मुनिया ने भी आरोपी विनोद को उकसाने की भूमिका दी है जिसने केवल बदला लेने के लिए मारने को उकसाया।

37. इस प्रकार, अभियोजन शाक्षी -1, अभियोजन शाक्षी -2 और अभियोजन शाक्षी -3 का साक्ष्य यह है कि **आरोपी विनोद ने मारने के लिए उकसाया।** अभियोजन शाक्षी -1 ने स्वीकार किया है कि घटना की तिथि को या उससे पहले, उसका आरोपियों के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी। अभियोजन शाक्षी -2 ने उसके और आरोपियों के बीच तनावपूर्ण संबंध का कारण बताया है कि उसने एक कृषि भूमि खरीदी जिसे आरोपी खरीदना चाहते थे, लेकिन इस संबंध में केवल आरोप लगाने के अलावा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया या विवरण का खुलासा नहीं किया गया। अभियोजन शाक्षी -2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वयं स्वीकार किया है कि **न तो किसी ने उसे मारा और न ही किसी ने उसे मारने के लिए उकसाया।** उसने अपने बयान में आगे स्पष्ट किया कि विनोद ने बदला लेने के लिए उकसाया, जिसका अर्थ

था कि बाजरे की फसल काटने नहीं दी जाएगी (खेत को हम कटने नहीं देंगे)। इस प्रकार, अभियोजन शाक्षी-1, अभियोजन शाक्षी-2 और अभियोजन शाक्षी-3 द्वारा आरोपित उकसावा केवल आरोपी विनोद के विरुद्ध है कि उसने मारने के लिए उकसाया। कथित चश्मदीदों में से किसी ने भी, अर्थात् अभियोजन शाक्षी-1, अभियोजन शाक्षी-2 और अभियोजन शाक्षी-3 ने यह नहीं कहा है कि आरोपी विनोद ने मारने के लिए उकसाया। उनके अपने साक्ष्य के अनुसार, आरोपियों ने *डंडा/लाठी* से मारना शुरू किया और बाद में आरोपी रेखपाल सिंह ने मृतक ओम प्रकाश पर पीछे से गोली चलाई। **मृतक ओम प्रकाश को मारने के लिए किसी भी उकसावे का आरोप अपीलार्थी आरोपियों पर नहीं लगाया गया है।** इसके बजाय, अपनी प्रतिपरीक्षा में, अभियोजन शाक्षी -2 ने स्वयं कहा कि न तो किसी आरोपी ने उसे मारने के लिए उकसाया और न ही किसी आरोपी ने उसे मारा जबकि वह आरोपियों से 2-3 कदम दूर खड़ा था। यह पहले यह दर्शाता है कि **मुख्य व्यक्ति अभियोजन शाक्षी -2 के विरुद्ध किसी भी आरोपी द्वारा कोई उकसावा नहीं था और न ही आरोपी विनोद ने, अभियोजन पक्ष के अपने मामले के अनुसार, किसी व्यक्ति को मारने के लिए उकसाया और इसके बजाय उसने केवल मारने के लिए उकसाया।**

38. इस प्रकार, ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों में, धारा 34 भा.द.सं. के तत्व, अर्थात् मृतक ओम प्रकाश को मारने का सामान्य इरादा, साक्ष्यों से स्थापित नहीं होता है। अधिकतम, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, उकसावा केवल मारने के लिए था। अभियोजन

पक्ष द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि कथित मारपीट के दौरान, यहां किसी भी अपीलार्थी आरोपी ने आरोपी रेखपाल सिंह को मृतक ओम प्रकाश को मारने के लिए उकसाया या उत्तेजित किया। ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों में, यदि यह मान भी लिया जाए कि आरोपी रेखपाल ने अपनी लाइसेंसी डी.बी.बी.एल.(दोनाली) बंदूक से ओम प्रकाश को मारने के लिए गोली चलाई, तो यह आरोपी रेखपाल का एकतरफा कार्य था। इस प्रकार, आरोपी रेखपाल द्वारा मृतक ओम प्रकाश को कथित रूप से दी गई कथित गोली की चोट, अपीलार्थी आरोपी विनोद और प्रमोद द्वारा साझा किए गए सामान्य इरादे के अनुसरण में नहीं है। मृतक को मारने के लिए आरोपियों के पूर्व समय में किसी सामान्य इरादे के अभाव में, जो एक पूर्व-व्यवस्थित योजना और पूर्व समझौता दर्शाता हो। अभियोजन पक्ष द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका जो मृतक ओम प्रकाश को मारने के लिए या तो पहले से या अपराध के घटित होने के दौरान किसी पूर्व षड्यंत्र या पूर्व योजना या सामान्य इरादे को स्थापित कर सके। मृतक को मारने के लिए अपीलार्थी आरोपियों द्वारा विचारों के मिलन या सामान्य इरादे के साझाकरण के अभाव में, धारा 34 भा.द.सं. का आह्वान नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप, अपीलार्थी आरोपियों को धारा 302 भा.द.सं. के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यह अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि अपीलार्थी आरोपियों ने मृतक ओम प्रकाश को मारा है।

39. उपरोक्त के अलावा, हम यह भी पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित मामले के अनुसार, आरोपी व्यक्तियों की शिकायत मुख्य रूप से अभियोजन शाक्षी 2 शेषपाल के खिलाफ थी जिसने, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार; वही जमीन खरीदी जो आरोपी रेखपाल खरीदना चाहता था, लेकिन अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल ने स्वयं अपनी जिरह में कहा है कि न तो किसी ने उसे मारने के लिए उकसाया और न ही किसी ने उसे मारा। यह भी आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 के खिलाफ कथित उकसावे के संबंध में अभियोजन पक्ष की कहानी को संदेहास्पद बनाता है।

क्या आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 - विनोद और/या आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 प्रमोद ने धारा 307/34 भा.द.सं. के तहत अपराध किया है

40. विचारण न्यायालय ने 18.08.1993 को आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 विनोद के विरुद्ध धारा 302/34 भा.द.सं. के अधीन अपराधों के लिए और मुनेशपाल उर्फ मुनिया को अग्नि-शस्त्र से चोट पहुंचाने के लिए धारा 307/34 भा.द.सं. के अधीन भी आरोप तय किए। उस पर यह भी आरोप लगाया गया कि उसने सह-आरोपी प्रमोद के साथ संवेलिया को लाठी से चोट पहुंचाई।

41. उसी दिन आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 - प्रमोद के विरुद्ध भी इसी प्रकार का आरोप तय किया गया।

42. अभियोजन शाक्षी -1 भीकमपाल (सूचनादाता) ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि प्रमोद ने उसके चाचा संवलिया को लाठी से मारा। उसने आगे कहा कि आरोपी विनोद ने आरोपी प्रमोद से देशी पिस्तौल छीन ली और अभियोजन शाक्षी -3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया पर मारने के इरादे से गोली चलाई। अपनी प्रतिपरीक्षा में, **अभियोजन शाक्षी-3** ने कहा कि किसी ने अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल को न तो मारा और न ही उस पर गोली चलाई, कि आरोपी प्रमोद ने संवल को डंडे से मारा और आरोपी विनोद ने मुनेशपाल उर्फ मुनिया पर गोली चलाई और मुनेशपाल उर्फ मुनिया को दोनों हाथों में गोली की चोट लगी और माथे पर लाठी की भी चोटें आईं, कि आरोपी के आने के बाद देशी पिस्तौल को लोड नहीं किया गया था। उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी कहा कि **केवल आरोपी प्रमोद ही नहीं है जिसने संवलिया को लाठी से मारा।** कथित घायल सावलिया की परीक्षा नहीं की गई।

43. अभियोजन शाक्षी -2 शेषपाल ने भी आरोपी प्रमोद को संवल को लाठियों से मारने की भूमिका दी है। उसने आरोपी विनोद को देशी पिस्तौल से गोली चलाकर अभियोजन शाक्षी -3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया को चोट पहुंचाने की भूमिका दी। **अपनी प्रतिपरीक्षा में,** उसने कहा कि वह मृतक ओम प्रकाश, घायल मुनेशपाल और संवलिया से 2-4 कदम की दूरी पर खड़ा था जो तीनों एक साथ थे, मुनेशपाल को लाठी से एक चोट और तमंचे (देशी पिस्तौल) से दूसरी चोट लगी। उसने कहा कि आरोपी प्रमोद ने संवलिया को लाठी से मारा लेकिन

यह नहीं कहा कि अभियोजन शाक्षी 3 मुनिया को किसने मारा। अपनी आगे की प्रतिपरीक्षा में, उसने कहा कि आरोपी विनोद और आरोपी मनोज, दोनों ने मुनेशपाल पर गोली चलाई। घायल चश्मदीद गवाह अभियोजन शाक्षी -3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया पुत्र संवलिया ने अपने मुख्य परीक्षण में आरोपी प्रमोद को संवलिया को डंडे/लाठी से मारने की भूमिका दी है। उसने आरोपी विनोद को तमंचे (देशी पिस्तौल) से और आरोपी मनोज को भी उस पर गोली चलाने की भूमिका दी। **अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने कहा कि आरोपी विनोद ने उसके दाहिने हाथ पर गोली चलाई जबकि आरोपी मनोज ने उसके बाएं हाथ और सिर पर गोली चलाई।** इस प्रकार, अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने आरोपी विनोद की भूमिका को केवल उसके दाहिने हाथ पर गोली चलाने तक और आरोपी मनोज की भूमिका को उसके बाएं हाथ और सिर पर गोली चलाने तक सीमित कर दिया।

44. अभियोजन शाक्षी-4 डॉ. डी.एस. वर्मा, चिकित्सा अधिकारी प्रभारी, सिविल अस्पताल, बलदेव जिन्होंने अभियोजन शाक्षी -3 की चोटों की जांच की, ने चोट संख्या 2 और 3 यानी बाएं अग्रबाहु और दाहिने बांह की चोटों को घर्षण या कुंद हथियार से साधारण पाया है। उन्होंने अभियोजन शाक्षी -3 मुनेशपाल के सिर पर चोट संख्या 1 पाई। **अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि चोट संख्या 3 गोली के घर्षण से हो सकती है लेकिन यह छरों से नहीं हो सकती। उन्होंने यह भी राय दी कि यह स्वयं की गई चोट हो सकती है।**

45. **प्रथम अन्वेषण (जांच) अधिकारी अभियोजन शाक्षी -5** अमरजीत सिंह सरना ने अपनी प्रतिपरीक्षा में कहा है कि दिनांक 17.10.1992 की बरामदगी मेमो के अनुसार, डी.बी.बी.एल. बंदूक नंबर 1522-87 (लाइसेंसी बंदूक) बरामद की गई थी और उसकी नली में, एक 12 बोर का कारतूस और एक 12 बोर का खोखा (खाली कारतूस) पाया गया था। उन्होंने आरोपी विनोद से 12 बोर के तमंचे (देशी पिस्तौल) की बरामदगी दिखाई और उसकी नली में, उन्होंने 12 बोर का एक खोखा पाया। उन्होंने कुछ कारतूस भी बरामद किए। उन्होंने कहा कि गिरफ्तारी के समय आरोपियों ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। उन्होंने कहा कि उन्होंने साइट मैप में यह नहीं दिखाया कि बंदूक कहां से चलाई गई या जहां उन्होंने जमीन पर खून पाया और न ही उन्होंने घटनास्थल पर पाए गए खून का कोई उल्लेख किया है। अपनी आगे की प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा कि उन्होंने बंदूक और कारतूसों को बैलिस्टिक विशेषज्ञ द्वारा परीक्षण के लिए नहीं भेजा है। उन्होंने स्वीकार किया कि आरोपी विनोद से बरामद कट्टे/तमंचे और कारतूसों की मुहर पर केवल उनके हस्ताक्षर हैं।

46. **अभियोजन शाक्षी -7 उमेश कुमार सिंह एस.एच.ओ. -- द्वितीय अन्वेषण(जांच) अधिकारी** ने कहा कि बंदूक को थाने से बैलिस्टिक विशेषज्ञ के पास परीक्षण के लिए भेजा गया था। लेकिन बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य में दाखिल नहीं की गई है और न ही यह कहा गया है कि कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट प्राप्त की गई है या प्राप्त हुई है। उन्होंने अपने मुख्य

परीक्षण में आगे कहा कि **मुनेशपाल उर्फ मुनिया ने एक बयान दिया है कि सौभाग्य से उसे कोई गोली की चोट नहीं लगी है।**

47. **अभियोजन शाक्षी-8 डॉ. आर.सी. शर्मा** ने मुख्य परीक्षण में कहा कि वे 18.10.1992 को जिला अस्पताल, मथुरा में तैनात थे और उन्होंने शव परीक्षण किया है। उन्होंने मृतक ओम प्रकाश को लगी चोटों को प्रमाणित किया और कहा कि यह एक गोली की चोट थी और ओम प्रकाश के शरीर में पांच बड़े छर्रे पाए गए थे।

48. **अभियोजन शाक्षी-1, अभियोजन शाक्षी-2 और अभियोजन शाक्षी-3** के साक्ष्य के अनुसार, अभियोजन शाक्षी-3 (मुनेशपाल उर्फ मुनिया) के दाहिने बांह में अग्नि-शस्त्र (तमंचा) से चोट आरोपी विनोद द्वारा पहुंचाई गई थी। यह साक्ष्य वैज्ञानिक साक्ष्य से समर्थन प्राप्त नहीं करता है, अर्थात् अभियोजन शाक्षी-4 के साक्ष्य से जिन्होंने राय दी कि दाहिने बांह में हुई चोट एक साधारण चोट है, जो लाठी से संभव है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष अभियोजन शाक्षी-3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया के दाहिने बांह पर किसी भी अग्नि-शस्त्र की चोट को स्थापित करने में पूरी तरह से विफल रहा है जबकि आरोपी अपीलार्थी विनोद के विरुद्ध अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित मामला यह था कि आरोपी विनोद ने अभियोजन शाक्षी -3 को तमंचे से गोली की चोट पहुंचाई थी। अभियोजन शाक्षी - 3 मुनेश के बाएं बांह में हुई चोट संख्या 2 को भी अभियोजन शाक्षी -4 ने साधारण चोट पाया, जो लाठी से होना संभव है। जहां तक अभियोजन शाक्षी -3 मुनेशपाल के सिर पर

चोट का संबंध है, अभियोजन शाक्षी-4 ने अपने साक्ष्य में कहा कि यह गोली के घर्षण से हो सकती है लेकिन यह छर्रों से नहीं हो सकती और यह चोट स्वयं की गई चोट हो सकती है। अभियोजन शाक्षी-4 ने स्वयं चोट संख्या 1 के छर्रों से होने की संभावना को खारिज कर दिया है। इसलिए, यह अत्यंत संदेहास्पद और पूरी तरह से अप्रमाणित है कि आरोपी विनोद ने अभियोजन शाक्षी-3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया पर मृत्यु कारित करने के आशय से देशी पिस्तौल से गोली चलाई है।

49. आरोपी विनोद द्वारा कथित रूप से अभियोजन शाक्षी-3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया के दाहिने बाँह के निचले बाहरी भाग पर कारित की गई चोट एक साधारण चोट है जो धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध गठित नहीं करती। अभियोजन पक्ष यह सिद्ध नहीं कर सका कि आरोपी विनोद द्वारा डंडे से कथित रूप से कारित की गई चोट अभियोजन शाक्षी-3 मुनेशपाल उर्फ मुनिया की मृत्यु कारित करने के आशय से थी। अतः, आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 विनोद को धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता।

50. अभियोजन शाक्षी -1, अभियोजन शाक्षी - 2 और अभियोजन शाक्षी -3, सभी ने अपीलार्थी संख्या 2 के विरुद्ध आरोप लगाए हैं कि उसने संवलिया को डंडे/लाठी से मारा था। यह कहा गया था कि उसने संवलिया को लाठी से दो या तीन बार मारा था। चिकित्सा अधिकारी, प्रभारी, सिविल डिस्पेंसरी, बलदेव, जिला मथुरा द्वारा 17.10.1992 को जाँच की

गई संवलिया की चोट बाएँ पैर के मध्य भाग पर 1-1/2'' x 1/2'' का संघात है। चिकित्सा अधिकारी ने राय दी कि चोट साधारण है और किसी कुंद वस्तु से कारित हुई है। चिकित्सा अधिकारी द्वारा संवलिया की चोटों की जाँच करते समय पाई गई चोटें संवल सिंह के शरीर के किसी महत्वपूर्ण भाग पर नहीं हैं। कथित चश्मदीद गवाहों, अर्थात् अभियोजन शाक्षी -1, अभियोजन शाक्षी -2 और अभियोजन शाक्षी -3 के साक्ष्य में कोई ऐसी सामग्री नहीं है जो आरोपी अपीलार्थी प्रमोद द्वारा घायल संवलिया (संवल सिंह) को कथित रूप से कारित की गई चोट के कारण धारा 307 भा.द.सं. के तत्वों के अस्तित्व को इंगित कर सकती हो। अतः, आरोपी प्रमोद द्वारा धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत कोई अपराध नहीं किया गया है।

क्या आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 और अपीलार्थी संख्या 2 धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराधों के दोषी हैं:-

51. अभियोजन शाक्षी-1, अभियोजन शाक्षी-2 और अभियोजन शाक्षी-3 के साक्ष्य इस प्रभाव के लिए संगत हैं कि आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 विनोद द्वारा घायल मुनेशपाल उर्फ मुनिया के दाहिने बाँह पर लाठी/डंडे से साधारण चोटें कारित की गईं और आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 ने घायल मुनेशपाल उर्फ मुनिया के बाएँ बाँह पर और घायल संवलिया के पैर पर लाठी से साधारण चोट कारित की। इस प्रकार प्राप्त चोटों को अभियोजन शाक्षी-4, अर्थात् चोटों की जाँच करने वाले चिकित्सा अधिकारी द्वारा भी सिद्ध किया गया है। परिस्थितियों के अंतर्गत, हम यह मानते हैं कि आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 और आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 धारा 323

भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध करने के दोषी हैं। तदनुसार सत्र परीक्षण संख्या 167 वर्ष 1993 (राज्य बनाम श्री रेखपाल और 3 अन्य) में दिनांक 09.02.1996 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के अंतर्गत धारा 323 भा.द.सं. के तहत तीन माह के कठोर कारावास के लिए उनकी दोषसिद्धि, जो मामला अपराध संख्या 150 वर्ष 1992, पुलिस स्टेशन बलदेव, जिला मथुरा से उत्पन्न हुआ था और सत्र न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित किया गया था, बरकरार रखी जाती है।

52. परिणामस्वरूप, आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 और आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 की अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। उपरोक्त सत्र परीक्षण संख्या 167 वर्ष 1993 में दिनांक 09.02.1996 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 विनोद की धारा 302/34, 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि और आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 की धारा 302/34 और 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि, जो मामला अपराध संख्या 150 वर्ष 1992, पुलिस स्टेशन बलदेव, जिला मथुरा से उत्पन्न हुआ था, एतद्वारा निरस्त की जाती है और दोनों को धारा 302/34 और 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के आरोप से बरी किया जाता है। आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 विनोद की धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि और तीन माह के कठोर कारावास की सजा की पुष्टि की जाती है। अपीलार्थी संख्या 2 प्रमोद की दोषसिद्धि और सजा परिवर्तित की जाती है और उसे धारा 323/34 भा.द.सं. के बजाय धारा 323

भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्ध किया जाता है और तीन माह के कठोर कारावास की सजा दी जाती है। यदि आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 और आरोपी अपीलार्थी संख्या 2 ने विचारण के दौरान या इस अपील की लंबितता के दौरान तीन माह का कारावास नहीं भुगता है, तो वे तत्काल संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा दी गई और हमारे द्वारा पुष्ट की गई धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत सजा भुगतने के लिए जेल भेजा जाएगा। यदि उन्होंने पहले ही तीन माह की सजा पूरी कर ली है, तो उन्हें आत्मसमर्पण करने या गिरफ्तार होने की आवश्यकता नहीं है। उनके व्यक्तिगत बंधपत्र और जमानतें रद्द कर दी जाएंगी।

53. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह अनुपालन के लिए इस आदेश को संबंधित न्यायालय को तत्काल संप्रेषित करे और विचारण न्यायालय का अभिलेख भी वापस भेजे।

(2023) 7 ILRA 445

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 876 सन् 2022

मंटू वर्मा @ विवेक वर्मा

...अपीलकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: उपेंद्र प्रकाश पाठक, अतुल वर्मा, हरि कृष्ण वर्मा, संजीत कुमार पटेल

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, निशा श्रीवास्तव

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 120 बी - हत्या के लिए सजा - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 (2) (वी) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 - जमानत की अस्वीकृति के खिलाफ अपील - मृतक के भाई द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट और आरोप लगाया गया कि उसके भाई की किसी ने हत्या कर दी थी और उसकी गर्दन पर चोट थी और संदेह एक व्यक्ति पर था जिसने मृतक को मोबाइल फोन से कॉल किया था - अपीलकर्ता ने कहा कि जांच के दौरान खून से सने जूते बरामद हुए और खून से सने चाकू की झूठी बरामदगी ने उसकी निशानदेही, गवाहों और शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए तथ्यों के समान ही दिखाया है। (पैरा 5, 11)

निर्णय दिया गया कि अपीलकर्ता का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था और न ही उसकी भूमिका के बारे में प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई कानाफूसी थी - जांच के समय उसका नाम तस्वीर में नहीं था - शिकायतकर्ता के बयान में पहली बार उसका नाम तस्वीर में आया और तथ्य यह है कि मृतक की पत्नी अपीलकर्ता के साथ मोबाइल फोन पर बात करती थी इस कारण से मृतक और उसकी

पत्नी के बीच हमेशा झगड़ा होता था और यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता कथित अपराध में शामिल था - किसी ने भी अपीलकर्ता को मृतक के शव के पास नहीं देखा है और न ही किसी गवाह ने अपीलकर्ता को मृतक के साथ देखा है और न ही अभियोजन पक्ष का यह मामला था कि मोबाइल फोन अपीलकर्ता का था - जिस व्यक्ति के फोन से मृतक को अंतिम कॉल की गई थी उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया था - एससी/एसटी अधिनियम के तहत कोई तत्व आकर्षित नहीं हुआ, क्योंकि किसी ने भी सार्वजनिक स्थान पर कथित घटना नहीं देखी है। (पैरा 21)

अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1984 क्रि. एल.जे. 178
2. कमल बनाम हरियाणा राज्य, 2004 (13) एससीसी 526, (पैरा 2)
3. तख्त सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2001 (10) एससीसी 463, (पैरा 2)
4. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य (2020) 10 एससीसी, (पैरा 15) में रिपोर्ट किया गया
5. स्वर्ण सिंह व अन्य बनाम राज्य (2008) 8एससीसी 435
6. दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2018) 3 एससीसी 22 में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल वर्मा और साथ ही विपक्षी संख्या 2 की विद्वान अधिवक्ता श्रीमती निशा श्रीवास्तव और राज्य- विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव को सुना और पूरे अभिलेख का अवलोकन किया।

2. पक्षों के बीच दलीलों का आदान-प्रदान किया गया

3. वर्तमान आपराधिक अपील धारा 14-ए (2) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत विशेष न्यायाधीश अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, बाराबंकी द्वारा जमानत आवेदन संख्या 146/2022 (मंटू वर्मा उर्फ विवेक वर्मा बनाम यू.पी. राज्य) में पारित दिनांक 15.01.2022 के आक्षेपित आदेश के खिलाफ पेश की गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 722/2021 धारा 302, 120 बी आई.पी.सी. और धारा 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, जिला बाराबंकी से उत्पन्न हुआ है, जिसके तहत अपीलकर्ता की जमानत याचिका खारिज कर दी गई है।

4. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने दलील दी है कि अपीलकर्ता निर्दोष है और उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी और मनगढ़ंत है और अपीलकर्ता को झूठा फंसाने के इरादे से ही दर्ज की गई है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दिनांक 04.09.2021 की एक घटना के संबंध में मृतक के भाई द्वारा दिनांक 05.09.2021 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी जिसमें उन्होंने कहा है कि उन्होंने अपने भाई की गुमशुदगी की सूचना दर्ज कराई है और यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि खोज के बाद पाया गया कि उसके भाई की किसी ने हत्या कर दी थी और उसका शव गांव नारे का पुरवा में मुर्गी पालन केंद्र के पास पड़ा था और उसकी गर्दन पर चोट के निशान थे और एक पंकज कुमार पर संदेह हुआ था, जिसने मृतक को मोबाइल फोन से कॉल किया था।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में केवल पंकज कुमार के नाम का उल्लेख किया गया था और अपीलकर्ता का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं पाया गया और न ही अपीलकर्ता की भूमिका के बारे में प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई सुगबुगाहट है। उन्होंने आगे कहा कि पूछताछ के समय भी अपीलकर्ता का नाम प्रकाश में नहीं था इसके बाद मृतक के शव को शव-विच्छेदन के लिए भेज दिया गया और दिनांक 05.09.2021 को शव-विच्छेदन किया गया। शव-विच्छेदन प्रतिवेदन के अनुसार मौत का कारण मृत्यु-पूर्व चोटों के कारण उत्पन्न सदमा था और मृतक के शरीर पर तीन चोटें देखी गईं।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जांच अधिकारी ने धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शिकायतकर्ता का

बयान दर्ज किया जिसमें शिकायतकर्ता द्वारा एक नई कहानी गढ़ी गई है और पहली बार अपीलकर्ता का नाम सामने आया है कि मृतक की पत्नी अपीलकर्ता के साथ मोबाइल फोन पर बात करती थी और यह भी कहा गया था कि वह कई अन्य व्यक्तियों से भी बात करती थी, क्योंकि वह आधुनिक समय की महिला है और चूंकि वह अपीलकर्ता से बात करती थी, इस कारण से मृतक और उसकी पत्नी के बीच हमेशा झगड़ा होता था।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि केवल शिकायतकर्ता के इस कथन पर कि अपीलकर्ता मृतक की पत्नी से बात करता था, यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता कथित अपराध में शामिल है।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अन्य गवाह, अर्थात् साधना वर्मा ने भी केवल यही तथ्य कहा है कि अपीलकर्ता मृतक की पत्नी से बात करता था और उनकी साजिश के कारण उसकी हत्या कर दी गई। एक अन्य गवाह दुर्गेश ने भी लगभग वही बात कही जो साधना वर्मा ने धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज अपने बयान में कही थी।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य: 1984 क्रि. एल.जे. 178** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और सबूतों की श्रृंखला पूरी तरह से टूट गई है, पुलिस भी अपीलकर्ता को वर्तमान अपराध में जोड़ने के लिए सबूतों की

श्रृंखला को पूरा करने में विफल रही है। अपीलकर्ता को मृतक के शव के पास किसी ने नहीं देखा, न ही किसी गवाह ने अपीलकर्ता को मृतक के साथ जाते देखा और न ही यह अभियोजन का मामला है कि बरामद किया गया मोबाइल फोन अपीलकर्ता का है। उन्होंने आगे कहा कि कथित अपराध का कोई प्रत्यक्ष गवाह नहीं है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता वर्तमान मामले में शामिल है। अपीलकर्ता को पुलिस ने केवल अपराध की गंभीरता बताने के लिए फंसाया है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जांच के दौरान खून से सने जूते बरामद किए गए थे, लेकिन जूते अपीलकर्ता के नहीं थे। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ता की निशानदेही पर खून से सने चाकू की झूठी बरामदगी दिखाई गई है, जबकि अपीलकर्ता के पास कोई चाकू नहीं था।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में जिस व्यक्ति का नाम पंकज कुमार उर्फ रजनीत यादव है, जिसके फोन से मृतक को अंतिम कॉल की गई थी, उसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक अपील संख्या 2141/2021 में दिनांक 28.03.2022 के आदेश के तहत पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया था। उक्त आदेश की प्रति जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के साथ अनुलग्नक 9 के रूप में संलग्न है। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ता का मामला अन्य सह-आरोपी पंकज कुमार उर्फ रजनीत यादव की तुलना में सबसे खराब स्थिति में नहीं है, जिसे इस न्यायालय

की समन्वय पीठ द्वारा पहले ही जमानत दे दी गई है।

13. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आरोपी/ अपीलकर्ता दिनांक 08.09.2021 से जेल में बंद है, जिसका कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है और यदि अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और वह मुकदमे में भी पूरा सहयोग करेगा। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ता द्वारा गवाहों या वर्तमान मामले के तथ्यों से परिचित किसी अन्य व्यक्ति को धमकाने या दबाव बनाने की कोई संभावना नहीं है।

14. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक दिनांक 08.09.2021 से जेल में है और अब तक काफी समय तक कारावास काट चुका है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **कमल बनाम हरियाणा राज्य, 2004 (13) एस.सी.सी. 526** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया फैसले की उपखण्ड 2 इस प्रकार है:-

"2. यह एक ऐसा मामला है जिसमें अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 304-बी के तहत दोषी ठहराया गया है और 7 साल के कारावास की सजा सुनाई गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक अपीलकर्ता ने लगभग 2 साल और चार महीने की कैद काट ली है। उच्च न्यायालय ने उसके समक्ष अपील के निपटारे तक जमानत देने से इनकार कर दिया। हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी जानी चाहिए थी, विशेष रूप

से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता ने पहले ही सजा की पर्याप्त अवधि काट ली है। इन परिस्थितियों में, हम निर्देश देते हैं कि जिला और सत्र न्यायाधीश, फरीदाबाद द्वारा लगाई जा सकने वाली शर्तों पर अपीलकर्ता को जमानत दी जाए।"

15. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **तख्त सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2001 (10) एस.सी.सी. 463** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का अवलम्बन लिया निर्णय का उपखण्ड 2 इस प्रकार है:-

"2. अपीलकर्ताओं को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के तहत दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। उक्त दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ उनकी उच्च न्यायालय में अपील लंबित है। उच्च न्यायालय के समक्ष सजा के निलंबन और जमानत के लिए आवेदन दायर किया गया था, लेकिन उच्च न्यायालय ने उस प्रार्थना को खारिज कर दिया, जिसमें यह संकेत दिया गया था कि आवेदक एक वर्ष के बाद जमानत के लिए अपनी प्रार्थना को नवीनीकृत कर सकते हैं। एक वर्ष की समाप्ति के बाद दूसरा आवेदन दायर किया गया था, लेकिन उसे भी आरोपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता पहले से ही 3 साल और 3 महीने से अधिक समय से जेल में हैं। उच्च न्यायालय में अपील की जल्द सुनवाई की कोई संभावना नहीं है। उपरोक्त परिस्थितियों में आवेदकों को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीहोर की संतुष्टि के

लिए जमानत पर रिहा किया जाता है। तदनुसार अपील का निपटारा किया जाता है।"

16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि उपरोक्त मामलों में लागू विधि का अनुपात अपीलकर्ता के मामले में भी लागू होता है, इसलिए, तत्काल आपराधिक अपील को अनुमति दी जानी चाहिए और विशेष न्यायाधीश अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, बाराबंकी द्वारा जमानत आवेदन संख्या 146/2022 (मंटू वर्मा उर्फ विवेक वर्मा बनाम यूपी राज्य) में पारित आदेश दिनांक 15.01.2022, जो आपराधिक वाद संख्या 722/2021, धारा 302, 120 बी भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम, पुलिस स्टेशन कोतवाली नगर, जिला बाराबंकी से उत्पन्न हुआ है, को रद्द किया जाना चाहिए और परिणामस्वरूप, अभियुक्त/अपीलकर्ता मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए

17. अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की मिथ्याता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य दलीलें भी न्यायालय के समक्ष रखी गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आरोपी को झूठा फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। अपीलकर्ता की ओर से यह आश्वासन दिया गया है कि वह कानून की प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए तैयार है और जब भी आवश्यकता होगी, वह ईमानदारी से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा और वह उन सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए भी तैयार है, जिन्हें न्यायालय उस पर

लगाना उचित समझे। यह भी बताया गया है कि आरोपी का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 08.09.2021 से जेल में है और न्यायालय में लंबित मामलों की भारी संख्या के मद्देनजर मुकदमे के जल्द निष्कर्ष की कोई संभावना नहीं है।

18. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य (2020) 10 एस.सी.सी.** में उद्धृत वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। जिसमें उपखण्ड 15 में **स्वर्ण सिंह और अन्य बनाम राज्य (2008) 8 एस.सी.सी. 435** में पारित फैसले का अवलम्बन लिया है जो निम्नवत है :

"प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, मुखबिर को गाली देने के आरोप उसके भवन की चारदीवारी के भीतर थे। मुखबिर का यह मामला नहीं है कि घटना के समय घर में कोई भी आम आदमी (न ही केवल रिश्तेदार या दोस्त) मौजूद था। इसलिए, यह मूल तत्व कि ये शब्द किसी सार्वजनिक दृश्य में कही गई थीं, नहीं बनता है। आरोप-पत्र में संलग्न गवाहों की सूची में, कुछ गवाहों के नाम हैं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे लोग भवन की चारदीवारी के भीतर मौजूद थे। अपराध कथित तौर पर भवन की चारदीवारी के भीतर हुआ है। इसलिए, स्वर्ण सिंह में इस न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, इसे सार्वजनिक दृश्य में नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट और/या आरोप-पत्र के अनुसार भवन की चारदीवारी के भीतर किसी के मौजूद होने की बात नहीं कही गई थी।"

19. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम के तहत कोई भी तत्व आकर्षित नहीं होता है, क्योंकि किसी ने भी सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृश्य में अपीलकर्ता द्वारा कथित घटना को नहीं देखा है।

20. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 की विद्वान अधिवक्ता श्रीमती निशा श्रीवास्तव ने प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और कहा कि अभियुक्त/अपीलकर्ता जमानत पर रिहा होने का हकदार नहीं है, लेकिन इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और किसी भी स्वतंत्र गवाह ने सह-अभियुक्त पंकज कुमार उर्फ रंजित यादव के साथ कथित अपराध को करने में अपीलकर्ता की भूमिका नहीं बताई है और उन्होंने इस तथ्य पर भी विवाद नहीं किया कि जिस व्यक्ति का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में था, नाम पंकज कुमार उर्फ रंजनीत यादव, जिसके फोन से मृतक को अंतिम कॉल की गई थी, को पहले ही इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक अपील संख्या 2141/2021 में दिनांक 28.03.2022 के आदेश के तहत जमानत पर रिहा किया जा चुका है। राज्य के विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव ने भी यही तर्क दिया और कहा कि अभियुक्त /अपीलकर्ता इस न्यायालय से कोई राहत पाने का हकदार नहीं है।

21. बार में प्रस्तुत किए गए प्रस्तुतीकरण के आलोक में अभिलेख का अवलोकन करने के

पश्चात तथा इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों, साक्ष्य की प्रकृति, पहले से ही हिरासत में ली गई अवधि, मुकदमे के शीघ्र समापन की असंभावना तथा साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की संभावना को इंगित करने के लिए किसी भी ठोस सामग्री के अभाव में समग्र दृष्टिकोण अपनाने के पश्चात तथा इस तथ्य पर विचार करने के पश्चात कि अपीलकर्ता का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं पाया गया था और न ही प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलकर्ता की भूमिका के बारे में कोई उल्लेख है। जांच के समय भी अपीलकर्ता का नाम सामने नहीं आया था, धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज शिकायतकर्ता के बयान में पहली बार अपीलकर्ता का नाम सामने आया और तथ्य यह है कि मृतक की पत्नी अपीलकर्ता के साथ मोबाइल फोन पर बात करती थी इस वजह से मृतक और उसकी पत्नी के बीच हमेशा झगड़ा होता था और इस तथ्य को देखते हुए कि अपीलकर्ता मृतक की पत्नी से बात करता था यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता कथित अपराध में शामिल है और आगे यह देखते हुए कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और किसी ने भी अपीलकर्ता को मृतक के शव के पास नहीं देखा है और न ही किसी गवाह ने अपीलकर्ता को मृतक के साथ जाते देखा है और न ही यह अभियोजन का मामला है कि बरामद किया गया मोबाइल फोन अपीलकर्ता का है और इस तथ्य को देखते हुए कि जिस व्यक्ति का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में था, जिसका नाम पंकज कुमार उर्फ राजनीत यादव है जिसके फोन से मृतक को अंतिम कॉल की गई थी, को पहले ही आपराधिक अपील संख्या 2141 में इस

न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था। 2021 के आदेश दिनांक 28.03.2022 के अनुसार और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि धारा 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम के तहत कोई भी सामग्री अपीलकर्ता के खिलाफ आकर्षित नहीं होती है, क्योंकि किसी ने भी सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृश्य में अपीलकर्ता द्वारा कथित घटना को नहीं देखा है और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अपीलकर्ता दिनांक 08.09.2021 से जेल में है और अब तक हिरासत की पर्याप्त अवधि पूरी कर चुका है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के बड़े जनादेश और शरद बिरधीचंद सारदा (सुप्रा), कमल (सुप्रा), तख्त सिंह (सुप्रा), और दाताराम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य (2018) 3 एस.सी.सी. 22, हितेश वर्मा (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करते हुए यह न्यायालय इस विचार पर है कि निचली अदालत अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की सराहना करने में विफल रही है।

22. तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है। परिणामस्वरूप, विशेष न्यायाधीश अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, बाराबंकी द्वारा जमानत आवेदन संख्या 146/2022 (मंटू वर्मा उर्फ विवेक वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित दिनांक 15.01.2022 के आदेश, जो मुकदमा अपराध संख्या 722/2021 धारा 302, 120 बी भारतीय दंड संहिता एवं धारा 3 (2) (v) एससी/एसटी अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, जिला बाराबंकी से उत्पन्न हुआ था, को

पलट दिया जाता है और अपास्त किया जाता है।

23. अपीलकर्ता, मंटू वर्मा उर्फ विवेक वर्मा को मुकदमा अपराध संख्या 722/2021, धारा 302, 120 बी भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (2) (v) एससी/एसटी अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, जिला बाराबंकी में निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) अपीलकर्ता संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि के दो जमानतदारों के साथ एक व्यक्तिगत बंधपत्र प्रस्तुत करेगा।

(ii) अपीलकर्ता उपस्थित होगा और दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय- 33 की धारा 437 उप धारा 3 के तहत निष्पादित बंधपत्र की निम्नलिखित शर्तों का कड़ाई से पालन करेगा:-

(क) अपीलकर्ता इस अध्याय के तहत निष्पादित बंधपत्र की शर्तों के अनुसार उपस्थित होगा।

(ख) अपीलकर्ता उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका उस पर आरोप है, या जिसके करने का उस पर संदेह है, और

(ग) अपीलकर्ता मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे कि वह ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने

से विमुख हो जाए या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करे।

(iii) अपीलकर्ता जांच/परीक्षण में सहयोग करेगा।

(iv) अपीलकर्ता इस आशय का वचनपत्र दाखिल करेगा कि वह साक्ष्य के लिए नियत तिथियों पर किसी स्थगन की मांग नहीं करेगा जब गवाह न्यायालय में उपस्थित हों। इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर कानून के अनुसार आदेश पारित कर सकता है।

(v) अपीलकर्ता प्रत्येक नियत तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित रहेगा। उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के अंतर्गत कार्यवाही कर सकता है।

(vi) यदि अपीलकर्ता सुनवाई के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, तो उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, धारा 82 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उद्घोषणा जारी की जाती है और अपीलकर्ता ऐसी उद्घोषणा में तय तारीख को अदालत के सामने पेश होने में विफल रहता है, तो, विचारण न्यायालय उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के तहत कानून के अनुसार कार्यवाही शुरू करेगा।

(vii) अपीलकर्ता (i) मामले को खोलने, (ii) आरोप तय करने और (iii) धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के लिए तय तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष मौजूद रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में अपीलकर्ता की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए ऐसी चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानना और कानून के अनुसार उसके खिलाफ आगे बढ़ने का विकल्प खुला होगा।

24. विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि कोई अन्य कानूनी बाधा न हो तो धारा 309 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का सख्ती से पालन करते हुए, पक्षों को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना, आज से एक वर्ष की अवधि के भीतर उपरोक्त मामले की सुनवाई में तेजी लाएं।

(2023) 7 ILRA 451

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार,

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 1290 सन् 2023

मुकुंद सिंह एवं अन्य

...अपीलकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता: श्री जयसिंह यादव

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री आशुतोष कुमार तिवारी

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 504, 506 और 325 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 14-ए, 3(1)(आर), (एस) - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 142 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 320 - वर्तमान मामले में, समझौते के आधार पर आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की गई है - समझौते में, कथित घटना घटित हुई, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, इसका विरोध नहीं किया गया बल्कि स्वीकार किया गया कि पक्षों के बीच झगड़ा हुआ था जिसके कारण तत्काल कार्यवाही शुरू हुई - विवीद यह था कि सूचना देने वाले पक्ष ने अपना काम नहीं किया, बल्कि ईंटें डालने के लिए ट्रैक्टर-ट्रॉली ले गए, उन्हें अपीलकर्तागण द्वारा जाति सूचक शब्दों में गाली दी गई, पीटा गया और धमकाया गया - अपीलकर्तागण द्वारा तर्क दिया गया कि दोनों पक्ष एक-दूसरे को जानते थे और पड़ोसी थे, कुछ गलतफहमी के कारण झगड़ा हुआ उनके बीच विवाद हुआ, शिकायतकर्ता को चोट पहुंचाने का कोई इरादा नहीं था, शिकायतकर्ता ने बिना किसी दबाव के, अपनी इच्छा से, समझौता-सह-समझौता के तहत अपीलकर्ताओं के साथ विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाया। (पैरा 3, 4, 12, 27)

माना गया कि अपराध से पहले पीड़ित को उसकी जाति के आधार पर अपमानित करने की आपराधिक मंशा थी और यह केवल पीड़ित

की जाति के कारण किया गया था - समझौता किसी भी दीवानी विवाद के निपटारे का संकेत नहीं देता है और इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि शिकायतकर्ता पक्ष को समझौता करने के लिए मजबूर किया गया हो, क्योंकि अपीलकर्ता संख्या 2 का दो मामलों का आपराधिक इतिहास है और अपीलकर्ता संख्या 4 का 14 मामलों का आपराधिक इतिहास है - इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि कानूनी कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग क्यों होगा - उक्त अधिनियम के तहत अपराधों के शमन के लिए कोई प्रावधान नहीं है। (पैरा 29, 30, 32)

अपील खारिज। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रामावतार बनाम एम.पी. राज्य, (आपराधिक अपील संख्या 1393/2011), दिनांक 25.10.2021
2. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2020) 10 एससीसी 710, (पैरा 10)
3. प्रथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ, (2020) 4 एससीसी 727
4. रामगोपाल एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1489/2012), दिनांक 29.09.2021, (पैरा 11, 19)

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान आपराधिक अपील अपीलकर्ताओं की ओर से एस.एस.टी. संख्या 260/2018 (राज्य बनाम जंडेल सिंह और अन्य) में, जो केस अपराध संख्या-41 वर्ष 2018 से 323,

504, 506, 325 भ०द०वि० और एस.टी./एस.टी. एक्ट, थाना-जखलौन, जिला ललितपुर के 3(1)(आर)(एस) से उद्भूत है, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद "एस.सी./एस.टी. अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 14-ए(1) के तहत, ए.डी.जे./विशेष जज (एस.सी./ एस.टी.), ललितपुर द्वारा पारित दिनांक 16.01.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता पक्ष को गंभीर चोटें आईं और उसके बाद उन्हें जिला अस्पताल, ललितपुर में उपचार दिया गया, जहां से पीड़ितों की गंभीरता को देखते हुए कांछेड़ी और तिलक को झांसी मेडिकल कॉलेज भेजा गया और उपचार दिया गया। जब वे अपने घर लौटे, तो उन्होंने धारा 323, 504, 506, 325 भ०द०वि० और एस.टी./ एस.टी. अधिनियम थाना जखलौन, जिला: ललितपुर की धारा 3(1)(आर)(एस) के तहत प्रस्तुत प्राथमिकी संख्या-0041 वर्ष 2018 दर्ज की।

2. प्राथमिकी के अनुसार, अभियोजन की कहानी इस प्रकार है:

प्रथम सूचनादाता पूरन पुत्र कांछेड़ी अहिरवार ग्राम नुनावाली का रहने वाला था। दिनांक 10.04.2018 को प्रातः 08 बजे जब वह (सूचनाकर्ता) अपने पिता कंछेदी, भाइयों तिलक और अजय और भदाई पुत्र पूनू अहिरवार के साथ ईंटें अपलोड करने के लिए अपनी ट्रैक्टर-ट्रॉली पर जा रहा था, रास्ते में अपीलकर्ता और अन्य सह-आरोपी व्यक्ति, जैदान सिंह पुत्र लाखन सिंह, मुकुंद सिंह पुत्र लाखन सिंह, बबलू पुत्र समर सिंह और लाखन सिंह पुत्र देव सिंह ठाकुर, जो गांव-नुनावाली के निवासी हैं, ने जातिगत सांकेतिक शब्दों का प्रयोग करते हुए उन्हें रोका गया, अपमानित किया गया, डराया धमकाया गया और गाली-गलौज की गई। वे कह रहे थे कि आप ईंटें क्यों नहीं अपलोड करने जा रहे हैं और आप हमारा काम करने क्यों नहीं जा रहे हैं। तत्पश्चात्, सामान्य इरादे के अग्रसारण में, उन्होंने उन्हें लात, मुट्ठी, लाठी और डंडों से पीटा और धमकी देने के बाद, वे मौके से भाग गए, परिणामस्वरूप,

3. अपीलकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता और शिकायतकर्ता / प्रतिपक्षी संख्या-2 एक-दूसरे को जानते हैं और पड़ोसी हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि कुछ गलतफहमी के कारण उनके बीच झगड़ा हुआ था, हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 का (पहले सूचनाकर्ता) को चोट पहुंचाने का कोई इरादा नहीं था।

4. अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रस्तुत मामले में, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने अपनी मर्जी से और बिना किसी जबरदस्ती के समझौता-सह-निपटान के माध्यम से अपीलकर्ताओं के साथ अपनी सभी शिकायतों/विवादों और मतभेदों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है।

5. अपने तर्कों को पुष्ट करते हुए, अधिवक्ता ने रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या-1393 वर्ष 2011) दिनांक 25.10.2021 में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसे बाद में निपटाया गया है।

6. प्रथम सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से पेश अधिवक्ता ने कहा है कि उसे समझौता विलेख, जो कुछ भी हो उस पर, कोई आपत्ति नहीं है। शिकायतकर्ता ने समझ बूझकर उक्त समझौता किया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश और प्रस्तुत आपराधिक कार्यवाही को उक्त समझौते के आधार पर रद्द कर दिया जाए।

7. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत आपराधिक अपील का जोरदार विरोध किया और प्रस्तुत किया कि: एस.सी./एस.टी. अधिनियम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ अपराधों की जांच और रोकथाम के लिए पारित एक विशेष कानून है। एक विशेष कानून को लागू करने का विधायी इरादा इन समुदायों के सदस्यों के साथ होने वाले अपमान और उत्पीड़न की घटनाओं को रोकना रहा है। प्रस्तुत प्राथमिकी इस विशेष कानून द्वारा आपराधिक बनाने की मांग की गई शरारत का एक क्लासिक मामला है, जहां आरोपी व्यक्तियों ने अपनी जाति के आधार पर प्रथम सूचनाकर्ता पक्ष को धमकाने की कोशिश की। प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ताओं ने जानबूझकर अपना काम करने के लिए पहले सूचनाकर्ता के पक्ष को आतंकित और अपमानित किया है। इस तरह के गंभीर प्रकृति के आपराधिक अपराधों को पक्षों के बीच समझौते के आधार पर संयोजित नहीं किया जा सकता है, अन्यथा यदि समझौते के आधार पर रद्द करने की अनुमति दी जाती है, तो यह समाज में एक गलत संदेश भेजेगा। रामावतार (उपरोक्त) का मामला पूरी तरह से एक अलग पायदान पर है, जिसमें दीवानी

विवाद के कारण विवाद हुआ और उक्त निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था। ये इन तथ्यों से अलग है और इसलिए, प्रस्तुत मामले के लिए बाध्यकारी नहीं है।

8. पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

9. प्रस्तुत आपराधिक अपील के माध्यम से अपीलकर्ताओं ने प्रार्थना की है कि आक्षेपित आदेश को समझौते के आधार पर रद्द कर दिया जाए और मामले के गुण-दोषों के रूप में कोई अन्य कथन नहीं किया गया है। इस प्रकार, न्यायालय के समक्ष कार्य यह निर्णय लेने की सीमा तक सीमित है कि - क्या इस मामले के तथ्यों में, आक्षेपित आदेश और एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत आपराधिक कार्यवाही को पक्षों के बीच समझौते के आधार पर रद्द किया जा सकता है।

10. प्रस्तुत मामले के तथ्यों की जांच करने और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए(1) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों का विश्लेषण करने से पहले, धारा 320 द०प्र०स० के जनादेश का उल्लेख और विश्लेषण करना उचित है।

"320. अपराधों का शमन

(1) निम्नलिखित सारणी के पहले दो स्तंभों में विनिर्दिष्ट भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860)

की धाराओं के अधीन दंडनीय अपराधों को उस सारणी के तीसरे स्तंभ में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा शमन किया जा सकेगा:...

(2) भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धाराओं के अधीन दंडनीय अपराध, जो अगले पश्चात् सारणी के पहले दो स्तंभों में विनिर्दिष्ट हैं, उस न्यायालय की अनुज्ञा से, जिसके समक्ष ऐसे अपराध के लिए कोई अभियोजन लंबित है, उस सारणी के तीसरे स्तंभ में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा शमन किया जा सकेगा ...

(3) जब कोई अपराध इस धारा के अधीन शमनीय होता है तब ऐसे अपराध का दुष्प्रेरण या ऐसा अपराध करने का प्रयत्न (जब ऐसा प्रयास स्वयं एक अपराध हो) या जहां अभियुक्त भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 34 या 149 के अधीन उत्तरदायी हो, उसी रीति से शमन किया जा सकेगा।

(4)(ए) जब वह व्यक्ति जो अन्यथा इस धारा के तहत अपराध को शमन करने के लिए सक्षम होगा, अठारह वर्ष से कम आयु का है या मूर्ख या पागल है, उसकी ओर से अनुबंध करने के लिए सक्षम कोई भी व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से इस तरह के अपराध को शमन कर सकता है।

(ख) जब वह व्यक्ति जो अन्यथा इस धारा के अधीन किसी अपराध को शमन करने के लिए सक्षम होगा, मर जाता है, तो ऐसे व्यक्ति का विधिक प्रतिनिधि, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) में परिभाषित

किया गया है, न्यायालय की सहमति से ऐसे अपराध को शमित कर सकेगा।

(5) जब अभियुक्त विचारण के लिए प्रतिबद्ध हो गया है या जब उसे दोषसिद्ध कर दिया गया है और कोई अपील लंबित है, तब अपराध के लिए उस न्यायालय की अनुमति के बिना जिसके लिए वह प्रतिबद्ध है, या यथास्थिति, जिसके समक्ष अपील सुनी जानी है, अनुमति नहीं दी जाएगी।

(6) धारा 401 के अधीन पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए कोई उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी व्यक्ति को ऐसे किसी अपराध को शमित करने की अनुज्ञा दे सकेगा, जिसे वह व्यक्ति इस धारा के अधीन शमित करने के लिए सक्षम है।

(7) यदि अभियुक्त, पूर्व दोषसिद्धि के कारण, ऐसे अपराध के लिए या तो बढ़ी हुई सजा के लिए या किसी भिन्न प्रकार के दंड के लिए उत्तरदायी है, तो कोई अपराध शमन नहीं किया जाएगा।

(8) इस धारा के अधीन अपराध के संघटन का उस अभियुक्त के दोषमुक्त होने का प्रभाव होगा जिसके साथ अपराध का शमित किया गया है।

(9) कोई अपराध इस धारा द्वारा उपबंधित के सिवाय, शमन नहीं किया जाएगा।

11. धारा 320 द०प्र०स० की उप-धारा (9) के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि "गैर-शमनीय

अपराध" वाले अपराधों को आपराधिक न्यायालय द्वारा शमित नहीं किया जा सकता है। न्यायालय द्वारा ऐसा कोई भी प्रयास धारा 320 द०प्र०स० में परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होगा, जो विधायिका का अनन्य डोमेन है। हालांकि, उच्च न्यायालय, धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और उचित कारणों से, किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और/या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है।

12. प्रस्तुत मामले में, आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए समझौते के आधार पर प्रार्थना की गई है। उक्त समझौते में, कथित घटना के तथ्य, जिसके आधार पर प्रस्तुत प्राथमिकी दर्ज की गई है, का विरोध नहीं किया गया है, बल्कि यह स्वीकार किया गया है कि पक्षों के बीच झगड़ा हुआ था जिसके कारण वर्तमान कार्यवाही शुरू हुई। इसे ध्यान में रखते हुए, मामले के गुण-दोष में प्रवेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः प्रक्रिया के दुरुपयोग का प्रश्न नहीं उठता।

13. चूंकि, यहाँ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना, जिसमें एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)(आर) और (3)(1)(एस) के तहत अपराध किया जाना बताया गया है, उक्त कानून के पीछे विधायी मंशा का उल्लेख करना उचित है। आशय का अनुमान अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन से लगाया जा सकता है, जिसका उल्लेख यहां किया गया है:

उद्देश्यों और कारणों का कथन - अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक दशाओं में सुधार करने के विभिन्न उपायों के बावजूद, वे असुरक्षित बने हुए हैं। उन्हें नागरिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है। वे विभिन्न अपराधों, अपमान और उत्पीड़न के अधीन हैं। कई क्रूर घटनाओं में उन्हें अपने जीवन और संपत्ति से वंचित किया गया है। विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से उनके खिलाफ गंभीर अपराध किए जाते हैं।

2. शिक्षा आदि के प्रसार के माध्यम से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बीच पैदा की गई जागरूकता के कारण वे अपने अधिकारों का दावा करने की कोशिश कर रहे हैं और इसे दूसरों द्वारा बहुत दयालुता से नहीं लिया जा रहा है। जब वे अपने अधिकारों का दावा करते हैं और उनके खिलाफ अस्पृश्यता की प्रथाओं का विरोध करते हैं या वैधानिक न्यूनतम मजदूरी की मांग करते हैं या किसी भी बंधुआ और जबरन श्रम करने से इनकार करते हैं, तो निहित स्वार्थी लोग उन्हें डराने और आतंकित करने की कोशिश करते हैं। जब अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां अपने महिलाओं के आत्मसम्मान या सम्मान को बनाए रखने की कोशिश करती हैं, तो वे प्रभावशाली और शक्तिशाली लोगों के लिए अड़चन बन जाते हैं। यहां तक कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों द्वारा सरकार द्वारा आवंटित भूमि पर कब्जा और खेती करने से भी नाराजगी होती है और प्रायः ये लोग निहित स्वार्थी के हमलों का शिकार हो जाते हैं। हाल ही में, अनुसूचित

जाति के लोगों से मानव मल जैसे अखाद्य पदार्थ खाने और असहाय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर हमले और सामूहिक हत्याएं तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के बलात्कार जैसे कतिपय अत्याचारों को अंजाम दिए जाने की परेशान करने वाली प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों में, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और दंड संहिता, 1860 के सामान्य प्रावधान जैसे मौजूदा कानून इन अपराधों को रोकने के लिए अपर्याप्त पाए गए हैं। अतः गैर-अनुसूचित जातियों और गैर-अनुसूचित जनजातियों द्वारा उनके विरुद्ध किए गए अपराधों को रोकने के लिए एक विशेष विधान आवश्यक हो गया है।

14. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2020) 10 एस.सी.सी. 710 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधायी आशय का भी उल्लेख किया गया है, जिसमें माननीय न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"10. यह अधिनियम समाज के कमजोर वर्गों की सामाजिक आर्थिक स्थितियों में सुधार के लिए अधिनियमित किया गया था क्योंकि वे अपमान और उत्पीड़न जैसे विभिन्न अपराधों के अधीन हैं। उन्हें जान-माल से भी वंचित रखा गया है। इस प्रकार अधिनियम का उद्देश्य उन उल्लंघनकर्ताओं को दंडित करना है जो अपमान और उत्पीड़न करते हैं और अधिनियम की धारा-3 के तहत परिभाषित अपराध करते हैं। इस प्रकार अधिनियम का उद्देश्य समाज के

कमजोर वर्ग के खिलाफ उच्च जाति के कृत्यों को दंडित करना है क्योंकि वे एक विशेष समुदाय से संबंधित हैं।

15. अधिनियम का लंबा नाम यह स्पष्ट करता है कि अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ अत्याचार के अपराधों के कमीशन को रोकना है ताकि ऐसे अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों और विशेष एक्स्क्लूसिव न्यायालयों की व्यवस्था की जा सके और ऐसे अपराधों के पीड़ितों को राहत और पुनर्वास सुनिश्चित किया जा सके। अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार करना है क्योंकि उन्हें उनके नागरिक अधिकारों से वंचित किया गया है। इस प्रकार, अधिनियम के तहत एक अपराध तब बनाया जाएगा जब भी समाज के कमजोर वर्ग के किसी सदस्य को अपमान और उत्पीड़न के अधीन किया जाएगा।

16. संविधान के निर्माता समाज की कठोर वास्तविकताओं तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के साथ होने वाले भेदभाव के प्रति सचेत थे। स्वतंत्रता के समय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के उदात्त आदर्श सिर्फ यूटोपियन सिद्धांत थे जो हालांकि कानून द्वारा गारंटीकृत थे, लेकिन जमीन पर मौजूद नहीं थे। यह दलितों और कमजोर लोगों के कल्याण के लिए था कि यह सुनिश्चित करने के लिए सुधारात्मक और उपचारात्मक उपाय लाए गए थे कि उनके नागरिक अधिकारों की रक्षा की जाए और

सिद्धांत रूप में समानता को व्यवहार में अपनाया जाए।

17. संविधान की उद्देशिका का एक उद्देश्य "व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाला भाईचारा" है। प्रस्तावना में मूल रूप से "बंधुत्व" शब्द नहीं था, बल्कि इसे बाद में मसौदा समिति द्वारा डाला गया था। डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर द्वारा "बंधुत्व" शब्द के लिए दिए गए स्पष्टीकरण का उल्लेख करना प्रासंगिक है, जिसमें उन्होंने कहा था कि "बंधुत्व का अर्थ है सभी भारतीयों के सामान्य भाईचारे की भावना"। हमारे जैसे देश में, जहां विशद विविधता है और अनेक दरारें हैं, इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि भारत की एकता और अखंडता केवल भाईचारे की भावना से ही संरक्षित की जा सकती है।

18. जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ, (2020)4 एस.सी.सी. 727 में कहा है, बंधुत्व के इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए, तीन प्रावधान - अनुच्छेद 15, 17 और 24 को भारत के संविधान में शामिल किया गया था। इन प्रावधानों के लागू होने के बावजूद, संविधान के संस्थापकों ने विधायिका से समाज में जाति-आधारित भेदभाव को जड़ से खत्म करने के लिए प्रभावी उपाय करने की अपेक्षा की। उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संसद द्वारा पहला प्रयास अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 का अधिनियमन था, जिसमें सबूत का भार अभियुक्त पर तय किया गया था न कि अभियोजन पर। इसके बाद नागरिक अधिकार

संरक्षण अधिनियम, 1955 आया जिसने अस्पृश्यता और विकलांगता से जुड़ी सामाजिक प्रथाओं को गैरकानूनी घोषित करने और दंडित करने के प्रावधान किए। बाद में यह महसूस किया गया कि 1955 के अधिनियम (जिसे 1976 में संशोधित किया गया था) ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के समुदायों के खिलाफ 12 जाति-आधारित भेदभावपूर्ण प्रथाओं के लिए पर्याप्त निवारक प्रदान नहीं किया था।

19. अंत में, कमियों को दूर करने के लिए और उन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए जिन्हें संविधान ने लोगों को प्रत्याभूत किया है, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों के विरुद्ध अत्याचार करने से रोकने के लिए, ऐसे अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों की व्यवस्था करने और ऐसे अपराधों के पीड़ितों के राहत और पुनर्वास के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था। अधिनियम ने पहली बार "अत्याचार" की एक विस्तृत परिभाषा भी निर्धारित की है ताकि उन कई तरीकों को कवर किया जा सके जिनके माध्यम से सदियों से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को अपमानित, उत्पीड़ित और दलित किया गया है।

20. पूर्वोक्त के आलोक में, यह दोहराना महत्वपूर्ण है कि जब तक अधिनियम के प्रावधानों को उनके सच्चे अक्षर और भावना में लागू नहीं किया जाता है, और अधिनियम में

अंतर्निहित विधायी आशय प्रकट नहीं होता है, तब तक जाति-आधारित भेदभाव से मुक्त समाज की दृष्टि केवल एक दूर का सपना ही रहेगी।

21. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने रामावतार (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर व्यापक रूप से भरोसा किया है, और इसलिए इसका विस्तार से विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त अपील का निर्णय करते समय दो प्रश्नों का सामना किया, पहला कि क्या संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को गैर-शमनीय अपराध से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए लागू किया जा सकता है; और यदि पहले प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो दूसरा कि क्या कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति एस.सी./एस.टी. अधिनियम जैसे विशेष कानूनों से उत्पन्न अपराधों तक बढ़ाई जा सकती है।

23. पहले प्रश्न के उत्तर में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रामगोपाल और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या-1489 वर्ष 2012) दिनांक 29.09.2021 के निष्कर्ष को दोहराया, और यह मानते हुए कि धारा 320 द०प्र०स० को न्यायालय में निहित शक्तियों के आह्वान पर रोक के रूप में नहीं माना जा सकता है, यह भी माना कि अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के तहत असाधारण शक्तियों के प्रयोग की कसौटी यह भी होगी

कि पूरा न्याय करें। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चेतावनी के नोट को दोहराया कि न्यायालय को प्रावधानों के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय ध्यान में रखना चाहिए, और अवधारित किया कि:

"11. रामगोपाल (उपरोक्त) में न्यायालय ने आगे कहा कि गैर-जघन्य अपराधों या अपराधों से जुड़े आपराधिक कार्यवाही जो मुख्य रूप से निजी प्रकृति के हैं, को कार्यवाही के किसी भी चरण में रद्द किया जा सकता है, जिसमें अपीलीय स्तर भी शामिल है। न्यायालय, हालांकि, इस तथ्य के प्रति सचेत होने के नाते कि बेईमान अपराधी क्रूर बल, धमकियों, रिश्वत, या ऐसे अन्य अनैतिक और अवैध साधनों के माध्यम से समझौता करके अपनी आपराधिक देनदारियों से बचने का प्रयास कर सकते हैं, चेतावनी दी कि ऐसे मामलों में जहां दोषसिद्धि के बाद समझौता किया जाता है, न्यायालयों को अन्य बातों के साथ-साथ, उस परिस्थिति की, और साथ ही, विचाराधीन घटना से पहले और बाद में आरोपी का आचरण की सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए जिसमें समझौता किया गया है। निष्कर्ष निकालते हुए, न्यायालय ने कुछ दिशानिर्देश भी तैयार किए और अवधारित किया:

19... फिर भी, हम दोहराते हैं कि व्यापक आयाम की ऐसी शक्तियों का उपयोग आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के संदर्भ में सावधानी से किया जाना चाहिए, यह ध्यान में रखते हुए: (i) समाज के चेतन पर अपराध की प्रकृति और प्रभाव; (ii) चोट की गंभीरता, यदि कोई हो; (iii) अभियुक्त और पीड़ित के

बीच समझौते की स्वैच्छिक प्रकृति; & (iv) कथित अपराध की घटना से पहले और बाद में आरोपी व्यक्तियों का आचरण और/या अन्य प्रासंगिक विचार।

24. दूसरे प्रश्न के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"15. आमतौर पर, एस.सी./एस.टी. अधिनियम जैसे विशेष कानूनों से उत्पन्न होने वाले अपराधों से निपटते समय, न्यायालय अपने दृष्टिकोण में अत्यंत चौकस रहेगा। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ अपमान और उत्पीड़न के कृत्यों को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया है। यह अधिनियम इस निराशाजनक वास्तविकता को भी स्वीकार करता है कि कई उपाय करने के बावजूद अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों को उच्च जातियों के हाथों विभिन्न अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है। न्यायालयों को इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 15, 17 और 21 में उल्लिखित स्पष्ट संवैधानिक सुरक्षा उपायों को ध्यान में रखते हुए अधिनियमित किया गया है, जिसका दोहरा उद्देश्य इन कमजोर समुदायों के सदस्यों की रक्षा करना और साथ ही जाति आधारित अत्याचारों के पीड़ितों को राहत और पुनर्वास प्रदान करना है।

18. हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि वर्तमान जैसे मामलों में, न्यायालयों को

यह सुनिश्चित करने के लिए और भी सतर्क रहना चाहिए कि शिकायतकर्ता पीड़ित ने अपनी स्वतंत्र इच्छा पर समझौता किया है न कि किसी दबाव के कारण। इस बात को कम करके नहीं आंका जा सकता है कि चूंकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्य हमारे देश के कमजोर वर्गों से संबंधित हैं, इसलिए वे जबरदस्ती के कृत्यों के लिए अधिक प्रवण हैं, और इसलिए उन्हें उच्च स्तर की सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यदि न्यायालयों को मजबूरी या बल का संकेत भी मिलता है, तो आरोपी पक्ष को कोई राहत नहीं दी जा सकती है। अदालतों को किन कारकों पर विचार करना चाहिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दूसरे प्रश्न के संबंध में उक्त निर्णय में आगे कहा कि:

"16. दूसरी ओर, जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विचाराधीन अपराध, हालांकि एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत कवर किया गया है, मुख्य रूप से निजी या दीवानी प्रकृति का है, या जहां कथित अपराध पीड़ित की जाति के कारण नहीं किया गया है, या जहां कानूनी कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इसी तरह, जब एक सुलह/समझौते के आधार पर रद्द करने की प्रार्थना पर विचार करते हैं, यदि न्यायालय संतुष्ट है कि अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य का उल्लंघन नहीं किया जाएगा या उपेक्षित; नहीं किया जाएगा, भले ही प्रश्न में गुंडागर्दी

को दंडित नहीं किया जाता है, केवल तथ्य यह है कि अपराध एक 'विशेष कानून' के तहत कवर किया गया है, इस न्यायालय या उच्च न्यायालय से परहेज नहीं करेगा, संविधान के अनुच्छेद 142 या धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी संबंधित शक्तियों का प्रयोग करने से यह माना जाता है कि क्या एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत अपराधों को रद्द किया जा सकता है यदि अपराध मुख्य रूप से निजी या दीवानी प्रकृति का है, हालांकि, रद्द करने से पहले, अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि पीड़ित पर समझौते में प्रवेश करने के लिए दबाव नहीं डाला गया है। उपरोक्त सिद्धांतों के आलोक में प्रस्तुत मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के साथ-साथ समझौते के आवेदन पर मनन करने के बाद, हम अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों को लागू करने और हमारे समक्ष पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के एकमात्र उद्देश्य के साथ प्रस्तुत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के इच्छुक हैं।

26. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अधीन अपराधों में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के प्रश्न पर विस्तृत विचार-विमर्श करने पर और ऊपर चर्चा किए गए निर्णयों के आलोक में, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(i) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अंतर्गत आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने से निपटने के दौरान न्यायालय को अपने दृष्टिकोण में अत्यंत चौकस रहना

चाहिए और उक्त अधिनियम के विधायी आशय का संज्ञान लेना चाहिए।

(ii) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम जैसे विशेष विधानों के अंतर्गत अपराधों से संबंधित मामलों में, दांडिक कार्यवाहियों को रद्द करने, व्याप्त सामाजिक भेदभाव और समाज के कमजोर वर्गों की असुरक्षा को जबरदस्ती की संभावना के रूप में देखते समय, न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए अधिक सतर्क रहना चाहिए कि पीड़ित ने अपनी इच्छा और स्वतंत्र इच्छा से समझौता किया है न कि किसी दबाव के कारण। यदि, इस पर विचार करते समय, जबरदस्ती या बल की आशंका है, तो आरोपी को कोई राहत नहीं दी जा सकती है। पीड़ित की इच्छा/स्वतंत्र सहमति निर्धारित करने के कारक तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेंगे और अलग-अलग मामलों में अलग-अलग होंगे।

(iii) पूर्वोक्त विश्लेषण पर, न्यायालय की राय में, यह पाया जाता है कि:

पहला, यदि एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत आने वाला अपराध मुख्य रूप से निजी या दीवानी प्रकृति का है; नहीं तो

दूसरा, जहां पीड़ित की जाति के कारण अपराध नहीं किया गया है; नहीं तो

तीसरा, जहां कानूनी कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा; और

चौथा, यदि अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य का उल्लंघन नहीं किया जाएगा या उपेक्षित नहीं किया जाएगा, भले ही विचाराधीन अपराध को दंडित नहीं किया जाता है, तो केवल यह तथ्य कि अपराध एक "विशेष कानून" के तहत आच्छादित किया गया है, अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर रोक नहीं होगी, और न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

26. इस न्यायालय ने मौजूदा मामले, ऊपर उल्लिखित कानून के मामलों और सिद्धांतों और विशेष रूप से रामावतार (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार किया है। जो बात उभरती है वह यह है कि एस.सी./एस.टी. अधिनियम जैसे विशेष कानूनों से उत्पन्न अपराधों से निपटने के दौरान, न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में अत्यंत चौकस होना चाहिए।

27. रामावतार (उपरोक्त) के मामले में, पक्षों के बीच पहले से मौजूद संपत्ति विवाद था, जिसके कारण संघर्ष हुआ और घटनाओं का उक्त मोड़ आया, जिसके कारण एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू हुई। हालांकि, इस मामले में संघर्ष की जड़ यह थी कि प्रथम सूचनाकर्ता पक्ष अपना काम नहीं कर रहा था, इसके बजाय ईंटें अपलोड करने के लिए ट्रैक्टर-ट्रॉली ले जा रहा था और अपीलकर्ताओं द्वारा उन्हें गाली-गलौज किया गया, पीटा गया और उनकी जाति के आधार पर धमकी दी गई।

28. इसके अलावा, रामावतार (उपरोक्त) के मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 142 के तहत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए शक्तियों का प्रयोग किया गया था, जिसका एकमात्र उद्देश्य इसके समक्ष पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करना था। हालांकि, इस मामले में न तो कोई ठोस कारण है और न ही न्याय का कोई उपहास किया जा रहा है या प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग है जिसे रोकने की आवश्यकता है, इस प्रकार इस न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की आवश्यकता है।

29. प्रस्तुत मामले में, जो प्रतीत होता है वह यह है कि पीड़ित/प्रथम सूचनाकर्ता पक्ष का अपमान पूरी तरह से अकारण, अवांछित था, जिसका एकमात्र उद्देश्य पीड़ित को अपना काम न करने के लिए अपमानित करना था। इस मामले में अपराध पीड़ित को उसकी जाति के आधार पर अपमानित करने के आपराधिक इरादे से पहले हुआ था और पीड़ित की जाति के आधार पर पूरी तरह से और जानबूझकर किया गया है।

30. इसके अलावा, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के खिलाफ अपमान और उत्पीड़न के कृत्यों को रोकने के लिए एस.सी./एस.टी. अधिनियम में अंतर्निहित विधायी मंशा और प्रस्तुत मामले में तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, समझौता किसी भी नागरिक विवाद के निपटारे का संकेत नहीं देता है और पहले सूचनाकर्ता पक्ष को समझौता करने के लिए मजबूर किए जाने की संभावना से इनकार

नहीं किया जा सकता है क्योंकि अपीलकर्ता संख्या-2 लखन सिंह का दो मामलों का आपराधिक इतिहास है और अपीलकर्ता संख्या-4 जंडेल सिंह का आपराधिक इतिहास वर्ष 14 का मामला है, जो आपराधिक अपील के पैरा 19 से स्पष्ट है। इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि कानूनी कार्यवाही को जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग क्यों होगा।

31. इसलिए, प्रस्तुत मामले में अपराध प्रमुख रूप से दीवानी प्रकृति का नहीं है और केवल पीड़ित की जाति के आधार पर किया जा रहा है, एस.सी./एस.टी. अधिनियम की कठोरता एक विशेष कानून है, जिसे एक विशिष्ट महान विधायी इरादे के साथ अधिनियमित किया गया है जिसे इसकी सही भावना में प्रभावी किया जाना चाहिए; समझौते के आधार पर प्रश्नगत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करके कम नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग का मामला नहीं बनता है, क्योंकि इस मामले में धारा 14-ए (1) एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत एक आपराधिक अपील दायर की गई है, जो इस प्रकार है: -

"14-ए (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में निहित किसी बात के होते हुए भी, किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश से, जो किसी विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय का वादकालीन आदेश नहीं है, तथ्यों और विधि दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी।"

32. एस.सी./एस.टी. अधिनियम की योजना में, अधिनियम के तहत अपराधों को शमन के लिए कोई प्रावधान नहीं है।

33. ऊपर किए गए विश्लेषण के आलोक में और जैसा कि अपीलकर्ता दिनांक 16.01.2023 के आक्षेपित आदेश में किसी भी अवैधता, दुर्बलता या विकृति को इंगित करने में विफल रहे हैं, मेरा विचार है कि अपील योग्यता से रहित है जिसे खारिज किया जा सकता है अतः इसे एतद्वारा द्वारा खारिज किया जाता है।

33. यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रस्तुत आपराधिक अपील को खारिज करते समय यहां की गई टिप्पणियों का परीक्षण के दौरान मामले के गुण-दोषों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

(2023) 7 ILRA 460

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 1745 सन् 2021

सत्यम सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: रमाकर शुक्ला,
रविकांत पांडे

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय
अधिवक्ता, आलोक श्रीवास्तव

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 306 और 376 (2) - आत्महत्या के लिए उकसाना - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 (2) (वी) - आयकर अधिनियम, 2000 - धारा 67 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 - जमानत खारिज होने के खिलाफ अपील - अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप है कि उसने शिकायतकर्ता के भाई की पत्नी और बेटी को परेशान किया और उन्होंने आत्महत्या कर ली - अपीलकर्ता ने प्रस्तुत किया कि शिकायतकर्ता का पूरा कथन संदेह पर आधारित था - मृतक की मृत्यु का कारण अज्ञात था, संपत्ति विवाद के कारण दोनों को उनके परिवार के सदस्यों ने मार डाला - परिस्थितिजन्य साक्ष्य, कोई स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं - परिस्थितियों की शृंखला पूरी नहीं हुई। (पैरा 7, 8, 12, 15, 21)

यह माना गया कि किसी भी ग्रामीण या किसी स्वतंत्र व्यक्ति ने अपीलकर्ता और मृतक की वायरल वीडियो क्लिप या तस्वीर नहीं देखी थी और न ही पुलिस द्वारा कोई शिकायत की गई थी कि अपीलकर्ता ने अपने मोबाइल फोन पर कुछ वीडियो या तस्वीर ली थी और उस आधार पर उसने उसे धमकी दी थी - मृतक के पति को अपीलकर्ता से वीडियो क्लिप मिली थी जिसे देखने के बाद उसने डिलीट कर दिया था, लेकिन उसने पुलिस को इसकी सूचना नहीं दी थी। इसके अलावा, अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी के साथ शारीरिक संबंध बनाए लेकिन उसने कोई शिकायत नहीं की, कथन संदिग्ध है -

जांच अधिकारी कथन ने अपीलकर्ता के घर से उसका मोबाइल फोन बरामद करने के बाद, जो उसकी मां द्वारा सौंपा गया था, उसने सीलबंद लिफाफे में डाले बिना उसे फॉरेंसिक लैब भेज दिया, रिपोर्ट की प्रामाणिकता संदिग्ध थी। (पैरा 32)

अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1984 क्रि. एल.जे. 178
2. उदे सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य; (2019) 17 एससीसी 301
3. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य, (2020) 10 एससीसी 710,
4. कमल बनाम हरियाणा राज्य, 2004 (13) एससीसी 526, (पैरा 2)
5. तख्त सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2001 (10) एससीसी 463, (पैरा 2)
6. दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 3 एससीसी 22 में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद, द्वारा दिया प्रदत्त)

1. राज्य की ओर से दायर जवाबी हलफनामा पहले से ही रिकॉर्ड पर है और इसके जवाब में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आज न्यायालय में जवाबी हलफनामा दायर किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

2. श्री आलोक श्रीवास्तव, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता को दिनांक 02.03.2023 को प्रति-शपथ-पत्र दाखिल करने के लिए पहले ही समय दिया जा चुका है, तब से मामला 3-4 बार सूचीबद्ध हुआ, लेकिन उन्होंने कोई प्रति-शपथ-पत्र दाखिल नहीं किया है। उनका कहना है कि वे प्रति-शपथ-पत्र के अभाव में मामले पर बहस करेंगे।

4. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमरेन्द्र नाथ सिंह जिनकी सहायता अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि कांत पांडे ने की, राज्य-विपक्षी संख्या 1 के विद्वान ए.जी.ए. सुश्री शिखा सिन्हा और विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक श्रीवास्तव को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया।

5. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत वर्तमान आपराधिक अपील, अपीलार्थी सत्यम सिंह द्वारा, विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, गोंडा की न्यायालय द्वारा जमानत आवेदन संख्या 1193/2021 में पारित दिनांक 28.05.2021 के आक्षेपित आदेश के खिलाफ पेश की गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 85/2021 से उत्पन्न हुआ है, धारा 306, 376(2) आई.पी.सी. के साथ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(5) और आई.टी. एक्ट की धारा 67 के तहत, थाना तरबगंज, जिला गोंडा, जिसके तहत अपीलार्थी की जमानत याचिका खारिज कर दी गई है।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि अपीलार्थी एक प्रतिष्ठित कॉलेज में बी.एस.सी. का छात्र है और अपनी पढ़ाई कर रहा था। उसे दुश्मनी और गांव की पार्टीबंदी के कारण इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अपीलार्थी के खिलाफ अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए सभी आरोप झूठे और मनगढ़ंत हैं और अपीलार्थी के पूरे भविष्य को बर्बाद करने के इरादे से लगाए गए हैं।

7. विद्वान अधिवक्ता का आगे कहना है कि विपक्षी संख्या 2-पप्पू पासवान द्वारा दिनांक 24.03.2021 को 03:19 बजे अपीलार्थी के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई, जिसमें दिनांक 23.03.2021 की घटना दर्शाते हुए धारा 306 आई.पी.सी. सहपठित धारा 3(2)(5) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अंतर्गत थाना तरबगंज, जिला गोंडा में आरोप लगाया गया कि दिनांक 23/24.03.2021 की मध्य रात्रि में उसके भाई के साले पुजारी ने अपनी बहन से बात करने के लिए उसके मोबाइल पर कॉल किया, जिस पर वह अपने भाई के घर गया, तब पड़ोसी ने उसे बताया कि उसके भाई की पत्नी एवं पुत्री फूला देवी एवं खुशबू खेत की ओर गई हैं, तब वह उनकी खोज में दक्षिण की ओर गया तो देखा कि इशरदीन पासवान के खेत में कटहल के पेड़ के पास से पत्नी एवं पुत्री सत्यम सिंह की प्रताड़ना से तंग आकर उसके भाई की पत्नी और बेटी फूला देवी और खुशबू ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट बिना कोई उचित स्पष्टीकरण दिए बहुत विलम्ब से दर्ज की गई। दोनों मृतकों की मृत्यु की सूचना पर थाना तरबगंज की पुलिस आई तथा पंचायतनामा कार्रवाई करके पंचायतनामा रिपोर्ट तैयार की, तत्पश्चात दोनों मृतकों के शवों को पोस्टमार्टम हेतु भेजा गया, जो दिनांक 24.03.2021 को किया गया।

9. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मृतक खुशबू की पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, उसकी मौत का कारण मृत्यु से पहले फांसी के कारण दम घुटना पाया गया था, साथ ही गर्दन के चारों ओर 29.0 सेमी x 1.5 सेमी आकार का एक लिगेचर मार्क था, जिसका उल्लेख वर्तमान अपील की पेपर बुक के पेज-59 पर किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि संबंधित डॉक्टर ने राय दी है कि जननांगों पर कोई बाहरी और आंतरिक चोट नहीं देखी गई, हाइमन फटी हुई थी और गर्भाशय गर्भवती नहीं था। यह रिपोर्ट पेपर बुक के पेज-60 पर दी गई है। इस प्रकार, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक खुशबू की मौत का कारण बिना किसी चोट के फांसी के कारण दम घुटना है।

10. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि मृतका फूला देवी का पोस्टमार्टम भी किया गया था, जिसमें गर्दन के चारों ओर 30.0 सेमी x 1.0 सेमी आकार के एक लिगेचर मार्क के अलावा, बाएं घुटने पर तीन अन्य साधारण चोटें देखी गईं।

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि उपरोक्त दोनों मृतकों की मौत में अपीलार्थी की कोई भूमिका नहीं है और अपीलार्थी को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

12. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वादी पप्पू पासवान का धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत बयान विवेचक द्वारा दिनांक 24.03.2021 को दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने यह भी संदेह जताया है कि अपीलार्थी द्वारा कुछ तस्वीरें और वीडियो क्लिप तैयार की गई थी और उसका मृतका खुशबू के साथ संबंध था और उस वीडियो क्लिप और तस्वीरों की आड़ में अपीलार्थी उसे ब्लैकमेल कर रहा था, इस प्रकार, इस अपमान के कारण उसने आत्महत्या कर ली। लेकिन धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज अपने बयान में वादी पप्पू पासवान ने यह खुलासा नहीं किया है कि मृतका खुशबू का किस प्रकार का वीडियो या क्लिप अपीलार्थी द्वारा बनाया गया था, या उसने इसे अपनी आंखों से देखा था या किसी अन्य ग्रामीण ने उक्त मृतका की कोई अश्लील वीडियो क्लिप या तस्वीरें देखी थीं। इस प्रकार, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि संदेह के आधार पर वादी द्वारा पूरा बयान दिया गया है।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि उसके बाद वादी की पत्नी श्रीमती माला देवी का बयान भी दर्ज किया गया जिसमें उसने यह भी कहा है कि मृतक खुशबू के साथ अपीलार्थी का कुछ संबंध था,

वह मृतक खुशबू को प्रताड़ित करता था और उसके साथ शारीरिक संबंध भी बनाता था और वीडियो क्लिप बनाता था और कुछ तस्वीरें भी खींचता था, और उसने मृतक को उक्त वीडियो क्लिप और तस्वीरें वायरल करने की धमकी भी दी थी। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपने पूरे बयान में श्रीमती माला देवी ने यह नहीं कहा है कि उन्होंने मृतक खुशबू के साथ अपीलार्थी की कभी कोई वीडियो क्लिप या तस्वीर देखी थी या उन्हें कभी किसी आपत्तिजनक स्थिति में देखा था।

14. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि श्रीमती माला ने अपने बयान में आगे कहा है कि अपीलार्थी ने मृतका खुशबू के साथ कई बार बलात्कार किया था, लेकिन मृतका खुशबू या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा अपीलार्थी के खिलाफ पुलिस में कभी कोई प्राथमिकी या शिकायत नहीं की गई थी, जो श्रीमती माला देवी के बयान को भी गलत साबित करता है और इस प्रकार यह दर्शाता है कि अपीलार्थी को पहली बार मामले में झूठा फंसाया गया है।

15. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मृतक की मृत्यु के कारण पूरी तरह से अज्ञात हैं। हालाँकि, कुछ संपत्ति विवाद था जिसके कारण दोनों को उनके परिवार के सदस्यों द्वारा मार दिया गया।

16. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि एक अन्य गवाह, कुमारी रीना ने भी धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज अपने बयान में वही बयान दोहराया है जो श्रीमती

माला देवी ने धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज अपने बयान में दिया था, लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं कहा है कि उसने मृतक खुशबू के साथ अपीलार्थी की कोई वीडियो क्लिप या तस्वीर किसी समझौतापूर्ण स्थिति में देखी थी।

17. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मृतका खुशबू के पति मोहित नामक साक्षी का बयान भी दिनांक 07.05.2021 को धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें अपनी रज़ा बचाने के लिए उसने पहली बार कहा कि उसे अपीलार्थी से एक वीडियो क्लिप मिली थी जिसे देखने के बाद उसने डिलीट कर दिया था, लेकिन उसने इस वीडियो क्लिप के बारे में पहले पुलिस को सूचित नहीं किया। उसने केवल यह कहा है कि अपीलार्थी ने उसकी पत्नी खुशबू के साथ शारीरिक संबंध बनाए, लेकिन उसने कभी कोई शिकायत नहीं की या प्राथमिकी दर्ज नहीं की, इस प्रकार, मृतका के पति द्वारा दिया गया बयान संदिग्ध प्रतीत होता है और यह संभव नहीं है कि पति अपीलार्थी के साथ अपनी पत्नी के अश्लील वीडियो पर चुप रहे और अपराधी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई न करे।

18. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि किसी भी ग्रामीण या किसी स्वतंत्र व्यक्ति ने अपीलार्थी और मृतक खुशबू का कोई वायरल वीडियो क्लिप या फोटोग्राफ कभी नहीं देखा था, न ही पुलिस द्वारा ऐसी कोई शिकायत की गई थी कि अपीलार्थी ने अपने मोबाइल फोन पर कोई वीडियो या फोटोग्राफ लिया था और जिसके आधार पर वह

उसे वायरल करने की धमकी दे रहा था और मृतक खुशबू को अपमानित कर रहा था।

19. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जमानत आवेदन के समर्थन में दाखिल हलफनामे के पैरा-24 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अपीलार्थी द्वारा कथित रूप से तैयार किया गया कोई भी अश्लील वीडियो रिकार्ड में नहीं है, लेकिन विवेचक ने आई.टी. अधिनियम की धारा 67 के तहत गलत तरीके से आरोप पत्र प्रस्तुत किया है, और उक्त हलफनामे के पैरा-24 के जवाब में, विद्वान ए.जी.ए. ने जवाबी हलफनामे के पैरा-12 में अपना जवाब दिया है जिसमें उक्त कथन का कोई विशेष खंडन नहीं है और केवल एक अस्पष्ट बयान दिया गया है।

20. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि विवेचक का बयान भी निचली न्यायालय के समक्ष दर्ज किया गया था जिसमें उन्होंने कहा है कि उन्होंने दिनांक 18.05.2021 को अपीलार्थी का मोबाइल फोन उसके घर से बरामद किया था, अपीलार्थी मौजूद नहीं था लेकिन उसकी मां ने एक रेडमी नीले रंग का मोबाइल फोन सौंप दिया था जिसे उसने सीलबंद लिफाफे में रखे बिना ले लिया और इसे फॉरेंसिक लैब को भेज दिया। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि फॉरेंसिक प्रयोगशाला की कथित रिपोर्ट की प्रामाणिकता संदिग्ध है क्योंकि उक्त मोबाइल फोन सीलबंद लिफाफे में नहीं दिया गया था, जो तथ्य जवाबी हलफनामे के पृष्ठ-13 और 14 में बताया गया है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित पूरा

मामला झूठा और मनगढ़ंत है। अपीलार्थी एक छात्र है और ऐसी कोई घटना नहीं हुई और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है, इस प्रकार, वर्तमान अपीलार्थी की जमानत याचिका को इस न्यायालय द्वारा सहानुभूतिपूर्वक अनुमति दी जा सकती है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित जमानत अस्वीकृति आदेश को रद्द किया जा सकता है।

21. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, कथित अपराध का कोई स्वतंत्र चशमदीद गवाह नहीं है, भले ही सूचक और अन्य गवाह चशमदीद गवाह नहीं हैं। परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं है।

22. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य: 1984 क्रि. एल.जे. 178** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए आगे तर्क दिया है कि किसी ने भी अपराध होते नहीं देखा था, अपराध में आवेदक की संलिप्तता को इंगित करने के लिए कोई जोड़ने वाली कड़ी नहीं है, यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और साक्ष्य की श्रृंखला पूरी तरह से टूटी हुई है, पुलिस भी वर्तमान अपराध में आवेदक को जोड़ने के लिए साक्ष्य की श्रृंखला को पूरा करने में विफल रही है।

23. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक ने कभी भी दोनों मृतकों को आत्महत्या के लिए उकसाया नहीं है। प्राथमिकी के अवलोकन और वादी और अन्य गवाहों के बयानों से धारा 306 आई.पी.सी. के तहत कोई

मामला नहीं बनता है। यहां तक कि अभियोजन पक्ष भी यह साबित करने में विफल रहा है कि धारा 306 आई.पी.सी. के तहत मामला बनता है क्योंकि उक्त प्रावधानों को साबित करने के लिए आवश्यक तत्व न तो प्राथमिकी के अवलोकन पर और न ही वादी और गवाहों के बयानों के अवलोकन पर पूरे किए गए हैं। अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी और मनगढ़ंत है और दुर्भावनापूर्ण इरादे से गढ़ी गई है।

24. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वादी और अन्य गवाहों के बयान के प्रकाश में, यहां तक कि अगर यह मान भी लिया जाए कि आरोप सत्य हैं, तो भी यह धारा 306 आई.पी.सी. के साथ धारा 107 आई.पी.सी. के तहत अपराध नहीं माना जाएगा। उनका तर्क है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उदे सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2019) 17 एससीसी 301** के मामले में आई.पी.सी. की धारा 306 के दायरे पर उचित रूप से विचार किया है।

25. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्तमान मामले में एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(5) के प्रावधान लागू नहीं होते हैं क्योंकि वादी और अन्य गवाहों के पूरे बयानों में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि किसी भी ग्रामीण या किसी स्वतंत्र व्यक्ति ने कभी अपीलार्थी और मृतक-खुशबू की कोई वीडियो क्लिप या तस्वीर नहीं देखी थी, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी उसे वायरल करने की धमकी दे रहा था और मृतक-खुशबू को

अपमानित कर रहा था। अपने तर्कों के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2020) 10 एससीसी 710** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया। इस प्रकार, यह आगे तर्क दिया गया है कि आवेदक को दुर्भावनापूर्ण इरादे से झूठा फंसाया गया है।

26. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अपीलार्थी दिनांक 25.03.2021 से कारागार में है और अब तक काफी समय कारागार में बिता चुका है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **कमल बनाम हरियाणा राज्य, 2004 (13) एससीसी 526** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया और कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ संख्या 2 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"2. यह एक ऐसा मामला है जिसमें अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304-बी के तहत दोषी ठहराया गया है और उसे 7 साल की कैद की सजा सुनाई गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक अपीलार्थी ने लगभग 2 साल और चार महीने की कैद की सजा काट ली है। उच्च न्यायालय ने उसके समक्ष अपील के निपटारे तक जमानत देने से इनकार कर दिया। हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी जानी चाहिए थी, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी ने पहले ही सजा की पर्याप्त अवधि काट ली है। इन परिस्थितियों में, हम निर्देश देते हैं कि जिला और सत्र न्यायाधीश,

फरीदाबाद द्वारा लगाई जा सकने वाली शर्तों पर अपीलार्थी को जमानत दी जाए।"

किया जाना चाहिए। अपील का तदनुसार निपटारा किया जाता है।"

27. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **तख्त सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2001 (10) एससीसी 463** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया है, तथा प्रस्तुत किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 2 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"2. अपीलार्थीओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के तहत विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। उक्त दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ उनकी उच्च न्यायालय में अपील लंबित है। उच्च न्यायालय के समक्ष सजा के निलंबन और जमानत के लिए आवेदन दायर किया गया था, लेकिन उच्च न्यायालय ने उस प्रार्थना को खारिज कर दिया, जिसमें यह संकेत दिया गया था कि आवेदक एक वर्ष के बाद जमानत के लिए अपनी प्रार्थना को नवीनीकृत कर सकते हैं। एक वर्ष की समाप्ति के बाद दूसरा आवेदन दायर किया गया था, लेकिन उसे भी आपत्तिजनक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी पहले से ही 3 साल और 3 महीने से अधिक समय से कारागार में हैं। उच्च न्यायालय में अपील की जल्द सुनवाई की कोई संभावना नहीं है। उपरोक्त परिस्थितियों में आवेदकों को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीहोर की संतुष्टि के लिए जमानत पर रिहा

28. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उपरोक्त मामलों में लागू कानून का अनुपात अपीलार्थी के मामले में भी लागू है, इसलिए अपीलार्थी को इस न्यायालय द्वारा सहानुभूतिपूर्वक जमानत दी जा सकती है।

29. अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों की झूठी पुष्टि करने के लिए कई अन्य दलीलें भी न्यायालय के समक्ष रखी गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आरोपी को झूठा फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। अपीलार्थी की ओर से यह आश्वासन दिया गया है कि वह कानून की प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए तैयार है और जब भी आवश्यकता होगी, वह ईमानदारी से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा और वह उन सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए भी तैयार है, जिन्हें न्यायालय उस पर लागू करना उचित समझे। यह भी बताया गया है कि आरोपी का एक मामले में आपराधिक इतिहास है, जिसे जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैरा-32 में स्पष्ट किया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि अपीलार्थी दिनांक 25.03.2021 से कारागार में है और न्यायालय में लंबित मामलों की अधिकता के मद्देनजर मुकदमे के जल्द निष्कर्ष की कोई संभावना नहीं है।

30. राज्य के विद्वान ए.जी.ए. ने दलील दी कि अपीलार्थी की जमानत याचिका खारिज की

जाए क्योंकि अपीलार्थी के खिलाफ सबूत मौजूद हैं।

31. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक श्रीवास्तव का कहना है कि अपीलार्थी जघन्य अपराध में संलिप्त है, इसलिए उसकी जमानत अर्जी खारिज की जाए।

32. बार में प्रस्तुत किए गए प्रस्तुतीकरण के प्रकाश में अभिलेख का अवलोकन करने तथा इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों, साक्ष्य की प्रकृति, पहले से ही हिरासत में ली गई अवधि, मुकदमे के शीघ्र समापन की संभावना और साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की संभावना को इंगित करने के लिए किसी भी ठोस सामग्री के अभाव में समग्र दृष्टिकोण अपनाने के बाद तथा यह विचार करते हुए कि किसी भी ग्रामीण या किसी भी स्वतंत्र व्यक्ति ने कभी भी अपीलार्थी और मृतक-खुशबू का कोई वायरल वीडियो क्लिप या फोटो नहीं देखा था, न ही पुलिस द्वारा ऐसी कोई शिकायत कभी की गई थी कि अपीलार्थी द्वारा उसके मोबाइल फोन पर कोई वीडियो या फोटो लिया गया था और जिसके आधार पर वह उसे वायरल करने की धमकी दे रहा था और मृतक-खुशबू को अपमानित कर रहा था; इसके अलावा मोहित जो मृतका-खुशबू का पति है, ने कहा था कि उसे अपीलार्थी से एक वीडियो क्लिप मिली थी जिसे देखने के बाद उसने डिलीट कर दिया था, लेकिन उसने इस वीडियो क्लिप के बारे में पहले पुलिस को सूचित नहीं किया था और यह भी कहा था कि अपीलार्थी ने उसकी पत्नी-खुशबू के साथ शारीरिक संबंध बनाए थे लेकिन उसने कभी कोई शिकायत

नहीं की या प्राथमिकी दर्ज नहीं की, इस प्रकार, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता की दलील में बल प्रतीत होता है कि मृतका के पति द्वारा दिया गया बयान संदिग्ध प्रतीत होता है और यह संभव नहीं है कि पति अपीलार्थी के साथ अपनी पत्नी के अश्लील वीडियो पर चुप रहे और अपराधी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई न करे; इसके अलावा विवेचक ने निचली न्यायालय के समक्ष दर्ज अपने बयान में कहा है कि अपीलार्थी के घर से उसका मोबाइल फोन बरामद करने के बाद, जो अपीलार्थी की मां द्वारा सौंपा गया था, उसने उसे सीलबंद लिफाफे में डाले बिना फॉरेंसिक लैब को भेज दिया, इस प्रकार अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता की दलील में बल प्रतीत होता है कि फॉरेंसिक प्रयोगशाला की कथित रिपोर्ट की प्रामाणिकता संदिग्ध है; अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में बल प्रतीत होता है कि प्राथमिकी के संस्करण के अनुसार और वादी और अन्य गवाहों के बयानों के अनुसार आई.पी.सी. की धारा 306 के तहत कोई मामला नहीं बनता है क्योंकि उक्त अपराध को साबित करने के लिए आवश्यक तत्व पूरे नहीं हुए हैं; अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में भी बल प्रतीत होता है कि वादी और अन्य गवाहों के पूरे बयानों में कहीं भी ऐसा नहीं है कि किसी भी ग्रामीण या किसी स्वतंत्र व्यक्ति ने अपीलार्थी और मृतका-खुशबू का कोई वीडियो क्लिप या फोटोग्राफ नहीं देखा था, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी उसे इसे वायरल करने की धमकी दे रहा था और मृतका-खुशबू को अपमानित कर रहा था, इस प्रकार एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(5) के प्रावधान भी लागू नहीं होते हैं

और परिस्थितियों की श्रृंखला भी पूरी नहीं है और इस प्रकार यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है; इसके अलावा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के व्यापक अधिदेश और **शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त), उदे सिंह और अन्य (उपरोक्त), हितेश वर्मा (उपरोक्त), कमल (उपरोक्त), तख्त सिंह (उपरोक्त) और दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करते हुए, **(2018) 3 एससीसी 22** में रिपोर्ट की गई, यह न्यायालय इस बात पर विचार करता है कि विद्वान विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की सराहना करने में विफल रहा है। इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा पारित जमानत अस्वीकृति आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

33. तदनुसार, अपील **स्वीकार** की जाती है। परिणामस्वरूप, जमानत आवेदन संख्या 1193/2021 में विद्वान विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, गोंडा की न्यायालय द्वारा दिनांक 28.05.2021 को पारित विवादित निर्णय और आदेश, मुकदमा अपराध संख्या 85/2021, धारा 306, 376(2) आई.पी.सी. सहपठित धारा 3(2)(5) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम और धारा 67 आईटी अधिनियम, थाना तरबगंज, जिला गोंडा से उत्पन्न, को **अपास्त एवं निरस्त** किया जाता है।

34. अपीलार्थी सत्यम सिंह को मुकदमा अपराध संख्या 85/2021 धारा 306, 376(2)

आई.पी.सी. सहपठित धारा 3(2)(5) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम एवं धारा 67 आईटी एक्ट के अन्तर्गत थाना तरबगंज, जिला गोंडा में निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाये:-

(i) अपीलार्थी संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि के दो जमानतदारों के साथ एक व्यक्तिगत बंधपत्र प्रस्तुत करेगा।

(ii) अपीलार्थी को उपस्थित होना होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437, अध्याय 33 की उपधारा 3 के अंतर्गत निष्पादित बंधपत्र की निम्नलिखित शर्तों का कड़ाई से पालन करना होगा:-

(क) अपीलार्थी इस अध्याय के अधीन निष्पादित बंधपत्र की शर्तों के अनुसार उपस्थित होगा।

(ख) अपीलार्थी उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका उस पर आरोप है, या जिस अपराध को करने का उस पर संदेह है, तथा

(ग) अपीलार्थी मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे कि वह ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने से विमुख हो जाए या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ कर सके।

(iii) अपीलार्थी जांच/ विचारण में सहयोग करेगा।

(iv) अपीलार्थी को इस आशय का वचन देना होगा कि वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर किसी भी स्थगन की मांग नहीं करेगा, जब गवाह न्यायालय में उपस्थित होंगे। इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय को इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानते हुए कानून के अनुसार आदेश पारित करने का अधिकार होगा।

(v) अपीलार्थी को प्रत्येक निर्धारित तिथि पर व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने अधिवक्ता के माध्यम से विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहना होगा। उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के तहत कार्यवाही कर सकता है।

(vi) यदि अपीलार्थी सुनवाई के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, तो उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, धारा 82 सी.आर.पी.सी. के तहत उद्घोषणा जारी की जाती है और अपीलार्थी ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो, विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के तहत कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्यवाही शुरू करेगा।

(vii) अपीलार्थी (i) मामले को शुरू करने, (ii) आरोप तय करने और (iii) धारा 313 सी.आर.पी.सी. के तहत बयान दर्ज करने के लिए तय तारीखों पर विचारण न्यायालय के

समक्ष उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में अपीलार्थी की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानना और कानून के अनुसार उसके खिलाफ आगे बढ़ना खुला होगा।

35. विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि कोई अन्य कानूनी बाधा न हो तो, पक्षकारों को अनावश्यक स्थगन दिए बिना, धारा 309 सी.आर.पी.सी. के प्रावधानों का सख्ती से पालन करते हुए उक्त मामले की सुनवाई में तेजी लाई जाए।

(2023) 7 ILRA 468

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 2049 सन् 2003

भगगल एवं अन्य

....अपीलकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिवादी

**अपीलकर्तागण के अधिवक्ता: संजय पांडे,
राजीव रमन श्रीवास्तव**

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

**दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा
307 आर/डब्ल्यू 34 - दोषसिद्धि के विरुद्ध**

अपील - कठोर कारावास - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 145 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313 - संदेह का लाभ - अभियोजन पक्ष के अनुसार अपीलकर्ता क्रमांक 1 ने पी.डब्ल्यू.1 पर पूर्व रंजिश के कारण गोली चलाई थी कि उसकी बुआ को उसका चाचा उठाकर ले गया है - पी.डब्ल्यू.-1 ने स्वीकार किया कि वह केवल 2-3 वर्ष का था और अपीलकर्ता 5-6 वर्ष का होगा - पहले कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई - पीड़ित ने इस घटना को वर्तमान घटना का कारण नहीं बताया - मुखबिर की मृत्यु हो चुकी है, उसकी जांच और प्रतिवाद नहीं किया जा सका, जिसने आईओ को बताया कि घटना से एक दिन पहले पीड़ित और आरोपी के बीच विवाद हुआ था और पीड़ित को आरोपी ने भविष्य में गांव न आने की चेतावनी दी थी - अपराध के होने का कारण स्थापित नहीं हुआ - प्रत्यक्ष साक्ष्य, अभियोजन पक्ष द्वारा कोई मकसद साबित नहीं किया जाना था। (पैरा 27)

अपीलकर्ता संख्या 2 द्वारा घायल को आग्नेयास्त्र से कोई चोट नहीं पहुंचाई गई - सभी चार आरोपी व्यक्तियों ने घटनास्थल से भागते समय गोली चलाई, कोई खाली कारतूस नहीं मिला - अपीलकर्ता संख्या 2 से आग्नेयास्त्र की कोई बरामदगी नहीं हुई - तथ्य के दोनों गवाह मुकर गए और मुखबिर के साक्ष्य के अलावा कोई सबूत नहीं है कि अपीलकर्ता संख्या 1 ने अपीलकर्ता संख्या 2 के उकसाने पर उस पर गोली चलाई। (पैरा 28)

प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपी और मुखबिर तथा पीड़ित के रूप में नामित चार व्यक्तियों ने जांच अधिकारी को बताया कि अपीलकर्ताओं

के अतिरिक्त अन्य अभियुक्त भी मौके पर मौजूद थे तथा उन्होंने अपराध किया - कुछ व्यवस्थाएं अदालत के बाहर हुई थीं, इसलिए पीडब्ल्यू-1 ने अपीलकर्ताओं को छोड़कर शेष दो आरोपियों के चेहरे ढके होने के कारण गवाही दी, जिससे वह उन्हें पहचान नहीं सका। (पैरा 29)

अपीलकर्ता संख्या 2 के विरुद्ध उल्लिखित प्रोत्साहन की भूमिका को छोड़कर कोई सक्रिय भूमिका नहीं है, जिसकी स्वतंत्र साक्ष्य द्वारा पुष्टि नहीं की गई है, तथा जो अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है। (पैरा 31)

अपील स्वीकृत की गई। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. यह अपील सत्र परीक्षण संख्या 689/1999 (राज्य बनाम राम नरेश एवं अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 6, सीतापुर द्वारा दिनांक 19.11.2003 को पारित दोषसिद्धि एवं सजा के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 187/1997, धारा 307 भा0दं0सं0, थाना रामकोट, जिला सीतापुर से उत्पन्न हुआ था, जिसमें अपीलार्थी भगगल एवं अशोक कुमार को

धारा 307 सहपठित धारा 34 भा0दं0सं0 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया था तथा प्रत्येक आरोपी को 10-10 वर्ष के कठोर कारावास एवं 5,000/- रुपये के अर्थदण्ड तथा अर्थदण्ड न चुकाने की स्थिति में प्रत्येक को 6 माह के साधारण कारावास की सजा सुनाई गई थी।

3. अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता संख्या 1, भग्गल की मृत्यु हो गई है और अपीलकर्ता संख्या 1, भग्गल के संबंध में अपील समाप्त कर दी गई है। इस प्रकार, अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 2, अशोक कुमार के संबंध में ही बची हुई है।

4. संक्षेप में प्रकरण के तथ्य इस प्रकार हैं कि सूचनाकर्ता चन्द्र भूषण ने दिनांक 17.08.1997 को एफआईआर दर्ज कराई कि सूचनाकर्ता, उसका पुत्र राम गोपाल व कालीचरण अपने गांव के राकेश के साथ भैंस खरीदने गए थे। देवी सहाय शुक्ला की भैंस देखकर जब वे वापस आ रहे थे और ग्राम अर्थाना में गोकर्ण प्रसाद शुक्ला के घर के पास पहुंचे तो भग्गल, राम नरेश, आनन्द व अशोक निवासीगण ग्राम अर्थाना देशी तमंचा लेकर पहुंचे और बदला लेने के लिए जान से मारने की धमकी दी। यह सुनकर भग्गल ने अपने पुत्र पर जान से मारने की नीयत से देशी तमंचे से फायर कर दिया जो राम गोपाल को लगा और वह गिर पड़ा। शोरगुल सुनकर आरोपीगण देशी तमंचों से फायर करते हुए अपने घर की ओर भाग गए। गांव के कई लोगों ने घटना देखी और एफआईआर दर्ज कराई गई।

5. डॉ. अशोक अग्रवाल द्वारा राम गोपाल की मेडिकल जांच की गई, जिसमें उसके सीने के निचले हिस्से और पेट के ऊपरी हिस्से पर तीन फायरआर्म पेलेट के घाव पाए गए तथा घायल के बाएं हाथ पर कॉलर के निशान भी पाए गए। घावों से ताजा खून बह रहा था। घाव पर कालापन और टैटू नहीं था।

6. एफआईआर दर्ज करने के बाद, पीडब्लू-7, जांच अधिकारी (आईओ) एसआई उमाकांत उपाध्याय ने जांच शुरू की, बयान दर्ज किए, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र किए और आरोप पत्र प्रदर्श क -7 और प्रदर्श क-8 पेश किया।

7. अभियोजन पक्ष का प्रकरण साबित करने के लिए निम्नलिखित गवाह पेश किए गए हैं:-

1	पीडब्ल्यू-1	राम गोपाल
2	पीडब्ल्यू-2	कालीचरण
3	पीडब्ल्यू-3	सर्वेश कुमार
4	पीडब्ल्यू-4	एचसी राजाराम
5	पीडब्ल्यू-5	डॉ. एके निगम, रेडियोलॉजिस्ट
6	पीडब्ल्यू-6	उमाशंकर एसआई
7	पीडब्ल्यू-7	उमाकान्त उपाध्याय, एसआई
8	पीडब्ल्यू-8	एके श्रीवास्तव, रेडियोलॉजिस्ट

8. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए :-

1	प्रदर्श क-1	लिखित शिकायत
2	प्रदर्श क-2	चिक एफआईआर

3	प्रदर्श क-3	जीडी की प्रति
4	प्रदर्श क-4	चोट रिपोर्ट
5	प्रदर्श क-5	
6	प्रदर्श क-6	साइट प्लान
7	प्रदर्श क-7-8	आरोप पत्र
8	प्रदर्श क-9	एक्स-रे रिपोर्ट
9	एम. प्रदर्श-1-2	एक्स-रे प्लेट्स

9. अभियुक्तों के बयान धारा 313 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किए गए हैं, जिसमें उन्होंने आरोपों, साक्ष्यों और आरोपों से इनकार किया है। अभियुक्त भग्गल ने कहा कि चूंकि उसने सूचनाकर्ता के खिलाफ खुद गवाही दी थी, इसलिए उसे झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त राम नरेश ने कहा कि वह भग्गल का रिश्तेदार है , इसलिए उसे झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त अशोक ने कहा कि वह भग्गल का सगा भाई है , इसलिए उसे झूठा फंसाया गया है।

10. इस प्रकरण में एफआईआर में चार आरोपियों के नाम थे, लेकिन केवल आरोपी भग्गल और अशोक को दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। बाकी दो आरोपी राम नरेश और आनंद को दोषमुक्त कर दिया गया है और इन दो आरोपियों के पक्ष में दिए गए फैसले और बरी करने के आदेश के खिलाफ राज्य या सूचनाकर्ता द्वारा कोई अपील/पुनरीक्षण दायर नहीं किया गया है।

11. इस प्रकरण में पी.डब्लू.-2 काली चरण और पी.डब्लू.-3 सर्वेश कुमार ने अभियोजन पक्ष के कथन का पूर्णतः समर्थन नहीं किया है,

इसलिए यह प्रकरण केवल राम गोपाल, पी.डब्लू.-1, एकमात्र घायल के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित है। सूचनाकर्ता चंद्र भूषण की मृत्यु गवाहों की जांच से पहले हो चुकी थी, इसलिए उससे पूछताछ नहीं की जा सकी।

12. संक्षेप में, गवाहों के साक्ष्य नीचे पुनः प्रस्तुत हैं:-

13.(I) सूचनाकर्ता चंद्र भूषण से पूछताछ नहीं की गई। पी.डब्लू.-2, कालीचरण ने अपनी जिरह में यह बयान दिया है कि इस घटना के बाद सूचनाकर्ता की हत्या कर दी गई थी। यह साक्ष्य में नहीं था कि सूचनाकर्ता की हत्या किसने की। इसलिए, उनसे चश्मदीद गवाह के तौर पर पूछताछ नहीं की जा सकी ।

14.(II) घायल राम गोपाल से पी.डब्लू.-1 के रूप में परीक्षित कराया गया, जिसने यह बयान दिया कि जब वह देवी सहाय शुक्ला की भैंस देखकर वापस आ रहा था और गोकर्ण प्रसाद के घर के पास पहुंचा तो अभियुक्त भग्गल , अशोक और दो अन्य अज्ञात व्यक्ति देशी तमंचा से लैस होकर मुंह ढके हुए उनके सामने आये, अशोक ने उकसाया जिस पर भग्गल ने उसे जान से मारने की नीयत से उस पर गोली चला दी जो उसके बाएं हाथ के बगल में लगी। रिपोर्ट इस साक्षी के पिता द्वारा दर्ज करायी गयी थी। इस साक्षी ने लिखित शिकायत प्र.का -1 पर अपने पिता के हस्ताक्षर को पहचाना और उसे प्रमाणित किया। जिरह में इस साक्षी ने भग्गल से पुरानी दुश्मनी का खुलासा किया है कि भिखारी की बहन जो अभियुक्त भग्गल का पिता था , को उसके चाचा बड़कऊ ने

अपहरण कर लिया था, जिसके लिए वे आपस में दुश्मनी रखते थे। इस साक्षी के अनुसार चुनाव को लेकर कोई दुश्मनी नहीं थी। उसने यह भी बयान दिया कि अभियुक्त भग्गल और अशोक की बुआ के अपहरण के समय वे दोनों लगभग 5-6 वर्ष के थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि राम नरेश और आनंद वे व्यक्ति थे जिन्होंने घटना के समय अपना चेहरा ढका हुआ था। इस गवाह ने स्वीकार किया कि वह धारा 307 भा0दं0सं0 और धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत एक प्रकरण में आरोपी था। उन्होंने इस बात पर अज्ञानता व्यक्त की कि आरोपी भग्गल आर्म्स एक्ट की धारा 25 के तहत प्रकरण में गवाह था या नहीं। इस गवाह को घटना का दिन और समय याद नहीं था। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि उस पर 16 कदम की दूरी से गोली चलाई गई थी। इस गवाह के अनुसार, गोली 2-3 कदम की दूरी से चलाई गई होगी।

15. यह उल्लेखनीय है कि बन्दूक के घावों पर कोई कालापन, गोदना, झुलसना या झुलसने का निशान नहीं पाया गया, यद्यपि कॉलर पर घर्षण मौजूद था। यद्यपि इस साक्षी और उसके पिता स्वर्गीय चन्द्र भूषण ने जांच अधिकारी को बताया था कि शेष दो अभियुक्त राम नरेश और आनन्द थे। इस साक्षी ने आगे यह भी बयान दिया है कि आग के कारण शर्ट पर छेद हो गए थे और शर्ट पर खून भी गिरा था। इस साक्षी ने जांच अधिकारी को दिए गए इस बयान से इंकार किया कि शेष दो अभियुक्त राम नरेश और आनन्द थे और वे अपना चेहरा ढके बिना मौके पर मौजूद थे। उसके अनुसार जांच अधिकारी खून से सने

कपड़े नहीं ले गया था। इस साक्षी ने इस बात से इंकार किया कि एक दिन पहले उसकी भग्गल और अन्य लोगों से मुलाकात हुई थी और धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत बयान के दौरान झगड़ा हुआ था। सूचनाकर्ता चन्द्र भूषण ने कहा था कि इस घटना से एक दिन पहले उसके घायल बेटे राम गोपाल और अभियुक्त भग्गल के बीच झगड़ा हुआ था।

16.(III) पी.डब्ल्यू.-2, कालीचरण ने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया है तथा उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया है। इस साक्षी ने अभियुक्त की ओर से जिरह में स्वीकार किया है कि इस घटना के बाद सूचनाकर्ता चंद्र भूषण की हत्या कर दी गई थी। घायल राम गोपाल के विरुद्ध कई आपराधिक प्रकरण दर्ज हैं।

17.(IV) पी.डब्ल्यू.-3, सर्वेश ने भी अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया है तथा उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

18.(VI) पीडब्ल्यू-4, एचसीपी राजाराम यादव ने एफआईआर प्रदर्श क-2 और कायमी जीडी की तैयारी के बारे में गवाही दी है।

19.(VII) पी.डब्ल्यू.-5, डॉ. ए.के. निगम, रेडियोलॉजिस्ट ने घायल पी.डब्ल्यू.-1, राम गोपाल की चिकित्सकीय जांच की और घायल के सीने के बाएं निचले हिस्से और पेट के ऊपरी हिस्से पर 20 सेमी x 16 सेमी के क्षेत्र में फायर-आर्म पेट्रेट के तीन घाव पाए, जो लगभग मांसपेशियों तक गहरे थे। पी.डब्ल्यू.-2

के ऊपरी बाएं हाथ के सामने कोहनी से 5 सेमी ऊपर 0.3 सेमी. 0.3 सेमी का एक पेटलेट मांसपेशियों तक गहरा घाव था। पी.डब्ल्यू-3 के बाएं अग्रबाहु के ऊपरी हिस्से के सामने ऊपरी हिस्से पर 0.3 सेमी. 0.3 सेमी के दो पेटलेट मांसपेशियों तक गहरे घाव थे। कॉलर पर खरोंच थी लेकिन कोई ताजा खून, कालापन या गोदना नहीं था। इस गवाह ने चोट रिपोर्ट प्रदर्श क -4 को साबित किया और राय दी कि चोट

20.(VIII) पीडब्ल्यू-6, उपनिरीक्षक उमाशंकर ने विवेचना की थी। उन्होंने बयान दिया कि उन्होंने एफआईआर, लेखक और सूचनाकर्ता के बयान की नकल की है , घटनास्थल का निरीक्षण किया है और नक्शा प्र.का. -5 तैयार किया है, दस्तावेज प्र.का.-5 को प्रमाणित किया है, आरोपियों की तलाशी ली है। चोट रिपोर्ट और आरोपी भग्गल और अशोक द्वारा न्यायालय में आत्मसमर्पण करने के तथ्य की नकल की है, इसके बाद एसपी, सीतापुर के आदेश से विवेचना एसआईएस, सीतापुर को स्थानांतरित कर दी गई थी। जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया है कि उसने न तो पीड़िता के कपड़ों का निरीक्षण किया और न ही उसे अपने कब्जे में लिया। इसलिए वह कपड़ों में छेद की स्थिति नहीं बता सकता। उसके अनुसार गवाह गोकरन प्रसाद निवासी ग्राम अर्थाना ने घटना की पुष्टि की थी। हालांकि वह प्रत्यक्षदर्शी नहीं था ।

21.(IX) पीडब्ल्यू-7, एसआई उमाकांत उपाध्याय, दूसरे आईओ ने यह बयान दिया है कि उन्होंने कालीचरण का बयान दर्ज किया

था, प्रकरण की जांच की थी और 03.11.1997 को वे फिर से आईओ बन गए। उसके बाद उन्होंने घायल राम गोपाल का बयान दर्ज किया और अन्य औपचारिकताएं पूरी करने के बाद उन्होंने आरोपी भग्गल और अशोक के खिलाफ धारा 307 भा0दं0सं0 के तहत चार्जशीट संख्या 7/1997 प्रदर्श क -7 पेश की। उन्होंने आरोपी राम नरेश और आनंद के खिलाफ भी चार्जशीट संख्या 7ए/1997 प्रदर्श क -8 पेश की।

22. जिरह में इस गवाह ने यह बयान दिया कि उसने सूचनाकर्ता का बयान दर्ज नहीं किया था। उसने घायल के कपड़े नहीं लिए थे। उसने स्वीकार किया कि अपराध का कारण क्या था, यह पता नहीं चल सका। उसने यह भी बयान दिया कि घायल राम गोपाल ने आरोपी राम नरेश और आनंद का नाम लिया था।

23.(X) पीडब्ल्यू-9, डॉ. आरके श्रीवास्तव, रेडियोलॉजिस्ट ने यह बयान दिया है कि उन्होंने घायलों का एक्स-रे किया था और तीनों चोटों पर रेडियो ओपेक शैंडो देखा था। इस गवाह ने एक्स-रे रिपोर्ट को प्रदर्श क -9 साबित किया है और एक्स-रे प्लेट को एम. प्रदर्श 1, 2 और 3 भी साबित किया है। जिरह में इस गवाह ने यह बयान दिया है कि एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार रेडियो ओपेक शैंडो जानलेवा नहीं थे। हालांकि छाती और पेट शरीर के अहम हिस्से हैं।

24. मौखिक साक्ष्य के समापन के पश्चात गवाह, अभियुक्तगण के बयान धारा 313 दं0प्र0सं0 के अन्तर्गत दर्ज किये गये, जिसमें

अभियुक्त भग्गल (अब मृतक) ने आरोपों और अभियोगों से इन्कार किया तथा कहा कि गवाह रंजिश के कारण बयान दे रहे थे। चूंकि उसने राम गोपाल के विरुद्ध बयान दिया था, इसलिए उसे झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त अशोक ने भी आरोपों से इन्कार किया तथा कहा कि चूंकि वह अभियुक्त भग्गल का सगा भाई है, इसलिए उसे भी झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त राम नरेश ने भी आरोपों से इन्कार किया तथा कहा कि चूंकि भग्गल उसका रिश्तेदार है, अभियुक्त भग्गल के पिता की बहन की शादी उसके चाचा से हुई थी, इसलिए उसे भी रंजिश के कारण झूठा फंसाया गया है।

25. आरोपी आनंद कुमार ने भी आरोपों और अभियोगों से इन्कार किया है और कहा है कि उसे झूठा फंसाया गया है।

26. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की सुनवाई बंद होने के पश्चात, अभियुक्त राम नरेश और आनंद को धारा 307 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोपों से बरी कर दिया गया तथा अभियुक्त भग्गल और अशोक को धारा 307 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया तथा प्रत्येक अभियुक्त को दस वर्ष के सश्रम कारावास तथा 5,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई तथा जुर्माना अदा न करने की स्थिति में प्रत्येक अभियुक्त को छह माह के साधारण कारावास की सजा सुनाई गई।

27. इस प्रकरण में अभियोजन पक्ष के अनुसार आरोपी भग्गल ने घायल पर

पुरानी दुश्मनी के कारण गोली चलाई थी कि उसकी बुआ को घायल के चाचा राम गोपाल ने भगा दिया था। पीड़ित पी.डब्ल्यू.-1 ने स्वीकार किया है कि उस समय उसकी आयु मात्र 2-3 वर्ष थी तथा आरोपी भग्गल और अशोक कुमार की आयु 5-6 वर्ष रही होगी। उसने यह भी बयान दिया है कि इस संबंध में कोई एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की गई थी। पीड़ित ने भी इस घटना को घटना का कारण नहीं बताया है। घटना के संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अंतर्गत घायल पी.डब्ल्यू.-1 का कोई विरोधाभास नहीं है, जो इस घटना से एक दिन पहले हुई प्रतीत होती है। चूंकि सूचनाकर्ता की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उससे पूछताछ नहीं की जा सकी तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अंतर्गत उसका खंडन नहीं किया जा सका, जिसने धारा 161 दं०प्र०सं० के अंतर्गत आई.ओ. को बताया था कि घटना से एक दिन पहले पीड़ित ग्राम अर्थात् नाना गया था, जहां पीड़ित तथा आरोपी भग्गल के बीच झगड़ा हुआ था तथा पीड़ित को आरोपी भग्गल ने भविष्य में ग्राम अर्थात् नाना आने की चेतावनी दी थी। इस प्रकार, जहाँ तक इस अपराध के घटित होने की उत्पत्ति का प्रश्न है, यह स्थापित नहीं किया जा सका। चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रकरण है, इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई उद्देश्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, दिनांक 06.02.2023 की कार्यालय रिपोर्ट से यह सिद्ध हो चुका है कि अभियुक्त भग्गल

की मृत्यु हो चुकी है और अपील केवल अभियुक्त अशोक कुमार के संबंध में ही शेष है।

28. साक्ष्यों से यह साबित हो गया है कि अपीलकर्ता अशोक कुमार द्वारा घायल राम गोपाल को कोई भी आग्नेयास्त्र से चोट नहीं पहुंचाई गई है। हालांकि साक्ष्यों में यह बात सामने आई है कि चारों आरोपियों ने घटनास्थल से भागते समय गोली चलाई थी, लेकिन मौके पर कोई खाली कारतूस नहीं मिला। आरोपी अशोक के पास से कोई आग्नेयास्त्र बरामद नहीं हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि तथ्य के दोनों गवाह मुकर गए हैं और उन्होंने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया है और सूचनाकर्ता पीडब्लू-1 के साक्ष्य के अलावा कोई सबूत नहीं है कि अपीलकर्ता अशोक कुमार के कहने पर भगगल ने उस पर गोली चलाई थी।

29. यह उल्लेखनीय है कि एफआईआर में चार व्यक्तियों को आरोपी बनाया गया है तथा सूचनाकर्ता और पीड़ित ने जांच अधिकारी को बताया है कि भगगल और अशोक के अलावा आरोपी आनंद और राम नरेश भी मौके पर मौजूद थे तथा उन्होंने अपराध किया और घटनास्थल पर फायरिंग की। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ साजिश न्यायालय के बाहर हुई थी, इसलिए पीड़ित पीडब्लू-1 ने बयान दिया कि आरोपी भगगल और अशोक कुमार को छोड़कर बाकी दो आरोपियों ने अपने चेहरे ढके हुए थे, इसलिए वह उन्हें पहचान नहीं सका।

30. अभियोजन पक्ष के अनुसार, अभियुक्त अशोक कुमार के पास एक अवैध आग्नेयास्त्र था , लेकिन उसके कब्जे से ऐसा कोई आग्नेयास्त्र बरामद नहीं किया जा सका, हालांकि ऐसे आग्नेयास्त्र की बरामदगी धारा 307 सहपठित धारा 34 भा0दं0सं0 के तहत दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए पूर्व शर्त नहीं है।

31. इस न्यायालय के अनुसार, सामान्यतः दिनदहाड़े घटित होने वाली घटनाओं में अभियुक्तगण अपनी पहचान स्थापित नहीं करना चाहते। यदि दो अभियुक्तगण अपना चेहरा ढक लेते, तो यही सुविधा शेष अभियुक्तगण अर्थात् भगगल और अशोक कुमार के लिए भी उपलब्ध थी। पी.डब्लू.-1 ने गवाही दी कि भगगल ने उसे जान से मारने की नीयत से उस पर गोली चलाई। इस साक्षी के अनुसार अशोक कुमार के पास भी आग्नेयास्त्र था तथा उसने अपने भाई भगगल को उसे जान से मारने के लिए उकसाया था। यदि ऐसा होता और अभियुक्त अशोक कुमार मौके पर उपस्थित होता, तो वह भी सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने के लिए पीड़ित पर गोली चलाता। अभियोजन पक्ष का ऐसा कोई प्रकरण नहीं है कि अपीलकर्ता अशोक कुमार द्वारा आग्नेयास्त्र से की गई किसी चोट से पीड़ित को चोट लगी हो। अभियुक्त अशोक कुमार को केवल उकसाने की भूमिका सौंपी गई है। चूंकि अभियोजन पक्ष और पीड़ित के अनुसार अभियुक्त भगगल , अशोक और पीड़ित के परिवार के बीच पहले से ही दुश्मनी थी तथा दुश्मनी एक दोधारी हथियार है, इसलिए मुख्य अभियुक्त भगगल के अतिरिक्त अन्य अभियुक्तगणों को भी झूठे

प्रकरण में फंसाए जाने की संभावना है। इस न्यायालय के अनुसार चूंकि अपीलकर्ता अशोक कुमार के विरुद्ध उपदेश देने की भूमिका को छोड़कर किसी सक्रिय भूमिका या भागीदारी का उल्लेख नहीं किया गया है, जिसकी पुष्टि किसी स्वतंत्र साक्ष्य से नहीं हुई है क्योंकि स्वतंत्र गवाह पक्षद्रोही हो गए हैं, इस न्यायालय का विचार है कि अभियुक्त अपीलकर्ता अशोक कुमार को सौंपी गई उपदेश देने की भूमिका रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से उचित संदेह से परे साबित नहीं हुई है।

32. उपरोक्त परिस्थितियों में, संदेह का लाभ जीवित अभियुक्त अशोक कुमार को दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय के अनुसार, चूंकि दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी थी, इसलिए स्वतंत्र गवाह से किसी भी पुष्टि के अभाव में अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा को बरकरार रखना उचित नहीं होगा, जिसे केवल उपदेश देने की भूमिका सौंपी गई थी। इस प्रकार, अपील स्वीकार किए जाने योग्य है और जीवित अपीलकर्ता अशोक कुमार के संबंध में पारित दोषसिद्धि और सजा का आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

33. अभियुक्त अपीलकर्ता अशोक कुमार के संबंध में अपील स्वीकार की जाती है तथा अपर सत्र न्यायाधीश चतुर्थ, सीतापुर द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश का आदेश अपास्त किया जाता है।

34. अभियुक्त अपीलार्थी अशोक कुमार की ओर से निष्पादित जमानत बंध पत्र और

व्यक्तिगत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और जमानतदारों को मुक्त किया जाता है।

35. इस आदेश की एक प्रति अवर न्यायालय के अभिलेख के साथ संबंधित न्यायालय को वापस प्रेषित की जाए।

(2023) 7 ILRA 474

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 4017 सन् 2016

मृत्युंजय @ टिंकू

.....अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिवादी

**अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री सत्य श्रीवास्तव,
श्री दीना नाथ, श्री मनोज कुमार**

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए, 304-बी, 302/34, 323, 506 और 326 - सजा के खिलाफ अपील - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धारा ३ - दहेज मृत्यु - मृत्यु के समय देरी की प्रासंगिकता - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313 - 26.05.2012 को मृतका के पति और उसके परिवार के सदस्यों ने दहेज के लिए उससे

झगड़ा किया और उसे धमकाया - सूचक अपने बेटे और साले के साथ उससे मिलने गया, उसे उससे मिलने नहीं दिया और फिर से दहेज की मांग की - मृतका ने अपने पिता को अपने ससुराल वालों द्वारा की गई क्रूरता के बारे में बताया - दिनांक 12.6.2012 को सूचक द्वारा सूचना प्राप्त हुई कि ससुराल वालों द्वारा उसे जला दिया गया है - विवाद, न तो दहेज की मांग की गई थी और न ही उसे जलाकर मारा गया - मृतका अवसाद के कारण स्वयं जल गई। (अनुच्छेद 2, 5)

विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्युपूर्व बयान पर विचार नहीं किया, बल्कि तथ्य के गवाहों (पी.डब्ल्यू. 1 से 3) के बयानों पर भरोसा किया, जो मौके पर मौजूद नहीं थे - उसने कहा कि पति के साथ झगड़े के कारण उसे आग के हवाले कर दिया गया था, न कि दहेज की मांग के कारण - गवाहों के बयानों और आई.ओ. द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य के आधार पर मृत्युपूर्व बयान मान्य होगा। (पैरा 9)

मृत्युपूर्व कथन के अनुसार, मृतका की मृत्यु उसके रिकार्ड होने के तीन दिन बाद हुई। - मृत्युपूर्व कथन के तीन दिन बाद तक वह जीवित रही, मृत्युपूर्व कथन की सत्यता सिद्ध हुई। - प्रासंगिक समय पर कथन करने के लिए मानसिक स्थिति उपयुक्त थी। (पैरा 17)

मृत्युपूर्व कथन दर्ज करने में शामिल किसी भी गवाह या अधिकारी ने अपना बयान नहीं बदला, अभियोजन का समर्थन किया - मृत्युपूर्व कथन विश्वसनीय था, मृतका द्वारा स्वेच्छा से

दिया गया था, दोषसिद्धि का एकमात्र आधार था। (पैरा 18)

अपीलकर्ता द्वारा आग बुझाई गई तथा मृतक को अपीलकर्ता एवं उसके परिवार के सदस्यों द्वारा घायल अवस्था में अस्पताल में भर्ती कराया गया, मृतका को मारने का कोई इरादा नहीं था - मृतका की मृत्यु छह दिन बाद हुई तथा इस अवधि के दौरान उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया तथा उसका उपचार किया गया - डॉक्टर ने पोस्टमार्टम किया, मृत्यु का कारण "सदमा" बताया - मृत्यु पूर्वनियोजित नहीं थी, शारीरिक क्षति पहुंचाने का ज्ञान तथा इरादा था, लेकिन मृतक को मारना नहीं चाहते थे। (पैरा 24, 26)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. लखन बनाम एम.पी. राज्य, (2010) 8 सुप्रीम कोर्ट मामले 514
2. त्रिमुख मारुति किर्केन बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2006 (3) 1426 एससी
3. कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 3 सुप्रीम कोर्ट मामले 280
4. रमीलाबेन हसमुखभाई खीस्ती बनाम गुजरात राज्य, (2002) 7 एससीसी 56
5. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 एससीसी 250 में रिपोर्ट किया गया
6. बी.एन. कवतकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में रिपोर्ट किया गया
7. वीरन और अन्य बनाम एम.पी. राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300

8. गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात राज्य, (आपराधिक अपील संख्या 83 सन् 2008), 11.9.2013 को निर्णय, (पैरा 12 से 17)

9. अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12

10. प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529

11. परदेशीराम बनाम एमपी राज्य, (2021) 3 एससीसी 238

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा
द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट, जौनपुर द्वारा एस.टी. संख्या 279/2012 (राज्य बनाम मृत्युंजय @ टिंकू) अपराध संख्या 275/2012 धारा 498-ए, 304-बी, 302/34, 323, 506, 326 भारतीय दंड संहिता और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4, थाना - जलालपुर, जिला - जौनपुर में पारित दिनांक 25.07.2016 के निर्णय और दोषसिद्धि एवं दंडादेश के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसमें अपीलार्थी को धारा 498-ए भा.द.सं. के अंतर्गत एक वर्ष का कारावास और 1,000 रुपये का जुर्माना, धारा 304-बी भा.द.सं. के अंतर्गत आजीवन कारावास और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत छह माह का कारावास और 500 रुपये का जुर्माना डिफॉल्ट प्रावधान के साथ सुनाया गया है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता श्याममिलन की बेटी गीता देवी की

शादी राम सहाय के बेटे टिंकू से 13.6.2011 को अपनी क्षमता के अनुसार उपहार, दहेज और अन्य घरेलू सामान देकर हुई थी। 26.5.2012 को गीता देवी शादी के बाद अपने ससुराल गई जहां उसके पति के परिवार वालों ने दहेज के लिए उससे झगड़ा करना शुरू कर दिया और उसे धमकी भी दी। पांच दिन बाद जब सूचनाकर्ता अपने बेटे और साले के साथ अपनी बेटी के ससुराल गया, तो उसके पति के परिवार वालों ने उसे अपनी बेटी से मिलने नहीं दिया और दहेज की मांग करने लगे।

किसी तरह जब वह अपनी बेटी से मिला, तो उसने उसे उसके ससुराल वालों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार, क्रूरता और उसे भोजन न देने के बारे में बताया और जब सूचनाकर्ता अपनी बेटी के परिवार वालों से बात करना चाहा, तो उसका पति क्रोधित हो गया, उसके ससुर ने धमकी देनी शुरू कर दी कि अगर 50,000 रुपये और सोने की चेन नहीं दी गई तो वे उसकी बेटी को जला कर मार डालेंगे। 12.6.2017 को रात करीब 11-12 बजे, सूचनाकर्ता को सूचना मिली कि उसकी बेटी को उसके ससुराल वालों ने जला दिया है। वह जिला अस्पताल, जौनपुर पहुंचा और देखा कि उसकी बेटी गंभीर स्थिति में थी।

3. तत्पश्चात, उसने लिखित शिकायत प्रदर्श का-1 दी जिस पर एफ.आई.आर. प्रदर्श का-2 दर्ज की गई और कायमी जी.डी. प्रदर्श का-3, घटनास्थल का नक्शा प्रदर्श का-6 व 7 तैयार किए गए और बयान दर्ज करने के बाद, विवेचक द्वारा आरोप पत्र प्रदर्श का-8, धारा 498ए, 323, 506, 326, 304बी भा.द.सं. और

दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया।

4. 31.8.2012 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट जौनपुर द्वारा मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया, जहां 7.12.2012 को उपरोक्त धाराओं के साथ धारा 302/34 भा.द.सं. के अंतर्गत आरोप विरचित किए गए। अभियुक्त व्यक्तियों ने आरोपों से इनकार किया और विचारण की मांग की, अतः विचारण प्रारंभ हुआ और निम्नलिखित गवाहों की परीक्षा की गई।

1	श्याममिलाल	अभियोजन शाक्षी 1
2	लक्ष्मी देवी	अभियोजन शाक्षी 2
3	विद्या देवी	अभियोजन शाक्षी 3
4	एच.सी.पी. शैलेन्द्र कुमार	अभियोजन शाक्षी 4
5	डॉ. नेम सिंह	अभियोजन शाक्षी 5
6	कमला प्रसाद	अभियोजन शाक्षी 6
7	डॉ. उदयभान सिंह	अभियोजन शाक्षी 7
8	सी.ओ. आनंद कुमार	अभियोजन शाक्षी 8
9	सेवानिवृत्त तहसीलदार महादेव सिंह यादव	अभियोजन शाक्षी 9

5. मौखिक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दाखिल किए गए:

1	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श का-1
2	चिक एफ.आई.आर.	प्रदर्श का-2
3	कार्बन जी.डी.	प्रदर्श का-3
4		प्रदर्श का-4
5	मृतका गीता देवी का	प्रदर्श का-

	मृत्युकालीन बयान	5
6	नक्शा	प्रदर्श का-6
7	आरोप पत्र	प्रदर्श का-7
8	चिकित्सक की चिकित्सा रिपोर्ट	प्रदर्श का-8
9	पंचनामा	प्रदर्श का-9
10	आर.आई., सी.एम.ओ. को पत्र और पुलिस फॉर्म 13	प्रदर्श का-10

5. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, अभियुक्त व्यक्तियों का बयान धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिलिखित किया गया जिन्होंने स्वयं को निर्दोष बताया। उन्होंने आगे कहा कि 12.6.2012 को उनके पड़ोसी नंद लाल की बेटी की शादी थी जहां वे गए थे। मृतका-पत्नी और उसके पति के बीच औरंगाबाद में रहने को लेकर झगड़ा हुआ था और जब वे शादी समारोह में व्यस्त थे, शाम करीब 7:00 बजे, कविता चिल्लाती हुई बाहर आई कि 'गीता भाभी जल गई', वे तुरंत आए और आग बुझाई और घायल को कार से सदर अस्पताल जौनपुर इलाज के लिए ले गए। न तो कोई दहेज मांगा गया था और न ही उन्होंने उसे जलाकर मार डाला। मृतका अवसाद के कारण खुद जल गई थी। बचाव पक्ष में दो गवाह प्रतिवादसाक्षी-1 नंदलाल और प्रतिवादसाक्षी-2 संजय की परीक्षा की गई है।

6. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष एवं बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत मौखिक साक्ष्य निम्नानुसार है;

(क) अभियोजन शाक्षी-1- वादी, श्याममिलन, मृतका के पिता, ने बयान दिया कि उन्होंने अपनी बेटी गीता देवी की शादी 13.6.2011 को आरोपी टिंकू उर्फ मृत्युंजय से की थी और अपनी क्षमता के अनुसार उपहार दिए थे। शादी के अगले दिन, दुल्हन की विदाई के समय, आरोपी राम सहाई ने दहेज में 50,000 रुपये और सोने की चेन की मांग करते हुए दुल्हन को अपने घर ले जाने से मना कर दिया, हालांकि किसी तरह दुल्हन को यह आश्वासन देकर विदा किया गया कि भविष्य में मांग पूरी कर दी जाएगी। उनकी बेटी वहां एक महीने तक रही और उसके बाद अपने मायके आ गई। 26.5.2012 को जब उसे फिर से ससुराल भेजा गया, तो राम सहाई ने वही मांग की लेकिन किसी तरह उसे विदा कर दिया गया। पांच दिन बाद जब वह, उनका बेटा राम रतन और उनका साला अरविंद अपनी बेटी से मिलने गए, तो ससुर, पति और चाची शांति देवी ने 50,000 रुपये और सोने की चेन की मांग की और वादी को अपनी बेटी से मिलने नहीं दिया। हालांकि, वे किसी तरह गीता से मिल पाए जिसने बताया कि उसके ससुराल वाले उक्त मांग को लेकर उसे मारते-पीटते हैं और समय पर खाना नहीं देते। जब वादी ने दहेज के बारे में बात करने की कोशिश की, तो आरोपी टिंकू गुस्सा हो गया और आरोपी राम सहाई ने धमकी दी कि अगर मांग पूरी नहीं की गई तो उनकी बेटी को मार दिया जाएगा। 12.6.2012 को रात करीब 11-12 बजे किसी ने उन्हें अस्पताल से सूचित किया कि उनकी बेटी को उसके ससुराल वालों ने जला दिया है और उसे सदर अस्पताल में भर्ती कराया गया है। इसके बाद वह अपनी मां, भाई, शिवमिलन, हवलदार,

अपनी भाभी और चम्पा देवी के साथ अस्पताल पहुंचे और देखा कि गीता बहुत गंभीर हालत में थी और बोल नहीं पा रही थी। वह बुरी तरह जल गई थी। यह देखकर वह मानसिक रूप से विचलित हो गए। डॉक्टर ने कहा कि मरीज की हालत चिंताजनक है, इसके बाद उन्होंने एक आवेदन तैयार किया और थाना जलालपुर में दे दिया। यह उनकी हस्तलिपि और हस्ताक्षर में था। इसे प्रदर्श का-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया।

(ख) अभियोजन शाक्षी -2, लक्ष्मी देवी, मृतका की दादी, ने अभियोजन शाक्षी -1 के समान बयान दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बयान दिया कि जब वे जिला अस्पताल, जौनपुर गए, तो आरोपी टिंकू और उसकी मां मौजूद थीं। पूछने पर टिंकू ने कहा कि उसने जो करना था कर दिया, जो करना है करो और झगड़ा करने लगा। झगड़े के बाद टिंकू अस्पताल छोड़कर चला गया और श्याममिलन वहीं रहे। वे अस्पताल जाते रहते थे लेकिन 18.6.2012 को गीता की अस्पताल में मृत्यु हो गई और श्याममिलन व अन्य लोगों ने शव का अंतिम संस्कार किया।

(ग) अभियोजन शाक्षी -3, विद्या देवी, मृतका की मां, ने भी अभियोजन शाक्षी-1 के समान बयान दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बयान दिया कि जब वह अस्पताल पहुंची, तो उन्होंने देखा कि उनकी बेटी जली हुई अवस्था में भर्ती थी, जिसने उन्हें बताया कि राम सहाई, मृत्युंजय, शांति देवी और मंती देवी ने दहेज के लिए उसे जला दिया था।

(घ) अभियोजन शाक्षी -4, एच.सी.पी. शैलेंद्र सिंह, ने चिक एफ.आई.आर. और जी.डी. प्रदर्श का-2 को प्रमाणित किया।

(ड) अभियोजन शाक्षी -5, डॉ. नेम सिंह, ने बयान दिया कि उन्होंने गीता देवी के शव का पोस्टमार्टम किया। चेहरे, गर्दन, हाथों के ऊपरी हिस्से, छाती और पेट, पीठ पर सतही से गहरी जलन के निशान थे और शरीर का ऊपरी हिस्सा जल गया था। मृत शरीर के आंतरिक भाग में सतही से गहरी जलन की चोटें मौजूद थीं। प्लूरा (फुफ्फुस) और श्वासनली संक्रमित और सूजी हुई पाई गई। फेफड़े संक्रमित और खून से भरे हुए थे। गर्भाशय सामान्य था। इस गवाह के अनुसार मृतका की मृत्यु 19.6.2012 को लगभग 7:45 बजे शाम को हुई थी। मृत्यु का कारण जलने की चोटें थीं। शव 60% जला हुआ था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट डॉ. पंकज कुमार पवन द्वारा उनकी अपनी हस्तलिपि में तैयार की गई थी। इस गवाह ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श का-4 के रूप में प्रमाणित किया।

(च) अभियोजन शाक्षी -6, कमला प्रसाद, सेवानिवृत्त एस.आई. और मामले के विवेचक ने बयान दिया कि उन्होंने दिनांक 13.6.2012 को केस डायरी का कागज संख्या 1 तैयार किया था और चिक एफ.आई.आर. की नकल की थी, घायल गीता देवी का बयान अंकित किया जिसे उन्होंने प्रदर्श का-5 के रूप में साबित किया है। उन्होंने सूचनादाता श्यामलाल का बयान अंकित किया, ग्रामीणों की निशानदेही पर घटनास्थल का निरीक्षण किया और नक्शा नजरी प्रदर्श का-6 तैयार किया। अभियुक्त टिंकू उर्फ मृत्युंजय और राम सहाय की गिरफ्तारी के

बाद उनके बयान अंकित किए। पंचायतनामा की नकल केस डायरी में की और धारा 304-बी भा.द.सं. जोड़ी, तत्पश्चात विवेचना सी.ओ. पुलिस को स्थानांतरित कर दी गई।

(छ) अभियोजन शाक्षी 7, डॉ. उदय भान सिंह, ने चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श का-9 के रूप में साबित किया और बयान दिया कि 13.6.2012 को वह अमर शहीद उमानाथ सिंह जिला अस्पताल, जौनपुर में आपातकालीन चिकित्सक के रूप में तैनात थे। घायल का बयान अंकित करने से पूर्व उन्होंने घायल का चिकित्सीय परीक्षण किया, वह पूर्ण होश में थी और बयान देने में सक्षम थी जिसका उल्लेख उन्होंने कागज (अभिलेख)संख्या 146 में किया था।

(ज) अभियोजन शाक्षी -8, आनंद कुमार, सी.ओ., मामले के विवेचक ने बयान दिया कि 27.6.2012 को उन्हें मामले की विवेचना प्राप्त हुई और केस डायरी के पूर्व कागजात का अवलोकन किया, अभियुक्त मंती, शांति देवी, लक्ष्मी देवी, राम रतन, शकुंतला देवी, चम्पा देवी और पूर्व विवेचक के बयान अंकित किए। उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया और नक्शा नजरी प्रदर्श का-7 तैयार किया, परचा संख्या 10 में गवाह राम मिलन, अरविंद कुमार, हवलदार, राजेंद्र कुमार और रामलगन के साथ-साथ नायब तहसीलदार महादेव सिंह यादव, डॉ. नेम सिंह, डॉ. पंकज कुमार और कांस्टेबल लालबाबू यादव के बयान अंकित किए। सी.डी. संख्या 11 दिनांक 14.7.2012 में उन्होंने शैलेंद्र सिंह का बयान अंकित किया। कथित अपराध के घटित होने की पुष्टि के

बाद, उन्होंने अभियुक्तगण के विरुद्ध धारा 498ए, 323, 506, 326, 304बी और धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत आरोप पत्र प्रदर्श का-8 पुलिस स्टेशन जालापुर जिला जौनपुर में प्रेषित किया।

(झ) अभियोजन शाक्षी -9, सेवानिवृत्त तहसीलदार महादेव सिंह यादव, ने बयान दिया कि 13.6.2012 को वह नायब तहसीलदार सदर जौनपुर के पद पर तैनात थे। वह जिला अस्पताल जौनपुर गए जहां मृतका बर्न वार्ड नंबर 2 में जले हुए हालत में भर्ती थी। डॉ. यू.बी. सिंह से फिटनेस प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद, उन्होंने 1:45 बजे मृत्युकालीन घोषणा अंकित की और घायल को पढ़कर सुनाने के बाद उस पर उसके अंगूठे का निशान लिया गया, उन्होंने इसे प्रमाणित किया। इस गवाह ने मृत्युकालीन घोषणा को प्रदर्श का-9 के रूप में साबित किया।

गीता देवी की मृत्यु की सूचना प्राप्त होने के बाद, वह जिला अस्पताल जौनपुर के शवगृह गए जहां एस.आई. रामजीत और कांस्टेबल लाल बहादुर यादव मृतका के परिजनों के साथ मौजूद थे। उन्होंने पांच व्यक्तियों को पंच नियुक्त किया और एस.आई. रामजीत से बोलकर पंचायतनामा लिखा गया और संबंधित दस्तावेज तैयार किए गए। शव को सील किया गया और नमूना मुहर तैयार की गई, तत्पश्चात शव को कांस्टेबल 814 लाल बहादुर यादव के माध्यम से पोस्टमार्टम हाउस भेजा गया। इस गवाह ने अपने हस्ताक्षर की पहचान की और पंचनामा को प्रदर्श का-10 के रूप में साबित किया।

पंचायतनामा से संबंधित कागजात भी इस गवाह द्वारा प्रदर्श का-11 से का-13 के रूप में साबित किए गए।

(ज) प्रतिवाद साक्षी-1, नंद लाल, अभियुक्त का पड़ोसी, ने बयान दिया कि दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी। घटना के दिन उनकी दो बेटियों सोनी और रेखा की शादी का समारोह था। अभियुक्तगण उनके घर पर विवाह समारोह की व्यवस्था के संबंध में व्यस्त थे। राम सहाय की छोटी बेटी कविता अपने घर से रोती हुई आई और सूचित किया कि भाभी जल रही हैं। यह सुनकर जब वह अभियुक्तगण के साथ मौके पर पहुंचे, तो देखा कि गीता जल रही थी, उन्होंने चादर डालकर आग बुझाई। उन्होंने एक कार का प्रबंध किया और जिला अस्पताल जौनपुर गए जहां 6-7 दिन बाद इलाज के दौरान गीता की मृत्यु हो गई। गीता टिंकू के साथ औरंगाबाद जाना चाहती थी लेकिन निवास की कमी के कारण उसने असमर्थता व्यक्त की जिसके लिए गीता से झगड़ा हुआ और गुस्से में आकर उसने खुद को आग लगा ली।

(ट) प्रतिवादसाक्षी-2 संजय, प्रतिवादसाक्षी-1 का भतीजा ने प्रतिवादसाक्षी-1 के समान बयान दिया है।

7. दलीलें सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को धारा 498-ए, 304बी भा.द.सं. और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार पांडेय और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

9. माननीय विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यह दहेज हत्या का मामला था लेकिन उन्होंने मृत्युकालीन घोषणा की अनदेखी की कि पति के साथ झगड़े के कारण, पत्नी-मृतका को आरोपी-अपीलार्थी द्वारा जलाया गया था। माननीय विचारण न्यायालय ने मृत्युकालीन घोषणा पर उचित रूप से विचार नहीं किया और तथ्य के उन गवाहों के बयानों पर भरोसा किया जो घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। मृत्युकालीन घोषणा प्रश्न-उत्तर रूप में है जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि पति के साथ झगड़े के कारण उसे जलाया गया था। उसने कहीं भी यह नहीं कहा कि उसे दहेज की मांग के कारण जलाया गया था। अभियोजन पक्ष का आरोप कि 50,000 रुपये और सोने की चेन की दहेज की मांग की गई थी और उक्त मांग की पूर्ति के लिए मृतका को आग लगाकर मार दिया गया, मृतका ने अपनी मृत्यु से पहले नहीं कहा है। हालांकि विवेचक कमला प्रसाद ने धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मृतका का बयान दर्ज किया है जिसमें लिखा गया है कि मृतका को दहेज की मांग के लिए प्रताड़ित किया गया था। उसके पति वाहन और सोने की चेन की मांग करते थे लेकिन यह अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि दहेज में किसी वाहन की भी मांग की गई थी। शुरुआत से ही यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि आरोपी के परिवार वाले 50,000 रुपये और सोने की चेन की मांग कर रहे थे। यह बयान मृत्युकालीन घोषणा के रूप में प्रमाणित

नहीं किया गया है, इसलिए धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत यह बयान मजिस्ट्रेट द्वारा घायल की मृत्यु से ठीक पहले दर्ज की गई मृत्युकालीन घोषणा के बयान के समकक्ष नहीं माना जा सकता। तथ्य के गवाह अभियोजन शाक्षी. 1 से 3, घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे, इसलिए यह न्यायालय इस विचार का है कि मृतका द्वारा की गई मृत्युकालीन घोषणा गवाहों के बयानों और विवेचक द्वारा धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए साक्ष्य पर प्रभावी होगी।

10. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि मृत्युकालीन घोषणा संदिग्ध है और तथ्य के गवाहों द्वारा समर्थित नहीं है, इसलिए यह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकती। मृत्युकालीन घोषणा के दोषसिद्धि का एकमात्र आधार होने की कानूनी स्थिति यह है कि यह तभी किया जा सकता है जब यह प्रशिक्षित न हो, स्वेच्छा से की गई हो और पूर्णतः विश्वसनीय हो। इस संबंध में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **लखन बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2010) 8 सुप्रीम कोर्ट केसेज 514]** में मृत्युकालीन घोषणा के संबंध में कानून का सारांश दिया है, इस मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना कि मृत्युकालीन घोषणा का सिद्धांत कानूनी सूक्ति "नेमो मोरिटुरस प्रेसुमिटर मेंटायर" में निहित है, जिसका अर्थ है, "कोई व्यक्ति अपने निर्माता से झूठ बोलकर नहीं मिलेगा"। मृत्युकालीन घोषणा का सिद्धांत साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 में निहित है, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में निहित

सामान्य नियम के अपवाद के रूप में है, जो यह प्रावधान करता है कि सभी मामलों में मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए, अर्थात्, यह एक गवाह का साक्ष्य होना चाहिए, जो कहता है कि उसने इसे देखा। मृत्युकालीन घोषणा वास्तव में, एक ऐसे व्यक्ति का कथन है, जिसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया जा सकता और इसलिए जिसका प्रतिपरीक्षण नहीं किया जा सकता। ऐसे कथन कुछ मामलों में स्वयं प्रासंगिक तथ्य होते हैं।

11. मृत्युकालीन घोषणा के मुद्दे पर कानून को इस प्रभाव से सारांशित किया जा सकता है कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मृत्युकालीन घोषणा सत्य और विश्वसनीय है, इसे किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे समय पर दर्ज किया गया है जब मृतक शारीरिक और मानसिक रूप से घोषणा करने के लिए योग्य था और यह किसी प्रशिक्षण/दबाव/प्रेरणा के अधीन नहीं की गई है; यह दोषसिद्धि दर्ज करने का एकमात्र आधार हो सकती है। ऐसी स्थिति में किसी समर्थन की आवश्यकता नहीं होती। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त मामले में यह भी माना है कि सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की गई मृत्युकालीन घोषणा निम्न पद के अधिकारी द्वारा दर्ज की गई घोषणा की तुलना में बहुत उच्च स्तर पर होगी, क्योंकि सक्षम मजिस्ट्रेट को पीड़ित की मृत्युकालीन घोषणा में नामित व्यक्ति के विरुद्ध कोई स्वार्थ नहीं होता।

12. यह बहुत स्पष्ट है और स्थापित किया गया है कि घटना के बाद मृतका को ससुराल वालों द्वारा जिला अस्पताल में भर्ती कराया

गया था। घटना 12.6.2012 को हुई थी और मृतका की मृत्यु 19.6.2022 को हुई थी। मृतका के शरीर पर 65 प्रतिशत चोटें थीं।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह हत्या या दहेज मृत्यु का मामला नहीं है, वास्तव में जब मृतका-पत्नी को उसके पति-आरोपी के साथ औरंगाबाद जाने की अनुमति नहीं दी गई, तो उसने स्वयं को आग लगा ली। यदि हत्या का आपराधिक मानस रहा होता, तो उसे किसी अन्य तरीके से मार दिया जाता और आरोपी अपीलार्थी द्वारा उसे उपचार के लिए जिला अस्पताल में भर्ती नहीं कराया जाता। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने **त्रिमुख मारुति किरकेन बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2006 (3) 1426 एससी** के उद्धरण पर गलत तरीके से भरोसा किया है, क्योंकि घटना के समय अपीलार्थी घर में मौजूद नहीं था। घटनास्थल और डी.डब्ल्यू.-1 का घर समीपवर्ती हैं इसलिए आरोपी के लिए अपराध करना और डी.डब्ल्यू.1 की बेटियों की शादी समारोह में शामिल होना बहुत आसान था। इस संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 प्रासंगिक है जो नीचे उल्लेखित है:

धारा 106, साक्ष्य अधिनियम की प्रयोज्यता:
"साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का उद्देश्य अभियोजन को आरोपी के दोष को सिद्ध करने के भार से मुक्त करना नहीं है, बल्कि धारा उन मामलों पर लागू होगी जहां अभियोजन ने ऐसे तथ्यों को सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है जिनके लिए कुछ अन्य तथ्यों के अस्तित्व के संबंध में युक्तियुक्त निष्कर्ष

निकाला जा सकता है, जब तक कि आरोपी ऐसे तथ्यों के संबंध में विशेष ज्ञान के आधार पर कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं करता जो न्यायालय को एक भिन्न निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित कर सकता है।"

अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि न्यायालय को उचित लगे तो अधिकतम दंड भारतीय दंड संहिता की धारा 304 II या धारा 304 I के अंतर्गत हो सकता है। क्योंकि आरोपी छूट के बिना 11 वर्ष से अधिक समय से जेल में हैं, उन्हें कारावास की निश्चित अवधि का दंड दिया जा सकता है।

14. मृतका घटना होने के बाद 6 दिनों तक जीवित रही। उसकी मृत्युकालीन घोषणा संबंधित चिकित्सक से चिकित्सीय योग्यता का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद महादेव सिंह यादव, नायब तहसीलदार द्वारा दर्ज की गई थी। यह मृत्युकालीन घोषणा पी.डब्ल्यू.-9, महादेव सिंह यादव, नायब तहसीलदार द्वारा प्रमाणित की गई थी। ये गवाह पूर्णतः स्वतंत्र गवाह हैं। लखन (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णयों के आलोक में, मृत्युकालीन घोषणा पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, जब यह विश्वास उत्पन्न करती है। मृत्युकालीन घोषणा की विश्वसनीयता और बिना समर्थन के उस पर कार्यवाई करने के संबंध में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य [(2013) 3 सुप्रीम कोर्ट केसेज 280]** में माना कि यह कानून का पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि मृत्युकालीन घोषणा आरोपी की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकती। जहां मृत्युकालीन घोषणा सत्य और सही है,

परिस्थितियां इसे विश्वसनीय दिखाती हैं और इसे कानून के अनुसार दर्ज किया गया है, मृतक ने मृत्युकालीन घोषणा अपनी स्वेच्छा से की है और मन और शरीर की स्थिति के संबंध में चिकित्सक द्वारा उचित प्रमाणन के बाद, तो न्यायालय के लिए समर्थन की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता। ऐसे मामलों में, मृत्युकालीन घोषणा अकेले आरोपी की दोषसिद्धि का आधार बन सकती है। अतः, विश्वसनीयता की परीक्षा पास करने के लिए, मृत्युकालीन घोषणा को बहुत बारीकी से जांच के अधीन किया जाना चाहिए, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कथन आरोपी की अनुपस्थिति में किया गया है, जिसे प्रतिपरीक्षण द्वारा कथन की सत्यता की जांच करने का कोई अवसर नहीं था। लेकिन एक बार, जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि मृत्युकालीन घोषणा मृत्यु की परिस्थितियों और पीड़ित के हमलावरों के संबंध में सत्य संस्करण था, तो आगे समर्थन का कोई प्रश्न नहीं है।

15. **रमीलाबेन हसमुखभाई ख्रिस्ती बनाम गुजरात राज्य, [(2002) 7 एससीसी 56]** में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना कि कानून के अंतर्गत, मृत्युकालीन घोषणा दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकती है, यदि यह किसी भी प्रकार के संदेह से मुक्त है और इसे कानून के अंतर्गत प्रदान की गई रीति से दर्ज किया गया है। मृत्युकालीन घोषणा के समर्थन की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता। जैसा कि परिकल्पित है, मृत्युकालीन घोषणा सामान्यतः एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा कथन करने के लिए घोषणाकर्ता की

मानसिक योग्यता के बारे में एक चिकित्सा डॉक्टर के प्रमाणपत्र के साथ दर्ज की जानी चाहिए। यह प्रश्न और उत्तर के रूप में हो सकती है और उत्तर घोषणा करने वाले व्यक्ति के शब्दों में लिखे जा सकते हैं। लेकिन न्यायालय बहुत तकनीकी नहीं हो सकता और सार में यदि वह कथन की विश्वसनीयता के बारे में आश्वस्त महसूस करता है जो विश्वास उत्पन्न कर सकता है, ऐसी मृत्युकालीन घोषणा पर बिना किसी समर्थन के कार्रवाई की जा सकती है।

16. उपरोक्त पूर्व निर्णयों से, यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि यह कानून का एक पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि मृत्युकालीन घोषणा आरोपी की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकती जब ऐसी मृत्युकालीन घोषणा सत्य, विश्वसनीय हो और स्थापित प्रथा एवं सिद्धांतों के अनुसार दर्ज की गई हो और यदि इसे इस प्रकार दर्ज किया गया है तो इसकी सत्यता और प्रामाणिकता के संबंध में कोई चुनौती नहीं हो सकती।

17. मृतका की मृत्युकालीन घोषणा में, यह भी उल्लेखनीय है कि मृतका इसके दर्ज होने के तीन दिन बाद मृत्यु को प्राप्त हुई। इसका अर्थ है कि वह मृत्युकालीन घोषणा करने के बाद तीन दिन तक जीवित रही, इसलिए, मृत्युकालीन घोषणा की सत्यता का आगे मूल्यांकन इस तथ्य से किया जा सकता है कि वह तीन दिन तक जीवित रही। इससे यह युक्तियुक्त रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह प्रासंगिक समय पर कथन करने की उपयुक्त मानसिक स्थिति में थी।

18. जैसा कि पहले ही देखा गया है, मृत्युकालीन घोषणा दर्ज करने में शामिल गवाहों या प्राधिकारियों में से कोई भी प्रतिकूल नहीं हुआ है। इसके विपरीत, उन्होंने पूरी तरह से अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। मृत्युकालीन घोषणा विश्वसनीय, सत्य है और मृतका द्वारा स्वेच्छा से की गई थी, इसलिए, इस मृत्युकालीन घोषणा पर बिना समर्थन के कार्रवाई की जा सकती है और इसे दोषसिद्धि का एकमात्र आधार बनाया जा सकता है। अतः, विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्युकालीन घोषणा के एकमात्र आधार पर कार्रवाई करने में कोई त्रुटि नहीं की है। विद्वान विचारण न्यायालय मृत्युकालीन घोषणा प्रदर्शक का-9 पर विश्वास करने और इसके आधार पर आरोपी-अपीलार्थीगण को दोषी ठहराने में पूर्णतः न्यायोचित था।

19. गवाहों के साक्ष्य और शव-परीक्षण रिपोर्ट सहित चिकित्सीय साक्ष्य पर विचार करते हुए, वर्तमान अपीलार्थी के दोष के बारे में हमारे मन में कोई संदेह नहीं रह गया है।

20. हालांकि, जो प्रश्न हमारे विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दोषसिद्धि को बनाए रखा जाना चाहिए या दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I या भाग-II के अंतर्गत परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

"299. 'सदोष मानव वध': जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जो मृत्यु कारित करने के लिए प्रबल संभाव्य है, या यह जानते हुए कि वह ऐसे कार्य द्वारा मृत्यु कारित करना प्रबल संभाव्य है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह 'सदोष मानव वध का अपराध करता है।"

21. 'हत्या' और 'सदोष मानव वध जो हत्या की कोटि में नहीं आता' के बीच शैक्षणिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब उत्पन्न होता है, यदि न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्दों के वास्तविक क्षेत्र और अर्थ को दृष्टि से ओझल कर, स्वयं को सूक्ष्म अमूर्तताओं में खींचने देते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और प्रयोग के लिए सबसे सुरक्षित दृष्टिकोण भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त मुख्य शब्दों को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति 'सदोष मानव वध करता है, यदि वह कार्य जिससे मृत्यु कारित होती है, किया जाता है	कुछ अपवादों के अधीन 'सदोष मानव वध हत्या है यदि वह कार्य जिससे मृत्यु कारित होती है, किया जाता है।

आशय

(क) मृत्यु कारित करने के आशय से;	(1) मृत्यु कारित करने के आशय से;

या	या
(ख) ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जो मृत्यु कारित करने के लिए प्रबल होने की संभावना रखती है; या	(2) ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिसके बारे में अपराधी जानता है कि वह उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करने के लिए प्रबल होने की संभावना रखती है जिसे क्षति पहुंचाई गई है;
ज्ञान	ज्ञान
(ग) यह ज्ञान होते हुए कि कार्य मृत्यु कारित करने के लिए प्रबल होने की संभावना रखता है।	(4) यह ज्ञान होते हुए कि कार्य इतना तत्काल खतरनाक है कि उससे सभी संभावनाओं में मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति होनी चाहिए जो मृत्यु कारित करने के लिए प्रबल होने की संभावना रखती है, और मृत्यु या ऐसी क्षति के जोखिम को उठाने का कोई बहाना किए बिना जैसा कि ऊपर उल्लिखित है।

22. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ

चिकित्सा अधिकारी की राय और उच्चतम न्यायालय द्वारा **तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य**, [(2011) 4 एससीसी 250] के मामले में और **बी.एन. कवटकर और एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य [1994 सप्लीमेंट (1) एससीसी 304]** के मामले में निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, हम इस विचारित मत के हैं कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के तहत दंडनीय होगा।

23. प्रस्तुत मामले में, मृतक के मरणासन्न कथन के अवलोकन के बाद यह प्रकट नहीं होता है कि अपीलार्थी ने मृतक पर मिट्टी का तेल क्यों डाला और उसे जला दिया। इसके अतिरिक्त, मरणासन्न कथन में मृतक द्वारा यह कहा गया है कि आग को स्वयं अपीलार्थी द्वारा बुझाया गया था, अतः इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि आग अपीलार्थी द्वारा बुझाई गई थी और मरणासन्न कथन के अनुसार, यह भी विवादास्पद नहीं है कि अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों ने मृतक को उपचार के लिए जिला अस्पताल, जौनपुर ले गए थे और उन्होंने उसे भर्ती कराया था।

24. उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आग स्वयं अपीलार्थी द्वारा बुझाई गई थी और घायल अवस्था में मृतक को अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया गया था, यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था। मृतक की मृत्यु घटना के छह दिन बाद हुई और इस अवधि के दौरान, वह लगातार जिला अस्पताल में भर्ती रही और

उपचाराधीन थी। शव-परीक्षण करने वाले चिकित्सक ने भी मृत्यु का कारण "सदमा" बताया है।

25. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों की जांच के आधार पर, चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ-साथ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2011) 4 एससीसी 250]** के मामले में और **बी.एन. कवटकर और एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य [1994 सप्लीमेंट (1) 304]** के मामले में निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, हम इस विचारित मत के हैं कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-I) के तहत दंडनीय होगा क्योंकि मृतक को जलने की चोटें अपीलार्थी द्वारा ऐसी शारीरिक क्षति पहुंचाने के आशय से कारित की गई थीं जो मृत्यु कारित करने के लिए प्रबल थीं, और इसलिए, वर्तमान मामला धारा 300 भारतीय दंड संहिता के अपवाद 4 के अंतर्गत आता है।

26. उपरोक्त चर्चाओं के परिणामस्वरूप, यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा कारित की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, यद्यपि अभियुक्त को ज्ञान था और मृतक को शारीरिक क्षति पहुंचाने का आशय था लेकिन मृतक को समाप्त करना नहीं चाहता था। अतः वर्तमान मामला धारा 300 भारतीय दंड संहिता के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299 पर विचार करते हुए जैसा कि यहां ऊपर पुनरुत्पादित किया गया है, किया गया अपराध धारा 304 भाग-I के अंतर्गत आएगा जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने **वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य**

[[2011] 5 एससीआर 300] में अवलोकित किया है जिसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

27. हम गुजरात उच्च न्यायालय के आपराधिक अपील संख्या 83 of 2008 (गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात राज्य) में दिनांक 11.9.2013 को दिए गए निर्णय पर सुरक्षित रूप से निर्भर कर सकते हैं जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"12. वास्तव में, कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य [[2013] 3 एससीसी 280] के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने माना है कि यह कानून का पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि एक मरणासन्न कथन अभियुक्त के दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकता।

जहां मरणासन्न कथन सत्य और सही है, परिवेशी परिस्थितियां इसे विश्वसनीय दर्शाती हैं और इसे कानून के अनुसार अभिलिखित किया गया है, मृतक ने मरणासन्न कथन स्वयं अपनी इच्छा से दिया है और मन और शरीर की स्थिति के संबंध में चिकित्सक द्वारा उचित प्रमाणन पर, तब न्यायालय के लिए समर्थन की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, मरणासन्न कथन अकेले अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। लेकिन जहां मरणासन्न कथन स्वयं संदिग्ध परिस्थितियों से युक्त है, इसे कानून और स्थापित प्रक्रियाओं और प्रथाओं के अनुसार अभिलिखित नहीं किया गया है, तब, न्यायालय के लिए इसके समर्थन की तलाश करना आवश्यक हो सकता है।

13. हालांकि, मृतक द्वारा दी गई शिकायत और कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित मरणासन्न कथन और चिकित्सक के समक्ष दिया गया विवरण सुसंगत है और विश्वसनीय प्रतीत होता है। यह गवाहों के साक्ष्य और चिकित्सा रिपोर्टों के साथ-साथ पंचनामा से भी समर्थित है और यह स्पष्ट है कि मृतक की मृत्यु अपीलार्थियों द्वारा मिट्टी का तेल डालने और आग लगाने के कृत्य के कारण हत्यात्मक मृत्यु हुई। हम पाते हैं कि मरणासन्न कथन विश्वसनीय है।

14. हालांकि, हमने इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया है कि मृतक की मृत्यु एक महीने के उपचार के बाद हुई। चिकित्सा रिपोर्टों से स्पष्ट है कि मृतक को सेप्टीसीमिया हुआ था जो व्यापक जलने के कारण हुआ था।

15. बी.एन. कवटकर और एक अन्य (उपरोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने सेप्टीसीमिया के एक समान मामले में जहां मृतक की मृत्यु प्रश्नगत घटना के पांच दिन बाद अस्पताल में हुई थी, धारा 302 के तहत दोषसिद्धि को धारा 326 के तहत परिवर्तित कर दिया और तदनुसार सजा को संशोधित किया।

15.1 इसी प्रकार, मणीबेन (उपरोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकित किया है:

"18. मृतक को लगभग 60% जलने की चोटों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उपचार के दौरान सेप्टीसीमिया

विकसित हो गया, जो मृतक की मृत्यु का मुख्य कारण था। अतः यह स्थापित है कि उपरोक्त 8 दिनों की अवधि के दौरान चोटें बढ़ गईं और बिगड़ गईं जिस सीमा तक कि यह चोटों के पकने की ओर ले गईं और मृतक की मृत्यु चोटों के विषाक्त प्रभाव के कारण हुई।

19. मृतक के मरणासन्न कथन से यह स्थापित है कि वह अपनी सास, यहां अपीलार्थी, से कई वर्षों से अलग रह रही थी और प्रश्नगत दिन उसका अपीलार्थी के साथ उसके घर पर झगड़ा हुआ था।

यह भी साक्ष्य पर दर्ज है कि झगड़े के तुरंत बाद वह अपनी बेटी के साथ पानी लेने आई थी और जब वह लौट रही थी, अपीलार्थी आई और मृतक के कपड़ों पर एक जलता हुआ टॉन्सिल फेंक दिया। चूंकि मृतक उस समय टेरीलीन का कपड़ा पहने हुई थी, इसने आग को बढ़ा दिया जिससे जलने की चोटें लगीं।

20. साक्ष्य पर यह भी दर्ज है जो यह सिद्ध और स्थापित करता है कि जलता हुआ टॉन्सिल फेंकने का अपीलार्थी का कार्य मृतक और अपीलार्थी के बीच झगड़े के बाद हुआ था। साक्ष्य पर दर्ज उपरोक्त से यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलार्थी का यह आशय था कि उसके इस कार्य से मृत्यु होगी या ऐसी शारीरिक क्षति होगी, जो साधारण क्रम में मृतक की मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी। इसलिए, हमारी विचारित राय में, मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के खंड (4) के अंतर्गत आने वाला नहीं कहा जा

सकता। हालांकि, हम विचारित मत के हैं कि अपीलार्थी का मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग II के अंतर्गत आता है।"

16. वर्तमान मामले में, हम इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपीलार्थियों की भूमिका मरणासन्न कथन और अन्य अभिलेखों से स्पष्ट है। हालांकि, वह बिंदु जो इस न्यायालय के साथ भी महत्वपूर्ण है वह यह है कि मृतक अस्पताल में लगभग 30 दिनों तक जीवित रहा और उसकी स्थिति लगभग 5 दिनों के बाद बिगड़ी और अंततः सेप्टीसीमिया से मृत्यु हुई। वास्तव में उसे लगभग 35% जलने की चोटें लगी थीं। उस दृष्टिकोण से, हम इस मत के हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304(I) के तहत परिवर्तित किए जाने की आवश्यकता है और इसी दृष्टिकोण से अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

17. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट नं. 6, अहमदाबाद द्वारा सत्र मामला संख्या 149 of 2007 से उत्पन्न दिनांक 19.12.2007 के निर्णय और आदेश के माध्यम से भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलार्थियों - मूल अभियुक्तों की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग I) के तहत दोषसिद्धि में परिवर्तित किया जाता है। हालांकि, भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के तहत अपीलार्थियों - मूल अभियुक्तों की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है। अपीलार्थियों - मूल अभियुक्तों को विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302 भादसं के

तहत दी गई आजीवन कारावास और जुर्माने के अभाव में दंड के स्थान पर भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग 1) के तहत दस वर्ष के कठोर कारावास और 5000/- रुपये प्रत्येक के जुर्माने, अभाव में छह माह का कठोर कारावास भुगतने का आदेश दिया जाता है। धारा 452 भादसं के तहत जुर्माने के अभाव में लगाया गया दंड भी घटाकर दो माह कर दिया जाता है। तदनुसार, अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304(1) के तहत दंडनीय अपराध के लिए दस वर्ष के कठोर कारावास और 5000/- रुपये के जुर्माने, अभाव में, छह माह के कठोर कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के तहत दंडनीय अपराध के लिए पांच वर्ष के कठोर कारावास और 2,000/- रुपये के जुर्माने, अभाव में, दो माह के कठोर कारावास का दंड भुगतने का आदेश दिया जाता है। दोनों दंड एक साथ चलेंगे। दिनांक 19.12.2007 का निर्णय और आदेश तदनुसार संशोधित किया जाता है। पहले से भुगती गई दंड अवधि को अपीलार्थियों - मूल अभियुक्तों के संबंध में दंड की छूट के लिए विचार किया जाएगा। अभिलेख और कार्यवाही विचारण न्यायालय को तत्काल वापस भेजी जाए।"

28. **खोकन @ खोखन (उपरोक्त)** के नवीनतम निर्णय में जहां तथ्य इस मामले के समान थे, उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त अपीलार्थी की अपील स्वीकार की है। **अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12** के मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय जो वैध अभिभावकता से अपहरण से संबंधित था, जिसमें यह स्थापित किया

गया था कि न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए, यह प्रतिपादित किया कि निवारण और सुधार के युग्म सिद्धांत की पूर्ति अभियुक्त द्वारा पहले से भुगती गई कारावास की अवधि को कम करके की जाएगी। हमारे मामले में, यह इतना भयावह मामला नहीं है जहां अभियुक्त के साथ इन सभी निर्णयों के प्रकाश में व्यवहार नहीं किया जा सकता। **प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529 और परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एससीसी 238** में दिए गए निर्णय भी अभियुक्त के लाभ के लिए सुनिश्चित करेंगे।

29. इस प्रकार हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मृत्यु सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय हमें अपने निष्कर्ष को बनाए रखने की अनुमति देंगे जिसे हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत नहीं बल्कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत आपराधिक मानव वध है और, इसलिए, अभियुक्त अपीलार्थी की सजा को उस अवधि तक कम किया जाता है जो उसने पहले ही भुगत ली है। कुल जुर्माना राशि 1500/- रुपये आज से 30 दिनों के भीतर जमा की जाए अन्यथा अपीलार्थी विचारण न्यायालय द्वारा निर्देशित अतिरिक्त कारावास अवधि भुगतेगा।

30. तदनुसार अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अभिलेख और कार्यवाही निचले न्यायालय को तत्काल वापस भेजी जाए।

31. इस निर्णय की एक प्रति अनुपालन के लिए और मूल अभिलेखों के साथ रखने के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 486

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 9188 सन् 2022

डॉ. दिव्या नंद यादव एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता: श्री राम किशोर
पांडे

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: शासकीय
अधिवक्ता श्री जनार्दन यादव

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 504 और 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - 3 (1) (डीए) और 3 (1) (डीएचए) - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 151, 156 (3), 200, 202 - समन आदेश के खिलाफ - पीडब्लू 1 ने प्रस्तुत किया कि वह घटना के समय अपनी जमीन पर निर्माण कर रहा था - जमीन पर विवाद था - उनकी मां (पीडब्लू 1) और भाई (पीडब्लू 2), शिकायतकर्ता के बयानों का समर्थन करते हैं और कहा कि सह-अभियुक्तों के साथ

अपीलकर्ताओं ने उन्हें बेरहमी से पीटा - चिकित्सा साक्ष्य के साथ अपुष्ट उन बयानों को छोड़कर, रिकॉर्ड पर कुछ भी उल्लेख नहीं है - पुलिस रिपोर्ट के अनुसार अपीलकर्ता संख्या 1 ने शिकायतकर्ता की भूमि के पास स्थित भूमि खरीदी - अपीलकर्तागण ने राजस्व अधिकारियों से अपनी भूमि की माप कराई जिसमें यह पाया गया कि शिकायतकर्ता ने अवैध रूप से 2 बिस्वा भूमि पर अतिक्रमण कर लिया था - शिकायतकर्ता तथा उसके परिवार के सदस्य वहां कटी हुई गेहूं की फसल में से कुछ ले गए - अपीलकर्ता संख्या 1 की पत्नी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, शिकायतकर्ता द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध झूठा मामला दर्ज कराया गया। (पैरा 11)

दिनांक 15.03.2021 को घटित घटना का आरोप लगाते हुए अपीलकर्तागण के विरुद्ध शिकायत (तत्काल मामला) दर्ज - इसी प्रकार के आरोपों के साथ दिनांक 22.02.2021 को घटित घटना के संबंध में शिकायतकर्ता के दादा द्वारा एक अन्य शिकायत दर्ज कराई गई जिसमें आरोप लगाया गया कि जब वह निर्माण कार्य कर रहा था, तो अपीलकर्ता आए और जातिसूचक शब्दों के साथ उन्हें गाली दी, शिकायतकर्ता ने उल्लेख किया कि पहले उसके खिलाफ गेहूं की फसल चोरी करने का झूठा मामला दर्ज किया गया था - उपरोक्त शिकायत के आधार पर अपीलकर्तागण को तलब किया गया है। (पैरा 12)

न्यायिक प्रक्रिया उत्पीड़न या टाले जा सकने वाले उत्पीड़न का साधन नहीं बननी चाहिए - संज्ञान लेने और अभियुक्त व्यक्तियों को

बुलाने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री नहीं है, इसलिए, आरोपित आदेश को रद्द कर दिया गया। (पैरा 15)

अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. फियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2013) 14 एससीसी 44
2. पेप्सी फूड लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य; (1998) 5 एससीसी 749

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा,
द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री राम किशोर पांडे, प्रतिवादी संख्या 2 के लिए विद्वान वकील श्री जनार्दन यादव और राज्य के लिए विद्वान एजीए श्री ओ. पी. मिश्रा को सुना ।

2. इस आपराधिक अपील के माध्यम से, विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), आजमगढ़ द्वारा शिकायत मामले संख्या 131/2021 (प्रेम कुमार बनाम डॉ. दिव्या नंद यादव एवं अन्य), थाना जीयनपुर, जिला आजमगढ़ में दिनांक 09.11.2022 को एक आदेश पारित किया गया, जिसके तहत अपीलकर्ता अभियुक्तों को धारा 323, 504, 506 आईपीसी और एससी/एसटी (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 (1) (डीएचए) और धारा 3(1) (डीए) के तहत तलब किया गया है, इस चुनौती के अधीन है।

3. रिकॉर्ड से उभरे प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

शिकायतकर्ता प्रेम कुमार ने सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर किया । उपस्थित पुनरीक्षण वादियों के विरुद्ध आरोप है कि पुरानी दुश्मनी के कारण दिनांक 15.03.2021 को सायं लगभग 07.00 बजे अभियुक्तगण, जिनमें से एक पेशे से डॉक्टर है तथा अंडरवर्ल्ड एवं भू-माफियाओं से संबंध रखता है, उनके पास आये और गाली-गलौज करने लगे। उसकी जाति से संबंधित अपमानजनक शब्द कहे और उसके साथ मारपीट शुरू कर दी; शिकायतकर्ता खुद को बचाने के लिए अंदर भाग गया, हालांकि हमलावरों ने उनका पीछा किया और शिकायतकर्ता और घर की महिलाओं पर हमला कर दिया; वे उसे जान से मारने की धमकी देकर चले गए; आवेदन को सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत शिकायत मामले और गवाहों के बयान के रूप में दर्ज किया गया है; अदालत ने शिकायतकर्ता की ओर से दिए गए सबूतों पर विचार करने के बाद समन आदेश पारित किया जो अब इस अदालत के समक्ष चुनौती के अधीन है।

4. अन्य तर्कों के अलावा, अपीलकर्ताओं की ओर से यह जोरदार तर्क दिया गया है कि पुलिस ने एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है कि शिकायतकर्ता द्वारा रखी गई कहानी झूठी और मनगढ़ंत है; वास्तविक तथ्य यह है कि कथित घटना से लगभग एक महीने पहले, शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को किसी भूमि से संबंधित विवाद पर; धारा 151 सीआरपीसी के तहत चालान किया गया

था। डॉ. दिव्या नंद यादव (अपीलकर्ता क्रमांक 1) की दिवंगत पत्नी शशि यादव ने एक प्लॉट नं. 256 खरीदा था और उसका नाम राजस्व अभिलेखों में बदल दिया गया; प्रेम कुमार-शिकायतकर्ता (प्रतिवादी संख्या 2) अपीलकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में अवैध रूप से हस्तक्षेप कर रहा है; यह शिकायत सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन के आधार पर है। झूठी कहानी के साथ, गलत इरादे से और अपीलकर्ता क्रमांक 1 और 2 की छवि खराब करने के लिए मामला दर्ज किया गया है, जो एक निजी नर्सिंग होम चलाते हैं; यह तर्क दिया गया है कि पूरी कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण है और कानून की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग है।

5. यह कानून की स्थापित स्थिति है कि किसी शिकायत मामले में सम्मन के चरण में, अदालत को शिकायतकर्ता की ओर से पेश किए गए साक्ष्य तक ही सीमित रहना होता है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस स्तर पर आरोपी या प्रस्तावित आरोपी का इस मामले में कोई कहना नहीं है। उनके पास निचली अदालत के समक्ष अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं है। उनके पास गवाहों से जिरह करने का कोई अवसर नहीं है और इसलिए अदालत आरोपों की सत्यता की जांच करने में कुछ हद तक असमर्थ है। अदालत के पास आमतौर पर गवाहों के बयान पर निर्भर रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है। लेकिन इस बाधा को कानून द्वारा ही कम करने का प्रयास किया गया है। गौरतलब है कि धारा 200 सी. आर. पी. सी. शिकायतकर्ता और उपस्थित गवाहों की जांच की बात करता है।

प्रावधानों में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट शिकायतकर्ता और उपस्थित गवाहों, यदि कोई हो, की शपथ के आधार पर जांच करेगा। अनुभव से पता चलता है कि हालांकि हमेशा नहीं, लेकिन कई मामलों में, विभिन्न कारणों से, जिन्हें यहां विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है, शिकायतकर्ता की जांच मजिस्ट्रेट द्वारा स्वयं नहीं की जाती है, बल्कि शिकायतकर्ता या तो खुद ही बयान देता है या उसके वकील के नेतृत्व में होता है। किसी ऐसी कहानी को दोहराना जो उसके लिए उपयुक्त हो और ऐसा बयान सीआरपीसी की धारा 200 के तहत बयान के रूप में कानूनी पवित्रता प्राप्त कर लेता है।

6. इस प्रावधान को इस तरह से लागू करने के पीछे एक निश्चित उद्देश्य है। जब एक मजिस्ट्रेट जो कानून में प्रशिक्षित होता है, स्वयं प्रश्न पूछता है तो वह उन तथ्यों को प्राप्त कर सकता है जो सत्य के करीब हैं। जाहिर तौर पर तब आरोपों की सत्यता की जांच करने, उसके सामने सबूतों का मूल्यांकन करने और वास्तविक दोषियों को बुलाने के लिए सही निष्कर्ष पर पहुंचने का बेहतर मौका होता है और साथ ही यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी भी निर्दोष व्यक्ति को अनावश्यक रूप से नहीं बुलाया जाता है। जब इस शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता तो उद्देश्य खो जाता है।

7. सीआरपीसी की धारा 202 के तहत गवाहों की जांच के लिए भी यही सच है। धारा 202 सीआरपीसी. आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं, यह तय करने के उद्देश्य

से यदि मजिस्ट्रेट उचित समझता है (या किसी पुलिस अधिकारी द्वारा जांच के लिए निर्देश देता है) तो स्वयं मजिस्ट्रेट द्वारा जांच किए जाने की बात करता है। धारा 202 सीआर. पी. सी. और धारा 202 (2) इस प्रकार हैं:-

"(1) कोई भी मजिस्ट्रेट, जिस अपराध का वह उसकी शिकायत प्राप्त होने पर संज्ञान लेने के लिए अधिकृत किया गया है या जो धारा 192 के तहत उसे सौंपा गया है, यदि वह उचित समझे तो अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के मुद्दे को स्थगित कर सकता है, तथा या तो स्वयं मामले की जाँच करें या किसी पुलिस अधिकारी या ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा जिसे वह उचित समझे, को जाँच करने का निर्देश दे सकता है, यह निर्णय लेने के उद्देश्य से कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं: बशर्ते ऐसी जांच के लिए दिशा-निर्देश नहीं दिए जाएंगे जबकि, -

(ए) जहां मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि शिकायत किया गया अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है या (बी) जहां शिकायत किसी न्यायालय द्वारा नहीं की गई है, जब तक कि शिकायतकर्ता न हो और उपस्थित गवाहों (यदि कोई हो) की धारा 200 के तहत शपथ पर जांच की गई है।

"(2) उप-धारा (1) के तहत एक जांच में, मजिस्ट्रेट, यदि वह उचित समझे, तो शपथ पर गवाहों के साक्ष्य ले सकता है बशर्ते कि यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि जिस अपराध की शिकायत की गई है वह विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो वह शिकायतकर्ता को अपने सभी गवाहों को पेश

करने और शपथ पर उनकी जांच करने के लिए कहेगा। "

8. यह स्पष्ट है कि सीआरपीसी की धारा 202 के तहत गवाहों की जांच, जैसा कि सर्वविदित है, वास्तव में जांच का हिस्सा है, जो एक मजिस्ट्रेट उन मामलों में कर सकता है, जब उसे आरोपी को तुरंत बुलाने के लिए पर्याप्त आधार नहीं मिलते हैं। हालाँकि हमेशा नहीं, लेकिन प्रक्रिया का यह हिस्सा भी एक नियमित मामला बन गया है। शिकायत पर आधारित लगभग सभी मामलों में, इस तथ्य को जाने बिना गवाहों से पूछताछ की जाती है कि यदि संबंधित मजिस्ट्रेट/अदालत संतुष्ट है कि शिकायतकर्ता और मामले के पिछले चरण यानी धारा 200 सीआरपीसी में उसके गवाह की जांच के आधार पर प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो ऐसा कदम अनावश्यक होगा जहां मजिस्ट्रेट स्वयं को 'संतुष्ट' के अपेक्षित स्तर से कम पाता है तभी वह अधिक गवाहों से पूछताछ का आदेश देकर आगे की जांच करने का निर्णय ले सकता है। सीआरपीसी की धारा 202 के अगले चरण पर जाने के पीछे के कारण काम की आपाधापी और चीजों को लगभग नियमित करने के चक्कर में वे गुमनामी में चले गए हैं।

9. धारा 202 सीआरपीसी में आने वाला वाक्यांश - " मामले की खुद जांच करें" मजिस्ट्रेट को आदेश देता है कि वह वास्तव में गवाहों की जांच करके अपनी भूमिका निभाए, न कि उन बयानों पर निर्भर रहे जो धुंधले, गूढ़, अस्पष्ट और कभी-कभी बहुत सीधे हो सकते हैं। अदालतों का अनुभव इस

धारणा को मजबूत करता है कि अक्सर बिना निगरानी के, एक तरफा बयान में बताने से ज्यादा छुपाने को कुछ और होता है। कहा जाता है कि कानून एक जीवित प्राणी है। यह समय की आवश्यकता के अनुसार बढ़ता और विकसित होता है। यह उल्लेख करना संदर्भ से बाहर नहीं होगा कि उच्च न्यायालयों ने कई मामलों में देखा है कि ट्रायल कोर्ट को संज्ञान लेने या आरोपी व्यक्तियों को तलब करने का निर्णय लेते समय काफी सतर्क रहना चाहिए, यानि जब वह धारा 204 सी.आर.पी.सी.या अन्यथा के चरण में हो। वरिष्ठ अदालतें लगातार अदालतों को कानूनी मशीनरी को चालू करते समय काफी सतर्क, सावधान, सतर्क और जागरूक रहने के लिए आगाह करती रही हैं। मामलों के उत्तर-चढ़ाव, अजीब तथ्य और स्थितियाँ कानून की व्याख्याओं को प्रभावित करती हैं और कानूनी क्षेत्र की प्रगति एवं विकास में योगदान करती हैं।

10. तय कानूनी स्थिति पर दो राय नहीं हो सकती मजिस्ट्रेट को यह तय करना होगा कि प्रथम दृष्टया कोई मामला बनता है या नहीं आरोपी व्यक्तियों को बुलाने के लिए आगे बढ़ने से पहले बाहर जाएं या नहीं। प्रथम दृष्टया मामले के परिप्रेक्ष्य का मतलब सही से समझना होगा। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां मजिस्ट्रेट को ऐसा लगता है, कि कथनों में घटित होने वाले शब्दों का शाब्दिक अर्थ, अपराध सामग्री तो होते हैं लेकिन वह उनसे उतना संतुष्ट नहीं होता । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा फियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2013) 14

एससीसी 44, में पारित निर्णय के पैरा-11 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:-

"शिकायत के स्तर पर, मजिस्ट्रेट केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों से चिंतित है और उसे केवल "प्रथम दृष्टया संतुष्ट" करना है कि क्या आरोपी के खिलाफ "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार" हैं और यह मजिस्ट्रेट का क्षेत्राधिकार नहीं है कि वह मामले के गुण-दोषों पर विस्तृत चर्चा करें। धारा 202 के तहत जांच का दायरा इस अर्थ में बेहद सीमित है कि मजिस्ट्रेट से इस स्तर पर प्रथम दृष्टया शिकायत में लगाए गए आरोपों की सच्चाई या झूठ की जांच करने की उम्मीद की जाती है ।

"

सुप्रीम कोर्ट ने "प्रथम दृष्टया संतुष्टि" पर पहुंचने के लिए इस वाक्यांश का इस्तेमाल किया है कि क्या "आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार" हैं। धारा 204 सी.आर.पी.सी. कहीं नहीं कहा गया कि यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो मजिस्ट्रेट संज्ञान लेगा और आरोपी को तलब करेगा, बल्कि धारा 204 सी.आर.पी.सी. कहता है कि यदि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है तो मजिस्ट्रेट संज्ञान ले सकता है, इसलिए मेरे विचार में प्रथम दृष्टया मामले को मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त "प्रथम दृष्टया संतुष्टि" के रूप में समझा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, मजिस्ट्रेट तभी आगे बढ़ेगा यदि उसे लगे कि इसके लिए पर्याप्त आधार है। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रस्तावित अभियुक्त को उस स्तर पर सुनवाई का कोई अधिकार होगा या बचाव में किसी भी सबूत पर विचार किया जा सकता है। इसका मतलब केवल यह है कि

मजिस्ट्रेट अपने सामने मौजूद सभी सामग्री का आकलन करेगा और यह पता लगाने के लिए अपना दिमाग लगाएगा कि क्या आगे बढ़ने और संज्ञान लेने का समय आ गया है। इस मामले को ध्यान में रखते हुए जैसा कि ऊपर कहा गया है, सुप्रीम कोर्ट ने "प्रथम दृष्टया मामला" शब्द का उपयोग करने के बजाय "प्रथम दृष्टया संतुष्टि" वाक्यांश का उपयोग करना उचित पाया है और निश्चित रूप से इस संतुष्टि को कार्य करते समय प्राप्त किया जाना चाहिए, वो भी कानून के चारों कोनों यानी धारा 200 और 202 सीआरपीसी के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया को अपनाकर। मई के विचार में, मजिस्ट्रेट शिकायत में किए गए मामले की सच्चाई या झूठ की जांच करने में शक्तिहीन नहीं है और इस शक्ति का पूरी तरह से उपयोग करने के लिए मजिस्ट्रेट को धारा 200 सीआरपीसी के तहत शिकायत और उसके गवाहों की जांच करने की अपनी भूमिका निभानी होगी, और यदि आवश्यक हो तो अधिक गवाहों को बुलाकर और उनकी जांच करके या यहां तक कि जांच का आदेश देकर आगे पूछताछ करनी होगी। जांच का संचालन शिकायतकर्ता के हाथ में नहीं छोड़ा जा सकता। इस कारण से कि उस स्तर पर, आरोपी के पास मामले में कोई कहने का अधिकार नहीं है और अदालत के पास दूसरे पक्ष को सुनने का कोई अवसर नहीं है, इसलिए वह बहुत सावधान, चौकस और सतर्क रहना चाहिए। बेशक इस अवस्था में कहानी की व्यापक संभावनाएँ या असंभाव्यताएँ देखी जा सकती हैं।

धारा 203 और 204 Cr.P.C का सापेक्ष दायरा नोट किया गया और पेप्सी फूड लिमिटेड और

अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य ; (1998) 5 एससीसी 749 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा विचार किया गया, जो इस प्रकार है:-

"आपराधिक मामले में किसी आरोपी को समन करना एक गंभीर मामला है। आपराधिक कानून निश्चित रूप से क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक कानून को लागू करने के लिए शिकायत में अपने आरोपों का समर्थन करने के लिए केवल दो गवाह लाने होंगे। अभियुक्त को बुलाने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून पर अपना दिमाग लगाया है। उसे शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति और उसके समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों की जांच करनी होगी और क्या यह शिकायतकर्ता के लिए आरोपी को दोषी ठहराने में सफल होने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को समन करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के समय मजिस्ट्रेट मूक दर्शक होता है। मजिस्ट्रेट को रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होती है और आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए या अन्यथा उत्तर पाने के लिए शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से खुद भी सवाल पूछ सकते हैं और फिर जांच कर सकते हैं कि क्या कोई अपराध प्रथम दृष्टया सभी या किसी एक अभियुक्त द्वारा किया गया है।"

सुप्रीम कोर्ट ने इस बात पर जोर दिया कि मजिस्ट्रेट को मूकदर्शक बनकर नहीं बैठना चाहिए.

11. हालाँकि जहाँ तक इस मामले का सवाल है और यह ध्यान में रखते हुए कि अदालत रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से आगे नहीं जा सकती, कुछ तथ्य सामने आए हैं, जिन्हें अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय संबंधित मजिस्ट्रेट/ अदालत को सचेत करना चाहिए था। अदालत ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि शारीरिक हमले का कोई चिकित्सीय साक्ष्य नहीं है; पीडब्लू 1 ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि जब घटना घटी तो वह अपनी जमीन पर निर्माण कार्य करा रहा था; माना कि जमीन को लेकर विवाद था; उनकी मां (पीडब्लू 1) और उनके भाई (पीडब्लू 2), जिनसे सीआरपीसी की धारा 202 के तहत पूछताछ की गई, ने शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए बयानों का समर्थन किया है और कहा है कि डॉ. दिव्या नंद यादव, शशि यादव (अपीलकर्ता संख्या 1 की पत्नी) और एक शिवा नंद ने उन्हें बेरहमी से पीटा। मात्र उन बयानों को छोड़कर, जो किसी भी चिकित्सीय साक्ष्य से पुष्ट नहीं हैं, रिकॉर्ड पर उल्लेख करने लायक कुछ भी नहीं है; दूसरी ओर संबंधित पुलिस स्टेशन से एक रिपोर्ट है जिसमें कहा गया है कि डॉ. दिव्या नंद यादव (अपीलकर्ता संख्या 1) ने शिकायतकर्ता की जमीन के पास स्थित एक जमीन खरीदी थी; अपीलकर्ताओं ने राजस्व अधिकारियों की एक टीम द्वारा अपनी भूमि की माप कराई और यह पाया गया कि शिकायतकर्ता द्वारा लगभग 2 बिस्वा भूमि पर अवैध रूप से अतिक्रमण किया गया था, जिस पर गेहूं की फसल खड़ी थी; रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्य वहां पड़ी कटी हुई गेहूं की फसल में से कुछ ले गए। इसलिए शशि यादव पत्नी डॉ. दिव्या नंद

यादव ने धारा 379, 504 और 506 आईपीसी के तहत एफआईआर मुकदमा अपराध संख्या 116/2021 दर्ज कराया; इसलिए यह शिकायतकर्ता द्वारा उनके खिलाफ गलत उद्देश्यों से झूठा मामला दर्ज कराया गया है।

12. इसके अलावा कुछ अन्य तथ्य भी इस न्यायालय के समक्ष आये हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। वर्तमान मामले की शिकायत प्रेम कुमार द्वारा डॉ. दिव्या नंद यादव, शिवानंद यादव और शशि यादव के खिलाफ दर्ज कर ली गई है यह आरोप लगाते हुए कि घटना 15.03.2021 शाम करीब 7.00 बजे घटित हुई। आश्चर्यजनक रूप से समान आरोप के साथ एक अन्य शिकायत विंध्याचल राम की है जिसमें कथित तौर पर हुई एक घटना के संबंध में दर्ज कराया गया जो 22.02.2021 को सुबह करीब 10.00 बजे हुई है और आरोप है कि यह तब हुई जब वह निर्माण कार्य शुरू कर रहे थे, तब शशि यादव उनके यहां आकर जमीन को अपना बता रही थीं और डॉ. दिव्या नंद यादव, शिवानंद और एक अन्य व्यक्ति अखिलेश शर्मा ने वहां आकर उन्हें जातिसूचक शब्दों के साथ गाली-गलौज की और शिकायतकर्ता ने यह भी बताया कि पहले भी डॉ. दिव्या नंद यादव ने शिकायत दर्ज करायी थी। उसके खिलाफ गेहूं की फसल चोरी करने का (झूठा मामला दर्ज किया गया है। विंध्याचल राम (वर्तमान शिकायतकर्ता-प्रेम कुमार के दादा) की उपरोक्त शिकायत के आधार पर, एक अन्य शिकायत केस नं. 129/2021 संशोधनवादियों के खिलाफ लंबित है, जिसमें उन्हें ठीक उसी तरह के अपराधों के लिए बुलाया गया है और डॉ.

दिव्या नंद यादव और 2 अन्य द्वारा सम्मन आदेश को चुनौती देने के लिए दायर एक और आपराधिक अपील संख्या 9201/2022 लंबित है।

13. हालांकि इस बात पर सहमति है कि अपील के चरण में, दूसरे पक्ष के पास सुनने और इंगित करने या अदालत के सामने तथ्यों को अधिक स्पष्ट रूप से लाने का अवसर है, जिसका ट्रायल कोर्ट में स्पष्ट रूप से अभाव है, इसलिए अपीलीय अदालत बेहतर तरीके से सही निष्कर्ष पर पहुंचने में सुसज्जित है। मुझे यहां सावधानी का एक शब्द अवश्य जोड़ना चाहिए। अपीलीय अदालत को उपलब्ध उपरोक्त लाभ, विशेष रूप से शिकायत के मामले में, ट्रायल कोर्ट के लिए औचित्य नहीं हो सकता है, जिसने अस्थिर आधार पर आदेश पारित करने के लिए मेहनती तरीके से अपनी भूमिका नहीं निभाई है। सबसे पहले, स्वयं प्रश्न न पूछना और सक्रिय भूमिका न निभाना, जैसा कि जांच करते समय एक मजिस्ट्रेट / अदालत से अपेक्षित होता है। दूसरे, ट्रायल कोर्ट के सामने जो भी सामग्री आई है, उसके आधार पर ट्रायल कोर्ट इस बात से संतुष्ट होगा कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं; मजिस्ट्रेट / अदालत बयानों के शाब्दिक अर्थ के आधार पर प्रथम दृष्टया मामले का निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है। डायस को एक मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश द्वारा अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए न कि किसी रोबोट द्वारा।

14. मामले का तथ्य यह है कि अदालत यांत्रिक या नियमित तरीके से आगे नहीं बढ़ेगी। यह अपना दिमाग, जिसे न्यायिक

दिमाग और विवेक भी कहा जाता है, लागू करेगी। हालांकि, अदालत/मजिस्ट्रेट दिए गए सबूतों की गहराई में नहीं जाएगा और न ही साक्ष्य मूल्य को सावधानीपूर्वक तौलेगा। इसके अलावा, अधीनस्थ अदालत के सामने "प्रथम दृष्टया संतुष्टि" पर पहुंचने में कोई अन्य बाधा नहीं है जो एक "प्रथम दृष्टया मामला" शब्द के बराबर शब्द हो सकता है।

15. मेरी राय में न्यायिक प्रक्रिया को उत्पीड़न या टालने योग्य उत्पीड़न का एक उपकरण नहीं बनना चाहिए। मेरा मानना है कि वहां संज्ञान लेने के लिए आगे बढ़ने के लिए और आरोपी व्यक्तियों को तलब करने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं थी, इसलिए आक्षेपित आदेश इस प्रकार रद्द किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 492

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा
के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 79 सन् 2011

राम प्रताप उर्फ प्रताप यादव पुनरीक्षणकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता: सुनील कुमार सिंह, जितेंद्र बहादुर सिंह, सेराज अहमद खान

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

(ए) दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 325 एवं 504 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 360 - अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर या चेतावनी के बाद रिहा करने का आदेश, धारा 361 - कुछ मामलों में विशेष कारण दर्ज किए जाने चाहिए - जहां किसी मामले में न्यायालय निपट सकता था, अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 3 - चेतावनी के बाद कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, धारा 4 - अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 - धारा 3 - चेतावनी के बाद कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, धारा 4 - अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति - यदि अभियुक्त को कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है तो जांच अधिकारी की परीक्षा आवश्यक नहीं है। (पैरा -15)

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज - सूचक के दाहिने हाथ में फ्रैक्चर पाए जाने के बाद - गैर-संज्ञेय रिपोर्ट को प्रथम सूचना रिपोर्ट में परिवर्तित किया गया - धारा 325 जोड़ी गई - न्यायालय ने फैसला सुनाया - जांच अधिकारी की जांच न करना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है, क्योंकि मौखिक, दस्तावेजी और मेडिकल साक्ष्य एक दूसरे का समर्थन करते हैं - जांच अधिकारी की जांच न किए जाने से अभियुक्त पर कोई पूर्वाग्रह नहीं - वर्ष 1998 का मामला - 25 वर्ष से अधिक समय बीत गया - अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता

लगभग पिछले ढाई दशक से मामले को झेल रहे हैं - अभियुक्त पुनरीक्षणकर्ता का कोई अन्य पूर्व या पश्चात का आपराधिक इतिहास नहीं है - पुनरीक्षणकर्ता को जेल भेजना उचित नहीं है। (पैरा-15,27)

निर्णय:- न्यायालय द्वारा पारित आदेश के दोषसिद्धि भाग में न्यायालय को कोई अवैधता, विकृति या दुर्बलता नहीं मिली। अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता को दी गई सजा में संशोधन की आवश्यकता है। पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त की दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया। उत्तर प्रदेश अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 को शामिल करने के लिए सजा को संशोधित किया गया। एक वर्ष तक शांति और अच्छे आचरण को बनाए रखने की शर्त के साथ परिवीक्षा पर रिहा किया गया। यदि उल्लंघन किया जाता है, तो पुनरीक्षणकर्ता को न्यायालय द्वारा निर्देशित समान सजा का सामना करना पड़ेगा। (पैरा-28, 29)

पुनरीक्षण आंशिक रूप से संशोधन सहित स्वीकार किया गया।(ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बिहारी प्रसाद एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, 1996 (2) एससीसी 317
2. राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य, 2003, (47) एससीसी, 1068
3. कर्नाटक राज्य बनाम मुदप्पा, (1999) 5 एससीसी 732
4. मोहम्मद मोनिर आलम बनाम बिहार राज्य, (2010) 12 एससीसी 26

5. कृष्ण देव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 735 सन् 1982

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मिस्री लाल एवं अन्य, 1982 सीआरएलजे 1420

7. सीताराम पासवान एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2005 एससी 3534

8. मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 2017 एससी 660

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता, के अधिवक्ता और अपर शासकीय अधिवक्ता को सुन और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-चतुर्थ, फैजाबाद द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण वाद वाद संख्या-82 वर्ष 1998 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.02.2010 के खिलाफ दायर किया गया है, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त को धारा 323 भ०द०वि० के तहत पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए छह महीने के साधारण कारावास और 500/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। और धारा 325 भ०द०वि० के तहत तीन साल के साधारण कारावास के साथ 1,000 रुपये के जुर्माने की सजा और साथ ही अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, फैजाबाद द्वारा आपराधिक अपील संख्या 33 वर्ष 2010 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.01.2011 में जिसके तहत अपीलीय न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय के

फैसले और आदेश की पुष्टि की है, के खिलाफ दायर की है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता श्रीमती राम रति ने थाना-हैदरगंज, फैजाबाद में प्राथमिकी दर्ज कराई कि जब उनकी पोती कुमारी कमलेश मवेशी चरा रही थी, आरोपी राम प्रताप के खेत में घुस गए, तो उसने उसकी पोती को घूंसे और थप्पड़ से पीटा। जब उसकी पोती ने उसे बताया तो वह आरोपी को फटकार लगाने के लिए उसके घर गई, आरोपियों ने उसे भी लाठी-डंडों से पीटा। उसके हो-हल्ला मचाने पर जब ग्रामीण वहां पहुंचे तो आरोपी सूचनाकर्ता को गाली देकर फरार हो गया। सूचनाकर्ता के दाहिने हाथ में चोट आई है। प्राथमिकी दर्ज की गई और जांच के दौरान, उसके दाहिने हाथ के निचले हिस्से में फ्रैक्चर पाए जाने के बाद, एन.सी.आर. को प्राथमिकी में बदल दिया गया और धारा 325 भ०द०वि० को जोड़ा गया और विवेचनाधिकारी ने धारा 323, 325 और 504 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

4. संबंधित मजिस्ट्रेट ने पूर्वोक्त धाराओं के तहत आरोप तय किए। अभियोजन पक्ष ने अपराध साबित करने के लिए निम्नलिखित गवाहों की जांच की।

अ०सा०-1	कु. कमलेश
अ०सा०-2	राम रति
अ०सा०-3	दारोगा के पी सिंह
अ०सा०-4	कॉन्सटबल राम सरन भारती
अ०सा०-5	डॉ ए के श्रीवास्तव

5. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए:

प्रदर्श क-1	मेडिकल रिपोर्ट
प्रदर्श क-2	एन सी आर की प्रति
प्रदर्श क-3	कायमी जी डी की प्रति
प्रदर्श क-4	रेडियोलाजिस्ट रिपोर्ट की प्रति

6. आरोपी का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उसने आरोपों से इनकार किया और कहा कि गवाहों ने दुश्मनी के कारण गवाही दी है। आरोपी की ओर से बचाव पक्ष का कोई सबूत पेश नहीं किया गया।

7. विचारण न्यायालय के समक्ष, यह तर्क दिया गया है कि चूंकि एन.सी.आर. की प्रति रिकॉर्ड पर नहीं है और जीडी पेश नहीं किया गया था और द०प्र०स० की धारा 155 (2) के तहत कोई आदेश रिकॉर्ड पर नहीं था, इसलिए, जांच दोषपूर्ण है और अभियुक्त संदेह के लाभ का हकदार है।

8. विचारण न्यायालय द्वारा इस तर्क का उत्तर दिया गया था कि मामला शुरू में एन.सी.आर. के रूप में दर्ज किया गया था, लेकिन फ्रैक्चर और रेडियोलाजिस्ट की रिपोर्ट के आधार पर, मामले को धारा 325, 323 और 504 भ०द०वि० में परिवर्तित कर दिया गया था और अपराध संख्या-82 वर्ष 1998 आवंटित किया गया था। यह संतोषजनक रूप से उत्तर दिया गया है कि एन.सी.आर. की कार्बन कॉपी रिकॉर्ड पर उपलब्ध थी जो भारतीय साक्ष्य

अधिनियम की धारा 65 के तहत साक्ष्य में स्वीकार्य थी।

9. अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा एक और आपति उठाई गई कि जीडी की कार्बन कॉपी रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। यह साबित हो गया है कि जीडी को पांच साल बाद हटा दिया गया है। इसलिए मूल जी.डी. की कार्बन कॉपी उसी प्रक्रिया में तैयार की जाती है, इसलिए, जीडी की कार्बन कॉपी को मूल माना जा सकता है।

10. विचारण न्यायालय के समक्ष आगे यह तर्क दिया गया था कि घटना का स्थान साबित नहीं हुआ है और तथ्यों के गवाहों के बयानों में घटना के स्थान के बारे में गंभीर विरोधाभास हैं।

तथ्य के केवल दो गवाह हैं अर्थात् अ०सा०-1, के.कमलेश और अ०सा०-2, सूचनाकर्ता, राम रति। एन.सी.आर. में लिखा गया है कि सूचनाकर्ता आरोपी को उसके घर पर फटकार लगाने जा रहा था तभी उसने उसे लाठी-डंडों से पीटना शुरू कर दिया। अ०सा०-1 ने गवाही दी है कि आरोपी ने उसके हाथ पर आघात किया था, उसने आगे गवाही दी कि अपनी पोती से जानकारी प्राप्त करने के बाद, वह आरोपी के घर नहीं गई थी। उन्होंने इस बात से इंकार किया कि उनके द्वारा विवेचनाधिकारी को ऐसा बयान दिया गया था। इस गवाह ने गवाही दी कि जब वह मैदान पर पहुंची, तो वहां कोई नहीं था। कमलेश, अ०सा०-1 ने बयान दिया है कि जब उसकी दादी ने आरोपी से पिटाई के बारे में पूछा तो खेत में पहुंचने से पहले

आरोपी ने उसकी पिटाई भी की। इस गवाह ने साफ बयान दिया है कि उसकी दादी आरोपी के घर नहीं गई थी। इस प्रकार, दोनों गवाहों के साक्ष्य से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि राम रति को आरोपी ने उसके घर और उसके खेत के बीच में पीटा था।

इस प्रकार विचारण न्यायालय ने तथ्य के दोनों गवाहों के साक्ष्य में घटना के स्थान के बारे में कोई विसंगति नहीं पाई।

11. न्यायालय के समक्ष, आगे यह तर्क भी दिया गया कि एन.सी.आर. के अनुसार, घटना लगभग 3:00 बजे हुई थी, जबकि सूचनादाता ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत कहा था कि यह घटना लगभग 4:00 बजे हुई थी।

विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि अदालत में दिया गया बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान पर प्रबल होगा।

इस न्यायालय के अनुसार, अ०सा०-2 एक अनपढ़, देहाती ग्रामीण है, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि घटना के समय, उसने घड़ी पहनी हुई थी, इसलिए, घटना के समय में एक घंटे का बदलाव महत्वहीन है और इस तरह की भिन्नता के कारण, यह नहीं कहा जा सकता है कि घटना का समय काफी हद तक बदल गया है। इस न्यायालय के अनुसार, इस तरह के बदलाव के कारण, अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध या संदेहास्पद नहीं कहा जा सकता है।

12. विचारण न्यायालय के समक्ष आगे यह तर्क दिया गया कि अ०सा०-5, डॉ. ए.के.

श्रीवास्तव के साक्ष्य साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि डॉक्टर के नाम में अंतर था।

चोट रिपोर्ट पर डॉक्टर का नाम डॉ. ए.के. श्रीवास्तव लिखा गया है जबकि आरोप पत्र के पीछे पेन की पर्ची से उनका नाम एस.के. श्रीवास्तव लिखा गया है। यह स्थापित नहीं किया गया है कि दो डॉक्टर थे, अतः केवल पेन की गलती के कारण आरोपी को कोई लाभ नहीं दिया जा सकता है।

अभियोजन पक्ष के अनुसार, जब सूचनाकर्ता राम रति अपनी पोती को पीटने पर आरोपी को फटकार लगाने गई तो उसने उसके दाहिने हाथ पर लाठी से हमला कर दिया, जिससे उसका हाथ टूट गया। यह बात डॉ. ए.के. श्रीवास्तव के साक्ष्य से भी सिद्ध हो चुकी है। आगे की चोट रिपोर्ट और एक्स-रे प्लेट भी रिकॉर्ड पर थे जो संबंधित गवाहों द्वारा साबित किए गए हैं।

आरोपी के अनुसार, गवाह दुश्मनी के कारण झूठी गवाही दे रहे थे, लेकिन वह अपने और सूचनाकर्ता के बीच किसी भी पूर्व दुश्मनी का खुलासा नहीं कर सका जो झूठे फंसाने का कारण हो सकता है।

13. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को धारा 323 और 325 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया।

14. व्यथित होकर अभियुक्त-पुनरीक्षक ने अपील क्रमांक 33 वर्ष 2010 (राम प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर की, जिसका निर्णय अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय क्रमांक

5, फैजाबाद द्वारा दिनांक 28.01.2011 के निर्णय एवं आदेश द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्ड के आदेश की पुष्टि करते हुए किया गया।

चिकित्सा साक्ष्य एक दूसरे के समर्थन में हैं। अतः विवेचनाधिकारी की जांच न किए जाने के कारण अभियोजन पक्ष पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं हुआ है।

15. अपील के दौरान, अभियुक्त-पुनरीक्षण अपीलकर्ता द्वारा एक आधार लिया गया था कि चूंकि विवेचनाधिकारी की विवेचना नहीं की गई है और आरोप पत्र साबित नहीं हुआ है, इसलिए, वह दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं है और अपील की अनुमति दी जा सकती है।

16. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि निचली दोनों अदालतों के निर्णय और आदेश तथ्यात्मक और कानूनी रूप से सही हैं और पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में कोई अन्य राय नहीं बनाई जा सकती है। इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा और अपीलकर्ता अदालत द्वारा बरकरार रखी गई, की पुष्टि की जाती है।

इस संबंध में, अपीलीय न्यायालय ने निम्नलिखित न्यायिक उदाहरणों पर भरोसा किया:

- (१) बिहारी प्रसाद और अन्य बनाम बिहार राज्य, 1996(2) एस.सी.सी. 317
- (२) राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य, 2003, (47) एसीसी, 1068

दोनों मामलों में यह माना गया है कि प्रत्येक मामले में, यदि अभियुक्त के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं है, तो विवेचनाधिकारी की परीक्षा आवश्यक नहीं है।

इस न्यायालय के अनुसार, इस मामले में, त्वरित प्राथमिकी दर्ज की गई है और सूचनाकर्ता के दाहिने हाथ पर फ्रैक्चर पाए जाने के बाद, मामले को धारा 325 भ०द०वि० में बदल दिया गया था। इस न्यायालय का विचार है कि विवेचनाधिकारी की गैर-जांच अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है क्योंकि इस मामले में मौखिक, दस्तावेजी और

17. इस मोड़ पर, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह वर्ष 1998 का मामला है और 25 साल बीत चुके हैं और आरोपी एक बूढ़ा (वरिष्ठ नागरिक) बन गया है। अभियुक्त का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है, यह घटना सूचनाकर्ता के मवेशियों द्वारा चराने के कारण अभियुक्त-पुनरीक्षक की फसल की बर्बादी के कारण गुस्से में हुई थी, इसलिए सजा के संबंध में एक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता को जेल भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा और उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया जा सकता है।

18. इस संबंध में अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी है:

(क) कर्णाटक राज्य बनाम मुदप्पा, (1999)
5 एस.सी.सी. 732,

परिवीक्षा पर जाने की अनुमति देने के नियमों
और शर्तों का उल्लंघन किया है।

इस मामले में, धारा 302 भ०द०वि० के
तहत अपराध को धारा 304 भाग II
भ०द०वि० में बदल दिया गया था।

(ख) मो. मोनिर आलम बनाम बिहार राज्य,
(2010) 12 एस.सी.सी. 26

"2. अपीलकर्ता के अधिवक्ता धारा 302 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त के बरी होने पर हमला करने की स्थिति में नहीं हैं, लेकिन वह जोरदार तर्क देते हैं कि अदालत ने धारा 304 भाग II भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराए जाने के बाद अभियुक्त को परिवीक्षा पर रिहा करने के लिए 'जर्मन' विचारों को ध्यान में नहीं रखा। क्या किसी विशेष मामले में अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का लाभ बढ़ाया जा सकता है, यह उस मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। बेशक, धारा 304 भाग II के तहत किसी अपराध के लिए अधिनियम के आवेदन के लिए कोई वैधानिक रोक नहीं है जहां अधिकतम सजा न तो मौत है और न ही आजीवन कारावास है। मामले के उस दृष्टिकोण में और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय की जांच करने पर, हम पाते हैं कि न्यायालय ने प्रासंगिक सामग्री पर विचार किया और फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों को लागू करके परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए। हम इस आदेश में कोई दुर्बलता नहीं देखते हैं कि इस न्यायालय द्वारा इस अवधि के बाद हस्तक्षेप किया जाए, खासकर तब जब कुछ भी नहीं बताया गया है कि क्या अभियुक्त ने किसी भी तरह से उसे

इस मामले में धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध को धारा 304 भाग II में बदल दिया गया था और सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को सजा काटने के लिए जेल भेजने के बजाय परिवीक्षा पर बढ़ाना उचित समझा। इस निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"8. हमने श्री सूरी की प्रस्तुतियों पर बहुत सावधानी से विचार किया है। हम दस्तावेजों से देखते हैं कि अपीलकर्ता ने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है और वर्तमान में जम्मू विश्वविद्यालय के रणनीतिक और क्षेत्रीय अध्ययन विभाग में वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत है और उसने वर्ष 1997 में यह नियुक्ति हासिल की थी। उनकी पेशे की योग्यताएं हमें भी प्रदान की गई हैं जो उनके क्षेत्र में उनकी विशेषज्ञता दिखाती हैं और रणनीतिक अध्ययन के क्षेत्र में दुनिया भर के प्रतिष्ठित संगठनों के साथ उनके सहयोग को भी दर्शाती हैं। इसलिए, हमारा विचार है कि उनका आचरण कि इस मामले में शामिल होने के बाद उनका आचरण और उपलब्धियां परिवीक्षा पर उनकी रिहाई को सही ठहराती हैं। तदनुसार, हम अपील को खारिज करते हैं लेकिन निर्देश देते हैं कि उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा तय की जाने वाली शर्तों पर

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के तहत परिवीक्षा पर रिहा किया जाएगा।

जुर्माना जमा नहीं किया गया है, जुर्माना वसूलने के लिए सभी कठोर कदम उठाएंगी।

(ग) कृष्णा देव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आपराधिक अपील संख्या-735 वर्ष 1982 में पारित दिनांक 11.08.2017 का निर्णय। इस फैसले का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"23. हम भ०द०वि० की धारा 147 और 323/149 के तहत अपीलकर्ताओं- श्रीमती जयकाली और श्रीमती भगवानदेई की सजा में भी हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अपीलकर्ता संख्या-1 को भ०द०वि० की धारा 304 भाग- II सपठित धारा 34, 147, 323/149 के तहत अपराध के लिए सजा देने के बजाय, हम अपीलकर्ता- कृष्णदेव को प्रोबेशन ऑफ ऑफेंडर एक्ट की धारा 4 का लाभ देने के बाद रिहा करना न्याय के हित में उचित समझते हैं। हम अपीलकर्ता- श्रीमती जयकाली, श्रीमती भगवानदेई के खिलाफ पारित सजा में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं, जिन्हें केवल जुर्माना भरने का निर्देश दिया गया था। अपीलकर्ता कृष्ण देव को निचली अदालत में आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है। निचली अदालत को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के अनुसार उसे रिहा करने का निर्देश दिया जाता है। निचली अदालत अपीलकर्ताओं-जयकाली और भगवानदेई से, अगर उनके द्वारा

19. उपरोक्त चर्चाओं से, यह बहुत स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को जेल भेजने के बजाय परिवीक्षा पर छोड़ा है, यहां तक कि गैर इरादतन हत्या के मामले में भी जो धारा 304 भाग II भ०द०वि० के तहत आता है। प्रस्तुत मामले में अभियुक्त को केवल धारा 323 और 325 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है, इसलिए, आरोपी पुनरीक्षणकर्ता का मामला बेहतर स्तर पर है।

20. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 और 361 पहले अपराधियों के लिए परिवीक्षा के उद्देश्य से प्रासंगिक हैं। इन दोनों खंडों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"360. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर या चेतावनी के पश्चात् निर्मुक्त करने का आदेश- (एक) जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का नहीं है, केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है, या जब इक्कीस वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति या किसी महिला को ऐसे अपराध का दोषी ठहराया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, यदि यह न्यायालय को प्रतीत होता है जिसके समक्ष उसे दोषी ठहराया गया है, अपराधी की उम्र, चरित्र या पूर्ववृत्त के संबंध में, और उन परिस्थितियों के संबंध में जिनमें

अपराध किया गया था, कि यह समीचीन है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए, तो न्यायालय उसे तुरंत किसी भी सजा के लिए सजा देने के बजाय, निदेश दें कि उसे जमानत के साथ या उसके बिना बांड में प्रवेश करने पर, ऐसी अवधि (तीन वर्ष से अधिक नहीं) के दौरान बुलाए जाने पर सजा प्राप्त करने के लिए रिहा किया जाए, जैसा कि न्यायालय निर्देश दे सकता है, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे व्यवहार का होने के लिए:

परन्तु जहाँ किसी प्रथम अपराधी को द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा सिद्धदोष ठहराया जाता है जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, तो वह उस प्रभाव के लिए अपनी राय अभिलिखित करेगा और कार्यवाहियों को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करेगा, अभियुक्त को अग्रेषित करना, या उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए जमानत लेना, ऐसे मजिस्ट्रेट, जो उप-धारा (2) द्वारा प्रदान किए गए तरीके से मामले का निपटान करेगा।

(2) जहाँ कार्यवाहियाँ उपधारा (1) द्वारा यथा उपबंधित प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत की जाती हैं, वहाँ ऐसा मजिस्ट्रेट तदु से ऐसा दंडादेश पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश दे सकेगा जो उसने पारित किया हो, यदि उसके द्वारा उस मामले की मूल रूप से सुनवाई की गई होती, और, यदि वह समझता है कि किसी बिन्दु पर आगे अन्वेषण या अतिरिक्त साक्ष्य

आवश्यक है, वह ऐसी जांच कर सकता है या स्वयं ऐसा साक्ष्य ले सकता है या ऐसी जांच या साक्ष्य बनाने या लेने का निदेश दे सकता है।

(3) किसी भी मामले में जिसमें एक व्यक्ति को चोरी, एक इमारत में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोजन, धोखाधड़ी या भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) के तहत किसी भी अपराध का दोषी ठहराया जाता है, दो साल से अधिक नहीं, कारावास या किसी भी अपराध के साथ दंडनीय केवल जुर्माना के साथ दंडनीय है और उसके खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं हुई है, न्यायालय जिसके समक्ष वह दोषी ठहराया गया है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति और अपराध की तुच्छ प्रकृति या किन्हीं आकस्मिक परिस्थितियों के संबंध में, जिसके अधीन अपराध किया गया था, उचित दण्ड देने के बजाय उसे उचित दण्ड देने के बाद रिहा कर दे।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय किया जा सकेगा।

(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है तब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय अपील पर, जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार हो, या पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, ऐसे आदेश को रद्द कर सकेगा और

उसके बदले में विधि के अनुसार ऐसे अपराधी को दण्डादेश दे सकेगा: परन्तु इस उपधारा के अधीन उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उस न्यायालय द्वारा दी गई सजा से अधिक दंड नहीं देगा जिसके द्वारा अपराधी को दोषी ठहराया गया था।

(6) धारा 121, 124 और धारा 373 के उपबंध, जहाँ तक हो सके, इस धारा के उपबन्धों के अनुसरण में प्रस्तावित जमानतदारों की दशा में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन किसी अपराधी को रिहा करने का निदेश देने से पूर्व, इस बात से संतुष्ट होगा कि किसी अपराधी या उसकी जमानतदार (यदि कोई हो) का उस स्थान पर निवास या नियमित कब्जे का नियत स्थान है, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है।

(8) यदि वह न्यायालय जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है या कोई न्यायालय जो अपराधी से उसके मूल अपराध के संबंध में निपट सकता था, का समाधान हो जाता है कि अपराधी अपनी अभिस्वीकृति की किन्हीं शर्तों का पालन करने में असफल रहा है तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिये वारंट जारी कर सकेगा।

(9) कोई अपराधी, जब ऐसे किसी वारंट पर पकड़ा जाता है, वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष तुरंत लाया जाएगा, और

ऐसा न्यायालय या तो उसे तब तक हिरासत में भेज सकता है जब तक कि मामले की सुनवाई न हो जाए या उसे सजा के लिए उसके उपस्थित होने पर पर्याप्त जमानतदार के साथ जमानत के लिए स्वीकार कर सकता है और ऐसा न्यायालय, मामले की सुनवाई के बाद, सजा सुनाएंगे।

(10) इस धारा की कोई बात अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 वर्ष 1958), या बालक अधिनियम, 1960 (60 वर्ष 1960) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों को प्रभावित नहीं करेगी।

361. कुछ मामलों में दर्ज किए जाने वाले विशेष कारण - जहां किसी भी मामले में न्यायालय से निपटा जा सकता था, - (क) धारा 360 के तहत या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 वर्ष 1958) के प्रावधानों के तहत एक आरोपी व्यक्ति; या (बी) बाल अधिनियम, 1960 (60 वर्ष 1960) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय लागू किसी अन्य कानून के तहत एक युवा अपराधी, लेकिन ऐसा नहीं किया है, यह अपने फैसले में ऐसा नहीं करने के विशेष कारणों को दर्ज करेगा।

21. "अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958" के नाम से इस विषय पर एक केंद्रीय कानून है, प्रासंगिक धारा 3 और 4 इसके तहत निकाली गई हैं: -

"3. कुछ अपराधियों को चेतावनी के पश्चात् रिहा करने की न्यायालय की शक्ति- जब कोई

व्यक्ति भारतीय दंड संहिता की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 (45 वर्ष 1860) के अधीन दंडनीय अपराध करने का दोषी पाया जाता है या कोई ऐसा अपराध जो दो वर्ष से अनधिक कारावास से दंडनीय है, या जुर्माने के साथ, या दोनों के साथ, भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून के तहत, और उसके खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है और जिस अदालत द्वारा व्यक्ति को दोषी पाया जाता है, उसकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा करना समीचीन है, फिर, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे किसी दंड के लिए दण्डित करने या धारा 4 के अधीन अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने के बजाय, सम्यक चेतावनी के पश्चात् उसे रिहा कर सकेगा।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के खिलाफ पिछली दोषसिद्धि में इस धारा या धारा 4 के तहत उसके खिलाफ किया गया कोई पूर्व आदेश शामिल होगा।

(1) जब कोई व्यक्ति कोई ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और न्यायालय जिसके द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, फिर, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य

विधि में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे किसी दंड के लिए तुरंत दण्डित करने के बजाय यह निदेश दे सकेगा कि उसे बांड में प्रवेश करने पर, जमानत सहित या उसके बिना, ऐसी अवधि के दौरान बुलाए जाने पर उपस्थित होने और दण्ड प्राप्त करने के लिए, तीन वर्ष से अनधिक नहीं, रिहा किया जाए; जैसा कि न्यायालय निदेश दे सकता है, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे व्यवहार का होने के लिए: बशर्ते कि अदालत किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश नहीं देगी जब तक कि यह संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसकी जमानत, यदि कोई हो, का उस स्थान पर निवास या नियमित कब्जे का एक निश्चित स्थान है जिस पर अदालत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है या जिसमें अपराधी के दौरान रहने की संभावना है वह अवधि जिसके लिए वह बंधन में प्रवेश करता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करने से पहले, न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(3) जब उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश किया जाता है तब न्यायालय यदि यह राय रखता है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है तो इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निदेश दिया जाएगा कि अपराधी ऐसी अवधि के दौरान आदेश में, एक वर्ष से कम नहीं होने के कारण, नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में रहेगा, जैसा कि उसमें निर्दिष्ट

किया जा सकता है, और इस तरह के पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें लगा सकता है जो अपराधी के उचित पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझती हैं।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाले न्यायालय से अपराधी से, रिहा होने से पहले, जमानतदारों के साथ या उसके बिना, ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों और निवास, नशीले पदार्थों से परहेज या किसी अन्य विषय के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करने की अपेक्षा करेगा, जो विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा एक ही अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के कमीशन को रोकने के लिए लागू करना उचित समझें।

(5) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश के निबन्धन और शर्तें स्पष्ट करेगा और पर्यवेक्षण आदेश की एक-एक प्रति प्रत्येक अपराधी, जमानतदारों, यदि कोई हों, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तुरंत उपलब्ध कराएगा।

22. इस विषय पर "उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938" नामक एक और विधान है। अधिनियम की धारा 3 और 4 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"3. किसी मामले में जिसमें कोई व्यक्ति चोरी, बेईमानी, दुर्विनियोजन या धोखाधड़ी के अपराधों का, जो भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय है, या किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो दो वर्ष से अनधिक कारावास

से दंडनीय है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं की जाती है, तो वह न्यायालय, जिसके द्वारा वह दोषी पाया जाता है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए और अपराध की तुच्छ प्रकृति या किन्हीं आकस्मिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसके अधीन अपराध किया गया था, उसे किसी दण्ड के लिए दण्डित करने के स्थान पर उचित दण्ड देने के स्थान पर उसे रिहा कर दे।

4. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति-(1) जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, यदि यह उस अदालत को प्रतीत होता है जिसके समक्ष उसे दोषी ठहराया गया है, उम्र के संबंध में, (2) अपराधी के चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति और उन परिस्थितियों के लिए जिनमें अपराध किया गया था कि यह समीचीन है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए, न्यायालय उसे तुरंत किसी भी दंड के लिए सजा देने के बजाय, निर्देश दे सकता है कि उसे बांड में प्रवेश करने पर रिहा कर दिया जाए, जमानत के साथ या उसके बिना, ऐसी अवधि के दौरान बुलाए जाने पर उपस्थित होने और प्राप्त करने के लिए जो तीन वर्ष से अनधिक हो और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे व्यवहार का होने के लिए:

परन्तु न्यायालय इस धारा के अधीन किसी अपराधी की रिहाई का निदेश तब तक नहीं देगा जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाए कि अपराधी, या उसके जमानतदार का उस स्थान पर निवास और नियमित कब्जे का एक नियत स्थान है, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है, या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है:

परन्तु यह भी कि यदि इक्कीस वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता के अधीन किसी अपराध के लिए या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन इस निमित्त विहित किन्हीं अन्य अधिनियमितियों के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है, जो छह मास से अनधिक कारावास से दंडनीय है तो न्यायालय इस धारा के अधीन तब तक कार्यवाई करेगा जब तक कि विशेष कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित न कर लिया जाए, ऐसा करना उचित नहीं समझता।

(दो) जहां उपधारा (1) के अधीन रिहा किए जाने का आदेश दिया गया अपराधी चौबीस वर्ष से कम आयु का है, वहां न्यायालय यह निदेश देते हुए पर्यवेक्षण आदेश दे सकेगा कि ऐसा अपराधी ऐसे परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में होगा जिसका नाम उसमें विनिर्दिष्ट अवधि के दौरान आदेश में दिया जाए और ऐसे पर्यवेक्षण को प्राप्त करने के लिए ऐसी अन्य शर्तें अधिरोपित की जाए जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं:

परन्तु इस प्रकार विनिर्दिष्ट अवधि उस तारीख से आगे नहीं बढ़ेगी, जिस दिन न्यायालय की राय में, अपराधी पच्चीस वर्ष की आयु प्राप्त करेगा।

(3) उपधारा (2) के अधीन आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी से अपेक्षा करेगा कि वह रिहा किए जाने से पहले, जमानतदारों के साथ या उसके बिना, निवास के संबंध में शर्त का पालन करे, मादक पदार्थों से परहेज और किन्हीं अन्य विषयों के संबंध में, जैसा कि न्यायालय मामले की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए अधिरोपित करना उचित समझे।

(4) उपधारा (2) के अधीन आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी और जमानतदारों, यदि कोई हो, को लिखित रूप में एक नोटिस प्रस्तुत करेगा जिसमें बांड की शर्तों को सरल शब्दों में बताया जाएगा।

इन विधानों का अवलोकन करने से विधि के छात्र की मनःस्थिति भ्रमित हो जाएगी। ये सभी कानून एक ही विषय से संबंधित हैं और पहली नजर में एक-दूसरे का अतिक्रमण करते दिखते हैं। बारीकी से देखने पर, कोई भी यह प्राप्त कर सकता है कि संहिता की धारा 360 केवल उन व्यक्तियों से संबंधित है जो इक्कीस वर्ष से कम आयु के नहीं हैं, जिन्हें जुर्माने से दंडनीय अपराध के लिए या सात साल या उससे कम की अवधि के कारावास के लिए दोषी ठहराया गया है, या जब इक्कीस वर्ष से

कम उम्र के किसी व्यक्ति या किसी महिला को ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और कोई भी पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और उसके द्वारा किए गए अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, परिवीक्षा पर जारी की जा सकती है। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का दायरा बहुत व्यापक है क्योंकि यह किसी भी व्यक्ति पर लागू होता है जो ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। अगर मैं द०प्र०स० की धारा 360 में गहराई से देखता हूँ तो हम पाएंगे कि उप-धारा (10) में यह प्रावधान किया गया है कि इस धारा में कुछ भी अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावित नहीं करेगा।

23. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मिश्री लाल और अन्य, 1982 सीआरएलजे 1420 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"26. ... उत्तर प्रदेश में धारा 360 के आवेदन को वर्ष 1975 के एक अध्यादेश द्वारा हटा दिया गया था। अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया और आपराधिक दंड संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, संख्या-16 वर्ष 1976 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। इस अधिनियम को 30-4-1975 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और इसे उत्तर प्रदेश असाधारण राजपत्र दिनांक 1-5-1976 में प्रकाशित

किया गया। इस अधिनियम की धारा 12 ने अध्यादेश को निरस्त कर दिया और यह निर्धारित किया कि इस तरह के निरसन के बावजूद, अध्यादेश के तहत की गई कोई भी बात या की गई कोई कार्रवाई इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत की गई या की गई मानी जाएगी जैसे कि यह अधिनियम 28 नवंबर, 1975 को लागू हुआ था। विचारण न्यायाधीश ने 2-2-1976 को मामले का फैसला किया। संशोधनकारी अधिनियम सं० 16 वर्ष 1976 की धारा 10 में संहिता की धारा 484 में संशोधन किया गया और खंड (घ) के पश्चात् निम्नलिखित खंड (ड) अंतःस्थापित किया गया:-

(ड) ... संयुक्त प्रांत प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1938..... उत्तर प्रदेश राज्य में लागू रहेगा। और तदनुसार, इस संहिता की धारा 360 के उपबंध उस राज्य को लागू नहीं होंगे और धारा 361 के उपबंध उस राज्य में प्रवृत्त तत्स्थानी अधिनियम के प्रति निर्देशों द्वारा उसमें नामित केन्द्रीय अधिनियमों के प्रतिस्थापन या संदर्भ के साथ लागू होंगे।

धारा 361 द०प्र०स० में कहा गया है कि जहां किसी भी मामले में अदालत धारा 360 के तहत या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के तहत आरोपी व्यक्ति या बाल अधिनियम, 1960 या उपचार के लिए लागू किसी अन्य कानून के तहत एक युवा अपराधी से निपट सकती है, युवा अपराधियों का

प्रशिक्षण या पुनर्वास, लेकिन ऐसा नहीं किया है, यह अपने फैसले में ऐसा न करने के विशेष कारणों को दर्ज करेगा।

यह ऊपर उल्लिखित धारा 484 के खंड (ई) सपठित इस प्रावधान से इस प्रकार है, न्यायालय को उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 के प्रावधानों का लाभ नहीं देने के लिए विशेष कारणों को दर्ज करना आवश्यक है।

24. इस प्रकार, यूपी प्रोबेशन ऑफ फर्स्ट ऑफेंडर्स एक्ट के प्रावधानों का पालन भौगोलिक क्षेत्र में किया जाएगा, जहां इसे लागू किया गया है, न कि धारा 360 द०प्र०स० का। इस तरह किसी विशेष क्षेत्र में परिवीक्षा अधिनियम का प्रवर्तन, इस प्रकार उस विशेष क्षेत्र में संहिता की धारा 360 के प्रावधानों की प्रयोज्यता को बाहर करता है, हालांकि यह न्यायालय का बाध्य कर्तव्य होगा कि वह इस बात पर विचार करे कि क्यों न धारा 361 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए अपराधी अधिनियम के परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने के लिए आगे बढ़ाया जाए।

25. सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य में अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3534 माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को मामले की परिस्थितियों, अपराध

की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होगा। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, पीड़ित पर अपराध के प्रभाव के बारे में यथार्थवादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ उपबंधों में सन्निहित सीमा के अध्यधीन है और हो सकता है शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह विवेकाधिकार न्यायालय में निहित है कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपराधी को रिहा किया जाए या नहीं। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत शक्तियां न्यायालय के पास निहित होती हैं जब कोई व्यक्ति किए गए अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है और यदि न्यायालय यह सोचता है कि अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय द्वारा अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी और संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील की सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

26. मो. हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 660,

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी: -

"20. ... मैं रतन लाल बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444. सुब्बा राव,, बहुमत के लिए बोलते हुए, इस प्रकार कहा: -

"यह अधिनियम पेनोलॉजी के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक कानून का उद्देश्य व्यक्तिगत अपराधी को दंडित करने की तुलना में उसे सुधारना अधिक है। मोटे तौर पर कहा गया है, अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से ऊपर के अपराधियों और उन अपराधियों को अलग करता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास के साथ दंडनीय अपराध करने के दोषी हैं और जो कम अपराध के दोषी हैं। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को अधिनियम के उपयुक्त उपबंधों में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए, उन्हें चेतावनी के बाद या अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेकाधिकार दिया जाता है, वर्ष 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को उन्हें कारावास की सजा न देने का आदेश जारी किया जाता है जब तक कि इस बात का समाधान न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों के संबंध में; अपराध की प्रकृति और अपराधियों के चरित्र सहित, अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।

27. यह वर्ष 1998 का मामला है और 25 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। यह घटना वर्ष 1998 में हुई थी। आरोपी पुनरीक्षणकर्ता लगभग पिछले ढाई दशकों से इस मामले में पीड़ित है और आरोपी पुनरीक्षणकर्ता का कोई अन्य पूर्व या बाद का आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। अतः पुनरीक्षक को जेल भेजना उचित नहीं होगा।

28. जहां तक दोषसिद्धि भाग का संबंध है, इस न्यायालय को निचली अदालतों द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, विकृति या दुर्बलता नहीं मिलती है, लेकिन ऊपर की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता को दी गई सजा में संशोधन की आवश्यकता है।

29. संशोधन को आंशिक रूप से निम्नलिखित संशोधनों के साथ अनुमति दी जाती है: -

29.1. निचली अदालतों द्वारा अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है। पुनरीक्षक-अभियुक्त की सजा को इस धुन में संशोधित किया जाता है कि उसे यूपी प्रोबेशन ऑफ ऑफेंडर एक्ट की धारा 4 का लाभ प्रदान किया जाता है और उसे इस शर्त पर परीक्षा पर रिहा किया जाता है कि वह आज से एक वर्ष के लिए शांति और अच्छे आचरण का पालन करेगा और निचली अदालत के समक्ष अपने व्यक्तिगत बांड के साथ 10,000 रुपये की दो जमानत दाखिल करेगा और इस आशय का एक वचन भी देगा कि वह आज से एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति और अच्छा व्यवहार बनाए रखेगा। उपर्युक्त

किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में, पुनरीक्षणकर्ता को निचली अदालतों द्वारा निर्देशित सजा से गुजरना होगा। उपरोक्त बांड आज से एक महीने के भीतर जिला परीक्षा अधिकारी, अयोध्या, यूपी के समक्ष संबंधित अदालत को सूचित करने के तहत पुनरीक्षण-अभियुक्त द्वारा दायर किए जाएंगे।

30. आदेश की प्रमाणित प्रति अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय एवं जिला परीक्षा अधिकारी, अयोध्या, उ.प्र. को भी भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 503

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 423 सन् 1993

राकेश एवं अन्य ... पुनरीक्षणकर्तागण
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता: श्री वी.के. शर्मा, श्री सुरेन्द्र कुमार त्रिपाठी, श्री सुशील कुमार चतुर्वेदी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: अपर शासकीय अधिवक्ता

(ए) दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 149, 436, 427 एवं 452 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण,

धारा 435, 436 - यदि किसी संपत्ति को 100 रुपए या उससे अधिक की क्षति पहुंचाई जाती है तो अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 435 के तहत दंडित किया जाएगा - यदि आग या किसी विस्फोटक पदार्थ से किसी इमारत को नुकसान पहुंचाया गया है, जिसका आमतौर पर पूजा स्थल या मानव आवास या संपत्ति की अभिरक्षा के स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है, तो आरोपी को भारतीय दंड संहिता की धारा 436 के तहत दंडित किया जाएगा - आकस्मिक गवाह - जब घटनास्थल, साइट प्लान या अन्य सामग्री और अन्य वस्तुनिष्ठ निष्कर्षों का संबंध हो तो जांच अधिकारी से पूछताछ न करना प्रासंगिक है - जांच अधिकारी से पूछताछ न किए जाने के कारण यदि कुछ मामलों में आरोपी को पूर्वाग्रह होता है, तो अदालत आरोपी को संदेह का लाभ देगी। 22,27,28)

सूचनादाता अपनी झोपड़ी में मौजूद - कथित अभियुक्त व्यक्तियों ने झोपड़ी में आग लगाई - कोई पूर्वाग्रह नहीं - प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज - विचारण न्यायालय ने सभी आरोपियों को दोषी पाया और सजा सुनाई - आदेश को आपराधिक अपील में चुनौती दी गई - आंशिक रूप से अनुमति दी गई - दोषियों ने पुनरीक्षण की अपील की - कथित झोपड़ी नजूल भूमि की है - स्वामित्व का सबूत नहीं दे सकते - शिकायत के बाद आरोपी ने झोपड़ी नहीं हटाई - पालिका ने इसे मौके पर ही हटा दिया - आग लगाने का कोई सवाल ही नहीं - गवाहों के शरीर पर कोई आग से चोट नहीं - कोर्ट के मन में संदेह पैदा करता है - पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा

कथित घटना के बारे में - जांच अधिकारी की जांच नहीं की गई - नमूने या राख के कोई सबूत एफएसएल को नहीं भेजे गए - विचारण न्यायाधीश ने पीडब्लू-4 के साक्ष्य को रिकॉर्ड किया - मामले की जानकारी न होने के बावजूद उप निरीक्षक की लिखावट और हस्ताक्षर को मान्यता दी - औपचारिकताएं पूरी कीं। (पैरा-5,6,15,19,21)

निर्णय: अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे मामले को साबित नहीं कर सका; पुनरीक्षणकर्तागण को संदेह का लाभ प्राप्त है, जिससे परीक्षण और अपीलीय अदालतों के दोषसिद्धि को रद्द किया जाता है। (पैरा - 31,32)

पुनरीक्षण की अनुमति (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537
2. दहारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2013 एससी 308
3. श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2012 एससी 3539
4. राठा जेना बनाम उड़ीसा राज्य, (1986) 1 अपराध 299
5. राजवा केबट बनाम बिहार राज्य, 1988 सीआरएलजे 1288
6. नगीना शर्मा बनाम बिहार राज्य, 1991 सीआरएलजे 1195 (पटना)
7. जशमेरो बनाम पंजाब राज्य, 1980 सीआरएलजे (एनओसी) 46 (पी एंड एच)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक पुनरीक्षण भा.दं.सं. की धारा 149, 436, 427, 452 के तहत सत्र परीक्षण संख्या 166/1992 (राज्य बनाम राकेश और अन्य) में सहायक सत्र न्यायाधीश - IV, आगरा द्वारा पारित निर्णय तथा दोषसिद्धि और सजा के आदेश दिनांक 29.10.1992 के साथ-साथ आपराधिक अपील संख्या 61/1992 (राकेश और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य) में अपर सत्र न्यायाधीश-IV, आगरा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 27.03.1993 के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है। परीक्षण न्यायाधीश ने सभी आरोपियों को भा.दं.सं. की धारा 436 सहपठित धारा 149 के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई और प्रत्येक को साढ़े तीन साल के कठोर कारावास की सजा, सुनाई, भा.दं.सं. की धारा 452 सहपठित धारा 149 के तहत प्रत्येक को छह महीने का सश्रम कारावास, भा.दं.सं. की धारा 427 सहपठित धारा 149 के तहत उन्हें तीन-तीन महीने के कठोर कारावास से दंडित करने का निर्देश दिया। यह भी निर्देश दिया गया कि सभी सजाएं एक साथ चलेंगी।

2. आरोपी वीरू के संबंध में अपील आंशिक रूप से स्वीकार कर ली गई थी और भा.दं.सं. की धारा 452 सहपठित धारा 149 के तहत दोषसिद्धि और सजा को भी रद्द कर दिया गया था।

3. दोनों आदेशों से व्यथित होकर दोषी अभियुक्तों ने इस पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी

है। इस पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त संशोधनवादी संख्या 6, कलुआ की मृत्यु हो गई थी और संशोधनवादी संख्या 6 के संबंध में यह संशोधन समाप्त कर दिया गया है और संशोधनवादी संख्या 1 से 5 के संबंध में भी यही बात कायम है।

4. संशोधनवादियों ने यह आधार लिया है कि इस मामले में जांच अधिकारी (आईओ) की जांच नहीं की गई है, रिकवरी मेमो प्रमाणित नहीं हुआ है, किसी स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की गई है, विवादित भूमि नजूल भूमि थी और सूचक द्वारा स्थापित अस्थायी झोपड़ी को नजूल विभाग / नगर महापालिका द्वारा पहले ही हटा दिया गया था, नक्शा नजरी प्रमाणित नहीं किया गया है। भा.दं.सं. की धारा 436 नहीं बनती है क्योंकि कथित घटना एक झोपड़ी में की गई बताई गई है। गवाह अत्यधिक विभक्त गवाह होते हैं और उनके बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और इससे भी अधिक उनके बयान स्व- विरोधाभासी भी होते हैं। बताया जाता है कि सूचक का पति पीडब्लू-2 बंशी घटना के तुरंत बाद मौके पर पहुंच गया था। वह एक आकस्मिक गवाह था। कथित गवाहों की उपस्थिति स्थापित नहीं की गई है। एक आरोपी वीरू को दोषमुक्त कर दिया गया है। इसलिए, पुनरीक्षण को अनुमति दी जानी चाहिए और परीक्षण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए आक्षेपित निर्णयों और दोषसिद्धि और सजा के आदेशों को भी रद्द कर दिया जाना चाहिए।

5. संक्षेप में, प्रकरण के तथ्य यह है कि दिनांक 17.04.1988 को प्रातः लगभग 08:30

बजे जब सूचक श्रीमती विद्यावती ग्राम जगनपुर स्थित अपनी झोपड़ी में मौजूद थीं तथा उनके पति घर से बाहर गये हुए थे, तब अभियुक्तगण राकेश, रवि, वीरू, नौबत, हरवीर, कल्लू तथा कलुआ सहित 10-12 लोग उसकी झोपड़ी पर आए और उसे खाली करने का निर्देश दिया। वह उसमें मवेशी बांध रही थी। आरोपी का इरादा झोपड़ी की जमीन से होकर गुजरने का था। सभी आरोपियों ने झोपड़ी में आग लगा दी, जिससे झोपड़ी राख हो गई और उसके बर्तन व नकदी आदि जल गए। उसके मवेशियों को इकट्ठा किया गया और भागने के लिए प्रेरित किया गया। इस घटना को नत्थी, रजनी और कुछ अन्य लोगों ने देखा। चार हजार रुपये का नुकसान हुआ। वर्तमान एफआईआर 17.04.1988 को सुबह 10:30 बजे पुलिस थाना न्यू आगरा में दर्ज की गई थी। सहायक सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्यों को दर्ज करने और उनकी उचित गुण दोष विवेचना करने बाद सभी आरोपियों को दोषी पाया और उन्हें दोषी ठहराया और तदनुसार सजा सुनाई।

6. परीक्षण न्यायालय के आदेश को उपरोक्त आपराधिक अपील में चुनौती दी गई थी जिसे ऊपर बताए अनुसार आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी। व्यथित होकर दोषियों द्वारा इस पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी गई है।

7. इस मामले में कुछ गवाह यानी पीडब्लू-1, विद्यावती, सूचक; पीडब्लू-2, बंशी - सूचक का पति; पीडब्लू-3, रजनी - सूचक की बेटी, पीडब्लू - 4, प्रधान आरक्षी, देश राज खन्ना - द्वितीयक साक्ष्य की जांच की गई है।

8. पीडब्लू-1, श्रीमती विद्यावती सूचक ने गवाही दी है कि घटना तिथि एवं समय पर अभियुक्तगण झोपड़ी खाली कराना चाहते थे जब उसने झोपड़ी खाली नहीं की तो उन्होंने झोपड़ी में आग लगा दी जिससे 2,000/- रुपये, 17 कि.ग्रा. अनाज, 30 कि.ग्रा. चोकर (चूनी) जल गई। उन्होंने एफआईआर दर्ज कराई थी। उसने लिखित शिकायत प्रदर्शक-1 पर अपने अंगूठे के निशान को पहचान लिया।

9. पीडब्लू-2, बंशी ने गवाही दी है कि घटना के समय वह दूध बांटने गया था। जैसे ही वह वापस लौटा तो उसने देखा कि उसकी झोपड़ी जल रही है और लोग वहां से भाग रहे हैं। उसके मुताबिक, जब आरोपी भाग रहे थे तो उन्हें पहचान लिया गया।

10. पीडब्लू- 3, रजनी ने बयान दिया है कि घटना के समय वह चाय बना रही थी जब आरोपी आए और बाहर आने का निर्देश दिया और झोपड़ी में आग लगाने की धमकी दी। जब उसने मना किया तो आरोपियों ने झोपड़ी में आग लगा दी। आग लगने से वह और उसकी मां बाहर आ गईं, जिससे करीब 70 कि.ग्रा. अनाज, 40 कि.ग्रा. चोकर और दो हजार रुपये नकद, किताबें और दो भगोना जल गये।

11. पीडब्लू - 4, प्रधान आरक्षी, देश राज खन्ना ने चिक एफआईआर, जीडी मानचित्र और आरोप पत्र को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रमाणित किया है। उन्होंने इस आधार पर द्वितीयक साक्ष्य प्रमाणित किया है कि उन्होंने एसआई राजाराम और जगदीश नारायण शर्मा

के साथ काम किया था और उनकी लिखावट और हस्ताक्षर को पहचानते हैं।

12. अभियोजन पक्ष ने औपचारिक गवाहों को बुलाने की कोशिश नहीं की और साक्ष्य को बंद कर दिया, उसके बाद दं. प्र.सं. की धारा 313 के तहत आरोपी व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए, जिसमें आरोपी व्यक्तियों ने दावा किया कि झोपड़ी की भूमि नजूल भूमि की थी। आरोपियों ने नगर महापालिका से शिकायत की थी, जिस पर झोपड़ी पहले ही हटा दी गई थी। आरोपी व्यक्तियों के अनुसार कथित घटना के समय कथित घटना स्थल पर कोई झोपड़ी नहीं थी।

13. दलीलें सुनने के बाद, आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराया गया था और तदनुसार सजा सुनाई गई थी और अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी और आंशिक रूप से खारिज कर दिया गया था। इसलिए, इस संशोधन को प्राथमिकता दी गई है।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

15. इस मामले का निर्णय निम्नानुसार किया जाता है:-

15.1.(i) इसे अभियोजन पक्ष में स्वीकार कर लिया गया है कि कथित झोपड़ी की भूमि नजूल भूमि की थी। अभियोजन पक्ष सूचक के पक्ष में स्वामित्व का कोई सबूत पेश नहीं कर सका है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा की गई

शिकायत के बाद नगर महापालिका द्वारा कथित झोपड़ी को नहीं हटाया गया है। बचाव पक्ष का यह स्पष्ट मामला है कि आरोपी व्यक्तियों की शिकायत पर नगर महापालिका ने कार्रवाई की थी और झोपड़ी को हटा दिया था और वह मौके पर नहीं थी, इसलिए कथित झोपड़ी में आग लगाने का कोई सवाल ही नहीं उठता है।

15.2. संशोधनवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि कथित झोपड़ी वहां थी और आग लगाई गई थी, तो कुछ तस्वीरें या एफएसएल रिपोर्ट प्राप्त की गई होती और जली हुई वस्तुओं को भौतिक प्रदर्श के रूप में पेश किया गया होता और न्यायालय में परीक्षण के दौरान प्रमाणित किया गया होता।

15.3.(ii) पीडब्लू-2, बंशी आकस्मिक गवाह था। वह कब घर से निकल कर दूध बांटने गया और कब लौटा, इसका पता नहीं चल पाया है।

15.4. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि पीडब्लू-2 एक आकस्मिक गवाह था और उसने घटना नहीं देखी थी। उन्होंने बस अपनी पत्नी और बेटी का संस्करण दोहराया है। इस निष्कर्ष को इस तथ्य से समर्थन मिलता है कि उसने आरोपी व्यक्तियों को रोकने और आग बुझाने का कोई प्रयास नहीं किया था।

15.5. (iii) अभियोजन पक्ष के अनुसार, सभी आरोपियों ने झोपड़ी में आग लगा दी, लेकिन पीडब्लू- 3 रजनी ने गवाही दी कि केवल

राकेश ने झोपड़ी में आग लगाई थी। इस प्रकार शिकायत के कथन, बाकी गवाहों के साक्ष्य और पीडब्लू-3, रजनी के साक्ष्य के बीच बहुत अंतर है और इस प्रकार पीडब्लू-3 का बयान भी स्व-विरोधाभासी है। यह स्थापित नहीं है कि आरोपी व्यक्तियों ने घटना स्थल पर भा. दं.सं. की धारा 436 के तहत अपराध करने का मन बनाया था। यदि तर्क के लिए अभियोजन की कहानी को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए, तो इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि बाकी अभियुक्तों को यह पता था कि अभियुक्त राकेश के पास आग लगाने के लिए कोई माचिस की तीली थी। पीडब्लू-1 और पीडब्लू-3 के अनुसार उनके सामने झोपड़ी में आग लगाई गई थी। ऐसे में उन्हें तो पता ही होगा कि उनकी झोपड़ी कैसे और किस विधि से जली है। क्या झोपड़ी पर कोई विस्फोटक पदार्थ फेंका गया था या सिर्फ माचिस की तीली से आग जलाई गयी थी। इसका भी कहीं उल्लेख नहीं है और इसका कोई साक्ष्य नहीं है कि जब अभियुक्तों ने झोपड़ी में आग लगा दी तो सूचक और उसकी बेटी ने उन्हें रोका क्यों नहीं। आग बुझाने का प्रयास क्यों नहीं किया गया और तो और जब घटना के तुरंत बाद सूचक का पति मौके पर पहुंच गया था तो उसने आग बुझाने का प्रयास क्यों नहीं किया। यह साक्ष्य में नहीं आया है कि सूचक, उसकी बेटी या उसके पति ने आग बुझाने और झोपड़ी को बचाने की कोशिश की थी जबकि उन्हें आरोपी व्यक्तियों द्वारा जबरन नहीं रोका गया था।

15.6.(iv) परीक्षण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय ने गवाहों के साक्ष्य को वेदवाक्य के

रूप में स्वीकार किया है, जबकि वे सूचक के परिवार के सदस्य हैं। वे सभी आरोपी व्यक्तियों के शत्रु थे, इसलिए, तथ्य के गवाहों के बयान सावधानीपूर्वक और सतर्क जांच के बिना स्वीकार नहीं किए जाएंगे। उस स्थिति में संशोधनवादियों की दोषसिद्धि और सजा को दर्ज करने से पहले अन्य स्वतंत्र साक्ष्यों से उनकी पुष्टि आवश्यक थी।

16. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537; दहारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2013 एससी 308; और श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2012 एससी 3539 में शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे मामले में, न्यायालय को ऐसे इच्छुक गवाहों के साक्ष्य का विश्लेषण और स्वीकार करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाहों की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तभी ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराया जा सकता है।

17. इस मामले में न तो कोई दस्तावेजी या भौतिक साक्ष्य और न ही नत्थी जैसे स्वतंत्र गवाहों और मौके पर मौजूद अन्य व्यक्तियों के साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध हैं। अभियोजन पक्ष ने गवाहों नत्थी और मौके पर मौजूद अन्य व्यक्तियों से पूछताछ करने की कोशिश नहीं की। ऐसी परिस्थिति में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 (जी) के तहत अभियोजन के खिलाफ धारणा बनती है और यह माना जाएगा कि स्वतंत्र गवाह अभियोजन और सूचक के पक्ष में झूठ बोलने

के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए उनकी जांच नहीं की गई।

18. ऐसा मामला नहीं है कि आरोपी व्यक्तियों ने स्वतंत्र गवाहों को अपने पक्ष में कर लिया, इसलिए वे उनके खिलाफ गवाही देने के लिए तैयार नहीं थे।

19. उपरोक्त चर्चा से यह स्थापित हो गया है कि पीडब्लू- 1 से 3 आरोपी व्यक्तियों के शत्रु थे, हालांकि आरोपियों के साथ गवाहों की दुश्मनी उनकी गवाही को अस्वीकार करने का आधार नहीं है, अगर उचित जांच पर ऐसे गवाहों की गवाही विश्वसनीय पाई जाती है। हालांकि, ऐसे गवाहों द्वारा अपराध में कुछ व्यक्तियों को गलत तरीके से शामिल करने या कुछ आरोपियों की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की संभावना को ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसा मामला नहीं है कि गवाह पीडब्लू-1 से 3 तक ने आग बुझाने की कोशिश की हो। यदि किसी व्यक्ति के घर में आग लग जाती है तो वह उस घर को बचाने की पूरी कोशिश करता है। सूचक और गवाहों का ऐसा शत्रुतापूर्ण कृत्य न्यायालय के मन में संदेह पैदा करता है कि घटना के समय वहां ऐसी कोई झोपड़ी नहीं थी, इसलिए गवाहों ने उसे बचाने की कोशिश नहीं की अन्यथा वे झोपड़ी को बचाने की पूरी कोशिश करते और उन्हें आग से चोटें भी आई होंगी। गवाहों के शरीर पर आग से कोई चोट न होना भी न्यायालय के मन में पुनरीक्षणवादियों द्वारा कथित घटना को अंजाम देने के बारे में संदेह पैदा करता है।

20. यह भी महत्वपूर्ण है कि यदि आरोपी व्यक्तियों ने झोपड़ी को हटाने के संबंध में कानूनी सहायता लिया था और उनके अनुसार इसे नगर महा पालिका के अधिकारियों द्वारा हटा दिया गया था तो वे कानून को अपने हाथ में लेने की कोशिश क्यों करेंगे। आम तौर पर देखा जाता है कि इस तरह की आगजनी की घटना रात में की जाती है जब घर में कोई मौजूद नहीं होता है, लेकिन यहां अभियोजन पक्ष के अनुसार आरोपियों ने दिन के उजाले में झोपड़ी में आग लगा दी थी और अपनी पहचान छिपाने के लिए अपने चेहरे पर नकाब भी नहीं लगाया था। आम तौर पर देखा जाता है और यह मानवीय आचरण और व्यवहार है कि लोग दिन के उजाले में लूट-पाट और आगजनी का अपराध नहीं करते हैं और यदि वे किसी परिचित व्यक्ति के साथ ऐसा करते हैं, तो वे अपना चेहरा छिपा लेते हैं और अपनी पहचान छिपाने की पूरी कोशिश करते हैं। गौरतलब है कि सूचक पीडब्लू-1 ने स्वीकार किया है कि वह कथित झोपड़ी में मवेशी बांधती थी।

21. इस मामले में आईओ से पूछताछ नहीं की गई है। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि वह घटना स्थल से नमूने या राख और जले हुए सामान को ले जाया गया और एफएसएल को भेजा गया था। परीक्षण न्यायाधीश ने पीडब्लू-4, जो मामले के बारे में कुछ नहीं जानता, की गवाही दर्ज करके महज औपचारिकता पूरी की है, वह केवल संबंधित एसआई की लिखावट और हस्ताक्षर को पहचानते हैं।

22. रथ जेना बनाम उड़ीसा राज्य, (1986) 1 अपराध 299; रजवा कबाट बनाम बिहार राज्य, 1988 सीआरएलजे 1288 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आईओ से पूछताछ न करना अदालती साक्ष्य और दं. प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए उसके बयान के बीच विरोधाभास दिखाने के अवसर से वंचित करना है, आईओ से पूछताछ न करना अभियोजन के लिए घातक है। नगीना शर्मा बनाम बिहार राज्य, 1991 सीआरएलजे 1195 (पटना) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब घटना स्थल, नक्शा नजरी या अन्य सामग्री और अन्य वस्तुनिष्ठ निष्कर्षों का संबंध हो तो आईओ की जांच न होना प्रासंगिक है। आईओ से पूछताछ न करने पर यदि कुछ मामलों में आरोपी के साथ पक्षपात होता है तो न्यायालय आरोपी को संदेह का लाभ देगा।

23. नगीना शर्मा (सुप्रा) में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि आईओ से पूछताछ बहुत आवश्यक है और यदि वह उपस्थित नहीं हो रहा है, तो न्यायालय को आवश्यकता पड़ने पर उसकी उपस्थिति के लिए कठोर उपाय अपनाने की शक्ति है।

24. इस मामले में परीक्षण न्यायाधीश ने इस बात पर काफी अफसोस जताया कि आईओ, एसआई राजाराम और जेएन शर्मा से एडीजीसी द्वारा पूछताछ नहीं की गई और उन्होंने गवाह के रूप में उपस्थित होने के लिए एसएसपी को कोई आवेदन नहीं लिखा था और उनकी उपस्थिति के लिए संदेश भेजने का भी प्रयास नहीं किया था।

25. इस न्यायालय के अनुसार परीक्षण न्यायालय ने आईओ को उनकी जांच के लिए नहीं बुलाने के लिए एडीजीसी पर दायित्व बढ़ाने में गलती की है। यह न्यायालय का कर्तव्य है और यह शक्ति न्यायालय में निहित है कि वह गवाहों को उचित और बलपूर्वक तरीके अपनाकर बुलाए जैसा कि पहले ही पटना उच्च न्यायालय द्वारा बताया गया है।

26. परीक्षण न्यायाधीश ने न तो आईओ को समन या वारंट जारी किया और न ही एसएसपी, डीजीपी या डीजी अभियोजन को पत्र लिखा। उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि भौतिक साक्ष्य न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं और प्रमाणित नहीं किए गए हैं, इसलिए, आईओ की जांच न होने और स्वतंत्र गवाहों और भौतिक साक्ष्यों के गैर-उत्पादन के कारण आरोपी पुनरीक्षणकर्ता पक्षपातपूर्ण हो गए हैं और यह बहुत अच्छी तरह से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि परीक्षण न्यायालय द्वारा कोई निष्पक्ष सुनवाई नहीं की गई है।

27. भा. दं.सं. की धारा 435 और 436 इस प्रकार हैं:-

"435. सौ रुपए का या (कृषि उपज की दशा में) दस रुपए का नुकसान कारित करने के आशय से अग्नि या विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि - जो कोई किसी सम्पत्ति को, एक सौ रुपए या उससे अधिक का या (जहाँ कि सम्पत्ति कृषि उपज हो, वहाँ) दस रुपए या उससे अधिक का नुकसान कारित करने के आशय से या यह सम्भाव्य जानते हुए कि वह तद्द्वारा ऐसा नुकसान कारित करेगा, अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा,

वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

436. गृह आदि को नष्ट करने के आशय से अग्नि या विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि - जो कोई किसी ऐसे निर्माण का, जो मामूली तौर पर उपासना-स्थान के रूप में या मानव-निवास के रूप में या संपत्ति की अभिरक्षा के स्थान के रूप में उपयोग में आता हो, नाश कारित करने के आशय से, या यह सम्भाव्य जानते हुए कि वह तद्द्वारा उसका नाश कारित करेगा, अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा, वह [आजीवन कारावास] से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।"

28. दोनों धाराओं के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि किसी संपत्ति को 100/- रुपये या उससे अधिक की राशि की क्षति होती है तो आरोपी को भा.दं.सं. की धारा 435 के तहत दंडित किया जाएगा और यदि आग या किसी विस्फोटक पदार्थ से किसी ऐसी इमारत को नुकसान पहुंचा है जिसका उपयोग आमतौर पर पूजा स्थल के रूप में या मानव आवास के रूप में या संपत्ति की सुरक्षा के स्थान के रूप में किया जाता है, आरोपी को भा.दं.सं. की धारा 436 के तहत दंडित किया जाएगा।

29. इस मामले में सूचक पीडब्लू-1 ने स्वीकार किया है कि वह कथित झोपड़ी में मवेशियों को

बांधती थी, इसलिए इस न्यायालय के अनुसार भले ही तर्क के लिए यह स्वीकार कर लिया जाए कि अपराध आरोपी व्यक्तियों द्वारा किया गया था, भा.दं.सं. की धारा 436 के तहत दंडनीय अपराध नहीं होगा। इससे भी अधिक, यदि अभियुक्तों ने मवेशियों को बचाने की अनुमति दी होती और यदि कुछ सामग्री भी वहां रखी होती, तो उसे भी सूचक द्वारा निकाल लिया जाता। यह पहले ही कहा जा चुका है कि मुकदमे के दौरान ऐसी कोई सामग्री पेश नहीं की गई जिससे यह साबित हो सके कि वहां कुछ अनाज, भूसी और पैसा आदि था।

30. जशमेरो बनाम पंजाब राज्य, 1980 सीआरएलजे (एनओसी) 46 (पी एंड एच) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ईंटों और गारे से नहीं, बल्कि फूस से बनी किसी संरचना को एक इमारत माना जा सकता है, अगर उसमें इमारत के लिए आवश्यक साज-सज्जा जैसे दरवाजे की सलाखें आदि हों। बांस या लकड़ी या ईंट के खंभों पर टिके एक साधारण फूस के छप्पर जिसमें कोई दरवाजा आदि नहीं है को भा.दं.सं. की धारा 436 में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ में एक इमारत के रूप में नहीं माना जा सकता है, लेकिन चूंकि आग के परिणामस्वरूप बैलों की मृत्यु हो गई, इसलिए आरोपी को भा.दं.सं. की धारा 435 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है। यहां सूचक के किसी भी मवेशी को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जा रहा था और यह भी साबित नहीं हुआ है कि कथित आगजनी में सूचक की कोई भी सामग्री जली थी।

31. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मामले और आरोप को साबित करने में सक्षम नहीं है। संशोधनकर्ता संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं और परीक्षण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश भी रद्द किए जाने योग्य हैं।

32. तदनुसार, यह संशोधन सफल होता है और अनुमति दी जाती है। परीक्षण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय द्वारा क्रमशः 29.10.1992 और 27.03.1993 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि और सजा के आदेशों को रद्द किया जाता है।

33. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए, यदि कोई हो, अधीनस्थ न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 509

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 432 सन् 2009

कपिल देव पांडे

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

....प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता: नवीन कुमार पांडे,
दिनेश कुमार चौधरी

का कोई अन्य पूर्व या पश्चात का आपराधिक इतिहास नहीं है - संशोधक को जेल भेजना उचित नहीं है। (पैरा-3,15)

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय
अधिवक्ता

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण, धारा 360 - अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर या चेतावनी के बाद रिहा करने का आदेश, धारा 361 - कुछ मामलों में विशेष कारण दर्ज किए जाएंगे - जहां किसी भी मामले में न्यायालय निपट सकता था, अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 3 - चेतावनी के बाद कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, धारा 4 - अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 - धारा 3 - चेतावनी के बाद कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, धारा 4 - अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति - रेलवे संपत्ति (अवैध कब्जा) अधिनियम, 1966 - धारा 3 - चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोजन या रेलवे संपत्ति के अवैध कब्जे के लिए जुर्माना।

दो व्यक्ति गिरफ्तार - भारी सामान ले जाते हुए - रेलवे संपत्ति अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज - सन् 1996 का मामला - 26 वर्ष से अधिक समय बीत गया - अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता पिछले तीन दशकों से पीड़ित है - अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता

निर्णय:- न्यायालय द्वारा पारित आदेश के दोषसिद्धि भाग में न्यायालय को कोई अवैधता, विकृति या दुर्बलता नहीं मिली। अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता को दी गई सजा में संशोधन की आवश्यकता है। पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त की दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया। उत्तर प्रदेश अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 को शामिल करने के लिए सजा को संशोधित किया गया। एक वर्ष तक शांति और अच्छे आचरण को बनाए रखने की शर्त के साथ परिवीक्षा पर रिहा किया गया। यदि उल्लंघन किया जाता है, तो पुनरीक्षणकर्ता को न्यायालय द्वारा निर्देशित समान सजा का सामना करना पड़ेगा। (पैरा - 16,17)

पुनरीक्षण आंशिक रूप से संशोधन सहित स्वीकार किया गया।(ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मिसरी लाल व अन्य, 1982 सी.आर.एल.जे. 1420
2. सीताराम पासवान व अन्य बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3534
3. मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 660

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण आपराधिक मामला संख्या-371 वर्ष 1997 (राज्य बनाम कपिल देव पांडे और अन्य) में ए.सी.एम. (उत्तर रेलवे), गोंडा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 24.04.2009 के साथ-साथ आपराधिक अपील संख्या-14 वर्ष 2009 (कपिल देव पांडे बनाम यूपी राज्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-6, गोंडा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 07.08.2009 के खिलाफ दायर किया गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 03.10.1996 को गेट संख्या-113-सी पर गेटमैन के रूप में गेंगमैन, गेंग संख्या-13 के रूप में तैनात सूचनाकर्ता, कैलाश प्रसाद ने लगभग 19:30 बजे दो व्यक्तियों को संदिग्ध स्थिति में गेट की ओर कुछ भारी सामान लाते देखा। किसी शक के बाद जब उसने उन्हें रुकने को कहा तो दोनों ने भागने की कोशिश की लेकिन हरिश्चंद्र गेंगमैन, गेंग संख्या-13 और बैजनाथ, गेटमैन गेट संख्या-113- सी की मदद से उसे पकड़ लिया गया। पूछताछ करने पर, दोनों ने अपना नाम कपिल देव पांडे और रमेश कुमार शुक्ला बताया और कपिल देव पांडे के कब्जे से एक बेयरिंग प्लेट 'आईआरएस (टी) 5' लिखी और दूसरे आरोपी से एक साधारण बेयरिंग प्लेट बरामद की गई। आरोपी व्यक्तियों ने सूचित किया कि बरामद सामान पुल के पास रेलवे लाइन से चोरी हो गए थे, जिसकी पुष्टि सूचनाकर्ता ने की थी। तत्पश्चात्

अपराध सं-05 वर्ष 1996 में धारा 3 रेल संपत्ति (विधि विरुद्ध कब्जा) अधिनियम, 1966 (संक्षेप में अधिनियम, 1966), थाना-तुलसीपुर, जिला गोंडा (बलरामपुर) के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। विवेचना के बाद आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद, अभियुक्तों के विरुद्ध अधिनियम, 1966 की धारा 3 के अंतर्गत आरोप विरचित किए गए थे जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया और विचारण की मांग की।

4. विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए और साक्ष्य बंद करने के बाद धारा 313 द०प्र०स० के तहत उनका बयान दर्ज किया गया और तर्क सुनने के बाद, अभियुक्तों को दोषी ठहराया गया और 24.04.2009 को अधिनियम 1966 की धारा 3 के तहत अपराध करने के लिए प्रत्येक वर्ष के साधारण कारावास और 1,500 रुपये के जुर्माने के साथ सजा सुनाई गई।

5. दिनांक 24.04.2009 के आदेश को पुनरीक्षणकर्ता, कपिल देव पांडे द्वारा आपराधिक अपील संख्या-14 वर्ष 2009 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-6, गोंडा (बलरामपुर) के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया और निर्णय और आदेश दिनांक 24.04.2009 की पुष्टि की गई। इसलिए, इस आपराधिक पुनरीक्षण को दायर किया दी गई है।

6. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित

दिनांक 24.04.2009 का आक्षेपित निर्णय और आदेश और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 07.08.2009 का आदेश अवैध, विकृत और रिकॉर्ड पर तथ्यों और सबूतों के खिलाफ है। निचली अदालतें बचाव पक्ष के सबूतों की मूल्यांकन करने में विफल रही हैं जो अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की तुलना में अधिक संभावित थे। अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश को बनाए रखने में अवैधता की है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलीय अदालत के साथ-साथ विचारण न्यायालय दोनों ने इसके लिए कोई कारण दर्ज किए बिना पुनरीक्षणकर्ता को अपराधी अधिनियम के परिवीक्षा अधिनियम के लाभ से इनकार करने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है। पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्ता मुकदमे के दौरान जमानत पर था और उसने कभी भी जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया। हालांकि, कुछ विस्तार से बहस करने के बाद, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्ता को यूपी प्रोबेशन ऑफ ऑफेंडर्स एक्ट का लाभ दिया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान, कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है और पुनरीक्षणकर्ता कानून का पालन करने वाले नागरिक के रूप में रह रहा है।

7. अपर शासकीय अधिवक्ता ने पुनरीक्षण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि निचली अदालतों के आक्षेपित निर्णयों और आदेशों में कोई भौतिक अनियमितता या अवैधता नहीं है और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों को ध्यान में

रखते हुए, पुनरीक्षणकर्ता को सही ठहराया गया था।

8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 और 361 पहले अपराधियों के लिए परिवीक्षा के उद्देश्य से प्रासंगिक हैं। इन दोनों खंडों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"360. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर या चेतावनी के पश्चात् रिहा करने का आदेश- (1) जब कोई व्यक्ति, जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का न हो, केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, या जब इक्कीस वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति या कोई महिला ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, अपराधी की उम्र, चरित्र या पूर्ववृत्त के संबंध में, और उन परिस्थितियों के संबंध में जिनमें अपराध किया गया था, अगर यह उस न्यायालय को जिसके समक्ष उसे दोषी ठहराया गया है, प्रतीत होता है कि यह समीचीन है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए, न्यायालय उसे किसी दंड के लिए तुरंत सजा देने के बजाय, निर्देश दे सकता है कि उसे बांड में प्रवेश करने पर, जमानत के साथ या उसके बिना, ऐसी अवधि (तीन वर्ष से अधिक नहीं) के दौरान बुलाए जाने पर सजा प्राप्त करने के लिए रिहा कर दिया जाए, जैसा कि न्यायालय निर्देशित कर सकता है, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे व्यवहार का होने के लिए:

परन्तु जहाँ किसी प्रथम अपराधी को द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा सिद्धदोष ठहराया जाता है जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, तो वह उस प्रभाव के लिए अपनी राय अभिलिखित करेगा और कार्यवाहियों को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करेगा, अभियुक्त को अग्रेषित करना, या उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए जमानत लेना, ऐसे मजिस्ट्रेट, जो उप-धारा (2) द्वारा प्रदान किए गए तरीके से मामले का निपटान करेगा।

(2) जहाँ कार्यवाहियाँ उपधारा (1) द्वारा यथा उपबंधित प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत की जाती हैं, वहाँ ऐसा मजिस्ट्रेट तदनुसार ऐसा दंडादेश पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश दे सकेगा जो उसने पारित किया हो, यदि उसके द्वारा उस मामले की मूल रूप से सुनवाई की गई होती, और, यदि वह समझता है कि किसी बिन्दु पर आगे अन्वेषण या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक है, वह ऐसी जांच कर सकता है या स्वयं ऐसा साक्ष्य ले सकता है या ऐसी जांच या साक्ष्य बनाने या लेने का निदेश दे सकता है।

(3) किसी भी मामले में जिसमें एक व्यक्ति को चोरी, एक इमारत में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोजन, धोखाधड़ी या भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) के तहत किसी भी अपराध का दोषी ठहराया जाता है, दो साल से अधिक नहीं, कारावास या किसी भी अपराध के साथ दंडनीय केवल जुर्माना के साथ दंडनीय है और उसके खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं हुई

है, न्यायालय जिसके समक्ष वह दोषी ठहराया गया है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति और अपराध की तुच्छ प्रकृति या किन्हीं आकस्मिक परिस्थितियों के संबंध में, जिसके अधीन अपराध किया गया था, कठोर दण्ड देने के बजाय उसे उचित दण्ड देने के बाद रिहा कर दे।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय किया जा सकेगा।

(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है तब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय अपील पर, जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार हो, या पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, ऐसे आदेश को रद्द कर सकेगा और उसके बदले में विधि के अनुसार ऐसे अपराधी को दण्डादेश दे सकेगा: परन्तु इस उपधारा के अधीन उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उस न्यायालय द्वारा दी गई सजा से अधिक दंड नहीं देगा जिसके द्वारा अपराधी को दोषी ठहराया गया था।

(6) धारा 121, 124 और धारा 373 के उपबंध, जहाँ तक हो सके, इस धारा के उपबन्धों के अनुसरण में प्रस्तावित जमानतदारों की दशा में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन किसी अपराधी को रिहा करने का निदेश देने से पूर्व, इस बात से संतुष्ट होगा कि किसी अपराधी या उसकी ज़मानतदार (यदि कोई हो) का उस स्थान पर निवास या नियमित कब्जे का नियत स्थान है, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है।

(8) यदि वह न्यायालय जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है या कोई न्यायालय जो अपराधी से उसके मूल अपराध के संबंध में निपट सकता था, का समाधान हो जाता है कि अपराधी अपनी अभिस्वीकृति की किन्हीं शर्तों का पालन करने में असफल रहा है तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिये वारंट जारी कर सकेगा।

(9) कोई अपराधी, जब ऐसे किसी वारंट पर पकड़ा जाता है, वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष तुरंत लाया जाएगा, और ऐसा न्यायालय या तो उसे तब तक हिरासत में भेज सकता है जब तक कि मामले की सुनवाई न हो जाए या उसे सजा के लिए उसके उपस्थित होने पर पर्याप्त ज़मानत के साथ जमानत के लिए स्वीकार कर सकता है और ऐसा न्यायालय, मामले की सुनवाई के बाद, सजा सुनाए।

(10) इस धारा की कोई बात अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 वर्ष 1958), या बालक अधिनियम, 1960 (60 वर्ष 1960) या युवा अपराधियों के उपचार,

प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों को प्रभावित नहीं करेगी।

361. कुछ मामलों में दर्ज किए जाने वाले विशेष कारण - जहां किसी भी मामले में न्यायालय से निपटा जा सकता था, - (क) धारा 360 के तहत या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 वर्ष 1958) के प्रावधानों के तहत एक आरोपी व्यक्ति; या (बी) बाल अधिनियम, 1960 (60 वर्ष 1960) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय लागू किसी अन्य कानून के तहत एक युवा अपराधी, लेकिन ऐसा नहीं किया है, यह अपने फैसले में ऐसा नहीं करने के विशेष कारणों को दर्ज करेगा।

9. "अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958" के नाम से इस विषय पर एक केंद्रीय कानून है, उसकी प्रासंगिक धारा 3 और 4 यहां उद्धृत की गई है: -

"3. कुछ अपराधियों को चेतावनी के पश्चात् रिहा करने की न्यायालय की शक्ति--जब कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 (45 वर्ष 1860) के अधीन दंडनीय अपराध करने का दोषी पाया जाता है या कोई ऐसा अपराध जो दो वर्ष से अनधिक कारावास से दंडनीय है, या जुर्माने के साथ, या दोनों के साथ, भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून के तहत, और उसके खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है और जिस अदालत द्वारा व्यक्ति को दोषी पाया जाता है,

उसकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा करना समीचीन है, फिर, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे किसी दंड के लिए दण्डित करने या धारा 4 के अधीन अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने के बजाय, सम्यक चेतावनी के पश्चात् उसे रिहा कर सकेगा।

अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश नहीं देगी जब तक कि यह संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसकी जमानत, यदि कोई हो, का उस स्थान पर निवास या नियमित कब्जे का एक निश्चित स्थान है जिस पर अदालत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है या जिसमें अपराधी के दौरान रहने की संभावना है वह अवधि जिसके लिए वह बंधन में प्रवेश करता है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के खिलाफ पिछले दोषसिद्धि में इस धारा या धारा 4 के तहत उसके खिलाफ किया गया कोई पूर्व आदेश शामिल होगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करने से पहले, न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(1) जब कोई व्यक्ति कोई ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और न्यायालय जिसके द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, फिर, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे किसी दंड के लिए तुरंत दण्डित करने के बजाय यह निदेश दे सकेगा कि उसे बांड में प्रवेश करने पर, जमानत सहित या उसके बिना, ऐसी अवधि के दौरान बुलाए जाने पर उपस्थित होने और दण्ड प्राप्त करने के लिए, तीन वर्ष से अनधिक नहीं, रिहा किया जाए, जैसा कि न्यायालय निदेश दे सकता है, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे व्यवहार का होने के लिए: बशर्ते कि अदालत किसी

(3) जब उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश किया जाता है तब न्यायालय यदि यह राय रखता है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है तो इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निदेश दिया जाएगा कि अपराधी ऐसी अवधि के दौरान, एक वर्ष से कम नहीं होने के कारण, आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में रहेगा जैसा कि उसमें निर्दिष्ट किया जा सकता है, और इस तरह के पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें लगा सकता है जो अपराधी के उचित पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझती हैं।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाले न्यायालय से अपराधी से, रिहा होने से पहले, जमानतदारों के साथ या उसके बिना, ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों और निवास, नशीले पदार्थों से परहेज या किसी

अन्य विषय के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करने की अपेक्षा करेगा, जो विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा एक ही अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के कमीशन को रोकने के लिए लागू करना उचित समझें।

(5) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश के निबन्धन और शर्तों की व्याख्या करेगा और पर्यवेक्षण आदेश की एक-एक प्रति प्रत्येक अपराधी, जमानतदारों, यदि कोई हो, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तुरंत उपलब्ध कराएगा।

10. इस विषय पर "उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938" नामक एक और विधान है। अधिनियम की धारा 3 और 4 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"3. किसी मामले में जिसमें कोई व्यक्ति चोरी, बेईमानी, दुर्विनियोजन या धोखाधड़ी के अपराधों का, जो भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय है, या किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो दो वर्ष से अनधिक कारावास से दंडनीय है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं की जाती है, तो वह न्यायालय, जिसके द्वारा वह दोषी पाया जाता है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए और अपराध की तुच्छ प्रकृति या किन्हीं आकस्मिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसके अधीन अपराध किया गया था, उसे किसी

दण्ड के लिए दण्डित करने के स्थान पर उचित दण्ड देने के स्थान पर उसे रिहा कर सकता है।

4. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति--(1) जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के खिलाफ कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, यदि यह उस अदालत को प्रतीत होता है जिसके समक्ष उसे दोषी ठहराया गया है, उम्र के संबंध में, (2) अपराधी के चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति और उन परिस्थितियों के लिए जिनमें अपराध किया गया था कि यह समीचीन है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए, न्यायालय उसे तुरंत किसी भी दंड के लिए सजा देने के बजाय, निर्देश दे सकता है कि उसे बांड में, जमानत के साथ या उसके बिना, प्रवेश करने पर; ऐसी अवधि के दौरान बुलाए जाने पर उपस्थित होने और प्राप्त करने के लिए जो तीन वर्ष से अनधिक तीन वर्ष से अनधिक हो और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे व्यवहार का होने के लिए, रिहा कर दिया जाए:

परन्तु न्यायालय इस धारा के अधीन किसी अपराधी की रिहाई का निदेश तब तक नहीं देगा जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाए कि अपराधी, या उसकी जमानतदार का उस स्थान पर निवास और नियमित कब्जे का एक नियत स्थान है, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है, या जिसमें अपराधी के शर्तों के

पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है:

परन्तु यह भी कि यदि इक्कीस वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता के अधीन किसी अपराध के लिए या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन इस निमित्त विहित किन्हीं अन्य अधिनियमितियों के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है, जो छह मास से अनधिक कारावास से दंडनीय है तो न्यायालय इस धारा के अधीन तब तक कार्रवाई करेगा जब तक कि विशेष कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित न कर लिया जाए, ऐसा करना उचित नहीं समझता।

(2) जहाँ उपधारा (1) के अधीन रिहा किए जाने का आदेश दिया गया अपराधी चौबीस वर्ष से कम आयु का है, वहाँ न्यायालय यह निदेश देते हुए पर्यवेक्षण आदेश कर सकेगा कि ऐसा अपराधी ऐसे परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण के अधीन होगा, जिसका नाम उसमें विनिर्दिष्ट अवधि के दौरान आदेश में दिया जाए और ऐसे पर्यवेक्षण को प्राप्त करने के लिये ऐसी अन्य शर्तें अधिरोपित करेगा जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएँ:

परन्तु इस प्रकार विनिर्दिष्ट अवधि उस तारीख से आगे नहीं बढ़ेगी, जिस दिन न्यायालय की राय में, अपराधी पच्चीस वर्ष की आयु प्राप्त करेगा।

(3) उपधारा (2) के अधीन आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी से अपेक्षा करेगा कि वह रिहा किए जाने से पहले, जमानतदारों के साथ

या उसके बिना, निवास के संबंध में शर्त का पालन करे, मादक पदार्थों से परहेज और किन्हीं अन्य विषयों के संबंध में, जैसा कि न्यायालय मामले की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए अधिरोपित करना उचित समझे।

(4) उपधारा (2) के अधीन आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी और जमानतदारों, यदि कोई हो, को लिखित रूप में एक नोटिस प्रस्तुत करेगा जिसमें बांड की शर्तों को सरल शब्दों में बताया जाएगा।

इन विधानों का अवलोकन करने से विधि के छात्र की मनःस्थिति भ्रमित हो जाएगी। ये सभी कानून एक ही विषय से संबंधित हैं और पहली नजर में एक-दूसरे का अतिक्रमण करते दिखते हैं। बारीकी से देखने पर, कोई भी यह प्राप्त कर सकता है कि संहिता की धारा 360 केवल उन व्यक्तियों से संबंधित है जो इक्कीस वर्ष से कम आयु के नहीं हैं, जिन्हें जुर्माने से दंडनीय अपराध के लिए या सात साल या उससे कम की अवधि के कारावास के लिए दोषी ठहराया गया है, या जब इक्कीस वर्ष से कम उम्र के किसी व्यक्ति या किसी महिला को ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं हैं, और कोई भी पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और उसके द्वारा किए गए अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, परिवीक्षा पर जारी की जा सकती

है। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का दायरा बहुत व्यापक है क्योंकि यह किसी भी व्यक्ति पर लागू होता है जो ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। अगर मैं धारा 360 द०प्र०स० में गहराई से देखता हूं तो हम पाएंगे कि उप-धारा (10) में यह प्रावधान किया गया है कि इस धारा में कुछ भी अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावित नहीं करेगा।

11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मिश्री लाल और अन्य, 1982 सीआरएलजे 1420 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"26. ... उत्तर प्रदेश में धारा 360 के आवेदन को वर्ष 1975 के एक अध्यादेश द्वारा हटा दिया गया था। अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया और आपराधिक दंड संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, संख्या-16 वर्ष 1976 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया।

इस अधिनियम को 30-4-1975 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और 1-5-1976 के उत्तर प्रदेश असाधारण राजपत्र में प्रकाशित किया गया। इस अधिनियम की धारा 12 ने अध्यादेश को निरस्त कर दिया और यह निर्धारित किया कि इस तरह के निरसन के बावजूद, अध्यादेश के तहत की गई कोई भी बात या की गई कोई कार्रवाई इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत की गई या की गई मानी जाएगी जैसे कि यह अधिनियम 28 नवंबर, 1975 को लागू हुआ था। विचारण न्यायधीश

ने 2-2-1976 को मामले का फैसला किया। संशोधनकारी अधिनियम सं० 16 वर्ष 1976 की धारा 10 में संहिता की धारा 484 में संशोधन किया गया और खंड (घ) के पश्चात् निम्नलिखित खंड (ड) अंतःस्थापित किया गया:-

(ड) ... संयुक्त प्रांत प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1938..... उत्तर प्रदेश राज्य में लागू रहेगा। और तदनुसार, इस संहिता की धारा 360 द०प्र०स० के उपबंध उस राज्य को लागू नहीं होंगे और धारा 361 के उपबंध उस राज्य में प्रवृत्त तत्स्थानी अधिनियम के प्रति निर्देशों द्वारा उसमें नामित केन्द्रीय अधिनियमों के प्रतिस्थापन या संदर्भ के साथ लागू होंगे।

धारा 361 द०प्र०स० में कहा गया है कि जहां किसी भी मामले में अदालत धारा 360 के तहत या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के तहत आरोपी व्यक्ति या बाल अधिनियम, 1960 या उपचार के लिए लागू किसी अन्य कानून के तहत एक युवा अपराधी से निपट सकती है, युवा अपराधियों का प्रशिक्षण या पुनर्वास, लेकिन ऐसा नहीं किया है, यह अपने फैसले में ऐसा न करने के विशेष कारणों को दर्ज करेगा।

यह ऊपर उल्लिखित धारा 484 के खंड (ई) सपठित इस प्रावधान से इस प्रकार है, न्यायालय को उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 के प्रावधानों का लाभ नहीं देने के लिए विशेष कारणों को दर्ज करना आवश्यक है।

12. इस प्रकार, यूपी प्रोबेशन ऑफ फर्स्ट ऑफेंडर्स एक्ट के प्रावधानों का पालन भौगोलिक क्षेत्र में किया जाएगा, जहां इसे लागू किया गया है, न कि धारा 360 द०प्र०स० का। इस तरह किसी विशेष क्षेत्र में परिवीक्षा अधिनियम का प्रवर्तन, इस प्रकार उस विशेष क्षेत्र में संहिता की धारा 360 के प्रावधानों की प्रयोज्यता को बाहर करता है, हालांकि यह न्यायालय का बाध्य कर्तव्य होगा कि वह इस बात पर विचार करे कि क्यों न धारा 361 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए अपराधी अधिनियम के परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने के लिए आगे बढ़ाया जाए।

13. सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य में अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3534 उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को मामले की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होगा। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, पीड़ित पर अपराध के प्रभाव के बारे में यथार्थवादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ उपबंधों में सन्निहित सीमा के अध्यधीन 'है और हो सकता है' शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह विवेकाधिकार न्यायालय में निहित है कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3

या 4 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी को रिहा किया जाए या नहीं। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत शक्तियां न्यायालय के पास निहित होती हैं जब कोई व्यक्ति किए गए अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है और यदि न्यायालय यह सोचता है कि अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय द्वारा अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी और संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील की सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

14. मो. हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 660 उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी: -

"20. ... रतन लाल बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444. सुब्बा राव में बहुमत के लिए बोलते हुए, इस प्रकार कहा: -

"यह अधिनियम पेनोलॉजी के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक

कानून का उद्देश्य व्यक्तिगत अपराधी को दंडित करने की तुलना में उसे सुधारना अधिक है। मोटे तौर पर कहा गया है, अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से ऊपर के अपराधियों और उन अपराधियों को अलग करता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास के साथ दंडनीय अपराध करने के दोषी हैं और जो कम अपराध के दोषी हैं। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को अधिनियम के उपयुक्त उपबंधों में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए, उन्हें चेतावनी के बाद या अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेकाधिकार दिया जाता है, वर्ष 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को उन्हें कारावास की सजा न देने का आदेश जारी किया जाता है जब तक कि इस बात का समाधान न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों के संबंध में, अपराध की प्रकृति और अपराधियों के चरित्र सहित, अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।

15. यह वर्ष 1996 का मामला है और 26 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। यह घटना वर्ष 1996 में हुई थी। आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता पिछले तीन दशकों से इस मामले में पीड़ित है और आरोपी पुनरीक्षणकर्ता का कोई अन्य पूर्व या बाद का आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। अतः पुनरीक्षक को जेल भेजना उचित नहीं होगा।

16. जहां तक दोषसिद्धि भाग का संबंध है, इस न्यायालय को निचली अदालतों द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, विकृति या

दुर्बलता नहीं मिलती है, लेकिन ऊपर की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता को दी गई सजा में संशोधन की आवश्यकता है।

17. पुनरीक्षण को निम्नलिखित संशोधनों के साथ आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है: -

17.1. निचली अदालतों द्वारा अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है। पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त की सजा को इस प्रकार से संशोधित किया जाता है कि उसे यूपी प्रोबेशन ऑफ ऑफेंडर एक्ट की धारा 4 का लाभ प्रदान किया जाता है और उसे इस शर्त पर परीक्षा पर रिहा किया जाता है कि वह आज से एक वर्ष के लिए शांति और अच्छा आचरण बनाए रखेगा और निचली अदालत के समक्ष अपने व्यक्तिगत बांड के साथ 30,000 रुपये की दो जमानतें दायर करेगा और इस आशय का वचन भी देगा कि वह आज से एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति और अच्छा व्यवहार बनाए रखेगा। उपर्युक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में, पुनरीक्षणकर्ता को निचली अदालतों द्वारा निर्देशित सजा से गुजरना होगा। उपरोक्त बांड आज से एक महीने के भीतर जिला परीक्षा अधिकारी, बलरामपुर, यूपी. के समक्ष संबंधित अदालत को सूचित करते हुए दायर किए जाएंगे।

18. आदेश की प्रमाणित प्रति अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय और जिला परीक्षा अधिकारी, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश को भी भेजी जाए।

(2023) 7 ILRA 517

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.05.2023

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा
के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 731 सन् 2023

रोहित यादव @ रवि और अन्य

.....पुनरीक्षणकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता: श्री योगेश
कुमार श्रीवास्तव, श्री नूर मुहम्मदप्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय
अधिवक्ता, श्री कमलेश सिंह जादौन

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -
धारा 397/401- पुनरीक्षण - घरेलू हिंसा से
महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 -
धारा 2, 3, 12, 14, 15, 17, 18, 19, 20,
21, 22 और 23 - उद्देश्य और प्रयोजन -
पीड़ित व्यक्ति, महिला को साझा घरों में
निवास का अधिकार प्रदान करना - पत्नी
अपने पति के रिश्तेदारों के साझा घरों में
निवास का अधिकार दावा करने की हकदार है।
(पैरा - 19)

विपक्षी संख्या 2 ने पुनरीक्षणकर्तागण (अपने
दिवंगत पति के रिश्तेदारों) के खिलाफ
याचिका दायर की - संरक्षण, साझा घरों में
रहने का अधिकार, आर्थिक राहत, निवास

आदेश और मुआवजा आदेश की मांग की -
वह अपने रिश्तेदारों द्वारा प्रताड़ित की गई -
अपने देवरों द्वारा बलात्कार का शिकार हुई -
अपने वैवाहिक घर को छोड़ने के लिए
मजबूर किया गया - पुनरीक्षणकर्तागण और
प्रतिपक्षी संख्या 2 के बीच संपत्ति विवाद है-
प्रतिपक्षी संख्या 2 के ससुराल वाले -
न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्तागण के खिलाफ
एकपक्षीय फैसला सुनाया - कोई लिखित
बयान दाखिल करने में विफल रहा -
एकपक्षीय आदेश के खिलाफ कोई रिकॉल
नहीं - न्यायालय ने एकपक्षीय साक्ष्य के
साथ आगे कार्यवाही की - पुनरीक्षणकर्तागण
के खिलाफ मामला तय किया - कोई विशिष्ट
कथन नहीं - प्रतिपक्षी संख्या 2 को भरण-
पोषण की मात्रा या राशि का भुगतान करने
में असमर्थता के संबंध में। (पैरा - 4,20)

निर्णय:- न्यायाधिकारी द्वारा दिए गए भरण-
पोषण परिमाणन में कोई त्रुटि नहीं पाई गई
तथा अपीलीय न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि
की गई। आक्षेपित आदेश को संशोधित करके
पुनरीक्षणकर्ता 1 से 3 तक सीमित किया जा
सकता है, तथा उन्हें भरण-पोषण तथा साझे
घरों में आवास के लिए आदेश का पालन करने
से छूट दी जा सकती है। प्रतिपक्षी 4 तथा 5
के लिए पुनरीक्षण आंशिक रूप से स्वीकृत है,
लेकिन पुनरीक्षण 1 से 3 के लिए आदेश वैध
है। चुनौती दिए गए निर्णयों में कोई अवैधता,
अनियमितता या स्वामित्व संबंधी मुद्दे नहीं
हैं। (पैरा -20,21)

पुनरीक्षण आंशिक रूप से संशोधन सहित
स्वीकार किया गया।(ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. इंद्र शर्मा बनाम वी.के.वी. शर्मा, एआईआर 2014 एससी 309
2. सतीश चंद्र आहूजा बनाम स्नेहा आहूजा, एआईआर 2020 एससी 2483

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण
मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता और प्रतिपक्षी नं-2 के लिए अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।
2. प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण को विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 9, फिरोजाबाद द्वारा 2021 की क्रि. अपील संख्या 51, (रोहित यादव @ रवि बनाम श्रीमती दीपिका यादव) में पारित आदेश दिनांक 8.1.2022 और साथ ही न्यायाधिकारी (न्यायिक अधिकारी), ग्रामीण न्यायालय टूंडला, जिला फिरोजाबाद द्वारा केस नंबर 367 वर्ष 2020 में धारा 12/14/15/17/18/19/20/21/22 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, थाना-टूंडला, जिला फिरोजाबाद के तहत पारित आदेश के खिलाफ दायर की गई है। विद्वान न्यायाधिकारी/न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 1.11.2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता श्रीमती दीपिका यादव, वर्तमान पुनरीक्षणवादियों के खिलाफ एक-पक्षीय द्वारा दायर पूर्वोक्त धाराओं के तहत याचिका की अनुमति दी, जो न्यायाधिकारी की अदालत के समक्ष केस नंबर 637 वर्ष 2020 में प्रतिवादी थे और उन्हें प्रतिपक्षी और उनकी दो नाबालिग बेटियों इशानिका और जोशीका जिनकी उम्र वर्ष

2020 में याचिका दायर करने के समय से क्रमशः लगभग 7 वर्ष और 3 वर्ष की आयु के आसपास थी, के भोजन, कपड़े, चिकित्सा और दैनिक जरूरतों के लिए मौद्रिक मुआवजे के रूप में 7,000/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया।

3. निचली अदालत ने प्रतिवादीओं/पुनरीक्षणकर्ताओं को निर्देश दिया कि वे याचिकाकर्ताओं/प्रतिपक्षी को साझा घरों से बेदखल करने से दूर रहें, जहां वह एक कमरे में रह रही थी और यह भी निर्देश दिया गया था कि वे अपने दिवंगत पति सपन यादव की संपत्ति पर किसी भी विवाद के कारण याचिकाकर्ता/प्रतिपक्षी को शारीरिक या मानसिक रूप से परेशान करने से बचें।

4. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स जो वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण के निपटान के लिए आवश्यक है, यह है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के तहत न्यायाधिकारी के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसमें पुनरीक्षणकर्ताओं, जो उसके दिवंगत पति के रिश्तेदार हैं, के खिलाफ धारा 18 के तहत संरक्षण आदेश जैसे अधिनियम के प्रावधानों के तहत स्वीकार्य आवश्यक आदेश जारी करने की प्रार्थना के साथ धारा 17 के तहत शैयर परिवारों में निवास का अधिकार, धारा 20 के तहत मौद्रिक राहत, धारा 19 के तहत निवास आदेश, अधिनियम की धारा 22 के तहत मुआवजा आदेश। याचिका में याचिकाकर्ता ने कहा था कि सपन सिंह के साथ उसका विवाह 25.12.2010 को हुआ था और उनके विवाह से

दो लड़कियों का जन्म हुआ था। दुर्भाग्य से उनके पति की मृत्यु 18.9.2019 को हो गई। पति की मृत्यु के बाद, प्रतिवादी/पुनरीक्षणकर्ता जो सास, देवर, भाभी, ननद और नंदोई हैं, ने उसे परेशान करना शुरू कर दिया। उसके पति के रिश्तेदार बुरे चरित्र के व्यक्ति हैं। वह खुद को बनाए रखने की स्थिति में नहीं है। उत्तरदाताओं/पुनरीक्षणकर्ताओं ने उसे शारीरिक और मानसिक रूप से विभिन्न तरीकों से परेशान करना शुरू कर दिया। प्रतिवादी संख्या-1 (रोहित) और (विपुल यादव), उसके देवर द्वारा साझा घरों की महिलाओं की मिलीभगत से उसके साथ बलात्कार किया गया और अंततः उसे अपना वैवाहिक घर छोड़ने के लिए मजबूर किया गया और परिणामस्वरूप उसे आनंद नगर, टूंडला, जिला: फिरोजाबाद में स्थित अपने माता-पिता के घर में शरण लेने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसने विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष 11.11.2020 को उपरोक्त राहत के लिए वर्तमान याचिका दायर की।

5. अपीलकर्ता/प्रतिवादी नोटिस की तामील के बाद विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए, लेकिन आपत्तियां/डब्ल्यू.एस. 6.9.2021 को, अपीलकर्ताओं/उत्तरदाताओं ने निचली अदालत के समक्ष स्थगन दायर किया और निचली अदालत ने स्थगन की अनुमति दी और डब्ल्यू.एस./आपत्ति के लिए 07.09.2021 तय किया। 07.09.2021 को, अपीलकर्ताओं/उत्तरदाताओं ने फिर से स्थगन दायर किया और इसे निचली अदालत ने खारिज कर दिया और अपीलकर्ताओं/उत्तरदाताओं के खिलाफ मामले को एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ाया।

6. मुकदमे के दौरान आवेदक दीपिका यादव ने खुद को अ०सा०-1 के रूप में जांचा। दलीलें सुनने के बाद विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ याचिका की अनुमति देकर आक्षेपित आदेश पारित किया है।

7. विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित विभिन्न संरक्षण आदेशों से व्यथित होकर, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने सत्र न्यायालय, फिरोजाबाद के समक्ष क्रि. अपील संख्या-51 वर्ष 2019, इस आधार पर कि विचारण न्यायालय तथ्यों और कानून की मूल्यांकन करने में विफल रहा है, दायर की। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अत्यधिक अवैध है और इसे तथ्यों और कानून की सही समझ पर पारित नहीं किया गया है। विद्वान विचारण न्यायाधीश याचिकाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 की आय के पहलू का निरीक्षण करने में विफल रहे हैं और अपीलकर्ताओं/पुनरीक्षणकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया है और मनमाने ढंग से आक्षेपित आदेश पारित किया है और इन आधारों पर उन्होंने दावा किया कि उनकी अपील की अनुमति दी जाए और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जाए। अपीलकर्ताओं/पुनरीक्षणकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या-2 के खिलाफ कोई घरेलू हिंसा नहीं की। याचिकाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 अपीलकर्ताओं के खिलाफ किए गए घरेलू हिंसा के किसी भी मामले को साबित करने में विफल रहा, इसलिए, विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में रखरखाव और निवास आदेश की राहत देने में त्रुटि की है। अपीलकर्ताओं/पुनरीक्षकों को

सुनवाई और याचिका में कोई लिखित बयान दर्ज करने का कोई अवसर नहीं दिया गया।

8. प्रथम अपीलीय अदालत ने दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ताओं/पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ मामले को एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ाना उचित था क्योंकि अपीलकर्ताओं/पुनरीक्षणकर्ताओं ने 9.4.2021 को स्थगन दायर किया था और प्रतिपक्षी संख्या-4 और 5 ने डिस्चार्ज आवेदन 16-ए दायर किया था। 6.9.2021 को प्रतिपक्षियों ने स्थगन दायर किया जिसे विद्वान निचली अदालत ने लागत के साथ अनुमति दी थी। अगली तारीख यानी 7.9.2021 को, प्रतिपक्षी ने फिर से स्थगन दायर किया और इसे निचली अदालत ने यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि प्रतिपक्षी प्रक्रिया में देरी कर रहे हैं और प्रतिपक्षियों के खिलाफ मामले को एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ाया है, इसलिए, अपीलकर्ताओं द्वारा मामले के ज्ञान के संबंध में लिए गए आधार झूठे और मनगढ़ंत हैं क्योंकि निचली अदालत के रिकॉर्ड के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वे निचली अदालत के समक्ष उपस्थित हुए और स्थगन को स्थानांतरित कर दिया। 6.9.2021 को निचली अदालत ने प्रतिपक्षियों को लिखित बयान दर्ज करने का अंतिम अवसर दिया है, लेकिन अगली तारीख पर वे कोई लिखित बयान दर्ज करने में विफल रहे और इसके बजाय उन्होंने निचली अदालत के समक्ष फिर से स्थगन दायर किया। प्रतिपक्षी के आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने जानबूझकर मामले की कार्यवाही में देरी करने की कोशिश की, जबकि निचली अदालत ने प्रतिपक्षियों को

आपत्ति/लिखित बयान दर्ज करने के लिए उचित अवसर दिया था। यह उल्लेखनीय है कि अपीलकर्ताओं ने एकपक्षीय आदेश के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की थी, जबकि वे उक्त एकपक्षीय आदेश दिनांक 7.9.2021 के खिलाफ अपील दायर कर सकते थे। इसलिए, यह स्पष्ट है कि निचली अदालत ने प्रतिपक्षियों/अपीलकर्ताओं के खिलाफ मामले को एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ाना उचित था। निचली अदालत ने भी रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर अनुमान लगाया कि विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता के पक्ष में रखरखाव आदेश पारित किया है। निचली अदालत ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि अपील खारिज की जा सकती है और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की पुष्टि की जानी चाहिए।

9. निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों से व्यथित महसूस करते हुए, पुनरीक्षणकर्ता जो विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी हैं, ने इस आधार पर वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया है कि प्रतिवादी संख्या-2 के पति की मृत्यु के बाद, उसके पति के नाम की सारी संपत्ति उसे दे दी गई थी और उसने सभी लेख और गहने ले लिए और अपने बच्चों के साथ अपने माता-पिता के घर पर रहने लगीं। संपत्ति के संबंध में पुनरीक्षणकर्ता और प्रतिवादी संख्या-2 के बीच विवाद है जिसके लिए कई दौर की मध्यस्थता की गई थी। प्रतिवादी संख्या-2 ने 21.8.2020 को पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ धारा 498-ए, 342, 323, 504, 506 भ०द०वि०, थाना-साउथ, जिला: फिरोजाबाद के तहत केस अपराध संख्या-181 वर्ष 2020 के रूप में दर्ज

एक झूठी प्राथमिकी भी दर्ज की, जिसमें विवेचना के दौरान प्रतिवादी संख्या-2 के बयान के आधार पर धारा 164 भ०द०वि० को और जोड़ा गया। पुनरीक्षणकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष द०प्र०स० संख्या-16933 वर्ष 2022 के तहत आवेदन में जांच के बाद पुलिस द्वारा उक्त आपराधिक मामले में दायर आरोप पत्र को चुनौती दी, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता को दिनांक 20.7.2022 के आदेश के तहत अंतरिम राहत दी गई थी कि लिस्टिंग की अगली तारीख तक, उक्त आपराधिक मामले में आवेदकों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी। उक्त आवेदन प्रतिवादी संख्या-2 के देवर रोहित यादव, प्रतिवादी संख्या-2 की देवरानी श्रीमती आरती यादव और श्रीमती मधुबाला (प्रतिवादी संख्या-2 की सास) द्वारा दायर किया गया था। प्रतिवादी संख्या-2 के पति के रिश्तेदार होने के कारण प्रतिवादियों को रखरखाव प्रदान करने के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता है। प्रतिवादी संख्या-2 ने पहले ही अपने दिवंगत पति के नाम पर पड़े शेयर/संपत्ति, सभी बीमा धन और बैंक जमा ले लिए हैं और उसने केवल पुनरीक्षणकर्ताओं को परेशान करने के लिए प्रस्तुत मामला दायर किया है, लेकिन इस तथ्य को निचली अदालत ने अनदेखा कर दिया था। आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जा सकता है और न्याय के हित में पुनरीक्षण की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में आपराधिक पुनरीक्षण में उल्लिखित आधारों को बताया और वर्तमान पुनरीक्षण की अनुमति देने और पुनरीक्षणकर्ताओं को किसी भी दायित्व से

मुक्त करने के लिए प्रार्थना की, जिसके साथ वे प्रतिवादी संख्या-2 के संबंध में निचली अदालत के आदेशों से दुखी हैं।

11. इसके विपरीत प्रतिवादियों और अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि नीचे की अदालतों ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय कोई अनियमितता, अवैधता या विकृति नहीं की है, जो रिकॉर्ड पर सामग्री पर आधारित है और प्रतिवादी और उसकी नाबालिग बेटियों के रखरखाव के लिए प्रथम दृष्टया अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा बहुत ही उचित और सस्ता है। विद्वान न्यायाधिकारी/मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश से पहले तथ्यों और कानून की उचित समझ होती है। विचारण न्यायालय ने सही माना है कि मूल याचिकाकर्ता/प्रतिवादी संख्या-2 घरेलू हिंसा के अधीन होने और प्रतिवादी/पुनरीक्षणकर्ताओं के हाथों में होने के कारण अलग रह रही है और वह खुद के साथ-साथ अपनी नाबालिग बेटियों का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। प्रतिवादी संख्या-2 के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या-2 की पूरी तरह से उपेक्षा की है और मामले के इस पहलू को देखते हुए विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या-2 को रखरखाव प्रदान किया है। आक्षेपित आदेश न्यायसंगत और उचित हैं और वर्तमान पुनरीक्षण में किसी भी हस्तक्षेप के लायक नहीं हैं क्योंकि इससे घरेलू हिंसा के शिकार पुनरीक्षणकर्ताओं की दुर्दशा में वृद्धि होगी। उन्होंने वर्तमान पुनरीक्षण को खारिज करने की प्रार्थना की।

12. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (अधिनियम संख्या-43 वर्ष 2005 26.10.2006 को लागू हुआ) का उद्देश्य और कारण खंड प्रदान करता है कि "संविधान के तहत गारंटीकृत महिलाओं के अधिकारों के अधिक प्रभावी संरक्षण, जो परिवार के भीतर होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा से पीड़ित हैं, और उससे जुड़े या आकस्मिक मामलों के लिए एक अधिनियम।

13. धारा 2 में, जो परिभाषा खंड है, निम्नलिखित अभिव्यक्तियों को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: -

(ए) "पीड़ित व्यक्ति" का अर्थ है कोई भी महिला जो प्रतिवादी के साथ घरेलू संबंध में है, या रही है और जो प्रतिवादी द्वारा घरेलू हिंसा के किसी भी कार्य के अधीन होने का आरोप लगाती है।

(च) घरेलू संबंध से ऐसे दो व्यक्तियों के बीच संबंध अभिप्रेत है जो किसी साझी गृहस्थी में रहते हैं या किसी समय एक साथ रहते हैं, जब वे संसाहरण, विवाह द्वारा या विवाह, दत्तक ग्रहण की प्रकृति में संबंध रखते हैं या संयुक्त परिवार के रूप में एक साथ रहने वाले परिवार के सदस्य हैं।

(थ) "प्रतिवादी" से ऐसा कोई वयस्क पुरुष व्यक्ति अभिप्रेत है जो व्यथित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में है या रहा है और जिसके विरुद्ध व्यथित व्यक्ति ने इस अधिनियम के अधीन कोई राहत मांगी है, परन्तु विवाह के स्वरूप के संबंध में रहने वाली व्यथित पत्नी

या स्त्री भी पति या पुरुष साथी के किसी रिश्तेदार के विरुद्ध शिकायत दर्ज कर सकेगी।

(ध) "साझी गृहस्थी" से ऐसा गृहस्थी अभिप्रेत है जहां व्यथित व्यक्ति रहता है या किसी भी अवस्था में या तो अकेले या प्रतिवादी के साथ घरेलू संबंध में रहता है और इसके अंतर्गत ऐसा गृहस्थी भी है, चाहे व्यथित व्यक्ति और प्रतिवादी द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व में हो या किरायेदार हो, या उसका स्वामित्व या किरायेदार हो, जिसके संबंध में या तो प्रतिवादी का व्यथित व्यक्ति या दोनों का संयुक्त रूप से या अकेले ही कोई अधिकार हो; शीर्षक, ब्याज या इक्विटी और इसमें ऐसा परिवार शामिल है जो संयुक्त परिवार से संबंधित हो सकता है, जिसका प्रतिवादी सदस्य है, भले ही प्रतिवादी या पीड़ित व्यक्ति का साझा परिवार में कोई अधिकार, स्वामित्व या हित हो।

14. घरेलू हिंसा को अधिनियम की धारा 3 के तहत परिभाषित किया गया है जिसमें शारीरिक शोषण, यौन शोषण, मौखिक दुर्व्यवहार, भावनात्मक दुर्व्यवहार और उत्तरदाताओं द्वारा पीड़ित पर आर्थिक शोषण शामिल है।

15. धारा 20 मौद्रिक राहत के लिए प्रदान करती है जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"मौद्रिक राहत।

(1) धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन का निपटान करते समय, मजिस्ट्रेट, प्रतिवादी को घरेलू हिंसा के परिणामस्वरूप व्यथित व्यक्ति और व्यथित व्यक्ति के किसी

बालक को उपगत व्यर्थों और हानियों को पूरा करने के लिए मौद्रिक परिपथ का संदाय करने का निदेश दे सकेगा और ऐसी राहत के निम्नलिखित सम्मिलित हो सकते हैं किन्तु इन्हीं तक सीमित नहीं हैं-

- (क) आय का कितना नुकसान हुआ है;
- (ख) चिकित्सा व्यय कितना है;
- (ग) व्यथित व्यक्ति के नियंत्रण से किसी संपत्ति को नष्ट करने, क्षति पहुंचाने या हटाने के कारण हुई हानि; और
- (घ) व्यथित व्यक्ति के साथ-साथ उसके बच्चों के लिए रखरखाव, यदि कोई हो, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 125 के तहत रखरखाव के आदेश के तहत या इसके अलावा एक आदेश या किसी अन्य कानून शामिल है।

(2) इस धारा के अधीन दी गई मौद्रिक राहत पर्याप्त, उचित और युक्तियुक्त होगी और व्यथित व्यक्ति के जीवन स्तर के अनुरूप होगी।

(3) मजिस्ट्रेट को उचित एकमुश्त भुगतान या भरण-पोषण के मासिक संदाय का आदेश देने की शक्ति होगी, जैसा कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों की अपेक्षा की जा सकती है।

(4) मजिस्ट्रेट, उपधारा (1) के अधीन की गई मौद्रिक राहत के आदेश की एक प्रति आवेदन के पक्षकारों को और उस स्थानीय सीमा के भीतर थाना के प्रभारी को भेजेगा, जिसकी अधिकारिता-क्षेत्र में प्रतिवादी निवास करता है।

(5) प्रतिवादी व्यथित व्यक्ति को दी गई मौद्रिक अनुतोष का संदाय उपधारा (1) के अधीन आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर करेगा।

(6) उपधारा (1) के अधीन आदेश के निबंधनों में संदाय करने में प्रतिवादी की ओर से असफलता पर, मजिस्ट्रेट, नियोक्ता या प्रतिवादी के देनदार को व्यथित व्यक्ति को सीधे संदाय करने या न्यायालय में प्रतिवादी के क्रेडिट के लिए देय या उपार्जित मजदूरी या वेतन या ऋण का एक भाग न्यायालय में जमा करने का निदेश दे सकेगा, जिस राशि को प्रतिवादी द्वारा देय मौद्रिक राहत के लिए समायोजित किया जा सकता है।

16. धारा 23 मजिस्ट्रेट को प्रतिवादियों के खिलाफ धारा 18, 19, 20, 21 या जैसा भी मामला हो, धारा 22 के तहत पीड़ित व्यक्ति के ऐसे रूप में शपथ पत्र के आधार पर अंतरिम और एकपक्षीय आदेश देने का अधिकार देती है। धारा 28 में यह प्रावधान है कि जैसा कि इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित है, धारा 12, 18, 19, 20, 21, 22 और 23 के तहत सभी कार्यवाहियां और धारा 31 के तहत अपराध द०प्र०स०, 1973 के प्रावधानों द्वारा शासित होंगे, हालांकि, उप-धारा (2) स्पष्ट करती है कि उप-धारा (1) में कुछ भी अदालत को धारा 12 के तहत या धारा 23 की उप-धारा (2) के तहत किसी आवेदन के निपटान के लिए अपने स्वयं के विशेषाधिकार निर्धारित करने से नहीं रोकेगा।

17. पुनरीक्षणकर्ता ने पुनरीक्षण ज्ञापन में यह नहीं कहा है कि वे विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए रखरखाव के लिए प्रदान करने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं, इसके बजाय उन्होंने वर्तमान प्रतिवादी संख्या-2 के पक्ष में रखरखाव और निवास आदेश प्रदान करने के लिए निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों के खिलाफ कुछ तकनीकी आपत्तियां उठाई हैं। उन्हें प्रथम दृष्टया अदालत द्वारा लिखित बयान दर्ज करने और निचली अदालत के समक्ष मामले की सुनवाई में भाग लेने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका में किए गए कथन के खिलाफ लिखित बयान दर्ज करने में विफल रहे हैं, जो वर्तमान में प्रतिवादी संख्या-2 है। उन्होंने लिखित बयान दर्ज करने और मामले की सुनवाई की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए कई स्थगन प्राप्त किए थे, लेकिन मामले के बारे में पता होने और निचली अदालत के समक्ष सुनवाई के बाद भी, उन्होंने खुद का बचाव करने की कोशिश नहीं की और अदालत को उनके खिलाफ एकपक्षीय कार्यवाही करनी पड़ी और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ मामले का फैसला करना पड़ा, जो पहले की अदालत के समक्ष प्रतिवादी थे।

18. प्रतिवादी संख्या-2 ने प्रथम दृष्टया अदालत के समक्ष अपने मूल आवेदन में कहा है कि विवादित मामलों के संबंध में विभिन्न प्रकार के संरक्षण आदेश की मांग की गई है और प्रतिवादी संख्या-1 से 3 निवासी 1/682, सुहागनगर, जिला: फिरोजाबाद हैं, जो उसके देवर, भाभी और सास हैं। प्रतिवादी संख्या-4 और 5 उसकी ननद और नंदोई हैं जो

विपुलखंड में रहते हैं। वह भी उसी घर में रह रही थी जो प्रतिवादी संख्या-1 और 2 से संबंधित है, अपने पति के साथ उसकी शादी के बाद और उसके बाद भी प्रतिपक्षियों द्वारा उसे दिए गए उत्पीड़न और यातना को देखते हुए, उसे 12.7.2020 को अपना वैवाहिक घर छोड़ने के लिए मजबूर किया गया और अपनी नाबालिग बेटियों के साथ अपने माता-पिता के स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया। प्रतिपक्षी संख्या-1 और 2 जो उसके देवर और सास हैं, जिनकी पैतृक संपत्ति ग्राम चमरौला, तहसील आत्मादपुर, जिला: आगरा, ग्राम इटाली, तहसील-बाह, जिला: आगरा, ग्राम आलमपुर जारखी, जिला: फिरोजाबाद, ग्राम पचवां, जिला: फिरोजाबाद, मौजा उशायनी, तहसील टूंडला, जिला: फिरोजाबाद में है। फिरोजाबाद में एक घर के साथ छह दुकानें और शहर फिरोजाबाद में कई अचल संपत्ति है जिससे वे किराए के माध्यम से पर्याप्त आय अर्जित करते हैं। वे आवेदक और उसके नाबालिग बच्चों के रखरखाव के लिए कोई पैसा नहीं देते हैं। डीपीओ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में, वर्तमान प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा दायर शिकायत में किए गए घरेलू हिंसा के आरोप का तथ्य स्थापित पाया गया था। निचली अदालतों ने यह निष्कर्ष दिया है कि आवेदक (श्रीमती दीपिका यादव) अपने बच्चों के साथ खुद का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। उसने अदालत के समक्ष अपने साक्ष्य के माध्यम से शिकायत के संस्करण का समर्थन किया है जिसे हलफनामे के साक्ष्य के रूप में दायर किया गया है और इसे अविवादित किया गया था क्योंकि प्रतिपक्षी सुनवाई की प्रक्रिया में भाग लेने में विफल रहे थे। इंद्रा शर्मा बनाम

वीकेवी शर्मा, ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 309 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि घरेलू हिंसा अधिनियम से महिलाओं की सुरक्षा के लिए दीवानी कानून में एक उपाय प्रदान करने और समाज में घरेलू हिंसा की घटना को रोकने के लिए घरेलू हिंसा अधिनियम अधिनियमित किया गया है। यह अधिनियम उन महिलाओं के अधिकारों का प्रभावी संरक्षण प्रदान करने के लिए भी अधिनियमित किया गया है जो परिवार के भीतर होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा से पीड़ित हैं।

19. सतीश चंद्र आहूजा बनाम स्नेहा आहूजा, ए.आई.आर. 2020 एस.सी. 2483 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि एस.आर. बत्रा और अन्य बनाम तरुणा बत्रा, (2007)3 एस.सी.सी. 169 ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(एस) के प्रावधानों की सही व्याख्या नहीं की है और सही कानून नहीं बनाया है, जहां अदालत ने माना कि पत्नी केवल निवास के अधिकार का दावा करने की हकदार है, शेर परिवारों का अर्थ केवल पति से संबंधित या उसके द्वारा किराए पर लिया गया मकान या वह मकान होगा जो संयुक्त परिवार से संबंधित है जिसका पति सदस्य है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सतीश चंद्र आहूजा के मामले (उपरोक्त) में आगे कहा कि धारा 2(एस) में ध्यान दिए गए शेर परिवार की परिभाषा यह इंगित नहीं करती है कि एक शेर परिवार वह होगा जो पति से संबंधित है या उसके द्वारा किराए पर लिया गया है। हमने अधिनियम के तहत "प्रतिवादी" की परिभाषा पर ध्यान दिया है। घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत कार्यवाही में प्रतिवादी पति

का कोई भी रिश्तेदार हो सकता है। यदि साझा परिवार पति के किसी रिश्तेदार से संबंधित है, जिसके साथ घरेलू संबंध में महिला रहती है, तो उप-धारा 2(एस) में उल्लिखित शर्तें संतुष्ट हैं और उक्त घर एक साझा घर बन जाएगा और धारा 2(एस) के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि साझा आवास के लिए ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है कि घर अकेले या पति द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व में हो या पति द्वारा किराए पर लिया जा सकता है। अधिनियम का लक्ष्य और उद्देश्य पीड़ित व्यक्ति, साझा घरों में निवास करने वाली महिला को अधिकार प्रदान करना था। एस.आर. बत्रा के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या, यदि स्वीकार की जाती है, तो अधिनियम के लक्ष्य और उद्देश्य को स्पष्ट रूप से विफल कर देगी। पत्नी अपने पति के रिश्तेदारों से संबंधित शेर घरों में निवास के अधिकार का दावा करने की हकदार है।

20. प्रस्तुत मामले में, पुनरीक्षणकर्ताओं ने यह रुख नहीं अपनाया है कि वे उनके खिलाफ प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा दिए गए रखरखाव की राशि का भुगतान करने में असमर्थ हैं जो प्रतिवादी संख्या-2 को अपने और उसकी दो नाबालिग बेटियों के रखरखाव के लिए देय है। पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से उठाए गए विवाद का मुख्य जोर यह है कि पुनरीक्षणकर्ताओं और प्रतिवादी संख्या-2 के बीच संपत्ति विवाद है क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता प्रतिवादी संख्या-2 के ससुराल वाले हैं और निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की

गई एकपक्षीय है। निचली अदालतों ने इस मुद्दे को ठीक से संबोधित किया है कि अदालत को पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ एकपक्षीय निर्णय क्यों पारित करना पड़ा क्योंकि अदालत में उपस्थित होने के बाद भी, पुनरीक्षणकर्ता कोई लिखित बयान दर्ज करने में विफल रहे। उन्होंने लिखित बयान दर्ज करने के लिए कई स्थगन लिए और बाद में खुद को अनुपस्थित कर दिया और प्रभावी आदेश पारित करने के बाद भी कि उनके खिलाफ मामले की एकपक्षीय सुनवाई की जाएगी, उन्होंने 7.9.2021 के एकपक्षीय आदेश को वापस लेने के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया, इसलिए, अदालत के पास एकपक्षीय साक्ष्य प्राप्त करने और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ मामले का फैसला करने के लिए आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था। पुनरीक्षणकर्ताओं ने निचली अदालत द्वारा दिए गए आदेश के अनुसार रखरखाव की मात्रा या प्रतिवादी संख्या-2 को रखरखाव की राशि का भुगतान करने में असमर्थता के बारे में कोई विशिष्ट कथन नहीं किया है, इसलिए, मुझे विद्वान न्यायाधिकारी द्वारा दिए गए रखरखाव की राशि की मात्रा के परिमाणीकरण के बारे में कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं मिलती है और अपीलीय न्यायालय द्वारा पुष्टि की जाती है। हालांकि, इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि पुनरीक्षणकर्ता संख्या-4 और 5, जिन्हें निचली अदालत के समक्ष प्रतिपक्षी संख्या-4 और 5 के रूप में पेश किया गया है, शिकायतकर्ता/प्रतिवादी संख्या-2 की विवाहित बहनें (नन्द और नंदोई) हैं। वे किसी अन्य स्थान पर रहते हैं और उनका पता

शिकायतकर्ता ने स्वयं विपुलखंड, लखनऊ में दिया है क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 से 3 के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या-2 वर्तमान में जिला: फिरोजाबाद में रह रहे हैं, इसलिए, विशेष रूप से इस संबंध में विशिष्ट दलीलों और सबूतों के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि पुनरीक्षणकर्ता संख्या-4 और 5 शिकायतकर्ता/प्रतिवादी संख्या-2 के साथ घरेलू संबंध में थे। साझा परिवार जहां प्रतिवादी संख्या-2 ने अपने दिवंगत पति के साथ शादी के बाद और उसके बाद कुछ समय के लिए पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 से 3 के साथ रहने की बात कही है, शिकायतकर्ता के संस्करण के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 और 2 से संबंधित है। प्रतिवादी संख्या-4 और 5 उसके दिवंगत पति के परिवार के सदस्य होने के नाते शिकायतकर्ता/प्रतिवादी संख्या-2 को पहली बार की अदालत के आक्षेपित निर्णय में दिए गए रखरखाव प्रदान करने की जिम्मेदार नहीं ठहराए जा सकते हैं और न ही उन्हें साझा घर में आवास प्रदान करने के लिए जवाबदेह ठहराया जा सकता है जो उनका नहीं है, इसलिए, आक्षेपित आदेश को इस हद तक संशोधित किया जा सकता है कि आक्षेपित निर्णय में निचली अदालत द्वारा दी गई राहत पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 से 3 के संबंध में सीमित होगी और पुनरीक्षणकर्ता संख्या-4 और 5 को शिकायतकर्ता को साझा घरों में रखरखाव और आवास प्रदान करने के लिए अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का पालन करने से छूट दी गई है, इसलिए, पुनरीक्षण को आंशिक रूप से इस हद तक अनुमति दी जाती है कि शिकायत केस संख्या-637 वर्ष 2020 में प्रतिपक्षी संख्या-4 और 5 के संबंध में

आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाता है, जो इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता संख्या-4 और 5 हैं, हालांकि, आक्षेपित आदेश पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 से 3 के संबंध में अच्छा होगा, जो निचली अदालत के समक्ष प्रतिपक्षी संख्या-1 से 3 हैं।

21. इस पुनरीक्षण के साथ, इस न्यायालय को निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों में कोई अवैधता, अनियमितता नहीं मिलता है, जिन्हें इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है। आक्षेपित आदेश प्रतिवादी संख्या-1 से 3 पर बाध्यकारी होगा और इस संबंध में प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा किए गए आवेदन पर उनके खिलाफ निष्पादन योग्य होगा, हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस पुनरीक्षण का निर्णय लेते समय की गई टिप्पणियां केवल वर्तमान पुनरीक्षण के उद्देश्य से हैं और शिकायतकर्ता द्वारा पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ दायर आपराधिक मामले पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

(2023) 7 ILRA 525

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह,
के समक्षरिक्त/पुनर्स्थापना आवेदन संख्या 5 सन्
2023

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1839 सन् 2023

गोविंद @ अरविंद एवं अन्य

.....पुनरीक्षणकर्तागण

बनाम

यू.पी. राज्य एवं अन्य

....प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता: श्री अमित राणा, श्री आनंद प्रकाश दुबे, श्री नीरज श्रीवास्तव, श्री सुहेल अहमद आजमी

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री आदेश कुमार, बरखा चौधरी

(ए) दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 302, 506 और 120 बी - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 362 - न्यायालय द्वारा निर्णय में परिवर्तन न किया जाना - आपराधिक न्याय वितरण प्रणाली न्यायालय को किसी भी शब्द को जोड़ने या हटाने का अधिकार नहीं देती है, सिवाय लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के, जैसा कि विशेष रूप से कानून के तहत ही प्रावधान किया गया है कि निर्णय की घोषणा के बाद न्यायाधीश फंक्टस ऑफिशियो हो जाता है - किसी भी गलती या स्पष्ट चूक को कानून के अनुसार उचित मंच द्वारा ही ठीक किया जाना है। (पैरा - 16)

अभियोजन पक्ष/शिकायतकर्ता द्वारा आवेदन प्रस्तुत किया गया - पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक को बुलाया गया - समन आदेश को आपराधिक पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती दी गई - न्यायालय द्वारा निपटारा किया गया - इसलिए पुनर्स्थापना आवेदन - पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक चाहता है कि न्यायालय मामले की पुनः सुनवाई गुण-दोष के आधार पर करे। (पैरा - 2,6)

निर्णय:- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के प्रावधानों के कारण न्यायालय पुनरीक्षण याचिका का निपटारा करने वाले अपने आदेश को वापस लेने का इच्छुक नहीं है। (पैरा-17)

रिकॉल आवेदन खारिज कर दिया गया। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 922
2. उड़ीसा राज्य बनाम राम चंद्र अग्रवाल एवं अन्य, 1979 एससीआर (1) 1114
3. मोती लाल बनाम एम.पी. राज्य, एआईआर 1994 एससी 1544
4. नरेश एवं अन्य बनाम यू.पी. राज्य, एआईआर 1981 एससी 1385
5. श्रीमती सोराज देवी बनाम प्यारे लाल एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 736
6. हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा एवं अन्य, 2001 (1) एससीसी 169
7. राज्य का प्रतिनिधित्व डी.एस.पी. बनाम के.वी. राजेंद्रन एवं अन्य ,आपराधिक अपील संख्या 1389 सन् 2008
8. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर, (2011) 14 एससीसी 770

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा द्वारा प्रदत्त)

1. इस प्रार्थना पत्र के माध्यम से, आवेदक/पुनरीक्षणकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1839/2022 में इस न्यायालय द्वारा

पारित दिनांक 28.9.2022 के आदेश को रिकॉल करने की प्रार्थना की है।

2. वर्तमान रेस्टोरेशन प्रार्थना पत्र को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा दायर एक प्रार्थना पत्र पर, पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक को विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 6, मेरठ द्वारा दिनांक 07.4.2022 के आदेश के तहत धारा 147, 148, 149, 302, 506, 120 बी भा0दं0सं0 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 610 / 2020 में मुकदमे के खिलाफ प्रस्तुत होने के लिए बुलाया गया था। उपरोक्त सम्मन आदेश को पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक द्वारा अधिवक्ता श्री अमित राणा के माध्यम से आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1839/2022 दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 28.9.2022 के आदेश के माध्यम से निस्तारित किया गया था।

3. इस प्रार्थना पत्र के माध्यम से, आवेदक ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1839/2022 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28.9.2022 के आदेश को रिकॉल करने की प्रार्थना की है। पुनरीक्षण की सुनवाई के समय, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त आक्षेपित आदेश को अपनी चुनौती छोड़ दी और **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य 2021** एससीसी ऑनलाइन एससी 922 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार अपनी जमानत याचिका के निस्तारण तक अपनी दलील को सीमित कर दिया। उक्त

पुनरीक्षण का निस्तारण इस न्यायालय ने दिनांक 28.9.2022 के आदेश के तहत किया। रिकॉल करने के लिए मांगे गए आदेश इस प्रकार हैं:

"पुनरीक्षणकर्तागण की ओर से विद्वान अधिवक्ता, राज्य/विपक्षी संख्या 1 की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

धारा 397/401 दं0प्र0सं0 के तहत तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण को पुनरीक्षणकर्तागण अर्थात् गोविंद @ अरविंद, अंकित, मनीष और अनिल द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 186 / 2021 में सत्र परीक्षण संख्या 610 से उत्पन्न 2021 के सत्र परीक्षण संख्या 186 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 07.04.2022 के खिलाफ दायर किया गया है। आवेदक ने इस न्यायालय द्वारा क्रिमिन2020 (राज्य बनाम पंकज) में धारा 302, 147, 148, 149, 506, 120-बी भा0दं0सं0, पुलिस स्टेशन कंकरखेड़ा, जिला मेरठ के तहत पारित आदेश दिनांक 28.9.2022 को रिकॉल करने की प्रार्थना की है, जिसके तहत पुनरीक्षणकर्ताओं को अतिरिक्त आरोपी के रूप में तलब किया गया है।

शुरुआत में, पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त आक्षेपित आदेश को अपनी चुनौती दे दी और अपने सबमिशन को सीमित कर दिया, जिसमें पुनरीक्षणकर्तागण को अवर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए कुछ सुरक्षा प्रदान करने का अनुरोध किया गया था। पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने बार में आगे कहा कि वह

योग्यता के आधार पर किसी अन्य प्रार्थना पर जोर नहीं दे रहे हैं और प्रार्थना की कि पुनरीक्षणकर्तागण की जमानत याचिका पर शीघ्रता से विचार करने और निर्णय लेने के लिए नीचे की संबंधित न्यायालय को निर्देश जारी किया जाए।

उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान ए.जी.ए. प्रस्तुत करता है कि यदि पुनरीक्षणकर्ता योग्यता के आधार पर मांगी गई राहत पर जोर नहीं दे रहे हैं और नीचे संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना चाहते हैं, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि न्यायालय उन्हें थोड़े समय के लिए संरक्षण प्रदान करता है।

तथापि, पुनरीक्षकों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई उपरोक्त प्रार्थना पर विचार करते हुए, यह निर्देश दिया जाता है कि पुनरीक्षणकर्ता-गोविंद@अरविंद, अंकित, मनीष और अनिल आज से तीन सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और यदि वे जमानत के लिए प्रार्थना पत्र करते हैं, तो कानून के अनुसार और सतेंद्र के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों को ध्यान में रखते हुए नीचे के न्यायालयों द्वारा शीघ्र निपटाया जाएगा कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 922 में रिपोर्ट किया गया।

आज से तीन सप्ताह की अवधि के लिए या जब तक पुनरीक्षणकर्ता संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करते हैं, जो भी पहले हो, उन्हें पूर्वोक्त मामले में गिरफ्तार नहीं किया जाएगा।

उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण का निस्तारण किया जाता है।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि पुनरीक्षणकर्ता ने इस न्यायालय के दिनांक 28.9.2022 के आदेश का अनुपालन नहीं किया है और श्रीमती गुंजन शर्मा नामक एक अन्य अधिवक्ता के माध्यम से यह रेस्टोरेशन प्रार्थना पत्र दायर किया है, जिसमें 28.9.2022 के आदेश को रिकॉल करने और योग्यता के आधार पर 2022 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1839 पर नए सिरे से निर्णय लेने की प्रार्थना की गई है।

5. इस विषय पर न्याय निर्णय पर चर्चा करने से पहले, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 को उद्धृत करना उपयोगी होगा:

362. न्यायालय का निर्णय में परिवर्तन न करना:- इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई न्यायालय, जब उसने अपने निर्णय पर हस्ताक्षर कर दिए हैं या मामले का निस्तारण करने वाले अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर चुका है, लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें परिवर्तन या रिव्यू नहीं करेगा।

6. दं0प्र0सं0 की धारा 362 का अवलोकन यह स्पष्ट है कि कोई भी न्यायालय अपने फैसले पर हस्ताक्षर करने या मामले के निपटारे के अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर करने के बाद, लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें बदलाव या रिव्यू नहीं करेगा।

इस रिकॉल प्रार्थना पत्र के माध्यम से, पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक चाहता है कि यह न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले की नए सिरे से सुनवाई करे। यदि आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है और न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले की सुनवाई करती है और आदेश पारित करती है, तो यह उसके पहले के आदेश की रिव्यू करने के समान होगा, जो धारा 362 दं0प्र0सं0 द्वारा पूरी तरह से निषिद्ध है।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय के ढेर सारे में यह तय किया गया है कि न्यायालय को अपने पहले के आदेश की रिव्यू नहीं करनी चाहिए।

8. उड़ीसा राज्य बनाम राम चंदर अग्रवाल और अन्य, 1979 एससीआर (1) 1114 में, अभियुक्त ने दोषी ठहराए जाने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपील दायर की। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलों को खारिज करते हुए पाया कि कानून में प्रत्येक अपराध के लिए 1000 रुपये के जुर्माने की न्यूनतम सजा देने की आवश्यकता है और चूंकि विचारण न्यायालय द्वारा पारित सजा कानून के अनुसार नहीं थी, इसलिए उन्होंने उचित सजा पारित करने के लिए मामले को उच्च न्यायालय में भेज दिया। अभियुक्तों ने सत्र न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी। दोनों कार्यवाहियों को एक साथ सुना गया और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त द्वारा पसंद की गई पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया और सत्र

न्यायाधीश द्वारा संदर्भ को स्वीकार कर लिया और जहां तक फर्मों का संबंध है, सजा को बढ़ाकर 3900 रुपये कर दिया। जहां तक प्रबंधकों अथवा प्रबंध भागीदारों का संबंध है, उच्च न्यायालय ने उन्हें छह माह के कठोर कारावास की सजा सुनाई। प्रबंधक और प्रबंध भागीदारों ने अपने आदेश की रिव्यू के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाएं दायर कीं। उच्च न्यायालय ने पुनर्विचार के लिए याचिका स्वीकार कर ली और छह महीने की सजा देने वाले अपने पिछले फैसले को वापस ले लिया और इसके बदले 3000 रुपये का जुर्माना लगाया।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के बाद के आदेश को रद्द करते हुए निम्नानुसार आयोजित किया है:

"एक बार जब एक उच्च न्यायालय द्वारा अपने अपीलीय या अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए निर्णय सुनाया जाता है, तो उस निर्णय के खिलाफ कोई रिव्यू या पुनरीक्षण नहीं किया जा सकता है क्योंकि आपराधिक प्रक्रिया संहिता में कोई प्रावधान नहीं है जो उच्च न्यायालय को इसकी रिव्यू करने या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में सक्षम बनाता है।

10. मोती लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1994 एससी 1544 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि धारा 362 दं०प्र०सं० स्पष्ट शब्दों में कहती है कि न्यायालय लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उस पर हस्ताक्षर किए

जाने के बाद निर्णय को बदल नहीं सकता है। ऐसी स्थिति होने के नाते, उच्च न्यायालय के पास दं०प्र०सं० की धारा 482 के तहत पहले के फैसले को बदलने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

11. नरेश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1981 एससी 1385 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

पीठ ने कहा, "हम 14 अप्रैल, 1989 के आदेश को समझ नहीं पा रहे हैं। नरेश के खिलाफ मामले पर चर्चा करते हुए 25 फरवरी, 1980 के अपने फैसले में विद्वान न्यायाधीश ने एक विशिष्ट और स्पष्ट निष्कर्ष दिया था कि वह मृतक बहादुर को मारने का इरादा रखता था और इसलिए, उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध किया था। फैसले के ऑपरेटिव हिस्से में भी यही बात कही गई है। हम यह नहीं समझ पाते कि विद्वान न्यायाधीशों का क्या मतलब है जब वे 14 अप्रैल, 1980 के अपने आदेश में कहते हैं, "निर्णय के ऑपरेटिव हिस्से में लिपिकीय गलती है। उच्च न्यायालय ने आपराधिक अपीलों का निस्तारण करते हुए उनके द्वारा सुनाए गए निर्णय को बदल कर पूरी तरह से गलत किया था। यह स्पष्ट रूप से दं०प्र०सं० की धारा 362 के प्रावधानों का उल्लंघन था, जो बदतर था, उच्च न्यायालय ने लिपिकीय गलतियों को सुधारने की शक्ति के कथित प्रयोग में काम किया जबकि वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं था। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषसिद्धि पूरी तरह से सही थी

और पहली बार में उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि की सही पुष्टि की गई थी। एक लिपिकीय गलती को सुधारने और धारा 302 के तहत सजा को धारा 304 भारतीय दंड संहिता के तहत एक में बदलने के लिए शक्ति के कथित प्रयोग के लिए कोई अवसर नहीं था। हम बहुत चिंतित हैं कि उच्च न्यायालय ने यह गंभीर गलती की है। हालांकि, इस समय हम इसके बारे में कुछ नहीं कर सकते क्योंकि राज्य ने 14 अप्रैल, 1980 के आदेश के खिलाफ कोई अपील दायर करने का विकल्प नहीं चुना है।

12. श्रीमती सूरज देवी बनाम प्यारे लाल और अन्य, एआईआर 1981 एससी 736 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय के फैसले को बदलने या रिव्यू करने के खिलाफ धारा 362 दंडप्र0सं0 में निषेध, "अन्यथा इस संहिता द्वारा या किसी अन्य कानून द्वारा लागू किया गया है" के अधीन है। हालांकि, वे शब्द केवल उन प्रावधानों को संदर्भित करते हैं जहाँ न्यायालय को संहिता या अन्य कानून द्वारा अपने निर्णय को बदलने या रिव्यू करने के लिए स्पष्ट रूप से अधिकृत किया गया है। न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति पर दंडप्र0सं0 की धारा 362 में निहित बचत प्रावधान द्वारा विचार नहीं किया गया है और इसलिए, उस शक्ति को लागू करने के प्रयास का कोई फायदा नहीं हो सकता है।

13. हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा और अन्य, 2001 (1) एससीसी 169, एक ऐसा मामला था जिसमें उच्च न्यायालय

द्वारा आवेदक द्वारा दायर याचिका के निस्तारण के बाद और परिणामस्वरूप कार्रवाई की गई थी, आवेदक ने एक और याचिका दायर की, जिसे उसी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकार किया गया और निपटाया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया:

"हमने घृणा के साथ नोट किया है कि आपराधिक कानून के बुनियादी सिद्धांतों की पूरी तरह से अनदेखी करते हुए आदेश पारित किए गए थे। दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किसी आदेश की रिव्यू पर विचार नहीं किया जाता है। 7.1.1999 को मुख्य याचिका के निस्तारण के बाद, उच्च न्यायालय में कोई एलआईएस लंबित नहीं था जिसमें प्रतिवादी कोई विविध याचिका दायर कर सकता था। दंड प्रक्रिया संहिता के किसी प्रावधान या न्यायालय के नियमों के संदर्भ में नहीं दी गई विविध याचिका दायर करने को नए मुकदमे के बजाय सहारा नहीं लिया जा सकता है। हमारे सामने पेश की गई कार्यवाही के रिकॉर्ड से पता चलता है कि उत्तरदाताओं द्वारा दायर मामले में निर्देश याचिका में किसी भी प्रतिवादी को नोटिस दिए बिना जारी किए गए थे। केवल इसलिए कि प्रतिवादी संख्या 1 एक अधिवक्ता था, दूसरे पक्ष की सूचना के बिना उसके अनुरोध पर निर्देश जारी करने को सही नहीं ठहराया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति के तहत उच्च न्यायालय द्वारा 30 अप्रैल, 1999 और 21 जुलाई, 1999 के आक्षेपित आदेश पारित नहीं किए जा सकते थे। मुख्य मामले के निस्तारण

के बाद विविध याचिकाएं दायर करने और उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी विविध याचिकाओं में नए निर्देश जारी करने की प्रथा अनुचित है, किसी भी वैधानिक प्रावधान के लिए संदर्भित नहीं है और संक्षेप में न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो उच्च न्यायालय को उसके अपीलीय या पुनरीक्षण या मूल आपराधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए पारित अपने निर्णय की रिव्यू करने के लिए प्राधिकृत करता हो। इस तरह की शक्ति का प्रयोग संहिता की धारा 482 की सहायता से या आड़ में नहीं किया जा सकता है।

न्यायालय ने आगे कहा:

"संहिता की धारा 362 में कहा गया है कि कोई भी न्यायालय, जब उसने अपने फैसले पर हस्ताक्षर किए हैं या किसी मामले का निस्तारण करने वाले अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं, तो वह लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें बदलाव या रिव्यू नहीं करेगा। यह धारा कानून के स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार किसी मामले का न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निस्तारण किए जाने के बाद, उक्त न्यायालय एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के अभाव में फंक्टस ऑफिशियो बन जाता है और उसी राहत के लिए एक नई प्रार्थना पर विचार करने के लिए अयोग्य हो जाता है जब तक कि अंतिम निस्तारण के पूर्व आदेश को सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा कानून द्वारा निर्धारित तरीके से रद्द नहीं किया जाता है। किसी मामले के निपटारे के

आधिकारिक आदेश पर हस्ताक्षर होते ही न्यायालय फंक्टस ऑफिशियो बन जाती है। इस तरह के आदेश को लिपिक या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की सीमा तक नहीं बदला जा सकता है।

14. राज्य जरिए डी.एस.पी. बनाम के.वी. राजेंद्रन और अन्य (आपराधिक अपील संख्या 1389/2008), दिनांक 02.09.2008 को निर्णीत में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सवाल पर फैसला दिया कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आपराधिक याचिका का निस्तारण करने का आदेश, कोई राहत देने से इनकार करते हुए, (ख) राज्य पुलिस प्राधिकारियों के पास की गई अन्वेषण को संशोधित किया जा सकता है और तत्पश्चात् एक अन्वेषण, जो राज्य पुलिस प्राधिकारियों के पास थी, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को अंतरित की जा सकती है। न्यायालय ने निर्णय के एक कैटेना पर चर्चा करने के बाद इस प्रकार देखा:

"जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, संहिता की धारा 362 लिपिक या अंकगणितीय त्रुटियों के मामलों को छोड़कर अंतिम आदेश को फिर से खोलने पर रोक लगाती है। ऐसी स्थिति होने के नाते और धारा 362 के रूप में संहिता में व्यक्त निषेध के मद्देनजर, संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग योग्यता के आधार पर तय की गई याचिका के निस्तारण के आदेश को फिर से खोलने या बदलने के लिए नहीं किया जा सकता है।

15. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर, (2011) 14 एससीसी 770 में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया:

"निर्णय दिए जाने के बाद आपराधिक न्यायालय के पास रिव्यू की कोई शक्ति नहीं है। उच्च न्यायालय हस्ताक्षर करने से पहले अपने फैसले को बदल सकता है या उसकी रिव्यू कर सकता है। जब कोई आदेश पारित किया जाता है, तो उसकी रिव्यू नहीं की जा सकती है। दं0प्र0सं0 की धारा 362 कानून के एक स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार जब किसी मामले को न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया जाता है, तो उक्त न्यायालय एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान की अनुपस्थिति में फंक्टस ऑफिशियो बन जाती है और किसी भी राहत के लिए नए सिरे से प्रार्थना करने की हकदार नहीं होती है जब तक कि अंतिम निस्तारण के पूर्व आदेश को कानून द्वारा निर्धारित तरीके से सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जाता है। किसी मामले के निपटारे के आदेश पर हस्ताक्षर होते ही न्यायालय फंक्टस ऑफिशियो बन जाती है। इस तरह के आदेश को लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की सीमा तक नहीं बदला जा सकता है। फैसले में पुनरीक्षण का भी कोई प्रावधान नहीं है।

16. इस प्रकार, इस मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि आपराधिक न्याय वितरण प्रणाली न्यायालय को किसी भी शब्द को जोड़ने या हटाने का अधिकार नहीं देती है, सिवाय लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने

के जैसा कि विशेष रूप से कानून के तहत प्रदान किया गया है कि निर्णय की घोषणा के बाद न्यायाधीश फंक्टस ऑफिशियो बन जाता है। किसी भी गलती या स्पष्ट चूक को कानून के अनुसार उचित मंच द्वारा ही ठीक किया जाना चाहिए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त घोषणाओं के साथ-साथ दं0प्र0सं0 की धारा 362 के प्रावधानों के मद्देनजर, मैं पुनरीक्षण के निस्तारण के अपने आदेश दिनांक 28.9.2022 को रिकॉल करने के लिए इच्छुक नहीं हूँ।

18. तदनुसार, इस रिकॉल प्रार्थना पत्र को अस्वीकृत किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 531

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.07.2023

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 5132 सन् 2022

इरशाद खान एवं अन्य ... पुनरीक्षणकर्तागण बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता: मोहम्मद सदाब खान

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता,

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 107, 116 व 151 - स्थानीय पुलिस द्वारा चालान, धारा 111 - नोटिस जारी करना, धारा 193 - सत्र न्यायालयों द्वारा अपराधों का संज्ञान, धारा 207 - अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट व अन्य दस्तावेजों की प्रति उपलब्ध कराना, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 307, 336, 332, 353, 420, 447, 504, 506, दंड विधि संशोधन अधिनियम - धारा 7 - संहिता की अनुसूची में प्रदत्त सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामलों में - मजिस्ट्रेट को मामले की सुनवाई करने का अधिकार नहीं है - उसे मामले को सत्र न्यायालय के समक्ष सुपुर्द करना होता है, जहां सुनवाई हो सकती है - मजिस्ट्रेट को किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है, जब तक कि अन्यथा न हो बशर्ते कि इसमें सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय अपराध भी शामिल हो। (पैरा-13)

अभियुक्तगण (पुनरीक्षणकर्तागण) ने 24 ख के अंतर्गत दोषमुक्ति आवेदन प्रस्तुत किया- जिसे न्यायालय (सी.जे.एम.) द्वारा खारिज कर दिया गया - आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की विभिन्न धाराओं के तहत आरोप लगाया गया - सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई नहीं की गई - अनुपस्थित अभियुक्त के विरुद्ध जमानती वारंट जारी किया गया - सी.जे.एम. के आदेश के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया (पैरा - 4,5,6,7)

निर्णय:- मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों द्वारा धारा 307 भारतीय दंड संहिता के तहत दायर

दोषमुक्ति आवेदन पर निर्णय लेते समय विधिक त्रुटि की, जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है। उचित कदम यह था कि न्यायालय के आदेशों का हवाला देते हुए मामले को सत्र न्यायालय को सौंपा जाए। मजिस्ट्रेट न्यायालय ने धारा 207 दंड प्रक्रिया संहिता के अनुपालन को सुनिश्चित करने के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने का निर्देश दिया। सत्र न्यायालय को दोनों पक्षों को सुनने के बाद धारा 227 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दोषमुक्ति आवेदन पर सुनवाई करनी चाहिए और उसका निपटारा करना चाहिए। (पैरा-19,20,21)

पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एससी 306
2. सुखबीर सिंह बनाम यूपी राज्य, एवं अन्य, धारा 482 संख्या 21859/2021

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

संशोधनवादियों के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

आज इस आपराधिक पुनरीक्षण का विरोध करने के लिए प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

इस मामले में प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पहले ही जवाबी हलफनामा दायर किया जा चुका है। संशोधनवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने

प्रस्तुत किया है कि वह प्रत्युत्तर हलफनामा दायर करने के इच्छुक नहीं हैं और उन्होंने मामले की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर करने की प्रार्थना की।

वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण भा.दं.सं. की धारा 147, 148, 149, 307, 336, 332, 353, 420, 447, 504, 506 तथा आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 162 / 2018, पुलिस थाना कोतवाली कालपी, जिला जालौन से उत्पन्न प्रकीर्ण वाद संख्या 327/2019 में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जालौन उरई द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.11.2022 के खिलाफ दायर किया गया है। आक्षेपित आदेश के अनुसार, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आरोपी व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत रिहाई आवेदन 24क को खारिज कर दिया है और अनुपस्थित आरोपी नौसाद के खिलाफ जमानती वारंट जारी किया है।

मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि सूचक ने दिनांक 18.7.2018 को लिखित रिपोर्ट के आधार पर यह कहते हुए एफआईआर दर्ज करायी कि वह कस्बा कालपी का लेखपाल है तथा प्लॉट सं. 38/4 रकबा 0.170 एवं प्लॉट सं. 38/6 रकबा 0.210 हेक्टेयर, कुल रकबा 0.380 हेक्टेयर उसके क्षेत्र (हल्का) के अंतर्गत आता है और राजस्व अभिलेख में बंजर के सूची में दर्ज है, जिसमें से कुछ भाग पर इरशाद खान व अन्य द्वारा बिना किसी अधिकार के अतिक्रमण कर लिया गया है जिसके संबंध में दिनांक 18.7.2018 को एसडीएम कालपी को सूचना दी गयी है;

उपजिलाधिकारी और विभाग के अन्य अधिकारियों ने संबंधित थाना प्रभारी सहित पुलिस बल के साथ मौके का दौरा किया और जेसीबी मशीन से अवैध अतिक्रमण को हटाने का प्रयास किया। इस बीच 12:00 बजे इरसाद और अन्य लोगों ने, जिन्होंने जमीन के एक भाग पर कब्जा कर लिया था, आधिकारिक दल के साथ गाली-गलौज और मारपीट की और ईंट-पत्थर चलाने लगे, जिसमें कुछ लोगों को चोटें आईं। इरशाद ने अपनी पत्नी को अपने कपड़े फाड़ने के लिए उकसाया ताकि वह अतिक्रमण हटाने आये लोगों को छेड़छाड़ के झूठे मामले में फंसा सके। आरोपी व्यक्तियों इरशाद और चार व्यक्तियों ने इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 के तहत एक आवेदन संख्या 4289/2021 दायर किया, जिसमें उपरोक्त धाराओं में जांच अधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 23.3.2021 के आदेश के तहत इस टिप्पणी के साथ निपटाया कि न्यायालय को आरोप - पत्र और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित संज्ञान लेने के आदेश को रद्द करने का कोई आधार नहीं मिला, इसलिए, इसे रद्द करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है। हालाँकि, यदि आवेदक उपस्थित होते हैं और आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अधिवक्ता के माध्यम से रिहाई के लिए दं. प्र.सं. की धारा 239 के तहत आवेदन प्रस्तुत करते हैं तो रिहाई के लिए आवेदन पर विचार किया जाएगा और कानून के अनुसार आवेदन दाखिल करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाएगा। उक्त आवेदन के

निपटान तक या आदेश प्राप्त होने की तारीख से चार महीने की अवधि तक या जो भी पहले हो, आवेदकों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी; आवेदकों को अधिवक्ता के माध्यम से रिहाई आवेदन दायर करने की अनुमति दी गई थी।

इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, अभियुक्तों ने प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष रिहाई आवेदन दायर किया, जिसे विद्वान सी.जे.एम. द्वारा पारित आक्षेपित आदेश द्वारा इस अवलोकन के साथ खारिज कर दिया गया कि जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों के आधार पर आवेदकों के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 147, 148, 149, 307, 336, 332, 353, 420, 447, 504, 506 और आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 के तहत आरोप लगाए गए हैं, जिसके लिए आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है और आरोप पत्र के आधार पर उक्त आपराधिक मामले में न्यायालय द्वारा पहले ही संज्ञान भी लिया जा चुका है। चूंकि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, इस न्यायालय को रिहाई आवेदन सुनने का क्षेत्राधिकार नहीं है, इसलिए उक्त रिहाई आवेदन 24ख खारिज किया जाता है, मामले को आरोपी व्यक्तियों की प्रतिबद्धता / उपस्थित करने के लिए निर्धारित किया गया था।

विद्वान सी.जे.एम. द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 397/401 के तहत पारित उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर अभियुक्तगणों ने वर्तमान पुनरीक्षण दाखिल किया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 6.4.2021 को पुनरीक्षणकर्ता ने इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में अधीनस्थ न्यायालय में रिहाई आवेदन दायर किया है और उक्त आवेदन की एक प्रति इस आधार पर पुनरीक्षण के लिए अनुलग्नक - 12 के रूप में दायर की गई है कि सिविल सूट संख्या 62/2018 सिविल जज, जालौन उरई के समक्ष विचाराधीन भूखंड के संबंध में दायर किया गया है, जिसमें प्रतिवादियों के खिलाफ आवेदक संख्या 1 और उसके तीन भाइयों के कब्जे में हस्तक्षेप करने से निषेधात्मक निषेधाज्ञा जारी करने की प्रार्थना की गई और अधीनस्थ न्यायालय ने दिनांक 26.4.2019 के आदेश के तहत प्रश्नगत भूखंड पर यथास्थिति बनाए रखने का आदेश पारित किया। हालाँकि, 8.4.2018 को आवेदक संख्या 1 और 3 अन्य, जिनका स्थानीय पुलिस ने दं.प्र.सं. की धारा 107, 116, 151 के तहत चालान किया था और चालान रिपोर्ट उनके द्वारा एसडीएम, कालपी के न्यायालय में प्रस्तुत की गयी और उसी दिन, संबंधित एसडीएम ने दं. प्र.सं. की धारा 111 के तहत नोटिस जारी करने के संबंध में एक आदेश पारित किया, जिसमें कहा गया कि शांति भंग करने और सार्वजनिक शांति भंग करने की आशंका थी, उन्हें जेल भेजा जाना चाहिए; उन्हें दो जमानतदारों को निष्पादित करने का निर्देश दिया गया था, जिन्हें तहसीलदार कालपी द्वारा सत्यापित किया जाना था, लेकिन जमानत बांड का सत्यापन लंबित होने के कारण उन्हें जेल भेज दिया गया था।

संशोधनवादियों ने इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 के तहत एक आवेदन संख्या 13535/2018 दाखिल किया जिसमें दिनांक 20.4.2018 को अंतरिम आदेश पारित किया गया तथा दिनांक 4.5.2018 को एसडीएम एवं तहसीलदार कालपी को नोटिस जारी किये गये तथा एसडीएम को आदेश दिनांक 20.4.2018 का आदेश का पालन करते हुए अगली तिथि पर न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने हेतु निर्देशित किया गया। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20.4.2018 को पारित आदेश के दृष्टिगत एसडीएम एवं तहसीलदार, कालपी संशोधनवादियों के प्रति द्वेषपूर्ण हो गये थे तथा उन्हीं के इशारे पर वर्तमान एफआईआर झूठे एवं मनगढ़ंत तथ्यों पर लेखपाल प्रमोद कुमार दुबे द्वारा दर्ज करायी गयी है; याचिकाकर्ता की दुकान का निर्माण प्लॉट संख्या 38/4 और 38/6 पर नहीं किया गया था, जैसा कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है बल्कि इसका निर्माण प्लॉट संख्या 38/1 और 17/1 पर किया गया था और इस प्रकार एसडीएम और तहसीलदार ने संशोधनवादियों से बदला लेने के लिए उक्त दुकान को ध्वस्त कर दिया था और उन्होंने पुलिस कर्मियों की मदद से 50 लाख रुपये मूल्य के लोहे के रद्दी को हटा दिया।

कथित अनधिकृत कब्जे के संबंध में संशोधनवादियों को कोई नोटिस नहीं दिया गया; संशोधनवादियों ने सरकारी अधिकारियों के काम में हस्तक्षेप नहीं किया था, इसलिए उनके खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 353 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है; प्लॉट संख्या 38/4 और 38/6 प्लॉट संख्या 38 / 1 और 17/1

मौजा आलमपुर, कालपी से करीब 300 मीटर दूर हैं लेकिन एफआईआर में झूठा आरोप लगाया गया है कि आवेदकों ने प्लॉट संख्या 38/4 और 38/6 पर कब्जा कर लिया था; संशोधनवादियों ने कभी भी किसी गैरकानूनी सभा या बल प्रयोग या उल्लंघन नहीं किया; उन्होंने लोक सेवक के सार्वजनिक कर्तव्य के पालन में कोई बाधा उत्पन्न नहीं की। उन्होंने आगे कहा कि विद्वान सी.जे.एम. द्वारा पारित आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अभिलेख में त्रुटि है और इस न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने योग्य है क्योंकि आक्षेपित आदेश किसी भी तर्क और निष्कर्ष से रहित है और न्यायिक विवेक के उपयोग के बिना यांत्रिक नियमित तरीके से पारित किया गया है। अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर, आरोप- पत्र में कथित तौर पर उन आवेदकों के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है; इस मामले में सभी कार्यवाही एसडीएम और तहसीलदार के आदेश पर शुरू की गई थी, इसलिए, यह प्रार्थना की जाती है कि इस पुनरीक्षण की अनुमति दी जाए और विद्वान सी. जे. एम. द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाए।

इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि मामले में दंडात्मक धाराओं में अन्य बातों के अलावा भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत आरोप भी शामिल है, जो सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, इसलिए विद्वान मजिस्ट्रेट को ऐसे मामले में आरोपी आवेदक को रिहा करने का अधिकार नहीं था और उसके लिए एकमात्र रास्ता यह था कि वह सेशन न्यायालय के

समक्ष मामला प्रस्तुत करे जहां कानूनी रूप से रिहाई आवेदन दायर किया जा सके।

वर्तमान संशोधन पर निर्णय लेने के प्रयोजनों के लिए, आपराधिक प्रक्रिया संहिता के कुछ प्रावधान यहां पुनःप्रस्तुत किए जाने के लिए प्रासंगिक हैं:-

धारा 193- अपराधों का सेशन न्यायालयों द्वारा संज्ञान- इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है।

207. अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट या अन्य दस्तावेजों की प्रतिलिपि देना- किसी ऐसे मामले में जहाँ कार्यवाही पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संस्थित की गई है, मजिस्ट्रेट निम्नलिखित में से प्रत्येक की एक प्रतिलिपि अभियुक्त को अविलम्ब निःशुल्क देगा:-

(i) पुलिस रिपोर्ट;

(ii) धारा 154 के अधीन लेखबद्ध की गई प्रथम इतिहास रिपोर्ट;

(iii) धारा 161 की उपधारा (3) के अधीन अभिलिखित उन सभी व्यक्तियों के कथन, जिनकी अपने साक्षियों के रूप में परीक्षा करने का अभियोजन का विचार है, उनमें से किसी ऐसे भाग को छोड़कर जिनको ऐसे छोड़ने के

लिए निवेदन धारा 173 की उपधारा (6) के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया है;

(iv) धारा 164 के अधीन लेखबद्ध की गई संस्वीकृतियाँ या कथन, यदि कोई हो,

(v) कोई अन्य दस्तावेज या उसका सुसंगत उद्धरण, जो धारा 173 की उपधारा (5) के अधीन पुलिस रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को भेजी गई है :

परन्तु मजिस्ट्रेट खण्ड (iii) में निर्दिष्ट कथन के किसी ऐसे भाग का परिशीलन करने और ऐसे निवेदन के लिए पुलिस अधिकारी द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करने के पश्चात् यह निदेश दे सकता है कि कथन के उस भाग की या उसके ऐसे प्रभाग की, जैसा मजिस्ट्रेट ठीक समझे, एक प्रतिलिपि अभियुक्त को दी जाए :

परन्तु यह और कि यदि मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि खण्ड (v) में निर्दिष्ट कोई दस्तावेज विशालकाय है तो वह अभियुक्त को उसकी प्रतिलिपि देने के बजाय यह निदेश देगा कि उसे स्वयं या प्लीडर द्वारा न्यायालय में उसका निरीक्षण ही करने दिया जाएगा।

209. जब अपराध अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है तब मामला उसे सुपुर्द करना- जब पुलिस रिपोर्ट पर या अन्यथा संस्थित किसी मामले में अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिर होता है या लाया जाता है और मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि अपराध अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो वह :-

(क) यथास्थिति, धारा 207 या धारा 208 के उपबंधों का अनुपालन करने के पश्चात् मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करेगा और जमानत से संबंधित इस संहिता के उपबंधों के अधीन रहते हुए अभियुक्त व्यक्ति को अभिरक्षा में तब तक के लिए प्रतिप्रेषित करेगा जब तक ऐसी सुपुर्दगी नहीं कर दी जाती है;

(ख) जमानत से संबंधित इस संहिता के उपबंधों के अधीन रहते हुए विचारण के दौरान और समाप्त होने तक अभियुक्त को अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करेगा;

(ग) मामले का अभिलेख तथा दस्तावेजें और वस्तुएँ, यदि कोई हों, जिन्हें साक्ष्य में पेश किया जाना है, उस न्यायालय को भेजेगा;

(घ) मामले के सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने की लोक अभियोजक को सूचना देगा।

उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि संहिता की अनुसूची के अनुसार सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय मामलों में, मजिस्ट्रेट के पास मामले की सुनवाई करने की कोई शक्ति नहीं है और उसे मामले को सेशन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है जहां सुनवाई हो सकता है। हालाँकि, मजिस्ट्रेट को किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है, जब तक कि अन्यथा प्रावधान न किया गया हो, जिसमें विशेष रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध भी शामिल है।

(2014) 3 एससी 306 में प्रतिवेदित धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य में माननीय सर्वोच्च

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि दं.प्र.सं. की धारा 193 के तहत संज्ञान अपराध के संज्ञान से संबंधित है, न कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रतिबद्धता आदेश से। सेशन न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय अपराध के लिए; सेशन न्यायालय ऐसे व्यक्तियों को धारा 193 (मजिस्ट्रेट की प्रतिबद्धता पर) के तहत संज्ञान से ही तथा संज्ञान के दौरान और फिर दं. प्र. सं. की धारा 319 के तहत पूछताछ और मुकदमे के दौरान आरोपी के रूप में दोषी ठहराने के लिए सक्षम है।

इस न्यायालय ने 22.7.2022 को निर्णीत सुखबीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और एक अन्य में धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 21859/2021 में अभिनिर्धारित किया है कि दं. प्र.सं. की धारा 209 के मददेनजर कोई अस्पष्टता नहीं है कि "विचारण न्यायालय कौन है"। वर्तमान मामले में, चूंकि अपराध सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, इसलिए विचारण न्यायालय सेशन न्यायालय है। रिहाई की अर्जी पर सुनवाई करते हुए मजिस्ट्रेट ने सेशन न्यायालय का क्षेत्राधिकार मानकर गलती की। सेशन न्यायालय को अपना विवेक लगाना होगा कि क्या आवेदक को रिहा किया जा सकता है या आवेदन खारिज किया जा सकता है। मजिस्ट्रेट न्यायालय ने मामले का निर्णय करके ही गलती कर दी।

वर्तमान मामले में विद्वान मजिस्ट्रेट ने क्षेत्राधिकार की धारणा पर आरोपी पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा पेश किए गए रिहाई आवेदन को खारिज करते हुए कानूनी त्रुटि की

है, हालांकि उन्होंने गुण-दोष के आधार पर रिहाई आवेदन पर निर्णय नहीं लिया है और पाया है कि न्यायालय के पास मामले की सुनवाई का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है क्योंकि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था।

अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 4289/2021 में पारित इस न्यायालय के आदेश के अनुसार पुनरीक्षणवादियों द्वारा रिहाई आवेदन दायर किया गया था, जहां उन्हें दं. प्र.सं. की धारा 239 के तहत अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष रिहाई का आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी और रिहाई आवेदन के निपटारे तक या आदेश पारित होने की तारीख से चार महीने की अवधि के लिए, जो भी पहले हो, अधीनस्थ अदालत के समक्ष अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति दी गई है।

सेशन विचारणीय मामलों में रिहाई आवेदन दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत पोषणीय है जो प्रावधान करता है कि सेशन न्यायालय के समक्ष एक मुकदमे में यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने और इस संबंध में अभियुक्तों और अभियोजन पक्ष की दलीलें सुनने के बाद न्यायाधीश यह मानता है कि अभियुक्तों के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त कर देगा और ऐसा करने के लिए अपने कारण दर्ज करेगा।

उपरोक्त तथ्यात्मक और कानूनी चर्चाओं के मद्देनजर, मेरी राय है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत अन्य बातों के साथ-साथ आरोपी व्यक्तियों द्वारा दायर रिहाई आवेदन पर निर्णय लेने में कानूनी त्रुटि की है, जो सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है; विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष उचित कदम यह था कि धारा 482 के तहत आवेदन में पारित इस न्यायालय के आदेशों को उद्धृत करने के बाद, जैसा कि ऊपर कहा गया है, आरोपी व्यक्तियों को रिहाई आवेदन दायर करने के लिए अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होने की स्वतंत्रता दी गई थी। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अधिवक्ता के माध्यम से मामले को सौंपने पर, आरोपी व्यक्तियों की व्यक्तिगत उपस्थिति पर जोर दिए बिना, क्योंकि वे अभी तक जमानत पर नहीं हैं, रिहाई आवेदन सेशन न्यायालय द्वारा तय किए जाने योग्य था और रिहाई आवेदन में ली गई सभी दलीलें को सेशन न्यायालय के समक्ष ले जाया जाना था।

फलस्वरूप वर्तमान पुनरीक्षण को **अनुमति** दी जाती है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 4.11.2022, जिसमें आरोपी व्यक्तियों द्वारा दायर रिहाई आवेदन 24ख को खारिज कर दिया गया है, को खारिज किया जाता है।

विद्वान मजिस्ट्रेट न्यायालय को दं.प्र. सं. की धारा 207 के तहत प्रावधान का अनुपालन सुनिश्चित करने के बाद मामले को सेशन न्यायालय के समक्ष सौंपने का निर्देश दिया जाता है और इस न्यायालय के निर्देश के

अनुसरण में अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष आरोपी व्यक्तियों द्वारा दायर रिहाई आवेदन को सेशन न्यायालय द्वारा उसी तरह विचार किया जाएगा जैसे कि दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत दायर किया गया हो और आरोपी आवेदकों के साथ-साथ अभियोजन पक्ष को सुनवाई का अवसर देने के बाद उसका निपटारा किया जाएगा।

मामले में पहले ही हो चुकी देरी को ध्यान में रखते हुए विद्वान मजिस्ट्रेट इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से यथासंभव एक महीने के भीतर मामले को निष्पादित करेगा और मामले के निष्पादित होने के बाद सेशन न्यायालय उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में तीन महीने की अवधि के भीतर उक्त रिहाई आवेदन पर सुनवाई और निर्णय करेगी, बशर्ते कोई कानूनी बाधा न हो। यदि रिहाई आवेदन खारिज कर दी जाती है तो आरोपी पुनरीक्षणकर्ताओं को आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाएगा और उन्हें हिरासत में ले लिया जाएगा और उनकी जमानत आवेदन पर कानून के अनुसार निर्णय किया जाएगा।

(2023) 7 ILRA 536

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

के समक्ष

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4947

सन् 2023

संलग्न

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4949

सन् 2023

जया जैन

.....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

....प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री रोहन गुप्ता

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 274, 275 और 276, औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 - धारा 17, 17 (ए), 17 (बी) और 32 - गैर-संज्ञेय अपराध के संबंध में कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकती है और अभियोजन केवल मजिस्ट्रेट या सक्षम न्यायालय के समक्ष शिकायत के माध्यम से ही स्वीकार्य है। (पैरा - 21, 23)

औषधि निरीक्षक द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट - परीक्षण विश्लेषण रिपोर्ट - भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध असंज्ञेय अपराध हैं - औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम के प्रावधानों के तहत कथित अपराध - केवल शिकायत के माध्यम से मुकदमा चलाया जा सकता है, प्रथम सूचना रिपोर्ट के माध्यम से नहीं। (पैरा-22)

निर्णय:- सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने से रोक दिया है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं पर

तब तक मुकदमा नहीं चलाया जा सकता या उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सकता जब तक कि उन्हें अध्याय IV के तहत दोषी नहीं ठहराया जाता। प्रथम सूचना रिपोर्ट पर तभी कार्रवाई की जाएगी जब याचिकाकर्ताओं को पहले ही दोषी ठहराया जा चुका हो। औषधि निरीक्षक अभियोजन के लिए उचित मंच पर शिकायत दर्ज करके आगे बढ़ सकता है। (पैरा - 24)

याचिका का निपटारा कर दिया गया। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

भारत संघ बनाम अशोक कुमार शर्मा

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा, और माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

ये दोनों रिट याचिकाएं एक ही प्राथमिकी से उत्पन्न होती हैं और इसलिए इन पर एक साथ सुनवाई की गई है और उन पर एक साथ फैसला किया जा रहा है।

रिट याचिकाओं में दिनांक 02.03.2023 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की मांग की गई है, जिसमें भा.दं.सं. की धारा 274, 275 और 276 और ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1940 की धारा 17, 17 (ए), 17 (बी), पुलिस स्टेशन - फेज 3 सेक्टर 71 नोएडा, नोएडा कमिश्नरेट, जिला गौतम बुद्ध नगर के तहत

मुकदमा अपराध संख्या 92/2023 को जन्म दिया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि प्राथमिकी सरकारी विश्लेषक, क्षेत्रीय औषधि परीक्षण प्रयोगशाला, चंडीगढ़ की परीक्षण विश्लेषण रिपोर्ट दिनांक 14.01.2023 के आधार पर दर्ज की गई है। यह परीक्षण रिपोर्ट कथित तौर पर "डीओके - 1 मैक्स सिरप" और 'एम्ब्रोक्सोल हाइड्रोक्लोराइड सिरप (एम्ब्रोनॉल सिरप) ' से संबंधित है।

इसने यह भी आग्रह किया है कि रिपोर्ट में केवल यह कहा गया है कि विश्लेषण पर दवाएं 'मानक गुणवत्ता की नहीं पाई गईं।

पहला तर्क यह है कि औषधि विश्लेषक की रिपोर्ट पर 1940 के अधिनियम की धारा 17-ए और 17- बी लागू होगी लेकिन प्राथमिकी अधिनियम की धारा 17, 17 (ए) और 17 (बी) के तहत दर्ज की गई है।

दूसरा तर्क यह है कि दायर की गई शिकायत में उन तथ्यों के संबंध में कोई आरोप नहीं है जो कथित अपराध का गठन करेंगे। किसी भी मामले में, परीक्षण विश्लेषक रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं है कि विश्लेषण करने पर औषधें मिलावटी अथवा नकली पाई गई थीं।

इसके बाद यह तर्क दिया जाता है कि सरकारी विश्लेषकों की रिपोर्ट निर्णायक नहीं है और रिपोर्ट का खंडन करने के लिए एक अवसर दिए जाने की आवश्यकता है। इसके बाद ही रिपोर्ट अंतिम होती है।

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट की धारा 17, 17 (ए) और 17 (बी) का उल्लंघन संज्ञेय अपराध नहीं है।

भारत संघ बनाम अशोक कुमार शर्मा में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम के अध्याय IV के तहत एक अपराध केवल ड्रग इंस्पेक्टर द्वारा शिकायत के माध्यम से मुकदमा चलाया जा सकता है और पुलिस उस संबंध में प्राथमिकी दर्ज नहीं कर सकती है और न ही पुलिस इस तरह के अपराध के बारे में अपराधियों पर मुकदमा चला सकती है। इसी कारण से, पुलिस अधिकारियों के पास गिरफ्तार करने की कोई शक्ति नहीं है।

यह तर्क दिया गया है कि संबंधित पुलिस स्टेशन के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर कोई अपराध नहीं किया गया है क्योंकि विचाराधीन ड्रग्स विशेष रूप से निर्यात के लिए थे और आंतरिक रूप से बेचे नहीं जाने थे। इसलिए, भारत में कोई अपराध नहीं किया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता केवल मैरियन बायोटेक प्राइवेट लिमिटेड में निदेशक हैं, जिस कंपनी को प्राथमिकी में शामिल नहीं किया गया है। कथित घटिया दवा का निर्माण करने वाली कंपनी किसी भी मामले में एक आवश्यक पक्ष थी और इसकी अनुपस्थिति में भी प्राथमिकी कायम रखने योग्य नहीं है।

यह भी तर्क दिया गया है कि प्राथमिकी में कोई आरोप नहीं है, जहां तक याचिकाकर्ताओं, मैरियन बायोटेक प्राइवेट लिमिटेड के निदेशकों की भूमिका का संबंध है, जो प्रासंगिक है

क्योंकि किसी कंपनी द्वारा अपराध के मामले में एक निदेशक को कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होना चाहिए और अपराध उसके ज्ञान के भीतर किया गया था। प्राथमिकी में याचिकाकर्ताओं की कोई जानकारी, सहमति या मिलीभगत का आरोप नहीं लगाया गया है।

दूसरी ओर विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्राथमिकी दर्ज की गई है क्योंकि कंपनी द्वारा निर्मित दवाओं को निर्यात के लिए कोई संदेह नहीं था और कजाकिस्तान को विधिवत निर्यात किया गया था, जहां कहा जाता है कि 54 बच्चों की ड्रग्स का सेवन करने के बाद मृत्यु हो गई थी। खोज की गई और दवाओं के नमूने प्राप्त किए गए और उन मौतों के संबंध में परीक्षण किया गया।

हमने पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की पहले तर्क का संबंध है, यह देखा जा सकता है कि प्राथमिकी के मुख्य भाग में धारा 17- ए और 17- बी के रूप में उल्लिखित है, लेकिन प्राथमिकी के भाग 2 में उन्हें 17 (ए) और 17 (बी) के रूप में लिखा गया है, जो एक टंकण त्रुटि प्रतीत होती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय केवल यह माना गया है कि जहां तक अधिनियम के अध्याय IV के अंतर्गत आने वाले अपराध का संबंध है,

अभियोजन केवल एक निरीक्षक द्वारा दर्ज किया जा सकता है। इंस्पेक्टर शब्द को ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट के तहत धारा 3 (ई) (ii) में परिभाषित किया गया है, जो मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक है, जो निम्नानुसार पढ़ा जाता है: -

"किसी अन्य दवाओं या सौंदर्य प्रसाधनों के संबंध में, धारा 21 के तहत केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक निरीक्षक ।"

हमारी सुविचारित राय में यह परिभाषा अधिनियम की धारा 32 में आने वाले निरीक्षक शब्द को लेगी, जो पुलिस निरीक्षक के अधिकार क्षेत्र से परे अपराध के संज्ञान से संबंधित है।

प्राथमिकी में निश्चित रूप से एक ड्रग इंस्पेक्टर द्वारा दर्ज किए जाने का आरोप लगाया गया है, अर्थात् अधिनियम की धारा 32 में निर्दिष्ट एक निरीक्षक।

इसके अतिरिक्त, धारा 32 की उपधारा 3 में यह प्रावधान है कि औषध और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अंतर्गत अभियोजन, जैसा कि अधिनियम के अध्याय IV के अंतर्गत विनिर्दिष्ट है, किसी व्यक्ति के अभियोजन को किसी अन्य कानून के तहत किसी ऐसे कार्य अथवा चूक के लिए नहीं रोकेगा जो अध्याय IV के अंतर्गत भी अपराध है।"

प्राथमिकी में जिन अन्य धाराओं को लागू किया गया है, वे भारतीय दंड संहिता की धारा

274, 275 और 276 हैं। धारा 32 (3) के मददेनजर ऐसे अभियोजन की अनुमति है। हालांकि, ये तीन धाराएं भारतीय दंड संहिता के तहत गैर-संज्ञेय और जमानती अपराध हैं। यह स्थापित कानून है कि किसी असंज्ञेय अपराध के संबंध में कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकती है और अभियोजन केवल मजिस्ट्रेट या सक्षम न्यायालय के समक्ष शिकायत के माध्यम से ही स्वीकार्य है।

इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, पुलिस द्वारा प्राथमिकी दर्ज नहीं की जानी चाहिए थी क्योंकि भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध गैर-संज्ञेय अपराध हैं, जबकि ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट के प्रावधानों के तहत कथित अपराधों पर केवल शिकायत के माध्यम से मुकदमा चलाया जा सकता है, न कि प्राथमिकी जैसा कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय के अवलोकन से स्पष्ट है और अधिनियम की धारा 32 भी।

ऐसा कहने के बाद, जो मुद्दा उठता है, वह यह है कि रिट याचिका में क्या राहत दी जानी चाहिए।

यह बताना प्रासंगिक होगा कि याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई अन्य प्रस्तुतियों को विज्ञापित नहीं किया जा रहा है क्योंकि ऊपर दिए गए निष्कर्षों को देखते हुए इसे पूरी तरह से अकादमिक बना दिया गया है।

सामान्यतः निष्कर्ष के मददेनजर, आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करना सबसे

तार्किक दृष्टिकोण होगा। हालांकि, पैराग्राफ 141 में उद्धृत निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"141. व्याख्या की यह प्रक्रिया कानून-दाता से दो प्रतीत होने वाले अपूरणीय आदेशों के सामंजस्य का परिणाम उत्पन्न करेगी। यह व्याख्या हमें इस कारण से स्वीकार करती है कि अधिनियम के अध्याय IV के तहत अपराधों की जांच शुरू होगी, की जाएगी और कानून द्वारा निर्दिष्ट सक्षम और योग्य वैधानिक प्राधिकारी के सुरक्षित हाथों में समाप्त होगी। इससे पुलिस अधिकारी जैसी किसी बाहरी एजेंसी को इस कारण से भी बचना होगा कि जहां गिरफ्तारी की जानी है, प्राथमिकी दर्ज की जानी है और जब प्राथमिकी दर्ज करने का उद्देश्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत अंतिम रिपोर्ट को प्राथमिकता देना है, तो जहां तक पुलिस अधिकारी का संबंध है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि अधिनियम के अध्याय IV के तहत आने वाले अपराध के कमीशन के संबंध में शिकायत के संबंध में एक पुलिस अधिकारी से संपर्क किया जाता है, तो उसे तब तक प्राथमिकी दर्ज नहीं करनी है जब तक कि यह न हो कि अधिनियम के अध्याय IV के तहत आने वाले अपराध के अलावा एक संज्ञेय अपराध भी बनाया गया हो। उसे शिकायत को सक्षम ड्रग इंस्पेक्टर को सौंप देना चाहिए ताकि कानून के अनुसार तुरंत कार्रवाई की जा सके जहां केवल अध्याय IV के तहत अपराध किए जाते हैं। "

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निर्देश के मद्देनजर हम प्राथमिकी को रद्द करने से बचते हैं और केवल यह निर्देश देते हैं कि याचिकाकर्ताओं पर मुकदमा नहीं चलाया

जाएगा या उन्हें प्राथमिकी के परिणामस्वरूप गिरफ्तार नहीं किया जाएगा और प्रथम सूचना रिपोर्ट पर पुलिस अधिकारियों द्वारा कार्रवाई नहीं की जाएगी, जब तक कि याचिकाकर्ताओं को पहले से ही अध्याय IV के तहत अपराध (अपराधों) पर दोषी नहीं ठहराया गया हो, जैसा कि अधिनियम की धारा 30 के उत्तर प्रदेश संशोधन द्वारा प्रदान किया गया है। ड्रग इंस्पेक्टर, जो प्राथमिकी में पहला सूचनाकर्ता है, के लिए इन दो याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के अभियोजन के लिए उपयुक्त मंच के समक्ष शिकायत दर्ज करके कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए खुला छोड़ दिया गया है।

(2023) 7 ILRA 539

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 19080

सन् 2011

अंगद एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री संजीव के. तिवारी, श्री एस.के. सिंह, श्री शशि कांत द्विवेदी

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री गोकर्ण सिंह

(ए) आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-बी, 397, 418, 420, 504 और 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 245 (1) और 245 (2) - सिविल न्यायालय के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मूल रिट क्षेत्राधिकार के तहत - विधि के प्रावधानों का उल्लेख न करना या गलत उल्लेख करना उचित राहत देने के रास्ते में नहीं आना चाहिए, अगर वादी अन्यथा इसके लिए हकदार है - यहां तक कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय भी, न्यायालयों को मामले की गहराई में जाने और साक्ष्य के आधार पर पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों का परीक्षण करने या तथ्य के विवादित प्रश्नों का फैसला करने की अनुमति नहीं है। (पैरा - 7,8,9)

सह-आरोपी के खिलाफ आपराधिक शिकायत - शिकायतकर्ता की चाची को अपना घर बेचा - आरोपी-याचिकाकर्ता क्रमांक 1 सीमांत गवाह के रूप में खड़ा हुआ - क्रेता के पास घर था - आरोपी-याचिकाकर्ता क्रमांक 1 उस घर में किराएदार था - किराया मांगा - नहीं दिया - इसके बजाय सिविल मुकदमा दायर किया - बिक्री विलेख का सीमांत गवाह - गृहकर जमा करके धोखाधड़ी से रसीद प्राप्त की - अपने नाम का म्यूटेशन करवाया - आरोपी व्यक्तियों ने उसके घर/दुकान में घुसपैठ की - कैश काउंटर से 4000/- रुपये निकाल लिए - मामले को निपटाने या परिणाम भुगतने की धमकी दी - मजिस्ट्रेट ने केवल याचिकाकर्ता और उसकी

पत्नी (सह-आरोपी) को बुलाया - पुनरीक्षण - सत्र न्यायालय द्वारा समन आदेश को रद्द किया गया - मजिस्ट्रेट ने नया आदेश पारित किया - दूसरा आदेश पारित किया - याचिकाकर्ता क्रमांक 1, उसकी पत्नी और याचिकाकर्ता क्रमांक 2 को बुलाया - आपराधिक पुनरीक्षण - खारिज - इसलिए भारतीय संविधान की धारा 226 के तहत याचिका। (पैरा - 4)

निर्णय:- याचिकाकर्ता को आपराधिक मामले में घसीटने का प्रयास, जबकि विवाद मूलतः सिविल प्रकृति का है। न्यायालय ने मुकदमेबाजी के दूसरे दौर में पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने से परहेज किया। जमानत चाहने वाले याचिकाकर्ताओं को एक महीने के भीतर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना चाहिए तथा अनावश्यक स्थगन के बिना शीघ्रता से विचार किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता धारा 245(1) या 245(2) सीआरपीसी के तहत निर्वहन के लिए आवेदन कर सकते हैं, तथा मजिस्ट्रेट/न्यायालय एक तर्कपूर्ण और बोलने वाला आदेश पारित करके निर्णय लेगा। (पैरा - 9)

याचिका का निस्तारण किया गया। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

राधेश्याम एवं अन्य बनाम छबि नाथ एवं अन्य, (2015) 5 एससीसी 423

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि कांत द्विवेदी, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री गोकर्ण सिंह और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, मऊ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 222 सन् 2010 (अजय कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य) में पारित दिनांक 05.09.2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मऊ द्वारा परिवाद संख्या 4289 सन् 2008 में दिनांक 31.08.2010 को पारित आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया गया था और पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.09.2011 और 31.08.2010 के दोनों आदेशों को उत्प्रेषण की प्रकृति के निर्देश जारी करके रद्द करने की प्रार्थना की है।

4. स्पष्टता के लिए निम्नलिखित प्रासंगिक तथ्यों का वर्णन किया जा रहा है:-

(i) प्रत्यर्थी संख्या 2 अंगनू सिंह यादव ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मऊ के समक्ष एक आपराधिक परिवाद दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि सह-अभियुक्त धनौती देवी ने अपना मकान 1986 में परिवादी की चाची बुद्धा देवी को बेचा था; अभियुक्त-याचिकाकर्ता संख्या 1 अंगद हाशिये का गवाह था, और

बुद्धा देवी ने वह मकान 2007 में परिवादी की भाभी राधा देवी को बेच दिया और तब से खरीदार उस मकान के कब्जे में था; अभियुक्त-याचिकाकर्ता संख्या 1 उस मकान में किरायेदार था; जब खरीदार ने उससे किराया मांगा तो उसने भुगतान नहीं किया और इसके बजाय दीवानी न्यायालय में एक मामला दायर कर दिया; वो जो स्वयं 1986 के विक्रय पत्र का हाशिये का गवाह था, उसने कपटपूर्वक विवादित मकान का गृह कर जमा करके रसीद प्राप्त की और नगर पालिका के कागजात में अपना नाम दर्ज करा लिया; 03.12.2008 को सभी अभियुक्तों ने उसके घर/दुकान में घुसकर नकद काउंटर से 4000/- रुपये निकाल लिए और उसे या तो मामले को निपटाने या परिणाम भुगतने की धमकी दी।

(ii) विद्वान मजिस्ट्रेट ने केवल अंगद और धनौती देवी को धारा 397, 504 और 506 भा.द.सं. के अपराध के लिए समन किया गया। परिवादी ने एक पुनरीक्षण दायर किया और सत्र न्यायालय के समन आदेश को निरस्त कर दिया और मजिस्ट्रेट को नए सिरे से आदेश पारित करने के लिए कहा। मजिस्ट्रेट ने 31.08.2010 को दूसरा आदेश पारित किया जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 1 अंगद और उसकी पत्नी धनौती देवी को धारा 418 और 420 भा.द.सं. के तहत और याचिकाकर्ता संख्या 2 से 4 और धनौती देवी को धारा 397, 504, 506 और 120-बी भा.द.सं. के तहत समन किया गया। उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 222 सन् 2010 दायर किया लेकिन वह दिनांक 05.09.2011 के आदेश द्वारा खारिज

कर दिया गया। अब याचिकाकर्ता भारत के संविधान की धारा 226 के अंतर्गत इस आपराधिक रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष हैं।

5. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि दोनों आदेश बिना सोचे समझे पारित किए गए हैं। ज्यादा से ज्यादा विवाद केवल सिविल प्रकृति का है। यह परिवाद उन्हें परेशान करने और अपमानित करने के लिए दायर किया गया है। पूरी कहानी झूठी और गढ़ी हुई है और वास्तव में उनके खिलाफ कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता। विक्रय पत्रों का विषय मकान संख्या 94/1 है और याचिकाकर्ताओं का मकान संख्या 94 है।

6. याचिकाकर्ताओं के तर्कों का विरोध प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा इस आधार पर किया गया है कि न्यायिक आदेश में यह को न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं है। अतः याचिका को प्रारंभ में ही खारिज कर देना चाहिए। उपरोक्त बिंदु पर जोर देने के लिए, माननीय उच्चतम न्यायालय के राधेश्याम और एक अन्य बनाम छबि नाथ और अन्य, (2015) 5 एससीसी 423 के मामले में दिए गए निर्णय का उल्लेख किया गया है। उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उत्प्रेषण की रिट किसी "अधीनस्थ न्यायालय/", न्यायाधिकरण, लोक प्राधिकरण या किसी अन्य व्यक्तियों के निकाय के निर्णयों को समीक्षा के लिए लाने के लिए होती है ताकि न्यायालय यह निर्धारित कर सके कि उन्हें

रद्द किया जाना चाहिए या नहीं। हालांकि, "हस्तक्षेप" अभिव्यक्ति न्यायिक न्यायालयों से संबंधित नहीं है। उत्प्रेषण की रिट न्यायिक न्यायालयों के अलावा अन्य अधिकरणों या प्राधिकरणों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण या क्षेत्राधिकार से बाहर के आदेशों के विरुद्ध होती है। सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 25 में आगे निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"25. उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में सभी न्यायालय उसके अधीनस्थ हैं और अनुच्छेद 227 के तहत उसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन हैं। रिट क्षेत्राधिकार संवैधानिक रूप से सभी उच्च न्यायालयों को प्रदान किया गया है। इंग्लैंड में अनुसरण किए जाने वाले रिट क्षेत्राधिकार के व्यापक सिद्धांत भारत पर लागू होते हैं और उत्प्रेषण की रिट अन्य अधिकरणों या प्राधिकरणों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण या क्षेत्राधिकार से बाहर के आदेशों के विरुद्ध होती है ना की न्यायिक न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध। भारत में उच्च न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को रिट जारी करने के कोई पूर्व उदाहरण नहीं हैं। अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज के नियंत्रण को उनके न्यायिक आदेशों के संबंध में अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियों या अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति के माध्यम से किया जाता है। दीवानी न्यायालय के आदेश प्राधिकरणों या अधिकरणों या न्यायिक/दीवानी न्यायालयों के अलावा अन्य न्यायालयों के आदेशों से अलग स्थिति में होते हैं। जबकि अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार कानूनों द्वारा नियंत्रित होता है, अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति संवैधानिक है। "अधीनस्थ न्यायालय"

अभिव्यक्ति न्यायिक न्यायालयों से संबंधित नहीं है।"

7. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि दीवानी न्यायालय के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मूल रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत।

8. कुछ तथ्य इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हैं:-

यह रिट याचिका 26.09.2011 को दायर की गई थी और तब से, यानी अब 11 से अधिक वर्षों से लंबित है। इस पूरे समय में, यह कानूनी बिंदु न तो उठाया गया और न ही महसूस किया गया कि यह रिट याचिका भारत के संविधान के **अनुच्छेद 226 के बजाय अनुच्छेद 227** के तहत शक्तियों का आह्वान करने की मांग करती है। यह स्थापित कानून है कि कानून के प्रावधानों का उल्लेख न करना या गलत उल्लेख करना उचित राहत प्रदान करने के मार्ग में नहीं आना चाहिए, यदि वादी अन्यथा उसका हकदार है। मेरे विचार में, एक साधारण वादी से कानून के प्रावधानों का बहुत सूक्ष्म ज्ञान होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यह प्रश्न हमेशा मेरी न्यायिक अंतरात्मा को परेशान करता रहा है कि एक आम आदमी या साधारण मुकदमेबाज को कानून के उस प्रावधान से क्या लेना-देना है जिसके तहत वह राहत का हकदार हो सकता है। यह न्यायालय के कानून या न्यायालय के न्याय या उसके अधिवक्ता की चिंता होनी चाहिए। जहां कानून का उल्लेख न करने या

गलत उल्लेख करने के अलावा कोई अन्य बाधा न्याय के टेढ़े-मेढ़े मार्ग में रुकावट पैदा करती है, वहां न्यायाधीश को अपनी अपेक्षित भूमिका निभानी चाहिए। समाधान की तलाश न करके और तकनीकी आधार पर रिट को खारिज करके न्यायाधीश या न्यायालय एक सामान्य व्यक्ति/वादी के प्रति अपने कर्तव्य में विफल रहेंगे। इस दृष्टिकोण से, मैं इस याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई याचिका के रूप में मानना उचित समझता हूं।

9. मेरे समक्ष इस मामले के गुण-दोष पर काफी संख्या में तर्क रखे गए हैं, जिनमें यह भी शामिल है कि इस मामले में याचिकाकर्ता को एक आपराधिक मामले में घसीटने का स्पष्ट प्रयास है, जबकि विवाद, यदि कोई है, तो मूल रूप से दीवानी/सिविल प्रकृति का है। यह स्थापित कानून को ध्यान में रखते हुए कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय भी, न्यायालयों को मामले में गहराई से जाने और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तर्कों को साक्ष्य की कसौटी पर परखने या विवादित तथ्यों के प्रश्नों का निर्णय करने की अनुमति नहीं है, मैं इसलिए पक्षकारों के बीच मुकदमेबाजी के दूसरे दौर में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से परहेज करती हूं। साथ ही, मैं यह उल्लेख करने से स्वयं को रोक नहीं पा रहा हूं कि कुछ ऐसे तर्क हैं जिनमें कुछ सार हो सकता है जहां तक मामले के गुण-दोष का संबंध है और जिन्हें विचारण न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी देखा जा सकता था। अतः मैं इस रिट याचिका का

निपटारा निम्नलिखित तरीके से करना उचित समझती हूँ:-

(I) उत्प्रेषण की रिट जारी करने की प्रार्थना एतद्वारा अस्वीकार की जाती है।

(II) यदि याचिकाकर्ता आज से एक महीने के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होते हैं और जमानत के लिए आवेदन करते हैं, तो उनके जमानत आवेदन पर किसी भी पक्ष को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना यथासंभव शीघ्रता से विचार किया जाएगा और निपटाया जाएगा।

(III) यदि संबंधित न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के दौरान उपयुक्त चरण पर याचिकाकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245(1) या 245(2) के प्रावधानों के तहत, जैसा भी मामला हो, एक उपयुक्त आवेदन दायर करके अपने उन्मोचन के लिए आवेदन करते हैं, तो संबंधित मजिस्ट्रेट/न्यायालय द्वारा एक कारण सहित और विवेचनात्मक आदेश पारित करके उसका निर्णय किया जाएगा।

10. तदनुसार यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

(2023) 7 ILRA 543

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 165 सन् 2006

अरुण कुमार द्विवेदी एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम

श्री भारत भूषण खन्ना एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री अरुण कुमार मिश्रा, श्री विद्या कांत शुक्ला

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: श्री सौरभ श्रीवास्तव

ए. सिविल विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173- मुआवजा वृद्धि- मृतक दावेदारों/माता-पिता का पुत्र था- वह 11वीं कक्षा का छात्र था- मृतक की वार्षिक आय 60,000/- रुपये मानी जाती है, जिसमें 1998 के नियम 220-ए(3) के अनुसार भविष्य की संभावनाओं के लिए 50% जोड़ा जाता है- इसलिए, कुल मुआवजा 9,20,000/- @ 7% दिया गया। (पैरा 1 से 33)

बी. संतान संघ माता-पिता का अधिकार है कि वे बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजा पाएं। दुर्घटना के कारण बच्चे की मृत्यु हो जाना मृतक के माता-पिता और परिवार के लिए बहुत बड़ा सदमा और पीड़ा का कारण बनता है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है। (पैरा 31)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सरोज देवी एवं अन्य बनाम रॉयल सुंदरम एलायंस इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड और अन्य (2016) 2 टीएसी 281 इलाहाबाद..
2. वी. मेकला बनाम एम. मलाथी एवं अन्य (2014) 11 एससीसी 178
3. एम.आर.कृष्ण मूर्ति बनाम न्यू इंडिया एश्योर. कं. लिमिटेड एवं अन्य (2020) 15 एससीसी 493
4. गोपालपुरी जय प्रकाश एवं अन्य बनाम प्रबंध निदेशक, एपीएसआरटीसी एवं अन्य, एमएसीएमए संख्या 694 सन् 2011
5. मीना पवैया एवं अन्य बनाम अशरफ अली एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 1083
6. ज्ञान चंद जैन एवं अन्य बनाम परमानन्द एवं अन्य (2003) 1 टीएसी 490
7. सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम डीटीसी (2009) 6 एससीसी 121
8. 'मैग्मा जनरल इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम @ चुहू राम व अन्य (2018) 18 एससीसी 130
9. नेशनल इंश्योरेन्स कंपनी बनाम प्रणय सेठी व अन्य (2017) 16 एससीसी 680
10. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला व अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
11. सुशील कुमार व अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लोजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड व अन्य (2017) 35 एलसीडी 1311
12. पी.ओ. मीरा व अन्य बनाम आनंद पी. नाइक व अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन केर 546

13. शाखा प्रबंधक, फ्यूचर जनरल इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बेंगलुरु बनाम वर्षा एस.एल. (2019) एससीसी ऑनलाइन कर 3498
14. शशिकला एवं अन्य बनाम गंगा-लक्ष्मम्मा और अन्य.. (2015) 9 एससीसी 150

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

यह एक दावेदार की अपील है, जो विद्वान जिला न्यायाधीश/ मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कानपुर नगर द्वारा दिनांक 29.08.2005 को एम.ए.सी.पी. संख्या 103/2005 में पारित निर्णय और अधिनिर्णय से उत्पन्न हुई है, जिसमें अधिसूचित मुआवजे में वृद्धि की मांग की गई है।

2. दावेदार-अपीलकर्ता, न्यायाधिकरण के समक्ष स्थापित एमएसीपी संख्या 103/2005 के दावेदार-याचिकाकर्ता हैं, जो मोटर दुर्घटना में अपने बेटे की मृत्यु के कारण मुआवजा मांग रहे हैं। दावेदार-अपीलकर्ता मृतक के पिता और माता हैं और उन्हें इसके बाद "दावेदार" के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

3. दावेदारों का प्रकरण संक्षेप में इस प्रकार है:

मोहित द्विवेदी जी.टी. रोड, कल्याणपुर, कानपुर नगर स्थित वुडबाइन गार्डनिया स्कूल में कक्षा ग्यारह का छात्र था। 9 नवम्बर 2004 को स्कूल से पढ़कर वह काकादेव के गुरुदेव पैलेस के पास कोचिंग क्लास के लिए स्कूटर से जा रहा था, जिसका रजिस्ट्रेशन नम्बर UP-78AM-9142 था। उक्त

स्कूटर मृतक के पिता अरुण कुमार दवेदी का था, जो दावेदारों में से एक है। दोपहर करीब 01:45 बजे मोहित दलहन के सामने एक स्थान पर पहुंचा। अनुसंधान रेलवे क्रॉसिंग पर विपरीत दिशा से आ रहा एक ट्रक जिसका पंजीकरण संख्या UP-70L-9527 है, सड़क के गलत साइड पर आ गया और मोहित के स्कूटर को टक्कर मार दी। टक्कर के परिणामस्वरूप मोहित स्कूटर से नीचे गिर गया और उसे गंभीर चोटें आईं। स्कूटर भी क्षतिग्रस्त हो गया। दुर्घटना स्थल पर बड़ी संख्या में लोग एकत्र हो गए और ट्रक को मौके पर ही पकड़ लिया गया। उनमें से कुछ लोगों ने मोहित को अस्पताल पहुंचाया लेकिन रास्ते में ही उसकी मौत हो गई। वह दावेदारों का बड़ा बेटा था और बहुत होशियार था। वह बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग कोर्स में प्रवेश के लिए अपनी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहा था। वह उक्त उद्देश्य के लिए स्कूल के समय के बाद कोचिंग क्लास में जाता था। पढ़ाई के अलावा मोहित पाठ्येतर गतिविधियों में भी भाग लेता था। मृतक इंजीनियर बन जाता और लगभग 50,000/- रुपये प्रति माह कमाता, लेकिन उसकी असामयिक मृत्यु नहीं हुई। दावेदारों का कहना है कि वे अपने बुढ़ापे में उसकी सेवाओं और वित्तीय मदद से वंचित रह गए हैं। उन्हें शारीरिक और मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ी है, जिसकी भरपाई आर्थिक रूप से नहीं की जा सकती। अपनी मृत्यु के समय मृतक की आयु लगभग 19 वर्ष थी। उसकी मासिक आय 25,000/- रुपये थी। घटना के बारे में थाना कल्याणपुर में एक प्राथमिकी दर्ज की गई , जिसके परिणामस्वरूप 09.11.2004 को शाम 04:00 बजे ट्रक चालक राम मगन के

खिलाफ धारा 279, 304-ए और 302 आईपीसी के तहत अपराध संख्या 692/2004 दर्ज किया गया।

4. दावेदारों ने प्रार्थना की कि उन्हें मुआवजे के रूप में 32,76,000 रुपये की राशि 18% प्रति वर्ष ब्याज सहित प्रदान की जाए।

5. भारत भूषण खन्ना नामक व्यक्ति इस वाहन का मालिक है। उसे दावा याचिका में विपक्षी पक्षकार संख्या 1 के रूप में पक्षकार बनाया गया है। हमारे समक्ष उसे अपील में प्रतिवादी संख्या 1 के रूप में पक्षकार बनाया गया है। ट्रक मालिक को अब से 'मालिक' कहा जाएगा। न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड अपने क्षेत्रीय अधिकारी, कानपुर नगर के माध्यम से इस ट्रक का बीमाकर्ता है। उन्हें दावा याचिका में विपक्षी पक्षकार संख्या 2 और इस अपील में प्रतिवादी संख्या 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया है। उपरोक्त बीमा कंपनी को अब से 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा।

6. मालिक की ओर से लिखित बयान दाखिल किया गया। उसने दोषी ट्रक का पंजीकृत मालिक होने की बात स्वीकार की है। उसने दलील दी है कि दोषी ट्रक का बीमा 04.04.2004 से 03.04.2005 तक बीमा किया गया था। मालिक के अनुसार, दुर्घटना ट्रक चालक द्वारा तेज गति और लापरवाही से वाहन चलाने के कारण नहीं हुई। ट्रक चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। वह एक अनुभवी चालक था। दुर्घटना मृतक की लापरवाही के कारण हुई। दलील दी गई है कि स्कूटर के पंजीकृत मालिक और उसके

बीमाकर्ता को दावा याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया है, जिससे आवश्यक पक्षों के शामिल न होने के कारण यह गलत है। दावा किया गया मुआवजा अत्यधिक है। दलील दी गई है कि यदि मालिक को दोषी पाया जाता है, तो इसका भार बीमाकर्तागण पर पड़ेगा। बीमाकर्तागण ने एक अलग लिखित बयान दाखिल किया है और आम तौर पर दावेदारों के प्रकरण से इनकार किया है। बीमाकर्तागण के अनुसार, दुर्घटना के तथ्य और उसमें दोषी ट्रक की संलिप्तता से इनकार किया जाता है। उन्होंने दलील दी है कि दावेदारों द्वारा आरोपित तरीके से अपराधी ट्रक द्वारा कोई दुर्घटना नहीं की गई थी। वैकल्पिक रूप से इस आशय की दलील है कि दुर्घटना, यदि कोई हुई है, तो मृतक की लापरवाही के कारण हुई थी। अपराधी ट्रक के चालक के पास दुर्घटना की तारीख को वैध और प्रभावी लाइसेंस नहीं था।

7. बीमाकर्तागण की ओर से दलील दी गई है कि मोहित द्विवेदी नाबालिग था और दुर्घटना की तारीख को उसके पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। दुर्घटना में ट्रक और दुर्भाग्यपूर्ण स्कूटर में टक्कर हुई थी, लेकिन स्कूटर के मालिक और बीमाकर्ता को दावा-याचिका में विपक्षी पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया है। बीमाकर्तागण ने यह भी दलील दी कि वे मालिक द्वारा दावा की गई बीमा पॉलिसी को विवरण के अभाव में स्वीकार नहीं करते हैं। दावा की गई क्षतिपूर्ति की राशि अत्यधिक बताई गई है। बीमाकर्तागण का कहना है कि दावा याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

8. पक्षों की दलीलों पर न्यायाधिकरण ने निम्नलिखित विवादक तय किए:

"1. क्या यह दुर्घटना दिनांक 9.11.04 को लगभग 1.45 बजे (अपराहन) जी.टी. रोड पर, दलहन अनुसंधान रेलवे क्रॉसिंग के सामने, थाना कल्याणपुर, कानपुर नगर की स्थानीय सीमा के भीतर, ट्रक संख्या यू.पी.-70एल-9527 के चालक द्वारा तेज गति और लापरवाही से वाहन चलाने के कारण हुई, जैसा कि याचिका में आरोप लगाया गया है? यदि ऐसा है, तो क्या श्री मोहित द्विवेदी की मृत्यु उक्त दुर्घटना के परिणामस्वरूप हुई है?

2. क्या प्रश्नगत दुर्घटना मृतक द्वारा स्वयं स्कूटर संख्या UP-78AM-9142 को तेज व लापरवाही से चलाने के कारण हुई थी?

3. क्या प्रश्नगत ट्रक के चालक के पास दुर्घटना की तिथि को वैध एवं प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था?

4. क्या याचिकाकर्ता किसी भी मुआवजे के हकदार हैं? यदि हां, तो किससे और किस सीमा तक?

5. याचिकाकर्ता किस राहत के हकदार हैं, यदि कोई हो?

9. दावेदारों ने अपने प्रकरण के समर्थन में अरुण कुमार द्विवेदी को पीडब्लू-1 और रितेश कुमार को पीडब्लू-2 के रूप में पेश किया। दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए गए, जिन पर निर्णय के दौरान इस अपील में शामिल

विवादक के लिए प्रासंगिक रूप से चर्चा की जाएगी। बीमाकर्तागण ने कोई सबूत पेश नहीं किया और मालिक के खिलाफ, न्यायाधिकरण के समक्ष दावा एकतरफा चला।

10. विवादक संख्या 1 और 2 जो लापरवाही और सहायक लापरवाही से संबंधित हैं, न्यायाधिकरण द्वारा एक साथ लिए गए और अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना ट्रक चालक की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी और मोहित की मौत उक्त दुर्घटना के परिणामस्वरूप लगी चोटों के कारण हुई थी। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि दुर्घटना मृतक द्वारा तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण नहीं हुई थी। इस प्रकार, सहायक लापरवाही के प्रकरण को न्यायाधिकरण द्वारा नकार दिया गया।

11. विवादक संख्या 3 का उत्तर सकारात्मक रूप से दिया गया, जिसमें कहा गया कि दुर्घटना की तिथि पर अपराधी ट्रक के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। विवादक संख्या 4 और 5 जो ओवरलैपिंग हैं, का निर्णय यह मानते हुए किया गया कि दावेदार 1,54,500/- रुपये की राशि में मुआवजे के हकदार हैं, जिसे बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी हैं। तदनुसार, दावा याचिका को मुआवजे पर प्रति वर्ष 7% ब्याज के साथ अनुमति दी गई, जिसे दावा याचिका की स्थापना की तिथि से वसूली तक अभिनिर्धारित किया जाता है। न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए विवादित अधिनिर्णय में एक और निर्देश है, जिसमें दोनों दावेदारों के बीच 50% की सीमा

तक देय मुआवजे का विभाजन करने का निर्देश दिया गया है।

12. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री विद्याकांत शुक्ला और बीमाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री सौरभ श्रीवास्तव को सुना गया। मालिक की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

13. सबसे पहले यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बीमाकर्तागण या मालिक की ओर से कोई क्रॉस अपील या क्रॉस आपत्ति पेश नहीं की गई है। इस प्रकार, इस न्यायालय के लिए विवादक संख्या 1, 2 और 3 पर दर्ज न्यायाधिकरण के निष्कर्षों की जांच करने का कोई कारण या अवसर नहीं है। उन्हें दोनों पक्षों के बीच अंतिम अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए।

14. यह अपील दावेदारों की ओर से दी गई है, जिसमें दिए गए मुआवजे में वृद्धि की मांग की गई है। विवादक संख्या 4 पर निष्कर्ष लौटाते समय, न्यायाधिकरण ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि मृतक एक होनहार छात्र था, जो अपने असामयिक निधन के समय कल्याणपुर के वुडबाइन गार्डेनिया स्कूल में ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रहा था। वह स्नातक इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए अपनी प्रवेश परीक्षा लिखने की तैयारी भी कर रहा था। न्यायाधिकरण ने टिप्पणी की है कि किसी व्यक्ति का जीवन और कैरियर अनिश्चितताओं से भरा होता है। न्यायाधिकरण के अनुसार, अपनी डिग्री हासिल करने के बाद, मृतक ने जीवन में खुद को स्थापित किया होगा और

भविष्य में दावेदारों की मदद की होगी। न्यायाधिकरण ने तब कहा है कि चूंकि मृतक की कोई आय नहीं थी, इसलिए उसकी काल्पनिक आय 15000/- प्रति वर्ष मानी जाएगी। इस पर 15 का गुणक लागू किया गया है और व्यक्तिगत और जीवन यापन के खर्चों के लिए 1/3 की कटौती की गई है। न्यायाधिकरण द्वारा 1,50,000/- का मुआवज़ा निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त, अंतिम संस्कार व्यय के लिए 2000/- रुपये, संपत्ति के नुकसान और सामान्य क्षति के लिए 2000/- रुपये का भुगतान किया गया है। इस प्रकार, मालिक और बीमाकर्तागण द्वारा देय मुआवज़ा के रूप में कुल 1,54,000/- रुपये का मूल्यांकन किया गया है, जिसमें बीमाकर्तागण पर अधिनिर्णय को पूरा करने का दायित्व है।

15. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने मृतक के लिए बहुत ही रूढ़िवादी काल्पनिक आय के आधार पर मुआवज़ा निर्धारित करने में न्यायाधिकरण के दृष्टिकोण की आलोचना की है। यह भी तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण को भविष्य की संभावनाओं को प्रदान करना चाहिए था , जो उन मामलों में भी प्रदान किया जाना चाहिए जो काल्पनिक आय के आधार पर आगे बढ़ते हैं। दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने **सरोज देवी और अन्य बनाम रॉयल सुंदरम अलायंस इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2016 (2) टीएसी (281) (इलाहाबाद)** में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के निर्णय पर अपने तर्क के समर्थन में भरोसा रखा है। **सरोज देवी (पूर्वोक्त)** में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि काल्पनिक आय 3000/- रुपये प्रति माह से कम नहीं हो

सकती है और भविष्य की संभावनाओं को 50% की सीमा तक जोड़ना होगा।

16. बीमाकर्तागण की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और प्रस्तुत किया कि वर्तमान में आय के अभाव में, किसी छात्र की भावी आय के बारे में अनुमान के आधार पर भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। यहाँ यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि मध्यवर्गीय भारतीय समाज में छात्रों को उनकी भविष्य की उत्पादकता के बारे में संदेह की दृष्टि से देखा जाता है, भले ही उनकी वर्तमान प्रगति से यह लगभग निश्चित हो कि उनका एक पुरस्कृत करियर होगा। साथ ही, मध्यवर्गीय भारतीय समाज में 'केवल छात्र' होने के बारे में एक अलग अवधारणा है। एक छात्र अपने आप में एक वर्ग नहीं है और एक व्यक्ति अपने जीवन के किसी भी चरण में उत्पादक हो सकता है। नई दुनिया ने युवाओं के लिए वास्तव में कमाई के अवसर खोले हैं , जबकि वे पढ़ाई करते हुए गंभीर काम और मनोरंजन व्यवसाय दोनों कर रहे हैं, जो समान रूप से पुरस्कृत हैं। दुखद रूप से, मानव जीवन की एक निश्चित उम्र में एक छात्र और फिर एक उत्पादक व्यक्ति होने के बारे में पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण, जिसमें केवल सरकारी कर्मचारियों के लिए राज्य के खजाने से भुगतान किए जाने वाले निश्चित और भरोसेमंद उत्पादकता का अनुमान लगाया जाता है, एक औपनिवेशिक अतीत और एक अलग दुनिया की विरासत है। अवसरों की एक नई दुनिया और वास्तव में उत्पादक युवाओं, जो पढ़ाई करते हुए कमाते हैं, के विचार को एक

तरफ रखते हुए , क्योंकि इस प्रकरण में इसके बारे में कोई सबूत नहीं है, हम सोचते हैं कि लगभग 19 वर्ष की आयु वाले कक्षा 11 के छात्र के लिए 15,000 रुपये प्रति वर्ष की काल्पनिक आय, उस युवक की आय के बारे में बहुत निराशावादी आकलन है - यहां तक कि काल्पनिक भी।

17. वी. मेकला बनाम एम. मालती एवं अन्य, (2014) 11 एससीसी 178, में, जो एक 16 वर्षीय लड़की की चोट के प्रकरण में मुआवजे के दावे के बारे में प्रकरण था, जो कक्षा ग्यारहवीं की एक होनहार छात्रा थी और दुर्घटना के कारण 70% स्थायी रूप से विकलांग हो गई थी, सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था, कि:

“17. इसके अलावा, इस निर्विवाद तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दुर्घटना के बाद से देश में मुद्रा की मुद्रास्फीति हुई है, इसे न्यायाधिकरण और अपीलीय अदालत द्वारा गोविंद यादव [गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2011) 10 एससीसी 683: (2012) 3 एससीसी (सिविल) 1082: (2012) 1 एससीसी (क्रि) 82: (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 422] में इस अदालत द्वारा निर्धारित सिद्धांत के अनुसार अपीलकर्ता दावेदार को मुआवजा देते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिसमें रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2009) 13 एससीसी 422: (2009) 5 एससीसी (सिविल) 143: (2010) 1 एससीसी (क्रि 1044], जिसका

प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है: (रेशमा कुमारी केस [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2009) 13 एससीसी 422: (2009) 5 एससीसी (सिविल) 143: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 1044], एससीसी पृ. 440-41, पैरा 46)

“46. भारतीय संदर्भ में आश्रितों की शिक्षा और नौकरी की प्रकृति सहित कई अन्य कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों और वैश्विक परिदृश्य के मददेनजर, भविष्य की संभावनाओं को न केवल कर्मचारी की स्थिति, उसकी शैक्षिक योग्यता; उसके पिछले प्रदर्शन को ध्यान में रखते हुए बल्कि अन्य प्रासंगिक कारकों, जैसे कि निजी कंपनियों द्वारा इन दिनों दिए जा रहे उच्च वेतन और भत्ते को भी ध्यान में रखना होगा। वास्तव में गुणनफल का निर्धारण करते समय इस न्यायालय ने ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जशुबेन [(2008) 4 एससीसी 162: (2008) 2 एससीसी (क्रि) 752] में अभिनिर्धारित किया कि महंगाई भत्ता और उससे संबंधित भत्ते, जिनसे परिवार को मासिक लाभ मिलता था, को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।”

18. यह तथ्य कि दुर्घटना के समय अपीलकर्ता एक प्रतिभाशाली छात्रा थी, उसे मुआवजा देते समय भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसलिए, इस मद के तहत मुआवजा देने के उद्देश्य से न्यायाधिकरण द्वारा 6000 रुपये मासिक काल्पनिक आय लेना बहुत कम राशि है। प्रतिवादी 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता अभी

भी अपनी शिक्षा पूरी कर सकती है और रोजगार पा सकती है और इसलिए, "आय की हानि" और "भविष्य की संभावनाओं" के मद के तहत मुआवजे की राशि बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ यह दोहराना उचित है कि अपीलकर्ता दावेदार दुर्घटना के कारण काफी दर्द और पीड़ा से गुजरी है और अभी भी गुजर रही है, जिसने उसके दोनों पैरों को बेकार कर दिया है। इसने उसकी शादी सहित उसके भविष्य की संभावनाओं के दायरे को काफी हद तक कम कर दिया है। इसके अलावा, एक अपकृत्यकर्ता अपीलकर्ता दावेदार के करियर की शर्तों को निर्धारित करने का हकदार नहीं है जैसा कि कर्नाटक उच्च न्यायालय ने के. नरसिम्हा मूर्ति बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [आईएलआर 2004 केएआर 2471] में अभिनिर्धारित किया है, जिसका प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है: (आईएलआर पृ. 2490-91, पैरा 41)

"41. ... इसके अलावा, इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि यह अपकारक या ऐसे व्यक्ति का अधिकार नहीं है जिसने अधिनियम के तहत अपकारक की जिम्मेदारी ली है कि वह यह निर्देश दे कि घायल व्यक्ति को कोई अन्य काम करना चाहिए, चाहे वह शारीरिक हो या अन्यथा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, चाहे वह दर्द और परेशानी के साथ हो, ताकि उसकी जिम्मेदारी कम से कम हो। इस तरह का आग्रह कानून में असमर्थनीय है और अगर ऐसा प्रकरण है, तो यह घायल व्यक्ति के बुनियादी मानवाधिकारों का उल्लंघन होगा। इस प्रकरण में, अपीलकर्ता ऐसी स्थिति में आ गया है कि वह खुद को दर्द और पीड़ा, पीड़ा और

परेशानी के अधीन किए बिना कोई भी काम, शारीरिक या अन्यथा करने में असमर्थ है। दुर्घटना में, यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे काम के लिए अक्षम हो जाता है जो वह दुर्घटना से पहले कर रहा था, कि उसके पास किसी और चीज के लिए कोई प्रतिभा, कौशल, अनुभव या प्रशिक्षण नहीं है और वह कोई भी काम, शारीरिक या लिपिकीय काम पाने में असमर्थ है, तो ऐसे व्यक्ति ने सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अपनी सारी कमाई करने की क्षमता खो दी है जो उसके पास पहले थी और उसे कुल नुकसान के आधार पर मुआवजा दिया जाना चाहिए। इस निष्कर्ष पर पहुंचने में हम डेनियल बनाम सर रॉबर्ट मैकअल्पाइन एंड संस लिमिटेड [(१९७१) ११ केआईआर १४१] और ब्लेयर बनाम एफजेसी लिली (मरीन) लिमिटेड [१९८१ एसएलटी ९०] के निर्णयों से समर्थन प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे, अपीलकर्ता द्वारा आय अर्जित करने की शारीरिक अक्षमता अस्थायी नहीं है, बल्कि एक्सटेंशन पी-४३ के अनुसार स्थायी और पूर्ण है। तीसरे, यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि अपीलकर्ता ने पीडब्लू ३ के अनुसार पूरे शरीर के संबंध में केवल ५४% स्थायी शारीरिक विकलांगता का सामना किया है, इसलिए अदालत को कमाई की क्षमता के नुकसान का आकलन करते समय केवल ५४% पर कार्यात्मक विकलांगता को भी ध्यान में रखना चाहिए । ऐसी परिकल्पना न तो तर्कसंगत है और न ही इसे कानून के संदर्भ में मान्य अभिनिर्धारित किया जा सकता है। एक घायल व्यक्ति को उस नुकसान के लिए मुआवजा दिया जाता है जो उसे शारीरिक चोट के परिणामस्वरूप होता है न कि शारीरिक चोट के लिए। दूसरे शब्दों में,

मुआवज़ा दुर्घटना के कारण हुए नुकसान के लिए ही दिया जाता है, जो कि पैसे के रूप में बराबर होता है, जब तक कि पैसे की प्रकृति नुकसान के लिए अनुमति देती है। दुर्घटना में, यदि कोई व्यक्ति अपना अंग या आँख खो देता है या उसे चोट लगती है, तो न्यायालय अंगों या शारीरिक चोट के लिए हर्जाने की गणना करते समय, अंग या आँख के नुकसान का मूल्यांकन अलग से नहीं करता है, बल्कि केवल उस नुकसान की समग्रता का मूल्यांकन करता है जिसमें जीवन की सुख-सुविधाओं का नुकसान और दर्द और पीड़ा का कारण बनना शामिल है: जीवन की अच्छी चीज़ों का नुकसान, जीवन की खुशियाँ और दर्द और संकट का सकारात्मक कारण।

19. इसके अलावा, रेशमा कुमारी [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2009) 13 एससीसी 422: (2009) 5 एससीसी (सिविल) 143: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 1044] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भविष्य की आय की संभावना के तहत मुआवज़ा देते समय कुछ प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। प्रासंगिक पैराग्राफ़ इस प्रकार है: (एससीसी पृष्ठ 431-32, पैरा 27)

“27. भावी आय के संभावित नुकसान के संबंध में मुआवजे के निर्धारण के लिए लागू की जाने वाली कार्यप्रणाली के बारे में प्रश्न, हालांकि, जहां तक संभव हो, कुछ सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। किसी व्यक्ति का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है; वह तुरंत पदोन्नति के लिए पात्र हो सकता है; तत्काल वेतन संशोधन की संभावना हो सकती है,

जबकि दूसरी (ऐसी स्थिति) में रोजगार की प्रकृति ऐसी थी कि वह सेवा में जारी नहीं रह सकता था; रोजगार की प्रकृति को देखते हुए उसकी पदोन्नति की संभावना बहुत कम या बहुत कम हो सकती है। इसलिए, किसी भी अदालत के लिए कठोर परीक्षण निर्धारित करना मुश्किल है जिसे सभी स्थितियों में लागू किया जाना चाहिए। अलग-अलग विचार हैं। कुछ मामलों में यह सुझाव दिया गया है कि कुछ प्रकार की परिकल्पना या अनुमान अपरिहार्य हो सकते हैं। ऐसा हो सकता है।”

20. इसलिए, उपरोक्त प्रकरण में निर्धारित सिद्धांतों के आलोक में, यह इस न्यायालय के लिए उचित और न्यायसंगत होगा, और उसके पिछले परिणामों को ध्यान में रखते हुए हम आय की हानि के शीर्षक के तहत न्यायसंगत और उचित मुआवजे की गणना के लिए उसकी मासिक काल्पनिक आय के रूप में 10,000 रुपये लेते हैं। इसके अलावा, उच्च न्यायालय उपर्युक्त मामलों की श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर आय की भविष्य की संभावनाओं पर विचार करने में विफल रहा है। इसलिए, अपीलकर्ता द्वारा इस शीर्ष के तहत भी पुनः वृद्धि की मांग करना न्यायोचित है और हम मानते हैं कि अपीलकर्ता दावेदार संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सिविल) 726: (2012) 3 एससीसी (क्रि) 160: (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के अनुसार इस शीर्ष के तहत 50% वृद्धि का हकदार है।

प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है: (एससीसी पृष्ठ 426-27, पैरा 13)

“13. सरला वर्मा प्रकरण में [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सिविल) 770: (2009) 2 एससीसी (क्रि) 1002], एक अन्य दो न्यायाधीशों की पीठ ने मोटर दुर्घटनाओं से जुड़े मामलों में देय मुआवजे का निर्धारण करने के लिए प्रासंगिक विभिन्न कारकों पर विचार किया, विभिन्न मामलों में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त विचारों में स्पष्ट भिन्नता देखी, 30प्र0 एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र [(1996) 4 एससीसी 362], नैन्स बनाम ब्रिटिश कोलंबिया इलेक्ट्रिक रेलवे कंपनी लिमिटेड [1951 एसी 601: (1951) 2 ऑल ईआर 448 (पीसी)], डेविस बनाम पॉवेल डफ्रिन एसोसिएटेड कोलियरीज लिमिटेड (संख्या 2) [1942 एसी 601 : (1942 657 (एचएल)] और विभिन्न शीर्षकों के तहत एक स्ट्रेटजिकेट फॉर्मूला निर्धारित करके मुआवजे के अधिनिर्णय के प्रकरण में न्यायाधिकरणों और उच्च न्यायालयों द्वारा विवेक के प्रयोग को सीमित करने का प्रयास किया, जिनमें से कुछ नीचे सूचीबद्ध हैं: (सरला वर्मा प्रकरण [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009) 2 एससीसी (सिविल) 770: (2009) 2 एससीसी (क्रि) 1002], एससीसी पीपी. 133-34, पैरा 24)

प्रश्न (i) - भविष्य की संभावनाओं के लिए आय में वृद्धि

24. सुसम्मा थॉमस [केरल एसआरटीसी बनाम सुसम्मा थॉमस, (1994) 2 एससीसी 176: 1994 एससीसी (क्रि) 335] में इस न्यायालय ने आय में लगभग 100% की वृद्धि की, सरला दीक्षित [सरला दीक्षित बनाम बलवंत यादव, (1996) 3 एससीसी 179] में आय में केवल 50% की वृद्धि हुई और अबती बेजबरुआ [अबाती बेजबरुआ बनाम भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, (2003) 3 एससीसी 148: 2003 एससीसी (क्रि) 746] में आय में मात्र 7% की वृद्धि हुई। अनिश्चितताओं और अनिश्चितताओं को देखते हुए, हम भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की वास्तविक वेतन आय में 50% वास्तविक वेतन जोड़ने को एक सामान्य नियम के रूप में अपनाने के पक्ष में हैं, जहाँ मृतक के पास स्थायी नौकरी थी और उसकी आयु 40 वर्ष से कम थी। (जहाँ वार्षिक आय कर योग्य सीमा में है, वहाँ "वास्तविक वेतन" शब्दों को "वास्तविक वेतन में से कर घटाकर" पढ़ा जाना चाहिए।) यदि मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष थी, तो यह वृद्धि केवल 30% होनी चाहिए। जहाँ मृतक की आयु 50 वर्ष से अधिक है, वहाँ कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए। हालाँकि साक्ष्य वृद्धि के एक अलग प्रतिशत का संकेत दे सकते हैं, लेकिन अलग-अलग मानदंडों को लागू करने या गणना के विभिन्न तरीकों को अपनाने से बचने के लिए जोड़ को मानकीकृत करना आवश्यक है। जहाँ मृतक स्व-नियोजित था या एक निश्चित वेतन पर था (वार्षिक वेतन वृद्धि आदि के प्रावधान के बिना), न्यायालय आमतौर पर मृत्यु के समय केवल वास्तविक आय को ही लेंगे। इससे विचलन केवल दुर्लभ और असाधारण मामलों

में किया जाना चाहिए जिसमें विशेष परिस्थितियाँ शामिल हों।”

आय क्या होती। यह भविष्य की कमाई हो सकती है।

इसलिए, दोनों पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, इस शीर्ष के तहत मुआवजे की कुल राशि 22,68,000 रुपये [(10,000 रुपये × 70/100 + 10,000 रुपये × 70/100 × 50/100) × 12 × 18] के रूप में गणना की जाती है।

18. ऐसे व्यक्तियों के प्रकरण में मुआवजे के आकलन के सिद्धांतों पर, जिनकी वर्तमान में कोई आय नहीं है, लेकिन वे छात्र हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने **एम.आर. कृष्ण मूर्ति बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2020) 15 एससीसी 493** में विचार किया था, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था:

“24. उपरोक्त निर्णयों के संयुक्त वाचन से, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित सिद्धांत निकाले जा सकते हैं जो तत्काल अपील पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक होंगे:

24.1. उन मामलों में जहां दुर्घटना का शिकार व्यक्ति कमाने वाला व्यक्ति नहीं बल्कि एक छात्र है, भविष्य की कमाई के नुकसान के लिए मुआवजे का आकलन करते समय, जांच का ध्यान ऐसे व्यक्ति के भविष्य में करियर की संभावना और संभावित कमाई पर होगा। उदाहरण के लिए, जहां दावेदार एक विशेष व्यावसायिक पाठ्यक्रम कर रहा है, तो सवाल यह होगा : यदि वह उक्त पाठ्यक्रम के अनुरूप कोई सेवा ज्वाइन करता तो उसकी

24.2. ऐसे प्रकरण भी हो सकते हैं, जहां पीड़ित उस स्तर पर किसी खास नौकरी को पाने के लिए ऐसा कोई कोर्स नहीं कर रहा हो। वह किसी स्कूल में पढ़ रहा हो सकता है। ऐसे प्रकरण में, भविष्य का करियर कई कारकों पर निर्भर करेगा जैसे पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिकायतकर्ता की किसी खास करियर को अपनाने की पसंद/रुचि, ऐसे करियर को अपनाने के लिए उसे उपलब्ध सुविधाएँ, आसपास की अनुकूल परिस्थितियाँ जो दावेदार को उक्त करियर को सफलतापूर्वक चुनने में सक्षम बनातीं, आदि। यदि चुना गया क्षेत्र रोजगार है, तो भविष्य की कमाई ऐसे पेशे के लिए देय वेतन और भत्तों के आधार पर ली जा सकती है। यदि करियर कोई खास पेशा है, तो भविष्य की कमाई कई अन्य कारकों पर निर्भर करेगी, जिसके आधार पर ऐसे पेशे में सफलता प्राप्त करने की संभावना का पता लगाया जा सकता है।

24.3 कुछ प्रकरण देव पाटोदी [ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम देव पाटोदी, (2009) 13 एससीसी 123: (2009) 5 एससीसी (सिविल) 29: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 963] जैसे प्रकरण हो सकते हैं, जहां एक छात्र होने के बावजूद, दावेदार ने अंशकालिक आधार पर कमाई की होगी या उसे किसी विशेष नौकरी के लिए प्रस्ताव मिला होगा। ऐसे मामलों में, ये कारक भी प्रासंगिकता ग्रहण करेंगे।

24.4. उपरोक्त तरीके से पीड़ित की संभावित कमाई का पता लगाने के बाद, उसके परिणामस्वरूप हुई चोटों और विकलांगता की प्रकृति को ध्यान में रखा जाएगा, जबकि यह निर्धारित किया जाएगा कि इससे उसकी कमाई कितनी प्रभावित हुई है। यहां, कार्यात्मक विकलांगता पर चोटों के प्रभाव को देखा जाना चाहिए। पीड़ित की मृत्यु के प्रकरण में, इससे कमाई का कुल नुकसान होगा। चोटों के प्रकरण में, विकलांगता की प्रकृति महत्वपूर्ण हो जाती है। एन. मंजोगौड़ा प्रकरण में ऐसा अभ्यास किया गया था [एन. मंजोगौड़ा बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2014) 3 एससीसी 584: (2014) 2 एससीसी (सिविल) 297: (2014) 4 एससीसी (क्रि) 634।]"

19. गोपालपुरी जय प्रकाश एवं अन्य बनाम प्रबंध निदेशक, एपीएसआरटीसी एवं अन्य, एमएसीएमए. संख्या 694/2011, 08.09.2022 को निर्णीत, तेलंगाना उच्च न्यायालय ने इंटरमीडिएट कोर्स में पढ़ रहे एक छात्र की आय को उसके कानूनी प्रतिनिधियों को मुआवजा देने के उद्देश्य से माना। उस प्रकरण में छात्र की 21.10.2006 को एक मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। गोपालपुरी जय प्रकाश (पूर्वोक्त) में छात्र की आय के प्रश्न पर विचार करते समय, यह देखा गया:

"9. याचिकाकर्ताओं ने कहा कि दुर्घटना की तारीख तक प्रकाश/मृतक की आयु 18 वर्ष थी और वह इंटरमीडिएट की पढ़ाई कर रहा एक प्रतिभाशाली छात्र था। इसके अलावा ट्यूशन पढ़ाकर वह 6,000/- रुपये प्रति माह कमाता था।

10. याचिकाकर्ताओं द्वारा दाखिल किए गए दस्तावेजों में से ड्राइविंग लाइसेंस/एक्स. ए-5, एसएससी प्रमाण पत्र/एक्स. ए-7 और पासपोर्ट/एक्स. ए-10 में प्रकाश/मृतक की जन्म तिथि 09.10.1989 दर्शाई गई है। इस प्रकार, दुर्घटना की तिथि तक प्रकाश/मृतक की आयु 18 वर्ष है। आय के संबंध में हालांकि याचिकाकर्ताओं ने मृतक द्वारा ट्यूशन पढ़ाने के दावे का समर्थन करने के लिए पीडब्लू-2 के साक्ष्य प्रस्तुत किए, लेकिन कितने छात्र थे और प्रति छात्र कितनी फीस थी, इस बारे में कोई भौतिक विवरण नहीं था। हालांकि, एक्स. ए-7, ए-8 और ए-9 में प्रस्तुत शैक्षणिक रिकॉर्ड को ध्यान में रखते हुए 5,000/- रुपये की मासिक आय को सुरक्षित रूप से काल्पनिक आधार पर लिया जा सकता है।"

20. हालांकि गुपालपुरी जय प्रकाश एक ऐसा प्रकरण था जिसमें यह दावा किया गया था कि मृतक को निजी ट्यूशन देने से वास्तविक आय होती थी, लेकिन न्यायालय ने उसके शैक्षणिक रिकॉर्ड को देखते हुए उसकी आय का अनुमान 5000 रुपये के आधार पर लगाया। यहां मृतक ग्यारहवीं कक्षा का छात्र था। यह न्यायालय 28.05.2004 को केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित हाई स्कूल परीक्षा, 2004 के लिए उसके अंक-पत्रों के अवलोकन पर पाता है कि मृतक का औसत ग्रेड सी और डी के बीच था, उसने बी ग्रेड भी अर्जित किया था, लेकिन फिर भी वह केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्ध एक अच्छे स्कूल का छात्र था। उसे पाठ्येतर गतिविधियों में रुचि थी और इन गतिविधियों में उसकी भागीदारी के प्रमाण पत्र रिकॉर्ड में हैं।

21. मृतक के पिता पीडब्लू-1 अरुण कुमार द्विवेदी ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि उनका बेटा वुडबाइन गार्डेनिया स्कूल, कानपुर में कक्षा-11 में पढ़ रहा था और इंजीनियरिंग प्रवेश परीक्षा लिखने में अपने कौशल को उन्नत करने के लिए एक फाउंडेशन कोर्स कर रहा था। अपने मुख्य परीक्षण में, यह भी कहा गया है कि उनके बेटे ने सीबीएसई से संबद्ध सर पदमपत सिंघानिया शिक्षा केंद्र, कानपुर, उ0प्र0 में नर्सरी से कक्षा दस तक की पढ़ाई की थी। गवाह ने यह भी कहा है कि इंजीनियरिंग की परीक्षा पास करने के बाद, उनका बेटा एनडीए में शामिल होना चाहता था। साक्ष्य की समग्रता पर विचार करते हुए, यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि मृतक एक छात्र था, जो इंटरमीडिएट स्तर पर एक अच्छे संस्थान में पढ़ रहा था। **एम.आर. कृष्ण मूर्ति (पूर्वोक्त)** की रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 24.2 में दिशानिर्देशों के अनुसार, यह टिप्पणी की जानी चाहिए तथ्य यह है कि उसने एक अच्छे संस्थान से अपनी हाई स्कूल पास की थी और एक अच्छे संस्थान से ही इंटरमीडिएट परीक्षा प्रमाणपत्र हासिल करने के लिए अपनी पढ़ाई कर रहा था, दोनों ही केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्ध थे, इस तथ्य के अलावा कि उसका परिवार पैसा खर्च कर रहा था, उसे इंजीनियरिंग कोर्स में चयन के लिए अपनी प्रतियोगी परीक्षा लिखने के उद्देश्य से अपने कौशल को उन्नत करने के लिए सहायक कोचिंग प्रदान कर रहा था, यह सब यह दिखाने के लिए जाता है कि उसके पास इंजीनियरिंग कोर्स में चुने जाने और खुद के लिए एक फायदेमंद नौकरी हासिल करने की अच्छी संभावनाएं थीं। केवल यह तथ्य कि

मृतक के हाई स्कूल सर्टिफिकेट में बहुत अच्छे ग्रेड नहीं हैं, उसके भविष्य के प्रदर्शन के बारे में कोई सूचक नहीं है। वे स्कूल जहाँ वह पढ़ रहा था और यह तथ्य कि उसका परिवार एक अच्छे स्कूल में उसकी शिक्षा का खर्च उठा रहा था, उसकी उत्पादकता के संदर्भ में मृतक के अच्छे भविष्य का अनुमान लगाने के लिए भरोसेमंद कारक हैं।

22. इस न्यायालय की राय में, छात्रों की आय के बारे में काल्पनिक आधार पर मूल्यांकन करने के संबंध में उच्च प्राधिकारी के मार्गदर्शन और मृतक की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिस समय दुर्घटना हुई, अर्थात् वर्ष 2004, जब एक अकुशल दैनिक मजदूर लगभग 3000/- रुपये प्रति माह कमा रहा होगा, मृतक के लिए 5000/- रुपये प्रति माह की काल्पनिक आय निर्धारित करना उचित होगा।

23. मृतक की मासिक आय 5000/- रुपये थी, वार्षिक आय 60,000/- रुपये होगी। मृतक अविवाहित था और दावेदार उसके माता-पिता हैं। **सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121** में निर्धारित अविवाहितों से संबंधित व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए कटौती के संबंध में सिद्धांत के अनुसार, मृतक की आय से 50% कटौती की जानी है। मृतक की आयु 19 वर्ष थी और **सरला वर्मा (पूर्वोक्त)** में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 40 में दी गई तालिका के अनुसार, लागू गुणक 15-20 वर्ष की आयु वर्ग के लिए निर्धारित किया जाएगा। यह '18' है।

24. न्यायाधिकरण ने व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए एक तिहाई की कटौती का निर्देश दिया है और माता-पिता की आयु के अनुसार '15' का गुणक अपनाया है, जो पिता के लिए 44 वर्ष और माता के लिए 43 वर्ष था। सरला वर्मा और उसके बाद के अधिकारियों के प्रकरण में स्थापित सिद्धांत यह संकेत देते हैं कि न्यायाधिकरण दोनों मामलों में त्रुटिपूर्ण था। व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्यय के लिए की जाने वाली उचित कटौती पहले ही बताई जा चुकी है और गुणक भी, जो '18' होना चाहिए ; '15' नहीं।

25. न्यायाधिकरण द्वारा मृतक की भविष्य की संभावनाओं के बारे में कुछ भी नहीं दिया गया है। **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, भविष्य की संभावनाओं का लाभ स्वरोजगार करने वालों और निश्चित वेतन पर काम करने वालों को भी दिया गया है, लेकिन यहां मृतक न तो स्वरोजगार करता था और न ही निश्चित वेतन पर काम करने वाला व्यक्ति था। वह एक युवा लड़का था जिसके पास भविष्य को देखने के लिए बहुत कुछ था और इसलिए, उसकी आय का आंकलन काल्पनिक रूप से किया गया है। सवाल यह है कि क्या काल्पनिक आय के प्रकरण में, भविष्य की संभावनाएं भी दी जानी चाहिए। यह सवाल **मीना पवैया और अन्य बनाम अशरफ अली और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1083** में सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ आया। **मीना पवैया (पूर्वोक्त)** में उनके लॉर्डशिप के निर्णय की रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 11

और 13 में प्रश्न और होल्डिंग का उल्लेख है , जहां यह देखा गया है:

"11. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए रखा गया अगला प्रश्न यह है कि क्या भविष्य में आय में वृद्धि के लिए कुछ और जोड़ने की आवश्यकता है? भारत संघ की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि मृतक दुर्घटना/मृत्यु के समय सेवारत नहीं था और न ही कमा रहा था, इसलिए भविष्य की संभावना/भविष्य में आय में वृद्धि के लिए कुछ और नहीं जोड़ा जाना चाहिए। उपर्युक्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

13. हमें कोई कारण नहीं दिखता कि उपरोक्त सिद्धांत को क्यों लागू नहीं किया जा सकता, जो वेतनभोगी व्यक्ति और/या मृतक स्वरोजगार और/या निश्चित वेतनभोगी मृतक पर लागू होता है, मृतक जो दुर्घटना/मृत्यु के समय सेवा नहीं कर रहा था और/या उसकी कोई आय नहीं थी। मृतक के प्रकरण में, जो दुर्घटना/मृत्यु के समय कमाई नहीं कर रहा था और/या कोई नौकरी नहीं कर रहा था और/या स्वरोजगार कर रहा था , जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उसकी आय का निर्धारण ऊपर वर्णित परिस्थितियों को देखते हुए अनुमान के आधार पर किया जाना है। एक बार ऐसी राशि आ जाने पर वह भविष्य की संभावना/आय में भविष्य की वृद्धि पर अतिरिक्त राशि पाने का हकदार होगा। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि जीवन यापन की लागत में वृद्धि भी ऐसे व्यक्ति को प्रभावित करेगी। जैसा कि इस न्यायालय ने प्रणय सेठी (पूर्वोक्त) के प्रकरण

में देखा है, मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि यह विधि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 168 के तहत निर्धारित न्यायोचित मुआवजे के दायरे में आ सके। ऐसे मृतक के प्रकरण में जिसने वार्षिक वेतन वृद्धि के साथ स्थायी नौकरी की थी और/या ऐसे मृतक के प्रकरण में जो निश्चित वेतन पर था और/या स्वरोजगार करता था, उसे केवल भविष्य की संभावनाओं का लाभ मिलेगा और मृतक के कानूनी प्रतिनिधि जो प्रासंगिक समय पर सेवा नहीं कर रहे थे क्योंकि उनकी मृत्यु कम उम्र में हुई थी और वे पढ़ाई कर रहे थे, उन्हें मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं का लाभ नहीं मिल सकता है। क्योंकि मूल्य वृद्धि उन्हें भी प्रभावित करती है और जीविका के लिए अपनी आय बढ़ाने के लिए हमेशा एक निरंतर प्रयास होता है। यह उम्मीद नहीं की जाती है कि मृतक जो बिल्कुल भी सेवा नहीं कर रहा था, उसकी आय स्थिर रहने की संभावना है और उसकी आय स्थिर रहेगी। जैसा कि प्रणय सेठी (पूर्वोक्त) में देखा गया है कि यह धारणा रखना कि वह स्थिर रहने की संभावना है और उसकी आय स्थिर रहेगी, मानवीय दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखता है। इसलिए हमारा यह मत है कि ऐसे मृतक के प्रकरण में भी, जो मृत्यु के समय सेवारत नहीं था और मृत्यु के समय उसकी कोई आय नहीं थी, उसके कानूनी उत्तराधिकारी भी आय में भावी वृद्धि को जोड़कर भविष्य की संभावनाओं के हकदार होंगे, जैसा कि इस

न्यायालय ने प्रणय सेठी (पूर्वोक्त) के प्रकरण में कहा है, अर्थात् शैक्षणिक योग्यता, पारिवारिक पृष्ठभूमि आदि पर विचार करते हुए अनुमान के आधार पर निर्धारित आय का 40% जोड़ना, जहां मृतक की आय 40 वर्ष से कम थी।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

26. यह सिद्धांत दिया गया है कि मृतक की आय में भविष्य की संभावनाओं को भी जोड़ा जाना चाहिए, भले ही वह उस प्रकरण में हो, जहां मृतक के निधन के समय कोई कमाने वाला सदस्य न होने के कारण यह काल्पनिक हो। यह प्रश्न अभी भी विचारणीय है कि क्या उत्तर प्रदेश राज्य में, भविष्य की संभावनाओं को प्रणय सेठी या उ०प्र० मोटर वाहन नियम, 1998 (संक्षेप में 'नियम 1998') के नियम 220- ए (3) के सिद्धांत द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए। इस विवादक का उत्तर सर्वोच्च न्यायालय ने भविष्य की संभावनाओं के संदर्भ में दिया था, जिसे आम तौर पर उत्तर प्रदेश राज्य में **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822** में दिया गया था, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है:

"9. यह ध्यान देने योग्य है कि नियमों की वैधता पर किसी भी तरह से तत्काल प्रकरण में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है, वह यह है कि क्या इसके आवेदन में, नियमों के नियम 220 ए के उप-नियम 3 (iii) को सीमित दायरा दिया जाना

चाहिए या इसे पूरी तरह से लागू करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

करते हैं और लागत के संबंध में कोई आदेश दिए बिना इस अपील को खारिज करते हैं।"

10. प्रणय सेठी प्रकरण में चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के अनुसार "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से की गई थी।

11. यदि कोई संकेत वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में लिए गए निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने वाला नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है, खासकर तब जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के तहत नहीं रखा गया हो। प्रणय सेठी में बताए गए मामलों में जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, वहां 15% का निर्धारण अधिकतम नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासकीय सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक साधन ने कोई सूत्र तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे वैधानिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन को अन्यथा अमान्य नहीं पाया जाता।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्क को अस्वीकार करते हैं और न्यायाधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि

27. इस न्यायालय की समझ से, **उर्मिला शुक्ला (पूर्वोक्त)** में दिए गए नियम को उन मामलों तक सीमित करने का कोई कारण नहीं है, जहां वेतनभोगी व्यक्तियों, स्वरोजगार करने वालों या इससे भी अधिक, निश्चित वेतन पर काम करने वालों के प्रकरण में भविष्य की संभावनाओं को प्रदान किया जाता है, जब भविष्य की संभावनाओं को काल्पनिक आय वाले लोगों के प्रकरण में देय अभिनिर्धारित किया जाता है। ऐसे मामलों में **उर्मिला शुक्ला** के सिद्धांत को लागू न करने का कोई तर्कसंगत कारण या कारण नहीं है। इसलिए, इस न्यायालय की राय में, उत्तर प्रदेश राज्य में भविष्य की संभावनाओं की गणना 1998 के नियम 220- ए (3) के अनुसार की जानी चाहिए, ऐसे प्रकरण में जहां आय का आकलन गैर-कमाऊ मृतक, जो एक छात्र है, के लिए काल्पनिक रूप से किया गया है।

28. विचार के लिए अगला विवादक यह है कि क्या 1998 के नियम, जिन्हें अधिसूचना संख्या 777/XXX4-2011-4(3)-2010 दिनांक 26 सितंबर, 2011 के तहत वर्ष 2011 में लागू किया गया था, यानी उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियम, 2011, संशोधन से पहले हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होंगे। इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय की खंडपीठ ने **सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लोजैस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2017 (35) एलसीडी**

1311 प्रकरण में दिया था।, जहां यह आयोजित किया गया है:

“31. भावी संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधि न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के मददेनजर उत्तर प्रदेश मोटर यान नियम, 1998 में नियम 220-ए जोड़ा गया था। यह प्रतिकर के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए घायलों/मृतकों की आयु के आधार पर उनकी वास्तविक आय में उनकी आय का एक निश्चित प्रतिशत जोड़ने का प्रावधान करता है। उपर्युक्त नियम 26.09.2011 को दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले लागू हुआ, हालांकि दुर्घटना उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले 08.05.2010 को हुई थी।

32. उपर्युक्त के मददेनजर यह तर्क दिया जा रहा है कि नियम 220-ए, जो 26.09.2011 को प्रभावी हुआ, 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम सरूप बनाम मुंशी एआईआर 1963 एससी 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में परिवर्तन को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

34. उपर्युक्त विचार का अनुसरण सर्वोच्च न्यायालय ने मूला बनाम गोधु एआईआर 1971 एससी 89 में किया था।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत एआईआर 1966 एससी 1423 में न्यायालय ने निम्नलिखित

टिप्पणी की थी: - यदि नया कानून ऐसी भाषा में बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से, लंबित मामलों को भी अपने में समाहित कर लेता है, तो परीक्षण न्यायालय के साथ-साथ अपील न्यायालय को भी इस प्रकार व्यक्त इरादे को ध्यान में रखना चाहिए, और अपील न्यायालय प्रथम दृष्टया न्यायालय के निर्णय के बाद भी ऐसे कानून को प्रभावी कर सकता है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह एआईआर 1974 एससी 2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में परिवर्तन प्रभावी किया गया था क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा मुकदमे की पुनः सुनवाई की प्रकृति की होती है।

37. उपरोक्त निर्णयों के प्रकाश में लक्ष्मी नारायण गुइन एवं अन्य बनाम निरंजन मोदक एआईआर 1985 एससी 111 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में परिवर्तन को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

38. उपर्युक्त निर्णय का अनुपालन इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 30प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा एवं अन्य, 2003 (4) एडब्ल्यूसी 2620 में किया गया था, जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों से संबंधित प्रकरण था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में परिवर्तन को

ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षों के अधिकारों को कवर किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के मददेनजर आईसीआईसीआई लोम्बार्ड (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण उचित विधिक नहीं है, क्योंकि इसमें उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में नहीं रखा गया है, जिसमें कहा गया है कि 26.09.2011 को प्रभावी हुए नियमों का नियम 220-ए, उक्त तिथि से पहले हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा, केवल इस कारण से कि नियम में पूर्वव्यापी प्रकृति का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।"

29. इस न्यायालय को इस बात की ओर कोई संकेत नहीं दिया गया है कि **सुशील कुमार (पूर्वोक्त)** में खंडपीठ द्वारा निर्धारित कानून, जो अन्यथा इस न्यायालय पर बाध्यकारी है, को किसी बड़ी पीठ या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है। मृतक की आयु 19 वर्ष थी, इसलिए उसकी आयु 40 वर्ष से बहुत कम थी। नियम 220- ए (3) के अनुसार, भावी संभावनाएं, जिन्हें दावेदार मृतक की काल्पनिक आय में जोड़ने के हकदार हैं, 50% होंगी। तदनुसार, यह अभिनिर्धारित किया जाता है।

30. विचार के लिए उठने वाला अगला विवादक पारंपरिक मदों के अंतर्गत मृतक की पात्रता है। यह प्रश्न फिर से **प्रणय सेठी** के प्रकरण में विचार का विषय था, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया है:

"48. इस पहलू को स्पष्ट और उचित रूप से कहा जाना चाहिए। पारंपरिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। त्रिलोक चंद्र [30प्र0 एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] में न्यायालय द्वारा बताए अनुसार उक्त अनुसूची को दोषपूर्ण पाया गया है। हाल ही में, पुट्टम्म बनाम केएल नारायण रेड्डी [पुट्टम्म वीकेएल . नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45: (2014) 4 एससीसी (सिविल) 384: (2014) 3 एससीसी (क्रि) 574] में यह कहते हुए दोहराया गया है: (एससीसी पृष्ठ 80, पैरा 54)

"54. ... हम मानते हैं कि 1994 में अधिनियमित दूसरी अनुसूची अब जीवन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।"

49. जहाँ तक गुणक या गुणक का सवाल है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उसे समाप्त कर दिया गया है। द्वितीय अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु की स्थिति में सामान्य क्षतिपूर्ति का भी प्रावधान है। यह इस प्रकार है:

"3. सामान्य क्षति (मृत्यु की स्थिति में):

उपरोक्त उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य क्षतिपूर्ति देय होगी:

(i)	अंतिम संस्कार का खर्च	2000 रुपये
(ii)	यदि लाभार्थी पति या पत्नी है तो संघ की हानि	5000 रुपये
(iii)	संपत्ति की हानि	2500 रुपये
(iv)	चिकित्सा व्यय - मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक व्यय, बिल/वाउचर द्वारा समर्थित, लेकिन इससे अधिक नहीं	15000 रुपये

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि त्रिलोक चंद्र [30प्र0 एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] के निर्णय से शुरू होकर द्वितीय अनुसूची का पालन नहीं किया गया है और उसमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने देखा है, विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियाँ दी गई हैं। राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एलएंडएस) 149] में संघ के लिए 1,00,000 रुपये की राशि दी गई थी। संघ के अनुदान का औचित्य, जैसा कि हम राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] से पाते हैं, उस अवलोकन पर आधारित है जिसे हमने पहले पुनः प्रस्तुत किया है।

51. उपर्युक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक शीर्षकों के अंतर्गत मुआवजा देने की प्रथा पर पुनर्विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक मदों का सवाल है, हम राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होना मुश्किल पाते हैं। इसने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000 रुपये, संघ के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। देखभाल और नाबालिग बच्चों के नुकसान से संबंधित मद मौजूद नहीं है। यद्यपि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सिविल) 726: (2012) 3 एससीसी (क्रि) 160: (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167] को संदर्भित करता है, ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह इसका पालन करता है। परंपरागत और पारंपरिक शीर्ष , कहने की जरूरत नहीं है, प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किए जा सकते क्योंकि वह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षों को परिमाणित किया जाना चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में

वृद्धि को ध्यान में रखना होगा। न्यायालय इससे अनभिज्ञ नहीं रह सकता। इस पहलू में एक अंगूठे का नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अंगूठे का नियम लागू नहीं होता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता का अभाव होने के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमें लगता है कि उचित रकम तय करना उचित है। हमें लगता है कि पारंपरिक शीर्षों, अर्थात् संपत्ति की हानि, संघ की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त शीर्षों पर फिर से विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन फिर से विचार तथ्य-केंद्रित या मात्रा-केंद्रित नहीं होना चाहिए। हमारा मानना है कि यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है, उसे हर तीन साल में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाए और तीन साल की अवधि में यह वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन मदों के संबंध में एकरूपता आएगी।”

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

31. कंसोर्टियम के नुकसान के लिए मुआवजे के अधिनिर्णय का विवादक **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहू राम और अन्य, (2018) 18 एससीसी 130** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया, जहां यह देखा गया था:

“21. प्रणय सेठी [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680: (2018) 3 एससीसी (सिविल) 248: (2018) 2 एससीसी (क्रि) 205] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विभिन्न शीर्षकों से निपटा, जिनके तहत मृत्यु के प्रकरण में मुआवजा दिया जाना है। इनमें से एक शीर्षक संघ की हानि है। कानूनी भाषा में, "संघ" एक संक्षिप्त शब्द है, जिसमें "वैवाहिक संघ", "पैतृक संघ" और "पुत्रवत् संघ" शामिल हैं। संघ के अधिकार में मृतक की कंपनी, देखभाल, सहायता, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिविल) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]

21.1 वैवाहिक संघ को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित पति या पत्नी को "हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की संगति, समाज, सहयोग, स्नेह और सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजा देता है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण , 1979)]

21.2. माता-पिता की अकाल मृत्यु पर बच्चे को माता-पिता की सहायता, संरक्षण, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" के नुकसान के लिए पैतृक संघ प्रदान किया जाता है।

21.3. संतान संघ, बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के प्रकरण में माता-पिता का मुआवजा पाने का अधिकार है। दुर्घटना के कारण बच्चे की मृत्यु होने पर मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा होती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।
(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

32. उपर्युक्त निष्कर्ष के मददेनजर, इस अपील में दावेदारों को देय मुआवजा संशोधित किया जाता है और इसे निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जाएगा:

(i) मासिक आय (मृतक की) = 5000

(ii) वार्षिक आय (मृतक की) = $5000 \times 12 = 60000$

(iii) वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं
(वार्षिक आय $\times$ 50%) = $60000 + 30000 = 90000$

(iv) वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत व्यय के लिए 50% कटौती = $90000 - 45000 = 45000$

(v) कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता $\times$ लागू गुणक = $45000 \times 18 = 810000$

(vi) पारंपरिक मदों के लिए दावेदार की पात्रता = संपत्ति की हानि + अंतिम संस्कार व्यय +

आश्रितों का संघ = $15000 + 15000 + 40000 \times 2 = 110000$

इस प्रकार कुल मुआवजा 810000 रुपये + 110000 रुपये होगा। = 920000

33. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को संशोधित किया जाता है तथा निर्धारित मुआवजा राशि को बढ़ाकर 9,20,000/- रुपये किया जाता है। उक्त धनराशि पर दावा याचिका प्रस्तुत करने की तिथि से लेकर वसूली तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। आक्षेपित निर्णय या इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के अनुसरण में बीमाकर्तागण द्वारा न्यायाधिकरण में पहले से जमा की गई कोई भी धनराशि समायोजित की जाएगी। आक्षेपित निर्णय में न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए अन्य निर्देश यथावत रहेंगे। लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 558

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आवेदन धारान्तर्गत 482 संख्या 1981 वर्ष
2023

गायत्री प्रसाद प्रजापति

...आवेदक

बनाम

प्रवर्तन निदेशालय के माध्यम से प्रतिनिधि
सहायक निदेशक लखनऊ ... प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री इंदु प्रकाश सिंह, श्री सलिल शेखर सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: श्री कुलदीप श्रीवास्तव

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 227, 228, 173, 300 और 482 -

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा

13(1)(बी) और 13(2) - धन शोधन निवारण

अधिनियम, 2002 - धारा 3, 4 और 50: -

आवेदन - डिस्चार्ज आवेदन की अस्वीकृति के साथ-साथ पीएमएलए अधिनियम के तहत शुरू की गई कार्यवाही के खिलाफ, - आवेदक ने अपने परिवार के सदस्यों और संबंधित कंपनियों के नाम पर अस्पष्ट और बेहिसाब संपत्तियां जमा करके मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध किया है - दोहरे दण्ड से संरक्षण की दलील - न्यायालय ने पाया कि, उसके खिलाफ आरोप तय करने और उन्मोचन के लिए आवेदन को खारिज करने वाले परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं प्रतीत होती है - माना जाता है कि पहले की शिकायतों के बारे में कोई दावा नहीं है, जो पूरी जांच के बाद बंद कर दी गई थी और बिना किसी निर्दोषता के शिकायत को बंद करना या वापस लेना कोई परिणाम नहीं होगा - यह दोहरे खतरे की भी राशि नहीं होगी और पुनर्विचार का सिद्धांत माननीय लोकायुक्त के समक्ष कार्यवाही पर लागू नहीं होता है - जबकि माननीय लोकायुक्त सीआरपीसी की धारा 300 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के अर्थ में एक 'न्यायालय' नहीं है - आकर्षित करने के लिए दोहरे खतरे के सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति पर 'सक्षम अधिकार क्षेत्र की न्यायालय द्वारा मुकदमा

चलाया जाना चाहिए और उसे ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराया जाना चाहिए या बरी किया जाना चाहिए - इसलिए, उन्मोचन आवेदन को खारिज करने और आवेदक के खिलाफ आरोप तय करने वाले परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं प्रतीत होती है - आवेदन में योग्यता नहीं है - तदनुसार, खारिज कर दिया गया। (पैरा -28, 29, 30, 31)

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर (2012 9 एससीसी 460),
2. विजय मदनलाल चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929),
3. महाराष्ट्र राज्य बनाम सोम नाथ थापा (1996 4 एससीसी 659),
4. निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ (2018 11 एससीसी 1).

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री मलय प्रसाद, सुश्री सलोनी माथुर, सुश्री तान्या मक्कड़, श्री पीयूष कुमार शुक्ला और श्री कौस्तुभ सिंह और श्री कुलदीप श्रीवास्तव, प्रतिवादी - प्रवर्तन निदेशालय (इसके बाद 'ई.डी.' के रूप में संदर्भित) का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को सुना।

2. आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत दायर प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, धन शोधन निवारण अधिनियम, लखनऊ द्वारा सत्र मामला संख्या-1220/2021 में पारित आदेश दिनांक 22.12.2022 की वैधता को चुनौती दी है, जिसमें आवेदक द्वारा डिस्चार्ज (उन्मोचन) के लिए दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था। आवेदक ने उपरोक्त मामले में उसी तारीख को पारित एक अन्य आदेश का भी उल्लंघन किया है, जिसमें आवेदक के खिलाफ धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (इसके बाद 'पी.एम.एल.ए.' के रूप में संदर्भित) की धारा 3 के तहत अपराध करने का आरोप तय किया गया है।

3. संक्षेप में कहा गया है, मामले के तथ्य यह हैं कि 26.11.2020 को, उत्तर प्रदेश सतर्कता प्रतिष्ठान में एक निरीक्षक ने प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी) दर्ज की। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988, थाना-लखनऊ सेक्टर, सतर्कता प्रतिष्ठान की धारा 13(2) और 13(1)(बी) के तहत आवेदक के खिलाफ संख्या-0003 वर्ष 2020 में कहा गया है कि दिनांक 08.06.2018 के एक सरकारी आदेश के माध्यम से, उत्तर प्रदेश सतर्कता प्रतिष्ठान को आवेदक के खिलाफ एक खुली जांच करने का निर्देश दिया गया था, जो उत्तर प्रदेश सरकार में तत्कालीन खनन मंत्री थे। जांच में यह पाया गया कि लोक सेवक के रूप में कार्य करते हुए आवेदक ने अपने ज्ञात और वैध स्रोतों से आय के ज्ञात और वैध स्रोतों से 49,93,149/- रुपये कमाए थे, लेकिन उसने इसी अवधि के दौरान अपने ज्ञात और वैध

स्रोतों से 49,93,149/- रुपये की सम्पत्तियों के अधिग्रहण पर 3,48,21,760/- रुपये खर्च किए। इस प्रकार आवेदक ने अपने ज्ञात और वैध स्रोतों 2,98,28,511/- रुपये से 49,93,149/- रुपये अपनी ज्ञात आय से अधिक खर्च किए, जो ज्ञात और वैध स्रोतों से उसकी आय से अधिक है। आवेदक आय से अधिक व्यय और संपत्तियों के अधिग्रहण के संबंध में कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका। इसके अलावा, प्रथम दृष्टया सबूत थे कि आवेदक ने बेनामी संपत्ति भी अर्जित की थी। प्राथमिकी में कहा गया है कि आवेदक के उपरोक्त कार्य भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(बी) के तहत अपराध करने के बराबर हैं।

4. प्रवर्तन निदेशालय ने 14.01.2022 को उपरोक्त प्राथमिकी संख्या-0003 वर्ष 2020 के आगे एक प्रवर्तन सूचना रिपोर्ट (ई.सी.आई.आर.) दर्ज की, जिसका संख्या-ई.सी.आई.आर./एलकेजेडओ/04/2021 है। ई.सी.आई.आर. में यह दर्ज किया गया है कि प्राथमिकी में किए गए कथनों से, ऐसा प्रतीत होता है कि अवैध कमाई से संबंधित आवेदक के खिलाफ जांच करना समीचीन है, जो "अपराध की आय" है, अर्थात्, आपराधिक गतिविधियों से अर्जित दूषित धन और उपरोक्त जानकारी के आधार पर, धारा-3, पी.एम.एल.ए. के तहत मनी लॉन्ड्रिंग (धन शोधन) का अपराध होने का प्रथम दृष्टया मामला बनता प्रतीत होता है।

5. ई.डी. ने जांच की और 08.04.2021 को, इसने लखनऊ में मनी लॉन्ड्रिंग मामलों की

रोकथाम के लिए विशेष अदालत में एक शिकायत संख्या-94 वर्ष 2021 दायर की, जिसमें कहा गया कि आवेदक ने मनी-लॉन्ड्रिंग का अपराध किया है और वह पी.एम.एल.ए. की धारा 4 के तहत मुकदमा चलाने और दंडित किए जाने योग्य है। शिकायत में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया है कि बैंकों, कंपनी रजिस्ट्रार, जिला पंजीकरण प्राधिकरणों आदि सहित विभिन्न प्राधिकरणों से संबंधित दस्तावेज/साक्ष्य एकत्र किए गए थे और उनकी जांच की गई थी। जिला फतेहपुर, उत्तर प्रदेश में अवैध खनन के संबंध में एक अन्य मामला है जिसका संख्या-ई.सी.आई.आर./ एल.के .जेड ओ/ 08/ 2019 है, जो सी.बी.आई. प्राथमिकी संख्या-आरसी 04(ए)/2019/ एस.सी.-III/एनडी के आधार पर दर्ज किया गया था, जिसमें आवेदक नामजद आरोपियों में से एक है। उपरोक्त ई.सी.आई.आर. में जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजों और 30.01.2020 को की गई तलाशी के दौरान पी.एम.एल.ए. की धारा 50 और पी.एम.एल.ए. की धारा 17 के तहत दर्ज बयानों को भी जांच के दौरान ध्यान में रखा गया है।

6. शिकायत में 57 बैंक खातों की सूची है, जिनमें से 7 आवेदक की पत्नी के नाम पर हैं, 6 उनके बेटे अनिल कुमार प्रजापति के नाम पर हैं, 6 उनके दूसरे बेटे अनुराग प्रजापति के नाम पर हैं, 5 आवेदक की बेटी अंकिता प्रजापति के नाम पर हैं, 5 उनकी दूसरी बेटी सुधा प्रजापति के नाम पर हैं। 14 आवेदक के नाम पर हैं और शेष खाते कुछ अन्य व्यक्तियों और कंपनियों के नाम पर हैं और कुल 3,50,17,045.48/- रुपये उसके ज्ञात और

वैध स्रोतों से उन बैंक खातों से ₹ 49,93,149/- में जमा किए गए हैं। शिकायत में 33,44,52,827/- मूल्य की 60 अचल संपत्तियों की सूची भी शामिल है, जिनमें से 49,93,149/- उनके ज्ञात और वैध स्रोतों से संपत्ति आवेदक के पुत्र अनुराग प्रजापति के नाम पर हैं, 9 संपत्तियां उनके दूसरे पुत्र अनिल कुमार प्रजापति के नाम पर हैं, 2 संपत्तियां आवेदक की पत्नी के नाम पर हैं, 2 संपत्ति उनकी बेटी सुधा प्रजापति के नाम पर है, 1 संपत्ति उनकी दूसरी बेटी अंकिता के नाम पर है और 1 संपत्ति आवेदक की बहू शिल्पा के नाम पर है और बाकी संपत्ति कुछ अन्य व्यक्तियों और कुछ कंपनियों के नाम पर है, जिनमें आवेदक के बेटे निदेशक हैं।

7. शिकायत में कहा गया है कि हिरासत में रिमांड के दौरान आवेदक से पूछताछ की गई और उसका सामना विभिन्न दस्तावेजों और उसके दो बेनामी धारकों और उसके प्रबंधक हरि शरण शुक्ला से कराया गया। पी.एम.एल.ए. की धारा 50 के तहत कई व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए थे और भारी मात्रा में रिकॉर्ड/दस्तावेजों की जांच की गई थी।

8. आवेदक की दोनों बेटियों ने कहा कि वे छात्र हैं जिनके पास आय का कोई स्रोत नहीं है और उन्होंने आवेदक के निर्देश पर कर संबंधी दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए थे और आवेदक के बेटे अनिल कुमार प्रजापति के निर्देश पर आवेदक को हिरासत में ले लिया गया था। आवेदक की बहू ने कहा कि वह एक गृहिणी है और उसने अपने पति अनिल प्रजापति के निर्देश पर 2.20 करोड़ रुपये की आय दिखाते

वाले आयकर दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए थे और उसे आय के स्रोत के बारे में पता नहीं है।

9. आवेदक ने 2017 के चुनावों के दौरान उसके द्वारा दायर हलफनामे में दिखाए गए अपने और अपने परिवार के सदस्यों के बैंक खातों में जमा धन के स्रोत के बारे में और उसके नाम पर और अपने परिवार के सदस्यों के नाम पर संपत्तियों की खरीद के लिए धन के भुगतान के तरीके के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की।

10. शिकायत में कहा गया है कि आवेदक वर्ष 2012 में विधानसभा का सदस्य बना और वर्ष 2013 में उसे सिंचाई राज्य मंत्री नियुक्त किया गया और बाद में उसे खनन राज्य मंत्री नियुक्त किया गया। आवेदक 2017 तक मंत्री रहे और 15.03.2017 को उन्हें उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा दर्ज एक अलग प्राथमिकी के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था। जिस अवधि में आवेदक मंत्री था, उस अवधि के दौरान उसने अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया और अवैध रूप से कई करोड़ रुपये नकद प्राप्त किए, जिसे उसके परिवार के सदस्यों, उसके कर्मचारियों और कंपनियों के बैंक खातों में जमा किया गया, जिसमें उसके बेटे निदेशक थे। जांच में पता चला कि आवेदक ने मंत्री बनने के बाद से संपत्ति में तेजी से वृद्धि की। मंत्री रहते हुए आवेदक की कुल आय 7238 लाख रुपये थी जबकि उसके ज्ञात और वैध स्रोतों से आवेदक, उसके परिवार के सदस्यों और बेनामी धारकों तथा कुछ कंपनियों जिनमें आवेदक के पुत्र निदेशक हैं, के नाम से 49,93,149/- रुपये की संपत्ति है

और कुछ कंपनियों जिनमें आवेदक के पुत्र निदेशक हैं, उसके ज्ञात और वैध स्रोतों से लगभग 35 करोड़ रुपये है। आवेदक ने अपने परिवार के सदस्यों और संबंधित कंपनियों के नाम पर अस्पष्टीकृत और बेहिसाब संपत्ति अर्जित करके मनी लॉन्ड्रिंग (धन शोधन) का अपराध किया है।

11. आवेदक ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 के तहत निर्वहन के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर कि सतर्कता प्रतिष्ठान द्वारा दर्ज प्राथमिकी को आगे बढ़ाने के लिए कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है; कि शिकायत में लगाए गए आरोप झूठे हैं और ऐसा कोई आरोप और सामग्री नहीं है जो आवेदक को कथित अपराध से जोड़ सके और प्रथम दृष्टया भी उसका अपराध स्थापित कर सके।

12. डिस्चार्ज के लिए आवेदन के समर्थन में एक पूरक हलफनामा दायर किया गया था जिसमें यह कहा गया था कि चूंकि एफआई संख्या-03/2020 के आगे कोई पुलिस रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई है, इसलिए पी.एम.एल.ए. के तहत मामले की सुनवाई स्थगित कर दी जानी चाहिए।

13. डिस्चार्ज के लिए आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.12.2022 के आदेश के माध्यम से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929 में

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, एक व्यक्ति पर पी.एम.एल.ए. के तहत, यदि कोई मामला क्षेत्राधिकार पुलिस के पास दर्ज किया जाता है, तो मुकदमा चलाया जा सकता है। निचली अदालत ने आवेदक के खिलाफ आरोप तय किया कि फरवरी 2013 से मार्च 2017 की अवधि के दौरान मंत्री रहते हुए आवेदक ने लगभग 35 करोड़ रुपये की बेहिसाबी धनराशि अर्जित की, जिसे उसके ज्ञात और वैध स्रोतों से 49,93,149/ रुपये उसके परिवार के सदस्यों और उसके बेटों द्वारा नियंत्रित कंपनियों और कई मुखौटा कंपनियों के नाम पर बैंक खातों में निवेश किया गया और संपत्ति खरीदने के लिए भी इस्तेमाल किया गया अता उसने ने इस अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध निवारण अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत अपराध करते हुए धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत अपराध किया है और इस प्रकार अपराध की आय के कब्जे, अर्जन और उपयोग में प्रत्यक्ष रूप से शामिल रहा है।

14. आवेदक ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर करके और आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में अपने डिस्चार्ज आवेदन को खारिज करने और उसके खिलाफ आरोप तय करने के उपरोक्त दोनों आदेशों को चुनौती दी है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है कि कथित बेनामी धारक आवेदक को भी नहीं जानते हैं और वे अपने व्यवसायों में अपने दम पर काम करने वाले व्यक्ति हैं; धारा 173 द०प्र०स० के तहत रिपोर्ट दर्ज करने में सतर्कता प्रतिष्ठान की विफलता प्रथम दृष्टया

दर्शाती है कि आवेदक ने कोई अपराध नहीं किया है; कि उनके खिलाफ लगाए गए आरोप झूठे हैं और यह मामला राजनीतिक दुश्मनी के कारण दर्ज किया गया है। हलफनामे में यह भी कहा गया है कि आवेदक के खिलाफ माननीय लोकायुक्त के समक्ष कई शिकायतें दर्ज की गई थीं, लेकिन उन सभी शिकायतों को या तो बंद कर दिया गया था या शिकायतकर्ताओं द्वारा वापस ले लिया गया था। एक ही तथ्य के आधार पर अनेक नई शिकायतें दर्ज की गई थीं और माननीय लोकायुक्त ने आवेदक के विरुद्ध सतर्कता जांच करने के लिए मामले को राज्य के माननीय मुख्यमंत्री को भेजते हुए एक पक्षीय आदेश पारित किया था, जो वर्तमान कार्यवाहियां शुरू करने का आधार बनता है

15. प्रतिवादी - प्रवर्तन निदेशालय ने एक जवाबी हलफनामा दायर किया है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है कि शिकायत आवेदक द्वारा मंत्री के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान अर्जित अपराध की आय के शोधन के संबंध में जांच के आधार पर दर्ज की गई थी। आवेदक और अन्य संबंधित व्यक्तियों के हाथों में अपराध की आय के रूप में पहचानी गई संपत्तियों को दिनांक 07.04.2021 के आदेश के माध्यम से अनंतिम रूप से कुर्क किया गया है और अपराध की आगे की आय और मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध में अन्य व्यक्तियों की अभियोज्यता के संबंध में आगे की जांच अभी भी जारी है। जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज करने की पूर्ववर्ती शर्त यह है कि या तो प्राथमिकी होनी चाहिए या धारा 173 द०प्र०स०

के तहत पुलिस रिपोर्ट होनी चाहिए। जैसा कि प्रस्तुत मामले में प्राथमिकी है, आवेदक पर मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध के कमीशन के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। आवेदक की ओर से कोई प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर नहीं किया गया है।

16. दिनांक 22.12.2022 के उपरोक्त आदेशों का विरोध करते हुए, आवेदक के अधिवक्ता श्री मलय प्रसाद ने प्रस्तुत किया है कि किसी व्यक्ति पर पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध करने का आरोप लगाया जा सकता है यदि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल है और वह अपराध की ऐसी आय को बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित या दावा करता है। हालांकि 26.11.2020 को प्राथमिकी संख्या-003/2020 दर्ज की गई थी, लेकिन आज तक आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पी.एम.एल.ए. के तहत एक शिकायत केवल अनुसूचित अपराध के संबंध में प्राथमिकी को आगे बढ़ाने के लिए आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद ही दायर की जा सकती है क्योंकि अनुसूचित अपराध के संबंध में मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद ही 'अपराध की आय' का अस्तित्व स्थापित किया जा सकता है।

17. श्री मलय प्रसाद का दूसरा सबमिशन यह है कि पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के तहत अपराध करने के लिए अपराध की आय के दावे का प्रक्षेपण आवश्यक है और प्रस्तुत मामले में आवेदक के खिलाफ ऐसा कोई आरोप नहीं है।

प्रस्तुत करने के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ, (2018) 11 एस.सी.सी.1 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से निम्नलिखित मार्ग पर भरोसा किया है: -

"11. दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, पहले यह समझना महत्वपूर्ण है कि मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध क्या है। अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत, धन शोधन के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों की संख्या बहुत व्यापक है। "जो कोई भी", "प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से" और "लिप्त होने का प्रयास" जैसे शब्दों से पता चलता है कि उन सभी व्यक्तियों को फंसाने की मांग की जाती है जो इस अपराध में दूर से भी शामिल हैं। अपराध का एक महत्वपूर्ण घटक यह है कि इन व्यक्तियों को जानबूझकर या वास्तव में अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना चाहिए और "अपराध की आय" को अधिनियम के तहत धारा 2(1)(u) द्वारा परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है किसी अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त या प्राप्त की गई संपत्ति (जिसे हमारे फैसले में विधेय के रूप में संदर्भित किया गया है अपराध)। इस प्रकार, जो कोई भी पूर्वोक्त के रूप में, परिभाषित "अपराध के आगम" से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल है, जिसमें ऐसी संपत्ति को

छिपाना, रखना, प्राप्त करना या उपयोग करना शामिल होगा, अपराध का दोषी होगा, बशर्ते कि ऐसे व्यक्ति भी ऐसी संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित या दावा करते हैं। इसलिए, धारा 3 में उपरोक्त सभी तत्व शामिल हैं, और इससे पहले कि किसी को उक्त प्रावधान के तहत दोषी घोषित किया जा सके, उक्त व्यक्ति को न केवल अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना चाहिए, बल्कि इसे बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित या दावा भी करना चाहिए।

18. आवेदक के अधिवक्ता ने अपनी लिखित प्रस्तुतियों में प्रस्तुत किया है कि ई.डी. ने अधिनियम की धारा 50 के तहत अपना बयान दर्ज करने से पहले आवेदक को ई.सी.आई.आर. की एक प्रति प्रदान नहीं की थी।

19. प्रति विपरीत, ई.डी. के अधिवक्ता कुलदीप श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक के खिलाफ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ धारा 13(1)(बी) के तहत अपराध करने का आरोप लगाते हुए प्राथमिकी संख्या-003/2020 दर्ज की गई थी, जो पी.एम.एल.ए. के तहत अनुसूचित अपराध हैं। ई.डी. ने जांच की है और शिकायत संख्या-1220/2021 दर्ज की है और विचारण न्यायालय ने 06.09.2021 को मामले का संज्ञान लिया है और 22.12.2022 को आवेदक के खिलाफ आरोप तय किया है। ई.डी. के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पी.एम.एल.ए. के तहत अधिनियम के तहत

शिकायत दर्ज करने से पहले अनुसूचित अपराध के संबंध में आरोप पत्र प्रस्तुत करने की प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध एक अलग और स्वतंत्र अपराध है, जो अनुसूचित अपराध से अलग है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि मुकदमा चल रहा है और 3 गवाहों से पहले ही पूछताछ की जा चुकी है। श्री श्रीवास्तव ने विजय मदनलाल चौधरी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है।

20. विजय मदनलाल चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निकेश ताराचंद शाह के मामले में निर्णय सहित पहले के सभी निर्णयों पर चर्चा की है और निर्णय के पैराग्राफ 467 में इसके निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है, जिसे यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"निष्कर्ष

467. उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक में, अब हम निम्नलिखित शब्दों में मौलिक बिंदुओं पर अपने निष्कर्ष को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए आगे बढ़ते हैं: -

(i) इस निर्णय में इस प्रश्न की जांच नहीं की गई है कि क्या धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 में कुछ संशोधन संसद द्वारा वित्त अधिनियम के माध्यम से अधिनियमित नहीं किए जा सकते थे। रोजर मैथ्यू के मामले में इस न्यायालय की बड़ी पीठ (सात न्यायाधीशों) के निर्णय के साथ या उसके बाद जांच किए जाने के लिए इसे खुला छोड़ दिया गया है।

(ii) 2002 अधिनियम की धारा 2(1) के खंड (एनए) में होने वाली अभिव्यक्ति "कार्यवाही" प्रासंगिक है और ई.डी. के अधिकारियों, निर्णायक प्राधिकारी और विशेष न्यायालय द्वारा अपनाई गई जांच प्रक्रिया को शामिल करने के लिए इसे व्यापक अर्थ दिया जाना आवश्यक है।

(iii) 2002 अधिनियम की धारा 2(1) के खंड (एनए) में अभिव्यक्ति "जांच" अधिनियम के तहत अपराध से संबंधित जांच के मामले तक सीमित नहीं है और अधिनियम के तहत अधिकारियों द्वारा की जाने वाली "जांच" के कार्य के साथ विनिमेय है।

(iv) 2002 अधिनियम की धारा 2(1) के खंड (प) में अंतस्थापित स्पष्टीकरण अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त संपत्ति का पता लगाने और उस तक पहुंचने के मुख्य प्रावधान से परे नहीं जाता है।

(v)(ए) 2002 अधिनियम की धारा 3 की व्यापक पहुंच है और अपराध की आय से निपटने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हर प्रक्रिया और गतिविधि को शामिल किया गया है और औपचारिक अर्थव्यवस्था में दागी संपत्ति के एकीकरण के अंतिम अधिनियम के होने तक सीमित नहीं है। संशोधन वर्ष 2019 के माध्यम से धारा 3 में डाला गया स्पष्टीकरण धारा 3 के उद्देश्य का विस्तार नहीं करता है, बल्कि प्रकृति में केवल स्पष्टीकरण है। यह "या" के रूप में पेश करने या दावा करने वाली अभिव्यक्ति से पहले "और" शब्द को

स्पष्ट करता है; और स्पष्टीकरण संशोधन होने के कारण, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा भले ही इसे वित्त अधिनियम के माध्यम से पुरस्थापित किया जाए या अन्यथा।

(ख) उपर्युक्त से स्वतंत्र, हमारा स्पष्ट मत है कि धारा 3 में आने वाली अभिव्यक्ति और को उक्त उपबंध को पूरा महत्व देने के लिए अथवा के रूप में समझा जाना चाहिए ताकि किसी के द्वारा की गई प्रत्येक प्रक्रिया या कार्यकलाप को शामिल किया जा सके। संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित करना या दावा करना अपने आप में मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा, जो एक स्वतंत्र प्रक्रिया या गतिविधि है।

(ग) याचिकाकर्ताओं द्वारा सुझाई गई व्याख्या कि प्रश्नगत संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित करने या दावा करने पर ही धारा 3 का अपराध पूर्ण हो जाएगा, अस्वीकृत हो जाता है।

(घ) 2002 अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत अपराध अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप संपत्ति के अवैध लाभ पर निर्भर है। यह ऐसी संपत्ति से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का गठन करता है। 2002 अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारी किसी व्यक्ति पर सैद्धांतिक आधार पर या इस धारणा के आधार पर मुकदमा नहीं चला सकते कि अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि वह क्षेत्राधिकार वाली पुलिस के पास पंजीकृत न हो और/अथवा सक्षम फोरम के समक्ष आपराधिक

शिकायत सहित लंबित जांच/विचारण न हो। यदि व्यक्ति को अनुसूचित अपराध से अंतिम रूप से कार्यमुक्त/बरी कर दिया जाता है या उसके खिलाफ आपराधिक मामला सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाता है, तो उसके खिलाफ या ऐसी संपत्ति का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के खिलाफ धन शोधन का कोई अपराध नहीं हो सकता है जो उसके माध्यम से कथित अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति है।

(vi) 2002 अधिनियम की धारा 5 संवैधानिक रूप से वैध है। यह व्यक्ति के हितों को सुरक्षित करने के लिए एक संतुलन व्यवस्था प्रदान करता है और यह भी सुनिश्चित करता है कि अपराध की आय 2002 अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए तरीके से निपटने के लिए उपलब्ध रहे। हमारे द्वारा ऊपर बताए गए प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय संबंधित व्यक्ति के हितों की रक्षा के लिए प्रभावी उपाय हैं।

(vii) 2002 अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (4) की वैधता को चुनौती को भी इस शर्त के अधीन अस्वीकार कर दिया जाता है कि धारा 8 को यहां ऊपर दिए गए अर्थ के अनुसार लागू और संचालित किया जा रहा है।

(viii) 2002 अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (1) के परंतुक को हटाने की चुनौती अस्वीकृत मानी जाती है। धारा 17 और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों में कड़े सुरक्षोपाय किए गए हैं। इसके अलावा, 2005 के नियमों के नियम 3(2) के परंतुक में पूर्व शर्त को इसके संशोधन के

बाद धारा 17 में नहीं पढ़ा जा सकता है। केन्द्र सरकार इस संबंध में उत्पन्न भ्रम को दूर करने के लिए आवश्यक सुधारात्मक कदम उठा सकती है।

(ix) 2002 अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (1) के परंतुक को हटाने की चुनौती भी खारिज मानी जाती है। धारा 18 में इसी प्रकार के सुरक्षोपाय दिए गए हैं। हम मानते हैं कि संशोधित प्रावधान मनमानेपन के दोष से ग्रस्त नहीं है।

(x) 2002 अधिनियम की धारा 19 की संवैधानिक वैधता को चुनौती को भी अस्वीकार किया जाता है। धारा 19 में कड़े सुरक्षोपाय दिए गए हैं। यह प्रावधान मनमानेपन के दोष से ग्रस्त नहीं है।

(xi) धारा 24 अधिनियम 2002 द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों और लक्ष्यों के साथ उचित संबंध है और इसे प्रकट रूप से मनमाना या असंवैधानिक नहीं माना जा सकता है।

(xii)(ए) 2002 अधिनियम की धारा 44 की उप-धारा (1) के खंड (ए) में परंतुक को प्रकृति में निर्देशिका के रूप में माना जाना है और इस प्रावधान का अर्थ यह भी है कि विशेष न्यायालय मामला-दर-मामला आधार पर न्यायिक विवेक का प्रयोग कर सकता है।

(ख) हमें धारा 44 को दी गई चुनौती के मनमाने या असंवैधानिक होने में कोई दम नहीं लगता। हालांकि, इस धारा में निर्दिष्ट घटनाओं को संबंधित न्यायालय और संबंधित प्राधिकरण द्वारा इस निर्णय में दी गई व्याख्या के अनुसार निपटारा जाएगा।

(xiii)(ए) 2002 अधिनियम की धारा 45 (1) में दोहरी शर्तों को घोषित करने के लिए निकेश ताराचंद शाह में इस न्यायालय के साथ वजन करने वाले कारण, जैसा कि यह प्रासंगिक समय पर था, किसी भी तरह से कानून की किताब से प्रावधान को समाप्त नहीं करता है; और यह संसद के लिए खुला था कि वह इस न्यायालय द्वारा नोट किए गए दोष को ठीक करे ताकि मौजूदा रूप में उसी प्रावधान को पुनर्जीवित किया जा सके।

(ख) हम करतार सिंह मामले में संविधान पीठ के निर्णय की प्रतिपादना में निकेश ताराचंद शाह की टिप्पणियों से सहमत नहीं हो पा रहे हैं; धन शोधन के अपराध की गंभीरता के संबंध में संसद की अवधारणा पर संदेह करने का सुझाव देने वाली अन्य टिप्पणियों में देश की संप्रभुता और अखंडता के लिए गंभीर खतरा पैदा करने के बारे में भी शामिल है।

(ग) वर्ष 2018 के संशोधन के बाद लागू 2002 अधिनियम की धारा 45 के रूप में प्रावधान युक्तिसंगत है और इसका 2002 अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों और लक्ष्यों के साथ सीधा संबंध है और यह मनमानेपन या तर्कहीनता के दोष से ग्रस्त नहीं है।

(घ) जहां तक जमानत मंजूर करने के अनुरोध का संबंध है, कार्यवाहियों की प्रकृति पर ध्यान दिए बिना, जिसमें 1973 संहिता की धारा 438 के अंतर्गत कार्यवाहियां भी शामिल हैं अथवा संवैधानिक न्यायालयों की अधिकारिता का आह्वान करने पर भी, धारा 45 के

अंतर्निहित सिद्धांत और कठोरता लागू हो सकती है।

(xiv) 2002 अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए गिरफ्तार किए गए अभियुक्त द्वारा 1973 संहिता की धारा 436-क के लाभकारी उपबंध का उपयोग किया जा सकता है।

(xv)(ए) अधिनियम 2002 की धारा 50 द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया अपराध की आय के खिलाफ जांच की प्रकृति में है और अभियोजन शुरू करने के लिए शब्द के सख्त अर्थ में "जांच" नहीं है; और 2002 अधिनियम (धारा 48 में संदर्भित) के तहत प्राधिकरण, इस तरह के पुलिस अधिकारी नहीं हैं।

(ख) 2002 अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए बयान भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) अथवा अनुच्छेद 21 से प्रभावित नहीं होते हैं।

(xvi) मिथ्या सूचना देने अथवा न दे पाने के संबंध में दण्ड का प्रावधान करने वाले 2002 के अधिनियम की धारा 63 में निरंकुशता का कोई दोष नहीं है।

(xvii) 2002 अधिनियम की अनुसूची में किसी विशेष अपराध को शामिल करना या बाहर निकालना विधायी नीति का मामला है; और किसी भी विधेय अपराध की प्रकृति या वर्ग का अनुसूची या उसके तहत किसी भी नुस्खे की वैधता पर कोई असर नहीं पड़ता है।

(xviii)(क) 2002 अधिनियम द्वारा परिकल्पित विशेष तंत्र के मद्देनजर, ई.सी.आई.आर. को 1973 संहिता के तहत

प्राथमिकी के बराबर नहीं किया जा सकता है। ई.सी.आई.आर. ई.डी. का एक आंतरिक दस्तावेज है और यह तथ्य कि अनुसूचित अपराध के संबंध में प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है, धारा 48 में संदर्भित अधिकारियों के रास्ते में नहीं आता है ताकि अपराध की आय होने के नाते संपत्ति की "अनंतिम कुर्की" की "सिविल कार्रवाई" शुरू करने के लिए जांच शुरू की जा सके।

(ख) प्रत्येक मामले में संबंधित व्यक्ति को ई.सी.आई.आर. की प्रति की आपूर्ति अनिवार्य नहीं है, यह पर्याप्त है कि प्रवर्तन निदेशालय गिरफ्तारी के समय ऐसी गिरफ्तारी के आधार का खुलासा करता है।

(ग) तथापि, जब गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को विशेष न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है तो धन शोधन के अपराध के संबंध में उसकी निरंतर नजरबंदी की आवश्यकता के मुद्दे का उत्तर देने के लिए प्रवर्तन निदेशालय के प्राधिकृत प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत संगत रिकार्डों की जांच करना विशेष न्यायालय के लिए खुला है।

(xix) जब प्रवर्तन निदेशालय नियमावली को प्राधिकारियों (ई. डी. अधिकारियों) के मार्गदर्शन के लिए जारी किया गया एक आंतरिक विभागीय दस्तावेज होने के कारण प्रकाशित नहीं किया जाना है, तब भी विभाग को अपनी वेबसाइट पर सूचना डालने की वांछनीयता का पता लगाना चाहिए जो अधिनियम के अंतर्गत पदाधिकारियों के प्राधिकार के दायरे और उनके द्वारा अपनाए जाने वाले उपायों के साथ-साथ संबंधित व्यक्ति के समक्ष और

प्राधिकरण विशेष अदालत, के समक्ष उपलब्ध विकल्पों/उपचारों को भी रेखांकित कर सके।

(xx) याचिकाकर्ताओं द्वारा अपीलीय अधिकरण में रिक्तियों के कारण अन्याय करने की सीमा पर गंभीर चिंता व्यक्त करना न्यायोचित है। हम इस संबंध में शीघ्रता से सुधारात्मक उपाय करने के लिए कार्यपालिका पर दबाव डालना आवश्यक समझते हैं।

(xxi) अनुसूचित अपराध की प्रकृति के संदर्भ में सजा की आनुपातिकता के बारे में तर्क पूरी तरह से निराधार है और खारिज किया जाता है। (महत्व सन्निविष्ट)

21. आवेदक के अधिवक्ता का पहला प्रस्तुतीकरण कि किसी व्यक्ति पर धारा 3 पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, जब तक कि अनुसूचित अपराध के संबंध में आरोप पत्र दायर नहीं किया जाता है, विजय मदनलाल चौधरी (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से इनकार है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पी.एम.एल.ए. के तहत किसी व्यक्ति के अभियोजन के लिए एकमात्र शर्त यह है कि अनुसूचित के संबंध में मामला अपराध क्षेत्राधिकार पुलिस के पास दर्ज किया जाता है और/अथवा सक्षम न्यायालय के समक्ष आपराधिक शिकायत के माध्यम से जांच/विचारण लंबित है। चूंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(बी) के तहत प्राथमिकी संख्या-003/2020 पहले से ही क्षेत्राधिकार पुलिस के

साथ पंजीकृत है, आवेदक पर पी.एम.एल.ए. के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है और प्राथमिकी को आगे बढ़ाने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत रिपोर्ट दर्ज करना पी.एम.एल.ए. के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए शर्त नहीं है।

22. आवेदक के अधिवक्ता का दूसरा निवेदन यह है कि ऐसा कोई आरोप या सामग्री नहीं है कि आवेदक ने अपराध की आय को बेदाग धन के रूप में पेश किया है या दावा किया है, जबकि पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के तहत अपराध का गठन करने के लिए यह आवश्यक है। हालांकि निकेश ताराचंद शाह (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा था कि किसी को उक्त प्रावधान के तहत दोषी घोषित किए जाने से पहले, व्यक्ति को न केवल अपराध की आय से जुड़ी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना चाहिए, बल्कि इसे बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित या दावा भी करना चाहिए। निकेश ताराचंद शाह के मामले में निर्णय के बाद, पी.एम.एल.ए. की धारा 3 को वित्त अधिनियम (संख्या-2), 2019 की धारा 193 के माध्यम से 01.08.2019 से संशोधित किया गया है, जिसके तहत इसमें एक स्पष्टीकरण डाला गया है। पी.एम.एल.ए. की धारा 3 जैसा कि वर्तमान में मौजूद है, इस प्रकार है: -

"3. धन शोधन का अपराध- जो कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराध में लिप्त होने का प्रयत्न करेगा या जानबूझ कर सहायता करेगा या जानबूझ कर कोई पक्षकार है या वास्तव में अपराध के आगमों से

संबंधित किसी प्रक्रिया या गतिविधि में अंतर्बलित है, जिसके अंतर्गत अपराध को छिपाना, कब्जा, अर्जन या उपयोग और उसे निष्कलंक संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित करना या दावा करना है, वह धन शोधन के अपराध का दोषी होगा।

स्पष्टीकरण--शंकाओं को दूर करने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि -

(i) कोई व्यक्ति धन शोधन के अपराध का दोषी होगा यदि ऐसा व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संलिप्त होने का प्रयास करता हुआ पाया जाता है या जानबूझकर सहायता करता है या जानबूझकर पक्षकार है या वास्तव में अपराध के आगमों से संबंधित निम्नलिखित प्रक्रियाओं या कार्यकलापों में से एक या अधिक में अंतर्ग्रस्त है, अर्थात् -

- (क) छिपाना; नहीं तो
- (बी) कब्जा; नहीं तो
- (ग) अधिग्रहण; नहीं तो
- (घ) उपयोग; नहीं तो
- (ई) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; नहीं तो
- (च) किसी भी तरीके से बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना;
- (ii) अपराध के आगमों से संबंधित प्रक्रिया अथवा कार्यकलाप एक सतत कार्यकलाप है और यह तब तक जारी रहती है जब तक कोई व्यक्ति अपराध को छिपाकर या कब्जा करके या अर्जित करके या उसे बेदाग संपत्ति के रूप में प्रयोग करके या उसे किसी भी

रीति से बेदाग संपत्ति के रूप में प्रस्तुत करके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराध के आगमों का उपभोग नहीं कर रहा है।

23. विजय मदनलाल चौधरी मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि निकेश ताराचंद शाह में, उठाए गए प्रश्न मनी लॉन्ड्रिंग के अर्थ के संबंध में नहीं थे और इसके अलावा, निकेश ताराचंद शाह में निर्णय के बाद स्पष्टीकरण डालकर धारा 3 में संशोधन किया गया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि पी.एम.एल.ए. की धारा 3 में अपराध से संबंधित प्रत्येक प्रक्रिया और गतिविधि, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल है और यह औपचारिक अर्थव्यवस्था में दागी संपत्ति के एकीकरण के अंतिम कार्य के होने तक सीमित नहीं है। धारा 3 में आने वाली अभिव्यक्ति "और" को "या" के रूप में माना जाना चाहिए ताकि किसी के द्वारा की गई "प्रत्येक" प्रक्रिया या गतिविधि को शामिल किया जा सके। संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में प्रक्षेपित करना या दावा करना अपने आप में मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा, जो एक स्वतंत्र प्रक्रिया या गतिविधि है। आवेदक के अधिवक्ता द्वारा सुझाई गई व्याख्या, कि केवल संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करने या दावा करने पर धारा 3 का अपराध पूरा हो जाएगा, खारिज किया जाता है।

24. आवेदक के अधिवक्ता का अंतिम निवेदन यह है कि ई.डी. ने अधिनियम की धारा 50 के तहत अपना बयान दर्ज करने से पहले आवेदक

को ई.सी.आई.आर. की एक प्रति प्रदान नहीं की। यह सबमिशन विजय मदनलाल चौधरी (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के मददेनजर भी बल के बिना है कि 2002 अधिनियम द्वारा परिकल्पित विशेष तंत्र के मददेनजर, ई.सी.आई.आर. को 1973 संहिता के तहत प्राथमिकी के साथ बराबर नहीं किया जा सकता है। ई.सी.आई.आर. ई.डी. का एक आंतरिक दस्तावेज है। संबंधित व्यक्ति को प्रत्येक मामले में ई.सी.आई.आर. की एक प्रति की आपूर्ति अनिवार्य नहीं है, यह पर्याप्त है यदि ई.डी. गिरफ्तारी के समय, ऐसी गिरफ्तारी के आधार का खुलासा करता है। इसके अलावा, पी.एम.एल.ए. की धारा 50 के तहत आवेदक का बयान दर्ज करने से पहले ई.सी.आई.आर. की आपूर्ति न करने से डिस्चार्ज के लिए आवेदन को खारिज करने और आरोप तय करने के आदेश को समाप्त नहीं किया जा सकता है।

25. एक आरोपी व्यक्ति के निर्वहन और उसके खिलाफ आरोप तय करने के बारे में वैधानिक प्रावधान, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 228 में निहित हैं, जिन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"227. उन्मोचन- यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, और इस निमित्त अभियुक्त और अभियोजन पक्ष की प्रस्तुतियों को सुनने के बाद, न्यायाधीश यह समझता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त

आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करेगा और ऐसा करने के लिए उसके कारणों को अभिलिखित करेगा।

228. आरोप विरचित करना- (1)

यदि, पूर्वोक्त रूप में इस तरह के विचार और सुनवाई के बाद, न्यायाधीश की राय है कि यह मानने के लिए आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो- (क) सब न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय नहीं है, तो वह, अभियुक्त के खिलाफ आरोप विरचित कर सकेगा और आदेश द्वारा, मामले को विचारण के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अंतरित कर सकेगा, या प्रथम श्रेणी के किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और अभियुक्त को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दें, या, जैसा भी मामला हो, प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट, ऐसी तारीख को जिसे वह ठीक समझे, और उसके बाद ऐसा मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित वारंट मामलों के विचारण की प्रक्रिया के अनुसार अपराध का विचारण करेगा; वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप लिखित रूप में विरचित करेगा। (2) जहां न्यायाधीश उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन कोई आरोप विरचित करता है वहां आरोप अभियुक्त को पढ़ा और समझाया जाएगा और

अभियुक्त से पूछा जाएगा कि क्या वह आरोपित अपराध का दोष स्वीकार करता है या विचारण किए जाने का दावा करता है।

26. जिस दृष्टिकोण के साथ न्यायालय को पूर्वोक्त धाराओं में मामले की जांच करनी चाहिए, उसके बीच अंतर को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अमित कपूर बनाम रमेश चंदर, (2012) 9 एस.सी.सी. 460 में निम्नलिखित शब्दों में समझाया है: -

"17. आरोप तय करना संहिता की धारा 228 के संदर्भ में विचारण न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र का एक अभ्यास है, जब तक कि अभियुक्त को संहिता की धारा 227 के तहत बरी नहीं किया जाता है। इन दोनों प्रावधानों के तहत, अदालत को विचार करने की आवश्यकता है

"मामले का रिकॉर्ड" और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेज और, पक्षों को सुनने के बाद, या तो आरोपी को बरी कर सकते हैं या जहां यह अदालत को प्रतीत होता है और इसकी राय में यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, यह आरोप तय करेगा। एक बार धारा के तथ्य और सामग्री मौजूद होने के बाद, अदालत यह मानने में सही होगी कि अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने और

तदनुसार आरोप तय करने का आधार है। यह अनुमान कानून की धारणा नहीं है। किसी अपराध के घटकों के अस्तित्व और उस अपराध के लिए अग्रणी तथ्यों के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि इस तरह के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए एक अनिवार्य शर्त है। यह प्रथम दृष्टया मामले से भी कमजोर हो सकता है। संहिता की धारा 227 और 228 की भाषा के बीच एक अच्छा अंतर है। धारा 227 न्यायालय की एक निश्चित राय और निर्णय की अभिव्यक्ति है जबकि धारा 228 अस्थायी है। इस प्रकार, यह कहना कि आरोप तय करने के चरण में, न्यायालय को एक राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से अपराध करने का दोषी है, एक दृष्टिकोण है जो संहिता की धारा 228 के संदर्भ में अस्वीकार्य है।

* * *

30. हम पहले ही देख चुके हैं कि विधायिका ने अपने विवेक से अभिव्यक्ति का उपयोग किया है "यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है"। इसमें अनुमान का एक अंतर्निहित तत्व है कि एक बार किए गए आरोपों के संदर्भ में अपराध के तत्व संतुष्ट हो जाते हैं, तो न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले पर

अनुचित रूप से संदेह नहीं करेगा और जल्दबाजी में आरोप को रद्द करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार करेगा। महाराष्ट्र राज्य बनाम सोमनाथ नाथ थापा (1996) 4 एस.सी.सी. 659 में इस न्यायालय की एक बेंच ने ब्लैक लॉ डिक्शनरी पर भरोसा करते हुए "अनुमान" शब्द के अर्थ का उल्लेख किया। इसका अर्थ "संभावित साक्ष्य पर विश्वास करना या स्वीकार करना" था; "साबित होने के रूप में लेने के लिए जब तक कि इसके विपरीत सबूत आगामी न हो"। दूसरे शब्दों में, मामले की सच्चाई तब सामने आती है जब अभियोजन साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है, बचाव पक्ष द्वारा गवाहों से जिरह की जाती है, संहिता की धारा 313 के अनुसार अभियुक्त के समक्ष अभियुक्त के समक्ष अभियोगात्मक सामग्री और साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते हैं और फिर अभियुक्त को बचाव, यदि कोई हो, का नेतृत्व करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस तरह के चरणों के पूरा होने पर ही अदालत अपनी अंतिम राय बनाने और अपना फैसला सुनाने के साथ मुकदमा समाप्त होता है। केवल इसलिए कि पक्षों के बीच एक नागरिक लेनदेन था, आपराधिक अपराध का गठन करने वाले आरोपों की स्थिति को अपने आप में नहीं बदलेगा।

27. इस प्रकार धारा 227 के तहत आरोपी व्यक्तियों के निर्वहन के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय अदालत द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण के बारे में कानून और संहिता की धारा 228 के तहत आरोप तय करते समय दृष्टिकोण यह है कि संहिता की धारा 227 के तहत अभियुक्त के निर्वहन के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को एक निश्चित राय बनानी होगी, मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने पर, कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। हालांकि, आरोप तय करते समय, न्यायालय को एक निश्चित राय बनाने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त अपराध करने का दोषी है। मुकदमे के दौरान सबूत सामने आने पर मामले की सच्चाई सामने आ जाएगी। एक बार धारा के तथ्य और सामग्री मौजूद होने के बाद, अदालत यह मान लेगी कि अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने और तदनुसार आरोप तय करने का आधार है और अदालत अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह नहीं करेगी।

28. जब उपरोक्त कानूनी स्थिति के आलोक में मामले के रिकॉर्ड की जांच की जाती है, तो इस स्तर पर जो प्रतीत होता है वह यह है कि सतर्कता प्रतिष्ठान ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988, थाना-लखनऊ सेक्टर, सतर्कता प्रतिष्ठान की धारा 13(2) और 13(1)(बी) के तहत प्राथमिकी संख्या-003/2020 दर्ज की है, जिसमें कहा गया है कि दिनांक 08.06.2018 के एक सरकारी आदेश पर उत्तर प्रदेश सतर्कता स्थापना ने आवेदक के

विरुद्ध जांच की थी, जो उत्तर प्रदेश सरकार में तत्कालीन खनन मंत्री था। खुली जांच करने के बाद, जांच रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की गई जिसमें यह पाया गया कि एक लोक सेवक के रूप में काम करते समय, आवेदक ने अपनी ज्ञात और वैध स्रोतों से अपनी ज्ञात आय से 49,93,149/- रुपये अधिक खर्च किए, जो ज्ञात और वैध स्रोतों से उसकी आय से अधिक है। आवेदक आय से अधिक व्यय और संपत्तियों के अधिग्रहण के संबंध में कोई संतोषजनक जवाब नहीं दे सका। इसके अलावा, प्रथम दृष्टया सबूत थे कि आवेदक ने बेनामी संपत्ति भी अर्जित की थी। प्राथमिकी में कहा गया है कि आवेदक के उपरोक्त कार्य भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(बी) के तहत अपराध करने के बराबर हैं। ई.डी. ने जांच की है, जिसके दौरान उसने आवेदक सहित कई व्यक्तियों के बयान दर्ज किए हैं और एक शिकायत दर्ज की है, जिसमें कहा गया है कि आवेदक वर्ष 2012 में विधानसभा का सदस्य बना और वर्ष 2013 में उसे सिंचाई राज्य मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया और बाद में उसे खनन राज्य मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया। आवेदक 2017 तक मंत्री रहे और 15.03.2017 को उन्हें उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा दर्ज एक अलग प्राथमिकी के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था। जिस अवधि में आवेदक मंत्री था, उस अवधि के दौरान उसने अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया और अवैध रूप से कई करोड़ रुपये नकद प्राप्त किए, जिसे उसके परिवार के सदस्यों, कर्मचारियों और कंपनियों के बैंक खातों में जमा किया गया, जिसमें उसके बेटे निदेशक थे। जांच में पता चला कि आवेदक ने

मंत्री बनने के बाद से संपत्ति में तेजी से वृद्धि की। मंत्री रहते हुए आवेदक की कुल आय 7238 लाख रुपए थी जबकि उसके ज्ञात और वैध स्त्रोतों से आवेदक, उसके परिवार के सदस्यों और बेनामी धारकों तथा कुछ कंपनियों जिनमें आवेदक के पुत्र निदेशक हैं, के नाम से 49,93,149/- रुपए की संपत्ति है और कुछ कंपनियों जिनमें आवेदक के पुत्र निदेशक हैं, उसके ज्ञात और वैध स्त्रोतों से लगभग 35 करोड़ रुपए है। आवेदक ने अपने परिवार के सदस्यों और संबंधित कंपनियों के नाम पर अस्पष्टीकृत और बेहिसाब संपत्ति अर्जित करके मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध किया है।

29. पूर्वोक्त आरोप स्पष्ट रूप से पी.एम.एल.ए. की धारा 3 के तहत अपराध के कमीशन के लिए आवेदक के परीक्षण के लिए एक मामला बनाते हैं क्योंकि मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने पर, ऐसा नहीं लगता है कि आवेदक के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में आवेदक द्वारा डिस्चार्ज के लिए दायर आवेदन को खारिज करने और उसके खिलाफ आरोप तय करने के आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखाई देती है।

30. माननीय लोकायुक्त और प्राथमिकी के समक्ष दायर कुछ पूर्व शिकायतों को बंद करने या वापस लेने के संबंध में याचिका माननीय लोकायुक्त द्वारा पारित एक आदेश के आगे दायर की गई है, जो कथित रूप से समान तथ्यों के आधार पर दायर की गई एक बाद की शिकायत पर दायर की गई है, एक से

अधिक कारणों से विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की वैधता को प्रभावित नहीं करेगी। सबसे पहले, इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि पहले की शिकायतों को एक पूर्ण जांच के बाद बंद कर दिया गया था और बिना किसी बेगुनाही के शिकायत को बंद करने या वापस लेने का कोई परिणाम नहीं होगा। दूसरे, न्यायिक निर्णय का सिद्धांत माननीय लोकायुक्त के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू नहीं होता है। तीसरा, यह दोहरा खतरा भी नहीं होगा, जो सिद्धांत धारा 300 द०प्र०स० में निहित है। दोहरे खतरे के सिद्धांत को आकर्षित करने के लिए, व्यक्ति को किसी अपराध के लिए 'सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय' द्वारा मुकदमा चलाया जाना चाहिए और ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराया जाना चाहिए या बरी किया जाना चाहिए, जबकि माननीय लोकायुक्त धारा 300 द०प्र०स० में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर 'न्यायालय' नहीं है।

31. ई.डी. ने जांच करने के बाद शिकायत दर्ज की है, जब एकत्र किए गए साक्ष्य प्रथम दृष्टया पी.एम.एल.ए. के तहत अपराध के आयोग को स्थापित करते हैं और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में आवेदक के निर्वहन के लिए आवेदन को खारिज करने और आवेदक के खिलाफ आरोप तय करने के आदेश में कोई अवैधता नहीं प्रतीत होती है।

32. आवेदन में योग्यता का अभाव है और तदनुसार, इसे अस्वीकार किया जाता है। हालांकि, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 7 ILRA 571

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन धारान्तर्गत 482 संख्या 4319 सन्

2023

करने के लिए पर्याप्त सामग्री थी - न्यायालय ने माना कि, विद्वान मजिस्ट्रेट इसे स्वप्रेरणा से कर सकते थे, लेकिन आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया। आरोप तय करने में त्रुटि के बारे में न्यायालय की चिंता को ध्यान में लाने का एकमात्र तरीका है - न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं मिलती है - तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 33, 34)

सुशील

...आवेदक

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

उद्धृत मामलों की सूची:

आवेदक के अधिवक्ता : श्री अभिषेक पांडे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता : जी.ए.

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 216, 227 और 482 - भारतीय दंड

संहिता, 1860 - धारा 307, 452, 504 और

506 - आवेदन - उस आदेश की अवहेलना

करने के लिए जिसके द्वारा परीक्षण न्यायालय

ने आवेदक के खिलाफ धारा 307 आईपीसी के

तहत आरोप को बदल दिया - हत्या के प्रयास

का अपराध - आपराधिक धमकी - एफआईआर

- जांच - आरोप पत्र - एनबीडब्ल्यू - गिरफ्तारी

- जमानत पर रिहा - धारा 201 सीआरपीसी

के तहत आवेदन - न्यायालय ने पाया कि, इस

तरह के आवेदन पर विचार नहीं किया गया है,

क्योंकि मामले के वर्तमान तथ्यों में कोई दोष

नहीं है, जिसमें घटनास्थल पर राइफल और

देशी पिस्तौल रखने वाले गवाहों के बयान से

आरोप बदलने के लिए आवेदन पर विचार

1. एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो (2018) 16 एससीसी 299),

2. जसविंदर सैनी एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार) (2013) सुप्रीम (एससी) 571),

3. हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य (2004) 5 एससीसी 347),

4. राज्य बनाम के.पी. शंकर एवं अन्य (2015) सुप्रीम (मैड) 2658)

5. नन्हे भैया उर्फ नन्हन सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2023 ला सूट (इलाहाबाद) 451)

6. पी. कार्तिकलक्ष्मी बनाम श्री गणेश एवं अन्य (2017 खंड 3 एससीसी 347)

7. अनंत प्रकाश सिन्हा @ अनंत सिन्हा बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य ((2016) 6 एससीसी 105)

8. केंद्रीय जांच ब्यूरो बनाम करीमुल्लाह ओसन खान ((2014) 11 एससीसी 538)

9. हरिहर चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (एआईआर 1954 एससी 266)।

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा दिया गया)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक पांडेय और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान को सुना।

2. वर्तमान मामला आईपीसी की धारा 307, 452, 504, 506 के अंतर्गत पुलिस स्टेशन देवबंद, जिला सहारनपुर के आपराधिक वाद संख्या 210/2018 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 56/2021 (राज्य बनाम सुनील और अन्य) में अपर जिला और सत्र न्यायाधीश, देवबंद, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.01.2023 को चुनौती देते हुए दायर किया गया है, जिसमें संबंधित अदालत ने आवेदक के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के तहत आरोप को बदल दिया, जो अपर जिला और सत्र न्यायाधीश, देवबंद, सहारनपुर के समक्ष लंबित है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य हैं; विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा आवेदक सहित तीन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ 04.03.2018 को 23:46 बजे आईपीसी की धारा 307, 504, 506 के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी, जिसे आपराधिक वाद संख्या 0210/2018 के रूप में दर्ज किया गया था।

4. एफआईआर में आरोपों के अनुसार, सूचनाकर्ता ने अपने चचेरे भाई अमित के साथ मिलकर सुधीर तिवारी से एक जमीन खरीदी। उसी जमीन के संबंध में एक दीवानी वाद सिविल जज, देवबंद की अदालत में विचाराधीन है। सुधीर तिवारी के परिवार के सदस्य सूचनाकर्ता और उसके चचेरे भाई द्वारा जमीन खरीदने से नाराज थे, इसलिए वे सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के प्रति द्वेष रखते थे। आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि दिनांक 03.03.2018 को लगभग 11 बजे रात्रि में जब सूचनाकर्ता अपने ट्रैक्टर से रोहाना शुगर मिल से अपने आवास की ओर लौट रहा था तो एक काले रंग की मोटरसाइकिल, जिस पर तीन व्यक्ति बैठे थे, जिनके हाथों में राइफल और देशी पिस्तौल थी। रेलवे क्रॉसिंग के पास सूचनाकर्ता के ट्रैक्टर को पीछे से आकर रोककर जान से मारने की नीयत से उस पर गोली चलाई। सूचनाकर्ता ने ट्रैक्टर से कूदकर अपनी जान बचाई। उक्त घटना को पीछे से आ रहे अमित व महिपाल ने देख लिया। उन्हें देखकर अभियुक्त गोली चलाते हुए गांव की ओर भाग निकले। सूचनाकर्ता किसी तरह घर पहुंचा और अपने परिवार के सदस्यों को पूरी कहानी बताई। लगभग 12 बजे रात में सुशील, सुनील और शुभम पुनः सूचनाकर्ता के घर पहुंचे और जान से मारने की नीयत से देशी पिस्तौल व राइफल से गोली चलाकर उसे चेतावनी दी तथा जान से मारने की धमकी दी। दूसरी घटना को बृजेश, मुनेश और कुछ अन्य लोगों ने देखा। जांच के दौरान विरोधी पक्ष संख्या 2 का बयान दर्ज किया गया है, जिसने एफआईआर के विवरण का समर्थन किया है। गवाह बृजेश और मुनेश के बयानों को भी दर्ज

किया गया हैं, जिसमें मुनेश ने घटना स्थल पर सुशील और शुभम के मौजूद होने, उनके हाथों में राइफल और देशी पिस्तौल होने की बात कही है।

5. अन्य गवाहों यानी सतीश, सत कुमार, मनोज कुमार, सुभाष, महिपाल और कपिल के बयानों को भी दर्ज किया गया। उपरोक्त लोगों ने कहा है कि दोनों पक्षों के बीच कुछ जमीनी विवाद के कारण एक-दूसरे के प्रति शत्रुता थी, इसलिए आवेदक पर दबाव बनाने के उद्देश्य से उक्त एफआईआर दर्ज करायी गयी है।

6. जांच के दौरान, जांच अधिकारी ने पाया कि शुभम को गलत फंसाया गया है, इसलिए, उसे जांच अधिकारी द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया।

7. दिनांक 26.07.2018 को इच्छुक गवाहों के बयानों के आधार पर, जांच अधिकारी ने आवेदक-सुशील के खिलाफ आईपीसी की धारा 307, 452, 504, 506 के तहत जबकि दूसरे अभियुक्त सुनील के खिलाफ आईपीसी की धारा 452, 504, 506 के तहत आरोप पत्र दायर किया।

8. अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, देवबंद, सहारनपुर ने आदेश दिनांक 23.08.2018 द्वारा उपरोक्त आरोप पत्र का संज्ञान लिया। आवेदक और सह-अभियुक्त सुनील द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 11872/2019 दायर करके आरोप पत्र को चुनौती दी और माननीय न्यायालय ने

दिनांक 30.03.2019 के आदेश के तहत निम्नलिखित आदेश पारित किया है:

“1. आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान आवेदन सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आरोप पत्र संख्या 544/2018 दिनांक 26.07.2018 के साथ ही संज्ञान आदेश दिनांक 23.08.2018 को अभिखंडित करने के लिए दायर किया गया है और वाद संख्या 2570/2018 (राज्य बनाम सुनील व अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही जो आईपीसी की धारा- 307, 504, 506 व 452, थाना- देवबंद, जिला-सहारनपुर जो आपराधिक वाद संख्या 0210/2018, आईपीसी की धारा-307, 504 और 506 के तहत, पुलिस स्टेशन-देवबंद, जिला-सहारनपुर, से उद्धृत है, जो विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, देवबंद, जिला सहारनपुर की अदालत में लंबित है।।

3. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का मानना है कि पक्षों के बीच लंबित सिविल विवाद के कारण आवेदकों के खिलाफ पूरी तरह से मनगढ़ंत और झूठी कहानी बनाई गई है। एफआईआर में आरोप सार्वजनिक सड़क पर सुबह 11:00 बजे की घटना का वर्णन करता है जबकि जांच के दौरान दर्ज किए गए बयान में समय, स्थान और घटना के संबंध में बड़ी असंगतता है। फिलहाल, ऐसा भी

प्रतीत नहीं होता कि घटना में आग्नेयास्त्र के इस्तेमाल के आरोप का समर्थन करने के लिए कोई खोखा बरामद किया गया हो।

4. मामले पर विचार की आवश्यकता है।

5. विरोधी पक्ष संख्या 1 की ओर से नोटिस विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

6. विरोधी पक्ष संख्या 2 को नोटिस जारी करें जो शीघ्र वापस किया जाए।

7. विरोधी पक्ष छह सप्ताह के भीतर अपना जवाबी हलफनामा दायर करेंगे। इसके बाद दो सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल किया जाएगा।

8. उसके बाद सूचीबद्ध करें।

9. मुकदमे की अगली तारीख तक, आवेदकों के खिलाफ उपरोक्त मामले में आगे की कार्यवाही पर रोक रहेगी।"

9. उपरोक्त याचिका के लंबित रहने के दौरान, **एशियन रिसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो** के मामले में पारित माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्देश के मद्देनजर विचारण न्यायालय ने आवेदकों और सह-अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही की है और गैर जमानती वारंट जारी किए हैं। आवेदक को गिरफ्तार कर लिया गया और 25.01.2021 को जमानत पर रिहा कर दिया गया।

10. इस बीच, शिकायतकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 216 के तहत विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया और आवेदक के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के आरोप को बदलने का अनुरोध किया। कुछ गवाहों के बयानों पर भरोसा करते हुए, विचारण न्यायालय ने दिनांक 13.01.2023 के आदेश के अंतर्गत आवेदक और सह-अभियुक्त के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के तहत आरोप तय करने के आवेदन को अनुमति दे दी, इसलिए, वर्तमान आवेदन दायर किया गया है।

11. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का मानना है कि पिछली याचिका दिनांक 13.01.2023 को न्यायालय द्वारा पारित आदेश के मद्देनजर निरर्थक हो गई है, इसलिए, उच्च न्यायालय के दिनांक 09.05.2023 के आदेश द्वारा, इसे दबाए न जाने के कारण खारिज कर दिया गया था।

12. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 13.01.2023 के आदेश को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी है:

(i) कि न तो अभियोजन पक्ष और न ही वास्तविक शिकायतकर्ता या आपराधिक मामले में रुचि रखने वाला कोई भी व्यक्ति सीआरपीसी की धारा 216 के तहत आवेदन दायर करने का हकदार है।

(ii) कि विचारण न्यायालय केवल विचारण के समय प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों के आधार पर आरोप में

बदलाव नहीं कर सकता है, और न ही उस सामग्री के आधार पर जो पहले से ही जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई थी।

13. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **जसविंदर सैनी और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार)** के मामले में पारित माननीय शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि विचारण के समय अतिरिक्त साक्ष्य अतिरिक्त आरोप तय करने या पहले से तय किए गए आरोपों के लिए आवश्यक थे। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

“11. उपरोक्त को पढ़ने से यह प्रदर्शित होता है कि किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने की न्यायालय की शक्ति अनियंत्रित है, परंतु निर्णय सुनाए जाने से पूर्व ऐसा कुछ जोड़ा और/या परिवर्तन किया गया हो। धारा 216 की उपधारा (2) से (5) उस प्रक्रिया से संबंधित है जिसका पालन न्यायालय द्वारा किसी आरोप को बदलने या जोड़ने का निर्णय लेने के बाद किया जाना चाहिए। संहिता की धारा 217 गवाहों को वापस बुलाने से संबंधित है जब विचारण शुरू होने के बाद अदालत द्वारा आरोप बदल दिया जाता है या जोड़ा जाता है। उपरोक्त के आलोक में, निर्णय से पहले किसी भी समय आरोप जोड़ने या बदलने की न्यायालय की क्षमता के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है। हालाँकि, वे

परिस्थितियाँ जिनमें ऐसा परिवर्धन या परिवर्तन किया जा सकता है, वे धारा 216 में निर्धारित नहीं हैं। यह बिल्कुल घिसी-पिटी बात है कि इस तरह के किसी भी परिवर्धन या परिवर्तन का प्रश्न आमतौर पर या तो उठेगा क्योंकि या तो अदालत पहले से तय किए गए आरोप को किसी भी कारण से दोषपूर्ण पाती है या क्योंकि न्यायालय के समक्ष आने वाले साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए विचारण शुरू होने के बाद इस तरह का जोड़ आवश्यक माना जाता है।”

14. **हसनभाई वलीभाई कुरेशी बनाम गुजरात राज्य** में पारित माननीय शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए उनका मानना है कि सीआरपीसी की धारा 216 के दायरे से निपटते समय माननीय शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर विचारण के दौरान आरोप में बदलाव की गुंजाइश है। अध्याय XVII में दिखाई देने वाली संहिता की धारा 216 स्पष्ट रूप से निश्चित करती है कि कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप को बदल या जोड़ सकता है। जब भी ऐसा परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है, तो उसे पढ़कर सुनाया जाना चाहिए और आरोपी को सूचित किया जाना चाहिए। उन्होंने उपरोक्त फैसले के पैराग्राफ 10 पर जोर दिया है, जो नीचे उद्धृत है:-

“10. इसलिए, यदि विचारण के दौरान पेश किए गए साक्ष्यों और दस्तावेजों

के कुल प्रभाव के आधार पर मामले की व्यापक संभावनाओं पर विचार करने पर विचारण न्यायालय संतुष्ट है कि आरोप में कोई भी परिवर्धन या परिवर्तन आवश्यक है, तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है और ऐसा कर सकता है। मामले की अनिवार्यता या आवश्यकता के अनुसार उचित रूप से कार्य करने में कोई कानूनी बाधा नहीं होगी।"

15. मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा **राज्य बनाम केपी शंकर और अन्य** के मामले में पारित फैसले पर भरोसा करते हुए उनका मानना है कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान के आधार पर जब विचारण के समय प्रश्नगत अपराध के लिए कोई सबूत नहीं जोड़ा गया है, तो आरोप जोड़ना या बदलना न्यायोचित नहीं है। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया है कि सीआरपीसी की धारा 216 इस बात पर विचार नहीं करती है कि कोई भी आवेदन अभियोजन पक्ष या वास्तविक शिकायतकर्ता सहित किसी गवाह द्वारा दायर किया जाना चाहिए।

16. अपने कथन के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित पैराग्राफों पर बल दिया है:

"7..... केवल गवाहों के बयान के आधार पर, आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। अपराध सार के सबूत के अभाव में, अभियोजन पक्ष की ओर से सीआरपीसी की धारा 216

के तहत याचिका दायर करना उचित नहीं है। इसलिए विचारण न्यायालय अभियोजन द्वारा दायर ऐसी याचिका को खारिज करने में सही है। आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप शामिल करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

"साक्ष्य" शब्द का अर्थ विचारण के दौरान संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष इस्तेमाल किए गए गवाहों के बयान और सीआरपीसी की धारा 161 के तहत पुलिस अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य हो सकते हैं। सीआरपीसी की धारा 216 के तहत याचिका दायर करने के उद्देश्य से अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य "सबूत" के रूप में नहीं माना जाएगा। इस संबंध में अभियोजन द्वारा दायर सीआरपीसी की धारा 216 के तहत याचिका इसलिए अपरिपक्व है। भले ही यह दिखाया गया हो कि प्रत्यर्थी/अभियुक्त हत्या के अपराध के दोषी हैं, यह केवल विचारण न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह विचारण के दौरान उनके खिलाफ उपलब्ध कराए गए साक्ष्य के आधार पर इसका फैसला करे। इसलिए अभियोजन द्वारा सीआरपीसी की धारा 216 के तहत दायर आवेदन पोषणीय नहीं है और इसे विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से खारिज कर दिया गया था। इस संदर्भ में, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने

(एच.ए. हुरुल फिरदौस, जिसका प्रतिनिधित्व उसके पावर एजेंट एच.ए. अब्दुल जब्बार बनाम राज्य द्वारा किया गया था, जिसका प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक, डब्ल्यू-22, ऑल वुमेन पुलिस स्टेशन, मायलापुर, चेन्नई - 2 और अन्य) 2010 (3) मद्रास वीकली नोट्स (आपराधिक) 368 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। इस सुझाव के लिए कि न तो अभियोजन और न ही याचिकाकर्ता/अभियुक्त को किसी आरोप को शामिल करने या हटाने की मांग करने का कोई अधिकार है और यह विचारण न्यायालय के लिए है कि स्वविवेकानुसार, किसी आरोप को शामिल करने पर विचार करें। उपरोक्त निर्णय में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विपरीत, सीआरपीसी की धारा 216 के तहत एक आवेदन को खारिज करना एक आपराधिक पुनरीक्षण वाद पोषणीय नहीं है।

“8. प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों के विद्वान अधिवक्ता ने (चेलापंडी बनाम पुलिस उपाधीक्षक, सीबीसीआईडी, मदुरै जिला और अन्य) (2012) 1 एमएलजे आपराधिक 246 के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया, जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि सीआरपीसी की धारा 216 के

तहत आरोपों को बदलने या संशोधित करने की शक्ति अदालत में निहित है, जब अदालत प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर संतुष्ट हो जाती है कि लगाए गए आरोपों में संशोधन या बदलाव किया जाना है। वर्तमान मामले में, अभियोजन ने सीआरपीसी की धारा 216 के तहत याचिका दायर की है ताकि पुलिस अधिकारी के समक्ष गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्यों के आधार पर आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप शामिल किया जा सके कि पीड़ित को हत्या करने के उद्देश्य से समुद्र की ओर ले जाया गया था। दरअसल, मौजूदा मामले में शिकायत दर्ज करने में ही करीब पांच साल की लंबी देरी हो गई है और इसलिए भी अभियोजन की ओर से दायर याचिका पोषणीय नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय से आपराधिक पुनरीक्षण वाद को खारिज करने की प्रार्थना की।

“12. इस आपराधिक पुनरीक्षण वाद में विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या अभियोजन को आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप शामिल करने के लिए सीआरपीसी की धारा 216 के तहत आवेदन दायर करने का अधिकार है या क्या ऐसा आवेदन पोषणीय है।

“17. सीआरपीसी की धारा 216 से यह स्पष्ट है कि किसी आरोप में

परिवर्तन या संशोधन या परिवर्धन केवल न्यायालय द्वारा किया जा सकता है और विचारण न्यायालय को ही ऐसी शक्ति प्राप्त है। 2008 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2845 में रिपोर्ट किए गए (कृष्णम्मल बनाम राजस्व मंडल अधिकारी और अन्य) के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में यह स्थिति दोहराई गई है, जिसमें पैरा संख्या 9 से 11 में, इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था: -

9. उक्त धाराओं के प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय आरोप तय करने या उसे बदलने या नए आरोप जोड़ने की शक्ति केवल न्यायालय के पास है। न तो अभियोजन और न ही इच्छुक व्यक्ति को मौजूदा आरोपों को हटाने या नए आरोप जोड़ने के लिए उक्त धाराओं में से किसी एक को लागू करके याचिका दायर करने का अधिकार है। संक्षेप में, अभियोजन या इच्छुक व्यक्ति को अदालत से मौजूदा आरोपों को बदलने या नए आरोप जोड़ने के लिए कहने का कोई अधिकार नहीं है।

“18(8). सीआरपीसी की धारा 216, अभियोजन या वास्तविक शिकायतकर्ता सहित किसी भी गवाह द्वारा दायर किए गए किसी भी आवेदन पर विचार नहीं करती है। यह

केवल आरोप को बदलने या पहले से तय किए गए आरोप में कोई भी आरोप जोड़ने की अदालत की शक्ति के बारे में बताता है। उस चरण का भी संकेत दिया गया है जिस पर आरोपों में इस तरह का परिवर्तन या परिवर्धन किया जा सकता है। निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय ऐसा परिवर्तन या परिवर्धन किया जा सकता है। यह धारा मामले के विचारण में काफी प्रगति के बाद आरोपों में परिवर्तन या परिवर्धन के मामले में की जाने वाली अनुवर्ती कार्रवाई का भी प्रावधान करती है।

18(9). उक्त प्रावधान के आलोक में हमें विद्वान विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश पर विचार करना होगा। विद्वान विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश को पढ़ने से पता चलेगा कि, उक्त प्रावधान के संदर्भ की उचित समझ पर, विद्वान विचारण मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित किया है। विद्वान विचारण मजिस्ट्रेट ने स्पष्ट राय व्यक्त की है कि याचिका स्वयं समयपूर्व थी क्योंकि अभियोजन के किसी भी गवाह से जिरह नहीं की गई थी और पांच और गवाहों का परीक्षण होना था और अतिरिक्त आरोप तय करने के प्रश्न पर विचारण के दौरान प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्यों के आलोक में बाद के चरण में विचार किया जा सकता है। उक्त राय उक्त प्रावधान को लागू करने में विधायिका की मंशा के अनुरूप है। इसलिए, जैसा

कि प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उचित प्रतिवाद किया है, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता के कारण कोई दोष नहीं है।“

17. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **नन्हें भैया उर्फ नन्हन सिंह और दो अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में पारित उच्च न्यायालय, इलाहाबाद (लखनऊ पीठ) के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें यह कहा गया है कि न्यायालय में निहित शक्ति केवल न्यायालय के पास है और किसी भी पक्ष को अधिकार के रूप में कोई आवेदन दायर करके इस तरह के परिवर्धन या परिवर्तन की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है।

18. अंत में, **उन्होंने पी. कार्तिकालक्ष्मी बनाम श्री गणेश और अन्य** में पारित माननीय शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए यह मानना है कि सूचनाकर्ता या अभियोजन द्वारा दिया गया आवेदन पोषणीय नहीं है और पैराग्राफ 6, 7 और 8 पर बल दिया गया है, जो इस प्रकार हैं:

“6. संबंधित पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमें प्रत्यर्थी 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील में बल मिलता है। सीआरपीसी की धारा 216 न्यायालय को निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय किसी भी आरोप को परिवर्तन और परिवर्धन का अधिकार देती है। अब यह सुस्थापित

है कि न्यायालय में निहित शक्ति केवल न्यायालय के पास है और किसी भी पक्ष को अधिकार के रूप में कोई आवेदन दायर करके इस तरह के परिवर्तन या परिवर्धन की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यदि आरोप तय करने में कोई त्रुटि हुई हो और यदि यह अपराध की सुनवाई करने वाले न्यायालय के संज्ञान में आता है, तो शक्ति हमेशा न्यायालय में निहित होती है, जैसा कि सीआरपीसी की धारा 216 के तहत या तो आरोप परिवर्तित और परिवर्धित करने के लिए प्रदान किया गया है और ऐसी शक्ति निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय न्यायालय के पास उपलब्ध है। यह न्यायालय के लिए कुछ आकस्मिकताओं के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक सक्षम प्रावधान है जो उसके संज्ञान में आती है या उसके ध्यान में लाई जाती है। ऐसी स्थिति में, यदि न्यायालय के संज्ञान में आता है कि आरोप को परिवर्तित और परिवर्धित करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है, तो वह स्वयं ऐसा कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह के परिवर्तन या परिवर्धन के बाद जब अंतिम निर्णय दिया जाएगा, तो पक्षकारों के लिए कानून के अनुसार अपने उपचारों पर काम करना खुला होगा।

7. हमें इस संदर्भ में सीआरपीसी की धारा 221 और 222 से अवगत कराया गया। इस मामले में शामिल तथ्यों के मद्देनजर, हम केवल सीआरपीसी की धारा 216 से चिंतित हैं। इसलिए, हम मौजूदा मामले में अन्य प्रावधानों के निहितार्थ की जांच करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं। हम खुद को धारा 216 की प्रार्थना तक ही सीमित रखना चाहते हैं और उसी पर कायम रहना चाहते हैं। हमारे निष्कर्ष के प्रकाश में सीआरपीसी की धारा 216 को लागू करने की शक्ति विशेष रूप से निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन के उद्देश्य के लिए एक सक्षम प्रावधान के रूप में न्यायालय के पास ही सीमित है, हम यह स्पष्ट करते हैं कि कोई भी पक्ष, न तो वास्तविक शिकायतकर्ता और न ही आरोपी या उस मामले के लिए अभियोजन के पास आरोप में किसी भी प्रकार के परिवर्तन या परिवर्धन की मांग करने का कोई निहित अधिकार है, क्योंकि यह सीआरपीसी की धारा 216 के तहत प्रदान नहीं किया गया है। यदि पक्षकारों द्वारा अपनाए जाने वाले ऐसे रास्ते की अनुमति दी जाती है, तो आपराधिक न्यायालय के लिए अपनी कार्यवाही समाप्त करना लगभग असंभव हो जाएगा और त्वरित विचारण की अवधारणा खतरे में पड़ जाएगी।

8. ऐसी परिस्थितियों में, जब अपीलकर्ता द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किया गया आवेदन पोषणीय नहीं था, तो विचारण न्यायालय पर सीआरपीसी की धारा 216 के तहत आदेश पारित करने की बाध्यता नहीं थी। इसलिए, उक्त आदेश को सीआरपीसी की धारा 397 के तहत संशोधित करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। अपीलकर्ता के कहने पर शुरू की गई पूरी कार्यवाही पोषणीय नहीं थी। यद्यपि कानूनी मुद्दे को आवश्यक रूप से ठीक किया जाना था, हम कानून को स्पष्ट करने के लिए बाध्य हैं जैसा कि सीआरपीसी की धारा 216 के तहत उपलब्ध है। उस हद तक, कानूनी स्थिति के स्पष्टीकरण के बाद, हम यह स्पष्ट करते हैं कि अपीलकर्ता के अनुरोध पर शुरू की गई पूरी कार्यवाही पूरी तरह से गलत समझी गई थी और कानून की दृष्टि से विकृत थी और विचारण न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था। जैसा कि प्रत्यर्थी 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सुस्पष्ट किया है, अपीलकर्ता द्वारा अपनाई गई कार्य प्रणाली और निचली अदालत द्वारा इस पर विचार किए जाने से अनावश्यक रूप से कार्यवाही लंबी खिंच गई है, जिसकी अनुमति निचली अदालत को नहीं देनी चाहिए थी।“

19. चूंकि किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने की शक्ति केवल न्यायालय के पास है, इसलिए, सूचनाकर्ता द्वारा दिया गया आवेदन पोषणीय नहीं है, क्योंकि कार्यवाही को विलंबित करने के लिए ऐसा रास्ता अपनाया गया है, जिसे अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी, इस प्रकार, दिनांक 13.01.2023 का आदेश अभिखंडित किये जाने योग्य है।

20. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का मानना है कि साक्ष्य के अभिलेखन से पहले सीआरपीसी की धारा 216 के तहत किसी आरोप को बदलने या जोड़ने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। यदि न्यायालय उक्त उद्देश्य के लिए आगे बढ़ता है और वह संतुष्ट है, तो उसके द्वारा तय किया गया आरोप बदला जाने योग्य है और अतिरिक्त आरोप जोड़ने की आवश्यकता है। उन्होंने आगे प्रतिवाद किया कि जब मजिस्ट्रेट के पास आरोप जोड़कर या परिवर्तन करके गलती को सुधारने का अधिकार क्षेत्र है, तो वह पक्षकारों के अधिवक्ता को सुन सकते हैं और इस पर स्वतः संज्ञान ले सकते हैं और लोक अभियोजक या सूचनाकर्ता द्वारा कोई भी आवेदन केवल उक्त तथ्य को उनके संज्ञान में लाने के लिए किया जाता है और किसी भी स्थिति में आदेश अमान्य नहीं होगा।

21. उनका मानना है कि आरोप जोड़ने या बदलने के दौरान न्यायालय के कर्तव्य को अनंत प्रकाश सिन्हा उर्फ अनंत सिन्हा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य के फैसले में संक्षेपित किया गया है, जिसमें जिन

सामग्रियों पर विचार किया जाना है, अभिलेख पर सामग्री की पर्याप्तता, और वे चरण जहां तक आरोप में इस तरह का जोड़ या परिवर्तन किया जा सकता है, साथ ही सूचनाकर्ता, शिकायतकर्ता या किसी गवाह द्वारा दिए गए आवेदन पर विचार करने के लिए अदालत की शक्तियां विस्तारित हैं। उपरोक्त के मददेनजर, आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, इसलिए, प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती।

22. मामले के गुण-दोष पर आने से पहले सीआरपीसी की धारा 216 उद्धृत करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:-

“216. न्यायालय आरोप परिवर्तित कर सकता है-

(1) कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है।

(2) ऐसा प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाएगा।

(3) यदि आरोप में किया गया परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में विचारण को तुरंत आगे चलाने से अभियुक्त पर अपनी प्रतिरक्षा करने में या अभियोजक पर मामले के संचालन में कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के पश्चात स्वविवेकानुसार विचारण को ऐसे आगे

चला सकता है मानो परिवर्तित या परिवर्धित आरोप ही मूल आरोप हैं।

(4) यदि परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में विचारण को तुरंत आगे चलाने से इस बात की संभावना है कि अभियुक्त या अभियोजक पर पूर्वोक्त रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो न्यायालय या तो नए विचारण का निर्देश दे सकता है या विचारण को इतनी अवधि के लिए, जितनी आवश्यक हो, स्थगित कर सकता है।

(5) यदि परिवर्तित या परिवर्धित आरोप में कथित अपराध ऐसा है, जिसके अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता है, तो उस मामले में ऐसी मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी जब तक कि उन्हीं तथ्यों के आधार पर जिन पर परिवर्तित या परिवर्धित आरोप आधारित हैं, अभियोजन के लिए मंजूरी पहले ही अभिप्राप्त नहीं कर ली गई है।"

23. न्यायालय के कहने का अभिप्राय केवल इतना था कि ऐसे मामले में जहां दहेज हत्या का आरोप लगाया गया है, आईपीसी की धारा 302 के तहत भी आरोप तय किया जा सकता है यदि सबूत अन्यथा अनुमति देते हैं।

24. इस प्रकार, **जसविंदर सैनी (उपरोक्त)** के मामले में, न्यायालय ने सुझाव दिया कि अतिरिक्त आरोप तय करने या पहले से तय किए गए आरोप को बदलने के लिए विचारण

न्यायालय में साक्ष्य की उपस्थिति आवश्यक नहीं थी, हालांकि ऐसा करने के लिए यह आधारों में से एक हो सकता है।

25. उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 11 को उद्धृत करना उचित होगा:

"11. उपरोक्त को पढ़ने से यह प्रदर्शित होता है कि किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने की न्यायालय की शक्ति अनियंत्रित है, परंतु निर्णय सुनाए जाने से पहले ऐसा कुछ जोड़ा और/या परिवर्तन किया गया हो। धारा 216 की उपधारा (2) से (5) उस प्रक्रिया से संबंधित है जिसका पालन न्यायालय द्वारा किसी आरोप को बदलने या जोड़ने का निर्णय लेने के बाद किया जाना चाहिए। संहिता की धारा 217 गवाहों को वापस बुलाने से संबंधित है जब विचारण शुरू होने के बाद अदालत द्वारा आरोप बदल दिया जाता है या जोड़ा जाता है। उपरोक्त के आलोक में, निर्णय से पहले किसी भी समय आरोप जोड़ने या बदलने की न्यायालय की क्षमता के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है। हालांकि, वे परिस्थितियाँ जिनमें ऐसा परिवर्धन या परिवर्तन किया जा सकता है, वे धारा 216 में निर्धारित नहीं हैं। यह बिल्कुल घिसी-पिटी बात है कि इस तरह के किसी भी परिवर्धन या परिवर्तन का प्रश्न आमतौर पर या तो उठेगा क्योंकि या तो अदालत पहले से तय किए गए आरोप को किसी भी कारण से दोषपूर्ण पाती है या क्योंकि

न्यायालय के समक्ष आने वाले साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए विचारण शुरू होने के बाद इस तरह का जोड़ आवश्यक माना जाता है।"

26. किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने के लिए सीआरपीसी की धारा 216 के तहत न्यायालय की शक्तियों की व्याख्या करते हुए, **केंद्रीय जांच ब्यूरो बनाम करीमुल्लाह ओसान खान** के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय ने अभिव्यक्ति को समझाने की कोशिश की है।

"किसी भी समय", "फैसला सुनाए जाने से पूर्व", और उस सामग्री/आधार पर भी चर्चा की है जिसके आधार पर आरोप जोड़े जा सकते हैं, विचारण के समापन के बाद बदले जा सकते हैं।

27. उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:-

"17. सीआरपीसी की धारा 216 विचारण न्यायालय को काफी शक्तियां देती है, यानी सबूत पूरे होने, दलीलें सुनने और फैसला सुरक्षित रखने के बाद भी वह उसमें उल्लिखित शर्तों के अधीन कोई भी आरोप बदल और जोड़ सकती है। "किसी भी समय" और "फैसला सुनाने" से पूर्व अभिव्यक्ति से संकेत मिलता है कि शक्ति बहुत व्यापक है और न्याय के हित में उचित मामलों में इसका प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन साथ ही, न्यायालयों को यह भी देखना चाहिए

इसके आदेशों से अभियुक्तों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

18. सीआरपीसी की धारा 216 अभिहित न्यायालयों सहित सभी न्यायालयों को निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय, पहले से तय किए गए किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने का अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है और उप-धारा (2) से (5) उस प्रक्रिया को निर्धारित करती है जो उस जोड़ या परिवर्तन के बाद पालन किया जाता है। कहने की जरूरत नहीं है कि अदालतें सीआरपीसी की धारा 216 के तहत आरोपों को जोड़ने या संशोधित करने की शक्ति का प्रयोग तभी कर सकती हैं, जब अदालत के समक्ष कुछ सामग्री मौजूद हो, जिसका सुधार, परिवर्धित या संशोधित किए जाने वाले आरोपों से कुछ संबंध या संपर्क हो। दूसरे शब्दों में, न्यायालय के समक्ष विचारण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य द्वारा किए गए अपराध के लिए आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन होना चाहिए। (देखें हरिहर चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एआईआर 1954 एससी 266)। केवल इसलिए कि विचारण के समापन के बाद आरोप बदल दिए जाते हैं, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि इसके परिणामस्वरूप आरोपी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा हुआ है क्योंकि सीआरपीसी की धारा 216 और अन्य संबंधित प्रावधानों में पर्याप्त सुरक्षा के उपाय किए गए हैं।"

28. शीर्ष अदालत ने **हरिहर चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** के मामले में एक पूर्ण पीठ के फैसले में इस हद तक कहा है कि आरोप को बदलने का निर्देश दिया जाए ताकि उस अपराध को शामिल किया जा सके जिसके लिए अपीलकर्ता पर मूल रूप से आरोप नहीं लगाया गया था, केवल तभी किया जा सकता है जब विचारण न्यायालय ने फैसला सुनाने से पहले खुद ही सीआरपीसी की धारा 227 के तहत कार्रवाई की हो। वह ऐसा केवल तभी कर सकता था यदि उसके सामने शिकायत या साक्ष्य में ऐसी कार्रवाई को उचित ठहराने के लिए सामग्री मौजूद होती।

29. इस प्रकार, इसकी व्याख्या इस तरह से की जा सकती है कि संबंधित अदालत के पास निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी आरोप को बदलने या संशोधित करने की शक्ति है, यदि उसके सामने कोई सामग्री है। इस तथ्य की परवाह किए बिना कि क्या यह जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री है, जिसे आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद विचारण न्यायालय के समक्ष रखा गया है या जब संबंधित न्यायालय विचारण को आगे बढ़ाता है, इस प्रकार विचारण के समय साक्ष्य एकत्र करता है।

30. इस प्रकार उपरोक्त मामले में न्यायालय ने सुझाव दिया कि यदि शिकायत में ऐसी सामग्री या ऐसी कार्रवाई को उचित ठहराने के लिए कोई साक्ष्य था तो विचारण न्यायालय आरोप में बदलाव के लिए निर्देश जारी कर सकता है। जैसा कि समझा गया है, कुछ तथ्य यह है कि यदि शिकायत, याचिका या उस

मामले के लिए एफआईआर या संबंधित सामग्री में आरोप हैं, तो अदालत आरोप को बदल सकती है।

31. इस अदालत की राय है कि आरोप जोड़ने या परिवर्तन के संबंध में सीआरपीसी की धारा 216 के तहत शक्तियां अदालत के समक्ष विचारण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य द्वारा किए गए अपराध के लिए हैं, जिसका मतलब यह नहीं है कि परिवर्तन केवल उन्हीं मामलों में ही किया जा सकता है जहां साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। सीआरपीसी की धारा 216, जो कि अप्राप्य है, यह नहीं बताती है कि अदालत केवल इसलिए आरोप में बदलाव नहीं कर सकती क्योंकि उसने आरोप तय कर दिया है। अदालत का मानना है कि इस तरह के किसी भी जोड़ या बदलाव का सवाल आम तौर पर या तो इसलिए उठता है क्योंकि पहले से तय किया गया आरोप किसी भी कारण से दोषपूर्ण है या क्योंकि अदालत के सामने आने वाले साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए विचारण की शुरुआत के बाद इस तरह के जोड़ को आवश्यक माना जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि दोष हो या कुछ छूट गया हो तो न्यायालय आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है। जांच अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। यह शिकायत या एफआईआर या संबंधित दस्तावेजों या अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर, विचारण के दौरान और फैसला सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किया जा सकता है। इस प्रकार, जैसा कि **अनंत प्रकाश सिन्हा उर्फ अनंत सिन्हा (उपरोक्त)** के मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, आरोप अभिलेख

पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर तय किया जा सकता है और आरोप को बदलने या संशोधित करने के लिए नए साक्ष्य जोड़ना आवश्यक नहीं है।

जब तक सबूत नहीं दिए जाते, पहले से तय किए गए आरोपों को बदला नहीं जा सकता, क्योंकि यह सीआरपीसी की धारा 216 का उद्देश्य नहीं है।“

32. पैराग्राफ 18 को उद्धृत करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:

“18. उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि यदि कोई दोष है या कुछ छूट गया है तो न्यायालय आरोप को बदल या पलट सकती है। जांच अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। यह शिकायत या एफआईआर या संबंधित दस्तावेजों या अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर, विचारण के दौरान किया जा सकता है। यह फैसला सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किया जा सकता है। प्रत्येक परिस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। यह कहना पर्याप्त है, यदि अदालत ने अभिलेख पर मौजूद सामग्री के बावजूद आरोप तय नहीं किया है, तो उसके पास आरोप जोड़ने का अधिकार क्षेत्र है। इसी तरह, उसे आरोप में बदलाव करने का भी अधिकार है। जिस सिद्धांत को ध्यान में रखा जाना चाहिए वह यह है कि मजिस्ट्रेट द्वारा तय किया गया आरोप उसके सामने प्रस्तुत की गई सामग्री के अनुरूप है या यदि बाद में साक्ष्य अभिलेख पर आता है। यह नहीं समझा जाना चाहिए कि

33. इस दलील के संबंध में कि विद्वान मजिस्ट्रेट सूचनाकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन पर विचार नहीं कर सकता था क्योंकि सीआरपीसी की धारा 216 के प्रावधानों के मददेनजर यह पोषणीय नहीं है। इस न्यायालय का विचार है कि विद्वान मजिस्ट्रेट इसे स्वयं कर सकता था, लेकिन आवेदन केवल आरोप तय करने में हुई खामी के बारे में संबंधित अदालत के ध्यान में लाने का एक तरीका था, इसलिए, अदालत को इस तरह के आवेदन में कोई त्रुटि नहीं मिलती है। मामले के वर्तमान तथ्यों पर विचार किया गया है, जिसमें गवाहों के बयानों से, घटना स्थल पर सुशील और शुभम के हाथों में राइफल और देशी पिस्तौल होने की उपस्थिति साबित हुई थी, इस प्रकार, आवेदक सुशील के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के आरोप को बदलने के लिए सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन पर विचार करने के लिए पर्याप्त सामग्री थी।

34. उपरोक्त चर्चा के मददेनजर, इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं मिलती है, तदनुसार धारा 482 के तहत आवेदन **खारिज** कर दिया जाता है।

35. निचली अदालत को कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 7 ILRA 582

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

धारान्तर्गत 482 के तहत आवेदन संख्या

11542 सन् 2023

कुणाल चावला

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री दिलीप कुमार पांडे,
श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री शशि कांत
पांडे

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 173(2) और 482 - भारतीय दंड

संहिता, 1860 - धारा 420 और 120-बी -

उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 -

धारा 60, 63 और 70: - आवेदन - आरोप

पत्र और समन आदेश के साथ-साथ पूरी

कार्यवाही खारिज करने के लिए - बरामदगी -

गिरफ्तारी - जांच - एफआईआर - आपराधिक

षड्यन्त्र की सजा - आरोप पत्र - समन

आदेश - दलील दी गई कि कंपनी को आरोपी

नहीं बनाया गया है - न्यायालय ने पाया कि

अवैध शराब बरामद की जा रही थी जिसे ट्रक

से उतारकर उसके गोदाम में रखा जा रहा था

और वह वैधानिक माध्यम से नहीं आई है -

वर्तमान याचिका में भी गोदाम के स्वामित्व और बरामदगी को चुनौती नहीं दी गई है - आवेदक का तर्क है कि गोदाम कंपनी का है, उसी पर सुनवाई की जानी है यह दर्शाने के लिए कि गोदाम का मालिक कौन है और उसमें किसका माल रखा जा रहा है, उचित चरण है - सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका की सुनवाई के दौरान साक्ष्य दर्ज करने के चरण में भी विचारणीयता के संबंध में कानून का प्रस्ताव बिल्कुल भी विवाद नहीं है, बल्कि इसका निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर स्वतंत्र रूप से होगा - इसलिए, उक्त आधार पर कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता - तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 24, 25, 26)

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. डेले डिसूजा बनाम भारत सरकार उप मुख्य श्रम आयुक्त एवं अन्य के माध्यम से: एआईआर 2021 एससी 5626।
2. शुएब महमूद किदवाई @ बाँबी बनाम उ.प्र. राज्य: (2021) (0) सुप्रीम (इलाहाबाद) 122,
3. सुरिंदर कुमार खन्ना बनाम इंटेलिजेंस अधिकारी राजस्व खुफिया निदेशालय: (2018) 8 एससीसी 271,
4. रतिलाल भांजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य: (1979) 2 एससीसी 179,
5. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य: एआईआर 1960 एससी 866;

6. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल व अन्य: 1992 एसयूपीपी(1) एससीसी 335;
7. बिहार राज्य बनाम पी. पी. शर्मा: 1992 एसयूपीपी (1) एससीसी 222;
8. ट्रेसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल एवं अन्य: (1999) 8 एससीसी 686;
9. एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह व अन्य: (2001) 8 एससीसी 645;
10. इंडू फार्मास्यूटिकल्स वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद शरीफुल हक: (2005) 1 एससीसी 122;
11. एम. एन. ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव: (2009) 9 एससीसी 682;
12. जोसेफ साल्वाराज ए. बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य...: (2011) 7 एससीसी 59;
13. अरुण भंडारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य & अन्य...: (2013) 2 एससीसी 801;
14. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य: (2019) 6 एससीसी 107;
15. आनंद कुमार मोहता एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), गृह विभाग एवं अन्य (2019) 11 एससीसी 706;
16. राजीव कौरव बनाम बालासाहेब एवं अन्य: (2020) 3 एससीसी 317;
17. नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य: (2020) 12 एससीसी 467,
18. प्रीति सराफ एवं अन्य बनाम राज्य एनसीटी दिल्ली एवं अन्य: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 206,
19. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 484,
20. दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य : 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936,

21. महाराष्ट्र बनाम सैय्यद हसन सैय्यद सुभान : (2019) 18 एससीसी 145,
22. कुंवर पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : (2020) 14 एससीसी 331,
23. शुएब महमूद किदवाई @ बॉबी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : आपराधिक विविध 482/378/407 संख्या 3044 2017, 23.02.2021 को निर्णय : [(2021) 0 सर्वोच्च (इलाहाबाद) 122]।

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल द्वारा प्रदत्त)

1. सूची पुनरीक्षित।

2. आवेदक के वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी को विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडेय की सहायता द्वारा तथा उ. प्र. राज्य की ओर से विद्वान ब्रीफ होल्डर श्री शशिकांत पांडेय को सुना एवं अभिलेखों का अवलोकन किया।

3. वर्तमान आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदक कुणाल चावला द्वारा निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर किया गया है:

"इसलिए सम्मानपूर्वक यह प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय इस आवेदन को स्वीकार करने की कृपा करे और 26.02.2022 के आरोप पत्र और 28.02.2022 के संज्ञान/समन आदेश के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-बी और धारा 60 के तहत केस नंबर 11020/2022 (राज्य बनाम रमन

जायसवाल और अन्य) में पूरी कार्यवाही को खारिज किया जाये जो कि उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 63, 72, जो केस अपराध संख्या 666/2021, पुलिस स्टेशन- मधुबन बापूधाम, जिला गाजियाबाद से उत्पन्न होती है, जो विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद की अदालत के समक्ष लंबित है।

आगे यह प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय कृपापूर्वक भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-बी और यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 60, 63, 72 के तहत मुकदमा संख्या 11020/2022 (राज्य बनाम रमन जायसवाल और अन्य) की आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने की कृपा करे। वर्तमान मामले के लंबित रहने के दौरान विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद की अदालत के समक्ष लंबित है, अन्यथा आवेदक को अपूरणीय हानि और क्षति होगी, और/या ऐसा अन्य आदेश पारित करे जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उपयुक्त और उचित समझे।

4. अभियोजन पक्ष श्रीमती शीलाभ मिश्रा, आबकारी निरीक्षक, सेक्टर-3, गाजियाबाद द्वारा दिनांक 30.12.2021 को थाना-मधुबन बापूधाम, जिला गाजियाबाद में दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, विपक्षी संख्या 2 को भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-बी एवं उ.प्र. आबकारी अधिनियम, 1910, की धारा 60, 63, 72 के तहत आवेदक कुणाल चावला, रमन जायसवाल, रामवीर सिंह,

सुनील कुमार, लालजी यादव व विपिन यादव के विरुद्ध भारतीय निर्मित विदेशी शराब की 4809 कार्टन और 266 खुली बोतलों की बरामदगी, चार अभियुक्तों की गिरफ्तारी और चार वाहनों, ट्रक संख्या एचआर 55 एक्स 0004, ट्रक संख्या एचआर 68 सी 5032, फोर्ड इकोस्पोर्ट डीएल 5 सीआर 468 और हुंडई आई-20 यूपी 16 जेड 0006 की बरामदगी के फर्द बरामदगी के आधार पर आरोप लगाया गया कि जिला मुरादाबाद में एफआईआर संख्या 385/2021 दर्ज की गई थी जिसमें नागेंद्र यादव मेरठ निवासी को भारत निर्मित विदेशी शराब की 40 बोतलें ले जाते हुए पकड़ा गया। उन्होंने खुलासा किया कि शराब गाजियाबाद से कुणाल चावला के कस्टम गोदाम से लाई गई थी और वह इसे उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में अवैध रूप से आपूर्ति करता है। सप्लाई के लिए विपिन यादव जो कुणाल चावला का आदमी है और उसका मोबाइल नंबर 8800482499 है, उसकी मदद करता है और उक्त नंबर पर कॉल करके कहीं भी शराब मंगाई जा सकती है। उक्त सूचना पर प्रथम सूचनादाता की देखरेख में जिला आबकारी अधिकारी, गाजियाबाद ने आबकारी निरीक्षकों और मेरठ के आबकारी विभाग के प्रवर्तन अधिकारियों के साथ एक टीम का गठन किया। दिनांक 29.12.2021 को मुरादाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर उक्त अधिकारी थाना मधुबन क्षेत्र में कुणाल चावला के गोदाम पर पहुंचे। गोदाम का मुख्य गेट खुला हुआ था और अंदर दो ट्रक खड़े थे जिनमें से शराब के कार्टन अंदर रखे जा रहे थे। अंदर दो लोग मिले। पूछने पर उन्होंने अपना नाम रमन जायसवाल और रामवीर सिंह

बताया। आगे पूछने पर, उन्होंने खुलासा किया कि वे कुणाल चावला के लिए उक्त गोदाम में थे और उनका काम शराब के डिब्बों को उतारना और विभिन्न स्थानों पर आपूर्ति करना है। विपिन यादव के बारे में पूछने पर उन्होंने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया, लेकिन उनके मोबाइल की जांच करने पर उसमें विपिन यादव का नंबर मिला और उनके मोबाइल पर नियमित कॉल आ रहे थे। संदेह होने पर गोदाम की सघन तलाशी ली गई। ट्रकों से उतारी जा रही सामग्री के संबंध में कागजात मांगे गए थे जो नहीं दिखाए जा सके। ट्रक चालकों ने अपना नाम सुनील कुमार और लालजी बताया है। वे मांगने पर सामग्री के कागजात भी नहीं दिखा सके। गोदाम में रखी शराब के संबंध में लाइसेंस मांगने पर, व्यक्ति कोई लाइसेंस नहीं दिखा सके और न ही स्टॉक और इसके विवरण के संबंध में कोई दस्तावेज पेश कर सके। ट्रक संख्या HR 55 X 0048 से बैलेंटाइन ब्रांड की शराब उतारी जा रही थी और दूसरे ट्रक संख्या एचआर 68 सी 5032 पर 500 कार्टन रेड लेबल ब्रांड की शराब मौजूद थी, जिसे उतारा जा रहा था। इसके बाद गोदाम का निरीक्षण किया गया जहां विभिन्न ब्रांडों की शराब मिली। इसके बाद 75 भारत निर्मित विदेशी शराब की उक्त टीम द्वारा एक सूची तैयार की गई जो कुल 4809 डिब्बों में थी और 266 खुली बोतलें थीं। डिब्बों का निरीक्षण किया गया और कुछ डिब्बों में एफएसएसएआई और मूल कंपनी का कोई टैग नहीं था जिससे पता चलता कि सामग्री कानूनी माध्यम से नहीं आई है। भारत सरकार और राज्य सरकार को सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क की हानि हो रही थी। इसके अलावा मूल

कंपनी के अलग-अलग बैच नंबर थे। यहां तक कि बैच नंबर और निर्माण की तारीख भी गायब थी। गहन निरीक्षण करने पर सफेद रंग के 50 प्लास्टिक बैग, एक नीले रंग का प्लास्टिक बैग, रबर बैंड का एक पैकेट, टेप के 7 बंडल, काले रंग की पॉलिथीन का एक पैकेट, नीले रंग की पॉलिथीन का एक पैकेट, ग्लेनफिडिच के 180 खाली बक्से और बक्सों में इस्तेमाल होने वाली पांच मुहरें मिलीं। उक्त व्यक्तियों से आगे की जांच करने पर, उन्होंने कहा कि वे कुणाल चावला के लिए काम करते हैं और शराब को काली पॉलिथीन में विभिन्न स्थानों पर ले जाया जाता है। फोर्ड ईकोस्पोर्ट और हुंडई आई-20 में भी शराब बरामद की गई थी। रमन जायसवाल और रामवीर सिंह की जांच करने पर उन्होंने खुलासा किया कि कुणाल चावला के गोदाम से निर्देश पर राज्य के विभिन्न स्थानों और विभिन्न जिलों में और गाजियाबाद में भी सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क का भुगतान किए बिना शराब की डिलीवरी की जाती है। यह कहा गया है कि कुणाल चावला और अन्य व्यक्ति एक गिरोह चला रहे हैं जिसके कारण सरकार को उसके सीमा शुल्क से चूना लगाया जा रहा है और राज्य सरकार को उत्पाद शुल्क से भी चूना लगाया जा रहा है। बरामद सामग्री के नमूने लिए गए और फर्द बरामदगी तैयार किया गया जिसे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए दिया गया और इस प्रकार प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

5. इस मामले में जांच समाप्त हुई और रमन जायसवाल, रामवीर सिंह, सुनील कुमार, लालजी यादव और कुणाल चावला (वर्तमान

आवेदक) के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-बी और उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 की धारा 60, 63, 63 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

6. विचारण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 28.02.2022 के तहत उक्त चार्जशीट पर संज्ञान लिया और आवेदक कुणाल चावला और अन्य आरोपी व्यक्तियों को मुकदमे का सामना करने के लिए तलब किया।

7. आवेदक को आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 21/2022 (कुणाल चावला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.02.2022 के तहत अग्रिम जमानत दी गई थी।

8. विचारण न्यायालय ने अपने 30.03.2023 के आदेश के तहत आवेदक के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-बी और उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 की धारा 60, 63 के तहत आरोप तय किए। उक्त आरोप को आवेदक-आरोपी को पढ़कर सुनाया गया, जिसने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

9. इसके बाद मुकदमा आपराधिक मुकदमा संख्या 753/2022 (यूपी राज्य बनाम रमन जायसवाल और अन्य) के रूप में शुरू हुआ, जिसमें पीडब्ल्यू -1, प्रथम सूचनादाता शीलभ मिश्रा का बयान 22.03.2023 को दर्ज किया जाना शुरू हुआ, जो 04.05.2023 को समाप्त हुआ और फिर आबकारी निरीक्षक, गाजियाबाद

अखिलेश वर्मा का बयान पीडब्ल्यू -2 के रूप में दर्ज किया गया, जो 11.04.2023 को शुरू हुआ और अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।

10. जांच के लंबित रहने के दौरान, आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 13402/2022 (कुणाल चावला बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और 2 अन्य) के रूप में क्रमांकित एक रिट याचिका दायर की, जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए एक और अनुरोध किया गया था कि उसे मामले में गिरफ्तार न किया जाए, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने दिनांक 19.09.2022 के आदेश के तहत निर्देश दिया कि सूचीकरण की अगली तारीख तक या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक, जो भी पहले हो, उत्तरदाताओं को चल रही जांच में सहयोग की शर्त पर याचिकाकर्ता को संबंधित एफआईआर के अनुसार गिरफ्तार करने से रोका जाता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन इस प्रकार उपरोक्त प्रार्थनाओं के साथ दायर किया गया है।

11. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नानुसार तर्क दिया: -

(i) आबकारी अधिनियम की धारा 60, 63 के तहत अपराधों के लिए विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान नहीं लिया जा सकता था क्योंकि पुलिस रिपोर्ट पर ऐसा नहीं किया जा सकता है। आबकारी अधिनियम की धारा 70 के

अनुसार, केवल आबकारी अधिकारी की शिकायत या रिपोर्ट पर संज्ञान लिया जा सकता है। आवेदक के खिलाफ मुकदमा शुरू से ही अमान्य है क्योंकि यह आगे नहीं बढ़ सकता है।

(ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-ख के अंतर्गत कोई अपराध नहीं बनता है। कोई कपटपूर्ण कार्य नहीं है, कोई गलत प्रतिनिधित्व नहीं है और ऐसा कुछ भी बेईमानी नहीं है जो साक्ष्य में आया हो जिससे आवेदक के खिलाफ मामला बनाया जा सके।

(iii) आवेदक कुणाल चावला और उनकी पत्नी रुचि चावला मैसर्स मेहर ग्लोबल स्पिरिट प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक हैं। कंपनी को कंपनी अधिनियम, 2013 के तहत 05.11.2018 को शामिल किया गया है, लेकिन कंपनी को आरोपी के रूप में नहीं बनाया गया है और इस तरह कंपनी के निदेशक पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। **डेले डी सूजा बनाम भारत सरकार उप मुख्य श्रम आयुक्त और अन्य के माध्यम से: एआईआर 2021 एससी 5626** के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा किया गया है।

(iv) यदि मामला सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क की चोरी का है तो संबंधित प्राधिकारियों को कानून के अनुसार कार्रवाई करनी चाहिए थी, लेकिन तय किए गए आरोप किसी भी तरह से यह नहीं दर्शाते हैं कि आवेदक पर इसके लिए मुकदमा चलाया जा रहा है।

(v) कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत एक याचिका सुनवाई योग्य है, भले ही मुकदमा शुरू हो गया हो और कुछ गवाहों से पूछताछ की गई हो जैसा कि इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा **शुएब महमूद किदवाई @ बॉबी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में कहा गया है: (2021) (0) सुप्रीम (सभी) 122।**

(vi) **सुरिंदर कुमार खन्ना बनाम खुफिया अधिकारी राजस्व आसूचना निदेशालय: (2018) 8 एससीसी 271** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है और पैराग्राफ संख्या 7, 8 और 14 पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया गया है कि जहां तक आवेदक के खिलाफ साक्ष्य का संबंध है, यह केवल सह-अभियुक्त की स्वीकारोक्ति है। अदालत स्वीकारोक्ति को ध्यान में रख सकती है लेकिन यह एक सबूत नहीं है, इसकी पुष्टि करने के लिए अन्य सबूत भी होने चाहिए।

12. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने रद्द करने के अनुरोध का विरोध किया और निम्नानुसार तर्क दिया:

(i) आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है। एक आरोप है कि आवेदक उस गोदाम का मालिक है जहां से अवैध शराब बरामद की गई है।

(ii) जहां तक गोदाम के स्वामित्व का संबंध है, उस पर विवाद नहीं किया गया है और यहां

तक कि बरामद की गई सामग्री पर भी विवाद नहीं किया गया है।

(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप प्रथम दृष्टया आवेदक के विरुद्ध मामला बनाते हैं।

(iv) जहां तक भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराधों के आरोपों का संबंध है, प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एक आरोप है कि अवैध/अवैध शराब पाई गई जिसके लिए दस्तावेज नहीं दिखाए जा सके और यहां तक कि शराब पर एफएसएसआई और मूल कंपनी की कोई टैगिंग भी नहीं थी जिससे पता चलता है कि यह वास्तविक चैनलों के माध्यम से नहीं आ रहा था। एक आरोप यह भी है कि बैच संख्या और निर्माण की तारीख का भी उल्लेख नहीं किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि शराब की कई खाली पेटियां भी पाई गईं। वहां के लोगों द्वारा कोई संतोषजनक जवाब नहीं दिया गया। यह प्रस्तुत किया जाता है कि कार्यवाही एक विशेष अधिनियम और सामान्य कानून के तहत है। कार्यवाही को एक साथ जारी रखने पर रोक नहीं है।

(v) जहां तक कंपनी को आरोपी न बनाए जाने और उक्त आधार पर कार्यवाही रद्द किए जाने का संबंध है, प्रथम दृष्टया यह पाया गया कि गोदाम आवेदक के स्वामित्व में था और क्या यह कंपनी के उपयोग के लिए था या नहीं, यह परीक्षण का विषय है।

(vi) वर्तमान मामले में विचारण शुरू हो गया है जिसमें एक गवाह से पूछताछ की जा चुकी है और दूसरे गवाह का बयान दर्ज किया जा रहा है। इस स्तर पर कार्यवाही को रद्द करना सही नहीं होगा क्योंकि इस स्तर पर मुकदमे को बाधित करना उचित नहीं होगा।

13. पक्षकारों के वकीलों को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है। उनके खिलाफ आरोप हैं कि ट्रक से अवैध शराब उतारकर उनके गोदाम में स्टॉक की जा रही थी। गोदाम में पाई गई सामग्री में कतिपय आवश्यक औपचारिकताओं की कमी थी जिसके कारण यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह कानूनी माध्यम से नहीं आया है। यहां तक कि संबंधित व्यक्तियों द्वारा इसके संबंध में कोई स्पष्टीकरण और प्रासंगिक दस्तावेजों की प्रस्तुति भी नहीं दी गई थी। वर्तमान याचिका में भी गोदाम के स्वामित्व और सामग्री की वसूली को चुनौती नहीं दी गई है। सामग्री की बरामदगी और कुछ आरोपियों की गिरफ्तारी के बाद, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई जिसके बाद जांच समाप्त हो गई और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिस पर विचारण न्यायालय ने संज्ञान लिया और आवेदक और अन्य आरोपी व्यक्तियों को तलब किया। आवेदक के पेश होने पर विचारण न्यायालय ने उसके खिलाफ आरोप तय किए। उक्त आरोपों को आवेदक को पढ़कर सुनाया गया जिसके लिए उसने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया। आरोप पत्र पर संज्ञान लेने, विचारण न्यायालय द्वारा आवेदक को तलब करने और उसके

खिलाफ आरोप तय करने के आदेश को कोई चुनौती नहीं दी गई थी, लेकिन आरोप तय होने के बाद उनके द्वारा कही गई एकमात्र बात यह थी कि वह आरोपों से इनकार करते हैं और उन पर मुकदमा चलाए जाने का दावा करते हैं। ट्रायल शुरू हुआ जिसमें पीडब्ल्यू-1 का बयान दर्ज किया गया है जो पहला सूचना देने वाला है। पीडब्ल्यू-2 के रूप में दूसरे गवाह का बयान दर्ज किया जा रहा है। अब इस स्तर पर, कार्यवाही को रद्द करने के लिए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

14. रतिलाल भानजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य : (1979) 2 SCC 179 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि आरोप तय होने के बाद आरोपमुक्त नहीं किया जा सकता है, लेकिन मामले के गुण-दोष को देखते हुए दोषी नहीं पाए जाने पर ही बरी किया जा सकता है। यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है: -

"24. सबसे पहले, आइए हम दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के प्रासंगिक प्रावधानों पर एक नज़र डालें, जो इस मामले में लंबित कार्यवाही को नियंत्रित करते हैं। मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट मामलों के विचारण की प्रक्रिया उस संहिता के अध्याय XXI में दी गई है। वर्तमान मामला एक आपराधिक शिकायत पर स्थापित किया गया था। धारा 252 में प्रावधान है कि ऐसे मामले में, मजिस्ट्रेट शिकायतकर्ता (यदि कोई हो) को सुनने के लिए आगे बढ़ेगा और अभियोजन पक्ष के समर्थन में ऐसे सभी सबूत, जो पेश किए जा सकते हैं, लेंगे। उस धारा की उपधारा (2) मजिस्ट्रेट पर यह कर्तव्य डालती

है कि वह मामले के तथ्यों से परिचित होने वाले संभावित व्यक्तियों के नामों का पता लगाए और अभियोजन पक्ष के लिए साक्ष्य देने में सक्षम हो, और ऐसे सभी व्यक्तियों को साक्ष्य के लिए बुलाए। धारा 253 इंगित करती है कि कब और किन परिस्थितियों में एक आरोपी को आरोपमुक्त किया जा सकता है: इसमें कहा गया है:

(1) यदि धारा 252 में उल्लिखित सभी साक्ष्यों को लेने और अभियुक्त की ऐसी जांच (यदि कोई हो) करने पर, जैसा कि मजिस्ट्रेट आवश्यक समझता है, तो वह पाता है कि अभियुक्त के खिलाफ कोई ऐसा मामला नहीं बनाया गया है, जिसका यदि खंडन नहीं किया जाता है, तो उसे दोषी ठहराया जाएगा, तो मजिस्ट्रेट उसे आरोपमुक्त कर देगा।

(2) इस धारा की कोई भी बात मजिस्ट्रेट को मामले के किसी पिछले चरण में अभियुक्त को आरोपमुक्त करने से रोकने के लिए नहीं समझी जाएगी, यदि ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, वह आरोप को आधारहीन मानता है।

धारा 254 इंगित करती है कि कब और किन परिस्थितियों में आरोप तय किया जाना चाहिए। इसमें लिखा है:

"यदि इस तरह के साक्ष्य और परीक्षण लिए गए हैं और किए गए हैं, या मामले के किसी पिछले चरण में, मजिस्ट्रेट की राय है कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने इस अध्याय के तहत दंडनीय अपराध किया है,

जिसे ऐसा मजिस्ट्रेट मुकदमा चलाने के लिए सक्षम है, और जो, उसकी राय में, उसके द्वारा पर्याप्त रूप से दंडित किया जा सकता है, वह आरोपी के खिलाफ लिखित में आरोप तय करेंगे।

धारा 255 में कहा गया है कि आरोप को तब पढ़ा जाएगा और आरोपी को समझाया जाएगा, और उससे पूछा जाएगा कि क्या वह दोषी है या उसके पास कोई बचाव करने के लिए है। यदि अभियुक्त दोषी हो जाता है, तो मजिस्ट्रेट उस याचिका को रिकॉर्ड करेगा, और उस पर उसे दोषी ठहरा सकता है।

25. धारा 256 में प्रावधान है कि यदि अभियुक्त पैरवी करने से इनकार करता है या पैरवी नहीं करता है, या मुकदमा चलाने का दावा करता है, तो उसे अगली सुनवाई में यह बताना होगा कि क्या वह अभियोजन पक्ष के लिए किसी भी गवाह से जिरह करना चाहता है, जिसके साक्ष्य लिए गए हैं, और यदि वह कहता है कि वह जिरह करना चाहता है, उनके द्वारा नामित गवाहों को वापस बुलाया जाएगा और उन्हें आगे उनसे जिरह करने की अनुमति दी जाएगी। "अभियोजन पक्ष के लिए किसी भी शेष गवाह के साक्ष्य लिए जाएंगे" और उसके बाद अभियुक्त को अपने बचाव में प्रवेश करने और पेश करने के लिए बुलाया जाएगा।

26. धारा 257 महत्वपूर्ण नहीं है। धारा 258 (1) में प्रावधान है कि यदि किसी मामले में जिसमें आरोप तय किए गए हैं, मजिस्ट्रेट आरोपी को दोषी नहीं पाता है, तो वह बरी करने का आदेश दर्ज करेगा। उप-धारा (2) में

अपेक्षा की गई है, जहां इस अध्याय के तहत किसी भी मामले में, मजिस्ट्रेट धारा 349 या धारा 562 के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही नहीं करता है, तो वह आरोपी को दोषी पाता है, तो उसे कानून के अनुसार सजा देगा।

27. ऊपर देखे गए प्रावधानों की योजना से यह स्पष्ट है कि पुलिस रिपोर्ट के अलावा अन्यथा स्थापित वारंट मामले में, अभियुक्त का "आरोपमुक्त" या "बरी" अदालत में कार्यवाही के विभिन्न चरणों पर लागू होने वाली अलग-अलग अवधारणाएं हैं। कानूनी प्रभाव और "आरोपमुक्त" और "बरी" की घटनाएं भी अलग-अलग हैं। शिकायत पर शुरू किए गए वारंट मामले में आरोपमुक्त करने का आदेश प्रक्रिया जारी होने के बाद और आरोप तय होने से पहले ही दिया जा सकता है। धारा 253 (1) से पता चलता है कि एक सामान्य नियम के रूप में आरोपमुक्त करने का कोई आदेश नहीं हो सकता है जब तक कि अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों के साक्ष्य नहीं लिए जाते हैं और मजिस्ट्रेट सबूतों के प्रकाश में दर्ज किए जाने वाले कारणों पर विचार करता है कि कोई मामला नहीं बनाया गया है। उप-धारा (2) जो मजिस्ट्रेट को मामले के किसी भी पिछले चरण में अभियुक्त को आरोपमुक्त करने के लिए अधिकृत करती है यदि वह आरोप को आधारहीन मानता है, उस नियम का अपवाद है। लिए गए सबूतों पर विचार किए बिना आरोपमुक्त करना अवैध है। यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो मजिस्ट्रेट को धारा 254 के तहत आगे बढ़ना चाहिए और आरोपी के खिलाफ आरोप तय करना चाहिए। धारा 254 से पता चलता है कि आरोप तब तय किया जा

सकता है जब सबूत लेने के बाद या किसी पिछले चरण में, मजिस्ट्रेट को लगता है कि यह मानने का आधार है कि आरोपी ने वारंट मामले के रूप में दंडनीय अपराध किया है।

28. एक बार आरोप तय हो जाने के बाद, मजिस्ट्रेट के पास धारा 227 या संहिता के किसी अन्य प्रावधान के तहत आरोप को रद्द करने और धारा 253 के चरण में कार्यवाही को उलटने और आरोपी को आरोपमुक्त करने की कोई शक्ति नहीं है। वारंट मामले में मुकदमा आरोप तय होने के साथ शुरू होता है; इससे पहले, कार्यवाही केवल एक जांच है। आरोप तय होने के बाद यदि अभियुक्त दोषी नहीं है, तो मजिस्ट्रेट को धारा 254 से 258 में प्रदान किए गए तरीके से मुकदमे को तार्किक अंत तक आगे बढ़ाने की आवश्यकता होती है। एक बार जब शिकायत या पुलिस रिपोर्ट पर वारंट मामले में आरोप तय हो जाता है, तो मजिस्ट्रेट के पास आरोपी को आरोपमुक्त करने के लिए संहिता के तहत कोई शक्ति नहीं होती है, और उसके बाद, वह या तो आरोपी को बरी या दोषी ठहरा सकता है जब तक कि वह 1898 की संहिता की धारा 349 और 562 (जो 1973 की धारा 325 और 360 के अनुरूप है) के तहत आगे बढ़ने का फैसला नहीं करता है।

29. सिवाय इसके कि जहां अभियोजन पक्ष को मौलिक दोष के अभाव में विफल होना चाहिए, जैसे कि मंजूरी की कमी, बरी करने का आदेश मामले के गुण-दोष और मुकदमे के समापन पर साक्ष्य की सराहना पर "दोषी नहीं होने के निष्कर्ष" पर आधारित होना चाहिए।

30. यदि आरोप तय करने के बाद मजिस्ट्रेट मनमाने ढंग से, सबूतों का मूल्यांकन किए बिना और अभियोजन पक्ष को अपने सभी सबूत पेश करने की अनुमति दिए बिना, आरोपी को "मुक्त" कर देता है, तो बिना सुनवाई के, भले ही "मुक्ति" का जामा पहनाया गया हो, ऐसा बरी करना अवैध होगा। इस मामले में ठीक यही हुआ है। यहां मजिस्ट्रेट ने 12 दिसंबर 1962 के अपने आदेश से मिठानी और दो अन्य के खिलाफ आरोप तय किए। इसके बाद, जब न्यायमूर्ति गोखले द्वारा पुनरीक्षण आवेदनों के निपटारे पर, रिकॉर्ड वापस प्राप्त हुए, तो उन्होंने मनमाने ढंग से उन आरोपों को हटा दिया और अभियोजन पक्ष के "शेष गवाहों" की जांच किए बिना आरोपी को आरोपमुक्त कर दिया, जो उनके पास आरोप तय करने के आदेश में था।

(जोर दिया गया)

15. वर्तमान मामले में भी स्थिति वैसी ही है। चार्जशीट पर संज्ञान लेने, आरोप तय करने, आरोपी द्वारा दोष स्वीकार न करने और मुकदमा चलाने का दावा करने के बाद, मुकदमा शुरू हो गया है और एक गवाह की जांच की गई है, जबकि अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए जा रहे हैं, मुकदमे का सामना कर रहा आवेदक 28.02.2022 के संज्ञान/समन आदेश के साथ-साथ मुकदमे की पूरी कार्यवाही को इतने देर से चरण में चुनौती देता है।

16. *आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य: एआईआर 1960 एससी 866; हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य:*

1992 सुप्य (1) एससीसी 335; बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा: 1992 (1) एससीसी 222; ट्राइसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य: (1999) 8 एससीसी 686; एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह और अन्य: (2001) 8 एससीसी 645; झंडू फार्मास्यूटिकल्स वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद शरीफुल हक: (2005) 1 एससीसी 122; एमएन ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव: (2009) 9 एससीसी 682; जोसेफ सल्वारज ए बनाम गुजरात राज्य और अन्य: (2011) 7 एससीसी 59; अरुण भंडारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (2013) 2 एससीसी 801; मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य: (2019) 6 एससीसी 107; आनंद कुमार मोहट्टा और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), गृह विभाग और अन्य: (2019) 11 एससीसी 706; राजीव कौरव बनाम बालासाहेब और अन्य: (2020) 3 एससीसी 317; नल्लापारेडुडी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य: (2020) 12 एससीसी 467, के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह फैसला सुनाया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण है। शिकायत/एफआईआर/आरोप-पत्र की जांच शुरू करने से पहले उच्च न्यायालय द्वारा यह तय करने में बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए कि क्या दुर्लभतम मामला अभियोजन पक्ष को विफल करने के लिए बनाया गया है।

17. इसके अलावा, प्रीति सराफ और अन्य बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 206

के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों पर विचार करते हुए निम्नानुसार कहा है:

"यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का उपयोग करने के लिए, शिकायत की पूरी तरह से शिकायत/ एफआईआर / चार्जशीट में लगाए गए आरोपों के आधार पर जांच की जानी चाहिए और उस स्तर पर उच्च न्यायालय इस मामले में जाने या इसकी शुद्धता की जांच करने के लिए बाध्य नहीं था। शिकायत/एफआईआर/आरोप-पत्र के सामने जो कुछ भी दिखाई देता है, उसे बिना किसी आलोचनात्मक जांच के ध्यान में रखा जाएगा। अपराध शिकायत/एफआईआर/आरोप-पत्र और अन्य दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो, रिकॉर्ड पर दिखाई देना चाहिए।

24. विचारार्थ उठाया जाने वाला प्रश्न यह है कि किन परिस्थितियों और मामलों की श्रेणियों में या तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की असाधारण शक्तियों का प्रयोग करते हुए या धारा 482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही रद्द की जा सकती है। इस पर इस न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष अक्सर गर्म बहस हुई है। यद्यपि निर्णयों की एक श्रृंखला में, इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर दिया गया है, फिर भी यह अभी भी विचार के लिए आता है और इस पर गंभीरता से बहस की जाती है।

25. इस पृष्ठभूमि में, धारा 482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के दायरे और दायरे की जांच हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य (1992 सप्ल (1) एससीसी 335) मामले में इस न्यायालय के फैसले में की गई है। संबंधित पैरा का उल्लेख नीचे किया गया है: -

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक शृंखला में प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिसे हमने ऊपर निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का उपयोग या तो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि किसी भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से प्रसारित और अनम्य दिशानिर्देशों या कठोर सूत्रों को निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें ऐसी शक्ति का उपयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता

में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जाता है।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए अकाट्य आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी भी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां संहिता की धारा 155 (2) के तहत विचार किए गए मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में संस्था को कानूनी रूप से प्रतिबंधित किया गया है और कार्यवाही को जारी रखना और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण तरीके से की जाती है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध के लिए कहर बरपाने के इरादे से शुरू की जाती है और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे दंडित करने की दृष्टि से की जाती है।

26. इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालयों द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले दिशा-निर्देशों को निर्धारित करने में व्यापक रूपरेखा और मापदंडों को स्पष्ट किया है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांत चित्रात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। फिर भी, यह उन परिस्थितियों और स्थिति पर प्रकाश डालता है जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए जब उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करता है।

27. हाल ही में इस न्यायालय द्वारा अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 964 में इसे और स्पष्ट किया गया है, जहां भारत

के संविधान के अनुच्छेद 226 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का काफी विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

28. इस प्रकार यह तय किया जाता है कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण शक्ति है, जिसे शिकायत/एफआईआर/आरोप-पत्र की जांच शुरू करने से पहले बहुत सावधानी के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि यह तय किया जा सके कि क्या मामला दुर्लभतम मामला है।

18. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 484 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ नंबर 27, 38 और 39 में कहा है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आपराधिक मामले को रद्द करना केवल असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए। पैराग्राफ 27, 38 और 39 यहां उद्धृत किए गए हैं:

"27. भले ही, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति व्यापक है, लेकिन असाधारण मामलों में ऐसी शक्ति का उपयोग सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। मांगने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

38. न्याय का उद्देश्य बेहतर होगा यदि न्यायालय का बहुमूल्य समय धारा 482 के तहत याचिकाओं पर सुनवाई करने के बजाय अपीलों की सुनवाई में खर्च किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अंततः न्याय का उल्लंघन हो सकता है जैसा कि हमीदा बनाम राशिद @ रशीद और अन्य, (2008) 1 एससीसी 474 में कहा गया है।

39. हमारी सुविचारित राय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को केवल इसलिए नहीं रोका जा सकता है क्योंकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा दर्ज की गई है। यह संभव है कि किसी राजनीतिक विपक्षी के इशारे पर झूठी शिकायत दर्ज की गई हो। हालांकि, इस तरह की संभावना आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहराएगी। जैसा कि ऊपर देखा गया है, पहले के आपराधिक मामले के बंद होने के बाद, कथित कृत्यों द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। शिकायत में लगाए गए आरोप अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध हैं। आरोप सही हैं या असत्य, यह मुकदमे में तय करना होगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय असाधारण रूप से दुर्लभ मामलों को छोड़कर शिकायत में आरोपों की शुद्धता की जांच नहीं करता है, जहां यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। शिकायत केस नंबर

19/2018 ऐसा मामला नहीं है जिसे आगे के ट्रायल के बिना शुरुआत में ही रद्द कर दिया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया।

19. इसके अलावा **डेक्साबेन बनाम गुजरात राज्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936** के पैरा 49 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"49. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय असाधारण रूप से दुर्लभ मामलों को छोड़कर शिकायत में आरोप की शुद्धता की जांच नहीं करता है, जहां यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।

20. जहां तक आबकारी अधिनियम के तहत अपराधों के संबंध में तर्क का संबंध है, संज्ञान लेना और इसके लिए आवेदक पर मुकदमा चलाना है, हालांकि यह जोरदार तर्क दिया जाता है कि मुकदमा कानून की नजर में खराब है और शुरू से ही अमान्य है, लेकिन **महाराष्ट्र राज्य बनाम सैयद हसन सैयद सुभान के मामले में: (2019) 18 एससीसी 145** सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि दो अलग-अलग अधिनियमों के तहत किसी अभियुक्त के मुकदमे या दोषसिद्धि पर कोई रोक नहीं है। एकमात्र रोक यह है कि उसे अपराध के लिए दो बार सजा दी जाए। इसे निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

"दो अलग-अलग अधिनियमों के तहत किसी अपराधी के मुकदमे या दोषसिद्धि पर कोई रोक नहीं है, लेकिन यह रोक केवल अपराध के लिए अपराधी को दो बार सजा देने के लिए है। जहां कोई कार्य या चूक दो अधिनियमों के तहत अपराध का गठन करती है, अपराधी पर मुकदमा चलाया जा सकता है और उसे या दोनों अधिनियमों के तहत दंडित किया जा सकता है, लेकिन एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित नहीं किया जाएगा। [टी.एस. बलिया बनाम टी.एस. रंगाचारी, (1969) 3 एससीआर 65: एआईआर 1969 एससी 701] कल्पनीय मामलों में तथ्यों का एक ही सेट, दो अलग-अलग कानूनों के तहत अपराध का गठन कर सकता है। एक कार्य या चूक भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध हो सकती है और साथ ही, किसी अन्य कानून के तहत अपराध हो सकती है। [बिहार राज्य बनाम मुराद अली खान, (1988) 4 एससीसी 655: 1989 एससीसी (सीआरआई) 27] उच्च न्यायालय को सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 26 पर ध्यान देना चाहिए था जो निम्नानुसार है:

"26. दो या दो से अधिक अधिनियमों के तहत दंडनीय अपराधों के बारे में प्रावधान- जहां कोई कार्य या चूक दो या दो से अधिक अधिनियमों के तहत अपराध का गठन करती है, तो अपराधी उन अधिनियमों में से किसी एक या किसी के तहत मुकदमा चलाने और दंडित करने के लिए उत्तरदायी होगा, लेकिन एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित होने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

8. हाट सिंह मामले [राजस्थान राज्य बनाम हाट सिंह, (2003) 2 एससीसी 152: 2003

एससीसी (सीआरआई) 451] में इस न्यायालय ने दोहरे खतरे के सिद्धांत और सामान्य खंड अधिनियम की धारा 26 पर चर्चा की ताकि यह देखा जा सके कि दो अलग-अलग अधिनियमों के तहत अभियोजन की अनुमति है यदि प्रावधानों के तत्व समान तथ्यों पर संतुष्ट हैं। खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 और दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए प्रतिवादी के अभियोजन के बारे में विवाद पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय [राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 437] में कहा कि दंड संहिता के तहत व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने में कोई रोक नहीं है, जहां व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराध दंडनीय और संज्ञेय अपराध हैं। खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारतीय दंड संहिता के तहत अभियोजन के लिए कोई रोक नहीं है क्योंकि खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के प्रावधान दंड निर्धारित करते हैं। इसलिए हम पहले बिंदु पर उच्च न्यायालय के फैसले को खारिज करते हैं।

21. इसके अलावा **कुंवर पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में: (2020) 14 एससीसी 331** सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि चूंकि दोनों अधिनियमों में अपराध का गठन करने वाली सामग्री अलग-अलग हैं, इसलिए दोनों अधिनियमों के तहत अभियोजन की अनुमति है। यह माना गया है कि किसी भी अन्य कानून के तहत सभी

अपराधों की जांच की जाएगी, जांच की जाएगी, आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत मुकदमा चलाया जाएगा, जो ऐसे अपराधों की जांच, परीक्षण आदि के तरीके या स्थान को विनियमित करने वाले किसी भी अधिनियमन के अधीन होगा। यह निम्नानुसार आयोजित किया जाता है: -

"4. अपीलकर्ता द्वारा दायर लिखित प्रस्तुतियों में, बेलसुंड शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य [बेलसुंड शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य, (1999) 9 एससीसी 620], शरत बाबू दिगुमरती बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) [शरत बाबू दिगुमरती बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) में इस न्यायालय के फैसलों पर भरोसा करके एक अपेक्षाकृत नई याचिका और विवाद उठाया गया है। (2017) 2 एससीसी 18: (2017) 1 एससीसी (सीआरआई) 628] और सुरेश नंदा बनाम सीबीआई [सुरेश नंदा बनाम सीबीआई, (2008) 3 एससीसी 674: (2008) 2 एससीसी (सीआरआई) 121] यह आग्रह करने के लिए कि खान और खनिज [विकास और विनियमन] अधिनियम, 1957 एक विशेष कानून होने के नाते, धारा 379 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए अभियोजन योग्य नहीं होगा। राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय (राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (आपराधिक) 437] में इस न्यायालय के फैसले को संजय [राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (आपराधिक) 437 में अवैध रेत

खनन के खिलाफ अपराध के लिए एफआईआर के रूप में अलग किया गया था। इसलिए, उस मामले में अनुपात केवल अवैध खनन के मामलों पर लागू होगा जहां खनन पट्टे को पहले ही रद्द कर दिया गया था या कोई खनन पट्टा नहीं था।

5. हम अपीलकर्ता की दलील को असमर्थनीय पाते हैं। संजय [राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 437] मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने दिल्ली उच्च न्यायालय के परस्पर विपक्षी निर्णयों खिलाफ वरीयता प्राप्त अपीलों का फैसला किया था। [संजय बनाम राज्य, 2009 एससीसी ऑनलाइन डेल 525: (2009) 109 डीआरजे 594], गुजरात उच्च न्यायालय [विशालभाई रमेशभाई खुराना बनाम गुजरात राज्य], 2010 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 13915: (2010) 3 जीसीडी 2160], केरल उच्च न्यायालय [मूसाकोया बनाम केरल राज्य, 2007 एससीसी ऑनलाइन केर 584: (2008) 1 केएलटी 538], कलकत्ता उच्च न्यायालय [सीमा सरकार बनाम राज्य, 1994 एससीसी ऑनलाइन कैल 277: (1995) 1 कैल एलटी 95, मद्रास उच्च न्यायालय [एम. पलानीसामी बनाम तमिलनाडु राज्य] (2012) 4 सीटीसी 1, [सिंगोल बनाम राज्य, 2012 एससीसी ऑनलाइन मैड 82: (2012) 2 सीटीसी 369] और झारखंड उच्च न्यायालय इस सवाल पर कि क्या खान और खनिज [विकास और विनियमन] अधिनियम की धारा 22 के मद्देनजर अवैध खनन के आरोपों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 379/114 और अन्य प्रावधानों के तहत

अपराधों के लिए किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है, 1957, जो निम्नानुसार है:

"22. अपराधों का संज्ञान- कोई भी न्यायालय इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, सिवाय केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित में की गई शिकायत के बिना।

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (सी), 2 (डी) और 2 (एच) जो क्रमशः "संज्ञेय अपराध", "शिकायत" और "जांच" को परिभाषित करते हैं, के प्रावधानों का उल्लेख करने के बाद, संजय [राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 437] में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 का उल्लेख किया था। जो इस प्रकार है::

"4. भारतीय दंड संहिता और अन्य कानूनों के तहत अपराधों का परीक्षण।—(1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के तहत सभी अपराधों की जांच, पूछताछ, मुकदमा चलाया जाएगा और अन्यथा इसमें शामिल प्रावधानों के अनुसार निपटाया जाएगा।

(2) किसी अन्य कानून के तहत सभी अपराधों की जांच की जाएगी, जांच की जाएगी, मुकदमा चलाया जाएगा, और अन्यथा समान प्रावधानों के अनुसार निपटाया जाएगा, लेकिन ऐसे अपराधों की जांच, पूछताछ, प्रयास करने

या अन्यथा निपटने के तरीके या स्थान को विनियमित करने के लिए कुछ समय के लिए लागू किसी भी अधिनियमन के अधीन।

धारा 4 की उप-धारा (2) के अनुसार, भारतीय दंड संहिता के अलावा किसी भी कानून के तहत सभी अपराधों की जांच, पूछताछ और मुकदमा दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किया जा सकता है, जो ऐसे अपराधों की जांच, विचारण आदि के तरीके या स्थान को विनियमित करने वाले किसी भी अधिनियमन के अधीन है।

8. तदनुसार, संजय [राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 437] में यह माना गया था कि अपराधों की जांच पुलिस के अधिकार क्षेत्र में है और संज्ञेय अपराधों की जांच करने के लिए एक पुलिस अधिकारी की शक्ति आमतौर पर किसी भी बेड़ियों द्वारा प्रभावित नहीं होती है, हालांकि शक्ति का उपयोग वैधानिक प्रावधानों के अनुसार और वैध उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए। अदालतें केवल तभी हस्तक्षेप करेंगी जब मामले की जांच करते समय वे पाते हैं कि पुलिस अधिकारी ने जांच शक्तियों का प्रयोग करते हुए वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन किया है और शक्तियों के अवैध और अनुचित उपयोग से किसी नागरिक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और / या संपत्ति को खतरे में डाल दिया है या जब पुलिस द्वारा जांच को वास्तविक नहीं पाया जाता है या जब जांच दुश्मनी से दूषित होती है। इस मुद्दे की जांच करते हुए, संजय [राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 437] में इस न्यायालय ने

एच.एन. रिशबुड बनाम दिल्ली राज्य [एचएन रिशबुड बनाम दिल्ली राज्य, एआईआर 1955 एससी 196: 1955 सीआरआई एलजे 526] में निर्णय का संज्ञान लिया, जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि जांच में कोई दोष या अवैधता, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो, उसका संज्ञान लेने या परीक्षण करने से संबंधित क्षमता या प्रक्रिया पर कोई सीधा असर नहीं पड़ता है। प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन [प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन, (1994) 3 एससीसी 440: 1994 एससीसी (सीआरआई) 785] मामले में इस न्यायालय द्वारा नोट किया गया कानून का मुख्य सिद्धांत यह है कि प्रत्येक कानून न्याय के अंत को आगे बढ़ाने के लिए डिज़ाइन किया गया है और इसे केवल तकनीकी बातों पर निराश नहीं किया जाना चाहिए। सार्वजनिक विश्वास सिद्धांत का हवाला दिया गया और इस सिद्धांत को रेखांकित करने के लिए लागू किया गया कि हवा, समुद्र, पानी, जंगल और खनिज जैसे कुछ संसाधन समग्र रूप से लोगों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं और सरकार को आम जनता के लाभ के लिए ऐसे संसाधनों को ट्रस्ट में रखने और निजी हितों की सेवा के बजाय उनके लाभ के लिए उनका उपयोग करने का आदेश दिया गया है।

22. भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के संबंध में कोई सबूत नहीं होने के तर्क के दूसरे भाग के बारे में, रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने प्रथम दृष्टया आवेदक के खिलाफ मामला बनाने के बाद आरोप पत्र पर संज्ञान लिया, उसे तलब किया और फिर भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 120-बी

और उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 60, 63, 72 के तहत उसके खिलाफ आरोप भी तय किए। उनके खिलाफ आरोप हैं कि ट्रक से अवैध शराब उतारकर उनके गोदाम में स्टॉक की जा रही थी। मुकदमा शुरू हो गया है जिसमें अभियोजन पक्ष के एक गवाह से पूछताछ की जा चुकी है और दूसरे गवाह से पूछताछ की जा रही है। आवेदक जो एक नामित अभियुक्त है, आरोपित अभियुक्त है, पर मुकदमा चलाया जा रहा है, लेकिन उसने उचित चरण में विचारण न्यायालय के समक्ष आरोपमुक्त करने का दावा करने की कोशिश नहीं की है। यहां तक कि आरोप तय करने के आदेश को भी उन्होंने अभी तक चुनौती नहीं दी है।

23. आवेदक के अधिवक्ता ने मामले पर बहस करते हुए प्रस्तुत किया है कि शुएब महमूद किदवई @ बॉबी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : 2017 के आपराधिक विविध 482/378/407 नंबर 3044, 23.02.2021 को फैसला सुनाया गया: [(2021) 0 सुप्रीम (सभी) 122] के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ (लखनऊ बेंच) के फैसले को ध्यान में रखते हुए एकल न्यायाधीश की पीठ द्वारा दिए गए संदर्भ का उत्तर दिया गया है कि क्या आरोप पत्र पर संज्ञान लेने, आरोप तय करने और इस स्तर पर मुकदमे में 19 में से 18 गवाहों से पूछताछ करने के बाद आरोपी/आवेदक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन करने के हकदार हैं। जो इस प्रकार है:-

"यह मामला इस खंडपीठ के समक्ष इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश

द्वारा अपने 12.12.2017 के आदेश के माध्यम से किए गए संदर्भ के मद्देनजर रखा गया है, जो निम्नानुसार है: -

पीठ ने कहा, "आवेदक की ओर से दायर पूरक हलफनामे को रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

पक्षों के वकीलों को सुना।

न्यायालय के दिनांक 09.05.2017 के आदेश को जारी रखते हुए, यह देखा जाता है कि आवेदक को यह दिखाने की आवश्यकता थी कि आरोपी के खिलाफ पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को अदालत द्वारा स्वीकार किया गया है या नहीं। अनुलग्नक एसए-2 के तहत प्रथम दृष्टया इस बात के साक्ष्य हैं कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। वर्तमान आवेदक के खिलाफ पांच मामले दर्ज किए गए हैं। उनमें से चार मामलों में उन्हें बरी कर दिया गया है और एक में पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया है। दिनांक 14-06-2000 के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि वर्ष 2000 में संज्ञान लिया गया था, दिनांक 27-08-2008 को अनुपत्र के माध्यम से आरोप तय किए गए थे। प्रश्न यह है कि क्या इस स्तर पर अभियुक्त/आवेदक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन करने का हकदार है, बहस के दौरान, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अनुलग्नक 7 से अनुलग्नक 12 का उल्लेख किया है ताकि यह दिखाया जा सके कि सह-अभियुक्त की ओर से आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत इसी तरह के आवेदनों को इस न्यायालय द्वारा अनुमति दी

गई है। अनुलग्नक 7 से 10 तक विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा रियायत पर आदेश पारित किया गया है। हालांकि, आदेश अनुलग्नक 11 और 12 पारित किए गए हैं, भले ही राज्य की ओर से आरोप पत्रों को रद्द करने का जोरदार विरोध किया गया था। इन दोनों मामलों में, एकल न्यायाधीश ने राय दी है कि जब गैंग चार्ट में दिखाए गए सभी 4 मामलों में, आवेदक को बरी कर दिया गया है, तो गैंगस्टर अधिनियम के तहत आवेदक का मुकदमा जारी नहीं रखा जाना चाहिए। इसके बाद उन्होंने सह-आरोपी राम कुमार सिंह और अख्तर हुसैन उर्फ सरजू के खिलाफ चल रही यूपी गैंगस्टर एक्ट की धारा 2/3 के तहत चल रहे सत्र परीक्षण संख्या 199/2000 की कार्यवाही को रद्द कर दिया है।

24. इस तर्क के संबंध में कि कंपनी को आरोपी नहीं बनाया गया है और कार्यवाही को इस आधार पर रद्द किया जाना चाहिए कि यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि गोदाम आवेदक का था जिसके पास से अवैध शराब बरामद की गई थी। आवेदक का मामला यह है कि गोदाम कंपनी का है, इसे उचित स्तर पर परीक्षण में लिया जाना है ताकि यह दिखाया जा सके कि गोदाम का मालिक कौन है और उसमें किसकी सामग्री का स्टॉक किया जा रहा है। उक्त आधार पर कार्यवाही को ही रद्द नहीं किया जा सकता है।

25. मुकदमे में साक्ष्य दर्ज करने के चरण में भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत किसी याचिका की विचारणीयता के संबंध में कानून का प्रस्ताव बिल्कुल भी विवाद में नहीं

है, लेकिन इसका निर्णय स्वतंत्र रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में होगा।

26. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे पर कानून, आवेदक के खिलाफ उपलब्ध प्रथम दृष्टया सामग्री और मामले के चरण को देखते हुए, यह न्यायालय इसे हस्तक्षेप के लिए उपयुक्त मामला नहीं पाता है, इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन को **खारिज कर दिया जाता है।**

(2023) 7 ILRA 596

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

समक्ष

माननीय श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 22529

सन् 2008

श्याम बहादुर सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री सतीश कुमार मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री श्याम सुंदर मिश्रा, श्री ओ.पी. मिश्रा

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 - पत्नियों, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश - विधि के प्रावधानों का उल्लेख न करना या

गलत उल्लेख करना किसी मामले को आगे बढ़ाने में बाधा नहीं माना जाना चाहिए - सिविल न्यायालय के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मूल रिट क्षेत्राधिकार के तहत - कोई भी मामला जो संक्षिप्त तरीके से तय किया गया हो, उस पर पुनर्न्यायिकता का प्रभाव नहीं होगा। (पैरा -6,7)

धारा 125 सीआरपीसी के तहत पत्नी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही - खारिज - पुनरीक्षण - खारिज - प्रतिवादी संख्या 2 (पत्नी) द्वारा भरण-पोषण के लिए दूसरा आवेदन दायर किया गया। धारा 125 सीआरपीसी के तहत - आधार - परिस्थितियों में बदलाव यानी पति द्वारा पुनर्विवाह - याचिकाकर्ता द्वारा आपत्ति - तथ्य के विवादित प्रश्न। **(पैरा - 8,10)**

माना गया:- धारा 125 सीआरपीसी उन व्यक्तियों पर लागू होती है जिन्हें उपेक्षित किया गया है या भरण-पोषण से इनकार किया गया है, या जो बदली हुई परिस्थितियों के कारण संसाधनों को खो देते हैं। धारा 125 सीआरपीसी के तहत भरण-पोषण का दायित्व जारी रहता है। परिस्थितियों में बदलाव किसी व्यक्ति को भरण-पोषण के लिए आवेदन करने की अनुमति देता है। फौजदारी धारा 125 सीआरपीसी के उद्देश्य को विफल कर देगी। रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में परीक्षण न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। **(पैरा-11)**

याचिका खारिज (ई-7)**उद्धृत मामलों की सूची:**

राधेश्याम एवं अन्य बनाम छबि नाथ एवं अन्य, (2015) 5 एससीसी 423

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश कुमार मिश्रा, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम सुंदर मिश्रा और राज्य की ओर से विद्वान एजीए श्री ओ.पी. मिश्रा को सुना।

2. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता की ओर से उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करते हुए अपर जिला न्यायाधीश / विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम) बांदा एवं अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, पूर्वोत्तर रेलवे, जनपद बांदा द्वारा पारित आदेश दिनांकित 31.01.2006 और 22.01.2004 क्रमशः को रद्द करने के लिए दाखिल किया गया है।

3. इस रिट याचिका के उद्देश्य के प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

प्रतिवादी संख्या 2 ने सीआरपीसी की धारा 125 के अंतर्गत अपने पति से भरण-पोषण का दावा करते हुए एक प्रार्थना पत्र दायर किया, जिसे कुछ आधारों पर 31.01.1995 को खारिज कर दिया गया; प्रतिवादी / पत्नी द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया था; प्रतिवादी संख्या 2 ने

सीआरपीसी की धारा 125 के तहत फिर से इस आधार पर दूसरा प्रार्थना पत्र दायर किया कि परिस्थितियों में बदलाव आया है, इसलिए, वह अपने पति से भरण-पोषण का दावा करने की हकदार है और द्वितीय प्रार्थना पत्र वाद संख्या 1490/2003 में उसके पति को 1,500/- रुपये प्रति माह का भुगतान करने का निर्देश देते हुए स्वीकार किया गया; उपरोक्त आदेश दिनांकित 22.01.2004 से व्यथित होकर विपक्षी ने एक आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 30/2004 दायर किया, जिसे 31.01.2006 को खारिज कर दिया गया था, अब याचिकाकर्ता पति इस न्यायालय के समक्ष परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को चुनौती दे रहा है।

4. याचिकाकर्ता की दलील का मुख्य तर्क इस प्रकार है कि प्रतिवादी की पत्नी ने कभी भी पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को चुनौती नहीं दी, जिसके द्वारा धारा 125 सीआरपीसी के तहत प्रथम प्रार्थना पत्र को खारिज करने वाले परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित पूर्व आदेश की पुष्टि की गई थी, इसलिए, पत्नी के विरुद्ध पारित आदेश अंतिम हो गया और इसलिए, धारा 125 सीआरपीसी के तहत एक और प्रार्थना पत्र दायर करके मामले को फिर से नहीं उठाया जा सकता है; यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा बाद में शुरू की गई पूरी कार्यवाही रचनात्मक पुनर्न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है और भारत के संविधान के प्रावधानों से प्रभावित है, इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए;

आगे यह तर्क दिया गया है कि भरण-पोषण देने के बाद के आदेश तथ्यात्मक और विधिक स्थितियों की अनदेखी करते हुए पारित किए गए हैं; विद्वान परीक्षण न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय ने एक अवैध आदेश पारित किया, इसलिए आदेश पोषणीय नहीं है।

5. याचिकाकर्ता के तर्क का प्रतिवादी संख्या 2 ने इस आधार पर विरोध किया है कि न्यायिक आदेश में इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं है। इसलिए याचिका को यहीं खारिज किया जाना चाहिए। उपरोक्त बिंदु पर जोर देने के लिए, राधे श्याम व अन्य बनाम छवि नाथ व अन्य, (2015) 5 एससीसी 423 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को संदर्भित किया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में कहा कि उत्प्रेषण का रिट "अवर न्यायालय", न्यायाधिकरण, सार्वजनिक प्राधिकरण या व्यक्तियों के किसी अन्य निकाय के निर्णयों की समीक्षा के लिए है ताकि न्यायालय यह निर्धारित कर सके कि उन्हें रद्द किया जाना चाहिए या नहीं।

हालाँकि, अभिव्यक्ति "हस्तक्षेप" न्यायालय न्यायिक न्यायालयों के लिए संदर्भित नहीं है उत्प्रेषण का रिट न्यायिक न्यायालयों के अलावा न्यायाधिकरणों या प्राधिकरणों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से गलत या क्षेत्राधिकार के बिना आदेशों के विरुद्ध है। सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 25 में आगे कहा:-

"25. उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आने वाले सभी न्यायालय इसके अधीनस्थ होती हैं और अनुच्छेद 227 के तहत इसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन होती हैं। रिट क्षेत्राधिकार संवैधानिक रूप से सभी उच्च न्यायालयों को प्रदान किया गया है। इंग्लैंड में अपनाए जाने वाले रिट क्षेत्राधिकार के व्यापक सिद्धांत भारत पर भी लागू होते हैं तथा उत्प्रेषण की रिट न्यायिक न्यायालयों के अलावा न्यायाधिकरणों या प्राधिकरणों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से गलत या अधिका क्षेत्राधिकार के बिना आदेशों के विरुद्ध होती है। भारत में उच्च न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को रिट जारी करने की कोई उद्धरण नहीं है। अपने न्यायिक आदेशों से निपटने में अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज का नियंत्रण अनुच्छेद 227 के तहत अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियों या अधीक्षण की शक्ति के माध्यम से किया जाता है। सिविल न्यायालय के आदेश न्यायिक / सिविल न्यायालयों के अलावा प्राधिकरणों या न्यायाधिकरणों या न्यायालयों के आदेशों से भिन्न आधार पर होते हैं। जबकि अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार विधि द्वारा विनियमित होता है, अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति संवैधानिक है। अभिव्यक्ति "अवर न्यायालय" न्यायिक न्यायालयों के संदर्भ में नहीं है"

6. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि सिविल न्यायालय के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है, न कि भारत के

संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मूल रिट क्षेत्राधिकार के तहत।

7. कुछ तथ्य इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करती हैं। भरण-पोषण अनुदान के लिए दूसरा प्रार्थना पत्र प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा वर्ष 2003 में दायर किया गया था और इसका निस्तारण एक आदेश दिनांकित 22.01.2004 द्वारा किया गया था। उस आदेश के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण को जनवरी 2006 में खारिज कर दिया गया था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह याचिका पति द्वारा 2008 में उन आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई थी और तब से मामला लंबित है। तब से लगभग 14 साल बीत चुके हैं और इस दौरान, यह विधिक विषय न तो उठाया गया और न ही यह एहसास हुआ कि रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के बजाय अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों को लागू करने की मांग करती है। यह सुस्थापित विधि है कि विधि के प्रावधानों का उल्लेख न करना या गलत उल्लेख करना किसी मामले को आगे बढ़ाने में बाधा नहीं माना जाना चाहिए। मेरे विचार में, एक आम याचिकाकर्ता से विधि के प्रावधानों की बहुत सूक्ष्म जानकारी रखने की उम्मीद नहीं की जा सकती और यह कि यदि किसी तकनीकी बिंदु पर या विधि के किसी गलत प्रावधान के उल्लेख के आधार पर मामले को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता है तो न्यायालय अपने कर्तव्य निर्वहन से चूक जाएगी। ऐसे मामले में एक न्यायाधीश को अपनी अपेक्षित भूमिका निभानी चाहिए। इस मामले को दृष्टिगत रखते हुए, मैं इस याचिका

को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई याचिका के रूप में मानना उचित समझता हूं।

8. इसमें कोई विवाद नहीं है कि सीआरपीसी की धारा 125 के तहत पत्नी द्वारा शुरू की गई पिछली कार्यवाही खारिज कर दी गई और उसके द्वारा दायर पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया। इसमें कोई विवाद नहीं है कि सीआरपीसी की धारा 125 के तहत अगला मामला पत्नी द्वारा इस आधार पर दायर किया गया था कि परिस्थितियों में बदलाव आया है।

9. मुझे सीआरपीसी की धारा 125 के प्रासंगिक भाग को पुनः प्रस्तुत करना उचित लगता है जो नीचे दिया गया है:-

"(1) यदि पर्याप्त साधनों वाला कोई व्यक्ति भरणपोषण से इनकार या उपेक्षा करता है-

(क) अपनी पत्नी का, जो अपने भरणपोषण करने में असमर्थ है, या

(ख) अपनी धर्मज या अधर्मज अवयस्क सन्तान का चाहे विवाहित हो या न हो, जो अपना भरणपोषण करने में असमर्थ है, या

(ग) अपनी धर्मज या अधर्मज संतान का (जो विवाहित पुत्री नहीं है), जिसने वयस्कता प्राप्त कर ली है, जहाँ ऐसी संतान किसी शारीरिक या मानसिक असामान्यता या क्षति के कारण अपना भरणपोषण करने में असमर्थ है, या

(घ) अपने पिता या माता का जो अपना भरणपोषण करने में असमर्थ हैं, भरणपोषण

करने में उपेक्षा करता है, या भरणपोषण करने से इंकार करता है, तो प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट, ऐसी उपेक्षा या इंकार के साबित हो जाने पर, ऐसे व्यक्ति को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी पत्नी या ऐसी सन्तान, पिता या माता के भरणपोषण के लिए ऐसी मासिक दर पर जो कुल मिला कर पाँच सौ रुपये से ज्यादा न हो, जैसा मजिस्ट्रेट ठीक समझे, मासिक भत्ता दे और उस भत्ते का संदाय ऐसे व्यक्ति को करे जिसको संदाय करने का मजिस्ट्रेट समय-समय पर निदेश दे। बशर्ते मजिस्ट्रेट खण्ड (ख) में निर्दिष्ट अवयस्क पुत्री के पिता को निदेश दे सकता है कि वह उस समय तक ऐसा भत्ता दें जब तक वह वयस्क नहीं हो जाती है यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो कि ऐसी अवयस्क पुत्री के, यदि वह विवाहित हो, पति के पास पर्याप्त साधन नहीं हैं।

10. यह ध्यान देने योग्य है कि सीआरपीसी की धारा 125 के तहत कार्यवाही का एकमात्र उद्देश्य आवारागर्दी और गरीबी को रोकना है। धारा 125 सीआरपीसी समाज के सदस्यों को त्वरित राहत देने के लिए सीआरपीसी में पेश किए गए सामाजिक विधि का एक हिस्सा है। साथ ही, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसे मामलों में जो प्रक्रिया अपनाई जाएगी वह एक सारांश है। यह सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि कोई भी मामला जिसका निर्णय सारांश तरीके से किया गया है, उस पर पुनर्निर्णय का प्रभाव नहीं होगा, इसलिए मेरे विचार से यह तर्क गलत है। और अधिक इसलिए भी क्योंकि यह आवेदन इस आधार पर दायर किया गया है कि परिस्थितियों में बदलाव आया है यानी पति द्वारा पुनर्विवाह

किया गया है। यद्यपि याचिकाकर्ता ने पुनर्विवाह के तथ्य पर आपत्ति जताई है, तथापि, रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय को तथ्य के विवादित प्रश्नों पर विचार करने की अनुमति नहीं है।

11. ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जहां सीआरपीसी की धारा 125 के दायरे में आने वाले व्यक्ति को एक निश्चित अवधि के दौरान भरण-पोषण की उपेक्षा की गई हो या मना कर दिया गया हो। ऐसे कुछ उदाहरण हो सकते हैं जहां कोई व्यक्ति, कुछ समय के लिए अपना भरण-पोषण करने में सक्षम होता है, बदली हुई परिस्थितियों के कारण अपने संसाधनों को खो देता है। ऐसे मामलों में भरण-पोषण का दावा करने का नया अधिकार प्राप्त हो सकता है। विधिक तौर पर, सीआरपीसी की धारा 125 के तहत भरण-पोषण का दायित्व जारी है। मेरे विचार में, जब सीआरपीसी की धारा 125 के प्रावधानों के अनुसार किसी व्यक्ति को दावेदार बनने का अधिकार देने वाली परिस्थितियों में बदलाव होता है, वह भरण-पोषण के लिए बहुत अच्छी तरह से आवेदन कर सकता है। यदि इस तरह के विकल्प को बंद कर दिया जाता है, तो यह सीआरपीसी की धारा- 125 के उद्देश्य को ही विफल कर देगा। मुझे इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में विचरण न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिला है।

12. अतः यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 7 ILRA 600

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

आपराधिक अपील संख्या 6481 वर्ष 2016

और

आपराधिक अपील संख्या 6230 वर्ष 2016

अंकित

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री अजय कुमार मिश्रा, श्री राजीव लोचन शुक्ला, श्री गौतम, श्री जितेंद्र राणा

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 299, 302 सपठित 34 - हत्या के लिए सजा - आजीवन कारावास - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 154, 161 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की श्रृंखला गायब - संदेह का लाभ - अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोप कि वे मृतका को मानसिक यातना दे रहे थे तथा घटना की तिथि को उसका अपने पति से झगड़ा हुआ था, जिसके कारण उसने आत्महत्या कर ली - विवेचना के पश्चात अपीलकर्ताओं के विरुद्ध

आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया - आरोप तय किए गए - स्वयं को निर्दोष बताया - अपीलकर्ताओं ने प्रस्तुत किया कि विद्वान न्यायाधीश इस गलत निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मृत्यु गला घोटने से हुई थी न कि आत्महत्या से, यहां तक कि चिकित्सीय साक्ष्य भी इसका समर्थन नहीं करते। (पैरा 4, 8, 9, 15)

माना गया कि अपीलकर्ताओं को धारा 302 आईपीसी के तहत अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि ससुर अपराध स्थल पर नहीं थे और पति प्राइवेट नौकरी करता है तथा नौकरी के लिए गया था, जैसा कि धारा 313 सीआरपीसी के तहत दर्ज रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, जिसे परीक्षण न्यायाधीश ने स्वीकार नहीं किया - सभी गवाह मुकर गए - घटना घर में हुई लेकिन अभियुक्त की मौजूदगी साबित नहीं हुई - मौत पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृतक की हत्या करने का कोई इरादा नहीं था, सामान्य प्रकृति के अनुसार चोटें मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं, यह आत्महत्या की मौत थी, अभियुक्त ने मृतक की हत्या नहीं की थी। (पैरा 24, 25)

अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सुब्रह्मण्यम बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, 2010 (1) यूपीसीआरआर पृष्ठ 81
2. जी पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य; एआईआर 2010 एससी 2914
3. जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (67) एससी 295 (एससी)

4. उजागर सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2008 एससी (एसयूपीपी) 190
5. टॉमसो बूनो एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 (1) जेटी 389
6. रियाजुद्दीन @ राजू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 911 सन् 2012, 2.8.2022 को निर्णीत
7. अनिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य., आपराधिक अपील संख्या 703 सन् 2017, 8.12.2022 को निर्णीत
8. संतोष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 5657 सन् 2011, 22.2.2021 को निर्णीत
9. तुकाराम एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 एससीसी 250 में प्रतिवेदित
10. बी.एन. कवताकर एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में प्रतिवेदित
11. साबित्री सामंतराय बनाम ओडिशा राज्य, AIR 2022 एससी 2591, (पैरा 18, 19)
12. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116
13. मोहम्मद गयासुद्दीन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य AIR 1977 एससी 1926

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर और
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा
प्रदत्त)

1. अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता, श्री अजय कुमार मिश्रा, और राज्य की ओर से अधिवक्ता, श्री विकास गोस्वामी, को सुना।

2. ये दोनों अपीलें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या 1, मेरठ द्वारा 2015 के सत्र परीक्षण संख्या 836 (राज्य बनाम अंकित और अन्य) में थाना-परीक्षितगढ़, जिला-मेरठ के 2015 के मुकदमा अपराध संख्या 145 से उत्पन्न निर्णय और आदेश दिनांक 17.11.2016 को चुनौती देती हैं।

3. दोनों आरोपी, जो पिता और पुत्र हैं, को 2015 के मुकदमा अपराध संख्या 145 के पंजीकरण के अनुसरण में भा.द.सं. की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत दोषी ठहराया गया है। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जिसे 2015 की संख्या 836 के रूप में गिना गया। दोनों आरोपियों अंकित और हरनाम सिंह को भा.द.सं. की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत अपराध करने का दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास और रु. 15,000/- जुर्माना और चूक होने पर 6 महीने की कैद की सजा सुनाई गई है।

4. मामले की शुरुआत एक घटना से शुरू हुई जो 23.4.2015 को घटित हुई, जिसमें प्रथम मुखबिर की बहन, जिसकी शादी 19.2.2012 को अंकित कुमार पुत्र हरनाम सिंह से हुई थी और उसके पति और ससुर उसे परेशान कर रहे थे, जिससे मृतका को मानसिक यातना हुई, उसने 23.4.2015 को दोपहर करीब साढ़े तीन बजे आत्महत्या कर ली। यह पुलिस प्राधिकारी को दी गई पहली सूचना थी।

5. इसका उल्लेख प्राथमिकी में है। धनराज पुत्र अमीचंद, जो आरोपी के पड़ोस में ही रहता है, ने बताया था कि घटना की तारीख पर मृतका का इस अपीलार्थी से झगड़ा हुआ था। इस सूचना पर, भा.द.सं. की धारा 306 के तहत मामला दर्ज किया गया था। विवेचना को चाँदवीर नाम के व्यक्ति ने शुरू किया, जो पुलिस अधिकारी था। विवेचना अधिकारी घटना-स्थल पर गए, नक्शा- नजरी बनाया और भा.द.वि. की धारा 161 के तहत बयान दर्ज किया। लेकिन जांच के अंत में भा.द.सं. की धारा 302 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई।

6. अभियुक्तों को मजिस्ट्रेट द्वारा बुलाया गया और मामले को सत्र न्यायालय में सौंपने की औपचारिकता पूरी करने के बाद, मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया।

7. अभियुक्त अंकित को सत्र न्यायालय द्वारा सम्मन किये जाने पर हिरासत में लेकर विद्वान सत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। दोनों आरोपियों ने खुद को दोषी नहीं बताया और वे चाहते थे कि उनका विचारण किया जाए।

8. पुलिस ने कई गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद दोनों आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया। अभियुक्तों को तलब किए जाने पर सत्र न्यायालय द्वारा उन अपराधों को प्रतिबद्ध किया गया जिनके लिए उनके ऊपर आरोप लगाए गए थे, जो विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे। यह अभियोजन का मामला नहीं है कि मृत्यु एक हत्या है।

9. धारा 302 आईपीसी के तहत अपराध करने के लिए आरोप तय किए गए थे। दोनों आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 34 के साथ पढ़ा गया, जिसे उनके द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उन्होंने खुद को निर्दोष बताया और उन पर मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

10. विचारण आरंभ हुआ और अभियोजन पक्ष ने कुल 10 गवाहों से पूछताछ की, जो इस प्रकार हैं:

1.	प्रमोद कुमार	पी.डब्ल्यू.1
2.	परविता	पी.डब्ल्यू.2
3.	ओम	पी.डब्ल्यू.3
4.	धन राज सिंह	पी.डब्ल्यू.4
5.	श्याम वीर सिंह	पी.डब्ल्यू.5
6.	राकेश कुमार त्यागी	पी.डब्ल्यू.6
7.	नरेश कुमार	पी.डब्ल्यू.7
8.	डॉ पंकज शर्मा	पी.डब्ल्यू.8
9.	नेत्र पाल सिंह	पी.डब्ल्यू.9
10.	गिरीश वर्मा	पी.डब्ल्यू.10

11. मौखिक साक्ष्य के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए:

1.	लिखित रिपोर्ट और दुपट्टे का रिकवरी मेमो	प्रदर्श क-1
2.	आरोप पत्र	प्रदर्श क-2
3.	पंचायतनामा	प्रदर्श क-3
4.	पी.एम. रिपोर्ट	प्रदर्श क-10
5.	एफ.आई.आर.	प्रदर्श क-13

12. अभियोजन पक्ष ने अभियोजन मामले के समर्थन में कई गवाहों की जांच की ताकि दोनों अभियुक्तों पर जो आरोप लगाया गया था उसे

सामने लाया जा सके। अ.सा.1-प्रमोद कुमार के साक्ष्य ने अपनी मौखिक गवाही में इस तथ्य को स्वीकार किया कि उसकी बहन मृतका 19.2.2012 को आरोपी अंकित के साथ विवाहित थी और उसकी बड़ी बहन की शादी मोहित (बड़े भाई) और हरनाम के साथ हुई थी और मोहित हरनाम का बेटा है लेकिन जहां तक उसकी बहन के साथ झगड़ा करने और उसे प्रताड़ित करने का सवाल है, उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया। । इसके बाद उसने अपनी मौखिक गवाही में कहा कि उसकी बड़ी बहन परमिता ने कहा है कि अरविता ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। उन्होंने इस बात से अनभिज्ञता जताई कि क्या बहन के ससुराल वाले उसे परेशान कर रहे थे और यही उसके आत्महत्या करने का कारण था। उसने स्वीकार किया है कि प्राथमिकी उनके द्वारा दर्ज करायी गयी थी। हालाँकि, जिरह में भी उसने कुछ भी बयान नहीं किया है सिवाय इसके कि उसकी बहन ने आत्महत्या की थी। इसी तरह की बात बड़ी बहन परमिता ने भी कही है, जिसने फिर कहा कि हरनाम उसका ससुर था और अंकित उसका जीजा था। इस गवाह के अनुसार, अरविता - मृतका, स्कूल टीचर थी। इसके बाद उसने अभियोजन पक्ष के गवाह का समर्थन नहीं किया। उसने झगड़े की परिस्थितियों और इस तथ्य से इनकार किया है कि मृतक को उसके ससुर ने पीटा था। यहां तक कि राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई जिरह में भी उसने इस तथ्य से इनकार किया है कि हरनाम और अंकित ने उसे मार डाला था। ऑंकार अ.सा.3 को भी इसी तरह से बयान दिया और उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। धीरज सिंह - अ.सा.4 ने

अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और उसे भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है। पुलिस अधिकारी-अ.सा.5-श्याम वीर सिंह ने स्वीकार किया कि उन्होंने ही आरोप पत्र दाखिल किया था।

13. दोषसिद्धि पूरी तरह से डॉ. पंकज शर्मा - अ.सा. 8 के साक्ष्य पर आधारित है, जिन्होंने शव का पोस्टमार्टम किया था और जिनकी राय थी: -

"इस साक्षी ने अपनी जिरह में यह भी कथन किया है कि जब कोई व्यक्ति में कपड़ा डालकर आत्म हत्या करता है तो उस दशा में भी उस व्यक्ति साँस घुटता है मृतका के कपड़े सही सलामत थे फटे नहीं थे। इस बात में चोट अपने आप आयी है या किसी के द्वारा चोट कारित की गयी है कोई नहीं दी जा सकती है।"

14. अब विवादास्पद प्रश्न उठता है कि क्या न्यायालय भा.द.वि. की धारा 161 के तहत दिए गए बयान पर भरोसा कर सकती है? यदि ऐसा किया भी गया तो प्राथमिकी, न ही भा.द.वि. की धारा 161 के तहत कोई बयान यह बताता है कि मौत आरोपी द्वारा गला घोटने से हुई थी:

"चिकित्सीय साक्ष्य शव विच्छेदन रिपोर्ट प्रदर्शक- १० में चिकित्सक द्वारा मृतिका अरविता के शरीर में आयी एंटी मोर्टम इंजरी में, "Ligature mark 40 c.m. long & 2 c.m. चौड़ाई all round neck 3 c.m. below Rt. ear, 6 c.m. below Lt. ear 1 c.m. below hair line back, 6 c.m. below chin & 7

c.m. above sternal notch mark situated above the thyroid cartilage between Larynx & chin & directed obliquely upwards base of the mark is groove, raddish margin become dry, hard & parchment live skin."

शव विच्छेदन आख्या में मृत्यु का कारण death due to asphyxia a result of strangulation (anti mortem) " दर्शाया गया है।

15. अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधीश गलत निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मृत्यु गला घोटने से हुई थी, भले ही ऐसा था कि उक्त निष्कर्ष तक पहुंचने वाली श्रृंखला में कई कड़ियां गायब हैं। चिकित्सीय साक्ष्य भी इस बारे में कुछ नहीं कहते, बल्कि विद्वान न्यायाधीश ने अपने निष्कर्ष को अनुमानों पर आधारित किया है कि यह गला दबाकर हत्या थी, न कि आत्महत्या। विद्वान न्यायाधीश ने **सुब्रहमण्यम बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, 2010 (1) यूपीसीआरआर पृष्ठ 21**, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए का अवलम्ब लिया है लेकिन उक्त निष्कर्ष तथ्यों पर खराब है।

16. अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय को इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं किया जा सकता था, क्योंकि चिकित्सा साक्ष्य दर्शाता है कि पोस्टमॉर्टम करने वाले डॉक्टर ने यह नहीं कहा था कि यह आत्महत्या नहीं

हत्या थी। यह निष्कर्ष निकालते हुए कि यह आत्महत्या या हत्या का मामला नहीं था, विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार राय दी: -

"यह सच है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में हेतुक का अत्यधिक महत्व होता है, लेकिन यह कहना कि हेतुक के अभाव में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती, सैद्धांतिक रूप से, सही नहीं है। हेतुक मूलभूत सामग्री प्रदान करता है -हेतुक का अभाव- साबित परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी होने पर हेतुक ज्यादा मायने नहीं रखता। [जी पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य; एआईआर 2010 एससी 2914, जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (67) एससी 295 (एससी), उजागर सिंह बनाम राज्य पंजाब, एआईआर 2008 एससी (एसयूपीपी) 190] "

अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता के अनुसार यह निष्कर्ष विकृत है और श्रृंखला को पूर्ण मानने के लिए बताई गई परिस्थितियाँ साबित नहीं होती हैं।

17. अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:-

(1) टोमासो ब्रूनो और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य, 2015(1) जेटी 389;

(ii) रियाजुद्दीन @राजू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 911/2012, निर्णय 2.8.2022;

(iii) अनिल बनाम उ.प्र. राज्य, आपराधिक अपील संख्या 703/2017, 8.12.2022 को निर्णय लिया गया;

(iv) संतोष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 की आपराधिक अपील संख्या 5657, 22.2.2021 को निर्णय लिया गया;

18. यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधीश द्वारा पूरी की जाने वाली परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पूरी नहीं है। रियाजुद्दीन @ राजू और अन्य बनाम के फैसले के मद्देनजर यह निर्णय इस न्यायालय की जांच में टिक नहीं सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य, 2012 की आपराधिक अपील संख्या 911, 2.8.2022 को निर्णय लिया गया और अनिल बनाम उ.प्र. राज्य, 2017 की आपराधिक अपील संख्या 703, 8.12.2022 को निर्णय लिया गया, लागू किया जा सकता है और यह साबित करने का दायित्व कि आरोपी दोषसिद्ध थे अभियोजन पक्ष द्वारा किया जाना है कि अभियोजन पक्ष द्वारा निर्वहन नहीं किया गया है।

19. राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि इस मामले के तथ्य न्यायालय को अनुमति नहीं देंगे इस मामले में एक अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए और प्रस्तुत किया है कि आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किया गया कोई भी निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

20. गवाहों के साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए और पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित चिकित्सा

साक्ष्यों पर भी विचार करते हुए, हमारे मन में कोई संदेह नहीं रह गया है कि यह मानव हत्या थी।

21. हालाँकि, जो प्रश्न हमारे विचाराधीन है वह यह है कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, भा.द.सं. की धारा 302 के तहत अपीलार्थी की दोषसिद्धि बरकरार रखा जाना चाहिए या भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-1 या भाग-2 के तहत परिवर्तित किया जाना चाहिए या कोई अन्य दृष्टिकोण संभव है। दोषसिद्धि को इस दृष्टिकोण से विचार करने का कारण जैसा कि प्राथमिकी में बताया जा रहा है कि मृतक का आरोपियों से झगड़ा हुआ था और फिर उसकी मौत की खबर आई। हालाँकि भा.द. वि. की धारा 154 के तहत प्राथमिकी सिद्ध नहीं हुई है, हम इस मामले पर विद्वान . न्यायाधीश के लेंस से उस कोण से विचार करते हैं, जिसने श्रृंखला को पूर्ण माना है। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है:

"आपराधिक मानव वध -

जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभाव्य हो, या यह जान रखते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उस कार्य से मृत्यु कारित कर दे, कोई कार्य करके मृत्यु कारित कर देता है, वह आपराधिक मानव वध का अपराध करता है।

22. 'हत्या' और ' आपराधिक मानव वध जो हत्या के बराबर नहीं' के बीच शैक्षणिक अंतर ने हमेशा से न्यायालयों को परेशान किया। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को भूल जाते हैं, खुद को सूक्ष्म अमूर्तताओं में उलझा लेते हैं। का इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए सबसे सुरक्षित तरीका भा.द.सं. की धारा 299 और 300 के विभिन्न उपखंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर-कुछ अपवादों के अधीन इरादतन मानव वध गैर इरादतन हत्या वह करता है यदि वह कार्य, कार्य है जिसके द्वारा जिससे मृत्यु कारित हुई मृत्यु होती है। हो, किया गया हो-	

आशय

(ए) मौत कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता हो उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनें जिसे नुकसान पहुँचाया गया है
ज्ञान	ज्ञान

(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है। (4) इस ज्ञान के साथ कि यह कृत्य तुरंत इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है .

23. चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच और तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, के मामले में (2011) 4 एससीसी 250 में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए और बी.एन. का मामला कवताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य में 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में रिपोर्ट की गई, हमारी सुविचारित राय है कि अपराध भा.द.सं. की धारा 304 भाग-1 के तहत दंडनीय नहीं होगा।

24. यदि मामला भा.द.सं. की धारा 304 (1) के अंतर्गत नहीं आता है, तो क्या दोनों आरोपियों को भा.द.सं. की धारा 302 की सहायता से दोषी ठहराया जाता है या नहीं, इसे विचारण न्यायालय के निर्णय और दोनों न्यायालयों के समक्ष साक्ष्य से अलग करने की आवश्यकता है। आरोपी को भा.द.सं. की धारा

302 के तहत अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, इसका कारण यह है कि उसका ससुर हरनाम सिंह अपराध स्थल पर नहीं था। आरोपी अपीलार्थी अंकित एक निजी नौकरी करता है और वह नौकरी के लिए गया था, जिसका उल्लेख भा.द.वि. की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए बयान में किया गया है, जिस पर विचारण न्यायाधीश ने विश्वास नहीं किया। केवल लिगेचर मार्क के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आरोपी उसकी मौत का कारण बना है? विद्वान न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मृत्यु गला घोटने से हुई है। सभी गवाह पक्षद्रोही हो गये हैं। सिर्फ इसलिए कि घटना घर में घटी, क्या यह कहा जा सकता है कि परिस्थितिजन्य श्रृंखला पूरी हो गई है। यह किसी का मामला नहीं है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त घर में थे। सिर्फ इसलिए कि किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई, क्या यह नहीं माना जा सकता कि अंकित मेरठ में नहीं था, बल्कि किसी गवाह ने यह नहीं कहा कि अंकित घर पर था। यह श्रृंखला की एक लुप्त कड़ी है। परिस्थितिजन्य श्रृंखला पूरी नहीं है और यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों आरोपियों का मृतका को खत्म करने का एक ही आशय था। सिर्फ इसलिए कि घटना घर में हुई लेकिन आरोपी की उपस्थिति साबित नहीं हुई है और इसलिए, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 को लागू किया जा रहा है और **सुब्रह्मण्यम बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, 2010 (1) यूपीसीआरआर पृष्ठ 21**, में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को लागू किया जा रहा है। यह साबित हुआ माना जा सकता है कि अभियुक्त मृतका की मृत्यु के पटकथा के लेखक थे।

25. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्ष से यह प्रतीत होता है कि मृत्यु अभियुक्त द्वारा कारित नहीं की गयी। मौत पूर्व नियोजित नहीं थी, आरोपी का मृतका की मौत का कोई इरादा नहीं था, चोटें हालांकि प्रकृति की सामान्य प्रक्रिया में मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं, लेकिन यह आत्मघाती मौत थी, यह साबित नहीं हुआ कि आरोपी ने मृतका की हत्या की है।

26. **साबित्री सामंतरे बनाम ओडिशा राज्य, एआईआर 2022 एससी 2591** में सर्वोच्च न्यायालय ने भी निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 यह मानती है कि किसी व्यक्ति के विशेष ज्ञान में मौजूद चीजों को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर है। हालांकि यह धारा किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे सबूत के भार का निर्वहन करने से मुक्त नहीं करती है, लेकिन यह केवल यह विहित करती है कि जब किसी व्यक्ति ने परिस्थितियों से सांकेतिक इरादे के अलावा किसी अन्य इरादे से कोई कार्य किया है, तो उस विशिष्ट इरादे को साबित करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष पर नहीं, बल्कि व्यक्ति पर आती है। यदि अभियुक्त का इरादा तथ्यों से अलग था, तो विशेष रूप से उसके ज्ञान के भीतर जिसे उसे साबित करना होगा।

19. इस प्रकार, हालांकि धारा 106 का उद्देश्य किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष को आरोपी के अपराध को स्थापित करने

के बोझ से राहत देना नहीं है, यह उन मामलों पर लागू होता है जहां अभियोजन पक्ष द्वारा घटनाओं की श्रृंखला सफलतापूर्वक स्थापित की गई है, जिससे आरोपी के खिलाफ उचित निष्कर्ष निकाला जाता है। इसके अलावा, किसी मामले पर आधारित परिस्थितिजन्य साक्ष्य में, जब भी आरोपी से कोई आपत्तिजनक प्रश्न पूछा जाता है और वह या तो प्रतिक्रिया देने से बचता है, या ऐसी प्रतिक्रिया देता है जो सत्य नहीं है, तो ऐसी प्रतिक्रिया अपने आप में घटनाओं की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाती है। [देखें त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 10 एससीसी 681]"

27. यह कानून के स्थापित सिद्धांत से कहीं अधिक है कि यदि दो विचार संभव हैं, तो लाभ हमेशा आरोपी को ही मिलेगा। **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एससीसी 116** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख करना उचित होगा:-

"163. फिर हम एक और महत्वपूर्ण बिंदु पर आगे बढ़ते हैं जिसे उच्च न्यायालय ने पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है। यह अच्छी तरह से तय है कि जहां साक्ष्य पर दो संभावनाएं उपलब्ध या खुली हैं, एक जो अभियोजन पक्ष के पक्ष में जाती है और दूसरी जो एक आरोपी को लाभ पहुंचाती है, आरोपी निस्संदेह संदेह के लाभ का हकदार है। काली राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य

(1973) 2 एससीसी 808 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं: [एससीसी पैरा 25, पृष्ठ 820: एससीसी (क्रि) पी. 1060]

एक और सुनहरा धागा जो आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के जाल में चलता है, वह यह है कि यदि मामले में पेश किए गए सबूतों पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है, तो जो दृष्टिकोण अभियुक्त के अनुकूल हो उसे अपनाया जाना चाहिए। इस सिद्धांत की उन मामलों में विशेष प्रासंगिकता है जहां परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा आरोपी का अपराध स्थापित करने की कोशिश की जाती है।"

आरोपी अंकित जेल में है. 9 साल से अधिक समय से, भा द सं. की धारा 306 के तहत मामला भी साबित नहीं हुआ है।

28. **मो. ग्यासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 26]**, इसे लागू करने में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा है:

"अपराध एक विकृतिजन्य विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला

अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, दंडविद्या में रुचि का ध्यान व्यक्ति है और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो बिगड़ गया है आपराधिकता और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंकवाद में' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग पर चोट पैदा करती है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे चोट देनी होगी। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते हैं।"

29. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारपरक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए।

30. मौखिक रूप से चिकित्सकीय साक्ष्य प्रस्तुत करने के साथ-साथ पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर विचार करने के बाद अवर न्यायालय द्वारा गलत व्याख्या की गई है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह आरोपी अंकित और उसके पिता थे जिन्होंने मृतका को मौत के घाट उतार दिया था।

31. तदनुसार, दोनों अपीलें स्वीकार की जाती हैं। दोनों आरोपियों को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया है। आरोपी अंकित को किसी अन्य मामले में वांछित न होने पर संदेह का लाभ देकर तत्काल मुक्त किया जाए। हरनाम सिंह को जमानत पर रिहा किया जाता है, उसे आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है। यदि जुर्माना अदा कर दिया गया है तो अपीलार्थीगण को वापस कर दिया जाएगा। अभिलेख और कार्यवाही तुरंत अवर न्यायालय को वापस भेजी जाए।

32. न्यायालय ने उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति /श्री अजय कुमार मिश्र से हरनाम सिंह के मामले में न्याय मित्र के रूप में कार्य करने के लिए अनुरोध किया था। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया था। यह न्यायालय इसके लिए आभारी है।

33. इस आदेश का पालन करने और आवश्यक कार्रवाई करने के लिए इस आदेश की एक प्रति जेल अधिकारियों को भेजी जाएगी।

34. हम न्यायालय की सहायता के लिए दोनों अपीलों में अपीलार्थीगण की ओर से अधिवक्ता श्री अजय कुमार मिश्रा और न्यायालय को

योग्य रूप से सहायता के लिए विद्वान ए.जी.ए. के आभारी हैं।

(2023) 7 ILRA 608

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2023

समक्ष

माननीय श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 375 वर्ष 2023

रामेश्वरी

... पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता: श्री अरविंद कुमार दीक्षित

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव, श्री बृजेश कुमार श्रीवास्तव

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण, धारा 151, 107 और 116 सीआरपीसी, धारा 156

(3) - धारा 190 के तहत सशक्त मजिस्ट्रेट जांच का आदेश दे सकते हैं - मजिस्ट्रेट को धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदनों की व्याख्या करते समय विवेकपूर्ण और सावधानी से काम करना चाहिए - क्योंकि उनके न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग न करने के परिणामस्वरूप मामला दर्ज करने में विफलता हो सकती है - संज्ञेय अपराध के प्रकटीकरण की व्याख्या केवल शब्दों या तथ्यों की नकल के रूप में नहीं की जानी चाहिए -

न्यायालयों को आरोपों में सार और दावों में जीवन के अस्तित्व की तलाश करनी चाहिए, न कि केवल विधिक शब्दावली पर निर्भर रहना चाहिए। (पैरा - 7)

शिकायतकर्ता/प्रथम सूचनादाता ने धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर किया - खारिज - आरोप - नाबालिग बेटियों को तीन व्यक्तियों ने गलत इरादे से रोका और छेड़छाड़ की - आवेदक ने एफआईआर दर्ज कराने की कोशिश की - पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की - एसएसपी को आवेदन भेजा - अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई - विशेष न्यायाधीश ने तथ्यों पर विचार किए बिना मनमाने ढंग से आदेश पारित किया - विशेष रूप से पैरा संख्या 2 में - जो अधूरा प्रतीत होता है। (पैरा - 3)

माना गया:- न्यायालय ने न्यायिक विवेक का सही ढंग से प्रयोग किया। आदेश के पैरा संख्या 2 में अधूरा वाक्य टाइपिंग की गलती प्रतीत होता है, जो मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करता है। आदेश में हस्तक्षेप के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है। (पैरा - 9,10)

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

एलेक पदमसी बनाम भारत संघ, 2007 (3) आई.एल.आर. 469

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा वितरित)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार दीक्षित, प्रतिवादी संख्या 2 से 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव के ब्रीफ होल्डर अधिवक्ता श्री ब्रिजेश कुमार श्रीवास्तव और राज्य के लिए विद्वान एजीए श्री ओ.पी. मिश्रा को सुना गया ।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र को खारिज करते हुए, आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 1910/2022 (रामेश्वरी बनाम खुल और अन्य) में विशेष न्यायाधीश, (पॉक्सो अधिनियम)/अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फिरोजाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.01.2023 को चुनौती देते हुए पुनरीक्षणकर्ता की ओर से दायर किया गया है ।

3. प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

शिकायतकर्ता प्रथम सूचनाकर्ता रामेश्वरी ने सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत एक प्रार्थना पत्र दायर किया । इसमें 5 लोगों को नामित करते हुए आरोप लगाया गया था कि उनकी नाबालिग बेटियों को 3 लोगों ने गलत इरादे से रोका और उनके साथ छेड़छाड़ की जब उन्होंने विरोध किया तो तीनों व्यक्ति अर्थात् खुल, दिनेश और कुलदीप भाग गये, उसी शाम आवेदक यानी पीड़ितों की मां ने दिनेश की मां से शिकायत की लेकिन उन्होंने उनके साथ गालियां देना प्रारंभ कर दिया: कालीचरण ने अपने बेटों को उन्हें सबक सिखाने के लिए उकसाया और उन्होंने आवेदक और उसकी बेटियों के साथ मारपीट की और उनमें से एक के कपड़े भी फाड़ दिए प्रार्थना पत्र में यह भी

आरोप लगाया गया है कि आवेदक ने प्राथमिकी दर्ज कराने की प्रयास की लेकिन पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की, इसलिए उसने एसएसपी को प्रार्थना पत्र भेजा लेकिन अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई ।

4. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत प्रार्थना पत्र में लगाए गए आरोपों से एक संज्ञेय मामला प्रतीत होता है; विद्वान विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम) ने कथित तथ्यों पर विचार किए बिना मनमाने तरीके से आदेश पारित किया है; मेरा ध्यान आदेश के पैरा नं. 2 की ओर आकृष्ट किया गया है जिसमें लिखी गई एक पंक्ति अधूरी प्रतीत होती है; इस तथ्य के आधार पर इस आदेश को चुनौती दी जा रही है कि यह आदेश लापरवाही और समुचित ध्यान दिए बिना पारित किया गया है ।

5. दूसरे पक्ष द्वारा पुनरीक्षण का विरोध करते हुए कहा गया है कि आक्षेपित आदेश के एक हिस्से में अधूरा वाक्य होना, जिस पर अदालत का ध्यान आकर्षित किया गया है, प्रथम दृष्टया टाइपिंग की गलती प्रतीत होती है; प्रतिवादियों की ओर से आगे कहा गया है कि आदेश आख्यापक हैं; आदेश के दूसरे पृष्ठ के अंतिम पैरा में सारवान तथ्यों पर चर्चा की गई है; वास्तविक तथ्य यह है कि यह प्रार्थना पत्र केवल बचाव के लिए दायर किया गया है; वास्तव में कथित घटना के एक दिन बाद प्रतिवादियों का सीआरपीसी की धारा 151, 107 और 116 के तहत वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के प्रार्थना पत्र पर चालान कर दिया गया और

धारा 107/116 सीआरपीसी के तहत शेष दो प्रतिवादियों के विरुद्ध कार्यवाही की गई। उन तथ्यों से परे कुछ भी नहीं हुआ जिनके तहत सीआरपीसी की धारा 151, 107 और 116 के तहत पुलिस द्वारा कार्रवाई की अपेक्षा की जाती है; यह प्रार्थना पत्र झूठे दावे करके प्रतिशोध लेने के लिए झूठे और विकृत तथ्यों के साथ दिया गया है। यह प्रार्थना पत्र और कुछ नहीं बल्कि कानून का दुरुपयोग करने का स्पष्ट प्रयास है।

6. विद्वान एजीए ने तर्क दिया है कि सही विधि की स्थिति यह है कि पुलिस अधिकारियों को जब भी उनके संज्ञान में लाए गए तथ्य यह दर्शाते हों कि संज्ञेय अपराध किया गया है, को प्राथमिकी दर्ज करनी चाहिए यदि पुलिस ऐसा करने में विफल रहती है, तो आगे अपनाए जाने वाला तरीका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-190 के साथ पठित धारा 200 के अनुरूप होगा, जैसा कि **एलेक पदमसी बनाम भारत संघ, 2007 (3) आईएलआर 469** में अभिनिर्धारित किया गया था।

7. मैंने अभिलेख पर उपस्थित सभी सामग्री का अध्ययन किया। संबंधित मजिस्ट्रेट/न्यायालय से किसी प्रार्थना पत्र पर यांत्रिक तरीके से कार्रवाई करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। यदि वह तर्कसंगत रूप से विचार करने में विफल रहता है तो वह अपने कर्तव्य में असफल होंगे। कानून की स्थापित स्थिति यह है कि यदि प्रार्थना पत्र से यह संज्ञेय अपराध का कारित होना स्पष्ट होता है तो मजिस्ट्रेट मामला दर्ज करने का आदेश देगा। मेरे विचार में, संज्ञेय अपराध की

स्पष्टता होने का मतलब शब्दों या तथ्यों की इस तरह से नकल से नहीं निकाला जा सकता है, कि यह विधि में परिभाषित अपराध के चारो आयामों में उपयुक्त बैठ सके। सामान्य रूप में यह कह सकते हैं कि धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र चतुराई से तैयार किया जा सकता है और इसमें विधिक सलाह के साथ दिखावटी दावे या आधी सच्चाई शामिल हो सकती है, ताकि न्यायालय से कार्यवाही करवाई जा सके। यदि ऐसी संकीर्ण एवं अदूरदर्शी व्याख्या की जाएगी तो यह बेईमान वादी की बातों में आने जैसा होगा। धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र पर आदेश पारित करते हुए न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी न्यायिक समझ लगाए। न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वे न्यायसंगत, विवेकशील और सतर्क रहें और केवल कतिपय शब्दों और कानूनी शब्दावली के उपयोग से प्रभावित न हों। वह निश्चित रूप से आरोपों में सच्चाई और दावों में सार और तथ्य की अपेक्षा कर सकते हैं।

8. इस तथ्य पर ध्यान दिया जा सकता है कि सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत प्रार्थना पत्र खारिज होने के बावजूद पुनरीक्षणकर्ता/ शिकायतकर्ता के पास अभी भी विधि में कुछ उपचार उपलब्ध हैं।

9. ऐसा नहीं है कि एक बार धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र कर दिया जाए तो मजिस्ट्रेट के पास एफ.आई.आर. दर्ज करने का आदेश देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है सिर्फ इसलिए कि यह मामले

की व्यापक संभावनाओं पर ध्यान दिए बिना कागज पर एक संज्ञेय अपराध दर्शाता है। मेरे विचार में संबंधित न्यायालय ने न्यायिक विवेक का सही ढंग से प्रयोग किया है; जहां तक आदेश के पैरा संख्या 2 में अधूरे वाक्य का संबंध है, प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि यह महज टाइपिंग की गलती है, जिसका मामले के गुण-दोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

10. इस न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए आदेश में हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत नहीं होता है, इसलिए यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 610

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 534 सन् 2023

एवं अन्य मामले

राजीव रंजन श्रीवास्तव ... पुनरीक्षणवादी

बनाम

सहायक निदेशक प्रवर्तन निदेशालय, जोनल
कार्यालय, लखनऊ ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता: श्री संतोष कुमार
भट्ट

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: श्री कुलदीप श्रीवास्तव

(ए) आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120 बी/420/467/468/471 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 227 - उन्मोचन, धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 3/4,44,45, धारा 2 (वाई) - अनुसूचित अपराध, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 13 (2) सपठित 13 (1) (सी) और (डी), सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 - धारा 132, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 - धारा 37 - धन शोधन का अपराध अनुसूचित अपराध से अलग और विशिष्ट अपराध है। (पैरा - 25)

(बी) धन शोधन निवारण (अभिलेखों का रखरखाव) नियम, 2005 - नियम 3 - लेन-देन के अभिलेखों का रखरखाव (प्रकृति और मूल्य) - प्रत्येक रिपोर्टिंग इकाई को सभी लेन-देनों का अभिलेख बनाए रखना होगा, जिसमें दस लाख रुपये या उसके समकक्ष विदेशी मुद्रा से अधिक मूल्य के सभी नकद लेनदेन का अभिलेख शामिल है। (पैरा-26)

मामले में कई व्यक्तियों के बीच साजिश शामिल थी - गरीबी रेखा से नीचे के लोगों, मध्याह्न भोजन और अंत्योदय के लिए खाद्यान्न का दुरुपयोग और डायवर्ट करना - मामले की शुरुआत में एसआईटी द्वारा जांच की गई - बाद में न्यायालय के निर्देशों के तहत सीबीआई को स्थानांतरित कर दिया गया - सीबीआई ने जांच के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया - पुनरीक्षकर्ता (आपूर्ति निरीक्षक) गोदाम प्रभारी था - उसे सौंपे गए खाद्यान्न का दुरुपयोग किया - सरकारी खजाने को सब्सिडी

का नुकसान हुआ - याचिकाकर्ताओं ने सीआरपीसी की धारा 227 के तहत अलग-अलग डिस्ट्रिक्ट आवेदन दायर किए - पीएमएलए की धारा 2 (वाई) (ii) के प्रावधानों पर विचार किए बिना परीक्षण न्यायालय द्वारा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया - गैर-अनुसूचित पूर्ववर्ती अपराध - संदिग्ध लेनदेन की कमी - पुनरीक्षण ज्ञापन का दावा है कि नियम 3 के तहत सभी नकद लेनदेन के लिए न्यूनतम 10 लाख रुपये की सीमा की आवश्यकता है - वर्तमान पुनरीक्षण। (पैरा - 3,4,12)

माना गया:- नियम 3 इस बात पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक नहीं है कि किसी व्यक्ति पर पीएमएलए की धारा 3 के तहत अपराध करने के लिए मुकदमा चलाया जाना चाहिए या नहीं। परीक्षण न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के डिस्ट्रिक्ट के आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया। आदेशों में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा-27,28)

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मोहम्मद इकबाल बनाम प्रतिवादी: उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1004 सन् 2019
2. विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. उपर्युक्त 6 पुनरीक्षणों में याचिकाकर्ता एक ही प्रकरण में सह-अभियुक्त हैं, जिसका वाद संख्या 357/2022 विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) की न्यायालय/सीबीआई न्यायालय संख्या 3, लखनऊ में लम्बित है, जो धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3/4 के तहत ईसीआईआर/05/एलकेजेडओ/2017 (नया वाद संख्या) और ईसीआईआर / पीएमएलए / वीएसजेडओ / 2011 (पुराना वाद संख्या) से उत्पन्न हुआ है (जिसे आगे पीएमएलए कहा जाएगा) और सभी पुनरीक्षण याचिकाकर्तागण द्वारा दायर दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 227 के तहत डिस्ट्रिक्ट के लिए अलग-अलग आवेदनों को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.04.2023 के अलग-अलग समान आदेशों के खिलाफ दायर किए गए हैं। सभी पुनरीक्षण में सामान्य प्रश्न शामिल होते हैं और इसलिए, एक सामान्य निर्णय द्वारा इसका निर्णय लिया जा रहा है।

2. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार भट्ट और प्रतिवादी - प्रवर्तन निदेशालय की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव को सुना गया।

3. पुनरीक्षण में कहा गया है कि यह इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 10503 (एम/बी) 2009 में पारित आदेश के तहत पंजीकृत प्रकरण से उत्पन्न हुआ है। प्रारंभ में प्रकरण की जांच उ0प्र0 पुलिस की एसआईटी ने की थी, लेकिन बाद में इस न्यायालय के

निर्देश पर इसे सीबीआई को स्थानांतरित कर दिया गया था। धारा 120 बी/420/467/468/471 आईपीसी और धारा 13 (2) सहपठित 13 (1) (सी) और (डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत पुलिस स्टेशन सीबीआई, एसीबी, लखनऊ में दर्ज एफआईआर संख्या आरसी0062010ए0026/2010 में कहा गया है कि 2004 से 2006 की अवधि के दौरान, कई व्यक्तियों ने एक-दूसरे के साथ साजिश करके वाराणसी जिले में गरीबी रेखा से नीचे के व्यक्तियों, मिड-डे मील और अंत्योदय योजना के लिए दिए गए खाद्यान्न का गबन किया

4. आरोप पत्र में कहा गया है कि पुनरीक्षण संख्या 543/2023 में पुनरीक्षणकर्ता सतेन्द्र कुमार राय तत्कालीन आपूर्ति निरीक्षक थे और वे 01.04.2005 से 31.03.2006 की अवधि के दौरान हरहुआ ब्लॉक के गोदाम प्रभारी थे। उन्होंने उन्हें सौंपे गए खाद्यान्न का गबन किया और इस प्रकार सरकारी खजाने को ₹ 8,27,711/- की सब्सिडी की हानि पहुंचाई।

5. उपर्युक्त एफआईआर और आरोप-पत्र के आधार पर, प्रवर्तन निदेशालय (जिसे आगे 'ईडी' कहा जाएगा) ने ईसीआईआर/06/पीएमएलए/वीएसजेडओ/2011 पंजीकृत किया, जिसे बाद में ईसीआईआर/05/ एलकेजेडओ/2017 के रूप में पुनः नामित किया गया और जांच करने के बाद, इसने छह व्यक्तियों के खिलाफ धन शोधन निवारण अधिनियम (पीएमएलए) की धारा 44 और 45 के तहत शिकायत दर्ज की, जो छह संशोधनों में याचिकाकर्ता हैं।

6. शिकायत में कहा गया है कि श्री प्रकाश मिश्रा, पुनरीक्षण संख्या 546/2023 में याचिकाकर्ता 01.04.2004 से 16.07.2004 की अवधि के लिए हरहुआ ब्लॉक के गोदाम प्रभारी थे। जय हिंद मौर्य, पुनरीक्षण संख्या 536/2023 में याचिकाकर्ता 17.07.2004 से 31.03.2005 की अवधि के लिए हरहुआ ब्लॉक के गोदाम प्रभारी थे। सतेंद्र कुमार राय - पुनरीक्षण संख्या 543/2023 में याचिकाकर्ता, आपूर्ति निरीक्षक के रूप में काम कर रहे थे और वे 01.04.2005 से 31.03.2006 की अवधि के लिए हरहुआ ब्लॉक के गोदाम प्रभारी थे।

7. उपरोक्त श्री प्रकाश मिश्रा, जय हिन्द मौर्य एवं सतेन्द्र कुमार राय ने निर्गमन रजिस्टर में कुछ प्रविष्टियां की थीं, जिन्हें कोटेदारों (उचित दर दुकान लाइसेंस धारकों) द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

8. शिकायत में कहा गया है कि श्रीप्रकाश मिश्रा के कार्यकाल के दौरान निर्गमन रजिस्टर में कोटेदारों के जाली हस्ताक्षर करके भारी मात्रा में खाद्यान्न की हेराफेरी करके अभियुक्तों द्वारा की गई सब्सिडी की हानि ₹19,10,448/- है, जय हिंद मौर्य के कार्यकाल के दौरान अभियुक्तों द्वारा की गई सब्सिडी की हानि ₹3,33,464/- है तथा सतेन्द्र कुमार राय के कार्यकाल के दौरान अभियुक्तों द्वारा की गई सब्सिडी की हानि ₹9,71,108/- है तथा उपरोक्त अभियुक्तों ने तदनु रूप वित्तीय लाभ अर्जित किया है।

9. अन्य सह-अभियुक्त व्यक्ति, अर्थात् राजीव रंजन श्रीवास्तव - पुनरीक्षण संख्या 534/2023 में याचिकाकर्ता, प्रेम शंकर सिंह - पुनरीक्षण संख्या 538/2023 में याचिकाकर्ता और संतोष कुमार रस्तोगी - पुनरीक्षण संख्या 545/2023 में याचिकाकर्ता वित्तपोषक थे, जिन्होंने उपरोक्त आरोपी व्यक्तियों के साथ साजिश रची थी, जो गोदाम के प्रभारी थे और उन्होंने खाद्यान्न उठाने के लिए भुगतान आदेशों का वित्तपोषण किया था, जिसे अवैध रूप से डायवर्ट किया गया था।

10. जांच के दौरान, आरोपी सतेंद्र कुमार राय के तीन सावधि जमा खाते प्रकाश में आए और उन तीन खातों में जमा कुल ₹ 8,27,711/- की राशि को ईडी द्वारा जब्त कर लिया गया।

11. सभी याचिकाकर्तागण ने विचारण न्यायालय के समक्ष डिस्चार्ज के लिए अलग-अलग आवेदन दायर किए थे, जिन्हें 25.04.2023 को समान शब्दों वाले अलग-अलग आदेशों के माध्यम से खारिज कर दिया गया है।

12. डिस्चार्ज आवेदनों को खारिज करने वाले आदेशों को अलग-अलग पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती दी गई है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आधार भी शामिल है कि याचिकाकर्ता निर्दोष हैं; शिकायत देरी से दर्ज की गई है, याचिकाकर्तागण के खिलाफ आरोपित अपराध कथित तौर पर किए जाने के समय परिगणित अपराध नहीं था और ईडी को कोई मनी ट्रेल या कोई संदिग्ध लेनदेन नहीं मिला। पुनरीक्षण जापन में लिया गया आधार

XII दावा करता है कि नियम 3 के अनुसार, सभी नकद लेनदेन के लिए न्यूनतम सीमा ₹ 10 लाख है जबकि याचिकाकर्तागण द्वारा कथित तौर पर की गई सब्सिडी हानि उक्त सीमा राशि से कम है, लेकिन आधार यह नहीं बताता कि नियम 3 के किस सेट के नियमों का याचिकाकर्तागण द्वारा उल्लेख किया गया है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि कथित रूप से व्यक्तिगत याचिकाकर्तागण द्वारा पहुंचाई गई हानि 30,00,000/- रुपये से कम है, और इसलिए यह 'परिगणित अपराध' के दायरे में नहीं आएगा।

14. परिगणित अपराध शब्द को पीएमएलए की धारा 2 (वाई) में परिभाषित किया गया है। धारा 2 (वाई), जैसा कि इसे मूल रूप से अधिनियमित किया गया था, इस प्रकार है: -

“(वाई) “परिगणित अपराध” से तात्पर्य है-

(i) अनुसूची के भाग ए के अंतर्गत निर्दिष्ट अपराध; या

(ii) अनुसूची के भाग बी के तहत निर्दिष्ट अपराध यदि ऐसे अपराधों में शामिल कुल मूल्य तीस लाख रुपये या उससे अधिक है ;

15. शुरू में भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अंतर्गत अपराध को अनुसूची के भाग बी में स्थान दिया गया था। पीएमएलए की धारा 2 को 2009 के अधिनियम 21 द्वारा संशोधित

किया गया, ताकि इसे इस प्रकार पढ़ा जा सके:

-

“(y) “परिगणित अपराध” से तात्पर्य है-

(i) अनुसूची के भाग ए के अंतर्गत निर्दिष्ट अपराध; या

(ii) अनुसूची के भाग ख के अंतर्गत विनिर्दिष्ट अपराध, यदि ऐसे अपराधों में अंतर्बलित कुल मूल्य तीस लाख रुपए या उससे अधिक है; या

(iii) अनुसूची के भाग सी के अंतर्गत निर्दिष्ट अपराध।

“(वाई) “परिगणित अपराध” से तात्पर्य है-

(i) अनुसूची के भाग ए के अंतर्गत निर्दिष्ट अपराध; या

(ii) अनुसूची के भाग बी के तहत निर्दिष्ट अपराध यदि ऐसे अपराधों में शामिल कुल मूल्य एक करोड़ रुपए या उससे अधिक है; या

(iii) अनुसूची के भाग सी के अंतर्गत निर्दिष्ट अपराध।

16. अनुसूची को अधिनियम 21, 2009 द्वारा भी संशोधित किया गया, जिसके तहत भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी, 467 और 471 के अंतर्गत अपराधों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत अपराधों को अनुसूची के भाग बी में रखा गया।

17. अनुसूची के भाग बी को 2013 के अधिनियम 2 द्वारा हटा दिया गया था और धारा 120 बी, 420, 467, 471 आईपीसी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 के तहत अपराधों का उल्लेख अनुसूची के भाग ए में किया गया था।

18. धारा 2(वाई) को 2015 के अधिनियम संख्या 20 की धारा 145(ii) द्वारा पुनः संशोधित किया गया, जो 14.05.2015 से प्रभावी हुआ, तथा उप-धारा (ii) में आने वाले शब्द “तीस लाख रुपए” के स्थान पर “एक करोड़ रुपए” शब्द रखे गए तथा वर्तमान में पीएमएलए की धारा 2(वाई) इस प्रकार है:-

“धारा 2. परिभाषाएँ

19. अनुसूची को 14.05.2015 से अधिनियम संख्या 20/2015 की धारा 145 (ii) द्वारा भी संशोधित किया गया था, जिसके तहत उपरोक्त सभी अपराध भाग ए में बने रहे। भाग बी को अनुसूची में डाला गया था और इसमें सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 132 के तहत अपराध का उल्लेख है। यह स्पष्ट किया जाता है कि अनुसूची के भाग ए में कई अन्य अपराधों का भी उल्लेख है लेकिन इस फैसले में केवल उन अपराधों का उल्लेख किया गया है, जो याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किए गए हैं और जो वर्तमान प्रकरण के लिए प्रासंगिक हैं।

20. पीएमएलए की धारा 2 (वाई) को आज के समय में पढ़ने से यह स्पष्ट है कि अपराध में शामिल कुल मूल्य की शर्त केवल अनुसूची के भाग बी के तहत निर्दिष्ट अपराधों पर लागू होती है, न कि किसी अन्य परिगणित अपराध पर। अनुसूची के भाग बी में केवल सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 132 के तहत अपराध का उल्लेख है और याचिकाकर्ता पर उपरोक्त अपराध करने का आरोप नहीं लगाया गया है।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मोहम्मद इकबाल बनाम प्रतिवादी: उ0प्र0 राज्य और अन्य**, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1004/2019 के प्रकरण में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया, जिसका फैसला 28.02.2020 को हुआ। उस प्रकरण में, वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 37 के तहत एक शिकायत का प्रकरण उ0प्र0 प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ द्वारा इस आरोप के साथ दायर किया गया था कि वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं थी और कारखाना अधिनियम की धारा 21 के उल्लंघन में बोर्ड की सहमति प्राप्त किए बिना 12.09.1984 से 17.07.2007 तक चालू था। बोर्ड ने ईडी से शिकायत की थी, जिस पर ईडी ने धन शोधन के अपराध की जांच के लिए एक ईसीआईआर दर्ज की थी, ताकि परिगणित अपराध के कमीशन से पुनरीक्षणकर्ता और उसकी फर्म द्वारा उत्पन्न ₹52,42,525/- की संदिग्ध 'अपराध की आय' के बारे में पूछताछ की जा सके। जांच के बाद, ईडी ने इस आरोप के साथ अधिनियम की धारा 45 के तहत एक शिकायत दर्ज की कि ₹2,00,000/- मूल्य के प्रदूषण नियंत्रण उपकरण स्थापित नहीं किए गए थे, इस प्रकार, पुनरीक्षणकर्ता ने ₹2,00,000/- की 'अपराध की आय' उत्पन्न की थी और उसे अपने पास रख लिया था। विचारण न्यायालय ने डिस्चार्ज के लिए एक आवेदन खारिज कर दिया था। उपरोक्त आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण में, यह प्रस्तुत किया गया था कि अवर न्यायालय के समक्ष पेश किए गए डिस्चार्ज के लिए आवेदन को

पीएमएलए की धारा 2 (वाई) (ii) के प्रावधानों पर विचार किए बिना गलत तरीके से खारिज कर दिया गया था। पुनरीक्षण को स्वीकार करते हुए, समन्वय पीठ ने माना कि: -

"15. 2019 के अधिनियम संख्या 23 के अनुसार, पीएमएल अधिनियम की धारा 2(यू) में स्पष्टीकरण खंड जोड़ा गया है, जो स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि 'अपराध की आय' में न केवल परिगणित अपराध से प्राप्त या प्राप्त की गई संपत्ति शामिल है, बल्कि ऐसी कोई भी संपत्ति भी शामिल है जो परिगणित अपराध से संबंधित किसी भी आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त या प्राप्त की जा सकती है। निस्संदेह, वर्तमान प्रकरण में, इकाई की लागत, यानी ₹2 लाख, जिसे कारखाने में स्थापित नहीं किया गया था, को 'अपराध की आय' के रूप में माना जाता है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद करने में विफल रहे कि शुरू में लगाया गया आरोप यह था कि अपराध में शामिल कुल मूल्य ₹30 लाख से अधिक था, जिसका स्पष्ट रूप से ईसीआईआर में उल्लेख किया गया है, लेकिन बाद में, शिकायत प्रकरण में, केवल उन उपकरणों की लागत जिन्हें स्थापित नहीं किया गया था, को 'अपराध की आय' के रूप में माना जाता है। बेशक, अवर न्यायालय प्रकरण के इस पहलू पर विचार करने में विफल रही।"

22. यह ध्यान देने योग्य है कि वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 37 के अंतर्गत अपराध का उल्लेख मूल रूप से पीएमएलए में संलग्न अपराधों की अनुसूची में नहीं किया गया था। इसे 2009 के अधिनियम 21 द्वारा अनुसूची के भाग बी के पैराग्राफ 24 में शामिल किया गया था। इस प्रकार वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 37 के अंतर्गत अपराध 12.09.1984 से 17.07.2007 की अवधि के दौरान पीएमएलए के अंतर्गत परिगणित अपराध नहीं था, जबकि यह अपराध किया गया था, फिर भी अभियुक्त पर पीएमएलए की धारा 3 के अंतर्गत अपराध करने का आरोप लगाया गया। समन्वय पीठ ने इस आधार पर कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं किया कि जिस दिन अपराध किया गया, उस दिन यह परिगणित अपराध नहीं था।

23. आगे बढ़ने से पहले पीएमएलए की धारा 3 पर नजर डालना उचित होगा, जो इस प्रकार है: -

3. धन शोधन का अपराध- जो कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराध की आय से संबंधित किसी प्रक्रिया या गतिविधि में लिप्त होने का प्रयास करता है या जानबूझकर सहायता करता है या जानबूझकर एक पक्ष है या वास्तव में शामिल है, जिसमें इसे छिपाना, कब्जा करना, अधिग्रहण करना या उपयोग करना और इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या दावा करना शामिल है, वह धन शोधन के अपराध का दोषी होगा।

स्पष्टीकरण.- संदेहों को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि,-

(i) कोई व्यक्ति धन शोधन के अपराध का दोषी होगा यदि ऐसा व्यक्ति अपराध की आय से संबंधित निम्नलिखित प्रक्रियाओं या गतिविधियों में से एक या अधिक में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लिप्त होने का प्रयास करता हुआ या जानबूझकर सहायता करता हुआ पाया जाता है या जानबूझकर पक्षकार है या वास्तव में शामिल है, अर्थात् -

(क) छिपाना; या

(ख) कब्जा; या

(ग) अधिग्रहण; या

(घ) उपयोग; या

(ङ) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; या

(च) बेदाग संपत्ति होने का दावा करना,

किसी भी तरह से;

(ii) अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि एक सतत गतिविधि है और तब तक जारी रहती है जब तक कोई व्यक्ति अपराध की आय को छिपाकर या कब्जे में लेकर या अधिग्रहण करके या उपयोग करके या इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करके या किसी भी तरह से बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसका आनंद ले रहा है।

24. ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव ने विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि: -

“269. 2002 अधिनियम की धारा 3 की भाषा से यह स्पष्ट है कि धन शोधन का अपराध एक स्वतंत्र अपराध है, जो अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो किसी परिगणित अपराध से संबंधित या उससे संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की गई है। प्रक्रिया या गतिविधि किसी भी रूप में हो सकती है - चाहे वह अपराध की आय को छिपाना, कब्जा करना, प्राप्त करना, उपयोग करना हो या इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या ऐसा होने का दावा करना हो। इस प्रकार, अपराध की आय से जुड़ी ऐसी किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होना धन शोधन का अपराध माना जाएगा। इस अपराध का परिगणित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि से कोई लेना-देना नहीं है - सिवाय उस अपराध के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की गई अपराध की आय के।

270. यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी प्रक्रिया या गतिविधि में केवल तभी लिप्त रहा जा सकता है जब संपत्ति आपराधिक गतिविधि

(परिगणित अपराध) के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त की गई हो। अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में लिप्त होना या सहायता करना या उसका हिस्सा बनना मनी-लॉन्ड्रिंग का अपराध होगा; और किसी दिए गए तथ्य की स्थिति में ऐसी प्रक्रिया या गतिविधि परिगणित अपराध के होने की तिथि और समय पर ध्यान दिए बिना एक सतत अपराध हो सकती है। दूसरे शब्दों में, आपराधिक गतिविधि 2002 अधिनियम के उद्देश्य के लिए परिगणित अपराध के रूप में अधिसूचित किए जाने से पहले की गई हो सकती है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति परिगणित अपराध के रूप में अधिसूचित किए जाने के बाद भी ऐसी आपराधिक गतिविधि से प्राप्त या प्राप्त अपराध की आय से निपटने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लिप्त है या लिप्त रहता है, तो उस पर 2002 अधिनियम के तहत मनी-लॉन्ड्रिंग के अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है - अपराध की आय को (पूरी तरह या आंशिक रूप से) अपने पास रखना या छिपाना या उस पर कब्जा बनाए रखना या पूरी तरह से समाप्त होने तक उसका दुरुपयोग करना। मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध उस तारीख पर निर्भर या उससे जुड़ा नहीं है जिस दिन परिगणित अपराध या अगर हम ऐसा कहें तो विधेय अपराध किया गया है। प्रासंगिक तिथि वह तिथि है जिस

दिन व्यक्ति अपराध की ऐसी आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में शामिल होता है। ये तत्व मूल प्रावधान (धारा 3, जिसे 2013 तक संशोधित किया गया था और 31.7.2019 तक लागू था) में अंतर्निहित हैं; और इसे केवल वित्त (सं. 2) अधिनियम, 2019 के स्पष्टीकरण के माध्यम से समझाया और स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार समझा जाता है कि 2019 में डाले गए स्पष्टीकरण में खंड (ii) को शामिल करने का कोई महत्व नहीं है क्योंकि यह धारा 3 के दायरे को बिल्कुल भी नहीं बदलता या बढ़ाता है।”

25. उपर्युक्त चर्चा के मददेनजर, यह स्पष्ट है कि मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध परिगणित अपराध से अलग और विशिष्ट अपराध है। शिकायत में आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्तागण ने अपराध की आय प्राप्त की है और उन्होंने इसे गबन कर लिया है। याचिकाकर्ता अपराध की आय के कब्जे, अधिग्रहण और उपयोग में शामिल रहे हैं और उन्होंने अपराध की आय को कब्जे, अधिग्रहण और उपयोग करके इसका आनंद लिया है।

26. जहां तक पुनरीक्षण जापन में आधार XII का सवाल है, कि विचारण न्यायालय ने इस बात को नजरअंदाज कर दिया है कि सभी नकद लेनदेन या नियम 3 के अनुसार किसी भी लेनदेन के लिए न्यूनतम सीमा 10 लाख रुपये है, हालांकि आधार यह निर्दिष्ट नहीं करता है कि याचिकाकर्ता किस नियम का

हवाला दे रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता धन शोधन निवारण (रिकॉर्ड का रखरखाव) नियम, 2005 के नियम 3 का हवाला दे रहे हैं, जिसे "लेनदेन की प्रकृति और मूल्य के रिकॉर्ड के रखरखाव, जानकारी प्रस्तुत करने और बैंकिंग कंपनियों, वित्तीय संस्थानों और बिचौलियों के ग्राहकों की पहचान के रिकॉर्ड के सत्यापन के लिए प्रक्रिया और तरीके और समय" को विनियमित करने के लिए तैयार किया गया है। उपरोक्त नियमों के नियम 3 का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

3. लेन-देन के अभिलेखों का रखरखाव (प्रकृति और मूल्य).- प्रत्येक रिपोर्टिंग इकाई सभी लेन-देनों का अभिलेख बनाए रखेगी, जिसमें निम्नलिखित का अभिलेख शामिल है-

(ए) दस लाख रुपये या उसके समतुल्य विदेशी मुद्रा से अधिक मूल्य के सभी नकद लेनदेन;

* * *

27. उपर्युक्त नियम 3 का यह निर्णय लेने में कोई महत्व नहीं है कि किसी व्यक्ति पर पीएमएलए की धारा 3 के तहत अपराध करने के लिए मुकदमा चलाने की आवश्यकता है या नहीं।

28. उपर्युक्त चर्चा के मददेनजर, मेरा विचार है कि विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्तागण को बरी करने के आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया है और आदेशों में कोई अवैधता नहीं दिखती है। किसी भी प्रकरण में, आदेशों में ऐसी कोई अवैधता नहीं है जो इस

न्यायालय को अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप करने के लिए कहे।

29. पुनरीक्षणों में कोई बल नहीं है, अतः इन्हें खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 616

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2047 सन् 2023

श्रीमती रानी गौर

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता: श्री अभिताभ तिवारी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्रीमती अर्चना त्यागी, श्री पंकज कुमार त्यागी

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण, परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1981 - धारा 138 - खाते में धन की कमी आदि के कारण चेक का अनादर - अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध मुख्य रूप से एक सिविल अपराध है - मामले की सुनवाई सामान्यतः सीआरपीसी में निर्धारित तरीके से की जानी चाहिए - परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध को कम करने के लिए शिकायतकर्ता

की सहमति आवश्यक है - कुछ परिस्थितियों में शिकायतकर्ता की प्रत्यक्ष सहमति प्राप्त किए बिना मामले का निपटारा किया जा सकता है - परिस्थितियों में उचित और स्वीकार्य राशि की पेशकश करना शामिल है जो न्यायालय की राय में शिकायतकर्ता को उचित मुआवजा देने के लिए उपयुक्त है - कुछ परिस्थितियों में न्यायालय प्रत्यक्ष सहमति के अभाव में भी आगे बढ़ सकती है - न्यायालय प्रावधानों के संदर्भ में अपने विवेक का उपयोग करने के लिए सशक्त है धारा 258 सीआरपीसी (पैरा -8)

धारा 138 एनआई अधिनियम के तहत शिकायत - परीक्षण न्यायालय के समक्ष लंबित - अभियुक्त ने 11 लाख रुपये का डिमांड ड्राफ्ट दाखिल किया - मामले को निपटाने का अनुरोध किया - पुनरीक्षणकर्ता ने आपत्ति जताई - 13 साल बीत जाने के बाद भी 11 लाख रुपये में मामला निपटाने को तैयार नहीं - मजिस्ट्रेट ने आवेदन खारिज कर दिया - अभियुक्त ने आदेश को चुनौती दी - पुनरीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को रद्द करने का फैसला किया - परीक्षण न्यायालय को उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया- *मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम कंचन मेहता मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार* - वर्तमान पुनरीक्षण (पैरा-3)

माना गया:- जहां उचित राशि पेश की गई है/जमा की गई है, वहां परीक्षण न्यायालय कार्यवाही को छोड़ने पर विचार कर सकता है (*मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड*

और अन्य बनाम कंचन मेहता)। जुर्माने के संबंध में धारा 138 एनआई अधिनियम के प्रावधान प्रत्येक मामले के सभी विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के साथ मिलकर मुआवजे की राशि को न्यायसंगत, उचित और स्वीकार्य निर्धारित करने के लिए सर्वोत्तम मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर सकते हैं। न्यायालय को धारा 258 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही को अंतिम रूप से तय करने और छोड़ने से पहले अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए। हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं है। (पैरा -8,9)

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स मीटर्स एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम कंचन मेहता, एआईआर 2017 एससी 4594
2. दामोदर एस प्रभु बनाम सईद बाबालाल, (2010) 5 एससीसी 663
3. निधि निटवेयर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम हनी होजरी मिल्स, 2022 0 सुप्रीम (पी एंड एच) 549
4. अनंत टूल्स (यूनिट नंबर II) प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम मेसर्स अनंत टूल्स प्राइवेट लिमिटेड, जालंधर, 2019(1) आरसीआर (आपराधिक) 137
5. जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम अमरलाल बनाम जुमनई एवं अन्य, 2012(1) आरसीआर (आपराधिक) 822

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा वितरित)

1. श्री अभिताब कुमार तिवारी, पुनरीक्षणवादी के लिए विद्वान वकील, श्री ओ.पी. मिश्रा, राज्य के लिए विद्वान एजीए और श्रीमती अर्चना त्यागी, उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वकील को सुना।

2. इस आपराधिक पुनरीक्षण के माध्यम से, पुनरीक्षणकर्ता ने सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 205/2023 (विश्वकर्मा बिल्डर्स और अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य) में दिनांक 23.03.2023 को पारित आदेश को चुनौती दी है जिसके तहत विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने अतिरिक्त विशेष न्यायालय संख्या. 2, मेरठ द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आपराधिक शिकायत वाद सं. 1577/2009 (रानी गौड़ बनाम विश्वकर्मा बिल्डर्स और अन्य), पुलिस स्टेशन परतापुर, जिला मेरठ में पारित आदेश दिनांक 24.02.2023 को रद्द कर दिया।

3. प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

वर्तमान पुनरीक्षणवादी ने 11.08.2009 को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की, जो ट्रायल न्यायालय के समक्ष लंबित है; कार्यवाही के दौरान आरोपी ने 11 लाख रुपये का डिमांड ड्राफ्ट दाखिल किया और ट्रायल न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता/शिकायतकर्ता को मामले को समझौता करने का निर्देश देने के लिए प्रार्थना की; पुनरीक्षणवादी ने यह कहते हुए समझौता करने पर आपत्ति जताई कि वह 13 वर्ष बीतने के बाद, 11 लाख रुपये के लिए मामले को निपटाने के लिए तैयार नहीं है। विद्वान

मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त के आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि शिकायतकर्ता को मामले में समझौता करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त ने पुनरीक्षण दायर करके उपरोक्त आदेश को चुनौती दी; पुनरीक्षण का निर्णय विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किया गया, जिसके तहत आक्षेपित आदेश को अपास्त किया गया और विचारण न्यायालय को **मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता: एआईआर 2017 उच्चतम न्यायालय 4594** में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया।।

4. पुनरीक्षणवादी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष अवैध और मनमाना है और कानून के प्रावधानों के खिलाफ है; आरोपी, लगभग 14 वर्ष बीत जाने के बाद, केवल 10% अतिरिक्त राशि के साथ चेक की राशि देकर मामले को रफा-दफा करना चाहता है; वह 2009 से पीड़ित है और उसे घरेलू उद्देश्यों के लिए पैसे की सख्त जरूरत है; **दामोदर एस प्रभु बनाम सैयद बाबालाल: (2010) 5 एससी 663** और **मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता (उपरोक्त)** के निर्णय के आलोक में अभियुक्त किसी भी लाभ का हकदार नहीं है। वर्तमान विवाद से संबंधित परिस्थितियाँ, कहानी, पृष्ठभूमि, तथ्य और दोनों के बीच सिविल मुकदमों का हवाला देते हुए, पुनरीक्षणवादी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि दोनों मामलों में अपनी संभावित विफलता की

आशंका से, उसने 13 साल बाद, 10 लाख रुपये के चेक की राशि के लिए 11 लाख रुपये देकर खुद को बचाने की कोशिश की।

5. मैंने **मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता (उपरोक्त)** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अध्ययन किया। उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मामले अनिवार्य रूप से सिविल दोष हैं और मामले को आम तौर पर सी.आर.पी.सी में निर्धारित सारांश तरीके से चलाया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा-18 में निम्नानुसार देखा गया:-

" 1) अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध मुख्य रूप से एक सिविल दोष है। धारा 139 के तहत उपधारणा को ध्यान में रखते हुए प्रमाण का भार आरोपी पर है, लेकिन ऐसे प्रमाण का मानक "संभावनाओं की प्रधानता" है। इसे आम तौर पर सीआरपीसी के तहत सारांश परीक्षण के प्रावधानों, अधिनियम के अध्याय XVII के तहत कार्यवाही के लिए उपयुक्त भिन्नता के साथ, के अनुसार संक्षेप में आजमाया जाना चाहिए।। इस प्रकार, सीआरपीसी की धारा 258 का सिद्धांत लागू होगा और इस बात से संतुष्ट होने पर कि मूल्यांकित लागत और ब्याज के साथ चेक राशि का भुगतान कर दिया गया है और यदि दंडात्मक पहलू के साथ आगे बढ़ने का कोई कारण नहीं है तो न्यायालय कार्यवाही बंद कर सकती है और आरोपी को आरोपमुक्त कर सकती है।

ii) प्रावधान का उद्देश्य मुख्य रूप से प्रतिपूरक है, दंडात्मक तत्व मुख्य रूप से प्रतिपूरक तत्व को लागू करने के उद्देश्य से है, प्रारंभिक चरण में समझौते को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, लेकिन बाद के चरण में, उचित मुआवजे जो दोनों पक्षों या न्यायालय को स्वीकार्य हो, के अधीन, इसे रोका नहीं जा सकता है ।

iii) हालाँकि समझौते के लिए दोनों पक्षों की सहमति की आवश्यकता होती है, ऐसी सहमति की अनुपस्थिति की स्थिति में भी, न्यायालय, न्याय के हित में, इस पर संतुष्ट होने पर शिकायतकर्ता को उचित मुआवजा दिया गया है, वह अपने विवेक से इस वाद की कार्यवाही को बंद कर सकता और अभियुक्त को बरी कर सकता है । "

6. दूसरी ओर, पुनरीक्षणवादी ने मेरा ध्यान निधि निटवियर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम हनी होजरी मिल्स: 2022 (0) सुप्रीम (पी एंड एच) 549 मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एक निर्णय की ओर आकर्षित किया है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने मैसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। जिसमें यह निम्नानुसार देखा गया है: -

"12. इस न्यायालय ने मैसर्स अनंत टूल्स मामले (उपरोक्त) में, जेआईके इंडस्ट्रीज मामले (उपरोक्त) और मैसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स मामले (उपरोक्त) में निर्णयों को व्यापक रूप से निपटाया है। निर्णय के पैरा 12 में (यहां

ऊपर पुनः प्रस्तुत), इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यदि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की अगली पीठ समान शक्ति वाली पिछली पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न होती है, तो बाद की पीठ के लिए मामले को एक बड़ी बेंच को संदर्भित करना ही एकमात्र रास्ता होगा। यदि, उपरोक्त विकल्प का उपयोग बाद की बेंच द्वारा नहीं किया गया है, तो समान शक्ति वाली पिछली बेंच द्वारा लिया गया दृष्टिकोण ही मान्य होगा। हेमलता के मामले (उपरोक्त) में, जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) में निर्णय का उल्लेख किया गया है, लेकिन इस बात पर कोई चर्चा नहीं है कि न्यायालय ने जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के मामले को छोड़कर मैसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स (उपरोक्त) में निर्धारित कानून का पालन करना क्यों चुना है। सूबा सिंह (उपरोक्त) और विकास जिष्टु (उपरोक्त) के मामलों में, निर्भरता मात्र मैसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स (उपरोक्त) पर रखी गई है और जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं किया गया है।

13. "मैसर्स इंडो स्विस् टाइम लिमिटेड बनाम उमराव और अन्य 1981 एआईआर (पंजाब और हरियाणा) 213" के मामले में, इस न्यायालय ने माना है कि जब उच्च न्यायालय के निर्णय सह-समान पीठों और समान शक्ति के होते हैं, तो उनके महत्व को अनिवार्य रूप से औचित्य और तर्क द्वारा माना जाना चाहिए, न कि उस दिन की समय और तारीख की आकस्मिक परिस्थितियां द्वारा, जिस दिन

उन्हें प्रस्तुत किया गया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालय की समान शक्ति की पीठों द्वारा दिए गए दो निर्णय सीधे तौर पर विरोधाभासी होते हैं तो वे दोनों अवर न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में, न्याय के हित में यह उच्च न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य है कि वह सम्मानपूर्वक उसका पालन करे जो उसे कानून को सटीक रूप से या किसी भी मामले में, अन्य विरोधाभासी निर्णयों की तुलना में अधिक सटीक रूप से विश्लेषित प्रतीत होता है। वर्तमान मामले में, उक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, प्रत्यक्ष रूप से, अनंत टूल्स (यूनिट II) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) का निर्णय हेमलता (उपरोक्त), सुबा सिंह (उपरोक्त) और विकास जिष्टु के मामलों के निर्णय की तुलना में कानून को अधिक सटीक रूप से प्रस्तुत करता है।"

7. यह ध्यान दिया जा सकता है कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने अनंत टूल्स (यूनिट नंबर II) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मेसर्स अनंत टूल्स प्रा. लिमिटेड, जालंधर, 2019(1) आरसीआर (आपराधिक) 137 में दी गई टिप्पणी का पालन किया, जिसमें न्यायालय ने जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य बनाम अमरलाल बनाम जुमनई और अन्य, 2012(1) आरसीआर (आपराधिक) 822 के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया, जिसमें कहा गया है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध का प्रशमन करने के लिए शिकायतकर्ता की सहमति आवश्यक है।

8. मैंने दोनों निर्णयों का अध्ययन किया। उच्चतम न्यायालय ने यह नहीं कहा कि समझौता करने के लिए के लिए सहमति की आवश्यकता को खत्म कर दिया जाए। इसके बजाय, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दायर मामलों के क्षतिपूर्ति पहलू को व्यापक बनाने के लिए, शीर्ष न्यायालय ने मौजूदा योजना में एक शिथिलीकरण देते हुए कहा है कि कुछ परिस्थितियों में शिकायतकर्ता की प्रत्यक्ष सहमति प्राप्त किए बिना भी मामले का निपटारा किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में उचित और स्वीकार्य राशि की पेशकश शामिल थी जो न्यायालय की राय में शिकायतकर्ता को उचित मुआवजा देने के लिए उपयुक्त है। यानी कुछ परिस्थितियों में न्यायालय प्रत्यक्ष सहमति के अभाव में भी आगे बढ़ सकती है। न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 258 के प्रावधानों के अनुसार अपने विवेकानुसार कार्य करने का अधिकार है। यह स्पष्ट किया जा सकता है कि मामले का यह पहलू उस वाद को सुलझाने से अलग जहां दोनों पक्ष सहमत हैं। पुनरीक्षण न्यायालय ने वाद को मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुसार नए सिरे से निर्णीत करने के लिए भेज दिया है। उपरोक्त निर्णय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया है कि जहां उचित राशि की पेशकश/जमा की गई है, विचारण न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने पर विचार कर सकता है। निश्चित रूप से इस संबंध में शिकायतकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों, यदि कोई हो, पर संबंधित न्यायालय द्वारा मुआवजे के रूप में उचित राशि की पेशकश/जमा के आधार पर कार्रवाई करने का

निर्णय लेने से पहले विचार किया जाएगा। मुआवजे की राशि के निर्धारण के लिए अपनाए जाने वाले मानदंडों के बारे में एक प्रासंगिक प्रश्न उठ सकता है जिसे उचित, निष्पक्ष और स्वीकार्य कहा जा सकता है। मेरी राय में, धारा 138 एन.आई. अधिनियम के प्रावधान जुर्माने से संबंधित प्रत्येक मामले के सभी विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के साथ मिलकर मुआवजे की राशि को उचित, निष्पक्ष और स्वीकार्य निर्धारित करने के लिए सर्वोत्तम मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर सकता है। सीआरपीसी की धारा 258 के तहत अंतिम निर्णय लेने और कार्यवाही को समाप्त करने से पहले न्यायालय को उपरोक्त के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए। निश्चित रूप से न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि जब वह मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के आलोक में वाद का निर्णय करने के लिए आगे बढ़े तो वह अपने विवेक और न्यायिक विशेषाधिकार का प्रयोग करेगी। न्यायालय ने ऐसे मामलों में विवेक की अपनी शक्ति नहीं खोई है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए मुझे हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं दिखता।

9. तदनुसार, यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 620

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2230 वर्ष 2023

श्रीमती रानी गौर

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रत्यर्थी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता: श्री अभिताभ तिवारी

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्रीमती अर्चना त्यागी, श्री पंकज कुमार त्यागी

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1981 - धारा 138 - खाते में धन की कमी आदि के कारण चेक का अनादर - अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध मुख्य रूप से एक सिविल अपराध है - मामले की सुनवाई सामान्यतः सीआरपीसी में निर्धारित तरीके से की जानी चाहिए। - धारा 138 के तहत अपराध को कम करने के लिए शिकायतकर्ता की सहमति आवश्यक है - कुछ परिस्थितियों में शिकायतकर्ता की प्रत्यक्ष सहमति प्राप्त किए बिना मामले का निपटारा किया जा सकता है - परिस्थितियों में उचित और स्वीकार्य राशि की पेशकश करना शामिल है जो न्यायालय की राय में शिकायतकर्ता को उचित मुआवजा देने के लिए उपयुक्त है - कुछ परिस्थितियों में न्यायालय प्रत्यक्ष सहमति के अभाव में आगे बढ़ सकती है - न्यायालय को धारा 258 सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार अपने विवेक का उपयोग करने का अधिकार है। (पैरा -8)

धारा 138 एनआई अधिनियम के तहत शिकायत - परीक्षण न्यायालय के समक्ष लंबित - अभियुक्त ने 11 लाख रुपये का डिमांड ड्राफ्ट दाखिल किया - मामले को निपटाने का अनुरोध किया - पुनरीक्षणकर्ता ने आपत्ति जताई - 13 साल बीत जाने के बाद भी 11 लाख रुपये में मामला निपटाने को तैयार नहीं - मजिस्ट्रेट ने आवेदन खारिज कर दिया - अभियुक्त ने आदेश को चुनौती दी - पुनरीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को रद्द करने का फैसला किया - परीक्षण न्यायालय को उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया - **मेसर्स मीटर्स एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम कंचन मेहता मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार** -वर्तमान पुनरीक्षण। (पैरा-3)

माना गया:- जहां उचित राशि पेश की गई है/जमा की गई है, वहां परीक्षण न्यायालय कार्यवाही को छोड़ने पर विचार कर सकता है **(मेसर्स मीटर्स एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता)**। जुर्माने के संबंध में धारा 138 एनआई अधिनियम के प्रावधान प्रत्येक मामले के सभी विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के साथ मिलकर मुआवजे की राशि को न्यायसंगत, उचित और स्वीकार्य निर्धारित करने के लिए सर्वोत्तम मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर सकते हैं। न्यायालय को धारा 258 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही को अंतिम रूप से तय करने और छोड़ने से पहले अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए। हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं है। (पैरा -8,9)

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स मीटर्स एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम कंचन मेहता, एआईआर 2017 एससी 4594
2. दामोदर एस प्रभु बनाम सईद बाबालाल, (2010) 5 एससीसी 663
3. निधि निटवेयर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम हनी होजरी मिल्स, 2022 0 सुप्रीम (पी एंड एच) 549
4. अनंत टूल्स (यूनिट नंबर II) प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम मेसर्स अनंत टूल्स प्राइवेट लिमिटेड, जालंधर, 2019(1) आरसीआर (आपराधिक) 137
5. जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम अमरलाल बनाम जुमनई एवं अन्य, 2012(1) आरसीआर (आपराधिक) 822

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा वितरित)

1. श्री अभिताब कुमार तिवारी, पुनरीक्षणवादी के लिए विद्वान वकील, श्री ओ.पी. मिश्रा, राज्य के लिए विद्वान एजीए और श्रीमती अर्चना त्यागी, उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वकील को सुना।
2. इस आपराधिक पुनरीक्षण के माध्यम से, पुनरीक्षणकर्ता ने सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 205/2023 (विश्वकर्मा बिल्डर्स और अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य) में दिनांक 23.03.2023 को पारित आदेश को चुनौती दी है जिसके तहत विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने अतिरिक्त विशेष न्यायालय संख्या. 2, मेरठ द्वारा

परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आपराधिक शिकायत वाद सं. 1577/2009 (रानी गौड़ बनाम विश्वकर्मा बिल्डर्स और अन्य), पुलिस स्टेशन परतापुर, जिला मेरठ में पारित आदेश दिनांक 24.02.2023 को रद्द कर दिया!

3. प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

वर्तमान पुनरीक्षणवादी ने 11.08.2009 को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की, जो ट्रायल न्यायालय के समक्ष लंबित है; कार्यवाही के दौरान आरोपी ने 11 लाख रुपये का डिमांड ड्राफ्ट दाखिल किया और ट्रायल न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता/शिकायतकर्ता को मामले को समझौता करने का निर्देश देने के लिए प्रार्थना की; पुनरीक्षणवादी ने यह कहते हुए समझौता करने पर आपत्ति जताई कि वह 13 वर्ष बीतने के बाद, 11 लाख रुपये के लिए मामले को निपटाने के लिए तैयार नहीं है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त के आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि शिकायतकर्ता को मामले में समझौता करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त ने पुनरीक्षण दायर करके उपरोक्त आदेश को चुनौती दी; पुनरीक्षण का निर्णय विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किया गया, जिसके तहत आक्षेपित आदेश को अपास्त किया गया और विचारण न्यायालय को **मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता: एआईआर 2017 उच्चतम न्यायालय 4594** में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया।।

4. पुनरीक्षणवादी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष अवैध और मनमाना है और कानून के प्रावधानों के खिलाफ है; आरोपी, लगभग 14 वर्ष बीत जाने के बाद, केवल 10% अतिरिक्त राशि के साथ चेक की राशि देकर मामले को रफा-दफा करना चाहता है; वह 2009 से पीड़ित है और उसे घरेलू उद्देश्यों के लिए पैसे की सख्त जरूरत है; **दामोदर एस प्रभु बनाम सैयद बाबालाल: (2010) 5 एससी 663 और मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता (उपरोक्त)** के निर्णय के आलोक में अभियुक्त किसी भी लाभ का हकदार नहीं है। वर्तमान विवाद से संबंधित परिस्थितियाँ, कहानी, पृष्ठभूमि, तथ्य और दोनों के बीच सिविल मुकदमों का हवाला देते हुए, पुनरीक्षणवादी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि दोनों मामलों में अपनी संभावित विफलता की आशंका से, उसने 13 साल बाद, 10 लाख रुपये के चेक की राशि के लिए 11 लाख रुपये देकर खुद को बचाने की कोशिश की।

5. मैंने **मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता (उपरोक्त)** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अध्ययन किया। उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मामले अनिवार्य रूप से सिविल दोष हैं और मामले को आम तौर पर सी.आर.पी.सी में निर्धारित सारांश तरीके से चलाया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा-18 में निम्नानुसार देखा गया:-

" i) अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध मुख्य रूप से एक सिविल दोष है। धारा 139 के तहत उपधारणा को ध्यान में रखते हुए प्रमाण का भार आरोपी पर है, लेकिन ऐसे प्रमाण का मानक "संभावनाओं की प्रधानता" है। इसे आम तौर पर सीआरपीसी के तहत सारांश परीक्षण के प्रावधानों, अधिनियम के अध्याय XVII के तहत कार्यवाही के लिए उपयुक्त भिन्नता के साथ, के अनुसार संक्षेप में आजमाया जाना चाहिए।। इस प्रकार, सीआरपीसी की धारा 258 का सिद्धांत लागू होगा और इस बात से संतुष्ट होने पर कि मूल्यांकित लागत और ब्याज के साथ चेक राशि का भुगतान कर दिया गया है और यदि दंडात्मक पहलू के साथ आगे बढ़ने का कोई कारण नहीं है तो न्यायालय कार्यवाही बंद कर सकती है और आरोपी को आरोपमुक्त कर सकती है।

ii) प्रावधान का उद्देश्य मुख्य रूप से प्रतिपूरक है, दंडात्मक तत्व मुख्य रूप से प्रतिपूरक तत्व को लागू करने के उद्देश्य से है, प्रारंभिक चरण में समझौते को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, लेकिन बाद के चरण में, उचित मुआवजे जो दोनों पक्षों या न्यायालय को स्वीकार्य हो, के अधीन, इसे रोका नहीं जा सकता है ।

iii) हालाँकि समझौते के लिए दोनों पक्षों की सहमति की आवश्यकता होती है, ऐसी सहमति की अनुपस्थिति की स्थिति में भी, न्यायालय, न्याय के हित में, इस पर संतुष्ट होने पर शिकायतकर्ता को उचित मुआवजा दिया गया है, वह अपने विवेक से इस वाद की

कार्यवाही को बंद कर सकता और अभियुक्त को बरी कर सकता है । "

6. दूसरी ओर, पुनरीक्षणवादी ने मेरा ध्यान निधि निटवियर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम हनी होजरी मिल्स: 2022 (0) सुप्रीम (पी एंड एच) 549 मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एक निर्णय की ओर आकर्षित किया है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने मैसर्स मीटर्स एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम कंचन मेहता (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। जिसमें यह निम्नानुसार देखा गया है: -

"12. इस न्यायालय ने मेसर्स अनंत टूल्स मामले (उपरोक्त) में, जेआईके इंडस्ट्रीज मामले (उपरोक्त) और मेसर्स मीटर्स एंड इंडस्ट्रीज मामले (उपरोक्त) में निर्णयों को व्यापक रूप से निपटाया है। निर्णय के पैरा 12 में (यहां ऊपर पुनः प्रस्तुत), इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यदि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की अगली पीठ समान शक्ति वाली पिछली पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न होती है, तो बाद की पीठ के लिए मामले को एक बड़ी बेंच को संदर्भित करना ही एकमात्र रास्ता होगा। यदि, उपरोक्त विकल्प का उपयोग बाद की बेंच द्वारा नहीं किया गया है, तो समान शक्ति वाली पिछली बेंच द्वारा लिया गया दृष्टिकोण ही मान्य होगा। हेमलता के मामले (उपरोक्त) में, जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) में निर्णय का उल्लेख किया गया है, लेकिन इस बात पर कोई चर्चा नहीं है कि

न्यायालय ने जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के मामले को छोड़कर मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स (उपरोक्त) में निर्धारित कानून का पालन करना क्यों चुना है। सूबा सिंह (उपरोक्त) और विकास जिष्ट (उपरोक्त) के मामलों में, निर्भरता मात्र मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स (उपरोक्त) पर रखी गई है और जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं किया गया है।

13. "मेसर्स इंडो स्विस् टाइम लिमिटेड बनाम उमराव और अन्य 1981 एआईआर (पंजाब और हरियाणा) 213" के मामले में, इस न्यायालय ने माना है कि जब उच्च न्यायालय के निर्णय सह-समान पीठों और समान शक्ति के होते हैं, तो उनके महत्व को अनिवार्य रूप से औचित्य और तर्क द्वारा माना जाना चाहिए, न कि उस दिन की समय और तारीख की आकस्मिक परिस्थितियाँ द्वारा, जिस दिन उन्हें प्रस्तुत किया गया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालय की समान शक्ति की पीठों द्वारा दिए गए दो निर्णय सीधे तौर पर विरोधाभासी होते हैं तो वे दोनों अवर न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में, न्याय के हित में यह उच्च न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य है कि वह सम्मानपूर्वक उसका पालन करे जो उसे कानून को सटीक रूप से या किसी भी मामले में, अन्य विरोधाभासी निर्णयों की तुलना में अधिक सटीक रूप से विश्लेषित प्रतीत होता है। वर्तमान मामले में, उक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, प्रत्यक्ष रूप से, अनंत टूल्स (यूनिट II) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) का

निर्णय हेमलता (उपरोक्त), सुबा सिंह (उपरोक्त) और विकास जिष्ट के मामलों के निर्णय की तुलना में कानून को अधिक सटीक रूप से प्रस्तुत करता है।"

7. यह ध्यान दिया जा सकता है कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने अनंत टूल्स (यूनिट नंबर II) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मेसर्स अनंत टूल्स प्रा. लिमिटेड, जालंधर, 2019(1) आरसीआर (आपराधिक) 137 में दी गई टिप्पणी का पालन किया, जिसमें न्यायालय ने जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य बनाम अमरलाल बनाम जुमनई और अन्य, 2012(1) आरसीआर (आपराधिक) 822 के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया, जिसमें कहा गया है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध का प्रशमन करने के लिए शिकायतकर्ता की सहमति आवश्यक है।

8. मैंने दोनों निर्णयों का अध्ययन किया। उच्चतम न्यायालय ने यह नहीं कहा कि समझौता करने के लिए के लिए सहमति की आवश्यकता को खत्म कर दिया जाए। इसके बजाय, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दायर मामलों के क्षतिपूर्ति पहलू को व्यापक बनाने के लिए, शीर्ष न्यायालय ने मौजूदा योजना में एक शिथिलीकरण देते हुए कहा है कि कुछ परिस्थितियों में शिकायतकर्ता की प्रत्यक्ष सहमति प्राप्त किए बिना भी मामले का निपटारा किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में उचित और स्वीकार्य राशि की पेशकश शामिल थी जो न्यायालय की राय में

शिकायतकर्ता को उचित मुआवजा देने के लिए उपयुक्त है। यानी कुछ परिस्थितियों में न्यायालय प्रत्यक्ष सहमति के अभाव में भी आगे बढ़ सकती है। न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 258 के प्रावधानों के अनुसार अपने विवेकानुसार कार्य करने का अधिकार है। यह स्पष्ट किया जा सकता है कि मामले का यह पहलू उस वाद को सुलझाने से अलग जहां दोनों पक्ष सहमत हैं। पुनरीक्षण न्यायालय ने वाद को मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुसार नए सिरे से निर्णीत करने के लिए भेज दिया है। उपरोक्त निर्णय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया है कि जहां उचित राशि की पेशकश/जमा की गई है, विचारण न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने पर विचार कर सकता है। निश्चित रूप से इस संबंध में शिकायतकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों, यदि कोई हो, पर संबंधित न्यायालय द्वारा मुआवजे के रूप में उचित राशि की पेशकश/जमा के आधार पर कार्यवाई करने का निर्णय लेने से पहले विचार किया जाएगा। मुआवजे की राशि के निर्धारण के लिए अपनाए जाने वाले मानदंडों के बारे में एक प्रासंगिक प्रश्न उठ सकता है जिसे उचित, निष्पक्ष और स्वीकार्य कहा जा सकता है। मेरी राय में, धारा 138 एन.आई. अधिनियम के प्रावधान जुर्माने से संबंधित प्रत्येक मामले के सभी विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के साथ मिलकर मुआवजे की राशि को उचित, निष्पक्ष और स्वीकार्य निर्धारित करने के लिए सर्वोत्तम मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर सकता है। सीआरपीसी की धारा 258 के तहत अंतिम निर्णय लेने और कार्यवाही को समाप्त करने से

पहले न्यायालय को उपरोक्त के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए। निश्चित रूप से न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि जब वह मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के आलोक में वाद का निर्णय करने के लिए आगे बढ़े तो वह अपने विवेक और न्यायिक विशेषाधिकार का प्रयोग करेगी। न्यायालय ने ऐसे मामलों में विवेक की अपनी शक्ति नहीं खोई है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए मुझे हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं दिखता।

9. तदनुसार, यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 624

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3839 वर्ष 2022

श्रीमती दीप शर्मा एवं अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता
बनाम

श्रीमती बीनू शर्मा एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री इशिर श्रीपत, श्री प्रमोद कुमार, श्री राहुल श्रीपत (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री कुमवार राजन, श्री रणधीर सिंह

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 - धारा 12, 18, 19, 20, 21, 22, 23 और 29 - साझा घर/किराए का आवास।

(बी) आपराधिक विधि - घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 - धारा 2 (ए), 3 - पीड़ित व्यक्ति - प्रत्यर्थी को न केवल पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में होना चाहिए, बल्कि वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने पीड़ित व्यक्ति को घरेलू हिंसा का शिकार बनाया हो। (पैरा -14)

(सी) आपराधिक विधि - घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 - अध्याय IV - 'प्रत्यर्थी' के खिलाफ पारित किए जा सकने वाले आदेशों के प्रकार - धारा 18 से 22 - राहत केवल प्रत्यर्थी/प्रत्यर्थियों के खिलाफ दी जा सकती है - कोई भी व्यक्ति जो प्रत्यर्थी नहीं है या जो घरेलू हिंसा में शामिल नहीं पाया जाता है, उसे इस अधिनियम के दायरे में नहीं लाया जा सकता है - न्यायालय कथित धमकियों या हस्तक्षेप के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ आदेश पारित नहीं कर सकती हैं - यदि इस तरह की कार्रवाई की अनुमति दी जाती है तो यह एक बहुत ही खतरनाक प्रवृत्ति शुरू कर देगी, जिसके परिणामों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। (पैरा-14)

विपक्षी पक्ष ने अपने पति, ससुर, सास, जेठ और जेठानी के खिलाफ घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम की धारा 12

के तहत शिकायत दर्ज कराई - परीक्षण न्यायालय ने उसे दोषी पाया - अपीलकर्ता ने अपील की - अपीलीय न्यायालय ने आंशिक रूप से अपील स्वीकार की - धारा 19 और 20 के तहत संशोधित राहत - बाकी को खारिज कर दिया - परीक्षण न्यायालय ने बाकी को पुष्टि की, उल्लेखित भागों को छोड़कर - परीक्षण न्यायालय ने पाया - पति अपनी पत्नी के खिलाफ घरेलू हिंसा के लिए जिम्मेदार था - परिवार के बाकी सदस्यों के खिलाफ आरोप साबित करने में विफल रहा - न्यायालय ने पत्नी को साझा घर में रहने का अधिकार दिया - वैकल्पिक राहत का प्रावधान किया - अलग आवास के लिए किराया प्रदान करना - न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय के साझा घर/किराए के आवास आदेश में संशोधन के लिए कारण मांगे - अपीलीय न्यायालय ने फैसला सुनाया - प्रश्नगत घर/निवास साझा घर की परिभाषा के अंतर्गत आता है - पति और पत्नी कभी भूतल पर एक साथ रहते थे - परिवार के बाकी सदस्य ऊपरी मंजिलों पर रहते थे - न्यायालय ने पुष्टि की कि पुनरीक्षणवादियों सहित परिवार के बाकी सदस्यों द्वारा कोई घरेलू हिंसा नहीं की गई थी। (पैरा -2, 4,9,10)

माना गया:- परीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता हस्तक्षेप मानते हुए आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया। अपीलीय न्यायालय का आदेश अवैधता और अनुचितता के कारण निरस्त किया गया। (पैरा-15)

पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
द्वारा प्रदत्त)

1. श्री इशिर श्रीपत, विद्वान अधिवक्ता की सहायता से, श्री राहुल श्रीपत, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, पुनरीक्षणवादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री रणधीर सिंह, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान एजीए श्री ओ.पी. मिश्रा उपस्थित हैं। प्रतिवादी संख्या 2 से 6 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. इस आपराधिक पुनरीक्षण के माध्यम से पुनरीक्षणवादी श्रीमती दीप शर्मा और यज्ञवाल शर्मा ने विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर एक्ट), अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-6, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 27.08.2022 के आदेश को घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 29 के तहत एक आपराधिक अपील संख्या 204/2019, पुलिस स्टेशन साहिबाबाद, जिला गाजियाबाद द्वारा चुनौती दी है जिसकी उत्पत्ति घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 12, 18, 19, 20, 21, 22, 23 के तहत वाद संख्या 585/2019 (श्रीमती बीनू शर्मा बनाम धीरेन्द्र कौशिक और अन्य) से हुई है, जिसके द्वारा अपील को आंशिक रूप से स्वीकृति दी गई और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को संशोधित किया गया।

3. श्री इशिर श्रीपत, विद्वान अधिवक्ता की सहायता से, श्री राहुल श्रीपत, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, पुनरीक्षणवादी की ओर से विद्वान

अधिवक्ता, श्री रणधीर सिंह, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से विद्वान अधिवक्ता और श्री ओ.पी. मिश्रा, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया। प्रतिवादी संख्या 2 से 6 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

4. प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

प्रतिवादी सं. 1-श्रीमती बीनू शर्मा ने परिवाद प्रकरण क्रमांक 585/2019 में पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 12 के तहत उनके पति, ससुर, सास, जेठ और जेठानियों के खिलाफ कुछ आरोपों के साथ शिकायत दायर किया; विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष दिया कि उसके पति ने घरेलू हिंसा की थी, न कि बाकी विरोधी पक्षों ने; विद्वान विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षणवादी/आवेदक श्रीमती बीनू शर्मा को आदेश दिनांक 11.09.2019 द्वारा अधिनियम की धारा 18, 19, 20 और 22 के तहत केवल अपने पति के खिलाफ राहत की स्वीकृति दी; अपीलकर्ता बीनू शर्मा ने अपील संख्या 204/2019 के माध्यम से विचारण न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए और यह प्रार्थना के साथ कि वह सभी प्रतिवादियों के खिलाफ राहत की हकदार है जिसमें उसकी सास, ससुर, जेठ और जेठानी शामिल हैं, के खिलाफ अपील दायर की; उनके पति-धीरेन्द्र कौशिक ने एक और (क्रॉस) अपील संख्या 209/2019 दायर की जिसमें उन्होंने उनकी पत्नी के खिलाफ विचारण न्यायालय के दिनांक 11.09.2019 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की; विद्वान अपीलीय न्यायालय ने दोनों अपीलों पर एक

साथ सुनवाई की और आदेश को कुछ हद तक संशोधित किया; विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अपील संख्या 204/2019 को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए अधिनियम की धारा 19 के तहत दी गई राहत को इस हद तक संशोधित किया कि सभी उत्तरदाताओं/विपक्षी पक्षों को साझा घर में प्रवेश और निवास के उसके अधिकार में हस्तक्षेप न करने का निर्देश दिया गया और अपीलकर्ता श्रीमती बीनू शर्मा की बाकी प्रार्थना को खारिज कर दिया गया। साथ ही, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने पति की अपील क्रमांक संख्या 209/2019 को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और अधिनियम की धारा 20 के तहत दी गई राहत को इस हद तक संशोधित किया कि पत्नी पहले के 8,000/- प्रति माह के स्थान पर 6,000/- रुपये प्रति माह की हकदार होगी और उनकी बेटी पहले के 6,000/- प्रति माह के स्थान पर 5,000/- प्रति माह रुपये की हकदार होगी। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने पति द्वारा दावा की गई बाकी राहतों के लिए अपील खारिज कर दी; विद्वान विचारण न्यायालय ने उपरोक्त भागों को छोड़कर विचारण न्यायालय द्वारा पारित बाकी आदेश की पुष्टि की।

5. इस संशोधन में लिए गए आधार इस प्रकार हैं:-

(1) अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश तर्कहीन है, अवैध है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध पारित किया गया;

(ii) पुनरीक्षणवादी का पुत्र अर्थात् श्रीमती बीनू शर्मा के पति, अपने माता-पिता के साथ नहीं

रह रहे हैं और इसके बजाय वह जिला गौतम बुद्ध नगर में एक किराए के मकान में रहते हैं और इस तथ्य को स्वीकार किया गया है, इसलिए अपीलीय न्यायालय कानूनी रूप से पुनरीक्षणवादी को यह निर्देश नहीं दे सकती है कि वह अपनी बहू को अपने घर में रहने दे जहां पुनरीक्षणवादी निवास कर रहे हैं ;

(iii) विचाराधीन घर पुनरीक्षणवादी संख्या 1 द्वारा अपने निजी संसाधनों से खरीदा गया था और यह कि उन्होंने अपने बेटे और बहू के साथ सभी संबंध तोड़ दिए हैं और इसलिए, पुनरीक्षणवादी को प्रतिवादी संख्या 1 को शरण देने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है; उनके आवास को साझा घर नहीं माना जा सकता; इसके अलावा अपीलीय न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष दिया गया है कि पुनरीक्षणवादियों द्वारा कोई घरेलू हिंसा नहीं की गई थी, इसलिए उनके खिलाफ कोई राहत नहीं दी जा सकती;

(iv) पति ने विविध वाद संख्या 26/2020 में अधिनियम की धारा 31 के तहत दायर जवाब में कहा है कि वह अपनी पत्नी को अपने साथ या अपनी पसंद के किसी अन्य किराए के आवास में रखने के लिए तैयार है, इसलिए न्यायालय के लिए पुनरीक्षणवादीओं को उसे अपने घर में रहने देने का निर्देश देना बिल्कुल भी उचित नहीं है;

(v) विचारण न्यायालय इस तथ्य की मूल्यांकन करने में विफल रहा कि उन्होंने सीसीटीवी फुटेज और अन्य सामग्री दाखिल करके यह दिखाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य पेश किए कि वह उनकी बहू ही थी जो उन्हें परेशान कर रही थी और कई मौकों पर उसने उन पर हमला भी किया था और यह कि

पुनरीक्षणवादी वरिष्ठ नागरिक हैं, इसलिए उनके खिलाफ राहत देना न केवल अवैध है बल्कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है; बहू द्वारा शुरू की गई कार्यवाही द्वेषपूर्ण और दुर्भावनापूर्ण है;

(vi) अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश पक्षों की दलीलों और दोनों पक्षों द्वारा दिए गए साक्ष्यों के खिलाफ हैं, इसलिए यह रद्द किए जाने योग्य हैं।

6. स्पष्टता के लिए यह दोहराया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 1- श्रीमती बीनू शर्मा का यह तर्क था कि वह अपने ससुराल वालों के साथ गाजियाबाद स्थित आवास में रहती थीं, इसलिए गाजियाबाद आवास उनका साझा घर है और उन्हें वहां रहने का अधिकार है; इस मामले में न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों को गलत नहीं ठहराया जा सकता है और वे तथ्यात्मक और कानूनी, दोनों ही दृष्टि से सही हैं।

7. सबसे पहले यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विचारण न्यायालय ने श्रीमती बीनू शर्मा (अपने पति और अपने परिवार के बाकी सदस्यों के खिलाफ भी) द्वारा दायर आवेदन की स्वीकृति देते हुए केवल उसके पति के खिलाफ राहत दी और वर्तमान पुनरीक्षणवादी (या पति के परिवार के किसी अन्य सदस्य) के खिलाफ कोई निर्देश पारित नहीं किया गया। स्पष्टता के लिए, यह दोहराया जा सकता है कि उसके पति (यहां प्रतिवादी संख्या 2) को अधिनियम की धारा 20 और 22 के तहत कोई घरेलू हिंसा नहीं करने, साझा घर में उसे सुरक्षित प्रवेश और निवास प्रदान करने या

अलग आवास के लिए किराया प्रदान करने और कुछ अन्य मौद्रिक राहत देने का निर्देश दिया गया था। पुनरीक्षणवादियों ने अपीलीय न्यायालय के आदेश के उस भाग को चुनौती दी है जिसमें उन्हें गाजियाबाद में साझा घर में सुरक्षित प्रवेश और निवास प्रदान करने का निर्देश दिया गया था; विचारण न्यायालय द्वारा पारित बाकी आदेश को चुनौती नहीं दी गई है।

8. रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अवलोकन और दोनों पक्षों की दलीलों से, इस तथ्य पर कोई गंभीर चुनौती नहीं है कि विवाद उत्पन्न होने के बाद से पति गौतम बुद्ध नगर में अलग रह रहा है और यह कि पत्नी उस मकान में निवास करने हेतु अपने अधिकार का दावा कर रही है, जिसमें निर्विवाद रूप से उसके ससुर, सास तथा परिवार के शेष सदस्य वर्तमान में निवास कर रहे हैं। निचली न्यायालय के समक्ष यह साक्ष्य आया कि प्रारंभ में पति-पत्नी भूतल पर रहते थे और पति के परिवार के अन्य सदस्य उसी घर की पहली और दूसरी मंजिल पर रहते थे। पुनरीक्षणवादियों के तर्कों का मुख्य सार यह है कि उन्होंने निचली न्यायालय के समक्ष यह दिखाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किए कि वह उनकी बहू थी जो उन्हें परेशान कर रही थी और उन पर हमला कर रही थी, इसलिए यह आदेश बिल्कुल भी उचित और उचित नहीं है और यह कि, वह एक अलग घर है जिसका स्वामित्व अनन्य रूप से श्रीमती दीप शर्मा (सास) के पास है जिसे उन्होंने अपने संसाधनों से खरीदा है, इसलिए इसे साझा घर नहीं माना जा सकता। इसके अलावा, पुनरीक्षणवादियों द्वारा इस तथ्य पर जोर

देकर कहा गया है कि निचली न्यायालयों द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया है कि उन्होंने कभी कोई घरेलू हिंसा की हो, इसलिए कानूनी तौर पर उनके खिलाफ ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

9. इस मामले में विद्वान निचली न्यायालय ने दोनों पक्षों द्वारा दिए गए साक्ष्यों का मूल्यांकन किया और निष्कर्ष दिया कि पति और पत्नी गाजियाबाद में एक घर में एक साथ केवल भूतल पर रह रहे हैं और परिवार के बाकी सदस्य ऊपरी तलों पर रह रहे हैं। उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ कुछ अन्य तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने यह विचार किया कि केवल पति ही था जो अपनी पत्नी के खिलाफ घरेलू हिंसा में शामिल था और वह बाकी सभी के खिलाफ आरोप साबित करने में विफल रही। साक्ष्यों के मूल्यांकन के आधार पर विद्वान निचली न्यायालय ने पाया कि इस तथ्य को कोई वास्तविक चुनौती नहीं मिली कि गाजियाबाद का घर एक साझा घर था, इसलिए, पत्नी वहां रहने की हकदार थी। हालाँकि, संभवतः साक्ष्य में आए कुछ तथ्यों के आलोक में, विद्वान विचारण न्यायालय ने अलग आवास के लिए किराए के रूप में एक निश्चित राशि प्रदान करने की वैकल्पिक राहत का प्रावधान करना उचित समझा, वह भी कुछ शर्तों के अधीन। अब न्यायालय को उन कारणों की तलाश करनी होगी जिनके कारण विद्वान अपीलीय न्यायालय ने साझा घर/किराए के आवास के संबंध में विचारण न्यायालय के आदेश को संशोधित करने के लिए प्रेरित किया।

10. मामले को ध्यान में रखते हुए, मैंने अपीलीय न्यायालय के निर्णय का अध्ययन किया। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने औपचारिक रूप से निर्धारण के कुछ बिंदु तय किए। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने प्रासंगिक कानून में दी गई साझा घर की परिभाषा पर चर्चा की। इसमें पाया गया कि विचाराधीन घर/निवास साझा घर की परिभाषा के अंतर्गत आता है। इस बात पर गौर करना महत्वपूर्ण है कि अपीलीय न्यायालय ने इसके बाद घरेलू हिंसा कारित करने के सवाल पर विचार किया और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष की पुष्टि की कि परिवार के बाकी सदस्यों (जिनमें वर्तमान पुनरीक्षणवादी भी शामिल थे) द्वारा कोई घरेलू हिंसा नहीं की गई थी। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त निष्कर्ष का अवलोकन किया और पुष्टि की कि पति और पत्नी कभी भूतल पर और परिवार के बाकी सदस्य ऊपरी मंजिल पर एक साथ रहते थे; और यह कि न केवल वे अलग-अलग रह रहे थे बल्कि वे भोजन भी अलग-अलग कर रहे थे; वे जीवन के अन्य पहलुओं में भी अलग-अलग व्यवस्था के साथ रह रहे थे।

11. निर्णय के पैरा 7 में, जहां एक ओर विद्वान अपीलीय न्यायालय विद्वान विचारण न्यायालय के इस दृष्टिकोण से सहमत थी कि परिवार के बाकी सदस्यों (पति को छोड़कर) द्वारा कोई घरेलू हिंसा नहीं की गई थी, वहीं अपीलकर्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर आगे विचार करते हुए पाया कि यदि अधिनियम की धारा 19 के तहत परिवार के बाकी सदस्यों के खिलाफ राहत नहीं दी गई तो उसके लिए बिना

किसी हस्तक्षेप के उसी घर के भूतल में रहना संभव नहीं होगा। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय लिया:-

"उक्त के अवलोकन से स्पष्ट है कि धारा 19 घरेलू हिंसा अधिनियम का अनुतोष अन्य विपक्षीगण के विरुद्ध नहीं दिया गया है जबकि यह तथ्य स्थापित है कि उस भवन में सभी विपक्षीगण किसी प्रक्रम्य पर एक साथ निवास करते थे। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि परिवादिनी द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र के बाद परिवादिनी के सास ससुर के द्वारा अपने लड़के धीरेन्द्र के साथ अथवा परिवादिनी के पति को अपने सम्पत्ति से बेदखल कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में तो अन्य विपक्षीगण के विरुद्ध धारा 19 का अनुतोष नहीं दिया जाये तो विचारण न्यायालय के द्वारा दिया गया आदेश निष्प्रभावी हो जायेगा क्योंकि अन्य विपक्षीगण का हस्तक्षेप स्वभाविक है। ऐसी स्थिति में धारा 19 की बावत दिया गया निर्णय परिवर्तित किये जाने योग्य है तथा अपीलार्थी के इस तर्क के आधार पर आलोच्य निर्णय में परिवर्तन किया जाना उचित है।"

12. घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2005 के कुछ सामाजिक उद्देश्य हैं। इस अधिनियम का उद्देश्य घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की रक्षा करना है। इस अधिनियम के तहत दी जाने वाली राहतें काफी व्यापक हैं। इसमें उन सभी संभावित राहतों का ध्यान रखने का प्रयास किया गया है, जिनमें उन्हें ढालने की गुंजाइश है, जिनकी प्रत्येक

मामले की परिस्थितियों की विशेषता में आवश्यकता हो सकती है। इस मामले में जो विवादास्पद मुद्दा उठता है वह यह है कि क्या घरेलू रिश्ते में किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार का निर्देश जारी किया जा सकता है जब शिकायतकर्ता उसके खिलाफ घरेलू हिंसा के आरोपों को साबित करने में विफल रहा हो?

13. मुझे अधिनियम की धारा 19 को पुनः प्रस्तुत करना उचित लगता है जो इस प्रकार है

(1) धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन का निपटारा करते समय, मजिस्ट्रेट, यह समाधान होने पर कि घरेलू हिंसा हुई है तो निम्नलिखित निवास आदेश पारित कर सकेगा: -

(क) साझी गृहस्थी से, किसी व्यथित व्यक्ति के कब्जे को बेकब्जा करना या किसी अन्य रीति में उस कब्जे में विघ्न डालने से प्रत्यर्थी को अवरुद्ध करना, चाहे प्रत्यर्थी, उस साझी गृहस्थी में विधिक या साधारण रूप से हित रखता है या नहीं;

(ख) प्रत्यर्थी को, उस साझी गृहस्थी से स्वयं को हटाने का निर्देश देना;

(ग) प्रत्यर्थी या उसके किसी नातेदारों को साझी गृहस्थी के किसी भाग में, जिसमें व्यथित व्यक्ति निवास करता है, प्रवेश करने से अवरुद्ध करना;

(घ) प्रत्यर्थी को, किसी साझी गृहस्थी के अन्यसंक्रान्त करने या व्ययनित करने या उसके विल्लंगम करने से अवरुद्ध करना;

(ड) प्रत्यर्थी को, मजिस्ट्रेट की इजाजत के सिवाय, साझी गृहस्थी में अपने अधिकार त्यजन से, अवरुद्ध करना; या

(च) प्रत्यर्थी को, व्यथित व्यक्ति के लिए उसी स्तर की वैकल्पिक आवास सुविधा जैसी वह साझी गृहस्थी में उपयोग कर रही थी या उसके लिए किराए का संदाय करने, यदि परिस्थितियाँ ऐसी अपेक्षा करें, सुनिश्चित करने के लिए निर्देश करना।

(2) मजिस्ट्रेट, व्यथित व्यक्ति या ऐसे व्यथित व्यक्ति की किसी सन्तान की सुरक्षा के लिए, संरक्षण देने या सुरक्षा देने या सुरक्षा की व्यवस्था करने के लिए कोई अतिरिक्त शर्त अधिरोपित कर सकेगा या कोई अन्य निर्देश पारित कर सकेगा जो वह युक्तियुक्त रूप से आवश्यक समझे :

परन्तु यह कि खण्ड (ख) के अधीन कोई आदेश किसी व्यक्ति के, जो महिला है, विरुद्ध पारित नहीं किया जाएगा।

(3) मजिस्ट्रेट घरेलू हिंसा निवारण के लिए प्रत्यर्थी से, एक बन्धपत्र, प्रतिभूओं सहित या उसके बिना निष्पादित करने की अपेक्षा कर सकेगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन कोई आदेश दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 8 के अधीन किया गया कोई आदेश समझा जाएगा और तदनुसार कार्रवाई की जाएगी।

(5) उपधारा (1), उपधारा (2) या उपधारा (3) के अधीन किसी आदेश को पारित करते समय, न्यायालय, उस व्यथित व्यक्ति को संरक्षण देने के लिए

या उसकी सहायता के लिए या आदेश के क्रियान्वयन में उसकी ओर से आवेदन करने वाले व्यक्ति के लिए, निकटतम पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को निर्देश देते हुए आदेश भी पारित कर सकेगी।

(6) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करते समय, मजिस्ट्रेट, पक्षकारों की वित्तीय आवश्यकताओं और संसाधनों को ध्यान में रखते हुए किराए और अन्य संदायों के निर्मोचन से सम्बन्धित बाध्यताओं को प्रत्यर्थी पर अधिरोपित कर सकेगा।

(7) मजिस्ट्रेट, उस पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को, जिसकी अधिकारिता में, संरक्षण आदेश के कार्यान्वयन में सहायता करने के लिए मजिस्ट्रेट के पास पहुँचा जाता है, निर्देश कर सकेगा।

(8) मजिस्ट्रेट, व्यथित व्यक्ति को उसके स्त्रीधन या किसी अन्य सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति को, जिसके लिए वह हकदार है, कब्जा लौटाने के लिए प्रत्यर्थी को निर्देश दे सकेगा।

अधिनियम की धारा 19 को पढ़ने से पता चलता है कि आदेश केवल प्रतिवादी के खिलाफ ही पारित किया जा सकता है। अब प्रश्न उठता है कि प्रतिवादी कौन है।

14. मैंने अधिनियम में दिए गए कानून के प्रावधानों का अध्ययन किया। मेरे विचार से योजना इस प्रकार प्रतीत होती है कि महिलाओं

को किसी भी व्यक्ति से संरक्षित किया जाना चाहिए, जो अधिनियम की धारा 3 में परिभाषित घरेलू हिंसा करने का दोषी है। परिभाषा में सभी प्रकार की संभावित हिंसा को शामिल किया गया है, लेकिन किसी भी कल्पना से यह नहीं माना जा सकता है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ घरेलू हिंसा के आरोप साबित नहीं किए जा सके, उसे अध्याय IV की धारा 18 और 19 आदि के प्रावधानों के तहत निर्देशित किया जा सकता है। न्यायालयों को किसी ऐसे व्यक्ति को निर्देश देने का अधिकार नहीं है जिसका कार्य अधिनियम के दायरे में नहीं आता है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 2(ए), जो एक पीड़ित व्यक्ति को परिभाषित करती है, इस प्रकार है:-

“ पीड़ित व्यक्ति” से कोई ऐसी महिला अभिप्रेत है जो प्रत्यर्थी की घरेलू नातेदारी में है या रही है और जिसका अभिकथन है कि वह प्रतिवादी द्वारा किसी घरेलू हिंसा का शिकार रही है;

इसका अर्थ यह है कि प्रतिवादी को न केवल पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में होना चाहिए बल्कि उसे ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने पीड़ित व्यक्ति पर घरेलू हिंसा की हो। घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2005 का अध्याय IV, विभिन्न प्रकार के आदेश जो 'प्रतिवादी' के विरुद्ध पारित किए जा सकते हैं, इसके बारे में बताता है। धारा 18 से 22 के प्रावधानों के अवलोकन से स्पष्ट है कि राहत केवल प्रतिवादी/उत्तरदाताओं के

विरुद्ध ही दी जा सकती है। यदि उपरोक्त प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाए तो एकमात्र उचित और सार्थक निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति जो प्रतिवादी नहीं है या जो घरेलू हिंसा में शामिल नहीं पाया गया है, उसे इस अधिनियम के दायरे में नहीं लाया जा सकता है। न्यायालय कथित धमकियों या हस्तक्षेप के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ आदेश पारित नहीं कर सकती हैं। यदि इस तरह की कार्रवाई की अनुमति दी जाती है तो यह एक बहुत ही खतरनाक प्रवृत्ति स्थापित करेगा, जिसके परिणामों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। ऐसा हो सकता है कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी घरेलू रिश्ते में हो या नहीं, उसने घरेलू हिंसा की हो या नहीं, कुचेष्टा का शिकार बन सकता है जिसका कोई अंत नहीं होगा। विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क अनुचित एवं अवैध है। तर्क के लिए यदि यह मान लिया जाए कि परिवार के कुछ अन्य सदस्य भी उसके साझा घर में रहने के अधिकार में हस्तक्षेप कर सकते हैं तो ऐसा कृत्य अपराध हो सकता है और कानून के अनुसार कार्रवाई की जा सकती है।

15. मेरी राय में, इस धारणा पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में वास्तव में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं था कि पुनरीक्षणवादियों द्वारा हस्तक्षेप की संभावना है। अपीलीय न्यायालय का आदेश अवैधता और अनीति से ग्रस्त है और इसलिए इसे रद्द कर दिया गया है। तदनुसार इस पुनरीक्षण की स्वीकृति दी जाती है।

(2023) 7 ILRA 630

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 225 सन् 1998

कल्याण सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य

...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री आर.के. पोरवाल

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: श्री अरुण कुमार
शुक्ला

ए. सिविल विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173- मुआवजे में वृद्धि- दुर्घटना के कारण दावेदार को चोटें आई - उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया और छुट्टी मिलने के बाद ही उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई-दावेदार ने प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति भी अभिलेख पर लाई है-उसने दुर्घटना में दोषी चालक के खिलाफ आरोप-पत्र दाखिल किए जाने और उस पर मुकदमा चलाए जाने से संबंधित दस्तावेज भी अभिलेख पर लाए हैं-लखीमपुर खीरी के नवजीवन अस्पताल में उसके प्रारंभिक उपचार और के.जी.एम.यू. में उसके उपचार से संबंधित कई दस्तावेज अभिलेख पर लाए गए हैं, हालाँकि, ट्रिब्यूनल ने अपने आदेश में उपरोक्त दस्तावेजों में से किसी पर भी विचार नहीं किया है- दावेदार ने

विकलांगता प्रमाण पत्र भी दाखिल किया है, जिसमें दर्शाया गया है कि उसे 45% विकलांगता प्रमाण पत्र मिला है, जिस पर भी न्यायाधिकरण ने ध्यान नहीं दिया है, बल्कि निर्णय में उक्त दस्तावेजों का कोई उल्लेख, विचारण नहीं है और उन्हें क्यों खारिज किया गया है - जिला अस्पताल से प्राप्त बेड हेड टिकट से पता चलता है कि यह पीडब्लू-1 था, जो दावेदार पीडब्लू-2 को अस्पताल लाया था - बेड हेड टिकट जिला अस्पताल से प्राप्त एक आधिकारिक दस्तावेज है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता। यदि यह गवाह मौजूद नहीं होता, तो वह अपने पिता को अस्पताल नहीं ले जाता। कम से कम बेड हेड टिकट पर उसके नाम का उल्लेख दावेदार के मामले को मजबूत आधार देता है कि पीडब्लू-1 दुर्घटना स्थल पर मौजूद था और उसने दुर्घटना देखी थी। चिकित्सा साक्ष्य के साथ पढ़ने पर, जिनमें से सभी को विचार से हटा दिया गया है, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि न्यायाधिकरण ने मुद्दा संख्या 1 पर दावेदार के खिलाफ पूरी तरह से गलत निर्णय लिया है। मुद्दा संख्या 1 पर न्यायाधिकरण के निर्णय को, तदनुसार, अलग रखा जाता है और मुद्दे को दावेदार के पक्ष में उत्तर दिया जाता है; मालिक और बीमाकर्ताओं के खिलाफ - मुद्दे संख्या 2 और 3 पर निष्कर्ष न्यायाधिकरण द्वारा दावेदार के पक्ष में दर्ज किए गए हैं - उन निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है - न्यायाधिकरण केवल मुद्दा संख्या 4 तक सीमित साक्ष्य प्रस्तुत करने के पूर्ण अवसर के साथ पक्षों को नए सिरे से सुनेगा। (पैरा

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सुनीता एवं अन्य बनाम आरएसआरटीसी एवं अन्य (2020) 13 एससीसी 486
2. मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2018) 5 एससीसी 656
3. अनीता शर्मा एवं अन्य बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2021) 1 एससीसी 171
4. श्रीमती ऋचा खरे एवं अन्य बनाम अंकित गुप्ता एवं अन्य एफएएफओ संख्या - 120 सन् 2017
5. छोटे लाल बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य एफएएफओ संख्या - 1468 सन् 2021

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

दावेदार की यह अपील मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण / 8वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इटावा द्वारा 29 नवंबर, 1997 को पारित एक निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध निर्देशित है, जिसमें 1995 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 107 को खारिज कर दिया गया था।

2. दावेदार-अपीलकर्ता के अनुसार, कल्याण सिंह (संक्षेप में, 'दावेदार') 27.11.1994 को शाम लगभग साढ़े छह बजे, अपने स्कूटर पर सवार होकर नगर निगम बाईपास की एक गली से निकले, जो सड़क राजमार्ग को जोड़ती है।

एक मिनी ट्रक, जिसका पंजीकरण संख्या यूएचके -300 है, लापरवाही से और तेज गति से, बिना हॉर्न बजाए, सड़क के औरैया छोर से आया और दावेदार के मोटर स्कूटर को टक्कर मार दी। टक्कर के कारण दावेदार को अपने बाएं हाथ की छोटी उंगली खोनी पड़ी, जो कुचलकर, टूटकर अलग हो गई। मिनी ट्रक तेजी से आगरा की ओर भाग गया। दावेदार को जिला अस्पताल पहुंचाया गया। दावेदार दिनांक 11.01.1995 को रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन कोतवाली गया, लेकिन पुलिस ने देरी का हवाला देते हुए मामला दर्ज करने से इनकार कर दिया। इसके बाद दिनांक 12.01.1995 को दावेदार ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को पंजीकृत डाक द्वारा एक लिखित सूचना भेजी, जो एक टाइप किया हुआ लिखित दस्तावेज था। दावेदार का मामला यह है कि यदि ट्रक चालक ने लापरवाही नहीं बरती होती और सड़क के नियमों का पालन किया होता, तो दुर्घटना नहीं होती और दावेदार को अपने हाथ के उँगली से वंचित होने से बचाया जा सकता था। इस अभाव के कारण दावेदार हीन भावना से ग्रस्त हो गया है और उसकी कार्य करने की क्षमता कम हो गई है। तदनुसार, दावेदार ने वर्तमान दावा याचिका दायर की, जिसमें 2,29,000/- रुपये के मुआवजे की मांग की गई। उसने 20,000/- रुपये की अंतरिम राहत भी मांगी।

3. मिनी ट्रक (पंजीकरण संख्या यूएचके - 300) की मालिक शमीम बेगम ने दावे का विरोध करते हुए एक लिखित बयान दायर किया था। शमीम बेगम को दावा याचिका में विपक्षी नंबर 1 के रूप में शामिल किया गया था और इस

अपील में प्रतिवादी नंबर 2 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद उसे 'मालिक' कहा जाएगा। मालिक के लिखित बयान में यह दावा किया गया था कि आपतिजनक ट्रक का कवर नोट नंबर 169379 के तहत द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड से व्यापक बीमा कराया गया था। बीमा 21.01.1994 से 20.01.1995 तक वैध था। इसलिए मुआवज़े की भरपाई करने का दायित्व उपरोक्त बीमा कंपनी का है। यह निवेदन किया गया है कि दिनांक 27.11.1994 को पुलिस स्टेशन कोतवाली में कोई अपराध दर्ज नहीं किया गया था। तथाकथित मोटर दुर्घटना में दावेदार की उंगली में फ्रैक्चर नहीं हुआ है। इस बात से इनकार किया गया कि दावेदार प्रति माह 5000/- रुपये कमाता है। उन्हें आय का कोई नुकसान नहीं हुआ है। मिनी ट्रक का संचालन सावधानी पूर्वक एवं नियमानुसार किया जा रहा था। भले ही मुआवज़ा देय माना जाए, तो भी इसका बोझ बीमा कंपनी पर पड़ेगा, यह मानते हुए कि दुर्घटना की तारीख पर दोषी ट्रक का बीमा किया गया था। मालिक के अनुसार, दावा याचिका खारिज होने लायक थी।

4. द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (संक्षेप में, 'बीमाकर्ता') की ओर से एक अलग लिखित बयान दायर किया गया था, जिसमें बचाव में आग्रह किया गया था कि दावेदार के पास इस दावा याचिका को दायर करने के लिए कोई कार्यवाही का कारण नहीं बनता है। आवश्यक पक्षों के शामिल न होने के कारण दावा याचिका खराब थी, क्योंकि ट्रक के ड्राइवर को पक्षकार नहीं बनाया गया था। इसके अलावा, यह नॉन-जॉइंडर के लिए बुरा था,

क्योंकि मोटर स्कूटर के बीमाकर्ता को इसमें शामिल नहीं किया गया था। दुर्घटना की तिथि पर, हमलावर ट्रक का बीमाकर्ताओं के पास बीमा नहीं था। ट्रक मालिक ने बीमा की शर्तों का उल्लंघन किया है और बीमाकर्ताओं को दुर्घटना के बारे में सूचित नहीं किया है। यह दावेदार है, जिसे यह साबित करना होगा कि दुर्घटना की तारीख पर, उल्लंघन करने वाले ट्रक के चालक के पास वैध लाइसेंस था और उल्लंघन करने वाले ट्रक के पास पंजीकरण प्रमाणपत्र के अलावा रूट परमिट भी था। यह दलील दी गई कि जब तक मालिक यह साबित नहीं कर देता कि बीमा पॉलिसी का प्रीमियम बीमाकर्ताओं के खाते में जमा किया गया था, बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। वैकल्पिक रूप से, यह दलील दी गई कि प्रीमियम जमा नहीं किया गया था और यह **बीमा अधिनियम 1938 की धारा 64 वीबी** का उल्लंघन है। पुलिस ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में, 'अधिनियम') धारा 158 की उप-धारा (1) से (6) का अनुपालन नहीं किया है। दुर्घटना की तारीख पर अपराधी ट्रक को बिना ड्राइवर के वैध ड्राइविंग लाइसेंस या ट्रक को परमिट के कवर किए बिना चलाया जा रहा था। हमलावर ट्रक के पास पंजीकरण प्रमाणपत्र नहीं था। दावेदार ने उच्च पंचाट पाने के लिए अपनी उम्र और भविष्य में होने वाले चिकित्सा खर्चों का गलत दावा किया है। विभिन्न मर्दों के अन्तर्गत दावा किया गया, मुआवज़ा गलत और फर्जी है। दावा याचिका खारिज किये जाने योग्य थी।

5. पार्टियों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या 27.11.1994 को ट्रक संख्या यूएचके - 300 के चालक ने लापरवाही से गाड़ी चलाकर दावेदार को चोट पहुंचाई, जिसके परिणामस्वरूप स्थायी विकलांगता हुई?

2. क्या दुर्घटना की तिथि पर, ट्रक संख्या यूएचके - 300 का बीमा कंपनी, विपरीत पक्ष संख्या 2 के साथ बीमा किया गया था?

3. क्या दुर्घटना की तिथि पर चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस और वाहन के पास परमिट और पंजीकरण (प्रमाणपत्र) था?

4. दावेदार किस मुआवज़े का हकदार है और किस विपरीत पक्ष से?”

6. दावा याचिका के समर्थन में, दावेदार ने दस्तावेज संख्या 24 - जीए वाली सूची के माध्यम से दस्तावेज दायर किए और कुमारी राधा सिंह को पीडब्लू-1 और स्वयं को पीडब्लू-2 के रूप में परीक्षण किया।

7. मालिक ने एक सूची, दस्तावेज नंबर 17 - जीए, संख्या चार के माध्यम से, दस्तावेज दाखिल किए। ट्रिब्यूनल ने पाया कि सभी दस्तावेज फोटोस्टेट प्रतियां हैं। मालिक की ओर से कोई मौखिक साक्ष्य नहीं दिया गया।

8. बीमाकर्ताओं ने दस्तावेज संख्या 31 - जीए वाली एक सूची के माध्यम से दस्तावेज दाखिल किए। इसमें बीमा पॉलिसी की प्रमाणित प्रति शामिल है। बीमाकर्ताओं की ओर से भी कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। ट्रिब्यूनल के समक्ष इस तरह सुनवाई की गई और दावा याचिका मालिक के खिलाफ एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ी ।

9. ट्रिब्यूनल ने बिन्दु संख्या 1 का उत्तर देते हुए माना कि हमलावर ट्रक के कारण कोई दुर्घटना नहीं हुई और न ही दावेदार को कोई चोट लगी। बिन्दु संख्या 2 का उत्तर इस प्रकार दिया गया कि दुर्घटना की तिथि पर, अपराधी ट्रक का बीमाकर्ताओं के पास वैध बीमा था। बिन्दु संख्या 3 का उत्तर यह कहते हुए दिया गया कि दुर्घटना की तिथि पर, अपराधी ट्रक के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था और अपराधी ट्रक वैध परमिट और पंजीकरण प्रमाणपत्र पर चल रहा था। बिन्दु संख्या 1 पर दिए गए निष्कर्षों के ध्यान में रखते हुए बिन्दु संख्या 4 का उत्तर नकारात्मक और दावेदार के विरुद्ध दिया गया था।

10. श्री आर.के. पोरवाल, दावेदार के लिए विद्वान वकील और श्री अरुण कुमार शुक्ला, बीमाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील को सुना, मालिक की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

11. दावेदार के विद्वान अधिवक्ता श्री आर. के. पोरवाल ने प्रस्तुत किया है कि ट्रिब्यूनल ने दुर्घटना के तथ्य और लगी चोट पर अविश्वास करके गलती की है, क्योंकि मालिक या बीमाकर्ताओं की ओर से कोई मौखिक या अन्य सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया था । दावेदार की गवाही और दस्तावेजी साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। यह आग्रह किया जाता है कि दाखिल किए गए दस्तावेजों में दुर्घटना में दावेदार को लगी चोट का स्पष्ट रूप से उल्लेख हो। इनमें मेडिकल बोर्ड द्वारा जारी किया गया विकलांगता प्रमाणपत्र विशेष महत्व रखता है, जिसमें घायल को बाएं हाथ

की छोटी उंगली कटने के साथ 10% तक विकलांगता दिखाया गया है।

12. श्री पोरवाल ने एक चश्मदीद गवाह कुमारी राधा सिंह पीडब्लू - 1, को और पीड़िता पीडब्लू-2, का उल्लेख किया है और कहा है कि उनके साक्ष्यों पर अविश्वास करने का कोई कारण उन्हें इच्छुक गवाह मानकर नहीं है। श्री पोरवाल ने चोटों के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य और उपचार के कागजात जो अभिलेख में हैं, की ओर इशारा किया है। श्री पोरवाल इस हद तक तर्क दे चुके हैं कि प्राधिकरण ने बिना कोई सबूत प्रस्तुत किए बीमाकर्ताओं द्वारा अपने लिखित बयान में कही गई सभी बातों को वस्तुतः स्वीकार कर लिया है। उन्होंने पीड़ित की बेटी को एक इच्छुक गवाह बताकर उस पर अविश्वास करने के प्राधिकरण के दृष्टिकोण की भी आलोचना की है। यह तर्क दिया गया है कि पुलिस द्वारा एफआईआर दर्ज न करना, दुर्घटना के तथ्य को असंभव या लगी चोट को संदिग्ध नहीं बनाता है। न्यायाधिकरण को सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पुलिस के समक्ष अपराध की कार्यवाही पर गौर नहीं करना है कि क्या दुर्घटना बताए गए तरीके से हुई जिसके परिणामस्वरूप चोटें आईं। सबूतों के मूल्यांकन में दावा न्यायाधिकरण के दृष्टिकोण की विद्वान अधिवक्ता ने अति-तकनीकी और रंचमात्र कहकर आलोचना की है।

13. दूसरी ओर, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार शुक्ला ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया

है कि दुर्घटना में अपराधी ट्रक की संलिप्तता से इनकार किया गया था। यह आग्रह किया जाता है कि दावेदार द्वारा यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि दुर्घटना अपराधी ट्रक के कारण हुई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि दुर्घटना का कोई स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी विवरण नहीं था। दोनों गवाह हितकारी, यानी बाप-बेटी थे। पीडब्लू-1 राधा सिंह की उपस्थिति को संदिग्ध मानने का आग्रह किया गया है, क्योंकि दावा याचिका में इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि दावेदार का मामला मुर्गे और बैल की कहानी पर आधारित है और इसके बारे में थोड़ा भी ठोस सबूत नहीं है। श्री शुक्ला ने छोटे लाल बनाम द ओरिएंटल इंड्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, एफएफओ संख्या- 1468/2021, दिनांक 12.10.2022 को दिए गए मामले में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले पर भरोसा जताया है, जहां समान परिस्थितियों में एक चोट के मामले से संबंधित, यह आयोजित किया गया था:

“रिकॉर्ड से पता चलता है कि दुर्घटना 03.06.1983 को हुई थी और 1,57,500/- रुपये के मुआवजे के लिए दावा याचिका दायर की गई थी। दावा याचिका के अनुसार, दावेदार ने दुर्घटना में लगी चोटों के लिए बेटी अस्पताल, इलाहाबाद में तीन महीने तक इलाज कराया था, लेकिन उसने यह दिखाने के लिए कोई प्रिस्क्रिप्शन या अन्य दस्तावेज दाखिल नहीं किया कि उसकी दुर्घटना हुई थी और उसे लगी चोटों के लिए कोई मुआवजा नहीं दिया गया था। दुर्घटना में उनका तीन माह तक बेटी

अस्पताल में इलाज चला। दावेदार ने दुर्घटना को साबित करने के लिए कोई स्वतंत्र साक्ष्य भी प्रस्तुत नहीं किया है। इसके अलावा, दावेदार ने कथित दुर्घटना के संबंध में कोई एफआईआर दर्ज नहीं की।

यह सच है कि दुर्घटना को साबित करने के लिए एफआईआर प्रासंगिक नहीं है, लेकिन मौजूदा मामले में, दावेदार की गवाही के अलावा अभिलेख पर कोई सबूत नहीं था और इसलिए, इस अदालत ने पाया कि प्राधिकरण ने किसी भी स्वतंत्र सबूत के अभाव में इसे सही ठहराया है। या रिकॉर्ड पर दस्तावेजी साक्ष्य के बावजूद, दावेदार दुर्घटना को साबित करने में विफल रहा है और इस प्रकार, इस न्यायालय को प्राधिकरण द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता नहीं मिलती है।"

14. श्री शुक्ला ने मैं इस न्यायालय के एक निर्णय श्रीमती ऋचा खरे और अन्य बनाम अंकित गुप्ता और अन्य, एफएफओसंख्या-2017 का 120 निर्णीत दिनांक 08.03.2022 पर भरोसा जताया है, जहां यह आयोजित किया गया है:

8. उपरोक्त मामले के कानून के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना जाता है कि वास्तविक मामलों में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी को घातक नहीं माना जाना चाहिए। इस निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "वास्तविक मामलों में" शब्दों पर जोर दिया है। ये शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह मामला-कानून लागू नहीं होता है क्योंकि इस

मामले के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं। हमने चल रही चर्चा में राय दी थी कि अभिलेख पर मौजूद सबूतों से यह स्पष्ट है कि अपराधी ट्रक दुर्घटना में शामिल नहीं था। केवल आरोप-पत्र दाखिल करना इस निष्कर्ष पर पहुंचने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता कि दुर्घटना में अपराधी वाहन शामिल था। इस मामले में सबसे पहले जांच अधिकारी द्वारा क्लोजर रिपोर्ट दायर की गई थी, जिसमें उल्लेख किया गया था कि मोटरसाइकिल का पहिया फिसलने के कारण दुर्घटना हुई थी। हालाँकि, आगे की जाँच के बाद जाँच अधिकारी द्वारा ट्रक के चालक के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था, लेकिन इसे जाँच रिपोर्ट के आलोक में भी देखा जाना चाहिए जिसमें पाँच गवाह हैं, जो मृतक के करीबी रिश्तेदार थे। जांच रिपोर्ट के सभी गवाहों की राय यह थी कि मोटरसाइकिल का अगला पहिया फिसलने के कारण दुर्घटना हुई। दोहराव की कीमत पर, हम फिर से इस तथ्य पर जोर देते हैं कि जांच रिपोर्ट दुर्घटना के छह दिन बाद तैयार की गई थी और तब भी इसमें यह उल्लेख नहीं किया गया था कि दुर्घटना किसी वाहन की संलिप्तता के कारण हुई थी। इसलिए, दावा याचिका खारिज करते समय विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से असहमत होने का हमारे पास कोई कारण नहीं है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने पर, न्यायालय ने पाया कि न्यायाधिकरण ने वास्तव में पक्षों के मामले का मूल्यांकन करने के लिए एक अति-तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया है। इसने दावेदार पर अपने मामले को उचित संदेह से

परे साबित करने का मानक लगभग थोप दिया है। प्राधिकरण के समक्ष दावा याचिका में ऐसा बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए। प्राधिकरण ने कहा है कि पीडब्लू-1, राधा सिंह ने कहा है कि हमलावर ट्रक गलत साइड में चला गया था और उसके पिता के स्कूटर को टक्कर मार दी, जिससे वह घायल हो गए। यह टिप्पणी की गई है कि दावेदार के अनुसार, हमलावर ट्रक पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा था, जबकि दावेदार उत्तर से पश्चिम की ओर मुड़कर मुख्य सड़क में प्रवेश कर रहा था। इससे पता चलता है कि दावेदार का स्कूटर और हमलावर ट्रक दोनों एक ही दिशा में चल रहे थे। इसलिए, यह कहना गलत है कि हमलावर ट्रक गलत साइड में चला गया और स्कूटर को टक्कर मार दी। सड़क के नियम के अनुसार, हमलावर ट्रक भी सड़क के उसी तरफ चल रहा था जिस तरफ स्कूटर था। ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि यदि हमलावर ट्रक पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा था और सड़क के बाईं ओर, दावेदार की दिशा के अनुसार, पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहे स्कूटर को टक्कर मार देता, तो यह ट्रक द्वारा स्कूटर को गलत ओर से टक्कर मारने का मामला होता। हम सहमत नहीं हैं।

16. हालांकि यह सच है कि साइड लेन या गली से मुख्य सड़क में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को मुख्य सड़क पर चल रहे यातायात का ध्यान रखना चाहिए, एक बड़े वाहन का कर्तव्य है कि वह छोटे वाहन के बारे में सावधानी बरतें, जैसे कार, दोपहिया वाहन, साइकिल या यहां तक कि पैदल यात्री, सड़क के एक ही तरफ चल रहे हों, ताकि वे पीछे से या मध्य भाग या चौड़े शरीर वाले वाहन के

पिछले हिस्से के पार्श्व संपर्क से न टकराएं। यहाँ, बिल्कुल यही मामला प्रतीत होता है। कुमारी राधा पीडब्लू-1 के मुख्य परीक्षण में, यह कहा गया है:

“4. मेरे पिताजी अपने बायें हाथ पर सड़क पर स्कूटर ला चुके थे। घटनास्थल पर सड़क काफी चौड़ी है और सड़क पर किसी प्रकार के गड्ढे आदि नहीं हैं।

5. ट्रक चालक द्वारा यदि नियमित गति से वाहन चलाया जा रहा होता तो दुर्घटना नहीं होती। ट्रक चालक के द्वारा मेरे पिता के स्कूटर को गलत दिशा में आकर पास किया था। टक्कर मारकर ट्रक आगरा की ओर भाग गया। घायल पिता को उठाकर हम अस्पताल ले गये। वहाँ उनको भर्ती कर लिया गया तथा उपचार किया गया। उपचार के दौरान मेरे पिताजी की अंगुली को डॉक्टरों द्वारा काट दिया गया। घर पर मेरे पिताजी का 3-6 माह इलाज चलता रहा।”

17. जिरह में गवाह से उसके द्वारा बताए गए प्रभाव के तरीके के संबंध में कोई सवाल नहीं पूछा गया है। इसलिए, जैसा कि पहले ही माना जा चुका है, इस न्यायालय की राय है कि ट्रिब्यूनल यह मानने में भटक गया कि मोटर स्कूटर को टक्कर मारते समय अपराधी ट्रक सड़क के गलत तरफ नहीं गया था। प्राधिकरण ने इस तथ्य पर बहुत जोर दिया है कि दावेदार ने अपनी गवाही में कहा है कि वह दो दिनों के लिए अस्पताल में भर्ती था, जबकि जिला अस्पताल, इटावा से डिस्चार्ज स्लिप, पेपर नंबर 24- जीए/ 3 से पता चलता है कि उसी दिन अर्थात् 27.11.1994 को संबंधित कॉलम में 'मुक्ति' शब्द लिखकर उसे छुट्टी दे दी गई

थी। प्राधिकरण ने 27.11.1994 को दिन में बचे घंटों की गणना करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि प्रवेश और छुट्टी की तारीख, दोनों 27.11.1994 है, कभी भी दो दिन नहीं हो सकती। प्राधिकरण ने इस राय के संदर्भ में दस्तावेज़ पर भी ध्यान दिया है कि इसके पीछे का पृष्ठांकन 30.11.1994 से 17.12.1994 तक की तारीखों को इंगित करता है, जब विभिन्न दवाएं निर्धारित की गई थीं। यह टिप्पणी की गई है कि इस दस्तावेज़ में 27.11.1994 को रोगी को राहत देने के बारे में उल्लेख से यह निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि अलग-अलग तिथियों पर दवाओं के लगातार प्रिस्क्रिप्शन दावेदार के लिए अस्पताल में भर्ती की लंबी अवधि को दर्शाते।

18. यह न्यायालय फिर से निष्कर्ष के इस भाग पर प्राधिकरण से सहमत नहीं है। यह सच हो सकता है कि डिस्चार्ज स्लिप दावेदार के लिए दो दिनों के इनडोर उपचार को साबित नहीं कर सकती है, लेकिन यह उसके दावे के बारे में निर्णायक नहीं है। दावेदार का कहना है कि दुर्घटना में उसकी एक उंगली कट गई। प्राधिकरण ने दस्तावेज़ी सबूतों पर विचार करने से स्पष्ट रूप से नजरअंदाज कर दिया है जो दावेदार के मामले को अच्छी तरह से प्रमाणित करते हैं। इसने डॉ. पुलकराज, चिकित्सा अधिकारी, जिला अस्पताल, इटावा द्वारा जारी दिनांक 27.11.1994 की एक चोट रिपोर्ट पर विचार करने से नजरअंदाज कर दिया है। यह चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित है। दस्तावेज़ संख्या 24- जीए/2 वाली इस रिपोर्ट में उल्लिखित चोटें पढ़ें:

“चोटें - (1) कुचली हुई चोट Q छोटी उंगली जो / हाथ से लगभग पूरी तरह से अलग हो गई है।

राय-

चोट कठोर एवं कुंद वस्तु से लगती है।

स्वभाव- दुःखदायी।

अवधि- ताज़ा।”

19. जिला अस्पताल, इटावा द्वारा जारी दिनांक 27.11.1994 के एक अन्य दस्तावेज़ पर भी विचार नहीं किया गया। दस्तावेज़ एक बेड हेड टिकट है, जो दर्शाता है कि दावेदार को 27.11.1994 को रात 8.04 बजे जिला अस्पताल में भर्ती कराया गया था। यह सच है कि बेड हेड टिकट से यह भी पता चलता है कि उन्हें 27.11.1994 को कार्यमुक्त कर दिया गया था। लेकिन, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इसका कोई परिणाम नहीं है। प्रासंगिक बात यह है कि बीमारी के कॉलम में 'कुचली चोट। छोटी उंगली' का उल्लेख है। 'बी/बी' के कॉलम में कल्याण सिंह की बेटी का नाम कुमारी राधा सिंह लिखी गई हैं। अगले कॉलम में शाम लगभग 7.15 बजे मेटाडोर और स्कूटर की टक्कर के कारण 'आकस्मिक चोट' छोटी उंगली की चोट का उल्लेख किया गया है। ' एक नोट भी है, जिस पर लिखा है, 'एक्सीडेंटल रजिस्टर में चोट नोट की गई है।' एक और नोट है जिसमें लिखा है, 'पुलिस को सूचित किया गया। इस दस्तावेज़ में कागज संख्या 24- जीए / 6 है, जिसे प्राधिकरण द्वारा अंक संख्या 1 पर अपना निष्कर्ष लिखते समय विचार करने से पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया।

20. एक और दस्तावेज़ है जिस पर प्राधिकरण ने बिल्कुल भी विचार नहीं किया है और वह है विकलांगता प्रमाणपत्र 18.07.1995 | इसे मुख्य चिकित्सा अधिकारी, इटावा के कार्यालय में डॉक्टरों के एक बोर्ड द्वारा जारी किया गया है, इसमें चोट को 10% बताया गया है और छोटी उंगली के विच्छेदन का संकेत दिया गया है। उपरोक्त प्रमाण पत्र पर दस्तावेज़ क्रमांक 24- जीए / 4 अंकित है। इस विकलांगता प्रमाणपत्र पर दावेदार की डॉक्टर द्वारा सत्यापित मुहर भी लगी हुई है। विकलांगता प्रमाणपत्र पर बोर्ड में शामिल तीन डॉक्टरों के हस्ताक्षर हैं। रिकॉर्ड पर इतने सारे सबूतों के साथ, प्राधिकरण द्वारा लौटाया गया निष्कर्ष कहता है:

“इसके अलावा याची द्वारा किसी भी इन्जरी रिपोर्ट की प्रति भी दाखिल नहीं की गई है कि जिससे तहरीरी रिपोर्ट का सिद्ध होना तथा याची को आयी चोट का उक्त दुर्घटना से सम्बन्धित होना सिद्ध नहीं होता है।”

21. प्राधिकरण के उपरोक्त निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया जा सकता। बल्कि, बेड हेड टिकट स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि घायल को उसकी बेटी कुमारी राधा सिंह पीडब्लू-1, द्वारा अस्पताल लाया गया था, जो चोट के साथ जोड़कर देखे जाने पर दावे को अंतर्निहित विश्वसनीयता प्रदान करती है। यह न्यायालय यह कहने के लिए बाध्य है कि दावेदार के हाथ की उँगली कटे होने के मामले में, प्राधिकरण का दृष्टिकोण सबसे असंवेदनशील है।

22. हमारी राय में, केवल चिकित्सा साक्ष्य और पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की स्पष्ट गवाही से, हमलावर ट्रक से जुड़ी दुर्घटना और परिणामी चोट के तथ्य काफी हद तक साबित होते हैं। एफआईआर दर्ज करने में देरी या आपराधिक मामला दर्ज न होने के बारे में प्राधिकरण की टिप्पणियाँ तुच्छ परिणाम वाली हैं, यदि कोई नहीं हैं।

23. प्राधिकरण ने तब टिप्पणी की कि घटना की एक रिपोर्ट 12.01.1995 को एसएसपी, इटावा को भेजी गई थी, लेकिन उक्त जानकारी की एक प्रति रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है। जो जानकारी रिकॉर्ड में लाई गई थी उसकी एक प्रति दिनांक 12.01.1995 की है, लेकिन वह साबित नहीं हुई है। यह माना गया है कि दस्तावेज़ संख्या 24- जीए / 5 वाली लिखित जानकारी साबित नहीं हुई है, और इसलिए, साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है। प्राधिकरण का उक्त निष्कर्ष फिर से पूरी तरह से गलत है। जो रिकॉर्ड में है वह एसएसपी को दिनांक 11.01.1995 को भेजी गई सूचना की एक प्रति है और रिकॉर्ड में पंजीकृत डाक रसीदें और एडी कार्ड की प्रतियां भी हैं। सूचना पर दस्तावेज़ क्रमांक 24- जीए / 5 तथा पंजीकृत डाक रसीदें तथा एडी कार्ड पर दस्तावेज़ क्रमांक 24- जीए / 8 अंकित है। इन दस्तावेजों के संबंध में, पीडब्लू-2, कल्याण सिंह, दावेदार ने अपने मुख्य परीक्षण में इस प्रकार कहा है:

“घटना की रिपोर्ट पुलिस ने नहीं लिखी मैंने एस०पी० को डाक द्वारा दरखास्त दी थी।”

24. पंजीकृत डाक रसीद एसपी को सूचना लिखे जाने के बाद के किसी एक दिन की होना स्पष्ट है। ध्यान देने वाली बात यह है कि दस्तावेज पत्र संख्या 25- जीए / 5 के बारे में इतना कुछ कहने के बावजूद, जिरह में गवाह के विपरीत कोई प्रश्न नहीं उठाया गया। प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही के लिए, जहां साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं, हमारी राय है कि दस्तावेज पर्याप्त रूप से साबित हो चुका है। मोटर दुर्घटना दावे का निर्णय करने में प्राधिकरण के कर्तव्य विरोधात्मक से अधिक जिज्ञासु हैं। यहां, प्राधिकरण दावेदार के साक्ष्य के पीछे ऐसे चला गया है जैसे कि वह किसी आपराधिक मुकदमे में अभियोजन पक्ष के मामले का फैसला कर रहा हो। इस मुद्दे पर प्राधिकरण के निष्कर्ष का एक पहलू यह भी है, जहां पीडब्लू-1 की गवाही की यह कहते हुए आलोचना की गई है कि गवाह ने अपने साक्ष्य में उन व्यक्तियों के नामों का खुलासा नहीं किया है, जिन्होंने दुर्घटना देखी थी। इसने दावेदार की गवाही की बारिक तुलना की है, जिसमें मुख्य परीक्षा में कही गई बातों और दुर्घटना के बाद की घटनाओं के बारे में जिरह में कही गई बातों की तुलना की गई है। टिप्पणी की गई है कि जहां मुख्य परीक्षण में उन्होंने कहा था कि दुर्घटना के बाद लोग उन्हें जिला अस्पताल, इटावा ले गए थे, वहीं जिरह के अंत में उन्होंने कहा है कि रामवीर, मनोहर और उनकी बेटी उन्हें अस्पताल ले गई। प्राधिकरण दावेदार की गवाही की इतनी आलोचना से संतुष्ट नहीं है। विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा कि पीडब्लू-2, पीडब्लू-1 की बेटी है (जबकि वास्तव में, पीडब्लू-1 पीडब्लू-2 की बेटी है) और, इसलिए, एक इच्छुक गवाह है।

25. आगे यह भी टिप्पणी की गई है कि यदि वह मौके पर मौजूद होती, तो दावेदार निश्चित रूप से अपनी दावा याचिका के साथ-साथ अपनी गवाही में भी इस तथ्य का उल्लेख करता। प्राधिकरण द्वारा यह भी कहा गया है कि पीडब्लू-2 अपनी गवाही में गवाहों के नाम का उल्लेख कर सकता है, लेकिन उसने केवल यह कहा है कि कुछ लोग उसे अस्पताल ले गए थे। पीडब्लू-2 की गवाही के इस भाग से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यदि उसकी बेटी मौजूद होती, तो वह 'कुछ लोग' शब्दों का प्रयोग नहीं करता। दावा याचिका में प्राधिकरण द्वारा गवाही का इस प्रकार का मूल्यांकन प्राधिकरण द्वारा प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्राधिकार के साथ पूरी तरह से असंगत है।

26. फिर से जोर देने के लिए, जिला अस्पताल से बेड हेड टिकट से पता चलता है कि यह कुमारी राधा सिंह पीडब्लू-1 थी, जो दावेदार, कल्याण सिंह पीडब्लू-2 को अस्पताल लेकर आई थीं। उसका नाम 'द्वारा लाया गया' कॉलम में है। बेड हेड टिकट जिला अस्पताल का एक आधिकारिक दस्तावेज है और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यदि यह गवाह मौजूद नहीं होता, तो वह अपने पिता को अस्पताल तक ले जाने वाला नहीं होता। कम से कम बेड हेड टिकट पर उसके नाम का उल्लेख दावेदार के मामले को एक मजबूत आधार देता है कि पीडब्लू -1 दुर्घटना स्थल पर मौजूद था और उसने इसे देखा था। चिकित्सा साक्ष्यों के साथ पढ़ें, जिनमें से सभी को विचार से हटा दिया गया है, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि प्राधिकरण बिन्दु संख्या 1 पर दावेदार के

खिलाफ निष्कर्ष निकालने में पूरी तरह से गलत हो गया है।

27. इस मुद्दे पर निष्कर्ष निकालने से पहले, राज कुमार हंस और अन्य बनाम सरोज और अन्य, 2013 के एफएएफओसंख्या 737, 14.07.2021 को निर्णय, जहां मेरे सम्मानित भाई जसप्रीत सिंह की राय से मुझे बहुत समर्थन मिला है, जहां ऐसी ही परिस्थितियों में हिज लॉर्डशिप ने सुनीता और अन्य बनाम राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य (2020) 13 एससीसी 486, में सुप्रीम कोर्ट के फैसलों पर ध्यान दिया, मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2018) 5 एससीसी 656; और अनीता शर्मा और अन्य बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2021) 1 एससीसी 171, ने आयोजित किया है:

“रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि ट्रिब्यूनल ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों के मूल्यांकन में अपने दृष्टिकोण में गलती की है। दावेदार का यह स्पष्ट मामला है कि 26.10.2011 को हुई दुर्घटना के कारण दावेदार को चोटें आईं। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया था और छुट्टी मिलने के बाद ही उन्होंने पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी। दावेदार ने प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति भी रिकार्ड में लायी है। उन्होंने उसी दुर्घटना में दोषी ड्राइवर के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल होने और उस पर मुकदमा चलाने से संबंधित दस्तावेज भी रिकॉर्ड में लाए हैं। लखीमपुर खीरी के नवजीवन अस्पताल में उनके प्रारंभिक उपचार से संबंधित कई

दस्तावेज और के. जी. एम. यू. में उनके उपचार से संबंधित दस्तावेज रिकॉर्ड पर लाया गया है, हालाँकि, उपरोक्त किसी भी दस्तावेज पर ट्रिब्यूनल ने अपने आदेश में विचार नहीं किया है। दावेदार ने एक विकलांगता प्रमाण पत्र भी दाखिल किया है जिसमें दर्शाया गया है कि उसे 45% विकलांगता प्रमाण पत्र का सामना करना पड़ा है, जिस पर ट्रिब्यूनल द्वारा भी ध्यान नहीं दिया गया है, बल्कि फैसले में उक्त दस्तावेजों पर विचार करने और उन्हें क्यों खारिज कर दिया गया है, इसका कोई उल्लेख नहीं है।

जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने मोटर दुर्घटनाओं से संबंधित मामलों में देखा है, दावेदार को ही संभाव्यता की प्रबलता के आधार पर मामले को साबित करना होता है। दुर्घटना, उपचार, प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाए गए आरोप पत्र से संबंधित मूलभूत तथ्यों पर ट्रिब्यूनल द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है। एक बार उपरोक्त मूलभूत तथ्यों को साक्ष्य के साथ जोड़ दिया गया है और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि न तो मालिक और न ही ड्राइवर ने दावेदार और उसके गवाहों के बयान का खंडन करने के लिए कोई सबूत पेश किया है और उनकी गवाही में कुछ भी प्रतिकूल नहीं निकला है, इस प्रकार, ट्रिब्यूनल ने रिकॉर्ड पर साक्ष्य की सराहना करने में गलती हुई। इसने भौतिक सबूतों को नजरअंदाज कर दिया और ऐसे निष्कर्षों को दर्ज किया है जो अनुमानों पर आधारित हैं और रिकॉर्ड पर सामग्री के वजन के खिलाफ हैं।”

7.इला शाखा प्रबंधक यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड संबद्ध बनाम श्री नागेन्द्र तिवारी एवं अन्य 843

28. तदनुसार, बिन्दु संख्या 1 पर प्राधिकरण के निष्कर्ष को अलग रखा जाता है और मालिक और बीमाकर्ताओं के खिलाफ बिन्दु का उत्तर दावेदार के पक्ष में दिया जाता है;

बिन्दु संख्या 4 पर अपने निष्कर्ष के अनुसार कानून के साथ एक पंचाट पारित करेगा। लागत नहीं लगानी है।

(2023) 7 ILRA 639

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर
प्रथम अपील से आदेश संख्या 350 सन् 2006

30. चूँकि बिन्दु संख्या 4 का निर्णय प्राधिकरण द्वारा बिल्कुल भी नहीं किया गया है, मेरी राय है कि इस मामले को प्राधिकरण में वापस जाना चाहिए ताकि संबंधित पक्षों की सुनवाई के बाद उक्त मुद्दे को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से तय किया जा सके।

शाखा प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी
लिमिटेड, संबद्ध ...अपीलकर्ता

बनाम

श्री नागेन्द्र तिवारी एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

31. तदनुसार, यह अपील सफल होती है और आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/आठवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इटावा द्वारा दिनांक 29.11.1997 को पारित आक्षेपित निर्णय और पंचाट को रद्द कर दिया गया है और मामले को न्यायाधिकरण को भेज दिया गया है, जो अब इस मामले में क्षेत्राधिकार रखेगा। मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के पीठासीन अधिकारी अकेले बिन्दु संख्या 4 तक सीमित साक्ष्य प्रस्तुत करने के पूरे अवसर के साथ पक्षों को नए सिरे से सुनेंगे। बिन्दु संख्या 1, 2 और 3 के निष्कर्षों को दोबारा नहीं खोला जाएगा और इस निर्णय का पालन किया जाएगा। प्राधिकरण इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर, इस निर्णय में दिए गए निर्देशों को ध्यान में रखते हुए, पक्षों की सुनवाई के बाद,

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री सौरभ श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., सुश्री एस.आर. गुप्ता

ए. सिविल विधि - कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 - धारा 30 आयुक्त द्वारा 2,87,209/- की क्षतिपूर्ति तथा ब्याज देने का आदेश दिया गया है, जिसके विरुद्ध चुनौती दी गई है। प्रमाण पत्र में यह दर्शाया गया है कि अक्षमता केवल 17% है और ऊपरी अंग की तीन उंगलियों का विच्छेदन (amputation) हुआ है, लेकिन न्यायाधिकरण ने इस चोट को 100% अक्षमता के रूप में माना है, जो कि किया नहीं जा सकता था- हादसे में गिरने के कारण हुई अक्षमता संदेह से परे सिद्ध हो चुकी है और यह कर्मचारी क्षतिपूर्ति

अधिनियम, 1923 की धारा 4(1)(C) के अंतर्गत आती है- जहां तक वर्तमान अपील का प्रश्न है, बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए तथाकथित 'विवाद के महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न' वास्तव में तथ्यात्मक प्रश्न हैं, और इन विषयों पर आयुक्त के निष्कर्ष मनमाने नहीं हैं- जहां तक ब्याज का प्रश्न है, यह बीमा कंपनी के विरुद्ध तय किया गया है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा नॉर्थ ईस्ट कर्नाटका रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार- बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए तथाकथित विधिक प्रश्न उनके विरुद्ध तय किए गए हैं। वास्तव में, बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न तथ्यात्मक प्रश्न ही हैं। (पैरा 1 से 9)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. नॉर्थ ईस्ट कर्नाटक रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम श्रीमती सुजाता सिविल अपील संख्या 7470 सन् 2009
2. गोल्ला राजन्ना आदि बनाम डिवीजन मैनेजर एवं अन्य (2017) 1 टीएसी 259 एससी
3. मायन बनाम मुस्तफा एवं अन्य (2022) एसीजे 524
4. प्रताप नारायण सिंह देव बनाम श्रीनिवास सबाता (1976) 0 एसीजे 141

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर
द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के अधिवक्ता श्री सौरभ श्रीवास्तव और प्रतिवादी के अधिवक्ता सुश्री एस.आर. गुप्ता को सुना। नियोक्ता के लिए कोई भी नहीं है।

2. इस अपील के माध्यम से, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने 2004 के डब्ल्यूसीए संख्या-10 में कामगार मुआवजा आयुक्त और सहायक श्रम आयुक्त, सहारनपुर द्वारा पारित निर्णय और निर्णय दिनांक 8.9.2005 को चुनौती दी है, जिसमें दावेदारों को 2,87,209/- रुपये (ब्याज सहित) का मुआवजा दिया गया है।

3. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रमाण पत्र से पता चलता है कि विकलांगता केवल 17% है और ऊपरी अंग के तीन फ्लेंग्स का विच्छेदन है, लेकिन ट्रिब्यूनल ने चोट को 100% विकलांगता का कारण माना है, जो नहीं किया जा सकता था।

4. उत्तरदाताओं के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि यह तथ्य का एक शुद्ध प्रश्न है, जिस पर इस न्यायालय द्वारा माया बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 ए.सी.जे. 524 और प्रताप नारायण सिंह देव बनाम श्रीनिवास सबता, 1976 ए.सी.जे.141 के मामलों में उच्चतम न्यायालय के फैसले के आलोक में नहीं देखा जा सकता है।

5. अपील के अवलोकन ज्ञापन पर, इस न्यायालय ने पाया कि कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए गए हैं:

"(ए) क्या आयुक्त को इस तथ्य की अनदेखी करने में उचित था कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर घायल दावेदार इयूटी से अनुपस्थित था, भले ही उसकी चोटों के लिए मुआवजा दिया गया हो?

(ख) क्या आयुक्त द्वारा दावा किए गए मुआवजे से अधिक मुआवजा देने में न्यायसंगत था?

(ग) क्या आयुक्त द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के विरुद्ध अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के विरुद्ध ब्याज देने में न्यायोचित था?

(घ) क्या आयुक्त द्वारा अपीलकर्ता-बीमा कंपनी पर देयता तय करने में न्यायसंगत था, बिना मालिक को दिवालिया घोषित किए बिना, जैसा कि अधिनियम की धारा 14 के तहत आवश्यक है?

(ङ) क्या निश्चितता प्रमाण-पत्र केवल 17 प्रतिशत की तुलना में 100 प्रतिशत मुआवजा देने में आयुक्त का निर्णय न्यायोचित था?

6. प्रारंभ में, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के कार्यक्षेत्र पर चर्चा करना प्रासंगिक है। 2009 की सिविल अपील संख्या-7470 में सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता के

मामले में 2.11.2018 को फैसला सुनाया था:

"9. प्रारंभ में, हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं, एक स्थापित सिद्धांत होने के नाते, कि क्या कर्मचारी दुर्घटना के साथ मिला, क्या दुर्घटना रोजगार के दौरान हुई, क्या यह रोजगार से उत्पन्न हुई, कैसे और किस तरीके से दुर्घटना हुई, दुर्घटना करने में कौन लापरवाही बरत रहा था, क्या कर्मचारी और नियोक्ता का कोई संबंध मौजूद था, कर्मचारी की उम्र और मासिक वेतन क्या था, दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मृत कर्मचारी के कितने आश्रित हैं, क्या घटना को आच्छादित करने के लिए नियोक्ता द्वारा कोई बीमा कवरेज प्राप्त किया गया था आदि कुछ भौतिक मुद्दे हैं जो दावा याचिका में आयुक्त के उचित निर्णय के लिए उत्पन्न होते हैं जब कोई कर्मचारी किसी भी शारीरिक रूप से पीड़ित होता है यदि वह अपने रोजगार के दौरान घायल हो जाता है अथवा मर जाता है और वह अधिनियम के अंतर्गत मुआवजे का दावा करने के लिए अपने नियोक्ता पर मुकदमा दायर करता है।

10. उपर्युक्त प्रश्न अनिवार्य रूप से तथ्य के प्रश्न हैं और इसलिए, उन्हें साक्ष्य की सहायता से साबित करना आवश्यक है। एक बार जब वे किसी भी तरह से साबित हो जाते हैं, तो उस पर दर्ज निष्कर्षों को तथ्य के निष्कर्ष माना जाता है।

7. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निम्नानुसार निर्णय दिया:

"15. इस तरह की अपील तब प्रवेश के प्रश्न पर सुनी जाती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं। अपील में कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और उच्च न्यायालय द्वारा जांच की आवश्यकता होती है। यदि कानून का सारभूत प्रश्न उठता है, तो उच्च न्यायालय योग्यता के आधार पर अंतिम सुनवाई के लिए अपील को स्वीकार करेगा अन्यथा 'लिमिनी' में इस कारण से खारिज कर देगा कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है।

16. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हुए, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में ऊपर दिए गए महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कानून का कोई ठोस प्रश्न शामिल नहीं था। दूसरे शब्दों में, हमारे विचार में, आयुक्त ने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर मामले में उत्पन्न होने वाले सभी भौतिक प्रश्नों का ठीक से निर्णय लिया और प्रतिवादी को देय मुआवजे का सही निर्धारण किया। इसलिए, तथ्यों पर उच्च न्यायालय द्वारा इसकी सही पुष्टि की गई थी।

17. मामले के इस दृष्टिकोण में, निष्कर्ष निचली दो अदालतों के तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष होने के कारण इस न्यायालय पर

बाध्यकारी हैं। अन्यथा भी, हमें किसी भी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर किसी भी हस्तक्षेप के लिए कॉल करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। कोई भी तथ्यात्मक निष्कर्ष विकृत अथवा मनमाना अथवा बिना साक्ष्य अथवा कानून के किसी उपबंध के विरुद्ध नहीं पाया गया है। हम तदनुसार इन निष्कर्षों को बरकरार रखते हैं।

8. जहां तक प्रस्तुत अपील का संबंध है, कानून के तथाकथित सारभूत प्रश्न तथ्यों के प्रश्न हैं और उक्त मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं। जहां तक ब्याज का संबंध है, इसका उत्तर पूर्वोक्त कर्णाटक सड़क परिवहन निगम मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए बीमा कंपनी के विरुद्ध दिया जाता है। गोला राजन्ना आदि बनाम मंडल प्रबंधक और अन्य, 2017(1) टीएससी 259(एस.सी.) में भी यह माना गया है कि धारा 30 के तहत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत साबित न हों।

9. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। बीमा कंपनी द्वारा बनाए गए कानून के तथाकथित प्रश्नों का उत्तर इसके विरुद्ध दिया जाता है। वास्तव में कानून के जो सारभूत प्रश्न उठाए गए हैं, वे तथ्य के प्रश्न हैं।

10. अंतरिम राहत, यदि कोई हो, तुरंत रद्द हो जाएगी। दावेदार को तत्काल राशि वितरित की जाए।

(2023) 7 ILRA 642

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 2599 सन्

2011

अरविंद अग्रवाल एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

तनवीर अहमद एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री विवेक कुमार सिंह

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: श्री बालेश्वर चतुर्वेदी, श्री एस.के. मेहरोत्रा

ए. सिविल विधि - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173- मुआवजे में वृद्धि- मृतक दावेदारों/माता-पिता का पुत्र था- वह परिवार का एकमात्र कमाने वाला था और उसकी आयु 23 वर्ष थी तथा उसने बी.टेक (संचार) की डिग्री हासिल की थी- मृतक की वार्षिक आय 72,000/- रुपये मानी जाती है, जिसमें 1998 के नियम 220-ए(3) के अनुसार भविष्य की संभावनाओं के लिए 50% जोड़ा जाता है- इसलिए, कुल मुआवजा 14,06,000/- रुपये @ 7% दिया गया। (पैरा 1 से 35)

बी. संतान संघ माता-पिता का बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजा पाने का अधिकार है। बच्चे की मृत्यु के कारण होने वाली दुर्घटना मृतक के माता-पिता और परिवार

को बहुत सदमा और पीड़ा पहुँचाती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है। (पैरा 33)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. ज्ञान चंद जैन एवं अन्य बनाम परमानन्द एवं अन्य (2003) 1 टीएसी 490
2. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी (2009) 6 एससीसी 121
3. मैग्मा जनरल इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम @ चुहूरू राम एवं अन्य (2018) 18 एससीसी 130
4. नेशनल इंश्योरेन्स कंपनी बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) 16 एससीसी 680
5. न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
6. सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लॉजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य (2017) 35 एलसीडी 1311
7. पी.ओ. मीरा और अन्य बनाम आनंद पी. नाइक और अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन केर 546
8. शाखा प्रबंधक, फ्यूचर जनरल इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बेंगलुरु बनाम वर्षा एस.एल. (2019) एससीसी ऑनलाइन कर 3498

9. शशिकला और अन्य बनाम गंगा-लक्ष्मम्मा और अन्य.. (2015) 9 एससीसी 150

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

यह मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के तहत एक दावेदार की अपील है जिसमें अधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग की गई है।

2. दो दावेदार-अपीलकर्ता, अरविंद अग्रवाल और श्रीमती रेणु अग्रवाल, स्वर्गीय अंशुल अग्रवाल के माता-पिता हैं, जो 31.05.2008 को हुई एक घातक मोटर दुर्घटना के शिकार थे। दावा याचिका में दिए गए तथ्यों के अनुसार, मृतक अंशुल अग्रवाल पंजीकरण संख्या यू.पी. 14 T0150 वाली मारुति कार में सवार होकर जा रहा था। 31-05-2008 को शाम लगभग 10 बजे अपने कामगारों, एक धनंजय और एक अन्य सोनू के साथ यू.पी. 14 टी 0150 पर वह रामपुर से घर की ओर जा रहा था। वह परिसर संख्या 6/165, राजनगर, पुलिस स्टेशन कविनगर, जिला गाजियाबाद में रहते थे, और यह दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा पर उनका गंतव्य था। जब अंशुल गांव शाहबाजपुर के गेट के सामने एक स्थान पर पहुंचा, तो एक ट्रक जिसका पंजीकरण नं. यू.पी. 25 टी 5201, तेज गति से और लापरवाही से संचालित होकर, विपरीत दिशा से आ रहा था; ट्रक ने अंशुल की कार को आमने-सामने टक्कर मार दी। टक्कर से अंशुल, धनंजय और सोनू को चोटें आईं। सरकारी अस्पताल गजरौला में इलाज के दौरान अंशुल और धनंजय जिंदगी की जंग हार गए।

3. अरविंद अग्रवाल ने घटना को लेकर गजरौला थाने में प्राथमिकी दर्ज कराई। अरविंद अग्रवाल को दावा याचिका में दावेदार नंबर 1 और इस अपील में अपीलकर्ता नंबर 1 के रूप में रखा गया है। दोनों दावेदार अपीलकर्ताओं को इसके बाद सामूहिक रूप से 'दावेदारों' के रूप में संदर्भित किया जाएगा, सिवाय इसके कि जहां संदर्भ में किसी व्यक्ति या एक अलग संदर्भ की आवश्यकता होगी। दावेदारों का कहना है कि अपने अकेले और वयस्क बेटे के आकस्मिक निधन के कारण, अरविंद अग्रवाल मनोवैज्ञानिक रूप से बहुत परेशान थे। अतः अनजाने में हुई त्रुटि के कारण उसने प्राथमिकी में आपत्तिजनक ट्रक का नंबर यू.पी. 25 टी 5201 के बजाय यू.पी. 25टी 2501 बताया। हालांकि जांच के दौरान अरविंद अग्रवाल ने विवेचनाधिकारी को सूचित कर अपनी गलती सुधारने का ध्यान रखा। विवेचनाधिकारी ने तथ्यों की पुष्टि करने और सामग्री एकत्र करने के बाद, दुर्घटना से उत्पन्न अपराध में, उल्लंघन करने वाले ट्रक के चालक को आरोपित किया। यह दावेदारों का मामला है कि मृतक दावेदारों के लिए व्यवसाय से अपनी आजीविका अर्जित करेगा और प्रदान करेगा जो उसने किया था। मृतक दावेदारों का अकेला बेटा था। वह एकमात्र कमाने वाला था और उनके भरण-पोषण के लिए संसाधन प्रदान करता था। यह मृतक की आय थी जो परिवार को उद्देश्य को पूरा करने में सक्षम बनाती थी। मृतक की उम्र 23 साल थी और वह स्वस्थ था। उन्होंने उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त की और B. Tech (संचार) की डिग्री हासिल की। वह प्रशिक्षण से इंजीनियर था। वह एल्यूमीनियम निर्माण और ग्लास फिटिंग के

व्यवसाय में था, जिसमें वह लाभ के साथ व्यापार कर रहा था। वह प्रति माह ₹10,281/- की राशि कमाते थे और 68, पंजाब एक्सप्रेस कंपाउंड, मेरठ रोड, गाजियाबाद में उनकी दुकान थी। दावेदार, अपने बेटे के निधन के कारण, बगैर किसी सहारे के रह गए हैं। उन्हें अपूरणीय क्षति और मानसिक पीड़ा हुई है। अंशुल के निधन के बाद परिवार आर्थिक संकट में डूब गया है। मृतक ने कोई गलती या लापरवाही नहीं की जिससे दुर्घटना में उसका कोई योगदान हो। यदि उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक ने इसे तेज गति और लापरवाही से नहीं चलाया होता, तो दावेदार के बेटे की असामयिक मृत्यु नहीं होती। इसलिए, विपरीत पक्ष संख्या 1, 2 और दावा याचिका के लिए, जो क्रमशः उल्लंघन करने वाले ट्रक के मालिक, चालक और बीमाकर्ता हैं, दावेदारों के बेटे की असामयिक मृत्यु के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी हैं। दावेदारों की ओर से यह भी दलील दी गई है कि मृतक के पूर्वज 70-75 वर्ष की आयु तक जीवित रहे हैं। वह कम से कम अपना 75 वां जन्मदिन देखने के लिए जीवित रहता। वह कम से कम 40 वर्षों के लिए लाभप्रद रूप से कार्यरत होता और परिवार का समर्थन करता। मृतक अविवाहित था।

4. दावा याचिका के विपरीत पक्ष नंबर 2, सलीम हुसैन, अपील के प्रतिवादी नंबर 2 हैं। वह दुर्घटनाग्रस्त ट्रक का चालक है। इसके बाद उसे 'ड्राइवर' कहा जाएगा। तनवीर अहमद दुर्घटनाग्रस्त ट्रक का मालिक है। वह दावा याचिका के पक्ष नंबर - 1 और इस अपील के प्रतिवादी नंबर-1 के विपरीत है। इसके बाद उसे 'मालिक' कहा जाएगा। बजाज एलायंस जनरल

इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड दुर्घटनाग्रस्त ट्रक के बीमाकर्ता हैं। उन्हें दावा याचिका के विपरीत पार्टी नंबर-3 और इस अपील के प्रतिवादी नंबर-3 के रूप में रखा गया है। उक्त बीमा कंपनी को सुविधा के लिए 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा।

5. दावेदारों का कहना है कि चालक मालिक के निर्देश पर आपत्तिजनक ट्रक चला रहा था। इसलिए, मालिक उत्तरदायी है। उल्लंघन करने वाले ट्रक का बीमा बीमाकर्ताओं के साथ कवर नोट सं- BZ0800234677 के तहत किया गया था। इसलिए, मालिक, ड्राइवर और बीमाकर्ता संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से दावेदारों द्वारा मांगे गए मुआवजे को पूरा करने के लिए उत्तरदायी हैं। अधिकरण में याचिका दायर करने वाले दावेदारों द्वारा मुआवजे के रूप में कुल 30,20,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए कहा गया था।

6. मालिक और ड्राइवर ने एक संयुक्त लिखित बयान दायर किया और आम तौर पर दावेदारों के मामले से इनकार किया। यह माना गया कि यह चालक की गलती नहीं थी जिसके कारण दुर्घटना हुई। उल्लंघन करने वाले वाहन का चालक इसे उचित सावधानी और सतर्कता के साथ और नियमों के अनुसार चला रहा था। उनके पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। दुर्घटना की तारीख और समय पर, उल्लंघन करने वाले ट्रक का बीमा बीमाकर्ताओं के साथ किया गया था। यह भी दलील दी गई कि दावेदारों ने मनमाने ढंग से मुआवजे की मांग की है। यदि दुर्घटना के लिए दोषी ट्रक

को जिम्मेदार ठहराया जाता है, तो देयता बीमाकर्ताओं द्वारा वहन की जानी चाहिए।

7. बीमाकर्ताओं ने ड्राइवर और मालिक की तरह, दावेदारों का मामला आम तौर पर इनकार करते हुए, एक अलग लिखित बयान दायर किया। दलील दी गई कि मृतक लापरवाही और त्रुटिपूर्ण ढंग से कार चला रहा था, जिसकी वजह से हादसा हुआ। चालक की ओर से कोई गलती नहीं थी। दावेदार मुआवजे के हकदार नहीं हैं। उन्होंने मुआवजे में एक अतिरिक्त आंकड़े की मांग की है, जिसके वे हकदार नहीं हैं। यह भी कहा गया कि दुर्घटना के समय, चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। बीमा कंपनियाँ ने दलील दी है कि दावा याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए।

8. पक्षकारों की दलीलों पर, अधिकरण ने 15.02.2010 को निम्नलिखित मुद्दों (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित) पर मूल्यांकन किया:

(i) क्या 31-05-2008 को रात 10 बजे जब मृतक अंशुल अग्रवाल धनंजय और सोनू के साथ मारुति कार नं. 1000 में रामपुर से गाजियाबाद जा रहा था? यूपी 14 टी 0150, शाहबाजपुर दरवाजे के सामने, गजरौला ब्रजघाट रोड पर, पुलिस स्टेशन गजरौला, जिला जेपी नगर, ट्रक नं. तेज गति से और चालक द्वारा लापरवाही से चलाए जा रहे यूपी 25 टी 5201 की कार सं. 25 टी 5201 से टकरा गई। जिसके कारण, दावेदार के बेटे, अंशुल अग्रवाल को गंभीर चोटें आईं और सरकारी अस्पताल, गजरौला में इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई?

(ii) क्या प्रश्नगत दुर्घटना वाहन सं. यूपी 14 टी 0150 के मृतक / चालक की लापरवाही के कारण हुई?

(iii) क्या दुर्घटना के समय, मृतक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था?

(iv) क्या दावा याचिका मारुति कार सं. यूपी 14 टी 0150 के मालिक और बीमाकर्ताओं के 'गैर-जॉइंडर' के लिए गलत है?

(v) क्या दुर्घटना के समय, ट्रक नं. यूपी 25 टी 5201 के पास प्रभावी और वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था?

(vi) क्या दावेदार अंशुल अग्रवाल की मृत्यु के कारण मुआवजे के हकदार हैं? यदि हाँ, तो कितना और किससे?

9. दावेदारों की ओर से अरविंद अग्रवाल ने खुद को अंसां. 1 और सोनू शर्मा को अंसां. 2 के रूप में पेश किया। दावेदारों ने अपने दस्तावेजी साक्ष्य में पेपर नंबर 6 ग वाली एक सूची के माध्यम से पांच दस्तावेजों की फोटोस्टेट प्रतियां पेश कीं; और पेपर नंबर 30 ग वाली सूची के माध्यम से, 12 दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां। दूसरी ओर, ट्रक चालक, सलीम हुसैन को अंसां. 1 के रूप में जांचा गया और मालिक और ड्राइवर ने अपने संयुक्त लिखित बयान के साथ, तीन दस्तावेजों की फोटोस्टेट प्रतियां दायर कीं। इस निर्णय के दौरान दस्तावेजों के साथ-साथ पैरोल साक्ष्य पर चर्चा की जाएगी, जो अब तक प्रासंगिक है।

10. मुद्दे संख्या 1 और 2 को अधिकरण द्वारा एक साथ निपटाया गया था। अधिकरण

ने मुद्दा संख्या-1 पर दावेदारों के पक्ष में आयोजित किया, लेकिन कहा कि दोनों वाहनों के चालकों में 50% की सीमा तक लापरवाही थी। मुद्दा नंबर 3 का फैसला किया गया, जिसमें कहा गया कि दुर्घटना की तारीख पर, मृतक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। मुद्दा संख्या-4 को फिर से दावेदारों के पक्ष में तय किया गया था, जिसमें कहा गया था कि मुआवजा, जैसा कि निर्धारित किया गया है, उल्लंघन करने वाले ट्रक के मालिक और बीमाकर्ताओं द्वारा देय है। कार चालक की मौत हो चुकी है। दावेदारों में से एक कार चालक के पिता और उसके कानूनी प्रतिनिधि भी हैं। यह माना गया कि कार चालक और कार के बीमाकर्ताओं को पक्षकार नहीं बनाए जाने के कारण याचिका में कोई त्रुटि नहीं थी। मुद्दा संख्या-5 का फैसला फिर से दावेदारों के पक्ष में किया गया था, इसलिए बोलने के लिए, यह मानते हुए कि ट्रक के चालक के पास दुर्घटना की तारीख को एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। इश्यू नंबर 6 का निर्धारण करते हुए, अधिकरण ने वित्तीय वर्ष 2005-06 और आकलन वर्ष 2006-07, और इसी तरह, वित्तीय वर्ष 2006-07 और मूल्यांकन वर्ष 2007-08 के लिए के लिए मृतक के आयकर रिटर्न और बैलेंस शीट को देखा।

अधिकरण मृतक की मासिक आय और उसके पास जो कुछ भी बचा था, आउटगोइंग और व्यय को ध्यान में रखने के बाद उसके बारे में ज्यादा आश्वस्त नहीं था, । अधिकरण ने मृतक की उच्च तकनीकी योग्यता को भी ध्यान में रखा। उनके व्यवसाय

और जीवन की परिस्थितियों को भी इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए माना गया कि मृतक की मासिक आय ₹8,000/- थी, जो ₹96,000/- की वार्षिक आय के अनुरूप थी। मृतक कुंवारा होने के कारण अधिकरण द्वारा व्यक्तिगत और रहने के खर्च के लिए 50% की कटौती की गई थी। लागू गुणक का चयन करने के लिए, अधिकरण ने दावेदार नंबर 1, अरविंद अग्रवाल की उम्र पर विचार किया है और '11' के गुणक को अपनाया है। इसलिए, अधिकरण द्वारा कुल 5,28,000/- रुपये की निर्भरता निर्धारित की गई थी। अंत्येष्टि व्यय के लिए ₹2,000/- की राशि प्रदान की गई।

11. जमुना प्रसाद और अन्य बनाम बलजीत सिंह और अन्य में उत्तराखंड उच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा करते हुए, दावेदारों ने अपने इकलौते बेटे को खोने की विशेष परिस्थितियों को देखते हुए, अधिकरण ने अलग से ₹25,000/- की राशि प्रदान की, लेकिन किस शीर्ष के तहत, यह स्पष्ट नहीं है। इसके अलावा, अपने इकलौते बेटे के नुकसान के लिए दर्द और पीड़ा के कारण, दावेदारों को कंसोर्टियम और सेवाओं के नुकसान के लिए ₹ 10,000/- की राशि और इसके अलावा, ₹ 10,000/- की राशि से सम्मानित किया गया। उपर्युक्त तरीके से, अधिकरण द्वारा कुल 5,75,000/- रुपए की क्षतिपूत का निर्धारण किया गया था। चूंकि 50% अंशदायी लापरवाही का निर्णय लिया गया था, देय मुआवजे को निर्धारित करने के लिए कुल मुआवजे को आधा कर दिया गया था, जिससे ₹ 2,87,500/- की राशि हुई। यह मुआवजा मालिक, चालक और बीमाकर्ताओं द्वारा संयुक्त रूप से और अलग-

अलग दावेदारों को दावा याचिका की तारीख से वसूली तक 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ भुगतान करने का आदेश दिया गया था। बीमाकर्ताओं को अधिकरण के साथ अवार्ड के एक महीने के भीतर दी गई राशि जमा करने का आदेश दिया गया था। अधिकरण ने आगे निर्देश दिया कि दावेदारों को देय मुआवजे की राशि में से, दोनों एक-एक आधा प्राप्त करने के हकदार होंगे।

12. श्री विवेक कुमार सिंह, दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता और श्री एस. के मेहरोत्रा, बीमाकर्ताओं के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना।

13. श्री विवेक कुमार सिंह द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अंशदायी लापरवाही का कोई मामला नहीं है, क्योंकि सबूत बताते हैं कि दुर्घटना के लिए दोषी ट्रक पूरी तरह से जिम्मेदार था। यह भी तर्क दिया जाता है कि ट्रक भारी वाहन होने के कारण, अधिकरण का इस आधार पर अंशदायी लापरवाही को समान रूप से विभाजित करने का निष्कर्ष कि यह आमने-सामने की टक्कर है, गलत है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी नहीं देने और गुणक को गलत तरीके से लागू करने में गलती की। यह भी तर्क दिया जाता है कि अधिकरण ने कंसोर्टियम के नुकसान, अंतिम संस्कार के खर्च और संपत्ति के नुकसान के कारण पारंपरिक प्रमुखों के तहत पर्याप्त रूप से राशि नहीं देने में त्रुटि की है।

14. दूसरी ओर, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री एस. के मेहरोत्रा द्वारा तर्क

दिया गया है कि अधिकरण ने एक न्यायसंगत निर्णय पारित किया है। वह प्रस्तुत करता है कि अधिकरण का अवार्ड न तो एक मामूली और न ही एक बोनस होना चाहिए। श्री मेहरोत्रा ने आगे तर्क दिया है कि अंशदायी लापरवाही के बारे में निष्कर्ष अकाट्य है और अन्य सबूतों के अलावा नक्शा नज़री का उल्लेख किया है, यह कहने के लिए कि अधिकरण ने इस मुद्दे को सही ढंग से निर्धारित किया है।

15. पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह न्यायालय पाता है कि जहां तक इस अपील का संबंध है, केवल दो बिंदु हैं जो विचार के लिए उठते हैं, क्या अधिकरण अंशदायी लापरवाही खोजने और मृतक और उल्लंघन करने वाले चालक के बीच 50% पर विभाजित करने में सही था; और दूसरा यह है कि यदि दिया गया मुआवजा पर्याप्त है। जहां तक अ०सा० 2 के साक्ष्य का संबंध है, जो दुर्भाग्यपूर्ण कार पर सवार जीवित यात्री है, उसने पैराग्राफ संख्या 4 और 5 में अपने मुख्य परीक्षण के बदले दायर अपने हलफनामे में जो कुछ कहा है, वह यह है:

"४. मैं शपथपूर्वक कथन करता हूँ कि जब हमारी गाड़ी गजरौला से बृजघात की तरफ शाहबाजपुर गेट के सामने पहुंची तो सामने से ट्रक संख्या- यू.पी.-२५टी - २५०१ के चालक ने बड़ी तेजी व लापरवाही से ट्रक को चलाते हुए, गलत साइड में आकर हमारी मारुती कार में सामने से टक्कर मार दी।

५. मैं शपथपूर्वक कथन करता हूँ कि हमारी गाड़ी को मेरा मालिक अंशुल अग्रवाल बड़ी

सावधानी व यातायात के नियमों का पालन करते हुए चला रहा था किन्तु ट्रक चालक ने तेजी व लापरवाही से ट्रक चला कर हमारी गाड़ी में ट्रक मारी जिसमें इस दुर्घटना में आयी चोटों के कारण अंशुल अग्रवाल व धनन्जय की मृत्यु हो गयी तथा मैं भी घायल हो गया था।"

16. इस गवाह ने दुर्घटना के बारे में अपनी जिरह में कहा है:

"हम लोग उस दिन रामपुर से शाम साढ़े सात आठ बजे चले थे। मैं घटना स्थल से रामपुर की दूरी नहीं बता सकता। घटना स्थल पर डावर की सड़क लगभग २० फिट चौड़ी है उसके बीच डिवाइडर नहीं है। सड़क पर ट्रैफिक लाइट नहीं है। सड़क के किनारे गांव है जिसकी रोशनी सड़क पर लगी हुई थी। घटना ट्रक से हुई है जिसका नम्बर मैं बता सकता हूँ। घटना वाला ट्रक सामने से आ रहा था। घटना के समय सड़क पर काफी वाहन आ रहे थे। कार व ट्रक की आमने सामने मुँह से टक्कर हुई है। कार में घटना के समय चालक के अलावा एक आदमी आगे बैठा था। मैं पीछे बैठा था। कार घटना के समय खली थी थोड़े से औजार थे जो दिग्गी में रखे थे। ट्रक लगभग १०-२० गज की दूरी से दिखाई दे रहा था जिसकी रोशनी दिखाई दे रही थी। मुझे मामूली चोटें आई थी। अंशुल अग्रवाल को चोटें आई थी। जिनकी इस घटना में मृत्यु हो गयी है।

यह कहना गलत है कि अंशुल अग्रवाल तेजी से गाड़ी चला रहे थे इस कारण घटना घटी हो। ...

17. यह गवाह, जिसने अ०सा० 2 के रूप में गवाही दी है, दुर्घटना का एक बहुत ही विश्वसनीय गवाह है। उनकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि वह दुर्भाग्यपूर्ण कार में सवार थे और दुर्घटना में उन्हें मामूली चोटें भी आईं। उनके उक्त संस्करण को जिरह में बीमाकर्ताओं द्वारा चुनौती नहीं दी गई है। गवाह किसी भी तरह से पक्षपातपूर्ण या दावेदारों से संबंधित नहीं है। वह मृतक का कर्मचारी था, और उसके बाद, अपने चाचा के साथ रोजगार किया। इस प्रकार, वह अब मृतक के परिवार के संपर्क में नहीं है। दुर्घटना में शामिल दो चालकों की लापरवाही के बारे में उनके लिए थोड़ा सा भी झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। गवाह की गवाही और उसकी जिरह के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि गवाह ने कहा है कि ट्रक चालक इसे तेज गति से और लापरवाही से चला रहा था। उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि ट्रक चालक सड़क के गलत तरफ चला गया और उसने दुर्घटनाग्रस्त कार को टक्कर मार दी। जांच में आगे कहा गया है कि मृतक ट्रैफिक नियमों का पालन करते हुए सावधानी से कार चला रहा था, लेकिन लापरवाही से और तेज गति से वाहन चलाने वाले ट्रक चालक ने हादसे का कारण बना। बीमाकर्ताओं के कहने पर इस गवाह की जिरह में, ऐसा कुछ भी नहीं है, जो दुर्घटना में शामिल लापरवाही के गवाहों के फैसले के बारे में संदेह पैदा कर सकता है। गवाह ने अपनी जिरह में कहा है कि जब हादसा हुआ तब वह कार की पिछली सीट पर बैठा था। वह ट्रक को 10-20 गज की दूरी पर देख सकता था। उन्होंने विशेष रूप से बीमाकर्ताओं के लिए

विद्वान अधिवक्ता द्वारा सुझाव का खंडन किया है कि दुर्घटना मृतक के तेज गति से कार चलाने के कारण हुई।

18. इसलिये जो कुछ भी साक्षी ने अपनी परीक्षा में कहा है, वह चश्मदीद गवाह का अटल बयान रहा, जिसने यह सब करीब से होते देखा। वहां के संस्करण से स्पष्ट है कि ट्रक को लापरवाही से चलाया गया था और दुर्भाग्यपूर्ण कार से टकराने के लिए सड़क के गलत तरफ ले जाया गया था।

19. बीमाकर्ताओं की ओर से, उल्लंघन करने वाले ट्रक के चालक सलीम हुसैन से ब०सा० 1 के रूप में पूछताछ की गई है। कटघरे में अपनी परीक्षा में, उन्होंने कहा है:

" मैं उस समय यू०पी० २५ टी० ५२०१ का ड्राइवर था दिनांक ३१.५.०८ को मैं ट्रक यू०पी० २५ टी० ५२०१ को लेकर गाजियाबाद से बाजपुर जा रहा था. जैसे ही मैं शहबादपुर गेट के पास पहुंचा तो सामने की ओर से एक कार को उसका ड्राइवर बहुत तेजी व लापरवाही से चलाता हुआ लाया और मेरे ट्रक में टक्कर मार दी. इस दुर्घटना में मेरी कोई गलती नहीं थी. समस्त गलती कार चालक की थी.

.....इस घटना के सम्बन्ध में लिखवाये गए अपराध संख्या ९२३/०८ थाना गजरौला में मेरी जमानत हुई थी. इस मुकदमे में गाड़ी की भी जमानत हुई थी. यह कहना सही है कि इस मुकदमे में पुलिस द्वारा मुझे दोषी मानते हुए आरोप पत्र न्यायालय में दाखिल कर दिया हो....

यह कहना गलत है कि रात में नींद के कारण गलत दिशा में आकर तेजी व लापरवाही से चलाते हुए कार में टक्कर मार दी हो. यह कहना है कि उक्त एक्सीडेंट में मेरी गलती हो."

20. इस गवाह की जांच मालिक की ओर से ब०सा० 1 के रूप में की गई थी। इस गवाह की गवाही के अवलोकन से पता चलता है कि उसने अपनी लापरवाही या यहां तक कि दुर्घटना के कारण मैं अपने योगदान का खंडन किया है। गवाह ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पुलिस ने उसे अपराध में आरोपित किया है। पुलिस द्वारा आरोप पत्र लापरवाही के मुद्दे पर निर्णायक नहीं है, लेकिन निश्चित रूप से विचार किए जाने वाले सबूत का एक टुकड़ा है। इससे पता चलता है कि अपनी जांच कर रही पुलिस ने भी सोचा कि यह चालक की लापरवाही थी जिसके कारण दुर्घटना हुई।

21. अ०सा०.2 की गवाही के बारे में एक और महत्वपूर्ण विशेषता है। यह सिर्फ इतना ही नहीं है, कि उल्लंघन करने वाले ट्रक के चालक के रूप में, उसका कोई भी स्टैंड जो उसकी लापरवाही का खुलासा करता है या एक संकेतक था, एक ड्राइवर के रूप में उसके आचरण या क्षमता को प्रश्न में लाएगा, बल्कि उसे आपराधिक मुकदमे में भी नुकसान पहुंचाएगा जो वह लापरवाही से मौत के आरोप में सामना कर रहा है। यह मानते हुए कि मोटर दुर्घटना के दावे में गवाही को आपराधिक मुकदमे में साक्ष्य में नहीं पढ़ा जाएगा, चालक, जो एक आम आदमी है, से यथोचित रूप से यह सोचने की उम्मीद की जा सकती है। वह

सोच सकता था कि इससे आपराधिक मामले में उसकी सजा हो जाएगी। इसलिए, यह गवाह किसी भी तरह से उस तरह का स्वतंत्र गवाह नहीं है जैसा कि अ०सा०. 2 सोनू दुर्घटना के जीवित पीड़ित के रूप में है। आपराधिक मामले में दोषी आचरण या दोषसिद्धि का डर, गवाह ब०सा०-1 को सच बोलने से रोकता है।

22. इस न्यायालय की समझ के अनुसार, लापरवाही के सवाल या मृतक के योगदान के बारे में इस गवाह की गवाही भरोसेमंद नहीं है, विशेष रूप से, जब अ०सा० 2 की तुलना में, जो बिल्कुल स्वतंत्र और असंबद्ध है। अधिकरण, जबकि यह मूल्यांकन करने के क्रम में इन दोनों गवाहों की गवाही पर ध्यान दिया है, यह सब या तो गवाहों के क्रेडिट या उनके बयान के मूल्य से मूल्यांकन नहीं किया है, एक तुलनात्मक आधार पर आंका है। अधिकरण ने दोनों गवाहों की गवाही की मुख्य विशेषताओं को सरलता से निर्धारित किया है और ऐसा करने से खुद को संतुष्ट किया है। यह न्यायालय सोचता है कि अ०सा. 2 और ब०सा०1 की गवाही, जब निर्णायक रूप से विचार की जाती है, तो यह दर्शाता है कि अ०सा. 2 एक सटीक और अधिक विश्वसनीय है। इस न्यायालय की यह भी राय है कि अ०सा०.2 द्वारा दुर्घटना का दिया गया विवरण स्पष्ट रूप से चालक की लापरवाही को स्थापित करता है। इसमें मृतक द्वारा किए गए किसी भी योगदान को शामिल नहीं किया गया है। इसके अलावा, समर्थन के माध्यम से तथ्य यह है कि पुलिस ने यह भी सोचा है कि ट्रक चालक दंड संहिता की धारा 279, 338, 427 और 304 ए के तहत दंडनीय अपराधों

का दोषी था, जो सभी चालक की लापरवाही की ओर इशारा करेंगे। यह न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि हम पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर भरोसा नहीं करते हैं, बल्कि केवल हमारे सामने मौजूद सबूतों के आधार पर हमारे निष्कर्षों की सहायता में जो कुछ भी इसके लायक है, उसके मामूली समर्थन के लिए देखते हैं। न्यायालय ने नक्शा नजरी पर भी गौर किया है, जिस पर अधिकरण ने अंशदायी लापरवाही के बारे में अपने निष्कर्ष खोजने के लिए भरोसा किया है। नक्शा नजरी के बारे में अधिकरण की समझ के विपरीत, इस न्यायालय ने जो पाया वह यह है कि ट्रक दाईं ओर चला गया और कार से टकरा गया, जो सड़क के केंद्र में नहीं चल रही थी। कार सड़क के नियम के अनुसार आगे बढ़ रही थी, बाईं ओर के आखिरी इंच पर नहीं हो सकती है। वास्तव में, इस मुद्दे पर अधिकरण के निष्कर्ष के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान न्यायाधीश ने भी नक्शा नजरी के बारे में उसी तरह सोचा था जिस प्रकार इस न्यायालय ने सोचा था। एकमात्र त्रुटि जो उत्पन्न हुई प्रतीत होती है, वह अधिकरण द्वारा अंशदायी लापरवाही के मामले का पता लगाने के लिए दुर्भाग्यपूर्ण वाहन के चालक की देखभाल के मानकों पर दबाव डालने के कारण हुई है। यह इस मुद्दे पर अधिकरण के निष्कर्ष से स्पष्ट होगा, जिसका प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है:

"नक्शा नजरी की प्रमाणित प्रतिलिपि कागज सं० ३२ग/२ के अवलोकन से पाया जाता है कि कथित गुर्घटना सड़क पर आमने सामने से हुई है। ट्रक सड़क पर लगभग बीच में

चल रहा था तथा कार सामने से सड़क के बीच से थोड़ा बांये थी। यदि कार चालक सावधानी बरतता और यदि ट्रक चालक लापरवाही से ट्रक ला रहा था, तो कार बांये लेकर दुर्घटना से बचा जा सकता था। अतः कथित दुर्घटना में कार चालक की भी गलती स्पष्ट होती है।"

(न्यायालय द्वारा जोर)

23. यह ध्यान दिया जाएगा कि अधिकरण द्वारा दर्ज निष्कर्ष में, यह कहा गया है कि नक्शा नज़री से पता चला है कि ट्रक लगभग सड़क के केंद्र में चल रहा था, जबकि कार बाईं ओर थोड़ा आगे बढ़ रही थी। इस निष्कर्ष के बारे में, अधिकरण हमारी राय में बिल्कुल सही है, लेकिन फिर उसने टिप्पणी की है कि अगर दुर्भाग्यपूर्ण वाहन के चालक ने सावधानी बरती थी, तो ट्रक चालक को लापरवाही से गाड़ी चलाते हुए देखकर, वह कार को बाईं ओर आगे बढ़ा सकता था और दुर्घटना को टाल सकता था। यह सलाह मृतक के लिए अच्छी हो सकती है ताकि वह एक और दिन देख सके, और निश्चित रूप से, एक लंबा जीवन, लेकिन यह लापरवाही और दो ड्राइवरों के बीच इसके विभाजन के मानकों को निर्धारित नहीं कर सकता है।

24. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, अधिकरण का निष्कर्ष, कि मृतक अंशदायी लापरवाही का दोषी था, बिल्कुल गलत है। तदनुसार, यह माना जाता है कि यह केवल चालक है, जो दुर्घटना के लिए जिम्मेदार था, मृतक की ओर से कोई योगदान नहीं था।

25. यह इस न्यायालय को अगले मुद्दे पर ले जाता है और वह है मुआवजे का आकलन, जिसके दावेदार हकदार हैं। इस न्यायालय ने पहले ही देखा है कि अधिकरण ने मृतक के आयकर रिटर्न, उसके राजस्व व्यय, जिस तरह का व्यवसाय वह कर रहा था, उसकी स्थापना और सबसे बढ़कर, मृतक की मासिक आय 8,000/- प्रति माह थी, उसकी योग्यता पर विचार किया है। मृतक की मासिक आय के बारे में अधिकरण के उस आकलन से असहमत होने का इस न्यायालय के पास कोई कारण नहीं है।

26. मृतक की मासिक आय के आधार पर, उसकी वार्षिक आय ₹96,000/- होगी। चूंकि मृतक अविवाहित था, सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एस. सी. सी 121 में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 30 में निर्धारित कानून के अनुसार, मृतक के व्यक्तिगत और रहने के खर्च के लिए 50% की कटौती की गई है, जिसे यह न्यायालय सही मानता है। अधिकरण ने '11' के गुणक को लागू किया है, इसे पिता की उम्र से माना जाता है। यह लागू गुणक का आकलन करने के लिए एक स्पष्ट रूप से भ्रामक मानक है। सरला वर्मा (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 40 में तालिका के अनुसार, मृतक 21-25 आयु वर्ग में है, लागू गुणक 18 होगा; 11 नहीं। यह तदनुसार अवधारित किया जाता है।

27. यह न्यायालय आगे नोटिस करता है कि अधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी नहीं दिया है। यह अब संदेह के दायरे

में नहीं है कि भविष्य की संभावनाएं स्वरोजगार या एक निश्चित वेतन पर काम करने वालों के मामले में उतनी ही उपलब्ध हैं जितनी सरकारी प्रतिष्ठान या अन्य प्रतिष्ठानों में वेतन पर कार्यरत लोगों के रूप में अब तक भरोसेमंद आय का एकमात्र सूचकांक माना जाता है। अब नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य, (2017) 16 एस.सी.सी 680 में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ की होल्डिंग के मद्देनजर कानून का परिप्रेक्ष्य पूरी तरह से बदल गया है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में यह आयोजित किया गया है:

56. मौलिक मुद्दा मृतक के मामलों में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण है जो स्व-नियोजित हैं या एक निश्चित वेतन पर हैं। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डी. टी. सी, (2009) 6 एस. सी. सी 121; (2009) 2 एस. सी. सी (सी. आई. वी) 770 : (2009) 2 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 1002] ने भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने का लाभ प्राप्त करने के लिए दावेदारों को रिकॉर्ड पर सामग्री लाने की अनुमति देते हुए एक अपवाद बनाया है। इसने स्वतः उक्त श्रेणी के संबंध में किसी भावी संभावना की अनुमति नहीं दी है।

57. हमारे उत्सुक विचार को उत्प्रेरित करने के बाद, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि जब हम मानकीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो वास्तव में स्व-नियोजित या एक निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति पर उक्त सिद्धांत को लागू नहीं करने का कोई औचित्य नहीं है। मृत्यु के समय वास्तविक आय के

सिद्धांत का पालन करना और गुणक के निर्धारण के उद्देश्य से आय में भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कोई राशि नहीं जोड़ना अन्यायपूर्ण होगा। मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि विधि अधिनियम की धारा 168 के तहत निर्धारित मुआवजे के दायरे में आ जाए और उचित मुआवजे का आकलन हो। ऐसे मृतक के मामले में, जिसने स्थायी नौकरी की थी और इनबिल्ट वार्षिक वेतनवृद्धि दी गई थी, यह सुनिश्चित है कि यह स्वीकार्य है। लेकिन यह कहना कि मृतक के कानूनी प्रतिनिधि जो एक निश्चित वेतन पर थे, मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के लाभ के हकदार नहीं होंगे, अनुचित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि उस घटना में दोनों के बीच अंतर की कसौटी एक तरफ निश्चितता और दूसरी तरफ स्थिरता होगी। कोई यह समझ सकता है कि तुलनात्मक माप एक ओर निश्चितता है और दूसरी ओर अनिश्चितता है, लेकिन ऐसी धारणा भ्रामक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्य वृद्धि एक स्व-नियोजित व्यक्ति को प्रभावित करती है; और इसके अलावा, जीविका के लिए किसी की आय बढ़ाने के लिए हमेशा एक निरंतर प्रयास होता है। स्थायी नौकरी पर एक वेतनभोगी व्यक्ति की क्रय क्षमता जब वेतन वृद्धि और वेतन संशोधन के अनुदान या सेवा शर्तों में कुछ अन्य परिवर्तन के कारण बढ़ती है, तो निजी क्षेत्र में कर्मचारियों से बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए वेतन बढ़ाने के लिए हमेशा एक प्रतिस्पर्धी रवैया होता है। इसी तरह, एक व्यक्ति जो स्व-नियोजित है, वह अपने संसाधनों को जुटाने और अपने

शुल्क बढ़ाने के लिए बाध्य है ताकि वह समान सुविधाओं के साथ रह सके। यह धारणा रखना कि उसके स्थिर रहने की संभावना है और उसकी आय स्थिर रहने की संभावना है, मानव दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखता है। हालांकि यह उचित लग सकता है कि स्थायी नौकरी रखने वाले व्यक्ति के मामले के विपरीत मौजूदा आय के लिए भविष्य की संभावनाओं के अलावा निश्चितता नहीं हो सकती है, फिर भी उक्त धारणा वास्तव में स्वीकृति के योग्य नहीं है। हम यह सोचने के इच्छुक हैं कि स्व-नियोजित या निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति की तुलना में मृतक की ओर से दावा करने वाले कानूनी प्रतिनिधियों के संबंध में प्रतिशत के संबंध में कुछ हद तक अंतर हो सकता है, जिनके पास स्थायी नौकरी थी। लेकिन निश्चितता की कथित कमी की नींव पर मानकीकरण के सिद्धांत को लागू नहीं करना जमीनी हकीकत से बेखबर रहने के समान होगा। और, इसलिए, डिग्री परीक्षण अनिवार्य है। जब तक डिग्री परीक्षण लागू नहीं किया जाता है और पक्षों को स्थापित करने के लिए सबूत पेश करने के लिए छोड़ दिया जाता है, यह अनुचित और असमान होगा। डिग्री - टेस्ट में प्रतिशत की अंतर्निहित अवधारणा होनी चाहिए। संचयी कारकों, अर्थात् समय बीतने, बदलते समाज, मूल्य में वृद्धि, मूल्य सूचकांक में परिवर्तन, जीवन के एक विशेष पैटर्न का पालन करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण आदि को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की स्थापित आय का 40% जोड़ना और जहां

मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी, वहां मृतक की 40 से 50 वर्ष की आयु के बीच की स्थिति में 25% की वृद्धि उचित होगी।

58. विवाद यहीं खत्म नहीं होता है। सवाल अभी भी बना हुआ है कि क्या मृतक की उम्र 50 साल से अधिक होने पर कोई जोड़ नहीं होना चाहिए। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डी. टी. सी, (2009) 6 एस. सी. सी 121: (2009) 2 एस. सी. सी (सी.आई.वी) 770 : (2009) 2 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 1002] कोई राशि नहीं जोड़ना उचित समझता है और इसे रेशमा कुमारी [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एस. सी. सी 65 : (2013) 4 एस. सी. सी (सी. आई. वी) 191: (2013) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 826] में अनुमोदित किया गया है। इस तथ्य का न्यायिक नोटिस लिया जा सकता है कि वेतन समान नहीं रहता है। जब कोई व्यक्ति स्थायी नौकरी में होता है, तो हमेशा एक कारण या दूसरे के कारण वृद्धि होती है। "एक अंगूठे के नियम" के रूप में निर्धारित करने के लिए कि 50 वर्षों के बाद कोई जोड़ नहीं होगा, एक अस्वीकार्य अवधारणा होगी। हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के बीच है तो 15% की वृद्धि होनी चाहिए और उसके बाद कोई जोड़ नहीं होना चाहिए। इसी तरह, स्व-नियोजित या निश्चित वेतन पर व्यक्ति के मामले में, 50 से 60 वर्ष की आयु के बीच 10% अतिरिक्त होना चाहिए। उपर्युक्त मानदंड तय किया गया है ताकि न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा दृष्टिकोण में निरंतरता हो सके।

28. अन्य मुद्दा जिस पर अभी भी विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या भविष्य की संभावनाएं, जिनके दावेदार हकदार हैं, प्रणय सेठी के सिद्धांत या उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 के नियम 220-ए (3) द्वारा शासित होंगे। इस मुद्दे को सुप्रीम कोर्ट ने न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एस. सी. सी ऑनलाइन एस.सी 822 में सुलझाया था, जहां यह अवधारित किया गया है:

9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर किसी भी तरह से तत्काल मामले में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा जाता है, वह यह है कि क्या इसके आवेदन में, नियमों के नियम 220A के उप-नियम 3 (iii) को प्रतिबंधित गुंजाइश दी जानी चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठीवास में मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे " पर पहुंचने के दृष्टिकोण से चर्चा हुई।

11. यदि एक संकेतक एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है, विशेष रूप से जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। ऐसे मामलों में जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी

में कहा गया है, 15% के नुस्खे को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासी सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि एक वैधानिक लिखत ने एक ऐसा फार्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे सांविधिक लिखत को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि सांविधिक लिखत अन्यथा अमान्य न पाई जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से पेश प्रस्तुतिकरण को अस्वीकार करते हैं और अधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और इस अपील को बिना किसी लागत के आदेश के खारिज करते हैं।

29. इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्तर प्रदेश राज्य में, भविष्य की संभावनाओं की गणना नियम, 1998 के नियम 220-ए (3) के अनुसार की जानी है, न कि प्रणय सेठी के सिद्धांतों के अनुसार।

30. कुछ समय में, यह संदेह का विषय था कि क्या नियम, 1998 के नियम 220-ए (3) को अधिसूचना संख्या 777/XXX-4-2011-4 (3) द्वारा 26 सितंबर, 2011 को पेश किया गया था अर्थात् उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियम, 2011 संशोधन से बहुत पहले हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा। सुशील कुमार और अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लोजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2017 (35) एल.सी.डी 1311 में इस

न्यायालय के बेंच के फैसले के मददेनजर यह मुद्दा अब एकीकृत नहीं है। सुशील कुमार (उपरोक्त) में, यह आयोजित किया गया है:

31. घायल/मृतक की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधि न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के दृष्टिगत उत्तर प्रदेश मोटर यान नियमावली, 1998 में नियम 220-ए अंतःस्थापित किया गया था। इसमें क्षतिपूत के निर्धारण के प्रयोजनार्थ घायल / मृतक की आयु के आधार पर उसकी वास्तविक आय में घायल / मृतक की आय के कुछ प्रतिशत को जोड़ने का प्रावधान है। उपर्युक्त नियम दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले दिनांक 26-09-2011 को प्रभावी हुआ, यद्यपि दुर्घटना उपर्युक्त नियम के लागू होने से काफी पहले 08-05-2010 को हुई थी।

32. यह उपरोक्त के मददेनजर एक तर्क उठाया जा रहा है कि नियमों का नियम 220-ए जो 26.09.2011 को लागू हुआ, 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम सरूप बनाम मुंशी ए.आई. आर 1963 एस. सी 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

34. ऊपर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण का सुप्रीम कोर्ट ने मुला बनाम गोधू ए.आई. आर 1971 एस.सी 89 में पालन किया।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत ए.आई. आर 1966 एस. सी 1423 में न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया था: - यदि नया कानून ऐसी भाषा में बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से, यहां तक कि लंबित मामलों में भी लेता है, तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपील की अदालत को इस तरह व्यक्त किए गए इरादे के संबंध में होना चाहिए, और अपील की अदालत पहले उदाहरण के न्यायालय के फैसले के बाद भी इस तरह के कानून को प्रभावी कर सकती है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह ए. आई. आर 1974 एस. सी 2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को प्रभाव दिया गया था क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा वाद की पुनर्सुनवाई की प्रकृति में है।

37. यह उपरोक्त निर्णयों के आलोक में था कि लक्ष्मी नारायण गुड़न और अन्य बनाम निरंजन मोडक ए.आई.आर 1985 एस. सी 111 में यह माना गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों का अधिकार शामिल होगा।

38. उपरोक्त निर्णय के बाद उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) ए. डब्ल्यू. सी 2620 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा किया गया था जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में एक मामला था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल

कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षों के अधिकारों को कवर किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के मद्देनजर, आई.सी.आई.सी.आई लोम्बार्ड (उपरोक्त) में इस अदालत की डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त किया गया विचार अच्छा कानून नहीं है क्योंकि यह ऊपर संदर्भित निर्णयों को ध्यान में नहीं रखता है कि नियम 220-ए जो 26.09.2011 को लागू हुआ था, केवल उस कारण से उक्त तिथि से पहले हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा विशेष रूप से प्रकृति में पूर्वव्यापी होने के लिए नहीं कहा गया है।

31. सुशील कुमार में डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, जो स्पष्ट रूप से इस न्यायालय को बाध्य करता है कि भविष्य की संभावनाओं का, इस तथ्य के बावजूद कि दुर्घटना संशोधन से पहले हुई थी, आंकलन नियम 998 के नियम 220-ए (3) के अनुसार किया जाना है। अब, नियम 220-ए (3) के अनुसार, मृतक की आयु को देखते हुए, जो 40 वर्ष से बहुत कम थी, भविष्य की संभावनाओं के लिए उसकी आय में 50% जोड़ा जाना है।

32. पारंपरिक शीर्षों के तहत दावेदारों की हकदारी फिर से प्रणय सेठी में सिद्धांतों द्वारा शासित होती है जहां यह अवधारित किया गया है:

48. इस पहलू को स्पष्ट करने और उचित रूप से कहने की आवश्यकता है। अधिनियम की दूसरी अनुसूची में पारंपरिक राशि का प्रावधान किया गया है। उक्त अनुसूची को दोषपूर्ण पाया

गया है जैसा कि त्रिलोक चंद्र [यूपी एस. आर. टी. सी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एस.सी.सी 362] में न्यायालय द्वारा कहा गया है। हाल ही में, पुट्टम्मा बनाम केएल नारायण रेड्डी [पुट्टम्मा वीकेएल नारायण रेड्डी, (2013) 15 एस. सी. सी 45 : (2014) 4 एस.सी.सी (सी. आई. वी) 384: (2014) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 574] (एस.सी.सी पृष्ठ 80, पैरा 54) में इसे यह कहते हुए दोहराया गया है:

"54. ... हमारा मानना है कि 1994 में अधिनियमित दूसरी अनुसूची अब जीवन यापन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और असाध्य हो गई है।

49. जहां तक गुणक का संबंध है, इसे इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा आराम करने के लिए रखा गया है। दूसरी अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु के मामले में सामान्य क्षतियों का भी प्रावधान है। यह इस प्रकार है:

"3. सामान्य क्षति (मृत्यु के मामले में): ऊपर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य नुकसान देय होंगे:

1	अंतिम संस्कार व्यय"	₹0 2000
2	कंसोर्टियम की हानि, यदि लाभार्थी जीवनसाथी है	₹0 5000
3	संपत्ति की हानि	₹0 2500
4	चिकित्सा व्यय - मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक व्यय बिल / वाउचर द्वारा समर्थित लेकिन इससे अधिक नहीं	₹0 15000

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन पर, यह प्रकट होता है कि त्रिलोक चंद्र [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एस. सी. सी 362] के निर्णय में दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है और इसमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने देखा, अलग-अलग मामलों में अलग-अलग राशियां दी गई हैं। राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस. सी. सी 54 : (2013) 4 एस.सी.सी (सी. आई. वी) 179 : (2013) 3 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 817 : (2014) 1 एस. सी. सी (एल एंड एस) 149] में कंसोर्टियम को 1,00,000 रुपये की राशि प्रदान की गई थी। राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस. सी. सी 54 : (2013) 4 एस. सी. सी (सी. आई. वी) 179: (2013) 3 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 817 : (2014) 1 एस. सी. सी (एल एंड एस) 149] से कंसोर्टियम के अनुदान का औचित्य, अवलोकन पर आधारित है जैसा कि हमने यहां पहले पुनः प्रस्तुत किया है।

51. पूर्वोक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक प्रमुखों के तहत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक प्रमुखों का संबंध है, हमें राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी 54 (2013) 4 एस. सी. सी (सी.आई.वी) 179 : (2013) 3 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 817: (2014) 1 एस.सी.सी (एल एंड एस) 149] में व्यक्त विचार से

सहमत होना मुश्किल लगता है। इसने अंतिम संस्कार खर्च के लिए 25,000 रुपये, कंसोर्टियम के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये मंजूर किए हैं। देखभाल और नाबालिग बच्चों के नुकसान से संबंधित अभिभावक मौजूद नहीं है। हालांकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस. सी. सी 54 : (2013) 4 एस. सी. सी (सी. आई. वी) 179: (2013) 3 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 817 : (2014) 1 एस. सी. सी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एस. सी. सी 421 : (2012) 3 एस.सी.सी (सी.आई.वी) 726 : (2012) 3 एस. सी. सी (सी.आर.आई) 160 : (2012) 2 एस. सी. सी (एल एंड एस) 167] को संदर्भित करता है, यह उसी का पालन करने के लिए प्रतीत नहीं होता है। कहने की जरूरत नहीं है कि परम्परागत और पारंपरिक शीर्षों का निर्धारण प्रतिशत के आधार पर नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षों की मात्रा निर्धारित की जानी चाहिए। किसी भी परिमाणीकरण में एक उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि कई क्षेत्रों में मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे बेखबर नहीं रह सकती । इस पहलू में एक अनुभवसिद्ध रीति/नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अनुभवसिद्ध रीति/नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता

की कमी के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हम सोचते हैं कि उचित रकम तय करना उचित लगता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मर्दों पर उचित आंकड़े, अर्थात् संपत्ति का नुकसान, कंसोर्टियम का नुकसान और अंतिम संस्कार खर्च क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होना चाहिए। उक्त शीर्षों की पुनर्व्याख्या करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरीक्षण तथ्य- केंद्रित या क्वांटम - केंद्रित नहीं होना चाहिए। हम समझते हैं कि यह विलक्षण होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है उसे प्रत्येक तीन वर्षों में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन वर्षों की अवधि में वृद्धि 10 प्रतिशत की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन शीर्षों के संबंध में स्थिरता आएगी। (न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

33. जहां तक कंसोर्टियम के नुकसान के लिए मुआवजे के राशि का संबंध है, इस मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने मैग्मा जनरल इंड्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहू राम और अन्य, (2018) 18 एस. सी. सी 130 में विचार किया था। मैग्मा जनरल इंड्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में, यह अवधारित किया गया है:

"21. प्रणय सेठी [नेशनल इंड्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एस.सी.सी 680: (2018) 3 एस.सी.सी

(सी.आई.वी) 248 : (2018) 2 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 205] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने उन विभिन्न प्रमुखों से निपटा जिनके तहत मृत्यु के मामले में मुआवजा दिया जाना है। इनमें से एक प्रमुख कंसोर्टियम का नुकसान है। कानूनी भाषा में, "कंसोर्टियम" एक व्यापक शब्द है जिसमें "पति-पत्नी कंसोर्टियम", "पैतृक संघ" और "संतानोत्पत्ति संघ" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक की कंपनी, देखभाल, सहायता, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए नुकसान है। पति या पत्नी के संबंध में, इसमें मृत पति या पत्नी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एस.सी.सी 54 : (2013) 4 एस.सी.सी (सी.आई.वी) 179: (2013) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 817: (2014) 1 एस. सी. सी (एल एंड एस) 149]

21.1. पति-पत्नी के संघ को आम तौर पर एक पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित पति या पत्नी को "कंपनी, समाज, सहयोग, स्नेह और हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजे की अनुमति देता है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5 वां संस्करण, 1979)]

21.2. माता-पिता की अकाल मृत्यु पर बच्चे को माता-पिता की सहायता, संरक्षण, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण के नुकसान के लिए माता-पिता का संघ प्रदान किया जाता है।

21.3. बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजे के लिए पुत्र-भाव कंसोर्टियम माता-पिता का अधिकार है। एक बच्चे की मृत्यु के कारण होने वाली दुर्घटना मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा देती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल के दौरान अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साहचर्य और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है। (न्यायालय द्वारा जोर)

34. इस न्यायालय ने जो निर्णय दिया उसके मद्देनजर इस अपील में दावेदारों को देय मुआवजे को निम्नलिखित तरीके से संशोधित करना होगा: -

क्रम संख्या	विवरण	राशि
1	मृतक की मासिक आय	8,000/-
2	मासिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (मासिक आय x 50%) = 8000+4000	12,000/-
3	वार्षिक आय (मृतक की) = 12,000 x	1,44,000/

	12	
4	वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/2 कटौती = 1,44,000 - 72,000	72,000/
5	कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x अनुप्रयुक्त गुणक = 72,000 x 18	12,96,000/-
6	पारंपरिक मदों के प्रति दावेदारों का अधिकार = संपत्ति का नुकसान + अंत्येष्टि व्यय + आश्रितों का संघ / कंसोर्टियम = 15000 + 15000 + 40,000 x 2	1,10,000/-
	पूर्ण हर्जाना (₹12,96,000+ ₹1,10,000)	14,06,000/

35. परिणाम में, इस अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। अधिकरण द्वारा

पारित विवादित अधिनिर्णय को संशोधित किया जाता है और प्रदान किए गए मुआवजे को बढ़ाकर ₹14,06,000/- कर दिया जाता है। उपर्युक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर किए जाने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रतिवर्ष की दर से साधारण ब्याज देय होगा। बीमाकर्ता द्वारा अधिकरण के पास पहले से जमा की गई किसी भी राशि, आक्षेपित राशि के अनुसार, राशि के खिलाफ समायोजित किया जाएगा. पंचाट में अधिकरण के अन्य निर्देश यथावत रहेंगे।

36. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं ।

(2023) 7 ILRA 656

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 2055 सन् 2023

राज कुमार बिंद

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अरविंद कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री प्रदीप सिंह

ए. राजस्व विधि - अमृत सरोवर योजना - मत्स्य पट्टा - नीलामी - उच्चतम बोलीदाता

ने बोली राशि का एक-चौथाई हिस्सा जमा किया - निहित अधिकार, किस सीमा तक अर्जित किया जा रहा है - माना जाता है कि सार्वजनिक नीलामी में सफल बोलीदाता को नीलामी को अपने पक्ष में संपन्न कराने का कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं होता - यदि पर्याप्त कारण मौजूद हों तो प्राधिकरण सफल बोलीदाता के पक्ष में नीलामी कार्यवाही संपन्न न करने के लिए स्वतंत्र है। (पैरा 28)

बी. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 38 - उद्देश्य - कल्याणकारी राज्य की अवधारणा - इसे प्राप्त करने के लिए राज्य का दायित्व - माना गया कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा संविधान के अनुच्छेद 38 का एक पहलू है और राज्य का उद्देश्य यह देखना है कि लोगों के कल्याण को उचित रूप से बढ़ावा दिया जाए - अधिकतम लोगों की भलाई और सभी का लाभ और खुशी एक लोकतांत्रिक राजनीति का उद्देश्य है और राज्य के अधिकारियों को इसके लिए आगे बढ़ना है। (पैरा 30)

सी. मैक्सिम - सालुस पॉपुली एस्ट सुप्रेमा लेक्स -

अर्थ - जनता का कल्याण सर्वोच्च कानून होगा। (पैरा 30)

रिट याचिका का निस्तारण किया गया। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बबलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2020 (10) एडीजे 550

2. राजस्थान हाउसिंग बोर्ड एंड अन्य बनाम जी.एस. इन्वेस्टमेंट्स एवं एक अन्य; (2007)

1 एससीसी 477

3. लक्ष्मीकांत बनाम सत्यवान; (1996) 4 एससीसी 208

4. त्रिलोचन मिश्रा बनाम उड़ीसा राज्य; एआईआर 1971 एससी 733

5. उड़ीसा राज्य बनाम हरिनारायण जायसवाल; (1972) 3 एससीआर 784

6. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मिस भीम सेन वलैती राम; (1970) 2 एससीआर 594

7. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम विजय बहादुर सिंह; एआईआर 1982 एससी 1234

8. मेरठ विकास प्राधिकरण बनाम एसोसिएशन ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज; (2009) 6 एससीसी 171

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार सिंह, राज्य प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री एम.सी.चतुर्वेदी के साथ विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला और प्रतिवादी ग्राम सभा का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप सिंह को सुना।

2. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता बताते हैं कि पिछले आदेश के अनुसार प्रत्यर्थी 2 पहले दायर किए गए शपथपत्रों में देखी गई तथ्यात्मक विसंगतियों को समझाने के लिए अदालत में उपस्थित है।

3. याचिकाकर्ता के पक्ष में मत्स्य पालन पट्टे के निपटारे के संबंध में राज्य के प्रत्यर्थियों के रुख को समझाने के लिए एक आवेदन के साथ एक नया शपथपत्र दाखिल करने के लिए अनुग्रह मांगा जाता है।

4. अदालत में दाखिल किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र को रिकॉर्ड में लिया जाता है।

5. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता को मत्स्य पालन पट्टा देने की औपचारिकताएं पूरी करने और तटस्थ उद्धरण संख्या - 2023: एचसी:93276 में याचिकाकर्ता को अनुमति देने और जिला - मिर्जापुर, ग्राम गोनौरा, तहसील सदर में स्थित गाटा संख्या 970 क्षेत्रफल 0.2400 हेक्टेयर वाले तालाब के संबंध में मछली पकड़ने के अधिकार का प्रयोग करने हेतु के लिए प्रतिवादी संख्या 3/उपविभागीय मजिस्ट्रेट, तहसील सदर, जिलामिर्जापुर को निर्देश देने की मांग करते हुए दायर की गई है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने मुख्य रूप से यह तर्क देने की मांग की है कि याचिकाकर्ता राज्य प्रत्यर्थियों द्वारा आयोजित नीलामी में एकमात्र बोली लगाने वाला है और बोली राशि का एक चौथाई जमा करने के बाद, अपने पक्ष में मत्स्य पालन पट्टे के निपटान का अधिकार प्राप्त कर लेगा।

7. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि प्रत्यर्थी अधिकारियों ने पूर्व में दायर किए गए शपथपत्र में जो रुख अपनाया था कि प्रश्नगत तालाब को 'अमृत सरोवर योजना' के

लिए प्रस्तावित किया गया था, उसे इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उक्त योजना के प्रयोजनों के लिए तालाब का क्षेत्रफल कम से कम एक एकड़ होना आवश्यक था और प्रश्नगत में तालाब का क्षेत्रफल बहुत कम है।।

8. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने सरकार के आदेश दिनांक 27.04.2022 की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसकी एक प्रति आज दायर शपथ पत्र के साथ संलग्न की गई है, जिसमें बताया गया है कि 'अमृत सरोवर योजना' को 'देश की आजादी के 75 साल पूरे होने के उपलक्ष्य में अमृत महोत्सव' के जश्न के हिस्से के रूप में शुरू किया गया था। यह बताया गया है कि सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार, प्रत्येक जिले में 'अमृत सरोवर' विकसित किए जाने हैं और उनके रखरखाव की जिम्मेदारी संबंधित ग्राम पंचायतों की होगी।

9. यह बताया गया है कि पूर्वोक्त सरकारी आदेश के आगे, एक डी.ओ. पत्र दिनांक 12.05.2022, आयुक्त, ग्रामीण विकास, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रदेश में 'अमृत सरोवर योजना' के संबंध में दिशानिर्देश जारी किया गया था जो यह निर्धारित करते हैं कि योजना के उद्देश्य के लिए, न्यूनतम एक एकड़ (0.4 हेक्टेयर) क्षेत्र वाले तालाबों पर विचार किया जाएगा; हालाँकि, यदि आवश्यक क्षेत्र का तालाब उपलब्ध नहीं है तो कम क्षेत्र के तालाबों का भी कार्याकल्प और गाद निकालने के बाद इस उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा सकता है।

10. मामले के तथ्यात्मक पहलुओं के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि नीलामी की कार्यवाही सार्वजनिक सूचना दिनांक 02.07.2022 के संदर्भ में शुरू की गई थी। इसके तुरंत बाद, संबंधित गांव की ग्राम सभा ने 25.07.2022 को एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके अनुसार विचाराधीन तालाब के साथ-साथ दो अन्य तालाबों को 'अमृत सरोवर योजना' के लिए प्रस्तावित किया गया। राजस्व विभाग के अधिकारियों ने उपरोक्त प्रस्ताव से अनभिज्ञ होने के कारण 25.07.2022 को नीलामी आयोजित की और बोली की एक चौथाई राशि जमा कर दी गई।

11. यह बताया गया है कि संबंधित ग्राम पंचायत के ग्राम प्रधान ने ग्राम पंचायत द्वारा पारित प्रस्ताव दिनांक 27.07.2022 की एक प्रति संलग्न करते हुए दिनांक 25.07.2022 को एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जो 'अमृत सरोवर योजना के प्रयोजनों के लिए तालाब आवंटन के प्रस्ताव के संबंध में था।

12. न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित किया गया है कि क्षेत्र के लेखपाल द्वारा भौतिक निरीक्षण किया गया था और राजस्व निरीक्षक के अनुमोदन से दिनांक 26.08.2022 की एक रिपोर्ट तहसीलदार मिर्जापुर के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। 23.09.2022 को, इसे उप संभागीय मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया गया और इस आशय का एक आदेश पारित किया गया था कि चूंकि विचाराधीन तालाब को 'अमृत सरोवर योजना' के लिए प्रस्तावित किया जा रहा था, इसलिए

नीलामी की कार्यवाही को मंजूरी नहीं दी जा रही थी।

13. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी अधिकारियों ने पूरी निष्पक्षता से दिनांक 14.10.2022 और 29.10.2022 को नोटिस भेजा है, जिसमें याचिकाकर्ता को नीलामी के लिए जमा की गई राशि वापस मांगने का निर्देश दिया गया है।

14. विद्वान अपर महाधिवक्ता बताते हैं कि 'अमृत सरोवर योजना का शुभारम्भ 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' के अवसर पर किया जाना है और उसके संदर्भ में विचाराधीन तालाब को व्यापक सार्वजनिक हित में चुना गया है और जो कार्य किया जाना प्रस्तावित है वह पूरे गांव समुदाय के सदस्यों के हित में होगा।

15. याचिकाकर्ता के किसी भी अधिकार के उल्लंघन के संबंध में केवल इसलिए कि उसने नीलामी में भाग लिया और बोली राशि का एक चौथाई हिस्सा जमा कर दिया, यह प्रस्तुत किया गया है कि केवल नीलामी में भाग लेना और एकमात्र या उच्चतम बोली लगाने वाला होना, याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं बनाता। इस संबंध में इस न्यायालय के **बब्लू बनाम राज्य उ.प्र. और अन्य⁶** के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

16. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ अब विचाराधीन हैं.

17. प्रश्नगत तालाब के संबंध में मामले के तथ्यात्मक पहलुओं को मत्स्य पालन पट्टे के

अनुदान और याचिकाकर्ता के लिए नीलामी के लिए अधिसूचित किया गया है और प्रत्यर्थी ने उस में प्रतिभाग किया और एकमात्र बोलीदाता होने तथा बोली राशि का एक-चौथाई जमा करने पर भी विवाद नहीं है।

18. एकमात्र शिकायत जो उठाने की मांग की गई है वह इस तथ्य के संबंध में है कि एक बार याचिकाकर्ता एकमात्र बोली लगाने वाला होने के नाते नीलामी में सफल रहा और उसने बोली राशि का एक चौथाई हिस्सा जमा कर दिया, उसके अधिकार क्रिस्टलीकृत हो गए और यह उसके लिए उपलब्ध नहीं था। प्रत्यर्थी अधिकारियों ने नीलामी कार्यवाही को मंजूरी देने से इनकार कर दिया है।

19. प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा आज अदालत में दायर किया गया शपथपत्र में इसका संदर्भ शामिल है कि 'मिशन अमृत सरोवर' भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर लॉन्च किया गया, जिसका उद्देश्य देश की आजादी के 75 साल पूरे होने के उपलक्ष्य में 'आजादी का अमृत महोत्सव' के जश्न के हिस्से के रूप में देश के प्रत्येक जिले में 75 जल निकायों को विकसित करना और पुनर्जीवित करना है। .

20. अदालत का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया है कि 'अमृत सरोवर' का विकास 'आजादी का अमृत महोत्सव' के अवसर पर देश द्वारा अपनाई गई रचनात्मक कार्यवाई का एक उपयुक्त प्रतीक होगा और इससे संवेदनशील प्राणी और पर्यावरण दोनों के लाभदायक और दीर्घकालिक उत्पादक संपत्ति का निर्माण होगा। । यह भी बताया गया है कि

'अमृत सरोवर' सतह और भूमिगत दोनों पर पानी की उपलब्धता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

21.सरकारी आदेश जिसे रिकॉर्ड में रखा गया है, उसमें भारत सरकार द्वारा जारी किए गए दिशानिर्देशों का संदर्भ शामिल है, जिसमें योजना की कार्यान्वयन रणनीति के अनुसार,'अमृत सरोवर',लगभग 10,000 घन मीटर की जल धारण क्षमता वाली कम से कम एक एकड़ भूमि पर निर्मित किया जाना है। हालाँकि, यह प्रावधान किया गया है कि यदि कोई जिला नए 'अमृत सरोवर', निर्माण करने में असमर्थ है तो जिला उनकी पारिस्थितिक और उत्पादक उपयोगिता को बहाल करने के लिए मौजूदा संरचनाओं का कार्याकल्प कर सकता है। योजना के तहत, प्रत्येक जिले में कम से कम 75 'अमृत सरोवर' का निर्माण या कार्याकल्प किया जाना प्रस्तावित है।

22.योजना का उद्देश्य, जैसा कि सरकारी आदेश और दिशानिर्देशों से परिलक्षित होता है, जिन्हें रिकॉर्ड में रखा गया है, योजना के महत्व का संकेत देते हैं और विशेष रूप से इस तथ्य का कि अमृत सरोवरों के विकास की परिकल्पना पानी की उपलब्धता बढ़ाने और टिकाऊ और दीर्घकालिक उत्पादक संपत्ति बनाने के उद्देश्य से की गई है।

23. सार्वजनिक नीलामी में उच्चतम बोली लगाने वाले का अधिकार कई मामलों में विचार का विषय रहा है और यह लगातार माना जाता रहा है कि संबंधित प्राधिकारी उच्चतम निविदा या बोली को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं

है, जो शर्तों के अधीन है। जिसकी सार्वजनिक नीलामी हो चुकी है।

24. उच्चतम बोली लगाने वाले का अपने पक्ष में संपन्न हुई नीलामी को पाने का अधिकार राजस्थान हाउसिंग बोर्ड और अन्य बनाम जी.एस.इन्वेस्टमेंट्स और अन्य⁷ में विचार के लिए सामने आया और यह माना गया कि सबसे ऊंची बोली लगाने वाले ने नीलामी को अपने पक्ष में समाप्त करने का कोई निहित अधिकार हासिल नहीं किया है क्योंकि यह वे शर्तें जिनके संदर्भ में नीलामी की कार्यवाही आयोजित की गई थी के अधीन था। फैसले में की गई टिप्पणियाँ नीचे उद्धृत की गई हैं:

"8. नीलामी नोटिस दिनांक 3.2.2002 इस प्रभाव के साथ थी कि हाउसिंग बोर्ड के अध्यक्ष को बोली की स्वीकृति के बारे में अंतिम अधिकार होगा। 19.2.2002 को जारी की गई दूसरी नीलामी नोटिस ने उल्लेख किया कि नीलामी की शर्तें नीलामी की शर्तों जैसा कि पहले नीलामी नोटिस में उल्लेख किया गया है वैसा ही होगा। नीलामी नोटिस में इस शर्त को देखते हुए यह स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति ने नीलामी में सबसे ऊंची बोली लगाई थी उसे अध्यक्ष तक नीलामी अपने पक्ष में समाप्त करने का कोई अधिकार नहीं मिला। हाउसिंग बोर्ड ने इस आशय का एक आदेश पारित किया था कि बेशक, हाउसिंग बोर्ड का अध्यक्ष अपनी शक्ति का प्रयोग मनमाने तरीके से नहीं कर सकता था, लेकिन जब तक बोली की अंतिम स्वीकृति के संबंध में अध्यक्ष द्वारा आदेश पारित नहीं किया

गया था, तब तक उच्चतम बोली लगाने वाले को अपने पक्ष में नीलामी समाप्त कराने का कोई निहित अधिकार नहीं मिला और नीलामी की कार्यवाही हमेशा रद्द की जा सकती थी..."

25. उपरोक्त दृष्टिकोण अपनाने में, लक्ष्मीकांत बनाम सत्यवान⁸ के निर्णय में इसमें पहले के निर्णयों का जिक्र करते हुए इस पर ध्यान दिया गया कि त्रिलोचन मिश्र बनाम उड़ीसा राज्य⁹, उड़ीसा राज्य बनाम हरिनारायण जयसवाल¹⁰, भारत संघ बनाम मिस. भीम सेन वलैती राम¹¹ और उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम विजय बहादुर सिंह¹²; इसे इस प्रकार अवधारित किया गया है :

"4...उपरोक्त शर्तों के एक स्पष्ट संदर्भ से, यह स्पष्ट और स्पष्ट है कि भले ही सार्वजनिक नीलामी पूरी हो गई हो और प्रत्यर्थी सबसे ऊँची बोली लगाने वाला हो, लेकिन पुष्टि पत्र जारी होने तक उसे कोई अधिकार नहीं मिला था। उसे नीलामी की शर्तों में स्पष्ट रूप से कल्पना की गई और विचार किया गया कि न्यासी मंडल द्वारा उच्चतम बोली को स्वीकार करना आवश्यक था और ट्रस्ट ने उच्चतम या किसी भी बोली को अस्वीकार करने का अधिकार सुरक्षित रखा। इस न्यायालय ने त्रिलोचन मिश्रा, आदि बनाम उड़ीसा राज्य एआईआर 1971 एससी 733, उड़ीसा राज्य बनाम

हरिनारायण जयसवाल (1972) 3 एससीआर 784, भारत संघ बनाम मिस भीम सेन वलैती राम (1970) 2 एससीआर 594 और उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम विजय बहादुर सिंह एआईआर 1982 एससी 1234 के मामलों में सार्वजनिक नीलामी में उच्चतम बोली लगाने वाले के अधिकार की जांच की है। यह बार-बार बताया गया है कि राज्य या प्राधिकरण जिसे संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर राज्य माना जा सकता है, वह उच्चतम निविदा या बोली को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। उच्चतम बोली की स्वीकृति सार्वजनिक नीलामी आयोजित करने की शर्तों के अधीन है और उच्चतम बोली लगाने वाले के अधिकार की उन विभिन्न शर्तों के संदर्भ में जांच की जानी चाहिए जिनके तहत ऐसी नीलामी आयोजित की गई है। वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी को नियम 4(3) के तहत वैधानिक प्रावधान के आधार पर या बिक्री की शर्तों के तहत कोई अधिकार नहीं मिला है, जिसे सार्वजनिक नीलामी आयोजित होने से पहले अधिसूचित किया गया था।

26. इसी तरह का दृष्टिकोण मेरठ विकास प्राधिकरण बनाम प्रबंधन अध्ययन संघ¹³ और यह एक कानूनी सिद्धांत के रूप में निर्धारित फैसले में भी लिया गया था जिस बोली लगाने वाले ने निविदा प्रक्रिया में भाग लिया है, उसके पास प्रतिस्पर्धी बोलियों के मूल्यांकन के मामले में समानता और निष्पक्ष व्यवहार के अधिकार के अलावा कोई अन्य अधिकार नहीं है। फैसले का प्रासंगिक भाग नीचे दिया जा रहा है:

8 (1996) 4 SCC 208

9 AIR 1971 SC 733

10 (1972) 3 SCR 784

11 (1970) 2 SCR 594

12 AIR 1982 SC 1234

13 (2009) 6 SCC 171

"27. निविदा प्रक्रिया में भाग लेने वाले बोलीदाताओं के पास पारदर्शी तरीके से और छिपे एजेंडे से मुक्त निविदाओं को आमंत्रित करने के नोटिस के जवाब में इच्छुक व्यक्तियों द्वारा प्रस्तावित प्रतिस्पर्धी बोलियों के मूल्यांकन के मामले में समानता और निष्पक्ष व्यवहार के अधिकार के अलावा कोई अन्य अधिकार नहीं है। उपरोक्त बताए गए आधारों को छोड़कर कोई भी निविदा के नियमों और शर्तों को चुनौती नहीं दे सकता है, इसका कारण यह है कि निविदा आमंत्रण की शर्तें अनुबंध के दायरे में हैं। किसी भी बोली लगाने वाले को अधिकार के तौर आगे की बातचीत में शामिल होने के लिए, जब तक कि नोटिस के नियम और शर्तें ऐसी बातचीत के लिए अधिकार नहीं है कि वह प्राधिकरण पर निविदाएं आमंत्रित करने पर जोर दे।

28. यह कानून में इतनी अच्छी तरह से स्थापित है और हमें इसे दोबारा कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि राज्य या उसके उपकरणों द्वारा सार्वजनिक संपत्ति का निपटान एक ट्रस्ट के चरित्र का हिस्सा है। सार्वजनिक संपत्ति के निपटान के लिए अपनाए जाने वाले तरीके निष्पक्ष और पारदर्शी होने चाहिए, जिससे सभी इच्छुक व्यक्तियों को प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिले।

29. प्राधिकरण को उच्चतम बोली स्वीकार न करने का अधिकार है और यहां तक अधिकार है कि उच्चतम बोली लगाने वाले के अलावा किसी अन्य निविदा को प्राथमिकता देने के लिए, यदि अच्छे और पर्याप्त कारण मौजूद हैं, जैसे कि उच्चतम बोली बाजार मूल्य का प्रतिनिधित्व

नहीं करती है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि बोली स्वीकार करने या अस्वीकार करने में प्राधिकरण की कार्यवाही मनमानेपन या पक्षपात से मुक्त होनी चाहिए।

27. सार्वजनिक नीलामी में एक सफल बोली लगाने वाले के अधिकार के संबंध में उपरोक्त कानूनी स्थिति पर इस न्यायालय के हालिया निर्णय बब्लू (उपरोक्त) में विचार किया गया है।

28. कानूनी स्थिति यह है कि सार्वजनिक नीलामी में एक सफल बोली लगाने वाले को नीलामी को अपने पक्ष में समाप्त करने के लिए कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं होता है और संबंधित प्राधिकारी सभी परिस्थितियों में उच्चतम निविदा या बोली को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होता है, यह काफी हद तक ठीक है। यह, प्राधिकारी के लिए उपलब्ध है, यदि सफल बोली लगाने वाले के पक्ष में नीलामी की कार्यवाही को आगे न ले जाने के अच्छे और पर्याप्त कारण मौजूद हैं।

29. तत्काल मामले में, प्रत्यर्थी अधिकारियों द्वारा नीलामी की कार्यवाही को समाप्त न करने के लिए जो कारण सामने रखे गए हैं, उनमें पानी की उपलब्धता बढ़ाकर टिकाऊ और दीर्घकालिक उत्पादक संपत्ति बनाने के उद्देश्य से बड़े पैमाने पर सार्वजनिक हित शामिल हैं जो सबसे मूल्यवान प्राकृतिक संसाधनों को अपर्याप्त कारण नहीं माना जा सकता है, जिसने प्रत्यर्थी अधिकारियों को याचिकाकर्ता के पक्ष में नीलामी की कार्यवाही समाप्त करने के लिए मना लिया है।

30. एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा भारत के संविधान के अनुच्छेद 38 का एक पहलू है और यह देखना राज्य का उद्देश्य है कि लोगों के कल्याण को उचित रूप से बढ़ावा दिया जाए। *सैलस पोपुली इस्ट सुप्रेमा लेक्स एक कहावत है जो सिसरो के डी लेगिबस¹⁴ में पाई जाती है*, और इसका मतलब है कि जनता का कल्याण सर्वोच्च कानून होगा और किसी भी संघर्ष की स्थिति में व्यक्तिगत हित को सामुदायिक हित के अनुरूप होना चाहिए। राज्य और उसके उपकरणों को सार्वजनिक हित को प्राथमिक और किसी भी अन्य हित को गौण रखते हुए समग्र रूप से समाज की सेवा करनी चाहिए। सबसे बड़ी संख्या में से सबसे बड़ा अच्छा और सभी के लाभ और खुशी को स्वीकार करना एक लोकतांत्रिक राजनीति का उद्देश्य है और राज्य के अधिकारियों को उसी को आगे बढ़ाने के लिए कार्य करना है।

31. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता उपरोक्त तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति पर विवाद करने में सक्षम नहीं हैं।

32. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता भी इस बात पर विवाद नहीं कर पाए हैं कि प्रश्नगत तालाब का विकास, जिसे राष्ट्रीय हित की एक योजना के हिस्से के रूप में प्रस्तावित किया गया है, व्यापक सार्वजनिक हित में होगा।

33. तदनुसार, विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता इस मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहता है।

34. याचिकाकर्ता इसके संबंध में पहले जारी किए गए नोटिस का जवाब देकर बोली राशि की वापसी की मांग करने के लिए अवसर उपलब्ध रहेगा।

35. तदनुसार यह याचिका निस्तारित की जाती है।

(2023) 7 ILRA 661

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 5284 वर्ष 2009

रिट-सी संख्या 44108 वर्ष 2010

रिट-सी संख्या 56439 वर्ष 2010

रिट-सी संख्या 7015 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 41284 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 42531 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 42669 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 44245 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 51960 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 913 वर्ष 2012

रिट-सी संख्या 48816 वर्ष 2012

रिट-सी संख्या 34847 वर्ष 2013

मंजीत सिंह एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री रामेश्वर नाथ, श्री आशीष जायसवाल, श्री रणधीर जैन

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री मनु सक्सेना, श्री एस.के. श्रीवास्तव

ए. वसूली विधि - उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 - धारा 167, 168, 173-ए, 291 और 292 - दुकान नगर पालिका द्वारा आवंटित की गई थी - किराए के बकाया को भूमि के बकाया के रूप में वसूलने की मांग की गई - अनुमति - नगर पालिका की शक्ति की व्याख्या - माना गया कि किराया कोई कर नहीं है और इसलिए इसे अधिनियम, 1916 की धारा 173-ए के तहत भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता - अधिनियम, 1916 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो नगर पालिका को कलेक्टर द्वारा जारी वसूली प्रमाण पत्र के माध्यम से दुकान के किराए के बकाया को भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूलने का अधिकार देता हो - उच्च न्यायालय ने क्षेत्राधिकार के बिना इसे धारण करने वाले विवादित वसूली प्रमाण पत्र और उद्धरणों को रद्द कर दिया। (पैरा 6, 8, 9 और 10)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय
एवं

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाओं का समूह नगर पालिका परिषद, बहेरी, जिला बरेली के कार्यकारी अधिकारी द्वारा कलेक्टर/अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), जिला बरेली को कथित तौर पर

बकाया किराए की वसूली के लिए भेजे गए वसूली प्रमाणपत्रों को चुनौती देता है। रिट-सी याचिका संख्या 48816/2012, 51960/2011, 913/2012, 42531/2011, 42669/2011 और 44245/2011 में यूपी नगर पालिका अधिनियम, 1916 (एतिस्मिनपश्चात् इसे "अधिनियम, 1916" संदर्भित किया जाएगा) की धारा 173-ए के तहत कलेक्टर द्वारा परिणामी वसूली उद्धरण भी जारी किए गए हैं।

2. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि नगर पालिका द्वारा आवंटित दुकान का कब्जा रखने वाले किसी दुकानदार पर कथित तौर पर बकाया किराया केवल अधिनियम, 1916 की धारा 292 के तहत अधिनियम, 1916 का अध्याय-VI निर्धारित तरीके से वसूल किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया कि चूंकि भूमि पर किराया देय नहीं है और याचिकाकर्ताओं द्वारा कथित तौर पर देय किराया कोई कर नहीं है, इसलिए, किसी भी कथित बकाया को अधिनियम, 1916 की धारा 173-ए या धारा 291 के तहत भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया कि अधिनियम, 1916 के अध्याय-VI के तहत अधिनियम, 1916 की धारा 167 की आवश्यकता को पूरा करने वाले बिल को पहले प्रस्तुत करना नगर पालिका पर निर्भर था और उक्त बिल को पूरा करने में याचिकाकर्ताओं की विफलता पर, अधिनियम, 1916 की धारा 168 के तहत एक मांग नोटिस जारी किया जाना था। यदि याचिकाकर्ता मांग नोटिस में निर्दिष्ट अनुसार भुगतान करने में विफल रहे,

तो बकाया राशि केवल अधिनियम, 1916 की धारा 169 के तहत जारी वारंट द्वारा वसूल की जा सकती है और नगर पालिका के अध्यक्ष या उक्त उद्देश्य के लिए अधिकृत किसी अधिकारी या कार्यकारी अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था। वारंट को कथित चूककर्ता की चल संपत्ति की बिक्री द्वारा केवल अधिनियम, 1916 की धारा 170, 171 और 172 के तहत निर्धारित तरीके से ही निष्पादित किया जा सकता है। अपनी याचिकाओं में, याचिकाकर्ताओं ने अनुरोध किया है कि आवश्यक कोई बिल या कोई मांग नोटिस जिसकी अधिनियम, 1916 की धारा 167 और 168 के तहत आवश्यकता थी, याचिकाकर्ताओं को प्रस्तुत नहीं किया गया था। उपरोक्त कथनों का खंडन करते हुए कोई प्रति शपथपत्र दायर नहीं किया गया है। यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, कार्यकारी अधिकारी द्वारा कलेक्टर/ अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), जिला बरेली को जारी किए गए वसूली प्रमाणपत्रों और रिट-सी याचिका संख्या 48816/2012, 51960/2011, 913/2012, 42531/2011, 42669/2011, 44245/2011 में चुनौती दी गई परिणामी वसूली उद्धरण, बिना अधिकार क्षेत्र हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं।

3. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क का खंडन करते हुए, नगर पालिका परिषद के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वसूली प्रमाण पत्र और परिणामी वसूली उद्धरण विधि अनुसार हैं और याचिकाएं खारिज की जाने योग्य हैं।

4. हमने पक्षों के अधिवक्ताओं के प्रस्तुतिकरण पर विचार किया है।

5. अधिनियम, 1916 की धारा 291 और 292 निम्नानुसार हैं:-

“291. भूमि पर किराये की वसूली- (1) जहां [नगर पालिका] में निहित या उसके प्रबंधन को सौंपी गई भूमि के संबंध में किसी व्यक्ति द्वारा [नगर पालिका] को किराये की कोई राशि बकाया है, वहां [नगर पालिका] ऐसे किराए के किसी भी बकाया, मानो यह भू-राजस्व का बकाया हो, की वसूली के लिए कलेक्टर से आवेदन कर सकता है।

(2) कलेक्टर के संतुष्ट होने पर कि राशि बकाया है, इसे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करने के लिए आगे कार्यवाही करेगा।

292. अन्य अचल संपत्ति के किराये की वसूली- [नगर पालिका] में निहित या उसके प्रबंधन को सौंपी गई भूमि के अलावा अचल संपत्ति के संबंध में किसी व्यक्ति से [नगर पालिका] को किराए का कोई भी बकाया, अध्याय VI में निर्धारित तरीके से वसूल किया जाएगा।

6. अधिनियम, 1916 की धारा 292 के पठन से पता चलता है कि नगर पालिका द्वारा दुकान आवंटित किए जाने के बाद उस पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति से दुकान के किराए का कोई भी बकाया केवल अध्याय-VI में निर्धारित तरीके से ही वसूल किया जा सकता है। किराया एक कर नहीं है और इसलिए, इसे अधिनियम, 1916 की धारा 173-ए के तहत

भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता है।

7. अधिनियम, 1916 की धारा 167 और 168 में यह प्रावधान है कि किसी व्यक्ति पर देय किसी भी बकाया के लिए, नगर पालिका एक बिल प्रस्तुत करेगी जिसमें उस अवधि और संपत्ति को निर्दिष्ट किया जाएगा जिसके संबंध में उसका दावा किया गया है, भुगतान करने में चूक में दायित्व या जुर्माना लागू करने योग्य है और समय अवधि जिसके भीतर ही अपील अधिमानित होगी जैसा की धारा 161 के तहत प्रदान किया गया है। यदि कथित चूककर्ता नगर पालिका द्वारा प्रस्तुत किए गए बिल को उसकी प्रस्तुति से 15 दिनों के भीतर चुकाने में विफल रहता है, तो नगर पालिका चूककर्ता को अधिनियम, 1916 की अनुसूची-IV में निर्धारित रूप में एक मांग नोटिस देगी।

8. अनुसूची-IV का अवलोकन यह प्रकट करता है कि कथित बकाया के भुगतान के लिए चूककर्ता को 15 दिन का समय प्रदान किया जाना है। यदि चूककर्ता मांग नोटिस को पूरा करने में विफल रहता है, तो अध्यक्ष/कार्यकारी अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति, जिसे नगर पालिका द्वारा ऐसी शक्ति सौंपी गई है, द्वारा हस्ताक्षरित एक वारंट, विपत्ति से बकाया की वसूली और चूककर्ता की चल संपत्तियों की बिक्री के लिए नगर पालिका द्वारा अनुसूची-V में निर्धारित रूप में जारी किया जाना है। वारंट निष्पादित करने का तरीका अधिनियम, 1916 की धारा 170, 171, 172 के तहत प्रदान किया गया है। अधिनियम, 1916 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो नगर पालिका को किसी

दुकान के किराए के बकाया को भू-राजस्व के बकाया के रूप में कलेक्टर द्वारा जारी किए गए पुनर्प्राप्ति उद्धरण के माध्यम से वसूल करने का अधिकार देता है।

9. स्पष्ट रूप से, वर्तमान याचिकाओं में चुनौती दिए गए वसूली प्रमाणपत्र और उद्धरण अधिकार क्षेत्र के बिना हैं।

10. उपरोक्त कारणों से, याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं। कार्यकारी अधिकारी द्वारा कलेक्टर/अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) को जारी किए गए वसूली प्रमाण पत्र और कलेक्टर द्वारा जारी किए गए परिणामी वसूली उद्धरण, यदि कोई हों, को इस प्रकार रद्द किया जाता है।

11. हालाँकि, नगर पालिका परिषद, बहेरी, जिला बरेली ऊपर बताए कानून के अनुसार याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध देय किसी भी किराए की वसूली करने के लिए स्वतंत्र होगी।

(2023) 7 ILRA 664

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 67047 सन् 2006

पवन कुमार एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री ए.डी. रिट याचिका खारिज। (ई-1)
सॉन्डर्स, श्री अखिलेश त्रिपाठी, श्री अनूप त्रिवेदी

उद्धृत मामलों की सूची:

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री अखिलेश्वर सिंह, श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री वरद नाथ, श्री अमित सक्सेना (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री एच.एन. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. भूमि अधिग्रहण विधि - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धारा 4(1), 17(1) और 48 - धारा 4 के तहत अधिसूचना के अनुसरण में, 08.07.1976 को राज्य द्वारा भूमि का कब्जा लिया गया और उसी तारीख को औद्योगिक भूखंड विकसित करने के लिए यू.पी.एस.आई.डी.सी. को सौंप दिया गया - कब्जे का प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किया गया - प्रभाव - धारा 48 के तहत भूमि को गैर-अधिसूचित करने के लिए प्रार्थना की गई - अनुमति - धारा 48 का दायरा समझाया गया - माना गया कि एक बार अधिनियम, 1894 की धारा 16 के तहत कब्जा लेने पर अवार्ड पारित हो जाने के बाद भूमि राज्य में निहित हो जाती है और इसे वापस नहीं लिया जा सकता - अधिनियम, 1894 की धारा 48 स्वयं मूल भू-स्वामी को यह अधिकार नहीं देती कि वह राज्य को अधिग्रहण से पीछे हटने के लिए बाध्य करे- यह धारा केवल एक सक्षम करने वाला प्रावधान है, जो राज्य को यह अनुमति देता है कि यदि अधिग्रहित भूमि का कब्जा नहीं लिया गया है, तो वह अधिग्रहण से पीछे हट सकता है। लेकिन वर्तमान मामले में, राज्य तथा प्रत्यर्थी संख्या 3 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि भूमि का कब्जा ले लिया गया था। (पैरा 12, 14, 19 और 20)

1. सावरन लता एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य; 2010(4) एससीसी 532
2. स्वाइका प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य; मनु/एससी/0795/2008
3. कमल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; मनु /यूपी/1457/2020
4. दिनेश कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2018 (5) एडीजे 297
5. ए.पी. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम चिंतामनेनी नरसिम्हा राव एवं अन्य; एआईआर 2011 एससी 3558
6. अफलातून एवं अन्य बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल एवं अन्य; एआईआर 1974 एससी 2077
7. महावीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2018(6) एडीजे 529
8. भूमि एवं भवन विभाग सचिव के माध्यम से एवं अन्य बनाम अत्रो देवी एवं अन्य; मनु/एससी/0621/2023
9. इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहर लाल एवं अन्य; 2020(8) एससीसी 129
10. बांदा विकास प्राधिकरण, बांदा बनाम मोती लाल अग्रवाल; 2011 एआईआर एससीडब्लू 2835
11. बलवंत नारायण भागड़े बनाम एम.डी., भागवत; 1976(1) एससीसी 700

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश त्रिपाठी, राज्य-प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता, श्री अनुज श्रीवास्तव उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड (एतिस्मिनपश्चात् यू.पी.एस.आई.डी.सी. के रूप में संदर्भित) का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता के सहयोग से, श्री एच.एन. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, और श्री वरद नाथ, प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से विद्वान अधिवक्ता के सहयोग से, श्री अमित सक्सेना, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.09.2006 को रद्द करने के लिए दायर की गई है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा ग्राम अलीपुर भूड शामली, गजरौला, जिला जेपी नगर में स्थित गाटा संख्या 37, 39 और 41 में कुल क्षेत्रफल 4.45 एकड़ की अपनी अधिग्रहीत भूमि को गैर-अधिसूचित करने के लिए किया गया आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि भूमि का कब्जा वर्ष 1976 में ही लिया जा चुका है, साथ ही याचिकाकर्ताओं ने प्रत्यर्थी को पूर्वोक्त गाटा संख्या 37, 39 व 41 को गैर-अधिसूचित करने के लिए निर्देश देने की मांग की थी।

वाद का तथ्यात्मक सांचा इस प्रकार है:-

3 (क) याचिकाकर्ता ग्राम अलीपुर भूड शामली, गजरौला, जिला- जे.पी. नगर में स्थित क्षेत्रफल

4.45 एकड़ के प्लॉट नंबर 37, 39 और 41 के भूधृतिधारक थे।

3 (ख) राज्य सरकार ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (एतिस्मिनपश्चात् 'अधिनियम, 1894' के रूप में संदर्भित) की धारा 4(1) के तहत दिनांक 14.10.1976 को एक अधिसूचना जारी की और 'अधिनियम, 1894' की अत्यावश्यकता खंड 17(1) भी लागू की। इस अधिसूचना द्वारा, अन्य भूमि के अतिरिक्त, क्षेत्रफल 4.45 एकड़, गाटा संख्या 37, 39 एवं 41 की भूमि का भाग भी अधिग्रहीत किया जाना प्रस्तावित था। इस अधिसूचना के पश्चात् 'अधिनियम, 1894' की धारा 6 के तहत दिनांक 15.10.1976 को एक अन्य अधिसूचना जारी की गई। उपरोक्त अधिसूचना में अधिनिर्णय भी 07.05.1989 को घोषित किया गया था। वर्तमान याचिकाकर्ताओं को भी दिनांक 07.05.1985 के अधिनिर्णय द्वारा घोषित प्रतिकर प्राप्त हुआ। इसके बाद यू.पी.एस.आई.डी.सी., जो उपरोक्त अधिसूचना का लाभार्थी था, ने भी रिट याचिका संख्या 18453/1986 के माध्यम से दिनांक 07.05.1985 के अधिनिर्णय को इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी है कि दिनांक 07.05.1985 को अधिनिर्णय देने से पहले यू.पी.एस.आई.डी.सी. को नहीं सुना गया था। उपरोक्त रिट याचिका को दिनांक 06.11.2009 के अधिनिर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी और दिनांक 07.05.1985 के अधिनिर्णय को रद्द कर दिया गया था और नया अधिनिर्णय पारित करने का निर्देश दिया गया था। तत्पश्चात् रिट याचिका संख्या 18453/1986 में दिनांक 06.11.2009 को

पारित आदेश के अनुसरण में 07.10.2010 को एक नया अधिनिर्णय पारित किया गया, जिसके द्वारा प्रतिकर की राशि को घटा दिया गया था। यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि रिट याचिका संख्या 18456/1986 में दिनांक 06.11.2009 को पारित आदेश और साथ ही दिनांक 07.10.2010 का नया अधिनिर्णय, वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित किया गया था।

3 (ग) दिनांक 15.10.1976 की अधिसूचना के अनुसरण में, अधिग्रहीत भूमि सहित याचिकाकर्ताओं की अधिग्रहीत भूमि को दिनांक 20.11.1976 और 02.03.1977 के पट्टा विलेख के माध्यम से मेसर्स सिवालिक सेल्युलोज लिमिटेड कंपनी को आवंटित किया गया था। तत्पश्चात् मेसर्स सिवालिक सेल्युलोज लिमिटेड द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 5 के रूप में अभियोजित करने के लिए दिनांक 02.04.2019 को अभियाचना आवेदन दायर किया गया था, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 01.05.2019 के आदेश द्वारा अनुमति दी थी और प्रत्यर्थी संख्या 5 के रूप में की अभियोजित करने की अनुमति दी थी। उसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से भी प्रति शपथपत्र दायर किया गया था

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि उनकी अधिग्रहीत भूमि का कब्जा प्रत्यर्थियों द्वारा नहीं लिया गया था और वे अभी भी उस भूमि पर कब्जा रखें हैं। इस न्यायालय के दिनांक 12.09.2017 के आदेश के बावजूद राज्य ने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, जो यह दर्शाता है कि उनसे

कब्जा ले लिया गया था। प्लॉट नंबर 37, 39, 41 में याचिकाकर्ताओं की अधिग्रहीत भूमि पर उसके कब्जे के संबंध में तर्क जिला मजिस्ट्रेट, ज्योतिबा फुले नगर की दिनांक 21.01.2006 की रिपोर्ट पर आधारित है। जिला मजिस्ट्रेट, ज्योतिबा फुले नगर की दिनांक 21.01.2006 की रिपोर्ट से पता चलता है कि गाटा संख्या 37, 39, 41 बाउंड्री दीवार के भीतर स्थित है और इस भूमि का अधिकांश भाग खाली पड़ा है सिवाय गाटा संख्या 39 जिसमें 12 कमरे बने हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता की भूमि को इस आधार पर गैर-अधिसूचित करने के लिए कि उससे कब्जा नहीं लिया गया था दिनांक 31.05.2003 का उसका अभ्यावेदन प्राप्त होने पर, रिट याचिका संख्या 61564/2015 में पारित इस न्यायालय का दिनांक 16.09.2005 के आदेश के अनुसरण में, दिनांक 21.01.2006 की उपरोक्त रिपोर्ट, जिला मजिस्ट्रेट, ज्योतिबा फुले नगर द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार को प्रस्तुत की गई थी।

5. जिला मजिस्ट्रेट, जेपी नगर की दिनांक 21.01.2006 की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद याचिकाकर्ता का दिनांक 31.05.2003 का अभ्यावेदन दिनांक 14.09.2006 के आक्षेपित आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा वर्ष 1976 में ही कब्जा लिया जा चुका है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से दायर प्रति शपथपत्र में कहा गया था कि दिनांक 15.10.1976 की अधिसूचना के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं की भूमि सहित संपूर्ण अधिग्रहित भूमि का कब्जा 08.07.1976 को

'अधिनियम, 1894' की धारा 9 के तहत लिया गया था और अधिनिर्णय के अनुसरण में प्रतिकर का भुगतान पहले ही किया जा चुका है, इसलिए भूमि राज्य में निहित हो गई है और 'अधिनियम, 1894' की धारा 48 के तहत अधिसूचना रद्द करने का कोई सवाल ही नहीं उठता है और भूमि का उपरोक्त कब्जा लेने के बाद उसे मेसर्स सिवालिका सेल्युलोज लिमिटेड (प्रत्यर्थी संख्या 4) को सौंप दिया गया था क्योंकि वह उस कंपनी को यू.पी.एस.आई.डी.सी द्वारा आवंटित किया गया था। मेसर्स सिवालिका सेल्युलोज लिमिटेड (प्रत्यर्थी संख्या 4) ने यू.पी.एस.आई.डी.सी. द्वारा आवंटित उपरोक्त अधिग्रहित भूमि पर पेपर मिल की स्थापना की थी।

7. प्रत्यर्थी नंबर 5 ने भी प्रति शपथपत्र दायर किया था और उसके प्रति शपथपत्र में यह तर्क दिया गया था कि अधिग्रहीत भूमि दिनांक 20.10.1976 और 02.03.1977 के दो अलग-अलग पट्टा विलेख के माध्यम से प्रत्यर्थी नंबर 4 को 90 वर्षों के लिए पट्टे पर दी गई थी। 34.76 एकड़ क्षेत्र के संपूर्ण औद्योगिक भूखंड (अधिग्रहीत भूमि) का कब्जा यू.पी.एस.आई.डी.सी द्वारा 08.07.1976 को प्रत्यर्थी संख्या 5 को सौंप दिया गया था और आवंटित भूमि का कब्जा लेने के बाद, उसने बाउंड्री दीवार का निर्माण किया और उसके भीतर कई अन्य निर्माण किए और जून, 1979 में कारखाना स्थापित किया था। आगे कहा गया था कि जिला मजिस्ट्रेट की दिनांक 21.06.2006 की रिपोर्ट स्वयं यू.पी.एस.आई.डी.सी. द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 5 के पक्ष में निष्पादित कब्जा प्रमाण पत्र और पट्टा विलेख

के विपरीत है और अंततः प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा यह तर्क दिया गया कि अधिग्रहण की कार्यवाही सुनिश्चित हो गई है और पर्याप्त देरी के बाद इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है।

8. अपने वाद के समर्थन में, प्रत्यर्थी संख्या 5 के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है।

- (i) 2010(4) एससीसी 532 (सवरन लता और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य);
- (ii) मनु/एससी/0795/2008 (स्वैका प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य।)
- (iii) मनु/यूपी/1457/2020 (कमल सिंह और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य);
- (iv) 2018 (5) एडीजे 297 (दिनेश कुमार और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य)
- (v) एआईआर 2011 एससी 3558 (ए.पी. इंडस्ट्रियल इन्फ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम चिंतामनेनी नरसिम्हा राव और अन्य)।
- (vi) एआईआर 1974 एससी 2077 (अफलातून और अन्य बनाम उपराज्यपाल, दिल्ली और अन्य)

9. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि यदि एक बार अधिग्रहीत भूमि का कब्जा लेकर उसे राज्य में निहित कर दिया जाता है, तो उसे वापस नहीं लिया जा सकता है। इसलिए, अधिनियम, 1894 की धारा 48 के तहत उसे गैर-अधिसूचित नहीं किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने 2018(6) एडीजे 529 में रिपोर्ट किया गया महावीर बनाम यूपी राज्य और अन्य के निर्णय पर भरोसा किया।

10. प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि यदि भूमि का बड़ा हिस्सा अधिग्रहित किया गया है, तो राज्य एजेंसी को अधिग्रहण की प्रक्रिया पूरी होने के बाद ली गई भूमि के कब्जे की सुरक्षा के लिए पुलिस बल रखने की आवश्यकता नहीं है और उनके प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने **मनु/एससी/0621/2023** में रिपोर्ट किए गए **सचिव के माध्यम से भूमि और भवन विभाग और अन्य बनाम अत्रो देवी और अन्य** के निर्णय पर भरोसा किया।

11. प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के साथ-साथ अभिलेख के अवलोकन के बाद, यहां विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या याचिकाकर्ता की अधिग्रहीत भूमि का कब्जा राज्य द्वारा लिया गया था या नहीं।

12. रिकॉर्ड द्वारा, यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि 'अधिनियम, 1894' की धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचना क्रमशः 14.10.1976 और 15.10.1976 को जारी की गई थी और उपरोक्त अधिसूचना के अनुसरण में, दिनांक 08.07.1976 को राज्य द्वारा भूमि का कब्जा ले लिया गया था और उसी तिथि को उसे औद्योगिक भूखण्ड विकसित करने हेतु यू.पी.एस.आई.डी.सी. को सौंप दिया गया। राज्य द्वारा प्रस्तुत दिनांक 08.07.1976 के कब्जा पत्र द्वारा, यह स्थापित होता है कि भूमि का कब्जा 08.07.1976 को लिया गया था और साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(3) के अनुसार दिनांक 08.07.1976 का कब्जा पत्र कब्जे का पर्याप्त प्रमाण है क्योंकि वह आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में विधिवत

निष्पादित किया गया था और उस पर कब्जा करने के बाद, कुल अधिग्रहीत भूमि सहित वर्तमान याचिकाकर्ता की भूमि, जिसका कुल क्षेत्रफल 34.76 एकड़ है, को दिनांक 20.10.1976 और 02.03.1977 के पट्टा विलेख के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या 5 को पट्टे पर दिया गया/ आवंटित किया गया था। यह भी निर्विवाद है कि 34.76 एकड़ की अधिग्रहीत भूमि पर कब्जा करने के बाद प्रत्यर्थी संख्या 4 ने आवंटित भूमि पर बाउंड्री दीवार का निर्माण किया और एक कारखाना स्थापित किया। यह याचिकाकर्ताओं का गृहीत वाद है कि उन्होंने दिनांक 07.05.1985 के अधिनिर्णय के अनुसरण में प्रतिकर भी प्राप्त कर लिया है। हालाँकि बाद में यू.पी.एस. आई.डी.सी. द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 18453/1986 में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 07.05.1985 के अधिनिर्णय को 06.11.2009 को वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया गया था और तत्पश्चात् नया अधिनिर्णय भी दिया गया, लेकिन इस तथ्य से वर्तमान याचिकाकर्ताओं को कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि यहां प्रश्न विवादित भूमि के कब्जे का है।

13. यद्यपि एक ओर, राज्य ने दिनांक 08.07.1976 का कब्जा प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके यह स्थापित किया है कि भूमि का कब्जा लिया गया था, लेकिन दूसरी ओर याचिकाकर्ता कोई भी साक्ष्य पेश करके उपरोक्त प्रमाणपत्र पर विवाद नहीं कर सका कि 08.07.1976 को उनसे कब्जा नहीं लिया गया था। दिनांक 21.01.2006 की रिपोर्ट में

उल्लेखित है कि याचिकाकर्ताओं की अधिग्रहीत भूमि प्रत्यर्थी संख्या 5 की बाउंड्री दीवार के भीतर स्थित है।

14. 2020(8) एससीसी 129 में रिपोर्ट किया गया **इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहर लाल एवं अन्य** के मामले के पैराग्राफ 366.7 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से पाया कि 'अधिनियम, 1894' के तहत कब्ज़ा लेने का तरीका पंचनामा/जापन तैयार कर के है। एक बार अधिनियम, 1894 की धारा 16 के तहत कब्ज़ा लेने का अधिनिर्णय पारित हो गया तो भूमि राज्य में निहित हो जाती है और उसे वापस नहीं लिया जा सकता। यदि एक बार कब्ज़ा लेने के बाद भूमि राज्य में निहित हो जाती है, तो मूल भूधृतिधारक का बाद का कब्ज़ा अवैध है और इसे ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 247 और 258 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं;

"247. प्रश्न यह उठता है कि क्या 1894 के अधिनियम के तहत कब्ज़ा लेने और धारा 24(2) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "भौतिक कब्ज़ा" के बीच कोई अंतर है या नहीं। वास्तव में, 1894 के अधिनियम के तहत जो कब्ज़ा लेने का मतलब निर्धारित किया गया था वह केवल भूमि का भौतिक कब्ज़ा है। 2013 के अधिनियम के तहत कब्ज़ा लेना हमेशा ज़मीन का भौतिक कब्ज़ा लेना ही होता है। जब राज्य सरकार भूमि का अधिग्रहण करती है और कब्ज़ा लेने का जापन तैयार करती है, तो वह भूमि का भौतिक कब्ज़ा लेना होता है। अधिग्रहीत की गई संपत्ति के बड़े हिस्से पर या

अन्यथा पर, सरकार किसी अन्य व्यक्ति या पुलिस बल को कब्ज़ा बनाए रखने के लिए नहीं रख सकती और जब तक भूमि का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता है जिसके लिये उसे अधिग्रहीत किया गया था तब तक उस पर खेती करना शुरू नहीं कर सकती। कब्ज़ा प्राप्त करने के लिए जांच कार्यवाही शुरू करने के पश्चात एक बार कब्ज़ा ले लेने के बाद सरकार निवास करना शुरू नहीं कर सकती या भौतिक रूप से कब्ज़ा नहीं कर सकती। इसके बाद, यदि भूमि पर आगे कब्ज़ा बनाए रखा जाता है या भूमि पर कोई पुनः प्रवेश किया जाता है या कोई खुली भूमि पर खेती शुरू कर देता है या आउटहाउस आदि में निवास करना शुरू कर देता है, तो उसे राज्य के कब्जे वाली भूमि पर अतिक्रमणकारी माना जाएगा। अतिक्रमणकारी का कब्ज़ा हमेशा वास्तविक मालिक यानी इस मामले में राज्य सरकार के लाभ प्राप्ति को सुनिश्चित करता है।

258. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि निहितीकरण, कब्जे सहित है और कानून इसे 1894 के अधिनियम की धारा 16 और 17 के तहत प्रदान करता है कि एक बार कब्ज़ा प्राप्त होने के बाद, वह पूर्ण निहितार्थ होता है। यह एक अपरिहार्य अधिकार है और इसके बाद निहितीकरण, कब्जे सहित होता है। धारा 16 के तहत निर्दिष्ट निहितार्थ विभिन्न चरणों के बाद होता है, जैसे, धारा 4 के तहत अधिसूचना, धारा 6 के तहत घोषणा, धारा 9 के तहत नोटिस, धारा 11 के तहत अधिनिर्णय और फिर कब्ज़ा। सभी बाधाओं से पूर्णतः मुक्त संपत्ति को निहित करने के वैधानिक प्रावधान

को पूर्ण रूप से लागू किया जाना चाहिए। न केवल कब्ज़ा राज्य में निहित है बल्कि अन्य सभी बाधाएं भी तुरंत हटा दी गई हैं। भूमिधारक का स्वामित्व समाप्त हो जाता है और राज्य पूर्ण मालिक बन जाता है और संपत्ति का कब्ज़ा रखता है। इसके बाद भूमिधारक का संपत्ति पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता है। उसे संपत्ति लेने और उस पर नियंत्रण करने में कोई द्वेष नहीं हो सकता। भले ही उसने राज्य द्वारा कब्ज़ा लेने के बाद उस पर कब्ज़ा बरकरार रखा हो या अन्यथा अतिक्रमण किया हो, वह एक अतिक्रमणकारी है और अतिक्रमणकारी का ऐसा कब्ज़ा उसके लाभ प्राप्ति को सुनिश्चित करता है और मालिक की ओर से संपत्ति को राज्य से अलग करने पर विचार कर रहा है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

15. इसी प्रकार, 2011 एआईआर एससीडब्ल्यू 2835 में रिपोर्ट किया गया बांदा विकास प्राधिकरण, बांदा बनाम मोती लाल अग्रवाल के मामले में पैराग्राफ 34 और 35 में देखा गया था कि इस बारे में कोई भी सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता है कि कौन सा कार्य अधिग्रहीत भूमि का कब्ज़ा लेना माना जाएगा और यदि अधिग्रहीत भूमि खाली है, तो संबंधित राज्य प्राधिकरणों को मौके पर जाना होगा और कब्जे का परिदान दिखाते हुए एक पंचनामा तैयार करना होगा जो इस निष्कर्ष को अभिलिखित करने के लिए पर्याप्त था कि पूरी भूमि का वास्तविक कब्ज़ा ले लिया गया था। अधिग्रहीत भूमि के बड़े हिस्से का सार्वजनिक प्रयोजन के लिए उपयोग, जिसके लिए इसे अधिग्रहित किया गया था, इस तथ्य का स्पष्ट

रूप से संकेत है कि अधिग्रहीत भूमि का वास्तविक कब्ज़ा ले लिया गया था।

16. बांदा विकास प्राधिकरण (उपरोक्त) मामले के पैराग्राफ 34 और 35 को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है;

“34. उपर्युक्त उल्लिखित निर्णयों से जो सिद्धांत निकाले जा सकते हैं वे हैं:

- i) इस बारे में कोई भी सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता है कि कौन सा कार्य अधिग्रहीत भूमि का कब्ज़ा लेना माना जाएगा
- ii) यदि अधिग्रहीत भूमि खाली है, तो संबंधित राज्य प्राधिकरण का मौके पर जाकर पंचनामा तैयार करने का कार्य सामान्यतः अधिग्रहीत भूमि पर कब्ज़ा लेने के लिए पर्याप्त माना जाएगा।
- iii) यदि अधिग्रहीत भूमि पर खड़ी फसल है या भवन/संरचना मौजूद है, तो संबंधित प्राधिकारी द्वारा मात्र मौके पर जाना, कब्ज़ा लेने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। सामान्यतः ऐसे मामलों में, संबंधित प्राधिकारी को भवन/ संरचना के कब्जेदार या उस व्यक्ति को नोटिस देना होगा जिसने भूमि पर खेती की है और स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में कब्ज़ा लेना होगा और पंचनामे पर उनके हस्ताक्षर लेने होंगे। निःसंदेह, भूमि या भवन/संरचना के मालिक के

इनकार से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अधिग्रहीत भूमि का कब्जा नहीं लिया गया है।

iv) यदि अधिग्रहण भूमि के एक बड़े हिस्से का है, तो अधिग्रहण/ नामित प्राधिकारी के लिए भूमि के प्रत्येक टुकड़े पर भौतिक कब्जा लेना संभव नहीं हो सकता है और यह पर्याप्त होगा कि स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में उचित दस्तावेज तैयार करके और ऐसे दस्तावेज पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करके प्रतीकात्मक कब्जा ले लिया गया है।

v) यदि अधिग्रहण का लाभार्थी राज्य की एक एजेंसी/साधन है और धारा 17(3ए) के अनुसार कुल प्रतिकर का 80% जमा किया गया है और अधिग्रहित भूमि का पर्याप्त हिस्सा विशेष सार्वजनिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने में उपयोग किया गया है, तब न्यायालय उचित रूप से यह मान सकता है कि अधिग्रहीत भूमि का कब्जा ले लिया गया है।

35. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा मानना है कि संबंधित राज्य प्राधिकारियों द्वारा मौके पर जाकर कब्जे की परिदान दिखाते हुए पंचनामा तैयार करने की कार्यवाई इस निष्कर्ष को अभिलिखित करने के लिए पर्याप्त थी कि संपूर्ण अधिग्रहित भूमि का वास्तविक कब्जा ले लिया गया था और बीडीए को सौंप दिया गया था। अधिग्रहीत भूमि के

बड़े हिस्से का सार्वजनिक प्रयोजन के लिए उपयोग, जिसके लिए उसे अधिग्रहित किया गया था, स्पष्ट रूप से इस तथ्य का संकेत है कि अधिग्रहीत भूमि का वास्तविक कब्जा बीडीए द्वारा ले लिया गया था।

17. इसी प्रकार, 1976(1) एससीसी 700 में रिपोर्ट किया गया बलवंत नारायण भागड़े बनाम एम.डी. भागवत में पैरा 28 न्यायालय ने पाया कि तहसीलदार का मौके पर जाना भूमि का निरीक्षण करने का तहसीलदार का कार्य कब्जा लेने के लिए पर्याप्त था। तत्पश्चात सरकार या आयुक्त के पास 'अधिनियम 1894' की धारा 48-ए के तहत अधिग्रहण से हटने का अधिकार होगा। उपरोक्त निर्णय का पैरा 28 यहां नीचे उद्धृत किया गया है;

“28 न्यायाधीश हगवती (सहमत) (स्वयं और न्यायाधीश गुप्ता की ओर से) - हम अपने भाई न्यायाधीश उंटवालिया, द्वारा पहुंचे निष्कर्ष, साथ ही उस तर्क से भी जिस पर निष्कर्ष आधारित है से सहमत हैं। लेकिन हम एक अलग निर्णय लिख रहे हैं क्योंकि हमें लगता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI के नियम 35, 36, 95 और 96 के तहत 'प्रतीकात्मक' और 'वास्तविक' कब्जे के परिदान के संबंध में हमारे विद्वान भाई न्यायाधीश उंटवालिया, के निर्णय में हुई चर्चा वर्तमान अपीलों के निस्तारण के लिए आवश्यक नहीं है और हम हमारे विद्वान भाई न्यायाधीश उंटवालिया द्वारा उस संबंध में कही गई बातों को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, न ही हम उनके द्वारा अपने निर्णय में की गई विभिन्न

प्राधिकरणों की चर्चा के साथ अपनी सहमति व्यक्त करना चाहते हैं। हमारा मानना है कि यह कहना पर्याप्त है कि जब सरकार भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत उसके द्वारा अधिग्रहीत भूमि पर कब्जा करने के लिए कार्यवाही करती है, तो उसे भूमि का वास्तविक कब्जा लेना होगा, क्योंकि उनके द्वारा भूमि में सभी हितों का अधिग्रहण करने का प्रयास किया जाता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायिक निर्णयों द्वारा समझे जाने वाले अर्थ में 'प्रतीकात्मक' कब्जा लेने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। न ही मात्र कागज पर कब्जा पर्याप्त होगा। अधिनियम जिसे सरकार में भूमि को निहित करने की एक आवश्यक शर्त के रूप में मानता है वह भूमि पर वास्तविक कब्जा लेना है। इस तरह का कब्जा कैसे लिया जा सकता है यह भूमि की प्रकृति पर निर्भर करेगा। ऐसा कब्जा भूमि की प्रकृति के अनुरूप ही लेना होगा। इस बारे में कोई भी सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता है कि कौन सा कार्य अधिग्रहीत भूमि का कब्जा लेना माना जाएगा। इसलिए, ऐसा माना नहीं जाना चाहिए कि हमने एक पूर्ण और अनुल्लंघनीय नियम निर्धारित किया है कि मात्र स्थान पर जाने और या अन्यथा घोषणा कर देने से प्रत्येक मामले में भूमि का कब्जा लेने के लिए पर्याप्त माना जाएगा। लेकिन यहां, हमारी राय में, चूंकि भूमि परती थी और तात्त्विक समय पर उस पर कोई फसल नहीं हुई थी, इसलिए तहसीलदार का मौके पर जाना और यह निर्धारित करने के उद्देश्य से भूमि का निरीक्षण करना कि कौन सा हिस्सा बंजर और कृषि योग्य था और, इसलिए, इसका कब्जा कर लिया जाना चाहिए और इसकी

सीमा निर्धारित करना, कब्जा लेने के लिए पर्याप्त था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तहसीलदार द्वारा यह किया गया तो अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, लेकिन कब्जा लेने की प्रक्रिया सिद्ध करने के लिए भूमि के मालिक या कब्जेदार की उपस्थिति आवश्यक नहीं है। कानूनी आवश्यकता के रूप में यह भी दृढ़ता से आवश्यक नहीं है कि भूमि के मालिक या कब्जेदार को नोटिस दिया जाए कि कब्जा एक विशेष समय पर लिया जाएगा, हालांकि यह वांछनीय हो सकता है कि जहां संभव हो, अधिकारियों द्वारा कब्जा लेने से पहले ऐसा नोटिस दिया जाए, क्योंकि इससे बिना कब्जेदार या मालिक के इससे अवगत हुए, मात्र कागजी कब्जा लेने के किसी भी धोखाधड़ी या मिलीभगत वाले लेन-देन की संभावना समाप्त हो जाएगी।"

18. वर्तमान मामले में, मौजूदा प्रक्रिया के अनुसार अधिग्रहीत भूमि का कब्जा 1976 में लिया गया था जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी अनुमोदित किया गया था। इसलिए, उपरोक्त कानूनी स्थिति को देखते हुए, याचिकाकर्ता की अधिग्रहीत भूमि का कब्जा 08.07.1976 को कब्जा प्रमाण पत्र द्वारा लिया गया और उसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा बाउंड्री दीवार का निर्माण किया गया था और अधिग्रहीत भूमि के बड़े हिस्से पर कारखाना स्थापित किया गया था, स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि अधिग्रहीत भूमि पर कब्जा ले लिया गया था और लाभार्थी द्वारा उसका उपयोग भी किया गया था। यहां तक कि डी.एम., जे.पी. नागर की दिनांक 21.01.2006 की रिपोर्ट और साथ ही

दिनांक 14.12.2017 के अनुपालन शपथ पत्र के अनुलग्नक-1 के रूप में संलग्न एस.एल.ए.ओ. की दिनांक 24.10.2017 की रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता की अधिग्रहीत भूमि प्रत्यर्थी संख्या 5 की बाउंड्री दीवार के भीतर है।

19. वर्तमान मामले में, वर्तमान वाद दायर करते समय दिनांक 15.10.1976 की अधिसूचना को चुनौती नहीं दी गई थी और केवल यह प्रार्थना की गई थी कि अधिनियम, 1894 की धारा 48 के तहत अपनी भूमि को गैर-अधिसूचित करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर विचार किया जाये।

20. अधिनियम, 1894 की धारा 48 स्वयं मूल भूधृतिधारक को राज्य को अधिग्रहण से पीछे हटने के लिए विवश करने का कोई अधिकार नहीं देती है। यह धारा केवल उस प्रावधान को समर्थकारी करती है जो राज्य को अधिग्रहण से पीछे हटने के लिए तब सक्षम बनाती है जब अधिग्रहीत भूमि को कब्जे में नहीं लिया जा रहा था लेकिन वर्तमान मामले में, राज्य के साथ-साथ प्रत्यर्थी संख्या 3 ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि भूमि का कब्जा ले लिया गया था और उसे प्रत्यर्थी संख्या 5 को एक कारखाना स्थापित करने के लिए अंतरित कर दिया गया था। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 48 यहां नीचे उद्धृत की गई है;

“धारा 48 अधिग्रहण पूरा करना अनिवार्य नहीं है, लेकिन पूरा न होने पर प्रतिकर दिया जाएगा-

(1) धारा 36 में दिए गए मामले के सिवाय, सरकार किसी भी भूमि के अधिग्रहण से पीछे हटने के लिए स्वतंत्र होगी, जिस पर कब्जा नहीं लिया गया है।

(2) जब भी सरकार ऐसे किसी अधिग्रहण से पीछे हटती है, तो नोटिस या उसके तहत किसी भी कार्यवाही के परिणामस्वरूप मालिक को हुई क्षति के लिए देय प्रतिकर की राशि कलेक्टर निर्धारित करेगा, और हितबद्ध व्यक्ति को उस राशि का भुगतान करेगा साथ ही उक्त भूमि से संबंधित इस अधिनियम के तहत कार्यवाही के अभियोजन में उसके द्वारा किए गए सभी उचित खर्चों का भी भुगतान करेगा।

(3) इस अधिनियम के भाग III के प्रावधान, इस धारा के तहत देय प्रतिकर के निर्धारण के लिए, जहां तक संभव हो, लागू होंगे।”

21. वर्तमान याचिका स्वयं गंभीर बाधाओं से बाधित है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने वर्ष 2006 में कब्जे की जमीन पर आंदोलन किया है, हालांकि भूमि 1976 में अधिग्रहित की गई थी और कब्जा भी वर्ष 1976 में लिया गया था और बाद में प्रत्यर्थी संख्या 5 को वर्ष 1976 और 1977 पट्टे पर दे दिया गया था।

22. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष अनुग्रह के लिए कोई वाद नहीं ला सका, इसलिए याचिका विफल हो गई है तथा **खारिज कर दी गई।**

(2023) 7 ILRA 671

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

धारान्तर्गत 482 के तहत आवेदन संख्या

6853 सन् 2023

परमानंद सिरुमल तहलरामामी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: गंतव्या

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 2(डब्लू), 2(वाई), 326 और 482 -

भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 302,

304-बी, 2017 498-ए - दहेज प्रतिषेध

अधिनियम, 1961 - धारा 3 और 4 - शस्त्र

अधिनियम, 1878 - धारा - 30: - धारा 482

के तहत आवेदन - उस आदेश को रद्द करने

के लिए जिसके तहत परीक्षण न्यायालय ने

आवेदकों/पीड़ितों को सत्र परीक्षण में सुनवाई

का अवसर देने से इनकार कर दिया था, इस

आधार पर कि आवेदक अजनबी हैं और उन्हें

सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है - हत्या का

अपराध - दहेज हत्या - क्या आवेदक संख्या

1, जो मृतक का चाचा है, को परीक्षण

कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, और

यदि परिभाषा के दायरे में देखा जाता है

पीड़िता की परिभाषा के चारों कोनों में जांच की जाए तो यह सामने आता है कि मृतका आवेदक संख्या 1 की भतीजी है और वह काफी समय से आवेदक संख्या 1 के साथ दिल्ली में रह रही थी। - यह माना गया कि विधि में यह बात अच्छी तरह स्थापित है कि ऐसे आदेश या फैसले को उसी न्यायालय द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता है जब तक कि किसी विधि में अन्यथा प्रावधान न हो या उच्च न्यायालयों द्वारा पारित कोई निर्देश या आदेश न हो और वर्तमान मामले में ऐसे किसी प्रावधान या निर्देश के अभाव में विद्वान सत्र न्यायालय को पूर्ववर्ती न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश पर पुनर्विचार/संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है, जबकि आवेदक को मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति देने के लिए उसके आवेदन को स्वीकार किया गया था। - आवेदन स्वीकार किया गया - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा - 29, 30, 31, 32)

धारा 482 के तहत आवेदन स्वीकार किया गया (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राम फल बनाम राज्य एवं अन्य., 2015 एससीसी ऑन-लाइन डेल 9802,
2. जगजीत सिंह और अन्य बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू और अन्य, (2022) 9 एससीसी 321
3. मनोज कुमार सिंह बनाम उ.प्र राज्य और अन्य, (2016) 97 एससीसी 861 (एफबी)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा वितरित)

1. सबसे पहले, आवेदक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि उसे प्रार्थना खंड 'ग' को वापस लेने की अनुमति दी जा सकती है और इसे हटाने की अनुमति दी जा सकती है।

2. राज्य की ओर से पेश अधिवक्ता को पूर्वोक्त तर्क पर कोई आपत्ति नहीं है।

3. पूर्वोक्त प्रस्तुतियों के मद्देनजर, आवेदक के अधिवक्ता को इसे हटाने की अनुमति के साथ प्रार्थना खंड 'सी' को वापस लेने की अनुमति दी जाती है।

4. सुश्री नेहा रश्मि और गंताव्य, आवेदकों के लिए अधिवक्ता, श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-1 को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

5. प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा एस.टी. संख्या-375 वर्ष 2007 (राज्य बनाम सुनीत तहलियान और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 26.05.2023 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है, जो भ०द०वि० की धारा 302, 304 बी, 201, 498 ए सपठित धारा 34 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 और शस्त्र अधिनियम की धारा 30, थाना मानक नगर, जिला लखनऊ के तहत उत्पन्न हुआ है और आगे प्रार्थना की जाती है कि आवेदक संख्या-1 से 3 को पीड़ित के कानूनी उत्तराधिकारी के रूप में माना जाए, क्योंकि आवेदक संख्या-1 मृतका का असली चाचा है और आवेदक संख्या-2 और 3 माता-पिता हैं।

6. मामले का संक्षिप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 25.04.2001 को, आवेदक संख्या-1 की भतीजी, अर्थात् वंशिका ने प्रतिवादी संख्या-3, अर्थात् सुमित तेहलियानी के साथ विवाह किया और आरोपी व्यक्तियों की मांग पर, आवेदकों ने टीवी, आभूषण, मोटरसाइकिल सहित शादी के समय उन्हें आकर्षक उपहार दिए थे और मृतका वंशिका आरोपी व्यक्तियों यानी, प्रतिवादी संख्या-3 से 9 के साथ लखनऊ में अपने ससुराल में रह रही थी।

7. विवाह के तुरंत बाद, प्रतिवादी संख्या-3 और उसके परिवार के सदस्यों ने मृतका के साथ क्रूरता करना शुरू कर दिया, जिससे दहेज की मांग की गई और मृतका को, अगर वह और आवेदक और परिवार के सदस्य आरोपी व्यक्तियों की मांग को पूरा करने में विफल रहे, गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी गई। यह आवेदकों को सूचित किया गया था, लेकिन मृतका के परिवार के सदस्यों ने हमेशा आरोपी व्यक्तियों को यह समझाने की कोशिश की कि जो कुछ भी उनके लिए उपलब्ध था, उन्होंने शादी के समय दिया था और वे दहेज के रूप में जो कुछ भी मांग रहे हैं उसे प्रदान करने की स्थिति में नहीं हैं और इस बीच, दिनांक 11.10.2002 को मृतका, वंशिका ने मोनीश तहलियानी नामक एक कन्या बच्चे को जन्म दिया और बच्चे के जन्म के बाद भी आरोपी व्यक्तियों के व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आया और यहां तक कि मृतका वंशिका को भोजन और पानी से वंचित रखा गया और उसे उसके परिवार के सदस्यों से अलग रखा गया। मृतका, वंशिका और उसकी बेटी, मोनिश तहलियानी को आखिरी बार 06.05.2005 को

लखनऊ में ससुराल में जीवित देखा गया था क्योंकि वंशिका का जन्मदिन था और इस प्रकार आरोपी व्यक्तियों ने माता-पिता को लैंडलाइन फोन पर दोपहर 12:12 बजे थोड़ी देर के लिए बात करने की अनुमति दी और बातचीत के दौरान, यह महसूस किया गया कि वह भयभीत महसूस कर रही थी और बातचीत के दौरान, उसके पास से फोन छीन लिया गया और उसे काट दिया गया और उसके बाद मृतका वंशिका और आरोपी व्यक्तियों से संपर्क करने के कई प्रयास किए गए, लेकिन यह व्यर्थ रहा और आखिरकार, 8:45 बजे, प्रतिवादी संख्या-3 ने लापरवाही से सूचित किया कि उसने वंशिका की हत्या कर दी है और मोनीश तहलियानी को गोली मार दी है और परिणामस्वरूप वंशिका की मृत्यु हो गई और वंशिका की बेटी, मोनीश तहलियानी ने दम तोड़ दिया। चूंकि आरोपी शहर के बहुत प्रभावशाली व्यक्ति हैं और इस प्रकार उनके दबाव में, पुलिस घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से बच रही थी। जांच को कई बार स्थानांतरित किया गया और उसके बाद आरोप पत्र दायर किया गया और किसी भी तरह से मुकदमा आगे बढ़ा।

8. इसके अलावा, 02.09.2022 को, आवेदकों ने उन्हें पीड़ित के रूप में दिखाते हुए विचारण न्यायालय के समक्ष अपने अधिवक्ता के माध्यम से खुद का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे 14.12.2022 को अनुमति दी गई और उसके बाद कई तारीखों पर, पीड़ितों/सूचनकर्ताओं/ आवेदकों के अधिवक्ता ने 06.01.2023, 18.01.2023 और 21.01.2023 से 25.01.2023 और

08.02.2023 को प्रस्तुतियाँ दीं, और विचारण न्यायालय द्वारा आवेदकों/पीड़ितों के अधिवक्ता को लिखित प्रस्तुतियाँ दर्ज करने की स्वतंत्रता भी दी गई इसके बाद प्रस्तुतियाँ भी दायर की गई थीं और इसे रिकॉर्ड में लिया गया था। 13.02.2023 को, एक बार जब आरोपी व्यक्ति प्रस्तुतियों के संबंध में बाधा डालने में विफल रहे, तो उन्हें आगे बढ़ाने की अनुमति दी गई, उन्होंने विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष एक लघु स्थानांतरण आवेदन दायर किया, जिसे आवेदकों/पीड़ितों के अधिवक्ता की सुनवाई के बाद खारिज कर दिया गया, इसके बाद 21.02.2023 को, आरोपी व्यक्तियों ने माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष स्थानांतरण याचिका (आपराधिक) संख्या-10 वर्ष 2023 दायर की, जिसे पीड़ितों/आवेदकों के अधिवक्ता की सुनवाई के बाद भी खारिज कर दिया गया और मामला पीड़ितों/सूचनकर्ताओं के अधिवक्ता की सुनवाई के बाद स्थानांतरण याचिका पर निर्णय लेने का स्पष्ट निर्देश देते हुए विद्वान जिला न्यायाधीश को वापस भेज दिया गया और 28.02.2023 को पक्षकारों की सुनवाई के बाद, जिला न्यायाधीश ने आरोपी-प्रतिवादियों की स्थानांतरण याचिका को खारिज कर दिया और बीच में पूर्ववर्ती न्यायाधीश का तबादला कर दिया गया और मामले की फिर से सुनवाई की आवश्यकता थी और जब 08.05.2023 को, पीड़ितों/सूचनार्थियों/ आवेदकों के अधिवक्ता उपस्थित हुए और अपने तर्कों को आगे बढ़ाने का अनुरोध किया, उन्हें मौखिक रूप से अस्वीकार कर दिया गया, हालांकि ए.डी.जी.सी. (आपराधिक) ने मौखिक रूप से व्यक्त किया कि यदि पीड़ितों/आवेदकों के अधिवक्ता को सुना जाता है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है और

इस प्रकार, उसी दिन आवेदकों द्वारा एक आवेदन भी प्रस्तुत किया गया था जिसमें प्रार्थना की गई थी कि उन्हें अंतिम सुनवाई में उपस्थित होने और न्यायालय को संबोधित करने के लिए अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से सुनवाई का अवसर दिया जाए, जिसके बाद 15.05.2023 को अभियोजन पक्ष द्वारा कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई और पीड़ितों/आवेदकों ने उनके दिनांक 08.05.2023 के आवेदन के समर्थन में लिखित प्रस्तुतियाँ दायर कीं और आपत्तियाँ फिर से आमंत्रित की गईं और 23.05.2023 को, ए.डी.जी.सी. (आपराधिक) ने पीड़ितों/आवेदकों को दिनांक 8.05.2023 और उसके बाद 26.05.2023 को सुनवाई का अवसर दिए जाने पर अनापत्ति का समर्थन किया, विचारण न्यायालय ने आदेश पारित किया और सत्र परीक्षण संख्या-375 वर्ष 2007 में आवेदकों/पीड़ितों को सुनवाई का अवसर देने से इनकार कर दिया कि आवेदक अजनबी हैं और उन्हें सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है।

9. आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क यह है कि आवेदक संख्या-1 एक असली चाचा है और आवेदक संख्या-2 और 3 पीड़िता के पिता और मां हैं, यानी मृतका वंशिका और उसकी महिला बच्चा और वे पीड़ित के दायरे में आते हैं जैसा कि धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के तहत परिभाषित किया गया है। आवेदक संख्या-1 भी इस मामले में सूचनाकर्ता है और उसने अपनी भतीजी और भतीजी की बेटी की हत्या के बाद प्राथमिकी संख्या-25 वर्ष 2005 दर्ज कराई। वह प्रस्तुत करती है कि यह एक स्थापित कानून है कि पीड़ित को सुनने का पर्याप्त अधिकार है क्योंकि पीड़ित वास्तव में अपराध का पीड़ित

है, और इस तरह, पीड़ित को न्यायिक प्रक्रिया में भाग लेने से इनकार नहीं किया जा सकता है, अब तक, पीड़ित के अधिकार के संबंध में न्यायशास्त्र आपराधिक कार्यवाही में सकारात्मक रूप से शामिल है और यह एक स्थापित कानून बन गया है कि पीड़ित को सुनवाई से इनकार नहीं किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने राम फल बनाम राज्य और अन्य के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 9802 में दिए गए एक फैसले पर भरोसा किया है और पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 52, 53, 54 का उल्लेख किया है, जो निम्नानुसार है: -

"52. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, धारा 2(डब्ल्यूए), "पीड़ित" की अपनी परिभाषा में, वाक्यांश "एक्स का मतलब है और वाई शामिल है" का उपयोग करता है। जबकि चतर सिंह ने तर्क दिया कि "वाई शामिल है" "[साधन] एक्स" के सामान्य अर्थ का विस्तार करता है, उन चीजों को आच्छादित करने के लिए जो अन्यथा "एक्स" के रोजमर्रा के अर्थ से आच्छादित नहीं होंगे, इसने सीआरएल के दो भागों की व्याख्या की। A.1415/2012 पृष्ठ 34 गैर-अतिव्यापी और पारस्परिक रूप से अनन्य श्रेणियों को शामिल करने की परिभाषा: "चोट" शारीरिक नुकसान के सबसे प्रत्यक्ष और निकटवर्ती पीड़ित तक सीमित है, और "कानूनी उत्तराधिकारी" व्यक्तिगत कानून में सफल होने के हकदार उत्तराधिकारियों को आच्छादित करते हैं। "पीड़ित" शब्द का एक व्यापक

अर्थ, भावनात्मक नुकसान के पीड़ितों को शामिल करते हुए, दो श्रेणियों के बीच एक ओवरलैप की आवश्यकता होगी, क्योंकि यह संभव है कि एक कानूनी उत्तराधिकारी भी "पीड़ित" होगा, इस अर्थ में कि अपराध के परिणामस्वरूप एक निकटवर्ती मानसिक चोट का सामना करना पड़ा। इसलिए, यह न्यायालय छतर सिंह मामले में दिए गए फैसले से सहमत नहीं है कि द्वितीय श्रेणी के वारिस को प्रथम श्रेणी के वारिस द्वारा बाहर रखा जा सकता है, क्योंकि द्वितीय श्रेणी के वारिस को भावनात्मक/मानसिक चोट लग सकती है, इस प्रकार उसे "पीड़ित" की परिभाषा के भीतर लाया जा सकता है। इस तरह के पीड़ित को कक्षा-I वारिस द्वारा बाहर करने की अनुमति देने के लिए परिभाषा के भीतर "शामिल" लोगों को देने के बराबर होगा, परिभाषित शब्द के सामान्य और प्राकृतिक अर्थ के भीतर आने वालों को बाहर करना होगा। इसलिए न्यायालय छतर सिंह के विश्लेषण से सहमत नहीं है जो व्यक्तिगत कानून में "कानूनी उत्तराधिकारियों" के पदानुक्रम को पूरी तरह से निर्धारक मानता है कि कौन "पीड़ित" जिसके अभाव में, शामिल होने से पीड़ित के रूप में अर्हता प्राप्त कर सकता है। इसके अधीन, हम एमिकस की प्रस्तुतियों और पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले के साथ सहमत हैं, कि "कानूनी उत्तराधिकारी" का अर्थ प्रासंगिक व्यक्तिगत कानून द्वारा

नामित सभी उत्तराधिकारियों को संदर्भित करता है, भले ही उन्हें किसी भी समय उत्तराधिकार की रेखाओं से बाहर रखा गया हो या नहीं।

53. संक्षेप में, उपरोक्त चर्चा से निष्कर्ष हैं:

(i) धारा 2(डब्ल्यूए) में "पीड़ित", "एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जा रहा है जिसे कोई नुकसान या चोट लगी है" में एक ऐसे व्यक्ति को शामिल किया जाना चाहिए जिसने यह देखते हुए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा "2(वाई) संहिता में भ०द०वि० की धारा 44 में "चोट" की परिभाषा शामिल है, "मानसिक आघात पहुंचाया है।

(ii) धारा 2(wa) में "अर्थ X और Y शामिल है" खंड की व्याख्या नहीं की जा सकती है ताकि परिभाषित किए जा रहे शब्द के वास्तविक अर्थ X को छोड़कर शामिल अर्थ Y हो; इस प्रकार "कानूनी उत्तराधिकारी" जो "पीड़ित" शब्द की परिभाषा में शामिल हैं, उन लोगों को बाहर नहीं कर सकते हैं जो सीआरएल हैं। A.1415/2012 पृष्ठ 35 वास्तव में "पीड़ित भावनात्मक नुकसान के आधार पर, "जैसे कि मृतका पीड़ित के पिता या भाई-बहन या व्यक्तियों की अन्य श्रेणियां (निकटता के आधार पर) की परिभाषा के भीतर आती हैं।

(iii) विरासत के कानून, जो किसी के "कानूनी उत्तराधिकारी" का फैसला करते हैं, पीड़ित के अधिकारों का पूरी तरह से निर्धारक होने का इरादा नहीं है,

आपराधिक परीक्षण / अपील में, उसकी मृत्यु पर, हेडन के नियम के अनुप्रयोग, यह देखते हुए कि 2008 के संशोधन अधिनियम का उद्देश्य पीड़ित की भागीदारी सुनिश्चित करना था, जिसका मुकदमे/अपील के निष्पक्ष और कुशल अभियोजन में संभवतः व्यक्तिगत हित है। नतीजतन, एक अपीलीय अदालत के लिए एक "कानूनी उत्तराधिकारी" द्वारा अपील को बंद करने की अनुमति नहीं है, जो केवल उसके तत्काल उत्तराधिकारी नहीं होने पर आधारित है, या अपराध पीड़ित की संपत्ति के अधिकार के साथ-साथ पदानुक्रम में नीचे है।

“54. अनिश्चितता (कई अपीलों का बचाव करने की) के भूत पर एक समापन टिप्पणी के रूप में, जो संभवतः मंडराएगा, और अपराधों से बरी किए गए लोगों को तौलेगा, यह न्यायालय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत है कि ऐसे सभी "पीड़ितों या" कानूनी उत्तराधिकारियों की अपीलों को एक साथ सुना जाएगा, और इस मुद्दे को उचित डॉकेट प्रबंधन द्वारा हल किया जा सकता है। अदालत को पाकला नारायण स्वामी बनाम भारत संघ के मामले में दिए गए दृष्टिकोण की याद दिलाई जाती है। सम्राट ए.आई.आर.-1939 पी.सी. 47 कि "... सच तो यह है कि जब शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है, तो यह न्यायालयों का कर्तव्य नहीं है कि वे खुद को कथित इरादों में व्यस्त रखें" - और कोई भी

संदर्भ में, काल्पनिक कठिनाइयों को जोड़ सकता है।”

10. उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, वह प्रस्तुत करती है कि यह बहुत बारीकी से व्याख्या की गई है कि पीड़ित कौन है और क्या कानूनी उत्तराधिकारियों को श्रेणी-I और श्रेणी-II के उत्तराधिकारी कहा जाता है, धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के संदर्भ में अर्थ में कोई अंतर है। यह बहुत स्पष्ट रूप से माना गया है कि जहां तक धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के तहत परिभाषित पीड़ित वर्ग I और श्रेणी II के उत्तराधिकारियों के संबंध में कोई अंतर नहीं हो सकता है क्योंकि मृतका / पीड़ित के लिए द्वितीय श्रेणी के वारिस का भावनात्मक लगाव अधिक हो सकता है और उसे कक्षा I श्रेणी के वारिस की तुलना में चोट लग सकती है। यदि किसी व्यक्ति को अपने दिमाग को नुकसान पहुंचा है, तो वह 'चोट' की परिभाषा को आच्छादित करता है जिसे धारा-44 भ०द०वि० के तहत परिभाषित किया गया है।

11. उसने (2022)9 एस.सी.सी. 321, जगजीत सिंह और अन्य बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू और अन्य में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भरोसा किया है और पैराग्राफ 22 और 25 का उल्लेख किया है जिसे नीचे पढ़ा गया है: -

22. यह नहीं कहा जा सकता है कि संशोधित द०प्र०स० के तहत पीड़ित का अधिकार मौलिक, प्रवर्तनीय और मानव अधिकारों का एक अन्य पहलू है। इसलिए, पीड़ित के अधिकार को एक क्रूर फुलमेन की तरह प्रतिबंधात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है। हम दोहराते हैं कि ये अधिकार पूरी तरह से स्वतंत्र, अतुलनीय हैं,

और दंप्रंस० के तहत राज्य के अधिकारों के सहायक या सहायक नहीं हैं। इसलिए, कार्यवाही में 'राज्य' की उपस्थिति, अपराध के 'पीड़ित' को सुनवाई देने के समान नहीं है।

25. मामले को देखते हुए, हम उस तरीके से अपनी निराशा व्यक्त करने के लिए विवश हैं जिसमें उच्च न्यायालय पीड़ितों के अधिकार को स्वीकार करने में विफल रहा है। गौरतलब है कि प्राथमिकी संख्या-219 वर्ष 2021 में शिकायतकर्ता के साथ-साथ प्रस्तुत अपीलकर्ता, उन किसानों के करीबी रिश्तेदार हैं, जिन्होंने दिनांक 03.10.2021 की घटना में अपनी जान गंवाई है। अपीलकर्ताओं के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा लिया गया विशिष्ट रुख कि 'पीड़ितों' के अधिवक्ता ऑनलाइन कार्यवाही से अलग हो गए थे और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रभावी प्रस्तुतियाँ नहीं कर सके, उत्तरदाताओं द्वारा विरोध नहीं किया गया है। इसके बाद, इस आधार पर फिर से सुनवाई की मांग करने वाला एक आवेदन भी दायर किया गया कि 'पीड़ित' कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी-अभियुक्त को जमानत देते समय उच्च न्यायालय ने इस पर विचार नहीं किया था।

12. पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करती है कि सर्वोच्च न्यायालय ने कानून का निपटारा किया है जहां तक पीड़ित के कानूनी उत्तराधिकारियों के अधिकार का संबंध है और इसने इतने शब्दों में कहा है कि कानूनी उत्तराधिकारियों सहित पीड़ित को अपराध की घटना के बाद हर कदम पर सुनवाई का

कानूनी निहित अधिकार है, और यह जांच के चरण से लेकर अपील या पुनरीक्षण में कार्यवाही की परिणति तक बेलगाम भागीदारी है। यह भी माना गया है कि अपराध के कार्य के लिए एक अजनबी भी एक सूचनाकर्ता हो सकता है और इसी तरह पीड़ित को शिकायतकर्ता या गुंडागर्दी का सूचनाकर्ता होने की आवश्यकता नहीं है।

13. अपने तर्क को जोड़ते हुए, वह प्रस्तुत करती है कि धारा 326 दंप्रंस० के वैधानिक जनादेश में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि विचारण न्यायालय उस मुकदमे को जारी रखने के लिए वैधानिक दायित्व के तहत है जहां से इसे उसके पूर्ववर्ती न्यायाधीश द्वारा रोक दिया गया था और इसलिए एक बार पूर्ववर्ती न्यायाधीश ने आवेदकों/पीड़ितों को कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दे दी, तो उन्हें कार्यवाही में आगे भाग लेने से नहीं रोका जा सकता क्योंकि यह पहले से पारित आदेशों को संशोधित/समीक्षा करने के बराबर होगा।

14. आगे यह तर्क देते हुए कि इस तथ्य के संबंध में निष्कर्ष कि ए.डी.जी.सी. (आपराधिक) ने आवेदकों के आवेदन का विरोध किया, विकृत है क्योंकि रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि ए.डी.जी.सी. (आपराधिक) ने पहले ही आवेदक के अधिवक्ता को मामले में सुनवाई के लिए 'अनापत्ति' का समर्थन किया है, जो स्पष्ट रूप से पीठासीन अधिकारी की दुर्भावना और पूर्वाग्रह को दर्शाता है। वह प्रस्तुत करती है कि आवेदकों को मुकदमे की कार्यवाही में उपस्थित होने से इनकार करना देश के कानून के खिलाफ है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय

ने हाल के फैसले में कहा है कि पीड़ित को जांच से शुरू होने वाली आपराधिक कार्यवाही में सुनवाई का पर्याप्त अधिकार है। उन्होंने आगे कहा कि आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा आवेदकों को सुनवाई का अवसर देने से इनकार किया गया है, न केवल गलत है, बल्कि कानून के स्थापित प्रस्ताव के खिलाफ भी है और न्यायिक अनुशासनहीनता भी है।

15. उन्होंने आगे तर्क दिया कि यह वास्तव में निजी उत्तरदाताओं का लखनऊ का एक पुराना परिवार होने के नाते अच्छा प्रभाव है; शहर में बहुत अधिक प्रभाव का प्रयोग न केवल जांच को प्रभावित करता है, बल्कि इसके बाद वे हर कदम पर मामले के स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्णय को दबाने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं। यह इस बात को पुष्ट करता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करते समय, आवेदकों को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ा और एक सप्ताह के बाद, आवेदकों द्वारा किए गए कई प्रयासों के बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

16. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, वह प्रस्तुत करती है कि आक्षेपित आदेश अति-पांडित्यपूर्ण, विकृत है और न्याय की अंतरात्मा को झकझोर देता है और आगे यह आवेदकों को सुनवाई के अधिकार से वंचित करना है जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के खिलाफ है और इसलिए प्रस्तुत करना यह है कि सत्र परीक्षण संख्या-375 वर्ष 2007 में आवेदक के आवेदन पर पारित 26 मई, 2023 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जा सकता है।

17. इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश अपर शासकीय अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्कों का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट आवेदक संख्या-1 द्वारा दर्ज की गई थी, जो मृतका वंशिका का चाचा है। वह प्रस्तुत करता है कि पीड़ित को आपराधिक कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, जिसे धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के तहत परिभाषित किया गया है और पूर्वोक्त के महज पढ़ने से यह स्पष्ट है कि पीड़ित में उसके 'अभिभावक' या 'कानूनी उत्तराधिकारी' और पिता और माता के रूप में, अर्थात्, मृतका वंशिका के आवेदक संख्या-2 और 3 हैं।

18. अपने तर्क को जोड़ते हुए, उन्होंने (2016)97 एसीसी 861 (एफबी), मनोज कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में रिपोर्ट किए गए पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा किया है और निर्णय के पैराग्राफ 68 और 69 का उल्लेख किया है, जो यहां उद्धृत हैं: -

"68. ऊपर की गई चर्चाओं से, यह स्पष्ट है कि धारा 372 का परंतुक सामान्य कानून का अपवाद है और यह पीड़ित को बरी करने के खिलाफ अपील करने का अधिकार प्रदान करता है, जो न्यायालय द्वारा छुट्टी के अनुदान के अधीन है। धारा 2(डब्ल्यूए) के तहत दी गई 'पीड़ित' की परिभाषा का पहला भाग (यानी "पीड़ित" का अर्थ है एक व्यक्ति जिसे उस कार्य या चूक के कारण कोई नुकसान या चोट लगी है जिसके लिए आरोपी व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है), को इसके शाब्दिक अर्थ में

समझा जाना आवश्यक है और कोई उदार व्याख्या की आवश्यकता नहीं है, तदनुसार, केवल ऐसे व्यक्ति को 'पीड़ित' के रूप में माना जाएगा, जो अपने शरीर, मन, प्रतिष्ठा और संपत्ति के कारण नुकसान या चोट के मामले में अपराध का प्रत्यक्ष पीड़ित होने के कारण मुकदमे का विषय है और इस तरह की हानि या चोट अपराध के घटक में से एक है जिसके लिए आरोपी व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है और, इसलिए, अपील बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए किसी अन्य व्यक्ति को धारा 2(डब्ल्यूए) के पहले भाग के भीतर पीड़ित के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। दूसरा भाग जो "उसके अभिभावक और कानूनी उत्तराधिकारी को शामिल करता है" तब चलन में आएगा जब वास्तविक पीड़ित अनुपस्थित हो या विकलांगता से पीड़ित होता है।

69. दूसरे शब्दों में, पीड़ित का अर्थ है अपराध का वास्तविक पीड़ित (कथित अपराध के कारण होने वाले नुकसान का प्राप्तकर्ता) और नुकसान के वास्तविक रिसीवर के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को अपराध के शिकार के रूप में नहीं माना जा सकता है, ताकि उसे धारा 372 के परंतुक के तहत अपील करने का अधिकार प्रदान किया जा सके, हालांकि, उसकी अनुपस्थिति या विकलांगता में, उसका "कानूनी उत्तराधिकारी" या "अभिभावक" पीड़ित के रूप में अर्हता

प्राप्त करेगा और उसे अपील करने का अधिकार होगा। एक व्यक्ति जो खुद को वास्तविक पीड़ित (प्रत्यक्ष पीड़ित) का 'अभिभावक' या 'कानूनी उत्तराधिकारी' होने का दावा करता है, वह अपील को बनाए रखने में सक्षम होगा बशर्ते कि वह अपने विवरण का खुलासा करके प्रत्यक्ष पीड़ित के साथ संबंध और जिन आधारों पर "कानूनी उत्तराधिकारी" या "अभिभावक" होने का ऐसा दावा आधारित है, अपने आवेदन में अदालत के समक्ष अपना दावा स्थापित करता है। ऊपर की गई चर्चा के आलोक में, एदल सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच का अनुपात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(डब्ल्यूए) के तहत प्रदान की गई 'पीड़ित' की परिभाषा के अनुरूप है। संदर्भ का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

19. पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने बहुत स्पष्ट रूप से माना है कि 'पीड़ित' शब्द की कोई उदार व्याख्या की आवश्यकता नहीं है क्योंकि केवल ऐसे व्यक्ति को पीड़ित के रूप में माना जाएगा जो अपने शरीर को 'चोट' के संदर्भ में 'अपराध का प्रत्यक्ष पीड़ित' होने के कारण मुकदमे का विषय है जो मन, प्रतिष्ठा और संपत्ति और इस तरह की हानि या चोट अपराध के अवयवों में से एक है जिसके लिए आरोपी व्यक्तियों पर आरोप लगाया गया है और इस प्रकार यह संक्षेप में प्रस्तुत किया

गया है कि पीड़ित स्वयं अपराध का वास्तविक पीड़ित है और अभिभावक या कानूनी उत्तराधिकारी तब काम आएगा जब वास्तविक पीड़ित अनुपस्थित होगा या विकलांगता से पीड़ित होगा।

20. उन्होंने आगे कहा कि चूंकि आवेदक संख्या-1 मृतका का चाचा है, और माता-पिता अभी भी जीवित हैं और कोई ठोस कारण नहीं दिया गया है कि वे इस अदालत से संपर्क क्यों नहीं कर रहे हैं इसलिए चाचा को यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि वह पीड़ित का कानूनी उत्तराधिकारी / अभिभावक है।

21. आगे तर्क दिया कि एक बार जब मामला वर्तमान पीठासीन अधिकारी के समक्ष आया, तो उन्होंने आवेदन पर विचार किया और इसे खारिज कर दिया क्योंकि उन्होंने पाया कि यह देरी की रणनीति के लिए किया जा रहा है। जबकि मुकदमा अपने अंतिम चरण में है और किसी भी व्यक्ति को उसके अभिभावक या कानूनी उत्तराधिकारी के बिना अनुमति देना न्यायोचित नहीं हो सकता है और इसलिए विचारण न्यायालय ने दिनांक 26.05.2023 के आदेश को सही तरीके से पारित किया है और इसमें कोई गलती या कोई विकृति नहीं है और इस तरह प्रस्तुत आवेदक किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं।

22. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह सामने आता है कि मृतका वंशिका का विवाह 25 अप्रैल 2001 को लखनऊ में प्रतिवादी संख्या-3, सुमित तहलियानी के

साथ हुआ था और शादी के बाद, निजी प्रतिवादी ने दहेज की मांग शुरू कर दी और उन्होंने मृतका को प्रताड़ित किया। इसके बाद, दहेज का भुगतान न करने के मामले में, यातना अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई और मृतका वंशिका और उसकी डेढ़ साल की लड़की को गोली मार दी गई, और शायद ही परिवार के सदस्य को इसकी सूचना दी गई थी। यह भी पता चलता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 8-9 दिनों के बाद दर्ज की गई थी क्योंकि उत्तरदाताओं/आरोपियों को लखनऊ में एक पुराना परिवार होने के नाते बहुत प्रभावशाली व्यक्ति कहा जाता था और बाद में वे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में सफल हो सके।

23. इसके अलावा, तथ्य यह है कि पूर्ववर्ती न्यायाधीश ने आवेदकों/पीड़ितों को मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी थी और लंबे समय तक आवेदकों ने अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से भाग लिया और उसके बाद जब एक अन्य पीठासीन अधिकारी ने मुकदमा शुरू किया, तो आवेदकों को भाग लेने के लिए मौखिक रूप से रोक दिया गया और फिर एक आवेदन पेश किया गया जिसमें ए.डी.जी.सी. (आपराधिक) ने अपनी अनापत्ति दे दी, और यहां तक कि आवेदकों द्वारा लिखित सबमिशन पर कोई आपत्ति भी नहीं दी गई, लेकिन 26.05.2023 को, आवेदकों को इस आधार पर सुनवाई का अवसर देने से इनकार कर दिया गया कि वे अपराध के लिए अजनबी हैं, और उन्हें मामले में सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है।

24. अब पक्षों की प्रस्तुतियों को समाप्त करते हुए और तथ्यों के माध्यम से जाने पर, तीन प्रश्न सामने आते हैं;

सबसे पहले, क्या आवेदक धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के तहत दी गई पीड़िता की परिभाषा के अनुसार कानूनी उत्तराधिकारी हैं?

दूसरा, क्या पीड़ित के कानूनी उत्तराधिकारियों/अभिभावकों को मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है?

तीसरा, क्या बाद के पीठासीन अधिकारी को पूर्ववर्ती न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की समीक्षा/संशोधन/पुनर्विचार करने का अधिकार था?

25. जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है, धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के तहत परिकल्पित 'पीड़ित' की परिभाषा के माध्यम से जाना प्रासंगिक होगा। धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० निम्नानुसार पठित है: -

"पीड़ित" का अर्थ है एक व्यक्ति जिसे उस कार्य या चूक के कारण कोई नुकसान या चोट लगी है जिसके लिए आरोपी व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है और अभिव्यक्ति "पीड़ित" में उसका अभिभावक या कानूनी उत्तराधिकारी शामिल है।

26. परिभाषा कहती है कि पीड़ित का अर्थ है एक ऐसे व्यक्ति का अर्थ है जिसे आरोपी व्यक्ति के कारण कोई नुकसान या चोट लगी है और इसमें उसके अभिभावक या कानूनी उत्तराधिकारी शामिल हैं। जहां तक चोट का संबंध है जिसे भ०द०वि० की धारा 44 के तहत

परिभाषित किया गया है और उसी का संदर्भ द०प्र०स० की धारा 2(वाई) के प्रावधान के अनुसार लिया जा सकता है।

"चोट" शब्द किसी भी नुकसान को दर्शाता है जो किसी भी व्यक्ति, शरीर, मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति में अवैध रूप से हुआ है।

27. चोट की परिभाषा के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि चोट, अवैध रूप से किसी भी व्यक्ति को, मन, शरीर, प्रतिष्ठा या संपत्ति में किसी भी नुकसान को दर्शाती है। मामला यह है कि भतीजी की मौत प्रतिवादी संख्या-3 और अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसकी गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। भतीजी, वंशिका दिल्ली में लंबे समय तक अपने चाचा के साथ रहती थी क्योंकि आवेदकों का परिवार एक संयुक्त परिवार है। घटना के तीन दिन बाद न केवल भतीजी की गोली मारकर हत्या कर दी गई, बल्कि उसकी डेढ़ साल की बच्ची मोनिशा ने दम तोड़ दिया। स्वाभाविक रूप से, इस घटना ने मृतका के चाचा के दिमाग में नुकसान पहुंचाया होगा और इस प्रकार इसे कहा जा सकता है कि आवेदक संख्या-1 भी धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० में दी गई परिभाषा के संदर्भ में पीड़ित है क्योंकि यह कहा गया है कि एक व्यक्ति जिसे आरोपी व्यक्ति द्वारा नुकसान या चोट लगी है, पीड़ित होगा और पीड़ित में उसके अभिभावक या कानूनी उत्तराधिकारी शामिल होंगे। इस दृष्टि से, यह पहली बार में कहा जा सकता है कि चाचा जो आवेदक संख्या-1 हैं, को चोटें आईं, जिससे उनके दिमाग को नुकसान पहुंचा और इस तरह एक अभिभावक होने के नाते वह घटना का शिकार हैं।

28. यह एक ट्राइट/स्थापित कानून है कि पीड़ित को अपराध की घटना के बाद हर कदम पर सुनवाई का कानूनी निहित अधिकार है और पीड़ित की जांच के चरण से लेकर अपील या पुनरीक्षण में कार्यवाही की परिणति तक भागीदारी होती है। इस प्रकार, यह इस देश के सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी कानून है और इसलिए प्रश्न संख्या-1 का सकारात्मक उत्तर दिया गया है कि पीड़ित को जांच के चरण से शुरू होने वाली आपराधिक कार्यवाही में तब तक भाग लेने का पूरा अधिकार है जब तक कि अपील या पुनरीक्षण अपनी अंतिम स्थिति तक नहीं पहुंच जाता।

29. अगला प्रश्न कुछ हद तक पहले प्रश्न से भी संबंधित है कि क्या आवेदक संख्या-1, जो मृतका का चाचा है, को मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, और यदि इसे पीड़ित की परिभाषा के दायरे में देखा जाता है और परिभाषा के दायरे में जांच की जाती है, यह उभरता है कि मृतका आवेदक संख्या-1 की भतीजी है और वह काफी समय से दिल्ली में आवेदक संख्या-1 के साथ रह रही थी। अतः आवेदक संख्या-1 और मृतका अर्थात् वंशिका के बीच कुछ भावनात्मक संबंध होना चाहिए, और यह एक स्वाभाविक परिणाम है कि यदि कोई मनुष्य किसी अन्य के साथ स्नेह करता है और दूसरे पक्ष के साथ कुछ होता है, तो ऐसे व्यक्ति के मन में चोट होनी चाहिए और इसलिए वर्तमान परिदृश्य में इसका खंडन नहीं किया जा सकता है। साथ ही चूंकि आवेदक संख्या-1 चाचा है और मृतका उसके साथ रह रही थी और एक बार जब उसकी गोली मारकर हत्या कर दी गई,

तो आवेदक संख्या-1 के मन में मानसिक पीड़ा और नुकसान होता और इसलिए, निस्संदेह उसे धारा 2(डब्ल्यूए) द०प्र०स० के तहत परिकल्पित पीड़िता की परिभाषा के दायरे में आना चाहिए और इस प्रकार, दूसरे प्रश्न का उत्तर भी सकारात्मक है।

30. जहां तक निर्णय या आदेश को संशोधित करने या समीक्षा करने के लिए आपराधिक कार्यवाही में आपराधिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के संबंध में तीसरे प्रश्न का संबंध है, कानून अच्छी तरह से तय है कि इस तरह के आदेश या निर्णय को उसी न्यायालय द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता है जब तक कि अन्यथा किसी भी कानून में समय जबरन या उच्चतर न्यायालयों द्वारा पारित किसी भी निर्देश या आदेश में और प्रस्तुत मामले में इस तरह के किसी भी प्रावधान या निर्देश के लिए, सत्र न्यायालय के पास पूर्ववर्ती न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को फिर से देखने/संशोधित करने की कोई शक्ति नहीं थी, जबकि आवेदक के आवेदन को स्वीकार करते हुए उसे मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी गई थी।

31. उपर्युक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत आवेदन में योग्यता है। परिणामस्वरूप, केस अपराध संख्या-25 वर्ष 2005 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-375 वर्ष 2007 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-IV, लखनऊ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 26.05.2023 को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

32. विचारण न्यायालय को पूर्ववर्ती न्यायाधीश के पहले के आदेश के अनुसार कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है जिसके द्वारा प्रस्तुत आवेदकों को मुकदमे की कार्यवाही में अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी।

33. यह अदालत उम्मीद करती है कि विचारण न्यायालय सकारात्मक रूप से आवेदकों को मुकदमे की कार्यवाही में अपने अधिवक्ता के माध्यम से अनुमति देगा और मुकदमे को समाप्त करने का प्रयास करेगा।

34. इसके अलावा, आवेदकों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे किसी भी स्थगन की मांग न करें और जल्द से जल्द अपने तर्कों को समाप्त करके मुकदमे की कार्यवाही में सहयोग करें।

35. पूर्वोक्त अवलोकन और निर्देशों के साथ, प्रस्तुत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 7 ILRA 681

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

9143 सन् 2023

सलमान हाशमी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...आवेदक

...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: अयोध्या प्रसाद मिश्रा
ए.पी. मिश्रा, जयलक्ष्मी उपाध्याय, ऋतुराज मिश्रा

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि - नारकोटिक ड्रग्स और साइकोट्रोपिक पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 12 और 23 - स्वीकारोक्ति कथन के अलावा कोई आरोप नहीं - ट्रामाडोल की कथित बरामदगी - धारा 12 के तहत अपराध को केवल मौके पर बरामदगी और आवेदक की ओर इशारा करने से नहीं कहा जा सकता - जैसा कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है - धारा 23 की आवश्यकताएं प्रथम दृष्टया पूरी नहीं हुई हैं - एक बार धारा 12 के आरोप साबित नहीं होते हैं - प्रथम दृष्टया धारा 24 के तहत अपराध मुकदमे में टिकने योग्य नहीं है, कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है - जमानत पर छूट पाने का हकदार। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भारत संघ बनाम बालमुकुंद एवं अन्य 2009 (12) एससीसी 161
2. मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) 2023 लाइव लॉ (एससी) 260
3. रंजीतसिंह ब्रह्मजीत सिंह शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2005) 5 एससीसी 294.

(न्यायाधीश न्यायमूर्ति माननीय पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. प्रश्नगत प्राथमिकी केस अपराध संख्या-0178 वर्ष 2023 के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66 सपठित धारा 419, 420 भ०द०वि० और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 12, 23, 24 के तहत थाना-वजीरगंज, जिला-लखनऊ में दर्ज की गई थी। अभिलेख पर दर्ज प्राथमिकी में शामिल संस्करण से पता चलता है कि विभाग द्वारा नकदी, मोबाइल, लैपटॉप, वाहन महिंद्रा स्कॉर्पियो के साथ-साथ एक स्कूटी के अलावा कथित रूप से प्रतिबंधित ड्रग ट्रामाडोल की 370 स्ट्रिप्स (पत्तों) की बरामदगी हुई थी। प्राथमिकी में आरोप है कि जानकारी मिली थी कि लखनऊ के आसपास प्रतिबंधित नशीला दवाएं ऑनलाइन बेची जा रही थीं और ऑनलाइन खरीदी जा रही थीं और उक्त व्यवसाय से भारी पैसा बनाया जा रहा था। उक्त सूचना के आधार पर एक टीम गठित कर सूचनाकर्ता से प्राप्त सूचना के आधार पर उक्त धंधा कॉल सेंटर के माध्यम से ऑनलाइन किया जा रहा है। एक टीम का गठन किया गया था जिसमें 6 से 7 व्यक्ति शामिल थे। यह आगे रिकॉर्ड करता है कि 13.6.2023 को, एक सूचना मिली थी कि गिरोह का एक किंग पिन यानी सलमान हाशमी आवेदक अपने साथी के साथ कैसरबाग फ्लैट में उपलब्ध था, जहां उक्त सलमान हाशमी कॉल सेंटर चलाते हैं। उक्त सूचना पाकर एक टीम गठित की गई जो सरकारी वाहन पर सवार होकर गई। प्राथमिकी के अनुसार, मुखबिर ने आगे बताया

कि आवेदक दवा बेचने के लिए फ्लैट में इकट्ठा हुआ है। तत्पश्चात्, यह अभिलिखित किया गया है कि औषध निरीक्षक को सूचित किया गया था और वह आया था और उसे सूचित किया गया था कि वे प्रश्नगत फ्लैट में तलाशी लेने जा रहे हैं। उस स्थान पर पहुंचने पर, आवेदक सहित दो व्यक्ति उपस्थित थे और उनके नाम पूछने पर, उन्होंने अपना नाम सलमान हाशमी बताया और स्वीकार किया कि वे अंतर्राष्ट्रीय गिरोह के माध्यम से प्रतिबंधित दवाएं बेचते हैं।

3. आवेदक द्वारा कथित तौर पर यह स्वीकार किया गया था कि वे अपने ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसे- सोमा ऑनलाइन खरीदें, ओवरनाइट डिलीवरी, सोमा मेड खरीदें, ऑनलाइन मेड गुरु-सोमा ज़ैनक्स ऑनलाइन खरीदें, ट्रामाडोल ऑनलाइन खरीदें और ऑनलाइन मेड केयर के माध्यम से प्रतिबंधित दवाओं को बेचते थे। यह भी दर्ज है कि आवेदक ने स्वीकार किया कि वह उक्त प्रतिबंधित दवाओं को उपलब्ध कराता था। उसके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया था कि उसके खाते में उक्त प्रतिबंधित दवा के पैसे आ जाते थे। यह कथित तौर पर स्वीकार किया गया था कि आवेदक भारत और दुनिया भर में ड्रग्स बेचता था और बहुत मुनाफा कमाता था। यह भी दर्ज किया गया है कि आवेदक ने अपने साथी के रूप में एक 'अल-जैद' का नाम लिया। उक्त बरामदगी में उ.प्र. बार काउंसिल का पहचान पत्र, एटीएम कार्ड और मोबाइल, कलाई घड़ी और लैपटॉप व सर्विस टैग बरामद किया गया। यह भी दर्ज है कि आवेदक ने सूचित किया कि उसने उक्त

व्यवसाय के लाभ से वाहन खरीदा है। अन्य सहयोगी अल-जैद के पास से आधार कार्ड, एटीएम कार्ड, मोबाइल फोन सहित कुछ बरामदगी बरामद की गई।

4. उक्त प्रस्तुतियों के आधार पर, जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, प्राथमिकी में आगे कहा गया है कि एक दृष्टिकोण बनाया गया है कि आवेदक ट्रामाडोल नामक दवा के आयात और निर्यात में शामिल है। इसमें आगे कहा गया है कि बरामद किए गए मोबाइलों से कई चैट दिखाए गए और साथ ही खरीदारों की सूची भी सामने आई। यह भी रिकॉर्ड करता है कि उक्त दवा ट्रामाडोल की पर्याप्त मात्रा उस वाहन में रखी गई थी जिसे फ्लैट में बरामद किया गया था, यह आगे रिकॉर्ड करता है कि ड्रग इंस्पेक्टर जो टीम के साथ गए थे, का निरीक्षण पर यह विचार था कि ट्रामाडोल दवा किसी भी व्यक्ति द्वारा निर्धारित मात्रा से अधिक नहीं रखी जा सकती है। यह भी दर्ज किया गया है कि उक्त दवा ट्रामाडोल पर, बैच संख्या, निर्माण की तारीख और समाप्ति (एक्सपायरी) का उल्लेख नहीं किया गया था। कथित तौर पर बरामद किए गए ट्रामाडोल की कुल मात्रा टैबलेट-ट्रामेफ की 370 स्ट्रिप्स, टैबलेट-ट्रामेसेट की 40 स्ट्रिप्स और अल्ट्रा किंग की 10 स्ट्रिप्स, नेक्सडॉल-पी की 260 गोलियां थीं, जो प्राथमिकी के अनुसार वाणिज्यिक मात्रा से अधिक थीं। यह भी दर्ज किया गया है कि 26.4.2018 के शासनादेश के अनुसार ट्रामाडोल की छोटी मात्रा 5 ग्राम और वाणिज्यिक मात्रा 250 ग्राम है। यह भी रिकॉर्ड करता है कि ट्रामेफाप, ट्रामासेट, नेक्सडोल-पी और अल्ट्रा किंग टैबलेट से कोई नमूना नहीं

लिया गया था और कुल नमूने में से 10-10 स्ट्रिप्स विश्लेषण के लिए लिए गए थे और उन्हें इस तरह देखा गया था कि आवेदक पर धारा 419, 420 भ०द०वि० और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 12, 23, 24 सपठित आई.टी अधिनियम की धारा 66 के तहत आरोप लगाया गया था।

5. आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि आवेदक एक अधिवक्ता है और पुलिस के साथ विवाद के कारण उसे झूठा फंसाया गया है। उनका तर्क है कि उक्त इतिहास में जाने के बिना, प्रथम दृष्टया प्राथमिकी में वर्णित अपराध नहीं बनता है। उक्त तर्कों के समर्थन में, वह सबसे पहले आई.टी. अधिनियम की धारा 66 की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं, जो बेईमानी और कपटपूर्ण इरादे से धारा 43 के तहत अपराध करने के लिए सजा का प्रावधान करता है। इसके बाद वह आई.टी. अधिनियम की धारा 43 की ओर ध्यान आकर्षित करता है, जो कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम आदि के मालिक या अन्य व्यक्ति की अनुमति के बिना कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम आदि के नुकसान के लिए दंड का प्रावधान करता है, जो कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क का प्रभारी है। आई.टी. अधिनियम की धारा 43 और 66 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"धारा 43। कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम, आदि को नुकसान के लिए जुर्माना और मुआवजा - यदि कोई व्यक्ति मालिक या किसी अन्य व्यक्ति की अनुमति के बिना जो कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क का प्रभारी है, -

(ए) ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क [या कंप्यूटर संसाधन] तक पहुंच या पहुंच को सुरक्षित करता है;

(ख) ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क से किसी डेटा, कंप्यूटर डाटाबेस या सूचना को डाउनलोड, कॉपी या निष्कर्षण, जिसमें किसी भी हटाने योग्य भंडारण माध्यम में रखी गई या संग्रहीत जानकारी शामिल है;

(ग) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क में किसी भी कंप्यूटर संदूषक या कंप्यूटर वायरस को पेश करता है;

(घ) ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क, डेटा, कंप्यूटर डाटाबेस या ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क में रहने वाले किसी अन्य प्रोग्राम को नुकसान पहुंचाता है या क्षतिग्रस्त कारित करता है;

(ङ) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क को बाधित करता है या उसमें व्यवधान कारित करता है;

(च) किसी भी माध्यम से किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क तक पहुंचने के लिए अधिकृत किसी व्यक्ति तक पहुंच से इनकार करता है या इनकार करता है;

(छ) इस अधिनियम, इसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के उल्लंघन में कम्प्यूटर, कम्प्यूटर सिस्टम या कम्प्यूटर नेटवर्क तक अभिगम को सुकर बनाने के लिए किसी व्यक्ति को कोई सहायता प्रदान करेगा;

(ज) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क के साथ छेड़छाड़ या हेरफेर करके किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के खाते में प्राप्त सेवाओं को चार्ज करता है,

(i) किसी कंप्यूटर संसाधन में रहने वाली किसी सूचना को नष्ट, हटाता या परिवर्तित करता है या उसके मूल्य या उपयोगिता को कम करता है या उसे किसी भी तरह से हानिकारक रूप से प्रभावित करता है]

(ज) क्षति कारित करने के आशय से किसी कंप्यूटर संसाधन के लिए प्रयुक्त किसी कंप्यूटर स्रोत कोड को चुराना, छिपाना, नष्ट करना या परिवर्तित करना या परिवर्तित करना या उससे करवाना] 48 [वह इस प्रकार प्रभावित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति के रूप में क्षतिपूत का भुगतान करने के लिए दायी होगा]।

स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, -

(i) "कंप्यूटर संदूषक" का अर्थ है कंप्यूटर निर्देशों का कोई भी सेट जो डिज़ाइन किया गया है-

(क) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क के भीतर रहने वाले डेटा या प्रोग्राम को संशोधित करना, नष्ट करना, रिकॉर्ड करना, संचारित करना; नहीं तो

(बी) किसी भी तरह से कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क के सामान्य संचालन को हड़पने के लिए;

(ii) "कंप्यूटर डेटाबेस" का अर्थ है पाठ, छवि, ऑडियो, वीडियो में सूचना, ज्ञान, तथ्यों, अवधारणाओं या निर्देशों का प्रतिनिधित्व जो तैयार किए जा रहे हैं या औपचारिक तरीके से तैयार किए गए हैं या कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क द्वारा उत्पादित किए गए हैं और कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क में उपयोग के लिए अभिप्रेत हैं;

(iii) "कंप्यूटर वायरस" का अर्थ है कोई भी कंप्यूटर अनुदेश, सूचना, डेटा या प्रोग्राम जो कंप्यूटर संसाधन के प्रदर्शन को नष्ट कर देता है, क्षति पहुंचाता है, नीचा दिखाता है या प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है या खुद को किसी अन्य कंप्यूटर संसाधन से जोड़ता है और तब संचालित होता है जब कोई प्रोग्राम, डेटा या निर्देश निष्पादित किया जाता है या उस कंप्यूटर संसाधन में कुछ अन्य घटना होती है;

(iv) "क्षति" से किसी भी तरह से किसी कंप्यूटर संसाधन को नष्ट करना, बदलना, हटाना, जोड़ना, संशोधित करना या पुनर्व्यवस्थित करना अभिप्रेत है; [

(v) "कंप्यूटर स्रोत कोड" का अर्थ है किसी भी रूप में कंप्यूटर संसाधन के कार्यक्रमों की सूची, कंप्यूटर कमांड, डिजाइन और लेआउट और कार्यक्रम विश्लेषण।

धारा 66. कंप्यूटर से संबंधित अपराध- यदि कोई व्यक्ति, बेईमानी से या कपटपूर्ण रूप से, धारा 43 में निर्दिष्ट कोई कार्य करता है, तो वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो पाँच लाख रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से, दंडनीय होगा।

स्पष्टीकरण.--इस खंड के प्रयोजनों के लिए,--

(क) शब्द "बेईमानी" का वही अर्थ होगा जो उसे भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 24 में सौंपा गया है;"

6. आवेदक के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि तर्कों के लिए, यदि सभी आरोपों को सुसमाचार सत्य माना जाता है, तो आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत कोई अपराध नहीं कहा जा सकता है। अन्यथा भी उनका तर्क है कि आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत निर्धारित सजा तीन साल है, इस प्रकार, आवेदक जमानत पर विस्तार का हकदार है।

7. जहां तक धारा 419 और 420 भ०द०वि० का संबंध है, आवेदक के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि धारा 419 और 420 भ०द०वि० के तहत आरोप धारण करने के लिए, यह आवश्यक है कि धारा 415 की सामग्री आवश्यक रूप से बनाई जानी चाहिए। वह मुझे भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के बारे में बताते हैं जो धोखाधड़ी को परिभाषित करती है और यह उपबंध करती है कि जो कोई व्यक्ति बेईमानी करके किसी व्यक्ति को कोई सम्पत्ति देने के लिए इस प्रकार धोखेबाजी

करता है और इस प्रकार यथा विहित अधिनियम भारतीय दंड संहिता की धारा 419 और 420 के अंतर्गत दण्ड का भागी होगा। उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्राथमिकी के महज पढ़ने से, भले ही सभी आरोपों को सच माना जाए, धारा 415 के तहत परिभाषित कोई अपराध नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार, आवेदक पर धारा 419 और 420 भ०द०वि०के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

8. आवेदक के अधिवक्ता तब मुझे एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 12, 23 और 24 के जनादेश पर ले जाते हैं।

"12. स्वापक औषधियों और मनप्रभावी पदार्थों में बाह्य लेन-देन पर निर्बन्धन - कोई व्यक्ति ऐसे किसी व्यापार में संलग्न या नियंत्रित नहीं होगा जिसके द्वारा कोई स्वापक औषधि या मनप्रभावी पदार्थ भारत के बाहर प्राप्त किया जाता है और भारत से बाहर किसी व्यक्ति को आपूर्ति की जाती है, सिवाय केन्द्रीय सरकार के पूर्व प्राधिकार के और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त उस सरकार द्वारा अधिरोपित की जाएँ।"

9. इस प्रकार, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 12, किसी भी व्यक्ति को किसी भी ऐसे व्यापार में संलग्न होने या नियंत्रित करने से रोकती है जिसके द्वारा एक मादक दवा या साइकोट्रोपिक पदार्थ भारत के बाहर प्राप्त किया जाता है और केंद्र सरकार की मंजूरी के बिना भारत के बाहर किसी भी व्यक्ति को आपूर्ति की जाती है। उक्त के आलोक में,

आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि कोई आरोप नहीं है, भले ही तर्कों के लिए, लगाए गए आरोपों को सही माना जाए कि कोई ट्रामाडोल टैबलेट भारत के बाहर से खरीदा गया था और भारत के बाहर किसी भी व्यक्ति को बेचा गया था और इस प्रकार, प्रथम दृष्टया, धारा 12 को आवेदक के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता है।

10. वह आगे एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 23 और 24 पर मेरा ध्यान आकर्षित करता है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 23 जो निम्नानुसार है:

"23. भारत में अवैध आयात, भारत से निर्यात या स्वापक दवाओं और मनप्रभावी पदार्थों के यानांतरण के लिए सजा- जो कोई भी इस अधिनियम के किसी प्रावधान या किए गए किसी नियम या आदेश या लाइसेंस या परमिट की शर्त या उसके तहत जारी किए गए प्रमाण पत्र या प्राधिकरण के उल्लंघन में, भारत में आयात या भारत से निर्यात करता है या किसी भी स्वापक औषधि या मनप्रभावी पदार्थ को स्थानांतरित करता है, दंडनीय होगा, -

(ए) जहां उल्लंघन में छोटी मात्रा शामिल है, एक अवधि के लिए कठोर कारावास के साथ जो छह महीने तक का हो सकता है, या जुर्माना के साथ, जो दस हजार रुपये तक का हो सकता है या दोनों के साथ;

(ख) जहां उल्लंघन में वाणिज्यिक मात्रा से कम लेकिन छोटी मात्रा से अधिक मात्रा शामिल है, एक अवधि के लिए कठोर कारावास के साथ

जो दस साल तक का हो सकता है, और जुर्माने के साथ; जो एक लाख रुपये तक बढ़ सकता है;

(ग) जहां उल्लंघन में वाणिज्यिक मात्रा अंतर्वर्तित है, जिसमें ऐसी अवधि के लिए कठोर कारावास जिसका मूल्य दस वर्ष से अन्यून होगा किन्तु जो बीस वर्ष तक का हो सकेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा जो एक लाख रुपए से कम नहीं होगा किन्तु जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा।

परन्तु न्यायालय निर्णय में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए दो लाख रुपए से अधिक का जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा।

11. उक्त धारा भारत में अवैध आयात और भारत से निर्यात या नारकोटिक ड्रग या साइकोट्रोपिक पदार्थों के ट्रांस-शिपमेंट के लिए रोक और सजा प्रदान करती है। उनका तर्क है कि धारा 23 के तहत आयात और निर्यात वाक्यांश को अधिनियम के तहत परिभाषित नहीं किया गया है और इस प्रकार, सीमा शुल्क अधिनियम के तहत दिए गए अर्थ को ध्यान में रखना होगा। उनका तर्क है कि प्राथमिकी में आवेदक के खिलाफ भारत में कुछ भी आयात करने या भारत से बाहर कुछ भी निर्यात करने का कोई आरोप नहीं है और इस प्रकार, कोई अपराध नहीं कहा जा सकता है, जो धारा 23 के तहत दंडनीय है।

12. इसके बाद वह मुझे एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 24 के जनादेश पर ले जाते हैं, जो धारा 12 के उल्लंघन में नशीले

पदार्थों और साइकोट्रोपिक पदार्थों के बाहरी कारोबार में शामिल किसी भी व्यक्ति को सजा देने के लिए निर्धारित करता है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 24 इस प्रकार है:

"धारा 12 के उल्लंघन में स्वापक दवाओं और मनप्रभावी पदार्थों में बाहरी व्यवहार के लिए सजा- जो कोई भी किसी ऐसे व्यापार में संलग्न या नियंत्रित करता है जिसके द्वारा एक स्वापक दवा या एक साइकोट्रोपिक पदार्थ भारत के बाहर प्राप्त किया जाता है और भारत के बाहर किसी भी व्यक्ति को केंद्र सरकार के पूर्व प्राधिकरण के बिना या अन्यथा धारा 12 के तहत दिए गए ऐसे प्राधिकरण की शर्तों (यदि कोई हो) के अनुसार आपूर्ति की जाती है, भारतीय दंड संहिता की धारा 10 वर्ष से अन्यून किन्तु बीस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दंडनीय होगी जो एक लाख रुपए से कम नहीं होगी किन्तु दो लाख रुपए तक की हो सकेगी;

परन्तु न्यायालय निर्णय में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए दो लाख रुपए से अधिक का जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा।

13. उनका तर्क है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 24 को कभी भी अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है, इसे धारा 12 के साथ संयोजन में पढ़ा जाना चाहिए और एक बार धारा 12 की स्थिति प्रथम दृष्टया लागू करने योग्य नहीं है, धारा 24 की कोई प्रासंगिकता नहीं होगी। वह आगे तर्क देता है कि भले ही तर्कों के लिए, सभी आरोपों को सच माना जाता है, जिस तरह से मात्रा के संबंध में एक

विश्वास का गठन किया गया है, वह पूरी तरह से गलत है क्योंकि रासायनिक ट्रामाडोल हमेशा मिलीग्राम में मात्रा निर्धारित किया जाता है, जबकि प्रस्तुत मामले में, रासायनिक ट्रामाडोल की मात्रा निर्धारित करने का ऐसा कोई अभ्यास नहीं किया गया था और मात्रा का ठहराव पूरी तरह से ट्रामाडोल के वजन पर आधारित था जो इसके विपरीत है भारत संघ बनाम बालमुकुंद और अन्य 2009 (12) एस.सी.सी. 161 के मामले में निर्धारित कानून। वह अंत में तर्क देता है कि आवेदक का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है और उसे जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए।

14. अपर शासकीय अधिवक्ता यह तर्क देकर जमानत आवेदन का जोरदार विरोध करता है कि यह अच्छी तरह से तय है कि जमानत देने से पहले एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37 के जनादेश को संतुष्ट किया जाना चाहिए और धारा 37(1)(बी)(ii) के तहत निर्धारित शर्तों को जमानत आवेदन पर विचार करते समय आवश्यक रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37 निम्नानुसार है:

"37. अपराधों का संज्ञेय और गैर-जमानती होना

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी, -

(क) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा;

(ख) धारा 19 या धारा 24 या धारा 27क के अधीन दंडनीय अपराध के अभियुक्त किसी

व्यक्ति को जमानत पर या उसके स्वयं के बंधपत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक-

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है, और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय का समाधान हो जाता है कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(2) उपधारा (1) के खंड (बी) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) या जमानत देने पर तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के तहत सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

15. धारा 37(1)(बी)(ii) के तहत निर्धारित शर्तों को अनिवार्य रूप से धारा 24 के तहत अपराधों के संबंध में और वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े अपराध के लिए भी देखा जाना है। वाक्यांश "यह विश्वास करने के लिए उचित आधार कि वह दोषी नहीं है" मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी) 2023 लाइव लॉ (एस.सी.) 260 के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचार के लिए, जिसमें उच्चतम न्यायालय के पास 'उचित आधार' वाक्यांश के दायरे पर विचार करने का अवसर था, जिसे उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार माना था: -

"18. अदालतों को जिन शर्तों का संज्ञान लेना होगा, वे हैं कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त "ऐसे अपराध का दोषी नहीं है" और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। "दोषी नहीं" का क्या मतलब है जब सभी सबूत अदालत के सामने नहीं हैं? यह केवल प्रथम दृष्टया निर्धारण हो सकता है। यह अदालत के विवेकाधिकार को बहुत कम अंतर में रखता है। जमानत पर सामान्य कानून (धारा 436, 437 और 439, द०प्र०स०) के जनादेश को देखते हुए, जो अपराधों को उनकी गंभीरता के आधार पर वर्गीकृत करता है, और निर्देश देता है कि जमानत आवेदनों पर विचार करते समय कुछ गंभीर अपराधों से अलग तरीके से निपटा जाना चाहिए, अतिरिक्त शर्त यह है कि अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त (जिसे कानून में निर्दोष माना जाता है) दोषी नहीं है, इसकी यथोचित व्याख्या की जानी चाहिए। इसके अलावा, विशेष अधिनियमों (एन.डी.पी.एस. अधिनियम, आदि) के तहत अपराधों का वर्गीकरण, जो अदालतों द्वारा मूल्यांकन किए जाने के लिए आवश्यक सामान्य जमानत शर्तों के ऊपर और ऊपर लागू होता है, के लिए आवश्यक है कि अदालत अपनी संतुष्टि दर्ज करे कि अभियुक्त अपराध का दोषी नहीं हो सकता है और रिहाई पर, उनके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। इन दो स्थितियों में अन्य स्थितियों की देखरेख करने का प्रभाव पड़ता है। जिन मामलों में जमानत मांगी जाती है, अदालत रिकॉर्ड पर सामग्री का आकलन करती है जैसे कि अपराध की प्रकृति, आरोपी द्वारा जांच में सहयोग करने की संभावना, न्याय से भाग नहीं रहा है: यहां तक

कि हत्या, अपहरण, बलात्कार, आदि जैसे गंभीर अपराधों में भी। दूसरी ओर, ऐसे विशेष अधिनियमों के तहत इन मामलों में अदालत को मुख्य रूप से दो तथ्यों पर खुद को संबोधित करना होता है: अभियुक्तों का संभावित अपराध और रिहाई पर उनके द्वारा कोई अपराध नहीं करने की संभावना। इस अदालत ने आम तौर पर इस आधार पर ऐसी शर्तों को बरकरार रखा है कि ऐसे नागरिकों की स्वतंत्रता - उन मामलों में जब विशेष कानूनों के तहत अधिनियमित अपराधों के आरोपी हों - सार्वजनिक हित के खिलाफ संतुलित होना चाहिए।

19. धारा 37 के तहत शर्तों की एक सादा और शाब्दिक व्याख्या (यानी, उस न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त दोषी नहीं है और कोई अपराध नहीं करेगा) प्रभावी रूप से जमानत देने को पूरी तरह से बाहर कर देगा, जिसके परिणामस्वरूप दंडात्मक निरोध और अस्वीकृत निवारक निरोध भी होगा। इसलिए, धारा 37 के तहत अधिनियमित ऐसी विशेष शर्तों को संवैधानिक मापदंडों के भीतर माना जा सकता है, जहां अदालत रिकॉर्ड पर सामग्री (जब भी जमानत आवेदन किया जाता है) को देखने पर यथोचित रूप से संतुष्ट होती है कि अभियुक्त दोषी नहीं है। किसी भी अन्य व्याख्या के परिणामस्वरूप एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37 के तहत अधिनियमित अपराधों के आरोपी व्यक्ति को जमानत से पूरी तरह से इनकार कर दिया जाएगा।

20. मानक इसलिए माना जा सकता है, एक है, जहां अदालत एक व्यापक तरीके से सामग्री

को देखे, और यथोचित आरोपी के अपराध साबित किया जा सकता है कि क्या देखा। इसलिए, इस न्यायालय के निर्णयों ने इस बात पर जोर दिया है कि अदालतों से जो संतुष्टि दर्ज करने की उम्मीद की जाती है, अर्थात्, अभियुक्त दोषी नहीं हो सकता है, वह केवल प्रथम दृष्टया है, जो उचित रीडिंग पर आधारित है, जिसमें विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता नहीं है (जैसा कि भारत संघ बनाम रतन मलिक में अवधारित किया गया है)। मुकदमे में अनुचित देरी के आधार पर जमानत देना, अधिनियम की धारा 37 द्वारा बाधित नहीं कहा जा सकता है, धारा 436 ए की अनिवार्यता को देखते हुए, जो एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अपराधों पर भी लागू होता है (संदर्भ सतेंद्र कुमार अंतिल उपरोक्त)। इन कारकों के संबंध में 19 (2009)2 एस.सी.सी. 624 होने के बाद, अदालत की राय है कि इस मामले के तथ्यों में, अपीलकर्ता जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है।

16. जुड़वां शर्तों के दूसरे भाग के संबंध में, उनका तर्क है कि एक बार आवेदक के पास कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है, तो निष्कर्ष को आपराधिक पूर्ववृत्त के आधार पर दर्ज किया जाना चाहिए जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने (रणजीतसिंह ब्रह्मजीत शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य)(2005) 5 एस.सी.सी. 294 में अवधारित किया था।

17. उक्त दोहरी शर्तों को ध्यान में रखते हुए, यह विश्वास करने के लिए उचित आधार कि

आवेदक दोषी नहीं है, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 12, 23 और 24 के विश्लेषण पर, जैसा कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है और ऊपर दर्ज किया गया है, प्रथम दृष्टया कोई आरोप नहीं है कि आवेदक बाहर से आयात करता था और बाहर बेचता था, सिवाय धारा 67 द०प्र०स० के तहत इकबालिया बयान के। ट्रामाडोल की कथित बरामदगी, अपने आप में यह दर्शाती है कि धारा 12 के तहत अपराध को केवल ट्रामाडोल की बरामदगी और आवेदक को इंगित करके नहीं कहा जा सकता है जैसा कि प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है। प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों के संदर्भ में धारा 23 की आवश्यकताओं को भी प्रथम दृष्टया पूरा नहीं किया गया है क्योंकि यह आरोप लगाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि आवेदक द्वारा भारत में कोई कानूनी आयात किया गया था या भारत से निर्यात किया गया था। एक बार धारा 12 के आरोप नहीं लगाए जाने के बाद, प्रथम दृष्टया एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 24 के तहत दंडनीय अपराध भी मुकदमे में कायम नहीं रह सकता है, इस प्रकार, मेरे पास यह मानने के कारण हैं कि प्रथम दृष्टया आवेदक अपराध का दोषी नहीं है और अभियोजन पक्ष मुकदमे के समय अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं हो सकता है जैसा कि मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था।

18. अपर शासकीय अधिवक्ता का तर्क यह है कि मोबाइल फोन से कुछ चैट की खोज की गई थी और खरीदारों की सूची मोबाइल फोन

से खोजी गई थी। हालांकि, उक्त चैट और सूची की बरामदगी, अकेले ट्रामाडोल की बरामदगी के आधार पर भारत से आयात और निर्यात या भारत के बाहर खरीद/बिक्री का आरोप लगाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती है, इस प्रकार, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि अभियोजन पक्ष साक्ष्य के साथ मुकदमे को बनाए रखने में सक्षम नहीं हो सकता है।

19. यह स्पष्ट किया जाता है कि की गई ये टिप्पणियां अस्थायी हैं और विचारण न्यायालय को दर्ज की गई इन टिप्पणियों से प्रभावित नहीं होना चाहिए जो केवल इस स्तर पर जमानत पर विचार करने के लिए दर्ज की जा रही हैं।

20. धारा 37 के तहत निर्धारित दोहरी शर्तों की दूसरी शर्त, आवेदक के पक्ष में भी दर्ज की जा सकती है क्योंकि उसके पास कोई पिछला आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है, इस प्रकार, दोनों आधारों पर इस तथ्य के साथ युग्मित है कि आवेदक का कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है, जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है। इसके अंतर्गत विनिर्दिष्ट जमानत की शर्तों के अलावा, आवेदक अपना पासपोर्ट भी सरेंडर करेगा और संबंधित न्यायालय की अनुमति के बिना भारत से बाहर नहीं जाएगा।

21. आवेदक सलमान हाशमी को मामला अपराध संख्या-0178 वर्ष 2023 में आई.टी. अधिनियम की धारा 66 सपठित धारा 419, 420 भ०द०वि० के तहत और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 12, 23 और 24 के तहत

थाना-वजीरगंज, जिला-लखनऊ के अधीन उसके द्वारा एक व्यक्तिगत बांड और दो विश्वसनीय ज़ामिनान प्रस्तुत करने के अधीन निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए प्रत्येक राशि पर जमानत पर रिहा किया जाए।

(ए) आवेदक सुनवाई में भाग लेने के लिए एक बांड निष्पादित करेगा;

(ख) आवेदक उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसके लिए वह अभियुक्त है

या कारित करने का संदिग्ध है; और

(ग) आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की जा सके।

(2023) 7 ILRA 689

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

12441 सन् 2022

राम प्रेम एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

आवेदकों के अधिवक्ता: रंजीत कुमार, देश मित्र आनंद

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 437 - धारा 439 सीआरपीसी के तहत आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि आवेदक हिरासत में नहीं हैं - आवेदकों को मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने और धारा 437 सीआरपीसी के तहत एक नया आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी - खारिज - आवेदकों ने धारा 437 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन दायर किया था जिसमें उपरोक्त मामले में जमानत पर रिहाई की मांग की गई थी - यह दर्ज करने के बाद खारिज कर दिया गया कि आवेदक न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं थे। आवेदकों के खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट - पुलिस द्वारा एक रिपोर्ट के साथ वापस कर दिया गया कि आवेदकों पर इसकी तामील नहीं की जा सकी - तामील से बचने के लिए। जमानत पर रिहा होने के लिए उसके अनुरोध हेतु केवल न्यायालय में उपस्थित होना अथवा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होना आवश्यक है तथा धारा कोई अन्य अनिवार्य शर्त निर्धारित नहीं करती है- धारा 437 सीआरपीसी के अंतर्गत नया आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई।

आवेदन का निपटारा किया गया। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सतेंद्र कुमार अंटिल बनाम केन्द्रीय जांच ब्यूरो, (2021) 10 एससीसी 773

2. महाराष्ट्र राज्य बनाम रामदास श्रीनिवास नायक, (1982) 2 एससीसी 463

3. भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पलिताना चीनी मिल्स प्रा. लिमिटेड बनाम एवं अन्य, (2003) 2 एससीसी 111

4. निरंजन सिंह बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे, (1980) 2 एससीसी 559

5. संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 16 एससीसी 623

6. गुरुचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एससीसी 118 : 1978 एससीसी (क्रि.) 41

7. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एसयूपीपी (1) एससीसी 335 : 1992 एससीसी (क्रि.) 426

8. सतेंद्र कुमार अंटिल बनाम सीबीआई, (2021) 10 एससीसी 773

9. सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 1 एससीसी 676 : (2022) 1 एससीसी (क्रि.) 423

10. सतेन्द्र कुमार अंटिल बनाम केन्द्रीय जांच ब्यूरो, बनाम एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 452/एससी 758

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. श्री देश मित्र आनंद एडवोकेट, श्री द्वारा सहायता प्राप्त उत्कर्ष आनंद एडवोकेट, आवेदकों के अधिवक्ता, श्री. कुलदीप पति त्रिपाठी, अतिरिक्त महाधिवक्ता, जिन्हें श्री द्वारा सहायता प्राप्त और राज्य के लिए राव

नरेंद्र सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता-1 चिन्मय शुक्ल को सुना।

2. प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदकों ने धारा 147, 148, 149, 308, 323, 325, 427, 452, 504 और 506 भ०द०वि०, थाना-नगराम, जिला लखनऊ के तहत केस अपराध संख्या-105/2021 में उन्हें जमानत देने की प्रार्थना की है।

3. सूचनाकर्ता राजाराम द्वारा 05.05.2021 को 14:04 बजे चार व्यक्तियों - (1) राम पाल, (2) संदीप, (3) श्यामलाल और (4) श्यामदेव के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उक्त तारीख को लगभग 7 बजे, उपरोक्त चार नामजद व्यक्तियों ने सूचनाकर्ता को गाली दी थी और लाठी से पीटा था और जब उसकी पत्नी उसे बचाने के लिए दौड़ी थी तो उसे भी डंडे से पीटा गया जिससे उसके सिर पर चोट आई है। आरोपी व्यक्तियों ने सूचनाकर्ता की दुकान का सामान फेंक दिया और उन्होंने कुछ अन्य व्यक्तियों की भी पिटाई की।

4. धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज सूचनाकर्ता के बयान में, उन्होंने प्राथमिकी संस्करण को दोहराया कि यह घटना प्राथमिकी में नामित चार व्यक्तियों के कारण हुई थी। सभी चार नामित आरोपियों को 06.05.2021 को 3:20 बजे गिरफ्तार किया गया था।

5. विवेचनाधिकारी ने दिनांक 09.05.2021 को केस डायरी में दर्ज किया कि घटना में सूचनाकर्ता सहित आठ व्यक्तियों को चोटें आई

थीं। विवेचनाधिकारी ने सभी घायल व्यक्तियों के बयान दर्ज किए और उन सभी ने कहा कि प्राथमिकी में नामित चार व्यक्तियों ने उन्हें पीटा था। उनके बयान दर्ज करने के बाद, विवेचनाधिकारी ने धारा 308 भ०द०वि० जोड़ दी।

6. 10.05.2021 को, विवेचनाधिकारी ने दो व्यक्तियों के बयान दर्ज किए, जिन्होंने घटना के चश्मदीद होने का दावा किया और उन्होंने कहा कि चार नामजद व्यक्तियों के अलावा, सभी आवेदक और एक सतगुरु घटना को अंजाम देने में शामिल थे और उन्होंने कहा कि थाना और 112 से पुलिस बल घटनास्थल पर पहुंच गया था।

7. इसके बाद विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता का मज़ीद बयान दर्ज किया, जिसमें उसने नामजद आरोपी व्यक्तियों के अलावा आवेदकों और सतगुरु को भी आरोपित किया।

8. जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में कहा गया है कि आवेदकों को धारा 41 ए द०प्र०स० के तहत कोई नोटिस नहीं दिया गया था और उन्हें मुकदमे के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था।

9. आवेदकों ने कार्यवाही रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० संख्या 1735 वर्ष 2022 के तहत आवेदन दायर किया था। उपरोक्त आवेदन को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने कहा कि यदि आवेदक 15 दिनों की अवधि के भीतर निर्वहन/डिस्चार्ज के लिए आवेदन करते हैं, तो उस पर विचार किया जाएगा और

कानून के अनुसार शीघ्रता से निपटाया जाएगा। आवेदकों को धारा 205 द०प्र०स० के तहत पेशी से छूट के लिए आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

10. आवेदकों द्वारा दायर धारा 205 द०प्र०स० के तहत आवेदन मजिस्ट्रेट द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि कथित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय हैं और मजिस्ट्रेट को निर्वहन की याचिका पर फैसला करने और आरोप तय करने का अधिकार नहीं है। मजिस्ट्रेट ने सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, (2021) 10 एस.सी.सी. के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के संदर्भ में अपने उपक्रम को स्वीकार करने के लिए आवेदकों द्वारा दायर एक अन्य आवेदन को खारिज कर दिया था। (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका सं 773 में इस आधार पर निर्णय दिया है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने उन व्यक्तियों के संबंध में प्रयोग किए जाने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया है जो मामले के विचारण में भाग लेने के इच्छुक हैं जबकि आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो रहे हैं और वे विचारण में सहयोग नहीं कर रहे हैं।

11. आवेदक ने मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 482 संख्या 3564 वर्ष 2022 के तहत एक और आवेदन दायर करके पारित पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी, जिसे मजिस्ट्रेट को यह निर्देश जारी करके दिनांक 08.06.2022 के आदेश के माध्यम से निपटाया गया था कि यदि आवेदकों द्वारा 15 दिनों के भीतर कोई

नियमित जमानत आवेदन दायर किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद उसका निपटान करने के लिए बाध्य होगा; सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, विशेष रूप से श्रेणी 'ए' के तहत वर्णित अपराधों के लिए उपरोक्त मामले में प्रदान की गई प्रक्रिया के अनुसार। इस न्यायालय ने आगे कहा कि: -

"यह याद किया जाता है कि जब आवेदक इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर करके सदाशयी रूप से मुकदमा कर रहे थे और इस न्यायालय के आदेशों के तहत संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष कुछ आवेदन भी दायर किए हैं, तो संबंधित मजिस्ट्रेट को उनके खिलाफ बलपूर्वक प्रक्रिया जारी करने की जल्दी में नहीं होना चाहिए। इस प्रकार यह न्यायालय आशा और विश्वास करता है कि संबंधित मजिस्ट्रेट या विचारण न्यायालय, जैसा भी मामला हो, सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार सख्ती से कार्य करेगा।

12. आवेदकों ने उपरोक्त मामले में जमानत पर रिहा करने के लिए धारा 437 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया। आवेदन में आवेदकों के अंगूठे के निशान हैं। आवेदन को अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट IV, न्यायालय नंबर 28, लखनऊ ने दिनांक 16.06.2022 के एक आदेश के माध्यम से यह दर्ज करने के बाद खारिज कर दिया कि

आवेदक अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं थे। आवेदकों के विरुद्ध जारी किए गए गैर-जमानती वारंट को पुलिस द्वारा इस रिपोर्ट के साथ वापस कर दिया गया है कि सेवा से बचने वाले आवेदकों को यह तामील नहीं किया जा सका। आवेदकों पर संज्ञेय, गैर-जमानती, गैर-शमनीय अपराध करने का आरोप लगाया जाता है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है।

13. 21.06.2022 को आवेदकों ने धारा 439 द०प्र०स० के तहत सत्र न्यायालय के समक्ष जमानत पर रिहा होने के लिए आवेदन दायर किया। इस आवेदन में आवेदकों के अंगूठे के निशान भी हैं। इस आवेदन को भी अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 12.07.2022 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है। इसके बाद आवेदकों ने धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत देने के लिए प्रस्तुत आवेदन दायर किया है।

14. अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी ने आवेदन के खिलाफ प्राथमिक आपत्ति उठाते हुए कहा है कि प्रस्तुत आवेदन धारा 439 द०प्र०स० के तहत दायर किया गया है, जो अदालत को जमानत पर एक व्यक्ति को रिहा करने का निर्देश देने का अधिकार देता है जो अपराध का आरोपी है और हिरासत में है। आवेदक हिरासत में नहीं हैं और इसलिए, धारा 439 द०प्र०स० के तहत उनका आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है। श्री त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि यद्यपि हिरासत शब्द की व्याख्या व्यापक अर्थों में की गई है, फिर भी, धारा 439

द०प्र०स० के तहत एक आवेदन पर विचार करने के लिए अदालत में अभियुक्त की कम से कम शारीरिक उपस्थिति आवश्यक है। श्री त्रिपाठी ने आगे प्रस्तुत किया है कि यदि किसी आरोपी व्यक्ति को अदालत में अपनी शारीरिक उपस्थिति के बिना भी धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत मांगने की स्वतंत्रता है, तो धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत आवेदन और धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन और धारा 439 द०प्र०स० के तहत नियमित जमानत के उद्देश्य के बीच कोई अंतर नहीं होगा।

15. इसके विपरीत, आवेदक के वकील ने प्रस्तुत किया है कि जमानत आवेदन प्रस्तुत करने के समय आवेदक मजिस्ट्रेट की अदालत में उपस्थित थे, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि आवेदकों ने आवेदन पर अपने अंगूठे के निशान लगाए हैं। उन्होंने कहा कि आवेदन पर सुनवाई के समय आवेदक मौजूद थे। सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा करते हुए, आवेदकों के वकील ने प्रस्तुत किया है कि आवेदकों को हिरासत में लेने की कोई आवश्यकता नहीं है और अदालत में उनकी शारीरिक उपस्थिति उनकी जमानत याचिका पर विचार करने के लिए पर्याप्त थी।

16. धारा 437 द०प्र०स०, जो गैर-जमानती अपराधों में जमानत देने का प्रावधान करती है, यह प्रावधान करती है कि "जब किसी गैर-जमानती अपराध के आरोपी या संदिग्ध किसी व्यक्ति को थाना के प्रभारी अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार या हिरासत में लिया

जाता है या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है या लाया जाता है, उन्हें जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

17. इस प्रकार जमानत पर रिहा होने के उसके अनुरोध पर विचार किए जाने के लिए केवल अदालत के समक्ष उपस्थित होना या न्यायालय के समक्ष लाया जाना आवश्यक है और यह धारा आगे कोई अनिवार्य शर्त नहीं लगाती है।

18. आवेदकों का दावा है कि वे जमानत आवेदन प्रस्तुत करने के समय मजिस्ट्रेट की अदालत में उपस्थित थे, लेकिन प्रासंगिक यह है कि आवेदकों को उस समय मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होना चाहिए जब धारा के तहत आवेदन पर विचार किया जा रहा हो। केवल यह तथ्य कि आवेदकों ने आवेदन पर अपने अंगूठे के निशान लगाए हैं, यह साबित नहीं करता है कि आवेदक अपनी जमानत याचिका पर विचार के समय मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित थे।

19. मजिस्ट्रेट ने इस आदेश में विशेष रूप से दर्ज किया है कि जमानत आवेदन पर विचार के समय आवेदक अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं थे। आवेदक के वकील ने मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आदेश में दर्ज इस तथ्य की शुद्धता पर विवाद किया है।

20. महाराष्ट्र राज्य बनाम रामदास श्रीनिवास नायक, (1982)2 एस.सी.सी. रिट याचिका (सिविल) संख्या 463 में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में यह अभिलिखित किया

गया था कि काउंसेल ने न्यायालय के समक्ष रियायत दी थी, जिस तथ्य को माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष वकील द्वारा चुनौती दी गई थी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि:-

“4. ... हमें डर है कि हम उच्च न्यायालय में क्या हुआ, इसकी जांच शुरू नहीं कर सकते। यह बस नहीं किया जाता है। सार्वजनिक नीति हमें रोकती है। न्यायिक शिष्टाचार हमें रोकता है। न्यायिक रिकॉर्ड के मामले निर्विवाद हैं। वे संदेह के लिए खुले नहीं हैं। न्यायाधीशों को अखाड़े में नहीं घसीटा जा सकता। "मुकदमेबाजी के खेल में निर्णयों को केवल काउंटर के रूप में नहीं माना जा सकता है। [सोमसुंदरम चेट्टी बनाम सुब्रमण्यम चेट्टी, ए.आई.आर. 1926 पीसी 136: 99 आईसी 742 में लॉर्ड एटकिंसन के अनुसार] हम न्यायाधीशों के निर्णय में दर्ज किए गए वक्तव्य, कि न्यायालय में क्या हुआ, को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं। हम न्यायाधीशों के वक्तव्य को बार में दिए गए वक्तव्यों अथवा शपथपत्र और अन्य साक्ष्यों द्वारा विरोधाभास की अनुमति नहीं दे सकते। यदि न्यायाधीश अपने निर्णय में यह कहते हैं कि उनके समक्ष कुछ किया गया, कहा गया या स्वीकृत किया गया तो इस विषय पर यह अंतिम शब्द होना चाहिए। सिद्धांत अच्छी तरह से तय है कि अदालत के फैसले में दर्ज सुनवाई में क्या हुआ, तथ्य के बयान इस प्रकार बताए गए तथ्यों के निर्णायक हैं और कोई भी हलफनामे या अन्य साक्ष्य द्वारा ऐसे बयानों का खंडन नहीं कर सकता है। यदि कोई पक्ष सोचता है कि न्यायालय में होने वाली घटनाओं को किसी निर्णय में गलत तरीके से

दर्ज किया गया है, तो यह पक्ष के लिए अनिवार्य है, जबकि मामला अभी भी न्यायाधीशों के दिमाग में ताजा है, उन न्यायाधीशों का ध्यान आकर्षित करने के लिए जिन्होंने इस तथ्य पर रिकॉर्ड बनाया है कि उनके आचरण के संबंध में दिया गया बयान एक बयान था जो गलती से दिया गया था। [मधु सूदन चौधरी बनाम चंद्रबती चौधरी, ए.आई.आर. 1917 पीसी 30: 42 आईसी 527 में प्रति लॉर्ड बकमास्टर] अभिलेख को ठीक करने का यही एकमात्र तरीका है। यदि ऐसा कोई कदम नहीं उठाया जाता है, तो मामला अनिवार्य रूप से वहीं समाप्त हो जाना चाहिए। बेशक, एक पक्ष पीछे हट सकता है और एक अपीलीय न्यायालय उसे दुर्लभ और उपयुक्त मामलों में इस आधार पर रियायत से पीछे हटने की अनुमति दे सकता है कि रियायत कानून की गलत मूल्यांकन किया गया था और इससे घोर अन्याय हुआ था; लेकिन, वह फैसले में दर्ज रियायत देने के तथ्य पर सवाल नहीं उठा सकते हैं।

21. ये उपर्युक्त निर्णय भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, (2003) 2 एस.सी.सी. 111 में माना गया है।

22. इसलिए, मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आदेश में दर्ज तथ्य कि आवेदक जमानत आवेदन पर विचार के समय न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं थे, विवादित नहीं हो सकता है और यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि आवेदक धारा 437 के तहत अपने आवेदन पर विचार करते समय मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित नहीं हुए थे।

23. हालांकि, जब मजिस्ट्रेट ने पाया कि आवेदक उसके सामने उपस्थित नहीं थे और इस कारण से उनके आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता था, तो मजिस्ट्रेट को आवेदनों के गुण-दोष पर चर्चा नहीं करनी चाहिए थी और उसे अकेले इस आधार पर आवेदन को खारिज कर देना चाहिए था। आवेदन की अस्वीकृति के कारणों को दर्ज करते हुए, मजिस्ट्रेट ने कहा है कि आवेदन को इस कारण से अस्वीकार किया जा रहा था कि आवेदकों ने सतेंद्र कुमार अंतिल में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं किया था, अपराध संज्ञेय, गैर-जमानती, गैर-शमनीय और सत्र न्यायाधीश द्वारा विचारणीय हैं और आवेदक आवेदन प्रस्तुत करते समय उपस्थित नहीं थे। इसलिए, मजिस्ट्रेट ने जमानत आवेदन के गुण-दोष पर भी विचार किया है और आवेदकों के उपस्थित न होने के एकमात्र कारण के लिए आवेदन को अस्वीकार नहीं किया गया है। मजिस्ट्रेट के लिए आवेदन के गुण-दोष पर चर्चा करना उचित नहीं था क्योंकि उसने पाया कि आरोपी व्यक्तियों के उपस्थित न होने के कारण आवेदन पर विचार नहीं किया जा सका।

24. अपराध गैर-जमानती होने के कारण, जमानत देने के लिए आवेदन को अस्वीकार करने का कोई आधार नहीं है, क्योंकि धारा 437 केवल गैर-जमानती अपराधों में जमानत देने के उद्देश्य से लागू की गई है। सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध भी धारा 437 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन को अस्वीकार करने के लिए एक वैध आधार नहीं है, जो प्रदान करता है कि: -

"437. जब गैर-जमानती अपराध के मामले में जमानत ली जा सकती है।

(1) जब किसी गैर-जमानती अपराध के किए जाने के अभियुक्त या संदिग्ध किसी व्यक्ति को किसी थाना के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है या निरुद्ध किया जाता है या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या लाया जाता है, तब उसे जमानत पर रिहा किया जा सकेगा, परंतु-

(१) ऐसे व्यक्ति को इस प्रकार रिहा नहीं किया जाएगा यदि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार दिखाई देता है कि वह मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है;

(२) ऐसे व्यक्ति को इस प्रकार रिहा नहीं किया जाएगा यदि ऐसा अपराध एक संज्ञेय अपराध है और उसे पहले मृत्युदंड, आजीवन कारावास या सात साल या उससे अधिक के कारावास के साथ दंडनीय अपराध का दोषी ठहराया गया था, या उसे पहले दो या अधिक अवसरों पर दोषी ठहराया गया था तीन साल या उससे अधिक लेकिन सात साल से कम नहीं के कारावास के साथ दंडनीय संज्ञेय अपराध:

परन्तु न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि खंड (i) या खंड (ii) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाए यदि ऐसा व्यक्ति सोलह वर्ष से कम आयु का है या महिला है या बीमार है या दुर्बल है: परन्तु यह और कि

न्यायालय यह भी निदेश दे सकेगा कि खंड (ii) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाए यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि किसी के लिए ऐसा करना न्यायसंगत और उचित है अन्य विशेष कारण:

बशर्ते कि केवल यह तथ्य कि एक आरोपी व्यक्ति को जांच के दौरान गवाहों द्वारा पहचाने जाने की आवश्यकता हो सकती है, जमानत देने से इनकार करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा यदि वह अन्यथा जमानत पर रिहा होने का हकदार है और एक वचन देता है कि वह ऐसे निर्देशों का पालन करेगा जो न्यायालय द्वारा दिए जा सकते हैं:

परन्तु यह भी कि यदि उसके द्वारा किया गया आरोपित अपराध मृत्यु, आजीवन कारावास या सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय है, तो लोक अभियोजक को सुनवाई का अवसर दिए बिना इस उपधारा के अधीन न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा नहीं किया जाएगा।

(2) यदि यथास्थिति, जांच, अन्वेषण या विचारण के किसी चरण में ऐसे अधिकारी या न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार नहीं हैं कि अभियुक्त ने गैर-जमानती अपराध किया है, परंतु यह कि उसके अपराध की आगे जांच के लिए पर्याप्त आधार हैं, तो अभियुक्त, धारा 446-क के उपबंधों के अधीन रहते हुए और ऐसी जांच लंबित रहने तक, जमानत पर रिहा किया जा सकता है, या, ऐसे अधिकारी या न्यायालय के विवेक पर, उसके द्वारा एक बांड

के निष्पादन पर, उसकी उपस्थिति के लिए ज़मानत के बिना, जैसा कि इसके बाद प्रदान किया गया है।

(3) जब कोई व्यक्ति, जो कारावास से दंडनीय अपराध करने का अभियुक्त या संदिग्ध है, जो सात वर्ष या उससे अधिक तक का हो सकता है या दंड संहिता, 1860 के अध्याय VI, अध्याय XVI या अध्याय XVII के तहत अपराध या ऐसे किसी अपराध का दुष्प्रेरण, या षड्यंत्र या करने का प्रयत्न, उपधारा (1) के अधीन जमानत पर रिहा किया जाता है, न्यायालय शर्तें लगाएगा -

(ए) कि ऐसा व्यक्ति इस अध्याय के तहत निष्पादित बांड की शर्तों के अनुसार उपस्थित होगा,

(ख) कि ऐसा व्यक्ति उस अपराध के समान अपराध नहीं करेगा जिसके लिए वह अभियुक्त है, या संदिग्ध है, जिसके कमीशन पर उसका संदेह है, और

(ग) ऐसा व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ न की जा सके,

(ख) और न्याय के हित में ऐसी अन्य शर्तें भी अधिरोपित कर सकेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर किसी व्यक्ति को रिहा करने वाला अधिकारी या न्यायालय ऐसा करने के लिए उसके कारणों या विशेष कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करेगा।

(5) कोई न्यायालय जिसने उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया है, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे तो निदेश दे सकेगा कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए और उसे अभिरक्षा में सौंप दिया जाए।

(6) यदि किसी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय किसी मामले में, किसी गैर-जमानती अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का विचारण उस मामले में साक्ष्य लेने के लिए नियत पहली तारीख से साठ दिन की अवधि के भीतर समाप्त नहीं किया जाता है, तो ऐसा व्यक्ति, यदि वह उक्त पूरी अवधि के दौरान अभिरक्षा में है, मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के लिए जमानत पर रिहा किया जाएगा, जब तक कि लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, मजिस्ट्रेट अन्यथा निर्देश देता है।

(7) यदि किसी समय, किसी गैर-जमानती अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के समापन के पश्चात् और निर्णय सुनाए जाने से पूर्व, न्यायालय की यह राय है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त ऐसे किसी अपराध का दोषी नहीं है, तो वह अभियुक्त को, यदि वह अभिरक्षा में है, तो उसके द्वारा दिए गए निर्णय को सुनने के लिए उसकी उपस्थिति के लिए ज़मानत के बिना एक बांड के निष्पादन पर, छोड़ देगा।

25. मजिस्ट्रेट धारा 437 द०प्र०स० के तहत केवल तभी जमानत नहीं दे सकता है जब यह मानने के लिए उचित आधार हों कि आवेदक मृत्यु या आजीवन कारावास के साथ दंडनीय अपराध का दोषी है। प्रस्तुत मामले में यह भी आरोप नहीं है कि आवेदकों ने मृत्युदंड या आजीवन कारावास के साथ दंडनीय अपराध किए हैं, और यह मानने के लिए उचित आधार का कोई अवसर नहीं है कि आवेदकों ने ऐसा अपराध किया है। इस धारा में यह प्रावधान नहीं है कि सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध के मामले में मजिस्ट्रेट जमानत नहीं दे सकता है। इस प्रकार मजिस्ट्रेट के पास उन मामलों में जमानत देने के लिए आवेदनों पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र है जिनमें अपराधों के कमीशन का आरोप लगाया गया है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय हैं।

26. अब मैं इस आपत्ति पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूं कि धारा 439 द०प्र०स० आवेदन को अस्वीकार कर दिया जा सकता है क्योंकि आवेदक हिरासत में नहीं हैं। धारा 439 द०प्र०स० (1) (ए) में निम्नानुसार प्रावधान है:

"439. जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय की विशेष शक्तियां--(1) कोई उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय निदेश दे सकेगा-

(क) किसी अपराध का अभियुक्त और अभिरक्षा में कोई व्यक्ति जमानत पर रिहा किया जाएगा और यदि वह अपराध धारा 437 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट प्रकृति का है तो वह कोई शर्त अधिरोपित कर सकेगा जिसे वह

उस उपधारा में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे,"

27. 'हिरासत' शब्द की व्याख्या माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निरंजन सिंह बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे, (1980) 2 एस.सी.सी. (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका सं 559 में अभिरक्षा में वाक्यांश को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है -

"6. यहां प्रतिवादियों पर अपराधों का आरोप लगाया गया था, लेकिन हिरासत में नहीं थे, याचिकाकर्ता का तर्क है कि कोई जमानत नहीं है, क्योंकि जेल में होने की यह बुनियादी शर्त पूरी नहीं हुई है। इस सबमिशन को निचली अदालतों द्वारा सही तरीके से खारिज कर दिया गया है। हम इस बात से सहमत हैं कि एक विचार में, एक गैरकानूनी कानून के लाभ की मांग नहीं कर सकता है और जो न्याय से भागता है वह न्याय का दावा नहीं कर सकता है। लेकिन यहां स्थिति अलग है। आरोपी फरार नहीं थे, लेकिन सत्र न्यायाधीश के समक्ष पेश हुए और आत्मसमर्पण कर दिया। न्यायिक क्षेत्राधिकार केवल तभी उत्पन्न होता है जब व्यक्ति पहले से ही हिरासत में हों और न्यायालय की प्रक्रिया को बढ़ाना चाहते हों। हम इस बात से सहमत हैं कि किसी अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत के लिए अदालत का रुख नहीं कर सकता जब तक कि वह हिरासत में न हो।

7. धारा 439 द०प्र०स० के अर्थ के भीतर कोई व्यक्ति कब हिरासत में है? जब वह दबाव में होता है क्योंकि वह जांच एजेंसी या अन्य

पुलिस या संबद्ध प्राधिकारी द्वारा आयोजित किया जाता है या न्यायिक आदेश द्वारा रिमांड पर लिए जाने के बाद न्यायालय के नियंत्रण में होता है, या खुद को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में पेश करता है और भौतिक उपस्थिति से अपने आदेशों को प्रस्तुत करता है। यथार्थवादी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किसी शाब्दिक निपुणता और न ही पूर्ववर्ती प्रवीणता की आवश्यकता है कि वह जो न्यायालय के नियंत्रण में है या बलपूर्वक शक्ति वाले अधिकारी की शारीरिक पकड़ में है, धारा 439 के प्रयोजन के लिए हिरासत में है। यह शब्द लोचदार शब्दार्थ का है लेकिन इसका मूल अर्थ यह है कि कानून ने व्यक्ति को अपने नियंत्रण में ले लिया है। कभी-कभी अदालत में सुनाई देने वाली गोलमोल बातें और लुका-छिपी की बारीकियां कभी-कभी अदालत में सुनाई देती हैं कि पुलिस ने एक व्यक्ति को अनौपचारिक हिरासत में लिया है, लेकिन उसे गिरफ्तार नहीं किया है, उसे पूछताछ के लिए हिरासत में लिया है, लेकिन उसे औपचारिक हिरासत में नहीं लिया है और इसी तरह की अन्य शब्दावली कानून की सीधेपन की अनुचित प्रयोग है। हमें यहां इस संदेहास्पद पहलू पर विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम संतुष्ट हैं कि अभियुक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष शारीरिक रूप से प्रस्तुत हुआ और इस प्रकार जमानत देने का अधिकार क्षेत्र उत्पन्न हुआ।

8. कस्टडी, धारा 439 के संदर्भ में, (हम धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत से निपटने के लिए नहीं हैं) अदालत में अभियुक्त की शारीरिक नियंत्रण या कम से कम शारीरिक

उपस्थिति है, जो न्यायालय के अधिकार क्षेत्र और आदेशों को प्रस्तुत करने के साथ युग्मित है।

9. वह केवल तब हिरासत में नहीं हो सकता जब पुलिस उसे गिरफ्तार करती है, उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश करती है और न्यायिक या अन्य हिरासत में रिमांड प्राप्त करती है। उसे न्यायिक हिरासत में कहा जा सकता है जब वह अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करता है और उसके निर्देशों को प्रस्तुत करता है।
(महत्व सन्निविष्ट)

28. संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 16 एस.सी.सी. 623 के मामले में, आवेदक, जो हिरासत में नहीं था, ने जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय में धारा 439 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दिया था और यह अनुरोध किया गया था कि आवेदक को उच्च न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने की अनुमति दी जाए। उच्च न्यायालय ने प्रारंभिक आपत्ति पर आवेदन को खारिज कर दिया कि आरोपी को मजिस्ट्रेट के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा। अपील में उच्च न्यायालय के आदेश को उलटते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

"3. प्रारंभिक आपत्ति को स्वीकार करते हुए, आक्षेपित आदेश [संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य, क्रिमिनल जमानत आवेदन संख्या 206 वर्ष 2014, आदेश दिनांक 6-2-2014 (बीओएम)] में व्यक्त द्वंद्वात्मक यह है कि कानून यह मानता है कि नियमित जमानत मांगने वाले व्यक्ति को धारा 167

द०प्र०स० के तहत संबंधित मजिस्ट्रेट की हिरासत में सड़ना होगा। याचिकाकर्ता ने संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा जारी नोटिस/समन का जवाब नहीं दिया था, जिसके कारण उसके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए गए थे, और जब ये कदम भी उसे अदालत के सामने लाने में अप्रभावी साबित हुए, तो उसे धारा 82 द०प्र०स० के तहत घोषित अपराधी घोषित करने के लिए उपाय किए गए। चूंकि मामले में यह स्थिति प्राप्त नहीं थी यानी उच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि याचिकाकर्ता हिरासत में नहीं था, इसलिए धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत के लिए आवेदन को बनाए रखने योग्य नहीं माना गया। यह निष्कर्ष तब भी पहुंचा जब याचिकाकर्ता अदालत में मौजूद था और उसने लिखित रूप में अनुरोध किया था कि उसे उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आत्मसमर्पण करने की अनुमति दी जाए।

* * *

8. धारा 437 द०प्र०स० के कुछ मार्मिक विवरणों को इंगित किया जा सकता है। सबसे पहले, जबकि पुरानी संहिता की धारा 497(1) एक अभियुक्त को "अदालत के सामने लाने" की ओर इशारा करती है; वर्तमान प्रावधान अभियुक्त को किसी भी गैर-जमानती अपराध के कमीशन के संबंध में "उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय के समक्ष लाया जाता है"। जैसा कि गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) में देखा गया है। [गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978)1 एस.सी.सी. 118 : 1978 एस.सी.सी. (क्रि) 41] के अनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता में सत्र

न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त को पेश करने से संबंधित कोई उपबंध नहीं है। लेकिन यह भी तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए कि कोई भी प्रावधान स्पष्ट रूप से इन न्यायालयों में से किसी के समक्ष अभियुक्त के उत्पादन को प्रतिबंधित नहीं करता है। विधायिका अपवर्जन या अनन्य शब्दावली के उपयोग से आसानी से यह घोषित कर सकती थी कि सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय इस अधिकार क्षेत्र से वंचित हैं या यदि वे पुरानी संहिता के तहत इतने सशक्त थे तो अब इससे वंचित हो गए हैं। हमारी समझ गुरचरण सिंह [गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एस.सी.सी. 118 : 1978 एस.सी.सी. (क्रि) 41], जैसा कि मजबूरी में होना चाहिए। द०प्र०स० की योजना स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि गैर-जमानती अपराध करने के आरोपी व्यक्ति को जमानत नहीं दी जाएगी, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय है, जब तक कि ऐसी अदालत को यह स्पष्ट न हो कि यह अविश्वसनीय या उचित संदेह के दायरे से परे है कि अभियुक्त दोषी है। इस स्थिति में रखे गए मजिस्ट्रेट की जांच हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल [हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 335 : 1992 एस.सी.सी. (क्रि) 426], अर्थात्, अभियुक्त की कथित सहभागिता, तब प्रस्तुत या प्रचलित तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर, उसकी निर्दोषता के भारी, अकाट्य और स्पष्ट निष्कर्ष की ओर ले जानी चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता मजिस्ट्रेट की शक्तियों को गंभीर रूप से कम करता है, जबकि सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय

को अछूता और निरंकुश छोड़ देता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह एकमात्र तार्किक निष्कर्ष है जिस पर धारा 437 द०प्र०स० और 439 के संयुक्त विचार से पहुंचा जा सकता है। स्पष्टतया, जहां तक सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय की शक्तियों और सीमाओं का संबंध है, इस तस्वीर को पूरा करने के लिए धारा 439 पर सावधानीपूर्वक विचार करना होगा। और जब यह किया जाता है, तो यह एक बार स्पष्ट हो जाएगा कि द०प्र०स० ने एक अभियुक्त को राहत देने के खिलाफ एक प्रतिबंध लगाया है, (हमारे द्वारा नकारात्मक में लिखा गया), अगर वह हिरासत में नहीं है। हमें ऐसा लगता है कि किसी भी निरंतर द्विपक्षीयता या संदेह को इस धारा के परंतुक द्वारा दूर किया जाता है, जो केवल यह अनिवार्य करता है कि लोक अभियोजक को नोटिस पर रखा जाना चाहिए। हमें द०प्र०स० या कहीं और कोई प्रावधान नहीं मिला है, न ही जमानत के लिए याचिकाओं पर विचार करने और फैसला करने के लिए किसी भी ऊपरी अदालत की शक्ति को कम करने के लिए हमारे पास लाया गया है। इसके अलावा, यह असंगत है कि मजिस्ट्रेट को मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय किसी भी गैर-जमानती अपराध के आरोपी या संदिग्ध व्यक्ति के वारंट के बिना हिरासत या गिरफ्तारी की स्थिति में जमानत देने के लिए वस्तुतः अशक्त होने के कारण, कोई भी अदालत उसे सहायता प्रदान करने में सक्षम नहीं है। भौतिकी के विज्ञान की तरह, कानून भी एक निर्वात के अस्तित्व से घृणा करता है, जैसा कि सामान्य कानून की कहावत द्वारा पर्याप्त रूप से स्वीकार किया

गया है अर्थात् "जहां अधिकार है वहां एक उपाय है"। हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सार्वभौमिक अधिकार, जो न केवल भारत के नागरिक के लिए बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व के लिए मौलिक है, को केवल एक कल्पित तल पर छीना नहीं जा सकता है। हमें इस तथ्य को भी परिप्रेक्ष्य में रखना चाहिए कि संसद ने इस खण्ड में संशोधन किए हैं जिसमें धारा 437 से 439 शामिल हैं और इसलिए संविधियों की व्याख्या के सुस्थापित सिद्धांतों पर प्रतिपादित करती है कि जो उनके पढ़ने से प्रकट रूप से स्पष्ट नहीं है, उसे कभी भी कानून में शामिल करने का इरादा नहीं था। इन प्रावधानों की कुछ मुख्य विशेषताएं यह हैं कि जबकि धारा 437 में यह माना गया है कि किसी व्यक्ति को गैर-जमानती अपराध का आरोपी या संदिग्ध होना चाहिए और परिणामस्वरूप वारंट के बिना गिरफ्तार या हिरासत में लिया जाना चाहिए, यदि ऐसा व्यक्ति हिरासत में है, धारा 439 सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को जमानत देने का अधिकार देती है। भाषा का अंतर दो प्रावधानों में उदात्त भेदभाव को प्रकट करता है, और इसलिए, "हिरासत" शब्द को गिरफ्तारी या निरोध के समान या निकट से समान अर्थ और सामग्री देने का कोई औचित्य नहीं है। इसके अलावा, जबकि धारा 437 मृत्यु या आजीवन कारावास के साथ दंडनीय गैर-जमानती अपराधों के कमीशन के संदर्भ में जमानत देने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति को गंभीर रूप से कम करती है, दो उच्च न्यायालयों के पास केवल लोक अभियोजक को जमानत आवेदन की सूचना

देने की प्रक्रियात्मक आवश्यकता है, जो कि परिस्थितियों की मांग होने पर भी अनदेखी की जा सकती है। एक ओर मजिस्ट्रेट की शक्तियों को विनियमित करने वाले शासन और दूसरी ओर दो उच्चतर न्यायालय निश्चित रूप से और जानबूझकर समान नहीं हैं, लेकिन महत्वपूर्ण रूप से और काफी भिन्न हैं। वास्तव में, एकमात्र जटिलता जिस पर विचार किया जा सकता है, वह द०प्र०स० द्वारा बनाए गए संभावित अंतराल के कारण "सत्र न्यायालय में मामलों की प्रतिबद्धता" की पहेली है।

* * *

24. इस विश्लेषण में, आक्षेपित निर्णय [संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य, क्रिमिनल जमानत आवेदन संख्या 206 वर्ष 2014, आदेश दिनांक 6-2-2014 (बीओएम)] में राय गलत तरीके से निष्कर्ष निकालती है कि उच्च न्यायालय एक याचिका पर अधिकार क्षेत्र से वंचित या शक्ति से रहित है जो पहले आत्मसमर्पण की वकालत करता है और उसके बाद, जमानत के लिए प्रार्थना करता है। उच्च न्यायालय लापरवाही से अपीलकर्ता को अपनी हिरासत में ले सकता था और फिर जमानत के लिए प्रार्थना के अवलोकन के साथ आगे बढ़ सकता था; इस निष्कर्ष पर पहुंचने की स्थिति में कि जमानत पर छोड़े जाने के लिए पर्याप्त आधारों का खुलासा नहीं किया गया था, न्यायिक या पुलिस हिरासत के लिए आवश्यक आदेश दिए जा सकते थे। एक न्यायाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह किसी भी सार्वजनिक दबाव के प्रति अभेद्य अपनी कठोर क्षमता का प्रदर्शन करे जो उस

पर सहन करने के लिए बल लगाई जा सकती है।

(महत्व सन्निविष्ट)

29. इसलिए, धारा 439 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर इस कारण से विचार नहीं किया जा सकता है कि आवेदक हिरासत में नहीं हैं।

30. धारा 439 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर विचार किया जा सकता था यदि आवेदकों ने इस न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण किया था, लेकिन यह उनके द्वारा नहीं किया गया है। इसलिए, आवेदक संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित हो सकते हैं और एक नई जमानत याचिका दायर कर सकते हैं।

31. हालांकि, न्यायालय इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता है कि धारा 437 द०प्र०स० के तहत पहले जमानत आवेदन पर फैसला करते समय, हालांकि मजिस्ट्रेट ने आवेदन की योग्यता को ध्यान में रखा है, उसने मामले के कुछ भौतिक तथ्यों और परिस्थितियों का विज्ञापन नहीं किया है। 05.05.2021 को सुबह 07:00 बजे हुई इस घटना की प्राथमिकी, पीड़ितों में से एक ने स्वयं दर्ज कराई थी, घटना के 7 घंटे बाद, स्पष्ट रूप से कहा कि प्राथमिक में नामित 4 व्यक्ति, अर्थात् (1) राम पाल, (2) संदीप, (3) श्यामलाल और (4) श्यामदेव घटना का कारण बने थे। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयानों में, सभी 8 घायल व्यक्तियों ने, जिसमें स्वयं सूचनाकर्ता भी शामिल है, प्राथमिक संस्करण को दोहराया है, जिसमें कहा गया है कि उपरोक्त 4 नामित व्यक्तियों ने उन्हें पीटा था। धारा 161 द०प्र०स० के तहत

दर्ज किए गए किसी भी घायल व्यक्ति के बयान में घटना के समय किसी भी चश्मदीद गवाह की उपस्थिति का उल्लेख नहीं है। सभी 4 नामित व्यक्तियों को 06.05.2021 को गिरफ्तार किया गया था और गिरफ्तारी जापन में उल्लेख किया गया है कि पुलिस टीम को देखकर उन्होंने भागने की कोशिश की। भागने का प्रयास करने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि सूचनाकर्ता राजा राम के परिजनों से उनका झगड़ा हुआ था। विवेचनाधिकारी ने दर्ज किया है कि 10.05.2021 को दो व्यक्तियों, अर्थात् भोगई के परशुराम पुत्र भोगई और उमेश की पत्नी श्रीमती पूनम ने बताया कि उन्होंने इस घटना को देखा था और प्राथमिकी में नामित 4 व्यक्तियों के अलावा, (1) राम प्रेम पुत्र रामाश्रेय, (2) शत्रोहन पुत्र गुरुदीन, (3) राम कुमार पुत्र गुरुदीन, (4) अजय कुमार पुत्र नन्हे राम, (5) श्रीपाल का पुत्र अयोध्या प्रसाद और (6) संत राम पुत्र भोगई (आवेदक) और राम शंकर का एक सतगुरु पुत्र भी अपराध करने में शामिल थे। इसके बाद विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता का मज़ीद बयान दर्ज किया, जिसमें उसने 6 व्यक्तियों के नाम जोड़े, लेकिन अपने अतिरिक्त बयान में भी, सूचनाकर्ता ने संत राम पुत्र भोगई (आवेदक संख्या 6) के नाम का उल्लेख नहीं किया।

32. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, (2021) 10 एस.सी.सी. (घ) माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका सं 773 में दिनांक 10-11-2010 के अपने निर्णय में विभिन्न श्रेणियों के मामलों के आरोपी व्यक्तियों को जमानत प्रदान करने के लिए निम्नलिखित दिशा-निर्देश निर्धारित किए हैं और प्रस्तुत

मामला श्रेणी क के अंतर्गत आता है जिसके संबंध में निम्नलिखित दिशा-निर्देश दिए गए हैं -

"अपराधों की श्रेणियां/प्रकार

(ए) 7 साल या उससे कम के कारावास के साथ दंडनीय अपराध जो श्रेणी बी और डी में नहीं आते हैं।

(बी) मृत्युदंड, आजीवन कारावास, या 7 साल से अधिक के कारावास के साथ दंडनीय अपराध।

(ग) एनडीपीएस (धारा 37), पीएमएलए (धारा 45), यूएपीए (धारा 43-घ (5)), कंपनी अधिनियम, [धारा 212(6)] आदि जैसे जमानत के लिए कड़े प्रावधानों वाले विशेष अधिनियमों के अंतर्गत दंडनीय अपराध।

(D) विशेष अधिनियमों द्वारा कवर नहीं किए गए आर्थिक अपराध।

अपेक्षित शर्तें

(1) जांच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जाए।

(2) जब कभी बुलाया जाए तो विवेचनाधिकारी के समक्ष उपस्थित होने सहित जांच में पूरे समय सहयोग किया जाए।

(ऐसे आरोपी को आरोप पत्र के साथ अग्रेषित करने की आवश्यकता नहीं है (सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [सिद्धार्थ

बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022)
1 एस.सी.सी. 676 : (2022)1
एस.सी.सी. (क्रि) 423J]

कैटेगरी A

आरोप-पत्र/शिकायत दर्ज करने के
बाद संज्ञान लेना

(ए) पहली बार में साधारण
सम्मन/जिसमें वकील के माध्यम
से पेशी की अनुमति शामिल है।

(ख) यदि सम्मन तामील होने के
बावजूद ऐसा अभियुक्त उपस्थित
नहीं होता है तो प्रत्यक्ष उपस्थिति
के लिए जमानती वारंट जारी किया
जा सकता है।

(ग) जमानती वारंट जारी होने के
बावजूद उपस्थित न होने पर गैर
जमानती बृहदारी।

(घ) गैर-जमानती वारंट को रद्द
किया जा सकता है या अभियुक्त
की वास्तविक उपस्थिति पर जोर
दिए बिना जमानती वारंट/सम्मन
में परिवर्तित किया जा सकता है,
यदि ऐसा आवेदन सुनवाई की
अगली तारीख को व्यक्तिगत रूप
से उपस्थित होने के अभियुक्त के
वचन पर गैर-जमानती वारंट के
निष्पादन से पहले अभियुक्त की
ओर से प्रस्तुत किया जाता है।

(ड) ऐसे अभियुक्त के जमानत
आवेदनों पर उपस्थित होने पर
अभियुक्त को शारीरिक हिरासत में
लिए बिना अथवा जमानत अर्जी
पर निर्णय होने तक अंतरिम
जमानत देकर निर्णय किया जा
सकता है।

33. इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने
केवल उस कानून को दोहराया है जो पहले से
ही तय हो चुका था, कि जमानत आवेदन पर
अभियुक्त को शारीरिक हिरासत में लिए बिना
फैसला किया जा सकता है।

34. हालांकि, यह प्रकाश में आया कि उत्तर
प्रदेश के न्यायालयों सहित कई न्यायालय
सर्तेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) में निर्धारित
कानून का पालन नहीं कर रहे हैं। इसलिए,
माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सर्तेंद्र कुमार
अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य,
2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एससी 452, जो
इस प्रकार हैं: -

"4. वकीलों ने हमारे सामने सर्तेंद्र कुमार
अंतिल बनाम सीबीआई के मामले में
फैसले के उल्लंघन में पारित आदेशों का
एक संकलन केवल नमूने के रूप में पेश
किया है, यह दिखाने के लिए कि लगभग
10 महीने बीतने के बावजूद जमीनी स्तर
पर कई विपथन हैं। ऐसा नहीं है कि इन
निर्णयों को विचारण न्यायालयों के ध्यान
में नहीं लाया गया है और वास्तव में
नोट भी किया गया है, फिर भी ऐसे
आदेश पारित किए जा रहे हैं जिनके

दोहरे प्रभाव हैं अर्थात् लोगों को हिरासत में भेजना जहां उन्हें भेजने की आवश्यकता नहीं है और पीड़ित पक्षों को आगे बढ़ने की आवश्यकता करके आगे मुकदमेबाजी पैदा करना। यह कुछ ऐसा है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और हमारे विचार से, यह सुनिश्चित करना उच्च न्यायालयों का कर्तव्य है कि अधीनस्थ न्यायपालिका उनके पर्यवेक्षण के अधीन देश के कानून का पालन करे। यदि कुछ मजिस्ट्रेटों द्वारा ऐसे आदेश पारित किए जा रहे हैं, तो न्यायिक कार्य को वापस लेने और उन मजिस्ट्रेटों को कुछ समय के लिए उनके कौशल के उन्नयन के लिए न्यायिक अकादमियों में भेजने की आवश्यकता हो सकती है।

5. उदाहरण के लिए, उनमें से बहुत बड़ी संख्या उत्तर प्रदेश से होती है और हमें सूचित किया जाता है कि विशेष रूप से हाथरस, गाजियाबाद और लखनऊ न्यायालयों में पारित आदेश इस कानून की अनभिज्ञता में प्रतीत होते हैं। हम इलाहाबाद उच्च न्यायालय के वकीलों से इसे माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश के संज्ञान में लाने का आह्वान करते हैं ताकि यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक निर्देश जारी किए जाएं कि इस तरह की घटनाएं न हों, जिसमें हमारे द्वारा ऊपर दिए गए कुछ सुझाव भी शामिल हैं।

35. एक बार फिर, सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, 2023

एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 758 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय को यह दोहराना पड़ा कि:-

"5. सतेंद्र कुमार अंतिल के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय का निर्णय भूमि का कानून है। किसी के द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का उल्लंघन करने का कोई सवाल ही नहीं है। हमारे लिए यह कहना पर्याप्त है कि जहां भी यह निर्णय लागू होता है, इसके सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।

6. हम नोट कर सकते हैं कि विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में बड़ी संख्या में मामले उत्पन्न हो रहे हैं जहां शिकायत की गई है कि निर्णय का पालन नहीं किया जा रहा है। हम उचित समझते हैं कि इस आदेश को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इस फैसले के बारे में जानकारी का पर्याप्त प्रसार हो।

36. इसलिए, आवेदकों को आज से 7 दिनों की अवधि के भीतर मजिस्ट्रेट के सामने पेश होने और धारा 437 द०प्र०स० के तहत एक नया आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी जाती है। यदि ऐसा आवेदन उपरोक्त अवधि के भीतर दायर किया जाता है, तो उसका निर्णय कानून के अनुसार उसकी योग्यता के आधार पर किया जाएगा, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट IV, न्यायालय संख्या-28, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक

16.06.2022 में किए गए किसी भी अवलोकन से प्रभावित हुए बिना, या अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.07.2022 में, न्यायालय संख्या-3, लखनऊ और मजिस्ट्रेट इस आदेश में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से, पैराग्राफ 24, 25 और 31 में की गई टिप्पणियां, आवेदन का फैसला करेंगे। मजिस्ट्रेट, उपर्युक्त पैरा 32, 34 और 35 में उल्लिखित माननीय उच्चतम न्यायालय के अधिदेश पर विचार करेगा।

37. आवेदन पूर्वोक्त टिप्पणियों के साथ निपटाया जाता है।

(2023) 7 ILRA 701

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

**आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या
13590 वर्ष 2021**

वाहिद अली

...आवेदक

बनाम

नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो लखनऊ ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: मुकेश कुमार तिवारी,
अनिल कुमार पांडे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: अखिलेश कुमार
अवस्थी

**आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-
धारा 100 - स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी
पदार्थ अधिनियम, 1985- धारा 50-** तलाशी और जब्ती के तरीके में पर्याप्त अवैधता - माना जाता है कि फर्द बरामदगी के अनुसार, तलाशी व्यक्तियों और वाहन पर - कथित रूप से एक राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में की गई थी - राजपत्रित अधिकारी ने फर्द बरामदगी पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं - धारा 50 के आदेश के विरुद्ध वसूली - यह आवश्यक है कि स्वतंत्र व्यक्ति या राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष तलाशी ली गई है, वह आवश्यक रूप से अपने हस्ताक्षर करे - आवेदक जमानत के लिए पात्र है।

जमानत आवेदन मंजूर। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भारत संघ बनाम शिव शंकर केसरी (2207) 3 एससीसी (क्रि) 505 में प्रतिवेदित
2. एसके राजू उर्फ अब्दुल हक उर्फ जग्गा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2019 (106) एससीसी 303 में प्रतिवेदित
3. राजस्थान राज्य बनाम परमानंद, 2014 2 एससीसी (क्रि) 563 में प्रतिवेदित
4. संजीव व अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य 2022 2 एससीसी (क्रि) 522 में प्रतिवेदित
5. भारत संघ बनाम बाल मुकुंद व अन्य, 2010 1 एससीसी (क्रि) 54 में प्रतिवेदित
6. अवतार सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य 2003 (1) जेआईसी 134 (एससी)
7. आपराधिक अपील संख्या 523 सन् 2005 रणजीतसिंह के मामले में निर्णीत

8. ब्रह्मजीतसिंह शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य
9. आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 42918 वर्ष 2021 के मामले में निर्णीत
10. आदित्य कुमार बनाम भारत संघ नारकोटिक कंट्रोल ब्यूरो, लखनऊ के माध्यम से
11. भारत संघ बनाम मोहम्मद नवाज खान एआईआर 2021 सुप्रीम कोर्ट 4476 में प्रतिवेदित
12. केरल राज्य इत्यादि बनाम राजेश इत्यादि एआईआर 2020 सुप्रीम कोर्ट 721 में प्रतिवेदित
13. यूनियन ऑफ इंडियन बनाम रतन मलिक @ हबुल 2009 एआईआर एससीडब्लू 3648 में प्रतिवेदित
14. मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन बनाम राज्य (एनसीटी ऑफ दिल्ली) 2023 लाइव लॉ (एससी) 260 में प्रतिवेदित
15. पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह 1999 वॉल्यूम VI एससीसी पृष्ठ 172

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा
वितरित)

1. आवेदक के अधिवक्ता और श्री अखिलेश कुमार अवस्थी, अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
2. आरोपी-आवेदक, जो आरोप लगाता है कि वह विचाराधीन वाहन का चालक था, जो केस अपराध संख्या-29 वर्ष 2021 में धारा 8/21/25/29 एन.डी.पी.एस. अधिनियम, थाना-एनसीबी लखनऊ, जिला-लखनऊ के तहत जमानत चाहता है।

3. रिकॉर्ड में मौजूद दस्तावेजों से ऐसा प्रतीत होता है कि 12.07.2021 को मुखबिरों से प्राप्त जानकारी के आधार पर तलाशी ली गई थी कि भारी मात्रा में ड्रग का परिवहन किया जा रहा है। सर्च मेमो से पता चलता है कि उक्त सूचना मिलने पर नरोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो, लखनऊ की टीम चौका घाट रेलवे क्रॉसिंग पहुंची और उनके बुलाने पर थाना राम नगर की पुलिस टीम भी पहुंची। मेमो में प्राप्त सूचना के संदर्भ में यह भी दर्ज है कि लगभग 10:15 बजे एक होंडा डब्ल्यूआरवी कार गुजर रही थी जिसे रोका गया और उक्त कार में दो व्यक्ति बैठे थे जो मोहम्मद इमरान और वाहिद अली (आवेदक) हैं। आगे यह भी दर्ज किया गया है कि उक्त दो व्यक्तियों ने एनसीबी लखनऊ की टीम के समक्ष ड्रग्स ले जाने के उपरोक्त तथ्य को कबूल किया। मेमो में यह भी दर्ज किया गया है कि एन.सी.बी. टीम ने अधिनियम की धारा 50 के तहत अभियुक्तों को उनके अधिकारों की विधिवत जानकारी दी, उक्त आवेदक चाहता था कि राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में तलाशी ली जाए और धारा 50 के प्रावधानों का पालन करने के लिए, अंचल अधिकारी राम नगर-श्री दिनेश कुमार दुबे से संपर्क किया गया और मौके पर आने का अनुरोध किया गया। इसमें आगे आरोप लगाया गया है कि उक्त राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में दोनों व्यक्तियों की व्यक्तिगत रूप से तलाशी ली गई और उनके पास व्यक्तिगत रूप से कुछ भी नहीं मिला। हालांकि, जब कार की तलाशी ली गई, तो मॉर्फिन बरामद किया गया, जिसे 2.250 किलोग्राम वजन वाले सफेद बैग में

रखा गया था, साथ ही 2,00,000/- रुपये की राशि के करेंसी नोट भी रखे गए थे। रिकॉर्ड पर सर्च मेमो में दोनों आरोपियों के साथ-साथ एनसीबी लखनऊ के अधिकारी के हस्ताक्षर भी हैं। हालांकि, इसमें राजपत्रित अधिकारी- श्री डीके दुबे के हस्ताक्षर शामिल नहीं हैं, जिनकी उपस्थिति में तलाशी ली गई थी। फ़र्द बरामदगी और ली गई तलाशी के अनुसरण में, नमूनों को एनसीबी द्वारा रासायनिक विश्लेषण के लिए भेजा गया था और आरोपियों को एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत मुकदमा चलाने के लिए पकड़ा गया था। यह सूचित किया जाता है कि बाद में उक्त दो अभियुक्तों के विरुद्ध सक्षम न्यायालय में एक आपराधिक शिकायत दर्ज की गई है और विचारण चल रहा है। वर्तमान जमानत आवेदन आवेदक द्वारा दायर पहली जमानत याचिका को 12.08.2021 को विशेष न्यायाधीश, एन.डी.पी.एस. न्यायालय बाराबंकी द्वारा खारिज कर दिया गया है।

4. आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि जिस तरह से तलाशी और जब्ती की गई है, उसमें पर्याप्त अनियमितताएं हैं। उनका तर्क है कि फ़र्द बरामदगी के अनुसार, तलाशी व्यक्तियों के साथ-साथ वाहन में और कथित तौर पर एक राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में की गई थी। उनका तर्क है कि राजपत्रित अधिकारी ने बरामदगी मेमो पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, जिसे प्रतिवादी के अधिवक्ता ने भी स्वीकार किया है। उक्त कमी के आलोक में, उनका तर्क है कि पूरी बरामदगी संदिग्ध हो जाती है। वह धारा 50 के अधिदेश की ओर भी मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं।

5. वह विशेष रूप से धारा 50 उप-धारा 5 पर यह तर्क देने के लिए भरोसा करता है कि तलाशी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के जनादेश के संदर्भ में किया जाना है। वह मेरा ध्यान द०प्र०स० की धारा 100 की ओर आकर्षित करते हैं जो इस प्रकार है:

"100. तलाशी की अनुमति देने के लिए बंद जगह के प्रभारी व्यक्ति।

(1) जब कभी इस अध्याय के अधीन तलाशी या निरीक्षण के लिए उत्तरदायी कोई स्थान बन्द किया जाता है तो ऐसे स्थान में रहने वाला या उसका भारसाधक होने वाला कोई व्यक्ति, वारंट निष्पादित करने वाले अधिकारी या अन्य व्यक्ति की मांग पर और वारंट प्रस्तुत करने पर उसे उसमें मुक्त प्रवेश की अनुमति देगा और उसकी तलाशी के लिये सभी युक्तियुक्त सुविधाएं वहन करेगा।

(2) यदि ऐसे स्थान में प्रवेश इस प्रकार प्राप्त नहीं किया जा सकता है, तो वारंट निष्पादित करने वाला अधिकारी या अन्य व्यक्ति धारा 47 की उपधारा (2) द्वारा प्रदान की गई रीति से कार्यवाही कर सकेगा।

(3) जहाँ ऐसे स्थान में या उसके आस-पास के किसी व्यक्ति पर अपने व्यक्ति के बारे में ऐसी कोई वस्तु छुपाने का युक्तियुक्त संदेह है जिसके लिए तलाशी ली जानी चाहिए, वहाँ ऐसे व्यक्ति की तलाशी ली जा सकेगी और यदि वह व्यक्ति स्त्री है तो वह

तलाशी किसी अन्य स्त्री द्वारा शालीनता का कड़ाई से ध्यान रखते हुए की जाएगी।

की गई सूची की एक प्रति, ऐसे रहने वाले या व्यक्ति को वितरित की जाएगी।

(4) इस अध्याय के अधीन खोज करने से पहले, अधिकारी या अन्य व्यक्ति जो खोज करने वाला स्थान स्थित है या किसी अन्य स्थान के दो या अधिक स्वतंत्र और सम्मानित निवासियों को बुलाएगा। यदि उक्त इलाके का ऐसा कोई निवासी उपलब्ध नहीं है या खोज का गवाह बनने का इच्छुक नहीं है, खोज में भाग लेने और गवाह करने के लिए और उन्हें या उनमें से किसी को ऐसा करने के लिए लिखित रूप में आदेश जारी कर सकते हैं।

(7) जब उपधारा (3) के अधीन किसी व्यक्ति की तलाशी ली जाती है तब अभिगृहीत की गई सभी वस्तुओं की एक सूची तैयार की जाएगी और उसकी एक प्रति ऐसे व्यक्ति को सुपुर्द की जाएगी।

(8) कोई व्यक्ति, जो युक्तियुक्त कारण के बिना, इस धारा के अधीन तलाशी में उपस्थित होने और साक्षी बनने से मना करता है या उपेक्षा करता है, जब उसे लिखित रूप में सुपुर्द या प्रस्तुत किए गए आदेश द्वारा ऐसा करने के लिए कहा जाता है, तो यह समझा जाएगा कि उसने भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 187 के अधीन अपराध किया है।

(5) तलाशी उनकी उपस्थिति में की जाएगी, और ऐसी तलाशी के दौरान जब्त की गई सभी चीजों की एक सूची और उन स्थानों की जहां वे क्रमशः पाए जाते हैं, ऐसे अधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा तैयार की जाएगी और ऐसे गवाहों द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी; लेकिन इस धारा के तहत तलाशी के गवाह बनने वाले किसी भी व्यक्ति को तलाशी के गवाह के रूप में अदालत में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होगी, जब तक कि विशेष रूप से इसके द्वारा नहीं बुलाया जाता है।

6. द०प्र०स० की धारा 100 उप-धारा 5 के बल पर, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, उनका तर्क है कि यह आवश्यक है कि तलाशी मेमो को राजपत्रित अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित किया जाना चाहिए जैसा कि ऐसा करने के लिए अधिकृत है। इन दो प्रावधानों यानी धारा 50 उप-धारा 5 और धारा 100 उपधारा 5 के बल पर, आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि हस्ताक्षर के बिना खोज एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के तहत प्रदान की गई वैध खोज के परीक्षण को संतुष्ट नहीं करती है।

(6) खोजे गए स्थान के अधिभोगी, या उसकी ओर से किसी व्यक्ति को, हर मामले में, तलाशी के दौरान उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी। और उक्त गवाहों द्वारा हस्ताक्षरित इस धारा के तहत तैयार

7. आगे आवेदक के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रस्तुत मामले में, धारा 42 की अनिवार्य

आवश्यकता का भी पालन नहीं किया गया है क्योंकि धारा 42 उप-धारा 2 की आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया गया है। वह आगे तर्क देता है कि आवेदक एक ड्राइवर था और इस प्रकार यह निष्कर्ष निकालने के लिए कोई सामग्री मौजूद नहीं है कि आवेदक के पास कथित दवाओं पर सचेत कब्जा था।

8. उक्त तर्कों के समर्थन में, वह सह-अभियुक्त के बयान पर मेरा ध्यान आकर्षित करता है, जिसने कहा है कि विचाराधीन ड्रग्स उसके निवास पर रखे गए थे और वाहन के माध्यम से ले जाए गए थे और चालक ने वाहन चलाया था। इस प्रकार उनका तर्क है कि आवेदक के पास कथित दवाओं का कोई सचेत कब्जा नहीं था और इस प्रकार उस पर एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। इसके बाद उनका तर्क है कि आपत्तिजनक जब्त दवाओं से कथित रूप से लिए गए नमूने 72 घंटे के समय के भीतर अग्रेषित नहीं किए गए थे, जो कि परिपत्र संख्या-1/88 के संदर्भ में एक अनिवार्य आवश्यकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उक्त परिपत्र के बिंदु संख्या-1.5 में भी यह आवश्यक है कि गवाह की उपस्थिति में नमूना लिया जाना चाहिए, ऐसा नहीं किया गया था। वह आगे तर्क देता है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और इस प्रकार, वह एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37(बी)(ii) के जनादेश को पूरा करता है। वह अंत में तर्क देता है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 13.07.2021 से हिरासत में है और जांच के लिए प्रस्तावित सात गवाहों में से पहले गवाह

की परीक्षा चल रही है और निकट भविष्य में मुकदमे के समाप्त होने की कोई संभावना नहीं है और इस प्रकार, उनका तर्क है कि पूर्व-परीक्षण निरोध भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत आवेदक के अधिकारों का उल्लंघन करता है। ऊपर दर्ज किए गए अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने भारत संघ बनाम शिव शंकर केसरी (2207) 3 एस.सी.सी. (क्रि) 505; एसके राजू @ अब्दुल हक @ जग्गा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2019 में रिपोर्ट किया गया (106) ए.सी.सी. 303; राजस्थान राज्य बनाम राजस्थान राज्य परमानंद ने 2014 में 2 एस.सी.सी. (क्रि) 563 की सूचना दी; संजीव और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य 2022 में रिपोर्ट किया गया 2 एस.सी.सी. (क्रि) 522; (क) क्या यह सच है कि वर्ष 2010 में बाल मुकुंद एवं अन्य के मामले में भारत संघ के मामले में रिपोर्ट की गई थी; (1) जेआईसी 134 (एस.सी.); रणजीतसिंह ब्रह्मजीत शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में आपराधिक अपील संख्या-523 वर्ष 2005 का फैसला किया गया और नारकोटिक कंट्रोल ब्यूरो, लखनऊ के माध्यम से आदित्य कुमार बनाम भारत संघ के मामले में आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-42918 वर्ष 2021 में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

9. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित श्री अखिलेश कुमार अवस्थी ने जमानत के लिए आवेदन पर जोरदार आपत्ति जताई। उनका तर्क है कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क को खारिज कर दिया जाना चाहिए। उनका यह

भी तर्क है कि जहां तक इस तर्क का संबंध है कि राजपत्रित अधिकारी ने फ़र्द बरामदगी पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, उनका कहना है कि राजपत्रित अधिकारी को बुलाया गया था और उनके हस्ताक्षर उन्हें भेजे गए नोटिस पर लिए गए थे, हालांकि, उनका तर्क है कि चूंकि पूरी बरामदगी प्रक्रिया में समय लगता है, तब तक राजपत्रित अधिकारी जा चुका था। हालांकि, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि राजपत्रित अधिकारी तलाशी अभियान के दौरान उपस्थित नहीं था, इसलिए फ़र्द बरामदगी, भले ही उस पर राजपत्रित अधिकारी के हस्ताक्षर न हों, द०प्र०स० की धारा 100 सपठित धारा 50 के परीक्षण को संतुष्ट करेगा। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आपत्तिजनक सामान उस वाहन से बरामद किया गया था जिसमें दोनों आरोपी सवार थे। उनका तर्क है कि सचेत कब्जे की धारणा है क्योंकि यह कहने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि आवेदक को दवा के कब्जे के बारे में पता नहीं है जिसे आवेदक द्वारा निर्वहन किया जाना है। वह ए.आई.आर. 2021 उच्चतम न्यायालय 4476 में रिपोर्ट किए गए भारत संघ बनाम मोहम्मद नवाज खान के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर मजबूत भरोसा करते हैं, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए अन्य मुद्दों के साथ-साथ सचेत कब्जे के दायरे पर विचार किया था। वह आगे तर्क देता है कि आवेदक के खिलाफ सचेत कब्जे को कानून के आधार पर स्वीकार किया जाना चाहिए जैसा कि मोहम्मद अली खान के मामले में स्पष्ट किया गया है। नवाज खान (उपरोक्त) और वह ए.आई.आर. 2020 उच्चतम न्यायालय 721 में रिपोर्ट किए गए

केरल राज्य आदि बनाम राजेश आदि के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी मजबूत भरोसा करते हैं, जिसमें एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37 में इस्तेमाल किए गए 'उचित आधार' शब्द की व्याख्या की गई थी। उन्होंने 2009 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू 3648 में रिपोर्ट किए गए यूनियन ऑफ इंडियन बनाम रतन मलिक @ हाबुल के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भारी भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि अपील में जमानत देते समय, प्रासंगिक मानदंड जैसे कि कब्जे से कुछ भी नहीं मिलना, अभियुक्त को तीन साल की अवधि के लिए हिरासत में रखना और अपील की सुनवाई की कोई संभावना नहीं होगी एक प्रासंगिक मानदंड बनें।

10. उक्त सबमिशन के आलोक में, उन्होंने तर्क दिया कि जमानत आवेदन खारिज होने के योग्य है। हालांकि, वह इस तथ्य पर विवाद नहीं करते हैं कि एनसीबी लखनऊ द्वारा दायर शिकायत के संदर्भ में अपराध स्थापित करने के लिए पहले गवाह की जांच की जा रही है। वह इस तथ्य पर भी विवाद नहीं करते हैं कि शिकायत में लगाए गए आरोपों के समर्थन में सात गवाहों से पूछताछ करने का प्रस्ताव है। आवेदक के अधिवक्ता के इस कथन के संबंध में कि नमूने 72 दिनों की अवधि के भीतर नहीं भेजे गए थे, उनका तर्क है कि नमूने वास्तव में भेजे गए थे, हालांकि उन्हें गलत पते के कारण 'अस्वीकृत' टिप्पणी के साथ लौटा दिया गया था। इस प्रकार, उक्त लाभ

आवेदक के पक्ष में नहीं दिया जा सकता क्योंकि नमूने भेजने में एनसीबी द्वारा कोई गलती नहीं थी। वह आगे तर्क देता है कि धारा 42 के जनादेश का अनुपालन किया गया था और उस हद तक, आवेदक के अधिवक्ता का तर्क अस्वीकृति के योग्य है।

मात्रा वाले अपराधों के लिए भी] जमानत पर या अपने स्वयं के बंधपत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक-

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है, और

11. बार भर में अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों के संदर्भ में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय को यह तय करना है कि जमानत देने का मामला बनता है या नहीं। विवाद के गुण-दोष में जाने से पहले, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए उदाहरणों की रेखा के पार, यह अच्छी तरह से तय है कि वाणिज्यिक मात्रा के संबंध में जमानत देने के लिए, अधिनियम की धारा 37 के तहत निर्धारित शर्तों को जमानत देने से पहले ध्यान में रखा जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 37 निम्नानुसार है:-

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय का समाधान हो जाता है कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(2) उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) या जमानत देने पर तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

"[37. अपराधों का संज्ञेय और गैर-जमानती होना

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी-

(क) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा;

(ख) धारा 19 या धारा 24 या धारा 27क के अधीन दंडनीय अपराध का अभियुक्त कोई व्यक्ति और वाणिज्यिक

12. धारा 37(1)(बी)(ii) के जनादेश के संदर्भ में, यह आवश्यक है कि सरकारी अभियोजक को सुना जाए और यह भी आवश्यक है कि न्यायालय को अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए कि यह मानने के लिए "उचित आधार" हैं कि वह इस तरह के अपराध का दोषी नहीं है "और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार शब्द कि अभियुक्त दोषी नहीं है, व्याख्या

के लिए आया था और जहां तक युक्तियुक्त आधार वाक्यांश का संबंध है, इसकी संगति को भारत संघ के मामले में स्वापक नियंत्रण ब्यूरो बनाम मोहम्मद अली खान बनाम मोहम्मद अली खान के माध्यम से संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था। नवाज खान (उपरोक्त)। संबंधित पैरा-निम्नानुसार हैं:

"19 जमानत देने के लिए निर्धारित मानक 'विश्वास करने के लिए उचित आधार' है कि व्यक्ति अपराध का दोषी नहीं है। 'विश्वास करने के लिए उचित आधार' के मानक की व्याख्या करते हुए, शिव शंकर केसरी (उपरोक्त) में इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि:

"7. धारा 37(1)(बी)(ii) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "उचित आधार" है। अभिव्यक्ति का अर्थ प्रथम दृष्टया आधार से अधिक है। यह अभियुक्त आरोपित अपराध का दोषी नहीं है कि विश्वास करने के लिए पर्याप्त संभावित कारणों को दर्शाता है और बदले में चिंतन किया गया यह उचित विश्वास ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के अस्तित्व की ओर इशारा करता है जो अपने आप में संतुष्टि की रिकॉर्डिंग को सही ठहराने के लिए पर्याप्त हैं कि अभियुक्त आरोपित अपराध का दोषी नहीं है।

8. "उचित" शब्द का कानून में उन परिस्थितियों के संबंध में उचित का प्रथम दृष्टया अर्थ है, जिनमें से अभिनेता को यथोचित कार्य करने के लिए कहा जाता है,

जानता है या जानना चाहिए। "उचित" शब्द की सटीक परिभाषा देना मुश्किल है।

"7. ... स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश में, 4 वां संस्करण, पृष्ठ 2258 में कहा गया है कि 'उचित' शब्द की सटीक परिभाषा की उम्मीद करना अनुचित होगा। कारण व्यक्ति की मूर्खता और उस समय और परिस्थितियों के अनुसार अपने निष्कर्षों में भिन्न होता है जिसमें वह सोचता है। पुराने विद्वतापूर्ण तर्क का निर्माण करने वाला तर्क अब एक बच्चे के खिलौने की जिंगींग की तरह लगता है।

(देखें दिल्ली नगर निगम बनाम जगन्नाथ अशोक कुमार [(1987) 4 एस.सी.सी. 497] (एस.सी.सी. पृष्ठ 504, पैरा-7) और गुजरात जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम यूनिक इरेक्टर्स (गुजरात)(पी) लिमिटेड [(1989) 1 एस.सी.सी. 532] [...]

10. "उचित" शब्द का अर्थ है "कारण के अनुसार"। अंतिम विश्लेषण में यह तथ्य का प्रश्न है कि कोई विशेष कार्य उचित है या नहीं, यह किसी दी गई स्थिति में परिस्थितियों पर निर्भर करता है। (देखें ग्रेटर मुंबई के नगर निगम बनाम कमला मिल्स लिमिटेड [(2003)6 एस.सी.सी. 315]

11. अधिनियम की धारा 37 के संदर्भ में जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय अदालत को दोषी नहीं होने का निष्कर्ष दर्ज करने के लिए नहीं कहा जाता है। यह सीमित उद्देश्य के लिए अनिवार्य

रूप से अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के सवाल तक सीमित है कि अदालत को यह देखने के लिए कहा जाता है कि क्या यह मानने के लिए उचित आधार है कि अभियुक्त दोषी नहीं है और इस तरह के आधारों के अस्तित्व के बारे में अपनी संतुष्टि दर्ज करता है। लेकिन अदालत को इस मामले पर विचार नहीं करना है जैसे कि वह बरी होने का फैसला सुना रही है और दोषी नहीं होने का निष्कर्ष दर्ज कर रही है। (महत्व सन्निविष्ट)

उपर्युक्त पूर्वोदाहरण के आधार पर, जमानत देते समय उच्च न्यायालय और इस न्यायालय को जो परीक्षण लागू करना आवश्यक है, वह यह है कि क्या यह मानने के लिए उचित आधार है कि अभियुक्त ने कोई अपराध नहीं किया है और क्या जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों की गंभीरता को देखते हुए और देश में मादक पदार्थों की तस्करी के खतरे को रोकने के लिए, एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत जमानत देने के लिए कड़े मानदंड निर्धारित किए गए हैं।

13. उक्त वाक्यांश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केरल राज्य बनाम राजेश और अन्य (उपरोक्त) के मामले में भी समझाया गया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया था:

"20. धारा 37 की योजना से पता चलता है कि जमानत देने की शक्ति का प्रयोग

न केवल द०प्र०स० की धारा 439 के तहत निहित सीमाओं के अधीन है, बल्कि धारा 37 द्वारा रखी गई सीमा के अधीन भी है जो गैर-खंड से शुरू होता है। उक्त धारा का क्रियात्मक भाग नकारात्मक रूप में है जिसमें अधिनियम के अंतर्गत अपराध करने के अभियुक्त किसी व्यक्ति को जमानत में वृद्धि का विहित किया गया है, जब तक कि दोहरी शर्तों को पूरा न किया जाए। पहली शर्त यह है कि अभियोजन पक्ष को आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया जाना चाहिए; और दूसरा, यह है कि न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि यह मानने के लिए उचित आधार है कि वह इस तरह के अपराध का दोषी नहीं है। यदि इन दोनों शर्तों में से कोई भी पूरी नहीं होती है, तो जमानत देने पर प्रतिबंध लागू होता है।

14. धारा 37(1)(बी)(ii) के एक महज़ पढ़ने पर, यह राय बनाने के लिए कि यह मानने के लिए उचित आधार मौजूद है कि वह दोषी नहीं है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण के अलावा और जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, राय या विचार बनाने का आधार यह है कि उचित आधार मौजूद है कि उसे मुकदमे में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास धारा 37 के पहलू और मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) के मामले में निर्धारित शर्तों से निपटने का अवसर था, जो 2023 लाइव लॉ (एस.सी.) 260 में रिपोर्ट किया गया था। धारा 37 के दायरे से निपटने

हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"18. अदालतों को जिन शर्तों का संज्ञान लेना होगा, वे हैं कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त "ऐसे अपराध का दोषी नहीं है" और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। "दोषी नहीं" का क्या मतलब है जब सभी सबूत अदालत के सामने नहीं हैं? यह केवल प्रथम दृष्टया निर्धारण हो सकता है। यह अदालत के विवेकाधिकार को बहुत कम अंतर में रखता है। जमानत पर सामान्य कानून (धारा 436, 437 और 439, द०प्र०स०) के जनादेश को देखते हुए, जो अपराधों को उनकी गंभीरता के आधार पर वर्गीकृत करता है, और निर्देश देता है कि जमानत आवेदनों पर विचार करते समय कुछ गंभीर अपराधों से अलग तरीके से निपटा जाना चाहिए; अतिरिक्त शर्त यह है कि अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त (जिसे कानून में निर्दोष माना जाता है) दोषी नहीं है, इसकी यथोचित व्याख्या की जानी चाहिए। इसके अलावा, विशेष अधिनियमों (एन.डी.पी.एस. अधिनियम, आदि) के तहत अपराधों का वर्गीकरण, जो अदालतों द्वारा मूल्यांकन किए जाने के लिए आवश्यक सामान्य जमानत शर्तों के ऊपर लागू होता है, के लिए आवश्यक है कि अदालत अपनी संतुष्टि दर्ज करे कि अभियुक्त अपराध का दोषी नहीं हो सकता है और रिहाई पर, उनके द्वारा

कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। इन दो स्थितियों में अन्य स्थितियों की देखरेख करने का प्रभाव पड़ता है। जिन मामलों में जमानत मांगी जाती है, अदालत रिकॉर्ड पर सामग्री का आकलन करती है जैसे कि अपराध की प्रकृति, आरोपी द्वारा जांच में सहयोग करने की संभावना, न्याय से भाग नहीं रहा है: यहां तक कि हत्या, अपहरण, बलात्कार, आदि जैसे गंभीर अपराधों में भी। दूसरी ओर, ऐसे विशेष अधिनियमों के तहत इन मामलों में अदालत को मुख्य रूप से दो तथ्यों पर खुद को संबोधित करना होता है: अभियुक्तों का संभावित अपराध और रिहाई पर उनके द्वारा कोई अपराध नहीं करने की संभावना। इस अदालत ने आम तौर पर इस आधार पर ऐसी शर्तों को बरकरार रखा है कि ऐसे नागरिकों की स्वतंत्रता - उन मामलों में जब विशेष कानूनों के तहत अधिनियमित अपराधों के आरोपी हों - सार्वजनिक हित के खिलाफ संतुलित होना चाहिए।

19. धारा 37 के तहत शर्तों की एक सादा और शाब्दिक व्याख्या (यानी, उस न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त दोषी नहीं है और कोई अपराध नहीं करेगा) प्रभावी रूप से जमानत देने को पूरी तरह से बाहर कर देगा, जिसके परिणामस्वरूप दंडात्मक निरोध और अस्वीकृत निवारक निरोध भी होगा। इसलिए, धारा 37 के तहत अधिनियमित ऐसी विशेष शर्तों को संवैधानिक मापदंडों के भीतर माना जा सकता है, जहां

अदालत रिकॉर्ड पर सामग्री (जब भी जमानत आवेदन किया जाता है) को देखने पर यथोचित रूप से संतुष्ट होती है कि अभियुक्त दोषी नहीं है। किसी भी अन्य व्याख्या के परिणामस्वरूप एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37 के तहत अधिनियमित अपराधों के आरोपी व्यक्ति को जमानत से पूरी तरह से इनकार कर दिया जाएगा।

20. मानक इसलिए माना जा सकता है, एक है, जहां अदालत एक व्यापक तरीके से सामग्री को देखो, और यथोचित आरोपी के अपराध साबित किया जा सकता है कि क्या देख. इसलिए, इस अदालत के निर्णयों ने इस बात पर जोर दिया है कि अदालतों से जो संतुष्टि दर्ज करने की उम्मीद की जाती है, अर्थात्, अभियुक्त दोषी नहीं हो सकता है, केवल प्रथम दृष्टया उचित रीडिंग पर आधारित है, जिसमें विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता नहीं है (जैसा कि भारत संघ बनाम रतन मलिक 19 में अवधारित किया गया था)। मुकदमे में अनुचित देरी के आधार पर जमानत देना, अधिनियम की धारा 37 द्वारा बाधित नहीं कहा जा सकता है, धारा 436 ए की अनिवार्यता को देखते हुए जो एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अपराधों पर भी लागू होता है (संदर्भ सतेंद्र कुमार अंतिल उपरोक्त)। इन कारकों के संबंध में 19(2009)2 एस.सी.सी.624 होने के बाद, अदालत की राय है कि इस मामले के

तथ्यों में, अपीलकर्ता जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है।

16. प्रस्तुत मामले में, आवेदक पर धारा 8/21/25/29 एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है। अधिनियम की धारा 8 किसी भी व्यक्ति को किसी भी मादक दवा या साइकोट्रॉपिक पदार्थों को रखने के साथ-साथ उत्पादन, निर्माण, बिक्री, खरीद आदि से रोकती है। अधिनियम की धारा 8 नीचे उद्धृत की गई है: -

"8. कुछ कार्यो का निषेध। कोई भी व्यक्ति नहीं करेगा-

(क) कोका के पौधे की खेती करना या कोका पौधे के किसी हिस्से को इकट्ठा करना; नहीं तो

(ख) अफीम पोस्ता या भांग के पौधे की खेती करना; नहीं तो

(ग) चिकित्सा या वैज्ञानिक प्रयोजनों को छोड़कर और इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और ऐसे मामले में जहां ऐसा कोई उपबंध, अंतर्राज्यीय निर्यात, अंतरराज्यीय निर्यात, भारत में आयात, भारत से निर्यात या किसी स्वापक औषधि या मनप्रभावी पदार्थ का उत्पादन, निर्माण, अधिकार, बिक्री, क्रय, परिवहन, भांडागार, उपयोग, उपभोग, अंतरराज्यीय, अंतरराज्यीय निर्यात, भारत से निर्यात या किसी

स्वापक औषधि या मनप्रभावी पदार्थ का परिवहन करेगा और इस अधिनियम के उपबंधों या इसके अधीन बनाए गए नियमों या आदेशों द्वारा उपबंधित रीति और सीमा तक और ऐसे मामले में जहां ऐसा कोई उपबंध, ऐसे अनुज्ञप्ति या प्राधिकार के निबन्धनों और शर्तों के अनुसार भी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा या प्राधिकार के माध्यम से कोई अपेक्षा अधिरोपित करता है: परन्तु इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, गांजा के उत्पादन के लिए भांग के पौधे की खेती के विरुद्ध प्रतिषेध, चिकित्सा और वैज्ञानिक प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए गांजा का कब्जा, उपयोग, उपभोग, क्रय, विक्रय, परिवहन, भांडागार, आयात अंतर-राज्यीय और निर्यात अंतर-राज्यीय केवल उस तारीख से प्रभावी होगा जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे:

1 [बशर्ते कि इस खंड में कुछ भी सजावटी उद्देश्यों के लिए अफीम के भूसे के निर्यात पर लागू नहीं होगा।

17. प्रस्तुत मामले में, आवेदक पर दवा के अवैध 'कब्जे' का आरोप लगाया गया है और अभियोजन पक्ष को आवेदक को 'कब्जे' के लिए दंडित करने और अधिनियम की धारा 21, 25 और 29 के तहत निर्धारित सजा देने के लिए कदम उठाने होंगे।

18. अधिनियम में वह रीति प्रदान की गई है जिसमें अधिनियम की धारा 8 के अधीन अपराध के कारण का निर्धारण करने की शक्ति उक्त अधिनियम के अध्याय V में विहित की गई है। उक्त अधिनियम की धारा 42 उसमें परिभाषित विधि निर्णयों को किसी भवन, वाहन या स्थान में प्रवेश करने और तलाशी लेने और निर्धारित तरीके से औषध या पदार्थों को जब्त करने की शक्ति प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 42 (2) संबंधित अधिकारी पर अपने विश्वास के आधार को रिकॉर्ड करने और 72 घंटे की समय अवधि के भीतर प्रस्तुत वरिष्ठ आधिकारी को इसकी एक प्रति भेजने के लिए एक प्रतिबंध लगाती है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 जिसके साथ हम मुख्य रूप से प्रस्तुत मामले में चिंतित हैं, निम्नानुसार प्रदान करता है: -

"50. वे शर्तें जिनके अधीन व्यक्तियों की तलाशी ली जाएगी

(1) जब धारा 42 के अधीन सम्यक् रूप से प्राधिकृत कोई अधिकारी, धारा 41, धारा 42 या धारा 43 के उपबंधों के अधीन किसी व्यक्ति की तलाशी लेने वाला है तो वह, यदि ऐसा अपेक्षित हो, ऐसे व्यक्ति को अनावश्यक विलम्ब के बिना धारा 42 में वर्णित भागों में से किसी के निकटतम राजपत्रित अधिकारी के पास या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जाएगा।

(2) यदि ऐसी माँग की जाती है तो अधिकारी उस व्यक्ति को तब तक निरुद्ध कर सकेगा जब तक कि वह उसे उपधारा (1) में निर्दिष्ट

राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं ला सकता।

उसकी एक प्रति अपने निकटतम वरिष्ठ सरकारी अधिकारी को भेजेगा।

(3) राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष ऐसा कोई व्यक्ति लाया जाता है, यदि उसे तलाशी के लिये कोई युक्तियुक्त आधार दिखाई नहीं देता है तो वह उस व्यक्ति को आरोपमुक्त कर देगा किन्तु अन्यथा वह निदेश देगा कि तलाशी की जाए।

(4) किसी भी महिला को छोड़कर किसी भी महिला की तलाशी नहीं ली जाएगी।

(5) जब धारा 42 के अधीन सम्यक रूप से प्राधिकृत किसी अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाना तब तक संभव नहीं है जब तक कि उस व्यक्ति की तलाशी लिए जाने की संभावना न हो और वह किसी स्वापक औषधि या मनप्रभावी पदार्थ, या नियंत्रित पदार्थ या वस्तु या दस्तावेज को कब्जे में ले जाए, वह ऐसे व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाने के बजाय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 100 के तहत प्रदान किए गए व्यक्ति की तलाशी लेने के लिए आगे बढ़ सकता है।

(6) उपधारा (5) के अधीन तलाशी लिए जाने के पश्चात्, अधिकारी ऐसे विश्वास के कारणों को अभिलिखित करेगा जिनके लिए ऐसी तलाशी अपेक्षित थी और बहतर घंटे के भीतर

19. धारा 50 के महज़ पढ़ने पर यह अनिवार्य है कि तलाशी के समय, यदि अभियुक्त ऐसा चाहता है, तो उसे अधिनियम की धारा 42 में उल्लिखित निकटतम राजपत्रित अधिकारी या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास बिना किसी अनावश्यक देरी के ले जाया जाना चाहिए। यह धारा 42 के तहत परिभाषित अधिकारी को उस समय तक व्यक्ति को हिरासत में रखने का अधिकार देता है, जब तक कि अभियुक्त को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं लाया जा सकता है। अभियुक्त को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष लाए जाने के बाद, ऐसे राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट को व्यक्ति को आगे आरोपमुक्त करने की शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं, यदि धारा 50 के तहत तलाशी के लिए कोई उचित आधार नहीं है या तलाशी का निर्देश नहीं है। धारा 50 की उपधारा 5 प्रस्तुत मामले के लिए महत्वपूर्ण है जो रिकॉर्ड करती है कि यदि धारा 42 के तहत अधिकृत अधिकारी के पास यह विश्वास करने के कारण हैं कि व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास तलाशी के लिए ले जाना संभव नहीं है और संभावना है कि तलाशी लेने वाला व्यक्ति किसी भी दवा या पदार्थों के कब्जे के साथ भाग सकता है, उक्त अधिकारी को एक विकल्प दिया जाता है कि ऐसे व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाने के बजाय, वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत प्रदान किए गए अनुसार तलाशी के लिए आगे बढ़ सकता है।

अधिनियम की धारा 50 की उपधारा 6 में यह भी प्रावधान है कि उपधारा (5) के तहत विश्वास करने के कारणों की रिकॉर्डिंग को 72 घंटे के भीतर प्रस्तुत अधिकारी को सूचित किया जाना चाहिए।

20. चूंकि अभियुक्त के खिलाफ मामला ड्रग्स और पदार्थों के कब्जे के आरोप पर आधारित है, इसलिए यह अनिवार्य है कि अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि अधिनियम के तहत निर्धारित तलाशी के बाद कब्जा पाया गया था। प्रस्तुत मामले में, जैसा कि इस तथ्य से समझा जा सकता है कि अभियुक्त-आवेदक को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में तलाशी लेने का विकल्प दिया गया था, उक्त विकल्प का प्रयोग आवेदक द्वारा किया गया था और इसका इरादा था कि उसकी राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में तलाशी ली जाए। अभियुक्त द्वारा प्रयोग किए गए उक्त विकल्प के अनुसरण में, राजपत्रित अधिकारी को बुलाया गया था। यहां तक कि प्रतिवादी के अधिवक्ता के अनुसार, चूंकि तलाशी में समय लगने की संभावना थी, राजपत्रित अधिकारी चले गए क्योंकि खोज पर्याप्त अवधि तक जारी रही। यह भी स्वीकार किया जाता है कि जिस राजपत्रित अधिकारी को बुलाया गया था, उसने तलाशी मेमो पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। उक्त स्वीकारोक्ति के आलोक में, इस तथ्य के साथ कि आवेदक के खिलाफ आरोप अवैध कब्जे का है, यह आवश्यक है कि विचारण न्यायालय में, अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप को साबित करने के लिए एक वैध खोज और कब्जे की परिणामी खोज की नींव स्थापित की

जाए। राजपत्रित अधिकारी को बुलाकर उत्तरदाताओं द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का पालन किया गया था, हालांकि, राजपत्रित अधिकारी ने तलाशी पूरी होने तक इंतजार नहीं किया और सर्च मेमो पर हस्ताक्षर नहीं करना अधिनियम की धारा 50 का स्पष्ट उल्लंघन है। यद्यपि, अधिनियम की धारा 50 में स्पष्ट शब्दों में राजपत्रित अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाने का निर्धारण नहीं किया गया है। द०प्र०स० की धारा 51 और धारा 100 सपठित धारा 50 के सादे पठन पर, यह आवश्यक है कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कोई स्वतंत्र व्यक्ति हो या राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष तलाशी ली जाती है, आवश्यक रूप से अपने हस्ताक्षर करता है।

21. एक वैध खोज के माध्यम से परीक्षण के समय अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किए जाने वाले 'कब्जे' का मूलभूत तथ्य, प्रथम दृष्टया धारा 50 के जनादेश के अनुरूप नहीं है। प्रथम दृष्टया कब्जे का आरोप किसी भी वैध तलाशी के बिना स्थापित नहीं किया जा सकता है जो धारा 50 के जनादेश के अनुसार है।

22. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में यह तय किया गया है कि यदि तलाशी व्यक्तिगत रूप से की जाती है और अभियुक्त द्वारा ले जाया गया सामान भी है, तो धारा 50 के अवयवों का अनुपालन किया जाना चाहिए जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पैरा-10 में राजस्थान राज्य बनाम परमानंद (उपरोक्त) के मामले में

अवधारित किया गया है, जहां न्यायालय ने पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह 1999 के मामले में संवैधानिक पीठ ने एस.सी.सी. पृष्ठ 172 Vol.VI निम्नानुसार है: -

"10. संविधान पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, जो इस मामले के लिए प्रासंगिक हैं, को उद्धृत किया जा सकता है।

"(1) कि जब कोई सशक्त अधिकारी या पूर्व सूचना पर कार्य करने वाला विधिवत प्राधिकृत अधिकारी किसी व्यक्ति की तलाशी लेने वाला हो, तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह संबंधित व्यक्ति को धारा 50 की उपधारा (1) के अधीन तलाशी के लिए निकटतम राजपत्रित अधिकारी या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जाए जाने के उसके अधिकार के बारे में सूचित करे। हालांकि, ऐसी जानकारी लिखित में नहीं हो सकती है।

(2) राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लिए जाने के अपने अधिकार के अस्तित्व के बारे में संबंधित व्यक्ति को सूचित करने में विफलता एक अभियुक्त के लिए पूर्वाग्रह पैदा करेगी।

(3) कि किसी सक्षम अधिकारी द्वारा पूर्व सूचना पर, व्यक्ति को उसके अधिकार की सूचना दिए बिना की गई तलाशी कि यदि वह ऐसी अपेक्षा करता

है, तो उसे तलाशी के लिए राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाया जाएगा और यदि वह ऐसा चाहता है तो राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी तलाशी करने में असफल रहने पर, विचारण को समाप्त नहीं कर सकेगा बल्कि अवैध वस्तु की बरामदगी संदिग्ध हो जाएगी और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगी और एक अभियुक्त की सजा, जहां अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों के उल्लंघन में की गई तलाशी के दौरान उसके व्यक्ति से बरामद अवैध वस्तु के कब्जे के आधार पर केवल दोषसिद्धि दर्ज की गई है।

23. जैसा कि यह न्यायालय प्रथम दृष्टया यह देखने के लिए है कि व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराने के लिए एक उचित आधार है, इस स्तर पर, बलदेव सिंह (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अवैध वस्तुओं की बरामदगी संदिग्ध हो जाती है क्योंकि यह देखने के लिए इस तरह के उचित आधार मौजूद हैं कि परीक्षण के बाद आवेदक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। ऊपर की गई सभी टिप्पणियां, प्रथम दृष्टया, एक राय बनाने के लिए टिप्पणियां हैं जो जमानत आवेदन की सुनवाई के समय पाई जानी आवश्यक हैं और यह स्पष्ट किया जाता है कि उक्त टिप्पणियां किसी भी तरह से मुकदमे को प्रभावित नहीं करेंगी जो कानून के अनुसार और साक्ष्य के मूल्यांकन के बाद आगे बढ़ेगी।

24. धारा 37(1)(बी)(ii) के तहत निर्धारित दूसरी शर्त के संबंध में कि अभियुक्त यदि जमानत पर छोड़ दिया जाता है, तो वह जमानत पर रहते हुए कोई अपराध करने की संभावना नहीं रखता है, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रणजीत सिंह ब्रह्मजीत शर्मा (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना था कि अभियुक्त के भविष्य के आचरण के संबंध में एक विचार बनाते समय, अदालत को आरोपी के पूर्ववृत्त, उसकी प्रवृत्ति और प्रकृति और तरीके को ध्यान में रखते हुए विचार करना चाहिए जिसमें उसने अपराध करने का आरोप लगाया है। प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और इस प्रकार, मेरे पास संतुष्टि दर्ज करने के कारण हैं जैसा कि अधिनियम की धारा 37(1)(बी)(ii) के दूसरे भाग में आवश्यक है। हालांकि, एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत मामलों में जमानत देने के लिए देरी से सुनवाई अपने आप में एक आधार है। अदालत इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकती है कि लगभग दो साल की हिरासत के बाद, केवल एक गवाह की जांच की गई है। यह दृष्टिकोण हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन (उपरोक्त) के मामले में लिया गया है और रबी प्रकाश बनाम ओडिशा राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का निर्णय विशेष अपील की अनुमति (सीआरएल) संख्या-(एस) 4169/2023 में किया गया है। मैं परिपत्र सं 1/88 के उल्लंघन के संबंध

में बार में उठाए गए अन्य तर्कों पर नहीं जा रहा हूं, सचेत कब्जे के संबंध में तथ्य जिसका विश्लेषण साक्ष्य के बाद किया जाना है। इस स्तर पर किसी भी निष्कर्ष का परीक्षण के परिणाम पर प्रभाव पड़ सकता है और धारा 50 एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत शर्त के उल्लंघन से संबंधित ऊपर दर्ज मेरे निष्कर्षों को देखते हुए भी इसकी आवश्यकता नहीं है। ऊपर दर्ज निष्कर्षों के मद्देनजर, अभियुक्त-आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार है। इस प्रकार, जमानत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

25. आवेदक वाहिद अली को उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या में जमानत पर रिहा किया जाए, बशर्ते कि वह निम्नलिखित शर्तों से संबंधित अदालत की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और दो विश्वसनीय ज़ामिनान प्रस्तुत करे:

(ए) आवेदक सुनवाई में भाग लेने के लिए एक बांड निष्पादित करेगा;

(ख) आवेदक उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसके लिए वह अभियुक्त है या कमीशन का संदिग्ध है; और

(ग) आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की जा सके।

(2023) 7 ILRA 712

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

सिविल पुनरीक्षण संख्या 101 वर्ष 2022

सी/एम अंजुमन इंतेज़ामिया मसाजिद वाराणसी

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

श्रीमती राखी सिंह एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता: श्री सैयद अहमद फैजान, श्री एस.एफ.ए. नकवी (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री ज़हीर असगर, सुश्री फ़ातमा अंजुम, श्री महमूद आलम।

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: श्री प्रभाष पांडे, श्री आर्य सुमन पांडे, श्री सौरभ तिवारी, एसआई विष्णु शंकर जैन, श्री विनीत संकल्प, श्रीहरि शंकर जैन, सुश्री मणि मुंजाल, श्री पार्थ यादव, श्री प्रदीप शर्मा, श्री एम.सी. चतुर्वेदी (अतिरिक्त ए.जी.), श्री बिपिन बिहारी पांडे (सी.एस.सी.-वी), श्री रणंजय सिंह (अतिरिक्त सी.एस.सी.), श्री श्रवण कुमार दुबे, श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी और श्री हरे राम त्रिपाठी, एस.सी.

पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991-धारा 3 और 4 - वक्फ अधिनियम, 1995 - धारा 85 - वादी प्रतिवादी ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के खिलाफ मुकदमा

दायर किया, जिसमें याचिकाकर्ता/प्रतिवादी ज्ञानवापी मस्जिद का प्रतिनिधित्व करते हैं- निपटान पर देवताओं की पूजा करने के उनके अधिकार का दावा करते हुए प्लॉट संख्या 9130 घोषित किया जाए - और प्रतिवादियों को देवताओं की पूजा, आरती, भोग करने के वादी के अधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने से रोका जाए- और न ही उन देवताओं की छवियों के किसी भी हिस्से को ध्वस्त या नष्ट किया जाए- आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन दायर किया गया जिसमें दावा किया गया कि मुकदमा अधिनियम, 1991 द्वारा वर्जित है - अस्वीकृत - पुनरीक्षण - केवल एक विद्यमान अधिकार को लागू करने के लिए कहने पर हिंदू भक्तगण लंबे समय से विवादित संपत्ति में स्थित हिंदू देवी-देवताओं की पूजा करते आ रहे हैं - उनके निर्दिष्ट स्थान पर - यह ऐसा कार्य नहीं है जो ज्ञानवापी मस्जिद के चरित्र को मंदिर में बदल देता है - 1991 के अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत प्रतिबंध को आकर्षित नहीं करता है - वादी द्वारा कोई राहत का दावा नहीं किया गया है जिसे धारा 85 के अर्थ में 1995 के अधिनियम के तहत न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाना आवश्यक है - दावे वाली संपत्ति के संबंध में शीर्षक या कब्जे के बारे में बिल्कुल भी राहत का दावा नहीं किया गया है, जिसे वक्फ होने का दावा किया गया है, ताकि धारा 85 के तहत अधिकार क्षेत्र का निष्कासन हो सके।

पुनरीक्षण खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सोपान सुखदेव साबले एवं अन्य बनाम सहायक चैरिटी कमिश्नर एवं अन्य, (2004) 3 एससीसी 137
2. मोहम्मद असलम @ भूरे बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1994) 2 एससीसी 48
3. अब्दुल गफूर एवं अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य, (2008) 10 एससीसी 97
4. भार्गवी कंस्ट्रक्शन एवं एक अन्य बनाम कोठाकापू मुख्यम रेड्डी एवं अन्य, (2018) 13 एससीसी 480
5. श्री सूर्या डेवलपर्स एवं प्रमोटर्स बनाम एन. शैलेश प्रसाद एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 736
6. टी. अरिवंदंदम बनाम टी.वीएस सत्यपाल एवं अन्य, (1977) 4 एससीसी 467
7. मदनूरी श्री राम चंद्र मूर्ति बनाम सैयद जलाल, (2017) 13 एससीसी 174
8. मोस्ट रि बनाम पी.एस.ए. मेट्रोपॉलिटन और अन्य बनाम मोरन मार मार्थोम बनाम एवं अन्य, 1995 एसयूपीपी (4) एससीसी 286
9. राम जानकीजी देवता और अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (1999) 5 एससीसी 50
10. एम. सिद्दीक (मृत) विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से (राम जन्मभूमि मंदिर प्रकरण) बनाम महंत सुरेश दास एवं अन्य, (2020) 1 एससीसी 1
11. गणेश बनाम श्री राम ललाजी महाराज बिराजमान मंदिर एवं अन्य, 1972 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 244: आकाशवाणी 1973 इलाहाबाद 116 (एफबी)
12. नारी श्रृंगार बिग बाजार, नागपुर एवं एक अन्य बनाम पैटालून रिटेलिंग (इंडिया) लिमिटेड, मुंबई बनाम एवं अन्य, (2008) 3 महाराष्ट्र.एल.जे. 698
13. बिहार राज्य बनाम राधा कृष्ण सिंह व अन्य, (1983) 3 एससीसी 118
14. सीतल दास बनाम संत राम व अन्य, एआईआर 1954 एससी 606
15. काशी विश्वनाथ मंदिर के श्री आदि विशेश्वर, वाराणसी व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (1997) 4 एससीसी 606
16. मुस्लिम वक्फ बोर्ड, राजस्थान बनाम राधा किशन व अन्य, (1979) 2 एससीसी 468
17. रमेश गोबिंदराम (मृत) एलआरएस के माध्यम से बनाम सुगरा हुमायूं मिर्जा वक्फ, (2010) 8 एससीसी 726
18. दीन मोहम्मद व अन्य बनाम राज्य सचिव, एआईआर 1942 इलाहाबाद 353
19. भारत संघ व अन्य बनाम वासवी सहकारी आवास सोसायटी लिमिटेड एवं अन्य, (2014) 2 एससीसी 269
20. प्रभागीय वन अधिकारी अवध वन प्रभाग बनाम अरुण
21. कुमार भारद्वाज (मृत) एलआर के माध्यम से एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 868
22. पी. वीएस गुरु राज रेड्डी जीपीए द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया लक्ष्मी नारायण रेड्डी और अन्य बनाम पी. नीराधा रेड्डी एवं अन्य, (2015) 8 एससीसी 331
23. एच.एस. दीक्षित एवं अन्य बनाम मैसर्स मेट्रोपोली ओवरसीज लिमिटेड एवं अन्य, 2022(4) आईसीसी 944
24. टी. अरिवंदंदम बनाम टी.वीएस सत्यपाल बनाम अन्य, (1977) 4 एससीसी 467

25. जवाहरा एवं अन्य बनाम अकबर हुसैन, आईएलआर, (1885) 7 इलाहाबाद 178 (एफबी)

26. बैजू लाल परबतिया एवं अन्य बनाम बुलाक लाल पथुक, आईएलआर (1897) 24 कलकत्ता 385

27. राम चन्द्र एवं अन्य बनाम अली मुहम्मद एवं अन्य, आईएलआर (1913) 35 इलाहाबाद 197

28. बालकृष्ण सावलराम पुजारी वाघमारे और अन्य बनाम श्री ध्यानेश्वर महाराज संस्थान एवं अन्य, एआईआर 1959 एससी 798

29. हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह, एआईआर 1933 पी.सी. 193

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

प्रतिपक्षी की ओर से यह सिविल पुनरीक्षण याचिका सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के तहत दायर की गई है, जो वाराणसी के जिला न्यायाधीश डॉ. अजय कृष्ण विश्वेश के एक आदेश के विरुद्ध की गई है, जिसमें मूल वाद सं.-18 वर्ष 2022 में आदेश VII नियम 11 सि.प्र.सं. के तहत प्रतिपक्षी-पुनरीक्षण याची के एक आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

वाद में याचित अनुतोष

2. इस पुनरीक्षण याचिका के पांच वादी-प्रत्यर्थीगण ने उत्तर प्रदेश राज्य के खिलाफ मूल वाद सं. -18 वर्ष 2022 दायर किया है, जिसका प्रतिनिधित्व मुख्य सचिव, जिला मजिस्ट्रेट, वाराणसी, पुलिस आयुक्त, वाराणसी,

द्वारा प्रबंधन समिति, अंजुमन इंतेजामिया मस्जिद, वाराणसी द्वारा सचिव, ज्ञानवापी मस्जिद और न्यासी बोर्ड, श्री काशी विश्वनाथ मंदिर द्वारा बोर्ड के मुख्य कार्यकारी अधिकारी/सचिव ने किया गया है जिसमें उद्घोषणा, स्थायी निषेधाज्ञा और अनिवार्य निषेधाज्ञा के अनुतोष की मांग की गई है, जिसे समझने के लिए शब्दशः पुनर्प्रस्तुत किया गया है:

"क) उद्घोषणा के लिए मुकदमें में डिक्री करें कि वादीगण वार्ड और थाना- दशाश्वमेध जिला वाराणसी के क्षेत्र में प्लॉट सं.-9130 (नौ हजार एक सौ तीस) में स्थित पुराने मंदिर परिसर के भीतर मां शृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं के दर्शन, पूजा और सभी अनुष्ठान करने के हकदार हैं;

ख) प्रतिवादियों को वार्ड और थाना दशाश्वमेध जिला वाराणसी के क्षेत्र में प्लॉट सं. 9130 (नौ हजार एक सौ तीस) में स्थित पुराने मंदिर परिसर के भीतर भगवान गणेश, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं के साथ भगवान आदि विशेश्वर के स्थान पर देवी माँ शृंगार गौरी के भक्तों द्वारा दैनिक दर्शन, पूजा, आरती, भोग और अनुष्ठानों के पालन में कोई प्रतिबंध लगाने, बाधा, रोक या हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा हेतु मुकदमे में डिक्री करें;

ग) प्रतिवादियों को वार्ड और थाना दशाश्वमेध जिला वाराणसी के क्षेत्र में प्लॉट सं. 9130

(नौ हजार एक सौ तीस) में स्थित पुराना मंदिर परिसर के भीतर भगवान आदि विशेश्वर के स्थान पर देवी माँ श्रृंगार गौरी की छवियों के साथ भगवान गणेश, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं की छवियों को ध्वस्त करने, क्षतिग्रस्त करने, नष्ट करने या किसी भी तरह की क्षति पहुंचाने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा हेतु मुकदमें में डिक्री करें ;

घ) उत्तर प्रदेश सरकार और जिला प्रशासन को निर्देश देते हुए अनिवार्य निषेधाज्ञा हेतु मुकदमें में डिक्री करें कि वे वाराणसी शहर के हृदय स्थल वार्ड और थाना दशाश्वमेध के क्षेत्र में स्थित प्लॉट सं. 9130 (नौ हजार एक सौ तीस) में मौजूद 'प्राचीन मंदिर' के रूप में ज्ञात मंदिर परिसर के भीतर भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी और अन्य छवियों और देवताओं के साथ मां श्रृंगार गौरी के भक्तों द्वारा दैनिक दर्शन, पूजा, आरती, भोग की हर सुरक्षा व्यवस्था और सुविधा प्रदान करें;"

ड) कृपया ऐसा अन्य अनुतोष प्रदान करें जिसके वादी हकदार पाए जाएं या जो न्यायहित में उचित और आवश्यक समझा जाए; और

च) वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के खिलाफ लागत के साथ मुकदमें का निर्णय करें ;

आदेश VII नियम 11 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन

3. इस मुकदमें में पुनरीक्षण याची प्रतिवादी सं. 4¹⁵¹ अर्थात् प्रबंध समिति, अंजुमन इंतेज़ामिया मस्जिद, वाराणसी की ओर से एक आवेदन दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि मुकदमें की सुनवाई के बिना ही वाद को खारिज कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह मुकदमा पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991¹⁶² द्वारा वर्जित है। पुनरीक्षण याची के अनुसार, ऐसा कहने का आधार यह है कि वादीगण ने इस आशय की राहत का दावा किया है कि सेटलमेंट भूखंड सं. 9130 पर देवताओं की पूजा करने के उनके अधिकार की घोषणा की जाए और इसके अलावा प्रतिवादियों को देवताओं की पूजा, आरती, भोग करने के वादीगण के अधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने से रोका जाए, न ही उन देवताओं की छवियों के किसी भी हिस्से को ध्वस्त या नष्ट किया जाए। वर्ष 1991 के अधिनियम के तहत की गई आपत्ति इस आधार पर आगे बढ़ती है कि प्लॉट सं. 9130 में पिछले 600 वर्षों से जानवापी मस्जिद अस्तित्व में है और अभी भी अस्तित्व में है, जहां वाराणसी शहर और उसके आसपास के मुसलमान बिना किसी रोक-टोक के दिन में पांच बार और दो ईद और शुक्रवार आदि को नमाज अदा करते हैं।

4. पुनरीक्षण याची का कहना यह है कि अधिनियम, 1991 के तहत 15 अगस्त 1947 को विद्यमान किसी पूजा स्थल का धार्मिक चरित्र वैसा ही बना रहेगा, उसमें कोई बदलाव नहीं होगा। इसलिए, वैधानिक रोक यह है कि

15 संक्षेप में, पुनरीक्षण याची

16 संक्षेप में, अधिनियम, 1991

मुकदमे में दावा की गई राहत के द्वारा वादी ज्ञानवापी मस्जिद के चरित्र को बदलना चाहते हैं। इस आपति का समर्थन उक्त आवेदन के पैराग्राफ सं. 5 की सामग्री के आधार पर किया गया है, जहां कहा गया है कि वाद के पैराग्राफ सं. 12, उप-पैराग्राफ सं. (i) से (xiv) की सामग्री यह स्पष्ट करती है कि उसमें जिन तथ्यों की दलील दी गई है, वे ज्ञानवापी मस्जिद से संबंधित हैं, जो पिछले 600 वर्षों से अस्तित्व में है और वादी उक्त मस्जिद में पूजा, अर्चना करने का अनुतोष चाहते हैं। यह अधिनियम, 1991 का उल्लंघन होगा जिस पर वर्जन लागू होगा। इस आपति को यह कहते हुए भी पूरक बनाया गया है कि वाद के पैराग्राफ सं. 29 में कहा गया है कि भवन परिसर प्रबंधन समिति, अंजुमन इंतजामिया मस्जिद, वाराणसी के नियंत्रण में है, जो दर्शाता है कि मुकदमे में याचित अनुतोष ज्ञानवापी मस्जिद के संबंध में है और यह सब चतुराई से तैयार किया गया मसौदा है।

5. दूसरी आपति यह है कि यह मुकदमा उत्तर प्रदेश श्री काशी विश्वनाथ मंदिर अधिनियम, 1983¹⁷³ के तहत वर्जित है। अधिनियम, 1983 पर आधारित आपति आवेदन के पैराग्राफ सं. 4 में है, जिसमें दावा किया गया है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने वर्ष 1983 में अधिनियम बनाया था, जिसके तहत पूरे काशी विश्वनाथ परिसर और उसके रख-रखाव का नियंत्रण न्यासी बोर्ड को सौंपा गया था। श्री काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड को सभी

देवी-देवताओं की देखभाल और उनके मामलों का प्रबंधन करना होता है।

6. अगला कानून, जिसके तहत मुकदमे को वर्जित बताया गया है, वह वक्फ अधिनियम, 1995¹⁸⁴ है। अंतिम उल्लिखित आपति का आधार आवेदन के पैराग्राफ सं. 6 और 7 में है, जहां यह कहा गया है कि ज्ञानवापी मस्जिद, जिसका वर्णन वाद के पैराग्राफ सं. 12, उप-पैरा सं. (i) से (xiv) में किया गया है, वक्फ संपत्ति है, जो कि उ.प्र. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, लखनऊ के साथ वक्फ सं. 100, बनारस के रूप में दर्ज है। आपति यह है कि चूंकि वादी संपत्ति में अधिकार का दावा करते हैं, जो वक्फ है, इसलिए मुकदमे का प्रयास करने के लिए सिविल कोर्ट का क्षेत्राधिकार अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 85 के तहत वर्जित है। यह इन सभी तीन कानूनों के आधार पर ही पुनरीक्षण याची ने आग्रह किया है कि मुकदमा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908¹⁹⁵ के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत वर्जित है।

7. संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन पर दायर अपने जवाब में, वादीगण का कहना है कि आवेदन वादपत्र में किए गए कथनों पर आधारित नहीं है और अधिनियम, 1991 के तहत मुकदमे पर रोक लगाने के बारे में दलील मुकदमेबाजी को लंबा खींचने और मेरिट पर सुनवाई से बचने के लिए उठाई गई है। यह दावा किया गया है कि वार्ड और पुलिस स्टेशन दशाश्वमेध, वाराणसी के क्षेत्र में स्थित

सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 के भीतर कोई मस्जिद नहीं है, जिसे वादपत्र और आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन के जवाब में भी मुकदमे की संपत्ति बताया गया है।

8. संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन के पैरा सं. 4 से 8 तक और पैरा सं. 8 के उप अनुच्छेदों सहित आवेदन के उत्तर का सार यह है कि वाद की संपत्ति में अनादि काल से देवता रहे हैं। किसी विशेष समय या विशेष स्थान पर प्रश्नगत संपत्ति के भीतर जबरन नमाज अदा करने से इसका स्वरूप मस्जिद में नहीं बदल जाएगा। प्रथम अस्तित्व के सिद्धांत की भी दलील दी गई है। वाद का दायरा इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि प्रतिवादियों को पुराने मंदिर परिसर यानी वाद की संपत्ति में विद्यमान देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी, दृश्यमान और अदृश्य देवताओं, मंडपों और मंदिरों के दर्शन, पूजा करने में हस्तक्षेप करने से रोका जाए। इस बात पर जोर दिया गया है कि ये देवता 15 अगस्त, 1947 से पहले से ही संबंधित संपत्ति में लगातार विद्यमान हैं और भक्तों को देवताओं के दर्शन और पूजा करने का अधिकार है। उन्हें संविधान के अनुच्छेद 25 से प्राप्त अपने धर्म का पालन करने के अधिकार की रक्षा और संरक्षण के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है। मंदिर की स्थापना, कई घटनाओं के दौरान इसके विनाश और जीर्णोद्धार से संबंधित मुख्य घटनाओं को ऐतिहासिक विवरण में प्रस्तुत किया गया है। इस मुद्दे पर पहले के एक मुकदमे का भी संदर्भ है, जो सिविल मुकदमा सं. 62 वर्ष 1936 है, जिसमें मुकदमे के दौरान दर्ज गवाहों

की गवाही से यह स्थापित होता है कि देवता 15 अगस्त, 1947 से पहले मुकदमे की संपत्ति में विद्यमान थे।

9. संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन के उत्तर में आगे उल्लेख किया गया है कि निरीक्षण करने के लिए नियुक्त अधिवक्ता आयुक्त की रिपोर्ट वाद में दिए गए कथनों पर प्रकाश डालेगी और वादी साक्ष्य के आधार पर वाद की संपत्ति के भीतर निर्दिष्ट स्थानों को इंगित करेंगे, जहां वादी द्वारा पूजा के लिए देवता मौजूद हैं। इस बात पर जोर दिया गया है कि आदेश VII नियम 11 के तहत न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का दायरा वाद में दिए गए कथनों तक ही सीमित है और इस स्तर पर पुनरीक्षण याची के मामले पर विचार नहीं किया जा सकता है। वाद में दिए गए कथन और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री यह स्पष्ट करती है कि देवता 15 अगस्त, 1947 से पहले से वाद की संपत्ति के भीतर मौजूद हैं, और इसलिए, अधिनियम, 1991 के प्रावधान वाद को बिल्कुल भी नहीं रोकेगा। इस बात पर बल दिया गया है कि हिंदू कानून के तहत, एक बार देवता को सौंपी गई संपत्ति, देवता की संपत्ति बनी रहेगी और (मंदिर या संपत्ति का) विनाश, यदि कोई हो, संपत्ति की प्रकृति को नहीं बदल सकता है।

10. संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन के उत्तर में यह भी कहा गया है कि मूर्ति को नष्ट करने से उसका पवित्र उद्देश्य समाप्त नहीं होता है, और परिणामस्वरूप, मूर्ति को नष्ट करने के कृत्य से न तो दान, न ही उसका उद्देश्य और न ही अस्तित्व मिट

सकता है। एक बार मूर्ति में निहित होने के बाद संपत्ति का समर्पण भी जारी रहेगा, साथ ही मूर्ति का कानूनी व्यक्तित्व भी बना रहेगा। उत्तर का सार यह है कि पुराने मंदिर परिसर यानी वाद संपत्ति के भीतर मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य दृश्यमान और अदृश्य देवताओं के विग्रह एक बार स्थापित हो जाने के बाद, बीच-बीच में किए जाने वाले विध्वंस के कृत्य से उनका अस्तित्व या वाद संपत्ति, जो एक बार देवताओं में निहित हो गई है, मिट नहीं जाएगी।

11. संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन पर वादी के उत्तर के इस हिस्से का जोर यह है कि मुकदमे की संपत्ति के परिसर में अनादि काल से मूर्तियों के अस्तित्व को देखते हुए, अधिनियम, 1991 के प्रावधान मुकदमे पर रोक नहीं लगाएंगे। अधिनियम, 1991 की धारा 4(1) के प्रावधानों के आधार पर आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन के उत्तर पर आगे बढ़ते हुए, यह कहा गया है कि कानून के तहत, 15 अगस्त, 1947 को मौजूद पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र को संरक्षित किया जाना चाहिए। इसलिए, मुकदमे के पक्षकारों के लिए यह अनिवार्य है कि वे मुकदमे में पेश किए गए साक्ष्यों के आधार पर अदालत के सामने साबित करें कि 15 अगस्त, 1947 को मौजूद संपत्ति का धार्मिक चरित्र क्या था। इसलिए, संहिता के आदेश VII के नियम 11 को लागू करते हुए वाद को सरसरी तौर पर खारिज नहीं किया जा सकता।

12. उत्तर में आगे कहा गया है कि वादीगण ने वाद में दिए गए तथ्यों के आधार पर यह

आधार तैयार किया है कि वाद की संपत्ति का धार्मिक चरित्र हिंदू मंदिर का था और वाद की संपत्ति के भीतर देवताओं की पूजा की जाती थी। उत्तर में यह भी कहा गया है कि अधिनियम, 1991 की धारा 2(सी) के तहत 'मस्जिद' शब्द का अर्थ इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार बनाया गया धार्मिक इस्लामी निर्माण है। हिंदू कानून या मुस्लिम कानून के तहत किसी अन्य धार्मिक समुदाय की धार्मिक संपत्ति पर कोई निर्माण करना जायज़ नहीं है, जो कि यहाँ बिल्कुल वैसा ही है। उत्तर में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि वाद के पैराग्राफ सं. 4 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजा टोडरमल ने उसी स्थान पर भगवान शिव का एक भव्य मंदिर बनवाया था, जहाँ मूल मंदिर था यानी प्लॉट सं. 9130 में एक भव्य पैमाने पर, जिसमें आठ मंडपों से घिरा एक केंद्रीय गर्भगृह शामिल था। वाद के पैराग्राफ सं. 6 में दलील दी गई है कि मुसलमानों ने बिना कोई वक्फ बनाए या कानूनी तौर पर जमीन का स्वामित्व हासिल किए बिना जबरन निर्माण किया है, जिसे जानवापी मस्जिद कहा गया है। वाद के दूसरे पैराग्राफ में दलील दी गई है कि उपासक मुकदमे की संपत्ति में पुरानी और मौजूदा मूर्तियों की पूजा करते रहे हैं। सिविल वाद सं. 62 वर्ष 1936 में गवाहों की गवाही में इस आशय के सबूत मौजूद हैं। इसलिए, अपने जवाब में, वादी कहते हैं कि मुकदमे में पक्षों के बीच उठने वाले सभी मुद्दों पर विचार किया जाना चाहिए और संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत संक्षेप में निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए। इसके बाद जवाब में बताया गया कि वाद के पैराग्राफ सं. 22, 23, 24 और 25 में वाद की संपत्ति अधिनियम,

1983 की धारा 4(9) में परिभाषित 'मंदिर' शब्द के दायरे में शामिल है। विवादित संपत्ति का धार्मिक चरित्र पहले ही उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल द्वारा घोषित किया जा चुका है और इसलिए अधिनियम, 1991 के प्रावधानों की प्रयोज्यता का कोई सवाल ही नहीं है। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि सक्षम विधानमंडल ने 'मंदिर' की परिभाषा के भीतर ज्योतिर्लिंग के अस्तित्व को भी मान्यता दी है, जो पुनरीक्षण याची द्वारा जानवापी मस्जिद के रूप में दावा किए गए ढांचे के नीचे मौजूद है।

जिला न्यायाधीश का आदेश

13. वाराणसी के जिला न्यायाधीश, जिन्होंने पुनरीक्षण याची द्वारा प्रस्तुत संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन पर सुनवाई की और निर्णय लिया, ने इसे आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया और मुकदमे की सुनवाई करने का निर्देश दिया। विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का अवलोकन करने से पता चलता है कि इस न्यायालय की तरह, उनके सामने भी पक्षों द्वारा तथ्य, कानून और साक्ष्यों की दलील दी गई, जो संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत याचिका पर निर्णय लेने के स्थापित मापदंडों से कहीं परे थे। ऐसा लगता है कि पक्षों ने संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन की आड़ में विद्वान जिला न्यायाधीश को तय समय से पहले सुनवाई करने के लिए मनाने का प्रयास किया।

14. यह न्यायालय यह जानकर प्रसन्न है कि विद्वान जिला न्यायाधीश ने, यद्यपि पक्षकारों द्वारा संक्षिप्त विवरण से परे जो कुछ भी तर्क दिया गया था, उस पर ध्यान दिया, तथापि अपना मार्ग अपनाया और संहिता के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत प्रस्ताव के अनुमेय मापदंडों के भीतर निर्णय दिया। विद्वान जिला न्यायाधीश ने मूल रूप से पुनरीक्षण याची द्वारा अधिनियम, 1991, अधिनियम, 1983 तथा अधिनियम, 1995 के अंतर्गत प्रस्तुत वाद पर रोक लगाने पर विचार किया। संहिता के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत आवेदन के अवलोकन से, उपरोक्त तीन विधियों के अंतर्गत वाद पर रोक लगाने के अलावा, कोई अन्य दलील स्पष्ट रूप से नहीं उठाई गई है। विद्वान जिला न्यायाधीश ने, पक्षकारों के मामले की जांच करने से पहले, उस बिंदु पर प्राधिकारी की समीक्षा के पश्चात, स्वयं के लिए वे मापदंड निर्धारित किए, जिनके द्वारा उन्हें संहिता के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत दलील पर निर्णय लेना चाहिए। इसके पश्चात उन्होंने उन विशिष्ट दलीलों को गिनाया, जो यह कहने के लिए उठाई गई थीं कि वाद पर वर्जन है। विद्वान जिला न्यायाधीश ने अपना कार्य किस प्रकार किया, यह उनके द्वारा दिए गए आदेश में दिए गए शब्दों में सर्वोत्तम रूप से व्यक्त किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं:

"इसलिए, उपर्युक्त निर्णयों में निर्धारित कानून के मददेनजर, यह स्पष्ट है कि सी.पी.सी. के आदेश 7 नियम 11 के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय, केवल वाद के

कथनों को देखा जाना चाहिए और मुकदमे में किए गए बचाव पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि, अगर मुकदमे में मुकदमा करने का अधिकार प्रकट नहीं होता है, तो वाद को सी.पी.सी. के आदेश 7 नियम 11 के तहत खारिज किया जा सकता है।

आवेदन पत्र सं. 35सी के अवलोकन से, प्रतिवादी सं. 4 के मुख्य तर्क इस प्रकार हैं:-

(क) वादीगण का वाद उपासना स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 (अधिनियम सं. 42 वर्ष 1991) की धारा 4 द्वारा वर्जित है;

(ख) वादीगण का वाद वक्फ अधिनियम, 1995 (अधिनियम सं. 43 वर्ष 1995) की धारा 85 द्वारा वर्जित है;

(ग) वादीगण का वाद उत्तर प्रदेश श्री काशी विश्वनाथ मंदिर अधिनियम, 1983 (अधिनियम सं. 29 वर्ष 1983) द्वारा वर्जित है।

15. विद्वान जिला न्यायाधीश ने अधिनियम, 1991 के तहत मुकदमे पर वर्जन के बारे में तर्क को खारिज कर दिया, साथ ही यह कहा कि वादी मुकदमे की संपत्ति के अपने स्वामित्व के बारे में उद्घोषणा या यह उद्घोषणा नहीं मांग रहे हैं कि मुकदमे

की संपत्ति एक मंदिर है। वे माँ शृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य दृश्यमान और अदृश्य देवताओं की पूजा करने का अधिकार मांग रहे हैं, जिनकी उन्होंने, मुकदमे के अनुसार, मुकदमे की संपत्ति के एक हिस्से में, यानी ज्ञानवापी मस्जिद के पीछे, उत्तर-पूर्वी कोने पर, वर्ष 1993 तक पूरे वर्ष पूजा की थी। यह भी कहा गया कि वाद के मामले के अनुसार, उत्तर प्रदेश सरकार के एक प्रशासनिक निर्देश के तहत वर्ष 1993 के बाद अधिकार को वर्ष में एक बार प्रतिबंधित कर दिया गया है और अभी भी उस सीमा के भीतर प्रयोग किया जा रहा है।

16. विद्वान जिला न्यायाधीश ने कहा कि विवादित स्थान पर, 15 अगस्त 1947 के बाद भी, अधिनियम, 1991 के तहत प्रासंगिक तारीख से, हिंदुओं ने आज तक मां शृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं की प्रतिबंधित या अप्रतिबंधित पूजा की है। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि पूजा करने का अधिकार न केवल एक मौलिक अधिकार है, बल्कि एक नागरिक अधिकार भी है, जिसे मुकदमे के जरिए लागू किया जा सकता है। वादी, मूलतः, मुकदमे वाली संपत्ति के चरित्र को बदलने की मांग नहीं कर रहे हैं, जिसके बारे में प्रतिवादियों का कहना है कि यह अधिनियम, 1991 के तहत निषिद्ध है। वे केवल पूजा करने के अपने अधिकार को लागू करना चाहते हैं, जो वे हमेशा से करते आए हैं। विद्वान

जिला न्यायाधीश ने अधिनियम, 1991 के तहत मुकदमे पर रोक लगाने की दलील को खारिज करते हुए अपनी समापन टिप्पणी में कहा:

“अतः भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय और माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में यह स्पष्ट है कि पूजा का अधिकार एक सिविल अधिकार है और इसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप सिविल प्रकृति का विवाद उत्पन्न करेगा और सी.पी.सी. की धारा 9 के तहत, सिविल न्यायालय को ऐसे विवाद से जुड़े मामले का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार है। वर्तमान मामले में, वादी विवादित संपत्ति पर माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान की पूजा करने का अधिकार मांग रहे हैं, इसलिए, सिविल न्यायालय को इस मामले का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार है।

इसके अलावा, वादी की दलीलों के अनुसार, वे 1993 तक लंबे समय से विवादित स्थान पर माँ श्रृंगार गौरी, भगवान हनुमान, भगवान गणेश की लगातार पूजा कर रहे थे। 1993 के बाद, उन्हें उत्तर प्रदेश राज्य के विनियामक के तहत एक वर्ष में केवल एक बार उपर्युक्त देवताओं की पूजा करने की अनुमति थी। इस प्रकार, वादी के अनुसार, उन्होंने 15 अगस्त, 1947 के बाद भी विवादित

स्थान पर नियमित रूप से माँ श्रृंगार गौरी, भगवान हनुमान की पूजा की। इसलिए, पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 वादी के मुकदमे पर वर्जन के रूप में कार्य नहीं करता है और वादी का मुकदमा अधिनियम की धारा 9 द्वारा वर्जित नहीं है।

17. अगला कानून, जिसके आधार पर पुनरीक्षण याची ने मुकदमे पर रोक लगाने का दावा किया, वह अधिनियम, 1995 की धारा 85 है। यह दलील वक्फ संपत्ति के मामलों के संबंध में सिविल अदालत के अधिकार क्षेत्र के अपवर्जन पर आधारित है। विद्वान न्यायाधीश ने धारा 85 के प्रावधानों पर ध्यान दिया है, जो किसी भी वक्फ, वक्फ संपत्ति या अन्य मामले से संबंधित किसी भी प्रश्न, विवाद या अन्य मामले को निर्धारित करने के लिए सिविल अदालत, राजस्व न्यायालय या अन्य प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र को अपवर्जित करते हैं, जिसे अधिनियम, 1995 के तहत या उसके द्वारा उक्त अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण द्वारा हल किया जाना आवश्यक है।

18. विद्वान न्यायाधीश ने उक्त अधिनियम के प्रावधानों पर गौर किया है ताकि यह समझा जा सके कि वक्फ का क्या अर्थ है, जैसा कि वहां परिभाषित किया गया है, जिसमें उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ भी शामिल है। उन्होंने यह भी विचार किया है कि अधिनियम, 1995 की धारा 3(के) के तहत परिभाषित वक्फ में हितबद्ध व्यक्ति से क्या अभिप्राय है। इस मुद्दे पर बहुत से अधिकारियों ने सर्वेक्षण

किया है कि अधिनियम, 1995 के तहत कौन से मुकदमों पर रोक लगाई जाएगी और किस तरह की कार्यवाहियों पर सिविल अदालत द्वारा विचार किया जा सकता है, सिविल अदालत का अधिकार क्षेत्र पूर्ण है। विद्वान जिला न्यायाधीश ने कहा कि केवल उन्हीं मामलों में, जिन्हें अधिनियम, 1995 के तहत या उसके द्वारा न्यायाधिकरण द्वारा हल किया जाना आवश्यक है, वहाँ सिविल अदालत का अधिकार क्षेत्र समाप्त हो जाएगा।

19. मूल रूप से, विद्वान न्यायाधीश ने माना कि विवादित संपत्ति में स्थित माँ श्रृंगार गौरी, देवताओं और अन्य देवी-देवताओं की पूजा करने के अधिकार की मांग करने वाला अनुतोष, अधिनियम, 1995 की धारा 33, 35, 47, 48, 51, 54, 61, 64, 67, 72 और 73 के अंतर्गत आने वाला अनुतोष नहीं है। ये ऐसे मामले नहीं हैं जिन्हें अधिनियम, 1995 के तहत या उसके द्वारा बनाए गए न्यायाधिकरण द्वारा हल किया जाना आवश्यक है। इसलिए, मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को अधिनियम, 1995 की धारा 85 के तहत वर्जन द्वारा अबाधित माना गया।

20. अंतिम कानून, जिसके आधार पर पुनरीक्षण याची की ओर से मुकदमे को कानून द्वारा वर्जित करने का आग्रह किया गया था, वह अधिनियम, 1983 है। विद्वान न्यायाधीश ने अधिनियम, 1983 की धारा 4(5), 4(9), 5 और 6 को ध्यान में रखते हुए यह माना कि मुकदमे को किसी भी तरह से अधिनियम, 1983 द्वारा वर्जित नहीं कहा जा सकता है।

इसलिए, विद्वान जिला न्यायाधीश ने माना कि तीनों कानूनों में से कोई भी मुकदमे की सुनवाई पर रोक नहीं लगाता है, जिससे संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत वाद खारिज होने योग्य हो।

अदालत द्वारा टिप्पणी और सुनवाई में उपस्थित होने वाले अधिवक्ता का उल्लेख

21. इस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों के तर्कों के प्रस्तावना के रूप में यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को पढ़ने से पता चलता है कि संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत वाद को खारिज करने की मांग करने वाले आवेदन के समर्थन में ऊपर वर्णित तीन कानूनों के तहत रोक के अलावा कोई अन्य दलील नहीं दी गई थी।

22. पुनरीक्षण याची की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.एफ.ए. नकवी एवं उनके सहयोगी श्री सैयद अहमद फैजान, सुश्री फातमा अंजुम, श्री जहीर असगर और श्री महमूद आलम, वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री हरि शंकर जैन, श्री विष्णु शंकर जैन, सुश्री मणि मुंजाल, श्री पार्थ यादव (वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से) के साथ-साथ अधिवक्ता श्री प्रभाश पांडे और श्री प्रदीप शर्मा, वादी-प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री सौरभ तिवारी और श्री आर्य सुमन पांडे, प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं. 6, 7 और 8 की ओर से उपस्थित होने वाले स्थायी अधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी, विद्वान अपर महाधिवक्ता, व उनके सहयोगी श्री

बिपिन बिहारी पांडे, मुख्य स्थायी अधिवक्ता-V, श्री रणंजय सिंह, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री श्रवण कुमार दुबे, श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी और श्री हरे राम त्रिपाठी, और प्रत्यर्थी सं. 9 न्यासी बोर्ड की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री विनीत संकल्प को सुना गया।

पुनरीक्षण याची की ओर से दलीलें

23. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.एफ.ए. नकवी ने कहा कि यह वाद संहिता की धारा 9 के अंतर्गत वर्जित है, क्योंकि अधिनियम, 1991 के प्रावधानों में ऐसे वाद की स्वीकार्यता पर स्पष्ट प्रतिबंध है, जो 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान धार्मिक पूजा स्थलों के स्वरूप को परिवर्तित कर सकता है। उन्होंने कहा कि वर्तमान वाद ठीक यही करने का प्रयास करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वाद की तिथि पर विद्यमान मस्जिद के स्वरूप को बदलकर हिंदू मंदिर बनाने का प्रयास करता है। यह आग्रह किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायाधीश का यह कर्तव्य था कि वे अधिनियम, 1991 की धारा 3, 4 और 7 के प्रावधानों के मददेनजर यह जांच करें कि क्या यह वाद स्वीकार्य है। श्री नकवी ने कहा कि संहिता की धारा 9 के अंतर्गत किसी विशेष प्रकार के वाद के संबंध में सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को वर्जित किया जा सकता है, यदि न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को वर्जित करने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान है या आवश्यक निहितार्थ द्वारा वर्जन का अनुमान लगाया जा सकता है। यह आग्रह किया गया है कि सिविल प्रकृति के सभी मुकदमों की

सुनवाई सिविल न्यायालय द्वारा की जा सकती है, सिवाय उन मुकदमों के, जिनके संज्ञान पर स्पष्ट रूप से या निहित रूप से वर्जन है। श्री नकवी के अनुसार, वर्तमान मुकदमों पर वर्ष 1991 के अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से रोक लगाई गई है। उन्होंने संहिता के आदेश VII के नियम 11(डी) के प्रावधान का हवाला देते हुए कहा है कि यह प्रावधान प्रतिवादी को मुकदमे की पोषणीयता को चुनौती देने के लिए एक उपाय प्रदान करता है। इस बात पर जोर दिया जाता है कि कानून में स्पष्ट रूप से किसी ऐसे चरण की कल्पना नहीं की गई है, जिस पर रोक लगाई जा सके। इसे किसी भी चरण में उठाया जा सकता है। आदेश VII का नियम 11 न्यायालय पर यह दायित्व डालता है कि वह जांच करे कि क्या मुकदमा सुनवाई योग्य है और यदि उसे लगता है कि मुकदमा संहिता के आदेश VII के नियम 11 के किसी भी खंड के तहत वर्जित है, तो वह वाद को खारिज कर दे। इस मुद्दे पर अपने तर्कों के समर्थन में श्री नकवी ने **सोपान सुखदेव साबले एवं अन्य बनाम सहायक धर्मादाय आयुक्त एवं अन्य**²⁰⁶ मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। यह तर्क दिया गया है कि मस्जिद और उसके नीचे का हिस्सा हमेशा से था और उसे कभी नहीं छेड़ा गया। यह अनादि काल से अस्तित्व में है। यह बताया गया है कि 15 अगस्त 1947 को ज्ञानवापी मस्जिद और उसके नीचे की सभी भूमि तथा उससे जुड़ी भूमि अस्तित्व में थी। इसलिए, यह मुकदमा अधिनियम, 1991 की धारा 3, 4 और 7 के तहत वर्जित है। इसके बाद यह

दलील दी गई है कि यदि कानून के किसी प्रावधान के तहत मुकदमा वर्जित है, तो संहिता के आदेश VII नियम 11 (डी) के तहत न्यायालयों के लिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना और वाद को खारिज करना अनिवार्य है। श्री नकवी के अनुसार, विचारण न्यायालय ऐसा करने में विफल रहा है। उन्होंने न्यायालय का ध्यान अधिनियम वर्ष 1991 के उद्देश्यों और कारणों की ओर आकर्षित किया तथा कहा कि यह कानून 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान धार्मिक स्थलों के स्वरूप को परिवर्तित करने के सभी प्रयासों को विफल करने के उद्देश्य से बनाया गया था।

24. पुनरीक्षण याची की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता विशेष रूप से इस बात पर जोर देते हैं कि संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन पर निर्णय करते समय, साक्ष्य, चाहे किसी भी पक्ष के लिए कितना भी भारी क्यों न हो, पर गौर नहीं किया जा सकता है। यदि मुकदमा सुनवाई के लिए आगे बढ़ता है तो जो मुद्दे उठ सकते हैं, वे इस स्तर पर कार्यवाही के दायरे से बाहर होंगे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आदेश VII नियम 11 के तहत प्रावधान न्यायालय को उपलब्ध एक शक्ति है और प्रतिवादी के लिए एक उपाय है, जहां न्यायालय बिना किसी सुनवाई के, कार्रवाई को शुरू में ही समाप्त कर सकता है, यदि वह संतुष्ट हो कि कार्रवाई को आदेश VII के नियम 11 में दिए गए किसी भी आधार पर समाप्त किया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि आदेश VII नियम 11 (डी) कानून द्वारा वर्जित मुकदमे की सुनवाई को रोकता है। कानून में न्यायाधीश द्वारा बनाए गए

कानून सहित वैधानिक और प्रथागत कानून शामिल हैं। इस संबंध में **मोहम्मद असलम उर्फ भूरे बनाम भारत संघ व अन्य**²¹⁷, में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया गया है। जिसमें रिट याचिका का निस्तारण इस बात को ध्यान में रखते हुए किया गया कि केंद्र और राज्य सरकार दोनों ने 24 बिंदुओं पर आश्वासन दिया है कि वाराणसी में ज्ञानवापी मस्जिद सहित सभी धार्मिक स्थलों की सुरक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए जाएंगे। एक ओर अधिनियम, 1983 के प्रावधानों, उसके विषय और वहां मंदिर की परिभाषा और दूसरी ओर अधिनियम, 1995 की धारा 3(आर) में उल्लिखित वक्फ के अर्थ का उल्लेख करते हुए, श्री नकवी ने कहा कि ज्ञानवापी मस्जिद की वक्फ संपत्ति श्री काशी विश्वनाथ मंदिर ट्रस्ट की संपत्ति से अलग है। उन्होंने जोर देकर कहा कि यह तथ्य विनियम विलेख, पेपर सं. 224 सी से स्पष्ट रूप से स्थापित होता है, जो कि उ.प्र. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और उ.प्र. राज्य के बीच निष्पादित किया गया था जिसका प्रतिनिधित्व कलेक्टर द्वारा किया गया था। उ.प्र. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और उ.प्र. राज्य जिसका प्रतिनिधित्व कलेक्टर द्वारा किया गया की इच्छा थी कि श्री नकवी के वर्णन के अनुसार “विवादित संपत्ति” की सुरक्षा के लिए एक पुलिस नियंत्रण कक्ष स्थापित किया जाना चाहिए। मंदिर के न्यासी बोर्ड और उ.प्र. सरकार ने उ.प्र. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के साथ इस मामले पर चर्चा की और उनसे वर्ष 1993-94 में इस उद्देश्य के लिए कुछ जमीन पट्टे या लाइसेंस पर देने

का अनुरोध किया। उ.प्र. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने पुलिस नियंत्रण कक्ष की स्थापना के उद्देश्य से उ.प्र. सरकार को कुछ जमीन लाइसेंस पर दी। बाद में, वर्ष 2021 में उ.प्र. सरकार द्वारा श्री काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड के मुख्य कार्यकारी अधिकारी और प्रबंध समिति, अंजुमन इंतजामिया मस्जिद, वाराणसी (पुनरीक्षण याची) ने पहले लाइसेंस प्राप्त भूमि का सौहार्दपूर्ण ढंग से आदान-प्रदान किया। ये तथ्य पेपर सं. 227सी और 230सी से स्पष्ट हैं। यह बताया गया है कि भूमि का उपरोक्त लेन-देन और उ.प्र. सरकार साथ ही श्री काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड द्वारा उसका निस्तारण यह दर्शाया है कि वे दोनों ही वाद की संपत्ति को वक्फ संपत्ति मानते हैं। यही कारण है कि सबसे पहले वर्ष 1993-94 में सरकार ने वक्फ बोर्ड से लाइसेंस पर जमीन ली थी और बाद में वर्ष 2021 में विनिमय विलेख के माध्यम से इसका निस्तारण किया गया।

25. पुनरीक्षण याची की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि वर्तमान वाद और इसकी सहायक कार्यवाही तीन अलग-अलग न्यायालयों में लंबित है, अर्थात् विद्वान जिला न्यायाधीश, जिनका वाद पर नियंत्रण है, यह न्यायालय, जिसके समक्ष अनुच्छेद 227 के तहत मामले सं. 3341 वर्ष 2017, 1521 वर्ष 2020, 3562 वर्ष 2021 और 3844 वर्ष 2021 हैं, जिसमें यह पुनरीक्षण भी शामिल है, और सर्वोच्च न्यायालय। जिस मामले पर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकृष्ट हो रहा है, वह है विशेष अनुमति याचिका अपील (सी) सं. 9388

वर्ष 2022, जो वाद में पारित एक पूर्व आदेश से उत्पन्न हुई है और जिसे संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक मामले में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह सब करना विभिन्न स्तरों पर बहुमूल्य न्यायिक समय की बर्बादी के अलावा और कुछ नहीं है, जिसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। श्री नकवी ने अपने तर्कों के दौरान बार-बार इस बात पर जोर दिया कि अधिनियम, 1991 के प्रावधानों, उसके उद्देश्यों और जो कुछ भी वह प्रतिबंधित करता है, को ध्यान में रखते हुए मुकदमा आगे नहीं बढ़ सकता। उन्होंने कहा कि मुकदमे का उद्देश्य अंततः ज्ञानवापी मस्जिद के धार्मिक चरित्र को मंदिर में बदलना है, जो कि अधिनियम, 1991 में निहित निषेधात्मक धारा के अंतर्गत आता है। उन्होंने अपने तर्कों के दौरान यह भी कहा कि मुकदमे में कार्रवाई का कोई कारण नहीं बताया गया है और यह "चतुर मसौदा" का परिणाम है, यह अभिव्यक्ति इस संशोधन की लंबी सुनवाई के दौरान गूजी है। वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि पूजा करने के अपने अधिकार का दावा करने की आड़ में मुकदमे का प्रमुख उद्देश्य मौजूदा ज्ञानवापी मस्जिद के चरित्र को मंदिर में बदलना है, जिसे अधिनियम, 1991 प्रतिबंधित करता है। चतुर मसौदा के माध्यम से उठाए गए विवाद का उद्देश्य कार्रवाई के हेतुक का भ्रम पैदा करना है, जो कानून द्वारा निषिद्ध है और मौजूद नहीं है।

26. पुनरीक्षण याची के वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस प्रस्ताव के लिए कि कानून द्वारा वर्जित किसी मुकदमे को शुरू में ही समाप्त कर देना

चाहिए, **अब्दुल गफूर और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य**²²⁸ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि संहिता के आदेश VII के नियम 11 के खंड (डी) में "कानून" शब्द में न केवल कानून शामिल हैं, बल्कि न्यायिक मिसालें भी शामिल हैं। उक्त प्रस्ताव के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता ने **भार्गवी कंस्ट्रक्शन और अन्य बनाम कोथाकापु मुथयम रेड्डी और अन्य**²³⁹ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने **श्री सूर्या डेवलपर्स और प्रमोटर्स बनाम एन. शैलेश प्रसाद और अन्य**²⁴¹⁰ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया है। अपने इस तर्क को पुष्ट करने के लिए कि वर्तमान वाद चतुराई से तैयार किया गया है, जिसके तहत एक अस्तित्वहीन वाद-हेतुक को वास्तविक के रूप में चित्रित किया गया है, एक भ्रम है जिसके झांसे में इस न्यायालय को नहीं आना चाहिए और वाद को समाप्त करना चाहिए, पुनरीक्षण याची ने **टी. अरिवंदनम बनाम टी.वी. सत्यपाल एवं अन्य**²⁵¹¹ तथा **मदनुरी श्री रामचंद्र मूर्ति बनाम सैयद जलाल**²⁶¹² का भी हवाला दिया है।

वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 की ओर से दलीलें

27. वादी सं. 2 से 5 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री हरि शंकर जैन, श्री विष्णु शंकर

जैन, सुश्री मणि मुंजाल, श्री पार्थ यादव के साथ-साथ अधिवक्ता श्री प्रभाश पांडे और श्री प्रदीप शर्मा तथा इस पुनरीक्षण के प्रत्यर्थियों ने दलील दी है कि यह वाद अधिनियम, 1991 के प्रावधानों द्वारा बिल्कुल भी वर्जित नहीं है। यह दलील दी गई है कि अधिनियम, 1991 के तहत वर्जित होने का तर्क देने का आधार यह तथ्य है कि प्लॉट सं. 9130 में तथाकथित मस्जिद पिछले 600 वर्षों से अस्तित्व में है, जहाँ मुसलमान नमाज अदा करते हैं। यह आग्रह किया गया है कि सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 दशाश्वमेध, वाराणसी में कोई मस्जिद नहीं है, जिसे वाद में 'प्रश्नाधीन संपत्ति' के रूप में वर्णित किया गया है। इस न्यायालय ने इसे वाद की संपत्ति के रूप में संदर्भित किया है और इसे वही कहा जाएगा, जैसा कि पुनरीक्षणकर्ता की दलीलों पर गौर करते हुए, इस निर्णय में पहले भी कहा गया है। श्री विष्णु शंकर जैन के अनुसार, वाद की संपत्ति अनादि काल से देवता के पास है। यदि कोई व्यक्ति या व्यक्ति जबरन और बिना कानूनी अधिकार के उस संपत्ति के भीतर या किसी विशेष स्थान पर नमाज अदा करते हैं, तो उसे मस्जिद नहीं कहा जा सकता। किसी को भी देवता के पास पहले से मौजूद भूमि/संपत्ति पर अतिक्रमण करने का अधिकार नहीं है। श्री जैन ने किसी स्थान पर पूजा के अधिकार का निर्धारण करने में सर्वोपरि विचार के रूप में 'प्रथम अस्तित्व' या 'अस्तित्व में पहले' के सिद्धांत का तर्क दिया, जहां मुस्लिम और हिंदू दोनों उस अधिकार का दावा करते हैं। वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता इस बात पर जोर देते हैं कि वाद, प्रतिवादियों को देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान

22 (2008) 10 SCC 97

23 (2018) 13 SCC 480

24 (2022) 5 SCC 736

25 (1977) 4 SCC 467

26 (2017) 13 SCC 174

हनुमान, नंदीजी, मंडपों और पुराने मंदिर परिसर यानी वाद की संपत्ति में मौजूद मंदिरों के दर्शन और पूजा करने के वाद के अधिकार में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए, दायर किया गया है। वादीगण का कहना है कि उपर्युक्त देवता 15 अगस्त, 1947 से पहले से ही वाद की संपत्ति में लगातार विद्यमान हैं। पूजा करने वालों को वाद की संपत्ति में देवताओं के दर्शन और पूजा करने का अधिकार है और उन्हें संविधान के अनुच्छेद 25 से प्राप्त अपने धार्मिक अधिकार की रक्षा और संरक्षण के लिए यह वाद दायर करने का पूरा अधिकार है।

28. श्री जैन ने वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 की ओर से जिस प्रकार अपनी दलीलें पेश की हैं, उन्हें विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

1. वादी को अपने धर्म का पालन करने का अधिकार -

29. वर्तमान वाद वादीगण द्वारा भगवान आदि विश्वेश्वर के पुराने मंदिर परिसर में विराजमान देवताओं के दर्शन और पूजा के अपने अधिकार को सुरक्षित करने के लिए दायर किया गया है। अधिवक्ता ने इस संबंध में वाद में निम्नलिखित तथ्यों और दलीलों की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया है:

(i) वादीगण भगवान शिव के भक्त हैं। उन्हें वाराणसी शहर में सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 में स्थित पुराने मंदिर परिसर में भगवान आदि विश्वेश्वर के स्थान पर भगवान

गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं के साथ देवी माँ श्रृंगार गौरी की पूजा करने का अधिकार है।

(ii) वाद के पैराग्राफ सं. 1 में यह कहा गया है कि "वादीगण भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 (पच्चीस) द्वारा गारंटीकृत अपने धर्म के अधिकार की रक्षा के लिए यह वाद दायर कर रहे हैं..."। इसलिए, यह वाद स्पष्ट रूप से वादी द्वारा व्यक्तिगत क्षमता में, पूजा करने के अपने अधिकार की रक्षा के लिए दायर किया गया है।

(iii) वाद के पैराग्राफ सं. 2 में, यह कहा गया है कि वादी मूर्तिपूजक हैं। वे ब्रह्मांड के भगवान भगवान शिव के भक्त हैं और वे काशी में भगवान आदि विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग के स्थान पर जाते हैं...

(iv) वाद के पैराग्राफ सं. 35 में, यह कहा गया है कि "वादी वर्तमान वाद दायर कर रहे हैं क्योंकि राज्य सरकार मौखिक आदेश पारित करके दैनिक पूजा को वर्ष में एक दिन तक कम नहीं कर सकती है और इस तरह का प्रतिबंध लगाने का कोई कारण नहीं है..."

(v) वाद के पैराग्राफ सं. 36 में, यह कहा गया है कि वादी ने कई भक्तों

के साथ दिनांक 16.04.2021 को माँ देवी श्रृंगार गौरी की पूजा की, लेकिन उसके बाद, भक्तों को दैनिक पूजा करने की अनुमति नहीं दी जा रही है।

(vi) वाद के पैराग्राफ सं. 42 में यह कहा गया है कि वादी कभी-कभी पुराने मंदिर में भगवान शिव, मां श्रृंगार गौरी, भगवान हनुमान विराजमान की पूजा करते हैं। वे बाहर से पूजा, आराधना और दर्शन करते हैं, पूरे साल वहां अनुष्ठान करते हैं। जब भी उन्हें अंदर जाने की अनुमति मिलती है, वे पुराने मंदिर के अंदर भी पूजा करते हैं।

(vii) वाद के पैराग्राफ सं. 46 में कहा गया है कि "वादी और भगवान शिव के भक्तों को निर्बाध दैनिक दर्शन, पूजा, आरती, भोग... का मौलिक अधिकार है।"

(viii) वाद के पैराग्राफ सं. 50 में आगे कहा गया है कि "मुकदमा दायर करने का कारण अंतिम रूप से दिनांक 17.04.2021 (सत्रह अप्रैल दो हजार इक्कीस) को उत्पन्न हुआ क्योंकि जिला प्रशासन वादी और अन्य भक्तों को पूजा करने की अनुमति नहीं दे रहा है..."

(ix) यह प्रस्तुत किया गया है कि पूजा करने का अधिकार, मौलिक अधिकार होने के अलावा, संहिता की

धारा 9 के अर्थ में एक सिविल अधिकार है। अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत उस अधिकार का उल्लंघन पीड़ित व्यक्ति को इसके प्रवर्तन के लिए सिविल अदालत के समक्ष मुकदमा चलाने का अधिकार देता है। उपर्युक्त तर्क के समर्थन में, श्री जैन ने **मोस्ट रेव. पी.एम.ए. मेट्रोपोलिटन और अन्य बनाम मोरन मार मारथोमा और अन्य**²⁷¹³ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है। न्यायालय का ध्यान विशेष रूप से रिपोर्ट के पैराग्राफ सं. 28, 29, 36, 37 और 89 की ओर आकर्षित किया गया है। **मोस्ट रेव. पी.एम.ए. मेट्रोपोलिटन** (उपरोक्त) में, यह माना गया है:

"36. उगमसिंह बनाम केसरीमल [(1970) 3 एससीसी 831: (1971) 2 एससीआर 836] में यह माना गया कि पूजा का अधिकार एक सिविल अधिकार है जो एक सिविल मुकदमे का विषय हो सकता है। न्यायालय ने कहा:

"इसलिए यह स्पष्ट है कि पूजा का अधिकार एक सिविल अधिकार है, जिसके साथ हस्तक्षेप करने पर सिविल प्रकृति का विवाद उत्पन्न होता है..."

89. इस प्रकार निष्कर्ष यह निकला:

(क) सिविल न्यायालयों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए मुकदमों और मुकदमों पर विचार करने का अधिकार है।

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में प्रयुक्त शब्द 'सिविल प्रकृति' सिविल कार्यवाही से भी व्यापक है, और इस प्रकार ऐसे धार्मिक मामलों तक विस्तारित है जिनका सिविल परिणाम होता है।

(ग) धारा 9 बहुत व्यापक है। किसी भी धार्मिक न्यायालय की अनुपस्थिति में कोई भी धार्मिक विवाद संज्ञेय है, सिवाय उन बहुत ही दुर्लभ मामलों को छोड़कर, जहां मांगी गई घोषणा धार्मिक अनुष्ठान का गठन करती हो।"

II. संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लंघन

30. श्री जैन ने बताया है कि वाद में यह दलील दी गई है कि संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत वादी के पूजा करने के अधिकार का उल्लंघन किया जा रहा है, और इसलिए, वर्तमान मुकदमा शुरू किया गया है। इस संबंध में, उन्होंने अदालत का ध्यान वाद के पैराग्राफ सं. 1, 45, 46 और 47 में दिए गए कथनों की ओर आकर्षित किया है।

III. हिंदू कानून के तहत देवता - स्वयंभू देवता, प्रतिमाएं, स्थान और अदृश्य देवता

31. श्री जैन ने तर्क दिया कि स्थान और अदृश्य देवताओं से संबंधित हिंदू कानून पर न्यायमूर्ति बी.के. मुखर्जी ने 'द हिंदू लॉ ऑफ रिलीजियस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट्स' में, डॉ. पांडुरंग वामन काणे ने 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' में और श्री गोपालचंद्र सरकार शास्त्री ने अपने ग्रंथ 'ए ट्रीटीज ऑन हिंदू लॉ' में विस्तार से विचार किया है। 'द हिंदू लॉ ऑफ रिलीजियस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट्स', जो कि भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.के. मुखर्जी द्वारा दिए गए टैगोर लॉ लेक्चर का संकलन है, में पृष्ठ सं. 156-157 पर पैराग्राफ 4.8 में 'अपवित्र या नष्ट होने की स्थिति में मूर्तियों का पुनर्निर्माण या शुद्धिकरण' के संबंध में यह कहा गया है:

"... जैसा कि आप आगे देखेंगे, किसी मूर्ति के नष्ट होने से उसके पक्ष में बनाया गया धार्मिक ट्रस्ट समाप्त नहीं होती: ऊपर बताए गए मूर्ति के निर्माण या प्रतिस्थापन के नियमों की सबसे अधिक उदारतापूर्वक व्याख्या की गई है..."

32. विद्वान अधिवक्ता ने आगे 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र', खंड II, भाग II, अध्याय XIX पृष्ठ 707 में डॉ. पांडुरंग वामन काणे का हवाला दिया, जहाँ यह कहा गया है:

"...यह स्पष्ट है कि प्राचीन ऋषियों ने शायद ही कभी मूर्तियों की पूजा के

बारे में सोचा हो, बल्कि अमूर्त रूप में देवताओं के बारे में सोचा हो, जिनके लिए उन्होंने अलग-अलग कार्य निर्धारित किए और उन्हें काव्यात्मक रूप से मनुष्यों की तरह हाथ, पैर और अन्य अंगों से संपन्न बताया..."

33. इसके अलावा, उपर्युक्त ग्रंथ के अध्याय XXVI में पृष्ठ सं. 896 पर, डॉ. पांडुरंग वामन काणे कहते हैं:

"लेकिन मूर्तिपूजक भी इस बात से भली-भाँति परिचित हैं कि ईश्वर शुद्ध चेतना (चित) है, दूसरा नहीं है, अंगहीन है और भौतिक शरीर से रहित है, और जिन विभिन्न छवियों में उसे वास करने वाला माना जाता है, उनकी पूजा करने वालों के लाभ के लिए ही कल्पना की गई हैं।"

34. वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ताओं ने न्यायालय का ध्यान गोपालचंद्र सरकार शास्त्री द्वारा लिखित 'ए ट्रीटीज ऑन हिंदू लॉ' नामक पुस्तक के अध्याय XIV, पृष्ठ सं. 492-493 की ओर आकर्षित किया, जिसमें हिंदू विधि के अंतर्गत प्रतिमाओं की पूजा के महत्व को निम्नलिखित शब्दों में समझाया गया है:

"प्रतिमाएँ. - हिंदुओं द्वारा पूजी जाने वाली प्रतिमाएँ दृश्यमान प्रतीक हैं जो ईश्वर के किसी न किसी गुण का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसके बारे में माना जाता है कि वह उनके तीन

गुणों में से केवल एक है, जिस पर हिंदू धर्म में त्रिदेवों की अवधारणा आधारित है, अर्थात् ईश्वर जो सृष्टिकर्ता है, ईश्वर जो संरक्षक है, तथा ईश्वर जो विध्वंसक है, संभवतः वही जो ईश्वर पिता, ईश्वर पुत्र तथा ईश्वर पवित्र आत्मा हैं।

प्रतिमाएँ ग्रंथ सं. 4-6 में वर्णित किसी भी पदार्थ से बनाई जा सकती हैं।

पूजा का उद्देश्य मूर्ति नहीं है, बल्कि भगवान है जिसे मूर्ति में प्रकट माना जाता है, उन उपासकों के लाभ के लिए जो देवता की कल्पना नहीं कर सकते, या उसके बारे में सोच नहीं सकते, बिना किसी प्रत्यक्ष रूप की सहायता के जिस पर वह अपना मन लगा सकते हैं और ध्यान के उद्देश्य से ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। धातु, पत्थर, लकड़ी या मिट्टी का वह टुकड़ा जो मूर्ति बनता है वह भगवान नहीं है, बल्कि अदृश्य साकार देवता जो मूर्ति के माध्यम से भक्तों के सामने खुद को प्रकट करता है, वह हिंदू के लिए भगवान है।

35. श्री जैन ने राम जानकीजी देवता और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य²⁸¹⁴ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया है। उन्होंने विशेष रूप से राम जानकीजी देवता (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैराग्राफ सं. 11, 12,

13, 15, 18 और 19 का उल्लेख किया है, जो उनके अनुसार इस विषय पर कानून निर्धारित करते हैं। उन्होंने कहा कि संविधान पीठ ने एम. सिद्दीक (मृत) द्वारा कानूनी प्रतिनिधियों (राम जन्मभूमि मंदिर मामला) बनाम महंत सुरेश दास और अन्य²⁹¹⁵ में राम जानकीजी देवता मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा का अवलंब लिया।

IV. भगवान आदि विश्वेश्वर और मंदिर का इतिहास

36. श्री जैन ने कहा है कि श्री आदि विश्वेश्वर मंदिर प्राचीन काल से अस्तित्व में है। मंदिर से संबंधित तथ्यों को वाद के निम्नलिखित पैराग्राफ में प्रस्तुत किया गया है:

(i) वाद के पैराग्राफ सं. 3 में कहा गया है कि दशाश्वमेध घाट के पास आदि विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग पर एक शानदार ऊंचा मंदिर था।

(ii) वाद के पैरा सं. 4 में कहा गया है कि वर्ष 1585 में जौनपुर के तत्कालीन गवर्नर राजा टोडरमल ने अपने गुरु नारायण भट्ट के कहने पर उसी स्थान पर जहां मूल रूप से मंदिर था, यानी सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 पर बड़े पैमाने पर भगवान शिव का एक भव्य मंदिर बनवाया, जिसमें आठ मंडपों से घिरा एक केंद्रीय गर्भगृह (गर्भगृह) था।

(iii) वाद के पैरा सं. 5 में कहा गया है कि औरंगजेब ने काशी और मथुरा में मौजूद मंदिरों को ध्वस्त करने के लिए एक फरमान (आदेश) जारी किया था, जिसे उसकी सेना ने अंजाम दिया और मंदिर के ध्वस्त होने की बात उसे बता दी गई थी।

(iv) वाद के पैरा सं. 6 में कहा गया है कि सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 के साथ 5 क्रोश भूमि लाखों साल पहले ही देवता आदि विश्वेश्वर को हस्तांतरित हो चुका था।

V. वाद का मसौदा

37. वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ताओं ने वाद की रूपरेखा के बारे में दलील दी है कि संहिता के आदेश VI नियम 2 और आदेश VII नियम 3 के अनुसार विवादित मामलों के संबंध में वाद में आवश्यक कथन दिए गए हैं। उन्होंने न्यायालय को आदेश VI नियम 2 और आदेश VII नियम 3 के प्रावधानों के माध्यम से समझाया और दलील दी कि पुनरीक्षण याची के वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वाद खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि वाद की संपत्ति की सीमाएं नहीं दी गई हैं और यह भी कि विवादित संपत्ति पुलिस स्टेशन और वार्ड चौक के अंतर्गत आती है। श्री जैन ने दलील दी है कि उपरोक्त तर्क मान्य नहीं है, क्योंकि श्री काशी विश्वनाथ मंदिर का गाटा सं. 1 पुलिस स्टेशन दशाश्वमेध घाट की स्थानीय सीमा के अंतर्गत आता है और इसके अलावा, वाद की संपत्ति का सर्वेक्षण सं. 9130 है, जैसा कि वाद में दिया गया है। उन्होंने दलील दी कि

संहिता के प्रावधानों के अनुसार वाद की संपत्ति की पहचान करने के लिए यह पर्याप्त है।

38. अपने तर्कों के समर्थन में, वादी प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता ने **गणेश बनाम श्री राम लालाजी महाराज बिरजमान मंदिर और अन्य**³⁰¹⁶ में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा किया है और इसके अलावा, **नारी श्रृंगार बिग बाजार, नागपुर और अन्य बनाम पेंटालून रिटेलिंग (इंडिया) लिमिटेड, मुंबई और अन्य**³¹¹⁷ में बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। यह आग्रह किया गया है कि उपर्युक्त निर्णयों में, यह माना गया है कि कानून के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि वाद की संपत्ति का विवरण उसे पहचानने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। सीमाओं में कोई अन्य गलत विवरण न तो वाद को प्रभावित कर सकता है और न ही वाद में पारित डिब्री को। यह भी आग्रह किया गया है कि संहिता के आदेश VII नियम 11 के दायरे में, वाद की संपत्ति की सीमाओं के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है।

VI. स्थान, छवियों, मूर्तियों, देवताओं आदि की पूजा।

39. वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ताओं ने न्यायालय का ध्यान वादपत्र में वर्णित स्थान, प्रतिमाओं और देवताओं की पूजा के सम्बन्ध में दलीलों की ओर आकर्षित किया है। वादपत्र के निम्नलिखित पैराग्राफों का हवाला दिया गया है:

(i) पैराग्राफ सं. 8 में यह उल्लेख किया गया है कि भक्तगण माँ श्रृंगार गौरी, भगवान हनुमान, भगवान गणेश आदि की प्रतिमाओं की पूजा करते आ रहे हैं, जो कि सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 में अनादि काल से मौजूद हैं, जबकि मुसलमानों ने बिना किसी कानूनी अधिकार के मंदिर पर कुछ निर्माण कर दिए थे, जिसे औरंगजेब ने आंशिक रूप से ध्वस्त कर दिया था।

(ii) पैराग्राफ सं. 9 में यह कहा गया है कि हिन्दूओं ने देवताओं की पूजा करना जारी रखा है।

(iii) पैराग्राफ सं. 10 में यह कहा गया है कि हिन्दू दक्षिण की ओर तहखाना और ध्वस्त मंदिरों के अन्य भागों पर कब्जा बनाए हुए हैं। भगवान आदि विश्वेश्वर आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान हैं।

(iv) पैराग्राफ सं. 11 में "पुराना मंदिर" और "नया मंदिर" शब्दों के प्रयोग का उल्लेख है। वर्ष 1780-90 के दौरान इंदौर की रानी अहिल्याबाई होल्कर ने भगवान शिव का मंदिर बनवाया और भगवान शिव के पुराने मंदिर के समीप शिवलिंग की स्थापना की, जिसे सुविधा के लिए "नया मंदिर" और श्री आदि विश्वेश्वर मंदिर को "पुराना मंदिर" कहा गया।

30 1972 SCC OnLine All 244 : AIR 1973 All 116 (FB)

31 (2008) 3 Mah.L.J. 698

(v) पैराग्राफ सं. 12 में डॉ. ए.एस. अल्टेकर की पुस्तक का हवाला दिया गया है।

(vi) पैराग्राफ सं. 37 में वाद संपत्ति में विद्यमान देवताओं का वर्णन दिया गया है।

VII. सिविल वाद सं.-62 वर्ष 1936

40. यह पुराने वाले का वाद है, जो किसी न किसी रूप में दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं के तर्कों में शामिल रहा है। बनारस (वाराणसी) के अधीनस्थ न्यायाधीश की फाइल पर इस वाद को सिविल वाद सं. 62 वर्ष 1936 के रूप में क्रमांकित किया गया था। श्री विष्णु शंकर जैन द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त वाद में हिंदुओं को पक्षकार नहीं बनाया गया था और उनके पक्षकार बनने के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था। वाद में पारित कोई भी आदेश या डिक्री हिंदू समुदाय के किसी भी सदस्य पर बाध्यकारी नहीं है और वाद में पारित डिक्री का उपयोग वादी सहित किसी भी हिंदू के खिलाफ नहीं किया जा सकता है। उक्त वाद में दिए गए निर्णय, डिक्री या निष्कर्षों के आधार पर वाद की संपत्ति में मंदिर परिसर के भीतर पूजा करने के हिंदू भक्तों के अधिकार को खत्म नहीं किया जा सकता है। वादी ने वर्तमान वाद के पैराग्राफ सं. 18, 19, 20 और 21 में संदर्भित पुराने वाद के बारे में दलील दी है।

41. यह कहा गया है कि यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धान्त है कि किसी भी मुकदमे

या कार्यवाही में पारित डिक्री या आदेश उन पक्षों को बाध्य नहीं कर सकता जो सीधे या ऐसे व्यक्तियों के माध्यम से, जिनके माध्यम से या जिनके अधीन वे प्रतिनिधित्व का दावा करते हैं, खड़े नहीं थे। अपने तर्क के समर्थन में, श्री जैन ने **बिहार राज्य बनाम राधा कृष्ण सिंह और अन्य**³²¹⁸ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है। उन्होंने राधा कृष्ण सिंह (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैराग्राफ सं. 124 और 125 की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। श्री जैन द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि पुराने मुकदमे में पारित डिक्री वादी को बाध्य नहीं करेगी, क्योंकि वे पक्ष नहीं थे, उक्त मुकदमे में मौखिक गवाही पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 13 के तहत अवलंब लिया जा सकता है, जैसा कि **सीतल दास बनाम संत राम और अन्य**³³¹⁹ के मामले में माना गया है। आगे यह कहा गया है कि वाद सं. 62 वर्ष 1936 में जो भी डिक्री पारित की गई है, वह इस प्रस्तुतिकरण से अलग नहीं है कि यह वादी को, जो पक्ष नहीं थे, अधिनियम, 1983 की धारा 2 के आधार पर सीधे या स्वत्व-पूर्ववर्तियों के माध्यम से शामिल नहीं करता है।

42. जहाँ तक सिविल वाद सं. 62 वर्ष 1936 के फैसले का सवाल है, जिसे पेपर सं. 229सी के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है, यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मुकदमे में किसी भी हिंदू या हिंदुओं के समूह को पक्षकार नहीं बनाया गया था। इसलिए, फैसले में जो भी

32 (1983) 3 SCC 118

33 AIR 1954 SC 606

निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं, वे बाध्यकारी नहीं हैं और वादी को प्रभावित नहीं कर सकते। श्री जैन ने बताया कि सिविल न्यायाधीश के फैसले में, यद्यपि, यह उल्लेख किया गया है कि विचाराधीन मस्जिद को मौजूदा मंदिर को अवैध रूप से ध्वस्त करने के बाद बनाया गया था। श्री जैन ने न्यायालय का ध्यान निम्नलिखित टिप्पणियों और सिविल न्यायाधीश के फैसले की ओर आकर्षित किया है, जिन्होंने सिविल वाद सं. 62 वर्ष 1936 का फैसला किया था:

"अगला सवाल यह है कि क्या मस्जिद का निर्माण वैध था। निश्चित रूप से सख्त मुस्लिम कानून के अनुसार यह वैध नहीं था। कानून के अनुसार मंदिरों को ध्वस्त करना मूर्तिपूजा को खत्म करने के लिए वैध हो सकता था, लेकिन जहाँ तक मुझे बताया गया है, कानून में कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि ऐसे मंदिरों की भूमि को भी हड़प लिया जाना चाहिए। दूसरी ओर कानून में यह प्रावधान है कि किसी दूसरे की भूमि पर उसकी सहमति के बिना प्रार्थना करना वैध नहीं है, और वादी का यह कहना नहीं है कि हिंदुओं की प्रत्यक्ष (?) सहमति ली गयी थी, इसलिए सख्ती से कहें तो, मुझे लगता है कि मेरे सामने रखी गई सामग्री के आधार पर, उनके लिए मस्जिद का निर्माण करना और उसमें प्रार्थना करना वैध नहीं था, लेकिन जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि राजा कानून से

ऊपर होता है और इसलिए उसके द्वारा किया गया हर काम वैध था।"

43. वादी प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि सिविल न्यायाधीश ने अपने निर्णय में "वक्फ" शब्द का सही अर्थ में प्रयोग नहीं किया है, तथा उक्त शब्द का प्रयोग मंदिर या मस्जिद के उद्देश्य से हिन्दू या मुस्लिम द्वारा संपत्ति पर कब्जे के संदर्भ में किया गया है। इस संबंध में न्यायालय का ध्यान पुराने मुकदमे का निर्णय करने वाले सिविल न्यायाधीश के निर्णय में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों की ओर आकृष्ट किया गया है:

"उनका दूसरा तर्क यह है कि न्यायालय ने पूरे मामले को 'वक्फ' माना है, तथा इसलिए यह मुस्लिम 'वक्फ' है। प्रतिवादी का उत्तर है कि 'वक्फ' शब्द का प्रयोग दोनों के लिए किया गया है, अर्थात् मुस्लिम और हिन्दू दान के लिए। मैं इस तर्क से सहमत हूँ। न्यायालय ने कहा कि मस्जिद जानवापी और कुआं बिश्वनाथ तथा इससे संबंधित जो भी चीजें हैं, वे सभी "वक्फ" हैं।"

VIII. उत्तर प्रदेश श्री काशी विश्वनाथ मंदिर अधिनियम, 1983

44. श्री जैन ने तर्क दिया कि यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल ने वर्ष 1983 में अधिनियम पारित कर भक्तों को श्री आदि विश्वेश्वर मंदिर और रानी अहिल्याबाई होल्कर द्वारा निर्मित नए

मंदिर में पूजा करने का अधिकार दिया था। अधिनियम वर्ष 1983 की धारा 5 में यह घोषित किया गया है कि मंदिर और धर्मार्थ-दान श्री काशी विश्वनाथ के देवता में निहित है।

45. वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता द्वारा वाद के पैराग्राफ सं. 22 से 25 में यह कहा गया है कि अधिनियम, 1983 के संबंध में कथन किए गए हैं। अंतिम उल्लेखित अधिनियम की धारा 4(9) में "मंदिर" शब्द को परिभाषित किया गया है। अधिनियम, 1983 की धारा 5 मंदिर के स्वामित्व को प्रकट करती है तथा इसका धर्मार्थ-दान श्री काशी विश्वनाथ के देवता में निहित होगा। अधिनियम, 1983 की धारा 4(5) के अंतर्गत "धर्मार्थ-दान" शब्द को परिभाषित किया गया है। **श्री आदि विश्वेश्वर काशी विश्वनाथ मंदिर, वाराणसी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**³⁴²⁰ में रिपोर्ट के पैराग्राफ सं. 1 में मंदिर का संपूर्ण इतिहास देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अंतिम उल्लेखित अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा है। श्री विष्णु शंकर जैन द्वारा इस निर्णय पर काफी अवलंब लिया गया है।

IX. राज्य सरकार की कार्यवाई

46. यह तर्क दिया गया है कि वादी पक्ष की ओर से एक विशेष दलील दी गई है कि राज्य सरकार ने बिना किसी कानूनी अधिकार के और बिना कोई लिखित आदेश पारित किए, वाराणसी के जिला प्रशासन को पुराने मंदिर परिसर में भगवान शिव के भक्तों के प्रवेश को

प्रतिबंधित करने का निर्देश दिया था। इस संबंध में, वाद के पैराग्राफ सं. 42, 43, 44, 45, 48 और 49 में दिए गए कथनों का हवाला दिया गया है।

X. वक्फ कभी नहीं बनाया गया।

47. वादीगण का कहना है कि वाद की संपत्ति को उसके वैध स्वामी ने कभी भी भगवान को समर्पित नहीं किया है, जिससे उसे वक्फ बनाया जा सके। वाद की संपत्ति, जो अनादि काल से, भगवान श्री आदि विश्वेश्वर को समर्पित हो गई थी, उसमें से कोई भी वक्फ नहीं बना सकता था। यह किसी भी समय मुस्लिम समुदाय के किसी भी सदस्य, जिसमें उस समय के शासक सम्राट भी शामिल हैं, की संपत्ति नहीं थी, जिससे इसे वक्फ को समर्पित करने का अधिकार मिल जाता, जहां मस्जिद बनाई जा सकती थी। यह दलील दी गई है कि वक्फ न बनाए जाने की स्थिति में मुसलमानों को धार्मिक उद्देश्यों के लिए वाद की संपत्ति का उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। इस संबंध में, वाद के पैराग्राफ सं. 7 में कथनों का उल्लेख किया गया है। श्री विष्णु शंकर जैन ने बताया है कि यह सिद्धांत कि जिस संपत्ति से वक्फ बनाया जाता है, वह निश्चित रूप से सेटलर की होनी चाहिए, सर डी.एफ. मुल्ला द्वारा प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रिंसिपल्स ऑफ मुहम्मदन लॉ' में दिया गया है। धारा 176 का उल्लेख किया गया है, जो वक्फ बनाने वाले व्यक्ति की क्षमता के बारे में बताती है:

"176. वक्फ का विषय वक़िफ का होना चाहिए - वक्फ के माध्यम से समर्पित संपत्ति समर्पण

के समय वक़िफ (समर्पित करने वाले) की होनी चाहिए। एक व्यक्ति जो वास्तव में संपत्ति का मालिक है, लेकिन यह विश्वास करता है कि वह केवल उसका मुतवल्ली है, वह संपत्ति का वैध वक़फ करने के लिए सक्षम है। ऐसे मामलों में यह देखा जाना चाहिए कि उस व्यक्ति के पास संपत्ति पर अधिकार था या नहीं।"

48. कानून के उपरोक्त उपधारणा के मददेनजर, यह प्रस्तुत किया गया है कि संपत्ति देवता में निहित थी, जब औरंगजेब के आदेश के तहत इसे आंशिक रूप से ध्वस्त / क्षतिग्रस्त कर दिया गया था, और, इसलिए, संपत्ति को 'अल्लाह' को समर्पित करने के लिए कोई वक़िफ सक्षम नहीं हो सकता है।

XI. उ. प्र. मुस्लिम वक़फ अधिनियम, 1936 के अंतर्गत दिनांक 25.02.1944 की अधिसूचना

49. श्री जैन ने कहा है कि वक़फ के अस्तित्व को कभी भी उपयोगकर्ता द्वारा वक़फ के रूप में नहीं पहचाना गया है और इसकी मान्यता उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक़फ अधिनियम, 1936 के तहत जारी दिनांक 25.02.1944 की अधिसूचना के आधार पर है। दिनांक 25.02.1944 की अधिसूचना (पेपर सं. 103-ग और 104-ग) किसी आलमगिरी मस्जिद से संबंधित है, जिसे वर्ष 1673 में श्री बिंदु माधव मंदिर के विध्वंस के बाद औरंगजेब के शासनकाल के दौरान बनाया गया था। यह कहना उचित है कि अधिसूचना में सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 का उल्लेख नहीं है, जबकि अन्य संपत्तियों के संबंध में सेटलमेंट संख्या दी

गई है। यह दलील दी गई है कि उक्त अधिसूचना मुकदमे की संपत्ति, या यूँ कहें कि जानवापी मस्जिद से संबंधित नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के दौरान पुनरीक्षण याची ने उ.प्र. मुस्लिम वक़फ अधिनियम, 1936 के तहत जारी अधिसूचना दिनांकित 25.02.1944 की एक प्रति दाखिल की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि अधिसूचना मुकदमे की संपत्ति, जिसे जानवापी मस्जिद कहा जाता है, से संबंधित नहीं है। आलमगिरी मस्जिद के संदर्भ को मुकदमे की संपत्ति, जानवापी मस्जिद संरचना के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।

50. सुनवाई के दौरान विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याची ने प्लॉट सं. 9130 से संबंधित खसरा वर्ष 1291 फसली (कैलेंडर वर्ष 1883-1884) का एक अंश दाखिल किया। इस पर पेपर सं. 221-ग अंकित है। यह तर्क दिया गया है कि किसी भी राजस्व अभिलेख में की गई प्रविष्टियों की सत्यता को प्रमुख साक्ष्यों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। राजस्व अभिलेख स्वामित्व या स्वत्व का प्रमाण नहीं होते हैं।

51. इसके बाद यह दलील दी गई कि उ.प्र. मुस्लिम वक़फ अधिनियम, 1936 के तहत जारी अधिसूचना गैर-मुस्लिमों पर बाध्यकारी नहीं है। उ.प्र. मुस्लिम वक़फ अधिनियम, 1936 की धारा 5(2) में प्रयुक्त शब्द 'हितबद्ध व्यक्ति' को बाद में वक़फ अधिनियम, 1954 की धारा 6(1) में इस्तेमाल किया गया। इस शब्द के प्रयोग के महत्व के

बारे में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह विचार के लिए आया, जहां यह माना गया कि यह उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होती, जो गैर-मुस्लिम हैं। इस तर्क के समर्थन में, श्री जैन ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया:

- (क) **बोर्ड ऑफ मुस्लिम वक्फ, राजस्थान बनाम राधा किशन व अन्य**³⁵²¹; और,
(ख) **रमेश गोबिंदराम (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम सुगरा हुमायूं मिर्जा वक्फ**³⁶²²

52. दलील यह है कि वक्फ से संबंधित कानूनों के तहत 'हितबद्ध व्यक्ति' का क्या अर्थ है, इस संदर्भ में निर्धारित कानून के मद्देनजर यह स्पष्ट है कि यह गैर-मुस्लिमों पर लागू नहीं होता है।

53. अपने मामले के इस भाग के अंतर्गत अपनी दलील के अंतिम भाग में, श्री विष्णु शंकर जैन ने बताया कि वक्फ एसेट्स मैनेजमेंट सिस्टम ऑफ इंडिया की आधिकारिक वेबसाइट³⁷²³ पर एक मस्जिद का विवरण प्रकाशित किया गया है, जिसमें उसका स्थान मंडुआडीह में दर्शाया गया है, जिसका पंजीकरण सं. 100 है। इसमें वक्फ सं. 100 के विरुद्ध लंबित सभी मामलों का विवरण है। वे मामले वाद संपत्ति से संबंधित हैं। दस्तावेज की एक प्रति आधिकारिक वेबसाइट पर उपलब्ध है। यह दस्तावेज, पुनरीक्षण याची के अधिवक्ता को एक प्रति प्रदान करने के बाद, बहस के दौरान

विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर किया गया था। दस्तावेज की एक प्रति, जैसा कि पूर्वोक्त है, आधिकारिक वेबसाइट से डाउनलोड करके, इस न्यायालय के समक्ष भी प्रस्तुत की गई थी।

54. वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता ने बताया कि आधिकारिक वेबसाइट पर प्रकाशन में राजपत्र अधिसूचना, वक्फ के निर्माण की तिथि, खसरा संख्या और अन्य प्रासंगिक विवरण नहीं हैं। यह भी कहा गया है कि पुनरीक्षण याची द्वारा दायर दस्तावेजों पर संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत इस आवेदन पर निर्णय लेने में विचार नहीं किया जा सकता है।

XII. पेपर सं.-219-ग के साथ दायर दस्तावेजों के संबंध में

55. वादी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षण याची ने यह प्रदर्शित करने के लिए कि वहां मस्जिद दर्ज थी, कागजात सं. 221-ग, 222-ग, खसरा वर्ष 1291 फसली (कैलेंडर वर्ष 1883-84 के अनुरूप) की एक प्रति दाखिल की है। वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता का कहना है कि वे राजस्व विभाग के अधिकारियों द्वारा खसरा में की गई प्रविष्टियों की सत्यता पर गंभीर रूप से विवाद करते हैं। इस बात पर जोर दिया गया है कि **दीन मोहम्मद और अन्य बनाम राज्य सचिव**³⁸²⁴ में, जिस पर पुनरीक्षण याची ने अवलंब लिया था, उक्त

35 (1979) 2 SCC 468

36 (2010) 8 SCC 726

37 www.wamsi.nic.in

38 AIR 1942 All 353

राजस्व रिकॉर्ड को इस न्यायालय द्वारा अपील में खारिज कर दिया गया था। यह भी आग्रह किया गया है कि किसी भी राजस्व रिकॉर्ड में की गई प्रविष्टियों की सत्यता को प्रमुख साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है। राजस्व रिकॉर्ड स्वामित्व या स्वत्व का प्रमाण नहीं होता है।

56. यह कहा गया है कि कानून की उपधारणा के लिए, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि राजस्व अभिलेखों में की गई प्रविष्टियाँ भूमि के स्वामित्व को न तो बनाती हैं और न ही समाप्त करती हैं, न ही इनका स्वामित्व के बारे में कोई अनुमानित मूल्य होता है। इस संबंध में, श्री जैन ने निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है:

(क) यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम वासावी कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड एवं अन्य³⁹²⁵; तथा,

(ख) प्रभागीय वन अधिकारी अवध वन प्रभाग बनाम अरुण कुमार भारद्वाज (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य⁴⁰²⁶।

57. इसके बाद यह कहा गया कि वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 द्वारा पत्र सं. 223-ग की प्रामाणिकता और विषय-वस्तु पर गंभीर विवाद किया गया है। कहा गया है कि यह दस्तावेज सार्वजनिक दस्तावेज नहीं है। इसकी वास्तविकता और सत्यता साक्ष्य द्वारा प्रमाणित होने के अधीन है। इस दस्तावेज में

की गई प्रविष्टियाँ पूरी तरह गलत हैं। इसमें वर्णित तथ्यों का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं है। यह दस्तावेज, चल रहे मुकदमे को ध्यान में रखते हुए, जानबूझकर तैयार किया गया है, जो ओ.एस. सं. 610 वर्ष 1991 दाखिल किए जाने के साथ शुरू हुआ था। उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा वर्ष 1993 में राज्य के पक्ष में पत्र सं. 224-ग द्वारा दिए गए लाइसेंस के कारण उन उपासकों के अधिकार खत्म नहीं होते जो हिंदू हैं और मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी आदि के भक्त हैं। वादी पक्ष की ओर से इस दस्तावेज की सत्यता पर गंभीर विवाद है।

58. नक्शा, पेपर सं. 224-ग/04 साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है और इसकी सत्यता केवल प्रमुख साक्ष्य द्वारा ही सिद्ध की जा सकती है। वादीगण का कहना है कि वे इस नक्शे की सत्यता से इनकार करते हैं। पुनः, पेपर सं. 226-ग साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है और इसका उपयोग वादीगण के अधिकार को खत्म करने के लिए नहीं किया जा सकता, जो हिंदू हैं और माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी आदि के भक्त हैं, जो सभी वाद की संपत्ति के भीतर मौजूद हैं। यह भी कहा गया है कि राज्य सरकार वादीगण के वाद की संपत्ति के भीतर देवताओं की पूजा करने के अधिकार को नहीं छीन सकती है। राज्य सरकार द्वारा श्री काशी विश्वनाथ मंदिर, वाराणसी के न्यासी बोर्ड के मुख्य कार्यकारी और पुनरीक्षण याची के बीच निष्पादित विनिमय विलेख भी वादीगण के पूजा करने के अधिकार को खत्म या प्रतिकूल नहीं कर सकता है, जो वर्तमान वाद का विषय है।

39 (2014) 2 SCC 269

40 2021 SCC OnLine SC 868

XIII. अधिनियम, 1991 की गैर-प्रयोज्यता

59. वादी-प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के अधिवक्ता के अनुसार वाद में दावा की गई संपत्ति के साथ-साथ अनुतोष की प्रकृति भी वाद में निर्दिष्ट की गई है। यह वाद अन्य बातों के साथ-साथ पुराने मंदिर परिसर अर्थात् वाद की संपत्ति में मौजूद देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी, दृश्य और अदृश्य देवताओं, मंडपों और मंदिरों के दर्शन, पूजा में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को रोकने के उद्देश्य से दायर किया गया है।

60. वादी-प्रत्यर्थीगण का यह कहना है कि 15 अगस्त, 1947 से पहले से ही देवता लगातार मुकदमे की संपत्ति में मौजूद हैं। उपासकों को वाद संपत्ति में देवताओं के दर्शन और पूजा करने का अधिकार है। उन्हें संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत अपने धर्म का पालन करने के अधिकार की रक्षा और संरक्षण के लिए वर्तमान मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है।

61. श्री जैन ने पुराने मंदिर के विनाश के इतिहास का उल्लेख करते हुए वाद के विभिन्न परिच्छेदों, जिनमें परिच्छेद सं. 3, 4, 5, 6 और 7 शामिल हैं, का उल्लेख किया है और वादी-प्रत्यर्थीगण का कहना है कि मुसलमानों द्वारा पुराने मंदिर पर अतिक्रमण किया गया है, जिसे ज्ञानवापी मस्जिद कहा जाता है। लेकिन, उन्होंने यह भी कहा कि महत्वपूर्ण बात यह है कि श्री आदि विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगम के साथ-साथ मां श्रृंगार गौरी, भगवान हनुमान, भगवान गणेश और अन्य

दृश्यमान और अदृश्य देवताओं की प्रतिमाएं सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130 में मंदिर परिसर में मौजूद हैं, जिसे श्री आदि विश्वेश्वर मंदिर के नाम से जाना जाता है। इन देवताओं की पूजा भगवान शिव के भक्तों द्वारा अनादि काल से की जाती रही है, बावजूद इसके कि औरंगजेब के समय में मंदिर के एक हिस्से को नष्ट कर दिया गया था, जब बिना किसी कानूनी अधिकार के देवताओं की भूमि पर कुछ निर्माण किए गए थे। फिर भी, देवता वाद संपत्ति के वैधानिक मालिक बने हुए हैं।

62. मां श्रृंगार गौरी की प्रतिमा ज्ञानवापी के पीछे ईशान कोण (उत्तर-पूर्व कोने) में वाद संपत्ति के भीतर विद्यमान है। हिंदू भक्तगण लगातार मां श्रृंगार गौरी, भगवान हनुमान, भगवान गणेश और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं की पूजा अनुष्ठान के साथ करते हैं और भगवान श्री आदि विश्वेश्वर के मंदिर की परिक्रमा करते हैं। इस संबंध में उन्होंने न्यायालय का ध्यान वाद के पैराग्राफ सं. 9 की ओर आकर्षित किया है।

63. श्री जैन ने इस बात पर भी जोर दिया है कि मंदिर दक्षिण की ओर तहखाना में है और ध्वस्त मंदिर के अन्य हिस्से व खंडहर हैं। भगवान आदि विश्वेश्वर आज भी पुराने मंदिर के पश्चिमी हिस्से में मूल रूप में विद्यमान हैं। वादी-प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान वाद के पैराग्राफ सं. 10 की ओर आकर्षित किया है।

64. इसके बाद यह दलील दी गई कि वाद सं. 62 वर्ष 1936 में गवाहों ने देवी मां श्रृंगार

गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और दृश्य तथा अदृश्य देवताओं की प्रतिमाओं के अस्तित्व के साथ-साथ उस स्थान पर दैनिक पूजा-अर्चना की बात कही थी। वाद के पैराग्राफ सं. 18, जिसमें ये दलीलें हैं, को इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है।

65. वाद के पैराग्राफ सं. 19 में, गवाहों की गवाही के सार का संदर्भ दिया गया है, जिन्होंने वाद सं. 62 वर्ष 1936 में गवाही दी थी, यह दलील दी गई है कि देवता 15 अगस्त 1947 से बहुत पहले से वाद संपत्ति के भीतर अस्तित्व में थे और वे देवता अभी भी वहां मौजूद हैं।

66. श्री जैन ने इस बात पर जोर दिया है कि वाद में दिए गए कथनों से यह स्पष्ट होता है कि वादी का मामला यह है कि मुकदमे में उल्लिखित देवता 15 अगस्त, 1947 से बहुत पहले से वाद संपत्ति में मौजूद हैं, और इसलिए, अधिनियम, 1991 वादी-प्रत्यर्थियों के अनुतोष के अधिकार को बाधित नहीं करेगा। यदि देवता वहां हैं, जैसा कि वादी द्वारा अभिकथित है, तो यह एक ऐसा मामला है जिसे साक्ष्य द्वारा परखा और साबित किया जाना चाहिए। इसे सारांश रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

67. श्री जैन ने कहा कि वादी-प्रत्यर्थियों ने मौजूदा देवताओं के दर्शन और पूजा के अपने अधिकार को लागू करने के लिए वर्तमान मुकदमा दायर किया है। उन्होंने अधिनियम, 1991 की धारा 4(1) के प्रावधानों का हवाला दिया है और कहा है

कि अधिनियम 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र में परिवर्तन को प्रतिबंधित करता है। उनका कहना है कि 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान वाद संपत्ति के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वाद संपत्ति का धार्मिक चरित्र, जैसा कि 15 अगस्त, 1947 को था, जिसके बारे में पक्षों द्वारा अलग-अलग दलील दी गई है, दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य का विषय है। इसलिए, अधिनियम, 1991 किसी भी तरह से मुकदमे पर रोक नहीं लगाता है।

68. श्री विष्णु शंकर जैन ने वाद के पैराग्राफ सं.-22, 23, 24 और 25 का उल्लेख किया है कि अधिनियम, 1983 की धारा 4(9) में परिभाषित 'मंदिर' शब्द में वाद संपत्ति शामिल है। वाद संपत्ति का धार्मिक स्वरूप उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियम, 1983 को अधिनियमित करते समय पहले ही घोषित किया जा चुका है। अधिनियम, 1983 के प्रावधानों द्वारा वाद को वर्जित किए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस बात पर जोर दिया गया है कि अधिनियम, 1983 के तहत, 'ज्योतिर्लिंग' को 'मंदिर' की परिभाषा के भीतर शामिल किया गया है, और यह कि यह 'ज्ञानवापी मस्जिद' नामक संरचना के नीचे अस्तित्व में है, को मान्यता दी गई है। महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिनियम, 1983 की धारा 4(2) पुराने मंदिर परिसर के भीतर मौजूद देवी-देवताओं की पूजा करने के उपासकों के अधिकार की रक्षा करती है, जो वाद संपत्ति का हिस्सा है।

69. पूजा करने का अधिकार एक अपराजेय अधिकार है। यह मुकदमा वादी-प्रत्यर्थियों के वाद संपत्ति के भीतर पूजा करने के अधिकार को लागू करने के लिए लाया गया है, जैसा कि वे 15 अगस्त, 1947 से पहले और उसके बाद कर रहे थे। वाद संपत्ति का हिस्सा उस भवन परिसर की सटीक प्रकृति और चरित्र क्या था, जहां 15 अगस्त, 1947 से पहले और उसके बाद वादी जैसे हिंदू दर्शन और पूजा करते थे, इसे निर्धारित करना आवश्यक है ताकि पुनरीक्षण याची द्वारा अधिनियम, 1991 के तहत लगाए गए वर्जन के प्रश्न का निर्णय किया जा सके। यह साक्ष्य का मामला है, जिसके लिए मुकदमे के विचारण की आवश्यकता होगी।

70. इसके बाद यह दलील दी गई कि पुनरीक्षण याची की ओर से उनके आवेदन के साथ दिनांक 22.08.2022 को दाखिल किए गए दस्तावेज, जो कुछ दस्तावेजों की फोटोकॉपी हैं, पर गौर नहीं किया जा सकता। संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत कार्यवाही का दायरा किसी भी तरह के दस्तावेजों की जांच की अनुमति नहीं देता है। श्री विष्णु शंकर जैन द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि हिंदू विवादित ढांचे, वाद संपत्ति के हिस्से पर विभिन्न जगहों पर देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा करते रहे हैं। मुकदमा वादी के उन देवताओं की पूजा और आराधना के अधिकार को लागू करने तक सीमित है, जिनकी पूजा 1990 या 1993 से पहले सामान्य रूप से हिंदुओं द्वारा लगातार की जाती थी, और उसके बाद, आज तक कुछ प्रतिबंधों के साथ। यह मुकदमा वास्तव में

राज्य सरकार द्वारा उन देवताओं की पूजा करने के वादी के अधिकार पर लगाए गए प्रतिबंधों को हटाने के लिए लाया गया है। यह आग्रह किया गया है कि वाद में विचारणीय मुद्दे उठाए गए हैं तथा यह अधिनियम, 1991, अधिनियम, 1995 अथवा अधिनियम, 1983 द्वारा वर्जित नहीं है, जिससे संहिता के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत वाद को अस्वीकार किया जा सके।

71. वादी-प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सौरभ तिवारी ने आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए न्यायालय को विस्तार से बताया। उन्होंने तथ्यों से युक्त सामग्री संबंधी दलीलों की ओर ध्यान दिलाया, जो एक प्राचीन तथा सतत अधिकार को दर्शाती हैं, जिसके तहत वादीगण को पुराने श्री आदि विश्वेश्वर मंदिर की पश्चिमी दीवार पर मां श्रृंगार गौरी तथा अन्य देवताओं की पूजा-अर्चना करने का अधिकार है।

72. प्रतिवादी सं. 5 और प्रत्यर्थी सं. 9, काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विनीत संकल्प ने यह रुख अपनाया है कि बोर्ड को मुकदमे की सुनवाई पर कोई आपत्ति नहीं है।

न्यायालय का विनिश्चय

73. इस न्यायालय को शुरू में ही यह कहना है कि संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत किसी प्रस्ताव पर निर्णय लेने वाले आदेश से उत्पन्न पुनरीक्षण में इतने विस्तृत दलीलों के रिकॉर्ड की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हालांकि, इस न्यायालय के पास

सुनवाई के अप्रत्याशित रूप से लंबे कार्यक्रम में दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा कही गई बातों का सारांश दर्ज करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, जो कुल 17 दिनों की अवधि में फैली हुई है, हालांकि पूरे दिन की सुनवाई नहीं है।

74. पुनरीक्षण याची के वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एफ.ए. नकवी ने मुख्य रूप से निवेदन किया है कि विद्वान जिला न्यायाधीश के आदेश को पलट दिया जाना चाहिए तथा संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए, तथा वाद को इसलिए खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि वाद संहिता की धारा 9 सपठित तीन अलग-अलग विधियों अर्थात् अधिनियम, 1991, अधिनियम, 1983 तथा अधिनियम, 1995 के तहत वर्जित है। अतः पुनरीक्षण याची का कहना है कि वाद को संहिता के आदेश VII नियम 11(घ) के तहत खारिज किया जाना चाहिए। श्री नकवी का यह कहना कि सिविल न्यायालय को धारा 9 के आधार पर सिविल प्रकृति के सभी वादों पर विचार करने का अधिकार है, सिवाय उन वादों के जहां सिविल न्यायालय का अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा वर्जित है, एक ऐसी उपधारणा है जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता। यहां अधिक प्रासंगिक प्रश्न यह है कि यदि श्री नकवी ने जिस एक या अन्य कानून का सहारा लेकर कहा है कि मुकदमा स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से वर्जित है, क्या वह वास्तव में मुकदमे को वर्जित करता है?

75. इस बात पर जोर देते हुए कि यह मुकदमा अधिनियम, 1991 द्वारा वर्जित है, श्री नकवी ने न्यायालय का ध्यान उस अधिनियम की धारा 3, 4 और 7 तथा उसके उद्देश्यों और कारणों के कथन की ओर आकर्षित किया है। अधिनियम, 1991 की धारा 3, 4 और 7 के अलावा उद्देश्यों और कारणों के कथन, अधिनियमन खंड पर ध्यान देना उचित होगा। ये इस प्रकार हैं:

"उद्देश्यों और कारणों का कथन

पूजा स्थलों के रूपांतरण के संबंध में समय-समय पर उठने वाले विवादों को देखते हुए, यह महसूस किया जाता है कि ऐसे रूपांतरणों पर रोक लगाई जानी चाहिए।

2. दिनांक 15 अगस्त, 1947 को अस्तित्व में रहे किसी पूजा स्थल के संबंध में किसी भी विवाद को समाप्त करने के लिए, ऐसे पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र को बनाए रखने के लिए प्रावधान करना आवश्यक समझा जाता है, जैसा कि वह 15 अगस्त, 1947 को अस्तित्व में था। इसके परिणामस्वरूप, ऐसे किसी भी पूजा स्थल के संबंध में 11 जुलाई, 1991 तक लंबित सभी मुकदमे या अन्य कार्यवाहियां समाप्त हो जाएंगी और आगे के मुकदमों या अन्य कार्यवाहियां भी वर्जित होंगी।

3. हालांकि, चूंकि आम तौर पर राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद कहे जाने वाले स्थान से संबंधित मामला अपने आप में एक वर्ग है, इसलिए इसे इस अधिनियम के प्रभाव से पूरी तरह से छूट देना आवश्यक हो गया है।

4. इसके अतिरिक्त, सांप्रदायिक सद्भाव और शांति बनाए रखने के लिए, 15 अगस्त, 1947 और 11 जुलाई, 1991 के बीच न्यायालयों, न्यायाधिकरणों या अन्य प्राधिकारियों द्वारा तय किए गए मामले या पार्टियों द्वारा आपस में या सहमति से सुलझाए गए मामले भी इस अधिनियम के प्रभाव से मुक्त हैं।

5. दिनांक 11 जुलाई, 1991 को अधिनियम के लागू होने की तिथि प्रस्तावित है, क्योंकि उसी दिन राष्ट्रपति ने संसद को संबोधित करते हुए ऐसी घोषणा की थी।

6. विधेयक का उद्देश्य उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करना है।

किसी भी पूजा स्थल के धर्मांतरण पर रोक लगाने और किसी भी पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र को 15 अगस्त, 1947 को जिस रूप में वह था, उसी रूप में बनाए रखने तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए उपबंध करने के लिए एक अधिनियम।

भारत गणराज्य के बयालीसवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियम बनाया जाए:—

3. **पूजा स्थलों के परिवर्तन पर रोक**—कोई भी व्यक्ति किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी खंड के पूजा स्थल को उसी धार्मिक संप्रदाय के किसी भिन्न खंड या किसी भिन्न धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी खंड के पूजा स्थल में परिवर्तित नहीं करेगा।

4. **कुछ पूजा स्थलों के धार्मिक स्वरूप के बारे में घोषणा तथा न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के निषेध आदि के बारे में घोषणा**—(1) एतदद्वारा द्वारा यह घोषित किया जाता है कि 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान पूजा स्थल का धार्मिक स्वरूप वैसा ही बना रहेगा जैसा उस दिन था।

(2) यदि इस अधिनियम के प्रारंभ पर 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान किसी पूजा स्थल के धार्मिक स्वरूप के परिवर्तन के संबंध में कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकरण के समक्ष लंबित है, तो वह उपशमित हो जाएगी, तथा ऐसे किसी मामले के संबंध में कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही ऐसे प्रारंभ पर या उसके पश्चात किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकरण में नहीं होगी:

परन्तु यदि कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही, जो इस आधार पर संस्थित या दायर की गई हो कि 15 अगस्त, 1947 के पश्चात ऐसे किसी स्थान के धार्मिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ है, इस अधिनियम के प्रारंभ पर लंबित है, तो ऐसा वाद, अपील या अन्य कार्यवाही इस प्रकार उपशमित नहीं होगी और प्रत्येक ऐसे वाद, अपील या अन्य कार्यवाही का निस्तारण उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) में निहित कोई भी बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी—

(क) उपधाराओं में निर्दिष्ट कोई पूजा स्थल जो प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक या पुरातत्व स्थल या अवशेष है जो प्राचीन स्मारक और पुरातत्व स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (24 वर्ष 1958) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के अंतर्गत आता है;

(ख) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी मामले के संबंध में कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही जो इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकरण द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चित, सुलझाई या निस्तारित की गई हो;

(ग) ऐसे किसी मामले के संबंध में कोई विवाद जो पक्षकारों द्वारा ऐसे प्रारंभ से पूर्व आपस में सुलझा लिया गया हो;

(घ) ऐसे किसी स्थान का ऐसे प्रारंभ से पूर्व सहमति द्वारा किया गया कोई परिवर्तन;

(ङ) ऐसे प्रारंभ से पहले किए गए किसी ऐसे स्थान का कोई रूपांतरण, जिसे किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकरण में चुनौती नहीं दी जा सकती है, क्योंकि वह किसी कानून के तहत समय-सीमा द्वारा वर्जित है।

7. अधिनियम का अन्य अधिनियमों पर अभिभावी होना- इस अधिनियम के उपबंध, किसी अन्य कानून में या इस अधिनियम के अलावा किसी अन्य कानून के आधार पर प्रभावी किसी कानून में निहित किसी असंगत बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।

76. अधिनियम, 1991 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण तथा धारा 3, 4 और 7, जिसका श्री नकवी ने विस्तृत उल्लेख किया है, के अवलोकन से पता चलता है कि यह कानून किसी भी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी भी वर्ग के पूजा स्थलों की पहचान को बनाए रखने का प्रयास करता है, तथा इसे उसी धार्मिक संप्रदाय के किसी अन्य वर्ग या किसी अन्य धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी भी वर्ग के पूजा स्थल में परिवर्तित करने पर रोक लगाता है। एक कटऑफ तिथि पेश की गई है, जिसके संदर्भ में पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र के अस्तित्व को संरक्षित किया जाना चाहिए। वह तिथि 15 अगस्त, 1947 है। अतः, मुद्दागत तथ्य, जो अधिनियम, 1991 के तहत वर्जन को आकर्षित करेगा, वह किसी भी धार्मिक संप्रदाय से संबंधित मौजूदा पूजा स्थल को किसी अन्य धार्मिक संप्रदाय या उसी धार्मिक संप्रदाय के किसी अन्य वर्ग के पूजा स्थल में परिवर्तित करने का कार्य है; और, किसी भी पूजा स्थल के जिस चरित्र को संरक्षित किया जाना है, वह 15 अगस्त, 1947 के संदर्भ में है। अधिनियम, 1991 के तहत वर्तमान मुकदमे में वैधानिक वर्जन की दलील का न्याय करते समय उत्तर दिया जाने वाला पहला और शायद अंतिम प्रश्न यह पता लगाना है कि

क्या मुकदमा, या यूँ कहें कि वादी जो राहत का दावा करते हैं, वह पुनरीक्षण याची द्वारा जिसे ज्ञानवापी मस्जिद होने का दावा किया गया है, को हिंदू मंदिर में परिवर्तित करने के लिए निर्देशित है।

77. वादपत्र, विशेष रूप से राहत खंड और सारवान कथनों का अवलोकन करने से यह पता नहीं चलता है कि पुनरीक्षण याची द्वारा जिसे ज्ञानवापी मस्जिद के रूप दावा किया गया है, उस पूजा स्थल के मौजूदा चरित्र को बदलने की कोशिश की जा रही है। पूरी संरचना की ऐतिहासिक उत्पत्ति और इतिहास में जो कुछ भी हुआ है उसके अवशेषों के आधार पर वाद में ऐसे कथन हैं जो यह दर्शाते हैं कि ज्ञानवापी मस्जिद के पीछे ईशान कोण (उत्तर-पूर्व कोने) में वाद संपत्ति के भीतर माँ श्रृंगार गौरी की छवि विद्यमान है। यह कथन वादपत्र के पैराग्राफ सं. 9 में है। फिर एक कथन है कि भगवान आदि विश्वेश्वर अभी भी वाद संपत्ति के भीतर पुराने मंदिर के पश्चिमी भाग में अपने मूल आकार में विद्यमान हैं। यह कथन वादपत्र के पैराग्राफ सं. 10 में है।

78. वाद के पैराग्राफ सं.-12(ii) में एक कथन है कि पुराने मंदिर के मंडप का एक हिस्सा ज्ञानवापी मस्जिद के प्रांगण में मौजूद है, जो अभी भी हिंदुओं के कब्जे में है। पैराग्राफ संख्या-12(iv) में एक और कथन है कि ज्ञानवापी मस्जिद की पश्चिमी दीवार के पीछे, देवी मां श्रृंगार गौरी की छवि है, जो अनादि काल से मौजूद हैं और लगातार पूजा की जाती रही है। वाद के पैराग्राफ संख्या-12(v) में, यह दलील दी गई है कि हिंदुओं ने मस्जिद के

पश्चिमी तरफ, 'गुप्त', यानी अदृश्य देवता की पूजा करना जारी रखा है। हिंदू मस्जिद के पश्चिम में खंडहरों की जीर्ण-शीर्ण दीवार में मां श्रृंगार गौरी और उनके बेटे, भगवान गणेश के निवास के रूप में पूजा करना जारी रखे हैं। वे पंच मंडपों को श्रद्धांजलि भी देते हैं।

79. वाद के पैराग्राफ सं. 25 में यह कहा गया है कि यह निर्विवाद है कि मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी, दृश्य और अदृश्य देवताओं, मंडपों और मंदिरों की पूजा भक्तों द्वारा की जा रही है। इसमें यह भी कहा गया है कि अधिनियम, 1983 पुराने मंदिर परिसर में देवताओं की पूजा करने के भक्तों के अधिकार को मान्यता देता है।

80. वाद के पैराग्राफ सं. 26 में यह दावा किया गया है कि भगवान शिव और अन्य सहायक देवताओं के उपासकों को मंदिरों, उप-मंदिरों, स्थानों, देवताओं की छवियों, मंडपों, जिसमें देवी श्रृंगार गौरी की छवि/मंदिर भी शामिल है, की पूजा और दर्शन करने का अधिकार है।

81. वाद के पैराग्राफ सं. 36 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि हिंदू कैलेंडर वर्ष के संवत् 2078 चैत्र नवरात्र के चौथे दिन या ग्रेगोरियन कैलेंडर तिथि 16 अप्रैल, 2021 को भक्तों को मां श्रृंगार गौरी के दर्शन और पूजा की अनुमति दी गई थी। वादी ने अन्य भक्तों के साथ दिनांक 16.04.2021 को पूजा की, लेकिन उसके बाद वादी को दैनिक पूजा करने की अनुमति नहीं दी जा रही है।

82. वाद के पैराग्राफ 42 और 43 में यह तर्क दिया गया है कि भगवान शिव के भक्त 1990 तक लगातार पुराने मंदिर में माँ श्रृंगार गौरी और अन्य देवताओं की दैनिक पूजा और आराधना करते थे, जब अयोध्या आंदोलन के दौरान उत्तर प्रदेश सरकार ने दैनिक पूजा पर प्रतिबंध लगा दिया और 1993 से राज्य प्रशासन, राज्य सरकार के मौखिक आदेशों के तहत काम करते हुए भक्तों को केवल चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन पूजा करने की अनुमति दे रहा है। वादी पूजा करते हैं, बाहर से दर्शन करते हैं और वहीं अनुष्ठान करते हैं। वे पुराने मंदिर के भीतर भी पूजा करते हैं, जब भी उन्हें वहां प्रवेश करने की अनुमति मिलती है।

83. वाद के पैराग्राफ 27 और 44 में कहा गया है कि राज्य सरकार के पास बिना किसी कानूनी प्राधिकार के और प्रतिबंध लगाने का कोई कारण बताए बिना आदेश पारित करके भक्तों के पूजा करने के अधिकार को प्रतिबंधित करने का कोई अधिकार, शक्ति या अधिकारिता नहीं है। ऐसा करना संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत वादी के अपने धर्म का पालन करने के अधिकार का पूरी तरह से हनन करता है।

84. वाद के पैराग्राफ सं. 45 में कहा गया है कि राज्य सरकार को पूजा और दर्शन को एक ही दिन तक सीमित करके अनुच्छेद 25 के तहत नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने का कोई अधिकार नहीं है। सरकार के अधिकारी उन प्रतिबंधों को लगाकर

नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन कर रहे हैं, जो मनमाना और गलत है।

85. पैराग्राफ सं. 46 में यह कहा गया है कि वादी और भक्तों को भगवान शिव के पुराने मंदिर परिसर में भगवान आदि श्री विश्वेश्वर के साथ भगवान गणेश, नंदीजी और अन्य देवताओं के स्थान पर देवी माँ श्रृंगार गौरी के निर्बाध दैनिक दर्शन, पूजा, आरती, भोग लगाने और अनुष्ठान करने का मौलिक अधिकार है, जो सेटलमेंट प्लॉट सं. 9130, वार्ड और थाना दशाश्वमेध में मौजूद है। ये सभी कथन स्पष्ट रूप से अनुतोष खंड के खंड (ए) और (बी) में याचित अनुतोष के साथ किए गए हैं।

86. उपर्युक्त कथन भगवान आदि विश्वेश्वर तथा अन्य दृश्य एवं अदृश्य देवताओं के स्थान पर मां श्रृंगार गौरी की पूजा करने के वादी के अधिकार का समर्थन करने के लिए किए गए हैं।

87. वाद के पैराग्राफ सं. 47 में, वाद के खंड (ग) में याचित अनुतोष का समर्थन करने के लिए कथन हैं, जिसमें यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया है कि प्रतिवादी देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य दृश्यमान और अदृश्य देवताओं की छवियों को ध्वस्त, क्षतिग्रस्त, नष्ट या किसी भी तरह की क्षति नहीं पहुंचाएंगे।

88. वाद के पैराग्राफ सं. 47 में, यह कहा गया है कि वादी को दिनांक 10.08.2021 को पता चला कि मुस्लिम समुदाय के कुछ सदस्य, पुनरीक्षण याची के सक्रिय समर्थन से, हिंदू

समुदाय के सदस्यों को दर्शन और पूजा आदि से वंचित करने के इरादे से पुराने मंदिर के भीतर देवी माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान विराजमान की छवियों को नुकसान पहुंचाने / नष्ट करने का इरादा रखते हैं।

89. वाद के पैरा सं. 48 में दलील दी गई है कि राज्य सरकार और जिला प्रशासन के अनुचित प्रभाव में श्री काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड को उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के साथ विनिमय विलेख करके ट्रस्ट की 1000 वर्ग फुट जमीन देनी पड़ी।

90. वाद में इस कथन के साथ, पैराग्राफ सं. 49 में कहा गया है कि वादी के पास यह मानने के कारण हैं कि यदि पुनरीक्षण याची, उनके सदस्य और अनुयायी पुराने मंदिर के परिसर में देवताओं की छवियों को नुकसान पहुंचाते हैं, तो राज्य सरकार और वाराणसी का जिला प्रशासन मूक दर्शक बने रहेंगे और कोई कार्रवाई नहीं करेंगे।

91. ऐसा प्रतीत होता है कि 16 अप्रैल, 2021 को वादी ने मां श्रृंगार गौरी के दर्शन और पूजा की, लेकिन अगले दिन यानी 17 अप्रैल, 2021 को उन्हें मुकदमे के प्रतिवादी प्रत्यर्थी सं. 6, 7 और 8 द्वारा ऐसा करने से रोक दिया गया, जैसा कि वाद में दलील दी गई है, विशेष रूप से इसके पैराग्राफ सं. 50 में।

वादी के अधिकार की प्रकृति और दायरा, मुकदमे की प्रकृति और राज्य द्वारा वादी के

अधिकार पर लगाए गए प्रतिबंध, जिन्हें मुकदमे में चुनौती दी गई है-

92. वादपत्र को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि वादी ने वर्ग कार्रवाई के रूप में यह मुकदमा नहीं किया है, जिसमें सामान्य रूप से हिंदुओं या किसी विशेष वर्ग के अधिकार का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया गया हो, जो भगवान शिव, मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान के भक्त हैं, जो विवादित संपत्ति में देवताओं की पूजा या दर्शन करना चाहते हैं। वादी ने दावा किया है कि भगवान शिव, मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान के भक्तों के बीच अनादि काल से ऐसा अधिकार रहा है, जिसका किसी न किसी रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। वादी भगवान शिव, मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी, दृश्य और अदृश्य देवताओं की पूजा करने के अपने व्यक्तिगत अधिकार का प्रयोग करना चाहते हैं, जो उनके धार्मिक विश्वासों से जुड़ा है और हिंदुओं के बीच इन देवताओं की पूजा करने की परंपरा के बारे में कथनों द्वारा इसका समर्थन करता है। वादीगण ने हिंदू धर्मग्रंथों पर आधारित अपने धार्मिक विश्वास के आधार के बारे में विस्तार से कहा है, लेकिन वह यह दिखाने के लिए है कि उनका विश्वास धार्मिक ग्रंथों पर आधारित है। इसके अलावा, वादीगण द्वारा याचित अधिकार नामित देवताओं की यथास्थान अर्थात् वाद संपत्ति में पूजा करने का उनका व्यक्तिगत अधिकार है। वाद की संपत्ति के संबंध में ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन के अलावा कोई भी दलील नहीं है, जो अधिनियम, 1991 की धारा 3, 4 और 7 के तहत मौजूदा

ज्ञानवापी मस्जिद को मंदिर या हिंदुओं के किसी अन्य पूजा स्थल में परिवर्तित करने के लिए कार्रवाई या अनुतोष का कोई कारण दिखा सके।

93. वाद को पढ़ने से पता चलता है कि वादी के अनुसार, हिंदू होने के नाते उन्हें देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं की पूजा करने का अधिकार है, हालांकि समय के साथ हुई घटनाओं के कारण, उस अधिकार का प्रयोग अब प्रतिबंधित हो गया है। वर्तमान समय में, एक अधिकार जिसका वादी दैनिक आधार पर प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं, वह है देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान की पूजा अनुष्ठान के साथ करना और भगवान आदि विश्वेश्वर की परिक्रमा करना। यह अधिकार ज्ञानवापी मस्जिद के पीछे ईशान कोण (उत्तर-पूर्व कोने) में मौजूद देवताओं की छवि के संबंध में प्रयोग किया जाता है। वादी कहते हैं कि वे इस अधिकार का कभी भी प्रयोग कर सकते हैं और अन्य श्रद्धालु भी बिना किसी प्रतिबंध के लगातार इसका प्रयोग कर रहे हैं। स्पष्ट रूप से, अनुष्ठान और परिक्रमा के माध्यम से पूजा करने का यह अधिकार वाद संपत्ति के बाहर से है, न कि उसमें प्रवेश करके। दूसरा अधिकार, जिसका वादी द्वारा वर्तमान में प्रयोग किए जाने का दावा किया गया है, वह देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी और अन्य दृश्य और अदृश्य देवताओं की पूजा वाद संपत्ति में प्रवेश करके करना, जो अब चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन तक सीमित है, जो वर्ष 2021 में 16 अप्रैल को

पड़ा। वर्ष 1993 से पहले इस अधिकार का प्रयोग वादी के अलावा अन्य हिंदुओं द्वारा दैनिक आधार पर किया जा रहा था। प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं. 6, 7 और 8 जिनका प्रतिनिधित्व जिला प्रशासन करता है ने राज्य सरकार के मौखिक निर्देशों के तहत आम भक्तों के लिए वर्ष 1993 में चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन, दैनिक अधिकार के बजाय इसे अस्थायी आधार पर एक दिन तक सीमित कर दिया।

94. वादी इस अधिकार को राज्य सरकार द्वारा एक दिन तक सीमित करने के अधिकार पर सवाल उठाते हैं, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत उनके अधिकारों का उल्लंघन करता है। ये कथन पैराग्राफ सं. 42, 43, 44, 45 और 46 में स्पष्ट हैं। वाद में दिए गए कथनों से, विशेष रूप से पैराग्राफ सं. 43 में दिए गए कथनों से, ऐसा प्रतीत होता है कि भक्तों द्वारा इन देवताओं की पूजा करने का अधिकार वर्ष 1990 तक वाद संपत्ति में प्रवेश करके दैनिक आधार पर प्रयोग किया जाता था और वर्ष 1993 से सरकार द्वारा किसी प्रकार के प्रशासनिक निर्देश के तहत प्रतिबंधित कर दिया गया था। सुनवाई के दौरान पुनरीक्षण याची की ओर से उन दो वर्षों के उल्लेख को लेकर काफी हो-हल्ला हुआ, जब इस अधिकार को प्रतिबंधित बताया गया था, अर्थात 1990 और 1993।

95. श्री नकवी ने जोर देकर कहा कि दलीलों से यह स्पष्ट नहीं होता कि अधिकार को वास्तव में दैनिक से एक दिन तक सीमित कब किया गया था। वाद में अन्य कथनों के साथ

पैराग्राफ का एक संपूर्ण और सार्थक पठन यह दर्शाता है कि देवताओं की पूजा करने के भक्तों के अधिकार पर प्रतिबंध एक प्रशासनिक या कानून और व्यवस्था का उपाय था, जो अयोध्या आंदोलन के बाद लिया गया था। जाहिर है, ऐसे फैसले किसी विधायी आदेश या किसी विशेष दिन से लागू न्यायिक आदेश के रूप में नहीं आते हैं। ये उपाय, व्यवस्था के रूप में, किसी विशेष स्थिति के बारे में आदेश देने और कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आते हैं। ये अपने साथ अपनी अड़चनें लेकर आते हैं। इसलिए, प्रथम दृष्टया, इस संबंध में वादी की दलीलों को अस्पष्ट कहने के लिए कुछ भी नहीं है। यदि वे कहते हैं कि अधिकार का प्रयोग 1990 तक लगातार किया गया और फिर वर्ष 1993 में एक दिन तक सीमित कर दिया गया, तो इस बीच सरकार और प्रशासन द्वारा कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के उपायों की खोज की होती।

96. इसलिए, वादी दैनिक आधार पर देवताओं की पूजा और दर्शन करने के अधिकार के अस्तित्व पर जोर देते हैं, जिसका प्रयोग सामान्य रूप से हिंदुओं द्वारा वर्ष 1990 तक बिना किसी बाधा के किया जाता था। यह प्रशासनिक आवश्यकता के कारण वर्ष 1993 में एक दिन तक सीमित कर दिया गया। वादी जिस अधिकार का दावा करते हैं, वह माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान के भक्तों के रूप में कभी भी समाप्त नहीं हुआ है। वादी कहते हैं कि वे वर्ष के किसी भी समय देवताओं की पूजा और दर्शन करने के अपने अधिकार के प्रतिबंधित नहीं किए जाने के हकदार हैं। पक्षों के कथन से यह स्पष्ट है

कि वादी द्वारा वाद संपत्ति में प्रवेश करने और देवताओं के स्थान पर जाने के बाद देवताओं की पूजा और दर्शन करने के अधिकार पर पुनरीक्षण याची द्वारा कभी सवाल नहीं उठाया गया था। वादी का कहना भी ऐसा नहीं है। वर्ष 1993 में राज्य सरकार और जिला प्रशासन ने कानून और व्यवस्था की उस समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस अधिकार को दैनिक कार्यक्रम से एक दिन तक सीमित कर दिया था। वादी कहते हैं कि जब प्रतिबंध लगाया गया था, तो यह अयोध्या आंदोलन के दौरान 1990 से 1993 के बीच की अवधि में था। वादी जिस अधिकार का दावा करते हैं, उसका सार यह है कि पूजा करने का उनका अधिकार बरकरार है और किसी भी समय पुनरीक्षण याची द्वारा उस पर कोई आपत्ति नहीं की गई है। अब, वादी, जो देवी माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान के भी भक्त हैं, एक दिन के अस्थायी प्रतिबंध से अप्रभावित होकर पूजा करने के अपने अधिकार को साबित करने के हकदार हैं, क्योंकि प्रतिबंध लगाने वाली आवश्यकताएँ बहुत पहले ही खत्म हो चुकी हैं।

97. राज्य सरकार और प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं. 6, 7 और 8, के प्रतिनिधि जिला प्रशासन ने इस मामले में इस न्यायालय के समक्ष कोई पक्ष नहीं लिया। लेकिन, यह शायद ही मायने रखता है। आखिरकार, यह पुनरीक्षण इस बारे में है कि वाद में दिए गए कथनों के आधार पर मुकदमा चलाया जा सकता है या नहीं और इससे ज़्यादा कुछ नहीं। प्रतिवादी केवल इतना ही दिखा सकते हैं कि वाद में दिए गए कथनों के अनुसार मुकदमा

चलाया नहीं जा सकता। इस संबंध में कानून अच्छी तरह से स्थापित है, जैसा कि पी.वी. गुरु राज रेड्डी द्वारा जीपीए लक्ष्मी नारायण रेड्डी और अन्य बनाम पी. नीरदा रेड्डी और अन्य⁴¹²⁷ में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है। पी.वी. गुरु राज रेड्डी (उपरोक्त) में, यह कहा गया :

“5. सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के तहत वाद को खारिज करना, सिविल मुकदमे को शुरू में ही समाप्त करने के लिए न्यायालय द्वारा प्रदत्त एक कठोर शक्ति है। इसलिए, आदेश 7 नियम 11 के तहत शक्ति के प्रयोग की पूर्व शर्तें कठोर हैं और न्यायालय द्वारा लगातार ऐसा ही माना गया है। वाद में दिए गए कथनों को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए ताकि पता चल सके कि क्या यह किसी वाद हेतुक का खुलासा करता है या क्या मुकदमा किसी कानून के तहत वर्जित है। आदेश 7 नियम 11 के तहत शक्ति के प्रयोग के चरण में, लिखित कथन में या वाद को खारिज करने के लिए आवेदन में प्रतिवादियों का रुख पूरी तरह से अप्रासंगिक है। केवल तभी जब वाद में दिए गए कथनों से वाद हेतुक का खुलासा नहीं होता है या इसे पढ़ने पर ऐसा लगता है कि मुकदमा किसी कानून के तहत वर्जित है, तभी वाद को खारिज किया जा सकता है। अन्य सभी स्थितियों में, दावों पर मुकदमे के दौरान ही निर्णय लिया जाएगा।”

98. एच.एस. दीक्षित एवं अन्य बनाम मेसर्स मेट्रोपोली ओवरसीज लिमिटेड एवं अन्य⁴²²⁸
मामले में भी माननीय न्यायाधीशों द्वारा इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया है।

अधिनियम, 1991

99. पुनरीक्षण याची ने यह कहते हुए जो प्रश्न उठाया कि मुकदमा वर्जित है और अब विचाराधीन है, वह अधिनियम, 1991 पर आधारित है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह कानून एक धार्मिक संप्रदाय के पूजा स्थल को दूसरे के पूजा स्थल में बदलने के अधिकार पर स्पष्ट प्रतिबंध लगाता है, जिसे 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान प्रत्येक पूजा स्थल के लिए संरक्षित किया जाना चाहिए। यहाँ, जाहिर है, वाद में दिए गए कथनों के अनुसार, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, ज्ञानवापी मस्जिद को, जिसका पुनरीक्षण याची प्रतिनिधित्व करते हैं, हिंदू मंदिर या अन्य पूजा स्थल में बदलने के लिए कोई मामला या अनुतोष नहीं है। यह मुकदमा स्थापित परंपरा के अनुसार वादी के पूजा करने के अधिकार को लागू करने तक ही सीमित है। उस अधिकार को किस हद तक स्थापित किया जा सकता है, यह वर्तमान मुकदमे के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है और इस पर सुनवाई होनी चाहिए।

100. यह स्पष्ट रूप से ध्यान में रखना होगा कि देवी माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान की पूजा करने का अधिकार, जिसे वादीगण वाद में लगाए गए आरोपों और

साक्ष्य या बचाव के अभाव में पक्षकारों द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर लागू करना चाहते हैं, न तो कोई नया अधिकार है जिसे वादीगण स्थापित करना चाहते हैं और न ही यह ऐसा अधिकार है जिसका वादीगण जैसे भक्तों द्वारा 15 अगस्त, 1947 के बाद कभी प्रयोग नहीं किया गया। किसी का यह कहना नहीं है कि माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और वाद संपत्ति में अन्य देवताओं के भक्तों ने किसी समय इस अधिकार का प्रयोग किया था, जो 15 अगस्त, 1947 को या उससे पहले समाप्त हो गया। भक्तों द्वारा इस अधिकार का प्रयोग, जैसा कि दावा किया गया है, वर्ष 1990 तक बिना किसी बाधा के जारी रहा। यह वह अधिकार है जिसे वादीगण लागू करना चाहते हैं।

101. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ष 1990 से 1993 के बीच इस अधिकार का प्रयोग एक परेशानी भरा दौर रहा, जब तक कि इसे एक दिन, यानी चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन तक सीमित नहीं कर दिया गया। इसके अलावा, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह अस्थायी प्रतिबंध सरकार और जिला प्रशासन के लिए प्रशासनिक आवश्यकता के रूप में आया था। पुनरीक्षण याची द्वारा आपत्ति या प्रतिरोध के कारण यह अधिकार एक दिन तक सीमित नहीं था। माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य देवताओं के भक्तों का अधिकार, वाद में दलीलों के अनुसार, एक मौजूदा अधिकार है, जिसे वादी, ऐसे भक्तों के रूप में, पूरे वर्ष अपने लिए लागू करना चाहते

हैं। यह एक अलग मामला है कि वादी इस अधिकार को मुकदमे में स्थापित करते हैं या असफल होते हैं, जो वर्तमान कार्यवाही के दायरे से बाहर है।

102. तथ्य यह है कि उन्हें पूरे वर्ष देवी माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और वाद संपत्ति में अन्य देवताओं के दर्शन और पूजा करने का अधिकार है, जैसा कि वादी जैसे भक्त वर्ष 1990 तक कर रहे थे, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है और अब वे वर्ष के एक ही दिन ऐसा कर रहे हैं। यह न्यायालय यह देखने में विफल है कि यदि वादी या उनके जैसे भक्त वर्ष में एक ही दिन देवताओं की पूजा और दर्शन कर सकते हैं, जिससे मस्जिद के चरित्र को कोई खतरा नहीं है, तो इसे दैनिक या साप्ताहिक मामला बनाने से मस्जिद के चरित्र में परिवर्तन या रूपांतरण कैसे होगा। इसके लिए स्थानीय प्रशासन द्वारा कुछ व्यवस्थाएँ करने की आवश्यकता हो सकती है, और हो सकता है कि सरकार द्वारा भी कुछ विनियमन के माध्यम से कुछ व्यवस्थाएँ की जाएँ, लेकिन यह कानून की चिंता का विषय नहीं है।

103. मामले का दूसरा पहलू, निश्चित रूप से, यह है, और यह पहले ही कहा जा चुका है, कि 15 अगस्त, 1947 के बाद पूरे वर्ष और यहां तक कि वर्ष 1993 में भी वादी द्वारा पूरे वर्ष के दौरान अधिकार का प्रयोग किया गया, पूरे वर्ष के लिए अधिकार का प्रवर्तन अधिनियम, 1991 की धारा 3 और 4 के उल्लंघन को आकर्षित नहीं करता है। इसी तरह, माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और

अन्य देवताओं की पूजा करने के अधिकार को लागू करने के लिए केवल मांग करना, जो कि वाद संपत्ति में उनके निर्दिष्ट स्थान पर स्थित हैं, ऐसा कार्य नहीं है जो ज्ञानवापी मस्जिद के चरित्र को मंदिर में बदल देता है। यह एक विद्यमान अधिकार के पूर्ण प्रवर्तन की मांग से अधिक कुछ नहीं है जो वादीगण में निहित है तथा जिसका प्रयोग उनके जैसे अन्य भक्तों द्वारा 15 अगस्त, 1947 के काफी बाद तक किया जाता रहा है। कम से कम यह एक ऐसा वाद कथन है जो किसी भी तरह से वर्ष 1991 के अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत प्रतिबंध को आकर्षित नहीं करता है।

104. वादी के अधिकार के बारे में जो उद्घोषणा मांगी गई है, वह एक तरह से मांगा गया अनुतोष प्रतीत होता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, वादी कहते हैं कि उनके जैसे भक्तों ने 15 अगस्त, 1947 के बाद से ही लगातार, वर्ष 1990 तक, फिर 1990 और 1993 के बीच कुछ परेशानियों के साथ, और उसके बाद वार्षिक आधार पर इस अधिकार का प्रयोग किया है। यह न्यायालय सोचेगा कि उद्घोषणा की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है। आखिरकार, अनुतोष केवल अधिकार के प्रयोग की आवृत्ति के बारे में है, न कि अधिकार के प्रयोग के बारे में।

105. वादी जो दूसरा अनुतोष चाहते हैं, वह ज्ञानवापी के उत्तर-पूर्वी कोने में मौजूद देवताओं के संभावित विध्वंस को रोकना है। आखिरकार, यह माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान की छवियाँ हैं, जो वादी सहित भक्तों की पूजा की वस्तु हैं। वादी जो अनुतोष चाहते

हैं, वह गंभीर क्षति की आशंका पर आधारित है। राहत के इस हिस्से में जिस निषेधाज्ञा का दावा किया गया है, वह एक क्विया टाइमेट निषेधाज्ञा है, जिसे अपने स्वयं के मानकों के अनुसार साबित किया जाना चाहिए। देवताओं की छवियों का अस्तित्व, जिसे अनुतोष के इस हिस्से के तहत निषेधाज्ञा संरक्षित करने और उनके अपवित्र होने से रोकने की मांग करती है, 15 अगस्त, 1947 से लेकर आज तक के वादों के आरोपों पर देवताओं के अस्तित्व के बारे में एक स्थिति को संरक्षित करना है। देवताओं की मौजूदा स्थिति को बदलकर वादी पूजा करने के अपने अधिकार को लागू करना नहीं चाहते हैं। इसलिए, अनुतोष का यह हिस्सा भी अधिनियम, 1991 की धारा 3 और 4 के तहत परिकल्पित वर्जन के दायरे में नहीं आएगा।

106. जहां तक अनुतोष (घ) का सवाल है, यह अन्य अनुतोषों के लिए एक सहायक अनुतोष है और सरकार और प्रशासन को सुरक्षा व्यवस्था करने के निर्देश जारी करने से संबंधित है ताकि वादी वाद संपत्ति के भीतर प्रतिदिन देवताओं की पूजा करने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकें। यदि अन्य अनुतोष, जैसा कि पहले ही कहा गया है, अधिनियम, 1991 की धारा 3 और 4 के प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से वर्जित नहीं हैं, तो संहिता के आदेश VII के नियम 11 के खंड (घ) में प्रावधान गैर-विचारणीयता का मामला बनाने के लिए शायद ही आकर्षित होंगे।

107. यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि श्री नकवी द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का

एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा, जिसे इस न्यायालय के समक्ष बहुत जोरदार तरीके से प्रस्तुत किया गया था, यह है कि यह वाद एक चतुराईपूर्ण मसौदा है। श्री नकवी ने जो तर्क दिया है वह यह है कि देवताओं की पूजा करने के अपने अधिकार के प्रवर्तन की आड़ में, वादी, मूल रूप से, मस्जिद के चरित्र को मंदिर में बदलने की मांग कर रहे हैं। यह विचार कि दलीलें न्यायालय के समक्ष किसी कार्रवाई की स्वीकार्यता पर स्पष्ट या निहित रोक से बचने के लिए 'चतुराईपूर्ण मसौदा' का एक टुकड़ा हैं, इस देश में न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर द्वारा टी. अरिवंदनम बनाम टी.वी. सत्यपाल और अन्य²⁹ में इस शब्द के प्रयोग के साथ प्रचलन में आया, जो तुच्छ कार्यों के मुकदमों को हतोत्साहित करने से संबंधित है। टी. अरिवंदनम (उपरोक्त) में, माननीय न्यायाधीश महोदय ने टिप्पणी की:

"5. हमें याचिकाकर्ता की निंदा करने में जरा भी संकोच नहीं है, क्योंकि उसने बार-बार और बिना किसी पश्चाताप के न्यायालय की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग किया है। उच्च न्यायालय के निर्णय में पाए गए तथ्यों के विवरण से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि प्रथम मुंसिफ न्यायालय, बेंगलोर के समक्ष लंबित मुकदमा, वाद प्राप्त करने में कानून की दया का घोर दुरुपयोग है। विद्वान मुंसिफ को यह याद रखना चाहिए कि यदि वाद को अर्थपूर्ण ढंग से - औपचारिक रूप से नहीं - पढ़ने पर यह स्पष्ट रूप से

कष्टप्रद और निराधार लगता है, इस अर्थ में कि मुकदमा करने का स्पष्ट अधिकार प्रकट नहीं किया गया है, तो उसे आदेश 7, नियम 11 सि.प्र.सं. के तहत अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहिए, यह ध्यान रखते हुए कि उसमें उल्लिखित आधार पूरा हो। और, यदि चतुराई से तैयार किए गए मसौदे ने वाद हेतुक का भ्रम पैदा किया है, तो आदेश 10, सि.प्र.सं. के तहत पक्ष की गहन जांच करके पहली सुनवाई में ही इसे जड़ से खत्म कर दें। एक सक्रिय न्यायाधीश गैर-जिम्मेदार कानूनी मुकदमों का जवाब है। विचारण न्यायालय अनिवार्य रूप से पहली सुनवाई में ही पक्ष की जांच करने पर जोर देंगे ताकि फर्जी मुकदमेबाजी को शुरुआती चरण में ही खत्म किया जा सके। दंड संहिता भी ऐसे लोगों से निपटने के लिए पर्याप्त संसाधन संपन्न है (Cr. XI) और उनके खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए। इस मामले में, विद्वान न्यायाधीश ने अपनी कीमत पर महसूस किया कि जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने महात्मा गांधी की हत्या पर क्या टिप्पणी की थी:

"बहुत अच्छा होना खतरनाक है।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

108. आश्चर्य की बात नहीं है कि श्री नकवी ने अपने इस तर्क के समर्थन में उक्त निर्णय का सहारा लिया कि यहां दायर किया गया वाद एक चतुराईपूर्ण मसौदा तैयार करने का एक नमूना है। लेकिन इस न्यायालय को लगता है कि यहां मुकदमे को जन्म देने वाला वाद चतुराईपूर्ण मसौदा तैयार करने का नमूना नहीं

है। इस बिंदु को पहले ही बहुत विस्तार से स्पष्ट किया जा चुका है और इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में जो कुछ भी कहा गया है, उसके लिए केवल यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कोई चतुराईपूर्ण मसौदा तैयार नहीं किया गया है, क्योंकि वादी जो लागू करना चाहते हैं वह पूजा का एक विद्यमान अधिकार है जिसका वे 15 अगस्त, 1947 के बाद से प्रयोग कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि वादी किसी भी तरह से वाद संपत्ति में कोई बदलाव लाना चाहते हैं या इसके चरित्र को बदलना चाहते हैं, चाहे वह किसी भी तरह से मौजूद हो।

109. विद्वान जिला न्यायाधीश ने, कमीबेश उन्हीं कारणों से, यह माना है कि यह वाद, वर्ष 1991 के अधिनियम द्वारा वर्जित नहीं है और यह न्यायालय, जो कुछ कहा गया है, उस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाता है।

परिसीमा: आश्चर्यजनक दलील

110. यद्यपि मुकदमे के सीमा-अवधि द्वारा वर्जित होने का मुद्दा जिला न्यायाधीश के समक्ष उठाया गया या उनके द्वारा तय किया गया, लेकिन श्री नकवी ने इस न्यायालय के समक्ष अपने प्रस्तुतीकरण के प्रत्युत्तर में इसे उठाया। संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत आवेदन में सीमा-अवधि की दलील नहीं मिलती है, न ही इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण ज्ञापन में इस आशय का कोई आधार उठाया गया है। अपने मामले की शुरुआत में भी श्री नकवी ने उस बिंदु पर बहस नहीं की। लेकिन, प्रत्युत्तर के अंत में उन्होंने

कहा कि वादी का अधिकार सीमा-अवधि द्वारा वर्जित है, क्योंकि वे वाद-हेतुक के पहली बार उत्पन्न होने के 28 वर्ष बाद उद्घोषणा की मांग कर रहे हैं। उन्होंने परिसीमा अधिनियम, 1963⁴⁴³⁰ की अनुसूची के भाग III में आने वाले अनुच्छेद 58 के प्रावधानों का हवाला देते हुए कहा कि वर्ष 1990 या 1993 के बाद हिंदुओं द्वारा तीन वर्षों के भीतर इस अधिकार को लागू किया जाना चाहिए था। अब, संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत एक प्रस्ताव में परिसीमा की दलील उठाना सबसे अपवादजनक तरीका था, जबकि इसे पहले कभी नहीं उठाया गया था। फिर भी, इस न्यायालय ने इस तर्क के समर्थन में श्री नकवी और उत्तर में श्री जैन को सुना।

111. श्री जैन ने कहा कि यह मुकदमा परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित नहीं होगा, क्योंकि पूजा करने का अधिकार, जिसका दावा वादी करते हैं, एक निरंतर या आवर्ती वादहेतुक को जन्म देता है, जिस पर श्री नकवी ने यह कहते हुए जवाब दिया है कि अधिनियम वर्ष 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 58 में तीसरे कॉलम में उस समय अवधि का उल्लेख है, जिससे परिसीमा अवधि चलेगी, जब मुकदमा करने का अधिकार पहली बार प्राप्त होता है। इसलिए, उन्होंने कहा कि यह अधिकार पहली बार हिंदुओं को वर्ष 1990 या 1993 में प्राप्त हुआ था। उनके अनुसार, यह स्थिति वादपत्र को पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाती है, इसलिए यह मुकदमा, जो उद्घोषणा के लिए है, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित माना जाना चाहिए।

112. इस न्यायालय की समझ से, परिसीमा के आधार पर उठाई गई आपत्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके एक से अधिक कारण हैं। सबसे पहले, यह मान लेना गलत आधार है कि वादी जो लागू करना चाहते हैं, वह हिंदुओं का धार्मिक सामुदायिक अधिकार है। पहले यह टिप्पणी की जा चुकी है कि यह मुकदमा कोई सामूहिक कार्रवाई नहीं है। वादी जो लागू करना चाहते हैं, वह देवताओं की पूजा करने का उनका व्यक्तिगत अधिकार है। पुनरीक्षण याची का यह कहना नहीं है कि उसी अधिकार के लिए कोई सामूहिक कार्रवाई पहले हिंदुओं की ओर से संहिता के आदेश। नियम 8 के तहत लाई गई थी और किसी तरह की असफल समाप्ति पर पहुंची थी, ताकि इन वादियों को किसी भी तरह से बाध्य किया जा सके। किसी विशेष धार्मिक समुदाय या संप्रदाय के सदस्य के लिए पूजा करने का अधिकार उसका व्यक्तिगत अधिकार है। यह एक नागरिक अधिकार और एक मौलिक अधिकार दोनों है। यदि समुदाय की ओर से पहले की गई सामूहिक कार्रवाई के अंतर्गत कवर नहीं किया गया है, तो ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है जिसके द्वारा किसी वर्ग या समुदाय की निष्क्रियता उस वर्ग या समुदाय के किसी व्यक्तिगत सदस्य के विरुद्ध अधिनियम, 1963 की धारा 9 के अंतर्गत निरंतर परिसीमा लागू करेगी, यदि वह उस वर्ग या समुदाय के सदस्य के रूप में, अपनी व्यक्तिगत क्षमता में उस अधिकार को रखता है।

113. इस न्यायालय की समझ से, किसी वर्ग या समुदाय के एक या एक से अधिक सदस्यों की ओर से निष्क्रियता, जिनके पास इसे लागू

करने का एक ही लेकिन व्यक्तिगत अधिकार है, उस वर्ग के किसी व्यक्तिगत सदस्य द्वारा किसी आकस्मिक कारण से की गई कार्रवाई को परिसीमा द्वारा नहीं रोकेगी। इसलिए, इस न्यायालय की राय में, यदि वर्ष 1990 या 1993 में, हिंदू समुदाय के अन्य सदस्य, जिनके पास देवताओं की पूजा करने का समान अधिकार है, ने पूरे वर्ष पूजा करने के अधिकार को बहाल करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है और पूरे वर्ष में एक दिन पूजा करने से संतुष्ट हैं, अर्थात् चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन, तो यह न्यायालय यह देखने में विफल है कि वादी, जो पूजा करने के दैनिक अधिकार को लागू करना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें कैलेंडर वर्ष 2021 के चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन के बाद के दिन रोका गया था, वे परिसीमा के प्रतिबंध का सामना कैसे करेंगे। इस मुद्दे पर कोई सिद्धांत या प्राधिकार इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया है, जो इस न्यायालय के दृष्टिकोण को अस्वीकार या पुष्ट कर सके।

114. यह सिद्धांत कि पूजा करने का अधिकार एक वर्ग या समूह के सदस्यों द्वारा प्राप्त एक व्यक्तिगत अधिकार है, क्योंकि वे ऐसे सदस्य हैं जिन्हें व्यक्तिगत कार्रवाई के माध्यम से और सामूहिक कार्रवाई करने की आवश्यकता के बिना लागू किया जा सकता है, बहुत पहले से तय हो चुका है। इस मुद्दे पर सबसे पहले निर्णयों में से एक **जवाहरा और अन्य बनाम अकबर हुसैन, ILR³¹** में हमारे न्यायालय का पूर्ण पीठ का निर्णय है। **जवाहरा**

(उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के माननीय न्यायाधीश महोदय के समक्ष जो मुद्दा विचारणीय था, वह यह था कि क्या किसी मुसलमान को मस्जिद में पूजा करने का व्यक्तिगत अधिकार है, जो समुदाय के सभी या अन्य सदस्यों के साथ साझा रूप से प्राप्त अधिकार से अलग है और क्या उस अधिकार को प्राप्त करने के लिए उचित अनुतोष प्राप्त करने के उद्देश्य से मस्जिद में पूजा करने के अधिकार से संबंधित कार्रवाई को बनाए रखने के लिए व्यक्तिगत अधिकार भी है। जैसा कि पूर्वोक्त प्रश्न, उस समय लागू सिविल प्रक्रिया संहिता, 1877³² के संदर्भ में उठा था। संहिता, 1877 में धारा 30 थी, जो सामूहिक कार्रवाई के बारे में थी। इसने एक पक्ष को कई अन्य लोगों की ओर से मुकदमा चलाने या बचाव करने का अधिकार दिया, यदि उन सभी का मुकदमा चलाने या बचाव करने में समान हित हो। यह प्रावधान संहिता के आदेश 1 नियम 8 के समरूप है। इसी तरह, यह प्रश्न संहिता, 1877 की धारा 539 के कानूनी पूर्वाभास में भी उठा, जो संहिता की धारा 92 के समकालीन प्रावधानों के समरूप है। इसलिए, माननीय न्यायाधीश महोदय के समक्ष विचारणीय यह था कि क्या पूजा करने का अधिकार, आखिरकार, एक व्यक्तिगत अधिकार था, जिसे व्यक्तिगत रूप से लागू किया जा सकता था या जिसे केवल सामूहिक कार्रवाई के माध्यम से लागू किया जा सकता था; और, एक संयुक्त अधिकार है। **जवाहरा** मामले में, मुख्य न्यायाधीश पेथेरम ने धारित किया:

46 संक्षेप में, संहिता, 1877

“अब, मुसलमान इस देश की आबादी का सिर्फ एक हिस्सा हैं, इसलिए यह अधिकार आम जनता में निहित नहीं है, और इसलिए यह एक निजी तरीके से अधिकार जैसा है। ऐसा अधिकार रखने वाला हर व्यक्ति बिना किसी बाधा के इसका इस्तेमाल करने का हकदार है, और इसके इस्तेमाल में बाधा डालने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार रखता है। यह एक संयुक्त अधिकार नहीं है; यह एक ऐसा अधिकार है जो कई लोगों का है। धारा 30 को ऐसे मामले पर लागू होना था जिसमें कई लोग संयुक्त रूप से अनुतोष पाने के लिए इच्छुक हों; और जहाँ पुराने कानून के तहत ऐसे सभी लोगों का शामिल होना जरूरी होता, धारा 30 रिकॉर्ड को कई नामों से अनावश्यक रूप से बोझिल होने से रोकता है, और न्यायालय की अनुमति से एक या अधिक लोगों को सभी की ओर से मुकदमा चलाने या बचाव करने की अनुमति देता है। यह नियम अमीर लोगों को एक साथ आने और मुकदमा चलाने के लिए किसी गरीब को आगे लाने से रोकने के लिए पेश किया गया था, और इस तरह सभी लागतों से बचने के लिए। वर्तमान मामले में यह स्पष्ट है कि एक व्यक्तिगत अधिकार का उल्लंघन किया गया है, और इसलिए कार्रवाई की जाएगी।”

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

115. **जवाहरा** मामले में, अपनी सहमति व्यक्त करते हुए, न्यायमूर्ति महमूद ने कहा : “एक मुसलमान का मस्जिद का उपयोग करने का अधिकार, जैसा कि मुख्य न्यायाधीश ने

कहा है, एक निजी सड़क का उपयोग करने के अधिकार की तरह है; कोई भी व्यक्ति जिसके पास यह अधिकार है, वह इसके संबंध में मुकदमा दायर कर सकता है। इससे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 30 के बारे में प्रश्न हल हो जाता है। यह धारा केवल उन मामलों पर लागू होती है, जहाँ किसी व्यक्तिगत अधिकार में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है; लेकिन यहाँ हमारे पास एक छोटे से गाँव में एक मस्जिद का मामला है, और उस मस्जिद में नमाज पढ़ने वाले एक व्यक्ति को भक्ति के उद्देश्य से इसका उपयोग करने से रोका जाता है। उसका एक निजी अधिकार था, और उसका उल्लंघन किया गया।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

116. जवाहरा मामले में जो सिद्धांत निर्धारित किया गया है, वह किसी भी धर्म के व्यक्तिगत उपासक पर लागू होगा, जहाँ पूजा करने का अधिकार और उस अधिकार का प्रवर्तन दोनों को भक्त या उपासक के लिए व्यक्तिगत माना जाना चाहिए। यह संयुक्त अधिकार की तरह नहीं है, जो अकेले दूसरों के साथ मौजूद हो, संयुक्त रूप से जीवित हो और इसका कोई व्यक्तिगत अस्तित्व न हो।

117. एक अधिकार के व्यक्तिगत अधिकार होने से होने वाले परिणाम, हालांकि दूसरों के साथ साझा रूप से प्राप्त होने के कारण संयुक्त अधिकार से अलग, **जवाहरा** वाले निर्णय के आधार पर पर कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने **बैजू लाल परबतिया और अन्य बनाम बुलाक लाल**

पथुक⁴⁷³³ में स्वीकार किया था। यह अधिकार पूजा के अधिकार के बारे में नहीं है, बल्कि यह दूसरों के साथ साझा किए जाने वाले व्यक्तिगत अधिकार और व्यक्तिगत रूप से न रखे जाने वाले संयुक्त अधिकार के बीच अंतर को स्वीकार करता है। बाद में, **राम चंद्र और अन्य बनाम अली मुहम्मद और अन्य**⁴⁸³⁴ में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **जवाहरा** मामले के अनुसार निर्णय दिया और धारित किया:

"लेकिन हमें लगता है कि निर्णयों के आधार पर हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि वादी मुकदमा चलाने के हकदार हैं। **जवाहरा बनाम अकबर हुसैन** के मामले में, पाँच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ ने माना था कि प्रत्येक मुसलमान जिसे भक्ति के उद्देश्यों के लिए मस्जिद का उपयोग करने का अधिकार है, वह बिना किसी बाधा के ऐसे अधिकार का प्रयोग करने का हकदार है और नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1882 की धारा 30 और 539 के प्रावधानों के बावजूद, इसके प्रयोग में हस्तक्षेप करने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए सक्षम है। वर्तमान मामले में प्रतिवादियों ने वादी के अधिकारों में हस्तक्षेप किया और उसे मस्जिद से बाहर निकालने का प्रयास किया। हम पूर्ण पीठ के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य हैं, जिसका अन्य मामलों में पालन किया गया है और इसलिए, हमें यह मानना चाहिए कि वादी इस मुकदमे को चलाने के हकदार हैं।"

47 ILR (1897) 24 Cal 385

48 ILR (1913) 35 All 197

118. अधिकांश निर्णय मुस्लिम उपासकों के मस्जिदों में प्रार्थना करने के अधिकार और व्यक्तिगत अधिकारों के रूप में इससे जुड़े मामलों के संबंध में दिए गए थे, इस मुद्दे के संदर्भ में कि क्या उक्त अधिकार एक संयुक्त अधिकार था जिसे व्यक्तिगत मुकदमे पर लागू नहीं किया जा सकता था, बल्कि एक सामूहिक कार्रवाई द्वारा लागू किया जा सकता था। इसे लगातार एक संयुक्त अधिकार नहीं, बल्कि एक साझा अधिकार माना जाता था, जो व्यक्तिगत रूप से धारित किया जाता था, जिसे व्यक्तिगत कार्रवाई के माध्यम से लागू किया जा सकता था। अब समकालीन समय में, जहाँ पूजा करने का अधिकार न केवल एक सिविल अधिकार है, बल्कि एक मौलिक अधिकार भी है, एक व्यक्तिगत अधिकार के रूप में इसके चरित्र पर शायद ही संदेह किया जा सकता है; और न ही इस पर संदेह किया गया है। शायद यही कारण है कि इस बिंदु पर मार्गदर्शन देने के लिए बहुत अधिक आधुनिक निर्णय नहीं हैं कि क्या पूजा करने का अधिकार एक व्यक्तिगत अधिकार है। यह निश्चित रूप से है। और, यह वर्तमान वादी के लिए भी एक व्यक्तिगत अधिकार है, जो हिंदू हैं और देवताओं के भक्त हैं, जिनके वाद संपत्ति में होने का दावा किया गया है।

119. यदि वादी व्यक्तिगत रूप से जिस अधिकार का आनंद लेते हैं, मान लीजिए कि उन्हें कैलेंडर वर्ष 2021 के चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन से वंचित कर दिया गया, तो यह देखना मुश्किल है कि उनके अधिकार को अन्य हिंदू भक्तों के साथ साझा रूप से प्राप्त अधिकार के रूप में आरोपित करके, वादी

के हेतुक को अतीत में दूसरों की निष्क्रियता से कैसे रोका जा सकता है। वादी के लिए वाद हेतुक वास्तव में वर्ष 2021 के चैत्र में वासंतिक नवरात्र के चौथे दिन यानी 17.04.2021 को उत्पन्न हुआ।

120. मामले का दूसरा पहलू, जिसके कारण यह न्यायालय यह सोचता है कि सीमा-परिसीमा का प्रतिबंध बिल्कुल भी लागू नहीं होगा, वह यह है कि पक्षों के बीच यह आम बात है कि वर्ष 1990 या वर्ष 1993 से पहले, वाद संपत्ति में माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान और अन्य देवताओं की पूजा, दर्शन एक दैनिक मामला था। इस न्यायालय की राय में, उस अधिकार को एक दिन तक सीमित करना, अधिनियम, 1963 की धारा 22 के अर्थ में एक सतत अपकृत्य है। देवताओं की पूजा करने का अधिकार या संपत्ति के अधिकार के बराबर नहीं है, जहाँ से एक बार बेदखल होने के बाद, व्यक्ति को पूर्ण व सतत अपकृत्य झेलना पड़ता है। मूर्ति, यानी देवता की पूजा करने के अधिकार से इनकार करना एक सतत अपकृत्य है, जो हर दिन होता है और हर मिनट इसे अस्वीकार किया जाता है। यहाँ, महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य सरकार और जिला प्रशासन ने प्रशासनिक आवश्यकताओं के कारण वर्ष 1990 या 1993 में सामान्य रूप से हिंदू भक्तों के लिए पूजा करने के अधिकार को एक दिन तक सीमित कर दिया था, लेकिन वाद संपत्ति में पूजा की मूर्ति के अस्तित्व से इनकार नहीं किया है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, पुनरीक्षण याची इस बात से भी इनकार नहीं करते हैं कि पहले हिंदू भक्त दैनिक आधार पर

पूजा करते थे और अब किसी तरह की प्रशासनिक व्यवस्था के तहत वर्ष 1993 के बाद उन्हें एक दिन तक सीमित कर दिया गया है। इसलिए, बिना किसी संदेह के किसी भी भक्त के लिए यह कहने का आधार है, जिसमें वादी भी शामिल हैं कि देवताओं की पूजा करने के अधिकार से वंचित करना एक सतत अपकृत्य है जो हर दिन होता है। हिंदू भक्तों में से कोई भी व्यक्ति, जिसे किसी भी दिन अधिकार से वंचित किया जाता है, वह उस दिन कार्रवाई शुरू करने के अपने अधिकार से संपन्न होगा, जिस दिन उसे देवताओं की पूजा करने से रोका जाता है।

121. वर्ष 1963 के अधिनियम की धारा 22 के अर्थ में क्या सतत अपकृत्य माना जाएगा और क्या क्षति के लम्बे समय तक बने रहने वाले प्रभाव के साथ एक समाप्त और खत्म अपकृत्य माना जाएगा, इसके बीच का अंतर **एम. सिद्दीक** (उपरोक्त) में संविधान पीठ के विचारार्थ आया। **एम. सिद्दीक** में सतत अपकृत्य क्या है और क्या नहीं, इस प्रकार स्पष्ट किया गया था:

“342. बालकृष्ण सावलराम [बालकृष्ण सावलराम पुजारी वाघमारे बनाम श्री ध्यानेश्वर महाराज संस्थान, 1959 सप (2) एससीआर 476: एआईआर 1959 एससी 798] में जैसा इस न्यायालय द्वारा धारित किया गया एक सतत अपकृत्य ऐसा कार्य है जो क्षति का एक सतत स्रोत होता है। यह कार्य करने वाले को क्षति की निरंतरता के लिए उत्तरदायी बनाता है। हालाँकि, जहाँ एक अपकृत्य

एक निष्कासन के बराबर है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, परिणामी क्षति निष्कासन की तिथि पर ही पूरी हो जाती है। एक अपकृत्य या चूक जिसके परिणामस्वरूप क्षति पूरी हो जाती है, एक सतत अपकृत्य या चूक नहीं है, भले ही इसका प्रभाव इसके पूरा होने के बावजूद महसूस किया जाता रहे।

343. निर्मोही अखाड़े की दलील परिसीमा की दलील के बचाव के रूप में सतत अपकृत्य के सिद्धांत पर आधारित है। दलील का मूल्यांकन करते समय, कानूनी क्षति के स्रोत और क्षति के प्रभाव के बीच अंतर किया जाना चाहिए। कानूनी क्षति का स्रोत किसी दायित्व के उल्लंघन पर आधारित होता है। सतत अपकृत्य तब होता है जब कानून, समझौते या अन्यथा द्वारा किसी विशेष तरीके से कार्य करना जारी रखने या कार्य करने से विरत रहने का दायित्व लगाया जाता है। ऐसे दायित्व का उल्लंघन एक पूर्ण किए गए एकल कार्य या चूक से परे होता है। उल्लंघन निरंतर प्रकृति का होता है, जो एक कानूनी क्षति को जन्म देता है जो सतत अपकृत्य की प्रकृति को ग्रहण करता है। सतत अपकृत्य उत्पन्न होने के लिए, सबसे पहले एक ऐसा अपकृत्य होना चाहिए जो कार्रवाई योग्य हो क्योंकि अपकृत्य के अभाव में कोई सतत अपकृत्य नहीं हो सकता। जब कोई अपकृत्य होता है तो इस बात की जांच की एक और रेखा उत्पन्न होती है कि क्या कोई सतत अपकृत्य है। बिना किसी अपकृत्य के सतत अपकृत्य नहीं हो सकता। गलत कार्य किसी

व्यक्ति पर लगाए गए दायित्व का उल्लंघन है, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक, किसी विशेष तरीके से कार्य करने या कार्य करने से विरत रहने के लिए। एक व्यक्ति पर दायित्व दूसरे व्यक्ति में निहित अधिकार का एक संगत प्रतिबिंब पाता है। एक सतत अपकृत्य कार्य एक निरंतर कर्तव्य के उल्लंघन या एक दायित्व के उल्लंघन को दर्शाता है जो एक निरंतर प्रकृति का है। यह वास्तव में वह आधार था जिस पर माया रानी पुंज [माया रानी पुंज बनाम सीआईटी, (1986) 1 एससीसी 445: 1986 एससीसी (कर) 220] मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने एक निर्णय [जी.डी. भट्टार बनाम राज्य, 1957 एससीसी ऑनलाइन कैल 200: एआईआर 1957 कैल 483: (1956-57) 61 सीडब्ल्यूएन 660: 1957 क्रि. एलजे 834] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के कथन को निम्नलिखित शब्दों में अनुमोदित किया: (माया रानी पुंज मामला [माया रानी पुंज बनाम सीआईटी, (1986) 1 एससीसी 445: 1986 एससीसी (क्रि.) 220], एससीसी पृष्ठ 458, पैरा 20)

“20. ... जी.डी. भट्टार बनाम राज्य [जी.डी. भट्टार बनाम राज्य, 1957 एससीसी ऑनलाइन कल. 200: एआईआर 1957 कैल 483: (1956-57) 61 सीडब्ल्यूएन 660: 1957 क्रि एलजे 834] में यह बताया गया था कि एक निरंतर अपराध या एक सतत अपकृत्य आखिरकार उस कर्तव्य का निरंतर उल्लंघन है जो स्वयं जारी है। यदि कोई कर्तव्य दिन-प्रतिदिन जारी रहता है, तो

उस कर्तव्य का दिन-प्रतिदिन अनुपालन न होना एक सतत अपकृत्य है।”

इसलिए, यह मूल्यांकन करते समय कि क्या धारा 23 के अर्थ में कोई सतत अपकृत्य है, केवल यह तथ्य कि क्षति का प्रभाव जारी रहा है, इसे सतत अपकृत्य के रूप में स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उदाहरण के लिए, जब कार्रवाई या चूक के परिणामस्वरूप अपकृत्य पूर्ण हो जाता है, तो कोई सतत अपकृत्य नहीं होता है, भले ही जो प्रभाव या क्षति हुई है वह भविष्य में हो सकती है। जो चीज किसी अपकृत्य को निरंतर प्रकृति का अपकृत्य बनाती है, वह है किसी कर्तव्य का उल्लंघन जो समाप्त नहीं हुआ है बल्कि जो जारी है। ऐसे कर्तव्य का उल्लंघन सतत अपकृत्य बनाता है और इसलिए परिसीमा की दलील के लिए बचाव है।

122. उपरोक्त सिद्धांत किस प्रकार लागू होगा, इसे **एम. सिद्दीक** मामले में माननीय न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णय से सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है, जिसमें उन्होंने निर्मोही अखाड़े के बचाव में समय-सीमा की दलील को खारिज करते हुए अपकृत्य को जारी रखने के सिद्धांत को निम्नलिखित शब्दों में उद्धृत किया है:

“344. वर्तमान मामले में निर्मोही अखाड़े की इस दलील को स्वीकार करने में कई कठिनाइयाँ हैं कि सतत अपकृत्य हो रहा था। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश का उद्देश्य और लक्ष्य, जैसा कि मजिस्ट्रेट

ने आदेश की तिथि पर पाया है, कब्जा सुरक्षित करके शांति भंग होने से रोकना है। मजिस्ट्रेट अधिकारों पर निर्णय नहीं लेता है और न ही कार्यवाही स्वत्व के प्रश्न पर निर्णय में परिणत होती है। मजिस्ट्रेट का आदेश सिविल न्यायालय के आदेश या डिक्री के अधीन है। इसलिए, यह मान लेना कि मजिस्ट्रेट के आदेश से अपकृत्य होगा और परिणामस्वरूप अपकृत्य जारी रहेगा, स्वाभाविक रूप से गलत है। दूसरे, क्या 22-12-1949 और 23-12-1949 के बीच की रात को मूर्तियों की गुप्त स्थापना निर्मोही अखाड़े के पक्ष में कोई अधिकार बनाती है? निर्मोही अखाड़ा इस घटना से पूरी तरह इनकार करता है। निर्मोही अखाड़े को जिस अधिकार का दावा करना है, वह इस आधार पर स्थापित नहीं हो सकता और यदि कोई अधिकार नहीं है, तो कोई संगत अपकृत्य भी नहीं हो सकता जो सतत अपकृत्य का आधार प्रस्तुत कर सके। निर्मोही अखाड़े में कोई ऐसा अधिकार नहीं था जिसे मजिस्ट्रेट के आदेश से बाधित किया गया हो। निर्मोही अखाड़े का दावा एक सेवायत की हैसियत से आंतरिक प्रांगण के प्रबंधन और प्रभार को सुरक्षित करने के लिए था। निर्मोही अखाड़े ने स्वयं दलील दी है कि मुकदमे के लिए वाद हेतुक 5-1-1950 को उत्पन्न हुआ था। इस दावे के आधार पर आगे बढ़ते हुए, यह स्पष्ट है कि अखाड़े ने सेवायत के रूप में अपनी भूमिका से जो निष्कासन का दावा किया है, वह हो चुका है और इसलिए, सतत अपकृत्य के सिद्धांत का कोई सवाल ही नहीं था।

123. यह ध्यान देने योग्य है कि **एम. सिद्दीक** मामले में निर्मोही अखाड़े द्वारा दावा किया गया अधिकार सेवायत का था, जो मंदिर के प्रबंधन का अधिकार या पद का अधिकार है। निस्संदेह निर्मोही अखाड़े को उस पद से बेदखल कर दिया गया था, जो निष्कासन के समय एक गलत निष्कर्ष था। इसलिए, अपकृत्य जारी रखने की दलील को माननीय न्यायाधीश महोदय ने खारिज कर दिया।

124. **बालकृष्ण सावलराम पुजारी वाघमारे और अन्य बनाम श्री ध्यानेश्वर महाराज संस्थान और अन्य**⁴⁹³⁵ के मामले में दिए गए निर्णय को संविधान पीठ ने **एम. सिद्दीक** के मामले में अनुमोदित किया। बालकृष्ण सावलराम पुजारी वाघमारे (उपरोक्त) मामले में, **हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह**⁵⁰³⁶ के मामले में दिए गए सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियां विशेष रूप से प्रासंगिक हैं, जो पूजा के अधिकार के संदर्भ में सतत अपकृत्य क्या है, इस बारे में प्रिवी काउंसिल का निर्णय है:

“33. इसी तरह, हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह, 60 इंड ऐप 313: (एआईआर 1933 पीसी 193) में, प्रिवी काउंसिल एक ऐसे मामले पर विचार कर रही थी, जिसमें प्रतिवादियों का कृत्य स्पष्ट रूप से एक सतत अपकृत्य था और इससे वादी को धारा 23 का लाभ प्राप्त करने में

49 AIR 1959 SC 798

50 AIR 1933 PC 193

मदद मिली। उस मामले में प्रासंगिक विवाद इसलिए उत्पन्न हुआ क्योंकि श्वेताम्बरियों द्वारा कुछ तीर्थस्थलों में चरणों के चरित्र में परिवर्तन किए गए थे और दिगंबरियों ने वाद की थी कि उक्त परिवर्तन उनके अधिकारों में हस्तक्षेप के समान थे। भारत में न्यायालयों ने पाया था कि पुराने तीर्थस्थलों में चरण संतों के पदचिह्नों के निशान थे, जिनमें से प्रत्येक पर कमल का चिह्न था। "श्वेतांबरी जो स्वयं पैरों की पूजा करना पसंद करते थे, उन्होंने चरणों का एक और रूप विकसित किया है, जिसका मॉडल या तस्वीरों के अभाव में सटीक रूप से वर्णन करना बहुत आसान नहीं है, जिसमें पैर के नाखून दिखाए गए हैं और इसे पैर के हिस्से का प्रतिनिधित्व माना जाना चाहिए। दिगंबरियों ने इसे मानव शरीर के एक अलग हिस्से का प्रतिनिधित्व मानते हुए पूजा करने से इनकार कर दिया।" न्यायालयों ने यह भी माना था कि तीन मंदिरों में उक्त विवरण के चरणों को रखने में श्वेतांबरीयों की कार्रवाई एक अपकृत्य थी, जिसके लिए दिगंबरी वाद करने के हकदार थे। प्रिवी काउंसिल को जिस प्रश्न पर विचार करना था, वह यह था कि क्या तीन मंदिरों में उक्त चरणों को रखने में श्वेतांबरीयों की कार्रवाई एक सतत अपकृत्य था या नहीं; और वादी के पक्ष में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रिवी काउंसिल ने महारानी राजरूप कोयर (उपरोक्त) के मामले में अपने पहले के निर्णय का हवाला दिया और माना कि विचाराधीन कार्रवाई एक सतत अपकृत्य

था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विवादित कार्रवाई वादी को बेदखल करने या पूरी तरह से बेदखल करने के बराबर नहीं थी। यह एक ऐसी कार्रवाई थी जो सतत अपकृत्य होने की प्रकृति की थी और इस तरह इसने वाद हेतुक को जन्म दिया। हमारी राय में, इन दोनों में से कोई भी निर्णय अपीलकर्ताओं की कोई सहायता नहीं कर सकता है।

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

125. बहुत उच्च प्राधिकारी द्वारा प्रतिपादित कानून की उपरोक्त स्थिति को देखते हुए कि सतत अपकृत्य क्या है, और विशेष रूप से, पूजा के अधिकार के संदर्भ में, इस मामले में यह अनुमान लगाने में कोई कठिनाई नहीं है कि देवी-देवताओं माँ श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान के हिंदू उपासक, जिनमें वादी भी शामिल हैं, देवताओं की पूजा करने के अपने व्यक्तिगत अधिकार में सतत अपकृत्य के शिकार हैं। इसलिए, इस दलील में कोई दम नहीं है कि वाद में बताए गए वाद हेतुक पर मुकदमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 58 के आधार पर स्पष्ट रूप से परिसीमा द्वारा वर्जित है।

अधिनियम, 1983

126. जहां तक पुनरीक्षण याची का कहना है कि अधिनियम, 1983 की धारा 4(9) मुकदमे पर रोक लगाती है, यह न्यायालय यह नहीं देख पा रहा है कि उक्त प्रावधान या कानून को समग्र रूप से पढ़ने पर वर्तमान मुकदमे पर रोक कैसे लगेगी, जो कि वादी के पूजा करने

के अधिकार को लागू करने के लिए है। अधिनियम, 1983 की धारा 4(9) में लिखा है: “4. **परिभाषाएं**:- इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-

(9) “मंदिर” का तात्पर्य आदि विश्वेश्वर के मंदिर से है, जिसे श्री काशी विश्वनाथ मंदिर के नाम से जाना जाता है, जो वाराणसी शहर में स्थित है, जिसका उपयोग सार्वजनिक धार्मिक पूजा के स्थान के रूप में किया जाता है, और जो ज्योतिर्लिंग के सार्वजनिक धार्मिक पूजा के स्थान के रूप में हिंदुओं के लाभ के लिए या उनके द्वारा अधिकार के रूप में उपयोग किया जाता है और इसके अंतर्गत सभी अधीनस्थ मंदिर, तीर्थस्थल, उप-मंदिर और अन्य सभी छवियों और देवताओं के स्थान, मंडप, कुएं, तालाब और अन्य आवश्यक संरचनाएं और उनसे अनुलग्न भूमि और नियत तिथि के बाद उसमें किया जा सकने वाला परिवर्धन शामिल है;”

127. पुनरीक्षण याची की ओर से यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम, 1983 के अधिनियमन का उद्देश्य श्री काशी विश्वनाथ मंदिर, वाराणसी के समुचित और बेहतर प्रशासन की व्यवस्था करना है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। यह भी तर्क दिया गया है कि उपरोक्त अधिनियम किसी ऐसी संपत्ति के दुरुपयोग के लिए नहीं बनाया गया है, जो श्री काशी विश्वनाथ मंदिर की नहीं है। यह तर्क कि श्री काशी विश्वनाथ के न्यासी बोर्ड को उस निर्णय की जानकारी थी, जिसके कारण उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने पुलिस नियंत्रण कक्ष की स्थापना के लिए राज्य के

साथ कुछ भूमि का आदान-प्रदान किया, यह दर्शाता है कि मंदिर के न्यासी वाद संपत्ति को वक्फ संपत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं, यहाँ बिल्कुल अप्रासंगिक है। न तो अधिनियम, 1983 की धारा 4(9) और न ही वक्फ बोर्ड और उत्तर प्रदेश राज्य के बीच भूमि के आदान-प्रदान से संबंधित लेन-देन का वर्तमान वाद से कोई संबंध है, जो वादी के वाद संपत्ति में स्थित देवताओं की पूजा करने के अधिकार के बारे में है। वादीगण न तो वाद संपत्ति पर मालिकाना हक का दावा करते हैं और न ही उस पर कब्जे का। वे श्री काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड नहीं हैं, जो पुनरीक्षण याची के साथ किसी तरह के सीमा विवाद या वक्फ बोर्ड के साथ किसी तरह के स्वत्व विवाद में उलझे हुए हैं। वास्तव में, यह न्यायालय यह देखने में पूरी तरह विफल रहा है कि अधिनियम वर्ष 1983 का वादीगण के वाद संपत्ति में स्थित देवताओं की पूजा करने के अधिकार पर कोई असर कैसे पड़ेगा।

अधिनियम, 1995

128. अधिनियम, 1995 पर आधारित मुकदमे की सुनवाई पर रोक लगाने के लिए पुनरीक्षण याची के कथन का सार उक्त कानून की धारा 85 के संदर्भ में है। अधिनियम, 1995 की धारा 85 में सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाने की परिकल्पना की गई है, जिसे निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:

“85. **सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र का वर्जन**- किसी वक्फ, वक्फ संपत्ति या अन्य मामले से संबंधित किसी विवाद, प्रश्न

या अन्य मामले के संबंध में किसी भी सिविल न्यायालय, राजस्व न्यायालय और किसी अन्य प्राधिकरण में कोई वाद या अन्य कानूनी कार्यवाही नहीं होगी, जिसे इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाना आवश्यक है।”

129. मामले का सार यह है कि यद्यपि किसी भी वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित किसी भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के संबंध में सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र, या उस मामले के लिए, राजस्व न्यायालय और किसी अन्य प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र पर वर्जन में कोई संदेह नहीं हो सकता है, कानून की शब्दावली में, पूरे खंड को नियंत्रित करने वाला खंड यह वाक्यांश है, 'जिसका इस अधिनियम द्वारा या इसके तहत न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारण किया जाना आवश्यक है'। यद्यपि धारा के पहले भाग में, वक्फ संपत्ति से संबंधित लगभग हर चीज को निष्कासन के नियम के दायरे में लाया गया है, फिर भी निर्णायक कारक यह है कि यह अधिनियम वर्ष 1995 के तहत या इसके तहत न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाने वाला मामला होना चाहिए। अनुक्रम यह है कि अधिनियम, 1995 की धारा 85 के तहत वर्जन को संचालित करने और सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को वर्जित करने के लिए, अधिनियम, 1995 में एक या दूसरा प्रावधान होना चाहिए जो मामले को उसके नियमों के अनुसार न्यायाधिकरण द्वारा तय किए जाने की आवश्यकता रखता हो। धारा 85 में न्यायाधिकरण का संदर्भ, निश्चित रूप से, वक्फ न्यायाधिकरण के लिए

है, जैसा कि अधिनियम की धारा 3 (क्यू) के तहत परिभाषित किया गया है, जो बदले में धारा 83 (1) के संदर्भ में होगा।

130. वादीगण देवताओं की पूजा करने का अधिकार चाहते हैं, जो वादीगण जैसे हिंदू भक्तगण लंबे समय से करते आ रहे हैं और 15 अगस्त, 1947 के बहुत बाद से करते आ रहे हैं। विद्वान जिला न्यायाधीश ने अधिनियम, 1995 की धारा 33, 35, 47, 48, 51, 54, 61, 64, 67, 72 और 73 के प्रावधानों की जांच की और कहा कि वादीगण द्वारा याचित अनुतोष कि वाद संपत्ति में उन्हें मां श्रृंगार गौरी और देवी-देवताओं की पूजा करने की अनुमति दी जानी चाहिए, अधिनियम, 1995 के उन प्रावधानों में से किसी के अंतर्गत नहीं आता है। विशेष रूप से वादीगण द्वारा याचित अनुतोष ऐसे मामले नहीं हैं, जिन्हें अधिनियम, 1995 के द्वारा या उसके तहत तय किया जाना आवश्यक है।

131. दूसरा आधार जिस पर विद्वान जिला न्यायाधीश ने अधिनियम, 1995 को अनुपयुक्त माना है, वह यह है कि अधिनियम, 1995 की धारा 5 की उपधारा (2) के अंतर्गत प्रकाशित सूची में शामिल संपत्ति पर उनके अधिकारों के निर्धारण के मामले में गैर-मुस्लिमों और वक्फ के लिए अजनबियों के मामले में लागू नहीं होता है। इस न्यायालय की राय है कि तर्क के प्रथम भाग पर ही मामला समाप्त हो जाता है, क्योंकि वादी द्वारा ऐसे किसी अनुतोष का दावा नहीं किया गया है, जिसका अधिनियम, 1995 के तहत धारा 85 के अर्थ में न्यायाधिकरण द्वारा तय

किया जाना आवश्यक है। वाद संपत्ति, जिसे वक्फ होने का दावा किया गया है, के संबंध में स्वत्व या कब्जे के बारे में बिल्कुल भी अनुतोष का दावा नहीं किया गया है, ताकि धारा 85 के तहत अधिकार क्षेत्र का निष्कासन हो सके। न्यायाधिकरण द्वारा अधिनियम, 1995 के प्रावधानों के द्वारा या तहत तय किए जाने वाले मामले की प्रकृति में दूर-दूर तक ऐसा कोई मामला शामिल नहीं है जो वादी का दावा है। अकेले इस आधार पर ही, यह न्यायालय जिला न्यायाधीश द्वारा कहीं अधिक विस्तृत तर्क के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष से सहमत है।

132. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यहां जो कुछ भी कहा गया है वह संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत पुनरीक्षण याची के आवेदन के निर्णय के उद्देश्य तक सीमित है और विचारण में किसी भी पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करेगा।

133. उपरोक्त के आलोक में, इस न्यायालय को इस पुनरीक्षण याचिका में कोई मेरिट नहीं दिखती।

134. यह पुनरीक्षण याचिका विफल होती है और खारिज की जाती है। वादव्यय आसान।

(2023) 7 ILRA 752

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति नरेंद्र कुमार जौहरी

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 2372

सन् 2023

यश कुमार वर्मा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: आशीष कुमार रस्तोगी, अनुराग शुक्ला

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक रिट की स्थिरता-अभियोजन पक्ष की मंजूरी को चुनौती दी गई- परीक्षण न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया और न ही संज्ञान लिया गया।- कोई समन जारी नहीं किया गया-अभियोजन पक्ष को पहले साक्ष्य प्रस्तुत करने का मौका दिया जाना चाहिए-अभियुक्त के पक्ष में सामग्री सहित सभी प्रासंगिक सामग्री को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा जाना चाहिए- ऐसे साक्ष्य की सराहना करने के लिए- ट्रायल कोर्ट सक्षम है-रिट स्थिरता योग्य नहीं है।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. दिनेश कुमार बनाम चेयरमैन, एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया और अन्य (2012) 1 एससीसी 532 में प्रतिवेदित
2. सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल (2014) 14 एससीसी 295 में प्रतिवेदित

3. सीबीआई और अन्य बनाम प्रमिला वीरेंद्र कुमार अग्रवाल और अन्य (2020) 17 एससीसी 664 में प्रतिवेदित;

4. सुख लाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2021 लाँ सूट (इलाहाबाद) 287 में प्रतिवेदित

5. पंजाब राज्य बनाम सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन (2011) 9 एससीसी 182 में प्रतिवेदित 6. मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम रीजेंसी कन्वेंशन सेंटर एंड होटल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (2013) 3 सीपीआर (एससी) 647 में प्रतिवेदित

7. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण की समिति (2010) 3 एससीसी 571 में रिपोर्ट की गई

8. सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, 2014 (14) एससीसी 295

9. सीबीआई और अन्य बनाम प्रमिला वीरेंद्र कुमार अग्रवाल बनाम और अन्य, 2020 (17) एससीसी 664

10. सुखलाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2021 ला सूट (इलाहाबाद) 287 में प्रतिवेदित

11. गोकुल चंद द्वारकादास मुरारका बनाम राजा 1948 एआईआर (पीसी) 82

12. मदन मोहन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1954 सुप्रीम कोर्ट 637

13. सोमनाथ बनाम भारत संघ 1971 (2) एससीसी 387

14. मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम रीजेंसी कन्वेंशन सेंटर एंड होटल्स प्राइवेट लिमिटेड 2013 3 सीपीआर (एससी) 647

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा और माननीय न्यायमूर्ति नरेंद्र कुमार जौहरी द्वारा दिया गया)

(1) याचिकाकर्ता और शासकीय अधिवक्ता श्री शिव नाथ तिलहारी के अधिवक्ता को सुना, जो राज्य-उत्तरदाताओं की ओर से पेश हैं।

(2) यह याचिका विशेष सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, पिछड़ा वर्ग कल्याण अनुभाग-1 द्वारा पारित दिनांक 15.02.2023 के आदेश को चुनौती देती है और प्रतिवादियों को आक्षेपित आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई कठोर कार्रवाई नहीं करने का आदेश देते हुए परमादेश जारी करने की भी प्रार्थना करती है।

(3) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि मंजूरी आदेश बिना दिमाग के प्रयोग किए जारी किया गया है क्योंकि मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष प्रासंगिक सामग्री नहीं रखी गई थी।

(4) अपर शासकीय अधिवक्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अभियोजन की मंजूरी को चुनौती देने वाली रिट याचिका की विचारणीयता के बारे में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है। उन्होंने दिनेश कुमार बनाम अध्यक्ष, एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है (2012)1 एस.सी.सी. 532; सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय

(2014)14 एस.सी.सी. 295; सीबीआई और अन्य बनाम प्रमिला वीरेंद्र कुमार अग्रवाल और अन्य के मामले में दिया गया निर्णय (2020)17 एस.सी.सी. 664; और सुखलाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय का एक निर्णय 2021 लॉ वाद (इला) 287 में रिपोर्ट किया गया, यह कहने के लिए कि मंजूरी की अनुपस्थिति के बीच अंतर है जिसे संज्ञान लेने से पहले ही प्रारंभिक चरण में चुनौती दी जा सकती है और विभिन्न आधारों पर मंजूरी की अमान्यता के रूप में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है जिसे केवल परीक्षण के दौरान देखा जा सकता है विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिए जाने के बाद उसके द्वारा किया जाता है।

(5) दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने पंजाब राज्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो (2011)9 एस.सी.सी. 182 और उसके पैरा-32 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, यह तर्क देने के लिए कि संसद का कोई भी अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों को बाहर या कम नहीं कर सकता है, उच्चतम न्यायालय ने आगाह किया है कि न्यायालय द्वारा न्याय को आगे बढ़ाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की असाधारण शक्तियों का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

(6) यह भी तर्क दिया गया है कि राज्य के प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों

पर भरोसा किया गया है, वे तथ्यों पर अलग-अलग हैं और उन निर्णयों में मंजूरी प्राधिकारी द्वारा अपनी मंजूरी देने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था और इसलिए, उन मामलों में की गई टिप्पणियां याचिकाकर्ता के मामले में लागू नहीं होंगी, जहां विचारण न्यायालय द्वारा अभी तक संज्ञान लिए बिना केवल मंजूरी आदेश जारी किया गया है। चूंकि विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान नहीं लिया गया है, इसलिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता के दायरे में कोई कार्यवाही नहीं है और इसलिए, ये एक शून्य है जिसे केवल इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति और असाधारण शक्ति का प्रयोग करके भरा जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि द.प्र.स. के तहत गठित किसी भी अदालत में या यहां तक कि विशेष अधिनियम यानी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत कोई कार्यवाही नहीं हुई है, इसलिए याचिकाकर्ता को उपचारहीन बना दिया गया है।

(7) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम रीजेंसी कन्वेंशन सेंटर एंड होटल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक फैसले पर भरोसा किया है (2013)3 सीपीआर (एस.सी.) 647, और पैरा-11 में रिपोर्ट किया गया, जहां उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि प्रत्येक निर्णय को उस मामले के विशेष तथ्यों द्वारा शासित और योग्य होना चाहिए जिसमें ऐसी अभिव्यक्ति पाई जानी है; तथ्य या अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा अंतर किसी निर्णय के पूर्ववर्ती

मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है और यहां तक कि एक भी महत्वपूर्ण विवरण पूरे परिप्रेक्ष्य को बदल सकता है; यह कि किसी निर्णय के शब्दों को ऐसे मानने में हमेशा जोखिम होता है जैसे कि वे एक विधायी अधिनियमन में शब्द थे, और यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कथन किसी विशेष मामले के तथ्यों की सेटिंग में किए जाते हैं।

(8) यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के मामले में एक अंतर कारक यह है कि आज तक किसी भी न्यायालय द्वारा अभी तक संज्ञान नहीं लिया गया है और इसलिए, राज्य के प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय लागू नहीं होगा।

(9) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने पश्चिम बंगाल राज्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण समिति (2010) 3 एस.सी.सी. 571 और उसके पैरा-68 में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसे सीबीआई बनाम पंजाब राज्य के फैसले में संदर्भित किया गया है।

(10) इस न्यायालय ने श्री शिव नाथ तिलहारी, अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत निर्णयों पर विचार किया है।

(11) दिनेश कुमार बनाम अध्यक्ष भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण और अन्य 2012(1) एस.सी.सी. पृष्ठ 532; उच्चतम न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जहां अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष

मंजूरी आदेश को चुनौती दी गई थी और इस तरह की चुनौती के लंबित रहने के दौरान विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत विशेष न्यायाधीश द्वारा समन जारी किया गया था। रिट न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज कर दिया था और डिवीजन बेंच ने भी इंटर-न्यायालय अपील को खारिज कर दिया था और यह देखते हुए कि अपीलकर्ता के लिए सभी संभावित आधारों पर मुकदमे के दौरान मंजूरी आदेश की वैधता पर सवाल उठाने का विकल्प खुला था और सीबीआई विचारण न्यायाधीश के समक्ष मंजूरी देने के आदेश को भी सही ठहरा सकती है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष तर्क दिया था कि अपीलकर्ता ने आरोप पत्र दायर होने से पहले ही मंजूरी आदेश की कानूनी वैधता को चुनौती दी थी, और इसलिए, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को मुकदमे के दौरान आदेश की वैधता के सवाल को उठाने के लिए आरोपित करने में न्यायसंगत नहीं था। उन्होंने मनसुखलाल विट्ठल दास चौहान बनाम गुजरात राज्य 1997(7) एस.सी.सी. 622; पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट 1998(5) एस.सी.सी. 749; माननीय उच्चतम न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में दिनांक 10-11-2008 को माननीय उच्चतम न्यायालय में दिनांक 10-11-2008 को माननीय उच्चतम न्यायालय में दिनांक 10-11-2008 को अधिसूचित किया था।

(12) दूसरी ओर, सीबीआई के अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि यदि मंजूरी आदेश की वैधता को दिमाग के गैर-उपयोग के आधार पर

चुनौती देने की मांग की जाती है, तो ऐसी चुनौती केवल मुकदमे के दौरान ही दी जा सकती है। उन्होंने प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य, 2007(1) एस.सी.सी.1, और अशोक शेरिंग भूटिया बनाम सिक्किम राज्य, 2011(4) एस.सी.सी. 402 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया।

(13) उच्चतम न्यायालय ने मनसुखलाल विठ्ठलदास चौहान (उपरोक्त) में दिए गए फैसले पर विचार किया, जहां उसने देखा था कि मंजूरी देने का कार्य एक पवित्र कार्य है जो सरकारी कर्मचारियों को तुच्छ अभियोजन से सुरक्षा प्रदान करता है और यह तुच्छ और कष्टप्रद अभियोजन को हतोत्साहित करने का एक हथियार है और निर्दोष के लिए एक सुरक्षा है लेकिन साथ ही यह दोषी के लिए ढाल नहीं हो सकता है। न्यायालय ने प्रकाश सिंह बादल (उपरोक्त) में निर्धारित कानून को दोहराया, जिसमें यह देखा गया था कि कानून की आवश्यकता है कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी से पहले सामग्री रखी जानी चाहिए ताकि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी अपने दिमाग का उपयोग कर सके और निर्णय ले सके। इस पर विचार किया गया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और इस संबंध में कोई सामान्यीकृत दिशानिर्देश नहीं हो सकते हैं। मंजूरी की अनुपस्थिति और दिमाग का उपयोग न करने के कथित अमान्य खाते के बीच एक अंतर है। पहले प्रश्न को दहलीज पर उठाया जा सकता है लेकिन बाद वाला प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिसे विचारण के दौरान उठाया जाना चाहिए।

(14) स्वीकृति की अनुपस्थिति और स्वीकृति की अमान्यता के बीच अंतर करते हुए, प्रकाश सिंह बादल में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि स्वीकृत न होने का प्रश्न व्यथित व्यक्ति द्वारा प्रारंभ और सीमा के समय उठाया जा सकता है। हालांकि, जहां मंजूरी आदेश मौजूद है, लेकिन इसकी वैधता और वैधता पर सवाल उठाया गया है, ऐसे मुद्दे को परीक्षण के दौरान उठाया जाना चाहिए। मंजूरी की ऐसी अमान्यता को विभिन्न आधारों पर उठाया जा सकता है, जैसे मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष सामग्री की अनुपलब्धता, या मंजूरी प्राधिकारी का पक्षपात, या मंजूरी का आदेश किसी ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है जो ऐसी कार्रवाई करने के लिए अधिकृत या सक्षम नहीं है। अमान्यता या मंजूरी की अवैधता के ऐसे सभी आधार उसी श्रेणी में आएंगे जैसे दिमाग का उपयोग न करने के कारण मंजूरी की अमान्यता का आधार, जहां पीड़ित व्यक्ति पर विचारण के दौरान इसे चुनौती देना अनिवार्य है।

(15) सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, 2014 (14) एस.सी.सी. 295; उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय के उस निर्णय पर विचार कर रहा था जिसने विशेष न्यायाधीश सीबीआई की अदालत द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया था, जिसमें उन्होंने आय से अधिक संपत्ति रखने के संबंध में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी पर सवाल उठाते हुए प्रतिवादी के आवेदन को खारिज कर दिया था। पुलिस अधीक्षक द्वारा वित्त मंत्रालय को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी

जिसे केन्द्रीय सतर्कता आयोग को अग्रोषित कर दिया गया था। केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने उक्त मामले की जांच करने के बाद वित्त मंत्रालय को अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने की सलाह दी। सीबीआई ने विशेष न्यायाधीश की अदालत में आरोप पत्र दाखिल किया। न्यायालय ने भी संज्ञान लिया। प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर करके मंजूरी की वैधता को चुनौती दी। ऐसे आवेदन को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया था कि यह निर्णय लेने का उपयुक्त चरण नहीं था कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी अवैध थी या नहीं। प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय में एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसने विशेष न्यायाधीश के आदेश को रद्द कर दिया और मंजूरी के अनुसार किसी भी 'न्याय की विफलता' के सवाल पर एक निष्कर्ष दर्ज करने के लिए मामले को रिमांड पर भेज दिया, और पूर्व-आरोप निर्धारण चरण में भी गवाह के रूप में मंजूरी प्राधिकारी की जांच करने के लिए, यदि यह उचित समझा जाए।

(16) सीबीआई के अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि आरोप तय करने से पहले के चरण में मंजूरी की वैधता को चुनौती देने वाला एक आवेदन अनसुना था, क्योंकि जिस मुद्दे पर फैसला किया जाना था वह यह था कि क्या प्रासंगिक सामग्री का खुलासा किया गया था / मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था और मंजूरी प्राधिकारी ने इस पर विचार किया था। इस तरह के मुद्दे को केवल परीक्षण के दौरान ही उठाया जा सकता है। दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से पेश अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विशेष न्यायाधीश कानून के अनुसार मंजूरी

प्राधिकारी द्वारा दी गई वैध मंजूरी के अभाव में संज्ञान लेने के लिए सक्षम नहीं थे। जब स्वीकृति प्रदान की गई थी तब गवाहों के बयान आदि सहित संगत सामग्री माननीय मंत्री जी के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई थी। इससे पहले दायर मुकदमे में उच्च न्यायालय ने राजस्व सचिव को निष्पक्ष तरीके से विवेचना के रिकॉर्ड की जांच करने और उस पर विचार करने का निर्देश दिया था। ऐसी स्थिति में मंजूरी के मुद्दे पर आरोप से पहले के चरण में विचार किया जाना था और इस तरह की शून्य मंजूरी एक वैध परीक्षण के लिए आधार नहीं हो सकती है।

(17) उच्चतम न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम कृष्ण चन्द्र सक्सेना 1996(11) एस.सी.सी. 439 में उसके द्वारा दिए गए निर्णय पर यह टिप्पणी करने के लिए भरोसा किया कि क्या सभी संगत साक्ष्य जो अभियुक्त के पक्ष में संतुलन को झुका देते, यदि मंजूरी देने से पहले मंजूरी प्राधिकारी द्वारा इस पर विचार किया गया था, और जिसे वास्तव में विचार से बाहर छोड़ दिया गया था, केवल परीक्षण के चरण में जांच की जा सकती है जब मंजूरी प्राधिकारी मंजूरी आदेश का समर्थन करने के लिए अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में आगे आता है यदि परीक्षण के दौरान चुनौती दी जाती है तो अब 'रेस इंटीग्रा' नहीं है। उस स्तर पर अभियोजन पक्ष को न्यायालय को संतुष्ट करना होगा कि उक्त प्राधिकरण को इस तरह की मंजूरी देने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराई गई थी। ऐसे प्रत्येक मामले में न्यायालय को यह पता लगाना था कि क्या संबंधित प्राधिकारी की ओर

से उसके समक्ष रखी गई सामग्री पर दिमाग का प्रयोग किया गया है। सामग्री पर विचार करने का अर्थ है दिमाग का अनुप्रयोग। यह स्थापित करने के लिए कि मंजूरी वैध रूप से दी गई थी, अभियोजन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा न्यायालय को स्थापित करना और संतुष्ट करना होगा कि सभी तथ्यों को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था और प्राधिकरण ने उसी पर अपना दिमाग लगाया था। यदि स्वीकृति आदेश यह इंगित करता है कि सभी प्रासंगिक सामग्री, अर्थात् प्राथमिकी, प्रकटीकरण बयान, बरामदगी फ़र्द, ड्राफ्ट आरोप पत्र और रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी, और यदि यह मंजूरी आदेश के पाठ से आगे स्पष्ट है कि मंजूरी प्राधिकारी ने सभी सामग्री का अवलोकन किया है, तो एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मंजूरी कानून के अनुसार दी गई है। प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में अभियोजन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा न्यायालय को संतुष्ट करना होता है कि संबंधित प्राधिकारी के समक्ष संपूर्ण प्रासंगिक तथ्यों को रखा गया था। यह केवल परीक्षण के दौरान ही किया जा सकता था।

(18) अशोक शेरिंग भूटिया बनाम सिक्किम राज्य (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस मुद्दे से निपटते हुए कि क्या अवैध मंजूरी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जड़ तक जाती है, जो विचारण और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगी, ने कहा कि यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं होने पर कि उसमें कोई दोष या अनियमितता न्याय की विफलता का कारण बनी, इस दलील में कोई

दम नहीं था। न्याय की विफलता मंजूरी के अनुदान में त्रुटि, चूक या अनियमितता से संबंधित होगी, हालांकि मंजूरी में केवल एक त्रुटि या चूक या अनियमितता को घातक नहीं माना जाता है जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो, या उसके द्वारा ऐसा हुआ हो। अभियुक्त द्वारा यह दिखाया जाना चाहिए कि उसे विवेचना या परीक्षण के संबंध में कुछ त्रुटि या हानि या पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है; केवल एक बार जब अभियुक्त यह दिखाने में सक्षम हो जाता है कि जांच या मुकदमे के संबंध में उसके साथ गंभीर पूर्वाग्रह पैदा हुआ है और उसने उसे उपलब्ध अधिकारों को हरा दिया है, तो अभियुक्त अदालत से राहत मांग सकता है। यदि न्यायालय संतुष्ट है कि हालांकि जांच एजेंसी द्वारा मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को सौंपी गई रिपोर्ट विस्तृत है, तो ऐसी रिपोर्ट को रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री पर विचार करने पर मंजूरी के लिए विचार करने के लिए आवश्यक पूर्ण रिकॉर्ड नहीं माना जा सकता है, तो ऐसी मंजूरी को रद्द किया जा सकता है।

(19) अशोक कुमार अग्रवाल के मामले में, प्रतिवादी ने दिखाया था कि सभी प्रासंगिक दस्तावेज मंजूरी प्राधिकारी को नहीं भेजे गए थे। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अभियोजन एजेंसी को मुकदमे के दौरान यह दिखाने का अवसर दिया जाना चाहिए कि इस तरह के प्रासंगिक रिकॉर्ड वास्तव में संबंधित प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे। प्रतिवादी के तर्क पर केवल तभी विचार किया जा सकता है जब मंजूरी के आदेश को अमान्य करने के लिए

विचारण न्यायालय के समक्ष साक्ष्य पेश किया गया हो। प्रतिवादी न्यायालय को यह दिखाने में सक्षम था कि एकत्र किए गए साक्ष्य विशाल थे और मंजूरी प्राधिकारी को प्रस्तुत रिपोर्ट में संभवतः सभी साक्ष्य शामिल नहीं हो सकते थे। इन परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखा।

(20) अशोक कुमार अग्रवाल के निर्णय के पैरा-56 में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अधिनियम की धारा 19(3) स्वयं न्यायालय पर मुकदमे/कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए पूर्ण प्रतिबंध लगाती है।

पैरा-58 और 59 में, यह इस प्रकार देखा गया: -

"58. यहां सबसे प्रासंगिक मुद्दा यह है कि मंजूरी आदेश की वैधता किस चरण में उठाई जा सकती है। मुद्दा अब 'रेस इंटीग्रा' नहीं है। दिनेश कुमार बनाम भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण में, इस न्यायालय ने इस मुद्दे से निपटा और प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य में फैसले पर भरोसा करते हुए, निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:

"13. हमारे विचार में, प्रस्तुत मामले के तथ्यों के संबंध में, अब चूंकि विचारण न्यायधीश द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है, इसलिए उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा विचार के लिए मंजूरी की वैधता के सवाल को खुला छोड़कर

और अपीलकर्ताओं को विचारण के दौरान मंजूरी आदेश की वैधता से संबंधित मुद्दा उठाने की स्वतंत्रता देकर गलती नहीं की जा सकती है। ऐसी प्रक्रिया प्रकाश सिंह बादल मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुरूप है।

"59. निस्संदेह, मंजूरी की वैधता की जांच करने का चरण परीक्षण के दौरान है और हम यह कहने का प्रस्ताव नहीं करते हैं कि वैधता की जांच, विवेचना के चरण के दौरान या पूर्व-परीक्षण चरण में की जानी चाहिए।

(21) सीबीआई और अन्य बनाम प्रोमिला वीरेंद्र कुमार अग्रवाल और अन्य, 2020 (17) एस.सी.सी. 664 में, उच्चतम न्यायालय प्रतिवादी के आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति देने वाले उच्च न्यायालय के फैसले पर विचार कर रहा था। आरोपी संख्या-1 और 2 पति और पत्नी थे और उन पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 13(1) के साथ धारा 13(2) और धारा 109 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाए गए थे। उन्होंने डिस्चार्ज की मांग करते हुए अलग-अलग आवेदन दायर किए। विचारण न्यायालय ने आरोपी संख्या-1 के आवेदन की अनुमति दी और उसे प्राथमिकी में उसके खिलाफ लगाए गए अपराधों से बरी कर दिया, लेकिन आरोपी संख्या-2 के आवेदन को खारिज कर दिया। अपीलकर्ता सीबीआई और आरोपी संख्या-2 द्वारा इसके खिलाफ दायर अलग-अलग पुनरीक्षण आवेदनों में, उच्च न्यायालय ने दोनों को मिला दिया और उसी पर विचार किया और एक ही आदेश द्वारा

अभियुक्त संख्या-2 के पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति दी, जबकि आरोपी संख्या-1 के निर्वहन के खिलाफ अपीलकर्ता का पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता के सवाल पर अपना निर्णय आधारित किया था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता से संबंधित मुद्दे पर केवल मुकदमे के दौरान ही विचार किया जा सकता था क्योंकि अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष दोषपूर्ण मंजूरी के संबंध में था। उच्च न्यायालय के अनुसार, स्पष्टीकरण के लिए अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप मंजूरी दोषपूर्ण थी।

(22) उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि मंजूरी की अनुपस्थिति और दिमाग का प्रयोग न करने के कारण कथित अमान्यता के बीच अंतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मंजूरी के अभाव में सीमा पर आंदोलन किया जा सकता है, लेकिन मंजूरी की अमान्यता को परीक्षण के दौरान उठाया जाना है। प्रतिवादी के मामले में अभियोजन पक्ष के लिए मंजूरी थी, हालांकि अभियुक्त ने मंजूरी देने के तरीके में कमियां निकालने की कोशिश की और दावा किया कि यह दोषपूर्ण था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह विचारण का मामला है क्योंकि तब अभियोजन पक्ष के पास विचारण न्यायालय के समक्ष साक्ष्य रखने का अवसर होगा कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखा जा रहा है।

(23) उच्चतम न्यायालय ने पैरा-11 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"11. इसके अलावा, अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता से संबंधित मुद्दे पर केवल मुकदमे के दौरान विचार किया जाएगा क्योंकि अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष दोषपूर्ण मंजूरी के संबंध में है क्योंकि उच्च न्यायालय के अनुसार, स्पष्टीकरण के लिए अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप मंजूरी दोषपूर्ण होगी। इस संबंध में, दिनेश कुमार बनाम भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण के मामले में निर्णय, जिस पर अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने भरोसा किया है, प्रासंगिक होगा क्योंकि इसमें यह माना गया है कि मंजूरी की अनुपस्थिति और दिमाग न लगाने के कारण कथित अमान्यता के बीच अंतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मंजूरी के अभाव को सीमा पर उत्तेजित किया जा सकता है, लेकिन मंजूरी की अमान्यता को मुकदमे में देखा जाना चाहिए। तात्कालिक तथ्यों में, स्वीकार्य रूप से एक मंजूरी है, हालांकि अभियुक्त मंजूरी दिए जाने के तरीके में कमियां निकालना चाहते हैं और दावा करते हैं कि यह दोषपूर्ण है जो मुकदमे में विचार किया जाने वाला मामला है।

(24) अपर शासकीय अधिवक्ता ने सुखलाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य आपराधिक डब्ल्यूपी संख्या-9727/2020 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जो 2021 के मुकदमे (एएलडी)287 में रिपोर्ट किया गया है। रिट याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड लखनऊ के प्रबंध निदेशक द्वारा पारित मंजूरी आदेश की शुद्धता और वैधता को चुनौती दे रहा था, और उसने परमादेश की प्रकृति में एक और रिट की मांग की थी जिसमें प्रतिवादियों को लोकायुक्त उत्तर प्रदेश की आक्षेपित एकपक्षीय रिपोर्ट के आधार पर मामले को आगे नहीं बढ़ाने के लिए रोका गया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने समान रूप से आरोपी व्यक्तियों के दो समन्वय पीठ के फैसलों का हवाला दिया था, जिसमें अदालत ने रिट याचिकाकर्ताओं को प्रतिनिधित्व के साथ मंजूरी प्राधिकारी से संपर्क करने का निर्देश दिया था और जब तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसा निर्णय नहीं लिया जाता है, तब तक उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए।

(25) अपर शासकीय अधिवक्ता ने न्यायालय को सूचित किया था कि रिट याचिका में आक्षेपित आदेश केवल राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड के प्रबंध निदेशक द्वारा राज्य सरकार को एक संचार था। 16.12.2019 के मंजूरी आदेश को रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई थी। यह प्रस्तुत किया गया था कि सक्षम प्राधिकारी ने दिनांक 16.12.2019 को आदेश पारित करते समय अपने दिमाग का इस्तेमाल किया था और लखनऊ और नोएडा में स्मारकों

और पार्कों के निर्माण में भ्रष्टाचार और वित्तीय गबन के संबंध में लोकायुक्त से रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, एक उचित जांच की गई थी और सक्षम प्राधिकारी द्वारा विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री और सबूतों सहित ऐसी जांच रिपोर्ट पर विचार किया गया था।

(26) न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि किस आधार पर और मंजूरी देने के आदेश को प्रारंभिक चरण में चुनौती दी जा सकती है, इससे पहले कि पक्षकारों को मामले के समर्थन में साक्ष्य का नेतृत्व करने का कोई अवसर मिले। इसने गोकुल चंद द्वारकादास मुरारका बनाम किंग 1948 ए.आई.आर. (पीसी) 82 में प्रिवी काउंसिल द्वारा की गई टिप्पणियों और मदन मोहन बनाम यूपी राज्य, ए.आई.आर. 1954 उच्चतम न्यायालय 637 और सोमनाथ बनाम भारत संघ 1971 (2) एस.सी.सी. 387 में की गई टिप्पणियों पर विचार किया।

(27) संविधि के संगत खंडों पर विचार करते हुए प्रिवी काउंसिल ने गोकुल चंद द्वारका दास मुरारका में निम्नानुसार टिप्पणी की थी-

"यह साबित किया जाना चाहिए कि आरोप लगाए गए अपराध का गठन करने वाले तथ्यों के संबंध में मंजूरी दी गई थी। यह स्पष्ट रूप से वांछनीय है कि इस तथ्य को मंजूरी के चेहरे पर संदर्भित किया जाना चाहिए, लेकिन यह आवश्यक नहीं है - अभियोजन पक्ष को बाहरी साक्ष्य द्वारा साबित करना होगा कि उन तथ्यों को मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था। अभियोजन आधारित होना था, और ये

तथ्य मंजूरी के चेहरे पर प्रकट हो सकते हैं या बाहरी साक्ष्य द्वारा साबित किए जा सकते हैं। जहां अपराध का गठन करने वाले तथ्य अभियोजन को मंजूरी देने वाले पत्र पर स्पष्टता: प्रकट नहीं होते हैं, यह अभियोजन पक्ष पर अन्य सबूतों द्वारा साबित करने के लिए अवलंबी है कि अपराध का गठन करने वाले भौतिक तथ्यों को मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था। जहां ऐसा नहीं किया जाता है, मंजूरी को दोषपूर्ण माना जाना चाहिए और एक अवैध मंजूरी मामले की कोशिश करने के लिए अदालत को अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं कर सकती है।

(28) उच्चतम न्यायालय के बाद के निर्णयों का उल्लेख करते हुए, सुखलाल यादव के मामले में समन्वय पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"38. इसलिए यह अच्छी तरह से तय है कि एक वैध मंजूरी का गठन करने के लिए यह स्थापित किया जाना चाहिए कि यह तथ्यों के संबंध में दिया गया था, अपराध जिसके साथ अभियुक्त पर आरोप लगाया जाना प्रस्तावित है। तथ्यों को मंजूरी देने वाले आदेश में कहा जा सकता है या शायद बाहरी साक्ष्य द्वारा अनुमोदित किया जा सकता है। यदि मंजूरी के चेहरे पर तथ्य प्रकट नहीं होते हैं, तो अभियोजन पक्ष को अन्य सबूतों द्वारा यह साबित करना होगा कि अपराध का गठन करने वाले भौतिक तथ्यों को मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था

और उसने उक्त तथ्यों पर विचार करने के बाद इसे मंजूरी दी थी। यह एक परिणाम के रूप में इस प्रकार है कि जहां अपराध का गठन करने वाले तथ्य मंजूरी के चेहरे पर प्रकट नहीं होते हैं, अभियोजन पक्ष के लिए यह सबूत पेश करने के लिए खुला होगा कि मंजूरी देने से पहले मंजूरी देने से पहले सुसंगत तथ्यों को मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था, और साक्ष्य का नेतृत्व करने का अवसर केवल परीक्षण के दौरान ही उत्पन्न हो सकता है।

"39. पूर्वोक्त चर्चा से पता चलता है कि मंजूरी के आदेश को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है (1) यह एक प्राधिकारी द्वारा प्रदान किया गया है जो ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं था; (2) यह आरोपित अपराध का गठन करने वाले तथ्यों के संबंध में नहीं दिया गया है। हालांकि, अगर मंजूरी की चुनौती इस आधार पर आधारित है कि अपराध का गठन करने वाले तथ्य मंजूरी के चेहरे पर दिखाई नहीं देते हैं, तो इस तरह की याचिका को परीक्षण शुरू होने से पहले प्रारंभिक चरण में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अभियोजन पक्ष के पास यह दिखाने के लिए साक्ष्य पेश करने का कोई अवसर नहीं हो सकता है कि मंजूरी प्रासंगिक सामग्री पर विचार करने के बाद दी गई थी। इसलिए, इस तरह की याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है और मुकदमे के शुरू होने से पहले भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका सहित किसी भी कार्यवाही में

जांच नहीं की जा सकती है। मुकदमा समाप्त होने के बाद ही और अभियोजन पक्ष को सबूत पेश करने का अवसर दिया गया है कि इस आधार पर मंजूरी की वैधता की जांच की जा सकती है।

(29) इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता, मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम रीजेंसी कन्वेंशन सेंटर एंड होटल्स प्राइवेट लिमिटेड 2013 सीपीआर (एस.सी.) 647 के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय पर भी विचार किया है। यह मामला सी.पी.सी. के आदेश 1 नियम X के तहत एक वाद में एक पक्ष के अभियोग से संबंधित था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि वाद में वादी 'डोमिनस लिटस' होने के नाते, उन व्यक्तियों को चुन सकता है जिनके खिलाफ वह मुकदमा करना चाहता है और उस व्यक्ति पर मुकदमा करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है जिसके खिलाफ वह कोई राहत नहीं चाहता है। एक व्यक्ति जो पक्षकार नहीं है, उसे वादी की इच्छा के विरुद्ध मुकदमा चलाने का कोई अधिकार नहीं है। हालांकि न्यायालय आवश्यक और उचित पक्ष के अभियोग का निर्देश दे सकता है। लेकिन न्यायालय को यह विचार करना होगा कि क्या वादी ने ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कोई राहत मांगी है और क्या ऐसा व्यक्ति विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद में एक प्रभावी डिग्री पारित करने के लिए आवश्यक है या विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में जारी मामलों के पूर्ण और प्रभावी निर्णय के लिए इसकी उपस्थिति आवश्यक है। तथ्य यह है कि वादी के खिलाफ मुकदमा तय होने के बाद, किसी व्यक्ति को वाद संपत्ति में अधिकार/हित

को सुरक्षित करने की संभावना है, ऐसे व्यक्ति को विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद के लिए आवश्यक या उचित पक्ष नहीं बनाएगा। उच्चतम न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया क्योंकि उसने पाया कि यह एक आवश्यक या उचित पक्ष नहीं था और अभियोग के लिए इसके आवेदन को विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा सही तरीके से खारिज कर दिया गया था।

(30) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के पैरा-11 पर भरोसा किया है, जहां उच्चतम न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों पर विचार करते हुए कहा कि - "..... प्रत्येक निर्णय को उस मामले के विशेष तथ्यों द्वारा शासित और योग्य होना चाहिए जिसमें ऐसी अभिव्यक्तियाँ पाई जानी हैं; तथ्यों या अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा अंतर किसी निर्णय के पूर्ववर्ती मूल्य में बहुत अंतर लाएगा और यहां तक कि एक भी महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है; कि एक निर्णय के शब्दों को व्यवहार करने में हमेशा एक जोखिम होता है जैसे कि वे एक विधायी अधिनियमन में शब्द थे, और यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक घोषणाएं किसी विशेष मामले के तथ्यों की सेटिंग में की जाती हैं ..." (महत्व सन्निविष्ट)

(31) उच्चतम न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त दो निर्णयों में की गई टिप्पणियों के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के मामले में अभियोजन की मंजूरी के परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय के समक्ष

आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है या संज्ञान नहीं लिया गया है। कोई समन जारी नहीं किया गया है। इसलिए यह तर्क दिया जाता है कि किसी भी अदालत के समक्ष कोई मामला लंबित नहीं है जहां याचिकाकर्ता को उसके उपाय की तलाश करने के लिए आरोपित किया जा सकता है। किसी भी याचिकाकर्ता को उपचार-विहीन नहीं छोड़ा जा सकता है।

(32) इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि दिनेश कुमार बनाम अध्यक्ष, भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण और अन्य, सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, सीबीआई बनाम प्रमिला वीरेन्द्र कुमार अग्रवाल, और सुखलाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के पूर्वोक्त मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा निपटाए गए कानून के मद्देनजर, जब तक कि विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जाता है। अभियोजन के लिए मंजूरी देने वाले सक्षम प्राधिकारी के तथ्यों और परिस्थितियों को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता है। यदि तर्क के लिए यह विश्वास किया जाए कि मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष आवश्यक सामग्री नहीं रखी गई थी ताकि वह अपना विवेक रख सके, तो अभियोजन पक्ष को भी पहले इस आशय का साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए कि सभी संगत सामग्री सहित जो अभियुक्त का पक्ष ले सकती है, स्वीकृति प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था। इस तरह के सबूतों का मूल्यांकन करने के लिए, विचारण न्यायालय सक्षम है।

(33) इसके अलावा, यदि याचिकाकर्ताओं के तर्क के अधिवक्ता का मानना है कि अभी तक कोई संज्ञान नहीं लिया गया है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह एक पीड़ित व्यक्ति है, क्योंकि विचारण न्यायालय अभियोजन एजेंसी द्वारा दायर आरोप पत्र का संज्ञान ले सकता है या नहीं भी ले सकता है।

(34) परिणामस्वरूप, रिट याचिका को सुनवाई योग्य न मानकर खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 762

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

मामला अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 4795

सन् 2023 (सिविल)

प्रवीण कुमार मिश्रा

...याचिकाकर्ता

बनाम

डॉ. गौरव मिश्रा एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री पंकज अग्रवाल,
श्री गौरव त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री रमेश चंद्र
अग्रहरि, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

निष्पादन कार्यवाही - वादी द्वारा दायर
रिहाई आवेदन - स्वीकृत - अपील और रिट
खारिज-आदेश अंतिम रूप से प्राप्त हुआ -
निष्पादन आवेदन लंबित - दुकान का कब्जा

वादी संख्या 2 को सौंपा गया - निष्पादन न्यायालय ने प्रतिवादी/वादी संख्या 2 को दुकान का कब्जा प्रतिवादी/वादी संख्या 3 को सौंपने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया - एक बार सह-वादी के पक्ष में सद्भावनापूर्ण आवश्यकता स्थापित हो जाने पर - निष्पादन न्यायालय को सह-मकान मालिक के पक्ष में संपत्ति के कब्जे के लिए आगे बढ़ने और आदेश पारित करने का पूरा अधिकार है, जिसके लिए सद्भावनापूर्ण आवश्यकता स्थापित की गई थी।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. तमिलनाडु बिल्डिंग (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम के.वी.एस. मुथु बनाम अंगा मुथु अम्मल: एआईआर1997 एससी 628
2. श्री राम गुप्ता बनाम निर्धारित प्राधिकारी/सिविल न्यायाधीश (एस.डी.), कानपुर देहात और अन्य
3. सैयद असदुल्लाह काज़मी बनाम ए.डी.जे.: 1981 एआरसी 542

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज अग्रवाल और प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र अग्रहरि की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है: -

"अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों को मंगाने और दिनांक 10.04.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की कृपा करें जो अपर न्यायाधीश लघुवाद न्यायालय संख्या 2, कानपुर नगर द्वारा निष्पादन वाद संख्या 02/23/2022 में पारित किया गया और निष्पादन वाद संख्या 206/23/2022 को अनुमति दी गई और उक्त निष्पादन को पूर्ण रूप से समाप्त करने वाली वर्तमान याचिका को भी अनुमति दी गई। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि किरायेदार-प्रत्यर्थी द्वितीय समूह ने प्रश्नगत दुकान के मालिक और मकान मालिक की क्षमता में याचिकाकर्ता को कब्जा दे दिया था; और/या ऐसा अन्य और आगे का आदेश पारित किया जाए जो न्याय के हित में समीचीन हो।"

3. चूंकि, वर्तमान याचिका में केवल कानूनी प्रश्न शामिल हैं, इसलिए, पक्षकारों की सहमति से, शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना, प्रवेश स्तर पर ही याचिका पर निर्णय लिया जा रहा है।

4. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि निर्मुक्त आवेदन दिनांक 22.07.2008 को तीन वादियों द्वारा दायर किया गया है, जिसे 2008 के पीए वाद संख्या 5 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त निर्मुक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान वादी संख्या 1, वादी संख्या 2 की मां और वादी संख्या 3 की दादी की मृत्यु हो गई। निर्मुक्त आवेदन को अंततः दिनांक

13.01.2020 के आदेश के तहत अनुमति दी गई थी, जिसके खिलाफ किरायेदार-प्रत्यर्थी द्वारा किराया अपील संख्या 16/2020 दायर की गई थी, जिसे जिला न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 24.01.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया था। किरायेदार-प्रत्यर्थी ने इस अदालत के समक्ष अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका दायर की, जो 2022 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 1343 थी, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 08.03.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। अंततः 2008 के पी.ए. वाद संख्या 5 में पारित आदेश दिनांक 13.01.2020 को माना गया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज अग्रवाल ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 13.01.2020 के आदेश के निष्पादन के लिए, दो निष्पादन आवेदन पहला याचिकाकर्ता-वादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 15.10.2022 को और दूसरा वादी संख्या 3 द्वारा दिनांक 02.03.2022 को दायर किए गए थे। दोनों निष्पादन आवेदन अभी भी अंतिम निस्तारण हेतु लंबित हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, दुकान का कब्जा वादी संख्या 2 को सौंप दिया गया था, इसलिए, निष्पादन न्यायालय की ओर से कार्यवाही को बंद करना आवश्यक है, लेकिन इसके बजाय, निष्पादन न्यायालय ने आगे कार्यवाही करते हुए दिनांक 21.03.2023 को आदेश पारित कर दिया, जिसमें प्रत्यर्थी/वादी संख्या 2 को प्रत्यर्थी/वादी संख्या 3 को दुकान का कब्जा सौंपने का निर्देश दिया। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि एक बार किसी भी मकान मालिक को कब्जा दे

दिया गया, तो निष्पादन न्यायालय के पास किरायेदार या मकान मालिक के बीच दुस्संधि के अभाव में निष्पादन की कार्यवाही के साथ आगे की कार्यवाही का कोई अधिकार नहीं है।

6. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि उक्त आदेश को अनुच्छेद 227 के संख्या 3373/2023 के तहत मामला दायर कर इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे दोनों आवेदनों पर निष्पादन न्यायालय/विहित प्राधिकारी को दिनांक 28.03.2023 के आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के 10 दिनों के भीतर निर्णय लेने के निर्देश के साथ निपटाया गया था। निष्पादन न्यायालय को दिनांक 28.03.2023 के आदेश को 31.03.2023 को तामील कराया गया था, लेकिन उस समय, कानपुर जिला न्यायालय के अधिवक्तागण हड़ताल पर थे, इसलिए, पक्षकार व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे। वर्तमान मामले में, अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण, याचिकाकर्ता-वादी संख्या 2 ने दिनांक 06.04.2023 को आवेदन के माध्यम से स्थगन की मांग की थी, लेकिन पक्षकारों के अधिवक्ता को सुने बिना, 07.04.2023 को फैसला सुरक्षित रख लिया गया और अंत में 10.04.2023 को सुनाया गया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दो आधारों पर आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है; पहला आधार जो अनुच्छेद 227 संख्या 3373/2023 के मामलों में लिया गया है कि एक बार जब किसी मकान मालिक को कब्जा सौंप दिया जाता है, तो निष्पादन न्यायालय की ओर से कार्यवाही बंद करना आवश्यक होता

है। दूसरा, याचिकाकर्ता-वादी संख्या 2 को सुने बिना ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया है। वास्तव में उनकी उपस्थिति न्यायालय कक्ष में दर्ज की गई थी चूंकि न्यायाधीश अपने कक्ष में बैठे थे और उनके अधिवक्ता को सुने बिना आदेश पारित कर दिया, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का घोर उल्लंघन है।

8. इसके विपरीत, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलीलों का कड़ा विरोध किया और प्रस्तुत किया कि जहां तक वर्तमान विवाद का सवाल है, यही मुद्दा 2007 की रिट याचिका संख्या 20599 (श्री राम गुप्ता बनाम विहित प्राधिकारी/सिविल जज (एसडी),कानपुर देहात और अन्य) का विषय था। जिसमें, इस अदालत ने प्रश्न तैयार करने के बाद, वही उत्तर दिए हैं और अदालत द्वारा तय किए गए प्रश्न बिल्कुल वही हैं जो इस अदालत के समक्ष विवाद में हैं। अधिवक्ता ने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया है कि वास्तविक आवश्यकता सह-मकान मालिक के पक्ष में स्थापित की गई थी जबकि किरायेदार ने दूसरे सह-मकान मालिक को कब्जा दे दिया है और न्यायालय ने प्रश्न तैयार करने के बाद उत्तर दिया है कि विहित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता-मकान मालिक द्वारा अधिनियम की धारा 23 के तहत कब्जा देने के लिए दायर आवेदन को अस्वीकार करने में कानून की प्रत्यक्ष त्रुटि की है। केवल इस आधार पर कि कब्जा एक सह-मकान मालिक को दिया गया है। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि चूंकि तथ्य समान हैं, इसलिए, निर्धारित कानून का अनुपात इस मामले में भी भली-भांति लागू होता है।

9. जहां तक पक्षकारों की सुनवाई के मुद्दे का सवाल है, उन्होंने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि पक्षकारों की उपस्थिति विहित प्राधिकारी द्वारा भली प्रकार से दर्ज की गई है, इसलिए न्यायालय के निष्कर्षों के विपरीत मौखिक कथनों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, यदि वे निर्णायक साक्ष्य द्वारा समर्थित न हों।

10. अपने प्रत्युत्तर तर्क में, श्री पंकज अग्रवाल ने प्रस्तुत किया कि **श्री राम गुप्ता (उपरोक्त)** के मामले में, सह-मकान मालिक और किरायेदार के बीच दुस्संधि का मुद्दा था, जबकि वर्तमान मामले में, पक्षकारों पर दुस्संधि का कोई आरोप नहीं है और किरायेदार द्वारा स्वीकारोक्तिपूर्वक कब्जा याचिकाकर्ता को सौंप दिया गया है, इसलिए, यह निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

11. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों के साथ-साथ ऊपर उद्धृत निर्णयों का भी अवलोकन किया है।

12. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि पहले वादी संख्या 1, 2 और 3 द्वारा प्रत्यर्थी के खिलाफ वादी संख्या 3 की वास्तविक आवश्यकता को निर्धारित करते हुए एक मुकदमा दायर किया गया था। कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, वादी संख्या 1 की मृत्यु हो गई और अंततः मुकदमा दायर किया गया। उस पर, दो निष्पादन आवेदन पहला वादी संख्या 2 द्वारा और दूसरा वादी संख्या 3 द्वारा दायर किए गए। यह निर्विवाद है कि मुकदमा वादी संख्या 3 की वास्तविक

आवश्यकता के आधार पर दायर किया गया था और निष्पादन की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी ने वादी संख्या 2 को कब्जा दे दिया है। न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है कि कब्जे के बाद निष्पादन न्यायालय के समक्ष कार्यवाही जारी रहेगी या नहीं और आगे वादी संख्या 2 को निष्पादन न्यायालय वादी संख्या 3 को कब्जा सौंपने का निर्देश देने वाला आदेश पारित कर सकता है, जिसके लिए वास्तविक आवश्यकता निर्धारित की गई थी।

13. इसी तरह का मुद्दा श्री राम गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय का विषय था और उस पर निर्णय लेते समय, न्यायालय ने दो मुद्दे तय किए थे, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है: -

"8. वर्तमान याचिका में इन तथ्यों के आधार पर निम्नलिखित दो मुद्दे विचाराधीन हैं: -

(1) क्या निर्मुक्त की गई संपत्ति का कब्जा देने का आवेदन अस्वीकार किया जा सकता है, जहां किरायेदार का आरोप है कि उसने कब्जा एक सह-मकान मालिक को सौंप दिया है, जिसकी आवश्यकता निर्धारित नहीं की गई थी और/या कब्जा किसी सह-मकान मालिक को नहीं सौंपा गया है जिसकी ज़रूरत निर्मुक्ति की कार्यवाही का विषय थी?

(2) क्या प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के बीच दुस्संधि है? पहले बिंदु को ध्यान

में रखते हुए अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों पर एक नजर डालते हैं।

अधिनियम की धारा 23 इस प्रकार है:-

बेदखली के आदेश का प्रवर्तन--(1) विहित प्राधिकारी किसी ऐसे किरायेदार को बेदखल करने के लिए जिसके विरुद्ध यथास्थिति, धारा 21 के अधीन या धारा 22 के अधीन अपील पर आदेश दिया जाए, या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के विरुद्ध जो वस्तुतः कब्जेदार पाया जाए, और मकान मालिक को कब्जा दिलाने के लिए ऐसे बल का प्रयोग कर सकता है अथवा करा सकता है जो आवश्यक हो।

(2) इस धारा के अधीन कार्यवाहियों में विहित प्राधिकारी का प्रत्येक आदेश अंतिम होगा।"

14. पहला मुद्दा वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक है और इसका उत्तर पूर्ववर्ती पैराग्राफ यानी पैराग्राफ संख्या 9 से 14 में दिया गया था, जो नीचे उद्धृत किया गया है:-

"9. धारा 23 वैधानिक दायित्व रखती है; (1) किसी भी किरायेदार को बेदखल करना, जिसके खिलाफ आदेश दिया गया है; या (2) वास्तविक कब्जे में पाए गए किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध; और (3) मकान मालिक को कब्जा दिलाएं। इस प्रावधान (धारा 23) में 'मकान मालिक' शब्द का सीमित अर्थ

लिया गया है। अधिनियम की धारा 3(ज) में 'मकान मालिक' को परिभाषित किया गया है। प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:-

इस अधिनियम में जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो:-

क.....

ख

ग... ..

घ.....

ज. किसी भवन के संबंध में, "मकान मालिक" का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसे उसका किराया देय हो अथवा यदि भवन किराए पर उठा होता तो देय होता, और इसमें खंड (छ) को छोड़कर, ऐसे व्यक्ति का अभिकर्ता या एटॉर्नी भी शामिल है।

10. खंड में दी गई 'मकान मालिक' की परिभाषा "जब तक कि प्रसंग में अन्यथा आवश्यक न हो" के अधीन है। स्वीकृत है कि निर्मुक्ति की मांग की गई थी और याचिकाकर्ता, मकान मालिक श्री राम गुप्ता की आवश्यकता के लिए इसे प्रदान किया गया था। निर्मुक्ति आवेदन में श्री राम चन्द्र गुप्ता की आवश्यकता निर्धारित नहीं की गई थी। वह सह-मकान मालिक था। धारा 23 में 'मकान मालिक' शब्द का अर्थ अधिनियम की धारा 21 में प्रयुक्त 'मकान मालिक' शब्द से लिया जाएगा। व्याकरणिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 23 के तहत 'मकान मालिक' शब्द की व्याख्या धारा 21(1)(क) के संदर्भ में की जानी चाहिए।

11. तमिलनाडु भवन (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम केवी मुथु बनाम अंगा मुथु अम्मल : एआईआर 1997 एससी 628 के एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया गया है कि परिभाषा खंड में 'जब तक प्रसंग की आवश्यकता न हो' शब्दों का प्रभाव पड़ता है। इसे अधिनियम के प्रसंग और योजना के साथ-साथ उस उद्देश्य के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए, जिसके लिए विधानमंडल द्वारा अधिनियम बनाया गया था। परिभाषा की व्याख्या करते समय यह ध्यान रखना होगा कि उस पर की गई व्याख्या प्रसंग के प्रतिकूल न हो। यह ऐसा होना चाहिए कि यह उस उद्देश्य की सहायता करेगा जिसे अधिनियम द्वारा पूरा करने की मांग की गई है। इस दृष्टि से जो अधिनियम के उद्देश्य को विफल करेगा या विफल करने की संभावना है, उसे अनदेखा किया जाना चाहिए और स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। यदि अधिनियम की धारा 23 के तहत मकान मालिकों के पूरे समूह को शामिल करने के लिए मकान मालिक को व्यापक अर्थ दिया जाता है, तो यह अधिनियम की धारा 21 के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा। अधिनियम की धारा 21 के तहत कार्यवाही में बेदखल किये गये किरायेदार को अधिनियम की धारा 24 पुनः प्रवेश का विकल्प देती है। अधिनियम का उद्देश्य तभी प्राप्त होगा जब निर्मुक्त आवास का कब्जा उस मकान मालिक को सौंप दिया जाएगा जिसके लिए इसे निर्मुक्त किया गया था।

12. सैयद असदुल्लाह काज़मी बनाम एडीजे: 1981 एआरसी 542 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय को अधिनियम की धारा 23 की

व्याख्या करने का अवसर मिला था। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या की गई है कि एक बार निर्मुक्ति आदेश अंतिम हो जाने के बाद इसे बाद की घटनाओं के आधार पर विहित प्राधिकारी द्वारा दोबारा नहीं खोला जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया:

स्पष्ट रूप से, अपीलीय प्राधिकारी के आदेश दिनांक 25 मार्च, 1997 के तहत परिसर के एक हिस्से को तीसरे प्रत्यर्थी के पक्ष में छोड़ दिया और अपीलकर्ता की किरायेदारी में शेष भाग को तब अंतिम रूप से स्वीकार किया गया, जब अपीलकर्ता द्वारा इसके विरुद्ध की गई कार्यवाही विफल हो गई। आदेश अंतिम हो जाने के कारण इसे प्रभावी पाया गया। ऐसा करने में, विहित प्राधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर या कानून के विपरीत काम नहीं कर रहा था.....आवास के एक हिस्से को निर्मुक्त करने के आदेश को राज कुमार सिन्हा की मृत्यु से पहले अंतिम रूप दे दिया गया था और इससे उपजे विवाद को दोबारा नहीं खोला जा सका।

13. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत अधिनियम की धारा 23 में प्रयुक्त 'मकान मालिक' शब्द को एक से अधिक मकान मालिक होने की स्थिति में समझा जाना चाहिए, जिस मकान मालिक की आवश्यकता के लिए निर्मुक्ति आवेदन की अनुमति दी गई थी। दूसरे शब्दों में, सह-मकान मालिक के मामले में मकान मालिक की 'जरूरत' शब्द का संबंध विशिष्ट मकान मालिक के साथ है। वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए यह स्वयंसिद्ध है कि विवादित

दुकान वर्तमान याचिकाकर्ता-मकान मालिक श्री राम गुप्ता की आवश्यकता के लिए निर्मुक्त की गई थी, जिसे, स्वीकार किया जाता है कि, किरायेदार ने प्रश्नगत दुकान का कब्जा नहीं दिया है। ऐसी स्थिति में विहित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता-मकान मालिक द्वारा अधिनियम की धारा 23 के तहत कब्जा देने के लिए दायर आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज करके कानून की प्रत्यक्ष त्रुटि की है कि कब्जा एक सह-मकान मालिक को सौंप दिया गया है।

14. उपरोक्त विचार को अधिनियम की धारा 24 से समर्थन मिलता है जो किरायेदार द्वारा पुनः प्रवेश का विकल्प प्रदान करता है। इसमें प्रावधान है कि जहां एक इमारत को मकान मालिक के पक्ष में निर्मुक्त कर दिया जाता है और किरायेदार को धारा 21 के तहत या धारा 22 के तहत अपील पर बेदखल कर दिया जाता है, और मकान मालिक किसी भी व्यक्ति को उस व्यक्ति से अलग रखता है जिसके कब्जे के लिए मकान मालिक के प्रतिनिधित्व के अनुसार, इमारत की आवश्यकता थी, या मकान मालिक एक महीने के भीतर या पर्याप्त कारण के लिए विहित प्राधिकारी द्वारा अनुमति दी गई तारीख से विस्तारित समय के भीतर उस पर कब्जा करने से चूक जाता है तो किरायेदार के पास पुनः प्रवेश का विकल्प होगा।"

15. श्री राम गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में, विवादित दुकान को याचिकाकर्ता-मकान मालिक की आवश्यकता के लिए निर्मुक्त कर दिया गया था और स्वीकृत है कि किरायेदार ने विवादित दुकान का कब्जा नहीं दिया है, जिस

पर अधिनियम की धारा 23 के तहत आवेदन दायर किया गया था जिसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि कब्ज़ा सह-मकान मालिक को सौंप दिया गया है। न्यायालय ने इसका मूल्यहास किया है और यह विचार किया है कि आवेदन को अस्वीकार करना कानून की प्रत्यक्ष त्रुटि है और 10,000/- रुपये की लागत के साथ याचिका को स्वीकार कर लिया है। कोर्ट ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि उसे अधिनियम की धारा 24 से भी समर्थन मिल रहा है जो ऐसे मामलों में किरायेदार द्वारा पुनः प्रवेश का विकल्प प्रदान करता है। इसका मतलब यह है कि, विचाराधीन संपत्ति उस व्यक्ति को दी गई होगी जिसके पक्ष में वास्तविक आवश्यकता निर्धारित की गई है।

16. मुद्दा संख्या 1 और उसके उत्तर के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले के तथ्य बिल्कुल समान हैं और न्यायालय का यह दृढ़ विचार है कि एक बार जब सह-वादी के पक्ष में वास्तविक आवश्यकता स्थापित की जाती है, तो निष्पादन न्यायालय को उस सह-मकान मालिक के पक्ष में संपत्ति के कब्जे के लिए आगे बढ़ने और आदेश पारित करने का पूरा अधिकार होता है, जिसके लिए वास्तविक आवश्यकता स्थापित की गई थी।

17. इसके आगे, आदेश पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि कानपुर जिला न्यायालय में हड़ताल थी, लेकिन दोनों पक्षकार उपस्थित थे और उन्हें सुनने के बाद, न्यायालय ने अनुच्छेद 227 संख्या

3373/2023 के तहत मामलों में पारित इस न्यायालय के दिनांक 28.03.2023 के निर्देश का अनुपालन करते हुए आदेश पारित किया है, इसलिए, निर्णायक साक्ष्य के साथ समर्थित नहीं होने वाले ऐसे आरोप को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी दुस्संधि के बारे में तर्क दिया है और प्रस्तुत किया है कि यह निर्णय सह-मकान मालिक और किरायेदार के बीच दुस्संधि के मामले में लागू होगा जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय तथ्यों के प्रति पर्याप्त रूप से सचेत था, इसलिए, मुद्दों को तय करते समय, मामले में शामिल कानूनी प्रश्न के संबंध में पहला मुद्दा तय किया है। मुद्दा संख्या 1 केवल उस मामले के तथ्यों पर आधारित था और इस न्यायालय के समक्ष विवाद को स्पष्ट रूप से आच्छादित करता है। दूसरा मुद्दा दुस्संधि से संबंधित है और वह भी याचिकाकर्ता-वादी संख्या 2 के बचाव में नहीं आ रहा है क्योंकि वह कानून का कोई अनुपात निर्धारित नहीं करता है। इसलिए याचिकाकर्ता की इस दलील में भी कोई दम नहीं है।

19. इसलिए, मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के तहत, याचिका में योग्यता नहीं है और तदनुसार खारिज की जाती है।

20. खर्च के लिए कोई आदेश नहीं है।

(2023) 7 ILRA 767

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

मामला अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 5480

सन् 2023

राज कुमार @ राजेंद्र श्रीवास एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

मोहम्मद कौकब अजीम रिजवी एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री चंद्र प्रकाश
कुशवाह, श्री रामेंद्र अस्थाना

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

इस प्रकार प्रस्तुत की गई जमानत बिक्री विलेख की फोटोकॉपी है - अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए - जमानत सीपीसी की धारा 145 के प्रावधानों के अनुसार स्वीकार की जा सकती है - जो जमानत के दायित्व के प्रवर्तन का प्रावधान करती है - सीपीसी की धारा 145 (II) बिक्री द्वारा संपत्ति की सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान करती है, जिसे सुरक्षा की सीमा तक बेचा जा सकता है - जमानत ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए जिसे आवश्यकता पड़ने पर बेचा जा सके - ऐसी जमानत स्वीकार नहीं की जा सकती - फोटोकॉपी को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में

स्वीकार किया जा सकता है - यह साक्ष्य का मामला नहीं है - लेकिन जमानत का मामला है - बिक्री विलेख की फोटोकॉपी को सीपीसी की धारा 145 के साथ अधिनियम, 1887 की धारा 17 के तहत जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. एस. कलादेवी बनाम वीएसआर सोमसुंदरम एवं अन्य; 2010(3) जेटी 610

2. इशितयाक हुसैन बनाम अशफाक हुसैन (सिविल पुनरीक्षण संख्या 132 सन् 1984)

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेंद्र अस्थाना को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है: -

“(ए) विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश एच.जे.एस., बांदा द्वारा एससीसी संशोधन संख्या 19/2019 (कानूनी प्रतिनिधि मोहम्मद कौकब अजीम रिजवी और एक अन्य के माध्यम से राजकुमार @ राजेंद्र श्रीवास जिनकी अब मृत्यु हो चुकी है) को खारिज करते हुए दिनांक 21.02.2023 को पारित निर्णयों और आदेशों एवं 12.12.2019 को विद्वान सिविल जज (जूनियर डिवीजन) बांदा द्वारा विविध वाद संख्या 49/70/2018 राज कुमार @ राजेंद्र श्रीवास बनाम मोहम्मद कौकब अजीम और एक अन्य में आवेदन 8(ग)

को खारिज करते हुए पारित किया गया आदेश और 05.09.2013 को विद्वान सिविल जज, जूनियर डिवीजन, बांदा द्वारा एक पक्षीय एस.सी.सी सूट नंबर 04/2011 मोहम्मद कौकब अजीम रिजवी और अन्य बनाम राज कुमार श्रीवास में सुनाए गए फैसले को रद्द करने के लिए।”

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि एक अपंजीकृत विक्रय पत्र को जमानत के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो उसे स्वीकार किया जाना चाहिए था और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद "सीपीसी" के रूप में संदर्भित) के आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन 4-सी के साथ प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 (इसके बाद 'अधिनियम, 1887' के रूप में संदर्भित) की धारा 17 के अनुपालन में प्रतिभूति के लिए दायर किया गया आवेदन 8-सी इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। दूसरे, किसी भी दस्तावेज़ की फोटोकॉपी भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (इसके बाद 'अधिनियम, 1872' के रूप में संदर्भित) के अनुसार द्वितीयक साक्ष्य है, इसलिए इसे जमानत के रूप में अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि निचली अदालत का यह निष्कर्ष कि विक्रय विलेख की फोटोकॉपी सुपाठ्य नहीं है, यह भी सही नहीं है क्योंकि वास्तव में विक्रय विलेख बहुत सुपाठ्य है, इसलिए निचली अदालत का निष्कर्ष गलत है। उन्होंने पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष इस निष्कर्ष पर आपत्ति जताई, लेकिन न्यायालय ने भी इस आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला

है। सीपीसी के आदेश 5 नियम 20 का कोई अनुपालन नहीं है, इसलिए, सीपीसी के प्रावधानों के अनुपालन के बिना न्यायालय एकपक्षीय कार्यवाही नहीं कर सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के फैसले एस. कलादेवी बनाम वी.आर. सोमसुंदरम और अन्य 2010(3) जेटी 610 और इशितयाक हुसैन बनाम अशफाक हुसैन (सिविल रिजर्वेशन संख्या 132 /1984), निर्णय दिनांक 30.01.1985 के मामलों पर भरोसा जताया है।

4. मैंने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों के साथ-साथ उन निर्णयों का भी अवलोकन किया है जिन पर भरोसा किया गया है।

5. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि इससे पहले सूट संख्या 04/2011 दायर किया गया था, जिसका फैसला दिनांक 05.09.2013 के निर्णय और डिक्री द्वारा एकपक्षीय रूप से किया गया था। उस पर, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन में प्रतिभूति जमा करने के लिए सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन 4-सी दिनांक 31.07.2018 को उसी दिनांक वाले आवेदन 8-सी के साथ प्राथमिकता दी है। कोर्ट ने उक्त आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि विक्रय पत्र की फोटोकॉपी लगाई गई है, जो पढ़ने योग्य एवं पंजीकृत नहीं है। उक्त आदेश के विरुद्ध, पुनरीक्षण संख्या 19/2019 दायर किया गया था, जिसे दिनांक 21.02.2023 के आदेश के माध्यम से

इस विशिष्ट निष्कर्ष के साथ खारिज कर दिया गया था कि अपंजीकृत बिक्री विलेख की फोटोकॉपी को जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

6. पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को मूल रूप से निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई है; पहला आधार यह है कि अपंजीकृत विक्रय पत्र को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, दूसरे, विक्रय विलेख की फोटोकॉपी सुपाठ्य है और इसे जमानत के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि इसे अधिनियम, 1872 के अनुसार द्वितीयक साक्ष्य माना जाता है।

7. अब, इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह तय करना है कि क्या पंजीकृत बिक्री विलेख की फोटोकॉपी को सीपीसी की धारा 145 के साथ पठित अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रयोजन के लिए जमानत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है या नहीं। त्वरित संदर्भ के लिए, अधिनियम, 1887 की धारा 17 नीचे उद्धृत की गई है:-

“17. सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुप्रयोग-

(1)[सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में निर्धारित प्रक्रिया, जहां तक उस संहिता या इस अधिनियम द्वारा अन्यथा प्रदान की गई है, लघु वाद न्यायालय में इसके द्वारा संज्ञेय सभी मुकदमों में और ऐसे मुकदमों से उत्पन्न होने वाली सभी कार्यवाहियों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया होगी:

बशर्ते कि एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री को रद्द करने के लिए या निर्णय की समीक्षा के लिए एक आवेदन, अपना आवेदन प्रस्तुत करने के किसी भी समय, डिक्री के तहत या निर्णय के अनुसरण में उससे देय राशि न्यायालय में जमा करेगा, या डिक्री के पालन या फैसले के अनुपालन के लिए ऐसी प्रतिभूति दे, जैसा न्यायालय ने इस संबंध में उसके द्वारा किए गए पिछले आवेदन पर निर्देशित किया हो।

(2) जहां कोई व्यक्ति उप-धारा (1) के प्रावधानों के तहत जमानतदार के रूप में उत्तरदायी हो गया है, सुरक्षा को नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 145 द्वारा प्रदान किए गए तरीके से प्राप्त किया जा सकता है।”

8. अधिनियम, 1887 की धारा 17 में प्रावधान है कि प्रतिभूति सीपीसी की धारा 145 में प्रदान किए गए तरीके से प्राप्त की जा सकती है, इसलिए, सीपीसी की धारा 145 भी नीचे उद्धृत की गई है: -

“145 जमानत के दायित्व का प्रवर्तन- जहां किसी व्यक्ति ने [प्रतिभूति प्रदान की है या गारंटी दी है]-

(ए) किसी डिक्री या उसके किसी भाग के पालन के लिए, या

बी) किसी डिक्री के निष्पादन में ली गई किसी भी संपत्ति की बहाली के लिए, या

(सी) किसी भी पैसे के भुगतान के लिए, या किसी मुकदमे में या उसके परिणामस्वरूप किसी कार्यवाही में न्यायालय के आदेश के तहत किसी भी व्यक्ति पर लगाई गई किसी शर्त की पूर्ति के लिए,

(ए) किसी डिक्री या उसके किसी भाग के पालन के लिए; या

(बी) किसी डिक्री के निष्पादन में ली गई किसी भी संपत्ति की बहाली के लिए; या

[डिक्री या आदेश को डिक्री के निष्पादन के लिए प्रदान किए गए तरीके से निष्पादित किया जा सकता है, अर्थात्: -

(सी) किसी भी पैसे के भुगतान के लिए, या किसी भी मुकदमे में या उसके परिणामस्वरूप किसी कार्यवाही में न्यायालय के आदेश के तहत किसी भी व्यक्ति पर लगाई गई किसी भी शर्त को पूरा करने के लिए, डिक्री या आदेश को डिक्री के निष्पादन के लिए प्रदान किए गए निम्नलिखित तरीके से निष्पादित किया जा सकता है:-

(i) यदि उसने स्वयं को उस सीमा तक उसके विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाया है;

(i) यदि उसने स्वयं को उस सीमा तक उसके विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बना दिया है; और

(ii) यदि उसने किसी संपत्ति को प्रतिभूति के रूप में प्रस्तुत किया है, तो प्रतिभूति की सीमा तक ऐसी संपत्ति की बिक्री करके;

(ii) यदि उसने कोई संपत्ति प्रतिभूति के रूप में दी है, तो प्रतिभूति की सीमा तक ऐसी संपत्ति की बिक्री करके;

(iii) यदि मामला खंड (i) और (ii) दोनों के अंतर्गत आता है, तो उन खंडों में निर्दिष्ट सीमा तक, और ऐसे व्यक्ति को धारा 47 के अर्थ में एक पक्ष माना जाएगा:] बशर्ते कि ऐसा नोटिस, जिसे न्यायालय प्रत्येक मामले में पर्याप्त समझता हो, ज़मानतकर्ता को दे दिया गया हो।

और ऐसे व्यक्ति को, अपील के प्रयोजनों के लिए, धारा 47 के अर्थ के अंतर्गत एक पक्ष माना जाएगा:

राज्य संशोधन

उत्तर प्रदेश- उत्तर प्रदेश राज्य में इसके लागू होने पर, मौजूदा धारा 145 के स्थान पर, निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया जाएगा:

बशर्ते कि ऐसा नोटिस, जिसे न्यायालय प्रत्येक मामले में पर्याप्त समझता हो, ज़मानतकर्ता को दे दिया गया हो।

"145 जहां कोई व्यक्ति ज़मानत के रूप में उत्तरदायी हो गया है या प्रतिभूति के रूप में कोई संपत्ति दी है,-

स्पष्टीकरण:-इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी डिक्री या आदेश के निष्पादन में संलग्न किसी भी संपत्ति की हिरासत के लिए

न्यायालय द्वारा सौंपा गया व्यक्ति खंड (बी) के अर्थ के भीतर ऐसी संपत्ति की बहाली के लिए जमानत के रूप में उत्तरदायी माना जाएगा।) "[उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 24/1954, धारा 2 और अनुसूची मद 5, प्रविष्टि 8 (30-11-1954 से)]।"

9. दोनों प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए सीपीसी की धारा 145 के प्रावधानों के अनुसार जमानत स्वीकार की जा सकती है, जो जमानत के दायित्व को लागू करने का प्रावधान करती है। और सीपीसी की धारा 145(II) बिक्री द्वारा संपत्ति की प्रतिभूति प्रदान करने का प्रावधान करती है, जिसे प्रतिभूति की सीमा तक बेचा जा सकता है, इसलिए, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि जमानत ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए थी, जिसे आवश्यकता पड़ने पर बेचा जा सके।

10. जहां तक वर्तमान विवाद का सवाल है, न्यायालय के समक्ष रखी गई जमानत बिक्री विलेख की फोटोकॉपी है, जिसके आधार पर संपत्ति की कोई बिक्री नहीं की जा सकती है, इसलिए ऐसी जमानत स्वीकार नहीं की जा सकती है।

11. जहां तक दूसरे तर्क का सवाल है कि दस्तावेज़ की फोटोकॉपी को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, यह साक्ष्य का मामला नहीं है, बल्कि जमानत का मामला है और यह इस प्रकार का होना चाहिए कि इसे किसी भी समय न्यायालय के आदेश के तहत या परिस्थितियों के अनुसार बेचा जा

सके। निश्चित रूप से विक्रय पत्र की फोटोकॉपी के आधार पर कोई भी विक्रय कार्यवाही निष्पादित नहीं की जा सकती, अतः विक्रय पत्र की फोटोकॉपी को जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय केवल द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकृति से संबंधित हैं, इसलिए, वर्तमान विवाद में उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं है।

12. ऊपर उल्लिखित तथ्यों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि बिक्री विलेख की फोटोकॉपी को सीपीसी की धारा 145 के साथ पठित अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रयोजन के लिए जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

13. तीसरा मुद्दा दस्तावेज़ की सुपाठ्यता का था। एक बार न्यायालय की राय है कि विक्रय विलेख की फोटोकॉपी को जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसलिए, न्यायालय के पास दस्तावेजों की सुपाठ्यता के बारे में अपना निष्कर्ष देने का कोई अवसर नहीं है।

14. जहां तक सीपीसी के आदेश 5 नियम 20 के बारे में अंतिम तर्क का सवाल है, कानून बहुत अच्छी तरह से स्थापित है कि नोटिस की कमी के मामले में, इसे खंडन के पहले ही समय याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया जाना चाहिए और वर्तमान मामले में, सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन में भी, ऐसा कोई दावा नहीं किया गया है, इसलिए, इस स्तर पर, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

15. मामले के ऐसे तथ्यों के तहत, याचिका में योग्यता नहीं है और तदनुसार खारिज की जाती है।

16. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 770

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

सिविल विविध पुनर्विलोकन आवेदन संख्या 24

सन् 2023

माता प्रसाद तिवारी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: रमा कान्त दीक्षित,
अशोक पांडे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

ए. सिविल विधि - पुनर्विलोकन - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 - अध्याय VII, नियम 1 - निर्णय की घोषणा - इस आधार पर पुनर्विलोकन कि चूंकि पूरा निर्णय खुली न्यायालय में नहीं सुनाया गया था, इसलिए यह कानूनी रूप से अस्थिर हो जाता है - माना गया: उपर्युक्त नियम में प्रावधान है कि किसी मामले की सुनवाई के बाद, निर्णय या तो तुरंत या किसी भविष्य की तारीख को सुनाया जा

सकता है। यह नियम प्रक्रिया का नियम है और किसी भी पक्ष को कोई मौलिक अधिकार प्रदान नहीं करता है। नियम में निर्णय को पूरी तरह से खुली न्यायालय में तुरंत नहीं सुनाए जाने के लिए कोई प्रतिकूल परिणाम निर्धारित नहीं किया गया है। उपरोक्त प्रक्रियात्मक नियम केवल प्रकृति में निर्देशात्मक है। कई बार न्यायालय खुले न्यायालय में निर्णय का सार और मामले का परिणाम सुनाते हैं, जबकि विस्तृत निर्णय चैंबर में सुनाया जाता है ताकि न्यायिक कार्य के हित में अन्य मामलों की सुनवाई और निर्णय के लिए समय का उपयोग किया जा सके। न्यायालय ने पुनर्विलोकन आवेदक की दलील को खारिज कर दिया। (पैरा 3, 4)

बी. सिविल विधि - पुनर्विलोकन - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 217 और 224 - अनुच्छेद 217, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति और शर्तें - अनुच्छेद 224, अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति - इस आधार पर पुनर्विलोकन कि विशेष अपील की सुनवाई दो न्यायाधीशों वाली डिवीज़न बेंच द्वारा की गई थी, जिनमें से एक को भारत के संविधान के अनुच्छेद 217 के तहत नियुक्त किया गया था, जबकि दूसरे न्यायाधीश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त किया गया था, इस प्रकार पीठ का गठन भारत के संविधान की भावना के खिलाफ था - माना गया: सभी न्यायाधीश उन्हें आवंटित न्यायिक कार्य करने और अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं, भले ही उन्हें जिस संवैधानिक प्रावधान के तहत नियुक्त किया

गया हो। जहां तक न्यायाधीशों की न्यायिक शक्तियाँ और कर्तव्यों का सवाल है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 217 के तहत नियुक्त न्यायाधीशों और अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त न्यायाधीशों के बीच कोई अंतर नहीं है। न्यायालय ने पुनर्विलोकन-आवेदक के दूसरे निवेदन में कोई तथ्य नहीं पाया और उसे खारिज कर दिया। (पैरा 10, 13, 17)

सी. सिविल विधि - मिसाल - किसी निर्णय का केवल अनुपात निर्णायक ही मिसाल के रूप में बाध्यकारी होता है, किसी मामले में पारित आदेश नहीं - पुनर्विलोकन - इस आधार पर पुनर्विलोकन कि रिट याचिका संख्या 4963 (एस/एस) 2015 में पारित निर्णय और आदेश, जिसमें एक भी दिन काम न करने वाले व्यक्तियों को नियमित कर्मचारी माना गया था और उन्हें सेवानिवृत्ति के बाद के भत्ते और पेंशन का भुगतान किया गया था, पर विशेष अपील पर निर्णय लेते समय डिवीजन बेंच द्वारा विचार नहीं किया गया - माना गया: उस मामले में पारित निर्णय तब तक मिसाल के रूप में बाध्यकारी नहीं होंगे जब तक कि उन व्यक्तियों को उस अवधि के लिए वेतन का भुगतान करने की पात्रता का प्रश्न तय नहीं किया जाता, जब तक कि उन निर्णयों में काम नहीं किया गया था, क्योंकि यह मिसाल के कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी निर्णय का केवल अनुपात निर्णायक ही मिसाल के रूप में बाध्यकारी होता है, किसी मामले में पारित आदेश नहीं। (पैरा 28)

खारिज। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

राजस्थान राज्य बनाम प्रकाश चंद, (1998) 1 एससीसी 1.

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. यह एक आवेदन है जिसमें इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा विशेष अपील संख्या 349/2022 को खारिज करते हुए पारित निर्णय और आदेश की समीक्षा की मांग की गई है।

2. समीक्षा-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत पहला आधार यह है कि निर्णय इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VII, नियम 1 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नहीं सुनाया गया था। उपर्युक्त नियम में निम्नानुसार प्रावधान है: -

“1. निर्णय की उद्घोषणा:-

(1) किसी मामले की सुनवाई के पश्चात् निर्णय तुरन्त या किसी आगामी तारीख को सुनाया जा सकेगा, जिसकी सूचना पक्षकारों के अधिवक्ताओं को दी जाएगी: परन्तु वाद-सूची में अधिसूचना पर्याप्त सूचना मानी जाएगी।

(2) जहां किसी मामले की सुनवाई दो या अधिक न्यायाधीशों द्वारा की जाती है और निर्णय सुरक्षित रखा जाता है, वहां उनका निर्णय या निर्णय उनमें से किसी एक द्वारा सुनाया जा सकेगा। यदि ऐसा कोई न्यायमूर्ति उपस्थित न हो तो ऐसा निर्णय या निर्णय किसी अन्य न्यायमूर्ति द्वारा सुनाया जा सकेगा।

(3) जहां किसी मामले की सुनवाई अकेले बैठे न्यायमूर्ति द्वारा की जाती है और निर्णय सुरक्षित रखा जाता है, वहां उसका निर्णय उसकी अनुपस्थिति में किसी अन्य न्यायमूर्ति द्वारा सुनाया जा सकता है।”

उपर्युक्त नियम का उद्देश्य यह है कि न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय पक्षकारों को ज्ञात होना चाहिए।

3 उपर्युक्त नियम में प्रावधान है कि किसी मामले की सुनवाई के बाद, निर्णय या तो तुरंत या किसी भविष्य की तिथि पर सुनाया जा सकता है, जिसकी सूचना पक्षकारों के अधिवक्ताओं को दी जाएगी। इसमें आगे प्रावधान है कि वाद-सूची में अधिसूचना को 'पर्याप्त सूचना' माना जाएगा। किसी मामले की सुनवाई के बाद, निर्णय या तो तुरंत या किसी भविष्य की तिथि पर सुनाया जा सकता है। यह नियम प्रक्रिया का नियम है और यह किसी भी पक्ष को कोई मूल अधिकार प्रदान नहीं करता है। यह नियम पूरे निर्णय को तुरंत खुली अदालत में न सुनाए जाने के किसी भी प्रतिकूल परिणाम का प्रावधान नहीं करता है। हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में, उपर्युक्त प्रक्रियात्मक नियम केवल प्रकृति में निर्देशात्मक है।

4 निर्णय सामान्यतः खुली अदालत में सुनाए जाते हैं। कुछ मामलों में, जहाँ निर्णय सुनाने में बहुत अधिक समय लगने की संभावना होती है, निर्णय सुरक्षित रख लिए जाते हैं। यह भी एक सामान्य प्रथा है कि कई बार न्यायालय निर्णय का सार और मामले का परिणाम खुली

अदालत में सुनाते हैं, और विस्तृत निर्णय चैंबर में सुनाए जाते हैं ताकि मंच पर काम करने के समय का उपयोग किया जा सके, जो कि पूरा निर्णय सुनाने में खर्च होता, न्यायिक कार्य के हित में कुछ अन्य मामलों की सुनवाई और निर्णय करके। वर्तमान मामले में भी, निर्णय का सार और अपील का परिणाम खुली अदालत में सुनाया गया और विस्तृत निर्णय बाद में चैंबर में सुनाया गया।

5. इसलिए, हम समीक्षा-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील में दम नहीं पाते कि चूंकि पूरा फैसला खुली अदालत में नहीं सुनाया गया था, इसलिए यह कानून की नजर में टिकने लायक नहीं है। इसलिए, हम समीक्षा-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की पहली दलील को खारिज करते हैं।

6. समीक्षा-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला आधार यह है कि विशेष अपील की सुनवाई एक खंडपीठ द्वारा की गई थी, जिसमें दो न्यायमूर्ति शामिल थे, जिनमें से एक को भारत के संविधान के अनुच्छेद 217 के तहत नियुक्त किया गया था, जबकि दूसरे न्यायमूर्ति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त किया गया था और पीठ का गठन भारत के संविधान की भावना के खिलाफ था।

7. विशेष अपील के समर्थन में अपनी दलीलें पेश करते समय समीक्षा-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को खंडपीठ के गठन के बारे में पता था और फिर भी उन्होंने विशेष अपील के समर्थन में अपनी दलीलें पेश करना पसंद

किया और उन्होंने ऐसा निर्णय पाने का मौका लिया जो अपीलार्थी के पक्ष में हो। विशेष अपील खारिज होने के बाद, समीक्षा आवेदन में उनके द्वारा यह आधार पहली बार लिया गया है। यह स्थापित कानून है कि समीक्षा आवेदन में पहली बार कोई नया आधार नहीं उठाया जा सकता।

8. हालाँकि, समीक्षा-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि उन्होंने कई अन्य मामलों में भी यही आधार लिया है और किसी भी मामले में इस पर निर्णय नहीं हुआ है, इसलिए हम इस दलील के गुण-दोष पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

9. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 217 और 224 के प्रासंगिक प्रावधान निम्नानुसार हैं: -

“217. उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति की नियुक्ति और पद की शर्तें।—(1) उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायमूर्ति को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुहर सहित वारंट द्वारा नियुक्त करेगा और वह अतिरिक्त या कार्यवाहक न्यायमूर्ति के मामले में, अनुच्छेद 224 में दिए गए अनुसार, और किसी अन्य मामले में, बासठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक पद धारण करेगा:

बशर्ते कि -

* * *

224. अपर और कार्यवाहक न्यायाधीशों की नियुक्ति।—(1) यदि किसी उच्च न्यायालय के कामकाज में किसी अस्थायी वृद्धि के कारण या उसमें कार्य बकाया

होने के कारण राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि उस न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में तत्समय वृद्धि की जानी चाहिए तो राष्ट्रपति सम्यक् रूप से अर्हित व्यक्तियों को उस न्यायालय के अपर न्यायमूर्ति के रूप में दो वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के लिए नियुक्त कर सकेगा, जितनी वह विनिर्दिष्ट करे।

(2) जब मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायमूर्ति अनुपस्थिति के कारण या किसी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो या अस्थायी रूप से मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है, तब राष्ट्रपति किसी सम्यक् रूप से अर्हित व्यक्ति को उस न्यायालय के न्यायमूर्ति के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर सकेगा, जब तक कि स्थायी न्यायमूर्ति अपना कार्यभार नहीं संभाल लेता है।

(3) किसी उच्च न्यायालय के अपर या कार्यवाहक न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त कोई भी व्यक्ति बासठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् पद धारण नहीं करेगा।”

10. उपर्युक्त अनुच्छेदों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुच्छेद 217 में भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के अंतर्गत नियुक्त न्यायाधीशों का उल्लेख है तथा यह केवल उनके कार्यकाल के मामले में उनमें अंतर

करता है, तथा यह प्रावधान करता है कि अतिरिक्त या कार्यवाहक न्यायमूर्ति अनुच्छेद 224 में निहित प्रावधान के अनुसार पद धारण करेंगे तथा अन्य न्यायमूर्ति 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक पद धारण करेंगे।

11. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 219 में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान के लिए निम्नलिखित प्रावधान हैं: -

"219. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान।- उच्च न्यायालय का न्यायमूर्ति नियुक्त होने वाला प्रत्येक व्यक्ति, अपना पद ग्रहण करने से पहले, राज्य के राज्यपाल या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष, तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा।"

12. मुख्य न्यायाधीशों सहित उच्च न्यायालयों के सभी न्यायाधीशों द्वारा ली जाने वाली शपथ का प्रारूप इस प्रकार है: -

"मैं, ए.बी., _ _ _ के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति (या न्यायाधीश) नियुक्त हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूँगा, मैं सम्यक रूप से और निष्ठापूर्वक तथा अपनी सर्वोत्तम योग्यता, ज्ञान और विवेक के साथ बिना किसी भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के अपने पद के

कर्तव्यों का पालन करूँगा तथा मैं संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखूँगा।"

13. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त न्यायाधीशों द्वारा शपथ लेने और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कोई अलग से प्रावधान नहीं है और उनके लिए शपथ का कोई अलग प्रारूप निर्धारित नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त न्यायमूर्ति भी अनुच्छेद 217 के तहत नियुक्त न्यायमूर्ति की तरह पक्षपात, स्नेह या द्वेष के भय के बिना विधिवत और निष्ठापूर्वक तथा अपनी सर्वोत्तम योग्यता, ज्ञान और विवेक के अनुसार अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने की शपथ लेते हैं। न्यायमूर्ति के पद का प्राथमिक कर्तव्य उसे सौंपे गए मामलों का निर्णय करके वादियों को न्याय प्रदान करना है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त न्यायमूर्ति इस कर्तव्य को निभाने के लिए उतनी ही शपथ लेता है, जितनी कि अनुच्छेद 217 के तहत नियुक्त न्यायमूर्ति।

14. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय V के नियम 1 में प्रावधान है कि "न्यायमूर्ति अकेले या ऐसे खंड न्यायालयों में बैठेंगे, जो समय-समय पर गठित किए जा सकते हैं और ऐसा कार्य करेंगे, जो उन्हें मुख्य न्यायमूर्ति के आदेश द्वारा या उनके निर्देशों के अनुसार आवंटित किया जा सकता है।"

15. राजस्थान राज्य बनाम प्रकाश चंद, (1998) 1 एससीसी 1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि: -

" उच्च न्यायालय का प्रशासनिक नियंत्रण केवल उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के पास होता है और उच्च न्यायालय के न्यायिक और प्रशासनिक दोनों तरह के कामों को वितरित करना उनका विशेषाधिकार है। केवल उनके पास ही यह तय करने का अधिकार और शक्ति है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ किस तरह गठित की जाएँ: किस न्यायमूर्ति को अकेले बैठना है और किन मामलों की सुनवाई उन्हें और करनी है, साथ ही कौन से न्यायमूर्ति खण्ड न्यायपीठ का गठन करेंगे और उन न्यायपीठों को क्या काम करना है।"

16. माननीय मुख्य न्यायमूर्ति रोस्टर के मास्टर हैं और उन्हें ही अलग-अलग मामलों या मामलों की श्रेणी को अलग-अलग न्यायाधीशों को सौंपने का अधिकार है। सभी न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि उन्हें आवंटित न्यायिक कार्य करें और उसी के अनुसार अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करें, भले ही उन्हें जिस संवैधानिक प्रावधान के तहत नियुक्त किया गया हो।

17. जहां तक न्यायाधीशों की न्यायिक शक्तियों और कर्तव्यों का संबंध है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 217 के तहत नियुक्त न्यायाधीशों और अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त न्यायाधीशों के बीच कोई अंतर नहीं है। यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के तहत नियुक्त न्यायमूर्ति इस कारण से किसी मामले का फैसला नहीं करता है कि उसे उस अनुच्छेद के तहत नियुक्त किया गया है, तो वह अपने संवैधानिक कर्तव्यों के पालन में

विफल होगा और वह अपनी शपथ का अनादर करेगा।

18. इसलिए, हम समीक्षा आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के दूसरे तर्क में कोई तथ्य नहीं पाते हैं और हम उसे अस्वीकार करते हैं।

19. अब हम मामले के गुण-दोष पर विचार करने जा रहे हैं ताकि यह पता लगाया जा सके कि चुनौती दिए गए फैसले में अभिलेख के आधार पर कोई त्रुटि तो नहीं है, जो कि किसी फैसले की समीक्षा के लिए बुनियादी आवश्यकता है। समीक्षा-आवेदक को वर्ष 1986 में संग्रह अमीन के रूप में नियुक्त किया गया था। यद्यपि उसके साथ नियुक्त सभी व्यक्ति नियमित पदों पर नियुक्त किए गए थे, लेकिन उन्हें मौसमी संग्रह अमीन माना जाता था। चयनित उम्मीदवारों में से एक ने रिट याचिका संख्या 4031 (एस/एस) वर्ष 2001 दायर की, जिसे दिनांक 19.08.2006 के आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई और उस रिट याचिका के याची को नियमित संग्रह अमीन के रूप में काम करने की अनुमति देने के लिए परमादेश रिट जारी की गई।

20. समीक्षा-आवेदक ने रिट याचिका संख्या 738 (एस/एस) 2012 दायर की, जिसका निपटारा दिनांक 07.02.2012 के आदेश के माध्यम से किया गया, जिसमें प्रत्यर्थियों को निर्देश दिया गया कि वे उसे रिट याचिका संख्या 4031 (एस/एस) 2001 में पारित दिनांक 19.08.2006 के आदेश का लाभ दें, उसे दिनांक 07.02.2002 से दिनांक

13.11.2012 की अवधि के लिए वेतन का भुगतान करें और उसे पेंशन का भुगतान करें।

21. उपरोक्त आदेश दिनांक 07.02.2012 के अनुपालन में उप-जिलाधिकारी गौरीगंज ने दिनांक 18.08.2012 को आदेश पारित कर समीक्षा-आवेदक को नियमित संग्रह अमीन के पद पर सेवा में आने की अनुमति प्रदान की। समीक्षा-आवेदक दिनांक 30.11.2012 को सेवानिवृत्त हो चुका है।

22. समीक्षा आवेदक ने दिनांक 07.02.2012 के आदेश का पालन न करने का आरोप लगाते हुए अवमानना याचिका दायर की और अवमानना याचिका को यह दर्ज करने के बाद खारिज कर दिया गया कि रिट न्यायालय के आदेश का अनुपालन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि समीक्षा आवेदक ने उसके द्वारा दायर अवमानना याचिका को खारिज करने वाले आदेश को चुनौती नहीं दी।

23. इसके बाद समीक्षा आवेदक ने रिट याचिका संख्या 738 (एस/एस) वर्ष 2012 में पारित दिनांक 07.02.2012 के आदेश के अनुसार अपने वेतन के निर्धारण के लिए रिट याचिका संख्या 6155 (एस/एस) वर्ष 2015 दायर की। माननीय एकल न्यायमूर्ति ने रिट याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि याची का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसने दिनांक 27.08.2012 से दिनांक 30.11.2012 तक और दिनांक 07.02.2012 से दिनांक 26.08.2012 तक नियमित संग्रह अमीन के रूप में काम नहीं किया था और इसलिए वह "काम नहीं तो

वेतन नहीं" के सिद्धांत पर उपरोक्त अवधि के लिए वेतन के भुगतान का हकदार नहीं था। याची की सेवाएं दिनांक 27.08.2012 के आदेश द्वारा नियमित कर दी गई थीं और उसने मात्र 3 महीने और 5 दिन की अवधि के लिए नियमित आधार पर काम किया था तथा उसने पेंशन प्राप्त करने का हकदार बनने के लिए आवश्यक 10 वर्ष की अर्हकारी सेवा पूरी नहीं की थी।

24. उक्त आदेश को चुनौती देने वाली विशेष अपील को खारिज कर दिया गया था क्योंकि खण्ड न्यायपीठ का भी यह विचार था कि याची "कोई काम नहीं तो कोई वेतन नहीं" के सिद्धांत को लागू करते हुए उस अवधि के लिए वेतन प्राप्त करने का हकदार नहीं था, जब उसने काम नहीं किया था और उसने नियमित संग्रह अमीन के रूप में अर्हक सेवा पूरी नहीं की थी।

25. समीक्षा आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रिट याचिका संख्या 4963 (एस/एस) 2015, राजेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में पारित दिनांक 03.08.2017 के निर्णय एवं आदेश तथा रिट याचिका संख्या 619 (एस/एस) 2014, मोहम्मद उस्मान अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में पारित दिनांक 27.11.2018 के निर्णय एवं आदेश में, जिन व्यक्तियों ने एक भी दिन काम नहीं किया था, उन्हें रिट याचिका संख्या 4031 (एस/एस) वर्ष 2001 में पारित दिनांक 19.08.2006 के निर्णय एवं आदेश का लाभ दिया गया जिसके तहत याची की सेवाओं को दिनांक 05.06.1986 से

नियमित माना गया था और उन्हें सेवानिवृत्ति के बाद के भत्ते और पेंशन का भुगतान किया गया था, और विशेष अपील पर निर्णय करते समय खण्ड न्यायपीठ द्वारा इस पर विचार नहीं किया गया था।

26. यद्यपि, समीक्षा आवेदन के ज्ञापन में आधार-डी में यह उल्लेख किया गया है कि उपरोक्त निर्णय पहले से ही रिकार्ड में थे, तथापि यह सही रूप से नहीं कहा गया है कि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रस्तुतिकरण के दौरान उन निर्णयों का उल्लेख किया था।

27. रिट याचिका या अपील ज्ञापन के साथ केस-लॉ की प्रतियों को संलग्न करना आवश्यक नहीं है। किसी भी मामले में, किसी मामले का फैसला करते समय, न्यायालय को पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों और उनके द्वारा अपने तर्कों के समर्थन में न्यायालय के समक्ष रखे गए निर्णय-विधि पर विचार करना आवश्यक है। न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह यह पता लगाने के लिए पूरे अभिलेख को देखे कि याची या अपीलार्थी ने किसी निर्णय-विधि की प्रति अभिलेख पर लाई है या नहीं, भले ही विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों के दौरान उस पर भरोसा न किया हो।

28. भले ही राजेंद्र प्रसाद तिवारी और मो. उस्मान अंसारी को रिट याचिका संख्या 4031 (एस/एस) 2001 में पारित दिनांक 19.08.2006 के निर्णय और आदेश का लाभ प्रदान किया गया हो, यद्यपि उन्होंने एक भी दिन काम नहीं किया था, उनके मामलों में

पारित निर्णय तब तक बाध्यकारी मिसाल नहीं होंगे जब तक कि उन व्यक्तियों की उस अवधि के लिए वेतन का भुगतान करने की पात्रता का प्रश्न, जिसमें उन्होंने काम नहीं किया था, उन निर्णयों में तय नहीं किया गया हो, क्योंकि मिसालों का यह सुस्थापित कानून है कि केवल निर्णय का अनुपात ही मिसाल के रूप में बाध्यकारी होता है, न कि किसी मामले में पारित आदेश।

29. उपर्युक्त कारणों से, हमारा विचार है कि विशेष अपील को खारिज करने वाले दिनांक 17.01.2023 के निर्णय और आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, और न ही वह त्रुटि है जो अभिलेख को देखने पर स्पष्ट दिखाई देती है।

30 समीक्षा आवेदन में कोई दम नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है। हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 7 ILRA 776

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.07.2023

समक्ष

माननीय श्रीमती मंजू रानी चौहान

रिट-सी संख्या 1562 सन् 2020

रामविलास

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अनूप कुमार मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

स्वीकृत। (ई-5)

क. आपराधिक विधि - शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 17(3) और 17(7) - लाइसेंसों का निलंबन और निरस्तीकरण - यदि अपील या अन्यथा दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाता है, तो निलंबन या निरस्तीकरण शून्य हो जाएगा - शस्त्र लाइसेंस का निरस्तीकरण - आपराधिक मामले का लंबित होना या यह आशंका कि याचिकाकर्ता भविष्य में किसी अन्य आपराधिक मामले में शामिल हो सकता है, शस्त्र अधिनियम, 1959 के तहत शस्त्र लाइसेंस को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता, जब तक कि सक्षम प्राधिकारियों द्वारा यह स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जाता कि आग्नेयास्त्र के कब्जे से सार्वजनिक शांति को खतरा है और यह मानव सुरक्षा के लिए खतरा है। (पैरा 10)

बी. आर्म्स एक्ट, 1959, धारा 17(3), 17(7) -शस्त्र लाइसेंस रद्द करना - याचिकाकर्ता केवल एक आपराधिक मामले में शामिल था और उसे अंततः 23.07.2021 के आदेश द्वारा बरी कर दिया गया। बरी करने के आदेश का अवलोकन आग्नेयास्त्र के उपयोग को नहीं दर्शाता है। जैसा कि धारा 17(7) के तहत प्रावधान किया गया है, यदि अपील पर या अन्यथा दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाता है, तो निलंबन या निरस्तीकरण शून्य हो जाएगा। न्यायालय ने माना कि बरी होने के बाद, रद्द करने के आदेश का मूल आधार ही समाप्त हो गया; याचिकाकर्ता अपने आग्नेयास्त्र लाइसेंस की बहाली का हकदार है। (पैरा 9, 15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. इंद्र प्रताप @ राम प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रमुख सचिव गृह लखनऊ एवं अन्य, विविध एकल संख्या 28781/2017, दिनांक 15.02.2019 को निर्णीत
2. राम प्रसाद बनाम कमिश्नर एवं अन्य, रिट-सी सं. 56378/2006, दिनांक 07.02.2020 को निर्णीत
3. अजय जयवंत भोसले बनाम कमिश्नर ऑफ पुलिस एवं अन्य, आपराधिक रिट याचिका संख्या 594/2013, दिनांक 15.07.2016 को निर्णीत
(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अनुप कुमार मिश्रा और सभी प्रतिवादीगण- राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।
2. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा वाद संख्या -377/2019 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या सी 201918000000377) में प्रतिवादी संख्या -2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.08.2019 के साथ - साथ प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.12.2018 में अपील संख्या - 225/ 2017 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या डी 201718210225) को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।
3. मामले की जड़ यह है कि याचिकाकर्ता जिसके पास आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति क्रमांक

5010 था, को दिनांक 12.07.2012 को कारण बताओ सूचना इस आधार पर दिया गया था कि याचिकाकर्ता के खिलाफ मामला अपराध संख्या 217 सन 2012 में धारा 302 आई.पी.सी. के आधार पर थाना- निधौली कला, जनपद -एटा, के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। याचिका कर्ता के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या -105/2011 में धारा 147,148,149,323,504,506,324 आई.पी.सी., थाना- निधौली कला, जिला एटा के तहत एक और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें जाँच के बाद अन्तिम रिपोर्ट लगाई गई थी, जो विवेचना अधिकारी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 02.05.2017 को, याचिकाकर्ता ने उक्त बताओ नोटिस दिनांक 12.07.2012 का जवाब प्रस्तुत किया गया कि उसे पुलिस पार्टी द्वारा उक्त मामले में झूठा फँसाया गया था और इसलिए, आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति रद्द करने के लिए शुरु की गई कार्यवाही को रद्द किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार करने के बाद प्रतिवादी क्रमांक 3 ने प्रतिवादी क्रमांक 5 को नये सिरे से रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया।

प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दिनांक 01.08.2017 की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार किये बिना, आपराधिक मामला लम्बित होने के आधार पर दिनांक 03.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति रद्द कर दिया गया। उसके खिलाफ उक्त आदेश के विरुद्ध अपील भी प्रतिवादी क्रमांक 2 द्वारा दिनांक 02.08.2019 के

आदेश द्वारा खारिज कर दी गई है इसलिए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि वर्तमान को छोड़कर आपराधिक मामला, अपराध क्रमांक 217 सन 2012 के अनुसार, याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अन्य मामला दर्ज नहीं है और न ही उसे उस समय कभी भी अपराधिक मामले में दोषी पाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि इस तथ्य पर विचार किये बिना कि मुकदमे के दौरान, मृतक के बेटे ने विचारण न्यायालय के समक्ष बयान दिया है कि उसके पिता को याचिकाकर्ता द्वारा गोली नहीं मारी गई है और बैलिस्टिक रिपोर्ट भी यह साबित नहीं करती है कि आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल किया गया था। याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति रद्द कर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को पहले ही आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया है, जिसके आधार पर आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति रद्द कर दिया गया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा केवल इसलिए कि एक आपराधिक मामला लम्बित है और वर्तमान मामले में शस्त्र अधिनियम के धारा 17 के प्रावधान लागू नहीं होगा क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामले में पहले ही बरी कर दिया गया है। अतः आक्षेपित आदेश निरस्त किये जायें। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **अजय जयन्त भोंसले बनाम पुलिस आयुक्त और अन्य¹**; बाम्बे उच्च न्यायालय के फैसले में भरोसा जताया है।

6. इसके विपरीत विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक बार याचिकाकर्ता को आपराधिक मामले में फँसा हुआ पाया गया तो जिला मजिस्ट्रेट के लिए अपनी संतुष्टि दर्ज करना पर्याप्त था। हालांकि, विद्वान स्थायी अधिवक्ता इस तत्वात्मक स्थिति पर विवाद नहीं कर सके कि याचिकाकर्ता को उक्त आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया है।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं और बार में दी गई उनकी दलीलों को सुनने और पत्रावली का अवलोकन करने के बाद, मैंने पाया कि अपीलीय प्राधिकारी उक्त आपराधिक मामले भी याचिकाकर्ता के पक्ष में पारित आदेश और बरी के फैसले पर विचार करने में विफल रहे थे और अन्यथा भी मुझे लगता है कि उस आपराधिक मामले को छोड़कर जिसमें याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया था, उसके खिलाफ ऐसा कोई मामला दर्ज नहीं है और इसलिए, कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता का आपराधिक इतिहास था।

8. शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 17(3) और 17(7) के अवलोकन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 17(3) का एक भी आधार याचिकाकर्ता के इस मामले में लागू नहीं होता है, निर्विवाद रूप से याचिकाकर्ता केवल एक आपराधिक मामले में शामिल था और उत्तरदाता द्वारा यह दिखाने के लिए कोई भी सामग्री पत्रावली पर नहीं ला सके कि याचिकाकर्ता वर्तमान मामले को छोड़कर किसी अन्य आपराधिक मामले में

शामिल था, यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि एक मात्र आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता को पहले ही संबंधित अदालत द्वारा बरी कर दिया गया है। शस्त्र अधिनियम, 1959² की धारा 17(7) के प्रावधान के अनुसार जो यह प्रावधान करता है कि यदि अपील या अन्यथा दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाता है, तो निलम्बन या निरस्त्रीकरण शून्य हो जायेगा। “अधिनियम, 1959,” की धारा 17(3) और 17(7) को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है: -

1 आपराधिक रिट याचिका संख्या - 594
सन 2013, निर्णित दिनांक 15.07.2016

“ धारा 17(3) - अनुज्ञापन प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा अनुज्ञप्ति को ऐसी कालावधि के लिए, जैसी वह ठीक समझे, निलम्बित कर सकेगा या अनुज्ञप्ति कर सकेगा,-

(1) यदि अनुज्ञापन प्राधिकारी का समाधान हो जाए कि अनुज्ञप्ति का धारक; किसी आयुध या गोलाबारूद को अर्जित करने, अपने कब्जे में रखने या वहन करने से इस अधिनियम या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा प्रतिषिद्ध है या विकृव-चित का है या इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति के लिए किसी कारण से अयोग्य है; अथवा

(2) यदि अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुज्ञप्ति को निलंबित करना या प्रतिसंकेत करना लोक शान्ति को सुरक्षा के लिए या लोक क्षेत्र के लिए आवश्यकता समझे; अथवा

(3) यदि अनुज्ञप्ति तात्त्विक जानकारी दबाकर या उसके लिए आवेदन करने के समय अनुज्ञप्ति के धारक द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी गई गलत जानकारी के आधार पर अभिप्राप्त की गई थी; अथवा

(4) यदि अनुज्ञप्ति को शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन किया गया है; अथवा

(5) यदि अनुज्ञप्ति का धारक ; अनुज्ञप्ति के परिदान की अपेक्षा करने वाली उपधारा(1) के अधीन सूचना का अनुपालन करने में असफल रहा है।”

“ धारा 17(7) वह न्यायालय जो किसी अनुज्ञप्ति के धारक को इस अधिनियम के या तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन किसी अपराध का सिद्ध दोष ठहरावे, उस अनुज्ञप्ति को निलम्बित भी कर सकेगा:

परन्तु यदि दोषसिद्धि अपील में या अन्यथा अपास्त कर दी जाए तो निलम्बन या प्रतिसंहरण शून्य हो जाएगा।”

9. वर्तमान मामले के तथ्यों में यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि “ अधिनियम,1959” की धारा 17(3) में उल्लिखित कोई भी आधार याचिकाकर्ता के मामले में लागू नहीं है। याचिकाकर्ता केवल एक आपराधिक मामले में शामिल था और अन्ततः 23.07.2021 के आदेश द्वारा बरी कर दिया था , जैसा कि “अधिनियम ,1959” की

धारा 17(7) के तहत प्रदान किया था, यदि अपील या अन्यथा दोष सिद्धि को रद्द कर दिया जाता है , तो निलम्बन या निरस्त्रीकरण शून्य हो जायेगा, इसलिए उस मामले , याचिकाकर्ता संबंधित प्राधिकारी द्वारा अपने आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति की बहाली का हकदार है , उपरोक्त के मददेनजर , लागू आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है।

10. यह कहना निः संदेह है कि केवल आपराधिक मामले का लंबित होना या यह आशंका कि याचिकाकर्ता भविष्य में किसी अन्य आपराधिक मामले में शामिल हो सकता है , शस्त्र अधिनियम , 1959 के तहत हथियार आज्ञप्ति रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। जब तक कि सक्षम प्राधिकारियों द्वारा स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जाता कि आग्नेयास्त्र के कब्जे से सार्वजनिक शान्ति को खतरा है और यह मानव को सुरक्षा के लिए खतरा है । सक्षम प्राधिकारी आक्षेपित आदेशों में ऐसे किसी भी निष्कर्ष को दर्ज करने में विफल रहते हैं।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दायर जबाबी हलफनामे में , इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता को पहले ही उस आपराधिक मामले से बरी कर दिया गया है । याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को इस दलील पर विवाद करने के लिए पत्रावली पर कुछ भी नहीं है कि उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और यदि याचिकाकर्ता को आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति रखने की अनुमति दी जाती है , तो सार्वजनिक शान्ति , बचाव और सुरक्षा के लिए खतरनाक नहीं होगा।

12. इस न्यायालय का मानना है कि आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति को रद्द करने के लिए, एक निश्चित निष्कर्ष होना चाहिए कि आज्ञप्ति धारी के पास आग्नेयास्त्र का कब्जा सार्वजनिक शान्ति और सार्वजनिक सुरक्षा को खतरे में डाल रहा था। उपरोक्त को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा **राम प्रसाद बनाम आयुक्त और अन्य**³ के मामले में निपटाया गया है।

13. इस न्यायालय ने यह भी देखा कि राज्य सरकार ने दिशानिर्देश जारी किये थे जो सभी जिला मजिस्ट्रेटों के आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति रद्द करने / निरस्त करने के मामलों में इसका पालन करने के लिए प्रसारित किये गये थे। दिशानिर्देशों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया:-

"स्पीड पोस्ट फैक्स/ई-मेल

संख्या: 1/2018/जन-102-छ पु0-5-
2018-408/17

प्रेषक-

भगवान स्वरूप

सचिव

उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

3.रिट सी संख्या 56378 सन 2006 निर्णित
दिनांक 07.02.2020

समस्त जिला मजिस्ट्रेट

उत्तर प्रदेश।

गृह (पुलिस) लखनऊ दिनांक:

अनुभाग- 5 07 फरवरी 2018

विषय:- व्यक्तिगत शस्त्र लाइसेंसों के
अनुज्ञप्तियों में परिवर्तन परिवर्धन, उनके

निलम्बन एवं प्रतिसंहरण के संबंध में, दिशा
निर्देश।

महोदय,

आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 17 में अनुज्ञप्तियों में परिवर्तन-परिवर्धन, उनके निलम्बन एवं प्रतिसंहरण के संबंध में व्यवस्था दी गयी है। उपरोक्त के अतिरिक्त मा0 सर्वोच्च न्यायालय एवं मा० उच्च न्यायालय द्वारा भी समयकश पर तत्सम्बन्ध में विस्तृत आदेश पारित किये गये हैं। गृह (पुलिस) अनुभाग-5 के शासनादेश संख्या-271 आर/छ:-पु0-5-91-573/01, दिनांक 25.02.1991 द्वारा आग्नेयास्त्र लाइसेंसों का निलम्बन निरस्तीकरण व शासनादेश संख्या-3017 आर/छ:-पु0-5-99, दिनांक 15.05.1999 द्वारा व्यक्तिगत शस्त्र लाइसेंस (आर) का दुरुप्रयोग रोकने के संबंध में निर्देश दिये गये हैं।

2. उक्त के दृष्टिगत मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि व्यक्तिगत शस्त्र लाइसेंसों के अनुज्ञप्तियों में परिवर्तन-परिवर्धन, उनके निलम्बन एवं प्रतिसंहरण के संबंध में निम्नानुसार कार्यवाही सुनिश्चित किया जाय-

(1) जिला मजिस्ट्रेट/लाइसेंसिंग प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा अग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति का सुनिश्चित कालावधि के लिए निलम्बित कर सकता है या अनुज्ञप्ति को प्रतिसंहरित कर सकता है।

(2) उपरोक्त निलम्बन/प्रतिसंहरण तभी किया जाएगा जब जिला मजिस्ट्रेट/लाइसेंसिंग प्राधिकारी को यह समाधान हो जाए कि-

(क) अनुज्ञप्तिधारी किसी विधि के अंतर्गत आयुध रखने हेतु प्रतिशिद्ध है या विकशतचित है या किन्ही अन्य कारणों से आयुध अधिनियम मे अनुज्ञप्ति के अयोग्य है, अथवा

(ख) जब जिला मजिस्ट्रेट लाइसेंसिंग प्राधिकारी लोकशांति की सुरक्षा या "लोकक्षेत्र" के लिए अनुज्ञप्ति को निलम्बित या प्रतिसंहरित करने के युक्तियुक्त आधार पाता है, आवश्यक समझता है अथवा

3. रिट-सी संख्या 56378 सन 2006 निर्णित दिनांक 07.02.2020

(ग) जबकि यह प्रपात हो कि अनुक्रमितजनक के आधार पर की गई है, अथवा

(घ) जबकि अनुज्ञप्ति की किसी का उलंघन किया गया है, अथवा

(ङ) जबकि अनुज्ञप्ति धारक को अपना शस्त्र अनुज्ञप्ति करने का निर्देश दिया गया हो और उसके द्वारा शस्त्र का परिदान किया गया हो।

(3) अनुमति प्रधिक कोस के लिए नहीं करनी चाहिए। अनुज्ञप्ति निलंबित अथवा प्रतिसंकरित (निरस्त) केनिलम्बन अध्याप्रतिसंहरण की अवधि सुनिबित

(4) अनुमति प्राधिकारी को लाइसेंस निलंबित अथवा निरस्त करने का अधिकार आयुध अधिनियम की या मजिस्ट्रेट रा 17 (3) के

अंतर्गत प्रदत्त है और उक्त कार्यवाही करने से पूर्व अनुज्ञप्तिधारी को सुने जाने का अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है।

(5) अनुज्ञप्ति प्राधिकारी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए यदि यह उचित पाते हैं कि प्रकरण में तात्कालिक प्रभाव से आयुध अनुज्ञप्ति का अनुज्ञप्ति प्राधिकारी द्वारा परिदान किया जाना आवश्यक है तो ऐसा करने का आदेश अभिलिखित किया जाये।

(6) मात्र किसी आपराधिक मामले का लम्बित रहना शस्त्र अनुज्ञप्ति निरस्त/निलम्बित करने का पर्याप्त आधार नहीं है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना समीचीन है कि मात्र एक आपराधिक प्रकरण के लम्बित होने के आधार पर भी विशिष्ट मामलों में आयुध अनुज्ञप्ति को निलंबित निरस्त किया जा सकता है, परंतु अनुज्ञप्ति प्राधिकारी को ऐसा करने के पर्याप्त आधार अपने आदेश में अभिलिखित किये जाय। यह भी आवश्यक है कि ऐसे आधार अभिलिखित करते समय यह स्पष्ट उल्लिखित किया जाय कि अनुज्ञप्ति

प्राधिकारी को समाधान हो गया कि प्रश्वगत आपराधिक प्रकरण की प्रकृति ऐसी है कि यह आमजन और समाज की लोकशांति एवं लोकक्षेम के प्रतिकूल है और यदि अनुज्ञप्तिधारी को अनुज्ञप्ति रखने दी गई तो लोकशांति व लोकक्षेम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(7) यदि किसी शस्त्र अनुज्ञप्ति के निलंबन या प्रतिसंहरण की कार्यवाही आपराधिक वाद के आधार पर की गई हैं तो यदि उक्त आपराधिक अभियोग, दोषमुक्ति में परिवर्तित हो जाता है तो शस्त्र निलम्बन/निरस्वीकरण के आदेश का औचित्य भी समाप्त हो जाता है, परंतु यदि उक्त अभियोग राज्य द्वारा अपील योग्य पाया जाए एवं उक्त प्रकरण की अपील की जाए तो राज्य को उक्त दोषमुक्ति के आदेश की अपील के निर्णय तक अनुज्ञप्तिधारी की। केशस्त्र अनुज्ञप्ति निलंबित प्रतिसंहरित रह सकती है।

अतः ऐसे प्रकरण जहाँ जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष दोषमुक्ति के अभिकथन द्वारा अपने शस्त्र अनुज्ञप्ति निलंबन निरस्वीकरण की कार्यवाही को अपास्त करने की प्रार्थना की जाए, वहाँ जिला मजिस्ट्रेट यह जानकारी करना सुनिश्चित करेंगे। कि प्रकरण में कोई राज्य अपील योजित/प्रस्तावित तो नहीं की गई है? तथा उसके उपरान्त ही किसी निर्णय पर पहुंचेंगे।

(8) जहाँ पर अनुज्ञप्ति प्राधिकारी द्वारा यह समाधान किया जा रहा है कि अनुज्ञप्तिधारी का कृत्य लोकशांति और लोकक्षेम के प्रतिकूल हैं तो इसका तात्पर्य कानून व्यवस्था बिगड़ने की सामान्य परिस्थितियां से नहीं समझा जाएगा, अपितु लोकशांति और लोकक्षेम प्रभावित होना तथा समाज पर व्यापक असर से तात्पर्य है।

(9) शस्त्र निरस्वीकरण की कार्यवाही लम्बित रहने अथवा कोई आपराधिक विचारण लम्बित रहने के दौरान अनुज्ञप्तिधारी शस्त्र रखने के

लिए अधिकार स्वरूप माँग नहीं कर सकता है क्योंकि शस्त्र अनुज्ञप्ति एक अधिकार नहीं मात्र एक सुविधा है।

(10) अनुज्ञप्ति प्राधिकारी/जिला मजिस्ट्रेट अपने तात्त्विक समाधान के लिए पुलिस, अभियोजन एवं अन्य एजेंसियों से आख्या आहूत कर सकता है। इसके साथ ही जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रकरण से संबंधित सभी सुसंगत अभिलेख पर विचार करने तथा मजिस्ट्रेट अनुज्ञप्तिधारी की पारिवारिक पश्शठभूमि, उसके पूर्व आपराधिक कष्ट और उसका आपराधिक इतिहास को विचार में लेने के उपरांत ही समुचित आदेश पारित किया जाय।

(11) अनुज्ञप्ति प्राधिकारी/जिला मजिस्ट्रेट आयुध अधिनियम की धारा 17 के उपबंधों के अंतर्गत यह समाधान होने पर कि कोई अनुज्ञप्तिधारी किसी गंभीर अपराध में सम्मिलित होने, दोषसिद्ध होने या किसी अन्य आनुशांगिक कारण, जिसे वो तात्त्विक रूप से उचित पाता हो, के आधार पर अनुज्ञप्तिकारी को अनुज्ञप्ति धारण करने के लिए अयोग्य व्यक्ति की श्रेणी में पाता है तो वह शस्त्र अनुज्ञप्ति को निलंबित/प्रतिसंहरित कर सकता है।

(12) अग्नेयास्त्रों के लाइसेंस सुरक्षा की दृष्टि से स्वीकृत किये जाते हैं। इनका प्रयोग शादी-विवाह अथवा सार्वजनिक शानों पर प्रदर्शन नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा किये जाने से जनता में भय का वातावरण व्याप्त होता है। जो व्यक्ति शस्त्रों का प्रयोग प्रदर्शन हेतु अथवा

जनता में भय व्याप्त करते हुए पाए जाएँ, उनके शस्त्र लाइसेंस की शर्त संख्या 5 का उल्लंघन करने के आरोप में एवं शस्त्र अधिनियम की धारा 17 (3) (ख), (घ), (ड) के अधीन तत्काल निरस्त करते हुए विधिक कार्यवाही की जा सकती है।

(13) यदि लाइसेंसिंग अधिकारी के समक्ष सामग्री है और उन्हें यह स्पष्ट हो जाता है कि लाइसेंसी के पास शस्त्र रहने से शांति एवं जनसुरक्षा खतरे में पड़ सकती है, तो वह (लाइसेंसिंग अधिकारी) उक्त तथ्यों को अभिलिखित करने के उपरांत सीधे अथवा किसी जाँच अथवा लाइसेंसी की सुनवाई का अवसर दिये बिना लाइसेंस निलम्बित/निरस्त कर सकते हैं, परंतु उन मामलों में जिनमें लाइसेंसिंग अधिकारी को यह स्पष्ट है कि लाइसेंसी के पास शस्त्र रहने से जनशान्ति या जनसु जनसुरक्षा खतरे में पड़ सकती है और सही स्थिति की जानकारी हेतु जाँच लंबित हो तो ऐसी जाँच के दौरान लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता है।

(14) आयुध अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत किसी कार्यवाही को प्रचलित करने से पहले जिला मजिस्ट्रेट/अनुज्ञप्ति प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने समक्ष प्रस्तुत पत्रावली पर अनुज्ञप्तिधारी की शस्त्र अनुभाग से मूल पत्रावली में संलग्न शस्त्र आवेदन, शपथपत्र, आख्या एवं सुसंगत दस्तावेजों का सूक्ष्म अध्ययन कर लें, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अनुज्ञप्तिधारी द्वारा गलत तथ्यों के आधार

पर शस्त्र आवेदन तो नहीं किया गया है या किसी शर्त का उल्लंघन तो नहीं किया गया है?

(15) उपरोक्त निर्देशों के अतिरिक्त आयुध अधिनियम 1959, आयुध नियमावली-2016 समय समय पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय एवं माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा पारित आदेशों, भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा समयकम् पर निर्गत निर्देशों का भी सम्यक अनुपालन किया जाए एवं यदि उक्त का अनुज्ञप्तिधारी द्वारा उल्लंघन पाया जाता है तो उसके शस्त्र अनुज्ञप्ति के निलंबन/निरस्तीकरण की विधि सम्मत कार्यवाही सुनिश्चित की जाय।

3. इस संबंध में मा० न्यायालय द्वारा निम्नलिखित वादों (1) सी० पी० साहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1984 ए० डब्लू० सी० 145, (2) कैलाश नाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1985 ए० डब्लू० सी० 493, (3) हरप्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2005 (5) ए० डब्लू० सी० 4939 तथा (4) नेशनल कैपिटल टेरिस्ट्री ऑफ डेलही बनाम उमेश कुमार 2008 (3) एस० सी० सी० क्रिमिनल 490 में पारित निर्णयों का सम्यक अवलोकन करने के उपरान्त उमें दिये गये निर्देशों का पालन करते हुए ही कोई निर्णय लिया जाए।

4. कृपया उक्त निर्देशों का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित किया जाए।"

14. इन्द्र प्रताप @ राम प्रताप बनाम उ०प्र० राज्य द्वारा प्रमुख सचिव गृह लखनऊ एवं अन्य¹ के मामले में विविध एकल संख्या

28781 सन 2017 को दिनांक 15.02.2019 को निर्णय दिया गया गया, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 8,9,10 और 11 के तहत इस प्रकार माना है:-

“8. इस सवाल पर कि क्या किसी आपराधिक मामले में शामिल होना या किसी आपराधिक मामले का लंबित रहना, शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के तहत आज्ञप्ति रद्द करने का आधार हो सकता है, इस न्यायालय की द्विखंडीय पीठ ने शिव प्रसाद मिश्रा बनाम जिला मजिस्ट्रेट बस्ती एवं अन्य, 1979(16) ए सी सी 6(एसयूएस), मामले में विचार किया है जिसमें द्विखंडीय पीठ ने मस्त उद्दीन बनाम आयुक्त, इलाहाबाद, 1972 ए एल जे 573 में पहले के फैसल पर भरोसा किया। उपरोक्त दोनों मामले में यह माना गया है कि किसी आपराधिक मामले में शामिल होने मात्र से किसी भी तरह से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित प्रभावित नहीं हो सकता है। कानून के इस प्रस्ताव के मददेनजर आपराधिक मामले की संलिप्तता और लम्बितता के उपरोक्त आधार पर याचिकाकर्ता के आज्ञप्ति को रद्द करने या निरस्त करने का आदेश मान्य नहीं है।

9. इस न्यायालय की पूर्वपीठ के निर्णय में छंगा प्रसाद साहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1984(10) ए एल आर 223 और कैलाश नाथ एवं अन्य बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य, 1985(22) ए सी सी 353 और राना प्रताप सिंह बनाम उ०प्र० राज्य, 1994 जे आई सी 72 (एएल एल); 1995 (ए यू पी पी) एसीसी235, के मामले में, यह माना गया है कि केवल

आपराधिक मामले का लम्बित होना हथियार आज्ञप्ति रद्द करने का कोई आधार नहीं है। उपरोक्त पूर्णपीठ के निर्णयों के प्रभाव पर सदरी राम बनाम जिला -मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ एवं अन्य, 1998(3) एडब्लू सी 2102; 1998(37) एसी सी 830 में भी विचार किया गया है।

10. हर प्रसाद (सुप्रा) के मामले में यह अदालत इस प्रकार है:

“ किसी मामले में अपराध की संलिप्तता और लम्बितता आग्नेयास्त्र आज्ञप्ति को रद्द करने का कोई आधार नहीं है। यह स्थापित कानून बनाया गया है कि बरी होने के बाद हथियार आज्ञप्ति रद्द करने का आधार ही खराब हो जाता है। इस संबंध में लाल जी बनाम आयुक्त, कानपुर एवं एक अन्य, 1999 (4) एडब्लू सी 2952, में दिये गये निर्णय का संदर्भ दिया गया है।”

11. इस प्रकार स्वीकृत तथ्यों और स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, कि किसी आपराधिक मामले में लाइसेंसधारी की संलिप्तता के आधार पर शस्त्र लाइसेंस को रद्द नहीं किया जा सकता है,

4. विवध एकल क्रमांक 28781 सन 2017 निर्णित दिनांक 15.02.2019 लगाए गये आदेशों को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। अन्यथा भी याचिकाकर्ता को उस आपराधिक मामले से बरी कर दिया गया है जिसमें वह शामिल था और इसलिए याचिकाकर्ता के शस्त्र

लाइसेंस को रद्द करने का कोई औचित्य नहीं है।

इसी तरह मुकेश कुमार यादव (सुप्रा) के मामले में प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“ 10. उक्त धारा सी.पी. साहू बनाम राज्य ,1984 एडब्लू सी 145; कैलाश नाथ बनाम उ०प्र० राज्य एवं एक अन्य ,1985 एडब्लू सी 493; बलराम सिंह बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य ,1988 एडब्लू सी 14814 ; राना प्रताप सिंह बनाम उ०प्र० राज्य ,1995 एसीजे 200 के मामले में न्यायिक जाँच के लिए, और दिए गये न्यायिक उकसावे के अनुसार ,निम्नलिखित बिन्दुओं पर:-

(ए) लाइसेंस प्राधिकारी के पास शस्त्र लाइसेंस के रद्दीकरण /निलम्बन की जाँच लम्बित रहने तक उसे निलंबित करने की कोई शक्ति नहीं है और न ही लाइसेंस को अनिश्चित काल के लिए निलम्बित करने की ही शक्ति है;

(बी) लाइसेंस प्राधिकारी को धारा की उपधारा (3) के खण्ड (ए) से (ड) द्वारा देखी गई सभी या किसी भी स्थिति के अस्तित्व के संतुष्ट होने पर शस्त्र लाइसेंस को निर्दिष्ट अवधि के लिए निलंबित करने की शक्ति है। अधिनियम की धारा 17 में लाइसेंस धारक को सुनवाई का कोई पूर्व अवसर नहीं दिया गया है, लेकिन निलम्बन का कोई ऐसा आदेश तब तक अन्तिम नहीं होगा जब तक पीडित पक्ष को नहीं सुना

जाता है और उसकी आपत्तियो , यदि कोई हो पर निर्णय नहीं लिया जाता है । दूसरे शब्दों में,निर्दिष्ट अवधि के लिए शस्त्र लाइसेंस का निलम्बन या अधिनियम को धारा 17(3) के तहत इसका निरसन ,यदि सुनवाई का अवसर दिये बिना आदेश दिया जाता है ,तब तक निलम्बित स्थिति में रहेगा जब तक कि पीडित पक्ष को लाइसेंस प्राधिकारी और उसके द्वारा नहीं सुना जाता है । आपत्तियाँ यदि कोई हो, पर निर्णय लिया जाता है;

(सी) लाइसेंसिंग प्राधिकारी किसी दिए गये मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में तत्काल उपचारात्मक कार्यवाहियों को आगे बढ़ाने के लिए आपत्तियों का निर्णय होने तक लाइसेंस धारक को अपना लाइसेंस सरेंडर करने का निर्देश देने की एक आकस्मिक शक्ति भी दे सकता है; और

(डी) अधिनियम की धारा 17(3) के तहत निलम्बन लाइसेंस प्राधिकारी द्वारा आदेश में निर्दिष्ट निश्चित अवधि के लिए होना चाहिए।

11. इसके अलावा, यह न्यायालय साहब सिंह बनाम आयुक्त आगरा मण्डल , आगरा एवं अन्य 2006(24) एलसीडी 374 के मामले में है जो पैराग्राफ संख्या 3 में निम्नानुसार रखा गया है:-

“ याचिकाकर्ता की दलील यह है कि केवल एक आपराधिक मामला लंबित

होने के कारण , याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है । उक्त दलील के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के दो फैसलों पर भरोसा जताया है , जो हौसला प्रसाद तिवारी बनाम उ०प्र० राज्य और ईश्वर एलियास भूरी बनाम उ०प्र०राज्य का मामला है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि बलराम सिंह बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य के मामलों में इस न्यायालय को पूर्ण पीठ के फैसले के मददेनजर कैलाश नाथ बनाम उ०प्र० राज्य 1985 एडब्लू सी 493 के साथ - साथ सदरी राम बनाम जिला मजिस्ट्रेट , आजमगढ़ एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय की डिविजन बेंच के फैसले के अनुसार याचिकाकर्ता के शस्त्र लाइसेंस को जाँच लंबित रहने तक निलंबित नहीं किया जा सकता है।”

15 सुस्थापित कानूनी प्रस्ताव और ऊपर उल्लिखित प्रासंगिक मामले कानूनों और उक्त अधिनियम में नीहित प्रावधानों के मददेनजर , यह न्यायालय पाता है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता का लाइसेंस संबंधित जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि उनके खिलाफ आपराधिक मामला लंबित है । याचिकाकर्ता को बाद में 23.07.2021 के आदेश द्वारा आपराधिक मामले से बरी कर दिया गया था। दोषमुक्ति के आदेश का अवलोकन शस्त्र के प्रयोग को नहीं दर्शाता है। बरी होने के बाद रद्दीकरण

आदेश का आधार ही खत्म हो गया । आयुक्त द्वारा पुष्टि की गई संबंधित जिला मजिस्ट्रेट की यह राय कि यह सार्वजनिक शान्ति व सार्वजनिक सुरक्षा के हित में नहीं था कि लाइसेंस याचिकाकर्ता / लाइसेंस धारक के पास ही रहे , पुलिस रिपोर्टों को छोड़कर किसी भी सबूत/सामाग्री पर आधारित नहीं है । जो अपनी बारी में याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामले को लंबितता को देखते हुए थे। आक्षेपित आदेशों में केवल इस आशंका के आधार पर कि याचिकाकर्ता शस्त्र का दुरुपयोग करेगा और समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को खतरा पैदा करेगा, अतः शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है।

16. इस प्रकार विधि की उपरोक्त व्याख्या और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसे लागू करने के मददेनजर मेरी सुविचारित राय है कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के शस्त्र लाइसेंस को रद्द करने का आदेश दिनांक 02.08.2019 को पारित किया गया है । रद्द किये जाने योग्य है। इसलिए वाद संख्या 377/2019 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या सी 2019180 00000377) में प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.08.2019 और साथ ही अपील संख्या 225/2017 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या डी 201718210225 में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.12.2018 को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

17. हालाँकि, विवादित आदेशों को रद्द करने से याचिकाकर्ता का आगनेशास्त्र लाइसेंस

स्वचालित रूप से पुनर्जीवित नहीं होगा। याचिकाकर्ता आज से दो सप्ताह के भीतर प्रासंगिक दस्तावेज के साथ-साथ बरी करने के आदेश और इस आदेश को प्रमाणित प्रति के साथ जिला मजिस्ट्रेट, एटा के समक्ष आवेदन कर सकता है। यदि ऐसा कोई आवेदन जिला मजिस्ट्रेट, एटा/ लाइसेंसिंग प्राधिकारी के समक्ष दायर किया जाता है, तो उस पर ऐसे आवेदन के प्रस्तुत होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर, विधि के अनुसार सख्ती से शीघ्रता से कार्यवाही और निर्णय लिया जायेगा।

18. कहने की आवश्यकता नहीं है कि लाइसेंस प्राधिकारी आक्षेपित आदेशों पर शस्त्र लाइसेंस देने से इंकार नहीं करेगा, जिसे इनके द्वारा आदेश देना रद्द कर दिया गया है।

19. उपरोक्त निर्देशों के साथ, तदनुसार वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

20. लागत के संबन्ध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 785

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

समक्ष

माननीय डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 5015 सन् 2023

बजरंगी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री मोहम्मद जुबैर, सुश्री रोशनी इब्राहिम

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. सिविल विधि - उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 - धारा 98 - उ.प्र. राजस्व संहिता नियम, 2016, नियम 99 - अनुसूचित जाति के भूमिधर की भूमि के हस्तांतरण के लिए कलेक्टर की अनुमति - नियम 99 का स्पष्टीकरण - उपनियम (8) के खंड (घ) में यह प्रावधान है कि हस्तांतरण के बाद आवेदक के पास धारित भूमि का क्षेत्रफल 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं होना चाहिए। माना गया: नियम 99 में संलग्न स्पष्टीकरण का तात्पर्य यह है कि ऐसे मामले में भी, जहां आवेदन की तिथि पर आवेदक के पास भूमि का क्षेत्रफल हस्तांतरण के पश्चात 1.26 हेक्टेयर से कम हो जाता है, तब भी अनुमति दी जा सकती है, बशर्ते खंड (क) से (ग) में निर्दिष्ट शर्तों में से कोई एक शर्त पूरी हो। उप-नियम (8) के खंड (क) से (घ) के बीच "या" का प्रयोग एक विभाजक अर्थ देता है, जो विकल्पों को इंगित करता है, तथा किसी भी खंड में निर्दिष्ट शर्तों की पूर्ति धारा 98(1) के अंतर्गत अनुमति देने के लिए पर्याप्त आधार होगी। अर्थात्, यदि नियम 99(8) के खंड (क) से (घ) के अंतर्गत शर्तों में से कोई एक शर्त पूरी हो जाती है, तो किसी अन्य शर्त की पूर्ति न होने का कोई परिणाम नहीं होगा। (पैरा 37, 38)

बी. इस मामले में याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति से संबंधित था और एक बीमारी से पीड़ित था। चिकित्सा उपचार के खर्चों को पूरा करने के लिए, उसने ऋण लिया था। ऋण चुकाने और अपने चिकित्सा उपचार के लिए, उसे वित्तीय सहायता की आवश्यकता थी और तदनुसार उसने अपनी भूमिधारी भूमि के हस्तांतरण की अनुमति मांगी। कलेक्टर ने कथित तौर पर इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया कि प्रस्तावित हस्तांतरण के बाद याचिकाकर्ता के पास शेष भूमि का क्षेत्रफल 0.5930 हेक्टेयर होगा, यानी 1.26 हेक्टेयर से कम हैं। *माना गया:* आक्षेपित आदेश अस्पष्ट था और नियम 99 के उप-नियम (8) के खंड (ए) से (सी) के तहत शर्तों पर एक उद्देश्यपूर्ण विचार का संकेत नहीं देता है, जो वैकल्पिक प्रकृति के हैं। आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया। (पैरा 64)

अनुमति दी गई। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सीताराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2022 (155) आरडी 178
2. श्रीमती ओमवती बनाम कलेक्टर, जिला पीलीभीत एवं अन्य 2023 (1) एडीजे 280
3. श्रीमती कृष्णा श्री गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2020 (3) एडीजे 358
4. फकीर मोहम्मद बनाम सीता राम (2002) 1 एससीसी 741
5. गुरु नानक देव विश्वविद्यालय बनाम संजय कुमार कटवाल एवं अन्य (2009) 1 एससीसी 610

6. जी.पी. सेरेमिक्स (पी) लिमिटेड बनाम कमिशनर, व्यापार कर, उत्तर प्रदेश (2009) 2 एससीसी 90
7. मर्सी डॉक्स एंड हार्बर बोर्ड बनाम हेंडरसन (1888) 13 एससी 595 (एचएल)
8. एस सुंदरम पिल्लई बनाम वी.आर. पट्टाभिरामन एवं अन्य (1985) 1 एससीसी 591
9. बर्मा शेल ऑयल स्टोरेज एंड डिस्ट्रीब्यूटिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम सीटीओ एआईआर 1961 एससी 315
10. बिहटा कोऑपरेटिव डेवलपमेंट केन मार्केटिंग यूनियन लिमिटेड बनाम बैंक ऑफ बिहार एआईआर 1967 एससी 389
11. हीरालाल रतनलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1973) 1 एससीसी 216
12. दत्तात्रेय गोविंद महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 2 एससीसी 548
13. भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर एवं अन्य (1973) 2 एससीसी 836
14. ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन (1971) 2 क्यूबी 175, 191 : (1971) 1 इलाहाबाद ईआर 1148
15. अलेक्जेंडर मशीनरी (इडली) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री 1974 आईसीआर 120
16. रेजिना बनाम इमिग्रेशन अपील ट्रिब्यूनल एक्स पार्ट खान (महमूद) 1983 क्यूबी 790 : (1983) 2 इलाहाबाद ईआर 420
17. त्रावणकोर रेयान लिमिटेड बनाम भारत संघ (1969) 3 एससीसी 868
18. महावीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1970) 1 एससीसी 764

19. सीमेंस इंजीनियरिंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ (1976) 2 एससीसी 981
20. क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मसूद अहमद खान और अन्य
21. आर बनाम सेंट पैनक्रास वेस्ट्री (1890) 24 क्यू.बी.डी. 371
22. एसोसिएटेड प्रोविंशियल पिकचर हाउस, लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कॉर्प [1947] 2 ऑल ई.आर. 680
23. पैडफील्ड और अन्य बनाम कृषि, मत्स्य पालन और खाद्य मंत्री और अन्य [1968] 1 ऑल ई.आर. 694
24. ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन और अन्य [1971] 2 क्यू.बी. 175

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के लिये विद्वान अधिवक्ता सुश्री रोशनी इब्राहिम और राज्य के लिये उपस्थित अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री अजित कुमार सिंह, एवं उनके सहायक अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला को सुना।
2. वर्तमान याचिका में प्रतिवादी संख्या 3/कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर, जिला फतेहपुर द्वारा केस संख्या 00340/2021, कम्प्यूटरीकृत केस संख्या 202102000 000394 (बजरंगी बनाम राज्य) में उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 98(1) के तहत पारित आदेश दिनांक 25.02.2021 को चुनौती देने की मांग की गई है। प्रतिवादी

संख्या 2/आयुक्त, प्रयागराज क्षेत्र, प्रयागराज द्वारा पूर्व आदेश के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण में पारित आदेश दिनांक 05.07.2021, पुनरीक्षण संख्या 00340/2021, कम्प्यूटरीकृत यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत केस नंबर C202102000000394 (बजरंगी बनाम राज्य) को भी चुनौती दी गई है।

3. रिट की दलीलों और रिकॉर्ड के अनुसार याचिका में, याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि वह ग्राम कौंडर, परगना मुतौर, तहसील और जिला फतेहपुर में स्थित भूमि गाटा संख्या 3946, क्षेत्रफल 1.0500 हेक्टेयर पर हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ दर्ज भूमिधर है।

4. यह माँगा की गई कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति से है और वह एक बीमारी से पीड़ित था और चिकित्सा उपचार के खर्चों को पूरा करने के लिए उसने ऋण लिया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि ऋण चुकाने के लिए और अपने चिकित्सा उपचार के लिए उसे धन की आवश्यकता थी और तदनुसार उसने कलेक्टर के समक्ष दिनांक 20.10.2020 को एक सन्दर्भित आर.सी. फॉर्म 27 में आवेदन देकर अपनी भूमिधरी भूमि के हस्तांतरण की अनुमति मांगी थी।

5. यह बताया गया है कि उपरोक्त आवेदन पर, क्षेत्र के लेखपाल द्वारा दिनांक 04.11.2020 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिसमें यह दर्शाया गया था कि चूंकि ऋण राशि की अदायगी और याचिकाकर्ता की बीमारी

से पीड़ित था जिसके इलाज के खर्चों को पूरा करने के लिए स्थानांतरण की मांग की जा रही थी, उस अनुमति पर कोई आपत्ति नहीं थी जो विचाराधीन भूमि के हस्तांतरण के लिए मांगी जा रही थी।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्ता का मामला स्थानांतरण के लिए अनुमति मांगने के लिए यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 98 के साथ पठित यू.पी. राजस्व संहिता नियमावली 2006 के नियम 99 के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार पूरी तरह से कवर किया गया था। कलेक्टर ने आदेश दिनांक 25.02.2021 के माध्यम से आवेदन को खारिज कर दिया। यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदन में बताए गए तथ्यों और क्षेत्रीय लेखपाल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को ध्यान में रखने के बावजूद उपरोक्त आदेश पारित किया गया था, जिसमें संकेत दिया गया था कि मांगी गई अनुमति पर कोई आपत्ति नहीं थी।

7. उपरोक्त आदेश के खिलाफ व्यथित, याचिकाकर्ता ने आयुक्त के समक्ष एक संशोधन प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 05.07.2021 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें कलेक्टर द्वारा पारित पहले के आदेश में जो कुछ भी कहा गया था, उसे दोहराया गया।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक बार याचिकाकर्ता ने संहिता 2006 की धारा 98 के तहत निहित प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों के अनुसार स्थानांतरण की अनुमति

देने के लिए आवश्यक शर्तों को विधिवत पूरा कर लिया था। नियम 2016 और तथ्यों के उचित सत्यापन के बाद क्षेत्र के लेखपाल द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट भी अनुकूल थी, संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा आवेदन को अस्वीकार करने का कोई बिल्कुल भी कारण नहीं था।

9. यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा आवेदन को अस्वीकार करते हुए आदेश पारित किया गया और प्रत्यर्थी नंबर 2, द्वारा उसके खिलाफ पुनरीक्षण आदेश भी पारित किया गया। जाे निरस्तीकरण और कारणहीन हैं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि एकमात्र प्रशंसनीय कारण जो दो आदेशों से उभरता हुआ प्रतीत हो सकता है, वह यह है कि प्रस्तावित हस्तांतरण के बाद, याचिकाकर्ता के पास भूमि का शेष क्षेत्र 0.5930 हेक्टेयर होगा।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जिन अपेक्षित शर्तों के तहत भूमि के हस्तांतरण की अनुमति कलेक्टर द्वारा दी जा सकती है, वे संहिता 2006 की धारा 98 के तहत नियम 2016 के नियम 99 के साथ पढ़ी गई हैं। यह बताया गया है कि उसमें निर्धारित शर्तें अधिवक्ताओं के रूप में हैं और यदि शर्तों में से कोई भी एक पूरी होती है, तो आवश्यक अनुमति दी जानी चाहिए।

11. मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता का दावा है कि वह एक बीमारी से पीड़ित है और उसे अपने इलाज के लिए धन की आवश्यकता है; तदनुसार नियम 99 के उपनियम के खंड (बी) के तहत निर्धारित शर्त पूरी की गई। आगे यह

तर्क देने की मांग की गई है कि उपनियम (8) के खंड (डी) के तहत निर्धारित शर्त यह बताती है कि हस्तांतरण के बाद आवेदक द्वारा धारित भूमि का क्षेत्रफल 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं होना चाहिए। नियम के साथ संलग्न स्पष्टीकरण में यह प्रावधान किया गया है कि ऐसे मामले में जहां नियम के किसी भी खंड (ए) से (सी) में उल्लिखित शर्तें पूरी हो गई हैं, खंड (डी) में उल्लिखित शर्तों की गैर-पूर्ति अनुमति देने के लिए वर्जन का गठन नहीं करेगी।

12. विद्वान अपर महाधिवक्ता की ओर से उपस्थित होना राज्य प्रत्यर्थियों ने उचित रूप से प्रस्तुत किया है कि उसमें निर्दिष्ट शर्तें हैं कि आवेदन की तारीख पर आवेदक द्वारा आयोजित भूमि का क्षेत्रफल हस्तांतरण के परिणामस्वरूप 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं होना चाहिए, इस स्थिति में अनिवार्य नहीं होगा। खंड (ए), खंड (बी) या खंड (सी) पूरे हो गए हैं। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने उपनियम (8) से जुड़े स्पष्टीकरण का हवाला देते हुए कहा है कि इस संबंध में स्थिति स्पष्ट कर दी गई है।

13. संहिता, 2006 और नियम, 2016 के तहत प्रावधान, जो वर्तमान मामले में शामिल विवाद के उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक होंगे, नीचे दिए जा रहे हैं:

"98. अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधरों द्वारा स्थानांतरण पर प्रतिबंध (1) इस अध्याय के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अनुसूचित जाति से संबंधित किसी

भी भूमिधर को किसी भी भूमि को बिक्री, उपहार, बंधक या पट्टे के माध्यम से किसी अनुसूचित जाति से संबंधित व्यक्ति को हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं होगा, सिवाय इसके कि कलेक्टर की पूर्व लिखित अनुमति हो::

बशर्ते कि कलेक्टर द्वारा अनुमति तभी दी जा सकती है जब

(ए) अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर का कोई जीवित उत्तराधिकारी नहीं है जो धारा 108 की उपधारा (2) के खंड (ए) या धारा 110 के खंड (ए) में निर्दिष्ट है, जैसा भी मामला हो; या

(बी) अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर उस जिले के अलावा किसी अन्य जिले में बस गया है या सामान्य रूप से निवास कर रहा है जिसमें भूमि हस्तांतरित करने का प्रस्ताव है या किसी सेवा या किसी व्यापार, व्यवसाय या व्यापार; या पेशे के उद्देश्य से किसी अन्य राज्य में स्थित है।

(सी) कलेक्टर निर्धारित कारणों से संतुष्ट हैं कि ज़मीन के स्थानांतरण के लिए अनुमति देना आवश्यक है।

(2) इस धारा के तहत अनुमति देने के प्रयोजनों के लिए कलेक्टर ऐसी जांच कर सकते हैं जो निर्धारित की जा सकती है।

नियम 99. अनुसूचित जाति भूमिधर की भूमि के हस्तांतरण के लिए कलेक्टर की अनुमति.

(धारा 98) - (1) बिक्री या उपहार के माध्यम से भूमि हस्तांतरित करने की अनुमति के लिए या वसीयत द्वारा भूमि वसीयत करने की अनुमति के लिए, जैसा भी मामला हो, धारा

107 के साथ पठित धारा 98 (1) या धारा 98 (1) के तहत एक आवेदन अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर के कलेक्टर को आर.सी. फॉर्म 27 द्वारा हस्तांतरणीय अधिकार के साथ किया जाना चाहिए।

(2) धारा 98 (1) के तहत एक आवेदन, भूमि में अपने हित को गिरवी रखने की अनुमति के लिए, अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर द्वारा आर.सी. फॉर्म 28 में कलेक्टर को किया जाएगा।

(3) धारा 98 (1) के तहत जमीन को पट्टे पर देने की अनुमति के लिए अनुसूचित जाति के भूमिधर द्वारा कलेक्टर को आर.सी. फॉर्म 29 में आवेदन किया जाएगा।

(4) धारा 98 (1) के तहत एक आवेदन प्राप्त होने पर कलेक्टर ऐसी जांच करेगा जिसे वह मामले की परिस्थितियों में आवश्यक समझे। वह निम्नलिखित के लिए एक अधिकारी को भी नियुक्त कर सकता है जो नायब तहसीलदार के पद से नीचे न हो:

(ए) आवेदन में बताए गए तथ्यों का सत्यापन; और

(बी) उन परिस्थितियों की रिपोर्ट करना जिनमें स्थानांतरण की अनुमति मांगी गई है।

(5) इस नियम के उपनियम (4) में निर्दिष्ट जांच अधिकारी ऐसी जांच का आदेश प्राप्त होने की तारीख से पंद्रह दिनों की अवधि के भीतर दो प्रतियों में रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(6) रिपोर्ट की एक प्रति कलेक्टर के कार्यालय से, जहां ऐसी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है, आवेदक को निःशुल्क प्रदान की जाएगी।

(7) आवेदक रिपोर्ट की प्रति प्राप्त होने की तारीख से सात दिनों की अवधि के भीतर जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के खिलाफ आपत्ति दर्ज कर सकता है।

(8) उप नियम (3) के तहत प्रस्तुत रिपोर्ट और आपत्ति, यदि कोई हो, प्राप्त करने के बाद, यदि कलेक्टर इस बात से संतुष्ट है

(ए) धारा 98 की उपधारा (1) के खंड (ए) या खंड (बी) की शर्तें पूरी हो गई हैं; या

(बी) कार्यकाल धारक या उसके परिवार का कोई भी सदस्य किसी भी घातक बीमारी से पीड़ित है जिसके संबंध में संबंधित बीमारी के किसी भी चिकित्सक या सर्जन विशेषज्ञ द्वारा प्रमाण पत्र जारी किया गया है और ऐसी बीमारी का उपचार के लिए खर्चों को पूरा करने के लिए स्थानांतरण की अनुमति आवश्यक है।

(सी) आवेदक ऐसे प्रस्तावित हस्तांतरण के विचार से किसी भी अन्य भूमि को खरीदने के लिए संहिता की धारा 98(1) के तहत अनुमति मांग रहा है और आवेदक के पक्ष में बेचने का समझौता आवेदन में इस संबंध में तथ्यों को एक पंजीकृत की प्रमाणित प्रति के साथ समर्थित किया गया है या

(डी) आवेदन की तिथि पर आवेदक के पास मौजूद भूमि का क्षेत्रफल ऐसे हस्तांतरण के बाद 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं होता है, और

(ई) यदि बिक्री द्वारा हस्तांतरण के लिए अनुमति मांगी जा रही है तो भूमि के हस्तांतरण के लिए कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्कल दर के अनुसार गणना की गई राशि से कम नहीं है;

उनके द्वारा कारण दर्ज करके अनुमति प्रदान की जा सकती है।

स्पष्टीकरण- संदेह को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि इस उपनियम के खंड (डी) में उल्लिखित शर्तें पूरी नहीं होती हैं, लेकिन इस नियम के खंड (ए) से (सी) में गिनाई गई कोई भी शर्त पूरी होती है तो कोड की धारा 98(1) के तहत कलेक्टर द्वारा अनुमति दी जाती है।

(9) नियम 99 के उपनियम (2) या उपनियम (3) में संदर्भित आवेदन को गिरवी रखने या जमीन को किराए पर देने की अनुमति के लिए, जैसा भी मामला हो, कलेक्टर द्वारा इस बात से संतुष्ट होने पर अनुमति दी जा सकती है कि गिरवी रखी गई है या जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित व्यक्ति के पक्ष में छोड़ना संभव नहीं है।

(10) वसीयत द्वारा भूमि की वसीयत करने की अनुमति के लिए नियम 99 के उपनियम (1) में उल्लिखित आवेदन कलेक्टर द्वारा इस बात से संतुष्ट होने पर दिया जा सकता है कि भूमि की वसीयत अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित व्यक्ति के पक्ष में संभव नहीं है।

(11) कलेक्टर प्रस्तुत रिपोर्ट प्राप्त होने की तारीख से पंद्रह दिनों की अवधि के भीतर धारा 98(1) के तहत आवेदन का निपटान करने का प्रयास करेगा। जांच अधिकारी द्वारा और यदि आवेदन का निपटारा इस अवधि के भीतर नहीं किया जाता है तो इसका कारण दर्ज किया जाएगा।

14. संहिता की धारा 98 में कहा गया है कि अनुसूचित जाति से संबंधित किसी भी भूमिधर को कलेक्टर की पूर्व अनुमति के बिना, अनुसूचित जाति से संबंधित किसी भी व्यक्ति को किसी भी भूमि को बिक्री, उपहार, बंधक या पट्टे के माध्यम से हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं होगा। इसलिए, कलेक्टर की पिछली अनुमति, अनुसूचित जाति के किसी भी भूमिधर द्वारा अपनी भूमि को अनुसूचित जाति से संबंधित किसी व्यक्ति को हस्तांतरित करने से पहले एक शर्त है। ऐसी अनुमति प्राप्त न होने पर, स्थानांतरण धारा 104 के अनुसार शून्य हो जाएगा, और धारा 105 के तहत प्रदान किए गए परिणामों के अधीन होगा।

15. धारा 98 का प्रावधान उन शर्तों का वर्णन करता है जिनके तहत कलेक्टर द्वारा अनुमति दी जा सकती है और वे इस प्रकार हैं:

(i) अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर का, जैसा भी मामला हो, धारा 108 की उपधारा (2) के खंड (ए) या धारा 110 के खंड (ए) में निर्दिष्ट कोई जीवित उत्तराधिकारी नहीं है; या

(ii) अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर उस जिले के अलावा किसी अन्य जिले में बस गया है या सामान्य रूप से निवास कर रहा है जिसमें स्थानांतरित की जाने वाली भूमि स्थित है या किसी सेवा या किसी व्यापार, व्यवसाय, पेशे या व्यवसाय के उद्देश्य से किसी अन्य राज्य में स्थित है; या

(iii) कलेक्टर निर्धारित कारणों से इस बात से संतुष्ट है कि भूमि के हस्तांतरण के लिए अनुमति देना आवश्यक है।

16. धारा 98(1) के परंतुक के खंड (सी) के तहत उल्लिखित निर्धारित कारण, नियम, 2016 के नियम 99 के, जिस पर कलेक्टर को अपनी संतुष्टि दर्ज करनी है कि भूमि के हस्तांतरण के लिए अनुमति देना आवश्यक है, नियम, 2016 के नियम 99 के उपनियम (8) के तहत निर्दिष्ट हैं के अनुसार, और ये इस प्रकार हैं:

(i) धारा 98 की उपधारा (1) के खंड (ए) या खंड (बी) की शर्तें पूरी हो गई हैं; या

(ii) कार्यकाल धारक या उसके परिवार का कोई भी सदस्य किसी घातक बीमारी से पीड़ित है जिसके संबंध में संबंधित बीमारी के किसी चिकित्सक या सर्जन विशेषज्ञ द्वारा प्रमाण पत्र जारी किया गया है और ऐसी बीमारी के इलाज के खर्चों को पूरा करने के लिए स्थानांतरण की अनुमति आवश्यक है। ; या

(iii) आवेदक ऐसे प्रस्तावित हस्तांतरण के विचार से किसी अन्य भूमि की खरीद के लिए प्रस्तावित हस्तांतरण के लिए संहिता की धारा 98(1) के तहत अनुमति मांग रहा है और आवेदक के पक्ष में बेचने का समझौता आवेदन में इस संबंध में तथ्य पंजीकृत की प्रमाणित प्रति के साथ समर्थित हैं।; या

(iv) आवेदन की तिथि पर आवेदक के पास मौजूद भूमि का क्षेत्रफल, ऐसे हस्तांतरण के बाद, 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं रह जाता है, और

(v) यदि बिक्री द्वारा हस्तांतरण के लिए अनुमति मांगी जा रही है तो भूमि के हस्तांतरण के लिए कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्कल दर के अनुसार गणना की गई राशि से कम नहीं है;

17. जिन शर्तों के तहत किसी अनुसूचित जाति के भूमिधर को हस्तांतरण की अनुमति दी जा सकती है, उन्हें संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

(i) धारा 108 के उपधारा (2) के खंड (ए) या धारा 110 के खंड (ए) में निर्दिष्ट जीवित वारिस की अनुपस्थिति में;

(ii) अंतरणकर्ता बस गया है या सामान्यतः उस जिले के अलावा उस जिले में रहता है जिसमें हस्तांतरित होने के लिए प्रस्तावित भूमि स्थित है या किसी सेवा या किसी व्यापार, व्यवसाय, व्यवसाय या कारोबार के उद्देश्य से किसी अन्य राज्य में है;

(iii) नियमों के तहत निर्धारित कारणों के लिए, अर्थात्।

(ए) कार्यकाल धारक या उसके परिवार का कोई सदस्य किसी घातक बीमारी से पीड़ित है; या

(बी) आवेदक ऐसे प्रस्तावित हस्तांतरण के विचार से किसी अन्य भूमि की खरीद के लिए प्रस्तावित हस्तांतरण की अनुमति मांग रहा है; या

(सी) आवेदन की तिथि पर आवेदक के पास मौजूद भूमि का क्षेत्रफल, ऐसे हस्तांतरण के बाद, 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं हो जाता है, और

(डी) यदि बिक्री द्वारा स्थानांतरण के लिए अनुमति मांगी जा रही है तो कलेक्टर द्वारा

निर्धारित सर्कल दर के अनुसार गणना की गई राशि से कम नहीं है।

18. नियम 99 का स्पष्टीकरण स्पष्ट करता है कि ऐसी स्थिति में जहां नियम 99 के उपनियम (8) के खंड (ए) से (सी) तक में उल्लिखित कोई भी शर्त पूरी हो जाती है, तो अनुमति दी जा सकती है, भले ही इस तरह के हस्तांतरण के बाद भूमिधर (हस्तांतरणकर्ता) की हिस्सेदारी 1.26 हेक्टेयर से कम हो जाती है।।

19. धारा 98 के तहत हस्तांतरण की अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया नियम 2016 के नियम 99 के तहत और उसके उपनियम (3) के अनुसार बिक्री या उपहार के माध्यम से भूमि हस्तांतरण की अनुमति मांगने या वसीयत द्वारा भूमि वसीयत करने की अनुमति मांगने वाले आवेदन के लिए प्रदान की जाती है, जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर द्वारा कलेक्टर को आरसीफॉर्म 27 में हस्तांतरणीय अधिकार दिया जाना है। ऐसे आवेदन की प्राप्ति पर, उपनियम (4) के तहत कलेक्टर मामले की परिस्थितियों में आवश्यक समझे जाने पर जांच करेगा। इस उद्देश्य के लिए वह एक अधिकारी को नियुक्त कर सकता है जो नायब तहसीलदार के पद से नीचे न हो: (ए) आवेदन में बताए गए तथ्यों का सत्यापन; और (बी) उन परिस्थितियों की रिपोर्ट करना जिनमें स्थानांतरण की अनुमति मांगी गई है। इसके बाद, उपनियम (5) के तहत, जांच अधिकारी से इस प्रकार की जाँच की आदेश प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों की अवधि के भीतर दो प्रतियों में रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

ऐसी पूछताछ का आदेश प्राप्त हो रहा है। रिपोर्ट की प्रति उपनियम (6) के तहत आवेदक को दी जानी है, जिसके बाद आवेदक सात दिनों की अवधि के भीतर रिपोर्ट के खिलाफ आपतियां दर्ज कर सकता है और इसके बाद कलेक्टर संतुष्ट होने पर कि नियम 99 के उपनियम (8)(ए) से (डी), और उपनियम (8) (ई) के तहत कोई भी शर्त पूरी हो गई है, वह कारण दर्ज करने के बाद अनुमति दे सकता है।।

20. ऐसे मामले में जहां आवेदन निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया गया है और नियम 2016 के तहत प्रदान की गई उचित जांच के बाद उपरोक्त शर्तों में से किसी एक को संतुष्ट किया जाना चाहिए, तो धारा 98 के तहत स्थानांतरण के लिए अनुमति दी जानी आवश्यक है।

21. संहिता, 2006 की धारा 98 और नियम, 2016 के नियम 99 के तहत निहित प्रावधानों की व्याख्या के संबंध में उपरोक्त कानूनी स्थिति, जो अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधरों द्वारा स्थानांतरण पर प्रतिबंध और कलेक्टर द्वारा इस उद्देश्य के लिए अनुमति देने के तरीके से संबंधित है, इस न्यायालय के हाल ही में सीताराम बनाम यूपी राज्य और अन्य³ और श्रीमती ओमवती बनाम कलेक्टर जिला पीलीभीत और 2 अन्य⁴ में दिए गए निर्णयों में विचार का विषय था, जिस पर दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं ने भरोसा किया है।

22. एकमात्र प्रशंसनीय कारण जो दो आदेशों से उभर सकता है, जो वर्तमान रिट

याचिका का विषय है, वह यह है कि प्रस्तावित हस्तांतरण के बाद याचिकाकर्ता के पास भूमि का शेष क्षेत्र घटकर 0.5930 हेक्टेयर हो जाएगा। इसका मतलब यह होगा कि याचिकाकर्ता के पास शेष भूमि का क्षेत्रफल घटकर 1.26 हेक्टेयर से कम हो जाएगा और नियम 99 के उप नियम (8) के खंड (डी) के तहत निषेधाज्ञा की स्थिति से प्रभावित होगा।

23. इस संबंध में, यह देखा जा सकता है कि नियम 99 के उप नियम (8) के संदर्भ में, कलेक्टर को खंड (ए), (बी), (सी), (डी) और (ई) के तहत निहित शर्तों की पूर्ति के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करना आवश्यक है। यह आगे देखा जा सकता है कि खंड (ए), (बी), (सी) और (डी), 'या' शब्द से जुड़े हुए हैं, और खंड (ई) 'और' शब्द का उपयोग करके जुड़े हुए हैं।

24. संयोजन 'और' और 'या' अंग्रेजी भाषा के दो मौलिक शब्द हैं - 'और' वस्तुओं को जोड़ता है जबकि 'या' विकल्प बनाता है।

25. मैक्सवेल पर कानून की व्याख्या में 5, इसे इस प्रकार अवधारित किया गया है:

"सामान्य उपयोग में, 'और' संयोजक और 'या' वियोजक है"।

26. श्रीमती कृष्णा श्री गुप्ता बनाम स्टेट ऑफ यूपी और दूसरे में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था, वैधानिक व्याख्या के संदर्भ में, 'या' शब्द को आम तौर पर

विच्छेदात्मक माना गया है। फैसले में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

"25. तर्क, गणित और वैधानिक व्याख्या के संदर्भ में, शब्द "या" को आम तौर पर विच्छेदनात्मक यानी वियोजक के रूप में समझा जाता है जो अधिवक्ताओं को चिह्नित करता है। इसका उपयोग अधिवक्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले शब्दों, वाक्यांशों या वर्गों को जोड़ने के लिए किया गया है।

27. फकीर मोहम्मद. बनाम सीता राम⁷, यह माना गया कि 'या' शब्द सामान्यतः विघटनकारी है। किसी कानून में 'या' शब्द का उपयोग कानून के तहत निर्धारित अधिवक्ताओं के विधायी इरादे को प्रकट करता है।

28. गुरु नानक देव यूनीवर्सिटी बनाम संजय कुमार कटवाल और अन्य के मामले में यह माना गया कि दो योग्यताओं के बीच 'या' का उपयोग अधिवक्ताओं को इंगित करने वाला एक विच्छेदात्मक अर्थ देता है और योग्यताओं में से किसी एक का होना पर्याप्त माना जाएगा। यह दोहराया गया कि 'या' शब्द का प्रयोग आम तौर पर विच्छेदात्मक अर्थ में किया जाता है, जब तक कि संदर्भ अन्यथा उचित न हो। फैसले से प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:

"9. पात्रता मानदंड का नुस्खा बहुत स्पष्ट है। इसके लिए कम से कम 45% अंकों के साथ स्नातक की डिग्री या मास्टर डिग्री की

आवश्यकता होती है। विश्वविद्यालय का तर्क है कि उम्मीदवार के पास स्नातक की डिग्री होनी चाहिए और केवल तभी यदि स्नातक डिग्री पाठ्यक्रम में उसके अंक 45% से कम हैं, तो मास्टर डिग्री पर विचार किया जाएगा, इसका मतलब यह होगा कि शब्द "या" को शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। अभ्यर्थी के पास स्नातक की डिग्री में 45% अंक न होने की स्थिति में प्रावधान में ऐसे शब्दों को पढ़ना अस्वीकार्य है। शब्द "या" विच्छेदात्मक है, इसमें कोई संदेह नहीं, कुछ असाधारण परिस्थितियों में, "या" शब्द को "और" अर्थ के रूप में संयोजक के रूप में पढ़ा गया है, जहां संदर्भ ने इसकी आवश्यकता बताई। लेकिन शब्द "या" को स्पष्ट रूप से एक सशर्त अधिवक्ता के संदर्भ में नहीं पढ़ा जा सकता है, जब ऐसी स्थिति निर्दिष्ट नहीं की जाती है। पात्रता से संबंधित प्रावधान के स्पष्ट होने और "या" शब्द का उपयोग करने के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि स्नातक की डिग्री के बिना मास्टर डिग्री पात्रता की आवश्यकता को पूरा करेगी।

29. यूपी व्यापार कर अधिनियम 1948 के तहत जारी छूट अधिसूचना के संदर्भ में 'या' शब्द की व्याख्या जी.पी. सिरेमिक्स (पी) लिमिटेड बनाम आयुक्त, व्यापार कर, उत्तर प्रदेश के मामले में विचार हेतु आया, और यह माना गया कि अधिसूचना के तहत प्रदान की गई तीन आकस्मिकताएं जो 'या' शब्द से जुड़ी हुई थीं, प्रकृति में विच्छेदात्मक थीं। इसे इस प्रकार कहा गया था:

"24. पात्रता मानदंड अधिसूचना में शामिल है। अधिसूचना के खंड 2 बी के उपखंड (ii) में तीन

आकस्मिकताओं की परिकल्पना की गई है यानी (i) इकाई डीलर के स्वामित्व वाली भूमि या भवन या दोनों पर स्थापित है; या (ii) इकाई कम से कम 15 वर्ष की अवधि के लिए पट्टे पर ली गई भूमि या भवन या दोनों पर स्थापित की गई हो; या (iii) इकाई राज्य या केंद्र सरकार या किसी सरकारी कंपनी या केंद्र या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी भी निगम द्वारा आवंटित भूमि या भवन या दोनों पर स्थापित है।

xxx

27. पात्रता मानदंड अधिसूचना में निर्धारित किये गए हैं, जो, जैसा कि यहां पहले देखा गया है, तीन आकस्मिकताओं के लिए प्रदान किया गया है। वे प्रकृति में वियुग्मक हैं, संयोजक नहीं..."

30. इस संबंध में मर्सी डॉक्स और हार्बर बोर्ड बनाम हैंडरसन में लॉर्ड हल्सबरी 10 के मामले में की गई टिप्पणियों का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं :

"...में ऐसी कार्यवाही के लिए कोई प्राधिकार नहीं जानता हूं, जब तक कि संदर्भ "या" "और" का आवश्यक अर्थ न बनाता हो, जैसा कि कुछ मामलों में होता है; लेकिन मेरा मानना है कि यह पूरी तरह से उदाहरणहीन है, इसलिए ऐसा करते समय इसे पढ़ा जाना चाहिए। एक निर्माण पर वाक्य का अर्थ पूरी तरह से बदल जाएगा जब तक कि उसी कानून का कोई अन्य भाग या उसके स्पष्ट इरादे के लिए ऐसा किया जाना आवश्यक न हो।

31. इसलिए यह देखा जाएगा कि वैधानिक निर्माण के एक उपकरण के रूप में 'या' शब्द का अर्थ कई निर्णयों में विचार का विषय रहा है, और यह लगातार माना गया है कि 'या' शब्द सामान्य रूप से विघटनकारी है और इसका उपयोग किसी कानून में कानून के तहत निर्धारित अधिवक्ताओं के विधायी इरादे को प्रकट किया जाता है।

32. तत्काल मामले में उपवाक्य (ए), (बी), (सी) और (डी) के बीच संयोजक के रूप में 'या' शब्द का उपयोग, चार वैकल्पिक स्थितियों को चिह्नित करने वाले वियोजक अर्थ का सूचक है। इसका परिणाम यह होगा कि यदि खंड (ए), (बी), (सी) या (डी) के तहत शर्तों में से कोई भी पूरी हो जाती है, तो कलेक्टर के अनुमोदन द्वारा संतुष्टि की रिकॉर्डिंग के उद्देश्यों के लिए पर्याप्त माना जाना चाहिए।

33. खंड (डी) के तहत शर्त, जो एक निषेधाज्ञा खंड की प्रकृति में है, जिसके संदर्भ में यह प्रदान किया जाता है कि आवेदन की तिथि पर आवेदक द्वारा धारित भूमि का क्षेत्रफल हस्तांतरण के बाद 1.26 हेक्टेयर से कम नहीं होना चाहिए, को उप नियम (8) से जुड़े स्पष्टीकरण से स्पष्ट किया गया है।

34. एक वैधानिक प्रावधान से जुड़े एक स्पष्टीकरण के इरादे, उद्देश्य और प्रभाव को एस. सुंदरम पिल्लई बनाम. वी.आर. पट्टाभिरामन और अन्य¹¹ के मामले में विचार किया गया था। यह माना गया कि स्पष्टीकरण का अर्थ प्रावधान में कुछ अस्पष्टताओं को समझाना या स्पष्ट करना है।

बर्मा शेल तेल भंडारण और वितरण कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम सीटीओ¹², बिहटा: सहकारी विकास गन्ना विपणन संघ लिमिटेड बनाम बैंक ऑफ बिहार¹³, हीरालाल रतनलाल बनाम यूपी राज्य¹⁴, दत्तत्रेय गोविन्द महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य¹⁵ में दिये गये निर्णयों का सन्दर्भ दिया गया और साथ ही कानून की व्याख्या¹⁶ के दौरान सारथी में निर्धारित सिद्धांत भी Sarathi में, स्वरूप में विधान और व्याख्या¹⁷ और Bindra में कानून की व्याख्या¹⁸, वैधानिक प्रावधान के स्पष्टीकरण का उद्देश्य विस्तृत किया गया था और इसे निम्नानुसार देखा गया था:

"53. इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित अधिकारियों की एक रूपरेखा से, यह प्रकट होता है कि एक वैधानिक प्रावधान के लिए एक स्पष्टीकरण का उद्देश्य है

"(ए) अधिनियम स्वयं के अर्थ एवं उद्देश्य की व्याख्या करने लिए,

(बी) जहां मुख्य अधिनियम में कोई अस्पष्टता या अस्पष्टता है, उसे स्पष्ट करना ताकि इसे उस प्रमुख उद्देश्य के अनुरूप बनाया जा सके जिसका वह समर्थन करता प्रतीत होता है,

(सी) अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए अतिरिक्त सहायता प्रदान करना।

(डी) स्पष्टीकरण किसी भी तरह से अधिनियम या उसके किसी भाग में हस्तक्षेप या परिवर्तन नहीं कर सकता है, लेकिन जहां कुछ अंतर रह गया है जो स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक है, अधिनियम का

उद्देश्य यह अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य और इरादे की व्याख्या करने में न्यायालय की सहायता या सहायता कर सकता है, और (ई) हालाँकि, यह उस वैधानिक अधिकार को नहीं छीन सकता है जिसके तहत किसी कानून के तहत किसी व्यक्ति को किसी अधिनियम की व्याख्या में बाधा बनकर उसे प्रभावित किया गया है या उसके कामकाज को शून्य कर दिया गया है।"

35. किसी स्पष्टीकरण का प्रभाव और अभिप्राय उसके अपने शब्दों से ही निर्धारित होता है। कुछ मामलों में वैधानिक प्रावधान के अर्थ के आसपास किसी भी संभावित अस्पष्टता को दूर करने के लिए और विधायिका जिसे सही अर्थ मानती है उसे विवाद या संदेह से परे रखने के लिए प्रचुर मात्रा में सावधानी के साथ एक स्पष्टीकरण पेश किया जा सकता है।

36. उप नियम (8) से जुड़ा स्पष्टीकरण यह प्रदान करता है कि यदि उप नियम के खंड (डी) में उल्लिखित शर्तें पूरी नहीं होती हैं, लेकिन उप नियम के खंड (ए) से (सी) में बताई गई शर्तों में से कोई भी पूरी होती है, धारा 98(1) के तहत अनुमति दी जा सकती है।

37. इसलिए स्पष्टीकरण का महत्व यह होगा कि ऐसे मामले में भी जहां आवेदन की तारीख पर आवेदक के पास मौजूद भूमि का क्षेत्रफल हस्तांतरण के बाद 1.26 हेक्टेयर से कम हो जाता है, तब भी खंड (ए) से (सी) तक निर्दिष्ट स्थिति में अनुमति दी जा सकती है।

38. उप नियम (8) के खंड (ए) से (डी) के बीच 'या' का उपयोग, जैसा कि पहले देखा गया है, एक विच्छेदात्मक अर्थ को दर्शाता है जो कि दोनों खंडों में निर्दिष्ट शर्तों के अधिवक्ताप और पूर्ति को दर्शाता है। जिसके आधार पर धारा 98(1) के तहत अनुमति दी जा सकती है।

39. यह रेखांकित करना प्रासंगिक होगा कि उपरोक्त खंड (ए) से (डी) के तहत निर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक की पूर्ति 'पर्याप्त' होगी, लेकिन इनमें से किसी भी शर्त को 'आवश्यक' नहीं माना जा सकता है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, ऐसे मामले में जहां खंड (ए) से (डी) के तहत शर्तों में से एक पूरी हो गई है, किसी अन्य शर्त के पूरा न होने पर कोई परिणाम नहीं होगा।

40. तर्क और गणित में, 'जरूरत' और 'प्रचुरता' ऐसे शब्द हैं जिनका उपयोग दो कथनों के बीच सशर्त या निहितार्थ संबंध का वर्णन करने के लिए किया जाता है। सामान्य तौर पर, एक 'आवश्यक शर्त' वह है जिसे अन्य स्थिति उत्पन्न होने के लिए मौजूद होना चाहिए, जबकि 'पर्याप्त शर्त' वह है जो उक्त स्थिति उत्पन्न करती है।

41. इसलिए यह कहा जा सकता है कि 'आवश्यक शर्त' एक ऐसी स्थिति है जो किसी घटना के घटित होने के लिए मौजूद होनी चाहिए जबकि 'पर्याप्त शर्त' एक शर्त या शर्तों का समूह है जो घटना को उत्पन्न करेगी।

42. एक 'पर्याप्त शर्त' अपने आप ही परिणाम उत्पन्न करेगी लेकिन इसकी अनुपस्थिति से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि परिणाम उत्पन्न नहीं किया जाएगा। एक कारण संबंधी भ्रांति तब उत्पन्न होती है जब कोई यह मान लेता है कि घटना के घटित होने के लिए पर्याप्त स्थिति आवश्यक है।

43. उपनियम (8) के संदर्भ में उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, प्रत्येक खंड (ए) से (डी) में निर्दिष्ट शर्तों को पर्याप्त मानना होगा, हालांकि इनमें से कोई भी आवश्यक नहीं है।

44. उपनियम (8) के साथ संलग्न स्पष्टीकरण इस स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि स्थानान्तरण के परिणामस्वरूप आवेदक द्वारा धारित भूमि का क्षेत्रफल 1.26 हेक्टेयर से कम न हो, इस शर्त के संबंध में शर्तों की पूर्ति न होना, जैसा कि खंड के अंतर्गत प्रदान किया गया है। (डी), धारा 98(1) के तहत अनुमति देने में कोई रोक नहीं लगाएगा, यदि खंड (ए) से (सी) में उल्लिखित कोई भी शर्त पूरी हो।

45. विवादित आदेशों में कारणों के गैर-प्रकटीकरण के प्रभाव के सवाल पर, यह बताना आवश्यक होगा कि अर्ध न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी द्वारा कारण बताने का कर्तव्य और एक बोलने का आदेश पारित करने की आवश्यकता, काफी हद तक तय है। यह लगातार माना जाता रहा है कि एक अर्धन्यायिक प्राधिकारी या यहां तक कि एक प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा पार्टियों के

अधिकारों को प्रभावित करने वाला एक आदेश एक 'बोलने वाला आदेश' होना चाहिए और यह 'स्फिंक्स के गूढ़ चेहरे' की तरह नहीं होना चाहिए।

46. प्रशासनिक या अर्धन्यायिक कार्य करते समय कारण बताने की आवश्यकता पर जोर देते हुए, भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर और अन्य¹⁹ के मामले में निम्नानुसार अवधारित किया गया:

"28.... कारण उन सामग्रियों के बीच के लिंक हैं जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित हैं और वास्तविक निष्कर्ष हैं। वे खुलासा करते हैं कि किसी निर्णय के लिए विषय-वस्तु पर दिमाग को कैसे लागू किया जाता है, चाहे वह पूरी तरह से प्रशासनिक हो या अर्धन्यायिक। उन्हें विचार किए गए तथ्यों और पहुंचे निष्कर्षों के बीच एक तर्कसंगत संबंध प्रकट करना चाहिए। केवल इसी तरीके से ही दर्ज की गई राय या निर्णयों को दिखाया जा सकता है और स्पष्ट रूप से न्यायसंगत और उचित ठहराया जा सकता है।

47. लॉर्ड डेनिंग एम.आर., मेंब्रीन बनाम समामेलित इंजीनियरिंग यूनियन²⁰ के मामले में की गई टिप्पणियों का उल्लेख करना उचित होगा, जो निम्नलिखित है:

"कारण बताना अच्छे प्रशासन के बुनियादी सिद्धांतों में से एक है।"

48. अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रेबट्री 21 के मामले में सर डोनाल्डसन ने

पाया है कि "कारण बताने में विफलता न्याय से इनकार करने के समान है"।

49. रेजिना बनाम आप्रवासन अपील न्यायाधिकरण एकपक्षीय खान (महमूद) 22 के मामले में मुख्य न्यायाधीश लॉर्ड लेन, के द्वारा अवधारित किया गया है:

"न्यायाधिकरण के समक्ष पेश होने वाला एक पक्ष यह जानने का हकदार है कि या तो स्पष्ट रूप से न्यायाधिकरण द्वारा कहा गया है या अनुमानित रूप से कहा गया है कि यह क्या है जिसके बारे में न्यायाधिकरण अपने मन को संबोधित कर रहा है।"

50. विधि आयोग 23 में चौदहवीं रिपोर्ट न्यायिक प्रशासन में सुधार के संबंध में निम्नलिखित सिफारिशों की गई:

"प्रशासनिक निर्णयों के मामले में यह प्रावधान किया जाना चाहिए कि उनके साथ कारण भी होने चाहिए। इन कारणों से उचित रिट की मशीनरी द्वारा इन निर्णयों की वैधता का परीक्षण करना संभव हो जाएगा।"

51. त्रावणकोर रेयॉन लिमिटेड बनाम भारत संघ 24 में यह अवधारित किया गया है:

"अदालत दो आधारों पर आदेश के समर्थन में कारणों के प्रकटीकरण पर जोर देती है: एक, कि उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में पीड़ित पक्ष के पास यह प्रदर्शित करने का अवसर है कि जिन कारणों ने प्राधिकरण को उसके मामले को अस्वीकार

करने के लिए राजी किया, वे गलत थे। ; दूसरा, कारणों को दर्ज करने की बाध्यता न्यायिक शक्ति से संपन्न कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा संभावित मनमानी कार्रवाई के खिलाफ एक निवारक के रूप में कार्य करती है।"

52. इस प्रश्न से निपटते हुए कि क्या अपने निर्णय के लिए कोई कारण बताने के लिए अर्धन्यायिक या प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग करना प्राधिकार पर निर्भर था, यह महाबीर प्रसाद सतौष कुमार बनाम यू.पी. राज्य में निम्न लिखित अवधारित किया गया।

"कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा उन आदेशों के विरुद्ध वैधानिक अपीलों को खारिज करने की प्रथा जो प्रथम दृष्टया बिना कारण बताए पीड़ित पक्ष के अधिकारों पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालती है, कानून के शासन की अस्वीकृति है।

"अर्धन्यायिक प्राधिकारी द्वारा किसी विवादित दावे पर निर्णय के समर्थन में कारणों की रिकॉर्डिंग यह सुनिश्चित करती है कि निर्णय कानून के अनुसार आता है और यह सनक का परिणाम नहीं है या नीति या समीचीनता के आधार पर नहीं लिया गया है। विवाद का एक पक्ष आम तौर पर यह जानने का हकदार होता है कि किस आधार पर प्राधिकरण ने उसके दावे को खारिज कर दिया है। यदि आदेश अपील के अधीन है, तो कारणों को रिकॉर्ड करने की आवश्यकता अधिक है, क्योंकि रिकॉर्ड किए गए कारणों के बिना अपीलीय प्राधिकारी के पास कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर वह यह निर्धारित कर सके कि क्या तथ्यों का ठीक से पता लगाया गया था, प्रासंगिक कानून

सही ढंग से लागू किया गया था और निर्णय उचित था। ”

53. सीमेंस इंजीनियरिंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया 26 में समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम 1878 के तहत केंद्र सरकार द्वारा अपीलीय शक्ति के प्रयोग से निपटते समय यह इस प्रकार कहा गया था:

“यह अब स्थापित कानून है कि जहां एक प्राधिकारी अर्धन्यायिक कार्य के अभ्यास में एक आदेश देता है, उसे अपने आदेश के समर्थन में अपने कारणों को दर्ज करना होगा। प्रत्येक अर्धन्यायिक आदेश को कारणों से समर्थित होना चाहिए...”

54. क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मसूद अहमद खान और अन्य 27 के मामले में अर्धन्यायिक कार्यों का प्रयोग करते समय कारण बताने और एक स्पष्ट आदेश पारित करने की आवश्यकता के संबंध में कानूनी स्थिति का सारांश देते हुए, इसे इस प्रकार अवधारित किया गया था:

“(ए) भारत में न्यायिक प्रवृत्ति हमेशा कारणों को दर्ज करने की रही है, यहां तक कि प्रशासनिक निर्णयों में भी, यदि ऐसे निर्णय किसी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

(बी) एक अर्धन्यायिक प्राधिकारी को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारण दर्ज करने चाहिए

(सी) कारणों को दर्ज करने पर जोर देने का मतलब न्याय के व्यापक सिद्धांत की पूर्ति

करना है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है।

(डी) कारणों की रिकॉर्डिंग न्यायिक और अर्धन्यायिक या यहां तक कि प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध प्रतिबंध के रूप में भी काम करती है।

(ई) कारण आश्वस्त करते हैं कि निर्णयकर्ता द्वारा प्रासंगिक आधारों पर और अनावश्यक विचारों की उपेक्षा करके विवेक का प्रयोग किया गया है।

(एफ) कारण वस्तुतः निर्णय लेने की प्रक्रिया का उतना ही अपरिहार्य घटक बन गया है जितना कि न्यायिक, अर्धन्यायिक और यहां तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना।

(जी) कारण वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाते हैं।

(एच) कानून के शासन और संवैधानिक शासन के लिए प्रतिबद्ध सभी देशों में चल रही न्यायिक प्रवृत्ति प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर तर्कसंगत निर्णयों के पक्ष में है। यह वस्तुतः न्यायिक निर्णय लेने का जीवन रक्त है जो इस सिद्धांत को उचित ठहराता है कि तर्क न्याय की आत्मा है।

(i) इन दिनों न्यायिक या यहां तक कि अर्धन्यायिक राय भी न्यायाधीशों और उन्हें

वितरित करने वाले 27 (2010) 9 एससीसी 496 प्राधिकारियों जितनी ही भिन्न हो सकती हैं। ये सभी निर्णय एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, जो तर्क द्वारा प्रदर्शित करना है कि प्रासंगिक कारकों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया गया है। न्याय वितरण प्रणाली में वादियों का विश्वास बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

(जे) तर्क पर जोर देना न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए एक आवश्यकता है।

(के) यदि कोई न्यायाधीश या अर्धन्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त स्पष्ट नहीं है तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति मिसाल के सिद्धांत या वृद्धिवाद के सिद्धांतों के प्रति वफादार है या नहीं।

(एल) निर्णयों के समर्थन में कारण ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। कारणों का दिखावा या "रबरस्टैम्प कारण" को वैध निर्णय लेने की प्रक्रिया के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

(एम) इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि पारदर्शिता न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर रोक लगाने की अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णय निर्माताओं को त्रुटियों की संभावना कम बनाती है बल्कि उन्हें व्यापक जांच के अधीन भी बनाती है।

(एन) चूंकि कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है, उक्त आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक है और इसे स्ट्रासबर्ग न्यायशास्त्र का हिस्सा माना जाता है। देखें (1994) 19 ईएचआरआर 553, 562 पैरा 29 पर और आन्या बनाम ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, 2001 ईडब्ल्यूसीए सीआईवी 405, जिसमें न्यायालय ने मानव अधिकारों के यूरोपीय सम्मेलन के अनुच्छेद 6 का उल्लेख किया है जिसके लिए आवश्यक है, "पर्याप्त और बुद्धिमान कारण दिए जाने चाहिए" न्यायायिक निर्णय"।

(ओ) सभी सामान्य कानून क्षेत्राधिकारों में निर्णय भविष्य के लिए मिसाल कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, कानून के विकास के लिए, निर्णय के लिए कारण बताने की आवश्यकता सारगर्भित है और वस्तुतः "उचित प्रक्रिया" का एक हिस्सा है।

55. उपर्युक्त निर्णयों से संकेत मिलता है कि एक महत्वपूर्ण विचार जो अदालतों के साथ लगातार इस बात पर जोर देता रहा है कि अर्धन्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले एक प्रशासनिक प्राधिकारी को अपने निर्णय के कारणों को रिकॉर्ड करना चाहिए, वह यह है कि ऐसा निर्णय अक्सर अपीलीय के साथ-साथ पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अधीन होता है, और यह कि कारण, यदि दर्ज किए गए तो उच्च न्यायालय अपीलीय या पर्यवेक्षी शक्ति का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में सक्षम होंगे। इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए अन्य विचार

यह हैं कि कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता प्राधिकरण द्वारा वस्तुनिष्ठ विचार की गारंटी देगी, निर्णयों में स्पष्टता लाएगी और निर्णय लेने में मनमानी की संभावना को कम करेगी।

56. उपरोक्त के अलावा, एक प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा कारणों की रिकॉर्डिंग, मनमानेपन की संभावनाओं को बाहर करने और निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता की एक डिग्री सुनिश्चित करने के लाभकारी उद्देश्य को पूरा करेगी।

57. कारणों की सीमा और प्रकृति विशेष तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर हो सकती है लेकिन जो आवश्यक होगा वह यह है कि कारण स्पष्ट और स्पष्ट होने चाहिए ताकि यह संकेत मिल सके कि प्राधिकरण ने विवाद के बिंदुओं पर उचित विचार किया है।

58. अर्धन्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले एक प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा कारणों को रिकॉर्ड करने के औचित्य के संबंध में उपरोक्त चर्चा के संबंध में, यह न्यायालय पाता है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा पहले चरण और पुनरीक्षण चरण दोनों में पारित आदेश किसी भी स्पष्ट कारण का संकेत नहीं देते हैं, यह इस न्यायालय पर छोड़ता है कि वह एक अनुमान लगाने का अभ्यास करे ताकि यह पता चल सके कि क्या अपने संबंधित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिकारियों के दिमाग पर जोर दिया गया।

59. एकमात्र प्रशंसनीय कारण जो दो आदेशों से उभरता हुआ प्रतीत हो सकता है, वह यह है कि प्रस्तावित हस्तांतरण के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा धारित भूमि का शेष क्षेत्र 0.5930 हेक्टेयर होगा। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, भूमि के हस्तांतरण के परिणामस्वरूप आवेदक द्वारा धारित भूमि के क्षेत्रफल को घटाकर 1.26 हेक्टेयर से कम करने की शर्त, अन्य किसी भी शर्त की पूर्ति के अधीन अनिवार्य नहीं है।

60. लागू किए गए आदेश इस बात पर कोई विचार नहीं करते हैं कि क्या नियम 98 के उपनियम (8) के खंड (ए) से (सी) के तहत शर्तों, जो कि अधिवक्ताओं की प्रकृति में हैं, पर विचार किया गया है।

61. सीताराम (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को दोहराना प्रासंगिक होगा कि अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए यदि संबंधित प्राधिकारी उन विचारों को अनदेखा करता है या ध्यान में नहीं रखता है जो विचाराधीन कानून के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, तो उसकी कार्रवाई अमान्य होगी। यह और भी अधिक होगा जहां प्राधिकार को विवेक प्रदान करने वाले कानून ने विवेक को स्पष्ट रूप से उस विचार को निर्धारित करके विवेक को संरचित किया है जिसे विवेक के प्रयोग के लिए प्राधिकार द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसे मामले में, यदि विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग ऐसे विचारों से प्रभावित होने पर होता है जिन्हें कानूनी रूप से ध्यान में नहीं रखा जा सकता है या जिन प्रासंगिक विचारों को ध्यान

में रखना आवश्यक है, उनकी उपेक्षा से, प्राधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय अमान्य होगा।

62. प्राधिकारी को ऐसे मामले में विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते समय जहां प्राधिकारी के विवेक को विशिष्ट शर्तों को निर्धारित करते समय संरचित किया गया है, उसे केवल प्रासंगिक विचारों को ध्यान में रखते हुए और उन विचारों की उपेक्षा करने के लिए विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता होगी जो अप्रासंगिक हैं।

63. इस संबंध में कानूनी स्थिति को आर बनाम सेंट पैनक्रास वेस्ट्री²⁸, एसोसिएटेड प्रोविशियल पिकचर हाउसेज, लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कॉर्पोरेशन²⁹, पैडफील्ड और अन्य बनाम कृषि, मत्स्य और खाद्य पालन मंत्री और अन्य³⁰ और ब्रीन बनाम अमलमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन और अन्य³¹ के निर्णयों का हवाला देकर सीताराम के मामले में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। सीताराम के मामले में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे दी जा रही हैं:"

"21." "अप्रासंगिक विचार" सिद्धांत को आर. बनाम सेंट पैनक्रास वेस्ट्री में लॉर्ड एशर एमआर द्वारा निम्नानुसार कहा गया था: लेकिन उन्हें आवेदन पर निष्पक्ष रूप से विचार करना चाहिए और उस पर अपने विवेक का प्रयोग निष्पक्ष रूप से करना चाहिए, और अपने निर्णय के लिए किसी भी ऐसे कारण को ध्यान में नहीं रखना चाहिए जो कानूनी नहीं है। जिन लोगों को अपने विवेक का प्रयोग

करके सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करना है, वे मामलों को ध्यान में रखते हैं जिसे न्यायालय अपने विवेक के मार्गदर्शन के लिए उचित नहीं मानते हैं, तो कानून की दृष्टि में उन्होंने अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया है।"

22. किसी प्राधिकारी को कानून द्वारा प्रदत्त विवेक के प्रयोग से संबंधित मामलों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप का दायरा एसोसिएटेड प्रोविशियल पिकचर हाउसेज, लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कॉर्पोरेशन में विचार का विषय था, जिसमें लॉर्ड ग्रीन, एम.आर. द्वारा इस प्रकार कहा गया था:

"... कानून कुछ सिद्धांतों को मान्यता देता है जिन पर विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए ... वे पूरी तरह से अच्छी तरह से समझे जाते हैं। इस तरह के विवेक का प्रयोग विवेक का वास्तविक अभ्यास होना चाहिए। यदि, विवेक प्रदान करने वाले कानून में, स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से, ऐसे मामले पाए जाते हैं जिन पर विवेक का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी को ध्यान देना चाहिए, तो, विवेक का प्रयोग करते समय, उन्हें उन मामलों पर ध्यान देना चाहिए। इसके विपरीत, यदि विषय वस्तु की प्रकृति और अधिनियम की सामान्य व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ मामले विचाराधीन मामले से संबंधित नहीं होंगे, तो उन्हें उन मामलों की उपेक्षा करनी चाहिए।

. अदालत यह देखने के लिए स्थानीय प्राधिकारी की कार्यवाही की जांच करने का हकदार है कि क्या उसने उन मामलों को ध्यान में रखा है जिन पर उसे ध्यान नहीं देना

चाहिए, या, इसके विपरीत, ध्यान देने से इनकार कर दिया है या उपेक्षा की है उन मामलों को ध्यान में रखें जिन पर इसे ध्यान देना चाहिए।" होंगे, उन्हें उन मामलों की उपेक्षा करनी चाहिए।

प्रभावित होता है, जिस पर उसे ध्यान नहीं देना चाहिए, तो निर्णय टिक नहीं सकता है। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि वैधानिक निकाय ने सद्भावना से कार्य किया हो; फिर भी निर्णय अपास्त कर दिया जाएगा।"

23. जिन परिस्थितियों में वैधानिक प्राधिकारी द्वारा विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग को अमान्य माना जा सकता है, वे पैडफील्ड और अन्य बनाम कृषि, मत्स्य पालन और खाद्य और अन्य मंत्री मामले में बताए गए थे, जिसमें लॉर्ड अपजॉन ने निम्नानुसार कहा था: "मंत्री द्वारा किया गया गैरकानूनी व्यवहार पर्याप्त सटीकता के साथ बताया जा सकता है ... (ए) प्रासंगिक मामले पर विचार करने से साफ इनकार करके, या (बी) कानून के संदर्भ में खुद को गलत दिशा में निर्देशित करके, या (सी) कुछ को पूरी तरह से ध्यान में रखकर अप्रासंगिक या अप्रासंगिक विचार, या (डी) किसी प्रासंगिक विचार को ध्यान में रखना पूरी तरह से छोड़ कर।"

24. पैडफील्ड (उपरोक्त) के मामले में हाउस ऑफ लॉर्ड्स के फैसले में निर्धारित सिद्धांत को लॉर्ड डेनिंग, एम.आर. ने ब्रीन बनाम अमालामेटेड इंजीनियरिंग यूनियन और अन्य में इस प्रकार बताते हुए दोहराया था:

"एक वैधानिक निकाय का विवेक कभी भी निरंकुश नहीं होता है। यह एक विवेक है जिसका प्रयोग कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। इसका मतलब कम से कम यह है: वैधानिक निकाय को प्रासंगिक विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए न कि अप्रासंगिक द्वारा। यदि उसका निर्णय बाहरी विचारों से

25. इस प्रकार प्रस्ताव को मोटे तौर पर यह कहते हुए निर्धारित किया जा सकता है कि एक कानून के तहत विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने वाले एक प्राधिकारी द्वारा एक निर्णय प्रासंगिक विचारों को ध्यान में रखकर और अप्रासंगिक विचारों को त्यागकर लिया जाना चाहिए, जिसके अभाव में कार्रवाई होती है तो अधिकार क्षेत्र से बाहर और शून्य माना जाएगा।"

64. उपरोक्त कारणों से, और विशेष रूप से प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा पारित आदेश निरर्थक हैं और यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 98 के तहत हस्तांतरण की अनुमति देने के प्रयोजनों के लिए आवश्यक प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों के उद्देश्यपूर्ण विचार का संकेत नहीं देते हैं, आक्षेपित आदेशों को कानूनी रूप से अस्थिर माना जाता है और अपास्त कर दिया जाता है

65. चर्चा के आलोक में नियमावली, 2016 के नियम 99 के उपनियम (8) के साथ पठित संहिता, 2006 की धारा 98 के तहत निहित प्रावधानों के आधार पर नए आदेश पारित करने के लिए मामला प्रतिवादी क्रमांक 3 को प्रेषित किया जाता है। प्रतिवादी प्राधिकारी से अपेक्षा की जाएगी कि वह धारा 98 के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन पर शीघ्रता से और

अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति की पुनः प्रस्तुति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर स्थानांतरण की अनुमति देने के लिए उचित आदेश पारित करेगा।

66. रिट याचिका को ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2023) 7 ILRA 800

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 38508 वर्ष 2022

बृजेश कुमार दुबे

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा वितरित)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री राधे कृष्ण पांडे, श्री मनीष पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री अजातशत्रु, श्री अवधेश कुमार मिश्रा, श्री अभिषेक शुक्ला

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006- धारा 4(16), 8 एवं 210 - राजस्व बोर्ड - राजस्व बोर्ड मुख्य नियंत्रण प्राधिकरण है, जिसके पास सभी अधीनस्थ राजस्व न्यायालयों पर पर्यवेक्षी शक्तियां हैं। उप मंडल मजिस्ट्रेट न्यायिक प्रकृति की न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए राजस्व न्यायालय के रूप में

कार्य करता है, और यह राजस्व बोर्ड के अधीनस्थ न्यायालय है तथा इसके पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार और इसके नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण के अधीन है। जब कोई उच्च न्यायालय किसी अवर न्यायालय को कुछ निर्देशों के साथ रिमांड का आदेश जारी करता है, तो अवर न्यायालय उक्त निर्देशों के अनुसार निर्णय लेने के लिए बाध्य होता है। माना गया: उप-खण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के रिकॉल आवेदन पर विचार करने से इंकार करना, राजस्व बोर्ड द्वारा जारी निर्देशों की अवहेलना करना तथा याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण की अनुमति देना अनुचित है। (पैरा 8, 9, 10, 11)

स्वीकृत। (ई-5)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राधे कृष्ण पांडे, राज्य प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला और प्रत्यर्थी संख्या - 7 और 8 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अवधेश कुमार मिश्रा को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी राहत को सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, सदर, मिर्ज़ापुर/प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.08.2022 को चुनौती देने तक सीमित रखा है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर बहाली आवेदन केस संख्या -

आरएसटी/01001/2019 को राजस्व संहिता 2006 की धारा 144 उ0प्र0 की कार्यवाही के रूप में दर्ज किया गया था, जिसे खारिज कर दिया गया है।

3. रिट याचिका में दलीलों के अनुसार, याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने दिनांक 24.06.2019 के विक्रय विलेख के माध्यम से कुछ भूमि पार्सल खरीदे हैं और उसका नाम दिनांक 09.01.2019 के आदेश के अनुसार राजस्व रिकॉर्ड में भी बदल दिया गया था। इसके बाद, उक्त भूमि के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 7 और 8 द्वारा दायर एक घोषणात्मक मुकदमे के लंबित होने के संबंध में पता चलने पर, दिनांक 26.09.2019 को एक पक्षकार आवेदन दायर किया गया था, जिसे एक आदेश द्वारा अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था। दिनांक 19.02.2020. उसके विरुद्ध दायर बहाली आवेदन को भी दिनांक 30.12.2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 19.02.2020 और 30.12.2020 के आदेशों के खिलाफ, जिसके संदर्भ में याचिकाकर्ता द्वारा धारा 144 के तहत कार्यवाही में दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था, याचिकाकर्ता ने केस नंबर आरईवी/158/2021 (कम्प्यूटरीकृत केस संख्या एएल2021165300158), में संशोधन को प्राथमिकता दी थी। जिसे राजस्व बोर्ड ने दिनांक 05.07.2021 के आदेश के संदर्भ में मामले को सब डिविजनल मजिस्ट्रेट की अदालत में भेजने की अनुमति दी थी। इस

मामले को निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद प्रभावित पक्ष को सुनवाई का अधिकार है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि, जब तक याचिकाकर्ता उप प्रभागीय मजिस्ट्रेट के समक्ष पूर्वोक्त आदेश दे सका, 28.07.2021 को मुकदमे का निर्णय करते हुए एक अंतिम आदेश पारित किया जा चुका था।

6. इसके बाद, कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.07.2021 के आदेश को संलग्न करते हुए एक रिकॉल एप्लिकेशन को प्राथमिकता दी है और दिनांक 28.07.2021 के आदेश को वापस लेने की प्रार्थना की है। उक्त आवेदन को प्रत्यर्थी नंबर 3 द्वारा दिनांक 23.08.2022 के एक आदेश द्वारा स्पष्ट रूप से इस कारण से खारिज कर दिया गया था कि चूंकि मुकदमे में अंतिम आदेश पारित किया गया है, इसलिए रिकॉल आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है। .

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक बार राजस्व बोर्ड ने अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, 19.02.2020 और 30.12.2020 के पहले के आदेशों को रद्द कर दिया था और मामले को प्रत्यर्थी क्रमांक 3 की अदालत में भेज दिया था। उक्त प्रत्यर्थी, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की अनदेखी नहीं कर सकता था और रिकॉल/बहाली आवेदन को अस्वीकार नहीं कर सकता था।

8. इस संबंध में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि संहिता, 2006 की धारा 8 के अनुसार,

राजस्व बोर्ड मामलों, अपीलों या पुनरीक्षणों के निस्तारण से संबंधित सभी मामलों में मुख्य नियंत्रण प्राधिकारी है। बोर्ड का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार संहिता की धारा 210 द्वारा प्रदान किया गया है, और इसके संदर्भ में इसे किसी भी अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा तय किए गए किसी भी मुकदमे या कार्यवाही के रिकॉर्ड के लिए कॉल करने का अधिकार है, जिसमें कोई अपील नहीं है। ऐसे मुकदमे या कार्यवाही में पारित किसी भी आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में खुद को संतुष्ट करना। अनुभाग की भाषा व्यापक आयामों में से एक है और राजस्व बोर्ड के अधीनस्थ राजस्व न्यायालयों द्वारा तय किए गए किसी भी मुकदमे या कार्यवाही को अपने दायरे में लेती है।

9. न्यायिक प्रकृति की न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए सब डिविजनल मजिस्ट्रेट 'राजस्व न्यायालय' के रूप में कार्य करता है, जैसा कि यूपी राजस्व संहिता, 2006, की धारा 2(16) के तहत परिभाषित किया गया है। और इस प्रकार यह राजस्व बोर्ड के अधीनस्थ एक न्यायालय होगा और इसके पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार और इसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन होगा।

10. यह असावधानी से परे होगा कि जब एक वरिष्ठ अदालत कुछ निर्देशों के साथ निचली अदालत को रिमांड का आदेश जारी करती है, तो निचली अदालत उक्त निर्देशों के अनुसार निर्णय लेने के लिए बाध्य होती है।

11. राज्य के प्रत्यर्थियों के लिए अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 7 और 8 के लिए उपस्थित अधिवक्ता, याचिकाकर्ता के रिकॉल आवेदन पर विचार करने से इनकार करने में उप प्रभागीय मजिस्ट्रेट की ओर से औचित्य की कमी पर विवाद करने में सक्षम नहीं हैं। , सभी अधीनस्थ राजस्व न्यायालयों पर पर्यवेक्षी शक्तियां रखने वाले मुख्य नियंत्रक प्राधिकारी के रूप में अपनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, संशोधन की अनुमति देते समय राजस्व बोर्ड द्वारा जारी निर्देश की अवहेलना की गई।

12. पक्षों के अधिवक्ता इस बिंदु पर विचार कर रहे हैं कि यदि राजस्व मंडल द्वारा पुनरीक्षण में दिनांक 05.07.2021 के पारित आदेश पर विचार करने के बाद मामले को नए आदेश पारित करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 3 को भेज दिया जाए तो यह न्याय के हित में काम करेगा।

13. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय केस संख्या 01001/2019 (कम्प्यूटरीकृत केस संख्या 20191653 0001001) (धीरज कुमार और अन्य बनाम मुन्नी देवी) में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 23.08.2022 के आदेश को रद्द करना उचित समझता है।

14. मामला क्रमांक आरईवी/158/2021 (कम्प्यूटरीकृत प्रकरण क्रमांक एएल2021165 300158) में पारित अपने आदेश दिनांक 05.07.2021 में राजस्व बोर्ड द्वारा जारी निर्देश को ध्यान में रखते हुए, कानून के अनुसार, संबंधित पक्षों को उचित अवसर देने

के बाद, शीघ्रता से और अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर एक नया आदेश पारित करने के लिए मामला प्रत्यर्थी क्रमांक 3 को भेजा जाता है।

15. याचिका ऊपर बताई गई परिसीमा तक स्वीकार की जाती है।

(2023) 7 ILRA 803

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

रिट-सी संख्या 40939 सन् 2004

उत्तर प्रदेश राज्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

राधा चरण मृतक एवं एक अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: एस.सी.

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: एस.सी., इंद्र पाल सिंह राजपूत

सिविल विधि - भूमि जोत अधिनियम, धारा 10(2) पर अधिकतम सीमा लगाना - संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 - धारा 122 और 123 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950, धारा 152 - उपहार - नाबालिग को उपहार। वर्तमान मामले में, दाता, भू-स्वामी राधा चरण ने 16.04.1979 (24 जनवरी 1971 से पहले) के पंजीकृत उपहार विलेख द्वारा अपने नाबालिग

बेटों, अर्थात् मदन पाल सिंह, उम्र लगभग 14 वर्ष, और राम पाल सिंह, उम्र लगभग 6 वर्ष, को उनकी मां सुहाग रानी की संरक्षकता में 20.26 एकड़ भूमि उपहार में दी। विहित प्राधिकारी ने राधा चरण की जोत से 20.26 एकड़ तक उपहार विलेख द्वारा कवर की गई भूमि को बाहर करने के बाद आदेश पारित किया। रिट याचिका में, राज्य का मामला यह था कि नाबालिग अपने पक्ष में उपहार विलेख प्राप्त करने के हकदार नहीं थे और उनके द्वारा अपने नाम पर रखी गई भूमि उनके पिता की भूमि के साथ जोड़ी जा सकती थी, जो मूल काश्तकार थे, और इसे नोटिस में सही ढंग से शामिल किया गया था।

माना गया: उपहार विलेख नाबालिग बेटों के पक्ष में उनकी मां श्रीमती सुहाग रानी के माध्यम से निष्पादित किया गया था। यद्यपि दानकर्ता नाबालिग थे, उन्होंने अपनी मां के माध्यम से उपहार स्वीकार किया था, जो अपने बेटों की ओर से उपहार स्वीकार करने में सक्षम थी। कब्जे के हस्तांतरण का विवरण था। यहां तक कि विचाराधीन संपत्ति दानकर्ताओं के नाम पर म्यूटेशन की गई थी, और दानकर्ता के जीवनकाल के दौरान, दानकर्ता वयस्क हो गए और उन्होंने भी उपहार विलेख स्वीकार कर लिया, विचाराधीन संपत्ति के साथ हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में व्यवहार किया। एक वैध उपहार के सभी तत्व पूर्ण थे। राधा चरण भूमिधर थे जिन्होंने 21.04.1969 को एक उपहार विलेख के माध्यम से 20.26 एकड़ कृषि भूमि में अपना अधिकार, शीर्षक और हित अपने नाबालिग बेटों को हस्तांतरित

किया। उपहार विलेख भूमि विधियों के अनुसार था। विद्वान अपीलीय न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश कानूनी और वैध है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। (पैरा 21, 22, 35)

खारिज। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. शकुंतला देवी बनाम अमर देवी, ए.आई.आर. 1985 एच.पी. 111
2. गौरंगा साहू एवं अन्य बनाम मगुनी देव एवं अन्य, ए.आई.आर. 1991 उड़ीसा 151, पृष्ठ 155
3. संजुक्ता रे बनाम बिमेलेंदु मोहंती, ए.आई.आर. 1997 उड़ीसा 131
4. कामाक्षी अम्मल बनाम राजलक्ष्मी, ए.आई.आर. 1995 मद्रास 415
5. के. बालाकृष्णन बनाम के. कमलम, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 1257
6. आशकर सिंह एवं एक अन्य बनाम रावल सिंह एवं एक अन्य, ए.आई.आर. 1952 पी एंड एच 148, पृ. 150
7. बलवंत सिंह बनाम चतिन सिंह, ए.आई.आर. 1985 पी.एंड एच 74

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. अधिवक्ता श्री नरेश चंद्र पाल, श्री इंद्रपाल सिंह राजपूत और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपर आयुक्त, चित्रकूट धाम मंडल, बांदा द्वारा पारित 29.04.2004 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने के लिए सर्टिओरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है। .

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि स्वर्गीय राधा चरण (मृतक) निवासी ग्राम चिल्ली परगना और तहसील राठ, जिला बांदा को भूमि जोत अधिनियम की धारा 10 (2) के तहत एक नोटिस जारी किया गया था। इस आधार पर आपति दर्ज करने के लिए कि राखा में 26.97 एकड़ अधिशेष सिंचित भूमि है, जिसे राज्य के पक्ष में जब्त किया जाना है। नोटिस के अनुसार अधिकतम उपयोगी क्षेत्र 24.00 एकड़ है और नोटिस की तामील के बाद राधाचरण ने आपति दायर की कि आपत्तिकर्ता की भूमि असिंचित भूमि है और इसे गलत तरीके से सिंचित भूमि दिखाया गया है। उन्होंने आगे बताया कि उनकी पत्नी सुहाग रानी से बिना विवाह के राम पाल सिंह और मदन पाल सिंह पैदा हुए, जो अलग-अलग रहते थे। उनकी माता के समय से ही उनकी आजीविका के लिए उन्हें उनके हिस्से की 20.00 एकड़ ज़मीन दी गई थी, जिस पर उनका कब्ज़ा है और वे उस पर खेती करते हैं। जब बच्चे संतुष्ट नहीं हुए तो उन्होंने 24.01.1971 से पहले आपत्तिकर्ता से उपहार-विलेख के माध्यम से भूमि हस्तांतरित कर ली, इसलिए इस भूमि को आपत्तिकर्ता के खाते में नहीं जोड़ा जाना चाहिए। दोनों बेटे वयस्क

हैं और बेटों के पक्ष में स्थानांतरण कानूनी और वैध है।

4. श्रीमती सुहाग रानी की मृत्यु के कई वर्षों के बाद आपत्तिकर्ता ने श्रीमती गिरजा रानी के साथ एक और विवाह संपन्न किया और जिनसे उनके दो बच्चे हुए, क. सरोज और जय सिंह, इस प्रकार आपत्तिकर्ता के परिवार में पति-पत्नी और दो नाबालिग बच्चे हैं। आराजी नंबर 644, 645 और 1694 आपत्तिकर्ता के कब्जे और होल्डिंग पर हैं और इसे मोहन लाल, मुरलीधर, स्वामी और चन्नी और एक अन्य के कब्जे में गलत तरीके से शामिल किया गया है। उनका नाम गलत अंकित किया गया है और उनका कब्जा भी नहीं है। ऊसर व बगान की जमीन को गलती से मजरूआ जमीन दिखा दिया गया है। यह भी उल्लेख किया गया है कि दिनांक 09 जनवरी 1975 के आदेश में विहित प्राधिकारी ने वयस्क पुत्रों के अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा 9.02 एकड़ असिंचित भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में दर्शाया गया है तथा इस बिन्दु पर पुनः प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है केवल आवेदक के नाम की भूमि पर ही विचार किया जा सकता है।

5. मदन पाल सिंह और राम पाल सिंह ने समान प्रकृति की आपत्ति दर्ज की है और भुर्जई, खामोदीन, चन्नो, मोहन लाल और मतैया ने अलग-अलग आपत्ति दर्ज की है जो कि कार्यकाल धारक की आपत्ति के पैरा 9 के समान है।

6. मुद्दे तय किए गए और साक्ष्य दर्ज किए गए और 22.06.1976 को विहित प्राधिकारी,

सीलिंग, राठ, हमीरपुर, मूल चंद्र यादव ने माना कि 17.40 एकड़ सामान्य या 8.16 एकड़ सिंचित भूमि अधिशेष भूमि है। उससे पहले 09.01.1975 को श्री सी.एल. वर्मा, निर्धारित प्राधिकारी, राठ, जिला हमीरपुर ने दिनांक 09.01.1975 को निर्णय और आदेश पारित किया और माना कि खातेदार राधा चरण की 9.02 एकड़ असिंचित भूमि सीलिंग अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अधिशेष भूमि है।

7. विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.06.1976 को जिला न्यायाधीश, हमीरपुर की अदालत में चुनौती दी गई थी, जिसका निर्णय 23.12.1976 को तृतीय अपर जिला न्यायाधीश द्वारा अपील संख्या 01 सन् 1976 में किया गया था, जिसे कार्यकाल द्वारा चुनौती दी गई थी। सिविल विविध में धारक रिट याचिका संख्या 925/1977- राधा चरण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य जिसका निर्णय 08 नवम्बर 1978 को हुआ।

8. याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया और तृतीय अपर जिला न्यायाधीश, हमीरपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.12.1976 को रद्द कर दिया गया और उन्हें उच्च न्यायालय के फैसले में उल्लिखित दूसरे बिंदु पर अपील की फिर से सुनवाई करने का निर्देश दिया गया और यह निर्देशित किया गया कि नये सिरे से आदेश पारित करें। इसके बाद 24.03.1988 को मामले का फैसला हुआ अधिनियम में संशोधन के बाद, आयुक्त झाँसी मंडल, झाँसी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ अपील का फैसला किया, जिसे सिविल विविध

दायर करके उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। रिट याचिका संख्या 9597 सन् 1988, जिसका निर्णय दिनांक 14.09.1994 को हुआ तथा अपर आयुक्त, झाँसी प्रतिवादी संख्या 2 को कानून के अनुसार अपील पर नये सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

9. उपरोक्त आदेश के अनुपालन में अपील पर दिनांक 29 अप्रैल 2004 को श्री उषा रमण, अपर आयुक्त, चित्रकूट धाम मण्डल, बाँदा द्वारा निर्णय लिया गया तथा अपील स्वीकार की गयी।

व्यथित होकर, अपीलीय न्यायालय के दिनांक 29 अप्रैल, 2004 के आदेश से, उ.प्र. अपर आयुक्त, चित्रकूट धाम भाना द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.04.2004 (अनुलग्नक संख्या 1) को रद्द करने के लिए यह याचिका दायर की है।

10. इस अपील में, उ.प्र. राज्य. यह रिट याचिका अपर आयुक्त, चित्रकूट धाम मंडल, बाँदा, सीलिंग अपील संख्या 803 सन् 1976, 04 सन् 1985-86 एवं 06 सन् 2003-04 राधा चरण (मृतक) मदन पाल एवं अन्य वि.सं. यूपी राज्य की शिकायत यह है कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपील की अनुमति दे दी है और फ़ाइल निर्धारित प्राधिकारी को भेज दी है और राधा चरण की हिस्सेदारी से 20.26 एकड़ की सीमा तक उपहार विलेख द्वारा कवर की गई भूमि को बाहर करने के बाद आदेश पारित कर दिया है। निर्णय और आदेश 29.04.2004 को याचिका में परिशिष्ट संख्या 1 के रूप में संलग्न किया गया है।

11. मूल खातेदार राधा चरण के खिलाफ सीलिंग एक्ट की धारा 10 (2) के तहत एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें 09.02 एकड़ भूमि को अधिशेष घोषित करने का प्रस्ताव था, जिन्होंने यह दावा करते हुए आपत्ति दर्ज कराई थी कि उनका एक बेटा बालिग है और उनके परिवार सात सदस्यों में ये शामिल हैं और नोटिस सही ढंग से तैयार नहीं किया गया था। विहित प्राधिकारी ने 09.01.1975 को तहसील राठ, हमीरपुर में स्थित 9.02 एकड़ असंचित भूमि को अधिशेष घोषित किया, जो याचिका के परिशिष्ट संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

12. इसके बाद यूपी भूमि जोत अधिनियम, 1960 पर सीमा अधिरोपण में संशोधन किया गया और अधिनियम की धारा 38-ए के साथ अधिनियम की धारा 5 में स्पष्टीकरण जोड़ा गया। संशोधित प्रावधानों के तहत विहित प्राधिकारी नये सिरे से जारी किया गया. खातेदार राधा चरण को नोटिस जिसमें प्लॉट नंबर 812, 813 और 816 आदि की भूमि सहित कुल क्षेत्रफल 20.26 एकड़ है, जो 16.04.1969 को राधा चरण के बेटे (नाबालिग) को उपहार में दिया गया था।

13. राधा चरण ने दूसरे नोटिस के खिलाफ मुख्य रूप से इस आधार पर आपत्ति दर्ज की कि दोनों दानकर्ता मदन पाल सिंह राम पाल सिंह, मृतक की मां के साथ अलग रह रहे थे और उपहार में दी गई जमीन उन्हें नहीं दी गई थी इसलिए, इसे उसके खिलाफ शुरू की

गई कार्यवाही का विषय नहीं बनाया जा सकता है।

आदेश में दिया गया है, जो रिट याचिका के अनुबंध संख्या 6 के रूप में संलग्न है।

14. विहित प्राधिकारी ने संपूर्ण साक्ष्यों पर विचार करने के बाद 17.40 एकड़ 8.16 एकड़ के बराबर भूमि को अधिशेष भूमि घोषित किया, आदेश दिनांक 22.06.1976 की प्रति याचिका में परिशिष्ट संख्या 03 के रूप में संलग्न की गई। उक्त आदेश को जिला न्यायाधीश, हमीरपुर के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे आदेश दिनांक 23.12.1976 के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, जिसे रिट याचिका संख्या 925/1977 में चुनौती दी गई थी, जिसे माननीय उच्च न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक के माध्यम से आंशिक रूप से अनुमति दी थी। 08.11.1978, जो याचिका के साथ अनुबंध संख्या 4 के रूप में संलग्न है। अपील को रिमांड पर लिया गया और रिमांड के बाद उसे फिर से खारिज कर दिया गया। दिनांक 24.03.1988 के आदेश के तहत, जो याचिका के साथ अनुबंध संख्या 5 के रूप में संलग्न है।

15. दिनांक 24.03.1988 के आदेश को पुनः रिट याचिका संख्या में चुनौती दी गई। 1996 का 9597, जिसे इस माननीय उच्च न्यायालय ने दिनांक 14.09.1994 के फैसले और आदेश के तहत अनुमति दी थी, टिप्पणियों के आलोक में अपील को पुनर्विचार के लिए भेज दिया था।

16. दिनांक 14.09.1994 के आदेश के अनुसार, अपीलीय प्राधिकारी ने राधा चरण द्वारा अपने नाबालिग पुत्रों राम पाल सिंह और मदन पाल सिंह के पक्ष में दिनांक 19.04.1969 के उपहार विलेख को स्वीकार करने में त्रुटि करते हुए अपील का फैसला किया, उपहार की प्रति विलेख रिट याचिका के अनुबंध संख्या 7 के रूप में संलग्न है। उपहार-विलेख के निष्पादन की तिथि पर, मदन पाल सिंह की उम्र लगभग 14 वर्ष थी, जबकि राम पाल सिंह मुश्किल से छह वर्ष के थे और उनमें से कोई भी बालिग नहीं था इसलिए वे अपने पक्ष में किए गए उपहार विलेख को देने के हकदार नहीं थे और उनके द्वारा अपने नाम पर रखी गई भूमि उनके पिता की भूमि के साथ मिल जाने के लिए उत्तरदायी थी, जो मूल किरायेदार धारक थे और उनको नोटिस में सही ढंग से शामिल किया गया है।

17. इस बात के भी सबूत हैं कि राधा चरण का संबंधित तिथि पर उपहार विलेख द्वारा कवर की गई भूमि पर कब्जा था इसलिए भूमि का बहिष्कार स्वीकार्य नहीं था।

18. इस मामले में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या 24 जनवरी 1971 से पहले दिनांक 16.04.1979 को पंजीकृत उपहार-विलेख पुत्र मदन पाल सिंह उम्र लगभग 14 वर्ष और राम पाल सिंह उर्फ राम सिंह उम्र लगभग 14 वर्ष के पक्ष में था। छह वर्ष उनकी अभिभावक

श्रीमती के माध्यम से दाता राधाचरण की पत्नी सुहागरानी वैध है या नहीं, इस संबंध में विद्वान अपीलीय अदालत ने निष्कर्ष दिया है कि उपरोक्त उपहार विलेख के माध्यम से, दाता किरायेदार राधा चरण ने अपने बेटों को उनकी मां सुहाग रानी की संरक्षकता के तहत 20.26 एकड़ भूमि का एक क्षेत्र उपहार में दिया था। कब्जा देने का भी एक औसत है। उपहार विलेख पंजीकृत किया गया है जिसके आधार पर उपहार लेने वालों का नाम बदल दिया गया है।

19. विद्वान अपीलीय अदालत ने उन परिस्थितियों पर भी विचार किया है कि राधा चरण ने दूसरी शादी की थी। इसलिए, दान पाने वाले उनकी पहली पत्नी के बेटे थे, जिन्हें उन्होंने उनकी मां की संरक्षकता में संपत्ति हस्तांतरित कर दी थी उपहार विलेख एक प्राकृतिक मानवीय आचरण और लेनदेन प्रतीत होता है।

20. गौरतलब है कि इसके विपरीत राज्य की ओर से कुछ भी साबित नहीं किया जा सका। इस संबंध में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 122 और धारा 123 के प्रावधान प्रासंगिक हैं, जिन्हें यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

धारा 122 और धारा 123 संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882.

122. "उपहार" की परिभाषा - "उपहार" कुछ मौजूदा चल या अचल संपत्ति का हस्तांतरण है जो स्वेच्छा से और बिना प्रतिफल के, एक व्यक्ति द्वारा, जिसे दाता कहा जाता है, दूसरे

को, जिसे दानकर्ता कहा जाता है, और उसके द्वारा या उसकी ओर से स्वीकार किया जाता है। किया हुआ।

स्वीकृति कब होनी है. ऐसी स्वीकृति दाता के जीवनकाल के दौरान ही की जानी चाहिए और जब वह देने में सक्षम हो। यदि प्राप्तकर्ता की स्वीकृति से पहले मृत्यु हो जाती है, तो उपहार शून्य है।

123. स्थानांतरण कैसे प्रभावी होगा अचल संपत्ति का उपहार देने के प्रयोजन के लिए, स्थानांतरण दाता द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित एक पंजीकृत दस्तावेज़ द्वारा किया जाना चाहिए, और कम से कम दो गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए।"

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर एक उपहार के आवश्यक तत्व हैं:-

- (ए) विचार का अभाव;
- (बी) दाता;
- (सी) प्राप्तकर्ता;
- (डी) स्वैच्छिक होना;
- (ई) विषय-वस्तु;
- (च) स्थानांतरण; और
- (छ) स्वीकृति.

21. इस मामले में दाता द्वारा कोई विचार नहीं किया गया है, दानकर्ता कानूनी रूप से सक्षम व्यक्ति था। हालाँकि, दान पाने वाले नाबालिग थे, लेकिन उन्होंने अपनी माँ के माध्यम से उपहार स्वीकार किया था, जो अपने बेटों की ओर से उपहार स्वीकार करने में सक्षम थी। यह सिद्ध हो चुका है कि उपहार विलेख स्वेच्छा से निष्पादित किया गया था, बिना किसी दबाव, अनुचित प्रभाव, गलत बयानी या धोखाधड़ी के और कार्य किसी

भी कानून द्वारा वर्जित नहीं है। विषय वस्तु का मालिक जीवित था और विचाराधीन संपत्ति अस्तित्व में थी, हस्तांतरण के कई तरीके हैं और विचाराधीन संपत्ति उपहार के माध्यम से हस्तांतरित की गई है और दोनों प्राप्तकर्ताओं की मां ने उपहार स्वीकार कर लिया है पुत्रों की ओर से विलेख. कब्जा दिलाने का पाठ हो रहा है। यहां तक कि प्रश्नगत संपत्ति दान प्राप्तकर्ताओं के नाम पर परिवर्तित कर दी गई थी और दाता के जीवन काल के दौरान, दान प्राप्तकर्ताओं ने वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी और उन्होंने उपहार विलेख भी स्वीकार कर लिया था और हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में विचाराधीन संपत्ति के साथ व्यवहार कर रहे हैं। इस प्रकार एक वैध उपहार के उपहार के सभी तत्व पूर्ण हो जाते हैं।

22. धारा 122 की अंतिम पंक्ति के अवलोकन से, यह बहुत स्पष्ट है कि एक उपहार दान प्राप्तकर्ता द्वारा या उसकी ओर से स्वीकार किया जा सकता है और उपहार विलेख में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि नाबालिग बेटे अपनी माँ श्रीमती सुहाग रानी के माध्यम से उपहार विलेख दानकर्ता के पक्ष में निष्पादित किया गया था। । इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि उपहार विलेख कानून के अनुसार स्वीकार नहीं किया गया है। दाता ने भविष्य में इस संपत्ति पर कभी दावा नहीं किया, उसने उपरोक्त उपहार विलेख को रद्द करने के लिए कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की थी। उन्होंने दान पाने वालों के नाम पर उत्परिवर्तन के संबंध में कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी, हालांकि दान

पाने वाले नाबालिग थे, लेकिन नाबालिग के पक्ष में उपहार दिया जा सकता है।

संपत्ति अंतरण अधिनियम मुल्ला के 10वें संस्करण के पृष्ठ 1257 (4) में उल्लेख है कि:-

"प्राप्तकर्ता वह व्यक्ति है जो उपहार स्वीकार करता है। उपहार ऐसे व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से स्वीकार किया जा सकता है जो अनुबंध करने में सक्षम नहीं है। इसलिए, एक नाबालिग दान प्राप्तकर्ता हो सकता है; लेकिन यदि उपहार कठिन है, तो दायित्व नहीं लिया जा सकता है जब वह नाबालिग हो तो उसके खिलाफ कार्रवाई की जाए। लेकिन जब वह वयस्क हो जाए तो उसे या तो बोझ स्वीकार करना होगा, या उपहार वापस करना होगा।

'प्राप्तकर्ता द्वारा या उसकी ओर से स्वीकृत' शब्द से पता चलता है कि प्राप्तकर्ता स्वीकृति व्यक्त करने में असमर्थ व्यक्ति हो सकता है। किसी बच्चे को केवल एक उपहार दिया जा सकता है, और उसकी ओर से स्वीकार किया जा सकता है।"

कॉलम नंबर 7 का संदर्भ पेज नं. 1259 इसी पुस्तक का भी प्रासंगिक है, जिसे यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"7-स्वीकृति

एक वैध उपहार बनाने के लिए उसकी स्वीकृति सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। स्वीकृति के किसी विशेष तरीके की आवश्यकता नहीं है, और परिस्थितियाँ उस

पहलू पर प्रकाश डालती हैं। उपहार का लेन-देन पूरा होने के लिए दान प्राप्तकर्ता द्वारा दाता के जीवनकाल के दौरान स्वीकार किया जाना चाहिए। स्वीकृति का तथ्य अलग-अलग परिस्थितियों से स्थापित किया जा सकता है जैसे कि संपत्ति लेने वाला, या अकेले उपहार के विलेख के कब्जे में होना। यदि दान प्राप्तकर्ता के पक्ष में निष्पादन या पंजीकरण के बाद दान का कोई दस्तावेज दानकर्ता द्वारा उसे सौंप दिया जाता है जिसे वह स्वीकार कर लेता है, तो यह कानून में उपहार की वैध स्वीकृति माना जाता है। जिस विलेख में कब्जा दिया गया है उसमें विशिष्ट पाठन, स्वीकृति की धारणा उत्पन्न करता है। हालाँकि, एक बार जब यह पता चल जाता है कि उपहार स्वीकार कर लिया गया है और उपहार विलेख की सामग्री की सच्चाई को स्वीकार कर लिया गया है, तो यह स्थापित करने के लिए ठोस सबूत की आवश्यकता होती है कि दाता ने अभी भी अपने पास कब्जा बरकरार रखा है, और दस्तावेज पर कोई कार्रवाई नहीं की गई है।"

23. शकुन्तला देवी बनाम अमर देवी ए.आई.आर. 1985 एच.पी. पृष्ठ 111, यह माना गया है कि स्वीकृति का अनुमान लगाया जा सकता है।

24. गौरांग साहू एवं अन्य बनाम मगुनी देव और अन्य ए.आई.आर. 1991 उड़ीसा 151, पृष्ठ 155 यह माना गया है कि यह पता लगाने के लिए मौखिक साक्ष्य पर गौर किया जा सकता है कि क्या उपहार पर वास्तव में कार्रवाई की गई थी।

25. इस मामले में दाता द्वारा आपत्ति/प्रतिशपथ पत्र के माध्यम से कहा गया है कि उसने दान प्राप्तकर्ताओं को कब्जा दे दिया है और उसने संपत्ति अपने बेटों को प्यार और स्नेह में उपहार में दे दी है।

26. संजुक्ता रे बनाम बिमलेन्दु मोहंती ए.आई.आर. 1997 उड़ीसा 131, यह माना गया है कि जहां उपहार-विलेख में एक विशिष्ट पाठ है कि कब्जा प्राप्तकर्ता को सौंप दिया गया है, एक धारणा उत्पन्न होती है कि कब्जा प्राप्तकर्ता को सौंप दिया गया है।

27. कामाक्षी अम्मल बनाम राजलक्ष्मी ए.एल.आर. 1995 मद्रास 415, यह माना गया है कि जहां एक पिता ने अपनी बेटी को एक उपहार दिया और उसके द्वारा इसे स्वीकार करने पर, वह अपने पिता को पिता और बेटी के बीच के रिश्ते को ध्यान में रखते हुए तय की गई संपत्तियों से आय का आनंद लेने की अनुमति देती है। दाता और प्राप्तकर्ता, यह नहीं कहा जा सकता कि प्राप्तकर्ता द्वारा उपहार स्वीकार नहीं किया गया, भले ही यह मान लिया जाए कि उपहार में दी गई संपत्ति पर दानकर्ता का कब्जा और उपभोग जारी रहा। उपहार की पूर्णता या वैधता के लिए उपहार में दी गई संपत्ति के कब्जे की डिलीवरी पूर्ण आवश्यकता नहीं है, जैसा कि उपहार के मुस्लिम कानून में पाया गया है।

28. के. बालकृष्णन बनाम के. कमलम ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 1257, में यह माना गया है कि एक नाबालिग लाभ स्वीकार कर सकता है, हालांकि वह कोई दायित्व नहीं

ले सकता है। जहां उपहार दाता के बच्चे के पक्ष में दिया जाता है, जो बच्चे का संरक्षक है, तो उपहार की स्वीकृति उसके द्वारा या उसकी ओर से की गई मानी जा सकती है, बिना किसी प्रत्यक्ष कार्य के, जो नाबालिग द्वारा स्वीकृति को दर्शाता है।

29. आशकर सिंह एवं अन्य बनाम रावल सिंह और अन्य, ए.आई.आर. 1952 पी एंड एच 148, पी. 150, यह माना गया है कि एक नाबालिग के अभिभावक उसके लिए उपहार विलेख स्वीकार कर सकते हैं। उपहार तब पूर्ण होगा जब अभिभावक नाबालिगों की ओर से उपहार स्वीकार करता है और स्वीकृति के प्रतीक के रूप में उपहार विलेख पर अपने अंगूठे का निशान लगाता है। **बलवंत सिंह बनाम चतिन सिंह ए.आई.आर 1985 पी एंड एच 74.** में उच्च न्यायालय द्वारा इसी तरह के विचार प्रतिपादित किए गए हैं।

30. यू.पी.जेड.ए एवं एलआर अधिनियम, 1950 की धारा 152 के तहत भूमिधरी हित के हस्तांतरण का प्रावधान है। राधा चरण भूमिधर थे, जिन्होंने 21.04.1969 को उपहार विलेख के माध्यम से 20.26 एकड़ कृषि भूमि का अधिकार, शीर्षक और ब्याज अपने नाबालिग बेटों को हस्तांतरित कर दिया था।

31. 30प्र0 की धारा 152 का सुसंगत भाग। जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 इस प्रकार है:-

152. भूमिधरी का हित हस्तांतरणीय होगा -

(1) *हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर का हित इसमें इसके बाद निहित शर्तों के अधीन होगा, हस्तांतरणीय होगा।*

(2). *इस अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से अनुमति दिए जाने के अलावा, गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर का हित हस्तांतरणीय नहीं होगा।*

(3) *उपधारा (2) में निर्दिष्ट भूमिधर, ऐसी परिस्थितियों में, जो निर्धारित की जा सकती हैं, तकावी के माध्यम से राज्य सरकार से लिए गए ऋण की सुरक्षा के रूप में, अपनी हिस्सेदारी में अपने हित को बिना कब्जे के गिरवी रख सकता है, या किसी सहकारी समिति से या भारतीय स्टेट बैंक से, या किसी अन्य बैंक से, जो भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 2 के खंड (ई) के अर्थ में एक अनुसूचित बैंक है, या उत्तर से प्रदेश स्टेट एगो-इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, और कृषि, बागवानी और पशुपालन शिक्षा से संबंधित किसी भी उद्देश्य के लिए किसी मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान को उपहार के रूप में, अपनी हिस्सेदारी में ब्याज, उसके उस हिस्से को, जो इस प्रकार गिरवी रखा गया है, हस्तांतरित कर सकता है।"*

32. इस प्रकार, उपरोक्त उद्धरण से, यह फिर से स्पष्ट हो गया है कि हस्तांतरणीय अधिकारों वाला एक भूमिधर उपहार के रूप में किसी भी कृषि भूमि के अपने अधिकार, शीर्षक और हित को हस्तांतरित कर सकता है,

जिसे राधा चरण ने अपनाया था। इस प्रकार कथित उपहार विलेख भी भूमि कानूनों के अनुरूप है।

33. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश कानूनी और वैध है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

34. याचिका में योग्यता नहीं है और यह खारिज किये जाने योग्य है।

35. तदनुसार याचिका खारिज की जाती है और विद्वान अपीलीय अदालत का आदेश दिनांक 29.04.2004 अपर आयुक्त चित्रकूट धाम, बांदा मंडल बांदा द्वारा पारित की पुष्टि की जाती है।

(2023) 7 ILRA 810

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 51594 सन् 2000

रोहित लाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: कुमारी मोना राजवंशी, श्री एम.के. राजवंशी, श्री सुमित डागा, श्री विशेष राजवंशी श्रीराकेश पांडे

प्रत्यर्थी के लिए अधिवक्ता: श्री पी.के. सिंह, श्री आर.के. जैन, श्री राजेश कुमार पांडे, एस.सी., श्री के.एम. गर्ग, श्री सुमित डागा

सिविल विधि - दुकान आवंटन रद्द करना - आवंटी और क्रेता के अधिकार - न्यायसंगत विचार - दिनांक 18.11.2000 के विवादित आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के पक्ष में दुकान संख्या जी-3 का आवंटन रद्द कर दिया गया था और उसके बाद वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान 03.12.2002 को प्रतिवादी संख्या 4 को आवंटित कर दिया गया था, क्योंकि कोई अंतरिम आदेश नहीं दिया गया था। इसके बाद, विकास प्राधिकरण द्वारा 22.03.2003 को प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में दुकान संख्या जी-3 के संबंध में बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था। माना गया: दुकान का आवंटन मात्र याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने का अधिकार प्रदान नहीं करता है। आवंटन को अधिक से अधिक बिक्री के लिए एक समझौते के बराबर माना जा सकता है, लेकिन यह याचिकाकर्ता को नगरपालिका प्राधिकरण को दुकान बेचने के लिए मजबूर करने का पूर्ण अधिकार नहीं देता है। दूसरी ओर, 2002 में दुकान के आवंटन के बाद, 22.03.2003 को प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था, जिसमें स्वामित्व को पूर्ण रूप से स्थानांतरित किया गया था। प्रतिवादी ने कब्जा प्राप्त करने के बाद अपना घड़ी बेचने का व्यवसाय स्थापित किया। वर्तमान मुकदमे की जानकारी के बिना दुकान खरीदने में प्रतिवादी संख्या 4 की इक्विटी और सद्भावनापूर्ण आचरण को ध्यान में रखते हुए, 18.11.2000 के आदेश

को रद्द करने से प्रतिवादी संख्या 4 के स्थापित व्यवसाय में बाधा उत्पन्न होगी। रिट खारिज।

खारिज। (ई-5)

(माननीय अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. श्री विशेष राजवंशी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के सहयोग से श्री राकेश पांडे, विद्वान अधिवक्ता, श्री सुमित डागा, प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता के सहयोग से, श्री के. एम. गर्ग, विद्वान अधिवक्ता, और श्री राजेश कुमार पांडे, विकास प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.11.2000 को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में दुकान संख्या जी-3 का आवंटन इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता के साथ-साथ उसकी बेटे, दोनों की भगत सिंह रोड के सामने भूतल पर दो अगल-बगल दुकानें जी-2 और जी-3 थीं और इन दोनों दुकानों का उपयोग घड़ी के व्यवसाय के लिए किया जा रहा था और भगत सिंह रोड के सामने दुकानों की कमी है।

3. प्रारंभ में, वर्तमान रिट याचिका को आदेश दिनांक 03.05.2018 द्वारा स्वीकृति दी गई थी और आक्षेपित आदेश दिनांक 18.11.2000

को रद्द कर दिया गया और प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 को दुकान संख्या जी-3 का कब्जा याचिकाकर्ता को सौंपने का निर्देश दिया गया। इसके बाद, प्रत्यर्थी नंबर 4 द्वारा दिनांक 03.05.2018 के आदेश को वापस लेने के लिए अभियाचन आवेदन के साथ एक रिकॉल आवेदन दायर किया गया था, जिसका आधार यह था कि प्रश्नगत दुकान उसे वर्तमान रिट याचिका की लंबित अवधि के दौरान वर्ष 2002 में आवंटित की गई थी और उसका दुकान नंबर जी-3 पर कब्जा है और वह वहाँ घड़ी का व्यवसाय चला रहा है; और यह कि दिनांक 03.05.2018 के आदेश पारित होने से पहले उसकी बात नहीं सुनी गई, जबकि वह उचित पक्ष है। प्रत्यर्थी संख्या-4 के पूर्वोक्त रिकॉल आवेदन की अनुमति दी गई थी और उन्हें दिनांक 11.05.2023 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 के रूप में भी अभियोजित किया गया था। चूंकि एकमात्र याचिकाकर्ता की भी मृत्यु हो चुकी है, इसलिए, उनके बेटे राज कुमार को भी दिनांक 15.05.2023 के आदेश द्वारा वर्तमान याचिका में याचिकाकर्ता संख्या 1/1 के रूप में अभियोजित किया गया था। वर्तमान मामले का तथ्यात्मक आव्यूह इस प्रकार है:-

4. याचिकाकर्ता के साथ-साथ प्रत्यर्थी नंबर 4 और कई अन्य व्यक्ति खुद को नाले पर बनी विभिन्न दुकानों के आवंटी होने का दावा करते हैं और नगर पालिका परिषद, मुजफ्फरनगर द्वारा उनके पक्ष में पट्टा विलेख भी निष्पादित की गई थी। इसके बाद, सौंदर्यीकरण योजना में, मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण ने नाले के ऊपर बनी दुकानों को ध्वस्त करने का प्रस्ताव रखा और इसके

बदले में, सभी विस्थापित दुकानदारों, जिनकी नाले के ऊपर दुकानें बनी हुई थीं, को भगत सिंह रोड, मुजफ्फरनगर से सटे शॉपिंग कॉम्प्लेक्स में दुकानें देने की पेशकश की गई थी। उस योजना के तहत भगत सिंह रोड से सटे शॉपिंग कॉम्प्लेक्स में दुकानें आवंटित की गईं।

5. याचिकाकर्ता, रोहित लाल और मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण के बीच दिनांक 26.06.1999 को इस शर्त पर कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अपनी अपील वापस ले लेगा, दुकान संख्या जी-1 के आवंटन के लिए एक समझौता निष्पादित किया गया था। उच्च न्यायालय में लंबित अपील आदेश 23 नियम 1 सीपीसी के तहत दायर की गई थी और यह नाले पर बनी दुकानों को ध्वस्त करने और दुकानदारों को नाले से बेदखल करने की विकास प्राधिकरण की शक्ति से संबंधित थी।

6. अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि एक साईदास को भूतल पर दुकान नंबर जी-3 आवंटित किया गया था और याचिकाकर्ता के बेटे रोहित लाल, जो वर्तमान में याचिकाकर्ता नंबर 1/1 है, को भूतल पर दुकान नंबर जी-2 आवंटित किया गया था। इसके बाद, मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण की अनुमति से, याचिकाकर्ता-रोहित लाल ने अपनी दुकान साईदास के साथ बदल ली थी और अंततः दुकान नंबर जी-3 याचिकाकर्ता-रोहित लाल को आवंटित कर दी गई और दुकान नंबर जी-1 साईदास को आवंटित कर दी गई।

7. इसके बाद, भगत सिंह रोड की ओर वाली दुकानों के लिए शॉपिंग कॉम्प्लेक्स के भूतल पर दुकानों के आवंटन के लिए विभिन्न आवंटियों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ और इस न्यायालय के समक्ष कई याचिकाएं दायर की गईं, जिन्हें सामान्य आदेश दिनांक 03.05.2018 द्वारा निपटाया गया। वर्तमान रिट याचिका उन रिट याचिकाओं में से एक है जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 के आग्रह पर दिनांक 03.05.2018 के आदेश को दिनांक 11.05.2023 को वापस ले लिया गया था।

8. न्यायालय के समक्ष पेश किए गए मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण के मूल अभिलेखों के अवलोकन से एवं नोट शीट को देखने से यह प्रतीत होता है कि नाला पर पहले की दुकान के बदले में दुकान नंबर जी-3 याचिकाकर्ता-रोहित लाल को आवंटित की गई थी और नाले के ऊपर स्थित दुकान नंबर 31 के बदले में, दुकान नंबर जी-2 राज कुमार (याचिकाकर्ता नंबर 1/1) को आवंटित की गई थी और नाले के ऊपर दुकान नंबर 32 के बदले में साईदास को दुकान नंबर जी-1 आवंटित किया गया था। वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई अंतरिम आदेश नहीं था और वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान, दुकान नंबर जी-3 को प्रत्यर्थी नंबर 4, रिकॉल आवेदक को आवंटित किया गया था।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि आक्षेपित आदेश बिल्कुल गलत है क्योंकि याचिकाकर्ता-रोहित लाल के पक्ष में किया गया दुकान नंबर जी-3 का आवंटन

केवल इसलिए रद्द कर दिया गया था क्योंकि उसके बेटे राज कुमार (याचिकाकर्ता नंबर 1/1) के पास भगत सिंह रोड, मुजफ्फरनगर की ओर ग्राउंड फ्लोर पर बगल की दुकान नंबर जी-2 भी है जबकि पिता और पुत्र को भगत सिंह रोड पर नाले के ऊपर उनकी अलग-अलग दुकानों के बदले में दुकानें आवंटित की गई थीं और वे दोनों स्वतंत्र व्यवसाय कर रहे हैं।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि 18.10.2000 को आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता-रोहित लाल के पक्ष में जी-3 का आवंटन रद्द करने के बाद, चूंकि वर्तमान मामले में भगत सिंह मार्ग पर नाले के ऊपर मौजूद उनकी दुकान नंबर 21/1 के बदले में कोई अंतरिम आदेश नहीं दिया गया था और वर्तमान याचिका के लंबित होने के कारण उसे वह दुकान दिनांक 03.12.2002 को फिर से आवंटित किया गया था। इसके बाद, मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण द्वारा दिनांक 22.03.2003 को दुकान नंबर जी-3 के संबंध में प्रत्यर्थी नंबर 4 के पक्ष में बिक्रीनामा भी निष्पादित किया गया, और इसलिए, वह दुकान नंबर जी-3 का पूर्ण मालिक बन गया। प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया कि वर्ष 2002 में दुकान संख्या जी-3 के आवंटन के समय या दुकान संख्या जी-3 के संबंध में 2003 में बिक्री विलेख के निष्पादन के समय, उनको मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण द्वारा दुकान संख्या जी-3 के संबंध में वर्तमान मुकदमे के बारे में सूचित नहीं किया गया था। इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 4 वर्तमान मुकदमे लंबित होने

की जानकारी के बिना विचार के लिए वास्तविक क्रेता है और अब लकी वॉच के नाम से उनका घड़ी का व्यवसाय स्थापित हो गया है और यह वर्ष 2002 से चल रहा है। इसलिए, उन्हें इस माननीय न्यायालय की असाधारण विवेकाधिकार शक्ति का प्रयोग करके बेदखल नहीं किया जा सकता है और दुकान नंबर जी-3 के संबंध में उनके 22.03.2003 दिनांकित विक्रय पत्र को रद्द नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे कब्जा रखने का अधिकार है। यहां तक कि न्यायसम्यता की दृष्टि में भी, दुकान नंबर जी-3 में वर्ष 2002 से चल रहे उनके स्थापित व्यवसाय को देखते हुए, और इस तथ्य पर भी ध्यान देते हुए कि स्थानापन्न याचिकाकर्ता राज कुमार के पास भूतल पर चार अन्य दुकानें हैं, जिनमें दुकान नंबर जी-2, जी-33, जी -34 और जी-35 शामिल हैं, उसे बेदखल नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने जीएसटी रसीद पर भी भरोसा किया, जिसमें दिखाया गया था कि दुकान संख्या जी-2 और जी-3 में घड़ी का व्यवसाय याचिकाकर्ता-रोहित लाल द्वारा चलाया जा रहा था। हालाँकि, दुकान नंबर जी-2 रोहित लाल के बेटे को आवंटित किया गया था, परंतु घड़ी का व्यवसाय रोहन लाल द्वारा दुकान संख्या जी-3 का आवंटन रद्द होने तक दोनों दुकानों में चलाया जा रहा था।

11. अंत में, प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि, भले ही, इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश की पुष्टि कर दी जाए, फिर भी याचिकाकर्ता के साथ कोई पक्षपात नहीं होगा क्योंकि उसके

पास पहले से ही भूतल पर भगत सिंह मार्ग की ओर चार दुकानें हैं और यदि विवादित आदेश रद्द कर दिया जाता है तो याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति होगी क्योंकि उसकी भगत सिंह रोड की ओर भूतल पर केवल एक दुकान जी-3 है जिसमें उसका घड़ी का व्यवसाय स्थापित है।

12. यह जानना प्रासंगिक है कि विकास प्राधिकरण के सचिव ने अपने शपथ पत्र में स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 को इस न्यायालय में लंबित मामले के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई थी।

13. प्रतिद्वंद्वी तर्कों को ध्यान में रखते हुए और अभिलेखों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि सभी विस्थापित दुकानदार, जिनकी शहीद भगत सिंह मार्ग पर नाले के ऊपर दुकानें थीं, मुख्य सड़क यानी भगत सिंह रोड की ओर भूतल पर दुकान लेना चाहते थे। हालाँकि, दुकानें सीमित संख्या में थीं, इसलिए, याचिकाकर्ता-रोहित लाल और याचिकाकर्ता नंबर 1/1 राज कुमार सहित केवल 20 व्यक्तियों को शुरू में भगत सिंह रोड की ओर वाले कॉम्प्लेक्स (तहसील व्यवसाय की योजना भाग II) के भूतल पर दुकान मिली। चूंकि याचिकाकर्ता-रोहित लाल और उनके बेटे राज कुमार की भगत सिंह रोड की ओर ग्राउंड फ्लोर पर दो अगल-बगल दुकानें (जी2 और जी3) थीं और वे दोनों एक ही व्यवसाय चला रहे थे, इसलिए, मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 18.11.2000 के द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में दुकान संख्या जी-3 का आवंटन रद्द कर दिया

और याचिकाकर्ता संख्या 1/1 की दुकान को बरकरार रखा ताकि अन्य विस्थापित दुकानदारों को भूतल पर समायोजित किया जा सके। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि इसे इस आधार पर पारित किया गया था कि भगत सिंह मार्ग की ओर दुकानों की अनुपलब्धता थी और याचिकाकर्ता और उसके बेटे के पास भूतल पर भगत सिंह मार्ग की ओर दो अगल-बगल दुकानें थीं और वे दोनों ही घड़ी बेचने का व्यवसाय चला रहे थे। हालाँकि, याचिकाकर्ता-रोहित लाल के पक्ष में दुकान संख्या जी-3 के संबंध में कोई आवंटन आदेश अभिलेख पर नहीं है, लेकिन मुजफ्फरनगर विकास प्राधिकरण द्वारा न्यायालय के समक्ष पेश की गई नोट शीट के साथ-साथ आक्षेपित आदेश को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि दुकान संख्या जी-3 याचिकाकर्ता रोहित लाल को आवंटित की गई थी। याचिकाकर्ता के पक्ष में मात्र दुकान आवंटन से उसे प्रश्नगत दुकान का विक्रय विलेख निष्पादन करने का निरंकुश अधिकार नहीं मिल जाता। याचिकाकर्ता रोहित लाल के पक्ष में आवंटन को अधिक से अधिक बेचने के समझौते के बराबर माना जा सकता है। यह याचिकाकर्ता को नगर निगम प्राधिकरण को वह दुकान उसे बेचने के लिए बाध्य करने का पूर्ण अधिकार नहीं देता है। दूसरी ओर, वर्ष 2002 में दुकान के आवंटन के बाद, दुकान संख्या जी-3 के संबंध में विक्रय पत्र भी दिनांक 22.03.2003 को प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में निष्पादित किया गया, जिसके द्वारा स्वामित्व को प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में पूर्ण रूप से स्थानांतरित कर दिया और उसका कब्जा प्राप्त करने के बाद उसने घड़ी बेचने का अपना

व्यवसाय स्थापित किया। वर्तमान मुकदमे की जानकारी के बिना दुकान खरीदने में प्रत्यर्थी संख्या 4 की निष्पक्षता और सद्भावना आचरण को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 18.11.2000 के आदेश को रद्द करने से प्रत्यर्थी संख्या 4 की स्थापित दुकान अस्त-व्यस्त हो जाएगी। अन्यथा भी, याचिकाकर्ता-रोहित लाल की मृत्यु के बाद, रोहित लाल का अधिकार उनके बेटे राज कुमार (याचिकाकर्ता संख्या 1/1) ने ले लिया है, इसलिए अब, राज कुमार (याचिकाकर्ता संख्या 1/1) जो भूतल पर वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान दुकान संख्या- जी-2 और अन्य खरीदी गई दुकानों को चल रहा है, के साथ पक्षपात या कोई अपूरणीय क्षति नहीं होगी।

14. उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, हम दिनांक 18.11.2000 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं पाते हैं।

15. तदनुसार, रिट याचिका **खारिज की जाती है।**

(2023) 7 ILRA 813

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

मामला अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 5364

सन् 2018

राकेश कुमार एवं अन्य

बनाम

...याचिकाकर्ता

छोटे लाल एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: सुश्री तान्या पांडे, श्री अनिल तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री अनंत राम दुबे, श्री अनिल कुमार, श्री मोहित गौतम, श्री सुधीर कुमार कुलश्रेष्ठ, श्री शोभित दुबे

सिविल विधि - परिसीमा अधिनियम, 1963 -

अनुच्छेद 136 - विशिष्ट निष्पादन के लिए वाद-वाद में डिक्री हुई - अपील और द्वितीय अपील खारिज - विशिष्ट राहत के लिए डिक्री अंतिम रूप से प्राप्त हुई - डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन 21.07.2011 को प्रस्तुत किया गया-निष्पादित की जाने वाली डिक्री 02.06.1975 की मूल डिक्री थी - और निष्पादन आवेदन 21.07.2011 को संस्थित किया गया - निर्णय ऋणी ने आपत्ति की कि डिक्री पारित होने के बाद से 12 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के कारण यह समय सीमा समाप्त हो गई है - सीमा अवधि की गणना अपीलीय न्यायालय की डिक्री की तिथि से की जानी चाहिए - भले ही इस न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील को समय सीमा में खारिज करने के आदेश की तिथि को नजरअंदाज कर दिया जाए - अपील डिक्री 31.03.2011 को पारित की गई और निष्पादन आवेदन 21.07.2011 को किया गया, जो कि समय सीमा के भीतर था। 1963 के अधिनियम की धारा 136 के तहत 12 वर्ष की सीमा - निष्पादन सक्षम है और आगे बढ़ना चाहिए।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रतनसिंह एवं अन्य, विजयसिंह एवं अन्य, (2001) 1 एससीसी 469
2. श्याम सुंदर सरमा बनाम पन्नालाल जयसवाल एवं अन्य, (2005) 1 एससीसी 436
3. राम बचन राय एवं अन्य बनाम राम उदार राय एवं अन्य, (2006) 9 एससीसी 446
4. बिमल कुमार और अन्य बनाम शकुंतला देबी और अन्य, (2012) 3 एससीसी 548
5. सुरिंदर पाल सोनी बनाम सोहन लाल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि, (2020) 15 एससीसी 771
6. सज्जा चिम्पिरैया बनाम गददाम वैकट सुब्बैया (मृत) एवं अन्य, एआईआर 2004 एपी 528
7. चंडी प्रसाद एवं अन्य बनाम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, हापुड़ एवं अन्य, एआईआर 2001 इलाहाबाद 229
8. चंडी प्रसाद एवं अन्य बनाम जगदीश प्रसाद एवं अन्य, (2004) 8 एससीसी 724
9. शांति बनाम टी.डी. विश्वनाथन बनाम एवं अन्य, (2019) 11 एससीसी 419

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक निर्णय-देनदार की याचिका है, जो धारा 151, नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत उसके आवेदन को निष्पादन न्यायालय द्वारा 05.05.2018 दिनांकित आदेश के तहत आंशिक रूप से अस्वीकार करने से उत्पन्न हुई है। निष्पादन आवेदन को समय से बाधित न करते हुए तथा विद्वान जिला न्यायाधीश, एटा

के आदेश दिनांक 28.05.2018 को पुनरीक्षण में उक्त आदेश की पुष्टि करते हुए।

2. संक्षेप में कहा गया है, इस याचिका के निर्णय के लिए प्रासंगिक तथ्य यह हैं कि एक छोटे लाल ने महा राम के खिलाफ अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए 1969 का मूल मुकदमा संख्या 466 स्थापित किया था, जिसमें कहा गया था कि महा राम ने वादी के साथ 14.08.1966, प्लॉट नं.442 बेचने का एक समझौता किया था प्लॉट नं. 442 क्षेत्रफल 4.86 एकड़, ग्राम बिरौची, परगना पचलाना, जिला एटा में स्थित है। यह मुकदमा मुंसिफ, कासगंज के पूर्व न्यायालय के समक्ष स्थापित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि महा राम ने मुकदमे की संपत्ति को वादी को दिनांक 14.08.1966 के मुकदमे के समझौते के अनुसार कुल बिक्री प्रतिफल के लिए बेचने पर सहमति व्यक्त की थी। 2500/ पार्टियों के बीच यह समझौता हुआ कि महा राम, जिन्हें प्रतिवादी संख्या के रूप में पेश किया गया था। वाद क्रमांक 1, भूमिधरी अधिकार सुरक्षित करने के तीन माह के भीतर वादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करेगा। वादी ने 1000/ रु., बयाना दे दिया था और प्रतिवादी संख्या 1 ने वाद संपत्ति पर वादी को कब्जा दे दिया। महा राम ने विभिन्न बहानों पर वादी के पक्ष में अनुबंधित बिक्री विलेख के निष्पादन को टाल दिया, हालांकि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक रहा। महा राम ने चुपचाप एक विक्रय विलेख निष्पादित किया और मुकदमे की संपत्ति प्रतिवादी संख्या के रूप में प्रस्तुत हर प्रसाद को दे दी। 13.06.1969

को मुकदमे वाद संख्या 2 में. प्रतिवादी सं. 2 को वादी के पक्ष में पूर्व समझौते के बारे में पता था, साथ ही कब्ज़ा वादी के पास होने का तथ्य भी था। उपरोक्त मुकदमे का दोनों प्रतिवादियों द्वारा विधिवत विरोध किया गया और मुंसिफ, कासगंज द्वारा दिनांक 02.06.1975 के फैसले और डिक्री द्वारा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत का आदेश दिया गया। उक्त डिक्री को मुकदमे के दूसरे प्रतिवादी, हर प्रसाद द्वारा विद्वान जिला न्यायाधीश, एटा के समक्ष अपील की गई थी, जिसमें महा राम को एक प्रोफार्मा प्रतिवादी के रूप में पेश किया गया था। अपील, असाइनमेंट पर, 31.03.2011 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 5, एटा के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जब इसे खारिज कर दिया गया और ट्रायल कोर्ट के फैसले की पुष्टि की गई। अपीलीय डिक्री से दूसरी अपील इस न्यायालय में की गई थी, जो कि 2011 की दूसरी अपील संख्या 468 थी। हालाँकि, दूसरी अपील को इस न्यायालय ने संहिता के आदेश एक्सएलआई नियम 11 के तहत दिनांक 24.05.2011 के एक आदेश के तहत खारिज कर दिया था। यह सामान्य आधार है कि विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री को पार्टियों के बीच अंतिम रूप मिल गया है।

3. डिक्री के निष्पादन के लिए एक आवेदन 21.07.2011 को स्थानांतरित किया गया था, यानी निचली अपीलीय अदालत ने ट्रायल कोर्ट की पुष्टि की थी और इस अदालत ने हर प्रसाद, क्रेता और एक अन्य द्वारा की गई दूसरी अपील को भी सरसरी तौर पर खारिज कर दिया था जो निष्पादन आवेदन दायर

किया गया था, उसमें कॉलम नंबर 3 में, निष्पादित होने वाली डिक्री की तारीख 02.06.1975 बताई गई थी, अर्थात्, मूल डिक्री की तारीख निष्पादन किया गया। कॉलम नंबर 4 में, यह उल्लेख किया गया था कि मूल डिक्री से पहली अपील दायर की गई थी, जो कि 1975 की पहली अपील संख्या 114 थी, जिसे विद्वान जिला न्यायाधीश, एटा ने 31.03.2011 को खारिज कर दिया था। यह उल्लेख किया गया है कि 2011 की द्वितीय अपील संख्या 468 भी उच्च न्यायालय के समक्ष पेश की गई थी, जिसे 24.05.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। अब, दिनांक 21.07.2011 के निष्पादन आवेदन के आधार पर दर्ज निष्पादन मामले में, 2011 के निष्पादन मामले संख्या 2 के साथ, निर्णय-देनदार संख्या की ओर से एक आवेदन दायर किया गया है। 2/1 और 2/2, कागज क्रमांक अंकित 54-ईसी-2, यह कहते हुए कि निष्पादन आवेदन प्रथम दृष्टया समय से बाधित है, क्योंकि यह 1969 के मूल सूट संख्या 466 में पारित दिनांक 02.06.1975 की डिक्री के निष्पादन की मांग करता है और 12 साल की निर्धारित सीमा अवधि से कहीं अधिक प्रस्तुत किया गया है, सीमा अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 1963 का अधिनियम) से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत, निर्णय-देनदार संख्या द्वारा मूल डिक्री की तारीख से सीमा की गणना करने की मांग की गई थी। 2/1/ और 2/2, मुकदमे में पारित मूल डिक्री दिनांक 02.06.1975 और निष्पादन आवेदन की संस्था की तारीख यानी 21.07.2011 के बीच के समय की गणना थी। उसी आवेदन के माध्यम से एक और आपत्ति उठाई गई,

जिसका पेपर नंबर 54-ईसी-2, इस आशय का है कि फैसले के उत्तराधिकारी- देनदार नं.1, महा राम को उचित रूप से पक्षकार नहीं बनाया गया था, क्योंकि निष्पादन आवेदन की स्थापना की तारीख पर, महा राम के उत्तराधिकारी और एलआर निर्णय- देनदार संख्या थे। 1/2/1 सत्य प्रकाश और 1/2/2 बासदेव को आवेदन में नाबालिग दिखाया गया था, लेकिन आदेश XXXII नियम के प्रावधानों के अनुपालन में, उनके अभिभावक विज्ञापन याचिका, जिनके माध्यम से उनका प्रतिनिधित्व किया जाना था, को पक्षकार नहीं बनाया गया था। संहिता के 3. इस आपति का एक और पहलू और प्रकृति में अधिक मौलिक जो उठाया गया था वह यह था कि निर्णय की मृत्यु के बाद-देनदार नं. 1 महा राम, जो प्रतिवादी नं. सूट के लिए 1. उनके उत्तराधिकारियों और एलआर को वादपत्र में प्रतिस्थापित नहीं किया गया था।

4. विद्वान प्रथम अपर सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), कासगंज, पूर्व मुंसिफ न्यायालय, कासगंज के उत्तराधिकारी, जिनके समक्ष आवेदन, कागज संख्या 54-सी-2, सुनवाई के लिए आया था, ने इसे बहुत ही स्थिर रखा। निर्णय-देनदारों के पक्षकार के बारे में आपति का मामूली हिस्सा 1/2/1 सत्य प्रकाश एवं 1/2/2 बासदेव इसे इस हद तक अनुमति दी गई थी कि डिक्री धारक को निष्पादन आवेदन में संशोधन करना चाहिए, निष्पादन आवेदन की प्रस्तुति की तारीख पर इन छोटे निर्णय-देनदारों की उम्र का संकेत देना चाहिए और उन्हें एक सप्ताह के भीतर अपने अभिभावक विज्ञापन के माध्यम से

पक्षकार बनाना चाहिए। पक्षकार बनाने के बारे में इस आपति का दूसरा पहलू यह है कि प्रतिवादी संख्या के वारिस और एलआर के रूप में उक्त दोष बहुत आगे तक चला गया। वाद में 1 को वादपत्र में प्रतिस्थापित नहीं किया गया था, स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि उसके उत्तराधिकारियों और एलआर को प्रतिवादी संख्या के बाद दूसरी अपील में विधिवत प्रतिस्थापित किया गया था। 1/2 चंदो देवी की मृत्यु हो गई, जो मूल प्रतिवादी संख्या के स्थान पर प्रतिस्थापित की गई थी। 1 महा राम निष्पादन न्यायालय ने इसे एक छोटी सी अनियमितता माना।

5. आवेदन के माध्यम से जो मुख्य आपति दर्ज की गई थी, उसका पेपर नं. 54-ईसी-2, सीमा के बारे में था, जिसके बारे में इस फैसले के शुरुआती भाग में संक्षेप में बात की गई थी। आपति वास्तव में यह थी कि चूंकि निष्पादित होने वाला डिक्री मूल डिक्री दिनांक 02.06.1975 था और निष्पादन आवेदन 21.07.2011 को स्थापित किया गया था, यह अधिनियम 1963 में संलग्न अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत निर्धारित सीमा अवधि से कहीं अधिक था। इसमें कोई संदेह नहीं है, यह एक बड़ी आपति है, क्योंकि यह निष्पादन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जड़ तक जाता है। निष्पादन न्यायालय ने इस आपति को खारिज कर दिया,

दिनांक 05.05.2018 को दिए गए आदेश के अनुसार, यह स्थापित कानून है कि मूल न्यायालय का डिक्री अपीलीय न्यायालय में विलीन हो जाता है और निष्पादन अपीलीय

न्यायालय के डिक्री का होता है। यह टिप्पणी की गई थी कि चूंकि इस न्यायालय ने दूसरी अपील में 24.05.2011 को एक डिक्री पारित की थी, जिसे निष्पादित किया जाना था वह इस न्यायालय की दिनांक 24.05.2011 की डिक्री थी। यह माना गया कि सीमा 24.05.2011 से चलेगी, न कि 02.06.1975 से। निर्णय-देनदार नं. 2/1 और 2/2, जो यहां दो याचिकाकर्ता हैं, ने जिला न्यायाधीश, कासगंज (कासगंज को मूल जिला एटा के पूर्व क्षेत्र से एक नए जिले के रूप में बनाया जा रहा है, जिसकी कार्यवाही लंबित है) के समक्ष एक पुनरीक्षण किया, जिन्होंने संक्षेप में बताया दिनांक 28.05.2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा संशोधन को खारिज कर दिया, यह मानते हुए कि निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश एक अंतरिम आदेश था, जो संहिता की धारा 115 के अर्थ में 'मामले का निर्णय' की परिभाषा में नहीं आता है। यह भी माना गया कि विवादित आदेश के कारण याचिकाकर्ताओं को कोई चोट नहीं पहुंची, जिससे पुनरीक्षण को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाना उचित हो गया।

6. पुनरीक्षण न्यायालय और निष्पादन न्यायालय के आदेशों से व्यथित होकर, निर्णय-देनदार नं. 2/1 और 2/2 ने संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस याचिका को प्राथमिकता दी है।

7. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी, विद्वान अधिवक्ता सुश्री तान्या पांडे, प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री

शोभित दुबे, श्री अनंत राम दुबे और श्री अनिल कुमार को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 2 से 6 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी ने इस न्यायालय के समक्ष दृढ़तापूर्वक तर्क दिया है कि जो निष्पादित किया जा रहा है वह है

मूल डिक्री दिनांक 02.06.1975 को ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित किया गया था और इसे पहली अपील या दूसरी अपील में लंबित रहने तक कभी भी रोका नहीं गया था। इस प्रकार, यह 02.06.1975 से लागू करने योग्य डिक्री थी। उनका कहना है कि चूंकि डिक्री पर कभी रोक नहीं लगाई गई थी, इसलिए 1963 के अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत परिसीमा की निर्धारित अवधि यानी 12 वर्ष की गणना 02.06.1975 से की जानी चाहिए, यह परिसीमा लगातार चल रही है और कभी समाप्त नहीं हुई है। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान 1963 के अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें लिखा है:

अनुसूची

(सीमा की अवधि)

[धारा 2(जे) और 3 देखें]

सूट का विवरण	सीमा की अवधि	जिस अवधि से समय चलना शुरू होता है
136. किसी सिविल न्यायालय के किसी डिक्री (अनिवार्य निषेधाज्ञा देने वाली डिक्री के अलावा) या आदेश के निष्पादन के लिए।	बारह साल	जब डिक्री या आदेश लागू करने योग्य हो जाता है या जहां डिक्री या कोई भी बाद का आदेश धन के किसी भी भुगतान या किसी संपत्ति की डिलीवरी को एक निश्चित तिथि पर या आवर्ती अवधि में करने का निर्देश देता है, जब भुगतान या डिलीवरी करने में चूक होती है जिसके संबंध में निष्पादन की मांग की जाती है, होता है: बशर्ते कि स्थायी निषेधाज्ञा देने वाले डिक्री के प्रवर्तन या निष्पादन के लिए एक आवेदन किसी भी सीमा अवधि के अधीन नहीं होगा। (न्यायालय द्वारा जोर)

(न्यायालय द्वारा जोर)

9. उन्होंने 'जब डिक्री या आदेश लागू करने योग्य हो जाता है' शब्दों पर जोर दिया है और

कहा है कि यहां डिक्री वह नहीं है जिसके संबंध में परिसीमा की अवधि की शुरुआत को किसी विशेष घटना के लिए स्थगित कर दिया जाता है, जैसे किसी पैसे के भुगतान का निर्देश देने वाला डिक्री या किसी संपत्ति की डिलीवरी किसी निश्चित या भविष्य की तारीख पर की जानी है। श्री तिवारी के अनुसार, यहां मुकदमे में पारित डिक्री तुरंत निष्पादन योग्य हो गई डिक्री की तारीख पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, समय, 02.06.1975 को शुरू होगा, जो उक्त तिथि से 12 वर्ष की समाप्ति पर सीमा की अवधि समाप्त होने तक लगातार चलता रहेगा। वह इस बात पर जोर देते हैं कि स्थगन आदेश, यदि कोई अपील लंबित होती, तो निश्चित रूप से समय को चलने से रोक देता। लेकिन, यह वहां कभी नहीं था। उन्होंने आग्रह किया है कि निचली अपीलीय अदालत की डिक्री बर्खास्तगी और पुष्टि की डिक्री है, न कि निष्पादन योग्य डिक्री। यही कारण है कि निष्पादन आवेदन कॉलम संख्या 3 में ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दिनांक 02.06.1975 के डिक्री के निष्पादन की मांग करता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि समय निचली अपीलीय अदालत के डिक्री की तारीख से नहीं चलेगा, क्योंकि वह बिल्कुल भी ऑपरेटिव डिक्री नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि जहां तक इस न्यायालय के आदेश का सवाल है, वह भी नीचे के न्यायालयों द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि करता है, और इस कारण से, उस तारीख से निष्पादन योग्य डिक्री नहीं है जिस तारीख से परिसीमा लागू होगी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण में, निष्पादन न्यायालय ने 1963 के अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत डिक्री को निष्पादित

करने की सीमा को मानने में कानून की एक स्पष्ट त्रुटि की, जो इस न्यायालय के दिनांक 24.05.2011 को पारित आदेश दूसरी अपील में शुरू होगी।

10. अपनी दलील के समर्थन में कि इस मामले में परिसीमा को गिरफ्तार नहीं किया जाएगा और मूल डिक्री की तारीख से लगातार चलाया जाएगा, क्योंकि निचली अपीलीय अदालत या इस अदालत द्वारा दूसरी अपील में दी गई अपील पर कोई रोक नहीं थी, श्री **तिवारी उन्होंने रतनसिंह बनाम विजयसिंह और अन्य, (2001) 1 एससीसी 469** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है। इसके बाद उन्होंने **श्याम सुंदर सरमा बनाम पन्नालाल जयसवाल और अन्य 2005) 1 एससीसी 436** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है।

और आगे **राम बचन राय और अन्य बनाम राम उदार राय और अन्य (2006) 9 एससीसी 446** के अधिकार पर, याचिकाकर्ताओं के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी भरोसा किया गया है। **बिमल कुमार और अन्य बनाम शकुंतला देबी और अन्य में, (2012) 3 एससीसी 548** सबमिशन का जोर, जैसा कि इन सभी अधिकारियों के पैर में पहले से ही उल्लेख किया गया है, यह है कि पारित डिक्री के निष्पादन पर रोक की अनुपस्थिति में अपील में ट्रायल कोर्ट द्वारा परिसीमा लगातार जारी रहेगी। अपनी दलीलें समाप्त करने से पहले, श्री अनिल तिवारी ने इस बात पर जोर दिया कि विद्वान जिला न्यायाधीश ने पुनरीक्षण को सरसरी तौर पर खारिज करके स्पष्ट अवैधता की है, और आक्षेपित आदेश को एक अंतर्वर्ती आदेश माना है, न कि

'मामले का फैसला किया गया'। संहिता की धारा 115 के अर्थ के अंतर्गत। यह आग्रह किया जाता है कि विद्वान न्यायाधीश, पूरी तरह से गलत और त्रुटिपूर्ण आधार पर, अपने में निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहे हैं, क्योंकि कानून की स्थापित स्थिति यह है कि जहां एक आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती दी गई है, अगर उलट दिया जाता है, तो अंतिम परिणाम होगा मुकदमे का निर्णय हो या अन्य कार्यवाही, इसे कभी भी अंतर्वर्ती नहीं माना जा सकता। इधर, श्री तिवारी के अनुसार, यदि निष्पादन न्यायालय के आदेश को उलट दिया गया और निष्पादन आवेदन को समय से बाधित कर दिया गया, तो निश्चित रूप से कार्यवाही समाप्त हो जाएगी।

11. श्री शोभित दुबे, प्रतिवादी संख्या के लिए विद्वान अधिवक्ता। 1 ने उत्तर में, आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया है। उनका कहना है कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जो निष्पादित किया जाना था वह निचली अपीलीय अदालत का फैसला था, जिसमें ट्रायल कोर्ट का फैसला शामिल हो गया था। निचली अपीलीय अदालत ने 31.03.2011 को अपना डिक्री पारित कर दिया, 21.07.2011 को स्थापित निष्पादन आवेदन सीमा के भीतर है। श्री दुबे ने इस संबंध में **सुरिंदर पाल सोनी बनाम सोहन लाल (मृत) (2020) 15 एससीसी 771 कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से** मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर गहरा भरोसा जताया है। उन्होंने **सज्जा चिम्पिरैया बनाम गद्दाम वेंकट सुब्बैया (मृत्यु) और अन्य, एआईआर 2004 एपी 528** में आंध्र प्रदेश

उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, इस न्यायालय को कहना होगा कि यहां दिए गए तथ्य विवाद में नहीं हैं। जैसा कि पहले ही टिप्पणी की गई है, विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमे का फैसला 02.06.1975 को किया गया था और निर्णय-देनदार-याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती-शीर्षक द्वारा की गई अपील को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा 31.03.2011 को खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती द्वारा की गई दूसरी अपील को इस न्यायालय द्वारा संहिता के आदेश एक्सएलआई नियम 11 के तहत दिनांक 24.05.2011 के आदेश के तहत सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था। 21.07.2011 को स्थानान्तरित किए गए निष्पादन आवेदन के कॉलम संख्या 3 और 4 का संदर्भ लेना प्रासंगिक होगा। इन्हें नीचे निकाला गया है:

3. डिक्री का दिनांक	2.6.1975
4. क्या डिक्री के विरुद्ध कोई अपील योजित हुई?	जी हाँ. (1) प्रथम अपील संख्या 114/75 हर प्रसाद बनाम छोटे लाल न्यायालय जिला जज एटा में योजित हुई जो दिनांक 31.3.2011 को खारिज हुई। (2)- द्वितीय अपील संख्या 468 / 11 हर प्रसाद बनाम छोटे लाल आदि माननीय उच्च न्यायालय में योजित हुई जो दिनांक 24.5.2011 को वाद सुनवाई निरस्त हुई।

13. हालांकि कॉलम नं. 3 में डिक्री निष्पादित होने की तिथि मूल डिक्री की तिथि के समान अंकित है, परंतु कॉलम क्रमांक 4 में प्रथम अपील में पारित डिक्री तथा द्वितीय अपील में पारित डिक्री का संपूर्ण विवरण सहित उल्लेख किया गया है। इस न्यायालय की राय में, मात्र कॉलम नंबर 3 में मूल डिक्री का उल्लेख है क्योंकि निष्पादित होने वाली डिक्री निष्पादन आवेदन के सार को नहीं बदलेगी, जो निचली अपीलीय अदालत के डिक्री का भी पर्याप्त संदर्भ देता है।

14. यह कानून का हितकारी सिद्धांत है कि डिक्री केवल एक ही होती है। यदि प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा किसी मुकदमे में पारित डिक्री को अपील में चुनौती दी जाती है और उसकी पुष्टि की जाती है, तो अपीलीय डिक्री ही एकमात्र सत्तारूढ़ डिक्री होगी, जैसा कि इसे कहा जाता है। अपीलीय डिक्री, भले ही पुष्टि की डिक्री हो, जिसमें इससे अधिक कुछ नहीं कहा गया हो कि प्रथम दृष्टया न्यायालय की (ऑपरेटिव) डिक्री की पुष्टि की जाती है, और अपील खारिज कर दी जाती है, फिर भी वह डिक्री होगी जिसे अकेले ही निष्पादित किया जाएगा। ट्रायल कोर्ट का डिक्री, चाहे वह प्रकृति में कितना भी प्रभावी क्यों न हो, हमेशा उच्च न्यायालय के डिक्री में विलीन हो जाएगा, जो तब केवल पुष्टि के एक शब्द द्वारा अपने सभी निर्देशों को व्यक्त करेगा।

15. जहां तक दूसरी अपील का सवाल है, यह तकनीकी रूप से अपीलीय डिक्री से एक अपील है। श्री दुबे द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से यह विचार रखा गया था कि संहिता के

आदेश एक्सएलआई नियम 11 के तहत अपील को खारिज करने के इस न्यायालय के आदेश की तारीख से सीमा की गणना की जाएगी। इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यहां तथ्यों के आधार पर उस प्रश्न का निर्णय करना आवश्यक नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि निचली अपीलीय अदालत की डिक्री को निष्पादन योग्य सत्तारूढ़ डिक्री माना जाता है, तो निष्पादन आवेदन अभी भी सीमा के भीतर होगा। यह ऐसा मामला नहीं है, जहां प्रतिवादी की दूसरी अपील को खारिज करते हुए, संहिता के आदेश एक्सएलआई नियम 11 के तहत आदेश की तारीख से गणना की गई सीमा का प्रारंभिक बिंदु, डिक्री-धारक के लिए उपलब्ध सीमा के बारे में निर्णायक है। इसलिए, सत्तारूढ़ डिक्री निचली अपीलीय अदालत की सीमा, लाने के लिए है, जो दिनांक 31.03.2011 की डिक्री है।

इसलिए, निष्पादन के लिए एक आवेदन निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित डिक्री या एकमात्र डिक्री की तारीख से चलेगा, जो अब पार्टियों के अधिकारों को नियंत्रित करता है। निचली अपीलीय अदालत ने 31.03.2011 को अपना डिक्री पारित किया और निष्पादन आवेदन 21.07.2011 को स्थापित किया गया, जो स्पष्ट रूप से 1963 के अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत प्रदान की गई 12 साल की निर्धारित समय अवधि के भीतर है।

16. रतनसिंह (सुप्रा) के फैसले पर श्री अनिल तिवारी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भरोसा करते हुए कहा कि जब तक प्रथम दृष्टया

न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के संचालन पर अपील में रोक नहीं लगाई जाती, तब तक परिसीमन समाप्त नहीं होता है, मानते हैं:

"9. अपील दायर करने से डिक्री की प्रवर्तनीयता प्रभावित नहीं होगी, जब तक कि अपीलीय अदालत इसके संचालन पर रोक नहीं लगाती है। लेकिन यदि अपील के परिणामस्वरूप एक डिक्री होती है जो निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री को खत्म कर देगी तो यह अपीलीय अदालत की डिक्री है जो लागू करने योग्य हो जाता है। जब अपीलीय आदेश डिक्री के बराबर नहीं होता है तो कोई अधिक्रमण नहीं होगा और इसलिए निचली अदालत की डिक्री लागू करने योग्य बनी रहती है।

10. एक डिक्री को धारा 2(2) सीपीसी में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

2. (2) डिक्री का अर्थ है किसी निर्णय की औपचारिक अभिव्यक्ति, जो जहां तक इसे व्यक्त करने वाले न्यायालयों का संबंध है, मुकदमे में विवाद के सभी या किसी भी मामले के संबंध में पार्टियों के अधिकारों को निर्णायक रूप से निर्धारित करता है और या तो प्रारंभिक हो सकता है या अंतिम. इसे धारा 144 के अंतर्गत वादपत्र की अस्वीकृति और किसी भी प्रश्न का निर्धारण शामिल माना जाएगा, लेकिन इसमें शामिल नहीं होगा

(ए) कोई भी न्यायनिर्णयन किसी आदेश के खिलाफ अपील, या (बी) डिफॉल्ट के लिए बर्खास्तगी का कोई आदेश जिसके आधार पर

अपील की जा सकती है। स्पष्टीकरण एक डिक्री प्रारंभिक होती है जब मुकदमे को पूरी तरह से निपटाने से पहले आगे की कार्यवाही की जानी होती है, यह अंतिम होती है जब इस तरह के फैसले से मुकदमे का पूरी तरह से निपटारा हो जाता है। यह आंशिक रूप से प्रारंभिक और आंशिक रूप से अंतिम हो सकता है;"

11. किसी अदालत के निर्णय को डिक्री बनने के लिए किसी मुकदमे में एक न्यायनिर्णयन होना चाहिए और इस तरह के न्यायनिर्णयन ने मुकदमे और ऐसे निर्धारण में विवाद के सभी या किसी भी मामले के संबंध में पार्टियों के अधिकारों को निर्धारित किया होगा अवश्य निर्णायक प्रकृति का हो. यदि उन मापदंडों को लागू किया जाना है तो देरी की माफी के लिए आवेदन की अस्वीकृति डिक्री के समान नहीं होगी। नतीजतन, किसी अपील को कालबाधित मानकर खारिज करना भी डिक्री नहीं है। हम जानते हैं कि हल्के न्यायालयों के कुछ फैसलों में यह माना गया है कि किसी अपील को इस आधार पर खारिज करना भी कि इसे समय से पहले प्रस्तुत किया गया था, उक्त परिभाषा के अर्थ में एक डिक्री है। हम इसी मुद्दे पर उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए विपरीत निर्णयों से भी अवगत हैं। उनमें से कुछ निर्णयों पर कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ [एस.पी. मित्रा, सी.जे., सब्यसाची मुखर्जी, जे. (जैसा कि वह तब थे) और एस.एक्स. दत्ता, जे.एल. ने ममुदा खातीन बनाम बेनियान बीबी [एआईआर 1976 कैल 415: (1976)2 कैल 357 (11) में कहा है कि "यदि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन खारिज कर दिया

गया था तो परिणामी आदेश डिक्री नहीं हो सकता है और अपील के जापन को खारिज करने का आदेश महज एक आकस्मिक आदेश है।" पूर्ण पीठ का तर्क यह था कि जब कोई अपील परिसीमा द्वारा वर्जित होती है तो अपील को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन की अनुमति नहीं दी जाती है और तब तक अपील याचिका, भले ही दायर की गई हो, अधर में लटकी रहेगी। यदि आवेदन खारिज कर दिया जाता है तो अपील याचिका निरर्थक हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में अपील के जापन को खारिज करने का आदेश महज एक आकस्मिक आदेश है। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि विपरीत दृष्टिकोण रखने वाले उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय कानून के सही सिद्धांत को निर्धारित नहीं करते हैं।

12. ऐसी स्थिति में केवल यह तथ्य कि देरी की माफी के लिए आवेदन को खारिज करने के परिणामस्वरूप दूसरी अपील खारिज कर दी गई थी, प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पारित डिक्री पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

13. विद्वान अधिवक्ता ने श्यामा पद चौधरी बनाम साहा चौधरी एंड कंपनी में कलकत्ता उच्च न्यायालय की दो-न्यायाधीश पीठ के फैसले का हवाला दिया [एआईआर 1976 कैल 122: (1976) 80 सीडब्ल्यूएन 291 क्योंकि पीठ ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि समय निचली अदालत की डिक्री की तारीख से चलना शुरू हो जाएगा जब अपीलीय अदालत निचली अदालत की डिक्री में हस्तक्षेप नहीं

करेगी। उस स्थिति को उस पृष्ठभूमि में अपनाया गया था जहां अपीलीय अदालत ने लागत भाग के संबंध में मामूली संशोधन के साथ निचली अदालत के फैसले की पुष्टि की थी। ऐसी स्थिति में यह सही माना गया कि अपीलीय अदालत की डिक््री लागू करने योग्य हो गई है और इसलिए समय उस डिक््री की तारीख से चलना शुरू हो जाएगा।"

17. इस न्यायालय की समझ से यह कहना एक बात है केवल अपील दायर करने से परिसीमा समाप्त नहीं होगी चल रहा है, और यह कहना बिल्कुल अलग है कि एक डिक््री रही है अपील में पारित होने पर परिसीमा अवधि की गणना की जाएगी

अपीलीय न्यायालय के निर्णय की तारीख से; नहीं मूल आदेश से है यह बाद वाला प्रस्ताव है जो इस मामले के भाग्य को नियंत्रित करता है। श्री तिवारी द्वारा रतनसिंह में सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य के अधिकार पर भरोसा करना अलग बात नहीं है।

18. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी द्वारा भरोसा किया जाने वाला अगला निर्णय **श्याम सुंदर सरमा (सुप्रा)** हैं। यह तीन जजों की बेंच का निर्णय है, जो इस सिद्धांत को निर्धारित करता प्रतीत होता है कि अपील के ज्ञापन के साथ विलंब माफी आवेदन की अस्वीकृति, फिर भी अपील में ही एक निर्णय है और इसका ट्रायल कोर्ट को इसके अधिकार से वंचित करने पर भी समान प्रभाव पड़ता है। संहिता के आदेश IX नियम 13 के तहत एक पक्षीय डिक््री को रद्द करने के लिए एक

आवेदन पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र, हालांकि पहले दायर किया गया था, जहां एक पक्षीय डिक््री की अपील योग्यता के आधार पर खारिज कर दी जाती है। यह निर्णय **रतनसिंह** के इस सिद्धांत को खारिज कर देता है कि अपील के साथ विलंब माफी आवेदन की अस्वीकृति, और परिणामी अपील को कालबाधित के रूप में खारिज करना, डिक््री की श्रेणी में नहीं आता है। यहाँ वह बात नहीं उठती। श्याम सुंदर सरमा के पास ऐसा कुछ भी नहीं है, जो निर्णय-देनदार-याचिकाकर्ताओं के लिए कोई सहायता हो।

19. निर्णय-देनदार-याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश होने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी द्वारा भरोसा किया जाने वाला अगला प्राधिकारी **राम बचन राय (सुप्रा)** हैं, जिनसे भी, इस न्यायालय को डर है, इस मुद्दे पर सैद्धांतिक रूप से बिल्कुल भी लागू नहीं होता है **राम बचन राय** एक ऐसा मामला शामिल था जहां एक पक्षीय डिक््री पारित की गई थी और संहिता के आदेश IX नियम 13 के तहत इसे रद्द करने की मांग की गई थी। रद्द करने का आवेदन डिफॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। पिछले आवेदन को रद्द करने के लिए बहाल करने के आवेदन को ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया था, और उक्त आदेश के खिलाफ अपील खारिज कर दी गई थी। अपीलीय न्यायालय के आदेश से एक संशोधन था

हाई कोर्ट ने भी खारिज कर दिया। जब निष्पादन में, मुकदमे की संपत्ति का प्रतीकात्मक कब्जा डिक््री धारक को सौंप दिया

गया, तो निर्णय-देनदारों ने संहिता की धारा 47 के तहत निष्पादन न्यायालय का रुख किया और कहा कि डिक्री का निष्पादन समय से बाधित था। डिक्री एकपक्षीय रूप से 03.05.1976 को पारित की गई थी और निष्पादन आवेदन 05.04.1991 को स्थापित किया गया था, यानी 15 साल की अवधि के बाद यह 12 वर्ष की सीमा से परे था। इस तथ्य पर कोई मुद्दा नहीं था कि डिक्री के निष्पादन पर किसी भी स्तर पर एकपक्षीय रोक नहीं लगाई गई थी, ताकि समय को रोका जा सके और सीमा को बचाया जा सके। निष्पादन न्यायालय ने धारा 47 के तहत आपत्ति को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि परिसीमा की अवधि की गणना उच्च न्यायालय द्वारा बहाली मामले से उत्पन्न नागरिक पुनरीक्षण की अस्वीकृति की तारीख से की जाएगी, न कि डिक्री की तारीख से। उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में इस आदेश की पुष्टि की गई। सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य में विशेष अनुमति द्वारा अपील पर, कार्यकारी न्यायालय और उच्च न्यायालय को उलटते हुए, यह माना गया कि निष्पादन आवेदन को 1963 के अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत सीमा द्वारा रोक दिया गया था, क्योंकि सीमा एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध बहाली मामले से उत्पन्न सिविल पुनरीक्षण की बर्खास्तगी की तारीख से नहीं, बल्कि डिक्री की तारीख से गणना की जानी थी। जाहिर है, कार्यवाही लंबित रहने तक निष्पादन पर कोई रोक नहीं थी, जिसे बहाल करने की मांग की गई थी, जो अंततः विफल रही। इसलिए, परिसीमा की अवधि को डिक्री की तारीख से लगातार चलने

और 12 साल की अवधि की समाप्ति पर समाप्त होने के लिए माना गया था, जिसके बाद निष्पादन लगाया गया था।

20. इस न्यायालय को यह देखना चाहिए कि **राम बचन राय** मूल डिक्री को अपीलीय डिक्री के साथ विलय करने का मामला बिल्कुल भी नहीं था। यह एक ऐसा मामला था जहां मूल डिक्री थी एक को निष्पादित किया जाना था, भले ही ट्रायल कोर्ट और उच्च मंचों के समक्ष इसे रद्द करने की गतियों की विफलता के बाद भी, क्योंकि डिक्री एक पक्षीय थी। जाहिर है, कार्यवाही की इस प्रकृति के लिए, कोई भी संदेह नहीं कर सकता है कि लागू सीमा की अवधि को मूल डिक्री की तारीख से गिना जाना होगा, जब एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने या अपीलीय प्रक्रियाओं को लागू करने के लिए लाए गए प्रस्तावों के दौरान, वहाँ था फांसी पर कोई रोक नहीं। इसका उस मामले में थोड़ा सा भी अनुप्रयोग नहीं है, जहां मूल डिक्री नष्ट हो गई है और अपीलीय न्यायालय के वरिष्ठ डिक्री में विलय हो गई है, जैसा कि यहां मामला है।

21. इसलिए, यहां सीमा को निचली अपीलीय अदालत के डिक्री की तारीख से गिना जाना चाहिए, यदि दूसरी अपील में इसकी पुष्टि करने वाला आदेश नहीं है, तो एक प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं समझा गया, जैसा कि पहले कहा गया था।

22. ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, **राम बचन राय** का निर्णय भी निर्णय-देनदार-याचिकाकर्ताओं को जमानत नहीं देता है।

अंतिम प्रयास में, श्री तिवारी **बिमल कुमार (सुप्रा)** के फैसले पर समर्थन के लिए वापस आ गए हैं। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान **बिमल कुमार** की रिपोर्ट के निम्नलिखित पैराग्राफों की ओर आकर्षित किया है:

योग्य हो जाती है। जब अपीलीय आदेश एक डिक्री के बराबर नहीं होता है तो कोई अतिक्रमण नहीं होगा और इसलिए निचली अदालत का डिक्री लागू करने योग्य बना रहेगा।"

41. इस संदर्भ में, हम रतनसिंह बनाम विजयसिंह (2001) 1 एससीसी 469) की उक्ति का संदर्भ उपयोगी रूप से ले सकते हैं जिसमें, एक डिक्री की प्रवर्तनीयता की अवधारणा और अपीलीय अदालत द्वारा पारित स्थगन आदेश के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए, बेंच ने इस प्रकार कहा: (एससीसी पृष्ठ 473, पैरा 8-9)

8. कोई डिक्री कब लागू करने योग्य हो रही है? सामान्यतः कोई डिक्री या आदेश अपनी तिथि से लागू हो जाता है। लेकिन ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जब डिक्री किसी भविष्य की तारीख पर या कुछ निर्दिष्ट घटनाओं के घटित होने पर लागू हो जाती है। प्रवर्तनीय अभिव्यक्ति का उपयोग बुच डिक्री या आदेशों को कवर करने के लिए भी किया गया है जो बाद में लागू करने योग्य हो जाते हैं।

9. अपील दायर करने से डिक्री की प्रवर्तनीयता प्रभावित नहीं होगी, जब तक कि अपीलीय अदालत इसके संचालन पर रोक नहीं लगा देती। लेकिन यदि अपील के परिणामस्वरूप कोई डिक्री आती है तो वह डिक्री का स्थान ले लेगी

निचली अदालत द्वारा पारित होने पर यह अपीलीय अदालत की डिक्री है जो लागू करने

42.राम बचन राय में | (2006) 9 एससीसी 446) दो-न्यायाधीशों की पीठ ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि आदेश 9 नियम 13 के तहत एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए एक आवेदन खारिज कर दिया गया था, जिसे एक विविध अपील और अंततः एक नागरिक पुनरीक्षण में चुनौती दी गई थी। किसी भी स्तर पर किसी भी न्यायालय द्वारा स्थगन नहीं दिया गया। डिक्री-धारकों ने 12 साल बाद निष्पादन के लिए एक आवेदन दायर किया। इसे ध्यान में रखते हुए, यह माना गया कि निष्पादन की कार्यवाही सीमा के कारण बाधित थी।

44. मौजूदा मामले में, समझौता डिक्री को अंतिम डिक्री की स्थिति प्राप्त थी। अपीलकर्ताओं द्वारा दायर किया गया बाद का मुकदमा विभाजन और एकतरफा समझौता डिक्री को अमान्य घोषित करने के लिए था। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पहले के फैसले या उससे होने वाली किसी कार्यवाही पर कोई रोक नहीं थी। किसी भी अदालत से किसी भी प्रतिबंध के अभाव में, डिक्री-धारक डिक्री को निष्पादित करने का हकदार था। यह बताने के लिए विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि डिक्री को निष्पादित करने में उत्तरदाताओं के रास्ते में कोई बाधा या अक्षमता नहीं थी, लेकिन ऐसा नहीं किया

गया। इसलिए, अकाट्य निष्कर्ष यह है कि निष्पादन की कार्यवाही की शुरुआत निश्चित रूप से सीमा के कारण बाधित थी।

45. इस प्रकार विश्लेषण करने पर, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारण बिल्कुल अस्थिर हैं। अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत निर्धारित सीमा की अवधि को माफ नहीं किया जा सकता था जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना है। भारती देवी पर निर्भरता [एआईआर 2010 झार 10 (2009) 3 जेएलजेआर 901 पूरी तरह से गलत है क्योंकि उक्त मामले में, स्थायी निषेधाज्ञा के लिए निष्पादन कार्यवाही शुरू की गई थी। इसके लिए कोई अपवाद नहीं बनाया जा सकता है और इसलिए, उक्त निर्णय पर की गई निर्भरता गलत है।"

23. अब, बिमल कुमार एक ऐसा मामला था जिसमें प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का अपीलीय डिक्री के साथ विलय शामिल नहीं था। यह एक ऐसा मामला था जहां पहले पार्टियों के बीच विभाजन का मुकदमा दायर किया गया था, जहां एक प्रतिवादी को छोड़कर, वादी और अन्य प्रतिवादियों ने समझौते की संयुक्त याचिका दायर की थी। प्रतिवादी, जो मुकदमे में उपस्थित हुआ और चुनाव लड़ने के लिए एक लिखित बयान दायर किया, ने बाद में चुनाव नहीं लड़ने का फैसला किया। ट्रायल जज ने समझौता स्वीकार कर लिया और गैर के विरुद्ध कार्यवाही करते हुए एक समझौता डिक्री पारित की प्रतिवादी ने एक पक्षीय समझौता किया। बाद में ऐसा प्रतीत होता है

कि पूर्व-पक्षीय प्रतिवादी के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों ने इस आधार पर विभाजन के लिए एक नया मुकदमा लाया कि पहले के मुकदमे में पारित समझौता डिक्री को धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था, और पूर्व मुकदमे में पारित समझौता डिक्री को चुनौती दी गई थी। बाद में मुकदमा खारिज कर दिया गया। इस डिक्री से की गई अपील गैर-अभियोजन के कारण खारिज कर दी गई थी। इस स्तर पर, पहले के मुकदमे में डिक्री धारक, जहां समझौता डिक्री थी। पारित, निष्पादन हेतु आवेदन किया गया। इस बीच, पहले मुकदमे में एकपक्षीय प्रतिवादी, जिसने असफल मुकदमा किया था और एक अलग मुकदमे द्वारा अपील की थी, का निधन हो गया। विभाजन के लिए पूर्व मुकदमे में डिक्री धारकों ने पूर्व मुकदमे के पूर्व पक्षीय प्रतिवादी-निर्णय-देनदारों के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के खिलाफ निष्पादन लगाया। कानूनी प्रतिनिधियों ने आपत्ति जताई कि निष्पादन पर समय सीमा लागू नहीं है और इस आधार पर इसे खारिज किया जाना चाहिए।

24. ट्रायल जज ने निष्पादन आवेदन को समयबाधित बताकर खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय में किए गए संशोधन को समय के भीतर होने के कारण अनुमति दी गई थी। विशेष अनुमति द्वारा अपील में, उनके आधिपत्य ने माना कि पूर्व के मुकदमे में पारित समझौता डिक्री पर एक पक्षीय प्रतिवादी द्वारा लाए गए बाद के मुकदमे में रोक की अनुपस्थिति में, सीमा की गणना समझौते की तारीख से की जानी चाहिए हुक्मनामा। किसी

भी रोक के अभाव में, सीमा लगातार चलती रहेगी और निर्धारित समय अवधि के अंत में स्वयं समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि बिमल कुमार के मामले में भी, प्रथम दृष्टया अदालत की डिक्री को अपीलीय अदालत की डिक्री के साथ विलय करने का कोई मामला नहीं था, जिस तारीख से परिसीमा की गणना की जानी होगी। इसलिए, बिमल कुमार में हिस्सेदारी इस बिंदु से भी दूर है कि निर्णय-देनदार-याचिकाकर्ता यहां प्रचार करते हैं।

25. श्री शोभित दुबे द्वारा भरोसा किए गए सुरिंदर पाल सोनी (सुप्रा) में, प्रासंगिक तथ्यों और शामिल बिंदु को पैराग्राफ संख्या में दिए गए उनके आधिपत्य के शब्दों में रिपोर्ट 8 सबसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

8. दूसरी ओर, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल झा ने प्रस्तुत किया कि:

8.1. विलय का सिद्धांत उस स्थिति पर लागू होता है जब निष्पादन आवेदन दाखिल करने की सीमा की गणना की जानी होती है।

8.2. ट्रायल कोर्ट का फैसला सशर्त था क्योंकि इसमें शेष बिक्री विचार की प्राप्ति पर 2 महीने की अवधि के भीतर 2 कनाल को छोड़कर वाद भूमि के बिक्री विलेख के निष्पादन का निर्देश था। डिक्री में तीन शर्तें थीं, जिनमें से प्रत्येक को पूरा करना था।

8.3. वर्तमान मामले में, ट्रायल कोर्ट के फैसले को अपीलीय अदालत द्वारा संशोधित नहीं किया गया था।

8.4. अपीलकर्ता द्वारा प्रभावी जमा करने के लिए समय विस्तार के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था और न ही निष्पादन आवेदन दाखिल करते समय कोई राशि जमा की गई थी। उच्च न्यायालय ने जजमेंट देनदार की अपील को खारिज करते हुए डिक्री धारक को शेष राशि जमा करने के लिए समय का विस्तार नहीं दिया।

8.5. डिक्री-धारक ने समय बढ़ाने के लिए उचित आधार नहीं दिखाया है और अपील दायर करना विशेष रूप से आदेश 41 नियम 5 के तहत रोक की अनुपस्थिति में एक वैध आधार नहीं बनता है।

8.6. प्रतिवादी ने समय विस्तार के लिए धारा 148 सीपीसी के तहत आवेदन के बिना 19-2-2015 को बिक्री प्रतिफल की शेष राशि जमा कर दी।

8.7. उपरोक्त के लिए, यह प्रस्तुत किया गया था कि अपीलकर्ता 20-3-2012 के डिक्री में निर्दिष्ट शर्तों का पालन करने में विफल रहा, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी के नागरिक पुनरीक्षण की अनुमति दी और यह माना कि डिक्री को अक्षम्य बना दिया गया था।

26. इन तथ्यों पर, इस तर्क को खारिज करते हुए कि अपीलीय न्यायालय द्वारा लंबित अपील पर स्थगन आदेश न देने से, बाद में

पारित अपीलीय न्यायालय के डिक्री की तारीख से परिसीमा की गणना प्रभावित नहीं होगी, यह देखा गया:

9. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ हमारे विचार के लिए हैं..

10. दिनांक 20-3-2012 के अपने फैसले से, ट्रायल कोर्ट ने विशिष्ट प्रदर्शन के लिए दायर मुकदमे का दी गई या दी जा सकने वाली चुनौती के मामले को ध्यान में रखना होगा फैसला सुनाया।"

12. आगे, इस न्यायालय के विशेष अनुदान पर उभरती व्याख्या करते समय, यह देखा गया कि अपील करने की स्थिति (कुन्हायमद मामला [कुन्हायमद बनाम केरल राज्य, (2000) 6 एससीसी 3591, एससीसी पृष्ठ 383, पैरा 41))

41. एक बार विशेष अनुमति याचिका मंजूर हो जाने के बाद, इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए दरवाजे खुल जाते हैं, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लगाया गया आदेश, उसके खिलाफ अपील किया गया आदेश बन जाता है। उसके बाद पारित कोई भी आदेश एक अपीलीय आदेश होगा और विलय के सिद्धांत की प्रयोज्यता को आकर्षित करेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि आदेश उलटने का है या संशोधन का है या जिस आदेश के खिलाफ अपील की गई है उसे पुष्ट करने वाला खारिज करने का है। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि आदेश बोल रहा है या नहीं बोल रहा है।"

13. कानून की इस स्थिति की हाल ही में खोदे डिस्टिलरीज लिमिटेड में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले द्वारा पुष्टि और दोहराई गई है। वी श्री महादेश्वरा सहकार सकारे कारखाने लिमिटेड [खोदे डिस्टिलरीज लिमिटेड वी श्री महादेश्वरा सहकार सकारे कारखाने लिमिटेड, (2019) 4 एससीसी 376)

14. कुन्हायमद कुन्हायमद बनाम केरल राज्य, (2000) 6 एससीसी 3591 के फैसले के बाद चंडी प्रसाद मामले में इस न्यायालय की तीन जजों की बेंच का फैसला आया [चंडी प्रसाद बनाम जगदीश प्रसाद, (2004) 8 एससीसी 7241, जो इस प्रकार आयोजित किया गया (चंडी प्रसाद मामला चंडी प्रसाद बनाम जगदीश प्रसाद, (2004) 8 एससीसी 7241, एससीसी पृष्ठ 731, पैरा 23-24)

"23. विलय का सिद्धांत न्याय वितरण प्रणाली के पदानुक्रम में औचित्य के सिद्धांतों पर आधारित है। विलय का सिद्धांत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित उलटफेर, संशोधन या पुष्टि के आदेश के बीच अंतर नहीं करता है। उक्त सिद्धांत यह मानता है कि एक निश्चित समय पर एक ही विषय-वस्तु को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक ऑपरेटिव डिक्री नहीं हो सकते हैं।

24. यह सामान्य बात है कि जब कोई अपीलीय अदालत डिक्री पारित करती है, तो ट्रायल कोर्ट की डिक्री अपीलीय अदालत की डिक्री के साथ विलीन हो जाती है और भले ही अपीलीय डिक्री में किसी भी संशोधन के अधीन

हो, अपीलीय डिक्री अदालत ने ट्रायल कोर्ट के फैसले को रद्द कर दिया। दूसरे शब्दों में, डिक्री का विलय इस तथ्य की परवाह किए बिना होता है कि क्या अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि करती है, उसे संशोधित करती है या उलट देती है।"

15. अभी हाल ही में चंडी प्रसाद (2004) 8 एससीसी 7241 मामले के फैसले में न्यायालय में दो जजों की बेंच थी

इसके बाद शांति टी.डी. विश्वनाथन [शांति टी.डी. विश्वनाथन, (2019) 11 एससीसी 419 (2019) 4 एससीसी (सीआईवी) 787] 24-10 2018 को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया गया: (शांति मामला [शांति बनाम टी.डी. विश्वनाथन, (2019) 11 एससीसी 419 71 (2019) 4 एससीसी (सीआईवी) 7871, एससीसी ऑनलाइन एससी पैरा 7 जब कोई अपील किसी कानून के तहत निर्धारित की जाती है और अपीलीय मंच सभी इरादों और उद्देश्यों के लिए लागू और विचार किया जाता है, तो मुकदमा जारी रहता है। जब कोई उच्च मंच किसी अपील पर विचार करता है और योग्यता के आधार पर आदेश पारित करता है, तो विलय का सिद्धांत लागू होगा। विलय का सिद्धांत न्याय वितरण प्रणाली के पदानुक्रम में औचित्य के सिद्धांतों पर आधारित है। विलय का सिद्धांत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित उलटफेर, संशोधन या पुष्टि के आदेश के बीच अंतर नहीं करता है। उक्त सिद्धांत यह मानता है कि एक निश्चित समय पर एक ही विषय वस्तु को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक ऑपरेटिव डिक्री नहीं हो सकते हैं।"

16. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आदेश 41 नियम 5 सीपीसी के तहत, अपील किसी डिक्री या आदेश के तहत कार्यवाही पर रोक के रूप में काम नहीं करती है, सिवाय इसके कि जहां तक अपीलीय अदालत आदेश दे, न ही ऐसा करेगी। डिक्री के निष्पादन पर केवल इस आधार पर रोक लगाई जा सकती है कि डिक्री के खिलाफ अपील की गई है। हालाँकि, अपीलीय अदालत को पर्याप्त कारण के लिए डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने का अधिकार है। दलील यह है कि चूंकि अपील के निपटान तक डिक्री पर रोक नहीं लगाई गई थी, इसलिए इसके निष्पादन में कोई बाधा नहीं थी और, विफलता पर अपीलार्थी को निष्पादन कार्यवाही में शेष राशि जमा करने पर डिक्री निष्पाद्य हो जाती है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ऐसी स्थिति में, विलय के सिद्धांत को लागू करना समाप्त हो जाता है।

17. हम निवेदन स्वीकार करने में असमर्थ हैं। विलय का सिद्धांत अपीलीय अदालत द्वारा दिए गए निर्णय पर एक सिद्धांत के रूप में कार्य करता है। वर्तमान मामले में, एक बार जब अपीलीय अदालत ने ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री की पुष्टि कर दी, तो जाहिर तौर पर ट्रायल कोर्ट के फैसले का अपीलीय अदालत के फैसले के साथ विलय हो गया। एक बार जब अपीलीय अदालत अपना निर्णय सुना देती है, तो यह अपीलीय अदालत का आदेश ही निष्पादन योग्य हो जाता है। इसलिए,

अपीलीय अदालत की डिक्री को निष्पादित करने के लिए डिक्री-धारक के अधिकार को पराजित नहीं किया जा सकता है।"

(न्यायालय द्वारा जोर)

27 अधिवक्ता श्री दुबे ने जिस दूसरे निर्णय पर भरोसा किया, वह प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से पेश होने वाले सज्जा चिम्पिरैया (सुप्रा)। यहां जो मुद्दा उठता है, उसमें ये भी शामिल है जिन तथ्यों की पृष्ठभूमि में यह मुद्दा उठा, उन पर बिंदु संख्या 1 के तहत विचार किया गया है। सज्जा चिम्पिरैया एक ऐसा मामला था जो अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन और सीमा के एक बिंदु को छोड़कर एक डिक्री को निष्पादित करने के लिए लाई गई निष्पादन कार्यवाही से उत्पन्न हुआ था। निष्पादन, उठाया गया था। इसे सज्जा चिम्पिरैया में इस प्रकार देखा गया:

"11. बिंदु क्रमांक 1 :

डिक्री-धारक ने ओएस में डिक्री प्राप्त की। 26-3-1972 के बिंदु समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए 12-1-1977 को 1972 का क्रमांक 319। डिक्री की शर्तों के अनुसार, पुनरीक्षण याचिकाकर्ता को डिक्री-धारक के पक्ष में एक पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करने का निर्देश दिया गया था। पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने ए.एस. को प्राथमिकता दी। क्रमांक 11/1997 वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, चिराला की अदालत में दायर किया गया और इसे 31-8-1977 को खारिज कर दिया गया। ईई ने आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय के समक्ष 1989 के एस.ए. नंबर 78 को भी प्राथमिकता दी और इसे 16-6-1997 को उच्च

न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया। इसके बाद, डिक्री-धारक ने ई.पी. दायर किया। 1999 की संख्या 46 दिनांक 20-10-1998 को शेष विक्रय प्रतिफल ब्याज सहित जमा कर, 9-1-1998 को उच्च न्यायालय से विस्तार का आदेश प्राप्त कर आदेश 21, नियम 34, सी.पी.सी. के तहत पुनरीक्षण याचिकाकर्ता को निर्देशित करने के लिए। विक्रय प्रतिफल की शेष राशि प्राप्त करने के बाद डिक्री-धारक के पक्ष में एक पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करना और पुनरीक्षण याचिकाकर्ता की विफलता की स्थिति में, न्यायालय उनकी ओर से न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से विक्रय विलेख निष्पादित करना। यदि जूनियर सिविल जज, परचूर की डिक्री की तारीख पर इरिटो विचार किया जाता है, तो निष्पादन याचिका 12 वर्ष की अवधि से परे है, क्योंकि मूल डिक्री 12-1-1977 को पारित की गई थी। 11 द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय की डिक्री 16-6-1997 मानी गयी है, निष्पादन याचिका समयान्तर्गत है।

12. डिक्री धारक श्री एम.वी.एस. के विद्वान अधिवक्ता सुरेश कुमार ने प्रस्तुत किया कि चूंकि पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने उप-न्यायालय और उच्च न्यायालय के समक्ष अपील को प्राथमिकता दी, इसलिए ट्रायल कोर्ट और AP530 प्रथम अपीलीय न्यायालय के फैसले को दूसरी अपील में उच्च न्यायालय के फैसले के साथ विलय कर दिया गया। अतः परिसीमा निस्तारण की तिथि से चलनी प्रारम्भ हो जाती है। दूसरी अपील यानी 16-6-1997 की इसलिए, डिक्री धारक के पास उच्च न्यायालय के डिक्री की तारीख से 12 साल के भीतर

निष्पादन याचिका दायर करने के लिए पर्याप्त समय है और चूंकि निष्पादन याचिका 20-10-1998 को दायर की गई थी, यह समय के भीतर है। इसलिए, डिक्री पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के खिलाफ लागू करने योग्य है और विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 28 के तहत बिक्री के अनुबंध को रद्द करने का सवाल नहीं उठता है।

13. पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री टी.जगदीश ने कहा कि फांसी के बाद से याचिका 12 वर्ष की अवधि के बाद दायर की गई थी जूनियर सिविल जज, परचुर के डिक्री की तारीख, निष्पादन लोन याचिका को बरकरार नहीं रखा जा सका। अतः यह बर्खास्त किये जाने योग्य है।

14. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों पर मजबूत भरोसा जताया और उन्होंने उन निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों के आलोक में उचित आदेश पारित करने का अनुरोध किया।

15. पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया और यह मानने का अनुरोध किया कि निष्पादन याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित है।

16. रतनसिंह बनाम विजयसिंह, एआईआर 2001 एससी 279 में, सुप्रीम कोर्ट ने भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 136 के दायरे पर विचार करते हुए इस प्रकार कहा: (पैरा 8 और 9): "सीमा की

अनुसूची का अनुच्छेद 136 अधिनियम, 1963 किसी भी सिविल 11 न्यायालय के किसी भी डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए 12 वर्ष का प्रावधान करता है (अनिवार्य निषेधाज्ञा देने वाले डिक्री के अलावा)। अनुच्छेद में तीसरा कॉलम जो उस समय को इंगित करता है जिससे अवधि चलना शुरू होती है, बताती है कि "कब डिक्री या आदेश लागू करने योग्य हो जाता है..." आम तौर पर एक डिक्री या आदेश अपनी तारीख से लागू हो जाता है। लेकिन ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जब डिक्री किसी भविष्य की तारीख पर या कुछ निर्दिष्ट घटनाओं के घटित होने पर लागू हो जाती है। अभिव्यक्ति "प्रवर्तनीय" का उपयोग ऐसे डिक्री या आदेशों को कवर करने के लिए किया गया है जो बाद में लागू करने योग्य हो जाते हैं। अपील दायर करने से डिक्री की प्रवर्तनीयता प्रभावित नहीं होगी, जब तक कि अपीलीय न्यायालय इसके संचालन पर रोक नहीं लगाता है। लेकिन यदि अपील के परिणामस्वरूप डिक्री होती है निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री को हटा दें और यह अपीलीय अदालत की डिक्री है जो लागू करने योग्य हो जाती है। जब अपीलीय आदेश एक डिक्री की श्रेणी में नहीं आता है तो कोई अतिक्रमण नहीं होगा और इसलिए निचली अदालत का डिक्री लागू करने योग्य बना रहेगा।"

17. पुराने सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 182 के तहत, जिस समय से अवधि चलना शुरू होगी उसे इस प्रकार दिखाया गया था:

1) डिक्री या आदेश की तारीख या

2) क्या अपील हुई है, अपीलीय न्यायालय द्वारा अपील वापस लेने के अंतिम डिक्री आदेश की तारीख।

18. पुरानी सी.पी.सी. की धारा 48. 12 वर्ष की अवधि निर्धारित की गई, जिसकी समाप्ति से पहले, निष्पादन के लिए आवेदन किया जा सकता था। "धारा 48 (1) जहां एक डिक्री को निष्पादित करने के लिए एक आवेदन किया गया है जो निषेधाज्ञा देने वाली डिक्री नहीं है, बारह साल की समाप्ति के बाद प्रस्तुत किए गए किसी भी नए आवेदन पर उसी डिक्री के निष्पादन के लिए कोई आदेश नहीं दिया जाएगा- (ए) जिस डिक्री को निष्पादित करने की मांग की गई है, या, (बी) जहां डिक्री या कोई आगामी आदेश पैसे के किसी भी भुगतान या डिलीवरी का निर्देश देता है किसी निश्चित तिथि या समय पर बनाई जाने वाली कोई संपत्ति आवर्ती अवधि, बनाने में डिफॉल्ट की तिथि वह भुगतान या वितरण जिसके संबंध में आवेदक डिक्री निष्पादित करना चाहता है। (2) इस धारा में ऐसा कुछ भी नहीं समझा जाएगा (ए) बारह साल की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद प्रस्तुत किए गए आवेदन पर अदालत को डिक्री के निष्पादन का आदेश देने से रोकना, जहां निर्णय देनदार ने धोखाधड़ी या बल से किया है, आवेदन की तारीख से ठीक पहले बारह वर्षों के भीतर किसी समय डिक्री के निष्पादन को रोका; या (बी) भारतीय सीमा अधिनियम, 1877 की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 180 के संचालन को सीमित या अन्यथा प्रभावित करना।

19. एपी531 पुराने परिसीमन अधिनियम के अनुच्छेद 182 के तहत प्रावधान, वर्तमान परिसीमन अधिनियम के संबंधित अनुच्छेद 136 से काफी अलग था। अब किसी डिक्री के निष्पादन की अवधि उस तिथि से प्रारंभ होती है जब वह प्रवर्तनीय हो जाती है।

20. पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सुप्रीम कोर्ट के उपरोक्त निर्णय के अनुसार डिक्री उस तारीख से लागू हो जाती है जिस दिन अपीलीय न्यायालय ने डिक्री पारित की थी जो ट्रायल कोर्ट की डिक्री को खत्म कर देती है और चूंकि कोई डिक्री पारित नहीं हुई थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय या द्वितीय अपीलीय न्यायालय द्वारा ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री को बदलने से यह ट्रायल कोर्ट के डिक्री की तारीख से लागू करने योग्य हो गया। इसलिए, ट्रायल कोर्ट की डिक्री की तारीख से 12 साल की अवधि के बाद दायर निष्पादन याचिका को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

21. एंटोनीसामी बनाम अरुलानंदम पिल्लई, 2002 (1) अंध एलडी1: एआईआर 2001 एससी 2967 में, सुप्रीम कोर्ट ने लिमिटेशन एक्ट, 1963 के अनुच्छेद 136 के दायरे पर विचार करते हुए कहा कि जब एक निर्देश के साथ विशिष्ट प्रदर्शन का डिक्री पारित किया गया था कि डिक्री-धारक को एक विशेष तिथि से पहले बिक्री प्रतिफल का शेष जमा करना चाहिए और निर्णय-देनदार को उसी तिथि से पहले भूमि को मापना और सीमांकन करना चाहिए और जब डिक्री-धारक ने राशि जमा कर दी तो निर्णय-देनदार के बावजूद निष्पादन की

सीमा शुरू हो जाती है भूमि का सीमांकन करने में विफल रहने पर, डिक्री तब निष्पादन योग्य हो जाती है जब डिक्री धारक एक बार राशि जमा कर देता है।

22. पश्चिम बंगाल आवश्यक वस्तु आपूर्ति निगम बनाम स्वदेश एग्रो फार्मिंग एंड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड, एटीआर 1999 एससी 3421, सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रकार कहा (पैरा 21):

"सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत डिक्री के निष्पादन के लिए सीमा की अवधि डिक्री की तारीख से चलती है, न कि उस तारीख से जब डिक्री वास्तव में तैयार की जाती है और जूडे द्वारा हस्ताक्षरित होती है।"

23. जे.

मोदी, इस प्रकार आयोजित "अनुच्छेद 182 इस अर्थ में संपूर्ण नहीं है कि मैं एकमात्र ऐसा अनुच्छेद नहीं हूँ जो निष्पादन अनुप्रयोगों पर लागू होता है और अनुच्छेद 181 भी ऐसे अनुप्रयोगों पर लागू हो सकता है। अनुच्छेद 181 एक अवशिष्ट अनुच्छेद है और केवल वहीं लागू होगा जहां अनुच्छेद 182 का आवेदन होता है को बाहर रखा गया है। सशर्त डिक्री में निष्पादन के लिए आवेदनों पर लागू होने वाला सही अनुच्छेद अनुच्छेद 181, परिसीमन अधिनियम है न कि अनुच्छेद 182, और कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो डिक्री धारक को डिक्री में निर्धारित शर्तों को पूरा करने से रोकता है। जिस दिन डिक्री पारित की जाती है, जहां डिक्री में शर्त के पालन की कोई तारीख निर्दिष्ट नहीं होती है, डिक्री धारक को डिक्री की तारीख से अधिकतम तीन साल के

भीतर शर्त को पूरा करने की स्वतंत्रता होती है, लेकिन उससे आगे नहीं, और उसे उस शर्त को देर से पूरा करके इस अवधि को बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती जिसे उसे पूरा करना था।"

24. एल. लाहौरी राम सहगल बनाम एल. प्रभु दयाल, एएलसी 1953 इलाहाबाद 120 में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक डिक्री में समय के विस्तार के संबंध में धारा 148, सी.पी.सी., 1908 के दायरे पर विचार किया। इस प्रकार: "डिक्री केवल अपनी शर्तों के अनुपालन पर ही निष्पादन योग्य होनी थी। शर्तों का पालन करने में विफलता डिक्री को अक्षम्य बना देगी। डिक्री धारक ने अनुबंध की शर्तों को पूरा नहीं किया है, उसे डिक्री निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था।"

25. उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून यह स्पष्ट करता है कि किसी डिक्री के निष्पादन की अवधि उस तिथि से प्रारंभ होती है जब वह प्रवर्तनीय हो जाती है। उपरोक्त निर्णय पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के लिए इस प्रश्न पर सहायक नहीं हैं कि किसी डिक्री के निष्पादन की सीमा कब से शुरू होती है।

26. दूसरी ओर, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने डिक्री के निष्पादन के लिए सीमा के शुरुआती बिंदु के संबंध में निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया।

27. नल्लूरी वीरराजू बनाम श्री कांची कामाक्षणमवती मंदिर, माधवरम, पश्चिम

गोदावरी जिला, (1997) 1 अंध एलडी 716 1997 एएलएचसी 2151 में, अनुच्छेद 136 के दायरे पर विचार करते हुए एपी उच्च न्यायालय के एस. दासराधर्म रेड्डी, जे. परिसीमा अधिनियम में कहा गया है कि प्रतिवादियों में से किसी एक द्वारा की गई अपील में परिसीमा की गणना अपीलीय डिक्री की तारीख से की जानी चाहिए, हालांकि याचिकाकर्ता ने स्वयं उक्त अपील दायर नहीं की थी। न्यायालय ने आगे कहा कि जब एक निर्णय-देनदार ने ट्रायल कोर्ट के डिक्री और फैसले के खिलाफ अपील AP532 दायर की, हालांकि खारिज कर दी गई, तो दूसरे निर्णय-देनदार के खिलाफ दायर निष्पादन याचिका पर रोक नहीं है।

समय, क्योंकि सीमा की गणना अपीलीय डिक्री की तारीख से की जानी है

28. पोसानी रामचन्द्रैया बनाम दग्गुपति शेषम्मा, एआईआर 1978 अंध प्रा 342, इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने इस प्रकार कहा:

"जहां अपीलीय डिक्री को निष्पादित करने की मांग की जाती है, वहां उस डिक्री की तारीख से सीमा शुरू हो जाती है क्योंकि पहले न्यायालय की डिक्री अपीलीय अदालत के डिक्री के साथ विलय हो जाती है।

न्यायालय ने आगे कहा:

"अनुच्छेद 136 कहता है कि परिसीमा की अवधि तब शुरू होती है जब डिक्री या आदेश

लागू करने योग्य हो जाता है। यह नहीं बताता कि यह कब लागू करने योग्य हो जाता है। निरस्त धारा 48, सी.पी.सी. कहती है, कि डिक्री के निष्पादन के लिए कोई आदेश नहीं दिया जाएगा निष्पादित की जाने वाली डिक्री की तारीख से बारह वर्ष की समाप्ति के बाद। धारा 48 सी.पी.सी. में "डिक्री की निष्पादित होने की तारीख से" शब्दों का अर्थ और "जहां डिक्री या आदेश बन जाता है" शब्दों का अर्थ कला, 136 में लागू करने योग्य" व्यावहारिक रूप से वही है।" "जब विधायिका ने सी.पी.सी. की धारा 48 को हटाकर धारा 136 को अधिनियमित किया और इसे धारा 136 में पुनः प्रस्तुत किया, तो उन्हें न्यायालयों द्वारा धारा 48 की व्याख्या के बारे में पता होना चाहिए और इसे अनुमोदित किया जाना चाहिए। नतीजतन, कला के तहत। वर्तमान परिसीमा अधिनियम के 136 में परिसीमा की अवधि की गणना अपीलीय डिक्री की तारीख से की जा सकती है, भले ही अपील में कोई रोक नहीं थी। यदि कोई अपील है, तो जो डिक्री लागू की जा सकती है वह अपीलीय न्यायालय की है, और परिसीमा की अवधि की गणना उस डिक्री की तारीख से की जानी चाहिए।"

29. थोडकमल्ला वेंकट लक्ष्मी नारायणराव वी. किशनलाल, एआईआर 1961 अंध प्रा 326 में, इस उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने पुराने लिमिटेशन एक्ट की धारा 48, सीपीसी और अनुच्छेद 182 के दायरे पर विचार करते हुए निम्नानुसार कहा:

"जब निष्पादन आवेदन मूल डिक्री के 12 साल से अधिक समय के भीतर दायर किया जाता

है, लेकिन अपीलीय न्यायालय द्वारा अपील खारिज होने की तारीख से समय के भीतर, निष्पादन आवेदन धारा 48, सी.पी.सी. द्वारा अप्रतिबंधित शब्दों के मद्देनजर जहां अपील की गई है" पुराने परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 182 में "वर्जित नहीं है "

30. नचरम्मल बनाम वीरप्पा चेट्टियार, एआईआर 1946 मद्रास 231 में, मद्रास उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच धारा 48, सी.पी.सी. से निपटते हुए इस प्रकार आयोजित किया गया

"जहां एक अपीलीय न्यायालय एक डिक्री पारित करता है, यह ट्रायल कोर्ट के डिक्री का स्थान लेता है, और यह केवल अपीलीय न्यायालय का डिक्री है जो निष्पादन में सक्षम हो जाता है, परिणामस्वरूप धारा 48 के अंतर्गत 12 वर्ष की अवधि प्रारंभ होती है ऐसी अपीलीय डिक्री की तारीख से नहीं

31.एस.टी.एम. में विरावन चेट्टियार वी.आर.एम. रायलु अय्यर नागास्वामी अय्यर एंड कंपनी, एआईआर 1951 मद्रास 844, मद्रास उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने इस प्रकार कहा: "5.48 के तहत 12 साल की अवधि की गणना डिक्री की तारीख से की जाएगी, न कि उस तारीख से जब वह डिक्री में संशोधन किया गया है.

32.उपरोक्त निर्णयों की प्रवृत्ति से यह निष्कर्ष निकलता है कि अपील को स्वीकार करने या खारिज करने के बावजूद, निष्पादन याचिका दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि की

गणना अपीलीय डिक्री की तारीख से की जानी चाहिए।

33. वर्तमान मामले में पुनरीक्षण याचिकाकर्ता द्वारा की गई अपीलें खारिज कर दी गईं। इसलिए, पुनरीक्षण याचिकाकर्ता का यह तर्क कि परिसीमा मूल डिक्री की तिथि से चलती है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह उन मामलों पर लागू होता है जहां निर्णय-देनदारों में से किसी एक के अनुरोध पर भी अपील पर विचार किया गया था।

34. उपरोक्त कानूनी स्थिति के आलोक में यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उच्च न्यायालय की डिक्री दिनांक 16-6-1997 की तिथि से निष्पादन याचिका समय के भीतर थी। इसलिए, यह सीमा से वर्जित नहीं है।

35. बिंदु क्रमांक 22 पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने आई.ए. दायर किया। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 28 के तहत 1999 की संख्या 269 में दिनांक 26-3-1972 के अनुबंध को रद्द करने और प्रतिवादी को लागत का भुगतान करने का निर्देश देते हुए पुनरीक्षण याचिकाकर्ता को अनुसूची संपत्ति बहाल करने का अनुरोध किया गया। उक्त आवेदन में पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने AP533 में तर्क दिया कि उसने तीसरे प्रतिवादी से दिनांक 15-4-1972 के एक पंजीकृत बिक्री विलेख के तहत अनुसूची संपत्ति खरीदी। प्रधान जिला मंसिफ न्यायालय, चिराला ने बिक्री के अनुबंध दिनांक 26-3-1972 के विशिष्ट निष्पादन के लिए 12-1-1977 को एक डिक्री पारित की,

जिसमें उन्हें पहले प्रतिवादी के पक्ष में एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने का निर्देश दिया गया था। पहले प्रतिवादी ने 12 साल की अवधि के भीतर डिक्री को निष्पादित करने के लिए निष्पादन याचिका दायर नहीं की, इसलिए, यह परिसीमा द्वारा वर्जित है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि चूंकि पहला प्रतिवादी सीमा अवधि के भीतर खरीद के पैसे का शेष भुगतान करने में विफल रहा, इसलिए विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री सीमा से वर्जित है, इसलिए, अनुबंध को यह मानते हुए रद्द कर दिया जाना चाहिए कि वह कब्जे की बहाली का हकदार है। संपत्ति का. पहले प्रतिवादी ने यह कहते हुए आवेदन का विरोध किया कि ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय ने बिक्री कार्यों के निष्पादन के संबंध में पक्षों के बीच मुद्दे को सुलझा लिया और उन्होंने आगे तर्क दिया कि चूंकि उच्च न्यायालय ने उन्हें बिक्री के शेष राशि का भुगतान करने की अनुमति दी थी। समय, वह पाने का हकदार है निष्पादन याचिका के माध्यम से डिक्री लागू की गई।"

(न्यायालय द्वारा जोर)

28. इस मुद्दे की जांच इस न्यायालय द्वारा चंडी प्रसाद और अन्य बनाम जिला. और सत्र न्यायाधीश, हापुड और अन्य, एआईआर 2001 सभी 229, अतिरिक्त मामले में की गई थी जिसमें सुधीर नारायण, जे. ने कहा:

9. प्रश्न यह है कि क्या 18-4-1985 को पारित उच्च न्यायालय के फैसले के अनुसरण में निकाली गई डिक्री को उस तारीख के रूप में लिया जाएगा जब डिक्री लागू हो जाएगी या

4 को दिए गए निचली अपीलीय अदालत के फैसले की तारीख के रूप में ली जाएगी। -1- 1974. इसी तरह का विवाद बंशीधर दुर्गा दत्ता बनाम लूनकरण सेठिया, 1983 एएलजे 557 में उठाया गया था, जहां अपीलीय अदालत के फैसले के बाद निष्पादन आवेदन दायर किया गया था, इस अदालत की डिवीजन बेंच ने माना कि निचली अपीलीय के फैसले के बाद डिक्री लागू हो जाती है। अदालत। इस मामले में अपील को खारिज कर दिया गया क्योंकि अपील नहीं की गई थी और निर्णय-देनदार ने यह तर्क उठाया कि चूंकि अपील को दबाया नहीं गया था और फैसले की पुष्टि की गई थी और चूंकि ट्रायल कोर्ट के डिक्री के संचालन पर कोई रोक नहीं थी, इसलिए निष्पादन आवेदन समय बाधित हो गया.. इस तर्क को इस तर्क पर स्वीकार नहीं किया गया कि एक बार निचली अपीलीय अदालत के फैसले के खिलाफ अपील दायर कर दी गई है तो डिक्री धारक के लिए यह खुला है कि वह अपील के फैसले की प्रतीक्षा करे और उसके बाद आवेदन दाखिल करे पेज (559 पर; ऑल एलजे का) का निष्पादन हुक्मनामा यह देखा गया

"यह प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित कानून का पालन करता है कि यदि न्यायालय का आदेश कार्रवाई का कारण प्रस्तुत करता है तो उसी तरह निचली अदालत का डिक्री भी कार्रवाई का कारण प्रस्तुत करता है। जिस समय से सीमा चलनी शुरू होती है वह वह बिंदु है जब डिक्री या आदेश लागू करने योग्य हो जाता है, अभिव्यक्ति "प्रवर्तनीय" का अर्थ है "निष्पादन करना, प्रभाव में लाना", ट्रायल कोर्ट के डिक्री की पुष्टि होने की स्थिति में, अपीलीय डिक्री

लागू करने योग्य हो जाती है और उसे निष्पादन में डाला जा सकता है। निर्णय देनदारों का यह तर्क कि चूंकि कोई स्थगन आदेश नहीं था, डिक्री धारक अपील के अभियोजन में बिताए गए समय का लाभ नहीं उठा सका, हमें मान्य होने की अपील नहीं करता है। एक निर्णय-देनदार डिक्री धारक के नहीं होने से नहीं हारता है अपनी डिक्री को क्रियान्वित करना। डिक्री धारक के पास अपील के निर्णय की प्रतीक्षा करने का विकल्प होता है। डिक्री पारित होने के तुरंत बाद उसे क्रियान्वित करने के लिए कानून उस पर कोई कर्तव्य नहीं डालता है। इससे इनकार नहीं किया गया था किसी डिक्री को संशोधित या परिवर्तित किए जाने की स्थिति में, परिसीमा की अवधि अपील में डिक्री पारित होने की तारीख से शुरू होगी। ॥ इसलिए, अपील में पुष्टि की गई डिक्री के संबंध में विपरीत दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है। यदि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित होने के तुरंत बाद उसका निष्पादन नहीं किया जाता है, तो बाद की श्रेणी की डिक्री को समय-बाधित मानने का कोई तर्क नहीं है। यदि विलय का सिद्धांत लागू होता है, तो ट्रायल कोर्ट की डिक्री का विलय हो जाएगा अपीलीय न्यायालय की और यह वह डिक्री है जो लागू करने योग्य होगी।"

10. विलय के सिद्धांत का सिद्धांत सुप्रीम कोर्ट द्वारा कुन्हायमद बनाम केरल राज्य, (2000) 6 एससीसी 359: एआईआर 2000 एससी 2587 में लागू किया गया था। मुझे स्पष्ट किया गया था कि जहां तक विलय के सिद्धांत का सवाल है, वहां सिद्धांत पर

अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित उलटफेर या संशोधन के आदेश और पुष्टि के आदेश के बीच कोई अंतर नहीं है। जैसा कि सभी तीन मामलों में निचले प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में शामिल होगा, चाहे उसका निर्णय उलट या संशोधन या केवल पुष्टि हो, न्यायालय ने यूजेएस चोपड़ा मामले में सुप्रीम कोर्ट की निम्नलिखित टिप्पणी पर भरोसा किया। बनाम बॉम्बे राज्य, एटीआर 1955 एससी 633 (एआईआर के पृष्ठ 649 पर 1955 सीआरआई एल 1410)।

"एक नोटिस जारी करने और दोनों पक्षों की उपस्थिति में पूर्ण सुनवाई के बाद अपने अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा सुनाया गया निर्णय निचली अदालत के फैसले को प्रतिस्थापित कर देगा, इस प्रकार यह उच्च न्यायालय के फैसले का गठन करेगा।" केवल अंतिम निर्णय निचली अदालत द्वारा कानून के अनुसार क्रियान्वित किया जाना है।"

11. x x x

12. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विभाजन डिक्री के निष्पादन के लिए प्रतिवादी उत्तरदाताओं द्वारा दायर किया गया आवेदन समय के भीतर था क्योंकि यह ऊपर उल्लिखित दूसरी अपील में उच्च न्यायालय के फैसले की तारीख से 12 साल के भीतर दायर किया गया था।

(न्यायालय द्वारा जोर)

29. इस अपील पर, चंडी प्रसाद मामले में इस न्यायालय के फैसले की **चंडी प्रसाद और अन्य बनाम प्रसाद जगदीश और अन्य, (2004) 8 एससीसी 724** में सर्वोच्च न्यायालय ने पुष्टि की थी, जहां इसे उनके आधिपत्य द्वारा आयोजित किया गया था:

"23. विलय का सिद्धांत न्याय-वितरण प्रणाली के पदानुक्रम में औचित्य के सिद्धांतों पर आधारित है। विलय का सिद्धांत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित उलटफेर, संशोधन या पुष्टि के आदेश के बीच अंतर नहीं करता है। उक्त सिद्धांत यह मानता है कि एक निश्चित समय पर एक ही विषय-वस्तु को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक ऑपरेटिव डिक्री नहीं हो सकते हैं।

24. यह 18 सामान्य बात है कि जब एक अपीलीय अदालत एक डिक्री पारित करती है, तो ट्रायल कोर्ट की डिक्री अपीलीय अदालत की डिक्री के साथ विलीन हो जाती है और भले ही अपीलीय डिक्री में किसी भी संशोधन के अधीन हो, अपीलीय डिक्री अदालत ने ट्रायल कोर्ट के फैसले को रद्द कर दिया। दूसरे शब्दों में, किसी डिक्री का विलय इस तथ्य की परवाह किए बिना होता है

क्या अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि करती है, संशोधित करती है या उलट देती है। जब एक विशेष अनुमति याचिका को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाता है, तो विलय का सिद्धांत लागू नहीं होता है, लेकिन जब कोई अपील खारिज कर दी जाती है, तो यह लागू होता है।

देखें *वी.एम. सलगाकर एंड ब्रदर्स (पी) लिमिटेड बनाम सीआईटी (2000) 5 एससीसी 373* एआईआर 2000 एससी 1623]

25. विलय के सिद्धांत और समीक्षा के अधिकार की अवधारणा हाल ही में *कुन्हायमद बनाम केरल राज्य (2000) 6 एससीसी 3591* मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आई थी, जिसमें इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह माना था कि जब एक विशेष अनुमति याचिका का निपटारा किया जाता है। एक स्पष्ट आदेश में, विलय का सिद्धांत यह कहते हुए लागू होगा: (एससीसी पृष्ठ 383, पैरा 41-43)

41, एक बार विशेष अनुमति याचिका मंजूर हो जाने के बाद, इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए दरवाजे खुल गए हैं। उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेपित आदेश, एक ऐसा आदेश बन जाता है जिसके विरुद्ध अपील की गई है। उसके बाद पारित कोई भी आदेश एक अपीलीय आदेश होगा और विलय के सिद्धांत की प्रयोज्यता को आकर्षित करेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि आदेश उलटने का है या संशोधन का है या जिस आदेश के खिलाफ अपील की गई है उसे पुष्ट करने वाला खारिज करने का है। आदेश बोलने वाला हो या न बोलने वाला, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जब भी इस न्यायालय ने अपने सामने रखे गए आदेश की खूबियों पर अपना दिमाग लगाने की इच्छा महसूस की है, भले ही वह उसी की पुष्टि करने के लिए इच्छुक हो, इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति देने और उसके बाद अपील को

खारिज करने की प्रथा है (और) न केवल विशेष अनुमति के लिए याचिका) हालांकि कई बार अपील की अनुमति देने और अपील को खारिज करने के आदेश एक ही आदेश में निहित होते हैं और कई बार आदेश काफी संक्षिप्त होते हैं। फिर भी, यह आदेश अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग को दर्शाता है और इसमें विवादित आदेश की खूबियों को इस न्यायालय की न्यायिक जांच के अधीन किया गया है।

42. विलीन होने का अर्थ है किसी और चीज़ में डूब जाना या गायब हो जाना; लीन या बुझ जाना; मिला दिया जाना या निगल लिया जाना। कानून में विलय को कम महत्व की चीज का बड़े द्वारा अवशोषण के रूप में परिभाषित किया गया है, जिससे छोटे का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, लेकिन बड़े को बढ़ाया नहीं जाता है, एक अवशोषण या निगल लिया जाता है जिससे पहचान और व्यक्तित्व का नुकसान होता है। (कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम, खंड IVII, पृष्ठ 1067-68 देखें।)

43. हम इस मुद्दे को दूसरे दृष्टिकोण से देख सकते हैं। सुप्रीम कोर्ट अपील की विशेष इजाजत के लिए याचिका पर फैसला करते समय जिस डिक्री या आदेश के खिलाफ अपील की गई है, उसे संशोधित नहीं कर सकता है और न ही उसे पलटता है। सुप्रीम कोर्ट के समक्ष जो भी विवादित है, उसे अपील की इजाजत देने और फिर अपीलीय क्षेत्राधिकार मानने के बाद ही बदला या संशोधित किया जा सकता है। इस पर यदि आदेश सर्वोच्च के समक्ष लागू किया जाता है, एसएलपी में न्यायालय को उलटा या संशोधित नहीं किया

जा सकता है स्पष्टतः उस आदेश की पुष्टि एसएलपी स्तर पर भी नहीं की जा सकती।

26. कुन्हायमद 1 (2000) 6 एससीसी 3591 में यह देखा गया: (एससीसी पृष्ठ 370, पैरा 12)

"12. एक बार जब श्रेष्ठ न्यायालय ने अपने समक्ष 11 का निपटान कर दिया है, चाहे अपील के तहत आदेश की डिक्री को रद्द कर दिया जाए या संशोधित किया जाए या बस पुष्टि की जाए, यह श्रेष्ठ न्यायालय, न्यायाधिकरण या प्राधिकारी का डिक्री या आदेश है जो अंतिम है, बाध्यकारी और ऑपरेटिव डिक्री या आदेश जिसमें न्यायालय, न्यायाधिकरण या नीचे दिए गए प्राधिकारी द्वारा पारित डिक्री या आदेश का विलय होता है। हालांकि, सिद्धांत सार्वभौमिक या असीमित आवेदन का नहीं है। श्रेष्ठ मंच और सामग्री या विषय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्राधिकार की प्रकृति - दी गई या दी जा सकने वाली चुनौती के मामले को ध्यान में रखना होगा।"

27. उक्त निर्णय का इस न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लिमिटेड (2004) 2 एससीसी 747) सहित बड़ी संख्या में निर्णयों में पालन किया गया है।

30. शांति बनाम टी.डी. विश्वनाथन और अन्य, (2019) 11 एससीसी 419 में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले में उन्हीं सिद्धांतों को दोहराया गया था, जहां उनके आधिपत्य ने चंडी प्रसाद में अपने पहले के फैसले का पालन किया था।

31. इसलिए, निर्विवाद स्थिति यह है कि परिसीमा की गणना अपीलीय न्यायालय के फैसले की तारीख से की जानी चाहिए, भले ही इस न्यायालय द्वारा दूसरी अपील को खारिज करने के आदेश की तारीख को नजरअंदाज कर दिया जाए। अपीलीय डिक्री 31.03.2011 को विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित की गई थी और निष्पादन आवेदन 21.07.2011 को किया गया था, जो 1963 के अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुच्छेद 136 के तहत 12 साल की सीमा के भीतर था। उल्लेख कॉलम नंबर 3 में मूल डिक्री की तारीख से कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि निष्पादन आवेदन के कॉलम नंबर 4 में अपील में पारित डिक्री का प्रचुर संदर्भ है।

32. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, निष्पादन सक्षम है और आगे बढ़ना चाहिए।

33. कोई अन्य बिंदु दबाया नहीं गया।

34. यह याचिका विफल हो जाती है और जुर्माने के साथ खारिज की जाती है।

(2023) 7 ILRA 834

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

शासकीय अपील संख्या 1075 वर्ष 1990

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

देवेन्द्र @ डबलू एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: ए.जी.ए., श्री राजेश कुमार पाण्डेय, श्री एन.के. श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री वाई.डी. शर्मा, अंजली पाण्डेय, श्री प्रमोद कुमार राजपूत, श्री संजय श्रीवास्तव, श्री सुनील कुमार

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 392- बरी आदेश के विरुद्ध अपील-एफआईआर शीघ्र दर्ज की गई - आरोपी व्यक्तियों का नाम एफआईआर में है - बरामदगी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं - शत्रुता साबित नहीं- साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 - साक्ष्य की गुणवत्ता आवश्यक - लूटे गए सामान की बरामदगी मामला किसी भी उचित संदेह से परे साबित हुआ धारा 392 आईपीसी के तहत - सह-आरोपी के लिए अभियोजन पक्ष उसके खिलाफ साजिश साबित नहीं कर सका। एक आरोपी के संबंध में अपील खारिज की गई - बाकी आरोपियों के लिए-राज्य द्वारा की गई अपील स्वीकार की जाती है।

राज्य द्वारा की गई अपील स्वीकार की जाती है। (ई-9)

उद्धृत मामले:

1. देवेन्द्र उर्फ डबलू और महेन्द्र को विधि के अनुसार दोषी ठहराया जाना और सजा दी जानी चाहिए।

2. दुर्गा प्रसाद के संबंध में विद्वान विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा पारित निर्णय और दोषमुक्ति आदेश को बरकरार रखा जाता है।

3. चूंकि आरोपी देवेन्द्र उर्फ डबलू और महेन्द्र व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित नहीं हैं, इसलिए उन्हें हिरासत में लेने का आदेश दिया जाता है। सजा की अवधि पर उनकी सुनवाई की जाएगी।

4. यद्यपि आरोपियों को उपस्थित रहने का निर्देश दिया गया था, लेकिन वे अनुपस्थित हैं। उनके अधिवक्ता भी अनुपस्थित हैं। इसलिए, आरोपी देवेन्द्र उर्फ डबलू और महेन्द्र के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए जाते हैं, जो 04.08.2023 को सीजेएम, बुलंदशहर के माध्यम से तामील किए जाने हैं। उक्त तिथि को उन्हें न्यायालय के समक्ष पेश किया जाएगा।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मुकेश बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र राज्य और अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)

2. भगवान जगन्नाथ मार्कंड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537

3. साधु सरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 4 एससीसी 357

4. प्रमोद कुमार बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र राज्य, एआईआर 2013 एससी 3344

5. गोविंद राजू @ गोविंदा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य बनाम और अन्य, एआईआर 2012 एससी 1292

6. संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107

7. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759

8. दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य, (1976) 4 एससीसी 158

9. हुकुम व अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2001 सी.आर.एल.जे. 511

10. बेबल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, एआईआर 2012 एस.सी. 2621

11. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य., 2009 (6) सुप्रीम 526

12. महावीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 6 एससीसी 716

13. अटलुरि ब्रह्मा नंदम बनाम ऐनी साईं बापूजी और लक्ष्मीबाई भगवंत बुवा, एआईआर 2013 एससी 1204

14. सुदीप कुमार सेन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2016) 3 एससीसी 26

15. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतवीर, (2015) 9 एससीसी 44

16. पृथ्वीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2012 (76) एससीसी 680 (एससी)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा दिया गया)

1. इस सरकारी अपील को राज्य द्वारा आपराधिक मामला संख्या-1288 वर्ष 1987 (आपराधिक मामला संख्या-419 वर्ष 1989) धारा 392/411, 120-बी भ.द.वि., थाना-कोतवाली नगर, जिला बुलंदशहर के तहत, अतिरिक्त मुंसिफ मजिस्ट्रेट-IV, बुलंदशहर द्वारा पारित निर्णय और बरी करने के आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसके द्वारा आरोपी व्यक्तियों (प्रतिवादी

संख्या-1) को भारतीय दंड संहिता की धारा 392 के तहत आरोपों से बरी कर दिया गया था।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि 03.10.1985 को पी.एच.सी. ऊंचागांव, बुलंदशहर से सूचनाकर्ता, भागवत सिंह ने स्टेट बैंक, बुलंदशहर से अपने विभागीय कर्मचारियों के वेतन के रूप में 29,965.40/- रुपये निकाले, उसे चमड़े के बैग में रखा और गांव हीरापुर में श्री डालमोर के घर पर साइकिल पार्क करने के बाद, कथित बैग को हाथ में लेकर बस स्टैंड जहांगीराबाद की ओर चले गए। उक्त मकान से करीब 20-25 कदम की दूरी पर दोपहर 02:00 बजे आरोपी अमरनाथ @ पप्पू, देवेन्द्र @ डब्लू बिना नंबर प्लेट की विक्की मोपेड मोटरसाइकिल पर सवार होकर उससे मिला और बंदूक की नोक पर उसके हाथ से बैग छीन लिया जिसमें 29,965.40 रुपये, एक ट्रेजरी रजिस्टर और अन्य कागजात थे। सूचनाकर्ता ने चौकी, नई मंडी, बुलंदशहर में एक लिखित शिकायत प्रदर्श क-1 पेश की, जिसके आधार पर धारा 392 भ.द.वि. के तहत प्राथमिकी प्रदर्श क-5 तैयार की गई। विवेचना के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 392 भ.द.वि. के तहत आरोप तय किए गए थे, जिन्होंने आरोप से इनकार किया और विचारण का दावा किया।

3. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित गवाहों की जांच की गई है:-

1	अ०सा०-1	भागवत सिंह, सूचनाकर्ता
2	अ०सा०-2	जागरूप, स्वतंत्र गवाह जो

		पक्षद्रोही हो गया
3	अ०सा०-3	महेंद्र सिंह चौहान,, दारोगा थाना-कोतवाली बुलंदशहर
4	अ०सा०-4	राजेन्द्र सिंह चौधरी, दारोगा थाना-वननादेवी अलीगढ़

4. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों की जांच की गई है: -

1	प्रदर्श क-1	तहरीर
2	प्रदर्श क-2	चिक प्राथमिकी, फर्द बरामदगी, माल के फर्द एण्ड बिल रजिस्टर में प्रविष्टि
3	प्रदर्श क-3	नक्शा नज़री सारणी के साथ, और स्टाफ को पेमेंट की लिस्ट
4	प्रदर्श क-4	नक्शा नज़री सारणी के साथ
5	प्रदर्श क-5	ब्रांच मैनेजर एस बी आई को पत्र, सूचनाकर्ता को मुद्रा अदायगी के लिए पत्र
6	प्रदर्श क-6	चिक प्राथमिकी और आरोप पत्र
7	प्रदर्श क-7	जी डी के प्रति और पास बुक
8	प्रदर्श क-8	नोट्स
9	प्रदर्श क-9-10	कपड़ों के बंडल

5. सामग्री प्रदर्शन

1	सामग्री पदर्श-1	बैग
2	सामग्री पदर्श-2	ट्रेजरी रजिस्टर
3	सामग्री पदर्श-3	सैलरी विवरण
4	सामग्री पदर्श-4	पत्र
5	सामग्री पदर्श-5, 18	मोपड एवं पत्र
6	सामग्री पदर्श-6, 7	सील मुद्रा
7	??	(मूल जजमेंट/निर्णय में ही ये नंबर गायब)
8	सामग्री पदर्श-8-15	नोटों के बंडल
9	सामग्री पदर्श-16-17	कपड़ों के बना हुआ ट्रस

6. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष के गवाहों के मौखिक साक्ष्य इस प्रकार हैं: -

6.1. अ.सा.-1, सूचनाकर्ता - भगवत सिंह ने शपथ लेते हुए बताया कि 03.10.1985 को वह उचागांव पी.एच.सी. में लेखा लिपिक के रूप में तैनात थे। वह कर्मचारियों का वेतन लेने के लिए भारतीय स्टेट बैंक गए थे। उन्हें 30,865.40/- रुपये का वेतन मिला था, जिसमें से उन्होंने अपने और अपनी पत्नी के व्यक्तिगत खाते में 900/- रुपये जमा किए थे। शेष 29,965.40 रुपये जो कथित बैग में रखे थे, साइकिल से होते हुए बस स्टैंड की ओर गए और गांव हीरापुर के दलमोर सिंह के घर पर पार्क कर कथित बैग हाथ में लेकर पैदल ही बस स्टैंड की ओर चल पड़े। वह मुश्किल से 20-25 कदम चला होगा, आरोपी व्यक्तियों अर्थात् अमरनाथ @ पप्पू (अदालत में मौजूद), देवेन्द्र @ डबलू (अदालत में मौजूद नहीं) और महेंद्र सिंह (अदालत में मौजूद) मिले और उसे रोका और बंदूक की नोक पर जबरन बैग छीन लिया। इसके बाद उसने शोर मचाया, जिस पर गवाह दलमोर सिंह, जगरूप सिंह, कैलाश और सरदार आदि वहां पहुंचे और आरोपियों को पकड़ने की कोशिश की। आरोपी पिस्टल लहराते हुए विक्की पर सवार होकर स्याना रोड की तरफ भाग गया। बैग में पैसे के अलावा ट्रेजरी रजिस्टर था जिसमें बिल नोट थे। अन्य कागजात और टिकट भी थे। उन्होंने स्वयं शिकायत प्रदर्शक-1 लिखी थी और इसे चौकी, नई मंडी में प्रस्तुत किया था।

6.2. अदालत में गवाह के सामने सीलबंद पोटली खोली गई। जिसे देखकर उसने गवाही

दी कि यह वही बैग है जो आरोपियों ने उससे छीना था। रजिस्टर देखकर उसने गवाही दी कि 03.10.1985 को उसे बैंक से बिल की राशि प्राप्त हुई थी जो उक्त रजिस्टर में क्रम संख्या-123 से 129 पर नोट की गई थी और बिल राशि प्राप्त करने के बाद इन प्रविष्टियों पर उसके हस्ताक्षर किए गए थे।

6.3. जिरह में गवाह ने गवाही दी है कि घटना के दिन वह सुबह 07:30 बजे ऊंचगांव गांव से निकला था। सबसे पहले वह सुबह 10:15 बजे बैंक के खजाने में पहुंचे। डालमोर उनके दूर के रिश्तेदार थे जहां वह अपनी साइकिल पार्क किया करते थे। घटना से पहले से उसका आरोपियों से न तो कोई लेना-देना था और न ही उनकी उनसे कोई दुश्मनी थी। घबराए हुए होने के कारण वह यह उल्लेख नहीं कर सके कि उन्हें स्टेट बैंक से 30,865.40 रुपये मिले थे। इंस्पेक्टर ने उसी दिन अपना बयान दर्ज कराया था जिसमें भी वह इस तथ्य को नहीं कह सके। यह कहना सही है कि 30,865.40 रुपये के बारे में तथ्य पहली बार अदालत में कहा गया था। प्राथमिकी में 900/- रुपए जमा करने के तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि यह कहना गलत है कि वह घटना से पहले से आरोपी व्यक्तियों को नहीं जानते थे। यह कहना भी गलत है कि उन्होंने पुलिस की मिलीभगत से झूठी रिपोर्ट दर्ज कराई थी।

6.4. अ.सा.-2, जगरूप ने गवाही दी है कि यह लगभग पांच महीने पहले की बात है जब वह खेत में आलू की देखभाल कर रहा था। उसे इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि

आरोपियों ने बैग छीना था या नहीं। वह आरोपियों को नहीं जानता था। वह दलमोर सिंह को जानता था जो उसका चचेरा भाई था। उसे नहीं पता था कि दलमोर सिंह के घर भागवत सिंह आता है या नहीं। इस गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। जिरह में गवाह ने विवेचनाधिकारी को बयान देने से इनकार कर दिया और कहा कि यह कहना गलत था कि उसने गलत तरीके से गवाही दी, आरोपी व्यक्तियों द्वारा चेतावनी दी जा रही थी।

6.5. अ.सा.-3, एस.आई. महेन्द्र सिंह चौहान, थाना-कोतवाली नगर, जिला बुलन्दशहर ने गवाही दी कि दिनांक 04.10.1985 को वह थाना-कोतवाली नगर में पदस्थ था। उस दिन वह कांस्टेबल सुरेंद्र सिंह, कांस्टेबल प्रमोद कुमार के साथ धारा 379 भ.द.वि. के तहत केस अपराध संख्या-595 की विवेचना करने के लिए था। जब वह चौराहा अनूपशहर अड़्डा पहुंचे, तो एस.आई. राजेंद्र सिंह चौधरी चौकी प्रभारी नई मंडी, एच.सी. जय प्रकाश और कांस्टेबल बाबू खान और ऋषिपाल ने उनसे मुलाकात की और उन्हें बताया गया कि उन्हें लूटी गई वस्तुओं को पुनर्प्राप्त करना है और आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार करना चाहते हैं। इस पर, उन्होंने एक-दूसरे की भौतिक खोज की और सुनिश्चित किया कि किसी के पास कोई लूटी गई वस्तु न हो। इसके बाद उन्होंने जनता की गवाही लेने की कोशिश की लेकिन कोई भी सहयोग करने को तैयार नहीं था। जब गवाह नहीं मिले तो वह अन्य पुलिसकर्मियों के साथ औरंगाबाद रोड पर प्याऊ, उतरवाली के पास पहुंचा और इसकी आड़ में छिपकर बैठ

गया और आरोपियों के आने का इंतजार करने लगा। थोड़ी देर बाद औरंगाबाद की तरफ से दो आदमी विक्की (मोटर साइकिल मोपेड) पर आते दिखाई दिए। सूचनाकर्ता ने इशारा किया और चला गया। उन्हें रोक दिया गया। महेंद्र जाटव विक्की की सवारी कर रहे थे और उनके पीछे उनका भाई देवेंद्र @ डब्लू बैठा था। दोनों अदालत में मौजूद थे। देवेंद्र हाथ में चमड़े का बैग लिए हुए थे, जब उन्होंने बैग खोला तो उन्हें ऊंचगांव अस्पताल का ट्रेजरी रजिस्टर मिला। उसके सामने एक सीलबंद पोटली खोली गई, जिस पर उसने गवाही दी कि आरोपी देवेंद्र के पास से चमड़े का बैग बरामद किया गया था। इस बैग से एक रजिस्टर और एक फाइल भी बरामद हुई जो उसके सामने थी। फाइल से ऊंचगांव अस्पताल से जुड़े दो कागजात भी बरामद हुए, दूसरा पेपर सूचनाकर्ता ने लिखा था। इसके अलावा ऊंचगांव अस्पताल से जुड़ी दो सील भी मिली हैं। इन चीजों के अलावा इस बैग से मात्र 3,887/- रुपये बरामद किए गए। जब देवेंद्र की तलाशी ली गई तो उसके पास से एक देसी पिस्तौल और 303 बोर के दो कारतूस बरामद हुए। बरामद नोटों का विवरण एस.आई. राजेंद्र सिंह द्वारा तैयार किए गए फ़र्द बरामदगी में दिया गया था, जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर किए थे। विक्की/मोपेड के बारे में पूछने पर आरोपी कागजात नहीं दिखा सका और कोई पंजीकरण नहीं मिला, इसके बाद वाहन को कब्जे में ले लिया गया। जब वे दोनों आरोपियों के साथ बरामद सामान ला रहे थे, तो एक दुर्गा को देखा गया, जिसके बारे में आरोपी देवेंद्र ने बताया कि यह मोपेड विक्की का मालिक है। आरोपी दुर्गा को भी पुलिस ने हिरासत में ले

लिया और वे चौकी, नई मंडी पहुंचे। वहां आरोपी को सौंपने के बाद गवाह अन्य व्यक्तियों के साथ थाना-कोतवाली नगर लौट आया। एस.आई. राजेंद्र सिंह व अन्य पुलिसकर्मी चौकी नई मंडी में डटे रहे और पूछताछ करते रहे।

6.6. जिरह में इस गवाह ने गवाही दी कि लगभग 04:00 बजे वह तीन अन्य पुलिसकर्मियों के साथ धारा 379 भ.द.वि. के तहत केस अपराध संख्या-595 की विवेचना के लिए गया था जो देवीपुरा मोहल्ला का था। जब वह चौराहा अनूपशहर अड़्डा पहुंचे तो एस.आई. राजेंद्र सिंह अन्य पुलिसकर्मियों के साथ वहां मिले और उन्होंने लूट के संबंध में मदद मांगी। पूछने पर गवाह ने जवाब दिया कि इस मामले में उनके पास सी.ओ. का कोई आदेश नहीं है। एस.आई. राजेंद्र सिंह के कहने पर वे साइकिल से तुरंत अनूपशहर अड़्डा पहुंचे जिससे थाने से वहां पहुंचने में करीब डेढ़ घंटा लगता। वे करीब साढ़े पांच बजे अनूपशहर स्टेशन से निकले। दो सब इंस्पेक्टर, एक एचसी, 5 कांस्टेबल और एक सूचनाकर्ता थे। उन सभी के अलग-अलग चक्र थे। जनता में से कोई भी गवाह बनने के लिए तैयार नहीं था। गांव उतरवाली अनूपशहर स्टेशन से लगभग 3-4 किलोमीटर दूर होगा। सूचना एस.आई. राजेंद्र सिंह के पास थी। आरोपी औरंगाबाद की तरफ से आ रहे थे। जिस रास्ते से उतरवाली की ओर मुड़ता है, उन्होंने एक प्याऊ के पास घात लगाकर हमला किया। फर्द में, सूचनाकर्ता की जानकारी या इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है कि सूचनाकर्ता पुलिसकर्मियों के साथ घटनास्थल पर गया और आरोपियों को इंगित किया। ये

सभी तथ्य जीडी में हैं। आरोपी के हस्ताक्षर नहीं थे। आरोपी जब तक पुलिस कस्टडी में थे, तब तक उन्हें दी गई फर्द की कॉपी थाने में जमा नहीं कराई जाती थी। उन्होंने आगे कहा कि 11.10.1985 को लगभग 09:30 बजे उदय टॉकीज के पास धारा 161 द.प्र.स. के तहत उनका बयान दर्ज किया गया जिसमें उन्होंने अन्य जांचों के बारे में बताया। उन्होंने आगे कहा कि न तो दुर्गा प्रसाद ने अपनी मोपेड दी और न ही उन्हें उनके सामने मिली। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाया गया था।

6.7. अ.सा.-4, एस.आई. राजेंद्र सिंह चौधरी थाना-बन्नादेवी, जिला अलीगढ़ ने शपथ पर गवाही दी है कि 03.10.1985 को वह पुलिस चौकी-नई मंडी, थाना-कोतवाली देहात, बुलंदशहर में एस.आई. के रूप में तैनात थे। अगले दिन 04.10.1985 को उन्हें मामले के विवेचनाधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया। एच.सी. जयप्रकाश, कांस्टेबल बाबू खान, कांस्टेबल ऋषिपाल भी उनके साथ थे। जब वे 05:15 बजे अनूपशहर स्टेशन आए तो उन्हें सूचनाकर्ता से सूचना मिली कि इस लूट के दो बदमाश लूट के सामान के साथ विक्की मोपेड पर औरंगाबाद से लौट रहे हैं और उनके पास एक अवैध बंदूक भी है। इस सूचना पर उसने जनता से गवाह लेने की कोशिश की लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ। इस बीच, एस.आई. श्री एस.एस चौहान थाना-कोतवाली नगर कांस्टेबल सुरेंद्र, देवेंद्र और प्रमोद के साथ एक ही स्थान पर मिले, जिन्हें कुछ जांच सौंपी गई थी। गवाह ने उन्हें पूरी कहानी बताई और मदद मांगी। इस पर श्री चौहान सहमत हो गए,

उन्होंने सार्वजनिक गवाह लेने की भी कोशिश की लेकिन कोई भी तैयार नहीं था। फिर पुलिसकर्मी अपनी व्यक्तिगत तलाशी के बाद आरोपियों को गिरफ्तार करने के लिए औरंगाबाद रोड गए। उत्तरवाली प्याऊ के पास पहुंचकर वे वहीं छिप गए। करीब 5-7 मिनट बाद औरंगाबाद की तरफ से एक विक्की पर 2 लोग आते दिखाई दिए। सूचनाकर्ता इशारा करके चला गया, पुलिसकर्मियों ने उन लोगों को रोक दिया। उन्होंने भागने की कोशिश की लेकिन सामान्य बल का उपयोग करके उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी तलाशी के दौरान ऊपर बताए गए सभी लूटे गए सामान के साथ-साथ एक देसी पिस्तौल और 303 बोर के दो कारतूस बरामद किए गए और संबंधित मोटरसाइकिल को भी कब्जे में ले लिया गया। कार्यवाही पूरी करने के बाद वे वापस लौट गए। रास्ते में आरोपी देवेंद्र ने बताया कि जिस मोटरसाइकिल पर सवाल उठाया जा रहा है वह दुर्गा की थी, जो रास्ते में मिली भी थी और उसे भी वहीं गिरफ्तार कर लिया गया था। पुलिस चौकी-न्यू मंडी में आरोपियों के साथ लूटे गए सामान भी पेश किए गए। विवेचना के दौरान गवाहों के बयान दर्ज किए गए। पूछताछ करने पर आरोपियों ने अपना अपराध और एक अन्य आरोपी दुर्गा के साथ मिलकर की गई साजिश को कबूल कर लिया। उन्होंने आगे गवाही दी कि नक्शा नज़री तैयार किया गया था और उनके द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। उन्होंने शाखा प्रबंधक से पूछताछ की जिन्होंने पैसे का विवरण दिया था। उन्होंने आगे कहा कि यह कहना गलत है कि आरोपी व्यक्तियों को उनके साथ पुरानी दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था।

7. राज्य के अधिवक्ता श्री एन. के. श्रीवास्तव, सभी आरोपी प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री संजय श्रीवास्तव को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

8. विचारण न्यायधीश ने निम्नलिखित आधारों पर आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया है: -

8.1. यह कि आरोपी व्यक्तियों की गिरफ्तारी और बरामदगी के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा कोई सरकारी गवाह नहीं लिया गया था।

8.2. कि सूचनाकर्ता भागवत सिंह ने डालमोर के घर के दौरे के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

8.3. कि सूचनादाता का यह कर्तव्य था कि वह डालमोर के घर जाने के बजाय वेतन राशि के साथ सीधे पी.एच.सी., ऊंचागांव जाए। इस प्रकार, सूचनाकर्ता ने अपने कर्तव्य के संबंध में लापरवाही की है।

8.4. डालमोर सबसे अच्छा गवाह था जिसकी जांच नहीं की गई है, जबकि उसके शोर मचाने पर सूचनाकर्ता के अनुसार डालमोर 5-6 सेकंड के भीतर मौके पर पहुंच गया।

8.5. अभियोजन पक्ष ने जगरूप, सरदार सिंह, कैलाश और अन्य लोगों में से केवल जगरूप से अ.सा.-2 के रूप में जांच की है, जिन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया है, बाकी गवाहों से पूछताछ क्यों नहीं की गई, यह स्पष्ट नहीं किया गया है।

8.6. कि फ़र्द बरामदगी में सूचनाकर्ता का कोई कथन नहीं है। यह भी उल्लेख नहीं किया गया है कि सूचनाकर्ता पुलिस के साथ बरामदगी के स्थान तक गया था और उसने अभियुक्तों की ओर भी इशारा किया था।

8.7. यह साबित नहीं होता है कि फ़र्द बरामदगी की प्रतियां आरोपी व्यक्तियों को प्रदान की गई थीं, क्योंकि वे उस समय उनके पास नहीं थीं जब उन्हें थाना के लॉक-अप में भर्ती कराया गया था।

8.8. गवाहों के अनुसार नोटों पर एसबीआई की मुहर थी लेकिन बैंक के किसी भी अधिकारी द्वारा इसे साबित नहीं किया गया है।

8.9. अ.सा.-1, भागवत सिंह ने बैंक में 900/- रुपये जमा करने के संबंध में प्राथमिकी या धारा 161 द.प्र.स. के तहत अपने बयान में नहीं कहा है।

8.10. आम तौर पर एक व्यक्ति घटना के अगले दिन लूटे गए सामान को नहीं ले जाएगा, खासकर जब लूटा गया पैसा सील वाले बैंक का हो।

8.11. कि कोई भी व्यक्ति लूटे गए धन को उसी थैले में नहीं ले जाएगा जो धन के साथ लूटा गया था।

8.12. कि सूचनाकर्ता ने आरोपी दुर्गा प्रसाद के खिलाफ कोई बयान नहीं दिया है। उसे केवल अन्य आरोपियों द्वारा मोपेड के इस्तेमाल के आधार पर आरोपी बनाया गया है। उल्लेखनीय

है कि अ.सा.-4 राजेंद्र चौधरी ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि किसी भी गवाह ने बयान नहीं दिया था कि आरोपी दुर्गा प्रसाद ने अपराध की साजिश रची थी। इसलिए उनके खिलाफ धारा 392 भ.द.वि. के तहत कोई आरोप साबित नहीं हुआ है।

9. उपरोक्त आधारों के आधार पर, विचारण न्यायधीश ने आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया है।

10. राज्य अपीलकर्ता ने अपील में आधार लिया है कि बरी करने का आदेश पूरी तरह से गलत और अवैध है, रिकॉर्ड पर साक्ष्य के वजन के खिलाफ, विचारण न्यायधीश ने अ.सा.-1, भागवत सिंह की गवाही पर निहित निर्भरता नहीं रखकर कानून में गलती की है। गाड़ी की बरामदगी, पैसे यानी नकद राशि और पिस्तौल और कारतूस की बरामदगी से मामला पूरी तरह से स्थापित और साबित हो गया था और महेंद्र सिंह और राजेंद्र चौधरी के सबूतों पर अविश्वास करने का कोई कानूनी औचित्य नहीं था। पुलिस के गवाहों के सबूतों पर काफी अवैध रूप से अविश्वास किया गया है। अभियोजन की कहानी विश्वास को प्रेरित करती है और विपरीत दृष्टिकोण पूरी तरह से गलत है। इसलिए, अपील को अनुमति दी जाए और अभियुक्त को बरी करने के आदेश को रद्द किया जाए और आरोपी को कानून के अनुसार दोषी ठहराया जाए और सजा सुनाई जाए।

11. इस अपील का निर्णय विचारण न्यायधीश द्वारा आरोपी व्यक्तियों को बरी करने के लिए

लिए गए आधारों पर चर्चा के तहत किया जाता है।

12. विचारण न्यायधीश ने यह आधार बनाया है कि आरोपी व्यक्तियों की गिरफ्तारी और बरामदगी के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा कोई सरकारी गवाह नहीं लिया गया था।

13. इस संबंध में रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन और अवलोकन करना उचित होगा। यह घटना 03.10.1985 को हुई थी। यह कोई साधारण अपराध नहीं था क्योंकि भारी भरकम सरकारी धन लूट लिया गया था। 1985 के वर्ष में लगभग 30,000/- रुपये एक बड़ी राशि थी। घटना के तुरंत बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी और सबूतों से यह साबित होता है कि घटना के बाद पुलिस सक्रिय हो गई थी क्योंकि सरकारी धन लूट लिया गया था और मुखबिरों को सुराग देने के लिए निर्देशित किया गया था। आरोपी व्यक्तियों की पहचान के बारे में कोई विवाद नहीं था क्योंकि उनके नाम पहले से ही प्राथमिकी में उल्लिखित किए गए थे, इसलिए पुलिस को केवल लूटे गए सामानों के साथ आरोपी व्यक्तियों की तलाशी और गिरफ्तारी करनी थी।

14. अ.सा.-3 और अ.सा.-4 ने सर्वसम्मति से गवाही दी है कि आरोपी व्यक्तियों का ठिकाना सूचनाकर्ता द्वारा दिया गया था। चूंकि सूचनाकर्ता द्वारा किया गया संचार एक विशेषाधिकार प्राप्त संचार है, इसलिए अ.सा.-3 और अ.सा.-4 को धारा 125 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के मददेनजर इस बारे में कहने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। जिरह

में इस तथ्य को लेकर एक सवाल पूछा गया जिस पर गवाह ने जवाब दिया कि जनता का कोई भी व्यक्ति गवाह बनने के लिए तैयार नहीं है। इस संबंध में अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि पुलिस ने किसी भी सार्वजनिक गवाह को प्राप्त करने के लिए उचित रूप से प्रयास नहीं किया। अ.सा.-4 के एस.आई. राजेंद्र सिंह चौधरी ने भी गवाही दी है कि केस प्रॉपर्टी की तलाशी के दौरान और आरोपी व्यक्ति जब लगभग 05:15 बजे अनूपशहर अड्डा पहुंचे तो उन्हें सूचनाकर्ता से सूचना मिली कि दो आरोपी व्यक्ति अवैध हथियारों के साथ औरंगाबाद की तरफ से लूटी गई सामग्री के साथ अपराध करने में इस्तेमाल किए गए एक ही विक्की पर आ रहे हैं। इस सूचना पर उन्होंने जनता से गवाह लेने की कोशिश की लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ। उधर, कोतवाली नगर के एस.आई. एस.एच चौहान कांस्टेबल सुरेंद्र, देवेंद्र और प्रमोद के साथ उसी स्थान पर मिले। उसने उन्हें पूरी कहानी सुनाई और मदद के लिए आने को कहा। श्री चौहान इस पर सहमत हो गए और सार्वजनिक गवाह लेने की कोशिश भी की लेकिन कोई भी तैयार नहीं था तब पुलिस कर्मी गवाह बन गए और एक-दूसरे की व्यक्तिगत तलाशी ली और आश्वस्त किया कि किसी के पास मामले से संबंधित कोई सामान नहीं है और सूचनाकर्ता के साथ औरंगाबाद रोड की ओर चले गए और प्याऊ की आड़ में छिप गए।

15. इस संबंध में इस गवाह से भी जिरह की गई जिस पर उसने जवाब दिया कि ठीक होने की जगह पर भी उसने 5-6 मिनट इंतजार

किया और गवाहों को लेने की कोशिश की लेकिन कोई भी गवाह बनने के लिए तैयार नहीं था। उस समय गवाहों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था जो गवाही देने के लिए नहीं आए। गवाह को ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि उसने बरामदगी के लिए सरकारी गवाह को खरीदने की पूरी कोशिश नहीं की।

16. आपराधिक मामले में सरकारी गवाह की अनुपलब्धता के संबंध में कानून पर चर्चा करना उचित होगा।

17. मुकेश बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य में, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ), भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एस.सी.सी. 537; साधु सरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 4 एस.सी.सी. 357 यह माना गया है कि यह स्थापित कानून है कि चश्मदीद गवाह की गैर-परीक्षा को कलम के स्ट्रोक के साथ अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने के लिए एक अनुष्ठानिक फार्मूले की तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अदालत एक अभियुक्त को एकमात्र गवाह के बयान पर दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह संबंधित गवाह हो। स्वतंत्र गवाह की जांच न करना अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं हो सकता है।

18. उपरोक्त दोनों गवाहों के साक्ष्य के अवलोकन से यह बहुत स्पष्ट है कि उन्होंने सार्वजनिक गवाह लेने की पूरी कोशिश की, लेकिन चूंकि कोई भी पुलिस के साथ सहयोग

करने के लिए तैयार नहीं था, इसलिए वे ऐसा नहीं कर सके। आमतौर पर देखा जाता है कि दुश्मनी के डर से स्वतंत्र व्यक्ति किसी आपराधिक मामले में गवाह बनने के लिए आगे नहीं आते हैं। यह देखा जाता है कि अपराध सार्वजनिक स्थानों पर किए जाते हैं लेकिन लोग पीड़ित के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बचाने के लिए हस्तक्षेप नहीं करते हैं। दीवानी मामलों में भी लोग दोनों तरफ से गवाह बनने से बचते हैं क्योंकि इससे भविष्य के लिए दुश्मनी पैदा हो जाती है। ऐसी स्थिति में, यदि केवल पुलिस गवाह हैं जो सरकारी गवाह की अनुपस्थिति में अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही दे रहे हैं, तो पुलिस गवाह का साक्ष्य मूल्य क्या होगा, इस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई मामलों में चर्चा की गई है।

19. प्रमोद कुमार बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य में, ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 3344; गोविंद राजू @ गोविंदा बनाम राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 1292 में यह माना गया है कि पुलिस कर्मियों की गवाही को किसी अन्य गवाह की गवाही के समान माना जाना चाहिए। कानून का कोई सिद्धांत नहीं है कि स्वतंत्र गवाहों द्वारा पुष्टि किए बिना, पुलिस कर्मियों की गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। यह धारणा कि एक व्यक्ति ईमानदारी से काम करता है, अन्य व्यक्तियों के रूप में पुलिस कर्मियों के पक्ष में उतना ही लागू होता है और यह अच्छे कारणों के बिना अविश्वास और उन पर संदेह करने के लिए एक उचित न्यायिक दृष्टिकोण नहीं है। एक नियम के रूप में, यह नहीं कहा

जा सकता है कि पुलिस अधिकारी किसी आपराधिक मामले में एकमात्र चश्मदीद गवाह हो सकता है या नहीं हो सकता है। पुलिस अधिकारी के बयान पर, जब यह विश्वसनीय, भरोसेमंद और अधिमानतः रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों द्वारा पुष्ट होता है, भरोसा किया जा सकता है और यहां तक कि दोषसिद्धि का आधार भी बनाया जा सकता है।

20. संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012)6 एस.सी.सी. 107 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया था जो पूरी तरह से पुलिस कर्मियों के साक्ष्य पर आधारित था। इस मामले में केवल पुलिस पक्षकारों को अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पेश किया गया था और मजदूरों/स्वतंत्र गवाहों से गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई थी।

21. इस मामले में आरोपियों को प्राथमिकी में नामित किया गया था, सूचनाकर्ता घटना से पहले उन्हें पहचान रहा था, पैसे का हिस्सा भारतीय स्टेट बैंक की मुहर और अन्य सामग्री जो घटना के समय सूचनाकर्ता के पास थी, बरामद की गई और अदालत में उचित संदेह से परे साबित हुई। इस प्रकार, पुलिस कर्मियों के साक्ष्य को अ.सा.-1 के साक्ष्य और आरोपी व्यक्तियों से बरामद वस्तुओं से समर्थन मिलता है, जिसके लिए आरोपी व्यक्तियों की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इस प्रकार, विचारण न्यायधीश द्वारा बरी करने के लिए लिया गया यह आधार मान्य नहीं है और तदनुसार खारिज कर दिया गया है।

22. (ii) विचारण न्यायधीश ने आधार लिया था कि सूचनाकर्ता भागवत सिंह ने डालमोर के घर के दौरे के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

23. इस अदालत के अनुसार शायद विचारण न्यायधीश ने प्राथमिकी और सबूतों का अवलोकन नहीं किया है। प्राथमिकी में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उसने डालमोर सिंह के घर पर अपनी साइकिल पार्क की और जहांगीराबाद बस स्टैंड की ओर चला गया जब यह घटना हुई। अ.सा.-1 ने शपथ पर इसी तरह के साक्ष्य दिए हैं और जिरह करने पर उसने गवाही दी है कि डालमोर उसका दूर का रिश्तेदार है और वह वहां अपनी साइकिल पार्क करता था। जब भी वह ऊंचागांव से वेतन लेने आते थे, तो अपनी साइकिल डालमोर के घर पर पार्क कर देते थे। इस संबंध में गवाह को कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि वह झूठ बोल रहा था और उसने घटना के दिन डालमोर के घर पर अपनी साइकिल पार्क नहीं की थी। इसलिए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस संबंध में विचारण न्यायधीश द्वारा दर्ज निष्कर्ष निराधार है और इसलिए खारिज कर दिया गया है।

24. (iii) विचारण न्यायधीश ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि सूचनाकर्ता का यह कर्तव्य था कि वह डालमोर के घर जाने के बजाय वेतन राशि के साथ सीधे पी.एच.सी., ऊंचागांव जाए।

25. इस न्यायालय के अनुसार, सूचनाकर्ता अ.सा.-1 के साक्ष्य से यह साबित हो गया

है कि डालमोर के घर पर साइकिल पार्क करना और पी.एच.सी., ऊंचगांव जाने के लिए वेतन के साथ बस में सवारी करना उसका सामान्य अभ्यास था। घटना के दिन सूचनाकर्ता ने भी यही बात अपनाई। यह नहीं कहा जा सकता है कि यह सूचनाकर्ता का एक असामान्य व्यवहार था क्योंकि यह उसके द्वारा लंबे समय से किया गया था। यह नहीं कहा जा सकता कि साइकिल पार्क करने के लिए डालमोर के घर जाकर सूचनाकर्ता ने अपने कर्तव्य के संबंध में लापरवाही की है। इस अदालत के अनुसार इस तरह के कृत्य को बरी करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

26. (iv) विचारण न्यायधीश ने निष्कर्ष निकाला है कि डालमोर सबसे अच्छा गवाह था जिसकी अभियोजन पक्ष द्वारा जांच नहीं की गई है।

27. निश्चित रूप से डालमोर सिंह को आरोप पत्र में सीरियल संख्या-2 में गवाह के रूप में उल्लेख किया गया है, लेकिन उससे पूछताछ नहीं की गई है। आरोप पत्र में सीरियल संख्या-3 पर गवाह जगरूप सिंह से पूछताछ की गई है, लेकिन उन्होंने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है। संभवतः दलमोर सिंह की शत्रुता की आशंका में, उसकी जांच नहीं की गई होगी। कुछ अन्य कारण हो सकते हैं जैसे कि आरोपी व्यक्तियों के आतंक के कारण डालमोर सिंह की बीमारी, अनुपस्थिति या अनिच्छा। यह अदालत पहले ही इस बिंदु पर चर्चा कर चुकी है।

28. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में, (2010)7 एस.सी.सी. 759; माननीय उच्चतम न्यायालय ने दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य (1976)4 एस.सी.सी.158 के मामले में अपने निर्णय में यह निर्णय दिया है कि यदि गवाह अभियुक्त द्वारा जीता गया था या आतंकित किया गया था तो स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों से पूछताछ न करना असंगत है।

29. संदीप (उपरोक्त) और हुकुम और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2001 सीआरएलजे 511 में यह माना गया है कि लोक अभियोजक ऐसे गवाहों की जांच करने के लिए बाध्य नहीं हैं जो अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करते हैं। यह भी माना गया है कि लोक अभियोजक किसी विशेष तथ्य के सभी गवाहों की जांच करने के लिए बाध्य नहीं हैं।

30. उपरोक्त परिस्थितियों में यदि डालमोर सिंह की जांच नहीं की गई थी, तो यह अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है।

31. (v) विचारण न्यायधीश ने निष्कर्ष निकाला है कि जगरूप, सरदार सिंह, कैलाश और अन्य में से केवल जगरूप से पूछताछ की गई है। निचली अदालत ने बरी करने के उसके फैसले को भी इस आधार पर आधार बनाया कि आरोपपत्र में नामित बाकी गवाहों से जिरह नहीं की गई। इस न्यायालय के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। समान आधार और परिस्थितियों के कारण, बाकी गवाहों से पूछताछ नहीं की गई होगी। इसलिए, इस बिंदु को और अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। डालमोर की गैर-परीक्षा

के संबंध में इस न्यायालय द्वारा दिया गया कारण विचारण न्यायधीश द्वारा लिए गए इस आधार पर भी लागू होता है।

32. (vi) विचारण न्यायधीश ने निष्कर्ष निकाला था कि फ़र्द बरामदगी में सूचनाकर्ता का कोई कथन नहीं है और यह भी उल्लेख नहीं किया गया है कि सूचनाकर्ता पुलिस के साथ बरामदगी के स्थान पर गया था और उसने आरोपी व्यक्तियों की ओर भी इशारा किया था।

33. इस न्यायालय के अनुसार सूचनाकर्ता द्वारा दी गई जानकारी के बारे में तथ्य एक विशेषाधिकार प्राप्त संचार है जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 125 के मद्देनजर प्रकटीकरण से सुरक्षित है। इस न्यायालय के अनुसार फ़र्द बरामदगी में उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। ये तथ्य विदेशी थे और फ़र्द बरामदगी के लिए अप्रासंगिक थे। जहां तक फ़र्द बरामदगी का संबंध है, यह व्यापक है और इसमें गिरफ्तारी और बरामदगी के संबंध में आवश्यक सभी तत्व शामिल हैं। जहां तक सूचनाकर्ता द्वारा दी गई जानकारी और बरामदगी के स्थान पर पहुंचने और अभियुक्त की ओर इशारा करने का संबंध है, इन तथ्यों का केस डायरी में पहले से ही उल्लेख किया गया है और अ.सा.-3 और अ.सा.-4 द्वारा शपथ पर भी गवाही दी गई है। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायधीश ने इसे बिना किसी आधार और ठोस कारण के बरी करने का आधार बना दिया है।

34. (vii) विचारण न्यायधीश ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि यदि फ़र्द बरामदगी की प्रतियां आरोपी व्यक्तियों को प्रदान की गई होतीं, तो वे उनके पास तब होती जब उन्हें थाना-के लॉक-अप में भर्ती कराया गया था।

35. इस संबंध में, फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-2 देखा जाना है जहां यह एस.आई. द्वारा लिखा गया है कि बरामदगी ज़ापन की प्रतियां आरोपी व्यक्तियों को प्रदान की गई थीं। यह सच है कि फ़र्द बरामदगी के गवाह के रूप में केवल पुलिस कार्मिकों के हस्ताक्षर हैं और इस पर अभियुक्तों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं। इस न्यायालय के अनुसार कानून का कोई नियम नहीं है कि एक फ़र्द बरामदगी आवश्यक रूप से उन व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा जिन्हें कोई बरामदगी की गई है। इस संबंध में अ.सा.-3 द्वारा यह गवाही दी गई है कि आरोपी व्यक्तियों ने फ़र्द बरामदगी पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। कानून का ऐसा कोई नियम नहीं है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा फ़र्द बरामदगी की एक प्रति थाना में जमा की जानी चाहिए। यह भी उल्लेखनीय है कि इस संबंध में आरोपी व्यक्तियों की ओर से कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि फ़र्द बरामदगी की प्रतियां उन्हें प्रदान नहीं की गई थीं। इसलिए, उनके द्वारा ऐसी दलील नहीं ली जा सकी और इसे बरी करने का आधार बनाने के लिए विचारण न्यायधीश के पास विकल्प उपलब्ध नहीं था।

36. (viii) विचारण न्यायधीश ने निष्कर्ष निकाला है कि हालांकि बरामदगी के दौरान बरामद किए गए नोटों पर भारतीय स्टेट बैंक

की मुहर थी, लेकिन इसे साबित करने के लिए बैंक के किसी अधिकारी की जांच नहीं की गई थी।

37. इस न्यायालय के अनुसार, यहां तक कि एक आम आदमी भी बैंक की मुहर/स्टाम्प को पहचानता है। यह आरोपी व्यक्तियों के कब्जे से बरामद नोटों पर पाया गया था। इसके लिए संबंधित बैंक से अधिकारी को बुलाने की जरूरत नहीं पड़ी। नोटों का विवरण रिकॉर्ड पर है जो दर्शाता है कि सूचनाकर्ता के 30,865.40/- रुपये में से 900/- रुपये उसके और उसकी पत्नी के खाते में जमा किए गए थे और शेष 29,965.40/- रुपये सूचनाकर्ता के चमड़े के बैग में थे, जिसमें से केवल 3,887/- रुपये आरोपी व्यक्तियों से बरामद किए गए थे और शेष धन खर्च किया गया था। इस संबंध में अ.सा.-3 का साक्ष्य है जिसने बरामद नोटों का विवरण दिया है कि 10-10 रुपये के तीन बंडल कुल 3,000/- रुपये, 5 रुपये का एक बंडल कुल 500/- रुपये, दो रुपये का एक बंडल कुल 200/- रुपये, 100/- रुपये का एक नोट, 10 रुपये के आठ नोट कुल 80/- रुपये और एक रुपये के सात नोट कुल 7/- रुपये कुल 3 रुपये, 887/- रु वसूल किए गए थे। 10 रुपये, 5 रुपये और 2 रुपये के नोटों के बंडल पर भारतीय स्टेट बैंक बुलंदशहर की मुहर लगी हुई थी। 10/- रुपए के तीनों बंडलों पर दिनांक 03.10.1985 को बैंक की चिट, 5/- रुपए के बंडल पर 30.09.1985 की चिट, 2/- रुपए के बंडल पर 11.04.1985 की चिट भी पाई गई। इस न्यायालय के अनुसार, आरोपी व्यक्तियों से बरामद धन पर पहले से मौजूद ऐसे साक्ष्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि आरोपी

व्यक्तियों के कब्जे से बरामद धन सूचनाकर्ता द्वारा स्टेट बैंक से निकाले गए धन का हिस्सा था। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि कथित नोटों पर मौजूद मुहर को साबित करने के लिए भारतीय स्टेट बैंक, बुलंदशहर शाखा के किसी भी अधिकारी को बुलाने की आवश्यकता नहीं थी। इस संबंध में इस न्यायालय ने अ.सा.-3 और अ.सा.-4 के साक्ष्य की छानबीन की है। आरोपी व्यक्तियों के अधिवक्ता ने इस बिंदु पर इन गवाहों से जिरह नहीं की है कि बरामद किया गया धन घटना के दिन सूचनाकर्ता द्वारा उक्त बैंक से निकाला गया धन नहीं था। इसलिए, विचारण न्यायधीश के लिए बरी करने का आदेश पारित करने के लिए इस तरह के आधार की कल्पना करने का कोई अवसर नहीं था।

38. (ix) विचारण न्यायधीश ने निष्कर्ष निकाला है कि अ.सा.-1 भागवत सिंह ने प्राथमिकी में या धारा 161 द.प्र.स. के तहत अपने बयान में यह नहीं कहा है कि कुल राशि में से उसने बैंक में 900 रुपये जमा किए थे।

39. इस अदालत के अनुसार यह बिना किसी आधार के विचारण न्यायधीश द्वारा गढ़ा गया एक काल्पनिक और मनगढ़ंत मैदान भी है। प्राथमिकी से यह बहुत स्पष्ट है कि सूचना देने वाले के पास स्टेट बैंक के परिसर से निकलते समय चमड़े के बैग में 29,965.40/- रुपये थे। दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श क-3 से यह पूरी तरह से स्थापित है कि वस्तुतः 30,865.40/- रुपये निकाले गए थे। रिकॉर्ड पर उपलब्ध सूचनादाता और उसकी पत्नी की मूल पास-बुक से यह स्थापित होता है कि उपरोक्त राशि में से

सूचनादाता ने अपने और अपनी पत्नी के खाते में 900/- रुपये जमा किए थे। इसलिए, घटना के समय उसके चमड़े के बैग में केवल 29,965.40 / इसलिए उसके द्वारा बैंक से निकाली गई पूरी राशि का विवरण देने की आवश्यकता नहीं थी। यह लेखांकन का मामला नहीं है। प्राथमिकी संक्षिप्त होनी चाहिए, यह एक विश्वकोश नहीं है जिसमें सभी तथ्यों का उल्लेख किया जाना चाहिए। यह केवल पुलिस तंत्र में तेजी लाने के लिए एक साधन है, इसलिए, प्राथमिकी में बैंक में 900/- रुपये जमा करने के तथ्य का उल्लेख न करना या धारा 161 द.प्र.स. के तहत इस संबंध में बयान नहीं देना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है। (देखें बाबले बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 2621, भगवान जगन्नाथ मारकड (उपरोक्त); जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2009 (6) सुप्रीम कोर्ट।

40. (x-xi) विचारण न्यायधीश ने निष्कर्ष निकाला है कि आम तौर पर एक व्यक्ति घटना के अगले दिन लूटे गए सामान को नहीं ले जाएगा, खासकर जब लूटे गए पैसे पर बैंक की मुहर लगी हो।

41. इस न्यायालय के अनुसार कोई अन्य व्यक्ति के मानवीय व्यवहार की कल्पना नहीं कर सकता है। अलग-अलग इंसान अलग-अलग व्यवहार करते हैं। कई मामलों में यह माना गया है कि शैतान को भी नहीं पता कि आरोपी के दिमाग में क्या चल रहा है। यह संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। व्यक्ति की प्रतिक्रिया, आचरण और व्यवहार

समान और समान नहीं हो सकते। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि जब सूचनाकर्ता के परिचित ऐसे बदमाश उसे दिन के उजाले में लूट रहे हैं, तो वे एक दिन के घंटे में एक ही बैग में लूटे गए सामान के साथ नहीं जा सकते हैं। इसलिए, विचारण न्यायधीश द्वारा लिया गया यह आधार टिकाऊ और पुख्ता नहीं है।

42. इससे पहले यह स्पष्ट किया गया है कि विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा बरी करने का आदेश पारित करने के लिए उठाए गए कई आधारों का कोई आधार नहीं है क्योंकि आरोपी व्यक्तियों की ओर से कोई उचित जिरह नहीं की गई है। महावीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2014)6 एस.सी.सी. 716; अतलुरी ब्रह्म नंदम बनाम अन्नी साई बापूजी और लक्ष्मीबाई भगवंत बुवा, ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 1204 में यह माना गया है कि यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि यदि प्रश्न प्रतिपरीक्षा में गवाह से नहीं पूछा जाता है जो किसी विशेष मुद्दे पर स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर सकता है, तो उक्त तथ्यों/मुद्दे की शुद्धता या वैधता नहीं उठाई जा सकती है।

43. उपरोक्त उदाहरणों में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर इस न्यायालय के अनुसार यह कहा जा सकता है कि चूंकि कोई उचित जिरह नहीं की गई है और गवाहों को कोई उचित सुझाव नहीं दिया गया है, इसलिए, गवाहों के साक्ष्य पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है।

44. (xii) विचारण न्यायधीश ने आधार लिया है कि सूचनाकर्ता ने आरोपी दुर्गा प्रसाद के खिलाफ कोई बयान नहीं दिया है। उसे केवल

अन्य आरोपियों द्वारा मोपेड के इस्तेमाल के आधार पर आरोपी बनाया गया है। अ.सा.-4, राजेंद्र चौधरी ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि किसी भी गवाह ने यह बयान नहीं दिया था कि अपराध की साजिश उसके द्वारा रची गई थी। इसलिए उनके खिलाफ धारा 392 भ.द.वि. के तहत कोई आरोप साबित नहीं हुआ है।

45. इस संबंध में तथ्य के गवाहों यानी अ.सा.-1 और अ.सा.-2 के साक्ष्य सारहीन हैं और उनसे आरोपी व्यक्तियों के बीच हुई किसी भी साजिश के बारे में जानने की उम्मीद नहीं है। इस संबंध में केवल अ.सा.-3 और अ.सा.-4 के कथन प्रासंगिक हैं। अ.सा.-3 ने गवाही दी है कि आरोपी देवेंद्र ने कबूल किया था कि मोपेड आरोपी दुर्गा प्रसाद की थी। इस गवाह ने अपराध करने के बारे में आरोपी व्यक्तियों के बीच साजिश के बारे में कोई सबूत नहीं दिया है। इस गवाह से आरोपी दुर्गा प्रसाद की तरफ से पूछताछ की गई है जिसमें उसने जवाब दिया था कि उससे पहले न तो आरोपी दुर्गा प्रसाद की ओर से बाकी आरोपियों को मोपेड दी गई थी और न ही उन्होंने इसे लिया था। इस न्यायालय के अनुसार, यह जिरह बहुत अधिक अप्रासंगिक थी क्योंकि यह अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि कथित मोपेड को दुर्गा प्रसाद ने इस गवाह के सामने बाकी आरोपी व्यक्तियों को दिया था। हालांकि, यह बहुत स्पष्ट है कि इस गवाह द्वारा आरोपी दुर्गा प्रसाद और बाकी आरोपियों के बीच साजिश का कोई सबूत पेश नहीं किया जा सका।

46. इसी तरह, अ.सा.-4 ने गवाही दी है कि मोपेड आरोपी दुर्गा प्रसाद की थी, जिसे आरोपी देवेंद्र के इशारे पर बरामद किया गया था। इस गवाह ने आरोपी देवेंद्र के कबूलनामे को लिखा है कि आरोपी दुर्गा प्रसाद ने उन्हें सूचित किया था कि सूचनाकर्ता ऊंचगांव अस्पताल के कर्मचारियों का वेतन लेने स्टेट बैंक आएगा। दुर्गा प्रसाद भी पी.एच.सी., सयाना में कर्मचारी हैं। इसलिए, वह इस तथ्य के बारे में जानता था और वह यह भी जानता था कि सूचनाकर्ता अपनी साइकिल को गांव हीरापुर में पार्क करेगा और उसके बाद ऊंचगांव जाएगा। उसने यह भी कबूल किया था कि दुर्गा प्रसाद ने बैंक में सूचनाकर्ता को इशारा किया था और अपनी मोपेड देने के बाद वह चला गया था।

47. पुलिस को दिए गए इस इकबालिया बयान के अलावा आरोपी दुर्गा प्रसाद और बाकी आरोपियों के बीच साजिश का कोई सबूत नहीं है।

48. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अनुसार किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध सिद्ध नहीं होगी। आरोपी देवेंद्र एक सह-आरोपी है जिसने विवेचनाधिकारी के सामने उसके द्वारा किए गए कबूलनामे के तथ्य को स्वीकार नहीं किया है और यह किसी भी स्वतंत्र साक्ष्य से साबित नहीं होता है। आरोपी दुर्गा प्रसाद ने धारा 313 द.प्र.स. के तहत अपने बयान में कहा है कि मोपेड पार्क करने के बाद वह अपनी ड्यूटी पर गया था। इस प्रकार, इस न्यायालय के अनुसार आरोपी दुर्गा प्रसाद के खिलाफ धारा 392 के साथ धारा

120-बी भ.द.वि. के तहत आरोप साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायधीश द्वारा आरोपी दुर्गा प्रसाद के पक्ष में दर्ज निष्कर्ष सही हैं और हस्तक्षेप करने योग्य नहीं हैं।

49. चूंकि अ.सा.-2 जगरूप को छोड़कर अभियोजन पक्ष की ओर से किसी भी सरकारी गवाह की जांच नहीं की गई है, जो पक्षद्रोही गया है, तथ्य का एकमात्र गवाह सूचनाकर्ता अ.सा.-1 बना हुआ है। उसके सबूतों से यह साबित हो गया है कि वह घटना से पहले आरोपी व्यक्तियों को जानता था। उन्होंने मामले के सभी विवरण दिए हैं जैसे कि जब वह ऊंचनगांव पी.एच.सी. के कर्मचारियों की वेतन राशि निकालने के बाद डालमोर के घर आए थे और कैसे जब वह डालमोर के घर से केवल 20-25 कदम दूर गए होंगे, तो उन्हें नामजद आरोपियों द्वारा बंदूक की नोक पर लूट लिया गया था।

50. इस मामले में बिना किसी अनुचित देरी के तुरंत प्राथमिकी दर्ज की गई थी। आरोपियों के नाम प्राथमिकी में हैं। घटना के तरीके और सूचनाकर्ता से लूटी गई राशि का उल्लेख प्राथमिकी और सूचनाकर्ता के बयान में किया गया है। एक दिन बाद आरोपी व्यक्तियों को चमड़े के बैग, सील, अन्य संबंधित कागजात और 3,887/- रुपये की राशि के साथ गिरफ्तार किया गया था। आरोपी व्यक्तियों द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका कि ये सामग्री उनके पास कैसे थी। यह साबित नहीं हुआ है कि

आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाने के लिए सूचनाकर्ता की कोई दुश्मनी या कारण था।

51. इस संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 प्रासंगिक है जिसके अनुसार किसी भी मामले में किसी भी तथ्य के प्रमाण के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं होगी। इस धारा के अनुसार तथ्य को साबित करने के लिए गवाहों के साक्ष्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, न कि गवाहों की संख्या।

52. यह कई मामलों में अवधारित किया गया है कि एकान्त गवाह की गवाही अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त हो सकती है यदि वह पूरी तरह से विश्वसनीय है। सुदीप कुमार सेन बनाम वेस्ट बेनल राज्य, (2016) 3 एस.सी.सी. 26; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतवीर, (2015) 9 एस.सी.सी. 44; (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने पृथ्वीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2012 (76) एसीसी 680 (एस.सी.) के मामले में यह निर्णय दिया है कि आपराधिक विचारण में साक्ष्य की गुणवत्ता मायने रखती है न कि मात्रा। एक आपराधिक मुकदमे में गवाहों की बहुलता विधायी इरादा नहीं है। यदि एकमात्र गवाह की गवाही विश्वसनीयता की कसौटी पर विश्वसनीय पाई जाती है, तो अभियुक्त को ऐसी एकमात्र गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है।

53. इस न्यायालय के अनुसार, सूचनाकर्ता अ.सा.-1 के पास आरोपी व्यक्तियों के किसी

भी दुश्मन के साथ उन्हें झूठा फंसाने के लिए न तो कोई दुर्भावना, न द्वेष या साजिश थी। मामले का तथ्य और धारा 392 भ.द.वि. के तहत आरोप पूरी तरह से सूचनाकर्ता अ.सा.-1 के साक्ष्य से साबित हुआ है। अ.सा.-3 और अ.सा.-4 के साक्ष्य से कानून के अनुसार लूटी गई वस्तुओं की बरामदगी साबित हुई है। अभियोजन द्वारा पेश किए गए सभी दस्तावेज अ.सा.-1, अ.सा.-3 और अ.सा.-4 द्वारा साबित किए गए हैं और अभियोजन पक्ष आरोपी देवेन्द्र @ डब्लू और महेन्द्र के खिलाफ किसी भी उचित संदेह से परे मामले को साबित करने में सफल रहा है।

54. जहां तक दुर्गा प्रसाद के मामले का संबंध है, अभियोजन पक्ष उसके खिलाफ साजिश के तथ्य को साबित नहीं कर सका। आमतौर पर गांव, कस्बा और शहर में लोग किसी भी काम के बहाने दूसरों की गाड़ी ले लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी दुर्गा प्रसाद की मोपेड बाकी आरोपी उसी तरीके से ले गए होंगे। इसलिए, आरोपी दुर्गा प्रसाद के संबंध में यह अपील खारिज की जा सकती है।

55. जहां तक बाकी आरोपी व्यक्तियों - देवेन्द्र @ डब्लू और महेन्द्र का संबंध है, राज्य द्वारा दायर की गई अपील की अनुमति दी जा सकती है। उनके खिलाफ धारा 392 भ.द.वि. के तहत उचित संदेह से परे मामला साबित होता है और वे कानून के अनुसार दोषी ठहराए जाने और सजा दिए जाने योग्य हैं।

आदेश

56. अभियुक्त देवेन्द्र @ डब्लू और महेन्द्र के संबंध में अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है और आरोपी दुर्गा प्रसाद के संबंध में आंशिक रूप से खारिज कर दिया जाता है और उसके संबंध में विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा पारित बरी होने के फैसले और आदेश को बरकरार रखा जाता है।

57. चूंकि आरोपी देवेन्द्र @ डब्लू और महेन्द्र व्यक्तिगत रूप से अदालत में मौजूद नहीं हैं, इसलिए उन्हें हिरासत में लेने का आदेश दिया जाता है। सजा की मात्रा के आधार पर उन पर सुनवाई होगी।

मजीद आदेश

58. हालांकि आरोपियों को उपस्थित रहने का निर्देश दिया गया था लेकिन वे अनुपस्थित हैं। उनके अधिवक्ता भी अनुपस्थित हैं। इसलिए, हमारे पास आरोपी देवेन्द्र @ डब्लू और महेन्द्र पर गैर-जमानती वारंट जारी करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, जो 04.08.2023 को रीटर्नबल है, जिसे सी.जे.एम, बुलंदशहर के माध्यम से तामील किया जाएगा। उक्त तिथि को उन्हें इस न्यायालय के समक्ष लाया जाएगा।

59. अभियुक्तों की सजा की मात्रा पर सुनवाई के लिए 04.08.2023 को सूचीबद्ध करें।

(2023) 7 ILRA 848

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

सिविल विविध पुनर्विलोकन आवेदन संख्या

129 वर्ष 2023

सिविल विविध रिट याचिका संख्या 23940 वर्ष

2022 में

आरजीके इंडस्ट्रीज एलएलपी 144, नई दिल्ली

...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपीपीसीएल लखनऊ एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री वीरेंद्र कुमार
शुक्ला, श्री अनुराग खन्ना, श्री संदीप अरोड़ा,
श्री वी.के. शुक्ला (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री
बालेश्वर चतुर्वेदी, श्री कृष्ण अग्रवाल, श्री
के.एम. अस्थाना

ए. सिविल विधि - विद्युत बकाया की वसूली -
विद्युत अधिनियम, 2003- धारा 56 - उत्तर
प्रदेश सरकारी विद्युत उपक्रम (बकाया वसूली)
अधिनियम, 1958, धारा 5, भूमि राजस्व के
बकाया के रूप में विद्युत बकाया की वसूली -
उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 -
धारा 6.15; बकाया की वसूली - धारा 4.3
(एफ) (i); विक्रेता और क्रेता दोनों या तो/या
संयुक्त रूप से और अलग-अलग बकाया

विद्युत बकाया का भुगतान करने/अदेयता
प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी होंगे।
मुद्दा: क्या नीलामी क्रेता, नीलाम की गई
संपत्ति (बैंक का बकाया निर्धारित करने के बाद
ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा आयोजित
नीलामी) का बाद में हस्तान्तरित व्यक्ति, पूर्व
मालिक के विद्युत बकाया के भुगतान के लिए
उत्तरदायी ठहराया जा सकता है? निर्णय: धारा
4.3 (एफ) (i), (ii), (iii) के संयुक्त पठन से
यह स्पष्ट है कि खरीदार का यह कर्तव्य है कि
वह उस परिसर के संबंध में बिजली के बकाया
के मामले की जांच करे जहां पूर्व मालिक को
बिजली की आपूर्ति की गई है। धारा 4.3 (एफ)
(i) को निजी बिक्री तक सीमित नहीं किया जा
सकता है। इस मामले में संपत्ति की अनुसूची
में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि वसूली
अधिकारी को संपत्ति पर लगाए गए किसी भी
बकाया, दावे, भार या राजस्व के बारे में
जानकारी नहीं थी। इसके अलावा, नीलामी
नोटिस/बिक्री उद्घोषणा के धारा 4 में यह
प्रावधान है:

“4. संपत्ति को ‘जैसी है, जैसी है’ के आधार पर
बेचा जा रहा है।” इसका अर्थ यह है कि
नीलामी क्रेता को संपत्ति से संबंधित दावों,
शुल्कों या भारों, यदि कोई हो, के बारे में
आवश्यक पूछताछ करने की आवश्यकता थी।
नीलामी क्रेता को SARFAESI अधिनियम,
2002 के तहत कार्यवाही में नीलामी में रखी
गई संपत्ति के संबंध में बकाया बिजली शुल्क
के बारे में पूछताछ करने का दायित्व था।
नीलामी क्रेता को यह तर्क देने की अनुमति
नहीं दी जा सकती कि उसे बिजली शुल्क के
बारे में सूचित नहीं किया गया था या उसके

7. इला आरजीके इंडस्ट्रीज एलएलपी 144, नई दिल्ली बनाम यूपीपीसीएल लखनऊ एवं अन्य 1121

पास पूछताछ करने का कोई अवसर नहीं था। नीलामी बिक्री एक संकट बिक्री है, नीलामी क्रेता न केवल संपत्ति खरीदता है बल्कि उससे जुड़ी देनदारियों को भी खरीदता है। (पैरा 32, 42, 43)

खारिज। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. ईशा मार्बल्स बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, 1995 (2) एससीसी 648
2. पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम बनाम डीवीएस स्टील्स एंड अलॉयज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2009 (1) एससीसी 210
3. तेलंगाना राज्य दक्षिणी विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम श्रीगंधा बेवरेजेज, 2020 (6) एससीसी 404
4. साउथर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी ऑफ तेलंगाना लिमिटेड और अन्य बनाम गोपाल अग्रवाल और अन्य, 2018 (12) एससीसी 644
5. दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड बनाम पैरामाउंट पॉलिमर्स (पी) लिमिटेड, 2006 (13) एससीसी 101

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल और माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित द्वारा दिया गया)

1. श्री अनुराग खन्ना वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप अरोड़ा और श्री वी. के शुक्ला द्वारा समीक्षा आवेदक के लिए उपस्थित अधिवक्ता, श्री बालेश्वर चतुर्वेदी प्रतिवादी संख्या-2 के

अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या-4 के अधिवक्ता श्री के.एम अस्थाना को सुना।

2. समीक्षा-आवेदक द्वारा 2023 की एक विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या-462 में सर्वोच्च न्यायालय से संपर्क करने के बाद इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.09.2022 को वापस लेने/समीक्षा करने की मांग करते हुए वर्तमान समीक्षा याचिका दायर की गई है, जिसका निर्णय और आदेश दिनांक 13.02.2023 द्वारा किया गया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत करने पर कि कुछ खंडों के संदर्भ में उच्च न्यायालय के निर्णय में कुछ त्रुटि की गई थी और उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय से अलग दृष्टिकोण लिया गया था, याचिकाकर्ता को समीक्षा दायर करने की स्वतंत्रता के साथ विशेष अनुमति याचिका वापस लेने की अनुमति दी गई थी।

3. समीक्षा आवेदन में उठाया गया मुद्दा हमारे द्वारा दिनांक 30.9.2022 को दिए गए निर्णय की शुद्धता के बारे में है, जिसमें उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता '2005 (इसके बाद कोड '2005 के रूप में संदर्भित) के खंड 4.3 के प्रावधानों पर विचार करते हुए, नीलामी क्रेता अर्थात् समीक्षा आवेदक से बिजली बकाया की वसूली की चुनौती को ठुकरा दिया गया है। मुख्य प्रश्न जो समीक्षा आवेदन के साथ-साथ रिट याचिका में भी विचार के लिए उठता है, वह यह है कि क्या प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में बिजली बकाया के प्रति देयता

याचिकाकर्ता/समीक्षा आवेदक से वसूल की जा सकती है, जो नीलामी खरीदार था।

4. हमने समीक्षा आवेदक की ओर से पेश होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ-साथ बिजली विभाग अर्थात् पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड और संबंधित बैंक के लिए उपस्थित वकीलों को भी सुना है।

5. संक्षेप में मामले के कुछ तथ्य विवाद की योग्यता की जांच करने के लिए ध्यान देने योग्य हैं। याचिकाकर्ता यहां एक संपत्ति का नीलामी खरीदार है जिसका संख्या-2 है। जी-599 से जी-623 मसूरी गुलावटी रोड औद्योगिक क्षेत्र, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में स्थित है। उक्त संपत्ति को नीलामी बिक्री के लिए रखा गया था और 14.05.2019 की ई-बिक्री उद्घोषणा को समीक्षा आवेदक द्वारा दायर समीक्षा आवेदन में पूरक हलफनामे के साथ जोड़ा गया है। संपत्ति की खरीद के बाद, जब याचिकाकर्ता ने प्रश्नगत परिसर में बिजली कनेक्शन के लिए आवेदन किया था, तो उसे पिछले उपभोक्ता अर्थात् मालिक के खिलाफ बिजली बकाया की बकाया राशि के बारे में सूचित किया गया था, जिसकी संपत्ति को ऋण वसूली न्यायाधिकरण, दिल्ली द्वारा नीलामी के लिए रखा गया था। बिजली बकाया की वसूली शुरू करने वाला वसूली प्रशस्ति पत्र यहां याचिकाकर्ता के नाम पर जारी किया गया था।

6. रिट याचिका में, आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि विचाराधीन संपत्ति के संबंध में बिजली शुल्क की बकाया राशि याचिकाकर्ता से वसूल नहीं की जा सकती

है, जो एक नीलामी खरीदार है, क्योंकि बिजली बकाया संपत्ति पर शुल्क का गठन नहीं करता है और परिसर के एक हस्तांतरिती को पिछले मालिक/कब्जेदार के बकाया के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

7. इस तर्क को हमने मूल निर्णय में संहिता '2005 के खंड 4.3(एफ)(i) के प्रावधानों को पढ़कर निपटाया था। यह माना गया कि विवाद से निपटने वाले एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के मददेनजर, सामान्य कानून सिद्धांत कि परिसर का एक हस्तांतरिती पिछले मालिक / रहने वाले के बकाया के लिए उत्तरदायी नहीं है, लागू नहीं होता है। यह भी नोट किया गया कि नीलामी बिक्री की शर्तों के अनुसार, नीलामी क्रेता संपत्ति पर बकाया/भार के बारे में सत्यापित करने के लिए बाध्य था और संकट बिक्री में संपत्ति खरीदते समय, उसने बिजली बकाया के प्रति देयता भी खरीदी है।

8. मूल निर्णय में हमारे द्वारा लौटाए गए इस निष्कर्ष को गलत बताते हुए, समीक्षा आवेदक की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि रिकॉर्ड पर प्रथम दृष्ट्या स्पष्ट त्रुटि हमारे द्वारा की गई है, जहां तक, खंड 4.3(एफ)(i) के प्रावधानों पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है। संहिता 2005 के खंड 4.3(एफ)(वी) पर बहुत जोर दिया गया है ताकि यह दावा किया जा सके कि उक्त खंड एक विशेष प्रावधान है जो एक वित्तीय संस्थान द्वारा आयोजित नीलामी बिक्री के लिए लागू होता है, जैसा कि प्रस्तुत मामले में है। उक्त प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, जब किसी वित्तीय संस्था ने परिसंपत्तियों पर लाइसेंसधारक

के प्रभार पर विचार किए बिना संपत्ति की नीलामी की है, तो दावा लाइसेंसधारक द्वारा संबंधित वित्तीय संस्था के पास कर्मठतापूर्वक अनुसरण करते हुए ही दायर किया जा सकता है न कि नीलामी क्रेता के पास। आगे यह तर्क दिया गया है कि क्लॉज 4.3(एफ)(आई) निजी बिक्री पर लागू होता है और बिक्री की तारीख तक बकाया बिजली का पता लगाने के लिए नीलामी खरीदार की किसी भी देयता पर विचार नहीं करता है।

9. इसके अलावा, उक्त प्रावधान केवल नया कनेक्शन प्राप्त करने के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए पूर्व शर्त के रूप में है और किसी भी तरह से लाइसेंसधारी को नीलामी क्रेता से बकाया देय राशि की वसूली करने का अधिकार नहीं देता है। यह तर्क दिया गया था कि धारा 4.3(एफ)(आई) संहिता '2005 के खंड 4.1 से संबंधित है, जो किसी भी परिसर के मालिक या रहने वाले को बिजली की आपूर्ति करने के लाइसेंसधारी के दायित्व से संबंधित है। संहिता 2005 के खंड 4.1(3)(4), खंड 4.1 के परंतुक को हमारे समक्ष यह प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत किया गया है कि उक्त प्रावधान केवल यह प्रावधान करता है कि किसी पुराने उपभोक्ता/परिसर के संबंध में बिजली बकाया के मामले में, जहां स्वामित्व बदल गया है, नए मालिक को नया कनेक्शन कोड, 2005 के खंड 4.3(एफ) में प्रदान किए गए 'नो-ड्यूज' प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के बाद ही जारी किया जाएगा। इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि खंड 4.3, जो "नया कनेक्शन/सामान्य" शीर्षक के तहत प्रदान किया गया है, को बिक्री के समय

बिजली बकाया का पता लगाने के लिए नीलामी क्रेता की देयता का दावा करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, बाद के क्रेता पर, जो नीलामी क्रेता था, पिछले मालिक के बिजली बकाया का भुगतान करने के लिए कोई दायित्व नहीं लगाया जा सकता है, जिसकी संपत्ति को नीलामी के लिए रखा गया था।

10. आगे यह तर्क दिया गया कि यदि लाइसेंसधारी नीलामी क्रेता से की जा रही वसूली को सही ठहराने के लिए खंड 4.3(एफ)(i) के प्रावधानों पर भरोसा करता है, तो उक्त प्रावधान विद्युत अधिनियम '2003(इसके बाद अधिनियम' 2003 के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के प्रतिकूल होगा, जिन पर ईशा मार्बल्स बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधिवत विचार किया गया था, माननीय उच्चतम न्यायालय ने 1995(2) एस.सी.सी. 648 में रिट याचिका (सिविल) संख्या-1995 (2) एस.सी.सी. 648 में रिट याचिका दायर की थी जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि नीलामी क्रेता जो तृतीय पक्षकार है और किसी भी तरह से पिछले मालिक/अधिभोगी से संबंधित नहीं है, विद्युत देय के पिछले संविदाकारी पक्ष की देयता क्रेता पर नहीं थोपी जा सकती है। उसमें यह व्यवस्था दी गई थी कि यद्यपि क्रेता ने नए कनेक्शन के रूप में विद्युत कनेक्शन की मांग की थी परंतु इसे नया कनेक्शन नहीं माना जा सकता बल्कि यह केवल पुन कनेक्शन है क्योंकि परिसर को पहले ही विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति की जा चुकी है। उपभोक्ता की चूक के

कारण ऐसी आपूर्ति काट दी गई थी, उस उपभोक्ता ने बकाया राशि का भुगतान करने के लिए स्वयं को बोर्ड से बाध्य कर लिया था क्योंकि वह अधिनियम और नियमों में यथा निर्धारित शर्तों से भी सहमत था, जिसमें बकाया राशि का भुगतान भी शामिल था। यह माना गया था कि चूंकि नीलामी क्रेता को अधिनियम '2003 की धारा 2 के अर्थ के भीतर "उपभोक्ता" नहीं कहा जा सकता है, और बिजली की आपूर्ति से कभी भी लाभान्वित नहीं हुआ था जो बकाया राशि का भुगतान न करने के लिए काट दिया गया था, और नीलामी क्रेता, डिस्कनेक्शन के बाद संपत्ति खरीद चुका है, वह अधिनियम 2003 के प्रावधानों के अर्थ के भीतर "उपभोक्ता या अधिभोगी" नहीं हो सकता है जब तक कि एक नया अनुबंध दर्ज नहीं किया जाता है। यह माना गया कि बिजली बकाया संपत्ति पर कोई शुल्क नहीं है और जब परिसर नीलामी क्रेता के स्वामित्व या कब्जे में आ गया है, जब ऐसा खरीदार बिजली ऊर्जा की आपूर्ति चाहता है, तो उसे आपूर्ति के लिए पूर्ववर्ती शर्त के रूप में पिछले बकाया को चुकाने के लिए नहीं कहा जा सकता है। जो मायने रखता है वह यह है कि पूर्ववर्ती उपभोक्ता द्वारा बोर्ड के साथ अनुबंध किया गया है। बोर्ड तीसरे पक्ष के खिलाफ संविदात्मक दायित्व के प्रवर्तन की मांग नहीं कर सकता है। उसमें यह माना गया था कि ऐसी परिस्थितियों में बिक्री की सदाशयता प्रासंगिक नहीं हो सकती है।

11. पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम बनाम डीवीएस स्टील्स एंड अलॉयज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य 2009(1) एस.सी.सी. 210 में

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है कि इसके पैरा-11 को पढ़ा जाए जिसमें यह नोट किया गया था कि एक उपभोक्ता को वितरक द्वारा बिजली की आपूर्ति 'माल की बिक्री' है। आपूर्तिकर्ता के रूप में वितरक और परिसर का स्वामी/अधिभोगी, जिसके साथ वह विद्युत आपूर्ति के लिए संविदा करता है, संविदा के पक्षकार होते हैं। परिसर के अंतर्निहित या परिसर के बाद के रहने वाले, जिसके साथ आपूर्तिकर्ता के पास अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं है, को स्पष्ट रूप से शीर्षक या कब्जे में अपने पूर्ववर्ती के बकाया का भुगतान करने के लिए नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि बिजली की आपूर्ति के लिए देय राशि परिसर पर 'चार्ज' नहीं है। किसी परिसर के क्रेता को किसी भी पिछले रहने वाले के बिजली के बकाया के साथ थोपा नहीं जा सकता है, केवल इसलिए कि वह परिसर का प्रस्तुत मालिक होता है। इसके विपरीत कोई संविदा न होने की स्थिति में परिसर के विक्रेता की बकाया विद्युत देय राशि के लिए परिसर के क्रेता के विरुद्ध वसूली की कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

12. अंत में, यह तर्क दिया गया कि लाइसेंसधारी खंड 4.3(एफ)(वी) के प्रावधानों के अनुसार वित्तीय संस्थान के साथ कोई दावा दायर करने में विफल रहा है, याचिकाकर्ता से वसूली नहीं कर सकता है, क्योंकि अधिनियम 2003 पिछले मालिक के बिजली बकाया के लिए नीलामी खरीदार पर देयता के स्थानांतरण की परिकल्पना नहीं करता है। यह भी तर्क दिया गया कि 14.5.2019 की बिक्री उद्घोषणा में, वसूली अधिकारी ने कहा है कि उसे कोई

ऋण ज्ञात नहीं है। याचिकाकर्ता प्रामाणिक नीलामी क्रेता होने के नाते, इस संबंध में किसी भी वैधानिक प्रावधान के अभाव में बिजली निगम की बकाया राशि उससे वसूल नहीं की जा सकती है।

13. 2018 की विविध बेंच संख्या-971 दिनांक 16.01.2018 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया गया है कि समान तथ्यों और परिस्थितियों में, संहिता, 2005 के खंड 4.3(एफ)(v) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया था कि बैंक/वित्तीय संस्थान, जिन्होंने संपत्ति की नीलामी की थी, बकाया बिजली बकाया के बारे में बिजली विभाग से कोई पूछताछ किए बिना, नीलामी बिक्री से प्राप्त अधिशेष राशि में से उक्त बकाया राशि का भुगतान करने के लिए देयता के तहत था। इसलिए बैंक को निर्देश जारी किया गया था कि वह बिजली बिल प्राप्त होने और उधारकर्ता के साथ-साथ बिजली विभाग को नोटिस और सुनवाई के बाद मामले पर फैसला करे।

14. प्रतिवादी विभाग की ओर से उपस्थित श्री बालेश्वर चतुर्वेदी ने इस न्यायालय के दिनांक 10.11.2021 के एक अन्य डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि संहिता '2005 के खंड 4.3(i), (iii) और (v) को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया था कि प्रश्न में आधार के संबंध में बकाया बिजली बकाया को देखते हुए, नए कनेक्शन देने से इंकार करने के विद्युत विभाग के निर्णय में कोई दोष नहीं पाया गया क्योंकि संहिता, 2005 के उपर्युक्त प्रावधानों में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि

प्रश्नाधीन परिसर के संबंध में बकाया देय राशि होने की स्थिति में विद्युत कनेक्शन नहीं दिया जाएगा।

15. तेलंगाना स्टेट सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम श्रीगंधा बेवरेजेज 2020 (6) एस.सी.सी. 404 में सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय हमारे सामने रखा गया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि सर्वोच्च न्यायालय ने ईशा मार्बल्स (उपरोक्त) में इसके द्वारा निर्धारित कानून को प्रतिष्ठित किया है, नीलामी नोटिस की सामग्री को ध्यान में रखते हुए, समान तथ्यों और परिस्थितियों में, जैसा कि प्रस्तुत मामले में है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया प्रश्न यह था कि क्या अंतिम मालिक के पिछले बिजली बकाया के प्रति देयता उस इकाई के नीलामी खरीदार पर विचार की जा सकती है जिसे सरफेसी अधिनियम '2002 के तहत नीलामी के लिए रखा गया था। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यहां दिए गए निर्णय को तेलंगाना राज्य सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में प्रतिष्ठित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि विभिन्न मामलों के तथ्यों में कुछ अंतर हो सकते हैं, लेकिन एक स्पष्ट न्यायिक सोच है जो सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों से उभरती है कि बिजली बकाया, जो अधिनियम 2003 के अंतर्गत सांविधिक स्वरूप के हैं और आपूर्ति के निबंधन एवं शर्तों के अनुसार, अधिनियम, 2003 की धारा 56 को ध्यान में रखते हुए माफ नहीं किए जा सकते हैं और विशुद्ध संविदात्मक प्रकृति के बकायों के स्वरूप को भाग नहीं ले सकते हैं। इसके अलावा, उक्त

मामले में, ई-नीलामी नोटिस इस आशय का स्पष्ट था कि बिजली बकाया का भुगतान करने की देयता क्रेता पर मौजूद थी। यह माना गया था कि नए कनेक्शन या पुनः कनेक्शन का प्रश्न उस मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों में प्रासंगिक नहीं होगा। बिजली विभाग को प्रतिवादी क्रेता से अंतिम मालिक की बकाया राशि की मांग करने का अधिकार होगा।

16. पक्षों के वकीलों के प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों से निपटने, हम पहले नीलामी नोटिस के माध्यम से जा सकते हैं, अर्थात्. बिक्री उद्घोषणा. प्रस्तुत मामले में, नीलामी नोटिस/बिक्री उद्घोषणा दिनांक 14.05.2019 में विशिष्ट विवाद उसके खंड 4 में पाया जा सकता है, जिसमें लिखा है कि: -

"4. संपत्ति "जैसा है जहां है" के आधार पर बेचा जा रहा है।

17. विक्रय उद्घोषणा के साथ संलग्न संपत्ति की अनुसूची में बेची जाने वाली संपत्ति का विवरण निम्नलिखित रीति से दिया गया है:-

बेची जाने वाली संपत्ति का विवरण	संपत्ति या उसके किसी भी हिस्से पर मूल्यांकन किया गया राजस्व	किसी भी भार का विवरण जिसके लिए संपत्ति उत्तरदायी है	दावे, यदि कोई हो, जो संपत्ति के सामने रखे गए हैं, और इसकी प्रकृति और मूल्य पर असर डालने

			वाले किसी भी अन्य ज्ञात विवरण
प्रॉपर्टी नंबर G-599 से G-623, मसूरी गुलावटी रोड, इंडस्ट्रियल एरिया, यूपी है	ज्ञात नहीं है	ज्ञात नहीं है	ज्ञात नहीं है

18. प्रस्तुत मामले में विचाराधीन संपत्ति को डीआरटी, दिल्ली द्वारा की गई कार्यवाही में नीलामी के लिए रखा गया था और बिक्री उद्घोषणा वसूली अधिकारी-I, DRT-II, दिल्ली द्वारा जारी की गई थी। अधिशासी अभियंता, पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, विद्युत वितरण खंड, पिलखुआ, गाजियाबाद द्वारा भेजे गए दिनांक 23.10.2015 के पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि पिछले मालिक के बकाया बिजली बकाये के संबंध में 1,76,00,528.00 रुपये की सूचना वसूली अधिकारी को विधिवत संप्रेषित की गई थी। इसमें यह कहा गया था कि वसूली प्रमाण पत्र विधिवत जिला मजिस्ट्रेट, हापुड़ के कार्यालय को भेजे गए थे, लेकिन भुगतान प्राप्त नहीं हुआ था और विचाराधीन परिसर को सील कर दिया गया था और नीलामी बिक्री चल रही थी।

18. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि नीलामी बिक्री के माध्यम से प्राप्त बिक्री प्रतिफल में पिछले उपभोक्ता के कारण 1,76,00,528.00 रुपये की बिजली बकाया राशि शामिल नहीं

थी। 2018 की विविध बेंच संख्या-971 में डिवीजन बेंच के दिनांक 16.1.2018 के निर्णय पर भरोसा किया गया कि बैंक को बिल की जांच करने और विभाग/प्रतिवादी संख्या-2 को बिजली बकाया का भुगतान करने का निर्देश दिया जाएगा, इसलिए गलत है।

20. जहां तक विद्युत संहिता, 2005 के खंड 4.3(एफ) के प्रावधानों की प्रयोज्यता के बारे में याचिकाकर्ता/समीक्षा आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता के प्रस्तुतिकरण का संबंध है, अधिनियम '2003 के प्रावधानों और ईशा मार्बल्स (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, हमें सबसे पहले संहिता 2005 के खंड 4.1 और 4.3 के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसे विद्युत अधिनियम, 2003 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए तैयार किया गया है।

21. संहिता, 2005 राज्य के सम्मानित लाइसेंस क्षेत्र में सभी वितरण लाइसेंसियों पर लागू होती है। संहिता लाइसेंसधारक और उपभोक्ताओं के एक-दूसरे के दायित्वों को सूचीबद्ध करती है और उपभोक्ताओं को कुशल, लागत प्रभावी और उपभोक्ता अनुकूल सेवा प्रदान करने के लिए प्रथाओं के सेट को निर्दिष्ट करती है। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित बातें शामिल हैं -

"(ए) नए कनेक्शन के लिए और लोड में वृद्धि या कमी के लिए प्रक्रिया।

(ख) विद्युत प्रभारों की वसूली और विद्युत प्रभारों की बिलिंग के लिए अंतराल।

(ग) बिजली का कनेक्शन काटना, पुन जोड़ना और आपूर्ति बहाल करना।

(d) विद्युत संयंत्र, विद्युत लाइनों या मीटर के लिए छेड़छाड़, संकट या क्षति।

(ड) वितरण लाइसेंसी अथवा उसकी ओर से कार्य करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा कनेक्शन काटने के लिए प्रवेश करना

मीटर की आपूर्ति और हटाने और/या विद्युत लाइन या विद्युत संयंत्र या मीटर को बदलने, बदलने या बनाए रखने के लिए।

(च) बिलों के भुगतान, उपभोक्ता मीटरिंग और ऊर्जा के मूल्यांकन से संबंधित पद्धतियां।

(छ) लाइसेंसधारक के लिए निष्पादन के मानक; और

(ज) उपभोक्ता शिकायतों के निवारण के लिए प्रक्रिया।

22. खंड 4.1 अपने आपूर्ति क्षेत्र में स्थित किसी भी परिसर के मालिक या अधिभोगी द्वारा आवेदन पर बिजली की आपूर्ति करने के लिए लाइसेंसी के दायित्व को निर्धारित करता है। लाइसेंसी का दायित्व है कि वह पूर्ण आवेदन प्राप्त होने के बाद एक माह के भीतर ऐसे परिसरों को विद्युत की आपूर्ति करे। तथापि, खंड 4.1 में यह प्रावधान है कि :-

"4.1 आपूर्ति के लिए लाइसेंसधारी का दायित्व
लाइसेंसधारक, अपने आपूर्ति क्षेत्र में स्थित किसी परिसर के स्वामी अथवा अधिभोगी द्वारा आवेदन किए जाने पर, पूर्ण आवेदन और भुगतान की प्राप्ति के बाद एक माह के भीतर ऐसे परिसर को विद्युत की आपूर्ति करेगा।

बशर्ते जहां ऐसी आपूर्ति के लिए वितरण मुख्य के विस्तार या नए सब-स्टेशनों के चालू होने की आवश्यकता होती है, वितरण लाइसेंसी ऐसे परिसर को ऐसे विस्तार या कमीशनिंग के तुरंत बाद या ऐसी अवधि के भीतर बिजली की आपूर्ति करेगा जैसा कि आयोग द्वारा खंड 4.8 में निर्दिष्ट किया गया है:

बशर्ते कि किसी गांव या बस्ती या क्षेत्र से आपूर्ति के लिए आवेदन के मामले में भी, जहां बिजली की आपूर्ति के लिए कोई प्रावधान मौजूद नहीं है, आयोग मामला-दर-मामला आधार पर उचित रूप से आपूर्ति के प्रावधान के लिए समय अवधि का विस्तार करेगा:

बशर्ते कि किसी पुराने उपभोक्ता/परिसर के संबंध में बिजली देय के बकाया के मामले में, जहां स्वामित्व बदल गया है;

[और बशर्ते कि यदि किसी परिसर में बिजली बकाया है, तो उसी परिसर में नए आवेदक/या पुराने उपभोक्ता को नया कनेक्शन जारी नहीं किया जाएगा। कनेक्शन भी जारी नहीं किया जाएगा यदि],

(i) आवेदक (एक व्यक्ति होने के नाते) चूककर्ता उपभोक्ता का सहयोगी या रिश्तेदार (कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 2 और 6 में क्रमशः परिभाषित) है,

(ii) अथवा जहां आवेदक एक कंपनी या निगमित निकाय या संगम या व्यष्टियों का निकाय, चाहे निगमित हो या नहीं, या कृत्रिम न्यायिक व्यक्ति हो, को नियंत्रित किया जाता

है या चूककर्ता उपभोक्ता में उसका नियंत्रण हित है, परंतु लाइसेंसधारक इस आधार पर बिजली के कनेक्शन देने से इंकार नहीं करेगा जब तक कि आवेदक को अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है और लाइसेंसधारक द्वारा यथा पदनामित अधिकारी द्वारा युक्तियुक्त आदेश पारित नहीं किया जाता है।

23. खंड 4.3, जो खंड 4.3(च)(i), (ii), (iii), (iv) और (v) में बिजली की आपूर्ति के लिए नए कनेक्शन के लिए प्रक्रिया प्रदान करने वाला सामान्य प्रावधान है, निम्नानुसार पढ़ता है: -

"(एफ)(आई)। यह विक्रेता और क्रेता का कर्तव्य होगा कि वे बिक्री की तारीख तक बकाया बिजली बकाया का पता लगाएं, और आगे विक्रेता और क्रेता दोनों बकाया बिजली बकाया का भुगतान करने/नो ड्यूज सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए संयुक्त रूप से या तो/या अलग-अलग उत्तरदायी होंगे।

(ii) किसी परिसर की बिक्री किए जाने से पहले, बकाया देय राशि का भुगतान किया जाएगा और विकल्प के रूप में करार/बिक्री विलेख में विशेष रूप से बकाया देय राशि और उसके भुगतान की विधि का उल्लेख होगा। "बकाया बकाया" का अर्थ है देर से भुगतान अधिभार सहित परिसर में लंबित सभी बकाया।

(iii) यदि पुराने मालिक द्वारा 'नो-ड्यूज' प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं किया जाता है तो नया मालिक संपत्ति खरीदने से पहले उक्त परिसर

में कनेक्शन का संदर्भ देकर 'नो-ड्यूज' प्रमाणपत्र के लिए लाइसेंसधारक से संपर्क कर सकता है। लाइसेंसधारक या तो परिसर में लंबित देयताओं, यदि कोई हो, को सूचित करेगा या आवेदन की तारीख से 30 कार्य दिवसों के भीतर अदेयता प्रमाणपत्र जारी करेगा।

(iv) बकाया देय राशि कंपनी की आस्तियों पर पहला प्रभार होगा और लाइसेंसधारक यह सुनिश्चित करेगा कि यह नए आवेदक के साथ करार किया गया है।

(v) चूककर्ता उपभोक्ता के विरुद्ध वसूली कार्यवाहियां और जहां चूककर्ता उपभोक्ता कंपनी है, कंपनी के निदेशकों से की जाएगी। जहां किसी वित्तीय संस्थान ने परिसंपत्तियों पर लाइसेंसधारियों के प्रभार पर विचार किए बिना संपत्ति की नीलामी की है, तो दावे संबंधित वित्तीय संस्थान के पास मेहनती अनुसरण के साथ दर्ज किए जा सकते हैं।

24. संहिता के खंड 6.15 में प्रावधान है कि:-
"6.15 बकाया की वसूली:

(क) लाइसेंसधारक को देय भुगतानों की वसूली अधिनियम की धारा 56 के प्रावधानों के अनुसार की जाएगी और उत्तर प्रदेश सरकार के प्रावधानों के अनुसार भू-राजस्व की बकाया राशि की वसूली की जाएगी। सरकार ने समय-समय पर यथा संशोधित शासकीय विद्युत उपक्रम (बकाया वसूली) अधिनियम, 1958 को संशोधित किया है।

(ख) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किसी उपभोक्ता से देय कोई राशि उस तारीख से दो वर्ष की अवधि के पश्चात् वसूल करने योग्य नहीं होगी जब तक कि ऐसी राशि आपूर्ति की गई विद्युत के प्रभारों के बकाया के रूप में निरंतर वसूली योग्य न दर्शाई गई हो और इस कारण से लाइसेंसी द्वारा विद्युत की आपूर्ति काटी न जाए।

[(स्पष्टीकरण: जिस तारीख से इस तरह के आरोप 'पहले देय' हो जाते हैं, उसकी सही व्याख्या करने की आवश्यकता है। यदि उपभोक्ता के संस्थापन के नियमित मीटर रीडिंग/निरीक्षण के परिणामस्वरूप इस संहिता अथवा टैरिफ अनुसूची के अनुसार लगाए गए ऐसे प्रभार, ऐसे बिल के भुगतान की नियत तारीख से प्रथम देय गणना बन जाएंगे और ऐसे बिल उपभोक्ता को उस श्रेणी के उपभोक्ता के लिए दो बिलिंग चक्र के भीतर प्रदान किए जाएंगे।

25. विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 56 में विद्युत प्रभार का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी किसी व्यक्ति की ओर से चूक के मामले में विद्युत प्रभार की वसूली का प्रावधान है। उत्तर प्रदेश सरकार विद्युत उपक्रम (बकाया वसूली) अधिनियम, 1958 में किसी अन्य कानून या लिखत या समझौते में निहित किसी बात के बावजूद बिजली बकाया की वसूली का प्रावधान है। अधिनियम '1958 की धारा 5 को यहां नोट किया जाए:

"5. बकाया राशि की वसूली। यदि देय राशियां, जिनके लिए मांग की सूचना तामील की गई है, सेवा की तारीख से तीस दिनों के भीतर या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर विहित प्राधिकारी के पास जमा नहीं की जाती है जिसकी विहित प्राधिकारी अनुमति दे, तो किसी अन्य कानून या लिखत या समझौते में निहित कुछ भी इसके विपरीत, वसूली की लागत के साथ, जैसा कि निर्धारित किया जाए, भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा।

26. विद्युत बकाया की वसूली के लिए अधिनियम, 2003 की धारा 56 और अधिनियम, 1958 की धारा 5 तथा संहिता, 2005 के खंड 6.15 के संयुक्त पठन से संकेत मिलता है कि सांविधिक विद्युत प्रभार, भुगतान करने के लिए उत्तरदायी किसी व्यक्ति की ओर से चूक के मामले में, भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किए जा सकते हैं। प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता/समीक्षा आवेदक नीलामी क्रेता होने के नाते, नीलामी की गई संपत्ति के बाद के हस्तांतरणकर्ता को तत्कालीन मालिक के बिजली बकाया के भुगतान के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

27. इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता/समीक्षा आवेदक उधारकर्ता/पूर्ववर्ती मालिक के खिलाफ उसके समक्ष की गई कार्यवाही में प्रतिवादी बैंक के बकाये का निर्धारण करने के बाद ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा अवधारित नीलामी बिक्री

में संपत्ति का खरीदार है। ई-नीलामी नोटिस खंड 4 में बिक्री की शर्त निम्नानुसार प्रदान करता है: -

"4. संपत्ति "जैसा है जहां है" के आधार पर बेचा जा रहा है।

28. बेची जाने वाली संपत्ति का विवरण देने वाली संपत्ति की अनुसूची पहले ही ऊपर निकाली जा चुकी है। ई-नीलामी नोटिस के पैरा-4 को पढ़ने और उक्त नोटिस के साथ संलग्न अनुसूची में संपत्ति के विवरण से, यह स्पष्ट है कि संपत्ति को "जैसा है जहां है" आधार पर बिक्री के लिए रखा गया था। वसूली अधिकारी द्वारा नीलामी नोटिस में यह स्पष्ट किया गया था कि दावे, यदि कोई हो, जो संपत्ति के सामने रखे गए हैं, और इसकी प्रकृति और मूल्य पर असर डालने वाले किसी अन्य ज्ञात विवरण के बारे में उसे जानकारी नहीं थी। संपत्ति जिस भी ऋणभार के लिए उत्तरदायी है, उसका विवरण भी ज्ञात नहीं था। संपत्ति या उसके किसी हिस्से पर मूल्यांकन किए गए राजस्व की वसूली अधिकारी को जानकारी नहीं थी। नीलामी नोटिस को पढ़ने पर, जिन नियमों और शर्तों पर संपत्ति को नीलामी के लिए रखा गया था, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि नीलामी बिक्री करने वाले रिकवरी अधिकारी ने दावों, यदि कोई हो, प्रकृति और उसके मूल्य, संपत्ति के लिए भार, संपत्ति पर मूल्यांकन किए गए राजस्व के प्रति देनदारियों से खुद को मुक्त कर लिया। इस प्रकार, नीलामी बिक्री "जैसा है जहां है" के आधार पर संपत्ति की बिक्री की गई थी। मतलब, जिससे नीलामी खरीदार को संपत्ति से संबंधित दावों,

शुल्कों या भार, यदि कोई हो, के बारे में आवश्यक पूछताछ करने की आवश्यकता थी।

29. खंड 4.3(एफ)(i) जो बिजली की आपूर्ति, नए कनेक्शन से संबंधित प्रावधान से संबंधित है, आगे बिक्री की तारीख तक बकाया बिजली बकाया का पता लगाने के लिए संपत्ति के खरीदार पर एक दायित्व डालता है और कहता है कि संपत्ति के हस्तांतरण के मामले में, बकाया बिजली बकाया का भुगतान करने के लिए क्रेता की सह-व्यापक देयता होगी ताकि 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट प्राप्त किया जा सके। धारा 4.3(एफ)(iii) में आगे कहा गया है कि यदि पुराना मालिक 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट प्राप्त नहीं करता है, तो संपत्ति खरीदने से पहले नया मालिक उक्त परिसर में कनेक्शन का संदर्भ देकर 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट के लिए लाइसेंसधारी से संपर्क कर सकता है। इसके बाद लाइसेंसधारक परिसर में लंबित बकायों, यदि कोई हो, की सूचना देगा या क्रेता को अदेयता प्रमाणपत्र जारी करेगा। खंड 4.3(एफ)(iv) और (v) कंपनी के खिलाफ बिजली के बकाया से संबंधित है यानी जहां चूक करने वाला उपभोक्ता एक कंपनी है। इस प्रावधान में कहा गया है कि बकाया राशि कंपनी की संपत्ति पर पहला शुल्क होगा और यदि चूक करने वाला उपभोक्ता एक कंपनी है, तो कंपनी के निदेशकों से वसूली की कार्यवाही सुनिश्चित की जाएगी। इसमें यह भी प्रावधान है कि जहां किसी वित्तीय संस्था ने लाइसेंसधारियों द्वारा परिसंपत्तियों पर प्रभारित प्रभार पर विचार किए बिना संपत्ति की नीलामी की है तो संबंधित वित्तीय संस्था के पास पूरी तत्परता से दावे दर्ज कराए जाएं। इस प्रकार,

खंड 4.3(एफ)(वी), केवल यह प्रदान करता है कि किसी कंपनी की संपत्ति की नीलामी के मामले में, लाइसेंसधारी कंपनी की संपत्ति से बिजली शुल्क का भुगतान करने के लिए वित्तीय संस्थान के पास अपना दावा रख सकता है, और उस उद्देश्य के लिए, लाइसेंसधारी संबंधित वित्तीय संस्थान के साथ अपना दावा दर्ज कर सकता है। हालांकि, जैसा कि याचिकाकर्ता/आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, उक्त प्रावधानों का अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि बिजली बकाया के प्रति देयता के निर्वहन का दावा केवल लाइसेंसधारी द्वारा उस वित्तीय संस्थान के समक्ष रखा जा सकता है जिसने संपत्ति की नीलामी की है और नीलामी खरीदार से कोई वसूली नहीं की जा सकती है।

30. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि खंड 4.3(एफ)(i) बिक्री की तारीख तक बकाया बिजली बकाया का पता लगाने के लिए एक संपत्ति के खरीदार पर एक कर्तव्य डालता है। रिट याचिकाकर्ता/समीक्षा आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क यह है कि यह प्रावधान केवल निजी बिक्री के मामले में लागू होता है और नीलामी खरीदार को पूर्ववर्ती मालिक के बिजली बकाया का भुगतान करने और इस प्रावधान को लागू करके 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

31. हम नोट कर सकते हैं कि खंड 4.3 में निहित प्रावधान एक नए उपभोक्ता को बिजली की आपूर्ति से संबंधित सामान्य प्रावधान हैं। संपत्ति के हस्तांतरण के मामले में, बिजली

बकाया को साफ करने के लिए क्रेता के साथ-साथ विक्रेता पर भी शुल्क लगाया जाता है। क्रेता का दायित्व बकाया विद्युत बकायों का भुगतान करने/बकाया न होने का प्रमाणपत्र प्राप्त करने, नया कनेक्शन प्राप्त करने के लिए सह-व्यापक माना गया है। क्लॉज 4.3(एफ)(iii) ने संपत्ति के खरीदार पर संपत्ति की खरीद से पहले नो इयूज सर्टिफिकेट प्राप्त करने का दायित्व डाला, परिसर में कनेक्शन का संदर्भ देकर, जिसमें बिजली कनेक्शन था। क्लॉज 4.3(एफ)(आई), (ii), (iii) के संयुक्त पठन से, यह स्पष्ट है कि यह क्रेता का कर्तव्य है कि वह बिजली के बकाया के मामले में जांच करे, एक परिसर के संबंध में, जिसमें बिजली की आपूर्ति पूर्ववर्ती मालिक को की गई है।

32. इन वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जब हम ऊपर निकाले गए नीलामी बिक्री नोटिस की सामग्री को पढ़ते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि नीलामी क्रेता सरफेसी अधिनियम 2002 के तहत कार्यवाही में नीलामी के लिए रखी गई संपत्ति के संबंध में बकाया बिजली बकाया की पूछताछ करने के लिए बाध्य था।

33. खंड 4.3(एफ)(v) पढ़कर इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क के संबंध में कि वितीय संस्थान द्वारा संपत्ति की नीलामी के मामले में बिजली बकाया के प्रति दावा केवल इसके समक्ष रखा जा सकता है, और नीलामी खरीदार से कोई वसूली नहीं की जा सकती है, यह नोट करना पर्याप्त है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 26-ई अधिनियम 2002 की

धारा 13 से 15 के अनुसार प्रतिभूति हित के प्रवर्तन द्वारा ऋणों की वसूली के लिए उक्त अधिनियम के तहत शुरू की गई कार्यवाहियों में सुरक्षित लेनदार को देय ऋणों को दायर की देती है। यह नीलामी क्रेता/याचिकाकर्ताओं का मामला नहीं है कि सुरक्षित परिसंपत्तियों की नीलामी में उसके द्वारा भुगतान किया गया बिक्री प्रतिफल सुरक्षित लेनदार/बैंक को देय ऋण से परे था, और लाइसेंसधारी के बकाया बिजली बकाया का भुगतान करने के लिए अपने स्वयं के बकायों के निपटान के बाद बैंक के पास कुछ धन छोड़ दिया गया है।

34. तेलंगाना राज्य सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने सरफेसी अधिनियम 2002 के तहत अवधारित नीलामी बिक्री में इसी तरह के विवाद की जांच की है, जिसमें नीलामी खरीदार ने दलील दी थी कि पूर्ववर्ती मालिक के पिछले बिजली बकाया की वसूली नहीं की जा सकती है। बकाया बिजली बकाया के प्रति मांगों को रद्द करने की मांग करने वाले उच्च न्यायालय के समक्ष नीलामी क्रेता द्वारा दायर रिट याचिकाओं को उनके पक्ष में इस तर्क पर तय किया गया था कि बाद के खरीदार के रूप में, नीलामी खरीदार पूर्व मालिक के बकाया के लिए जिम्मेदार नहीं था, ईशा मार्बल्स (उपरोक्त) और तेलंगाना लिमिटेड की सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी और अन्य बनाम गोपाल अग्रवाल और अन्य 2018 (12) एस.सी.सी. 644 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए।

35. उक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने ई-नीलामी नोटिस का अध्ययन करने के बाद आंध्र प्रदेश में वितरण और खुदरा आपूर्ति लाइसेंसधारियों की आपूर्ति के सामान्य नियमों और शर्तों के खंड 5.9.6 और 8.4 पर ध्यान दिया है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में निकाले गए उपरोक्त खंड उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता 2005 के खंड 4.3(एफ), (i), (ii), (iii) के समरूप हैं। एपी में वितरण और खुदरा आपूर्ति लाइसेंसधारियों की आपूर्ति के सामान्य नियमों और शर्तों के खंड 8.4, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने उल्लेख किया है, ने प्रदान किया है कि यदि संपत्ति के विक्रेता ने बकाया राशि का भुगतान नहीं किया है, तो कंपनी पहले से मौजूद कनेक्शन के माध्यम से परिसर को बिजली की आपूर्ति करने से इनकार कर सकती है या बिजली के सभी बकाया भुगतान होने तक परिसर को एक नया कनेक्शन देने से इनकार कर सकती है।

36. तेलंगाना स्टेट सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि बिजली अधिनियम '2003 के प्रावधानों को पढ़ने से, सामान्य नियमों और आपूर्ति की शर्तों के साथ पढ़ा जाता है, बिजली बकाया वैधानिक देयों के चरित्र का हिस्सा है। उसमें नीलामी बिक्री नोटिस की भाषा पढ़ने से, जिसमें संपत्ति "जैसा है जहां है, क्या है और बिना किसी सहारा के आधार पर" बेची गई थी, यह माना गया था कि उक्त खंड में कोई संदेह नहीं है कि बिजली बकाया का भुगतान करने का दायित्व नीलामी क्रेता पर मौजूद है।

37. ईशा मार्बल्स (उपरोक्त) के मामले में निर्णय इस अवलोकन के साथ प्रतिष्ठित था कि उक्त मामले में बिक्री राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 29(1) के अनुसरण में थी, लेकिन महत्वपूर्ण पहलू यह था कि विशेष रूप से बिजली बकाया या ऐसे अन्य बकायों के मुद्दे से निपटने वाला कोई खंड नहीं था, जैसा कि इस मामले में तेलंगाना स्टेट सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष नीलामी नोटिस में है। ईशा मार्बल्स (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क कि बाद का खरीदार अधिनियम '2003 की धारा 2(सी) के अर्थ के भीतर 'उपभोक्ता' नहीं है, और बाद के खरीदार द्वारा बिजली की खपत के अभाव में, जो उपभोग शुल्क के लिए कोई वैधानिक बकाया होने के बिना केवल पुनः कनेक्शन मांग रहा था, तेलंगाना स्टेट सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में यह नोट करने के लिए विचार किया गया है कि ई-नीलामी नोटिस में, एक विशिष्ट खंड था जिसने अधिकृत अधिकारी को बिजली बकाया सहित विभिन्न बकायों से मुक्त कर दिया था। ई-नीलामी नोटिस में उक्त खंड के आलोक में, बाद के क्रेता/नीलामी क्रेता को बिजली बकाया का भुगतान करने के अपने दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता है।

38. तेलंगाना स्टेट सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने हैदराबाद वनस्पति लिमिटेड बनाम एपी राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य 1998(4) एस.एस.सी. 470 में सर्वोच्च

न्यायालय के पिछले फैसले को नोट किया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने उसमें माना था कि आपूर्ति के नियमों और शर्तों के तहत बिजली बकाया वैधानिक बकाया राशि के चरित्र का हिस्सा है। व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के साथ किए गए समझौते केवल उपभोक्ता के ध्यान में आपूर्ति के नियमों और शर्तों को लाने के उद्देश्य से काम करते हैं, लेकिन शर्तों को पूरी तरह से संविदात्मक नहीं बनाते हैं। सांविधिक कर्तव्य के निष्पादन में बोर्ड सांविधिक शक्ति के प्रयोग में बनाए गए कतिपय विशिष्ट निबंधन एवं शर्तों पर ऊर्जा की आपूर्ति करता है। निस्संदेह, नियम और शर्तें प्रकृति में वैधानिक हैं और उन्हें पूरी तरह से संविदात्मक नहीं कहा जा सकता है।

39. तेलंगाना राज्य सॉर्थर्न पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड बनाम पैरामाउंट पॉलिमर्स (पी) लिमिटेड 2006 (13) एस.सी.सी. 101 में पैराग्राफ 10 में अवलोकन करने के अपने पहले के फैसले को भी नोट किया है, जो निम्नानुसार है: -

"10. हम दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड में इस न्यायालय की टिप्पणियों से ताकत प्राप्त कर सकते हैं। (v) पैरामाउंट पॉलिमर्स (प्रा) लि, जहां विद्युत बकायों से संबंधित एक विशिष्ट खंड की प्रस्तुत मामले की तरह समानता थी। यह पाया गया कि ऐसे परिदृश्य में यदि कोई अंतरिती सेवा कनेक्शन का लाभ उठाना चाहता है, तो वह 4 (1998)4 एस.सी.सी.

470 5 (2006)13 एस.सी.सी. 101 (2 न्यायाधीश पीठ) बिजली के आपूर्तिकर्ता को बकाया देय, यदि कोई हो, का भुगतान करेगा और किसी भी परिसर को पुनः कनेक्शन या नया कनेक्शन नहीं दिया जाएगा जहां आपूर्तिकर्ता को देय राशि के कारण बकाया है जब तक कि उन्हें अग्रिम रूप से घोषित नहीं किया जाता है।

40. इस प्रकार, यह अवधारित किया गया था कि एक बार एक नीलामी खरीदार "जैसा है जहां है, जो कुछ भी है और बिना सहारा के आधार पर" एक संपत्ति में बोली लगा रहा था, यह उसका कर्तव्य था कि उसने परिसर का निरीक्षण किया और सभी मामलों में बकाया राशि के बारे में पूछताछ की। नीलामी नोटिस प्रकृति में स्पष्ट होने के कारण, बिजली बकाया सहित विभिन्न खातों के बकाया का विशिष्ट उल्लेख करते हुए, नीलामी खरीदार को इस संबंध में स्पष्ट रूप से नोटिस दिया गया था।

41. पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम (उपरोक्त) के निर्णय पर आगे विचार किया गया था कि बिजली की आपूर्ति के लिए कनेक्शन की मंजूरी के लिए बिजली बकाया की मंजूरी के लिए एक शर्त को अनुचित या मनमाना नहीं कहा जा सकता है। हम आगे पैरा-12 में पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी को निम्नानुसार नोट कर सकते हैं: -

"12. लेकिन उपरोक्त कानूनी स्थिति किसी परिसर के खरीदार के लिए किसी व्यावहारिक मदद की नहीं है। जब किसी परिसर का क्रेता

विद्युत आपूर्ति के लिए अपने परिसर में नया विद्युत कनेक्शन प्राप्त करने के लिए वितरक से संपर्क करता है तो वितरक उन शर्तों को निर्धारित कर सकता है जिनके अधीन वह विद्युत आपूर्ति करेगा। यह आपूर्ति के लिए शर्तों में से एक शर्त के रूप में निर्धारित किया जा सकता है कि परिसर को की गई विद्युत आपूर्ति के संबंध में देय बकाया राशि, जब वह पिछले स्वामी/अधिभोगी के कब्जे में थी, को परिसर में विद्युत आपूर्ति बहाल करने या परिसर को नया कनेक्शन प्रदान करने से पूर्व निपटा दिया जाना चाहिए। यदि कोई सांविधिक नियम कनेक्शन की मंजूरी अथवा विद्युत आपूर्ति से संबंधित शर्तों को शासित करते हैं तो वितरक ऐसे नियमों और विनियमों की अपेक्षाओं को पूरा करने पर जोर दे सकता है। यदि नियम चुप हैं, तो यह ऐसे नियमों और शर्तों को निर्धारित कर सकता है जैसा कि यह अपने लेनदेन और व्यवहार को विनियमित करने के लिए उपयुक्त और उचित समझता है। जब तक इस तरह के नियम और कानून या नियम और शर्तें मनमानी और अनुचित नहीं हैं, तब तक अदालतें उनके साथ हस्तक्षेप नहीं करेंगी।

42. उपर्युक्त चर्चाओं के लिए, "नए कनेक्शन के अनुदान के लिए सामान्य शर्तें" की संहिता '2005 के खंड 4.3 में निहित वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, संपत्ति की बिक्री की नीलामी नोटिस की शर्तें "जैसा है, जहां है" और नीलामी के लिए रखी गई संपत्ति की अनुसूची में स्पष्ट बयान कि वसूली अधिकारी को किसी भी बकाया राशि के बारे में पता नहीं था, संपत्ति पर दावे, भार या राजस्व

का मूल्यांकन किया गया, ऊपर उल्लिखित निर्धारित कानून के आलोक में कि बिजली बकाया प्रकृति में वैधानिक हैं और उन्हें विद्युत अधिनियम, 2003 के प्रावधानों के मद्देनजर माफ नहीं किया जा सकता है और विशुद्ध रूप से संविदात्मक प्रकृति के बकाया के चरित्र को नहीं ले सकते हैं, हम पाते हैं कि नीलामी क्रेता नीलामी बिक्री नोटिस दिनांक 14.5.2019 में इंगित संपत्ति में बोली लगाने से पहले बकाया राशि के बारे में पूछताछ करने के लिए बाध्य था। नीलामी क्रेता को यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उसे बिजली के बकायों के बारे में सूचित नहीं किया गया था या उसके लिए जांच करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि वसूली अधिकारी ने खुद को ऐसी किसी भी देयता से मुक्त कर लिया था।

43. इसके अलावा, नीलामी बिक्री एक संकट बिक्री होने के नाते, नीलामी क्रेता न केवल संपत्ति खरीदता है बल्कि इससे जुड़ी देनदारियों को भी खरीदता है। क्लॉज 4.3(एफ) संपत्ति के क्रेता पर यह दायित्व डालता है कि यदि पूर्ववर्ती मालिक द्वारा 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट प्राप्त नहीं किया जाता है और संपत्ति की खरीद से पहले लाइसेंसधारी के समक्ष आवेदन करके 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट प्राप्त करता है, वह लाइसेंसधारी से आवश्यक पूछताछ करे।

44. लंबित देय राशियों के बारे में कोई पूछताछ करने के लिए लाइसेंसधारी के समक्ष नीलामी क्रेता द्वारा ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया है। क्लॉज 4.3(एफ)(आई) की स्पष्ट भाषा के आलोक में, कोड '2005 की

योजना में बकाया बिजली बकाया का भुगतान करने और 'नो-ड्यूज' सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए क्रेता की सह-व्यापक देयता, निजी बिक्री तक सीमित नहीं हो सकती है, जैसा कि याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा सुझाव दिया गया है। धारा 4.3(एफ) का प्रावधान, जो संपत्ति के हस्तांतरण पर बिजली कनेक्शन के अनुदान से संबंधित है, संपत्ति के खरीदार पर बिक्री से पहले बकाया बिजली बकाया के बारे में पूछताछ करने और 'नो-ड्यूज' प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए भुगतान करने का दायित्व डालता है ताकि एक नया बिजली कनेक्शन प्राप्त किया जा सके। कनेक्शन की मंजूरी अथवा विद्युत आपूर्ति से संबंधित शर्तों को शासित करने वाले सांविधिक नियम लाइसेंसी को ऐसे नियमों और विनियमों की अपेक्षाओं को पूरा करने पर जोर देने का अधिकार प्रदान करते हैं। आपूर्ति के लिए शर्तों में से एक शर्त यह है कि पूर्ववर्ती मालिक द्वारा कब्जा किए गए परिसर को की गई विद्युत आपूर्ति के संबंध में देय बकाया राशि को परिसर में विद्युत आपूर्ति बहाल करने अथवा नया कनेक्शन प्रदान करने से पूर्व निपटा दिया जाना चाहिए। ऊपर उल्लिखित सांविधिक प्रावधानों के आलोक में लाइसेंसधारक द्वारा इस शर्त पर जोर देना मनमाना या अनुचित नहीं कहा जा सकता है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि प्रतिवादी लाइसेंसधारी अपनी शक्ति के भीतर, अर्थात् याचिकाकर्ता-यहां भू-राजस्व के बकाया के रूप में बकाया राशि की वसूली के लिए कार्यवाही शुरू करके, नीलामी क्रेता से तत्कालीन मालिक

के बकाया बिजली बकाया की वसूली करने के लिए अच्छी तरह से (सही?) होगा।

45. ऊपर दिए गए विस्तृत तर्क पर, समीक्षा आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता की प्रस्तुतियों के मददेनजर, हमें 13.9.2022 के निर्णय और आदेश, जिसमें रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था, और जिसमें कहा गया था कि बकाया राशि का भुगतान किए बिना याचिकाकर्ता को बिजली कनेक्शन प्रदान नहीं करने के विभाग के निर्णय में कोई गलती नहीं पाई जा सकती है, को वापस लेने/समीक्षा करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

46. तदनुसार, समीक्षा आवेदन योग्यता से रहित होने के कारण एतद्वारा खारिज किया जाता है। योग्यता के आधार पर समीक्षा आवेदन के निपटान के वर्तमान आदेश में दिए गए तर्क को मूल आदेश में रिट याचिका को खारिज करने के तर्क में जोड़ा जाए।

(2023) 7 ILRA 861

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 333 वर्ष
2019

जे.एम. हाउसिंग लिमिटेड, नोएडा ...आवेदक
बनाम

आयुक्त, वाणिज्यिक कर, यू.पी. लखनऊ

...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री सुयश अग्रवाल, श्री नितिन केशरवानी, श्री राकेश रंजन अग्रवाल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

बिक्री/व्यापार कर- अपीलीय आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण दायर किया गया, जिसमें करदाता द्वारा निष्पादित 'कार्य अनुबंध' में शामिल माल के मूल्य में आंशिक कमी की गई और इस प्रकार 'कार्य अनुबंध' पर निर्धारित कर को कम किया गया- मुख्य मुद्दे पर, क्या करदाता द्वारा उठाए गए निर्माण 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन के माध्यम से थे, निष्कर्ष सकारात्मक रूप से वापस आ गया है, अर्थात् करदाता के खिलाफ- निर्माण करदाता द्वारा किए गए थे, हालांकि अपनी जमीन पर 403 आवंटियों को जारी किए गए आवंटन पत्र और उनके द्वारा किए गए भुगतानों के खिलाफ- अधिकारियों ने करदाता पर केवल 403 फ्लैटों के खिलाफ प्राप्त भुगतान की सीमा तक कर लगाया है।- यदि करदाता अधिक कटौती का दावा करना चाहता था- तो उसे नियम 9 के अनुसार अपनी पुस्तकों को बनाए रखना चाहिए था- उसी को उचित ठहराने के लिए लेखा पुस्तकों की अनुपस्थिति में उन कटौतियों का दावा नहीं किया जा सकता है- ट्रिब्यूनल द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष गलत नहीं हैं।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. लार्सन एंड टूब्रो लिमिटेड एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक एवं अन्य, 2013 एनटीएन (वॉल्यूम 53) 65
 2. के. रहेजा डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक 2005 एनटीएन (वॉल्यूम 27) 243
 3. सीआईटी बनाम सन इंजीनियरिंग वर्क्स (पी) लिमिटेड (1992) 4 एससीसी 363
 4. भारत संघ एवं अन्य बनाम अरुलमोड़ी इनियारासु एवं अन्य (2011) 7 एससीसी 397
 5. मेसर्स हिंदुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2000 यू.पी.टी.सी.-891
 6. सूरज लैंप एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2012) 1 एससीसी 656
 7. एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2007 यूपीटीसी 797
 8. एक्सप्रेस प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2013 एनटीएन (53) 144
 9. सुपरटेक लिमिटेड नोएडा बनाम कमिशनर, वाणिज्यिक कर, यूपी. लखनऊ, 2017 एनटीएन (63) 136
 10. कमिशनर, वाणिज्यिक कर बनाम एस/एस डिजाइन आर्क इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड
 11. सी.के. गंगाधरन एवं अन्य बनाम आयकर आयुक्त, (2008) 304 आईटीआर 61 (एससी)
- (माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह द्वारा दिया गया)

1. निर्धारिती के विद्वान अधिवक्ता श्री सुयश अग्रवाल और श्री नितिन केशरवानी द्वारा सहायता प्राप्त श्री राकेश रंजन अग्रवाल,

वरिष्ठ अधिवक्ता, और राजस्व के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री ए.सी.त्रिपाठी को सुना।

2. वर्तमान पुनरीक्षण निर्धारिती द्वारा उत्तर प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम 2008 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 58 के अंतर्गत वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण, खण्डपीठ II, नोएडा द्वारा कर निर्धारण वर्ष 2010-11 (यूपी) के लिए द्वितीय अपील संख्या 52/2019 में पारित आदेश दिनांकित - 29-06-2019 के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है। उस आदेश के द्वारा, न्यायाधिकरण ने आंशिक रूप से निर्धारिती की अपील को अनुमति दी है और निर्धारिती द्वारा निष्पादित 'कार्य अनुबंध' में शामिल माल के मूल्य में आंशिक कमी की है और इस प्रकार 'कार्य अनुबंध' पर मूल्यांकन किए गए कर को कम कर दिया है। हालांकि, मुख्य विषय पर, क्या निर्धारिती द्वारा किये गये निर्माण 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन के माध्यम के द्वारा थे, निष्कर्ष को सकारात्मक रूप में अर्थात् निर्धारिती के विरुद्ध वापस कर दिया गया है।

3. इसी तरह की स्थिति वर्तमान पुनरीक्षण से जुड़े अन्य पुनरीक्षणों में प्रचलित है। उनमें से कुछ पुनरीक्षण अन्य निर्धारितियों द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं। हालांकि, निर्धारिती के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा, सभी प्रकरणों में शामिल विषय एक ही व एक जैसी है। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य प्रकरणों में भी न्यायाधिकरण ने विपरीत दृष्टिकोण अर्थात् निर्धारिती के पक्ष में अपनाया है। इस प्रकार, राजस्व द्वारा विक्रय /व्यापार कर

पुनरीक्षण संख्या 671/2013, 207/2013, 208/2013, 209/2013 व 210/2013 जिसमें एक ही विषय उठाया गया है (दूसरे दृष्टिकोण से), प्रस्तुत किया गया है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उन पुनरीक्षण (राज्य द्वारा प्रस्तुत), की ओर संकेत किया है जो **लार्सन एंड टर्बो लिमिटेड और अन्य विरुद्ध कर्नाटक राज्य और अन्य, 2013 एनटीएन (वॉल्यूम 53) 65** (इसके बाद 'एल एंड टी केस' के रूप में संदर्भित) के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पूर्व उत्पन्न हुई थी।

4. ऐसी स्थिति में आज जितने भी पुनरीक्षण तय किए जा रहे हैं, एकसाथ रखे गए। तदनुसार, उन्हें विभिन्न तिथियों पर सुनवाई के समय स्थगन के साथ सुना गया, जो न्यायालय के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में नियमित दिनचर्या के माध्यम से अनुभव किए गए रोस्टर परिवर्तनों के कारण आवश्यक हो गया। दि० 31.5.2023 को पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को पूर्व मौखिक सूचना के साथ आदेश को सही करने, अंतिम रूप देने और अपलोड करने में समय लगा।

5. सुविधा के लिए और जैसा कि पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सुझाव दिया गया है, वर्तमान पुनरीक्षण में जो *पुनरीक्षण संख्या 333 / 2019 (जे.एम. हाउसिंग लिमिटेड विरुद्ध विक्रय / व्यापार कर आयुक्त)* ए.वाई. 2010-11 (UP) है, मैं प्रविष्टियाँ पूर्व में दी गयी थी। इसी के अनुसार पहले इस पर निर्णय लिया जा रहा है।

6. यह पुनरीक्षण विधि के निम्नलिखित प्रश्नों पर स्वीकार किया गया था:

"(i) क्या प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर, न्यायाधिकरण ने वर्तमान प्रकरण के तथ्यों के लिए के. रहेजा और लार्सन एंड टर्बो के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के अनुपात में अन्तर नहीं करने में त्रुटि की है, क्योंकि निर्धारिती द्वारा अपनी ही भूमि पर न तो त्रिपक्षीय अनुबंध था और न ही कोई पूर्व विक्रय विलेख और न ही निर्धारिती ने अन्यथा उठाए गए निर्माण के संबंध में अंतिम क्रयकर्ताओं की ओर से किसी भी कार्य अनुबंध को निष्पादित किया था?

(ii) क्या वैकल्पिक रूप से न्यायाधिकरण निर्माण में उपभोग किए गए सामानों के समावेश के समय माल के मूल्य की अनदेखी करते हुए, भले ही माल में संपत्ति बाद में गुजरती हो, मान्य विक्रय की गणना के लिए माल के मूल्य की खरीद में 10% की वृद्धि को बनाए रखने में सही था?

7. प्रकरणों के इस बैच में कोई अन्य प्रश्न नहीं उठाया गया या कहा गया है। निर्विवाद रूप से, निर्धारिती जिला गौतम बुद्ध नगर में 20900 वर्ग मीटर की भूमि का पट्टेदार होने का दावा करता है। यह भी दावा किया गया है कि उस भूमि पर एक आवासीय आवास योजना - 'जे.एम. ऑर्किड', विकसित करने का निश्चय किया गया है, जिसमें दो और तीन बेडरूम वाले फ्लैट शामिल हैं, जिनकी संख्या लगभग 684 है। किसी भी विकासकर्ता या किसी तीसरे पक्ष के साथ आगे कोई अनुबंध किए बिना,

निर्धारिती तब दावा करता है कि उसने अपने स्वयं के धन से उपरोक्त वर्णित 684 फ्लैटों का निर्माण प्रारंभ कर दिया है। राजस्व अधिकारियों ने पाया कि उन अपार्टमेंटों का निर्माण मूल्यांकन वर्ष के दौरान किया जा रहा है। उस परिस्थिति में, राजस्व विभाग की विशेष जांच शाखा ने 21.07.2012 को निर्धारिती की व्यावसायिक गतिविधि का स्थलीय निरीक्षण/सर्वेक्षण किया। उस समय राजस्व प्राधिकारियों ने आरोप लगाया था कि 684 फ्लैटों में से 550 का निर्माण संभावित क्रयकर्ताओं के लिए किया जा रहा था। बाद में, निर्धारिती के विरुद्ध उस विषय पर कर निर्धारण की कार्यवाही की गयी।

8. निर्धारिती ने नोटिस का उत्तर प्रस्तुत किया और राजस्व के दावे का प्रतिवाद किया। अंततः कर निर्धारण वर्ष 2010-11 के लिए अंतिम मूल्यांकन आदेश 31.12.2013 को उपायुक्त, वाणिज्यिक कर, सेक्टर 12, नोएडा द्वारा पारित किया गया था। जैसा कि उस आदेश में लेखबद्ध है कि, उस निर्धारण वर्ष की कालावधि में कई फ्लैटों की स्थिति अलग-अलग संख्या में फ्लैटों को 'बुक किया गया' (भिन्न-भिन्न तिथियों पर) पाया गया। जिन्हें उस मूल्यांकन आदेश में ही निर्दिष्ट किया गया था। आकलन प्राधिकरण ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि 681 फ्लैटों में से केवल 403 (निर्धारिती द्वारा बनाए जा रहे), तीसरे पक्ष (इसके बाद 'आवंटियों' के रूप में वर्णित) द्वारा बुक किए गए थे। इस प्रकार निर्धारिती द्वारा निर्माण किए जा रहे फ्लैटों में से 59% को आवंटियों/तृतीय पक्षों द्वारा 'बुक किया गया' माना गया था। मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा उन

फ्लैटों के उस प्रतिशत को निर्धारिती द्वारा प्रश्नगत मूल्यांकन वर्ष के दौरान परियोजना 'जेएम ऑर्किड' में निष्पादित 'कार्य अनुबंध' की क्षेत्र का प्रतिनिधि और वर्णनात्मक माना गया है। उस अनुपात में, मूल्यांकन प्राधिकारी ने तब उस 'कार्य अनुबंध' में शामिल माल के मूल्य की गणना करने के लिए लोहा और इस्पात, हार्डवेयर, ईंट, रेत, प्लाईवुड, कंक्रीट, लकड़ी, सीमेंट आदि जैसे सामानों के खरीद मूल्य पर विचार किया। उस मूल्य के लिए, मूल्यांकन प्राधिकरण ने 21% की दर से अनुमानित लाभ जोड़ा। इस प्रकार, निर्धारण प्राधिकारी ने 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल माल का कारोबार 26,32,66,106/- रुपये निर्धारित किया। उस पर कुल कर रुपये-1,51,32,365/- की गणना की गई। आईटीसी के आंकड़े रुपये 84,64,027 /- को समायोजित करते हुए रुपये 66,68,338/- की शुद्ध मांग सृजित की गई।

9. उपर्युक्त निर्धारण आदेश के विरुद्ध निर्धारिती ने वैधानिक प्रथम अपील को प्राथमिकता दी। अपर आयुक्त ग्रेड-द्वितीय (अपील) प्रथम, वाणिज्यिक कर, नोएडा द्वारा निर्धारिती की अपील को दिनांक 28.10.2017 को पारित आदेश द्वारा अनुमति दी गई। दिनांक 31.12.2013 के मूल कर निर्धारण आदेश को निरस्त कर दिया गया था और प्रकरण को नवीन कर निर्धारण आदेश पारित किये जाने हेतु निर्धारण प्राधिकारी को भेज दिया गया था। यह ध्यान दिया जा सकता है कि प्रथम अपीलीय प्राधिकरण ने एक सर्वव्यापी पर्यवेक्षण किया था कि मूल्यांकन प्राधिकारी ने निर्धारिती द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर

विचार नहीं किया था। इस प्रकार, प्रथम अपीलीय प्राधिकरण ने मूल्यांकन आदेश को निरस्त कर दिया और प्रकरण को निर्धारण प्राधिकारी को भेज दिया। निर्धारिती द्वारा प्रकरण को द्वितीय अपील संख्या 52/ 2019 के रूप में न्यायाधिकरण में ले जाया गया। यहां यह ध्यान दिये जाने योग्य है कि, राजस्व ने प्रथम अपीलीय प्राधिकरण द्वारा किए गए रिमांड के आदेश को चुनौती नहीं दी थी।

10. अभिलेख के अवलोकन से ज्ञात है कि न्यायाधिकरण ने निर्धारिती द्वारा प्रस्तुत सुझावों पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया है। तत्पश्चात, योग्यता के विषय पर अपील के निस्तारण का चयन किया गया है। निर्धारिती न्यायाधिकरण द्वारा अपनाए गए उस प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण से व्यथित नहीं है। उसमें, न्यायाधिकरण एक निष्कर्ष पर पहुंचा है, निर्धारिती इसके द्वारा उठाए जा रहे कुल निर्माण के 59% की सीमा तक एक 'कार्य अनुबंध' निष्पादित कर रहा था, अर्थात् 'जेएम ऑर्किड' वर्णित योजना में 681 आवासीय फ्लैटों में से 403 उस सीमा तक, न्यायाधिकरण ने कर निर्धारण प्राधिकारी के निष्कर्ष की पुष्टि की है। व्यापार की मात्रा के रूप में अर्थात् इस तरह के 'कार्य अनुबंध' में शामिल माल के मूल्य को न्यायाधिकरण ने मूल्यांकन प्राधिकरण द्वारा की गई गणना को बदल दिया है। 'कार्य अनुबंध' में शामिल वस्तुओं के बुक वैल्यू पर विचार किया गया है और उसी (लाभ) में की गई वृद्धि को घटाकर 10% कर दिया है। तदनुसार, मूल्यांकन कर को रुपये - 6,30,031/- निर्धारित किया है।

11. निर्धारिती के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है, ऐतिहासिक रूप से, 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल माल के मूल्य पर कर विधायिका के क्षेत्र से बाहर था। इस प्रकार, इसे माल का विक्रय मानते हुए कोई कर नहीं लगाया जा सकता था। केवल 46वें संविधान संशोधन और राज्य कराधान विधियों के साथ-साथ केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 में किए गए परिणामी संशोधनों के आधार पर ही कार्य संविदा माल की विक्रय पर कर लगाने से संबंधित विधियों की सीमा में आ गई। अधिनियम की धारा 2 (एसी) के साथ पठित धारा 2 (एयू) का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है, किसी भी लेन-देन के लिए 'कार्य अनुबंध' की परिभाषा के भीतर आने के लिए - अधिनियम के अंतर्गत कराधान के उद्देश्य के लिए, इसे अन्य के मध्य निर्माण करने के लिए यह एक 'अनुबंध' के अंतर्गत उत्पन्न होना चाहिए, वर्तमान प्रकरण में उठाए गए निर्धारिती की तरह हो सकता है। जब तक विधि की उस महत्वपूर्ण आवश्यकता को पहली बार नहीं देखा जाता है - स्पष्ट रूप से पूरा नहीं किया जाता है, अर्थात्, जब तक कि निर्माण एक पूर्व लिखित अनुबंध के अनुसार नहीं उठाया जाता है, तब तक यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि इस तरह के निर्माण को भूमि स्वामी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की ओर से 'कार्य अनुबंध' के माध्यम से उठाया गया था। वर्तमान प्रकरण में, निर्विवाद रूप से निर्धारिती उस भूमि का स्वामी है जिस पर निर्माण किया जा रहा था। भूमि पर पूर्ण स्वामित्व और कब्जे और भू-स्वामी के रूप में, निर्धारिती ने अपनी

इच्छानुरूप विभिन्न विशेष प्रकार के 684 आवासीय फ्लैटों के रूप में अपने स्वयं के निर्माण को बढ़ाने का चुनाव किया। उस उद्देश्य के लिए, इसने अपने वित्त की व्यवस्था की; नोएडा से मानचित्र की स्वीकृति के लिए आवेदन किया गया; मानचित्र की स्वीकृति प्राप्त की और अपने स्वयं के धन से निर्माण करना प्रारंभ कर दिया। यह सब करते हुए, निर्धारिती ने स्वयं द्वारा निर्माणाधीन भूमि या आवासीय फ्लैटों पर कभी भी शीर्षक या कब्जे को अलग नहीं किया। इसने अपने द्वारा इस तरह के निर्माण की प्रगति की कालावधि में किसी तृतीय पक्ष में कोई रुचि नहीं ली। संक्षेप में, इसने इस तरह के निर्माणों को बढ़ाने के लिए कोई पूर्व 'अनुबंध' नहीं किया।

12. दूसरा, यह दृढ़ आग्रह किया गया है कि, आवंटन पत्र (681 फ्लैटों में से 403 अर्थात् किये जा रहे निर्माण का 59% आवंटित करना) साधारण आवंटन पत्रों के अतिरिक्त कुछ नहीं है जिसे कभी भी किसी 'अनुबंध' के रूप में नहीं माना जा सकता है। वे अपंजीकृत अभिलेख हैं। ऐसे आवंटन पत्र अधिनियम की धारा 2 (एयू) के संदर्भ में अनुबंध नहीं हैं। उन 'आवंटन पत्रों' ने आवंटियों में प्रवर्तनीय अधिकारों का सृजन नहीं किया और वर्तमान तथ्यों में इस सीमा तक 'कार्य अनुबंध' कभी उत्पन्न नहीं हुआ।

13. तीसरा, के. रहेजा बनाम कर्नाटक राज्य 2005 एनटीएन (खंड 27) 243 (इसके पश्चात् इसे के० रहेजा प्रकरण) और एल एंड टी प्रकरण से संबोधित किया जायेगा, के प्रकरण

में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय की चर्चा करते हुए उन दो प्रकरणों के तथ्यों को बलपूर्वक प्रस्तुत किया है और इसलिए उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात पूर्णतः भिन्न है और वर्तमान तथ्यों पर लागू नहीं होता है। अपनी प्रस्तुतियों को विस्तृत करते हुए, निर्धारिती के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है, उन प्रकरणों में, एक ओर भूमि के स्वामी से जुड़ा एक त्रिपक्षीय अनुबंध उपलब्ध था; विकासकर्ता या निर्माणकर्ता (जो स्वामी की भूमि पर निर्माण बढ़ाने के लिए सहमत हो गया था) द्वितीय पक्ष के रूप में, और; तृतीय पक्ष के रूप में आवंटित/संभावित क्रेता। इस तथ्य के कारण यह आग्रह किया गया है कि भूमि के स्वामी ने कभी भी अपने दम पर अपनी भूमि पर निर्माण करने का प्रयास नहीं किया। वास्तव में उस भूमि स्वामी ने दूसरे पक्ष के साथ एक अनुबंध किया, जिसे विकासकर्ता के रूप में वर्णित किया गया है। पश्चात्तर्वर्ती ने संभावित क्रयकर्ताओं को विक्रय के लिए निर्माण की योजना बनाई और निर्माण किया। तथ्य के उस अंतर पर भरोसा करते हुए, यह आग्रह किया गया है, क्योंकि उस प्रकरण में, स्वामी ने किसी अन्य इकाई को कर्नाटक विक्रय कर अधिनियम और महाराष्ट्र वैट अधिनियम के अंतर्गत अधिनियमित 'कार्य अनुबंध' शब्द की परिभाषा के आधार पर, वह भी एक लिखित अनुबंध के अंतर्गत, अपनी भूमि पर निर्माण करने की अनुमति देने का विकल्प चुना। दोनों अधिनियमों में 'कार्य अनुबंध' शब्द की परिभाषा शामिल है जो अधिनियम की धारा 2 (एयू) के अंतर्गत दी गई उस शब्द की परिभाषा के अनुरूप हो सकती है।

14. प्रस्तुतीकरण के दूसरे चरण के माध्यम से, इस प्रकार प्रस्तुत किया गया कि, उत्तर प्रदेश के विपरीत, महाराष्ट्र और कर्नाटक दोनों राज्यों में, ऐसे आवासीय अपार्टमेंटों के निर्माण को बढ़ाने की गतिविधि को विनियमित करने वाले विशिष्ट अधिनियमों का अस्तित्व है। इस प्रकार, कर्नाटक राज्य में, कर्नाटक स्वामित्व फ्लैट (निर्माण, विक्रय, प्रबंधन और अंतरण संवर्धन का विनियमन) अधिनियम, 1972 (इसके पश्चात् कोफा के रूप में संदर्भित) और महाराष्ट्र में, महाराष्ट्र स्वामित्व फ्लैट (निर्माण, विक्रय, प्रबंधन और अंतरण संवर्धन का विनियमन) अधिनियम, 1963 और उसके अधीन बनाए गए नियम (जिसे इसके पश्चात् मोफा कहा गया है) के साथ प्रभाव में थे। उन अधिनियमों के प्रावधानों, विशेष रूप से कोफा की धारा 4, 5, 6, 7, 9 और मोफा की धारा 4, 4ए, 5 नियम 4, 5 में निहित शर्त के साथ पढ़ा जाता है और इसके अंतर्गत निर्धारित अनुबंध के मॉडल फॉर्म, और मोफा के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अंतर्गत निर्धारित अपार्टमेंट के प्रमोटर और क्रयकर्ता के बीच दर्ज किया गया, और साथ ही, इस पर प्रासंगिक चर्चा (एल एंड टी प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में निहित) का विस्तार से उल्लेख करते हुए, यह आग्रह किया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में ऐसा कोई प्रावधान या विधि उपलब्ध नहीं है।

15. चूंकि कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्य में कोफा और मोफा और उसके अंतर्गत उत्पन्न प्रत्यायोजित विधि के आधार पर अनुबंध की शर्तें विधि द्वारा कड़ाई से निर्धारित की गई थीं और इसके अतिरिक्त, चूंकि यह स्पष्ट रूप

से निर्धारित किया गया था कि निर्माणकर्ता/विकासकर्ता उस अनुबंध के विपरीत कोई परिवर्तन या विचलन नहीं कर सकता है और चूंकि उन प्रकरणों में वर्तमान में आवंटियों के पक्ष में मूल्यवान अधिकार सृजित किए गए थे, जिसके अंतर्गत उन्हें 'भावी क्रयकर्ता' के रूप में वर्णित किया गया था, एक 'अनुबंध' का गठन किया गया था, जैसा कि प्रासंगिक कराधान विधियों के अंतर्गत परिभाषित किया गया था, फिर कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्यों में लागू किया गया था।

16. चूंकि ऐसा कोई 'अनुबंध' अस्तित्व में नहीं था और चूंकि वर्तमान प्रकरण में और किसी भी प्रकरण में ऐसा कोई अधिकार कभी नहीं बनाया गया था, क्योंकि निर्धारिती द्वारा अपनी भूमि पर ('जेएम ऑर्किड' योजना के अंतर्गत), निर्मित 681 आवासीय फ्लैटों में से किसी भी आवंटी के पक्ष में ऐसे कोई अधिकार कभी भी नहीं देखे जा सकते हैं या नहीं दिए गए हैं, अधिनियम की धारा 2 (एयू) की परिभाषा को देखते हुए कोई 'कार्य अनुबंध' उपस्थित नहीं था। **के रहेजा प्रकरण और एल एंड टी प्रकरण** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में अनुपात से अंतर करने के लिए, निर्धारिती के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **सीआईटी बनाम सन इंजीनियरिंग वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड (1992) 4 एससीसी 363**, विशेष रूप से उस निर्णय के पैराग्राफ 39 में उच्चतम न्यायालय के एक और निर्णय को लागू किया है। कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्य में लागू किए गए वैधानिक विधि की तुलना में उत्तर प्रदेश राज्य में वैधानिक विधि के विशाल अंतर को देखते हुए, **के. रहेजा प्रकरण और एल एंड टी**

प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में दिए गए तर्क को लागू करने की अनुमति नहीं है, भौतिक वैधानिक संदर्भ से तलाक जिसमें यह उत्पन्न हुआ था। स्पष्ट रूप से, चूंकि उन प्रकरणों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया वैधानिक संदर्भ उत्तर प्रदेश राज्य में उपलब्ध नहीं है, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय लागू नहीं होते हैं। इसके लिए, **भारत संघ और अन्य बनाम अरुलमोड़ी इनियारासु और अन्य (2011) 7 एससीसी 397** में उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय विशेष रूप से पैराग्राफ-14, पर भी भरोसा किया गया है।

17. अपने तर्क को और बल प्रदान के लिए, निर्धारिती के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **मैसर्स हिंदुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य 2000 यूपीटीसी-891** में उच्चतम न्यायालय के एक और निर्णय पर बल दिया है। उसमें शामिल मुद्दा यह था कि क्या जहाजों के निर्माण और वितरण की आवश्यकता वाला अनुबंध साधारण विक्रय अनुबंध था या 'कार्य अनुबंध'। रिपोर्ट के पैराग्राफ -6 का उल्लेख करते हुए, यह आग्रह किया गया है कि 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व का अनुमान लगाने के उद्देश्य से कोई सीधा जैकेट फॉर्मूला या एक त्वरित परीक्षण उपलब्ध नहीं है, जो अचूक हो सकता है। किसी भी मानक फार्मूले के अभाव में, प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करनी होगी। वे निष्कर्ष पर भौतिक अंतर कर सकते हैं जो खींचा जा सकता है, यहां तक कि उन प्रकरणों में भी जो पहले सतही स्तर पर समान लग सकते हैं।

18. तब पक्षकारों के बीच किसी भी त्रिपक्षीय अनुबंध की पूर्ण अनुपस्थिति और आवंटियों/भावी क्रयकर्ताओं के पक्ष में दृश्यमान अधिकार बनाने वाले किसी भी विधि की अनुपस्थिति का उल्लेख करते हुए (जैसा कि **के रहेजा प्रकरण** और **एल एंड टी प्रकरण** में उच्चतम न्यायालय द्वारा नोट किया गया था), यह आग्रह किया गया है, 'कार्य अनुबंध' का कोई तत्व उपलब्ध नहीं है या साबित नहीं हुआ है जिससे, उपर्युक्त में से किसी एक के संबंध में इसके द्वारा निर्मित 681 आवासीय अपार्टमेंट निर्धारिती पर 'कार्य अनुबंध' कर लगाने की अनुमति दी जा सकती है।

19. वर्तमान निर्धारिती द्वारा जारी आवंटन पत्रों के अंतर्गत **के रहेजा प्रकरण** और **एल एंड टी प्रकरण** में तथ्यों के विपरीत, किसी भी संस्था के पक्ष में भूमि या इसके किसी भी हिस्से में किसी भी स्वामित्व या अधिकार को स्थानांतरित करने का कोई उप-खंड नहीं है। वर्तमान प्रकरण में आवंटन पत्रों के विभिन्न खंडों पर भारी निर्भरता रखी गई है। उस आलोक में, **सूरज लैंप एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2012) 1 एससीसी 656** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है। इस प्रकार, यह आग्रह किया गया है कि अचल संपत्ति में अधिकार, स्वामित्व व हित का हस्तांतरण केवल हस्तांतरण विलेख (विक्रय विलेख) के माध्यम से किया जा सकता है। इसकी अनुपस्थिति में, अचल संपत्ति में कोई अधिकार, शीर्षक या हित कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता है या बनाया या स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, यह

स्पष्ट रूप से निर्णय दिया गया था, अधिकार पत्र के बल पर कोई हस्तांतरण नहीं होगा। इसी प्रकार, यहां आवंटन पत्र आवंटी के पक्ष में कोई सम्प्रेषण नहीं करता है। संपत्ति जिसके संबंध में कोई आवंटन पत्र जारी किया गया हो सकता है कि एक अचल संपत्ति है, आवंटन पत्र के पक्षकारों के बीच अधिकारों को केवल एक पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से बदला जा सकता है। प्रश्नगत निर्धारण वर्ष में निर्धारिती द्वारा किए जा रहे निर्माण के दौरान, वह चरण नहीं पहुंचा था। प्रश्नगत वर्ष में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया गया। किसी भी विक्रय विलेख की अनुपस्थिति में और आगे, बेचने के लिए किसी भी अनुबंध के अभाव में, न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (एयू) के उद्देश्य के लिए आवश्यक पूर्व 'अनुबंध' के अस्तित्व का अनुमान नहीं लगा सकता है। एक बार जब 'कार्य संविदा' स्थापित करने के उद्देश्य से 'अनुबंध' के अस्तित्व के बारे में साक्ष्य की पूर्ण कमी हो जाती है, तो निर्धारिती द्वारा किया जा रहा लेनदेन अधिनियम के अंतर्गत कर लगाने के उद्देश्य से 'कार्य अनुबंध' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहेगा। चूंकि निर्धारिती द्वारा किया गया लेनदेन कराधान कानून की सरल भाषा के भीतर नहीं आता था, इसलिए निर्धारिती किसी भी कर से अछूता रहेगा जो राजस्व प्राधिकरण इस तरह के लेनदेन पर लगाना चाहता है।

20. इसके पश्चात, अधिनियम और उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर उत्पन्न होने वाले विवादों के संदर्भ में, यह आग्रह किया गया है, वर्तमान प्रकरण में परीक्षण (जैसा कि निर्धारिती के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा माँग

किया जा रहा है), को कई अवसरों पर मान्यता दी गई है। सबसे पहले, **एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2007 यूपीटीसी 797** में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इसी तरह के आवंटन पत्र पर विचार किया। यह पाया गया, इस तरह के आवंटन पत्र जारी करने के बावजूद, **एसोटेक रियल्टी प्रा. लि.** विक्रय विलेख के निष्पादन और आवंटियों के पक्ष में इसके पंजीकरण तक अपार्टमेंट/फ्लैट के स्वामी बने रहे। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने **एसएलपी संख्या 2237-79 वर्ष 2007** से उत्पन्न **सिविल अपील संख्या 5624-5625 वर्ष 2007** में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निर्णय को उलट दिया गया, किन्तु दिनांक 03.12.2007 के आदेश के अनुसार, खंडपीठ द्वारा निर्धारित विधि के सिद्धांत को न तो अस्वीकार किया गया और न ही उच्चतम न्यायालय द्वारा इसे छोड़ दिया गया। सिविल अपील का निस्तारण इस बात पर विचार करने पर किया गया था कि इस प्रकरण को पहले वैधानिक कार्यवाही में आगे की टिप्पणियों के साथ हल किया जा सकता है - आवंटियों को दिए गए अधिकारों की प्रकृति पर मूल्यांकन और अपील की नियमित कार्यवाही में विचार किया जाना था। वैधानिक अधिकारियों द्वारा उस अभ्यास से पहले रिट न्यायालय द्वारा समय से पहले कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था।

21. इसके अतिरिक्त, अपने तर्कों को बल प्रदान करने करने के लिए, निर्धारिती के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है, उच्चतम न्यायालय के आदेश के

बाद, **एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली (उक्त)** नियमित मूल्यांकन के अधीन था। प्रकरण न्यायाधिकरण तक पहुंच गया। इसने दिनांक 11-06-2010 के आदेश के अंतर्गत अपील की अनुमति दी। इसे किसी अंकगणितीय/लिपिकीय त्रुटि के आधार पर दिनांक 12-07-2010 के आदेश द्वारा ठीक किया गया था। उस आदेश के विरुद्ध राजस्व द्वारा योजित पुनरीक्षण, **एसटीआर / टीटीआर दोषपूर्ण संख्या 184/2012 (सीटीटी विरुद्ध मैसर्स एसोटेक रियल्टी प्रा. लि.)** दिनांक 20.09.2012 के आदेश द्वारा इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निरस्त कर दिया गया। उस आदेश को अंतिम रूप मिल गया है। इसलिए, वर्तमान कार्यवाही में कोई अलग/अन्य दृष्टिकोण नहीं लिया जा सकता है।

22. पुनः, **एक्सप्रेस प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2013 एनटीएन (53) 144** में इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ के निर्णय में **एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली (उक्त)** में इस न्यायालय के पहले खंडपीठ के निर्णय और उस निर्णय से उत्पन्न सिविल अपील में उच्चतम न्यायालय के आदेश पर ध्यान दिया गया और उसके बाद उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत अर्थात् प्रत्येक प्रकरण में, राजस्व अधिकारियों द्वारा व्यक्तिगत तथ्यों और साक्ष्यों की जांच करनी होगी। इस प्रकार, उस रिट याचिका को वापस ले लिया गया के रूप में निरस्त कर दिया गया था, उस निर्धारिती को वैधानिक कार्यवाही में उचित चुनौती देने की स्वतंत्रता दी गई थी।

23. इसी भाँति के क्रम को **सुपरटेक लिमिटेड नोएडा बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ, 2017 एनटीएन (63) 136** में इस न्यायालय के एक अन्य विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया है। वहां, उच्चतम न्यायालय द्वारा **एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली (उक्त)** में निर्धारित परीक्षण को लागू करते हुए प्रकरण को रिमांड पर भेज दिया गया। इस प्रकार, इस स्तर पर, किसी निर्माणकर्ता द्वारा जारी किए गए आवंटन पत्रों के सामने 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व का अनुमान लगाने के लिए अनुभवसिद्धि का कोई नियम उपलब्ध नहीं है। उस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अन्य सामग्री और साक्ष्यों की जांच करनी होगी। चूंकि वर्तमान प्रकरण में, अन्य सामग्री या सबूत उपलब्ध हैं, इसलिए न्यायाधिकरण द्वारा पुष्टि के अनुसार मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा निष्कर्ष निकाला गया (कि एक 'कार्य अनुबंध' उपलब्ध था), उसी पर विचार किए बिना, किसी सामग्री या साक्ष्य पर आधारित नहीं है। अपितु, यह अनुमान है। न्यायाधिकरण के आदेश का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण ने उस तात्त्विक पहलू पर कोई निष्कर्ष अभिलिखित करने का कोई प्रयास नहीं किया है। उपरोक्त के आलोक में, इसने पहले प्रकरण के तथ्यों का पता लगाए बिना **के. रहेजा प्रकरण और एलएंडटी प्रकरण** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को आँख बंद करके लागू किया है।

24. जबकि वर्तमान प्रकरण की सुनवाई जारी थी और यह रोस्टर विचारों के लिए बाधित हो गया था, निर्धारिती 22.01.2023 को एक

पूरक शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए आया, जिसमें वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण, खंडपीठ-II, नोएडा द्वारा पारित 04.01.2023 के आदेश को द्वितीय अपील संख्या 124/2022 (मेसर्स जेएम हाउसिंग लिमिटेड विरुद्ध सीटीटी) में निर्धारण वर्ष 2017-

18 (30.06.2017 तक), अर्थात् उसी निर्धारिती के प्रकरण में। उसमें, पुन आवंटन पत्र की समान शर्तों के संदर्भ में, न्यायाधिकरण ने तर्क दिया है कि निर्धारिती द्वारा किए गए आवासीय अपार्टमेंटों का निर्माण कार्य संविदा के निष्पादन के माध्यम से नहीं किया गया था। इस प्रकार आवंटियों की ओर से निर्माण नहीं किया जा रहा था। निर्माण निर्धारिती द्वारा अपने स्वयं के खाते पर उठाया गया पाया गया था।

25. दूसरे प्रश्न पर, यह प्रस्तुत किया गया है, यह विकल्प में उठता है। सबसे पहले, 'कार्य अनुबंध' के कारोबार का निर्धारण करने के उद्देश्य से माल का मूल्य या 'कार्य अनुबंध' के लिए विनियोजित माल का मूल्य, ऐसे वस्तुओं की तिथि को उन वस्तुओं का मूल्य होना चाहिए जिन्हें भौतिक रूप से 'कार्य अनुबंध' में शामिल किया जा रहा है। चूंकि वर्तमान प्रकरण आवासीय अपार्टमेंट के निर्माण का मामला है, इसलिए विनियोग/निगमन की तिथि वह तिथि होगी जब माल भौतिक रूप से लागू किया गया था या निर्माण में उपयोग किया गया था, जैसे कि वे उठाए जा रहे निर्माणों का हिस्सा बन गए। उस तिथि को, माल का मूल्य कभी भी क्रय मूल्य या ऐसे विनियोजन/निगमन की तिथि को माल के बाजार मूल्य से अधिक नहीं हो सकता है।

26. निर्धारिती के खातों की पुस्तकों का उल्लेख करते हुए, जैसा कि स्वीकार किया गया है, यह दिखाया गया है, कथित 'कार्य अनुबंध' में शामिल माल का मूल्य 19,78,16,069/- रुपये था। न्यायाधिकरण के समक्ष उठाए गए अपील के आधारों का हवाला देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है, निर्धारिती ने कभी भी नहीं माना या स्वीकार नहीं किया कि उस मूल्य @ 10% में जोड़ा जाए। यदि कुछ भी हो, तो कथित रूप से 'कार्य अनुबंध' में शामिल किए गए माल का मूल्य बुक वैल्यू पर लिया जाना चाहिए था और अधिक नहीं। उस संदर्भ में, यह प्रस्तुत किया गया है, **आयुक्त, वाणिज्यिक कर बनाम एस/एस डिजाइन आर्क इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड** में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय प्रस्तुत दावे का निर्णय नहीं करता है। यद्यपि उस पुनरीक्षण में यह मुद्दा उठा था, किन्तु राजस्व द्वारा इस पर बल नहीं दिया गया था। अतः, वर्तमान में, न्यायाधिकरण ने उस निर्णय पर दूसरों के बीच भरोसा करने में पूरी तरह से त्रुटि की है, निर्धारिती द्वारा निष्पादित कथित कार्य अनुबंध में शामिल माल के मूल्य में 10% की वृद्धि करने के लिए। चूंकि इस मुद्दे पर अंतिम आधिकारिक निर्णय कभी नहीं आया था, इसलिए निर्धारिती के लिए इस मुद्दे को उठाने का अवसर था और न्यायाधिकरण को अपने पहले के निर्णयों से स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना चाहिए था। उस संबंध में, **सी.के. गंगाधरन और अन्य बनाम आयकर आयुक्त, (2008) 304 आईटीआर 61 (एससी)** में उच्चतम न्यायालय के एक और निर्णय पर भरोसा किया गया है।

27. **सी.के. गंगाधरन और अन्य (उक्त)**, के अनुपात पर निर्भरता व्यक्त करते हुए। इसे (वैकल्पिक रूप से) प्रस्तुत किया गया है, केवल इसलिए कि विभिन्न निर्धारितियों के प्रकरण में पारित न्यायाधिकरण के कुछ आदेशों को चुनौती नहीं दी गई होगी, और इस प्रकार इस न्यायालय के समक्ष परीक्षण नहीं किया गया है, इस कारण से कोई बाध्यकारी उदाहरण उत्पन्न नहीं हो सकती है। निर्धारिती न्यायाधिकरण के निष्कर्षों की शुद्धता को चुनौती देने का एक पूर्ण अधिकार रखता है क्योंकि कथित 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल किए गए माल के पुस्तक मूल्य में किए गए 10% जोड़ का दावा किया गया है।

28. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं, **एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त)** में इस न्यायालय की खंडपीठ के पहले के निर्णय के बाद से बहुत पानी बह चुका है। कोई भी संदेह जो उपलब्ध हो सकता है और कोई भी मुद्दा जिसे उस स्तर पर उपलब्ध माना जा सकता है, एलएंडटी प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के बाद के आधिकारिक निर्णय के दृष्टिगत विचार के लिए नहीं बचता है, वह निर्णय उच्चतम न्यायालय की एक वृहद पीठ/तीन-न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय है। किए गए संदर्भ के उत्तर पर (विशेष रूप से **के. रहेजा प्रकरण** में व्यक्त दृष्टिकोण की शुद्धता के रूप में), विवाद को **एलएंडटी प्रकरण** में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात द्वारा प्रस्तुत स्पष्टता के चश्मे के माध्यम से नहीं देखा जा सकता है।

29. उस निर्णय का उल्लेख करते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता निर्माण उद्योग में कार्य संविदा के संदर्भ में पुरजोर आग्रह करते हैं, मोटे तौर पर दो स्थितियां हैं। सबसे पहले, लेन-देन उत्पन्न होता है जहां एक भूमि स्वामी अपनी भूमि पर, अपने स्वयं के धन से, बिना किसी आवंटन के और किसी तीसरे पक्ष में कोई अधिकार या हित पैदा किए बिना निर्माण कर सकता है। वहां, भूमि स्वामी चाहता है और संबंधित विकास या अन्य प्राधिकरण द्वारा मंजूरी दी जाती है, ताकि प्रस्तुत और अनुमोदित योजना के अनुसार निर्माण बढ़ाया जा सके। निर्माण पूरा होने और उपयोग के लिए तैयार किए जाने से पहले ऐसे भूमि मालिकों द्वारा किसी भी इरादे या अनुबंध या 'आवंटन पत्र' या बेचने की पेशकश (किसी भी निर्माणाधीन इमारत या उसके हिस्से) के बिना अपने स्वयं के धन से निर्माण किया जाता है। दूसरा, एक प्रकार का लेनदेन है जहां तीसरे पक्ष के अधिकार बनाए जाते हैं और या हस्तक्षेप करते हैं, चाहे वह द्विपक्षीय अनुबंध या त्रिपक्षीय अनुबंध या किसी अन्य अनुबंध के माध्यम से हो जिसमें भूमि स्वामी के अतिरिक्त एक या एक से अधिक अन्य पक्ष/पक्षगण शामिल हों। उन स्थितियों में, आवंटन पत्र एक अन्य अनुबंध के परिणामस्वरूप जारी किया जाता है जिसे अक्सर निर्माणकर्ता अनुबंध या विकास अनुबंध आदि के रूप में वर्णित किया जाता है; जिसमें (i) कोई तीसरा पक्ष भूमि स्वामी के स्वामित्व वाली भूमि को विकसित करने के लिए सहमत हो सकता है या (ii) भूमि स्वामी स्वयं उन व्यक्तियों के साथ द्विपक्षीय अनुबंध कर सकता है जो अंततः उठाए जा रहे निर्माणों पर

कब्जा करने के लिए आ सकते हैं। किसी भी प्रकरण में, आवंटन पत्र जारी होने पर, एक 'कार्य अनुबंध' इसके जारी होने से पहले उत्पन्न नहीं होगा, विचार के विरुद्ध। उस प्रकरण में क्या आवास / भवन / भवन के हिस्से आदि के अंतिम स्वामी को एक आवंटी या आवेदक या संभावित क्रयकर्ता के रूप में वर्णित किया जाता है, मात्र नामकरण का मामला रहेगा। यह सृजित अधिकारों की प्रकृति को प्रभावित नहीं करेगा। एक बार जब निर्माण पर कब्जा करने का अधिकार ऐसे अन्य व्यक्तियों के पक्ष में उत्पन्न होता है (या तो भूमि स्वामी के साथ सीधे किए गए द्विपक्षीय अनुबंध के अंतर्गत या एक तरफ आवंटन के बीच त्रिपक्षीय अनुबंध के अंतर्गत, दूसरी तरफ भूमि स्वामी और विकासकर्ता के साथ, या एक समान संयुक्त उद्यम अनुबंध आदि के अंतर्गत), निर्माण को उठाने का अधिकार - सहमत विनिर्देश और सहमत समय अनुसूची में, एक सहमत भुगतान अनुसूची के विरुद्ध, स्वयं एक 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व को जन्म देगा।

30. आवंटन पत्र का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं, यह प्रकृति के अधिकारों का निर्माण करता है जो 'कार्य अनुबंध' को छोड़कर उत्पन्न नहीं हो सकता है। एक बार जब वह 'अनुबंध' उत्पन्न हो गया था और निर्माण उसके अनुसार उठाया गया था, तो 'कार्य अनुबंध' को अस्तित्व में लाने के लिए आवश्यक 'अनुबंध', स्पष्ट रूप से दिखाई देता है और पहचानने योग्य है। यह न तो अस्पष्ट है और न ही अनिश्चित है और न ही अनिर्दिष्ट है। इसकी शर्तें अच्छी तरह से

परिभाषित और लिखी गई हैं। उन शर्तों के लिए, निर्धारिती का कोई विवाद नहीं है। वास्तव में यह एक स्व-स्वीकृत अभिलेख है। इसकी प्रति निर्धारिती द्वारा पत्रावली पर लाए गए पूरक शपथपत्र के साथ भी संलग्न की गई है।

31. उस संदर्भ में और एल एंड टी प्रकरण में अनुपात के प्रकाश में, भूमि का स्वामित्व, आवंटन पत्र की शर्तों के अंतर्गत हस्तांतरण की कमी, निर्माण में विचलन की संभावना उत्तर प्रदेश राज्य में न तो निषिद्ध है और न ही विशेष रूप से विनियमित है (जैसा कि कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्यों में कोफा और मोफा के अंतर्गत किया गया था), विवाद के बाहर के मुद्दे बने रहेंगे। एक बार जब 'कार्य अनुबंध' को जन्म देने वाले 'अनुबंध' की पहचान हो जाती है और यह अस्तित्व में है, तो नियामक विधि की कमी और भूमि के हस्तांतरण की कमी से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। राजस्व जिस पर कर लगाना चाहता है, वह भूमि की विक्रय नहीं है (जो किसी भी प्रकरण में यह कभी नहीं कर सकता है), किन्तु इस तरह के 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल माल का मूल्य है। यह भी प्रासंगिक नहीं है कि क्या माल को आवंटन पत्र की शर्तों के अनुसार कड़ाई से शामिल किया गया था, अर्थात्, उठाए गए निर्माणों में विचलन के बिना, या भवन विधियों के संदर्भ में नोट किए गए कुछ विचलन के साथ। जहां तक आवंटी आवंटन पत्र की शर्तों के अनुपालन के आधार पर उठाए गए निर्माणों का पात्र रहेगा अर्थात् देय भुगतान के रूप में और जब देय हो, तो इसमें 'कार्य अनुबंध' में शामिल माल का हस्तांतरण शामिल

होगा। इसका मूल्य निर्धारिती को अधिनियम के अंतर्गत कर की वसूली के लिए उजागर करेगा।

32. एकमात्र स्थिति जहां 'कार्य अनुबंध' कर देयता समाप्त हो जाएगी, जैसा कि एल एंड टी प्रकरण में विचारित है- अर्थात्, जहां किए गए आवंटन को किसी भी पक्ष द्वारा रद्द कर दिया जाता है, जो भी कारण हो। उस स्थिति में, रद्द होने के बाद, किए गए निर्माण उसी पायदान पर खड़े होंगे जैसे कि स्वामी या निर्माणकर्ता द्वारा, जैसा भी मामला हो, अपने स्वयं के खाते पर उठाया गया हो। तथापि, निरस्तीकरण के चरण तक, उठाए गए निर्माण पर कार्य संविदा कर की वसूली की जाएगी।

33. तीसरा, यह प्रस्तुत किया गया है, निर्माणकर्ता और आवंटी स्वामी /या निर्माणकर्ता और आवंटी के बीच अनुबंध में शर्तों का 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व के साक्ष्य को नकारने या खंडन करने का प्रभाव नहीं होगा, जैसा कि अन्यथा उत्पन्न हुआ था, मुख्य रूप से आवंटन पत्र के बल पर। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 2 (एयू) के अंतर्गत 'कार्य अनुबंध' की परिभाषा के संदर्भ में 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन पर कर लगाने की आवश्यकता को पूरा किया गया था। एक बार जब उस परीक्षण को संतुष्ट देखा जाता है, तो जांच को विधि के परिणाम को समाप्त करना चाहिए, अर्थात् कर की वसूली विधि के आवश्यक संचालन से उत्पन्न होगी। यह लेन-देन के पक्षकारों के आगे के आचरण के अधीन या निर्भर नहीं रहेगा, अर्थात् एक ओर स्वामी और या निर्माणकर्ता और दूसरी ओर आवंटी।

इसका एकमात्र अपवाद आवंटन रद्द होने की घटना है। वहां, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 'कार्य अनुबंध' भंग हो जाएगा और उसके बाद उठाए गए निर्माण स्वामी या निर्माणकर्ता के स्वयं के निर्माण की स्थिति प्राप्त कर लेंगे, जैसा कि मामला हो सकता है, जैसा कि आवंटन रद्द होने के बाद उठाया / जारी रखा जा सकता है।

34. विधि कोई रीति उपलब्ध नहीं है जो पक्षकारों के बीच निजी विधि को वैधानिक विधि का उल्लंघन करने या उससे अधिक पहुंचने की अनुमति दे सकता है। चूंकि राजकोषीय कानून को 'कार्य अनुबंध' पर कर लगाने के लिए देखा जाता है, जैसा कि परिभाषित किया गया है, यह निर्धारित के लिए आवंटन पत्र में कृत्रिम खंडों को शामिल करने के लिए कभी भी उपलब्ध नहीं रहा क्योंकि यह वैधानिक रूप से असाधारण नियम के अपवाद का दावा करने की अनुमति दे सकता है - कर 'कार्य अनुबंध' के लिए।

35. किसी भी प्रकरण में, अचल संपत्ति के हस्तांतरण के संबंध में विधि और एक विलेख के पंजीकरण के लिए उसके अंतर्गत निर्धारित अनिवार्य आवश्यकताओं का कार्य अनुबंध पर कर लगाने पर कोई असर नहीं पड़ता है। यह विधि के एक अलग परिक्षेत्र में उपलब्ध है जिसमें अचल संपत्ति के हस्तांतरण को प्रमाणित करने वाला विलेख बनाया और पंजीकृत किया जा सकता है। धारा 2 (एयू) जानबूझकर ऐसा कुछ भी नियोजित नहीं करती है जो किसी भी निष्कर्ष को आकर्षित करने के लिए वारंट कर सकती है कि जब तक कि

निर्माणाधीन भवन के संबंध में बेचने के लिए एक वैध और पंजीकृत अनुबंध या पंजीकृत विक्रय विलेख पहले से उपलब्ध न हो, कोई 'कार्य अनुबंध' उत्पन्न नहीं हो सकता है। वास्तव में यह अनुबंध बेचने के लिए एक वैध अनुबंध या विक्रय विलेख से पहले होता है, जैसा भी मामला हो।

36. पुनः कोफा और मोफा के प्रावधान और के. रहेजा प्रकरण (उक्त) व एलएंडटी प्रकरण (उक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख करते हुए, यह कहा गया है कि उन वैधानिक विधियों के प्रावधान सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को नियंत्रित नहीं करते हैं। चूंकि उन प्रकरणों में उन प्रावधानों का भी हवाला दिया गया था, इसलिए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में चर्चा उभरी थी, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया था। हालांकि, उन अधिनियमों का एकमात्र उद्देश्य किसी ऐसे व्यक्ति/व्यक्तियों के हितों की रक्षा करना था, जिन्होंने बिल्डरों और या भूमि मालिकों के साथ एक अनुबंध किया हो, ताकि उन पर किए जा रहे निर्माण के भाग का आवंटन किया जा सके। गुणवत्ता, निर्माण की विशिष्टियों आदि के संबंध में ऐसी सुरक्षा प्रदान की गई थी।

37. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुनने और उसके बारे में विचार करने के बाद, पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले, अधिनियम के कुछ प्रावधानों को निकालना उपयोगी होगा। वर्तमान प्रकरण में शामिल मुद्दों के लिए प्रासंगिक, धारा 2

(एसी) के प्रावधान 'विक्रय' की परिभाषा है, 2 (एडी) 'विक्रय मूल्य' की परिभाषा है और 2 (एयू) 'कार्य अनुबंध' की परिभाषा है, निम्न प्रकार पढ़ी जाती हैं: -

"2 (एसी) "विक्रय " अपने व्याकरणिक विविधताओं और संज्ञानात्मक अभिव्यक्तियों के साथ, माल में संपत्ति का कोई हस्तांतरण (अन्यथा बंधक, अपबंधन, प्रभार या वचन के माध्यम से) एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को, नकद के लिए या आस्थगित भुगतान के लिए या किसी अन्य मूल्यवान विचार के लिए और इसमें शामिल हैं,

(i) एक हस्तांतरण, अन्यथा नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान विचार के लिए किसी भी सामान में संपत्ति के अनुबंध के अनुसरण में;

(ii) माल में संपत्ति का हस्तांतरण (चाहे माल के रूप में या किसी अन्य रूप में) एक अनुबंध के निष्पादन में शामिल है;

(iii) किराए की खरीद या किशतों द्वारा भुगतान की किसी अन्य प्रणाली पर माल की डिलीवरी;

(iv) किसी भी उद्देश्य के लिए किसी भी सामान का उपयोग करने के अधिकार का हस्तांतरण (चाहे निर्दिष्ट अवधि के लिए या नहीं) नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान प्रतिफल;

(v) किसी संघ या व्यक्तियों के निकाय द्वारा (चाहे निगमित हो या नहीं) किसी सदस्य को नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए माल की आपूर्ति;

(vi) आपूर्ति, किसी भी सेवा के माध्यम से या किसी अन्य तरीके से माल के किसी अन्य तरीके से, मानव उपभोग या किसी भी पेय (चाहे या नशीले हो) के लिए भोजन या कोई अन्य लेख होने के नाते, जहां ऐसी आपूर्ति या सेवा नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान विचार के लिए है, और उपखंड (i) के उपखंड (vi) के अंतर्गत किसी भी माल की ऐसी डिलीवरी, हस्तांतरण या आपूर्ति को उन सामानों का विक्रय माना जाएगा वितरण, हस्तांतरण या आपूर्ति करने वाला व्यक्ति और उस व्यक्ति द्वारा उन सामानों की खरीद जिसे ऐसी वितरण, हस्तांतरण या आपूर्ति की जाती है।

(विज्ञापन) "विक्रय मूल्य" से किसी माल की विक्रय के प्रतिफल के रूप में किसी डीलर को संदेय राशि, व्यापार में सामान्य रूप से प्रचलित प्रथा के अनुसार नकद छूट के रूप में अनुमत किसी राशि को कम करके अभिप्रेत है, किन्तु ऐसे माल के परिदान के समय या उससे पहले माल के संबंध में डीलर द्वारा की गई किसी बात के लिए प्रभारित कोई राशि भी शामिल है, जावक माल दुलाई या वितरण या उन प्रकरणों में स्थापना की लागत के अतिरिक्त जहां ऐसी लागत अलग से ली जाती है;

स्पष्टीकरण—

(i) ऐसे प्रकरण में जिसमें किसी डीलर द्वारा देय किसी शुल्क की कोई राशि एक अवधि के लिए स्थगित कर दी जाती है या ऐसे प्रकरण में जिसमें किसी शुल्क के भुगतान का बिंदु स्थानांतरित कर दिया जाता है, ऐसे शुल्क की राशि को विक्रय मूल्य का भाग माना जाएगा;

(ii) पैकिंग सामग्री की कीमत जिसमें कोई सामान पैक किया जाता है, को बेचे गए माल के विक्रय मूल्य का हिस्सा माना जाएगा;

(iii) किसी कार्य संविदा के निष्पादन में सम्मिलित माल में संपत्ति के अंतरण (चाहे माल के रूप में या किसी अन्य रूप में) के संबंध में माल का विक्रय मूल्य, श्रम और सेवाओं के लिए उपगत वास्तविक राशि, श्रम और सेवाओं की आपूर्ति से संबंधित लाभ की राशि और ऐसी अन्य राशियां जो ऐसे कार्य संविदा के संबंध में प्राप्त या प्राप्य कुल राशि से विहित की जाए, घटाए जाने के बाद निर्धारित की जाएगी; [देखिये नियम 9]

(iv) माल का उपयोग करने के अधिकार के हस्तांतरण के संबंध में, किसी भी उद्देश्य के लिए कोई सामान (चाहे निर्दिष्ट अवधि के लिए हो या नहीं) विक्रय मूल्य का अर्थ है माल का उपयोग करने के अधिकार के ऐसे हस्तांतरण के संबंध में प्राप्त या प्राप्य मूल्यवान प्रतिफल, किन्तु इसमें दंड के रूप में देय कोई राशि शामिल नहीं है या अनुबंध के उल्लंघन के लिए मुआवजे या क्षति के रूप में;

(v) लगाया गया कर या प्रभार्य विक्रय मूल्य का हिस्सा नहीं होगा;

(vi) विक्रय के समय नकद या व्यापार छूट, जैसा कि चालान से स्पष्ट है, को विक्रय मूल्य से बाहर रखा जाएगा, किन्तु छूट या प्रोत्साहन या छूट या पुरस्कार और इस तरह के किसी भी पूर्वव्यापी अनुदान को विक्रय मूल्य से बाहर नहीं रखा जाएगा; (एई)

.....

.....

(एयू) "कार्य संविदा" के अंतर्गत किसी भी चल या अचल संपत्ति के नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए, भवन निर्माण, निर्माण, प्रसंस्करण, निर्माण, स्थापना, फिटिंग, सुधार, पुनरीक्षण, मरम्मत या कमीशन करने के लिए कोई अनुबंध शामिल है।

38. अधिनियम की धारा 3 (vi) के अंतर्गत, 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल माल की विक्रय का कारोबार निर्धारित नियमों अर्थात् अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमावलियों के नियम 9 के अनुसार निर्धारित किया जाना है। नियमावली का नियम 9 निम्नानुसार है:

"9. फ्लैट क्रयकर्ताओं के संगठन को प्रवर्तक के शीर्षक के हस्तांतरण की अवधि

यदि फ्लैट क्रयकर्ताओं के संगठन को प्रमोटर के शीर्षक से अवगत कराने के लिए कोई अवधि तय नहीं की जाती है, तो प्रमोटर (शेष फ्लैटों के निपटान के अपने अधिकार के अधीन, यदि कोई हो) उस तारीख से चार

महीने के भीतर हस्तांतरण निष्पादित करेगा जिस पर सहकारी समिति या कंपनी पंजीकृत है या, जैसा भी मामला हो। फ्लैट लेने वालों का संघ विधिवत रूप से गठित किया जाता है। [जब एक प्रमोटर ने अधिनियम की धारा 2 द्वारा आवश्यक घोषणा को निष्पादित और पंजीकृत करके महाराष्ट्र अपार्टमेंट स्वामित्व अधिनियम, 1970 के प्रावधानों के लिए अपनी संपत्ति प्रस्तुत की है, और प्रत्येक अपार्टमेंट लेने वाले को एक अपार्टमेंट के संबंध में प्रमोटर के शीर्षक को बताने के लिए कोई अवधि सहमत नहीं है, तो प्रमोटर तारीख से चार महीने के भीतर प्रत्येक अपार्टमेंट लेने वाले के पक्ष में अपार्टमेंट के हस्तांतरण या विलेख को निष्पादित करेगा। अपार्टमेंट लेने वाले ने अपने अपार्टमेंट पर कब्जा कर लिया है।] प्रवर्तक सक्षम प्राधिकारी के पास धारा 11 की उपधारा (1) के अंतर्गत उसके द्वारा निष्पादित हस्तांतरण की एक प्रति इसके निष्पादन की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर दाखिल करेगा।

39. पुनः, इससे इनकार नहीं किया जा सकता है, वर्तमान प्रकरण के तथ्य एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त) में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पाए गए तथ्यों के समान हो सकते हैं। वहां भी, न्यायालय के समक्ष निर्धारिती/याचिकाकर्ता (फ्री-होल्ड) भूमि का स्वामी था। इसने गाजियाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा उसे हस्तांतरित की गई उस भूमि पर निर्माण का प्रस्ताव रखा। इसने उन निर्माणों का विज्ञापन किया जिससे निर्माण किए जाने वाले अपार्टमेंट बेचने का प्रस्ताव था। विभिन्न व्यक्तियों आदि द्वारा दर्शाई गई

रुचि की अभिव्यक्ति के प्रति, उस अभ्यावेदन के प्रति, इसने उन्हें आवंटन पत्र जारी किए थे। दूसरों के बीच, आवंटन के नियमों और शर्तों के अंतर्गत, इसे पक्षकारों के बीच निष्पादित किए जा रहे विक्रय विलेख के अधीन बनाया गया था। सामान्य क्षेत्र/सुविधाओं आदि के लिए प्रावधान भी इस शर्त के साथ किया गया था कि वह उक्त याचिकाकर्ता/निर्धारिती की संपत्ति रहेगी और आवंटिती तब तक कोई और अधिकार प्राप्त नहीं करेंगे जब तक कि उनके पक्ष में व्यक्तिगत पंजीकृत विक्रय विलेख का निष्पादन नहीं हो जाता। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि यह चुनौती स्वयं उत्तर प्रदेश व्यापार कर अधिनियम, 1948 के संदर्भ में उत्पन्न हुई थी। साथ ही, अधिनियम की धारा 2 (एयू) के अंतर्गत 'कार्य अनुबंध' की परिभाषा उत्तर प्रदेश व्यापार कर अधिनियम, 1948 की धारा 2 (एम) के अंतर्गत उस शब्द की परिभाषा के समरूप पाई जाती है।

40. उस संदर्भ में, खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया, 'कार्य अनुबंध' के अंतर्गत परिभाषित शब्द 'अनुबंध' का अर्थ या तो एक लिखित या निहित अनुबंध है। फिर, यह ध्यान दिया जा सकता है, वर्तमान निर्धारिती द्वारा जारी आवंटन पत्र के खंड 3, 5, 6, 12, 13, 14, 15 और 17 को निम्नानुसार पढ़ा जाए:

"3. प्रकृति और आवंटन का शीर्षक

3.1 उपर्युक्त गुप हाउसिंग प्रोजेक्ट नोएडा प्राधिकरण द्वारा दिनांक 30.07.2010 को पंजीकृत लीज डीड द्वारा आवंटित 20,000 वर्ग मीर के लीज होल्ड प्लॉट पर उठाया गया है और आवंटी नोएडा प्राधिकरण और कंपनी के

बीच निष्पादित उक्त लीज डीड में निहित सभी नियमों और शर्तों से बंधे रहेंगे। लीज डीड सब रजिस्ट्रार- III, नोएडा के पास पंजीकृत दस्तावेज संख्या 3193, पुस्तक संख्या 1, जिल्द संख्या 2017, पृष्ठ 127 से 168, दिनांक 30.07.2010 पर पंजीकृत है।

3.2 कि मुख्य पट्टे के नियमों और शर्तों के अनुसार, नोएडा प्राधिकरण द्वारा निष्पादित कंपनी, फ्लैट का आवंटन नोएडा प्राधिकरण, कंपनी और आवंटी (ओं) के बीच उप-पट्टा विलेख के निष्पादन के अधीन होगा, भूमि के संबंध में किन्तु सुपर संरचना एकमुश्त विक्रय के आधार पर होगी। हस्तांतरण विलेख का अभिलेख/शीर्षक बनाया जाएगा और तदनुसार पंजीकृत किया जाएगा।

3.3 कंपनी के पक्ष में नोएडा प्राधिकरण द्वारा निष्पादित पट्टा विलेख इसके निष्पादन की तारीख से 90 वर्ष की अवधि के लिए है, तदनुसार उप-पट्टा विलेख आवंटी (ओं) के पक्ष में निष्पादित किया जाना है, जो नोएडा प्राधिकरण द्वारा कंपनी के पक्ष में लीज डीड की समाप्ति तिथि के साथ समाप्त हो रहा है।

3.4 सब-लीज डीड/कन्वेयन्स डीड को केवल तभी निष्पादित किया जाएगा, जब आवंटी (ओं) ने पूर्ण और अंतिम भुगतान कर दिया हो, जिसमें अन्य सभी अतिरिक्त शुल्क शामिल हैं जो कंपनी को देय और देय हैं। सब-लीज डीड/कन्वेयन्स डीड के निष्पादन और फ्लैट का कब्जा सौंपने तक, फिएट का स्वामित्व कंपनी के पास निहित रहेगा।

5. विशिष्टता में परिवर्तन

यह कि कंपनी विनिर्देश शीट या जी ब्रोशर में उल्लिखित लोगों के अतिरिक्त अतिरिक्त/बेहतर विनिर्देश प्रदान कर सकती है या आवंटी (ओं) के फ्लैट के क्षेत्र को बढ़ा सकती है/घटा सकती है जैसा कि आवश्यक समझा जाता है या किसी भी पर्यवेक्षण परिस्थितियों के कारण या किसी तकनीकी कारण से अन्य आवंटी (ओं) के बड़े हित को सुविधाजनक बनाने के लिए, मूल दर पर मूल्य आनुपातिकता के समायोजन के अधीन।

6. परियोजना ऋण

6.1 आवंटी इस बात से सहमत है कि जब तक एक उप-पट्टा विलेख निष्पादित और पंजीकृत नहीं किया जाता है, तब तक कंपनी फ्लैट की स्वामी बनी रहेगी और उस पर निर्माण भी करेगी और यह आवंटन आवंटी (ओं) को कोई अधिकार या शीर्षक या ब्याज नहीं देगा, भले ही सभी भुगतान कंपनी द्वारा प्राप्त किए गए हों। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि कंपनी आवंटी (ओं) के ठेकेदार के रूप में किसी फ्लैट का निर्माण नहीं कर रही है, किन्तु दूसरी ओर कंपनी परिसर का निर्माण स्वयं कर रही है और विक्रय को फ्लैट के वास्तविक पूरा होने/फिनिशिंग/हैंडलिंग ओवर और सब-लीज डीड के निष्पादन के बाद ही माना जाएगा। कंपनी का पहला ग्रहणाधिकार होगा और फ्लैट पर उसके सभी देयताओं के लिए प्रभार होगा जो कंपनी को आवंटी (ओं) द्वारा देय और देय हो सकता है।

6.2 पक्षकारों द्वारा और उनके बीच यह सहमति, समझ और घोषणा की जाती है कि कंपनी उक्त परिसर के भूमि फ्लैट को गिरवी

रखने के बाद बैंकों/वितीय संस्थानों से उपरोक्त परिसर के निर्माण के लिए निर्माण वित्त मांग ऋण ले सकती है, हालांकि उक्त फ्लैट के संबंध में विक्रय विलेख आवंटियों के पक्ष में) निष्पादित किया जाएगा और उसी के पंजीकरण के समय सभी ऋणधारों से मुक्त पंजीकृत किया जाएगा, निर्माणकर्ता के फ्लैट से संबंधित।

6.3 आवंटी (ओं) से फ्लैट में किसी भी बदलाव के लिए किसी भी अनुरोध पर विचार नहीं किया जाएगा।

12. आवंटन का हस्तांतरण

12.1 फ्लैट का आवंटन प्रस्तावित ग्रुप हाउसिंग प्रोजेक्ट 'जेएम ऑर्चिड' में प्लॉट संख्या, जीएच-01/सी, सेक्टर-78, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर, यूपी में किया जाता है और आवंटन कंपनी की इस परियोजना के लिए मान्य है और कंपनी की किसी अन्य परियोजना में स्थानांतरित करने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

12.2 आवंटन के हस्तांतरण की अनुमति नहीं है, हालांकि इसे केवल असाधारण प्रकरणों में कंपनी के विवेक पर अनुमति दी जा सकती है, प्रशासनिक शुल्क @ _____ योग फ्लैट के सुपर एरिया के सरकारी करों के भुगतान के अधीन।

13. भुगतान योजना

13.1 आवंटी (ओं) को उसके द्वारा चुनी गई भुगतान योजना के अनुसार भुगतान करना

आवश्यक होगा जो अनुबंध (क) के साथ संलग्न है।

13.2 कि उप-पट्टा विलेख हस्तांतरण विलेख के पंजीकरण के लिए लागू स्टाम्प शुल्क और अन्य आकस्मिक शुल्कों से संबंधित लागतों का भुगतान कंपनी द्वारा कंपनी द्वारा मांग किए जाने पर कब्जे से पहले आवंटी (ओं) द्वारा अलग से किया जाएगा।

14. आवंटन रद्द करना और धन की जब्ती

भुगतान योजना का पालन करने के लिए आवंटी (ओं) की विफलता इस आवंटन को रद्द कर देगी और कंपनी किसी अन्य क्रयकर्ता को फ्लैट को फिर से आवंटित करने के लिए स्वतंत्र होगी। आवंटी (ओं) द्वारा आवंटन की समाप्ति या इसे रद्द करने पर, आवंटी (ओं) द्वारा अब तक जमा की गई राशि अन्य प्रभारों सहित फ्लैट की कुल लागत के 10% की कटौती करने के बाद बिना किसी ब्याज के वापस कर दी जाएगी, जिसे जब्त किया जा सकता है।

15. विलंबित भुगतान

15.1 आबंटिती यह सुनिश्चित करेंगे कि सभी भुगतान भुगतान भुगतान अनुसूची में निर्धारित नियत तारीख को या उससे पहले किए जाते हैं, ताकि आवंटन रद्द होने से बचा जा सके।

15.2 जहां भुगतान में देरी होती है, कंपनी अपने पूर्ण विवेक से विलंबित भुगतानों को स्वीकार करेगी, इस तरह के विलंब के लिए आवंटी (ओं) द्वारा पर्याप्त कारण दिखाए जाने पर। आवंटी (ओं) विलंबित भुगतान पर प्रति

वर्ष 18% ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा, किन्तु कोई देर से भुगतान स्वीकार नहीं किया जाएगा यदि डाउन पेमेंट प्लान के प्रकरण में लगातार तीन महीने की अवधि के लिए और अन्य भुगतान योजनाओं के प्रकरण में लगातार तीन किस्तों के लिए डिफॉल्ट जारी रहता है।

15.3 विलंबित भुगतान आवंटी (ओं) को पहले देय ब्याज के रूप में समायोजित किया जाएगा और उसके बाद शेष राशि को मूल राशि में समायोजित किया जाएगा।

17. आश्वासन

कि कंपनी मेसर्स जेएम हाउसिंग लिमिटेड एतद्वारा आवंटी (ओं) को आश्वासन देती है कि नोएडा प्राधिकरण को सभी भुगतान पूरी तरह से भुगतान किए जाएंगे और फ्लैट का कब्जा सौंपने से पहले या आवंटी के पक्ष में उप-पट्टा विलेख के निष्पादन से पहले कंपनी द्वारा स्वीकृति दे दी जाएगी।

41. इसी तरह के खंड (खंडपीठ द्वारा) एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त) के प्रकरण में उपलब्ध पाए गए थे। उस संदर्भ में, खंडपीठ ने नीचे देखा:

"21. पूर्वोक्त खंडों को पढ़ने से, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तावित विनिर्देश, योजना, मूल्य भुगतान, अनुसूची और लेआउट योजना को पक्षकारों द्वारा सहमति दी जानी है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को बैंकों/वित्तीय संस्थानों से परिसर के निर्माण के लिए निर्माण/वित्त/मांग ऋण जुटाने के लिए उक्त

परिसर की भूमि और अपार्टमेंट को गिरवी रखने का अधिकार दिया गया है। एकमात्र शर्त यह है कि विक्रय -विलेख को निष्पादित किया जाएगा और सभी ऋणधारों से मुक्त पंजीकृत किया जाएगा। आवंटियों को भुगतान अनुसूची का कड़ाई से पालन करना होता है जिसमें विफल रहने पर ब्याज के भुगतान के लिए देयता अर्जित होती है। आवंटियों को अपार्टमेंट में तब तक कोई अधिकार नहीं मिलता है जब तक कि एक विक्रय -विलेख निष्पादित और पंजीकृत नहीं किया जाता है और याचिकाकर्ता अपार्टमेंट का स्वामी बना रहता है और उस पर निर्माण भी जारी रहता है। आवंटन पत्र आवंटियों को कोई अधिकार, शीर्षक और ब्याज नहीं देते हैं, भले ही याचिकाकर्ता द्वारा पूर्ण भुगतान प्राप्त किया गया हो। याचिकाकर्ता को योजना, डिजाइन और विनिर्देश में बदलाव/पुनरीक्षण करने का अधिकार है और पूरी राशि के भुगतान पर ही कब्जा दिया जाना है। आवंटन पत्र के नियमों और शर्तों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है, हमारी राय है कि याचिकाकर्ता सभी निर्माणों सहित अपार्टमेंट/फ्लैटों का स्वामी बना हुआ है, जब तक कि विक्रय -विलेख निष्पादित नहीं किया जाता है और संभावित आवंटियों/क्रयकर्ताओं के पक्ष में पंजीकृत नहीं किया जाता है। संभावित आवंटियों/क्रयकर्ताओं द्वारा किस्तों का भुगतान याचिकाकर्ता द्वारा किए गए निर्माण में किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित को स्थानांतरित नहीं करता है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए निर्माण को संभावित आवंटियों/क्रयकर्ताओं के लिए और उनकी ओर से किए गए निर्माण के लिए नहीं कहा जा सकता है।"

42. इसके पश्चात, के. रहेजा प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विस्तृत विचार करने के बाद, खंडपीठ ने अंततः निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:

"26. उपर्युक्त प्रकरण में, अनुबंध में यह प्रावधान किया गया है कि मैसर्स के रहेजा विकास निगम अपनी ओर से विकासकर्ता के रूप में और ऐसे व्यक्ति के विकासकर्ता के रूप में फ्लैटों का निर्माण एक इकाई के रूप में करेगा जो अंततः ऐसे व्यक्ति से संबंधित होगा। उपर्युक्त प्रकरण में के. रहेजा विकास निगम उस व्यक्ति के लिए और उसकी ओर से इकाई का निर्माण कर रहा था जो फ्लैट खरीदने के लिए सहमत हुआ था। वर्तमान प्रकरण में, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता फ्लैट/अपार्टमेंट का निर्माण भावी आवंटियों के लिए और उनकी ओर से नहीं बल्कि अन्यथा कर रहा है। भुगतान अनुसूची लेनदेन को नहीं बदलेगी। निर्माण में अधिकार, शीर्षक और हित याचिकाकर्ता के पास बने हुए हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि निर्माण भावी आवंटियों के लिए और उनकी ओर से किए गए थे और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए निर्माण अधिनियम की धारा 3-एफ के साथ पठित धारा 2 के खंड (एम) के अंतर्गत नहीं आएंगे और अधिनियम के प्रावधानों के दायरे से बाहर हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें अधिनियम के अंतर्गत कर के अध्यधीन नहीं किया जा सकता है और ऐसे निर्माणों पर कर अधिरोपित करने की कार्रवाई उन्हें कार्य संविदा मानते हुए, पूर्णतः क्षेत्राधिकार के बिना है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि सहायक आयुक्त, व्यापार कर, सेक्टर I, नोएडा, प्रतिवादी संख्या

2 द्वारा पारित 24 मार्च, 2006 और 29 मई, 2006 के आक्षेपित आदेश, जहां तक वे अपार्टमेंट/घरों/फ्लैटों के निर्माण और अन्य निर्माण पर कर लगाने से संबंधित हैं, पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र हैं और उन्हें यथावत नहीं रखा जा सकता है और इस प्रकार इसे अपास्त किया जाता है।

43. यह भी उतना ही सत्य है, खंडपीठ के उपरोक्त निर्णय को उच्चतम न्यायालय ने अपील की विशेष अनुमति (सिविल).../2007 सीसी 11480-11481 (उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम मेसर्स एसोटेक रियलिटी प्रा. लि.) में अपास्त किया गया था। साथ ही, उच्चतम न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर खंडपीठ के तर्क को अस्वीकार नहीं किया। न्यायालय ने खंडपीठ के आदेश को रद्द करते हुए पक्षों को वैधानिक अपील मंच के माध्यम से गुण-दोष के आधार पर विवाद लड़ने का विकल्प दिया। उच्चतम न्यायालय ने केवल निम्नलिखित दृष्टिगत किया: -

"फ्लैट के आवंटियों को दिए गए अधिकार की प्रकृति क्या थी, किशतों के भुगतान के लिए क्या विचार था, क्या प्रतिवादी द्वारा निर्माण अपने खाते पर था या आवंटियों के लिए आदि। इन प्रश्नों पर रिट याचिका में निर्णय नहीं किया जा सकता।"

44. यह इस तरह के अवलोकन का प्रकाश है, मामला अपील मंच तक पहुंच गया, जहां यह भी प्रकट होता है, एसोटेक रियलिटी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त) द्वारा दायर अपील को न्यायाधिकरण द्वारा अनुमति दी गई। उत्तर

प्रदेश व्यापार कर अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा उस आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया गया था। फिर भी, 2012 के विक्रय /व्यापार कर पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 184 में पारित आदेश दिनांक 29.2.2012 के सादे पढ़ने से कोई अन्य या आगे निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। वह आदेश निम्नलिखित रूप में पढ़ा जाता है:

"दर्शित कारण पर्याप्त हैं; पुनरीक्षण योजित करने में हुए विलंब को क्षमा किया जाता है। राज्य द्वारा यह पुनरीक्षण न्यायाधिकरण के दिनांक 14-12-2010 के आदेश के विरुद्ध कर निर्धारण वर्ष 2004-05 के लिए दायर किया गया है। संदर्भित विधि का प्रश्न इस प्रकार है :-

"क्या तथ्यों और प्रकरण की परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण ने कानूनी रूप से फ्लैटों के निर्माण और विक्रय पर मूल्यांकन अधिकारी द्वारा बनाई गई कर देयता को रद्द करने में उचित ठहराया है, जो लेनदेन को कार्य अनुबंध के रूप में मानते हैं?"

न्यायाधिकरण ने निष्कर्ष लेखबद्ध किए हैं कि निर्धारिती ने अपनी ओर से फ्लैट बनाए थे और यहां तक कि अपने दम पर स्टांप शुल्क का भुगतान भी किया है और इसलिए, यह मामला अधिनियम की धारा 3 एफ के अंतर्गत आच्छादित नहीं किया गया है।

न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए विधि का कोई प्रश्न

नहीं उठता। इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है, इसे निरस्त किया जाता है।

श्री सुयश अग्रवाल निर्धारिती की ओर से उपस्थित हुए हैं।"

45. न तो वर्तमान में उठाए जा रहे मुद्दे और गंभीरता से (इन कार्यवाहियों में) चर्चा की गई और न ही कोई निष्कर्ष निकला जो वर्तमान प्रकरण में इस न्यायालय को बाध्य कर सकता है। उस पुनरीक्षण पर विचार करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश ने केवल यह देखा कि न्यायाधिकरण ने एक निष्कर्ष दर्ज किया था कि निर्धारिती (उस प्रकरण में) ने अपनी ओर से फ्लैटों का निर्माण किया था और उसने अपने खाते पर स्टांप शुल्क का भुगतान किया था। न्यायाधिकरण का तर्क होने के नाते, न्यायालय ने केवल यह देखा - ऐसे तथ्यों में विधि का कोई प्रश्न नहीं उठता।

46. उस पुनरीक्षण में राजस्व द्वारा उठाए गए विधि के प्रश्न पर विचार करते हुए, न्यायालय द्वारा इसे निरस्त करने हेतु दिए गए तर्क, ठोस नहीं हैं। यह कभी भी दृढ़ विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय ने उसके समक्ष उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने का विकल्प चुना था। यह ध्यान दिया जा सकता है, इस न्यायालय के पास न्यायाधिकरण के आदेशों पर अपील क्षेत्राधिकार नहीं है। यह केवल पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। इस प्रकार, यह केवल विधि के प्रश्नों का उत्तर देना चाहता है जो न्यायाधिकरण द्वारा किए गए तथ्यों पर किसी भी निर्णय से उत्पन्न हो सकते हैं - अंतिम तथ्य खोजने

वाला प्राधिकरण, दोनों उत्तर प्रदेश व्यापार कर अधिनियम एवं अधिनियम के अंतर्गत।

47. विधि के एक प्रश्न का निर्णायक रूप से उत्तर देने के लिए, इसे सतह पर उपलब्ध दोनों होना चाहिए, और इसका उत्तर न्यायालय द्वारा दिए गए चर्चा और तर्क के भीतर होना चाहिए - उस प्रश्न का उत्तर देते समय, इसके समक्ष उठाया गया। केवल यह कहते हुए - न्यायाधिकरण द्वारा लेखबद्ध किए गए निष्कर्षों के दृष्टिगत विधि का कोई प्रश्न नहीं उठता कि निर्माण अपने खाते पर उठाया गया था, न्यायालय की कभी इच्छा नहीं थी और यह कभी भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि उसने अपने समक्ष उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया। वास्तव में, इस तरह के आदेश न्यायालय के समक्ष उठाए गए विधि के एक प्रश्न का उत्तर देने से इनकार करने के आदेश हैं। वे पारित किए जाते हैं जहां भी और जब भी न्यायालय को पता चलता है कि विधि का प्रश्न उसके समक्ष उठाया गया हो सकता है, अस्तित्व में नहीं है या उत्पन्न नहीं होता है। शास्त्रीय रूप से, यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष उसके सामने रखी गई सामग्री और साक्ष्य के बल पर निष्कर्ष निकाले गए तथ्य के निष्कर्ष पाए जाते हैं।

48. उस के आलोक में, विद्वान एकल-न्यायाधीश का आदेश दिनांकित 20.9.2012 से कोई अंतर नहीं है। क्या विद्वान एकल न्यायाधीश की यह टिप्पणी कि न्यायाधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को देखते हुए विधि का प्रश्न नहीं उठता है, सही माना जाता

है या नहीं, एक अकादमिक मुद्दा है। जहां तक यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि इस न्यायालय ने अपने स्वयं के तर्क के बल पर उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने का विकल्प चुना और जहां तक यह नहीं देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने कभी तर्क दिया था कि आवंटन पत्र आदि के बल पर कोई 'कार्य अनुबंध' उत्पन्न नहीं हुआ था, उस निर्णय पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। निर्णय वही है जो यह कहता है और कुछ नहीं। यह केवल तथ्यों पर निर्णय है। यह किसी भी बाध्यकारी मिसाल बनाने के बिना, केवल उस विवाद के लिए पक्षकारों को बाध्य कर सकता है।

49. **एक्सप्रेस प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड (उक्त)** के प्रकरण में खंडपीठ का अन्य निर्णय और **सुपरटेक लिमिटेड नोएडा (उक्त)** में विद्वान एकल न्यायाधीश का अभी भी अन्य निर्णय, प्रभाव में स्पष्ट हैं। वे केवल राजस्व अधिकारियों और अपील अधिकारियों पर लागू करना चाहते हैं - **के रहेजा प्रकरण** और **एल एंड टी प्रकरण** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अनुपात। **एक्सप्रेस प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड (उक्त)** और **सुपरटेक लिमिटेड नोएडा (उक्त)** दोनों के प्रकरण में, न्यायालय ने प्रकरण को वैधानिक अधिकारियों को वापस भेज दिया, **के. रहेजा प्रकरण** और **एल एंड टी प्रकरण** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में, उन प्रकरणों के व्यक्तिगत अनुबंधों और तथ्यों पर विचार करने के लिए उन्हें खुला छोड़ दिया। इसलिए, इस तरह के निर्णयों के आधार पर यह कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि इस न्यायालय द्वारा कोई

बाध्यकारी निर्णय किया गया था कि क्या इसी तरह के अनुबंधों ने 'कार्य अनुबंध' को जन्म दिया या नहीं। न्यायालय ने जो कुछ भी तय किया, वह यह था कि इस प्रकरण में वैधानिक अधिकारियों द्वारा पक्षकारों के वास्तविक इरादे और इसके परिणामों के रूप में विचार करने की आवश्यकता थी जो 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व या अन्यथा के रूप में थे।

50. इससे पहले कि हम उच्चतम न्यायालय द्वारा **के. रहेजा प्रकरण** और **एलएंडटी प्रकरण** के निर्णयों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ें, अधिनियम की धारा 2 (एयू) की भाषा पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा। 'कार्य अनुबंध' शब्द को परिभाषित करने में, विधायिका ने नकदी आदि के लिए किए जाने के लिए 'किसी भी अनुबंध' को शामिल करने के लिए चुना है - 'किसी भी चल या अचल संपत्ति' का 'भवन निर्माण'। वर्तमान तथ्यों में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि 'नकदी' या 'मूल्यवान प्रतिफल' को आवंटियों द्वारा निर्धारिती को पारित किया गया था - एक 'अचल संपत्ति' के निर्माण या विनिर्माण के लिए। आवासीय फ्लैटों के विक्रय के प्रयोजनों के लिए निर्माण निस्संदेह उन शर्तों को पूरा करेगा। इसलिए इस न्यायालय के समक्ष लाए गए विवाद के उत्तर के लिए महत्वपूर्ण है - क्या निर्धारिती द्वारा जारी आवंटन पत्र अधिनियम की धारा 2 (एयू) के प्रयोजनों के लिए एक 'अनुबंध' का गठन करता है।

51. दिलचस्प रूप से, इसका उपयोग विधायिका द्वारा 'कार्य अनुबंध' के संदर्भ में किया गया है, और अधिनियम के अंतर्गत

व्यक्त किसी भी विपरीत इरादे के अभाव में और किसी भी मान्यता प्राप्त सिद्धांत के अभाव में, इसके विपरीत, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के अंतर्गत संदर्भित इसकी परिभाषा को देखना पूरी तरह से प्रासंगिक है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 निम्नानुसार पढ़ा जाता है: -

"2. निर्वचन खंड इस अधिनियम में निम्नलिखित शब्दों और पदों का निम्नलिखित भावों में प्रयोग किया गया है, जब तक कि संदर्भ से प्रतिकूल आशय प्रतीत न हो-

(क) जब कि एक व्यक्ति, किसी बात को करने या करने से प्रविरत रहने की अपनी रजामन्दी किसी अन्य को इस दृष्टि से संज्ञापित करता है कि ऐसे कार्य या प्रविरति के प्रति उस अन्य की अनुमति अभिप्राप्त करे तब वह प्रस्थापना करता है, यह कहा जाता है;

(ख) जब कि वह व्यक्ति, जिससे प्रस्थापना की जाती है उसके प्रति अपनी अनुमति संज्ञापित करता है तब वह प्रस्थापना प्रतिगृहीत हुई कही जाती है। प्रस्थापना प्रतिगृहीत हो जाने पर वचन हो जाती है;

(ग) प्रस्थापना करने वाला व्यक्ति, "वचनदाता" कहलाता है और प्रस्थापना प्रतिगृहीत करने वाला व्यक्ति "बचनगृहीता" कहलाता है;

(घ) जब कि बचनदाता की वांछा पर वचनगृहीता या कोई अन्य व्यक्ति कुछ कर चुका है या करने से विरत रहा है, या करता है या करने से प्रविरत रहता है, या करने का या करने से प्रविरत रहने का वचन देता है, तब ऐसा कार्य या प्रविरति या वचन उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है,

(ड) हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो, करार है,

(घ) वे वचन जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल या प्रतिफल का भाग हों, व्यक्तिकारी वचन कहलाते हैं

(छ) वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय न हो, शून्य कहलाता है;

(ज) वह करार, जो विधितः प्रवर्तनीय हो, संविदा है,

(झ) वह करार, जो उसके पक्षकारों में से एक या अधिक के विकल्प पर तो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो, किंतु अन्य पक्षकार या पक्षकारों के विकल्प पर नहीं, शून्यकरणीय संविदा है;

(ञ) जो संविदा विधितः प्रवर्तनीय नहीं रह जाती वह तब शून्य हो जाती है जब वह प्रवर्तनीय नहीं रह जाती

52. उस वैधानिक संदर्भ की पृष्ठभूमि में, यह भी पक्षकारों के बीच विवादित नहीं है कि भूमि के स्वामी के रूप में निर्धारिती ने विकास प्रारंभ किया, जिसमें 'जेएम आर्किड' के रूप में वर्णित 681 आवासीय अपार्टमेंट का निर्माण शामिल था। यह कहा जाता है कि यह उद्यम निर्धारिती द्वारा अपने स्वयं के खाते पर प्रारंभ किया गया था। फिर भी, एक ही समय में, यह निर्विवाद है, विचाराधीन निर्धारण वर्ष काल में, निर्माणाधीन ऐसे निर्माणाधीन आवासीय अपार्टमेंट में से 403 पहले ही बुक किए जा चुके थे और तीसरे पक्ष को आवंटित किए गए थे। यह निर्धारिती का अपना मामला है कि ऐसी बुकिंग उन 403 आवंटियों में से प्रत्येक को जारी किए गए व्यक्तिगत आवंटन पत्रों द्वारा प्रमाणित की गई थी।

53. इस प्रकार जारी किए गए आवंटन पत्रों की शर्तों के अनुसार, निर्धारिती के अनुसार, वे आवंटन पत्रों में निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार थे। इस न्यायालय के समक्ष पत्रावली पर प्रस्तुत किए गए पूरक शपथपत्र में एक प्रोफार्मा आवंटन पत्र भी जोड़ा गया है। इसकी सामग्री पहले ही ऊपर नोट की जा चुकी है। उसी के सादे पढ़ने से पक्षकारों की इच्छा स्पष्ट रूप से सामने आती है - निर्धारिती ने विक्रय के लिए अलग-अलग अपार्टमेंट की पेशकश की और आवंटन पत्र में पूरी तरह से वर्णित है। टावर संख्या, फ्लैट संख्या, फ्लोर संख्या, सुपर एरिया आदि का विवरण स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया था। भुगतानों के संबंध में, खंड 13 विशिष्ट है। इसके लिए योजना के अनुसार भुगतान करने की आवश्यकता थी जैसा कि व्यक्तिगत आवंटि द्वारा चुना गया हो।

54. आवंटन पत्र के खंड 14 में आगे कहा गया है, भुगतान योजना का पालन करने में विफलता आवंटन को रद्द करने के लिए आवंटि को अग्रसारित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, खंड 15 में संबंधित भुगतान योजना के अंतर्गत देय किस्त के भुगतान में चूक की स्थिति में ब्याज के भुगतान का प्रावधान किया गया है। तत्पश्चात्, खण्ड 12 में कतिपय शर्तों को पूरा करने पर आवंटि के कहने पर आवंटन के अंतरण पर विचार किया गया। इसके अतिरिक्त, खंड 17 के अंतर्गत, निर्धारिती ने आवंटितियों को आश्वासन दिया, यह आवंटि के पक्ष में उप-पट्टा विलेख के निष्पादन से पहले और आवंटित फ्लैट के कब्जे को सौंपने से पहले नोएडा को सभी देय भुगतान करेगा और। विभिन्न अन्य खंडों को

भी आवंटन पत्र का अभिन्न अंग बनाया गया था। यद्यपि इसका विस्तृत संदर्भ यहां नहीं दिया जा सकता है, साथ ही, यह संक्षेप में नोट किया जा सकता है, कार पार्किंग सुविधा, मनोरंजन सुविधाओं और केंद्र, कब्जे की अवधि, सेवा कर के भुगतान, सामान्य क्षेत्रों आदि के संबंध में विशिष्ट खंड उपलब्ध हैं। संयुक्त रूप से पढ़ने पर, वे निर्धारिती और आवंटियों द्वारा किए गए वादों के आपसी समन्वय के अस्तित्व को सामने लाते हैं, जिससे संबंधित देनदारियां और अधिकार पैदा होते हैं। ऐसे सभी वादे, देनदारियां और अधिकार उचित विचार के विरुद्ध उत्पन्न होते हैं। प्रतिफल का भुगतान न करने के परिणाम आवंटन पत्र को रद्द करने के माध्यम से भी प्रदान किए जाते हैं। इसलिए, आवंटन पत्र स्पष्ट रूप से एक अभिलेख है जिसे संविदा अधिनियम के अंतर्गत 'अनुबंध' के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसलिए विचार के लिए क्या बचता है, क्या इस तरह के 'अनुबंध' और निर्धारिती द्वारा उठाए गए निर्माण के बीच संबंध उपलब्ध है, क्योंकि उस अवधि के अर्थ के भीतर 'अनुबंध' अधिनियम की धारा 2 (एयू) के अंतर्गत 'कार्य अनुबंध' होने के लिए अर्हता प्राप्त कर सकता है। अस्वीकार्यता के अभाव में, बल्कि, 'आवंटन पत्र' के निष्पादन और इसके जारी रहने के रूप में अचूक प्रवेश के सामने, यह तथ्य कि इसे पंजीकृत नहीं किया गया था, आदि विवाद के लिए असंगत रहेगा।

55. यद्यपि न्यायालय ने उस मुद्दे का मूल्यांकन करने के लिए नए सिरे से कार्य किया होगा, साथ ही, के रहेजा प्रकरण और

एल एंड टी प्रकरण में उच्चतम न्यायालय की घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए, यह कवायद न तो वांछनीय है और न ही आवश्यक है। के. रहेजा प्रकरण में, उच्चतम न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ को इस मुद्दे का सामना करना पड़ा कि क्या उस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता विक्रय कर अधिनियम के अर्थ के भीतर 'डीलर' थे और इसलिए उस अधिनियम के अंतर्गत टर्नओवर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे। प्रकरण के तथ्य, जैसा कि निर्णय के पैराग्राफ संख्या 2 में उल्लेख किया गया था, - अपीलकर्ता के. रहेजा रियल एस्टेट विकास का व्यवसाय कर रहे थे। इसने भूमि के विभिन्न मालिकों के साथ विकास अनुबंध किए। योजनाओं की मंजूरी पर, भूमि के ऐसे भूखंडों पर आवासीय और वाणिज्यिक निर्माण किए गए थे। उस संदर्भ में, विक्रय विलेख के समझौतों को उन पक्षों के बीच दर्ज किया गया था जो भूमि में अविभाजित हित के साथ विधिवत निर्मित आवास भी क्रयकर्ताओं को सौंपने पर विचार कर रहे थे।

56. ऐसे में उस निर्णय में यह नोट किया गया था कि भूमि का स्वामी कोफा के अंतर्गत गठित सोसायटियों को भूमि का मालिकाना हक हस्तांतरित करेगा। उस हद तक, उस प्रकरण के तथ्यों और वर्तमान प्रकरण में स्पष्ट रूप से अंतर उपलब्ध था। इधर, निर्धारिती को पट्टे पर दी गई भूमि पर निर्माण करते हुए पाया गया है। साथ ही, निर्माण पूरा होने पर भी, केवल एक उप-पट्टे को निष्पादित करने पर विचार किया जाता है, निर्धारिती द्वारा आवंटि के पक्ष में और किसी सोसायटी के पक्ष में नहीं। हालांकि, निर्धारिती के लिए उपस्थित

होने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अपने तर्क में पूरी तरह से सही नहीं हो सकते हैं कि वर्तमान आवंटन पत्र में भूमि में पट्टा अधिकार के हस्तांतरण के लिए कोई खंड नहीं है। चूंकि विचाराधीन भूमि नोएडा द्वारा निर्धारिती को 90 वर्षों की अवधि के लिए पट्टे पर दी गई है, इसलिए आवंटन पत्र [(विशेष रूप से खंड 3(2) के माध्यम से], भूमि में हित के संबंध में नोएडा प्राधिकरण और निर्धारिती और आवंटी के बीच उप-पट्टा विलेख के निष्पादन की बात करता है। ऐसी भूमि पर केवल सुपर स्ट्रक्चर का निर्माण किया गया है अर्थात् आवासीय फ्लैटों को एकमुश्त विक्रय आधार पर बेचे जाने का प्रस्ताव है।

57. उन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और आगे निर्विवाद तथ्य यह है कि कर्नाटक विक्रय कराधान अधिनियम की धारा 2 (1) (v-i) के प्रावधान अधिनियम की धारा 2 (एयू) के अंतर्गत 'कार्य अनुबंध' की परिभाषा के बराबर थे, यह प्रासंगिक है, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन भी किया:

"हमने पक्षकारों को सुना है, विभिन्न दस्तावेजों का अवलोकन किया है और बार में उद्धृत प्रकरणों पर विचार किया है। जैसा कि श्री हेगड़े द्वारा ठीक ही कहा गया है, उक्त अधिनियम में कार्य संविदा शब्द की परिभाषा एक समावेशी परिभाषा है। इसमें केवल एक कार्य अनुबंध शामिल नहीं है जैसा कि सामान्य रूप से समझा जाता है। यह एक व्यापक परिभाषा है जिसमें नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए भवन या निर्माण गतिविधि करने के लिए "कोई अनुबंध "

शामिल है। परिभाषा इस आधार पर भेद नहीं करती है कि निर्माण गतिविधि कौन करता है। इस प्रकार संपत्ति के स्वामी को भी एक कार्य अनुबंध पर ले जाने के लिए कहा जा सकता है यदि वह नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान विचार के लिए निर्माण करने के लिए एक अनुबंध में प्रवेश करता है। इसलिए, हमें इस सवाल में जाने की आवश्यकता नहीं है कि क्या अपीलकर्ता स्वामी हैं क्योंकि भले ही अपीलकर्ता इस हद तक स्वामी हों कि उन्होंने नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान विचार के लिए किसी और की ओर से निर्माण गतिविधि करने के लिए अनुबंध किए हों, वे एक कार्य अनुबंध कर रहे होंगे और इसमें शामिल माल में संपत्ति के हस्तांतरण पर टर्नओवर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हो जाएंगे इस तरह के काम अनुबंध करते हैं। इसके अतिरिक्त, उक्त अधिनियम के अंतर्गत आवासीय फ्लैटों अथवा वाणिज्यिक इकाइयों के निर्माण में कोई भेद नहीं है। इस प्रकार, उक्त अधिनियम में शब्द के अर्थ के भीतर एक कार्य अनुबंध, वाणिज्यिक इकाइयों के निर्माण के लिए भी हो सकता है। इस बात पर विचार करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या अनुबंध में एक कार्य अनुबंध है या नहीं, कर्नाटक स्वामित्व फ्लैट (निर्माण, विक्रय , प्रबंधन और हस्तांतरण को बढ़ावा देने का विनियमन) अधिनियम, 1974 के प्रावधानों की कोई प्रासंगिकता नहीं होगी।"

58. सर्वोच्च न्यायालय का उपरोक्त तर्क वर्तमान प्रकरण में निर्णय के प्रयोजनों के लिए प्राथमिक महत्व रखता है, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने भूमि में स्वामित्व और उसके

हस्तांतरण से उत्पन्न प्रस्तुतियों को नकार दिया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से तर्क दिया - इस प्रश्न में जाने की आवश्यकता नहीं थी कि क्या निर्धारिती के. रहेजा भूमि का स्वामी था। जिस हद तक, के. रहेजा ने दूसरों के लिए निर्माण गतिविधि करने के लिए एक अनुबंध किया होगा, यह एक 'कार्य अनुबंध' को पूरा करेगा। इसलिए यह उस पर कर के दायित्व के दायरे में होगा। पुनः, स्पष्ट शब्दों में, उच्चतम न्यायालय ने स्वयं योग्य बनाया - कोफा के प्रावधान निर्माण या 'कार्य अनुबंध' के मुद्दे के लिए प्रासंगिक नहीं थे। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई है जबकि वह इस मुद्दे से सीधे निपट रहा था, कोफा और मोफा के बल पर उत्पन्न होने वाली प्रस्तुतिकरण गलत है। आवंटन के प्रभाव के लिए की जाने वाली व्याख्या पर न्यायालय द्वारा इस पर विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं है। उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए उस तर्क को ध्यान में रखते हुए, उत्तर प्रदेश राज्य में कोफा और मोफा जैसे किसी समानांतर अधिनियमन की कमी इस मुद्दे के लिए स्पष्ट रूप से असंगत है।

59. अतः, उक्त रिपोर्ट के पैरा 20 में, यह निम्नानुसार देखा गया था:

"इस प्रकार अपीलकर्ता संभावित क्रयकर्ता के लिए डेवलपर्स के रूप में निर्माण करने का उपक्रम कर रहे हैं। ऐसा निर्माण/विकास अनुबंध में निर्धारित विभिन्न किस्तों में मूल्य के भुगतान पर किया जाना होता है। चूंकि अपीलकर्ता स्वामी नहीं हैं, इसलिए वे संपत्ति पर "ग्रहणाधिकार" का दावा करते हैं। बेशक,

खंड 7 के अंतर्गत उन्हें अनुबंध को समाप्त करने और क्रेता द्वारा उल्लंघन किए जाने पर इकाई के निस्तारण का अधिकार है।

हालांकि, केवल इस तरह के खंड होने का मतलब यह नहीं है कि अनुबंध उक्त अधिनियम में फर्म के अर्थ के भीतर एक कार्य अनुबंध नहीं रह जाता है। इसका मतलब यह है कि यदि कोई समाप्ति होती है और उस विशेष इकाई को फिर से नहीं बेचा जाता है, किन्तु अपीलकर्ताओं द्वारा बनाए रखा जाता है, तो उस हद तक कोई कार्य अनुबंध नहीं होगा। किन्तु जब तक कोई समाप्ति नहीं होती है, तब तक निर्माण क्रेता के लिए और उसकी ओर से होता है। इसलिए, यह उक्त अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित शब्द के अर्थ के भीतर एक कार्य अनुबंध बना हुआ है। यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि यदि अनुबंध पहले से ही नहीं या इकाई के निर्माण के बाद किया जाता है, तो कोई कार्य अनुबंध नहीं होगा। किन्तु जब तक निर्माण पूरा होने से पहले अनुबंध किया जाता है, तब तक यह एक कार्य अनुबंध होगा।

60. अनुबंध की शर्तों को देखने के बाद जो उन लोगों के समान हैं वर्तमान प्रकरण में विवाद का सार बनाते हुए, यह देखा जाता है - यहां भी, निर्धारिती आवासीय आवास का निर्माण कर रहा था। यद्यपि इसने अपने स्वयं के खाते पर उस निर्माण गतिविधि को प्रारंभ किया हो सकता है, साथ ही, इसने बड़े पैमाने पर जनता से प्रस्ताव आमंत्रित किए और लिखित रूप में सहमत शर्तों के विरुद्ध विशेष व्यक्तियों से ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार किया।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आवंटियों और निर्धारिती द्वारा विस्तारित वादों के एक आपसी सेट पर, आवंटन पत्र की शर्तों और 'कार्य अनुबंध' को जन्म देने वाले 'अनुबंध' उत्पन्न हुए। इस प्रकार, दूसरों के बीच, इसमें एक भुगतान योजना शामिल थी, जिसका पालन उस व्यक्तिगत आवंटि के पक्ष में निरंतर आवंटन के लिए एक अनिवार्य शर्त थी। तथ्य यह है कि निर्धारिती को आवंटन रद्द करने का अधिकार था और आगे तथ्य यह है कि निर्माण में शीर्षक उठाया जा रहा है और भूमि में ब्याज भविष्य की तिथि पर स्थानांतरित किया जाएगा (उचित पट्टा विलेख और विक्रय विलेख के निष्पादन पर), उत्पन्न होने वाले 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व को, आवंटन पत्र के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में विचलित नहीं करेगा।

61. 'कार्य अनुबंध' शब्द की परिभाषा समावेशी है और अनन्य नहीं है। चूंकि इसमें लिखित और निहित दोनों अनुबंध शामिल हैं, इसलिए ऐसे अनुबंधों को पक्षकारों द्वारा प्रस्तावित स्वीकृत आचरण के परिणामस्वरूप भी अनुमान लगाया जा सकता है, जिसमें निर्धारिती ने निर्माण करने और आवंटि के अनन्य लाभ, उपयोग / और पात्रता के लिए समान वितरित करने के लिए भुगतान शर्तों की प्रस्तुति की थी। विकास प्राधिकरण से स्वीकृति प्राप्त करने के बाद अपनी स्वयं की निधि से अपनी भूमि पर निर्माण प्रारंभ करने के लिए निर्धारिती का मूल स्वतंत्र अधिनियम बहुत कम परिणाम होगा, और किसी भी प्रकरण में असंगत होगा, क्योंकि निहित 'कार्य अनुबंध' न केवल अनुमेय था, बल्कि निर्माण प्रारंभ होने की तिथि के

उपरांत भी उत्पन्न हुआ। उसके बाद से, निर्धारिती आवंटन पत्र के निर्वाह के दौरान 'कार्य अनुबंध' कर देयता के संपर्क में आ जाएगा। इस तरह के 'कार्य अनुबंध' निर्माण गतिविधि के आरंभ के उपरांत उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने देखा - व्यक्तिगत आवंटन को रद्द करने पर भी (उत्पन्न होने के बाद) समाप्त हो सकता है।

62. उस प्रकाश में देखा जाए, तो ऐसा नहीं है कि किसी भवन को या तो विशेष रूप से स्वयं के खाते पर या 'कार्य अनुबंध' के अंतर्गत निर्मित किया जा सकता है। यह भी नहीं है कि स्वयं के खाते पर या 'कार्य अनुबंध' के माध्यम से निर्माण की शुरुआत पूरी तरह से 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल माल के हस्तांतरण की कर योग्यता को बाहर कर सकती है या निर्धारित कर सकती है। यह एक गतिशील अवधारणा बनी रहेगी। कर निर्धारण प्राधिकारी को प्रत्येक कर निर्धारण वर्ष में प्राप्त व्यक्तिगत तथ्यों पर वर्ष-दर-वर्ष इस मुद्दे की जांच करनी होगी। इस प्रकार, उदाहरण के रूप में, निर्धारिती द्वारा किए जा रहे कुल विकास का एक हिस्सा एक इकाई / फ्लैट से कम नहीं है, या तो निर्धारिती के स्वयं के खाते पर या आवंटि की ओर से 'कार्य अनुबंध' के माध्यम से एक वर्ष में निर्माण किया जा सकता है या निर्माण जारी रखा जा सकता है और वह स्थिति पूरी तरह से उलट हो सकती है अर्थात्, अगले वर्ष में, आवंटन पत्र के अस्तित्व और या निरंतरता के आधार पर। केवल प्रतिबंध जो उत्पन्न हो सकता है वह यह है कि एक बार अपार्टमेंट पूरा हो जाता है

और उसमें शामिल माल का पूरा मूल्य एक आकलन वर्ष में ऐसे फ्लैट में शामिल हो जाता है, वह स्थिति अगले वर्ष में नहीं बदल सकती है। यह बात भी उच्चतम न्यायालय ने के. रहेजा प्रकरण में ही स्पष्ट रूप से कही है।

63. उस निर्णय के सही होने पर उच्चतम न्यायालय की दो अन्य न्यायमूर्तिगण की खण्डपीठ ने संदेह प्रकट किया था। इस प्रकार, एलएंडटी प्रकरण में, मामला उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ को भेजा गया। फिर, उस प्रकरण में, एलएंडटी एक विकासकर्ता था जो एक व्यक्ति के स्वामित्व वाली भूमि पर विकास के रूप में वर्णित निर्माणों को बढ़ाने की मांग कर रहा था। एल एंड टी और भूमि के स्वामी के बीच एक व्यवस्था थी कि विकास के बाद, कुल स्थान का 25% स्वामी का होगा जबकि 75% एल एंड टी का होगा, फिर भी, प्रस्तावित निर्माण के आवंटन के लिए जनता से आवेदन आमंत्रित किए गए थे। आवंटन पत्र जारी होने पर और इच्छित क्रयकर्ताओं के साथ निष्पादित विक्रय के लिए एक अनुबंध के अंतर्गत, निर्मित अपार्टमेंट को भूमि में अविभाजित हित के साथ व्यक्तिगत क्रयकर्ताओं को भी सौंप दिया जाना था। इस प्रकार एल एंड टी और भूमि के स्वामी द्वारा आवंटियों के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किए गए थे। यह ऐसी परिस्थिति में है और एलएंडटी को 'कार्य अनुबंध' कर के अधीन किया गया था।

64. प्रकरण का पुनः अत्यंत समय तक अध्ययन किया गया। 'कार्य अनुबंध' के पूरे पहलू पर फिर से विचार किया गया और

विस्तृत चर्चा हुई। रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 93, 94 और 95 में यह देखा गया है कि

"93. प्रश्न यह है कि क्या विकासकर्ता/प्रमोटर द्वारा निर्मित फ्लैट की विक्रय के लिए एक अनुबंध में माल की विक्रय पर कर लगाना संविधान के अंतर्गत स्वीकार्य है? जब प्रमोटर/विकासकर्ता और फ्लैट क्रयकर्ता के बीच अनुबंध एक फ्लैट का निर्माण करने और अंततः भूमि के अंश के साथ फ्लैट बेचने के लिए होता है, तो यह स्पष्ट है कि इस तरह के लेनदेन में निर्माण की गतिविधि शामिल होती है क्योंकि यह केवल तभी होता है जब फ्लैट का निर्माण किया जाता है तो इसे पहुंचाया जा सकता है। इसलिए, हम सोचते हैं कि कोई कारण नहीं है कि निर्माण की ऐसी गतिविधि "कार्य अनुबंध" शब्द द्वारा आच्छादित नहीं की जाती है। अंततोगत्वा, शब्द "कार्य अनुबंध" एक अनुबंध के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिसमें पक्षकारों में से एक काम करने या निष्पादित करने के लिए बाध्य है। निर्माण की ऐसी गतिविधि में कार्य अनुबंध की सभी विशेषताएं या तत्व हैं। पक्षकारों के बीच अंतिम लेनदेन फ्लैट की विक्रय हो सकती है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि कार्य अनुबंध की विशेषताएं उस लेनदेन में शामिल नहीं हैं। जब लेन-देन में निर्माण की गतिविधि शामिल होती है, तो फ्लैट क्रयकर्ता जैसे कारकों का भवन के निर्माण में उपयोग की जाने वाली सामग्री के प्रकार और मानक पर कोई नियंत्रण नहीं होता है या उसे निर्माण गतिविधि की निगरानी या पर्यवेक्षण करने का कोई अधिकार नहीं मिलता है या भवन के डिजाइन या ले-आउट के विषय में कुछ नहीं कह सकता, हमारे विचार में,

बहुत महत्व के नहीं हैं और किसी भी प्रकरण में ये कारक अनुबंध को कम नहीं करते हैं क्योंकि निर्माण भाग का संबंध है।

होना चाहिए, जिस पर वे अधिस्थित किए गए हैं या जिस पर भवन का निर्माण किया गया है।

94. एक कार्य अनुबंध के निष्पादन में बेचे गए माल पर कर की लेवी को बनाए रखने के लिए, हमारी राय में, तीन शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए: (i) एक कार्य अनुबंध होना चाहिए, (ii) माल को कार्य अनुबंध के निष्पादन में शामिल होना चाहिए, और (iii) उन सामानों में संपत्ति को तीसरे पक्ष को माल के रूप में या किसी अन्य रूप में हस्तांतरित किया जाना चाहिए। एक में, निर्माण अनुबंध या निर्माण करने के लिए किसी भी अनुबंध में, उपरोक्त तीन चीजें पूरी तरह से पूरी होती हैं, एक चमगादड़ बनाने के लिए एक अनुबंध में आवश्यक रूप से माल तत्व की विक्रय होगी। कार्य अनुबंधों में भवन निर्माण अनुबंध भी शामिल हैं और इसलिए विरोधाभास के किसी भी डर के बिना यह कहा जा सकता है कि भवन अनुबंध कार्य अनुबंध का ही एक रूप है।

95. साधारण रूप से पर एक कार्य अनुबंध के प्रकरण में, भवन के निर्माण में उपयोग किए जाने वाले सामानों में संपत्ति उस भूमि के स्वामी के पास जाती है जिस पर भवन का निर्माण किया जाता है जब उपयोग किए गए सामान और सामग्री को भवन में शामिल किया जाता है। किन्तु इसके विपरीत अनुबंध हो सकता है या एक क़ानून अन्यथा प्रदान कर सकता है। इसलिए, यह विधि में एक पूर्ण प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता है कि माल का स्वामित्व अचल संपत्ति के स्वामी को अभिवृद्धि या परिश्रम के माध्यम से पारित

65. उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई उपर्युक्त चर्चा और दिए गए तर्क की जांच से पता चलता है कि उच्चतम न्यायालय को ऐसा कोई कारण नहीं मिला कि निर्माण की गतिविधि को 'कार्य संविदा' की अवधि के अंतर्गत क्यों नहीं लाया जाएगा। इसके अतिरिक्त, हालांकि पक्षकारों के बीच होने वाला अंतिम लेनदेन एक अपार्टमेंट के विक्रय में से एक होगा, यह आगे तर्क दिया गया था, जो इस तरह के लेनदेन में 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व को कम नहीं कर सकता है क्योंकि इसमें निर्माण की गतिविधि शामिल थी जो 'कार्य अनुबंध' की परिभाषा के लिए प्राथमिक थी। निर्माण में प्रयुक्त सामग्री के प्रकार और मानक पर नियंत्रण (आवंटी का) या क्योंकि आवंटी को गतिविधि की निगरानी या पर्यवेक्षण करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता है, इसका कोई परिणाम नहीं होगा।

66. इसके बाद, उच्चतम न्यायालय की वृहद पीठ ने 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में बेची गई वस्तुओं पर कर लगाने को बनाए रखने के लिए तीन परीक्षण किए। वे 'कार्य अनुबंध' के अस्तित्व हैं; ऐसे 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में माल की भागीदारी; ऐसे माल में संपत्ति को तीसरे पक्ष को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। संविदा के संदर्भ में, जो मुद्दा था, उस स्तर पर उन शर्तों को पूर्णतः पूरा पाया गया। उच्चतम न्यायालय ने भी इस बात पर विचार करने के लिए सामग्री नहीं पाई - अगर स्वामी

के ऊपर और ऊपर किसी तीसरे पक्ष-विकासकर्ता का अस्तित्व भौतिक विचार का होगा।

किन्तु यह कारक उन्हें माल होने से नहीं रोकता है।

67. रिपोर्ट के पैराग्राफ 101 में, उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की गई चर्चा को संक्षेप में अधोउद्धृत किया गया है:

"101. उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, हम कानूनी स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:

(i) एक कार्य अनुबंध के निष्पादन में बेचे गए माल पर कर की लेवी को बनाए रखने के लिए, तीन शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए: (एक) एक कार्य अनुबंध होना चाहिए, (दो) माल एक कार्य अनुबंध के निष्पादन में शामिल होना चाहिए और (तीन) उन सामानों में संपत्ति को तीसरे पक्ष को या तो माल के रूप में या किसी अन्य रूप में हस्तांतरित किया जाना चाहिए।

(ii) अनुच्छेद 366 (29-ए) (बी) के प्रयोजनों के लिए, एक भवन अनुबंध या निर्माण करने के लिए किसी भी अनुबंध में, यदि विकासकर्ता को मूल्यवान प्रतिफल प्राप्त हुआ है या प्राप्त करने का पात्र है, तो उपरोक्त तीन चीजें पूरी तरह से पूरी हो जाती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि भवन के निर्माण के लिए एक अनुबंध के प्रदर्शन में, माल (चल संपत्ति) जैसे सीमेंट, कंक्रीट, स्टील, ईटें आदि को संरचना में शामिल करने की इच्छा है और भले ही वे माल के रूप में अपनी पहचान खो चुके हैं

(iii) जहां एक अनुबंध में एक कार्य अनुबंध और अचल संपत्ति का हस्तांतरण दोनों शामिल होते हैं, इस तरह की अनुबंध इसे कार्य अनुबंध के रूप में अपने चरित्र से वंचित नहीं करती है। अनुच्छेद 366 (29-ए) (बी) में "कार्य अनुबंध" शब्द कार्य अनुबंध की सभी शैलियों को अपने दायरे में लेता है और केवल श्रम और सेवाओं के लिए प्रदान करने के लिए अनुबंध की एक प्रजाति तक सीमित नहीं है। अनुच्छेद 366 (29-ए) (बी) में कुछ भी "कार्य अनुबंध" शब्द को सीमित नहीं करता है।

(iv) भवन निर्माण अनुबंध कार्य अनुबंध का प्रकार है।

(v) एक अनुबंध में काम और श्रम का अनुबंध और विक्रय के लिए अनुबंध दोनों शामिल हो सकते हैं। इस तरह के समय अनुबंध में, माल की विक्रय के लिए अनुबंध और काम (या सेवा) के लिए अनुबंध के बीच का अंतर लगभग कम हो जाता है।

(vi) प्रमुख प्रकृति परीक्षण का कोई अनुप्रयोग नहीं है और पारंपरिक निर्णय जो मानते हैं कि अनुबंध के पदार्थ को देखा जाना चाहिए, ने अपना महत्व खो दिया है जहां लेनदेन अनुच्छेद 366 (29-ए) में विचारित की गई प्रकृति के हैं। यहां तक कि अगर अनुबंध का प्रमुख उद्देश्य संपत्ति को माल में स्थानांतरित नहीं करना है और बल्कि यह सेवा प्रदान करना है या अंतिम लेनदेन अचल संपत्ति का

हस्तांतरण है, तो यह भी राज्यों के लिए खुला है कि वे ऐसे अनुबंध में प्रयुक्त सामग्री पर विक्रय कर लगा सकते हैं यदि इस तरह के अनुबंध में अन्यथा कार्य अनुबंध के तत्व हैं। प्रवर्तनीयता परीक्षण भी निर्धारक नहीं है।

(vii) अनुच्छेद 366 के खंड 29-ए (बी) के अंतर्गत माल में संपत्ति का हस्तांतरण व्यक्ति द्वारा कार्य अनुबंध के निष्पादन में शामिल माल का विक्रय माना जाता है। उस व्यक्ति द्वारा उन सामग्रियों का हस्तांतरण और खरीद करना जिसे ऐसा हस्तांतरण किया जाता है।

(viii) यहां तक कि एक एकल और अविभाज्य कार्य अनुबंध में, अनुच्छेद 366 (29-ए) (बी) द्वारा पेश की गई कानूनी कल्पना के आधार पर, माल की एक विक्रय मानी जाती है जो कार्य अनुबंध के निष्पादन में शामिल होती है। एक कार्य अनुबंध के निष्पादन में शामिल है जहां अनुबंध माल की विक्रय के लिए एक में विभाज्य माल है और दूसरा श्रम और सेवाओं की आपूर्ति के लिए। दूसरे शब्दों में, एकल और अविभाज्य संविदा, अब छियालीसवें पुनरीक्षण द्वारा दो अलग-अलग समझौतों वाले अनुबंध के बराबर लाया गया है और राज्यों के पास अब कार्य अनुबंध के निष्पादन में सामग्री के मूल्य पर विक्रय कर लगाने की शक्ति है।

(ix) सातवीं अनुसूची की सूची II में प्रविष्टि 54 में अभिव्यक्ति "माल की विक्रय या खरीद पर कर" जब अनुच्छेद 366 के खंड 29-ए की परिभाषा के साथ पढ़ा जाता है, तो माल में संपत्ति के हस्तांतरण पर कर शामिल है, चाहे

वह माल के रूप में हो या माल के अतिरिक्त अन्य रूप में काम अनुबंध के निष्पादन में शामिल है।

(x) अनुच्छेद 366 (29-ए) (बी) निश्चित करता है: विक्रय कर के उद्ग्रहण के प्रयोजनों के लिए विक्रय या खरीद की सीमा में लेन देन को शामिल करने के लिए माल की विक्रय अधिनियम, 1930 में परिभाषित 'विक्रय' के आवश्यक तत्व अनुपस्थित हैं। दूसरे शब्दों में, एक कार्य अनुबंध में चल संपत्ति के हस्तांतरण को विक्रय माना जाता है, भले ही यह माल की विक्रय अधिनियम के अर्थ के भीतर विक्रय न हो।

(xi) प्रविष्टि 54 सूची II के साथ पठित अनुच्छेद 366 (29-ए) (बी) के अंतर्गत एक कार्य अनुबंध में माल की विक्रय तत्व पर कर लगाना माल के निगमन के बाद भी अनुमेय है, बशर्ते कि कर माल के मूल्य पर निर्देशित हो और अचल संपत्ति के हस्तांतरण पर कर लगाने का इरादा नहीं है। माल का मूल्य जो कर की लेवी के लिए उपाय का गठन कर सकता है, कार्यों में माल के समावेश के समय माल का मूल्य होना चाहिए, भले ही संपत्ति विकासकर्ता और माल के निगमन के बाद फ्लैट क्रयकर्ता के बीच से गुजरती हो।"

68. के. रहेजा प्रकरण के संबंध में, रिपोर्ट के पैराग्राफ 107 में, उच्चतम न्यायालय ने उस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय के निष्कर्षों का सारांश निकाला है, जिन्हें नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"107. पक्षकारों को दिए गए तर्कों पर विचार करने पर, रहेजा डेवलपमेंट में न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया:

(i) अधिनियम में "कार्य अनुबंध" शब्द की परिभाषा समावेशी परिभाषा है।

(ii) यह एक व्यापक परिभाषा है जिसमें नकद, आस्थगित भुगतान या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए भवन या निर्माण गतिविधि करने के लिए "कोई अनुबंध" शामिल है।

(iii) कार्य अनुबंध की परिभाषा इस आधार पर भेद नहीं करती है कि निर्माण गतिविधि कौन करता है। यहां तक कि संपत्ति के एक स्वामी को एक कार्य अनुबंध पर ले जाने के लिए कहा जा सकता है यदि वह नकद, आस्थगित भुगतान अन्य मूल्यवान विचार के लिए निर्माण करने के लिए एक अनुबंध में प्रवेश करता है।

(iv) डेवलपर्स के पास संभावित क्रयकर्ता के लिए निर्माण करने के लिए संज्ञान था।

(v) ऐसा निर्माण/विकास अनुबंध में निर्धारित विभिन्न किस्तों में भुगतान पर किया जाना था।

(vi) डेवलपर्स स्वामी नहीं थे। उन्होंने संपत्ति पर धारणाधिकार का दावा किया। उन्हें अनुबंध को समाप्त करने और क्रेता द्वारा उल्लंघन किए जाने पर इकाई का निस्तारण करने का अधिकार था। इस तरह के एक खंड का मतलब यह नहीं है कि अनुबंध काम करने वाला

अनुबंध नहीं रह जाता है। जब तक कोई समाप्ति नहीं होती है, निर्माण क्रेता के लिए और उसकी ओर से होता है और यह एक "कार्य अनुबंध" बना रहता है।

(vii) यदि कोई समापन होता है और किसी विशेष इकाई को पुनः नहीं बेचा जाता है अपितु विकासकर्ता द्वारा अपने पास रखा जाता है, तो उस सीमा तक कोई कार्य संविदा नहीं होगी।

(viii) यदि फ्लैट या इकाई के निर्माण के बाद अनुबंध किया जाता है तो कोई कार्य अनुबंध नहीं होगा। किन्तु, जब तक निर्माण पूरा होने से पहले अनुबंध किया जाता है, तब तक यह कार्य अनुबंध होगा।"

69. एलएंडटी प्रकरण में संदर्भ देते समय उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की बेंच के निर्णय द्वारा उठाए गए संदेह को निर्णय के पैराग्राफ 108 में लेखबद्ध किया गया था। यह अधोलिखित के रूप में पढ़ा जाता है:

"108. रहेजा विकास में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदर्भ आदेश में मुख्य रूप से कारणों से संदेह किया गया है: (अ) विकासकर्ता ने स्वामी की संपत्ति को विकसित करने के लिए अनुबंध किया था। विभाग द्वारा यह आरोप नहीं लगाया गया है कि विकास अनुबंध में मौद्रिक विचार शामिल है। यदि विकास अनुबंध एक कार्य अनुबंध नहीं है, तो क्या विभाग दूसरे अनुबंध पर भरोसा कर सकता है जो त्रिपक्षीय अनुबंध है और इसे कार्य अनुबंध के रूप में व्याख्या कर सकता है; (ब) यदि राहाजा डेवलपमेंट में अनुपात को

स्वीकार किया जाता है तो कार्य अनुबंध और चल संपत्ति की विक्रय के लिए एक अनुबंध के बीच कोई अंतर नहीं होगा और (ग) कार्य अनुबंध की परिभाषा से, ठेकेदार ने नकद के लिए फ्लैट क्रयकर्ता की ओर से निर्माण का कार्य किया होगा, भिन्न या कोई अन्य मूल्यवान प्रतिफल हेतु, किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि विकासकर्ता संभावित फ्लैट क्रयकर्ता के लिए ठेकेदार था।

70. जिनका उत्तर रिपोर्ट के पैराग्राफ 110 में दिया गया था। यह स्व-स्पष्ट है और अधोलिखित के रूप में पढ़ा जाता है:

"110. तर्क क्रेता फ्लैट के हस्तांतरण और भूमि के अंश के हस्तांतरण का पात्र है, जब सभी किस्तों का पूरी तरह से भुगतान किया गया है और यह दर्शाता है कि विकासकर्ता और फ्लैट क्रेता के बीच अनुबंध फ्लैट का विक्रय है और फ्लैट क्रयकर्ता के लिए और उसकी ओर से फ्लैट के निर्माण को पूरा करने के प्रयोजनों के लिए फ्लैट क्रयकर्ता के ठेकेदार के रूप में विकासकर्ता को नियुक्त करने के लिए नहीं है कोई योग्यता नहीं। प्रस्तुतियाँ विकास अनुबंध की विशिष्ट प्रकृति की अनदेखी करती हैं जिसके बाद भूमि के स्वामी, विकासकर्ता और फ्लैट क्रयकर्ता के बीच त्रिपक्षीय अनुबंध होता है। प्रभावी ढंग से और वास्तव में यह विकासकर्ता है जो फ्लैट क्रयकर्ता के लिए भवन का निर्माण करता है। विकासकर्ता मौद्रिक विचार के लिए ऐसा करता है। भुगतान का लेबल निर्णायक नहीं है, किन्तु भुगतान का तथ्य है। निर्माण विकासकर्ता और फ्लैट क्रेता के बीच सहमति के अनुसार मूल्य के भुगतान

पर किया जाता है। कोफा के अंतर्गत या मोफा के अंतर्गत उस प्रकरण के लिए अनुबंध के सभी खंडों को पुनः व्यवस्थित करना आवश्यक नहीं है। रहेजा डेवलपमेंट ने केसीएफए के अंतर्गत अनुबंध और पाठ के प्रासंगिक खंडों पर ध्यान दिया। हमें उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह, महाराष्ट्र स्वामित्व फ्लैट नियमों के फॉर्म V में पाठ शामिल है, जैसे कि, 'विकास अनुबंध के परिणामस्वरूप प्रमोटर पात्र हैं और उक्त भूमि पर भवनों का निर्माण करने के लिए बाध्य हैं।' फॉर्म V में प्रासंगिक खंडों में से एक (अनावश्यक हिस्से को छोड़कर) पढ़ा जाता है, "प्रमोटर उक्त भवन का निर्माण करेगा योजनाओं, डिजाइनों, विनिर्देशों के अनुसार जो की स्वामी के साथ फ्लैट क्रयकर्ता द्वारा देखा व अनुमोदित किया गया है, यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है और यदि नहीं, तो ऐसे रूपांतरों और संशोधनों को जो प्रवर्तक आवश्यक समझे या जैसा कि संबंधित स्थानीय प्राधिकरण/सरकार द्वारा अपेक्षित हो..... बशर्ते कि प्रमोटर को फ्लैट क्रयकर्ता को उन विविधताओं या संशोधनों के संबंध में लिखित रूप में पूर्व सहमति प्राप्त करनी होगी जो क्रेता के फ्लैट पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं। इस प्रकार, यह कहना सही नहीं है कि कार्य विकासकर्ता द्वारा स्वयं के लिए और स्वामी के लिए किया जाता है और निर्माण क्रेता के लिए और उसकी ओर से नहीं किया जाता है।"

71. के. रहेजा प्रकरण की सत्यता के विषय में व्यक्त संदेह से निपटते हुए, उच्चतम न्यायालय की वृहद पीठ ने स्पष्ट रूप से कहा कि तथ्य यह है कि फ्लैट का हस्तांतरण और

भूमि का हस्तांतरण भविष्य की तिथि पर उत्पन्न होगा, सभी किस्तों का भुगतान किया जा रहा है और विकासकर्ता और फ्लैट क्रयकर्ता के बीच अनुबंध फ्लैटों की विक्रय के लिए एक था, कोई योग्यता नहीं थी। चुनौती को अस्वीकार करने का कारण उच्चतम न्यायालय द्वारा यह देखते हुए दिया गया था कि इस प्रकार व्यक्त संदेह स्पष्ट रूप से विकासकर्ता अनुबंध की विशिष्ट प्रकृति की अनदेखी करता है। विकासकर्ता मौद्रिक विचार के लिए ऐसा करता है। भुगतान की देयता भी निर्णायक नहीं पाई गई, हालांकि भुगतान का तथ्य ऐसा पाया गया।

72. यहां भी, न्यायाधिकरण द्वारा पाए गए तथ्यों में यह एक निर्विवाद सत्य है कि निर्माण निर्धारिती द्वारा किए गए थे, हालांकि 403 आवंटियों को जारी किए गए आवंटन पत्र और भुगतान के विरुद्ध अपनी भूमि पर। यहां यह नोट करना उचित होगा कि राजस्व प्राधिकारियों ने निर्धारिती पर केवल 403 फ्लैटों के विरुद्ध प्राप्त भुगतान की सीमा तक कर लगाया है। केवल प्राप्त उन आवंटनों/भुगतानों के संबंध में कार्य संविदा विद्यमान पाई गई थी और केवल उन फ्लैटों के संबंध में, कार्य संविदा के निष्पादन में शामिल संपत्ति के हस्तांतरण का मूल्यांकन किया गया है। यह कुल फ्लैटों का 59% आंका गया है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, इस तथ्य का निष्कर्ष विवाद में नहीं है।

73. तत्पश्चात्, जहां तक कोफा और मोफा के तथ्य का संबंध है, **एल एंड टी प्रकरण** के पैरा 110 में की गई आगे की चर्चा में, यह

विशेष रूप से पाया गया है कि कोफा और मोफा के प्रावधान **के. रहेजा प्रकरण** और **एलएंडटी प्रकरण** में प्रस्तुत अतिरिक्त तथ्य थे। जहां तक उन प्रकरणों में 'कार्य अनुबंध' का अस्तित्व पाया गया था, कोफा और मोफा के प्रावधानों के बल पर नहीं और विधि के उन प्रावधानों के अनुसार दर्ज किए गए अनुबंध किन्तु आवंटन पत्र के एक स्वतंत्र पढ़ने पर, प्रस्तुत किया जा रहा है वर्तमान प्रकरण में आगे बढ़ाया जा रहा है - कि वर्तमान प्रकरण में कोफा और मोफा की अनुपस्थिति से भौतिक अंतर होगा, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित उस विधि के सामने यह पूरी तरह से गलत और अस्वीकार्य पाया गया है।

74. आवंटन पत्रों के विरुद्ध कार्य संविदा के अस्तित्व और जारी रहने के संबंध में संदेह, यदि कोई हो, को रिपोर्ट के पैराग्राफ 115 और 117 में और स्पष्ट किया गया था। इस प्रकार, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 'कार्य अनुबंध' केवल आवंटन पत्र के प्रति मूल्यांकन/प्रतिफल पर उत्पन्न होगा और इसके निर्वाह के दौरान जारी रहेगा।

75. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में कोफा और मोफा के बल पर उन्नत प्रस्तुतियाँ वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक नहीं पाया जाता है, निर्धारिती के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत, **सन इंजीनियरिंग वर्क्स (पी) लिमिटेड (उक्त)** और **अरुलमोड़ी इनियारसू (उक्त)** के निर्णय के बल पर पूरी तरह से अनुचित है। यह सिद्धांत वर्तमान विवाद के लिए उपलब्ध नहीं है।

76. सिद्धांत के अनुसार, 'अनुबंध'/आवंटन पत्र के प्रत्येक खंड को देखना होगा, कोई विवाद नहीं हो सकता है। वास्तव में, यह वह सच्ची कसौटी है जिसे न्यायाधिकरण द्वारा लागू किया गया है। यह न्यायालय को इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि आवंटन पत्र के सभी खंडों को सह-पढ़ने पर, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है - निर्धारित एक 'कार्य अनुबंध' निष्पादित कर रहा था, इस हद तक कि यह जारी किए गए व्यक्तिगत आवंटन पत्रों और वहां प्राप्त भुगतानों के विरुद्ध निर्माण कर रहा था। तथापि, केवल इस प्रकार के आवंटन पत्रों की वैधता अथवा अस्तित्व की सीमा तक ही ऐसे कार्य संविदा विद्यमान रहेगी/विद्यमानता बनी रहेगी।

77. जहां तक एलएंडटी प्रकरण का निर्णय एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय के बाद है, यह उच्चतम न्यायालय का निर्णय है जो विधि में बाध्यकारी प्रभाव उत्पन्न करता है। भले ही एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त) में खंडपीठ द्वारा की गई योग्यता चर्चा को विशेष रूप से या सीधे खारिज नहीं किया गया हो, किन्तु एलएंडटी प्रकरण में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित तर्क और अनुपात के प्रकाश में अब यह अच्छी विधि नहीं है। एक बार निर्धारित द्वारा जारी आवंटन पत्र पर 'अनुबंध' उत्पन्न होने के बाद, इसने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के संदर्भ में 'कार्य अनुबंध' के परीक्षण को संतुष्ट किया। इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय या एसोटेक रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (उक्त) में न्यायाधिकरण के बाद के आदेश से उत्पन्न

पुनरीक्षण का निरस्त किया जाना तथ्य परिस्थिति पर भरोसा करने का कोई फायदा नहीं होगा। वह अंतिम निर्णय एक अंतिम निर्णय रहेगा, जो केवल उस प्रकरण तक बाधित और सीमित होगा।

78. स्पष्टीकरण के माध्यम से, यह ध्यान दिया जा सकता है, **एक्सप्रेस प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड (उक्त)** में इस न्यायालय की खंडपीठ के अन्य निर्णय और **सुपरटेक लिमिटेड नोएडा (उक्त)** में विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय ने कोई विधि नहीं बनाया। उन निर्णयों के द्वारा, प्रकरणों को केवल वैधानिक अधिकारियों को भेज दिया गया था, ताकि उन प्रकरणों को नए सिरे से तय किया जा सके।

79. 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन में शामिल माल के पुस्तक मूल्य में लाभ जोड़ने के मुद्दे पर आते हुए, यह ध्यान दिया जा सकता है कि निर्धारण प्राधिकरण ने 21% की वृद्धि की थी। इसे चुनौती देते हुए, निर्धारित ने अपील के विशिष्ट आधार उठाए। चूंकि अपील के आधार पर दोनों पक्षों द्वारा बहुत तर्क दिया गया है, इसलिए न्यायाधिकरण के समक्ष निर्धारित द्वारा योजित अपील के ज्ञापन के पैराग्राफ 35 की सामग्री को नोट किया जा सकता है। यह नीचे के रूप में पढ़ता है:

"35. यह कि लार्सन एण्ड टूबो लिमिटेड एण्ड अदर्स विरुद्ध स्टेट एण्ड नाटा एण्ड अनादर्स (2013) (23) वीएलजे 97(एससी) के पृष्ठ 134, 135 के क्रमांक 101 के क्रमांक 11 में निम्नलिखित व्यवस्था दी गयी है।

"प्रविष्टि 54 सूची II के साथ पठित आर्टिकल्स 366- (29-ए) (बी) के अंतर्गत एक कार्य अनुबंध में माल की विक्रय तत्व पर कर लगाना माल के निगमन के बाद भी स्वीकार्य है, बशर्ते कि कर माल के मूल्य के लिए निर्देशित हो और अचल संपत्ति के हस्तांतरण पर कर लगाने का इरादा नहीं है। माल का मूल्य जो कर की लेवी के लिए उपाय का गठन कर सकता है, कार्यों में माल के समावेश के समय माल का मूल्य होना चाहिए, भले ही संपत्ति माल के निगमन के बाद विकासकर्ता और फ्लैट क्रयकर्ता के बीच गुजरती है।"

अपीलकर्ता द्वारा अपने हिसाब किताब विस्तृत विवरण सहित रखे मये हैं। आडिट होता है। निर्माण सामग्री खरीद होते ही उसका प्रयोग हो जाता है अतः प्रयुक्त होते समय माल की कीमत टैक्स व भाड़ा सहित होती है। यह सभी जोड़कर स्वयं अपीलकर्ता द्वारा फ्लैट में प्रयुक्त दिखायी गयी है। प्रयुक्त सामग्री को कर निर्धारण अधिकारी द्वारा स्वीकार भी किया है परन्तु कर निर्धारण अधिकारी द्वारा जो इस धनराशि पर 21% वृद्धि करके जो कर देयता निर्धारित की गयी है वह नियम व कानून के विरुद्ध है। वैसे भी यह सर्वविदित है कि होलसेल में व्यापार में। से 1.5 प्रतिशत के लाभांश तक होता है, जबकि अपीलकर्ता का तो निर्माण सामग्री का खरीद बिक्री का व्यापार भी नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा जो फैटस निर्माण करके बिक्री का कार्य किया जाता है उसमें लाभांश का आधार फ्लैट्स के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री की दर कभी नहीं होती है बल्कि लाभांश निर्माण के सुपरविजन, कंट्रोल, आदि के मेहनत के बदले में व जमीन की

मँहगायी दिन पर दिन हो जाने के कारण ही प्राप्त होता है। क्योंकि यह सर्वविदित है कि एक सामान्य जन को घर बनाने में कदम कदम पर कितनी समस्याएँ जैसे विभिन्न सरकारी विभागों से परमिशन, भाग दौड़ करके बिल्डिंग मैट्रिरियल की व्यवस्था व अलग अलग मद के मजदूरों की व्यवस्था में जो पापड़ बेलने पड़ते हैं उसी मेहनत के लिये ही अपीलकर्ता को मुनाफा प्राप्त होता है न कि सामग्री के दर के आधार पर। यह कि उ०प्र० के अन्दर सदस्य वाणिज्यकर अधिकरण की विभिन्न पीठों द्वारा खरीद मूल्य वृद्धि 10.9% करते. निर्धारित की गयी है और विभाग द्वारा निम्नलिखित मामलों में तथा अन्य बहुत सारे मामलों में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय में रिवीजन तक भी दाखिल नहीं की गयी है।

- सर्वश्री अजनारा इण्डिया लि., गाजियाबाद बनाम कमिश्नर वाणिज्यकर जाप्र० लखनऊ द्वितीय अपील संख्या 1547:2613 4 2010-2011, 1545/2013 af 2007-2018, 1546/2013 at 2008-2009, 1661/2013 वर्ष 2009-2010 आदेश दिनांक 11-11-2016
- कमिश्नर वाणिज्यकर बनाम सुपर टैक लिए नोएडा, द्वितीय अपील संख्या 324/16 (10-11) आदेश दिनांक 27-10-2016, द्वितीय अपील संख्या 384/16 (11-12) आदेश दिनांक 27-10-2016
- सर्वश्री सनवर्ल्ड रजिडेन्सी प्रालि बनम कमिश्नर वाणिज्यकर 30 प्र० द्वितीय अपील संख्या 298/2016
- सर्वश्री ए०टी० एस० एएस्ट्रेक्चर लि नोएडा बनल कमिश्नर वाणिज्यकर 30प्र० लखनऊ

2016 एन. टी.एन (वॉल-62) पेज ट्रिब्यूनल 41 व द्वितीय अपील संख्या 1/11, 5/10 व 300/16

➤ सर्वश्री हरी बिल्डवेल प्रालि अराम कमिश्नर वाहिका लखनऊ द्वितीय अपील संख्या 768/13 यह कि उपरोक्त सभी आदेश विभाग पर बाध्यकारी है यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि 10 की मूल्य वृद्धि भी अपील के तथ्या व तर्कों के प्रकाश में बहुत ज्यादा है।

यहाँ पर पुनः यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मामलों में 2006 के स्थान पर 10% निर्धारित किया गया था परन्तु विभाग द्वारा द्वितीय अपील तक भी दायर नहीं गयी।

➤ वरुणा फाइनेन्स प्रा०लि० डुण्डाहेडा गाजियाबाद बनाम कमिश्नर वाणिज्यिक उग्र) लखनऊ 2015 एन.टी.एन. (57) ट्रिब्यूनल 124

➤ सर्वश्री स्काईटेक कन्सट्रक्शन वैशाली गाजियाबाद, बनाम कमिश्नर वाणिज्यिक 2015 एन.टी.एन. (57) ट्रिब्यूनल 113

यहाँ पर पुनः उल्लेखनीय है कि स्वयं प्रथम अपीलीय अधिकारी द्वारा बहुत सारी अपीलों में खरीद मूल्य पर 10% वृद्धि करके डीमंड सेल निर्धारित की गयी है।

सदस्य वाणिज्यिक अधिकरण द्वारा खरीद मूल्य में 10% की वृद्धि करते हुए, आदेश सर्वश्री डिजाईन आर्क इन्फ्रा प्रा०लि०, के मामले में परित किया गया था। इस आदेश के विरुद्ध विभाग द्वारा रिवीजन संख्या 293/2015 माननीय इलाहाबाद उच्च

न्यायालय में दाखिल किया गया था। माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा विधिवत सुनवाई के उपरान्त विभागयी रिवीजन खारिज कर दी गयी ।"

80. सबसे पहले, निर्धारिती ने लाभ @ 21% की धारणा पर विवाद किया। फिर, अपने स्वयं के, इसने न्यायाधिकरण के पहले के आदेशों का उल्लेख किया और उन पर भरोसा किया जिसमें 10% परिवर्धन का प्रावधान था। मोटे तौर पर इसने न्यायाधिकरण की खोज की शुद्धता पर विवाद किया (अन्य प्रकरणों में) लाभ @ 21% मानते हुए। उस प्रकाश में देखा गया, जबकि निर्धारिती ने न्यायाधिकरण के निष्कर्ष की शुद्धता को स्वीकार नहीं किया कि वह 'कार्य अनुबंध' के निष्पादन के लिए लाभ के माल के पुस्तक मूल्य पर 10% लाभ की गणना करे, जिसके कारण न्यायालय को ज्ञात नहीं हैं, यह नियम पर भरोसा नहीं करता था 9 नियमों का, जो अनुमेय कटौती का प्रावधान करता है।

नियमावली के नियम 9 पर भरोसा करने के लिए, निर्धारिती को दावा किए गए खर्चों को साबित करने के लिए बोझ नहीं डाला जा सकता है।

81. इसलिए, हालांकि निर्धारिती के खातों की पुस्तकों को अस्वीकार नहीं किया गया है, नियम 9 की प्रयोज्यता की आवश्यकता वाले तथ्यों के प्रमाण के अभाव में, 'कार्य अनुबंध' के कारोबार का निर्धारण करने के लिए मानित लाभ का अनुमान लगाना आवश्यक हो गया। उसमें, 10% अनुमान लगाने के लिए एक मोटा और तैयार तरीका के रूप में

नियम, यौगिक प्रकरणों पर विचार करना, कारोबार (कर के अधीन होने के लिए) न्यायाधिकरण को लागू करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। जहां तक न्यायाधिकरण ने अनुमान लगाने के लिए समय की कसौटी पर खरा उतरा उपाय लागू किया है, मुझे न्यायाधिकरण के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए न्यायाधिकरण के निष्कर्ष में कोई हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

82. निर्धारिती के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए वैकल्पिक प्रस्तुतियों के रूप में, कि माल का मूल्य उस तिथि को देखा जाना चाहिए जब माल वास्तव में 'कार्य अनुबंध' में शामिल किया गया हो, यह न तो व्यावहारिक है और न ही यह अन्यथा स्वीकृति के योग्य है। निर्माण गतिविधि जो दिन-प्रतिदिन के आधार पर जारी रहती है और हर रोज कीमतों में उतार-चढ़ाव का अनुभव करती है, उसे कभी भी गणना के ऐसे अव्यावहारिक अभ्यास के अधीन नहीं किया जा सकता है क्योंकि अंतहीन जटिलताओं और विवादों को जन्म दे सकता है। यदि स्वीकार किया जाता है, तो यह अधिकारियों को निर्माण में उपयोग किए जाने वाले कच्चे माल की दिन-प्रतिदिन की कीमत की निगरानी करने के लिए मजबूर करना होगा और इसका मतलब यह भी होगा कि निर्धारिती ने साबित किया होगा - प्रत्येक दिन माल को किस हद तक 'कार्य अनुबंध' में शामिल किया जा सकता है। इसलिए, एक विधि के रूप में, यदि 'कार्य अनुबंध' पर लागू माल

का मूल्य कुल मूल्य के संदर्भ में लिया जाता है, तो विधि का कोई उल्लंघन नहीं होता है। अन्यथा, नियम 9 निर्धारिती को सभी उपयुक्त स्वीकार्य कटौतियों की तलाश करने में सक्षम बनाता है। इस प्रकार, इस मुद्दे पर भी, मामला किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है।

83. यह बताने के लिए पर्याप्त है, यदि निर्धारिती ने अधिक कटौती का दावा करने की इच्छा की थी, तो उसे नियमों के नियम 9 के अनुसार अपनी पुस्तकों को बनाए रखना चाहिए था। निर्धारिती खातों की पुस्तकों के अभाव में उन कटौतियों का दावा नहीं कर सकता है, ताकि इसे उचित ठहराया जा सके। वर्तमान में, इस मुद्दे को इस न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। जहां तक न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत या निराधार प्रतीत नहीं होते हैं, उस प्रकरण में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

84. उपरोक्त को देखते हुए, विधि के पहले प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है और विधि के दूसरे प्रश्न का उत्तर सकारात्मक में दिया जाता है अर्थात् दोनों प्रश्नों का उत्तर राजस्व के पक्ष में और निर्धारिती के विरुद्ध दिया जाता है।

85. वर्तमान पुनरीक्षण विफल रहता है और **खारिज़** किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 892

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 58 वर्ष 2023

डॉ. अमिताभ कुमार गुप्ता ..पुनरीक्षणवादी
बनाम

अवध बिहारी निगम ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता: श्री मनीष टंडन,
श्री मोहम्मद नौशाद सिद्दीकी, श्री नरेंद्र मोहन

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री जे.पी. सिंह

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- आदेश 6 नियम 17 - मुकदमा शुरू होने के बाद दलीलों में संशोधन - उचित परिश्रम - यदि अंतिम सुनवाई के चरण में संशोधन आवेदन दायर किया जाता है, तो आवेदन की अनुमति देते समय, यह जांचना आवश्यक है कि आवेदक द्वारा उचित परिश्रम किया गया था या नहीं। नए अधिवक्ता की नियुक्ति/परिवर्तन, अधिवक्ता की ओर से गलती या अधिवक्ता को जिम्मेदार ठहराए गए किसी अन्य कारण के कारण नए तथ्यों को रिकॉर्ड पर रखना, मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन आवेदन दायर करने का आधार नहीं हो सकता है। वर्तमान मामले में, अंतिम बहस के समय, सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत एक संशोधन आवेदन केवल एक नए

अधिवक्ता की नियुक्ति के आधार पर दायर किया गया था, जिसने पाया कि पहले के अधिवक्ता की ओर से गलती के कारण कुछ प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में नहीं रखा गया था। हालाँकि, उचित परिश्रम के प्रयोग के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं था। एस.सी.सी. न्यायालय ने वादी-प्रतिपक्षी की ओर से उचित परिश्रम की आवश्यकता पर विचार किए बिना संशोधन आवेदन को अनुमति दे दी। आक्षेपित आदेश निरस्त किया गया। (पैरा 11, 13, 15)

स्वीकृत। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. हरि शंकर एवं अन्य बनाम भगवती प्रसाद मिश्रा 2014 (0) सुप्रीम (इलाहाबाद) 3127
2. श्री फिरोज उद्दीन एवं अन्य बनाम श्री अनवर उद्दीन, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या 5213 सन् 2013 में पारित।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

1. अधिवक्ता श्री नरेंद्र मोहन ने विपक्ष की ओर से वकालतनामा दाखिल किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।
2. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता श्री मनीष टंडन और विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेंद्र मोहन को सुना।
3. वर्तमान पुनरीक्षण एस.सी.सी. वाद संख्या - 44/2017. में अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 13, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश

दिनांक 27.3.2023 को चुनौती देने के लिए दायर किया गया है।

मुकदमा दायर करने की तारीख से ही इसके बारे में पूरी अस्वीकरण:

4. चूंकि इसमें केवल कानूनी प्रश्न शामिल हैं, इसलिए पार्टियों की सहमति से, शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना, प्रवेश स्तर पर ही मामले का निर्णय लिया जा रहा है।

5. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पहले वादी-विरोधी पक्ष ने एससीसी वाद संख्या - 44/ 2017 को स्थापित किया था, जिस पर लिखित प्रस्तुतिकरण दायर किया गया था। इसके बाद निर्धारण का बिंदु भी तय कर लिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि दोनों पक्षों यानी वादी और प्रतिवादी ने हलफनामे के माध्यम से अपने गवाह दाखिल कर दिए हैं और मामला अंतिम सुनवाई के लिए तय किया गया है। अंतिम बहस के समय, नए अधिवक्ता के परिवर्तन के आधार पर सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के साथ पठित धारा 151 आईपीसी के तहत पुनरीक्षण आवेदन दायर किया गया था और नए अधिवक्ता की नियुक्ति के बाद, यह पाया गया कि कुछ प्रासंगिक तथ्यों पर विचार नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि शुरू से ही, यह प्रतिवादी-वादी का मामला है कि यू.पी. का प्रावधान है। 1972 का अधिनियम क्रमांक 13 लागू नहीं होगा क्योंकि प्रश्नगत भवन का किराया 2,000/- से अधिक है। अब तथ्यों पर प्रतिवादी वादी इस तथ्य पर आ रहा है कि भवन नवनिर्मित है, अतः उ.प्र. अधिनियम क्रमांक 13/1972 लागू नहीं होगा। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि यह पूरी तरह से तथ्य का प्रश्न है और वादी प्रतिवादी को

जानकारी है, इसलिए, उचित परिश्रम के स्पष्टीकरण के बिना अंतिम बहस के चरण में, ऐसे पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उन्होंने आगे कहा कि नए अधिवक्ता के बदलाव के बारे में लिया गया आधार स्वीकार्य नहीं है, इसलिए आदेश खराब है और रद्द किया जाना चाहिए। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने हरि शंकर और 5 अन्य बनाम भगवती प्रसाद मिश्रा 2014 में रिपोर्ट किए गए (0) सुप्रीम (सभी) 3127 और श्री फिरोज उद्दीन और 4 अन्य बनाम श्री अनवर उद्दीन के 8.5.2023 को निर्णीत अनुच्छेद 227 के तहत मामला संख्या 5213/ 2013 के तहत मामलों में पारित हुए इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है।

6. विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मोहन ने प्रस्तुत किया कि पहले के अधिवक्ता को नए अधिवक्ता की नियुक्ति के बाद ही प्रासंगिक तथ्य नहीं बताया गया था, उन्हें ऐसे प्रासंगिक तथ्य मिले, इसलिए, उन्होंने इस स्तर पर पुनरीक्षण आवेदन दायर किया है, इसलिए , इसे उचित सावधानी के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और सीपीसी के आदेश 6 नियम 17 के साथ-साथ आक्षेपित आदेश का भी अवलोकन किया है। सीपीसी के आदेश 6 नियम 17 के तहत दायर आवेदन में, एकमात्र आधार यह है कि नए

अधिवक्ता की नियुक्ति के बाद, उन्होंने कुछ प्रासंगिक तथ्य बताए हैं, जिन पर विचार नहीं किया गया, सिवाय इसके कि पुनरीक्षण आवेदन में कुछ भी नहीं कहा गया है।

8. विवाद के अवलोकन करने के लिए, सीपीसी के आदेश VI नियम 17 को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है;

"17. अभिवचनों में पुनरीक्षण-न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को अपने अभिवचन में ऐसे तरीके से और ऐसी शर्तों पर परिवर्तन या पुनरीक्षण करने की अनुमति दे सकता है जो उचित हों, और ऐसे सभी पुनरीक्षण किए जाएंगे जो आवश्यक हो सकते हैं पार्टियों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों का निर्धारण करने का उद्देश्य।

बशर्ते कि सुनवाई शुरू होने के बाद पुनरीक्षण के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि उचित परिश्रम के बावजूद, पार्टी सुनवाई शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकती थी।"

9. सीपीसी के आदेश VI नियम 17 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण के मामले में, उचित परिश्रम देखा जाना आवश्यक है, लेकिन वर्तमान मामले में अधिवक्ता के बदलाव के अलावा कुछ भी नहीं कहा गया है। हरि शंकर (उपरोक्त) के मामले में अधिवक्ता के बदलाव या अधिवक्ता की गलती के बारे में भी इस न्यायालय द्वारा

विचार किया गया है उसी का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"14. सुप्रीम कोर्ट ने फिर से जे. सैमुअल बनाम गट्टू महेश, (2012) 2 एससीसी 300 में अवधारित किया गया कि उचित सावधानी यह विचार है कि कुछ प्रकार की राहत का अनुरोध करने से पहले उचित जांच आवश्यक है। विधिवत मेहनती प्रयास एक आवश्यकता है प्रत्याशित राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करने की मांग करने वाले पक्ष को यह निर्धारित करने के लिए उचित परिश्रम करना चाहिए कि दिए गए अभ्यावेदन तथ्यात्मक रूप से सटीक और पर्याप्त हैं ताकि प्रदान करने के लिए संहिता में "उचित परिश्रम" शब्द का विशेष रूप से उपयोग किया जा सके परीक्षण शुरू होने के बाद अनुरोधित पुनरीक्षण की स्थितियों में विवेक का प्रयोग करना है या नहीं, यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण किसी दावे से उत्पन्न राहत का अनुरोध करने वाले पक्ष को उचित परिश्रम करने की आवश्यकता होती है और यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। उचित सावधानी" एक पक्ष के रचनात्मक ज्ञान, दावे का दायरा निर्धारित करता है और मुकदमे के परिणाम के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। दिए गए तथ्यों में, "उचित सावधानी" का स्पष्ट अभाव है उस तथ्य की खोज न करें, जिसे लिखित बयान में संशोधित किया जाना है। इसलिए उचित सावधानी की स्थिति संतुष्ट नहीं हो सकी। कानून बहुत है सीई" और की गई गलती निश्चित रूप से मुद्रण संबंधी त्रुटि के पूर्ववलोकन में नहीं आती है। इसी तरह का दृश्य विद्याबाई बनाम पद्म

लता, (2009) 2 एससीसी 409, सुशील कुमार जैन बनाम मनोज कुमार, (2009) 14 एससीसी 38 और अब्दुल रहमान बनाम मोहम्मद रुल्दु, (2012) 11 एससीसी 341 में लिया गया था।

15. लिखित बयान एक अधिवक्ता द्वारा वादपत्र को पढ़ने के बाद तैयार किया गया था। कानूनी सलाह के बाद, यह नहीं कहा जा सकता है कि "उचित सावधानी" के अभ्यास में पुनरीक्षण के माध्यम से दलील में जो तथ्य लाया जाना था वह प्रतिवादी की जानकारी में नहीं था। 'उचित सावधानी' और 'लापरवाही' के बीच अंतर करना होगा। प्रतिवादियों का मामला 'उचित सावधानी' नहीं बल्कि 'लापरवाही' की श्रेणी में आता है। ट्रायल कोर्ट ने पुनरीक्षण आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया, क्योंकि आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. का प्रावधान अब पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति देने में न्यायालय की शक्ति पर एक शर्त लगाता है।"

10. इस मामले में फिर से इसी तरह के मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया श्री फिरोज उद्दीन (उपरोक्त) उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"20. जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि नए अधिवक्ता की नियुक्ति के अलावा, पुनरीक्षण आवेदन में कुछ भी नहीं कहा गया है, ईमानदार प्रयासों के बाद भी वे इस तथ्य की खोज नहीं कर सके, जो होना है लिखित बयान में पुनरीक्षण किया गया। इसलिए, उचित

परिश्रम की शर्त को पूरा नहीं किया जा सका। कानून काफी हद तक तय है कि अधिवक्ता का परिवर्तन पुनरीक्षण दाखिल करने का आधार नहीं हो सकता है, इसलिए दिनांक 11.04.2023 के लागू आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

11. इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि नए अधिवक्ता की नियुक्ति/बदलाव, अधिवक्ता की गलती या अधिवक्ता को जिम्मेदार किसी अन्य कारण के कारण नए तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाना पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने का आधार नहीं हो सकता है और इसकी अनुमति दी जाती है। जो मुकदमा शुरू होने के बाद दाखिल किया गया था। वास्तव में, सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के आलोक में, मामले की तैयारी के दौरान कुछ नए तथ्यों की खोज करने के लिए पहले के अधिवक्ता पर आरोप लगाने और नए अधिवक्ता को श्रेय देने से उचित परिश्रम के मापदंडों को पूरा नहीं किया जा सकता है। इसलिए, अधिवक्ता के प्रयासों या गलती पर रखे गए ऐसे किसी भी पुनरीक्षण आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता और उसे अनुमति नहीं दी जा सकती।

12. उचित परिश्रम का मुद्दा आवश्यक हिस्सा है, जिस पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। इस मामले में इस न्यायालय द्वारा बहुत अच्छी तरह से विचार किया गया था श्री फिरोज उद्दीन (उपरोक्त) मामले के उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"18. आदेश VI नियम 17 सीपीसी के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि वादी या लिखित बयान के लिए पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने में कोई भेदभाव नहीं है और उचित परिश्रम का प्रावधान दोनों मामलों में बहुत लागू होता है, पुनरीक्षण शुरू होने के बाद दायर किया जाता है। वास्तव में, यह लाभकारी कानून है जो पक्षों को कुछ प्रासंगिक तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाने में सक्षम बनाता है, यदि मुकदमा शुरू होने के बाद भी यह शिकायत या लिखित बयान दाखिल करने के समय उपलब्ध नहीं था, इसलिए यह उचित परिश्रम की शर्त है भी बनाया गया है, जिसका अनुपालन करना होगा, अन्यथा कार्यवाही में देरी के लिए इस प्रावधान का दुरुपयोग किया जा सकता है, इसलिए यह वादपत्र और लिखित बयान के लिए समान रूप से लागू होगा।

19. जहां तक ऊपर उल्लिखित निर्णयों का सवाल है, वे भी उसी दृष्टिकोण के हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पुनरीक्षण आवेदन में उल्लिखित तथ्यों के बारे में, न्यायालय को लिखित बयान में पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करते समय अधिक उदार होना चाहिए था, लेकिन साथ ही न्यायालय उचित परिश्रम के प्रावधान को नजरअंदाज नहीं कर सकता है अन्यथा प्रावधान का दुरुपयोग किया गया होता। इसलिए, आदेश VI नियम 17 सीपीसी के प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय सचेत थे और किसी भी पक्ष को उचित परिश्रम की शर्त को छोड़ने की कोई स्वतंत्रता नहीं दी गई है। न्यायालयों ने एक स्पष्ट निर्णय लिया है यह देखते हुए कि चाहे यह वादी या लिखित

बयान में पुनरीक्षण का मामला हो, आदेश VI नियम 17 सीपीसी में प्रदान की गई उचित परिश्रम की आवश्यकता को पूरा करना आवश्यक है।"

13. जहां तक सीपीसी के आदेश VI नियम 17 में उल्लिखित उचित परिश्रम का सवाल है, परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति देते समय यह आवश्यक आवश्यकता है। वर्तमान मामले में, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि पुनरीक्षण आवेदन अंतिम सुनवाई के चरण में दायर किया गया था, इसलिए, आवेदन की अनुमति देते समय, यह देखना आवश्यक है कि आवेदक द्वारा तथ्य के लिए उचित परिश्रम किया गया था या नहीं जिसे पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करके रिकॉर्ड में लाया जाता है और ऐसा न होने पर पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती। आक्षेपित आदेश में, एससीसी कोर्ट ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है कि पुनरीक्षण आवेदन भरने के लिए लिया गया एकमात्र आधार वादी-विरोधी पक्ष की ओर से उचित परिश्रम की आवश्यकता पर विचार किए बिना पूर्व अधिवक्ता की ओर से की गई गलती है। श्री फिरोज उद्दीन (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय का भी यही आदेश है।

14. वर्तमान मामले में, नए अधिवक्ता की नियुक्ति को छोड़कर, जिसने नए तथ्यों की खोज की है, तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए वादी-विरोधी पक्ष द्वारा किए गए किसी भी उचित परिश्रम के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।

15. इसलिए, ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के तहत, विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 13, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.3.2023 को रद्द कर दिया गया है और पुनरीक्षण को अनुमति दी जाती है। लागत के लिये कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 896

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट-सी संख्या 40161 वर्ष 2022

संबंधित

रिट-सी संख्या 12406 वर्ष 2023

और

रिट-सी संख्या 4834 वर्ष 2022

उदय प्रताप सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: श्री वेद प्रकाश शुक्ल, श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह

प्रत्यर्थियों के लिए अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री मदन मोहन, श्री वैभव त्रिपाठी

ए. फार्मसी अधिनियम, 1948 - एआईसीटीई अधिनियम, 1987 - फार्मसी अधिनियम, फार्मसी के क्षेत्र को नियंत्रित करने वाला एक

विशेष कानून है, जो उम्मीदवारों को राज्य रजिस्टर और केंद्रीय रजिस्टर में फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकृत करने के उद्देश्य से किसी भी अन्य सामान्य विधि पर हावी होगा। (पैरा 27) बी. फार्मसी अधिनियम, 1948, धारा 12 - अध्ययन के अनुमोदित पाठ्यक्रम - किसी छात्र द्वारा प्राप्त की गई कोई भी डिग्री जिसे फार्मसी अधिनियम की धारा 12 के अनुसार भारतीय फार्मसी परिषद द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया है, उन्हें फार्मसी अधिनियम की धारा 31 के तहत बनाए गए राज्य रजिस्टर में पंजीकरण का अधिकार नहीं देगी। सिंघानिया विश्वविद्यालय, यद्यपि यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता प्राप्त है, लेकिन उसे फार्मसी में डिप्लोमा प्रदान करने के लिए भारतीय फार्मसी परिषद से अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत अनुमोदन/मान्यता प्राप्त करना आवश्यक है, ताकि फार्मसी में ऐसे डिप्लोमा को राज्य रजिस्टर में पंजीकरण के उद्देश्य से अनुमोदित योग्यता बनाया जा सके। याचिकाकर्ता सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए डिप्लोमा प्रमाण-पत्रों के आधार पर फार्मसी अधिनियम, 1948 के तहत पंजीकृत होने के हकदार नहीं हैं, जिसके पास अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत भारतीय फार्मसी परिषद से अनुमोदन या मान्यता नहीं है। (पैरा 21, 27)

खारिज। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. *फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम डॉ. एस.के. तोशनीवाल एजुकेशनल ट्रस्ट विदर्भ*

इंस्टीट्यूट ऑफ फार्मेसी एवं अन्य, (2020) एससीसी ऑनलाइन एससी 296

2. भारतीदासन यूनिवर्सिटी एवं अन्य बनाम अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद एवं अन्य, एआईआर 2001 एससी 2861

3. यशराज इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज बनाम भारतीय नर्सिंग परिषद, नई दिल्ली, एवं अन्य, (2022) 1 एडीजे 326 (एलबी)

4. रंजन सिन्हा एवं अन्य बनाम अजय कुमार विश्वकर्मा एवं अन्य, (2017) 14 एससीसी 774

5. फार्मेसी काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम आत्माराम दरियानी एवं अन्य, (2018) 11 एससीसी 341

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा दिया गया)

1. चूंकि उपरोक्त याचिकाओं में शामिल विवाद समान है, इसलिए, पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहमति से, तीनों याचिकाओं को एक साथ सुना जाता है और इस संयुक्त आदेश द्वारा तय किया जाता है।

2. उपरोक्त याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री वेद प्रकाश शुक्ला, प्रतिपक्षी संख्या-1 और 2 के अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजीव गुप्ता और प्रतिपक्षी संख्या-3 के लिए केंद्र सरकार के स्थायी अधिवक्ता श्री वैभव त्रिपाठी और प्रतिपक्षी संख्या-4 के अधिवक्ता श्री मदन मोहन को सुना।

3. ये याचिकाएं उन याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई हैं, जिन्होंने सिंघानिया विश्वविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान से फार्मेसी में डिप्लोमा प्राप्त किया है, जिसमें उत्तर प्रदेश की फार्मेसी परिषद को फार्मेसी अधिनियम की धारा 31 के तहत उत्तर प्रदेश राज्य में अभ्यास करने के लिए फार्मासिस्ट के रूप में बनाए गए पहले रजिस्टर में याचिकाकर्ताओं के नाम दर्ज करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है। सरकार ने फार्मेसी अधिनियम, 1948 और फार्मेसी प्रैक्टिस विनियम, 2015 के तहत सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद याचिकाकर्ताओं को फार्मासिस्ट के रूप में अभ्यास करने की अनुमति देने का निर्देश दिया है।

4. याचिकाकर्ताओं के अनुसार, मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि इंटरमीडिएट (बारहवीं कक्षा) पास करने के बाद उन्होंने सिंघानिया विश्वविद्यालय से "फार्मेसी में दो साल के डिप्लोमा कोर्स" में प्रवेश लिया, जिसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 (इसके बाद अधिनियम, 1956 के रूप में संदर्भित) की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता प्राप्त है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार उन्होंने अपना पाठ्यक्रम पूरा किया और फार्मेसी में डिप्लोमा उन्हें उपरोक्त विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान किया गया। रिट याचिका संख्या-40161 वर्ष 2022 के पैरा-10 में कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने फार्मेसी अधिनियम, 1948 (इसके बाद अधिनियम, 1948 के रूप में संदर्भित) की धारा 10 के तहत तैयार शिक्षा विनियमन की आवश्यकता के अनुसार प्रतिष्ठित अस्पतालों में 500 घंटे का प्रशिक्षण

लिया। इसके बाद, रिट याचिका संख्या-40161 वर्ष 2022 के पैरा-11, 13, 14, 15 में याचिकाकर्ताओं द्वारा यह कहा गया है कि सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद उन्होंने रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करने के लिए अधिनियम, 1948 की धारा 10 सपठित धारा 31 के अनुसार पंजीकरण के लिए प्रतिपक्षी संख्या-4 से संपर्क किया, लेकिन प्रतिपक्षी संख्या-4 ने याचिकाकर्ताओं के अनुरोध को इस कारण से अस्वीकार कर दिया कि पूर्वोक्त सिंघानिया विश्वविद्यालय को अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा बनाए गए वेबसाइट पर नहीं जोड़ा गया है और सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा संचालित फार्मसी में पाठ्यक्रम/डिप्लोमा भारतीय फार्मसी परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं है। इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त राहत के लिए प्रार्थना करते हुए प्रस्तुत रिट याचिकाएं दायर कीं।

प्रस्तुतियाँ

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

i) रिट याचिका संख्या-40161 वर्ष 2022 में जवाबी हलफनामे के पैरा-29 में प्रतिपक्षी संख्या-4 द्वारा भरोसा किए गए निर्णय में प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर कोई आवेदन नहीं है क्योंकि उस मामले में विवाद ए.आई.सी.टी.ई. और प्रतिपक्षी संख्या-3 के बीच था न कि प्रतिपक्षी संख्या-4 और डिप्लोमा धारकों के बीच।

सिंघानिया विश्वविद्यालय कानून के तहत स्थापित एक विश्वविद्यालय है और इसे अधिनियम, 1956 की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता दी गई है। इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 उक्त विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए डिप्लोमा के आधार पर अधिनियम, 1948 के तहत याचिकाकर्ताओं के पंजीकरण से इनकार नहीं कर सकते हैं।

(iii) किसी विश्वविद्यालय को फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया से किसी विशेष पाठ्यक्रम के लिए किसी मान्यता की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, भले ही सिंघानिया विश्वविद्यालय ने प्रतिपक्षी संख्या-2 से फार्मसी पाठ्यक्रम के लिए मान्यता प्राप्त नहीं की हो, फिर भी पंजीकरण से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि विश्वविद्यालय को फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया से अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत फार्मसी पाठ्यक्रम के लिए किसी भी मान्यता की आवश्यकता नहीं है। द फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम डॉ. एसके तोषनीवाल एजुकेशनल ट्रस्ट, विदर्भ इंस्टीट्यूट ऑफ फार्मसी एंड अन्य, (2020) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 296 और भारतीदासन विश्वविद्यालय और अन्य बनाम भारत संघ अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद और अन्य, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 2861 पैरा 15 और 16), यशराज इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज बनाम भारतीय नर्सिंग परिषद नई दिल्ली और अन्य (2022)1 एडीजे 326 (एलबी) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

6. प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि

i) फार्मसी का कोर्स फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया यानी प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-4 याचिकाकर्ताओं को पंजीकृत नहीं कर सकता है। फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया को भारत में फार्मसी की शिक्षा और पेशे को विनियमित करने के लिए सशक्त निकाय के रूप में गठित किया गया है। इसलिए, अधिनियम, 1948 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यक्रमों के अनुमोदन, पाठ्यक्रम सामग्री को निर्धारित करने, छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए पात्रता शर्तें, परीक्षा के मूल्यांकन मानक, पंजीकरण प्रदान करना, उसी अनुशासन में उच्च योग्यता का प्रवेश, कुख्यात आचरण के लिए कार्रवाई करना आदि सहित सभी क्षेत्रों को शामिल करना प्रतिपक्षी संख्या-3 फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया की शक्तियों के भीतर अच्छी तरह से है। इसलिए, जब तक कथित रूप से फार्मसी कोर्स आयोजित नहीं किया जाता है और सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान किए जा रहे डिप्लोमा को प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा मान्यता नहीं दी जाती है, तब तक अधिनियम, 1948 के तहत याचिकाकर्ताओं का पंजीकरण नहीं किया जा सकता है। जवाबी हलफनामे के विभिन्न पैरा का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिकाएं पूरी तरह से गलत हैं और डॉ. एसके तोषनीवाल एजुकेशनल ट्रस्ट, विदर्भ इंस्टीट्यूट ऑफ फार्मसी और अन्य (उपरोक्त) और रंजन सिन्हा और अन्य बनाम अजय कुमार विश्वकर्ण और अन्य (2017) 14

एस.सी.सी. 774 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर कोई राहत नहीं दी जा सकती है

7. श्री राजीव गुप्ता, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता प्रतिपक्षी संख्या-1 और 2 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के पैरा-6, 7 और 9 को संदर्भित करते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि रिट याचिका पूरी तरह से गलत है और इसलिए, खारिज करने योग्य है।

8. प्रतिपक्षी संख्या-4 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि सिंघानिया विश्वविद्यालय अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत फार्मसी पाठ्यक्रम के लिए अनुमोदित नहीं है, इसलिए, प्रतिपक्षी सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए डिप्लोमा के बल पर याचिकाकर्ताओं को पंजीकृत नहीं कर सकता है। संदर्भ विशेष रूप से प्रतिपक्षी संख्या-4 के जवाबी हलफनामे के पैरा-6, 7, 8, 9, 10 और 13 के लिए किया गया है।

9. पक्षकारों के अधिवक्ता ने पूर्वोक्त लोगों के अलावा कोई अन्य निवेदन नहीं किया है। पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा किए गए प्रस्तुतिकरण और उनकी सहमति के मद्देनजर, इन रिट याचिकाओं में निर्धारण के लिए निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए जा रहे हैं:

-

क) क्या याचिकाकर्ता सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए डिप्लोमा प्रमाणपत्रों के आधार पर अधिनियम, 1948 के तहत पंजीकृत होने के हकदार हैं, जिसे अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत

फार्मेसी काउंसिल ऑफ इंडिया से कोई अनुमोदन या मान्यता प्राप्त नहीं है?

चिकित्सक के नुस्खे पर दवा के वितरण को प्रतिबंधित कर सकें।

ख) क्या सिंधानिया विश्वविद्यालय, जो यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता प्राप्त है, को भारतीय फार्मेसी परिषद से अधिनियम, 1948 की धारा 12 के तहत फार्मेसी में डिप्लोमा प्रदान करने के लिए कोई अनुमोदन/मान्यता/अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है?

10. पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर देने के लिए फार्मेसी अधिनियम, 1948 के उद्देश्यों और कारणों के विवरणों और योजना की जांच करना आवश्यक है। फार्मेसी अधिनियम, 1948 के उद्देश्यों और कारणों का विवरण नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"उद्देश्यों और कारणों का कथन - यह वांछनीय है कि, अधिकांश अन्य देशों की तरह, केवल उन व्यक्तियों को जिन्होंने व्यावसायिक शिक्षा के न्यूनतम मानक प्राप्त किए हैं, उन्हें फार्मेसी के पेशे का अभ्यास करने की अनुमति दी जानी चाहिए। तदनुसार, एक केंद्रीय फार्मेसी परिषद स्थापित करने का प्रस्ताव है, जो शिक्षा के न्यूनतम मानकों और फार्मासिस्टों के अध्ययन और परीक्षाओं के अनुमोदित पाठ्यक्रमों और प्रांतीय फार्मेसी परिषदों को निर्धारित करेगी, जो योग्य फार्मासिस्टों के प्रांतीय रजिस्ट्रों के रखरखाव के लिए जिम्मेदार होगी। इसके अलावा प्रांतीय सरकारों को यह अधिकार देने का प्रस्ताव है कि वे पंजीकृत फार्मासिस्ट के निर्देशन और व्यक्तिगत पर्यवेक्षण के अलावा किसी

11. फार्मेसी अधिनियम की धारा 10, 11, 12, 29, 30, 31 और 32 को नोट करना प्रासंगिक है जो नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

"10. शिक्षा विनियम-(1) इस धारा के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय परिषद्, केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के अधीन रहते हुए, ऐसे विनियम बना सकेगी, जिन्हें शिक्षा विनियम कहा जाएगा, जो भेषज के रूप में अर्हता के लिये अपेक्षित शिक्षा का न्यूनतम मानक विहित करते हैं।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, शिक्षा विनियम निम्नलिखित विहित कर सकेंगे-

(क) परीक्षा में प्रवेश से पहले किए जाने वाले अध्ययन और व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रकृति और अवधि।

(ख) अनुमोदित अध्ययन पाठ्यक्रम प्राप्त कर रहे छात्रों के लिए क्या-क्या उपकरण और सुविधाएं प्रदान की जाएंगी;

(ग) परीक्षा के कौन-कौन से विषय और उनमें कौन-कौन से मानक प्राप्त किए जाने हैं;

(घ) परीक्षाओं में प्रवेश की कोई अन्य शर्तें।

(3) शिक्षा विनियमों के प्रारूप और उसके बाद के सभी संशोधनों की प्रतियां केन्द्रीय परिषद्

द्वारा सभी राज्य सरकारों को भेजी जाएँगी और केन्द्रीय परिषद् यथास्थिति, शिक्षा विनियम या उसका कोई संशोधन, उपधारा (1) के अधीन अनुमोदन के लिए केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत करने से पहले प्रतियाँ प्रस्तुत करने की तारीख से तीन मास के भीतर प्राप्त किसी राज्य सरकार की पूर्वोक्त टिप्पणियों पर विचार करेगी।

(4) शिक्षा विनियम राजपत्र में और ऐसी अन्य रीति से प्रकाशित किए जाएँगे जो केन्द्रीय परिषद् निदेश दे।

(5) कार्यपालिका समिति समय-समय पर केन्द्रीय परिषद् को शिक्षा विनियमों की प्रभावोत्पादकता के बारे में प्रतिवेदन देगी और केन्द्रीय परिषद् को उनके ऐसे संशोधनों की सिफारिश कर सकेगी जो वह ठीक समझे।

11. राज्यों को शिक्षा विनियमों का लागू होना - अध्याय 3 के अधीन राज्य परिषद् के गठन के पश्चात् और राज्य परिषद् से परामर्श करने के पश्चात् किसी भी समय, राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह घोषणा कर सकेगी कि शिक्षा विनियम राज्य में प्रभावी होंगे:

बशर्ते कि जहां ऐसी कोई घोषणा नहीं की गई है, वहां राज्य परिषद् के गठन की तारीख से तीन वर्ष की समाप्ति पर राज्य में शिक्षा विनियम प्रभावी होंगे।

12. अध्ययन और परीक्षाओं के अनुमोदित पाठ्यक्रम- (1) किसी राज्य में कोई प्राधिकारी [***] जो फार्मासिस्टों के लिए अध्ययन का एक कोर्स आयोजित करता है, पाठ्यक्रम के

अनुमोदन के लिए केंद्रीय परिषद् को आवेदन कर सकता है, और केंद्रीय परिषद्, यदि संतुष्ट हो जाती है, तो ऐसी जांच के बाद, जैसा कि वह बनाना ठीक समझती है, कि अध्ययन का उक्त पाठ्यक्रम शिक्षा विनियमों के अनुरूप है, फार्मासिस्टों के लिए अनुमोदित परीक्षा में प्रवेश के प्रयोजन के लिए अध्ययन के उक्त पाठ्यक्रम को अध्ययन का अनुमोदित पाठ्यक्रम घोषित करेगा।

(2) किसी राज्य में कोई प्राधिकारी [***] जो फार्मसी में परीक्षा आयोजित करता है, परीक्षा के अनुमोदन के लिए केंद्रीय परिषद् को आवेदन कर सकेगा, और केंद्रीय परिषद्, यदि संतुष्ट हो जाती है, तो ऐसी जांच के बाद, जो वह करना ठीक समझे, कि उक्त परीक्षा शिक्षा विनियमों के अनुरूप है, उक्त परीक्षा को इस अधिनियम के तहत फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकरण के लिए अर्हता प्राप्त करने के उद्देश्य से अनुमोदित परीक्षा घोषित करेगी।

(3) राज्यों में प्रत्येक प्राधिकारी [***] जो अध्ययन का अनुमोदित पाठ्यक्रम संचालित करता है या अनुमोदित परीक्षा आयोजित करता है, ऐसी जानकारी प्रस्तुत करेगा जो केंद्रीय परिषद् समय-समय पर अध्ययन और प्रशिक्षण और परीक्षा के पाठ्यक्रमों के बारे में अपेक्षा करे, उन आयु के बारे में जिनमें अध्ययन और परीक्षा के ऐसे पाठ्यक्रमों से गुजरना अपेक्षित है और साधारणतया अध्ययन और परीक्षा के ऐसे पाठ्यक्रमों के लिए अपेक्षित है।

(ठ) किसी राज्य में इस अध्याय के प्रभावी होने के पश्चात् यथाशीघ्र, राज्य सरकार उस

रीति से तैयार करवाएगी जिसमें इसके पश्चात् उस राज्य के लिए भेषजनों का रजिस्टर उपबंधित किया गया है।

(2) राज्य परिषद्, गठन के पश्चात् यथाशीघ्र, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार रजिस्टर रखने का कर्तव्य ग्रहण करेगी।

(3) रजिस्टर में निम्नलिखित विवरण सम्मिलित होंगे, अर्थात्:

(ए) पंजीकृत व्यक्ति का पूरा नाम और आवासीय पता;

(ख) रजिस्टर में उनके प्रथम प्रवेश की तारीख क्या थी;

(ग) पंजीकरण के लिए उसकी अर्हताएं क्या हैं;

(घ) उसका पेशेवर पता, और यदि वह किसी व्यक्ति द्वारा नियोजित है, तो ऐसे व्यक्ति का नाम;

(ङ) ऐसे और विवरण जो विहित किए जाएं।

30. प्रथम रजिस्टर तैयार करना- प्रथम रजिस्टर तैयार करने के प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, तीन व्यक्तियों से मिलकर एक रजिस्ट्रीकरण अधिकरण का गठन करेगी और एक रजिस्ट्रार भी नियुक्त करेगी जो रजिस्ट्रीकरण अधिकरण के सचिव के रूप में कार्य करेगा।

(2) राज्य सरकार, उसी या इसी प्रकार की अधिसूचना द्वारा, एक तारीख नियत करेगी जिस दिन या उससे पहले रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन, जो विहित फीस के साथ भेजे जाएंगे, रजिस्ट्रीकरण अधिकरण को किए जाएंगे।

(3) रजिस्ट्रीकरण अधिकरण नियत तारीख को या उससे पूर्व प्राप्त प्रत्येक आवेदन की जांच

करेगा और यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक धारा 31 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए अर्हित है तो वह रजिस्टर पर आवेदक के नाम की प्रविष्टि का निदेश देगा।

(4) इस प्रकार तैयार किया गया पहला रजिस्टर तदनन्तर ऐसी रीति से प्रकाशित किया जाएगा जैसा कि राज्य सरकार निदेश दे और रजिस्ट्रीकरण अधिकरण के इस प्रकार प्रकाशित रजिस्टर में व्यक्त या निहित किसी निर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति, ऐसे प्रकाशन की तारीख से साठ दिन के भीतर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी को अपील कर सकेगा।

(5) रजिस्ट्रार, उपधारा (4) के अधीन नियुक्त प्राधिकारी के विनिश्चयों के अनुसार रजिस्टर में संशोधन करेगा और तदुपरांत प्रत्येक व्यक्ति को, जिसका नाम रजिस्टर में दर्ज किया गया है, विहित प्ररूप में रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी करेगा।

(6) राज्य परिषद् के गठन पर, रजिस्टर उसकी अभिरक्षा में दिया जाएगा, और राज्य सरकार निदेश दे सकेगी कि पहले रजिस्टर में रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन फीस के सभी या किसी विनिर्दिष्ट भाग का संदाय राज्य परिषद् के खाते में किया जाएगा।

31. प्रथम रजिस्टर में प्रविष्टि के लिए अर्हताएं- [कोई व्यक्ति जो अठारह वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है] विहित फीस के संदाय पर

यदि वह निवास करता है तो प्रथम रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करवाने का हकदार होगा। या राज्य में फार्मसी का व्यवसाय या पेशा करता है और यदि वह-

(क) यथास्थिति, किसी भारतीय विश्वविद्यालय या राज्य सरकार से फार्मसी या भेषज रसायन विज्ञान में डिग्री या डिप्लोमा या रसायनज्ञ और इग्निस्ट डिप्लोमा धारण कर सकता है। या भारत के बाहर एक प्राधिकरण द्वारा दी गई निर्धारित योग्यता, या

(ख) फार्मसी या भेषज रसायन विज्ञान में डिग्री के अलावा किसी भारतीय विश्वविद्यालय की डिग्री रखता है और किसी अस्पताल या औषधालय या अन्य स्थान पर औषधियों के प्रशमन में लगा हुआ है जिसमें कम से कम तीन वर्ष की कुल अवधि के लिए चिकित्सा व्यवसायियों के नुस्खे पर औषधियां नियमित रूप से वितरित की जाती हैं, या

(ग) संबंधित ने सामान्य या डिस्पेंसर के लिए राज्य सरकार द्वारा पर्याप्त के रूप में मान्यता प्राप्त परीक्षा उत्तीर्ण की है, या

(घ) किसी अस्पताल या औषधालय या अन्य स्थान पर औषधियों के प्रशमन में लगा हुआ है जिसमें औषधियां नियमित रूप से चिकित्सा व्यवसायियों के नुस्खे पर कम से कम पांच वर्ष की कुल अवधि के लिए धारा 30 की उपधारा (2) के अधीन अधिसूचित तारीख से कम से कम पांच वर्ष की अवधि के लिए वितरित की जाती हैं।

32. बाद के पंजीकरण के लिए योग्यताएं: (1) धारा 30 की उपधारा (2) के अधीन नियुक्त तारीख के पश्चात् और शिक्षा विनियमों के राज्य में धारा 11 द्वारा या उसके अधीन प्रभावी होने से पहले, [कोई व्यक्ति जिसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है] विहित फीस के संदाय पर अपना नाम रजिस्टर में दर्ज करवाने का हकदार होगा यदि वह राज्य में फार्मसी का व्यवसाय या वृत्ति करता है या करता है और यदि वह-

(क) केन्द्रीय परिषद् के पूर्व अनुमोदन से विहित शर्तों को पूरा करता है या जहां कोई शर्त विहित नहीं की गई है, वे शर्तें जो किसी व्यक्ति को धारा 31 में यथा निर्धारित प्रथम रजिस्टर में अपना नाम दर्ज कराने का अधिकार देती हैं, या

(ख) किसी अन्य राज्य में पंजीकृत फार्मासिस्ट है, या (ग) धारा 14 के तहत अनुमोदित योग्यता रखता है: बशर्ते कि कोई भी व्यक्ति 'खंड (ए) या खंड के तहत' हकदार नहीं होगा।

(ग)] रजिस्टर में अपना नाम दर्ज कराने के लिए जब तक कि उसने मैट्रिक परीक्षा या मैट्रिक परीक्षा के समकक्ष होने के रूप में निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है।

(2) राज्य में धारा 11 द्वारा या उसके अधीन शिक्षा विनियम प्रभावी होने के पश्चात्, कोई व्यक्ति विहित फीस के संदाय पर अपना नाम रजिस्टर में दर्ज करवाने का हकदार होगा यदि उसने [अठारह वर्ष] की आयु प्राप्त कर ली है, यदि वह फार्मसी का

व्यवसाय या कारोबार करता है, और यदि उसने राज्य में एक अनुमोदित परीक्षा उत्तीर्ण की है या धारा 14 के तहत अनुमोदित योग्यता रखता है '[या किसी अन्य राज्य में पंजीकृत फार्मासिस्ट है।

12. फार्मेसी अधिनियम, 1948, एक कल्याणकारी कानून है जिसका उद्देश्य फार्मेसी के पेशे और अभ्यास के विनियमन के लिए बेहतर प्रावधान करना और फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकृत होने के लिए योग्यता निर्धारित करना है। कोई भी व्यक्ति जो फार्मेसी के पेशे और प्रैक्टिस में आना चाहता है, उसे फार्मेसी अधिनियम के प्रावधानों का पालन करना होगा। अधिनियम की धारा 10 केंद्रीय परिषद को केंद्र सरकार के अनुमोदन से शिक्षा विनियम कहलाने के लिए विनियम बनाने का अधिकार देती है, जो फार्मासिस्ट के रूप में योग्यता के लिए आवश्यक शिक्षा के न्यूनतम मानक को निर्धारित करती है।

13. पूर्वोक्त विनियम निम्नलिखित को विनियमित करते हैं:-

(क) अध्ययन और व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रकृति और अवधि क्या है;

(ख) अनुमोदित अध्ययन पाठ्यक्रम से गुजर रहे छात्रों के लिए उपकरण और सुविधाएं प्रदान की जाएंगी;

(ग) परीक्षा के विषय कौन-कौन से हैं और उनमें कौन-कौन से मानक प्राप्त किए जाएंगे; और

(द) किसी अन्य शर्तों की जांच की जानी है।

यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अधिनियम, 1948 की धारा 10 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, भारतीय फार्मेसी परिषद ने शिक्षा विनियम, 1991 तैयार किए हैं, जो फार्मेसी में डिप्लोमा के पाठ्यक्रम के संबंध में लागू हैं। विनियम के खंड (9) में निम्नानुसार प्रावधान है -

"9. अध्ययन के पाठ्यक्रम का संचालन करने वाले प्राधिकारी का अनुमोदन: -

विनियम 7 के तहत निर्धारित नियमित शैक्षणिक अध्ययन का पाठ्यक्रम फार्मेसी अधिनियम, 1948 की धारा 12 की उप-धारा (1) के तहत भारतीय फार्मेसी परिषद द्वारा अनुमोदित संस्थान में आयोजित किया जाएगा।

बशर्ते कि भारतीय फार्मेसी परिषद इस विनियम के अधीन किसी संस्था को अनुमोदित नहीं करेगी जब तक कि वह इन विनियमों के परिशिष्ट-ख में यथा विनिर्दिष्ट आवास, उपस्कर और शिक्षण स्टाफ के भवन के संबंध में पर्याप्त व्यवस्था या शिक्षण उपलब्ध नहीं कराती है।

14. अधिनियम की धारा 12 में यह प्रावधान है कि किसी राज्य में कोई भी प्राधिकारी जो फार्मासिस्टों के लिए अध्ययन का एक कोर्स आयोजित करता है, पाठ्यक्रम के अनुमोदन के लिए भारतीय फार्मेसी परिषद को आवेदन कर सकता है और भारतीय फार्मेसी परिषद, यदि संतुष्ट हो, तो ऐसी जांच के बाद, जैसा कि वह करना उचित समझे, कि अध्ययन का उक्त

पाठ्यक्रम शिक्षा विनियमों के अनुरूप है, फार्मासिस्ट के लिए अनुमोदित परीक्षा में प्रवेश के उद्देश्य से उक्त पाठ्यक्रम को अध्ययन का अनुमोदित पाठ्यक्रम घोषित करेगा।

- (i) वर्ष 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है;
- (ii) निर्धारित शुल्क का भुगतान किया;
- (iii) राज्य में फार्मसी का व्यवसाय या वृत्ति करता है या करता है: और यदि वह-

15. अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (2) में यह प्रावधान है कि किसी राज्य में कोई भी प्राधिकारी जो फार्मसी में परीक्षा आयोजित करता है, परीक्षा के अनुमोदन के लिए केंद्रीय परिषद को आवेदन कर सकता है, और केंद्रीय परिषद, यदि संतुष्ट हो जाती है, तो ऐसी जांच के बाद, जैसा कि वह करना उचित समझती है, कि उक्त परीक्षा शिक्षा विनियमों के अनुरूप है, उक्त परीक्षा को इस अधिनियम के तहत फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकरण के लिए अर्हता प्राप्त करने के प्रयोजनों के लिए एक अनुमोदित परीक्षा घोषित करेगा।

(ए) केंद्रीय परिषद के पूर्व अनुमोदन से निर्धारित शर्तों को पूरा करता है, या जहां धारा 31 में निर्धारित रूप में उसका नाम पंजीकृत करने के लिए कोई शर्त निर्धारित नहीं की गई है; नहीं तो

(बी) किसी अन्य राज्य में एक पंजीकृत फार्मासिस्ट है; नहीं तो

(ग) धारा 14 के तहत अनुमोदित योग्यता रखता है।

बशर्ते कि कोई भी व्यक्ति खंड (क) या (ग) के अधीन अपना नाम रजिस्टर में दर्ज कराने का हकदार नहीं होगा जब तक कि उसने मैट्रिक परीक्षा या मैट्रिक परीक्षा के समकक्ष निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है।

16. अधिनियम, 1948 की धारा 29 रजिस्टर तैयार करने और बनाए रखने के बारे में अधिदेशित करती है। धारा 30 में प्रथम रजिस्टर तैयार करने की प्रक्रिया का प्रावधान है। धारा 30(4) प्रथम रजिस्टर के प्रकाशन के लिए प्रदान करता है। धारा 31 प्रथम रजिस्टर में प्रवेश के लिए योग्यता प्रदान करती है।

धारा 32 की उप-धारा (2) यह अनिवार्य बनाती है कि ऐसे व्यक्ति को एक अनुमोदित परीक्षा उत्तीर्ण करनी चाहिए। अभिव्यक्ति "अनुमोदित परीक्षा" का अर्थ अधिनियम की धारा 12 की उप-धारा (2) के संदर्भ में अनुमोदित परीक्षाएं हैं। धारा 12 की उपधारा (2) "राज्य में कोई भी प्राधिकरण" अभिव्यक्ति का उपयोग करती है। प्रयुक्त वाक्यांश "एक राज्य में कोई भी प्राधिकरण" पर्याप्त व्यापक है और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी विश्वविद्यालय को बाहर नहीं करता है।

17. अधिनियम, 1948 की धारा 32 प्रथम रजिस्टर के प्रकाशन के बाद बाद के रजिस्टर में प्रवेश के लिए प्रक्रिया और योग्यता प्रदान करती है। इसमें राज्य रजिस्टर में किसी फार्मासिस्ट के रजिस्ट्रीकरण का प्रावधान है बशर्ते कि ऐसा व्यक्ति:

18. इस प्रकार, जब तक कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 32 के तहत निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं करता है, तब तक वह राज्य परिषद द्वारा बनाए गए राज्य रजिस्टर में पंजीकरण के लिए हकदार नहीं होगा।

19. याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 31 के प्रावधानों पर भरोसा कर रहे हैं जो शिक्षा विनियम लागू नहीं होने तक पहला रजिस्टर तैयार करने के लिए लागू थे। योग्यता निर्धारित करने वाले शिक्षा विनियम लागू होने के बाद, धारा 31 की कोई प्रयोज्यता नहीं है जैसा कि रंजन सिन्हा (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है, जिसकी पुष्टि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम आत्माराम दरियानी और अन्य (2018) 11 एस.सी.सी. 341 के मामले में की है। रंजन सिंह (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"38. उपरोक्त के मद्देनजर, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जब पंजीकरण ट्रिब्यूनल द्वारा तैयार फार्मासिस्टों का पहला रजिस्टर बिहार सरकार द्वारा धारा 30 की उप-धारा (4) के तहत प्रकाशित किया गया था, तो वह निर्णायक है और समावेशन के माध्यम से कोई भी संशोधन फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा शिक्षा विनियम तैयार किए जाने तक किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए, सक्षम प्राधिकारी अधिनियम की धारा 31 द्वारा निर्धारित योग्यता पर विचार कर सकता है। तथापि, शिक्षा विनियमों के लागू होने के बाद तथा

परवर्ती पंजीकरण के समय सरकार को शिक्षा विनियमों का अनिवार्य रूप से अनुपालन करना होता है। कोई भी व्यक्ति जो शिक्षा विनियमों के अनुसार योग्यता को पूरा नहीं करता है, वह फार्मसी रजिस्टर में प्रवेश लेने का हकदार नहीं होगा।

20. फार्मसी अधिनियम, 1948 की धारा 10 के तहत भारतीय फार्मसी परिषद द्वारा शिक्षा विनियम तैयार किए जाने के बाद, फार्मसी अधिनियम, 1948 की धारा 30 की उप-धारा (4) के अनुसार पहला रजिस्टर प्रकाशित किया जाना आवश्यक है। एक बार प्रथम रजिस्टर प्रकाशित हो जाने के बाद कोई भी व्यक्ति प्रथम रजिस्टर में किसी भी प्रविष्टि के लिए हकदार नहीं है। अधिनियम की धारा 32 के अनुसार ही प्रथम रजिस्टर के प्रकाशन के बाद बाद के पंजीकरण में नाम दर्ज किया जा सकता है। बाद के पंजीकरण के प्रयोजनों के लिए, आवेदक द्वारा धारित योग्यता भारतीय फार्मसी परिषद के शिक्षा विनियम, 1991 के विनियमन 9 सपठित अधिनियम की धारा 12 के संदर्भ में एक अनुमोदित परीक्षा होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति ने अनुमोदित परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है या धारा 12 या धारा 14 के तहत अनुमोदित योग्यता नहीं है, तो वह राज्य फार्मसी रजिस्टर में पंजीकरण के लिए हकदार नहीं है।

21. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हम पहले प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हैं और मानते हैं कि याचिकाकर्ता सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए डिप्लोमा प्रमाणपत्रों के आधार पर अधिनियम, 1948 के

तहत पंजीकृत होने के हकदार नहीं हैं, जिनके पास अधिनियम 1948 की धारा 12 के तहत फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया से कोई अनुमोदन या मान्यता नहीं है।

22. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा जोरदार तर्क दिया गया है कि एक बार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता प्राप्त हो जाने के बाद, उसे यूजीसी अधिनियम की धारा 22 के तहत डिग्री प्रदान करने का अधिकार है।

"2(घ) 'विश्वविद्यालय' से केन्द्रीय अधिनियम, किसी अनंतिम अधिनियम या राज्य द्वारा या उसके अधीन स्थापित या निगमित विश्वविद्यालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत ऐसी कोई संस्था भी है जो संबंधित विश्वविद्यालय के परामर्श से इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त बनाए गए विनियमों के अनुसार आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त की जाए।

(1) डिग्रियां प्रदान करने के अधिकार का प्रयोग केन्द्रीय अधिनियम, अनंतिम अधिनियम या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित या निगमित विश्वविद्यालय या धारा 3 के अधीन सम विश्वविद्यालय संस्था या डिग्रियां प्रदान करने या अनुदान देने के लिए संसद के अधिनियम द्वारा विशेष रूप से सशक्त संस्था द्वारा ही किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) में यथा उपबंधित के सिवाय, कोई व्यक्ति या प्राधिकारी कोई उपाधि प्रदान करने या अनुदान देने का हकदार नहीं होगा।

(3) इस धारा के प्रयोजन के लिए, "डिग्री" से ऐसी कोई डिग्री अभिप्रेत है जो केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से आयोग द्वारा इस निमित्त राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए।

23. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के पूर्वोक्त प्रावधानों से, यह स्पष्ट है कि यूजीसी अधिनियम की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय को डिग्री प्रदान करने का अधिकार है, लेकिन राज्य की फार्मसी परिषद द्वारा बनाए गए राज्य रजिस्टर में फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकरण के प्रयोजनों के लिए, ऐसी डिग्री / पाठ्यक्रम फार्मसी अधिनियम की धारा 12 के तहत अनुमोदित पाठ्यक्रम होना चाहिए।

24. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भारतीदासन विश्वविद्यालय (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर बहुत अधिक भरोसा किया है और तर्क दिया है कि फार्मसी के क्षेत्र में पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए विश्वविद्यालय को कोई अनुमोदन लेने की आवश्यकता नहीं है। हमने पूर्वोक्त निर्णय का अध्ययन किया है। उपरोक्त निर्णय मुख्य रूप से अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम, 1987 की प्रयोज्यता के मुद्दे पर है और ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम की धारा 2(एच) विशेष रूप से विश्वविद्यालय को इसके दायरे से बाहर रखती है। इसलिए, उक्त निर्णय की प्रस्तुत मामले के उद्देश्य के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है। यशराज इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज बनाम इंडियन नर्सिंग

काउंसिल, नई दिल्ली [2022(1) एडीजे 326] के मामले में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता का मामले के तथ्यों पर कोई आवेदन नहीं है।

25. अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (2) राज्य में फार्मसी में परीक्षा आयोजित करने वाले प्रत्येक प्राधिकारी को अधिनियम की योजना के अनुसार भारतीय फार्मसी परिषद से परीक्षा के अनुमोदन के लिए आवेदन करने के लिए अनिवार्य करती है। चूंकि हमारे सुविचारित विचार में विश्वविद्यालय भी किसी राज्य में किसी प्राधिकरण वाक्यांश के अंतर्गत आता है, अतः किसी विश्वविद्यालय को फार्मसी में परीक्षा आयोजित करने के लिए भारतीय फार्मसी परिषद से अनुमोदन प्राप्त करने से छूट प्राप्त नहीं है। लेहाजा, सिंघानिया विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान किए गए फार्मसी में डिप्लोमा जिसे भारतीय फार्मसी परिषद से कोई अनुमोदन प्राप्त नहीं है, इसलिए, शिक्षा विनियम, 1991 लागू होने के बाद अधिनियम के तहत राज्य रजिस्टर में फार्मासिस्टों के रूप में याचिकाकर्ताओं के पंजीकरण के प्रयोजनों के लिए यह अनुमोदित योग्यता नहीं है।

26. डॉ. एस. के. तोषनीवाल एजुकेशनल ट्रस्ट, विदर्भ इंस्टीट्यूट ऑफ फार्मसी एंड अदर्स (उपरोक्त) के मामले में, ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम, 1987 और फार्मसी अधिनियम, 1948 की प्रयोज्यता के संघर्ष से निपटने के दौरान, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निम्नानुसार अवधारित किया है: -

11. जैसा कि ऊपर देखा गया है, मामलों के वर्तमान बैच में शामिल मुद्दा फार्मसी के विषय के संबंध में फार्मसी अधिनियम, 1948 या ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम, 1987 की प्रयोज्यता के संबंध में है, जिसमें अध्ययन के पाठ्यक्रमों का अनुमोदन, फार्मासिस्ट के रूप में योग्यता के लिए आवश्यक शिक्षा के न्यूनतम मानक, फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकरण, भविष्य के पेशेवर आचरण का विनियमन आदि शामिल हैं। दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह है कि यदि इन दोनों निकायों की राय में कोई विरोधाभास है तो क्या फार्मसी शिक्षा पाठ्यक्रम संचालित करने के लिए किसी संस्था को अनुमोदन प्रदान करने और संबंधित मामलों के प्रश्न पर पी.सी.आई. या ए.आई.सी.टी.ई. का अधिदेश प्रबल होगा। मुद्दा यह है कि कौन सा निकाय, यानी ए.आई.सी.टी.ई. या पी.सी.आई. मुख्य रूप से भारत में फार्मास्युटिकल विनियमन के विनियमन के लिए जिम्मेदार होगा।

12. याचिकाओं के वर्तमान बैच में शामिल मुद्दों/प्रश्नों का उत्तर देते समय, सबसे पहले, जिस बात पर विचार करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या फार्मसी अधिनियम जो ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम से पूर्व अधिनियम है, को फार्मसी के क्षेत्र में विशेष प्रावधानों के साथ एक विशेष अधिनियम कहा जा सकता है? फार्मसी अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का विवरण निम्नानुसार है:

"यह वांछनीय है कि, अधिकांश अन्य देशों की तरह, केवल उन व्यक्तियों को जिन्होंने व्यावसायिक शिक्षा के न्यूनतम मानक प्राप्त किए हैं, उन्हें फार्मसी के पेशे का अभ्यास करने की अनुमति दी जानी चाहिए। तदनुसार, एक केंद्रीय फार्मसी परिषद स्थापित करने का प्रस्ताव है, जो शिक्षा के न्यूनतम मानकों को निर्धारित करेगी और फार्मासिस्टों और प्रांतीय फार्मसी परिषदों के लिए अध्ययन और परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों को मंजूरी देगी, जो योग्य फार्मासिस्टों के प्रांतीय रजिस्ट्रारों के रखरखाव के लिए जिम्मेदार होगी। इसके अलावा प्रांतीय सरकारों को किसी पंजीकृत फार्मासिस्ट के प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत पर्यवेक्षण के अलावा किसी चिकित्सक के नुस्खे पर दवा के वितरण पर रोक लगाने का प्रस्ताव है।

12.5. इस प्रकार, फार्मसी अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों और उसमें बनाए गए नियमों पर विचार करते हुए, यह कहा जा सकता है कि फार्मसी अधिनियम फार्मसी के विषय में अपने आप में एक पूर्ण कोड है। पी.सी.आई. को भारत में फार्मसी की शिक्षा और पेशे को विनियमित करने के लिए सशक्त निकाय के रूप में गठित किया गया है। यह विवादित नहीं हो सकता है कि फार्मसी का विषय एक विशेष है और सामान्य विषय नहीं है। भेषजी अधिनियम के संगत प्रावधानों से, विशेष रूप से ऊपर उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार, फार्मसी अधिनियम में पाठ्यक्रमों का अनुमोदन,

पाठ्यक्रम विषय-वस्तु निर्धारित करना, छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए पात्रता शर्तें, परीक्षा के मूल्यांकन मानक, पंजीकरण प्रदान करना, उसी विषय में उच्चतर अर्हताएं दर्ज करना, बदनाम आचरण के लिए कार्रवाई करना आदि सहित सभी क्षेत्र शामिल हैं। इसमें दांडिक प्रावधान भी शामिल है। इस प्रकार, फार्मसी अधिनियम को लागू करने में विधायी इरादा यह सुनिश्चित करना प्रतीत होता है कि पेशे का निर्बाध विनियमन है। फार्मसी अधिनियम को लागू करने के उद्देश्य और लक्ष्य को पूरा करने के लिए, विधानमंडल ने कानून के तहत स्वायत्त वैधानिक प्राधिकरण यानी फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया की स्थापना की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि फार्मसी के क्षेत्र में, फार्मसी अधिनियम एक विशेष कानून है।

13. अब यह मानते हुए कि फार्मसी अधिनियम फार्मसी के विशेष विषय से संबंधित एक विशेष अधिनियम है, अगला प्रश्न जो इस न्यायालय के विचार के लिए रखा गया है, वह यह है कि क्या फार्मसी के क्षेत्र में, फार्मसी अधिनियम प्रबल होगा या ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम? अगला प्रश्न यह है कि फार्मसी के पेशे में पी.सी.आई. का अनन्य क्षेत्राधिकार होगा या ए.आई.सी.टी.ई. का?

14. पूर्वोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को लागू करना

और जैसा कि ऊपर देखा गया है, फार्मसी अधिनियम फार्मसी के क्षेत्र में एक विशेष अधिनियम है और यह फार्मसी के क्षेत्र में अपने आप में एक पूर्ण कोड है, फार्मसी अधिनियम ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम पर प्रबल होगा, जैसा कि ऊपर देखा गया है, तकनीकी शिक्षा/संस्थानों से संबंधित एक सामान्य कानून है। अतः अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद और/अथवा संबंधित शैक्षिक संस्थाओं की ओर से यह निवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम अनुवर्ती कानून है और तकनीकी शिक्षा की परिभाषा में फार्मसी शामिल है और इसलिए इसे निहित निरसन कहा जा सकता है। उनके स्तर पर, यह नोट किया जाना अपेक्षित है कि ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम में फार्मसी अधिनियम का कोई विशिष्ट निरसन नहीं है, विशेष रूप से तब, जब जैसा कि ऊपर कहा गया है, फार्मसी अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और ए.आई.सी.टी.ई. अधिनियम का बाद का अधिनियमन सामान्य है और इसलिए फार्मसी अधिनियम एक विशेष अधिनियम होने के नाते प्रबल होना चाहिए। इसके अलावा, कई पहलुओं के संबंध में, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है जो अनन्य रूप से पीसीआई के कार्यक्षेत्र में आता हो। इस प्रकार, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि फार्मसी अधिनियम का 'निहित निरसन' है।

17. हम श्री प्रिंस शिवाजी मराठा बोर्डिंग हाउस कॉलेज ऑफ आर्किटेक्चर में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं। अन्यथा गुणावगुण के आधार पर भी, जैसा कि ऊपर देखा और अवधारित किया गया है, फार्मसी अधिनियम जो फार्मसी के क्षेत्र में एक विशेष अधिनियम है, अभिभावी होगा और परिणामस्वरूप जहां तक फार्मसी शिक्षा की डिग्री और डिप्लोमा की मान्यता का संबंध है, फार्मसी अधिनियम अभिभावी होगा। जैसा कि ऊपर देखा गया है, फार्मसी अधिनियम के प्रावधानों के तहत गठित पी.सी.आई. जिसमें फार्मसी और/या संबंधित विषयों के क्षेत्र के विशेषज्ञ शामिल हैं, प्रबल होंगे। नतीजतन, फार्मसी अधिनियम के तहत पी.सी.आई. और अन्य निर्दिष्ट प्राधिकरणों द्वारा निर्धारित मानदंडों और विनियमों का पालन फार्मसी में डिग्री और डिप्लोमा के लिए शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थान को करना होगा।

20. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों के लिए, यह माना जाता है कि फार्मसी शिक्षा के क्षेत्र में और विशेष रूप से जहां तक फार्मसी शिक्षा की डिग्री और डिप्लोमा की मान्यता का संबंध है, फार्मसी अधिनियम, 1948 प्रबल होगा। फार्मसी अधिनियम के तहत पीसीआई और अन्य विनिर्दिष्ट प्राधिकरणों द्वारा निर्धारित मानदंडों और विनियमों का फार्मसी में डिग्री और डिप्लोमा के लिए शिक्षा प्रदान करने वाली संबंधित संस्थाओं द्वारा अनुपालन किया जाना

होगा, जिसमें छात्रों की प्रवेश क्षमता में वृद्धि और/अथवा कमी के संबंध में मानदंड और विनियम शामिल हैं और पीसीआई के निर्णयों का पालन केवल फार्मसी में डिग्री और डिप्लोमा प्रदान करने वाली संस्थाओं द्वारा ही किया जाएगा। तदनुसार प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं।

27. अधिनियम, 1948 की धारा 10, 11, 12, 30, 31 और 32 के स्पष्ट प्रावधानों और डॉ. एस.के. तोषनीवाल (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मददेनजर, हमारा विचार है कि फार्मसी अधिनियम, फार्मसी के क्षेत्र को नियंत्रित करने वाला विशेष कानून होने के नाते राज्य रजिस्टर में, और परिणामस्वरूप, केन्द्रीय रजिस्टर में, फार्मासिस्ट के रूप में उम्मीदवारों के पंजीकरण के उद्देश्य से किसी अन्य सामान्य कानून पर प्रबल होगा। इसलिए, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्राप्त कोई भी डिग्री जिसे फार्मसी अधिनियम की धारा 12 के संदर्भ में भारतीय फार्मसी परिषद का अनुमोदन प्राप्त नहीं है, उन्हें फार्मसी अधिनियम की धारा 31 के तहत बनाए गए राज्य रजिस्टर में उनके पंजीकरण के लिए हकदार नहीं होगा। इस प्रकार, प्रश्न संख्या-2 का भी नकारात्मक उत्तर दिया गया है और हम मानते हैं कि सिंधानिया विश्वविद्यालय, जिसे यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 2(एफ) के तहत मान्यता प्राप्त है, को फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया से फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया से धारा 12 के तहत फार्मसी में डिप्लोमा प्रदान करने के लिए अनुमोदन/मान्यता प्राप्त करना आवश्यक है, ताकि फार्मसी में डिप्लोमा को ऐसे डिप्लोमा

धारक के राज्य रजिस्टर में पंजीकरण के प्रयोजनों के लिए अनुमोदित योग्यता बनाया जा सके।

28. पूर्वोक्त सभी कारणों से, हमें रिट याचिकाओं में कोई योग्यता नहीं मिलती है। नतीजतन, सभी रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं।

(2023) 7 ILRA 908

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ल

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या-

18229/2022

डॉ. बी. के. यादव @ बिप्लव कुमार यादव
... प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

श्री सत्येन्द्र कुमार सिंह

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

याचिकाकर्ता अस्पताल का कार्यवाहक है- उसने हर्निया से पीड़ित सूचनाकर्ता के बेटे का निदान किया और सर्जरी की सलाह दी- डॉक्टरों की ओर से लापरवाही के कारण- माता-

पिता/प्राकृतिक अभिभावक से लिखित सहमति के बिना बच्चे का ऑपरेशन किया, जिसकी इलाज के दौरान मृत्यु हो गई- याचिकाकर्ता एक देखभाल करने वाला होने के नाते- चिकित्सा देखभाल प्रदान करने के लिए जिम्मेदार माना जाता था- विवेचना ग्रहणशील चरण में है- सामग्री एकत्र की जानी है कि क्या अपराध दोषी है या घोर लापरवाही का मामला- एफआईआर को पढ़ने से आपराधिक अभियोजन को विफल नहीं किया जा सकता है- आरोपों से संज्ञेय अपराध होने का पता चलता है।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. डॉ. पी. कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2016 वॉल्यूम 0, सुप्रीम कोर्ट (इलाहाबाद), 252 में प्रतिवेदित
2. जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य 2005 (5) सुप्रीम 297 में प्रतिवेदित।

(माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।
2. रिट याचिका में आईपीसी की धारा 304, पुलिस स्टेशन- लालपुर पांडेपुर, जिला वाराणसी के तहत केस अपराध संख्या 33/2020 को जन्म देते हुए दिनांक 03.07.2020 की

एफ.आई.आर. को रद्द करने की मांग की गई है।

3. याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि याचिकाकर्ता मेडिसिटी न्यूरो एंड क्रिटिकल केयर हॉस्पिटल, वाराणसी का केयर टेकर है, जिसने सूचना देने वाले के बेटे को हर्निया से पीड़ित बताया और सर्जरी की सलाह दी। सूचनाकर्ता ने इलाज के लिए 48,000/- रुपये की राशि जमा की। हालाँकि, डॉक्टरों की लापरवाही के कारण माता-पिता/प्राकृतिक अभिभावक से लिखित सहमति के बिना बच्चे का ऑपरेशन किया गया, जिसकी इलाज के दौरान मृत्यु हो गई।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि याचिकाकर्ता ने सूचनाकर्ता के बेटे का ऑपरेशन नहीं किया था और वह केवल उपरोक्त अस्पताल का केयर टेकर है। याचिकाकर्ता को गुप्त उद्देश्यों से झूठा फंसाया गया है। याचिकाकर्ता के वकील ने अपनी दलीलों के समर्थन में डॉ. पी. कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2016 वॉल्यूम 0, सुप्रीम कोर्ट (ऑल), 252 में दिए गए फैसले और आदेश पर भरोसा किया है, जिसमें कहा गया है कि ऐसे हर मामले में चिकित्सक पर मुकदमा नहीं चलाया जाना चाहिए जहां गंभीर स्थिति के कारण मरीज की मृत्यु हो जाती है। इसके अलावा, यह दावा किया गया है कि सुप्रीम कोर्ट ने चिकित्सा लापरवाही के मामलों के संबंध में दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं और निर्देश जारी किया है कि ऐसे मामलों में मामले को पहले एक सक्षम डॉक्टर या संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ डॉक्टरों की

समिति को भेजा जाना चाहिए और जब ऐसा कोई डॉक्टर या समिति रिपोर्ट करती है कि प्रथम दृष्टया चिकित्सीय लापरवाही का मामला है, तभी संबंधित डॉक्टर या अस्पताल को नोटिस जारी किया जाना चाहिए। अदालतें या उपभोक्ता अदालतें चिकित्सा विज्ञान में विशेषज्ञ नहीं हैं और इसलिए उन्हें विशेषज्ञों के विचारों के स्थान पर अपने विचारों को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस अधिकारियों को डॉक्टरों को गिरफ्तार करने या परेशान करने के खिलाफ भी चेतावनी दी है जब तक कि तथ्य स्पष्ट रूप से जैकब मैथ्यू के मामले में निर्धारित मापदंडों के भीतर नहीं आते। यह देखते हुए कि कानून एक निगरानीकर्ता है, न कि ब्लडहाउंड, सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि उचित देखभाल के साथ झूठी करने वाले डॉक्टर उत्तरदायी नहीं होंगे, भले ही उनका इलाज विफल हो गया हो। दुर्घटना या दुस्साहस या निर्णय की त्रुटि के कारण होने वाली हानि पर आवश्यक रूप से ऐसी देनदारी नहीं बनेगी। सिर्फ इसलिए कि किसी मरीज ने डॉक्टर द्वारा दिए गए इलाज पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं दी है या सर्जरी विफल हो गई है, डॉक्टर को सीधे तौर पर चिकित्सीय लापरवाही के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

5. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. ने दावा किया है कि याचिकाकर्ता ने हर्निया से पीड़ित मुखबिर सूचनाकर्ता के बेटे का निदान किया और सर्जरी की सलाह दी। याचिकाकर्ता की ओर से घोर लापरवाही यह है कि सर्जरी/ऑपरेशन मृतक के प्राकृतिक अभिभावक/पिता/ सूचनाकर्ता की

सहमति के बिना हुआ, जो घटना के समय उपलब्ध था। अनुपूरक शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या एसए-1 के रूप में संलग्न सहमति पत्र इंगित करता है कि उक्त सहमति चाचा मनीष और दादी सीता देवी से प्राप्त की गई है। घटना के स्थान पर प्राकृतिक अभिभावक के मौजूद होने के बावजूद, जैसा कि एफआईआर से स्पष्ट है, याचिकाकर्ता ने पिता/सूचनाकर्ता से सहमति लेने की परवाह नहीं की।

6. प्रथम सूचना रिपोर्ट को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि प्रथम सूचनाकर्ता के पुत्र की हर्निया के इलाज/सर्जरी के दौरान मृत्यु हो गई। आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट आईपीसी की धारा 304 के तहत दर्ज की गई है और याचिकाकर्ता को एक देखभालकर्ता होने के नाते चिकित्सा देखभाल प्रदान करने के लिए जिम्मेदार माना गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि वह एक देखभालकर्ता है, केवल उसका बचाव है, जिस पर रिट याचिका में विचार नहीं किया जाना चाहिए जिसमें एफआईआर को रद्द करने की मांग की गई है। चाहे अपराध सदोष प्रकृति का हो या घोर लापरवाही का मामला हो, सामग्री एकत्र करनी होगी। चिकित्सकीय लापरवाही के संबंध में यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि क्या याचिकाकर्ता 2005(5) सुप्रीम 297 में रिपोर्ट की गई जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों/मापदंडों के आलोक में सुरक्षा का लाभ उठा सकता है और मांग सकता है। आपराधिक अभियोजन को विफल नहीं किया जा सकता क्योंकि एफआईआर को पढ़ने मात्र

से ही आरोपों से संज्ञेय अपराध का खुलासा हो जाता है।

7. किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. इसलिए, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 7 ILRA 910

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

द्वितीय अपील संख्या 337 वर्ष 1998

मुन्नी लाल

...अपीलकर्ता

बनाम

मोहम्मद रफीक किदवई एवं अन्य

... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री एम.एस. पिपरसेनिया, श्री शिव कुमार सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री ए.डी. सौंडर्स, श्री एस.के. तिवारी, श्री सुंदामा जी शांडिया

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- धारा 100 - द्वितीय अपील --- बिक्री

विलेख के निरस्तीकरण हेतु वाद खारिज,

अपील स्वीकृत --- विचारण न्यायालय ने

समस्त साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष

निकाला कि एक बार वादी द्वारा यह स्वीकार

कर लिया गया कि उप-पंजीयक ने दस्तावेज़

का पंजीकरण करने से पूर्व उसे पढ़कर सुनाया था तथा उप-पंजीयक ने उस पर अंगूठा लगाने हेतु कोई दबाव नहीं डाला अथवा जबरन चिन्हित नहीं कराया, यदि प्रतिवादी द्वारा ₹6000/- की विक्रय मूल्य की राशि अवैतनिक थी, तो वादी दस्तावेज़ पर अंगूठा लगाने से इंकार कर सकती थी। विचारण न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि अभियोजन साक्षी -2 ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया कि उप-पंजीयक ने दस्तावेज़ का पंजीकरण करने से पूर्व उसे पढ़कर सुनाया तथा यह तथ्य भी कि ₹6000/- वादी द्वारा अग्रिम के रूप में प्राप्त किए गए थे, फिर भी उक्त गवाह ने दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किए --- अवर अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष इस तथ्य की अनदेखी करता है कि वचाव साक्षी-3, जो लेन-देन का गवाह है, न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था तथा उसने इस संबंध में साक्ष्य दी। विचारण न्यायालय ने वचाव साक्षी-3 की साक्ष्य के आधार पर ₹6000/- की अग्रिम भुगतान की बात पर निष्कर्ष दर्ज किया। ये निष्कर्ष प्रतिवादी के पक्ष में वचाव साक्षी-3 की साक्ष्य के आधार पर दर्ज किए गए। विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में दिए गए इन निष्कर्षों को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पलटा नहीं गया। बल्कि, अवर अपीलीय न्यायालय ने वचाव साक्षी-3 की साक्ष्य की उपेक्षा करते हुए यह माना कि उक्त गवाह को प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत ही नहीं किया गया --- अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष विचारण न्यायालय द्वारा सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर दर्ज निष्कर्षों को अभिलेख पर उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य की बिना समीक्षा किए निरस्त करते हैं --- अवर

अपीलीय न्यायालय द्वारा लिखा गया पलटाव निर्णय स्थिर नहीं रह सकता।
(प्रस्तर 55, 63 एवं 64)

द्वितीय अपील स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. विद्याधर बनाम माणिकराव एवं अन्य, (1999) 3 एससीसी 573
2. दहिबेन बनाम अरविंदभाई कल्याणजी भानुसाली (गजरा) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से मृत और अन्य।, (2020) 7 एससीसी 366
3. केवल कृष्ण बनाम राजेश कुमार, एआईआर 2022 एससी 564
4. बैजनाथ सिंह बनाम पलटू, (1908) आईएलआर 30, इलाहाबाद 125
5. चंद्रशंकर मणिशंकर बनाम अभला मथुरा एवं अन्य, एआईआर 1952 बॉम्बे 56,
6. सुकालू एवं अन्य बनाम पुनाऊ, एआईआर 1961 एमपी 176
7. कलियापेरुमल बनाम राजगोपाल एवं अन्य, (2009) 4 एससीसी 193
8. राज दत्त एवं अन्य। बनाम नागेश्वर एवं अन्य, 2019 (9) एडीजे 252
9. जनक दुलारी देवी एवं अन्य बनाम कपिलदेव राय एवं अन्य, (2011) 6 एससीसी 555
10. गंगा सरन बनाम सिविल जज, हापुड, गाजियाबाद एवं अन्य, AIR 1991 इलाहाबाद 114,
11. रमन गोपी और अन्य बनाम कुंजू रमन उथमन, 2011 एससीसी ऑनलाइन केर 4028

12. डी.वी. लक्ष्मण राव बनाम सेंट ऑफ कर्ण। और अन्य., 2000 एससीसी ऑनलाइन कर 775

13. रामकुमार रजक बनाम श्रीमती। गीतादेवी गुप्ता एवं अन्य, एफ.ए. संख्या 345 वर्ष 2019, दिनांक 20.03.2023 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह प्रत्यर्थी की द्वितीय अपील है, जो विक्रय विलेख को रद्द करने के मुकदमे से उत्पन्न हुई है।

2. मूल वाद संख्या 168/1983 श्रीमती जिन्नत द्वारा मुन्नी लाल के विरुद्ध संस्थित किया गया था, जिसमें पंजीकृत विक्रय पत्र 11.10.1982 दिनांकित को रद्द करने की डिक्री की मांग की गई थी। उपरोक्त मुकदमा मुंसिफ, मऊरानीपुर, झाँसी के पूर्व न्यायालय में संस्थित किया गया था, जिसे अब सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में नामित किया गया है।

3. श्रीमती जिन्नत मूल वादी थी और मुकदमे के लंबित रहने के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। विचारण न्यायालय के समक्ष उसके उत्तराधिकारियों और उनके विधिक प्रतिनिधि द्वारा उसकी जगह ले ली गई, जो यहां वादी-प्रत्यर्थी हैं।

मूल वादी, श्रीमती जिन्नत के अनुसार वह एक बूढ़ी और अनपढ़ महिला, एक गरीब विधवा थी और ग्राम रानीपुर, तहसील मऊरानीपुर, जिला झाँसी की मूल निवासी थी। वह उस प्रासंगिक

समय में, ग्राम लड़वारी, तहसील निवाड़ी, जिला टीकमगढ़ (मध्य प्रदेश) में रहती थी, जहाँ वह लोक निर्माण विभाग में कार्यरत थी। वह प्लॉट नंबर 1238/1/1-52, 1238/2/0-09, 1239/0-11, 1237/1/0-25, 1237/2/0-02 और 1247/1/0-14 के कब्जे में भूमिधर थी, और सभी प्लॉट ग्राम बम्हौरा सोहागी, तहसील मऊरानीपुर, जिला झाँसी में स्थित हैं। श्रीमती जिन्नत, जिसका प्रतिनिधित्व उसके उत्तराधिकारियों और उनके विधिक प्रतिनिधि द्वारा किया जाता है, को इसके बाद जब तक कि संदर्भ में व्यक्तिगत या अलग संदर्भ की आवश्यकता न हो, 'वादी' के रूप में संदर्भित किया जाएगा। उसने ऊपर वर्णित अपनी भूमिधरी भूमि (संक्षेप में, 'मुकदमा संपत्ति') बेचने के लिए प्रत्यर्थी के साथ सौदा किया। वादी और एकमात्र प्रत्यर्थी मुन्नी लाल पुत्र घनश्याम के बीच कुल बिक्री मूल्य 7000/- रुपये पर सौदा तय हो गया।

4. वादी का मामला यह है कि दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि 7000/- रुपये की पूरी बिक्री का भुगतान मऊरानीपुर स्थित उनके कार्यालय में सब-रजिस्ट्रार के समक्ष बिक्री विलेख के पंजीकरण के समय किया जाएगा। वादी का मामला यह है कि मुन्नी लाल, जिसका प्रतिनिधित्व अब उसके उत्तराधिकारियों और उसके विधिक प्रतिनिधि द्वारा इस अपील के रिकॉर्ड पर किया गया है, और एतस्मिनपश्चात् सुविधा के लिए 'प्रतिवादी' के रूप में संदर्भित, प्रत्यर्थी संख्या 1/1, 1/2, 1/3, 1/4 और 1/5 एक जिद्दी, शांति और धोखेबाज व्यक्ति था। दिनांक 11.10.1982 को अनुबंधित विक्रय पत्र के निष्पादन एवं

पंजीकरण के सिलसिले में वह वादी को अपने साथ तहसील मऊरानीपुर ले गये। प्रतिवादी ने अपेक्षित स्टाम्प पेपर खरीदे। प्रतिवादी ने लेखक लक्ष्मी प्रसाद के साथ मिलीभगत कर उसे विक्रय पत्र लिखने का निर्देश दिया। हालाँकि, वादी द्वारा उस समय 7000/- रुपये की सहमत बिक्री राशि का भुगतान करने की मांग के बावजूद, प्रत्यर्थी ने कुछ भी भुगतान नहीं किया। उन्होंने कहा कि बिक्री का पूरा पैसा उन्हें सब-रजिस्ट्रार के समक्ष भुगतान कर दिया जाएगा। उक्त बहाने से, प्रतिवादी, लेखक और गवाहों के साथ, जो सभी प्रतिवादी के साथ मिले हुए थे, वादी को सब-रजिस्ट्रार के कार्यालय में ले गए। जब वादी, प्रतिवादी, लेखक और गवाह सब-रजिस्ट्रार के कार्यालय में दाखिल हुए, तो सब-रजिस्ट्रार, लेखक और गवाह, जिनके साथ प्रतिवादी की मिलीभगत थी, ने वादी पर दबाव डाला कि वह विलेख पर अंगूठा लगा दे। इसके बाद, वादी ने सब-रजिस्ट्रार को बताया कि वह अपनी संपत्ति 7000/- रुपये में बेचने के लिए सहमत हो गई है, जिसका भुगतान उसे किया जाना चाहिए। इस पर, सब-रजिस्ट्रार ने वादी को आश्वासन दिया कि प्रतिवादी शीघ्र ही उसे उचित बिक्री प्रतिफल का भुगतान कर देगा। यह दलील दी गई है कि नियोजित धोखाधड़ी को अंजाम देने के लिए, प्रत्यर्थी उप-निबंधक की उपस्थिति में पैसे गिनता रहा, लेकिन उसे अकेले ही 1000/- रुपये का भुगतान किया।

5. वादी का मामला यह है कि उसने बार-बार कहा कि जब तक उसे 7000/- रुपये की पूरी बिक्री राशि नहीं मिल जाती, वह दस्तावेज़ पर अंगूठा नहीं लगाएगी। लेकिन, किसी ने वादी

की बात पर ध्यान नहीं दिया और जानबूझकर इसे नजरअंदाज करते हुए लेखक, गवाह, प्रत्यर्थी और एक सब-निबन्धक ने मिलकर वादी से जबरन दस्तावेज पर अंगूठा लगवा लिया। वादी ने प्रत्यर्थी से 6000/- रुपये की शेष बिक्री राशि का भुगतान करने का अनुरोध करने के बावजूद, उसे कुछ भी भुगतान नहीं किया गया। वाद में कहा गया है कि वादी ने प्रत्यर्थी, गवाहों और सब-रजिस्ट्रार सहित लेखक से बार-बार अनुरोध किया कि उसे उसका हक दिया जाए, लेकिन उन सभी ने, जो मिलीभगत में थे, यह कहकर इसे हंसी में उड़ा दिया कि दस्तावेज का पंजीकरण पूरा हो गया था और कुछ भी बकाया नहीं था। वादी को 1000/- से अधिक एक भी रुपया नहीं मिला। इस प्रकार, वादी को सहमत विक्रय प्रतिफल प्राप्त नहीं हुआ और उसके साथ धोखाधड़ी करके, उसे आक्षेपित विक्रय विलेख को निष्पादित और पंजीकृत करने के लिए मजबूर किया गया। इसलिए, वादी उसी दिन तत्काल पुलिस स्टेशन मऊरानीपुर गई और आईपीसी की धारा 420, 218, 167, पुलिस स्टेशन मऊरानीपुर, जिला झाँसी के तहत अपराध संख्या 158/1982 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। अपराध दर्ज होने के तुरंत बाद, पुलिस ने एफआईआर के आधार पर पूछताछ की और उसमें तथ्य पाए जाने पर प्रत्यर्थी को गिरफ्तार कर लिया। प्रत्यर्थी को न्यायिक मजिस्ट्रेट, मऊ गरौठा के समक्ष पेश किया गया, जहां मामला लंबित है। बिक्री विलेख को प्रतिवादी द्वारा वादी की असहायता का लाभ उठाते हुए और धोखाधड़ी का कार्य किए जाने के रूप में चुनौती दी गई थी, जो उसके लिए बाध्यकारी नहीं है।

6. वादी ने दावा किया कि मुकदमे की संपत्ति पर उसका खेती संबंधी कब्जा बना हुआ है और प्रत्यर्थी का उससे कोई संबंध नहीं है। वादी ने आक्षेपित विक्रय विलेख के अनुसार वाद संपत्ति पर कभी कब्जा नहीं दिया। विक्रय विलेख बनावटी था और भविष्य में वादी के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा। यह भी तर्क दिया गया कि कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ था ताकि भविष्य में, प्रत्यर्थी द्वारा फर्जी बिक्री विलेख का दुरुपयोग करके मुकदमे की संपत्ति पर वादी के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव न डाला जा सके। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर ही वाद दायर किया गया था, जिसमें दिनांक 11.10.1982 के आक्षेपित विक्रय पत्र को रद्द करने की मांग की गई थी।

7. सामान्य रूप से प्रतिवादी की ओर से वादी के आरोप को नकारते हुए एक लिखित बयान दायर किया गया था। अतिरिक्त दलीलों में कहा गया कि प्रतिवादी को परेशान करने के लिए गलत तथ्यों पर मुकदमा दायर किया गया है। प्रतिवादी के अनुसार, वादी का यह मामला कि पक्षकारों के बीच यह समझौता किया गया था कि 7000/- रुपये की पूरी सहमत बिक्री का भुगतान सब-रजिस्ट्रार के समक्ष विलेख के पंजीकरण के समय किया जाएगा, यह गलत है। इसके बजाय, पक्षकारों ने मुकदमे की संपत्ति की बिक्री के लिए सौदेबाजी की थी, जिसमें भूखंडों में वादी का हिस्सा भी शामिल था, कुल मिलाकर 2.13 एकड़ जमीन 7000/- रुपये की राशि में बेची गई थी। जिस समय पक्षकारों ने सौदेबाजी की उस समय प्रतिवादी ने वादी को 6000/- रुपये की बयाना राशि का भुगतान किया, और जब

विधिवत निष्पादित दस्तावेज पंजीकरण हेतु प्रस्तुत किया गया तो बिक्री की राशि पर सहमत होने वाली शेष राशि का 1000/- रुपये सब-रजिस्ट्रार के समक्ष भुगतान करने के लिए छोड़ दिया।

8. यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि बिक्री विलेख को उपरोक्त सौदेबाजी के दो दिनों के भीतर निष्पादित किया जाना था, इसलिए न तो सौदेबाजी को अनुबंध के रूप में लिखा गया था और न ही लिखित दस्तावेज/रसीद के माध्यम से बयाना का भुगतान किया गया था। लेखक, लक्ष्मी प्रसाद को वादी ने स्वयं चुना था और उसके निर्देश पर ही उसने विक्रय पत्र लिखा था। इस बात से इनकार किया गया कि उसने बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 7000/- रुपये की मांग की थी, या प्रतिवादी ने उसकी मांग के जवाब में कहा था कि वह सब-रजिस्ट्रार के समक्ष पूरी राशि का भुगतान करेगा। सब-रजिस्ट्रार के समक्ष 7000/- रुपये की राशि का भुगतान करने का कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि वादी को पहले ही सहमत बिक्री प्रतिफल में से 6000/- रुपये की राशि बयाना के रूप में मिल चुकी थी और शेष राशि 1000/- रुपये थी जिसे दस्तावेज के पंजीकरण के समय उप-निबन्धक के समक्ष भुगतान किया जाना था। यही कारण है कि सब-रजिस्ट्रार, मऊरानीपुर के समक्ष, वादी ने स्वेच्छा से 1000/- रुपये की राशि स्वीकार की और दिनांक 11.10.1982 को विक्रय पत्र पंजीकृत कराया, जिसके बाद वाद की संपत्ति का कब्जा प्रतिवादी को सौंप दिया गया।

9. वादी का यह मामला कि वह अभी भी वाद की संपत्ति पर भूमिधरी कब्जे में है, जो झूठ और मनगढ़ंत बात पर आधारित है। विक्रय विलेख की तारीख के बाद से, यह प्रतिवादी ही है जिसका मुकदमे की संपत्ति पर खेती का कब्जा है। उसने मुकदमे की संपत्ति फसल बंटवारे के आधार पर दी है और कचनेर माइनर नहर का उपयोग करके खेतों की सिंचाई करता है। प्रतिवादी के पास सिंचाई शुल्क के भुगतान को दर्शाने वाली सिंचाई की पर्चियाँ हैं। इसके अलावा प्रतिवादी के लिखित बयान में, वादी के विलेख लेखक, गवाहों और सब-रजिस्ट्रार के बीच मिलीभगत के मामले से इनकार किया गया है और इस मामले से भी इनकार किया गया है कि उन्होंने वादी को दस्तावेज पर अंगूठा लगाने के लिए मजबूर किया था। यह भी दलील दी गई है कि वादी का मामला कि जब उसने सब-रजिस्ट्रार से कहा कि प्रतिवादी को 7000/- रुपये की बिक्री राशि का भुगतान करने की आवश्यकता है, सब-रजिस्ट्रार ने आश्वासन दिया कि प्रतिवादी जल्द ही उसे भुगतान कर रहा है, यह गलत है। सब-रजिस्ट्रार के समक्ष 7000/- रुपये की राशि के भुगतान का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि वादी को पहले ही 6000/- रुपये का बयाना मिल चुका था, केवल 1000/- रुपये का भुगतान करना बाकी था। यह वह शेष राशि है जो सब-रजिस्ट्रार के समक्ष भुगतान की गई थी, जिसे वादी ने स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था।

10. इस बात से भी इनकार किया गया कि प्रतिवादी ने सब-रजिस्ट्रार की मिलीभगत से विक्रय पत्र पर वादी से जबरन अंगूठा लगवा

लिया। प्रतिवादी के अनुसार, सब-रजिस्ट्रार ने वादी को गवाहों की उपस्थिति में बिक्री विलेख की सामग्री को पढ़कर सुनाया और उसे समझाया भी। दस्तावेज़ की सामग्री को समझने के बाद, उसने पंजीकरण के उद्देश्य से उस पर अपना निशान लगाया। यह बताया गया है कि सब-रजिस्ट्रार ने वादी से पूछा कि क्या उसे बयाना के रूप में 6000/- रुपये की राशि प्राप्त हुई है, जिस पर वादी ने कहा कि उसे 6000/- रुपये प्राप्त हुए थे और अब 1000/- रुपये देय हैं। प्रत्यर्थी ने सब-रजिस्ट्रार के समक्ष वादी को 1000/- रुपये की राशि का भुगतान किया। 1000/- रुपये की शेष राशि प्राप्त करने के बाद, वादी ने दस्तावेज़ पर अपना निशान लगाया। इस बात से इनकार किया गया है कि वादी ने कभी सब-रजिस्ट्रार के समक्ष 7000/- रुपये की मांग की थी या उन सभी ने मांग को हंसी में उड़ा दिया था, इस धोखाधड़ी को विलेख के पंजीकरण के माध्यम से पूरा किया गया था।

11. लिखित बयान के प्रस्तर संख्या 19 में यह प्रार्थना की गई है कि वादी ने प्रतिवादी के प्रति शत्रुतापूर्ण कुछ लोगों द्वारा उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करने के कारण प्रतिवादी की पुलिस में रिपोर्ट की है। यह भी कहा गया है कि यह कहना गलत है कि एफआईआर के आधार पर मामला दंड संहिता की धारा 420, 218, 167 के तहत न्यायिक मजिस्ट्रेट, मऊ गरौठा के समक्ष लंबित है। वादी की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादी के विरुद्ध कभी कोई अभियोजन नहीं चलाया गया, क्योंकि प्रतिवादी ने कभी भी वादी को धोखा नहीं दिया। प्रतिवादी का यह भी

मामला है कि वादी का यह दावा कि मुकदमे की संपत्ति पर उसका कब्जा है, गलत है। बल्कि, प्रतिवादी उस तारीख से उस पर काबिज है जिस दिन उसके पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। प्रतिवादी मुकदमे की संपत्ति पर खेती करने के लिए मजदूरों को नियुक्त करता है। वादी का अब मुकदमे की संपत्ति से कोई संबंध नहीं है। प्रतिवादी ने यह भी कहा कि मुकदमे का मूल्यांकन कम किया गया है और भुगतान की गई अदालती फीस अपर्याप्त है, क्योंकि यह मुकदमा रद्दीकरण के लिए है, जहां मुकदमे का मूल्य मुकदमे की संपत्ति के बाजार मूल्य और मूल्यानुसार भुगतान की गई अदालती फीस के आधार पर किया जाना चाहिए था।

12. प्रत्यर्थी ने विक्रय पत्र के आधार पर नामांतरण के लिए आवेदन किया, लेकिन वादी ने गलत इरादे से नामांतरण पर आपत्ति जताई और मामला वर्तमान में बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, झाँसी के समक्ष लंबित है। लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 23 में इस आशय की एक विशेष दलील है कि बिक्री विलेख निष्पादित करने से पहले, वादी ने समेकन अधिकारी की अनुमति ली और फिर तय बिक्री विचार को स्वीकार करते हुए, बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए आगे बढ़ा। इन्हीं दलीलों पर प्रत्यर्थी ने कहा कि मुकदमा विशेष जुर्माने के साथ खारिज किया जाना चाहिए।

13. पक्षकारों की दलीलों के आधार पर, निम्नलिखित मुद्दों पर विचार किया गया (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या प्रतिवादी ने वादी को सहमत विक्रय प्रतिफल का भुगतान किए बिना, धोखे के आधार पर विवादित भूमि से संबंधित विक्रय पत्र निष्पादित करवाया है? यदि हां तो इसका प्रभाव क्या होगा?

2. क्या प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय पत्र वैध है?

3. क्या विवादित भूमि पर वादी का कब्जा है?

4. क्या वादी ने मुकदमे का मूल्यांकन कम किया है और अदा की गई अदालती फीस अपर्याप्त है?

5. वादी किस राहत का हकदार है?”

14. दिनांक 02.07.1985 के आदेश के संदर्भ में मुद्दा संख्या 4 को प्रारंभिक के रूप में तय किया गया था, जिसे निर्णय का भाग बनाया गया था। प्रत्यक्ष रूप से, वादी के खिलाफ तय किए गए अदालती-फीस के कम मूल्यांकन या अपर्याप्तता के बारे में कोई मुद्दा नहीं है। विचारण न्यायालय ने मुद्दे नंबर 1 और 2 को एक साथ लिया और रिकॉर्ड पर मौजूद पूरे सबूतों के मूल्यांकन पर, गवाहों की गवाही और दस्तावेजी सबूतों पर सावधानीपूर्वक विचार करते हुए, बिक्री विलेख और उस पर रजिस्ट्रार के समर्थन सहित, वादी के खिलाफ और प्रतिवादी के पक्ष में दोनों मुद्दों पर आयोजित किया गया। मुद्दा संख्या 3 का उत्तर भी प्रतिवादी के पक्ष में एवं वादी के विरुद्ध दिया गया। मुद्दा संख्या 1, 2 और 3 पर निष्कर्षों के परिणामस्वरूप, मुद्दा संख्या 5 का उत्तर प्रतिवादी के पक्ष में तथा वादी के विरुद्ध दिया गया। परिणाम यह हुआ कि विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा दिनांक 02.09.1994 के

निर्णय और डिक्री द्वारा मुकदमे को लागत सहित खारिज करने का आदेश दिया गया।

15. वादी ने सिविल अपील संख्या 134/1994 के माध्यम से झाँसी के जिला न्यायाधीश के समक्ष डिक्री की अपील की। असाइनमेंट पर अपील दिनांक 18.12.1997 को द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, झाँसी के समक्ष सुनवाई के लिए आई। विद्वान न्यायाधीश ने अपील की अनुमति दी, विचारण न्यायालय के फैसले को अपास्त कर दिया, जिसे उन्होंने रद्द कर दिया और मुकदमे का निर्णय सुनाते हुए आक्षेपित विक्रय पत्र को रद्द करने का आदेश दिया। निरस्तीकरण की सूचना सब-रजिस्ट्रार को आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजने का निर्देश दिया गया।

16. इससे व्यथित होकर प्रतिवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के तहत इस न्यायालय में अपील की है।

17. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 19.03.1998 के आदेश के तहत अपील पर विचार किया गया। इसे सुनवाई के लिए स्वीकार नहीं किया गया, लेकिन स्वीकार किए जाने तक नोटिस जारी किया गया और निचली अदालत के रिकॉर्ड तलब किए गए। एक अंतरिम निषेधाज्ञा दी गई, जिसमें पक्षकारों को मुकदमे की संपत्ति के कब्जे, स्थिति और प्रकृति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया। इसके बाद, जब अपील दिनांक 21.04.2022 को सुनवाई के लिए आई, तो इसे कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया:

(1) क्या ऐसे मामले में कि विक्रेता द्वारा पंजीकृत विक्रय पत्र में निर्धारित मूल्य का भुगतान विक्रेता को नहीं किया गया है तो रद्दीकरण का डिक्री पारित किया जा सकता है?

(2) क्या रद्दीकरण का मामला, बिक्री विलेख में भुगतान की गई बताई गई अवैतनिक कीमत के कारण नहीं बनाया गया है, लेकिन भुगतान नहीं किया गया साबित हुआ है, अदालत को अवैतनिक कीमत की वसूली के लिए डिक्री पारित करने का अधिकार देता है?

18. अपील पर दिनांक 27.04.2022 को सुनवाई हुई और निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

19. इस न्यायालय ने महसूस किया कि डीडब्ल्यू-3 की गवाही के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी जिसे निचली अपीलीय अदालत ने इसे अस्तित्वहीन मानना छोड़ दिया था। इसलिए, अपील को आगे की सुनवाई के लिए पोस्ट किया गया और अनिवार्य समझे जाने वाले कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न दिनांक 24.11.2022 के आदेश द्वारा तैयार किए गए थे:

(3) क्या अपीलीय अदालत ने उलटफेर का निर्णय लिखते समय रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को रद्द कर दिया है?

20. अपील पर दिनांक 24.11.2022 को फिर से सुनवाई हुई और निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

21. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री एमएस पिपरसेनिया और वादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए.डी. सॉन्डर्स को सुना।

22. कानून संख्या 1 और 2 के महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर एक साथ देना सुविधाजनक होगा, क्योंकि पहले में शामिल प्रस्ताव, यदि एक तरह से उत्तर दिया जाता है, तो दूसरे तरीके पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होगी।

23. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.एस. पिपरसेनिया ने कहा कि बिक्री विलेख में निर्धारित प्रतिफल का भुगतान न करने का प्रभाव लेनदेन को शून्य नहीं बनाता है, लेकिन यदि यह साबित हो जाता है कि वास्तव में विक्रेता को भुगतान नहीं किया गया है तो अधिक से अधिक वह कीमत की वसूली का हकदार होगा-यदि भुगतान नहीं किया गया है तो पूरी कीमत, या उसका एक हिस्सा, जो भुगतान नहीं किया गया है। अपनी बात के समर्थन में श्री पिपरसेनिया ने **विद्याधर बनाम माणिकराव और अन्य, (1999) 3 एससीसी 573 और दाहिबेन बनाम अरविंदभाई कल्याणजी भानुसाली (गजरा) मृत द्वारा विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य, (2020) 7 एससीसी 366** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर अवलम्ब लिया है। उन्होंने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (संक्षेप में,

'1882 का अधिनियम') की धारा 54, 55 और 58 के प्रावधानों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है ताकि कीमत का भुगतान न करने पर, भले ही साबित हो गया है, इससे संवहन को टाला नहीं जा सकता। यह वादी को कीमत के लिए मुकदमा करने और उसे वसूलने का अधिकार दे सकता है।

24. दूसरी ओर, वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.डी. सॉन्डर्स ने कहा कि बिक्री विलेख में निर्धारित मूल्य अंतर्निहित अनुबंध के लिए विचार का गठन करता है, जिसके लिए बिक्री विलेख एक सुपर-एडेड हस्तांतरण है। उनका कहना है कि यदि कीमत का भुगतान भविष्य की तारीख के लिए स्थगित कर दिया जाता है, तो विक्रय विलेख वैध होगा, लेकिन यदि विलेख में इसे वर्तमान में भुगतान किया जाना दिखाया गया है, लेकिन वास्तव में भुगतान नहीं किया गया है, तो विलेख शून्य होगा। इस प्रस्तुतिकरण के समर्थन में, श्री सॉन्डर्स ने केवल कृष्ण बनाम राजेश कुमार, एआईआर 2022 एससी 564 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार पर अवलम्ब लिया।

25. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों द्वारा दी गई दलीलों पर गहनता से विचार किया और रिकॉर्ड का परिशीलन किया।

26. कानून के पहले महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने के उद्देश्य से, यह न्यायालय निचली अपीलीय अदालत द्वारा लौटाए गए तथ्य को इस आशय से मानता है कि 7000/- रुपये की सहमत बिक्री प्रतिफल में से, प्रतिवादी द्वारा

अकेले 1000/- रुपये का भुगतान किया गया था, यह सही है। अधिनियम 1882 की धारा 54, जो अचल संपत्ति की बिक्री के लिए प्रदान करने वाले अध्याय III में आती है, 'बिक्री' को इस प्रकार परिभाषित करती है:

"54. "विक्रय" की परिभाषा- "विक्रय" ऐसी कीमत के बदले में स्वामित्व का अन्तरण है जो दी जा चुकी हो, या जिसके देने का वचन दिया गया हो या जिसका कोई भाग दे दिया गया हो और किसी भाग के देने का वचन दिया गया हो।

विक्रय कैसे किया जाता है- ऐसा अन्तरण एक सौ रुपए और उससे अधिक के मूल्य की मूर्त स्थावर सम्पत्ति की दशा में ; या किसी उत्तर-भोग या अन्य अमूर्त वस्तु की दशा में केवल रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है। एक सौ रुपए से कम मूल्य की मूर्त स्थावर सम्पत्ति की दशा में ऐसा अन्तरण या तो रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा या सम्पत्ति के परिदान द्वारा किया जा सकेगा।

मूर्त स्थावर सम्पत्ति का परिदान तब हो जाता है जब विक्रेता क्रेता या क्रेता द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति का सम्पत्ति पर कब्जा करा देता है।

विक्रय-संविदा- स्थावर सम्पत्ति की विक्रय-संविदा यह संविदा है कि उस स्थावर सम्पत्ति का विक्रय पक्षकारों के बीच तय हुए निबन्धनों पर होगा।

वह स्वतः ऐसी सम्पत्ति में कोई हित या उस पर कोई भार सृष्ट नहीं करती।"

27. अधिनियम 1882 की धारा 55 खरीदारों और विक्रेताओं के अधिकारों और देनदारियों को निर्धारित करती है। उस संदर्भ में, धारा 55(4)(बी) प्रासंगिक है। सार्थक रूप से उद्धृत, धारा 55(4)(बी) प्रावधान करती है:

“55. क्रेता और विक्रेता के अधिकार और दायित्व- तत्प्रतिकूल संविदा न हो तो स्थावर सम्पत्ति का क्रेता और विक्रेता क्रमशः उन दायित्वों के अध्यधीन और उन अधिकारों से युक्त होंगे जो कि ठीक नीचे लिखे नियमों में, या उनमें से ऐसी में, जो बेची गई सम्पत्ति को लागू हों, वर्णित हैं:

(1) X X X

(2) X X X

(3) X X X

(4) विक्रेता हकदार है-

(क) X X X

(ख) जहां कि सम्पत्ति का स्वामित्व, पूरा क्रय-धन दिए जाने के पूर्व, क्रेता को संक्रान्त हो गया है वहां क्रयधन की रकम या उसके असंदत शेष भाग के लिए और उस तारीख से, जिसको कर्जा परिदान किया गया है। ऐसी रकम या भाग पर ब्याज के लिए क्रेता या किसी भी अप्रतिफल अन्तरिती या क्रय-धन के असंदाय की सूचना रखने वाले किसी अन्तरिती के हाथ में की उस सम्पत्ति पर भार का।

(5) X X X

(6) X X X”

28. यह प्रश्न विद्याधर (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार हेतु आया। यह सशर्त बिक्री या वैकल्पिक रूप से पुनर्खरीद के लिए अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक

डिक्री द्वारा बंधक के मोचन के लिए एक मुकदमे से उत्पन्न हुआ। मुकदमे का निर्णय विचारण न्यायालय द्वारा सुनाया गया था और डिक्री को निचली अपीलीय अदालत ने बरकरार रखा था। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने डिक्री को रद्द कर दिया। मामले में मुद्दा वादी और प्रतिवादी संख्या-1 के बीच का प्रतीत होता है, उक्त प्रतिवादी ने इस मामले के साथ मुकदमे में भाग लिया कि उसके पक्ष में दस्तावेज सशर्त बिक्री द्वारा बंधक नहीं था, बल्कि एक बिक्री थी और चूंकि राशि निर्धारित समय के भीतर प्रतिफल प्रस्तुत नहीं किया गया था, वादी संपत्ति के पुनः हस्तांतरण का दावा नहीं कर सका। तथ्यों के आधार पर, ऐसा प्रतीत होता है कि वाद की संपत्ति, जो भूमि थी, प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा प्रतिवादी संख्या-1 के पास 1500/- रुपये में गिरवी रखी गई थी। प्रतिवादी संख्या-2 ने एक पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा 5000/- रुपये की राशि के लिए वादी के पक्ष में संपत्ति हस्तांतरित कर दी थी, जिससे वादी को प्रतिवादी संख्या-1 के खिलाफ बंधक मुक्ति की अपनी हिस्सेदारी का उपयोग करने का अधिकार मिल गया था। बंधक मुक्ति के मुकदमे का निर्णय वादी के पक्ष में 1500/- रुपये की राशि और सभी अर्जित ब्याज सहित भुगतान करने पर सुनाया गया। डिक्री में सभी आवश्यक दिशा-निर्देश दिए गए, जैसे कि प्रतिवादी को मुकदमे की संपत्ति से संबंधित अपने कब्जे या शक्ति में सभी दस्तावेजों को अदालत में लाने और उन दस्तावेजों को वादी को सौंपने की आवश्यकता थी। प्रतिवादी संख्या-1 को जारी किए गए मुकदमे की संपत्ति के पुनः हस्तांतरण और कब्जा देने आदि के लिए अन्य निर्देश भी थे। उपरोक्त डिक्री की

अपील में पुष्टि की गई थी। हालाँकि, दूसरी अपील में, उच्च न्यायालय की राय थी कि 5000/- रुपये की राशि में से, जिसके लिए विक्रय पत्र निष्पादित किया गया था, अकेले 500/- रुपये की राशि वादी द्वारा, प्रत्यक्ष रूप से भुगतान की गई थी। सब-रजिस्ट्रार के समक्ष प्रतिवादी संख्या-2 और बाकी का भुगतान नहीं किया गया। उच्च न्यायालय ने यह भी माना कि प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा प्रतिवादी संख्या-1 के पक्ष में निष्पादित किया गया दस्तावेज़ 'करारखरेदी' था। इसे प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा प्रतिवादी संख्या-1 के पक्ष में 1500/- रुपये की राशि में निष्पादित किया गया। लेकिन वास्तव में, यह 800/- रुपये की राशि थी, जिसका भुगतान सब-रजिस्ट्रार के समक्ष किया गया था। इसलिए, उच्च न्यायालय ने डिक्री में हस्तक्षेप करते हुए निर्देश दिया कि मुकदमे में भूमि प्रतिवादी संख्या-2 को वापस कर दी जाएगी, जो प्रतिवादी संख्या-1 को किश्तों में 800/- रुपये की राशि और वादी को किश्तों में 500/- रुपये का भुगतान करेगा। वादी द्वारा की गई विशेष अनुमति याचिका में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा अपील पर, यह अवधारित किया गया था:

“35. भले ही उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष दर्ज किया गया हो कि वादी ने प्रतिवादी संख्या-2 को बिक्री प्रतिफल के रूप में केवल 500/- रुपये का भुगतान किया था और 4500/- रुपये की शेष राशि, जिसे विलेख के निष्पादन से पहले भुगतान किया जाना दिखाया गया था, वास्तव में भुगतान नहीं किया गया था। इस कारण से, संपत्ति

हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 में निहित प्रावधानों के कारण बिक्री विलेख अमान्य नहीं होगा, जो निम्नानुसार प्रावधान करता है:

“54. “विक्रय” की परिभाषा- “विक्रय” ऐसी कीमत के बदले में स्वामित्व का अन्तरण है जो दी जा चुकी हो, या जिसके देने का वचन दिया गया हो या जिसका कोई भाग दे दिया गया हो और किसी भाग के देने का वचन दिया गया हो।

विक्रय कैसे किया जाता है- ऐसा अन्तरण एक सौ रुपए और उससे अधिक के मूल्य की मूर्त स्थावर सम्पत्ति की दशा में ; या किसी उत्तर-भोग या अन्य अमूर्त वस्तु की दशा में केवल रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है। एक सौ रुपए से कम मूल्य की मूर्त स्थावर सम्पत्ति की दशा में ऐसा अन्तरण या तो रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा या सम्पत्ति के परिदान द्वारा किया जा सकेगा।

मूर्त स्थावर सम्पत्ति का परिदान तब हो जाता है जब विक्रेता क्रेता या क्रेता द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति का सम्पत्ति पर कब्जा करा देता है।

विक्रय-संविदा- स्थावर सम्पत्ति की विक्रय-संविदा यह संविदा है कि उस स्थावर सम्पत्ति का विक्रय पक्षकारों के बीच तय हुए निबन्धनों पर होगा।

वह स्वतः ऐसी सम्पत्ति में कोई हित या उस पर कोई भार सृष्ट नहीं करती।”

36. परिभाषा इंगित करती है कि बिक्री करने के लिए, स्वामित्व का एक व्यक्ति से दूसरे

व्यक्ति को हस्तांतरण होना चाहिए, यानी, उस व्यक्ति के पास मौजूद संपत्तियों के सभी अधिकारों और हितों का हस्तांतरण उसके द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्थानांतरित कर दिया जाता है। अंतरणकर्ता उस संपत्ति में अपने हित या अधिकार का कोई भी हिस्सा अपने पास नहीं रख सकता अन्यथा यह बिक्री नहीं होगी। परिभाषा आगे कहती है कि स्वामित्व का हस्तांतरण "भुगतान की गई कीमत या वादा किया गया या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किया गया मूल्य" के लिए होना चाहिए। इस प्रकार कीमत बिक्री के लेन-देन का एक अनिवार्य घटक है। शब्द "भुगतान की गई कीमत या वादा किया गया या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किया गया" यह दर्शाता है कि बिक्री विलेख के निष्पादन के समय पूरी कीमत का वास्तविक भुगतान बिक्री के पूरा होने के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। भले ही पूरी कीमत का भुगतान नहीं किया गया हो, लेकिन दस्तावेज़ निष्पादित किया गया हो और उसके बाद पंजीकृत किया गया हो, यदि संपत्ति का मूल्य 100 रुपये से अधिक है, तो बिक्री पूरी हो जाएगी।

37. विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों की एक श्रृंखला है जिसमें यह माना गया है कि भले ही पूरी कीमत का भुगतान नहीं किया गया हो, बिक्री का लेनदेन प्रभावी होगा और स्वामित्व उस लेनदेन के तहत पारित हो जाएगा। केवल कुछ का हवाला देते हुए, गायत्री प्रसाद बनाम राजस्व बोर्ड [1973 ऑल एलजे 412] में यह अवधारित किया गया था कि बिक्री मूल्य के एक हिस्से का भुगतान न करने से बिक्री की वैधता प्रभावित नहीं होगी। यह

देखा गया कि विक्रेता द्वारा प्रतिफल का आंशिक भुगतान ही बिक्री मूल्य की शेष राशि का भुगतान करने का इरादा साबित करता है। सुकालू बनाम पुनौ [एआईआर 1961 एमपी 176: आईएलआर 1960 एमपी 614] में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय भी इसी आशय का है।

38. असली परीक्षा तो पक्षकारों के आशय का है। "बिक्री" करने के लिए, पक्षकारों को संपत्ति के स्वामित्व को हस्तांतरित करने की मंशा रखनी चाहिए और उनका यह भी आशय होना चाहिए कि कीमत का भुगतान या तो वर्तमान में या भविष्य में किया जाएगा। बिक्री विलेख का आशय पक्षकारों के आचरण और अभिलेख पर साक्ष्य के विवरण से एकत्र किया जाना है।

39. इन सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू करने पर, यह देखा जाएगा कि प्रतिवादी संख्या-2 ने वादी के पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया, इसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया, सब-रजिस्ट्रार के समक्ष इसके निष्पादन को स्वीकार किया, जिसके समक्ष बिक्री प्रतिफल का शेष भाग भुगतान किया गया था और, उसके बाद दस्तावेज़ पंजीकृत किया गया था। अतिरिक्त परिस्थितियाँ यह हैं कि जब वादी ने उपरोक्त बिक्री विलेख के आधार पर अपने अधिकार के आधार पर मुकदमा दायर किया, तो प्रतिवादी संख्या-2, जो विक्रेता था, ने अपने लिखित बयान में वादी द्वारा प्रस्तुत पूरे मामले को स्वीकार किया और कठघरे में स्वीकार किया कि उसने वादी के पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया था और प्रतिफल की पूरी राशि भी प्राप्त

की थी। ये तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा वादी के पक्ष में एक पूर्ण और दुर्जेय विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था और संपत्ति में स्वामित्व वादी को दे दिया गया था। इसलिए, इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

40. इस बिंदु पर उच्च न्यायालय का निर्णय इस कारण से भी त्रुटिपूर्ण है कि इसने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 55(4)(बी) में निहित प्रावधानों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जो नीचे दिए गए हैं:

“55. तत्प्रतिकूल संविदा न हो तो स्थावर सम्पत्ति का क्रेता और विक्रेता क्रमशः उन दायित्वों के अध्यक्षीन और उन अधिकारों से युक्त होंगे जो कि ठीक नीचे लिखे नियमों में, या उनमें से ऐसी में, जो बेची गई सम्पत्ति को लागू हों, वर्णित हैं-

(1)-(3)***

(4) विक्रेता हकदार है-

(क)**

(ख) जहां कि सम्पत्ति का स्वामित्व, पूरा क्रय-धन दिए जाने के पूर्व, क्रेता को संक्रान्त हो गया है वहां क्रयधन की रकम या उसके असंदत शेष भाग के लिए और उस तारीख से, जिसको कर्जा परिदान किया गया है। ऐसी रकम या भाग पर ब्याज के लिए क्रेता या किसी भी अप्रतिफल अन्तरिती या क्रय-धन के असंदाय की सूचना रखने वाले किसी अन्तरिती के हाथ में की उस सम्पत्ति पर भार का।

(5)-(6)***"

41. खण्ड (बी) में ऊपर दिए गए निष्कर्ष में यह प्रावधान है कि जहां संपत्ति का स्वामित्व पूरे बिक्री मूल्य के भुगतान से पहले क्रेता को हस्तांतरित कर दिया जाता है तो विक्रेता उस संपत्ति पर बिक्री मूल्य की राशि के साथ-साथ कब्जा देने की तारीख से उस पर ब्याज के लिए शुल्क लेने का हकदार है। मूल रूप से, उस तारीख के संबंध में कोई प्रावधान नहीं था जिससे अवैतनिक खरीद धन की राशि पर ब्याज देय होगा। इस धारा में संशोधन का सुझाव देने वाली विशेष समिति ने निम्नलिखित कारण दिये:

“यह खंड उस तारीख के बारे में भी कुछ नहीं कहती है, जिस तारीख से अवैतनिक खरीद धन पर ब्याज मिलना चाहिए। यह उचित प्रतीत होता है कि इसे उस तारीख से चलाया जाना चाहिए जब क्रेता को कब्जा दिया गया है।”

यह विशेष समिति की सिफारिश पर था कि संपत्ति हस्तांतरण (संशोधन) अधिनियम, 1929 (1929 का 20) की धारा 17 द्वारा इस खंड में “जिस तारीख से कब्जा दिया गया है” शब्द शामिल किए गए थे।

42. यह खंड स्पष्ट रूप से उस स्थिति पर लागू होता है जहां विक्रेता या विक्रेता को खरीद के पूरे पैसे का भुगतान करने से पहले संपत्ति का स्वामित्व क्रेता को दे दिया गया है। इस खंड में जो कुछ भी शामिल है वह न्यायसंगत ग्रहणाधिकार के अंग्रेजी सिद्धांत पर आधारित है जैसा कि गुड बनाम बर्टन [(1847) 74 आरआर 633: 1 एक्स 189] में

बैरन रॉल्फ द्वारा प्रतिपादित किया गया था। यह खंड न्यायसंगत ग्रहणाधिकार के अंग्रेजी सिद्धांत को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है। जैसा कि वेब बनाम मैकफर्सन [(1903) 30 आई.ए. 238] में प्रिवी काउंसिल द्वारा बताया गया है, इस प्रस्तर के तहत वैधानिक शुल्क अनम्य है। यह शुल्क विक्रेता को क्रेता के विरुद्ध संपत्ति पर कब्ज़ा बनाए रखने का अधिकार नहीं देता है, लेकिन यह सकारात्मक रूप से उसे सूट द्वारा शुल्क लागू करने का अधिकार देता है। (देखें: वेंकटपेरुमल नायडू बनाम एम रत्नसभापति चेट्टियार [एआईआर 1953 मद 821]; शोभालाल श्यामलाल कुर्मी बनाम सिधेलाल हल्केलाल बनिया [एआईआर 1939 नाग 210: आईएलआर 1939 नाग 636] और बसलिंगया रेवनशिदप्पा बनाम चिन्नवा करिबासप्पा [एआईआर 1932 बोम 247: 34 बोम एलआर 427]] .)

43. उपरोक्त के मद्देनजर, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में पूरी तरह से गलत था कि कोई बिक्री नहीं हुई थी क्योंकि प्रतिवादी संख्या-2 को केवल 500/- रुपये की राशि का भुगतान किया गया था और 4500/- रुपये की शेष राशि का भुगतान नहीं किया गया था। चूंकि संपत्ति में स्वामित्व पहले ही पारित हो चुका था, भले ही बिक्री मूल्य की शेष राशि का भुगतान नहीं किया गया हो पर बिक्री अमान्य नहीं होगी। बेची गई संपत्ति बिक्री मूल्य के अवैतनिक हिस्से के लिए वैधानिक शुल्क के अधीन क्रेता को हस्तांतरित कर दी जाएगी।“

29. यह मुद्दा फिर से सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दहिबेन (उपरोक्त) में विचार के लिए आया, जहां माननीय न्यायमूर्ति ने विद्याधर मामले में पूर्व के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए अवधारित किया:

“29.8. विद्याधर बनाम माणिकराव [विद्याधर बनाम माणिकराव, (1999) 3 एससीसी 573] मामले में इस न्यायालय ने अवधारित किया कि शब्द "भुगतान की गई कीमत या वादा किया गया या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किया गया" इंगित करता है कि विक्रय विलेख के निष्पादन के समय संपूर्ण मूल्य का वास्तविक भुगतान बिक्री के पूर्ण होने के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। भले ही पूरी कीमत का भुगतान नहीं किया गया है, लेकिन दस्तावेज़ निष्पादित किया गया है, और उसके बाद पंजीकृत किया गया है तो बिक्री पूर्ण हो जाएगी, और स्वत्व के लेनदेन के तहत हस्तांतरिती को दे दिया जाएगा। बिक्री मूल्य के एक हिस्से का भुगतान न करने से बिक्री की वैधता प्रभावित नहीं होगी। एक बार संपत्ति में स्वामित्व पहले ही पारित हो चुका हो और भले ही शेष बिक्री पर विचार किया गया भुगतान न किया गया हो तो इस आधार पर बिक्री को अमान्य नहीं किया जा सकता है। "बिक्री" का गठन करने के लिए, पक्षकारों को संपत्ति के स्वामित्व को हस्तांतरित करने की मंशा रखनी चाहिए, कीमत का भुगतान या तो वर्तमान में या भविष्य में करने के समझौते पर। यह मंशा बिक्री विलेख के विवरण, पक्षकारों के आचरण और अभिलेख पर मौजूद सबूतों से एकत्र किया जाना है।

29.9. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के दृष्टिगत, भले ही वादी के कथनों को सच मान लिया जाए कि वास्तव में संपूर्ण बिक्री प्रतिफल का भुगतान नहीं किया गया है, यह बिक्री विलेख को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। शेष प्रतिफल की वसूली के लिए वादी के पास कानून में अन्य उपाय हो सकते हैं, लेकिन पंजीकृत बिक्री विलेख को रद्द करने की राहत नहीं दी जा सकती। हमने पाया कि वादी द्वारा दायर किया गया मुकदमा कष्टप्रद, योग्यताहीन है और मुकदमा करने के अधिकार का खुलासा नहीं करता है। आदेश 7 नियम 11(ए) के तहत वाद पत्र खारिज किये जाने योग्य है।”

30. तर्क की पंक्ति का अनुसरण करते हुए **दहिबेन और बैजनाथ सिंह बनाम पल्टू, (1908) आईएलआर 30, अल्लाहाबाद 125** मामले में हमारे न्यायालय के एक पुराने निर्णय का जिक्र करते हुए, **चंद्रशंकर मणिशंकर बनाम अभला मथुरा और अन्य एआईआर 1952 बॉम्बे 56** में बॉम्बे उच्च न्यायालय के अधिकार के अलावा, **सुकालू और अन्य बनाम पुनाऊ, एआईआर 1961 एमपी 176** मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय, और **कालियापेरुमल बनाम राजगोपाल और अन्य, (2009) 4 एससीसी 193** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लेते हुए इस न्यायालय द्वारा **राज दत्त और अन्य बनाम नागेश्वर और अन्य, 2019 (9) एडीजे 252** मामले में यह अवधारित किया :

“38. ‘बैजनाथ सिंह बनाम पल्टू और अन्य’, (1908) आईएलआर 30 इलाहाबाद 125 के

मामले में, इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने कहा कि यदि विक्रय पत्र में लिखा है कि विक्रय प्रतिफल का भुगतान किया गया है, लेकिन न्यायालय ने पाया कि बिक्री पर कोई विचार पारित नहीं हुआ, तो खरीद के पैसे का भुगतान न करने से खरीदी गई संपत्ति का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता के पास जाने से नहीं रुकता है और क्रेता, ऐसे गैर-भुगतान के बावजूद, संपत्ति के कब्जे के लिए मुकदमा कायम रख सकता है।

39. एक अन्य मामले में ‘चंद्रशंकर मणिशंकर बनाम अभला माथुर और अन्य’, एआईआर (39) 1952 बॉम्बे 56, मामले में यह अवधारित किया गया कि ऐसा हो सकता है कि दस्तावेज़ में प्रतिफल के भुगतान की बात सच नहीं है। लेकिन इससे दस्तावेज़ अमान्य नहीं हो जाता। किसी बिक्री का समर्थन करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि पूरी कीमत का भुगतान किया जाए। कीमत पूरी तरह या आंशिक रूप से चुकाई जा सकती है या वादा किया जा सकता है। यह भी अवधारित किया गया कि यदि दस्तावेज़ की अवधि के अनुसार, प्रतिफल वास्तव में भुगतान नहीं किया गया था, लेकिन दस्तावेज़ से पता चलता है कि भुगतान करने का इरादा था, तो उस स्थिति में प्रतिफल का भुगतान न करने के कारण दस्तावेज़ को अमान्य नहीं किया जाता है। दूसरी ओर, यदि इरादा कोई प्रतिफल देने का नहीं था, तो दस्तावेज़ का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

40. एक अन्य मामले ‘सुकालू और अन्य बनाम पुनाऊ’, एआईआर 1961 एमपी 176 में,

यह अवधारित किया गया कि यह पक्षकारों की मंशा है जिसे यह तय करने के लिए देखा जाना चाहिए कि क्या विक्रय-पत्र अपने निष्पादन की तिथि पर विक्रेता से विक्रेता को ब्याज के हस्तांतरण के रूप में संचालित होता है। यदि यही मंशा थी, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पूरा प्रतिफल या उसका कुछ हिस्सा अवैतनिक रहा। इसके अलावा, जहां एक पंजीकृत विक्रय विलेख जो प्रत्यक्ष तौर पर एक हस्तांतरण के रूप में संचालित होता है और मौजूद है, तो यह साबित करने का भार उस पक्ष पर है जो इस तथ्य पर जोर देता है।

41. इसी तरह का एक प्रश्न 'विद्याधर बनाम माणिकराव और अन्य', (1999) 3 एससीसी 573 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संपत्ति हस्तांतरण की धारा 54 पर विचार करने के बाद अधिनियम में पाया कि विक्रय-पत्र के निष्पादन के समय पूरी कीमत का वास्तविक भुगतान बिक्री के पूरा होने के लिए आवश्यक शर्त नहीं है। बिक्री की असली परीक्षा पक्षकारों की मंशा है। इसे इस प्रकार धारित किया गया:

"36. परिभाषा इंगित करती है कि बिक्री करने के लिए, स्वामित्व का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरण होना चाहिए, यानी, उस व्यक्ति के पास मौजूद संपत्तियों के सभी अधिकारों और हितों का हस्तांतरण उसके द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्थानांतरित कर दिया जाता है। अंतरणकर्ता उस संपत्ति में अपने हित या अधिकार का कोई भी हिस्सा अपने पास नहीं रख सकता अन्यथा यह बिक्री नहीं होगी।

परिभाषा आगे कहती है कि स्वामित्व का हस्तांतरण "भुगतान की गई या वादा किए गए मूल्य या आंशिक-भुगतान और आंशिक-वादा किए गए मूल्य" के लिए होना चाहिए। इस प्रकार कीमत बिक्री के लेन-देन का एक अनिवार्य घटक है। "भुगतान की गई कीमत या वादा किया गया या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किया गया" शब्द दर्शाते हैं कि विक्रय-पत्र के निष्पादन के समय पूरी कीमत का वास्तविक भुगतान बिक्री के पूरा होने के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। भले ही पूरी कीमत का भुगतान नहीं किया गया हो, लेकिन दस्तावेज निष्पादित किया गया हो और उसके बाद पंजीकृत किया गया हो, यदि संपत्ति का मूल्य 100/- रुपये से अधिक है, तो बिक्री पूर्ण हो जाएगी।

39. असली परीक्षा पक्षकारों की मंशा है। "बिक्री" करने के लिए, पक्षकारों को संपत्ति के स्वामित्व को हस्तांतरित करने की मंशा रखनी चाहिए और उनका यह भी आशय होना चाहिए कि कीमत का भुगतान या तो वर्तमान में या भविष्य में किया जाएगा। इसका आशय विक्रय-पत्र के विवरण, पक्षों के आचरण और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से एकत्र किया जाना है।"

42. एक अन्य मामले में 'कलियापेरुमल बनाम राजगोपाल और अन्य', (2009) 4 एससीसी 193, मामले में इसे इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"17. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि संपूर्ण कीमत का भुगतान स्वामित्व पारित करके बिक्री को पूरा करने के लिए एक शर्त

नहीं है, जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 (संक्षेप में "अधिनियम") परिभाषित करती है कि "बिक्री" का अर्थ "भुगतान किये गए या वादा किए गए मूल्य या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किए गए मूल्य के बदले में स्वामित्व का हस्तांतरण" करने के रूप में है। यदि पक्षकारों की मंशा यह थी कि स्वामित्व निष्पादन और पंजीकरण पर पारित हो जाना चाहिए, तो स्वामित्व क्रेता के पास चला जाएगा, भले ही बिक्री मूल्य या उसके हिस्से का भुगतान न किया गया हो। इसके बाद कीमत (या जैसा भी मामला हो शेष कीमत) का भुगतान न करने की स्थिति में, विक्रेता का उपाय केवल शेष कीमत के लिए मुकदमा करना है। वह बिक्री से बच नहीं सकता। हालाँकि, अधिनियम की धारा 55(4)(बी) के तहत, वह बिक्री मूल्य के अवैतनिक हिस्से के लिए संपत्ति पर शुल्क लगाने का हकदार है, जहां संपत्ति का स्वामित्व पूरी कीमत के भुगतान से पहले क्रेता को दे दिया गया है।"

43. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि केवल यह तथ्य कि एक विक्रय-पत्र प्रतिफल के भुगतान को दर्शाता है जो सत्य नहीं है, दस्तावेज़ को अमान्य नहीं कर सकता है। किसी बिक्री का समर्थन करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि पूरी कीमत का भुगतान किया जाए। कीमत पूरी तरह या आंशिक रूप से चुकाई जा सकती है या वादा किया जा सकता है। यदि दस्तावेज़ की अवधि के अनुसार प्रतिफल वास्तव में भुगतान नहीं किया गया था, लेकिन दस्तावेज़ से पता चलता है कि भुगतान करने की मंशा

थी, तो उस स्थिति में प्रतिफल का भुगतान न करने के कारण दस्तावेज़ को अमान्य नहीं किया जाता है। दूसरी ओर, यदि कोई प्रतिफल देने का आशय नहीं था या दस्तावेज़ बिना किसी प्रतिफल के है, तो दस्तावेज़ का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसी बिक्री के बीच अंतर होता है जहां प्रतिफल का भुगतान करने का आशय होता है और भुगतान नहीं किया जाता है, और जहां दोनों पक्षों द्वारा प्रतिफल का भुगतान करने का आशय नहीं होता है। पहले मामले में, स्वामित्व क्रेता के पास चला जाता है, और बाद के मामले में हालांकि विक्रेता को दस्तावेज़ के निष्पादन और पंजीकरण के माध्यम से धोखा दिया जाता है, बिक्री-विलेख आभासी लेनदेन के रूप में शून्य होता है। यह आवश्यक नहीं है कि पूरी कीमत चुकाई जाए। कीमत का भुगतान किया जा सकता है या पूर्ण या आंशिक रूप से भुगतान करने का वादा किया जा सकता है।"

31. यद्यपि निर्णयों की उपरोक्त पंक्ति में बताए गए नियम में इस आशय का कोई पूर्ण अपवाद नहीं है कि विक्रय विलेख में निर्धारित मूल्य का भुगतान न करना तथ्यतः इसे अमान्य नहीं करता है, लेकिन विक्रेता को अधिनियम 1882 की धारा 55(4)(बी) के अनुसार हस्तांतरित संपत्ति पर शुल्क लगाने का अधिकार देता है, फिर भी कालियापेरुमल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति द्वारा बताया गया कि इस अंगूठे के नियम में कुछ अपवाद हैं, जिसके लिए इस न्यायालय ने राज दत्त (उपरोक्त) में एक अस्थायी संदर्भ दिया है। **कलियापेरुमल** मामले में नियम की पूरी व्याख्या से यह बेहतर ढंग

से समझा जा सकता है कि माननीय न्यायमूर्ति ने इसकी संपूर्णता में क्या अवधारित किया। **कलियापेरुमल** मामले में अवधारित किया गया संदर्भ इस प्रकार है:

“17. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि संपूर्ण कीमत का भुगतान स्वामित्व पारित करके बिक्री को पूरा करने के लिए एक शर्त नहीं है, जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 (संक्षेप में "अधिनियम") परिभाषित करती है कि "बिक्री" का अर्थ "भुगतान किये गए या वादा किए गए मूल्य या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किए गए मूल्य के बदले में स्वामित्व का हस्तांतरण" करने के रूप में है। यदि पक्षकारों की मंशा यह थी कि स्वामित्व निष्पादन और पंजीकरण पर पारित हो जाना चाहिए, तो स्वामित्व क्रेता के पास चला जाएगा, भले ही बिक्री मूल्य या उसके हिस्से का भुगतान न किया गया हो। इसके बाद कीमत (या जैसा भी मामला हो शेष कीमत) का भुगतान न करने की स्थिति में, विक्रेता का उपाय केवल शेष कीमत के लिए मुकदमा करना है। वह बिक्री से बच नहीं सकता। हालाँकि, अधिनियम की धारा 55(4)(बी) के तहत, वह बिक्री मूल्य के अवैतनिक हिस्से के लिए संपत्ति पर शुल्क लगाने का हकदार है, जहां संपत्ति का स्वामित्व पूरी कीमत के भुगतान से पहले क्रेता को दे दिया गया है।

19. सामान्यतः, बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख से बिक्री विलेख के पंजीकरण पर संपत्ति का स्वामित्व और स्वत्व क्रेता के पास चला जाएगा। लेकिन यह एक अटल नियम

नहीं है, क्योंकि संपत्ति के पारित होने की असली परीक्षा पक्षकारों की मंशा है। यद्यपि पंजीकरण प्रथम दृष्टया संपत्ति को हस्तांतरित करने के आशय का प्रमाण है, लेकिन यह कार्यकारी हस्तांतरण का प्रमाण नहीं है यदि विचार (कीमत) का भुगतान संपत्ति के हस्तांतरण के लिए एक शर्त है।

19. इस प्रश्न का उत्तर कि क्या पक्षकारों का आशय है कि स्वामित्व का हस्तांतरण केवल विलेख के निष्पादन और पंजीकरण द्वारा किया जाना चाहिए या क्या उनका आशय संपत्ति का हस्तांतरण, संपूर्ण प्रतिफल प्राप्त होने के बाद ही करना है, यह पक्षकारों की मंशा पर निर्भर करेगा। इस तरह की मंशा मुख्य रूप से बिक्री विलेख के विवरण से एकत्र और निर्धारित किया जाना है। जब विवरण अपर्याप्त या अस्पष्ट हों तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 द्वारा निर्धारित सीमाओं के अधीन, मंशा का पता लगाने के लिए आसपास की परिस्थितियों और पक्षकारों के आचरण पर गौर किया जा सकता है।"

32. सामान्य नियम का यह सूक्ष्म अपवाद किसी दिए गए मामले में कैसे कार्य करेगा और इसे कैसे लागू किया जाएगा, यह भी **कलियापेरुमल** मामले में बताया गया है, जहां यह अवधारित किया जाता है:

“20. इस मामले में दिनांक 26-6-1983 को विक्रय पत्र का निष्पादन विवाद में नहीं है। उक्त दस्तावेज दिनांक 21-10-1983 को पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया था और दिनांक 26-10-1983 को पंजीकृत किया गया

था, क्योंकि प्रथम प्रतिवादी विक्रेता सब-रजिस्ट्रार के सामने पेश हुए और स्वीकार किया कि विक्रेताओं ने दस्तावेजों को निष्पादित किया था, लेकिन उस पर समर्थन करने से इनकार कर दिया। विलेख पर प्रभाव पड़ा क्योंकि विक्रेताओं को शेष 40,000/- रुपये नहीं मिले थे।

21. इस मामले के तथ्यों पर उपर्युक्त सिद्धांतों को लागू करने पर, हम पाते हैं कि पक्षकारों की मंशा थी कि संपत्ति का स्वामित्व, एक शर्त के रूप में, विक्रेताओं द्वारा संपूर्ण विचार प्राप्त होने के बाद ही अपीलकर्ता को हस्तांतरित किया जाएगा। विक्रय विलेख के कार्यकारी भाग में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विक्रेता बिक्री विलेख के पंजीकरण की तारीख पर सब-रजिस्ट्रार की उपस्थिति में 40,000/- रुपये प्राप्त करने के लिए सहमत हुए हैं और इस प्रकार किए जाने वाले भुगतान पर विचार करते हुए, संपत्ति क्रेता को दी जा रही है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामित्व केवल सब-रजिस्ट्रार की उपस्थिति में 40,000/- रुपये के शेष भुगतान पर पारित करने की मंशा थी। यह डीडब्ल्यू-1 से डीडब्ल्यू-4 के साक्ष्य द्वारा भी समर्थित है। सब-रजिस्ट्रार ने यह भी स्पष्ट रूप से दर्ज किया है कि उनकी उपस्थिति में क्रेता द्वारा विक्रेताओं को कोई राशि नहीं दी गई या भुगतान नहीं किया गया। इसलिए वास्तव में स्वामित्व बिक्री विलेख के निष्पादन या पंजीकरण पर पारित नहीं हुआ।

22. यह दिखाने के लिए एक और परिस्थिति है कि स्वामित्व पूरी कीमत के भुगतान के बाद

ही पारित करने की मंशा थी। यद्यपि विक्रय विलेख में कहा गया है कि क्रेता बिक्री की तारीख से निर्धारित संपत्तियों को रखने, कब्जा करने और उसको उपयोग करने का हकदार है, न तो संपत्तियों का कब्जा और न ही स्वामित्व विलेख क्रेता को बिक्री की तारीख पर या उसके बाद दिया गया था। यह स्वीकार किया गया है कि बिक्री विलेख के तहत कथित तौर पर विक्रय की गई संपत्तियों का कब्जा अपीलकर्ता को कभी नहीं दिया गया और प्रत्यर्थीगणों के पास ही रहा। वास्तव में, इसलिए अपीलकर्ता ने प्रतिवादियों से मामूली लाभ के साथ मुकदमे की संपत्तियों पर कब्जा करने की डिक्री मांगी। यदि वास्तव में पक्षकारों की मंशा यह थी कि विलेख के निष्पादन और उसके पंजीकरण पर संपत्तियों का स्वामित्व अपीलकर्ता को मिल जाना चाहिए, तो वाद संपत्तियों का कब्जा अपीलकर्ता को दे दिया गया होता।

23. तीनों न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह भी पाया है कि अपीलकर्ता ने एक झूठा मामला दायर किया था कि उसने प्रतिवादी को लॉरी खरीदने में सक्षम बनाने के लिए शेष राशि का एक हिस्सा, यानी 25,000/- रुपये दिनांक 21-7-2003 को भुगतान किया था। अपीलकर्ता के इस मामले पर विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय अदालत, जो तथ्यों की अंतिम अदालत है, ने भी अविश्वास जताया। उस निष्कर्ष को अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी।

24. वादपत्र में दिए गए कथनों से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता केवल 15,000/- रुपये का भुगतान करने के लिए तैयार था, न कि

40,000/- रुपये का। उन्होंने 40,000/- रुपये का भुगतान करने के लिए कभी भी अपनी तत्परता या इच्छा नहीं दिखाई थी, जो कि प्रतिफल की शेष राशि थी और जिसका भुगतान केवल सब-रजिस्ट्रार की उपस्थिति में किया जाना था, जैसा कि विलेख में उल्लेखित है। प्रथम प्रतिवादी जो दिनांक 26-10-1983 को प्रत्यर्थीगणों की ओर से सब-रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित था, सब-रजिस्ट्रार द्वारा विलेख पर किए जाने वाले पंजीकरण के समर्थन में हस्ताक्षर न करने या अपने अंगूठे का निशान न लगाने को उचित ठहराया गया था।

25. इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर हमारा मानना है कि पक्षकारों की वास्तव में मंशा थी कि मुकदमे की संपत्तियों का स्वामित्व क्रेता को तभी मिलेगा, जब क्रेता द्वारा विक्रेता को एक शर्त के रूप में पूरा भुगतान कर दिया जाएगा। पक्षकारों की मंशा यह नहीं थी कि केवल विलेख के निष्पादन और पंजीकरण पर स्वामित्व का हस्तांतरण होना चाहिए।

33. **कालियापेरुमल** मामले में नियम यह प्रतीत होता है कि सामान्यतः संपत्ति का स्वामित्व और हक बिक्री विलेख के पंजीकरण पर उसके निष्पादन की तारीख से विक्रेता को हस्तांतरित कर दिया जाएगा, लेकिन जैसा कि वहां टिप्पणी की गई है, यह नियम अपरिवर्तनीय नहीं है। वहां प्रस्तुत असली परीक्षा पक्षकारों की मंशा है कि संपत्ति में स्वामित्व कब पारित होगा। पंजीकरण करना प्रथम दृष्टया संपत्ति को स्थानांतरित करने के

लिए विक्रेता की मंशा को प्रमाणित करता है, लेकिन यह हस्तांतरण को सही नहीं करता है यदि पक्षकारों द्वारा विक्रेता से विक्रेता तक संपत्ति के हस्तांतरण के लिए प्रतिफल का भुगतान आवश्यक माना जाता है। उस मंशा को कैसे एकत्र किया जाना है, **कालियापेरुमल** मामले में रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 19 में बताया गया है।

34. यह निर्धारित किया गया है कि आशय को सबसे पहले विक्रय विलेख में दर्ज विवरण से एकत्र किया जाना है। यदि विवरण अपर्याप्त या अस्पष्ट हैं, तो आशय का पता लगाने के लिए आसपास की परिस्थितियों और पक्षकारों के आचरण को देखा जा सकता है, निश्चित रूप से प्रतिबंधों को ध्यान में रखते हुए, जो कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 92 वचन के स्वीकारोक्ति पर लिखित दस्तावेज़ के विपरीत साक्ष्य रखती है। इसलिए, नियम यह प्रतीत होता है कि यदि बिक्री विलेख में विवरण स्पष्ट और असंदिग्ध हैं, तो विक्रेता को संपत्ति हस्तांतरित करने के तत्काल आशय का संकेत मिलता है, यद्यपि यह कहते हुए कि यह संपूर्ण बिक्री प्रतिफल की प्राप्ति पर है और इसकी वास्तविक गैर-प्राप्ति, बिक्री को अमान्य नहीं करेगी, लेकिन विक्रेता को मूल्य, संपूर्ण या आंशिक, अवैतनिक शेष, की वसूली करने का अधिकार देता है, जिसे स्वीकार किया गया है या साबित किया गया है। हालाँकि, यदि विक्रय विलेख में विवरण संपत्ति को स्थानांतरित करने के लिए एक अयोग्य, स्पष्ट और असंदिग्ध तत्काल आशय को दर्शित नहीं करता है, लेकिन यह किसी प्रकार के आरक्षण या प्रतिबंध के अधीन है, जो

कीमत के भुगतान पर निर्भर है, या अन्यथा विवरण इसे बिना शर्त और तुरंत संपत्ति को प्रतिवादी को हस्तांतरित करने के पक्षकारों के आशय का मामला नहीं बनाते हैं और सही आशय को जानने के लिए पक्षकारों के आचरण पर गौर किया जा सकता है।

35. **कालियापेरुमल** मामले में सिद्धांत को लागू करने के बारे में टिप्पणियाँ, जहां संप्रेषित संपत्ति पर स्वामित्व के तत्काल पारित होने का सामान्य नियम निष्पादित विलेख के पंजीकरण पर पालन किया जाएगा और जहां विलेख में दिए गए कथनों से अलग आशय पर विचार किया जा सकता है, वहां स्वामित्व के पारित होने को प्रतिफल के भुगतान पर निर्भर माना जा सकता है, वे स्पष्ट हैं। जैसा कि रिपोर्ट से पता चलता है, उक्त निर्णय में अब तक प्रासंगिक तथ्य यह है कि बिक्री विलेख में स्वभाव खंड में एक पुनरावृत्ति है कि विक्रेता सब-रजिस्ट्रार की उपस्थिति में 40,000/- रुपये प्राप्त करने के लिए सहमत हुए हैं। विक्रय विलेख के पंजीकरण की तारीख और इस प्रकार किए जाने वाले भुगतान पर विचार करते हुए, संपत्ति क्रेता को दी जा रही थी। इसलिए, माननीय न्यायमूर्ति ने टिप्पणी की कि विवरणों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि "स्वामित्व केवल सब-रजिस्ट्रार की उपस्थिति में 40,000/- रुपये के शेष भुगतान पर पारित करने का आशय था।"। सब-रजिस्ट्रार के समक्ष, जब विक्रय विलेख पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया, तो विक्रेता उपस्थित हुआ और उसने लिखत के निष्पादन को स्वीकार किया, लेकिन 40,000/- रुपये की शेष राशि की प्राप्ति के बारे में समर्थन देने से इनकार कर दिया, जिसके बारे

में विक्रेता ने कहा कि उसे प्राप्त नहीं हुआ है। सब-रजिस्ट्रार ने स्पष्ट रूप से दर्ज किया कि उनकी उपस्थिति में क्रेतागणों द्वारा विक्रेता को कोई राशि नहीं दी गई या भुगतान नहीं किया गया। इसलिए, यह अवधारित किया गया कि स्वामित्व बिक्री विलेख के निष्पादन या पंजीकरण पर पारित नहीं हुआ। कुछ अन्य परिस्थितियाँ भी देखी गईं जिनका उल्लेख रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 22 में किया गया है।

36. विक्रय विलेख के निष्पादन और पंजीकरण पर स्वामित्व के अयोग्य पारित होने के बारे में नियम और जब यह लागू नहीं होगा, यानी, यदि पक्षकारों ने विक्रय विलेख में या अस्पष्ट या अपर्याप्त विवरण के कारण स्पष्ट विवरण से अलग आशय किया है इसलिए, **कालियापेरुमल** मामले में निर्णय आने तक इसे सुस्थापित अवधारित किया जा जा सकता है।

37. इस सिद्धांत पर **कालियापेरुमल** मामले के तुरंत बाद **जनक दुलारी देवी और अन्य बनाम कपिलदेव राय और अन्य, (2011) 6 एससीसी 555** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। **जनक दुलारी देवी** (उपरोक्त), जो कि बिहार राज्य से उठा एक मामला था, न्यायालय ने निम्न प्रश्नों के उत्तर दिए: (i) क्या बिक्री विलेख के निष्पादन पर संपत्ति का स्वामित्व विक्रेता को दे दिया गया है? और, (ii) तथ्यों के आधार पर, क्या विक्रेता इस आधार पर बिक्री को रद्द/अस्वीकार करने में सही था कि बिक्री पर विचार का भुगतान नहीं किया गया था? माननीय न्यायमूर्ति ने बिहार में प्रचलित प्रथा "ता खुबजुल बदलाएँ" को ध्यान में रखते हुए

प्रश्नों के उत्तर दिए, जिसे रिपोर्ट में अनुवादित किया गया है जिसका अर्थ है 'संपत्ति का स्वामित्व क्रेता को तभी मिलता है जब समतुल्यों का आदान-प्रदान होता है।' यह उस संदर्भ में था कि **जनक दुलारी देवी** (उपरोक्त) की रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 13 में, **कालियापेरुएल** मामले में निर्धारित नियम के अपवाद को अयोग्य शब्दों में कहा गया प्रतीत होता है, जो वास्तव में ऐसा नहीं है। यह कि रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 11, 12 और 13 को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि **जनक दुलारी देवी** मामले में कानून जो है उससे सैद्धांतिक तौर पर कोई विचलन नहीं है। **जनक दुलारी देवी** की रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 11 और 13 में माननीय न्यायमूर्ति की टिप्पणियों को उद्धृत करना पर्याप्त होगा, जो इस प्रकार है:

“11. जहां पक्षकारों का आशय यह है कि स्वामित्व का पारित होना विचार के पारित होने पर निर्भर करेगा, विचार की प्राप्ति को स्वीकार करते हुए विलेख में कथन का खंडन करने के उद्देश्य से साक्ष्य स्वीकार्य है। बिशुनदेव नारायण राय बनाम अनमोल देवी [(1998) 7 एससीसी 498] में इस न्यायालय के पास इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर था कि किसी संपत्ति में स्वामित्व और स्वत्व हस्तांतरण के विलेख के तहत हस्तांतरणकर्ता को कब मिलेगा। इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एससीसी पृष्ठ 503, प्रस्तर 11)

“11. ...संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 8 कहती है कि संपत्ति के हस्तांतरण पर, हस्तांतरणकर्ता के पास जो भी हित हैं या उस समय हैं, वे संपत्ति में और उसके कानूनी

प्रभाव में स्थानांतरित होने में सक्षम हैं, ऐसे हस्तांतरण को तब तक हस्तांतरित न करें जब तक एक अलग आशय व्यक्त किया गया हो या आवश्यक रूप से निहित हो। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 8 और धारा 54 को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह पता चलता है कि यद्यपि विक्रय विलेख के निष्पादन और पंजीकरण पर, स्वामित्व और संपत्ति में सभी हित हस्तांतरणकर्ता के पास चले जाते हैं, फिर भी यह विलेख में सन्निहित नियमों और शर्तों पर होगा जो पक्षकारों के आशय को दर्शाता है। इसका तात्पर्य यह है कि विक्रय विलेख के निष्पादन और पंजीकरण पर, स्वामित्व का हक और संपत्ति में सभी हित क्रेता के पास चले जाते हैं, जब तक कि कोई अलग आशय व्यक्त नहीं किया जाता है या आवश्यक रूप से निहित नहीं होता है, जिसे पक्षकार द्वारा यह साबित करते हुए साबित करना होता है कि स्वामित्व बिक्री विलेख के पंजीकरण पर पारित नहीं हुआ है। इस तरह के आशय को आंतरिक साक्ष्य द्वारा एकत्र किया जा सकता है, अर्थात्, बिक्री विलेख में दिए गए कथनों से या साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 92 के प्रावधानों के अधीन अन्य उपस्थित परिस्थितियों से।”

13. जहां विक्रय विलेख में कहा गया है कि विक्रेता द्वारा कुल प्रतिफल प्राप्त होने पर, संपत्ति हस्तांतरित कर दी गई और कब्जा दे दिया गया, स्पष्ट आशय यह है कि स्वामित्व पारित हो जाएगा और संपूर्ण बिक्री प्रतिफल के भुगतान पर ही कब्जा दिया जाएगा। इसलिए, जहां विक्रय विलेख में कहा गया है कि संपूर्ण प्रतिफल प्राप्त होने पर, विक्रेता संपत्ति

हस्तांतरित कर रहा था, लेकिन क्रेता स्वीकार करता है कि उसने संपूर्ण प्रतिफल का भुगतान नहीं किया है (या यदि विक्रेता साबित करता है कि संपूर्ण बिक्री प्रतिफल का भुगतान उसे नहीं किया गया है), तो संपत्ति में स्वामित्व क्रेता को नहीं मिलेगा।”

38. श्री सॉन्डर्स ने इस न्यायालय का ध्यान केवल कृष्ण (उपरोक्त) के हालिया फैसले, विशेष रूप से रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 15 में की गई टिप्पणियों की ओर आकर्षित किया है, जिसमें लिखा है:

“15.....

इसलिए, अचल संपत्ति की बिक्री एक मूल्य पर होनी चाहिए। मूल्य भविष्य में चुकानी पड़ सकती है। इसका आंशिक भुगतान किया जा सकता है तथा शेष भाग भविष्य में देय किया जा सकता है। मूल्य का भुगतान टीपी अधिनियम की धारा 54 के अंतर्गत आने वाली बिक्री का एक अनिवार्य हिस्सा है। यदि किसी अचल संपत्ति के संबंध में कोई विक्रय विलेख मूल्य का भुगतान किए बिना निष्पादित किया जाता है और यदि इसमें भविष्य की तारीख पर मूल्य के भुगतान का प्रावधान नहीं है, तो यह कानून की नजर में बिल्कुल भी बिक्री नहीं है। इसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं है। अतः ऐसी बिक्री अमान्य होगी। इससे अचल संपत्ति के हस्तांतरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।”

39. उनका कहना है कि **केवल कृष्ण** मामले में कहा गया नियम, जो कि बहुत बाद का निर्णय है, अनुपयुक्त शब्दों में कहा गया है और सामान्य सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता है कि बिक्री विलेख के निष्पादन और पंजीकरण

के बाद अवैतनिक मूल्य लेनदेन को अमान्य नहीं करता है, बल्कि बेची गई संपत्ति पर केवल ग्रहणाधिकार या शुल्क बनाता है। उनका कहना है कि जब तक मूल्य भविष्य में देय नहीं होती, **केवल कृष्ण** मामले का नियम यह दिखाएगा कि मूल्य के भुगतान के बिना निष्पादित अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री विलेख कानून की नजर में बिल्कुल भी बिक्री नहीं है। वास्तव में, यह **केवल कृष्ण** मामले में निर्धारित नियम है, जो कि अंतिम न्यायाधीश, अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस बिंदु पर अंतिम निर्णय प्रतीत होता है। इसके विपरीत कोई निर्णय इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया है।

40. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पीपरसेनिया ने तर्क दिया है कि **केवल कृष्ण** मामले में निर्णय संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 55(4)(बी) के प्रावधानों पर ध्यान नहीं देता है, जो बेची गई संपत्ति पर अवैतनिक मूल्य पर एक शुल्क बनाता है, लेकिन लेनदेन को अमान्य नहीं करता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि **केवल कृष्ण** मामले में निर्णय **विद्याधर, कालियापेरुमल, जनक दुलारी देवी** और सबसे ऊपर, **दहिबेन** मामले, जो विपरीत विचार व्यक्त करते हैं, कुछ योग्य और कुछ अयोग्य में अपेक्षाकृत हालिया निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय के पहले के अधिकारियों का ध्यान नहीं रखता है।

41. श्री पीपरसेनिया ने कहा कि यदि समान शक्ति वाली पीठों वाले सर्वोच्च न्यायालय के विरोधाभासी निर्णय हैं, तो वे निर्णय जो उच्च न्यायालय को विस्तृत और सटीक रूप से

कानून निर्धारित करता प्रतीत होता है, का पालन किया जाना चाहिए। जिस समय निर्णय दिया गया वह इसके बाध्यकारी प्रभाव के बारे में निर्णायक नहीं है।

42. यह प्रश्न **गंगा सरन बनाम सिविल जज, हापुड, गाजियाबाद और अन्य, एआईआर 1991 ऑल 114** मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विचार के लिए आया, जहां यह अवधारित किया गया था:

“6. पहले प्रश्न के संबंध में कमरुद्दीन जो एक ओर बाद का निर्णय है और विशेष कुमार बनाम शांति प्रसाद (उपरोक्त) और विष्णु अवतार बनाम शिव अवतार (उपरोक्त) में निर्णय जो ज्यूपिटर चिट फंड (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम द्वारका दीश (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करता है, यह दर्शित करेगा कि सीपीसी की धारा 115 के तहत उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण की स्थिरता के प्रश्न पर सीधा टकराव है। सर्वोच्च न्यायालय के दोनों निर्णय दो माननीय न्यायाधीशों वाली पीठ के हैं। ऐसी स्थिति में जो प्रश्न विचार के लिए उठते हैं वे हैं: जब समान शक्ति वाले न्यायाधीशों द्वारा दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों के बीच सीधा टकराव होता है, तो उनमें से किसका पालन उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए और क्या सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णय का सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णय को रद्द करने का प्रभाव पड़ता है?

7. निर्णय की एक पंक्ति यह है कि यदि सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों में

विरोधाभास है, तो बाद में आने वाला निर्णय उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। निर्णयों की दूसरी पंक्ति यह है कि यदि समान प्राधिकारियों वाले सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास है, तो समय की घटना एक प्रासंगिक कारक नहीं है और उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करता प्रतीत होता है।

8. इसी तरह की स्थिति मैसर्स इंडो स्विस् टाइम लिमिटेड, इंडाहेड़ा बनाम उमराव, आईआर 1981 पुंज और हर 213 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष उत्पन्न हुई। उक्त मामले में पूर्ण पीठ ने जो कहा वह नीचे दिया गया है (एआईआर के पृष्ठ 219-220 पर):

“अब यह तर्क कि एक समन्वय पीठ के नवीनतम निर्णय का यांत्रिक रूप से पालन किया जाना चाहिए और किसी भी अन्य विचार के बावजूद उसकी प्रमुखता होनी चाहिए, मेरे लिए उपयुक्त नहीं है। जब उच्च न्यायालय के फैसले सह-समान पीठों के होते हैं और इसलिए, मिलान प्राधिकारी के मामले में उनका महत्व अनिवार्य रूप से उसके औचित्य और तर्क पर विचार किया जाना चाहिए, न कि उस समय और तारीख की मात्र आकस्मिक परिस्थितियों पर जिस दिन उन्हें प्रस्तुत किया गया था। यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालय और समान अधिकार वाले दो सीधे विरोधाभासी निर्णय मौजूद हों तो वे दोनों निचली अदालतों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते। ऐसी स्थिति में अनिवार्य रूप से एक विकल्प

चुनना होगा, भले ही यह कठिन हो। सैद्धांतिक तौर पर मुझे यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो उसे कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है। केवल समय की घटना यह है कि क्या सर्वोच्च न्यायालय की समान पीठों के निर्णय पहले के बाद के हैं, यह एक ऐसा विचार है जो मुझे शायद ही प्रासंगिक लगता है।"

विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम नगर निगम, एआईआर 1988 बॉम्बे 9 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय ने इस निर्णय का पालन किया। पूर्ण पीठ में अधिकांश न्यायाधीशों ने माना कि यदि समान पीठों के दो निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास है, जो संभवतः मेल नहीं खा सकता है, तो अदालतों को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो उन्हें कानून को सटीक और विस्तृत रूप से बताने के लिए प्रतीत होता है। हम मैसर्स इंडो स्विस् टाइम लिमिटेड बनाम उमराव, (एआईआर 1981 पुंज और हर 213) (उपरोक्त) के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचार से पूर्णतः सहमत हैं, विशेषकर जब सर्वोच्च न्यायालय ने कमरुद्दीन के मामले (1990 ऑल इंडियन 308) (उपरोक्त) का निर्णय करते हुए एस 115, सीपीसी में उत्तर प्रदेश संशोधन और सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णय पर ध्यान नहीं दिया गया। इस मामले में व्यक्त दृष्टिकोण के आलोक में यह जांच की जानी चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए किस मामले में कानून सटीक रूप से निर्धारित होता

है। जैसा कि पहले देखा गया है, उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम संख्या XXXI/1978 ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 में संशोधन किया। इस संशोधन के आधार पर, धारा 115 के तहत संशोधन, एस.पी.सी. ने जिला न्यायालय द्वारा पारित अपील या पुनरीक्षण आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में झूठ नहीं बोला, जहां मुकदमे का मूल्यांकन 20,000/- रुपये से कम है। यह संशोधन मैसर्स ज्यूपिटर चिट फंड (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम द्वारका दिश, (एआईआर 1979 सभी 218) (एफबी) (उपरोक्त) में विचार के लिए आया और यह अवधारित किया गया कि, जैसा कि उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित है, सी.पी.सी. की धारा 115 उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय को परस्पर अनन्य क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। इस पूर्ण पीठ के निर्णय की पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष कुमार बनाम शांति प्रसाद, (एआईआर 1980 एससी 892) और विष्णु अवतार बनाम शिव अवतार (एआईआर 1980 एससी 1575) (उपरोक्त) के मामलों में अपने दो निर्णयों में की थी। कमरुद्दीन के मामले (1990 ऑल इंडियन 309) (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलोकन इंगित करता है कि मामले का निर्णय करने वाली पीठ के ध्यान में यह बात नहीं लाई गई कि यह यूपी का मामला था और उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम संख्या XXXI/1978 द्वारा संशोधित सी.पी.सी. की धारा 115 ने मामले को नियंत्रित किया। मामले का निस्तारण इस प्रकार किया गया जैसे मूल रूप से अधिनियमित सी.पी.सी. की धारा 115 लागू हो।

9. x x x x

10. उपरोक्त कारणों से यह माना जाना चाहिए कि क्रमरुद्दीन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय (1990 ऑल इंडियन सीपीसी 308) (उपरोक्त) इस हद तक कि जिला अदालत द्वारा पारित अपीलीय या पुनरीक्षण आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण सीपीसी की धारा 115 (उत्तर प्रदेश अधिनियम 31/78 द्वारा संशोधित) के तहत बनाए रखा जा सकता है, उच्च न्यायालय ने ज्यूपिटर चिट फंड (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम द्वारका दीश (एआईआर 1979 ऑल 218) (उपरोक्त) मामले में कानून को सटीक रूप से नहीं बताया या इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को खारिज नहीं किया, विशेष रूप से तब जब इसे सर्वोच्च न्यायालय के पहले के दो निर्णयों द्वारा विशेष रूप से अनुमोदित किया गया हो।
(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

43. केरल उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने **रमन गोपी और अन्य बनाम कुंजू रमन उथमन, 2011 एससीसी ऑनलाइन केर 4028** मामले में प्रश्न पर विचार किया, जहां यह अवधारित किया गया था:

“77. कानूनी स्थिति, जो सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय सहित अन्य उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों में बताए गए सिद्धांतों की चर्चा और विश्लेषण पर सामने आती है, जिससे विरोधाभासी स्थिति का सामना करने पर उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के लिए मार्गदर्शन के रूप में कार्य किया जा सके। निर्णयों का सारांश नीचे दिया गया है:-

(i) सर्वोच्च न्यायालय की समान शक्ति वाली दो पीठों के निर्णयों में विरोधाभासी विचारों के मामले में, बाद में दिया गया निर्णय पहले वाले निर्णय से अधिक प्रभावी होगा;

(ii) जो बाध्यकारी है वह अनुपात निर्णय है। एक निर्णय केवल उसके लिए एक प्राधिकार है जो वह वास्तव में निर्णय लेता है।

(iii) एक निर्णय जो व्यक्त नहीं किया गया है और कारणों पर आधारित नहीं है और न ही मुद्दे पर विचार करने पर आगे बढ़ता है, उसे बाध्यकारी प्रभाव वाला घोषित कानून नहीं माना जा सकता है जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 में माना गया है। इसी प्रकार, बिना विचार किये या बिना कारण बताए की गई कोई भी घोषणा या निष्कर्ष, बाध्यकारी दृष्टांत के रूप में कानून या प्राधिकार की घोषणा नहीं हो सकती है;

(iv) यह सुस्थापित है कि किसी निर्णय का सार अनुपात है, न कि प्रत्येक अवलोकन, न ही इसमें किए गए विभिन्न अवलोकनों से तार्किक रूप से क्या होता है।

(v) उस कारण या सिद्धांत का प्रतिपादन, जिस पर अदालत के समक्ष किसी प्रश्न का निर्णय लिया गया है, एक दृष्टांत के रूप में बाध्यकारी है। केवल कठोर निर्णय ही पक्षकारों के बीच बाध्यकारी होता है, लेकिन यह निर्णय के विषय-वस्तु के संबंध में निर्णय के विचार पर तय किया गया अमूर्त आनुपातिक निर्णय होता है, जिसमें केवल कानून का बल होता है और जब यह स्पष्ट है कि यह क्या था, जो बाध्यकारी है। यह केवल निर्णय में निर्धारित सिद्धांत है जो संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी कानून है।

(vi) कोई निर्णय शान्तिपूर्वक ढंग से दिया जाता है, तकनीकी अर्थ में जो उस वाक्यांश से जुड़ा हुआ है, जब निर्णय में शामिल कानून के विशेष बिंदु को अदालत द्वारा नहीं माना जाता है या उसके विचार में प्रस्तुत नहीं किया जाता है। (न्यायशास्त्र पर सैल्मंड 12वां संस्करण. पृष्ठ 153)।

(vii) दो न्यायाधीशों की डिवीजन बेंच के निर्णय और बड़ी बेंच और विशेष रूप से संविधान बेंच के निर्णय के बीच भिन्नता की स्थिति में डिवीजन बेंच बाद वाले निर्णय से बाध्य होगी।

(viii) पर *इंक्यूरियम* का अर्थ है पिछले बाध्यकारी निर्णय को लापरवाही से दिया गया निर्णय जैसे कि स्वयं का निर्णय या समन्वय या उच्च क्षेत्राधिकार की अदालत का निर्णय या किसी कानून की शर्तों या कानून के बल वाले नियम की अज्ञानता से लिया गया निर्णय। पहले की बाध्यकारी दृष्टांत का विशिष्ट संदर्भ देने वाला निर्णय सही हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि यह लापरवाही है।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

44. इस मुद्दे ने डी.वी. लक्ष्मण राव बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, 2000 एससीसी ऑनलाइन कर 775 मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय का भी ध्यान आकर्षित किया, जहां यह अवधारित किया गया:

"14. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि यदि समान संख्या में न्यायाधीशों वाली पीठों के सर्वोच्च न्यायालय के दो परस्पर विरोधी निर्णय हैं, तो बाद वाला पहले वाले पर प्रभावी होगा। लेकिन जहां पहले वाला निर्णय

बड़ी बेंच का है और बाद वाला निर्णय छोटी बेंच का है, वहां बड़ी बेंच का निर्णय बाध्यकारी होगा। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रामचन्द्र [एआईआर 1976 एससी 2574] मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया कि जहां उच्च न्यायालय को बड़ी बेंच और छोटी बेंच द्वारा व्यक्त विचारों के बीच विरोधाभास मिलता है, तो उच्च न्यायालय के लिए सही रास्ता बड़ी बेंच के निर्णय के अनुपात निर्णय का पता लगाना और छोटी बेंच द्वारा व्यक्त की गई राय को प्राथमिकता देते हुए उसका पालन करना है। इसलिए मैं सतेंद्र प्रसाद जैन और प्रताप के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य हूँ, जो बड़ी बेंच के हैं, न कि मरियप्पा के निर्णय का पालन करने के लिए, जो छोटी बेंच का है।"

45. यहां, न्यायालय ने पाया कि जो भी निर्णय दिए गए हैं वे सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठों द्वारा दिए गए हैं। अधिक संख्या वाली पीठ द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है। अन्य निर्णय सिद्धांत को बरकरार रखते हैं, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हालाँकि कलियापेरुमल और जनक दुलारी देवी के निर्णयों में कुछ अपवाद हैं, जो विद्याधर और दहिबेन में नहीं हैं। केवल कृष्ण मामले में माननीय न्यायमूर्ति के निर्णय को देना बिल्कुल अनुपयुक्त है और यह नियम बताता है कि उन मामलों को छोड़कर जहां कीमत का भुगतान, पूर्ण या आंशिक रूप से स्थगित कर दिया गया है, बिक्री प्रतिफल का भुगतान न करने पर यह बिक्री कानून की नजर में बिल्कुल भी बिक्री नहीं होगी। इसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं है और यह शून्य है।

सर्वोच्च न्यायालय की नवीनतम धारणा होने के नाते, इस न्यायालय के लिए यह उपलब्ध नहीं है कि वह निर्णय में तर्क के पीछे जाए और पूर्व के निर्णयों को सही कानून बनाने के रूप में चुने और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के सापेक्ष गुणों का मूल्यांकन करे, जैसे कि यह थे।

46. यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह मुद्दा, जिसने इस न्यायालय का सामना किया है, ने **रामकुमार रजक बनाम श्रीमती गीतादेवी गुप्ता और अन्य, 2019 के एफए संख्या 345, निर्णीत दिनांक 20.03.2023** को दिए गए एक हालिया निर्णय में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच का ध्यान आकर्षित किया है। **रामकुमार रजक (उपरोक्त)** में डिवीजन बेंच के माननीय न्यायमूर्ति ने **केवल कृष्ण और दहिबेन** मामले के बीच मतभेद को देखते हुए अवधारित किया:

“9. जैसा कि अपीलकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अवलम्ब लिया है कि जहां तक केवल कृष्ण (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित सिद्धांतों का संबंध है, यह दर्शित करने के लिए कि यदि किसी अचल संपत्ति के संबंध में कोई विक्रय विलेख मूल्य भुगतान के बिना निष्पादित किया जाता है, तो यह बिल्कुल भी बिक्री नहीं होगी और अचल संपत्ति के हस्तांतरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। लेकिन, हालांकि, दहिबेन (उपरोक्त), जिसमें, यह अवधारित किया गया कि बिक्री प्रतिफल का भुगतान न करना, उक्त घटना में बिक्री विलेख को रद्द करने का आधार नहीं होगा और जैसा कि ऊपर दर्शित है, वादी के पास इसे पुनर्प्राप्त करने के लिए अन्य उपाय हो

सकते हैं। चूँकि, पहले लिया गया यह दृष्टिकोण केवल कृष्ण (उपरोक्त) के उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय की समान शक्ति के ज्ञान में नहीं लाया गया था, इसलिए वादी के लिए इसका कोई उपयोग नहीं होगा।”
(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

47. अत्यंत सम्मान के साथ, यह न्यायालय छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के माननीय न्यायमूर्ति द्वारा इस बिंदु पर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ है। इस न्यायालय की समझ से, **रामकुमार रजक (उपरोक्त)** मामले में डिवीजन बेंच ने जो कहा है, वह यही है कि **केवल कृष्ण** मामले के बाद के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति ने दहिबेन मामले, जो **केवल कृष्ण** मामले (बाद का निर्णय) के समान शक्ति वाले माननीय न्यायमूर्ति की एक पीठ द्वारा प्रस्तुत किया गया था, में पहले के प्राधिकार पर ध्यान दिए बिना बिंदु को एक तरह से तय कर दिया था, उच्च न्यायालय को बाध्य नहीं करेगा। वस्तुतः **केवल कृष्ण** मामले के निर्णय को बिना परवाह किये नजरअंदाज कर दिया गया है। इस न्यायालय की समझ के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के किसी निर्णय को उच्च न्यायालय द्वारा बिना परवाह किये दर्ज करके नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, जब तक कि यह ऐसा मामला न हो जो स्पष्ट रूप से माननीय न्यायमूर्ति की उच्च शक्ति वाली पीठ के अनुपात के विरुद्ध हो। यहां पर यह मामला नहीं है।

48. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह न्यायालय मानता है कि 7000/- रुपये की

सहमत बिक्री प्रतिफल में से 1000/- रुपये जो अकेले निबन्धक के समक्ष भुगतान किए गए थे, वह सब भुगतान किया गया है। क्या वास्तव में यह सही स्थिति है, कानून संख्या-3 के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देते समय इस पर विचार किया जाएगा। यह प्रश्न संख्या-1 और 2 का उत्तर देने के उद्देश्य से एक धारणा है।

49. कानून संख्या-1 के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर सकारात्मक दिया गया है और यह अवधारित किया गया है कि यदि विक्रेता द्वारा पंजीकृत विक्रय पत्र में निर्धारित मूल्य का भुगतान विक्रेता को नहीं किया गया है, तो इस आधार पर रद्दीकरण का आदेश पारित किया जा सकता है।

50. कानून संख्या 3 का महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या निचली अपीलीय अदालत ने उलटफेर का निर्णय लिखते समय अभिलेख पर साक्ष्य पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को रद्द कर दिया है। सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष, इस अपील में कौन सी घटना सामने आएगी और जहां दो न्यायालयों ने अलग-अलग राय दी है, वह पंजीकृत बिक्री विलेख में निर्धारित संपूर्ण बिक्री विचार का भुगतान है। यह एकमात्र मुद्दा है जिसके साथ रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने के बाद निचली अपीलीय अदालत द्वारा विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को प्रभावी ढंग से रद्द करने का प्रश्न जुड़ा होगा। विचारण न्यायालय ने मुद्दे संख्या-1 और 2 पर अपने निष्कर्ष लौटाते हुए, जिनमें से किसी एक का केंद्रीय तथ्य संपूर्ण बिक्री विचार का भुगतान है, पक्षकारों के बीच

सामान्य आधार को रिकॉर्ड करके मुद्दे को कम करने के लिए आगे बढ़े हैं। विचारण न्यायालय द्वारा यह दर्ज किया गया है कि निम्नलिखित तथ्यों को लेकर दोनों पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है:

(1) यह कि प्रतिवादी के पक्ष में मुकदमे की संपत्ति की बिक्री के संबंध में पक्षकारों के बीच बातचीत हुई थी;

(2) यह कि बातचीत के आधार पर, यह सहमति हुई कि वादी वाद की संपत्ति प्रतिवादी के पक्ष में 7000/- रुपये में बेचेगा;

(3) यह कि अनुबंध या बातचीत के बाद, वादी ने प्रतिवादी के पक्ष में वाद संपत्ति से संबंधित एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया; और,

(4) यह कि विक्रय विलेख के पंजीकरण के समय, प्रतिवादी ने वादी को केवल 1000/- रुपये का भुगतान किया।

(* नोट: विचारण न्यायालय के निर्णय में प्रयुक्त शब्द है 'वार्तालाप', जिसका शाब्दिक अनुवाद 'बातचीत' होगा लेकिन इस संदर्भ में वास्तव में इसका अर्थ 'तोल-मोल' होगा।)

51. इसलिए, विचारण न्यायालय ने कहा है कि वादी के अनुसार, सहमत बिक्री विचार से, उसे केवल 1000/- रुपये का भुगतान किया गया था, जबकि प्रतिवादी के अनुसार, समझौते के समय 6000/- रुपये का भुगतान किया गया था। विलेख के पंजीकरण के समय 1000/- रुपये का भुगतान करना होगा, जिसका भुगतान उसी समय किया गया था। विचारण न्यायालय ने मौखिक गवाही के भाग के रूप में, पीडब्लू-1 यानी स्वयं वादी,

पीडब्लू-2 भागवत सिंह और पीडब्लू-3 खलक सिंह की गवाही पर विचार किया है। विचारण न्यायालय ने बिक्री विलेख में दिए गए विवरण पर भी गौर किया, जिससे पता चलता है कि 6000/- रुपये पहले प्राप्त किए गए थे और पंजीकरण के समय 1000/- रुपये ही देय थे। विचारण न्यायालय ने टिप्पणी की है कि उन परिस्थितियों में जब विलेख के अनुसार, पंजीकरण के समय भुगतान करने के लिए केवल 1000/- रुपये ही बचे थे, तो विलेख के निष्पादन के समय या जब विलेख लेखक इसे लिख रहा था तब शेष राशि का भुगतान करने का कोई अवसर नहीं था। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि सब-रजिस्ट्रार के समक्ष वादी को 1000/- रुपये की राशि का भुगतान किया गया था।

52. विचारण न्यायालय ने यह भी देखा है कि आक्षेपित विक्रय विलेख को दूषित करने वाली कोई भी अवैधता प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि वादी ने अपनी जिरह में यह नहीं कहा है कि विलेख लिखने के बाद, उसे पंजीकरण के लिए स्वीकार करने से पहले मुंशी/डीड लेखक लक्ष्मी प्रसाद या सब-रजिस्ट्रार द्वारा उसे पढ़ा नहीं गया था। यह टिप्पणी की गई है कि यदि दस्तावेज़ वादी को मुंशी या सब-रजिस्ट्रार द्वारा पढ़कर नहीं सुनाया गया होता, तो उसने निश्चित रूप से अपनी जिरह में इस तथ्य का उल्लेख किया होता। तथ्य का उल्लेख न करने से, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह एक चूक है, जो वादी के खिलाफ जाती है।

53. इसके बाद विचारण न्यायालय ने देखा कि अपनी जिरह में वादी ने कहा है कि सब-रजिस्ट्रार द्वारा दस्तावेज़ को पंजीकरण के लिए स्वीकार करने से पहले, उसने उसे पढ़कर सुनाया था। जिरह का प्रासंगिक हिस्सा विचारण न्यायालय द्वारा उद्धृत किया गया है, जिसे पुनः प्रस्तुत किया जाना चाहिए: "सब-रजिस्ट्रार ने उसे बतलाया था कि 6 हजार रुपया उसने पेशगी में लिये हैं व एक हजार रुपया शेष आज मिलने हैं तो उसने कहा था कि उसे पेशगी में 6 हजार रुपये नहीं मिले।"

54. विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कहा कि सब-रजिस्ट्रार ने पंजीकरण से पहले वादी को विक्रय पत्र पढ़ा था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि उसे 6000/- रुपये का भुगतान पहले ही किया जा चुका है (एक तथ्य से उसने अपनी जिरह में इनकार किया था और कहा था कि उसने सब-रजिस्ट्रार के समक्ष भी इससे इनकार किया था), यह उसके लिए उपलब्ध था कि वह दस्तावेज़ में अपना चिह्न न जोड़े। वह हस्ताक्षर करने या अपना चिह्न जोड़ने से इनकार कर सकती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इसके बाद विचारण न्यायालय ने उनसे एक विशेष प्रश्न किया, जो इस प्रकार था:

"प्रश्न- क्या सब-रजिस्ट्रार ने आपसे जबरदस्ती निशानी अंगूठा लगवाया था?

उत्तर- सब-रजिस्ट्रार मऊ ने स्वयं निशानी अंगूठा नहीं लगवाया।"

55. विचारण न्यायालय ने इन सभी सबूतों से यह निष्कर्ष निकाला है कि एक बार वादी ने

यह स्वीकार कर लिया था कि सब-रजिस्ट्रार ने दस्तावेज़ को पंजीकृत करने से पहले उसे पढ़ा था और सब-रजिस्ट्रार ने उस पर अंगूठा लगाने या जबरन निशान लगवाने के लिए दबाव नहीं डाला था, यदि प्रतिवादी द्वारा 6000/- रुपये की अवैतनिक बिक्री पर विचार किया गया था, तो वादी दस्तावेज़ पर अंगूठा लगाने से इनकार कर सकता था। विचारण न्यायालय ने यह भी नोटिस किया है कि पीडब्ल्यू-2 भागवत सिंह ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि सब-रजिस्ट्रार ने दस्तावेज़ को पंजीकृत करने से पहले पढ़ा था और यह भी कहा था कि वादी को अग्रिम राशि के रूप में 6000/- रुपये प्राप्त हुए, लेकिन गवाह ने फिर भी दस्तावेज़ पर अपने हस्ताक्षर जोड़ दिए।

56. ऐसा देखा गया है कि प्रतिवादी पक्ष के गवाह स्वयं प्रतिवादी थे, जिन्होंने डीडब्ल्यू-1, मुंशी लक्ष्मी प्रसाद, डीडब्ल्यू-2 और दशरथ उर्फ मझले, डीडब्ल्यू-3 के रूप में गवाही दी। विचारण न्यायालय ने डीडब्ल्यू-1 की गवाही पर गौर किया है, जहां उसने कहा है कि उसने विक्रय पत्र निष्पादित होने से 2 या 4 दिन पहले वादी से बात की थी। लेन-देन कुल 7000/- रुपये में तय हुआ, जिसमें से 6000/- रुपये की राशि वादी को बयाना में भुगतान कर दी गई। 6000/- रुपये की राशि का भुगतान मझले की उपस्थिति में किसी सीताराम महाराज के घर पर किया गया। माना जाता है कि, इस पूरे लेन-देन का कोई लिखित रिकॉर्ड नहीं है, उदाहरण के लिए, वह अनुबंध जो बिक्री पत्र से 2-4 दिन पहले दर्ज किया गया था या 6000/- रुपये की अग्रिम राशि जो प्रतिवादी द्वारा वादी को भुगतान किया गया

था। लेन-देन के केवल दो गवाह हैं। एक हैं सीताराम महाराज और दूसरे हैं , डीडब्ल्यू-3 मझले। इसलिए, डीडब्ल्यू-3 दशरथ उर्फ मझले की गवाही महत्वपूर्ण है।

57. उस अकेले व्यक्ति की गवाही के बारे में, जिसने वादी डीडब्ल्यू-3 दशरथ उर्फ मझले को प्रतिवादी द्वारा 6000/- रुपये का भुगतान देखा था, विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किया है:

“ डी.डब्ल्यू-3 के रूप में दशरथ उर्फ मझले ने भी जिन्नत व मुन्नीलाल की जमीन बेचने के बाबत हुयी तथा-कथित बातचीत को सिद्ध किया है जबकि उसने अभिकथित किया है कि जिन्नत व मुन्नीलाल की जमीन बेचने के बाबत बातचीत मेरे सामने हुयी थी। यह बातचीत सीताराम के घर पर हुयी थी। उस समय सीताराम के घर पर मैं, मुन्नीलाल व सीताराम व जिन्नत बेगम मौजूद थे। जमीन 7 हजार रुपये में बेचने की बात तय हुयी थी। 6 हजार रुपये जिसमें से जिन्नत को वहीं पर उसी समय दे दिये गये थे।

इस प्रकार प्रतिवादी मुन्नीलाल ने डी.डब्ल्यू-1 के रूप में तथा दशरथ उर्फ मझले ने डी.डब्ल्यू-3 के रूप में प्रश्नगत भूमि को बेचने के सम्बन्ध में हुयी बातचीत को एवं 6 हजार रुपये पेशगी में दिये जाने सम्बन्धी प्रतिवादी के कथन को सिद्ध किया है।”

58. विचारण न्यायालय ने डीडब्ल्यू-1 की गवाही पर भी गौर किया है, जहां उन्होंने कहा है कि सब-रजिस्ट्रार ने वादी से पूछा था कि क्या उसे 6000/- रुपये की बयाना मिला है,

जब उसने उसे सुनाया था, तो वादी ने कहा था कि उसे 6000/- रुपये मिले थे। यह भी देखा गया कि सब-रजिस्ट्रार ने वादी से पूछा कि क्या वह पूरी चक बेचना चाहती है, जिस पर वादी ने कहा कि वह पूरी चक बेचना चाहती है। विचारण न्यायालय ने देखा कि गवाह ने कहा है कि तब उसने 1000/- रुपये की शेष राशि का भुगतान किया था, जो पंजीकरण के समय भुगतान की जाने वाली शेष बिक्री प्रतिफल थी।

59. इस न्यायालय को टिप्पणी करनी चाहिए कि स्पष्ट रूप से बिक्री विलेख विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए तरीके से लेनदेन का वर्णन करता है, जहाँ 6000/- रुपये का उल्लेख वादी द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए किया गया था और शेष 1000/- रुपये उप-रजिस्ट्रार के समक्ष देय था, जो वास्तव में उसके पहले भुगतान किया गया था। विक्रय विलेख पर उप-रजिस्ट्रार के अवलोकन को देखने से पता चलता है कि कुल बिक्री विचार 7000/- रुपये था, जिसमें से 1000/- रुपये उप-रजिस्ट्रार से पहले प्राप्त किए गए थे और शेष अग्रिम के रूप में प्राप्त किया गया था। उप-रजिस्ट्रार की पुष्टि दिनांक 16.10.1982 है।

60. निचली अपीलीय अदालत ने वादी और उसके दो गवाहों की गवाही पर अवलम्ब लेते हुए 6000/- रुपये के बयाने की राशि का भुगतान न करने के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को रद्द कर दिया है, साथ ही यह तथ्य भी कि उसने बिक्री विलेख के पंजीकरण के तुरंत बाद एफआईआर दर्ज

कराई। निचली अपीलीय अदालत ने इस सिद्धांत को भी लागू किया है कि गाँव की अशिक्षित महिलाएँ और पुरुष, जो बूढ़े हो गए हैं, को जिम्मेदारी में बदलाव लाने के लिए पर्दानशीन महिला के विशेषाधिकार के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। यद्यपि यह प्रश्न इस अपील में नहीं उठता है, चूँकि पक्षकारों द्वारा उस आशय के कानून के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न का आग्रह नहीं किया गया था, यह न्यायालय यह देखने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या वास्तव में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को प्रभावी ढंग से रद्द कर दिया गया है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न 6000/- रुपये के भुगतान के बारे में है। इस तथ्य के बारे में निचली अपीलीय अदालत ने कहा है:

"प्रतिवादी गवाह मुन्नीलाल ने कहा है कि उसने 6000/- रु. सीताराम महाराज व मंगले के सामने दिये थे। यह पेशगी का धन 6000/- रु. उसने सीताराम महाराज के घर पर दिया था। जमीन बेचने की बातचीत भी सीताराम महाराज व मंगले के सामने ही हुई थी। इस प्रकार प्रस्तुत मुकदमे में सीताराम व मंगले अत्यधिक महत्वपूर्ण गवाह हैं परन्तु प्रतिवादी ने इन्हें शहादत में पेश नहीं किया है। इस प्रकार प्रतिवादी ने 6000/- रु. अदायगी के संबंध में अपने कानूनी दायित्वों का वहन नहीं किया है। ऐसी परिस्थिति में धारा 114 भारतीय साक्ष्य अधि० के अंतर्गत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि सीताराम व मंगले को शहादत में पेश किया जाता तो वह प्रतिवादी पक्ष के विपरीत शहादत देते।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

61. इसके अलावा, निचली अपीलीय अदालत ने कहा:

"गवाह मुन्नीलाल ने कहा है कि जिन गवाहों के साक्ष्य उसने पेशगी में 6000/- रु. दिए थे उन्हें भी रजिस्ट्री के समय रजिस्ट्री कार्यालय में लिवाकर नहीं ले गया था। ऐसी परिस्थिति में जबकि पेशगी का धन दिया जाना विवादित है तो प्रतिवादी के लिए यह आवश्यक था कि वह उन गवाहों को न्यायालय में पेश करता। उन गवाहों को पेश न किए जाने से प्रतिवादीपक्ष के प्रतिकूल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि वे गवाह पेश किए गए होते तो उन्होंने प्रतिवादीपक्ष के विपरीत शहादत दी होती।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

62. इसलिए, निचली अपीलीय अदालत इस धारणा पर आगे बढ़ी है कि प्रतिवादी द्वारा संदर्भित दो गवाहों में से, जिनकी उपस्थिति में 6000/- रुपये का बयाना दिया गया था, अर्थात्, सीताराम महाराज और मझले, कोई नहीं न्यायालय के समक्ष पेश किया गया। निचली अपीलीय अदालत ने यह भी राय दी है कि यदि सीताराम महाराज या मझले को अदालत में पेश किया गया था, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के आधार पर यह धारणा है कि उनकी गवाही प्रतिवादी के खिलाफ गई होगी। बयाने की राशि के भुगतान के मुद्दे के बारे में निचली अपीलीय अदालत के निष्कर्षों में दो बार यह टिप्पणी की गई है कि लेन-देन के गवाह, जिनके समक्ष प्रतिवादी द्वारा 6000/- रुपये की राशि अग्रिम या बयाने की राशि के रूप में भुगतान करने की बात

कही गई है, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। इन गवाहों को पेश न करने पर 6000/- रुपये के बयाना भुगतान के तथ्य के संबंध में प्रतिवादी के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाएगा।

63. जैसा कि ऊपर कहा गया है, निचली अपीलीय अदालत का निष्कर्ष इस तथ्य पर विचार करने से इनकार करता है कि डीडब्ल्यू-3, दशरथ उर्फ मझले, जो लेनदेन का गवाह है, को अदालत के सामने पेश किया गया था और इसकी गवाही दी गई थी। विचारण न्यायालय द्वारा बयाना के रूप में 6000/- रुपये के भुगतान के बिंदु पर निष्कर्ष वापस करने के लिए उनकी गवाही पर गौर किया गया है। उन निष्कर्षों को प्रतिवादी के पक्ष में डीडब्ल्यू-3 की गवाही के आधार पर दर्ज किया गया है। निचली अपीलीय अदालत ने प्रतिवादी के पक्ष में विचारण न्यायालय के उस फैसले को रद्द नहीं किया है। बल्कि, निचली अपीलीय अदालत ने डीडब्ल्यू-3 दशरथ उर्फ मझले की गवाही पर विचार करने से यह कहते हुए नजरअंदाज कर दिया कि यह गवाह प्रतिवादी द्वारा कभी पेश नहीं किया गया था। इसलिए, इस न्यायालय की राय में, यह माना जाना चाहिए कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष ऐसे हैं जो रिकॉर्ड पर सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य पर विचार किए बिना सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को खारिज कर देते हैं। केवल उक्त कारण से, इस न्यायालय की राय में, निचली अपीलीय अदालत द्वारा लिखे गए उलटफेर के फैसले को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

7.इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1233

64. कानून संख्या-3 के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर नकारात्मक धारणा में दिया गया है कि निचली अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय के फैसले को रद्द करते समय रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को रद्द नहीं किया है।

65. ऊपर दर्ज निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, यह अपील सफल होती है और संपूर्ण लागतों के साथ अनुमति दी जाती है। निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित डिक्री को अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय की डिक्री को बहाल किया जाता है।

66. तदनुसार एक डिक्री तैयार की जाए।

(2023) 7 ILRA 935

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी,

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला,

रिट-सी संख्या 8913 वर्ष 2021

बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य...याचिकाकर्तागण

बनाम

**केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली
एवं अन्य**

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री बलवंत सिंह, श्री उमेश वत्स

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

**अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ऑफ इंडिया, श्री
अतुल कुमार शाही, श्री कार्तिकेय सरन, श्री
कृष्ण जी शुक्ला, श्री नरेंद्र कुमार चटर्जी, श्री
एच.एन. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)**

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 226 - बहु-राज्य सहकारी समितियाँ

अधिनियम, 2002 - धारा 44(2) एवं 85 -

बहु-राज्य सहकारी समितियाँ नियम, 2002 -

नियम 19(1) --- किसी समिति का कोई

सदस्य, दो निरंतर कार्यकालों तक, चाहे पूर्ण

अथवा आंशिक, पद धारण करने के पश्चात्

बहु-राज्य सहकारी समिति का अध्यक्ष या

सभापति चुने जाने के लिए अर्ह नहीं होगा।

याचिकाकर्तागण की शिकायत का निवारण

करते हुए केंद्रीय पंजीयक द्वारा दिनांक

28.05.2019 को यह निर्णय दिया गया कि

प्रथम याचिकाकर्ता अधिनियम, 2002 की

धारा 44(2) के अधीन निहित प्रावधानों के

अनुसार निर्वाचित होने के लिए अर्ह नहीं है।

जहाँ तक उक्त टिप्पणी का संबंध है, आज

तक किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसे

अस्वीकार नहीं किया गया है, अतः वह

अंतिमता प्राप्त कर चुकी है। यह पक्षकारों

की स्वीकारोक्ति है कि प्रथम याचिकाकर्ता

वर्ष 2015 में तीसरी बार अध्यक्ष निर्वाचित

हुआ था। इसके अतिरिक्त, 'अविश्वास

प्रस्ताव' पर कार्यवाही की गई। यह निर्विवाद

है कि प्रथम याचिकाकर्ता ने वर्ष 2017 से

2020 तक अध्यक्ष के रूप में कोई कार्य नहीं

किया। निदेशक मंडल, जो 31.07.2015 को

निर्वाचित हुआ था, को 31.07.2020 तक

05 वर्षों का कार्यकाल पूर्ण करना था।

सहकारी बैंक के निदेशक मंडल ने 25.10.2019 को बैठक आयोजित की जिसमें निर्वाचन अधिकारी की नियुक्ति की गई, जिससे केंद्रीय पंजीयक को दिनांक 04.11.2019 को पंजीकृत डाक द्वारा सूचित किया गया। नया निर्वाचन सम्पन्न हुआ एवं दिनांक 19.02.2020 को नया मंडल गठित हुआ, जिसमें 11 निदेशकों सहित अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए। नया निदेशक मंडल दिनांक 19.02.2020 से अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि उक्त निर्वाचन को अधिनियम, 2002 की धारा 85 के अंतर्गत निर्धारित सीमा अवधि के भीतर कभी चुनौती नहीं दी गई, अतः व्यावहारिक दृष्टिकोण से 18.02.2020 एवं 19.02.2020 को सम्पन्न निर्वाचन अंतिमता प्राप्त कर चुका है --- यदि कोई रिक्तता उत्पन्न होती है या सहकारी मंडल निदेशकों के निर्वाचन को कराने में असफल रहता है, तो अधिनियम, 2002 की धारा 45(6) के अनुसार केंद्रीय पंजीयक उस तिथि से 90 दिवस की अवधि के भीतर निर्वाचन कराने हेतु अधिकृत है, जिस तिथि को ऐसा निर्वाचन देय हो गया था। इसके अतिरिक्त, नियम 19(1), नियम, 2002 के अंतर्गत यह भी उपबंधित है कि निदेशक मंडल के सदस्यों का निर्वाचन, मंडल की बैठक में नियुक्त निर्वाचन अधिकारी द्वारा संपन्न कराया जाएगा। (प्रस्तर 40 एवं 41)

याचिका खारिज। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रंजीत बोस एवं अन्य बनाम ई एंड एन एफ रेलवे क्रेडिट 25.2.2009 को निर्णीत ए.एस.टी. संख्या 91 वर्ष 2008 कलकत्ता उच्च न्यायालय
2. विकास त्रिवेदी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2013 (8) एडीजे 523 (पूर्ण खंडपीठ)
3. ज्योति कुमार मालवीय बनाम इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स को-ऑपरेटिव लिमिटेड एवं अन्य 2006 (3) एडीजे 383
4. मत्स्य जीवी सहकारी समिति लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2020(12) एडीजे 461 (डीबी)
5. सुशील कुमार बनाम केंद्रीय रजिस्ट्रार ऑफ को-ऑप.सोसाइटी एवं अन्य दिल्ली उच्च न्यायालय डब्ल्यू.पी. (सी) क्रमांक 2059/2021
6. मदन मोहन बनाम सेंट एआईआर 1966 कलकत्ता 23
7. पी.बी.के. राजाचिदंबरम बनाम आर.पी. रथाना शर्मा एआईआर 1967 मद्रास 182
8. प्रागा टूल्स बनाम इमैनुअल (1969) 1 एससीसी 585

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी एवं माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, श्री उमेश वत्स और श्री बलवंत सिंह को सुना गया; श्री एच.एन. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, उनके सहयोगी अधिवक्ता, श्री अतुल कुमार शाही, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और श्री कृष्ण जी शुक्ला, अधिवक्ता, जो की श्री एन.के. चटर्जी भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता की ओर से उपस्थित हुए।

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1235

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने निम्नलिखित राहत की मांग की है: -

"i) इस मामले पर उचित निर्णय लेने के लिए केंद्रीय निबंधक, सहकारी समितियां, कृषि और सहकारी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली को आदेशित और निर्देशित करते हुए, परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। जिसमें की, याचिकाकर्ताओं और बैंक (उत्तर पूर्वी और पूर्व मध्य रेलवे कर्मचारी ' बहु राज्य प्राथमिक सहकारी समिति बैंक लिमिटेड, गोरखपुर) का चुनाव कराने के लिए चुनाव अधिकारी नियुक्त करते हुए इस मामले में उचित कदम उठाये जाय ।

ii) एक रिट, आदेश या निर्देश, सामान्य निकाय के साथ-साथ निदेशक मंडल की शर्तों की समाप्ति के संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक (प्रतिवादी संख्या 4) को रिपोर्ट भेजने के लिए केंद्रीय निबंधक (प्रतिवादी नंबर 1) को निर्देशित करते हुए परमादेश की प्रकृति में जारी करें।

iii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश भारतीय रिजर्व बैंक को आदेशित और निर्देशित करते हुए जारी करें जिसके संदर्भ में भारतीय रिजर्व बैंक उचित कदम उठाते हुए निदेशक मंडल यानी उत्तर पूर्वी और पूर्व मध्य रेलवे कर्मचारियों के बहु-राज्य प्राथमिक सहकारी बैंक लिमिटेड, गोरखपुर एवं इसके प्रशासक को हटाने के लिए उचित निर्णय ले ।

iv) उपयुक्त प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों के तहत सही और उचित समझे।

v). याचिकाकर्ताओं को रिट याचिका की लागत प्रदान की जाय ।"

3. एक संशोधन आवेदन के माध्यम से, जिसे इस न्यायालय ने 27.03.2023 को अनुमति दी थी, आगे के लिए राहत बढ़ाई गई:-

"i-A) प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा आयोजित दिनांक 08.01.2020, 18.02.2020 और 19.02.2020 के चुनावों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

4. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि "उत्तर पूर्वी और पूर्व मध्य रेलवे कर्मचारी बहु राज्य प्राथमिक सहकारी बैंक लिमिटेड, गोरखपुर" एक सहकारी समिति है, जिसकी स्थापना वर्ष 1921 में हुई थी और शुरुआत में सहकारी समिति अधिनियम 1912 के तहत पंजीकृत थी । इसके बाद, समिति के उद्देश्यों का विस्तार करने के लिए इसे "बहु राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 1942" के प्रावधानों के तहत लाया गया। इसके बाद, बहु राज्य सहकारी समितियों के निगमन, विनियमन और समापन के लिए "बहु राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 1984" अतिरिक्त किया गया था। चूंकि, उक्त समिति का संचालन क्षेत्र एक से अधिक राज्यों में है और इसलिए, इसे अधिनियम, 1984 के प्रावधानों के तहत भी

पंजीकृत किया गया था। बाद में, अधिनियम, 1984 में संशोधन किया गया और "बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम" 2002⁴ अधिनियमित किया गया। समिति को पुनः 2002 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत पंजीकृत किया गया था। समिति के अपने पंजीकृत उपनियम हैं। इसे राज्य सरकार या केंद्र सरकार से कोई निधि नहीं मिलती है। बैंक, अधिनियम, 2002 के प्रावधानों और बहु-राज्य सहकारी समिति समिति नियम, 2002⁵ के प्रावधानों के अनुसार चल रहा है और कार्य कर रहा है।

5. अभिलेखों से यह भी प्रस्तुत होता है कि मण्डल के प्रतिनिधियों, सदस्यों और पदाधिकारियों का कार्यकाल पाँच वर्ष का है। एक बार बैंक की आम सभा का कार्यकाल अगस्त, 2015 में समाप्त होने वाला था, तब बैंक के निदेशक मंडल ने बैंक की आम सभा साथ ही बैंक के मण्डल की भी बैठक आयोजित करने के लिए 10.04.2015 को एक प्रस्ताव पारित किया था। उक्त प्रस्ताव 30.04.2015 को केंद्रीय निबन्धक को विधिवत सूचित किया गया था। चुनाव कार्यक्रम 11.05.2015 को अधिसूचित किया गया था और आम सभा/प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ और परिणाम 26.06.2015 को घोषित किया गया, जिसमें 11 विभागों के 250 प्रतिनिधि चुने गए। चुनाव अधिकारी ने 29.06.2015 को मण्डल के सदस्यों और पदाधिकारियों के चुनाव को अधिसूचित किया और इसकी विधिवत सूचना 30.06.2015 को केंद्रीय निबन्धक को दी गई। मण्डल के सदस्यों का चुनाव 30.07.2015 को बैंक की आम बैठक में

हुआ और बैंक के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव 31.07.2015 को हुआ, जिसमें पहले याचिकाकर्ता को बैंक के निदेशक मंडल का अध्यक्ष चुना गया।

6. इस बीच, बैंक के नौ में से छह निदेशकों ने दिनांक 27.09.2018 को कथित प्रस्ताव तैयार किया, जिसमें पहले याचिकाकर्ता को निदेशक राजेश कुमार सिंह द्वारा लाए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' पर अध्यक्ष के कार्यालय से हटा दिया गया था। याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त संकल्प को 2018'6' की रिट -सी संख्या 42730 में चुनौती दी थी, जिसे इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ निपटाया गया था: -

"हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी.एन. सक्सेना तथा उनके सहयोगी अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना को सुना। ; श्री बलवंत सिंह को प्रतिवादि संख्या 3 से 9 के लिए सुना।

कुछ तर्क-वितर्क के बाद याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी.एन. सक्सेना ने याचिका में की गई दूसरी प्रार्थना के संबंध में अपनी दलीलें सीमित कर दी हैं, जो सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक, कृषि और सहकारी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली को बहुराज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत दायर याचिकाकर्ताओं की संदर्भ याचिका पर निर्णय लेने के लिये निर्देशित है।

7.इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1237

याचिकाकर्ताओं के अनुसार एक जाली और मनगढ़ंत प्रस्ताव संख्या 25 दिनांक 27.9.2018 को यह खुलासा करने के लिए स्थापित किया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या।

1 (ब्रजेश कुमार सिंह) ने मण्डल के सभापति के रूप में अपने पद का दुरुपयोग किया था और इसलिए, एक प्रस्ताव द्वारा उन्हें पद से हटा दिया गया है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त संकल्प बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 की धारा 47 के प्रावधानों के अंतर्गत है क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 1 को आरोपों पर एक अभ्यावेदन देने के लिए कोई अवसर नहीं दिया गया था। और अन्यथा भी प्रस्ताव आवश्यक शक्ति द्वारा पारित नहीं किया गया है जैसा कि कानून द्वारा आवश्यक है। यह भी कहा गया है कि ऐसे किसी प्रस्ताव पर विचार करने का कोई कार्यसूची नहीं थी।

उन्होंने प्रार्थना करते हुए यह कहा कि चूंकि बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत संदर्भ आवेदन पहले ही दायर किया जा चुका है, इसलिए पहले प्रतिवादी (सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक, कृषि और सहयोग विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली) को निर्दिष्ट अवधि के भीतर निर्णय लेने के लिए एक निर्देश जारी किया जाय।

विवाद की प्रकृति और की गई प्रार्थना को ध्यान में रखते हुए, हम प्रतिवादी संख्या 1 के लिये तथा याचिकाकर्ताओं की संदर्भ याचिका पर शीघ्र निर्णय सुनिश्चित करने के लिए, अधिमानतः, इस आदेश की प्रमाणित

प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर एक निर्देश के साथ रिट याचिका का निपटारा करना उचित समझते हैं।

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस अदालत ने दावे के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है और निर्णय लेने से पहले, पहले प्रतिवादी को संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करना होगा।"

7. उपरोक्त आदेश दिनांक 20.12.2018 के अनुसरण में, केंद्रीय निबन्धक ने 28.05.2019 को अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत मामले को संदर्भित करने से इनकार कर दिया था। याचिकाकर्ताओं द्वारा 2019'7' की रिट सी संख्या 29112 में उक्त आदेश की फिर से आलोचना की गई, जिसमें 16.9.2019 को प्रतिवादीयो को नोटिस जारी किए गए और उन्हें मामले में जवाबी हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया गया। फिर से याचिकाकर्ताओं ने 23.03.2019 को केंद्रीय निबन्धक के समक्ष शिकायत की, जिसमें कहा गया कि छह निदेशक, जिनके नाम रिट याचिका के पैराग्राफ -15 में उल्लिखित हैं, याचिकाकर्ताओं को निदेशक मंडल की बैठक के बारे में सूचित नहीं कर रहे हैं। फिर से याचिकाकर्ताओं ने सामान्य निकाय के 57 प्रतिनिधियों/सदस्यों के साथ अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत 10.04.2019 को केंद्रीय निबन्धक के समक्ष शिकायत की, जिसमें बैंक के वर्तमान प्रबंधन द्वारा कई अनियमितताएं करने का आरोप लगाया गया और विस्तृत जांच की मांग की गई। . फिर से पहले याचिकाकर्ता ने अशोक कुमार पांडे के साथ 2019 की रिट सी नंबर

38998 को प्राथमिकता देकर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था और इस न्यायालय की एक खण्डपीठ ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ 13.1.2020 को रिट याचिका का निपटारा किया : -

“विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बलवंत सिंह और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री विभू राय को सुना गया।

याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे समिति के मण्डल के सदस्य हैं और उन्होंने समिति के मामलों की जांच के लिए बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत केंद्रीय निबन्धक के समक्ष समिति के कार्यों की जांच के लिये एक आवेदन दायर किया है। कि उस पर केंद्रीय निबन्धक द्वारा विचार और निर्णय लेने का निर्देश दिया जाए।

प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री विभू राय का तर्क है कि याचिकाकर्ताओं के पास ऐसा कोई आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है।

चूंकि याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत शक्तियों का इस्तेमाल किया है, इसलिए उस संबंध में आवेदन पर विचार करना केंद्रीय निबन्धक पर निर्भर है, हालांकि उस पर विचार करते समय, वह आवेदन की संधार्यता के संबंध में तथा इसे दाखिल करने में याचिकाकर्ताओं के अधिकार क्षेत्र के रूप में भी नियम बना सकता है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम केंद्रीय निबन्धक को अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत दायर याचिकाकर्ता के उपरोक्त आवेदन पर कानून के अनुसार विचार करने के निर्देश के साथ और सभी संबंधित पक्षों को शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद इस पर विचार करते हुए याचिकाकर्ताओं के अधिकार क्षेत्र के साथ-साथ रिट याचिका की विचारणीयता पर निर्णय लेते हुए रिट याचिका का निपटारा करते हैं।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।”

8. उक्त आदेश दिनांक 13.1.2020 के अनुसरण में, सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक ने दोनों पक्षों को सुना और मामले की जांच करने के लिए 02.03.2020 को एक आदेश पारित किया। आदेश दिनांक 02.3.2020 को इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“1. शिकायतकर्ता ने एन.ई. और ई.सी. रेलवे कर्मचारी प्राथमिक सहकारी बैंक लिमिटेड, गोरखपुर (इसके बाद बैंक के रूप में संदर्भित) में एम.एस.सी.एस. अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत जांच के संबंध में इस प्राधिकरण को निर्देश देने के लिए माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय पहुंचा था। शिकायतकर्ता ने बैंक के मौजूदा प्रबंधन द्वारा कई अनियमितताएं करने का आरोप लगाया था, जिसके संबंध में उन्होंने विस्तृत जांच की मांग

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1239

की थी। माननीय उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 13.01.2020 द्वारा इस प्राधिकरण को याचिकाकर्ता/शिकायतकर्ताओं के आवेदन की संधार्यता के संबंध में तथा इसे दाखिल करने में याचिकाकर्ताओं/शिकायतकर्ताओं के अधिकार क्षेत्र के संबंध में आवेदन पर विचार करने का निर्देश दिया था। इस प्राधिकरण को अधिनियम की धारा 78 के तहत दायर याचिका/शिकायत के आवेदन पर कानून के अनुसार विचार करने का भी निर्देश दिया गया है।

2. माननीय उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में सभी संबंधित पक्षों को सूचना जारी किया गया। शिकायतकर्ताओं ने कहा है कि बैंक के वर्तमान प्रबंधन ने कई अनियमितताएं की हैं जो गंभीर प्रकृति की हैं और जिसकी विस्तृत जांच की आवश्यकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि एम.एस.सी.एस. अधिनियम, 2002 की धारा 78 के अनुसार, निदेशकों की कुल संख्या में से 1/3 को संविधान के संबंध में किसी भी शिकायत की जांच के लिए केंद्रीय निबन्धक या उसके द्वारा नामित अधिकारी द्वारा बहु-राज्य सहकारी समिति की कामकाजी और वित्तीय स्थिति की जांच कराने की आवश्यकता हो सकती है। बैंक के 9 निदेशक हैं जो वर्तमान में मण्डल का हिस्सा हैं और वे तीन निदेशक हैं, इसलिए, उनके पास जांच के लिए अनुरोध करने का अधिकार है।

3. समिति के वर्तमान अध्यक्ष और सचिव द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए प्रतिवादीयो ने प्रस्तुत किया कि शिकायतकर्ताओं ने सूचना

के बावजूद मण्डल की लगातार तीन बैठकों में भाग नहीं लिया, जिससे उन्हें अधिनियम की धारा 43 (एम) के तहत अयोग्य घोषित कर दिया गया और इसलिए उनके पास अधिनियम की धारा 78 के तहत शिकायत दर्ज करने का अधिकार नहीं है।

4. दोनों पक्षों को सुनने के बाद, इस प्राधिकरण ने सूचना की प्रक्रिया के बारे में पूछताछ की, जो मण्डल के सभी सदस्यों को मण्डल की बैठकों की तारीख और स्थान की सूचना देते हुए जारी की गई थी। प्रतिवादीयो द्वारा दिखाए गए कागजात और जारी किए जाने वाले कथित सूचनाओं को देखने के बाद, यह स्पष्ट है कि उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, इसलिए, इन बैठकों से अनुपस्थिति के लिए अयोग्यता का सवाल ही नहीं उठता। इसलिए अयोग्यता का तर्क खारिज किया जाता है। चूंकि, मण्डल के मौजूदा 9 सदस्यों में से तीन ने बैंक के मामलों की जांच का आरोप लगाया है। इसलिए, यह प्राधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि धारा 78 के तहत जांच का आदेश दिया जा सकता है।

5. शिकायत में लगाए गए आरोप संबंधित दस्तावेजों के साथ इस आदेश के 90 दिनों की अवधि के भीतर जांच करने के लिए मंडलायुक्त, गोरखपुर मंडल को भेजे जाएं। दोनों पक्ष 18.3.2020 को आयुक्त, गोरखपुर मंडल के समक्ष उपस्थित रहेंगे।"

9. केंद्रीय निबन्धक के आदेश दिनांक 02.03.2020 के क्रम में प्रथम याचिकाकर्ता एवं अशोक कुमार पांडे दिनांक 18.03.2020

को आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोरखपुर के समक्ष उपस्थित हुए। बैंक की आम सभा के साथ-साथ निदेशक मंडल का अगला चुनाव वर्ष 2020 में होना था और चुनाव प्रक्रिया अप्रैल-मई, 2020 में शुरू होनी थी। 08.01.2020 को आम सभा के गठन के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव किया गया था और चुनाव कार्यक्रम के अनुसार निदेशक मंडल का चुनाव 18.2.2020 को हुआ था और अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव 19.02.2020 को हुआ था, जिसे बाद में उपरोक्त रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

10. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री उमेश वत्स ने दृढ़तापूर्वक कहा कि बैंक अधिनियम, 2002 के प्रावधानों के तहत एक पंजीकृत सहकारी समिति है। बैंक के मामलों को अधिनियम, 2002 तथा इसमें निहित प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए उपनियमों के अनुरूप सख्ती से चलाया और प्रबंधित किया जाना है। बैंक की आम सभा की संख्या, जो प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए चुनाव में भाग लेती है, 50,000 से अधिक है और वे तीन राज्यों अर्थात् उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और बिहार में काम कर रहे हैं। याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 ने निदेशक मंडल के सदस्य होने का दावा किया, जिसका गठन 31.07.2015 को पांच साल की अवधि के लिए किया गया था। 23.10.2018 को बैंक के कार्यवाहक सचिव ने पहले याचिकाकर्ता को सूचित किया कि दिनांक 27.09.2018 के प्रस्ताव द्वारा उन्हें निदेशक राजेश कुमार सिंह द्वारा लाए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' पर निदेशक मंडल के अध्यक्ष के पद से हटा दिया गया है। और उपाध्यक्ष श्री अनुराग खरे को

कार्यकारी अध्यक्ष/अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। याचिकाकर्ताओं ने 2018 की रिट- सी संख्या 42730 में उक्त संकल्प की वैधता पर सवाल उठाया, जिसमें आरोप लगाया गया कि एक जाली और मनगढ़ंत संकल्प संख्या 25 दिनांक 27.9.2018 को समिति के अध्यक्ष के रूप में पहले याचिकाकर्ता को पद से हटाने के लिए लाया गया था और उक्त संकल्प अधिनियम, 2002 की धारा 47 के तहत निहित प्रावधानों के अनुरूप था। राहत इस हद तक सीमित थी कि चूंकि संदर्भ आवेदन अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत पहले ही दायर किया जा चुका है, इसलिए केंद्रीय निबन्धक को एक निर्देश जारी किया जा सकता है। सहकारी समितियों को तय समय में निर्णय लेना होगा। खण्डपीठ ने मामले की खूबियों को छुए बिना, प्रतिवादी यानी सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक को उक्त संदर्भ पर निर्णय लेने के निर्देश के साथ रिट याचिका का निपटारा कर दिया था। उक्त निर्णय के जवाब में केंद्रीय निबन्धक ने अपने आदेश दिनांक 28.5.2019 द्वारा मामले को अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत संदर्भित करने से इनकार कर दिया था।

11. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री वत्स ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि छह निदेशकों और कार्यवाहक सचिव का इरादा बैंक की संपत्ति को हड़पने का था और इसलिए, संबंधित संपत्ति को हड़पने के लिए और पहले याचिकाकर्ता को हटाने के लिए उन्होंने मनगढ़ंत कार्यवाही तैयार की। पुनः याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत जांच करने के

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1241

लिए सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक को 23.3.2019 को एक अभ्यावेदन दिया। यह भी दावा किया गया है कि बैंक के 30% से अधिक प्रतिनिधियों ने भी 10.4.2019 को इसी तरह का अनुरोध किया था। पुनः उन्होंने रिट-सी संख्या 38998/ 2019 दायर की, जिसे खण्डपीठ ने 13.1.2020 को केंद्रीय निबन्धक को याचिकाकर्ताओं के आवेदन की संधार्यता के संबंध में तथा इसे दाखिल करने में याचिकाकर्ताओं/शिकायतकर्ताओं के अधिकार क्षेत्र के संबंध में विचार करने के निर्देश के साथ निपटाया। उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, केंद्रीय निबन्धक ने जांच कराने के लिए 02.03.2020 को याचिकाकर्ताओं के पक्ष में मामले का फैसला किया है।

12. श्री वत्स ने कहा कि एक व्यक्ति को एक विशेष अवधि के लिए अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के रूप में चुना जाता है, जिसे अवैध प्रस्ताव/अविश्वास प्रस्ताव द्वारा कम नहीं किया जा सकता है। निदेशक मंडल और पदाधिकारियों का चुनाव अधिनियम, 2002 के साथ पठित नियम, 2002 और उसके तहत बनाए गए उपनियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, और जो पांच साल के कार्यकाल की गारंटी देता है, जो उपनियमों की धारा 35 (डी) में निर्धारित है। बैंक के निदेशक मंडल के अध्यक्ष/अध्यक्ष को 'अविश्वास प्रस्ताव' के माध्यम से हटाने के लिए बैंक के अधिनियम, 2002, नियम, 2002 और उपनियमों में कोई प्रक्रिया निर्धारित नहीं है। कथित प्रस्ताव/अविश्वास प्रस्ताव अधिनियम, 2002 की धारा 47 के प्रावधान का उल्लंघन है क्योंकि पहले याचिकाकर्ता को कथित प्रस्ताव

के खिलाफ प्रतिनिधित्व पेश करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था। पहले याचिकाकर्ता के खिलाफ न तो कोई आरोप लगाया गया था और न ही 'अविश्वास प्रस्ताव' में कोई विशेष कारण दिया गया है, जो छह निदेशकों अनुराग खरे, राजेश कुमार सिंह, अफरोज, रमा शंकर सिंह, अरविंद चंद और मनोज के गलत इरादे को दर्शाता है। कुमार विश्वकर्मा. यह प्रस्तुत किया गया कि बैंक में 50,000 से अधिक शेरधारक और लगभग 250 कार्यरत कर्मचारी हैं। बैंक की पूंजी 200 करोड़ रुपये से ज्यादा है

13. हमारे समक्ष यह प्रस्तुत किया गया है कि बैंक के निदेशक मंडल का कार्यकाल समाप्त हो गया है और बैंक की सामान्य सभा के साथ-साथ बैंक के निदेशकों के गठन के लिए कोई चुनाव नहीं हुआ है। उपरोक्त परिस्थितियों में, केंद्रीय निबन्धक को सामान्य निकाय के साथ-साथ निदेशक मंडल के गठन के लिए चुनाव कराने के लिए चुनाव अधिकारी नियुक्त करना आवश्यक है। बैंक के निदेशक मंडल को हटाने और बैंक में एक प्रशासक नियुक्त करने के लिए बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 56 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक को एक रिपोर्ट भेजने की भी आवश्यकता है। बैंक के पास भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी बैंकिंग अनुज्ञप्ति भी है और यह बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 (जैसा कि सहकारी समितियों पर लागू होता है) द्वारा शासित होता है। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 36AA में प्रावधान है कि जहां रिजर्व बैंक इस बात से संतुष्ट है कि सार्वजनिक हित में या जमाकर्ताओं के हितों के लिए हानिकारक

तरीके से बैंकिंग कंपनी के मामलों को रोकने के लिए या उचित प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए किसी भी बैंकिंग कंपनी के लिए, ऐसा करना आवश्यक है, रिज़र्व बैंक, आदेश द्वारा लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, ऐसे बहुराज्य सहकारी बैंक के निदेशक मंडल को पांच साल से अधिक की अवधि के लिए कार्यालय से हटा सकता है, जैसा भी आदेश में निर्दिष्ट हो, जिसे समय-समय पर बढ़ाया जा सकता है, हालांकि, कुल अवधि पांच वर्ष से अधिक नहीं होगी।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि नियम, 2002 की अनुसूची- I के अनुसार कार्यालय में निदेशक मंडल को अपने कार्यकाल की समाप्ति की तारीख से पहले कम से कम 60 स्पष्ट तिथियों को पूरा करना होगा और संकल्प द्वारा तिथि, समय और स्थान चुनाव कराने हेतु तथा आम सभा की बैठक बुलाने हेतु निर्धारित करना होगा। यह प्रावधान यथोचित परिवर्तनों के साथ ऐसी बहु राज्य सहकारी समितियों पर भी लागू होगा जो धारा 130 की उप-धारा (1) के तहत नियुक्त प्रशासक के प्रभार में हैं। इस बैठक में निदेशक मंडल एक चुनाव अधिकारी भी नियुक्त करेगा लेकिन कथित चुनाव 08.01.2020 को आयोजित किया गया था, जो नियम, 2002 का घोर उल्लंघन है। नियम, 2002 की अनुसूची-1 में आगे कहा गया है कि निर्णय की एक प्रति तुरंत केंद्रीय निबन्धक को भेजी जाएगी, लेकिन वर्तमान मामले में, ऐसा नहीं है की जानकारी केंद्रीय निबन्धक को भेजी गई थी, जो केंद्रीय निबन्धक के कार्यालय द्वारा अधिनियम, 2005 के तहत श्री ए.के.

सिंह को दिए गए उत्तर से भी स्पष्ट है। उक्त अनुसूची में आगे कहा गया है कि समिति ऐसी सूचना को तुरंत अग्रेषित करेगी और चुनाव अधिकारी द्वारा प्रस्तुत परिणाम को केंद्रीय निबन्धक को वापस कर देगी, लेकिन उक्त प्रावधान का पालन नहीं किया गया है। अनुसूची I (एफ) में आगे कहा गया है कि सामान्य निकाय की बैठक की सूचना सदस्यों को किसी भी माध्यम से भेजी जाएगी यानी स्थानीय वितरण द्वारा या डाक प्रमाण पत्र के तहत या व्यापक प्रसार वाले समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा लेकिन सामान्य निकाय के सदस्यों को समिति को किसी भी माध्यम से सूचित नहीं किया गया। इसके अलावा केंद्रीय निबन्धक द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 27.12.2019 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि बहु राज्य सहकारी समितियों / बैंकों का मण्डल उक्त परिपत्र में उल्लिखित सेवारत अधिकारियों केदल से समितियों के चुनाव कराने के लिए चुनाव अधिकारी नियुक्त कर सकता है लेकिन कथित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।

15. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि नियम, 2002 में प्रावधान है कि चुनाव और चुनाव परिणाम के संबंध में निदेशक मंडल के हर निर्णय को समय-समय पर केंद्रीय निबन्धक को सूचित किया जाएगा। नियम, 2002 की अनुसूची-1 चुनाव की अधिसूचना और आयोजन की प्रक्रियाओं से संबंधित है। चुनाव कार्यक्रम दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जायेगा, जिसका व्यापक प्रसार है, लेकिन वर्तमान मामले में उक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1243

याचिकाकर्ताओं ने बैंक के चुनाव कराने के लिए चुनाव अधिकारी की नियुक्ति के संबंध में केंद्रीय निबन्धक के समक्ष कई अभ्यावेदन दिए हैं, लेकिन आज तक इस पर निर्णय नहीं लिया गया है। कथित प्रस्ताव/अविश्वास प्रस्ताव अधिनियम, 2002 की धारा 47 के प्रावधानों का उल्लंघन है क्योंकि उन्हें उक्त आरोप पर प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था। अविश्वास प्रस्ताव में न तो उन पर कोई आरोप लगाया गया और न ही कोई विशेष कारण बताया गया, जो उक्त छह निदेशकों की गलत मंशा को दर्शाता हो।

16. अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने ए.एस.टी. संख्या 91, 2008'8 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। जिसमें, अपीलकर्ता रंजीत बोस (मृतक के बाद से), जो उक्त रिट में प्रतिवादी संख्या 4 थे, ने 14 फरवरी, 2008 के अंतरिम आदेश जो कि 2008 के रिट याचिका संख्या 334 (डब्ल्यू) में पारित था को चुनौती देते हुए अपील दायर की, जिसे 2008 के एएसटी 91 के रूप में पंजीकृत किया गया था। । उक्त रिट याचिका में, याचिकाकर्ताओं ने सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक के कार्यालय में मुख्य निदेशक (सहकारिता) के आदेश की वैधता पर सवाल उठाया था। 31 दिसंबर, 2007 को पहले याचिकाकर्ता, जो अधिनियम, 2002 के प्रावधानों द्वारा शासित बहु-राज्य सहकारी समिति है, के अध्यक्ष को चुनाव प्रक्रिया की प्रगति के दौरान सहकारी समिति में किसी भी कर्मचारी को नियुक्त नहीं करने का निर्देश दिया गया। . अंततः, कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ उक्त अपील को

स्वीकार करने के लिए आगे बढ़ी और विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेशों को रद्द कर दिया।

17. दूसरी ओर, प्रतिवादी नंबर 2 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह ने रिट याचिका का जोरदार विरोध किया और कहा कि सुनील कुमार सिंह वर्तमान में बैंक के सचिव के रूप में तैनात हैं। बैंक के प्रतिनिधियों, मण्डल के सदस्यों और मण्डल के पदाधिकारियों का कार्यकाल पाँच वर्ष है। पहले याचिकाकर्ता को पहली बार 2008 से 2010 तक बैंक के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था और उसके बाद, उन्हें 2010 से 2015 तक दूसरी बार अध्यक्ष के रूप में चुना गया था। फिर से मण्डल के सदस्यों का चुनाव 30.07.2015 को हुआ था और अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव 31.07.2015 को हुआ, जिसमें पहले याचिकाकर्ता को तीसरी बार मण्डल के सदस्य के रूप में चुना गया, जो अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) के खिलाफ था। परिणामतः उन्हें 27.09.2018 को 'अविश्वास प्रस्ताव' द्वारा हटा दिया गया।

18. यह भी प्रस्तुत किया गया कि 27.9.2018 को मण्डल की बैठक से पहले, कार्यसूची के तहत 26 प्रस्ताव थे, जिनमें से 19 को मंजूरी दे दी गई थी और 07 को अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त मण्डल बैठक के दौरान प्रथम याचिकाकर्ता द्वारा 24 प्रस्ताव पारित किये गये। हालाँकि, निदेशकों में से एक राजेश कुमार सिंह ने पहले याचिकाकर्ता (प्रस्ताव संख्या 25) के खिलाफ 'अविश्वास प्रस्ताव' पेश किया और उक्त प्रस्ताव रखने के

बाद, पहला याचिकाकर्ता बैठक से बाहर चला गया और कार्यवृत्त पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। उक्त प्रस्ताव क्रमांक 25 पर मण्डल के 09 सदस्यों में से 06 ने पक्ष रखा; 01 सदस्य ने उक्त प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान किया तथा 01 सदस्य अनुपस्थित रहे। इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि उपनियम संख्या 33 के अनुसार मण्डल के सदस्य बहुमत से अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव कर सकते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत एक बार जब वे बहुमत से अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव कर सकते हैं तो उनके पास उन्हें बहुमत से हटाने का भी अधिकार हो सकता है और तदनुसार, प्रस्ताव पारित किया गया था। उक्त बैठक में सहकारी बैंक के मण्डल का नये सिरे से चुनाव कराने का निर्णय लिया गया। इस प्रयोजन के लिए, 25.10.2019 को मण्डल की एक बैठक आयोजित की गई जिसमें चुनाव कराने के लिए रवि कुमार सिंह को चुनाव अधिकारी नियुक्त किया गया। इसी संकल्प के द्वारा अस्थायी मतदाता सूची के प्रकाशन की तिथि, आपति आमंत्रित करने, सूची को अंतिम रूप देने और चुनाव के अन्य कार्यक्रम को अंतिम रूप दिया गया। बैंक के सचिव, जो मुख्य कार्यकारी अधिकारी और बैंक/समिति के वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं, ने चुनाव अधिकारी की नियुक्ति की सूचना 04.11.2019 को केंद्रीय निबन्धक को भेजी।

19. यह तर्क दिया गया कि चुनाव अधिकारी ने दैनिक समाचार पत्र "गोरखपुर केशरी" में चुनाव कार्यक्रम प्रकाशित करने के लिए 29.10.2019 को एक पत्र भेजा था और गठन

के लिए संबंधित निर्वाचन क्षेत्रों से प्रतिनिधियों / प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए वास्तविक प्रकाशन 30.10.2019 को किया गया था। मण्डल के सदस्य के चुनाव के उद्देश्य से आम सभा। आम निकाय चुनाव के कार्यक्रम के अनुसार, अस्थायी और अंतिम मतदाता सूची प्रकाशित की गई और चुनाव 06.1.2020 को सुबह 8 बजे से शाम 5 बजे तक संबंधित प्रभागों और मुख्यालयों में संबंधित मतदान स्थलों पर आयोजित किया गया। इसे एकत्र करने के बाद, अंतिम परिणाम 08.01.2020 को घोषित किया गया, जिसके तहत निदेशक मंडल के चुनाव के संचालन के लिए निर्वाचक मंडल का गठन किया गया। सामान्य निकाय के प्रतिनिधियों/सदस्यों के परिणाम की घोषणा के बाद 10.01.2020 को दैनिक समाचार पत्र "गोरखपुर केशरी" में नामांकन दाखिल करने के लिए 18.02.2020 की तारीख तय करते हुए मण्डल के सदस्य का चुनाव कराने के लिए चुनाव कार्यक्रम, आपति आमंत्रित करना, नामांकन पत्रों की जांच, नामांकन वापस लेना, अंतिम नामांकन सूची का प्रकाशन और यदि आवश्यक हो तो मतदान के लिए समय और शाम 4 बजे परिणाम की घोषणा प्रकाशित किया गया। अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के चुनाव हेतु चुनाव कार्यक्रम दिनांक 19.02.2020 को चुनाव की तिथि निर्धारित करते हुए एक साथ प्रकाशित किया गया तथा उसी तिथि को दोपहर 12.30 बजे सभी औपचारिकताएं पूर्ण कर इसकी घोषणा की गयी। समिति के उपनियमों के खंड 26 के प्रावधानों के अनुसार निदेशक मंडल और उसके पदाधिकारियों का चुनाव 18.2.2020 को हुआ था। चेयरमैन और वाइस चेयरमैन का चुनाव 19.02.2020 को

7.इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1245

हुआ और इसकी सूचना 20.02.2020 को सेंट्रल निबन्धक को भेज दी गई.

20. यह प्रस्तुत किया गया कि पहले याचिकाकर्ता ने इस तथ्य को छुपाया था कि वर्ष 2015 के चुनाव से पहले, वह पहले ही लगातार दो कार्यकालों यानी 2008 से 2010 और 2010 से 2015 तक मण्डल के अध्यक्ष के रूप में चुने गए थे और वह 31.07.2015 को तीसरी बार चुनाव में पुनः अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। हालाँकि, याचिकाकर्ता नंबर 1, जो लगातार तीसरे कार्यकाल में अवैध रूप से अध्यक्ष का पद संभाल रहा था, को राजेश कुमार सिंह द्वारा लाए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' पर 27.09.2018 को हटा दिया गया और अध्यक्ष का प्रभार कार्यवाहक भूमिका में अनुराग खरे को सौंप दिया गया। अंततः, केंद्रीय निबन्धक ने अपने आदेश दिनांक 28.05.2019 द्वारा निर्णय लिया कि पहला याचिकाकर्ता अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) में निहित प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित होने के लिए पात्र नहीं है। केंद्रीय निबन्धक का आदेश दिनांक 28.05.2019 इसे चुनौती नहीं दी गई है और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए इसे अंतिम रूप दिया गया है। इस बीच, 31.07.2015 को चुने गए निदेशक मंडल ने 31.07.2020 को अपना पांच साल का कार्यकाल पूरा किया। इसके बाद, सहकारी बैंक के मण्डल का नए सिरे से चुनाव कराने का निर्णय लिया गया और इस उद्देश्य से मण्डल की बैठक 25.10.2019 को आयोजित की गई जिसमें चुनाव कराने के लिए रवि प्रकाश सिंह को चुनाव अधिकारी नियुक्त किया गया। इसे 04.11.2019 को पंजीकृत डाक के माध्यम

से केंद्रीय निबन्धक को भी विधिवत सूचित किया गया था। नए चुनाव भी हुए और 19.02.2020 को नए मण्डल का गठन किया गया, जिसमें अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित 11 निदेशक चुने गए और नया मण्डल 19.02.2020 से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। याचिकाकर्ताओं को छोड़कर, जिनकी संख्या केवल 12 है, अन्य ने कोई आपत्ति नहीं उठाई है और इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं का दावा अब अस्तित्व में नहीं है।

21. उन्होंने प्रस्तुत किया कि केंद्रीय निबन्धक केवल तभी चुनाव करा सकता है, जब मौजूदा मण्डल अधिनियम, 2002 की धारा 45 (6) के तहत निर्धारित समय के भीतर चुनाव कराने में विफल रहा हो। वर्तमान मामले में एक बार, चुनाव प्रक्रिया 25.10.2019 को चुनाव अधिकारी की नियुक्ति के पहले ही शुरू हो चुकी थी और प्रतिनिधियों का चुनाव 08.01.2020 को हो चुका था, फिर याचिकाकर्ताओं के पास नियुक्ति के लिए 08.02.2021 को केंद्रीय निबन्धक के समक्ष कोई अनुरोध करने का कोई अवसर नहीं था। याचिकाकर्ता क्रमांक 1 और 2 मण्डल के सदस्य नहीं हैं और उन्हें 18.02.2020 को हुए चुनाव में मण्डल के सदस्य के रूप में नहीं चुना गया है। इसके अलावा, उक्त चुनाव के खिलाफ कोई आपत्ति नहीं की गई थी और इस प्रकार, सीमा अवधि की समाप्ति के बाद, जैसा कि अधिनियम, 2002 की धारा 85 के तहत प्रदान किया गया है, चुनाव कार्यवाही अंतिम रूप ले चुकी है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है। उन्होंने कहा कि सहकारी समिति के खिलाफ रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में निर्विवाद रूप से सहकारी समिति को राज्य नहीं कहा जा सकता। सहकारी समिति का गठन भारतीय रेलवे के कर्मचारियों के हितों की रक्षा और समर्थन के लिए किया गया था और इसके कार्य स्पष्ट रूप से निजी थे।

22. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह ने अंततः सीमा के आधार पर रिट याचिका का विरोध किया था और प्रस्तुत किया था कि रिट याचिका पर वर्ष 2021 में विचार किया गया था और आरंभिक चरण में, याचिकाकर्ताओं ने चुनाव के लिए कोई राहत नहीं मांगी थी जो जनवरी-फरवरी, 2020 के महीने में हुआ था। एक बार जब उक्त चुनाव को सीमा अवधि के भीतर अच्छी तरह से चुनौती नहीं दी गई, जैसा कि अधिनियम, 2002 की धारा 85 में माना गया है, तो इस स्तर पर, वर्ष 2020 का चुनाव पुनः नहीं किया जा सकता है। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने विकास त्रिवेदी और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य '9' में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले तथा ज्योति कुमार मालवीय बनाम भारतीय किसान उर्वरक सहकारी समिति लिमिटेड और अन्य "10" और मत्स्य जीवी सहकारी समिति लिमिटेड बनाम यूपी राज्य और अन्य "11" में खण्डपीठ के फैसले पर भरोसा जताया है। उन्होंने रिट याचिका संख्या (सी) 2059/2021 "12" में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया है। जिसमें, याचिकाकर्ताओं ने उत्तरी क्षेत्र रेलवे कर्मचारी बचत और उधार समिति लिमिटेड के प्रतिनिधियों के चुनाव के प्रयोजनों के लिए प्रतिवादीयो द्वारा शुरू किए गए कदमों को

चुनौती दी है, जो कि अधिनियम, 2002, नियम, 2002 और उसके तहत बनाए गए उपनियमों द्वारा शासित हैं और दिल्ली उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज कर दिया है क्योंकि यह सुनवाई योग्य नहीं है, जिससे याचिकाकर्ताओं को यदि ऐसे चुने गए उन मुद्दों को, जिनकी सलाह दी जाती है को उचित मंच के समक्ष उठाने के लिए खुला छोड़ दिया गया है।

23. श्री कृष्ण जी शुक्ला, अधिवक्ता, ने भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री एन.के. चटर्जी की तरफ से संक्षिप्त विवरण रखते हुए यह प्रस्तुत किया है कि अधिनियम, 2002 की धारा 45 मण्डल के सदस्यों के चुनाव से संबंधित है। धारा 45 (1) में प्रावधान है कि बहु राज्य सहकारी समितियों के मण्डल के चुनाव संचालन की जिम्मेदारी मौजूदा मण्डल की होगी। एक बहु-राज्य सहकारी समिति एक स्वायत्त निकाय है जो अपने सदस्यों के प्रति जवाबदेह है। बहु-राज्य सहकारी समिति को अधिनियम, 2002, नियम, 2002 और इसके अनुमोदित उपनियमों के प्रावधानों के अनुसार कार्य करना अपेक्षित है। अधिनियम, 2006 की धारा 45 (6) में प्रावधान है कि जहां मण्डल ,मण्डल के सदस्यों का चुनाव कराने में विफल रहता है,जब ऐसा चुनाव होने वाला था तब केंद्रीय निबन्धक उस तारीख से 90 दिनों की अवधि के भीतर चुनाव कराएगा। नियमावली, 2002 का नियम 19 चुनाव के संचालन की प्रक्रिया से संबंधित है। नियम 19 (1) में प्रावधान है कि मण्डल के सदस्यों का चुनाव मण्डल द्वारा उसकी बैठक में नियुक्त चुनाव अधिकारी द्वारा किया जाएगा। इस

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1247

प्रकार नियुक्त चुनाव अधिकारी समिति का सदस्य या कर्मचारी नहीं होगा। समिति ने पत्र दिनांक 20.02.2020 के माध्यम से केंद्रीय निबन्धक के कार्यालय को चुनाव रिपोर्ट सौंपी थी। इसके अलावा, अधिनियम, 2002 की धारा 123 का प्रावधान केवल बहु-राज्य सहकारी समिति/बैंक के मण्डल के अधिक्रमण के लिए लागू है और विचाराधीन समिति उक्त श्रेणी में नहीं आती है।

24. श्री शुक्ला ने तर्क दिया कि 2018 की रिट (सी) संख्या 47230 में पारित न्यायालय के आदेश दिनांक 20.12.2018 के अनुपालन में, व्यक्तिगत सुनवाई 02.05.2019 को दी गई थी और याचिकाकर्ता संख्या 1 और अन्य संबंधित पक्ष केंद्रीय रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित हुए थे। अंततः, केंद्रीय निबन्धक ने अपने आदेश दिनांक 28.05.2019 के तहत प्रथम याचिकाकर्ता के अनुरोध के अनुसार अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का कोई कारण नहीं पाया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) के प्रावधान वर्तमान मामले में आकर्षित होते हैं, जिसमें प्रथम याचिकाकर्ता बैंक के अध्यक्ष पद के लिए तीसरे कार्यकाल के लिए अयोग्य हो गया है। फिर से प्रथम याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत जांच करने के लिए केंद्रीय निबन्धक को निर्देश जारी करने के लिए 2019 की रिट (सी) संख्या 38998 दायर की। उक्त रिट याचिका का निपटारा 13.1.2020 को केंद्रीय निबन्धक को अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत निर्देश के साथ किया गया की याचिकाकर्ता के

दिनांक 10.4.2019 के दायर आवेदन पर कानून के अनुसार विचार करें। अंततः, केंद्रीय निबन्धक ने दिनांक 02.03.2020 के आदेश द्वारा आयुक्त, गोरखपुर मंडल को अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत मामले में जांच करने का निर्देश दिया। अधिनियम, 2002 की धारा 84 विवादों के संदर्भ से संबंधित है। अधिनियम, 2002 की धारा 84 (2) (सी) के अनुसार, बहु राज्य सहकारी समितियों के किसी भी अधिकारी के चुनाव के संबंध में उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद को बहु राज्य सहकारी समिति के संविधान, प्रबंधन या व्यवसाय से संबंधित विवाद माना जाएगा।

25. प्रतिद्वंद्वियों की दलीलें सुनीं और अभिलेखों का अवलोकन किया।

26. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, अधिनियम, 2002 के प्रासंगिक प्रावधानों को नियम, 2002 और उसके तहत बनाए गए उप-कानूनों के साथ फिर से तैयार करना उचित होगा: -

“धारा 28. सदस्यों को उचित भुगतान होने तक अधिकारों का प्रयोग नहीं करना है।

बहु-राज्य सहकारी समिति का कोई भी सदस्य किसी सदस्य के अधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा, जब तक कि उसने सदस्यता के संबंध में समिति को भुगतान नहीं कर दिया हो, या समिति में ऐसा हित अर्जित न कर लिया हो, जैसा कि उपनियमों में निर्दिष्ट किया गया है।

धारा 32. मत का प्रयोग करने की रीति.

बहु-राज्य सहकारी समिति का प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से अपने वोट का प्रयोग करेगा और किसी भी सदस्य को प्रतिनिधि द्वारा वोट देने की अनुमति नहीं दी जाएगी:

बशर्ते कि एक बहु-राज्य सहकारी समिति या एक सहकारी समिति या कोई अन्य संस्था जो किसी अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति का सदस्य है, धारा 38 की उपधारा (3) के प्रावधानों के अधीन, ऐसी बहु-राज्य सहकारी समिति के मामलों में अपनी ओर से मतदान करने के लिए अपने प्रतिनिधि को नियुक्त करते हैं।

धारा 38. सामान्य निकाय का गठन, शक्तियाँ एवं कार्य

(1) एक बहु-राज्य सहकारी समिति के सामान्य निकाय में ऐसी समिति के सभी सदस्य शामिल होंगे:

बशर्ते कि जहां एक बहु-राज्य सहकारी समिति के उपनियम एक छोटे निकाय के गठन का प्रावधान करते हैं, जिसमें ऐसे उपनियमों के अनुसार चुने गए या चुने गए समाज के सदस्यों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं, वह छोटा निकाय सामान्य निकाय की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है या जैसा कि समिति के उपनियमों में निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(2) इस अधिनियम, नियमों और उपनियमों के प्रावधानों के अधीन, एक बहु-राज्य सहकारी समिति का अंतिम अधिकार उसके सदस्यों के सामान्य निकाय में निहित होगा:

बशर्ते कि इस उपधारा में शामिल कोई भी बात किसी बहु-राज्य सहकारी समिति के मण्डल या किसी अधिकारी द्वारा इस अधिनियम या उपनियमों के नियमों द्वारा ऐसे मण्डल या ऐसे अधिकारी को प्रदत्त किसी भी शक्ति के प्रयोग को प्रभावित नहीं करेगी।

(3) जहां सामान्य निकाय या बहु-राज्य सहकारी समिति के मण्डल की किसी बैठक में, एक सहकारी समिति या अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति का प्रतिनिधित्व किया जाना है, ऐसी सहकारी समिति या अन्य ऐसी बैठक में बहु-राज्य सहकारी समिति का प्रतिनिधित्व केवल अध्यक्ष या सभापति या मुख्य कार्यकारी अधिकारी या ऐसी सहकारी समिति या अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति के मण्डल के सदस्य, जैसा भी मामला हो, के माध्यम से किया जाएगा। हो सकता है, यदि ऐसा सदस्य मण्डल द्वारा अधिकृत है और जहां किसी भी कारण से ऐसी सहकारी समिति या अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति या अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति का कोई मण्डल नहीं है, तो प्रशासक के माध्यम से, ऐसी सहकारी समिति या अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो:

बशर्ते कि जहां एक बहु राज्य सहकारी समिति के उपनियम सामान्य निकाय या ऐसी बहु राज्य सहकारी समिति के मण्डल की किसी

7.इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1249

भी बैठक में अन्य संस्थानों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान करते हैं, ऐसे संस्थानों का प्रतिनिधित्व उसके नामांकित व्यक्ति के माध्यम से किया जाएगा।

के लिए ऐसे चुनाव के लिए पद धारण किया हुआ माना जाएगा।

धारा 45. मण्डल के सदस्यों का चुनाव.

धारा 44. कुछ मामलों में अध्यक्ष या सभापति या उपाध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद धारण करने का निषेध।

(1) बहु-राज्य सहकारी समिति के मण्डल के चुनाव का संचालन मौजूदा मण्डल की जिम्मेदारी होगी।

(1) किसी मण्डल का कोई भी सदस्य बहु-राज्य सहकारी समिति के अध्यक्ष या सभापति या उपाध्यक्ष या उपाध्यक्ष के रूप में चुने जाने के लिए पात्र नहीं होगा यदि ऐसा सदस्य केंद्र सरकार या राज्य सरकार में मंत्री है। .

(2) मण्डल के सदस्यों का चुनाव गुप्त मतदान द्वारा निर्धारित तरीके से किया जाएगा।

(2) किसी मण्डल का कोई भी सदस्य किसी बहु राज्य सहकारी समिति के अध्यक्ष या सभापति के रूप में चुने जाने के लिए पात्र नहीं होगा, जब उसने लगातार दो कार्यकालों के दौरान चाहे पूर्ण या आंशिक रूप से पद संभाला हो:

(3) मण्डल के सदस्यों का चुनाव बहु-राज्य सहकारी समिति के सदस्यों की सामान्य बैठक में होगा।

बशर्ते कि कोई सदस्य, जो एक पूर्ण अवधि के लिए लगातार अध्यक्ष या सभापति का पद धारण करना छोड़ चुका है, फिर से उस पद के लिए चुनाव के लिए पात्र होगा।

(4) मण्डल के निर्वाचित सदस्य, यदि ऐसी समिति के उपनियम अनुमति देते हैं, तो पुनः चुनाव के लिए पात्र होंगे।

स्पष्टीकरण.--जहां इस अधिनियम के प्रारंभ में अध्यक्ष या सभापति का पद धारण करने वाला कोई भी सदस्य ऐसे प्रारंभ के बाद फिर से उस पद के लिए चुना जाता है, तो उसे इस धारा के प्रयोजन के लिए, पहले एक कार्यकाल

(5) मण्डल के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल चुनाव की तारीख से पांच वर्ष से अधिक नहीं होगा, जैसा कि बहु-राज्य सहकारी समिति के उपनियमों में निर्दिष्ट किया जा सकता है:

बशर्ते कि निर्वाचित सदस्य तब तक पद पर बने रहेंगे जब तक कि उनके उत्तराधिकारी इस अधिनियम या नियमों या उपनियमों के प्रावधानों के तहत निर्वाचित या नामांकित नहीं हो जाते और अपने पद का कार्यभार ग्रहण नहीं कर लेते।

(6) जहां मण्डल मण्डल के सदस्यों का चुनाव कराने में विफल रहता है, केंद्रीय निबन्धक उस तारीख से नब्बे दिनों की अवधि के भीतर चुनाव कराएगा जब ऐसा चुनाव हुआ हो।

(7) कोई भी व्यक्ति किसी बहु-राज्य सहकारी समिति के मण्डल के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए पात्र नहीं होगा जब तक कि वह उस समिति के सामान्य निकाय का सदस्य न हो।

(8) केंद्रीय निबन्धक द्वारा चुनाव कराने का खर्च बहु-राज्य सहकारी समिति द्वारा वहन किया जाएगा।

(9) केंद्र सरकार आम तौर पर मण्डल के सदस्यों के चुनाव के संबंध में प्रावधान करने या मामलों को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है।

धारा 47 - सामान्य सभा द्वारा निर्वाचित सदस्यों को हटाया जाना

मण्डल का एक निर्वाचित सदस्य, जिसने बहु-राज्य सहकारी समिति के हितों के प्रतिकूल कार्य किया है, को केंद्रीय निबन्धक की रिपोर्ट के आधार पर या अन्यथा सामान्य निकाय के इसकी बैठक में पारित प्रस्ताव पर मण्डल से हटाया जा सकता है जो की बैठक में उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से होती है:

बशर्ते कि संबंधित सदस्य को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक उसे मामले में प्रतिनिधित्व करने का उचित अवसर नहीं दिया गया हो।

धारा 78. केन्द्रीय निबन्धक द्वारा जांच.

(1) केंद्रीय रजिस्ट्रार, एक संघीय सहकारी समिति के अनुरोध पर, जिससे एक बहु-राज्य सहकारी समिति संबद्ध है या एक ऋणदाता या मण्डल के कम से कम एक-तिहाई सदस्य या कम से कम एक-पांचवें सदस्य हो सकता है। किसी बहु-राज्य सहकारी समिति के सदस्यों की कुल संख्या की जांच करना या उसके द्वारा लिखित आदेश द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति को बहु-राज्य सहकारी समिति के गठन, कामकाज और वित्तीय स्थिति की जांच करने का निर्देश दे सकता है।

बशर्ते कि इस उपधारा के तहत कोई जांच तब तक नहीं की जाएगी जब तक बहु-राज्य सहकारी समिति को कम से कम पंद्रह दिन का नोटिस नहीं दिया गया हो।

(2) केंद्रीय निबन्धक या उप-धारा (1) के तहत उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के पास निम्नलिखित शक्तियां होंगी, अर्थात्: -

(क) उसे उचित समय बहु-राज्य सहकारी समिति से संबंधित या उसकी संरक्षण में मौजूद पुस्तकों, खातों, दस्तावेजों, प्रतिभूतियों, नकदी और अन्य संपत्तियों तक मुफ्त पहुंच होगी और वह स्वामित्व वाले या ऐसी किसी भी पुस्तकों, खातों, दस्तावेजों,

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1251

प्रतिभूतियों, नकदी या अन्य संपत्तियों की संरक्षण के लिए, उनके द्वारा निर्दिष्ट किसी भी स्थान पर उन्हें प्रस्तुत करने के लिए जिम्मेदार किसी भी व्यक्ति को बुला सकता है;

(ख) बहु-राज्य सहकारी समिति की सामान्य बैठक के लिए सूचना की अवधि निर्दिष्ट करने वाले किसी भी उप-कानून के बावजूद, वह समिति के अधिकारियों से कम से कम सूचना देकर समिति की सामान्य बैठक बुलाने की अपेक्षा कर सकता है। ऐसे मामलों पर विचार करने के लिए समिति के मुख्यालय में ऐसे समय और स्थान पर सात दिन से अधिक, जैसा कि उसके द्वारा निर्देशित किया जा सकता है; और जहां समिति के अधिकारी ऐसी बैठक बुलाने से इनकार करते हैं या असफल होते हैं, तो उसे इसे स्वयं बुलाने की शक्ति होगी;

(ग) वह किसी भी व्यक्ति को, जिसके बारे में उसके अनुसार यथोचित विश्वास है कि उसे बहु-राज्य सहकारी समिति के मामलों के बारे में कोई जानकारी है, समिति के मुख्यालय या उसकी किसी शाखा में किसी भी स्थान पर उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए बुला सकता है और शपथ लेकर उसकी जांच कर सकता है।

(3) उपधारा (2) के खंड (बी) के तहत बुलाई गई किसी भी बैठक में समिति के उपनियमों के तहत बुलाई गई समिति की सामान्य बैठक की सभी शक्तियां होंगी और इसकी कार्यवाही ऐसे उपनियमों द्वारा विनियमित होगी।

(4) केंद्रीय रजिस्ट्रार, सूचना प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर, बहु-राज्य सहकारी समिति, वित्तीय संस्थानों, यदि कोई हो, और उस व्यक्ति या प्राधिकारी से जिसके कहने पर जांच की गई है जिससे समिति संबंधित है को जांच की सूचना संसूचित करेगा।

धारा 84. विवादों का संदर्भ.

(1) तत्समय लागू किसी भी अन्य कानून में किसी भी बात के होते हुए भी, यदि कोई विवाद [एक बहु-राज्य सहकारी समिति द्वारा अपने वेतनभोगी कर्मचारी के खिलाफ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित विवाद या खंड (के) में परिभाषित औद्योगिक विवाद के अलावा] औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) की धारा 2 के तहत एक बहु-राज्य सहकारी समिति के संविधान, प्रबंधन या व्यवसाय से उत्पन्न होता है--

(क) सदस्यों, पूर्व सदस्यों और सदस्यों, पूर्व सदस्यों और मृत सदस्यों के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच, या

(ख) किसी सदस्य, पूर्व सदस्यों और किसी सदस्य, पूर्व सदस्य या मृत सदस्य और बहु-राज्य सहकारी समिति, उसके मण्डल या बहु-राज्य सहकारी समिति के किसी अधिकारी, प्रतिनिधि या कर्मचारी के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच या परिसमापक, अतीत या वर्तमान, या

(ग) बहु-राज्य सहकारी समिति या उसके मण्डल और किसी पिछले मण्डल, किसी अधिकारी, प्रतिनिधि या कर्मचारी, या किसी पूर्व अधिकारी, पिछले प्रतिनिधि या पिछले कर्मचारी, किसी मृत अधिकारी के उत्तराधिकारी या कानूनी प्रतिनिधियों, मृत प्रतिनिधि या के बीच बहु-राज्य सहकारी समिति के मृत कर्मचारी, या

(घ) बहु-राज्य सहकारी समिति और किसी अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति के बीच, एक बहु-राज्य सहकारी समिति और किसी अन्य बहु-राज्य सहकारी समिति के परिसमापक के बीच या एक बहु-राज्य सहकारी समिति के परिसमापक के बीच -राज्य सहकारी समिति और किसी अन्य बहुराज्य सहकारी समिति के परिसमापक, ऐसे विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा।

(2) उप-धारा (1) के प्रयोजनों के लिए, निम्नलिखित को बहु-राज्य सहकारी समिति के गठन, प्रबंधन या व्यवसाय से संबंधित विवाद माना जाएगा, अर्थात्: -

(क) बहु-राज्य सहकारी समिति द्वारा किसी सदस्य या नामांकित व्यक्ति, मृत सदस्य के उत्तराधिकारियों या कानूनी प्रतिनिधियों से देय किसी ऋण या मांग के लिए दावा, चाहे ऐसा ऋण या मांग स्वीकार की जाए या नहीं;

(ख) मुख्य देनदार के खिलाफ एक जमानत द्वारा दावा, जहां बहु-राज्य सहकारी समिति ने व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप मुख्य देनदार से किसी भी ऋण या मांग के संबंध में किसी भी

राशि की वसूली की है मूल देनदार, चाहे ऐसा ऋण या मांग स्वीकार की गई हो या नहीं;

(ग) किसी बहु-राज्य सहकारी समिति के किसी अधिकारी के चुनाव के संबंध में उत्पन्न कोई विवाद।

(3) यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या इस धारा के तहत मध्यस्थता के लिए भेजा गया विवाद बहु-राज्य सहकारी समिति के संविधान, प्रबंधन या व्यवसाय से संबंधित विवाद है या नहीं, तो मध्यस्थ का निर्णय अंतिम होगा और जिसकी किसी भी अदालत में पूछताछ नहीं की जाएगी।

(4) जहां किसी विवाद को उप-धारा (1) के तहत मध्यस्थता के लिए भेजा गया है, उसका निपटारा या निर्णय केंद्रीय निबन्धक द्वारा नियुक्त मध्यस्थ द्वारा किया जाएगा।

(5) इस अधिनियम के तहत अन्यथा प्रदान किए गए को छोड़कर, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के प्रावधान इस अधिनियम के तहत सभी मध्यस्थता पर लागू होंगे जैसे कि मध्यस्थता की कार्यवाही को प्रावधानों के तहत मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 में निपटान या निर्णय के लिए संदर्भित किया गया था।

85. सीमा.-

(1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) में किसी बात के होते हुए भी, लेकिन इस अधिनियम में किए गए विशिष्ट प्रावधानों के अधीन, मध्यस्थता के लिए निर्दिष्ट विवाद के मामले में परिसीमा की अवधि, -

7.इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1253

(क) जब विवाद उसके किसी सदस्य द्वारा बहु-राज्य सहकारी समिति को देय ब्याज सहित किसी भी राशि की वसूली से संबंधित हो, तो उस तारीख से गणना की जाएगी जिस दिन ऐसे सदस्य की मृत्यु हो जाती है या वह समिति का सदस्य नहीं रह जाता है। ;

(ख) खंड (सी) में अन्यथा प्रदान किए गए को छोड़कर, जब विवाद उप-खंड (बी) या खंड (सी) या खंड (डी) में निर्दिष्ट पार्टियों में से किसी के किसी भी कार्य या चूक से संबंधित है। धारा 84 की धारा (1), उस तारीख से छह वर्ष की होगी जिस दिन कार्य या चूक, जिसके संदर्भ में विवाद उत्पन्न हुआ था, हुई थी;

(ग) जब विवाद किसी बहु-राज्य सहकारी समिति के अधिकारी के चुनाव के संबंध में हो, तो चुनाव के परिणाम की घोषणा की तारीख से एक महीने का समय दिया जाए।

(2) किसी भी विवाद के मामले में सीमा की अवधि, उप-धारा (1) में उल्लिखित विवादों को छोड़कर, जिन्हें मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाना आवश्यक है, सीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) के प्रावधानों द्वारा विनियमित की जाएगी। , मानो विवाद एक मुकदमा हो और मध्यस्थ कोई दीवानी अदालत।

(3) उप-धारा (1) और (2) में निहित किसी भी बात के बावजूद, मध्यस्थ परिसीमा अवधि की समाप्ति के बाद विवाद को स्वीकार कर सकता है, यदि आवेदक मध्यस्थ को संतुष्ट करता है कि उसके पास ऐसी अवधि में विवाद को संदर्भित न करने के लिए पर्याप्त कारण है।

(नियम, 2002)

नियम 19 - चुनाव कराने की प्रक्रिया

(1) मण्डल के सदस्यों का चुनाव मण्डल द्वारा उसकी बैठक में नियुक्त चुनाव अधिकारी द्वारा किया जाएगा। इस प्रकार नियुक्त चुनाव अधिकारी समिति का सदस्य या कर्मचारी नहीं होगा:

बशर्ते, केंद्रीय निबन्धक, राष्ट्रीय बहु-राज्य सहकारी समितियों, बहु-राज्य शहरी सहकारी बैंकों, बहु-स्तरीय कृषि प्रसंस्करण सहकारी समितियों और रेलवे कर्मचारी भुगतान समिति के चुनाव कराने के लिए चुनाव अधिकारी नियुक्त करेगा। यदि ऐसी समिति के निदेशक मंडल द्वारा अनुरोध किया जाता है तो केंद्रीय निबन्धक किसी समिति के चुनाव के संचालन के लिए चुनाव अधिकारी भी नियुक्त कर सकता है।

(2) उप-नियम (1) में निर्दिष्ट मण्डल के सदस्यों का चुनाव इन नियमों के साथ संलग्न अनुसूची में निर्दिष्ट तरीके से गुप्त मतदान द्वारा किया जाएगा।

उपविधि का नियम 26 - सामान्य निकाय का गठन

i. बैंक की सामान्य सभा में बैंक के सभी सदस्य शामिल होंगे।

ii. अधिनियम, नियमों और इन उपनियमों के प्रावधानों के अधीन, बैंक का अंतिम अधिकार उसके सदस्यों के सामान्य निकाय में निहित होगा।

iii. चूँकि समिति में 1000 से अधिक सदस्य हैं, सामान्य निकाय के छोटे प्रतिनिधि का गठन निम्नलिखित तरीके से किया जाता है।

iv. प्रत्येक एक सौ सदस्यों के लिए एक प्रतिनिधि, लेकिन प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से 20 से अधिक नहीं और सामान्य निकाय सहायक निबन्धक की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो उपनियमों में निर्धारित और निर्दिष्ट हैं, प्रतिनिधियों को उनकी तारीख से पांच साल की अवधि के लिए चुना जाएगा।

बशर्ते कि प्रतिनिधि अपने पद पर तब तक बने रहेंगे जब तक कि उनके उत्तराधिकारी निर्वाचित न हो जाएं और अपने कार्यालय का कार्यभार ग्रहण न कर लें।

v. यहां उल्लिखित प्रत्येक विभाग या कार्यालय प्रतिनिधियों के चुनाव के उद्देश्य से एक निर्वाचन क्षेत्र बनाएगा।

1. लेखा विभाग.

2. प्रबंध, कार्मिक, लेखापरीक्षा विभाग, सांख्यिकी कार्यालय, रेलवे सुरक्षा, आयुक्त कार्यालय और बैंक।

3. संचालन.

4. वाणिज्यिक.

5. सिविल अभियांत्रिकी .

6. यांत्रिक अभियांत्रिकी

7. भंडार.

8. विद्युत् अभियांत्रिकी .

9. चिकित्सा.

10. संकेत एवं दूरसंचार अभियांत्रिकी .

11. सुरक्षा.

vi. सामान्य निकाय के प्रतिनिधियों का चुनाव सामान्य निकाय द्वारा अनुमोदित अधिनियम और नियमों के अनुरूप बैंक द्वारा बनाए गए चुनाव विनियमन के तहत निर्धारित तरीके से किया जाएगा।

उपविधि का नियम 35 - मण्डल के सदस्यों का चुनाव

i. बैंक के मण्डल के चुनाव का संचालन मौजूदा मण्डल की जिम्मेदारी होगी। कार्यालय में निदेशक मंडल को अपने कार्यकाल की समाप्ति की तारीख से कम से कम साठ दिन पहले बैठक करनी होगी और संकल्प द्वारा अपने उत्तराधिकारी मण्डल के चुनावों के संचालन के लिए सामान्य निकाय की बैठक बुलाने की तारीख, समय और स्थान निर्धारित करना होगा।

ii. मण्डल के सदस्यों का चुनाव बहु-राज्य सहकारी समिति नियम, 2022 से जुड़े चुनाव कार्यक्रम में निर्दिष्ट तरीके से होगा।

iii. मण्डल के निर्वाचित सदस्य पुनः चुनाव के लिए पात्र होंगे।

iv. मण्डल के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल उनके चुनाव की तारीख से पांच वर्ष का होगा।

बशर्ते कि निर्वाचित सदस्य तब तक पद पर बने रहेंगे जब तक उनके उत्तराधिकारी अधिनियम, नियमों या उपनियमों के प्रावधानों

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1255

के तहत निर्वाचित या नामांकित नहीं हो जाते और अपने कार्यालय का प्रभार ग्रहण नहीं कर लेते।

(जोर दिया गया)

27. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर निर्णय करने के लिए, न्यायालय निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना उचित समझता है। बैंक की स्थापना 23.11.1912 को हुई थी और हाल ही में, यह अधिनियम, 2002 द्वारा शासित है। बैंक के पास भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी बैंकिंग अनुज्ञप्ति भी है। सहकारी समिति का गठन भारतीय रेलवे के कर्मचारियों के हितों की रक्षा और समर्थन के लिए किया गया था। समिति के मामलों को अधिनियम, 2002 और उसके तहत बनाए गए उपनियमों के तहत निहित प्रावधानों के अनुरूप सख्ती से चलाया और प्रबंधित किया जाना है। बैंक को सरकार से कोई अनुदान नहीं मिलता है। निदेशक मंडल और पदाधिकारियों का चुनाव अधिनियम, 2002 के तहत निर्धारित प्रक्रिया द्वारा किया जाता है; इसके तहत बनाए गए नियम और पंजीकृत उप-कानून, जिसमें उप-कानून की धारा 35 (डी) में पांच साल के कार्यकाल की गारंटी दी गई है। सहकारी समितियाँ लोकतांत्रिक संस्थाएँ हैं, जहाँ सदस्य मण्डल का चुनाव करते हैं और मण्डल के सदस्य आपस में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं। इसके अलावा अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) में यह निर्धारित किया गया है कि किसी मण्डल का कोई भी सदस्य लगातार दो कार्यकाल के दौरान पद संभालने के बाद बहु राज्य सहकारी समितियों के अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में चुने जाने के लिए चाहे पूर्ण

हो या आंशिक पात्र नहीं होगा प्रथम याचिकाकर्ता को पहली बार 2008 से 2010 तक बैंक के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था और उसके बाद, उन्हें 2010 से 2015 तक दूसरी बार अध्यक्ष के रूप में चुना गया था। फिर से मण्डल के सदस्यों का चुनाव 30.07.2015 को हुआ था। और 31.07.2015 को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव हुआ, जिसमें पहले याचिकाकर्ता को तीसरी बार अध्यक्ष चुना गया। चूंकि पहले याचिकाकर्ता अध्यक्ष का पद संभाल रहे थे, जो अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) के प्रावधानों के खिलाफ था और इस तरह, उन्हें राजेश कुमार सिंह द्वारा लाए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' पर 27.09.2018 को हटा दिया गया था। और कार्यवाहक के रूप में अध्यक्ष का प्रभार अनुराग खरे को सौंपा गया।

28. अभिलेखों से यह पता चलता है कि पहले याचिकाकर्ता ने 28.10.2018 को अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत केंद्रीय निबन्धक के समक्ष संदर्भ दायर किया था। उन्होंने 2018 की रिट सी संख्या 42730 भी दायर की थी, जिसे इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने 20.12.2018 को याचिकाकर्ताओं की संदर्भ याचिका पर शीघ्र निर्णय प्रमुखतया दो महीने के भीतर सुनिश्चित करने के लिए सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक को निर्देश के साथ निपटाया था। इसके बाद, प्रथम याचिकाकर्ता और प्रतिवादियों को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाया गया और 2 मई, 2019 को आयोजित व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान, मण्डल के सदस्यों ने यह मुद्दा उठाया कि प्रथम याचिकाकर्ता तीसरे कार्यकाल के लिए पदासीन था और इस तरह, 'अविश्वास'

प्रस्ताव' मण्डल के एक सदस्य राजेश कुमार सिंह द्वारा पेश किया गया था। जबकि यह मुद्दा 2 मई, 2019 को आयोजित व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान बैंक के मण्डल सदस्यों द्वारा उठाया गया था, प्रथम याचिकाकर्ता ने इस आरोप के खिलाफ कोई तर्क नहीं दिया। अंततः, केंद्रीय निबन्धक ने दिनांक 28.05.2019 के आदेश के तहत अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत संदर्भ देने से इस आधार पर इनकार कर दिया था कि प्रथम याचिकाकर्ता लगातार दो कार्यकाल के लिए अध्यक्ष रहा है और धारा 44 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए (2) अधिनियम, 2002 के अनुसार, जो पूर्ण या आंशिक रूप से लगातार दो कार्यकाल से अधिक के लिए अध्यक्ष का पद धारण करने पर प्रतिबंध लगाता है, प्रथम याचिकाकर्ता बैंक के अध्यक्ष के पद पर तीसरे कार्यकाल के लिए अयोग्य था। केंद्रीय निबन्धक के दिनांक 28.05.2019 के आदेश और उसके निष्कर्षों को किसी भी सक्षम प्राधिकारी या अदालत के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, उक्त आदेश अंतिम रूप ले चुका है।

29. अभिलेखों के अवलोकन पर, यह और भी स्पष्ट होगा कि सहकारी समिति स्वीकार्य रूप से एक है, जो अधिनियम, 2002 के प्रावधानों द्वारा शासित होती है। इसके तहत बनाए गए उपनियमों के अनुसार, इसके संचालन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और बिहार राज्य में फैला हुआ है। सदस्यों के विवरण के अनुसार, जो रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है, बैंक में 31.03.2016 तक 52010

सदस्य हैं और लगभग 250 कर्मचारी बैंक में काम कर रहे हैं। उपनियमों के तहत, प्रतिनिधियों और इसके निदेशक मंडल के गठन के लिए चुनाव होने हैं। सहकारी समिति के प्राथमिक सदस्य प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं, जो बदले में निदेशक मंडल के घटकों को चुनते हैं। सदस्यता विवरण के अनुसार, जिसका प्रतिवादीयों द्वारा खुलासा किया गया है, 215 प्रतिनिधि सहकारी समिति के प्राथमिक सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं और ये प्रतिनिधि ही निदेशक मंडल के सदस्यों का चुनाव करने के लिए आगे बढ़ते हैं। अधिनियम, 2002 की धारा 45 (2) "करेगा" शब्द का उपयोग करके कार्यकाल को 5 वर्ष से अधिक नहीं निर्दिष्ट करती है। दो शब्द 'होगा' और 'अधिक नहीं' निर्वाचित सदस्यों के कार्यकाल को अधिकतम 5 वर्ष घोषित करने वाले अनिवार्य प्रावधान के सूचक हैं, हालांकि प्रावधान में कहा गया है कि निर्वाचित सदस्य तब तक पद पर बने रहेंगे जब तक कोई नया निकाय कार्यभार ग्रहण नहीं कर लेता। उक्त प्रावधान से ऐसा प्रतीत होता है कि 5 वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद निर्वाचित सदस्यों की निरंतरता एक नए निकाय के चुनाव आयोजित करने और उसके कार्यभार ग्रहण करने के अधीन है। विधायिका का व्यावहारिक रूप से इरादा था कि मण्डल के कार्यकाल के भीतर मण्डल द्वारा ही चुनाव कराया जाना चाहिए। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि यदि कोई निदेशक मंडल चुनाव पूरा करने में लापरवाही बरतता है, तो उप-धारा (6) अधिनियमित किया गया था, जो केंद्रीय निबन्धक को चुनाव होने की तारीख से 90 दिनों की अवधि के भीतर चुनाव कराने की

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1257

शक्ति प्रदान करता है। . नियम, 2002 की अनुसूची के अनुसार मण्डल द्वारा चुनाव कराने का निर्देश देने वाला एक वैधानिक आदेश है, जिसमें नियम 35 (i) में यह प्रावधान है कि कार्यालय में निदेशक मंडल की बैठक तिथि से कम से कम 60 दिन पहले होगी। इसके कार्यकाल की समाप्ति और संकल्प द्वारा इसके उत्तराधिकारी मण्डल के चुनाव के संचालन के लिए एक सामान्य निकाय की बैठक बुलाने की तारीख, समय और स्थान निर्धारित करता है। उक्त अनुसूची के खंड (बी) के तहत ऐसा निर्णय तुरंत केंद्रीय निबन्धक को भेजा जाना आवश्यक है, जो उक्त अनुसूची के खंड (सी) के तहत चुनाव कराने के उद्देश्य से एक चुनाव अधिकारी नियुक्त करेगा। पिछला निर्विवाद चुनाव 2015 में हुआ था और इस प्रकार, निर्वाचित निकाय का कार्यकाल 2020 में समाप्त होना था। यह उस पृष्ठभूमि में है जिसमें मौजूदा मण्डल ने 25.10.2019 को प्रस्ताव पारित किया था और रवि प्रकाश सिंह को नियुक्त किया था। प्रतिवादीयों के अनुसार, चुनाव सहकारी समिति के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में 06.1.2020 को सुबह 8 बजे से शाम 5 बजे तक हुआ था और अंतिम परिणाम 08.01.2020 को घोषित किया गया था, जिसके तहत चुनाव कराने के उद्देश्य से निर्वाचक मंडल का गठन किया गया था। निदेशक मंडल के सामान्य निकाय के प्रतिनिधियों/सदस्यों के परिणाम की घोषणा के बाद 10.01.2020 को दैनिक समाचार पत्र "गोरखपुर केशरी" में 18.02.2020 को मण्डल के सदस्यों के चुनाव कराने के लिए चुनाव कार्यक्रम प्रकाशित किया गया और साथ ही चुनाव कार्यक्रम भी प्रकाशित किया गया।

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के निर्वाचन हेतु दिनांक 19.02.2019 को निर्वाचन की तिथि निर्धारित करते हुए विज्ञापन प्रकाशित किया गया। चुनाव कार्यक्रम के अनुसार, निदेशक मंडल के सदस्य का चुनाव 10.02.2020 को और अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव 19.02.2020 को हुआ, जिसमें अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित 11 निदेशक चुने गए और नया मण्डल 19.02.2020 से इसके कर्तव्य और कार्यभार संभाल रहा है।

30. हमारे पास सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक के दिनांक 28.5.2019 के आदेश को पढ़ने का भी अवसर है, जिसमें यह देखा गया है कि पहले याचिकाकर्ता अर्थात् ब्रिजेश कुमार सिंह को पहली बार 2008 से 2010 तक इस अवधि के लिए बैंक के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था और उसके बाद, वह 2010 से 2015 तक दूसरी बार अध्यक्ष चुने गए। फिर से वह 30.07.2015 को तीसरी बार अध्यक्ष चुने गए। अधिनियम, 2002 की धारा 44 की उप-धारा (2) में यह विशेष रूप से प्रदान किया गया है कि किसी मण्डल का कोई भी सदस्य बहु राज्य सहकारी समिति के अध्यक्ष या सभापति के रूप में लगातार दो कार्यकालों के दौरान कार्यालय, चाहे पूर्ण हो या आंशिक चुने जाने के लिए पात्र नहीं होगा। दिनांक 27.09.2018 की मण्डल बैठक से पहले, 26 कार्यसूची अंश तत्कालीन अध्यक्ष ब्रिजेश कुमार सिंह (प्रथम याचिकाकर्ता) के समक्ष अनुमोदन के लिए प्रस्तावित किए गए थे, हालांकि, तीसरे के संबंध में केंद्रीय निबन्धक के आदेश दिनांक 17.08.2017 के आलोक में मौजूदा अध्यक्ष ब्रिजेश कुमार सिंह का

कार्यकाल के मामले पर विचार करने से संबंधित बिंदु संख्या 5 सहित कुछ अंश उनके द्वारा अनुमोदित नहीं किए गए थे। हालाँकि उक्त वस्तु मण्डल बैठक के कार्यसूची में शामिल नहीं थी, तथापि, बैंक के निदेशकों में से एक राजेश कुमार सिंह द्वारा दिनांक 27.09.2018 की मण्डल बैठक के दौरान 'अविश्वास प्रस्ताव' पेश किया गया था। आदेश के पैरा 5.2 में यह देखा गया है कि पहले याचिकाकर्ता ने दलील दी थी कि उसे बैठक के बारे में सूचित नहीं किया गया और कोई बैठक नहीं हुई। हालाँकि, प्रतिवादीयो द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों के बिंदु संख्या 4.3 के अनुसार, जब 'अविश्वास प्रस्ताव' पेश किया गया तो प्रथम याचिकाकर्ता बैठक में मौजूद था और बाहर चला गया।

31. ऊपर देखे गए तथ्यों से, यह स्वीकृत है कि प्रथम याचिकाकर्ता को 2008 से 2010 तक पहली बार बैंक के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था; इसके बाद उन्हें 2010 से 2015 तक दूसरी बार अध्यक्ष के रूप में चुना गया और 30.07.2015 को उन्हें तीसरी बार फिर से चुना गया, जो अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) के खिलाफ है, जो पद पर लगातार दो से अधिक कार्यकाल के लिए अध्यक्ष, चाहे पूर्ण या आंशिक बने रहने पर प्रतिबंध लगाता है। परिणामस्वरूप, प्रथम याचिकाकर्ता को 27.09.2018 को राजेश कुमार सिंह द्वारा लाए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' पर हटा दिया गया और अध्यक्ष का प्रभार कार्यवाहक क्षमता में अनुराग खरे को सौंप दिया गया। केंद्रीय निबन्धक ने दिनांक 28.05.2019 के आदेश के तहत अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत

इस आधार पर संदर्भ देने से इनकार कर दिया था कि प्रथम याचिकाकर्ता बैंक के अध्यक्ष के पद पर तीसरे कार्यकाल के लिए अयोग्य है। इसके अलावा, 2019 की रिट संख्या (सी) 38998 में पारित आदेश दिनांक 13.01.2020 के जवाब में, 02.03.2020 को याचिकाकर्ता की शिकायतों पर विचार करते हुए, सहकारी समितियों के केंद्रीय निबन्धक ने पाया था कि शिकायतकर्ताओं (याचिकाकर्ताओं) ने प्रस्तुत किया है कि बैंक के वर्तमान प्रबंधन ने कई अनियमितताएं की हैं, जो गंभीर प्रकृति की हैं और विस्तृत जांच की आवश्यकता है। इसलिए, याचिकाकर्ताओं की ओर से यह गलत तर्क है कि उक्त चरण में बैंक का प्रबंधन उपलब्ध नहीं था। निबन्धक ने आदेश के पैरा-3 में आगे कहा कि समिति के वर्तमान अध्यक्ष और सचिव द्वारा प्रस्तुत प्रतिवादीयो ने इस बात पर भी आपत्ति जताई है कि नोटिस के बावजूद शिकायतकर्ताओं ने मण्डल की लगातार तीन बैठकों में भाग नहीं लिया, जिसके कारण उन्हें अयोग्य घोषित कर दिया गया। जिसमें अधिनियम, 2002 की धारा 43 (एम) अयोग्यता निर्धारित करती है। इसलिए, उनके पास अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत कोई शिकायत दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं था। इसलिए, यह विवादित नहीं है कि पहला याचिकाकर्ता, जो अध्यक्ष का पद संभाल रहा था। लगातार तीसरे कार्यकाल में, 27.09.2018 को हटा दिया गया और आधिकारिक क्षमता में अध्यक्ष का प्रभार अनुराग खरे को सौंप दिया गया। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह बताने के लिए अभिलेखों पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि 27.9.2018 से 31.07.2020 तक अध्यक्ष के

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1259

रूप में प्रथम याचिकाकर्ता ने अध्यक्ष के रूप में समिति में कभी कोई काम किया था। निर्वाचित निकाय का कार्यकाल भी जुलाई, 2020 में समाप्त हो गया। निदेशक मंडल के सदस्य का चुनाव 10.02.2020 को और अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव 19.02.2020 को हुआ, जिसमें अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित 11 निदेशक थे जिसमें अध्यक्ष भी चुने गए और नया मण्डल 19.02.2020 से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है।

32. मदन मोहन बनाम राज्य "13" में कलकत्ता उच्च न्यायालय इस सवाल पर विचार कर रहा था कि क्या बंगाल सहकारी समिति अधिनियम, 1940 के तहत पंजीकृत एक सहकारी समिति या उसकी प्रबंध समिति रिट क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी थी। माननीय न्यायपीठ का मानना था कि समिति के मामलों और गतिविधियों का प्रबंधन, अन्य बातों के साथ-साथ, सहकारी समितियों के निबन्धक द्वारा नियंत्रित किया जाता था, जो एक सार्वजनिक प्राधिकारी था। ऐसे मामले निजी मामले नहीं हो सकते। यह आवश्यक नहीं था कि एक निकाय, एक सार्वजनिक निकाय होने के लिए, एक कानून द्वारा गठित किया जाना चाहिए, हालाँकि इसकी शक्तियाँ और कर्तव्य एक अधिनियम या नियमों द्वारा बनाए गए थे। यहां तक कि, जहां समिति एक व्यक्ति थी, वहां कोई व्यापक और सामान्य प्रस्ताव नहीं हो सकता था कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कोई रिट नहीं होगी। यह प्रत्येक मामले के विशेष तथ्यों पर निर्भर करता है।

33. पी.बी.के. में. राजाचिदंबरम बनाम आर.पी. रत्न शर्मा "14," मद्रास उच्च न्यायालय ने माना कि सहकारी समिति के खिलाफ रिट जारी की जा सकती है।

34. प्रागा टूल्स बनाम इमैनुअल "15" में, सुप्रीम कोर्ट की माननीय न्यायपीठ इस सवाल पर विचार कर रही थी कि क्या कंपनी अधिनियम के तहत निगमित कंपनी के खिलाफ रिट दायर की जाएगी। हालाँकि, रिट को अस्वीकार कर दिया गया था, लेकिन यह माना गया कि केवल कानूनी कर्तव्य के प्रदर्शन के कानूनी अधिकार के मामले में ही रिट जारी की जा सकती है। आगे यह माना गया कि यह आवश्यक नहीं है कि जिस व्यक्ति या प्राधिकरण पर वैधानिक कर्तव्य लगाया गया है, वह एक सार्वजनिक अधिकारी या आधिकारिक निकाय हो। हालाँकि, साथ ही, उनके आधिपत्य ने देखा कि कंपनी, एक गैर-वैधानिक निकाय होने के नाते और, एक बार कंपनी अधिनियम के तहत शामिल होने के बाद, किसी कानून द्वारा उस पर कोई वैधानिक या सार्वजनिक शुल्क नहीं लगाया गया था, जिसके संबंध में, परमादेश के माध्यम से प्रवर्तन की मांग की जा सकती है।

35. जहां तक अविश्वास प्रस्ताव के मुद्दे का सवाल है, विकास त्रिवेदी और अन्य बनाम यूपी राज्य में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ। और अन्य (सुप्रा) ने इस पहलू पर विचार किया है और निम्नानुसार माना है:

"प्रश्न क्रमांक 1 सहित संदर्भित प्रश्नों के हमारे उत्तर, जिन्हें हमारे द्वारा पुनः तैयार किया गया है, इस प्रकार हैं:-

(i) नियम 2 और फॉर्म-2 के अनुसार निर्धारित प्रपत्र में धारा 15(3)(ii) के तहत जिलाधिकारी द्वारा नोटिस देने की आवश्यकता को अनिवार्य नहीं माना जाता है और प्रावधानों के पर्याप्त अनुपालन पर कार्यवाही दूषित नहीं की जाएगी। उक्त प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन हुआ है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

(ii) राम नाथ त्रिपाठी के मामले (सुप्रा) में खण्डपीठ की टिप्पणी कि पूर्ण प्रारूप में इसके अनुलग्नकों के साथ निर्धारित प्रपत्र में नोटिस अनिवार्य है, सही कानून नहीं बताता है। श्रीमती कृष्णा जयसवाल के मामले का निर्णय (सुप्रा) सही कानून बताता है और स्वीकृत है।

(iii) अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बैठक बुलाने के लिए जिलाधिकारी द्वारा भेजी गयी सूचना इस आधार पर अमान्य नहीं किया जा सकता है कि उस व्यक्ति के नाम के साथ सूचना की प्रति, जिसने आशय की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर किए थे, साथ में नहीं भेजी गई थी। सूचना जब प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव पर अपेक्षित सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं, तो बैठक बुलाने की सूचना को केवल इस आधार पर अमान्य नहीं किया जा सकता है कि प्रस्तावित प्रस्ताव के कुछ पृष्ठ जिनमें केवल कुछ सदस्यों के हस्ताक्षर हैं, नोटिस के साथ भेजे गए थे।"

36. ज्योति कुमार मालवीय बनाम भारतीय किसान उर्वरक सहकारी समिति लिमिटेड अन्य (सुप्रा) के मामले में खण्डपीठ ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 और 226 के प्रावधानों पर विचार किया है और माना है कि इफको को "उपकरण" नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इफको किसी भी "सार्वजनिक कार्य" का निर्वहन नहीं करता है और इसलिए इसे रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं माना जा सकता है।

37. मत्स्य जीवी सहकारी समिति लिमिटेड बनाम यूपी राज्य और अन्य (सुप्रा) में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने सह-चुनाव कार्यवाही के संबंध में याचिकाकर्ता के दावे पर निर्णय लेने के लिए निर्देश देने की मांग वाली रिट याचिका को खारिज कर दिया है। आदेश इस प्रकार है:-

"8. उपरोक्त प्रावधानों से संकेत मिलता है कि विवादों के निपटारे का तरीका अधिनियम, 1965 के अध्याय IX के तहत प्रदान किया गया है।

9. धारा 70 उन विवादों के संबंध में है जिन्हें मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है और इसके संदर्भ में, उप-धारा (1) के तहत निर्दिष्ट विवादों को अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के अनुसार कार्रवाई के लिए निबन्धक को भेजा जाना है। और किसी भी अन्य न्यायालय को ऐसे किसी भी विवाद के संबंध में किसी मुकदमे या अन्य कार्यवाही पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1261

10. धारा 70 की उप-धारा (1) के प्रावधान के अनुसार, अधिनियम के प्रावधानों या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत चुनाव से संबंधित विवाद, परिणाम की घोषणा होने तक, निबन्धक को नहीं भेजा जाएगा।

11. नियम 444-सी के उप-नियम (1) में प्रावधान है कि सहकारी समिति में चुनाव को मध्यस्थता या उपनियम (1) के खंड (क) और खंड (ख) के तहत निर्दिष्ट आधारों को छोड़कर प्रश्न में नहीं बुलाया जाएगा।

12. उप-नियम (2) के अनुसार चुनाव से संबंधित विवाद को पीड़ित पक्ष द्वारा परिणाम की घोषणा के पैंतालीस दिनों के भीतर भेजा जाएगा।

13. मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा दायर मामले के अनुसार, विचाराधीन सहकारी समिति के चुनाव पहले ही हो चुके हैं और उनके परिणाम भी घोषित किए जा चुके हैं। उपरोक्त तथ्यों और स्थिति को ध्यान में रखते हुए, चुनाव के संबंध में उठाई जाने वाली कोई भी शिकायत, मनोमालिन्य या विवाद, पीड़ित पक्ष द्वारा उचित आवेदन पर निबन्धक को भेजा जाना है।

14. अधिनियम, 1965 की धारा 70 और नियम, 1968 के नियम 444-सी के तहत निहित प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि विवादों के निपटारे के लिए एक पूरी प्रक्रिया और ऐसे विवादों के संदर्भ का तरीका शामिल है। अधिनियम के प्रावधानों या उसके तहत बनाए

गए नियमों के तहत चुनाव से संबंधित विवाद का प्रावधान किया गया है। सहकारी समिति की चुनाव कार्यवाही से संबंधित किसी भी शिकायत, मनोमालिन्य या विवाद को धारा 444-सी के उप-नियम (1) के तहत निर्दिष्ट आधार पर अधिनियम, 1965 के धारा 70 के तहत उचित आवेदन करके संदर्भ के लिए बुलाया जा सकता है।

15. सहकारी समिति में चुनाव से संबंधित विवादों के निपटारे के संबंध में एक संपूर्ण तंत्र पूर्वोक्त तरीके से प्रदान किया गया है, हम संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान मामले में अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के इच्छुक नहीं हैं।

16. याचिकाकर्ता के लिए अधिनियम, 1965 और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत वैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में प्रदान किए गए उचित उपाय का आह्वान करने का विकल्प खुला होगा।

17. उपरोक्त टिप्पणी के अधीन, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

38. सुशील कुमार बनाम केंद्रीय निबन्धक सहकारी समिति (सुप्रा) के मामले में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने उत्तरी क्षेत्र रेलवे कर्मचारी बचत एवं उधार सहकारी समिति लिमिटेड के प्रतिनिधियों के चुनाव के प्रयोजनों के लिए प्रतिवादीयो द्वारा शुरू किए गए कदमों को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि यह सुनवाई योग्य नहीं है। केवल इसलिए कि एक निकाय

विभिन्न वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन करने के लिए बाध्य है, इससे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निर्णायक नहीं हो सकता कि क्या यह एक सार्वजनिक कार्य का निर्वहन कर रहा है।

“27. उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित निर्विवाद तथ्य सामने आते हैं। सहकारी समिति का गठन अनिवार्य रूप से अपने सदस्यों के कल्याण को बढ़ावा देने और सुरक्षा के लिए किया गया है, जो सभी भारतीय रेलवे के कर्मचारी हैं। जैसा कि इसके उद्देश्यों से संकेत मिलता है, इसे "सहकारी सिद्धांतों" के अनुसार स्व-सहायता और पारस्परिक सहायता के माध्यम से अपने सदस्यों की स्थिति के उत्थान और बेहतरी की दिशा में काम करने का निर्देश दिया गया है। यह अनिवार्य जमा, शेयर जारी करने और उपनियमों के तहत अनुमत अन्य तरीकों से अपने सदस्यों से धन जुटाता है। एन.जेड.ई.आर.सी.टी.सी. में, विद्वान न्यायाधीश ने हालांकि इस मुद्दे से निपटते हुए कि क्या प्रतिवादी सहकारी समिति को सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रयोजनों के लिए एक सार्वजनिक प्राधिकरण के रूप में माना जा सकता है, स्पष्ट शब्दों में पाया कि इसे कोई धन या वित्तीय सहायता नहीं मिलती है। उस निर्णय में महत्वपूर्ण रूप से कहा गया कि सहकारी समिति एक वैधानिक निगम नहीं थी और उसने केवल अधिनियम के तहत पंजीकरण के लिए आवेदन किया था। तब यह देखा गया कि यह सरकार द्वारा पर्याप्त वित्त के परीक्षण को पूरा करने में सक्षम नहीं पाया गया था और इसे मुख्य रूप से इसके सदस्यों द्वारा किए गए योगदान

के आधार पर वित्त पोषित किया गया था। एन.जेड.ई.आर.सी.टी.सी. ने तब पाया कि उपनियमों का भी उसके मामलों पर केंद्र सरकार या रेलवे पर कोई नियंत्रण नहीं था। आगे यह देखा गया कि केवल इस तथ्य से कि सहकारी समिति अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होती है, इस सवाल पर कोई असर नहीं पड़ेगा कि क्या यह एक सार्वजनिक प्राधिकरण है। अंततः और ऊपर देखे गए निष्कर्षों के आलोक में यह पाया गया कि सहकारी समिति सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के दायरे में नहीं आएगी।

28. एन.जेड.ई.आर.सी.टी.सी. में दर्ज तथ्यों पर उपरोक्त निष्कर्षों से और जिन पर याचिकाकर्ताओं द्वारा विवाद नहीं किया गया था, यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा कोई गहरा या व्यापक नियंत्रण नहीं रखा गया है। यह भारतीय रेलवे के कर्मचारियों द्वारा अपने सदस्यों के हितों को बढ़ावा देने और उनकी सुरक्षा के लिए गठित एक सहकारी समिति है। इसके लक्ष्यों और उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि यह मुख्य रूप से अपने सदस्यों की स्थितियों में सुधार करने, ऋण देने, उनके कल्याण की दिशा में काम करने, अपने कार्यालय स्थापित करने और अपने सदस्यों के लिए आवासों के निर्माण के लिए भूमि अधिग्रहण करने और अपने शेयरधारकों और सदस्यों को ऋण देने से संबंधित है। इसका वित्त इसके सदस्यों द्वारा किए गए शेयर धन और अंशदायी जमा पर आधारित है। यह मानने के लिए कि कोई निकाय संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी होगा, यह आवश्यक रूप से पाया

7. इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1263

जाना चाहिए कि यह या तो राज्य है या अनुच्छेद 12 द्वारा परिकल्पित एक प्राधिकरण है। अच्छी तरह से तय किए गए परीक्षण सर्वोच्च न्यायालय के ऊपर दिए गए निर्णयों में जो बातें सामने आई हैं उनमें यह शामिल है कि क्या निकाय सरकार द्वारा पर्याप्त रूप से वित्त पोषित है या वित्तीय रूप से नियंत्रित है, क्या यह कार्यात्मक या प्रशासनिक रूप से सरकार द्वारा नियंत्रित है और क्या यह सार्वजनिक कार्य करता है या सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन करता है।

29. ऊपर देखे गए तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सहकारी समिति को न तो पर्याप्त रूप से वित्त पोषित किया जाता है और न ही सरकार द्वारा वित्त पोषित किया जाता है। इसके उपनियमों को पढ़ने से यह बात बिना किसी संदेह के स्थापित हो जाती है कि यह सरकार द्वारा प्रशासनिक रूप से नियंत्रित भी नहीं है। ऐसी कोई प्रमुख या अधिभावी शक्ति नहीं है जिसे सहकारी समिति के मामलों पर नियंत्रण रखने के लिए सरकार को मान्यता दी जा सके। सरकार को अपने मामलों के प्रबंधन या नीति निर्माण में सहकारी समिति को नियंत्रित करने के लिए नहीं दिखाया गया है। न्यायालय को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सहकारी समिति को कोई एकाधिकार का दर्जा नहीं दिया गया है। यह स्पष्ट रूप से भारतीय रेलवे के कर्मचारियों द्वारा अपने सदस्यों के कल्याण और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए "सहकारी सिद्धांतों" को अपनाने के इरादे से गठित एक स्वायत्त निकाय के रूप में सामने आता है। इस प्रकार न्यायालय इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सहकारी समिति "गहरे और व्यापक

नियंत्रण" के परीक्षण को पूरा करने में विफल रहती है जैसा कि ऊपर उल्लिखित उदाहरणों में बताया गया है।

30. इसके बाद न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या सहकारी समिति एक सार्वजनिक कार्य का निर्वहन करती है और क्या अधिनियम के प्रावधानों के तहत इसके पंजीकरण का उस प्रश्न पर कोई प्रभाव पड़ेगा जो खड़ा है। सबसे पहले एक सार्वजनिक समारोह के मुद्दे से निपटते हुए, यह नोट करना उचित हो जाता है कि रामकृष्ण मिशन में सुप्रीम कोर्ट ने प्रासंगिक रूप से कहा था कि सार्वजनिक समारोह परीक्षण को संतुष्ट करने के लिए यह पाया जाना चाहिए कि निकाय उन कार्यों का निर्वहन कर रहा है जो राज्य की संप्रभु कार्यों के समान हैं। किसी निकाय को सार्वजनिक कार्य करने के रूप में मान्यता देने के लिए, यह पाया जाना चाहिए कि उसकी गतिविधियाँ और कार्य सार्वजनिक हित को छूने वाले चरित्र से ओत-प्रोत हों, न कि किसी ऐसी चीज़ के विपरीत जो पूरी तरह से निजी चरित्र की हो सकती है। न्यायालय किसी भी सार्वजनिक कार्य तत्व को समझने में विफल रहता है जो समाज के उपनियमों से उत्पन्न हो सकता है। वह उपकरण वास्तव में और इसके विपरीत इंगित करता है कि सहकारी समिति अनिवार्य रूप से अपने सदस्यों के निजी हितों की रक्षा करने के बारे में चिंतित है।

31. अधिनियम के तहत सहकारी समिति के पंजीकरण की ओर मुड़ते हुए, शुरुआत में यह देखा जा सकता है कि उनके द्वारा विभिन्न निकायों के मामलों को कई प्रकार की

गतिविधियों और कार्यों के संबंध में असंख्य कानूनों द्वारा विनियमित और नियंत्रित किया जा सकता है। हालाँकि, केवल इसलिए कि किसी विशेष निकाय के मामलों को कानून द्वारा विनियमित किया जा सकता है, यह उठाए गए प्रश्न का निर्धारक नहीं हो सकता है। जैसा कि रामकृष्ण मिशन में सुप्रीम कोर्ट ने उचित रूप से कहा था, कानून एक "सर्वव्यापी घटना" है और एक निकाय के कामकाज के विभिन्न पहलुओं को छूता है। यह देखा गया कि केवल इसलिए कि एक निकाय विभिन्न वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन करने के लिए बाध्य है, इस सवाल का जवाब देने के लिए निर्णायक नहीं हो सकता है कि क्या यह एक सार्वजनिक कार्य का निर्वहन कर रहा है। तथ्य यह है कि सहकारी समिति अधिनियम के तहत पंजीकृत है या कि उपनियम या चुनाव की प्रक्रिया अधिनियम और नियमों से उत्पन्न हुई है, यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि यह न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होगी। यह न्यायालय विजय बिहारी श्रीवास्तव मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को भी ध्यान में रखता है, जहां यह प्रासंगिक रूप से देखा गया था कि केवल इसलिए कि किसी समाज के मामलों को निबन्धक द्वारा नियंत्रित किया जाता है, वह उस निकाय को "राज्य" नहीं बना देगा जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत विचार किया गया। एस.एस. राणा मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि कानून द्वारा किसी समाज का सामान्य विनियमन केवल उसके उचित कामकाज को सुनिश्चित करने के लिए है और उस इकाई की गतिविधियों को राज्य नियंत्रण

के अधीन नहीं किया जाएगा। कानून में उपरोक्त स्थिति मोहिंदर सिंह मामले में इस न्यायालय के फैसले से स्पष्ट रूप से उभरती है। यह ध्यान रखना उचित होगा कि सुशीला देवी भास्कर और एस.के. गंभीर, जिस पर श्री गर्ग ने भरोसा जताया था, उन मामलों से निपट रहे थे जहां अदालत ने पाया था कि सहकारी समितियां राज्य की नीति के कार्यान्वयन के लिए साधन और वाहन बन गई हैं और दिल्ली विकास प्राधिकरण के सहायक के रूप में कार्य कर रही हैं। यह उस पृष्ठभूमि में था कि रिट याचिकाओं को सुनवाई योग्य माना गया था।

32. न्यायालय ने आगे कहा कि रिट याचिका न तो किसी वैधानिक प्रावधान के उल्लंघन के आरोप पर आधारित है और न ही यह किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के निर्णय या कार्रवाई पर रोक लगाती है। ए. उमारानी मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जिसका श्री गर्ग ने हवाला दिया था, भी उपरोक्त कारणों से याचिकाकर्ताओं की सहायता के लिए नहीं आता है। यह देखा जा सकता है कि उपनियम समाज और उसके सदस्यों और सदस्यों के बीच एक अनुबंध का गठन करते हैं। उन उपनियमों का मात्र उल्लंघन संविधान के अनुच्छेद 226 को लागू करने को उचित नहीं ठहराया जाएगा। इस कारण से, यह भी माना जाना चाहिए कि रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी।

33. न्यायालय बिदाई के समय यह नोट कर सकता है कि यद्यपि श्री गर्ग ने विवाद के गुण-दोष से संबंधित विभिन्न तर्कों को

7.इला बृजेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम केंद्रीय पंजीयक, सहकारी समितियाँ, नई दिल्ली एवं अन्य 1265

संबोधित किया था, लेकिन न्यायालय के निष्कर्ष के आलोक में उन पर विचार नहीं किया गया है कि रिट याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं है। परिणामस्वरूप, न्यायालय याचिकाकर्ताओं के लिए यह खुला छोड़ देता है कि वे उन मुद्दों को, यदि चुना और सलाह दी गई है, उचित मंच के समक्ष और कानून के अनुसार उठा सकते हैं।

34. तदनुसार, और उपरोक्त कारणों से, चूंकि रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सुनवाई योग्य नहीं पाई गई है, इसलिए इसे खारिज किया जाता है। परिणामस्वरूप सभी अंतरिम आदेश निष्प्रभावी माने जाएंगे।”

39. माना कि 31.07.2015 को हुए चुनाव में प्रथम याचिकाकर्ता को तीसरी बार मण्डल का अध्यक्ष चुना गया। मण्डल की बैठक दिनांक 27.09.2018 को हुई; कार्यवाहक सचिव ने कार्यसूची मद के अंतर्गत 26 प्रस्ताव प्रस्तुत किये थे, जिनमें से 07 प्रस्ताव अस्वीकृत किये गये तथा 19 प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। अभिलेखों से पता चलता है कि पहले याचिकाकर्ता द्वारा 24 प्रस्ताव पारित किये गये थे। हालाँकि, एक राजेश कुमार सिंह ने प्रस्ताव संख्या 25 पेश किया। उक्त मद पर चर्चा के समय, प्रथम याचिकाकर्ता बैठक से बाहर चला गया और कार्यवृत्त पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। मण्डल के नौ सदस्यों में से छह सदस्यों ने 'अविश्वास प्रस्ताव' के पक्ष में मतदान किया और केवल एक सदस्य ने 'अविश्वास प्रस्ताव' के विरोध में मतदान किया और पहला याचिकाकर्ता अनुपस्थित था। उपनियम क्रमांक 33 के

अनुसार, जिसमें प्रावधान है कि मण्डल के सदस्य बहुमत से अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं, अतः वे उन्हें बहुमत से हटा भी सकते हैं। बेशक, यह समाधान 2018 की रिट सी संख्या 42730 में चुनौती के अधीन था, जिसमें इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 20.12.2018 के आदेश के तहत इस हद तक राहत दी थी कि चूंकि याचिकाकर्ता पहले ही अधिनियम 2002 की धारा 84 के तहत संदर्भ ले चुके हैं। तदनुसार, प्रथम प्रतिवादी (केंद्रीय सहकारी समितियाँ के निबन्धक, कृषि और सहयोग विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली) को निर्णय लेने के लिए एक निर्देश जारी किया गया था। नतीजतन, केंद्रीय निबन्धक ने दिनांक 28.05.2019 के आदेश के तहत मामले को अधिनियम, 2002 की धारा 84 के तहत संदर्भित करने से इनकार कर दिया था, जो 2019 की रिट सी संख्या 29112 में फिर से चुनौती का विषय था। नतीजतन, याचिकाकर्ताओं द्वारा 23.03.2019 को केंद्रीय निबन्धक को शिकायत देते हुए मामला भी स्थापित किया गया है, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि 06 निदेशक याचिकाकर्ताओं को बिना कोई जानकारी दिए निदेशक मंडल की बैठक बुला रहे थे। बाद में, याचिकाकर्ताओं ने समिति के मामलों की जांच के लिए केंद्रीय निबन्धक के समक्ष अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत एक आवेदन दायर किया। एक बार जब केंद्रीय निबन्धक ने उक्त शिकायत पर कोई संज्ञान नहीं लिया, तो प्रथम याचिकाकर्ता ने अशोक कुमार पांडे के साथ 2019 की रिट सी संख्या 38998 को फिर से प्राथमिकता दी। उक्त रिट याचिका में, याचिकाकर्ताओं ने कभी भी 'अविश्वास प्रस्ताव'

के लिए किसी राहत का दावा नहीं किया। और 13.01.2020 को रिट याचिका का निपटारा करते हुए, केंद्रीय निबन्धक को अधिनियम, 2002 की धारा 78 के तहत दायर याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर विचार करने के लिए कहा गया था। उक्त आवेदन पर निर्णय लेते हुए, केंद्रीय निबन्धक, सहकारी समितियों ने 02.03.2020 को एक जांच के लिए आदेश पारित किया था। उक्त आदेश को यहां पहले ही पुनः प्रस्तुत किया जा चुका है, जिसमें याचिकाकर्ताओं ने केंद्रीय निबन्धक के समक्ष समिति के अध्यक्ष और सचिव के रूप में प्रतिस्पर्धी प्रतिवादीयो की स्थिति को स्वीकार किया था। इसलिए, इस विलंबित चरण में वर्ष 2018 में हुए 'अविश्वास प्रस्ताव' को चुनौती देना कानूनन मान्य नहीं है और तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

40. अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) में प्रावधान है कि किसी मण्डल का कोई भी सदस्य लगातार दो बार इस पद पर रहने के बाद बहु राज्य सहकारी समिति के अध्यक्ष या सभापति के रूप में चुने जाने के लिए, चाहे पूर्ण या आंशिक रूप से पात्र नहीं होगा। 28.05.2019 को केंद्रीय निबन्धक द्वारा याचिकाकर्ताओं की शिकायत पर निर्णय लेते हुए यह माना गया कि प्रथम याचिकाकर्ता अधिनियम, 2002 की धारा 44 (2) के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित होने के लिए पात्र नहीं था। जहां तक उक्त टिप्पणी का संबंध है, आज तक किसी भी सक्षम न्यायालय ने इसे खारिज नहीं किया है और इसलिए, इसे अंतिम रूप मिल गया है। पार्टियों की यह स्वीकृत स्थिति है कि पहले

याचिकाकर्ता को वर्ष 2015 में तीसरी बार अध्यक्ष के रूप में चुना गया था। इसके अलावा, 'अविश्वास प्रस्ताव' पर कार्रवाई की गई थी। माना जाता है कि पहले याचिकाकर्ता ने 2017 से 2020 तक बैंक के अध्यक्ष के रूप में कोई कार्य नहीं किया है। निदेशक मंडल, जो 31.07.2015 को चुने गए थे, को 31.07.2020 तक अपना 05 वर्ष का कार्यकाल पूरा करना था। सहकारी बैंक के निदेशक मंडल ने 25.10.2019 को बैठक बुलाई थी जिसमें चुनाव कराने के लिए चुनाव अधिकारी नियुक्त किया गया था, जिसकी सूचना 04.11.2019 को पंजीकृत डाक के माध्यम से केंद्रीय निबन्धक को भी दी गई थी। नया चुनाव हुआ और 19.02.2020 को नए मण्डल का गठन किया गया, जिसमें अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित 11 निदेशक चुने गए। नया मण्डल 19.02.2020 से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, कि उक्त चुनाव को अधिनियम, 2002 की धारा 85 के तहत प्रदान की गई सीमा अवधि के तहत कभी भी चुनौती नहीं दी गई थी और इसलिए, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, चुनाव, जो 18.02.2020 और 19.02.2020 को हुआ था, अंतिमता को प्राप्त हो गया है।

41. इसलिए, इस स्तर पर हम यह जोड़ना चाहेंगे कि यदि कोई शून्यता है या सहकारी मण्डल, मण्डल के सदस्यों का चुनाव कराने में विफल रहता है, तो केंद्रीय निबन्धक को अधिनियम, 2002 की धारा 45 (6) के अनुसार, वह तारीख जब ऐसा चुनाव होने वाला था, 90 दिनों की अवधि के भीतर चुनाव

कराने का अधिकार है। इसके अलावा, नियम, 2002 के नियम 19 (1) में यह भी प्रावधान है कि मण्डल के सदस्यों का चुनाव, मण्डल द्वारा अपनी बैठक में नियुक्त चुनाव अधिकारी द्वारा किया जाएगा। यह भी दावा किया गया है कि चुनाव के बाद केंद्रीय निबन्धक के कार्यालय को उचित जानकारी भेजी गई थी और इसलिए, किसी भी स्तर पर अधिनियम, 2002 की धारा 123 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए बहु राज्य सहकारी समिति /बैंक के मण्डल को अधिक्रमण करने की कोई स्थिति नहीं थी।

42. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तर्क कानून में टिकाऊ नहीं हैं और तदनुसार, याचिकाकर्ताओं को कोई राहत नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के इच्छुक नहीं हैं।

43. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 7 ILRA 961

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 1405

वर्ष 2023

गगन पाल सिंह आहूजा एवं अन्य

...आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

आवेदकगण के अधिवक्ता:

श्री हतुध्वज प्रताप साही, श्री संकल्प नारायण, श्री राघव देव गर्ग, श्री अनुराग खन्ना (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अनुराग वाजपेयी, श्री पद्माकर पांडेय, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

दाण्डिक विधि - दाण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 -

धारा 319 एवं 482 --- यद्यपि पक्षकारों के मध्य समझौता हो चुका है तथा प्रतिपक्षी संख्या-2 को संतोषजनक रूप से धनराशि प्राप्त हो गई है, तथापि गुप्त रूप से प्रतिपक्षी संख्या-2 ने लोक अभियोजक के माध्यम से धारा 319 --- के अंतर्गत अधिकार का प्रयोग करते हुए आवेदकों को तलब करने हेतु एक आवेदन प्रस्तुत करा दिया अधीनस्थ न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ रहे कि पक्षकारों के मध्य समझौता तथा समझौते के पक्षकारों (जो समझौते के पक्षकार हैं) को तलब किया जाना एक साथ नहीं चल सकते। दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं और यह आवेदन किसी परोक्ष उद्देश्य से लोक अभियोजक के माध्यम से प्रस्तुत की गई --- प्रतिपक्षी संख्या-2 का उद्देश्य आवेदकों से ब्याज के रूप में अधिक धनराशि प्राप्त करना है और इसी कारण उसने लोक अभियोजक का प्रयोग किया, किन्तु तथ्य यह है कि उसने पूर्व में समझौता कर लिया था

तथा स्पष्ट सहमति के साथ कि धनराशि प्राप्त करने के पश्चात् वह आवेदकों का उपरोक्त अपराध में अभियोजन नहीं करेगा, फिर भी उसने अनुकूल आदेश प्राप्त कर लिए जो कि निरस्त किए जाने योग्य हैं। (प्रस्तर 45)

आवेदन स्वीकृत किया गया। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. परबतभाई आहिर @ परबतभाई भीमसिंहभाई कर्मूर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, प्रतिवेदित (2017) 9 एससीसी 641
2. लवली सल्होत्रा एवं अन्य बनाम राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली (2017) एससीसी ऑनलाइन एससी (636)
3. विजय कुमार गुप्ता बनाम राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार, आपराधिक विविध संख्या 2289 वर्ष 2013 दिनांक 09.03.2017
4. जयराम सिंह दिग्विजय सिंह राणा बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2012) 12 एससीसी 401
5. कपिल गुप्ता बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार, प्रतिवेदित (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1030
6. नरेंद्र सिंह बनाम पुणग के राज्य (2014) 6 एससीसी 466
7. शिजी उर्फ पप्पू व अन्य बनाम राधिका व अन्य, (2011) 10 एससीसी 705
8. डिम्पी गुजराल व अन्य बनाम केंद्र शासित प्रदेश प्रशासक, केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ व अन्य के माध्यम से, (2013) 11 एससीसी 497

9. परबतभाई अहीर उर्फ परबतभाई भीमसिंहभाई कर्मूर व अन्य बनाम गुजरात व अन्य, (2017) 9 एससीसी 641

10. योगेंद्र यादव व अन्य बनाम झारखंड व अन्य और अन्य (2014) 9 एससीसी 653

11. बी.एस. जोशी व अन्य बनाम हरियाणा व अन्य (2003) 4 एससीसी 675

12. हरदीप सिंह व अन्य बनाम पुणे व अन्य एआईआर 2014 एससी 1400 में प्रतिवेदित

13. कल्याण कुमार गोगोई बनाम आशुतोष अग्निहोत्री एवं अन्य, एआईआर 2011 एससी 760 में प्रतिवेदित

14. लाल सूरज उर्फ सूरज सिंह और अन्य। बनाम सेंट झारखंड, (2009) 2 एससीसी 696 में प्रतिवेदित

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

[1] याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री संकल्प नारायण, श्री राघव देव गर्ग, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री अनुराग वाजपेयी, श्री पद्मकर पांडे, राज्य की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अजय कुमार शर्मा और श्री एस.एम.ए फराज काजमी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

[2] चूंकि, चुनाव लड़ने वाले दलों के बीच दलीलों का आदान-प्रदान किया गया है और इस तरह, मामला अंतिम प्रस्तुतियों के लिए परिपक्व है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस न्यायालय की पूर्ण शक्तियों का आह्वान करते

हुए, याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई प्रार्थना इस प्रकार है: -

"माननीय अदालत धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करने की कृपा कर सकती है और परबतभाई अहीर (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के संदर्भ में, जहां तक याचिकाकर्ता थाना-नजीराबाद, जिला कानपुर नगर में दर्ज अपराध संख्या 0264 वर्ष 2018 संबंधित हैं, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए एक उचित आदेश पारित करें, और पुनरीक्षण अस्वीकृति आदेश दिनांक 16.12.2022 के साथ-साथ आवेदकों को जारी किए गए समन दिनांक 22.11.2022 को भी रद्द करें ताकि न्याय किया जा सके।

[3] तर्कों के दौरान, याचिकाकर्ता के लिए पेश होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना द्वारा यह आग्रह किया गया था कि वे परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की शर्तों में वर्तमान आवेदन की अनुमति दें, (2017) 9 एस.सी.सी 641 में रिपोर्ट किया गया, 4 अक्टूबर, 2017 को निर्णय लिया गया और इस मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए अन्य प्रकार के निर्णयों के अलोक में धारा 420, धारा 406, 467, 468, 471, 386, 389, 120बी, 504 और 506 भ०द०वि० थाना-नजीराबाद, जिला-कानपुर नगर में दर्ज के तहत अपराध संख्या 0264 वर्ष 2018 के मामले में, आवेदकों के संबंध में उपरोक्त नामित पक्षों के

बीच दिनांक 04.10.2019 और 10.10.2019 के समझौते के आलोक में, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए एक उचित आदेश पारित करें; और विद्वान सत्र न्यायालय, कानपुर नगर द्वारा पारित पुनरीक्षण आदेश दिनांक 16.12.2022 को रद्द करने का आदेश पारित करें, जिसके द्वारा धारा 319 द०प्र०स० के तहत अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 3, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.08.2022 के खिलाफ आवेदकों द्वारा मांगे गए संशोधन की अनुमति दी गई है, और अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर द्वारा आवेदकों के खिलाफ समन जारी किया गया है। अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने उपरोक्त मामले में अगली तारीख 22.11.2022 तय की।

[4] मैंने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को उनकी संतुष्टि के लिए विस्तार से सुना है। कानूनी मुद्दे की सराहना करने के लिए, मामले, जिसने वर्तमान विवाद को जन्म दिया है, के तथ्यात्मक मैट्रिक्स को एक विहंगम दृष्टिकोण देना अनिवार्य है।

तथ्यात्मक मैट्रिक्स:-

[5] प्रस्तुत 482 द०प्र०स० आवेदन में गगन पाल आहूजा पुत्र प्रीत पाल सिंह आहूजा और उनके पिता प्रीत पाल सिंह आहूजा पुत्र दर्शन सिंह निवासी हाउस नंबर 7, सिल्वर मेशन, सिल्वर स्प्रिंग, फेज-I, बाईपास रोड, इंदौर, (म.प्र.) द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट के उपरोक्त आदेशों दिनांक 23.08.2022 को चुनौती देने के साथ-साथ विद्वान सत्र न्यायाधीश, कानपुर

नगर द्वारा पारित विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय दिनांक 16.12.2022 द्वारा पुष्टि के आदेश को चुनौती दी गई है। जहां इस तथ्य के बावजूद कि पक्षकार समझौता कर चुके हैं और प्रतिपक्षी को उसकी संतुष्टि के अनुसार राशि प्राप्त हो गई है, गुप्त तरीके से, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग में आवेदकों (जो गैर-आरोपी हैं) को बुलाने के लिए लोक अभियोजक के माध्यम से एक आवेदन दायर करने में कामयाबी हासिल की है।

[6] 01.01.2015 को, एक साझेदारी विलेख निष्पादित किया गया था जिसमें (i) सुश्री मीता दुआ, सोनू दुआ की पत्नी (ii) देवेंद्र सिंह दुआ (पक्ष संख्या 2) (iii) गगन पाल सिंह आहूजा-याचिकाकर्ता नंबर 1 और एक जसपाल सिंह आहूजा को साझेदारी फर्म मेसर्स ए.के. एंटरप्राइजेज के भागीदार के रूप में शामिल किया गया था, जिसका पंजीकृत कार्यालय दुकान नंबर 33, केनाल मार्केट लाजपत नगर, कानपुर में है। प्रीतपाल सिंह, याचिकाकर्ता नंबर 2 को उक्त साझेदारी फर्म से कोई लेना-देना नहीं है, लेकिन गगन पाल सिंह आहूजा के पिता प्रतिपक्षी नंबर-2 को कुछ निहित कारणों से, को अनावश्यक रूप से इस अपराध में घसीटा गया है।

[7] दिनांक 07.05.2015 और 10/12.06.2015 को विक्रम सिंह चौहान एवं श्री मान सिंह द्वारा मेसर्स ए.के. एंटरप्राइजेज के पक्ष में ग्राम हातीपुरा तहसील बड़ौदा, जिला-आगरा मालवा, मध्य प्रदेश में कुछ भू-संपत्ति के संबंध में कथित रूप से एक विक्रय विलेख निष्पादित

किया गया था। याचिकाकर्ता नंबर-1, गगन पाल आहूजा ने साझेदारी फर्म यानी मेसर्स ए.के. एंटरप्राइजेज की ओर से उक्त बिक्री विलेख का समर्थन किया। पूर्वोक्त बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए प्रतिफल 67 लाख रुपये और 50 लाख रुपये था और इसका भुगतान क्रमशः प्रतिवादी नंबर-2 और याचिकाकर्ता नंबर-1 द्वारा किया गया था। प्रतिवादी नंबर-2 ने सीधे श्री विक्रम सिंह और श्री मान सिंह को राशि का भुगतान किया।

[8] वर्ष 2016 में राशि को पचाने के बाद, उक्त विक्रम सिंह चौहान ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उपरोक्त भूमि संपत्ति के संबंध में तथाकथित बिक्री विलेख कभी पंजीकृत नहीं किया गया था और कहा गया था कि लेनदेन कानूनी रूप से पूरा नहीं हुआ था। यह भांपते हुए कि कुछ खतरे वाली बात हो सकती है, श्री देवेंद्र सिंह दुआ-प्रतिवादी नंबर-2 उक्त साझेदारी फर्म से पीछे हट गए हैं और सुश्री मीता अग्रवाल, पत्नी सोनू दुआ, गगन पाल सिंह आहूजा और जसपाल सिंह आहूजा के बीच 01.04.2016 को एक नया साझेदारी विलेख अस्तित्व में आया।

[9] विक्रम सिंह चौहान और अन्य के नापाक इरादों का पता चलने के तुरंत बाद, 16.10.2017 को, गगन पाल सिंह आहूजा, याचिकाकर्ता नंबर 1 ने स्वयं थाना-आगरा, जिला-मालवा, मध्य प्रदेश में धारा 420, 467, 468, 471, 406 भ०द०वि० के तहत विक्रम सिंह चौहान के खिलाफ याचिकाकर्ता नंबर 1 और उसकी साझेदारी फर्म के खिलाफ कपट और धोखाधड़ी करने के कथित कृत्य के लिए

प्राथमिकी दर्ज की है। जांच के बाद दिनांक 15.05.2018 को जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 15.05.2018 को सी.एस क्रमांक 93 के रूप में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और श्री विक्रम सिंह चौहान को मध्यप्रदेश पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

[10] दूसरी ओर, प्राथमिकी नंबर 0246 वर्ष 2018 को प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा थाना-नजीराबाद, कानपुर नगर में धारा 420, 406, 467, 468, 471, 386, 389, 120बी, 504, 506 भ०द०वि० के तहत गगन पाल सिंह और उनके पिता प्रीत पाल सिंह के साथ मान सिंह और विक्रम सिंह चौहान के खिलाफ दर्ज की गई थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रीत पाल सिंह को इस मामले में सिर्फ इसलिए शामिल किया गया था क्योंकि वह याचिकाकर्ता नंबर-1 के पिता थे, हालांकि वास्तव में, उन्हें उपरोक्त लेनदेन से कोई लेना-देना नहीं है।

[11] इस मोड़ पर, जब जांच प्रगति पर थी, 01.10.2019 को, गुरदीप सिंह, सुरजीत सिंह, सोनू दुआ और एक सरन जीत सिंह गुजराल की उपस्थिति में आवेदकों के साथ सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी नंबर-2 के साथ मिले और उन्हें अदालत के बाहर विवाद को निपटाने के लिए राजी किया। सभी गलतफहमियों को दूर करने के बाद उनके साथ एक करार और समझौता हुआ। संतुष्ट होने के बाद, प्रतिवादी नंबर-2 ने एक समझौता किया और पक्षों पर यह सहमति हुई कि याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर-2 को 67 लाख रुपये की राशि का भुगतान करेंगे। राशि लेने के बाद यह भी सहमति बनी कि प्रतिपक्षी क्रमांक 2 दिनांक

04.10.2019 एवं 10.10.2019 (याचिका के संलग्नक-11 एवं 12) के आलोक में 2018 के अपराध क्रमांक 264 में आवेदकों के विरुद्ध कार्यवाही नहीं करेगा। अनुलग्नक-12 से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने क्रमशः सुश्री मीता दुआ और श्री देवेंद्र सिंह दुआ के पक्ष में विभिन्न तिथियों के 19 पोस्ट डेटेड चेक दिए हैं, जिनका विवरण एस.एस.पी कानपुर नगर को संबोधित समझौता पत्र में दिया गया था। यहां यह बताना दिलचस्प है कि इससे पहले, गवाहों सोनू दुआ और सरनजीत सिंह गुजराल के सामने मीता दुआ, देवेंद्र सिंह दुआ और गगन पाल सिंह आहूजा द्वारा एक समझौता विलेख पर हस्ताक्षर किए गए थे।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि जब वे चेक बकाया थे, उन्हें क्रमशः मीता दुआ और देवेंद्र सिंह दुआ के खाते में विधिवत भुनाया गया था और पूरी बकाया राशि उनके संबंधित खातों में जमा की गई थी। इस प्रकार, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने स्वीकार किया है कि अगर आवेदकों के खिलाफ अभियोजन छोड़ दिया जाता है, उसे कोई आपत्ति नहीं है। प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा उक्त पावती को ध्यान में रखते हुए, मामले के विवेचनाधिकारी ने केस डायरी के हिस्से के रूप में पक्षों के बीच उन समझौते/समाधान को लेने और उन्हें परचा तितिम्मा नंबर 4 में रिकॉर्ड पर लेने के बाद ही आवेदकों के खिलाफ 'क्लोजर रिपोर्ट' प्रस्तुत की है।

[12] आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, शेष अभियुक्तों को उनके खिलाफ आरोप तय करने के बाद मुकदमा चलाया गया। यह इंगित करना उचित है कि वर्तमान आवेदकों के

खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाया गया था क्योंकि वे गैर-आरोपी थे, और उनके नाम विवेचनाधिकारी द्वारा चुनाव लड़ने वाले पक्षों के बीच उपरोक्त समझौते और निपटान के कारण हटा दिए गए थे। 06.04.2021 और 06.12.2021 को मुख्य परीक्षण और इसकी जिरह में, अ०सा०-1, सूचनाकर्ता देवेंद्र सिंह दुआ ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है (ए) कि शुरू में उसे 67 लाख से ठगा गया है; (ख) उसने याचिकाकर्ता के साथ समझौता विलेख पर अपनी इच्छा से बिना किसी जबरदस्ती या धमकी के हस्ताक्षर किए हैं और (ग) उसे समझौता विलेख के क्रम संख्या 1 से 19 तक उल्लिखित 19 पोस्ट डेटेड चेक प्राप्त हुए हैं और सभी चेक उनके संबंधित खाते में विधिवत भुनाए गए थे। अ०सा०-1 देवेंद्र सिंह दुआ की गवाही के प्रासंगिक उद्धरण नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

आज दिनांक 06.12.2021 को साक्षी देवेंद्र सिंह दुआ पुत्र श्री अमीर सिंह सशपथ पत्र बयान किया-

इस पूरे मामले में मेरे वह मेरी बड़ी बहू श्रीमती मीता दुआ का कुल 67 लाख रुपया निवेश हुआ था! पत्रावली में संलग्न सुलहनामा एवं क्षतिपूर्ति के कागजात के संबंध में सहमति हेतु पत्र दिनांकित कर 04.10.19 प 2 में प्रथम पक्ष के रूप में लगा हुआ चित्र मेरा है तथा इस पर लगा हुआ निशानी अंगूठा भी मेरा है! इस समझौता पत्र के पेज 6 के पारा 1 में दी गई 01 लगायत 19 तक की चेकों समस्त चेकों का भुगतान हो गया है! अभियुक्त विक्रम सिंह से मेरा कोई समझौता नहीं हुआ है! उसको 62 लाख रुपए दिए थे, उसने कोई भुगतान नहीं किया है!

जमीन के लेन-देन की बात वर्ष 2015 में नवंबर के आखिरी सप्ताह में हुई थी! उसे जमीन का मुआयना उसे समय मैंने किया था! इन जमीनों के कागजात कि मैं जांच कराई थी! इन जमीनों के स्वामी अनेक थे, जिसका मुख्तारनामा विवेक के पास था! प्रीतपाल सिंह व गगन पाल सिंह द्वारा कहा गया कि कागजात एकदम सही है! मैंने जांच की है! उनकी बात पर विश्वास करके मैंने जमीन का सौदा किया था!

समयाभाव के कारण जिरह स्थगित की गई! जिरह जारी रहे!

[13] पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि प्रतिपक्षी संख्या 2 ने बिना किसी अनिश्चित शब्दों में 67 लाख रुपये की प्राप्ति को स्वीकार किया है, जो क्रमशः अनुलग्नक-11 और 12 के रूप में संलग्न दिनांक 04.10.2019 और 10.10.2019 के समझौते के परिणामस्वरूप है।

[14] ऐसा लगता है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 के दिमाग में कुछ अलग प्लान है और यही कारण है कि उनके खातों में 67 लाख रुपये की पूरी बकाया राशि प्राप्त करने के बाद, आवेदकों को परेशान करने के लिए, दिखावटी आपराधिक मामले में, लोक अभियोजक को इस अपराध में आवेदकों को घसीटने के लिए राजी किया है, जिनके साथ प्रतिपक्षी नंबर-2 का पहले से ही समझौता है। आवेदकों को बिना किसी प्रत्याशा के, लोक अभियोजक श्री संदीप कुमार सिंह ने 21.02.2022 को धारा 319 द०प्र०स० के तहत लंबित मुकदमे के आरोपी के रूप में आवेदकों को जोड़ने के लिए

एक आवेदन दायर किया है, जो अपराध संख्या 264 वर्ष 2018 से उत्पन्न हो रहा है। यह शासकीय अधिवक्ता की ओर से अप्रत्याशित कदम था, जैसा कि आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि जो प्रतिपक्षी नंबर-2 के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध में प्रतीत होते हैं।

[15] इस आवेदन का जवाब देते हुए, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने 23.08.2022 को लोक अभियोजक द्वारा पेश उक्त आवेदन की अनुमति दी है और अंततः गगन पाल सिंह आहूजा और उनके पिता प्रीत पाल सिंह आहूजा को अतिरिक्त आरोपी के रूप में तलब किया है, आवेदकों को समन जारी करते हुए 26.09.2022 को अगली तारीख तय की गई है। विद्वान अतिरिक्त सी.एम.एम. कोर्ट नंबर 3, कानपुर नगर ने कहा कि:

अवलोकन से दर्शित है कि न्यायालय में दाखिल आरोप पत्र में यह स्पष्ट है कि अभियुक्त विक्रम सिंह चौहान तथा गगन पाल सिंह के विरुद्ध न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल किया गया था तथा गगन पाल सिंह व प्रीतपाल सिंह की कार्यवाई को शेष बताया गया है।

विवेचक द्वारा पर्चा तितिम्मा 4 में गगन पाल सिंह व प्रीतपाल सिंह का सुलहनामा क्षतिपूर्ति भुगतान के आधार पर विवेचना समाप्त की दी गई थी। जबकि गवाहों के बयानों से यह स्पष्ट है कि अपराध गगन पाल सिंह व प्रीतपाल के द्वारा किया जाना दर्शित है। सुलहनामा कर लेने से अभियुक्त गण का अपराध समाप्त नहीं हो जाता है अतः

प्रार्थी का प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 319 द० प्र० स० स्वीकार किए जाने योग्य है।

[16] श्री खन्ना, वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि यह बेईमानी का अनन्य और दुर्लभ मामला है जिसके तहत एक तरफ, प्रतिपक्षी ने उक्त समझौते में प्रवेश करने के बाद अपनी संतुष्टि के लिए 67 लाख रुपये की कुल राशि स्वीकार कर ली है, दूसरी ओर, उन्होंने धारा 319 के तहत शक्ति के प्रयोग में लंबित मुकदमे के अतिरिक्त आरोपी के रूप में आवेदकों को बनाने के लिए एक आवेदन दायर करने के लिए लोक अभियोजक के माध्यम से व्यवस्था की है।

[17] अतिरिक्त सी.एम.एम. कोर्ट नंबर 3, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.08.2022 से व्यथित होकर, लोक अभियोजक द्वारा दायर 319 द०प्र०स० आवेदन को अनुमति देते हुए, आवेदकों ने 2022 के आपराधिक संशोधन संख्या 390 के रूप में पंजीकृत धारा 397 द०प्र०स० के तहत आपराधिक संशोधन को प्राथमिकता दी है। अंततः, उस आपराधिक पुनरीक्षण को भी विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 23.08.2022 के आदेशों की पुष्टि करते हुए खारिज कर दिया। आवेदकों द्वारा पसंद किए गए उक्त पुनरीक्षण को अस्वीकार करते हुए, विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने निम्नलिखित का पालन करने की कृपा की:

अवर न्यायालय की पत्रावली के परिशीलन से यह भी विदित है कि देवेंद्र सिंह दुआ, श्रीमती मीठा दुआ प्रथम पक्ष व गगन पाल सिंह आहूजा वह जसपाल सिंह आहूजा

पुत्रगण प्रीतपाल सिंह आहुजा व प्रीतपाल सिंह के मध्य एक समझौता हुआ है जिसमें उन्होंने माना है कि मान सिंह व विक्रम सिंह ने कूट रचित अभिलेखों के आधार पर देवेंद्र सिंह वा मीता दुआ से 6700000/- रुपए की बेईमानी एवं धोखाधड़ी की थी और इसके आवाज में उन्होंने 6700000/- रुपए क्षतिपूर्ति के रूप में देना स्वीकार किया है। स्पष्ट है कि स्वयं अभियुक्त गण गगन पाल सिंह व प्रीतपाल सिंह ने भी प्रस्तुत प्रकरण में यह माना है कि उन्होंने वादी देवेंद्र सिंह दुआ मीता दुआ से धोखाधड़ी व बेईमानी की है। साक्षीगण अ०सा०-1 व 2 के साक्ष्य से इस स्तर पर यह भी साबित है कि अभियुक्त गण व उनके साथियों ने कूट रचित विक्रय पत्र के आधार पर वादी पक्ष को आर्थिक क्षति पहुंचाई गई है, तथा उनसे धोखाधड़ी की गई है, उन्हें धमकाया गया है उन्हें जान से मारने की धमकी दी गई है, गाली गलौज की गई है, तथा उन्हें बलात्कार के झूठे मुकदमे में फंसाने की धमकी दी गई है, तथा वादी पक्ष के 6700000/- रुपए हड़प लिए गए हैं। अभियुक्तगण द्वारा कार्य अपराध धारा 320 द०प्र०स० अंतर्गत शमनीय प्रकृति का नहीं है। ऐसी स्थिति में अभियुक्त गण वादी के बीच हुए कथित समझौते का प्रस्तुत वाद के तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तथा इस समझौते के आधार पर अभियुक्त गण को विचारण से मुक्त नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में अवर न्यायालय द्वारा अ०सा०-1 व 2 को साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त गण को धारा 319 द०प्र०स० में विचरण हेतु धारा 406 420 467 468 471 386 389 504 506 ... में आहूत करने में कोई विधिक त्रुटि कारित नहीं की गई

है। तदनुसार प्रस्तुत दंड निगरानी निरस्त किए जाने योग्य है।

[18] इसलिए, धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन क्रमशः दिनांक 23.08.2022 और 16.12.2022 के आदेश का विरोध करता है। रिकॉर्ड से, यह स्पष्ट है कि शेष सह-आरोपी व्यक्तियों विक्रम सिंह चौहान और मान सिंह के खिलाफ कार्यवाही अभी भी लंबित है और सुचारु रूप से आगे बढ़ रही है।

[19] इसके विपरीत, सोनू दुआ द्वारा शपथ ली गई पक्ष संख्या 2 के विपरीत देवेंद्र सिंह दुआ की ओर से एक छोटा प्रति शपथ पत्र दायर किया गया है और उक्त जवाबी हलफनामे में, पैराग्राफ नंबर 11 में, प्रतिशपथ पत्र के प्रतिवादी ने स्वीकार किया है कि 67 लाख रुपये की कुल राशि प्राप्त करने के बाद पक्षों के बीच 04.10.2019 और 10.10.2019 को समझौता विलेख निष्पादित किया गया है और उपरोक्त राशि के कुल सभी 19 पोस्ट डेटेड चेक भुनाए गए हैं और यह राशि विरोधी पक्ष संख्या 2 और सुश्री मीता दुआ के खातों में जमा की गई है। लेकिन शेष पैराग्राफ में, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता नंबर 1 और विक्रम सिंह चौहान के बीच कुछ समानता खींचने की कोशिश की है। लेकिन इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि 04.10.2019 और 10.10.2019 को हुए समझौते के परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी नंबर-2 के खाते में 67 लाख रुपये जमा किए गए थे।

[20] याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि निचली अदालतें इस

तथ्य से बेपरवाह थीं कि पक्षों के बीच समझौता है जो उनके बीच उनकी संतुष्टि के लिए आया था और चुनाव लड़ने वाले पक्ष उक्त समझौते से संतुष्ट थे। याचिकाकर्ता को बुलाने के लिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर करने का कोई अवसर या कारण नहीं था, जो वास्तव में विद्वान मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया था और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी। दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं और एक साथ सम्बन्ध में नहीं रह सकते। इसलिए, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि लोक अभियोजक की ओर से कार्रवाई भयावह मकसद को प्राप्त करने के लिए प्रेरित थी।

[21] उपरोक्त तथ्यात्मक मापदंडों पर, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी ने शुरुआत में पक्षों के बीच आंशिक समझौते और इसकी स्वीकार्यता के संबंध में अपनी प्रस्तुतियाँ उठाई हैं। दूसरे श्री तिवारी ने अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के दिनांक 23.08.2022 के आदेशों और 16.12.2022 के पुनरीक्षण आदेश का पुरजोर बचाव किया है, जिसमें अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के आदेशों की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि चूंकि उन समझौता विलेखों को मुकदमे के दौरान कभी पेश नहीं किया गया था और कभी भी साक्ष्य के एक हिस्से के रूप में प्रदर्शित नहीं किया गया था, इसलिए वे अभिव्यक्ति के दायरे में नहीं आएंगे। हरदीप सिंह के निर्णय में अपेक्षित साक्ष्य और इसलिए उक्त समझौते की जांच नहीं की जा सकती।

[22] आइए हम एक-एक करके हर मुद्दे से निपटें: -

(i) पक्षों के बीच शनै शनै समझौते की अनुमति

आधुनिक समाज में समझौता, सद्भाव और व्यवस्थित व्यवहार और न्याय की एकमात्र अनिवार्य शर्त है। यदि धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस तरह के समझौते को बढ़ाने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, जो बदले में, सामाजिक सौहार्द को बढ़ाता है और संघर्ष को कम करता है, तो यह "न्याय का सबसे अच्छा समय" है। विवाद जिसकी उत्पत्ति वैवाहिक कलह, मकान मालिक-किरायेदार मामलों, वाणिज्यिक लेनदेन और ऐसे अन्य मामलों में हुई है, उन्हें धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करके न्यायालय द्वारा सुरक्षित रूप से निपटाया जा सकता है। समझौते की स्थिति में, उक्त शक्ति का उपयोग उसकी समग्रता में उसके वास्तविक अर्थों में किया जाना है और इसका उपयोग इसके संक्षिप्त रूप में नहीं किया जाएगा। विशेष रूप से मुकदमेबाजी के दौरान, किसी भी पूर्वाभास के अभाव में, न्याय के कारण होने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी और पूर्वानुमान करने के लिए, ऐसी शक्ति के प्रयोग में कभी भी ऐसे कठोर नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं।

[23] पूर्ण न्याय करने की शक्ति प्रत्येक न्यायिक न्याय वितरण प्रणाली का सार है। यह विकृत धारणाओं से कमज़ोर नहीं हो सकता है और यह किसी भी चीज का गुलाम नहीं है, सिवाय सावधानी और चौकसी के, जिसके मानक न्यायालय ने अपने सामने रखे

हैं। जबकि न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए करुणा का लबादा धारण करते हुए, इस तरह के पूर्ण और अप्रभावी शक्ति के प्रयोग में स्वाभाविक रूप से निहित है। कोई भी प्रतिबंध, धारा 320 द०प्र०स० या इस तरह की किसी अन्य कटौती के रूप में, धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों को कम नहीं कर सकता है।

[24] इस संबंध में, आवेदकों के अधिवक्ता ने अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने वाले कानून के तहत एक शांतिदायक समझौता भी स्वीकार्य है। नवली सल्होत्रा और अन्य बनाम राज्य, एन.सी.टी. दिल्ली (2017) एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी (636) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि: -

"4. हमने विचाराधीन मामले के तथ्य को ध्यान में रखा है क्योंकि यह हमें प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता के खिलाफ कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है। उच्च न्यायालय का यह मानना गलत था कि प्राथमिकी को आंशिक रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है और उसे इस तथ्य का मूल्यांकन करना चाहिए कि अपीलकर्ताओं-यहां प्रतिवादी नंबर-2 द्वारा दायर शिकायत के आधार पर, केवल इस आधार पर कि सह-अभियुक्त के खिलाफ जांच अभी भी लंबित है, पीड़ित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह ध्यान देने योग्य है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने राय दी है कि सह-अभियुक्त संख्या 2, 3, 4 और 6 के खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है।

7. तदनुसार, हम उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं और अपीलकर्ताओं की प्राथमिकी को रद्द करते हैं।

[25] इसी प्रकार विजय कुमार गुप्ता बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य सरकार के मामले में आपराधिक विविध सं.2289 वर्ष 2013 दिनांक 09.03.2017 में पैराग्राफ संख्या 7 में कहा गया है कि:

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और इस तथ्य को देखते हुए कि याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी नंबर-2 को ऋण/निपटान राशि का भुगतान किया है और बेहतर और शांतिपूर्ण जीवन जीने और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वर्तमान याचिकाकर्ताओं के व्यक्तिगत जीवन में बाधा को दूर करने के लिए आगे कुछ भी नहीं बचा है। मैं याचिकाकर्ताओं विजय कुमार गुप्ता, राज कुमार शर्मा और विनोद चौधरी के खिलाफ भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 406/420/468/471 के तहत दर्ज प्राथमिकी संख्या 107/2003 को रद्द करना उचित समझता हूं।

[26] जयराम सिंह दिग्विजय सिंह राणा बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य (2012)12 एस.सी.सी 401 में रिपोर्ट किए गए मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि: -

"इस स्तर पर इस न्यायालय के समक्ष विचार करने के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि चूंकि वे सभी अपराध संहिता की धारा 320 के तहत शमनीय अपराध नहीं हैं (धारा 420 भ०द०वि० को छोड़कर, वह भी अदालत

की अनुमति के साथ जिसके समक्ष इस तरह के अपराध के लिए कोई अभियोजन लंबित है) क्या संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा या अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले इस न्यायालय द्वारा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत प्राथमिकी को रद्द करना संभव होगा?

8) उपरोक्त प्रश्न पर हाल ही में इस न्यायालय द्वारा शिजी @ पप्पू और अन्य बनाम राधिका और एन.आर. (2011)10 एस.सी.सी 705 में विचार किया गया था। उस मामले में पूछा गया प्रश्न था "क्या विचाराधीन आपराधिक कार्यवाही को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रद्द किया जा सकता है, जो कि पक्षों के बीच हुए समझौते के संबंध में है। संहिता की धारा 482 और विभिन्न निर्णयों का विज्ञापन करने के बाद, इस न्यायालय ने निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:

17. यह स्पष्ट है कि केवल इसलिए कि धारा 320 द०प्र०स० के तहत अपराध शमनीय नहीं है, उच्च न्यायालय के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग से इनकार करने का कोई कारण नहीं है। हमारी राय में इस शक्ति का प्रयोग उन मामलों में किया जा सकता है जहां अभियुक्त के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करने का कोई मौका नहीं है और मुकदमे की पूरी कवायद निरर्थक है। एक तरफ विचारण न्यायालय के समक्ष या अपील में पक्षों द्वारा अपराधों के शमन और दूसरी तरफ धारा 482 द०प्र०स० के तहत अभियोजन को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। जबकि एक अदालत एक अभियुक्त की सुनवाई

कर रही है या दोषसिद्धि के खिलाफ अपील की सुनवाई कर रही है, उन मामलों में पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर अपराध के शमन की अनुमति देने के लिए सक्षम नहीं हो सकती है, जहां अपराध धारा 320 के तहत शमनीय नहीं हैं, उच्च न्यायालय उन मामलों में भी अभियोजन को रद्द कर सकता है जहां जिन अपराधों के साथ आरोपी पर आरोप लगाया गया है, वे गैर-शमनीय हैं। धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां धारा 320 द०प्र०स० द्वारा नियंत्रित उद्देश्य के लिए नहीं हैं। ऐसा कहने के बाद, हमें यह जोड़ना चाहिए कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति की प्रचुरता, उच्च न्यायालय के लिए अत्यंत सावधानी और सतर्कता के साथ इसका प्रयोग करना अनिवार्य बनाती है। शक्ति की व्यापकता और प्रकृति ही मांग करती है कि इसका प्रयोग बख्शा जाए और केवल उन मामलों में जहां उच्च न्यायालय अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से स्पष्ट दृष्टिकोण रखता है कि अभियोजन को जारी रखना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं होगा। हमारे लिए उन स्थितियों का उल्लेख करना न तो आवश्यक है और न ही उचित है जिनमें धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग उचित हो सकता है। हमें केवल इतना कहने की आवश्यकता है कि शक्ति का प्रयोग न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए होना चाहिए और केवल उन मामलों में, जहां उस शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है, होना चाहिए। उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप कम करने में उचित ठहराया जा सकता है यदि उसे

साक्ष्य के मूल्यांकन करने के लिए कहा जाता है क्योंकि यह आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत एक याचिका से निपटने के दौरान अपीलीय अदालत की भूमिका ग्रहण नहीं कर सकता है। उपरोक्त के अधीन, उच्च न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा कि क्या यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें निहित शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है।

9) तथ्यात्मक विवरण, पहले के निर्णय, संहिता की धारा 320 के तहत विभिन्न अपराधों और संहिता की धारा 482 के आह्वान के माध्यम से, हम उक्त निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत हैं। इस मामले में, प्रतिवादी नंबर-2 शिकायतकर्ता और अपीलकर्ता के बीच पहले के विवाद के बावजूद आरोपी नंबर-3 के साथ-साथ आरोपी नंबर-1 और 2 के बाद और सभी सामग्री, प्रासंगिक विवरण आदि प्राप्त करने के बाद, वर्तमान अपीलकर्ता (आरोपी नंबर-3) ने प्रतिवादी नंबर-2 शिकायतकर्ता के पक्ष में अधिकार हासिल करने के इरादे से एक हलफनामा दिया। ऐसी वास्तविक परिस्थितियों में, धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अलावा, प्रतिवादी नंबर-2 शिकायतकर्ता और अपीलकर्ता (आरोपी नंबर-3) के बीच हुए समझौते के मद्देनजर, जहां तक वर्तमान अपीलकर्ता का संबंध है, दोषसिद्धि दर्ज करने की कोई संभावना नहीं है और मुकदमे की पूरी कवायद निरर्थक अभ्यास है। चूंकि मामला मुकदमे के चरण तक नहीं पहुंचा है, इसलिए हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय, संहिता की धारा 482 के तहत

निहित शक्ति का प्रयोग करके, यहां तक कि उन अपराधों में भी जो धारा 320 के तहत शमनीय नहीं हैं, अभियोजन को रद्द कर सकता है। हालांकि, जैसा कि शिजी (उपरोक्त) में देखा गया है, धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए और केवल उन मामलों में जहां उच्च न्यायालय दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, स्पष्ट विचार है कि अभियोजन जारी रखना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए होना चाहिए और केवल उन मामलों में जहां उस शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है।

[27] हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के क्षितिज का विस्तार करते हुए स्वीकार किया है कि यदि घटना में, पक्ष सहमत होते हैं और उन्होंने धारा 376 भ०द०वि० की कार्यवाही में भी समझौता किया है तो इसे लागू किया जा सकता है और बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों के संबंध में मुकदमे के चरण के आधार पर कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है, (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1030 में रिपोर्ट किए गए कपिल गुप्ता बनाम एन.सी.टी दिल्ली राज्य के मामले में अपनी राय व्यक्त की है, जबकि (2014) 6 एस.सी.सी. 466 में रिपोर्ट किए गए नरेंद्र सिंह बनाम पंजाब राज्य के फैसले पर भरोसा करते हुए धारा 482 द०प्र०स० के दायरे का विस्तार किया है। कपिल गुप्ता के मामले का पैराग्राफ नंबर 13 और 14 नीचे दिया गया है: -

13. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि यद्यपि न्यायालय को उन कार्यवाहियों को रद्द करने में धीमा होना चाहिए जिनमें जघन्य और गंभीर अपराध शामिल हैं, उच्च न्यायालय को इस बात की जांच करने से पहले नहीं छोड़ा जाता है कि क्या इस तरह के अपराध को शामिल करने के लिए सामग्री मौजूद है या क्या पर्याप्त सबूत हैं जो साबित होने पर आरोपित अपराध के लिए आरोप साबित करेंगे। न्यायालय को यह भी विचार करना होगा कि क्या पक्षों के बीच समझौता उनके बीच सामंजस्य पैदा करने जा रहा है जो उनके आपसी संबंधों में सुधार कर सकता है।

14. न्यायालय ने आगे कहा है कि कार्यवाही का चरण क्या है, इस पर विचार करना भी प्रासंगिक है। यह देखा गया है कि यदि कोई आवेदन विलम्बित चरण में किया जाता है जिसमें साक्ष्य का नेतृत्व किया गया है और मामला बहस या निर्णय के चरण में है, तो न्यायालय को कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग करने में धीमा होना चाहिए। हालांकि, अगर इस तरह का आवेदन विचारण शुरू होने से पहले प्रारंभिक चरण में किया जाता है, तो उक्त कारक अपनी शक्ति का प्रयोग करने में अदालत के साथ वजन करेगा।

इस प्रकार, संहिता की धारा 482 के तहत बलात्कार जैसे जघन्य अपराध में अपनी शक्ति का प्रयोग करने का निर्णय लेना, निपटान के समय एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे मामले जहां कथित अपराध के होने के तुरंत बाद समझौता हो जाता है और मामला अभी भी जांच के अधीन है, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही/जांच को रद्द

करने के लिए समझौते को स्वीकार करने में उदार हो सकता है। यही कारण है कि इस स्तर पर, जांच अभी भी जारी है और यहां तक कि आरोप पत्र भी दायर नहीं किया गया है।

[28] इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त अनुपात की तुलना करते हुए, जिसके तहत अदालत ने शनैः शनैः समझौता करने की अनुमति दी है, जिसका अर्थ है कि कुछ आरोपी व्यक्तियों के साथ एक समझौता, मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 ने वैध रूप से 04.10.2019 और 10.10.2019 को आवेदकों के साथ समझौता किया है और बाकी आरोपित आरोपियों को छोड़ दिया है।

[29] मैंने अतिरिक्त सी.एम.एम.एम. कानपुर नगर की दिनांक 23.08.2022 के आदेश का अवलोकन किया है जिसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि केवल पक्षों के बीच समझौते के आधार पर, अपराध की गंभीरता को समाप्त नहीं किया जा सकता है या अपराध को मिटाया नहीं किया जा सकता है और इसलिए, लोक अभियोजक द्वारा दायर 319 द०प्र०स० आवेदन की अनुमति दी है।

[30] जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, विद्वान ए.सी.एम.एम. कानपुर नगर ने समझौते और परचा तितिम्मा नंबर 4 की अनदेखी करते हुए गलत तरीके से कहा है कि केवल समझौता करने से सजा या अपराध की कठोरता समाप्त नहीं होगी। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा यह निष्कर्ष माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (i) शिजी @ पप्पू और अन्य बनाम

भारत संघ और अन्य बनाम भारत राधिका और अन्य, (2011) 10 एस.सी.सी 705 (ii) डिंपी गुजराल और अन्य बनाम केंद्र शासित प्रदेश प्रशासक, यूटी चंडीगढ़ और अन्य के माध्यम से, (2013) 11 एस.सी.सी 497 (iii) परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2017) 9 एस.सी.सी 641 (iv) योगेंद्र यादव और अन्य। बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2014) 9 एस.सी.सी 653 (v) बीएस जोशी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2003) 4 एस.सी.सी 675 में दिए गए निर्णय से लिया गया है।

[31] उपरोक्त निर्णय के परिदृश्य में, ए.सी.एम.एम., कानपुर नगर द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष पूर्वोक्त निष्कर्षों के विपरीत हैं।

[32] इसी तरह, जब पुनरीक्षण न्यायालय ने विचार किया, तो यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि द०प्र०स० की धारा 320 के प्रावधान के तहत अपराध शमनीय अपराध नहीं है, और इसलिए, यह उल्लेख किया गया है कि उक्त समझौते का अपराध में कोई असर नहीं पड़ा है। कानून का यह प्रस्ताव अस्वीकार्य है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, धारा 482 द०प्र०स० का दायरा और विस्तार द०प्र०स० की धारा 320 की तुलना में बहुत व्यापक है। उपरोक्त निर्णयों में, इस न्यायालय ने पहले ही विस्तृत रूप से चर्चा की है जिसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है और इस प्रकार, विद्वान ए.सी.एम.एम. कानपुर नगर और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित

निर्णय और आदेश दोनों माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए मामले के पूर्वोक्त अनुपात सीधे विरोध में हैं और इसे अलग रखा जा सकता है।

(ii) धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में 'साक्ष्य' शब्द की अभिव्यक्ति।

[33] चूंकि, इस 482 दंड प्रक्रिया संहिता आवेदन का मुख्य मुद्दा क्रमशः ए.सी.एम.एम.-III, कानपुर नगर द्वारा पारित कथित दो आदेश दिनांक 23.08.2022 और 16.12.2022 है और इसकी पुष्टि का आदेश क्रमशः सत्र न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा दिया गया है। इस संबंध में, धारा 319 द०प्र०स० के प्रावधान के महज खाके को स्पष्ट करना अनिवार्य है जो इस प्रकार है: -

धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति।

(1) जहां किसी अपराध की किसी जांच या विचारण के दौरान, साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति, जो अभियुक्त नहीं है, ने कोई अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का विचारण अभियुक्त के साथ किया जा सकता है, तो न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकेगा जो उसने किया प्रतीत होता है।

(2) जहाँ ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहा है, वहाँ पूर्वोक्त प्रयोजन के लिये उसे गिरफ्तार किया जा सकेगा या तलब किया जा सकेगा, जैसा कि मामले की परिस्थितियों से अपेक्षित हो।

(3) न्यायालय में उपस्थित होने वाला कोई भी व्यक्ति, हालांकि गिरफ्तारी के तहत या सम्मन पर नहीं, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध की जांच या परीक्षण के उद्देश्य से हिरासत में लिया जा सकता है, जो उसने किया प्रतीत होता है।

(4) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करता है, तब-

(क) ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाहियां नए सिरे से आरंभ की जाएंगी और साक्षियों को पुनः सुना जाएगा;

(ख) खंड (क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, मामला इस प्रकार आगे बढ़ सकेगा जैसे कि ऐसा व्यक्ति अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान लिया था जिस पर जांच या विचारण प्रारंभ किया गया था।

[34] श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता ने शुरुआत में, बिना किसी शब्द के स्वीकार किया है कि पक्षों के बीच समझौता और करार है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि उसके निर्देशों के अनुसार, उसके मुवक्किल को 67 लाख रुपये की बकाया राशि प्राप्त हुई है, लेकिन वह संतोषजनक जवाब नहीं दे पाया है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदकों को बुलाने के लिए आवेदन करने का क्या अवसर है। ऐसा लगता है कि इस आवेदन को स्थानांतरित करने के लिए एकमात्र मकसद आवेदकों पर दबाव डाल कर मजबूर करना है ताकि वे इस पर ब्याज दे सकें। न्यायालय के इस सुझाव पर वरिष्ठ अधिवक्ता ने कोई विवाद नहीं किया। इसके अलावा, उन्होंने अ०सा०-1, देवेंद्र

सिंह दुआ के बयानों और उपरोक्त पैराग्राफ संख्या-12 में उल्लिखित उनकी जिरह से इनकार नहीं किया है। इस पर, वह कहता है कि तर्कों के लिए यह मानते हुए भी कि पक्षों के बीच एक समझौता है, लेकिन चूंकि उक्त समझौता प्रदर्शित नहीं किया गया है और इसलिए इसे सबूत के एक टुकड़े के रूप में पढ़ा या देखा नहीं जा सकता है, इसकी सामग्री पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

[35] माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास ए.आई.आर 2014 एस.सी 1400 में रिपोर्ट किए गए हरदीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य के अपने प्रसिद्ध फैसले में अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' से निपटने और निर्णय लेने का अवसर है। न्यायालय ने प्रश्न तैयार किया है: -

* "क्या धारा 319 द०प्र०स० (1) में प्रयुक्त 'साक्ष्य' शब्द का अर्थ केवल प्रतिपरीक्षा द्वारा परीक्षण किए गए साक्ष्य हो सकता है या न्यायालय संबंधित गवाह के मुख्य परीक्षण में दिए गए बयानों के आधार पर भी उक्त प्रावधान के तहत शक्तियों का प्रयोग कर सकता है?"

** "क्या धारा 319 द०प्र०स० (1) में प्रयुक्त 'साक्ष्य' शब्द का उपयोग जांच के दौरान एकत्र किए गए व्यापक अर्थ में किया गया है या 'साक्ष्य' शब्द मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए सबूतों तक ही सीमित है ??

[36] उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर पर आने से पहले, धारा 319 द०प्र०स० की वास्तविक प्रकृति और आयात की खोज करना अनिवार्य है, जो सिद्धांत *JUDX DAMNATUR CUM NOCENS ABSOLITUR* (दोषी के बरी होने

पर न्यायाधीश की निंदा की जाती है) से निकलती है और यह सिद्धांत एक अंतर्धारा है और धारा 319 द०प्र०स० के अधिनियमन के अंतर्निहित दायरे और भावना की व्याख्या करते हुए बेकन लाइट के रूप में उपयोग किया जाता है। न्यायालय का कर्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधी को सजा देकर न्याय करे। क्या यदि जांच एजेंसी किसी भी कारण से असली दोषियों में से एक को आरोपी के रूप में नहीं रखती है, अदालत उक्त आरोपी को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। लेकिन, यक्ष प्रश्न ये है यह है कि परिस्थितियां क्या हैं और चरण क्या है, अदालत को धारा 319 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। अदालत के समक्ष प्रस्तुतियाँ उठाई गईं, जिसमें एक बहुत व्यापक परिदृश्य को कवर किया गया और अधिवक्ता ने अदालत को द०प्र०स० के विभिन्न प्रावधानों और उस संबंध में निर्णयों के लिए ले लिया। लेकिन तथ्य यह है कि विवाद उस चरण के आसपास केंद्रित है जिस पर अदालत द्वारा इस तरह की शक्ति का उपयोग किया जा सकता है और सामग्री जिसके आधार पर अदालत द्वारा ऐसी असाधारण शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

[37] युगों से न्यायालय न्याय का एकमात्र शरणस्थली है और न्यायालय को न्याय करने के लिए नियुक्त किया गया है और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए उस पर एक कर्तव्य है, और इसलिए, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अदालत को ऐसी शक्ति के प्रयोग से इनकार करना अनुचित होगा जहां यह असामान्य नहीं है कि असली आरोपी या

सरगना, कई बार जांच या अभियोजन एजेंसी में हेरफेर करके बच निकलते हैं। मुकदमे से बचने की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि एक अभियुक्त कई बार जांच या विवेचना के चरण में भी खुद को बरी करने के लिए सभी प्रयास करता है, भले ही वह अपराध के कृत्य से जुड़ा हो। विधायिका को सभी आकस्मिकताओं और परिस्थितियों के लिए नहीं माना जा सकता है और इसलिए, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्द को पूर्ण प्रभाव दे ताकि किसी भी स्थिति को शामिल किया जा सके जिससे न्यायालय को किसी अपराध की सुनवाई करते समय निपटना पड़ सकता है और ऐसे व्यक्ति को, जो विचारण के योग्य हैं, 1956 में मुकदमे में अभियोग न लगाकर मुक्त होने की अनुमति न दे। उसकी संलिप्तता की संभावना के बावजूद, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से इकट्ठा किया जा सकता है।

[38] अब मुकदमे के दौरान अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' और इसके वास्तविक आयात पर सवाल उठाते हुए? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए, क्या धारा 319 द०प्र०स० में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' का व्यापक अर्थ में उपयोग किया गया है और इसमें जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य शामिल हैं या 'साक्ष्य' शब्द परीक्षण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य तक सीमित है। इस संबंध में, अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:

"साक्ष्य":

"साक्ष्य" का अर्थ है और इसमें शामिल हैं-

(1) वे सभी कथन जो न्यायालय जाँच के अधीन तथ्य के विषयों के संबंध में साक्षियों द्वारा अनुज्ञा देता है या उसके समक्ष किए जाने की अपेक्षा करता है, ऐसे कथन मौखिक साक्ष्य कहलाते हैं;

(2) [न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों सहित सभी दस्तावेज], ऐसे दस्तावेजों को दस्तावेजी साक्ष्य कहा जाता है।

"साबित" - किसी तथ्य को तब सिद्ध कहा जाता है जब उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद न्यायालय या तो उसके अस्तित्व को मानता है या उसके अस्तित्व को इतना संभाव्य मानता है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति को, विशेष मामले की परिस्थितियों में, इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि वह मौजूद है।

"अप्रमाणित" - एक तथ्य को अस्वीकृत कहा जाता है, जब उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद, न्यायालय या तो यह मानता है कि यह अस्तित्व में नहीं है, या इसके गैर-अस्तित्व को इतना संभावित मानता है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति को, विशेष मामले की परिस्थितियों में इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि यह अस्तित्व में नहीं है।

"साबित नहीं हुआ" - किसी तथ्य को तब सिद्ध नहीं कहा जाता है जब वह न तो सिद्ध होता है और न ही अप्रमाणित होता है।

[39] इसलिए, हम इस आधार पर मामले की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि साक्ष्य अधिनियम के तहत "साक्ष्य" शब्द की परिभाषा संपूर्ण है। कल्याण कुमार गोगोई बनाम

आशुतोष अग्निहोत्री और अन्य में, ए.आई.आर 2011 एस.सी 760 में रिपोर्ट किया गया, इस मुद्दे से निपटने के दौरान इस न्यायालय ने कहा; शब्द "सबूत" का उपयोग आम बोलचाल में तीन अलग-अलग अर्थों में किया जाता है: (ए) प्रासंगिक के बराबर, (बी) सबूत के बराबर, और (सी) सामग्री के बराबर के रूप में, जिसके आधार पर अदालतें विवादित तथ्यों के अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचती हैं। यद्यपि, साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में दिए गए शब्द "साक्ष्य" की परिभाषा में केवल मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य मिलते हैं, इस शब्द का उपयोग सर्वोत्तम साक्ष्य, परिस्थितिजन्य साक्ष्य, पुष्टिकारक साक्ष्य, व्युत्पन्न साक्ष्य, प्रत्यक्ष साक्ष्य, दस्तावेजी साक्ष्य, सुनवाई साक्ष्य, अप्रत्यक्ष साक्ष्य, मौखिक साक्ष्य, मूल साक्ष्य, प्रकल्पित साक्ष्य, प्राथमिक साक्ष्य वास्तविक साक्ष्य, द्वितीयक साक्ष्य, दस्तावेजी साक्ष्य आदि जैसे वाक्यांशों में भी किया जाता है।

[40] लाल सूरज @ सूरज सिंह और अन्य (v) झारखंड राज्य (2009) 2 एस.सी.सी 696 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि आरोप तय करने वाली अदालत के समक्ष अभिलेख में वे सभी सामग्रियां होंगी जिन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध किया जाना अपेक्षित था। ऐसे मामले में, जहां अदालत धारा 319 द०प्र०स० के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है, अदालत के सामने लाए गए नए सबूतों के आधार पर शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। ये एक अच्छा लेकिन स्पष्ट अंतर है। धारा 319

द०प्र०स० में 'सबूत' शब्द अदालत में दिए गए गवाहों के साक्ष्य पर विचार करता है।

[41] आमतौर पर, आरोप तय होने के बाद ही साक्ष्य की रिकॉर्डिंग का चरण पूरा होता है। धारा 227 द०प्र०स० के अवलोकन से पता चलता है कि विधायिका ने "मामले का रिकॉर्ड" और "उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों" शब्दों का उपयोग किया है। यह इस संदर्भ में है कि धारा 319 द०प्र०स० में प्रकट होने वाले 'सबूत' शब्द को पढ़ा और समझा जाना चाहिए। जांच के चरण में एकत्र की गई सामग्री का उपयोग साक्ष्य अधिनियम की धारा 157 के तहत प्रदान किए गए उद्देश्य के लिए किया जा सकता है, यानी अदालत के समक्ष दर्ज गवाहों के बयानों की पुष्टि या खंडन करने के लिए। इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए 'साक्ष्य' शब्द का उपयोग का अर्थ है वह सामग्री जो अदालत द्वारा जांच या परीक्षण के दौरान अदालत के सामने आई है और अन्यथा नहीं। यदि मुकदमे में दिखाए गए सबूतों से अदालत की राय है कि एक व्यक्ति जो उसके समक्ष आरोपी नहीं है, उसने भी अपराध किया है, तो अदालत ऐसे व्यक्ति को धारा 319 द०प्र०स० के तहत बुला सकती है।

[42] इसलिए "सबूत" शब्द को इसके व्यापक अर्थ में, दोनों मुकदमे के चरण में और यहां तक कि जांच के चरण में भी, जैसा कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत इस्तेमाल किया गया है, समझा जाना चाहिए। इसलिए, अदालत को समझना चाहिए कि उसके समक्ष सामने लाई गई किसी भी सामग्री के आधार पर किसी भी व्यक्ति को तलब करने के बाद उसके खिलाफ

कार्यवाही करने की शक्ति है। अदालत का कर्तव्य और दायित्व ऐसी सामग्री पर सावधानी से ऐसी शक्तियों को लागू करने के लिए अधिक कठिन हो जाता है क्योंकि परीक्षण के दौरान साक्ष्य के साथ-साथ जांच के दौरान, या यहां तक कि विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री का नेतृत्व किया जाता है।

[43] ऊपर की गई चर्चा और निकाले गए निष्कर्ष के मद्देनजर, उपरोक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि परीक्षण के दौरान दर्ज 'सबूत' के अलावा, संज्ञान लेने के समय और मुकदमा शुरू होने से पहले अदालत द्वारा प्राप्त किसी भी सामग्री का उपयोग केवल पुष्टि के लिए और धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए अदालत द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है।

[44] धारा 319 द०प्र०स० महत्वपूर्ण रूप से, दो अभिव्यक्तियों का उपयोग करती है जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए अर्थात् (1) जांच (2) परीक्षण। चूंकि आरोप तय करने के बाद मुकदमा शुरू होता है, इसलिए जांच को केवल पूर्व-परीक्षण जांच के रूप में समझा जा सकता है। धारा 200, 201, 202 द०प्र०स० के तहत पूछताछ; और धारा 398 द०प्र०स० के तहत धारा 319 द०प्र०स० द्वारा अपेक्षित जांच की किस्में हैं। इस तरह की पूछताछ के दौरान अदालत के समक्ष आने वाली सामग्री का उपयोग विचारण शुरू होने के बाद अदालत में दर्ज सबूतों की पुष्टि के लिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए, और एक अभियुक्त को जोड़ने के लिए भी

किया जा सकता है, जिसका नाम चार्जशीट के कॉलम-2 में दिखाया गया है। उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, धारा 319 द०प्र०स० में 'सबूत' शब्द को मोटे तौर पर समझा जाना चाहिए, न कि शाब्दिक रूप से, यानी मुकदमे के दौरान लाए गए सबूत के रूप में।

[45] इस प्रकार, उपरोक्त कानूनी चर्चाओं में प्राथमिकता निर्धारण करते समय करते हुए कि क्या अभिव्यक्ति साक्ष्य को इसके व्यापक संभव परिदृश्य में माना जाना चाहिए या सीमित अर्थों में उपयोग किया जाना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि धारा 319 द०प्र०स० में अभिव्यक्ति साक्ष्य को मोटे तौर पर समझा जाना चाहिए, न कि शाब्दिक रूप से; यह केवल मुकदमे के दौरान लाया गया साक्ष्य है। इसे यथासंभव व्यापक तरीका दिया जाना चाहिए। और इस प्रकार, यह सुझाव देने के लिए कि चूंकि उक्त समझौता विलेख परीक्षण के दौरान प्रदर्शित नहीं किया गया है, अ०सा०-1 देवेंद्र सिंह दुआ की जिरह और उनकी स्पष्ट स्वीकृति कि उन्होंने समझौता करने के बाद प्रतिपक्षी नंबर-2 से 67 लाख रुपये की राशि प्राप्त की है और उक्त समझौते को धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय साक्ष्य के टुकड़े के रूप में लिया जाना चाहिए।

[46] निचली अदालतें इस तथ्य से बेखबर थीं कि पक्षों के बीच समझौता और गैर-आरोपी व्यक्तियों (जो समझौते के पक्षकार हैं) को बुलाना साथ-साथ नहीं चल सकता। दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं और गुप्त उद्देश्य के साथ,

यह आवेदन लोक अभियोजक के माध्यम से स्थानांतरित किया गया था।

इन परिस्थितियों में और पूर्वोक्त निर्णयों और अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' के आलोक में, इस तथ्य के साथ कि पक्ष पहले ही शर्तों में प्रवेश कर चुके हैं, मुझे ए.सी.एम.एम.-III, कानपुर नगर दिनांक 22.11.2022 के दोनों आदेशों को रद्द करने में कोई संकोच नहीं है, जिसमें लोक अभियोजक द्वारा धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन की अनुमति दी गई थी और जब इसे विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष चुनौती दी गई थी, कानपुर नगर 2022 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 390 के माध्यम से, इसे ए.सी.एम.एम.-III, कानपुर नगर के आदेशों की पुष्टि करते हुए खारिज कर दिया गया था। इन दोनों आदेशों को सुरक्षित रूप से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय और समझौते के विरोधी के रूप में कहा जाता है। पुनरावृत्ति की कीमत पर, न्यायालय को यह देखने में कोई संकोच नहीं है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 के पास ब्याज के माध्यम से आवेदकों से अधिक धन निकालने की कुछ गुप्त योजनाएं हैं और यही कारण है कि उन्होंने इस उद्देश्य के लिए लोक अभियोजक का उपयोग किया है और एक हद तक सफल रहे हैं लेकिन तथ्य यह है कि चूंकि उसने पहले ही समझौता कर लिया है और विशिष्ट समझ के साथ कि राशि लेने के बाद वह पूर्वोक्त अपराध में आवेदकों पर मुकदमा चलाने के लिए नहीं जाएगा, फिर भी, वह अनुकूल आदेश प्राप्त करने में सफल रहा है जो मेरी राय में रद्द करने योग्य है।

[47] तदनुसार, ए.सी.एम.एम.-III, कानपुर नगर के दोनों आदेश दिनांक 22.11.2022 और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित पुष्टिकरण आदेश दिनांक 16.12.2022 को रद्द किया जाता है।

[48] धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर वर्तमान आवेदन को अनुमति प्रदान की जाती है।

(2023) 7 ILRA 976

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

द्वितीय अपील संख्या 131 वर्ष 1993

अर्जुन प्रसाद एवं अन्य ...अपीलकर्तागण

बनाम

गणेश प्रसाद एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री एस.एन. सक्सेना, श्री अदनान अहमद, श्री अरविंद कुमार सिन्हा, श्री के.पी. सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

श्री जी.एस. निगम, श्री अरविंद कुमार जौहरी, श्री डी.पी. गुप्ता, श्री मदन गोपाल मिश्रा, श्री ओ.पी. तिवारी, श्री पी.एल. मिश्रा, श्री शफात उल्लाह खान, श्री टी.सी. गुप्ता

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- धारा 100 - विशिष्ट प्रतिकार अधिनियम,

1963 - धाराएँ 16 एवं 20 --- विचारण न्यायालय ने विशिष्ट प्रतिकार की डिक्री देने से इंकार कर दिया तथा अवर अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री को निरस्त कर दिया और वाद को विशिष्ट प्रतिकार हेतु डिक्रीबद्ध कर दिया --- अनुबंध सरजू प्रसाद द्वारा निष्पादित किया गया था, जिसे दोनों न्यायालयों द्वारा एकमत रूप से स्वीकार किया गया है, प्रतिपक्षीगण ने एक ऐसी आपत्ति उठाई जो निष्कपट नहीं थी और प्रतिपक्षीगण ने संपूर्ण लेन-देन को संदेहास्पद बनाने हेतु विभिन्न आपत्तियों का सहारा लिया, जिसमें सरजू प्रसाद की मृत्यु की गलत तिथि देना भी शामिल था ताकि अनुबंध के निष्पादन पर संदेह उत्पन्न किया जा सके, जो कि सिद्ध नहीं हो सका --- विक्रय मूल्य का भुगतान तथा वाद स्थापना से पूर्व विशिष्ट प्रतिकार की मांग हेतु सूचना निर्गत करना वादकारियों द्वारा पर्याप्त रूप से सिद्ध किया गया --- वादकारियों द्वारा तत्परता एवं इच्छा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त की गई तथा प्रतिपक्षीगण द्वारा उसका खंडन नहीं किया गया --- वादकारियों द्वारा ऐसा कोई कथन नहीं उठाया गया जो असत्य या कपटपूर्ण पाया गया हो --- विशिष्ट प्रतिकार प्रदान करने हेतु आवश्यक तत्व वादकारियों द्वारा सिद्ध किए गए।

संपत्ति के मूल्य में मात्र वृद्धि, विशिष्ट प्रतिकार की डिक्री प्रदान करने से इनकार करने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब तक कि कोई अन्य प्रबल परिस्थितियाँ न हों --- विशिष्ट प्रतिकार अधिनियम की धारा 20 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय पक्षकारों की आचरण की समीक्षा आवश्यक है और

प्रतिपक्षीगण का आचरण ऐसा नहीं था जिससे कि विवेकाधिकार उनके पक्ष में झुके --- विचारण न्यायालय द्वारा जो विवेकाधिकार अपनाया गया वह उपयुक्त नहीं था और अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री न्यायोचित है --- न्यायालय अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री में आंशिक संशोधन करता है, इस प्रकार कि वादी-प्रत्युत्तरदाताओं को 10.08.1983 दिनांकित विक्रय अनुबंध के अनुपालन में विशिष्ट प्रतिकार की डिक्री प्राप्त करने का अधिकार होगा, बशर्ते अब प्रत्युत्तरदाता-वादीगण को प्रतिपक्षी-अपीलार्थियों को ₹8,00,000/- की कुल राशि 90 दिवस की अवधि के भीतर भुगतान करनी होगी अथवा उसके विकल्प के रूप में, पूर्व में भुगतान या जमा की गई किसी भी राशि को समायोजित करने के उपरांत, उसे निष्पादन न्यायालय में जमा करना होगा।

(प्रस्तर 66, 69, 70 एवं 74)

अपील खारिज। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. चांद रानी बनाम कमला रानी, (1993) 1 एससीसी 519
2. आर.सी. चंडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल (1970) 3 एससीसी 140
3. नरिंदरजीत सिंह बनाम नॉर्थ स्टार ईएसटी। प्रमोटर्स लिमिटेड, (2012) 5 एससीसी 712
4. रमज़ान अली और अन्य बनाम अल्ताफुर रहमान, 2023:एचसी-एलकेओ30146
5. जुगराज सिंह और अन्य बनाम लाभ सिंह और अन्य। (1995) 2 एससीसी 31।

6. राम अवध एवं अन्य। बनाम अछैरबर दुबे एवं अन्य, (2000) 2 एससीसी 428
7. कडुपुगोटला वरलक्ष्मी बनाम वुडगिरी वेंकट राव एवं अन्य। 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 365
8. दुर्गा प्रसाद बनाम दीप चंद, एआईआर 1954 एससी 75
9. कफीलाद्दीन बनाम समीराद्दीन, [एआईआर 1931 कैल 67]
10. थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड बनाम नानक बिल्डर्स एंड इन्वेस्टर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, (2013) 5 एससीसी 397
11. रत्नावती बनाम कविता गणशमदास, (2015) 5 एससीसी 223
12. श्रीमती राजेश्वरी और अन्य बनाम श्रीमती मेहरुन्निशां और अन्य द्वितीय अपील क्रमांक 375 में 2001 का दिनांक 24.02.2021 को निर्णय लिया गया
13. पी. रामासुब्बम्मा बनाम वी. विजयालक्ष्मी और अन्य।, (2022) 7 एससीसी 384
14. कट्टा सुजाता रेड्डी और अन्य बनाम सिद्धमसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, (2023) 1 एससीसी 355
15. के. नरेंद्र बनाम रिवेरा अपार्टमेंट्स (पी) लिमिटेड, (1999) 5 एससीसी 77,
16. जी. जयश्री एवं अन्य। बनाम भगवानदास एस पटेल और अन्य. (2009) 3 एससीसी 141
17. रमेश चंद्र बनाम असरुद्दीन, (2016) 1 एससीसी 653
18. के. नंजप्पा बनाम आर.ए. हमीद, (2016) 1 एससीसी 762
19. जयकांतम व अन्य बनाम अभयकुमार, (2017) 5 एससीसी 178

20. फेरोडोयस ईस्ट (पी) लिमिटेड बनाम पी. गोपीरत्नम (मृत) व अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 825

21. शेनबागम व अन्य बनाम के.के. रथिनवेल, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 71

22. निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉर्पोरेशन (पी) लिमिटेड व अन्य, 2002

23. के. प्रकाश बनाम बी.आर. संपत कुमार, (2015) 1 एससीसी 597

24. जरीना सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम (2015) 1 एससीसी 705

25. यू.एन. कृष्णमूर्ति बनाम ए.एम. कृष्णमूर्ति; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 840

(माननीय न्यायमूर्ति जसपीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. वादी प्रतिवादियों द्वारा दायर अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद से उत्पन्न प्रतिवादी अपीलकर्ताओं द्वारा तत्काल दूसरी अपील को दायर की दी गई है, जिसमें विचारण न्यायालय ने दिनांक 07.04.1992 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री से इनकार कर दिया था जिसे निचली अपीलीय अदालत के समक्ष अपने फैसले और डिक्री दिनांक 02.12.1992 के माध्यम से खारिज कर दिया गया था और विचारण न्यायालय की डिक्री को रद्द कर दिया है विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद की डिक्री की, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं को धारा 100 सी.पी.सी. के तहत इस न्यायालय के दरवाजे खटखटाने के लिए प्रेरित किया।

2. अपील के ज्ञापन, खंड ए में तैयार किए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न पर न्यायालय द्वारा 24.03.1993 को तत्काल दूसरी अपील स्वीकार की गई थी, जो निम्नानुसार है: -

a- क्या निचली अदालत ने अभिलेखों पर मौजूद दस्तावेजों को गलत तरीके से पढ़ा और गलत व्याख्या की है जो उनके निष्कर्षों को विकृत, गलत, अवैध बनाता है?

3. द्वितीय अपील में शामिल विवाद का मूल्यांकन किया करने के लिए, वाद से संबंधित कुछ प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान दिया जा रहा है।

4. गणेश प्रसाद और सतीश कुमार, दोनों कन्हैया लाल के नाबालिग बेटे ने अपने पिता और प्राकृतिक अभिभावक के माध्यम से, दिनांक 12.08.1983 को अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा दायर किया था, जिसके संदर्भ में, मूल विक्रेता, सरजू प्रसाद ने विवाद संख्या-367 (नया संख्या-346), जवाहर नगर, जिला उन्नाव में स्थित संपत्ति को बेचने के लिए सहमति व्यक्त की थी। सरजू प्रसाद द्वारा निष्पादित उक्त समझौते के संदर्भ में, यह सहमति हुई थी कि 12,500/- रुपये के कुल बिक्री प्रतिफल के लिए, सरजू प्रसाद विवादित संपत्ति को कन्हैया लाल के नाबालिग बेटों को बेच देगा, जिसके लिए वादी द्वारा सरजू प्रसाद को बयाना राशि के रूप में 500/- रुपये का भुगतान किया गया था और शेष प्रतिफल का भुगतान बिक्री विलेख के निष्पादन के समय किया जाना था। समझौते में यह भी विचार किया गया था कि बिक्री-विलेख को एक

महीने की अवधि के भीतर निष्पादित किया जाएगा और बिक्री-विलेख के निष्पादन के समय वादी को कब्जा हस्तांतरित कर दिया जाएगा।

5. यह भी दलील दी गई कि बिक्री-विलेख को निष्पादित करने से पहले, सरजू प्रसाद की मृत्यु हो गई और वह अपनी पत्नी और तीन बच्चों 'द्वारा' बच गया, जिन्हें प्रतिवादी के रूप में पेश किया गया था। वाद में यह भी दर्ज किया गया था कि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे और उनके पास शेष प्रतिफल का भुगतान करने के आवश्यक साधन थे। हालांकि, प्रतिवादी अपने दायित्व को पूरा करने के लिए बच रहे थे, परिणामस्वरूप, वादी ने दिनांक 12.08.1983 को एक नोटिस भेजा था और इसके बावजूद, प्रतिवादियों ने अपने दायित्वों का पालन नहीं किया, जिसके कारण वादी ने सिविल न्यायधीश, उन्नाव की अदालत के समक्ष विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया, जिसे नियमित वाद संख्या-52/1986 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

6. उक्त वाद का प्रतिवादी द्वारा विरोध किया गया था, जो समझौते के मूल निष्पादक सरजू प्रसाद के कानूनी उत्तराधिकारी थे और समझौते के निष्पादन से इनकार करते हुए, यह विशेष रूप से कहा गया था कि सरजू प्रसाद अपनी मृत्यु से पहले सांस की बीमारी से पीड़ित था जिसके कारण वह बहुत कमजोर हो गया था और मानसिक रूप से भी सतर्क नहीं था। आगे यह दलील दी गई कि न तो सरजू प्रसाद ने समझौते को अंजाम दिया और न ही उसके

पास ऐसा करने का अधिकार था। सरजू प्रसाद को संपत्ति बेचने की भी आवश्यकता नहीं थी और इस तरह ऐसा प्रतीत होता है कि वादी ने संपत्ति को हड़पने के लिए प्रतिरूपण के माध्यम से समझौते को निष्पादित किया क्योंकि सरजू प्रसाद की मृत्यु 23.09.1982 को हुई थी और इस तरह का समझौता जो 10.08.1983 का है, उसके द्वारा निष्पादित नहीं किया जा सकता था। उपरोक्त कारणों से, यह दलील दी गई थी कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा डिक्री नहीं किया जा सकता है और खारिज करने योग्य है।

7. दलीलों के आदान-प्रदान पर, विचारण न्यायालय ने पांच मुद्दों को तैयार किया। हालांकि, जिन महत्वपूर्ण मुद्दों पर मुकदमा लड़ा गया था, वे थे (i) क्या वादी 10.08.1983 के समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन की मांग करने के हकदार हैं? (ii) क्या स्वर्गीय सरजू प्रसाद को बेचने के लिए उक्त समझौते को निष्पादित करने का कोई अधिकार था और यदि हां, तो इसका प्रभाव? (iii) क्या समझौते से पहले विवादित संपत्ति पर प्रतिवादियों का कब्जा था और यदि हां, तो इसका क्या प्रभाव पड़ा? (iv) क्या प्रतिवादियों द्वारा बताए गए अनुसार 23.09.1982 को सरजू प्रसाद की मृत्यु हो गई?

8. पक्षकारों द्वारा अपने साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद, विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष दर्ज किया कि सरजू प्रसाद की मृत्यु 23.09.1982 को नहीं हुई थी क्योंकि प्रतिवादी पूर्वोक्त तथ्य को साबित करने में विफल रहे और यह आगे पाया गया कि सरजू प्रसाद ने

दिनांक 10.08.1983 को विक्रय समझौते को निष्पादित किया था। अदालत ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि संपत्ति सरजू प्रसाद की थी और उनकी मृत्यु से पहले, उनकी पत्नी और बच्चों को कोई अधिकार देने का कोई अवसर नहीं था जैसा कि आरोप लगाया गया था और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि सरजू प्रसाद के पास बेचने के समझौते को निष्पादित करने का अधिकार नहीं था। अंत में, विचारण न्यायालय ने देखा कि जाहिर तौर पर घर का मूल्य, समझौते की विषय वस्तु, लगभग 60,000 रुपये थी और समझौते ने बिक्री प्रतिफल को 12,500 रुपये होने का संकेत दिया, जिसके लिए केवल 500 रुपये का भुगतान बयाना राशि के रूप में किया गया था। नतीजतन, विचारण न्यायालय ने विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देना उचित नहीं समझा, हालांकि, अपने निर्णय और डिक्री दिनांक 17.04.1992 के माध्यम से, इसने विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री से इनकार कर दिया, लेकिन प्रतिवादियों को समझौते की तारीख से इसके भुगतान की तारीख तक @ 12% प्रति वर्ष ब्याज के साथ 500/- रुपये की राशि वापस करने का निर्देश दिया।

9. विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के खिलाफ प्रतिवादियों ने धारा 96 सी.पी.सी. के तहत संख्या-37/1992 वाली एक नियमित दीवानी अपील दायर की। वादी ने भी अपनी प्रति-आपत्ति दायर की थी क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री से इनकार कर दिया गया था और इसलिए, पक्षों को सुनने के बाद, निचली अपीलीय अदालत ने 02.12.1992 के निर्णय

और डिक्री के माध्यम से अपील की अनुमति देने के बाद विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री दी। यह निर्णय और उलटने की डिक्री है जिसे तत्काल दूसरी अपील में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

10. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अदनान अहमद ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं: -

(i) यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, वादी के लिए न केवल वाद में यह कहना आवश्यक था कि वे अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक थे, बल्कि यह तत्परता और इच्छा डिक्री के पारित होने तक पूरे मुकदमे में मौजूद रहने के साक्ष्य द्वारा स्थापित की जानी है। यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने तत्परता और इच्छा के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया और यहां तक कि निचली अपीलीय अदालत ने भी मुकदमे की डिक्री करते समय मामले के इस पहलू पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया।

11. यह प्रस्तुत किया गया है कि कथित समझौते के अनुसार, बिक्री-विलेख को एक महीने की अवधि के भीतर निष्पादित किया जाना था। यह करार दिनांक 10-08-1983 का है और करार में यथा निर्धारित समय सितम्बर, 1983 तक था। विशिष्ट प्रदर्शन की मांग के लिए वादी द्वारा दिया गया नोटिस दिनांक 04.08.1984 है और मुकदमा 21.01.1986 को दायर किया गया था। समय-सीमा के संदर्भ में, यह देखा जाएगा कि वादी को बिक्री-विलेख के निष्पादन के लिए निर्धारित

समय समाप्त होने के बहुत बाद नोटिस जारी किया गया था और उसके बाद भी, मुकदमा लगभग डेढ़ साल बाद दायर किया गया था जो इंगित करता है और इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि वादी अपनी निरंतर तत्परता और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा के बारे में गंभीर नहीं थे।

(ii) आगे यह आग्रह किया गया है कि मामले के दिए गए तथ्यों में जहां समझौते के निष्पादन के बाद से संपत्ति की कीमतों में वृद्धि हुई थी और परीक्षण के दौरान यह अभिलेखों में लाया गया था कि घर का मूल्य लगभग 60,000/- रुपये था और समझौते में दर्शाए अनुसार बिक्री प्रतिफल केवल 12500/- रुपये था, यह तथ्य दर्शाता है कि समझौता अन्यायसंगत था और विचार की स्पष्ट अपर्याप्तता थी। इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि 12,500/- रुपये की कथित सहमत राशि के विरुद्ध 500/- रुपये की मामूली राशि का भुगतान बयाना राशि के रूप में किया गया था। इसलिए, अपीलकर्ताओं को 12,000/- रुपये की अल्प राशि के लिए बिक्री-विलेख निष्पादित करने की आवश्यकता अनुचित थी, बल्कि परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय ने ब्याज @ 12% प्रति वर्ष के साथ 500/- रुपये की वापसी का निर्देश देकर अपने अधिकार क्षेत्र का उचित रूप से प्रयोग किया था, जिसने पक्षों के बीच पूर्ण न्याय किया था, जबकि निचली अपीलीय अदालत ने निष्कर्ष पर उचित रूप से विचार नहीं किया और न ही ठोस कारण दिए कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए विवेक का

उपयोग क्यों किया गया। इसे निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा 1000 करोड़ रुपये की न्यायिक सहायता को उलट दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप न्याय की घोर हानि/हत्या हुई है। इसके अलावा, अपीलकर्ताओं को उनके सिर के ऊपर से छत से वंचित किया जाएगा और वह भी सबसे असमान कीमत पर और विशेष रूप से समय बीतने के साथ, क्योंकि अचल संपत्तियों की कीमतें बेहद बढ़ गई हैं, इसके परिणामस्वरूप वादी-प्रतिपक्षियों को अनुचित लाभ होगा। इन परिस्थितियों में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि की जानी चाहिए और तत्काल दूसरी अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

12. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में केएस विद्यानंदम और अन्य बनाम भारत संघ, वैरावन (1997) एस.सी.सी.1; सीएस वेंकटेश बनाम एस.सी. मूर्ति और अन्य, (2020)3 एस.सी.सी. 280 और शेनबागम और अन्य बनाम केके रथिनावेल, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 71 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

13. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार जौहरी ने पूर्वोक्त प्रस्तुतियों का खंडन करते हुए प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय के समक्ष झूठा बचाव करके प्रतिवादी स्वयं पराजय के लिए जिम्मेदार थे। सरजू प्रसाद ने दिनांक 10.08.1983 को बेचने के समझौते को निष्पादित किया था, हालांकि, प्रतिवादियों ने झूठा बचाव किया कि सरजू

प्रसाद की मृत्यु 23.09.1982 को हुई थी। यह भी झूठा दावा किया गया था कि सरजू प्रसाद शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर था और बिक्री के समझौते के निष्पादन के बारे में तथ्य नहीं जानता था। आगे यह आग्रह किया गया है कि वादी ने 12,500 रुपये की राशि के लिए संपत्ति खरीदने के लिए सहमति व्यक्त की थी और 500 रुपये की राशि भी बयाना राशि के रूप में भुगतान की गई थी। बेचने का करार एक पंजीकृत दस्तावेज है जिसमें इसके निष्पादन का अनुमान लगाया जाता है। सरजू प्रसाद की मृत्यु के कारण ही बिक्री-विलेख समय के भीतर निष्पादित नहीं किया जा सका। वादी हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे और यहां तक कि प्रतिवादियों को बिक्री-विलेख को निष्पादित करने के लिए, जो सरजू प्रसाद के कानूनी उत्तराधिकारी थे, को भी बुलाया लेकिन वे तरीके से देरी करते रहे और उसके बाद वादी को 04.08.1984 को एक नोटिस देना पड़ा, जिसका प्रतिवादियों द्वारा अनुपालन नहीं किया गया, जिसके कारण वादी ने अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया।

14. आगे यह आग्रह किया गया है कि विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष दर्ज किया कि प्रतिवादी यह साबित करने में असमर्थ थे कि सरजू प्रसाद की मृत्यु विक्रय समझौते के निष्पादन से पहले हुई थी। इसने एक निष्कर्ष भी लौटाया कि प्रश्नगत विक्रय समझौता सरजू प्रसाद द्वारा निष्पादित किया गया था और यह आवश्यक रूप से बचाव पक्ष की मिथ्याता को व्यक्त करता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय को विशिष्ट प्रदर्शन

की राहत से इनकार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि वादी हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे, जिसे विशेष रूप से वाद में पेश किया गया था और विशेष रूप से प्रतिवादियों द्वारा इनकार नहीं किया गया था। इसके अलावा, यह साबित करने के लिए अभिलेखों पर कोई सामग्री नहीं लाई गई कि वादी के पास प्रतिफल का भुगतान करने और विवादित संपत्ति खरीदने की वित्तीय क्षमता नहीं थी। प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए पूरे साक्ष्य केवल उनके झूठे बचाव को पुष्ट करने के लिए थे कि सरजू प्रसाद को समझौते को निष्पादित करने का अधिकार नहीं था और एक बार जब ये सभी निष्कर्ष वादी के पक्ष में वापस आ गए, तो विचारण न्यायालय के लिए विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री से इनकार करने का कोई औचित्य योग्य कारण नहीं था। यह पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में है कि निचली अपीलीय अदालत ने सामग्री के साथ-साथ साक्ष्य को उसके सही परिप्रेक्ष्य में माना और वादी-प्रतिपक्षियों के पक्ष में विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देते हुए विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट दिया।

15. यह भी आग्रह किया जाता है कि संपत्ति की कीमतों में वृद्धि एक प्राकृतिक घटना है और किसी भी मामले में अभिलेखों पर कोई सामग्री नहीं थी जो यह इंगित करती हो कि विचारण न्यायालय द्वारा संदर्भित 60,000/ केवल बयान से आंकड़ा निकालकर, अलगाव में, साक्ष्य को पढ़ने का सही तरीका नहीं हो सकता है और यह पूर्वोक्त कारण से है कि विचारण न्यायालय ने संपत्ति के मूल्य को 60,000 रुपये होने पर विचार करने में गलती की, जिसके खिलाफ इसे समझौते के अनुसार

12,500 रुपये की राशि में बेचने की मांग की गई थी। इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि यह एक ऐसा मामला है जहां विचारण न्यायालय ने सबूतों को गलत तरीके से पढ़ा और इसे निचली अपीलीय अदालत द्वारा ठीक किया गया है, जिसने स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किए हैं और इस तरह निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री किसी भी स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त नहीं है जो इस न्यायालय को धारा 100 सी.पी.सी. के तहत शक्तियों के प्रयोग में तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए राजी कर सकती है। नतीजतन, अपील खारिज करने योग्य है।

16. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉर्पोरेशन (पी) लिमिटेड और अन्य, 2002 (5) एस.सी.सी.; पी. डिसूजा बनाम शॉड्रिलो नायडू, (2004) 6 एस.सी.सी. 649; के. प्रकाश बनाम बीआर संपत कुमार, (2015) 1 एस.सी.सी. 597 का उद्धरण दिया।

17. इस न्यायालय ने संबंधित पक्षों के अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियों पर अपना उत्सुकता से विचार किया है और इसमें शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न को ध्यान में रखते हुए अभिलेखों पर सामग्री का अवलोकन भी किया है।

18. इस न्यायालय ने पाया कि उत्तर इस मुद्दे में निहित है, कि क्या निचली अपीलीय अदालत अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद की डिक्री करने में उचित थी या विचारण न्यायालय विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963

की धारा 20 के संदर्भ में अपने विवेक को लागू करने में न्यायसंगत था, जबकि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देने से इनकार करते हुए और ब्याज के साथ बयाना राशि की वापसी का आदेश दिया।

19. मामले के पूर्वोक्त पहलू का विज्ञापन करने से पहले, यह ध्यान देना आवश्यक होगा कि वे कौन से आवश्यक तत्व हैं जो न्यायालय को विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री प्रदान करने में सक्षम बनाते हैं और ऐसी कौन सी शर्तें हो सकती हैं जब न्यायालय विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 की धारा 20 के संदर्भ में अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के एक डिक्री से इनकार करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है।

20. इसे पहले विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के प्रासंगिक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए और फिर इस विषय पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की सहायता लेकर रेखांकित किया जा सकता है। विशेष रूप से, विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 10 और 20 को वर्ष 2018 में संशोधन अधिनियम वर्ष 2018 के माध्यम से संशोधित किया गया था, जिसे 01.08.2018 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और यह 01.10.2018 से कानून की पुस्तकों में लागू हुआ।

21. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 10 और 20 पर ध्यान दिया जाएगा, क्योंकि यह वर्ष 2018 में संशोधन से पहले और बाद में था।

(i) संशोधन वर्ष 2018 से पहले, धारा 10 निम्नानुसार पढ़ी जाती है: -

"10. ऐसे मामले जिनमें संविदा का विशिष्ट निष्पादन प्रवर्तनीय है- इस अध्याय में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, किसी संविदा का विशिष्ट निष्पादन, न्यायालय के विवेक से, प्रवर्तित किया जा सकेगा-

(क) जब किए जाने के लिए सहमत अधिनियम के निष्पादन न किए जाने के कारण हुई वास्तविक क्षति का पता लगाने के लिए कोई मानक विद्यमान है; नहीं तो

(ख) जब अधिनियम को किए जाने के लिए सहमति इस प्रकार दी गई है कि इसके गैर-निष्पादन के लिए धन में मुआवजा पर्याप्त राहत नहीं देगा। स्पष्टीकरण- जब तक इसके विपरीत साबित नहीं हो जाता, न्यायालय यह मान लेगा-

(i) कि अचल संपत्ति के अंतरण की संविदा के उल्लंघन को धन में प्रतिकर द्वारा पर्याप्त रूप से मुक्त नहीं किया जा सकता है; और

(ii) कि निम्नलिखित मामलों को छोड़कर चल संपत्ति के अंतरण की संविदा के उल्लंघन से इस प्रकार राहत दी जा सकती है -

(ए) जहां संपत्ति वाणिज्य का एक साधारण लेख नहीं है, या वादी के लिए विशेष मूल्य

या हित का है, या ऐसे माल शामिल हैं जो बाजार में आसानी से प्राप्य नहीं हैं;

(बी) जहां संपत्ति प्रतिवादी द्वारा वादी के एजेंट या ट्रस्टी के रूप में रखी जाती है।

(ii) विशिष्ट राहत (संशोधन) अधिनियम, 2018 द्वारा संशोधित धारा 10 निम्नानुसार है: -

"10. संविदाओं के संबंध में विशिष्ट निष्पादन-संविदा का विशिष्ट निष्पादन न्यायालय द्वारा धारा 11, धारा 14 और धारा 16 की उपधारा (2) में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए प्रवर्तित किया जाएगा।

22. विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 14 कुछ संविदाओं से संबंधित है जो विशेष रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं और निम्नानुसार पढ़ी जाती हैं: -

धारा 14 संविदाएं विशिष्टतया प्रवर्तनीय नहीं हैं- (1) निम्नलिखित संविदाओं को विशिष्टतया प्रवर्तित नहीं किया जा सकता, अर्थात:-

(ए) गैर-प्रदर्शन के लिए एक अनुबंध जिसमें पैसे में मुआवजा पर्याप्त राहत है;

(ख) एक अनुबंध जो इस तरह के मिनट या कई विवरणों में चलता है या जो व्यक्तिगत योग्यता या पक्षों की इच्छा पर निर्भर है, या अन्यथा इसकी प्रकृति से ऐसा है, कि अदालत अपनी सामग्री शर्तों के विशिष्ट प्रदर्शन को लागू नहीं कर सकती है;

(ग) एक अनुबंध जो अपनी प्रकृति में निर्धारण योग्य है;

(d) एक संविदा जिसके निष्पादन में एक निरंतर कर्तव्य का प्रदर्शन शामिल है जिसका न्यायालय पर्यवेक्षण नहीं कर सकता है।

(2) मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (10 वर्ष 1940) द्वारा प्रदान किए गए के रूप में सहेजें, मध्यस्थता के लिए वर्तमान या भविष्य के मतभेदों को संदर्भित करने के लिए कोई अनुबंध विशेष रूप से लागू नहीं किया जाएगा; लेकिन यदि कोई व्यक्ति जिसने ऐसा अनुबंध किया है (एक मध्यस्थता समझौते के अलावा जिस पर उक्त अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं) और इसे करने से इनकार कर दिया है, किसी भी विषय के संबंध में मुकदमा करता है जिसे उसने संदर्भित करने के लिए अनुबंध किया है, तो इस तरह के अनुबंध का अस्तित्व वाद को रोक देगा।

(3) उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ग) या खंड (घ) में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय निम्नलिखित मामलों में विशिष्ट प्रदर्शन को लागू कर सकता है: -

(ए) जहां वाद एक अनुबंध के प्रवर्तन के लिए है, -

(i) बंधक निष्पादित करना या किसी भी ऋण के पुनर्भुगतान को सुरक्षित करने के लिए कोई अन्य सुरक्षा प्रस्तुत करना जिसे उधारकर्ता एक बार में चुकाने के लिए तैयार

नहीं है: बशर्ते कि जहां ऋण का केवल एक हिस्सा अग्रिम दिया गया है, ऋणदाता अनुबंध के संदर्भ में ऋण के शेष हिस्से को अग्रिम करने के लिए तैयार है; नहीं तो

(ii) किसी कंपनी के किसी भी डिबेंचर के लिए लेने और भुगतान करने के लिए;

(ख) जहां वाद के लिए है, -

(i) साझेदारी के एक औपचारिक विलेख का निष्पादन, पक्षों ने साझेदारी के व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए शुरू किया है; नहीं तो

(पप) किसी फर्म में साझेदार के अंश का क्रय करना;

(ग) जहां वाद किसी भवन के निर्माण के लिए संविदा के प्रवर्तन या भूमि पर किसी अन्य कार्य के निष्पादन के लिए है: बशर्ते कि निम्नलिखित शर्तें पूरी हों, अर्थात्: -

(i) भवन या अन्य कार्य को अनुबंध में पर्याप्त रूप से सटीक शब्दों में वर्णित किया गया है ताकि अदालत भवन या कार्य की सटीक प्रकृति का निर्धारण कर सके;

(ii) वादी का अनुबंध के प्रदर्शन में पर्याप्त हित है और ब्याज ऐसी प्रकृति का है कि अनुबंध के गैर-प्रदर्शन के लिए धन में मुआवजा पर्याप्त राहत नहीं है; और

(iii) प्रतिवादी ने, संविदा के अनुसरण में, भूमि के संपूर्ण या किसी भाग पर, जिस पर

भवन का निर्माण किया जाना है या अन्य कार्य निष्पादित किया जाना है, कब्जा प्राप्त कर लिया है।

23. अधिनियम वर्ष 1963 की धारा 15 इस बात से संबंधित है कि कौन विशिष्ट प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है और यह निम्नानुसार है: -

"धारा 15 जो विशिष्ट प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है - इस अध्याय द्वारा अन्यथा प्रदान किए जाने के अलावा, एक अनुबंध का विशिष्ट प्रदर्शन निम्नलिखित द्वारा प्राप्त किया जा सकता है-

(क) उसमें कोई पक्षकार;

(ख) हित में प्रतिनिधि या प्रिंसिपल, किसी भी पक्ष के: बशर्ते कि जहां सीखने, कौशल, शोधन क्षमता या ऐसी पक्ष की कोई व्यक्तिगत गुणवत्ता अनुबंध में एक सामग्री घटक है, या जहां अनुबंध प्रदान करता है कि उसका हित नहीं सौंपा जाएगा, ब्याज में उसका प्रतिनिधि या उसका प्रिंसिपल अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन का हकदार नहीं होगा, जब तक कि ऐसी पक्ष ने अनुबंध के अपने हिस्से का प्रदर्शन नहीं किया है, या उसके प्रतिनिधि द्वारा हित में उसका प्रदर्शन, या उसके प्रिंसिपल, दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार किया गया है;

(ग) जहां अनुबंध विवाह पर एक समझौता है, या एक ही परिवार के सदस्यों के बीच संदिग्ध अधिकारों का समझौता है, कोई भी

व्यक्ति जो उसके तहत लाभकारी रूप से हकदार है;

(घ) जहां एक किरायेदार द्वारा एक शक्ति के उचित प्रयोग में जीवन के लिए अनुबंध दर्ज किया गया है, अनुस्मारक;

(ई) कब्जे में एक प्रत्यावर्तनकर्ता, जहां समझौता स्वामित्व / हक्के मिल्कियत में अपने पूर्ववर्ती के साथ दर्ज की गई एक वाचा है और प्रत्यावर्तन ऐसी वाचा के लाभ का हकदार है;

(च) शेष में एक प्रत्यावर्तनकर्ता, जहां समझौता ऐसी वाचा है, और प्रत्यावर्तनकर्ता उसके लाभ का हकदार है और इसके उल्लंघन के कारण भौतिक चोट को बनाए रखेगा;

(छ) जब एक कंपनी ने एक अनुबंध में प्रवेश किया है और बाद में किसी अन्य कंपनी के साथ समामेलित हो जाता है, तो नई कंपनी जो समामेलन से उत्पन्न होती है;

(ज) जब किसी कंपनी के प्रमोटरों ने, इसके निगमन से पहले, कंपनी के प्रयोजनों के लिए एक अनुबंध में प्रवेश किया है, और इस तरह के अनुबंध को निगमन की शर्तों द्वारा वारंट किया जाता है, कंपनी: बशर्ते कि कंपनी ने अनुबंध स्वीकार कर लिया है और अनुबंध के लिए दूसरे पक्ष को ऐसी स्वीकृति की सूचना दी है।

24. महत्वपूर्ण रूप से, धारा 16 में व्यक्तिगत बार शामिल हैं जिन्हें विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री से इनकार करने के लिए लागू किया जा सकता है और यह निम्नानुसार पढ़ता है: -

"धारा 16 राहत के लिए व्यक्तिगत बातें- किसी व्यक्ति के पक्ष में संविदा का विशिष्ट प्रदर्शन लागू नहीं किया जा सकता है-

(क) इसके उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति वसूल करने का हकदार कौन नहीं होगा; नहीं तो

(बी) जो प्रदर्शन करने में असमर्थ हो गया है, या अनुबंध की किसी भी आवश्यक अवधि का उल्लंघन करता है, जो उसके हिस्से पर प्रदर्शन किया जाना बाकी है, या अनुबंध की धोखाधड़ी में कार्य करता है, या जानबूझकर विचरण में कार्य करता है, या अनुबंध द्वारा स्थापित किए जाने वाले संबंध के साथ या तोड़फोड़ में कार्य करता है; नहीं तो

(ग) जो टालने और साबित करने में विफल रहता है कि उसने प्रदर्शन किया है या हमेशा तैयार है और अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए तैयार है, जो उसके द्वारा किए जाने हैं, शर्तों के अलावा जिनके प्रदर्शन को प्रतिवादी द्वारा रोका या माफ कर दिया गया है। स्पष्टीकरण- खंड (ग) के प्रयोजनों के लिए, -

(i) जहां एक अनुबंध में पैसे का भुगतान शामिल है, वादी के लिए वास्तव में प्रतिवादी को निविदा देना या अदालत में कोई पैसा जमा करना

आवश्यक नहीं है, सिवाय इसके कि जब अदालत द्वारा निर्देशित किया गया हो;

(ii) वादी को अपने वास्तविक निर्माण के अनुसार अनुबंध के प्रदर्शन, या तत्परता और प्रदर्शन करने की इच्छा को टालना चाहिए।

25. एक अन्य महत्वपूर्ण धारा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 19 है जो पक्षों को राहत की बात करती है और यह बिना किसी सूचना के मूल्यवान विचार के लिए बाद के खरीदार के उदाहरणों को भी अपने दायरे में लेती है, और यह निम्नानुसार है: -

"धारा 19 पक्षकारों और उनके अधीन उत्तरवर्ती स्वामित्व / हक्के मिलिकियत द्वारा दावा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध राहत- इस अध्याय द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, संविदा का विशिष्ट निष्पादन निम्नलिखित के विरुद्ध प्रवर्तित किया जा सकेगा-

(ए) या तो पक्ष;

(बी) अनुबंध के बाद उत्पन्न होने वाले स्वामित्व / हक्के मिलिकियत द्वारा उसके तहत दावा करने वाला कोई अन्य व्यक्ति, मूल्य के लिए एक हस्तांतरिती को छोड़कर, जिसने अपने पैसे का भुगतान अच्छे विश्वास में और मूल अनुबंध की सूचना के बिना किया है;

(ग) एक स्वामित्व / हक्के मिलिकयत के तहत दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति, हालांकि अनुबंध से पहले और वादी को जात है, प्रतिवादी द्वारा विस्थापित किया जा सकता है;

(घ) जब एक कंपनी ने एक अनुबंध में प्रवेश किया है और बाद में किसी अन्य कंपनी के साथ समामेलित हो जाता है, तो नई कंपनी जो समामेलन से उत्पन्न होती है;

(ई) जब किसी कंपनी के प्रमोटर्स ने अपने निगमन से पहले, कंपनी के उद्देश्य के लिए एक अनुबंध में प्रवेश किया है और इस तरह के अनुबंध को निगमन की शर्तों द्वारा वारंट किया जाता है, तो कंपनी: बशर्ते कि कंपनी ने अनुबंध स्वीकार कर लिया है और अनुबंध के लिए दूसरे पक्ष को इस तरह की स्वीकृति का संचार किया है।

26. पूर्वोक्त प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रकट होगा कि एक अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, वादी के लिए यह आवश्यक है कि वह बेचने के लिए समझौते के उचित निष्पादन को साबित करे और यह प्रवर्तन में सक्षम है। यह भी आवश्यक है कि न केवल वकालत की जाए, बल्कि साक्ष्य द्वारा भी पर्याप्त रूप से प्रदर्शित किया जाए कि वादी समझौते के निष्पादन के समय से और न्यायालय में कार्यवाही के दौरान अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार रहा है। वादी

को यह भी इंगित करना आवश्यक है कि यह प्रतिवादी है जो समझौते के गैर-कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है और प्रतिवादी समझौते की शर्तों के अनुसार अपने कानूनी दायित्व को पूरा करने में विफल रहा है।

27. पूर्वोक्त कानूनी प्रावधानों और प्रस्तावों के प्रकाश में, अब सर्वोच्च न्यायालय के कुछ प्रमुख निर्णयों पर ध्यान देना सार्थक होगा जो प्रावधानों के दायरे, इरादे और इसकी बारीकियों को उजागर करते हैं जैसा कि ऊपर देखा गया है।

28. क्या समय एक अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंध का सार है, चांद रानी बनाम कमला रानी, (1993) 1 एस.सी.सी. 519 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"यह एक अच्छी तरह से स्वीकृत सिद्धांत है कि अचल संपत्ति की बिक्री के मामले में, समय को कभी भी अनुबंध का सार नहीं माना जाता है। वास्तव में, अनुबंध का सार होने के कारण समय के खिलाफ एक अनुमान है। यह सिद्धांत किसी भी तरह से इंग्लैंड में प्राप्य से अलग नहीं है। इक्विटी के कानून के तहत जो अचल संपत्ति बेचने के लिए अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के मामले में पक्षों के अधिकारों को नियंत्रित करता है, कानून पत्र को नहीं बल्कि समझौते के पदार्थ को देखता है। यह पता लगाया जाना चाहिए कि क्या अनुबंध की शर्तों के तहत पक्षों ने एक विशिष्ट समय का नाम दिया जिसके भीतर पूरा होना था, वास्तव में और सार रूप

में यह इरादा था कि इसे उचित समय के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। समय को अनुबंध का सार बनाने का इरादा स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया जाना चाहिए।

29. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 16(सी) के संबंध में तत्परता और इच्छा की दलील एक महत्वपूर्ण और आवश्यक घटक है और यह माना गया है कि यह एक सीधा जैकेट फॉर्मूला नहीं है। आरसी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल (1970) 3 एस.सी.सी. 140 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"तत्परता और इच्छा को फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है और इस मुद्दे को संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण के लिए प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना है"

30. नरिंदर सिंह बनाम नॉर्थ स्टार एस्टेट प्रमोटर्स लिमिटेड, (2012)5 एस.सी.सी. 712 में, पैरा-21 से 23 में निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

"20. हमारे विचार में, अपीलकर्ता के पिता द्वारा समझौते के निष्पादन के मुद्दों पर विचारण न्यायालय और निचली अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज किए गए समवर्ती निष्कर्ष और प्रतिवादी की तत्परता और समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा पक्षों की दलीलों और सबूतों के सही मूल्यांकन पर आधारित थी और उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने उन निष्कर्षों को परेशान करने

से इनकार करके कोई त्रुटि नहीं की। अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए प्रतिवादी की निरंतर तत्परता और इच्छा के बारे में विशिष्ट दलील के अभाव में और बिक्री के विचार के भुगतान के लिए आवश्यक धन की उपलब्धता, उच्च न्यायालय को निचली अदालतों द्वारा दर्ज समवर्ती निष्कर्ष को अलग रखना चाहिए था, आकर्षक लगता है, लेकिन अभिलेखों की सावधानीपूर्वक जांच करने पर हमें कोई वैध आधार नहीं मिलता है उसी का मनोरंजन करें।

21. आरसी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल [(1970)3 एस.सी.सी. 140] में इस न्यायालय ने कहा कि "तत्परता और इच्छा को सीधा सटीक फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है और इस मुद्दे को संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना है"। इसी विचार को पी. डिसूजा बनाम शॉड्रिलो नायडू [(2004)6 एस.सी.सी. 649] में दोहराया गया था।

22. एन.पी. थिरुगननम बनाम आर. जगन मोहन राव [(1995)5 एस.सी.सी. 115] में न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता संपत्ति खरीदने के साधन के बिना अचल संपत्ति लेनदेन में डबिंग कर रहा था और देखा: (एस.सी.सी. पीपी 117-18, पैरा-5) "

5 अधिनियम की धारा 16(सी) में यह परिकल्पना की गई है कि वादी को दलील

देनी चाहिए और साबित करना चाहिए कि उसने अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए प्रदर्शन किया था या हमेशा तैयार रहा है, जो उसके द्वारा निष्पादित की जानी हैं, उन शर्तों के अलावा जिनके प्रदर्शन को प्रतिवादी द्वारा रोका या माफ कर दिया गया है। वादी की ओर से निरंतर तत्परता और इच्छा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। यह परिस्थिति भौतिक और प्रासंगिक है और राहत देने या देने से इनकार करते समय अदालत द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। यदि वादी या तो टालने या साबित करने में विफल रहता है, तो उसे असफल होना चाहिए। यह तय करने के लिए कि क्या वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है, अदालत को अन्य उपस्थित परिस्थितियों के साथ-साथ मुकदमा दायर करने से पहले और बाद में वादी के आचरण को ध्यान में रखना चाहिए। प्रतिवादी को जो प्रतिफल देना है, वह आवश्यक रूप से उपलब्ध होना चाहिए। निष्पादन की तारीख से डिक्री की तारीख तक उसे यह साबित करना होगा कि वह तैयार है और हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है। जैसा कि कहा गया है, अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए उनकी तत्परता और इच्छा का तथ्य पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। अदालत तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगा सकती है कि क्या वादी तैयार था और

अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार था।

23. जेपी बिल्डर्स बनाम ए रामदास राव [(2011)1 एस.सी.सी. 429: (2011)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 227] में न्यायालय ने केवल पहले से निर्धारित सिद्धांतों को दोहराया है और कोई नया प्रस्ताव निर्धारित नहीं किया गया है जो अपीलकर्ता के कारण की मदद कर सकता है।

31. हाल ही में, इस न्यायालय ने रमजान अली और अन्य बनाम अलताफुर रहमान में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मामलों की सहायता से तत्परता और इच्छा के मुद्दे पर विचार किया और पैरा-27 से 30 में निम्नानुसार पढ़ा गया: -

"27. कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम, वॉल्यूम 81 पीपी.950-951 में, तत्परता और इच्छा का अर्थ लगाया गया है, कानून का एक सामान्य सिद्धांत है कि विशिष्ट प्रदर्शन की मांग करने वाले व्यक्ति को यह दिखाना चाहिए कि उसने प्रदर्शन किया है या प्रदर्शन करने की पेशकश की है या अनुबंध द्वारा आवश्यक सभी आवश्यक कार्य को तैयार है, और उसे चुप नहीं रहना चाहिए या खुद को अलग नहीं रखना चाहिए फायदेमंद साबित हो सकता है। वादी विशिष्ट प्रदर्शन का हकदार है जहां वह आरोप लगाता है और साबित करता है कि उसने अनुबंध की शर्तों का काफी हद तक अनुपालन किया है या अनुबंध करने में सक्षम, तैयार और इच्छुक है। (सत्य जैन

बनाम अनीस अहमद रुश्दी ए.आई.आर.
2013 एस.सी. 434 भी देखें।)

28. बिजय बहादुर बनाम श्री शिव कुमार ए.आई.आर. 1985 इला. 223 के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि जहां तक तत्परता और इच्छा का सवाल है, जबकि 'इच्छा' केवल एक मानसिक प्रक्रिया है, 'तत्परता' उस इच्छा को कार्रवाई में बदलने करने के साथ कुछ करना है और तैयार होने की स्थिति में होने के लिए एक आवश्यक तैयारी से पहले है। इस निरंतर तत्परता और इच्छा के बारे में कथन के रूप में, कानून कभी भी किसी विशेष रूप पर जोर नहीं देता है और आवश्यक कथन किसी भी भाषा में किया जा सकता है जिसे वादी नियोजित करने का विकल्प चुन सकता है। भाषा महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि वाद में किए गए कथनों की समग्रता को वादी की तत्परता और इच्छा को, भले ही आवश्यक अनुमान से इंगित करना चाहिए।

29. यह न्यायालय परम पूज्य आचार्य स्वामी गणेश दासजी बनाम सीताराम थापर में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी नोटिस करता है; (4) एस.सी.सी. 526 जिसमें तत्परता और इच्छा की अवधारणा पर ध्यान दिया गया है और निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"2. अनुबंध करने की तत्परता और अनुबंध को पूरा करने की इच्छा के बीच एक अंतर है। तत्परता से वादी की अनुबंध करने की

क्षमता का मतलब हो सकता है जिसमें खरीद मूल्य का भुगतान करने के लिए उसकी वित्तीय स्थिति शामिल है। अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की उसकी इच्छा का निर्धारण करने के लिए, आचरण की ठीक से जांच की जानी चाहिए। इस बात का कोई दस्तावेजी प्रमाण नहीं है कि वादी के पास प्रतिफल की शेष राशि का भुगतान करने के लिए कभी धन था। यह मानते हुए कि उसके पास धन था, उसे अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा साबित करनी होगी। समझौते की शर्तों के अनुसार, वादी को समझौते के निष्पादन के 7 दिनों के भीतर यानी 27-2-1975 तक प्रतिवादी को मसौदा बिक्री विलेख की आपूर्ति करनी थी। याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत अनुमोदित होने के बाद ड्राफ्ट विक्रय विलेख वापस नहीं किया गया था। अनुबंध के वादी के हिस्से को पूरा करने की तत्परता और इच्छा का तथ्य पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। अदालत तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगा सकती है कि क्या वादी तैयार था और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार था। इस मामले के तथ्य पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करेंगे कि याचिकाकर्ता/वादी तैयार नहीं था और न ही अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की क्षमता थी क्योंकि उसके पास अनुबंधित नकद में प्रतिफल का भुगतान करने की कोई वित्तीय क्षमता नहीं थी और उस समय के लिए भुगतान करने का इरादा था जो उसे अयोग्य बनाता है क्योंकि समय अनुबंध का सार है।

30. इसी प्रकार, जेपी बिल्डर्स एंड अदर बनाम ए. रामदास राव और अन्य; 2011 (1) एस.सी.सी. 429 जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या-22 से 27 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"22. शब्द "तैयार" और "इच्छुक" व्यक्ति अनुबंध की शर्तों को पूरा करने के लिए तैयार किया गया था कि अर्थ. "तत्परता" और "इच्छा" के बीच का अंतर यह है कि पूर्व वितीय क्षमता को संदर्भित करता है और बाद में वादी के आचरण को प्रदर्शन की इच्छा रखता है। आम तौर पर, तत्परता इच्छा द्वारा समर्थित होती है।

23. एन.पी. थिरुगननम बनाम डॉ. आर. जगन मोहन राव [(1995) 5 एस.सी.सी. 115] में एस.सी.सी. पैरा-5 में, इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एस.सी.सी. पीपी 117-18)

"5. ... अधिनियम की धारा 16(सी) में परिकल्पना की गई है कि वादी को दलील देनी चाहिए और साबित करना चाहिए कि उसने अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए प्रदर्शन किया था या हमेशा तैयार रहा है, जो उसके द्वारा किए जाने हैं, उन शर्तों के अलावा जिनके प्रदर्शन को प्रतिवादी द्वारा रोका या माफ कर दिया गया है। वादी की ओर से निरंतर तत्परता और इच्छा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। यह परिस्थिति भौतिक और प्रासंगिक है और राहत देने या देने से इनकार करते समय अदालत द्वारा

विचार किया जाना आवश्यक है। यदि वादी या तो टालने या साबित करने में विफल रहता है, तो उसे असफल होना चाहिए। यह तय करने के लिए कि क्या वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है, अदालत को अन्य उपस्थित परिस्थितियों के साथ-साथ मुकदमा दायर करने से पहले और बाद में वादी के आचरण को ध्यान में रखना चाहिए। प्रतिवादी को जो प्रतिफल देना है, वह आवश्यक रूप से उपलब्ध होना चाहिए। निष्पादन की तारीख से डिक्री की तारीख तक उसे यह साबित करना होगा कि वह तैयार है और हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है। जैसा कि कहा गया है, अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए उनकी तत्परता और इच्छा का तथ्य पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। अदालत तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगा सकती है कि क्या वादी तैयार था और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार था।

24. पी. डिसूजा बनाम शॉड्रिलो नायडू [(2004) 6 एस.सी.सी. 649] में इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी.पी. 654, पैरा-19 और 21)

"19. यह निर्विवाद है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में वादी को अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए अपनी तत्परता और इच्छा स्थापित

करनी चाहिए। यह सवाल कि वादी द्वारा दायित्व का निर्वहन किया गया था या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस संबंध में कोई सीधा सटीक फार्मूला निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

*** **

21. ... अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए वादी की ओर से तत्परता और इच्छा इस सवाल पर भी निर्भर करेगी कि क्या प्रतिवादी ने वह सब कुछ किया जो बिक्री के लिए समझौते के संदर्भ में उसके लिए आवश्यक था।

25. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 16(सी) वादी की ओर से "तत्परता और इच्छा" को अनिवार्य करती है और यह विशिष्ट प्रदर्शन के अनुदान की राहत प्राप्त करने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। यह भी स्पष्ट है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, वादी को अनुबंध की तारीख से अपनी ओर से अनुबंध करने के लिए निरंतर "तत्परता और इच्छा" का आरोप लगाना और साबित करना चाहिए। जिम्मेदारी वादी पर है।

26. आर.सी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल [(1970) 3 एस.सी.सी. 140] में इस न्यायालय द्वारा यह सही माना गया है कि "तत्परता और इच्छा" को सीधा सटीक फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण से

संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता से निर्धारित किया जाना है।

27. यह स्थापित कानून है कि प्रतिपक्षी द्वारा विशिष्ट दलील के अभाव में भी, यह कानून का जनादेश है कि वादी को विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16(सी) का पालन करना होगा और जब इस वैधानिक जनादेश का अनुपालन नहीं होता है, तो अदालत विशिष्ट प्रदर्शन देने के लिए बाध्य नहीं है और उसके पास मुकदमा खारिज करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है। यह भी स्पष्ट है कि प्रदर्शन करने की तत्परता समय के प्रासंगिक बिंदुओं में स्थापित की जानी चाहिए। अनुबंध के हिस्से को पूरा करने के लिए "तत्परता और इच्छा" पक्षों के आचरण से निर्धारित/पता लगाया जाना है।

32. एक अन्य पहलू जो विचार करने योग्य है, वह यह है कि जहां विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, विक्रेता बाद के क्रेता के पक्ष में एक बिक्री-विलेख निष्पादित करता है, तो ऐसी परिस्थितियों में, सभी को एक वाद के लिए पक्षकार बनाया जाना है और किस राहत का दावा किया जाना है और क्या बाद के बिक्री-विलेख को रद्द करना आवश्यक है, यह भी महत्व का एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

33. सूचना के बिना मूल्यवान विचार के लिए एक बाद खरीदार पर एक समझौते का प्रभाव विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 19 से उभरता है और यह पता चलता है कि अचल संपत्ति की बिक्री, केवल अगर हस्तांतरिती

अच्छे विश्वास में मूल्यवान विचार के लिए स्वामित्व / हक्के मिलिक्यत हासिल कर लिया है और बिक्री के पूर्व अनुबंध की सूचना के बिना, बिक्री के लिए पूर्व अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन से प्रतिरक्षा है।

34. प्रारंभ में, न्यायालयों का क्लासिक दृष्टिकोण यह था कि बाद के क्रेता को समझौते को चुनौती देने या तत्परता और इच्छा की दलील को उठाने का अधिकार नहीं था जो केवल मूल विक्रेता के पास उपलब्ध था और बाद के खरीदार के लिए नहीं जो केवल यह साबित करने की अपनी दलील पर चुन सकता था कि वह बिना किसी सूचना के मूल्यवान विचार के लिए अच्छे विश्वास में एक वास्तविक खरीदार था और यह जुगराज सिंह और एक अन्य बनाम लाभ सिंह और अन्य (1995) 2 एस.सी.सी. 31 में देखा गया था।

35. बाद में, इस कानूनी स्थिति में बदलाव आया और राम अवध और अन्य बनाम अचरीबार दुबे और अन्य, (2000)2 एस.सी.सी. 428 में पूर्वोक्त मुद्दे से निपटने के दौरान सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया और इसने तत्परता और इच्छा की दलील सहित सभी दलीलों को बाद के खरीदार के लिए उपलब्ध होने की अनुमति दी और ऐसा करते समय सर्वोच्च न्यायालय ने जुगराज सिंह (उपरोक्त) के फैसले को भी खारिज कर दिया। राम अवध (उपरोक्त) में लिए गए दृष्टिकोण का पालन किया गया और हाल ही में कडुपुगोटला वरलक्ष्मी बनाम वुदागिरी वेंकट राव और अन्य 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 365 में

सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ द्वारा अनुमोदित किया गया।

36. अब, यह तय किया गया है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में जहां विक्रेता बाद के खरीदार के पक्ष में बिक्री-विलेख निष्पादित करता है, तो एक उचित उपाय विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री की तलाश करना है जिसमें वादी विक्रेता को प्रतिवादी के रूप में आरोपित करने के अलावा बाद के खरीदार को भी फंसाएगा और बाद में बिक्री-विलेख को रद्द करने या खराब या शून्य घोषित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। न्यायालय विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री प्रदान कर सकते हैं और बाद के क्रेता को एक निर्देश जारी किया जा सकता है कि वह विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में सफल वादी के पक्ष में विलेख निष्पादित करने के लिए विक्रेता के साथ हाथ मिलाए।

37. इस मुद्दे पर पहली बार दुर्गा प्रसाद बनाम दीप चंद, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 75 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, जिसमें माननीय न्यायमूर्ति ने काफिलुद्दीन बनाम कलकता उच्च न्यायालय के एक फैसले को मंजूरी देने की कृपा की थी। समीरद्दीन, [ए.आई.आर. 1931 कलकता 67]। दुर्गा प्रसाद (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है: -

"42. हमारी राय में, डिक्री का उचित रूप विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना है और बाद के हस्तांतरिती को हस्तांतरण में शामिल होने का निर्देश देना है ताकि उस स्वामित्व / हक्के

मिल्कियत को पारित किया जा सके जो वादी को उसमें रहता है। वह वादी और उसके विक्रेता के बीच किए गए किसी भी विशेष अनुबंध में शामिल नहीं होता है; वह केवल वादी को अपना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत देना चाहता है। काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन [काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन, ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 67] में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था, और यह अंग्रेजी प्रथा प्रतीत होती है। (देखें विशिष्ट प्रदर्शन पर तलना, 6 वां संस्करण, पृष्ठ 90, पैरा-207 और पॉटर बनाम सैंडर्स [(1846)61: 67 ई.आर. 1057] । हम उसी के अनुसार निर्देश देते हैं।

38. इस प्रस्ताव पर भी ध्यान दिया गया और आरसी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल (1970) 3 एस.सी.सी. 140 में इसका पालन किया गया और यह निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

"9. यह सामान्य आधार है कि विवादित भूखंड प्रतिवादियों द्वारा हस्तांतरित किया गया है और इसलिए डिक्री का उचित रूप वही होगा जो दुर्गा प्रसाद बनाम दीप चंद [ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 75: 1954 एस.सी.आर 360] में एस.सी.आर पी 369 में दर्शाया गया है।

'विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना और बाद के हस्तांतरणकर्ता को हस्तांतरण में शामिल होने का निर्देश देना ताकि उस स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को पारित किया जा सके जो वादी को उसमें रहता है। वह वादी और उसके

विक्रेता के बीच किए गए किसी भी विशेष अनुबंध में शामिल नहीं होता है; वह केवल वादी को अपना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत पारित करने के लिए करता है। (ए.आई.आर. पृष्ठ 81, पैरा-42)

हम तदनुसार आदेश देते हैं। निचली अदालतों की डिक्री को इसके द्वारा रद्द किया जाता है और अपील को इस न्यायालय और उच्च न्यायालय में लागत के साथ अनुमति दी जाती है।

39. इस पहलू पर थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड बनाम नानक बिल्डर्स एंड इन्वेस्टर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, (2013) 5 एस.सी.सी. 397 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी विचार किया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया था: -

"39. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक डिक्री एक व्यक्ति के खिलाफ लागू की जा सकती है जिसने वादी (एसआईसी प्रतिवादी) के तहत दावा किया था, और अनुबंध के बाद हासिल किया गया स्वामित्व / हक्के मिल्कियत पर इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि बाद के क्रेता के पक्ष में किया गया ऐसा हस्तांतरण संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 52 और न्यायालय द्वारा पारित संयम आदेश के तहत प्रदान किए गए राइडर के अधीन है।

40. उपरोक्त प्रश्न पर कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा काफिलादीन बनाम

समीरुद्दीन [कफिलादीन बनाम समीराद्दीन, ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 67] में विचार किया गया था, जहां माननीय न्यायमूर्ति ने इस बिंदु पर अंग्रेजी कानून का उल्लेख किया और डार्ट द्वारा लिखित पुस्तक के एक अंश को उद्धृत किया, 'वेंडर्स एंड क्रैयर्स', 8 वें संस्करण, वॉल्यूम 2 पर, जो निम्नानुसार है: (कफिलादीन केस [कफिलादीन बनाम समीरद्दीन, ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 67], ए.आई.आर. पृष्ठ 68)

"इक्विटी विक्रेता के खिलाफ बिक्री के लिए अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को लागू करेगी, और उसके तहत दावा करने वाले सभी व्यक्तियों के खिलाफ, बाद में अनुबंध के लिए उत्पन्न होने वाले स्वामित्व / हक्के मिल्कियत से, मूल्यवान विचार के लिए खरीदारों को छोड़कर, जिन्होंने अपने पैसे का भुगतान किया है और मूल अनुबंध के लिए नोटिस के बिना एक वाहन लिया है।

विस्तृत चर्चा करते हुए, न्यायालय ने अंततः कहा: (कफिलादीन मामला [कफिलादीन बनाम समीरद्दीन, ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 67], ए.आई.आर. पृष्ठ 68)

"कानून का यह बयान ठीक वैसा ही है जैसा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 27 के पहले दो खंडों से है। अंग्रेजी मामलों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है जिसमें अनुबंध करने वाले पक्ष और बाद के खरीदार दोनों के खिलाफ डिक्री पारित की गई है। उनमें से कुछ का उल्लेख करना पर्याप्त है: डेनियल बनाम डेविसन [(1809) 16 वेस जून 249: (1803-13) सभी ई.आर. प्रतिनिधि 432: 33 ई.आर.

978], पॉटर बनाम सैंडर्स [(1846) 6 हरे 1: 67 ई.आर. 1057] और लाइटफुट बनाम बगुला [(1839) 3 वाई एंड सी पूर्व 586: 160 ई.आर. 835] भारत में रिपोर्ट किए गए किसी भी मामले में यह सवाल उचित रूप से नहीं उठता था; लेकिन संविदा के विशिष्ट निष्पादन के मामलों में डिक्री विभिन्न रूपों में कई मामलों में पारित की गई हैं। चंदर कांत रॉय बनाम कृष्णा सुंदर रॉय [आई.एल.आर. (1884) 10 कलकत्ता 710] में केवल ठेका पक्ष के खिलाफ पारित डिक्री को बरकरार रखा गया था। तो यह कन्नन बनाम में था। कृष्णन [आई.एल.आर. (1890) 13 मद 324]। हिम्मतलाल मोतीलाल बनाम वासुदेव गणेश म्हस्कर [आई.एल.आर. (1912) 36बॉम्बे446] में अनुबंधित प्रतिवादी और उसके बाद के खरीदार के खिलाफ पारित डिक्री को मंजूरी दी गई थी। फकी इब्राहिम बनाम फकी गुलाम मोहिदीन [ए.आई.आर. 1921बॉम्बे459] में केवल बाद के खरीदार के खिलाफ पारित डिक्री को अपनाया गया था। गंगाराम बनाम लक्ष्मण गनोबा शेत चौडोले [आई.एल.आर. (1916) 40बॉम्बे498] में मुकदमा बाद के खरीदार द्वारा किया गया था और डिक्री यह थी कि उसे बिक्री के लिए पूर्व समझौता रखने वाले व्यक्ति को संपत्ति देनी चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे मामलों में डिक्री पारित करने में अपनाई गई प्रक्रिया एक समान नहीं है। लेकिन यह उचित है कि विशिष्ट राहत अधिनियम द्वारा समर्थित प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। स्पष्ट तर्क यह है कि जब तक अनुबंध करने वाले पक्ष और बाद के खरीदार दोनों वाहन में शामिल नहीं होते हैं, तब तक यह संभव है कि वादी के स्वामित्व / हक्के

मिल्कियत के संबंध में बाद में कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं।

41. दुर्गा प्रसाद बनाम दीप चंद [ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 75: 1954 एस.सी.आर 360] में उच्चतम न्यायालय ने काफिलादीन मामले [काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन, ए.आई.आर.1931 कलकत्ता 67] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय का उल्लेख किया और अंत में कहा: (दुर्गा प्रसाद मामला [ए.आई. आर.1954 एस.सी.75: 1954 एस.सी.आर 360]ए.आई. आर.पी-81, पैरा-42)

"42. हमारी राय में, डिक्री का उचित रूप विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना है और बाद के हस्तांतरिती को हस्तांतरण में शामिल होने का निर्देश देना है ताकि उस स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को पारित किया जा सके जो वादी को उसमें रहता है। वह वादी और उसके विक्रेता के बीच किए गए किसी भी विशेष अनुबंध में शामिल नहीं होता है; वह केवल वादी को अपना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत देना चाहता है। काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन [काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन, ए.आई.आर.-1931 कलकत्ता 67] में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था, और यह अंग्रेजी प्रथा प्रतीत होती है। (देखें विशिष्ट प्रदर्शन पर तलना, 6वां संस्करण, पृष्ठ-90, पैरा-207 और पॉटर बनाम सैंडर्स [(1846)6 हरे 1:67 ई.आर. 1057] हम उसी के अनुसार निर्देश देते हैं।

42. आर.सी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल [(1970)3 एस.सी.सी. 140: ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1238] में इस न्यायालय ने अपने पहले के फैसले का उल्लेख किया और कहा: (एस.सी.सी. पी.146, पैरा-9)

9. यह सामान्य आधार है कि विवादित भूखंड प्रतिवादियों द्वारा हस्तांतरित किया गया है और इसलिए डिक्री का उचित रूप वही होगा जो दुर्गा प्रसाद बनाम दीप चंद [ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 75: 1954 एस.सी.आर 360] में एस.सी.आर पी 369 में दर्शाया गया है।

'विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना और बाद के हस्तांतरणकर्ता को हस्तांतरण में शामिल होने का निर्देश देना ताकि उस स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को पारित किया जा सके जो वादी को उसमें रहता है। वह वादी और उसके विक्रेता के बीच किए गए किसी भी विशेष अनुबंध में शामिल नहीं होता है; वह केवल वादी को अपना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत पारित करने के लिए करता है। (ए.आई.आर. पृष्ठ 81, पैरा-42)

हम तदनुसार आदेश देते हैं। निचली अदालतों की डिक्री को इसके द्वारा रद्द किया जाता है और अपील को इस न्यायालय और उच्च न्यायालय में लागत के साथ अनुमति दी जाती है।

43. इस न्यायालय ने द्वारका प्रसाद सिंह बनाम हरिकांत प्रसाद सिंह [(1973)1 एस.सी.सी. 179: ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 655] में फिर से अपने पहले के दृष्टिकोण की

सदस्यता ली और माना कि बिक्री के पूर्व समझौते की सूचना वाले व्यक्ति के खिलाफ विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में एक आवश्यक पक्ष है।

40. इस प्रस्ताव को अनुमोदित किया गया था और रत्नावती बनाम कविता गणशमदास, (2015) 5 एस.सी.सी. 223 में दोहराया गया था। यहां तक कि, श्रीमती राजेश्वरी और अन्य बनाम श्रीमती मेहरुनिशन और अन्य में इस न्यायालय ने दूसरी अपील संख्या-375 वर्ष 2001 में, 24.02.2021 को फैसला सुनाया था, दुर्गा प्रसाद (उपरोक्त) में निर्धारित प्रस्ताव का पालन किया था और निम्नानुसार अवधारित किया था: -

"... यह भी उतना ही सच है कि विक्रेता द्वारा बाद के क्रेता के पक्ष में बिक्री-विलेख निष्पादित किए जाने की स्थिति में, वादी को तीसरे पक्ष के पक्ष में बिक्री-विलेख को रद्द करने या घोषित करने की मांग करने की आवश्यकता नहीं है। यदि विशिष्ट निष्पादन का वाद डिक्री किया जाता है तो मूल विक्रेता और तृतीय पक्ष क्रेता/अनुवर्ती क्रेता को पूर्ण स्वामित्व / हक्के मिलिकियत व्यक्त करने के लिए वादी के पक्ष में बिक्री-विलेख में शामिल होना और निष्पादित करना आवश्यक है।

यह न्यायालय लाला दुर्गा प्रसाद और अन्य बनाम लाला दीप चंद और अन्य, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 75 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर अपने विचार में दृढ़ है, जिसमें पैरा-40 से 42 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"40. सबसे पहले, हम उस स्थिति तक पहुँचते हैं कि संपत्ति का स्वामित्व / हक्के मिलिकियत वैध रूप से विक्रेता से पारित हो गया है और बाद के हस्तांतरणकर्ता में रहता है। उसे बिक्री शून्य नहीं है, लेकिन केवल पहले "ठेकेदार" के विकल्प पर शून्यकरणीय है। चूंकि स्वामित्व / हक्के मिलिकियत अब विक्रेता के पास नहीं है, इसलिए उसे वादी को सूचित करने के लिए मजबूर करने के लिए एक संदेश के दृष्टिकोण से यह अतार्किक होगा जब तक कि बाद की बिक्री को रद्द करके या बाद के क्रेता से उसे पुनः प्राप्त करके स्वामित्व / हक्के मिलिकियत को फिर से निहित करने के लिए कदम नहीं उठाए जाते हैं। हम किसी भी मामले के बारे में नहीं जानते हैं जिसमें विक्रेता को एक पुनः सुविधा का आदेश दिया गया था, लेकिन सुलेमान, सीजे ने काली चरण बनाम जनक देव [ए.आई.आर. 1932 इला. 694] में दूसरा रास्ता अपनाया। उन्होंने विक्रेता द्वारा वादी को बिक्री के अनुबंध के अनुसार बाद की बिक्री और हस्तांतरण को रद्द करने का निर्देश दिया, जिसके लिए वादी ने विशिष्ट प्रदर्शन की मांग की थी। लेकिन हालांकि यह तर्कसंगत लगता है, इस पर आपत्ति यह है कि यह विक्रेता और बाद के खरीदार के बीच अपनी जटिलताओं में ला सकता है। उनके बीच विलेख में अनुबंध हो सकते हैं जिन्हें उनके विलेख को रद्द करके परेशान करना अन्यायपूर्ण होगा। तदनुसार, हमें नहीं लगता कि यह एक वांछनीय समाधान है।

41. हम अगले विकल्प के प्रति आसक्त नहीं हैं, अर्थात्, बाद के खरीदार द्वारा अकेले वादी को वहन करना। यह सच है कि वादी में संपत्ति के स्वामित्व / हक्के मिलिकियत को निहित

करने का प्रभाव होगा, लेकिन वादी के साथ विक्रेता के समझौते में शर्तों और अनुबंधों में प्रवेश करने के लिए बाद के हस्तांतरिती को मजबूर करना अन्यायपूर्ण हो सकता है, जिसके लिए वह कभी सहमत नहीं होता वह एक स्वतंत्र एजेंट था; और यदि मूल अनुबंध ऐसी शर्तों को बदलने या छोड़ने से भिन्न होता है, तो अदालत अनुबंध का रीमेक बनाएगी, एक ऐसी चीज जिसे करने की कोई शक्ति नहीं है; और किसी भी मामले में यह अब विशेष रूप से मूल अनुबंध को लागू नहीं करेगा, बल्कि एक और अलग होगा।

42. हमारी राय में, डिब्री का उचित रूप विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना है और बाद के हस्तांतरिती को हस्तांतरण में शामिल होने का निर्देश देना है ताकि उस स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को पारित किया जा सके जो वादी में रहता है। वह वादी और उसके विक्रेता के बीच किए गए किसी भी विशेष अनुबंध में शामिल नहीं होता है; वह केवल वादी को अपना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत देना चाहता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने काफिलुद्दीन बनाम समीरुद्दीन [ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 67] में इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया था और यह अंग्रेजी प्रथा प्रतीत होती है। देखें विशिष्ट प्रदर्शन पर तलना, 6 वां संस्करण, पी. पॉटर भी बनाम सैंडर्स [67 ई.आर. 1057]। हम उसी के अनुसार निर्देश देते हैं।

41. इस मुद्दे पर हाल ही में पी. रामासुबबम्म बनाम वी. विजयलक्ष्मी और अन्य, (2022)7

एस.सी.सी. 384 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, इसका पालन किया गया था और अनुमोदित किया गया था और पैराग्राफ 16 और 17 में, यह निम्नानुसार देखा गया था: -

"16. उपरोक्त तथ्यात्मक पहलुओं और विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के प्रकाश में, दुर्गा प्रसाद [दुर्गा प्रसाद बनाम दीप चंद, 1954 एस.सी.आर 360: ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 75] में इस न्यायालय के निर्णय को संदर्भित किया जाना आवश्यक है। पैरा-42 में, यह देखा गया है और निम्नानुसार अवधारित किया गया है: (ए.आई.आर. पृष्ठ 81)

"42. हमारी राय में, डिब्री का उचित रूप विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना है और बाद के हस्तांतरिती को हस्तांतरण में शामिल होने का निर्देश देना है ताकि उस स्वामित्व / हक्के मिल्कियत को पारित किया जा सके जो वादी को उसमें रहता है। वह वादी और उसके विक्रेता के बीच किए गए किसी भी विशेष अनुबंध में शामिल नहीं होता है; वह केवल वादी को अपना स्वामित्व / हक्के मिल्कियत देना चाहता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन [काफिलादीन बनाम समीरुद्दीन, 1930 एस.सी.सी. ऑनलाइन कलकत्ता 46: ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 67] में इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया था और यह अंग्रेजी प्रथा प्रतीत होती है। देखें विशिष्ट प्रदर्शन पर तलना, 6 वां संस्करण, पी। पॉटर बनाम सैंडर्स [पॉटर बनाम

सैंडर्स, (1846) 6 हरे 1: 67 ई.आर. 1057]। हम उसी के अनुसार निर्देश देते हैं।

उपरोक्त निर्णय को बाद में इस न्यायालय द्वारा रत्नावती [रत्नावती बनाम कविता गणशमदास, (2015) 5 एस.सी.सी. 223: (2015) 2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 736] में बाद के निर्णय में संदर्भित और बाद में किया गया है।

17. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34 पर बहुत अधिक भरोसा किया है। हालांकि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि प्रतिवादी 3 और 4 के पक्ष में मूल प्रतिवादी 2 द्वारा निष्पादित बिक्री विलेखों दिनांक 3-5-2010 के संबंध में विशिष्ट मुद्दों को तैयार किया गया था और पक्षों ने पूर्वोक्त मुद्दों पर भी साक्ष्य का नेतृत्व किया और उसके बाद, जब विचारण न्यायालय ने उक्त मुद्दों पर निष्कर्ष दिए थे और उसके बाद, यह घोषणा की थी कि मूल प्रतिवादी-2 द्वारा प्रतिवादी 3 और 4 के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख हैं प्रतिवादी 1 और वादी पर बाध्यकारी नहीं हैं और वे बिक्री विलेख नाममात्र बिक्री विलेख हैं और प्रतिवादी 2 से 4 यह साबित करने में विफल रहे हैं कि 12-4-2005 को बेचने का समझौता एक बनाया गया दस्तावेज है और उसी के आधार पर कोई विचार नहीं किया गया है, विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा निर्भरता रखी गई है, का कोई आवेदन नहीं होगा।

42. अब मंच निर्धारित है और एक बार वादी समझौते, इसकी प्रवर्तनीयता, उसकी तत्परता और परीक्षण के दौरान अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा को साबित कर देता है, तो आमतौर पर, वादी विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्री का हकदार होता है। हालांकि, जैसा कि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री प्रकृति में विवेकाधीन है, इसलिए, केवल कुछ मामलों में न्यायालय को विशिष्ट प्रदर्शन के अनुदान से इनकार करने में उचित ठहराया जा सकता है, भले ही ऐसा करना वैध हो। यह विवेकाधिकार जो न्यायालय में निहित है, कानून के अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए और मनमाना या सनकी नहीं होना चाहिए।

43. अब, मामले के इस पहलू की बेहतर का मूल्यांकन किया करने के लिए, इस विवेक के स्रोत को नोटिस करना भी आवश्यक होगा जो विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 में सन्निहित है। इस धारा 20 में भी 2018 में विधायी परिवर्तन हुआ है। हालांकि, विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 को इसके संशोधन से पहले निम्नानुसार पढ़ा गया था: -

"धारा 20. विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने के बारे में विवेक--(1) विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने की अधिकारिता विवेकाधीन है, और न्यायालय ऐसी राहत देने के लिए केवल इसलिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है; लेकिन न्यायालय का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, बल्कि उचित है, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है और अपील की अदालत द्वारा सुधार करने में सक्षम है।

(2) निम्नलिखित मामले हैं जिनमें न्यायालय विशिष्ट निष्पादन की डिक्री न करने के लिए विवेक का उचित प्रयोग कर सकता है: -

(ए) जहां अनुबंध की शर्तें या अनुबंध में प्रवेश करने के समय पक्षों का आचरण या अन्य परिस्थितियां जिनके तहत अनुबंध में प्रवेश किया गया था, ऐसी हैं कि अनुबंध, हालांकि शून्यकरणीय नहीं है, वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ देता है; नहीं तो

(बी) जहां अनुबंध के प्रदर्शन में प्रतिवादी पर कुछ कठिनाई शामिल होगी, जिसका उसने अनुमान नहीं लगाया था, जबकि इसके गैर-प्रदर्शन में वादी पर ऐसी कोई कठिनाई शामिल नहीं होगी; नहीं तो

(ग) जहां प्रतिवादी ने उन परिस्थितियों में अनुबंध में प्रवेश किया, जो अनुबंध को शून्यकरणीय नहीं बनाते हैं, विशिष्ट प्रदर्शन को लागू करने के लिए इसे असमान बनाता है।

स्पष्टीकरण 1. - विचार की मात्र अपर्याप्तता, या मात्र तथ्य यह है कि अनुबंध प्रतिवादी के लिए कठिन है या इसकी प्रकृति में अनुचित है, खंड (ए) के अर्थ के भीतर एक अनुचित लाभ या खंड (बी) के अर्थ के भीतर कठिनाई का गठन नहीं माना जाएगा।

स्पष्टीकरण 2.- यह प्रश्न कि क्या अनुबंध के प्रदर्शन में खंड (बी) के अर्थ के भीतर प्रतिवादी पर कठिनाई शामिल होगी, उन मामलों को छोड़कर जहां अनुबंध के बाद वादी के किसी भी कार्य से कठिनाई हुई है, अनुबंध के समय

मौजूद परिस्थितियों के संदर्भ में निर्धारित किया जाएगा।

(3) न्यायालय किसी भी मामले में विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने के लिए विवेक का उचित प्रयोग कर सकता है जहां वादी ने पर्याप्त कार्य किए हैं या विशिष्ट प्रदर्शन में सक्षम अनुबंध के परिणामस्वरूप नुकसान उठाना पड़ा है।

(4) न्यायालय किसी संविदा के किसी पक्षकार विशिष्ट निष्पादन को केवल इस आधार पर मना नहीं करेगा कि संविदा पक्षकार के कहने पर प्रवर्तनीय नहीं है।

44. हालांकि, संशोधन अधिनियम वर्ष 2018 और विशेष रूप से विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 के माध्यम से विशिष्ट राहत अधिनियम में किए गए विधायी परिवर्तनों ने विवेक को समाप्त कर दिया है और अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन की राहत अब विवेकाधीन नहीं है। संशोधित धारा 20 निम्नानुसार है: -

"20. संविदा का प्रतिस्थापित, निष्पादन- (1) भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (9 वर्ष 1872) में अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, और, पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति के सिवाय, जहां संविदा किसी पक्षकार द्वारा वचन का पालन न किए जाने के कारण टूट जाती है, ऐसे भंग से पीड़ित पक्षकार के पास तृतीय पक्ष या उसकी अपनी अभिकरण द्वारा प्रतिस्थापित निष्पादन का विकल्प होगा, और, इस तरह के उल्लंघन

करने वाली पक्ष से वास्तव में किए गए, खर्च किए गए या उसके द्वारा किए गए खर्चों और अन्य लागतों की वसूली करें।

(2) उप-धारा (1) के तहत अनुबंध का कोई प्रतिस्थापित प्रदर्शन तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि इस तरह के उल्लंघन से पीड़ित पक्ष ने लिखित रूप में नोटिस नहीं दिया है, तीस दिनों से कम नहीं, उल्लंघन में पक्ष को नोटिस में निर्दिष्ट ऐसे समय के भीतर अनुबंध करने के लिए कहा जाता है, और ऐसा करने से इनकार करने या विफलता पर, वह किसी तीसरे पक्ष या अपनी एजेंसी द्वारा भी ऐसा ही कर सकता है:

बशर्ते कि इस तरह के उल्लंघन से पीड़ित पक्ष उप-धारा (1) के तहत खर्च और लागत की वसूली का हकदार नहीं होगा जब तक कि उसने किसी तीसरे पक्ष या अपनी एजेंसी द्वारा अनुबंध नहीं किया है।

(3) जहां संविदा के उल्लंघन से पीड़ित पक्षकार ने उपधारा (1) के अधीन सूचना देने के पश्चात् किसी तृतीय पक्षकार या अपनी अभिकरण द्वारा संविदा का निष्पादन करवा लिया है, वहां वह उल्लंघन में पक्षकार के विरुद्ध विशिष्ट निष्पादन की राहत का दावा करने का हकदार नहीं होगा।

(4) इस धारा की कोई बात संविदा भंग करने वाले पक्षकार को उल्लंघन में पक्षकार से क्षतिपूर्ति का दावा करने से निवारित नहीं करेगी।

45. हालांकि, उक्त संशोधन पूर्वव्यापी नहीं है और संशोधन के प्रवर्तन की तारीख से पहले के लेनदेन पर लागू नहीं होगा अर्थात् 01.10.2018 और इस प्रश्न का उत्तर सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में कट्टा सुजाता रेड्डी और अन्य बनाम सिद्दामसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, (2023) 1 एस.सी.सी. 355 में दिया था, जिसमें पैरा-58 और 59 में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"58. मौजूदा मामले में, संशोधन अधिनियम में कहा गया है कि उक्त प्रतिस्थापित प्रावधान ऐसी तारीख को लागू होंगे जो केंद्र सरकार आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्धारित कर सकती है, या अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के लिए अलग-अलग तारीखें नियुक्त की जा सकती हैं। यह ध्यान दिया जा सकता है कि 1-10-2018 नियत तारीख थी जिस पर संशोधित प्रावधान प्रभावी होंगे।

59. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि विशिष्ट राहत अधिनियम में 2018 का संशोधन भावी है और उन लेनदेन पर लागू नहीं हो सकता है जो इसके लागू होने से पहले हुए थे।

46. चूंकि, इस मामले में, लेनदेन 01.10.2018 से पहले है, इसलिए इसके संशोधन से पहले की धारा 20 लागू होगी। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि किसी भी परिस्थिति में जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि हालांकि वादी विशिष्ट निष्पादन की डिक्री का हकदार है, लेकिन यदि इस तरह

की डिक्री निष्पादित की जाती है तो यह कुछ अविवेकपूर्ण परिणामों को जन्म दे सकती है या न्यायालय पाता है कि समझौते की शर्तें अपने आप में अनुचित हैं या कुछ स्पष्ट परिस्थितियां हैं जो बताती हैं कि अनुबंध विशेष रूप से लागू किया गया है तो यह एक पक्ष को अनुचित लाभ दे सकता है और ऐसा करना न्यायसंगत नहीं होगा, तो ऐसे मामलों में, न्यायालय को विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देने से इनकार करने में न्यायसंगत हो सकता है और इसके बदले में पक्षों के बीच पूर्ण और पर्याप्त न्याय करने के लिए बयाना धन की वापसी सहित ऐसे आदेश पारित कर सकता है।

47. यह भी देखा जा सकता है कि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री प्रकृति में विशुद्ध रूप से न्यायसंगत है, तदनुसार, यह आवश्यक है कि वादी को साफ हाथों से न्यायालय में आना चाहिए और उसका आचरण निंदनीय नहीं होना चाहिए और विवेक का प्रयोग करने के लिए परिस्थितियों का वजन करते समय, न्यायालय यह पता लगाने के लिए भी बाध्य है कि प्रतिवादी को अपनी गलती या उसके आचरण में से किसी के लिए लाभान्वित या पुरस्कृत नहीं किया जा सकता है और कि प्रतिवादी को भी दोष से मुक्त होना चाहिए।

48. विवेक का प्रयोग कैसे किया जाना है, यह पूर्वोक्त बिंदु पर सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख निर्णयों की सहायता से सुनिश्चित किया जा सकता है। के. नरेंद्र बनाम रिवेरा अपार्टमेंट्स (पी) लिमिटेड, (1999) 5 एस.सी.सी. 77 में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"29. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 प्रदान करती है कि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने का अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है और अदालत ऐसी राहत देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है; न्यायालय का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, बल्कि उचित है, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है और अपील की अदालत द्वारा सुधार करने में सक्षम है। प्रतिवादी पर कुछ कठिनाई को शामिल करने वाले अनुबंध का प्रदर्शन, जिसे उसने पूर्वाभास नहीं किया था, जबकि गैर-प्रदर्शन जिसमें वादी पर ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी, उन परिस्थितियों में से एक है जिसमें अदालत विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री नहीं करने के लिए विवेक का उचित प्रयोग कर सकती है। तुलनात्मक कठिनाई के सिद्धांत को इस प्रकार भारत में वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। हालांकि, विचार की मात्र अपर्याप्तता या केवल तथ्य यह है कि अनुबंध प्रतिवादी के लिए कठिन है या इसकी प्रकृति में अनुचित है, प्रतिवादी अप्रत्याशित कठिनाई पर वादी के लिए अनुचित लाभ का गठन नहीं करेगा। धारा 20 में अंतर्निहित सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा लूई मारी डेविड बनाम लुई चिन्नया आरोग्यस्वामी [(1996) 5 एस.सी.सी. 589: ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 2814] में यह कहते हुए अभिव्यक्त किया गया है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री न्यायालय के विवेक में है लेकिन विवेक का मनमाने ढंग से उपयोग नहीं किया जाना चाहिए; अपीलीय अदालत द्वारा सुधार में सक्षम कानून के ठोस सिद्धांतों पर विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए।

49. पुनः, जी. जयश्री एवं अन्य बनाम भगवानदास एस. पटेल एवं अन्य (2009) 3 एस.सी.सी. 141 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:-

"32. सिविल अदालतें, बेचने के लिए एक समझौते के प्रवर्तन के मामले में, एक विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती हैं। विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए और मनमाने ढंग से नहीं। एक वादी से साफ हाथों/सही तथ्यों से अदालत का दरवाजा खटखटाने की उम्मीद की जाती है। उनका आचरण कानून की अदालत द्वारा विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग के मामले में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मोहम्मदिया कॉप बिल्डिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी श्रीनिवास कॉप बिल्डिंग सोसाइटी लिमिटेड [(2008) 7 एस.सी.सी. 310] में इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एस.सी.सी. पी. 327, पैरा-71)

"71. संविदा के विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री प्रदान करना एक विवेकाधीन राहत है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए न कि मनमाने ढंग से। लेकिन उक्त उद्देश्य के लिए, वादी का आचरण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अदालतें आमतौर पर उस व्यक्ति के पक्ष में कोई राहत नहीं देंगी जो गलत तथ्यों के साथ अदालत का दरवाजा खटखटाता है।

33. संजना एम. विग बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड [(2005) 8 एस.सी.सी. 242] विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग के संबंध में, इस न्यायालय ने माना कि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिसके लिए कोई कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

34. हम देख सकते हैं कि बी. पी. वैरावन [(1997) 3 एस.सी.सी. 1] ने माना कि एक नया रूप देने की आवश्यकता है और नियम की कठोरता को अदालतों द्वारा इस सिद्धांत के संबंध में शिथिल करने की आवश्यकता है कि अचल संपत्तियों के मामले में समय अनुबंध का सार नहीं है क्योंकि जब उक्त सिद्धांत विकसित किया गया था तो कीमतें और मूल्य स्थिर थे और मुद्रास्फीति थी, बताते हुए: (एस.सी.सी. पीपी 9- 10, पैरा-11)

"11. ... वादी के अधिवक्ता का कहना है कि जब पक्षों ने अनुबंध में प्रवेश किया, तो उन्हें पता था कि कीमतें बढ़ रही हैं; इसलिए, वे कहते हैं, कीमतों में वृद्धि विशिष्ट प्रदर्शन को नकारने का आधार नहीं हो सकती है। हो सकता है, पक्षों को उक्त परिस्थिति के बारे में पता था, लेकिन उन्होंने छह महीने की अवधि भी निर्दिष्ट की है जिसके भीतर लेनदेन पूरा किया जाना चाहिए। उक्त समय-सीमा समय को अनुबंध का सार बनाने के लिए नहीं हो सकती है, लेकिन इसका अभी भी कुछ अर्थ होना चाहिए। कुछ भी नहीं के लिए इस तरह

की समय-सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती थी। क्या इसे कानून के नियम या विवेक के नियम के रूप में कहा जा सकता है कि जहां समय को अनुबंध का सार नहीं बनाया जाता है, अनुबंध में प्रदान किए गए समय की सभी शर्तों का कोई महत्व या अर्थ नहीं है या वे गैर-मौजूद के रूप में अच्छे हैं? इन सबका मतलब केवल यह है कि अपने विवेक का इस्तेमाल करते हुए अदालत को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जब पक्ष एक या दूसरे पक्ष द्वारा कदम उठाने के लिए निश्चित समय-सीमा निर्धारित करते हैं, तो इसका कुछ महत्व होना चाहिए और उक्त समय-सीमा को इस आधार पर पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि समय को अनुबंध का सार नहीं बनाया गया है (अचल संपत्तियों से संबंधित)।

इस न्यायालय ने मैडम सेट्टी सत्यनारायण बनाम जी. येलोजी राव [ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 1405: (1965) 2 एस.सी.आर 221] में दिए गए निर्णय पर ध्यान दिया, जहां सुब्बा राव, जे (जैसा कि तब माननीय न्यायमूर्ति था) ने इस विषय पर भारतीय कानून और अंग्रेजी कानून के बीच अंतर किया कि कुछ देरी विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने में बाधा नहीं हो सकती है क्योंकि इस तरह के मुकदमे को दायर करने की सीमा सीमा अधिनियम के तहत निर्धारित है, 1963, बताते हुए: (केएस विद्यानंदम केस

[(1997) 3 एस.सी.सी. 1], एस.सी.सी. पी. 10, पैरा-13)

"13. हमारे सामने मामले में, यह केवल देरी नहीं है। यह समझौते की शर्तों के स्पष्ट उल्लंघन में 2 ½ साल के लिए वादी की ओर से कुल निष्क्रियता का मामला है, जिसके लिए उसे शेष राशि का भुगतान करने, स्टाम्प पेपर खरीदने और फिर छह महीने के भीतर बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए कहने की आवश्यकता थी। इसके अलावा, देरी कीमतों में पर्याप्त वृद्धि के साथ युग्मित है - प्रतिवादियों के अनुसार, समझौते की तारीख और वाद नोटिस की तारीख के बीच तीन बार। देरी ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहां वादी को विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देना अन्यायपूर्ण होगा।

50. रमेश चंद्र बनाम असरुद्दीन, (2016) 1 एस.सी.सी. 653 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"8. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20, प्रदान करती है कि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने का अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है, और अदालत इस तरह की राहत देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। हालांकि, अदालत का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, बल्कि न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित उचित है। अधिनियम की धारा 20 की उप-धारा (2) में तीन स्थितियों का प्रावधान है जिसमें न्यायालय विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री नहीं करने के लिए विवेक का प्रयोग कर सकता

है। ऐसी ही एक स्थिति धारा 20 की उपधारा (2) के खंड (क) में निहित है जो यह उपबंध करती है कि जहां संविदा की शर्तें या संविदा में प्रवेश करने के समय पक्षकारों का आचरण या अन्य परिस्थितियाँ जिनके अधीन संविदा में प्रवेश किया गया था, ऐसी हैं कि संविदा, यद्यपि शून्यकरणीय नहीं है; वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ देता है, विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री पारित करने की आवश्यकता नहीं है। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि प्रस्तुत मामले में, हालांकि पक्षों के बीच 21-6-2004 के समझौते का निष्पादन साबित होता है, लेकिन वादी द्वारा कहीं भी यह दलील या साबित नहीं किया गया है कि उसने समझौते के संदर्भ में प्रतिवादी 2 के पक्ष में गिरवी रखी गई भूमि को छुड़ा लिया था, न ही यह विशेष रूप से दलील दी गई है कि वह बंधक से संपत्ति को छुड़ाने के लिए तैयार और इच्छुक था।

51. सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से के. नंजप्पा बनाम आर.ए. हमीद, (2016)1 एस.सी.सी. 762 में धारा 20 के दायरे पर विचार किया और पैरा-23 से 28 में निम्नानुसार अवधारित किया:

"23. एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, अदालत को विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 को ध्यान में रखना होगा। यह धारा विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री देने के लिए न्यायिक विवेक को सुरक्षित रखती है। हालांकि, अदालत केवल विशिष्ट प्रदर्शन देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। अदालत को मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक

विचार करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि इसका उपयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में न केवल वादी को बल्कि प्रतिवादी को भी अनुचित लाभ पहुंचाने के लिए नहीं किया जाता है।

24. सूर्य नारायण उपाध्याय बनाम राम रूप पांडे [1995 सप्प (4) एस.सी.सी. 542] में, इस न्यायालय ने विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 पर विचार करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया: (एस.सी.सी. पीपी 543-44, पैरा-4)

"4. हालांकि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री एक विवेकाधीन शक्ति है, फिर भी अदालत इस तरह की राहत देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है; लेकिन न्यायालय का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, बल्कि उचित है, कानून के न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है और अपील की अदालत द्वारा सुधार करने में सक्षम है। इसलिए, अधिनियम की धारा 20 में यथा परिकल्पित कानून के स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विवेकाधिकार का उचित प्रयोग किया जाना चाहिए। यह मामला दर्शाता है कि उच्च न्यायालय [राम रूप पांडे बनाम सूर्य नारायण उपाध्याय, द्वितीय अपील संख्या-2385 वर्ष 1974, 26-9-1979 (इला) (असूचित)] को निर्णय दिया गया, विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री देने से इनकार करने के लिए अप्रासंगिक विचार को ध्यान में रखा। इसने विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज तथ्यों के समवर्ती

निष्कर्ष को उलटने में प्रकट अवैधता भी की, अर्थात्, अपीलकर्ता हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार रहा है।

25. यह समान रूप से अच्छी तरह से तय है कि विशिष्ट प्रदर्शन की राहत विवेकाधीन है लेकिन मनमानी नहीं है, इसलिए, विवेक का प्रयोग उचित न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार किया जाना चाहिए। न्यायालयों को एक या दूसरे तरीके से विवेक का प्रयोग करने के लिए एक गाइड प्रदान करने वाले मामले केवल दृष्टांत हैं, वे संपूर्ण होने का इरादा नहीं रखते हैं। इंग्लैंड में, विशिष्ट प्रदर्शन की राहत इक्विटी के क्षेत्र से संबंधित है, लेकिन भारत में विवेक का प्रयोग वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित होता है।

26. मायावंती बनाम कौशल्या देवी [(1990) 3 एस.सी.सी. 1] में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: (एस.सी.सी. पीपी 5-6, पैरा-8)

"8. विशिष्ट प्रदर्शन के मामले में यह तय कानून है, और वास्तव में यह संदेह नहीं किया जा सकता है, कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन का आदेश देने का अधिकार क्षेत्र एक वैध और लागू करने योग्य अनुबंध के अस्तित्व पर आधारित है। अनुबंध का कानून अनुबंध की स्वतंत्रता के आदर्श पर आधारित है और यह सीमित सिद्धांत प्रदान करता है

जिसके भीतर पक्ष अपने स्वयं के अनुबंध बनाने के लिए स्वतंत्र हैं। जहां एक वैध और लागू करने योग्य अनुबंध नहीं किया गया है, अदालत उनके लिए अनुबंध नहीं करेगी। विशिष्ट प्रदर्शन का आदेश नहीं दिया जाएगा यदि अनुबंध स्वयं कुछ दोष से ग्रस्त है जो अनुबंध को अमान्य या अप्रवर्तनीय बनाता है। अदालत का विवेक वहां होगा, भले ही अनुबंध अन्यथा वैध और लागू करने योग्य हो और अनुबंध का कोई उल्लंघन होने से पहले ही यह विशिष्ट प्रदर्शन की डिग्री पारित कर सकता है। इसलिए, पहले यह देखना आवश्यक है कि क्या कोई वैध और प्रवर्तनीय अनुबंध रहा है और फिर इससे उत्पन्न होने वाली प्रकृति और दायित्व को देखना आवश्यक है। अनुबंध दायित्व की नींव होने के नाते, विशिष्ट प्रदर्शन का क्रम उस दायित्व को लागू करना है।

27. के. प्रकाश बनाम बी.आर. संपत कुमार [(2015)1 एस.सी.सी. 597: (2015)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 600] (एस.सी.सी. पीपी 604-05, पैरा-13-16) में इस न्यायालय ने अवधारित किया:

"13. निर्विवाद रूप से, विशिष्ट प्रदर्शन के लिए उपाय एक न्यायसंगत उपाय है। विशिष्ट प्रदर्शन के लिए राहत देते समय अदालत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है। अधिनियम की धारा 20 में विशेष रूप से प्रावधान है कि विशिष्ट निष्पादन की डिग्री प्रदान करने का न्यायालय का क्षेत्राधिकार विवेकाधीन है

लेकिन मनमाना नहीं है। विवेकाधिकार का प्रयोग ठोस और उचित न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार किया जाना चाहिए।

14. रूक के मामले में राजा की बेंच [(1598) 5 सह प्रतिनिधि 99 बी: 77 ई.आर. 209] ने कहा:

'विवेक एक विज्ञान है, पुरुषों की इच्छा और निजी स्नेह के अनुसार मनमाने ढंग से कार्य नहीं करना: इसलिए यहां जो विवेक प्रयोग किया जाता है, वह कानून और इक्विटी के नियमों द्वारा शासित होना है, जिसका विरोध नहीं करना है, लेकिन प्रत्येक, अपनी बारी में, दूसरे के अधीन होना है। यह विवेकाधिकार, कुछ मामलों में अप्रत्यक्ष रूप से कानून का पालन करता है, दूसरों में, इसकी कठोरता को कम करता है, लेकिन किसी भी मामले में यह इसके आधार या सिद्धांतों का खंडन या उलट नहीं करता है, जैसा कि कभी-कभी इस न्यायालय पर अज्ञानता से लगाया गया है। यह एक विवेकाधीन शक्ति है, जिसे न तो यह और न ही कोई अन्य न्यायालय, यहां तक कि सर्वोच्च भी नहीं, न्यायिक क्षमता में कार्य करना संविधान द्वारा सौंपा गया है।

15. अटॉर्नी जनरल बनाम में चांसरी की अदालत। व्हीट [(1759) 1 ईडन 177: 28 ई.आर. 652] ने रूक के मामले का अनुसरण किया [(1598) 5 सह प्रतिनिधि

99 बी: 77 ई.आर. 209] और देखा: (ई.आर. पृष्ठ 666)

'... कानून स्पष्ट है, और इक्विटी की अदालतों को न्यायसंगत सम्पदा के स्वामित्व / हक्के मिल्कियत से संबंधित अपने निर्णयों में इसका पालन करना चाहिए; अन्यथा बड़ी अनिश्चितता और भ्रम पैदा हो जाएगा। और यद्यपि इक्विटी में कार्यवाही को किसी भी प्रकार का विवेकाधिकार कहा जाता है, फिर भी, जब यह पूछा जाता है, तो क्या बोनस है? जवाब है, जो परामर्श पत्र, जो पैर जुराक सर्वट. और जैसा कि रूक के मामले में कहा गया है [(1598) 5 सह प्रतिनिधि 99 बी: 77 ई.आर. 209] , कि विवेक एक विज्ञान है जो पुरुषों की इच्छा और निजी स्नेह के अनुसार मनमाने ढंग से कार्य नहीं करता है; इसलिए विवेकाधिकार जिसे यहां निष्पादित किया जाना है, कानून और इक्विटी के नियमों द्वारा शासित होना है, जिसका विरोध नहीं करना है, लेकिन प्रत्येक अपनी बारी में दूसरे के अधीन होना है। यह विवेक, कुछ मामलों में कानून का पालन करता है; दूसरों में इसकी सहायता करता है, और उपाय को आगे बढ़ाता है; दूसरों में, फिर से, यह दुरुपयोग के खिलाफ राहत देता है, या इसकी कठोरता को कम करता है; लेकिन किसी भी मामले में यह उन आधारों या सिद्धांतों का खंडन या उलट नहीं करता है, जैसा कि कभी-कभी इस न्यायालय पर अज्ञानतापूर्वक लगाया गया है। यह एक विवेकाधीन शक्ति है,

जिसे न तो यह, न ही कोई अन्य न्यायालय, यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय, न्यायिक क्षमता में कार्य करते हुए, संविधान द्वारा सौंपा गया है। यह विवरण पूर्ण और विवेकपूर्ण है, और हर न्यायाधीश के दिमाग पर अंकित होना चाहिए।

16. सिद्धांत जो प्रतिपादित किया जा सकता है वह यह है कि जहां वादी बिक्री के लिए अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा लाता है, कानून विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री के अनुदान के लिए पूर्ववर्ती शर्त पर जोर देता है: कि वादी को अनुबंध की तारीख से सुनवाई की तारीख तक अपनी शर्तों के अनुसार अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा अपनी निरंतर तत्परता दिखानी चाहिए। आम तौर पर, जब विचारण न्यायालय अभिलेखों पर मौजूद संपूर्ण साक्ष्य और सामग्रियों की का मूल्यांकन किया के बाद एक या दूसरे तरीके से अपने विवेक का प्रयोग करता है, तो अपीलीय अदालत को तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि विवेक का प्रयोग विकृत, मनमाने ढंग से या न्यायिक सिद्धांतों के खिलाफ किया गया है। अपीलीय अदालत को बाहरी विचारों या सहानुभूतिपूर्ण विचारों पर विशिष्ट प्रदर्शन के अनुदान के खिलाफ अपने विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह सच है, जैसा कि विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20

के तहत विचार किया गया है, कि एक पक्ष विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री प्राप्त करने का हकदार नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। फिर भी, एक बार बेचने के लिए एक समझौता कानूनी और वैध रूप से साबित हो जाता है और इस तरह के डिक्री प्राप्त करने के लिए आगे की आवश्यकताएं स्थापित हो जाती हैं, तो अदालत को विशिष्ट प्रदर्शन के लिए राहत देने के पक्ष में अपने विवेक का प्रयोग करना होगा।

28. इस न्यायालय द्वारा ज़रीना सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम [(2015) 1 एस.सी.सी. 705: (2015) 1 एस.सी.सी. (सिविल) 660] में भी संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: (एस.सी.सी. p. 718, पैरा-33)

"33. विशिष्ट प्रदर्शन के लिए राहत देने या न देने का न्यायसंगत विवेक भी पक्षों के आचरण पर निर्भर करता है। आवश्यक घटक को वादी द्वारा साबित और स्थापित किया जाना चाहिए ताकि वादी के पक्ष में विवेकपूर्ण तरीके से विवेक का प्रयोग किया जा सके। उसी समय, यदि प्रतिवादी साफ हाथों से नहीं आता है और भौतिक तथ्यों और सबूतों को दबाता है और अदालत को गुमराह करता है तो विशिष्ट प्रदर्शन देने से इनकार करके इस तरह के विवेक का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

52. एक और महत्वपूर्ण पहलू जिस पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या कार्यवाही की लम्बितता के दौरान संपत्ति की कीमतों में वृद्धि को एक विषम परिस्थितियों के रूप में माना जा सकता है ताकि न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग कर सके और विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने से इनकार कर सके।

53. इस मुद्दे पर जयकांतम और अन्य बनाम भारत संघ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। अभयकुमार, (2017) 5 एस.सी.सी. 178 और यह निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

"7. प्रस्तुत मामले में विशिष्ट प्रदर्शन का फैसला किया जाना चाहिए था या नहीं, इसका मूल्यांकन करते समय, कानून के मौलिक सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा। अदालत केवल विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20(1) इंगित करती है कि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने का अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है। फिर भी, अदालत का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, लेकिन "न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित" होने के लिए "उचित" है। विवेक का प्रयोग अपीलीय अदालतों के पदानुक्रम में अपील की अदालत द्वारा सही किए जाने में सक्षम है। धारा 20 की उप-धारा (2) में उन मामलों की एक शर्त शामिल है जहां अदालत विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान नहीं करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग कर

सकती है। धारा 20 की उपधारा (2) निम्नलिखित शब्दों में है:

"20. (2) निम्नलिखित मामले हैं जिनमें न्यायालय उचित रूप से विवेक का प्रयोग कर सकता है ताकि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री न किया जा सके-

(ए) जहां अनुबंध की शर्तें या अनुबंध में प्रवेश करने के समय पक्षों का आचरण या अन्य परिस्थितियां जिनके तहत अनुबंध में प्रवेश किया गया था, ऐसी हैं कि अनुबंध, हालांकि शून्यकरणीय नहीं है, वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ देता है; नहीं तो

(बी) जहां अनुबंध के प्रदर्शन में प्रतिवादी पर कुछ कठिनाई शामिल होगी, जिसका उसने अनुमान नहीं लगाया था, जबकि इसके गैर-प्रदर्शन में वादी पर ऐसी कोई कठिनाई शामिल नहीं होगी;

(ग) जहां प्रतिवादी ने उन परिस्थितियों में अनुबंध में प्रवेश किया, जो अनुबंध को शून्यकरणीय नहीं बनाते हैं, विशिष्ट प्रदर्शन को लागू करने के लिए इसे अन्यायपूर्ण बनाता है।

8. हालांकि, स्पष्टीकरण-1 विचार की मात्र अपर्याप्तता, या मात्र तथ्य यह है कि अनुबंध अपनी प्रकृति में प्रतिवादी या अनुचित करने के लिए कठिन है, खंड (क) या खंड (ख) के अर्थ के भीतर कठिनाई के भीतर एक अनुचित लाभ का

गठन नहीं होगा कि निर्धारित करता है। इसके अलावा, स्पष्टीकरण 2 की आवश्यकता है कि इस मुद्दे के रूप में कि क्या अनुबंध के प्रदर्शन में प्रतिवादी पर कठिनाई शामिल है, अनुबंध के समय मौजूद परिस्थितियों के संदर्भ में निर्धारित किया जाना है, सिवाय इसके कि जहां अनुबंध के बाद वादी के एक अधिनियम से कठिनाई हुई है।

9. इस विषय पर पूर्वोदाहरण नीचे स्पष्ट किया गया है:

9.1. फ्लाइंग हाउस जोसेफ के जोन मैथ्यू बनाम नेदुम्बरा कुरुविला के जोन [फ्लाइंग हाउस जोसेफ जोन मैथ्यू बनाम नेदुम्बरा कुरुविला का जोन, 1987 एसएपी एस.सी.सी. 340: एयर 1987 एस.सी. 2328] में, इस अदालत ने टैट: (एस.सी.सी. पी. 345, पैरा-14)

"14. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने के रूप में अदालतों के न्यायिक विवेक को संरक्षित करती है। अदालत को मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। अदालत केवल विशिष्ट प्रदर्शन देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। मुकदमेबाजी के पीछे का मकसद भी न्यायिक फैसले में प्रवेश करना चाहिए। अदालत को यह देखने के लिए ध्यान रखना चाहिए कि इसका उपयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में नहीं किया

जाता है ताकि वादी को अनुचित लाभ हो।

9.2. इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा सरदार सिंह बनाम कृष्णा देवी [सरदार सिंह बनाम कृष्णा देवी, (1994) 4 एस.सी.सी. 18] में अपनाया गया था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 26, पैरा-14)

"14. ... विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 (1) प्रदान करती है कि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने का अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है, और अदालत ऐसी राहत देने के लिए बाध्य नहीं है, केवल इसलिए कि ऐसा करना वैध है; लेकिन न्यायालय का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, बल्कि उचित है, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है और अपील की अदालत द्वारा सुधार करने में सक्षम है। विशिष्ट निष्पादन की राहत प्रदान करना विवेकाधीन है। धारा 20 में निर्दिष्ट परिस्थितियां केवल दृष्टांत हैं और संपूर्ण नहीं हैं। अदालत प्रत्येक मामले में परिस्थितियों, पक्षों के आचरण और अनुबंध के तहत संबंधित हित को ध्यान में रखेगी।

9.3. नरेंद्र रिवर अपार्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड बनाम (1999) 5 एस.सी.सी. 77] में स्थिति को दोहराते हुए, इस न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया: (एस.सी.सी. p. 91, पैरा 29)

“29. ... प्रतिवादी पर कुछ कठिनाई को शामिल करने वाले अनुबंध का प्रदर्शन, जिसे उसने पूर्वाभास नहीं किया था, जबकि गैर-प्रदर्शन जिसमें वादी पर ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी, उन परिस्थितियों में से एक है जिसमें अदालत विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री नहीं करने के लिए विवेक का उचित प्रयोग कर सकती है। तुलनात्मक कठिनाई के सिद्धांत को इस प्रकार भारत में वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। हालांकि, विचार की मात्र अपर्याप्तता या केवल तथ्य यह है कि अनुबंध प्रतिवादी के लिए कठिन है या इसकी प्रकृति में अनुचित है, प्रतिवादी पर अप्रत्याशित कठिनाई पर वादी के लिए अनुचित लाभ का गठन नहीं करेगा। धारा 20 में अंतर्निहित सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा लूई मारी डेविड बनाम लुई चिन्नया अरोगियास्वामी [लूई मारी डेविड बनाम लुई चिन्नया अरोगियास्वामी, (1996) 5 एस.सी.सी. 589] में अभिव्यक्त किया गया है, जिसमें कहा गया है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री न्यायालय के विवेक में है लेकिन विवेक का मनमाने ढंग से उपयोग नहीं किया जाना चाहिए; अपीलीय अदालत द्वारा सुधार में सक्षम कानून के ठोस सिद्धांतों पर विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए।

9.4. इन सिद्धांतों का पालन इस न्यायालय द्वारा ए.सी. अरुलप्पन बनाम अहल्या नाइक [ए. सी. अरुलप्पन बनाम अहल्या नाइक, (2001) 6 एस.सी.सी.

600] में निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ किया गया था: (एस.सी.सी. पीपी 604 और 606, पैरा-7 और 15)

“7. विशिष्ट राहत को डिक्री करने का अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है और अदालत यह तय करने के लिए विभिन्न परिस्थितियों पर विचार कर सकती है कि ऐसी राहत दी जानी है या नहीं। केवल इसलिए कि विशिष्ट राहत देना वैध है, अदालत को विशिष्ट राहत के लिए आदेश देने की आवश्यकता नहीं है; लेकिन इस विवेक का प्रयोग मनमाने या अनुचित तरीके से नहीं किया जाएगा। विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 (2) में कुछ परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है कि अदालत किन परिस्थितियों में इस तरह के विवेक का प्रयोग करेगी। यदि अनुबंध की शर्तों के तहत वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ मिलता है, तो अदालत वादी के पक्ष में अपने विवेक का प्रयोग नहीं कर सकती है। इसलिए भी, विशिष्ट राहत नहीं दी जा सकती है यदि प्रतिवादी को अनुचित कठिनाई के लिए रखा जाएगा जो उसने समझौते के समय नहीं देखा था। यदि विशिष्ट राहत देना अन्यायपूर्ण है, तो भी अदालत वादी को डिक्री देने से परहेज करेगी।

*** **

15. विशिष्ट निष्पादन प्रदान करना एक न्यायसंगत राहत है, हालांकि यह अब विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित है। इन

न्यायसंगत सिद्धांतों को अधिनियम की धारा 20 में अच्छी तरह से शामिल किया गया है। विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री प्रदान करते समय, ये हितकारी दिशानिर्देश न्यायालय के दिमाग में सबसे आगे होंगे। ...”

9.5. इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉर्पोरेशन में स्थिति पर विचार किया। (प्रा) लि [निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉर्पोरेशन (पी) लिमिटेड, (2002) 8 एस.सी.सी. 146] , और इस प्रकार अवधारित किया गया: (एस.सी.सी. पी. 150, पैरा-6)

"6. यह सच है कि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री का अनुदान अदालत के विवेक में निहित है और यह भी अच्छी तरह से तय है कि केवल इस कारण से विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है कि ऐसा करना कानूनी है। यह अच्छी तरह से तय है कि अदालत अपने विवेक से किसी भी उचित शर्त को लागू कर सकती है, जिसमें विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देते या अस्वीकार करते समय एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को अतिरिक्त राशि का भुगतान शामिल है। क्रेता को विक्रेता को अतिरिक्त राशि का भुगतान करने या बातचीत करने का निर्देश दिया जाएगा या नहीं, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। आमतौर पर, वादी को केवल मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान कीमत में अभूतपूर्व

वृद्धि के कारण विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। यह हो सकता है, किसी दिए गए मामले में, विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्री से इनकार करने के लिए कई अन्य लोगों के अलावा विचारों में से एक को ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक सामान्य नियम के रूप में, यह नहीं माना जा सकता है कि आमतौर पर वादी को अकेले उसके लिए, मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान संपत्ति के मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि का पूरा लाभ प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इक्विटी को संतुलित करते समय, ध्यान में रखा जाने वाला एक विचार यह है कि डिफॉल्ट करने वाला पक्ष कौन है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या कोई पक्ष दूसरे पर अनुचित लाभ उठाने की कोशिश कर रहा है और साथ ही विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करके प्रतिवादी को होने वाली कठिनाई भी। ऐसी अन्य परिस्थितियां हो सकती हैं जिन पर पक्षों का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता है। परिस्थितियों की समग्रता को देखने की आवश्यकता है।

54. कीमतों में वृद्धि और न्यायालय के विवेक पर इसके प्रभाव के बारे में इस पहलू को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उठाया गया था, जिसने उक्त बिंदु पर सभी प्रासंगिक मामलों का पता लगाने और नवीनीकृत करने के लिए एक कठिन अभ्यास किया और फेरोडस एस्टेट (पी) लिमिटेड बनाम पी गोपीरत्नम (मृत) और अन्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 825 में स्थिति को स्पष्ट किया। हालांकि

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बड़ी संख्या में निर्णयों की समीक्षा की गई है, हालांकि, यह न्यायालय पैरा-40, 42, 43, 45, 50 से 53 की मदद से प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उक्त निर्णय के कुछ पैरा-को देख रहा है जो निम्नानुसार हैं: -

"40. धारा 20, जैसा कि तब था, यह स्पष्ट करता है कि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने का अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है; लेकिन यह विवेक मनमाना नहीं है, लेकिन न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित और उचित रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए, और अपील की अदालत द्वारा सुधार करने में सक्षम है - धारा 20(1) देखें। धारा 20(2) उन मामलों की बात करती है जिनमें अदालत विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री नहीं करने के लिए विवेक का उचित प्रयोग कर सकती है। गौरतलब है कि उप-धारा (2) के खंड (ए) के तहत, जो देखा जाना है वह अनुबंध में प्रवेश करने के समय अनुबंध की शर्तें या पक्षों का आचरण है। यहां तक कि "अन्य परिस्थितियां जिनके तहत अनुबंध में प्रवेश किया गया था" केवल उन परिस्थितियों को संदर्भित करता है जो अनुबंध में प्रवेश करने के समय प्रबल थीं। यह केवल तभी होता है कि यह अपवाद शुरू होता है - और यह तब होता है जब वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ मिलता है। समान रूप से, उपधारा (2) के खंड (बी) के तहत, अनुबंध में प्रवेश करने के समय शामिल कठिनाई फिर से है जो अभिव्यक्ति से स्पष्ट है "जिसे उसने पूर्वाभास नहीं किया था"। यह धारा 20 के स्पष्टीकरण ॥ द्वारा संदेह से परे स्पष्ट किया गया है जिसमें कहा गया है कि उप-धारा (2) के खंड

(बी) में निहित कठिनाई सिद्धांत का एकमात्र अपवाद वह है जहां अनुबंध के बाद वादी के एक अधिनियम से कठिनाई होती है। इस मामले में भी, अधिनियम किसी तीसरे पक्ष या अदालत का कार्य नहीं हो सकता है - अधिनियम केवल वादी का कार्य होना चाहिए। उप-धारा (2) का खंड (सी) फिर से प्रतिवादी को उन परिस्थितियों में अनुबंध में प्रवेश करने के लिए संदर्भित करता है जो विशिष्ट प्रदर्शन को लागू करने के लिए असमान बनाता है। यहां पुनः जिस समय पर निर्णय लिया जाना है वह संविदा में प्रवेश करने का समय है।

xxx xxx

42. पी.डी.सूजा बनाम शॉड्रिलो नायडू, (2004) 6 एस.सी.सी. 649 में, इस न्यायालय ने कहा: "39. यह ऐसा मामला नहीं है जहां प्रतिवादी ने कठिनाई का पूर्वाभास नहीं किया था। इसके अलावा यह भी मामला नहीं है कि समझौते का प्रदर्शन न करने से वादी को कोई कठिनाई नहीं होगी। प्रतिवादी वादी का मकान मालिक था। उन्होंने समय-समय पर वादी से बिना किसी आपत्ति के आंशिक भुगतान स्वीकार किया था। उसने वादी से अपेक्षित भुगतान प्राप्त होने पर ही बंधक को छोड़ा। यहां तक कि अगस्त 1981 में यानी मुकदमा शुरू होने से सिर्फ दो महीने पहले, उन्होंने वादी से 20,000 रुपये स्वीकार किए थे। इसलिए, अपीलकर्ता के लिए अब यह सुझाव देने में बहुत देर हो चुकी है कि कीमत में वृद्धि के संबंध में, प्रतिवादी को उसके पक्ष में पारित डिक्री के लाभ से वंचित किया जाना चाहिए। धारा 20 में संलग्न स्पष्टीकरण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केवल प्रतिफल की अपर्याप्तता, या केवल यह तथ्य कि अनुबंध प्रतिवादी के लिए कठिन है

या इसकी प्रकृति में अनुचित है, धारा 20 की उप-धारा (2) के अर्थ के भीतर अनुचित लाभ का गठन नहीं करेगा।

40. निर्मला आनंद [(2002) 5 एस.सी.सी. 481] में इस न्यायालय के निर्णय को पूर्वोक्त संदर्भ में माना जा सकता है।

41. राजू जे. ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह माना कि अदालतों के लिए यह न केवल अनुचित होगा, बल्कि अदालतों के लिए अपीलकर्ता को अचल संपत्ति की कीमतों में वृद्धि का एकमात्र लाभार्थी बनाने और प्रश्न में फ्लैट के बढ़े हुए मूल्य को सरकार और नगर निकाय के अधिकारियों के पास लंबित मुद्दों को जीवित रखते हुए प्रतिवादी 1 और 2 द्वारा संरक्षित किया जाएगा। यह अवधारित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 501, पैरा-23)

“23. ... विशिष्ट निष्पादन एक न्यायसंगत राहत होने के कारण, मामले के इन सभी संगत पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इक्विटी के संतुलन पर भी ध्यान दिया जाना है, जिसमें हुई चूकें और इसके लिए क्रमशः जिम्मेदार पक्ष शामिल हैं। विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री करने से पहले, अदालतों के लिए यह विचार करना अनिवार्य है कि क्या ऐसा करने से प्रतिवादी पर वादी के लिए कोई अनुचित लाभ होगा, प्रतिवादी को होने वाली कठिनाई की सीमा और यदि यह इस तरह के प्रवर्तन को, इसके अलावा प्रत्येक मामले की

परिस्थितियों की समग्रता असमान प्रदान करेगा।

43. भान, जे, हालांकि, भाग में अपनी असहमति व्यक्त करते हुए: (एस.सी.सी. पीपी 506 और 507, पैरा-38 और 40)

“38. यह अच्छी तरह से तय है कि अचल संपत्ति की बिक्री के लिए अनुबंध के मामलों में विशिष्ट प्रदर्शन की राहत का अनुदान एक नियम है और इसका इनकार वैध और ठोस आधार के आधार पर अपवाद है। इसके अलावा, प्रतिवादी अपने स्वयं के गलत का लाभ नहीं उठा सकता है और फिर दलील देता है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री वादी के लिए एक अनुचित लाभ होगा।

*** **

40. अवधि के दौरान कीमत की वृद्धि या तो विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देने के लिए या प्रतिवादी को एक अतिरिक्त राशि का भुगतान करने और उसे मुआवजा देने के लिए वादी के लिए एक दिशा के साथ विशिष्ट प्रदर्शन डिक्री के लिए कुछ परिस्थितियों में एक प्रासंगिक विचार हो सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

44. न्यायाधीश ने आगे कहा कि अदालत में कार्यवाही के लंबित होने के कारण अनुबंध के प्रदर्शन में देरी अपने आप में एक विपरीत दृष्टिकोण लेने के लिए किसी भी बाध्यकारी परिस्थितियों के अभाव में विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से इनकार करने का आधार नहीं हो सकती है।

*** **

45. कहा निर्णय वहाँ कीमतों की वृद्धि हुई थी, जहां सभी मामलों में, अदालत या तो अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन पर एक डिक्री पारित करने के लिए मना कर दिया या एक उच्च राशि का भुगतान करने के लिए वादी को निर्देश देना चाहिए कि प्रभाव के लिए एक बाध्यकारी मिसाल का गठन करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। इस आशय का कोई कानून इस न्यायालय द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है और न ही उपरोक्त निर्णय से समझ में आता है।

43. पी.एस रणकृष्ण रेड्डी बनाम एमके भाग्यलक्ष्मी, (2007)10 एस.सी.सी. 231 में, इस न्यायालय ने अवधारित किया:

"19. श्री चंद्रशेखर की इस आशय की दलील कि बैंगलोर में एक अचल संपत्ति की कीमत में वृद्धि के संबंध में, न्यायालय को विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए था, को खारिज कर दिया गया है। हमने यहां पहले भी देखा है कि अपीलकर्ता ने दूसरों के साथ भी बिक्री के लिए एक समझौता किया था। 11-5-1979 के बाद भी उन्हें प्रतिवादी से 5000 रुपये की राशि प्राप्त हुई थी। उन्होंने प्रतिवादी 1 के वैध दावे को हराने की दृष्टि से अपने दामाद के पक्ष में स्व-समान संपत्ति के संबंध में बिक्री के लिए एक पूर्व समझौते को निष्पादित करने की दलील दी थी, जिसने कभी भी किसी भी अधिकार का दावा नहीं किया था या अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया था। निचली

अदालतें स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंची हैं कि अपीलकर्ता का उक्त तर्क स्वीकार्य नहीं था। किसी अचल संपत्ति की कीमत में वृद्धि अपने आप में बिक्री के वैध समझौते को लागू करने से इनकार करने का आधार नहीं है। (देखें पी. डिसूजा [(2004) 6 एस.सी.सी. 649] और जय नारायण परसराम-पुरिया [(2006)7 एस.सी.सी. 756]।

*** **

45. सत्य जैन बनाम अनीस अहमद रुश्दी, (2013) 8 एस.सी.सी. 131 में, इस न्यायालय ने अवधारित किया:

"40. एक समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करने का विवेकाधिकार और वह भी लंबे समय तक बीत जाने के बाद, निस्संदेह, ठोस, उचित, तर्कसंगत और स्वीकार्य सिद्धांतों पर प्रयोग किया जाना चाहिए। विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 द्वारा निहित विवेक के प्रयोग के मापदंडों को भाषा की किसी भी सटीक अभिव्यक्ति के भीतर नहीं फंसाया जा सकता है और इसकी रूपरेखा हमेशा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। अंतिम मार्गदर्शक परीक्षण निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांत होंगे जैसा कि किसी भी मामले के अजीब तथ्यों द्वारा तय किया जा सकता है, जिसमें अनुभवी न्यायिक दिमाग बिना किसी वास्तविक कठिनाई के अनुभव कर सकता है। हालांकि इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि समय का प्रवाह और संपत्ति की कीमत में वृद्धि, अपने आप में, विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से इनकार करने के लिए एक वैध आधार

नहीं हो सकती है। इस तरह के दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा लगातार अपनाया गया है। उदाहरण के माध्यम से पीएस रणकृष्ण रेड्डी बनाम एमके भाग्यलक्ष्मी [(2007) 10 एस.सी.सी. 231] और हाल ही में नरिंदर जीत सिंह बनाम नॉर्थ स्टार एस्टेट प्रमोटर्स लिमिटेड [(2012)5 एस.सी.सी. 712: (2012)3 एस.सी.सी. (सीआईवी) 379] में दिए गए विचारों को उपयोगी रूप से दोहराया जा सकता है।

41. जुड़वां अवरोधक कारकों ऊपर की पहचान की अगर विशिष्ट प्रदर्शन के एक डिक्री के अनुदान के लिए एक बार के रूप में पढ़ा जा रहे हैं उनकी ओर से कोई गलती के लिए वादी दंडित करने के लिए राशि होगी; उन्हें एक लंबी मुकदमेबाजी के वास्तविक फल से वंचित करने के लिए जिसमें उत्पन्न होने वाले मुद्दों का उत्तर उनके पक्ष में दिया जा रहा है। एक अन्य दृष्टिकोण से यह लंबी देरी से निपटने के लिए कानून की अपर्याप्तता का भी संकेत दे सकता है, जो कभी-कभी, किसी दिए गए मामले में अंतिम निर्णय देते समय होता है। उपर्युक्त दो विशेषताएं, सबसे अच्छा, विक्रेता को अतिरिक्त मुआवजे के पुरस्कार को उचित ठहरा सकती हैं, जो कि समझौते में निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य प्रदान करती है, जो कि किसी दिए गए मामले में, अंतिम न्यायालय के आदेश की तारीख को बाजार मूल्य भी हो सकती है।

42. मामले के सभी प्रासंगिक पहलुओं पर हमारे उत्सुकता से विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि न्याय के अंत में इस न्यायालय

को हस्तक्षेप करने और अनीस अहमद रुश्दी बनाम भीकू राम जैन [अनीस अहमद रुश्दी बनाम भीकू राम जैन, आरएफए (ओएस) संख्या-11 वर्ष 1984, 31-10-2011 (डीईएल)] पर फैसला किया और 22-12-1970 के समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वादी के वाद को डिक्री करने के लिए। आगे हमारा विचार है कि बिक्री विलेख जिसे अब प्रतिवादियों द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित किया जाना होगा, वर्तमान आदेश की तारीख को वाद संपत्ति के बाजार मूल्य के लिए होगा। चूंकि आज की तारीख में वाद संपत्ति के बाजार मूल्य का सही आकलन करने में सक्षम बनाने के लिए कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है, हम दिल्ली उच्च न्यायालय के विचारण न्यायधीश से अनुरोध करते हैं कि उक्त अभ्यास को इस तरह के तेजी से किया जाए जो मौजूदा तथ्यों और परिस्थितियों में संभव हो सकता है।

*** **

50. यह स्थापित कानून है कि केवल देरी से, अधिक के बिना, विशिष्ट प्रदर्शन से इनकार करने का एकमात्र कारक नहीं हो सकता है - देखें मैडम सेट्टी सत्यनारायण बनाम जी. येलोजी राव, (1965)2 एस.सी.आर221 पीपी 229-230 इस प्रकार, मैं के.एस. वैरावन, (1997)3 एस.सी.सी.1, इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यदि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर करने से पहले ढाई साल की अवधि के भीतर संपत्ति की कीमतें नाटकीय रूप से बढ़ी हैं, और यह वादी द्वारा समझौते के उल्लंघन के साथ युग्मित है, तो विशिष्ट प्रदर्शन का फैसला नहीं किया जाएगा। न्यायालय ने अवधारित किया:

“10. ... दूसरे शब्दों में, अदालत को समझौते में निर्दिष्ट समय-सीमा(ओं) सहित सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को देखना चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान करने के लिए उसके विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं। अब भारत में शहरी संपत्तियों के मामले में, यह सर्वविदित है कि पिछले कुछ दशकों में उनकी कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं - खासकर 1973 के बाद [यह एक सर्वविदित तथ्य है कि 1973 के अरब-इजरायल युद्ध के बाद तेल की कीमत में भारी वृद्धि ने दुनिया भर में मुद्रास्फीति के रुझान में स्थापित किया। विशेष रूप से प्रभावित देश जैसे देश थे जो तेल की अपनी आवश्यकता का थोक आयात करते हैं]। इस मामले में, वाद संपत्ति मदुरै में स्थित घर की संपत्ति है, जो तमिलनाडु के प्रमुख शहरों में से एक है। वाद करार दिसम्बर, 1978 में हुआ था और बिक्री को पूरा करने के लिए उसमें विनिर्दिष्ट छह माह की अवधि 15-6-1979 को समाप्त हो गई थी। वादी द्वारा वाद नोटिस केवल 11-7-1981 को जारी किया गया था, अर्थात्, छह महीने की अवधि समाप्त होने के दो साल से अधिक समय बाद। सवाल यह है कि दो साल से अधिक के इस अंतराल में वादी क्या कर रहा था? ... प्रतिवादियों का लगातार तर्क यह रहा है कि मदुरै में घर की संपत्तियों की कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं, कि उक्त अवधि 2 ½ वर्षों के भीतर, कीमतें तीन गुना बढ़ गईं और केवल उक्त परिस्थिति के कारण वादी (जिसने पहले वाद संपत्ति की खरीद के साथ आगे बढ़ने के किसी भी विचार को छोड़ दिया था) ने विशिष्ट प्रदर्शन की मांग की। उपरोक्त परिस्थितियों और पक्षों के मौखिक साक्ष्य को ध्यान में

रखते हुए, हम प्रतिवादी 1 से 3 द्वारा सामने रखे गए मामले को स्वीकार करने के इच्छुक हैं। हम वादी द्वारा सामने रखी गई कहानी को खारिज करते हैं कि उक्त अवधि 2 ½ वर्षों के दौरान, वह बार-बार प्रतिवादियों से किरायेदार को खाली करने और बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए कह रहा था और वे इस आधार पर समय मांग रहे थे कि किरायेदार खाली नहीं कर रहा था। उपरोक्त खोज का अर्थ है कि 15-12-1978 से 11-7-1981 तक, अर्थात्, 2 ½ वर्षों से अधिक की अवधि के लिए, वादी समझौते के तहत अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए कोई कदम उठाए बिना चुप बैठा था, हालांकि समझौते में छह महीने की अवधि निर्दिष्ट की गई थी जिसके भीतर उसे स्टाम्प पेपर खरीदने की उम्मीद थी, शेष राशि का टेंडर करें और प्रतिवादियों को बिक्री विलेख निष्पादित करने और संपत्ति का कब्जा देने के लिए कहें। हम प्रतिवादियों के मामले को स्वीकार करने के इच्छुक हैं कि मदुरै शहर में घर की संपत्ति का मूल्य तेजी से बढ़ रहा था और इसने वादी को 2 ½ साल बाद जागने और विशिष्ट प्रदर्शन की मांग करने के लिए प्रेरित किया होगा।

11. श्री शिवसुब्रमण्यम ने एस. वी. शंकरलिंग नादर बनाम पीटीएस रत्नस्वामी नादर [ए.आई.आर. 1952 एम.एडी 389:(1952)1 मद्रास एलजे 44] में मद्रास उच्च न्यायालय के फैसले का हवाला देते हुए कहा कि केवल कीमतों में वृद्धि विशिष्ट प्रदर्शन से इनकार करने का कोई आधार नहीं है। बहुत सम्मान के साथ, हम सहमत होने में असमर्थ हैं यदि उक्त निर्णय को यह कहते हुए समझा जाता है

कि कानून द्वारा अदालत में निहित विवेक का प्रयोग करते समय उक्त कारक को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। हम वास्तविकता से अनजान नहीं हो सकते हैं - और वास्तविकता शहरी संपत्तियों के मूल्यों में निरंतर वृद्धि है - ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी केंद्रों में लोगों के बड़े पैमाने पर प्रवास और मुद्रास्फीति से प्रेरित है। इसी मामले को लें। वादी ने शेष राशि का भुगतान करने, स्टाम्प पेपर खरीदने और छह महीने के भीतर बिक्री विलेख के निष्पादन और कब्जे की डिलीवरी के लिए कहने पर सहमति व्यक्त की थी। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। समझौते में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि यदि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने में विफल रहता है, तो प्रतिवादी 5000 रुपये की बयाना राशि को जब्त करने के हकदार हैं और यदि प्रतिवादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने में विफल रहते हैं, तो वे उक्त राशि का दोगुना भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं। 5000 रुपये की छोटी राशि का भुगतान करने के अलावा (60,000 रुपये के कुल विचार के मुकाबले) वादी ने तब तक कुछ नहीं किया जब तक कि उसने समझौते के 21/2 साल बाद वाद नोटिस जारी नहीं किया। वास्तव में, हम यह सोचने के इच्छुक हैं कि अदालतों द्वारा विकसित नियम की कठोरता अचल संपत्तियों के मामले में अनुबंध का सार नहीं है - ऐसे समय में विकसित हुई जब खासकर शहरी अचल संपत्तियों के मामले में, कीमतें और मूल्य स्थिर थे और मुद्रास्फीति अज्ञात थी। अब समय आ गया है कि हम ऐसा करें। वादी के अधिवक्ता का कहना है कि जब पक्षों ने अनुबंध में प्रवेश किया, तो उन्हें पता था कि कीमतें बढ़ रही हैं; इसलिए, वे कहते हैं,

कीमतों में वृद्धि विशिष्ट प्रदर्शन को नकारने का आधार नहीं हो सकती है। हो सकता है, पक्षों को उक्त परिस्थिति के बारे में पता था, लेकिन उन्होंने छह महीने की अवधि भी निर्दिष्ट की है जिसके भीतर लेनदेन पूरा किया जाना चाहिए। उक्त समय-सीमा समय को अनुबंध का सार बनाने के लिए नहीं हो सकती है, लेकिन इसका अभी भी कुछ अर्थ होना चाहिए। कुछ भी नहीं के लिए ऐसी समय सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती थी। क्या इसे कानून के नियम या विवेक के नियम के रूप में कहा जा सकता है कि जहां समय को अनुबंध का सार नहीं बनाया जाता है, अनुबंध में प्रदान किए गए समय की सभी शर्तों का कोई महत्व या अर्थ नहीं है या वे गैर-मौजूद के रूप में अच्छे हैं? इन सबका मतलब सिर्फ यह है कि अपने विवेक का इस्तेमाल करते हुए अदालत को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जब पक्ष एक या दूसरे पक्ष द्वारा कदम उठाने के लिए निश्चित समय-सीमा निर्धारित करते हैं, तो इसका कुछ महत्व होना चाहिए और उक्त समय-सीमा को इस आधार पर पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि समय को अनुबंध का सार नहीं बनाया गया है। (अचल संपत्तियों से संबंधित)

"13. हमारे सामने मामले में, यह केवल देरी नहीं है। यह समझौते की शर्तों के स्पष्ट उल्लंघन में 2 ½ साल के लिए वादी की ओर से कुल निष्क्रियता का मामला है, जिसके लिए उसे शेष राशि का भुगतान करने, स्टाम्प पेपर खरीदने और फिर छह महीने के भीतर बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए कहने की आवश्यकता थी। इसके अलावा, प्रतिवादियों के

अनुसार, समझौते की तारीख और वाद नोटिस की तारीख के बीच तीन बार, देरी कीमतों में पर्याप्त वृद्धि के साथ युग्मित है। देरी ने एक ऐसी स्थिति ला दी है जहां वादी को विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देना अन्यायपूर्ण होगा।

14. श्री शिवसुब्रमण्यम ने तब जीवन लाल (डॉ) बनाम बृज मोहन मेहरा [(1972)2 एस.सी.सी. 757: (1973)2 एस.सी.आर 230] में निर्णय पर भरोसा किया कि दो साल की देरी विशिष्ट प्रदर्शन से इनकार करने का आधार नहीं है। लेकिन फैसले के अवलोकन से पता चलता है कि वादी के पास उस मामले में इंतजार करने के अच्छे कारण थे क्योंकि वाद संपत्ति के अधिग्रहण के आदेश के खिलाफ अपील लंबित थी। हम दोहरा सकते हैं कि सही सिद्धांत वह है जो संविधान पीठ ने चांद रानी [(1993)1 एस.सी.सी. 519] में कहा था। यहां तक कि जहां समय अनुबंध का सार नहीं है, वादी को उचित समय के भीतर अनुबंध के अपने हिस्से का प्रदर्शन करना चाहिए और उचित समय अनुबंध की स्पष्ट शर्तों और संपत्ति की प्रकृति सहित आसपास की सभी परिस्थितियों को देखकर निर्धारित किया जाना चाहिए।

51. इसी तरह, इस न्यायालय ने सरदामणि कंडप्पन बनाम एस. राजलक्ष्मी (2011)12 एस.सी.सी. 18 में, यह स्पष्ट किया कि शहरी भूमि की कीमतों में भारी वृद्धि को देखते हुए, यह कहना सही नहीं हो सकता है कि अचल संपत्ति की बिक्री के अनुबंध के प्रदर्शन में समय का सार नहीं है। इस प्रकार, जहां किसी दिए गए मामले के तथ्यों में समय को सार

कहा जा सकता है, और क्रेता निर्धारित अवधि के भीतर बिक्री को पूरा करने के लिए कदम नहीं उठाता है और विक्रेता किसी भी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं है, निर्धारित समय के भीतर कीमत में भारी वृद्धि एक ऐसी परिस्थिति होगी जो विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए अन्यायपूर्ण होगी। इस न्यायालय ने अवधारित किया:

"36. सिद्धांत है कि समय अचल संपत्तियों से संबंधित अनुबंधों का सार नहीं है, एक युग में आकार लिया जब अचल संपत्तियों के बाजार मूल्य स्थिर थे और कुछ वर्षों में भी किसी भी उल्लेखनीय परिवर्तन से नहीं गुजरना पड़ा (यहां तक कि जब मूल्य स्थिर होना बंद हो गया)। परिणामस्वरूप, समझौते में निर्धारित प्रदर्शन के लिए समय को महत्वपूर्ण नहीं माना गया था, या सभी घटनाओं में केवल उचित अवधि को इंगित करने के रूप में माना जाता था जिसके भीतर अनुबंध किया जाना चाहिए। धारणा यह थी कि विशिष्ट प्रदर्शन का अनुदान विक्रेता प्रतिवादी को आर्थिक रूप से पूर्वाग्रह नहीं करेगा क्योंकि संपत्ति के बाजार मूल्य में बहुत अंतर नहीं होगा, भले ही अनुबंध कुछ महीनों के बाद किया गया हो। यह सिद्धांत बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान समझ में आया, जब भारत में तुलनात्मक रूप से बहुत कम मुद्रास्फीति थी। बीसवीं शताब्दी की तीसरी तिमाही में कीमतों में बहुत धीमी लेकिन स्थिर वृद्धि देखी गई। लेकिन बीसवीं शताब्दी की अंतिम तिमाही की शुरुआत से एक कठोर परिवर्तन हुआ। मुद्रास्फीति तेजी से बढ़ रही है और अचल संपत्तियों की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई है। संपत्तियों के बाजार मूल्य अब

स्थिर नहीं हैं। हम वर्ष 1975 में और अब एक रुपये की तुलनात्मक खरीद शक्ति का न्यायिक नोटिस ले सकते हैं, साथ ही तब और अब के बीच अचल संपत्तियों के मूल्य में भारी वृद्धि पर भी ध्यान दे सकते हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि शहरों में 1975 से 1980 के बीच एक लाख या उससे अधिक मूल्य की संपत्तियां अब एक करोड़ या उससे अधिक महंगी हो सकती हैं।

37. विशिष्ट प्रदर्शन से संबंधित मामलों को तय करने में इस आर्थिक परिवर्तन से उत्पन्न वास्तविकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। कीमतों में भारी वृद्धि एक ऐसी परिस्थिति है जो विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए अन्यायपूर्ण बनाती है जहां क्रेता सहमत अवधि के भीतर बिक्री को पूरा करने के लिए कदम नहीं उठाता है, और विक्रेता किसी भी देरी या गैर-प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार नहीं है। एक खरीदार अब इस सिद्धांत के तहत आश्रय नहीं ले सकता है कि अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंधों के प्रदर्शन में समय का सार नहीं है, ताकि उसकी देरी, उल्लंघन और "गैर-तत्परता" को आच्छादित किया जा सके। एक युग से मिसाल, जब उच्च मुद्रास्फीति अज्ञात थी, यह मानते हुए कि समय अचल संपत्तियों के संबंध में अनुबंध का सार नहीं है, अब लागू नहीं हो सकता है, इसलिए नहीं कि उसमें निर्धारित सिद्धांत अनुचित या गलत है, लेकिन परिस्थितियां जो उक्त सिद्धांत विकसित होने पर मौजूद थीं, अब मौजूद नहीं हैं। अचल संपत्तियों की कीमतों में सरपट वृद्धि के इन दिनों में, यह मानना कि एक विक्रेता जिसने बिक्री मूल्य का लगभग

10% बयाना पैसा लिया और प्रदर्शन के लिए अवधि के रूप में तीन महीने या चार महीने के लिए सहमत हो गया, उसका इरादा यह नहीं था कि समय सार होना चाहिए, उस पर एक क्रूर मजाक और अन्याय होगा। विशिष्ट प्रदर्शन से संबंधित मामलों के निपटान में देरी दुख को और बढ़ा रही है, क्योंकि मुकदमों और अपीलों को अंतिम रूप देने में नियमित रूप से दो से तीन दशक लगते हैं। नतीजतन, एक मालिक एक लाख रुपये के लिए एक संपत्ति बेचने के लिए सहमत हो गया और अग्रिम के रूप में दस हजार रुपये प्राप्त किया, शेष नब्बे हजार रुपये प्राप्त करके एक चौथाई सदी बाद एक बिक्री विलेख निष्पादित करने की आवश्यकता हो सकती है, जब संपत्ति का मूल्य एक करोड़ रुपये तक बढ़ गया है।

41. इस प्रश्न से संबंधित एक सही परिप्रेक्ष्य कि क्या समय अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंधों में अनुबंध का सार नहीं है, इस न्यायालय द्वारा के.एस. विद्यानंदम बनाम भारत संघ में दिया गया है। वैरावन [(1997)3 एस.सी.सी.1] (जीवन रेड्डी, जे द्वारा, जो संयोग से चांद रानी [(1993)1 एस.सी.सी. 519] में संविधान पीठ के सदस्य थे)। इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी. पी.पी-7 और 9, पैरा-10-11)

"10. यह लगातार भारत में, कुछ प्रारंभिक अंग्रेजी निर्णयों के बाद अदालतों द्वारा अवधारित किया गया है कि अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री के समझौते के मामले में, समय अनुबंध का सार नहीं है जब तक कि विशेष रूप से उस प्रभाव के लिए प्रदान नहीं किया

जाता है। ... भारत में शहरी संपत्तियों के मामले में, यह सर्वविदित है कि पिछले कुछ दशकों में उनकी कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं- खासकर 1973 के बाद। ...

11. ... हम वास्तविकता से अनजान नहीं हो सकते हैं - और वास्तविकता शहरी संपत्तियों के मूल्यों में निरंतर और निरंतर वृद्धि है - ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी केंद्रों में लोगों के बड़े पैमाने पर प्रवास और मुद्रास्फीति से प्रेरित है। ... वास्तव में, हम यह सोचने के इच्छुक हैं कि अदालतों द्वारा विकसित नियम की कठोरता अचल संपत्तियों के मामले में अनुबंध का सार नहीं है - ऐसे समय में विकसित हुई जब यदि संशोधित नहीं किया गया है, खासकर शहरी अचल संपत्तियों के मामले में, कीमतें और मूल्य स्थिर थे और मुद्रास्फीति अज्ञात थी। अब समय आ गया है कि हम ऐसा करें।

(मूल में बल दिया गया)

42. इसलिए इस सिद्धांत पर फिर से विचार करने की तत्काल आवश्यकता है कि अचल संपत्तियों से संबंधित अनुबंधों में समय का सार नहीं है और मुद्रास्फीति और कीमतों में भारी वृद्धि से उत्पन्न होने वाली बदली हुई परिस्थितियों को देखते हुए, 1975 के बाद किए गए अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंधों के संबंध में कानून की वर्तमान स्थिति की व्याख्या करें। हम इस मामले में उस अभ्यास को शुरू करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं, न ही मामले को एक बड़ी बेंच को संदर्भित करते हैं क्योंकि हमने इस मामले में तथ्यों पर अवधारित किया है कि समय अनुबंध का सार है, यहां तक कि चांद रानी [(1993) 1

एस.सी.सी. 519] और अन्य मामलों में सिद्धांतों के संदर्भ में भी। जैसा भी हो सकता है।

43. जब तक इस मुद्दे पर एक उपयुक्त मामले में विचार नहीं किया जाता है, हम केवल के.एस. विद्यानंदम [(1997)3 एस.सी.सी.-1] में सुझाए गए सुझावों को दोहरा सकते हैं:

(i) न्यायालयों को विशिष्ट निष्पादन के लिए वादों में विवेक का प्रयोग करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि जब पक्षकार कतिपय उपाय करने या संव्यवहार को पूरा करने के लिए समय/अवधि विहित करते हैं तो उसका कुछ महत्व अवश्य होना चाहिए और इसलिए विहित समय/अवधि की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(ii) अदालतें इस बात पर विचार करते समय अधिक जांच और सख्ती लागू करेंगी कि क्या क्रेता अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए "तैयार और इच्छुक" था।

(iii) विशिष्ट निष्पादन के लिए प्रत्येक वाद की डिक्री केवल इसलिए नहीं की जानी चाहिए क्योंकि वह करार में निर्धारित समय-सीमा की अनदेखी करते हुए परिसीमा की अवधि के भीतर दायर किया गया है। अदालतें उन मुकदमों पर भी "भ्रूभंग" करेंगी जो उल्लंघन/इनकार के तुरंत बाद दायर नहीं किए जाते हैं। तथ्य यह है कि सीमा तीन साल है इसका मतलब यह नहीं है कि एक खरीदार मुकदमा दायर करने और विशिष्ट प्रदर्शन

प्राप्त करने के लिए 1 या 2 साल तक इंतजार कर सकता है। तीन साल की अवधि का उद्देश्य विशेष मामलों में खरीदारों की सहायता करना है, उदाहरण के लिए, जहां प्रतिफल का प्रमुख हिस्सा विक्रेता को भुगतान किया गया है और कब्जा आंशिक प्रदर्शन में वितरित किया गया है, जहां इक्विटी खरीदार के पक्ष में बदल जाती है।

52. मैं नंजप्पन वि. रामासामी, (2015) 14 एस.सी.सी. 341, विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा 30.09.1987 के समझौते के कई वर्षों बाद दायर किया गया था, जिसे समझौते को दो बार तीन साल और उसके बाद दो साल तक बढ़ाया गया था। इन विस्तारों और पक्षों के बीच कानूनी नोटिसों के आदान-प्रदान के बाद ही प्रतिपक्षियों ने विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया। यह इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में था कि न्यायालय ने अवधारित किया:

"10. विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, वादी को संतोषजनक साक्ष्य के साथ साबित करना होगा कि वह हमेशा विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 16(सी) के तहत आवश्यक रूप से आवश्यक सभी सामग्री समय पर अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार था। प्रथम अपीलीय अदालत और उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष दर्ज किए कि वादी हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार था। समझौते में अभिलेखों को सावधानीपूर्वक पढ़ने से, इस प्रकार दर्ज किए गए समवर्ती निष्कर्ष पक्षों के आचरण को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं। दिनांक 30-9-1987 के पी-1 समझौते में प्रतिवादी द्वारा 25,000

रुपये की राशि का भुगतान अपीलकर्ता को किया गया था। उसके बाद 2 ½ वर्षों के भीतर 20,000 रुपये की शेष राशि का भुगतान किया जाना था और बिक्री निष्पादित की जानी थी। बिक्री के दूसरे समझौते (एक्सटेंशन पी-2 दिनांक 21-3-1990) में यह कहा गया है कि वादी निर्धारित अवधि के भीतर शेष राशि का भुगतान करने और बिक्री विलेख को निष्पादित करने में असमर्थ थे और इसलिए द्वितीय बिक्री समझौते को तीन साल की और अवधि के लिए बिक्री विलेख के निष्पादन की अवधि का विस्तार करते हुए निष्पादित किया गया था। जैसा कि विस्तार पी-2 से अभिलेखों से देखा जा सकता है, उत्तरदाता शेष बिक्री प्रतिफल का भुगतान करने और बिक्री विलेख निष्पादित करने में असमर्थ थे। यह ध्यान देने योग्य है कि अनुबंध के प्रदर्शन का समय बार-बार बढ़ाया गया था और अवधि कुल आठ साल की थी। भले ही प्रथम अपीलीय अदालत और उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष दर्ज किया कि प्रतिवादी-वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे, इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि समय आठ साल के लिए बढ़ाया गया था, इस सवाल पर विचार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या प्रतिवादी के पक्ष में विवेक का प्रयोग किया जाना है।

"13. पहला बिक्री समझौता लगभग सत्ताईस साल पहले 30-9-1987 को निष्पादित किया गया था। संपत्ति कोयंबटूर शहर में स्थित है और इन वर्षों में, कोयंबटूर शहर में संपत्ति का मूल्य काफी बढ़ गया होगा। शारदामणि

कंडप्पन बनाम एस. राजलक्ष्मी [(2011)12 एस. सी.सी.18: (2012)2 एस.सी.सी. (सिविल) 104] में, इस न्यायालय ने माना है कि संपत्ति का मूल्य शहरी क्षेत्रों में बहुत तेजी से बढ़ता है और लंबे समय तक समय व्यतीत होने के बाद विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान करना न्यायसंगत नहीं होगा। इस मामले में पहला करार 30-9-1987 यानी सत्ताईस साल पहले किया गया था। समय बीतने और संपत्ति के मूल्य में वृद्धि को देखते हुए, प्रदर्शन की विशिष्ट राहत प्रदान करने से प्रतिवादी को अनुचित लाभ मिलेगा, जबकि अनुबंध के प्रदर्शन में अपीलकर्ता-प्रतिवादी और उसके परिवार के सदस्यों को बड़ी कठिनाई होगी।

14. समग्रता और तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारे विचार में, एक से अधिक कारणों से प्रतिवादी-वादी को विशिष्ट प्रदर्शन की विवेकाधीन राहत प्रदान करना उचित नहीं है। बेशक, वाद संपत्ति अपीलकर्ता प्रतिवादी की एकमात्र संपत्ति है और अपीलकर्ता को एक घर का निर्माण करने के लिए कहा जाता है और जहां वह वर्तमान में परिवार के साथ रह रहा है। प्रतिपक्षियों की तुलना में, अपीलकर्ता को महत्वपूर्ण कठिनाई का सामना करना पड़ेगा यदि अपीलकर्ता के खिलाफ विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री दी जाती है। परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जैसे कि वाद संपत्ति पर आवासीय घर का निर्माण, बिक्री पर विचार, समय बीतने और अपीलकर्ता के कारण कठिनाई, विशिष्ट प्रदर्शन के विवेकाधीन राहत का प्रयोग करना अन्यायपूर्ण बनाता है और प्रथम अपीलीय अदालत और

उच्च न्यायालय के समवर्ती निष्कर्ष को विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद की डिक्री को अलग रखा जाना है।

53. कानून में परिणामी स्थिति यह है कि सीमा के भीतर दायर विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा देरी या लापरवाही के एकमात्र आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। हालांकि, इस नियम का एक अपवाद यह है कि जहां अचल संपत्ति को एक निश्चित अवधि के भीतर बेचा जाना है, समय सार का है, और यह पाया जाता है कि वादी की ओर से कुछ चूक के कारण, बिक्री निर्धारित समय के भीतर नहीं हो सकती है। एक बार विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर करने के बाद, अदालत की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप किसी भी देरी को विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने में कानून के मामले के रूप में वादी के खिलाफ नहीं रखा जा सकता है। हालांकि, प्रत्येक मामले के तथ्यों के संबंध में, कि क्या विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री उसके पक्ष में पारित होने के बाद वादी द्वारा कुछ अतिरिक्त राशि का भुगतान किया जाना चाहिए या नहीं, यहां तक कि अपीलीय चरण में भी, यह न्यायालय के विवेक के भीतर है।"

55. हाल ही में शेनबागम और अन्य बनाम केके रतिनावेल, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 71 में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 36 से 41 में निम्नानुसार अवधारित किया: -

"36. यहां तक कि यह मानते हुए कि प्रतिवादी अनुबंध के तहत अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए तैयार था, हमें यह

तय करना होगा कि इस मामले में अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना उचित होगा या नहीं। ज़रीना सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम (2015)¹ एस.सी.सी. 705 में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने अचल संपत्ति की बिक्री के संबंध में एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमे से निपटने के दौरान कहा कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए उपाय एक न्यायसंगत उपाय है और विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 न्यायालय को एक विवेक प्रदान करती है। न्यायालय ने अवधारित किया:

"24. यह अच्छी तरह से तय है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए उपाय एक न्यायसंगत उपाय है। विशिष्ट निष्पादन की डिक्री प्रदान करते समय न्यायालय अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 विशेष रूप से प्रदान करती है कि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देने के लिए न्यायालय का विवेक विवेकाधीन है लेकिन मनमाना नहीं है। विवेकाधिकार का प्रयोग ठोस और उचित न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार किया जाना चाहिए।

37. विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 के तहत विवेक के संदर्भ में, इस न्यायालय के कई निर्णयों ने विचार किया है कि क्या अचल संपत्ति के हस्तांतरण से संबंधित अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करना उचित है, विशेष रूप से समय की आमद और संपत्ति की कीमतों

में वृद्धि को देखते हुए। सत्य जैन बनाम अनीस अहमद रुश्दी (2013) 8 एस.सी.सी. 131 में इस न्यायालय ने कहा:

"39. समय का लंबा प्रवाह (40 वर्षों से अधिक) जो हुआ है और इस बीच अचल संपत्ति का सरपट मूल्य इस संबंध में जुड़वां अवरोधक कारक हैं। हालांकि, इस तथ्य के साथ संतुलित होना चाहिए कि वादी किसी भी तरह से देरी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं और आज तक की कार्यवाही में उनकी गहरी भागीदारी वादी की ओर से कानून में लागू समझौते को लागू करने के लिए लाइव रुचि दिखाती है।

40. एक समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करने का विवेक और वह भी लंबी अवधि बीत जाने के बाद, निस्संदेह, ध्वनि, उचित, तर्कसंगत और स्वीकार्य सिद्धांतों पर प्रयोग किया जाना चाहिए। विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 द्वारा निहित विवेक के प्रयोग के मापदंडों को भाषा की किसी भी सटीक अभिव्यक्ति के भीतर नहीं फंसाया जा सकता है और इसकी रूपरेखा हमेशा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। अंतिम मार्गदर्शक परीक्षण निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांत होंगे जैसा कि किसी भी मामले के अजीब तथ्यों द्वारा तय किया जा सकता है, जिसमें अनुभवी न्यायिक दिमाग बिना किसी वास्तविक कठिनाई के अनुभव कर सकता है। हालांकि इस बात पर जोर

दिया जाना चाहिए कि समय का प्रवाह और संपत्ति की कीमत में वृद्धि, अपने आप में, विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से इनकार करने के लिए एक वैध आधार नहीं हो सकती है। [...]

41. जुड़वां अवरोधक कारकों ऊपर की पहचान की अगर विशिष्ट प्रदर्शन के एक डिक्री के अनुदान के लिए एक बार के रूप में पढ़ा जा रहे हैं उनकी ओर से कोई गलती के लिए वादी दंडित करने के लिए राशि होगी; उन्हें एक लंबी मुकदमेबाजी के वास्तविक फल से वंचित करने के लिए जिसमें उत्पन्न होने वाले मुद्दों का उत्तर उनके पक्ष में दिया जा रहा है। (महत्व सन्निविष्ट)

38. समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करने में, सत्य जैन (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने कहा कि वाद संपत्ति के वर्तमान बाजार मूल्य के लिए बिक्री विलेख निष्पादित किया जाना चाहिए।

39. निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉर्पोरेशन (पी) लिमिटेड (2002)8 एस.सी.सी.146 में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि भूमि की कीमत में अभूतपूर्व वृद्धि के मामले में, न्यायालय डिक्री में एक उचित शर्त लगा सकता है जैसे कि क्रेता द्वारा अतिरिक्त राशि का भुगतान। विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद की डिक्री में, न्यायालय ने कहा:

"6. यह सच है कि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री का अनुदान अदालत के विवेक में निहित है और यह भी अच्छी तरह से तय है कि केवल इस कारण से विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है कि ऐसा करना कानूनी है। यह आगे अच्छी तरह से तय है कि अदालत अपने विवेक से किसी भी उचित शर्त को लागू कर सकती है, जिसमें विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देते या अस्वीकार करते समय एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को अतिरिक्त राशि का भुगतान शामिल है। क्रेता को विक्रेता को अतिरिक्त राशि का भुगतान करने या बातचीत करने का निर्देश दिया जाएगा या नहीं, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। आमतौर पर, वादी को केवल मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान कीमत में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। यह हो सकता है, किसी दिए गए मामले में, विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्री से इनकार करने के लिए कई अन्य लोगों के अलावा विचारों में से एक को ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक सामान्य नियम के रूप में, यह नहीं माना जा सकता है कि आमतौर पर वादी को अकेले उसके लिए, मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान संपत्ति के मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि का पूरा लाभ प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इक्विटी को संतुलित करते समय, ध्यान में रखा जाने वाला एक विचार यह है कि डिफॉल्ट करने वाला पक्ष कौन है। यह भी ध्यान में रखा जाना

चाहिए कि क्या कोई पक्ष दूसरे पर अनुचित लाभ उठाने की कोशिश कर रहा है और साथ ही विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करके प्रतिवादी को होने वाली कठिनाई भी। ऐसी अन्य परिस्थितियां हो सकती हैं जिन पर पक्षों का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता है। परिस्थितियों की समग्रता को देखने की जरूरत है। (महत्व सन्निविष्ट)

40. केएस विद्यानंदम बनाम वैरावन (1997)3 एस.सी.सी.1, अचल संपत्ति बेचने के लिए वादी-खरीदार और प्रतिवादी-विक्रेता के बीच 60,000 रुपये के विचार के लिए एक समझौता किया गया था, जहां 5,000 रुपये की अग्रिम राशि का भुगतान किया गया था। समझौते में यह निर्धारित किया गया था कि वादी को स्टाम्प पेपर खरीदना होगा और छह महीने के भीतर शेष राशि का भुगतान करना होगा और प्रतिवादियों को बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए कहना होगा। वादी ने अनुबंध के प्रदर्शन की मांग करते हुए ढाई साल के अंतराल के बाद विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा दायर किया। न्यायालय ने अवधारित किया:

"10. यह लगातार, कुछ प्रारंभिक अंग्रेजी निर्णयों के बाद, भारत में अदालतों द्वारा अवधारित किया गया है कि अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री के समझौते के मामले में, समय अनुबंध का सार नहीं है जब तक कि विशेष रूप से उस प्रभाव के लिए प्रदान नहीं किया जाता है। वाद दायर

करने के लिए परिसीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमा की अवधि तीन वर्ष है। इन दो परिस्थितियों से, यह इस बात का पालन नहीं करता है कि समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए कोई भी और हर मुकदमा (जो विशेष रूप से यह प्रदान नहीं करता है कि समय अनुबंध का सार है) डिक्री की जानी चाहिए बशर्ते कि यह एक या दूसरे पक्ष द्वारा एक या दूसरे काम करने के लिए समझौते में निर्धारित समय-सीमा के बावजूद सीमा की अवधि के भीतर दायर किया गया हो। यह कहने के बराबर होगा कि समझौते में पक्षों द्वारा निर्धारित समय-सीमा का कोई महत्व या मूल्य नहीं है और उनका कोई मतलब नहीं है।

[...]

इस मामले में, वाद संपत्ति मदुरै में स्थित घर की संपत्ति है, जो तमिलनाडु के प्रमुख शहरों में से एक है। वाद करार दिसम्बर, 1978 में हुआ था और बिक्री को पूरा करने के लिए उसमें विनिर्दिष्ट छह माह की अवधि 15-6-1979 को समाप्त हो गई थी। वादी द्वारा वाद नोटिस केवल 11-7-1981 को जारी किया गया था, अर्थात्, छह महीने की अवधि समाप्त होने के दो साल से अधिक समय बाद। सवाल यह है कि दो साल से अधिक के इस अंतराल में वादी क्या कर रहा था? [...] वादी की ओर से प्रतिवादियों को एक भी पत्र या नोटिस नहीं दिया गया है, जिसमें उन्हें किरायेदार को खाली करने और बिक्री विलेख को निष्पादित करने के लिए कहा गया है, जब

तक कि वह 11-7-1981 को वाद नोटिस जारी नहीं करता। यह वादी का मामला नहीं है कि छह महीने के भीतर, उसने स्टाम्प पेपर खरीदे और शेष प्रतिफल का भुगतान करने की पेशकश की। [...]

13. हमारे सामने मामले में, यह केवल देरी नहीं है। यह समझौते की शर्तों के स्पष्ट उल्लंघन में 21/2 साल के लिए वादी की ओर से कुल निष्क्रियता का मामला है, जिसके लिए उसे शेष राशि का भुगतान करने, स्टाम्प पेपर खरीदने और फिर छह महीने के भीतर बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए कहने की आवश्यकता थी। इसके अलावा, देरी कीमतों में पर्याप्त वृद्धि के साथ युग्मित है - प्रतिवादियों के अनुसार, समझौते की तारीख और वाद नोटिस की तारीख के बीच तीन बार। देरी ने एक ऐसी स्थिति ला दी है जहां वादी को विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देना अन्यायपूर्ण होगा। (महत्व सन्निविष्ट)

41. सच है, आम तौर पर बोलना, अचल संपत्ति की बिक्री के लिए एक समझौते में समय सार का नहीं है। यह तय करने में कि क्या विशिष्ट प्रदर्शन के उपाय को मंजूरी दी जाए, विशेष रूप से अचल संपत्ति की बिक्री से संबंधित मुकदमों में, अदालतों को पक्षों के आचरण, वाद संपत्ति की कीमत में वृद्धि, और क्या एक पक्ष को डिक्री से गलत तरीके से लाभ होगा, का संज्ञान होना चाहिए। प्रदान किए गए उपाय से किसी पक्ष के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए, खासकर जब उनकी गलती

न हो। प्रस्तुत मामले में, पक्षों के बीच बेचने के समझौते के बाद से तीन दशक बीत चुके हैं। वाद संपत्ति की कीमत निस्संदेह बढ़ गई होगी। अनुबंध करने की अपनी इच्छा का संकेत देने में प्रतिवादी-वादी के दोषपूर्ण आचरण को देखते हुए, हम अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के उपाय को प्रदान करने के लिए किसी भी घटना में गिरावट करते हैं। हालांकि, हम प्रति वर्ष 6% ब्याज के साथ प्रतिफल की वापसी का आदेश देते हैं।

56. अब कानूनी प्रावधानों और तय प्रस्तावों और बारीकियों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें ऊपर उल्लिखित निर्णयों से निकाला जा सकता है और इसे प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू किया जा सकता है, यह पाया जाएगा कि जहां तक 10.08.1983 को बेचने के लिए पंजीकृत समझौते का संबंध है, दोनों न्यायालयों ने समवर्ती रूप से पाया है कि सरजू प्रसाद ने दिनांक 10.08.1983 को बेचने के लिए पंजीकृत समझौते को निष्पादित किया था 12,500/- रुपये की कुल बिक्री प्रतिफल के अनुसरण में 500/- रुपये बयाना राशि के रूप में भुगतान किया गया था। इस निष्कर्ष पर अपीलकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गयी है। हालांकि, जो आग्रह किया जाता है वह यह है कि वादी ने तत्परता के साथ अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया और न ही वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे और यह इंगित करके आग्रह किया जा रहा है कि समझौते में बिक्री-विलेख को निष्पादित करने के लिए एक महीने की समय सीमा प्रदान की गई है,

जबकि वादी द्वारा प्रतिवादियों को जारी नोटिस, वाद की स्थापना से पहले, दिनांक 04.08.1984 है, अर्थात् बिक्री-विलेख के निष्पादन के लिए समझौते में सहमत होने के समय से लगभग डेढ़ साल बाद और फिर नोटिस जारी करने के लगभग डेढ़ साल बाद विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा स्थापित किया गया था जो इंगित करता है कि वादी अपनी तत्परता और इच्छा में गंभीर नहीं थे और न ही यह समझौते की तारीख से और कार्यवाही के दौरान निरंतर था।

57. पूर्वोक्त प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने शेनबागम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उक्त मामले में, समझौते ने बिक्री-विलेख को निष्पादित करने के लिए एक समय प्रदान किया था, जिसका पालन नहीं किया गया था, बल्कि वादी ने बहुत देरी के साथ मुकदमा लाया और उच्च न्यायालय द्वारा मुकदमा तय किए जाने के बावजूद, सर्वोच्च न्यायालय ने डिक्ली को उलट दिया और ब्याज सहित राशि वापस कर दी।

58. यह भी आग्रह किया जाता है कि शेनबागम (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्मला आनंद (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पहले के फैसले पर भी ध्यान दिया था, जिसे प्रतिपक्षियों द्वारा उद्धृत किया गया था और इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रस्तुत मामले में शामिल परिस्थितियां शेनबागम (उपरोक्त) के मामले के समान हैं, नतीजतन,

विचारण न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग सही था, जबकि निष्कर्षों को उलटते हुए और मुकदमे की डिक्ली करते समय निचली अपीलीय अदालत द्वारा इस पर ठीक से विचार नहीं किया गया था।

59. इस संबंध में, इस न्यायालय ने पाया कि मुकदमा दायर करते समय, वादी ने दिनांक 12.08.1983 को बेचने के समझौते का उल्लेख किया था और पैराग्राफ-4 में यह कहा गया था कि वादी हमेशा तैयार थे और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे और अभी भी हैं। हालांकि, लिखित बयान के अवलोकन से यह पाया जाएगा कि प्रतिवादियों द्वारा इस कथन का खंडन नहीं किया गया है। इस तथ्य से कोई इनकार नहीं किया गया है और न ही यह कहा गया है कि वादी कभी भी अपना हिस्सा निभाने के लिए तैयार या तत्पर नहीं थे। पूरा लिखित बयान दो दलीलों के इर्द-गिर्द घूमता है (i) सरजू प्रसाद की मृत्यु 23.09.1982 को हुई और इसलिए, वह 12.08.1983 को बेचने के लिए समझौते को निष्पादित कर सकता था और जाहिर तौर पर समझौता धोखाधड़ी था (ii) सरजू प्रसाद शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर था और अन्यथा भी बेचने का अधिकार नहीं था, परिणामस्वरूप, समझौता शून्य था और बाध्यकारी नहीं था।

60. यदि पूर्वोक्त दलीलों का परीक्षण किया जाता है, तो अभिलेखों से पाया जाएगा कि यह साबित करने का भार कि सरजू प्रसाद की मृत्यु 23.09.1982 को हुई थी, प्रतिवादियों पर थी। यह दर्शाने के लिए कोई पर्याप्त सामग्री

रिकार्ड में नहीं लाई गई कि 23-09-1982 को सरजू प्रसाद का निधन हो गया। उपरोक्त याचिका को स्थापित करने के लिए, प्रतिवादियों ने नगर पालिका, उन्नाव द्वारा दिनांक 18.04.1985 को जारी मृत्यु प्रमाण पत्र पर भरोसा किया, जिसमें यह दर्शाया गया है कि इसमें दर्ज है कि सरजू प्रसाद की मृत्यु 23.09.1982 को हुई थी। यह मृत्यु प्रमाण पत्र प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए विवाद के लिए शीट एंकर है, हालांकि, इसे कानून के अनुसार साबित नहीं किया जा सका, क्योंकि स्थापित करने के लिए, यह बताना और साबित करना आवश्यक था कि उक्त मृत्यु प्रमाण पत्र सक्षम प्राधिकारी द्वारा कानून के अनुसार जारी किया गया था।

61. इस समय, यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 के तहत रजिस्ट्रार द्वारा मृत्यु प्रमाण पत्र जारी किया जाता है। उक्त अधिनियम 7 मार्च, 1970 की अधिसूचना के अनुसरण में उत्तर प्रदेश राज्य में लागू किया गया था और 1 अप्रैल, 1970 से प्रभावी किया गया था। अधिनियम वर्ष 1969 के कुछ प्रासंगिक प्रावधानों को इसके बाद देखा जा रहा है: -

"8 जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण करने के लिए अपेक्षित व्यक्ति-(1) नीचे विनिर्दिष्ट व्यक्तियों का यह कर्तव्य होगा कि वे धारा 16 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा विहित प्रपत्रों में प्रविष्ट किए जाने वाले अपेक्षित अनेक विशिष्टियों की सूचना अपने सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार या तो

मौखिक रूप से या लिखित रूप में दें, या करवाएं, -

(ए) एक घर में जन्म और मृत्यु के संबंध में, चाहे आवासीय या गैर-आवासीय, खंड (बी) से (ई) में निर्दिष्ट कोई स्थान नहीं है, घर का मुखिया या, यदि घर में एक से अधिक घर रहते हैं, तो घर का मुखिया, व्यक्ति, जिसे घर या घर द्वारा मान्यता प्राप्त है, और यदि वह उस अवधि के दौरान किसी भी समय घर में मौजूद नहीं है, जिसके भीतर जन्म या मृत्यु की सूचना दी जानी है, तो घर में मौजूद मुखिया का निकटतम रिश्तेदार, और ऐसे किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में, उक्त अवधि के दौरान उसमें मौजूद सबसे पुराना वयस्क पुरुष व्यक्ति;

(ख) किसी अस्पताल, स्वास्थ्य केंद्र, प्रसूति या नर्सिंग होम या अन्य ऐसी संस्था में जन्म और मृत्यु के संबंध में, प्रभारी चिकित्सा अधिकारी या इस संबंध में उसके द्वारा अधिकृत कोई व्यक्ति;

(ग) जेल में जन्म और मृत्यु के संबंध में, प्रभारी जेलर;

(घ) किसी विद्यालयी, छत्रम, छात्रावास, धर्मशाला, भोजन-गृह, लॉजिंग-हाउस, सराय, बैरक, ताड़ी की दुकान या सार्वजनिक आश्रय स्थल के स्थान में जन्म और मृत्यु के संबंध में, उसका भारसाधक व्यक्ति;

(ङ) किसी सार्वजनिक स्थान पर परित्यक्त पाए गए किसी नवजात बालक या मृत शरीर के संबंध में, ग्राम की दशा में ग्राम का मुखिया या अन्य संगत अधिकारी और अन्यत्र स्थानीय पुलिस स्टेशन का भारसाधक अधिकारी: परन्तु कोई व्यक्ति जो ऐसा बालक या मृत शरीर

पाता है, या जिसके प्रभार में ऐसा बालक या मृत शरीर रखा जा सकेगा, पूर्वोक्त मुखिया या अधिकारी को इस तरह के तथ्य को सूचित करेगा;

(च) किसी अन्य स्थान पर, ऐसे व्यक्ति के रूप में निर्धारित किया जा सकता है।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, रजिस्ट्रीकरण प्रभाग में अभिप्राप्त शर्तों को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार, आदेश द्वारा यह अपेक्षा कर सकेगी कि ऐसी अवधि के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त पदनाम द्वारा विनिर्दिष्ट कोई व्यक्ति, विनिर्दिष्ट व्यक्तियों के स्थान पर उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी घर में जन्म और मृत्यु के संबंध में सूचना देगा या करवाएगा।

"11 रजिस्ट्रार पर हस्ताक्षर करने के लिए शिकायतकर्ता- प्रत्येक व्यक्ति जिसने इस अधिनियम के तहत अपेक्षित कोई भी जानकारी रजिस्ट्रार को मौखिक रूप से दी है, इस निमित्त बनाए गए रजिस्टर में अपना नाम, विवरण और निवास स्थान लिखेगा और यदि वह लिख नहीं सकता है, तो रजिस्टर में अपने नाम, विवरण और निवास के स्थान के सामने अपने अंगूठे का निशान लगाएगा, रजिस्ट्रार द्वारा दर्ज किए गए ऐसे मामले में विवरण दिया जा रहा हो।

रजिस्ट्रीकरण प्रविष्टियों के 12 उद्धरण सूचनादाता को दिए जाने के लिए - रजिस्ट्रार, जैसे ही जन्म या मृत्यु का रजिस्ट्रीकरण पूरा हो जाता है, उस व्यक्ति को, जो धारा 8 या

धारा 9 के अधीन सूचना देता है, ऐसे जन्म या मृत्यु से संबंधित रजिस्टर में से अपने हस्ताक्षर के अधीन विहित विवरणों का एक उद्धरण निशुल्क देगा।

"13 जन्म और मृत्यु का विलंबित रजिस्ट्रीकरण - (1) कोई जन्म, जिसकी सूचना रजिस्ट्रार को इस प्रकार विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात् किन्तु उसके घटित होने के तीस दिन के भीतर दी जाती है, ऐसे विलंब शुल्क के संदाय पर, जो विहित की जाए, रजिस्ट्रीकृत किया जाएगा।

(2) कोई जन्म या मृत्यु, जिसके बारे में तीस दिन के पश्चात् किन्तु उसके घटित होने के एक वर्ष के भीतर रजिस्ट्रार को विलंबित सूचना दी जाती है, केवल विहित प्राधिकारी की लिखित अनुज्ञा से और विहित फीस के संदाय पर तथा नोटरी पब्लिक या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी के समक्ष शपथपत्र प्रस्तुत करने पर ही रजिस्ट्रीकृत की जाएगी।

(3) कोई जन्म या मृत्यु, जो उसके घटित होने के एक वर्ष के भीतर रजिस्ट्रीकृत नहीं की गई है, केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट या प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट द्वारा जन्म या मृत्यु की सत्यता का सत्यापन करने के पश्चात् और विहित फीस के संदाय पर ही रजिस्ट्रीकृत की जाएगी।

(4) इस धारा के उपबंध किसी ऐसी कार्यवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो किसी व्यक्ति के विरुद्ध उसके लिए विनिर्दिष्ट समय के भीतर किसी जन्म या

मृत्यु को रजिस्ट्रीकृत करने में उसकी ओर से असफलता के लिए की जा सकेगी और ऐसी किसी कार्रवाई के लंबित रहने के दौरान ऐसा कोई जन्म या मृत्यु रजिस्ट्रीकृत की जा सकेगी।

62. पूर्वोक्त धाराओं के अवलोकन से, यह प्रकट होगा कि जन्म और मृत्यु के पंजीकरण से संबंधित अधिनियम वर्ष 1969 में एक पूर्ण प्रक्रिया की रूपरेखा तैयार की गई है। उपर्युक्त धाराओं के अवलोकन से, यह इंगित होगा कि धारा 8 में व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें संबंधित प्राधिकारी के साथ जन्म और मृत्यु के तथ्य की रिपोर्ट करना आवश्यक है। सूचना देने वाले व्यक्ति को पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए विशेष रूप से बनाए गए रजिस्टर पर हस्ताक्षर करना भी अपेक्षित है। धारा 13 में स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि यदि जन्म या मृत्यु के संबंध में कोई सूचना देरी से दी जाती है, लेकिन इसके होने के 30 दिनों के भीतर, तो ऐसी जानकारी ऐसे शुल्क के भुगतान पर ली जा सकती है जो निर्धारित की जा सकती है, हालांकि, यदि ऐसी सूचना 30 दिनों के बाद दी जाती है, लेकिन इसके होने के एक वर्ष के भीतर, इसे केवल निर्धारित प्राधिकारी की लिखित अनुमति और पूर्व में दिए गए शपथ पत्र के उत्पादन के साथ ही एक सार्वजनिक नोटरी द्वारा पंजीकृत किया जा सकता है। कोई भी जन्म या मृत्यु जो उसके होने के एक वर्ष के भीतर पंजीकृत नहीं की गई है, केवल जन्म या मृत्यु की शुद्धता को सत्यापित करने और निर्धारित शुल्क के भुगतान पर

प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश द्वारा पंजीकृत की जा सकती है।

63. इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि प्रस्तुत मामले में, प्रतिवादियों के नेतृत्व में कोई सबूत नहीं था, जिन्होंने प्राधिकरण को सूचित किया और क्या जानकारी शिकायतकर्ता के हलफनामे के साथ थी। चूंकि, जाहिरा तौर पर मौत देरी से दर्ज की गई थी, इसलिए अभिलेखों पर यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा इस तरह के पंजीकरण की अनुमति देने के लिए कोई आदेश पारित किया गया था। तदनुसार, यह नहीं कहा जा सकता है कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है और इसलिए, यह कथित प्रमाण पत्र पर संदेह पैदा करता है जिस पर प्रतिवादियों द्वारा भरोसा किया गया है। इस मामले का एक और पहलू है और यानी लिखित बयान में प्रतिवादियों ने सरजू प्रसाद की मृत्यु की कोई स्पष्ट तारीख नहीं दी और केवल एक अस्पष्ट कथन किया गया कि लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से लगभग 3-4 साल पहले उनकी मृत्यु हो गई थी। प्रतिपक्षी ने किसी भी अदालत का कोई आदेश दायर नहीं किया, जिसके अनुसरण में कथित मृत्यु प्रमाण पत्र जारी किया गया था।

64. एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सरजू प्रसाद के पुत्र अर्जुन को डीडब्ल्यू-1 के रूप में जांच की गई थी, जिसने गवाही दी थी कि सरजू प्रसाद की मृत्यु के समय, वह अबूधाबी में था और लौटने के बाद, उसने 05.03.1984 को एक आवेदन देकर मृत्यु प्रमाण पत्र तैयार किया। उसी तारीख को उन्होंने अपने भाई का मृत्यु प्रमाण पत्र भी तैयार करवाया, जिसकी

मृत्यु लगभग 5 वर्ष पहले हो गई थी और उसकी बहन, जिसकी मृत्यु लगभग 10 वर्ष पहले हो गई थी। जबकि यह आरोप लगाया गया है कि 15.09.1983 को नगर पालिका के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था जो प्रतिवादियों को 16.02.1984 को तामील किया गया था और मृत्यु प्रमाण पत्र 05.03.1984 को जारी किया गया था। इस प्रकार, अधिनियम वर्ष 1969 के अनुसार साक्ष्य और प्रक्रिया और कानून के साथ उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, सरजू प्रसाद की मृत्यु की तारीख के बारे में याचिका साबित नहीं हुई और इसे दो न्यायालयों के पक्ष में नहीं मिला, जिन्होंने उक्त याचिका को खारिज कर दिया।

65. सरजू प्रसाद द्वारा समझौते को निष्पादित नहीं किए जाने के बारे में दलील भी झूठी थी क्योंकि वादी ने हस्तलिपि विशेषज्ञ के माध्यम से हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान को सत्यापित किया था, जिन्होंने कहा था कि समझौते पर हस्ताक्षर / अंगूठे का निशान और स्वीकृत दस्तावेज प्रदर्श-ए-1 पर, सरजू प्रसाद का था। प्रतिपक्षी मुकदमे का विरोध करने के लिए अपनी दलील स्थापित नहीं कर सके और निचली अपीलीय अदालत ने भी स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष की पुष्टि की कि प्रतिपक्षी अपने बचाव को साबित नहीं कर सके और यह नहीं मान सके कि समझौता वास्तव में सरजू प्रसाद द्वारा निष्पादित किया गया था।

66. पूर्वोक्त के मद्देनजर, दो बातें स्पष्ट हैं (i) समझौता सरजू प्रसाद द्वारा निष्पादित किया गया था जो समवर्ती रूप से दो

न्यायालयों द्वारा अवधारित किया गया है। (ii) प्रतिवादियों ने एक याचिका दायर की थी जो वास्तविक नहीं थी और प्रतिवादियों ने समझौते के निष्पादन को ढंक्ने के लिए सरजू प्रसाद की मृत्यु की गलत तारीख देने सहित विभिन्न दलीलों का सहारा लेकर पूरे लेनदेन पर संदेह व्यक्त करने की कोशिश की, जिसे प्रमाणित नहीं किया जा सका। इसलिए, करार, बिक्री प्रतिफल का भुगतान, विशिष्ट प्रदर्शन की मांग करने वाले वाद के संस्थान से पहले नोटिस जारी करना और विशिष्ट प्रदर्शन की डिक््री प्राप्त करने के लिए वाद का गठन करना वादी द्वारा पर्याप्त रूप से साबित किया गया है। वादी द्वारा तत्परता और इच्छा की विशेष रूप से वकालत की गई है और प्रतिवादियों द्वारा दलीलों या सबूतों में कोई इनकार नहीं किया गया है। इस प्रकार, ये महत्वपूर्ण तत्व साबित होते हैं। वादी द्वारा कोई दलील नहीं दी गई है जो झूठी पाई गई है या अच्छी नीयत से नहीं है और इस प्रकार यह देखा जाएगा कि वादी द्वारा विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान करने के लिए सामग्री साबित हुई थी।

67. अब, एकमात्र मुद्दा जिसे हल करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या प्रतिपक्षी किसी भी विवेक के हकदार थे जो विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान किया गया था और क्या यह निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा उचित रूप से उलट दिया गया था।

68. इस संबंध में, अभिलेखों पर सामग्री के अवलोकन पर, इस न्यायालय ने पाया कि न तो बेचने के लिए समझौते में ऐसी कोई शर्तें हैं जो प्रतिवादियों के खिलाफ वादी के पक्ष में एक

अनुचित सौदेबाजी पैदा करती हैं। ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है जो इस न्यायालय को यह मानने के लिए राजी कर सके कि वादी के पक्ष में प्रयोग किए गए किसी भी विवेक से प्रतिवादियों को अपूरणीय क्षति या चोट पहुंचेगी। हालांकि, विवेक का प्रयोग करने के लिए, विचार किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण पहलू भी संबंधित पक्षों के आचरण के संबंध में है, जो उनके द्वारा ली गई संबंधित दलील है।

69. अभिलेखों से, यह इंगित करता है कि जिस तरह से प्रतिवादियों ने अपने लिखित बयान में बेचने के समझौते के निष्पादन से इनकार करते हुए एक दलील उठाई थी, सरजू प्रसाद की मृत्यु की गलत तारीख दी थी और यह भी आरोप लगाया था कि वादी के कुछ दुर्भावना हैं जिन्होंने नगर पालिका में कुछ आवेदन किए थे। इन सभी को अभिलेखों पर मौजूद सबूतों से झूठा साबित किया गया था, जो इंगित करता है कि प्रतिवादियों ने अच्छे विश्वास में बचाव नहीं किया था। उपरोक्त परिस्थितियों में और विचारण न्यायालय द्वारा अपने फैसले में विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री को अस्वीकार करने के लिए लिए गए आधारों पर विचार करते हुए कि डीडब्ल्यू-1 अर्जुन प्रसाद ने संपत्ति का मूल्य 60,000 रुपये दिया था, जबकि समझौते में दिए गए मूल्य के मुकाबले 12,500 रुपये के रूप में बेचा गया था, इस कारण से पर्याप्त नहीं है कि अर्जुन प्रसाद के बयान का आधार कैसे और क्या था यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी। यदि अभिलेखों पर गवाह का बयान देखा जाता है, तो यह इंगित करेगा कि 60,000/- रुपये का आंकड़ा

जिसका उल्लेख किया गया है वह काल्पनिक है और केवल अनुमान द्वारा बनाया गया है और किसी सामग्री पर आधारित नहीं है। जिस तरह से विचारण न्यायालय ने बयान का इस्तेमाल किया है, वह स्पष्ट रूप से संदर्भ से बाहर है और इसे अलगाव में पढ़ा गया है। केवल मूल्य वृद्धि के आधार पर, विचारण न्यायालय विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री से इनकार करने में काफी न्यायसंगत नहीं था। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 से निपटने के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की सहायता से इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा पहले ही विचार किया जा चुका है और अब यह तय हो गया है कि संपत्ति के मूल्य में केवल वृद्धि किसी अन्य आकस्मिक परिस्थितियों के बिना, विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देने से इनकार करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

70. इस न्यायालय ने आगे पाया कि चूंकि प्रतिवादियों की रक्षा अच्छे विश्वास में नहीं थी और विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा एक न्यायसंगत राहत है और विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 के संदर्भ में विवेक का प्रयोग करते समय, पक्षों के आचरण को देखा जाना चाहिए और इस मामले में, प्रतिवादियों का आचरण ऐसा नहीं था कि प्रतिवादियों के पक्ष में विवेक को झुकाया जा सके। पूर्वोक्त कारणों से, यह न्यायालय संतुष्ट है कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया विवेक उचित नहीं था और निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित है।

71. मामले का समग्र दृष्टिकोण लेते हुए, यह न्यायालय निचली अपीलीय न्यायालय की डिक्री की पुष्टि करते हुए के. प्रकाश बनाम बीआर संपत कुमार, (2015)1 एस.सी.सी. 597 में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को नोटिस करने से परहेज नहीं कर सकता है और पूर्वोक्त रिपोर्ट के प्रासंगिक पैरा-19 और 20 को सुविधा के लिए नीचे उद्धृत किया गया है।

"19. हालांकि, अदालत इस तथ्य पर ध्यान दे सकती है कि संपत्ति की कीमत में वृद्धि हुई है और मामले के अन्य तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री देते समय ऐसी शर्त लगा सकता है जो कुछ हद तक संपत्ति के प्रतिपक्षी मालिक को मुआवजा दे सकती है। मामले के इस पहलू पर निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉरपोरेशन के मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विचार किया गया है। (पी) लिमिटेड [(2002) 8 एस.सी.सी. 146], जिसमें इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एस.सी.सी. पी. 150, पैरा-6)

"6. यह सच है कि विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री का अनुदान अदालत के विवेक में निहित है और यह भी अच्छी तरह से तय है कि केवल इस कारण से विशिष्ट प्रदर्शन प्रदान करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है कि ऐसा करना कानूनी है। यह आगे अच्छी तरह से तय है कि अदालत अपने विवेक से किसी भी उचित शर्त को लागू कर सकती है, जिसमें विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देते या अस्वीकार करते समय एक पक्ष

द्वारा दूसरे पक्ष को अतिरिक्त राशि का भुगतान शामिल है। क्रेता को विक्रेता को अतिरिक्त राशि का भुगतान करने या बातचीत करने का निर्देश दिया जाएगा या नहीं, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। आमतौर पर, वादी को केवल मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान कीमत में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। यह हो सकता है, किसी दिए गए मामले में, विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्री से इनकार करने के लिए कई अन्य लोगों के अलावा विचारों में से एक को ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक सामान्य नियम के रूप में, यह नहीं माना जा सकता है कि आमतौर पर वादी को अकेले उसके लिए, मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान संपत्ति के मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि का पूरा लाभ प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इक्विटी को संतुलित करते समय, ध्यान में रखा जाने वाला एक विचार यह है कि डिफॉल्ट करने वाला पक्ष कौन है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या कोई पक्ष दूसरे पर अनुचित लाभ उठाने की कोशिश कर रहा है और साथ ही विशिष्ट प्रदर्शन को निर्देशित करके प्रतिपक्षी को होने वाली कठिनाई भी। ऐसी अन्य परिस्थितियां हो सकती हैं जिन पर पक्षों का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता है। परिस्थितियों की समग्रता को देखने की जरूरत है।

20. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 2003 में पक्षों के बीच 16,10,000 रुपये के कुल प्रतिफल के लिए संपत्ति की बिक्री के लिए समझौता किया गया था। दस साल बीत चुके हैं और अब उस क्षेत्र में संपत्ति की कीमत जहां यह स्थित है, कम से कम पांच गुना बढ़ गई है। तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि अपीलकर्ता को कुल 25 लाख रुपये का भुगतान करना चाहिए, जो उक्त संपत्ति की कीमत है।

72. इसी प्रकार, जरीना सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम (2015)¹ एस.सी.सी. 705 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"36. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा बार-बार अवधारित किया गया है, समय का प्रवाह और संपत्ति की कीमत में वृद्धि अपने आप में विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से इनकार करने के लिए एक वैध आधार नहीं हो सकती है। लेकिन न्यायालय अपने विवेक से विक्रेता को अतिरिक्त राशि के भुगतान सहित उचित शर्तें लगा सकता है। यह समान रूप से अच्छी तरह से तय है कि वादी को केवल मुकदमेबाजी की लम्बितता के दौरान कीमत में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण विशिष्ट प्रदर्शन से इनकार नहीं किया जाना चाहिए।

37. प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी ने लिखित बयान में वैकल्पिक रूप से दलील दी कि प्रासंगिक

समय में भी वाद संपत्ति की कीमत 3,00,000 रुपये थी जब उक्त समझौते को केवल 40,000 रुपये में निष्पादित किया गया था। लेकिन दूसरी ओर यह साक्ष्य में आया है कि 40,000 रुपये के खिलाफ, अपीलकर्ता-वादी ने कुल 65,000 रुपये की राशि का भुगतान किया है।

38. जैसा कि यह हो सकता है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और उस अवधि के दौरान कीमत में अभूतपूर्व वृद्धि पर विचार करते हुए जब मामला विभिन्न अदालतों में लंबित रहा, तो हम इस सुविचारित राय के हैं कि आक्षेपित आदेश [ए. रामलिंगम बनाम एच. सिद्दीकी, आरएफए संख्या-265 वर्ष 1999, अपील के तहत 1-3-2012 (केएआर)] को रद्द कर दिया जाए, लेकिन अपीलकर्ता-वादी पर 15,00,000 (पंद्रह लाख रुपये) रुपये की राशि का भुगतान करने की शर्त के साथ, अपीलकर्ता द्वारा प्रतिपक्षी को पहले से भुगतान की गई राशि के अलावा अपीलकर्ता द्वारा पूर्वोक्त राशि के विचारण न्यायालय में जमा करने पर, प्रतिपक्षी को भुगतान के लिए, आज से तीन महीने के भीतर, प्रतिपक्षी वाद संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित और पंजीकृत करेगा। यदि 15 लाख रुपये जमा करने की उपरोक्त शर्त यहां निर्धारित समय के भीतर पूरी हो जाती है, लेकिन यदि प्रतिपक्षी निर्देश का पालन करने में विफल रहता है, तो अपीलकर्ता कानून में

प्रदान की गई प्रक्रिया के अनुसार डिक्री निष्पादित करने का हकदार होगा।

राजलक्ष्मी (2011)12 एस.सी.सी.18 में देखा गया था। इस न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक पैरा नीचे दिया गया है: -

73. हाल ही में संयुक्त राष्ट्र कृष्णमूर्ति बनाम एएम कृष्णमूर्ति में सर्वोच्च न्यायालय; 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 840, पैरा-38 से 42 में निम्नानुसार देखा गया है: -

"38. इस मामले में, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि वाद संपत्ति होसुर के औद्योगिक शहर में स्थित है जो बेंगलुरु से लगभग 30/40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। न्यायालय होसुर में अचल संपत्ति की कीमत में अभूतपूर्व वृद्धि का न्यायिक नोटिस लेने के लिए बाध्य है। प्रस्ताव को केएस विद्यानाथम बनाम वियरमान (उपरोक्त) में रिपोर्ट किए गए मामले से समर्थन मिलता है। इस न्यायालय को उद्धृत करने के लिए, "हम वास्तविकता से अनजान नहीं हो सकते हैं - और वास्तविकता शहरी संपत्तियों के मूल्यों में निरंतर और निरंतर वृद्धि है - ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी केंद्रों में लोगों के बड़े पैमाने पर प्रवास और मुद्रास्फीति से प्रेरित है।

39. श्री वेणुगोपाल ने तर्क दिया कि वादी ने अग्रिम के रूप में केवल 10,001 रुपये की नगण्य राशि का भुगतान किया था जब प्रतिफल 15,10,000 / एक महत्वहीन राशि का भुगतान करने के बाद वादी विशिष्ट प्रदर्शन की विवेकाधीन न्यायसंगत राहत का हकदार नहीं था, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा सरदामणि कंडप्पन बनाम एस

"37. विशिष्ट प्रदर्शन से संबंधित मामलों को तय करने में इस आर्थिक परिवर्तन से उत्पन्न वास्तविकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। कीमतों में भारी वृद्धि एक ऐसी परिस्थिति है जो विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए अन्यायपूर्ण बनाती है जहां क्रेता सहमत अवधि के भीतर बिक्री को पूरा करने के लिए कदम नहीं उठाता है, और विक्रेता किसी भी देरी या गैर-प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार नहीं है। एक खरीदार अब इस सिद्धांत के तहत आश्रय नहीं ले सकता है कि अचल संपत्ति से संबंधित अनुबंधों के प्रदर्शन में समय का सार नहीं है, ताकि उसकी देरी, लैच, उल्लंघन और "गैर-तत्परता" को आच्छादित किया जा सके। एक युग से जब उच्च मुद्रास्फीति अज्ञात थी, यह मानते हुए कि समय अचल संपत्तियों के संबंध में अनुबंध का सार नहीं है, अब लागू नहीं हो सकता है, इसलिए नहीं कि उसमें निर्धारित सिद्धांत अनुचित या गलत है, लेकिन परिस्थितियां जो उक्त सिद्धांत विकसित होने पर मौजूद थीं, अब मौजूद नहीं हैं। अचल संपत्तियों की कीमतों में सरपट वृद्धि के इन दिनों में, यह मानना कि एक विक्रेता जिसने बिक्री मूल्य का लगभग 10% बयाना पैसा लिया और प्रदर्शन के लिए अवधि के रूप में तीन महीने या चार महीने के लिए सहमत हो

गया, उसका इरादा यह नहीं था कि समय सार होना चाहिए, उस पर एक क्रूर मजाक होगा, और अन्याय होगा। विशिष्ट प्रदर्शन से संबंधित मामलों के निपटान में देरी दुख को और बढ़ा रही है, क्योंकि मुकदमों और अपीलों को अंतिम रूप देने में नियमित रूप से दो से तीन दशक लगते हैं। नतीजतन, एक मालिक एक लाख रुपये के लिए एक संपत्ति बेचने के लिए सहमत हो रहा है और अग्रिम के रूप में दस हजार रुपये प्राप्त कर रहा है, शेष नब्बे हजार रुपये प्राप्त करके एक चौथाई सदी बाद एक बिक्री विलेख निष्पादित करने की आवश्यकता हो सकती है, जब संपत्ति का मूल्य एक करोड़ रुपये तक बढ़ गया है।

40. श्री वेणुगोपाल द्वारा तर्क दिया के रूप में, तथ्य यह है कि मुकदमा तीन साल के बाद दायर किया गया था, बस सीमा की अवधि की समाप्ति से पहले, भी प्रतिपक्षी वादी अचल संपत्ति की खरीद के लिए विशिष्ट प्रदर्शन की न्यायसंगत राहत अस्वीकार करने के लिए एक आधार था। श्री वेणुगोपाल के तर्क को पीआर देब एंड एसोसिएट्स बनाम सुनंदा रॉय (1996) 4 एस.सी.सी. 423; के.एस. विद्यानंदम ए.आई.आर. एवन (1997)3 एस.सी.सी.1; मंजूनाथ आनंदप्पा वि. तम्मनसा (2003)10 एस.सी.सी.390, अजहर सुल्ताना बनाम बी राजमणि (2009)17 एस.सी.सी.27; शारदा मणि कंडप्पन बनाम एस राजलक्ष्मी (2011)12 एस.सी.सी.18 उद्धृत किया गया।

41. के. एस. विद्यानंदम बनाम Va.i.आर .avan (उपरोक्त) इस न्यायालय ने अवधारित किया:

"10. यह लगातार भारत में अदालतों द्वारा अवधारित किया गया है, कुछ प्रारंभिक अंग्रेजी निर्णयों के बाद, कि अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री के समझौते के मामले में, समय अनुबंध का सार नहीं है जब तक कि विशेष रूप से उस प्रभाव के लिए प्रदान नहीं किया जाता है। वाद दायर करने के लिए परिसीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमा की अवधि तीन वर्ष है। इन दो परिस्थितियों से, यह इस बात का पालन नहीं करता है कि समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए कोई भी और हर मुकदमा (जो विशेष रूप से यह प्रदान नहीं करता है कि समय अनुबंध का सार है) डिक्री की जानी चाहिए बशर्ते कि यह एक या दूसरे पक्ष द्वारा एक या दूसरे काम करने के लिए समझौते में निर्धारित समय-सीमा के बावजूद सीमा की अवधि के भीतर दायर किया गया हो। यह कहने के बराबर होगा कि समझौते में पक्षों द्वारा निर्धारित समय-सीमा का कोई महत्व या मूल्य नहीं है और उनका कोई मतलब नहीं है। क्या यह कहना उचित होगा कि क्योंकि समय को अनुबंध का सार नहीं बनाया गया है, समझौते में निर्दिष्ट समय-सीमा(ओं) की कोई प्रासंगिकता नहीं है और इसे दण्ड से मुक्ति के साथ अनदेखा किया जा सकता है? इसका मतलब यह भी होगा कि धारा 10 और 20 दोनों द्वारा अदालत में

निहित विवेक से इनकार करना। जैसा कि चांद रानी बनाम कमल रानी [(1993)1 एस.सी.सी. 519] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी.पी. 528, पैरा-25)

“... यह स्पष्ट है कि अचल संपत्ति की बिक्री के मामले में अनुबंध का सार होने के समय के रूप में कोई अनुमान नहीं है। यहां तक कि अगर यह अनुबंध का सार नहीं है, तो न्यायालय यह अनुमान लगा सकता है कि यह उचित समय में किया जाना है यदि शर्तें हैं (स्पष्ट?): (1) अनुबंध की स्पष्ट शर्तों से; (2) संपत्ति की प्रकृति से; और (3) आसपास की परिस्थितियों से, उदाहरण के लिए, अनुबंध करने का उद्देश्य।

दूसरे शब्दों में, अदालत को समझौते में निर्दिष्ट समय-सीमा(ओं) सहित सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को देखना चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि विशिष्ट प्रदर्शन देने के लिए उसके विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं।

42. अजहर सुल्ताना बनाम बी. राजमणि (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने कहा: -

“28. ... न्यायालय, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह एक विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, इस बात पर विचार करने का हकदार होगा कि क्या मुकदमा उचित समय के भीतर दायर किया गया था। हालांकि, एक

उचित समय क्या होगा, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इसके लिए कोई कठोर और त्वरित कानून नहीं बनाया जा सकता है। इस संबंध में पक्षकारों का आचरण भी महत्वपूर्ण होगा।

35. इसलिए, हमारी राय है कि न्याय के हित की रक्षा की जाएगी यदि यह न्यायालय अधिनियम की धारा 20 के संदर्भ में अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करता है, प्रतिपक्षी को वादी को 60,000 रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश देता है जिसमें उसके द्वारा भुगतान की गई अग्रिम राशि शामिल होगी।

74. इस पृष्ठभूमि में, यह न्यायालय नोटिस करता है कि पक्ष 1983 से मुकदमा कर रही हैं और लगभग 40 साल बीत चुके हैं और प्रतिपक्षी, जो इस न्यायालय के समक्ष हैं, उक्त परिसर में रह रहे हैं। परिसर समय बीतने के साथ शहरी समूह के भीतर आ गया है और प्रतिवादियों ने भी सुधार किया होगा और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि 12,500 रुपये की राशि के खिलाफ समझौते के संदर्भ में, वादी प्रतिपक्षियों ने केवल 500 रुपये की राशि का भुगतान किया था और यह देखते हुए कि विचाराधीन संपत्ति के संबंध में कीमत में वृद्धि सहित बदली हुई परिस्थितियां हैं, मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों और इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन करते हुए और पक्षों के बीच पर्याप्त न्याय करने के लिए, यह न्यायालय निचली अपीलीय अदालत

द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को इस हद तक संशोधित करता है कि वादी-प्रतिपक्षी दिनांक 10.08.1983 को विक्रय समझौते के अनुसरण में विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री के हकदार होंगे, बशर्ते कि अब प्रतिपक्षी-वादी प्रतिपक्षी-अपीलकर्ताओं को 90 दिनों की अवधि के भीतर या पहले से भुगतान की गई या जमा की गई किसी भी राशि को समायोजित करने के बाद निष्पादन न्यायालय के समक्ष वैकल्पिक जमा में 8,00,000/- रुपये का भुगतान किया जाता है। निष्पादन न्यायालय के समक्ष उपरोक्त राशि या 8,00,000/- रुपये जमा करने पर, वादी-प्रतिपक्षी प्रतिपक्षी-अपीलकर्ताओं से बिक्री-विलेख निष्पादित करने के हकदार होंगे, जिसमें विफल होने पर वे कानून के अनुसार निष्पादन न्यायालय के माध्यम से इसे निष्पादित करने के हकदार होंगे। यदि वादी-प्रतिवादियों द्वारा समय पर राशि जमा नहीं की जाती है, जैसा कि इसमें प्रदान किया गया है, तो वादी-प्रतिपक्षी अपने पक्ष में बिक्री-विलेख प्राप्त करने के हकदार नहीं होंगे।

75. दीवानी अपील संख्या-37 वर्ष 1992 में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 02.12.1992 में पूर्वोक्त संशोधन के अधीन, जिसकी पुष्टि की गई है, इस न्यायालय को इस अपील में योग्यता नहीं मिलती है जिसे तदनुसार खारिज किया जाता है। तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा। निचली अदालत के अभिलेख को शीघ्रता से लौटाया जाए।

(2023) 7 ILRA 1025

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 2511

सन् 2023

संजय गुप्ता

...याचिकाकर्ता

बनाम

सुरेश कुमार मिश्रा एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

प्रशांत सिंह गौर, विक्रान्त सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

वीरेंद्र मिश्रा

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 227 - मध्यस्थता एवं सुलह

अधिनियम, 1996 - धारा 34 एवं 36 -

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 47 -

आदेश 21 --- संहिता की धारा 47 के अंतर्गत

आपतियाँ, मध्यस्थता निर्णय की निष्पादन या

प्रवर्तन की कार्यवाही में स्वीकार्य नहीं हैं, किन्तु

तथापि निर्णय ऋणी द्वारा उठाई गई वे

आपतियाँ जो निर्णय के गुण-दोष से संबंधित

नहीं हैं या ऐसे प्रश्नों को उठाती हैं जिन्हें

अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत

नहीं उठाया जा सकता, वे इस प्रकार की

कार्यवाही में उठाई जा सकती हैं और उनका

निर्णय किया जाना अपेक्षित है --- निष्पादन

न्यायालय को यह निर्देशित किया जाता है कि

याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई उन आपतियों पर

निर्णय दे, जो स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता

तथा मध्यस्थता निर्णय द्वारा चल संपत्ति से

संबंधित डिक्री से संबंधित नहीं हैं।(प्रस्तर 19, 20 एवं 21)

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. वाई.बी. पाटिल एवं अन्य बनाम वाई.एल. पाटिल ने एआईआर में प्रतिवेदित 1977 एससी 392: (1976) 4 एससीसी 66
2. परमजीत सिंह पथेजा बनाम आईसीडीएस लिमिटेड (2006) 13 एससीसी 322 में प्रतिवेदित
3. भारत सरकार बनाम वेदांता लिमिटेड और अन्य, (2006) 12 एससीसी 642 में प्रतिवेदित
4. अमेज़न.कॉम एनवी इन्वेस्टमेंट होल्डिंग्स एलसीसी बनाम फ्यूचर रिटेल लिमिटेड और अन्य, (2022) 1 में प्रतिवेदित एससीसी 209
5. मेसर्स लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड बनाम मेसर्स महाराय एजुकेशनल ट्रस्ट, 2010 एससीसी ऑनलाइन में प्रतिवेदित इलाहाबाद 1866
6. मेसर्स भारत पंप्स एंड कंप्रेसर्स लिमिटेड बनाम मैसर्स चोपड़ा फैब्रिकेटर्स एंड मैनुफैक्चरर्स प्राइवेट लिमिटेड लिमिटेड, मनु/यूपी/1432/2022 [सिविल पुनरीक्षण संख्या 53, 2022] में प्रतिवेदित
7. हिंदुस्तान जिक लिमिटेड बनाम राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम, 2023 एससीसी में प्रतिवेदित ऑनलाइन डेल 330
8. पंजाब स्टेट सिविल सप्लाईज कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम अटवाल राइस एंड जनरल मिल्स (2017) 8 एससीसी 116

1. श्री प्रशांत सिंह गौर और श्री विक्रांत सिंह, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, तथा श्री वीरेंद्र मिश्रा, सुश्री श्रद्धा मिश्रा की सहायता से, विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता को सुना। विपक्षी संख्या 2 केवल संबंधित न्यायालय होने और एक औपचारिक पक्षकार होने के कारण, नोटिस से छूट दी गई है।

2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर की गई है, जो दिनांक 01.04.2023 को विविध वाद संख्या 48 of 2023 (निष्पादन वाद संख्या 94 of 2020) में पारित आदेश को चुनौती देती है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा, जो कि निर्णय ऋणी है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47 के तहत प्रस्तुत आपत्तियों को खारिज कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विवाद के पक्षकारों ने संबंधित संपत्ति के संदर्भ में दिनांक 10.11.1996 को एक बिल्डर समझौते में प्रवेश किया था, लेकिन उक्त समझौते से उत्पन्न विवादों के कारण, इसे मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे आगे 1996 का अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 11(6) के तहत दायर एक आवेदन में एकमात्र मध्यस्थ को न्यायनिर्णय के लिए भेजा गया था। इसमें 12.01.2007 को याचिकाकर्ता और 19 अन्य के खिलाफ पंचाट घोषित किया गया। याचिकाकर्ता के पिता ने 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत

नियमित वाद संख्या 11 of 2007 दायर किया, जिसे दिनांक 25.07.2012 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। उक्त निर्णय और आदेश के विरुद्ध, अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1040 of 2012 दायर की गई, जिसमें प्रारंभ में अंतरिम आदेश पारित किए गए थे, लेकिन 30.01.2017 को उपस्थिति के अभाव में इसे खारिज कर दिया गया। पुनर्स्थापना आवेदन को भी कार्यवाही न करने के कारण खारिज कर दिया गया, जिसके बाद पुनर्स्थापना के लिए एक दूसरा आवेदन दायर किया गया। उसे भी खारिज कर दिया गया, हालांकि एक तीसरा पुनर्स्थापना आवेदन विचाराधीन है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि तत्पश्चात् दिनांक 03.11.2017 को पंचाट के निष्पादन हेतु एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता, जो कि निर्णय ऋणी है, ने संहिता की धारा 47 के अधीन एक आवेदन दायर किया। यह प्रस्तुत किया गया है कि मध्यस्थ का पंचाट चल एवं अचल दोनों संपत्तियों के संबंध में था, जिसमें चल संपत्ति धन डिफ्री की प्रकृति की थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपतियों में विशेष रूप से कहा गया था कि निष्पादन कार्यवाही में मांगी जा रही राहत अचल संपत्ति के संबंध में पंचाट के अनुरूप नहीं थी, क्योंकि निष्पादन कार्यवाही में मांगी जा रही संपत्तियों का कब्जा डिफ्री धारक के पक्ष में नहीं दिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पंचाट से संबंधित स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता के संबंध में भी

आपतियों में आपतियाँ उठाई गई थीं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पंचाट में, विद्वान एकमात्र मध्यस्थ ने विशेष रूप से प्रश्नगत संपत्ति में पांच दुकानों का कब्जा नहीं दिया है और इसलिए निष्पादन कार्यवाही में उनका दावा ऐसी राहत देने के समान होगा जो स्वयं पंचाट में नहीं दी गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि आक्षेपित आदेश के माध्यम से, स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता के संबंध में आपतियों को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उक्त आपतियाँ पहले भी उठाई गई थीं और खारिज कर दी गई थीं, और इसलिए उन्हें फिर से न्यायनिर्णीत करने का कोई प्रश्न नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई अन्य आपतियों को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि मध्यस्थता पंचाट के निष्पादन की मांग करने वाली कार्यवाही में संहिता की धारा 47 के तहत आवेदन स्वीकार्य नहीं है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जब 1996 के अधिनियम की धारा 36 विशेष रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार पंचाट के निष्पादन का प्रावधान करती है, उसी तरह जैसे यह न्यायालय की डिफ्री हो, तो स्वाभाविक रूप से निष्पादन संहिता के आदेश 21 के तहत मांगा जाना चाहिए, जिसके कारण संहिता की धारा 47 के तहत आपतियाँ स्पष्ट रूप से स्वीकार्य हैं। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता को आंशिक आधार पर लागू नहीं किया जा सकता और या तो यह पूरी तरह से लागू होती है या बिल्कुल नहीं।

इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि जब 1996 के अधिनियम की धारा 36 स्पष्ट रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन का निर्धारण करती है, तो संहिता के अन्य सभी प्रावधान, संहिता की धारा 47 के प्रावधानों सहित, आकर्षित होंगे।

6. अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, विद्वान अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निम्न निर्णयों का हवाला दिया है: **पंजाब स्टेट सिविल सप्लाईज कॉरपोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम अटवाल राइस एंड जनरल मिल्स (2017) 8 एससीसी 116; फर्म राजस्थान उद्योग और अन्य बनाम हिंदुस्तान इंजीनियरिंग एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड, (2020) 6 एससीसी 660 में प्रतिवेदित; और एम. अनसूया देवी और अन्य बनाम एम. माणिक रेड्डी और अन्य, (2003) 8 एससीसी 565 में प्रतिवेदित।**

7. विपक्षी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन किया है, यह कहते हुए कि 1996 के अधिनियम के प्रावधान स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं कि एक मध्यस्थता पंचाट को ऐसे लागू किया जाना है जैसे कि यह एक डिक्री हो, और इसलिए, मध्यस्थता पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के तहत परिकल्पित डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है क्योंकि इसे केवल एक मानी गई डिक्री का दर्जा प्राप्त होगा, जिसके कारण धारा 47 के तहत आपत्तियाँ स्पष्ट रूप से निषिद्ध हैं। यह

प्रस्तुत किया गया है कि 1996 के अधिनियम की धारा 36 के आधार पर, यह केवल निर्धारित किया गया है कि, केवल पंचाट की प्रवर्तनीयता के उद्देश्यों के लिए, संहिता के आदेश 21 का सहारा लिया जा सकता है, जबकि आवेदन स्वयं 1996 के अधिनियम की धारा 36 के तहत माना जाएगा और संहिता के आदेश 21 के तहत नहीं। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि संहिता की प्रयोज्यता का मूल उद्देश्य केवल पंचाट के प्रवर्तन के लिए एक प्रक्रिया प्रदान करना है और संहिता स्वयं को पूरी तरह से लागू नहीं किया गया है, जिसके कारण संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियाँ स्वीकार्य नहीं होंगी, जैसा कि आक्षेपित आदेश में सही ढंग से माना गया है। विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

- (1) माननीय उच्चतम न्यायालय का **परमजीत सिंह पाठेजा बनाम आईसीडीएस लिमिटेड** में निर्णय, (2006) 13 एससीसी 322 में प्रतिवेदित;
- (2) माननीय उच्चतम न्यायालय का **मॉर्गन सिक्योरिटीज एंड क्रेडिट (पी) लिमिटेड बनाम मोदी रबर लिमिटेड** में निर्णय, (2006) 12 एससीसी 642 में प्रतिवेदित;
- (3) माननीय उच्चतम न्यायालय का **भारत सरकार बनाम वेदांता लिमिटेड और अन्य** में निर्णय, (2006) 12 एससीसी 642 में प्रतिवेदित;
- (4) माननीय उच्चतम न्यायालय का **अमेज़न.कॉम एनवी इन्वेस्टमेंट होल्डिंग्स एलसीसी बनाम फ्यूचर रिटेल लिमिटेड और अन्य** में निर्णय, (2022) 1 एससीसी 209 में

प्रतिवेदित;

- (5) इस न्यायालय का **मेसर्स भारत पंप्स एंड कम्प्रेसर्स लिमिटेड बनाम मेसर्स चोपड़ा फैब्रिकेटर्स एंड मैनुफैक्चरर्स प्राइवेट लिमिटेड** में निर्णय, मनु/यूपी/1432/2022 [सिविल रिवीज़न संख्या 53 of 2022] में प्रतिवेदित;
- (6) दिल्ली उच्च न्यायालय का **हिंदुस्तान ज़िंक लिमिटेड बनाम नेशनल रिसर्च डेवलपमेंट कॉरपोरेशन** में निर्णय, 2023 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 330 में प्रतिवेदित;
- (7) दिल्ली उच्च न्यायालय का **मेसर्स लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड बनाम मेसर्स महाराई एजुकेशनल ट्रस्ट** में निर्णय, 2010 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1866 में प्रतिवेदित;

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन के उपरांत, यह स्पष्ट है कि निष्पादन कार्यवाही के विरुद्ध आपत्तियाँ याचिकाकर्ता द्वारा, जो कि निर्णय ऋणी है, निष्पादन वाद संख्या 94 of 2020 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियों के रूप में दायर की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई पंचाट में स्टाम्प शुल्क की कमी से संबंधित आपत्तियों को आक्षेपित आदेश के माध्यम से इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि ऐसी आपत्ति पहले भी याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई थी और 03.12.2020 को खारिज कर दी गई थी, जिसके बाद इसे दोहराया गया और 17.10.2022 को फिर से खारिज कर दिया गया था। यह स्वीकार किया जाता है कि उक्त दो आदेशों को याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, जो इसलिए अंतिम रूप प्राप्त कर

चुके हैं और इसलिए ऐसी आपत्तियों को तीसरी बार उठाए जाने और उस आधार पर खारिज किए जाने पर हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से स्थापित कानून को देखते हुए कि रेस जुडिकाटा के सिद्धांत एक ही कार्यवाही के विभिन्न चरणों में लागू होते हैं, जैसा कि **वाई.बी. पाटिल और अन्य बनाम वाई.एल. पाटिल**, एआईआर 1977 एससी 392 : (1976) 4 एससीसी 66 में निर्णीत किया गया है।

9. जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा अचल संपत्ति से संबंधित पंचाट की प्रवर्तनीयता के संबंध में उठाई गई आपत्तियों का संबंध है, उन्हें आक्षेपित आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन के उद्देश्यों के लिए निष्पादन कार्यवाही में संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियाँ स्वीकार्य नहीं हैं।

10. जहां तक मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन के उद्देश्यों के लिए निष्पादन कार्यवाही में संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियों की स्वीकार्यता का प्रश्न है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **परमजीत सिंह पाठेजा** (उपरोक्त) से शुरू होकर अनेक निर्णयों में स्पष्ट रूप से माना है कि मध्यस्थता कार्यवाही में दिए गए पंचाट संहिता की धारा 2(2) के तहत परिभाषित डिब्री की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं और इसलिए जो आपत्तियाँ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत ली जा सकती हैं, उन्हें संहिता की धारा 47 का सहारा लेकर निष्पादन कार्यवाही में नहीं लिया जा सकता। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"28. इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा यह स्थापित है कि 'मानो' शब्द वास्तव में दो चीजों के बीच अंतर दिखाते हैं और ऐसे शब्दों का उपयोग एक सीमित उद्देश्य के लिए किया जाता है। वे आगे दर्शाते हैं कि एक कानूनी कल्पना को उस उद्देश्य तक सीमित रखना चाहिए जिसके लिए इसे बनाया गया था।"

"29. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36, जो 1899 के अधिनियम की धारा 15 के समरूप है, नीचे दी गई है:"

"36. प्रवर्तन - जहां धारा 34 के अधीन मध्यस्थता पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है, या ऐसा आवेदन किया जाने पर उसे नामंजूर कर दिया गया है, वहां पंचाट का प्रवर्तन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन उसी रीति से किया जाएगा मानो वह न्यायालय की डिक्ली हो।"

(महत्व सनन्विष्ट)

वास्तव में, धारा 36, 1899 के अधिनियम की धारा 15 से आगे जाती है और यह स्पष्ट करती है कि प्रवर्तनीयता केवल सीपीसी के तहत होनी है। यह किसी भी तर्क को खारिज करती है कि प्रवर्तनीयता को किसी अन्य कानून के तहत डिक्ली के रूप में मांगा जा सकता है या कि दिवालियापन कार्यवाही शुरू करना सीपीसी के तहत एक डिक्ली को लागू करने का एक तरीका है। इसलिए प्रतिवादियों का यह तर्क कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के तहत दिया गया एक

पंचाट यदि आवश्यक अवधि के भीतर चुनौती नहीं दी जाती है, तो वह धारा 35 के तहत अंतिम और बाध्यकारी हो जाता है और उसे डिक्ली के रूप में लागू किया जा सकता है क्योंकि वह धारा 36 के तहत बाध्यकारी और निर्णायक है और कि एक पंचाट और एक डिक्ली के बीच कोई अंतर नहीं है, टिकाऊ नहीं है।

"42. 'जैसे कि' शब्द दर्शाते हैं कि पंचाट और डिक्ली या आदेश दो अलग चीजें हैं। कानूनी कल्पना केवल डिक्ली के रूप में प्रवर्तन के सीमित उद्देश्य के लिए बनाई गई है। यह कल्पना इसे सभी राज्य या केंद्रीय कानूनों के तहत सभी उद्देश्यों के लिए एक डिक्ली बनाने के लिए नहीं है।"

11. कानून के उपरोक्त प्रस्ताव को माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारत सरकार बनाम वेदांता लिमिटेड (उपरोक्त) के साथ-साथ अमेज़न.कॉम एनवी इन्वेस्टमेंट होल्डिंग्स एलसीसी (उपरोक्त) में भी प्रतिपादित किया है, जो यह भी मानता है कि एक पंचाट को लागू करने के लिए एक आवेदन वास्तव में मध्यस्थता अधिनियम के तहत एक आवेदन है और संहिता के आदेश 21 के तहत एक आवेदन नहीं है। निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"77. विदेशी पंचाट के प्रवर्तन के लिए धारा 47 और 49 के तहत आवेदन मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के तहत दायर एक सारभूत याचिका है। यह एक सुस्थापित स्थिति है कि मध्यस्थता अधिनियम एक स्वयं-पूर्ण संहिता है। [फ्यूस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल

एक्सपोर्ट्स लिमिटेड, (2011) 8 एससीसी 333 : (2011) 4 एससीसी (सिव) 178; कांडला एक्सपोर्ट कॉरपोरेशन बनाम ओसीआई कॉरपोरेशन, (2018) 14 एससीसी 715 : (2018) 4 एससीसी (सिव) 664; शिवनाथ राय हरनारायण (इंडिया) कंपनी बनाम ग्लेनकोर ग्रेन रॉटरडैम, 2009 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 3564 : (2009) 164 डीएलटी 197; उषा ड्रेगर (पी) लिमिटेड बनाम ड्रेगरवर्क एजी, 2009 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 2975 : (2010) 170 डीएलटी 628; सुमितोमो कॉरपोरेशन बनाम सीडीसी फाइनेंशियल सर्विसेज (मॉरीशस) लिमिटेड, (2008) 4 एससीसी 91; कॉनरोस स्टील्स (पी) लिमिटेड बनाम लू किन (हांगकांग) कंपनी लिमिटेड, 2014 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 2305 : (2015) 1 आर्ब एलआर 463 : (2015) 2 बॉम्बे सीआर 1] धारा 47 के तहत आवेदन सीपीसी, 1908 के आदेश 21 के किसी भी प्रावधान के तहत दायर एक आवेदन नहीं है। आवेदन प्रवर्तन के लिए उपयुक्त उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया जाता है, जो विदेशी पंचाट को एक मानी गई डिक्री के रूप में निष्पादन के उद्देश्यों के लिए ही सीपीसी के आदेश 21 के प्रावधानों का सहारा लेगा। धारा 5 में निहित प्रतिबंध, जो सीपीसी के आदेश 21 के किसी भी प्रावधान के तहत दायर एक आवेदन को बाहर रखता है, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के तहत दायर एक सारभूत याचिका पर लागू नहीं होगा। परिणामस्वरूप, एक पक्षकार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आवश्यक होने पर विलंब की माफी के लिए धारा 5 के तहत एक आवेदन दायर कर सकता है।"

12. इसी तर्क का पालन इस न्यायालय की एक समान पीठ ने **मेसर्स लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड** (उपरोक्त) में किया है जिसका अनुसरण एक अन्य समान पीठ ने **मेसर्स भारत पंप्स एंड कम्प्रेसर्स लिमिटेड** (उपरोक्त) में किया है और दिल्ली उच्च न्यायालय ने **हिंदुस्तान जिक लिमिटेड** (उपरोक्त) में भी किया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए **पंजाब राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड** (उपरोक्त) के निर्णय में भी, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 27.3 में कहा है कि सभी आपत्तियाँ जो संदर्भित की गई हैं और जिन्हें प्रतिवादियों द्वारा मध्यस्थ के समक्ष या 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत उठाया जाना चाहिए था, उन्हें एक बार पंचाट के अंतिम हो जाने और सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में अंतिमता प्राप्त करने के बाद निष्पादन में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है:

"27.3. तीसरा, ऊपर संदर्भित सभी आपत्तियाँ प्रतिवादियों द्वारा मध्यस्थ के समक्ष या/और अधिनियम की धारा 34 के तहत अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष उठाई जानी चाहिए थीं, लेकिन निश्चित रूप से उनमें से किसी को भी एक बार पंचाट के अंतिम हो जाने और सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में अंतिमता प्राप्त करने के बाद निष्पादन में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। दूसरे शब्दों में, आपत्तियों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि ऐसी आपत्तियाँ पंचाट को चुनौती देने के लिए निष्पादन

कार्यवाही में परीक्षण किए जाने योग्य नहीं थीं। यह इस कारण से है कि वे तथ्यों पर थीं और विवाद के गुण-दोष से संबंधित थीं, जो मध्यस्थ द्वारा एक पंचाट पारित करने के परिणामस्वरूप निर्णीत हो गए थे। आपतियों में से कोई भी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित नहीं थी जो डिक्री पारित करने की जड़ को प्रभावित करती हो। यदि निष्पादन न्यायालय ने इन आपतियों की जांच की होती तो वह डिक्री के पीछे चला जाता, जो कानून में अनुमत नहीं था। तथ्यों की जांच, जो एक वाद में या वाद से उत्पन्न अपील में या अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही में की जानी चाहिए थी, ऐसे पंचाट/डिक्री के संबंध में निष्पादन कार्यवाही में नहीं की जा सकती।"

13. उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन पर, संहिता की धारा 47 के तहत आपतियों की स्वीकार्यता के संबंध में सभी में एक समान धागा चलता है कि ऐसी आपतियाँ मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन के लिए निष्पादन कार्यवाही में स्वीकार्य नहीं हैं, यह दोहरे तर्क पर आधारित है: (क) मध्यस्थता पंचाट 'न्यायालय' द्वारा पारित नहीं किया गया होने के कारण, यह संहिता की धारा 2(2) के तहत परिकल्पित डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है; और (ख) एक बार पंचाट अंतिमता प्राप्त कर लेता है, तो उस पर आपतियाँ केवल 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही में ली जा सकती हैं और उन्हें पंचाट के प्रवर्तन के उद्देश्यों के लिए निष्पादन कार्यवाही में दरकिनार करके नहीं लिया जा सकता।

14. जहां तक उपरोक्त दोहरे तर्कों का संबंध है, यह अब स्थापित कानून है, जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, कि मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट संहिता की धारा 2(2) के अनुसार डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है और इसलिए संहिता की धारा 47 के तहत आपतियाँ स्पष्ट रूप से मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन के उद्देश्यों के लिए निष्पादन कार्यवाही में स्वीकार्य नहीं हैं। फिर भी, मामले का दूसरा पहलू जिस पर यह माना गया है कि संहिता की धारा 47 के तहत आवेदन स्वीकार्य नहीं होगा, ऐसी स्थितियों में उत्पन्न होता है जहां पंचाट पर आपतियाँ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही में ली जा सकती हैं। एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में, आपतियाँ जो 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत नहीं ली जा सकती, उन्हें निष्पादन न्यायालय द्वारा बहुत अच्छी तरह से जांचा और निर्णीत किया जा सकता है यदि वे पंचाट के गुण-दोष को नहीं छूती हैं। यदि ये दोनों शर्तें लागू होती हैं, तो एक निर्णय ऋणी को उपचार रहित नहीं छोड़ा जा सकता।

15. उपरोक्त प्रस्ताव के संबंध में एक परिस्थितिजन्य पहलू वर्तमान मामले जैसे मामले में होगा जहां निर्णय ऋणी द्वारा इस तथ्य पर आपतियाँ की गई हैं कि निष्पादन आवेदन के माध्यम से, एक ऐसी राहत मांगी जा रही है जो कभी प्रदान नहीं की गई थी। ऐसी स्थिति में जहां उपरोक्त सीमा तक आपति उठाई जा रही है, स्वाभाविक रूप से वाद हेतुक केवल पंचाट की प्रवर्तनीयता के लिए एक निष्पादन आवेदन दायर करने पर ही उत्पन्न होता है और ऐसी परिस्थितियों में

निर्णय ऋणी के लिए 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत पंचाट पर ऐसी आपत्तियाँ उठाने का कोई अवसर नहीं हो सकता। हालांकि, ऐसी परिस्थितियों में भी, सावधानी का एक शब्द आवश्यक है कि ऐसी आपत्तियाँ केवल उस स्थिति में स्वीकार्य होंगी जब वे पंचाट के गुण-दोष को न छूती हों या जहाँ ऐसी आपत्तियाँ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत नहीं ली जा सकतीं। यद्यपि 1996 के अधिनियम की धारा 36 के अनुसार मध्यस्थता पंचाट की प्रवर्तनीयता के उद्देश्यों के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 का सहारा लिया जा सकता है, लेकिन यहां ऊपर वर्णित परिस्थितियों में, निष्पादन न्यायालय, इस न्यायालय की विचारित राय में, संहिता की धारा 151 के तहत ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी एक अंतर्निहित अधिकार रखेगा, यह जांच करने के लिए कि निर्णय ऋणी द्वारा उठाई गई ऐसी आपत्तियाँ पंचाट के गुण-दोष से संबंधित नहीं हैं या जिन्हें 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत नहीं लिया जा सकता।

16. उपरोक्त प्रस्ताव माननीय उच्चतम न्यायालय के **पंजाब राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड** (उपरोक्त) के निर्णय से समर्थन प्राप्त करेगा, जिसमें यह माना गया है कि यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि निष्पादन न्यायालय को डिक्री को जैसा है वैसा ही निष्पादित करना है और वह डिक्री के पीछे नहीं जा सकता, लेकिन अधिकार क्षेत्र संबंधी मुद्दे के संबंध में सीमित जांच कर सकता है जो डिक्री की जड़ तक जाता है और डिक्री को शून्य बनाने का प्रभाव रखता है।

कानून का उपरोक्त प्रतिपादन यद्यपि पूरी तरह से लागू नहीं होगा जहाँ एक मध्यस्थता पंचाट की प्रवर्तनीयता का संबंध है, लेकिन फिर भी यह पहलू कि निष्पादन न्यायालय केवल डिक्री को जैसा है वैसा ही निष्पादित कर सकता है और डिक्री के पीछे नहीं जा सकता, अभी भी लागू होगा।

17. **हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड** (उपरोक्त) में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि एक मध्यस्थता पंचाट के निष्पादन या प्रवर्तनीयता के लिए, न्यायालय संहिता के आदेश 21 में निहित प्रावधानों के अंतर्निहित सिद्धांतों से सहायता और मार्गदर्शन ले सकता है और यह भी कि पंचाट को उसके गुण-दोष पर चुनौती नहीं दी जा सकती, विशेष रूप से जब आपत्तियों का दायरा ऐसी आपत्तियों को पंचाट के गुण-दोष को छूने वाले प्रश्नों के परीक्षण तक विस्तारित करने से संबंधित हो।

18. **परमजीत सिंह पाठेजा** (उपरोक्त) में भी यह माना गया है कि संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियाँ एक मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन के उद्देश्यों के लिए कार्यवाही में स्वीकार्य नहीं हैं। कानून का उपरोक्त प्रतिपादन विशेष रूप से इस पहलू पर है कि पंचाट की वैधता को केवल 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही में उठाया जा सकता है और संहिता की धारा 47 का सहारा लेकर नहीं।

19. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि हालांकि संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियाँ एक मध्यस्थता पंचाट के

निष्पादन या प्रवर्तनीयता के उद्देश्यों के लिए कार्यवाही में स्वीकार्य नहीं हैं, लेकिन फिर भी निर्णय ऋणी द्वारा उठाई गई आपत्तियाँ जो पंचाट के गुण-दोष को नहीं छूतीं या ऐसे प्रश्न नहीं उठातीं जो 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत नहीं उठाए जा सकते, ऐसी कार्यवाही में बहुत अच्छी तरह से उठाई जा सकती हैं और उन पर निर्णय लिया जा सकता है।

20. उपरोक्त के संदर्भ में, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता जो कि निर्णय ऋणी है, ने इस प्रभाव की आपत्तियाँ उठाई हैं कि निष्पादन कार्यवाही में मांगी गई राहत मध्यस्थता पंचाट के दायरे से बाहर है और इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए कि ऐसी आपत्तियाँ कथित रूप से संहिता की धारा 47 के तहत दायर की गई हैं, इस न्यायालय की विचारित राय में, निष्पादन न्यायालय को ऐसी आपत्तियों पर निर्णय लेने का अंतर्निहित अधिकार होगा, जैसा कि यहाँ ऊपर माना गया है। हालांकि, उक्त निर्धारण में अनिवार्य रूप से स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता के संबंध में उठाई गई आपत्तियाँ शामिल नहीं होंगी जो अन्यथा भी रेस जुडिकाटा के सिद्धांतों के तहत निषिद्ध थीं।

21. उपरोक्त के मददेनजर, दिनांक 01.04.2023 के आदेश में हस्तक्षेप न करते हुए जहां तक यह मानता है कि संहिता की धारा 47 के तहत आपत्तियाँ स्वीकार्य नहीं हैं, निष्पादन न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर निर्णय ले, स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता

और पंचाट द्वारा चल संपत्ति से संबंधित डिब्री से संबंधित आपत्तियों को छोड़कर।

22. उपरोक्त के मददेनजर, याचिका को आंशिक रूप से उपरोक्त सीमा तक स्वीकार किया जाता है। पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे।

23. निष्पादन न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह मध्यस्थता पंचाटों के प्रवर्तन के लिए कार्यवाही के त्वरित निपटारे के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देशों के अनुरूप निष्पादन आवेदन की सुनवाई में तेजी लाए।

(2023) 7 ILRA 1032

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.07.2023

समक्ष

माननीय, न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया,

रिट सी संख्या 4999 वर्ष 2023

कुसुम मिश्रा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

मनोज कुमार मिश्रा, प्रभात कुमार ओझा,
विनय कुमार

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता., अतुल कुमार दुबे,
डॉ. पूजा सिंह, जय प्रकाश सिंह वत्स

दीवानी विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12-सी--- प्राधिकारी द्वारा 'अंतिम आदेश' पारित किया गया है, जो इस याचिका में विवादित है, जिसके द्वारा उसने निर्वाचन याचिका स्वीकार करते हुए मतों की पुनर्गणना का निर्देश दिया, साथ ही यह निर्देश भी दिया गया कि आवश्यक कार्यवाही के पश्चात् प्रकरण को अभिलेखागार में रखा जाए --- विवादित आदेश 'अंतिम आदेश' की परिभाषा में आता है और इस प्रकार, उक्त अधिनियम की धारा 12-ग(6) के अधीन पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत करना ग्राह्य होगा -- - याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 12-ग(6) के अंतर्गत पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष जाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई --- यदि याचिकाकर्ता, प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती देते हुए, 30 दिवस की निर्धारित सीमा के भीतर पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत करता है, तो वह याचिका गुण-दोष के आधार पर निर्णीत की जाएगी। (प्रस्तर 29-31)

याचिका निस्तारित। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. डोरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश एवं अन्य 2017 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3220
2. (राजेश कुमार बनाम जिला न्यायाधीश श्रावस्ती एवं अन्य) 2019 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 4851
3. रिट याचिका संख्या 18420 (एम/एस) 2019 (कमल कुमार धुरिया बनाम विहित

प्राधिकारी, एस.डी.एम., लालगंज, जिला-प्रतापगढ़ एवं अन्य)

4. अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या 31424 2021 (परशुराम बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश एवं अन्य)
5. रिट-सी संख्या 33777 2022 मनोज देवी बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश एवं अन्य
6. साजिदा बनाम उप-विभागीय मजिस्ट्रेट एवं अन्य; 2023 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 11 में प्रतिवेदित
7. मोहम्मद मुस्तफा बनाम यूपी जिलाधिकारी; 2007 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1564
8. उड़ीसा प्रशासनिक न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन बनाम यू.ओ.आई. और अन्य; 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 309
9. हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इशाक और अन्य एआईआर 1955 एससी 233,
10. दाना राजेश्वरी बनाम बोडावुला हनुमयम्मा और अन्य; एआईआर 1997 एससी 1541
11. वीरेंद्र कुमार राय और अन्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य; (2004) 13 एससीसी 463
12. ट्राई फूड्स लिमिटेड बनाम नेशनल इंडोरेस कंपनी और अन्य; (2004) 13 एससीसी 656

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया, द्वारा प्रदत्त)

(पक्षों को) सुना।

प्रस्तुत याचिका निम्नलिखित मुख्य राहतों के लिए दायर की गई है: -

"(i) न्याय के हित में प्रतिपक्षी संख्या-2 यानी निर्धारित प्राधिकारी/उपखंड अधिकारी, लालगंज, जिला प्रतापगढ़ द्वारा केस सं- 3146/2021 (कम्प्यूटरीकृत केस सं- T2021102570 203146) में दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए सर्टिओरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) न्याय के हित में ग्राम पंचायत-नौबस्ता, ब्लॉक लक्ष्मणपुर, जिला प्रतापगढ़ के वैध रूप से निर्वाचित ग्राम प्रधान के रूप में याचिकाकर्ता के कामकाज में हस्तक्षेप न करने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और प्रतिपक्षियों को निर्देश देना।

शुरुआत में, प्रतिपक्षी की ओर से पेश अधिवक्ता ने कहा कि प्रस्तुत याचिका, उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 (संक्षेप में "अधिनियम वर्ष 1947") की धारा 12-सी के तहत शुरु की गई कार्यवाही में प्रतिपक्षी संख्या-2-निर्धारित प्राधिकरण/उपखंड अधिकारी, लालगंज, जिला-प्रतापगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.06.2023 को चुनौती देते हुए, मामला संख्या-3146 वर्ष 2021 के रूप में पंजीकृत है। कम्प्यूटरीकृत मामला संख्या-T2021102570203146, जिसके द्वारा, अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी के तहत शुरु की गई कार्यवाही को अंतिम रूप से मतों की पुनर्गणना के निर्देश के साथ समाप्त कर दिया गया है, अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी के तहत याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध वैधानिक उपाय के मददेनजर बनाए

रखने योग्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-2 ने अंततः अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी के तहत स्थापित मामले का फैसला किया है, इस प्रकार, संशोधन दाखिल करने के माध्यम से वैधानिक उपाय, जैसा कि अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी(6) के तहत प्रदान किया गया है, दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश के खिलाफ होगा।

प्रासंगिक होने के कारण, दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश का ऑपरेटिव भाग यहां निकाला गया है:

"उपरोक्त विवेचना एवं याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत विधि व्यवस्था के आलोक में याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत याचिका स्वीकार की जाती है। याचिका में वर्णित तथ्यों के आधार पर पुर्नमतगणना किए जाने का आदेश पारित किया जाता है। पुर्नमतगणना दिनांक 21.06.2023 को न्यायालय उप-जिलाधिकारी लालगंज में संपन्न हो। आदेश की प्रति मुख्य विकास अधिकारी प्रतापगढ़ को प्रभारी अधिकारी पांच स्थानीय चुनाव प्रतापगढ़ सहायक जिला निर्वाचन अधिकारी पांच स्थानीय चुनाव प्रतापगढ़ को पुर्नमतगणना हेतु वांछित अभिलेखों को उपलब्ध कराने एवं जिला पंचायत राज अधिकारी प्रतापगढ़ को सूचनार्थ हेतु प्रेषित किया जाए। आदेश की एक प्रति खंड विकास अधिकारी लक्ष्मणपुर को अपने साथ 5 गणक के साथ उपस्थित रहकर पुर्नमतगणना में सहयोग करने एवं प्रभारी निरीक्षक लालगंज को उक्त समय आवश्यक सुरक्षा व्यवस्था

सुनिश्चित करने हेतु प्रेषित। बाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली दाखिल दफ्तर हो।”

ऊपर उद्धृत दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश के ऑपरेटिव भाग से ऐसा प्रतीत होता है कि निर्धारित प्राधिकारी ने आदेश 05.06.2023 के तहत चुनाव याचिका की अनुमति दी और मतों की पुनर्गणना का निर्देश दिया और यह भी निर्देश दिया कि आवश्यक कार्रवाई के बाद मामले को रिकॉर्ड में भेज दिया जाए।

जबकि अंतिम राहत जो अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी के तहत दायर चुनाव याचिका में दी जा सकती है, धारा 12-सी (4)(ii) से प्रतिबिंबित होती है जो इंगित करती है कि निर्धारित प्राधिकारी चुनाव को रद्द कर सकता है या चुनाव को शून्य घोषित कर सकता है या आवेदक को विधिवत निर्वाचित घोषित कर सकता है या याचिकाकर्ता को कोई अन्य राहत दी जा सकती है।

प्रस्तुत मामले में, दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से संकेत मिलता है कि निर्धारित प्राधिकारी ने आदेश पारित करते समय न तो चुनाव को रद्द किया है और न ही चुनाव को शून्य घोषित किया है और न ही संबंधित को विधिवत निर्वाचित घोषित किया है, बल्कि मतों की फिर से गिनती का निर्देश दिया है और चुनाव याचिका की अनुमति दी है।

प्रस्तुत याचिका की पोषणीयता के बारे में आपत्ति के जवाब में, श्री प्रभात कुमार ओझा,

अधिवक्ता और श्री विनय कुमार, अधिवक्ता के साथ याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा ने प्रस्तुत किया कि मतों की पुनर्गणना का आदेश प्रकृति में वादकालीन आदेश है, इस प्रकार, प्रस्तुत याचिका सुनवाई योग्य होगी।

आगे प्रस्तुत किया गया कि योग्यता के आधार पर मतों की पुनर्गणना का आदेश पूरी तरह से गलत है, इस तरह, दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश की प्रकृति और आक्षेपित आदेश में की गई टिप्पणियों को देखते हुए, प्रस्तुत याचिका पर विचार किया जा सकता है।

प्रस्तुत याचिका की पोषणीयता के मुद्दे पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया: -

(ए) रिट सी सं-1223 वर्ष 2017 (डोरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य) 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 3220;

(बी) रिट याचिका संख्या-9609 (मेसर्स एस) वर्ष 2018 (राजेश कुमार बनाम जिला न्यायाधीश श्रावस्ती और अन्य) 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 4851;

(सी) रिट याचिका संख्या-18420 (मेसर्स एस) वर्ष 2019 (कमल कुमार धूरिया बनाम निर्धारित प्राधिकारी, एसडीएम, लालगंज, जिला-प्रतापगढ़ और अन्य);

(डी) अनुच्छेद 227 संख्या-31424 वर्ष 2021 (परशुराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)

के तहत मामले; रिट सी No.33777 वर्ष 2022 (मनोज देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 20 अन्य);

(ई) साजिदा बनाम सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट और अन्य; 2023 एस.सी.सी. में इला 11 को ऑनलाइन रिपोर्ट किया गया।

साजिदा (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक पैरा निम्नानुसार हैं: -

"13. यह अच्छी तरह से तय है कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना महत्वपूर्ण है जो पवित्र है और इसे तुच्छ, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोपों पर उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और निरीक्षण की अनुमति देने से पहले, निर्वाचित उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोप स्पष्ट और विशिष्ट होने चाहिए और भौतिक तथ्यों के पर्याप्त बयानों द्वारा समर्थित होना चाहिए (देखें, भाभी बनाम शिव गोविंद, (1976) 1 एस.सी.सी. 687: ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 2117 और राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1249) न्यायालयों को प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए ताकि चुनाव याचिकाकर्ता को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री निकालने के लिए एक रोविंग जांच में शामिल होने में सक्षम बनाया जा सके।

14. चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में दावा किया है कि उसके पक्ष में दिए गए

वोट को वापस आए उम्मीदवार के पक्ष में दिए गए वोटों के बंडल में रखा गया था और मतगणना के दौरान जब चुनाव याचिकाकर्ता को पता चला कि उसके पक्ष में दिए गए वोटों की संख्या-990 है और निर्वाचित उम्मीदवार के पक्ष में 993 हैं और खारिज किए गए वोटों की संख्या-157 है, उन्होंने आपत्ति जताई और दोबारा मतगणना की प्रार्थना की लेकिन निर्वाचन अधिकारी ने ध्यान नहीं दिया। एक और दावा किया गया है कि बंडल वर्ष 157 अस्वीकृत मतों में कुछ वैध मत भी शामिल थे।

17. यह तय किया गया है कि पुनर्मतगणना का आदेश केवल इसके लिए और अस्पष्ट आरोप के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता है, जिसमें मतगणना में कोई विशेष अनियमितता निर्दिष्ट नहीं की गई है और साथ ही यह चुनाव परिणाम को भौतिक रूप से कैसे प्रभावित करेगा। प्रस्तुत मामले में, चुनाव याचिका के निकाय में, वैध मतों की अवैध अस्वीकृति के बारे में अस्पष्ट दावे किए गए हैं, जिन्हें न तो चुनाव याचिकाकर्ता की जांच में या अन्यथा उपलब्ध रिकॉर्ड के आधार पर प्रमाणित नहीं किया गया है। पक्षों को सबूत जोड़कर उचित दलील देनी होगी कि चुनाव के अवैधता परिणाम की विशेष अनियमितता से भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है। तय कानूनी प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं है कि एक नियम के रूप में राहत नहीं दी जानी चाहिए [देखें, एरिकला नरसा रेड्डी (उपरोक्त)]

मनोज देवी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक पैरा निम्नानुसार हैं: -

"9. मामले की योग्यता में प्रवेश करने से पहले, एक बाधा है जिसे दूर करना होगा। निर्धारित प्राधिकारी ने दिनांक 05.11.2022 को आदेश पारित करते हुए चुनाव याचिका स्वीकार कर ली है, अर्थात्, वास्तविक पुनर्गणना होने से पहले ही उसने अंतिम राहत दे दी है और इसलिए, यह एक 'फंक्टस ऑफिशियो' (कार्य समाप्त/क्षमता में पद समाप्त) बन गया है। इस संबंध में परशुराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (अनुच्छेद 227 संख्या-31424 वर्ष 2021 के तहत मामले) में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय के कुछ पैराग्राफ, 23.12.2022 को तय किए गए प्रासंगिक हैं और निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

"6. प्रस्तुत याचिका में जो कानूनी प्रश्न उठा है, वह यह है कि क्या निर्धारित प्राधिकारी ने चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेते समय मतों की पुनः गणना के लिए निर्देश देने में कानून में गलती की है, क्योंकि क्या निर्धारित प्राधिकारी चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने के बाद मतों की पुनर्गणना के परिणाम की प्राप्ति पर कोई और आदेश पारित कर सकता है और परिणामस्वरूप निर्धारित प्राधिकारी 'फंक्टस ऑफिशियो' (कार्य समाप्त/क्षमता में पद समाप्त) बन गया है?"

"36. जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, हरि विष्णु कामथ (उपरोक्त) के मामले में

सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा अंततः अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद, यह 'फंक्टस ऑफिशियो' बन जाता है, जिसका अर्थ है कि उसके पास अपना आदेश सुनाने के बाद चुनाव याचिका में कोई आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं होगी। इस मामले में, विहित प्राधिकारी की अध्यक्षता वाले निर्वाचन अधिकरण ने जो किया है वह यह है कि इसने अंततः चुनाव याचिका को अनुमति दे दी है और पुनः मतगणना का निदेश दिया है। यदि मतों की पुनः गणना का परिणाम किसी भी प्रकार से हो, तो भी निर्वाचन अधिकरण अपने निर्णय की घोषणा करने/ याचिका को अनुमति देने के बाद कार्यगत अधिकारी बन गया है, वह आगे कोई आदेश पारित नहीं कर पाएगा। इस प्रकार, विधि के स्थापित प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-ण में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि केवल निर्वाचन याचिका के माध्यम से ही पंचायत के निर्वाचन पर प्रश्नगत कार्रवाई की जा सकती है और निर्वाचन याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय हो जाने के बाद, विहित प्राधिकारी/निर्वाचन अधिकरण इस प्रकार कार्यकारी अधिकारी बन गया और इस मामले में आगे कोई आदेश पारित नहीं कर सकता। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को सभी मामलों में अंतिम आदेश के रूप में माना जाना चाहिए और तदनुसार यह स्पष्ट है कि निर्धारित प्राधिकारी ने एक स्पष्ट रूप से विकृत आदेश पारित किया है और उसमें निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है अर्थात् किसी भी तरह से चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने में विफल रहा है।

37- उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत याचिका में जो कानूनी प्रश्न उठा है, उसका उत्तर नीचे दिया गया है: -

किसी चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने पर निर्धारित प्राधिकारी पदेन हो जाता है और उसके बाद कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है, भले ही चुनाव याचिका पर निर्णय लिया गया हो, अंतिम रूप से मतों की पुनर्गणना के लिए कहा जाता है।

कमल कुमार धूरिया (उपरोक्त) के मामले में, निर्धारित प्राधिकारी ने निर्वाचक मंडलों/मतों की पुनर्गणना का आदेश पारित किया और चुनाव को रद्द किए बिना या चुनाव को शून्य घोषित किए बिना या चुनाव याचिकाकर्ता को विधिवत निर्वाचित घोषित किए बिना चुनाव याचिका का निपटारा किया और उसी पर विचार करने के बाद याचिका की पोषणीयता के बारे में प्रारंभिक आपत्ति का निर्णय इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा निम्नलिखित पैराग्राफ में किया गया था:

जहां तक पाठक की प्रारम्भिक आपत्ति का संबंध है, इस मुद्दे को इस न्यायालय की खंडपीठ ने मोहम्मद अली खान बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सुलझा लिया है। मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश जिलाधिकारी, फूलपुर, आजमगढ़ और अन्य 2007 (103) आरडी-282 में रिपोर्ट किया गया। उक्त निर्णय का हाल ही में इसी पीठ द्वारा रिट याचिका संख्या-9609 (एम/एस) वर्ष 2018 में 12.04.2019 को निर्णय देते हुए भी पालन किया गया है। उक्त निर्णय के अनुसार पुनर्गणना का आदेश एक वादकालीन आदेश

होने के नाते जो कार्यवाही का निपटान नहीं करता है, अंततः अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी(6) के तहत कोई पुनरीक्षण नहीं है। इस प्रकार, श्री पाठक की प्रारंभिक आपत्ति खारिज की जाती है।

राजेश कुमार (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने उस याचिका से निपटा, जो इस प्रार्थना के साथ दायर की गई थी कि 13.12.2015 को घोषित चुनाव परिणाम को शुरू से ही शून्य घोषित किया जाए और अमान्य घोषित किया जाए और पुनर्मतगणना का आदेश पारित किया जाए और याचिकाकर्ता को निर्वाचित घोषित किया जाए। इस मामले में चुनाव याचिका के लंबित रहने के दौरान मतों की पुनर्गणना के आदेश को चुनौती देते हुए पुनरीक्षण याचिका दायर की गई थी। पुनः उसी के प्रासंगिक पैरा निम्नानुसार हैं: -

"पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि इलाहाबाद में इस न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ ने 2004 में रिपोर्ट किए गए (अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के मामले में एक समन्वय पीठ द्वारा एक निर्णय को देखते हुए (5) ए.डब्ल्यू.सी. 4088 मामले में एक विपरीत दृष्टिकोण लेते हुए निम्नलिखित प्रश्नों को एक बड़ी बेंच द्वारा विचार के लिए संदर्भित किया।

"(I) क्या धारा 12-सी (6) के तहत पुनरीक्षण केवल धारा 12-सी (1) के तहत चुनाव याचिका

का फैसला करने वाले निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के खिलाफ होगा या एक रिट याचिका पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ दायर की जा सकती है, जिसे चुनाव याचिका में उठाए गए कुछ मुद्दों पर फैसला करने के बाद पारित किया गया है?

(द्वितीय) क्या अबरार बनाम भारत संघ के मामले में एकल न्यायाधीश का निर्णय, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, सही कानून बनाते हैं?

परिणामस्वरूप मामले को संदर्भ पर विचार करने के लिए एक खंड पीठ के समक्ष रखा गया था। मोहम्मद अली खान के मामले में खंडपीठ ने अपने निर्णय में यह निर्णय दिया था कि भारत सरकार ने 1000 करोड़ रुपये के मामले में निर्णय दिया है। मुस्तफा (उपरोक्त) ने इसे संदर्भित मुद्दों पर बारीकी से विचार किया और निम्नानुसार निष्कर्ष पर पहुंचे: -

"23. हम एकल द्वारा संदर्भित प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं: -

1. अधिनियम की धारा 12-ग (6) के अंतर्गत पुनरीक्षण केवल धारा 12-ग(1) के अधीन अधिमान्य निर्वाचन आवेदन पर विनिश्चय करने वाले विहित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध होगा न कि किसी वादकालीन आदेश या विहित प्राधिकारी द्वारा मतों की पुनः गणना के आदेश के विरुद्ध होगा।

2. अबरार बनाम भारत संघ के मामले में एकल न्यायाधीश का निर्णय: उत्तर प्रदेश राज्य

और अन्य के मामले में, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं किया गया है और इसलिए, एक पुनरीक्षण याचिका की पोषणीयता के प्रश्न की सीमा तक इसे खारिज कर दिया गया है, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

3. (III) उपरोक्त के स्वाभाविक परिणाम के रूप में, हम यह भी मानते हैं कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव आवेदन में कार्यवाही करते समय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी।

जैसा कि खंड पीठ के निर्णय के उपरोक्त निकाले गए पैराग्राफ से स्पष्ट होगा, यह माना गया था कि अधिनियम, 1947 के 12-सी (6) के तहत एक पुनरीक्षण केवल धारा 12-सी (1) के तहत दायर किए गए चुनाव आवेदन पर निर्णय लेने वाले निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के खिलाफ होगा और किसी भी वादकालीन आदेश या निर्धारित प्राधिकारी द्वारा वोटों की पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ नहीं होगा। खण्ड न्यायपीठ का निर्णय इतना स्पष्ट है कि इसके लिए और विस्तार अथवा स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

इसके अलावा, खंड पीठ ने माना कि अबरार हुसैन (उपरोक्त) में एकल न्यायाधीश ने यह मानते हुए कि पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य है, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं किया।

तीसरा, उपरोक्त के स्वाभाविक परिणाम के रूप में, खंड पीठ द्वारा यह माना गया था कि धारा 12-सी (6) के तहत एक संशोधन के बजाय एक रिट याचिका अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव आवेदन में कार्यवाही करते समय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ सुनवाई योग्य होगी। स्पष्टतया, यह संवाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया था कि पुनर्मतगणना के आदेश का संबंधित पक्षों के लिए एक महत्वपूर्ण परिणाम है जिसे उपचारहीन नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि पुनर्मतगणना का आदेश कोर्से के मामले के रूप में पारित नहीं किया जा सकता है, बल्कि केवल निर्णयों की श्रेणी में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित पूर्वापेक्षाओं और राम आधार सिंह बनाम राम आधार सिंह के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए पारित किया जा सकता है जिला न्यायाधीश ने 1986 में रिपोर्ट की आरडी 151(2); कट्टईनॉककुला मुरली कृष्ण बनाम वीरमल्ला कोटेवरा राव और अन्य (2010)1 एस.सी.सी. 466 में रिपोर्ट की गई; एम. चिन्नासामी बनाम केसी पलानीसामी और अन्य (2004)6 एस.सी.सी. 341, महेंद्र प्रताप बनाम कृष्ण पाल और अन्य (2003) 1 एस.सी.सी. 390 में रिपोर्ट किए गए; जिसके अनुसार सबसे पहले पुनर्मतगणना के लिए विशिष्ट दलील होनी चाहिए और दूसरा इसका प्रमाण होना चाहिए, तीसरा आवश्यक प्रमाण की डिग्री बहुत अधिक है क्योंकि मतपत्रों की गोपनीयता बनाए रखी जानी है।

उपरोक्त निष्कर्षों के समर्थन में खंड पीठ ने अपने फैसले में ठोस कारण दिए, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन, यह कहना पर्याप्त है कि इसने धारा 12-सी (6) में इस्तेमाल की गई भाषा और पहले के उदाहरणों पर विचार किया, जिनमें से सभी ने वही दृष्टिकोण अपनाया जो खंड पीठ द्वारा लिया गया था। खण्ड न्यायपीठ द्वारा दिए गए कारणों में से एक का उल्लेख इस न्यायालय द्वारा किए जाने की आवश्यकता है। यह कहा गया कि पुनर्गणना का आदेश अंतिम निर्धारण की सहायता में एक आदेश है जिसे चुनाव के संबंध में बनाया जाना है जिसे इस तरह की पुनर्गणना का दावा करने का आधार बनाया गया है। इस तरह के आवेदन का निपटान अपने आप में चुनाव के परिणाम को अंतिम रूप से नहीं छूता है और यह चुनाव आवेदन में दावा की गई राहत पर अंतिम निर्णय नहीं है। एक चुनाव आवेदन में दावा की गई अंतिम राहत एक सफल उम्मीदवार के चुनाव को रद्द करना है। जब तक ऐसा आदेश पारित नहीं किया जाता है, अंतिम रूप से चुनाव के भाग्य का निर्धारण नहीं किया जाता है, तब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि केवल पुनर्गणना के लिए पारित आदेश कार्यवाही को अंतिम रूप देता है। पुनर्मतगणना का आदेश अपने आप में चुनाव आवेदन का अंतिम रूप से निपटान नहीं करता है और उसके बाद कुछ और किया जाना बाकी है, अर्थात्, पुनः गणना के विषय पर नेतृत्व किए गए साक्ष्य के आधार पर अंतिम निर्णय। ट्रिब्यूनल के इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद चुनाव आवेदन की अनुमति दी जा सकती है कि पुनर्मतगणना ने परिणाम को

भौतिक रूप से प्रभावित किया है और चुनाव याचिकाकर्ता के पक्ष में संतुलन को झुका दिया है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि अंतिम निपटान पुनर्गणना के परिणाम पर निर्णय दिए जाने के बाद ही होगा। न्यायालय ने आगे कहा कि केवल दिए गए कारण या फिर से गिनती के लिए आदेश पारित करना अधिनियम की धारा 12-सी के तहत चुनाव आवेदन से उत्पन्न कार्यवाही को अंतिम रूप नहीं देता है। यह चुनाव आवेदन की अंतिम सफलता या विफलता की घोषणा है जो कार्यवाही को अंतिम रूप देती है।

खंड पीठ ने धारा 12-सी की उपधारा 6 में प्रयुक्त वाक्यांश-विज्ञान पर भी विचार किया - निर्धारित प्राधिकारी के 'एक आदेश से व्यथित' और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'ए' शब्द एक विशिष्ट आदेश / घटना को संदर्भित करता है। यह एक के बराबर है क्योंकि शब्द शायद ही कभी विधायिका के इरादे की बहुलता को संदर्भित करता है कि पुनर्गणना के आदेश सहित किसी भी आदेश को उक्त प्रावधान के तहत पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी जा सकती है, तो इस्तेमाल किया गया शब्द 'कोई आदेश' होगा। खंड पीठ ने आगे उस दृष्टिकोण को उचित ठहराया जो यह मानते हुए लिया गया था कि चुनाव आवेदन के लंबित रहने के दौरान पारित किसी भी आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण का उपाय प्रदान नहीं करते हुए विधायिका का इरादा लंबे समय तक मुकदमेबाजी से बचने के लिए प्रतीत होता है क्योंकि यह न्याय के हित में नहीं होगा कि किसी पक्ष को प्राथमिक बिंदु पर निर्णय प्राप्त करने की अनुमति दी जाए। दूसरे पक्ष को

नुकसान पहुंचाने के लिए माननीय उच्चतम न्यायालय तक उच्चतर न्यायालयों के समक्ष इसे चुनौती दी गई। इस प्रकार, इसके अनुसार विधायिका का इरादा यह था कि पुनरीक्षण निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के खिलाफ बनाए रखने योग्य नहीं होगा जब तक कि चुनाव आवेदन का अंतिम रूप से निपटान नहीं हो जाता।

इस संदर्भ में अतहर हुसैन (उपरोक्त) में एकल न्यायाधीश के निर्णय पर वरिष्ठ अधिवक्ता श्री असित चतुर्वेदी द्वारा रखी गई निर्भरता पर इस मामले में विचार करने की आवश्यकता है। उक्त मामले में बारह मुद्दे विरचित किए गए थे, जिनमें से सभी पर निर्णय लिया गया था। हालाँकि, यह सब नहीं किया गया था। आगे जो किया गया वह इस संबंध में विशिष्ट टिप्पणियों के साथ आंशिक रूप से चुनाव याचिका की अनुमति देना था जिसे अतहर हुसैन (उपरोक्त) के फैसले में उद्धृत किया गया है। अब कानून के संदर्भ में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, जब यह न्यायालय मामले में पारित निर्धारित प्राधिकारी के आदेश पर विचार करता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि दो मुद्दों को तैयार किया गया था और निर्णय लिया गया था और सी.पी.सी. के आदेश VII नियम 11 के तहत याचिका का भी फैसला किया गया था, लेकिन, अभी तक जो तय नहीं किया गया है वह यह है कि क्या चुनाव याचिका को अनुमति दी जानी है या खारिज कर दिया जाना है। वास्तव में, मुद्दों को तैयार करते समय, एक तीसरा मुद्दा कि क्या चुनाव याचिका के लिए प्रार्थना की गई राहत दी जा सकती है या नहीं, निर्धारित

प्राधिकारी द्वारा तैयार किए जाने की भी आवश्यकता थी। यदि इसे तैयार नहीं किया गया है, तो भी इसका निर्णय पुनर्मतगणना के बाद करना होगा। इस पुनर्मतगणना के आधार पर चुनाव याचिका खारिज की जा सकती है या अनुमति दी जा सकती है। मामले का तथ्य यह है कि खण्ड न्यायपीठ द्वारा विधि के सुस्पष्ट प्रतिपादन और इसके द्वारा संदर्भित प्रश्नों पर दिए गए उत्तर के अनुसार चुनाव याचिका का अभी तक अंतिम रूप से निपटान नहीं किया गया है और खण्ड न्यायपीठ द्वारा कानून के सुस्पष्ट प्रतिपादन को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, इस न्यायालय के लिए इस मामले पर कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाना संभव नहीं है। एक अतिरिक्त कारण जो न्यायालय को यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए राजी करता है, वह यह है कि कानून बहुत अच्छी तरह से तय है कि पुनरीक्षण दायर करके चुनाव याचिका के अंतिम निपटान के बाद भी पुनर्गणना के आदेश को चुनौती दी जा सकती है और इस तरह की चुनौती अंतिम आदेश को चुनौती देने में निहित होगी यदि इस संबंध में अपेक्षित आधार लिया जाता है और यह भी कि पुनर्गणना के आदेश को देखते। उच्चतम न्यायालय के प्रासंगिक निर्णयों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, इसलिए, प्रतिपक्षीकार संख्या-3 को कम उपाय नहीं छोड़ा गया है, सबसे पहले, मोहम्मद अली खान के मामले में खंडपीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए। मुस्तफा (उपरोक्त) वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस अदालत के समक्ष एक रिट याचिका दायर कर सकता है, दूसरी बात, वह उक्त आदेश को

चुनौती भी दे सकता है यदि वह अंतिम आदेश को चुनौती देते हुए पुनरीक्षण कार्यवाही में चुनाव याचिका के अंतिम निपटान के बाद ऐसा करता है।

डोरी लाल (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक पैरा, पुनरुत्पादन पर निम्नानुसार पढ़ें: -

"11. इस प्रकार, अधिनियम की धारा 12-ग(6) के अधीन पुनरीक्षण केवल धारा 12-ग(1) के अधीन अधिमान्य निर्वाचन आवेदन पर विनिश्चय करने वाले विहित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध होगा न कि विहित प्राधिकारी द्वारा मतों की पुनर्गणना के किसी वादकालीन आदेश या आदेश के विरुद्ध। उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव आवेदन में कार्यवाही करते समय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी। चूंकि आज प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा दायर पूर्वोक्त पुनरीक्षण में निर्धारित तारीख है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने कानपुर देहात के मामले में दिनांक 11-7-2007 के खण्ड न्यायपीठ के निर्णय के आलोक में पुनरीक्षण की पोषणीयता के संबंध में आपत्ति उठाने के लिए याचिकाकर्ता को स्वतंत्रता देते हुए इस रिट याचिका का निपटान किया है और इस प्रकार इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है। मुस्तफा बनाम उपजिलाधिकारी, फूलपुर, आजमगढ़ (उपरोक्त) के मामले में और यदि इस तरह की आपत्ति उठाई जाती है, तो पक्षकारों को सुनने के बाद चार सप्ताह के भीतर पुनरीक्षण

प्राधिकरण द्वारा दिन-प्रतिदिन के आधार पर निर्णय लिया जाएगा।

परशुराम (उपरोक्त) के मामले में, निर्धारित प्राधिकारी ने दिनांक 21.12.2021 के आदेश के तहत मतों की पुनर्गणना के निर्देश के साथ चुनाव याचिका का निपटारा किया और व्यथित होकर एक याचिका दायर की गई, जिसे मोहम्मद अली खान और मोहम्मद अली के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय को ध्यान में रखते हुए विचार किया गया। मुस्तफा बनाम यूपी जिलाधिकारी; 2007 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 1564 में रिपोर्ट किया गया और अंतिम निपटान के चरण में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने अभिव्यक्ति 'फंक्टस ऑफिसियो' के आलोक में दिनांक 21.12.2021 के आक्षेपित आदेश पर विचार किया और अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के भी विभिन्न निर्णयों पर विचार किया, जिसमें मोहम्मद अली खान के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित निर्णय भी शामिल था। मुस्तफा (उपरोक्त) और माना कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद, यह 'फंक्टस ऑफिसियो' (मामला खत्म/ कर्तव्य खत्म) बन जाता है। प्रजनन पर परशुराम (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है:

"25. हालांकि, प्रस्तुत मामले में जो कानूनी मुद्दा उठता है, वह यह है कि जब निर्धारित प्राधिकारी ने अंततः 21.12.2021 के आक्षेपित

आदेश के माध्यम से चुनाव याचिका को अनुमति दी है और फिर से मतगणना का निर्देश दिया है, तो चुनाव याचिका के निपटारे के बाद, चुनाव न्यायाधिकरण 'फंक्टस ऑफिसियो' बन जाएगा और चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा इस संबंध में कोई बाद का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

26. मामले के इस पहलू पर हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इसहाक और अन्य - ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 233 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा विचार किया गया है, जिसमें संविधान पीठ ने निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"19. मामले के सार को देखते हुए, जब एक बार यह माना जाता है कि संविधान का इरादा उच्च न्यायालय को उचित रिट और निर्देशों के जारी करके न्यायाधिकरणों के निर्णयों का पर्यवेक्षण करने की शक्ति प्रदान करना था, तो उस शक्ति के प्रयोग को रूप और प्रक्रिया के तकनीकी-विचारों से पराजित नहीं किया जा सकता है। पी. सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा - ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 440 में, इस न्यायालय ने कहा:

"हमारे संविधान में व्यक्त प्रावधानों को देखते हुए हमें अब अंग्रेजी कानून में इन रिटों के प्रारंभिक इतिहास या प्रक्रियात्मक तकनीकी को देखने की आवश्यकता नहीं है, और न ही अंग्रेजी न्यायाधीशों द्वारा विशेष मामलों में व्यक्त किए गए किसी भी अंतर या राय के परिवर्तन से उत्पीड़ित महसूस करें। हम सभी उपयुक्त मामलों में और उचित तरीके से

'उत्प्रेषण' की प्रकृति में एक आदेश दे सकते हैं या एक रिट जारी कर सकते हैं, जब तक कि हम व्यापक और मौलिक सिद्धांतों का पालन करते हैं जो अंग्रेजी कानून में इस तरह के रिट देने के मामले में अधिकार क्षेत्र के अभ्यास को विनियमित करते हैं।"

इन सिद्धांतों के अनुरूप यह व्यवस्था दी जाएगी कि उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 226 के अधीन निर्वाचन अधिकरणों के निर्णयों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी करने की शक्ति है, इस बात के बावजूद कि वे निर्णय सुनाने के बाद कार्यकारी अधिकारी बन जाते हैं। (न्यायालय का जोर)

27. पूर्वोक्त निर्णय के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद, यह 'फंक्टस ऑफिसियो' बन जाता है।

28. इसके अलावा, संविधान पीठ ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों के संबंध में कानून भी निर्धारित किया है। सुविधा के लिए, संविधान पीठ की प्रासंगिक टिप्पणियों को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

पीठ ने कहा, 'हमारा यह भी मत है कि चुनाव न्यायाधिकरण संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालयों के अधीक्षण के अधीन हैं और यह अधीक्षण न्यायिक तथा प्रशासनिक दोनों है। यह इस न्यायालय द्वारा वरयाम सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और माननीय अमरनाथ और अन्य के मामले में

माननीय उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में यह पाया था कि इस संबंध में अनुच्छेद 227 भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 224 से आगे चला गया है, जिसके तहत अधीक्षण विशुद्ध रूप से प्रशासनिक था और इसने भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 107 के तहत स्थिति को बहाल किया। यह भी नोट किया जाए कि अनुच्छेद 226 के अधीन उत्प्रेषण में उच्च न्यायालय अधिकरण के निर्णय को केवल रद्द कर सकता है, वह अनुच्छेद 227 के अधीन ऐसा कर सकता है और इस मामले में आगे निदेश भी जारी कर सकता है। हमें तदनुसार यह मानना चाहिए कि उत्प्रेषण रिट और अन्य राहतों के लिए अपीलकर्ता का आवेदन संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत बनाए रखने योग्य था। (न्यायालय का जोर)

29. पूर्वोक्त के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि संविधान पीठ ने माना है कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय न केवल न्यायाधिकरण के फैसले को रद्द कर सकता है, बल्कि अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय भी ऐसा कर सकता है और मामले में आगे निर्देश भी जारी कर सकता है।

30. तदनुसार, जब मोहम्मद अली खान के मामले में खंडपीठ के फैसले ने फैसला सुनाया। मुस्तफा (उपरोक्त) को हरि विष्णु कामथ (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ के फैसले के आलोक में देखा जाता है, यह उभरता है कि इस न्यायालय की खंड पीठ ने उपरोक्त संविधान पीठ के फैसले पर विचार नहीं किया है, जिसमें यह माना गया है कि चुनाव

न्यायाधिकरण अपना निर्णय सुनाने के बाद 'फंक्टस ऑफिसियो' बन जाता है और परिणामस्वरूप यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए न केवल ट्रिब्यूनल का निर्णय लेकिन मामले में आगे निर्देश भी जारी कर सकता है।

31. इस स्तर पर, इस मुद्दे से निपटना भी प्रासंगिक होगा कि क्या मोहम्मद अली खान के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा निर्धारित कानून को इस न्यायालय के खिलाफ दायर किया गया था। मुस्तफा (उपरोक्त) एक बाध्यकारी मिसाल होगी जब खंड पीठ ने हरि विष्णु कामथ (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार नहीं किया है।

32. इस संबंध में, इस न्यायालय को संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य - (2014)16 एस.सी.सी. 623 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से आगे देखने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

-

"19. इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि एक मिसाल या प्रति इंकुरियम नियम के आवेदन पर निर्णय की अयोग्यता या कमी की मांग की गई अनुशासन का बहुत महत्व है, क्योंकि इसके बिना, कानून की निश्चितता, फैसलों की निरंतरता और न्यायालयों की कॉमिटी एक महंगी वस्तु बन जाएगी। कोई निर्णय किसी संविधि,

नियम या विनियम के किसी उपबंध के अनुसार हो सकता है, जिसे न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था। एक निर्णय भी प्रति इंकुरियम हो सकता है यदि सह-समान या बड़ी बेंच के पहले से घोषित निर्णय के साथ इसके अनुपात को समेटना संभव नहीं है; या यदि उच्च न्यायालय का निर्णय इस न्यायालय के विचारों के अनुरूप नहीं है। यह तुरंत स्पष्ट किया जाना चाहिए कि प्रति इंकुरियम नियम सख्ती से और सही ढंग से अनुपात निर्णय पर लागू होता है और आज्ञाकारी डिक्टा के लिए नहीं। उच्च न्यायालयों में अक्सर यह देखा जाता है कि सर्वोच्च न्यायालय के दो या अधिक पारस्परिक रूप से असंगत निर्णयों को बार में उद्धृत किया जाता है। हमें लगता है कि ये जल्द से जल्द दृष्टिकोण को लागू करना है क्योंकि सफल लोग प्रति इंकुरियम की श्रेणी में आएंगे। (न्यायालय का जोर)

33. इसी प्रकार, पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड बनाम श्रम न्यायालय (1990)3 एस.सी.सी. 682 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"40. अब हम संविधान पीठ के फैसलों का कथित रूप से पालन नहीं करने के कारण प्रति इंकुरियम के प्रश्न से निपटते हैं। लैटिन अभिव्यक्ति प्रति इंकुरियम का अर्थ है अनजाने के माध्यम से। एक निर्णय को आम तौर पर प्रति इंकुरियम दिया जाना कहा जा सकता है

जब इस न्यायालय ने अपने स्वयं के पिछले निर्णय की अज्ञानता में कार्य किया है या जब किसी उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय की अज्ञानता में कार्य किया है। इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि अनुच्छेद 141 कानून के शासन के रूप में, उन उदाहरणों के सिद्धांत का प्रतीक है जिन पर हमारी न्यायिक प्रणाली आधारित है। बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड में बिहार राज्य, [1955]2 एस.सी.आर 603, यह माना गया था कि अनुच्छेद 141 के शब्द, "भारत के क्षेत्र के भीतर सभी अदालतों पर बाध्यकारी", हालांकि सर्वोच्च न्यायालय को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं, इसमें स्वयं सर्वोच्च न्यायालय शामिल नहीं है, और यह अपने स्वयं के निर्णयों से बाध्य नहीं है, लेकिन उपयुक्त मामलों में उन पर पुनर्विचार करने के लिए स्वतंत्र है। कानून और न्याय के समुचित विकास के लिए यह आवश्यक है। हो सकता है कि री-डॉसन के सेटलमेंट लॉयड्स बैंक लिमिटेड में हाउस ऑफ लॉर्ड्स में निर्णय दिए जाने से पहले उन्हीं कारणों से हो सकता है। डॉसन और अन्य, [1966]1 डब्ल्यूएलआर 1234, 26 जुलाई, 1966 को लॉर्ड गार्डिनर, एलसी ने अपनी ओर से और लॉर्ड्स ऑफ अपील इन ऑर्डिनरी की ओर से निम्नलिखित बयान दिया:

"न्यायमूर्ति मिसाल के उपयोग को एक अनिवार्य आधार के रूप में मानते हैं, जिस पर यह तय करना है कि कानून क्या है और व्यक्तिगत मामलों में इसका आवेदन क्या है। यह कम से कम कुछ हद तक निश्चितता प्रदान करता है जिस पर व्यक्ति अपने मामलों

के संचालन में भरोसा कर सकते हैं, साथ ही कानूनी नियमों के व्यवस्थित विकास के लिए एक आधार भी प्रदान करते हैं। फिर भी न्यायमूर्ति मानते हैं कि मिसाल के लिए बहुत कठोर पालन किसी विशेष मामले में अन्याय का कारण बन सकता है और कानून के उचित विकास को भी अनुचित रूप से प्रतिबंधित कर सकता है। इसलिए, वे अपनी वर्तमान परिपाटी में संशोधन करने का प्रस्ताव करते हैं और इस सभा के पूर्व निर्णयों को सामान्य रूप से बाध्यकारी मानते हुए, जब ऐसा करना सही प्रतीत होता है, पूर्व निर्णय से हटने का प्रस्ताव करते हैं।

इस संबंध में वे पूर्वव्यापी रूप से परेशान करने के खतरे को ध्यान में रखेंगे, जिस आधार पर अनुबंध, संपत्ति के निपटान और राजकोषीय व्यवस्था में प्रवेश किया गया है और आपराधिक कानून के रूप में निश्चितता की विशेष आवश्यकता भी है।

34. संदीप कुमार बाफना (उपरोक्त) और पंजाब लैंड डेवलपमेंट एंड रिकलेमेशन कॉरपोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में पूर्वोक्त निर्णयों से, यह उभरता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि एक मिसाल या अयोग्य नियम के आवेदन पर निर्णय की अयोग्यता या कमी की मांग अनुशासन का बहुत महत्व है, क्योंकि इसके बिना, कानून की निश्चितता, निर्णयों की निरंतरता और न्यायालयों की सौहार्द एक महंगी घटना बन जाएगी। कोई निर्णय किसी संविधि, नियम या विनियम में किसी भी उपबंध के अनुसार हो सकता है जिसे

न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था या कोई निर्णय भी प्रति इंकुरियम हो सकता है यदि उच्च न्यायालय का निर्णय शीर्ष न्यायालय के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है।

35. तदनुसार, पूर्वोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, मोहम्मद अली के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले को ध्यान में रखते हुए, मुस्तफा (उपरोक्त) हरि विष्णु कामथ (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले द्वारा निर्धारित कानून के खिलाफ चलेगा, खंड पीठ ने यह नहीं माना कि चुनाव ट्रिब्यूनल अंततः चुनाव याचिका पर फैसला करने के बाद फंक्टस ऑफिसियो बन जाता है और इस प्रकार यह संविधान पीठ का निर्णय है जिसका इस न्यायालय को पालन करना होगा।

36. जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, हरि विष्णु कामथ (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा अंततः अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद, यह 'फंक्टस ऑफिसियो' बन जाता है, जिसका अर्थ है कि उसके पास अपना आदेश सुनाने के बाद चुनाव याचिका में कोई आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं होगी। इस मामले में, विहित प्राधिकारी की अध्यक्षता वाले निर्वाचन अधिकरण ने जो किया है वह यह है कि इसने अंततः चुनाव याचिका को अनुमति दे दी है और पुनः मतगणना का निदेश दिया है। यदि मतों की पुनः गणना का परिणाम किसी भी प्रकार से हो, तो भी निर्वाचन अधिकरण अपने निर्णय की घोषणा करने/याचिका को अनुमति देने के

बाद कार्यगत अधिकारी बन गया है, वह आगे कोई आदेश पारित नहीं कर पाएगा। इस प्रकार, विधि के स्थापित प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-ण में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि केवल निर्वाचन याचिका के माध्यम से ही पंचायत के निर्वाचन पर प्रश्नगत कार्रवाई की जा सकती है और निर्वाचन याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय हो जाने के बाद, विहित प्राधिकारी/निर्वाचन अधिकरण इस प्रकार कार्यकारी अधिकारी बन गया और इस मामले में आगे कोई आदेश पारित नहीं कर सकता। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को सभी मामलों में अंतिम आदेश के रूप में माना जाना चाहिए और तदनुसार यह स्पष्ट है कि निर्धारित प्राधिकारी ने एक स्पष्ट रूप से विकृत आदेश पारित किया है और उसमें निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है अर्थात् किसी भी तरह से चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने में विफल रहा है।

37. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत याचिका में जो कानूनी प्रश्न उठा है, उसका उत्तर नीचे दिया गया है: -

किसी निर्वाचन याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने पर विहित प्राधिकारी कार्यपालक हो जाता है और उसके बाद कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है, भले ही निर्वाचन याचिका पर अंतिम रूप से मतों की पुनः गणना के लिए अनुरोध किया गया हो।

38. अब जबकि कानूनी प्रश्न का उत्तर मिल गया है, अगला प्रश्न यह होगा कि क्या यह

न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है?

इसके अलावा, पूर्वोक्त के रूप में अवलोकन करने के बाद, परशुराम (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने मतों की पुनर्गणना के आदेश को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ता को फिर से आरोपित करने से इनकार कर दिया, जिसके तहत चुनाव याचिका का निपटारा भी निर्धारित प्राधिकारी द्वारा इस आधार पर किया गया था कि याचिका पर विचार किया गया था और अंतरिम आदेश दिया गया था और यह भी कि इस संबंध में कानून का निपटारा नहीं किया गया था कि क्या आदेश आक्षेपित है इसे 'अंतिम आदेश' या अंतरिम आदेश माना जाएगा, जैसा कि इसके निम्नलिखित पैरा से प्रकट होगा: -

"39. हालांकि यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के पास अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उपधारा (6) के तहत विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष आक्षेपित आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर करने का एक उपाय है और इस तरह उसे पुनरीक्षण दाखिल करने के लिए आरोपित किया जाना चाहिए, लेकिन यह देखते हुए कि याचिका पर लगभग एक साल पहले विचार किया गया था और एक अंतरिम आदेश पहले ही पारित किया जा चुका था और तथ्य यह है कि कानून इस संबंध में यह तय नहीं किया गया था कि आक्षेपित आदेश को अंतिम आदेश माना जाएगा या अंतरिम आदेश, परिणामस्वरूप यह न्यायालय

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत निहित अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है।

परशुराम (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय से यह भी पता चलता है कि मोहम्मद अली खान के मामले में पारित निर्णय में कहा गया था। माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पारित निर्णय के आलोक में मुस्तफा (उपरोक्त) के मामले पर विचार किया गया था और इस न्यायालय ने उसके आधार पर यह निर्णय दिया था कि निर्वाचन अधिकरण/विहित प्राधिकारी मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् कार्यकारी अधिकारी बन जाएगा।

प्रस्तुत मामले के संदर्भ में, उड़ीसा प्रशासनिक अधिकरण बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा; 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 309 में रिपोर्ट किया गया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'फंक्टस ऑफिसियो' अभिव्यक्ति पर विचार किया। पुनरुत्पादन पर उसी के प्रासंगिक पैरा निम्नानुसार हैं: -

"एक शब्द किसी ऐसी चीज़ पर लागू होता है जिसके पास एक बार जीवन और शक्ति थी, लेकिन जो किसी भी गुण का नहीं बन गया है ... जिसने अपना पद पूरा कर लिया हो या पद से बाहर हो गया हो; एक प्राधिकरण जिसने कार्य किया है ताकि प्राधिकरण समाप्त हो जाए"

108. ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5 वां संस्करण) इस शब्द को निम्नानुसार परिभाषित करता है:

"कार्य को पूरा करने के बाद, कार्यालय का निर्वहन किया, या उद्देश्य को पूरा किया, और इसलिए कोई और बल या अधिकार नहीं ... एक उपकरण, शक्ति, एजेंसी, आदि जिसने अपने निर्माण के उद्देश्य को पूरा किया है, और इसलिए आगे कोई गुण या प्रभाव नहीं है।

109. फंक्टस ऑफिसियो का सिद्धांत अंतिमता के सिद्धांत को प्रभावी बनाता है। एक बार जब एक न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण ने निर्णय दिया है, तो यह उसके लिए निर्णय पर फिर से विचार करने और इसे संशोधित करने, सही करने, स्पष्ट करने या उलटने के लिए खुला नहीं है (कानून द्वारा प्रदत्त समीक्षा की शक्ति के अभ्यास को छोड़कर) एक बार जब कोई न्यायिक या अर्ध-न्यायिक निर्णय अंतिम रूप से प्राप्त हो जाता है, तो यह केवल अपीलीय अदालत के समक्ष कार्यवाही में परिवर्तन के अधीन होता है।

110. उदाहरण के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 362 में प्रावधान है कि अदालत को हस्ताक्षर किए जाने के बाद अपने फैसले को बदलना नहीं है:

"362. न्यायालय निर्णय में परिवर्तन नहीं करेगा-इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित

के सिवाय, कोई न्यायालय जब उसने किसी मामले के निपटान के लिए अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के सिवाय, उसका परिवर्तन या पुनवलोकन नहीं करेगा।

111. हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा 35 में, इस न्यायालय ने माना कि धारा 362 फंक्टस ऑफिसियो के सिद्धांत पर आधारित थी:

"10. ... यह धारा कानून के स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार जब किसी मामले को अदालत द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया जाता है, तो एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के अभाव में उक्त अदालत फंक्टस ऑफिसियो बन जाती है और उसी राहत के लिए नए सिरे से प्रार्थना पर विचार करने के लिए अयोग्य हो जाती है जब तक कि अंतिम निपटान के पूर्व आदेश को कानून द्वारा निर्धारित तरीके से सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जाता है। किसी मामले के निपटारे के आधिकारिक आदेश पर हस्ताक्षर होते ही अदालत 'फंक्टस ऑफिसियो' (कार्य समाप्त/क्षमता में पद समाप्त) बन जाती है। इस तरह के आदेश को लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की सीमा को छोड़कर नहीं बदला जा सकता है।

112. फंक्टस ऑफिसियो का सिद्धांत एक स्पष्ट बिंदु प्रदान करने के लिए मौजूद है जहां न्यायिक प्रक्रिया समाप्त होती है और

विवाद को शांत करने के लिए। इसके बिना, अदालतें जैसे निर्णय लेने वाले निकाय अंतर्हीन रूप से अपने निर्णयों पर फिर से विचार कर सकते हैं। अदालत या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष किसी मामले के लिए एक निश्चित समापन बिंदु के साथ, पक्षगण न्यायिक समीक्षा करने या अपील दायर करने के लिए स्वतंत्र हैं। वैकल्पिक रूप से, उनके अधिकारों को अंतिम रूप से निर्धारित किया जाता है। इसी तरह के विचार राज्य द्वारा उन निर्णयों पर लागू नहीं होते हैं जो पूरी तरह से नीति या समीचीनता पर आधारित होते हैं।

113. प्रस्तुत मामले की ओर मुड़ते हुए, अपीलकर्ताओं का यह तर्क कि ओ.ए.टी. की स्थापना के बाद केंद्र सरकार को फंक्टस ऑफिशियो प्रदान किया गया था, जांच में खड़ा नहीं होता है। ओ.ए.टी. स्थापित करने का निर्णय प्रशासनिक था और नीतिगत विचारों पर आधारित था। यदि फंक्टस ऑफिशियो के सिद्धांत को राज्य द्वारा प्रशासनिक निर्णय लेने के क्षेत्र में लागू किया जाना था, तो इसकी कार्यकारी शक्ति अपंग हो जाएगी। राज्य किसी भी नीति या नीति-आधारित निर्णय को बदलने या पलटने में असमर्थ होगा और इसका कामकाज ठप हो जाएगा। सभी नीतियां अंतिम रूप प्राप्त करेंगी और कोई भी परिवर्तन प्रभावी होना असंभव के करीब होगा।

114. यह न केवल प्रमुख नीतिगत निर्णयों को बल्कि छोटे निर्णयों को भी प्रभावित करेगा। उदाहरण के लिए, एक मामूली

नीतिगत निर्णय जैसे कि बस मार्ग अधिसूचित होने के बाद किसी भी संशोधन के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। एक बार निर्धारित होने के बाद, बस मार्ग एक लोकप्रिय गंतव्य पर एक अतिरिक्त स्टॉप की मांग की परवाह किए बिना वही रहेगा। यदि प्रशासनिक निर्णयों पर फंक्टस ऑफिशियो के सिद्धांत को लागू किया जाता है तो सब्सिडी, कॉर्पोरेट गवर्नेंस, आवास, शिक्षा और सामाजिक कल्याण से संबंधित प्रमुख नीतिगत निर्णय जमे हुए होंगे। यह बोधगम्य नहीं है क्योंकि यह सरकार होने के उद्देश्य और शासन की नींव को विफल कर देगा। उनके स्वभाव से, नीतियां किसी भी समय समाज में प्रचलित परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तन के अधीन हैं। फंक्टस ऑफिशियो का सिद्धांत आमतौर पर उन मामलों में लागू नहीं किया जा सकता है जहां सरकार नीति तैयार कर रही है और लागू कर रही है।

115. प्रस्तुत मामले में, एस.ए.टी की स्थापना के बाद राज्य और केंद्र सरकारों के अधिकार समाप्त नहीं हुए हैं। इसी तरह, राज्य और केंद्र सरकारों को यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने निर्माण के उद्देश्य को पूरा कर लिया है और एक बार एस.ए.टी स्थापित करने के बाद उनका कोई प्रभाव नहीं होगा। राज्य कानून के अनुसार अपने नीतिगत निर्णयों पर फिर से विचार कर सकता है। इन कारणों से, केंद्र सरकार को ओ.ए.टी. की स्थापना के बाद 'फंक्टस ऑफिशियो' (कार्य समाप्त/क्षमता में पद समाप्त) नहीं दिया गया था।

इस प्रकार, पूर्वोक्त के संयुक्त पठन से पता चलता है कि यदि चुनाव याचिका को लंबित रखने वाला निर्धारित प्राधिकारी मतों की पुनर्गणना के लिए निर्देश देता है, तो यह एक वादकालीन आदेश होगा और इस आदेश के खिलाफ रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी। यदि निर्वाचन याचिका का निस्तारण विहित प्राधिकारी द्वारा मतों की पुनर्गणना का निदेश देते हुए किया जाता है तो यह अंतिम आदेश होगा और इस आदेश के विरुद्ध अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-ग(6) के अधीन पुनरीक्षण अनुरक्षणीय होगा।

पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया और ऊपर उल्लिखित निर्णय (निर्णयों) पर भी विचार किया।

यह न्यायालय मामले की योग्यता सहित तथ्यात्मक मैट्रिक्स में प्रवेश करने के लिए इच्छुक नहीं है क्योंकि यह न्यायालय केवल इस निर्णय के पहले भाग में उद्धृत दिनांक 05.06.2023 के आक्षेपित आदेश के ऑपरेटिव भाग के आलोक में प्रस्तुत याचिका की पोषणीयता के मुद्दे पर विचार कर रहा है, जिसके तहत निर्धारित प्राधिकारी ने राहत दिए बिना अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी के तहत शुरू किए गए मामले/चुनाव याचिका की कार्यवाही समाप्त कर दी जैसा कि अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी (4)(ii) के तहत प्रदान किया गया है।

मोहम्मद अली खान के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय को

स्वीकार कर लिया गया है। मुस्तफा (उपरोक्त), जो ऊपर उल्लिखित समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय (निर्णयों) का आधार है, का कहना है कि अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी (6) के तहत एक पुनरीक्षण केवल धारा 12-सी(1) के तहत दायर किए गए चुनाव आवेदन पर निर्णय लेने वाले निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित 'अंतिम आदेश' के खिलाफ होगा और निर्धारित प्राधिकारी द्वारा वोटों की पुनर्गणना के किसी भी वादकालीन आदेश या आदेश के खिलाफ नहीं।

खण्ड न्यायपीठ ने पूर्वोक्त राय व्यक्त की, जैसा कि (2004)5 ए.डब्ल्यू.सी. 4088 में रिपोर्ट किए गए अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में पारित निर्णय में है, जिसमें एकल न्यायाधीश का विचार था कि मतों की पुनः गणना के लिए आवेदन का निपटान अंतिम आदेश होगा क्योंकि यह मतों की पुनः गणना के लिए आवेदन का निपटान करता है। इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह भी टिप्पणी की कि अंतिम आदेश यह होगा कि यदि निर्वाचन आवेदन को अनुमति दी जाती है या खारिज कर दिया जाता है, जैसा कि मोहम्मद अली खान और मोहम्मद अली खान के मामले में पारित निर्णय के संगत भाग से प्रकट होता है। मुस्तफा (उपरोक्त), जो प्रजनन पर निम्नानुसार पढ़ता है: -

"22. हमने अबरार के मामले (उपरोक्त) में एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए तर्क की सावधानीपूर्वक जांच की है, जिसमें एकल न्यायाधीश ने कहा था कि पुनर्गणना के लिए आवेदन का निपटान अंतिम आदेश होगा

क्योंकि यह अंतिम रूप से पुनर्गणना के लिए आवेदन का निपटारा करता है। जैसा कि हमारे द्वारा समझाया गया है, यहां ऊपर बताया गया है, पुनर्मतगणना के लिए केवल एक आदेश अंततः चुनाव लड़ने वाले दलों की स्थिति को नहीं बदलता है और यह किसी भी तरह से, अंततः एक निर्वाचित उम्मीदवार की स्थिति का निर्धारण नहीं करता है। चुनाव आवेदन के निपटारे के बाद ही अंतिम रूप दिया जाता है क्योंकि चुनाव को रद्द करने या चुनाव आवेदन को खारिज करने की राहत अंतिम चरण में आती है, न कि इस उद्देश्य के लिए तैयार किए गए मुद्दे पर निर्णय लेने पर पुनर्गणना के आवेदन के निपटान या आदेश देने से।

23. रिट याचिका में आक्षेपित आदेश को इस कारण से चुनाव आवेदन का निपटारा नहीं माना जा सकता है कि चुनाव न्यायाधिकरण ने निम्नलिखित तीन मुद्दे विरचित किए हैं:

-

(1) क्या ग्राम हंडिया के प्रधान पद पर चुनाव में मतगणना विधि विधान से कराई गई थी?

(2) क्या चुनाव आवेदन में आवेदक के एजेंटों को मतगणना के स्थान से जबरन हटा दिया गया था और चुनाव आवेदक के पक्ष में डाले गए वोटों को रिटर्निंग उम्मीदवार (प्रस्तुत याचिकाकर्ता) के वोटों के साथ मिला दिया गया था और किस आधार पर प्रतिपक्षी सं-1 (प्रस्तुत याचिकाकर्ता) को निर्वाचित घोषित किया गया था? और

(3) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, मतों की पुनर्गणना अनुमेय है और चुनाव कानून के अनुसार आयोजित किया गया था?

24. आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट है कि केवल पुनर्गणना का आदेश पारित किया गया है। हालांकि, अन्य मुद्दों पर मतपत्रों की फिर से गिनती के बाद फैसला किया जाना बाकी है कि क्या चुनाव कानून के अनुसार आयोजित किया गया था और क्या चुनाव लड़ने वाले प्रतिवादी के पक्ष में डाले गए वोटों को अन्य उम्मीदवार के वोटों के साथ मिलाया गया था और जिसके आधार पर याचिकाकर्ता को निर्वाचित घोषित किया गया है। यह भी तय किया जाना है कि चुनाव आवेदन को अनुमति दी जाए या खारिज की जाए। इसलिए, कल्पना के किसी भी खिंचाव से, यह नहीं माना जा सकता है कि वोटों की पुनर्गणना के आदेश ने अंततः चुनाव आवेदन का निपटारा कर दिया है।

25. इसलिए, हम अत्यंत सम्मान के साथ, पूर्वोक्त कारणों से अबरार के मामले (उपरोक्त) में एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को सीमित करने में सक्षम नहीं हैं और इसलिए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि उक्त निर्णय निर्धारित द्वारा निपटाए गए आवेदन के संबंध में अधिनियम की धारा 12-सी (6) के तहत संशोधन की पोषणीयता के सवाल पर कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है पुनर्गणना के लिए प्राधिकरण। हम आगे याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए मामलों को निर्धारित कानून

को मंजूरी देते हैं। हम एकल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार देते हैं: -

(I) अधिनियम की धारा 12-ग(6) के अंतर्गत पुनरीक्षण केवल धारा 12-ग(1) के अधीन अधिमन्य निर्वाचन आवेदन पर विहित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध होगा न कि किसी वादकालीन आदेश अथवा विहित प्राधिकारी द्वारा मतों की पुनः गणना के आदेश के विरुद्ध होगा।

(II) अबरार बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में एकल न्यायाधीश का निर्णय: उत्तर प्रदेश राज्य (2004)5 आंगनवाड़ी केन्द्र 4088 (2004 इला एलजे 2384) में कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं किया गया है और इसलिए पुनरीक्षण याचिका की अनुरक्षणीयता के प्रश्न की सीमा तक इसे खारिज कर दिया गया है, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है।

(III) उपरोक्त के स्वाभाविक परिणाम के रूप में, हम यह भी मानते हैं कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव आवेदन में कार्यवाही करते समय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी।

मोहम्मद मुस्तफा के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय के बाद, मैं माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार माननीय उच्चतम न्यायालय ने

मुस्तफा (उपरोक्त), इस न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित निर्णय (निर्णयों) में, रिट याचिका (याचिकाओं) को स्वीकार किया, जिसमें मतों की पुनर्गणना के आदेश (ओं) को चुनौती दी गई थी, इसे वादकालीन आदेश माना गया था। श्री परशुराम (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने मोहम्मद अली खान के मामले में पारित निर्णय पर विचार करने के बाद यह निर्णय लिया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने मुस्तफा (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-ग के अधीन संस्थित मामले में विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में यह भी कहा है कि विहित प्राधिकारी ने आदेश पारित करते समय न तो चुनाव को अपास्त किया और न ही चुनाव को शून्य घोषित किया और संबंधित व्यक्ति को विधिवत निर्वाचित घोषित किया बल्कि मतों की पुनः गणना करने का निदेश दिया है और निर्वाचन याचिका की अनुमति दी है तथा आदेश की प्रकृति के साथ-साथ अभिव्यक्ति पर भी विचार किया है। हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इसहाक एवं अन्य के मामले में पारित संवैधानिक पीठ के निर्णय के आलोक में एक निर्णय लिया गया है; ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 233 में रिपोर्ट किए गए मामले में विशेष रूप से यह टिप्पणी की गई है कि निर्वाचन अधिकरण द्वारा अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद यह फंक्टस ऑफिशियो बन जाता है। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने अधिनियम वर्ष 1947 के संगत उपबंधों और मोहम्मद अली खान बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में खण्ड न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय पर विचार करने

के पश्चात् इस न्यायालय की समन्वय पीठ को यह आदेश दिया। माननीय उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ द्वारा पारित निर्णय के साथ-साथ मुस्तफा (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में भी ऐसे आदेश के संबंध में टिप्पणी की गई है कि इसे सभी प्रकार से अंतिम आदेश माना जाना चाहिए।

मोहम्मद अली खान के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय का संयुक्त पठन किया गया है। मुस्तफा (उपरोक्त) और परशुराम (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय, इस बिंदु को स्पष्ट करेगा कि अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी (6) के तहत पुनरीक्षण चुनाव याचिका में पारित 'अंतिम आदेश' के खिलाफ बनाए रखने योग्य होगा न कि एक वादकालीन आदेश के खिलाफ जिसमें धारा 12-सी(1) अधिनियम वर्ष 1947 के तहत शुरू की गई कार्यवाही को समाप्त किए बिना वोटों की पुनर्गणना के लिए पारित आदेश शामिल है।

यह न्यायालय पहले ही देख चुका है कि पूर्वोक्त के संयुक्त पठन से पता चलता है कि यदि चुनाव याचिका को लंबित रखने वाला निर्धारित प्राधिकारी मतों की पुनर्गणना का निर्देश देता है तो यह एक वादकालीन आदेश होगा और इस आदेश के खिलाफ रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी। यदि निर्वाचन याचिका का निस्तारण विहित प्राधिकारी द्वारा मतों की पुनर्गणना का निदेश देते हुए किया जाता है तो यह अंतिम आदेश होगा और इस आदेश के

विरुद्ध अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-ग(6) के अधीन पुनरीक्षण अनुरक्षणीय होगा।

इस निर्णय के पहले भाग में 'फंक्टस ऑफिसियो' शब्द पर पहले ही ध्यान दिया जा चुका है, जिसके अनुसार, एक बार जब कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी निर्णय दे देता है, तो वह निर्णय पर पुनर्विचार करने और उसे संशोधित करने, सही करने, स्पष्ट करने या उलटने के लिए खुला नहीं है, सिवाय इसके कि कानून द्वारा प्रदत्त समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किया जाए और एक बार न्यायिक या अर्ध-न्यायिक निर्णय अंतिम रूप से प्राप्त हो जाए, यह केवल अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही में परिवर्तन के अधीन है और इस मामले में, वैधानिक प्रावधान अर्थात् अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी (6) के अनुसार, जिला न्यायाधीश पुनरीक्षण प्राधिकारी है।

प्रस्तुत मामले में, निर्धारित प्राधिकारी ने अंतिम आदेश पारित किया है, जिसे इस याचिका में आक्षेपित किया गया है, जिसके द्वारा, उन्होंने चुनाव याचिका की अनुमति दी और इस आशय के एक और निर्देश के साथ मतों की पुनः गणना करने का निर्देश दिया कि आवश्यक कार्रवाई के बाद, मामले को रिकॉर्ड करने के लिए सौंप दिया जाए। इस प्रकार, जारी आदेश में, अभिव्यक्ति 'अंतिम आदेश' के तहत आच्छादित किया गया है और ऐसा होने के नाते, इस न्यायालय का विचार है कि संशोधन अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी (6) के तहत बनाए रखने योग्य होगा।

तदनुसार, याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध वैधानिक उपाय पर विचार करते हुए, यह न्यायालय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 05.06.2023 के आदेश को चुनौती देने वाली इस याचिका पर विचार करने के लिए इच्छुक नहीं है। तदनुसार, प्रस्तुत याचिका को अंततः याचिकाकर्ता को पुनरीक्षण प्राधिकरण से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ निपटाया जाता है, जैसा कि अधिनियम वर्ष 1947 की धारा 12-सी (6) के तहत प्रदान किया गया है।

उपर्युक्त के मददेनजर और दाना राजेश्वरी बनाम बोदावुला हनुमयम्मा और अन्य के मामले में पारित निर्णय (निर्णयों) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए; ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 1541 में रिपोर्ट किया गया; वीरेंद्र कुमार राय और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य; (2004) 13 एस.सी.सी. 463 और ट्राई फूड्स लिमिटेड बनाम नेशनल इंडियोरस कंपनी और अन्य; (2004) 13 एस.सी.सी. 656 में रिपोर्ट किया गया है, यह प्रदान किया गया है कि यदि याचिकाकर्ता 30 दिनों की अवधि के भीतर पुनरीक्षण दायर करता है, जो कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण दायर करने के लिए निर्धारित सीमा है, तो इसका निर्णय योग्यता के आधार पर किया जाएगा।

प्राधिकारी, निर्धारित प्राधिकारी के निर्देशों के अनुसार, आज से 30 दिन की अवधि समाप्त होने तक संबंधित मामले में कार्यवाही नहीं करेगा।

(2023) 7 ILRA 1048

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

जनहित याचिका संख्या 390 वर्ष 2022

नन्हें लाल कनौजिया

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

सरयू प्रसाद तिवारी, आलोक कुमार दीक्षित

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अजय कुमार, सर्वेश कुमार शुक्ला, वीरेंद्र सिंह

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 226 - जनहित याचिका प्रतिपक्षी को

मंदिर नष्ट करने, हरे वृक्ष काटने तथा गाटा

संख्या 256 एवं 257-खा पर जो सार्वजनिक

उपयोगिता भूमि के रूप में अभिलेखित हैं,

अवैध निर्माण करने से रोकने हेतु --- जनहित

याचिका के याचिकाकर्ता के कपटपूर्ण आचरण

एवं संबंधित तथ्य छिपाने के कारण न्यायालय

याचिका को खर्च के साथ खारिज करता है,

किन्तु यदि वर्तमान याचिका खर्च सहित

खारिज की जाती है, तो उत्तर प्रदेश राज्य

द्वारा पूरे प्रदेश के गाँव सभाओं की सार्वजनिक

उपयोगिता भूमि को अतिक्रमण से मुक्त रखने

हेतु जो उचित और आवश्यक कदम उठाए गए

हैं, वे विफल हो जाएंगे तथा संबंधित

अधिकारियों को यह लगेगा कि याचिका खारिज

हो चुकी है, अतः उक्त याचिका में जारी निर्देशों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। अतः तत्कालीन याचिका को खर्च सहित खारिज करने के स्थान पर याचिका को अन्ततः निस्तारित किया जाता है, राज्य द्वारा उठाए गए उचित कदमों, प्रक्रियाओं और सूचनाओं को इस आदेश का हिस्सा बनाया जाता है ताकि भविष्य में उन कदमों आदि को उदाहरण माना जा सके --- उत्तर प्रदेश राज्य के सभी सक्षम/संबंधित राजस्व अधिकारी एवं कर्मचारी यह सुनिश्चित करेंगे कि गाँव सभाओं की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि अवैध अतिक्रमण से मुक्त रहे और जैसे ही कोई अवैध अतिक्रमण दृष्टिगोचर होता है, तत्क्षण विधिवत प्रक्रिया अपना कर उस अतिक्रमण को हटाया जाए क्योंकि सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर कोई भी अवैध अतिक्रमण न केवल उस भूमि के राजस्व अभिलेखों में निर्धारित उपयोग में बाधा उत्पन्न करता है, बल्कि इससे गाँव के व्यापक नागरिकों को जो वास्तव में उस सार्वजनिक उपयोगिता भूमि जैसे तालाब, चरागाह, चकमार्ग, खाद गड्ढा, खलिहान, बंजर भूमि आदि पर निर्भर हैं, गंभीर क्षति होती है जो पूरे गाँव के लिए लाभप्रद हैं। (प्रस्तर 14 एवं 35) (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. गुरपाल सिंह बनाम पु. व अन्य (2005) 5 एससीसी 136
2. उत्तरांचल बनाम बलवंत सिंह चौपाल व अन्य (2020) 3 एससीसी 402
3. रिट-सी संख्या 6658/2022; ऋषिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश व अन्य और अन्य संबंधित रिट याचिकाएँ

2022 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 829 में रिपोर्ट की गई

4. हिंच लाल तिवारी बनाम कमला देवी, [2001 एस.सी. 3215]
5. पन्ना लाल बनाम डीएम गौतम बुद्ध नगर [2009 (108) एस.सी. आर.डी. 481]
6. जग पाल सिंह बनाम पु. व अन्य [2011 एस.सी. 1123]
7. ओम प्रकाश वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश, [2014 (5) ए.डी.जे. 427 (डीबी)]
8. जगत नारायण व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश व अन्य [2015 (3) ए.डब्ल्यू.सी. 2579]
9. दयाराम यादव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश व अन्य, 2016 (6) ए.डी.जे. 275 (द्वय खंडपीठ)
10. राम लौट बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश व अन्य [2016 (34) एल.सी.डी. 2458]
11. राम बिहारी द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश व अन्य [2017 (135) आरडी 156]
12. श्री राजू बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश व अन्य [2020 (38) एलसीडी 398]
13. घनश्याम वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजाति [2021 (39) एलसीडी 2021]

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आलोक कुमार दीक्षित, मुख्य स्थायी अधिवक्ता-II श्री शैलेंद्र कुमार सिंह, राज्य-प्रतिपक्षियों के स्थायी अधिवक्ता श्री योगेश कुमार अवस्थी और निजी

प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 के अधिवक्ता श्री वीरेंद्र सिंह को सुना। हालांकि, श्री अजय कुमार, अधिवक्ता ने प्रतिपक्षी संख्या-5 यानी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, हरदोई की ओर से नोटिस स्वीकार किया है।

2. विशेष रूप से, इस न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा 05.08.2022 और 29.08.2022 को पारित पहले के आदेशों पर विचार करते हुए 19.12.2022 को एक विस्तृत और व्यापक आदेश पारित किया है, जिसमें प्रस्तुत जनहित याचिका याचिका (इसके बाद 'पी.आई.एल.' के रूप में संदर्भित) की प्रार्थना पर विचार किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता की शिकायत को समझने के लिए, जिस पर इस न्यायालय ने पहले के आदेशों में विचार किया है, दिनांक 19.12.2022 के आदेश को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"पक्षों के लिए अधिवक्ताओं को सुना।"

प्रस्तुत याचिका ग्राम तैदुआ, तहसील-बिलग्राम, जिला-हरदोई के राजस्व रिकॉर्ड में सार्वजनिक उपयोगिता भूमि के रूप में दर्ज गाटा संख्या-256 और 257 के संबंध में जनहित याचिका की प्रकृति में दायर की गई है।

याचिका में कहा गया है कि निजी प्रतिपक्षीकार संख्या-6 से 8 ने गांव में स्थित मंदिर को नष्ट कर दिया है और उक्त गाटों पर अवैध रूप से निर्माण भी किया है और कुछ पेड़ों को भी काट दिया है।

रिट याचिका में दिए गए कथनों के साथ-साथ मांगी गई राहतों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने 14.07.2022 को राज्य के अधिवक्ता को मामले में निर्देश लेने का निर्देश दिया और उसके बाद, संबंधित अधिकारी द्वारा उपलब्ध कराए गए निर्देशों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने 05.08.2022 को जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई को अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करने और उसके अनुपालन में निर्देश दिया। जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई ने अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर किया, जिसे 29.08.2022 को रिकॉर्ड में ले लिया गया और उसी तारीख को, याचिकाकर्ता ने पूरक हलफनामा भी दायर किया और मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने 29.08.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"सुना"/

05.08.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"1. अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रदान किए गए लिखित निर्देश रिकॉर्ड पर लिए जाते हैं।

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और स्थायी अधिवक्ता को सुना।

3. जनहित याचिका की प्रकृति में प्रस्तुत याचिका निम्नलिखित मुख्य प्रार्थना के साथ दायर की गई है:

"(i) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-2, 3, 4 और 5 को आदेश दिया जाए कि प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 को मंदिर को नष्ट करने, हरे पेड़ों को काटने और गाटा संख्या-256 और 257-ख पर गेस्टहाउस और दुकानों के अवैध निर्माण करने से रोका जाए, जो राजस्व रिकॉर्ड में सार्वजनिक उपयोगिता भूमि के रूप में दर्ज हैं।

(ii) लोक उपयोगिता भूमि के कब्जे के संबंध में प्रतिपक्षीकार संख्या-6, 7 और 8 के विरुद्ध जांच करने के लिए प्रतिपक्षीकार संख्या-2, 3, 4 और 5 को निदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निदेश जारी करना।

4. दिनांक 14.07.2022 के पूर्व आदेश के अनुसरण में, श्री उपेंद्र सिंह, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा अनुदेश दिए गए हैं, जो उपखंड अधिकारी, तहसीलदार, राजस्व निरीक्षक और क्षेत्र लेख पाल, बिलग्राम, जिला हरदोई द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित हैं। उक्त निर्देशों में, यह उल्लेख किया गया है कि विचाराधीन मंदिर 150 वर्ष पुराना था और उक्त मंदिर का निर्माण आबादी भूमि यानी गाटा संख्या-257-ख पर किया गया था। गाटा संख्या-256 को राम जानकी मंदिर के

नाम से दर्ज किया गया था और गाटा संख्या-257 को आबादी के रूप में दर्ज किया गया है, गाटा संख्या-253 को सार्वजनिक मार्ग के रूप में दर्ज किया गया है और गाटा संख्या-235-ख को उसर भूमि के रूप में दर्ज किया गया है। उक्त निर्देशों में, यह भी उल्लेख किया गया है कि विचाराधीन मंदिर गाटा संख्या-257-ख के ऊपर स्थित था, जिसे आबादी के रूप में दर्ज किया गया था, इसलिए, इसे ग्राम प्रधान द्वारा गाटा संख्या-256 में नए राम जानकी मंदिर के निर्माण के इरादे से ध्वस्त कर दिया गया था। यह भी उल्लेख किया गया है कि ग्राम प्रधान द्वारा गाटा संख्या-257 में अपना निजी भवन खड़ा करके कोई अतिक्रमण किया जा रहा है और एक भगवान शिव मंदिर गाटा संख्या-257-ख पर स्थित है।

5. उपरोक्त प्रतिवेदन में यह भी उल्लेख है कि वर्तमान ग्राम प्रधान जानेंद्र प्रताप सिंह का अवैध निर्माण उसर भूमि के रूप में दर्ज गाटा संख्या-235-ख में पाया जाता है, अतः अतिक्रमण हटाने की कार्यवाही प्रारंभ की गई है। यह भी उल्लेख किया गया है कि ग्राम सभा के नाम दर्ज भूमि से पेड़ की कोई अवैध कटाई नहीं पाई गई है और ग्राम प्रधान ने गेट संख्या-256 में स्थित कुछ पेड़ को हटा दिया है। उपर्युक्त रिपोर्ट का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद, लखनऊ खण्डपीठ लखनऊ में योजित रिट

याचिका संख्या-390 / 2022 (पी०आई०एल०) नन्हेलाल कनौजिया बनाम उ०प्र० सरकार एवं अन्य के अनुपालन में स्थलीय एवं अभिलेखीय सत्यापन किया गया। जांच आख्या निम्नप्रकार है।

राजस्व ग्राम तेन्दुआ परगना मल्लावां व तहसील बिलग्राम की गाटा संख्या-256 (रामजानकी मंदिर), 257ख (आबादी), 235ख (ऊसर) 255 (बाग-सं०भू०), 253 (मार्ग), 234 (नाला मिलिकियत सरकार) के नाम से ग्राम खतौनी में दर्ज भूमियां है (संलग्नक - 01) । गाटा संख्या 257 / 0.051 हे० पर जो आबादी के नाम दर्ज अभिलेख है पर रामजानकी मंदिर लगभग 150 वर्ष पुराना बना हुआ था, जिसे वर्तमान ग्राम प्रधान द्वारा गिराकर रामजानकी मंदिर के नाम गाटा संख्या 256/0.1120 हे० पर जो रामजानकी मंदिर के नाम दर्ज अभिलेख है, नया रामजानकी मंदिर बनाया गया है। यह भी अवगत कराना है कि पुराना मंदिर जिस आबादी की गाटा संख्या 257 में बना हुआ था। वहां पर वर्तमान ग्राम प्रधान द्वारा कोई अवैध निजी निर्माण नहीं किया जा रहा है। गाटा संख्या 257 की भूमि में छोटा सा महादेव मंदिर बना हुआ है। गाटा संख्या 257 की शेष भूमि में नवनिर्मित मंदिर के सहन में उपयोग की जा रही है। गाटा संख्या 235 ख (ऊसर) में ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह पुत्र रामजी कनौजिया का पक्का अवैध निर्माण पाया गया, जिसके विरुद्ध उ०प्र०रा०सं० 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही न्यायालय तहसीलदार बिलग्राम जनपद हरदोई के

न्यायालय में कर दी गयी है। जिसकी वाद संख्या टी०202210330303532 है। इसके अतिरिक्त उक्त सार्वजनिक उपयोग की भूमियों पर कोई अवैध निर्माण नहीं पाया गया। उक्त सुरक्षित गाटों की भूमि से कोई पेड़ का कटान नहीं हुआ है। गाटा संख्या 255 याची व अन्य सहखातेदारों के नाम सं०भू० दर्ज अभिलेख है, जिसमें खड़े पेड़ों का कटान हुआ है, जो याची व अन्य सहखातेदारों की निजी भूमि है। काटे गये पेड़ सामान्य श्रेणी के थे। गाटा सं० 253 / 0.2150 हे० मौके पर रिक्त है

जिस पर आवागमन सुचारु रूप से संचालित है। नजरी नक्शा संलग्न है। (संलग्नक-02)

अतः योजित रिट याचिका के सम्बन्ध में यथा न्यायोचित कार्यवाही किये जाने हेतु अनुदेश सेवा में सादर प्रेषित है।"

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करने के साथ-साथ अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्देशों की सामग्री के माध्यम से जाने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई को एक सप्ताह के भीतर रिट याचिका की दलील का जवाब देते हुए अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया जाता है।

7. इस मामले को 29.08.2022 को अगले आदेश के लिए नए सिरे से सूचीबद्ध करें।

इस न्यायालय के दिनांक 05.08.2022 के आदेश के अनुपालन में, राज्य के अधिवक्ता द्वारा जिला मजिस्ट्रेट का व्यक्तिगत

हलफनामा दायर किया गया है, जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है।

प्रतिपक्षी संख्या-5 के अधिवक्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामा भी रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

दिनांक 05.08.2022 के आदेश में उद्धृत निर्देशों और गाटा संख्या-257 से संबंधित जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत हलफनामे में दिए गए आक्षेपों को ध्यान में रखते हुए यह प्रावधान किया गया है कि आदेश सुनाए जाने तक, पक्षों को गाटा संख्या-256 और 257 के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है।

यह आगे निर्देश दिया जाता है कि कार्यवाही के पक्षकारों द्वारा उपरोक्त गाटा(ओं) पर कोई निर्माण नहीं किया जाएगा और जिला मजिस्ट्रेट को इस आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है।

उपरोक्त आदेश के बाद, इस न्यायालय ने जिला बाराबंकी से संबंधित जनहित याचिका संख्या-560 वर्ष 2022 (सुकू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पूछे जा रहे एक प्रश्न पर अवगत कराया गया कि जिला-बाराबंकी में ही अतिक्रमण के 4,675 मामले लंबित हैं।

उपरोक्त के साथ-साथ पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अतिक्रमण की व्यापक समस्या को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि राज्य के

अधिकारियों को संवेदनशील बनाया जाना चाहिए और सरकारी भूमि से अतिक्रमणकारियों के अवैध अतिक्रमण और बेदखली के मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के दृष्टिकोण से भी अवगत कराया जाना चाहिए।

हिंच लाल तिवारी बनाम कमला देवी, [2001 एस.सी. 3215] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"12. इस निष्कर्ष पर, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय को आयुक्त के आदेश की पुष्टि करनी चाहिए थी। हालांकि, यह माना गया कि उक्त रिपोर्ट पर विचार करते हुए क्षेत्र वर्ष 10 बिस्वा केवल आवंटित किया जा सकता है और शेष पांच बिस्वा भूमि जो अभी भी एक तालाब के चरित्र की है, आवंटित नहीं की जा सकती है। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को बनाए रखना मुश्किल है। समवर्ती निष्कर्ष यह है कि एक तालाब मौजूद है और इसके द्वारा आच्छादित किया गया क्षेत्र बरसात के मौसम में बदलता रहता है। ऐसे मामले में इसका कोई भी हिस्सा किसी को भी घर के निर्माण या किसी संबद्ध उद्देश्यों के लिए आवंटित नहीं किया जा सकता था।

13. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि समुदाय के भौतिक संसाधन जैसे जंगल, तालाब, तालाब, पहाड़ आदि प्रकृति के उपहार हैं। वे नाजुक पारिस्थितिक संतुलन

बनाए रखते हैं। उन्हें एक उचित और स्वस्थ वातावरण के लिए संरक्षित करने की आवश्यकता है जो लोगों को एक गुणवत्तापूर्ण जीवन का आनंद लेने में सक्षम बनाता है जो संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत अधिकार का सार है। राजस्व अधिकारियों यानी उत्तरदाताओं 11 से 13 सहित सरकार को यह देखते हुए कि एक तालाब अनुपयोगी हो रहा है, उसे विकसित करने के लिए अपना ध्यान देना चाहिए था, जो एक तरफ, पारिस्थितिक आपदा को रोक सकता था और दूसरी तरफ बड़े पैमाने पर जनता के लाभ के लिए बेहतर वातावरण प्रदान करता था। इस तरह की सतर्कता गैर-आबादी 'स्थलों' में आवंटन की मांग करने के प्रयासों के खिलाफ सबसे अच्छा संरक्षण है।

14. उपरोक्त कारणों से, हम उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं, अपर कलेक्टर के आदेश दिनांक 25-2-1999 को आयुक्त द्वारा 12-3-1999 को पुष्टि की गई है। नतीजतन, प्रतिवादी 1 से 10 को आज से छह महीने के भीतर जमीन खाली करनी होगी, जो उन्हें आवंटित की गई थी। हालांकि, उन्हें उन घरों की सामग्री ले जाने की अनुमति दी जाएगी जो उन्होंने उक्त भूमि पर बनाए हैं। यदि प्रतिवादी 1 से 10 उक्त अवधि के भीतर भूमि खाली नहीं करते हैं, तो आधिकारिक प्रतिवादी यानी प्रतिवादी 11 से 13 तक निर्माण को ध्वस्त कर देंगे और कानून के अनुसार उक्त भूमि का

कब्जा प्राप्त करेंगे। प्रतिवादी 11 से 13 सहित राज्य तालाब का जीर्णोद्धार, विकास और रखरखाव एक मनोरंजन स्थल के रूप में करेगा जो निस्संदेह ग्रामीणों के सर्वोत्तम हित में होगा। इसके अलावा, यह पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और पर्यावरण की रक्षा करने में भी मदद करेगा, जिसके संबंध में इस न्यायालय ने बार-बार अपनी चिंता व्यक्त की है। इस तरह के उपायों को, अगर वे राष्ट्र का गौरव बनना चाहते हैं, जमीनी स्तर पर शुरू करना होगा।

पन्ना लाल बनाम डीएम गौतम बुद्ध नगर [2009 (108) एस.सी. आरडी 481] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

इन परिस्थितियों में उत्तर प्रदेश शासन, राजस्व विभाग, उप्र राज्य के प्रधान सचिव को निर्देश दिया जाता है कि उत्तर प्रदेश के सभी जिलाधिकारियों को आवश्यक निर्देश जारी कर चकरोड, नालों और अन्य सार्वजनिक उपयोग योग्य भूमि आदि पर अतिक्रमणों को सर्वेक्षण और राजस्व अधिकारियों द्वारा नियमित निरीक्षण के बाद तुरंत हटाया जाना सुनिश्चित किया जाए। जनपदों के जिलाधिकारी उपखण्ड मजिस्ट्रेटों अथवा सहायक कलेक्टरों को चकरोड, नालों एवं जनोपयोगी भूमि आदि पर अतिक्रमण की शिकायत प्राप्त होने पर तत्काल कार्रवाई करने तथा चकरोड, नालों एवं जनोपयोगी भूमि आदि पर अतिक्रमण हटाकर तत्काल निरीक्षण कर तथा

संबंधित अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद निर्देश देंगे। जिला मजिस्ट्रेट उप-मंडल मजिस्ट्रेटों और सहायक कलेक्टरों को किसी भी कोने से ऐसे आवेदन/शिकायतें प्राप्त होने की तारीख से एक महीने के भीतर अतिक्रमणों के बारे में विवादों/शिकायतों का निर्णय लेने और अतिक्रमणों को हटाने के लिए पुलिस की मदद से कड़ी और सख्त कार्रवाई करने का भी निर्देश देंगे। उपमंडल मजिस्ट्रेट और सहायक कलेक्टर भी निरंतर निगरानी रखते हुए चकरोड, नालियों और सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर भविष्य के अतिक्रमण को रोकने के लिए आवश्यक और प्रभावी व्यवस्था करेंगे।

जगपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य [2011 एस.सी. 1123] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"22. इस मामले से अलग होने से पहले हम देश की सभी राज्य सरकारों को निर्देश देते हैं कि वे ग्राम सभा/ग्राम पंचायत/पोराम्बोक/शामलात भूमि के अवैध/अनधिकृत कब्जेदारों को बेदखल करने के लिए योजनाएं तैयार करें और इन्हें गांव के ग्रामीणों के सामान्य उपयोग के लिए ग्राम सभा/ग्राम पंचायत को बहाल किया जाना चाहिए। इस प्रयोजनार्थ, भारत में सभी राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों के मुख्य सचिवों को निदेश दिए गए हैं कि वे सरकार के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों की सहायता लेकर यथावश्यक कार्रवाई करें।

उक्त योजना में ऐसे अवैध कब्जेदारों को कारण बताओ नोटिस देने और संक्षिप्त सुनवाई के बाद उसे शीघ्र बेदखल करने का प्रावधान होना चाहिए। इस तरह के अवैध कब्जे की लंबी अवधि या उस पर निर्माण करने में भारी खर्च या राजनीतिक कनेक्शन को इस अवैध कार्य को माफ करने या अवैध कब्जे को नियमित करने के लिए औचित्य के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। नियमितीकरण की अनुमति केवल असाधारण मामलों में दी जानी चाहिए, उदाहरण के लिए भूमिहीन मजदूरों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को कुछ सरकारी अधिसूचना के तहत पट्टे दिए गए हैं, या जहां भूमि पर पहले से ही एक स्कूल, डिस्पेंसरी या अन्य सार्वजनिक उपयोगिता है।

ओम प्रकाश वर्मा बनाम भारत संघ के मामले में, उत्तर प्रदेश राज्य, [2014 (5) एडीजे 427 (डीबी)] के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"20. इस प्रकार, भूमि प्रबंधन समिति या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा धारा 112-बी के अनुसार कार्रवाई करने में विफलता के मामले में, कलेक्टर संबंधित व्यक्ति को नुकसान या दुर्विनियोजन के लिए परहेज करने, या क्षति की मरम्मत करने, या नुकसान की भरपाई करने या गलत कब्जे को हटाने और अवैध कब्जे के मामले में नुकसान का भुगतान करने के लिए नोटिस जारी करके कॉल करने के लिए बाध्य है। कलेक्टर को भूमि प्रबंधन समिति के

अध्यक्ष और सचिव के सदस्य द्वारा आवेदन पर या नियम 115-सी के उप-नियम (3) के तहत लेखपाल द्वारा बनाई गई रिपोर्ट पर, या संबंधित प्राधिकारी या उसके अधिकारी की रिपोर्ट पर या अन्यथा उसके ध्यान में आने वाले तथ्यों पर नियम 115-डी के तहत कार्य करने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार, नियम 115-डी (डी) में निहित प्रावधान किसी भी व्यक्ति को गांव सभा की भूमि से अनधिकृत कब्जे को हटाने के लिए कलेक्टर को आवेदन करने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त है।

21. धारा 122-बी, नियम 115-सी और नियम 115-डी के संयुक्त पठन पर, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि यू.पी.जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम और नियमों में पर्याप्त और उचित प्रक्रिया और वैधानिक तंत्र शामिल है जो न केवल गांव सभा की भूमि से अवैध कब्जेदारों को बेदखल करने के लिए बल्कि किसी भी व्यक्ति को सभी गांव सभा भूमि के दुरुपयोग और गलत कब्जे से रोकने के लिए कार्रवाई करता है।

23. हमने विभिन्न मामलों में यह तथ्य भी देखा है कि जहां यू.पी.जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी के तहत कार्यवाही के समापन के बाद भी, संबंधित अधिकारियों द्वारा गांव सभा भूमि के नुकसान या दुर्विनियोजन के लिए बेदखली और मुआवजे की वसूली के आदेश पारित किए गए हैं, उक्त आदेश अप्राप्य

पड़े हैं और उन्हें निष्पादित नहीं किया जा रहा है। हम ऐसी स्थिति की का मूल्यांकन नहीं कर सकते।

24. की गई चर्चाओं और ऊपर दिए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिकाओं के तत्काल समूह का निपटारा निम्नलिखित शब्दों में किया जाता है: -

राजस्व प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि यू.पी.जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी(1) और यू.पी.जेड.ए और एल.आर. नियमों के नियम 115-सी(1) और (2) के तहत भूमि प्रबंधन समिति और स्थानीय प्राधिकरण पर वैधानिक कर्तव्य पूरी गंभीरता से लिया जाता है।

2. जिला कलेक्टर यह सुनिश्चित करेंगे कि संबंधित क्षेत्र का लेखपाल यू.पी.जेड.ए. & एल.आर. नियमों के नियम 115-सी के उप-नियम (3) के तहत उस पर लगाए गए अपने कर्तव्य में भाग लेता है, क्योंकि, लेखपाल तहसीलदार के माध्यम से कलेक्टर को गलत तरीके से कब्जे के सभी मामलों की रिपोर्ट करेगा; ग्रामीण सभा की संपत्ति के गलत कब्जे के दुर्विनियोजन के संबंध में जैसे ही वे उसकी जानकारी में आते हैं और किसी भी मामले में खरीफ और रबी पार्टल के समापन के बाद प्रत्येक वर्ष के लिए कोई मामला बनता है।

3. जिला कलेक्टर यह भी सुनिश्चित करेंगे कि संबंधित क्षेत्र के तहसीलदार प्रत्येक वर्ष

मई के महीने में स्वयं को संतुष्ट करेंगे कि प्रत्येक लेखपाल ने यू.पी.जेड.ए. & एल.आर. नियमों के नियम 115-सी के उप-नियम (3) के तहत परिकल्पित रिपोर्ट प्रस्तुत की है।

4. जिला कलेक्टरों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे भूमि प्रबंधन समिति या स्थानीय प्राधिकरण की विफलता के मामले में नियम 115-डी के प्रावधान के अनुसार कार्रवाई करें, जैसा भी मामला हो।

5. सहायक कलेक्टर, जिसके अधिकार क्षेत्र में गाँव सभा की भूमि के किसी भी अवैध कब्जे या क्षति या दुर्विनियोजन की सूचना दी गई है, तुरंत कार्यवाही शुरू करेगा और कानून के अनुसार इसे समाप्त करेगा। सहायक कलेक्टर (जो राजस्व मैनुअल के पैरा-315 के अनुसार संबंधित क्षेत्र का तहसीलदार है) न केवल भूमि प्रबंधन समिति या संबंधित स्थानीय प्राधिकारी द्वारा यू.पी.जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी (1) के तहत प्राप्त जानकारी/किए गए आवेदन पर कार्यवाही शुरू करेगा, बल्कि किसी भी व्यक्ति द्वारा अन्यथा प्रस्तुत किए गए आवेदन पर भी कार्रवाई करेगा, जिसमें अवैध कब्जे और गाँव सभा को नुकसान पहुंचाने का आरोप लगाया गया है।

6. जिला कलेक्टरों को यह सुनिश्चित करने के लिए भी निर्देशित किया जाता है कि एक बार बेदखली या मुआवजे के भुगतान के आदेश पारित होने के बाद,

उपयुक्त मामलों में आवश्यक बल का उपयोग करके जल्द से जल्द निष्पादित किया जाए। गाँव सभा की भूमि को हुई क्षति, दुर्विनियोजन या गलत तरीके से कब्जे के लिए मुआवजे की राशि की वसूली भी संबंधित व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाया के रूप में शीघ्रता से की जाएगी।

7. जहां तक व्यक्तियों को आवंटित आवास स्थलों के अवैध कब्जे का संबंध है, हम धारा 122-डी में निहित प्रावधान का उल्लेख कर सकते हैं, जो घर के निर्माण के प्रयोजनों के लिए किसी भी व्यक्ति को आवंटित भूमि के कब्जे की बहाली के लिए एक पूर्ण प्रक्रिया प्रदान करता है और ऐसी भूमि पर आवंटी के अलावा कोई भी व्यक्ति कब्जा में है। धारा 122-डी के तहत सहायक कलेक्टर को आवास उद्देश्य के लिए आवंटित भूमि के आवंटी को कब्जा बहाल करने के लिए कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया है, यदि वह किसी अन्य व्यक्ति के अवैध कब्जे में है।

8. उत्तर प्रदेश जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम की धारा 122-डी की उपधारा (2) में प्रावधान है कि धारा 122-डी (1) के तहत एक बार बेदखल किए जाने वाले व्यक्ति को कारावास की सजा दी जा सकती है जो दो साल तक की हो सकती है और जो तीन महीने से कम नहीं होगी और जुर्माना भी जो तीन हजार रुपये तक हो सकता है। इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति आवासीय स्थल के रूप में

आवंटित भूमि पर कब्जा कर लेता है, तो एक बार बेदखल होने के बाद, उसके खिलाफ अधिनियम की धारा 122-डी(2) के तहत आपराधिक अभियोजन शुरू करके कार्यवाही की जा सकती है। जिला कलेक्टर यह सुनिश्चित करेंगे कि धारा 122-डी के तहत बेदखली की कार्यवाही के अलावा, ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही भी शुरू की जाए।

25. उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों को ध्यान में रखते हुए, सभी रिट याचिकाओं का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है और जिला कलेक्टरों और जिले के अन्य राजस्व अधिकारियों को उचित कार्रवाई करने और इस निर्णय में की गई टिप्पणियों और यूपी जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार कार्य करने का निर्देश दिया जाता है। बेदखली की कार्यवाही की निगरानी और बेदखली के आदेशों के कार्यान्वयन के लिए ऊपर उल्लिखित सरकारी आदेशों के तहत विकसित तंत्र जारी रहेगा।

जगत नारायण और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2015 (3) एडब्ल्यूसी 2579] के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"29. सम्मान के साथ, हम पाते हैं कि एकल न्यायाधीश का यह विचार कि बेदखली के आदेश को बेदखली के बदले नुकसान के भुगतान के आदेश द्वारा

प्रतिस्थापित किया जा सकता है, कानून के अनुरूप नहीं है। बुधई (उपरोक्त) के मामले में, एकल न्यायाधीश की राय थी कि यदि गांव सभा से संबंधित 100 से 200 वर्ग मीटर भूमि के 'छोटे हिस्से' पर, एक व्यक्ति ने अपना घर बनाया है और भूमि किसी अन्य सार्वजनिक उद्देश्य के लिए सुरक्षित नहीं है और घर लंबे समय से अस्तित्व में है, तो कब्जेदार को बेदखल करने का निर्देश देना उचित नहीं होगा। सुखदेव (उपरोक्त) मामले में, न्यायाधीश ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति 12 साल से अधिक समय से कब्जे में है, तो बेदखली के बजाय, हर्जाने का पंचाट उचित राहत होगी। सिया राम (उपरोक्त) मामले में, एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण यह था कि यदि याचिकाकर्ता या कोई अन्य व्यक्ति, जो कार्यवाही में पक्षकार है, ने भूमि के एक छोटे से हिस्से पर लगभग 200 से 300 वर्ग मीटर के विज्ञापन में एक घर का निर्माण किया है और घर लगभग 10 वर्षों से अस्तित्व में है, तो न्यायालय उस भूमि के निपटान पर विचार कर सकता है जिस पर रहने वाले द्वारा कब्जे के समय भूमि के बाजार मूल्य के भुगतान पर, घर का निर्माण किया गया है। हमने एकल न्यायाधीश के निर्णयों में कानून के इस कथन को अस्वीकार करने के अपने कारणों का पहले ही उल्लेख कर दिया है। अधिनियम में ऐसी किसी अवधि पर विचार नहीं किया गया है और न ही अधिनियम ने धारा 122-ख की उपधारा (4-च) में ऐसी कोई श्रेणी बनाई है।

30. इन कारणों से, हम संदर्भ का उत्तर इस प्रकार देते हैं:

(i) अजंता उद्योग मंडल विद्यालय (उपरोक्त), बुधई (उपरोक्त), सुखदेव (उपरोक्त), किशोर सिंह (उपरोक्त) और सिया राम (और इसी पंक्ति का अनुसरण करने वाले अन्य निर्णय) के निर्णयों में एकल न्यायाधीश द्वारा निर्धारित कानून कानून में सही स्थिति को नहीं दर्शाता है और इसलिए उन निर्णयों को रद्द कर दिया जाता है;

(ii) कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध धारा 122-ख के तहत बेदखली का आदेश पारित किया गया है, उन आधारों पर बेदखली के विरुद्ध संरक्षण का हकदार नहीं होगा जो उपर्युक्त मामलों में एकल न्यायाधीशों के पास हैं। एक बार जब विधायिका ने धारा 122-बी की उप-धारा (4-एफ) में एक विशिष्ट प्रावधान लागू करके, एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान किया है जो धारा 122-बी के अन्य पूर्ववर्ती उप-वर्गों को ओवरराइड करता है, तो यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, एक नई विधायी श्रेणी बनाने और कानून के विपरीत परमादेश जारी करने के लिए, न्यायालय के लिए खुला नहीं होगा;

(iii) सुखदेव (उपरोक्त) में इस आशय का निर्णय कि यदि कोई व्यक्ति 12 वर्ष से अधिक समय से कब्जे में है, तो बेदखली

के बजाय, हर्जाना देना उचित राहत होगी, कानून में सही स्थिति व्यक्त नहीं करता है। विधायिका द्वारा ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है और न्यायालय के लिए एक नई विधायी श्रेणी शुरू करने या सीमा की अवधि शुरू करने के लिए खुला नहीं होगा जैसा कि ऊपर उल्लिखित एकल न्यायाधीश के निर्णयों में किया जाना था।

31. डिवीजन बेंच के संदर्भ में, तदनुसार, उत्तर दिया जाता है। रिट याचिका को अब उत्तर दिए गए संदर्भ के आलोक में निपटान के लिए कार्य के रोस्टर के अनुसार नियमित पीठ के समक्ष रखा जाएगा।

दयाराम यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 (6) एडीजे 275 (डीबी) के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"5. इसलिए, हमारा विचार है कि आज से एक महीने की अवधि के भीतर, प्रधान सचिव (राजस्व) इस न्यायालय के 28 मई 2014 के निर्णय और आदेश की एक प्रति और इस निर्णय की एक प्रति सभी जिला कलेक्टरों को प्रसारित करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाएंगे। इस समस्या का समाधान विभिन्न स्तरों पर किया जाएगा। प्रथमतः, जहां अनधिकृत अतिक्रमणों की शिकायतें प्राप्त हुई हैं, जिला कलेक्टरों द्वारा इन शिकायतों को विधिवत रूप से दर्ज किया जाना चाहिए और कानून के अनुसार सार्वजनिक उपयोग की भूमि पर

अतिक्रमण से निपटने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। प्रशासन में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए, प्रधान सचिव (राजस्व) दिशा-निर्देश तैयार करेंगे जो यह सुनिश्चित करेंगे कि अनधिकृत अतिक्रमण की सभी शिकायतें दर्ज की जाएं। शिकायतों का विवरण इस तरह से रखा जाना चाहिए जो सार्वजनिक निरीक्षण के लिए खुला हो ताकि नागरिकों को शिकायतों और शुरू की गई कार्यवाही के भाग्य के बारे में जानने में सक्षम बनाया जा सके। दूसरे, धारा 67 के तहत कार्यवाही शुरू करने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित किया जाना चाहिए ताकि शिकायतों की शीघ्रता से जांच की जा सके और कानून की उचित प्रक्रिया के साथ कार्यवाही अपनाई जा सके और बिना देरी के समाप्त हो सके। परिपत्र में शिकायतों के निपटारे, जांच पूरी करने और प्रवर्तन के लिए उठाए जाने वाले कदमों के लिए समय सीमा निर्धारित करने का भी प्रावधान होगा। प्रधान सचिव (राजस्व) को निर्देश दिया जाता है कि वे ऊपर उल्लिखित नियम 67(6) के अधिदेश को उजागर करें। तीसरा, जहां धारा 67 के तहत आदेश पारित किए गए हैं (या जैसा भी मामला धारा 122-बी के तहत पहले की कार्यवाही में हो सकता है), यह आवश्यक है कि आदेशों का अनुपालन कानून के लागू प्रावधानों के तहत विधिवत किया जाना चाहिए।

6. धारा 122-बी के तहत या धारा 67 के तहत आदेशों का गैर-प्रवर्तन भी एक गंभीर

मामला है क्योंकि यह अनधिकृत अतिक्रमणों को हटाने के आदेशों के अनुपालन को लागू करने के लिए प्रशासन की ओर से कर्तव्यों की उपेक्षा के समान है। निस्संदेह, जो व्यक्ति कार्यवाही और आदेशों से प्रभावित होते हैं, वे कानून के अनुसार अपने अधिकारों और उपायों को आगे बढ़ाने के हकदार हैं। इसलिए, जब ये मुद्दे बार-बार इस न्यायालय के समक्ष आते हैं, तो यह सत्यापित करने के उद्देश्य से एक निर्देश जारी किया जाता है कि क्या आदेश क्षेत्र में बना हुआ है या पुनरीक्षण मंच के समक्ष किसी अन्य कार्यवाही का विषय है। जहां स्थगन प्रदान किया गया है और जहां पुनरीक्षण उपायों का अनुसरण किया जाता है, मामले को शीघ्र निष्कर्ष पर लाया जाना चाहिए। ये दिशानिर्देश, जो हमने ओम प्रकाश वर्मा (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच के फैसले के अलावा निर्धारित किए हैं, प्रमुख सचिव (राजस्व) को दिशानिर्देशों के माध्यम से हैं, जो ऐसे मामलों और राजस्व से संबंधित मामलों में प्रशासन के प्रमुख हैं। अब हम उम्मीद करते हैं कि प्रधान सचिव जिला प्रशासन की ओर से जवाबदेही सुनिश्चित करने और शासन में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए एक पूरी कार्य योजना तैयार करने की आवश्यकता के लिए अधिमानतः आज से दो महीने की अवधि के भीतर अपने दिमाग का विधिवत उपयोग करेंगे। राज्य भूजल संसाधनों की कमी के परिणामस्वरूप गंभीर सूखे से गुजर रहा है। इस स्थिति का अधिकांश हिस्सा सार्वजनिक उपयोग के प्रयोजनों के लिए

निर्धारित स्थानों के बड़े पैमाने पर अतिक्रमण का परिणाम है, जिसमें हरित क्षेत्र, चरागाह भूमि और तालाब आदि शामिल हैं। जब तक स्थिति को सुधारने के लिए गंभीर कदम नहीं उठाए जाते, स्थिति वर्तमान से अधिक गंभीर हो जाएगी।

7. इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय ओम प्रकाश वर्मा (उपरोक्त) में जारी किए गए दिशानिर्देशों को दोहराने और जनता के हितों को सुरक्षित करने के लिए प्रवर्तन की प्रक्रिया को मजबूत करने के लिए राज्य को और निर्देश देने के लिए विवश होगा।

8. जहां तक दो सूचियों (अनुलग्नक -14 और 15) का संबंध है, हम कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट को रिट याचिका में निर्धारित तथ्यों का उचित सत्यापन करने का निर्देश देते हैं। जहां कार्यवाही लंबित है, उन्हें शीघ्रता से समाप्त किया जाएगा। जहां आदेश पारित किए गए हैं और प्रवर्तन की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जिला प्रशासन यह सत्यापित करने के बाद कानून के अनुसार आवश्यक कदम उठाएगा कि आदेश जारी हैं और किसी उच्च मंच द्वारा रोक या संशोधित नहीं किए गए हैं।

राम लौट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2016 (34) एलसीडी 2458] के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"8. मामले के गुण-दोष में प्रवेश किए बिना, मेरा विचार है कि शिकायतकर्ता होने के नाते याचिकाकर्ता धारा 122-बी यूपीजेडए. & एल.आर. अधिनियम या उसके बाद पसंद किए गए पुनरीक्षण के तहत शुरू की गई कार्यवाही में आवश्यक या उचित पक्ष नहीं हो सकता है और उस आधार पर तत्काल रिट याचिका दायर कर सकता है। उन्हें 'व्यथित व्यक्ति' नहीं कहा जा सकता।

राम बिहारी द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2017 (135) आरडी 156] के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"15. यह स्थापित कानून है कि एक वैध सर्वेक्षण आवश्यक रूप से निश्चित बिंदुओं के आधार पर किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में या कथित सर्वेक्षण के बाद तैयार नक्शे में किसी निश्चित बिंदु का उल्लेख नहीं किया गया है। इसके अलावा, मानचित्र में कोई माप नहीं है। इसलिए रिपोर्ट कानून के अनुसार नहीं थी और आक्षेपित आदेश का आधार नहीं हो सकती थी।

16. तदनुसार, मैं दिनांक 02.06.2006 के आक्षेपित आदेश को रद्द करता हूं और मामले को पुनरीक्षण न्यायालय, मुख्य राजस्व अधिकारी को वापस भेजता हूं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निश्चित बिंदुओं के आधार पर और सर्वेक्षण के दौरान किए गए मापों को

मानचित्र में दर्ज करने के बाद उचित सर्वेक्षण किया जाए।

21. रिट याचिका संख्या-37953 वर्ष 2006 की अनुमति दी जाती है और मामले को मुख्य राजस्व अधिकारी को निर्णय के मुख्य भाग में निहित निर्देशों के अनुसार आगे बढ़ने के लिए भेजा जाता है। श्री राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2020 (38) एलसीडी 398] के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"14. केवल इसलिए कि वरीयता क्रम में निचले व्यक्ति ने गाँव सभा की भूमि पर अतिक्रमण किया है, उसे धारा 67A का लाभ तब तक नहीं दिया जा सकता और न ही दिया जाना चाहिए जब तक कि वह स्पष्ट रूप से यह स्थापित करने की स्थिति में न हो कि वरीयता में उच्च व्यक्ति गाँव में उपलब्ध नहीं है। धारा 67 ए की किसी भी अन्य व्याख्या के परिणामस्वरूप बहुत अन्याय होगा क्योंकि एक अनधिकृत कब्जेदार को केवल उसके या उसके अवैध रूप से गाँव सभा की संपत्ति पर अतिक्रमण करने के कारण इसका लाभ दिया जाएगा, इसके बावजूद कि अन्य जरूरतमंद और पसंद में उच्च व्यक्ति गाँव में उपलब्ध हैं।

15. इसलिए, और ऊपर दिए गए कारणों के लिए, यह न्यायालय यह मानने के लिए विवश है कि न केवल इस रिट याचिकाओं में जारी भूमि संहिता की धारा

63 द्वारा शासित भूमि नहीं है, क्योंकि इसे आबादी स्थल के रूप में आवंटन के लिए सुरक्षित नहीं किया गया है, याचिकाकर्ता भी, प्रथम दृष्टया, धारा 67 ए के लाभ के लिए पात्र नहीं हैं क्योंकि उनके आवेदन आवश्यक दलीलों से परे हैं। इसलिए दोनों आधारों पर धारा 67ए का लाभ याचिकाकर्ताओं को नहीं दिया जा सकता है।

घनश्याम वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [2021 (39) एलसीडी 2021] के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"20. प्रस्तुत मामले में प्रतिपक्षी संख्या-5 के खिलाफ 'नवीन पत्नी' भूमि के संबंध में कार्यवाही की गई थी, जो गाँव सभा में निहित है, हालांकि, नोटिस को इस आधार पर वापस ले लिया गया था कि प्रतिपक्षी संख्या-5 ने भूमि पर अतिक्रमण नहीं किया था। ग्राम पंचायत के प्रत्येक सदस्य को इस संबंध में कानून के प्रावधानों के अध्यधीन गाँव सभा की भूमि पर प्रयोक्ता का अधिकार है, जो इसके सदस्यों के लाभ के लिए है। प्रत्येक सदस्य का यह भी कर्तव्य है कि वह न केवल अतिक्रमण करे बल्कि यह भी देखे कि ग्राम सभा के हितों की रक्षा के लिए अन्य लोग अतिक्रमण न करें। याचिकाकर्ता गाँव सभा के सदस्य होने के नाते और भूमि 'नवीन पक्ष' होने के नाते गाँव सभा में निहित है, जिस पर वे आरोप लगाते हैं कि अतिक्रमण किया गया है, सहायक कलेक्टर के आदेश से 'व्यथित व्यक्ति' होगा जिसके द्वारा

कथित अतिक्रमणकारी को जारी नोटिस वापस ले लिया गया है क्योंकि गांव सभा भूमि के अतिक्रमण से वे लाभ जो गांव सभा के सदस्य कानूनी रूप से प्राप्त करने के हकदार हो सकते हैं, उस अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा।

उक्त के दृष्टिगत प्रमुख सचिव/अपर मुख्य सचिव, राजस्व आठ सप्ताह के भीतर निम्नलिखित बिन्दुओं पर शपथ पत्र दाखिल करेंगे:-

(i) पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में ग्राम सभा की भूमि के अतिक्रमण से संबंधित लंबित मामलों की संख्या और उसमें शामिल कुल क्षेत्रफल।

(ii) उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने के बाद स्थापित अतिक्रमण से संबंधित लंबित प्रकरणों का निर्णय निर्धारित समय में अर्थात् उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2016 के अंतर्गत प्रदत्त 90 दिनों में न किए जाने के कारण तथा 30प्र0 राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों एवं उसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत संस्थित समान प्रकृति के प्रकरणों की कार्यवाही का समापन न किए जाने के कारण भी उत्तरदायी हैं।

(iii) अतिक्रमणों से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान के संबंध में सुझाव।

(iv) नियत समय में ग्राम सभा/सार्वजनिक उपयोग भूमि पर अतिक्रमण के संबंध में

उचित कार्रवाई न करने के लिए दोषी राजस्व अधिकारियों के विरुद्ध क्या कार्रवाई की गई है।

उपर्युक्त के लिए, प्रधान सचिव/अपर मुख्य सचिव, राजस्व से संगत सांविधिक प्रावधानों अर्थात् उत्तर प्रदेश जेड.ए. & एल.आर. अधिनियम की धारा 122 बी (1) और 122 डी (1); नियम (ओं) 115A(1), 115C, 115D, 115F और 115J यूपी जेड.ए. & एल.आर.. नियमों के; पंचायत राज नियमों के नियम 47; भू-अभिलेख नियमावली के अध्याय II, अध्याय A-V और अध्याय XXXVII; उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 60, 61 और 67 इसके तहत बनाए गए इस मुद्दे पर सरकारी आदेश और ऊपर उल्लिखित निर्णय भी, नियमों के साथ पठित है।

जहां तक इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.08.2022 के अंतरिम आदेश का संबंध है, इसे निम्नलिखित शब्दों में संशोधित किया गया है:-

(i) राने राम जानकी मंदिर को और कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाएगा।

(ii) नए राम जानकी मंदिर का निर्माण सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट, तहसील-बिलग्राम, जिला-हरदोई के पर्यवेक्षण में निर्धारित मानदंडों के अनुसार पूरा किया जाए।

(iii) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पुराने राम जानकी मंदिर को गिराए जाने के संबंध में विस्तृत जांच की जाए और लिस्टिंग की अगली तारीख तक इस न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए।

(iv) जिला मजिस्ट्रेट पुराने राम जानकी मंदिर के जीर्णोद्धार/निर्माण की व्यवहार्यता के बारे में भी इस न्यायालय को अवगत कराएंगे।

(v) राजस्व अधिकारी जारी किए गए गातों पर किसी प्रकार के अतिक्रमण की अनुमति नहीं देंगे।

इस मामले को 15.02.2023 को शीर्ष पांच मामलों में सूचीबद्ध/रखें।

इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य को भेजें।

3. दिनांक 05.8.2022 के आदेश में जारी इस न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में, जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई ने 29.08.2022 को एक व्यक्तिगत हलफनामा दायर किया है। इसके अलावा, जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई ने न्यायालय को यह बताने के लिए दिनांक 15/16.02.2023 को एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामा भी दायर किया है कि प्रस्तुत जनहित याचिका में इस न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे निर्देशों का अक्षरशः पालन किया गया है। इसके अलावा, संबंधित दस्तावेज/राजस्व रिकॉर्ड और प्रश्नगत

स्थल के रंगीन फोटोग्राफ दायर किए गए हैं ताकि सक्षम राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों की प्रामाणिकता को दर्शाया जा सके। इतना ही नहीं, प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ का व्यक्तिगत शपथ पत्र 16.02.2023 को दायर किया गया है। इसके बाद, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के प्रमुख सचिव का एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामा 22.03.2023 को दायर किया गया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि राजस्व विभाग ने इस न्यायालय के दिनांक 19.12.2022 के आदेश द्वारा जारी निर्देशों, सरकारी आदेश और राजस्व बोर्ड द्वारा जारी किए जा रहे आदेश आदि का अनुपालन किया है।

4. इसके अलावा, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, हरदोई ने 28.08.2022 को जवाबी हलफनामा दायर किया है और निजी प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 ने भी 14.02.2023 को अपना जवाबी हलफनामा दायर किया है।

5. जनहित याचिका, व्यक्तिगत हलफनामे, लघु जवाबी हलफनामे और प्रति-शपथ पत्र के अवलोकन के बाद जो उन हलफनामों और पक्षकारों के अधिवक्ताओं की दलीलों के साथ संलग्न किए गए हैं, यह देखना उपयुक्त होगा कि प्रस्तुत जनहित याचिका में प्रार्थना की गई प्रार्थनाएं बड़े पैमाने पर सार्वजनिक हित में प्रतीत होती हैं, लेकिन निजी प्रतिपक्षी संख्या-6 के जवाबी हलफनामे पर विचार करने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका संख्या-7 और 8 में यह उल्लेख दिया है कि प्रस्तुत जनहित याचिका गुप्त उद्देश्यों के साथ दायर की गई है क्योंकि निजी प्रकृति की

शिकायत करने के कारण प्रस्तुत जनहित याचिका दायर की गई है, इसलिए, मैं पहले पूर्वोक्त पहलू की जांच करूंगा।

6. जनहित याचिका के पैरा-4 में, याचिकाकर्ता ने कहा है कि इस मामले में उसका कोई व्यक्तिगत या निजी हित नहीं है और जनहित याचिका के परिणाम से उसे या उससे जुड़े किसी भी व्यक्ति को कोई अनुचित लाभ नहीं होगा, लेकिन पैरा-22 गाटा संख्या-234, 256, 257-ख और 255 के बारे में इंगित करता है जो कथित रूप से सार्वजनिक उपयोगिता भूमि हैं, हालांकि पहली जगह में गाटा संख्या-यानी 256 और 257-ख को जनोपयोगी भूमि बताया गया है। इसलिए, जनहित याचिका की सामग्री के अवलोकन से यह स्पष्ट नहीं है कि जनहित याचिका के पैरा-22 में गाटा संख्या-234 और 255 के अलावा अन्य क्यों इंगित किया गया है। पी.आई.एल. के साथ संलग्न खतौनी की प्रतियों के अनुसार अनुबंध सं-3, 4 और 5 जिन्हें पैरा-22 और ग्राउंड सं-1 में दर्शाया गया है, के अनुसार यह उल्लेख किया गया है कि खतौनी के मामले में दिनांक 11-1-2010 को 10000 करोड़ रुपए से अधिक की राशि जारी की गई है। (viii) के अनुसार गाटा संख्या-255 सार्वजनिक उपयोगिता भूमि नहीं है, अतः यह समझा नहीं पा रहा है कि जनहित याचिका में गाटा सं-255 का उल्लेख क्यों किया गया है।

7. निजी प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 के अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामे के पैरा-4 और 5 में संकेत दिया है कि प्रस्तुत जनहित याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई है ताकि गाटा संख्या-255 में स्थित उसकी संपत्ति की रक्षा की

जा सके, जिसके साथ दीवानी वाद संख्या-32 वर्ष 2022 को प्रभावित करने वाले स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर दीवानी वाद की प्रति, सिविल जज, सीनियर डिवीजन, हरदोई की अदालत के समक्ष लंबित याचिका दायर करने के बाद, इसलिए, यह कहा गया है कि प्रस्तुत जनहित याचिका को जनहित याचिका के रूप में नहीं माना जा सकता है, लेकिन यह याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत हित में दायर किया गया है। जवाबी हलफनामे में यह भी संकेत दिया गया है कि याचिकाकर्ता के नाम पर गाटा संख्या-255 दर्ज है। राजस्व अभिलेख में गाटा संख्या-256 को रामजानकी मंदिर और गाटा संख्या-257-ख को आबादी और पुराना मंदिर के रूप में दर्ज किया गया है।

8. दीवानी वाद (एस.सी.ए का एनेश्योर संख्या-1) की प्रति की ओर और ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसमें प्रस्तुत याचिकाकर्ता वादी संख्या-2 है, जबकि इस पी.आई.एल. के निजी प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 पूर्वोक्त वाद के प्रतिवादी संख्या-1, 2 और 3 हैं। पूर्वोक्त वाद की विषय वस्तु गाटा संख्या-255 है जिसमें याचिकाकर्ता और अन्य वादी ने प्रार्थना की कि प्रतिवादी संख्या-1, 2 और 3 (प्रस्तुत जनहित याचिका के प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8) के खिलाफ डिक्री जारी की जाए, जिसमें उन्हें उपरोक्त गाटा संख्या पर खड़े पुराने पेड़ों को नहीं काटने और पूर्वोक्त गाटा पर निर्मित दुकानों को ध्वस्त नहीं करने से रोका जाए।

9. निजी प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 के अधिवक्ता ने कहा है कि इस आशय का पाठ जनहित याचिका में नहीं दिया गया है। हालांकि,

जनहित याचिका के पैरा-20 से 22 में याचिकाकर्ता ने इस आशय का उल्लेख दिया है कि प्रतिपक्षी संख्या-6, 7 और 8 सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना हरे पेड़ों को अवैध रूप से काट रहे हैं जो सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर खड़े थे। याचिकाकर्ता ने कहा है कि गाटा संख्या-234, 256, 257-ख और 255 सार्वजनिक उपयोगिता भूमि हैं। इस जनहित याचिका में इस आशय के विशिष्ट आधार आधार संख्या-(v) से (vii) के तहत लिए गए हैं। इसलिए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने जनहित याचिका में कुछ तथ्यों का संकेत दिया है जो एक दीवानी वाद में इंगित किए गए हैं, लेकिन पी.आई.एल. में यह इंगित नहीं किया गया है कि उसने कोई दीवानी वाद दायर किया है जो सिविल जज, सीनियर डिवीजन, हरदोई के समक्ष विचाराधीन है। उपरोक्त के मददेनजर, प्रस्तुत जनहित याचिका को एक वास्तविक तरीके से दायर नहीं किया गया कहा जा सकता है, लेकिन यह याचिकाकर्ता के दुर्भावनापूर्ण इरादे का परिणाम है, जिसके दिमाग में प्रासंगिक तथ्यों को छिपाते हुए इस जनहित याचिका को दायर करने के लिए गलत इरादे और बाहरी डिजाइन हैं।

10. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, मैं गुरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2005) 5 एस.सी.सी. 136 में रिपोर्ट किए गए मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के पैरा-10 का उल्लेख करना चाहूंगा, जो निम्नानुसार है: -

"10. जनहित याचिका एक ऐसा हथियार है जिसका उपयोग बहुत सावधानी और सतर्कता के

साथ किया जाना चाहिए और न्यायपालिका को यह देखने के लिए बेहद सावधान रहना होगा कि जनहित के सुंदर पर्दे के पीछे एक बदसूरत निजी द्वेष, निहित स्वार्थ और/या प्रचार की मांग छिपी नहीं है। इसे नागरिकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए कानून के शस्त्रागार में एक प्रभावी हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाना है। जनहित याचिका के आकर्षक ब्रांड नाम को शरारत के संदिग्ध उत्पादों के लिए उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसका उद्देश्य वास्तविक सार्वजनिक गलत या सार्वजनिक क्षति का निवारण होना चाहिए न कि प्रचार उन्मुख या व्यक्तिगत प्रतिशोध पर आधारित होना चाहिए। जैसा कि ऊपर बताया गया है, न्यायालय को यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि व्यक्तियों का एक निकाय या जनता का सदस्य, जो अदालत का दरवाजा खटखटाता है, वह सदाशयी कार्य कर रहा है और व्यक्तिगत लाभ या निजी मकसद या राजनीतिक प्रेरणा या अन्य परोक्ष विचार के लिए नहीं। न्यायालय को अपनी प्रक्रिया का दुरुपयोग नकाबपोश प्रेतों द्वारा किए जाने की अनुमति नहीं देनी चाहिए जो कई बार पीछे से निगरानी करते हैं। निहित स्वार्थ वाले कुछ व्यक्ति या तो आदत के बल पर या अनुचित उद्देश्यों से न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने के शगल में लिप्त होते हैं और खुद को समृद्ध बनाने के लिए एक अच्छे सौदे के लिए सौदेबाजी करने की कोशिश करते हैं। अक्सर वे कुख्याति या सस्ती लोकप्रियता जीतने की इच्छा से प्रेरित होते हैं। ऐसे व्यस्त निकायों की याचिकाएं दहलीज पर अस्वीकृति द्वारा और अनुकरणीय लागतों के साथ उपयुक्त मामलों में फेंकने के योग्य हैं।

11. इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तरांचल राज्य बनाम बलवंत सिंह चौफल और अन्य में दिए गए अपने बहुत ही प्रसिद्ध फैसले में (2020)3 एस.सी.सी. 402 में जनहित याचिका से संबंधित बारीक पहलुओं पर विचार किया है और कहा है कि जनहित याचिका जो गुप्त उद्देश्यों और बाहरी डिजाइन के साथ दायर की गई है, उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। पैरा-143, 144, 145, 170 और 180 को यहां-नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

"143. दुर्भाग्य से, हाल ही में, यह देखा गया है कि इस तरह के एक महत्वपूर्ण क्षेत्राधिकार को अदालतों द्वारा बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ बनाया और पोषित किया गया है, जिसका परोक्ष उद्देश्यों के साथ कुछ याचिकाएं दायर करके स्पष्ट रूप से दुरुपयोग किया जा रहा है। हम समझते हैं कि अब समय आ गया है जब सत्य और वास्तविक जनहित याचिका को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जबकि तुच्छ जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। हमारी सुविचारित राय में, हमें इस देश के लोगों के व्यापक हित में इस महत्वपूर्ण क्षेत्राधिकार की रक्षा और संरक्षण करना होगा लेकिन हमें न्यायालयों द्वारा मौद्रिक और गैर-मौद्रिक निर्देशों के आधार पर इसके दुरुपयोग को रोकने और ठीक करने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए।

"144. बाल्को कर्मचारी संघ (सेवानिवृत्त) बनाम बाल्को कर्मचारी संघ में, भारत संघ और अन्य, (2002)2 एस.सी.सी. 333: ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 350, इस न्यायालय ने माना कि हाल के दिनों में, जनहित याचिकाओं के दुरुपयोग के

मामलों में वृद्धि हुई है। तदनुसार, न्यायालय ने यह सुनिश्चित करने के लिए कई रणनीतियां तैयार की हैं कि जनहित याचिका के आकर्षक ब्रांड नाम को शरारत के संदिग्ध उत्पादों के लिए उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। सबसे पहले, उच्चतम न्यायालय ने पी.आई.एल. में "वास्तविक अभिनय" करने वाले व्यक्तियों तक सीमित कर दिया है। दूसरे, उच्चतम न्यायालय ने तुच्छ और कष्टप्रद जनहित याचिकाओं के खिलाफ एक निवारक के रूप में "अनुकरणीय लागत" लगाने को मंजूरी दे दी है। तीसरे, उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालयों को निर्देश दिया है कि वे जनहित याचिकाओं पर विचार करने के लिए और अधिक चयनात्मक रवैया अपनाएं।

145. एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ, 1981 पूरक एस.सी.सी. 87 के मामले में, इस न्यायालय ने पाया है कि यह उदार मानक "वास्तविक अभिनय" व्यक्तियों के लिए खड़े होने को सीमित करना महत्वपूर्ण बनाता है। जनहित याचिका की आड़ में तुच्छ और कष्टप्रद याचिकाओं पर विचार करने से बचने के लिए, न्यायालय ने व्यक्तियों के दो समूहों को जनहित याचिका में खड़े होने से बाहर कर दिया है। सबसे पहले, उच्चतम न्यायालय ने "मध्यस्थता करने वाले इंटरलॉपर्स" को खड़ा करने से इनकार कर दिया है। दूसरा, न्यायालय ने व्यक्तिगत लाभ के लिए जनहित याचिका लाने वाले हस्तक्षेपकर्ताओं के सामने खड़े होने से इनकार कर दिया है।

170. दत्ताराज नाथूजी थावरे वि. महाराष्ट्र राज्य (2005)1 एस.सी.सी. 590 के मामले में, इस

न्यायालय ने फिर से चेतावनी दी और कहा कि अदालत को याचिका को सावधानीपूर्वक देखना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इसके अधिकार क्षेत्र को लागू करने से पहले मामले में वास्तविक जनहित शामिल है। न्यायालय को सावधान रहना चाहिए कि उसके अधिकार क्षेत्र का दुरुपयोग किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय द्वारा अपने व्यक्तिगत कारणों को आगे बढ़ाने या अपने व्यक्तिगत द्वेष या द्वेष को संतुष्ट करने के लिए नहीं किया जाता है। बेईमान वादियों द्वारा न्याय की धारा को प्रदूषित नहीं होने दिया जाना चाहिए।

180. हमारे सुविचारित विचार में, अब जनहित याचिका को सुव्यवस्थित करना अनिवार्य हो गया है।

12. उपरोक्त विचार के अनुसार प्रस्तुत जनहित याचिका के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ गुरपाल सिंह (उपरोक्त) और बलवंत सिंह चौफल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों को देखते हुए, मुझे लगता है कि प्रस्तुत जनहित याचिका को वास्तविक तरीके से दायर नहीं किया गया है क्योंकि प्रासंगिक तथ्यों को छुपाया गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने निजी प्रतिपक्षियों के साथ निजी स्कोर का निपटारा किया है इसलिए, प्रस्तुत जनहित याचिका केवल पूर्वोक्त आधार पर खारिज की जा सकती है। हालाँकि, 14.02.2023 को निजी प्रतिपक्षियों द्वारा जवाबी हलफनामा दायर करने से पहले इस न्यायालय ने 19.12.2022 (उपरोक्त) को एक विस्तृत आदेश पारित किया है। इतना ही नहीं, जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई के 29.08.2022 के एक

व्यक्तिगत हलफनामे में यह तथ्य कि याचिकाकर्ता और निजी प्रतिपक्षियों के बीच कोई भी दीवानी मुकदमा विचाराधीन है, इस न्यायालय के ध्यान में नहीं आया है, हालाँकि, यह संकेत दिया गया है कि गाटा संख्या-255 एक सार्वजनिक उपयोगिता भूमि नहीं है, लेकिन उपरोक्त गाटा याचिकाकर्ता और अन्य सह-कार्यकाल धारकों के नाम पर राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज है और इस तथ्य को फॉर्म CH-41 और CH-45 से भी पता लगाया जा सकता है। इसलिए, यह तथ्य कि याचिकाकर्ता और निजी प्रतिपक्षियों के बीच एक दीवानी मुकदमा विचाराधीन है, इस न्यायालय के संज्ञान में तब आया है जब निजी प्रतिपक्षियों ने 14.02.2023 को अपना जवाबी हलफनामा दायर किया है।

13. चूंकि उपरोक्त प्रासंगिक तथ्य छुपाया गया था, इसलिए, इस न्यायालय ने दिनांक 05.08.2022, 29.08.2022 और 19.12.2022 के अपने विस्तृत आदेशों में पूर्वोक्त तथ्य के संबंध में कुछ भी नहीं देखा है। हालाँकि, इस न्यायालय के आदेशों के अनुपालन में सक्षम राजस्व अधिकारियों अर्थात् प्रमुख सचिव, राजस्व और जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई द्वारा उचित कदम उठाए गए हैं और प्रमुख सचिव, राजस्व द्वारा उठाए जा रहे उचित कदम निश्चित रूप से जनहित में हैं और वे कदम निश्चित रूप से बड़े पैमाने पर जनहित के लिए फायदेमंद होंगे जैसे कि पूरे उत्तर प्रदेश की गांव सभाओं की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि के लिए है, अतः उन उचित कदमों को आवश्यक रूप से इस आदेश का हिस्सा बनाया जाएगा ताकि संबंधित ग्राम सभा की किसी भी सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर किसी भी अवैध अतिक्रमण

को उन तौर-तरीकों के आलोक में खाली/हटाया जा सके और यदि कोई सक्षम राजस्व अधिकारी/अधिकारी उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता के तहत निर्धारित कानून के अनुसार सख्ती से अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करता है प्रदेश; राजस्व/ भू-कानूनों से संबंधित अन्य सांविधिक निर्देशों के अनुसार चूककर्ता अधिकारियों/ कर्मचारियों के विरुद्ध उपयुक्त एवं उपयुक्त कार्यवाही की जाए।

14. भले ही जनहित याचिका के याचिकाकर्ता का दुर्भावनापूर्ण आचरण प्रासंगिक तथ्य को छिपाते हुए न्यायालय को जनहित याचिका को लागत के साथ खारिज करने के लिए आश्वस्त करता है, लेकिन यदि प्रस्तुत जनहित याचिका को लागत के साथ खारिज कर दिया जाता है, तो उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए उचित और आवश्यक कदम उठाए गए हैं कि पूरे उत्तर प्रदेश की ग्राम सभाओं की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि अतिक्रमण से मुक्त हो और उसी का अस्तित्व हो। राजस्व रिकॉर्ड में दर्शाए गए अनुसार हताश होगा और राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों से संबंधित सक्षम यह सोचेंगे कि विचाराधीन जनहित याचिका पहले ही खारिज कर दी गई है, इसलिए उपर्युक्त जनहित याचिका में जारी किए गए किसी भी निदेश का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए, यहां ऊपर बताए गए कारणों के लिए लागत के साथ प्रस्तुत जनहित याचिका को खारिज करने के बजाय, मैं अंततः उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उठाए गए उचित और न्यायसंगत कदमों पर विचार करते हुए इस जनहित याचिका का निपटान कर रहा हूं, ताकि भविष्य में उन कदमों आदि को एक उदाहरण

के रूप में माना जा सके। इसके अलावा, इस आदेश में जारी किए जा रहे अन्य निर्देशों का भी अक्षरशः पालन किया जाएगा।

15. जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई के दिनांक 15/16.02.2023 के संक्षिप्त जवाबी हलफनामे में यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि दिनांक 19.12.2022 के आदेश के अनुपालन में जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई ने 23.12.2022 को सिटी मजिस्ट्रेट, हरदोई की अध्यक्षता में अन्य सदस्यों यानी उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, बिलग्राम, अतिरिक्त/प्रभारी अधिकारी रिकॉर्ड रूम चकबंदी अधिकारी, हरदोई और अंचल अधिकारी, बिलग्राम के साथ एक टीम का गठन किया। उपरोक्त टीम ने 08.02.2023 को समेकित रिपोर्ट प्रस्तुत की। उपरोक्त टीम द्वारा जांच/पूछताछ के दौरान, याचिकाकर्ता को 27.01.2023 और 06.02.2023 को जांच/पूछताछ के समय उपस्थित रहने के लिए कहा गया था और याचिकाकर्ता उपरोक्त टीम के समक्ष उपस्थित था। उपरोक्त टीम ने 08.02.2023 को अपनी विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसार, मौके पर निरीक्षण के दौरान यह पाया गया कि उक्त मंदिर प्रस्तुत जनहित याचिका दायर करने से पहले ही पूरी तरह से नष्ट हो गया था क्योंकि मंदिर की दीवार के पास एक विशाल बरगद का पेड़ था और उपरोक्त पेड़ की विशाल शाखा दो साल पहले मंदिर की छत पर गिर गई थी। इसके परिणामस्वरूप, मंदिर की छत और दीवार क्षतिग्रस्त हो गई और उसी की मरम्मत और सुधार करने का प्रयास किया गया लेकिन अत्यधिक क्षति के कारण मंदिर किसी भी समय दह सकता है। इसलिए, किसी भी जीवन के

नुकसान के डर से गांव सभा की एक बैठक के बाद एक नए मंदिर का निर्माण किया गया था और कई ग्रामीणों के सुझाव पर सभी मूर्तियों और देवताओं की मरम्मत की गई थी। उक्त मंदिर पूरी तरह से गांव सभा का है। मंदिर या मंदिर के किसी भी हिस्से या गाटा के किसी भी हिस्से पर कोई अवैध कब्जा नहीं पाया गया है, जिस पर मंदिर स्थित है। 'प्रसाद और पूजा सामग्री' को बेचने के लिए इस तरह के गाटे पर कुछ दुकानें बनाई गई हैं, जिन्हें याचिकाकर्ता द्वारा इस कारण से अतिक्रमण करने की कोशिश की जा रही थी कि मंदिर की बाड़ और याचिकाकर्ता का बगीचा बाड़ में एक है। इसलिए याचिकाकर्ता के लिए मंदिर की दुकानों पर अतिक्रमण करना आसान था। हालांकि, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के बाद मौके पर यथास्थिति बनाए रखी गई है।

16. दिनांक 08.02.2023 की रिपोर्ट के अनुसार, वर्तमान में गाटा संख्या-256/0.122 हेक्टेयर राम जानकी मंदिर के रूप में दर्ज है। उक्त भूमि के आंशिक भाग अर्थात् 0.0270 हेक्टेयर (उत्तर में 15 मीटर, दक्षिण में 15 मीटर, पूर्व में 15 मीटर और पश्चिम में 25 मीटर) पर नया भवन और धर्मशाला आंशिक रूप से बनाया गया है। बाकी रकबा को मंदिर के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

17. इसी प्रकार गाटा संख्या-257-ख/0.051 हेक्टेयर आबादी भूमि के रूप में दर्ज है। उक्त भूमि के 6×3 मीटर = 0.001 हेक्टेयर पर शिव मंदिर (पुराना शिव मंदिर) है और 4.40×1.5 मीटर = 0.0006 हेक्टेयर पर नया मंच बनाया गया है और जिस पर देवताओं की मूर्तियां

स्थापित हैं। इसके बगल में 5.50×4.40 मीटर = 0.0024 हेक्टेयर क्षेत्रफल का एक कमरा है। शेष रकबा मंदिर भवन के रूप में उपयोग में है। इसके अलावा, गाटा संख्या-257-केए/0.0510 हेक्टेयर के 0.0165 हेक्टेयर (12 मीटर पश्चिम, 16 मीटर पूर्व, 15 मीटर उत्तर और 8.5 मीटर दक्षिण) पर, राम जानकी मंदिर और धर्मशाला का नया भवन आंशिक रूप से बनाया गया है। शेष रकबा मंदिर भवन के रूप में उपयोग में है।

18. उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसार, याचिकाकर्ता ने 27.01.2023 और 06.02.2023 को निरीक्षण के दौरान अपना बयान दिया, क्योंकि उसके बयान की प्रतियां संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न की गई हैं। उन्होंने कहा है कि पुराना राम जानकी मंदिर 150-200 वर्ष पुराना है और उक्त मंदिर पर ग्राम प्रधान और उनके भाई द्वारा अतिक्रमण किया गया था और उन्होंने दुकानें आदि लगाकर निर्माण भी करवाया था। इस न्यायालय के आदेश के बाद उक्त निर्माण रोक दिए गए थे। नया मंदिर श्री राम जानकी मंदिर की भूमि पर बनाया गया है, जिसका नाम उनके पिता स्वर्गीय रामजी की मृत्यु के नाम पर रखा गया है। यह राम जानकी मंदिर 150-200 साल पुराना था और मंदिर मजबूत स्थिति में बनाया गया था, जिसे वर्तमान ग्राम प्रधान सत्येंद्र प्रताप सिंह पुत्र स्वर्गीय रामजी कनौजिया और उनके दो भाइयों रामेंद्र प्रताप सिंह और जानेंद्र प्रताप सिंह ने मार्च, 2022 से ध्वस्त कर दिया था। इसे ध्वस्त कर दिया गया है, इसका मलबा तालाब के गाटा संख्या-258 में जमा हो गया है और गाटा संख्या-257 में सभी पेड़ काट दिए गए हैं।

ग्राम प्रधान और उसके दो भाइयों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बनाई गई निजी दुकानों और अन्य दीवारों को पुराने मंदिर की उक्त भूमि पर यहां से हटा दिया जाए और इन लोगों से धन वसूलने के बाद सरकारी धन का उपयोग उसी के लिए किया जाएगा। मंदिर का निर्माण उसी के अनुसार होना चाहिए।

19. निरीक्षण के दौरान, यह ध्यान में आया कि पुराने जीर्ण-शीर्ण मंदिर को ग्राम प्रधान द्वारा सरकार से अनुमति प्राप्त किए बिना ध्वस्त कर दिया गया था और जिला प्रशासन को सूचित किए बिना एक नए मंदिर का निर्माण किया गया था। ग्राम प्रधान के उपरोक्त कृत्य को 30प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के विरुद्ध माना गया था, अतः इस सम्बन्ध में शासनादेश जारी किया गया है, जिसके लिए श्री सचेन्द्र सिंह के विरुद्ध 30प्र0 पंचायत राज अधिनियम की धारा 95 के अन्तर्गत नोटिस जारी किये गये हैं। नोटिस की प्रति संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न की गई है।

20. गाटा संख्या-256/0.1120 हेक्टेयर और गाटा संख्या-257-ख/0.0510 हेक्टेयर जन उपयोगिता भूमि है। भूमि प्रबंधन समिति के प्रस्ताव के बिना उन पर निर्माण कार्य करना पूरी तरह से अनुचित था और तत्कालीन क्षेत्र लेखपाल और राजस्व निरीक्षक ने उनके संबंध में तहसीलदार, बिलग्राम और उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, बिलग्राम को कोई जानकारी नहीं दी जिसके लिए तत्कालीन लेखपाल और राजस्व निरीक्षक को दोषी पाया गया है और तत्कालीन क्षेत्र लेखपाल श्री बंधु लाल को प्रतिकूल प्रविष्टि

दी गई थी और तत्कालीन प्रभारी राजस्व निरीक्षक श्री मकरंद प्रसाद वर्मा कड़ी चेतावनी दी गई थी। पर्यवेक्षी उत्तरदायित्व के निर्वहन और लापरवाही के लिए तहसीलदार, बिलग्राम और उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट, बिलग्राम को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है।

21. उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसार, 29.08.2022 के बाद उपरोक्त गाटा नंबरों पर कोई नया निर्माण नहीं किया गया है। चूंकि गाटा संख्या-234 के कुछ हिस्से पर प्रतिपक्षी संख्या-8 के बेटे द्वारा अवैध रूप से अतिक्रमण किया गया है, इसलिए तहसीलदार, बिलग्राम ने उनके खिलाफ यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही शुरू की है और आदेश 06.02.2023 को गुण-दोष के आधार पर पारित किया गया है। इसके अतिरिक्त हरदोई के सम्पूर्ण जनपद में ग्राम सभा की 137.1665 हेक्टेयर भूमि पर अवैध अतिक्रमण हटाने के लिए कुल 1529 प्रकरण गठित कर संहिता, 2006 की धारा 67 तथा 30प्र0 जमींदारी उत्पादन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 122-ख के अन्तर्गत आवश्यक कार्य किया गया है तथा सभी तहसीलदारों को 90 दिनों के निर्धारित समय के भीतर उन प्रकरणों का निर्णय करने के लिए सख्त निर्देश जारी किए गए हैं। संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के साथ तस्वीरें संलग्न हैं।

22. इसलिए, मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने कहा है कि वास्तव में प्रस्तुत जनहित याचिका में प्रार्थना की गई याचनाओं को संतुष्ट किया गया है और प्रस्तुत जनहित याचिका अब निष्फल हो गई है।

23. हालांकि, आगे ध्यान क्रमशः प्रधान सचिव, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश के व्यक्तिगत हलफनामे और लघु जवाबी हलफनामे की ओर आकर्षित किया गया है ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि इस न्यायालय के आदेश दिनांक 19.12.2022 (उपरोक्त) के अनुपालन में कुछ और निर्णय लिए गए हैं ताकि सक्षम राजस्व अधिकारियों/अधिकारियों को ग्राम सभाओं की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवैध अतिक्रमण हटाने के लिए अपने संबंधित कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए पूरा उत्तर प्रदेश सुव्यवस्थित किया जा सके। उन तौर-तरीकों और अपेक्षित कदमों को निम्नानुसार आदेश का हिस्सा बनाया गया है: -

"7. जहां तक अतिक्रमणों से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान का संबंध है, राज्य सरकार और राजस्व प्राधिकरण बोर्ड अपने त्वरित निपटान के लिए लंबित राजस्व मामलों की समीक्षा गुण-दोष के आधार पर कर रहे हैं। इसके अलावा, आयोगों और जिला मजिस्ट्रेटों को उनके अधिकार क्षेत्र के तहत विभिन्न राजस्व न्यायालयों में मामले की स्थिति की मासिक समीक्षा करने के लिए कई निर्देश दिए गए हैं।

A- शासनादेश दिनांक 27.03.2018, जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के संलग्नक संख्या-सीए-5 के रूप में संलग्न की जा रही है। सरकार ने अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले विभिन्न राजस्व न्यायालयों में मामले की स्थिति की समीक्षा करने के लिए आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों के साथ एक बैठक की है।

B. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 18.09.2018 और शासनादेश दिनांक 28.12.2021, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 और धारा 34 से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान और समीक्षा के लिए सभी जिलाधिकारियों को निर्देश जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-CA-6 और CA-7 के रूप में संलग्न की जा रही है।

C. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 09.09.2022, जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-CA-8 के रूप में संलग्न की जा रही है। सभी जिलों के आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को उनके अधिकार क्षेत्र में आने वाले विभिन्न राजस्व न्यायालयों में मामले की स्थिति की समीक्षा करने का निर्देश देना। उन अधिकारियों की पहचान करना जो समयबद्ध तरीके से राजस्व मामलों का निपटान नहीं कर रहे हैं और संबंधित अधिकारी की एसीआर में पर्याप्त प्रविष्टियां देना।

D. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 18.11.2022, जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-CA-9 और दिनांक 26.12.2022 के सरकारी आदेश, जिसकी प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-CA-10 के रूप में संलग्न की जा रही है। सभी जिलों के आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को उनके अधिकार क्षेत्र में राजस्व न्यायालयों का निरीक्षण करने का निर्देश के रूप में संलग्न की जा रही है।

E- राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 12.12.2022, सभी जिलों के जिला मजिस्ट्रेटों को नवंबर, 2022 के अंत में समीक्षा करने और पीठासीन

अधिकारी द्वारा गुण-दोष के आधार पर मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने का निर्देश जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-सीए-11 के रूप में संलग्न की जा रही है।

8. जहां तक दोषी राजस्व अधिकारियों के खिलाफ की गई कार्रवाई का संबंध है, यह प्रस्तुत किया जाता है कि सभी जिलों के आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को गुण-दोष के आधार पर राजस्व मामलों के शीघ्र निपटान के लिए निर्देशित किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 19.01.2023 के पत्र द्वारा दोषी राजस्व अधिकारियों के बारे में आवश्यक जानकारी मांगी गई है और अब तक 14 जिलों से जानकारी प्राप्त हुई है, प्रत्येक जिले से विस्तृत जानकारी इस हलफनामे के साथ संलग्न की गई है। दिनांक 19.12.2022 के आदेश के अनुसरण में आवश्यक जानकारी प्रदान करने के लिए सभी जिलों को दिनांक 10.02.2023 को अनुस्मारक पत्र भी भेजा गया है।

24. उपरोक्त जानकारी प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, उ०प्र०, लखनऊ के व्यक्तिगत शपथ पत्र के माध्यम से दी गई है और अन्य जिलों के संबंध में कुछ और जानकारी देने के लिए कुछ और समय की प्रार्थना की गई है।

25. प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, उ०प्र०, लखनऊ के व्यक्तिगत शपथ पत्र के क्रम में उन्होंने दिनांक 22.03.2023 को संक्षिप्त जवाबी शपथ-पत्र भी दायर किया है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि अवैध अतिक्रमणों को तुरंत क्यों

नहीं हटाया जाता है और पूरे उत्तर प्रदेश के लिए जारी किए जा रहे तौर-तरीके और निर्देश हैं कि वे अवैध अतिक्रमण को तत्परता से हटाने के लिए आवश्यक कार्य करें। दिनांक 22.03.2023 के संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के पैरा-4 से 7 को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"4. इसके अनुसरण में दिनांक 19.01.2023 के पत्र द्वारा सभी जिलों से रिपोर्ट मांगी गई थी। प्रासंगिक जानकारी मांगने वाला यह पत्र राजस्व मंडल, उ०प्र०, लखनऊ द्वारा भेजा गया था। मांगी गई जानकारी दिनांक 15.03.2023 की रिपोर्ट के माध्यम से याचिकाकर्ता को प्रदान की गई है और इसकी प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-एस.सी.ए-1 के रूप में संलग्न की जा रही है।

5. जहां तक लंबित मामलों का निर्णय न करने के कारणों का संबंध है, यह सम्मानपूर्वक निम्नानुसार प्रस्तुत किया जाता है: -

(क) अधिवक्ताओं और विधिज्ञ परिषदों की हड़ताल के कारण।

(ख) क्योंकि संबंधित न्यायालय के पीठासीन अधिकारी प्रशासनिक कर्तव्यों में व्यस्त हैं।

(ग) क्योंकि संबंधित पक्षकार निर्धारित तिथि पर मामले पर बहस नहीं करते हैं और आपत्तियां, साक्ष्य आदि दर्ज करने का समय उनके द्वारा लिया जा रहा है।

(घ) COVID-19 द्वारा बहुत समय लिया गया था।

6. जहां तक अतिक्रमणों से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान का संबंध है, राज्य सरकार और राजस्व प्राधिकरण बोर्ड लंबित राजस्व मामलों की समीक्षा कर रहे हैं ताकि उनके शीघ्र निपटान के लिए गुण-दोष के आधार पर किया जा सके। इसके अलावा आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को उनके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न राजस्व न्यायालयों में मामले की स्थिति की मासिक समीक्षा करने के लिए कई निर्देश दिए गए हैं: -

क. शासनादेश दिनांक 27.03.2018, जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के संलग्नक संख्या-एस.सी.ए-2 के रूप में संलग्न की जा रही है। सरकार ने अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले विभिन्न राजस्व न्यायालयों में मामले की स्थिति की समीक्षा करने के लिए आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों के साथ एक राष्ट्रीय अपराध समिति का गठन किया है।

ख. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 18.09.2018 और शासनादेश दिनांक 28.12.2021, राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 और धारा 37 से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान और समीक्षा के लिए सभी जिला मजिस्ट्रेटों को निर्देश जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-SCA-3 और SCA-4 के रूप में संलग्न की जा रही है।

C. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 09.09.2022, जिसकी प्रति इस शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-SCA-5 के रूप में संलग्न की जा रही है। सभी जिलों के आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को उनके अधिकार क्षेत्र में आने वाले विभिन्न

राजस्व न्यायालयों में मामले की स्थिति की समीक्षा करने के लिए निर्देश देना। उन अधिकारियों की पहचान करना जो समयबद्ध तरीके से राजस्व मामलों का निपटान नहीं कर रहे हैं और संबंधित अधिकारी की एसीआर में पर्याप्त प्रविष्टियां देना है।

D. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 18.11.2022, जिसकी प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-SCA-6 और सरकारी आदेश दिनांक 26.12.2022 के रूप में संलग्न की जा रही है, जिसकी प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-SCA-7 के रूप में संलग्न की जा रही है। सभी जिलों के आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को उनके अधिकार क्षेत्र में राजस्व न्यायालयों का निरीक्षण करने का निर्देश।

E. राजस्व बोर्ड आदेश दिनांक 12.12.2022, जिसकी प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-एस.सी.ए-8 के रूप में संलग्न की जा रही है। सभी जिलों के जिला मजिस्ट्रेटों को नवंबर, 2022 के अंत में समीक्षा करने और पीठासीन अधिकारी द्वारा गुण-दोष के आधार पर मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने का निर्देश।

7. जहां तक दोषी राजस्व अधिकारियों के खिलाफ की गई कार्रवाई का संबंध है, जो नियत समय में गांव सभा/सार्वजनिक उपयोगिता भूमि से अतिक्रमण हटाने के संबंध में उचित कार्रवाई करने में विफल रहे हैं, निम्नलिखित प्रस्तुत किया गया है: -

A: 05 उपमंडलीय मजिस्ट्रेटों के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है और एक

उपखण्ड मजिस्ट्रेट के विरुद्ध आरोप पत्र अनुमोदनार्थ राज्य सरकार को भेजा गया है।

B. 'कठोर चेतावनी 11 तहसीलदारों को दी गई है।

नायब तहसीलदार के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई है। एक राजस्व निरीक्षक के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई है। एक राजस्व निरीक्षक को कठोर चेतावनी दी गई है। 06 राजस्व निरीक्षकों के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू की गई है और एक राजस्व निरीक्षक को निलंबित कर दिया गया है।

06 लेखपालों के विरुद्ध प्राथमिकी 29 लेखपालों को 'कठोर चेतावनी' दी गई है। 13 लेखपालों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई शुरू की गई है, 18 लेखपालों को प्रतिकूल प्रवेश प्रदान किया गया है और 29 लेखपालों को निलंबित किया गया है।

F- एक बीट प्रभारी, एक अधिशासी अभियंता, सिंचाई विभाग को 'कठोर चेतावनी' दी गई है।

दोषी अधिकारियों के खिलाफ की गई कार्रवाई के संबंध में सभी जिलों द्वारा प्रदान की गई रिपोर्ट की प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-एस.सी.ए-9 के रूप में संलग्न की जा रही है।

26. दिनांक 19.12.2022 (उपरोक्त) के आदेश में, इस न्यायालय ने कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे विशिष्ट शासनादेश के संबंध में कुछ निर्देश जारी किए हैं

जैसे हिंच लाल तिवारी (उपरोक्त), पन्ना लाल (उपरोक्त), जगपाल सिंह (उपरोक्त) और साथ ही इस न्यायालय के निर्णयों में: ओम प्रकाश वर्मा (उपरोक्त), जगत नारायण (उपरोक्त), दया राम यादव (उपरोक्त), राम लौट (उपरोक्त), राम बिहारी द्विवेदी (उपरोक्त), श्री राजू (उपरोक्त) और घनश्याम वर्मा (उपरोक्त) और सक्षम राजस्व प्राधिकारी ने उत्तर प्रदेश राज्य के सभी सक्षम राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए कुछ दिशानिर्देश और निर्देश जारी किए हैं, जैसा कि ऊपर विचार किया गया है। इसलिए, यह निर्देश दिया जाता है कि उत्तर प्रदेश राज्य के सभी सक्षम राजस्व अधिकारी/कर्मचारी सर्वोच्च न्यायालय, इस न्यायालय के साथ-साथ राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा जारी किए जा रहे शासनादेश और निर्देशों का अक्षरशः पालन करेंगे, ऐसा न करने पर उन दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों के खिलाफ सख्त और कठोर कार्रवाई की जा सकती है।

27. इसके अतिरिक्त यह पुनः दोहराया जाता है कि उपरोक्त निर्देशों का पालन करते समय सक्षम राजस्व अधिकारी/कर्मचारी उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006, नियमावली 2016, उ0प्र0 भू-राजस्व अधिनियम, 1901 एवं उसके अनुषंगी नियमों आदि, उ0प्र0 जमींदारी उत्सादन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 और उसके सहायक नियम आदि और उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम, 1953 और उसके सहायक नियमों के साथ-साथ राजस्व और समेकन मामलों से संबंधित मामलों से संबंधित अन्य सभी नियमों, विनियमों, मैनुअल आदि का सख्ती से पालन करें। उत्तर प्रदेश राज्य के राजस्व विभाग द्वारा जारी किए गए

दिशानिर्देश, परिपत्र और सरकारी आदेश, जिन पर इस आदेश में विचार किया गया है, इस आदेश का हिस्सा होंगे। इसलिए, सभी सक्षम राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे उन दिशानिर्देशों आदि को इस न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे परमादेश के रूप में लें।

28. कभी-कभी यह देखा गया है कि सक्षम राजस्व प्राधिकारी द्वारा उचित समय के भीतर ग्राम सभा की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि से अवैध अतिक्रमणों को हटाने के लिए उचित अभ्यास/कदम उठाए जाते हैं और कानून के तहत निर्धारित समय के भीतर उचित आदेश भी पारित किए जाते हैं लेकिन उन आदेशों को समय पर निष्पादित करने के लिए कोई गंभीर और उचित कदम नहीं उठाए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप अवैध अतिक्रमण आदि काफी लंबे समय तक बने रहते हैं और त्वरित कदम उठाने का उद्देश्य ही विफल हो जाता है। कुछ मामलों में, मैंने देखा है कि अवैध अतिक्रमण को हटाने के लिए वर्ष 2000 या 2001 या 2002 या 2003 में नियमानुसार उचित आदेश पारित किए जाते हैं लेकिन उन आदेशों को वर्ष 2023 तक निष्पादित नहीं किया गया है और जब कोई जनहित याचिका या अन्य रिट याचिका दायर की जाती है तो उन तथ्यों का पता लगाया जाता है और सत्यापित किया जाता है। इससे न केवल न्यायालय को पीड़ा होती है बल्कि उन मामलों में दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों के विरुद्ध उचित और उपयुक्त कार्रवाई अपेक्षित होती है। संबंधित अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा इस प्रकार लिया गया बहाना यह है कि, पहले के आदेश को

वापस लेने के लिए एक आवेदन विचार के लिए लंबित है, लेकिन जब उस प्रभाव के विशिष्ट निर्देश मांगे जाते हैं, तो यह तथ्य सामने आता है कि यदि आदेश वर्ष 2000 में या उसके बाद पारित किया गया था, तो रिकॉल आवेदन वर्ष 2022 या 2023 में दायर किया जाता है और इस तरह के आवेदन का निपटान न होने के कारण अवैध अतिक्रमण नहीं हटाया जाता है। गौर करने वाली बात यह है कि संबंधित तहसीलदार द्वारा पहला आदेश पारित होने के तुरंत बाद कोई उचित कदम नहीं उठाया गया है।

29. कभी-कभी उन आवेदनों का निपटान कर दिया जाता है, उसके बाद अवैध अतिक्रमणकर्ता अपील दायर करने के लिए कानूनी उपाय का लाभ उठाता है और ऐसी अपील के लंबित होने के कारण अवैध अतिक्रमण को हटाया नहीं जाता है। उपरोक्त अनुचित स्थिति से निपटने के लिए सक्षम राजस्व अधिकारी अर्थात् सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी/अधिकारियों को कानून के तहत निर्धारित अवैध अतिक्रमण को हटाने/खाली करने के लिए पारित किए जा रहे पहले आदेश को जल्द से जल्द निष्पादित करना चाहिए ताकि यदि कोई व्यक्ति इस तरह के आदेश से पीड़ित है तो या तो वह आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दायर करेगा या वह उस आदेश को अपीलीय प्राधिकारी और उपरोक्त दोनों आवेदनों/अपील के समक्ष चुनौती दे सकता है, जैसा भी मामला हो, यथाशीघ्र निर्णय लिया जाना चाहिए ताकि कार्यवाही को अंतिम रूप दिए जाने के तुरंत बाद सार्वजनिक उपयोग की भूमि से अवैध अतिक्रमण हटाने के लिए समुचित कदम उठाए जा सकें। इस तरह अवैध

अतिक्रमण को हटाने में ज्यादा समय नहीं लगेगा।

30. ऐसा प्रतीत होता है कि उचित कदमों को असीमित अवधि के लिए या काफी लंबी अवधि के लिए लंबित रखते हुए, संबंधित राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों के दिमाग में कुछ गुप्त उद्देश्य और बाहरी मंशा हो सकती है या वे कानून के अनुसार अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में इतने कठोर या लापरवाह हैं और दोनों ही मामलों में उन दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों के खिलाफ उचित और उपयुक्त कार्रवाई की जानी चाहिए। इसलिए, उपखण्ड अधिकारी या जिला मजिस्ट्रेट या आयुक्त या राजस्व बोर्ड, जैसा भी मामला हो, को इस पहलू पर सतर्क रहना चाहिए और उन अधिकारियों को चूककर्ता अधिकारियों/कर्मचारियों के उपर्युक्त आकस्मिक या कठोर रवैये पर तत्परता से ध्यान देने के लिए एक तंत्र विकसित करना चाहिए और जैसे ही यह तथ्य उन सक्षम अधिकारियों की जानकारी में आता है, दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों के विरुद्ध उचित एवं उपयुक्त कार्रवाई करने के लिए अपेक्षित कार्रवाई कानून के अनुसार सख्ती से शुरू की जानी चाहिए।

31. निवारण की भावना अनिवार्य है क्योंकि जब तक संबंधित राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों को यह चेतावनी नहीं दी जाती है कि यदि वे कोई कदाचार करते हैं या अपने कानूनी कर्तव्य का निर्वहन करने में अपना कठोर दृष्टिकोण दिखाते हैं, तो उन्हें उचित कार्रवाई/सजा दी जाएगी, कानून के अनुसार अपने कर्तव्यों के निर्वहन के प्रति जिम्मेदारी की

भावना में सुधार नहीं होगा और न ही बढ़ेगा। इसके साथ ही यदि संबंधित राजस्व अधिकारी/कर्मचारी विधि अनुसार अपने कर्तव्यों का निर्वहन तत्परता से करते हैं तथा अवैध अतिक्रमण आदि को समय रहते हटा दिया जाता है तो उन अधिकारियों की का मूल्यांकन किया जाना चाहिए ताकि अन्य राजस्व अधिकारी/कर्मचारी यह जान सकें कि अच्छे आचरण की स्थिति में उनका मूल्यांकन किया जाएगी और कदाचार के मामले में उन्हें दंडित किया जाएगा। यदि उपरोक्त पहलू पर उचित तौर-तरीके तैयार किए जाते हैं, तो कार्य संस्कृति में निश्चित रूप से सुधार होगा, जो न केवल उत्तर प्रदेश राज्य के सभी गांवों के मामलों की बेहतरी के लिए आवश्यक है, बल्कि देश के लिए भी आवश्यक है क्योंकि देश की आत्मा गांवों में रहती है। इसके अलावा, देश के लोकतांत्रिक ढांचे में जहां शासन की त्रिस्तरीय प्रणाली लागू होती है, गांवों आदि के मामले उस तीन स्तरीय प्रणाली का एक अभिन्न अंग हैं।

32. इस न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा प्रमुख रिट याचिका रिट-सी संख्या-6658 वर्ष 2022 को प्रभावित करने वाली रिट याचिकाओं के समूह में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.12.2022 पर ध्यान दिया; ऋषिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य और अन्य संबंधित रिट याचिकाएं 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 829 में रिपोर्ट की गई, जिसमें लगभग समान प्रश्न पर निर्णय लिया गया है और उचित दिशानिर्देश जारी किए गए हैं, जिनका इस आदेश में जारी निर्देशों के अलावा सक्षम राजस्व अधिकारियों द्वारा अपने पत्र और भावना में पालन किया जाना आवश्यक है। पैरा-

3 में प्रश्न उठाया गया है और पैरा-75 में दिशानिर्देश जारी किए गए हैं, जिन्हें यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"3. विचार के लिए उत्पन्न होने वाला कानून का सामान्य प्रश्न उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 (इसके बाद "राजस्व संहिता" के रूप में संदर्भित) और धारा 26 के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में राजस्व अधिकारियों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित है।

75. इस प्रकार, मेरे विचार में, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 67, 67A और 26 के तहत कार्यवाही के लिए लागू होने वाली प्रक्रिया के रूप में निम्नलिखित दिशानिर्देशों को अपनाया जाए। इसका उद्देश्य प्रक्रिया में पारदर्शिता, अधिकारियों द्वारा दृष्टिकोण में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण सुनिश्चित करना और लंबे समय से बसे हुए कब्जे को हटाने और एक निर्दोष ग्रामीण को अनावश्यक उत्पीड़न करने के लिए किए गए गुप्त और परोक्ष उद्देश्य से की गई हर शिकायत को विफल करना है:

(i) आरसी 19 पर की गई शिकायत के मामले में, इसे बनाने वाला अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि इस निर्णय में की गई टिप्पणियों के आलोक में उचित सर्वेक्षण किया गया है; (क) क्या यह सच है कि जिस भूमि के कब्जे को अनधिकृत माना गया है, वह सही माप में है और इसलिए भू-राजस्व सर्वेक्षण विनियम, सर्किल रेट के आधार पर नुकसान का सही आकलन और उस आधार पर की गई गणना का

ब्यौरा 1978 के अनुसार पैमाने पर तैयार किए गए सर्वेक्षण मानचित्र में भी दर्शाया गया है।

(ii) स्वतः संज्ञान कार्रवाई के मामले में, आरसी फॉर्म 20 जारी करने से पहले, प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेगा कि आरसी फॉर्म 19 पर उचित रिपोर्ट उप नियम 1 नियम 67 के मापदंडों पर ऊपर पैरा-(i) के अनुसार प्रस्तुत की गई है।

(iii) आरसी फॉर्म 20 के साथ आरसी फॉर्म 19 के साथ उस व्यक्ति को रिपोर्ट और स्पॉट सर्वे की एक प्रति प्रस्तुत की जानी चाहिए जिसके विरुद्ध कार्यवाही शुरू की गई है, या उपर्युक्त पैरा-(ii) के तहत स्वतः प्रेरित कार्रवाई के मामले में अन्यथा प्रस्तुत की गई है।

(iv) नोटिस का उत्तर दायर किए जाने पर, यदि प्राधिकारी यह पाता है कि स्थल सर्वेक्षण/स्पष्टीकरण रिपोर्ट संतोषजनक नहीं है तो वह पीड़ित पक्ष की उपस्थिति में नई स्थान रिपोर्ट तैयार करने का आदेश दे सकता है।

(v) यदि आपत्ति में धारा 67-क के अंतर्गत सांविधिक संरक्षण/लाभ की दलील शामिल है तो प्राधिकरण को ग्राम सभा से आपत्ति आमंत्रित करनी चाहिए और धारा 67-क के अंतर्गत पृथक आवेदन प्रस्तुत करने की अपेक्षा किए बिना धारा 67 के अधीन मामले के साथ उस पर निर्णय लेगा।

(vi) यदि रिपोर्ट रिकार्ड में स्वीकार कर ली जाती है, हो सकता है कि अनापत्ति फाइल की गई हो तो प्राधिकारी को अपने समक्ष रिपोर्ट

तैयार करने वाले व्यक्ति की उपस्थिति सुनिश्चित करनी चाहिए ताकि वह अपने वक्तव्य से रिपोर्ट को सिद्ध कर सके और व्यथित पक्ष को उससे प्रश्न पूछने का अधिकार हो।

(vii) प्राधिकरण को संगत अधिनियम और नियमों के अंतर्गत निर्धारित समय के भीतर मामले पर निर्णय लेने का प्रयास करना चाहिए और नेमी तरीके से पक्षकारों को स्थगन देने से बचना चाहिए।

(viii) उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67(5) के तहत अपील के मामले में, अंतरिम राहत आवेदन के साथ निर्धारित समय के भीतर वरीय/दायर किया गया, अंतरिम राहत आवेदन जहां तक संभव हो दूसरे पक्ष को पूर्व सूचना के साथ दो सप्ताह के भीतर तय किया जाना चाहिए और जहां धारा 67-ए के तहत निपटान की दलील सहायक कलेक्टर-प्रथम श्रेणी के समक्ष ली गई है, सिविल प्रशासन सहित प्राधिकारियों को अंतरिम राहत आवेदन के निपटान तक अपील किए गए आदेश के अनुसरण में कोई अवपीड़क उपाय करने से बचना चाहिए। अपीलीय प्राधिकारी अपील दायर करने के पहले दिन ही स्थगन आवेदन के साथ अंतरिम राहत देने पर भी विचार कर सकता है यदि अपीलकर्ता द्वारा उपरोक्त शर्तों को पूरा किया जाता है।

(ix) अपीलीय प्राधिकारी को अपील पर यथासंभव इसके प्रस्तुतीकरण के दो माह की अवधि के भीतर निर्णय लेना चाहिए।

33. जहां तक प्रस्तुत जनहित याचिका का संबंध है, ऊपर विचार की गई सभी सामग्री के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत जनहित याचिका में प्रार्थना की गई प्रार्थनाओं को संबोधित किया गया है, बल्कि, उत्तर प्रदेश राज्य के राजस्व विभाग द्वारा कुछ और सकारात्मक कदम उठाए गए हैं। यहां ऊपर कुछ और निर्देश जारी किए गए हैं और उन निर्देशों का अक्षरशः पालन किया जाएगा। इसके अलावा, उत्तर प्रदेश के राजस्व विभाग द्वारा जारी किए गए दिशानिर्देशों और निर्देशों को इस न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे निर्देशों के रूप में माना जाएगा और सक्षम / संबंधित राजस्व अधिकारी / अधिकारी उपरोक्त सभी निर्देशों का सख्ती से पालन करेंगे, जिसमें विफल होने पर, जिम्मेदारी न केवल उत्तर प्रदेश राज्य के वरिष्ठतम राजस्व अधिकारी पर बल्कि उत्तर प्रदेश के उन सक्षम / संबंधित राजस्व अधिकारी / अधिकारी पर भी तय की जानी चाहिए जो ... राजस्व अधिकारियों की डाउन लाइन में हैं।

34. इस आदेश की प्रति इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार द्वारा अपर मुख्य सचिव/प्रधान सचिव, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश राज्य को सात कार्य दिवसों के भीतर उपलब्ध कराई जाए और उपरोक्त अधिकारी इस आदेश को राजस्व बोर्ड के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य के सभी जिलाधिकारियों को इसके अनुपालन के लिए परिचालित करेगा।

35. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस आदेश के निर्देशों का अनुपालन करने के लिए, आगे के सरकारी आदेश/परिपत्र आदि, यदि आवश्यक हो, कानून के अनुसार सख्ती

से जारी किए जा सकते हैं। किसी भी स्थिति में उ0प्र0 राज्य के सभी सक्षम/संबंधित राजस्व अधिकारी/ कर्मचारी यह सुनिश्चित करेंगे कि ग्राम सभाओं की जनोपयोगी भूमि अवैध अतिक्रमण से मुक्त हों और जैसे ही अवैध अतिक्रमण का पता चलता है, ऐसे अतिक्रमण को कानून की सम्यक प्रक्रिया अपनाते हुए तुरंत हटा दिया जाए, क्योंकि ग्राम सभा की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर कोई भी अवैध अतिक्रमण न केवल भूमि राजस्व रिकॉर्ड में निर्धारित तरीके से ऐसे उपयोग में बाधा उत्पन्न करता है, बल्कि यह बड़े पैमाने पर ग्रामीणों के लिए गंभीर पूर्वाग्रह का कारण बनती है, जो वास्तव में और गंभीरता से उस सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर भरोसा करते हैं, जैसे तालाब, चारागाह भूमि, चकमर्ग, खड्ड गड्ढा, खलिहान, बंजार भूमि आदि, जो पूरे गांव के लिए फायदेमंद हैं।

36. पूर्वोक्त निर्देशों और टिप्पणियों के मददेनजर, प्रस्तुत जनहित याचिका (पी.आई.एल.) का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 1071

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश

केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंती बैनर्जी,

रिट-सी संख्या: 27571 सन् 2022

किशन कुमार पाठक

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राहुल मिश्रा, श्री संजय मिश्रा, श्री आर.के. ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज राय

सिविल विधि - भारत का संविधान - 1950, अनुच्छेद 226 - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 -

धारा 25ए --- अधिकार-पृच्छा की रिट ---

प्रतिपक्षी संख्या 5 के पास अभियोजन निदेशक या उप-अभियोजन निदेशक या अपर अभियोजन निदेशक के रूप में अभियोजन निदेशालय के प्रमुख पद पर नियुक्ति हेतु पात्रता / आवश्यक योग्यता नहीं है - प्रतिपक्षी संख्या 5 भारतीय पुलिस सेवा का अधिकारी है जो पुलिस सेवा में है - धारा 25ए की उपधारा

(2) विशेष रूप से उपबंध करती है कि किसी व्यक्ति को अभियोजन निदेशक या उप-अभियोजन निदेशक के रूप में केवल तभी नियुक्त किया जा सकता है जब वह अधिवक्ता के रूप में कम से कम 10 वर्षों तक कार्यरत रहा हो और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाए - यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या 5 ने अधिवक्ता के रूप में कम से कम 10 वर्षों तक कार्यरत नहीं रहा है और उसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति के बिना की गई है - प्रश्नगत पद एक सार्वजनिक पद है जिसे प्रतिपक्षी संख्या 5

बिना मूल पात्रता के धारित कर रहा है और इस प्रकार वह सार्वजनिक पद का अतिक्रमणकर्ता है जो बिना किसी वैधानिक अधिकार के पद पर नियुक्त है और उसकी नियुक्ति दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 25ए के प्रावधानों के विरुद्ध है - एक अधिकार-पृच्छा की रिट तब जारी की जा सकती है जब कोई व्यक्ति सार्वजनिक पद पर नियुक्त होता है जबकि वह उस पद के लिए विनिर्दिष्ट पात्रता मापदंडों को पूरा नहीं करता, या जब नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों के विपरीत की जाती है - प्रतिपक्षी संख्या 5 की नियुक्ति अवैध है - प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 को निर्देशित किया जाता है कि वे यह सुनिश्चित करें कि धारा 25ए(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत निदेशक अभियोजन की नियुक्ति आज से छह माह की अवधि के भीतर की जाए। (प्रस्तर 49, 50 और 57)

याचिका स्वीकार की गई। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम राज्य गुज. एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 767
2. विविध पीठ संख्या 7825 वर्ष 2011 साधना शर्मा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, प्रमुख सचिव विधि विभाग के माध्यम से, एवं अन्य और विविध पीठ संख्या 4097 वर्ष 2011 साधना शर्मा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, प्रमुख सचिव विधि विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के माध्यम से
3. एसएलपी (सी) संख्या 4042-4043 वर्ष 2012 उत्तर प्रदेश बनाम साधना शर्मा,

आईटीसी लिमिटेड बनाम कृषि उपज मंडी समिति (2002) 9 एससीसी 232

4. ज़ेवरभाई अमैदास बनाम बॉम्बे राज्य, एआईआर 1954 एससी 752

5. ईएसआई कॉर्पोरेशन बनाम मंगलम पब्लिकेशन (इंडिया) (प्रा.) लिमिटेड, (2018) 11 एससीसी 438

6. बालेश्वर दास व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (1980) 4 एससीसी 226

7. गंभीरदार के. गढ़वी बनाम गुजरात राज्य व अन्य (2022) 5 एससीसी 179

8. के. अनबाझगन बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य (2015) 6 एससीसी 158

9. अजमेर सिंह बनाम यू.ओ.आई., (1987) 3 एससीसी 340

10. मारू राम बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, (1981) 1 एससीसी 107

11. जीवन लाल शर्मा बनाम एस.एस. परमार (2007) 51 एआईसी 842 (हिमाचल प्रदेश)

12. जयाबेन बनाम तेजस कनुभाई जाला एवं अन्य (2022) 3 एससीसी 230

13. सिविल अपील संख्या 6706/2022 (पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनिंद्य सुंदर दास एवं अन्य) का निर्णय 11.10.2022 को हुआ

14. सेंट्रल इलेक्ट्रिसिटी सप्लाई यूटिलिटी ऑफ ओडिशा बनाम धोबी साहू एवं अन्य (2014) 1 एससीसी 161

15. भारती रेड्डी बनाम कर्ण (2018) 6 एससीसी 162

16. मैसूर विश्वविद्यालय बनाम सी.डी. गोविंद्रा राव (1964 4 एससीआर 575

17. गुजरात उच्च न्यायालय बनाम गुजरात किशन मज़दूर पंचायत (2003) 4 एससीआर 712

18. बी. श्रीनिवास रेड्डी बनाम कर्नाटक शहरी जल आपूर्ति एवं जल निकासी बोर्ड कर्मचारी एसोसिएशन (2006) 11 एससीसी 731

19. भारती रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य। सिविल अपील संख्या 1763/2018, 6.3.2018 को निर्णीत

20. गंभीरदान के. गढ़वी बनाम गुजरात राज्य (2022) 5 एससीसी 179

21. राजेश अवस्थी बनाम नंद लाल जायसवाल (2013) 1 एससीसी 501, धारा 514 एवं सशस्त्र बल चिकित्सा एसोसिएशन बनाम यू.ओ.आई. (2006) 11 एससीसी 731

22. गंभीरदान के. गढ़वी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2022) 5 एससीसी 179

23. शासकीय परिसमापक बनाम धरतीधन (प्रा.) लिमिटेड (1977) 2 एससीसी 166

24. ए.के. रॉय बनाम यू.ओ.आई. (1982) 1 एससीसी 271

25. उप-निरीक्षक रूपलाल बनाम उपराज्यपाल (2000) 1 एससीसी 644 (अनुच्छेद 12 और 13)

26. यू.पी. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम राजेश कुमार (2012) 7 एससीसी 1

27. जयश्री साहू बनाम राजदेवान दुबे एआईआर 1962 एससी 83

28. कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1991) 1 एससीसी 212

29. भारत संघ एवं अन्य बनाम सोमसुंदरम विश्वनाथ एवं अन्य (1989) 1 एससीसी 175

30. एसके नौशाद रहमान एवं अन्य बनाम यूओआई एवं अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 297

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी, द्वारा पदत)

	विस्तार	पैरा क्रम
1.	प्रार्थना	2
2.	प्रविष्टिया	4-6
3.	चर्चा और निष्कर्ष	
(A)	2014 की रिट सी संख्या 923 (अखिल भारतीय अभियोजक संघ और अन्य बनाम कैबिनेट सचिव और अन्य के माध्यम से भारत संघ) के लंबित होने के कारण राज्य के उत्तरदाताओं की प्रारंभिक आपति।	7-9
(B)	अभियोजन निदेशालय, उत्तर प्रदेश का निर्माण	10-14
(C)	क्या धारा सी.आर.पी.सी. की 25ए उत्तर प्रदेश राज्य में लागू एवं लागू है?	15-23
(D)	2011 की विविध बेंच संख्या 7825 (साधना शर्मा बनाम यूपी राज्य, प्रमुख सचिव विधि विभाग के माध्यम से और अन्य) में खंडपीठ के निर्णय दिनांक 11.1.2012 और 2011 की विविध बेंच संख्या 4097 (साधना शर्मा बनाम यूपी राज्य, प्रमुख सचिव विधि विभाग, यूपी सरकार के माध्यम से) और 2012 की एसएलपी (सी) संख्या 4042-4043 में माननीय	24-27

	सर्वोच्च न्यायालय का आदेश का प्रभाव।	
(E)	क्या धारा 25ए दिनांक 27.11.1980 के कार्यालय ज्ञापन पर प्रभावी होगी?	28-31
(F)	क्या धारा 24, 25 एवं 25ए सी.आर.पी.सी. एक एकल योजना के रूप में समझने की आवश्यकता है?	32-33
(G)	क्या कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 धारा 5 सीआरपीसी के तहत एक कानून है?	34
(H)	क्या धारा 25ए(2) सी.आर.पी.सी. अनिवार्य है	35-36
(I)	क्या प्रतिवादी नं. 5 प्रश्नगत पद का सार्वजनिक पद धारण करने के लिए सीआरपीसी की धारा 25ए के तहत आवश्यक योग्यता/पात्रता रखता है।?	37-40
(J)	क्या तर्कों के अनुसार, प्रतिवादी नंबर 5 सार्वजनिक कार्यालय का हड़पने वाला है और पात्रता के बिना और कानून के किसी भी अधिकार के बिना पद धारण किया है	41-44
(K)	अधिकार पृच्छा रिट और अधिस्थिति का कानून	45-48
(L)	क्या वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर अधिकार पृच्छा जारी करने की आवश्यकता है?	49-50
(M)	राज्य प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्णय	51-55
(N)	निष्कर्ष का संक्षिप्त सारांश	56
4.	प्रदत्त अनुतोष	57

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी, द्वारा प्रदत्त,
(समवर्ती)

क्रम.	विवरण	पैरा क्रम
1.	निर्णय	1 से 18

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी द्वारा प्रदत्त)

1. श्री याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आर.के. ओझा जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री संजय मिश्रा ने की और राज्य-प्रतिवादियों के लिए श्री मनीष गोयल, विद्वान अपर महाधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री पंकज राय, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने की, को सुना।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:

"ए) प्रतिवादी नंबर 5 के खिलाफ अधिकार पृच्छा की प्रकृति में एक रिट आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में सी.आर.पी.सी.) (1974 का अधिनियम संख्या 11) की धारा 25 ए के अंतर्गत प्रदान किए गए वैधानिक प्रावधान के अनुरूप उनकी नियुक्ति को अवैध मानते हुए और आगे प्रतिवादी संख्या 5 को कारण प्रदर्शित करने के लिए कि वह किस अधिकार के तहत पद धारण कर रहा है, आदेश और निर्देश पारित करें।

ख) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षिप्तता में 1973 का अधिनियम 11) अधिनियम के अनुसार उपयुक्त और पात्र व्यक्ति को पद पर रखने के लिए परमादेश या अन्य उचित रिट/निर्देश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।

ग) कोई भी आदेश या निर्देश जारी करें जो माननीय न्यायालय वाद की परिस्थितियों के तहत उचित और उपयुक्त समझे।"

3. इस रिट याचिका पर कई बार सुनवाई हुई। अंततः दिनांक 15.3.2023 को पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने अपनी तर्क प्रस्तुत दीं जिन्हें दिनांक 15.3.2023 के आदेश में उल्लेख किया गया और निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

प्रस्तुतियाँ:-

4. श्री आर.के. ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, निम्नानुसार तर्क प्रस्तुत करते हैं:

i. राज्य सरकार द्वारा गृह विभाग के कार्यालय ज़ापन क्रमांक 7202/आठ-9-31(91)-79, दिनांक 27.11.1980 द्वारा अभियोजन निदेशालय की स्थापना पहले ही की जा चुकी है। इस प्रकार, धारा 25ए की उपधारा (1) संतुष्ट थी क्योंकि निदेशालय पहले ही स्थापित हो चुका था।

ii. धारा 25ए की उपधारा (2) अभियोजन निदेशक और उप निदेशक अभियोजन की पात्रता प्रदान करती है। इसमें प्रावधान है कि कोई व्यक्ति अभियोजन निदेशक या उप निदेशक अभियोजन के रूप में नियुक्त होने के लिए तभी पात्र होगा जब वह कम से कम 10 वर्षों तक अधिवक्ता के रूप में अभ्यास कर रहा हो और ऐसी नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय की सहमति से की जाएगी। राज्य सरकार द्वारा अभियोजन निदेशालय के

प्रमुख के रूप में नियुक्त अभियोजन निदेशक या अतिरिक्त निदेशक अभियोजन, चाहे किसी भी नाम से संबोधित किया जाए, पात्र नहीं हैं और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25ए उपधारा (2) के तहत प्रदान की गई बुनियादी पात्रता को पूरा नहीं करते हैं। अतः प्रतिवादी क्रमांक 5 के पास नियुक्ति हेतु मूल पात्रता नहीं है। इसलिए अधिकार पृच्छा रिट जारी करने की आवश्यकता है।

iii. राज्य विधायिका द्वारा अधिनियमित विपरीत कानून के किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में, राज्य सरकार संसद द्वारा अधिनियमित सीआरपीसी की धारा 25ए के प्रावधानों द्वारा बाधित है। सीआरपीसी की धारा 5 का संदर्भ दिया गया है जो इस प्रस्ताव को मान्यता प्रदान करता है। चूंकि राज्य सरकार ने सीआरपीसी की धारा 25ए(2) में कोई संशोधन नहीं किया है और उत्पादित मूल रिकॉर्ड के अनुसार, राज्य सरकार ने स्वयं कोई संशोधन नहीं करने का निर्णय लिया, इसलिए, जवाबी हलफनामे में राज्य के उत्तरदाताओं द्वारा लिया गया प्रस्तुतिकरण कि सीआर.पी.सी. धारा 25ए उत्तर प्रदेश राज्य में लागू नहीं है, पूरी तरह से निराधार और पूरी तरह से भ्रामक है।

iv. चूंकि प्रतिवादी संख्या 5 एक सार्वजनिक पद पर है और उसके पास उक्त पद अर्थात् अभियोजन निदेशक/ अतिरिक्त निदेशक, अभियोजन/ उप निदेशक, अभियोजन का पद धारण करने की पात्रता नहीं है और इसलिए, वह इस पद पर बने रहने के लिए अयोग्य हो गया है। इसलिए सीआरपीसी की धारा 25ए के

प्रावधानों, एस.बी. शहाणे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य ए.आई.आर. 1995 एससी 1628 (पैराग्राफ 6 से 15) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और 2021 की आपराधिक अपील संख्या 1655 (जयबेन बनाम तेजस कनुभाई ज़ला और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 10.01.2022 के वर्तमान निर्णय के अनुसार यह अवलोकन करते हुए कि निदेशक अभियोजन पक्ष की नियुक्ति सीआरपीसी की धारा 25ए के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा की जाती है जो अभियोजन निदेशक की पात्रता के लिए किसी व्यक्ति के लिए कम से कम दस वर्ष का न्यूनतम कानूनी अनुभव निर्धारित करता है और उसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी, अधिकार पृच्छा रिट जारी की जानी चाहिए और प्रतिवादी क्रमांक 5 की नियुक्ति रद्द किये जाने योग्य है।

5. श्री मनीष गोयल, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

i. अभियोजन निदेशालय की स्थापना 14वें विधि आयोग की रिपोर्ट के अनुसार कार्यालय ज़ापन दिनांक 27.11.1980 द्वारा की गई थी।

ii. राज्य सरकार ने धारा 25ए(1) सीआरपीसी को लागू नहीं किया है। राज्य सरकार द्वारा 28.02.2014 को धारा 25ए सीआरपीसी में संशोधन नहीं करने के निर्णय के बाद, वर्ष 2017 में कुछ शिकायतें प्राप्त हुईं और उसके बाद दिनांक 09.11.2020 को विद्वान

महाधिवक्ता की राय मांगी गई थी और उसके बाद न तो राय दी गई और न ही शिकायतों पर कोई निर्णय लिया गया। इस प्रकार, उत्तर प्रदेश राज्य में धारा 25ए लागू नहीं की गई है।

iii. सीआरपीसी की धारा 25ए के प्रावधान अनिवार्य नहीं हैं बल्कि वैकल्पिक हैं और इसलिए, धारा 25ए के प्रावधानों का पालन करना राज्य सरकार का अनिवार्य दायित्व नहीं है। 2011 की रिट (सी) संख्या 18844 (थैंकप्पन बनाम केरल राज्य) में दिनांक 21.10.2011 को दिए गए (पैराग्राफ 4) में केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश कर निर्भरता व्यक्त को गई।

iv. धारा 25ए सीआरपीसी की उपधारा (1) की व्याख्या, 2014 की रिट (सी) संख्या 923 (अखिल भारतीय अभियोजक संघ और अन्य बनाम कैबिनेट सचिव और अन्य के माध्यम से भारत संघ) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रहा है, जिसमें प्रश्न संख्या 1 को निम्नानुसार तैयार किया गया है:

"1. क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 25ए की उपधारा 1 में 'हो सकता है' शब्द को 'करेगा' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और यदि हां, तो क्या प्रत्येक राज्य के लिए धारा 25ए के अनुसरण में अभियोजन निदेशालय स्थापित करना अनिवार्य है?"

v. चूँकि धारा सी.आर.पी.सी. 25ए उत्तर प्रदेश राज्य में अभी तक लागू नहीं किया गया है, इसलिए धारा 25ए सीआरपीसी की उपधारा (2) के तहत प्रदान की गई अभियोजन निदेशक की

योग्यता को आकर्षित नहीं किया जाएगा। इसलिए, अधिकार पृच्छा रिट जारी नहीं की जा सकती है।

vi. प्रतिवादी संख्या 5 संवर्ग से संबंधित नहीं है, जैसा कि धारा 25ए सीआरपीसी की उपधारा (2) के तहत प्रदान किया गया है। चूँकि प्रतिवादी संख्या 5 न तो अभियोजन निदेशक है और न ही अभियोजन उप निदेशक बल्कि अभियोजन अतिरिक्त महानिदेशक है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 5 के पास पात्रता रखने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि धारा 25ए सीआरपीसी की उपधारा (2) के तहत प्रदान किया गया है।

vii. एस.बी. शहाणे (सुप्रा) (पैराग्राफ संख्या 10, 12 और 13) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय मजिस्ट्रेट अदालत में सहायक लोक अभियोजक की नियुक्ति के संदर्भ में है। इसलिए, अभियोजन निदेशक या अतिरिक्त महानिदेशक अभियोजन/प्रतिवादी क्रमांक 5 की पात्रता के संबंध में इस निर्णय की कोई प्रासंगिकता नहीं है।

viii. सीआरपीसी की धारा 5 यह याचिकाकर्ता की सहायता में नहीं आता है क्योंकि कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 के अर्थ में एक कानून है। इसलिए, कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 के रूप में एक कानून होने के कारण, सी.आर.पी.सी. की धारा 5 का प्रावधान लागू नहीं होगा।

ix. जब तक सीआरपीसी की धारा 25ए का प्रावधान राज्य विधानमंडल द्वारा अपनाया न गया है, उक्त प्रावधान उत्तर प्रदेश राज्य में लागू नहीं है। इसलिए, राज्य सरकार सीआरपीसी की धारा 25ए के प्रावधान से बाधित नहीं है। चूँकि धारा 25ए से संबंधित कानून का क्षेत्र भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची III समवर्ती सूची की प्रविष्टि 2 और 26 के संदर्भ में है।

6. हमारे समक्ष पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा कोई अन्य प्रस्तुतीकरण नहीं किया गया है।

चर्चाएँ और निष्कर्ष:-

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की तर्कों पर ध्यानपूर्वक विचार करने और रिट याचिका के अभिलेख के साथ-साथ राज्य के उत्तरदाताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए मूल अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, मामले पर बिंदुवार चर्चा इस प्रकार है:-

(A) 2014 की रिट सी संख्या 923 (अखिल भारतीय अभियोजक संघ और अन्य बनाम कैबिनेट सचिव और अन्य के माध्यम से भारत संघ) के लंबित होने के कारण राज्य के उत्तरदाताओं की प्रारंभिक आपति।

8. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने प्रारंभिक आपति उठाई है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता (इसके बाद सीआरपीसी के रूप में संदर्भित) की धारा 25 ए की उप-धारा (1) में प्रयुक्त 'हो सकता है' शब्द की व्याख्या 2014 की रिट

(सी) संख्या 923 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रही है और इसलिए, यह अदालत इस रिट याचिका पर विचार नहीं कर सकती है।

9. हम विद्वान अपर महाधिवक्ता की प्रारंभिक आपति से सहमत नहीं हैं। उत्तर प्रदेश राज्य में राज्य सरकार द्वारा अभियोजन निदेशालय पहले ही स्थापित किया जा चुका है जिसकी चर्चा इस आदेश के बाद के भाग में की जाएगी। इसके अलावा, इस रिट याचिका में पारित हमारे आदेश दिनांक 1.3.2023 के विरुद्ध, राज्य के उत्तरदाताओं ने एसएलपी (सिविल) डायरी संख्या 9996/2023 (यूपी राज्य और अन्य बनाम किशन कुमार पाठक और अन्य) दायर की है, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 13.3.2023 द्वारा खारिज कर दिया गया है। इसके अलावा धारा 25ए सी.आर.पी.सी. यूपी राज्य में लागू कर दिया गया है। इस प्रकार हमें विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा उठाई गई उपरोक्त आपति में कोई तथ्य नहीं मिलता है। अतः आपति अस्वीकार की जाती है।

(B) अभियोजन निदेशालय, उत्तर प्रदेश का निर्माण:-

10. अभियोजन निदेशालय की स्थापना राज्य सरकार द्वारा कार्यालय जापन संख्या 7202/8/आठ-9-31(91)-79 दिनांक 27.11.1980 द्वारा की गई थी। उपरोक्त कार्यालय जापन के अनुसार, अभियोजन निदेशक विभाग का प्रमुख और कानूनी सलाहकार है और उसके कर्तव्य में पुलिस विभाग, जिला स्तरीय विभागों को सलाह देना

और राज्य सरकार को अभियोजन आदि की अद्यतन स्थिति से अवगत कराना, अभियोजन निदेशक आहरण एवं संवितरण अधिकारी होता है जो कानूनी एवं प्रशासनिक मामलों में अभियोजन निदेशक को सहायता एवं सलाह देना शामिल है। उपरोक्त के अलावा, निदेशक एवं उप निदेशक को अभियोजन संबंधित कई अन्य कार्यों का निर्वहन करना आवश्यक है। उपरोक्त कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 (बिना किसी परिशिष्ट के) नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"उत्तर प्रदेश शासन

गृह (पुलिस) अनुभाग-9 संख्या 7202/आठ-9-31(91)-79 लखनऊ, दिनांक 27 नवम्बर, 1980

कार्यालय-जाप

विषय:- अभियोजन निदेशालय, उत्तर प्रदेश की स्थापना।

अधोहस्ताक्षरी को यह कहने का निदेश हुआ है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के लागू होने के बाद प्रभावी एवं निष्पक्ष अभियोजन की दृष्टि से प्रदेश में एक स्वतन्त्र अभियोजन निदेशालय की स्थापना का प्रश्न पर्याप्त समय से शासन के विचाराधीन था। इस सिलसिले में भारत के विधि आयोग की 14 वीं रिपोर्ट में की गयी संस्तुतियों एवं शासन द्वारा गठित ऋषिराय समिति की संस्तुतियों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के उपरान्त राज्यपाल महोदय ने उक्त संहिता की धारा 25 के अधीन नियुक्त मैजिस्ट्रेट, न्यायालयों में पैरवी करने, वाले सहायक लोक अभि-योजकों, (असिस्टेंट पब्लिक प्रासीक्यूटर्स) के समस्त कार्य पर प्रभावी नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण हेतु अलग से

अभियोजन निदेशालय, जिसका मुख्यालय लखनऊ में होगा, **स्थापित किये जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी है।**

2- राज्यपाल महोदय निदेशालय के मुख्यालय हेतु अनुलग्नक-1 में तथा उसके क्षेत्रीय कार्यालयों में तथा जिला कार्यालयों के लिए अनुलग्नक 2 में उल्लिखित अस्थाई पदों को, उसके सम्मुख निर्दिष्ट वेतनमानों में, पदों के भरे जाने की तिथि जो इस आदेश के पूर्व की न होगी से 28 फरवरी, 1981 तक, यदि उन्हें इसके पूर्व ही बिना किसी सूचना के समाप्त न कर दिया जाये, सृजित किये जाने की भी स्वीकृति प्रदान करते हैं।

3- स्वीकृत पदों के धारकों को अपने पद के वेतनमान में मिलने वाले वेतन के अतिरिक्त सरकार द्वारा समय समय पर स्वीकृत महंगाई एवं अन्य भत्ते जो भी अनुमन्य हों, देय होंगे।

4- चूंकि अभियोजन निदेशालय की स्थापना, अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग के वेतन, भत्तों आदि पर होने वाले व्यय तथा अनुलग्नक-3 में अंकित स्टाफ कार, साज-सज्जा आदि के क्रय व अन्य मदों पर होने वाले व्यय के लिये चालू वित्तीय वर्ष 1980-81 के आय-व्ययक में कोई प्राविधान नहीं है और यह व्यय अत्यावश्यक एवं अपरिहार्य है, अतः इस प्रयोजन के लिये राज्य विधान मण्डल के अनुमोदन की प्रत्याशा में श्री राज्यपाल ने राज्य आकस्मिकता निधि से रुपया 12,68,000 (बारह लाख अड़सठ हजार रुपये) केवल की धनराशि अग्रिम के रूप में आहरित करने की भी स्वीकृति प्रदान कर दी है। इस धनराशि की प्रतिपूर्ति वाद में अनुपूरक मांगों के माध्यम से की जायेगी।

5- साज-सज्जा, उपकरण, फर्नीचर, स्टाफ कार आदि का क्रय निदेशक, अभियोजन निदेशालय द्वारा निर्धारित प्रक्रिया एवं नियमों के अनुसार किया जायेगा तथा क्रय किये गये वस्तुओं का विवरण वे यथासमय शासन को सूचित करेंगे तथा उसका लेखा जोखा विधिवत् रखना सुनिश्चित करेंगे।

6- अभियोजन निदेशालय का ढांचा अनुलग्नक-4 में दिया गया है। तदुसार मुख्यालय पर एक उप-निदेशक अभियोजन निदेशक की सहायता के लिये अन्य सपोर्टिंग स्टाफ के साथ रहेगा। प्रशासकीय सुविधा के लिये प्रदेश को 4 क्षेत्रों लखनऊ, बरेली, वाराणसी व आगरा में बाँट दिया गया है। प्रत्येक क्षेत्र के अन्तर्गत अनुलग्नक-4 में निर्दिष्ट मण्डल व जिले सम्मिलित रहेंगे।

7- अभियोजन निदेशक, उप निदेश अभियोजन (मुख्यालय), क्षेत्रीय उप निदेशक अभियोजन, ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी, अभियोजन अधिकारी तथा सहायक अभियोजन अधिकारी के कर्तव्य एवं दायित्व अनुलग्नक 5 में दिये हैं। ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों, अभियोजन अधिकारियों तथा सहायक अभियोजन अधिकारियों का वर्तमान स्वीकृत नियतन अनुलग्नक 6 में दिया गया है।

8- अभियोजन निदेशालय की स्थापना के फलस्वरूप अभियोजन शाखा के लिये पूर्व स्वीकृत सहायक अभियोजन अधिकारी/ अभियोजन अधिकारी / ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी के समस्त पद तथा ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों के कार्यालयों के लिये

11 जिलों (जिनके नाम अनुलग्नक-2 में इंगित हैं) में स्वीकृत कार्यालय चपरासी के पद तथा कार्यरत समस्त अधिकारी/कर्मचारी अभियोजन निदेशालय के प्रशासकीय नियन्त्रण में आ जायेंगे तथा उनसे सम्बन्धित अभिलेखादि पुलिस महानिरीक्षक द्वारा निदेशालय को शीघ्रातिशीघ्र हस्तांतरित किये जायेंगे।

9- निदेशक अभियोजन तथा उप निदेशक अभियोजन के पदों पर नियुक्ति तथा अधिकारों के प्रतिनियमन एवं अन्य नव सृजित पदों पर नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में आदेश अलग से जारी किये जायेंगे।

10- नयी व्यवस्था के फलस्वरूप वर्षों से चली आ रही पुरानी व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत पुलिस अधीक्षक, अभियोजन अधिकारियों के कार्य पर नियन्त्रण रखते थे, समाप्त हो जायेंगी। फलस्वरूप जिला स्तर पर सहायक अभियोजन अधिकारियों एवं अभियोजन अधिकारियों (प्रभारी अभियोजन अधिकारियों को छोड़कर) द्वारा मामलों की विवेचना के सम्बन्ध में दिये गये योगदान के बारे में वार्षिक मन्तव्य देने का अधिकार पुलिस अधीक्षक को होगा, किन्तु अभियोजन कार्य के बार में टिप्पणी करने का अधिकार इन्हें न होगा। प्रतिवेदक अधिकारी के लिये यह अनिवार्य होगा कि इस मन्तव्य को वह उनकी वार्षिक प्रविष्टि में अक्षरशः शामिल करेंगे तथा ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों एवं प्रभारी अभियोजन अधिकारियों के सम्बन्ध में प्रतिवेदक अधिकारियों के लिये यह पर्याप्त होगा कि वह पुलिस अधीक्षक की राय प्राप्त

कर वार्षिक प्रविष्टि देते समय उसका समुचित उपयोग करें।

11- अभियोजन निदेशालय की स्थापना के तुरन्त बाद ही अभियोजन अधिकारियों के साहाय्यार्थ पुलिस विभाग में पूर्व स्वीकृत या पूर्व विद्यमान लिपिकीय तथा चतुर्थ श्रेणी के पदों को आवश्यकतानुसार बनाये रखने / समाप्त करने/पुलिस विभाग में जहां तेजी से जिला फोर्स का विस्तार हो रहा है, समायोजित करने के विषय पर शासन द्वारा विचार किया जायेगा।

12- उपर्युक्त के अतिरिक्त अभियोजन निदेशालय के संबंध में निम्नलिखित निर्णय भी लिये गये हैं-

1- अभियोजन निदेशालय गृह विभाग के अधीन होगा और इसके अन्तर्गत मैजिस्ट्रेट न्यायालयों के अभियोजन कार्य तथा सहायक लोक अभियोजकों (सहायक अभियोजन अधिकारी/अभियोजन अधिकारी/ ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी) के समस्त कार्य नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण का कार्य होगा।

2- निदेशक अभियोजन, उत्तर प्रदेश के पद पर उप पुलिस महानिरीक्षक के स्तर के पुलिस सेवा के अधिकारी की नियुक्ति की जायेगी पर वह पुलिस महानिरीक्षक के नियन्त्रण में कार्य नहीं करेंगे और न ही पुलिस के अधिकारों का प्रयोग करेंगे।

3- जिन जनपदों में ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी के पद स्वीकृत हैं उनमें ज्येष्ठ

अभियोजन अधिकारी जिला प्रभारी अधिकारी होंगे तथा अन्य जिलों में जहां ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी नियुक्त नहीं है वरिष्ठतम् अभियोजन अधिकारी प्रभारी अधिकारी होंगे।

4- नयी व्यवस्था को सफल एवं प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये जिला स्तर पर जिला मैजिस्ट्रेट की प्रभावशाली भूमिका रहेगी और वह अभियोजनकार्यों तथा अभियोजन कार्यालय के अधिकारियों को कार्य पर प्रभावी नियन्त्रण रखने में और उसमें पूर्ण रुचि लेंगे। इस सम्बन्ध में निम्नांकित उत्तरदायित्वों का निर्वाह भी पूरी तरह से सुनिश्चित करेंगे: -

अ-- जिलाधिकारी जनपद में ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों पर तात्कालिक पर्यवेक्षण (इमीडिएट सुपरवीजन) रखेंगे।

ब-- जिला स्तर पर अभियोजन शाखा के अधिकारियों के आहरण एवं वितरण अधिकारी जिलाधिकारी होंगे तथा इन अधिकारियों के वेतन आदि के आहरण एवं वितरण का प्रबन्ध जिलाधिकारी कार्यालय द्वारा किया जायेगा।

स-- जिलाधिकारी सत्र न्यायालय में पैरवी करने वाले लोक अभियोजक और ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी/अभियोजन अधिकारी प्रभारी के बीच समुचित समन्वय सुनिश्चित करेंगे, जिसका मुख्यतः सम्बन्ध सत्र न्यायालय को संदर्भित मुकदमों के कलेन्डर, सत्र न्यायालयों में प्रेषित जमानत प्रार्थना - पत्र संबंधी अभिलेख, गवाहों के लिए अभियोजन अधिकारी के माध्यम से सम्मन जारी करवाने व अपील व विमुक्ति रिपोर्ट से होगा।

13- उपर्युक्त मदों पर होने वाला व्यय प्रथमतः राज्य आकस्मिकता निधि के नामे डाला जायेगा तथा बाद में.. वित्तीय वर्ष 1980-81 के आय-व्ययक में अनुदान संख्या 19 के अधीन लेखा शीर्षक "214-न्याय प्रशासन- आयोजनेतर-क-कानूनी सलाहकार और परामर्शदाता--लोक अभियोजन शाखा अधिष्ठान" के अन्तर्गत संगत प्राथमिक इकाइयों के नाम डाला जायेगा।
हरगोविन्द उबराल
संयुक्त सचिव।'

11. निदेशक एवं उप निदेशक अभियोजन के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को उपरोक्त कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 के अनुबंध 5 में निम्नानुसार प्रदान किया गया है:

"अनुलग्नक-5

अभियोजन निदेशक उत्तर प्रदेश के कर्तव्य एवं दायित्व

अभियोजन निदेशक प्रदेश के अभियोजन संगठन के अध्यक्ष होंगे तथा मैजिस्ट्रेट कोर्टस में पैरवी करने वाले समस्त लोक अभियोजकों का प्रशासकीय नियंत्रण सम्पूर्ण रूप से उनमें निहित होगा।

2- उनका स्तर **विभागाध्यक्ष** का होगा तथा उन्हें व सभी प्रशासकीय एवं वित्तीय अधिकार प्राप्त होंगे जो सामान्यतया एक विभागाध्यक्ष में प्रतिनिहित होते हैं।

3- वह अपने निदेशालय, क्षेत्रीय उपनिदेशकों के कार्यालय तथा ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों के कार्यालयों के अराजपत्रित कर्मचारियों,

अभियोजन अधिकारियों तथा सहायक अभियोजन अधिकारी के नियुक्ति अधिकारी होंगे तथा इन श्रेणियों के कर्मचारियों के स्थानान्तरण तैनाती आदि करने का उन्हें अधिकार होगा।

8- ऐसे अन्य कार्य जो शासन द्वारा समय-समय पर सौंपे जायें।

उप निदेशक (मुख्यालय) के कर्तव्य एवं दायित्व

4- उनका प्रशासकीय नियंत्रण उपनिदेशक अभियोजन (मुख्यालय) क्षेत्रीय उपनिदेशकों तथा ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों के ऊपर भी रहेगा और वे इन अधिकारियों की चरित्र पंचिकाओं में उनके कार्य तथा आचरण के बारे में वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट अंकित करेंगे व उन्हें शासन को अन्तिम अनुमोदन हेतु भेजेंगे।

1. अभियोजन निदेशालय के अधिष्ठान के आहरण तथा वितरण अधिकारी होंगे।

2- विधिक तथा प्रशासकीय मामले में निदेशक की सहायता करेंगे व उन्हें उचित परामर्श देगे।

3- निदेशालय के अधीनस्थ कर्मचारियों के चरित्र एवं आचरण की वार्षिक प्रविष्टियों के रिपोर्टिंग अधिकारी होंगे तथा निदेशक को उन्हें अनुमोदनार्थ प्रस्तुत करेंगे।

5- वह विधिक मामलों में फौजदारी कार्यवाही के किसी भी स्तर पर (तफतीश के स्तर को सम्मिलित करते हुए) जटिल व महत्वपूर्व मामलों जैसे षड्यन्त्र, जालसाजी, घोखाधड़ी जिसमें साक्ष्य परिस्थितियों व उपलब्ध लेखा अभिलेखों पर आधारित हो, में पुलिस विभाग तथा शासन के जिला स्तरीय विभागों को आवश्यकतानुसार परामर्श देंगे।

4- वह अन्य कार्य जिन्हें निदेशक द्वारा उन्हें समय-समय पर सौंपा जायेगा।

क्षेत्रीय उपनिदेशक अभियोजन के कर्तव्य एवं दायित्व

6- ऐसे समस्त विधिक/प्रशासकीय मामले जो क्षेत्रीय उपनिदेशक तथा ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों द्वारा परामर्श/आदेशों के लिए भेजे जाये उनमें परामर्श/आदेश देंगे।

1- अपने कार्यालय के कार्यलयाध्यक्ष होंगे।

2- अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के अधिष्ठान के आहरण तथा वितरण अधिकारी होंगे।

3- अपने क्षेत्र के समस्त ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों पर उनका प्रशासनिक नियंत्रण रहेगा।

6(ए)- पुलिस संगठन के राज्य स्तर पर विधि सलाहकार होंगे।

4- ऐसे जटिल मामलों जिनमें ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी द्वारा उनसे परामर्श मांगा जाये, उन्हें अपना परामर्श देंगे।

7- प्रदेश के समस्त अभियोजन कार्यालयों का निरीक्षण करेंगे व अभियोजन की स्थिति से शासन को आवधिक विवरण भेजकर अवगत करायेंगे।

5- अपने क्षेत्र के ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों/अभियोजन अधिकारियों के कार्य

का समय-समय पर निरीक्षण करेंगे व क्षेत्र के अभियोजन की स्थिति से अभियोजन निदेशक को आवधिक विवरण भेजकर अवगत करायेंगे।

6- क्षेत्र के ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों की चरित्र पंजिकाओं में उनके कार्य तथा आचरण की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट प्रतिवेदक अधिकारी के रूप में अंकित करेंगे तथा अनुमोदन हेतु उन्हें अभियोजन निर्देशक को भेजेंगे। इसके अतिरिक्त क्षेत्र के अभियोजन सहायक अभियोजन/अधिकारियों की वार्षिक प्रविष्टियों के अनुमोदन अधिकारी होंगे।

6-(ए) संबंधित उप पुलिस महानिरीक्षकों के विधि सलाहकार होंगे।

7- ऐसे कार्य जो शासन अथवा निदेशक द्वारा समय-समय पर सौंपे जायें।

ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों के कर्तव्य एवं दायित्व

1- ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी अपने जिले के अभियोजन अधिकारियों सहायक अभियोजन अधिकारियों व अन्य अधीनस्थ के प्रभारी अधिकारी होंगे।

2- जिले के समस्त अभियोजन अधिकारियों/सहायक अभियोजन अधिकारियों तथा अपने कार्यालय स्टाफ के आहरण व वितरण अधिकारी होंगे।

3- जिले के अभियोजन अधिकारियों/सहायक अभियोजन अधिकारियों के कार्य तथा आचरण की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट अंकित करेंगे तथा उन्हें अनुमोदनार्थ क्षेत्रीय उपनिदेशक अभियोजन को भेजेंगे।

4- जटिल व महत्वपूर्ण फौजदारीवादों की पैरवी स्वयं मैजिस्ट्रेट कोर्ट में करेंगे तथा अपने अधीनस्थ अभियोजन अधिकारियों/सहायक अभियोजन अधिकारियों को मार्गदर्शन देंगे तथा

उनके कार्य का समय-समय पर निरीक्षण करेंगे और जिले की अभियोजन की स्थिति के सम्बन्ध में आवधिक विवरण क्षेत्रीय उप निदेशक अभियोजन व अभियोजन निदेशक को भेजा करेंगे।

5- वह जिला पुलिस अधीक्षक को उन सभी फौजदारीवादों में परामर्श देंगे जिन्हें जिला पुलिस अधीक्षक द्वारा उन्हें परामर्श हेतु भेजा जायेगा।

5(ए)- रेंज मुख्यालय पर पुलिस उप महानिरीक्षक के विधि सलाहकार होंगे।

6- ऐसे अन्य कार्य जो समय-समय पर क्षेत्रीय उप निदेशक अथवा निदेशक व जिला मैजिस्ट्रेट द्वारा सौंपा जाये।

नोट- जिन जिलों में अभियोजन अधिकारी प्रभारी अधिकारी होंगे वहां पर अभियोजन अधिकारी द्वारा उन सभी कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वहन किया जायेगा जिनका सवहन अन्य जिलों में ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारियों द्वारा किया जाता है।

अभियोजन अधिकारी/सहायक अभियोजन अधिकारी के कर्तव्य

1- मैजिस्ट्रेट कोर्ट में फौजदारीवादों को शासन की ओर से पैरवी करना। 2- ज्येष्ठ अभियोजन अधिकारी के कार्य में सहायता देना व उनके मार्गदर्शन में कार्य करना।

3- जिला पुलिस अधीक्षक को अभियोजन के मामलों में विधिक परामर्श देना।

4- व्यक्ति व माल की शिनाख्त कार्यवाही में सहायता करना।

5- दोष मुक्त (Aquittal) रिपोर्ट तैयार करना।"

12. उपरोक्त उद्धृत कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट और ऋषि राय समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के अनुसार एक प्रशासनिक निर्णय के रूप में 30प्र0 राज्य में अभियोजन निदेशालय की स्थापना की गयी।

13. धारा 25ए सीआरपीसी के अधिनियमन की पृष्ठभूमि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2009) 6 एससीसी 767 (पैराग्राफ 23 से 30) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नानुसार है:

"23. निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने में सरकारी अभियोजकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस न्यायालय ने एस.बी. शहाणे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1995 सप्लिमेंट (3) एससीसी 37 में अभियोजन एजेंसी को जांच एजेंसी से अलग करने की वांछनीयता पर जोर दिया था। यह देखा गया कि ऐसे सहायक लोक अभियोजकों को पुलिस विभाग के कर्मियों के रूप में बने रहने और पुलिस विभाग के प्रमुख के नियंत्रण में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। राज्य सरकारों को एक अलग अभियोजन विभाग बनाकर सहायक लोक अभियोजकों का एक अलग कैडर गठित करके उसके प्रमुख को सीधे राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी बनाने का निर्देश दिया गया था।

24. ऑस्ट्रेलिया जैसे कई राष्ट्रमंडल देशों में राष्ट्रमंडल लोक अभियोजन निदेशक है, जिसे लोक अभियोजन निदेशक अधिनियम, 1983

द्वारा स्थापित किया गया था और 1984 में परिचालन शुरू किया गया था। ऑस्ट्रेलिया के नौ राज्यों और क्षेत्रों के पास अपने स्वयं के डी.पी.पी. भी हैं। अभियोजन को अधिकृत करने का अंतिम अधिकार अटॉर्नी जनरल के पास है। हालाँकि, चूँकि यह एक राजनीतिक पद है, और अधिकांश परिस्थितियों में इस कार्य को करने के लिए एक गैर-राजनीतिक (सार्वजनिक सेवा) पद की इच्छा होती है, एजी की अभियोजन संबंधी शक्तियाँ आम तौर पर डीपीपी को सौंपी जाती हैं। हालाँकि, दक्षिण ऑस्ट्रेलिया में एजी डीपीपी को मुकदमा चलाने या न चलाने का निर्देश दे सकता है। यह बहुत ही दुर्लभ घटना है। राष्ट्रमंडल या राज्य डीपीपी का पद संभालने वालों के लिए बाद में उच्च न्यायिक कार्यालय में नियुक्त होना आम बात है।

25. कनाडा में, प्रत्येक प्रांत का क्राउन अटॉर्नी कार्यालय (कनाडा) आपराधिक मुकदमों के संचालन के लिए जिम्मेदार है। ऑटारियो में, आपराधिक कानून प्रभाग में स्थानीय क्राउन अटॉर्नी आपराधिक मामलों का प्रभारी है। केवल ब्रिटिश कोलंबिया, नोवा स्कोटिया और क्यूबेक (एक नागरिक संहिता क्षेत्राधिकार) में लोक अभियोजन निदेशक कार्यालय है। संसद द्वारा हाल ही में पारित कानून ने संघीय अभियोजन के संचालन को न्याय विभाग (कनाडा) से अलग कर दिया, और सार्वजनिक अभियोजन निदेशक (आधिकारिक तौर पर इसे कनाडा की सार्वजनिक अभियोजन सेवा कहा जाता है) का कार्यालय बनाया। यह कानून दिनांक 12-12-2006 से लागू हुआ। अभियोजन निदेशक हांगकांग, चीन के लोक अभियोजन न्याय विभाग का नेतृत्व करते हैं, जो हांगकांग विशेष

प्रशासनिक क्षेत्र की ओर से अपील और वाद पर अभियोजन चलाने और कानून प्रवर्तन एजेंसियों को कानूनी सलाह प्रदान करना, आपराधिक कार्यवाही की संस्था में न्याय सचिव की ओर से कार्य करना, और किसी भी प्रस्तावित आपराधिक कानून के संबंध में ब्यूरो और विभागों को सलाह और सहायता प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। डीपीपी का पर्यवेक्षण न्याय सचिव द्वारा किया जाता है, जो डीपीपी के निर्णयों के लिए भी जवाबदेह है।

26. आयरलैंड गणराज्य में सार्वजनिक अभियोजन निदेशक, अपराध अभियोजन अधिनियम 1974 के अधिनियमन के बाद से आयरलैंड गणराज्य में सभी अभियोग योग्य आपराधिक अपराधों के लिए, लोगों की ओर से अभियोजन के लिए जिम्मेदार हैं। 1974 से पहले, सभी अटॉर्नी जनरल द्वारा अभियोजन का वाद चलाया जाता था। डीपीपी एक प्रमाणपत्र भी जारी कर सकता है कि कोई मामला विशेष आपराधिक न्यायालय को भेजा जाना चाहिए; जूरी रहित ट्रायल कोर्ट आमतौर पर आतंकवादियों और संगठित अपराधियों के लिए आरक्षित होती है।

27. दक्षिण अफ्रीका में सार्वजनिक अभियोजन एक स्वतंत्र राष्ट्रीय सार्वजनिक अभियोजन निदेशक (एनडीपीपी) द्वारा संचालित किए जाते हैं। एनडीपीपी को एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी, मैरियन स्पार्ग, डिप्टी, सार्वजनिक अभियोजन के क्षेत्रीय निदेशक (डीपीपी) और कई विशेष निदेशकों का समर्थन प्राप्त है। राष्ट्रीय निदेशक विवादास्पद विशेष संचालन निदेशालय (डीएसओ) का भी प्रमुख है - जिसे

आमतौर पर स्कॉर्पियन्स के रूप में जाना जाता है जो प्राथमिकता और संगठित अपराध से संबंधित है। वर्ष 2005 में, यूनिट ने देश के उप राष्ट्रपति जैकब जुमा के खिलाफ कार्यवाही शुरू की, जिसके कारण उन्हें बर्खास्त कर दिया गया।

28. इंग्लैंड और वेल्स में, सार्वजनिक अभियोजन निदेशक का कार्यालय पहली बार 1880 में गृह कार्यालय के हिस्से के रूप में बनाया गया था, और 1908 से इसका अपना स्वयं का विभाग था। 1986 तक डीपीपी केवल कुछ प्रमुख मामलों के अभियोजन के लिए जिम्मेदार था, जब अभियोजन की जिम्मेदारी एक नई क्राउन प्रॉसिक्यूशन सर्विस को हस्तांतरित कर दी गई, जिसका प्रमुख डीपीपी था। उसे इंग्लैंड और वेल्स के अटॉर्नी जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता है। उत्तरी आयरलैंड में भी ऐसी ही स्थिति मौजूद थी और डीपीपी अब उत्तरी आयरलैंड के लिए सार्वजनिक अभियोजन सेवा का प्रमुख है।

29. वर्ष 1958 में विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि अभियोजन निदेशक का अपना कैडर स्थापित किया जाए, हालांकि तब यह सिफारिश संहिता में शामिल नहीं थी। वर्ष 1996 में पुनः विधि आयोग ने अपनी 154वीं रिपोर्ट में स्वतंत्र अभियोजन एजेंसी को संहिता के भीतर कई क्षेत्रों में से एक के रूप में पहचाना, जिसके लिए पुनः डिजाइन और पुनर्गठन की आवश्यकता थी। विधि आयोग ने प्रस्तावित दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक, 1994 में निहित संहिता में अधिकांश प्रस्तावित संशोधनों का समर्थन

किया। राज्य स्तर पर अभियोजन निदेशालय की संरचना से संबंधित सिफारिशें, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा अपनाया जाना है। इस घटना में अभियोजकों का एक केंद्र स्थापित करने का निर्णय लिया गया। विधि आयोग ने आगे सिफारिश की कि संहिता में संशोधन के माध्यम से राज्य-स्तरीय अभियोजन निदेशालयों की संरचना को वैधानिक दर्जा दिया जाए। ऐसी आवश्यकता की अनुपस्थिति और संहिता में प्रावधानों की अपर्याप्तता के बावजूद कई राज्यों, मुख्य रूप से दिल्ली, आंध्र प्रदेश, बिहार, गोवा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु और उत्तरांचल ने एक अभियोजन निदेशालय की स्थापना की।

30. 2006 में एक संशोधन द्वारा, धारा 25-ए को संहिता में शामिल किया गया, जो प्रत्येक राज्य में अभियोजन निदेशालय के निर्माण के लिए स्पष्ट रूप से कानून बनाता है:

"25-ए. अभियोजन निदेशालय। -(1) राज्य सरकार एक अभियोजन निदेशालय स्थापित कर सकती है जिसमें एक अभियोजन निदेशक और उतने उपनिदेशक अभियोजन शामिल होंगे जितने वह उचित समझे।

(2) एक व्यक्ति अभियोजन निदेशक या अभियोजन उप निदेशक के रूप में नियुक्त होने के लिए पात्र होगा, यदि जब वह एक अधिवक्ता के रूप में कम से कम दस वर्षों से अभ्यास कर रहा हो और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी।

(3) अभियोजन निदेशालय का प्रमुख अभियोजन निदेशक होगा, जो राज्य में गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करेगा।

(4) प्रत्येक उप निदेशक अभियोजन, अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होगा।

(5) उच्च न्यायालय में मामलों के संचालन के लिए धारा 24 की उप-धारा (1), या जैसा भी मामला हो, उप-धारा (8) के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्रत्येक लोक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होगा।

(6) जिला न्यायालयों में मामलों के संचालन के लिए धारा 24 की उपधारा (3), या जैसा भी मामला हो, उपधारा (8) के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्रत्येक लोक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक और धारा 25 की उपधारा (1) के तहत नियुक्त प्रत्येक सहायक लोक अभियोजक अभियोजन उप निदेशक के अधीनस्थ होगा।

(7) अभियोजन निदेशक और उप निदेशक अभियोजन की शक्तियां और कार्य और वे क्षेत्र जिनके लिए अभियोजन के प्रत्येक उप निदेशक की नियुक्ति की गई है, वे ऐसे होंगे जैसे राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट कर सकती है।

(8) इस धारा के प्रावधान लोक अभियोजक के कार्यों को निष्पादित करते समय राज्य के महाधिवक्ता पर लागू नहीं होंगे।"

14. चूंकि, विधि आयोग की सिफारिशों के बावजूद और एस.बी. शहाणे बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 1985 एससी 1628 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बावजूद भी कई राज्यों ने अभियोजन निदेशालय की स्थापना नहीं की है, जबकि उत्तर प्रदेश राज्य सहित कुछ राज्यों ने अभियोजन निदेशालय की स्थापना की है, ताकि संसद ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 (2005 की संख्या 25) की धारा 4 द्वारा सीआरपीसी में धारा 25ए शामिल की अभियोजन निदेशालय को वैधानिक दर्जा दिया जा सके, जिसे दिनांक 23.6.2005 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और अधिसूचना संख्या एस.ओ. 923 (ई) दिनांक 21.6.2006 द्वारा लागू किया गया जो दिनांक 23.6.2006 से प्रभावी हुआ।

(C) क्या सी.आर.पी.सी. की धारा 25ए उत्तर प्रदेश राज्य में लागू एवं लागू है?

15. सी.आर.पी.सी. की धारा 1(2) संहिता की प्रयोज्यता प्रदान करता है जो निम्नवत है:

"1. संक्षिप्त शीर्षक विस्तार और प्रारंभ

(1)

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत में है:

बशर्ते कि इस संहिता के प्रावधान, इसके अध्याय VIII, X और XI से संबंधित प्रावधानों के अलावा, लागू नहीं होंगे-

(ए) नागालैंड राज्य के लिए,

(बी) आदिवासी क्षेत्रों के लिए,

लेकिन संबंधित राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, ऐसे प्रावधानों या उनमें से किसी को पूरे नागालैंड राज्य या उसके कुछ हिस्से में, जैसा भी मामला हो, ऐसे पूरक, आकस्मिक या परिणामी संशोधनों के साथ लागू कर सकती है, जैसा भी हो अधिसूचना में निर्दिष्ट हो। स्पष्टीकरण: इस धारा में, "आदिवासी क्षेत्र" का अर्थ उन क्षेत्रों से है जो 21 जनवरी, 1972 से ठीक पहले, शिलांग नगर पालिका की स्थानीय सीमाओं के अलावा असम के जनजातीय क्षेत्रों में शामिल थे, जैसा कि संविधान की छठी अनुसूची के पैराग्राफ 20 में संदर्भित है।"

16. अनुच्छेद 246(2) विधायी क्षमता प्रदान करता है, अनुच्छेद 254 विधायी सर्वोच्चता प्रदान करता है और आठवीं अनुसूची की सूची-III की प्रविष्टि (2) आपराधिक प्रक्रिया के विषय पर कानून के क्षेत्र का प्रावधान करती है, जो निम्नानुसार है: -

"246. संसद और राज्यों के विधानमंडलों द्वारा बनाए गए विधियों की विषय वस्तु।-

(1).....

(2) खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद को और खंड (1) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मंडल को भी, सातवीं अनुसूची की सूची 3 में (जिसे इस संविधान में "समवर्ती सूची" कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है।

254. संसद द्वारा बनाई गई विधियों और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों में असंगति: (1) यदि किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबंध संसद द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद सक्षम है, किसी उपबंध के या समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के संबंध में विद्यमान विधि के किसी उपबंध के विरुद्ध है तो खंड (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, यथास्थिति, संसद द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि से पहले या उसके बाद में पारित की गई हो, या विद्यमान विधि, अभिभावी होगी और उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी।

(2) जहाँ राज्य के विधान-मंडल द्वारा समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के संबंध में बनाई गई विधि में कोई ऐसा उपबंध अंतर्विष्ट है जो संसद द्वारा पहले बनाई गई विधि के या उस विषय के संबंध में किसी विद्यमान विधि के उपबंधों के विरुद्ध है तो यदि ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है और उस पर उसकी अनुमति मिल गई है तो वह विधि उस राज्य में अभिभावी होगी :

परंतु इस खंड की कोई बात संसद को उसी विषय के संबंध में कोई विधि, जिसके अंतर्गत ऐसी विधि है, जो राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करती है, किसी

भी समय अधिनियमित करने से निवारित नहीं करेगी।

सूची III-समवर्ती सूची

भारत के संविधान की छठी अनुसूची की सूची-III की प्रविष्टि (2):- 2. आपराधिक प्रक्रिया, जिसमें इस संविधान के प्रारंभ में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में शामिल सभी मामले शामिल हैं।"

17. प्रत्येक राज्य में अभियोजन निदेशालय की स्थापना के लिए धारा 25ए के अधिनियमन के बाद, राज्य सरकार के अभिलेख से, जैसा कि हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है; ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य सचिव, उ.प्र. की अध्यक्षता में दिनांक 15.2.2008 की बैठक जिसमें प्रमुख सचिव, गृह, प्रमुख सचिव, कानून, पुलिस महानिदेशक और अभियोजन निदेशक (अभियोजन निदेशालय, उ.प्र.) सहित राज्य सरकार के कई अधिकारी शामिल हैं, के कार्यवृत्त द्वारा सीआरपीसी की धारा 25ए में राज्य संशोधन का प्रस्ताव रखा है और उस उद्देश्य के लिए एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक समिति का गठन किया गया था। दिनांक 26.2.2008 को मुख्यमंत्री द्वारा कार्यवृत्त का अनुमोदन किया गया। इस प्रकार गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें धारा 25ए की उपधारा (2) और उपधारा (4) के विलोप के अलावा उपधारा (1) और उपधारा (6) और (7) में कुछ संशोधन करने का सुझाव दिया गया। इसके बाद संशोधन का प्रारूप तैयार किया गया और विभिन्न विभागों की अनापत्ति/सुझाव भी लिये

गये। विधायी विभाग द्वारा कुछ बदलावों का सुझाव दिया गया था। अंततः गृह विभाग ने सीआरपीसी की धारा 25ए में निम्नलिखित संशोधन प्रस्तावित किये: और दिनांक 15.7.2008 को निम्नानुसार मुख्यमंत्री के अनुमोदन को मांग को, जो निम्नानुसार हैं:

(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-25 क की उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रख दी जायगी, अर्थात: "(1) राज्य सरकार अभियोजन निदेशालय स्थापित कर सकती है और अभियोजन निदेशक और ऐसे अन्य अधिकारियों की नियुक्ति कर सकती है जैसा वह उचित समझे।"

(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा- 25 क की उपधारा (2) निकाल दी जाएगी।

(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-25 क की उपधारा (3) को यथावत बनाये रखा जाएगा।

(4) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-25 क की उपधारा (4) निकाल दी जाएगी।

(5) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-25 क की उपधारा (5) को यथावत बनाये रखा जाएगा।

(6) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा- 25 क की उपधारा (6) में शब्द "उप-निर्देशक" के स्थान पर शब्द "निदेशक रख दिया जाएगा।

(7) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा- 25 क की उपधारा (7) में शब्द "अभियोजन उप निदेशक और क्षेत्र, जिसके लिए प्रत्येक अभियोजन उप

निदेशक की नियुक्ति की गई है, ऐसे होंगे जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे" के स्थान पर शब्द "अभियोजन निदेशालय के अन्य अधिकारी ऐसे होंगे जैसे राज्य सरकार निर्धारित करे", रख दिये जाएंगे। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-25क की उपधारा (8) को यथावत बनाये रखा जाएगा।"

18. इसके बाद मामले को कार्यालय नोट दिनांक 20.7.2012 और 9.8.2012 के माध्यम से विद्वान महाधिवक्ता की राय के लिए भेजा गया, जिन्होंने दिनांक 12.1.2014 को अपनी विस्तृत राय दी और निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:

"सीआरपीसी की धारा 25-ए में प्रस्तावित संशोधन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी विभिन्न निर्देशों के साथ-साथ विधि आयोग की रिपोर्टों के अनुरूप नहीं हैं। प्रस्तावित संशोधन पूरी तरह से आपराधिक प्रक्रिया संहिता में सम्मिलित धारा 25-ए के इरादे और उद्देश्य को विफल/निराश कर देगा।"

19. इसके बाद दिनांक 30.1.2014 को एक कार्यालय नोट डाला गया जिसे सचिव, गृह द्वारा 18.02.2014 को और प्रमुख सचिव गृह द्वारा 21.2.2014 को और उसके बाद मुख्य सचिव, उ.प्र. द्वारा 22.2.2014 को अनुशंसित/अग्रेषित किया गया और इसे निम्नानुसार प्रस्ताव की अनुमोदन के लिए मुख्यमंत्री के समक्ष रखा गया था:

"7- मा० महाधिवक्ता के परामर्श के आलोक में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में दण्ड

प्रक्रिया (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा जोड़ी गयी नयी धारा-25क में राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर किसी अग्रतर कार्यवाही की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है।

अतः कृपया मुख्य सचिव महोदय के माध्यम से उपरोक्त प्रस्तर-7 के प्रस्ताव पर मा० मुख्यमंत्री जी का अनुमोदन प्राप्त करना चाहें।"

20. मुख्यमंत्री ने प्रस्ताव (उपरोक्त पैरा 19 में प्रस्तुत) को दिनांक 28.2.2014 को मंजूरी दी और इस प्रकार यह मामला समाप्त हो गया। यह खंड संसद को किसी भी समय एक ही मामले के संबंध में कोई भी कानून बनाने से नहीं रोकेगा, जिसमें राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून को जोड़ने, संशोधित करने, बदलने या निरस्त करने वाला कानून भी शामिल है। हालाँकि, उपरोक्त तथ्यों के बावजूद अभियोजन निदेशक और उप निदेशक /अपर महानिदेशक अभियोजन सीआरपीसी की धारा 25ए(2) के तहत प्रदान की गई पात्रता को पूरा किए बिना पद पर बने रहे।

21. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने हमारे समक्ष अपने तर्क में प्रस्तुत किया, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कि "राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.2.2014 को सीआरपीसी की धारा 25ए में संशोधन न करने का निर्णय लेने के बाद, वर्ष 2017 में कुछ शिकायतें प्राप्त हुईं और उसके बाद एक राय दी गई और दिनांक 9.11.2020 को विद्वान महाधिवक्ता से राय मांगी गई लेकिन न तो कोई राय दिया गया और न ही शिकायतों पर

कोई निर्णय लिया गया।" उनके तर्क से ही पता चलता है कि राज्य सरकार का निर्णय दिनांकित 28.2.2014 प्रस्तावित संशोधन को हटाकर सीआरपीसी की धारा 25ए लागू करना पूर्णतः निर्विवाद है।

22. उपरोक्त के अलावा, अभिलेख के अवलोकन पर इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 1.3.2023 के पैराग्राफ 3 में पाया कि "रिकॉर्ड के पृष्ठ 44 पर, यह कहा गया है कि धारा 25ए की उपधारा (1) के प्रावधान लागू है और सीआरपीसी की धारा 25-ए(1) की उपधारा(2), (5), (6) और (7) के प्रावधानों के अनुसार, अभियोजकों की जिम्मेदारियां और कर्तव्य स्वचालित रूप से बढ़ जाएंगे।" विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा इस पर विवाद नहीं किया गया हालांकि प्रस्तुतीकरण के समय अभिलेख में आदेश उनके पास थे।

23. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 25ए सीआरपीसी सपठित धारा 1(2) उत्तर प्रदेश राज्य में दिनांक 23.6.2006 से प्रभावी है एवं उत्तर प्रदेश राज्य ने सीआरपीसी की धारा 25ए में संशोधन न करने का फैसला सोच-समझकर लिया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 254 के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति की सहमति से उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल ने सीआरपीसी की धारा 25ए में संशोधन के लिए कोई कानून नहीं बनाया है। इस प्रकार, धारा 25ए के प्रावधान यूपी राज्य में दिनांक 23.6.2006 से लागू हैं। सीआरपीसी की धारा 25ए के अधिनियमन द्वारा, उपरोक्त कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 द्वारा स्थापित मौजूदा

अभियोजन निदेशालय ने वैधानिक दर्जा प्राप्त कर लिया है। सीआरपीसी की धारा 25 प्रत्येक राज्य में अभियोजन निदेशालय के निर्माण के लिए अधिनियमित किया गया है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (सुप्रा) (पैरा-29 और 30) में भी देखा है, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है। इस प्रकार सीआरपीसी की धारा 25ए अभियोजन निदेशक और उप निदेशक के पद पर नियुक्ति की पात्रता सहित दिनांक 27.11.1980 का उपरोक्त कार्यालय जापन मान्य होगा। अभियोजन निदेशक/अपर महानिदेशक अभियोजन, चाहे किसी भी नाम से पुकारा जाए, इस हद तक कि कार्यालय जापन 27.11.1980 सीआरपीसी की धारा 25ए के साथ असंगत है।

(D) 2011 की विविध बेंच संख्या 7825 (साधना शर्मा बनाम यूपी राज्य प्रमुख सचिव कानून विभाग और अन्य के माध्यम से) और 2011 की विविध बेंच संख्या 4097 (साधना शर्मा बनाम यूपी राज्य, प्रमुख सचिव विधि विभाग, यूपी सरकार के माध्यम से) और 2012 की एसएलपी (सी) संख्या 4042-4043 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय दिनांक 11.1.2012 के प्रभाव से।

24. साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में, अन्य बातों के अलावा; यूपी द्वारा राज्य संशोधन की संवैधानिक वैधता 1991 के अधिनियम संख्या 18 में सीआरपीसी की धारा 24 में संशोधन को चुनौती दी गई। वाद पर विचार करते समय, इस न्यायालय की खंडपीठ ने सीआरपीसी की धारा 25ए के संबंध में

टिप्पणी की/आयोजित की। [पैराग्राफ 15, 168, 169, 175, 181, 183, 195(3), 195(7), और 195(8) में], निम्नानुसार:

"15. अभियोजन निदेशालय का गठन करते हुए धारा 25-ए को आपराधिक प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम, 2005 (2005 का अधिनियम संख्या 25) धारा 4 द्वारा 23.6.2006 से लागू किया गया था। धारा 25 ए के तहत, अभियोजन निदेशालय का प्रमुख अभियोजन निदेशक होगा। अभियोजन निदेशक वह व्यक्ति होगा जो कम से कम 10 वर्षों तक अधिवक्ता के रूप में अभ्यास कर चुका हो और उसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से होगी। इस प्रकार, धारा 25-ए प्रदर्शित करता है कि अभियोजन निदेशालय राज्य का स्वतंत्र निकाय होगा जो अभियोजन निदेशक के अधीन अपने दायित्व का निर्वहन करता है, जिसे उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से नियुक्त किया जाता है और सीआरपीसी की धारा 24 और 25 के तहत नियुक्त सरकारी वकीलों, अभियोजन अधिकारियों पर पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार होगा।

168. 2005 के अधिनियम क्रमांक 25 द्वारा सम्मिलित धारा 25-ए को दिनांक 23.6.2006 से प्रभावी किया गया है। इसमें प्रावधान है कि राज्य सरकार एक अभियोजन निदेशालय स्थापित करेगी जिसमें अभियोजन निदेशक और अभियोजन उप निदेशक शामिल होंगे। अभियोजन निदेशक की नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी जिसका निदेशालय पर प्रशासनिक नियंत्रण होगा। अभियोजन के उप निदेशक

अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होंगे और प्रत्येक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक निम्नानुसार होंगे और धारा 24 के तहत नियुक्त विशेष लोक अभियोजक अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होंगे। इस प्रकार, संसद ने अभियोजन शाखा की नियुक्ति को विनियमित कर इसे लगभग स्वतंत्र और सरकार के दायरे से बाहर कर दिया था। अभियोजन निदेशक की रिक्ति को भरने में मुख्य न्यायाधीश की सहमति अभियोजन को स्वतंत्र बनाने का एक प्रयास है।

169. अनुच्छेद 254 के खंड (2) का प्रावधान संसद को सातवीं अनुसूची की सूची-III के तहत पहले से ही राज्य सरकार के कब्जे वाले विषय पर कानून बनाने का अधिकार देता है। प्रतिकूलता की सीमा तक, राज्य कानून को संशोधित, अमान्य या शून्य माना जाएगा।

175. कानून के उपरोक्त स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, यदि सीआरपीसी की धारा 25-ए के साथ विवादित संशोधन पर एक साथ विचार किया जाता है या उसे प्रभावी किया जाता है, तो असंगतता प्रतीत होती है जो अप्रासंगिक है। यदि उक्त संशोधन को प्रभावी किया जाता है, तो इससे धारा 25-ए के प्रावधानों की अवहेलना होगी। धारा 25-ए का मूल उद्देश्य अभियोजन शाखा को स्वतंत्र बनाना है। इसीलिए, संसद ने प्रावधान किया कि अभियोजन निदेशक, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से नियुक्त किया जाएगा और उच्च न्यायालय में नियुक्त लोक अभियोजक, अभियोजन निदेशक के अधीन होगा, जबकि लोक अभियोजक, अतिरिक्त

लोक उप-धारा (3) या उप-धारा (8) या धारा 24 के तहत नियुक्त अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, अदालत के समक्ष मामलों का संचालन करेंगे और धारा 25 के तहत नियुक्त प्रत्येक विशेष लोक अभियोजक, अभियोजन के उप निदेशक के तहत काम करेंगे। इसमें कोई विवाद नहीं है कि जिला सरकारी वकील सीआरपीसी की धारा 24 की उपधारा (3) में निहित वैधानिक प्रावधानों के अनुसरण में नियुक्त किए जाते हैं। अभियोजन के उप निदेशक को अभियोजन निदेशक के अधीन काम करना होता है।

181. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बहुत तर्क आगे बढ़ाया गया है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25-ए में प्रयुक्त 'हो सकता है' शब्द अनिवार्य नहीं है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क सही प्रतीत नहीं होता है। धारा 25-ए को संसद द्वारा इस धारणा के साथ जोड़ा गया था कि संपूर्ण धारा 24 राज्य सरकार द्वारा किए गए विलोपन को ध्यान में रखे बिना लागू है।

183. संसद ने धारा 25-ए बनाकर क्या किया है? विशेष अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए राज्य सरकार को स्वतंत्र शक्ति प्रदान की गई जिसे सीआरपीसी की धारा 24 (8) के तहत अब कुछ हद तक कमजोर कर दिया गया है, हालांकि सरकार विशेष अधिवक्ता नियुक्त कर सकती है लेकिन इस प्रकार नियुक्त अधिवक्ता, अभियोजन निदेशक के अंतर्गत अपने दायित्व का निर्वहन करेगा जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25-ए के तहत गठन किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि

प्रावधान राज्य सरकार द्वारा नियुक्त वकील के माध्यम से राज्य द्वारा मुकदमा चलाने या बचाव करते समय अधीनस्थ न्यायालयों में लंबित मामलों से निपटने के दौरान शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए किए गए हैं।

195. ऊपर कार्यवाही पैराग्राफ में दर्ज चर्चा और निष्कर्ष के अधीन, आक्षेपित संशोधन अधिकारातीत और टिकाऊ नहीं लगता है और हम निष्कर्ष को इस प्रकार सारांशित करते हैं:

(1).....

(2).....

(3) विशेष अधिवक्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 24 की उपधारा (4), (5) और (6) के तहत नियुक्त जिला सरकारी अधिवक्ता से भिन्न वर्ग है। इस प्रकार, जहां तक धारा 25-ए को सम्मिलित करके पर्यवेक्षी या वैधानिक नियंत्रण का संबंध है, संसद ने जिला न्यायाधीश और जिला मजिस्ट्रेट की सिफारिश पर नियुक्त अधिवक्ता और सरकार द्वारा नियुक्त विशेष अधिवक्ता के बीच अंतर को सीधे तौर पर हटा दिया। मामला। तदनुसार, यदि विवादित संशोधन बरकरार रहता है, तो यह सीआरपीसी की धारा 25-ए की मूल भावना का अपमान होगा और संविधान के अनुच्छेद 254 के खंड (2) के प्रावधान के मद्देनजर केंद्रीय अधिनियम के प्रतिकूल होगा। दोनों एक साथ प्रभाव में नहीं हो सकते।

(7) विवादित संशोधन भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 के खंड (2) के प्रावधान और

सीआरपीसी की धारा 25-ए के प्रतिकूल है। दोनों एक साथ नहीं प्रभावित हो सकते क्योंकि एक के अनुसरण करने से दूसरा अप्रभावी हो जाएगा।

(8) सीआरपीसी की धारा 25-ए का उद्देश्य अभियोजन शाखा को सरकार से अधिकतम स्तर तक स्वतंत्र बनाना है। इसीलिए धारा 24 की उपधारा (8) के तहत नियुक्त विशेष अधिवक्ता को भी अभियोजन निदेशालय के अधीन रखा गया है।"

(जोर दिया गया)

25. सीआरपीसी की धारा 25ए पर विचार करते हुए साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में फैसले का संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है:

"i. धारा 25ए के तहत, अभियोजन निदेशालय का प्रमुख अभियोजन निदेशक होगा। अभियोजन निदेशक वह व्यक्ति होगा जो कम से कम 10 वर्षों तक वकील के रूप में अभ्यास कर चुका हो और उसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से होगी।

ii. धारा 25-ए के अवलोकन से प्रकट होता है कि अभियोजन निदेशालय राज्य का एक स्वतंत्र निकाय होगा जो अभियोजन निदेशक के अधीन अपने दायित्व का निर्वहन करेगा, जिसे उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से नियुक्त किया जाता है और उसके पास सीआरपीसी की धारा 24 और धारा 25 के तहत नियुक्त सरकारी वकील, अभियोजन अधिकारी का पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार होगा।

iii. 2005 के अधिनियम संख्या 25 द्वारा सम्मिलित धारा 25-ए को दिनांक 23.6.2006 से प्रभावी कर दिया गया है।

iv. संसद ने अभियोजन शाखा की नियुक्ति को स्वतंत्र और सरकार के दायरे से बाहर कर विनियमित किया था। अभियोजन निदेशक की रिक्ति को भरने में मुख्य न्यायाधीश की सहमति अभियोजन को स्वतंत्र बनाने का एक प्रयास है।

v. अनुच्छेद 254 के खंड (2) का प्रावधान संसद को सातवीं अनुसूची की सूची-III के तहत पहले से ही राज्य सरकार के कब्जे वाले विषय पर कानून बनाने का अधिकार देता है। प्रतिकूलता की सीमा तक, राज्य कानून को संशोधित, अमान्य या शून्य माना जाएगा।

vi. उपरोक्त स्थापित विधि प्रस्ताव के अनुसार, यदि विवादित संशोधन पर सीआरपीसी की धारा 25-ए के साथ एक साथ विचार किया जाता है या उसे प्रभावी किया जाता है, तो असंगतता प्रतीत होती है जो अप्रासंगिक है। यदि उक्त संशोधन को प्रभावी किया जाता है, तो इससे धारा 25-ए के प्रावधानों की अवहेलना होगी। धारा 25-ए का मूल उद्देश्य अभियोजन शाखा को स्वतंत्र बनाना है। इसीलिए, संसद ने प्रावधान किया कि अभियोजन निदेशक की नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी।

vii. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा काफी तर्क प्रस्तुत

किये गये हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25-ए में प्रयुक्त 'हो सकता है' शब्द अनिवार्य नहीं है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क सही प्रतीत नहीं होता है। धारा 25-ए को संसद द्वारा इस धारणा के साथ जोड़ा गया था कि संपूर्ण धारा 24 राज्य सरकार द्वारा किए गए विलोपन को ध्यान में रखे बिना लागू है।

viii. उपरोक्त तर्क और आक्षेपित संशोधन अधिकारातीत और पोषणीय नहीं लगता है।

ix. विवादित संशोधन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 254 के खंड (2) के प्रावधान और सीआरपीसी की धारा 25-ए के प्रतिकूल है। दोनों एक साथ प्रभावी नहीं हो सकते, क्योंकि एक का अनुसरण करने से दूसरा अप्रभावी बन जाएगा।

x. सीआरपीसी की धारा 25-ए का उद्देश्य अभियोजन शाखा को सरकार से अधिकतम स्तर तक स्वतंत्र बनाना है।"

26. साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में खंडपीठ के उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा 2012 की एस.एल.पी. (सी) संख्या 4042-4043 (यूपी राज्य बनाम साधना शर्मा) दायर की गई थी, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 17.7.2012 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था:

"एसएलपी (सी) संख्या 4042-4043

राज्य की उच्च न्यायालय के निर्णय को पूरी तरह से लागू करने और भविष्य में भी

यही नीति अपनाने की नीतिगत निर्णय को देखते हुए उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता राज्य द्वारा दायर इन विशेष अनुमति याचिकाओं को वापस लेने की अनुमति चाहते हैं।

तदनुसार, ये विशेष अनुमति याचिकाएं निर्लिप्तिता में खारिज की जाती हैं।

27. इस प्रकार, राज्य सरकार ने साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को संपूर्णता में लागू करने के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक वचन दिया। इसलिए, हमारे निष्कर्षों के अलावा, जैसा कि पैराग्राफ 14 से 23 में बताया गया है, यह स्पष्ट है कि साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में न्यायिक घोषणा से सीआरपीसी की धारा 25ए की प्रवर्तनीयता लागू हो गई है जिसे उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा स्वीकार कर लिया गया और उच्च न्यायालय के फैसले को संपूर्ण रूप से लागू करने के वचन के साथ एसएलपी वापस ले ली गई। धारा 25ए को लागू माना गया, जिस तथ्य को यूपी राज्य ने स्वीकार कर लिया। इसलिए, उत्तरदाताओं द्वारा यह आधार अपनाया गया कि सीआरपीसी की धारा 25ए उत्तर प्रदेश राज्य में लागू नहीं है, पूरी तरह से निराधार है और वास्तव में उनके द्वारा साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में बाध्यकारी निर्णय, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से दिया गया बयान और अनुच्छेद 141 सहित संवैधानिक प्रावधान और संसद के प्रति दिखाया जा रहा अनादर है।

(E) क्या धारा 25ए कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 पर प्रभावी होगा?

28. भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची- सूची III की प्रविष्टि 2 में प्रदान किए गए कानून के क्षेत्र के संबंध में अनुच्छेद 246(2) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 अधिनियमित किया गया है। सीआरपीसी की धारा 1 की उपधारा (2) उपरोक्त कथन से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि सीआरपीसी के प्रावधान पूरे भारत में लागू हैं, बशर्ते कि संहिता के प्रावधान, अध्याय VIII, X और XI से संबंधित प्रावधानों के अलावा, नागालैंड राज्य और आदिवासी क्षेत्रों पर लागू नहीं होंगे, लेकिन संबंधित राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा नागालैंड राज्य के पूरे हिस्से या ऐसे जनजातीय क्षेत्रों के लिए ऐसे प्रावधान या उनमें से कोई भी लागू कर सकती है। इस प्रकार सीआरपीसी की धारा 1 की उपधारा (2) के अनुसार सीआरपीसी की धारा 25ए का प्रावधान उत्तर प्रदेश राज्य में लागू हैं। उत्तर प्रदेश विधानमंडल ने उक्त सीआरपीसी की धारा 25ए में संशोधन हेतु भारत के राष्ट्रपति की सहमति से कोई कानून नहीं बनाया है। कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 अभी तक एक कानून नहीं है यदि कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 को एक कानून माना जाता है तो भी सीआरपीसी की धारा 25ए उस पर विजय प्राप्त होगी। भारत के संविधान का अनुच्छेद 254(2) आईटीसी लिमिटेड बनाम कृषि उपज बाजार समिति (2002) 9 एससीसी 232 में आयोजित विधायी सर्वोच्चता के प्रश्न

से संबंधित है। यदि कोई राज्य कानून संसद द्वारा समवर्ती सूची के अंतर्गत बनाए गए कानून के साथ विसंवाद से में है, तो संसद द्वारा अधिनियमित कानून प्रभावी होगा और प्रतिकूलता की सीमा तक राज्य कानून शून्य होगा। इस संबंध में **झवेरभाई अमैदास बनाम बॉम्बे राज्य, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 752** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का संदर्भ लिया जा सकता है।

29. ज़वेरभाल अमैदास (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने निम्नानुसार निर्णय लिया:

"अब, अनुच्छेद 254(2) के प्रावधान द्वारा संविधान ने संसद की शक्तियों को बढ़ा दिया है, और उस प्रावधान के तहत, संसद वह कर सकती है जो केंद्रीय विधानमंडल भारत सरकार अधिनियम की धारा 107(2) के तहत नहीं कर सकती कर सकती है जब वह समवर्ती सूची में उल्लिखित मामले अधिनियमित, राज्य के किसी कानून को जोड़ने, संशोधित करने, बदलने या निरस्त करने वाले विधि से संबंधित हो। तब स्थिति यह है कि संविधान के तहत संसद, अनुच्छेद 254(2) के प्रावधान के अंतर्गत राज्य के कानून को निरस्त कर सकती है। लेकिन जहां यह स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं करता है, तब भी, राज्य का कानून उस प्रावधान के तहत शून्य हो जाएगा यदि यह बाद में "उसी मामले के संबंध में कानून" के साथ टकराव करता है जिसे संसद द्वारा अधिनियमित किया जा सकता है।"

(जोर दिया गया)

30. **ई.एस.आई. कॉर्पोरेशन बनाम मंगलम पब्लिकेशन (इंडिया) (पी.) लिमिटेड, (2018) 11 एससीसी 438 (पैरा-16)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संसद द्वारा अधिनियमित ई.एस.आई. अधिनियम विभाग के कार्यालय जापन का प्रभाव कम नहीं हो सकता है। **बालेश्वर दास और अन्य आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (1980) 4 एससीसी 226 (पैरा-28)**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "जापन स्वयं नियमों से आगे नहीं बढ़ सकता है, लेकिन असंगतता के मामले में उनके अधीन काम करेगा"। गंभीरदार के. गढ़वी बनाम गुजरात राज्य और अन्य के मामले में (2022) 5 एससीसी 179 (पैरा-50), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकार पृच्छा रिट याचिका के मामले में, राज्य विधान और यू.जी.सी. विनियमों पर विचार करते हुए, माना कि यू.जी.सी. विनियम केंद्रीय भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 के प्रतिपादित प्रतिकूलता के नियम से विधान होने के कारण इसे लागू करने से विफल हो जाएगा क्योंकि "शिक्षा" विषय समवर्ती सूची में है।

31. जैसा कि उपरोक्त चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए विधि के अनुसार हम मानते हैं कि सीआरपीसी की धारा 25ए(2) में अभियोजन निदेशक या उप निदेशक के पद के लिए प्रदान की गई आवश्यक योग्यता अभियोजन निदेशक दिनांक 27.11.1980 के कार्यालय जापन के तहत प्रदान की गई उक्त पदों के लिए योग्यता पर प्रबल होंगे।

(F) क्या सी.आर.पी.सी. की धारा 24, 25 एवं 25ए एक एकल योजना के रूप में समझने की आवश्यकता है?

32. धारा 24 लोक अभियोजकों और अपर लोक अभियोजक की नियुक्ति का प्रावधान करती है। धारा 25 सहायक लोक अभियोजकों की नियुक्ति का प्रावधान करती है। धारा 25ए की उपधारा (1) राज्य सरकार पर अभियोजन निदेशक और कई उप-निदेशकों को मिलाकर एक अभियोजन निदेशालय स्थापित करने का दायित्व बनाती है जैसा अभियोजन निदेशक उचित समझे। उत्तर प्रदेश राज्य में अभियोजन निदेशालय की स्थापना पहले ही की जा चुकी है। धारा 25ए की उपधारा (2) अभियोजन निदेशक या उप निदेशक के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की पात्रता प्रदान करती है। अभियोजन निदेशक और ऐसी नियुक्तियाँ उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जानी चाहिए। उपधारा (3) में प्रावधान है कि अभियोजन निदेशक अभियोजन निदेशालय का प्रमुख होगा जो राज्य में गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत कार्य करेगा। उपधारा (4) में प्रावधान है कि प्रत्येक उप अभियोजन निदेशक, अभियोजन निदेशक के अधीन होगा। उपधारा (5) में प्रावधान है कि प्रत्येक लोक अभियोजक, अपर उच्च न्यायालय में मामलों के संचालन के लिए राज्य सरकार द्वारा धारा 24 की उपधारा (1) के तहत या उपधारा (8) के तहत, जैसा भी मामला हो, नियुक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होंगे। उपधारा (6) में प्रावधान है कि प्रत्येक

लोक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक को जिला न्यायालयों में मामलों के संचालन के लिए धारा 24 की उपधारा (3), या उपधारा (8), जैसा भी मामला हो, के तहत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और धारा 25 की उपधारा (1) के तहत नियुक्त प्रत्येक सहायक लोक अभियोजक अभियोजन के उप निदेशक के अधीनस्थ होगा। उपधारा (7) राज्य सरकार को अभियोजन निदेशक और उप निदेशक के कार्यों को निर्दिष्ट करने के लिए अधिसूचना जारी करने का अधिकार देती है। अभियोजन निदेशक और वे क्षेत्र जिनके लिए प्रत्येक उप अभियोजन निदेशक नियुक्त किये गये हैं। इस प्रकार जबकि सी.आर.पी.सी. की धारा 24 और 25 लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक, विशेष लोक अभियोजक और सहायक लोक अभियोजक की नियुक्ति का प्रावधान करती है, धारा 25ए अभियोजन निदेशालय की स्थापना और अभियोजन निदेशालय के सुचारू, स्वतंत्र और कुशल कामकाज के लिए पदानुक्रम प्रदान करती है। इस प्रकार धारा 24, 25 और 25ए एक एकल योजना का हिस्सा हैं जो उच्च न्यायालय और जिला न्यायालयों में लोक अभियोजक के लिए एक बोधगम्य सीमांकन और विभाजन और अभियोजन विभाग यानी अभियोजन निदेशालय में प्रशासनिक नियंत्रण और पदानुक्रम बनाता है।

33. इसी तरह का विचार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के. अनबझगन बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य (2015) 6 एससीसी 158 (पैराग्राफ 28) के मामले में

सी.आर.पी.सी. की धारा 24, 25 और 25 ए के प्रावधानों पर विचार करते हुए निम्नानुसार व्यक्त किया है, :

"28. उपरोक्त प्रावधानों को एक योजनाबद्ध संदर्भ में सराहा जाना चाहिए। यहां ऊपर दिए गए सभी प्रावधानों को एक एकल योजना के रूप में पढ़ा और समझा जाना चाहिए। उन्हें उनके पाठ और संदर्भ के बिना नहीं पढ़ा जा सकता। यदि इन्हें अलग-अलग योजनाओं के हिस्से के रूप में पढ़ा जाए तो विसंगति होना स्वाभाविक है। इस तरह की व्याख्या से बचा जाना चाहिए, और आपराधिक प्रक्रिया संहिता को सावधानीपूर्वक पढ़ने से वास्तव में इससे बचा जा सकता है। खंड 2(यू) में शब्दकोश केवल सीआरपीसी की धारा 24 के तहत नियुक्त व्यक्ति को संदर्भित करता है और इसमें सार्वजनिक अभियोजक के निर्देशों के तहत कार्य करने वाला कोई भी व्यक्ति शामिल है। लोक अभियोजक का वर्ग या स्थिति सीआरपीसी की धारा 24 और 25-ए द्वारा नियंत्रित होती है। धारा 24 के प्रावधानों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है कि धारा 24(1) ने उच्च न्यायालय के लिए लोक अभियोजक की नियुक्ति को प्रतिबंधित कर दिया है, क्योंकि प्रावधान "प्रत्येक उच्च न्यायालय के लिए" शब्दों से शुरू होता है। उपधारा (3) जिलों के लिए लोक अभियोजक या अतिरिक्त लोक अभियोजक की नियुक्ति से संबंधित है। नियुक्ति की एक प्रक्रिया है जिससे हमारा कोई सरोकार नहीं है। धारा 24 की उपधारा (8) किसी भी मामले या मामलों की श्रेणी के लिए विशेष लोक अभियोजक की नियुक्ति से

संबंधित है। एक लोक अभियोजक जिसे किसी जिले के संबंध में नियुक्त किया जाता है, उसका कार्य क्षेत्र जिले तक ही सीमित रहना चाहिए, जब तक कि उसे विशेष रूप से उच्च न्यायालय के समक्ष पेश होने के लिए नियुक्त न किया जाए। एक विशेष लोक अभियोजक को जब किसी विशिष्ट मामले के लिए नियुक्त किया जाता है और वह भी किसी विशिष्ट अदालत के लिए, तो यह एक प्रतिबंधित नियुक्ति है। इस संदर्भ में संहिता की धारा 25-ए अत्यधिक सहायता प्रदान करती है। राज्य सरकार अभियोजन निदेशालय स्थापित करने के लिए बाध्य है। धारा 25-ए स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि राज्य सरकार द्वारा धारा 24 की उप-धारा (1) या उप-धारा (8) के तहत उच्च न्यायालय में मामलों का संचालन करने के लिए नियुक्त किए गए लोक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होंगे। उप-धारा (6) में कहा गया है कि जिला अदालतों में मामलों के संचालन के लिए राज्य सरकार द्वारा नियुक्त की गई तीन श्रेणियां अभियोजन के उप निदेशक के अधीन होंगी। इस प्रकार, यह योजना उच्च न्यायालय और जिला अदालतों में लोक अभियोजक के लिए एक स्पष्ट सीमांकन और विभाजन करती है।"

(G) क्या कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 धारा 5 सीआरपीसी के तहत एक कानून है:-

34. सी.आर.पी.सी. की धारा 5 एक बचत प्रावधान है ताकि किसी विशेष कानून या

स्थानीय कानून को उस समय लागू होने से बचाया जा सके या किसी विशेष क्षेत्राधिकार या प्रदत्त शक्ति, या किसी विशेष प्रकार की प्रक्रिया को किसी अन्य कानून द्वारा निर्धारित किया जा सके, जो कि **सीआरपीसी में विरुद्ध विपरीत विशिष्ट प्रावधान के अभाव में** हो। सीआरपीसी की धारा 2(y) प्रावधान करता है कि जिन शब्दों और अभिव्यक्तियों का उपयोग किया गया और परिभाषित नहीं किया गया है लेकिन भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में परिभाषित किया गया है, उनका अर्थ क्रमशः उस संहिता में दिया गया है। सीआरपीसी की **धारा 41** के अनुसार, **"विशेष कानून"** एक विशेष विषय पर लागू होने वाला कानून है। सीआरपीसी की **धारा 42** के अनुसार, **"स्थानीय कानून"** एक ऐसा कानून है जो केवल भारत के एक विशेष हिस्से पर लागू होता है। कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 सीआर.पी.सी. की धारा 5 के अंतर्गत आने के लिए, एक विशेष कानून या एक स्थानीय कानून होना चाहिए जैसा कि आई.पी.सी. की धारा 41 और धारा 42 में परिभाषित है। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा न तो यह तर्क दिया गया है और न ही यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री रखी गई है कि कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 एक विशेष कानून या स्थानीय कानून है। इसलिए, कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 सीआरपीसी की धारा 5 के संदर्भ में कोई कानून नहीं है। विशेष कानून के उदाहरण सेना अधिनियम, नौसेना अधिनियम और वायु सेना अधिनियम आदि हैं जो पूरी तरह से आत्मनिर्भर व्यापक संहिता का प्रतीक हैं। इस संबंध में **अजमेर सिंह बनाम भारत संघ, (1987) 3 एससीसी 340 (पैरा-7)** में

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है। **मारु राम बनाम भारत संघ और अन्य, (1981) 1 एससीसी 107 (पैरा-32 से 36)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विचार किया कि सीआरपीसी की धारा 433ए, सूची-II की प्रविष्टि-4 के तहत कानून बनाने के लिए छूट नियम और राज्य विधानमंडल की विधायी क्षमता संसद द्वारा अधिनियमित है और माना गया कि मोटे तौर पर, **सीआरपीसी की धारा 5 के तीन घटक हैं।** सबसे पहला, प्रक्रिया संहिता आम तौर पर इसके अंतर्गत आने वाले मामलों को नियंत्रित करती है, **दूसरा**, यदि उसी क्षेत्र को कवर करने वाला कोई विशेष या स्थानीय कानून मौजूद है, तो यह बाद वाला कानून सुरक्षित और प्रबल होगा और **तीसरा**, यदि सीआरपीसी में इसके विपरीत विशिष्ट प्रावधान है, तो वह विशेष या स्थानीय कानून को खत्म कर देगा और वह अंतिम शब्द होगा और विशेष कानून या स्थानीय कानून के खिलाफ भी होगा। चूंकि कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 न तो कोई विशेष कानून है और न ही स्थानीय कानून है, इसलिए, यह सीआरपीसी की धारा 5 के अंतर्गत नहीं आएगा। कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 अभियोजन निदेशालय स्थापित करने का एक प्रशासनिक निर्णय था और सीआरपीसी की धारा 25ए पहले से स्थापित अभियोजन निदेशालय को वैधानिक मान्यता दे दी है।

(H) क्या सी.आर.पी.सी. की धारा 25ए(2) अनिवार्य है?

35. उत्तरदाताओं का यह स्वीकृत मामला है कि अभियोजन निदेशालय उत्तर

प्रदेश राज्य में स्थापित किया गया है। साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में राज्य सरकार ने स्वीकार किया है कि धारा 25ए सीआर.पी.सी. अनिवार्य है। इसलिए, सीआरपीसी की धारा 25ए की उपधारा (1) में प्रयुक्त शब्द "हो सकता है" की व्याख्या में शामिल होने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक बार जब उत्तर प्रदेश राज्य में अभियोजन निदेशालय स्थापित हो जाता है, तो अभियोजन निदेशक और उप निदेशक की योग्यता धारा 25ए की उपधारा (2) में दिए गए अभियोजन निदेशक अनिवार्य हैं, खासकर जब सीआर.पी.सी. की धारा 25ए(2) यूपी विधान मंडल द्वारा संशोधन नहीं किया गया है। *जीवन लाल शर्मा बनाम एस.एस. परमार (2007) 51 एआईसी 842 (एचपी) (पैराग्राफ 7,9,11,12 और 15)*, के मामले में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि क्या धारा 25ए की उपधारा (2) अनिवार्य है? और यह मानते हुए इसे अनिवार्य माना कि किसी भी व्यक्ति को तब तक अभियोजन निदेशक के कार्यालय का प्रभार संभालने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक कि वह धारा 25ए की उपधारा (2) में निहित पात्रता आवश्यकता के अनुरूप न हो।

36. चूंकि अभियोजन निदेशक आपराधिक न्याय प्रणाली से संबंधित वैधानिक कर्तव्यों का पालन करता है, इसलिए, संसद ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कानून के उपरोक्त प्रावधान को अधिनियमित किया है कि उप-धारा (2) में उल्लिखित लोगों के अलावा अन्य व्यक्ति निदेशक अभियोजन के कार्यों को निष्पादित करने के लिए आवश्यक

साधन के साथ-साथ मानसिक झुकाव से सुसज्जित नहीं हैं। धारा 25ए(2) के प्रावधान अभियोजन निदेशक या उप अभियोजन निदेशक के पद पर नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की पात्रता के लिए यह अनिवार्य है कि वह अधिवक्ता के रूप में कम से कम 10 वर्ष तक प्रैक्टिस में रहे और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी। उत्तरदाताओं का यह स्वीकृत मामला है कि प्रतिवादी सं. 5 के पास अभियोजन निदेशक या अतिरिक्त निदेशक अभियोजन या उप अभियोजन निदेशक, चाहे किसी भी नाम से संबोधित किया जाए, के रूप में नियुक्ति की पात्रता नहीं है।

(I) क्या प्रतिवादी सं. 5 के पास प्रश्नगत सार्वजनिक पद धारण करने के लिए सीआरपीसी की धारा 25ए के तहत मूल योग्यता/पात्रता है?

37. रिट याचिका के पैराग्राफ 14 में, याचिकाकर्ता ने कहा है कि प्रतिवादी नं. 5 सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार प्रश्नगत पद के लिए पात्र एवं उपयुक्त नहीं है, लेकिन उक्त पद पर आसीन हैं। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 19 में प्रतिवादी सं. 2 में कहा गया है कि प्रतिवादी सं. 5 पूर्णतया पात्र है। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 6 में, प्रतिवादी नं. 2 में कहा गया है कि प्रतिवादी सं. 5 एक आईपीएस अधिकारी हैं और उन्होंने अपर प्रमुख सचिव, गृह के आदेश दिनांक 28.8.2019 के अनुपालन में दिनांक 26.8.2019 को ए.डी.जी. अभियोजन के रूप में कार्यभार संभाला है। पैराग्राफ 7 में कहा गया है कि प्रतिवादी नं. 5

को ए.डी.जी. अभियोजन (अपर महानिदेशक अभियोजन) के पद पर तैनात किया गया है, अभियोजन निदेशक के रूप में नहीं।

38. अपने संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 5 में, प्रतिवादी सं. 5 ने बताया है कि उन्होंने अपर प्रमुख सचिव, गृह के आदेश दिनांक 28.8.2019 के अनुपालन में दिनांक 26.8.2019 को ए.डी.जी. अभियोजन के रूप में कार्यभार संभाला है। संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 8,9 और 10 में दिए गए कथन, प्रतिवादी सं. 5 में ए.डी.जी. अभियोजन के रूप में उनके द्वारा निर्वहन किये गये कर्तव्यों का विभिन्न विवरण दिया गया है जो कोई संदेह नहीं प्रदान नहीं करता कि प्रतिवादी नं. 5 उत्तर प्रदेश राज्य के गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत अभियोजन निदेशालय के प्रमुख के रूप में कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार प्रतिवादी सं. 5 यूपी राज्य में गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण के अंतर्गत अभियोजन निदेशक के कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 के अनुसार ए.डी.जी. अभियोजन या ए.डी.जी. अभियोजन पुलिस का कोई पद नहीं है। यह माना कि, प्रतिवादी नं. 5 सीआरपीसी की धारा 25ए की उपधारा (3) के संदर्भ में अभियोजन निदेशक के कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। चूंकि हम पहले ही अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि धारा सीआर.पी.सी. की 25ए (2) एक अनिवार्य प्रावधान है, इसलिए, प्रतिवादी नं. 5 उपरोक्त सार्वजनिक पद तभी धारण कर सकता है जब उसके पास सीआर.पी.सी. की धारा 25ए की उप-धारा (2) में दी गई पात्रता हो।

39. *जयाबेन बनाम तेजस कनुभाई ज़ला और अन्य (2022) 3 एससीसी 230* (पैराग्राफ 22), के मामले में वर्तमान के एक निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां तक आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन का संबंध है, अभियोजन निदेशक का पद एक बहुत ही महत्वपूर्ण पद है। त्वरित निर्णय लेना अभियोजन निदेशक का कर्तव्य है। यह देखते हुए कि अपराधों को समग्र रूप से समाज के खिलाफ गलत माना जाता है, न्याय प्रशासन में अभियोजन निदेशक की भूमिका महत्वपूर्ण है। *उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25ए के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। उनकी महत्वपूर्ण भूमिका संहिता की धारा 25ए(2) की शर्तों से स्पष्ट है, जो अभियोजन निदेशक बनने के लिए कम से कम दस साल का न्यूनतम कानूनी अनुभव निर्धारित करती है और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी।*

40. इस प्रकार, एक व्यक्ति अभियोजन निदेशक या उप अभियोजन निदेशक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होगा, उसे अधिवक्ता के रूप में कम से कम 10 साल तक प्रैक्टिस में रहना चाहिए और नियुक्ति केवल उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से ही की जा सकती है। चूंकि प्रतिवादी सं. 5 सीआरपीसी की धारा 25ए की उपधारा (2) में प्रदान की गई उपरोक्त मूल पात्रता को पूरा नहीं करता है। और फिर भी अभियोजन निदेशालय के प्रमुख के रूप में ए.डी.जी. अभियोजन के रूप में

कार्यों का निर्वहन कर रहे हैं, इसलिए, उन्हें सीआरपीसी की धारा 25ए(2) के तहत अनिवार्य पात्रता रखने वाला नहीं ठहराया जा सकता है। इसके अलावा उन्हें उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति के बिना नियुक्त किया गया है।

(J) क्या तर्कों के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 5 सार्वजनिक कार्यालय का अनधिकार ग्राही है और बिना पात्रता और कानून के किसी अधिकार के बिना पद धारण कर रहा है: -

41. पैराग्राफ-24, 25 और 26 में याचिकाकर्ता ने विशिष्ट प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी नंबर 5 सार्वजनिक पद का अनधिकार ग्राही है और बिना किसी कानूनी अधिकार, पात्रता और उपयुक्तता के उक्त सार्वजनिक पद को धारण कर रहा है और इसलिए, प्रतिवादी नंबर 5 के खिलाफ उसकी नियुक्ति को अवैध और सीआरपीसी की धारा 25ए के वैधानिक प्रावधानों के प्रतिकूल मानते हुए अधिकार पृच्छा जारी किया जाए। रिट याचिका के इन पैराग्राफ-24, 25 और 26 के कथनों को प्रतिवादी संख्या 2 (प्रमुख सचिव, गृह विभाग) की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-20 में अस्वीकार नहीं किया गया है, जिसकी शपथ डॉ. पॉलसन, सचिव, गृह विभाग, उ.प्र. सरकार लखनऊ द्वारा ली गई है। रिट याचिका के पैराग्राफ-24, 25 और 26 और जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-20 को नीचे प्रस्तुत किया गया है:

रिट याचिका के पैराग्राफ-24, 25 और 26	जवाबी हलफनामे का पैराग्राफ-20 (रिट याचिका के पैराग्राफ-

	24, 25 और 26 का उत्तर)
24. यह कि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा सार्वजनिक पद पर कानूनी अधिकार और माननीय सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न माननीयों के विभिन्न निर्णयों के बिना कब्जा कर लिया गया है। उच्च न्यायालयों, विधि आयोग की रिपोर्टों से पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या 5 एक सूदखोर है और बिना किसी कानूनी अधिकार के सार्वजनिक पद पर काबिज है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न माननीय उच्च न्यायालयों, विधि आयोग की रिपोर्टों के विभिन्न निर्णयों के संकलन की प्रति इसके साथ दायर की जा रही है और इस रिट याचिका में अनुबंध संख्या 1 के रूप में चिह्नित की गई है।	20. रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25 और 26 की सामग्री को रिकॉर्ड का मामला होने के कारण किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है, जिसे रिकॉर्ड से ही सत्यापित किया जा सकता है।
25. यह कि याचिकाकर्ता देश का नागरिक है और उसे	

प्रतिवादी नंबर 5 के अधिकार को चुनौती देने का अधिकार है, जो बिना किसी कानूनी अधिकार, पात्रता और उपयुक्तता के सार्वजनिक पद संभाल रहा है। 26. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्याय के हित में यह समीचीन है कि यह माननीय न्यायालय प्रतिवादी संख्या 5 के खिलाफ यथा-वारंटो की प्रकृति में एक रिट जारी करने की कृपा करे। उनकी नियुक्ति को अवैध ठहराया जा रहा है और जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 (ब्रेविटी में सीआर.पी.सी.) (1974 का अधिनियम संख्या II) की धारा 25ए के तहत प्रदान किए गए वैधानिक प्रावधान के अनुरूप नहीं है और आगे कारण बताएं कि प्रतिवादी संख्या 5 किस अधिकार के तहत पद जारी कर रहा है।		आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1973 के संक्षिप्त अधिनियम संख्या II में) के अनुसार उपयुक्त और पात्र व्यक्ति को रखने के लिए परमादेश या अन्य उचित रिट/निर्देश, अन्यथा याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति और चोट का सामना करना पड़ेगा।	
		42. अपने संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ -8 और 9 में, प्रतिवादी संख्या 5 ने निम्नानुसार कहा है: "8. एडीजी अभियोजन के रूप में, मैंने आपराधिक न्याय प्रणाली के विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वय में सुधार करने की कोशिश की है, और सरकार को माफिया के खिलाफ ट्रायल मामलों के साथ-साथ महिलाओं के खिलाफ अपराध, यूपी में ई-अभियोजन और आईसीआईएस के कार्यान्वयन के संबंध में अभियोजन की स्थिति के बारे में सूचना, दोषमुक्ति और दोषसिद्धि रिपोर्ट की निगरानी, पेशेवर क्षमता और कामकाजी माहौल में सुधार के लिए सुविधाओं का प्रावधान किया है। 9. अभियोजकों और कर्मचारियों के कल्याण/कल्याण में सुधार करना ताकि उनके मनोबल और कामकाजी परिस्थितियों में सुधार	

हो सके। ई-प्रोसिक्यूशन पोर्टल, ई-प्रोसिक्यूशन मोबाइल ऐप, ई-ऑफिस और ई-एचआरएमएस (मानव सम्पदा पोर्टल) और वेबिनार के माध्यम से प्रशिक्षण और शिकायत निवारण की शुरुआत करके उनके काम को कागज रहित बनाने का प्रयास किया गया।"

43. अपने संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-10 में, प्रतिवादी नंबर 5 ने दिनांक 10.12.2022 से 11.12.2022 तक उच्चतम न्यायालय के सभागार में आयोजित पोक्सो अधिनियम के कार्यान्वयन पर एक सेमिनार का उल्लेख किया, जहां भारत के सभी राज्य के अभियोजन निदेशक उपस्थित थे और उन्हें एडीजी, अभियोजन, यूपी द्वारा लागू किए जा रहे अभियोजन के मॉडल का पालन करने की सलाह दी गई थी। पैराग्राफ-8 और 9 सपठित पैराग्राफ-10 से पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या 5 ए.डी.जी., अभियोजन, यूपी. के पदनाम के अंतर्गत अभियोजन निदेशक के कार्यों का निर्वहन कर रहे हैं। यह राज्य-उत्तरदाताओं का मामला नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 5 के अलावा कोई अन्य व्यक्ति अभियोजन निदेशालय, उत्तर प्रदेश के प्रमुख के रूप में कार्य कर रहा है।

44. रिट याचिका के उपरोक्त पैराग्राफ संख्या 24, 25 और 26 में दिए गए कथनों को राज्य-प्रतिवादियों द्वारा जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में अस्वीकार नहीं किया गया है। इस प्रकार, उत्तरदाताओं को यह स्वीकार हो गया है कि प्रतिवादी नंबर 5 उस सार्वजनिक कार्यालय का अनधिकार ग्राही है, जो बिना किसी कानूनी अधिकार के और

सीआरपीसी की धारा 25 ए (2) में निर्धारित पात्रता के बिना उसके पास है। जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में रिट याचिका के पैरा-26 की सामग्री का जवाब देते हुए, राज्य-प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के कथनों को अस्वीकार नहीं किया है कि प्रतिवादी नंबर 5 के विरुद्ध अधिकार पृच्छा की रिट जारी की जा सकती है और एक सीआरपीसी की धारा 25ए के अनुसार एक उपयुक्त और योग्य व्यक्ति को नियुक्त करने के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है। इसलिए, प्रतिवादी नंबर 5 के विरुद्ध अधिकार पृच्छा की रिट जारी करने की आवश्यकता है।

(K) अधिकार पृच्छा और अधिस्थिति के रिट का कानून

45. 2022 की सिविल अपील संख्या 6706 (पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनिंद्य सुंदर दास और अन्य) में दिनांक 11.10.2022 को निर्णय पारित हुआ (पैराग्राफ 9, 23, 24 और 26) एआईआर 2022 एससी 4902 में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ओडिशा की केंद्रीय विद्युत आपूर्ति उपयोगिता बनाम धोबी साहू और अन्य (2014)1 एससीसी 161, भारती रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य (2018) 6 एससीसी 162, मैसूर विश्वविद्यालय बनाम सी.डी. गोविंदरा राव (1964) 4 एससीआर 575, गुजरात उच्च न्यायालय बनाम गुजरात किशन मजदूर पंचायत (2003) 4 एससीआर 712, बी. श्रीनिवास रेड्डी बनाम कर्नाटक शहरी जल आपूर्ति और ड्रेनेज बोर्ड कर्मचारी संघ (2006) 11 एससीसी 731 में इसके पहले के निर्णयों

का उल्लेख किया गया और निम्नानुसार अभिनिर्धारित/अवलोकित किया:-

"9. उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने ओडिशा की केंद्रीय विद्युत आपूर्ति उपयोगिता बनाम धोबेई साहू, (2014) 1 एससीसी 161 और भारती रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 6 एससीसी 162 में इस न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त किया और उल्लेख किया कि अधिकार पृच्छा की रिट तब जारी की जा सकती है जब:

(i) सार्वजनिक पद धारण करने वाले व्यक्ति के पास ऐसी नियुक्ति के लिए निर्धारित पात्रता मानदंड का अभाव है, और

(ii) नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों या नियमों के विपरीत की गई है।

23. मामलों की एक श्रृंखला के माध्यम से, इस न्यायालय ने उन शर्तों को निर्धारित किया है जिन पर अधिकार पृच्छा रिट का प्रयोग किया जा सकता है। **मैसूर विश्वविद्यालय बनाम सी.डी. में गोविंदरा राव, (1964) 4 एससीआर 575**, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने न्यायमूर्ति गजेंद्रगडकर (जैसा कि वह तब थे) के माध्यम से व्यक्त किया कि:

6. [...]

विस्तीर्णतापूर्वक यह कहा गया है, अधिकार पृच्छा कार्यवाही एक न्यायिक जांच की अनुमति देती है जिसमें एक स्वतंत्र मूल सार्वजनिक कार्यालय, या मताधिकार, या स्वतंत्रता रखने वाले किसी भी व्यक्ति को यह प्रदर्शित करने के लिए कहा जाता है कि वह

किस अधिकार से उक्त कार्यालय, मताधिकार या स्वतंत्रता रखता है; यदि जांच से यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यालय के धारक के पास उस पर कोई वैध अधिकार नहीं है, तो अधिकार पृच्छा जारी करके उसे उस कार्यालय से बाहर कर दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, अधिकार पृच्छा की प्रक्रिया प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध सार्वजनिक कार्यालयों में नियुक्तियाँ करने के मामले में कार्यकारी कार्यवाही को नियंत्रित करने के लिए न्यायपालिका को अधिकार क्षेत्र और अधिकार प्रदान करती है; यह एक नागरिक को उस सार्वजनिक पद से वंचित होने से भी बचाता है जिस पर उसका अधिकार हो सकता है। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि यदि इन कार्यवाहियों को उस संबंध में मान्यता प्राप्त शर्तों के अधीन अपनाया जाता है, तो वे सार्वजनिक कार्यालय के अनधिकार ग्राही से जनता की रक्षा करते हैं; कुछ मामलों में, जो लोग सार्वजनिक पद के हकदार नहीं हैं, उन्हें कार्यपालिका की मिलीभगत से या उसकी सक्रिय मदद से उन पर कब्जा करने और उन्हें जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है, और ऐसे मामलों में, यदि न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र है, अधिकार पृच्छा जारी करने की रिट उचित रूप से लागू की जाती है, सूदखोर को बेदखल किया जा सकता है और पद के हकदार व्यक्ति को उस पर कब्जा करने की अनुमति दी जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इससे पहले कि कोई नागरिक अधिकार पृच्छा का दावा कर सके, अन्य बातों के अलावा उसे अदालत को संतुष्ट करना होगा कि प्रश्नगत कार्यालय एक सार्वजनिक कार्यालय है और कानूनी अधिकार के बिना अनधिकार ग्राही

द्वारा आयोजित किया जाता है, और यह आवश्यक रूप से जांच का कारण बनता है कि उक्त कथित अनधिकार ग्राही की नियुक्ति कानून के अनुसार की गई है या नहीं।

(जोर दिया गया)

24. गुजरात उच्च न्यायालय बनाम गुजरात किशन मजदूर पंचायत, (2003) 4 एससीसी 712 में तीन न्यायाधीशों की पीठ में अपनी सहमति वाली राय में, न्यायमूर्ति एसबी सिन्हा ने कहा कि:

22. इस प्रकृति के मामले में अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को शुरू में ही यह निर्धारित करना आवश्यक है कि क्या कोई मामला उत्प्रेषण रिट या अधिकार पृच्छा रिट जारी करने के लिए बनाया गया है। अधिकार पृच्छा की रिट जारी करने का उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है। ऐसी रिट जारी करते समय, न्यायालय केवल एक सार्वजनिक घोषणा करता है लेकिन उम्मीदवारों या अन्य कारकों पर संबंधित प्रभाव पर विचार नहीं करेगा जो उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिए प्रासंगिक हो सकता है। (आर.के. जैन बनाम भारत संघ, एससीसी पैरा 74)

23. अधिकार पृच्छा रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब नियुक्ति वैधानिक नियमों के विपरीत हो (मोर मॉडर्न कॉप ट्रांसपोर्ट सोसायटी लिमिटेड बनाम वित्तीय आयुक्त एवं सचिव, सरकार हरियाणा)

26. ओडिशा की केंद्रीय विद्युत आपूर्ति उपयोगिता बनाम धोबेई साहू, (2014) 1

एससीसी 161 में, इस न्यायालय की अन्य दो न्यायाधीशों की पीठ ने दोहराया कि:

21. [...] अधिकार-पत्र जारी करते समय उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है और इसे केवल तभी जारी किया जा सकता है जब सार्वजनिक पद धारण करने वाले व्यक्ति के पास पात्रता मानदंड का अभाव हो या जब नियुक्ति वैधानिक नियमों के विपरीत हो। इसके अलावा, कार्यवाही की वैधता या शुद्धता को प्रचारित करने के उद्देश्य से सेवा न्यायशास्त्र पर सख्ती से लागू होने वाले अधिकार क्षेत्र की अवधारणा को किसी भी प्रविष्टि की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि इस तरह के भत्ते की सीमा यथास्थिति से अधिक होने की संभावना है जो कि अस्वीकार है। अधिकार पृच्छा रिट का मूल उद्देश्य संवैधानिक अदालतों को अधिकार क्षेत्र प्रदान करना है ताकि यह देखा जा सके कि किसी सार्वजनिक पद पर किसी कानूनी अधिकार के बिना कब्जा करने वाला कब्जा न कर ले।

(जोर दिया गया)

46. भारती रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य सिविल अपील संख्या 1763/2018 निर्णित दिनांक 6.3.2018 (पैराग्राफ- 30) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकार पृच्छा रिट जारी करने के प्रश्न पर विचार किया है और इसे निम्नानुसार रखा है:

30. बी.आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य में संविधान पीठ को उस स्थिति पर विचार करने के लिए गठित किया गया था

जहां एक आपराधिक अपराध के लिए दोषी ठहराया गया व्यक्ति और जिसकी सजा अपील लंबित होने तक निलंबित नहीं की गई है, एक राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ले सकता है और कार्य करना जारी रख सकता है। न्यायालय को इस निर्विवाद तथ्य के आधार पर विवाद का उत्तर देने के लिए बुलाया गया था कि निवर्तमान मुख्यमंत्री को पहले ही एक आपराधिक अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था और लंबित आपराधिक अपील में ऐसी सजा को निलंबित नहीं किया गया था। संविधान के अनुच्छेद 164 और अनुच्छेद 173 के तात्पर्य पर विचार करने के बाद, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अपील में दूसरे प्रतिवादी की मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्ति संवैधानिक प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है और इस प्रकार अधिकार पृच्छा का रिट अपरिहार्य था। व्याख्या का आधार मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त होने या बने रहने के लिए व्यक्ति की बुनियादी अयोग्यता का तथ्य था। ब्रिजेश कुमार, जे. (जैसा कि उस समय उनका आधिपत्य था) के एक सहमतिपूर्ण फैसले में अधिकार पृच्छा की रिट की प्रकृति को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है:

""79..... अधिकार पृच्छा रिट एक रिट है जो उस व्यक्ति के विरुद्ध होती है, जो संबंधक के अनुसार सार्वजनिक प्रकृति का कार्यालय रखने का हकदार नहीं है और केवल कार्यालय का अनधिकार ग्राही है। यह वह व्यक्ति है, जिसके विरुद्ध अधिकार पृच्छा का आदेश दिया गया है, जिसे यह दिखाना आवश्यक है कि वह व्यक्ति किस अधिकार से पद धारण करने का हकदार है। चुनौती विभिन्न आधारों पर दी जा

सकती है, जिसमें यह आधार भी शामिल है कि कार्यालय का संबंधक आवश्यक योग्यताएं पूरी नहीं करता है या किसी अयोग्यता से ग्रस्त है, जो व्यक्ति को ऐसा पद धारण करने से रोकता है...

47. गंभीरदान के. गढ़वी बनाम गुजरात राज्य (2022) 5 एससीसी 179 (पैराग्राफ 16 और 17), के वर्तमान मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजेश अवस्थी बनाम नंद लाल जयसवाल (2013) 1 एससीसी 501 और 514 और सशस्त्र बल मेडिकल एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2006) 11 एससीसी 731 में अपने पूर्व निर्णयों का उल्लेख किया और इसी तरह के सिद्धांतों को दोहराया।

48. इस प्रकार जब नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों के विपरीत की जाती है तो अधिकार पृच्छा का रिट निहित होगा। वैविध्यपूर्ण यह कहा गया है, अधिकार पृच्छा कार्यवाही एक न्यायिक उपाय प्रदान करती है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति, जो एक स्वतंत्र मूल सार्वजनिक कार्यालय या फ्रेंचाइजी या स्वतंत्रता रखता है, को यह दिखाने के लिए कहा जाता है कि वह किस अधिकार से उक्त कार्यालय, फ्रेंचाइजी या स्वतंत्रता रखता है, ताकि उसका शीर्षक इसे विधिवत निर्धारित किया जा सकता है, और यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यालय के धारक के पास कोई शीर्षक नहीं है, तो उसे न्यायिक आदेश द्वारा उस कार्यालय से बाहर कर दिया जाएगा। यह न्यायपालिका को कार्यपालिका को कानून के विरुद्ध सार्वजनिक कार्यालय में नियुक्तियाँ

करने से नियंत्रित करने और नागरिकों को उस सार्वजनिक पद से वंचित होने से बचाने का एक हथियार देता है जिसका उनका अधिकार है। यह जनता को सार्वजनिक कार्यालय पर कब्जा करने वालों से बचाता है। इसलिए, कोई व्यक्ति प्रभावी रूप से अधिकार-पत्र का दावा कर सकता है, यदि वह अदालत को संतुष्ट करता है कि विचाराधीन कार्यालय एक सार्वजनिक कार्यालय है और कानूनी अधिकार के बिना एक अनधिकार ग्राही के पास है। इससे अनिवार्य रूप से इस बात की जांच होगी कि कथित सूदखोर की नियुक्ति कानून के अनुसार की गई है या नहीं। इस प्रकार, अधिकार-पृच्छा की रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब सार्वजनिक पद धारण करने वाला व्यक्ति ऐसे कार्यालय में नियुक्ति के लिए निर्धारित पात्रता मानदंडों को पूरा नहीं करता है या जब नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है।

(L) क्या वर्तमान मामले के तथ्यों पर अधिकार-पृच्छा रिट जारी करने की आवश्यकता है?

49. निर्विवाद रूप से प्रतिवादी सं. 5 एक सार्वजनिक कार्यालय रखता है। जैसा कि इस निर्णय के पिछले पैराग्राफों में चर्चा की गई है, उनके पास अभियोजन निदेशक या उप निदेशक अभियोजन निदेशक या अपर अभियोजन निदेशक अभियोजन निदेशालय के प्रमुख के रूप में पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता/आवश्यक योग्यता नहीं है। निर्विवाद रूप से प्रतिवादी सं. 5 पुलिस सेवा में आईपीएस अधिकारी हैं। धारा 25ए की उपधारा (2) विशेष रूप से प्रदान करती है कि

एक व्यक्ति अभियोजन निदेशक या उप निदेशक अभियोजन के रूप में नियुक्त होने के लिए पात्र केवल तभी होगा जब वह वकील के रूप में कम से कम 10 वर्षों से प्रैक्टिस कर रहा हो और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी। सभी उत्तरदाताओं को यह स्वीकार है कि प्रतिवादी नं. 5 कम से कम 10 वर्षों से वकील के रूप में प्रैक्टिस नहीं कर रहे हैं और उनकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति के बिना की गई है। याचिकाकर्ता एक प्रैक्टिसिंग वकील है और उसने प्रासंगिक तथ्यों और कानून के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान आकर्षित करके अदालत को संतुष्ट किया है कि प्रश्नगत कार्यालय एक सार्वजनिक कार्यालय है जो प्रतिवादी संख्या. 5 द्वारा मूल पात्रता को पूरा किए बिना आयोजित किया जा रहा है और इस प्रकार वह बिना किसी कानूनी अधिकार के पद पर रहते हुए सार्वजनिक पद पर कब्जा करने वाला है और उसकी नियुक्ति सीआरपीसी की धारा 25ए के प्रावधानों के विपरीत है। अधिकार वारंट की रिट तब जारी की जा सकती है जब सार्वजनिक पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति ऐसे कार्यालय में नियुक्ति के लिए निर्धारित पात्रता मानदंडों को पूरा नहीं करता है या जब नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों के विपरीत होती है। इस संबंध में 2019 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 1525 (गंभीरदान के गढ़वी बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2022) 5 एससीसी 179) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 3.3.2022 के वर्तमान निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है।

50. तथ्यों के वर्तमान समूह में हम पहले ही अभिग्रहित कर चुके हैं कि प्रतिवादी संख्या. 5 की नियुक्ति सीआरपीसी की धारा 25ए की उपधारा (2) के प्रावधानों के विपरीत है। चूँकि उनके पास न तो उक्त प्रावधानों के तहत प्रदान की जाने वाली पात्रता है और न ही उनकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की गई थी। इसलिए, हम मानते हैं कि प्रतिवादी नं. 5 एक सार्वजनिक पद का अनाधिकार ग्राही है और उसकी नियुक्ति सीआर.पी.सी. के धारा 25ए के उप-धारा (2) का उल्लंघन है।

(M) राज्य के उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किए गए निर्णय: -

51. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने 'हो सकता है' शब्द की व्याख्या के लिए **आधिकारिक परिसमापक बनाम धरतीधन (पी) लिमिटेड (1977) 2 एससीसी 166 (पैराग्राफ 8)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त किया है। हम पाते हैं कि उक्त निर्णय की वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई प्रासंगिकता नहीं है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यूपी राज्य में अभियोजन निदेशालय की स्थापना की गई है और हमारे निष्कर्ष में कानूनी स्थिति को विस्तार से इस निर्णय के पूर्ववर्ती पैराग्राफ में उल्लेख किया गया है।

52. दूसरा निर्णय **ए.के. रॉय बनाम भारत संघ (1982) 1 एससीसी 271 (पैराग्राफ 50)** में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विद्वान अपर महाधिवक्ता ने

निर्भरता इस प्रस्ताव के लिए निर्भरता व्यक्त की कि राज्य विधानमंडल कानून में किसी विशेष प्रावधान को लागू न करने का विकल्प चुन सकता है यदि कानून एक विवेकाधीन प्रावधान प्रदान करता है। तथ्यों के वर्तमान समूह में यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि राज्य विधानमंडल ने सीआरपीसी की धारा 25ए के प्रावधान में संशोधन किया है। इसके विपरीत उ.प्र. ने सीआरपीसी की धारा 25ए में कोई भी संशोधन लाने से इनकार कर दिया है।

53. अगले निर्णयों **सब-इंस्पेक्टर रूपलाल बनाम उपराज्यपाल (2000) 1 एससीसी 644 (पैराग्राफ 12 और 13), यूपी. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम राजेश कुमार (2012) 7 एससीसी 1 (पैराग्राफ 16 से 21) और जयश्रीसाहू बनाम राजदीवान दुबे एआईआर 1962 एससी 83** में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विद्वान अपर महाधिवक्ता ने निर्भरता इस प्रस्ताव के लिए निर्भरता व्यक्त की कि यदि समन्वय पीठ द्वारा अलग दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो न्यायिक औचित्य की मांग है कि मामले को एक बड़ी पीठ को भेजा जाए। इन निर्णयों से उत्तरदाताओं को कोई मदद नहीं मिलती क्योंकि इस न्यायालय द्वारा कोई विपरीत दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा रहा है। वर्तमान निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि व्यवस्था, स्वयं उत्तरदाताओं के अभिलेख से उत्पन्न तथ्यों और साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यूपी राज्य द्वारा दिया गया वचन पर आधारित है।

54. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय भारत संघ बनाम महाधिवक्ता हंसोली देवी (2002) 7 एससीसी 273, सुखदेव सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2013) 2 एससीसी 212 और रघुनाथ राय बरेजा बनाम पंजाब नेशनल बैंक (2007) 2 एससीसी 230 पर विद्वान अपर महाधिवक्ता ने निर्भरता इस प्रस्ताव के लिए निर्भरता व्यक्त की कि दंडात्मक कानूनों का कड़ाई से अर्थ लगाया जाना चाहिए। तथ्यों के वर्तमान समूह और हमारे द्वारा प्राप्त निष्कर्ष में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि ये निर्णय उत्तरदाताओं के लिए कोई मददगार नहीं हैं।

55. विद्वान विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों की अगली श्रृंखला में इंडिया सीमेंट लिमिटेड बनाम तमिलनाडु राज्य (1990) 1 एससीसी 12, करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य (1994) 3 एससीसी 569, भारत संघ बनाम शाह गोवर्धन एल. काबरा टीचर्स कॉलेज (2002) 8 एससीसी 228, अतियाबारी टी कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य एआईआर (1961) एससी 232 और कर्नाटक राज्य बनाम मेघालय राज्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 350 पर इस प्रस्ताव के लिए निर्भरता व्यक्त की कि विधायी अधिनियम के सार और सार को तब देखा जाना चाहिए जब समवर्ती सूची की दो प्रविष्टियाँ ओवरलैप हो रही हों। हम पहले ही धारा 25ए के प्रावधानों, इस अधिनियम के टूटने, यूपी राज्य में इसकी प्रवर्तनीयता, यूपी राज्य के अपने उपक्रम पर विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में और माननीय सर्वोच्च

न्यायालय के विभिन्न निर्णय सीधे धारा 25ए सीआरपीसी से संबंधित हैं। इस प्रकार विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्णय प्रतिवादियों की कोई मदद नहीं कर रहे हैं।

(N) निष्कर्ष का संक्षिप्त सारांश:-

56. ऊपर हम जिन निष्कर्षों पर पहुंचे उन्हें संक्षेप में निम्नानुसार संक्षेपित किया गया है:-

(i) कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 द्वारा अभियोजन निदेशालय उत्तर प्रदेश राज्य में विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट और ऋषि राय समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के अनुसार एक प्रशासनिक निर्णय के रूप में स्थापित किया गया है।

(ii) चूंकि, विधि आयोग की सिफारिशों के बावजूद और एस.बी. शहाणे बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 1985 एससी 1628 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बावजूद भी कई राज्यों ने अभियोजन निदेशालय की स्थापना नहीं की है, जबकि उत्तर प्रदेश राज्य सहित कुछ राज्यों ने अभियोजन निदेशालय की स्थापना की है, ताकि अभियोजन निदेशालय को वैधानिक दर्जा दिया जा सके, संसद ने सीआरपीसी में धारा 25ए को आपराधिक अभियोजन संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 (2005 की संख्या 25) की धारा 4 द्वारा शामिल किया गया, जिसे दिनांक 23.6.2005 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और अधिसूचना संख्या एस.ओ. 923 (ई) दिनांक 21.6.2006 द्वारा

लागू किया गया जो दिनांक 23.6.2006 से प्रभावी है।

सीआर.पी.सी. की धारा 25ए के साथ असंगत है।

(iii) मुख्यमंत्री ने दिनांक 28.2.2014 को सीआरपीसी की धारा 25ए में संशोधन न करने के प्रस्ताव (ऊपर पैरा-19 में पुनः प्रस्तुत) को मंजूरी दे दी। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के तर्क जैसा कि उपरोक्त पैरा 21 में उल्लेख किया गया है, से स्पष्ट होता है कि राज्य सरकार का प्रस्तावित निर्णय दिनांक 28.02.2014 संशोधन को छोड़ना और धारा 25ए सीआरपीसी को लागू करना निर्विवाद है।

(iv) धारा सीआरपीसी की 25ए सपठित धारा 1(2) यूपी राज्य में प्रभावी दिनांक 23.6.2006 से प्रभावी है एवं उ.प्र. सीआरपीसी की धारा 25ए में संशोधन न करने का फैसला सोच-समझकर लिया। उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल ने सीआरपीसी की धारा 25ए में भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 के तहत भारत के राष्ट्रपति की सहमति से संशोधन के लिए कोई कानून नहीं बनाया है। धारा 25ए सीआरपीसी के अधिनियमन द्वारा, उपरोक्त कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 द्वारा स्थापित मौजूदा अभियोजन निदेशालय ने वैधानिक दर्जा प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार, धारा सीआर.पी.सी. की 25ए अभियोजन निदेशक और उप निदेशक के पद पर नियुक्ति की पात्रता सहित दिनांक 27.11.1980 का उपरोक्त कार्यालय जापन मान्य होगा। अभियोजन निदेशक/अपर महानिदेशक अभियोजन, चाहे किसी भी नाम से पुकारा जाए, कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980

(v) सीआर.पी.सी. की धारा 1 की उपधारा (2) के अनुसार, सीआरपीसी की धारा 25ए का प्रावधान उत्तर प्रदेश राज्य में लागू हैं। यूपी. विधानमंडल ने सीआरपीसी की धारा 25ए में भारत के राष्ट्रपति की सहमति से संशोधन के लिए कोई कानून नहीं बनाया है। राज्य सरकार ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में उच्च न्यायालय के फैसले को संपूर्ण रूप से लागू करने का वचन दिया। इसलिए, उत्तरदाताओं द्वारा अपनाया गया मत कि धारा 25ए सीआर.पी.सी. उत्तर प्रदेश राज्य में लागू नहीं है, पूरी तरह से निराधार है और वास्तव में यह साधना शर्मा (सुप्रा) के मामले में बाध्यकारी निर्णय, यूपी राज्य की ओर से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुतिकरण और अनुच्छेद 141 सहित संवैधानिक प्रावधानों का उनके द्वारा संसद के प्रति दिखाया जा रहा अनादर है।

(vi) कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 सीआरपीसी की धारा 5 के तहत कोई कानून नहीं है क्योंकि यह न तो कोई सामान्य कानून है और न ही कोई विशेष कानून, जैसा कि आईपीसी की धारा 41 और 42 सपठित धारा 2(वाई) में परिभाषित है, फिर भी तर्क के लिए यदि कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 को एक कानून माना जाता है तो सीआरपीसी की धारा 25ए प्रभावी होगी। भारत के संविधान का अनुच्छेद 254(2) विधायी सर्वोच्चता के प्रश्न से संबंधित है। यदि कोई राज्य का कानून

समवर्ती सूची के अंतर्गत आने वाले कानून के क्षेत्र में संसद द्वारा बनाए गए कानून के साथ संघर्ष है, तो संसद द्वारा अधिनियमित कानून प्रभावी होगा और प्रतिकूलता की सीमा तक राज्य का कानून शून्य हो जाएगा। इसलिए, धारा 25ए(2) सीआरपीसी में अभियोजन निदेशक या उप निदेशक के पद के लिए प्रदान की गई आवश्यक योग्यता अभियोजन निदेशक दिनांक 27.11.1980 के कार्यालय ज्ञापन के तहत प्रदान की गई उक्त पदों के लिए योग्यता पर प्रबल होंगे।

निदेशक या उप निदेशक के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक शर्तें प्रदान करते हैं। अभियोजन निदेशक को यह प्रस्तुत करना अनिवार्य है कि उन्हें वकील के रूप में कम से कम 10 साल तक प्रैक्टिस करनी होगी और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की जाएगी। प्रतिवादी संख्या 5 के पास न तो आवश्यक योग्यता है और न ही उसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से की गई है।

(vii) धारा 24, 25 और 25ए एक विलक्षण योजना का हिस्सा हैं जो उच्च न्यायालय और जिला न्यायालयों में लोक अभियोजक के लिए एक प्रत्यक्ष सीमांकन और विभाजन और अभियोजन विभाग यानी अभियोजन निदेशालय में प्रशासनिक नियंत्रण और पदानुक्रम बनाता है।

(viii) चूंकि कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 न तो कोई विशेष कानून है और न ही कोई स्थानीय कानून है, जैसा कि सीआरपीसी की धारा 41 और 42 सपठित धारा 2(वाई) में परिभाषित है, इसलिए, यह सीआरपीसी की धारा 5 द्वारा कवर नहीं किया जाएगा। कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 अभियोजन निदेशालय स्थापित करने का एक प्रशासनिक निर्णय था और सीआरपीसी की धारा 25ए पहले से स्थापित अभियोजन निदेशालय को वैधानिक मान्यता दे दी है।

(ix) धारा 25ए(2) के प्रावधान किसी व्यक्ति की आवश्यक योग्यता/पात्रता और अभियोजन

(x) सीआरपीसी की धारा 25ए(3) में प्रावधान है कि अभियोजन निदेशालय का प्रमुख अभियोजन निदेशक होगा, जो राज्य में गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करेगा। प्रतिवादी सं. 5 की नियुक्ति राज्य शासन के गृह विभाग के प्रमुख द्वारा आदेश दिनांक 26.08.2019 द्वारा की गई है। उनके संक्षिप्त प्रतिउत्तर हलफनामे के पैराग्राफ 8, 9 और 10 में उनके द्वारा बताए गए विवरण के अनुसार वह उत्तर प्रदेश राज्य के गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत अभियोजन निदेशालय के प्रमुख के रूप में कार्य कर रहे हैं। कार्यालय ज्ञापन दिनांक 27.11.1980 के अंतर्गत ए.डी.जी. अभियोजन या ए.डी.जी. अभियोजन पुलिस नाम का कोई पद नहीं है। इस प्रकार, प्रतिवादी सं. 5 बिना किसी कानूनी अधिकार के उत्तर प्रदेश राज्य के गृह विभाग के प्रमुख के प्रशासनिक नियंत्रण में अभियोजन निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(xi) प्रतिउत्तर हलफनामे के पैराग्राफ-20 में राज्य के उत्तरदाताओं ने रिट याचिका के पैराग्राफ-24, 25 और 26 के कथनों से इनकार नहीं किया है कि प्रतिवादी संख्या 5 सार्वजनिक पद पर अनाधिकार ग्राही है, जिसे उसने बिना कानूनी रूप से धारण किया है। अधिकार और पात्रता और उपयुक्तता के बिना, प्रतिवादी नंबर 5 के खिलाफ उसकी नियुक्ति को अवैध और धारा 25 ए सीआरपीसी के वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप नहीं मानते हुए अधिकार पृच्छा की रिट जारी करने की आवश्यकता है।

(xii) जब नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों के विपरीत की जाती है तो अधिकार पृच्छा की रिट लागू होगी। वैविध्यपूर्ण कहा गया है, अधिकार पृच्छा कार्यवाही एक न्यायिक उपाय प्रदान करती है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति, जो एक स्वतंत्र वास्तविक सार्वजनिक कार्यालय या फ्रेंचाइजी या स्वतंत्रता रखता है। यह प्रदर्शित के लिए कहा गया है कि वह किस अधिकार से उक्त पद, मताधिकार या स्वतंत्रता को धारण करता है, ताकि उस पर उसका अधिकार विधिवत निर्धारित किया जा सके, और यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यालय के धारक के पास कोई शीर्षक नहीं है, तो उसे न्यायिक आदेश द्वारा कार्यालय बाहर कर दिया जाएगा। इसलिए, कोई व्यक्ति प्रभावी रूप से अधिकार-पत्र का दावा कर सकता है, यदि वह अदालत को संतुष्ट करता है कि विचाराधीन कार्यालय एक सार्वजनिक कार्यालय है और कानूनी अधिकार के बिना एक अनाधिकार ग्राही के पास है। इस प्रकार अधिकार-पृच्छा की रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब सार्वजनिक पद धारण करने

वाला व्यक्ति ऐसे कार्यालय में नियुक्ति के लिए निर्धारित पात्रता मानदंडों को पूरा नहीं करता है या जब नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है।

(xiii) चूंकि प्रतिवादी संख्या 5 की नियुक्ति कानून के अधिकार के बिना, अवैध और धारा 25ए सीआरपीसी की उप-धारा (2) के प्रावधानों के विपरीत है, इसलिए, यह घोषित किया जाता है कि प्रतिवादी नं. 5 एक सार्वजनिक पद का अनाधिकार ग्राही है और उसकी नियुक्ति अवैध है।

प्रदान अनुतोष:-

57. उपरोक्त सभी कारणों से, हम अधिकार पृच्छा की रिट जारी करते हैं कि प्रतिवादी संख्या 5 की नियुक्ति अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक अभियोजन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा अभियोजन निदेशालय के प्रमुख के रूप में कानून के अधिकार के बिना, अवैध और सीआरपीसी की धारा 25ए(2) के वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है की। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया जाता है कि अभियोजन निदेशक को सीआरपीसी की धारा 25ए(2) के अंतर्गत आज से छह महीने के भीतर नियुक्त किया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

**माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी, द्वारा प्रदत्त,
(समवर्ती)**

1. मुझे मेरे सम्मानित विद्वान बंधु द्वारा साझा किए गए विद्वत्तापूर्ण

निर्णय को पढ़ने का विशेषाधिकार लाभ प्राप्त हुआ हालाँकि, मैं अपने कुछ शब्द जोड़ना चाहूँगा।

2 कार्यालय जापन दिनांक 27.11.1980 (ओ.एम), जो स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के तहत प्रदत्त कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में बनाया और जारी किया गया है, उत्तरदाताओं द्वारा दायर हलफनामे के साथ संलग्नक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ओ.एम. का विषय है: 'अभियोजन निदेशालय, उत्तर प्रदेश की स्थापना।' उपरोक्त ओ.एम. की विषयवस्तु का उपरोक्त उद्धृत किया जा चुका है और संक्षिप्तता के लिए दोहराया नहीं जा रहा है।

3 ओ.एम. बताते हैं कि प्रभावी एवं निष्पक्ष अभियोजन के उद्देश्य से दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संहिता) के लागू होने तथा स्वतंत्र अभियोजन निदेशालय की स्थापना के लिए मामला कुछ समय से सरकार के विचाराधीन है तथा इस संबंध में की गई अनुशंसाओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद भारत के 14वें विधि आयोग और सरकार द्वारा गठित ऋषि राय समिति की सिफारिशों के आधार पर माननीय राज्यपाल ने मजिस्ट्रेट न्यायालय में संहिता की धारा 25 के तहत नियुक्त सहायक लोक अभियोजकों के संपूर्ण कार्य का प्रभावी नियंत्रण और पर्यवेक्षण के लिए लखनऊ में मुख्यालय के साथ एक अलग अभियोजन निदेशालय की स्थापना की मंजूरी दे दी है।

4. संहिता के कुछ प्रावधानों का उल्लेख करना उचित है। संहिता की धारा 24 और 25 निम्नवत हैं:

“24. लोक अभियोजक (1) प्रत्येक उच्च न्यायालय के लिए, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार उस उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्, यथास्थिति, केंद्रीय या राज्य सरकार की ओर से उस उच्च न्यायालय में किसी अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाही के संचालन के लिए एक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी और एक या अधिक अपर लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है।

(2) केंद्रीय सरकार किसी जिले या स्थानीय क्षेत्र में किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के संचालन के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है।

(3) प्रत्येक जिले के लिए, राज्य सरकार एक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी और जिले के लिए एक या अधिक अपर लोक अभियोजक भी नियुक्त कर सकती है :

परंतु एक जिले के लिए नियुक्त लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक किसी अन्य जिले के लिए भी, यथास्थिति, लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किया जा सकता है।

(4) जिला मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश के परामर्श से, ऐसे व्यक्तियों के नामों का एक पैनल तैयार करेगा जो, उसकी राय में, उस

जिले के लिए लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किए जाने के योग्य है।

(5) कोई व्यक्ति राज्य सरकार द्वारा उस जिले के लिए लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि उसका नाम उपधारा (4) के अधीन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए गए नामों के पैनल में न हो।

(6) उपधारा (5) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य में अभियोजन अधिकारियों का नियमित काडर है वहां राज्य सरकार ऐसा काडर, गठित करने वाले व्यक्तियों में से ही लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त करेगी :

परंतु जहां राज्य सरकार की राय में ऐसे काडर में से कोई उपयुक्त व्यक्ति नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है वहां राज्य सरकार उपधारा (4) के अधीन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए गए नामों के पैनल में से, यथास्थिति, लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक के रूप में किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है।

स्पष्टीकरण-इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए,-

(क) "अभियोजन अधिकारियों का नियमित काडर" से अभियोजन अधिकारियों का वह काडर अभिप्रेत है, जिसमें लोक अभियोजक का, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, पद सम्मिलित है और जिसमें उस पद पर सहायक लोक अभियोजक की, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, पदोन्नति के लिए उपबंध किया गया है:

(ख) "अभियोजन अधिकारी" से लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के कृत्यों का पालन करने के लिए इस संहिता के अधीन नियुक्त किया गया व्यक्ति अभिप्रेत है. चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो ।

(7) कोई व्यक्ति उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) या उपधारा (6) के अधीन लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किए जाने का पात्र तभी होगा जब वह कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय करता रहा हो।

(8) केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के प्रयोजनों के लिए किसी अधिवक्ता को, जो कम से कम दस वर्ष तक विधि व्यवसाय करता रहा हो, विशेष लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है: परंतु न्यायालय इस उपधारा के अधीन पीड़ित को, अभियोजन की सहायता करने के लिए अपनी पसंद का अधिवक्ता रखने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा।

(9) उपधारा (7) और उपधारा (8) के प्रयोजनों के लिए उस अवधि के बारे में, जिसके दौरान किसी व्यक्ति ने प्लीडर के रूप में विधि व्यवसाय किया है या लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक या अन्य अभियोजन अधिकारी के रूप में, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, सेवाएं की हैं (चाहे इस संहिता के प्रारंभ के पहले की गई हों या पश्चात्) यह समझा जाएगा कि वह ऐसी अवधि है जिसके दौरान

ऐसे व्यक्ति ने अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया है।

25. सहायक लोक अभियोजक (1) राज्य सरकार प्रत्येक जिले में मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों में अभियोजन का संचालन करने के लिए एक या अधिक सहायक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी।

(1क) केंद्रीय सरकार मजिस्ट्रेट के न्यायालय में किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के संचालन के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक सहायक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है।

(2) जैसा उपधारा (3) में उपबंधित है उसके सिवाय, कोई पुलिस अधिकारी सहायक लोक अभियोजक नियुक्त होने का पात्र नहीं होगा।

(3) जहां कोई सहायक लोक अभियोजक किसी विशिष्ट मामले के प्रयोजनों के लिए उपलब्ध नहीं है वहां जिला मजिस्ट्रेट किसी अन्य व्यक्ति को उस मामले का भारसाधक सहायक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकता है:

परंतु कोई पुलिस अधिकारी इस प्रकार नियुक्त नहीं किया जाएगा-

(क) यदि उसने उस अपराध के अन्वेषण में कोई भाग लिया है, जिसके बारे में आयुक्त अभियोजित किया जा रहा है, या

(ख) यदि वह निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का है।

5. इस चर्चा पर प्रभाव डालने वाले संहिता के उपरोक्त प्रावधानों में कुछ संशोधनों का उल्लेख किया जा रहा है। धारा 24 को प्रतिस्थापित किया गया और धारा 25 की उपधारा (1ए) को दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा सम्मिलित किया गया। धारा 24 की उपधारा (6) में स्पष्टीकरण को दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 से पूर्वव्यापी प्रभाव दिनांक 18.12.1978 द्वारा सम्मिलित किया गया।

दण्ड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम द्वारा, 1991 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 18 सन् 1991), अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित संशोधन था

2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 24 में, इसके बाद उक्त संहिता के रूप में प्रस्तुत: संशोधन जाना जाएगा:-

(ए) उप-धारा (1) में, "उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद" शब्द हटा दिए जाएंगे;

(बी) उप-धारा (4), (5) और (6) हटा दिए जाएंगे;

(सी) उप-धारा (7) में, शब्द, "या उप-धारा (6)" हटा दिया जाएगा।

यू.पी. द्वारा 1976 के अधिनियम 16 की धारा 25 की उपधारा (2) में, निम्नलिखित परंतुक डाला गया और हमेशा डाला गया माना जाएगा, अर्थात्:

"बशर्ते इस उप-धारा में किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि राज्य सरकार को पुलिस अधिकारियों के माध्यम से सहायक लोक अभियोजकों पर अपना नियंत्रण रखने से रोका जाए।"

6. संहिता की धारा 25-ए को आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा दिनांक 23.6.2006 से शामिल किया गया था जो इस प्रकार है

25क. अभियोजन निदेशालय (1) राज्य सरकार एक अभियोजन निदेशालय स्थापित कर सकेगी, जिसमें एक अभियोजन निदेशक और उतने अभियोजन उप-निदेशक होंगे, जितने वह ठीक समझे।

(2) कोई व्यक्ति अभियोजन निदेशक या अभियोजन उप निदेशक के रूप में नियुक्ति के लिए केवल तभी पात्र होगा यदि वह अधिवक्ता के रूप में कम-से-कम दस वर्ष तक व्यवसाय में रहा है और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से की जाएगी।

(3) अभियोजन निदेशालय का प्रधान अभियोजन निदेशक होगा, जो राज्य में गृह विभाग के प्रधान के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कृत्य करेगा।

(4) प्रत्येक अभियोजन उप निदेशक, अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होगा।

(5) राज्य सरकार द्वारा धारा 24 की, यथास्थिति, उपधारा (1) या उपधारा (8) के अधीन, उच्च न्यायालयों में मामलों का संचालन करने के लिए नियुक्त किया गया प्रत्येक लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, जो अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होगा।

(6) राज्य सरकार द्वारा, धारा 24 की, यथास्थिति, उपधारा (3) या उपधारा (8) के अधीन जिला न्यायालयों में मामलों का संचालन करने के लिए नियुक्त किया गया प्रत्येक लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, और जो धारा 25 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त किया गया प्रत्येक सहायक लोक अभियोजक, जो अभियोजन उप निदेशक के अधीनस्थ होगा।

(7) अभियोजन निदेशक और अभियोजन उप निदेशकों की शक्तियां तथा कृत्य तथा वे क्षेत्र जिनके लिए प्रत्येक अभियोजन निदेशक नियुक्त किया जाएगा, वे होंगे जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे।

(8) लोक अभियोजक के कृत्यों का पालन करने में, इस धारा के उपबंध राज्य के महाधिवक्ता को लागू नहीं होंगे।

7. साधना शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2012 (2) एडीजे 607 (डीबी) (एलबी) के मामले जिसका मेरे सम्मानित बंधु ने विस्तार से उल्लेख किया है, 1991 के यूपी अधिनियम संख्या 18 की धारा 2 की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई। मामले के कानूनों की विस्तृत श्रृंखला पर विचार करने के बाद, अदालत ने भारत के विधि आयोग द्वारा अपनी रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के महत्व और संशोधन अधिनियम के प्रारंभिक नोट में उल्लिखित उद्देश्यों और कारणों के विवरण का उल्लेख किया और पाया कि अभिलेख में कुछ भी नहीं लाया गया कि कैसे

जिला न्यायाधीश के परामर्श से देरी होती है और कैसे राज्य अपनी पसंद का वकील चुनने से वंचित रह जाता है। इस अदालत ने कु. श्रीलेखा विद्यार्थी और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य (1991) 1 एससीसी 212 के निर्णय का उल्लेख किया और अनुमोदित किया की राज्य विधानमंडल ने उस फैसले पर विचार नहीं किया है और अपनी असहमति दर्ज नहीं की है, कि वे इसे कानून द्वारा क्यों खारिज करना चाहते हैं। इस अदालत ने माना कि उद्देश्य और कारण निराधार तथ्यों पर आधारित थे जिनका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई संबंध नहीं था और इसलिए संशोधन अनुचितता से ग्रस्त है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 से प्रभावित है। इस पहलू पर अपनी चर्चा में इस न्यायालय ने उपरोक्त संशोधन और प्रावधानों की परस्पर क्रिया सहित संहिता की धारा 25-ए का उल्लेख किया और कहा कि:

"155. उपरोक्त के अलावा, जैसा कि सीआरपीसी की धारा 25-ए से स्पष्ट है और अभियोजन एजेंसी को स्वतंत्र बनाने के लिए किए गए संशोधन को ध्यान में रखते हुए, चयन प्रक्रिया को जिला सरकारी वकीलों की भर्ती के लिए लूट प्रणाली लागू करने के स्थान पर अधिक स्वतंत्र बनाना राज्य की ओर से हमेशा अनिवार्य होगा।

156. धारा 25-ए के अक्षरशः और भावना से पता चलता है कि संसद अपने विवेक से यह प्रावधान करती है कि अभियोजन निदेशालय की स्थापना की जाएगी और अभियोजन निदेशक की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश की

सहमति से होगी। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संसद का इरादा अभियोजन एजेंसी को हमारे पास जो कुछ भी है उससे अधिक स्वतंत्र बनाना है।

.....

170. संसद ने अभियोजन शाखा को पहले की तुलना में अधिक स्वतंत्र बनाने के लिए धारा 25-ए (सुप्रा) शामिल की है। सीआरपीसी की धारा 24 की उपधारा (8) के तहत, राज्य सरकार को विशेष वकील नियुक्त करने की शक्ति जिला न्यायाधीश या यहां तक कि जिला मजिस्ट्रेट से राय प्राप्त किए बिना प्रदान की गई। इसका अर्थ यह है कि, विशेष वकील रोजगार और कर्तव्य के निर्वहन के संबंध में राज्य सरकार के सीधे आदेश और नियंत्रण में थे।

धारा 25-ए को सम्मिलित करके, संसद ने यह प्रावधान किया कि विशेष वकील भी अभियोजन निदेशालय के तहत अपने दायित्व का निर्वहन करेंगे। हालाँकि, विशेष वकील नियुक्त करने की राज्य सरकार की शक्ति को बरकरार रखा गया है, लेकिन वह अभियोजन निदेशक के प्रशासनिक नियंत्रण में आएगा। इस प्रकार, यदि विशेष वकील दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25 की उपधारा (4), (5) और (6) के तहत नियुक्त जिला सरकारी वकील से भिन्न वर्ग का है। इसलिए, जहां तक पर्यवेक्षी या वैधानिक नियंत्रण का सवाल है, धारा 25-ए सम्मिलित करने, संसद ने जिला न्यायाधीश और जिला मजिस्ट्रेट की सिफारिश पर नियुक्त वकील और सरकार द्वारा नियुक्त विशेष वकील के बीच अंतर को विशेष मामले में सीधे तौर पर हटा दिया। तदनुसार, यदि विवादित

संशोधन बरकरार रहता है, तो यह सीआरपीसी की धारा 25-ए की मूल भावना का अपमान होगा और संविधान के अनुच्छेद 254 के खंड (2) के प्रावधान के मद्देनजर केंद्रीय अधिनियम के प्रतिकूल होगा। दोनों एक साथ स्थिर नहीं हो सकते।”

8. इस अदालत ने इसलिए, **साधना शर्मा मामले** में, 1991 के अधिनियम संख्या 18 की धारा 2 को अधिकारहीन, असंवैधानिक, शून्य और अवैध घोषित करते हुए, संहिता की धारा 24 में किए गए संशोधन से संबंधित सीमा तक प्राकृतिक परिणामों के साथ मूल प्रावधान की बहाली का निर्देश दिया।

9. **साधना शर्मा** मामले में इस न्यायालय के उपरोक्त फैसले के खिलाफ राज्य सरकार द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिकाओं को राज्य सरकार के नीतिगत निर्णय के मद्देनजर वापस ले लिया गया क्योंकि वे उच्च न्यायालय के फैसले को पूरी तरह से लागू करना चाहते हैं और भविष्य में भी यही नीति अपनाते रहेंगे।

10. इस पृष्ठभूमि में, संहिता की धारा 24, 25 और 25-ए के प्रावधानों के संबंध में ओ.एम. के संचालन पर विचार की आवश्यकता होगी।

11. संहिता की धारा 5 इस प्रकार है:

"5. व्यावृत्ति-इससे प्रतिकूल किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में इस संहिता की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि पर, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या

शक्ति या उस विधि द्वारा विहित किसी विशेष प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डालेगी।"

धारा 5 वक्त करती है कि इस संहिता में निहित कोई भी चीज़ किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में उस समय लागू किसी विशेष या स्थानीय कानून, या प्रदत्त किसी विशेष क्षेत्राधिकार या शक्ति, या निर्धारित प्रक्रिया के किसी विशेष रूप को तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून द्वारा प्रभावित नहीं करेगी। उपरोक्त ओ.एम. के तहत, संहिता की धारा 25 के तहत नियुक्त मजिस्ट्रेटों की अदालत में मामलों की पैरवी करने वाले सहायक लोक अभियोजकों के कार्यों पर प्रभावी नियंत्रण और पर्यवेक्षण करने के लिए, अभियोजन निदेशालय की स्थापना अभियोजन निदेशक के उप निदेशक अभियोजन एवं अन्य पदों के साथ की गई थी। इसलिए, ओ.एम. द्वारा, नियंत्रण और पर्यवेक्षण के उद्देश्य से अभियोजन निदेशक को क्षेत्राधिकार और शक्तियां प्रदान की गई हैं।

12. **भारत संघ एवं अन्य बनाम सोमसुंदरम विश्वनाथ और अन्य** (1989) 1 एससीसी 175 में भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के तहत बनाए गए कार्यकारी निर्देशों और अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों पर विचार करते हुए, उच्चतम न्यायालय माना:

"6. यह अच्छी तरह से तय है कि सिविल सेवा से संबंधित अधिकारियों की भर्ती और पदोन्नति के संबंध में मानदंड या तो उपयुक्त विधायिका द्वारा बनाए गए कानून द्वारा या भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियमों या भारत

संघ के तहत सिविल सेवाओं के मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत और राज्य सरकारों के तहत सिविल सेवाओं के मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के तहत जारी कार्यकारी निर्देशों के माध्यम द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं। कार्यकारी निर्देशों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत बनाए गए नियमों के बीच यदि कोई विरोधाभास है तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत बनाए गए नियम प्रभावी होते हैं, और यदि अनुच्छेद के परंतुक के तहत बनाए गए नियमों के बीच कोई विरोधाभास है भारत के संविधान की धारा 309 और उपयुक्त विधायिका द्वारा बनाया गया कानून, उपयुक्त विधायिका द्वारा बनाया गया कानून- मान्य होता है।

जब तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत बनाए गए नियमों में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो कार्यालय जापन में निहित निर्देशों के प्रतिकूल है, कार्यालय जापन जो स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत जारी किया गया है, का अधिकार है इसे सभी संबंधित पक्षों के लिए वैध और बाध्यकारी माना जाएगा।"

13. एस.के. नौशाद और रहमान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एससी 297 में उच्चतम न्यायालय ने सेवा न्यायशास्त्र के कुछ बुनियादी सिद्धांतों को दोहराया और निम्नानुसार पाया:

"29. चौथा, सिविल सेवाओं से संबंधित अधिकारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों पर लागू मानदंड निर्धारित किए जा सकते हैं:

(i) सक्षम विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून;

(ii) संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियम; और

(iii) राज्यों के अधीन सिविल सेवाओं के मामले में संविधान के अनुच्छेद 73 और नागरिक सेवाओं के मामले में अनुच्छेद 162 के तहत जारी कार्यकारी निर्देश।

30. पांचवां, जहां कार्यकारी निर्देशों और अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों के बीच विरोधाभास है, वहां नियम लागू होने चाहिए। अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों और उपयुक्त द्वारा बनाए गए कानून के बीच संघर्ष की स्थिति में विधायिका, कानून प्रबल है। जहां नियम कमज़ोर हैं या ऐसी स्थिति में जब नियमों में कोई अंतर है, कार्यकारी निर्देश नियमों में बताई गई बातों को पूरक कर सकते हैं।

31. छठा, संघ को संविधान के अनुच्छेद 73 और राज्यों को अनुच्छेद 162 के तहत प्रदत्त शक्ति के संदर्भ में लिया गया नीतिगत निर्णय उन भर्ती नियमों के अधीन है जो एक विधायी अधिनियम या संविधान का अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत नियमों के तहत तैयार किए गए हैं।

.....

34. अपीलकर्ताओं की ओर से जिस प्रस्तुतिकरण का आग्रह किया गया है उसमें एक बुनियादी भ्रांति है। प्रशासनिक निर्देश, यह अच्छी तरह से तय है, उन नियमों को पूरक कर सकते हैं जो संविधान के अनुच्छेद 309 के

प्रावधान के तहत इस तरह से बनाए गए हैं जिससे कोई विसंगतियां पैदा न हों। कार्यकारी निर्देश नियमों में कमियों को भर सकते हैं। लेकिन प्रशासनिक या कार्यकारी निर्देशों की सहायता से नियम बनाने की शक्ति के अभ्यास को पूरक करना अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों के स्पष्ट प्रावधान या आवश्यक इरादे के विपरीत प्रशासनिक निर्देशों की सहायता लेने से अलग है”।

14. ओ.एम. बनाते समय संहिता की धारा 25-ए के प्रावधान को न तो समझा गया और न ही उस पर विचार किया गया। ओ.एम. की सामग्री और सार यह विशेष रूप से मजिस्ट्रेटों की अदालतों में संहिता की धारा 25 के तहत नियुक्त सहायक लोक अभियोजकों के संपूर्ण कार्य के प्रभावी नियंत्रण और पर्यवेक्षण के लिए एक अलग अभियोजन निदेशालय की स्थापना के लिए है। अभियोजन निदेशालय की प्रशासनिक संरचना को उपरोक्त ओ.एम. में विस्तृत किया गया है। अभियोजन निदेशक की स्थापना, वेतनमान, सेवा की शर्तें, निदेशालय की संरचना, कर्तव्य और जिम्मेदारियां आदि को ओ.एम. के अनुलग्नकों में निर्दिष्ट किया गया है।

अनुलग्नक-1 में निदेशालय के मुख्यालय के स्वीकृत कर्मचारियों की सूची, पदों के नाम, पदों की संख्या और वेतनमान के साथ दी गई है। अनुलग्नक-2 में क्षेत्रीय उपनिदेशक के कार्यालय और जिला स्तर पर वरिष्ठ अभियोजन अधिकारी/प्रभारी अभियोजन अधिकारी के कार्यालय में पदों की संख्या, वेतनमान और स्वीकृत कर्मचारियों के पदों के

नाम सूचीबद्ध हैं। अनुलग्नक-3 अभियोजन निदेशालय की स्थापना पर होने वाले व्यय का अनुमान है। अनुलग्नक 4 में निदेशालय की संरचना सहित चार क्षेत्रों का निर्माण सूचीबद्ध है, जिनमें से प्रत्येक एक अभियोजन उप निदेशक के नियंत्रण में है। अनुलग्नक-5 में अभियोजन निदेशक, उप निदेशक (मुख्यालय), अभियोजन के क्षेत्रीय उप निदेशक और वरिष्ठ अभियोजन अधिकारियों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की सूची है, साथ ही अभियोजन अधिकारियों / सहायक अभियोजन अधिकारियों के कर्तव्यों की भी सूची है। अनुलग्नक-6 में वरिष्ठ अभियोजन अधिकारियों, अभियोजन अधिकारियों और सहायक अभियोजन अधिकारियों के स्थायी और अस्थायी पदों की संख्या और कर्मचारियों के वेतनमान की सूची दी गई है।

ओ.एम. का खंड 9, इसमें प्रावधान है कि अभियोजन निदेशक, उप निदेशक अभियोजन के पद पर नियुक्ति, शक्तियों के प्रत्यायोजन और नवसृजित पदों पर नियुक्ति की प्रक्रिया के लिए अलग से आदेश जारी किया जाएगा। हालाँकि, कोई अलग आदेश, जैसा कि ओ.एम. के खंड 9 में दिया गया है, उत्तरदाताओं द्वारा रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है।

यहां यह उल्लेख करना उचित है कि ओ.एम. के खंड 12 के उप-खंड 2 में प्रावधान है कि अभियोजन निदेशक के पद पर पुलिस सेवा के पुलिस उपमहानिरीक्षक स्तर के अधिकारी की नियुक्ति की जाएगी, परंतु वह पुलिस महानिरीक्षक पुलिस न ही वह पुलिस के अधिकार का प्रयोग करेगा।

15. मेरे आदरणीय बंधु ने अपने निर्णय में धारा 24, 25 और 25-ए के बारे में की गई चर्चा में **के. अनबझगन बनाम कर्नाटक राज्य** (2015) 6 एससीसी 158 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का उल्लेख किया है। संहिता को एक एकल योजना के रूप में समझने की आवश्यकता है। के. अंबाजगन मामले में यह माना गया कि राज्य सरकार अभियोजन निदेशालय स्थापित करने के लिए बाध्य है और यह योजना उच्च न्यायालय और जिला अदालतों पर लोक अभियोजक के लिए एक स्पष्ट सीमांकन और विभाजन करती है।

16. संहिता की धारा 25-ए इस प्रकार एक 'अम्ब्रेला' प्रावधान की तरह है जो अभियोजन के एक स्वतंत्र निदेशालय की स्थापना का प्रावधान करती है, जो प्रभावी और निष्पक्ष अभियोजन के लिए एक एजेंसी है, और जो जांच एजेंसी से अलग है। इस निदेशालय का नेतृत्व एक संरचित संगठन के साथ एक विधिवत योग्य अभियोजन निदेशक द्वारा किया जाना है। उच्च न्यायालय में मामलों के संचालन के लिए धारा 24 की उप-धारा (1), या जैसा भी मामला हो, उप-धारा (8) के तहत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ होंगे। इसके अलावा, अभियोजन उप निदेशक, जिसे संहिता की धारा 25-ए की उप-धारा (1) के तहत विधिवत योग्य और नियुक्त किया जाना आवश्यक है, अभियोजन निदेशक के अधीनस्थ है। उप-धारा (3) के तहत राज्य

सरकार द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक, अतिरिक्त लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक या जैसा भी मामला हो, धारा 24 की उप-धारा (8), जिला न्यायालयों में मामलों का संचालन करने के लिए और धारा 25 की उप-धारा (1) के तहत नियुक्त प्रत्येक सहायक लोक अभियोजक अभियोजन के उप निदेशक के अधीनस्थ होगा।

यहां यह ध्यान रखना उचित है कि संहिता की धारा 25 की उपधारा (3) के तहत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त सहायक लोक अभियोजकों की अधीनता धारा 25-ए के रूपरेखा में नहीं है।

17. 1976 का उ.प्र. अधिनियम संख्या 16 द्वारा धारा 25 की उपधारा (2) में सम्मिलित नियम जो प्रावधान करता है कि 'इस उप-धारा में ऐसा कुछ भी नहीं लगाया जाएगा जो राज्य सरकार को पुलिस अधिकारियों के माध्यम से सहायक लोक अभियोजकों पर अपना नियंत्रण रखने से रोकता हो', संहिता की धारा 25-ए के प्रावधानों के साथ विरोधाभासी प्रतीत होता है, और इसलिए, संघर्ष की प्रतिकूलता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 के खंड (2) के प्रावधान के प्रकाश में देखा जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले में, जिसे मेरे सम्मानित बंधु ने **ज़ेवरभाई अमैदास बनाम बॉम्बे राज्य एआईआर 1954 एससी 752** के मामले में उद्धृत किया है, यह माना गया है कि संविधान के तहत संसद, अनुच्छेद-254(2) के प्रावधान के तहत कार्य करते हुए किसी राज्य के कानून को निरस्त

कर सकती है, लेकिन जहां वह स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं करता है, तब भी,

राज्य का कानून उसी मामले के संबंध में" जिसे संसद द्वारा अधिनियमित किया प्रावधान के तहत अमान्य हो जाएगा यदि यह बाद के "कानून" से संघर्ष उत्पन्न होता है।

18. अन्यथा भी, संहिता की धारा 5 के प्रावधान को देखते हुए ओ.एम. संहिता की धारा 25-ए के प्रावधानों के प्रति समर्पण करना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि, धारा 25 की उपधारा (1) के तहत नियुक्त सहायक लोक अभियोजकों को अभियोजन उप निदेशक के अधीन करने के संबंध में धारा 25-ए में विपरीत विशिष्ट प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, ओ.एम. का प्रावधान सहायक लोक अभियोजकों के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के लिए अभियोजन निदेशक के पद पर एक उच्च पदस्थ सेवारत पुलिस अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान उस सीमा तक संहिता की धारा 5 द्वारा संरक्षित नहीं है।

19. संहिता की धारा 25-ए के प्रावधानों को लागू न करने के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा धारा 25-ए की उप-धारा (1) में आने वाले 'हो सकता है' शब्द के उपयोग पर दिया गया जोर अतार्किक और तर्कहीन है। उप-धारा (1) में 'हो सकता है' शब्द के उपयोग पर साधना शर्मा मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा भी विचार किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने कहा था कि संहिता की धारा 25-ए का उद्देश्य अभियोजन शाखा को सरकार से लेकर

अधिकतम स्तर तक स्वतंत्र बनाना है। इसलिए, कानून के मौजूदा प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, विशेष अनुमति याचिकाओं को वापस लेते समय राज्य सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपनाए गए रुख को ध्यान में रखते हुए, और तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, राज्य यह रुख नहीं अपना सकता है कि यह धारा 25-ए संहिता की उप-धारा (1) के तहत अभियोजन निदेशालय का गठन नहीं करेगा, बल्कि उपरोक्त ओ.एम. के तहत स्थापित अभियोजन निदेशालय के साथ जारी रहेगा। तदनुसार, इस मामले का न्यायनिर्णयन संहिता की धारा 25-ए की प्रयोज्यता आधार पर आगे बढ़ेगा है क्योंकि यह अपनी पूरी गहराई और सशक्तता के साथ मौजूद है। इस प्रकार, राज्य सरकार के संशोधनों और कार्यकारी निर्देशों द्वारा ओ.एम. के माध्यम से धारा 25-ए की विसंगतियों को सामने लाया गया, जिसे इस न्यायालय द्वारा विश्वसनीयता नहीं दी जाएगी।

20. इस मामले का एक और पहलू भी है। दिनांक 9 फरवरी 2023 को, प्रतिवादी संख्या 5, श्री आशुतोष पांडे ने एक हलफनामा देकर अन्य बातों के अलावा, अभियोजन निदेशक के रूप में उनके द्वारा की गई पहलों पर प्रकाश डाला। हलफनामे में उनके बयानों के अंश इस प्रकार हैं:

"एडीजी अभियोजन के रूप में, मैंने आपराधिक न्याय प्रणाली के विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वय में सुधार करने की कोशिश की है, और सरकार को माफिया के खिलाफ परीक्षण मामलों के साथ-साथ महिलाओं के खिलाफ

अपराध आदि के संबंध में अभियोजन की स्थिति के बारे में, ई-अभियोजन के कार्यान्वयन और यूपी में आईसीजेएस, दोषमुक्ति और दोषसिद्धि रिपोर्टों की निगरानी, पेशेवर क्षमता और कामकाजी माहौल में सुधार के लिए सुविधाओं का प्रावधान सूचित किया है।

अभियोजकों और कर्मचारियों के कल्याण में सुधार करने ताकि उनके मनोबल और कामकाजी परिस्थितियों में सुधार हो सके। ई-प्रोसिक्यूशन पोर्टल, ई-प्रोसिक्यूशन मोबाइल ऐप, ई-ऑफिस और ई-एचआरएमएस (मानव सम्पदा पोर्टल) और वेबिनार के माध्यम से प्रशिक्षण और शिकायत निवारण की शुरुआत करके उनके काम को कागज रहित बनाने का प्रयास किया गया।

एडीजी अभियोजन के रूप में तैनाती के बाद आपराधिक न्याय प्रणाली के सभी हितधारकों के साथ समन्वय और सहयोग करके अभियोजकों के काम में गरिमा और गौरव लाने के लिए एक ठोस और दृढ़ प्रयास किया गया। अभियोजकों के बीच नई कार्य संस्कृति और दोषसिद्धि और निपटान पर इसके तीव्र प्रभाव की माननीय द्वारा बहुत सराहना की गई। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सभागार में दिनांक दिनांक 10.12.2022 से 11.12.2022 तक पोक्सो अधिनियम के कार्यान्वयन पर आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार के दौरान भारत के सभी राज्यों के अभियोजन निदेशक और पुलिस अधिकारी उपस्थित रहे जिनको एडीजी अभियोजन 30प्र0 द्वारा चलाये जा रहे

अभियोजन के मॉडल का अनुसरण करने की सलाह दी गयी। इसके अलावा, भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने पूरे भारत में अभियोजन में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए पिछले दो वर्षों के दौरान लगातार दो बार यूपी अभियोजन को प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया।

भारत के विभिन्न राज्यों के अधिकारी यूपी अभियोजन की अनुकरणीय कार्य संस्कृति को देखने और सीखने के लिए यूपी आते हैं। हाल ही में कर्नाटक, मध्य प्रदेश और सिक्किम के अधिकारियों ने यूपी अभियोजन के कामकाज की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने के लिए लखनऊ का दौरा किया। अभियोजन निदेशक, उड़ीसा ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सलाह के संदर्भ में यूपी अभियोजन की कार्यप्रणाली के बारे में भी जानकारी ली। तेलंगाना, पंजाब, छत्तीसगढ़ और जम्मू-कश्मीर ने भी यूपी अभियोजन द्वारा अपनाई गई रणनीतियों को जानने में गहरी दिलचस्पी दिखाई।

यूपी में अभियोजन की दो प्रणालियाँ हैं-

- i. पहली प्रणाली कानून विभाग के अधीन है जहां डीजीसी, एडीजीसी और सरकारी अभियोजक 7 साल से अधिक की सजा वाले मुकदमे की पैरवी करते हैं।
- ii दूसरी प्रणाली गृह विभाग के अधीन है जहां एपीओ, पीओ और एसपीओ उन मुकदमों की पैरवी करते हैं जिनमें सजा 7 साल से कम है।

अभियोजकों के इन दो अलग-अलग समूहों के बीच आपसी सहयोग और सम्मान के मामले में व्यापक अंतर था, जिससे उनके बीच सूचना और पेशेवर ज्ञान साझा करने और सामान्य कार्य संस्कृति के प्रसार में बाधा उत्पन्न हुई।

अलग-अलग मामलों में अलग-अलग अदालतों में कौन अभियोजक क्या कर रहा है, इसकी जानकारी न होने की समस्या लगातार बनी हुई थी। डीजीसी और एडीजीसी खुद को अभियोजन के दायरे से बाहर मान रहे थे और एल.आर. मैनुअल के तहत काम कर रहे थे। अभियोजन की इस खंडित प्रणाली को पाटने के लिए, ICJS (इंटरऑपरेबल क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम) प्लेटफॉर्म के तहत ई-प्रोसिक्यूशन पोर्टल शुरू किया गया जो डिजिटल इंडिया मिशन का एक हिस्सा है। यह उनके काम को आसान, सटीक और प्रभावी बनाने के लिए था। सभी अभियोजकों को लैपटॉप और ई-प्रोसिक्यूशन मोबाइल ऐप दिया गया ताकि वे अपना काम कहीं से भी फीड कर सकें। सभी अभियोजकों को मास्टर ट्रेनर्स द्वारा जिले में ही नियमित अंतराल पर दोहराव के साथ कंप्यूटर पर व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया गया। इससे अभियोजकों की निगरानी और मूल्यांकन और मामलों पर नज़र रखने में मदद मिली। इससे अभियोजकों को माउस के एक क्लिक पर पुलिस (सीसीटीएनएस) से एफआईआर और कोर्ट (ई-कोर्ट) से सभी मामले के विवरण या वाद सूची प्राप्त करने और ई-प्रोसिक्यूशन पोर्टल पर अदालतों में अपने स्वयं के प्रदर्शन को फीड करने में मदद मिली है, जिससे अभियोग पक्ष को त्वरित सुनवाई और प्रभावी

सुनवाई में मदद मिली है। यूपी प्रॉसिक्यूशन अब एनआईसी के ई-प्रोसिक्यूशन सॉफ्टवेयर को विकसित करने और संशोधित करने में डोमेन विशेषज्ञ है। यूपी में पुलिस और न्यायपालिका की तुलना में एनआईसी डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करने वाले अभियोजन अधिकारियों की संख्या स्वयं सबसे अधिक है।

इस प्रयोग ने एक ऐसा माहौल तैयार किया जहां अभियोजकों के दो अलग-अलग समूह एक ही मंच पर एक साथ काम करने लगे। यह पूरे भारत में सबसे बड़ा आश्चर्य बनकर उभरा। प्रौद्योगिकी एक महान समर्थक और समतामूलक बन गई।

अभियोजकों के प्रदर्शन की निगरानी और मूल्यांकन करने के लिए, सभी अभियोजकों के साथ उचित चर्चा के बाद 12 बिंदु KPI (मुख्य प्रदर्शन संकेतक) द्वारा तय किए गए और एनआईसी द्वारा ई-प्रोसिक्यूशन पोर्टल पर एक मंच विकसित किया गया। डीजीसी, एडीजीसी, एपीओ, पीओ और एसपीओ सहित अभियोजकों के दोनों समूहों ने इस पर काम करना शुरू कर दिया है।

इस रणनीति को लागू करने के लिए एसीएस होम से लेकर डीएम और प्रमुख सचिव कानून से लेकर डीजीएस, एडीजीसी और यूपी के लोक अभियोजकों तक को विचार-विमर्श के बाद पत्र जारी किए गए।

अभियोजकों को त्वरित सुनवाई और प्रभावी अभियोजन की दिशा में उनके प्रयासों

की मान्यता में प्रमाण पत्र से सम्मानित किया गया

वर्ष 2021

क्रम	पद	प्रमाणपत्र की संख्या
1	जे. डी.	29
2	स. पी. ओ.	21
3	पी. ओ.	35
4	ए. पी. ओ.	127
5	डी. जी. सी.	20
6	ए. डी. जी. सी.	38
7	विशेष लोक अभियोजक	3

वर्ष 2022

क्रम	पद	प्रमाणपत्र की संख्या
1	जे. डी.	5
2	स. पी. ओ.	23
3	पी. ओ.	13
4	ए. पी. ओ.	35
5	डी. जी. सी.	5
6	ए. डी. जी. सी.	23
7	विशेष लोक अभियोजक	7

इसने यूपी और एमएचए में अभियोजन को प्रेरित करने में एक बड़ी प्रेरणा पैदा की, भारत सरकार ने 2021 और 2022 में लगातार दो बार भारत के सभी राज्यों के बीच अभियोजन में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए प्रथम पुरस्कार और ट्रॉफी से सम्मानित किया।

शीघ्र सुनवाई और प्रभावी अभियोजन के लिए न्यायपालिका, मजिस्ट्रेट और पुलिस के समन्वय से जिलों की तीन महत्वपूर्ण मासिक बैठको (डीजे की अध्यक्षता में मॉनिटरिंग सेल की बैठक, डीएम की अध्यक्षता में अभियोजन बैठक और पुलिस एसपी की अपराध बैठक) को कार्यसूची आधारित बनाया गया और अभियोजन एवं पुलिस के अधिकारी निगरानी कर रहे हैं।

एसीएस गृह एवं प्रमुख सचिव विधि से समन्वय स्थापित कर मॉनिटरिंग सेल की बैठक को प्रभावी बनाने हेतु रजिस्ट्रार, माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद को 'प्रोसेस रजिस्टर' रखने और चर्चा करने के लिए पत्र जारी किया गया ताकि गवाहों के उत्पादन और परीक्षण में सुधार हो सके।

डीएम की अभियोजन बैठक को प्रभावी बनाने के लिए सभी डीएम को एसीएस होम से समन्वय स्थापित कर 13 सूत्रीय एजेंडे पर ऐसी बैठक करने और मासिक रिपोर्ट शासन और अभियोजन विभाग को भेजने के लिए पत्र जारी किया गया।

एसपी की क्राइम मीटिंग को प्रभावी बनाने के लिए डीजीपी यूपी से समन्वय बनाकर सभी एसएसपी, एसपी और पुलिस कमिशनर को पत्र जारी कर कानूनी राय लेकर जांच की गुणवत्ता में सुधार, समन की तामील और बेहतर प्रदर्शन करने वाले जिलों की सफलता की कहानियां अपनाने को कहा गया है।

ऐसे नवाचार प्रयासों का प्रभाव:

गवाहों से पूछताछ की गई जबकि 2022 में यह संख्या बढ़कर 987 हो गई।

पिछले 3 वर्षों में, महिलाओं के खिलाफ अपराधों में सजा में महत्वपूर्ण परिणाम सामने आए हैं। पोक्सो मामलों में 2020 के दौरान, 535 ऐसे मामलों में सजा सुनाई गई; जबकि वर्ष 2021 में 1230 मामलों में दोषसिद्धि हुई और वर्ष 2022 में 2313 मामलों में दोषसिद्धि हुई जिससे वर्ष 2020 की तुलना में वर्ष 2022 में 332% की वृद्धि हुई।

बलात्कार के मामलों में वर्ष 2020 में 177 और वर्ष 2021 में 370 और वर्ष 2022 में 671 मामलों में दोषसिद्धि हुई जो 2020 की तुलना में वर्ष 2022 में 280% की वृद्धि हुई।

पोक्सो मामलों में आरोप तय होने से फैसले तक 1 महीने के भीतर दोषसिद्धि वर्ष 2020 में 5 से बढ़कर वर्ष 2022 में 34 हो गई।

2022 के दौरान 23 अलग-अलग मामलों में कुल मिलाकर 16 माफिया को दोषी ठहराया गया। यूपी के सूचीबद्ध माफियाओं के मुकदमों में आरोप तय कराने के लिए अभियान चलाया गया।

मामलों की ट्रैकिंग और निगरानी और उत्पादन को प्राथमिकता देना और गवाहों की जांच से गहरा परिणाम निकला है। वर्ष 2021 की तुलना में 22 जिले में गवाहों की जांच की संख्या 2 से 4 गुना और यूपी के 5 जिलों में 4 गुना से ज्यादा बढ़ गई। उदाहरण के लिए बलिया जिले में, 2021 में 325 पुलिस

उत्तर-पूर्वी राज्यों को छोड़कर, उत्तर प्रदेश 2021 में महिलाओं के खिलाफ अपराध में 59.1% की उच्चतम सजा दर के साथ सूची में शीर्ष पर है। यह राष्ट्रीय औसत 26.5 का 123% है। पिछले 3 वर्षों में ऐसे मामलों में उच्चतम सजा दर में यूपी लगातार नंबर 1 पर है।

अदालतों में प्रभावी पैरवी द्वारा कम से कम समय में अधिकतम दोषसिद्धि पुलिस, अभियोजन और सरकार द्वारा समन्वय

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा प्रकाशित भारत में अपराध 2021 के आंकड़ों के अनुसार

> आईपीसी और एसएलएल (विशेष और स्थानीय कानून) अपराधों के विभिन्न न्यायालयों द्वारा मुकदमों की सुनवाई सबसे कम समय में पूरी करने में उत्तर प्रदेश पूरे देश में पहले स्थान पर है।

> जिल और सत्र न्यायालय में एक वर्ष में उत्तर प्रदेश में केवल सबसे ज्यादा 1310 मामलों में सजा हुई है जो संपूर्ण देश में सबसे ज्यादा है। दूसरे स्थान पर 803 मामलों के साथ केरल है और तीसरे स्थान पर 224 मामलों के साथ महाराष्ट्र है।

> इसी तरह, फास्ट ट्रैक कोर्ट द्वारा ट्रायल केसों में सिर्फ एक महीने में सजा देने के मामले में उत्तर प्रदेश में पूरे देश में सबसे ज्यादा 202 सजाएं हैं, जो देश में सुनाई गई

ऐसी कुल सज़ाओं का 67 प्रतिशत है। दूसरे स्थान पर 72 मामलों के साथ आंध्र प्रदेश और तीसरे स्थान पर 10 मामलों के साथ तमिलनाडु है।

> फास्ट ट्रैक कोर्ट द्वारा ट्रायल मामलों में 1 से 3 महीने में सजा देने में, उत्तर प्रदेश 417 मामलों में सजा के साथ फिर से देश में पहले स्थान पर है, इसके बाद आंध्र प्रदेश में 72 और तमिलनाडु में 10 सजाएं हैं।

>विशेष न्यायालयों द्वारा सुनवाई के मामलों में केवल 3 महीने के भीतर सजा देने में उत्तर प्रदेश 2195 मामलों में दोषसिद्धि के साथ देश में पहले स्थान पर है, इसके बाद मध्य प्रदेश में 998 मामलों में दोषसिद्धि के साथ दूसरे स्थान पर और महाराष्ट्र दूसरे स्थान पर है।

> एससी/एसटी न्यायालयों द्वारा मुकदमे के मामलों में केवल 3 महीने के भीतर सजा देने में, उत्तर प्रदेश 170 मामलों में दोषसिद्धि के साथ देश में पहले स्थान पर है, इसके बाद मध्य प्रदेश में 106 और राजस्थान में 40 मामलों में दोषसिद्धि हुई।

21. इसमें कोई संदेह नहीं है, प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा अपने हलफनामे में की गई विस्तृत प्रस्तुति को देखते हुए, जो एक उच्च रैंकिंग सेवारत पुलिस अधिकारी है, कि सभी अभियोजकों के प्रदर्शन की निगरानी और मूल्यांकन में उनके द्वारा ऐतिहासिक पहल की गई है। जिससे एक ऐसे वातावरण का निर्माण हुआ जहां अभियोजकों के दो अलग-अलग समूह एक ही मंच पर एक साथ आने से उत्तर प्रदेश राज्य में अभियोजन को प्रेरित करने में भारी प्रोत्साहन मिला।

उनके बयान में कहा गया है कि उनके द्वारा की गई पहल का असर यह है कि महिलाओं के खिलाफ अपराधों में सजा में महत्वपूर्ण परिणाम सामने आए हैं। पोक्सो मामलों के संबंध में, वर्ष 2020 की तुलना में वर्ष 2022 में दोषसिद्धि में 332% की वृद्धि दर्ज की गई। बलात्कार के मामलों में, वर्ष 2020 की तुलना में वर्ष 2022 में दोषसिद्धि में 280% की वृद्धि दर्ज की गई। 2022 के दौरान 23 अलग-अलग मामलों में कुल मिलाकर 16 माफियाओं को दोषी ठहराया गया। गवाहों से पूछताछ में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

22. यह न्यायालय उन समर्पित पुलिस अधिकारियों के प्रति अपनी सहानुभूति और सराहना को उल्लेखित रखना चाहेगा जो रचनात्मकता के साथ और अभियोजन की जमीनी हकीकत की समग्र समझ के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। हालाँकि, ओ.एम. के तहत प्रदत्त क्षेत्राधिकार के कथित अभ्यास में प्रतिवादी नंबर 5 द्वारा की गई पहल से पता चलता है कि वह संहिता की धारा 25-ए में परिकल्पित अभियोजन निदेशक के ऊंचे और व्यापक क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा है। संसद ने अपने विवेक से देश में कानून के शासन को बनाए रखने के लिए अभियोजन में मौलिक और व्यापक बदलाव लाने के लिए संहिता की धारा 25-ए बनाई है। अफसोस! यदि केवल प्रतिवादी संख्या 5 की नियुक्ति संहिता की धारा 25-ए के प्रावधानों के अनुसार होती।

23. इसलिए, यह न्यायालय मेरे सम्मानित बंधु के निर्देशानुसार राहत देने के अलावा कुछ नहीं कर सकता।

(2023) 7 ILRA 1115

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल,

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

संख्या 5431 वर्ष 2023

(दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अंतर्गत)

मोहित उपाध्याय एवं अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...आवेदकगण

...प्रतिपक्षीगण

आवेदकगण के अधिवक्ता :

श्री कृष्ण कांत विश्वकर्मा, श्री राजेश कुमार सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता, श्री बी.एन. सिंह, श्री मनीष कुमार सिंह, श्री शक्ति शंकर तिवारी, श्री सुभाष चन्द्र तिवारी, श्री वी.एम. जैदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

आपराधिक विधि - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 --- आवेदकगण ने धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत इस न्यायालय में सीधे अग्रिम जमानत प्रस्तुत की है, बिना सत्र न्यायालय का सहारा लिए -

आवेदकगण को मामला अपराध संख्या 99 सन् 2017, थाना स्वरूप नगर, जनपद कानपुर नगर में अग्रिम जमानत प्रदान की जा चुकी है तथा उन्होंने संबंधित न्यायालय में अपने जमानतनामे प्रस्तुत कर दिए हैं, अतः जनपद न्यायालय, कानपुर नगर में मारपीट की आशंका का तर्क महत्वहीन हो जाता है - आवेदकगण के विरुद्ध ग्यारह आपराधिक मामलों का इतिहास अंकित है। (प्रस्तर 12 एवं 13)

अग्रिम जमानत आवेदन योग्यताहीन पाया गया और तदनुसार अस्वीकार किया जाता है। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

शिवम बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट एवं अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 264

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा पदत)

1. सूची को दोहराया गया।

2. आवेदकों के लिए विद्वान वकील श्री राजेश कुमार सिंह, श्री सुभाष चंद्र तिवारी द्वारा सहायित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री वी एम जैदी, , सूचक के लिए विद्वान वकील और श्री वी के एस परमार द्वारा सहायित श्री पी के गिरि, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता, और राज्य के लिए विद्वान ए जी ए को सुना साथ ही रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया।

3. आवेदकों ने सत्र न्यायालय, कानपुर नगर का सहारा लिए बिना सीधे इस न्यायालय से संपर्क किया है।

4. आवेदक के विद्वान वकील ने कहा है कि आवेदकों के लिए एक असाधारण आधार है क्योंकि सूचनादाता के बहनोई राधे कृष्ण उपाध्याय कानपुर नगर में एक प्रैक्टिसिंग वकील हैं और एक प्रभावशाली व्यक्ति हैं जो अपने कनिष्ठों के साथ आवेदकों पर दबाव डालते हैं और उनके द्वारा आवेदकों पर हमला किये जाने की पूरी आशंका है।

5. वर्तमान अग्रिम जमानत अर्जी आवेदक की ओर से आपराधिक मामला संख्या 70490/2021 (राज्य बनाम मोहित उपाध्याय) में धारा 308, 341, 504 और 506 आईपीसी के तहत थाना- बर्रा, जिला कानपुर नगर में दर्ज केस अपराध संख्या 22/2021 से उत्पन्न होने पर दायर की गई है जिसमें आवेदक को अग्रिम जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना की गयी है।

अभियोजन की कहानी:

6. आवेदकों का कहना है कि दिनांक 10.08.2016 को रात्रि लगभग 10:00 बजे सूचनादाता की पत्नी पर डंडा से हमला किया गया, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गयी।

प्रतिद्वंद्वी विवाद

(आवेदकों की ओर से तर्क)

7. आवेदकों के विद्वान वकील ने कहा है कि शुरू में धारा 323, 504 और 506 आईपीसी के तहत केवल एनसीआर के रूप में मामला स्थापित किया गया था और उक्त एनसीआर

में तीन दिन की देरी हुई है और उक्त देरी के कारण का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। विद्वान वकील ने आगे कहा कि लगभग तीन साल की देरी के बाद, मामले की जांच के लिए विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर द्वारा धारा 155 (2) सीआरपीसी के तहत 16.11.2019 को एक आदेश पारित किया गया है। जांच के बाद आवेदकों के खिलाफ 308 आईपीसी की अतिरिक्त धारा में अंतिम रिपोर्ट (चार्जशीट) दायर की गई है। विद्वान वकील ने आगे कहा कि चोट की रिपोर्ट संदिग्ध है क्योंकि शुरू में घायल व्यक्ति को एक निजी अस्पताल में भर्ती कराया गया था और वहां उसका इलाज किया गया था और फिर उसे सरकारी अस्पताल में रेफर कर दिया गया था और सरकारी अस्पताल में देखा गया कि सके सिर के बाएँ पार्श्विका क्षेत्र के घाव पर टांके लगे हुए थे और एक अन्य चोट घर्षण की थी जो प्रकृति में सरल थी।

8. विद्वान वकील ने आगे कहा है कि जांच अधिकारी द्वारा एक टिप्पणी की गई है कि सूचनादाता ने टेलीफोन पर यह कहकर दबाव बनाने की कोशिश की थी कि वह एक पत्रकार है, इसलिए मामले को आईपीसी की धारा 308 के तहत तब्दील किया जाये। उक्त टिप्पणी के बावजूद, सूचनादाता के दबाव में, वर्तमान अंतिम रिपोर्ट (चार्ज-शीट) धारा 308 आई.पी.सी. के तहत दायर की गई है। आवेदकों और सूचनादाता के बीच लंबे समय से विवाद चल रहा है। विद्वान वकील ने आगे कहा है कि सूचनादाता और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा आवेदकों के खिलाफ कुल मिलाकर ग्यारह मामले स्थापित किए गए हैं, जो स्पष्ट

है कि उनमें से चार मामलों को एनसीआर के रूप में स्थापित किया गया था, एक शिकायत मामला है और अन्य छह मामले उसी दलों के बीच के हैं। आवेदकों ने आपराधिक इतिहास में वर्णित दो मामलों के आदेश संलग्न किये हैं। उक्त मामलों को छोड़कर आवेदकों का कोई अन्य आपराधिक इतिहास नहीं है।

9. विद्वान वकील ने आगे कहा है कि आवेदकों ने धारा 482 सीआरपीसी संख्या 15394/ 2021 के तहत याचिका दायर करके इस अदालत के समक्ष उक्त अंतिम रिपोर्ट (चार्ज-शीट) को चुनौती दी थी और इस अदालत ने आवेदकों को अंतरिम सुरक्षा प्रदान करने का आदेश दिया था लेकिन बाद में, 14.02.2023 को उक्त याचिका को गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया और अंतरिम संरक्षण को रद्द कर दिया गया। विद्वान वकील ने आगे कहा है कि उन्होंने अस्वीकृति के उक्त आदेश को एसएलपी संख्या 5848/2023 के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी है, जो अभी भी लंबित है।

(सूचनादाता /राज्य की ओर से तर्क)

10. इसके विपरीत, सूचनादाता के विद्वान वरिष्ठ वकील ने इस आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन का जोरदार विरोध किया है कि वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष कोई असाधारण आधार मौजूद नहीं है क्योंकि आरोपों की पुष्टि में सूचनादाता के रिश्तेदार के खिलाफ कोई एफआईआर/मेडिकल रिपोर्ट नहीं है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे कहा है कि आवेदक अपराधी हैं क्योंकि वे बार-बार समान

प्रकृति के अपराध करने में शामिल रहे हैं। आवेदकों के पास ग्यारह मामलों का आपराधिक इतिहास है और उनके पास उक्त आपराधिक मामलों की व्याख्या नहीं है क्योंकि उन्होंने अन्य मामलों के जमानत आदेश संलग्न नहीं किए हैं।

11. विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे कहा है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका पर हमेशा के लिए फैसला हो चुका है और मामला, मारपीट का होने के कारण, **शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** मामले में पारित इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 43 के अंतर्गत आता है ऐसे में आवेदक अग्रिम जमानत के हकदार नहीं हैं। विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे कहा है कि उक्त एस.एल.पी. में कोई अंतरिम आदेश नहीं है और इस समय लंबित मामलों पर विचार नहीं किया जा सकता है।

13. विद्वान ए.जी.ए. ने भी इस आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन का पुरजोर विरोध किया है कि आवेदकों के ऊपर ग्यारह मामलों का आपराधिक इतिहास है।

निष्कर्ष:

12. आवेदक के वकील द्वारा बताए गए तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उनके मन में इस बात की आशंका है कि जिला न्यायालय, कानपुर नगर के परिसर में उन पर हमला किया जा सकता है, जैसा कि आवेदक के वकील ने पहले ही कहा है आवेदकों को धारा 307, 504 और 506 आईपीसी, पुलिस थाना

स्वरूप नगर, जिला कानपुर नगर के तहत 2017 के केस अपराध संख्या 99 में अग्रिम जमानत दी गई है और उन्होंने पहले ही संबंधित अदालत में अपने जमानत बांड प्रस्तुत कर दिए हैं, आशंका का तर्क कि जिला न्यायालय, कानपुर नगर में हमला हो सकता है महत्वहीन है।

13. पक्षों के विद्वान वकील को सुनने और शिवम (सुप्रा) में पारित इस न्यायालय के फैसले पर विचार करने के बाद और इस तथ्य पर भी कि आवेदकों के ऊपर ग्यारह मामलों का आपराधिक इतिहास है, मुझे यह मामला आवेदक को अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए उपयुक्त नहीं लगता वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन को गुणहीन पाया गया है और तदनुसार खारिज कर किया जाता है।

14. यह स्पष्ट किया जाता है कि यहां की गई टिप्पणियाँ अग्रिम जमानत आवेदन के निपटान से संबंधित पक्षों द्वारा लाए गए तथ्यों तक सीमित हैं और उक्त टिप्पणियों का परीक्षण के दौरान मामले के गुणों पर कोई असर नहीं होगा।

(2023) 7 ILRA 1118

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल,

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

संख्या 7760 वर्ष 2023

(धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत)

संदीप कुमार गर्ग एवं अन्य
बनाम

...आवेदकगण

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

आवेदकगण के अधिवक्ता:

श्री अभिनव गौर, श्री मोहम्मद राशिद सिद्दीकी, श्री प्रतीक राय, श्री अनुप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री आलोक रंजन मिश्राम, श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

दण्ड विधि – दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 –

धारा 438 — आवेदक का आपराधिक इतिहास पाँच मामलों का है और उसे किसी भी प्रकरण में रिहाई प्राप्त नहीं हुई है, अतः उक्त आपराधिक इतिहास अस्पष्ट है; आवेदक ने पूर्व में धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का उपयोग किया था, किंतु उसमें कोई सफलता नहीं मिली; अग्रिम जमानत आवेदन को निराधार पाया गया और इस प्रकार अस्वीकार की जाती है। (प्रस्तर 23, 24 एवं 25) (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. कमलेश एवं अन्य बनाम राज. और अन्य. आपराधिक अपील संख्या 1006 वर्ष 2019 (उत्पन्न विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक अपील) संख्या 1530/2018 से, 9.7.2019 को निर्णीत)
2. रवींद्र सक्सेना बनाम राजस्थान राज्य (2010) 1 एससीसी 684

3. भरत चौधरी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य. (2003) 8 एससीसी 77
4. विनोद कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य. विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक अपील) संख्या 6057/2021, 16.11.2021 को निर्णीत
5. शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य. एयरऑनलाइन 2021 इलाहाबाद 484
6. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य. 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 825
7. अमन प्रीत सिंह बनाम सीबीआई निदेशक के माध्यम से एआईआर 2021 एससी 4154
8. सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2022) 1 एससीसी 676

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल, द्वारा पदत)

1. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामा और आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामा और पूरक हलफनामा को अभिलेख पर लिया गया है।
2. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव गौड़ की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी और सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक रंजन मिश्रा की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी को साथ ही श्री वी.के.एस. परमार, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का भी अवलोकन किया।

3. वर्तमान अग्रिम जमानत अर्जी आवेदकों की ओर से एफ. आई. आर. / मुकदमा अपराध संख्या 128/2018, भा.दं.सं. की धारा 406, 409, 420, 467, 468, 471, 120 (बी) के तहत, पुलिस थाना स्वरूप नगर, जिला कानपुर नगर में उन्हें अग्रिम जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

अभियोजन की कहानी:

4. एफआईआर में आरोपों के अनुसार, आवेदक और सूचनाकर्ता एमटीजी इंप्रा पावर प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में निदेशक हैं। निदेशकों द्वारा इस बात पर सहमति बनी थी कि उक्त कंपनी राज्य के विभागों में ठेकों के लिए निविदाएं दाखिल करेगी और जारी की गई राशि सूचनाकर्ता और प्राथमिकी में नामित आरोपियों के संयुक्त खाते में जमा की जाएगी।

5. 30.9.2013 को, कंपनी के पक्ष में दस निविदाएं जारी की गई थी, लेकिन आवेदकों और सह अभियुक्त व्यक्तियों सोमेंद्र मेहता और रोमेंद्र मेहता के बारे में कहा गया है कि उन्होंने आपराधिक विश्वासघात किया है और उक्त राशि को अलग-अलग खाता संख्याओं में जमा किया था, जिनका सूचनाकर्ता अधिकृत हस्ताक्षरी नहीं था। उक्त खाता संख्या पीएनबी, पनकी, कानपुर का खाता संख्या 2336002100016082, आईसीआईसीआई बैंक, गोविंद नगर, कानपुर का खाता संख्या 032605008262 और पंजाब एंड सिंध बैंक, ट्रांसपोर्ट नगर, कानपुर का खाता संख्या 07271300000712 है। इस प्रकार, आवेदकों और अन्य नामित सह-अभियुक्तों द्वारा अन्य अज्ञात व्यक्तियों की मिलीभगत से पूरी राशि

हड़प ली गई। कहा जाता है कि आवेदकों और सह-अभियुक्त व्यक्तियों ने आधिकारिक अभिलेख में जाली दस्तावेज़ दाखिल किए थे और राज्य अधिकारियों के समक्ष फर्जी बैंक गारंटी भी दाखिल की थी।

जमा की है। एफआईआर में यह भी बताया गया है कि आवेदकों का आपराधिक इतिहास रहा है।

प्रतिद्वंद्वी विवाद:

आवेदकों की ओर से तर्क:

6. इसके बाद, पीएनबी बरेली में एक और बैंक खाता संख्या 0043002100062099 भी खोला गया और इसमें 19 करोड़ रुपये जमा किए गए, जिसे आवेदकों और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा अवैध रूप से जमा किया गया।

7. यह भी कहा गया है कि 18.4.2016 और 25.4.2016 को आवेदकों ने 65 लाख रुपये की दो बीएमडब्ल्यू कारें पंजीकरण संख्या यूपी 78 ई 7722 और यूपी 78 ईएच 0055 के साथ खरीदी। ऐसा भी कहा जा रहा है कि उन्होंने मई-जून 2018 के महीने में 35 लाख रुपये की एक और फॉर्च्यूनर टोयोटा कार खरीदी है। इस प्रकार, उन्होंने अवैध रूप से और दुर्भावनापूर्ण इरादे से कंपनी के लगभग 1 करोड़ 50 लाख रुपये का दुरुपयोग किया है।

8. सितंबर-अक्टूबर 2017 में केनरा बैंक, सिविल लाइन्स, कानपुर में एक नया बैंक खाता संख्या 4845214000005 खोला गया, जिसका अधिकृत हस्ताक्षरी आवेदक संख्या 1, संदीप कुमार गर्ग और सह-अभियुक्त व्यक्ति सोमेंद्र मेहता थे, और इसमें उनके द्वारा लगभग 30 करोड़ रुपये जमा किये जाने और निकाले जाने की बात कही गयी है। यहां तक कहा गया है कि आवेदकों और अन्य सह-अभियुक्तों ने विभाग में फर्जी बैंक गारंटी भी

9. आवेदकों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि वर्तमान मामले में आवेदकों पर गलत इरादे से दुर्भावनापूर्ण तरीके से मुकदमा चलाया जा रहा है। उन्हें अपनी गिरफ्तारी का अंदेशा है आवेदकों का उक्त अपराध से कोई लेना-देना नहीं है, जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि उक्त मामले में, विस्तृत जांच के बाद जांच अधिकारी द्वारा समापन रिपोर्ट दायर की गई थी। सूचनाकर्ता द्वारा एक विरोध याचिका दायर की गई थी और आवेदकों को संबंधित अदालत द्वारा समापन रिपोर्ट को खारिज करके बुलाया गया था, और संबंधित अदालत ने मामले में भा.दं.सं. की धारा 406, 420 और 120-बी के तहत आदेश दिनांक 29.10.2021 द्वारा संज्ञान लेने की कृपा की थी।

10. इसके बाद, सूचनाकर्ता ने सत्र न्यायाधीश, कानपुर के समक्ष एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया था, जिसके तहत उक्त संज्ञान आदेश को दिनांक 15.3.2022 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था और संबंधित मजिस्ट्रेट को गुण-दोष के आधार पर पक्षों को सुनने के बाद एक नया आदेश पारित करने का आदेश दिया गया, जैसे, संबंधित विद्वान मजिस्ट्रेट ने आवेदकों को भा. दं.सं. की धारा 406, 420, 467, 471 और 120-बी के तहत तलब किया।

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि सह-अभियुक्त सोमेंद्र मेहता और एक अन्य व्यक्ति ने दं. प्र.सं. की धारा 482 के तहत एक याचिका संख्या 11879/2021 दायर करके उक्त समन आदेश को चुनौती दी थी, जिसमें दिनांक 7.9.2021 के आदेश द्वारा कार्यवाही पर रोक लगा दी गई थी। आगे कहा गया है कि आवेदकों को दोहरे खतरे में डाल दिया गया है क्योंकि मामला दीवानी प्रकृति का है और उक्त कंपनी मामले के संबंध में यह पहले से ही एनसीएलटी के समक्ष लंबित है।

12. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि दं. प्र.सं. की धारा 482 के तहत एक अन्य याचिका संख्या 35335/2022 को इस न्यायालय ने दिनांक 2.1.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि आवेदक सं. 1 और 2 पिता और पुत्र हैं। आवेदक-संख्या 2 - बेटे का उक्त अपराध से कोई लेना-देना नहीं है और आवेदक संख्या 1 उसके पिता के साथ उसके संबंधों के कारण उसे फंसाया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक सं. 1 असाध्य रूप से बीमार है और ब्रेन ट्यूमर से पीड़ित है।

13. विद्वान अधिवक्ता ने **कमलेश और एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य**¹ में पारित शीर्ष न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

14. विद्वान अधिवक्ता ने **रवीन्द्र सक्सेना बनाम राजस्थान राज्य**² में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा जताया है, जिसके तहत आवेदकों को अग्रिम जमानत इस आधार पर

दी गई थी कि मामला पूरी तरह से दीवानी प्रकृति का था और शिकायतकर्ता विशिष्ट प्रदर्शन के लिए पहले ही मुकदमा दायर कर दिया था।

15. विद्वान अधिवक्ता ने **भरत चौधरी और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य**³ में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा जताया है।

16. विद्वान अधिवक्ता ने **विनोद कुमार शर्मा और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**⁴ में शीर्ष अदालत के निर्णय पर भी भरोसा जताया है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं ने आरोप पत्र दाखिल करने को चुनौती दी थी और उन्हें नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए संबंधित अदालत द्वारा समय दिया गया था। इसके बजाय, यहां आवेदकों ने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया था, इसलिए यह राय दी गई कि जमानत में अग्रिम जमानत भी शामिल है।

17. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि पहले से ही एनसीएलटी के समक्ष याचिका लंबित है जिसमें दोनों पक्षों को एजीएम में अदालत के समक्ष उपस्थित होने के लिए दिनांक 15.11.2021 को अंतरिम आदेश पारित किया गया था, और यह सूचनाकर्ता ही है, जिसने उक्त आदेश के साथ धोखाधड़ी की है और इसका अनुपालन नहीं किया है। ऐसे में, आवेदकों ने एनसीएलटी के समक्ष अवमानना याचिका भी दायर की थी, जो अभी भी लंबित है। आगे कहा गया है कि आवेदक संख्या 2 का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक संख्या 1 का आपराधिक इतिहास इस प्रकार

बताया गया है कि उसके किरायेदारों द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकियों में मुकदमा अपराध संख्या 160/2021, पुलिस स्टेशन ग्वालटोली, जिला कानपुर नगर और दूसरा मुकदमा अपराध संख्या 187/2021, पुलिस स्टेशन ग्वालटोली, जिला कानपुर नगर, मुकदमा अपराध संख्या 2/2023, थाना कलेक्टरगंज, जिला कानपुर नगर और मुकदमा अपराध संख्या 26/2016 थाना सेक्टर 49, नोएडा, जिला गौतमबुद्ध नगर में लंबित है। आगे कहा गया है कि नोएडा के मामले में, आवेदक संख्या 1 का नाम नहीं था। बल्कि, यह कंपनी के ही खिलाफ था और मामला विभिन्न मंचों से होते हुए लोकायुक्त को भेजा गया है। उक्त आपराधिक इतिहास को प्रत्युत्तर शपथ पत्र के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

सूचनाकर्ता और राज्य की ओर से विवाद:

18. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता और सूचनाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस आधार पर अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया है कि आवेदकों ने पहले ही इस न्यायालय में दं.प्र.सं. की धारा 482 के प्रावधानों का विरोध किया था और असफल रहे क्योंकि वर्तमान मामले में कोई स्थगन आदेश नहीं दिया गया है, इसलिए, उन्होंने अग्रिम जमानत दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। यह फोरम हंटिंग के समान है क्योंकि आवेदक, जो विभिन्न अदालतों का उपयोग करने के आदी हैं, स्वयं जानबूझकर गिरफ्तारी से बच रहे हैं। विद्वान अधिवक्ता ने दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत

आवेदन संख्या 2529/2022 (साबिर अली और यूपी राज्य और 2 अन्य) में पारित इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें एक विस्तृत आदेश में कहा गया है कि यदि आवेदकों ने दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत याचिका दायर की थी, तो किसी भी अग्रिम जमानत याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है।

20. पहले मुखबिर के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक साफ हाथों से नहीं आया है, क्योंकि उसने इस तथ्य को छुपाया है कि उसने अपराध संख्या 128/2018 (वर्तमान मामला) से उत्पन्न 283/2021 में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 12, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.3.2022 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 15383/2022 दायर किया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि मामले को चार बार उठाए जाने के बावजूद आवेदक को कोई सुरक्षा नहीं दी गई है।

21. इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा **शिवम बनाम उ.प्र. राज्य और एक अन्य⁵** में तय किया गया विधिक निर्णय आवेदकों के मामले पर लागू होता है और वे अग्रिम जमानत के हकदार नहीं हैं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दं. प्र.सं. की धारा 438 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 2529/2022 में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसके तहत **सतेंदर कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो**

और एक अन्य अमन⁶, प्रीत सिंह बनाम निदेशक के माध्यम से सीबीआई⁷ और सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य⁸ में शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर बहुत अधिक भरोसा किया गया है। दं.प्र.सं. की धारा 482 के प्रावधानों को लागू करने के बाद किसी भी अग्रिम जमानत पर विचार नहीं किया जा सकता है।"

22. खंडन में, आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक को अग्रिम जमानत दाखिल करने का पूरा अधिकार है क्योंकि 'जमानत' शब्द में 'अग्रिम जमानत' भी शामिल है।

निष्कर्ष:

23. यह सच है कि 'जमानत' शब्द में 'अग्रिम जमानत' भी शामिल है, इसलिए अग्रिम जमानत के बारे में विस्तार से सुना गया। वर्तमान मामला केवल दीवानी प्रकृति की श्रेणी में नहीं आता है। कमलेश और एक अन्य (सुप्रा) का निर्णय इस मामले पर लागू नहीं होता है, क्योंकि मामला राजस्थान राज्य से संबंधित है, जहां अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) दाखिल करने से पहले दं. प्र. सं. की धारा 482 के तहत याचिका पर विचार किया जाता है, ऐसे में, मामले में एफआईआर को चुनौती दी गई है, जबकि वर्तमान मामले में वह चरण पहले ही बीत चुका है

24. रवीन्द्र सक्सेना (सुप्रा), भरत चौधरी और एक अन्य (सुप्रा) और विनोद कुमार शर्मा (सुप्रा) के निर्णय भी स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले पर लागू नहीं होते हैं। यह स्वीकृत

तथ्य है कि आवेदक सं. 1 संदीप कुमार गर्ग का पांच मामलों का आपराधिक इतिहास है और किसी भी मामले में उनको बरी नहीं किया गया है, ऐसे में उक्त आपराधिक इतिहास अस्पष्ट हो जाता है।

25. पक्षों को सुनने के बाद और आवेदक संख्या 1 के आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखते हुए और यह तथ्य भी कि वे पहले ही दं.प्र.सं. की धारा 482 के प्रावधानों का विरोध बिना किसी सफलता के कर चुके हैं, और ऊपर उल्लिखित विधिक निर्णय के अनुसार, मुझे यह आवेदकों संदीप कुमार गर्ग और गौरांग गर्ग को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता।

25. उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन योग्यता से रहित पाया गया है और तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 7 ILRA 1122

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

51656 सन् 2022

रमेश @ पुन्ना

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

आवेदक

के

अधिवक्ता:

श्री सुधाकर यादव

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राजेन्द्र सिंह को सुना तथा पत्रावली का परिशीलन किया।

आपराधिक विधि – दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 439 – आवेदक विगत 14 वर्ष 8 माह से कारावास में है – सह- अभियुक्त को जमानत प्रदान की जा चुकी है – आवेदक भी समता के आधार पर जमानत पाने का अधिकारी है – जनशांति एवं समाज के कल्याण हेतु, ऐसे दोषसिद्ध अपराधियों को जो अपहरणकर्ता, जघन्य एवं अभ्यस्त अपराधी हों, नरसंहार संबंधी अपराधों (तीन या अधिक हत्याओं) में पुनरावृत्ति करने वाले अपराधी हों, तथा उत्तर प्रदेश कारावास स्थायी नीति के अनुसार निषिद्ध श्रेणियों में आते हों – उन्हें जमानत नहीं दी जानी चाहिए – जमानत आवेदन निरस्त की जाती है, तथा परीक्षण न्यायालय को यह निर्देशित किया जाता है कि वर्तमान मामले से संबंधित सत्र वाद का निस्तारण शीघ्रातिशीघ्र किया जाए। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

सौदान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

(न्यायमूर्ति गौतम चौधरी द्वारा पदत)

1. वर्तमान दण्डिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र आवेदक रमेश उर्फ पुन्ना की ओर से मु०अ०सं० 684/2007 से उद्धृत एस०टी०नं०98, सन् 2022 अंतर्गत धारा 147, 148, 149, 307, 302 भा०द०वि०, थाना जलालाबाद, जिला शाहजहांपुर में जमानत पर मुक्त करने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

3. संक्षेप में अभियोजन कथानक यह है कि आई०जी०जोन बरेली के निर्देशानुसार 50,000/- रु० के इनामी डकैत नरेशा धीमर के द्वारा अपहृत किये गये व्यक्तियों को छोड़ने के लिए सीधे लेन-देन की सूचना पर नि०प्रभारी एस०ओ०जी० व संपूर्ण पुलिस फोर्स ग्राम चचुआपुर कटरी पहुंची, जहां अभियुक्तगण द्वारा कम्बिंग के दौरान पुलिस बल पर जान से मारने की नियत से फायरिंग किया गया एवं बचाव में पुलिस पार्टी द्वारा फायरिंग करने पर बदमाशों से 2 अपहृतों को मुक्त कराना तथा अभियुक्त 1- नरेश पुत्र बलारू, 2- भूरा उर्फ कोटेदार, 3- जन्टरू, 4- मौकू उर्फ चेला उर्फ चैम्पियन राजकुमार यादव, 5- अन्य बदमाश ने एक राय होकर घातक आयुधों से सुसज्जित होकर बलवा किया गया, फायरिंग कर ब्रजेश, बब्लू एवं अन्य लोगों को घायल किया तथा पुलिस के जवान आरक्षी यशवीर की गोली मारकर हत्या कर दी।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदन को इस प्रकरण में गलत व फर्जी तरीके से झूठा फंसाया गया है, उसने कथित अपराध कारित नहीं किया है। आवेदक प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामजद नहीं है। आवेदन का नाम मामले में कथित घटना के दस माह उपरांत प्रकाश में लाया गया है। आवेदक को तथा कथित घटनास्थल से गिरफ्तार भी नहीं किया गया है, आवेदक की

गिरफ्तारी उसके घर से की गयी है। आवेदन को मामले में रंजिशन नामित किया गया है। आवेदन विगत लगभग चौदह वर्ष आठ माह से कारागार में निरुद्ध है। आवेदक निर्दोष तथा गरीब व्यक्ति है, जो अपने परिवार के जीविका के लिए मजदूरी का कार्य करता है। उनका यह भी कथन है कि मामले के सहअभियुक्त बच्चे उर्फ बच्चेलाल की जमानत, जमानत आवेदन पत्र सं०30610/2008 में इस न्यायालय के अन्य न्यायपीठ के आदेश दि० 27/08/2009 द्वारा स्वीकार की जा चुकी है, आवेदन भी सहअभियुक्तगण के समानता के आदार पर जमानत पाने का अधिकारी है एवं मामले के अन्य सहअभियुक्तगण क्रमशः नरवीर उर्फ रणवीर उर्फ पहलवाल, बैलिस्टर@ बरगद@ फक्खर, मजनू उर्फ लालू, छंगा उर्फ सुमेर उर्फ गब्बर और अन्य, ओमपाल यादव, उपदेश और अन्य, अजीत, मदन पाल @जनतारू की जमानत, जमानत आवेदन पत्र सं०8793/2009, 24203/2009, 33888/2009, 2778/2010, 3592/2010, 7576/2010, 11166/2010, 41522/2017 में इस न्यायालय के विभिन्न न्यायपीठ के विभिन्न आदेश दिनांक क्रमशः 11/01/2010, 11/09/2009, 09/12/2009, 29/11/2010, 15/02/2010, 05/04/2010, 10/05/2010, 30/10/2017 द्वारा स्वीकार की जा चुकी है। आवेदन निर्दोष है तथा दिनांक 28/10/2008 से कारागार में निरुद्ध है। इसलिए आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाय।

5. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदन के जमानत का प्रबल विरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया कि अभियुक्त द्वारा अन्य

सहअभियुक्तगण के साथ मिलकर पुलिस बल पर घातक आयुधों से सुसज्जित होकर हमला किया गया, जिससे कई लोग घायल हुए व पुलिस बल के आरक्षी यशवीर सिंह की गोली मारकर हत्या कर दिया गया। अभियुक्त धारा 302 भा०दं०वि० से संबंधित प्रकरण में दोषसिद्ध अपराधी है एवं अभियुक्त का आपराधिक इतिहास है, जो निम्न है:-

1- मु०अ०सं०684/2007, धारा 147,148, 149, 307,302 भा०दं०वि०, थाना जलालाबाद, शाहजहांपुर।

2- मु०अ०सं० 368/2008, धारा 307,504 भा०दं०वि०, थाना जलालाबाद, शाहजहांपुर।

3- मु०अ०सं० 440/2008, धारा 147, 148, 149, 302, 449 भा०दं०वि०, थाना जलालाबाद, शाहजहांपुर।

4- मु०अ०सं०421/2008, धारा 147, 148, 149, 307 भा०दं०वि० व धारा 7 सी०एल०ए० एक्ट, थाना जलालाबाद, शाहजहांपुर।

5- मु०अ०सं० 56/2004, 147,323, 504, 506, 332, 353, 224 भा०दं०वि० व धारा 7 सी०एल०ए० एक्ट, थाना जलालाबाद, शाहजहांपुर।

6. उनका यह भी कथन है कि अभियुक्तगण द्वारा कारित अपराध अंति गंभीर व जघन्य है। इस अपराध में आवेदक की भूमिका हत्या जैसे गंभीर अपराध में दर्शित है तथा अभियुक्त का पूर्व में धारा 302 भा०दं०वि० के अंतर्गत दोषसिद्ध होने के तथ्य पुनः हत्या जैसे अपराध कारित करने कृत्य को दृष्टिगत रखते हुए अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किया

जाना उचित प्रतीत नहीं हो रहा है एवं मामले के साक्षीगण भी प्रतिकूल ढंग से प्रभावित किये जा सकते हैं। उनका यह भी कथन है कि अभियुक्त ₹50,000/- इनामी नरेशा धीमर के गैंग का सक्रिय सदस्य है तथा अभियुक्त व सहअभियुक्तगण का समाज में इतना भय व आतंक प्रसारित है कि अभियोजन साक्षीगण अवर न्यायालय में गवाही देने के लिए उपस्थित नहीं हो रहे हैं। इसलिए आवेदक को जमानत पर मुक्त न किया जाय। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में मा० उच्चतम न्यायालय के सौदान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में दि० 05/10/2021 को प्रतिपादित निम्न विधि-व्यवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट किया:-

इन सुझावों में कुछ अपवाद हैं जिन्हें निखारा गया है: -

"1. अपराध की जघन्य प्रकृति:

(क) निषिद्ध श्रेणियां: सार्वजनिक शांति और समाज की भलाई सुनिश्चित करने के लिए, आजीवन कारावास जो खूंखार अपराधी, बार-बार अपराधी, अपहरणकर्ता, नरसंहार (तीन या तीन से अधिक हत्याएं) से संबंधित अपराधों में हैं, आदतन अपराधी, और उत्तर प्रदेश अपराधियों के अनुसार निषिद्ध श्रेणियों में आते हैं, और उत्तर प्रदेश जेल स्थायी नीति के अनुसार निषिद्ध श्रेणियों में आते हैं? कोई जमानत नहीं दी जानी चाहिए।

हम एक परिदृश्य के प्रति भी सचेत हैं जहां एक अपील सुनवाई के लिए आती है और अपीलकर्ता अपील पर बहस करने के बजाय स्थगन की मांग कर सकता है। यह मामला निश्चित रूप से जमानत देने के लिए नहीं

होगा क्योंकि न्यायालय अपील के गुण-दोष पर विचार करने को तैयार है।

7. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के तर्कों के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर आवेदन को जमानत पर मुक्त किए जाने का कोई औचित्य नहीं है तथा यह जमानत आवेदन पत्र निरस्त किए जाने योग्य है।

8. सार्वजनिक शांति और समाज की भलाई सुनिश्चित करने के लिए, ऐसे सजा पाए अपराधी जो अपहरणकर्ता, जघन्य व अभ्यस्त अपराधी हो, नरसंहार से संबंधित अपराधों में आदतन अपराधी हो। यह मामला निश्चित रूप से जमानत देने के योग्य उचित नहीं है एवं उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत वाद के गुण-दोष पर बिना कोई टिप्पणी किए हुए, आवेदक का जमानत आवेदन पत्र निरस्त किया जाता है।

9. इस स्तर पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने पुनः अनुरोध किया कि आवेदक विगत 14 वर्ष 8 माह से कारागार में निरुद्ध है, इसलिए अवर न्यायालय को निर्देश कर दिया जाये कि इस वाद से संबंधित सत्र परीक्षण का निस्तारण शीघ्रता के आधार पर करना सुनिश्चित किया जाय।

10. उनके अनुरोध को देखते हुए संबंधित अवर न्यायालय को यह निर्देशित किया जाता है कि इस वाद से संबंधित सत्र परीक्षण का निस्तारण दिन-प्रति-दिन की सुनवाई करने के आधार पर बिना किसी

अनाश्यक स्थगन के शीघ्रता के आधार पर करना सुनिश्चित किया जाय तथा न्यायालय नियमानुसार गवाहों की उपस्थित सुनिश्चित करने के लिए गवाहों के विरुद्ध आवश्यक प्रपीड़क कार्यवाही अमल में ला सकती है तथा विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कथन किया है कि अभियुक्त एवं अन्य सहअभियुक्तगण के भय एवं आंतक से अभियोजन साक्षीगण अवर न्यायालय में बयान देने हेतु उपस्थित नहीं हो रहे हैं।

11. इसलिए संबंधित अवर न्यायालय को भी निर्देशित किया जाता है कि संबंधित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक को मामले के साक्षीगण की सुरक्षा हेतु पत्र प्रस्तुत करके उनको पर्याप्त सुरक्षा-व्यवस्था मुहैया करवाया जाय तथा साक्षीगण को न्यायालय में पुलिस सुरक्षा में लाया जाय एवं उनके बयान समुचित वीडियोग्राफी के साथ अंकित कराये जाय।

(2023) 7 ILRA 1124

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

द्वितीय अपील संख्या 416 सन् 1986

राम देव

...अपीलकर्ता

बनाम

परस नाथ सिंह एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

आर. सी. बाजपेयी, अमित कुखर्जी, अमित मुखर्जी, डी. सी. मुखर्जी, एच. एस. सहाय, मुकेश कुमार शर्मा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

आबिद अली, अतीया आबिद, इन्द्र प्रताप सिंह, एम. खालिद, मोहम्मद आबिद अली, मोहम्मद अली, सरिता वर्मा, सत्य प्रकाश, सुधीर श्रीवास्तव

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- धारा 100 - विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - धाराएँ 16(सी), 19 और 20 ---

द्वितीय अपील, द्वारा अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित पुनर्विलोकनात्मक निर्णय को चुनौती दी गई - यद्यपि वादी ने वादपत्र में यह उल्लेख किया था कि वह अनुबंध की अपनी ओर से निभाई जाने वाली शर्तों को पूर्ण करने के लिए तैयार और इच्छुक था, किंतु दुर्भाग्यवश, मुख्य परीक्षण में इस संबंध में कोई कथन नहीं है कि वादी अनुबंध की अपनी ओर की शर्तों को निभाने के लिए तैयार और इच्छुक था। वादपत्र तथा साक्ष्य में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि वादी के पास आवश्यक धनराशि उपलब्ध थी अथवा उसने उक्त धनराशि प्रतिवादी को प्रदान करने का प्रस्ताव किया जिसे प्रतिवादी ने अस्वीकार कर दिया। इस बात का कोई विवरण नहीं है कि किस तिथि को या अन्य कोई ऐसा विशेष तथ्य जिससे यह सिद्ध हो सके कि वादी ने प्रतिवादी से शेष विक्रय मूल्य स्वीकार करने तथा विक्रय विलेख निष्पादित करने अथवा अनुमति प्राप्त करने का अनुरोध किया। ऐसा कोई कथन नहीं है जो यह संकेत करे कि वादी

ने अपनी तत्परता तथा इच्छुकता को दर्शाने हेतु कोई स्पष्ट कृत्य किया हो – प्रतिवादी मूल्यवान प्रतिफल हेतु बिना सूचना के सद्भावपूर्वक क्रेता थे – जिसमें संपत्ति के मूल्य में वृद्धि तथा पक्षकारों के मध्य समता संतुलन की बात को ध्यान में रखते हुए यह देखा गया कि 40 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा संपत्ति के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है और मुद्रास्फीति के कारण मुद्रा की क्रय शक्ति पर भी गंभीर प्रभाव पड़ा है – प्रतिवादीगण वादी-अपीलकर्ता को ₹3,00,000 (तीन लाख रुपये) की राशि 60 दिनों की अवधि के भीतर आज से वापिस करेंगे। (प्रस्तर 25, 33 और 37)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अर्जुन प्रसाद एवं अन्य। बनाम गणेश प्रसाद एवं अन्य। 2023:एचसी-एलकेओ:43190: 2023 एससीसी ऑनलाइन इलाहबाद 364
2. रमज़ान अली और अन्य बनाम अल्ताफुर रहमान 2023:एचसी-एलकेओ:30146
3. रितु सक्सेना बनाम जे.एस. गोवर एवं अन्य (2019) 9 एससीसी 132
4. के. प्रकाश बनाम बी.आर. संपत कुमार, (2015) 1 एससीसी 597
5. जरीना सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम (2015) 1 एससीसी 705
6. यू.एन. कृष्णमूर्ति बनाम ए.एम. कृष्णमूर्ति, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 840

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. यह वादी की दूसरी अपील है जिसमें दीवानी अपील संख्या-39 वर्ष 1982 दिनांक 28.04.1986 में निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित उलट के फैसले को चुनौती दी गयी है, जिसके तहत वादी के अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए आर.एस संख्या-167 वर्ष 1980 वाला वाद, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय और डिक्री दिनांक 23.12.1981 के माध्यम से डिक्री दी गई थी, को निचली अपीलीय अदालत द्वारा रद्द किया गया था और खारिज कर दिया गया था।

2. न्यायालय द्वारा प्रस्तुत द्वितीय अपील दिनांक 15.07.1986 को स्वीकार कर ली गई थी और वादी-अपीलकर्ता द्वारा अंतरिम राहत के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन पर, यह प्रावधान किया गया था कि यदि वादी के कब्जे में है, तो उसे डिक्री के निष्पादन में बाधा नहीं डाली जाएगी। प्रस्तुत दूसरी अपील के लंबित रहने के दौरान, मूल वादी, अर्थात्, राम देव और प्रतिपक्षी-प्रतिपक्षी पारस नाथ और राज करण वर्मा की मृत्यु हो गई और कानूनी उत्तराधिकारियों को अभिलेखों पर लाया गया है।

3. न्यायालय ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री मुकेश शर्मा और प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता सुश्री अतिया आबिद को सुना है।

4. कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों का विज्ञापन करने से पहले, प्रस्तुत अपील को जन्म देने वाले तथ्यों पर एक नज़र डालना उचित होगा।

5. श्री राम देव, मूल वादी ने नियमित वाद संख्या-167 वर्ष 1980 के रूप में पंजीकृत

अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा दायर किया, जिसमें दलील दी गई थी कि श्री राज करण सिंह, पारसनाथ सिंह के पिता ने 29.11.1979 को प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में बेचने के लिए एक पंजीकृत समझौता किया था जिसे समझौते में चक सं-232 पर स्थित 1 बीघा मौजा अशरफपुर बरवा, परगना-मिंझौरा, तहसील-अकबरपुर, जिला-फैजाबाद (अब जिला अम्बेडकर नगर) में 6 बिस्वा और 15 धुर स्थित हैं, के रूप में वर्णित किया गया था।

6. बेचने के लिए पूर्वोक्त समझौते के अनुसरण में, वादी ने बयाना राशि के रूप में 2,000/- रुपये का भुगतान किया था और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 1,600/- रुपये की राशि का भुगतान करने पर सहमति हुई थी। यह भी सहमति हुई कि प्रतिपक्षी राज करण सिंह बिक्री विलेख निष्पादित करने की अनुमति मांगेंगे क्योंकि गांव में चकबंदी कार्य चल रहा था और उसके बाद, बिक्री विलेख निष्पादित किया जाएगा। यह भी दलील दी गई कि वादी ने राज करण सिंह से अनुमति लेने का अनुरोध किया था, हालांकि, उन्होंने देरी की और टालमटोल की। हालांकि, यह भी दलील दी गई है कि अप्रैल, 1980 में, वादी को पता चला कि राज करण सिंह को अनुमति मिल गई थी और फिर से उनसे बिक्री विलेख निष्पादित करने का अनुरोध किया गया था। इसे फिर से नजरअंदाज कर दिया गया, परिणामस्वरूप, वादी ने बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए 28.04.1980 को एक नोटिस भेजा और वादी तैयार हैं और

शेष 1, 600/- रुपये का भुगतान करने के लिए तैयार हैं, हालांकि, प्रतिपक्षी ने उक्त नोटिस का जवाब नहीं दिया और बाद में 13.05.1980 को, वादी को पता चला कि राज करण सिंह ने पहले ही प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 यानी राज करण वर्मा और राम चरण वर्मा के पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया है। यह पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में है कि वादी ने अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन का मुकदमा दायर किया, यह भी दलील दी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 को वादी को उचित शीर्षक देने के लिए उक्त बिक्री विलेख में शामिल होने का निर्देश दिया जा सकता है।

7. प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 ने अपना संयुक्त लिखित बयान दायर किया और वाद के कथनों से इनकार किया। इसने यह मामला स्थापित किया कि मूल विक्रेता, अर्थात्, राज करण सिंह ने पहले ही प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 के साथ 10.01.1975 को 10,000/- रुपये के कुल बिक्री प्रतिफल के लिए एक समझौता किया था, जिसमें से 8,000/- रुपये का भुगतान किया गया था और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 2,000/- रुपये का भुगतान किया जाना था। यह इसके मद्देनजर है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने अनुमति ली थी और 28.03.1980 को प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया था और इस तरह प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 समझौते की सूचना के बिना मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार हैं और उनके अधिकारों को वादी के इशारे पर उसके समझौते के आधार पर पराजित नहीं किया जा सकता है।

8. दलीलों के आदान-प्रदान पर, विचारण न्यायालय ने सात मुद्दे विरचित किए, हालांकि जिन प्रासंगिक मुद्दों पर मुकदमा लड़ा गया था, वे थे: -

(i) क्या प्रतिपक्षी संख्या-1 ने वादी के पक्ष में 29.11.1979 को कोई समझौता किया था?

(ii) क्या प्रतिपक्षी संख्या-1 ने प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 के पक्ष में कोई समझौता किया था जैसा कि प्रतिवादियों ने अपने लिखित बयान में कहा था?

(iii) क्या प्रतिपक्षी संख्या-2, 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के वास्तविक खरीदार हैं?

(iv) क्या प्रतिपक्षी संख्या-1 ने दिनांक 10.01.1975 के समझौते के अनुसरण में प्रतिपक्षी सं-2 और 3 के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया था और यदि हां, तो इसका प्रभाव?

9. विचारण न्यायालय ने वादी के पक्ष में दिनांक 29.11.1979 के समझौते के बारे में मुद्दे पर विचार किया और 10.01.1975 के कथित समझौते को जो अपंजीकृत था और प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 के पक्ष में धोखाधड़ी माना गया था। इसके बाद, विचारण न्यायालय ने इस तथ्य के बारे में इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार थे और माना कि अंसा०-2 द्वारा दिए गए बयान के मददेनजर कि उसने

प्रतिपक्षी संख्या-2 से बात की थी कि वह प्रतिपक्षी संख्या-1 और वादी द्वारा निष्पादित किए जा रहे समझौते को देखने जा रहा था। इससे संकेत मिलता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2, 3 को समझौते का ज्ञान था, इसलिए, वे बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार नहीं थे और परिणामस्वरूप, 23.12.1981 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से, विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद वादी के पक्ष में डिक्री किया गया था।

10. प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 ने धारा 96 सी.पी.सी. के तहत एक नियमित दीवानी अपील दायर किया और अपीलीय न्यायालय ने निष्कर्षों को उलट दिया और इस आधार पर मुकदमा खारिज कर दिया कि वादी यह साबित करने में विफल रहा था कि वे तैयार थे और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार थे और यह एक आवश्यक शर्त है, इसलिए, इसे साबित किए बिना, मुकदमे की डिक्री नहीं हो सकती थी। निचली अपीलीय अदालत ने एक और निष्कर्ष को भी उलट दिया और माना कि अंसा०-2 के साक्ष्य यह सुझाव देने के लिए स्पष्ट नहीं थे कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार नहीं थे और उपरोक्त दो निष्कर्षों को उलट दिया गया था, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अलग रखा गया था और परिणामस्वरूप, मुकदमा खारिज कर दिया गया था।

11. प्रस्तुत द्वितीय अपील में कानून के प्रश्न, जिन पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा

आग्रह किया गया है, जिस पर अपील स्वीकार की गई थी, हैं: -

(i) क्या वादी-अपीलकर्ता अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था और निचली अपीलीय अदालत एक नया मामला बनाकर उक्त निष्कर्ष को उलटने में न्यायसंगत नहीं थी, खासकर जब विचारण न्यायालय द्वारा तत्परता और इच्छा के बारे में कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया था।

(ii) क्या निचली अपीलीय अदालत ने अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के साक्ष्य को गलत तरीके से पढ़ने में गलती की है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार थे और इस प्रकार, निचली अपीलीय अदालत द्वारा मुकदमा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया है?

12. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री मुकेश शर्मा ने जोरदार तर्क दिया है कि वादी ने दिनांक 29.11.1979 को बेचने के लिए एक पंजीकृत समझौते के संबंध में अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया था, जिसके अनुसरण में 2,000/- रुपये पहले ही बयाना राशि के रूप में भुगतान किए जा चुके थे और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 1,600/- रुपये का भुगतान किया जाना था। यह प्रतिपक्षी संख्या-1 का कर्तव्य था कि वह

अनुमति मांगे क्योंकि गांव में चकबंदी का काम चल रहा था। वाद में यह दलील दी गई थी कि वादी ने प्रतिपक्षी संख्या-1 से अनुमति और सभी आवश्यक मदद लेने का अनुरोध किया था, जो वादी से आवश्यक हो सकती है, वह सहयोग करने के लिए तैयार था, हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-1 ने अनुमति प्राप्त करने से परहेज किया।

13. आगे यह आग्रह किया जाता है कि वाद में भी विशेष रूप से यह कहा गया था कि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था और यह वास्तव में प्रतिपक्षी संख्या-1 था, जिसने समझौते की शर्तों का उल्लंघन और अवहेलना किया था। मूल विक्रेता द्वारा इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था, इसके अलावा, प्रतिपक्षी संख्या-1 अदालत के समक्ष बिल्कुल भी पेश नहीं हुआ और इस तथ्य के दृष्टिकोण में, वादी द्वारा किए गए कथन निर्विवाद हैं। वादी का आचरण बेदाग था और जैसे ही उसे अप्रैल के महीने में पता चला कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने अनुमति प्राप्त कर ली है, उसने 28.04.1980 को प्रतिपक्षी को एक नोटिस जारी किया था, जिसका अनुपालन नहीं किया गया था और हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-1 ने वादी के पक्ष में बेचने के लिए समझौते के नियमों और शर्तों का उल्लंघन करते हुए प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 और इसके तुरंत बाद, वादी ने अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा दायर किया। यह सब इंगित करता है कि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और

इच्छुक था और वादी की ओर से कोई सुस्ती नहीं थी जिसे 29.11.1979 के अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री के अनुदान के लिए एक बाधा के रूप में देखा जा सकता था।

14. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष वापस कर दिया था कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 द्वारा स्थापित कथित समझौता जाली पाया गया था और इस तरह के स्पष्ट कथन के साथ-साथ अ०सा०-2 के साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 वादी के पक्ष में पंजीकृत समझौते से अवगत थे। इसलिए, वे बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार नहीं थे और दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय द्वारा वाद को सही तरीके से डिक्री किया गया था, लेकिन निचली अपीलीय अदालत ने तत्परता और इच्छा के मुद्दे पर निष्कर्ष को उलट दिया है, जो विवाद में भी नहीं था क्योंकि इस संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया था। अन्यथा भी, निचली अपीलीय न्यायालय ने एक तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया है क्योंकि तत्परता और इच्छा के मुद्दे को सीधा सटीक फॉर्मूला में नहीं माना जाना चाहिए और वाद में कथनों और आसपास की परिस्थितियों और सबूतों के आलोक में इसका पता लगाया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप निष्कर्ष खराब हो गए हैं।

15. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि यह प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 पर बोझ था कि वे बिना किसी सूचना के मूल्यवान

संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार थे, हालांकि, निचली अपीलीय अदालत इस बात की का मूल्यांकन किया करने में विफल रही है कि यह बोझ वादी पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था और ऐसा करके, इसने पूरे मुकदमे को पूरी तरह से गलत रंग दिया है और प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3, किसी भी मामले में यह स्थापित नहीं कर सके कि वे बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार थे और इसलिए, निचली अपीलीय अदालत द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष कानून में टिकाऊ नहीं हैं और इस तरह उक्त निर्णय को अलग रखा जाना चाहिए।

16. अंत में, यह कहा गया है कि वादी समझौते के निष्पादन की तारीख से विवादित संपत्ति के कब्जे में रहा है, तदनुसार, उपरोक्त परिस्थितियों में क्योंकि वादी का कब्जा इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश द्वारा संरक्षित किया गया था और पूर्वोक्त परिस्थितियों में लगभग 40 साल बीत चुके हैं, अपीलकर्ता के पक्ष में विवेक का प्रयोग भी किया जाना चाहिए जो अभी भी तैयार है और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है और परिणामस्वरूप, अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

अपनी दलीलों के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने 'अनिगलसे योहानन बनाम रामलता और अन्य (2005) 7 एस.सी.सी. 534; आरके मोहम्मद उबायदुल्ला और अन्य बनाम हाजी सी. अब्दुल वहाब (डी) एलआरएस और अन्य द्वारा (2000) 6 एस.सी.सी. 402; सरगुनम (मृत) एलआर बनाम चिदंबरम और

अन्य (2005) 1 एस.सी.सी. 162; दत्त सखाराम ख.आई.आर.नार @ सुतार बनाम पुंजा लक्ष्मण शिंदे, 1997 मुकदमा (बॉम्बे) 95; सथी बनाम सैयद मोहम्मद अली उस्मानी, 1997 मुकदमा (केईआर) 279; सलामतुल्लाह एवं अन्य बनाम चरित्तर दोरी, 2017 (9) एडीजे 37; राम यग्गा बनाम राम निवाज 2021 (39) एलसीडी 1512' को उद्धृत किया।

17. सुश्री अतिया आबिद, पूर्वोक्त प्रस्तुतियाँ का मुकाबला करने वाले प्रतिपक्षियों के लिए पेश अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता का पूरा तर्क गलत है। यह आग्रह किया जाता है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, यह वादी पर एक कर्तव्य है कि वह न केवल विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16(सी) के संदर्भ में आवश्यक तत्परता और इच्छा को टाले, बल्कि इसे ठोस साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जाना चाहिए और न केवल इसे वाद की संस्था के समय उपस्थित और साबित होना चाहिए, लेकिन यह तत्परता और इच्छा न्यायालय में कार्यवाही के दौरान जारी रहनी चाहिए। अपने निवेदन के समर्थन में उन्होंने हरिओम और अन्य बनाम श्री गोपाल 1997(15) एलसीडी 351 में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही इस मुद्दे को अभी तक तैयार नहीं किया गया हो, तथ्य यह है कि यह वादी का कर्तव्य था कि वह इस तथ्य को टाले और साबित करे, जिसके बिना, वह विशिष्ट प्रदर्शन के किसी भी डिक्री का हकदार नहीं था। वादी ने वाद में एक महज़ सादा कथन बनाकर लेकिन सबूत द्वारा इसे साबित नहीं किया,

पहले से ही चूक गया और विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्री का हकदार नहीं था, हालांकि, इस पहलू पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था। निचली अपीलीय अदालत ने इस तथ्य पर ध्यान दिया और पाया कि वादी अपनी तत्परता और इच्छा को साबित करने में सक्षम नहीं था, विचारण न्यायालय की डिक्री को सही तरीके से उलट दिया जिसे गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

18. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने पहले ही वर्ष 1975 में एक अपंजीकृत समझौते को निष्पादित किया था, जिसके संदर्भ में उसने बयाना राशि के रूप में 8,000 रुपये की राशि स्वीकार की थी और प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा अनुमति प्राप्त करने के बाद बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 2,000 रुपये की राशि का भुगतान किया जाना था। चूंकि अप्रैल में अनुमति प्राप्त की गई थी, तदनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-1 ने बेचने के समझौते के अनुसरण में प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया और इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 को यह स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि वे बिना किसी सूचना के मूल्यवान प्रतिफल के वास्तविक खरीदार थे क्योंकि बिक्री विलेख पहले के समझौते वर्ष 1975 के अनुसरण में था और वादी बाद के समझौते का आधार दावा कर रहा है।

19. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अन्यथा भी, यदि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयानों को देखा जाता है, तो यह नहीं कहा जा

सकता है कि कोई भी कथन था जो प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 को वादी के बेचने के लिए पंजीकृत समझौते के संबंध में नोटिस दे सकता है। यह आग्रह किया जाता है कि "ज्ञान" और "नोटिस" शब्द के बीच अंतर है। "नोटिस" शब्द का व्यापक निहितार्थ है और जब तक यह नहीं दिखाया जाता है कि प्रतिपक्षी को समझौते की सूचना थी, तब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिपक्षी ने बिक्री विलेख निष्पादित करने में कोई त्रुटि की थी। नोटिस और ज्ञान के मुद्दे के बारे में अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने एलआरएस के माध्यम से राम निवास (मृत) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले बनाम बानो (श्रीमती) और अन्य (2000) 6 एस.सी.सी. 685 पर भरोसा किया है।

20. अंत में, यह आग्रह किया गया है कि वादी के पास विचाराधीन संपत्ति नहीं है और न ही पूर्वोक्त तथ्य का कोई सबूत था, इसलिए, यह कहना कि वादी पिछले 40 वर्षों से कब्जे में है, गलत है। यह भी आग्रह किया जाता है कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा प्रतिबिंबित किए गए निष्कर्ष साक्ष्य की उचित समझ पर आधारित हैं। तदनुसार, तथ्यों के निष्कर्ष सी.पी.सी. की धारा 100 के तहत शक्तियों के प्रयोग में वितरित किए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। नतीजतन, अपील विफल होने के योग्य है।

21. न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेखों पर सामग्री का अवलोकन भी किया है।

22. पहला मुद्दा जो विचार के लिए उठता है वह वादी की तत्परता और इच्छा और अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में इसकी बारीकियों के बारे में है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का प्राथमिक निवेदन यह है कि वादी ने अपने वाद में कहा था कि वह अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था और यहां तक कि साक्ष्य में भी यह कहा गया था कि वादी ने एक नोटिस जारी किया था और जैसे ही उसे पता चला कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 के पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया था, उन्होंने तुरंत विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया। यह सब उनकी तत्परता और इच्छा को इंगित करता है और यह कि किसी मुद्दे के अभाव में, निचली अपीलीय अदालत ने पूर्वोक्त बिंदु के लिए डिक्री को उलटने में गलती की थी।

23. यदि पूर्वोक्त विवाद पर ध्यान दिया जाता है, तो यह पाया जाएगा कि विशिष्ट राहत अधिनियम की सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण धारा 16(सी) स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि वादी को अपने वाद में यह कहना चाहिए कि वह अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक है। वाद पर एक नज़र डालने पर, यह इंगित करेगा कि निश्चित रूप से वादी ने कहा है कि वह अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था, लेकिन शायद यह पर्याप्त नहीं है। तत्परता और इच्छा के मुद्दे के दो अलग-अलग अर्थ हैं। इसे न केवल टालना होगा बल्कि इसे साबित भी करना होगा। तत्परता और इच्छा पूरी कार्यवाही के

दौरान मौजूद रहनी चाहिए। तत्परता और इच्छा के मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा हाल ही में अर्जुन प्रसाद और अन्य बनाम गणेश प्रसाद और अन्य ऑनलाइन इलाहाबाद 364 में निम्नलिखित पैरा में विचार किया गया था:-

"29. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 16(सी) के संबंध में तत्परता और इच्छा की दलील एक महत्वपूर्ण और आवश्यक घटक है और यह माना गया है कि यह एक सीधा सटीक फॉर्मूला नहीं है। आरसी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल (1970) 3 एस.सी.सी. 140 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"तत्परता और इच्छा को सीधा सटीक फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है और इस मुद्दे को संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण के लिए प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना है"

30. नरिंदर सिंह बनाम नॉर्थ स्टार एस्टेट प्रमोटर्स लिमिटेड, (2012) 5 एस.सी.सी. 712 में, पैरा-21 से 23 में निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

"20. हमारे विचार में, अपीलकर्ता के पिता द्वारा समझौते के निष्पादन के मुद्दों पर विचारण न्यायालय और निचली अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज किए गए समवर्ती निष्कर्ष और प्रतिपक्षी की तत्परता और समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने की

इच्छा पक्षों की दलीलों और सबूतों के सही मूल्यांकन पर आधारित थी और उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने उन निष्कर्षों को छेड़ने से इनकार करके कोई त्रुटि नहीं की। अपीलकर्ता के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए प्रतिपक्षी की निरंतर तत्परता और इच्छा के बारे में विशिष्ट दलील के अभाव में और बिक्री के विचार के भुगतान के लिए आवश्यक धन की उपलब्धता, उच्च न्यायालय को निचली अदालतों द्वारा दर्ज समवर्ती निष्कर्ष को अलग रखना चाहिए था, आकर्षक लगता है, लेकिन अभिलेखों की सावधानीपूर्वक जांच करने पर हमें कोई वैध आधार नहीं मिलता है उस पर विचार करें।

21. आरसी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल [(1970)3 एस.सी.सी. 140] में इस न्यायालय ने कहा कि "तत्परता और इच्छा को सीधा सटीक फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है और इस मुद्दे को संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना है"। इसी विचार को पी. डिसूजा बनाम शॉड्रिलो नायडू [(2004) 6 एस.सी.सी. 649] में दोहराया गया था।

22. एन.पी. थिरुग्ननम बनाम आर. जगन मोहन राव [(1995)5 एस.सी.सी. 115] में न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता संपत्ति खरीदने के साधन के बिना अचल संपत्ति

लेनदेन में डबिंग कर रहा था और देखा:
(एस.सी.सी. पीपी 117-18, पैरा-5)

“5. ... अधिनियम की धारा 16(सी) में परिकल्पना की गई है कि वादी को दलील देनी चाहिए और साबित करना चाहिए कि उसने अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए प्रदर्शन किया था या हमेशा तैयार और इच्छुक रहा है, जो उसके द्वारा किए जाने हैं, उन शर्तों के अलावा जिनके प्रदर्शन को प्रतिपक्षी द्वारा रोका या माफ कर दिया गया है। वादी की ओर से निरंतर तत्परता और इच्छा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। यह परिस्थिति भौतिक और प्रासंगिक है और राहत देने या देने से इनकार करते समय अदालत द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। यदि वादी या तो टालने या साबित करने में विफल रहता है, तो उसे असफल होना चाहिए। यह तय करने के लिए कि क्या वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक है, अदालत को अन्य उपस्थित परिस्थितियों के साथ-साथ मुकदमा दायर करने से पहले और बाद में वादी के आचरण को ध्यान में रखना चाहिए। प्रतिपक्षी को जो प्रतिफल देना है, वह आवश्यक रूप से उपलब्ध होना चाहिए। निष्पादन की तारीख से डिक्री की तारीख तक उसे यह साबित करना होगा कि वह तैयार है और हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है। जैसा कि कहा गया है, अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए उनकी

तत्परता और इच्छा का तथ्य पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। अदालत तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगा सकती है कि क्या वादी तैयार था और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक था।

23. जेपी बिल्डर्स बनाम ए रामदास राव [(2011) 1 एस.सी.सी. 429: (2011)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 227] में न्यायालय ने केवल पहले से निर्धारित सिद्धांतों को दोहराया है और कोई नया प्रस्ताव निर्धारित नहीं किया गया है जो अपीलकर्ता के कारण की मदद कर सकता है।

24. अर्जुन प्रसाद (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय में, इस न्यायालय के पास विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद से संबंधित विभिन्न बारीकियों पर विचार करने का अवसर था और तत्परता और इच्छा के संबंध में, इसने रमजान अली और अन्य बनाम अल्ताफुर रहमान में इस न्यायालय के पहले के निर्णयों पर भी ध्यान दिया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की सहायता से, तैयारी और इच्छा के मुद्दे पर निम्नलिखित पैरा में विचार किया गया है: -

"27. कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम, वॉल्यूम 81 पीपी.950-951 में, तत्परता और इच्छा का अर्थ कानून का एक सामान्य सिद्धांत है कि विशिष्ट प्रदर्शन की मांग करने वाले व्यक्ति को यह दिखाना होगा कि उसने

प्रदर्शन किया है या प्रदर्शन करने की पेशकश की है या सक्षम और प्रदर्शन करने के लिए तैयार है, अनुबंध द्वारा आवश्यक सभी आवश्यक कार्य के संबंध में उसे चुप नहीं रहना चाहिए या खुद को अलग नहीं रखना चाहिए ताकि घटनाओं के रूप में अनुबंध को लागू या छोड़ दिया जा सके फायदेमंद साबित होते हैं। वादी विशिष्ट प्रदर्शन का हकदार है जहां वह आरोप लगाता है और साबित करता है कि उसने अनुबंध की शर्तों का काफी हद तक अनुपालन किया है या अनुबंध करने में सक्षम, तैयार और इच्छुक है। (सत्य जैन बनाम अनीस अहमद रुश्दी भी देखें ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 434)

28. बिजय बहादुर बनाम श्री शिव कुमार ए.आई.आर. 1985 इला 223 में, इस न्यायालय ने माना कि जहां तक तत्परता और इच्छा का प्रश्न है, जबकि 'इच्छा' केवल एक मानसिक प्रक्रिया है, 'तत्परता' उस इच्छा को कार्रवाई में बदलने के साथ कुछ करना है और तैयार होने की स्थिति में होने के लिए एक आवश्यक तैयारी से पहले है। इस निरंतर तत्परता और इच्छा के बारे में कथन के रूप में, कानून कभी भी किसी विशेष रूप पर जोर नहीं देता है और आवश्यक कथन किसी भी भाषा में किया जा सकता है जिसे वादी नियोजित करने का विकल्प चुन सकता है। भाषा महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि वाद में किए गए कथनों की समग्रता को वादी की तत्परता और इच्छा को, भले

ही आवश्यक अनुमान से, इंगित करना चाहिए।

29. यह न्यायालय परम पूज्य आचार्य स्वामी गणेश दासजी बनाम सीताराम (4) एस.सी.सी. 526 थापर में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी नोटिस करता है; जिसमें तत्परता और इच्छा की अवधारणा पर ध्यान दिया गया है और निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"2. अनुबंध करने की तत्परता और अनुबंध को पूरा करने की इच्छा के बीच एक अंतर है। तत्परता से वादी की अनुबंध करने की क्षमता का मतलब हो सकता है जिसमें खरीद मूल्य का भुगतान करने के लिए उसकी वित्तीय स्थिति शामिल है। अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की उसकी इच्छा का निर्धारण करने के लिए, आचरण की ठीक से जांच की जानी चाहिए। इस बात का कोई दस्तावेजी प्रमाण नहीं है कि वादी के पास प्रतिफल की शेष राशि का भुगतान करने के लिए कभी धन था। यह मानते हुए कि उसके पास धन था, उसे अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा साबित करनी होगी। समझौते की शर्तों के अनुसार, वादी को समझौते के निष्पादन के 7 दिनों के भीतर यानी 27-2-1975 तक प्रतिपक्षी को मसौदा बिक्री विलेख की आपूर्ति करनी थी। याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत अनुमोदित होने के बाद ड्राफ्ट विक्रय विलेख वापस नहीं किया गया था। अनुबंध के वादी के हिस्से को पूरा करने की

तत्परता और इच्छा का तथ्य पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। अदालत तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगा सकती है कि क्या वादी तैयार था और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक था। इस मामले के तथ्य पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करेंगे कि याचिकाकर्ता/वादी तैयार नहीं था और न ही अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने की क्षमता थी क्योंकि उसके पास अनुबंधित नकद में प्रतिफल का भुगतान करने की कोई वित्तीय क्षमता नहीं थी और उस समय के लिए भुगतान करने का इरादा था जो उसे अयोग्य बनाता है क्योंकि समय अनुबंध का सार है।

30. इसी प्रकार, जेपी बिल्डर्स एंड अदर बनाम ए. रामदास राव और अन्य; 2011 (1) एस.सी.सी. 429 जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-22 से 27 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"22. शब्द 'तैयार' और 'इच्छुक' व्यक्ति अनुबंध की शर्तों को पूरा करने के लिए तैयार किया गया था कि 'तत्परता' और 'इच्छा' के बीच का अर्थ का अंतर यह है कि पूर्व वित्तीय क्षमता को संदर्भित करता है और बाद में वादी के आचरण को प्रदर्शन की इच्छा रखता है। आम तौर पर, तत्परता इच्छा द्वारा समर्थित होती है।

23. एन.पी. थिरुगननम बनाम डॉ. आर. जगन मोहन राव [(1995) 5 एस.सी.सी.

115] में एस.सी.सी. पैरा-5 में, इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एस.सी.सी. पीपी 117-18)

"5. ... अधिनियम की धारा 16(सी) में परिकल्पना की गई है कि वादी को दलील देनी चाहिए और साबित करना चाहिए कि उसने अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए प्रदर्शन किया था या हमेशा तैयार और इच्छुक रहा है, जो उसके द्वारा किए जाने हैं, उन शर्तों के अलावा जिनके प्रदर्शन को प्रतिपक्षी द्वारा रोका या माफ कर दिया गया है। वादी की ओर से निरंतर तत्परता और इच्छा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। यह परिस्थिति महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है और राहत देने या देने से इनकार करते समय अदालत द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। यदि वादी या तो टालने या साबित करने में विफल रहता है, तो उसे असफल होना चाहिए। यह तय करने के लिए कि क्या वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक है, अदालत को अन्य उपस्थित परिस्थितियों के साथ-साथ मुकदमा दायर करने से पहले और बाद में वादी के आचरण को ध्यान में रखना चाहिए। प्रतिपक्षी को जो प्रतिफल देना है, वह आवश्यक रूप से उपलब्ध होना चाहिए। निष्पादन की तारीख से डिक्री की तारीख तक उसे यह साबित करना होगा कि वह तैयार है और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार है। जैसा कि कहा गया है, अनुबंध के

अपने हिस्से को पूरा करने के लिए उनकी तत्परता और इच्छा का तथ्य पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। अदालत तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगा सकती है कि क्या वादी तैयार था और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक था।

24. पी. डिसूजा बनाम शॉड्रिलो नायडू [(2004) 6 एस.सी.सी. 649] में इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी. पी. 654, पैरा-19 और 21)

"19. यह निर्विवाद है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में वादी को अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए अपनी तत्परता और इच्छा स्थापित करनी चाहिए। यह सवाल कि वादी द्वारा दायित्व का निर्वहन किया गया था या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस संबंध में कोई सीधा सटीक फॉर्मूला निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

21. ... अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए वादी की ओर से तत्परता और इच्छा इस सवाल पर भी निर्भर करेगी कि क्या प्रतिपक्षी ने वह सब कुछ किया जो बिक्री के लिए समझौते के संदर्भ में उसके लिए आवश्यक था।

25. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 16(सी) वादी की ओर से "तत्परता और इच्छा"

को अनिवार्य करती है और यह विशिष्ट प्रदर्शन के अनुदान की राहत प्राप्त करने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। यह भी स्पष्ट है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में, वादी को अनुबंध की तारीख से अपनी ओर से अनुबंध करने के लिए निरंतर "तत्परता और इच्छा" का आरोप लगाना और साबित करना चाहिए। ये जिम्मेदारी वादी पर है।

26. आरसी चांडियोक बनाम चुन्नी लाल सभरवाल [(1970) 3 एस.सी.सी. 140] में इस न्यायालय द्वारा यह सही माना गया है कि "तत्परता और इच्छा" को सीधा सटीक फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता से निर्धारित किया जाना है।

27. यह स्थापित कानून है कि प्रतिपक्षी द्वारा विशिष्ट दलील के अभाव में भी, यह कानून का जनादेश है कि वादी को विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16(सी) का पालन करना होगा और जब इस वैधानिक जनादेश का अनुपालन नहीं होता है, तो अदालत विशिष्ट प्रदर्शन देने के लिए बाध्य नहीं है और उसके पास मुकदमा खारिज करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है। यह भी स्पष्ट है कि प्रदर्शन करने की तत्परता समय के प्रासंगिक बिंदुओं में स्थापित की जानी चाहिए। अनुबंध के हिस्से को पूरा करने के लिए "तत्परता और इच्छा" पक्षों के आचरण से निर्धारित/पता लगाया जाना है।

25. इस प्रकार, अभिलेखों पर उपलब्ध कथनों और सामग्री के संदर्भ में मामले के पूर्वोक्त पहलू को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि हालांकि, वादी ने वाद में कहा था कि वह अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था, लेकिन दुर्भाग्य से, जबकि उसने खुद को एक गवाह के रूप में जांचा, उसके बयान में पूर्वोक्त प्रभाव का कोई उल्लेख नहीं है। यद्यपि, यदि तत्परता और इच्छा के मुद्दे को सीधा सटीक फार्मूले के रूप में नहीं लिया जाना है, फिर भी यह अभी भी देखा जाना चाहिए कि क्या कथनों और शपथ पर दिए गए बयान के आलोक में पर्याप्त अनुपालन किया गया है। यह पाया जाएगा कि वादी ने अपने मुख्य परीक्षा में केवल यह कहा है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने वादी के साथ बेचने के लिए एक पंजीकृत समझौता किया था, जिसके अनुसरण में उसने 2,000/- रुपये का भुगतान किया था और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 1,600/- रुपये का भुगतान किया जाना था। प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता थी, जिसे उसने टाल दिया और बाद में, जैसे ही वादी को पता चला कि उसने अनुमति प्राप्त कर ली है, उसने एक नोटिस भेजा था और उसके बाद, एक बार जब प्रतिपक्षी संख्या-1 ने प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 को संपत्ति बेच दी है, तो उसने तुरंत मुकदमा दायर किया। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपने मुख्य परीक्षण में एक बयान देने के

बावजूद, इस न्यायालय ने जो पाया वह यह है कि वादी के अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक होने के बारे में मुख्य परीक्षण में कोई कथन नहीं है। वाद और साक्ष्य में कोई कथन नहीं है कि वादी के पास आवश्यक धन था या उसने प्रतिपक्षी को वही पेशकश की थी जिसने इसे अस्वीकार कर दिया था। तारीख या किसी अन्य विशेष के बारे में कोई विवरण नहीं है कि यह साबित करने के लिए कि उसने प्रतिपक्षी से शेष बिक्री प्रतिफल को स्वीकार करने और बिक्री विलेख निष्पादित करने या अनुमति प्राप्त करने का अनुरोध किया था। वादी द्वारा उसकी तत्परता और इच्छा का सुझाव देने के लिए किए गए किसी भी खुले कार्य के बारे में कोई कथन नहीं किया गया है।

26. एक और मुद्दा है जिसे तत्परता और इच्छा के संबंध में देखा जाना है अर्थात् यह कहना कि वादी-अपीलकर्ता के लिए न केवल तत्परता और इच्छा को टालना और उसे साबित करना आवश्यक था, बल्कि वित्तीय क्षमता द्वारा इसे साबित करना भी आवश्यक था। इस संबंध में, यह न्यायालय पाता है कि वादी की आय और तत्परता और इच्छा के बारे में केवल आत्म-सेवा बयान, इसके वास्तविक प्रमाण के बिना, वादी की सहायता के लिए नहीं आ सकता है। रितु सक्सेना बनाम जेएस गोवर और अन्य (2019)9 एस.सी.सी. 132 में, वादी की वित्तीय क्षमता के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि वित्तीय संसाधनों के प्रमाण के बिना आय का केवल स्व-सेवारत विवरण यह साबित करने के लिए

पर्याप्त नहीं है कि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था।

प्रदर्शन की डिक्री देने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र और विवेक का प्रयोग नहीं करेगा।

27. अर्जुन प्रसाद (उपरोक्त) और रमजान अली (उपरोक्त) में देखे गए निर्णयों के पूर्वोक्त सिद्धांत और स्ट्रिंग को प्रस्तुत मामले में लागू करते हुए, यह स्पष्ट होगा कि तत्परता और इच्छा के बारे में साक्ष्य में कोई कथन नहीं है और जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, उस तारीख या समय के बारे में कोई विवरण नहीं है जब प्रतिपक्षी को राशि की पेशकश की गई थी। इस प्रकार, उपरोक्त सभी कारणों से, यह न्यायालय यह नहीं पाता है कि वादी ठोस सबूतों द्वारा अपनी तत्परता और इच्छा स्थापित करने में सक्षम था।

28. पूर्वोक्त के मददेनजर, इस न्यायालय को यह नहीं लगता है कि निचली अपीलीय अदालत ने तत्परता और इच्छा के पूर्वोक्त मुद्दे पर निष्कर्ष को उलटने में कोई त्रुटि की है। जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता की यह दलील है कि विचारण न्यायालय द्वारा तत्परता और इच्छा का कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया था और इसलिए, निचली अपीलीय अदालत इस मुद्दे में प्रवेश नहीं कर सकती थी, इस कारण से गलत है कि अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि इस तथ्य के बावजूद कि क्या प्रतिपक्षी वादी की गैर-इच्छा और तत्परता के बारे में बचाव करता है, यह वादी का कर्तव्य है कि वह न केवल टाले, बल्कि अपनी तत्परता और इच्छा को साबित करे और यह पूरी कार्यवाही के दौरान जारी रहना चाहिए। न्यायालय तत्परता और इच्छा पर एक निष्कर्ष दर्ज किए बिना विशिष्ट

29. यह तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि वादी ने वाद में कहा था कि वह तैयार और इच्छुक था और प्रतिपक्षी संख्या-1 जो वाद का विरोध करने के लिए प्रकट नहीं हुआ और एक-पक्षीय रहा, जबकि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 ने अपना बचाव उठाया, लेकिन अपने लिखित बयान में तत्परता और इच्छा से इनकार नहीं किया और इसलिए, इस कारण से एक मुद्दा तैयार नहीं किया जा सकता है, लेकिन फिर भी वाद को डिक्री करने के लिए, न्यायालय को तत्परता और इच्छा पर एक निष्कर्ष प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता होती है और मामले के इस पहलू को विचारण न्यायालय द्वारा अनदेखा किया गया था और निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा सही और उचित रूप से देखा गया है।

30. यहां तक कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति कि वादी की तत्परता और इच्छा का सुझाव देने के लिए पर्याप्त सबूत थे, इस न्यायालय के साथ उन कारणों के पक्ष में नहीं है जो पहले ही ऊपर बताए जा चुके हैं, वादी ने अपनी मुख्य परीक्षण में एक भी बयान नहीं दिया और न ही यह बताया जा सकता है कि वादी द्वारा उसकी तत्परता और इच्छा साबित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष कार्य किया गया था। अस्पष्ट कथन या अप्रत्यक्ष निष्कर्षों को वादी की तत्परता और इच्छा के बारे में किसी भी ठोस और सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचने और समेटने के लिए नहीं माना जा सकता है। इस संबंध में, यदि अपीलकर्ता के अधिवक्ता

द्वारा उद्धृत निर्णयों को देखा जाता है, तो यह इंगित करेगा कि एनिग्लसे योहानन (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने उस प्रस्ताव को दोहराया है जो पहले ही ऊपर देखा जा चुका है और प्रस्ताव विवादित नहीं है। जहां तक इस तथ्य का सवाल है कि वादी का आचरण निर्दोष रहा है और उसे विशिष्ट प्रदर्शन की राहत का अधिकार देता है, इसे विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। यह किसी का मामला नहीं है कि वादी का आचरण किसी भी दोष से ग्रस्त है, बल्कि न्यायालय के समक्ष मुद्दा तत्परता और इच्छा के बारे में है। विस्तृत चर्चा के साथ-साथ अर्जुन प्रसाद (उपरोक्त), रमजान अली (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णयों के संदर्भ के प्रकाश में, प्रस्ताव स्पष्ट है कि वादी को अपनी तत्परता और इच्छा और ऊपर दर्ज कारणों से ठोस साक्ष्य के साथ टालना और साबित करना होगा, वादी इसे स्थापित नहीं कर पाया है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि निचली अपीलीय अदालत ने गलती की है। पहले मुद्दे का तदनुसार उत्तर दिया जाता है।

31. दूसरा सवाल है कि क्या प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 सूचना के बिना मूल्यवान संपत्ति के लिए सदाशयी खरीदार हैं, एक ही प्रतिपक्षी द्वारा स्थापित किया जाना था। अ०सा०-2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह प्रतिपक्षी संख्या-2 से मिला था और सूचित किया था कि वह प्रतिपक्षी संख्या-1 और वादी के बीच एक समझौते को देखने के लिए अकबरपुर जा रहा था। हालांकि, यह बयान विचारण न्यायालय के

लिए शीट एंकर था, जबकि इसने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार नहीं थे। हालांकि, निचली अपीलीय अदालत ने इस संबंध में अ०सा०-2 के साथ-साथ अ०सा०-1 के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए तथ्य के निष्कर्ष को उलट दिया। प्रतिपक्षी द्वारा अपने बयान में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से विवादित किया गया था। निचली अपीलीय अदालत ने स्वयं अ०सा०-1 के साक्ष्य पर ध्यान दिया है, जिसमें कहा गया था कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को वादी और प्रतिपक्षी संख्या-1 के बीच समझौते के बारे में पता था क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-2 उक्त बातचीत के दौरान जब समझौते की शर्तों का निपटारा किया जा रहा था, मौजूद था। यह अ०सा०-2 के बयान के सीधे विरोधाभास और विपरीत है, जिसने कहा कि जब वह समझौते को देखने के लिए अकबरपुर जा रहा था, तो प्रतिपक्षी संख्या-2 ने उससे पूछा था कि वह कहां जा रहा था और उक्त बयान के कारण, यह अनुमान लगाया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को पता चला कि वादी और प्रतिपक्षी संख्या-1 के बीच एक समझौता था। पूर्वोक्त के अवलोकन से, यह इंगित करेगा कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 दोनों के बयानों और संस्करण में स्पष्ट भिन्नता है, जो प्रतिपक्षी संख्या-2 को बेचने के समझौते के बारे में ज्ञान/नोटिस का वर्णन करते हैं। दूसरी ओर, यह तथ्य प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा विवादित है, जिसमें कहा गया है कि उन्हें समझौते के बारे में पता नहीं था, जब उनके पास पहले से ही वर्ष 1975 से संबंधित प्रतिपक्षी संख्या-1975 से उनके पक्ष में एक समझौता था।

32. जैसा कि यह हो सकता है, निचली अपीलीय अदालत द्वारा दिया गया निष्कर्ष कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार थे, साक्ष्य का मूल्यांकन पर आधारित है और गवाहों के बयान को ध्यान में रखते हुए दर्ज किया गया है, जिसे विकृत नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय को सी.पी.सी. की धारा 100 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि यह विकृत न पाया जाए। यह नहीं कहा जा सकता है कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा लिया गया दृष्टिकोण किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, जो स्वीकार्य नहीं है या बयान के गलत पढ़ने पर भरोसा करते हुए दर्ज किया गया है और गठित दृष्टिकोण ऐसा है जो कोई भी उचित व्यक्ति दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में नहीं बना सकता है।

33. इस प्रकार पूर्वोक्त कारण के लिए, यह न्यायालय तथ्य के पूर्वोक्त निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है जिसकी पुष्टि की गई है। इस प्रकार, यह न्यायालय मानता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार थे। ऐसा कहने के बाद, इस न्यायालय को इस तथ्य पर भी गौर करने की आवश्यकता है कि क्या वादी पिछले 40 वर्षों से कब्जे में है, जैसा कि कहा गया है, हालांकि, इस मुद्दे को इस न्यायालय को लंबे समय तक लम्बितता में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि इस न्यायालय के समक्ष इस संबंध में कोई भौतिक सबूत नहीं है। मुकदमा वर्ष 1980

में दायर किया गया था और प्रस्तुत दूसरी अपील वर्ष 1986 से इस न्यायालय के समक्ष लंबित है, लेकिन वादी के कब्जे को प्रमाणित करने वाला एक भी दस्तावेज अभिलेखों पर नहीं लाया गया है। चूंकि इस तथ्य पर निचली दो न्यायालयों में से किसी का भी कोई निष्कर्ष नहीं है और इस न्यायालय के समक्ष किसी भी ठोस सबूत के अभाव में, यह न्यायालय कब्जे के मुद्दे पर कोई निष्कर्ष वापस करने के लिए इच्छुक नहीं है। इस प्रकार, उक्त कारण से, न्यायालय इस दलील के पक्ष में नहीं है कि वादी पिछले 40 वर्षों से कब्जे में है और इस एकमात्र कारण से, वह विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री प्रदान करने की धारा 20 के संदर्भ में विवेक का हकदार है।

34. यह भी इंगित करना प्रासंगिक होगा कि भले ही, विशिष्ट प्रदर्शन के अनुदान के लिए आवश्यक सभी सामग्री बनाई गई हो, फिर भी, न्यायालय के लिए विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह प्रकृति में विशुद्ध रूप से न्यायसंगत और विवेकाधीन है। इस पहलू पर भी इस न्यायालय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों की सहायता से विस्तार से चर्चा की गई है और अर्जुन प्रसाद (उपरोक्त) में विचार किया गया है।

35. अधिनियम वर्ष 1963 की धारा 19 के संदर्भ में अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किए गए निर्णय, प्रतिवादियों की याचिका के बारे में बिना किसी सूचना के मूल्यवान संपत्ति के लिए वास्तविक खरीदार होने के संबंध में, एक प्रस्ताव के रूप में विवादित नहीं है। हालांकि, एक ही समय में,

यह तथ्य का प्रश्न होने के कारण अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर पता लगाया जाना है और इस प्रकार, ऊपर की गई चर्चाओं के प्रकाश में, हालांकि अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों में प्रस्ताव विवादित नहीं है, लेकिन प्रस्तुत मामले में इसकी प्रयोज्यता अपीलकर्ता की सहायता नहीं करती है। इस प्रकार पूरी विनम्रता के साथ, यह न्यायालय अपीलकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों को स्वीकार करने में असमर्थ है।

36. तथ्यों और स्थिति के बारे में एक संपूर्ण दृष्टिकोण लेने और यह भी ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता के पास अपने पक्ष में बेचने के लिए एक पंजीकृत समझौता है, जिसके संदर्भ में उसने पहले ही वर्ष 1979 में बयाना राशि के रूप में 2,000 रुपये की राशि का भुगतान किया था और पिछले 44 वर्षों से मुकदमा कर रहा है और इस तथ्य पर विचार कर रहा है कि प्रतिपक्षी सं-1 ने कार्यवाही नहीं लड़ी जबकि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 ने वादी संख्या-1 द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित समझौते की मुद्रा के दौरान प्रतिपक्षी संख्या-1 से संपत्ति निष्पादित की है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 ने मूल विक्रेता की स्थिति को अवधारित करने की चेष्टा की है और तदनुसार, परिस्थितियों को देखते हुए, भले ही, वादी अभी तक विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्री का हकदार नहीं हो सकता है, वह पूर्वोक्त राशि की वापसी का हकदार है।

37. यह न्यायालय के. प्रकाश बनाम बी. आर. संपत कुमार, (2015) 1 एस.सी.सी. 597; ज़रीना सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम

(2015)1 एस.सी.सी. 705 और यू.एन कृष्णमूर्ति बनाम ए.एम कृष्णमूर्ति, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 840, जिसमें संपत्ति की कीमतों में वृद्धि और पक्षों के बीच इक्विटी को संतुलित करने के मुद्दे पर विचार किया गया है और यह देखते हुए कि 40 साल बीत चुके हैं और संपत्ति की कीमतें बढ़ गई हैं और मुद्रास्फीति के कारण पैसे का मूल्य भी गंभीर रूप से प्रभावित हुआ है, इसलिए, के. प्रकाश (उपरोक्त), ज़रीना सिद्दीकी (उपरोक्त) और एएम कृष्णमूर्ति (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को लागू करते हुए और दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, यह न्यायालय उचित समझता है कि द्वितीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा दीवानी अपील संख्या-39 वर्ष 1982 में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 28.04.1986 की पुष्टि करते हुए, यह न्यायालय आगे निर्देश देता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3, वादी-अपीलकर्ता को आज से 60 दिनों की अवधि के भीतर 3 लाख रुपये की राशि वापस करेंगे। यदि वादी को उपरोक्त राशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो वादी प्रतिपक्षी संख्या-2 और 3 से कानून के अनुसार निष्पादन आवेदन दायर करके वसूली का हकदार होगा।

38. उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में और दीवानी अपील संख्या-39 वर्ष 1982 में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 28.04.1986 में पूर्वोक्त संशोधन के अधीन, यह दूसरी अपील एतद्वारा खारिज की जाती है। तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं। विचारण न्यायालय के अभिलेखों को लौटाया जाए।

(2023) 7 ILRA 1137

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.07.2023

समक्ष

माननीय इरशाद अली, न्यायाधीश

रिट-ए संख्या 792 सन् 1998

दीपक जोशी

...याचिकाकर्ता

बनाम

सहायक महाप्रबंधक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

प्रशांत चन्द्र, चन्द्र शेखर पाण्डेय

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

एन.के. सेठ, मुख्य स्थायी अधिवक्ता गोपाल
के. श्रीवास्तव

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, अनुशासनात्मक कार्यवाही, प्राकृतिक न्याय, निलंबन, सेवा से निष्कासन, द्विपक्षीय समझौता - अनुच्छेद 14 - अनुच्छेद 311(2) - केंद्रीय सतर्कता आयोग, निर्वाह भत्ता, पुनर्नियुक्ति, बकाया वेतन - याचिकाकर्ता दीपक जोशी, जो सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में लिपिक थे, को 2 मार्च 1995 को खजाना जमा पासबुक में कूटरचना की संभावित शिकायत के आधार पर निलंबित किया गया। 3 जुलाई 1995 को आरोपपत्र में सात कदाचार के आरोप लगाए गए, जिनमें निधियों का जमा न करना और फर्जी प्रविष्टियाँ शामिल थीं। याचिकाकर्ता ने आरोपों

का खंडन किया, यह कहते हुए कि शिकायत मनगढ़ंत थी। जांच 18 जुलाई 1995 से प्रारंभ होकर 18 सितंबर 1996 को पूर्ण हुई, जो एकपक्षीय बयानों पर आधारित थी, जिसमें शिकायतकर्ताओं से जिरह की अनुमति नहीं दी गई, और बैंक को कोई हानि न होने की बात की अनदेखी की गई। याचिकाकर्ता को द्विपक्षीय समझौते के अनुसार एक वर्ष बाद पूर्ण निर्वाह भत्ता नहीं दिया गया। जांच अधिकारी की आख्या, जो 17 दिसंबर 1996 को एकपक्षीय रूप से प्रस्तुत की गई, में याचिकाकर्ता के लिखित तर्कों को नजरअंदाज किया गया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 26 मई 1997 को सेवा से निष्कासन की पुष्टि की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने 23 दिसंबर 1997 को यथावत रखा। याचिकाकर्ता ने इन आदेशों को प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन, भेदभावपूर्ण व्यवहार, और 3 जुलाई 1984 की केंद्रीय सतर्कता आयोग की परिपत्र की अवहेलना के आधार पर चुनौती दी। न्यायालय ने कहा कि अनुशासनात्मक कार्यवाही अर्ध-न्यायिक होती है और इसे लापरवाही या पक्षपात के साथ संचालित नहीं किया जा सकता। जांच अधिकारी को निष्पक्ष रहकर कार्य करना होता है ताकि निष्पक्षता स्पष्ट रूप से दिखाई दे। शिकायतकर्ताओं को प्रस्तुत न करना या शिकायत की प्रामाणिकता को सिद्ध न करना जांच की नींव को कमजोर करता है। न्यायालय ने कहा कि बैंक का मनगढ़ंत शिकायत और अप्रमाणित स्वीकृति पर आधारित होना यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता को दंडित करने की पूर्वनियोजित मंशा थी।

रिट याचिका स्वीकृत की गई।

जिन उदाहरणों पर भरोसा किया गया:

1. ए.के. सक्सेना बनाम सेंट बैंक ऑफ पटियाला, (2016) एससीसी ऑनलाइन एससी 187
2. पवन कुमार अग्रवाल बनाम सेंट बैंक ऑफ इंडिया, 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 1260
3. कुमाऊं मंडल विकास निगम बनाम गिरजा शंकर पंत, (2001) 1 एससीसी 182
4. सेंट बैंक ऑफ इंडिया बनाम टी.जे. पॉल, (1999) 4 एससीसी 759
5. कैप्टन एम. पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड, (1999) 3 एससीसी 679
6. कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, (1999) 2 एससीसी 10
7. पी.सी. कक्कड़ बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, 1999 (4) एडब्ल्यूसी 3263
8. आर.सी. सूद बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय, (1998) 5 एससीसी 493
9. सेंट बैंक ऑफ इंडिया बनाम डी.सी. अग्रवाल, एआईआर 1993 एससी 1197
10. फकीरभाई फुलाभाई सोलंकी बनाम पीठासीन अधिकारी, (1986) 3 एससीसी 131
11. अनिल कुमार बनाम पीठासीन अधिकारी, (1984) 3 एससीसी 378
12. प्रदीप बनाम मैंगनीज ओर (इंडिया) लिमिटेड, (2002) 3 एससीसी 683
13. सेंट ऑफ यू.पी. बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772
14. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा पदत)

1. श्री प्रशांत चंद्र, वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री राधिका सिंह, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और श्री गोपाल के श्रीवास्तव, प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

(क) रिट याचिका के लिए क्रमश अनुबंध सं-1 और 2 के रूप में अंतर्विष्ट पक्षकार संख्या-2 और 1 द्वारा पारित दिनांक 26-5-1997 और 23-12-1997 के आदेशों को रद्द करते हुए उत्प्रेषण रिट या उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निदेश जारी करना।

(ख) परमादेश की प्रकृति में परमादेश रिट या आदेश या निदेश जारी करेगा जिसमें प्रतिवादियों को आदेश दिया जाएगा कि वे रिट याचिका के क्रमश अनुबंध संख्या-1 और 2 में निहित प्रतिपक्षी संख्या-2 और 1 द्वारा पारित दिनांक 26.5.1997 और 23.12.1997 के आदेशों को प्रभावी न करें।

(ग) परमादेश की प्रकृति में परमादेश की रिट या एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिवादियों को आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता को पूर्ण मजदूरी/वेतन के साथ तुरंत अपने कर्तव्यों को फिर से शुरू करने की अनुमति दें, और याचिकाकर्ता को नियमित रूप से प्रत्येक महीने वेतन का भुगतान करना जारी रखें, जब भी यह देय हो।

(घ) एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी कर जिसमें प्रतिपक्षियों से याचिकाकर्ता को अनुचित उत्पीड़न और मानसिक पीड़ा के अधीन करने के लिए भारी कीमत चुकाने की आवश्यकता हो।

(ङ) कोई अन्य समुचित रिट, आदेश या निदेश जारी कर सकेगा जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उचित और आवश्यक समझे; और

(च) लागत सहित रिट याचिका की अनुमति देना।

3. मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के साथ एक क्लर्क (लिपिक) के रूप में कार्यरत था और याचिकाकर्ता की सेवा के नियम और शर्तें समय-समय पर संशोधित द्विपक्षीय समझौते द्वारा शासित थीं। विवेकानंद पॉलीक्लिनिक शाखा, लखनऊ में तैनात रहते हुए याचिकाकर्ता को एक ग्राहक की शिकायत पर दिनांक 2.3.1995 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया था कि उसने बैंक को धोखा देने के लिए जाली खजाना जमा पासबुक तैयार की थी। 18.5.1995 को प्रतिपक्षी सं-2 ने याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से की गई 7 खामियों के संबंध में याचिकाकर्ता को एक मेमो जारी किया। याचिकाकर्ता ने कथित चूकों से इंकार करते हुए उक्त मेमो पर दिनांक 8-6-1995 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया।

3.7.1995 को, याचिकाकर्ता को कदाचार के कुछ कथित कृत्यों को करने के लिए आरोप-पत्र

दिया गया था, जैसा कि उसमें विस्तृत विवरण है। यह इंगित करना उचित है कि आरोप-पत्र को पढ़ने से संकेत मिलता है कि यह पहले से ही अपराध के निष्कर्षों को दर्ज करता है और आरोप का जापन नहीं था। उक्त आरोप पत्र में दस्तावेजों/गवाहों की सूची और पूर्व बयानों की प्रतियां शामिल नहीं थीं जो बैंक के केंद्रीय कार्यालय द्वारा अपने सभी मुख्य प्रबंधकों को जारी किए गए दिनांक 23.8.1984 के परिपत्र का भी उल्लंघन है, जो भारत सरकार द्वारा केंद्रीय सतर्कता आयोग के माध्यम से दिनांक 3.7.1984 के पत्र द्वारा जारी किए गए निर्देशों पर आधारित है।

जांच 18.7.1995 को शुरू हुई और 18.9.1996 को समाप्त हुई। उक्त जांच दूषित है क्योंकि एकपक्षीय दर्ज किए गए गवाहों के बयानों को जांच अधिकारी द्वारा ध्यान में रखा गया था, हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा विशिष्ट मांग के बावजूद, उसे उक्त गवाहों की जिरह करने से मना कर दिया गया था। गौरतलब है कि तथाकथित शिकायतकर्ताओं ने जांच अधिकारी को सूचित किया कि उन्हें याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई शिकायत नहीं है, लेकिन आरोपों को छोड़ने के बजाय जांच के साथ आगे बढ़ाया जाए। जांच के निष्कर्षों को दर्ज करते समय बैंक को कोई घाटा नहीं होने के तथ्य की पूरी तरह से अनदेखी की गई है।

हालांकि सतर्कता की रिपोर्ट में याचिकाकर्ता के साथ-साथ अन्य अधिकारियों को भी फंसाया गया है, लेकिन अन्य अधिकारियों के खिलाफ कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई है और याचिकाकर्ता को अलग किया गया है और

संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में शत्रुतापूर्ण भेदभाव किया गया है। उक्त अधिकारियों में शाखा प्रबंधक श्रीमती आर. नटराजन, सहायक शाखा प्रबंधक के. सी. जैन, उपलेखाकार प्रभात कपूर, उप लेखाकार प्रभाकर चतुर्वेदी, नकद अधिकारी नवीन चतुर्वेदी और टेलर गुलाब टी. भाटिया शामिल हैं।

याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी से याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर सामग्री वाले कुछ दस्तावेज भेजने का अनुरोध किया था, लेकिन जांच अधिकारी ने उन दस्तावेजों को देने से इनकार कर दिया और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए जांच के साथ आगे बढ़े। याचिकाकर्ता को 2-3-1995 को निलंबित कर दिया गया था। उसे वेतन के 50% की दर से निर्वाह भत्ता का भुगतान किया जाता था। द्विपक्षीय निपटान के प्रावधानों के अनुसार, याचिकाकर्ता पूर्ण वेतन की दर से एक वर्ष के अंतराल के बाद निर्वाह भत्ते का हकदार था। याचिकाकर्ता को 2.3.1996 से अनिवार्य निर्वाह भत्ता नहीं दिया गया था, हालांकि याचिकाकर्ता ने लगातार इसकी मांग की और यहां तक कि जांच अधिकारी को भी अवगत कराया कि इसका भुगतान करने में विफलता पूरी जांच कार्यवाही को समाप्त कर देगी। पूर्ण निर्वाह भत्ते का भुगतान न करने से याचिकाकर्ता जांच का प्रभावी ढंग से बचाव करने में अक्षम हो गया है जिससे पूरी जांच कार्यवाही शून्य हो गई है।

दिनांक 18.09.1996 को, जांच के समापन के समय जांच अधिकारी ने बैंक के प्रतिनिधि को याचिकाकर्ता को अग्रिम प्रति के साथ तर्क

दायर करने के लिए 10 दिन का समय दिया और याचिकाकर्ता को जवाबी तर्क दायर करने के लिए 10 दिन का समय दिया। हालांकि, बैंक की ओर से दलीलें 55 दिन बीत जाने के बाद दायर की गई थीं। याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि ने जवाबी तर्क दाखिल करने के लिए 20.12.1996 तक का समय मांगा था और यह वास्तव में 20.12.1996 को यानी 37 दिनों के भीतर दायर किया गया था। तथापि, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के प्रतिउत्तर की प्रतीक्षा किए बिना और समय बढ़ाने के उसने अनुरोध पर विचार किए बिना भी 17-12-1996 को अपना निष्कर्ष दर्ज किया।

20.12.1996 को, जब याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी के समक्ष अपनी जवाबी दलीलें दायर कीं, तो उसने स्वयं इसकी प्राप्ति स्वीकार की, लेकिन शरारतपूर्ण तरीके से यह खुलासा नहीं किया कि उसने याचिकाकर्ता के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना पहले ही अपना निष्कर्ष दे दिया था।

30.12.1996 को, याचिकाकर्ता को प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा जारी दिनांक 28.12.1996 का एक जापन प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया था कि जांच अधिकारी ने दिनांक 17.12.1996 को एक एकपक्षीय रिपोर्ट दी थी क्योंकि याचिकाकर्ता 17.12.1996 तक अपने लिखित तर्क प्रस्तुत करने में विफल रहा था। इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं था कि याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि ने 20.12.1996 तक का समय मांगा था, जिसके पहले उसे 20.12.1996 को दलीलें मिली थीं, लेकिन उसने इसका निपटारा नहीं किया। अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक

28-12-1996 के उक्त जापन के तहत जांच अधिकारी के निष्कर्षों के साथ तर्क व्यक्त किया और याचिकाकर्ता को दिनांक 17-12-1996 और 21-12-1996 के निष्कर्षों पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का निदेश दिया।

दिनांक 6-1-1997 और 13-1-1997 के पत्रों के माध्यम से याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से शिकायत करते हुए अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के लिखित तर्कों पर विचार किए बिना अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसके लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने पूर्वाग्रह दर्शाते हुए यांत्रिक रूप से सिर हिलाया था। 24/25.2.1997 को प्रतिपक्षी सं-2 ने द्विपक्षीय समझौते के पैराग्राफ 19.6(बी) के तहत सेवा से हटाने की प्रस्तावित समेकित सजा जारी की और याचिकाकर्ता से स्पष्टीकरण मांगा गया कि वह कारण बताए कि प्रस्तावित सजा को अंतिम क्यों नहीं बनाया जाए।

27.3.1997 और 21.4.1997 को, याचिकाकर्ता ने प्रस्तावित सजा का जवाब दिया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह बताया गया कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की सजा पैराग्राफ 19.6(बी) के तहत नहीं दी जा सकती क्योंकि यह आरोपों के कथित कमीशन के समय लागू नहीं थी और सेवा से निष्कासन को द्विदलीय समझौते द्वारा पेश किया गया था जो 14.2.1995 से लागू हुआ था। याचिकाकर्ता ने यह भी प्रार्थना की थी कि उनके द्वारा इंगित विभिन्न अनियमितताओं के मद्देनजर जांच स्पष्ट रूप से दूषित हो और

आधिकारिक परिपत्रों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए अधिक से अधिक नए सिरे से जांच की जाए। उपरोक्त के जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिपक्षी सं-2 से कुछ भी नहीं सुना गया और याचिकाकर्ता को अपना मामला समझाने का कोई अवसर नहीं दिया गया।

दिनांक 26.5.1997 के एक आदेश के तहत, सेवा से हटाने की सजा की पुष्टि प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा की गई थी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.5.1997 के खिलाफ प्रतिपक्षी सं-1 के समक्ष दिनांक 26.6.1997 की अपील की। दिनांक 23.12.1997 का आदेश गैरकानूनी, मनमाना और किसी भी तर्क से परे है और दिमाग के उपयोग के अभाव में दूषित है क्योंकि अपील में आग्रह किए गए किसी भी आधार पर विचार नहीं किया गया है। सेवा से हटाने का आदेश संविधान के अनुच्छेद 20(1) में निहित प्रावधानों का उल्लंघन है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में क्लर्क के रूप में कार्यरत था और उसकी सेवाओं के नियम और शर्तें समय-समय पर संशोधित द्विपक्षीय निपटान (बीपीएस) द्वारा शासित थीं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विवेकानंद पॉलीक्लिनिक शाखा, लखनऊ में तैनात रहते हुए याचिकाकर्ता को 2.3.1995 के आदेश के तहत इस आशंका पर निलंबित कर दिया गया था कि बैंक को धोखा देने के इरादे से जाली खजाना जमा पास बुक तैयार करने

के लिए उसके खिलाफ कुछ शिकायत दर्ज की जाएगी।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि शाखा प्रबंधक (MW1) द्वारा लिखित दिनांक 7.3.1995 की शिकायत के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और कहा गया था कि संयुक्त खाताधारकों श्री बी.के. उपाध्याय और श्री पी.के. उपाध्याय द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था; और शिकायत के अस्तित्व में आने से पहले ही 2-3-1995 को निलंबन आदेश पारित कर दिया गया था।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि उक्त शिकायत दिनांक 7.3.1995 को शिकायतकर्ताओं द्वारा उनके द्वारा दर्ज की गई होने के कारण खंडन किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को 3.7.1995 को एक आरोप-पत्र जारी किया गया था, जिसमें 7 आरोप / अधिनियम लगाए गए थे कि याचिकाकर्ता ने कथित तौर पर संयुक्त खाताधारकों अर्थात् श्री बी.के. उपाध्याय और श्री पी.के. उपाध्याय से कुछ रकम प्राप्त की थी, लेकिन उसने बैंक में जमा नहीं किया, उनके खाते से नकली निकासी की, पास बुक में नकली प्रविष्टियां की आदि। आरोप पत्र के अंतिम पृष्ठ के शीर्ष पर यह सारांशित किया गया है कि याचिकाकर्ता के उपरोक्त कार्य बैंक के हित के प्रतिकूल हैं और द्विपक्षीय समझौते के पैरा-19.5 (जे) के अर्थ के भीतर कदाचार का गठन करते हैं।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि यह न तो आरोप पत्र में बताया गया था और न ही जांच में या सजा के आदेश में बताया गया था कि बैंक के हित के लिए किस प्रकार का पूर्वाग्रह या बैंक को क्या नुकसान, यदि कोई हो, हुआ था। खाताधारक ने खाते में ऐसी किसी भी अनियमितता से इनकार किया। महत्वपूर्ण रूप से याचिकाकर्ता की ओर से उक्त लेनदेन में शामिल होने का कोई मकसद स्थापित नहीं किया गया था, जो द्विपक्षीय समझौते के पैरा-19.5(जे) को लागू करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 3.7.1995 की आरोप पत्र में लगाए गए सभी आरोप केवल एक खाताधारक (संयुक्त खाताधारक और सगे भाई श्री बी.के. उपाध्याय और श्री पी.के. उपाध्याय) के संबंध में हैं, और 4.10.1994 से 2.2.1995 की अवधि से संबंधित हैं जब पांचवां द्विपक्षीय समझौता लागू था। इस बात पर पुनः जोर दिया जाता है कि संयुक्त खाताधारकों नामत श्री बी.के. उपाध्याय और श्री पी.के. उपाध्याय ने दिनांक 7.3.1995 को कोई शिकायत करने से इनकार किया था। दिनांक 7.3.1995 की कथित शिकायत बैंक के तत्कालीन शाखा प्रबंधक (एम.डब्ल्यू.1) की लिखावट में है और दिनांक 7.3.1995 की शिकायत की एक प्रति पर, श्री बी.के. उपाध्याय और श्री पी.के. उपाध्याय दोनों ने इस बात का समर्थन किया है कि उन्हें शिकायत से कोई लेना-देना नहीं है और वे उस भाषा (अंग्रेजी) से भी अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं जिसमें शिकायत/पत्र दिनांक 7.3.1995 को किया गया था।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 3.7.1995 के आरोप पत्र में दस्तावेजों और गवाहों की सूची नहीं थी, जो बैंक के केंद्रीय कार्यालय द्वारा अपने सभी मुख्य प्रबंधकों को जारी किए गए परिपत्र दिनांक 23.8.1984 का पूरी तरह से उल्लंघन था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि भारत सरकार ने केंद्रीय सतर्कता आयोग के माध्यम से सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों को दिनांक 3.7.1984 के पत्र द्वारा निर्देश जारी किए थे और बदले में सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के उप महाप्रबंधक ने भी 23.8.1984 को एक परिपत्र जारी किया था।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि निलंबन का आदेश 2.3.1995 को कथित इकबालिया बयान के आधार पर नहीं बल्कि एक प्रत्याशित शिकायत के आधार पर पारित किया गया था जिसे दायर किया जा सकता है और आरोप पत्र भी तथाकथित इकबालिया बयान के आधार पर नहीं बल्कि निलंबन के आदेश के बाद 7.3.1995 को दायर शिकायत के आधार पर भी लागू किया गया था।

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि शिकायत दर्ज करने से पहले ही रोक दिया गया था और प्रत्याशा में निलंबन का आदेश पारित किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता को निलंबित करने के लिए एक राय तैयार करते समय या उसके खिलाफ जांच करते समय कथित इकबालिया बयान को ध्यान में नहीं रखा गया था। जांच शुरू होने के बाद दस्तावेजों और गवाहों की सूची दी गई थी और तथाकथित स्वीकारोक्ति बयान का उन

दस्तावेजों की सूची में उल्लेख नहीं किया गया है जिन पर जांच में भरोसा किए जाने का प्रस्ताव था।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र में उसके खिलाफ तैयार किए गए आरोपों का जवाब देने की आवश्यकता थी और सूची में उल्लिखित दस्तावेजों के साथ भी सामना किया गया था, जिसमें ऊपर प्रस्तुत कथित इकबालिया बयान शामिल नहीं था। मुख्य रूप से, प्रबंधन की ओर से तीन गवाहों, शाखा प्रबंधक होने के नाते और दो अन्य कर्मचारियों (याचिकाकर्ता के साथ भी शामिल होने के लिए) से पूछताछ की गई। जिन शिकायतकर्ताओं की शिकायतों पर जांच स्थापित की गई थी, उन्हें याचिकाकर्ता द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद पेश नहीं किया गया था कि वे उनके द्वारा की गई शिकायत की सहायता के सत्यापन के लिए उन्हें पेश करें और याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच का आधार बनें।

13. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि भारत सरकार ने सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों को दिनांक 3.7.1984 के पत्र के माध्यम से केंद्रीय सतर्कता आयोग के माध्यम से निर्देश जारी किए थे और बदले में सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के उप महाप्रबंधक ने भी 23.8.1984 को एक परिपत्र जारी किया था जिसमें सभी अनुशासनात्मक अधिकारियों को आरोप पत्र के साथ दस्तावेजों और गवाहों की एक सूची प्रदान करने का निर्देश दिया गया था। उक्त परिपत्र यह भी इंगित करता है कि दस्तावेजों और गवाहों की सूची प्रदान करने में

विफलता, जिनके आधार पर आरोपों को बनाए रखने का प्रस्ताव है, एक आरोपित अधिकारी को अपना बचाव करने के लिए उचित अवसर देने में विफलता के बराबर है।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि सतर्कता अधिकारी की रिपोर्ट विभिन्न व्यक्तियों के पिछले बयानों के आधार पर तैयार की गई थी, जो याचिकाकर्ता की पीठ के पीछे दर्ज किए गए थे, लेकिन सतर्कता अधिकारी के समक्ष बयान देने वाले किसी भी व्यक्ति को बुलाया/जांच नहीं की गई है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सतर्कता अधिकारी द्वारा दर्ज एक कथित इकबालिया बयान स्वेच्छा से दर्ज किया गया था, जिसे श्री एस.जे मेहरोत्रा (बैंक के एक अधिकारी) ने देखा था। याचिकाकर्ता ने श्री एस.जे मेहरोत्रा को पेश करने का अनुरोध किया था, लेकिन उन्हें पेश नहीं किया गया।

15. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि उल्लेखनीय रूप से, सतर्कता अधिकारी ने माना था कि शाखा प्रबंधक, श्री आर नटराजन (MW1), याचिकाकर्ता और बैंक के पांच अन्य कर्मचारियों सहित 7 व्यक्ति दोषी थे। जबकि दूसरों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई थी, केवल याचिकाकर्ता को निशाना बनाया गया था और बलि का बकरा बनाया गया था।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अगली बार प्रस्तुत किया कि दिनांक 3.7.1995 के आरोप पत्र में सतर्कता अधिकारी के समक्ष किसी भी स्वीकारोक्ति के बारे में कोई

संकेत नहीं है। यहां तक कि 18-7-1995 को जांच के दौरान दिए गए दस्तावेजों और गवाहों की सूची में भी सतर्कता अधिकारी की रिपोर्ट और/या स्वीकारोक्ति या गवाह के रूप में सतर्कता अधिकारी का नाम शामिल नहीं है।

17. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि माना जाता है कि बैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ है। ऐसा इसलिए है क्योंकि शिकायत स्वयं शाखा प्रबंधक द्वारा गढ़ी गई थी। दिनांक 26.5.1997 को सजा का आदेश पारित करते हुए, याचिकाकर्ता को दंडित करने के लिए सावधानीपूर्वक पूर्वनिर्धारण और पूर्वाग्रह के साथ प्रतिपक्षी सं-2 ने निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता ने ग्राहकों की नजर में बैंक की छवि को धूमिल किया है। प्रतिपक्षियों द्वारा दर्ज किया गया उक्त निष्कर्ष बिना किसी सबूत के आधारित है और अस्थिर है। प्रासंगिक समय पर लागू द्विपक्षीय समझौते के पैरा 19.6(बी) के तहत याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की सजा नहीं दी जा सकती थी।

18. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को 2.3.1995 को निलंबित कर दिया गया था। द्विपक्षीय समझौते के अनुसार, याचिकाकर्ता 2.3.1996 से निर्वाह भत्ता @ पूर्ण वेतन का हकदार था। चूंकि याचिकाकर्ता को द्विपक्षीय समझौते के अनुसार पूर्ण निर्वाह भत्ते का भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए उसके खिलाफ की गई जांच को समाप्त कर दिया गया था।

19. अपने प्रस्तुतियाँ के समर्थन में, प्रतिवादी के अधिवक्ता निम्नलिखित निर्णय पर निर्भरता रखा गया है:

(viii) आरसी सूद बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य (1998) 5 एस.सी.सी. 493 में रिपोर्ट किया गया;

(i) एके सक्सेना बनाम स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और अन्य (2016) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 187 में रिपोर्ट किया गया;

(ix) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम डीसी अग्रवाल और ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 1197 में रिपोर्ट किया गया;

(ii) पवन कुमार अग्रवाल बनाम महाप्रबंधक-II और नियुक्ति प्राधिकारी, भारतीय स्टेट बैंक और अन्य ने 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1260 में रिपोर्ट किया;

(x) फकीरभाई फूलाभाई सोलंकी बनाम पीठासीन अधिकारी और अन्य (1986) 3 एस.सी.सी. 131 में रिपोर्ट किया गया;

(iii) कुमाऊं मंडल विकास निगम लि बनाम गिरजा शंकर पंत एवं अन्य (2001)1 एस.सी.सी. 182 में रिपोर्ट किया गया;

(xi) अनिल कुमार बनाम पीठासीन अधिकारी एवं अन्य (1984) 3 एस.सी.सी. 378 में रिपोर्ट किया गया;

(iv) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम टीजे पॉल (1999) 4 एस.सी.सी. 759 में रिपोर्ट किया गया;

(xii) प्रदीप बनाम मैंगनीज ओर (इंडिया) लिमिटेड (2002)3 एस.सी.सी. 683 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन 1292 पृष्ठ 683 पर रिपोर्ट किया गया;

(v) कैप्टन एम पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड और एक अन्य (1999) 3 एस.सी.सी. 679 में रिपोर्ट किया गया;

(xiii) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010)2 एस.सी.सी. 772(2010)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस)673 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 248 पृष्ठ 782 पर रिपोर्ट किया गया;

(vi) कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त और अन्य (1999) 2 एस.सी.सी. 10 में रिपोर्ट किया गया;

(xiv) रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक (2009)2 एस.सी.सी. 570 (2009)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 398 2008 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1947 पृष्ठ 577 पर सूचित किया गया;

(vii) पी.सी. कक्कड़ बनाम अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक एवं अन्य ने 1999 में रिपोर्ट;

20. दूसरी ओर, प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ सभी आरोप भारी दस्तावेजी और अन्य सबूतों पर विचार करने पर विभागीय जांच में याचिकाकर्ता के खिलाफ स्पष्ट रूप से साबित हुए। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विभागीय कार्यवाही / जांच के दौरान, याचिकाकर्ता को पूरे समय खुद का बचाव करने के लिए उचित और उपयुक्त अवसर दिया गया था।

21. प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि 21.04.1997 को, याचिकाकर्ता व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित हुआ, हालांकि उसकी पसंद के प्रतिनिधि और याचिकाकर्ता की ओर से तर्कों के साथ-साथ याचिकाकर्ता के लिखित सबमिशन, जो पहले 27.03.1997 के प्रतिनिधित्व के साथ संलग्न थे, जांच अधिकारी की रिपोर्ट का मूल्यांकन करने के लिए विचार किया गया था।

22. प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी ने जांच के दौरान याचिकाकर्ता को बार-बार तीन प्रबंधन गवाहों से जिरह करने की सलाह दी है, लेकिन याचिकाकर्ता ने अपने दम पर उक्त गवाहों से जिरह नहीं की और इसलिए यह इस प्रकार है कि याचिकाकर्ता ने कभी भी मामले की योग्यता को संबोधित नहीं किया, वरन तुच्छ और अस्थिर आपत्तियां उठाना जारी रखा जो प्रतीत होता है प्रतिक्रियात्मक थे।

23. प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी के आदेश

दिनांक 23.12.1997 के अवलोकन से पता चलता है कि मामले के पूरे रिकॉर्ड के आधार पर और याचिकाकर्ता को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपने मामले की प्रस्तुतियाँ करने का अवसर प्रदान करने के बाद अभेद्य निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं।

24. प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की सेवा को हटाना विश्वास के पूर्ण नुकसान के आधार पर उचित है जो किसी भी सेवा का एक अभिन्न अंग है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को निर्धारित निर्वाह भत्ता का भुगतान किया गया था जो द्विपक्षीय निपटान के संदर्भ में बैंक के एक कर्मचारी को देय है। समझौते में यह प्रावधान किया गया था कि यदि एक वर्ष के बाद कामगार या कर्मचारी के कारण जांच में देरी नहीं होती है तो पूर्ण वेतन और भत्तों का भुगतान किया जाएगा। यह कहा गया है कि विभागीय जांच में देरी याचिकाकर्ता और उसके प्रतिनिधि की ओर से हुई थी, इसलिए, याचिकाकर्ता पूर्ण निर्वाह भत्ते के लिए पात्र नहीं था।

25. अपने प्रस्तुतियाँ के समर्थन में, प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता निम्नलिखित निर्णय पर निर्भरता रखा:

(i) तारा चंद व्यास बनाम अध्यक्ष और अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने रिपोर्ट किया (1997)4 एस.सी.सी. 565: 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1241 पृष्ठ 567 पर;

(ii) एल.के. वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड और अन्य अपील (सिविल) संख्या-881 वर्ष 2006 में 31.1.2006 को फैसला किया गया ;

(iii) उपाध्यक्ष, केन्द्रीय विद्यालय संगठन और एक अन्य (2004) में रिपोर्ट किया गया।

(iv) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम नरेन्द्र कुमार पाण्डेय (2013) 2 उच्चतम न्यायालय मामले 745 (2013) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 459 2013 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 54 पृष्ठ 748 पर रिपोर्ट किया गया;

(v) भारतीय स्टेट बैंक बनाम बेला बागी 2005 (7) एस.सी.सी. 435 में रिपोर्ट किया गया।

(vi) अनुशासनिक प्राधिकारी-सह-क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम निकुंज बिहारी 1996(9) एस.सी.सी. 69

(vii) एपीएसआरटीसी बनाम रघुदा शिव शंकर प्रसाद (2007) 1 एस.सी.सी. 22(2007) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 151 2006 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 1170 पृष्ठ 226 पर रिपोर्ट किया गया।

(viii) टीएनसीएस निगम बनाम के मीरा बाई (2006) 2 एस.सी.सी. 255 2006 (एस.सी.सी.) (एल एंड एस) 265 2006 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 109 पृष्ठ 267 पर रिपोर्ट किया गया

(ix) ए सुधाकर बनाम पोस्टमास्टर जनरल (2006) 4 एस.सी.सी. 348 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 817 2006 एस.सी.सी. ऑन लाइन 335 पृष्ठ 358 पर रिपोर्ट किया गया।

(xi) उप पंजीयक, सहकारी समितियां बनाम बन्नी लाल चौरसिया (2005)11 एस.सी.सी. 570 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 399 2005 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 687 पृष्ठ 570 पर।

(x) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राज किशोर यादव (2006) 5 एस.सी.सी. 673 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1185 2006 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 648 पृष्ठ 674 पर रिपोर्ट किया गया।

(xi) वी रमण बनाम (2005) 7 एस.सी.सी. 338 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 69 2005 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 1288 पृष्ठ 341 पर रिपोर्ट किया गया।

(xii) गणेश संत राम सिरूर बनाम भारतीय स्टेट बैंक (2005) 1 एस.सी.सी. 13 2006 एस.सी. (एल एंड एस) 537 2004 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 1437 पृष्ठ 20 पर।

(xiii) आंध्र प्रदेश सरकार बनाम मोहम्मद अली अशरफ फातमी।

26. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर सामग्री के साथ-साथ पक्षों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि निर्णयों का अवलोकन किया।

27. प्रस्तुत रिट याचिका में शामिल विवाद को हल करने के लिए, पक्षों के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय के ऑपरेटिव भागों को यहां नीचे दिया गया है

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया:

(i) एके सक्सेना (उपरोक्त): -

2. जांच की रिपोर्ट के आधार पर अपीलकर्ता को 2-7-1993 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। अपीलकर्ता ने विभागीय अपील की जिसे खारिज कर दिया गया। चूंकि श्रम न्यायालय का विचार था कि प्रबंधन द्वारा की गई जांच उचित और उपयुक्त नहीं थी, इसलिए 17-12-1997 के अंतिम पंचाट द्वारा यह माना गया कि अपीलकर्ता की समाप्ति अवैध थी और वापस वेतन के साथ उसकी बहाली के लिए निर्देश था। प्रतिवादी बैंक द्वारा अधिनिर्णय को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने [स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम भारत संघ, 2011 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 380: (2011)129 एफएलआर 594] याचिका की अनुमति दी और इस प्रकार, अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष है। जब मामला न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अनुसरण में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था, तो हमें सूचित किया जाता है कि यह विवादित नहीं है कि अपीलकर्ता को बकाया मजदूरी के लिए 14,05,417 रुपये और औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 17-बी के लिए 9,34,573 रुपये की राशि का भुगतान किया गया है।

5. उपरोक्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स में, हमने बैंक के अधिवक्ता से सवाल किया कि अकेले अपीलकर्ता के साथ भेदभाव कैसे किया जाता है और सेवा से बर्खास्त किया जाता है। अधिवक्ता ने सबूतों की ओर हमारा ध्यान बड़े पैमाने पर आकर्षित किया है कि अपीलकर्ता पूरे लेनदेन का किंगपिन था, एक हेड कैशियर होने के नाते, अन्य तीन ने केवल परिणामी कदमों के लिए उसके अनुरोध का पालन किया है। हमें ऊपर उल्लिखित तथ्यात्मक स्थिति को देखते हुए प्रस्तुत करने की मूल्यांकन करना मुश्किल लगता है।

6. उपरोक्त परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता पर लगाए गए दंड को उपयुक्त रूप से बदलने की स्थिति में न्याय के हित को आगे बढ़ाया जाएगा। अपीलकर्ता ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है और उसने 1993 के बाद सेवा से बाहर रहते हुए बैंक से मोटी रकम प्राप्त की है। इसलिए, यह आदेश दिया जाता है कि अपीलकर्ता को सेवा के 15 साल पूरे होने पर सेवा से सेवानिवृत्त माना जाएगा और तदनुसार, उसके सेवानिवृत्ति लाभों को फरवरी 2016 के महीने से भविष्य की पेंशन के उद्देश्य से तय किया जाएगा। चूंकि वह पहले से ही बीच में मजदूरी प्राप्त कर चुका है, इसलिए पेंशन का कोई बकाया नहीं होगा।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय न्यायालय:

18. इसके अलावा, अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विजय हंसारिया द्वारा यह हमारे ध्यान में लाया गया है कि हल्लीदयगंज शाखा के प्रबंधक श्री प्रदीप कुमार दास द्वारा उधार

दी गई ऋण राशि, उसे श्री तपन कुमार संगमा ने 1,61,000 रुपये का भुगतान करके ब्याज के साथ मंजूरी दे दी है। ओवरड्राफ्ट अनुमेय सीमा से अधिक है और इसे साबित नहीं किया गया है। संपूर्ण जांच रिपोर्ट, जिस पर प्रतिवादी बैंक द्वारा दृढ़ विश्वास किया गया है, की जांच करते समय एकल न्यायाधीश ने अपने असाधारण और मूल क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए गुण-दोष के आधार पर मामले की जांच की और भारतीय स्टेट बैंक सेवा नियमावली के नियम 68(1)(IX)(a) का उल्लेख किया, जिसमें अनुशासनिक प्राधिकारी को उन दस्तावेजों की सूची प्रस्तुत करने का अधिदेश दिया गया है जिनके माध्यम से साबित किया जाए। यह अपीलकर्ता का मामला है कि गवाहों की ऐसी सूची और दस्तावेजों की प्रतियां अनुशासनात्मक प्राधिकारी या जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत नहीं की गई थीं, जो मामले के महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिसके आधार पर जांच अधिकारी द्वारा आरोपों पर निष्कर्ष दर्ज किया गया है, जिसे उपरोक्त को संदर्भित किया गया है, यह मानते हुए कि अपीलकर्ता के खिलाफ साबित होते हैं।

(ईई) कुमाऊं मंडल विकास निगम (उपरोक्त):-

22. याचिकाकर्ता के खिलाफ निगम के प्रबंध निदेशक को पेंसठ पेज की रिपोर्ट भेजी गई है जिसमें दर्ज किया गया है कि उसके खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं - इसका आधार क्या है? क्या जांच अधिकारी का केवल आरोप पत्र के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचना न्यायोचित था? उत्तर संभवतः सकारात्मक में नहीं हो सकता है; यदि अभिलेखों पर विचार

किया गया है, तो तत्काल आवश्यकता इस बात पर विचार करने की होगी कि वह व्यक्ति कौन है जिसने इसे प्रस्तुत किया है और अगला मुद्दा अभिलेखों की प्रकृति के संबंध में हो सकता है - दुर्भाग्य से इस संबंध में अपेक्षाकृत लंबी रिपोर्ट में कोई संकेत नहीं है। प्रस्तुत करने वाला अधिकारी कहां है? सुनवाई की तारीख तय करने वाला नोटिस कहां है? गवाहों की सूची कहां है? बचाव पक्ष के गवाहों का क्या हुआ? ये सारे सवाल उठते हैं लेकिन दुर्भाग्य से लंबी रिपोर्ट में इसका कोई जवाब नहीं मिल रहा है। लेकिन यदि किसी के पास यह नहीं है तो क्या इसे न्याय की अवधारणा के अनुरूप कहा जा सकता है या यह न्याय की पूर्ण हत्या के समान है। उच्च न्यायालय इसका उत्तर न्याय की हत्या के रूप में देता है और हम इसके साथ अपनी सहमति देते हैं। पूरे मामले को इस तरह से निपटाया गया है कि इसे किसी भी न्यायोचित कारण से पूरी तरह से रहित नहीं कहा जा सकता है और इस संदर्भ में डेनबी (विलियम) एंड संस लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में किंग्स बेंच डिवीजन का एक निर्णय है। स्वास्थ्य मंत्री [(1936) 1 केबी 337: 105 एलजेकेबी 134: 154 एलटी 180] पर विचार किया जा सकता है। मंत्री के प्रशासनिक कर्तव्यों से निपटने के दौरान स्विफ्ट ने निम्नलिखित कहा है:

"मुझे नहीं लगता कि यह कहना सही है कि स्वास्थ्य मंत्री या राज्य का कोई अन्य अधिकारी जिसे संसद के अधिनियम का संचालन करना है, एक न्यायिक अधिकारी है। वह एक

प्रशासनिक अधिकारी है, जो एक प्रशासनिक कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करता है, और संसद के विशेष अधिनियमों के प्रावधानों का प्रशासन करता है। समय-समय पर, प्रशासनिक कर्तव्यों के दौरान, उसे ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनके लिए उसे व्यक्तियों के अधिकारों और संपत्ति में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता होती है, और ऐसा करने में अदालतों ने कहा है कि उसे शालीनता से नहीं, बल्कि न्याय के सामान्य आदेशों के अनुसार निष्पक्ष और उचित रूप से कार्य करना चाहिए। उन कर्तव्यों का निष्पादन मंत्री के विवेक के प्रयोग पर जोर देता है, और मुझे लगता है कि लॉर्ड हल्सबरी ने शार्प बनाम भारत संघ में क्या कहा था। वेकफील्ड [1891 एसी 173: 60 एलजे एमसी 73: 64 एलटी 180 (एचएल)] (एसी पृष्ठ 179 पर) इस तरह के विवेक के प्रयोग के संदर्भ में विचार करना महत्वपूर्ण है। उन्होंने वहां कहा: '

"विवेक" का अर्थ है जब यह कहा जाता है कि अधिकारियों के विवेक के भीतर कुछ किया जाना है कि कुछ कारण और न्याय के नियमों के अनुसार किया जाना है, निजी राय के अनुसार नहीं: रूक केस [(1598) 5 सह प्रतिनिधि 99 बी, 100 ए]; कानून के अनुसार; यह मनमाना, अस्पष्ट और काल्पनिक नहीं है, बल्कि कानूनी और नियमित है। और इसका प्रयोग उस सीमा के भीतर

किया जाना चाहिए, जिस तक अपने पद के निर्वहन के लिए सक्षम ईमानदार व्यक्ति को खुद को सीमित करना चाहिए। "

26. आम अंग्रेजी भाषा में "पूर्वाग्रह" का अर्थ है - पूर्वाग्रह या पूर्वधारणा (?) प्रबंध निदेशक ने स्वीकार किया कि प्रतिवादी के प्रति इस कारण से अच्छी तरह से व्यवहार नहीं किया गया था, जिसके कारण, प्रतिवादी को वित्तीय शक्ति के साथ-साथ विभाग के प्रशासनिक प्रबंधन से भी वंचित कर दिया गया था। यह स्व-प्रबंध निदेशक है जो प्रतिवादी के खिलाफ तेरह आरोप लगाता है और वह व्यक्ति है जो जांच अधिकारी की नियुक्ति करता है, लेकिन 26-11-1993 को दोपहर में खुद को एक नाटक सुनवाई देता है और शाम तक अठारह पृष्ठों से मिलकर समाप्ति के आदेश का संचार करता है, श्रृंखला पूरी हो गई है: पूर्वाग्रह स्पष्ट: पूर्वधारणा के रूप में पूर्वाग्रह साबित होता है।

(iv) भारतीय स्टेट बैंक (उपरोक्त): -

18. परन्तु इससे मामला समाप्त नहीं होता। प्रतिवादी के वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री पीपी राव यह तर्क देने में सही हैं कि अपीलीय प्राधिकारी, एक बार इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि मामले के तथ्यों में बर्खास्तगी की सजा की आवश्यकता नहीं थी, वह "हटाने" की सजा नहीं दे सकता था जो नियमों के पैरा 22(v) के तहत परिगणित दंड में से एक नहीं था। वास्तव में, एकल न्यायाधीश ने भी इस पहलू का उल्लेख किया था। यदि कोई अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को पढ़ता है, तो यह

स्पष्ट है कि उक्त प्राधिकरण भारतीय स्टेट बैंक (पर्यवेक्षण कर्मचारी) सेवा नियमों के नियम 49 (जी) के अनुसार चला गया था, जो कि 1977-81 की अवधि से संबंधित शुल्कों पर लागू नहीं होता है जब कोचीन बैंक के नियम लागू होते थे। भारतीय स्टेट बैंक के साथ बैंक ऑफ कोचीन का विलय 27-4-1985 को ही हुआ। यह हो सकता है कि भारतीय स्टेट बैंक के नियमों में निष्कासन की सजा का प्रावधान हो, लेकिन बैंक ऑफ कोचीन के कर्मचारियों पर लागू नियमों के पैरा 22(v) में "प्रमुख कदाचार" के लिए दंड से संबंधित नियमों में, निष्कासन उन प्रगणित दंडों में से एक नहीं है जिन्हें लगाया जा सकता है। उक्त सजा "कदाचार को माफ करने और केवल सेवा से निर्वहन" के समान नहीं है, जैसा कि उक्त नियमों के पैरा 22(v)(e) में प्रदान किया गया है।

19. अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री टीआर अंध्यारुजिना ने यह प्रस्तुत करने की कोशिश की कि यदि अपीलीय प्राधिकारी ने प्रतिवादी को खारिज नहीं करने का फैसला किया है, तो उसके पास अभी भी "हटाने" की सजा देने की अंतर्निहित शक्ति थी, जो गंभीरता में कम थी। वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस तरह की उचित सजा देने के लिए अधिकारियों के विवेक में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है भारत संघ बनाम जी गणयुतम [(1997)7 एस.सी.सी. 463: 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1806] हमारे विचार में, यह निर्णय मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। यहां न्यायालय नियोक्ता द्वारा दी गई सजा में इस आधार

पर हस्तक्षेप नहीं कर रहा है कि न्यायालय की राय में दी गई सजा कदाचार की गंभीरता से अधिक है। यहां, दंड का श्रेणीकरण स्वयं नियमों द्वारा निर्धारित किया गया है, अर्थात् बैंक ऑफ कोचीन के नियम और न्यायालय केवल इस बात पर जोर दे रहा है कि प्राधिकरण नियमों द्वारा प्रतिबंधित अपने विवेक की सीमाओं तक ही सीमित है। जहां तक बैंक ऑफ कोचीन के नियमों में "प्रमुख कदाचार" के लिए दंड की गणना और सूचीबद्ध किया गया है, हमारा विचार है कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा "निष्कासन" की सजा नहीं लगाई जा सकती थी और बैंक के लिए जो कुछ भी अनुमेय था, वह नियमों के पैरा 22(v) में उल्लिखित प्रमुख कदाचार के लिए, बिना सूचना के बर्खास्तगी के अलावा एक या दूसरे दंड तक सीमित था। हमारे इस निष्कर्ष के लिए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिए गए "निष्कासन" की सजा को अलग करने की भी आवश्यकता है। अब पैरा 22(v) के तहत उल्लिखित अन्य दंड "चेतावनी या निंदा या प्रतिकूल टिप्पणी दर्ज की जाना, या जुर्माना, या वेतन वृद्धि को रोकना/मूल वेतन में कटौती या कदाचार को माफ करना और केवल सेवा से मुक्ति है"। उच्च न्यायालय द्वारा निष्कासन को रद्द करना और परिणामी लाभों की राहत इस प्रकार कायम है। इसलिए, इस मामले को बिना किसी सूचना के बर्खास्तगी के अलावा पैरा 22(v) में एक या दूसरी सजा लगाने पर विचार करने के लिए अपीलीय प्राधिकरण के पास वापस जाना होगा।

(v) एम. पॉल एंथोनी:-

23. प्रस्तुत मामले में, पुलिस अधीक्षक ने अपीलकर्ता के आवासीय परिसर पर छापा मारा था और 4.5 ग्राम वजन का एक खनन स्पंज सोने का गोला और 1276 ग्राम "सोने की रेत" बरामद की थी। इसी आधार पर उसके खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज किया गया था। तथ्यों के एक ही सेट पर, छापे और बरामदगी का गठन करते हुए, अपीलकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की गई क्योंकि "वसूली" को "कदाचार" माना गया था। आरोप पत्र की तामील पर, अपीलकर्ता ने आपत्ति जताई कि विभागीय कार्यवाही पर रोक लगाई जा सकती है क्योंकि इन कार्यवाहियों का आधार उसके आवास पर छापा मारा गया था, जिसके आधार पर उसके खिलाफ पहले ही आपराधिक मामला शुरू किया जा चुका था। उन्होंने अनुरोध किया कि आपराधिक मामले के फैसले का इंतजार किया जा सकता है, लेकिन उनके अनुरोध को ठुकरा दिया गया। उस उद्देश्य के लिए दूसरी बार किए गए अनुरोध का भी वही हथ्र हुआ। जब अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, तो प्रतिवादियों को, यदि वे इसे उचित समझते हैं, विभागीय कार्यवाही पर रोक लगाने की स्वतंत्रता दी गई, लेकिन उन्हें उस आदेश के खिलाफ अपीलकर्ता की अपील का निपटारा करने का निर्देश दिया गया जिसके द्वारा उसे निलंबित किया गया था। उच्च न्यायालय के आदेश का प्रतिवादियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने विभागीय कार्यवाही जारी रखने का फैसला किया, जिसमें अपीलकर्ता द्वारा भाग नहीं लिया जा सका क्योंकि उसने जांच अधिकारी को सूचित किया कि वह बीमार है। इस आधार पर विभागीय कार्यवाही को स्थगित

करने के उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं किया गया और उनके खिलाफ कार्यवाही जारी रही। अंततः उन्हें आरोपों का दोषी पाया गया और सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

(वी) कुलदीप सिंह :-

32. उपरोक्त के अलावा, नियम 16(3) को संविधान के अनुच्छेद 311(2) में निहित प्रावधानों के आलोक में विचार किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या यह दोषी को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने का इरादा रखता है। अनुच्छेद 311(2) द्वारा विचारित युक्तियुक्त अवसर का अर्थ है नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार "सुनवाई" जिसके अंतर्गत मूलभूत अपेक्षाओं में से एक यह है कि विभागीय जांच में सभी साक्षियों की जांच दोषी की उपस्थिति में की जाएगी जिसे उनसे प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा। जहां प्रारंभिक जांच या परीक्षण के दौरान गवाह द्वारा पहले दिए गए बयान को विभागीय कार्यवाही में रिकॉर्ड पर लाने का प्रस्ताव है, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून यह है कि उस बयान की एक प्रति पहले दोषी को दी जानी चाहिए, जिसे उसके बाद उस गवाह से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

41. विभाग की ओर से गवाह के रूप में उपस्थित श्रीमती मीणा मिश्रा ने उस दिन अपीलार्थी को कोई भुगतान करने से इनकार किया। जिन मजदूरों को भुगतान किया गया है, उन्हें घरेलू जांच में पेश नहीं किया गया है। उनके तथाकथित पिछले बयान को नियम

16(3) के तहत रिकॉर्ड पर नहीं लाया जा सकता था। इस प्रकार, अपीलकर्ता के खिलाफ तय किए गए आरोप के समर्थन में कोई सबूत नहीं था और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए पूरे निष्कर्ष इस तथ्य के कारण दूषित हैं कि वे रिकॉर्ड पर किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं हैं और पूरी तरह से विकृत हैं।

(vii) पी. सी. कक्कड़ (उपरोक्त): -

4. हम आमतौर पर आक्षेपित आदेश के साथ नहीं होते, लेकिन इस तथ्य के लिए कि एक एमएल केशवानी, शाखा प्रबंधक, को भी 7.9.95 को याचिकाकर्ता के समान आरोप में आरोपित किया गया था। इस न्यायालय ने बैंक के अधिवक्ता को निर्देश दिया कि वे एम.एल. केशवानी के खिलाफ बैंक द्वारा की गई कार्रवाई के बारे में एक पूरक हलफनामा दायर करें, जिन्हें ओवरड्राफ्ट के लिए भी आरोपित किया गया था। इसके बाद बैंक ने एक हलफनामा दायर किया जिसमें कहा गया कि श्री केशवानी को भी याचिकाकर्ता के समान कदाचार के लिए आरोपित किया गया था। श्री केशवानी ने कई लाख रुपये के ओवरड्राफ्ट दिए, जबकि जांच अधिकारी के निष्कर्ष के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए ओवरड्राफ्ट 20,000 रुपये से कम थे। हालांकि, श्री केशवानी को केवल एक वेतन वृद्धि रोकने की सजा दी गई थी। इसलिए यह आग्रह किया जाता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ भेदभाव किया जाए।

(viii) आर. सी. सूद (उपरोक्त): -

22. इस प्रकार के साक्ष्य के आधार पर, समिति ने 4-1-1995 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिस पर तीनों न्यायाधीशों ने हस्ताक्षर किए। यह स्वाभाविक है कि सत्यनिष्ठा के उच्चतम मानकों की अपेक्षा की जाती है और प्रत्येक न्यायिक अधिकारी द्वारा इसे बनाए रखने की आवश्यकता होती है। यह इस बात को ध्यान में रखते हुए है कि भले ही कार्यवाही की आक्षेपित शुरुआत दुर्भावनापूर्ण कारणों से होने का आरोप लगाया जा रहा है, यह देखना उचित है कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप ऐसे थे जो किसी भी तरह से अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की आवश्यकता थी। इसलिए, हमने समिति की रिपोर्ट और याचिकाकर्ता के खिलाफ शिकायतों को ध्यान से देखा है ताकि हम खुद को संतुष्ट कर सकें कि क्या कोई ठोस सामग्री थी जिसके लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता थी। इस तरह की जांच के बाद, हम यह नहीं पाते हैं कि ऐसी कोई सामग्री मौजूद थी जो आक्षेपित कार्रवाई की शुरुआत को सही ठहरा सकती थी। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप आम तौर पर अस्पष्ट थे या ऐसे थे जो रिकॉर्ड से ही स्पष्ट थे या ऐसे थे जो यह नहीं दिखाते थे कि याचिकाकर्ता ने अकेले अवैधता को छोड़ दें, तो कोई अनियमितता की है। उदाहरण के लिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ मुख्य आरोपों में से एक यह था कि उसने घर बनाने के लिए ऋण प्राप्त करने में अनियमितता की थी। इस तथ्य के अलावा कि यह ऋण तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा स्वीकृत किया गया था,

याचिकाकर्ता ने ऋण की सहायता से घर का निर्माण किया है और वहां रह रहा है और ऋण राशि पहले ही वापस कर दी गई है। ऐसी परिस्थितियों में समिति का इस निष्कर्ष पर पहुंचना कि अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए, स्पष्ट रूप से अनुचित था।

25. सामान्यतः सही तथ्यों का पता लगाने के लिए जांच समितियों का गठन किया जाता है। तथापि, यहां हमारे समक्ष एक ऐसी स्थिति है जहां एक स्थानीय न्यायाधीश और दो स्थानांतरित न्यायाधीशों वाली एक समिति का गठन किया गया था जिसमें स्थानीय न्यायाधीश अकेले बैठे थे और उन गवाहों का समूह एकत्र कर रहे थे जिनके मन में याचिकाकर्ता के प्रति द्वेष था और इस प्रकार उसके विरुद्ध गवाही देना निश्चित था। इनमें से कुछ गवाह ऐसे थे जिन्होंने 30-11-1994 से पहले याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई शिकायत नहीं भेजी थी और यह केवल स्थानीय न्यायाधीश थे, जो याचिकाकर्ता के खिलाफ बयान इकट्ठा करना चाहते थे, यह जान सकते थे कि किससे संपर्क करना है और सबूत मांगना है। स्थानांतरित किए गए दो न्यायाधीशों में से जो समिति के सदस्य थे, उनमें से एक ने 20-2-1995 (20-11-1994) और 2-1-1995 के बीच साक्ष्य दर्ज किए जाने पर किसी भी कार्यवाही में भाग नहीं लिया। फिर भी वह 4-1-1995 की रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करता है। दूसरा अंतरिती न्यायाधीश वह व्यक्ति है जिसने विजय सिंह की शिकायत को स्वीकार करते हुए गैद को घुमाया था जो मूल रूप से न्यायाधीश के राजस्थान में स्थानांतरण से बहुत पहले परिचालित किया गया था।

प्रतिवादी के अधिवक्ता यह बताने में असमर्थ थे कि यह शिकायत इस न्यायाधीश के हाथ में आसानी से कैसे रखी गई थी। यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के न्यायिक करियर को समय से पहले समाप्त करने के लिए एक जानबूझकर डिजाइन किया गया था, जिसका नाम, उस समय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदोन्नति के लिए सक्रिय रूप से विचार किया जा रहा था। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि 30-11-1994 और 5-1-1995 के संकल्पों में पूर्ण न्यायालय द्वारा यह संकल्प लिया गया था कि भारत के राष्ट्रपति और भारत के मुख्य न्यायाधीश को याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच के आयोजन के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। समिति की पक्षपातपूर्ण रिपोर्ट के आधार पर कार्य करते हुए, पूर्ण न्यायालय, हमें यह जानकर दुख होता है, एक समान जारी रहा और एक निर्णय लेकर याचिकाकर्ता को बल देने के लिए आगे बढ़ा, जिसमें निष्पक्षता का अभाव था। जाहिरा तौर पर इस न्यायालय के दिनांक 22-11-1994 [1994 पूरक (3) एस.सी.सी. 711: 1995 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 231] के फैसले से स्तब्ध होकर, इसने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों का एक नया सेट शुरू करके, स्पष्ट रूप से अपने न्यायिक करियर को बर्बाद करने के उद्देश्य से जवाबी कार्रवाई की। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय द्वारा की गई कार्रवाई प्रामाणिक नहीं थी और उत्पीड़न के समान थी। यह निश्चित रूप से एक न्यायिक मंच से अपेक्षित नहीं है, कम से कम सभी उच्च न्यायालयों से, जो अपने प्रशासनिक कर्तव्यों का निर्वहन निष्पक्ष रूप से करने की उम्मीद करता है क्योंकि यह अपने न्यायिक कार्यों का निर्वहन करने के लिए आवश्यक है।

26. पूर्ण न्यायालय की बैठक की कार्यवाही आम तौर पर गोपनीय मानी जाती है। फिर यह कैसे हो सकता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ उस समय यानी 30-11-1994 को कई शिकायतें प्राप्त हुईं। तीन न्यायाधीशों की समिति की फाइल पर कुछ शिकायतें अदिनांकित हैं और यह ज्ञात नहीं है कि उन्हें कब प्राप्त किया गया था। दो शिकायतों पर तारीख 26-11-1994 है, लेकिन उनके पास समर्थन में शपथ पत्र नहीं हैं। इसलिए, यह संभव है कि ये शिकायतें विशेष रूप से पूर्ववर्ती रही हों जब इनमें से किसी भी शिकायत पर उनकी प्राप्ति की तारीख को दर्शाने वाला पृष्ठांकन न हो। मित्रुका की शिकायत 30-11-1994 की है लेकिन समर्थन में शपथ पत्र दिनांक 1-12-1994 का है। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ एक जांच सार्वजनिक रूप से विज्ञापित नहीं की जा रही थी, जिसके परिणामस्वरूप शिकायतें दर्ज की जा सकती थीं, फिर यह कैसे है कि 22-11-1994 [1994 पूरक (3) एस.सी.सी. 711:1995 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 231] को इस न्यायालय के फैसले के बाद और 30-11-1994 का संकल्प पारित होने के समय, अनचाही शिकायतें आने लगीं। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये सभी शिकायतें पूरी तरह से यह दिखाने के लिए हासिल की गई थीं कि विजय सिंह की मूल शिकायत के अलावा याचिकाकर्ता के खिलाफ अन्य शिकायतें भी थीं, जो नई जांच को सही ठहराने वाली नई सामग्री का प्रतिनिधित्व करती थीं। इन शिकायतों, उनमें से कुछ को अस्पष्ट और सामान्य आरोपों वाले बदनाम व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है, हमारे

विचार में, नई सामग्री के रूप में नहीं माना जा सकता है, जिसके लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता है। उक्त शिकायतों पर कोई गंभीर विचार करने की आवश्यकता नहीं थी और उच्च न्यायालय द्वारा उनका उल्लेख करना अनावश्यक था। इस संबंध में, हम पहले के अवसर पर याचिकाकर्ता की रिट याचिका की अनुमति देते हुए इस न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं को दोहराते हैं, जब रिपोर्ट के पृष्ठ 716 पर यह निम्नानुसार देखा गया था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 716, पैरा 14)

"14. यह मामला हमें बहुत दुखी करता है। भारत के संविधान में संगत उपबंधों, विशेष रूप से अनुच्छेद 235 के अधिनियमन द्वारा उच्च न्यायालयों को अधीनस्थ न्यायपालिका का नियंत्रण सौंपना कार्यपालिका हस्तक्षेप से उनकी स्वतंत्रता और संरक्षण सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए है। ऐसे समय में जब निष्पक्षता और गैर-मनमानापन प्रत्येक प्रशासनिक राज्य कार्रवाई की आवश्यकताएं हैं, यह न्यायाधीशों के किसी भी प्रशासनिक कार्य के लिए अधिक है। यह आवश्यक है कि अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों को अन्यथा सोचने का अवसर न मिले। हमें डर है, यह घटना इस विश्वास को हिलाती प्रतीत होती है। हमें उम्मीद है कि यह अनजाने में हुआ अपवाद है। हमें यह जानकर खेद है कि उक्त आशा ग़लत है और उपरोक्त टिप्पणियों के बावजूद, उच्च न्यायालय ने इस तरह से कार्य किया जिसे केवल

मनमाना और अनुचित कहा जा सकता है, कम से कम कहने के लिए।

(ix) भारतीय स्टेट बैंक (उपरोक्त):

-

6. यहां तक कि कोई पूर्वाग्रह प्रस्तुत नहीं करना भी अच्छी तरह से स्थापित नहीं है। प्रतिवादी बैंक का एक बहुत वरिष्ठ अधिकारी था। उन्हें अगस्त 1980 में शीर्ष कार्यकारी ग्रेड में पदोन्नत किया गया था। हमने मेरिट में प्रवेश करने से परहेज किया है, लेकिन एक बार अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने पाया कि प्रतिवादी की कार्रवाई से बैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ है और न ही प्रतिवादी को इससे कोई नुकसान हुआ है, उच्च न्यायालय को प्रक्रियात्मक त्रुटि के आदेश को रद्द करने में खुद को गलत दिशा में नहीं कहा जा सकता है।

(स) फकीरभाई फूलभाई सोलंकी :-

11. यह संभावना है कि अधिनियम की धारा 33(1) या धारा 33(3) के तहत दायर कुछ मामलों में (जो "अनुमति" खंड हैं और "अनुमोदन" खंड नहीं हैं) किसी भी प्राधिकरण के समक्ष लंबित हैं, प्रबंधन संबंधित कामगार को किसी भी निर्वाह भत्ते का भुगतान नहीं कर सकता है।

इसलिए, हम स्पष्ट करते हैं कि ऐसे मामलों में प्रबंधन के लिए यह खुला होगा कि वह प्राधिकरण द्वारा तय किए जाने वाले उचित समय के भीतर, उस अवधि के लिए निर्वाह भत्ते का भुगतान करे, जिसके दौरान कामगार को बिना मजदूरी के और कार्यवाही जारी रखने के लिए निलंबित रखा जाता है। ऐसा निर्वाह भत्ता स्थायी आदेशों के तहत निर्धारित राशि, यदि कोई हो, होगी, जिसे प्रबंधन कामगार को भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा यदि उसे ऐसे आवेदन के लंबित रहने के दौरान या प्राधिकारी द्वारा ऐसे किसी स्थायी आदेश के अभाव में निलंबित रखा जाता है जिसके समक्ष ऐसा आवेदन लंबित है। ऐसे मामले में जहां कार्यवाही पूरी हो गई है और अधिनियम की धारा 33(1) या धारा 33(3) के तहत आवेदन के लंबित रहने के दौरान निलंबन की अवधि के लिए निर्वाह भत्ते का भुगतान न करने के आधार पर बर्खास्तगी के आदेश को सफलतापूर्वक चुनौती दी गई है, यह प्रबंधन के लिए खुला होगा कि वह भुगतान करने के बाद अधिनियम की धारा 33(1) या धारा 33(3) के तहत फिर से प्राधिकरण की अनुमति मांग सकता है या संबंधित कामगार को संबंधित प्राधिकारी द्वारा निर्धारित

किए जाने वाले उचित समय के भीतर, ऊपर बताई गई दर पर निर्वाह भत्ते की बकाया भुगतान करने की पेशकश करना। हालांकि इस मामले में, मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, हम प्रबंधन को अधिनियम की धारा 33(3) के तहत फिर से अनुमति के लिए आवेदन करने का कोई अवसर नहीं देना चाहते हैं। तथ्यों के आधार पर हमारा मानना है कि इस मामले में अपीलकर्ता को बर्खास्तगी की सजा अत्यधिक लगती है, लेकिन हमारा फैसला इस आधार पर आधारित नहीं है।

12. इसलिए, हम ट्रिब्यूनल के आदेश/अवार्ड को रद्द करते हैं और अधिनियम की धारा 33(3) के तहत प्रबंधन द्वारा किए गए आवेदन को खारिज करते हैं। हम अधिनियम की धारा 33-ए के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर शिकायत को स्वीकार करते हैं। प्रबंधन को अपीलकर्ता को अपनी सेवा में बहाल करने और 13 अगस्त, 1979 से उसे देय सभी मजदूरी और भत्ते का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है जैसे कि उसकी सेवा की निरंतरता में कोई विराम नहीं था। तदनुसार, अपीलों को लागत के साथ अनुमति दी जाती है।

(ग) अनिल कुमार:-

5. हमने अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को निकाला है। हमने जांच अधिकारी की रिपोर्ट को भी स्पष्ट शब्दों में बताया है। यह सुस्थापित है कि अनुशासनात्मक जांच एक अर्ध-न्यायिक जांच होनी चाहिए जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार हो और जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह न्यायिक रूप से कार्य करे। जांच अधिकारी ने साक्ष्य पर अपना दिमाग नहीं लगाया। गवाहों के नाम बताने के अलावा उन्होंने सबूतों पर चर्चा नहीं की। उन्होंने केवल अपना यह आदेश दर्ज किया कि आरोप सिद्ध हो जाते हैं। उन्होंने एक भी कारण नहीं बताया कि अपीलकर्ता द्वारा पेश किए गए सबूत उनके लिए अपील क्यों नहीं करते हैं या उन्हें विश्वसनीय नहीं माना जाता है। उन्होंने अपने दिमाग में झांकने की अनुमति नहीं दी कि प्रबंधन द्वारा पेश किए गए सबूतों ने अपीलकर्ता द्वारा पेश किए गए सबूतों को दायर करते हुए उनसे अपील क्यों की। अर्ध-न्यायिक जांच में जांच रिपोर्ट में निष्कर्ष के कारणों को दर्शाया जाना चाहिए। यह जांच अधिकारी का आदेश नहीं हो सकता। यह इस अर्थ में एक बोलने का क्रम होना चाहिए कि

निष्कर्ष कारणों द्वारा समर्थित है। यह एक मिसाल द्वारा समर्थित होने के लिए बहुत अच्छी तरह से तय है। मध्य प्रदेश इंडस्ट्रीज लिमिटेड में भारत संघ [ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 671: (1966) 1 एस.सी.आर 466: (1966)1 एस.सी.जे 204] इस न्यायालय ने कहा कि एक बोलने वाला आदेश सबसे अच्छा उचित होगा और कम से कम प्रशंसनीय होगा। जनता को इस एकमात्र सुरक्षा उपाय से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। इसी प्रकार महाबीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम उत्तर प्रदेश की स्लेट [ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 671: (1971)1 एस.सी.आर 201] इस न्यायालय ने दोहराया कि विवादित दावे का संतोषजनक निर्णय केवल तभी किया जा सकता है जब इसे प्राधिकरण से अपील करने वाले सबसे ठोस कारणों द्वारा समर्थित किया जाए। यह और भी अधिक होना चाहिए जहां अर्ध-न्यायिक जांच के परिणामस्वरूप आजीविका से वंचित हो सकता है या चरित्र को कलंक लग सकता है। इस मामले में जांच रिपोर्ट एक आदेश पत्र है जो केवल उस चरण का उत्पादन करती है जिसके माध्यम से जांच पारित हुई। इसने स्पष्ट रूप से दिमाग का उपयोग न करने का खुलासा किया और यह वह

रिपोर्ट है जिस पर महाप्रबंधक ने अपीलकर्ता की सेवा समाप्त करने का काम किया। दिमाग न लगाने का इससे बड़ा घोर मामला नहीं हो सकता था और यह एक ऐसी जांच है जिसे श्रम न्यायालय और उच्च न्यायालय का समर्थन मिला है।

6. जहां एक अनुशासनात्मक जांच आजीविका को प्रभावित करती है और एक कलंक डालने की संभावना है और इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार अवधारित किया जाना है, न्यूनतम अपेक्षा यह है कि रिपोर्ट तर्कसंगत होनी चाहिए। न्यायालय तब साक्ष्य की पर्याप्तता या उपयुक्तता में प्रवेश नहीं कर सकता है। लेकिन जहां साक्ष्य को आदेश पत्र के साथ जोड़ दिया जाता है और दोनों के बीच कोई सह-संबंध स्थापित नहीं होता है, हम यह देखने के लिए विवश हैं कि यह जांच रिपोर्ट है ही नहीं। इसलिए, इस मामले में नाम के लायक कोई जांच नहीं हुई थी और इस तरह की कार्यवाही के आधार पर समाप्ति का आदेश यह खुलासा करता है कि दिमाग का प्रयोग नहीं करना अस्थिर होगा।

(xii) प्रदीप (उपरोक्त): -

6. उक्त मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ ने विधि निर्णय की

समीक्षा के बाद, जिसमें पहले के दो तीन न्यायाधीशों की बेंचों का सर्वेक्षण शामिल था [हिंदुस्तान टिन वर्क्स (पी) लिमिटेड बनाम कर्मचारी, (1979)2 एस.सी.सी. 80: 1979 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 53], [सुरेंद्र कुमार वर्मा बनाम केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, (1980)4 एस.सी.सी. 443: 1981 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 16] इस न्यायालय के रूप में निष्कर्ष निकाला: (दीपाली गुंडू सुरवासे मामला [दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय, (2013)10 एस.सी.सी. 324: (2014) 2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 184], एस.सी.सी. पीपी 356-59, पैरा-38 और 42)

38.5. जिन मामलों में सक्षम न्यायालय या न्यायाधिकरण यह पाता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को पीड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित अदालत या ट्रिब्यूनल पूर्ण बैक वेतन के भुगतान का निर्देश देने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगा। ऐसे मामलों में, उच्चतर न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत

शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय आदि द्वारा पारित अधिनिर्णय में, केवल इसलिए कि कर्मचारी/कामगार की पूर्ण वेतन पाने की पात्रता या नियोक्ता के दायित्व पर एक अलग राय बनाने की संभावना है, हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अदालतों को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि गलत तरीके से सेवा समाप्त करने के मामलों में, गलत करने वाला नियोक्ता है और पीड़ित कर्मचारी/कामगार है और नियोक्ता को उसके गलत कामों के लिए प्रीमियम देने का कोई औचित्य नहीं है, जिससे उसे कर्मचारी/कामगार को पूर्ण वेतन के रूप में उसकी बकाया राशि का भुगतान करने का बोझ से राहत मिल सके।

(xiii) उत्तर प्रदेश राज्य

28. एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में है। उसे विभाग/अनुशासनिक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त है कि आरोप साबित हुए हैं। प्रस्तुत मामले में पूर्वोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि

किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता था कि उत्तरदाताओं के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

29. उपर्युक्त के अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के आधार पर प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार विभागीय जांच की जानी थी। नैसर्गिक न्याय के नियमों की यह मूलभूत अपेक्षा है कि किसी कर्मचारी को ऐसी किसी कार्यवाही में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाए जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारी को दंड दिया जा सके।

30. जब सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की जाती है तो इसे एक आकस्मिक अभ्यास के रूप में नहीं माना जा सकता है। जांच की कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने की आवश्यकता है ताकि न केवल यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय किया जाता है बल्कि प्रकट रूप से किया जाता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकारी कर्मचारी के साथ कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए जिसके परिणामस्वरूप बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित सजा दी जा सकती है।

31. शौघेसी बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका [97 एल एड 956: 345 यूएस 206(1952)] (जैक्सन) में, संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय

के एक न्यायाधीश ने कहा है: (एल एड पृष्ठ 969)

“... प्रक्रियात्मक निष्पक्षता और नियमितता स्वतंत्रता का अनिवार्य सार है। गंभीर मूल कानूनों को सहन किया जा सकता है यदि वे निष्पक्ष रूप से लागू होते हैं।

32. प्रासंगिक दस्तावेजों के गैर प्रकटीकरण के प्रभाव डी स्मिथ, वूल्फ और जोएल, 5 वें संस्करण, पृष्ठ 442 द्वारा प्रशासनिक कार्यवाई की न्यायिक समीक्षा में कहा गया है के रूप में इस प्रकार है:

“यदि प्रासंगिक साक्ष्य सामग्री का खुलासा किसी ऐसे पक्ष के लिए नहीं किया जाता है, जो संभावित रूप से पूर्वाग्रह से ग्रस्त है, तो प्रथम दृष्टया अनुचितता है, भले ही विचाराधीन सामग्री सुनवाई से पहले, उसके दौरान या बाद में उत्पन्न हुई हो। इस प्रस्ताव को बड़ी संख्या में आधुनिक मामलों द्वारा चित्रित किया जा सकता है जिसमें प्रशासनिक न्यायाधिकरणों और अन्य निर्णायक निकायों द्वारा अघोषित रिपोर्टों का उपयोग शामिल है। यदि निर्णायक निकाय न्यायिक न्यायाधिकरण के ट्रैपिंग है या है और साक्ष्य प्राप्त करता है या प्राप्त करने के लिए प्रकट होता है जो पूरी तरह से खुलासा नहीं किया गया है, या प्रक्रिया के दौरान या सुनवाई के समापन के बाद पूर्व पक्षीय निरीक्षण करता है, निर्णय को अलग करने का मामला स्पष्ट रूप से बहुत मजबूत है; यह कहावत कि न्याय होते हुए दिखना चाहिए, आसानी से लागू किया जा सकता है।

हमारी राय में पूर्वोक्त कहावत इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से लागू होती है।

33. जैसा कि प्रस्तुत मामले में पहले देखा गया है, न केवल प्रतिवादी को उसके खिलाफ भरोसा किए जाने वाले दस्तावेजों तक पहुंच से वंचित कर दिया गया है, बल्कि उसकी निंदा की गई है क्योंकि जांच अधिकारी जांच के संचालन के लिए कोई तारीख तय करने में विफल रहा। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में एक भी गवाह की जांच नहीं की गई है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने सही कहा है कि पूरी कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण उल्लंघन और निष्पक्ष खेल की पूर्ण अवहेलना में की गई है। प्रतिवादी के पास कार्यवाही के किसी भी चरण में आरोप-पत्र में लगाए गए आरोपों के खिलाफ स्पष्टीकरण देने का कोई अवसर नहीं था।

34. काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ के मामले में यह न्यायालय भारत संघ [(1986) 3 एस.सी.सी. 229: 1986 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 502: (1986) 1 एटीसी 176] ने स्पष्ट रूप से दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्ति की आवश्यकता वाले नियम के औचित्य को बताया था, जो अधिकारियों द्वारा सरकारी कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए भरोसा करने की मांग की गई थी। उस मामले में जांच की कार्यवाही को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि गवाहों के बयान और दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध न कराने के परिणामस्वरूप प्राकृतिक

न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ था। अपीलकर्ता ने प्रारंभिक जांच में दस्तावेजों की प्रतियों के साथ-साथ गवाहों के बयानों की आपूर्ति करने का अनुरोध किया था। अपीलकर्ता द्वारा किए गए अनुरोध को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

35. गवाहों के बयानों में दस्तावेजों तक पहुंच के महत्व पर विचार करते हुए आरोपों को प्रभावी तरीके से पूरा करने के लिए इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: (काशीनाथ दीक्षित मामला [(1986) 3 एस.सी.सी. 229: 1986 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 502: (1986) 1 एटीसी 176], एस.सी.सी. पीपी 234-35, पैरा 10)

“10. ... जब एक सरकारी कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर रहा है, तो वह प्रभावी तरीके से उसके खिलाफ आरोपों को पूरा करने के लिए एक उचित अवसर का हकदार है। और विभागीय जांच का सामना करने वाला कोई भी व्यक्ति प्रभावी रूप से आरोपों को पूरा नहीं कर सकता है जब तक कि उसके खिलाफ इस्तेमाल किए जाने वाले प्रासंगिक बयानों और दस्तावेजों की प्रतियां उसे उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं। ऐसी प्रतियों के अभाव में, संबंधित कर्मचारी अपना बचाव कैसे तैयार कर सकता है, गवाहों से जिरह कैसे कर सकता है और यह दिखाने के लिए कि आरोप अविश्वसनीय हैं, विसंगतियों को कैसे इंगित कर सकता है? यह समझना मुश्किल है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने एक अडियल मुद्रा क्यों अपनाई और इस संबंध में अपीलकर्ता द्वारा किए गए विशिष्ट अनुरोध के बावजूद

प्रतियां प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया। शायद अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने इसे प्रतिष्ठा का मुद्दा बना दिया। यदि केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने खुद से सवाल पूछा होता: 'सामग्री उपलब्ध कराने में क्या नुकसान है?' और पेशेवरों और विपक्षों को तौला जाता, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी इस तरह के कठोर और अड़ियल रवैये को यथोचित रूप से नहीं अपना सकता था। एक तरफ विभागीय जांच में निवेश किए गए समय और प्रयास के बर्बाद होने का जोखिम था अगर अदालतें इस निष्कर्ष पर पहुंची कि इन सामग्रियों की आपूर्ति करने में विफलता अपीलकर्ता को खुद का बचाव करने के लिए उचित अवसर से वंचित करने के समान होगी। दूसरी ओर, दस्तावेजों और बयानों की प्रतियां उपलब्ध कराकर, अनुशासनात्मक प्राधिकरण कोई जोखिम नहीं उठा रहा था। इसमें कुछ भी गोपनीय या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था।

36. उस मामले में तथ्यों की एक परीक्षा पर, अपीलकर्ता के लिए कोई पूर्वाग्रह कारण किया गया था कि प्राधिकरण की ओर से प्रस्तुति, निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ खारिज कर दिया गया था: (काशीनाथ दीक्षित मामले [(1986) 3 एस.सी.सी. 229: 1986 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 502: (1986) 1 एटीसी 176], एस.सी.सी. पी. 236, पैरा 12)

"12. जैसा भी हो, यहां तक कि मिनट के विवरण में जाने के बिना भी यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता जांच के दौरान दस्तावेजों और बयानों तक पहुंच का हकदार था। उन्हें इन दस्तावेजों और बयानों की आवश्यकता होगी

ताकि उन 38 गवाहों से जिरह की जा सके, जिन्हें उनके खिलाफ आरोपों को स्थापित करने के लिए जांच में पेश किया गया था। इसी तरह बहस के समय भी, उसे दस्तावेजों की प्रतियों की आवश्यकता होगी। इसलिए भी उसे दस्तावेजों की प्रतियों की आवश्यकता होगी ताकि वह दस्तावेजों की सामग्री के संदर्भ में गवाहों से प्रभावी ढंग से जिरह कर सके। यह स्पष्ट है कि यदि उन्हें प्रतियां उपलब्ध नहीं कराई गई होती तो वह ऐसा नहीं कर सकते थे। मामले के समग्र दृष्टिकोण को देखते हुए, हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता को खुद को दोषमुक्त करने के उचित अवसर से वंचित कर दिया गया है।

37. हमारा विचार है कि पूर्वोक्त टिप्पणियां इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से लागू होती हैं। जांच की कार्यवाही में सरकारी कर्मचारी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करने की क्षमता वाले दस्तावेजों का खुलासा न करना स्पष्ट रूप से सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जांच किए जा रहे आरोपों के लिए एक प्रशंसनीय और प्रभावी खंडन प्रस्तुत करने के उचित अवसर से वंचित करना होगा।

38. विधि के पूर्वोक्त प्रतिपादन को तिरलोक नाथ बनाम भारत संघ के मामले में दोहराया गया है। भारत संघ [1967 एसएलआर 759 (एस.सी.)] जिसमें यह माना गया था कि दस्तावेजों की गैर-आपूर्ति उचित अवसर से इनकार करने के समान है। यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: (एसएलआर पीपी 764-65)

“... अगर उसने ऐसा करने का फैसला किया होता, तो दस्तावेज अपीलकर्ता के लिए उन गवाहों से जिरह करने के लिए उपयोगी होते, जिन्होंने उसके खिलाफ गवाही दी थी। फिर से अगर अपीलकर्ता को दस्तावेजों की प्रतियां प्रस्तुत की गई होतीं, तो वह उन्हें पढ़ने के बाद, नियम के तहत अपने अधिकार का प्रयोग करता और मौखिक जांच करने के लिए कहता। इसलिए, हमारे विचार में जांच अधिकारी द्वारा अपीलकर्ता को दस्तावेजों की प्रतियां जैसे कि प्रथम सूचना रिपोर्ट और शिदीपुरा के घर में दर्ज किए गए बयानों और जांच के दौरान प्रस्तुत करने में विफलता को अपीलकर्ता को जांच में अपना बचाव करने में पूर्वाग्रह का कारण माना जाना चाहिए।

39. कानून का प्रस्ताव कि विभागीय जांच का सामना करने वाला एक सरकारी कर्मचारी सभी प्रासंगिक बयानों, दस्तावेजों और अन्य सामग्रियों का हकदार है ताकि उसे आरोपों के खिलाफ विभागीय जांच में खुद का बचाव करने का उचित अवसर मिल सके, किसी भी और पुनरावृत्ति की आवश्यकता के लिए बहुत अच्छी तरह से स्थापित है। फिर भी इस मामले के तथ्यों को देखते हुए हम पंजाब राज्य बनाम भगत राम [(1975)1 एस.सी.सी. 155: 1975 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 18] में इस न्यायालय द्वारा बताए गए कानून पर फिर से जोर दे सकते हैं: (एस.सी.सी. पृष्ठ 156, पैरा 6-8)

"6. राज्य ने तर्क दिया कि प्रतिवादी बयानों की प्रतियां प्राप्त करने का हकदार नहीं था। राज्य का तर्क यह था कि प्रतिवादी को गवाहों

से जिरह करने का अवसर दिया गया था और जिरह के दौरान प्रतिवादी को गवाहों के बयानों का सामना करने का अवसर मिलेगा। यह तर्क दिया जाता है कि सारांश प्रतिवादी को साक्ष्य के सार से परिचित कराने के लिए पर्याप्त था।

7. की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने के उचित अवसर का अर्थ यह है कि सरकारी कर्मचारी को उन आरोपों के खिलाफ खुद का बचाव करने का उचित अवसर दिया जाता है जिन पर जांच की जाती है। सरकारी कर्मचारी को अपने अपराध से इनकार करने और अपनी बेगुनाही साबित करने का मौका दिया जाना चाहिए। वह ऐसा तब कर सकता है जब उसे बताया जाए कि उसके खिलाफ क्या आरोप हैं। वह अपने खिलाफ पेश किए गए गवाहों से जिरह करके ऐसा कर सकता है। बयानों की आपूर्ति का उद्देश्य यह है कि सरकारी कर्मचारी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जांच किए जाने वाले प्रस्तावित गवाहों के पिछले बयानों का उल्लेख करने में सक्षम होगा। जब तक सरकारी कर्मचारी को बयान नहीं दिए जाते, तब तक वह एक प्रभावी और उपयोगी जिरह नहीं कर पाएगा।

8. सरकारी कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में जांच के दौरान जांच और जांच में पेश किए गए गवाहों के बयानों की प्रतियों से सरकारी सेवक को वंचित करना अन्यायपूर्ण और अनुचित है। एक सारांश सरकारी कर्मचारी को प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर देने की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है।

40. हम यहां यह भी देख सकते हैं कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने यह तर्क देने की मांग की कि प्रतिवादी नियम 9 के तहत जारी कारण बताओ नोटिस का जवाब देने में भी विफल रहा था। उनके अनुसार, निष्कासन आदेश, इसलिए उचित था। हम पूर्वोक्त निवेदन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। दिनांक 3-8-2001 की प्रथम जांच रिपोर्ट पहले बताए गए कारणों से स्पष्ट रूप से गलत है। दूसरी जांच रिपोर्ट को कानूनी रूप से जांच रिपोर्ट नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह पहले की जांच रिपोर्ट की पुनरावृत्ति है। दस्तावेजों की आपूर्ति के बिना जांच रिपोर्ट का जवाब देने के लिए प्रतिवादी को कहना चोट के अपमान को जोड़ना है।

41. हमारी राय में अपीलकर्ताओं ने जानबूझकर रिट याचिका संख्या-937 वर्ष 2003 में उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों को गलत समझा है। पूर्वोक्त आदेश के संदर्भ में, प्रतिवादी को अपीलकर्ता द्वारा आवश्यक दस्तावेज की आपूर्ति पर आरोप-पत्र का जवाब प्रस्तुत करना आवश्यक था। यही कारण है कि उच्च न्यायालय ने बाद में रिट याचिका संख्या-793 वर्ष 2004 में 7-6-2004 को अंतरिम आदेश पारित करते हुए अपीलकर्ता को 23-7-2003 को डिवीजन बैंच द्वारा पारित आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। हमारी राय में संबंधित दस्तावेजों की आपूर्ति किए बिना रिपोर्ट तैयार करने में जांच अधिकारियों की कार्रवाई के परिणामस्वरूप प्रतिवादी को न्याय की हत्या हुई है। निष्कर्ष अप्रतिरोध्य है कि प्रतिवादी को

जांच कार्यवाही में खुद का बचाव करने के लिए उचित अवसर से वंचित कर दिया गया है।

42. हमारी राय में, अपीलकर्ता कोई उचित स्पष्टीकरण देने में बुरी तरह विफल रहे हैं कि प्रतिवादी को दस्तावेज क्यों नहीं दिए गए हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने निष्कासन के आदेश को बहुत ही उचित रूप से रद्द कर दिया।

43. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि प्रतिवादी को जांच में खुद का बचाव करने के लिए एक उचित अवसर से वंचित कर दिया गया था। इसलिए, हमारे पास उच्च न्यायालय के फैसले में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

(शिव) रूप सिंह नेगी:-

14. निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा जांच के दौरान सभी अभियुक्तों के विरुद्ध एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनिक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और

उसकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ प्राथमिकी पर भरोसा किया गया था जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

15. हमने यहां पहले देखा है कि एकमात्र बुनियादी सबूत जिस पर जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया है, वह पुलिस के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा की गई कथित स्वीकारोक्ति थी। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे थाना में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति को साबित किया जाना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चोरी करने में लिप्त था। बेशक, कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट का भाव दर्शाता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।

प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय:

(आई) तारा चंद व्यास :-

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री बीडी शर्मा का तर्क है कि आरोपों के प्रमाण के लिए किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई और न ही उन्हें जिरह करने का कोई अवसर दिया गया

और याचिकाकर्ता ने अपनी देयता पर विवाद किया है। परिणामस्वरूप, पूरी जांच रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि से दूषित हो गई थी। हमें इस विवाद में कोई दम नजर नहीं आता। आरोपों का जोर यह था कि उन्होंने डीलरों को ऋण देने से पहले पर्याप्त सुरक्षा हासिल करके बैंक के हितों की रक्षा के लिए एक जिम्मेदार अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन नहीं किया था, और ऋणकर्ताओं को माल की आपूर्ति सुनिश्चित नहीं की थी। यह दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है जो पहले से ही रिकॉर्ड का हिस्सा रहा है और इसकी प्रतियां याचिकाकर्ता को दी गई थीं। उन परिस्थितियों में, हमें नहीं लगता कि रिकॉर्ड पर हस्तक्षेप की आवश्यकता के लिए कोई स्पष्ट त्रुटि है। इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि आरोपों को साबित करने के लिए निष्कर्षों के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया गया है। जांच अधिकारी ने प्रत्येक आरोप पर विस्तार से चर्चा की थी और कारण दिए थे जिन पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था और इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि आरोप साबित हुए थे। अपीलीय प्राधिकरण भी ऐसा ही था। वे दीवानी न्यायालय की तरह नहीं हैं।

(ii) एलके वर्मा (उपरोक्त): -

हमारी सुविचारित राय में श्रम आयुक्त ने उक्त आदेश पारित करने में स्वयं को गलत दिशा दी। जबकि, एक ओर, उन्होंने देखा कि अपीलकर्ता ने यहां कहा था कि प्रारंभिक जांच के दौरान उसने अपने मन में तनाव के कारण ये बयान दिए थे, उसने कहा कि उसके खिलाफ कोई सबूत पेश नहीं किया गया था

जिसके लिए उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि स्वीकार की गई चीजों को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। [देखें उपाध्यक्ष, केन्द्रीय विद्यालय संगठन और अन्य बनाम गिरधारीलाल यादव, (2004) 6 एस.सी.सी. 325] एक बार जब अपीलकर्ता ने स्वीकार कर लिया कि उसने ऐसे कथन किए जिनमें सभ्यता की कमी है और उसने एक वरिष्ठ अधिकारी को भी धमकी दी है, तो यह उसके लिए था कि वह यह दिखाए कि उसे बाद में पछतावा हुआ। यदि वह तनाव में था, तो वह बाद के चरण में, कम से कम माफी मांग सकता था। उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसके अलावा, जांच अधिकारी के समक्ष, उक्त आरोपों को साबित करने के लिए गवाहों की जांच की गई। संबंधित अधिकारी श्री सिन्हा ने भी 18.5.1996 को अपीलकर्ता के दुर्यवहार की घटना का उल्लेख करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। जांच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रबंधन और गवाह दोनों ने एक-दूसरे के बयानों की पुष्टि की और हालांकि उनसे पूरी तरह से जिरह की गई थी, उक्त आरोप के संबंध में उनके बयानों में कोई विरोधाभास नहीं पाया गया।

(ईआई) उपाध्यक्ष, केन्द्रीय विद्यालय संगठन -

11. स्वीकृत तथ्य नियुक्ति प्राधिकारी लेकिन अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी; साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 58 के संदर्भ में स्वीकार किए गए तथ्यों को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत भी है कि प्राकृतिक न्याय

के सिद्धांतों को बहुत दूर तक नहीं खींचा जाना चाहिए और इसे सीधे सटीक फार्मूले में नहीं रखा जा सकता है। बार काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम केरल उच्च न्यायालय [(2004) 6 एस.सी.सी. 311] में इस न्यायालय ने देखा है कि: (एस.सी.सी. पी. 324, पैरा 49-50)

"24. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, यह अच्छी तरह से तय है, एक सीधे सटीक सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। इसका आवेदन प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यह भी अच्छी तरह से तय है कि यदि कोई पक्ष उचित नोटिस के बाद उपस्थित नहीं होना चाहता है, तो उसे बाद के चरण में यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। इस प्रश्न पर सोहन लाल गुप्ता बनाम आशा देवी गुप्ता [(2003) 7 एस.सी.सी. 492] में इस न्यायालय की एक पीठ द्वारा विचार किया गया था, जिनमें से हम में से दो (वी. एन. खरे, सी. जे और सिन्हा) पक्षकार हैं, जिसमें बड़ी संख्या में निर्णयों को देखते हुए यह अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 506, पैरा 29)

"29. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, यह सुस्थापित है, इसे सीधे सटीक फॉर्मूला में नहीं रखा जा सकता है। किसी दिए गए मामले में, पक्ष को न केवल यह दिखाने की आवश्यकता होनी चाहिए कि उसके पास प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करने के परिणामस्वरूप उचित नोटिस नहीं था, बल्कि यह भी दिखाना चाहिए कि वह गंभीर रूप से पूर्वाग्रह से ग्रस्त था।

25. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, यह अच्छी तरह से तय है, बहुत दूर तक नहीं खींचा जाना चाहिए।

(यह सभी देखें मार्टिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ [(2004) 4 एस.सी.सी. 311: (2004) 4 स्केल 338] और केनरा बैंक बनाम देबासिस दास [(2003) 4 एस.सी.सी. 557: 2003 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 507].)

भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल [(1985)3 एससीसी 398: 1985 एससीसी (L&S) 672] में, जिस पर श्री रेड्डी द्वारा भरोसा किया गया है, इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एससीसी p. 477, पैरा 97)

'97. हालांकि प्राकृतिक न्याय के दो नियम, अर्थात्, कारण सुआ में निमो जुडेक्स और ऑडी अल्टरम पार्टम का अब कानून में एक निश्चित अर्थ है और उनकी सामग्री और निहितार्थ अच्छी तरह से समझे गए हैं और दृढ़ता से स्थापित हैं, फिर भी वे वैधानिक नियम नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक नियम विभिन्न स्थितियों की अनिवार्यताओं के साथ उपज और परिवर्तन करता है। वे उन स्थितियों पर समान तरीके से लागू नहीं होते हैं जो समान नहीं हैं। इन नियमों को कठोर सांचे में नहीं ढाला जाता है और न ही इन्हें कानूनी जकड़न में रखा जा सकता है। वे अपरिवर्तनीय नहीं बल्कि लचीले हैं। इन नियमों को संविधियों और सांविधिक नियमों द्वारा और अधिकरण के गठन द्वारा भी अनुकूलित और परिवर्तित किया जा सकता है जिसे किसी विशेष मामले और उन नियमों का निर्णय

करना होता है जिनके द्वारा ऐसे अधिकरण शासित होते हैं। ”

सबी बनाम नरेन्द्र कुमार पांडे:-

20. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में त्रुटि की है कि आरोप पत्र में दस्तावेजों के विवरण और गवाहों के नामों के बारे में उल्लेख किया जाना चाहिए था, जिनकी जांच बैंक ने करने का प्रस्ताव किया था और उस प्रभाव की एक सूची आरोप-पत्र में संलग्न की जानी चाहिए थी। हम यह बता सकते हैं कि आरोप पत्र में दस्तावेजों का विवरण या आरोपों को साबित करने के लिए जांच किए जाने वाले प्रस्तावित गवाहों के नाम या उस प्रभाव की सूची शामिल होने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि उस प्रभाव का कोई विशिष्ट प्रावधान न हो। दूसरे शब्दों में, आरोप पत्र से सबूत का रिकॉर्ड होने की उम्मीद नहीं की जाती है। निष्पक्ष प्रक्रिया का मतलब यह नहीं है कि दस्तावेजों की प्रतियां या गवाहों की सूची आरोप पत्र के साथ दी जाए। निस्संदेह, आरोपों के विवरण को आरोप-पत्र के साथ संलग्न करना होता है, जब सेवा नियमों द्वारा अपेक्षित होता है।

22. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में भी त्रुटि की है कि चूंकि आरोपों के समर्थन में किसी गवाह की जांच नहीं की गई थी, इसलिए यह बिना सबूत का मामला था। हमारे विचार से एकपक्षीय जांच में यदि आरोप सामान्य कार्य के अंतर्गत रखे गए दस्तावेजों से उत्पन्न होते हैं तो उन आरोपों को सिद्ध करने के लिए किसी मौखिक साक्ष्य

की आवश्यकता नहीं है। जब आरोपित अधिकारी जांच में शामिल नहीं होता है, तो वह यह तर्क नहीं दे सकता है कि जांच प्राधिकारी को उन दस्तावेजों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जो उसे उपलब्ध नहीं कराए गए थे या खुलासा नहीं किए गए थे। निस्संदेह, एकपक्षीय जांच में भी, आरोपों को स्थापित करने के लिए कुछ साक्ष्य आवश्यक होते हैं, विशेषकर जब आरोपित अधिकारी आरोपों से इनकार करता है, ऐसी स्थिति में अकाट्य दस्तावेजी साक्ष्य आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त होते हैं।

25. उच्च न्यायालय, हमारे विचार में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक पूर्ण जांच के बाद नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा पारित बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप करने में न्यायसंगत नहीं था, खासकर जब सेवा नियम अपील के वैकल्पिक उपाय के लिए प्रदान करते हैं। यह कानून का एक स्वीकृत सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता है। बेशक, इसका अधिकार क्षेत्र कानून की त्रुटि या प्रक्रियात्मक त्रुटि, यदि कोई हो, को ठीक करने के लिए सीमित है, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है। एसबीआई बनाम रमेश दिनकर पुंडे [(2006)7 एस.सी.सी. 212: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1573] में इस न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय अपील की अदालत के रूप में कार्य करने वाले सबूतों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता है। हमने तथ्यों

के आधार पर पाया है कि बैंक, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी या जांच प्राधिकारी द्वारा कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता नहीं की गई है। अनुशासनात्मक कार्यवाही सख्ती से सेवा नियमों के अनुसार की गई थी।

27. लक्ष्मी देवी शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम राम सरूप [ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 82] में इस न्यायालय ने कहा कि जहां एक कामगार जानबूझकर जांच में भाग लेने से इनकार करता है, वह शिकायत नहीं कर सकता कि बर्खास्तगी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है। एक बार जब जांच एकपक्षीय हो जाती है, तो जांच प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक नहीं होता है कि वह आरोपित अधिकारी को मौखिक रूप से या लिखित रूप में अपने बचाव के बारे में बताने के लिए फिर से कहे। हम इस मामले में आरोपित अधिकारी के आचरण का मूल्यांकन नहीं कर सकते, जो जांच प्राधिकारी के सामने पेश नहीं हुए और अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया, लेकिन यह कहते हुए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है।

(v) भारतीय स्टेट बैंक:-

15. एक बैंक अधिकारी को ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के उच्च मानकों का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। वह जमाकर्ताओं और ग्राहकों के धन का लेन-देन करता है। बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी से अपेक्षा की जाती है कि वह बैंक के हितों की रक्षा के लिए हर

संभव कदम उठाए और अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा, ईमानदारी, निष्ठा और परिश्रम के साथ करे और ऐसा कुछ भी न करे जो बैंक अधिकारी को शोभा न दे। अच्छा आचरण और अनुशासन बैंक के प्रत्येक अधिकारी/ कर्मचारी के कामकाज से अविभाज्य है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकरण-सह-क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम निकुंज बिहारी पटनायक [(1996) 9 एससीसी 69: 1996 एससीसी (L&S) 1194] में देखा गया था, यह कहने के लिए कोई बचाव उपलब्ध नहीं है कि कोई हानि या लाभ नहीं हुआ जिसके परिणामस्वरूप मामला हुआ, जब अधिकारी/कर्मचारी ने बिना अधिकार के काम किया। किसी संगठन, विशेषकर बैंक का अनुशासन ही उसके प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी पर निर्भर करता है जो अपने आबंटित क्षेत्र में कार्य करते और प्रचालन करते हैं। किसी के अधिकार से परे कार्य करना अपने आप में अनुशासन का उल्लंघन है और एक कदाचार है। कर्मचारी के खिलाफ आरोप प्रकृति में आकस्मिक नहीं थे और गंभीर थे। ऐसा होने के कारण, हानि की अनुपस्थिति के बारे में दलील भी निराधार है।

(vi) अनुशासनात्मक प्राधिकरण-सह-क्षेत्रीय प्रबंधक: -

7. यह उल्लेख किया जा सकता है कि आरोपों के ज्ञापन में, पूर्वोक्त दो नियमों को प्रतिवादी द्वारा उल्लंघन किया गया है। विनियम 3 में बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी से यह अपेक्षा की गई है कि वह बैंक के हितों की रक्षा के लिए सभी संभव कदम उठाए और

अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा, ईमानदारी, और परिश्रम के साथ करे और ऐसा कुछ भी न करे जो बैंक अधिकारी को शोभा न दे। इसमें अधिकारी/कर्मचारी को अच्छे आचरण और अनुशासन बनाए रखने और अपने आधिकारिक कर्तव्यों के प्रदर्शन में या उसे प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता होती है। विनियम 3 का उल्लंघन विनियम 24 के अर्थ के भीतर 'कदाचार' है। जांच अधिकारी के निष्कर्ष जिन्हें अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है, और जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा छोड़ा नहीं गया है, स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि कई मामलों में प्रतिवादी ने ओवरड्राफ्ट की अनुमति दी या अपने अधिकार से परे पर्याप्त राशि वाले चेक पारित किए। सच है, यह है कि कुछ मामलों में, इस तरह के कृत्यों से कोई नुकसान नहीं हुआ है। यह भी सच है कि कुछ अन्य उदाहरणों में इस तरह के कृत्यों ने बैंक को लाभ पहुंचाया है, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि कुछ अन्य उदाहरणों में, बैंक के धन को खतरे में डाल दिया गया है; ये प्रक्रिया नुकसानदायक और अपरिवर्तनीय हो गया है। यह एक एकल कार्य नहीं है; यह कार्रवाई का एक कोर्स है जो पर्याप्त रूप से लंबी अवधि में फैला हुआ है और इसमें बड़ी संख्या में लेनदेन शामिल हैं। बैंक के मामले में, उस मामले में, किसी अन्य संगठन के मामले में -प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने प्राधिकार की सीमाओं के भीतर कार्य करे। यदि प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी को उसके प्राधिकार से बाहर जाकर कार्य करने की अनुमति दी जाती है, तो संगठन/बैंक का

अनुशासन समाप्त हो जाएगा; बैंक का कामकाज अराजक और अप्रबंधनीय हो जाएगा। बैंक के प्रत्येक अधिकारी को अपना छोटा साम्राज्य बनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिसमें वह एहसान और उदारता प्रदान करता है। कोई भी संगठन, विशेष रूप से, एक बैंक ठीक से और प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकता है यदि उसके अधिकारी और कर्मचारी निर्धारित मानदंडों और अनुशासन का पालन नहीं करते हैं। इस तरह की अनुशासनहीनता को इस आधार पर माफ नहीं किया जा सकता है कि यह गुप्त उद्देश्यों या बाहरी विचारों से प्रेरित नहीं थी। अधिकार से परे कार्य करना -वह भी पर्याप्त रूप से लंबी अवधि में फैले आचरण का एक कोर्स और असंख्य उदाहरणों को शामिल करना -अपने आप में एक कदाचार है। इस तरह के कृत्यों, यदि अनुमति दी जाती है, तो कुछ मामलों में लाभ ला सकते हैं लेकिन उनसे भारी नुकसान भी हो सकता है। इस तरह के रोमांच बैंकों के कर्मचारियों को नहीं दिए जाते हैं जो सार्वजनिक धन का सौदा करते हैं। अगर हम बैरिंग्स बैंक के पतन के कारणों के बारे में जो सुनते हैं वह सच है, तो यह सिंगापुर में तैनात एक मामूली अधिकारी, निक लेसन के कृत्यों के लिए जिम्मेदार है, जिसे उसके वरिष्ठों ने अपने अधिकार से परे कार्य करने की अनुमति दी थी। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एक संगठन का अनुशासन और अधिक विशेष रूप से, एक बैंक अपने प्रत्येक कर्मचारी और अधिकारियों पर निर्भर करता है जो अपने आवंटित क्षेत्र के भीतर कार्य और संचालन करते हैं। किसी के अधिकार से परे कार्य करना अपने आप में अनुशासन का उल्लंघन और

विनियमन 3 का उल्लंघन है। यह विनियमन 24 के अर्थ के भीतर कदाचार का गठन करता है। नुकसान का कोई और सबूत वास्तव में आवश्यक नहीं है, हालांकि तथ्य की बात के रूप में, इस मामले में ऐसे निष्कर्ष हैं कि प्रतिवादी द्वारा अपने अधिकार से परे कई अग्रिम और ओवरड्रॉल की अनुमति अपरिवर्तनीय हो गई है। सिर्फ इसलिए कि इसी तरह के कृत्यों से कुछ लाभ हुआ है -भारी लाभ, जैसा कि उच्च न्यायालय ने कहा है -वे कम दोषी नहीं हैं। उन्हें निर्णय की त्रुटियों के रूप में चिह्नित करना गलत है। यह सुझाव नहीं दिया गया है कि प्रतिवादी एक श्रेणी। अधिकारी होने के नाते अपने अधिकार या अपनी शक्तियों की सीमाओं से अवगत नहीं था। वास्तव में, आरोप 9, जिसे पूर्ण रूप से स्थापित किया गया है, इस आशय का है कि इस तरह के अभ्यास को रोकने के लिए क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा निर्देशों के बावजूद, प्रतिवादी इस तरह के कृत्यों में लिप्त रहा। जांच अधिकारी ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि प्रतिवादी ने उक्त निर्देशों की अवहेलना की है और इस तरह वैध आदेशों की अवज्ञा का कार्य किया है। इसी तरह, आरोप 8, जिसे भी पूर्ण रूप से स्थापित किया गया है, इस आशय का है कि अनुस्मारक के बावजूद, प्रतिवादी ने क्षेत्रीय कार्यालय को "नियंत्रण विवरणी" प्रस्तुत नहीं की। हम यह समझने में विफल हैं कि इन सब को निर्णय की त्रुटियों के रूप में कैसे परिभाषित किया जा सकता है और विनियमों द्वारा परिभाषित कदाचार के रूप में नहीं। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में स्पष्ट त्रुटि की है कि प्रतिवादी का पूर्वोक्त आचरण कदाचार नहीं है या यह विनियम 3 और 24 का उल्लंघन नहीं है।

8. हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री वी.ए. मोहता ने हमारे सामने निष्पक्ष रूप से कहा कि इस मामले में उच्च न्यायालय के तर्क और दृष्टिकोण को बनाए रखना उनके लिए संभव नहीं है। उनका एकमात्र निवेदन यह था कि प्रतिवादी की उम्र (37 वर्ष) और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय प्रतिवादी को दी गई सजा को कम सजा से बदल सकता है। अधिवक्ता ने सुझाव दिया कि बर्खास्तगी के अलावा कोई भी सजा इस न्यायालय द्वारा लगाई जा सकती है। हमने इस अनुरोध पर उस सावधानी से विचार किया जिसके वह हकदार हैं, लेकिन हमें खेद है कि हम इसे स्वीकार करने में असमर्थ हैं। बैंक के अधिवक्ता, श्री वी.आर. रेड्डी, अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल, ने भी बैंक के निर्देश पर कहा कि बैंक के लिए प्रतिवादी को उसके आचरण को देखते हुए अपनी सेवा में समायोजित करना संभव नहीं है।

(vii) A.P.S.R.T.C. (उपरोक्त): -

15. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और श्रम न्यायालय और उच्च न्यायालय और अन्य अनुलग्नकों द्वारा पारित आदेशों का अवलोकन किया है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय इस बात का मूल्यांकन करने में विफल रहा है कि दोषी कर्मचारी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि उसने निगम की संपत्ति चुराई है। श्रम न्यायालय ने सबूतों के सावधानीपूर्वक अवलोकन पर, प्रतिवादी को सेवा से हटाने का सही आदेश दिया। जब दोषी कर्मचारी ने जांच

अधिकारी के समक्ष अपना अपराध स्वीकार किया कि उसने पान की दुकान से अल्टरनेटर को पुलिस अधिकारियों को सौंप दिया था और आगे यह गवाही दी कि उसने चोरी की संपत्ति सौंप दी थी और श्रम न्यायालय से उसे माफ करने का अनुरोध किया क्योंकि यह उसका पहला अपराध था, तो ट्रिब्यूनल ने रिकॉर्ड पर मौजूद संपूर्ण तथ्यात्मक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और उसकी सावधानीपूर्वक जांच करने के बाद अनुरोध को सही तरीके से रद्द कर दिया। यह माना जाता है कि दोषी कर्मचारी किसी भी सहानुभूति के लायक नहीं है और इसलिए उसने सेवा से हटाने का आदेश दिया।

17. इसी तरह, डिवीजन बैंक के न्यायाधीश भी इस बात की मूल्यांकन किया करने में विफल रहे कि एक बार श्रम न्यायालय ने अपने फैसले में मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सेवा से निष्कासन का आदेश दिया, तो यह हस्तक्षेप के योग्य नहीं है और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र में उच्च न्यायालय हटाने के उक्त आदेशों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

18. जांच रिपोर्टों से यह भी स्पष्ट रूप से पता चलता है कि विभागीय जांच प्रक्रिया का पालन करने और विनियमों के अनुसार दोषी अधिकारी को उचित और उपयुक्त अवसर देने के बाद अवधारित की गई थी।

19. एकल न्यायाधीश ने दोषी कर्मचारी के पिछले आचरण को उदार दृष्टिकोण अपनाने के

आधारों में से एक माना। हमारे विचार में, विभागीय कार्यवाही में कामगार का पिछला आचरण प्रासंगिक नहीं है। इसी प्रकार, एकल न्यायाधीश ने यह निर्णय देकर गलती की है कि कामगार अपनी पिछली सेवाओं के दौरान चोरी के किसी कदाचार में शामिल नहीं था और उस आधार पर सेवा की निरंतरता के साथ बहाली प्रदान की।

20. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश इस बात की मूल्यांकन किया करने में भी विफल रहे हैं कि एक बार जब कोई कर्मचारी नियोक्ता का विश्वास खो देता है, तो कर्मचारी को सेवा में जारी रखना सुरक्षित और निगम के हित में नहीं होगा। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रबंधन द्वारा लगाई गई सजा अनुपातहीन नहीं है और यह कि सेवा से हटाने की सजा न्यायसंगत और उचित है और साबित कदाचार के अनुपात में है।

21. हमारे विचार में, प्रतिवादी द्वारा की गई चोरी कदाचार के बराबर है और इसलिए, हमें एकल न्यायाधीश और डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेशों को रद्द करने और प्रतिवादी को सेवा से हटाने के आदेश को बहाल करने में कोई संकोच नहीं है। जब श्रम न्यायालय ने आरोप सिद्ध कर दिए हैं तो एकल न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया। प्रस्तुत मामले में, श्रम न्यायालय में निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण और निष्पक्ष रूप से किया गया है। हमारी राय में, बहाली का आदेश देने में उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया, सेवा की निरंतरता पहले

से साबित किए गए आरोपों की प्रकृति के लिए आश्चर्यजनक रूप से अनुपातहीन थी जो चोरी की प्रकृति में है।

22. यह ट्रिब्यूनल और अदालतों के लिए भी खुला नहीं है कि वे घरेलू ट्रिब्यूनल में पहुंचे एक के स्थान पर अपनी व्यक्तिपरक राय को प्रतिस्थापित करें। प्रस्तुत मामले में, निगम द्वारा बनाई गई राय को ट्रिब्यूनल द्वारा सही रूप से स्वीकार किया गया था, लेकिन अदालत द्वारा नहीं। इसलिए, हम मानते हैं कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश और डिवीजन बेंच द्वारा पारित बहाली का आदेश इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला के आधार पर कानून के विपरीत है। ऐसे मामलों में, न्यायिक मंचों की ओर से निष्कासन की सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करने के लिए उदारता या सहानुभूति के लिए कोई जगह नहीं है जिसे उचित नहीं ठहराया जा सकता है। इसी तरह, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए सजा को संशोधित कर सकता है, जब उसे पता चलता है कि लगाया गया दंड साबित किए गए आरोपों से अधिक है।

23. इसलिए प्रतिवादी की सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है। हमारी राय में, प्रतिवादी को निगम में बने रहने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में कहा है कि विश्वास की हानि प्राथमिक कारक पर कब्जा कर लेती है, न कि धन की मात्रा और सहानुभूति और उदारता एक कारक नहीं हो सकती है जो ऐसे मामलों में कानून में

स्वीकार्य है। जब कर्मचारी चोरी का दोषी पाया जाता है, तो निगम द्वारा ऐसे कर्मचारी पर विश्वास या विश्वास खोने और निष्कासन की सजा देने में कुछ भी गलत नहीं है। ऐसे मामलों में, न्यायिक मंचों की ओर से उदारता या सहानुभूति का कोई स्थान नहीं है और सजा की मात्रा में हस्तक्षेप किया जाता है।

(viii) टी.एन.सी.एस. लिमिटेड (उपरोक्त):-

प्र.28. श्री फ्रांसिस द्वारा किए गए अन्य विवाद प्रक्रियात्मक अनियमितता के संबंध में हैं, जो उनके अनुसार, प्रतिवादी की ओर से लापरवाही नहीं कहा जा सकता है। हम पहले ही निर्णय दे चुके हैं कि अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी दोनों ने अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए पर्याप्त कारण दिए हैं। इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में कहा है कि हस्तक्षेप की अनुमति नहीं है जब तक कि अर्ध-न्यायिक अधिकारियों द्वारा पारित आदेश स्पष्ट रूप से अनुचित या विकृत या प्रकट रूप से अवैध या घोर अन्यायपूर्ण न हों।

29. श्री फ्रांसिस ने यह भी प्रस्तुत किया कि 34,436.85 रुपये की राशि 6,88,737.12 रुपये के कुल नुकसान का 5% है, प्रतिवादी से वसूल करने की मांग की गई है और वर्तमान विभागीय कार्यवाही प्रतिवादी के खिलाफ एकमात्र ज्ञात आरोप है और पहले ऐसा कोई आरोप नहीं था और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा एक उदार दृष्टिकोण लिया जाना चाहिए और दोनों पक्षों द्वारा प्रार्थना की गई राहत को इस न्यायालय द्वारा उपयुक्त रूप से ढाला जा सकता है। हम उपरोक्त सबमिशन से, जो

हमारी राय में बलहीन है, सहमत होने में असमर्थ हैं। न्यायिक समीक्षा का दायरा बहुत सीमित है। एक कारक के रूप में सहानुभूति या उदारता की अनुमति नहीं है। हमारे विचार में, विश्वास की हानि प्राथमिक कारक है न कि धन की मात्रा का दुरुपयोग। प्रस्तुत मामले में, प्रतिवादी कर्मचारी को निगम के धन के दुरुपयोग का दोषी पाया जाता है। निगम द्वारा ऐसे कर्मचारी पर विश्वास खोने और बर्खास्तगी की सजा देने में कुछ भी गलत नहीं है। ऐसे मामलों में, न्यायिक मंचों की ओर से उदारता या गलत सहानुभूति के लिए कोई जगह नहीं है और अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दी गई सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करना है।

35. प्रस्तुत मामले में, आरोपित कर्मचारी विश्वास की स्थिति रखता है जहां ईमानदारी और अखंडता कामकाज की अंतर्निहित आवश्यकताएं हैं और इसलिए, हमारी राय में, इस मामले को उदारता से नहीं, सख्त हाथों से निपटाया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, प्रतिवादी सार्वजनिक धन से संबंधित है और वित्तीय लेनदेन में लगा हुआ है या एक प्रत्ययी क्षमता में कार्य करता है और इसलिए, उच्चतम स्तर की अखंडता और विश्वसनीयता जरूरी और असाधारण है। उस पृष्ठभूमि में निर्णय लेने पर, उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यथा पुष्टि की गई एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष उचित प्रतीत नहीं होता है। हमें इसे रद्द करने और अनुशासनात्मक अधिकारियों द्वारा बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखने के आदेश को बहाल करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है।

ए) सुधाकर:-

27. सजा की मात्रा से संबंधित डॉ. पिल्लई के तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि किसी भी राशि का अस्थायी गबन स्वयं अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए अपीलकर्ता पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा लगाने के लिए पर्याप्त था और मामले के उस दृष्टिकोण में, यह सवाल कि तीसरा आरोप आंशिक रूप से साबित हुआ था, है।

28. होम्बे गौड़ा एजुकेशनल ट्रस्ट बनाम कर्नाटक राज्य [(2006)1 एस.सी.सी.430: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 133] इस बेंच ने कहा: (एस.सी.सी. पीपी 436-37, पैरा 17-20)

"17. ट्रिब्यूनल का अधिकार क्षेत्र औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 11-ए के तहत एक के समान है। इस तरह के विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, इसमें कोई संदेह नहीं है कि ट्रिब्यूनल के लिए एक सजा को दूसरे द्वारा प्रतिस्थापित करने के लिए खुला है; लेकिन यह भी सुस्थापित है कि ट्रिब्यूनल इस ओर से एक सीमित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है। दण्ड की मात्रा में हस्तक्षेप करने के क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अत्यधिक असंगत पाया जाए।

18. इस न्यायालय ने बार-बार कानून निर्धारित किया है कि ट्रिब्यूनल के हाथों इस तरह का हस्तक्षेप अन्य बातों के साथ-साथ इस निष्कर्ष

पर पहुंचने पर होना चाहिए कि कोई भी उचित व्यक्ति ऐसी सजा नहीं दे सकता है। ट्रिब्यूनल अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है जब प्रबंधन द्वारा प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में नहीं रखा जाता है जिसका सजा की मात्रा के सवाल पर सीधा असर पड़ता है।

19. कार्यस्थल पर वरिष्ठ पर हमला करना घोर अनुशासनहीनता के बराबर है। प्रतिवादी एक शिक्षक है। गंभीर उकसावे में भी एक शिक्षक से यह उम्मीद नहीं की जाती है कि वह संस्थान के प्रमुख को गंदी भाषा में गाली दे और उस पर चप्पल से हमला करे। इसलिए, सेवाओं से बर्खास्तगी की सजा को पूरी तरह से अनुपातहीन नहीं कहा जा सकता है ताकि किसी की अंतरात्मा को झटका लगे।

20. एक व्यक्ति, जब सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है, तो उसे बहुत कठिनाई होती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि एक गंभीर कदाचार को दंडित नहीं किया जाना चाहिए। यद्यपि आनुपातिकता का सिद्धांत ऐसे मामलों में लागू हो सकता है, लेकिन इस तरह के कदाचार के लिए सेवा से बर्खास्तगी की सजा को अनसुना नहीं कहा जा सकता है। किसी संस्थान के अनुशासन का रखरखाव भी उतना ही महत्वपूर्ण है। उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम इसके बाद इस न्यायालय के कुछ हालिया न्याय-निर्णयों पर ध्यान दे सकते हैं।

(यह भी देखें उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शिव शंकर लाल श्रीवास्तव [(2006) 3 एस.सी.सी. 276: जेटी (2006) 3 एस.सी. 48], वर्कमेन

बनाम सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड की भुरकुंडा कोलियरी [(2006) 3 एस.सी.सी. 297: जेटी (2006) 2 एस.सी. 1] , सिंडिकेट बैंक बनाम वेंकटेश गुरुराव कुराटी [(2006) 3 एस.सी.सी. 150: जेटी (2006) 2 एस.सी. 73] , एलके वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड [(2006) 2 एस.सी.सी. 269: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 278 जेटी (2006) 2 एस.सी. 99] और कॉमर। पुलिस बनाम सैयद हुसैन [(2006) 3 एस.सी.सी. 173: जेटी (2006) 2 एस.सी. 332]।

(x) उप रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां :-

2. संक्षेप में कहा गया है, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं:

प्रतिवादी को उत्तर प्रदेश सहकारी संघीय प्राधिकरण में सहकारी पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 68 के तहत उनके खिलाफ शुरू की गई विभागीय कार्यवाही के चिंतन में निलंबित कर दिया गया था। जांच अधिकारी द्वारा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, प्रतिवादी की सेवाओं को समाप्त करने और अधिनियम की धारा 68 के तहत उससे राशि वसूलने के लिए 21-12-1993 को एक संकल्प पारित किया गया था। इसके बाद, 20-1-1994 के आक्षेपित आदेश द्वारा, प्रस्तावित सजा पर एक नोटिस से पहले, उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। इससे व्यथित होकर, प्रतिवादी ने इलाहाबाद में न्यायिक उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका

दायर की। एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर गहन विचार करने के बाद, रिट याचिका को खारिज कर दिया। हम यहां उल्लेख कर सकते हैं कि रिट याचिका में उठाया गया एकमात्र विवाद प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था, क्योंकि उसे अपने मामले को समझाने का अवसर देने के लिए कोई नोटिस नहीं दिया गया था। इस तर्क को एकल न्यायाधीश द्वारा निरस्त कर दिया गया था कि अपीलकर्ता द्वारा पंजीकृत डाक द्वारा उसे पर्याप्त नोटिस भेजे गए थे, लेकिन वह अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहा। एकल न्यायाधीश ने यह भी देखा कि 10-7-1993 को प्रतिवादी उपस्थित नहीं हुआ। दैनिक जागरण समाचार पत्र में 2-10-1993, 9-10-1993 और 28-11-1993 को भी नोटिस प्रकाशित किए गए थे। प्रतिवादी ने 13-7-1993, 2-10-1993 और 28-11-1993 को तीन आवेदन भी प्रस्तुत किए। एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी को पर्याप्त अवसर दिया गया है। अवसर का लाभ उठाने में विफल रहने के बाद, प्रतिवादी को अब यह कहने की अनुमति नहीं है कि उसे कोई अवसर नहीं दिया गया है।

3. उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने मुख्य रूप से दो आधारों पर एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को उलट दिया। सबसे पहले, प्रतिवादी को प्रस्तावित सजा का कोई नोटिस नहीं दिया गया है। इस निष्कर्ष को दिनांक 13-7-1993 के नोटिस द्वारा ध्वस्त कर दिया गया है। उपरोक्त नोटिस से, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी को नोटिस में रखा गया था कि उसे

सेवा से बर्खास्त क्यों नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी ने उपरोक्त नोटिस का जवाब नहीं दिया। इसलिए, पहला आधार जिस पर खण्ड न्यायपीठ ने एकल न्यायाधीश के आदेश को उलट दिया, वह त्रुटिपूर्ण है। दूसरा आधार जिस पर खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के आदेश को उलट दिया, वह यह है कि अधिनियम की धारा 68 के तहत, प्रतिवादी को बर्खास्त करने या हटाने का आदेश देने का कोई प्रावधान नहीं है। हालांकि यह सच है कि अधिनियम की धारा 68 के तहत, ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन अपीलकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने तर्क दिया कि, वास्तव में, बर्खास्तगी का आदेश विनियमन 68 के तहत पारित किया गया था, न कि अधिनियम की धारा 68 के तहत। अधिवक्ता हमें सहकारी संघीय प्राधिकरण (व्यवसाय) विनियम, 1976 के विनियमन 68 के प्रावधानों पर भी ले गए हैं। अपीलकर्ता द्वारा दायर अतिरिक्त हलफनामे के साथ संलग्न विनियमन 68 को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह प्राधिकरण को बर्खास्तगी, हटाने या रैंक में कमी जैसी बड़ी सजा देने का अधिकार देता है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राधिकरण अधिनियम की धारा 68 और विनियमन 68 के बीच भ्रमित था। जैसा कि यह हो सकता है, 13-7-1993 को प्रस्तावित सजा पर नोटिस को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रतिवादी पर प्रस्तावित सजा विनियमन 68 के तहत पारित की गई प्रतीत होती है, न कि अधिनियम की धारा 68 के तहत, हालांकि आक्षेपित आदेश में अधिनियम की धारा 68 का उल्लेख है।

(xi) उत्तर प्रदेश राज्य:-

4. अधिकारियों के सामने रखी गई संपूर्ण सामग्री पर विचार करने पर, वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बर्खास्तगी का आदेश न्याय के सिद्धांतों को पूरा करेगा। जब बर्खास्तगी के आदेश की शुद्धता को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की गई थी, तो उच्च न्यायालय ने इस आधार पर बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप किया कि शिकायत किए गए कार्य प्रतिवादी की ओर से सरासर गलतियाँ या त्रुटियाँ थीं और इसके लिए प्रतिवादी को कोई सजा नहीं दी जा सकती थी। हमारी राय में, बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने वाला उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश निर्णय की त्रुटि के अलावा और कुछ नहीं है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय रिट याचिका की अनुमति देने और बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने और सभी आर्थिक और परिणामी सेवा लाभों के साथ सेवा की निरंतरता प्रदान करने में न्यायसंगत नहीं था। यह स्थापित कानून है कि उच्च न्यायालय के पास भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में राज्य की प्रशासनिक कार्यवाही में हस्तक्षेप का दायरा सीमित है और इसलिए, जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों और सेवा से बर्खास्तगी की सजा के परिणामी आदेश को छोड़ा नहीं जाना चाहिए। जैसा कि पहले ही देखा गया है, आरोप प्रकृति में बहुत गंभीर हैं और किसी भी संदेह से परे साबित हुए हैं। हमने जांच रिपोर्ट और अनुशासनिक प्राधिकारी तथा अधिकरण के आदेश का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और हम अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड

में संशोधन करने में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों से सहमत नहीं हो पा रहे हैं। संक्षेप में, उच्च न्यायालय का निर्णय विकृत के अलावा और कुछ नहीं है। इसलिए, हमारे पास उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करने और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को बहाल करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, जिसमें प्रतिवादी को सेवा से बर्खास्त करने का आदेश दिया गया है। तदनुसार आदेश दिया जाता है। सिविल अपील की अनुमति दी जाती है।

(xii) वी. रमण (उपरोक्त):

4. अपील के समर्थन में अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 11-ए के सिद्धांतों को लागू करके सजा की मात्रा के सवाल पर विचार करना चाहिए था। आगे यह प्रस्तुत किया गया था कि मामूली खामियां थीं और राशि के छोटे होने पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है और सेवा समाप्ति का आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए था। प्रतिवादी निगम के अधिवक्ता ने ट्रिब्यूनल के आदेश और उच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन किया। कर्नाटक एसआरटीसी बनाम बीएस हुल्लीकट्टी [(2001) 2 एस.सी.सी. 574: 2001 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 469: जेटी (2001) 2 एस.सी. 72] में, यह माना गया था कि ऐसे मामलों में कदाचार जहां बस कंडक्टर ने या तो बड़ी संख्या में यात्रियों को टिकट जारी नहीं किया था या कम मूल्यवर्ग के टिकट जारी किए थे, हटाने की सजा उचित

है। यह कंडक्टरों की जिम्मेदारी है कि वे यात्रियों से सही किराया वसूल करें और उसे निगम के पास जमा करें। वे न्यासी की हैसियत से कार्य करते हैं और यदि वे कोई किराया या किराए की सही राशि एकत्र नहीं करते हैं तो यह घोर कदाचार का मामला होगा। एक कंडक्टर विश्वास का पद रखता है। विश्वासघात के दोषी व्यक्ति को सेवा से हटाने की सजा दी जानी चाहिए। तथ्यात्मक स्थिति से पता चलता है कि अपीलकर्ता का आचरण निर्दिष्ट स्थान पर किराया एकत्र करना और उन व्यक्तियों से किराया एकत्र नहीं करना जो पहले ही यात्रा कर चुके थे, आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1963(संक्षेप में "विनियम") में निहित विभिन्न नियमों का उल्लंघन था। कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन मामले [(2001)2 एस.सी.सी. 574: 2001 एस.सी.सी. (एल एंड एस)469: जेटी (2001)2 एस.सी. 72] में यह माना गया था कि अदालतों द्वारा कम सजा देने में यह गलत सहानुभूति है जहां जांच करने पर यह पाया जाता है कि बस कंडक्टरों ने बड़ी संख्या में यात्रियों को टिकट जारी नहीं किए हैं, हालांकि उन्हें कम मूल्यवर्ग के टिकट जारी करने चाहिए थे, या पूरी तरह से अच्छी तरह से जानते हुए कि सही किराया वसूला जाना है। अंत में यह माना गया कि बर्खास्तगी के आदेश को रद्द नहीं किया जाना चाहिए था। क्षेत्रीय प्रबंधक, आरएसआरटीसी बनाम घनश्याम शर्मा [(2002)10 एस.सी.सी.330: 2003एस.सी.सी. (एल&एस)714: (2002)1 एलएलजे 234] में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा इस विचार को दोहराया गया था, जहां यह अतिरिक्त रूप से

देखा गया था कि साबित कार्य बेईमानी / घोर लापरवाही का मामला है, और बस कंडक्टर, जो अपने कार्यों या निष्क्रियता से निगम को वित्तीय नुकसान पहुंचाते हैं, सेवा में बनाए रखने के लिए फिट नहीं हैं।

6. सजा की मात्रा के साथ हस्तक्षेप का दायरा इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का विषय रहा है। इस तरह का हस्तक्षेप नियमित मामला नहीं हो सकता।

11. इन सभी निर्णयों में सामान्य थीम यह है कि अदालत को प्रशासक के फैसले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि यह इस अर्थ में कि यह तर्क या नैतिक मानकों की अवहेलना में था, अतार्किक न हो या प्रक्रियात्मक अनौचित्य से ग्रस्त न हो या अदालत की अंतरात्मा को चौंकाने वाला न हो। वेडनेसबरी मामले में जो कहा गया है उसे देखते हुए [एसोसिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउस लिमिटेड बनाम वेडनेसबरी कॉर्पोरेशन, (1948)1 केबी 223: (1947)2 इला ईआर 680 (सीए)] अदालत प्रशासक द्वारा उसके लिए खुले विकल्प की शुद्धता में नहीं जाएगी और अदालत को प्रशासक के लिए अपने फैसले को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए। न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया में कमी तक सीमित है न कि निर्णय तक।

12. इसे दूसरे शब्दों में कहें तो जब तक अनुशासनिक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाई गई सजा न्यायालय/न्यायाधिकरण की अंतरात्मा को झकझोर नहीं देती, तब तक हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। इसके

अतिरिक्त, मुकदमों को कम करने के लिए अपवादात्मक और दुर्लभ मामलों में इसके समर्थन में ठोस कारण दर्ज करके उचित दंड अधिरोपित किया जा सकता है। सामान्य स्थिति में, यदि अधिरोपित दंड आश्चर्यजनक रूप से अनुपातहीन है, तो अनुशासनिक प्राधिकारी अथवा अपीलीय प्राधिकारी को अधिरोपित शास्ति पर पुनर्विचार करने का निदेश देना उचित होगा।

(xiii) गणेश संत राम सिरूर -

14. दूसरे विवाद के संबंध में कि आरोप पर विचार जो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा साबित नहीं किया गया था, श्री राममूर्ति ने प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी ने उन आरोपों पर विचार किया था जो सजा को बढ़ाते समय साबित नहीं हुए थे। श्री राममूर्ति के अनुसार, अपीलीय प्राधिकारी केवल सेवा नियमों के नियम 34(3)(1) के उल्लंघन में अपीलकर्ता की पत्नी को ऋण के वितरण के संबंध में आरोप 5 से संबंधित था और अपीलीय प्राधिकारी का आदेश किसी भी तरह से यह खुलासा नहीं करता है कि अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप साबित होने वाली परिस्थितियों पर विचार करके इसे पारित किया गया था। आरोप 1 पर श्री राममूर्ति के तर्क को स्वीकार करते हुए भी, अपीलकर्ता आरोप 5 से बाहर नहीं आ सकता है, जो प्रकृति में अधिक गंभीर और जघन्य है। हालांकि, हम देखते हैं कि आरोप 5 पर विचार करते समय आरोप 1 पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा की गई टिप्पणियों को केवल एक पासिंग अवलोकन के रूप में माना जाना चाहिए और साथ ही हम आरोप 5 पर

अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्ष के संबंध में अपनी आंखें बंद नहीं कर सकते हैं जो प्रकृति में अधिक गंभीर है। अपीलीय प्राधिकरण ने सेवा नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए सजा को बढ़ाया था और हम इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं देखते हैं। जैसा कि पहले ही देखा गया है, अपीलकर्ता ने खुद अपने कदाचार को स्वीकार किया था और इसलिए, कोई कारण नहीं है कि आरोप 5 पर अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

16. यह सच है कि अपीलीय प्राधिकारी ने सजा बढ़ाने का प्रस्ताव किया है और अपीलकर्ता पर बर्खास्तगी का जुर्माना लगाया है। हालांकि, अपीलीय प्राधिकारी अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण के संबंध में आश्वस्त था और प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियों पर विचार करते हुए दंड को और कम कर दिया, जिसे अपीलीय आदेश में निम्नलिखित अवलोकन से देखा जा सकता है:

पत्र में कहा गया है, 'इसलिए, मैं निर्देश देता हूँ कि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा उन पर लगाए गए मूल वेतन में एक चरण की कटौती के पहले के दंड को भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियमों के नियम 67 (जी) के संदर्भ में सेवा से हटाने के लिए बढ़ाया जाए। कारण बताओ नोटिस देते समय लिया गया अस्थायी निर्णय श्री सिरूर को सेवा से बर्खास्त करने का था। हालांकि, अपीलकर्ता के दुष्कर्म के कृत्यों पर विचार करते हुए, यह उचित दंड था, मैंने उसकी प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियों के कारण इस मामले में नरमी बरती है। सेवा से

हटाने से वह बर्खास्तगी की तुलना में उच्च टर्मिनल लाभ प्राप्त करने में सक्षम होगा। निष्कासन इस आदेश के संचार की तारीख से प्रभावी होगा और बीच की अवधि को निलंबन के तहत माना जाएगा। मैं उसी के अनुसार आदेश देता हूँ।

31. श्री साल्वे ने स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा [(1996)3 एस.सी.सी. 364: 1996 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 717] में फैसले के पैरा 17 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, जो यूनाइटेड किंगडम में हाउस ऑफ लॉर्ड्स की राय से संबंधित है। उन्होंने हमारा ध्यान एस.एल. जगमोहन [(1980)4 एस.सी.सी. 379] और प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी करुणाकर [(1993)4 एस.सी.सी. 727: 1993 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1184: (1993)25 एटीसी 704] एस.सी.सी. पैरा 25, 26 और 28 में। ऊपर दिए गए और उद्धृत निर्णय एक बात स्पष्ट करते हैं, अर्थात्, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को किसी भी कठिन और तेज़ सूत्र/स्थिति में कम नहीं किया जा सकता है और जैसा कि रसेल बनाम भारत संघ में कहा गया है। इयूक ऑफ नॉरफॉक [(1949)1 इला ईआर 109 (सीए)], इन सिद्धांतों को सीधे सटीक फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है। उनकी प्रयोज्यता संदर्भ और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इसका उद्देश्य निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना है, एक ऐसे व्यक्ति के साथ उचित व्यवहार करना है जिसके अधिकार प्रभावित होने वाले हैं। हमारी राय में, करुणाकर मामले [(1993)4 एस.सी.सी. 727: 1993 एस.सी.सी. (एल एंड

एस) 1184: (1993)25 एटीसी 704] में अपनाए गए दृष्टिकोण और परीक्षण को उन सभी मामलों को नियंत्रित करना चाहिए जहां शिकायत यह नहीं है कि कोई सुनवाई नहीं हुई, कोई नोटिस नहीं, कोई अवसर नहीं था, लेकिन एक उचित सुनवाई नहीं थी जो पर्याप्त हो या पूर्ण सुनवाई या प्रक्रियात्मक नियम या जांच को नियंत्रित करने की आवश्यकता का उल्लंघन है।

34. किसी भी बैंक के बैंक प्रबंधक/अधिकारी और कर्मचारियों, राष्ट्रीयकृत/या गैर-राष्ट्रीयकृत, से अपेक्षा की जाती है कि वे बैंक के नियमों और विनियमों के अनुसार कार्य करें और अपने कार्यों का निर्वहन करें। किसी के अधिकार से परे कार्य करना अपने आप में अनुशासन और विश्वास का उल्लंघन और एक कदाचार है। प्रस्तुत मामले में अपीलकर्ता के खिलाफ तय किया गया आरोप 5 बहुत गंभीर और जघन्य प्रकृति का है। हमने पहले ही संबंधित नियम निकाल लिया है जो बैंक प्रबंधक को अपनी पत्नी या उसके रिश्तेदार या किसी भी भागीदार को ऋण मंजूर करने से रोकता है। ऋण मंजूर करते समय अपीलकर्ता ने इस पहलू को ध्यान में नहीं रखा और अवैध रूप से कार्य किया और ऋण मंजूर किया। बाद में उन्हें गलती का एहसास हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी के मायके के नाम पर जारी किए गए ड्राफ्ट को भुनाकर इसे बचाने की कोशिश की, हालांकि ड्राफ्ट जारी किया गया था, लेकिन इसे भुनाया नहीं गया था। ऋण स्वीकृत करने का निर्णय एक ईमानदार निर्णय नहीं है। नियम 34(3)(1) अखंडता का नियम है और इसलिए, जैसा कि श्री साल्वे ने ठीक ही कहा है, प्रतिवादी बैंक

अपीलकर्ता को बैंक प्रबंधक के रूप में नहीं रख सकता है। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दी गई निष्कासन की सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायसंगत और उचित है। निष्कर्ष निकालने से पहले, हम निर्णय क्षेत्रीय प्रबंधक, यूपी एसआरटीसी बनाम होती लाल [(2003) 3 एस.सी.सी. 605: 2003 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 363] पर उपयोगी रूप से भरोसा कर सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: (एस.सी.सी. पी. 614, पैरा-10)

"यदि आरोपित कर्मचारी विश्वास की स्थिति रखता है जहां ईमानदारी और अखंडता कामकाज की अंतर्निहित आवश्यकताएं हैं, तो मामले से उदारता से निपटना उचित नहीं होगा। ऐसे मामलों में कदाचार से सख्ती से निपटना होगा। जहां व्यक्ति सार्वजनिक धन से संबंधित है या वित्तीय लेनदेन में लगा हुआ है या प्रत्ययी क्षमता में कार्य करता है, ईमानदारी और विश्वसनीयता की उच्चतम डिग्री एक जरूरी और असाधारण है। उस पृष्ठभूमि में निर्णय लेने पर, उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निष्कर्ष उचित प्रतीत नहीं होते हैं। हम इसे रद्द करते हैं और बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखने वाले एकल न्यायाधीश के आदेश को बहाल करते हैं।"

36. इसलिए, हमें अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करने और उच्च न्यायालय की डिवीजन बैंक द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करने में कोई संकोच नहीं है। हालांकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलकर्ता पूर्ण पेंशन

और ग्रेच्युटी का हकदार होगा, चाहे उसकी सेवा की कुल अवधि कुछ भी हो। कोई लागत नहीं।

(xiv) आंध्र प्रदेश सरकार (उपरोक्त): -

8. इस स्तर पर, हम यह बता सकते हैं कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का कोई आरोप नहीं है, या यह कि जांच प्रक्रियाओं या नियमों और विनियमों का पालन किए बिना की गई थी। प्रतिवादी द्वारा हमारे सामने रखा गया एकमात्र मामला यह है कि प्रतिवादी द्वारा लेंस की चोरी या हटाने को जांच के दौरान साबित नहीं किया गया था। इस तर्क को हमें अब और हिरासत में रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जांच की रिपोर्ट के माध्यम से, जांच अधिकारी, पीडब्ल्यू 1, 2, 3 और 4 की जांच करने के बाद और प्रतिवादी को पर्याप्त अवसर देने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि प्रतिवादी के खिलाफ लगाया गया आरोप साबित हो गया है।

11. अब तक यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता है। इसका अधिकार क्षेत्र कानून की त्रुटियों या प्रक्रियात्मक त्रुटि, यदि कोई हो, को सही करने तक सीमित है, जिसके परिणामस्वरूप न्याय का स्पष्ट नुकसान या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है। न्यायिक पुनवलोकन, अपीलीय प्राधिकारी के रूप में साक्ष्य की पुन मूल्यांकन किया करके गुण-दोष के आधार पर अधिनिर्णय के समान नहीं है।

15. यह हमें प्रतिवादी के अधिवक्ता के अंतिम प्रस्तुतिकरण पर ले जाता है। प्रतिवादी के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपराध, जो किया गया है, प्रकृति में मामूली है और संपत्ति के मालिक को कोई नुकसान नहीं हुआ है, क्योंकि इसे मौके पर ही बरामद किया गया था, सेवा से बर्खास्तगी के स्थान पर उदार सजा दी जा सकती है। हम इस निवेदन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अपराध की गंभीरता को आवश्यक रूप से अपराध की प्रकृति के साथ मापा जाना चाहिए। प्रतिवादी हेड कांस्टेबल के पद पर एक अनुशासित बल का सदस्य था। तत्कालीन राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की यात्रा के दौरान उन्हें सौंपा गया कर्तव्य एक "बंदोबस्त" कर्तव्य था, जिन्होंने उच्चतम ग्रेड का सुरक्षा जोखिम उठाया था। उनके कदाचार से गंभीर सुरक्षा चूक हो सकती थी जिसके परिणामस्वरूप घातक परिणाम हो सकते थे। लेकिन, इलेक्ट्रीशियन, पीडब्लू-4 द्वारा समय पर पता लगाने के कारण, लेंस को पुनर्प्राप्त किया गया और तुरंत बहाल कर दिया गया। हम जांच अधिकारी से पूरी तरह सहमत हैं कि आरोप गंभीर प्रकृति के हैं, जो एक अनुशासित बल के सदस्य द्वारा किए जा रहे हैं, जो कड़ी सजा के हकदार हैं। प्रतिष्ठान में जनता का विश्वास पैदा करने के लिए, ऐसे मामलों में एकमात्र उचित सजा सेवा से बर्खास्तगी है, जिसे सही ढंग से प्रदान किया गया है।

16. यह कहा गया है कि प्रतिवादी को उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार 19-6-2004 को बहाल किया गया था और तब से काम कर रहा है और वेतन और भत्ते का भुगतान 19-6-2004 से किया गया है। चूंकि

उसे उस अवधि के लिए भुगतान किया गया है जब उसने काम किया है, इसलिए उसे पहले से भुगतान किए गए वेतन और भत्ते डिस्टर्ब नहीं किए जाएंगे। हालांकि, प्रतिवादी को उसकी पिछली मजदूरी नहीं मिलेगी।

17. पूर्वोक्त परिसर में, हम स्पष्ट रूप से विचार करते हैं कि उच्च न्यायालय ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है जिसके परिणामस्वरूप न्याय का नुकसान हुआ है। तदनुसार, उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द किया जाता है। अपील की अनुमति दी जाती है। नतीजतन, प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका खारिज की जाती है। पक्षों को अपना खर्च खुद उठाने के लिए कहा जाता है।

28. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए उपरोक्त निकाले गए निर्णयों का अवलोकन इंगित करता है कि अनुच्छेद 311(2) द्वारा चिंतन किए गए उचित अवसर का अर्थ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार "सुनवाई" है, जिसके तहत बुनियादी आवश्यकताओं में से एक यह है कि विभागीय जांच में सभी गवाहों की जांच दोषी की उपस्थिति में की जाएगी, जिसे उनसे जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। जहां प्रारंभिक जांच या जांच के दौरान गवाह द्वारा पहले दिए गए बयान को विभागीय कार्यवाही में रिकॉर्ड पर लाने का प्रस्ताव है, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून यह है कि उस बयान की एक प्रति पहले दोषी को दी जानी चाहिए, जिसे उसके बाद गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए। जहां एक अनुशासनात्मक जांच आजीविका को प्रभावित

करती है और एक कलंक डालने की संभावना है और इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार आयोजित किया जाना है, न्यूनतम अपेक्षा यह है कि रिपोर्ट एक तर्कसंगत होनी चाहिए। जब दोषी के विरुद्ध विभागीय जांच की जाती है तो इसे आकस्मिक कार्य नहीं माना जा सकता है। जांच की कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियम का पालन करने की आवश्यकता है ताकि न केवल यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय किया जाता है बल्कि प्रकट रूप से किया जाता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कार्यवाही में दोषी के साथ उचित व्यवहार किया जाए जिसकी परिणति बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित दंड के अधिरोपित में हो सकती है।

ऐसे मामले में जहां कार्यवाही पूरी हो गई है और आवेदन के लंबित रहने के दौरान निलंबन की अवधि के लिए निर्वाह भत्ते का भुगतान न किए जाने के आधार पर बर्खास्तगी के आदेश को सफलतापूर्वक चुनौती दी जाती है, वहां प्रबंधन संबंधित प्राधिकारी द्वारा बकायों के लिए नियत किए जाने वाले युक्तियुक्त समय के भीतर संबंधित कामगार को भुगतान करने या भुगतान करने की पेशकश करने के बाद प्राधिकारी की अनुमति पुन मांगने के लिए खुला होगा।

29. यह याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए फैसले के महज़ अवलोकन से भी इंगित होता है कि जब एक दोषी

अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर रहा है, तो वह प्रभावी तरीके से उसके खिलाफ आरोपों को पूरा करने के लिए एक पुनः अवसर प्रदान करने का हकदार है। और विभागीय जांच का सामना करने वाला कोई भी व्यक्ति प्रभावी रूप से आरोपों को पूरा नहीं कर सकता है जब तक कि उसके खिलाफ इस्तेमाल किए जाने वाले प्रासंगिक बयानों और दस्तावेजों की प्रतियां उसे उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं। ऐसी प्रतियों के अभाव में, संबंधित कर्मचारी अपना बचाव कैसे तैयार कर सकता है, गवाहों से जिरह कैसे कर सकता है, और यह दिखाने के लिए कि आरोप अविश्वसनीय हैं, विसंगतियों को कैसे इंगित कर सकते हैं?

30. प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए उपरोक्त निकाले गए निर्णयों का अवलोकन इंगित करता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को बहुत दूर तक नहीं खींचा जाना चाहिए और इसे सीधे सटीक फॉर्मूला में नहीं रखा जा सकता है। यदि उचित नोटिस देने वाला पक्ष उपस्थित नहीं होना चाहता है, तो बाद के चरण में उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। एकपक्षीय जांच में, यदि आरोप सामान्य कार्य के तहत रखे गए दस्तावेजों से उत्पन्न होते हैं, तो उन आरोपों को साबित करने के लिए किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती है। जब आरोपित अधिकारी जांच में शामिल नहीं होता है, तो वह यह तर्क नहीं दे सकता है कि जांच प्राधिकारी को उन दस्तावेजों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जो उसे उपलब्ध नहीं कराए गए थे या खुलासा नहीं किए गए थे।

इसमें यह भी पता चलता है कि बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी को बैंक के हितों की रक्षा के लिए हर संभव कदम उठाने और अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा, ईमानदारी और परिश्रम के साथ करना चाहिए और ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जो बैंक अधिकारी को शोभा न दे। इसमें अधिकारी/कर्मचारी को अच्छे आचरण और अनुशासन बनाए रखने और अपने आधिकारिक कर्तव्यों के प्रदर्शन में या उसे प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता होती है। यदि प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी को उसके प्राधिकार से परे जाकर कार्य करने की अनुमति दी जाती है, तो संगठन/बैंक का अनुशासन समाप्त हो जाएगा, बैंक का कार्य अराजक और अप्रबंधनीय हो जाएगा। बैंक के प्रत्येक अधिकारी को अपना छोटा साम्राज्य बनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिसमें वह एहसान और उदारता प्रदान करता है।

31. यह भी प्रतिवादी-बैंक के लिए अधिवक्ता द्वारा भरोसा निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि अगर आरोपित कर्मचारी विश्वास की एक स्थिति रखती है जहां ईमानदारी और अखंडता कामकाज की अंतर्निहित आवश्यकताओं हैं, यह उचित नहीं होगा मामले के साथ नरमी से निपटा जाए। ऐसे मामलों में कदाचार से सख्ती से निपटना होगा। जहां व्यक्ति सार्वजनिक धन से संबंधित है या वित्तीय लेनदेन में लगा हुआ है या एक प्रत्ययी क्षमता में कार्य करता है, अखंडता और विश्वसनीयता की उच्चतम डिग्री एक जरूरी और असाधारण है।

32. रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता एक क्लर्क के रूप में कार्यरत था। दिनांक 2-3-1995 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था। 18.5.1995 को, प्रतिपक्षी सं-2 ने याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से की गई सात खामियों के संबंध में याचिकाकर्ता को एक ज्ञापन जारी किया, जिसके लिए याचिकाकर्ता ने 8.6.1995 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। दिनांक 03-07-1995 को याचिकाकर्ता को कदाचार के कतिपय कथित कृत्य करने के लिए आरोप-पत्र दिया गया था। जांच 18.7.1995 को शुरू हुई और 18.9.1996 को समाप्त हुई।

याचिकाकर्ता को प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा जारी दिनांक 28.12.1996 का एक ज्ञापन 30.12.1996 को प्राप्त हुआ जिसमें कहा गया था कि जांच अधिकारी ने दिनांक 17.12.1996 को एक एकतरफा रिपोर्ट दी थी क्योंकि याचिकाकर्ता 17.12.1996 तक अपने लिखित तर्क प्रस्तुत करने में विफल रहा था। अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक 28-12-1996 के ज्ञापन के तहत याचिकाकर्ता को दिनांक 17-12-1996 और 21-12-1996 के निष्कर्षों के संबंध में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का निदेश दिया, जिसके लिए याचिकाकर्ता ने दिनांक 6-1-1997 और 13-1-1997 के पत्रों द्वारा विशेष रूप से यह शिकायत करते हुए अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के लिखित तर्क पर विचार किए बिना अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। 24/25.2.1997 को, प्रतिपक्षी सं-2 ने द्विपक्षीय समझौते के

पैराग्राफ 19.6(बी) के तहत सेवाओं से हटाने की प्रस्तावित समेकित सजा जारी की और याचिकाकर्ता से स्पष्टीकरण वापस ले लिया गया जिसमें उसे कारण बताने की आवश्यकता थी कि प्रस्तावित सजा को अंतिम क्यों नहीं बनाया जाए, जिसके लिए 27.3.1997 और 21.4.1997 को, दिनांक 26-5-1997 के आदेश के तहत सेवाओं से हटाए जाने के दंड की पुष्टि प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा की गई थी। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने 26.6.1997 को एक याचिका दायर की जिसे दिनांक 23.12.1997 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

33. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि निर्णयों के आलोक में रिकॉर्ड पर सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की है।

34. जांच करने पर, यह पाया गया कि याचिकाकर्ता को 3.7.1995 को कदाचार के कुछ कृत्यों के लिए आरोप पत्र दिया गया था और इसमें दस्तावेजों/गवाहों और प्रतियों की सूची नहीं थी, जो स्वयं बैंक के केंद्रीय कार्यालय द्वारा अपने सभी मुख्य प्रबंधकों को जारी किए गए परिपत्र दिनांक 23.8.1984 का उल्लंघन है। यह केन्द्रीय सतर्कता आयोग के माध्यम से भारत सरकार द्वारा दिनांक 3-7-1984 के पत्र द्वारा जारी किए गए निदेशों पर आधारित है। मुख्य रूप से, प्रबंधन की ओर से शाखा प्रबंधक होने के नाते तीन गवाहों और दो अन्य कर्मचारियों (सह-आरोपियों) से पूछताछ की गई। जिन शिकायतकर्ताओं की शिकायतों पर जांच स्थापित की गई थी, उन्हें याचिकाकर्ता द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद पेश नहीं किया गया था कि वे

शिकायत के सत्यापन के लिए उन्हें पेश करें और याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच का आधार बनें। उक्त परिपत्र यह भी इंगित करता है कि दस्तावेजों और गवाहों की सूची प्रदान करने में विफलता, जिनके आधार पर आरोपों को बनाए रखने का प्रस्ताव है, एक आरोपित अधिकारी को अपना बचाव करने के लिए उचित अवसर देने में विफलता के बराबर है।

35. यह भी पाया गया है कि शिकायतकर्ताओं ने दिनांक 7.3.1995 की कोई शिकायत करने से इनकार किया, जिस पर उन्होंने यह समर्थन किया है कि उन्हें शिकायत से कोई सरोकार नहीं है और वे उस भाषा (अंग्रेजी) से भी अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं जिसमें शिकायत/पत्र दिनांक 7.3.1995 किया गया था। शिकायत साबित नहीं हुई है क्योंकि शिकायत की जांच नहीं की गई थी और परिणामस्वरूप पूरी कार्यवाही इस आधार पर दूषित हो जाती है कि नींव को हटा दिए जाने के बाद, पूरा ढांचा गिर जाता है।

सतर्कता अधिकारी ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें बैंक के सात अधिकारियों को आरोपित किया गया था। रिपोर्ट में शिकायतकर्ता द्वारा कथित शिकायत किए जाने से दो सप्ताह से अधिक समय पहले 24.2.1995 को याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया इकबालिया बयान संलग्नक के रूप में था। महत्वपूर्ण बात यह है कि निलंबन का आदेश भी 2-3-1995 को पारित किया गया था जबकि जिस शिकायत पर निलंबन आधारित है वह 7-3-1995 को दी गई थी। न तो शिकायत और न ही शिकायतकर्ताओं को पेश किया गया था

और जबकि जांच अधिकारी ने तथाकथित इकबालिया बयान पर भरोसा किया था जो सतर्कता अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का एक अनुलग्नक था, याचिकाकर्ता को नोटिस में नहीं रखा गया था और जांच अधिकारी ने उक्त बयान को साबित किए बिना भी उस पर निर्भरता रखी थी।

याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत लिखित संक्षिप्त में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा कोई इकबालिया बयान नहीं दिया गया था और उक्त बयान सतर्कता अधिकारी द्वारा धमकी और जबरदस्ती के तहत प्राप्त किया गया था। न तो कथित इकबालिया बयान को दिनांक 18-5-1995 के कारण बताओ जापन का हिस्सा बनाया गया था और न ही यह आरोप पत्र का हिस्सा था, परिणामस्वरूप यह जांच के दायरे से बाहर था। एक श्री एस.जे. मेहरोत्रा पर गवाह के रूप में उक्त बयान पर हस्ताक्षर करने का आरोप है, लेकिन उसे साक्ष्य के रूप में पेश नहीं किया गया, हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष स्पष्ट रूप से अनुरोध किया गया था, यह दर्ज करते हुए कि कोई गवाह पेश करना या न करना प्रबंधन का विशेषाधिकार था।

दिनांक 21-12-1996 को दूसरी जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिसमें जांच अधिकारी ने केवल शाखा प्रबंधक की गवाही पर भरोसा किया था जो सह-अभियुक्त था और सतर्कता अधिकारी की रिपोर्ट तथा कथित स्वीकारोक्ति जो दस्तावेजों की सूची में सूचीबद्ध नहीं थी। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष

स्पष्टीकरण में, याचिकाकर्ता द्वारा विशेष रूप से यह शिकायत की गई है कि जांच अधिकारी ने लिखित तर्कों पर विचार किए बिना अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसके लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने यांत्रिक रूप से सिर हिलाया था।

36. यह भी पाया गया है कि याचिकाकर्ता को 2.3.1995 को निलंबित कर दिया गया था। द्विपक्षीय समझौते के अनुसार, याचिकाकर्ता 2.3.1996 से निर्वाह भत्ता @ पूर्ण वेतन का हकदार था। चूंकि याचिकाकर्ता को द्विपक्षीय समझौते के अनुसार पूर्ण निर्वाह भत्ते का भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए उसके खिलाफ की गई जांच को समाप्त कर दिया गया था।

37. यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि विभागीय जांच के बाहर दिए गए बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और किसी भी दस्तावेज पर भरोसा किया जाना आवश्यक रूप से कानून के अनुसार जांच अधिकारी द्वारा साबित किया जाना है। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता को प्रदान किए गए कथित बयान की न तो एक प्रति और न ही इसे आरोपों में या दस्तावेजों की सूची में संदर्भित किया गया था और केवल सतर्कता अधिकारी द्वारा जांच अधिकारी को सौंप दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा विशेष रूप से लिखित संक्षिप्त में किए गए इनकार पर विचार नहीं किया गया था और इकबालिया बयान के आरोप को अपीलीय और द्वितीय अपीलीय चरण में समवर्ती रूप से हटा दिया गया था।

38. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि जब कोई कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर रहा है, तो वह प्रभावी तरीके से उसके खिलाफ आरोपों को पूरा करने के लिए एक उचित अवसर प्रदान करने का हकदार है और विभागीय जांच का सामना करने वाला कोई भी व्यक्ति प्रभावी रूप से उसे उपलब्ध कराए गए आरोपों को पूरा नहीं कर सकता है। ऐसी प्रतियों के अभाव में, संबंधित कर्मचारी अपना बचाव कैसे तैयार कर सकता है, गवाहों से प्रतिपरीक्षा कैसे कर सकता है और यह दिखाने के लिए कि आरोप अविश्वसनीय हैं, विसंगतियों को कैसे इंगित कर सकता है। यह भी विचार है कि जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को दस्तावेजों की सूची प्रस्तुत करने में विफलता को जांच में अपना बचाव करने में याचिकाकर्ता के पूर्वाग्रह का कारण माना जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई जांच केवल दिखावा थी और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन थी।

39. यह भी राय है कि जब कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की जाती है, तो इसे एक आकस्मिक प्रयोग/प्रक्रिया के रूप में नहीं माना जा सकता है। जांच की कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने की आवश्यकता है ताकि न केवल यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय किया जाता है बल्कि प्रकट रूप से किया जाता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है

कि कार्यवाहियों में कर्मचारी के साथ उचित व्यवहार किया जाए जिसकी परिणति बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित दंड के अधिरोपित में हो सकती है।

सेवा में बहाल करने और उसे उसके सभी बकाया वेतन और भत्ते का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 7 ILRA 1175

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

रिट-ए संख्या 1797 सन् 2014

ऐसे मामले में जहां कार्यवाही पूरी हो गई है और बर्खास्तगी के आदेश को सफलतापूर्वक चुनौती दी गई है, यह प्रबंधन के लिए खुला होगा कि वह संबंधित प्राधिकारी द्वारा निर्वाह भत्ते की बकाया राशि के लिए तय किए जाने वाले एक पुनः योग्य समय के भीतर संबंधित वर्मन को भुगतान करने या भुगतान करने की पेशकश करने के बाद प्राधिकरण की अनुमति के लिए फिर से मांग करे, लेकिन प्रस्तुत मामले में एक वर्ष की समाप्ति के बाद निर्वाह भत्ते के भुगतान के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। प्रतिवादी बैंक के अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से पूरी तरह से सामंजस्य में नहीं हैं क्योंकि विभागीय जांच बैंक के केंद्रीय कार्यालय द्वारा अपने सभी मुख्य प्रबंधकों को जारी किए गए परिपत्र दिनांक 23.8.1984 के अनुसार नहीं की गई है, जो भारत सरकार द्वारा केंद्रीय सतर्कता आयोग के माध्यम से दिनांक 3.7.1984 के पत्र द्वारा जारी किए गए निर्देशों पर आधारित है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

40. उपरोक्त के मद्देनजर, इस रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। प्रतिपक्षी संख्या-2 और 1 द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 26.5.1997 और 23.12.1997 के आदेश रद्द किए जाते हैं। प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता को

मुदिता बाजपेयी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

इशिता यदु, गौरव मेहरोत्रा, रवि शंकर तिवारी

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अशोक शुक्ला

याचिकाकर्ता, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्वर्गीय लक्ष्मी शंकर बाजपेई के आश्रित, ने 07.02.2014 की विज्ञप्ति के अनुसार प्रवक्ता पदों के लिए आवेदन किया, जिसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों के लिए आयु में छूट का कोई उल्लेख नहीं था, जबकि पूर्व की विज्ञप्तियों (2013) में ऐसा प्रावधान था। शासनादेश (जैसे दिनांक 27.09.1972) तथा 1993 का अधिनियम स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों के लिए आयु में छूट एवं आरक्षण का प्रावधान करते हैं। न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि शासनादेश (जैसे

27.09.1972) तथा 1993 का अधिनियम स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों के लिए आयु में छूट को अनिवार्य करते हैं। 2014 की विजप्ति में यह छूट न देना, जबकि पूर्व की विजप्तियों में यह सम्मिलित था, मनमाना एवं अनुच्छेद 14 तथा 16 का उल्लंघन माना गया। न्यायालय ने याचिकाकर्ता को स्वतंत्रता संग्राम सेनानी आश्रित कोटा के अंतर्गत विचार किए जाने के अधिकार को मान्यता दी तथा प्रतिपक्षीगण की त्रुटि को सुधारा। न्यायालय ने प्रतिपक्षीगण को निर्देशित किया कि वे याचिकाकर्ता की अभ्यर्थना को स्वतंत्रता संग्राम सेनानी आश्रित कोटे के अंतर्गत रिक्त पदों में से किसी एक के विरुद्ध विचार करें।

रिट याचिका स्वीकृत की गई।

उद्धृत उदाहरण:

1. रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट [(2008) 14 एससीसी 58]
2. शांगरीला फूड प्रोडक्ट्स बनाम एलआईसी [(1996) 5 एससीसी 54]
3. शाहीन परवीन बनाम उत्तर प्रदेश की सेंट [(2015) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 9489]
4. उत्तर प्रदेश की सेंट बनाम डॉ. दीना नाथ शुक्ला [(1997) 9 एससीसी 662]
5. डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा बनाम नागपुर विश्वविद्यालय [(1990) 4 एससीसी 55]
6. दवेश नागल्या बनाम प्रदीप कुमार [(2021) 9 एससीसी 796] बनाम मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स [(1975) 1 एससीसी 770]
7. राजेश कुमार दरिया बनाम राजस्थान लोक सेवा आयोग [(2007) 8 एससीसी 785] आरक्षण।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा पदत)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और राज्य-प्रतिपक्षी के स्थायी अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा और प्रतिपक्षी-आयोग के अधिवक्ता श्री आर.के उपाध्याय को सुना।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

"i) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षियों को अधिकतम आयु में छूट प्रदान करने का आदेश दिया गया हो और उस पद के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र/उम्मीदवारी पर विचार किया जाए जिसके लिए याचिकाकर्ता ने विज्ञापन दिनांक 07.02.2014 (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-3) के अनुसरण में आवेदन किया है।

1)(ए) दिनांक 14.11.1985, 03.09.1992 और 31.10.2013 के सरकारी आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

ii) किसी अन्य उपयुक्त आदेश या निर्देश को पारित करने के लिए, जो मामले की परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझा जाय, भी पारित किया जा सकता है।

iii) लागत के साथ रिट याचिका की अनुमति देना।

iv) उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करना, उत्तरदाताओं द्वारा 30.10.2018 (अनुलग्नक संख्या-11) को घोषित अंतिम परिणाम को इस हद तक रद्द करना कि क्रम संख्या-47 पर रखे गए उम्मीदवार को स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी के तहत आरक्षण का लाभ दिया गया है;

v) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें उत्तरदाताओं को आदेश दिया गया है कि वे चयन में स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों से संबंधित उम्मीदवारों की श्रेणी के लिए आरक्षित रिक्ति के खिलाफ याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार करें;"

3. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि राज्य सरकार ने 27.9.1972 को एक सरकारी आदेश जारी किया, जिसमें स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित को आयु में छूट प्रदान की गई। उक्त शासनादेश के अतिरिक्त राज्य सरकार ने शासनादेश दिनांक 1.11.1947, 31.1.1957 जारी किए। प्रस्तुत रिट याचिका में अंतर्गस्त मुद्दे पर 14-8-1972, 19-2-1977, 14-11-1985, 3-9-1992 और 31-10-2013 के बीच एक मामला दर्ज किया गया है।

शासनादेश दिनांक 14.8.1972 से पूर्व आयु सीमा में छूट चार वर्ष थी तथा दिनांक 14.8.1972 के शासनादेश के द्वारा यह पांच वर्ष की थी तथा शासनादेश लाभकारी प्रकृति के हैं तथा उक्त शासनादेश द्वारा स्वतंत्रता सेनानियों, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित /परिवार के सदस्यों को समय-समय पर तथा

उक्त शासनादेश में यथा परिभाषित छूट दी गई थी। प्रदान किए गए लाभ के संबंध में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है।

4. वर्ष 1993 में, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश लोक सेवा (शारीरिक रूप से विकलांगों, स्वतंत्रता सेनानियों और पूर्व सैनिकों के आश्रितों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1993 (संक्षेप में, 'अधिनियम, 1993) प्रख्यापित किया और अधिनियम को अंतिम रूप से वर्ष 2009 में संशोधित किया गया और अधिनियम के अनुसार, याचिकाकर्ता स्वतंत्रता सेनानी स्वर्गीय लक्ष्मी शंकर बाजपेयी याचिकाकर्ता के दादा का आश्रित है।

5. याचिकाकर्ता वर्ष 1999 में बेसिक शिक्षा परिषद में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त था। प्रतिपक्षी सं-2 ने राज्य शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एस.सी.ई.आर.टी.) में व्याख्याताओं के पद पर नियुक्ति/भर्ती के लिए दिनांक 7.2.2014 को एक विज्ञापन प्रकाशित किया। उक्त विज्ञापन में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को आयु में छूट दी जाएगी। याचिकाकर्ता ने उपरोक्त विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन किया।

6. प्रतिपक्षी सं-2 ने विज्ञापन संख्या-ए-1/ई-1/2-13 दिनांक 23.3.2013, ए-2/ई-1/2013 दिनांक 23.5.2013 और विज्ञापन संख्या-ए-3/ई-1/2013 दिनांक 14.6.2013 भी जारी किया था और उक्त अधिसूचनाओं में, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को पांच वर्ष की आयु में छूट प्रदान की गई है।

7. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को चयन प्रक्रिया में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी और लिखित परीक्षा में सफल घोषित होने के बाद, उसे साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था जो केवल सामाजिक कार्य में व्याख्याता के पद के लिए 12.10.2018 को आयोजित किया गया था। चयन का अंतिम परिणाम घोषित कर दिया गया है, जो प्रस्तुत रिट याचिका के अंतिम परिणाम के अधीन है। हालांकि, सामाजिक कार्य में व्याख्याता के पद पर की गई नियुक्तियों के लिए घोषित अंतिम परिणाम में याचिकाकर्ता का नाम नहीं था।

8. प्रस्तुत रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत प्रतिपक्षी सं-3 द्वारा कुछ जानकारी प्रदान की गई है, जो चयनित उम्मीदवारों द्वारा प्रश्न में चयन में प्राप्त श्रेणीवार कट-ऑफ अंकों के साथ-साथ अंतिम परिणाम की प्रति से संबंधित है।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि प्रतिपक्षी सं-3 द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं ने चयन में उम्मीदवारों का चयन करते समय एक 'पिक एंड चूज' पॉलिसी अपनाई है, जो निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से नहीं की गई है, जिससे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत निहित मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है।

10. यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता अधिनियम, 1993 की धारा 2

(बी)(ii) में परिभाषित स्वतंत्रता सेनानी का आश्रित है और उत्तर प्रदेश शिक्षक शिक्षा (व्याख्याता संवर्ग) सेवा नियमों के तहत व्याख्याताओं के पद के लिए प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा शुरू की गई भर्ती की प्रक्रिया में दिनांक 27.9.1972 के सरकारी आदेश के आलोक में आयु में छूट का हकदार है। स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को आयु में छूट देने का उल्लेख नहीं किया गया है।

11. वह प्रस्तुत करता है कि व्याख्याताओं के पद पर भर्ती सहित एस.सी.ई.आर.टी. के कार्यों को पूरा करने के प्रयोजनों के लिए, केंद्र सरकार द्वारा दिशानिर्देश तैयार किए गए थे और वर्ष 2010 में, व्याख्याता की भर्ती के मुद्दे पर, राज्य सरकार ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक अनुच्छेद 309 के तहत नियम वर्ष 2010 तैयार किए थे।

नियम वर्ष 2010 के नियम 2 के अनुसार, व्याख्याता संवर्ग सेवा अधीनस्थ गैर राजपत्र सेवा यानी ग्रुप-सी पद है। नियम 3(डी) के अनुसार, आयोग का मतलब यू.पी. लोक सेवा आयोग है। वर्ष 2010 की नियमावली के नियम 5 में कहा गया है कि नियम 2(जे) के तहत परिभाषित विभिन्न श्रेणियों के पदों पर भर्ती आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती के जरिए की जाएगी। वर्ष 2010 नियमावली का नियम 6 कतिपय वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अधिनियम वर्ष 1993 के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को आरक्षण देने से संबंधित है। दिनांक 22.08.2013 की अधिसूचना द्वारा यथा संशोधित नियम 10, सीधी भर्ती के लिए

उम्मीदवार की आयु से संबंधित है और उसी के अनुसार, सीधी भर्ती के लिए उम्मीदवार को वर्ष 21 वर्ष की आयु प्राप्त करनी चाहिए और उस कैलेंडर वर्ष के जुलाई के पहले दिन 40 वर्ष से अधिक की आयु प्राप्त नहीं करनी चाहिए जिसमें रिक्तियों का विज्ञापन किया जाता है और नियम 10 के परंतुक में कहा गया है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और ऐसी अन्य श्रेणियों से संबंधित उम्मीदवारों के मामले जिन्हें सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित किया जा सकता है, उतने वर्षों से अधिक होगा जितना निर्दिष्ट किया जा सकता है। नियमावली वर्ष 2010 का नियम 24 राज्य सरकार को छूट की शक्ति प्रदान करता है और नियम 25 में विशिष्ट रूप से कहा गया है कि इन नियमों की कोई बात इस संबंध में समय-समय पर जारी सरकार के आदेशों के अनुसार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य विशेष श्रेणियों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण और अन्य रियायतों को प्रदान किए जाने अपेक्षित नहीं है।

12. वह प्रस्तुत करता है कि 27.09.1972 का सरकारी आदेश स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को ऊपरी आयु सीमा और सरकारी सेवाओं में आरक्षण में छूट से संबंधित है और उसी के अनुसार भर्ती प्रक्रिया में ऊपरी आयु सीमा में पांच साल की छूट स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को दी जानी है और वर्ष 1993 में अधिनियम वर्ष 1993 में अधिनियम वर्ष 1993 में उल्लिखित कुछ वर्गों को आरक्षण प्रदान करने के लिए प्रख्यापित किया गया था।

13. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता का एक अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड है और उसे 11.12.1999 को बेसिक शिक्षा परिषद में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और उस समय याचिकाकर्ता M.Sc (वनस्पति विज्ञान) और बी.एड. था और उसके बाद वर्ष 2002 में, उसने कंप्यूटर का प्रमाण पत्र प्राप्त किया और वर्ष 2010 में उसने एमए (शिक्षा) पास किया और 68% अंक प्राप्त किए और उसके बाद, वर्ष 2012 में उसने 72.4% के साथ एमए (सामाजिक कार्य) पास किया। यह भी बताया गया है कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1986, 1988, 1991, 1993 और 1997 में क्रमशः हाई स्कूल 60%, इंटरमीडिएट 53%, B.Sc 59%, M.Sc 60% और बीएड 58% के साथ उत्तीर्ण किया।

14. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान में जूनियर हाई स्कूल में सहायक शिक्षक के पद पर है, क्योंकि उसे सहायक शिक्षक (प्राथमिक विद्यालय) के पद से पदोन्नत किया गया है और जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डीआईईटी), जिला रायबरेली में शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में कर्तव्यों का पालन भी किया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि नियम वर्ष 2010, विज्ञापन संख्या-5/2013-2014 दिनांक 07.02.2014 के तहत व्याख्याताओं के पदों पर चयन/भर्ती प्रतिपक्षी सं-2 द्वारा जारी की गई थी और उक्त विज्ञापन के अनुसार आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 11.03.2014 थी और दस्तावेज जमा करने की अंतिम तिथि 21.03.2014 थी और उक्त विज्ञापन के अनुसार, विज्ञापित पद के लिए न्यूनतम आयु

21 वर्ष और अधिकतम 40 वर्ष है और उक्त विज्ञापन आयु में छूट के संबंध में केवल नियमानुसार आयु में छूट का उल्लेख है और शर्त संख्या-4 के अनुसार, उपर्युक्त आयु की गणना 01.07.2014 को की जानी है। उक्त शर्त में व्यक्तियों के कुछ वर्गों में छूट भी निर्धारित की गई है। उक्त आयु स्थिति में स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को आयु में छूट प्रदान करने के बारे में कोई उल्लेख नहीं है और प्रतिपक्षियों का उक्त कार्य मनमाना, अवैध है और अरक्षणीय है।

15. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी सं-2 ने विज्ञापन संख्या-ए-1/ई-1/2013 दिनांक 23.03.2013, ए-2/ई-1/2013 दिनांक 23.05.2013 और विज्ञापन संख्या-ए-3/ई-1/2013 दिनांक 14.06.2013 भी जारी किया था, जिसकी प्रतियां क्रमशः रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-5, 6 और 7 के रूप में दायर की गई हैं, और उपर्युक्त विज्ञापनों की क्रमशः शर्त संख्या-14(1), 12 और 14(2) के महज सादे अवलोकन से पता चलता है कि 5 वर्ष की आयु में छूट स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को प्रदान किया गया है लेकिन प्रस्तुत मामले में उक्त लाभ याचिकाकर्ता सहित स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को नहीं दिया गया है और 20-08-2009 की अधिसूचना के माध्यम से 2009 में यथा-संशोधित नियम वर्ष 1993 के अनुसार, याचिकाकर्ता स्वतंत्रता सेनानी स्वर्गीय लक्ष्मी शंकर बाजपेयी, याचिकाकर्ता के दादा का आश्रित है और इस तरह याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति और चोट लगी है। दिनांक 26.12.1997 के प्रमाण पत्र की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-8 के रूप में दायर की गई है।

16. दिनांक 07.02.2014 के विज्ञापन के अनुसरण में याचिकाकर्ता ने व्याख्याता (जीव विज्ञान), व्याख्याता (शिक्षा) और व्याख्याता (सामाजिक कार्य) के पद के लिए आवेदन किया है, जिसके लिए वह पूरी तरह से पात्र और योग्य है।

दिनांक 07.02.2014 के विज्ञापन में स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को अधिकतम आयु में छूट प्रदान करने के मुद्दे पर कुछ नहीं कहा गया है और यह संभावना है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 अधिकतम आयु के आधार पर याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र को अस्वीकार कर देगा और इसके कारण, याचिकाकर्ता ने याचिकाकर्ता को आयु में छूट प्रदान करने के लिए प्रतिपक्षियों को निर्देश देने के लिए इस माननीय न्यायालय से संपर्क किया है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित को आयु में छूट का लाभ स्पष्ट शब्दों में नहीं दे रहे हैं जैसा कि दिनांक 07.02.2014 के विज्ञापन से प्रकट होगा और इस प्रकार, प्रतिपक्षियों की कार्रवाई मनमानी और अवैध है और इस माननीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है।

17. यह भी तर्क दिया जाता है कि प्रतिपक्षी स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को आयु में छूट प्रदान कर रहे हैं, जैसा कि ऊपर उल्लिखित दिनांक 23.03.2013 और 14.06.2013 के विज्ञापन से प्रकट होगा, लेकिन दूसरी ओर 07.02.2014 के विज्ञापन में इसका प्रावधान नहीं कर रहे हैं और इस प्रकार,

उत्तरदाताओं की कार्यवाही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की भावना के विपरीत है। यह भी उल्लेख करना उचित है कि 27.09.1972 के सरकारी आदेश और उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, याचिकाकर्ता 5 वर्ष की आयु में छूट का हकदार है। अधिनियम वर्ष 1993 और दिनांक 27.09.1972 के सरकारी आदेश प्रासंगिक हैं और याचिकाकर्ता के मामले पर लागू होते हैं और प्रतिपक्षी उचित और निष्पक्ष तरीके से उसी के लाभों का विस्तार करने के लिए बाध्य हैं।

18. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अंतिम परिणाम के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि व्याख्याता (सामाजिक कार्य) के पद के लिए कुल 70 रिक्तियों में से 35 सीटें अनारक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए, 15 सीटें अनुसूचित जाति श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए, एक सीट अनुसूचित जनजाति श्रेणी के उम्मीदवार के लिए और 19 सीटें अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों के लिए आवंटित की गई हैं। आरक्षण की क्षैतिज श्रेणी में, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों (प्रस्तुत मामले से संबंधित) से संबंधित उम्मीदवारों के लिए एक सीटें, भूतपूर्व सैनिकों के लिए 3 सीटें, महिला उम्मीदवारों के लिए 14 सीटें और विकलांगता कोटा से संबंधित उम्मीदवारों के लिए तीन सीटें आवंटित की गई हैं।

19. प्रस्तुत रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता ने सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत दिनांक 02.02.2019 और 20.04.2019 के पत्रों के माध्यम से आवेदन

किया था, जिसमें चयनित उम्मीदवारों द्वारा प्रश्नगत चयन में प्राप्त श्रेणीवार कट ऑफ अंकों से संबंधित कुछ जानकारी मांगी गई थी। इसके जवाब में, प्रतिपक्षी सं-2 के लोक सूचना अधिकारी द्वारा जारी कार्यालय जापन दिनांक 02.05.2019 के माध्यम से, याचिकाकर्ता को निम्नलिखित श्रेणीवार कट ऑफ अंक प्रदान किए गए हैं:

अनारक्षित श्रेणी-56

अन्य पिछड़ा वर्ग-50

अनुसूचित जाति-45

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति-45

महिला-53

स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित/ओ.बी.सी.-52

भूतपूर्व सैनिक-उपलब्ध नहीं विकलांगता (लोकोमोटर) - 42

विकलांगता (श्रवण) -42

विकलांगता (अंधापन) -उपलब्ध नहीं है

उक्त कार्यालय जापन दिनांक 02.05.2019 की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-12 के रूप में संलग्न की गई है।

20. वह प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 के लोक सूचना अधिकारी द्वारा जारी दिनांक 17.01.2019 के कार्यालय जापन के माध्यम से, जिसके तहत याचिकाकर्ता को अंतिम परिणाम की एक प्रति प्रदान की गई थी, जिसकी प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-11 के रूप में संलग्न है, द्वारा याचिकाकर्ता को निम्नलिखित जानकारी भी प्रदान की गई है:

"1. याचिकाकर्ता को साक्षात्कार में 50 अंक दिए गए हैं।

2. अनारक्षित श्रेणी से संबंधित अंतिम चयनित उम्मीदवार का कट-ऑफ अंक 56 अंक है।

दिनांक 17.01.2019 के कार्यालय जापन की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-13 के रूप में संलग्न की गई है।

21. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों से संबंधित उम्मीदवारों की श्रेणी के तहत, तीन उम्मीदवारों को साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित किया गया था, अर्थात् श्री श्रयस यादव, श्री रजनीश कुमार और याचिकाकर्ता। याचिकाकर्ता के सर्वोत्तम ज्ञान के अनुसार, उपरोक्त तीन उम्मीदवारों में से, श्री रजनीश कुमार ने 50 से कम अंक प्राप्त किए, जिसके कारण उन्हें ओबीसी या स्वतंत्रता सेनानी के आश्रितों की श्रेणी में नहीं चुना गया, जिससे वे संबंधित थे। याचिकाकर्ता ने 50 अंक प्राप्त किए हैं और श्री श्रयस यादव ने 52 अंक प्राप्त किए हैं, इस प्रकार, श्री श्रयस यादव को एकल पद पर चुना गया है जो स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी से संबंधित उम्मीदवारों के लिए आरक्षित था। चयन में साक्षात्कार के लिए बुलाए गए उम्मीदवारों की सूची के प्रासंगिक उद्धरण की प्रति, जिसमें क्रम संख्या-14 पर श्री रजनीश कुमार का नाम रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-14 के रूप में संलग्न किया गया है।

22. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि श्री श्रयस यादव का नाम अंतिम चयन सूची के

क्रम संख्या-47 में उल्लेख किया गया है, जिसमें यह भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि श्री श्रयस यादव अन्य पिछड़े वर्गों की दोनों श्रेणियों के साथ-साथ स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित भी हैं, हालांकि, चूंकि अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों के कट-ऑफ अंक 50 अंक हैं, जबकि सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत याचिकाकर्ता को प्रदान की गई जानकारी के अनुसार, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी से संबंधित उम्मीदवारों के कट-ऑफ अंक 52 अंक हैं, जो श्री श्रयस यादव द्वारा प्राप्त अंक प्रतीत होते हैं, यह स्पष्ट है कि श्री श्रयस यादव को स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी से संबंधित उम्मीदवारों के लिए आरक्षित एकल पद पर चुना गया है, यद्यपि श्री श्रयस यादव को अन्य पिछड़ी जाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित पदों में से एक पर चुना जाना चाहिए था, क्योंकि उन्होंने अन्य पिछड़ी जाति (यानी 50 से अधिक अंक) से संबंधित अंतिम चयनित उम्मीदवार की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए थे।

दिनांक 11.03.2014 के विज्ञापन के खंड 136 की ओर ध्यान आकर्षित करना भी प्रासंगिक है जिसके आधार पर चयन किया गया था। दिनांक 11.03.2014 के विज्ञापन के खंड 136 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि वे उम्मीदवार जो दो विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत आरक्षण की मांग कर रहे हैं, उन्हें केवल एक श्रेणी के अंतर्गत आरक्षण दिया जाएगा और वे आरक्षण के लिए पात्र होंगे, वह श्रेणी जो ऐसे उम्मीदवार के लिए अधिक लाभकारी है।

इसलिए, श्री श्रयस यादव को अन्य पिछड़ी जाति की श्रेणी के तहत चुना जाना चाहिए था, न कि उस एकल पद पर जो स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों से संबंधित उम्मीदवारों के लिए आरक्षित था, जिसका अर्थ है कि स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी से संबंधित उम्मीदवारों के लिए आरक्षित एकल पद याचिकाकर्ता द्वारा भरा जाना चाहिए था, जो योग्यता के क्रम में श्री श्रयस यादव के बाद अगली पंक्ति में थे।

23. उन्होंने प्रस्तुत किया कि स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी के तहत आरक्षण के लाभ से वंचित करते हुए कुछ उम्मीदवारों को दोहरे आरक्षण का लाभ देने में उत्तरदाताओं की आक्षेपित कार्रवाई तर्कसंगतता, निष्पक्षता और समानता के लिटमस टेस्ट का सामना नहीं करती है, जो हर प्रशासनिक कार्रवाई के आवश्यक तत्व हैं और न केवल अवैध और मनमाने हैं बल्कि कानून की नजर में अस्थिर भी हैं।

24. अपने सबमिशन के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया: -

(i) रमेश चन्द्र सांकला एवं अन्य बनाम विक्रम सीमेंट एवं अन्य [(2008) 14 एस.सी.सी. 58]; पैराग्राफ 97 और 98;

(ii) शांगरीला खाद्य उत्पाद और अन्य बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य [(1996)5 एस.सी.सी. 54]; अनुच्छेद 11;

(iii) शाहीन परवीन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [(2015) एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 9489]; अनुच्छेद 17;

(iv) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डॉ. दीनानाथ शुक्ल एवं अन्य [(1997) 9 एस.सी.सी. 662]; पैराग्राफ 11 और 13;

(v) डॉ सुरेश चंद्र वर्मा और अन्य बनाम कुलाधिपति, नागपुर विश्वविद्यालय और अन्य [(1990) 4 एस.सी.सी. 55]; पैराग्राफ 10 और 11;

(vi) देवेश नागल्या (मृत) और अन्य बनाम प्रदीप कुमार (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों और अन्य के माध्यम से [(2021)9 एस.सी.सी. 796]; अनुच्छेद 12;

(vii) पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू बनाम मोटर और जनरल ट्रेडर्स [(1975)1 एस.सी.सी.770]; अनुच्छेद 4

25. दूसरी ओर, प्रतिपक्षी आयोग के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आयोग ने राज्य शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद में व्याख्याता के पद के लिए दिनांक 7.2.2014 को एक विज्ञापन संख्या-5/2013-14 जारी किया था। विज्ञापन में शासनादेश संख्या-724/dk-2013 दिनांक 31.10.2023 के अनुसरण में स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को ऊपरी आयु सीमा में कोई छूट प्रदान नहीं की गई। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता का सरकारी आदेश संख्या-7/2/72-नियुक्ती-4 दिनांक 27.9.1972 के मद्देनजर उपरोक्त श्रेणी में

ऊपरी आयु सीमा में छूट का दावा गलत है क्योंकि उक्त सरकारी आदेश लागू नहीं है जैसा कि सरकारी आदेश संख्या-724/डीके-2013 दिनांक 31.10.2023 से स्पष्ट है। हालांकि, याचिकाकर्ता को सरकारी कर्मचारी होने के कारण ऊपरी आयु सीमा में छूट की अनुमति दी गई थी और उसका ऑनलाइन आवेदन स्वीकार कर लिया गया था और उसे चयन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी गई थी।

26. वह प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता को व्याख्याता, सामाजिक कार्य के पद के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता का साक्षात्कार 12.10.2018 को आयोजित किया गया था। व्याख्याता, सामाजिक कार्य के सभी 70 पदों के लिए परिणाम 30.10.2018 को घोषित किया गया था लेकिन याचिकाकर्ता सफल नहीं हो सका। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के प्रार्थना खंड में संशोधन करके परिणाम को चुनौती दी है। याचिकाकर्ता का दावा मुख्य रूप से इस बिंदु पर आधारित है कि वह स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की श्रेणी से संबंधित है और स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों के लिए आरक्षित एक रिक्ति के खिलाफ उसे सफल घोषित करने के बजाय, श्रेयस यादव नामक एक अन्य व्यक्ति को स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों के लिए आरक्षित एक रिक्ति के खिलाफ गलत तरीके से चुना गया है, जबकि वह पहले से ही ओबीसी की रिक्ति के खिलाफ चुना गया था। इस प्रकार, उन्हें दो श्रेणियों यानी ओबीसी और स्वतंत्रता सेनानियों की श्रेणी के आश्रितों के तहत आरक्षण की अनुमति दी गई है।

27. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि श्रेयस यादव एक ओबीसी उम्मीदवार हैं और स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों से भी संबंधित हैं, उन्हें 52 अंक मिले हैं, इसलिए, उन्हें ओबीसी कोटा (ओबीसी के लिए कट-ऑफ अंक 50 है) के तहत चुना गया था। चूंकि वह भी स्वतंत्रता सेनानी श्रेणी के आश्रितों से संबंधित है, इसलिए उसे स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों के कोटे के तहत समायोजित किया गया है। क्षैतिज आरक्षण उत्तर प्रदेश लोक सेवा (शारीरिक रूप से विकलांगों, स्वतंत्रता सेनानियों और भूतपूर्व सैनिकों के आश्रितों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1993 में निहित प्रावधानों के अनुसार किया जाता है, जो इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ [1992 पूरक (3) एस.सी.सी. 217] के मामले में क्षैतिज आरक्षण के संबंध में निर्धारित कानून के अनुरूप है। पैराग्राफ 812, जिसे अनिल कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [(1995)5 एस.सी.सी.173], पैराग्राफ 18 और राजेश कुमार दरिया बनाम राजस्थान लोक सेवा आयोग और अन्य [(2007)8 एस.सी.सी. 785], पैराग्राफ 6 के मामले में दोहराया गया है।

28. पक्षों के अधिवक्ता द्वारा आगे बढ़ाई गई प्रतिद्वंद्वी दलील सुनने के बाद, मैंने रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया।

29. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने रमेश चंद्र सांकला (उपरोक्त) के मामले में एक फैसले पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैराग्राफ 97 और 98 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"97. कंपनी के अधिवक्ता ने शंखिला फूड प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम, (1996)5 एस.सी.सी. 54 पर भारी निर्भरता रखी। क द्वारा दायर वाद में संपदा अधिकारी द्वारा ख के विरुद्ध यह कहते हुए एक आदेश पारित किया गया था कि वह अनधिकृत कब्जे में है और सार्वजनिक स्थान (अनधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के अंतर्गत बेदखल किए जाने योग्य है। उसने बी को 12 लाख रुपये का हर्जाना देने का भी आदेश दिया। आदेश के खिलाफ बी द्वारा अपील दायर की गई थी और अपीलीय प्राधिकारी ने बेदखली के आदेश की पुष्टि की थी। हालांकि, उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि बी को यह साबित करने का अवसर दिया जाना चाहिए था कि वह एक वैध उप-किरायेदार था। इसलिए मामले को रिमांड की जरूरत थी। उस स्तर पर, क ने प्रार्थना की कि उस मामले में, मामले को समग्र रूप से रिमांड पर लिया जाए ताकि किराए/क्षति के भुगतान के प्रश्न पर भी विचार किया जा सके। उच्च न्यायालय ने बी की इस दलील को नकारते हुए याचिका को बरकरार रखा कि ए ने हर्जाने के भुगतान के निर्देश को रद्द करने के आदेश को कभी चुनौती नहीं दी थी। ख ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। अपील को खारिज करते हुए, उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए और पर्याप्त न्याय के लिए विज्ञापन देते हुए, इस न्यायालय ने कहा:

"यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों का संज्ञान ले सकता है और पक्षों को पूर्ण और पर्याप्त न्याय देने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है। उच्च न्यायालय का यह क्षेत्राधिकार, असाधारण होने के कारण, समानता के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए सामान्य रूप से प्रयोज्य है। इक्विटी के सिरो में से एक ईमानदारी और निष्पक्ष खेल को बढ़ावा देना है। यदि किसी पक्ष द्वारा पहले कोई अनुचित लाभ प्राप्त किया जाता है, तो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने से पहले, अदालत प्राप्त अनुचित लाभ को ध्यान में रख सकती है और राहत देने से पहले पक्ष को अनुचित लाभ को बहाने की आवश्यकता हो सकती है। एकल न्यायाधीश द्वारा वास्तव में क्या किया गया है, यह उपर्युक्त जोर दिए गए शब्दों से स्पष्ट है जिन्हें लाभ के साथ फिर से पढ़ा जाना चाहिए। नुकसान के दावे और उनके पता लगाने का सवाल केवल जीवन बीमा निगम की स्थिति में उठेगा, प्रतिपक्षी, यह साबित करने में सफल रहा कि अपीलकर्ता कंपनी एक गैरकानूनी उप-किरायेदार थी और इसलिए सार्वजनिक परिसर के अनधिकृत कब्जे में थी। यदि निष्कर्ष अपीलकर्ता कंपनी के पक्ष में जाता है और यह एक वैध उप-किरायेदार साबित होता है और इसलिए अनधिकृत कब्जेदार नहीं है, तो नुकसान के दावे का निर्णय करने का

निर्देश बाँझ और ओटिओस प्रदान किया जाएगा। यह केवल अपीलकर्ता कंपनी को एक गैरकानूनी उप-किरायेदार होने की स्थिति में है और इसलिए एक अनधिकृत कब्जेदार नुकसान के लिए दावा निर्धारित किया जाएगा। इसलिए हम उच्च न्यायालय द्वारा प्रतियोगियों के बीच समानता को संतुलित करने के लिए इस तरह की प्रक्रिया को अपनाने में कोई गलती नहीं देखते हैं, खासकर जब इसके अलावा संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति थी। हम इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकते हैं कि जब विचाराधीन परिसर का कब्जा जारी रखने में एक कारक था, तो उपयोग और कब्जे के लिए भुगतान करने का दायित्व, चाहे वह किराए या क्षति के रूप में हो, भी एक सतत कारक था। उच्च न्यायालय द्वारा देखे गए न्याय के कारण ने स्पष्ट रूप से वारंट किया कि इन दोनों सवालों को एक-दूसरे पर निर्भर रूप से देखा जाना चाहिए। जो लोग समानता चाहते हैं, उन्हें समानता के सामने झुकना चाहिए। (महत्त्व सन्निविष्ट)

98. उपरोक्त मामलों से, यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अनुच्छेद 226 और 227 के तहत शक्तियां विवेकाधीन और न्यायसंगत हैं और न्याय के बड़े हित में प्रयोग करने की आवश्यकता है। आवेदक के पक्ष में राहत देते समय, न्यायालय को हितों और इक्विटी को संतुलित करने को ध्यान में रखना चाहिए। यह मामले के तथ्यों को देखते हुए राहत को ढाल सकता

है। यह एक उचित आदेश पारित कर सकता है जिसकी न्याय मांग कर सकता है और इक्विटी प्रोजेक्ट कर सकती है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा शिव शंकर दल मिल्स बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में देखा गया है। हरियाणा राज्य, (1980)¹ एस.सी.आर.1170, इक्विटी न्यायालयों को जनहित को आगे बढ़ाने में राहत देने और अस्वीकार करने दोनों के लिए बहुत आगे जाना चाहिए। राहत देना या न्याय रोकना, समानता और अच्छे विवेक के विचारों पर निर्भर हो सकता है।

30. उन्होंने शांगरीला खाद्य उत्पाद (उपरोक्त) के मामले में एक निर्णय पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैराग्राफ 11 नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"11. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों का संज्ञान ले सकता है और पक्षों को पूर्ण और पर्याप्त न्याय देने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है। उच्च न्यायालय का यह क्षेत्राधिकार, असाधारण होने के कारण, समानता के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए सामान्य रूप से प्रयोज्य है। इक्विटी के सिद्धांतों में से एक ईमानदारी और निष्पक्ष खेल को बढ़ावा देना है। यदि किसी पक्ष द्वारा प्राप्त कोई अनुचित लाभ है, तो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने से पहले, अदालत प्राप्त अनुचित लाभ को ध्यान में रख सकती

हैं और राहत देने से पहले पक्ष को अनुचित लाभ को बहाने की आवश्यकता हो सकती है। एकल न्यायाधीश द्वारा ठीक-ठीक क्या किया गया है, यह उपर्युक्त जोर दिए गए शब्दों से स्पष्ट है जिन्हें पुन पढ़ा जाना चाहिए। नुकसान के दावे और उनके पता लगाने का सवाल केवल जीवन बीमा निगम की स्थिति में उठेगा; प्रतिपक्षी, यह साबित करने में सफल रहा कि अपीलकर्ता कंपनी एक गैरकानूनी उप-किरायेदार थी और इसलिए सार्वजनिक परिसर के अनधिकृत कब्जे में थी। यदि निष्कर्ष अपीलकर्ता कंपनी के पक्ष में जाता है और यह एक वैध उप-किरायेदार साबित होता है और इसलिए अनधिकृत कब्जेदार नहीं है, तो नुकसान के दावे का निर्णय करने का निर्देश बाँझ और ओटिओस प्रदान किया जाएगा। यह केवल अपीलकर्ता कंपनी को एक गैरकानूनी उप-किरायेदार होने की स्थिति में है और इसलिए एक अनधिकृत कब्जेदार है कि नुकसान के लिए दावा निर्धारित किया जाएगा। इसलिए हम उच्च न्यायालय द्वारा प्रतियोगियों के बीच समानता को संतुलित करने के लिए इस तरह के प्रक्रिया को अपनाने में कोई गलती नहीं देखते हैं, खासकर जब इसके अलावा संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति थी। हम इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकते हैं कि जब विचाराधीन परिसर का कब्जा जारी रखने में एक कारक था, तो उपयोग और कब्जे के लिए भुगतान करने का दायित्व, चाहे वह किराए या क्षति के रूप में हो, भी एक सतत कारक था। उच्च न्यायालय द्वारा देखे गए न्याय के कारण ने स्पष्ट रूप से वारंट किया कि इन दोनों सवालों को एक-दूसरे पर निर्भर रूप से देखा जाना

चाहिए। क्योंकि जो लोग समानता चाहते हैं, उन्हें समानता के आगे झुकना चाहिए।

31. उन्होंने शाहीन परवीन (उपरोक्त) के मामले में एक फैसले पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैराग्राफ 17 नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"17. रिट न्यायालय, इक्विटी की अदालत होने के नाते, पर्याप्त न्याय देने के लिए उसके समक्ष लाए गए सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखना चाहिए। इक्विटी नियमों को झुकाने को सही ठहराती है, जहां पर्याप्त न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से, निष्पक्ष खेल का उल्लंघन नहीं किया जाता है। एक रिट अदालत पर्याप्त न्याय देने की अपनी शक्ति पर किसी भी सीमा पर विचार नहीं कर सकती है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्याय के उपभोक्ता को कानून की बारीकियों में जाने के बजाय पूर्ण न्याय मिले। इन परिस्थितियों में, अगर अन्याय होने की संभावना है तो अदालत केवल दर्शक नहीं हो सकती है।

32. उन्होंने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डॉ. दीनानाथ शुक्ल और अन्य (उपरोक्त) के मामले में एक निर्णय पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैराग्राफ 11 और 13 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"11. डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा एवं अन्य बनाम कुलाधिपति, नागपुर विश्वविद्यालय एवं

अन्य [(1990) 4 एस.सी.सी. 55] मामले में विषयवार भर्ती करने के स्थान पर कुल 77 पदों के संबंध में एक विज्ञापन जारी किया गया जिसमें प्रोफेसरों के 13 पद, रीडर के 29 पद और व्याख्याताओं के 35 पद शामिल हैं। जब इस पर सवाल उठाया गया, तो इस न्यायालय ने समानता और प्रक्रिया की निष्पक्षता के निहाई पर सिद्धांत का परीक्षण किया, इस प्रकार प्रश्न प्रस्तुत किया:

"क्या रोजगार नोटिस में विश्वविद्यालय शिक्षकों के पदों को विषयवार आरक्षित न करना अधिनियम की धारा 57 सपठित धारा 77-सी में निहित आरक्षण नीति के पत्र और भावना का उल्लंघन है?"

इस न्यायालय ने पैरा 10 से 12 में इस प्रकार निर्धारित किया था:

जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है, हम पहले ही उस तरीके का वर्णन कर चुके हैं जो पदों के आरक्षण के लिए विश्वविद्यालय द्वारा अपनाई गई थी। इसने विभिन्न विषयों में प्रोफेसरों, रीडरों और व्याख्याताओं के रूप में श्रेणीवार पदों की घोषणा की और एक व्यापक घोषणा की कि प्रोफेसरों के 6 पद, रीडरों के 12 पद और लेक्चरर के 16 पद पिछड़े जातियों के लिए आरक्षित होंगे। उस समय न तो विश्वविद्यालय और न ही उम्मीदवारों को पता था कि किस विषय के लिए और किस संख्या में उक्त पद आरक्षित थे। इसका परिणाम यह हुआ कि

विशेष रूप से आरक्षित वर्ग के उम्मीदवार, जो आरक्षित पदों के लिए आवेदन करना चाहते थे, उन्हें यह नहीं पता था कि वे किन पदों के लिए आवेदन कर सकते हैं और क्या वे उन विषयों के पदों के लिए आवेदन कर सकते हैं जिनमें वे योग्य थे। यह इस तरह के रोजगार नोटिस का अपेक्षित परिणाम हो सकता है, वैध रूप से अनुमान लगाया जा सकता है और वास्तव में क्या हुआ है, इसके साक्ष्य द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है और वास्तव में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे कई उम्मीदवार हो सकते हैं जो उक्त अनिश्चितता के कारण एक मौका ले सकते हैं। इसके अलावा, चयन समितियों को साक्षात्कार के लिए नियुक्त किया गया था कि संबंधित पदों के उम्मीदवारों को यह भी पता नहीं था कि वे आरक्षित वर्ग के उम्मीदवारों की योग्यता का आकलन करने के लिए ऐसे उम्मीदवारों के रूप में, आरक्षित पदों के लिए उम्मीदवारों का साक्षात्कार कर रहे थे या नहीं। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि चयन समिति आरक्षित वर्ग के उम्मीदवारों को जाने बिना भी .. और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके साथ कोई अन्याय हुआ है, इसमें कोई दम नहीं है। पहले उदाहरण में, विवाद इस आधार पर आगे बढ़ता है कि आरक्षित वर्ग से संबंधित सभी लोग जो उक्त सभी पदों के लिए आवेदन करना चाहते थे, उन्होंने यह जाने बिना भी ऐसा किया था कि संबंधित पद आरक्षित थे। दूसरे, यह भी माना जाता है कि

अनारक्षित श्रेणी के सभी पात्र उम्मीदवारों ने पदों के लिए आवेदन किया था, बिना यह जाने कि पद आरक्षित थे या नहीं। इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि आरक्षित और अनारक्षित दोनों श्रेणियों से संबंधित कई पात्र उम्मीदवारों ने जोखिम नहीं लिया हो और जुआ खेलने का विकल्प चुना हो। यह तर्क आगे इस तथ्य की अनदेखी करता है, कि आरक्षित श्रेणी से विशेष पद के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता को विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए आंका जाना चाहिए और वांछित परिणाम केवल संबंधित उम्मीदवारों को समान वेटेज अंक देकर प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जो उम्मीदवारों का चयन करते समय चयन समितियों द्वारा अपनाई जाने वाली एकमात्र विधि थी। इसके अतिरिक्त, रिकार्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के संबंध में उम्मीदवार को महत्व देने की इस पद्धति का पालन नहीं किया गया था, भले ही उन्होंने आरक्षित सीटों पर पद के लिए आवेदन न किया हो। इसके अलावा, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर भी कुछ भी नहीं है कि आरक्षित श्रेणी के किसी उम्मीदवार ने आरक्षित सीट पर किसी विशेष पद के लिए आवेदन किया था, बिना पूर्व जानकारी के कि पद आरक्षित था। इसलिए, यह समझना मुश्किल है कि चयन समितियों ने आरक्षित या गैर-आरक्षित सीटों के लिए आवेदन किया था या नहीं, यह जाने बिना उम्मीदवारों को वेटेज देने के लिए कैसे

आगे बढ़ीं। इस प्रक्रिया में अधिक आपत्तिजनक बात यह थी कि इसकी कार्यकारी परिषद ने विभिन्न चयन समितियों से चयनित उम्मीदवारों की सूची प्राप्त होने के बाद आरक्षित और गैर-आरक्षित पदों के बीच विभिन्न विषयों में पदों को वर्गीकृत करने की कार्यवाही की। यह विधि एक स्पष्ट आपत्ति के लिए खुली थी क्योंकि इसने उस स्तर पर अवांछित चयनित उम्मीदवारों को हटाने की गुंजाइश दी थी। प्रस्तुत मामले में ऐसा हुआ है या नहीं, यह विश्वविद्यालय द्वारा अपनाई गई विधि की वैधता और औचित्य के परीक्षण के लिए सारहीन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वास्तव में, चयनित उम्मीदवारों की सूची प्राप्त होने के बाद न केवल कार्यकारी परिषद ने यह तय करने के लिए एक और समिति गठित की कि कौन सा विषयवार पद आरक्षित किया जाना चाहिए या नहीं, बल्कि कार्यकारी परिषद ने यह भी निर्णय लिया कि हालांकि 47 पदों के लिए उम्मीदवारों का चयन किया गया था, परंतु केवल 30 पदों को अलग रखा गया था, हालांकि उम्मीदवारों को उनके लिए चुना गया था, और उन्हें आरक्षित वर्ग के उम्मीदवारों द्वारा नए सिरे से भरने के लिए अलग रखा गया था। हालांकि, दिलचस्प बात यह है कि इन पदों के लिए बाद में जारी रोजगार नोटिस में आरक्षण का उल्लेख पोस्ट-वाइज़ (विषयवार) किया गया था।

हमारे अनुसार, संदर्भ में प्रयुक्त "पोस्ट" शब्द का संकाय, अनुशासन या उस विषय

से संबंध है जिसके लिए इसे बनाया गया है। इसलिए, जब "पदों में" आरक्षण किया जाना आवश्यक है, तो आरक्षण पोस्टवाइज, यानी विषयवार होना चाहिए। आरक्षित पदों की संख्या की घोषणा मात्र उन विषयों का उल्लेख किए बिना पदों के लिए आवेदन आमंत्रित करने से बेहतर नहीं है जिनके लिए पदों का विज्ञापन दिया गया है। जब धारा 57(4)(ए) की आवश्यकता होती है कि विज्ञापन या रोजगार नोटिस आरक्षित पदों की संख्या, यदि कोई हो, इंगित करेगा, तो इसका अर्थ है कि रोजगार नोटिस अस्पष्ट नहीं हो सकता है और उसे विशिष्ट पद को इंगित करना होगा, अर्थात्, वह विषय जिसमें पद रिक्त है और जिसके लिए आरक्षित वर्ग से संबंधित उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए गए हैं। इस तरीके से पद का संकेत न देना अपने आप में उस उद्देश्य को पराजित करता है जिसके लिए आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं और परिणामस्वरूप आरक्षण नीति के उद्देश्य को नकारते हैं। यह भी विधायिका का इरादा धारा 57(4)(डी) द्वारा स्पष्ट किया गया है, जिसके लिए चयन समितियों को प्रत्येक उम्मीदवार की योग्यता का परीक्षण और मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है और उसे "सामान्य पदों" और "आरक्षित पदों" पर नियुक्ति के लिए सिफारिश की जाती है। अपीलकर्ताओं द्वारा 30 मार्च, 1981 के सरकारी प्रस्ताव में प्रतिपादित आरक्षण की नीति से उनके विवाद के लिए एक समर्थन प्राप्त करने की भी मांग की गई थी, जिसमें

अधिनियम की धारा 77(सी) के तहत सरकार को प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में इस मामले में निर्देश जारी किए गए हैं।

13. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि यदि प्रत्येक संकाय, अनुशासन, विशेषता या अति-विशिष्टता में प्रत्येक संवर्ग में प्रत्येक सेवा या पद में विषयवार भर्ती अपनाई जाती है, तो यह न केवल भर्ती चाहने वाले उम्मीदवारों के लिए स्पष्ट होगा, बल्कि अधिनियम की धारा 3 द्वारा निर्दिष्ट और लागू किए गए सेवा या पदों के लिए आरक्षण के नियम को लागू करने में अतिव्याप्ति भी नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि प्रत्येक संकाय, अनुशासन, विशिष्टता या अधिविशेषज्ञता में विषयवार विनिर्देशों के बिना कुल पदों का विज्ञापन दिया जाता है, तो उम्मीदवारों के लिए यह जानना कठिन होगा कि सामान्य या आरक्षित उम्मीदवारों के लिए कौन से पद उपलब्ध हैं या वे किसी विशेष पद के लिए आवेदन करने और चयन प्राप्त करने के लिए अपेक्षाओं को पूरा करते हैं या नहीं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यदि प्रत्येक संकाय, अनुशासन, विशेषता या सुपर-स्पेशियलिटी में प्रोफेसर, रीडर या लेक्चरर का कोई एकल पद है जिसे आरक्षित उम्मीदवारों के लिए आरक्षित नहीं किया जा सकता है, तो इसे लागू रॉस्टर लागू किया जाना चाहिए और अधिनियम की धारा 3(5) के अनुसार आरक्षित उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए। यदि कोई पृथक

पद मौजूद भी है तो नियुक्ति के लिए रोस्टर के आवेदन द्वारा रोटेशन का नियम अपनाया जाना चाहिए। उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, कुलपति, जो अधिनियम को लागू करने के लिए धारा 4 के तहत जिम्मेदार प्राधिकारी है, यह सुनिश्चित करेगा कि प्रत्येक श्रेणी में एकल पदों को क्लब किया जाए क्योंकि प्रोफेसर, रीडर या लेक्चरर की प्रत्येक श्रेणी में सभी पदों का वेतनमान समान है। इसलिए, उनका संलयन संवैधानिक और अनुमेय है। कुलपति को धारा 3 की उपधारा (5) के तहत परिकल्पित रोटेशन और रोस्टर के नियम को लागू करना चाहिए। विज्ञापन जारी किए जाने अपेक्षित हैं ताकि आरक्षित और सामान्य उम्मीदवार उनके अनुसार भर्ती के अपने दावों पर विचार करने के लिए आवेदन कर सकें। यह व्याख्या संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(1), प्रस्तावना, अनुच्छेद 38 और अनुच्छेद 46 और अन्य सभी संज्ञेय उपबंधों सपठित अनुच्छेद 335 और 16(4) में अधिदेशित और परिकल्पित किसी सेवा या पद, ग्रेड या संवर्ग में प्रतिनिधित्व की पर्याप्तता प्रदान करने वाले सामाजिक-आर्थिक न्याय के संवैधानिक उद्देश्य और सार्वजनिक नीति को उपयोजित और विस्तारित करेगी।

33. उन्होंने डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा (उपरोक्त) के मामले में एक निर्णय पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैराग्राफ 10 और 11 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"10. पहले प्रश्न के संबंध में, हमने पहले उस पद्धति का वर्णन किया है जो विश्वविद्यालय द्वारा पदों को आरक्षित करने के लिए अपनाई गई थी। इसने विभिन्न विषयों में प्रोफेसर, रीडर और लेक्चरर के रूप में श्रेणीवार पदों की घोषणा की और एक व्यापक घोषणा की कि प्रोफेसर के 6 पद, रीडरों के 12 पद और लेक्चरर के 16 पद पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित होंगे। उस समय न तो विश्वविद्यालय और न ही अभ्यर्थियों को यह पता था कि उक्त पदों को किस विषय में और किस संख्या में पुनः दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि विशेष रूप से आरक्षित श्रेणी से संबंधित उम्मीदवार, जो आरक्षित पदों के लिए आवेदन करना चाहते थे, उन्हें यह नहीं पता था कि वे किन पदों के लिए आवेदन कर सकते हैं और क्या वे उन विषयों में पदों के लिए आवेदन कर सकते हैं जिनमें वे योग्य थे। यह इस तरह के रोजगार नोटिस का अपेक्षित परिणाम हो सकता है, वैध रूप से अनुमान लगाया जा सकता है और वास्तव में जो हुआ उसको साक्ष्य द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है और वास्तव में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे कई उम्मीदवार हो सकते हैं जिन्होंने उक्त अनिश्चितता के कारण पदों के लिए आवेदन करने से परहेज किया हो, जिन्होंने मौका लेने के लिए आवेदन किया था। इसके अलावा, विशिष्ट पदों के लिए उम्मीदवारों का साक्षात्कार करने के लिए नियुक्त की

गई चयन समितियों को यह भी पता नहीं था कि वे आरक्षित पदों के लिए उम्मीदवारों का साक्षात्कार कर रहे थे या नहीं, और क्या वो आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों की योग्यता का आकलन करने के लिए..। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि चयन समितियों ने बिना यह जाने कि संबंधित पद आरक्षित थे या नहीं, आरक्षित वर्ग के उम्मीदवारों को महत्व दिया था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके साथ कोई अन्याय हुआ है, वह योग्यता के बिना है। पहली बार में, यह निष्कर्ष इस आधार पर आगे बढ़ता है कि आरक्षित वर्ग से संबंधित सभी लोग जो उक्त पदों के लिए आवेदन करना चाहते थे, उन्होंने यह जाने बिना भी ऐसा किया था कि संबंधित पद आरक्षित थे। दूसरे, यह भी माना जाता है कि अनारक्षित श्रेणी के सभी पात्र उम्मीदवारों ने पदों के लिए आवेदन किया था, बिना यह जाने कि पद आरक्षित थे या नहीं। इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि आरक्षित और अनारक्षित दोनों श्रेणियों से संबंधित कई पात्र उम्मीदवारों ने जोखिम नहीं लिया हो और जुआ खेलने का विकल्प चुना हो। यह तर्क आगे इस तथ्य की अनदेखी करता है कि आरक्षित श्रेणी से विशेष पद के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता को विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए आंका जाना है और वांछित परिणाम केवल संबंधित उम्मीदवारों को समान वेटेज अंक देकर

प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जो उम्मीदवारों का चयन करते समय चयन समितियों द्वारा अपनाई जाने वाली एकमात्र विधि थी। इसके अतिरिक्त, रिकार्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के संबंध में उम्मीदवार को महत्व देने की इस पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया था, भले ही उन्होंने आरक्षित सीटों पर पद के लिए आवेदन न किया हो। इसके अलावा, यह दिखाने के लिए भी रिकार्ड पर कुछ भी नहीं है कि आरक्षित वर्ग से संबंधित किसी उम्मीदवार ने आरक्षित सीट पर किसी विशेष पद के लिए, बिना पूर्व जानकारी के कि पद आरक्षित था, आवेदन किया है या नहीं। इसलिए, यह समझना मुश्किल है कि चयन समितियों ने आरक्षित या अनारक्षित सीटों के लिए आवेदन किया था या नहीं, और यह जाने बिना कि उम्मीदवारों को वेटेज देने के लिए कैसे आगे बढ़ी। इस प्रक्रिया में और अधिक आपत्तिजनक बात यह थी कि इसकी कार्यकारी परिषद ने विभिन्न चयन समितियों से चयनित उम्मीदवारों की सूची प्राप्त होने के बाद आरक्षित और अनारक्षित पदों के बीच विभिन्न विषयों में पदों को वर्गीकृत करने की कार्यवाही की। इस पद्धति पर स्पष्ट आपत्ति की जा सकती थी क्योंकि इसमें उस स्तर पर अवांछित चयनित अभ्यर्थियों को हटाने की गुंजाइश दी गई थी। प्रस्तुत मामले में ऐसा हुआ है या नहीं, यह विश्वविद्यालय द्वारा अपनाई

गई विधि की वैधता और औचित्य की जांच के लिए सारहीन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वस्तुतः चयनित अभ्यर्थियों की सूची प्राप्त होने के बाद न केवल कार्यकारी परिषद ने यह निर्णय लेने के लिए एक अन्य समिति गठित की कि कौन सा विषयवार पद आरक्षित किया जाए या नहीं, बल्कि कार्यकारी परिषद ने यह भी निर्णय लिया कि यद्यपि 47 पदों के लिए अभ्यर्थियों का चयन किया गया था, उनमें से केवल 30 पदों पर स्थायी रूप से नियुक्ति की जानी चाहिए। बाद में आरक्षित पदों के लिए कुछ पिछड़े वर्ग के उम्मीदवारों को शामिल किया गया, इसलिए बाद में वर्गीकृत किया गया। लेकिन 17 पदों को अलग रखा गया था, हालांकि उम्मीदवारों को उनके लिए चुना गया था, और उन्हें आरक्षित वर्ग से संबंधित उम्मीदवारों द्वारा नए सिरे से भरे जाने के लिए अलग रखा गया था। पर दिलचस्प बात यह है कि इन 17 पदों के लिए बाद में जारी किए गए रोजगार नोटिस में आरक्षण का उल्लेख पोस्ट-वाइज़ (विषयवार) किया गया था।

11. विश्वविद्यालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का समर्थन करने के लिए अधिनियम की धारा 57(4)(ए) पर आधारित तर्क, हमारे अनुरूप नहीं है। तर्क यह है कि चूंकि धारा 57(4)(ए) के अनुसार विश्वविद्यालय को विज्ञापन में केवल पदों की कुल संख्या और आरक्षित पदों की संख्या बताने की आवश्यकता

है, न कि पदवार, यानी विषयवार, विचाराधीन रोजगार नोटिस कानून में गलत नहीं था। हमारे अनुसार, संदर्भ में प्रयुक्त "पोस्ट" शब्द का संकाय, अनुशासन या उस विषय से संबंध है जिसके लिए इसे बनाया गया है। इसलिए, जब "पदों में" आरक्षण किया जाना आवश्यक है, तो आरक्षण पदवार अर्थात् विषयवार होना चाहिए। आरक्षित पदों की संख्या की घोषणा मात्र उन विषयों का उल्लेख किए बिना पदों के लिए आवेदन आमंत्रित करने से बेहतर नहीं है जिनके लिए पदों का विज्ञापन दिया गया है। जब धारा 57(4)(ए) में यह आवश्यक है कि विज्ञापन या रोजगार नोटिस आरक्षित पदों की संख्या, यदि कोई हो, इंगित करेगा, तो इसका अर्थ है कि रोजगार नोटिस अस्पष्ट नहीं हो सकता है और विशिष्ट पद को इंगित करना होगा, अर्थात्, वह विषय जिसमें पद रिक्त है और जिसके लिए आरक्षित वर्गों से संबंधित उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए गए हैं। इस तरीके से पद का संकेत न देने से ही आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करने का उद्देश्य पराजित हो जाता है और परिणामस्वरूप आरक्षण नीति के उद्देश्य को नकार दिया जाता है। यह भी विधायिका का इरादा धारा 57(4)(डी) द्वारा स्पष्ट किया गया है, जिसके लिए चयन समितियों को प्रत्येक उम्मीदवार की योग्यता का साक्षात्कार और मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है और उसे

"सामान्य पदों" और "आरक्षित पदों" पर नियुक्ति के लिए सिफारिश की जाती है।

34. उन्होंने देवेश नागल्या (उपरोक्त) के मामले में निर्णय पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैरा-12 नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"12. अपीलकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के परिणामस्वरूप बाद की घटनाओं को ध्यान में रखा जाना था। हालांकि, उच्च न्यायालय भागीदारों में से एक की मृत्यु को ध्यान में रखने में विफल रहा, जिसके कारण परिसर को खाली माना गया। अपीलकर्ता ने पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स जिसमें इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"4. हम महसूस करते हैं कि प्रस्तुतियाँ पदार्थ से रहित हैं। पहला, कार्यवाहियां शुरू होने के बाद अस्तित्व में आने वाली परिस्थितियों की तुलना में क्षेत्राधिकार और औचित्य के बारे में। यह हमारे प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र के लिए बुनियादी है कि राहत के अधिकार को उस तारीख के रूप में मौजूद माना जाना चाहिए जब एक मुकदमा दायर करने वाला कानूनी कार्यवाही शुरू करता है। समान रूप से स्पष्ट सिद्धांत है कि प्रक्रिया हैंडमेड है और न्यायिक प्रक्रिया की मालकिन नहीं है। यदि कोई तथ्य, जो अदालत में आने के बाद उत्पन्न होता है और राहत के

अधिकार या इसे ढालने के तरीके पर मौलिक प्रभाव डालता है, को ट्रिब्यूनल के ध्यान में लाया जाता है, तो यह उस पर पलक नहीं झपका सकता है या उन घटनाओं के प्रति अंधा नहीं हो सकता है जो डिक्लीटल उपाय को अशक्त या अयोग्य बनाती हैं। इक्विटी प्रक्रिया के नियमों को झुकाने को सही ठहराती है, जहां कोई विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं किया जाता है, पर्याप्त न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से-निश्चित रूप से, अन्य विघटनकारी कारकों या न्यायसंगत परिस्थितियों की अनुपस्थिति के अधीन। न ही हम इस शक्ति पर किसी सीमा पर विचार कर सकते हैं कि इसे विचारण न्यायालय तक सीमित करने के लिए अद्यतन तथ्यों पर ध्यान दिया जाए। यदि मुकदमेबाजी लंबित है, तो शक्ति मौजूद है, अनुपस्थित अन्य विशेष परिस्थितियों में कानून या न्याय में उस प्रक्रिया का सहारा लेते हैं। इस बिंदु पर निर्णय लीजन हैं, यहां तक कि इस न्यायसंगत नियम के अनुप्रयोगों के लिए स्थितियां असंख्य हैं। हम इस प्रस्ताव की पुष्टि करते हैं कि पक्ष द्वारा दावा किए गए अधिकार या उपाय को न्यायसंगत और सार्थक बनाने के साथ-साथ कानूनी रूप से और तथ्यात्मक रूप से वर्तमान वास्तविकताओं के अनुसार, न्यायालय कर सकता है, और कई मामलों में, कार्यवाही की संस्था के बाद की घटनाओं और घटनाक्रमों का सावधानीपूर्वक संज्ञान लेना चाहिए, बशर्ते दोनों पक्षों को निष्पक्षता के नियमों का ईमानदारी से पालन किया

जाए। दोनों अवसरों पर उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण में इस दृष्टिकोण को सही ढंग से लिया। मामले की पेंडेंसी के दौरान मकान मालिक द्वारा एक और आवास की बाद में बरामदगी, जैसा कि उच्च न्यायालय ने दो बार बताया है, धारा 10(3)(iii) में लिखे गए निषेध के मददेनजर बेदखली के अधिकार पर असर डालने वाली सामग्री। हम कानून में इस दृष्टिकोण या तथ्य की खोज को छेड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

35. उन्होंने पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलु (उपरोक्त) के मामले में एक निर्णय पर भरोसा किया, प्रासंगिक पैरा-4 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"4. हम सबमिशन को पदार्थ से रहित महसूस करते हैं। सर्वप्रथम, कार्यवाहियां शुरू होने के पश्चात् अस्तित्व में आने वाली परिस्थितियों की तुलना में अधिकारिता और औचित्य के बारे में। यह हमारे प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र के लिए बुनियादी है कि राहत के अधिकार को उस तारीख के रूप में मौजूद माना जाना चाहिए जब एक मुकदमा दायर करने वाला कानूनी कार्यवाही शुरू करता है। समान रूप से स्पष्ट सिद्धांत है कि प्रक्रिया हैंडमेड है और न्यायिक प्रक्रिया की मालकिन नहीं है। यदि कोई तथ्य, जो अदालत में आने के बाद उत्पन्न होता है और इसे ढालने के तरीके के लिए राहत के अधिकार पर मौलिक प्रभाव डालता है, को ट्रिब्यूनल के ध्यान

में लाया जाता है, तो यह उस पर पलक नहीं झपका सकता है या उन घटनाओं के प्रति अंधा नहीं हो सकता है जो डिफ़िकल्ट उपाय को अशक्त या अयोग्य बनाते हैं। इक्विटी प्रक्रिया के नियमों को झुकाने को सही ठहराती है, जहां कोई विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं किया जाता है, पर्याप्त न्याय को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विषय, निश्चित रूप से, अन्य विघटनकारी (अभिनेताओं या सिर्फ परिस्थितियों) की अनुपस्थिति के लिए। न ही हम इस शक्ति पर किसी सीमा पर विचार कर सकते हैं कि इसे विचारण न्यायालय तक सीमित करने के लिए अद्यतन तथ्यों पर ध्यान दिया जाए। यदि मुकदमेबाजी लंबित है, तो शक्ति मौजूद है, अनुपस्थित अन्य विशेष परिस्थितियों में कानून या न्याय में उस प्रक्रिया का सहारा लेते हैं। इस बिंदु पर निर्णय लीजन हैं, यहां तक कि इस न्यायसंगत नियम के अनुप्रयोगों के लिए स्थितियां विभिन्न हैं। हम इस प्रस्ताव की पुष्टि करते हैं कि पक्ष द्वारा दावा किए गए अधिकार या उपाय को न्यायसंगत और सार्थक बनाने के साथ-साथ कानूनी रूप से और तथ्यात्मक रूप से वर्तमान वास्तविकताओं के अनुसार, अदालत कर सकती है, और कई मामलों में, कार्यवाही की संस्था के बाद की घटनाओं और घटनाक्रमों का सतर्क संज्ञान लेना चाहिए, बशर्ते दोनों पक्षों के निष्पक्षता के नियमों का ईमानदारी से पालन किया जाए। दोनों अवसरों पर

उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण में इस दृष्टिकोण को सही ढंग से लिया। मामले के लंबित रहने के दौरान मकान मालिक द्वारा एक अन्य आवास की बाद में बरामदगी, जैसा कि उच्च न्यायालय ने दो बार बताया है, धारा 10(3)(iii) में लिखे गए निषेध के मद्देनजर बेदखल करने के अधिकार पर असर डालने वाली सामग्री। हम कानून में इस दृष्टिकोण या तथ्य की खोज को छेड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

36. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता ने राजेश कुमार डारिया (उपरोक्त) के मामले में एक फैसले पर भरोसा किया, जिससे अन्य दो निर्णयों यानी इंद्रा साहनी (उपरोक्त) और अनिल कुमार गुप्ता (उपरोक्त) पर विचार किया गया है। राजेश कुमार डारिया (उपरोक्त) के मामले में प्रासंगिक पैराग्राफ 9 नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"9. दूसरा ऊर्ध्वाधर आरक्षण और क्षैतिज आरक्षण की प्रकृति के बीच अंतर से संबंधित है। अनुच्छेद 16(4) के तहत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के पक्ष में सामाजिक आरक्षण ऊर्ध्वाधर आरक्षण है। अनुच्छेद 16(1) या 15(3) के अंतर्गत शारीरिक रूप से विकलांगों, महिलाओं आदि के पक्ष में विशेष आरक्षण क्षैतिज आरक्षण है। जहां अनुच्छेद 16(4) के तहत पिछड़े वर्ग के पक्ष में ऊर्ध्वाधर आरक्षण किया जाता है, ऐसे पिछड़े वर्ग से

संबंधित उम्मीदवार गैर-आरक्षित पदों के लिए प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं और यदि उन्हें अपनी योग्यता के आधार पर गैर-आरक्षित पदों पर नियुक्त किया जाता है, तो उनकी संख्या संबंधित पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित कोटे के खिलाफ नहीं गिनी जाएगी। इसलिए, यदि अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों की संख्या, जो अपनी योग्यता से, खुली प्रतियोगिता रिक्तियों के लिए चयनित हो जाती है, अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित पदों के प्रतिशत के बराबर या उससे अधिक है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण कोटा भर दिया गया है। संपूर्ण आरक्षण कोटा बरकरार रहेगा और खुली प्रतिस्पर्धा श्रेणी के तहत चुने गए लोगों के अतिरिक्त उपलब्ध होगा। [देखिए -इंदिरा साहनी (उपरोक्त), आरके सभरवाल बनाम पंजाब राज्य (1995(2) एस.सी.सी. 745), भारत संघ बनाम वीरपाल सिंह चौहान (1995(6) एस.सी.सी. 684 और रितेश आर. साह बनाम डॉ. वाईएल यमुल (1996(3) एस.सी.सी. 253)]। लेकिन ऊर्ध्वाधर (सामाजिक) आरक्षण पर लागू उपरोक्त सिद्धांत क्षैतिज (विशेष) आरक्षण पर लागू नहीं होगा। जहां अनुसूचित जातियों के लिए सामाजिक आरक्षण के भीतर महिलाओं के लिए विशेष आरक्षण प्रदान किया जाता है, वहां उचित

प्रक्रिया यह है कि पहले योग्यता के क्रम में अनुसूचित जातियों के लिए कोटा भरा जाए और फिर उनमें से उन उम्मीदवारों की संख्या का पता लगाया जाए जो अनुसूचित जातियों-महिलाओं के विशेष आरक्षण समूह से संबंधित हैं। यदि ऐसी सूची में महिलाओं की संख्या विशेष आरक्षण कोटे की संख्या के बराबर या उससे अधिक है, तो विशेष आरक्षण कोटे के लिए आगे चयन की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई कमी है तो अनुसूचित जाति से संबंधित सूची के निचले भाग से अभ्यर्थियों की तदनुरूपी संख्या को हटाकर अनुसूचित जाति की महिलाओं की अपेक्षित संख्या का उपयोग करना होगा। इस सीमा तक, क्षैतिज (विशेष) आरक्षण ऊर्ध्वाधर (सामाजिक) आरक्षण से भिन्न होता है। इस प्रकार ऊर्ध्वाधर आरक्षण कोटा के भीतर योग्यता के आधार पर चुनी गई महिलाओं को महिलाओं के लिए क्षैतिज आरक्षण के खिलाफ गिना जाएगा। आइए एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें: यदि अनुसूचित जाति के लिए 19 पद आरक्षित हैं (जिनमें से महिलाओं के लिए कोटा चार है), तो 19 अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों को सफल पात्र उम्मीदवारों में से योग्यता के अनुसार पहले सूचीबद्ध करना होगा। यदि ऐसी सूची के 19 उम्मीदवारों में चार एस.सी. महिला उम्मीदवार हैं, तो

किसी भी आगे एस.सी. महिला उम्मीदवार को शामिल करके सूची को छेड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर, यदि अनुसूचित जाति के 19 वर्ष के उम्मीदवारों की सूची में केवल दो महिला उम्मीदवार हैं, तो योग्यता के अनुसार अगली दो अनुसूचित जाति की महिला उम्मीदवारों को सूची में शामिल करना होगा और ऐसी सूची के नीचे से उम्मीदवारों की तदनुरूपी संख्या को हटाना होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अंतिम 19 चयनित अनुसूचित जाति उम्मीदवारों में चार महिला एस.सी. उम्मीदवार हैं। [लेकिन यदि अनुसूचित जाति के 19 वर्ष की सूची में चार से अधिक महिला उम्मीदवार शामिल हैं, जिन्हें स्वयं की योग्यता के आधार पर चुना गया है, तो वे सभी सूची में बनी रहेंगी और इस आधार पर अतिरिक्त महिला उम्मीदवार को हटाने का कोई सवाल ही नहीं है कि 'एस.सी. महिला' का चयन चार के निर्धारित आंतरिक कोटे से अधिक किया गया है।

37. रमेश चंद्र सांकला (उपरोक्त) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अनुच्छेद 226 और 227 के तहत शक्तियां विवेकाधीन और न्यायसंगत हैं और न्याय के बड़े हित में प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है। आवेदक के पक्ष में राहत देते समय, न्यायालय को हितों और इक्विटी को संतुलित

करने को ध्यान में रखना चाहिए। यह मामले के तथ्यों को देखते हुए राहत को ढाल सकता है। यह एक उचित आदेश पारित कर सकता है जिसकी न्याय मांग कर सकता है और इक्विटी प्रोजेक्ट कर सकती है। इसके अलावा शांगरीला फूड प्रोडक्ट्स (उपरोक्त) के मामले में, यह माना गया है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों का संज्ञान ले सकता है और पक्षों को पूर्ण और पर्याप्त न्याय देने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है। उच्च न्यायालय का यह क्षेत्राधिकार, असाधारण होने के कारण, समानता के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए सामान्य रूप से प्रयोज्य है। इक्विटी के सिद्धांतों में से एक ईमानदारी और निष्पक्ष खेल को बढ़ावा देना है। यदि किसी पक्ष द्वारा प्राप्त कोई अनुचित लाभ है, तो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने से पहले, अदालत प्राप्त अनुचित लाभ को ध्यान में रख सकती है और राहत देने से पहले पक्ष को अनुचित लाभ को बहाने की आवश्यकता हो सकती है।

शाहीन परवीन (उपरोक्त) के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया है, जिसमें यह माना गया है कि रिट अदालत, इक्विटी की अदालत होने के नाते, पर्याप्त न्याय देने के लिए उसके सामने लाए गए सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखना चाहिए। इक्विटी नियमों को झुकाने को सही ठहराती है, जहां पर्याप्त न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से निष्पक्ष खेल का उल्लंघन नहीं किया जाता है।

एक रिट अदालत पर्याप्त न्याय देने की अपनी शक्ति पर किसी भी सीमा पर विचार नहीं कर सकती है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्याय के उपभोक्ता को कानून की बारीकियों में जाने के बजाय पूर्ण न्याय मिले। इन परिस्थितियों में, यदि अन्याय होने की संभावना है तो अदालत केवल दर्शक नहीं हो सकती है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डॉ. दीना नाथ शुक्ला और अन्य (उपरोक्त) के मामले में, यह माना गया है कि विज्ञापन जारी किए जाने की आवश्यकता है ताकि आरक्षित और सामान्य उम्मीदवार इसके अनुसार भर्ती के अपने दावों पर विचार करने के लिए आवेदन करें। यह व्याख्या संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(1), प्रस्तावना, अनुच्छेद 38 और अनुच्छेद 46 और अन्य सभी संज्ञेय उपबंधों सपठित अनुच्छेद 335 और 16(4) में अधिदेशित और परिकल्पित किसी सेवा या पद, ग्रेड या संवर्ग में प्रतिनिधित्व की पर्याप्तता प्रदान करने वाले सामाजिक-आर्थिक न्याय के संवैधानिक उद्देश्य और सार्वजनिक नीति को उपयोजित और विस्तारित करेगी। डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा (उपरोक्त) के मामले में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है। देवेश नागल्या (उपरोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने इस प्रस्ताव की पुष्टि की है कि पक्ष द्वारा दावा किए गए अधिकार या उपाय को न्यायसंगत और सार्थक बनाने के साथ-साथ कानूनी और तथ्यात्मक रूप से वर्तमान वास्तविकताओं के अनुसार, न्यायालय कर सकता है, और कई मामलों

में, कार्यवाही की संस्था के बाद की घटनाओं और घटनाक्रमों का सावधानीपूर्वक संज्ञान लेना चाहिए, बशर्ते कि दोनों पक्षों के निष्पक्षता के नियमों का ईमानदारी से पालन किया जाए। अंत में, पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलु (उपरोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने माना है कि यदि अदालत में आने के बाद उत्पन्न होने वाला कोई तथ्य और इसे ढालने के तरीके के लिए राहत के अधिकार पर मौलिक प्रभाव पड़ता है, तो ट्रिब्यूनल के ध्यान में लाया जाता है, यह उस पर पलक नहीं झपका सकता है या उन घटनाओं के प्रति अंधा नहीं हो सकता है जो डिफ्रोटल उपाय को अशक्त या अयोग्य बनाती हैं। इक्विटी प्रक्रिया के नियमों को झुकाने को सही ठहराती है, जहां, पर्याप्त न्याय को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विषय, निश्चित रूप से, अन्य विघटनकारी (अभिनेताओं या सिर्फ परिस्थितियों) की अनुपस्थिति के लिए, कोई विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं किया जाता है।

38. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ पक्षकारों के वकीलों द्वारा दिए गए निर्णयों पर समग्र विचार करने पर, यह पाया जाता है कि एक बार श्रेयस यादव ने ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, जो 50 अंक हैं और उन्होंने 52 अंक प्राप्त किए हैं, इसलिए, उन्हें ओबीसी श्रेणी के तहत चुना गया होगा, न कि स्वतंत्रता सेनानी कोटा के आश्रितों की ओबीसी श्रेणी के तहत क्षैतिज आरक्षण का लाभ देकर। यदि वह योग्यता में उच्च होने

के कारण ओबीसी श्रेणी के तहत चयनित है, तो उसका चयन ओबीसी श्रेणी के तहत किया गया माना जाएगा।

39. राजेश कुमार डारिया (उपरोक्त) के मामले में प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय, इस प्रकार, स्पष्ट रूप से अलग है और मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है।

40. 12.3.2021 को दायर पूरक हलफनामे में, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत दी गई जानकारी के आधार पर तथ्य का एक स्पष्ट बयान है कि चार रिक्तियां खाली पड़ी हैं। यह जानकारी दिनांक 6.8.2019 के पत्र द्वारा दी गई थी।

41. उपरोक्त के मददेनजर, पर्याप्त न्याय को पूरा करने के लिए और इक्विटी को संतुलित करने के लिए, यदि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को एक रिक्ति के खिलाफ स्वतंत्रता सेनानी के आश्रितों के तहत माना जाता है, तो कोई भी प्रभावित नहीं होगा।

42. तदनुसार, पूर्वगामी चर्चा के मददेनजर, और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के कैंटेना (समग्रता) के आधार पर, यह रिट याचिका सफल होती है और इस हद तक अनुमति दी जाती है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों की एक रिक्ति के खिलाफ ऊपर की गई टिप्पणी के प्रकाश

7.इलाप्रबंध समिति वैदिककन्या इंटरकॉलेज दादरी जनपद गौतमबुद्धनगरएवं अन्यबनाम उत्तरप्रदेश राज्यएवं अन्य 1577

में विचार किया जाएगा, और इस स्थिति में कि वह स्वतंत्रता सेनानी कोटे के आश्रितों की श्रेणी में आती है, उसे तुरंत नियुक्ति दी जाएगी।

(2023) 7 ILRA 1193

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

रिट-ए संख्या 7096 सन् 2020

संबद्ध

रिट-ए संख्या 3608 सन् 2021 एवं अन्य

संबद्ध वाद

प्रबंध समिति, वैदिक कन्या इंटर कॉलेज,
दादरी, जनपद: गौतम बुद्ध नगर एवं अन्य ...

...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री भीम सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री जगन्नाथ सिंह,
श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव।

मुख्य विवाद श्रीमती रतन प्रभा और श्रीमती अनुपमा, वैदिक कन्या इंटर कॉलेज की प्रवक्ताओं, के मध्य वरिष्ठता को लेकर था, जिससे यह निर्धारित किया जा सके कि कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में किसे सेवा करनी चाहिए। प्रबंध समिति और अनुपमा:

क्षेत्रीय संयुक्त निदेशक के आदेश को निरस्त करें और अनुपमा की कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्ति को बरकरार रखें। रतन प्रभा: उनकी वरिष्ठता लागू की जाए, उन्हें कार्यवाहक प्रधानाचार्य नियुक्त किया जाए और 26.07.2006 से वेतन एरियर प्रदान किए जाएं। न्यायालय ने न्यायालय की क्रिया किसी को क्षति नहीं पहुँचाती सिद्धांत को लागू करते हुए यह माना कि रतन प्रभा की वरिष्ठता और वेतन संरक्षण को वाद में हुई देरी के कारण नकारा नहीं जा सकता। खंडपीठ द्वारा उनके पद की स्थिति को पुनर्स्थापित किया गया, और 2006 की सेवा में सम्मिलन को वरिष्ठता के उद्देश्य से सतत रूप में माना गया। औपचारिक नियुक्ति पत्र की अनुपस्थिति महत्वहीन थी, क्योंकि विनियम 17 के अंतर्गत निदेशक का आदेश और उनका सेवा में सम्मिलन उनके वास्तविक पदस्थापन को स्थापित करता है।

उद्धृत उदाहरण:

1. सतीश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वन निगम (22.09.2006)
2. ओडिशा वन विकास निगम बनाम मेसर्स अनुपम ट्रेडर्स [(2020) 15 एससीसी 146]
3. विजय नारायण शर्मा बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक [1985 कानूनी मुकदमे (इलाहाबाद) 480]
4. वीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वन निगम [2015 (11) एडीजे 637 (द्वय खंडपीठ)]
5. अश्विन एस. मेहता बनाम यू.ओ.आई. [(2012) 1 एससीसी 83]

7. चरण लाल साहू बनाम यू.ओ.आई.
[एआईआर 1990 एससी 1480]

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार, द्वारा
पदत्त)

1. रिट ए संख्या 7096/2020 में याचिकाकर्ता प्रबंधन समिति वैदिक कन्या इंटर कॉलेज, दादरी, जिला गौतमबुद्धनगर की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री भीम सिंह को और रिट ए संख्या 3608/2021 में श्रीमती अनुपमा की ओर से और रिट ए संख्या 866/2020 और रिट ए संख्या 9586/2020 में याचिकाकर्ता श्रीमती रतन प्रभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जगन्नाथ सिंह को सुना गया। सभी रिट याचिकाओं में यह विवाद है कि संस्थान में श्रीमती रतन प्रभा और अनुपमा के बीच वरिष्ठता से संबंधित है, ताकि कार्यवाहक प्रिंसिपल का प्रभार संभालने के लिए प्रबंधन समिति द्वारा श्रीमती अनुपमा को संस्थान के प्रिंसिपल के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई है। रिट ए संख्या 7096/2020 और रिट ए संख्या 3608/2020 में याचिकाकर्ता को वरिष्ठतम व्याख्याता ठहराए जाने के क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा दिनांक 25.10.2019 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है। रिट ए संख्या 866/2020 में, प्रार्थना इस आशय की है कि प्रबंधन समिति को क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आदेश को प्रभावी करने का निर्देश दिया जाए यानी याचिकाकर्ता को संस्थान में सबसे वरिष्ठ शिक्षक होने का निर्देश दिया जाए, जबकि रिट ए संख्या 9586/2021 में, श्रीमती अनुपमा को आदेश

दिनांकित 24.8.2019 द्वारा कार्यवाहक प्रभार दिया गया एवं श्रीमती अनुपमा को 17.10.2019 को हस्ताक्षर का सत्यापन दिया गया। मामले का इतिहास उतार-चढ़ाव वाला है, और इसलिए, तथ्यों के स्पष्ट विवरण की आवश्यकता है जो निम्नानुसार हैं:

2. याचिकाकर्ता रतन प्रभा ने यूपी माध्यमिक सेवा चयन बोर्ड (इसके बाद 'बोर्ड' के रूप में संदर्भित) द्वारा जारी विज्ञापन संख्या 1/2004 के अनुसार व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के पद के लिए आवेदन किया था। बोर्ड द्वारा आयोजित चयन में, याचिकाकर्ता रतन प्रभा का चयन हो गया और शुरुआत में उन्हें नियुक्त करने की सिफारिश की गई। बोर्ड द्वारा आयोजित चयन में, याचिकाकर्ता रतन प्रभा का चयन हो गया और उन्हें नगर पालिका इंटर कॉलेज, बदायूँ में व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के रूप में नियुक्त करने के लिए शुरुआत में सिफारिश की गई। हालाँकि, बदायूँ में रिक्ति के अभाव में उसे शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई और परिणामस्वरूप उसने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की, जिसकी रिट ए संख्या 19955/2006 थी। उक्त रिट याचिका का निस्तारण आदेश दिनांक 10.4.2006 के तहत जारी किया गया था। बोर्ड को निर्देश दिया जाए कि याचिकाकर्ता को किसी अन्य संस्थान में जहां रिक्तियां हों, समायोजित करने की सिफारिश की जाए। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 10.4.2006 को पारित आदेश नीचे उद्धृत किया गया है:-

"याचिकाकर्ता एक चयनित उम्मीदवार है और बोर्ड ने उसे संबंधित संस्थान में शामिल होने

की सिफारिश की थी, लेकिन उसे शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई। जिला विद्यालय निरीक्षक ने सूचित किया है कि विचाराधीन पद पहले ही पदोन्नति के माध्यम से भरा जा चुका है और इसलिए, कोई रिक्ति नहीं है।

श्री ए.के. यादव चयन बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता, उनसे प्राप्त निर्देश पर, इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

उपरोक्त के मददेनजर, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है और चयन बोर्ड को नए आदेश पारित करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाता है, जिसमें याचिकाकर्ता के नाम को किसी अन्य संस्थान में, जहां रिक्ति मौजूद है, पेश करने की तारीख से एक महीने के भीतर इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रदान करने की सिफारिश की जाती है। "

3. न्यायालय द्वारा उपरोक्त पारित आदेशों के अनुपालन में, बोर्ड ने 17.5.2006 को याचिकाकर्ता को वैदिक कन्या इंटर कॉलेज, जिला गौतमबुद्ध नगर में व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के रूप में समायोजित करने की सिफारिश की, जो कि याचिकाकर्ता द्वारा संस्थित रिट याचिका संख्या 7096/2020 के तहत है। ऐसा प्रतीत होता है कि वाद की संस्तुति पर संस्था की ओर से अमल नहीं किया जा रहा था, तो निदेशक माध्यमिक शिक्षा उ.प्र. लखनऊ द्वारा 20.7.2006 को एक स्पष्ट निर्देश जारी किया गया जिसमें जिला विद्यालय निरीक्षक को याचिकाकर्ता रतन प्रभा की नियुक्ति

सुनिश्चित करने के लिए कहा गया। प्रबंधन समिति की ओर से नियुक्ति आदेश जारी नहीं करने की स्थिति में विनियम 1998 के विनियम 17 के तहत कार्रवाई करें। इसके बेहतर मूल्यांकन के लिए निदेशक माध्यमिक शिक्षा उ.प्र. लखनऊ द्वारा दिनांक 20.7.2006 को जारी पत्र यहाँ प्रस्तुत है:

"परेषक् ,

शिक्ष निदेशक माध्यमिक,

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

सेवा में,

जिला विद्यालय निरीक्षक

गौतमबुद्ध नगर

पत्रांक डी०ई०/708/2006-07 दिनांक

जुलाई 20,2006

विषय - सुश्री रत्नप्रभा चयनबोर्ड द्वारा चयनित प्रवक्ता नागरिक शास्त्र की वैदिक कन्या इण्टर कालेज दादरी गौतमबुद्ध नगर में कार्यभार ग्रहण कराने के संबंध में महोदय,

कृपया उपर्युक्त विषयक अपर शिक्षा निदेशक माध्यमिक के पत्रांक सामान्य 1046/2006-07 दिनांक 30-6-2006 का संदर्भ ग्रहण करें जिसके द्वारा सुश्री रत्नप्रभा को अविलम्ब कार्यभार ग्रहण कराये जाने के निर्देश दिये गये हैं। इस संबंध में आपका ध्यान आपके पत्रांक मा०-2/92-93-06-07 दिनांक 17-4-2006 की आर आकृष्ट किया जाता है जिसके द्वारा आपने सचिव, चयनबोर्ड को सुश्री रत्नप्रभा को वैदिक कन्या इण्टर कालेज, दादरी

गौतम बुद्ध नगर में अनुसचित जाति हेतु अध्याचिक पद के प्रति समायोजित करने की संस्तुति स्वयं की है।

कृपया सुश्री रत्नप्रभा को कार्यभार ग्रहण कराये जाने की नियमानुसार कार्यवाही करें तथा विद्यालय प्रबन्धक द्वारा नियुक्ति पत्र निर्गत करने की स्थिति में धारा 17 के अन्तर्गत कार्यवाही सुनिश्चित करें। संबंधित शिक्षिका सुश्री रत्नप्रभा का इस कार्यालय में प्राप्त आवेदन पत्र मूलरूप में संलग्न है।

भवदीय
संजय मोहन
शिक्षा निदेशक मा०
उ०प्र०

4. माध्यमिक शिक्षा निदेशक द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के आधार पर याचिकाकर्ता को संस्था के प्राचार्य द्वारा दिनांक 1.7.2006 को सीधे संस्था में नियुक्ती दे दी गई। यह नियुक्ती संस्था के तत्कालीन प्राचार्य द्वारा समर्थित है। बहरहाल, एक कमल वर्मा. रिट-ए संख्या 41691/2006 होने के बोर्ड के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई। उक्त रिट याचिका पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया और व्यक्त किया गया कि प्रथम दृष्टया यह देखते हुए कि बोर्ड के पास विज्ञापित नहीं की गई रिक्ति के विरुद्ध पैनल में शामिल उम्मीदवार का समायोजन करने की कोई शक्ति नहीं है, इस आशय का अंतरिम आदेश दिया गया कि वर्तमान याचिकाकर्ता जो प्रतिवादी संख्या 5 को उक्त याचिका के तहत

नियुक्त होने की अनुमति नहीं दी जाएगी और यदि पहले ही नियुक्त हो गई है तो उसे काम करने की अनुमति दी जा सकती है लेकिन न्यायालय की अनुमति के बिना वेतन का भुगतान नहीं किया जाएगा। इस न्यायालय के दिनांक 21.8.2006 के आदेश का कार्यकारी भाग यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"न्यायालय की राय में, इस प्रकार किया गया समायोजन स्पष्ट रूप से यूपी माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम और उसमें बनाए गए नियमों के प्रावधानों के विपरीत है। एक विज्ञापन के अनुसरण में एक चयनित उम्मीदवार को यदि कुछ कारणों से संस्थान में नियुक्त होने की अनुमति नहीं दी जाती है जिस संस्थान के लिए उसे सूचीबद्ध किया गया है, उसे अन्य रिक्तियों के खिलाफ चयन में प्राप्त योग्यता के अनुसार विचार करने का अधिकार है, जो एसएमई चयन के लिए विज्ञापन का विषय था। बाद की रिक्तियों के खिलाफ समायोजन, जो विषय वस्तु हो सकती है किसी अन्य विज्ञापन पर, नियमों द्वारा विचार नहीं किया जाता है।

इसलिए, याचिकाकर्ता ने अंतरिम आदेश पर अनुदान के लिए मामला बनाया है।

सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक प्रतिवादी सं. 5 को वैदिक कन्या इंटर कॉलेज, दादरी, गौतम बुद्ध नगर में शामिल होने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यदि वह पहले ही शामिल हो चुकी है, तो उसे काम करने की अनुमति दी जा सकती है लेकिन उसे न्यायालय की

अनुमति के बिना वेतन का भुगतान नहीं किया जाएगा।" (प्रभाव वर्धित)

और इसके द्वारा इसे खारिज कर दिया जाता है।"

और प्रश्न संख्या 2 है:

5. अंततः, उक्त रिट याचिका को इस न्यायालय ने यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि अघोषित रिक्ति उन उम्मीदवारों से नहीं भरी जा सकती है जो पिछले चयनों में चुने गए हैं। **सतीश कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले के आधार पर यह आदेश पारित किया गया था उक्त निर्णय के पैराग्राफ 6, 7, 8, 9 और 10 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"6. सवाल यह है कि क्या ऐसे उम्मीदवार को किसी ऐसे पद पर समायोजित या नियुक्त किया जा सकता है जो किसी विशेष चयन में विज्ञापित नहीं किया गया था, इस पर इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने **सतीश कुमार बनाम यूपी राज्य & अन्य, 22.09.2006** को नीर्णीत फैसला में सुनाया गया जिसमें खण्ड पीठ ने कहा:

"ऊपर दिए गए कारणों और निष्कर्षों के लिए, प्रश्न संख्या 1 का हमारा उत्तर है:

"एक अघोषित रिक्ति को उस उम्मीदवार से नहीं भरा जा सकता है जिसे पिछले किसी भी चयन में चुना गया है और उस सीमा तक हम घोषणा करते हैं कि मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश की घोषणा **सविता गुप्ता बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; 2004(2) यूपीएलबीईसी, कानून** को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं करता है

"यू.पी. अधिनियम संख्या 5, 1982 के तहत गठित यू.पी. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड को 12 मार्च के सरकारी आदेश की सहायता से सूचित और अधिसूचित किया गया है, लेकिन विज्ञापित नहीं किया गया है।"

7. अतः यह कानून अब अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि जो रिक्ति किसी विशेष चयन में विज्ञापित नहीं की गई थी, उसमें चयनित उम्मीदवार को ऐसी अविज्ञापित रिक्ति के विरुद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है।

8. आयोग के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि नियमों में वर्ष 2007 में संशोधन किया गया है जिसमें ऐसे समायोजन की अनुमति है और इसकी वैधता इस अदालत के समक्ष विचाराधीन है। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि जनवरी 2007 में अधिसूचित किए गए उपरोक्त नियम वर्तमान मामले में शामिल प्रश्न को कवर नहीं करेंगे क्योंकि माना जाता है कि प्रासंगिक समय पर मौजूदा नियम ऐसा नहीं करता है

9. तदनुसार, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है।

10. आक्षेपित आदेश दिनांक 20.07.2006 को निरस्त किया जाता है। हालाँकि, यह आदेश उत्तरदाताओं को प्रतिवादी संख्या 5 को

समायोजित करने से नहीं रोकेगा। किसी अन्य रिक्ति के विरुद्ध जो 2004 में की गई भर्ती का हिस्सा थी जिसमें उसे (प्रतिवादी संख्या 5) चुना गया था।"

कमलेश वर्मा पहले ही सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैं, उनके द्वारा मामला नहीं लड़ा जा रहा है और श्री त्रिवेदी भी उपस्थित नहीं हैं।

6. उक्त फैसले के खिलाफ, याचिकाकर्ता रतन प्रभा ने विशेष अपील संख्या 873/2012 दायर की और खण्ड पीठ ने इस बार सिविल में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित फैसले के आलोक में 30.11.2010 के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को रद्द कर दिया। अपील संख्या 10808/2017 में जिसमें यह माना गया कि बोर्ड के पास उपलब्ध रिक्तियों विज्ञापित किया जा सकता है या नहीं के विरुद्ध समायोजन करने की शक्ति है, खण्ड पीठ के दिनांक 12.1.2018 के आदेश का ऑपरेटिव भाग यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के.यादव को सुना।

अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश दिनांक 30.11.2010 के आक्षेपित निर्णय की सत्यता पर सवाल उठाया गया है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 7।याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका के द्वारा वैदिक कन्या इंटर कॉलेज, दादरी, जिला गौतमबुद्ध नगर में नागरिक शास्त्र में अपीलकर्ता के चयन और नियुक्ति और व्याख्याता के पद पर अनुमति दी गई है। प्रतिवादी क्रमांक 7। याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व श्री अनूप त्रिवेदी द्वारा किया जाता है, लेकिन इस तथ्य के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी क्रमांक 7 श्रीमती

अपीलकर्ता आक्षेपित निर्णय से व्यथित है क्योंकि संस्थान में नागरिक शास्त्र में व्याख्याता के रूप में बोर्ड द्वारा चयन के बाद उसकी नियुक्ति को विद्वान एकल न्यायाधीश ने रद्द कर दिया था, जो इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि सतीश कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में खण्ड पीठ के फैसले के मद्देनजर, 22.09.2006 को निर्णय लिया गया और उसमें डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए जवाब के बाद से संस्थान में पद पर चयन के लिए रिक्ति विज्ञापित नहीं की गई थी, अपीलकर्ता को एक अघोषित रिक्ति के खिलाफ समायोजित नहीं किया जा सकता था।

संस्था को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रद्द कर दिया गया है, जो इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सतीश कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में खण्ड पीठ के फैसले के मद्देनजर, 22.09.2006 को निर्णय लिया गया और उसमें खण्ड पीठ द्वारा दिए गए जवाब के बाद से संस्थान में पद पर चयन के लिए रिक्ति विज्ञापित नहीं की गई थी, अपीलकर्ता को एक अघोषित रिक्ति के खिलाफ समायोजित नहीं किया जा सकता था।

यही कानूनी मुद्दा सिविल अपील संख्या 10808/2017 में प्रतिवादी बोर्ड द्वारा शीर्ष अदालत के समक्ष उठाया गया था और शीर्ष अदालत ने यह कहते हुए अपील का निस्तारण

7. इला प्रबंध समिति वैदिक कन्या इंटर कॉलेज दादरी जनपद गौतम बुद्ध नगर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1583

कर दिया कि बोर्ड के पास इस तरह के समायोजन करने की शक्ति है और आगे संकेत दिया कि समायोजन किया जाएगा या तो उपलब्ध कराया जाना चाहिए या आगे आने वाली रिक्ति में भी किया जाना चाहिए।

बोर्ड द्वारा चयनित उम्मीदवार होने के नाते अपीलकर्ता का तर्क है कि वह शीर्ष अदालत द्वारा व्यक्त किए गए विचार के अनुसार विचार किए जाने की हकदार है, जो सतीश कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य (सुप्रा) के मामले में फैसले के अनुपात को बदलता और संशोधित करता है।

प्रतिवादी बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के. यादव वर्तमान मामले में भी विचार के लिए उपलब्ध होने के लिए शीर्ष न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों पर विवाद नहीं कर सके। किसी अन्य ने अपील का विरोध नहीं किया है। उपरोक्त परिस्थितियों में हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और दिनांक 30.11.2010 के आक्षेपित निर्णय को रद्द करते हैं।

हम रिट याचिका और अपील का निपटारा इस निर्देश के साथ करते हैं कि अपीलकर्ता के दावे पर बोर्ड द्वारा यथासंभव शीघ्रता से उपलब्ध रिक्ति की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाएगा, अधिमानतः प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर इस आदेश की प्रमाणित प्रति, यदि उसका चयन नियमों के अनुसार वैध है और शीर्ष न्यायालय द्वारा दिनांक 23.08.2017 के फैसले के तहत जारी निर्देशों के मद्देनजर उसे समायोजित करने के लिए रिक्ति उपलब्ध है।"

7. विशेष अपील में निर्णय पारित होने के बाद जिला विद्यालय निरीक्षक ने दिनांक 12.8.2018 को एक आदेश जारी कर प्रबंधन समिति को याचिकाकर्ता की नियुक्ती सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। जिला विद्यालय निरीक्षक के दिनांक 8.2.2018 के आदेश के दो अंतिम पैराग्राफ को उद्धृत करना यहां प्रासंगिक है और इसे यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"प्रश्नगत प्रकरण के सन्दर्भ में अनुक्रमांक 080531931 रत्न प्रभा पुत्री विष्णु दयाल ई-29/ए सिद्धार्थ नगर पो० जंगपुरा नई दिल्ली-14 प्रवक्ता नागरिक शास्त्र वर्ग - 02 पर आवंटित संस्था वैदिक कन्या इंटर कॉलेज दादरी गौतम बुद्ध नगर के प्रति चयन/समायोजन कार्यालय के पत्रांक/मा० शि० च-बो०/7979-80/दिनांक- 12-1-2018 के माध्यम से भेजा गया है। माननीय उच्च न्यायालय में योजित विशेष अपील सं०- 873/2012 रत्न प्रभा बनाम उ० प्र० राज्य व अन्य में पारित दिनांक - 12-1-2018 के अनुपालन में कार्य भार ग्रहण करायें।

अतः आपको निर्देशित किया जाता है कि माननीय उच्च न्यायालय में योजित विशेष अपील सं० -873/2012 रत्न प्रभा बनाम उ० प्र० राज्य व अन्य में पारित दिनांक- 12-1-2018 के अनुपालन में अनुक्रमांक 080531931 रत्न प्रभा पुत्री विष्णु दयाल ई-29/ए सिद्धार्थ नगर पो० जंगपुरा नई दिल्ली-14 प्रवक्ता नागरिक शास्त्र वर्ग-02 पर कार्य भार सुनिश्चित करें।

8. याचिकाकर्ता रतन प्रभा ने अपने दावे में दलील दी है कि याचिकाकर्ता को किसी भी समय कोई नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता को सीधे वर्ष 2006 में नियुक्ती दे दी गई थी और यह प्रबंधन था जो उसे उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करने की अनुमति नहीं दे रहा था जिसे कमल वर्मा द्वारा दायर रिट याचिका दलील दी गई थी। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा नया आदेश जारी किए जाने के बाद याचिकाकर्ता को उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने की अनुमति दी गई और इस तरह उसे वेतन मिलना शुरू हो गया।

9. रिट याचिका संख्या में. 3608 / 2021 याचिकाकर्ता अनुपमा वर्मा ने दलील दी है कि विज्ञापन संख्या 02/2010 के अनुसार बोर्ड द्वारा उनका चयन और अनुशंसा की गई थी। संस्थान में व्याख्याता (संस्कृत) के पद के लिए और इसलिए उन्होंने जिला विद्यालय निरीक्षक के दिनांक 27.7.2012 के पत्र और संस्थान के प्रबंधक द्वारा 7.8.2012 को जारी परिणामी पत्र के अनुसार अपनी नियुक्ती प्रस्तुत की। जिला द्वारा जारी किया गया पत्र स्कूलों के निरीक्षक दिनांक 27.7.2012 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

दिनांक- 27/17/12

विषय- विज्ञापन सं० 2/2010 प्रवक्ता पदों के प्रति उ०प्र० माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियमावली 1998 के नियम (12) उप नियम (a) तथा (10) के अधीन निर्मित वर्ग

इण्टरमीडिएट विषय संस्कृत वर्ग 1 व 2 के पद के लिए उपर्युक्त अर्थियों के लिए 1 पैनेल का नियम 12(11) के अधीन प्रेषण।

महोदय,

उपयुक्त विषयक सचिव उ०प्र०मा०शि० सेवा चयन बोर्ड इलाहाबाद की विज्ञप्ति सं०मा०शि० च०बो०/1044/2012-13 दिनांक 07-08-12 के उपरान्त चयन बोर्ड के पत्रांक मा०शि० य०बो०/चयन/2605-2666/2012-13 दिनांक 08-0-12 में दिये गये निर्देशों के अनुरूप सूचित किया जाता है कि आपके विद्यालय में मौलिक रूप से प्रवक्ता विषय संस्कृत वर्ग 1 व 2

क्र० सं०	नाम	पता
1	श्री मति अनुपमादेवी पत्नी कुवर चंचल सिंह जाति - अनु० जाति अनु०-020601871	349/4बी. चाँदपुरसलेरी (ओमगायतरी नगर) पो० तेलियरगंज इलाहाबाद।

उक्त के सन्दर्भ में यह भी सूच्य है कि यदि आपके विद्यालय में प्रवक्ता संस्कृत वर्ग 1 व 2 के रिक्त पद पर मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद के आदेश से कार्यरत है अथवा विनियमित है तो कृपया उसके आदेशों की प्रति सहित इस कार्यालय को तत्काल उपलब्ध कराये।

आपको चयन बोर्ड नियमावली 1908 के नियम 13 के खण्ड (क), (दो) तथा तीन के अन्तर्गत एवं 13 के उपनियम (20) के किया जाता है

कि आप सलग्न परिशिष्ट पर नियुक्ति पत्र सम्बन्धित अभ्यर्थी को नियमानुसार भेजते हुए नियुक्ति के आदेश की प्रति इस र्यालय एवं सम्बन्धित अधिकारी को तत्काल भेजे कार्यभार ग्रहण कराने से पूर्व शैक्षिक योग्यता सम्बन्धी प्रमाण-पत्रों का भली भांति परीक्षण करने पूर्ण उत्तरदायित्व आपका होगा साथ ही प्रमाण पत्र तथा अभ्यर्थी की अर्हताओं से सम्बन्धित प्रमाण पत्रों की प्रतियां अपने स्तर पर एक प्रति रखते एक प्रति अद्योहस्ताक्षरी को प्राप्त कराना सुनिश्चित करें।

संलग्नक- निर्धारित प्रारूप पत्र

भवदीय

(ज्योति प्रसाद)

जिला विद्यालय निरीक्षक
गौतमबुद्ध नगर
(प्रभाव वर्धित)

10. जिला विद्यालय निरीक्षक के उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, प्रबंधक ने प्रतिद्वंद्वी याचिकाकर्ता अनुपमा वर्मा को 7.8.2010 को एक पत्र जारी किया जिसे यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"महोदया,

" आप द्वारा अग्रसारित प्रार्थना पत्र दिनांक 06/08/2012 जो कि श्री मति अनुपमा देवी का संस्कृत देवी का संस्कृत विषय की प्रवक्ता पद पर कार्यभार ग्रहण करने के सम्बन्ध में है एवं जिला विद्यालय निरीक्षक गौतम बुद्ध नगर के कार्यालय आदेश पत्रांक

न०पृ०स०/च०वो०/1796-1800/2012-13 दिनांक 27/07/12 का सन्दर्भ ग्रहण करते हुए, आपके निर्देशित किया जाता है कि श्री मति अनुपमा देवी का संस्कृत विषय की प्रवक्ता पद पर जिनको मा०शि० सेवा चयन बोर्ड ने नियुक्ति प्रदान की है, कार्यभार ग्रहण करा दे। कार्यभार ग्रहण एवं दैनिक उपस्थिति पंजिका में नाम पंजिकरण से पूर्व इनकी शैक्षिक योग्यता सम्बन्धित प्रमाण पत्रों का भली भांति परीक्षण कर ले। परीक्षण उपरांत शैक्षिक प्रमाण पत्रों की एक प्रति विद्यालय रिकार्ड में सजोकर रखे। सभी प्रमाण पत्रों पर आप द्वारा seen कर एक प्रति जिला विद्यालय निरीक्षक गौतम बुद्ध नगर के कार्यालय को भी उपलब्ध करा दे।" (प्रभाव वर्धित)

11. इस प्रकार प्रतिद्वंद्वी याचिकाकर्ता अनुपमा वर्मा संस्था में व्याख्याता (संस्कृत) के पद पर 7.8.2012 से कार्यरत हैं तथा वेतन उठा रही हैं। याचिकाकर्ता रतन प्रभा ने दलील दी कि सबसे वरिष्ठ होने के नाते उन्हें वर्ष 2006 में संस्थान में व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के रूप में अनुशंसित और नियुक्त किया गया था, इसलिए उन्हें सबसे वरिष्ठ माना जाना चाहिए और उन्होंने वरिष्ठता का मुद्दा उठाया और इसलिए एक रिट याचिका दायर की। इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 5797/2019 थी जिसमें याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने के लिए क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक को निर्देश जारी किया गया था।

12. क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक के द्वारा याचिकाकर्ता और प्रबंधन समिति को सुनने के बाद दिनांक 25.10.2019 को एक आदेश

पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता को संस्थान में कार्यरत सबसे वरिष्ठ व्याख्याता माना गया और 26.7.2006 से वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया गया और साथ ही 10.07.2019 से वरिष्ठता भी प्रदान की गई। 26.7.2006 को तदनुसार बकाया वेतन भुगतान का भी निर्देश दिया गया। बकाया वेतन का भुगतान प्रश्नगत अवधि के दौरान याचिकाकर्ता के संस्थान में काम करने के संबंध में प्रबंधन समिति द्वारा प्राप्त किए जाने वाले प्रमाण पत्र के अधीन किया गया था।

13. प्रबंधन समिति ने रिट याचिका सं.7096/2020 में क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक पर सवाल उठाते हुए याचिकाकर्ता रतन प्रभा को सबसे वरिष्ठ माना गया, जिन्होंने 26.7.2006 को कार्यभार संभाला था। इसके बाद, श्रीमती. अन्य याचिकाकर्ता अनुपमा ने भी इस न्यायालय के समक्ष 2021 की रिट ए संख्या 3608 के तहत एक रिट याचिका दायर की, जिसमें क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक, प्रथम क्षेत्र, मेरठ द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई। श्रीमती अनुपमा ने दलील दी है कि वरिष्ठता निर्धारण के मामले में आवश्यक पक्ष होने के बावजूद उनकी बात नहीं सुनी गई। आगे तर्क दिया गया है किचूंकि याचिकाकर्ता रतन प्रभा को उच्च न्यायालय के दिनांक 12.1.2018 के आदेश के तहत वर्ष 2018 में ही बहाल किया गया है, इसलिए 2006 और 2018 के बीच सेवा में ब्रेक होगा और इसलिए, याचिकाकर्ता रतन प्रभा नहीं होंगी। याचिकाकर्ता अनुपमा वरिष्ठता से ऊपर की हकदार हैं।

14. इसमें विचार हेतु जो दो कानूनी प्रश्न उठते हैं वे इस प्रकार हैं: (i) क्या याचिकाकर्ता रतन प्रभा, जिन्हें कार्यभार सौंपा गया था और उन्हें 26.7.2006 को सहायक शिक्षक के रूप में शामिल होने की अनुमति दी गई थी, लेकिन वह इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के कारण उसके बाद कार्य नहीं कर सकीं, को वरिष्ठता से वंचित किया जा सकता है, इसके अलावा, अंतराल अवधि के दौरान नियुक्त शिक्षक, (दिनांक 18.2.2018 के आदेश के तहत उनकी पहली नियुक्ती और उनके फिर से कार्यभार संभालने के बीच); और (ii) क्या तथ्यों को निर्विवाद रूप से देखते हुए, यदि याचिकाकर्ता अनुपमा को सुनवाई का अवसर दिया जाता, तो उनकी याचिका में पारित किए गए आदेश में बदलाव होता, जिससे प्राधिकारी को एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मजबूर होना पड़ता और इसलिए यह आदेश प्राकृतिक न्याय सिद्धांतों के उल्लंघन के लिए बुरा होगा।।

15. दो शिक्षकों के बीच वरिष्ठता विवाद में प्रबंधन समिति के अनुरोध पर रिट याचिका की स्थिरता के बारे में एक और सवाल उठता है।

16. पहले प्रश्न पर, दूसरी याचिकाकर्ता सुश्री अनुपमा वर्मा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री भीम सिंह ने निम्नलिखित आधार उठाए हैं: -

1. याचिकाकर्ता रतन प्रभा को कोई नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया गया था, जिससे वह संस्थान में शामिल होने का हकदार बन सके और इसलिए, उसकी नियुक्ति अमान्य थी;

ii. विशेष अपील संख्या 873/2012 में इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा दिनांक 12.1.2018 को पारित आदेश के परिणामस्वरूप जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 8.2.2018 को जारी आदेश दर्शाता है कि प्रबंधन समिति को निर्देशित किया गया था याचिकाकर्ता संख्या 1 को व्याख्याता (सिविक्स) के पद पर नियुक्ती सुनिश्चित करें। इसलिए, उनके अनुसार याचिकाकर्ता को 8.12.2018 से पहले कभी भी नियुक्ति नहीं दी गई थी।

iii. तीसरे बिंदु में तर्क दिया गया कि उन्हें क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक के समक्ष अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए था क्योंकि इस न्यायालय ने रिट ए संख्या 5797/2019 में पारित अपने आदेश दिनांक 15.4.2019 के तहत सुनवाई का अवसर प्रदान किया था। न केवल प्रबंधन समिति को बल्कि निर्णय से प्रभावित होने वाले किसी अन्य व्यक्ति को भी दिया जाना;

17. इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होने के साथ-साथ उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन न करने के कारण रद्द किया जा सकता है और मामले को नए सिरे से तय करने के लिए भेजा जाना चाहिए।

18. वही उसके विपरीत प्रथम प्रतिवादी रतन प्रभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को 1998 के विनियमों की धारा 17 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए शिक्षा निदेशक के

आदेश द्वारा नियुक्ती दी गई थी और यह उक्त आदेश के परिणामस्वरूप है कि याचिकाकर्ता को नियुक्ती दी गई थी। उनका कहना है कि 20.07.2006 के आदेश पर 01.07.2006 को कार्रवाई की गई थी और याचिकाकर्ता को रिट याचिका संख्या 41691/2006 में इस न्यायालय द्वारा 21.08.2006 को पारित आदेश के आधार पर वेतन का भुगतान नहीं किया जा रहा था। हालांकि, याचिकाकर्ता का यह देखकर हितों की रक्षा की गई कि यदि वह शामिल हुई थी, तो उसे काम करने की अनुमति दी जाएगी।

19. आगे यह तर्क दिया गया है कि यदि प्रबंधन समिति ने याचिकाकर्ता को काम करने और उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने की अनुमति नहीं दी, तो यह उक्त आदेश के तहत दी गई अंतरिम सुरक्षा का उल्लंघन था। जहां तक आदेश दिनांक 18.02.2018 का प्रश्न है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि कानूनी स्थिति यह रही है कि संवैधानिक न्यायालय द्वारा घोषित कानून को हमेशा अस्तित्व में कानून माना जाना चाहिए, न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश रिट याचिका संख्या 41691/2006 और अंतिम निर्णय पारित किया गया है। उक्त रिट याचिका जिसमें यह माना गया था कि गैर-विज्ञापित पद पर चयनित उम्मीदवारों का समायोजन खराब था, को सुप्रीम कोर्ट के फैसले और इस प्रकार अंतरिम आदेश के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश का विशेष अपील संख्या 873/2012 के फैसले में विलय के मद्देनजर एक गलत दृष्टिकोण माना जा सकता है जिसने याचिकाकर्ता के समायोजन को कानून में वैध माना। विद्वान अधिवक्ता

के अनुसार, बहाली के लिए दिनांक 08.02.2018 का आदेश केवल इस कारण से था कि प्रबंधन समिति ने याचिकाकर्ता के साथ सहयोग नहीं किया और उसे उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने की अनुमति नहीं दी। उनका तर्क है कि चूंकि मामला तीसरे पक्ष के कहने पर इस अदालत में लंबित रहा है, इसलिए लंबित रहने से वादी के उन अधिकारों पर कोई असर नहीं पड़ेगा, जिनका वह अन्यथा हकदार होता। वह इस मैकिजम *अदालत के कृत्य से किसी पर बोझ नहीं पड़ेगा* का सहारा लेता है'

20. इस प्रश्न पर कि अन्य याचिकाकर्ता श्रीमती. अनुपमा वर्मा को नहीं सुना गया, पहले याचिकाकर्ता रतन प्रभा के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मामले को केवल सुनवाई के अवसर के लिए नहीं लिया जाना चाहिए, यदि अन्यथा पक्षों को तथ्य स्वीकार किए जाते हैं। उनका कहना है कि सुनवाई के अवसर को हर मामले में लागू किए जाने वाले स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूले में नहीं डाला जा सकता, खासकर ऐसे मामलों में जहां रिमांड के बाद भी कानूनी स्थिति के अनुसार परिणाम समान होना तय है। उनका तर्क है कि याचिकाकर्ता नं. 2 यह प्रदर्शित करने में सक्षम नहीं है कि याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति कैसे खराब थी और यह प्रतिवाद करने में सक्षम नहीं हो सका कि याचिकाकर्ता बोर्ड द्वारा विधिवत चयनित उम्मीदवार थी जब उसे संस्थान में शामिल होने की अनुमति दी गई थी और याचिकाकर्ता अनुपमा कहीं भी नहीं थी।

21. निर्णय पर सवाल उठाने के लिए रिट याचिका दायर करने के प्रबंधन समिति के अधिकार के बिंदु पर, याचिकाकर्ता रतन प्रभा के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रबंधन समिति को सभी व्याख्याताओं के वरिष्ठता के मामले में कोई शिकायत नहीं हो सकती है। जहां तक बकाया वेतन के भुगतान का प्रश्न है, तर्क दिया गया है कि आदेश प्रबंधन समिति को अवधि सत्यापित करने की अनुमति देता है, लेकिन भुगतान प्राधिकारी होने के नाते प्रबंधन को कोई तकनीकी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

22. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्डों, दलीलों और साथ ही आक्षेपित आदेश का अध्ययन करने के बाद, मुझे लगता है कि मूल मुद्दा यह है कि क्या याचिकाकर्ता को वैध रूप से चयनित किया जाना चाहिए और उसी वर्ष 2006 में संस्थान में व्याख्याता नियुक्त किया जाना चाहिए। यह एक मामला है और रिकॉर्ड पर भी स्वीकृत स्थिति है कि याचिकाकर्ता को बोर्ड द्वारा चयनित होने के बाद, और एक पैनल में शामिल उम्मीदवार को एक विशेष पद पर नगर पालिका इंटर कॉलेज, बदायूँ के नाम पर संस्था में शामिल होने की अनुमति नहीं दी जा रही थी, इसलिए उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसका रिट संख्या 19955/2006 था, जिसमें एक न्यायिक आदेश पारित किया गया था, जिसमें चयन बोर्ड को परमादेश की रिट जारी की गई थी। किसी अन्य संस्थान के लिए याचिकाकर्ता के नाम की सिफारिश करने वाला नया 10.4.2006 को पारित एक न्यायिक आदेश है

यह था जिसके खिलाफ कभी अपील नहीं की गई। इस आदेश के अनुपालन में 20.5.2006 को एक नया पैनल जारी किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता को प्रश्नगत संस्थान में समायोजित करने का निर्देश दिया गया था और इसलिए, जब याचिकाकर्ता को कोई नियुक्ति जारी नहीं की जा रही थी और उसे शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई थी, तो तत्कालीन शिक्षा निदेशक 20.7.2006 को एक आदेश पारित कर जिला विद्यालय निरीक्षक को 1998 विनियमों के विनियम 17 का सहारा लेते हुए, प्रबंधन द्वारा कोई नियुक्ति आदेश जारी नहीं किए जाने की स्थिति में भी शामिल होने को सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया। इस निर्देश के अनुपालन में, जिला विद्यालय निरीक्षक ने तुरंत याचिकाकर्ता की संबंधित संस्थान में नियुक्ती सुनिश्चित की और याचिकाकर्ता को 1.7.2006 को नियुक्ती दे दी गई। इस बीच, रिट याचिका सं. 41691/2006 दायर किया गया था जिसमें 21.8.2006 को अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसमें प्रावधान था कि यदि प्रतिवादी पहले ही शामिल हो गई है, तो उसे काम करने की अनुमति दी जाएगी। उक्त मामले में रतन प्रभा प्रतिवादी थीं जो पहले ही शामिल हो चुकी थीं। इस प्रकार, उसे काम करने की अनुमति दी जानी थी लेकिन उसे वेतन नहीं दिया जाना था। इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता रतन प्रभा लगातार संस्था में रिपोर्ट करती रहीं, फिर भी उन्हें उपस्थिति रजिस्टर में साइन इन करने की अनुमति नहीं दी गई और स्पष्ट रूप से वेतन का भुगतान नहीं किया गया था। इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका संख्या 41691/ 2006 की अनुमति

देते हुए उनकी नियुक्ति को गलत ठहराया था। लेकिन वह आदेश रतन प्रभा द्वारा दायर विशेष अपील के आदेश में उलट गया जिसमें अपीलकर्ता का समायोजन कानून के अनुसार माना गया था जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने माना था। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि खण्ड पीठ द्वारा 12.1.2018 को आदेश पारित करने के बाद, कोई नया नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया गया था और जिला विद्यालय निरीक्षक ने अपने आदेश दिनांक 8.2.2018 के तहत केवल याचिकाकर्ता को नियुक्ती सुनिश्चित करने का निर्देश दिया था।

23. इस प्रकार, उभरे तथ्यों के समग्र परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 4169/ 2006 में अंतरिम आदेश पारित किया गया है कि याचिकाकर्ता के शामिल होने के बाद माना जाएगा कि उसने याचिकाकर्ता रतन प्रभा के हितों की रक्षा की है और इस प्रकार, अब यह मानना बिल्कुल गलत होगा कि हालांकि उसे कानूनी रूप से चुना गया था, लेकिन बिना किसी नियुक्ति आदेश के गलत तरीके से शामिल होने की अनुमति दी गई थी। यह अच्छी तरह से स्थापित कानूनी स्थिति है कि किसी मुकदमे के लंबित रहने मात्र से किसी उचित दावे से इंकार नहीं किया जा सकता है, जो अन्यथा किसी पार्टी में निहित होता है। यह माना जाएगा कि अंतरिम आदेश ने रतन प्रभा की स्थिति को आंशिक रूप से ग्रहण कर लिया है और भले ही अंतिम निर्णय ने उसकी स्थिति को परेशान कर दिया हो, इसे विशेष अपील के अंतिम आदेश में पुनर्जीवित किया गया क्योंकि यह अच्छी तरह से तय है कि अपील मूल कार्यवाही की

निरंतरता है। तो, यह माना जाएगा कि याचिकाकर्ता को कानूनी तौर पर रिक्ति के खिलाफ समायोजित किया गया था और मेरे विचार में, केवल रिट याचिका के लंबित रहने से स्थिति समाप्त नहीं हो जाएगी, जो अंततः अपील में खारिज कर दी गई।

24.वर्तमान मामले में और ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों को देखते हुए, अदालत द्वारा पिछली याचिका में इस आशय का अंतरिम आदेश पारित किया गया था कि पांचवें याचिकाकर्ता अर्थात् रतन प्रभा को इसमें शामिल होने की अनुमति नहीं दी जाएगी और यदि पहले ही शामिल हो गए हैं तो उन्हें वेतन का भुगतान नहीं किया जाएगा। याचिकाकर्ता ने स्थापित किया है कि उसे शामिल होने और वेतन का भुगतान न करने का मामला केवल इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के लिए था। अंततः जब अंतरिम आदेश के परिणामस्वरूप रिट याचिका को अनुमति देने वाला अंतिम आदेश आया और जब विशेष अपील में इसे पलट दिया गया, तो जाहिर तौर पर राज्य या निजी प्रतिवादी द्वारा यह दलील देने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि चूंकि याचिकाकर्ता ने काम नहीं किया था या नहीं किया था। मामला लंबित होने के कारण निश्चित अवधि के लिए वेतन का भुगतान नहीं किया गया है, उक्त अवधि को वेतन संरक्षण और वरिष्ठता के प्रयोजनों के लिए भी ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। इस प्रकार, कहावत *न्यायालय के कृत्य से किसी पर बोझ नहीं पड़ेगा* इस मामले पर बहुत अधिक लागू होगा। कहावत का अर्थ है कि न्यायालय के कृत्य से किसी भी पक्ष को नुकसान नहीं होना

चाहिए। इस मामले में, एक बार याचिकाकर्ता को अधिकारियों द्वारा पारित आदेश के तहत नियुक्ती देने का निर्देश दिया गया था, लेकिन आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और जो कई वर्षों तक निर्णय के लिए लंबित रहा और भले ही अंततः आदेशों को अपास्त कर दिया लेकिन चूंकि उन्हें स्पेशल अपील में बरकरार रखा गया है, याचिकाकर्ता को नियुक्ती दिए जाने का जोखिम उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह प्रतिवादी राज्य प्राधिकारी हैं जिन्हें न केवल काल्पनिक वेतन संरक्षण बल्कि वरिष्ठता देकर इक्विटी को संतुलित करने की आवश्यकता थी। *ओडिशा वन विकास निगम बनाम। मेसर्स अनुपम ट्रेडर्स (2020) 15 एससीसी 146* के मामले में, यह माना गया है कि अंतरिम आदेश सुरक्षा के लिए पारित किया गया था और केंद्र पतियों के लिए बाद की नीलामी को ऐसे अंतरिम आदेश के लिए स्थगित कर दिया गया था और यदि न्यायालय ने याचिकाकर्ता को समझौते के लिए कुछ जमा करने का निर्देश दिया और रिट याचिकाकर्ता ने स्वयं रिट याचिका वापस ले ली तो विभाग को परेशान नहीं किया जा सकता है। चाहे किसी रिट याचिका को वापस लिया गया मानकर खारिज कर दिया जाए या खारिज कर दिया जाए, नतीजा एक ही होना तय था। वर्तमान मामले में भी याचिकाकर्ता को वेतन देने की अनुमति नहीं थी और इसलिए प्रबंधन ने उसे अंतरिम आदेश के अलावा उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने की अनुमति नहीं दी। पैराग्राफ 20 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:-

"20. जैसा कि ऊपर देखा गया है, अपीलकर्ता को किसी भी स्थिति में हुए नुकसान का निर्धारण करने और कानून के अनुसार उसकी वसूली करने का अधिकार होगा क्योंकि पुनः निविदा की प्रक्रिया '.....लागत और जोखिम' पर थी। जैसा कि समाप्ति की सूचना में कहा गया है, निजी प्रतिवादी का। उस परिस्थिति में, जब प्रथम दृष्टया यह संकेत मिलता है कि निजी उत्तरदाताओं के कहने पर हुई देरी के कारण कैदू पत्तों का मूल्य कम हो गया था, जिससे नुकसान हुआ, तो निजी उत्तरदाताओं द्वारा शुरू की गई कानूनी कार्यवाही के मद्देनजर, कोर्ट को इस कहावत को ध्यान में रखना होगा कोर्ट के कृत्य से किसी पर बोझ नहीं पड़ेगा अर्थात्, न्यायालय के कृत्य से किसी भी पक्ष को कष्ट नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में, राय के बाद से निजी उत्तरदाताओं को अवसर प्रदान करके राशि को बनाए रखने और प्रक्रिया को पूरा करने की अनुमति दी जाए।"

25. मैं यहां यह भी देख सकता हूँ कि इसमें वरिष्ठता जैसी कोई बात नहीं है इस तथ्य पर विवाद है कि दोनों का चयन और नियुक्ति एक ही विज्ञापन के तहत हुई थी, लेकिन एक दूसरे से पहले शामिल हो सकता था। इस न्यायालय द्वारा पहले पारित अंतरिम आदेश के आलोक में, याचिकाकर्ता की नियुक्ती पर सवाल उठाना याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर ही सवाल उठाना होगा, मेरे विचार में, वरिष्ठता का दावा करने वाले किसी अन्य शिक्षक को इसका अधिकार नहीं है। इस मामले की जांच करते समय यह बार-बार आयोजित किया गया है जबकि वरिष्ठता से सम्बन्धित मामले के

कारण प्राधिकारी नियुक्ति की वैधता के प्रश्न पर नहीं जा सकता।

26. विजय नारायण शर्मा बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक एवं अन्य, 1985 लॉ सूट (सभी) 480 के मामले में यह अवधारित किया गया है कि अन्य शिक्षकों की तुलना में पदोन्नति के अधिकार के सवाल पर वरिष्ठता विवाद के निर्णय के मामले में, वरिष्ठता का दावा करने वाले ऐसे शिक्षक के लिए किसी अन्य सहयोगी शिक्षक के चयन और नियुक्ति की वैधता को चुनौती देने का विकल्प खुला नहीं है। पैरा 18 और 19 के माध्यम से, न्यायालय ने शिक्षकों के बीच सहकर्मियों की नियुक्ति की वैधता पर सवाल उठाने की बढ़ती प्रवृत्ति पर न्यायिक नोटिस लिया जबकि उससे सम्बन्धित कार्यवाहक प्रधानाचार्य के पद पर आसीन होने के लिए वरिष्ठता बढ़ती है। इस प्रकार, पैरा 25, 26, 27, 28 और 29 के माध्यम से न्यायालय ने माना कि किसी ऐसे शिक्षक की नियुक्ति, जिसने मूल पद हासिल कर लिया है, वरिष्ठता से सम्बन्धित मामले पर फैसला सुनाते समय सवाल नहीं उठाया जा सकता है। फैसले के पैरा ग्राफ संख्या. 18, 19, 20, 23, 24, 25, 26, 27 और 28 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"18. इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि इस राज्य में, प्रत्येक कॉलेज में, विभिन्न कॉलेजों द्वारा तैयार की गई वरिष्ठता सूची को चुनौती देने वाले शिक्षकों के बीच मुकदमों की श्रृंखला चल रही है। इन कॉलेजों को नियंत्रित करने वाले अधिनियम और उसके तहत बनाए गए विनियमों के प्रावधानों के

कारण वरिष्ठता का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। यह निर्धारित किया गया है कि, प्राचार्य की अनुपस्थिति में महाविद्यालय का वरिष्ठतम शिक्षक महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में कार्य करेगा। इन मुकदमों के परिणामस्वरूप, शिक्षकों के बीच लड़ाई और गुटबाजी हावी हो गई है, जिससे कॉलेज में अनुशासन पूरी तरह से चरमरा गया है। मेरे संज्ञान में आया है कि वरिष्ठता से संबंधित मामलों में सभी शिक्षकों की नियुक्तियों एवं पदोन्नति को चुनौती देकर अनिश्चितता की स्थिति पैदा करना तथा प्रत्येक शिक्षक पर लोकतंत्र की तलवार लटकाना लगभग एक चलन बन गया है। इससे भारी असंतोष पैदा होता है और आक्रामक शिक्षक हावी हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उचित शिक्षण का अभाव भी होता है क्योंकि अधिकांश समय शिक्षक शिक्षण पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय अपनी नियुक्तियों और पदोन्नति की वैधता बनाए रखने में लगे रहते हैं जो कि उनका प्राथमिक कर्तव्य है।

19. अक्सर पाया गया है कि एक या दो दशक से अधिक समय के बाद नियुक्तियों और पदोन्नति को चुनौती दी जाती है। अभिलेखों की स्थिति यह है कि न तो प्रबंध समितियां नियमित रूप से अभिलेखों का रखरखाव करती हैं और न ही जिला विद्यालय निरीक्षक के पास अभिलेख उपलब्ध हैं। वास्तव में, प्रबंध समितियाँ इतनी बार बदलती रहती हैं और वे इतनी बार मुकदमेबाजी भी कर रही हैं कि एक प्रबंध समिति का निर्णय अगली प्रबंध समिति द्वारा समर्थित नहीं होता है। जिला

विद्यालय निरीक्षक का पद भी स्थानांतरणीय है और अक्सर ऐसा होता है कि जिला विद्यालय निरीक्षक, जिसने पहले आदेश पारित किया था, किसी शिक्षक की नियुक्ति या पदोन्नति के लिए उसके द्वारा दिए गए अनुमोदन को उचित ठहराने के लिए उपलब्ध नहीं होता है। इन परिस्थितियों के आलोक में दिनेश चंद्र दुबे के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क की जांच की जानी है।

23. इसलिए, यह स्पष्ट है कि किसी शिक्षक की प्रवक्ता ग्रेड या एलटी ग्रेड में पदोन्नति के मामले में भी, प्रबंधन समिति के निर्णय से व्यथित शिक्षक को जिला के समक्ष उक्त निर्णय को चुनौती देने का एक उपाय मिल गया है। स्कूलों के निरीक्षक. उपरोक्त प्रावधानों से, अधिनियम की योजना यह है कि जिस समय नियुक्ति की जाती है या जब पदोन्नति की जाती है, तो प्रबंध समिति द्वारा की गई उक्त नियुक्ति या पदोन्नति को अधिनियम के तहत निर्धारित उच्च प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी जा सकती है और नियम उसी के तहत बनाये गये हैं।

24. अध्याय II का विनियम 3 उन सिद्धांतों को निर्धारित करता है जिनके आधार पर वरिष्ठता सूची तैयार की जानी है। मैं पहले ही अध्याय II के विनियम 3 को उद्धृत कर चुका हूँ, जो इसके तरीके का वर्णन करता है जिसमें वरिष्ठता का निर्धारण किया जाना है। वरिष्ठता सूची की वैधता निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक कारक यह हैं कि शिक्षक किस ग्रेड में कार्यरत है, वह मूल पद पर नियुक्त है या

नहीं, नियुक्ति स्थायी है या अस्थायी, नियुक्ति या पदोन्नति की तिथि और शिक्षकों की आयु मूल कारक हैं।

25. अध्याय II के विनियम 3 को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि इसमें कहीं भी इस बात पर विचार नहीं किया गया है कि जो शिक्षक वरिष्ठता सूची को चुनौती देता है वह कॉलेज में शिक्षक की नियुक्ति या पदोन्नति की वैधता को फिर से चुनौती दे सकता है। वह केवल कारकों से व्यथित हो सकता है, यदि गलत तरीके से निर्णय लिया गया हो, जैसा कि विनियम 3 में उल्लिखित है। उस विवाद को ऊपर उद्धृत विनियम 3 के खंड (एफ) के तहत अपील में लिया जा सकता है। मेरी राय में, यह स्पष्ट है कि वरिष्ठता सूची की वैधता पर विवाद करते हुए, किसी शिक्षक के लिए पहले से ही की गई नियुक्ति और पदोन्नति को चुनौती देना संभव नहीं है। नियुक्ति एवं पदोन्नति को चुनौती विशेष रूप से प्रदान की गई है। यदि उस स्तर पर कोई चुनौती नहीं दी जाती है तो नियुक्ति और पदोन्नति अंतिम हो जाती है। यदि विधायिका का इरादा था कि वरिष्ठता निर्धारित करने के समय नियुक्ति और पदोन्नति को चुनौती दी जा सकती है, तो विधायिका ने विनियमों में विशेष रूप से प्रावधान किया होता। ऐसा नहीं किया गया है।

26. इस मामले का एक और पहलू यह है कि एक बार जब नियुक्ति या पदोन्नति अंतिम हो जाती है, तो शिक्षक के पक्ष में एक निहित अधिकार बन जाता है। संस्थान में उनके किसी सहकर्मी को नियुक्ति और पदोन्नति से सहमत

होने के बाद, विवाद उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

27. मामले के इस दृष्टिकोण में, मेरी राय है कि प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया विवाद अच्छी तरह से आधारित है। कॉलेज द्वारा तैयार की गई वरिष्ठता सूची की वैधता निर्धारित करने की कार्यवाही में, उक्त कॉलेज के किसी शिक्षक के लिए उसी कॉलेज में किसी अन्य शिक्षक की नियुक्ति या पदोन्नति को चुनौती देना खुला नहीं है।

28. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने सिविल विविध में इस न्यायालय के एक निर्णय का हवाला दिया है। रिट संख्या 471 सन् 1974, मदन पाल शर्मा बनाम चांसलर, मेरठ विश्वविद्यालय, में 2 जुलाई 1980 को निर्णय दिया गया। उस मामले में वरिष्ठता सूची को चुनौती देते हुए आग्रह किया गया कि आर.जी. कॉलेज मेरठ में शिक्षक की नियुक्ति वैध नियुक्ति नहीं थी। उस मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की।

"हमारी राय में, याचिकाकर्ता के लिए मौजूदा अतिरिक्त कार्यवाही में रघुनाथ गर्ल्स कॉलेज में व्याख्याता के रूप में श्रीमती उषा रानी गुप्ता के चयन या नियुक्ति की वैधता को चुनौती देना संभव नहीं है।"

27. वीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2015 (11) एडीजे 637 (डीबी) के मामले में फिर से विवाद पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने यह व्यवस्था दी है पदोन्नति

के समय दो शिक्षकों के बीच वरिष्ठता, उसी संस्थान में कार्यरत अन्य सहकर्मी शिक्षक से ऊपर वरिष्ठता का दावा करने वाले व्यक्ति के पास ऐसे अन्य शिक्षक की नियुक्ति को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है। पैरा 21 और 22 के माध्यम से खण्ड पीठ ने इस प्रकार अवधारित किया:

“21. इसके अतिरिक्त, हम पाते हैं कि सातवें प्रतिवादी के पास अपीलकर्ता की नियुक्ति और समायोजन को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं होने के अलावा [अपीलकर्ता भौतिकी में व्याख्याता होने और सातवें प्रतिवादी रसायन शास्त्र में व्याख्याता होने के अर्थ में] उसने केवल अपीलकर्ता के संबंध में किए गए समायोजन के परिणामी आदेश को चुनौती दिया। अपीलकर्ता के समायोजन का निर्देश देने वाले निदेशक और बोर्ड के मूल आदेश को रिट याचिका दाखिल होने तक कभी भी चुनौती नहीं दी गई, जो वर्तमान अपील को जन्म देती है।

22. अधिक मौलिक रूप से जब कोई अपनी रिट याचिका में सातवें प्रतिवादी द्वारा मांगी गई राहत को देखता है तो यह स्पष्ट होता है कि अपीलकर्ता के समायोजन को चुनौती देने का प्राथमिक कारण पारस्परिक वरिष्ठता पर इसका परिणामी प्रभाव होगा। हमारी राय में पारस्परिक वरिष्ठता के मुद्दे पर निर्णय लेते समय किसी नियुक्ति की वैधता जांच या निर्णय का विषय नहीं हो सकती है। इसलिए हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति और समायोजन को अपास्त करने और अपास्त

करने की कार्यवाही में स्पष्ट रूप से गलती की है।

परिणामस्वरूप, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता द्वारा की गई विशेष अपील सफल होने के लिए उत्तरदायी है और परिणामस्वरूप सातवें प्रतिवादी की रिट याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए। ऊपर उल्लिखित कारणों से, हम सातवें प्रतिवादी की स्थिति को एल.टी. की स्थिति में वापस लाने के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में योग्यता पाते हैं। ग्रेड शिक्षक। परिणामस्वरूप सातवें प्रतिवादी की अपील विफल होनी चाहिए।

28. जहां तक तीसरे तर्क का सवाल है, क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता संख्या 2 अनुपमा वर्मा को भी सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था, मेरे विचार से इस तर्क में दम नहीं है। ताकि संबंधित याचिकाकर्ताओं के अलग-अलग चयन और नियुक्तियों पर कोई विवाद न हो। यह एक ऐसा मामला है जहां याचिकाकर्ता रतन प्रभा को एक विज्ञापन संख्या 2 / 2010 के अनुसार चुना गया और पैनल में शामिल किया गया। उनकी नियुक्ती पर केवल इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 4169/2006 में पारित अंतरिम आदेश के आधार पर सवाल उठाया जा रहा है, जिस पर मैं पहले ही चर्चा कर चुका हूं, याचिकाकर्ता की नियुक्ती को उसके अंतरिम आदेश में संरक्षित किया गया था। इससे भी आगे, कानून के किसी विशेष प्रावधान की व्याख्या के लिए, यदि याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान नहीं किया गया था और वह व्याख्या अंततः सुप्रीम

कोर्ट द्वारा उलट दी गई थी, तो याचिकाकर्ता स्वचालित रूप से उसके शामिल होने और वेतन का हकदार बन गया था और उसके बाद निरंतरता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता था। याचिकाकर्ता अनुपमा को 27.7.2012 को पैनल में शामिल किया गया था और 7.8.2012 को नियुक्ती दी गई थी, इसलिए वह याचिकाकर्ता रतन प्रभा से ऊपर कोई वरिष्ठता प्राप्त नहीं कर सकती। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता अनुपमा द्वारा अपनी रिट याचिका संख्या -3608/2021 में दिनांक 7.8.2012 के जिस आदेश पर अवलंब लिया जा रहा है, अपने आप में तकनीकी रूप से सही नियुक्ति आदेश नहीं कहा जा सकता। इसमें दर्ज है कि चयन बोर्ड ने एक नियुक्ति की थी, इसलिए उसे अपनी साख प्रस्तुत करके अपनी नियुक्ति सुनिश्चित करनी थी। ये वे विवरण नहीं हैं जो नियुक्ति आदेश बनाएंगे और नियुक्ति इतनी स्पष्ट होनी चाहिए कि बोर्ड द्वारा अनुशंसित किए जाने पर प्रबंधन समिति द्वारा नियुक्त किया गये उम्मीदवार को इसके द्वारा नियुक्त किया जा सके। मैं इसका उल्लेख केवल सुश्री अनुपमा की ओर से सुश्री रतन प्रभा की नियुक्ति पर सवाल उठाने के लिए उठाए गए तर्क के लिए कर रहा हूँ। इसलिए यदि याचिकाकर्ता के पास कोई नियुक्ति आदेश नहीं था जैसा कि याचिकाकर्ता अनुपमा ने दावा किया है, तो तकनीकी रूप से उसके पास भी कोई नियुक्ति आदेश नहीं था और फिर भी उसे शामिल होने की अनुमति दी गई और वह काम कर रही है। ये टिप्पणियाँ संस्थान में याचिकाकर्ता अनुपमा की नियुक्ति और कामकाज को खराब करने के लिए नहीं की गई

हैं, बल्कि याचिकाकर्ता रतन प्रभा की नियुक्ति पर सवाल उठाने के लिए उनकी ओर से उठाए गए तर्क की सराहना करने के लिए की गई हैं, जिसे अंततः खारिज कर दिया गया है और इसके द्वारा खारिज कर दिया गया है।

29. याचिकाकर्ता अनुपमा के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पूछे गए सवाल पर कि यह दिखाने के लिए ठोस सबूत क्या है कि यदि मामले को हटा दिया जाता है, तो यह आक्षेपित आदेश में दर्ज निष्कर्षों को उलट देगा, याचिकाकर्ता अनुपमा के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एक अवसर दिया गया है सुनवाई के दौरान सराहना के लिए उचित साक्ष्य रखे जाएंगे। मेरे सुविचारित राय में, यह अत्यंत गलत तर्क है कि कोई मामला खारिज किया जा सकता है बशर्ते कोई तथ्यात्मक विवाद हो जिसे मैं पहले ही ऊपर चर्चा कर चुका हूँ और वेतन के बकाया भुगतान के प्रयोजनों के लिए याचिकाकर्ता की कार्य अवधि को छोड़कर कोई विवाद नहीं पाया है। यह केवल प्रबंधन का मामला है और प्रबंधन बकाया वेतन के भुगतान के सवाल पर अपनी इच्छानुसार आपत्ति दर्ज करने के लिए स्वतंत्र है। जहां तक काल्पनिक वरिष्ठता के साथ-साथ वेतन की सुरक्षा का सवाल है, यह कानून में याचिकाकर्ता रतन प्रभा के पक्ष में है। इसलिए, मुझे नहीं लगता कि यह मामला केवल सुनवाई के अवसर के सवाल पर माफ कर दिया गया है।

30. *अश्विन एस. मेहता और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2012) 1 एससीसी 83* के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने विशेष रूप से

प्रशासनिक और अर्ध न्यायिक शक्तियों के प्रयोग के लिए विकसित प्रशासनिक कानून के क्षेत्र में सुनवाई के अवसर के सिद्धांतों से संबंधित कानून पर विचार किया है। पैराग्राफ 40, 41 और 42 के माध्यम से सिद्धांतों को विस्तृत करते हुए, न्यायालय ने इस प्रकार कहा है: -

"40. यह सच है कि "प्राकृतिक न्याय" के नियम सन्निहित नियम नहीं हैं। "प्राकृतिक न्याय" वाक्यांश भी सटीक परिभाषा देने में सक्षम नहीं है। सामान्य कानून के तहत विकसित प्राकृतिक न्याय का अंतर्निहित सिद्धांत, जाँच करना है किसी भी प्राधिकारी द्वारा शक्ति का मनमाना प्रयोग, भले ही वह शक्ति जो वैधानिक निकाय या न्यायाधिकरण को दी गई है, प्रशासनिक या अर्ध-न्यायिक है। "प्राकृतिक न्याय" की अवधारणा निष्पक्ष रूप से कार्य करने के कर्तव्य को दर्शाती है यानी कार्रवाई में निष्पक्षता जैसा कि देखा गया है कि ए.के. क्रेपक बनाम भारत संघ, (1969) 2 एससीसी 262 मामले में प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय को सुरक्षित करना या नकारात्मक रूप से कहें तो अन्याय को रोकना है।

"41. स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ (1981) 1 एससीसी 664 में, आर.एस. सरकारिया, जे. ने तीन न्यायाधीशों वाली पीठ में बहुमत के लिए बोलते हुए, "प्राकृतिक न्याय" की अवधारणा के अर्थ और दायरे को स्पष्ट रूप से समझाया। कई निर्णयों का उल्लेख करते हुए, न्यायमूर्ति ने इस प्रकार अवधारित किया: (एससीसी पृष्ठ 666)

"प्राकृतिक न्याय के नियम मूर्त नियम नहीं हैं। साध्य का साधन होने और अपने आप में साध्य नहीं होने के कारण, ऐसे नियमों की एक विस्तृत सूची बनाना संभव नहीं है। लेकिन प्राकृतिक न्याय के दो मौलिक सिद्धांत हैं जैसे (i) ऑडी अल्टरम पार्टम (ii) मेमो ज्यूडेक्स इन रे सुआ। ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के कई पहलू हैं, उनमें से दो हैं (ए) मिलने वाले मामले की सूचना; और (बी) समझाने का अवसर। इस नियम का त्याग नहीं किया जा सकता है प्रशासनिक सुविधा या शीघ्रता की के स्थान पर सामान्य सिद्धांत - जैसा कि समान अनुप्रयोग के पूर्ण नियम से अलग है - ऐसा प्रतीत होता है कि जहां कोई कानून, शर्तों में, इसे पूर्व सुनवाई का नियम को बाहर नहीं करता है। लेकिन गुण-दोष के आधार पर मूल आदेश की पूर्ण समीक्षा के लिए निर्णय के बाद की सुनवाई पर विचार करता है, तो ऐसे कानून को पूर्व-निर्णय चरण में ऑडी अल्टरम पार्टम नियम को बाहर करने के रूप में माना जाएगा। इसके विपरीत यदि शक्ति प्रदान करने वाला कानून प्रभावित व्यक्ति को पूर्व निर्णयात्मक सुनवाई देने के संबंध में मौन है और प्राधिकारी द्वारा लिए गए प्रशासनिक निर्णय में गंभीर प्रकृति के सिविल परिणाम शामिल हैं, और उस निर्णय के खिलाफ गुण-दोष के आधार पर कोई पूर्ण समीक्षा या अपील नहीं है बशर्ते, अदालतें इस तरह के कानून को लागू करने में बेहद अनिच्छुक होंगी, जिसमें न्यूनतम सुनवाई के कर्तव्य को भी शामिल नहीं किया जाएगा, इसके सभी औपचारिक ताम-झाम और पूर्व-निर्णय चरण में विलंबकारी विशेषताओं को त्याग दिया जाएगा, जब तक कि व्यावहारिक रूप से नहीं देखा जाए, यह प्रशासनिक को पंगु

बना देगा। प्रक्रिया को निष्फल करने के लिए अत्यधिक तत्परता की आवश्यकता होती है। संक्षेप में, निष्पक्ष खेल के इस नियम को बहुत असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर नहीं छोड़ा जाना चाहिए जहां बाध्यकारी आवश्यकता इतनी मांग करती है। अदालत को स्थितिजन्य संशोधनों के साथ, इस प्रमुख नियम को यथासंभव अधिकतम सीमा तक बचाने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। लेकिन, हालांकि इसका मूल, बना रहना चाहिए, अर्थात्, प्रभावित व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर मिलना चाहिए और सुनवाई एक वास्तविक सुनवाई होनी चाहिए न कि एक खोखली जनसंपर्क प्रक्रिया।" (हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

42. इस प्रकार, यह सामान्य बात है कि किसी आदेश से पहले सुनवाई का उचित अवसर देने की आवश्यकता एक प्रशासनिक, अर्ध न्यायिक या न्यायिक प्राधिकारी द्वारा की जाती है, खासकर जब ऐसे आदेश में प्रतिकूल नागरिक परिणाम होते हैं, जिसमें संपत्ति, व्यक्तिगत का उल्लंघन शामिल होगा। प्रभावित पक्ष के अधिकारों और भौतिक अभाव को प्रशासनिक अत्यावश्यकता या शीघ्रता के आधार पर त्याग नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह, उक्त सिद्धांत के अपवाद हो सकते हैं और जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसकी सीमा और इसके अनुप्रयोग को स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है। इस प्रश्न पर कि सिद्धांत को लागू किया जाना चाहिए या नहीं, व्यक्त भाषा और शक्ति प्रदान करने वाले प्रावधान की मूल योजना को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए; प्रदत्त शक्ति की प्रकृति; वह

उद्देश्य जिसके लिए शक्ति प्रदान की गई है और प्रभावित व्यक्ति के अधिकारों पर उस शक्ति के प्रयोग का अंतिम प्रभाव है।"

31. चरण लाल साहू बनाम भारत संघ, एआईआर 1990 एससी 1480 के मामले में सर्वेधानिक पीठ के निर्णय के बाद की सुनवाई के मुद्दे पर भी चर्चा की गयी है, जबकि यह देखते हुए कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को कच्चे लोहे के फार्मूले में नहीं रखा जा सकता है। पैरा 109 के माध्यम से संविधान पीठ ने इस प्रकार अवधारित किया है:

"109. तथ्य यह है कि वाक्यांश 'प्राकृतिक न्याय' स्थिर और सटीक परिभाषा में सक्षम नहीं है। इसे स्ट्रेट-जैकेट या कास्ट-आयरन फॉर्मूले में कैद नहीं किया जा सकता था। प्राकृतिक न्याय के नियम मूर्त नियम नहीं हैं। इसलिए, ऐसे नियमों की एक विस्तृत सूची बनाना संभव नहीं था। इस न्यायालय ने दोहराया कि ऑडी एटरम पार्टम न्यायालयों द्वारा तैयार किया गया एक अत्यधिक प्रभावी नियम है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि एक वैधानिक प्राधिकारी एक न्यायसंगत निर्णय पर पहुंचे और इसकी गणना शक्ति के दुरुपयोग या दुरुपयोग पर एक स्पष्ट जांच के रूप में कार्य करने के लिए की जाती है। प्राकृतिक न्याय के नियम केवल उन्हीं क्षेत्रों में लागू हो सकते हैं जो वैध रूप से बनाए गए किसी कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं। समान अनुप्रयोग के पूर्ण नियम से अलग सामान्य सिद्धांत यह प्रतीत होता है कि जहां कोई कानून पूर्व सुनवाई के इस नियम को बाहर नहीं करता है, लेकिन निर्णय के बाद की

सुनवाई पर विचार करता है, जो योग्यता के आधार पर मूल आदेश की पूर्ण समीक्षा के बराबर होती है, तो ऐसा कानून इसे पूर्व-निर्णय चरण में ऑडी अल्टरम पार्टम नियम को बाहर करने के रूप में माना जाएगा। यदि शक्ति प्रदान करने वाला कानून प्रभावित व्यक्ति को पूर्व-निर्णयात्मक सुनवाई देने के संबंध में चुप है, तो निर्णय-पश्चात सुनवाई के बाद का प्रशासनिक निर्णय अच्छा था।

32. संविधान पीठ ने आगे यह विचार रखा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को परिस्थितिजन्य लचीलेपन के साथ देखा जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मामले को माफ करते समय इस न्यायालय द्वारा पारित पहले के आदेश में, निर्देश जारी किया गया था कि प्रभावित पक्ष को भी सुना जा सकता है, लेकिन अब जब से मैंने श्री भीम सिंह को सुनवाई की अनुमति दी है, याचिकाकर्ता अनुपमा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, जो प्रभावित पक्षकार हो सकते हैं, मैंने याचिकाकर्ता रतन प्रभा की नियुक्ति को स्वीकार कर लिया है, जिसमें उन्होंने कोई नियुक्ति आदेश नहीं होने और परिणामी नियुक्ती खराब होने का मुद्दा उठाया है, श्री सिंह इस बात पर विवाद नहीं कर सकते कि याचिकाकर्ता रतन प्रभा को वर्ष 2006 में सूचीबद्ध किया गया था और एक निर्देश था यह न्यायालय उसे किसी अन्य संस्थान में शामिल होने के लिए कहता है। वह इस बात पर भी विवाद नहीं कर सका कि उसे दी गई इस नियुक्ती के लिए ही रिट याचिका संख्या 41691/2006 दायर की गई थी, जिसमें अंतरिम स्थगन आदेश पारित किया गया था।

33. यदि कोई उपरोक्त कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करता है, तो वह पाएगा कि याचिकाकर्ता रतन प्रभा का चयन याचिकाकर्ता अनुपमा से पहले का होना विवादित नहीं है। यह न्यायालय पहले ही याचिकाकर्ता अनुपमा की नियुक्ती को वैध मान चुका है क्योंकि समिति नियुक्ति आदेश जारी नहीं कर रही थी। स्वाभाविक रूप से संस्थान में उनकी नियुक्ति पर सवाल उठाने वाली एक रिट याचिका में, जो कि विज्ञापन का विषय नहीं था, इस न्यायालय द्वारा उनके हितों की रक्षा के लिए अंतरिम आदेश पारित किए जाने के बाद भी, प्रबंधन ने उन्हें उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने की अनुमति नहीं दी। यदि याचिकाकर्ता रतन प्रभा के चयन और नियुक्ति के शामिल होने वाले हिस्से को वैध माना जाता है, तो कोई और तथ्य विवाद में नहीं रह जाता है। वेतन का भुगतान प्रबंधन समिति द्वारा बिलों को अंतिम रूप देकर और उसे अग्रेषित करके किया जाने वाला हिस्सा है और इसलिए, याचिकाकर्ता अनुपमा को कोई शिकायत नहीं हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों और तथ्यों की पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता अनुपमा को भले ही सुनवाई की अनुमति दी गई हो, लेकिन इससे कानूनी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आएगा कि वह बाद में शामिल होने के लिए बाद में चयन के अधीन थी।

34. इस प्रकार, याचिकाकर्ता अनुपमा को अपने अधिवक्ता के माध्यम से सुनवाई का अवसर देने के बाद भी, मुझे नहीं लगता कि प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश हस्तक्षेप के योग्य है। इसलिए मेरे विचार में मामले को नए सिरे से सुनवाई के लिए भेजना

केवल एक खोखली औपचारिकता होगी क्योंकि अंततः परिणाम तो वही आना ही है।

7096 /2020 द्वारा दायर की गई याचिका को उपर अवधारित कारण के लिए खारिज की जाती है।

35. ये सभी मुद्दे संभवतः श्री सिंह द्वारा केवल इस कारण से नहीं उठाए जा सकते कि उनकी मुवक्किल याचिकाकर्ता अनुपमा वर्ष 2006 में दृश्य में कहीं नहीं थीं। श्री सिंह आगे कुछ भी बहस नहीं कर सके।

36. इसलिए, याचिकाकर्ता अनुपमा की ओर से पेश अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सभी तीन तर्क खारिज कर दिए जाते हैं।

37. *सुने जाने का अधिकार* के सवाल पर प्रबंधन समिति के आदेश को चुनौती देने के लिए प्रबंधन समिति के अधिवक्ता के रूप में पेश होने वाले श्री भीम सिंह भी याचिका का समर्थन करने वाला कोई कानून नहीं दिखा सके। एकमात्र मुद्दा जो हो सकता था, वह वेतन का बकाया भुगतान, क्योंकि प्रबंधन को ही बिलों को आगे बढ़ाना है। मेरे विचार में प्रबंधन का अधिकार क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आदेश में सुरक्षित है और उस सीमा तक प्रबंधन समिति इस मुद्दे को प्राधिकरण के साथ उठाने के लिए हमेशा स्वतंत्र है, यदि कानूनी रूप से अनुमति हो।

38. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इसलिए मेरा मानना है कि क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने के लिए प्रबंधन समिति की रिट याचिका पोषणीय नहीं है और इसलिए प्रबंधन समिति

39. याचिकाकर्ता अनुपमा द्वारा दायर की गई रिट याचिका नं. 3608/ 2021 को भी उपरोक्त सुविचारित कारणों और जो इस निर्णय में अवधारित किया गया है के कारण खारिज की जाती है। रिट याचिका संख्या 866/2020 और रिट याचिका संख्या 9586/2021 में सफल होती है और अनुमति प्रदान की जाती हैं प्रबंधन समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.08.2019 के साथ-साथ जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 17.10.2019 को पारित परिणामी आदेश को अपास्त किया जाता है। प्रबंधन समिति को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को संस्थान के कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में नियुक्त करें जब तक कि कोई नियमित रूप से चयनित प्रिंसिपल आकर कार्यभार ग्रहण न कर ले और साथ ही संस्थान के कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में हस्ताक्षरों के सत्यापन के लिए उसके कागजात भी अग्रेषित कर दे। संस्थान के प्रिंसिपल के रूप में याचिकाकर्ता रतन प्रभा के हस्ताक्षरों के सत्यापन के साथ, उन्हें संस्थान के प्रिंसिपल के नियमित वेतन का भुगतान बिना किसी चूक के, महीने दर महीने, देय होने पर किया जाएगा।

40. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 7 ILRA 1211

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

लघु कारण वाद पुनरीक्षण संख्या - 158 सन्

2022

संबद्ध:

लघु कारण वाद पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या - 48

सन् 2022

अमित गुप्ता

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

गुलाब चंद्र कनोडिया

...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

श्री प्रखर टंडन

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

श्री सौरभ श्रीवास्तव

सिविल विधि - किरायेदारी विधि - संपत्ति का अंतरण अधिनियम, 1882 - लघु वाद न्यायालय - उत्तर प्रदेश शहरी परिसरों की किरायेदारी विनियमन अधिनियम, 2021 - निरसन एवं संरक्षण, निहित निरसन, विधायी अधिकारिता - बेदखली वाद; पुनरीक्षणकर्ता द्वारा लघु वाद न्यायालय के उस आदेश को चुनौती दी गई, जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना-पत्र यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया कि किराया बकाया की वसूली एवं बेदखली के लिए लघु वाद न्यायालय में वाद,

उत्तर प्रदेश शहरी परिसरों की किरायेदारी विनियमन अधिनियम, 2021 (किरायेदारी अधिनियम, 2021) के प्रवर्तन के उपरांत विचारणीय नहीं है; लघु वाद पुनरीक्षण में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा जिला न्यायाधीश के उस आदेश को चुनौती दी गई, जिसमें उक्त लघु वाद को किरायेदारी अधिनियम, 2021 के अधीन विचारणीय न मानते हुए निरस्त कर दिया गया; दोनों पुनरीक्षणों में यह सामान्य विधिक प्रश्न उठा कि किरायेदारी अधिनियम, 2021 का प्रभाव लंबित लघु वादों एवं पुनरीक्षण याचिकाओं पर क्या होगा; न्यायालय द्वारा यह अवलोकन किया गया कि किरायेदारी अधिनियम, 2021 की विधायी मंशा किरायेदारी को लिखित अनुबंधों के माध्यम से विनियमित करने की थी, किंतु अधिनियम द्वारा जानबूझकर अलिखित किरायेदारियों को स्पष्टीकरण से वंचित रखा गया, संभवतः इस मान्यता के साथ कि ऐसे मामलों में उत्तर प्रदेश सिविल विधियों (संशोधन) अधिनियम, 1972 की सतत् प्रासंगिकता बनी रहेगी; पुनरीक्षण याचिकाएं निरस्त की जाती हैं, तथा लघु वाद न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वाद की सुनवाई शीघ्र प्रारंभ कर छह माह की अवधि के भीतर उसका निस्तारण करे।

उपरोक्त पुनरीक्षण याचिक निरस्त की जाती है।

जिन उदाहरणों पर भरोसा किया गया:

1. न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती शांति मिश्रा, एआईआर 1976 एससी 237

2. मेसर्स गैमन इंडिया लिमिटेड बनाम विशेष मुख्य सचिव, 2006(2) एससीसी 454

3. श्री जयराम एजुकेशनल ट्रस्ट बनाम ए.जी. सैयद मोहिदीन, एआईआर 2010 एससी 671

4. राम गोपाल बनाम हरि शंकर, 1985 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 132

5. तमिलनाडु विश्वविद्यालय बनाम अधियामन एजुकेशनल एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1995 एआईआर एससीडब्ल्यू 2179

6. ट्रांसकोर बनाम यू.ओ.आई., (2008) 1 एससीसी 125

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार, द्वारा पदत्त)

1. एस. सी. सी पुनरीक्षण संख्या 158 वर्ष 2022 में पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता श्री प्रखर टंडन, प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री सौरभ श्रीवास्तव और एस. सी. सी पुनरीक्षण (डी) संख्या 48 वर्ष 2022 में पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह को सुना।

2. ये दोनों पुनरीक्षण आवेदन कानून के सामान्य प्रश्न उठाते हैं और इसलिए इस सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा एक साथ निर्णय लिया जा रहा है।

3. एस. सी. सी पुनरीक्षण संख्या 158 वर्ष 2022 में, पुनरीक्षणकर्ता न्यायाधीश, लघु वाद दिनांक 23 सितंबर, 2022 द्वारा पारित आदेश से व्यथित है, जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 11 के तहत दायर उसके आवेदन संख्या 232-C को खारिज कर दिया गया था, और जिसमें यूपी

विनियमन के तहत निहित प्रावधानों के लिए शहरी परिसर किरायेदारी अधिनियम, 2021 (इसके बाद नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के रूप में संदर्भित), जो 16 सितंबर, 1972 से राजपत्र अधिसूचना के तहत लागू हुआ है, लागू होने के बाद भी किराए और बेदखली के बकाया की वसूली के लिए लघु वाद की अनुरक्षणीयता पर सवाल उठाया गया था।

4. एस. सी. सी पुनरीक्षण संख्या 48 वर्ष 2022 में, पुनरीक्षणकर्ता ने एस. सी. सी वाद संख्या 2022 में जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 13 जुलाई, 2022 पर सवाल उठाया है। 2022 का ... NIL एस.सी.सी वाद को बहुत ही सीमा पर (?) खारिज करते हुए इसे किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रवर्तन और उसमें निहित प्रावधानों के मद्देनजर बनाए रखने योग्य नहीं माना गया था।

5. इस प्रकार इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए दो कानूनी प्रश्न उठते हैं:

(क) क्या नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के लागू होने से पहले से ही स्थापित एक लघु वाद मुकदमा और उससे उत्पन्न होने वाला ऐसा एस. सी. सी पुनरीक्षण भी पोषणीय रह पायेगा या एस.सी.सी वाद और एस. सी. सी पुनरीक्षण जिसका उल्लेख धारा 46 के निरसन और बचत खंड में नहीं किया जा रहा है, ऐसे वाद और पुनरीक्षण की कार्यवाही समाप्त हो जाएगी; तथा

(ख) क्या किरायेदारी अधिनियम की धारा 38 के तहत बनाया गया प्रतिबंध पूर्ण नहीं है और इसलिए किराया और बेदखली (एस. सी. सी वाद) की वसूली के बकाया के लिए लघु वाद मुकदमा और उससे उत्पन्न होने वाला एस. सी. सी पुनरीक्षण अभी भी नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रवर्तन के बाद भी बनाए रखने योग्य होगा, जो किरायेदारी अधिनियम 2021 के तहत प्रदान किए गए किरायेदारी समझौतों द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है।

6. प्रश्न (ए)' के संबंध में पुनरीक्षण संख्या 158 वर्ष 2022 में आवेदक की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता श्री प्रखर टंडन द्वारा निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं:

(i) धारा 46, न्यू टेनेंसी एक्ट, 2021 उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 के तहत पहले से ही शुरू और लंबित कुछ कार्यवाहियों को बचाती है, लेकिन उत्तर प्रदेश सिविल कानून पुनरीक्षण अधिनियम 1972 के तहत राज्य में लागू होने वाले प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 की उपधारा 3 के प्रावधान के तहत शुरू किए गएवादों का उल्लेख नहीं करती है। और इसलिए निरसन और बचत खंड एस. सी. सी वाद और एस.सी. सी पुनरीक्षण की कार्यवाही पर लागू नहीं होगा;

(ii) न्यू टेनेंसी एक्ट, 2021 की धारा 46, 1972 के एक्ट नंबर 13 को बदलने के लिए है और इस नए एक्ट के संचालन को केवल यह सुनिश्चित करने के लिए भावी बनाया गया है कि निरस्त यूपी शहरी भवन (किराया और

बेदखली का लेटिंग) अधिनियम, 1972 के तहत पहले से ही लंबित कार्यवाही व्यर्थ न हो;

(ii) नया अधिनियम किरायेदार के विरुद्ध भू-स्वामी द्वारा कार्यवाही शुरू करने के लिए एक मंच का प्रावधान करता है और चूंकि नया अधिनियम पुराने अधिनियम का स्थान लेता है और संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में आने वाले विषय पर सक्षम विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया है, इसलिए यह सूची 2 में इस विषय पर सक्षम विधानमंडल द्वारा बनाए गए अन्य सभी अधिनियमों को छोड़कर क्षेत्र में कब्जा कर लेगा। और इसलिए, उत्तर प्रदेश सिविल कानून पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 के तहत राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित प्रावधानों को भी निरस्त कर दिया जाएगा। इस प्रकार श्री टंडन के अनुसार, जहां तक प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 की उपधारा 3 और उत्तर प्रदेश में लागू होने वाले बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 के परंतुक का संबंध है, निरस्त माना जाएगा।

7. प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री सौरभ श्रीवास्तव ने एक तर्क दिया है कि चूंकि लघु वाद न्यायालय का मंच उत्तर प्रदेश सिविल कानून पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 और नए किरायेदारी अधिनियम के आधार पर उपलब्ध है, जिसमें राष्ट्रपति की कोई सहमति नहीं है, इसलिए लघु वाद न्यायालय का मंच बना रहेगा और एक साथ दो मंच बने रह सकते हैं; समय बीतने के साथ हो सकते हैं, लघुवाद न्यायालयों का मंच केवल लिखित किरायेदारी

समझौते और पुराने किरायेदारों के समाप्त होने के कारण अपनी प्रासंगिकता और महत्व खो देता है। उन्होंने दो अधिनियमों अर्थात् न्यू टेनेंसी एक्ट, 2021 और पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 को समानांतर संचालन पर जोर दिया है और चुनाव के सिद्धांत पर, एक कार्रवाई योग्य दावा लाने वाली पार्टी, दोनों में से किसी एक को चुन सकती है।

8. इसके विपरीत, श्री आशीष कुमार सिंह, विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियाँ निम्नानुसार हैं:

(I) उत्तर प्रदेश सिविल विधि पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 को केन्द्रीय अधिनियम अर्थात् प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 और बंगला, आगरा, असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 बनाने के लिए लाया गया था ताकि पट्टे के निर्धारण के बाद पट्टेदार को भवन से बेदखल करने के लिए पट्टेदार द्वारा एक वाद अर्थात् किराए की वसूली और भवन के कब्जे के लिए एक वाद बनाए रखा जा सके और इस अधिनियम को इसलिए राष्ट्रपति और केंद्रीय सहमति प्राप्त हुई हो ताकि अधिनियम नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के अधिनियमन के बाद भी इस तरह के मुकदमों के रखरखाव के लिए क्षेत्र पर कब्जा करना जारी रखेगा;

(II) धारा 38 के तहत बनाई गई बार उन मामलों तक सीमित है जहां अधिकार और दायित्व नए किरायेदारी अधिनियम के तहत किए गए और प्रस्तुत किए गए समझौते से प्रवाहित होते हैं, अन्यथा लघुवाद का उपाय

है और तब तक उपलब्ध रहेगा जब तक कि विधायिका उत्तर प्रदेश सिविल कानून पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 को निरस्त नहीं कर देती है और इन मामलों के लिए वैकल्पिक मंच प्रदान करती है जिसमें लिखित रूप में कोई समझौता नहीं किया गया है।

(III) चूंकि उत्तर प्रदेश सिविल विधि पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 ने लघु वाद न्यायालय का एक मंच प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य को अपने आवेदन में प्रांतीय लघु न्यायालय अधिनियम, 1887 बनाया, जब तक कि इस तरह के प्रावधान को पूर्वव्यापी प्रभाव से निरस्त नहीं किया जाता है, तब तक ऐसी वाद कार्यवाही उनके तार्किक अंत तक लाई जाती रहेगी।

9. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ विचार के लिए आती हैं।

10. दो मामलों में विचार के लिए उठने वाले सवालों के जवाब खोजने के लिए, नए राज्य किरायेदारी अधिनियम राज्य में किरायेदारी कानून के क्षेत्र को किस हद तक आच्छादित करेगा; क्या यह संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1872 जैसे केंद्रीय अधिनियम द्वारा पहले से ही कब्जा किए गए क्षेत्र में अतिक्रमण करता है; इस संबंध में कि क्या यह पहले से स्थापित मुकदमों को बचाता है और क्या उत्तर प्रदेश सिविल विधि पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 के तहत राष्ट्रपति की सहमति वाले लघुवाद न्यायालयों का मंच अभी भी उपलब्ध होगा, सबसे पहले केंद्र और राज्य के बीच विधायी

संबंधों पर गौर करना आवश्यक है जैसा कि हमारे संविधान में निर्धारित है।

11. संविधान की सातवीं अनुसूची में दी गई तीन सूचियां जिन्हें संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची कहा गया है, हमारे संविधान की संघीय संरचना की सूचक हैं।

12. अनुच्छेद 272 पूर्व - संविधान कानूनों को तब तक बचाता है जब तक कि सक्षम विधायिका द्वारा निरस्त नहीं किया जाता है। अनुच्छेद 252 केंद्रीय विधायिका की शक्ति और राज्यों को कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

13. समवर्ती सूची के विषय केंद्रीय और राज्य विधानसभाओं दोनों की विधायी क्षमता के भीतर आते हैं, बशर्ते कि क्षेत्र पहले से ही किसी भी केंद्रीय अधिनियम द्वारा अधिकृत नहीं किया गया है और यदि ऐसा है तो एक राज्य अधिनियम को राष्ट्रपति की सहमति लेनी होगी। इसी तरह किसी भी राज्य अधिनियम में राष्ट्रपति की सहमति है तो, दूसरे शब्दों में; व्यक्त या निहित निरसन द्वारा, केवल तभी जब बाद के अधिनियम में राष्ट्रपति की सहमति भी हो, इसका हट जाएगा।

14. केंद्र और राज्य के बीच विधायी संबंधों को नियंत्रित करने वाले हमारे संविधान में निहित इस उपरोक्त सिद्धांत के साथ, मैं नए किरायेदारी अधिनियम के कुछ प्रावधानों की जांच करने के लिए आगे बढ़ता हूं जो मौजूदा मामलों में शामिल विवाद के लिए प्रासंगिक हैं।

15. इस नए काश्तकारी अधिनियम से पहले उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (इसके बाद " किराया नियंत्रण अधिनियम" के रूप में संदर्भित) ने उक्त अधिनियम की धारा 20 के तहत निर्धारित निर्दिष्ट आधारों को छोड़कर किरायेदारी विवाद के मामलों में शहरी क्षेत्रों में आने वाले भवनों से संबंधित मुकदमों पर रोक लगा दी थी। इस तरह के मुकदमों के शीघ्र निपटान को सुनिश्चित करने के लिए क्योंकि इसमें शीर्षक विवाद शामिल नहीं होगा और केवल लघु परीक्षण की आवश्यकता होगी, राज्य विधायिका ने उत्तर प्रदेश सिविल कानून पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 (इसके बाद पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 के रूप में संदर्भित) में प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 3 में एक परंतुक जोड़ते हुए लागू किया और इसलिए सरकार ने बंगाल, अवध और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, लघु वाद न्यायालयों के रूप में पदनामित किए जाने के लिए क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार वाले सिविल न्यायालयों के मंच का उपबंध करते हुए में भी पुनरीक्षण करते हुए, एक निर्णय लिया है। इस पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 को दिनांक 12.09.1972 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और यह अभी तक निरसित नहीं हुआ है।

16. इस प्रकार किराया नियंत्रण अधिनियम और पुनरीक्षण अधिनियम के तहत परिभाषित शहरी भवनों के किरायेदारी विवादों के मामलों में लघु वाद में पोषणीय हो गए।

17. नए किरायेदारी अधिनियम ने पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम को पूरी तरह से निरस्त कर दिया है और धारा 1 के तहत प्रदान किए गए क्षेत्रों में धारा 2 (सी) के तहत परिभाषित परिसर से संबंधित किरायेदारी विवादों के संबंध में मुकदमों को भी रोक दिया है। धारा 1 में इसके आवेदन के क्षेत्रों का प्रावधान निम्नानुसार है:

"(1) इस अधिनियम को उत्तर प्रदेश शहरी परिसर किरायेदारी अधिनियम, 2021 का विनियमन कहा जा सकता है।

(2) यह पूरे उत्तर प्रदेश में फैला हुआ है।

(3) यह निम्नलिखित पर लागू होगा:-

(क) उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 (1959 का उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 2) में यथा परिभाषित प्रत्येक शहर;

(ख) उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम में यथा परिभाषित प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र; 1916 (1916 का उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 2)

(ग) उत्तर प्रदेश नगरीय नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 (1973 का राष्ट्रपति अधिनियम सं. 11) के अधीन अधिसूचित प्रत्येक विकास क्षेत्र;

(घ) उत्तर प्रदेश विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1986 (1986 का 30प्र0

अधिनियम संख्या 9) के अधीन अधिसूचित प्रत्येक विशेष विकास क्षेत्र;

(ङ) उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 (1976 का 30प्र0 अधिनियम सं० 6) के अधीन अधिसूचित प्रत्येक औद्योगिक विकास क्षेत्र;

(च) उत्तर प्रदेश (भवन संचालन का विनियमन) अधिनियम, 1958 (1958 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 34) के तहत अधिसूचित प्रत्येक विनियमित क्षेत्र; तथा

(छ) उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद अधिनियम, 1965 (30प्र0 अधिनियम 1966 का सं. 1) के अधीन गठित उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद की विभिन्न आवास योजनाओं से संबंधित प्रत्येक क्षेत्र: परन्तु यदि राज्य सरकार, संतुष्ट है कि उसका यह समाधान हो जाता है कि किसी अन्य स्थानीय क्षेत्र में निवास करने वाले साधारण जनता के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषणा कर सकेगी कि यह अधिनियम या उसका कोई भाग ऐसे क्षेत्र को लागू होगा और तत्पश्चात यह अधिनियम या भाग ऐसे क्षेत्र को लागू होगा।

(4) इसे 11 जनवरी, 2021 से प्रभावी माना जाएगा। (महत्व दिया गया गया)

18. धारा 2 (ग) निम्नानुसार परिसर को परिभाषित करता है:

"परिसर" का अर्थ है किसी भी इमारत या इमारत का हिस्सा जो है, या होने का इरादा है, निवास के उद्देश्य से या वाणिज्यिक या शैक्षिक उपयोग के लिए, औद्योगिक उपयोग को छोड़कर किराए पर दिया जाता है और इसमें शामिल हैं

(i) उद्यान, गैरेज या बंद पार्किंग क्षेत्र खाली भूमि, मैदान और आउटहाउस, यदि कोई हो, ऐसे भवन या भवन के हिस्से से संबंधित; और

(ii) इस तरह के भवन या भवन के हिस्से के लिए अधिक लाभकारी आनंद के लिए कोई फिटिंग, लेकिन होटल, लॉजिंग हाउस, धर्मशाला या सराय जैसे परिसर शामिल नहीं हैं;

(ज) "किरायेदार", चाहे पट्टेदार कहा जाता है या किसी अन्य नाम से, का अर्थ एक व्यक्ति है जिसके द्वारा या जिसके खाते पर या जिसकी ओर से किसी भी परिसर का किराया किरायेदारी समझौते के तहत मकान मालिक को देय है और इसमें कोई भी व्यक्ति शामिल है जो उप- किरायेदार के रूप में परिसर में कब्जा कर रहा है और साथ ही, कोई भी व्यक्ति जो इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में अपनी किरायेदारी की समाप्ति के बाद कब्जे में बना रहता है; लेकिन इसमें कोई वह व्यक्ति भी शामिल नहीं होगा जिसके खिलाफ बेदखली का कोई आदेश या डिक्री की गई है। (महत्व दिया गया गया)

19. न्यू टेनेंसी एक्ट, 2021 की धारा 32 में रेंट ट्रिब्यूनल और रेंट अथॉरिटी के गठन का प्रावधान है:

" (1) किराया न्यायाधिकरण की अध्यक्षता स्वयं जिला न्यायाधीश या प्रत्येक जिले में जिला न्यायाधीश द्वारा नामित अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा की जाएगी।

20. धारा 34 किराया प्राधिकरण और ट्रिब्यूनल की शक्तियों के लिए निम्नानुसार प्रदान करता है:

"(1) किराया प्राधिकारी और किराया अधिकरण, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के लिए, वही शक्तियाँ होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. 5) के अधीन सिविल न्यायालय में निहित हैं, निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए-

(क) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसकी उपस्थिति को प्रवृत्त करना और शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(बी) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन की आवश्यकता है;

(ग) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना;

(घ) स्थानीय अन्वेषण के लिए आयोग जारी करना;

(ङ) शपथ पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(च) किसी आवेदन या अपील को चूक के लिए खारिज करना या उसे एकपक्षीय रूप से विनिश्चित करना;

(छ) किसी आवेदन या चूक के लिए अपील या उसके द्वारा पारित किसी अन्य आदेश को एकपक्षीय रूप से खारिज करने के किसी आदेश को रद्द करना;

(ज) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए।

(2) किराया प्राधिकरण या किराया न्यायाधिकरण के समक्ष किसी भी कार्यवाही को धारा 193 और 228 के अर्थ के भीतर और भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का अधिनियम संख्या 45) की धारा 196 के प्रयोजन के लिए न्यायिक कार्यवाही माना जाएगा; और किराया प्राधिकरण और किराया न्यायाधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम संख्या 2) की धारा 195 और अध्याय XXVI के प्रयोजनों के लिए एक सिविल कोर्ट माना जाएगा।

(3) इस अधिनियम के अधीन कोई जांच करने या किसी कर्तव्य का निर्वहन करने के प्रयोजनों के लिए, किराया प्राधिकारी-

(क) कम से कम चौबीस घंटे की सूचना लिखित रूप में देने के पश्चात्, सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच किसी भी समय किसी परिसर में प्रवेश करने और निरीक्षण करने के लिए अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को प्रवेश और निरीक्षण करने के लिए प्राधिकृत करेगा;

(ख) किसी लिखित आदेश द्वारा किसी व्यक्ति से अपेक्षा करता है कि वह अपने निरीक्षण के लिए जांच से सुसंगत ऐसी पुस्तकें या

दस्तावेज ऐसे समय पर और ऐसे स्थान पर प्रस्तुत करे जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

(4) किराया प्राधिकरण, यदि वह ठीक समझे, तो अपने समक्ष कार्यवाही में सलाह देने के लिए एक मूल्यांकनकर्ता या मूल्यांकक के रूप में विचाराधीन मामले का विशेष ज्ञान रखने वाले एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगा।

(5) किराया प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश में कोई लिपिकीय या अंकगणितीय गलती या किसी आकस्मिक चूक से उत्पन्न होने वाली कोई अन्य त्रुटि, किसी भी समय, किराया प्राधिकारी द्वारा किसी भी पक्ष से या अन्यथा इस संबंध में प्राप्त आवेदन पर ठीक की जा सकती है।

(6) किराया प्राधिकारी, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम सं. 2) के उपबंधों के अधीन जुर्माने की वसूली के लिए प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा और किराया प्राधिकारी को ऐसी वसूली के प्रयोजनों के लिये उक्त संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट समझा जाएगा।

(7) किसी किराया प्राधिकारी द्वारा किया गया आदेश या इस अध्याय के अधीन अपील में पारित आदेश किराया प्राधिकारी द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में निष्पादित किया जा सकेगा और इस प्रयोजन के लिए किराया प्राधिकारी को सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होंगी।

(8) किराया प्राधिकारी किसी आदेश को रद्द कर सकता है या वापस ले सकता है यदि पीड़ित पक्ष एक आवेदन दायर करता है और इसे संतुष्ट करता है कि नोटिस विधिवत तामील नहीं किया गया था या उसे किसी भी पर्याप्त कारण से पेश होने से रोका गया था जब मामले को सुनवाई के लिए लिया गया था।

(9) इस अधिनियम में अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय, किराया प्राधिकारी द्वारा किया गया प्रत्येक आदेश, अपील में विनिश्चय के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा और किसी मूल वाद, आवेदन या निष्पादन कार्यवाहियों में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा। (महत्व दिया गया)

21. धारा 35 किराया न्यायाधिकरण को निम्नानुसार अपील के लिए प्रदान करता है: (1) किराया प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति उस आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर स्थानीय सीमा के भीतर किराया ट्रिब्यूनल को ऐसे आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ अपील कर सकता है:

बशर्ते कि कोई अपील तब तक नहीं होगी जब तक कि अपीलकर्ता किराया प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश के तहत पूरी देय राशि का पचास प्रतिशत पूर्व जमा नहीं कर देता ।

(2) उपधारा (1) के अधीन अपील फाइल करने पर, किराया अधिकरण प्रतिवादी को अपील के

जापन की एक प्रति के साथ नोटिस देगा और प्रतिवादी को अपील की सूचना तामील की तारीख से तीस दिन के भीतर सुनवाई नियत करेगा और अपील सेवा की ऐसी तारीख से साठ दिन की अवधि के भीतर निपटाई जाएगी।

(3) जहां किराया न्यायाधिकरण सही और उचित निर्णय पर पहुंचने के हित में इसे आवश्यक समझता है, वह अपील में कार्यवाही के किसी भी स्तर पर दस्तावेजों को दाखिल करने की अनुमति दे सकता है: बशर्ते कि सुनवाई के दौरान ऐसे किसी भी दस्तावेज को एक से अधिक बार अनुमति नहीं दी जाएगी।

(4) किराया अधिकरण, अपने विवेक से अपील के लंबित रहने के दौरान ऐसा वादकालीन आदेश पारित कर सकेगा, जैसा वह ठीक समझे।

(5) अपील का विनिश्चय करते समय, किराया अधिकरण, उसके कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात्, किसी किराया प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की पुष्टि, अपास्त या उपांतरित कर सकेगा । (महत्व दिया गया)

22. धारा 36 के तहत आदेश के निष्पादन के लिए प्रदान करता है:

"(1) किराया प्राधिकारी, किसी पक्षकार द्वारा दायर आवेदन पर किराया अधिकरण के आदेश या इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी

अन्य आदेश को, ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, निष्पादित करेगा-

(ए) उस व्यक्ति को परिसर का कब्जा देना जिसके पक्ष में निर्णय लिया गया है; नहीं तो

(बी) इस तरह के आदेश में निर्दिष्ट राशि की वसूली के उद्देश्य से प्रत्यर्थी के एक या अधिक बैंक खातों को कुर्क करना, नहीं तो

(ग) ऐसे आदेश के निष्पादन के लिये किसी अधिवक्ता या किसी अन्य सक्षम व्यक्ति, जिसके अन्तर्गत किराया प्राधिकारी या स्थानीय प्रशासन या स्थानीय निकाय के अधिकारी भी हैं, नियुक्त करना; नहीं तो

(घ) प्रतिपक्षी के वेतन और भत्ते की कुर्की; या

(ई) प्रत्यर्थी की चल या अचल संपत्ति की कुर्की और बिक्री ।

(2) किराया प्राधिकारी अंतिम आदेशों के निष्पादन के लिए स्थानीय पुलिस से सहायता ले सकेगा:

परन्तु कोई भी आवेदक पुलिस की सहायता तब तक प्राप्त नहीं करेगा जब तक कि वह ऐसी लागतों का भुगतान न करे जो किराया प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित की जाए ।

(3) किराया प्राधिकारी अपने आदेश या किराया अधिकरण के आदेश या इस अधिनियम के अधीन पारित किसी अन्य आदेश के संबंध में संक्षिप्त रीति से निष्पादन कार्यवाहियां करेगा और विपरीत पक्षकार को नोटिस की तामील

की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर इस धारा के अधीन किए गए निष्पादन के लिए आवेदन का निपटान करेगा।

23. धारा 38 कुछ मामलों के संबंध में वर्जित सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को निम्नानुसार रोकती है:

"(1) इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई सिविल न्यायालय किसी वाद या कार्यवाही को, जहाँ तक वह इस अधिनियम के उपबंधों से संबंधित है, ग्रहण नहीं करेगा।

(2) किराया प्राधिकारी की अधिकारिता प्रथम अनुसूची में यथा विनिर्दिष्ट उसके समक्ष प्रस्तुत किरायेदारी करार तक सीमित होगी और उसका विस्तार परिसर के स्वत्वाधिकार या स्वामित्व के प्रश्न तक नहीं होगा । (महत्व दिया गया)

24. धारा 42 किरायेदारी अधिनियम को निम्नानुसार अधिभावी प्रभाव देती है:

"इस अधिनियम के उपबन्ध तत्समय प्रवृत्त उत्तर प्रदेश राज्य की किसी अन्य विधि में अंतवष्ट किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।

25. धारा 46 निम्नानुसार निरसन और बचत खंड के लिए प्रदान करता है:

"(1) उत्तर प्रदेश शहरी भवन (लेटिंग, रेंट और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (1972 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13)

और शहरी परिसर किरायेदारी का उत्तर प्रदेश विनियमन (द्वितीय) अध्यादेश, 2021 (उत्तर प्रदेश का उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 3) एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

भी चीज या की गई किसी कार्रवाई को इस अधिनियम के संबंधित प्रावधानों के तहत किया गया या लिया गया माना जाएगा। (महत्व दिया गया)

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उत्तर प्रदेश नगरीय भवन (लेटिंग, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (1972 का 30 प्र० अधिनियम सं० 13) के प्रारम्भ पर लंबित सभी प्रकरण और अन्य कार्यवाहियाँ उक्त अधिनियम, 1972 के उपबन्धों के अनुसार इस प्रकार जारी रहेंगी और उनका निपटारा इस प्रकार किया जायेगा मानो वह अधिनियम प्रवृत्त रहा हो और यह अधिनियम प्रख्यापित नहीं किया गया हो।

(3) उपधारा (1) द्वारा निरसित विधि से भिन्न किसी विधि के अधीन किसी मकान मालिक और किरायेदार के बीच किसी विवाद से संबंधित सभी मामले और कार्यवाहियाँ सिविल न्यायालय के समक्ष या इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख को किसी अन्य न्यायालय के समक्ष अपील में, उन परिसरों के संबंध में, जिन पर यह अधिनियम लागू होता है, ऐसे न्यायालय के समक्ष जारी रखा जाएगा और इस तरह के लागू कानून के अनुसार निपटाया जाएगा।

(4) उत्तर प्रदेश शहरी परिसर किरायेदारी विनियमन अध्यादेश, 2021 (उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 2 वर्ष 2021) और उत्तर प्रदेश शहरी परिसर किरायेदारी विनियमन (द्वितीय) अध्यादेश, 2021 (यूपी अध्यादेश संख्या 3 वर्ष 2021) के तहत की गई किसी

26. नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 1 के तहत आवेदन खंड इसे नगर पालिकाओं, नागरिक और औद्योगिक विकास प्राधिकरण क्षेत्रों में आने वाले क्षेत्रों में लागू करता है, जिसमें यूपी (भवन संचालन का विनियमन) अधिनियम, 1958 के तहत आच्छादित किए गए क्षेत्र और यूपी आवास विकास परिषद की आवास योजनाओं के क्षेत्र शामिल हैं। इमारतों को औद्योगिक उपयोग के लिए किराए पर दी गई इमारतों को छोड़कर नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 3 के तहत संदर्भित लोगों के अपवाद के साथ उपरोक्त धारा 2 (सी) के तहत परिसर के रूप में परिभाषित किया गया है।

27. नया किरायेदारी अधिनियम, 2021 किराया विवाद समाधान के लिए किराया प्राधिकरण और न्यायाधिकरण के गठन का प्रावधान करता है और इसलिए इसके परिणामस्वरूप धारा 38 के तहत सिविल अदालतों के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाता है।

28. श्री टंडन द्वारा दिया गया तर्क यह था कि चूंकि धारा 42 छोटे कारणों के न्यायालयों का उल्लेख नहीं करती है, इसलिए छोटे कारणों के न्यायालयों और छोटे कारणों के संशोधनों के समक्ष लंबित मुकदमे किरायेदारी अधिनियम के प्रवर्तन के साथ समाप्त हो जाएंगे। उन्होंने तर्क दिया था कि धारा 38, 42 और 46 को

संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलेगा कि पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 निहित रूप से निरस्त हो गया है।

29. इससे पहले कि मैं इन तीन वर्गों की जांच करने के लिए आगे बढ़ूं, मुझे उस शक्ति के दायरे की जांच करने की आवश्यकता है जो पहले बनाए गए किराया प्राधिकरण के साथ निहित है, पट्टेदार (मकान मालिक) और पट्टेदार (किरायेदार) के बीच लीज़ पर निर्णय लेने के लिए।

30. नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के तहत धारा 4 के तहत लिखित समझौते पर बहुत जोर दिया गया है जो निम्नानुसार है:

"1 (1) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति, इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात्, किसी परिसर को लिखित करार के सिवाय, जिसे किरायेदारी करार की तारीख से दो मास की अवधि के भीतर प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्रपत्र में संयुक्त रूप से मकान मालिक और किरायेदार द्वारा किराया प्राधिकारी को सूचित किया जाएगा, किराए पर नहीं देगा या किराए पर नहीं लेगा:

बशर्ते कि बारह महीने से कम की अवधि के लिए आवासीय किरायेदारी के मामलों में, मकान मालिक और किरायेदार को ऐसी किरायेदारी के बारे में किराया प्राधिकारी को सूचित करने की आवश्यकता नहीं होगी।

(2) जहां मकान मालिक और किरायेदार संयुक्त रूप से उप-धारा (1) में निर्दिष्ट किरायेदारी समझौते के निष्पादन को सूचित करने में विफल रहते हैं, मकान मालिक और किरायेदार अलग-अलग किरायेदारी समझौते के निष्पादन को किराया प्राधिकारी को उप-धारा (1) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति की तारीख, एक महीने की अवधि के भीतर सूचित करेंगे;

(3) जहां, इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले सृजित किरायेदारी के संबंध में, -

(ए) यदि मकान मालिक और किरायेदार के बीच लिखित में एक समझौता किया गया था, तो वे संयुक्त रूप से इस अधिनियम के शुरू होने के तीन महीने के भीतर किराया प्राधिकारी को उसकी एक प्रति प्रस्तुत करेंगे।

(ख) यदि लिखित रूप में कोई करार नहीं किया गया था, तो मकान मालिक और किरायेदार उस किरायेदारी के संबंध में लिखित रूप में एक समझौते में प्रवेश करेंगे और इस अधिनियम के प्रारंभ के तीन महीने के भीतर किराया प्राधिकारी को प्रस्तुत करेंगे:

बशर्ते कि जहां मकान मालिक या किरायेदार संयुक्त रूप से किरायेदारी समझौते की एक प्रति पेश करने में विफल रहते हैं या निर्दिष्ट अवधि के भीतर एक समझौते तक पहुंचने में विफल रहते हैं, ऐसे मकान मालिक और किरायेदार अलग से ऐसे किरायेदारी के बारे में ऊपर खंड (ख) में उल्लिखित अवधि की समाप्ति की तारीख से एक महीने के भीतर

किराया प्राधिकारी के साथ, प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्रपत्र में विवरण दर्ज करेंगे। यदि मकान मालिक ने निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपना विवरण प्रस्तुत किया है, लेकिन किरायेदार ऐसे विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहता है, तो मकान मालिक अकेले इस आधार पर बेदखली के लिए आवेदन दायर कर सकता है:

परंतु यह और कि ऐसी बेदखली कार्यवाहियों के दौरान, किराया प्राधिकारी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसे अधिनिर्णय के दौरान किरायेदार द्वारा संदेय अंतरिम किराया विनिश्चित करेगा।

(4) राज्य सरकार, हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में डिजिटल प्लेटफार्म स्थापित करेगी जिससे वे ऐसे प्रारूप और रीति से जो विहित की जाएँ, दस्तावेज प्रस्तुत करने में समर्थ बनाया जा सके।

(5) किराया प्राधिकरण, प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट दस्तावेजों के साथ किरायेदारी समझौते के निष्पादन के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद, पक्षों को एक विशिष्ट पहचान संख्या प्रदान करेगा।

(6) किरायेदार से निपटने के लिए मकान मालिक द्वारा संपत्ति प्रबंधक के प्राधिकरण की शर्तें, यदि कोई हों, तो किरायेदारी समझौते में उस संबंध में मकान मालिक और किरायेदार द्वारा सहमत होंगी।

(7) उप-धारा (1), (2) और (3) के तहत प्रदान की गई जानकारी किरायेदारी और उससे जुड़े मामलों से संबंधित तथ्यों का निर्णायक प्रमाण होगी, और सूचना के किसी भी बयान के अभाव में, मकान मालिक अकेले इस आधार पर बेदखली के लिए आवेदन दायर कर सकता है।

(महत्व दिया गया)

31. पक्षों अर्थात् मकान मालिक और किरायेदार पर डाली गई दायित्व, लिखित रूप में एक समझौते में प्रवेश करना है और इस तरह के समझौते के दो महीने के भीतर किराया प्राधिकरण को सूचित करना है या तो संयुक्त रूप से या अलग-अलग, बशर्ते कि किरायेदारी 12 महीने या उससे अधिक की अवधि के लिए हो। नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के शुरू होने की तारीख को पुरानी / मौजूदा किरायेदारी के मामले में, पक्षों से लिखित रूप में एक समझौता करने और उक्त अधिनियम के शुरू होने के तीन महीने के भीतर किराया प्राधिकरण को सूचित करने की अपेक्षा की जाती है और लिखित समझौते के अस्तित्व के मामले में पक्षों पर यह दायित्व है कि वे इसे संयुक्त रूप से किराया प्राधिकरण को प्रस्तुत करें।

32. धारा 4 (3) का पहला परंतुक मकान मालिक पर यह अनिवार्य बनाता है कि वह किरायेदारी की पहली अनुसूची में निर्धारित प्रपत्र के अनुसार विवरण ऊपर निर्दिष्ट तीन महीने की अवधि की समाप्ति के एक महीने के भीतर किराया प्राधिकारी को दे, यदि कोई समझौता लिखित रूप में दर्ज नहीं किया जाता

है और ऐसी घटना में किरायेदार को भी अपना विवरण देना होगा और विफलता की स्थिति में दायित्व के अपने हिस्से का निर्वहन करने में किरायेदार का हिस्सा, वह बेदखली के लिए उत्तरदायी होगा।

33. तो सवाल किरायेदारी के रूप में उठता है जहां भूमि मालिक भी धारा 4 (3) के पहले परंतुक के तहत दायित्व के अपने हिस्से का निर्वहन करने में विफल रहता है। धारा 4 (1) का पहला परंतुक किराया प्राधिकारी को लिखित रूप में किसी भी समझौते की रिपोर्ट किए बिना जारी रखने के लिए ग्यारह महीने की किरायेदारी के लिए खुला है और किरायेदारी अधिनियम के तहत किराए के पुनरीक्षण से संबंधित आगे के प्रावधान भी पुराने मौजूदा किरायेदारों के संबंध में पुनरीक्षण का प्रावधान करते हैं। उपरोक्त सभी शोधों को एक साथ पढ़ने से कोई भी सुरक्षित रूप से यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि कोई किरायेदारी समझौते के मामलों में और किसी भी समझौते को प्रस्तुत करने वाले पक्षों में से कोई भी, एक अपरिहार्य निष्कर्ष पर ले जाएगा कि किरायेदारी या तो 12 महीने से कम या महीने से महीने के आधार पर है। फिर भी अगर मकान मालिक नए किरायेदारी अधिनियम 2021 के शुरू होने के बाद भी मौजूदा किरायेदारी के अपने विवरण प्रस्तुत नहीं करता है, तो अधिनियम परिणामों के रूप में चुप है। फिर, एक अपरिहार्य निष्कर्ष होगा, इसलिए, 12 महीने से कम समय के लिए समझौता के मौखिक समझौतों को धारा 21 के तहत मकान मालिक के बेदखली की

मांग के अधिकार के खिलाफ संरक्षित किया जाता है। यह यहां धारा 21 और 22 का उत्पादन करने लायक होगा और यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

'21 (1) बेदखली के खिलाफ किरायेदार का संरक्षण (1) किरायेदारी समझौते की निरंतरता के दौरान एक किरायेदार को बेदखल नहीं किया जाएगा जब तक कि अन्यथा मकान मालिक और किरायेदार द्वारा लिखित रूप में सहमति न हो, सिवाय उप-धारा (2) के प्रावधानों के अनुसार या धारा 22 के प्रावधानों के अनुसार:

बशर्ते कि मकान मालिक ने इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बिक्री विलेख द्वारा परिसर का अधिग्रहण किया है और यह अपनी खरीद से पहले एक किरायेदार के कब्जे में था, इस तरह के परिसर के कब्जे की वसूली के लिए कोई आवेदन इस धारा के तहत नहीं किया जाएगा जब तक कि एक वर्ष की अवधि इस तरह के अधिग्रहण की तारीख से बीत चुकी है, या पूर्ववर्ती मकान मालिक और किरायेदार के बीच निष्पादित किरायेदारी समझौते की समाप्ति, जो भी पहले हो:

बशर्ते कि पूर्ववर्ती परंतुक के तहत मकान मालिक द्वारा परिसर के अधिग्रहण के बाद मकान मालिक भी इस तरह के अधिग्रहण के एक महीने के भीतर कब्जे में किरायेदार को सूचित करेगा।

(2) किराया प्राधिकारी, भू-स्वामी द्वारा उसे ऐसी रीति से, जो विहित की जाये, किए गए

आवेदन पर, निम्नलिखित में से एक या अधिक आधारों पर परिसर की बेदखली और कब्जे की वसूली का आदेश दे सकेगा, अर्थात:-

(ए) किरायेदार धारा 8 के तहत देय किराए का भुगतान करने के लिए सहमत नहीं है;

(ख) कि किरायेदार ने लगातार दो महीनों के लिए धारा 13 की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट किराए और अन्य शुल्कों के बकाया का भुगतान नहीं किया है, जिसमें देरी से भुगतान के लिए ब्याज शामिल है, जैसा कि किरायेदारी समझौते में निर्दिष्ट किया जा सकता है मकान मालिक को देय किराए और अन्य शुल्कों के ऐसे बकाया के भुगतान के लिए मांग की सूचना की सेवा की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर:

परन्तु किसी ऐसे किरायेदार के संबंध में, जो संघ के सशस्त्र बलों का सदस्य है और जिसके पक्ष में भारतीय सैनिक (मुकदमेबाजी) अधिनियम, 1925 (1925 का अधिनियम सं.

4) के अधीन विहित प्राधिकारी ने यह प्रमाणपत्र जारी किया है कि वह उस अधिनियम की धारा 3 के अर्थान्तर्गत विशेष परिस्थितियों में सेवा कर रहा है या जहाँ वह इस प्रकार सेवा करते समय शत्रु कार्रवाई से मर गया है, फिर उसके उत्तराधिकारियों के संबंध में, इस खंड में "दो महीने" शब्दों को "एक वर्ष" शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया माना जाएगा;

(ग) कि किरायेदार, इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात्, मकान मालिक की लिखित सहमति

प्राप्त किए बिना परिसर के पूरे या किसी भाग के कब्जे से अलग हो गया है:

बशर्ते कि मामले में, किरायेदार एक फर्म है, तो मालिक या फर्म के भागीदारों या उसके व्यवसाय की प्रकृति के परिवर्तन के मामले में, मकान मालिक का पूर्व समर्थन लिखित रूप में प्राप्त नहीं किया गया है;

(घ) कि किरायेदार ने ऐसे दुरुपयोग से बचने के लिए मकान मालिक से नोटिस प्राप्त होने के बाद भी परिसर का दुरुपयोग जारी रखा है।

स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, "परिसर का दुरुपयोग" का अर्थ है किरायेदार द्वारा अतिरिक्त स्थान का अतिक्रमण या किरायेदारी समझौते या परिसर के उपयोग में अनुमत उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए परिसर का उपयोग जो सार्वजनिक उपद्रव का कारण बनता है या संपत्ति को नुकसान पहुंचाता है या मकान मालिक के हित के लिए हानिकारक है या अनैतिक या अवैध उद्देश्यों के लिए;

(ई) जहां मकान मालिक के लिए परिसर या उसके किसी हिस्से के संबंध में किसी भी मरम्मत या निर्माण या पुनर्निर्माण या जोड़ या परिवर्तन या विध्वंस करने के लिए आवश्यक है, जो परिसर को खाली किए बिना किया जाना संभव नहीं है:

बशर्ते कि इस तरह की मरम्मत, निर्माण, पुनर्निर्माण, जोड़ या परिवर्तन के बाद, किरायेदार को परिसर में फिर से कब्जा करने की अनुमति तभी दी जा सकती है जब यह

मकान मालिक और किरायेदार के बीच पारस्परिक रूप से सहमत हो गया हो और किराया प्राधिकरण के साथ एक नया किरायेदारी समझौता प्रस्तुत किया गया हो: बशर्ते कि किरायेदार को परिसर में फिर से कब्जा करने की अनुमति नहीं दी जाएगी:

(i) किराया प्राधिकारी के साथ इस तरह के आपसी किरायेदारी समझौते को प्रस्तुत करने की अनुपस्थिति में; और

(ii) उन मामलों में जहां किरायेदार को किराया प्राधिकारी के आदेशों के तहत बेदखल किया गया है;

(च) सक्षम प्राधिकारी द्वारा भूमि उपयोग के परिवर्तन के परिणामस्वरूप इसके उपयोग के परिवर्तन के लिए किसी भी मरम्मत, निर्माण, पुनर्निर्माण, परिवर्धन, परिवर्तन या विध्वंस करने के लिए मकान मालिक द्वारा परिसर या उसके किसी हिस्से की आवश्यकता है;

स्पष्टीकरण: इस खंड के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति "सक्षम प्राधिकारी" का अर्थ है नगर- निगम या नगर पालिका या विकास प्राधिकरण या कोई अन्य प्राधिकरण, जैसा भी मामला हो, जो मरम्मत या पुनर्विकास या भवन के विध्वंस या भूमि उपयोग में परिवर्तन की अनुमति से संबंधित मामलों पर अनुमति प्रदान करता है;

(छ) कि किरायेदार ने किराए पर छोड़े गए परिसर को खाली करने के लिए लिखित सूचना दी है और उस नोटिस के परिणामस्वरूप

मकान मालिक ने उक्त परिसर को बेचने का अनुबंध किया है या कोई अन्य कदम उठाया है, जिसके परिणामस्वरूप उसके हितों को गंभीर रूप से नुकसान होगा यदि उसे उस परिसर के कब्जे में नहीं रखा जाता है;

(ज) कि किरायेदार ने मकान मालिक की लिखित सहमति के बिना किराए पर दिए गए परिसर में कोई संरचनात्मक परिवर्तन किया है या कोई स्थायी ढांचा खड़ा किया है;

(i) कि धारा 7 के उल्लंघन में, किरायेदार ने अपने द्वारा धारित परिसर के पूरे या भाग को उप- किराए पर दिया है या किरायेदारी करार या उसके भाग में अपने अधिकारों को हस्तांतरित या सौंपा है;

(ज) जहां काश्तकारी समय के प्रवाह द्वारा निर्धारित होती है;

(ट) कि किरायेदार ने परिसर पर किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा कब्जा किए जाने की अनुमति दी है जो उसके परिवार का सदस्य नहीं है; स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, परिवार से पति / पत्नी, पुरुष वंशज अभिप्रेत हैं, ऐसे माता-पिता, दादा-दादी, कोई अविवाहित, विधवा, तलाकशुदा, न्यायिक रूप से अलग हुई पुत्री, पुरुष वंशज की पुत्री या विधवा बहू जो उसके साथ साधारणतया निवास कर रही हो;

(एल) कि किरायेदार ने परिसर से अपने प्रभावों को काफी हद तक हटा दिया है;

(ड) कि मकान मालिक द्वारा परिसर की आवश्यकता या तो उसके विद्यमान रूप में

अथवा उसके विध्वंस और नए निर्माण के पश्चात् जमींदार द्वारा उसके कब्जे के प्रयोजन के लिए की जाती है।

(3) उपधारा (2) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट किराए का संदाय करने में असफलता के कारण किरायेदार को बेदखल करने का कोई आदेश नहीं दिया जाएगा, यदि किरायेदार मकान मालिक को संदाय करता है या किराया प्राधिकारी के पास उक्त मांग सूचना की तारीख से एक मास के भीतर ब्याज सहित किराए और अन्य संदेय प्रभारों, यदि कोई हों, की बकाया राशि जमा करता है।

(4) जहाँ किरायेदार किसी एक वर्ष में उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट राहत प्रदान करने के पश्चात् दो मास तक लगान का संदाय करने में असफल रहता है तो किरायेदार ऐसी राहत का पुनः हकदार नहीं होगा।

(5) उपधारा (2) के खंड (ड) के अधीन बेदखली की किसी कार्यवाही में, किराया प्राधिकारी परिसर के केवल एक भाग से बेदखली की अनुमति दे सकेगा, यदि मकान मालिक इसके लिए सहमत हो।

धारा 22 - मकान मालिक की मृत्यु की दशा में परिसर की बेदखली और कब्जे की वसूली-
(1)

(1) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, भूस्वामी की मृत्यु की दशा में, जहाँ किरायेदारी की अवधि के दौरान मकान मालिक

के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा किराए पर छोड़े गए परिसर की आवश्यकता है, ऐसे कानूनी उत्तराधिकारी किराया प्राधिकारी के समक्ष उक्त परिसर की बेदखली और कब्जे की वसूली के लिए इस संबंध में ऐसे रूप और तरीके से आवेदन दायर कर सकते हैं, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

(2) किराया प्राधिकारी, उपधारा के अधीन उसे किए गए आवेदन पर

(1), यदि यह संतुष्ट है कि मृत मकान मालिक के कानूनी उत्तराधिकारियों को किराए पर दिए गए परिसर की आवश्यकता है, तो मृतक मकान मालिक के कानूनी उत्तराधिकारियों को उक्त परिसर के खाली कब्जे को सौंपने के लिए किरायेदार के खिलाफ आवश्यक आदेश पारित करें।

(महत्व दिया गया)

34. ऊपर उद्धृत धारा किरायेदार को किरायेदारी समझौते की निरंतरता के दौरान बेदखली से बचाती है, धारा 22 के तहत प्रदान की गई चीजों के अपवाद के साथ। हालांकि, परिसर के बाद के क्रेता को इस तरह के अधिग्रहण के एक वर्ष के बाद या किराया समझौते की समाप्ति पर, जो भी पहले हो, बेदखली की मांग करने का अधिकार है और इस तरह के अधिग्रहण के एक महीने के भीतर कब्जे में किरायेदार को नोटिस जारी किया जाना है । उपधारा (2) आकस्मिकताओं के लिए प्रदान करता है जिसमें एक मकान मालिक बेदखली के लिए आवेदन कर सकता है। उपधारा (2) के विभिन्न खंडों को ध्यान से

पढ़ने से पता चलता है कि लगभग हर घटना को एक डिफॉल्टर किरायेदार की बेदखली और मकान मालिक द्वारा उसके कब्जे के लिए परिसर की आवश्यकता के लिए आच्छादित किया गया है। उपधारा (2) के खंड (j) पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समय के प्रवाह द्वारा किरायेदारी के निर्धारण की घटना को संदर्भित करता है। यह निश्चित रूप से उन किरायेदारों को आच्छादित करेगा जहां लिखित समझौते के तहत अवधि समाप्त हो गई है या उस मामले के लिए 11 महीने की अलिखित किरायेदारी है।

35. जब्ती की छूट, छोड़ने के नोटिस की छूट, किराए का भुगतान न करने के लिए जब्ती के खिलाफ राहत, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882 के कुछ मामलों में जब्ती के खिलाफ राहत और सुरक्षा प्राप्त करने के लिए किरायेदार का दावा समान रूप से हो सकता है, इसलिए नए किरायेदारी अधिनियम 2021 के तहत प्रावधानों से संबंधित धारा 112 से 114 ए के तहत निश्चित रूप से प्रतिकूलता की सीमा तक केंद्रीय अधिनियम का मार्ग प्रशस्त करेगा, क्योंकि यह क्षेत्र पर कब्जा कर लेता है और संविधान के अनुच्छेद 254 के आधार पर प्रबल होगा जब तक कि राज्य संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 को राज्य में अपने आवेदन में संशोधित करने के लिए कोई पुनरीक्षण कानून नहीं बनाता है और इस तरह के पुनरीक्षण कानून को राष्ट्रपति की सहमति मिल जाती है।

36. अब उपाय का प्रश्न उठता है। बेदखली के मामलों में पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम

और नए किरायेदारी अधिनियम दोनों में एक बात समान है और वह है निर्धारित प्राधिकरण / किराया प्राधिकरण। हालांकि, पुराने अधिनियम के तहत वाद कुछ निर्दिष्ट आकस्मिकताओं में बनाए रखने योग्य थे। नए किरायेदारी अधिनियम के तहत, हालांकि, उन बहुत ही घटनाओं को बेदखली के लिए आधार के रूप में गिना जाता है, लेकिन केवल किराया प्राधिकरण के समक्ष आवेदन के माध्यम से। किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 (4) के तहत दी गई सुरक्षा को भी नए किरायेदारी अधिनियम की धारा 21 (3) के तहत थोड़े पुनरीक्षण के साथ प्रदान किया गया है।

"उप-धारा (2) के खंड (बी) में निर्दिष्ट किराए का भुगतान करने में विफलता के कारण, यदि किरायेदार मकान मालिक को भुगतान करता है या किराया प्राधिकरण के पास किराए की बकाया राशि जमा करता है और अन्य देय शुल्क, यदि कोई हो, जिसमें ब्याज भी शामिल है, तो उक्त मांग नोटिस की सेवा की तारीख से एक महीने के भीतर किरायेदार की बेदखली का कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

37. ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम में वाद के लिए प्रावधान किया गया था, इसलिए राज्य विधायिका ने इस तरह के मुकदमों के सारांश निपटान के लिए एक मंच प्रदान करना बेहतर समझा क्योंकि इसमें केवल मकान मालिक - किरायेदार विवाद शामिल होगा और ज्यादातर मौखिक रूप से सहमत किरायेदारी थे। इस प्रकार एक परीक्षण आवश्यक था लेकिन साथ ही यह शीघ्र निपटान है। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश सिविल विधि पुनरीक्षण अधिनियम,

1972 को प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 (3) के परंतुक को सम्मिलित करते हुए अधिनियमित किया गया था। पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 की धारा 2 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

2. 1887 के अधिनियम 15 का पुनरीक्षण:- प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 में, जो इसके पश्चात् इसके उपधारा (3) में इसके पश्चात् मूल अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट है, यथा संशोधित प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 में, निम्नलिखित परंतुक अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात:

"परन्तु पट्टाकर्ता द्वारा किसी पट्टेदार को उसके पट्टे के अवधारण के पश्चात् किसी भवन से बेदखल करने के लिए या पट्टे के बने रहने के दौरान उसके कब्जे की अवधि के संबंध में उससे किराए की वसूली के लिए, या पट्टे के ऐसे अवधारण के पश्चात् उसके उपयोग और कब्जे के प्रतिकर के लिए, दो हजार रुपये के लिए इस उप धारा के में संदर्भ पांच हजार रुपये के लिए एक संदर्भ के रूप में माना जाएगा।

स्पष्टीकरण - इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति भवन का वही अर्थ है जो (4) दूसरी अनुसूची में है।

38. परंतुक के उपरोक्त समावेशन के परिणामस्वरूप, बेदखली डिक्री के खिलाफ पुनरीक्षण की अदालत की शक्ति अधिनियम, 1887 की धारा 25 के तहत उपलब्ध हो गई। तदनुसार, पुनरीक्षण अधिनियम की धारा 3 के तहत निम्नानुसार एक परंतुक भी जोड़ा गया था:

"मूल अधिनियम की धारा 25 में निम्नलिखित परंतुक अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात: परंतु लघु कारणों के न्यायाधीश की अधिकारिता का प्रयोग करने वाले जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश द्वारा विनिश्चित किए गए किसी मामले के संबंध में, इस धारा के अधीन पुनरीक्षण की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित होगी।

39. इसके अतिरिक्त मूल अधिनियम की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद (4) में पुनरीक्षण करके शब्द भवन को पुनः परिभाषित किया गया है, जो धारा 4 के तहत निम्नानुसार है:

"मूल अधिनियम की दूसरी अनुसूची (4) में निम्नलिखित अनुच्छेद का प्रतिस्थापन होगा, अर्थात:

" (4) अचल संपत्ति के कब्जे के लिए, लेकिन अपने पट्टे के निर्धारण के बाद एक पट्टेदार के बेदखली के लिए एक पट्टेदार द्वारा एक वाद सहित नहीं, और पट्टे के ऐसे निर्धारण के बाद उस इमारत के उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे की वसूली के लिए या ऐसी संपत्ति में हित की वसूली के लिए एक मुकदमा।

स्पष्टीकरण - इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति 'भवन, का अर्थ है एक आवासीय या गैर-आवासीय छत वाली संरचना, और इसके अंतर्गत कोई भूमि (जिसके अंतर्गत कोई उद्यान भी है), गैरेज और आउट हाउस, ऐसे भवन से संबद्ध हैं, और इसके अंतर्गत भवन से चिपकाए गए कोई फिटिंग और फिक्सचर भी हैं जो उसके अधिक लाभकारी आनंद के लिए हैं।

40. उत्तर प्रदेश में लागू होने में बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25, धारा 115, सी.पी.सी 1908 के तहत परिणामी पुनरीक्षण भी किए गए थे।

41. इसके अलावा, पुनरीक्षण अधिनियम, 2021 की धारा 9 के तहत मुंसिफ की अदालत के समक्ष लंबित ऐसे सभी मुकदमे जहां छोटे कारणों की अदालत में स्थानांतरित किए गए थे, सिवाय इसके कि जहां मौखिक साक्ष्य शुरू हुआ था।

42. अब चूंकि नया किरायेदारी अधिनियम वाद की बात नहीं करता है, इसलिए वाद, यह तर्क दिया गया था कि 2021 के अधिनियम के तहत किरायेदारी कानून की नई व्यवस्था के रूप में बनाए रखने योग्य नहीं होगा जिसमें अलिखित किरायेदारी समझौतों से कम सभी प्रकार के किरायेदारी विवाद शामिल हैं और यह भी प्रतीत होता है कि विधायिका ने अपने ज्ञान में पुनरीक्षण अधिनियम 1972 में पुनरीक्षण करना आवश्यक क्यों नहीं समझा।

43. पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 को 12 सितंबर 1972 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और 16 सितंबर 1972 को राजपत्र अधिसूचना के साथ लागू हुआ। यह अधिनियम प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 और बंगाल, आगरा और असम अधिनियम, 1887 दोनों केंद्रीय अधिनियमों को उत्तर प्रदेश में किरायेदारी विवाद से संबंधित मुकदमों के लिए उनके आवेदन में पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 के तहत निर्दिष्ट

आधारों पर बनाए रखने योग्य बनाता है। पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 में निम्नानुसार प्रावधान है:

20. निर्दिष्ट आधारों को छोड़कर किरायेदार की बेदखली के लिए वाद का प्रतिबंध - (1)

उपधारा (2) में यथा उपबंधित के सिवाय, [* * *] किसी भवन से किरायेदार को बेदखल करने के लिए कोई वाद संस्थित नहीं किया जाएगा, चाहे उसके किरायेदारी का अवधारण समय के प्रवाह द्वारा या छोड़ने के लिए सूचना की समाप्ति पर या किसी अन्य रीति से अवधारण किया गया हो:

बशर्ते कि इस उप-धारा में कुछ भी समय के प्रवाह द्वारा अपनी किरायेदारी के निर्धारण पर एक किरायेदार की बेदखली के लिए वाद को रोक नहीं देगा, जहां एक निश्चित अवधि के लिए किरायेदारी एक समझौते या समायोजन के अनुसरण में या उसके अनुसरण में दर्ज की गई थी एक मुकदमा, अपील, पुनरीक्षण या निष्पादन कार्यवाही, जो या तो अदालत में दर्ज किया जाता है या अन्यथा किरायेदार द्वारा लिखित और हस्ताक्षरित करने के लिए कम हो जाता है।

(2) किसी किरायेदार को उसकी किरायेदारी के अवधारण के पश्चात् भवन से बेदखल करने के लिए वाद निम्नलिखित आधारों में से एक या अधिक आधारों पर संस्थित किया जा सकेगा, अर्थात:

(क) कि किरायेदार कम से कम चार मास के किराए के बकाया में है और मांग की सूचना के उस पर सेवा की तारीख से एक मास के भीतर

मकान मालिक को उसका भुगतान करने में असफल रहा है: परन्तु किसी ऐसे किरायेदार के संबंध में जो संघ के सशस्त्र बलों का सदस्य है और जिसके पक्ष में भारतीय सैनिक (मुकदमेबाजी) अधिनियम के अधीन विहित प्राधिकारी, 1925 (1925 का अधिनियम संख्या IV), ने एक प्रमाण पत्र जारी किया है कि वह उस अधिनियम की धारा 3 के अर्थ के भीतर विशेष परिस्थितियों में सेवा कर रहा है या जहां वह सेवा करते समय दुश्मन की कार्रवाई से मर गया है, तो उसके उत्तराधिकारियों के संबंध में, इस खंड में "चार महीने " शब्दों को "एक वर्ष" शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया माना जाएगा;

(ख) कि किरायेदार ने जानबूझकर भवन को पर्याप्त क्षति पहुंचाई है या अनुमति दी है;

(ग) कि किरायेदार ने मकान मालिक की लिखित अनुमति के बिना भवन में ऐसा कोई निर्माण या संरचनात्मक परिवर्तन किया है या करने की अनुमति दी है जिससे उसके मूल्य या उपयोगिता को कम करने या इसे विकृत करने की संभावना है;

(घ) कि किरायेदार [मकान मालिक की लिखित सहमति के बिना उस उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका इस्तेमाल किया है जिसके लिए उसे भवन की किरायेदारी में भर्ती कराया गया था या अन्यथा कोई ऐसा कार्य किया गया है जो इस तरह के उपयोग के साथ असंगत है], या किसी भी कानून के तहत दोषी ठहराया गया है भवन का उपयोग करने के अपराध के बल में या इसे

अवैध या अनैतिक उद्देश्य के लिए उपयोग करने की अनुमति देना;

(ई) कि किरायेदार के पास उप-किराये, धारा 25 के प्रावधानों के उल्लंघन में, या जैसा भी मामला हो, पुराने अधिनियम के पूरे या भवन के किसी हिस्से को उप-पट्टे पर दिया गया है;

(च) कि किरायेदार ने अपने चरित्र को त्याग दिया है या मकान मालिक के हक्के-मिल्कियत से इनकार कर दिया है, और कागजात ने किरायेदार के आचरण को स्पष्टतया माफ नहीं किया है या उसके पुनः प्रवेश के अधिकार को माफ नहीं किया है;

(छ) कि किरायेदार को मकान मालिक के तहत रोजगार के अपने अनुबंध के हिस्से के रूप में भवन पर कब्जा करने की अनुमति दी गई थी, और उसका रोजगार बंद हो गया है।

[* * * *]

(4) उपधारा (2) के खंड (क) में उल्लिखित आधार पर बेदखली के लिए किसी वाद में, यदि वाद की पहली सुनवाई में किरायेदार बिना शर्त [मकान मालिक को निविदाएं या न्यायालय में जमा करता है] किराए की पूरी राशि और भवन के उपयोग और कब्जे के लिए क्षति (उपयोग और कब्जे के लिए इस तरह की क्षति की गणना किराए के समान दर पर की जा रही है) के साथ-साथ उस पर ब्याज के साथ दर पर धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन किरायेदार द्वारा पहले से जमा की गई किसी भी राशि में से कटौती करने के बाद, न्यायालय उस आधार पर बेदखली के लिए

डिक्री पारित करने के बदले में, किरायेदार को उस आधार पर बेदखली के दायित्व से मुक्त करने का आदेश पारित कर सकता है: बशर्ते कि इस उप-धारा में कुछ भी किरायेदार के संबंध में लागू नहीं होगा, जिसने या जिसके परिवार के किसी भी सदस्य ने उसी शहर, नगर पालिका, अधिसूचित क्षेत्र या नगर क्षेत्र में कोई आवासीय भवन निर्माण किया है या अन्यथा खाली राज्य संपत्ति में अधिग्रहण किया है, या अधिग्रहण के बाद खाली हो गया है; स्पष्टीकरण इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए—

(ए) अभिव्यक्ति "पहली सुनवाई " का अर्थ है प्रतिवादी को दिए गए सम्मन में उल्लिखित किसी भी कदम या कार्यवाही के लिए पहली तारीख ;

(ख) अभिव्यक्ति "वाद की लागत" एक विवादित वाद के लिए कर योग्य अधिवक्ता की फीस की राशि का आधा शामिल है।

(5) इस धारा की कोई बात सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की प्रथम अनुसूची के आदेश XXIII के नियम 3 के अधीन अभिलिखित करार, समझौते या संतुष्टि के आधार पर डिक्री पारित करने की न्यायालय की शक्ति को प्रभावित नहीं करेगी।

[(6) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की पहली अनुसूची के आदेश XV की उपधारा (4) या नियम 5 के तहत किरायेदार द्वारा जमा की गई कोई भी राशि मकान मालिक को उसके आवेदन पर पक्षों की दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और वादों में अंतिम निर्णय

के अधीन रहते हुए तुरंत भुगतान की जाएगी। (महत्व दिया गया गया)

44. पुनरीक्षण अधिनियम, 2021 पीएस. सी. सी अधिनियम 1887 की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 4 में पुनरीक्षण लाया गया जो अपवाद खंड प्रदान करता है और इसलिए कब्जे और ब्याज की किसी भी वसूली के लिए वाद को बाहर रखा गया है। बेहतर मूल्यांकन के लिए पीएस. सी. सी अधिनियम की दूसरी अनुसूची के मूल अनुच्छेद 4 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:"

(4) अचल संपत्ति के कब्जे के लिए या ऐसी संपत्ति में हित की वसूली के लिए एक वाद।

45. अब, चूंकि किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 के तहत वाद कुछ निर्दिष्ट आधारों पर निर्धारित किए गए थे, इसलिए यूपी विधानमंडल ने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 के तहत निर्दिष्ट आधारों पर किरायेदारों की बेदखली के मामलों में लघु वाद बनाए रखने के लिए उत्तर प्रदेश में अपने आवेदन में एस. सी. सी अधिनियम की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 4 में पुनरीक्षण किया। संशोधित अनुच्छेद 4 पहले से ही पैराग्राफ 39 में ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है।

46. मूल अनुच्छेद का तुलनात्मक अध्ययन जैसा कि केंद्रीय कानून पर है और यूपी पुनरीक्षण आधार पर संशोधित किया गया है, यह दर्शाता है कि विधायिका ने पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 3 (i) के तहत परिभाषित भवनों के संबंध में पट्टेदार के

उदाहरण पर एक बेदखली वाद को बनाए रखने के लिए, इस तरह के वाद को अपवाद के रूप में जोड़ा। धारा 3 (i) के तहत दी गई भवन की परिभाषा पीएस. सी. सी अधिनियम की दूसरी अनुसूची के संशोधित अनुच्छेद 4 में जोड़े गए स्पष्टीकरण में शामिल है।

47. नतीजतन उसी पुनरीक्षण अधिनियम के तहत एस. सी. सी अधिनियम की धारा 15 (3) में मूल्यांकन बढ़ाने के लिए एक परंतुक जोड़ा गया था और इसलिए बंगाल, आगरा और असम अधिनियम, 1887 की धारा 25 को भी ऐसे वादों के मूल्यांकन में पुनरीक्षण किया गया था। इसके अलावा, इस तरह के वादों को जिला न्यायाधीश के समक्ष या उस मामले के लिए अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष बनाए रखने के लिए, बढ़े हुए मूल्यांकन के लिए उपधारा (2) को उक्त अधिनियम की धारा 25 में जोड़ा गया था।

48. बंगाल, आगरा और असम अधिनियम, 1887 की धारा 25 जैसा कि यह 1972 के बाद है, इसके आवेदन में पुनरीक्षण यहां पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

"बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25, जैसा कि उत्तर प्रदेश के लिए इसके आवेदन में पुनरीक्षण किया गया है, को उपधारा (1) के रूप में फिर से संख्यांकित किया जाएगा, और- (i) उप-धारा (1) में, जैसा कि पुनः क्रमांकित किया गया है, मौजूदा परंतुक के लिए, निम्नलिखित परंतुक प्रतिस्थापन होगा, अर्थात्:

परन्तु उक्त अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (3) के परंतुक में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों के संबंध में, इस उपधारा में एक हजार रुपए और पांच सौ रुपए के प्रति निर्देशों का क्रमशः पांच हजार रुपए और एक हजार रुपए के प्रति निर्देश माना जाएगा।

(ii) उप-धारा के बाद (1) के रूप में तो फिर से संख्यांक, निम्नलिखित उप धारा अर्थात्, डाला जाएगा:-

"(2) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, किसी जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश को अपने पट्टे के अवधारण के पश्चात् किसी पट्टेदार को किसी भवन से बेदखल करने के लिए पट्टाकर्ता द्वारा सभी मुकदमों के विचारण के लिए (चाहे उनका मूल्य कुछ भी हो) प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 के अधीन लघु वाद न्यायालय के न्यायाधीश की अधिकारिता प्रदान कर सकेगी, या पट्टे के ऐसे निर्धारण के बाद उसके उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे के पट्टे की निरंतरता के दौरान उसके कब्जे की अवधि के संबंध में उससे किराए की वसूली के लिए, और इस प्रकार प्रदान किए गए किसी भी अधिकार क्षेत्र को वापस ले सकता है।

स्पष्टीकरण इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति 'भवन' का वही अर्थ है जो उक्त अधिनियम की दूसरी अनुसूची (4) में।

(3) राज्य सरकार इस धारा के अधीन अपनी शक्तियाँ उच्च न्यायालय को राजपत्र में अधिसूचना द्वारा प्रत्यायोजित कर सकेगी।

49. पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम, पीएस. सी. सी अधिनियम, 1887 (यूपी संशोधनों के साथ) और बेंगा, आगरा और असम अधिनियम के उपरोक्त प्रावधान निम्नलिखित दो चीजों को नए "

धारा 17 के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया सी.पी.सी की होगी। लघु वाद न्यायालयों के समक्ष आगे के मुकदमे पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 के तहत संदर्भित और बचाए गए मुकदमे थे।

किरायेदारी अधिनियम से पहले कानूनी स्थिति के बारे में बिल्कुल स्पष्ट करते हैं।

51. अब श्री टंडन के तर्कों पर आते हैं कि क्या छोटे कारणों से अदालतों में लंबित कार्यवाही बेदखली के मुकदमों और एस. सी. सी पुनरीक्षण से संबंधित है, नए किरायेदारी अधिनियम के लागू होने के बाद समाप्त हो जाएगी।

क) किराए की बकाया राशि परिसर / भवन के किरायेदार को बेदखल करने और ऐसे परिसर के परिणामी कब्जे के लिए पट्टेदार द्वारा एक मुकदमा केवल छोटे कारणों के रूप में बनाए रखने योग्य था और वह भी केवल किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 के तहत उल्लिखित निर्दिष्ट आधारों पर; और

52. राज्य विधानमंडल की प्रविष्टि 65 के साथ पठित प्रविष्टि 18 राज्य को "भूमि स्वामी और किरायेदार के संबंध सहित भूमि अवधि" और "इस सूची में किसी भी मामले के संबंध में उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सभी न्यायालयों की अधिकारिता और शक्तियां" जैसे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार देती है। तदनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य ने राज्य को अपने आवेदन में लघु वाद न्यायालय अधिनियम में पुनरीक्षण किया ताकि न्यायालयों को पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 के तहत बचाए गए मुकदमों पर विचार करने और उनका मुकदमा चलाने में सक्षम बनाया जा सके।

ख) बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 3 के तहत परिभाषित सिविल न्यायालयों को पी.एस.सी.सी अधिनियम, 1887 के तहत किरायेदारी विवाद से संबंधित मुकदमों की सुनवाई के लिए कार्य करने के लिए लघु वाद अदालतों के रूप में अधिसूचित किया गया था।

50. इस प्रकार सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 के अधीन अधिसूचित लघु वाद न्यायालय मूलतः सिविल न्यायालय हैं। छोटे कारण न्यायालय विशेष रूप से एक विशेष कानून के तहत प्रदान किए गए न्यायालय हैं और मुकदमों की सुनवाई करने की उनकी शक्ति पी. एस. सी. सी अधिनियम, 1887 के तहत परिभाषित क्षेत्राधिकार के अनुसार सीमित है, हालांकि प्रक्रिया एस. सी. सी अधिनियम की

53. निरसन और निहित निरसन के बिंदु पर ताकि यह सुझाव दिया जा सके कि उत्तर प्रदेश नागरिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 निरस्त हो जाएगा, श्री टंडन ने नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 42 के तहत निहित प्रावधानों पर जोर दिया। उन्होंने तर्क

दिया कि अधिनियम की धारा 46 के साथ धारा 42 के तहत निहित प्रावधानों को पढ़ना, जिस भाषा में उन्हें विशेष रूप से एस. सी. सी. वाद और एस. सी. सी. पुनरीक्षण शामिल नहीं किया गया है, इस तथ्य के साथ कि धारा 38 दीवानी वाद को रोकती है, पुनरीक्षण अधिनियम 1972 को निरस्त करने के लिए विधायिका के इरादे को समाप्त करने के लिए प्रेरित करेगी।

54. नए अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों की अपनी उपरोक्त व्याख्या के समर्थन में, श्री टंडन ने न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती शांति मिश्रा, ए.आई. आर 1976 एस. सी. 237, किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 38 और 46 के मामले में सुप्रीम कोर्ट की कुछ प्राधिकार पर भरोसा किया है, जिसे इस फैसले में पहले ही ऊपर पुनः प्रस्तुत किया जा चुका है। उक्त अधिनियम की धारा 42 पुनरावृत्ति की कीमत पर यहां पुनः प्रस्तुत की जाती है:

"42. अभिभावी प्रभाव - तत्समय प्रवृत्त उत्तर प्रदेश राज्य की किसी अन्य विधि में अंतवष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम के उपबंध प्रभावी होंगे।

55. धारा 42 के पढ़ने से, यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि विषय से निपटने वाले राज्य के किसी भी अन्य कानून के साथ असंगति के बावजूद, लागू है, नया किरायेदारी अधिनियम प्रबल होगा। यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या नए अधिनियम, पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 द्वारा निरस्त कर दिया जाएगा ताकि यह माना जा सके कि धारा

46 के तहत सहेजे गए मुकदमे, नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के साथ असंगति के लिए समाप्त हो जाएंगे और इस प्रकार लघु वाद न्यायालय का मंच उपलब्ध नहीं होगा

56. न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (सुप्रा) के मामले में, न्यायालय संसद द्वारा तत्कालीन मौजूदा मोटर वाहन अधिनियम, 1939 में लाए गए पुनरीक्षण की व्याख्या दावों पर निर्णय लेने के लिए मंच के रूप में कर रहा था। जबकि पुराने उपबंध में दावा याचिकाओं पर विचार करने के लिए सिविल न्यायालय को मंच प्रदान किया गया था, किन्तु संसद / केन्द्रीय विधानमंडल द्वारा अधिनियमित पुनरीक्षण अधिनियम, 1956 के 100 के आधार पर नई धारा 110 -क से 100 च अंतस्थापित की गई थी और धारा 110 के मूल उपबंध को हटा दिया गया था। चूंकि केंद्रीय अधिनियम 100 वर्ष 1956, 16.02.1956 से लागू हुआ था, इसलिए मुद्दा यह था कि क्या 16.02.1956 से पहले हुई दुर्घटना के संबंध में, पुराना मंच दावा याचिकाओं पर विचार करना जारी रखेगा। इसके अलावा, मुद्दा यह था कि चूंकि दावा अधिकरणों का गठन राज्य सरकारों द्वारा तत्काल नहीं किया गया था और इसलिए मुद्दा यह था कि यदि एक बार अधिकरण गठित हो जाते हैं, तो क्या सिविल न्यायालय अभी भी लंबित दावा याचिकाओं पर सुनवाई और निर्णय लेना जारी रखेंगे।

57. 1956 के पुनरीक्षण अधिनियम, 100 के आधार पर, दावा मामलों में सिविल अदालतों

का अधिकार क्षेत्र किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 38 के विपरीत बिल्कुल वर्जित था, जिसमें निर्दिष्ट किया गया था कि किराया प्राधिकरण केवल अधिनियम की अनुसूची 1 में निर्धारित प्रारूप पर दर्ज किए गए समझौतों से संबंधित याचिकाओं पर विचार करेगा। 1956 के पुनरीक्षण अधिनियम 100 की धारा 110 ए से 110 एफ मंच के परिवर्तन के लिए प्रदान करती है, और दुर्घटना के दावे से उत्पन्न होने वाले मुकदमों पर विचार करने के लिए सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से रोक दिया गया था। धारा 110 ए (3) के तहत निर्धारित 60 दिनों की सीमा ने "उच्च न्यायालयों को उपधारा (3) के परंतुक पर वापस आने के लिए प्रेरित किया, और दूसरों को यह कहने दिया कि ट्रिब्यूनल के पास इस तरह के आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा और ऐसी स्थिति में सिविल कोर्ट में जाने का उपाय अधिनियम की धारा 110 एफ के तहत वर्जित नहीं था" सुप्रीम कोर्ट ने कहा "उच्च न्यायालय यह नोटिस करने में विफल रहा कि मुख्य रूप से धारा 110क और 110 च में निहित विधि मंच परिवर्तन से संबंधित विधि थी न्यायालय के पैराग्राफ 6 के तहत इस प्रकार अवधारित किया गया:

"हमारी राय में, धारा 110 ए और 110 एफ की स्पष्ट और व्यक्त भाषा के मददेनजर, यह सही और उचित नहीं है कि फोरम के परिवर्तन के कानून को धारा 110 ए की उपधारा (3) में प्रदान की गई सीमा के नियम को रास्ता दिया जाए। यह इसके विपरीत होना चाहिए। फोरम के परिवर्तन के प्रक्रियात्मक कानून को प्रभावी किया जाना

चाहिए। वर्ष 1956 में पुनरीक्षण द्वारा लाए गए कानून के परिवर्तन का अंतर्निहित सिद्धांत दावेदारों को नाममात्र न्यायालय शुल्क के भुगतान पर दावा न्यायाधिकरण से संपर्क करने का एक सस्ता उपाय करने में सक्षम बनाना था, जबकि सिविल न्यायालय में यथामूल्य न्यायालय शुल्क की एक बड़ी राशि का भुगतान किया जाना आवश्यक था। यह सोचना जायज है कि विधायिका ने लंबित मुकदमों को प्रभावित करना आवश्यक नहीं समझा, लेकिन राज्य सरकारों द्वारा अधिकरण का गठन होते ही, चाहे दुर्घटना की तारीख कुछ भी हो, सभी मामलों में सस्ता उपाय उपलब्ध कराना चाहता था, बशर्ते कि अधिकरण के गठन की तारीख को न्यायालय जाने का उपाय वर्जित न हो, फिर सवाल यह है कि ऐसे मामलों में सीमा की कठिनाई को कैसे हल किया जाए।"

58. पैराग्राफ 10 के तहत विस्तृत सिद्धांत, न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया:

धारा 110 ए (3) में प्रदान की गई सीमा की पट्टी को स्वीकार करते हुए, कोई भी कह सकता है, पूर्वोक्त अधिकारियों के आधार पर कि सख्ती से बोल रहा है कि बार एक दुर्घटना से उत्पन्न मुआवजे के लिए एक आवेदन के संबंध में काम नहीं करता है जो दावा न्यायाधिकरण के गठन से पहले हुआ था। लेकिन चूंकि ऐसे मामले में मंच का परिवर्तन होता है, उक्त मामलों के तथ्य के विपरीत, उचित दृष्टिकोण यह होगा कि इस तरह के आवेदन को ट्रिब्यूनल के गठन के उचित समय के भीतर दायर किया जा सकता है, जो आमतौर पर उपधारा (3) में

उल्लिखित सीमा का समय होगा। यदि किसी दिए गए मामले में, ट्रिब्यूनल के गठन की तारीख से उस समय के भीतर आवेदन नहीं किया जा सकता है, तो आवेदन करने में लगने वाले अतिरिक्त समय को आवेदन करने के लिए उस मामले के तथ्यों पर उचित समय माना जा सकता है या संविधान की तारीख से उपधारा (3) में प्रदान की गई सीमा की अवधि की समाप्ति के बाद की गई देरी अधिकरण के प्रावधानों के अधीन अधिकरण के प्रावधानों को माफ किया जा सकता है। मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, हमारी राय में, दावा अधिकरण का गठन होते ही सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार को समाप्त कर दिया जाता है और अधिकरण के समक्ष आवेदन दायर करना ही दावेदार के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय है। इस मामले के तथ्यों पर, हम मानते हैं कि उत्तरदाताओं के लिए उपलब्ध उपाय दावा न्यायाधिकरण के समक्ष जाना था और चूंकि कानून इस बिंदु पर बहुत स्पष्ट नहीं था, इसलिए ट्रिब्यूनल के गठन के बाद उसके पास पहुंचने में लगने वाले लगभग चार महीने के समय को या तो उचित समय माना जा सकता है या 2 महीने से कम की देरी को उप-धारा (3) धारा 110 ए के प्रावधान के तहत माफ किया जा सकता है।

59. मेरे सुविचारित विचार में, उपरोक्त प्रस्ताव के बारे में कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए, लेकिन किसी को इस तथ्य को समान रूप से स्वीकार करना चाहिए कि और यह केंद्रीय विधानमंडल था जिसने एक केंद्रीय अधिनियम में पुनरीक्षण किया था। इसलिए, इसमें योग्यता का कोई मुद्दा शामिल नहीं था। यदि राज्य ने

नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 को इतना व्यापक बना दिया होता कि वह संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 दोनों को राष्ट्रपति की सहमति से संशोधित कर सके, राष्ट्रपति की सहमति के साथ उत्तर प्रदेश राज्य में उनके आवेदन में पुनरीक्षण अधिनियम 1972, जिसमें राष्ट्रपति की सहमति होती, निरस्त हो जाता। इसलिए, यह निर्णय वर्तमान मामले में शामिल मुद्दे को संबोधित नहीं करता है और इसलिए श्री टंडन की कोई मदद नहीं करेगा।

60. मेसर्स गैमन इंडिया लिमिटेड के विशेष मुख्य सचिव और अन्य, 2006 (2) सुप्रीम 454 के मामले में, श्री टंडन ने पैराग्राफ 45, 46 और 47 पर भरोसा किया है कि बचत खंड (नए किरायेदारी अधिनियम की धारा 46) ने जानबूझकर छोटे कारणों के वाद और छोटे कारण पुनरीक्षण को नहीं बचाया। इस निर्णय के पैराग्राफ 45, 46 और 47 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

45. केशवन माधव मेनन बनाम बॉम्बे राज्य, (1951) एस. सीआर 228 में बहुमत से इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि न्यायालय भारतीय प्रेस (आपातकालीन शक्तियां) अधिनियम, 1931 के उल्लंघन के लिए अपीलकर्ता के अभियोजन की वैधता से संबंधित था। यह अपराध संविधान के लागू होने से पहले किया गया था और 26 जनवरी, 1950 के बाद से मुकदमा चलाया जाना लंबित था। जिस अधिनियम से का सृजन किया गया (?) उसे अनुच्छेद 13 के

साथ पठित अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत शून्य माना गया, क्योंकि यह संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में से एक के साथ असंगत है। इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय के समक्ष जिस बिंदु पर बहस हुई थी, वह यह था कि क्या अधिनियमन के शून्य होने के बाद अभियोजन को जारी रखा जा सकता है। इस मामले में, न्यायालय ने बहुमत के फैसले से माना कि संविधान अपने संचालन में भावी था और अनुच्छेद 13 (1) संविधान पूर्व कानूनों के तहत शुरू की गई इन कार्यवाहियों की वैधता को प्रभावित नहीं करेगा जो संविधान के लागू होने की तारीख तक वैध थे, क्योंकि यह धारण करना कि इन कार्यवाहियों की वैधता प्रभावित हुई थी, प्रभावी रूप से संविधान को पूर्वव्यापी मानना होगा। इसलिए माना गया कि अभियोजन को जारी रखने में कोई कानूनी आपत्ति नहीं है।

46. इस मुद्दे में विवाद पंजाब राज्य बनाम मोहर सिंह (1955) 1 एस. सीआर 893 में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा सावधानीपूर्वक सटीकता के साथ निपटा गया था। प्रतिवादी मोहर सिंह ने पूर्वी पंजाब शरणार्थी (भूमि दावों का पंजीकरण) अधिनियम, 1948 के तहत एक निकासी के रूप में दावा दायर किया। दावे की जांच की गई और इसे झूठा पाया गया; इसे अधिनियम के तहत अपराध माना गया। मुकदमे में, उसके कबूलनामे पर प्रतिवादी को दोषी ठहराया गया और कारावास की सजा सुनाई गई। स्वतः पुनरीक्षण करने पर जिला मजिस्ट्रेट ने सजा को अपर्याप्त पाया और मामले को उच्च न्यायालय में भेज दिया।

उच्च न्यायालय ने पाया कि चूंकि अध्यादेश निरस्त कर दिया गया था, इसलिए उन्हें अधिनियम की धारा 7 के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। इस न्यायालय ने अपील पर निर्णय को उलट दिया और सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 को लागू करते हुए दोषसिद्धि को बरकरार रखा।

47. सिद्धांत जो इस मामले में निर्धारित किया गया है कि जब भी एक अधिनियमन का निरसन हो, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 में निर्धारित परिणाम का पालन करेंगे, जब तक कि एक अलग इरादा प्रकट नहीं होता है। एक साधारण निरसन के मामले में एक विपरीत राय की अभिव्यक्ति के लिए शायद ही कोई जगह है। लेकिन जब निरसन के बाद एक ही विषय पर नए कानून बनाए जाते हैं, तो हमें निस्संदेह नए अधिनियम के प्रावधानों को देखना होगा, लेकिन केवल यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या वे एक अलग इरादे को इंगित करते हैं। जांच की रेखा यह नहीं होगी कि क्या नया अधिनियम स्पष्ट रूप से पुराने अधिकारों और देनदारियों को जीवित रखता है, बल्कि यह होगा कि क्या यह उन्हें नष्ट करने का इरादा प्रकट करता है। अतः हम इस व्यापक प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकते हैं कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 को तब खारिज कर दिया जाता है जब किसी अधिनियमन को निरस्त किया जाता है और उसके बाद नया विधान लाया जाता है। धारा 6 ऐसे मामलों में भी लागू होगी जब तक कि नया कानून धारा के प्रावधानों के साथ असंगत या विपरीत इरादा प्रकट नहीं करता है। (महत्व दिया गया)

61. विद्वान अधिवक्ता ने शब्दों और अभिव्यक्ति पर जोर देने की कोशिश की है "जब तक कि एक अलग इरादा प्रकट नहीं होता है" ऊपर दिए गए पैराग्राफ 47 में उपयोग किया जाता है, तर्क दिया कि जब विधायिका खंड 46 के तहत नए किरायेदारी अधिनियम 2021, को बचा रही थी, तो यह जानबूझकर एस. सी. सी वाद और पुनरीक्षण का उल्लेख करने से बचता रहा और इस प्रकार विधायिका का इरादा परिलक्षित होता है कि इस तरह के वाद और पुनरीक्षण समाप्त हो जाएंगे।

62. बचत खंड की अपनी व्याख्या के तर्क को आगे बढ़ाते हुए और इस तरह विधायिका के इरादे को आकर्षित करके, जैसा कि वह है, श्री टंडन ने जोर देकर कहा कि वैधानिक प्रावधान की भाषा को उसके सरल और सादे रूप में लेने के लिए जैसा कि उन्हें विधायिका द्वारा रखा गया है।

63. निर्माण के नियम के बिंदु पर श्री टंडन ने श्री जयाराम एजुकेशनल ट्रस्ट और अन्य बनाम ए. जी सैयद मोहिदीन और अन्य, ए.आई. आर 2010 एस. सी 671 के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें पैराग्राफ 6 के तहत न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया है:

"6. अब यह अच्छी तरह से तय है कि एक कानून के प्रावधान को किसी भी शब्द को जोड़ने, प्रतिस्थापित करने या छोड़ने के बिना, प्राकृतिक तरीके से, सादे और सीधे पढ़ा जाना चाहिए। ऐसा करते समय, प्रावधान में प्रयुक्त शब्दों को उनके प्राकृतिक, सामान्य या लोकप्रिय अर्थ को सौंपा जाना चाहिए। केवल जब इस तरह के सादे और सीधे पढ़ने, या इस

तरह के पढ़ने पर शब्दों के लिए प्राकृतिक और सामान्य अर्थ का वर्णन करना, अस्पष्टता, अज्ञात, अनिश्चितता या बेतुकापन की ओर जाता है, जो स्पष्ट रूप से विधायिका या कानून निर्माता द्वारा अभिप्रेत नहीं थे, तो एक अदालत को प्रावधान के सही अर्थ पर पहुंचने के लिए निर्माण और व्याख्या के तय नियमों से युक्त अपनी व्याख्या टूल किट खोलनी चाहिए। व्याख्या के साधनों का उपयोग करते समय, अदालत को यह याद रखना चाहिए कि यह कानून का लेखक नहीं है जिसे संरचना और सामग्री को बदलने के लिए पुनरीक्षण, स्थानापन्न या हटाने का अधिकार है। एक दुभाषिया के रूप में एक अदालत कानून को बदल या संशोधित नहीं कर सकती है। यह केवल प्रावधान की व्याख्या कर सकता है, इसे सार्थक और व्यावहारिक बनाने के लिए ताकि विधायी उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके, जब अस्पष्टता, अज्ञात या बेतुकापन हो। व्याख्या का उद्देश्य एक प्रावधान बनाना नहीं है जो न्यायाधीश सोचता है कि यह होना चाहिए, बल्कि इसे वह बनाना है जो विधायिका का इरादा था।

64. पूर्वोक्त पर भरोसा करते हुए, श्री टंडन प्रस्तुत करते हैं कि नए किरायेदारी अधिनियम के मामले में यहां प्रासंगिक प्रावधान जारी किए गए हैं, अगर उनकी सादे और सरल भाषा में "सिविल कोर्ट" या "किसी अन्य अदालत के समक्ष अपील" शब्द और निश्चित रूप से इस तरह की कार्यवाही "किसी भी कानून के तहत" सिविल अदालतों के समक्ष कार्यवाही को निरूपित करेगी और उसमें से अपील करेगी। दुनिया का "कोई भी कानून" उस कानून को

निरूपित करेगा जो तब प्रबलित /लागू था। इस प्रकार, उनका तर्क है कि एस.सी. सी वाद और पुनरीक्षण विधायिका द्वारा स्पष्ट रूप से सहेजे नहीं गए हैं, इसका मतलब यह होगा कि इस तरह के मुकदमे और पुनरीक्षण जारी नहीं रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे।

65. श्री आशीष कुमार सिंह और श्री सौरभ श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ता दोनों ने श्री टंडन द्वारा विधायिका के इरादे को आकर्षित करने के लिए ऊपर रखी गई व्याख्या को अत्यधिक गलत बताया है। उन्होंने तर्क दिया कि व्याख्या के नियम पर, कोई विवाद नहीं था, लेकिन इस न्यायालय की जांच के अधीन किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रावधानों को बाधित करने के लिए उस नियम को लेकर, श्री टंडन द्वारा निकाले जाने वाले निष्कर्ष का समर्थन नहीं किया जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि श्री टंडन ने एक धारणा विकसित की थी कि चूंकि किरायेदारी अधिनियम भूमि स्वामी-किरायेदार संबंध से संबंधित है और पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम को निरस्त कर दिया है, यह स्वचालित रूप से एक संपूर्ण कोड बन जाएगा और इसलिए, धारा 42 में होने वाले शब्दों और अभिव्यक्ति "किसी भी अन्य कानून को लागू किया जा रहा है" में विषय वस्तु से संबंधित सभी कानून शामिल होंगे।

66. श्री सिंह, विशिष्ट होने के लिए राम गोपाल और अन्य बनाम हरि शंकर, 1985 एस. सी. सी ऑनलाइन सभी 132 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर निर्भरता रखी

है और उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 और 16 को रखा है जो निम्नानुसार चलता है:

"15. निर्माण का नियम यह है कि विधायिका का अर्थ वही हो जो उन्होंने वास्तव में व्यक्त किया है। सभी व्याख्याओं का उद्देश्य संसद के इरादे की खोज करना है "लेकिन संसद के इरादे को इस्तेमाल की गई भाषा से काट दिया जाना चाहिए"। मैक्सवेल इंटरप्रेटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स (12 वां संस्करण) 29 के अनुसार प्राथमिक या शाब्दिक निर्माण का अर्थ है कि:

-

"जहां भाषा सादा है और केवल एक अर्थ को स्वीकार करती है, व्याख्या का कार्य शायद ही उत्पन्न होने के लिए कहा जा सकता है। इस मामले में निर्णय, " राजस्व मामले में बोर्थी-वाई- गेस्ट के लॉर्ड मॉरिस ने कहा, "विशेष रूप से पाए गए तथ्य के लिए विशेष वैधानिक भाषा के पूर्ण और निष्पक्ष आवेदन के लिए कहता है। एक निष्कर्ष की वांछनीयता या अनिश्चितता, दूसरे की तुलना में, एक निर्णय पर पहुंचने के लिए मार्गदर्शक प्रस्तुत नहीं कर सकती है"। जहां, केवल एक अर्थ के लिए सक्षम स्पष्ट और असमान भाषा के उपयोग से, विधानमंडल द्वारा कुछ भी अधिनियमित किया जाता है, इसे लागू किया जाना चाहिए, हालांकि कठोर या बेटुका या सामान्य ज्ञान के विपरीत परिणाम हो सकता है। एक कानून की व्याख्या किसी भी धारणा से एकत्र नहीं की जानी है, जिसे अदालत द्वारा मूल्यांकित किया जा सकता है कि क्या उचित और समीचीन है: शब्दों को उनके अर्थ के विपरीत, मामलों को गले लगाने या बाहर करने के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, केवल इसलिए कि कोई

अच्छा कारण प्रकट नहीं होता है कि उन्हें गले क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए या बाहर रखा जाना चाहिए। अदालत का कर्तव्य कानून की व्याख्या करना है जैसा कि यह है, और "उपाय (यदि किसी पर हल किया जाए ?) दूसरों पर छोड़ दें" ।

16. अभिव्यक्ति "संविधि के शब्दों का सादा अर्थ" से क्या अभिप्राय है, इस संबंध में सभी अवसरों पर यह आवश्यक है कि विधानमंडल को इन शब्दों को नियोजित करने का श्रेय दिया जाए जो किसी भी अन्य शब्दों की तुलना में इसके अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करेंगे। संसद के अधिनियमों के निर्माण के लिए कार्डिनल नियम यह है कि उन्हें अधिनियम में व्यक्त इरादे के अनुसार समझा जाना चाहिए। यदि कानून के शब्द स्वयं सटीक और असंदिग्ध हैं, तो इन शब्दों को उनके सामान्य और प्राकृतिक अर्थों में समझाने से अधिक आवश्यक नहीं हो सकता है। ऐसे मामले में अकेले शब्द ही कानून देने वाले की मंशा की सबसे अच्छी घोषणा करते हैं (गॅरेज ओन स्टेट्यूट लॉ, 7 वां संस्करण (1971) पृष्ठ 64-65)

67. मैंने नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की सभी धाराओं और विशेष रूप से धारा 38, 42 और 46 और पुराने किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 20 सहित धाराओं की भी सावधानीपूर्वक जांच की है और ऊपर उद्धृत अधिकारियों और ऊपर दिए गए पैराग्राफ के माध्यम से भी देखा है:

68. सबसे पहले, व्याख्या का नियम संबंधित पक्षों के लिए उपस्थित अधिवक्ता द्वारा रखा गया

है एक मुद्दा नहीं है और इसके बारे में भी कोई दो राय नहीं हो सकती है।

69. एक अधिनियमन में प्रावधान के शाब्दिक निर्माण का नियम इस सिद्धांत पर एक अच्छी तरह से स्थापित नियम है कि किसी को इस्तेमाल किए गए शब्दों के शाब्दिक अर्थ का जितना संभव हो उतना करीब से पालन करना चाहिए। यह व्याख्या का कार्डिनल नियम होने के नाते, किसी को आमतौर पर प्रावधान के दायरे के रूप में इसके आवेदन में एक बड़े स्पेक्ट्रम को आकर्षित करने के उत्साह में इस नियम से कोई विचलन नहीं करना चाहिए। "विधियों के निर्माण का कार्डिनल नियम विधियों को शाब्दिक रूप से पढ़ना है, अर्थात्, शब्दों को उनके साधारण, प्राकृतिक और व्याकरणिक अर्थ देकर। यदि, हालांकि, इस तरह के पठन से बेतुकापन होता है और शब्द किसी अन्य अर्थ के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं, तो अदालत इसे अपना सकती है। लेकिन अगर ऐसा कोई वैकल्पिक निर्माण संभव नहीं है, तो अदालत को शाब्दिक व्याख्या के सामान्य नियम को अपनाना चाहिए। (एस. आर. दास जे: जुगलकिशोर सराफ बनाम रॉ कॉटन कंपनी लिमिटेड ए.आई. आर 1955 एस. सी 376 पृष्ठ 381)।

70. श्री जी. पी. सिंह ने अपने ग्रंथ "वैधानिक व्याख्या" में निर्माण के नियम को शामिल करते हुए नियम संविधान पर न्यायमूर्ति फ्रैंक फर्टर को उद्धृत किया है और लिखते हैं "इस

प्रकार नियम का औचित्य कि शब्दों को उनके प्राकृतिक, सामान्य या लोकप्रिय अर्थों में समझा जाना चाहिए, न्यायमूर्ति फ्रैंक फर्टर द्वारा अच्छी तरह से व्यक्त किया गया है: "आखिरकार, जब तकनीकी शब्दों में व्यक्त नहीं किया जाता है तो कानून पुरुषों के सामान्य रन (sic) को संबोधित किया जाता है और इसलिए इसके अनुसार समझा जाना चाहिए बात को समझने के लिए, क्योंकि सामान्य व्यक्ति को संबोधित सामान्य शब्दों पर भरोसा करने का अधिकार है। इसलिए, यह निर्धारित करने में कि क्या किसी दिए गए शब्द के सामान्य अर्थ के भीतर कोई विशेष आयात शामिल है, किसी को उस उत्तर के संबंध में हो सकता है जो शब्द और कानून की विषय-वस्तु से परिचित हर कोई व्यक्ति और जिसे कानून संबोधित किया गया है, यदि समस्या उसके सामने रखी गई थी। (14वां संस्करण पृ. 113)

71. एक ढीले-ढाले अर्थ की तुलना में सटीक अर्थ को प्राथमिकता देने पर जोर देते हुए, वह लिखते हैं "यह अनुमान है कि संसद के अधिनियम में शब्दों का सही ढंग से और बिल्कुल सही उपयोग किया जाता है और शिथिल और गलत तरीके से नहीं शब्द 'सन्निहित' शब्द का सटीक अर्थ अर्थात् 'स्पर्श' इसके ढीले-ढाले अर्थ यानी वरीयता में, लॉर्ड हेवर्ट, सी. जे ने कहा: "यह नियम होना चाहिए, और हमें यह सोचकर खुशी होती है कि यह नियम है, कि संसद के एक अधिनियम में शब्दों का सही और सटीक उपयोग किया जाता है, न कि शिथिल और गलत रूप से। जो लोग दावा करते हैं कि नियम टूट गया है, उनके

प्रस्ताव को स्थापित करने का बोझ बहुत अधिक है, और वे केवल संदर्भ में कुछ इंगित करके इसका निर्वहन कर सकते हैं जो यह दर्शाता है कि ढीले और गलत अर्थ को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। (14वां संस्करण पृ. 115)"

72. हालांकि, यह एक प्रश्न है कि निर्माण के नियम की उपरोक्त सहायता के साथ, कोई नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 46 की व्याख्या कर सकता है कि एस.सी.सी वाद और पुनरीक्षण को बचाया नहीं गया है और इसलिए धारा 38 और 42 के मददेनजर वाद एक निरसन अधिनियम के तहत आएंगे और किराया प्राधिकरण और ट्रिब्यूनल जैसा कि नए किरायेदारी अधिनियम 2021 के तहत कल्पना की गई है, ये केवल मंच होगा और इस तरह के वाद और पुनरीक्षण समाप्त हो जाएंगे और इसलिए अब ये जारी नहीं रहना चाहिए। यहां, सर्वप्रथम सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 का संदर्भ लेना आवश्यक है।

"6 निरसन का प्रभाव। जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बनाया गया कोई [केंद्रीय अधिनियम] या विनियम, अब तक किए गए या इसके बाद किए जाने वाले किसी भी अधिनियमन को निरस्त करता है, तब, जब तक कि कोई अलग इरादा प्रकट न हो, निरसन नहीं होगा।

(क) ऐसी किसी बात का पुनरुत्थान नहीं कर सकेगा जो उस समय प्रवृत्त नहीं है या विद्यमान नहीं है जिस समय निरसन प्रभावी होता है; नहीं तो

(ख) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियमन के पूर्व प्रचालन को या उसके अधीन सम्यक् रूप से की गई या पीड़ित किसी बात को प्रभावित नहीं कर सकेगी, नहीं तो

(ग) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियमन के अधीन अर्जित, उपार्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व को प्रभावित नहीं कर सकेगी, नहीं तो

(घ) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियमन के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में उपगत किसी दंड, समपहरण या दंड को प्रभावित नहीं कर सकेगा, नहीं तो

(ङ) पूर्वोक्त के अनुसार किसी ऐसे अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, ज़िम्मेदारी, शास्ति, समपहरण या दंड के संबंध में किसी जांच, विधिक कार्यवाही या उपाय को प्रभावित कर सकेगी और ऐसी कोई जांच, विधिक कार्यवाही या उपाय संस्थित किया जा सकेगा, जारी रखा जा सकेगा या प्रवर्तित किया जा सकेगा और ऐसा कोई दंड, समपहरण या दंड इस प्रकार अधिरोपित किया जा सकेगा मानो निरसन अधिनियम या विनियम पारित नहीं किया गया हो।

(महत्व दिया गया)

73. इसलिए धारा 6 के ऊपर लागू करते हुए, लंबित एस. सी. सी वाद और पुनरीक्षण तब तक सहेजे जाएंगे जब तक कि यह आयोजित नहीं किया जाता है कि धारा 46 स्पष्ट रूप से ऐसे वाद और संशोधनों को बुद्धि के लिए,

इरादा समाप्त कर देती है, ऐसा प्रतीत होता है, भले ही उन्हें संदर्भित न किया गया हो (?)

74. मेसर्स गैमन इंडिया लिमिटेड (सुप्रा) में, सुप्रीम कोर्ट ने बृहन महाराष्ट्र शुगर सिंडिकेट बनाम भारत संघ के मामले में पहले के फैसले का उल्लेख किया। जनार्दन आकाशवाणी, 1960 एस. सी 794, जिसने धारा 6 की व्याख्या की और पैराग्राफ 48, 49 और 50 के तहत इस प्रकार अवधारित किया:

48. बृहन चीनी सिंडिकेट बनाम महाराष्ट्र जनार्दन ए.आई. आर 1960 एस. सी 794 के मामले में यह निम्नानुसार देखा गया था:

सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 में यह उपबंध है कि जहां कोई अधिनियम निरसित किया जाता है, तब, जब तक कोई भिन्न आशय प्रकट नहीं होता है, निरसन निरसित अधिनियमन के अधीन अजत या उपगत किसी अधिकार या दायित्व या ऐसे अधिकार या दायित्व के संबंध में किसी विधिक कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगा और विधिक कार्यवाही इस प्रकार जारी रखी जा सकेगी मानो निरसन अधिनियम पारित नहीं किया गया हो। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि 1913 के अधिनियम की धारा 153-ग ने कंपनी के शेयरधारकों को कुछ अधिकार दिए और कंपनी के साथ-साथ उसके निदेशकों और प्रबंध एजेंटों को भी कुछ देयताओं के तहत रखा। उस धारा के तहत आवेदन इन अधिकारों और देनदारियों के प्रवर्तन के लिए था। इसलिए धारा 6 सामान्य खंड अधिनियम 1913 के अधिनियम की धारा 153 - ग द्वारा बनाए

गए अधिकारों और देनदारियों को संरक्षित करेगी और इसके संबंध में कार्यवाही की निरंतरता 1913 के अधिनियम के निरसन के बावजूद सक्षम होगी, जब तक कि निश्चित रूप से एक अलग इरादा इकट्ठा नहीं किया जा सकता है।

49. उड़ीसा राज्य बनाम एम. ए टुलोक एंड कंपनी, (1963) 4 एस. सीआर 461 में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ को भी अधिनियम के निरसन के संबंध में विवाद की जांच करने का अवसर मिला। इस मामले में निवेदन यह था कि केंद्रीय अधिनियम द्वारा उड़ीसा अधिनियम का अधिक्रमण निरसन से अधिक या कम नहीं था। जनरल क्लॉज एक्ट, 1897 की धारा 6 का संदर्भ दिया गया था जिसे पुनः प्रस्तुत किया गया है (सुप्रा)। उक्त मामले में, प्रस्तुत किया गया था कि धारा की व्याख्या दो-तरफा थी: (1) शुरुआती पैराग्राफ में इस्तेमाल किया गया शब्द 'निरसन' व्यक्ति निरसन तक ही सीमित नहीं था, लेकिन यह शब्द निहित निरसन के मामलों को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक था; (2) यह प्रस्तुत किया गया था कि यदि धारा 6 (बी) में अभिव्यक्ति 'निरसन' को व्यक्ति निरसन तक सीमित होने के रूप में माना जाता है, तो भी धारा 6 में अंतर्निहित सिद्धांत सामान्य अनुप्रयोग का था और निहित निरसन के मामलों में भी आकर्षित होने में सक्षम था।

50. एमए टुलोक के मामले (सुप्रा) में, न्यायालय ने उपयुक्त रूप से कहा कि हमें उस सिद्धांत की जांच करनी होगी जिस पर धारा 6 में बचत खंड आधारित है। यह स्पष्ट है कि

प्रत्येक बाद का अधिनियमन जो पहले वाले के स्थान लेता है या कानून की किसी पूर्व स्थिति को समाप्त करता है, माना जाता है कि अधिक्रमित अधिनियमन के तहत अर्जित अधिकारों और देनदारियों को जारी रखने का इरादा है, जब तक कि पर्याप्त संकेत न हों व्यक्त या निहित बाद के अधिनियमन में कानून की पहले की स्थिति को पूरी तरह से खत्म करने के लिए डिज़ाइन किया गया था।

75. नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 42 का अर्थ यह निकाला जा सकता था कि पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 को बचाया नहीं गया है, इसे निरस्त कर दिया गया है, लेकिन मुद्दा विधायिका की योग्यता का है। राज्य विधायिका राष्ट्रपति की सहमति के साथ एक प्रावधान लागू करके राष्ट्रपति की सहमति वाले अधिनियम को निरस्त करने के लिए सक्षम है, लेकिन यहां ऐसा नहीं है।

76. राज्य की विधायी सक्षमता को संविधान के अधीन उपबंधित विधायी स्कीम और संविधान की सातवीं अनुसूची की विभिन्न सूचियों की प्रविष्टियों में उपबंधित विषयवस्तु की भावना के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए।

77. "निहित निरसन" का कानून लागू किया जाएगा बशर्ते कि संविधान के तहत जिस तरीके और रीति से किसी चीज की आवश्यकता है, वह अकेले उसी तरीके से किया जाता है। यहां यह एक ऐसा मामला है जहां संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 को अधिनियमित करने में केंद्रीय विधानमंडल

की योग्यता कोई मुद्दा नहीं है और वे संविधान से पहले से ही क्षेत्र में काम कर रहे हैं और संविधान के अनुच्छेद 272 के आधार पर बचाए गए हैं और इसलिए 1972 का पुनरीक्षण अधिनियम भी राज्य द्वारा भारत के राष्ट्रपति की सहमति से लागू किया गया है उत्तर प्रदेश सरकार लघु वाद न्यायालय अधिनियम में पुनरीक्षण कर रही है। उत्तर प्रदेश राज्य में इसके आवेदन में शामिल किए गए प्रावधान समान रूप से लागू रहेंगे और नया किरायेदारी अधिनियम, 2021 उस क्षेत्र पर अतिक्रमण करने के लिए पर्याप्त सक्षम नहीं होगा और यदि यह अतिक्रमण करता है तो उस हद तक यह प्रतिकूल होगा। धारा 46 के तहत छोटे कारण के वादों और संशोधनों का उल्लेख है या नहीं, ऐसे मुकदमे और पुनरीक्षण निर्धारित मंचों पर जारी रहेंगे। विधायिका के आशय से कोई अन्य व्याख्या जैसा कि श्री टंडन ने तर्क दिया है कि इस तरह के वाद और पुनरीक्षण समाप्त हो जाएंगे, न केवल प्रदान की गई किसी चीज को पढ़ने के बराबर होगा, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 254 के उप-अनुच्छेद 2 के तहत निहित प्रावधानों के विपरीत भी होगा और इस तरह हमारे संविधान में अवधारणा के अनुसार केंद्रीय और राज्य विधानमंडल के बीच संबंधों के सिद्धांत को नष्ट कर देगा।

78. जैसा कि मैंने पहले ही ऊपर चर्चा की है, छोटे कारण अदालतें पी. एस. सी. सी अधिनियम, 1887 के तहत गठित विशेष अदालतें हैं जो एक केंद्रीय अधिनियम है और संशोधित रूप में राष्ट्रपति की सहमति के माध्यम से इसके आवेदन के लिए लाए गए

राज्य पुनरीक्षण, राज्य में उनके आवेदन में तब तक लागू रहेंगे जब तक कि ऐसे राज्य संशोधनों को राष्ट्रपति की सहमति से निरस्त नहीं किया जाता है। पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 संविधान के अनुच्छेद 254 के उप-अनुच्छेद (2) के तहत निहित प्रावधानों के आधार पर संरक्षित है। अनुच्छेद 254 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

(1) यदि किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि का कोई उपबंध संसद द्वारा बनाई गई विधि के किसी ऐसे उपबंध के प्रतिकूल है जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद सक्षम है या समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी एक विषय के संबंध में विद्यमान विधि के किसी उपबंध के प्रतिकूल है तो खंड (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि के पहले या पश्चात् पारित की गई हो या यथास्थिति, विद्यमान विधि अभिभावी होगी और प्रतिकूलता की सीमा तक राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि शून्य होगी।

(2) जहाँ किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी एक विषय के संबंध में बनाई गई विधि में संसद द्वारा बनाई गई किसी पूर्ववर्ती विधि या उस विषय के संबंध में विद्यमान विधि के उपबंधों के प्रतिकूल कोई उपबंध अंतवष्ट है वहाँ ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि यदि यह राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किया गया है और

उसकी सहमति प्राप्त हुई है, तो उस राज्य में लागू हो:

परंतु इस खंड की कोई बात संसद को किसी समय उसी विषय के संबंध में कोई विधि अधिनियमित करने से निवारित नहीं करेगी, जिसके अंतर्गत राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवर्धन, पुनरीक्षण, परिवर्तन या निरसन करने वाली विधि भी है।

79. नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के सभी प्रावधानों को देखते हुए और उनकी जांच करते हुए, मुझे लगता है कि अधिनियम के पूरे शासन में लिखित किरायेदारी समझौते को ग्यारह महीने की किरायेदारी को छोड़कर किरायेदारी का ये एकमात्र मान्यता प्राप्त तरीका बनाया गया है और यहां तक कि पुरानी किरायेदारी तरीका बनाया गया है लेकिन केवल लिखित समझौते के लिए। ऐसा प्रतीत होता है कि विधायिका ने अपने विवेक से अलिखित किरायेदारी करारों को स्वीकार कर लिया है लेकिन ऐसी किरायेदारी से उत्पन्न होने वाले दावों को पूरा करने के लिए कोई तंत्र निर्धारित नहीं किया गया था, संभवतः इसलिए कि एस.सी. सी मुकदमों को अभी भी बनाए रखने योग्य माना गया था क्योंकि पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 पहले से ही लागू था। इस प्रकार निर्माण की किसी भी किसी बड़े से बड़े तरीके द्वारा धारा 38 और 42 को यह नहीं माना जा सकता है कि एस.सी.सी वाद अलिखित मौजूदा किरायेदारों के संबंध में भी और अधिक बनाए रखने योग्य नहीं हैं।

80. हालांकि यह सच है कि एक अधिनियमन में एक दोष खोजने के लिए एक न्यायाधीश को ड्राफ्ट्समैन के साथ गलती खोजने के लिए नहीं बैठना चाहिए और संसद के वास्तविक इरादे को खोजने के लिए एक व्याख्या के लिए प्रयास करना चाहिए, लेकिन फिर वह शब्दों को प्रतिस्थापित करके या शब्दों को शब्दों के बीच में रखकर कानून प्राप्त करने के उत्साह में एक प्रावधान के लिए प्रयास नहीं कर सकता है, इसके अलावा जब मुद्दा विधायी क्षमता का हो, यह ठीक ही माना गया था "हम एक अधिनियम के विधानमंडल के दोषपूर्ण वाक्यांशों की व्याख्या नहीं कर सकते हैं, हम जोड़ या सुधार नहीं कर सकते हैं और, निर्माण द्वारा कमियों को पूरा कर सकते हैं जो वहां छोड़ दी गई हैं (क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर (1846) मूर पीसी 1 पीपी 8,9) " । "किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ना, नियमों के विपरीत है जब तक कि ऐसा करना बिल्कुल आवश्यक न हो (रेणुला बोस (श्रीमती) बनाम राय मन्मथनाथ बोस, ए.आई. आर 1945 पीसी 108, पृष्ठ 110) । इसी तरह कानून के शब्दों के लिए कुछ अन्य शब्दों को प्रतिस्थापित करके आगे बढ़ना गलत और खतरनाक है (पिनर बनाम एवरेट, (1969) 3 ऑल ईआर 257, पृष्ठ 259) संक्षेप में बोलते हुए अदालत बहुत अच्छे कारण के लिए भी कानून को फिर से बना नहीं सकती है कि उसके पास कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है (केरल राज्य । मथाई वर्गीज, (1986) 4 एस. सी. सी 7461 (जस्टिस जी. पी. सिंह द्वारा वैधानिक व्याख्या, 14 वां संस्करण पृष्ठ 68, 69)

81. इसलिए नए किरायेदारी अधिनियम की पूरी योजना की यदि सूक्ष्मता से जांच की जाती है, तो विधायी इरादा शहरी भवनों से संबंधित किरायेदारी कानून के हर पहलू को आत्मसात करते हुए एक व्यापक कानून बनाने का प्रतीत होता है अर्थात् संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 18 के लिए संदर्भित किरायेदार मकान मालिक संबंध। हालांकि, अभी भी कुछ भ्रामक क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दिया गया है और मेरे विचार से सांसदों द्वारा स्वेच्छा से मौजूदा केंद्रीय अधिनियमों को देखा गया है।

82. मेरा यह उपरोक्त दृष्टिकोण नए किरायेदारी अधिनियम 2021, पुनरीक्षण अधिनियम, 1972 और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882 के प्रावधानों की व्याख्या में सामंजस्यपूर्ण निर्माण के नियम के लिए है। अदालतों को एक अधिनियमन के दायरे और सीमाओं की जांच करते समय यह मानना चाहिए कि कानून निर्माताओं ने निश्चित रूप से एक विशेष क्षेत्र को आच्छादित करने वाले कानून को लागू करते समय विचार-विमर्श किया है और इसलिए मौजूदा कानून को इस क्षेत्र को छूने पर भी उचित विचार किया होगा और यदि अभी भी कुछ क्षेत्रों को अछूता छोड़ दिया गया है, तो मौजूदा कानून के परस्पर इंटरैक्शन की अनुमति देने का विधायी इरादा स्पष्ट रूप से निरस्त नहीं किया गया है, इसे मान लिया जाना चाहिए। यह धारणा ठोस सिद्धांत पर आधारित है कि संसद का ज्ञान निर्विवाद है और न्यायालय जो कुछ भी करते हैं वह उस उद्देश्य के संदर्भ में अर्थ निकालने के लिए दूसरे के साथ संश्लेषण में एक

प्रावधान की व्याख्या करना है जिसके साथ कानून अधिनियमित किया गया है। कोई भी व्याख्या जो किसी प्रावधान को निरर्थक बनाती है या किसी प्रावधान के दायरे को बढ़ाने के लिए किसी शब्द में रखने के लिए किसी अति उत्साही दृष्टिकोण को बनाती है, वह कानून निर्माताओं के लिए अदालत के ज्ञान को प्रतिस्थापित करने के समान होगी और इससे बचा जाना चाहिए। न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए अधिनियम के उपबंधों की व्याख्या करते हैं कि जिस वस्तुनिष्ठता के साथ ऐसा कानून अधिनियमित किया गया होगा, वह नष्ट न हो जाए और इससे परे न्यायालय का कोई भी प्रयास विधान के क्षेत्र में हस्तक्षेप करना होगा जो निश्चित रूप से विधि न्यायालयों की सक्षमता से परे है।

83. वर्तमान मामले में शाब्दिक निर्माण किसी स्पष्ट बेतुकेपन की ओर जाता है और इसलिए, निर्माण के उस सुनहरे नियम से विचलन करने के लिए कोई बाध्यकारी कारण नहीं हो सकता है।

84. इस प्रकार महत्वपूर्ण प्रश्न (ए)' पर संक्षेप में, मैं मानता हूं कि नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रवर्तन की तारीख पर लंबित एस. सी. सी. वाद और एस. सी. सी. पुनरीक्षण, धारा 42 नया किरायेदारी अधिनियम, 2021 के तहत निहित प्रावधानों के बावजूद समाप्त नहीं होंगे क्योंकि ऐसा कोई इरादा नहीं निकाला जा सकता है, क्योंकि यहाँ सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 लागू होगी। फिर भी आगे एस. सी. सी. वाद को बचाया जाएगा जहां पुराने किराया नियंत्रण

अधिनियम के तहत कल्पना की गई है, जिसकी कार्यवाही नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 46 की उपधारा 2 के तहत सहेजी गई है।

85. अब प्रश्न "(बी)" पर आते हैं, श्री श्रीवास्तव, अग्रणी मामले में प्रतिवादी के लिए पेश होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया था कि संविधान के अनुच्छेद 254 (2) के तहत बचाए गए मौजूदा अधिनियम को निरस्त करने के लिए सक्षम विधायी अधिनियमन की अनुपस्थिति, दोनों अधिनियम अपने-अपने क्षेत्रों में काम करना जारी रखेंगे।

86. उन्होंने तर्क दिया था कि चूंकि राज्य ने उक्त अधिनियम की अनुसूची-1 के संदर्भ में समझौते के तहत आच्छादित किए गए मामलों पर लागू करने के लिए एक नया किरायेदारी अधिनियम, 2021 लागू किया था, इसलिए धारा 38 का बार उस हद तक काम करेगा और तर्क दिया कि अन्य सभी मामलों में जहां किरायेदारी समझौते के बिना जारी रही, बेदखली का मुकदमा दायर किया जा सकता है और इसलिए प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम 1887 के तहत एस. सी. सी पुनरीक्षण भी उन्होंने प्रस्तुत किया था कि पुराने किरायेदारी से संबंधित नए किरायेदारी अधिनियम के तहत प्रावधानों को संपूर्ण नहीं कहा जा सकता है, न ही उन्होंने यह प्रावधान किया है कि प्रावधानों का पालन न करने के लिए कोई किरायेदारी शून्य होगी। उन्होंने तर्क दिया था कि यदि किरायेदारी लिखित में किसी भी समझौते के बिना थी और मकान मालिक भी नए अधिनियम की अनुसूची-1 के अनुसार

विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहा, तो नया अधिनियम उस घटना को पूरा करने के लिए मौन था।

87. ऐसी स्थिति में, श्री श्रीवास्तव के अनुसार या तो किरायेदार को बेदखल करने के लिए एक सिविल वाद होगा और इस तरह के किरायेदारी विवाद लघु वाद को आकर्षित करने के लिए संपत्ति अधिनियम के हस्तांतरण के तहत आच्छादित किया जाएगा।

88. श्री श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के तहत पट्टेदार को अर्जित कोई भी अधिकार एक उपयुक्त मंच पर लागू करने योग्य होगा और उस सीमा तक नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 का एक प्रावधान असंगत पाया जाता है; यह प्रतिकूल होने के लिए उत्तरदायी होगा और इस प्रतिकूलता के लिए, किरायेदारी अधिनियम, 2021 से पहले ही क्षेत्र पर कब्जा करने वाले केंद्रीय अधिनियम को त्याग देता है।

89. श्री श्रीवास्तव ने अपने तर्क के समर्थन में, तमिलनाडु राज्य और अन्य आदि; अधिनियम एजुकेशनल एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट और अन्य आदि, 1995 ए.आई. आर एस. सीडब्ल्यू 2179 :: (1995) 2 एस. सीआर 1075 (एस.सी) के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया और निर्णय के पैराग्राफ 15 पर जोर दिया जो निम्नानुसार है:
"15. उपरोक्त चर्चा से जो उभरता है वह इस प्रकार है:

[i] संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 66 में प्रयुक्त

अभिव्यक्ति "समन्वय" का अर्थ केवल मूल्यांकन नहीं है। इसका अर्थ है एक निश्चित डिजाइन, योजना या विकास की योजना के अनुसार एक ठोस कार्रवाई के लिए एक समान पैटर्न बनाने की दृष्टि से सामंजस्य। अतः इसमें न केवल मानकों में असमानताओं को दूर करने के लिए बल्कि ऐसी असमानताओं को होने से रोकने के लिए भी कार्रवाई शामिल है। इसलिए, इसमें उन सभी चीजों को करने की शक्ति भी शामिल होगी जो "समन्वय" को असंभव या कठिन बनाने से रोकने के लिए आवश्यक हैं। यह शक्ति निरपेक्ष और बिना शर्त है और किसी भी वैध सम्मोहक कारणों के अभाव में, इसे अपने सादे और व्यक्त इरादे के अनुसार अपना पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए।

[ii] इस हद तक कि राज्य विधान केंद्रीय विधान के विरोध में है, हालांकि पूर्व को समवर्ती सूची की प्रविष्टि 25 के तहत बनाया गया है, लेकिन प्रभावी रूप से समवर्ती सूची की प्रविष्टि 25 के तहत केंद्र द्वारा बनाए गए अधीनस्थ कानून सहित कानून पर अतिक्रमण करता है या संघ सूची की प्रविष्टि 66 को प्रभावी करता है, यह शून्य और निष्क्रिय होगा।

[iii] यदि दोनों विधानों के बीच कोई विरोध है, जब तक कि राज्य विधान को अनुच्छेद 254 के खंड [2] के मुख्य भाग के उपबंधों द्वारा बचाया नहीं जाता है, राज्य विधान केन्द्रीय विधान के प्रतिकूल है, वह अक्रियाशील होगा।

[iv] क्या राज्य कानून संघ सूची की प्रविष्टि-66 पर अतिक्रमण करता है या समवर्ती सूची

की प्रविष्टि 25 के तहत केंद्र द्वारा बनाए गए कानून के प्रतिकूल है, दोनों कानूनों की परीक्षा द्वारा निर्धारित किया जाएगा और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

(v)

(vi)"

90. प्रतिकूलता के तर्क के अलावा, श्री श्रीवास्तव ने ए. ए. पद्मनभन बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी रखा। केरल राज्य और अन्य, (2018) 4 एस. सी. सी 537, जो न केवल प्रतिकूलता के सिद्धांत को पूरी तरह से आच्छादित करता है, बल्कि कब्जे वाले क्षेत्र और 'सार और तत्व' के सिद्धांत से भी संबंधित है। उन्होंने पैराग्राफ 32 से 35 को प्रस्तुत किया जिस पर उस न्यायालय के विभिन्न पिछले अधिकारियों द्वारा चर्चा और उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 30 से 35 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"30. दो संविधियों के बीच असंगतता/प्रतिकूलता का पता लगाने के लिए सिद्धांत इस न्यायालय द्वारा दीप चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई. आर 1959 एस. सी 648, के. सुब्बा राव, जे. ने पैराग्राफ 29 में निर्धारित किए गए थे, जिसमें निम्नलिखित कहा:"

29. इस प्रकार निम्नलिखित तीन सिद्धांतों के आधार पर दो विधियों के बीच प्रतिकूलता का पता लगाया जा सकता है:

(1) क्या दोनों प्रावधानों के बीच सीधा विरोध है;

(2) क्या संसद राज्य विधानमंडल के अधिनियम के स्थान पर विषय-वस्तु के संबंध में एक विस्तृत संहिता निर्धारित करने का इरादा रखती है और (3) क्या संसद द्वारा बनाई गई विधि और राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि एक ही क्षेत्र में हैं।

31. केरल राज्य और अन्य बनाम मार अप्रैम कुरी कंपनी लिमिटेड और अन्य (2012) 7 एस. सी. सी 106 में इस न्यायालय ने पैराग्राफ 47 में कहा कि :

"47. संसदीय विधान और राज्य विधान के बीच प्रतिकूलता का प्रश्न दो प्रकार से उठता है। पहला, जहां विधान, हालांकि उनके आवंटित क्षेत्रों में मामलों के संबंध में अधिनियमित किए जाते हैं, ओवरलैप और संघर्ष करते हैं। दूसरा, जहां समवर्ती सूची के मामलों के संबंध में दो विधान हैं और विरोधाभास है। दोनों स्थितियों में, संसदीय विधान अनुच्छेद 246 (1) में गैर-बाध्यकारी खंड के आधार पर, पहले में, और दूसरे में, अनुच्छेद 254 (1) के कारण।

इस न्यायालय द्वारा केरल राज्य मामले (सुप्रा) के लिए निर्धारित प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं हो सकता है।

32. इस न्यायालय ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि यदि सातवीं अनुसूची या दो विधानों की दो प्रविष्टियों में कोई अतिव्याप्ति पाई जाती है, तो यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपने वास्तविक इरादे और उद्देश्य का पता लगाए और विशेष कानून की उसके मूल और सार में जांच करे। करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1994) 3 एस. सी. सी 569 में,

पैराग्राफ 59 और 60 में निम्नलिखित अवधारित किया गया है:

"59...लेकिन इससे पहले कि हम ऐसा करें, हम संक्षेप में उन सिद्धांतों को इंगित कर सकते हैं जो विधायी सूचियों में प्रविष्टियों के निर्माण के लिए लागू होते हैं। यह निर्धारित किया गया है कि प्रविष्टियों को संकीर्ण और पांडित्यपूर्ण अर्थ में नहीं लगाया जाना चाहिए और इन प्रविष्टियों की भाषा को व्यापक आयाम दिया जाना चाहिए। कभी-कभी अलग-अलग सूचियों या एक ही सूची में प्रविष्टियाँ ओवरलैप या एक दूसरे के साथ सीधे विरोध में पाई जा सकती हैं। उस स्थिति में यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपने वास्तविक इरादे और उद्देश्य का पता लगाए और विशेष कानून को उसके 'सार और तत्त्व' में जांचे ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि यह एक या अन्य सूचियों में फिट बैठता है या नहीं । [देखें: सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; इंडिया सीमेंट लिमिटेड वी. टी. एन. राज्य]

60. 'सार और तत्त्व' का यह सिद्धांत तब लागू होता है जब किसी विशेष अधिनियमन के संबंध में विधायिका की विधायी क्षमता को विभिन्न सूचियों में प्रविष्टियों के संदर्भ में चुनौती दी जाती है अर्थात् एक सूची में विषय से निपटने वाला कानून भी किसी अन्य सूची में एक विषय को छू रहा है। ऐसे मामले में, अधिनियमन का सार क्या है, इसका पता लगाया जाना चाहिए। प्रश्नगत अधिनियम की जांच करने पर, यदि पाया जाता है, कि कानून उस कानून को लागू करने वाली विधायिका को सौंपे गए मामले पर सार रूप में एक है, तो

भले ही इसकी क्षमता से परे मामलों पर किसी भी आकस्मिकता के बावजूद यानी अन्य विधायिका से संबंधित सूची में शामिल मामले पर, उस अधिनियम को समग्र रूप से वैध माना जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो आकस्मिक अतिक्रमण पूरी तरह वर्जित नहीं है।

33. ए. एस कृष्णा और अन्य बनाम मद्रास राज्य, ए.आई. आर 1957 एस. सी 297 में इस न्यायालय ने पैराग्राफ 10 में निम्नलिखित अवधारित किया:

"10. यह बिंदु प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी बनाम प्रिवी काउंसिल के समक्ष निर्णय के लिए सीधे उठी। बैंक ऑफ कॉमर्स लिमिटेड 1946-74 आई. ए 23; वहां प्रश्न यह था कि क्या बंगाल साहूकार अधिनियम, 1940, जिसने साहूकार द्वारा मूलधन और उसके ऋणों पर ब्याज के लिए वसूली योग्य राशि को सीमित कर दिया था, जहां तक यह वचन पत्र से संबंधित है, वैध था। धन-उधार सूची II के आइटम 27 के तहत प्रांतीय विधानमंडल की अनन्य क्षमता के भीतर है (?), लेकिन वचन पत्र, सूची I, आइटम 28 के अनुसार, केंद्र के लिए आरक्षित विषय है। यह प्रिवी काउंसिल द्वारा अवधारित किया गया था कि आक्षेपित कानून का पिथ और पदार्थ धन उधार देना शुरू कर देता है, यह इस बात के बावजूद वैध था कि यह संयोग से 28 के तहत केंद्र के लिए कानून आरक्षित के क्षेत्र पर अतिक्रमण करता है। सुब्रह्मण्यन चेट्टियार बनाम मुतुस्वामी गौंडन, (सुप्रा) में सर मौरिस ग्वायर सीजे की टिप्पणियों को उद्धृत करने के बाद, लॉर्ड पोर्टर ने देखा:

"लॉर्डशिप सहमत हैं कि यह मार्ग उन आधारों का सही वर्णन करता है जिन पर नियम स्थापित किया गया है, और यह भारतीय और डोमिनियन कानून पर लागू होता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि पिछली कठिनाइयों के अनुभव ने भारतीय अधिनियम के प्रावधानों को कुछ विवरणों में अधिक सटीक बना दिया है, और समवर्ती सूची के अस्तित्व ने उन मामलों के बीच अंतर करना आसान बना दिया है जो यह निर्धारित करने में आवश्यक हैं कि किस सूची में विशेष प्रावधान को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए और जो केवल आकस्मिक हैं। लेकिन विषय-वस्तु के अतिव्यापन को दो के लिए तीन सूचियों को प्रतिस्थापित करके, या यहां तक कि न्यायालयों के पदानुक्रम की व्यवस्था करके भी नहीं बचा जाता है। विषयों को अभी भी ओवरलैप करना चाहिए, और जहां वे करते हैं, वहां यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि ये किस शिकायत के अधिनियमन का प्रभाव है, और किस सूची में इसकी वास्तविक प्रकृति और चरित्र पाया जाना है। यदि ये प्रश्न नहीं पूछे जा सकते हैं, तो जन्म के समय लाभकारी कानून को संतुष्ट किया जाना चाहिए, और प्रांतीय कानून को सौंपे गए कई विषयों को कभी भी प्रभावी ढंग से निपटाया नहीं जा सकता है।.. "

34. इसके अलावा भारत संघ और अन्य बनाम शाह गोवर्धन एल. काबरा टीचर्स कॉलेज, (2002) 8 एस. सी. सी 228 पैराग्राफ 7 में निम्नलिखित अवधारित किया गया था:

"7. यह एक और स्थापित सिद्धांत है कि विभिन्न सूचियों में प्रविष्टियों को उनमें से किसी को भी संकीर्ण अर्थ दिए बिना एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। संसद के साथ-साथ राज्य विधानमंडल की शक्तियों को सटीक और निश्चित शब्दों में व्यक्त किया जाता है। जबकि एक प्रविष्टि को उसका व्यापक अर्थ दिया जाना है, लेकिन इसकी व्याख्या इतनी नहीं की जा सकती है कि किसी अन्य प्रविष्टि को ओवरराइड किया जाए या दूसरी प्रविष्टि को अर्थहीन बना दिया जाए और विभिन्न प्रविष्टियों के बीच स्पष्ट संघर्ष के मामले में, उन्हें समेटना न्यायालय का कर्तव्य है। जब न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि दो प्रविष्टियों के बीच स्पष्ट रूप से अतिव्यापन है, तो "सार और तत्त्व" के सिद्धांत को एक कानून की वास्तविक प्रकृति और उस प्रविष्टि का पता लगाने के लिए लागू किया जाना चाहिए जिसके भीतर यह आएगा। सूची | और सूची | में प्रविष्टियों के बीच तुलनात्मक संघर्ष के मामले में, इसका निर्णय "सार और तत्त्व" के सिद्धांत के आवेदन द्वारा किया जाना है। "सार और तत्त्व" के सिद्धांत का अर्थ है कि यदि कोई अधिनियमन संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से विधायिका को प्रदत्त शक्तियों के भीतर आता है, जिसने इसे अधिनियमित किया है, तो इसे केवल इसलिए अमान्य नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि यह संयोग से किसी अन्य विधायिका को सौंपे गए मामलों पर अतिक्रमण करता है। जब किसी कानून को विधायी सक्षमता के अधिकारातीत माना जाता है, तो जिस बात का पता लगाने की आवश्यकता होती है वह है कानून का सही स्वरूप। यदि इस तरह की जांच करने पर यह

पाया जाता है कि विधायिका को सौंपे गए मामले पर कानून सार रूप में एक है, तो इसे पूरी तरह से वैध माना जाना चाहिए, भले ही यह संयोग से उन मामलों पर मतभेद हो जो इसकी क्षमता से परे हैं। अधिनियमन के वास्तविक स्वरूप की जांच करने के लिए, संपूर्ण अधिनियम, इसके उद्देश्य, कार्यक्षेत्र और प्रभाव की जांच किए जाने की आवश्यकता है। किसी अन्य कानून के क्षेत्र में अतिक्रमण का प्रश्न डिग्री से नहीं बल्कि पदार्थ द्वारा निर्धारित किया जाना है। "सार और तत्त्व" के सिद्धांत को न केवल दो विधायिकाओं की शक्तियों के बीच तुलनात्मक संघर्ष के मामलों में लागू किया जाना चाहिए, बल्कि किसी भी मामले में जहां यह सवाल उठता है कि क्या एक कानून विशेष विधायी शक्ति द्वारा आच्छादित किया गया है जिसके प्रयोग में इसे बनाया जाना है।

35. यदि यह मान भी लिया जाए कि अलग-अलग विषयों से संबंधित दो विधानों के कार्यकरण में, दो विधानों के प्रचालन के छोटे क्षेत्र के संबंध में आकस्मिक अतिक्रमण होता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि एक विधान दूसरे विधान से अधिभावी है। जब हम दोनों विधानों अर्थात् अधिनियम, 1958 और अधिनियम, 2013 के सार को देखते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम, 1958 अधिनियम, 2013 के प्रतिकूल है। यह नोट करना भी प्रासंगिक है कि धारा 15 (2) के तहत यह प्रावधान किया गया है कि जहां किसी स्कूल ने उप-धारा (1) के तहत सरकार में निहित किया है, वहां

मुआवजे का भुगतान अधिसूचना की तारीख को उसके बाजार मूल्य के आधार पर उसके हकदार व्यक्तियों को किया जाएगा। (महत्व दिया गया)

91. ट्रांसकोर बनाम भारत संघ और अन्य, (2008) 1 एस. सी. सी 125, के मामले में सुप्रीम कोर्ट का एक और फैसला, श्री श्रीवास्तव द्वारा एक तर्क विकसित करने के लिए रखा गया था कि दोनों मंचों का एक साथ उपयोग किया जा सकता है और नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रवर्तन की तारीख पर एक मौजूदा मंच हो सकता है, ये समय बीतने के साथ अपना महत्व खो देता है और मौजूदा प्रावधान जो दायर को नियंत्रित करते हैं, अप्रचलित या बेमानी हो जाते हैं।

92. उन्होंने तर्क दिया था कि चूंकि धारा 4 के तहत नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 में प्रावधान किया गया था कि पहली अनुसूची के अनुसार लिखित रूप में एक को छोड़कर किरायेदारी हो सकती है, उन्होंने उक्त अधिनियम की धारा 4 (3) के तहत पुरानी किरायेदारी को बचाया और ये पुरानी किरायेदारी समय बीतने के साथ एक विलुप्त प्रजाति होगी। इसलिए, श्री श्रीवास्तव के अनुसार प्रत्येक विवाद धारा 21-22 के संदर्भ में होगा और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम दोनों किरायेदारी अधिनियम, 2022 के तहत आच्छादित किए गए भवनों पर उनके आवेदन में अप्रचलित कानून बन जाएंगे।

93. श्री ए. के. सिंह, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि महीने - दर - महीने किरायेदारी नए किरायेदारी अधिनियम के तहत आच्छादित नहीं की गई थी क्योंकि अनुसूची 1 के अनुसार कोई लिखित समझौता नहीं था। धारा 38 इस तरह के किरायेदारी विवादों को शामिल करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। उन्होंने आगे तर्क दिया था कि केवल सिविल वाद को रोक दिया जा रहा है, एस. सी. सी वाद स्वचालित रूप से नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 38 की कठोरता से छूट प्राप्त होगी।

94. श्री सिंह ने श्री श्रीवास्तव द्वारा बिंदु संख्या (ख) पर दिए गए तर्क को भी अपनाया था।

95. मूल रूप से श्री श्रीवास्तव और श्री सिंह ने उपलब्ध दो में से एक मंच चुनने के लिए चुनाव के सिद्धांत को आकर्षित करने की मांग की थी। मैंने फिर से नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रासंगिक प्रावधानों की सावधानीपूर्वक जांच की है और उन आधिकारिक निर्णयों का अध्ययन किया है जिन्हें विद्वान अधिवक्ता द्वारा मेरे सामने उद्धृत और रखा गया था।

96. इस निर्णय के पहले भाग में, मैंने पहले ही नए किरायेदारी अधिनियम, 2021 के प्रावधानों के दायरे और सीमाओं का उल्लेख किया है, जिसमें अलग-अलग धाराओं के संदर्भ में और मैंने नए अधिनियम की धारा 4 के संदर्भ में किरायेदारी समझौते पर भी चर्चा की है। इसके संबंध में चर्चा के दौरान प्रश्न संख्या 1011 के संबंध में चर्चा के दौरान, (क) के

उत्तर में उल्लेख किया गया है; मैंने पाया है कि नए अधिनियम के अंतर्गत 11 महीने के अलिखित करार किरायेदारी की कल्पना की गई थी लेकिन भूस्वामी को किरायेदार को बेदखल करने में सक्षम बनाने के लिए उपचारात्मक पहलुओं को विधायिका द्वारा छुआ नहीं गया था। धारा 38 (2) किराया प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र को परिभाषित करती है और इसे पहली अनुसूची में निर्दिष्ट अनुसार प्रस्तुत किरायेदारी समझौते से संबंधित विवाद तक सीमित करती है। प्रथम अनुसूची समझौते हैं जो नए किरायेदारी अधिनियम के अस्तित्व में आने के बाद किरायेदारी का सृजन करते हैं और लिखित किरायेदारी समझौते भी हैं जो नए अधिनियम के लागू होने के समय अस्तित्व में थे, बशर्ते कि ऐसे समझौते नए अधिनियम की धारा 4 (3) के अनुसार किराया प्राधिकरण को प्रस्तुत किए गए थे। शब्द "किरायेदार" में हालांकि धारा 2 (जे) के तहत नए अधिनियम के प्रवर्तन के समय पुराने किरायेदार शामिल हैं, लेकिन केवल नियम 4 (3) के अनुसार लिखित समझौते के लिए और यदि नियम 4 (3) के अनुसार लिखित में कोई समझौता नहीं है, तो ऐसे किरायेदार को केवल एक शर्त में बेदखल किया जा सकता है, जहां मकान मालिक ने पहली अनुसूची के अनुसार विवरण प्रस्तुत किया है लेकिन किरायेदार दायित्व के अपने हिस्से का निर्वहन करने में विफल रहा है नए किरायेदारी अधिनियम की धारा 4 (3) के परंतुक के अनुसार, हालांकि, अगर मकान मालिक भी विफल रहता है और किरायेदार भी धारा 4 (3) का पालन करने में विफल रहता है है, तो किरायेदार की बेदखली का कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

97. इस प्रकार किरायेदार के पास एक संकीर्ण बचाव है जैसा कि ऊपर देखा गया है और यह उसके लिए पर्याप्त है लेकिन भूमि स्वामी को उपचारहीन नहीं छोड़ा जा सकता है। इसलिए यदि नए किरायेदारी अधिनियम की धारा 21 को असाध्य पाया जाता है, तो एस.सी.सी वाद एकमात्र उपाय उपलब्ध होगा। धारा 21 (2) (जे) जो मकान मालिक को बेदखली के लिए आवेदन करने का प्रावधान करती है "जहां किरायेदारी समय के समाप्ति द्वारा निर्धारित होती है" ऐसे किरायेदारी के लिए संदर्भित होगी जो लिखित समझौतों द्वारा हैं और इस तरह के समझौते समाप्त हो गए हैं या, धारा 4 के तहत अवधारणा नहीं है लेकिन अस्तित्व में हैं, 11 महीने के अलिखित समझौते किरायेदारी पर लागू नहीं होंगे।

98. ट्रांसकोर मामले (सुप्रा) में श्री श्रीवास्तव द्वारा उद्धृत निर्णय ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 के तहत शुरू की गई कार्यवाही से संबंधित है, इस तथ्य के सामने कि बाद के अधिनियम की धारा 13, अर्थात्, वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और सुरक्षा ब्याज अधिनियम, 2002 का प्रवर्तन वित्तीय संस्थान को उन मामलों में सीधे कार्रवाई करने का अधिकार देता है जहां ऋण खाता एन. पी.ए (गैर निष्पादित संपत्ति खाता) प्रदान किया गया है। उक्त मामले में तर्क यह था कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 ऋण की वसूली के लिए पूर्ण संहिता थी और धारा 13 (4) के तहत 2002 अधिनियम ने बैंक को राशि की वसूली के लिए चूककर्ता उधारकर्ता के खिलाफ उपाय लागू करने का अधिकार दिया।

अतः यह मुद्दा उठा कि क्या दोनों अधिनियमों के अंतर्गत प्रदान किए गए समानान्तर उपायों के साथ समानान्तर कार्यवाही होगी। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 37 के तहत, न्यायालय ने निम्नलिखित तीन मुद्दे तैयार किए।

"निर्धारण के लिए 37 अंक:

इन मामलों में निर्धारण के लिए तीन बिंदु उत्पन्न होते हैं। वे इस प्रकार हैं:

(i) क्या वे बैंक या वित्तीय संस्थान जिन्होंने DRT अधिनियम, 1993 के संदर्भ में अपना समाधान लेने का विकल्प चुना है, वे अभी भी DRT अधिनियम के तहत DRT के समक्ष दायर O.A. को वापस लिए या छोड़े बिना सुरक्षित परिसंपत्तियों की वसूली के लिए NPA अधिनियम, 2002 का उपयोग कर सकते हैं।

(ii) क्या एन.पी.ए अधिनियम की धारा 13(4) के संदर्भ में उधारकर्ता की सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने का सहारा अचल संपत्ति का वास्तविक कब्जा लेने की शक्ति को समझता है।

(ii) क्या डी. आर. टी (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के तहत निर्धारित यथामूल्य न्यायालय शुल्क उक्त अधिनियम के तहत बनाए गए किसी नियम के अभाव में एन. पी. ए अधिनियम की धारा 17 (1) के तहत आवेदन पर देय है।

99. मेरे सुविचारित विचार में, बिंदु संख्या 1 श्री टंडन द्वारा तर्क दिया गया था के जवाब में प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क के लिए यहां संदर्भित एकमात्र बिंदु है। पहली

बार में इस तर्क को खारिज करते हुए कि दोनों अधिनियमों ने समानांतर कार्यवाही पर विचार किया, न्यायालय ने पैराग्राफ 63 के तहत इस प्रकार अवधारित किया:

इसलिए, जब धारा 13 (4) उधारकर्ता की प्रतिभूत आस्तियों या व्यवसाय के प्रबंधन के बारे में बात करती है, तो इसका कारण यह है कि जब उधारकर्ता प्रतिज्ञा, दृष्टिबंधन, बंधक या प्रभार द्वारा सुरक्षित ऋण लेता है तो बैंक / वित्तीय संस्था के पक्ष में एक अधिकार सृजित किया जाता है। उदाहरण के लिए, जब कोई कंपनी ऋण लेती है और अपनी वित्तीय संपत्ति गिरवी रखती है, तो यह उस कंपनी का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि कंपनी जो उधार लेती है और जिस हद तक ऋण वित्तीय संपत्ति के मूल्य से आच्छादित किया जाता है, उसके बीच का मार्जिन बरकरार रखा जाता है। यदि उधारकर्ता कंपनी चुकौती नहीं करती है, और चूककर्ता बन जाती है और वित्तीय आस्ति के मूल्य को बनाए नहीं रखती है जो समाप्त हो जाती है तो उधारकर्ता अपने दायित्व में विफल हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप बैंक/वित्तीय संस्था की बहियों में परिसंपत्ति और देयता के बीच बेमेल होता है। इसलिए, धारा 5 और 9 सुरक्षित ब्याज के अधिग्रहण की बात करती है ताकि बैंक / वित्तीय संस्था की बैलेंस शीट साफ रहे। यही बात बैंक/वित्तीय संस्था के पास प्रभारित या बंधक रखी गई अचल संपत्ति पर भी लागू होती है। ये कुछ कारक हैं जिन्हें बैंक / वित्तीय संस्था के प्राधिकृत अधिकारी को एन.पी.ए अधिनियम की धारा 13(2) के अंतर्गत नोटिस देते समय ध्यान में रखना होता है। इसलिए, पुनर्भुगतान की बाध्यता के अलावा, उधारकर्ता मार्जिन और प्रतिभूतियों के

मूल्य को बंधक रखने का वचन देता है ताकि बैंक / वित्तीय संस्था की बहियों में परिसंपत्ति-देयता के बीच कोई बेमेल न हो। यह दायित्व चुकाने के दायित्व से अलग है। यह उधारकर्ता का पूर्व दायित्व है जो एन.पी.ए अधिनियम के प्रावधानों को आकर्षित करता है जो एन. पी. ए अधिनियम की धारा 13 (4) में उल्लिखित उपायों द्वारा इसे लागू करना चाहता है, जो डी. आर. टी अधिनियम द्वारा अपेक्षित नहीं हैं और इसलिए, यह कहना गलत है कि दोनों अधिनियम समानांतर उपचार प्रदान करते हैं जैसा कि मैसर्स कल्याणी सेल्स कंपनी में उच्च न्यायालय के फैसले द्वारा अवधारित किया गया है। जैसा कि कहा गया है, डी. आर. टी अधिनियम के तहत उपाय एन.पी.ए अधिनियम की तुलना में कम है जो परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को प्राप्तियों के अधिग्रहण और असाइनमेंट को संदर्भित करता है और जो बैंकों / प्रबंधन पर कब्जा करना या उसे अपने हाथ में लेना जो ऋण वसूली अधिनियम में नहीं है। यही कारण है कि एन. पी. ए अधिनियम को एक अतिरिक्त उपाय (धारा 37) के रूप में माना जाता है, जो डी. आर. टी अधिनियम के साथ असंगत नहीं है।

100. न्यायालय ने पैराग्राफ 64 के तहत दो उपचार प्रदान करने वाले दो अधिनियमों के संबंध में चुनाव के सिद्धांत के किसी भी आवेदन के तर्क को भी खारिज कर दिया, जो निम्नानुसार चलता है:

"उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, अब हम चुनाव के सिद्धांत की जांच करते हैं। चुनाव के तीन तत्व हैं, अर्थात्, दो या दो से अधिक उपचारों का अस्तित्व; इस तरह के उपायों और

उनमें से एक की पसंद के बीच विसंगतियां। यदि तीनों तत्वों में से कोई एक तत्व नहीं है, तो सिद्धांत लागू नहीं होगा। अमेरिकी न्यायशास्त्र, 2 डी, वॉल्यूम 25, पृष्ठ 652 के अनुसार, यदि वास्तव में केवल एक ही उपाय है, तो चुनाव का सिद्धांत लागू नहीं होता है। वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एन. पी. ए अधिनियम डी. आर. टी अधिनियम का एक अतिरिक्त उपाय है। एक साथ वे एक उपाय का गठन करते हैं और इसलिए, चुनाव का सिद्धांत लागू नहीं है। यहां तक कि स्नेल की इक्विटी (इक्तीसवां संस्करण, पृष्ठ 119) के अनुसार, उपचार के चुनाव का सिद्धांत केवल तभी लागू होता है जब चुनाव के समय वादियों के लिए दो या दो से अधिक सह-अस्तित्व वाले उपाय उपलब्ध हों जो प्रतिकूल और असंगत हों। किसी भी घटना में, दो उपायों के बीच कोई प्रतिकूलता नहीं है और न ही असंगति है, इसलिए, चुनाव के सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं है।" (महत्व दिया गया)

101. इसके बाद, न्यायालय ने धारा 23, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत निहित दो अधिनियमों और प्रावधानों के विभिन्न प्रावधानों पर चर्चा की और अंत में निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम 2002 के तहत बैंक / वित्तीय संस्थान द्वारा उपाय का पीछा करते हुए पहले ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित ओ. ए को वापस लेना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार, दो अधिनियमों को एक दूसरे के पूरक नहीं माना गया है क्योंकि न्यायालय ने माना है कि अधिनियम 93 के संचालन का दायरा कुछ हद तक था। यह निर्णय विद्वान

अधिवक्ताओं को उनके तर्क को विकसित करने में मदद नहीं करता है कि समानांतर उपचार होने के लिए प्रावधानों को जारी रखा जा सकता है और चुनाव के सिद्धांत को लागू करने के लिए बनाया जाना चाहिए।

102. समवर्ती सूची की प्रविष्टि 6 में कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के अंतरण का प्रावधान है। इसका मतलब है कि केंद्रीय विधानमंडल इस विषय पर कानून बनाने के लिए सक्षम है और सहमत किराए के लिए कब्जे के लिए अचल संपत्ति का पट्टा अपवाद नहीं होना चाहिए। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 105 से 108 यहां प्रासंगिक हैं और इसलिए यहां पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

105. पट्टा परिभाषित - अचल संपत्ति का पट्टा ऐसी संपत्ति का उपभोग करने के अधिकार का अंतरण है, जो एक निश्चित समय के लिए, व्यक्त या निहित है, या सदा के लिए, भुगतान की गई कीमत या वादा किए गए मूल्य के विचार में, या धन, फसलों, सेवा या मूल्य की किसी अन्य चीज के हिस्से के विचार में, और जो समय-समय पर या निर्दिष्ट अवसरों पर हस्तांतरणकर्ता को हस्तांतरित किया जाता है, और जो ऐसी शर्तों पर स्थानांतरण स्वीकार करता है। पट्टाकर्ता, पट्टेदार, प्रीमियम और किराया परिभाषित अंतरणकर्ता को पट्टेदार कहा जाता है, अंतरिती को पट्टेदार कहा जाता है, कीमत को प्रीमियम कहा जाता है, और धन, शेयर, सेवा या अन्य चीज को किराया कहा जाता है।

106. लिखित संविदा या स्थानीय उपयोग के अभाव में कतिपय पट्टों की अवधि - (1) किसी संविदा या स्थानीय विधि या इसके विपरीत प्रयोग के अभाव में, कृषि या विनिर्माण प्रयोजनों के लिए स्थावर संपत्ति का पट्टा, पट्टेदार की ओर से समाप्त होने योग्य वर्ष-दर-वर्ष पट्टा समझा जाएगा, छह महीने के नोटिस से, और किसी अन्य प्रयोजन के लिए अचल संपत्ति का पट्टा, पट्टाकर्ता या पट्टेदार की ओर से पंद्रह दिन की सूचना द्वारा समाप्त होने योग्य माह-दर-माह पट्टा समझा जाएगा।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (1) में उल्लिखित अवधि सूचना की प्राप्ति की तारीख से प्रारम्भ होगी।

(3) उपधारा (1) के अधीन कोई सूचना केवल इसलिए अविधिमान्य नहीं समझी जाएगी क्योंकि उसमें उल्लिखित अवधि उस उपधारा के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि से कम हो जाती है, जहां कोई वाद या कार्यवाही उस उपधारा में उल्लिखित अवधि की समाप्ति के पश्चात् दायर की जाती है। (4) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक सूचना लिखित रूप में होनी चाहिए, उसे देने वाले व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित होनी चाहिए और या तो उस पक्षकार को डाक द्वारा भेजी जानी चाहिए जो उससे आबद्ध होने के लिए आशयित है या ऐसे पक्षकार को या उसके किसी परिवार या उसके निवास पर उसके किसी सेवक को व्यक्तिगत रूप से दी गई या सुपुर्द की जानी चाहिए, या (यदि ऐसी निविदा या वितरण

व्यावहारिक नहीं हैं) संपत्ति के एक विशिष्ट हिस्से से संलग्न हैं।

से ऐसे हैं जो पट्टे पर दी गई संपत्ति पर लागू होते हैं:

107. पट्टे कैसे किए जाते हैं- वर्ष दर वर्ष अचल संपत्ति का पट्टा, या एक वर्ष से अधिक की किसी अवधि के लिए, या वार्षिक किराया आरक्षित करना, केवल एक पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है।

अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो एक पंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की डिलीवरी के साथ मौखिक समझौते द्वारा किए जा सकते हैं।

[जहां अचल संपत्ति का पट्टा एक पंजीकृत लिखत द्वारा किया जाता है, ऐसे उपकरण या, जहां एक से अधिक उपकरण हैं, ऐसे प्रत्येक उपकरण को पट्टेदार और पट्टाकर्ता दोनों द्वारा निष्पादित किया जाएगा]

बशर्ते कि राज्य सरकार, (***) समय-समय पर, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह निर्देश दे सकती है कि अचल संपत्ति के पट्टे, पट्टों के अलावा, साल-दर-साल, या एक वर्ष से अधिक की किसी अवधि के लिए, या वार्षिक किराए को आरक्षित करते हुए, या ऐसे पट्टों के किसी भी वर्ग, कब्जे के वितरण के बिना अपंजीकृत लिखत या मौखिक समझौते द्वारा किए जा सकते हैं।

108. पट्टाकर्ता और पट्टेदार के अधिकार और दायित्व - इसके विपरीत संविदा या स्थानीय उपयोग के अभाव में, अचल संपत्ति के पट्टाकर्ता और पट्टेदार, क्रमशः एक दूसरे के खिलाफ, अधिकार रखते हैं और अगले नियमों में उल्लिखित दायित्वों के अधीन हैं, या उनमें

(A) पट्टाकर्ता के अधिकार और दायित्व

(ए) पट्टेदार पट्टाकर्ता को संपत्ति में किसी भी भौतिक दोष का खुलासा करने के लिए बाध्य है, इसके इच्छित उपयोग के संदर्भ में, जिसमें से पूर्व है और बाद वाला जागरूक नहीं है, और जिसे बाद में सामान्य देखभाल के साथ नहीं पता चल सकता है:

(ख) पट्टेदार उसे संपत्ति के कब्जे में रखने के लिए पट्टाकर्ता के अनुरोध पर बाध्य है:

(ग) पट्टेदार को पट्टाकर्ता के साथ अनुबंध करने के लिए समझा जाएगा कि, यदि बाद वाला पट्टे द्वारा आरक्षित किराए का भुगतान करता है और पट्टेदार पर बाध्यकारी अनुबंध करता है, तो वह बिना किसी रुकावट के पट्टे द्वारा सीमित समय के दौरान संपत्ति को धारण कर सकता है। इस तरह के अनुबंध का लाभ पट्टेदार के हित के साथ जुड़ा हुआ होगा, और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा लागू किया जा सकता है जिसमें वह हित पूरे या उसके किसी हिस्से के लिए समय-समय पर निहित है;

(B) पट्टेदार के अधिकार और देनदारियाँ

(घ) यदि पट्टे की निरंतरता के दौरान संपत्ति में कोई परिग्रहण किया जाता है, तो इस तरह के परिग्रहण (समय के लिए प्रवृत्त के लिए

जलोढ़ से संबंधित कानून के अधीन) को पट्टे में शामिल माना जाएगा:

(ड) यदि आग, आंधी या बाढ़, या किसी सेना या भीड़ की हिंसा, या अन्य अप्रतिरोध्य बल से, संपत्ति का कोई भौतिक भाग पूरी तरह से नष्ट हो जाता है या पर्याप्त रूप से प्रदान किया जाता है और स्थायी रूप से उन प्रयोजनों के लिए अयोग्य हो जाता है जिनके लिए इसे दिया गया था, तो पट्टेदार के विकल्प पर, ये शून्य होगा:

बशर्ते, यदि पट्टेदार के गलत कार्य या चूक से चोट लगी है, तो वह इस प्रावधान का लाभ उठाने का हकदार नहीं होगा:

(च) यदि पट्टेदार नोटिस के बाद उचित समय के भीतर, कोई भी मरम्मत करने की उपेक्षा करता है, जो वह संपत्ति को करने के लिए बाध्य है, तो पट्टेदार स्वयं वही कर सकता है, और किराए से ब्याज के साथ ऐसी मरम्मत के खर्च में कटौती कर सकता है, या अन्यथा इसे पट्टेदार से वसूल कर सकता है:

(छ) यदि पट्टाकर्ता कोई संदाय करने की उपेक्षा करता है जो वह करने के लिए बाध्य है और जो यदि उसके द्वारा नहीं किया जाता है तो पट्टेदार से या संपत्ति के विरुद्ध वसूली योग्य है तो पट्टेदार स्वयं ऐसा संदाय कर सकेगा और उसे लगान से ब्याज सहित घटा सकेगा या अन्यथा पट्टाकर्ता से वसूल कर सकेगा;

(ज) पट्टेदार [पट्टे के निर्धारण के बाद भी] किसी भी समय हटा सकता है [जबकि वह पट्टे पर दी गई संपत्ति के कब्जे में है, लेकिन

बाद में नहीं, सभी चीजें जो ज़मीन से जुड़ी हैं: बशर्ते कि वह संपत्ति को उस राज्य में छोड़ देता है जिसमें उसने इसे प्राप्त किया है:

(i) जब अनिश्चित अवधि का पट्टा पट्टेदार की गलती को छोड़कर किसी भी तरह से निर्धारित होता है, तो वह या उसका कानूनी प्रतिनिधि पट्टेदार द्वारा लगाए गए या बोए गए सभी फसलों का हकदार होता है और जब पट्टा निर्धारित होता है तो संपत्ति पर बढ़ता है, और उन्हें इकट्ठा करने और ले जाने के लिए प्रवेश और निकास को मुक्त करने के लिए:

(ज) पट्टेदार संपत्ति में अपने हित के संपूर्ण या किसी भाग को पूर्णतः या बन्धक के रूप में या उप-पट्टे पर अन्तरित कर सकेगा और ऐसे हित या भाग का कोई अन्तरिती उसे पुनः अन्तरित कर सकेगा। पट्टेदार, केवल इस तरह के हस्तांतरण के कारण, पट्टे से जुड़ी किसी भी देनदारियों के अधीन नहीं रहेगा:

इस खंड में कुछ भी अधिभोग का एक अहस्तांतरणीय अधिकार रखने वाले एक किरायेदार को अधिकृत करने के लिए समझा जाएगा, एक संपत्ति का किसान जिसके संबंध में राजस्व का भुगतान करने में चूक की गई है, या वार्ड के कोर्ट के प्रबंधन के तहत एक संपत्ति के पट्टेदार, ऐसे किरायेदार, किसान या पट्टेदार के रूप में अपना हित सौंपने के लिए:

(ट) पट्टेदार पट्टाकर्ता को उस ब्याज की प्रकृति या सीमा के बारे में किसी भी तथ्य का खुलासा करने के लिए बाध्य है जो पट्टेदार लेने वाला है, जिसमें वो पट्टेदार है, और

पट्टेदार को पता नहीं है, और जो भौतिक रूप से इस तरह के ब्याज के मूल्य को बढ़ाता है:

(ल) पट्टेदार उचित समय और स्थान पर, इस संबंध में पट्टेदार या उसके एजेंट को प्रीमियम या किराए का भुगतान या निविदा करने के लिए बाध्य है:

(ड) पट्टेदार पट्टे की समाप्ति पर रखने और बहाल करने के लिए के लिए बाध्य है, . (?) संपत्ति उतनी ही अच्छी स्थिति में है जितनी उस समय थी जब उसे कब्जे में रखा गया था, केवल अप्रतिरोध्य बल के कारण होने वाले परिवर्तनों के अधीन, और पट्टेदार और उसके एजेंटों को अनुमति देने के लिए, अवधि के दौरान सभी उचित समय पर, संपत्ति में प्रवेश करने और उसकी स्थिति का निरीक्षण करने और ऐसी स्थिति में किसी भी दोष की सूचना देने या छोड़ने के लिए के लिए बाध्य है; और, जब इस तरह के दोष पट्टेदार, उसके नौकरों या एजेंटों की ओर से किसी भी कार्य या चूक के कारण हुआ है, तो वह इस तरह के नोटिस दिए जाने या छोड़ने के तीन महीने के भीतर इसे पूरा करने के लिए बाध्य है:

(ढ) यदि पट्टेदार को संपत्ति या उसके किसी भाग की वसूली के लिए किसी कार्यवाही के बारे में पता चलता है, या ऐसी संपत्ति से संबंधित पट्टेदार के अधिकारों पर किए गए किसी अतिक्रमण या किसी हस्तक्षेप के बारे में पता चलता है, तो वह उचित परिश्रम के साथ, पट्टेदार को उसकी सूचना देने के लिए बाध्य है:

(ओ) पट्टेदार संपत्ति और उसके उत्पादों (यदि कोई हो) का उपयोग कर सकता है क्योंकि साधारण विवेक का व्यक्ति उनका उपयोग करेगा यदि वे उसके अपने थे; लेकिन उसे किसी अन्य उद्देश्य के लिए संपत्ति का उपयोग नहीं करना चाहिए, या उपयोग करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए, जिसके लिए इसे पट्टे पर दिया गया था, या लकड़ी को गिरा दिया था, इमारतों को गिरा दिया या नुकसान पहुंचाया गया था [पट्टाकर्ता से संबंधित] काम-खानों या खदानों को नहीं खोलना चाहिए जब पट्टा दिया गया था, या कोई अन्य कार्य नहीं करना चाहिए जो विनाशकारी या स्थायी रूप से हानिकारक है:

(त) वह पट्टेदार की सहमति के बिना, कृषि प्रयोजनों को छोड़कर, संपत्ति पर किसी भी स्थायी संरचना को नहीं करेगा:

(थ) पट्टे के निर्धारण पर, पट्टेदार संपत्ति के कब्जे में पट्टेदार को रखने के लिए बाध्य है।

103. उपरोक्त प्रावधानों को पढ़ने पर मुझे लगता है कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम संख्या 1882 धारा 105 के माध्यम से पट्टे को परिभाषित करता है और धारा 106 और 108 के माध्यम से पट्टे की अवधि, अधिकारों और दायित्वों को संदर्भित करता है, लेकिन ये दोनों धाराएं अनुबंधों, स्थानीय कानून के संचालन और उपयोग को बचाती हैं। धारा 107 में प्रावधान है कि पट्टा कैसे बनाया जा सकता है। यह मौखिक समझौते को संदर्भित करता है यदि कब्जे की डिलीवरी के साथ, इस तरह के अनुबंध एक बार धारा 107 के तहत बचाए

जाते हैं, तो मेरे विचार से केवल लिखित में कोई समझौता नहीं होने के कारण बुरा नहीं होगा और इसलिए धारा 108 के तहत अधिकार और दायित्व लागू करने योग्य होगा।

104. राज्य सूची की प्रविष्टि 18 में राज्यों को भूमि कार्यकाल से संबंधित कानून बनाने का प्रावधान है, जिसमें मकान मालिक और किरायेदार का संबंध भी शामिल है। चूंकि यह राज्य सूची की विषय-वस्तु है और इससे संबंधित कानून बनाने वाला राज्य है, इसलिए इसे केंद्रीय विधानमंडल की निश्चित रूप से केंद्रीय अधिनियम के तहत आच्छादित नहीं किए गए क्षेत्रों में किसी शक्ति के साथ तुलनात्मक संघर्ष में नहीं कहा जाएगा।

105. नया किरायेदारी अधिनियम, 2021 जिसमें अलिखित किरायेदारी और उसके संबंध में अधिकार और दायित्व शामिल नहीं हैं, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के तहत मौजूदा कानून और एस. सी. सी. वाद का मंच, यहां तक कि किरायेदारी अधिनियम, 2021 के तहत आच्छादित किए गए क्षेत्रों में स्थित भवनों के संबंध में लागू होगा।

106. मेरे सुविचारित विचार में जब राज्य सूची की प्रविष्टि 18 में राज्य को भूमि स्वामी - किरायेदार संबंध सहित भूमि कार्यकाल के मामलों में कानून बनाने का प्रावधान है, तो यह शक्ति उस सीमा तक अनन्य है, इस तथ्य के मद्देनजर कि किराया, पट्टों / समझौतों के मामलों में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 105 और 108 के तहत अनुबंधों, स्थानीय कानूनों और उपयोगों को बचाया गया

है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, अनुच्छेद 272 के तहत सहेजा गया पूर्व-संवैधानिक कानून है और इसलिए राज्य सूची की प्रविष्टि 18 के तहत राज्य की शक्ति केवल स्थिरता की सीमा तक संरक्षित है। तथापि, किराया करार के जिन क्षेत्रों को राज्य अधिनियमन में अछूता छोड़ दिया गया है, ये संवैधानिक स्कीम के अनुसार केन्द्रीय अधिनियम लागू रहेगा।

107. प्रश्न " (बी)" पर संक्षेप में कहने के लिए मेरा विचार है, और ऐसा इसलिए माना जाता है कि लघु वाद अभी भी धारा 4 के तहत आच्छादित नहीं किए गए किरायेदारों के मामलों में बनाए रखने योग्य होगा और हस्तांतरण संपत्ति अधिनियम, 1882 के तहत अर्जित अधिकारों से संबंधित है, यदि कोई हो, जहां एक किरायेदारी अलिखित है, और किरायेदारी महीने दर महीने के आधार पर है। धारा 42 का अधिभावी प्रभाव केन्द्रीय अधिनियम का मार्ग प्रशस्त करेगा और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि यदि केन्द्रीय अधिनियम ने कुछ सीमा तक इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है। .

108. उपरोक्त के मद्देनजर मैं एस. सी. सी. पुनरीक्षण संख्या - 158 वर्ष 2022 में आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं, हालांकि चूंकि वाद वर्ष 2009 की सबसे पुरानी श्रेणी का है, इसलिए पुनरीक्षण याचिका का निपटारा, लघु वाद न्यायाधीश, को निर्देश के साथ किया जाता है कि वे मुकदमे की सुनवाई में तेजी लाएं और अगले छह महीने के भीतर इसका फैसला करें।

109. जहां तक पुनरीक्षण याचिका में आक्षेपित एस. सी. सी पुनरीक्षण (डिफ.) संख्या 48 वर्ष 2022, जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.07.2022, व जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा लघु वाद संख्या शून्य वर्ष 2022 में पारित किया गया निर्णय का संबंध है, ये एतद्वारा अपास्त किया जाता है और इस निर्णय के आलोक में वाद की विचारणीयता के बिंदु पर लघु वाद न्यायाधीश द्वारा मामले को, अधिमानतः तीन महीने के भीतर नए सिरे से तय करने के लिए भेज दिया जाता है,

110. इस प्रकार दोनों पुनरीक्षण याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।

111. लागत/व्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं ।

(2023) 7 ILRA 1248

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायाधीश देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायाधीश ओम प्रकाश शुक्ला,

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 430 सन् 2023

शैलेश कुमार शुक्ला

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...अपीलकर्ता

...प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

समीर कालिया, श्रीदीप चटर्जी

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

सहायक महाधिवक्ता भारत

सेवा विधि के अंतर्गत केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल नियम, विनियम अथवा योजना, 1955; विकलांग व्यक्तियों का अधिनियम, 1995. - केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल में पदोन्नति, मानव प्रतिरक्षा दोष विषाणु धनात्मक होना, शारीरिक स्वास्थ्य की श्रेणी-1 चिकित्सा वर्गीकरण, भेदभाव, मौलिक अधिकार, स्थायी आदेश संख्या 04/2008 तथा रोजगार में भेदभाव रहित व्यवहार से संबंधित विषय विचाराधीन हैं।

अपीलकर्ता, जो कि केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (सीआरपीएफ) में एक कांस्टेबल है, ने दिनांकित आदेश को चुनौती दी, जिसके द्वारा उसे प्रधान कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के लिए अनुमोदित सूची से उसके मानव प्रतिरक्षा दोष विषाणु (एचआईवी) धनात्मक होने तथा उसके परिणामस्वरूप शारीरिक स्वास्थ्य की श्रेणी-2 (एसएचएपीई - 2) चिकित्सा वर्गीकरण के आधार पर बाहर कर दिया गया। यद्यपि उसने 2006 में आवश्यक सेक्शन कमांडर पाठ्यक्रम (एससीसी) पूर्ण कर लिया था और उसे प्रधान कांस्टेबल के पद पर पदोन्नत भी कर दिया गया था, परंतु वर्ष 2013 की चिकित्सीय परीक्षा में उसे एसएचएपीई-2 (पी-2, शारीरिक क्षमता) के रूप में पुनः वर्गीकृत किए जाने के उपरांत उसकी पदोन्नति रद्द कर दी गई। अपीलकर्ता का यह कथन था कि उसका एचआईवी स्थिति उसकी कर्तव्यों के निर्वहन में बाधक नहीं है और पदोन्नति से इनकार किया जाना भेदभावपूर्ण है। एकल

न्यायाधीश ने उसकी रिट याचिका यह कहते हुए खारिज कर दी कि पदोन्नति निरस्तीकरण में कोई अवैधता नहीं है। अपीलकर्ता ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के अध्याय आठ, नियम पाँच के अधीन अंतःअदालत अपील दायर की, जिसमें उसने अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन तथा भेदभावपूर्ण व्यवहार का आरोप लगाया। विशेष अपील स्वीकृत कर ली गई, एकल न्यायाधीश का आदेश निरस्त कर दिया गया तथा पदोन्नति अस्वीकृति संबंधी आदेशों को रद्द कर दिया गया। प्रतिवादियों को यह निर्देश दिया गया कि वे अपीलकर्ता को उसके कनिष्ठों की पदोन्नति की तिथि से पदोन्नति लाभ प्रदान करें; व्ययों के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया। देरी क्षमा याचिका भी स्वीकृत कर ली गई। उच्च न्यायालय ने अपील स्वीकृत करते हुए, एकल न्यायाधीश का आदेश निरस्त किया तथा अपीलकर्ता की पदोन्नति अस्वीकृति संबंधी आदेशों को रद्द कर दिया।

अपील स्वीकृत की जाती है।

संदर्भित मामलों की सूची:

1. बिशम्बर दत्त बनाम यू.ओ.आई., 2010 (2) एलएलआर पंजाब और हरियाणा 228
2. सार्जेंट चमन लाल बनाम यू.ओ.आई., (2018) 14 एससीसी 455
3. लेफ्टिनेंट कर्नल नितिशा बनाम यू.ओ.आई., (2021) 15 एससीसी 125
4. यू.ओ.आई. बनाम देवेंद्र कुमार पंत, (2009) 14 एससीसी 546
5. एयर कम्पोजोर नवीन जैन बनाम यू.ओ.आई., 2019 (10) एससीसी 34

(माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय और माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा पदत)

सी.एम. आवेदन संख्या-1 वर्ष 2023: विलंब की क्षमा के लिए आवेदन

(1) अपीलकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री समीर कालिया और श्री श्रीदीप चटर्जी और श्री सूर्यभान पांडे, उत्तरदाताओं का प्रतिनिधित्व करते हुए वरिष्ठ अधिवक्ता/भारत के उप सॉलिसिटर जनरल श्री सुधांशु चौहान को सुना।

(2) देरी की माफी मांगने वाले आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में किए गए कथनों को देखने के बाद, यह न्यायालय संतुष्ट है कि देरी को पर्याप्त रूप से समझाया गया है।

(3) तदनुसार, आवेदन की अनुमति दी जाती है और विशेष अपील दायर करने में देरी को एतद्वारा माफ किया जाता है।

अपील पर आदेश

(4) इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII नियम 5 के तहत वर्तमान इंट्रा न्यायालय अपील अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई है, जिसके तहत रिट-ए संख्या-18903 वर्ष 2021 में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 24.05.2023 को प्रतिबंधित करने की मांग की गई है। जाहिरा तौर पर, अपीलकर्ता पुलिस महानिरीक्षक, केंद्रीय क्षेत्र,

केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल, लखनऊ द्वारा जारी दिनांक 17.05.2021 के एक आदेश से व्यथित है, जिसके तहत 26.02.2013 को हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के लिए अपीलकर्ता का नाम अनुमोदित सूची ए/जीडी-11/2009 से इस आधार पर हटा दिया गया है कि उसे ह्यूमन इम्यूनोडेफिशिएंसी वायरस (इसके बाद 'एचआईवी' के रूप में संदर्भित) पॉजिटिव पाया गया है, जो उनके अनुसार न्यायसंगत, उचित और कानूनी नहीं था। चूंकि, अपीलकर्ता के प्रस्ताव को एकल न्यायाधीश के साथ कोई पक्ष नहीं मिला, इसलिए उसकी रिट याचिका (उपरोक्त) खारिज कर दी गई और इस तरह अपीलकर्ता विशेष अपील में हमारे सामने है।

A. तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

(5) अपीलकर्ता को 28.08.1993 को केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (इसके बाद 'सी.आर.पी.एफ.' के रूप में संदर्भित) में कांस्टेबल (जनरल इयूटी-जीडी) के रूप में भर्ती किया गया था। उन्हें शुरू में 16 वीं बटालियन, जम्मू और कश्मीर जोन को आवंटित किया गया था।

(6) लांस नायक और नाइक के पद को प्रतिवादियों द्वारा 10.10.1997 को समाप्त कर दिया गया और इस प्रकार सी.आर.पी.एफ. में किसी भी कांस्टेबल को यदि पात्र पाया जाता है, तो उक्त तारीख को या उसके बाद सीधे हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नत किया जाता था। अपीलकर्ता को दो दशक की सेवा के बाद भी हेड कांस्टेबल के उक्त पद पर पदोन्नत नहीं किया गया था, उसने रिट

याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

(7) यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि स्थायी आदेश संख्या-06/1999 बल के सदस्यों के लिए कांस्टेबल के रैंक से हेड कांस्टेबल तक पदोन्नति की प्रक्रिया निर्धारित करता है। अनुमोदनात्मक पाठ्यक्रम खण्ड-ख के अनुसार है और उपखण्ड 1 में कहा गया है कि अनुभाग कमांडर पाठ्यक्रम (एस.सी.सी.) के पदोन्नति पाठ्यक्रम को बल के किसी सदस्य द्वारा अर्हता प्राप्त करनी होगी ताकि वह कांस्टेबल के रैंक से हेड कांस्टेबल के रैंक में पदोन्नति के लिए पात्र हो। जाहिर है, अपीलकर्ता ने वर्ष 2006 में सीटीसी-3 नांदेड़ में उक्त पाठ्यक्रम संख्या-35 को सफलतापूर्वक पूरा किया।

(8) अपीलकर्ता, हालांकि 13 साल की सेवा पूरी कर चुका था और उपरोक्त एस.सी.सी. से सफलतापूर्वक गुजर चुका था, हालांकि उसे वर्ष 2006 में हेड कांस्टेबल के रूप में पदोन्नत नहीं किया गया था, हालांकि स्थायी आदेश संख्या-06/1999 में कांस्टेबल के रूप में 8 साल की पूर्ण सेवा निर्धारित की गई थी जिसे हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नत किया जाना था।

(9) फिर भी, वर्ष 2006 में, बल के सदस्यों के जागरूकता, रोकथाम, पहचान, उपचार और पुनर्वास के लिए एचआईवी/एड्स पर कार्य योजना निर्धारित करते हुए स्थायी आदेश संख्या-06/2006 जारी किया गया था। हालांकि, बल के सदस्यों की चिकित्सा जांच और वर्गीकरण का प्रावधान स्थायी आदेश संख्या-

04/2008 में निहित है, जो वार्षिक चिकित्सा परीक्षा करने के लिए निर्देश/प्रक्रिया को अनिवार्य रूप से निर्धारित करता है। इसके अतिरिक्त, एक स्थापना नियमावली भी मौजूद है जिसमें बल के सदस्यों की पदोन्नति प्रदान करने और सेवा की अन्य शर्तों के संबंध में अनुसरण की जाने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं और तौर-तरीकों का प्रावधान है, जिसमें यह अनिवार्य रूप से अपेक्षित है कि पदोन्नति हेतु अनुमोदित सूची में शामिल किए जाने के लिए विचार किए जाने हेतु पात्र होने के लिए चिकित्सा श्रेणी शेष-1 होनी चाहिए।

(10) बीच की अवधि में, 18.02.2008 को या उसके आसपास, अपीलकर्ता को एचआईवी पॉजिटिव का पता चला और एंटी-रेट्रोवायरल थेरेपी (एआरटी) पर रखा गया और बाद में 21.01.2009 को शेष-2 के रूप में चिकित्सा वर्गीकरण दिया गया। हालांकि, उपरोक्त स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के संदर्भ में, अपीलकर्ता को वर्ष 2011 में वार्षिक चिकित्सा परीक्षा से गुजरना पड़ा, जिसमें उसे शेष-1 श्रेणी में घोषित किया गया था और इस तरह उसका नाम 04.01.2011 को विशेष अनुमोदित सूची-ए/जीडी (पुरुष) (11 वर्ष 2009) में लाया गया था और उसे वरिष्ठता संख्या-8545-ए प्रदान की गई थी, जिसकी सूचना अपीलकर्ता को कार्यालय आदेश दि:14.07.2011 द्वारा दी गई थी।

(11) जाहिर है, अपीलकर्ता की चिकित्सा परीक्षा फिर से 04.01.2012 को आयोजित की गई थी, जिसमें उसके मामले को 'शेष-1' के रूप में वर्गीकृत किया गया था।

तत्पश्चात्, अन्य पात्र अभ्यर्थियों के साथ उचित विचार करने पर, पुलिस उप महानिरीक्षक (स्थापना) ने दिनांक 26.02.2013 के पत्र द्वारा अपीलकर्ता को अन्य पात्र उम्मीदवारों के साथ हेड कांस्टेबल (सामान्य ड्यूटी) के पद पर पदोन्नत किया, इस शर्त के अधीन कि सभी प्रभावित कार्मिक सतर्कता दृष्टिकोण से मुक्त होने चाहिए और कोई विभागीय जांच नहीं होनी चाहिए, उनके विरुद्ध आपराधिक आरोप के लिए अभियोजन लंबित था और उन्हें रोकने की सजा नहीं भुगतनी थी। वेतन वृद्धि और स्थायी आदेश संख्या-4/2008 के अनुसार 'आकार-1' थे। उपरोक्त पत्र दिनांक 26.02.2013 में अपीलार्थी का नाम क्रम संख्या-2094 पर था। इसलिए, अपीलकर्ता को उप महानिरीक्षक, दक्षिण श्रीनगर दिनांक 06.04.2013 के आदेश द्वारा 183 बटालियन में पदोन्नत और तैनात किया गया था।

(12) हालांकि, प्रस्तुत मामले के तथ्यों के अनुसार, अपीलकर्ता को अमेठी में काम करते हुए अपने कर्तव्यों से मुक्त नहीं किया गया था और 17.05.2013 को, उसे एक और वार्षिक चिकित्सा परीक्षा से गुजरना पड़ा, जिसमें एचआईवी पॉजिटिव पाए जाने पर, उसे चिकित्सकीय रूप से शेष-2 (टी-24) में वर्गीकृत किया गया था और आगे उक्त बीमारी के लिए नियमित उपचार की सलाह दी गई थी। संयोगवश, शेष-2 की ग्रेडिंग कारक-पी अर्थात् भौतिक को '2' के आधार पर प्राप्त की गई थी, जबकि अन्य कारकों का उल्लेख केवल '1' के रूप में किया गया था।

(13) इसके अलावा, जैसा कि अपीलकर्ता को अस्थायी कम चिकित्सा वर्गीकरण (एल.एम.सी.) में रखा गया था, उसे स्थायी आदेश संख्या-4/2008 के पैरा-9 के अनुसार 24 सप्ताह के बाद समीक्षा चिकित्सा परीक्षा से गुजरना था। इस प्रकार, उक्त समीक्षा परीक्षा 17.12.2013 को आयोजित की गई थी, जिसमें अपीलकर्ता को फिर से कारक भौतिक क्षमता के तहत 'पी 2' श्रेणी में आने वाली 'शेप-2' की चिकित्सा श्रेणी प्रदान की गई थी। जैसा कि अपीलकर्ता को अनुमेय अवधि 24 सप्ताह यानी 6 महीने से परे निगरानी में रहने की सलाह दी गई थी, उसे स्थायी निम्न चिकित्सा वर्गीकरण में रखा गया था और उसका नाम अनुमोदित सूची से हटा दिया गया था और नियमों के अनुसार, सी.आर.पी.एफ. मैनुअल 1976 के खंड 11.2 के उप-खंड 6 के तहत कम चिकित्सा श्रेणी को हटाने की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के बाद अनुमोदित सूची के लिए इस पर पुनर्विचार किया जा सकता था।

(14) यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि चूंकि अपीलकर्ता एचआईवी से पीड़ित था, इसलिए स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के भाग- IV के प्रासंगिक प्रावधान, खंड 22.5 (जी) उसके मामले पर भी लागू होंगे, जो एएमई के बाद रखे गए भर्तियों की विभिन्न श्रेणियों के शारीरिक धीरज पर भी एक अंतर्दृष्टि देता है।

(15) अपीलकर्ता के अनुसार, उसे हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति देने में कोई बाधा नहीं थी क्योंकि वह आज तक किसी भी प्रकार की

सहायता के बिना अपने पद से जुड़े अपने सभी कर्तव्यों का पालन कर रहा था। इस बीच, एक और स्थायी आदेश संख्या-01/2015 पहले के स्थायी आदेश संख्या-06/1999 के अधिक्रमण में जारी किया गया था और फिर से कांस्टेबल के रैंक से हेड कांस्टेबल के रैंक पर पदोन्नति की प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

(16) किसी भी मामले में, अपीलकर्ता को फिर से 13.04.2019 को वार्षिक चिकित्सा परीक्षा का सामना करना पड़ा और एचआईवी पॉजिटिव होने के कारण उसे 'शेप-2 (पी)' की चिकित्सा श्रेणी दी गई और नियमित उपचार की सलाह दी गई। यह अपीलकर्ता का मामला है कि वह अपने मामले पर अनुकूल रूप से विचार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को कई अभ्यावेदन भेज रहा था, क्योंकि उसे हेड कांस्टेबल के रूप में पदोन्नत किया गया था जब उसे पहले शेप-1 की चिकित्सा श्रेणी में रखा गया था। उन्होंने अधिकारियों के समक्ष यह भी अभ्यावेदन दिया था कि अपीलकर्ता से कनिष्ठ लगभग 81 पदधारियों को पहले ही 13.10.2000 को कांस्टेबल से हेड कांस्टेबल के रूप में पदोन्नत किया जा चुका था और यह एफ.आई.आर. कि वह इस कारण से कांस्टेबल के रूप में काम करता रहा कि एचआईवी पॉजिटिव होने के कारण, उसके भेदभाव का एकमात्र कारण नहीं हो सकता है। उनके अनुसार, उनका मेडिकल वर्गीकरण शेप-2 बना रहा, जैसा कि 30.01.2016, 13.04.2019 और 24.06.2021 को आयोजित चिकित्सा परीक्षा से स्पष्ट है। उनके अनुसार, खंड 4.13 जिसमें पदोन्नति के लिए शेप-1 चिकित्सा श्रेणी में नहीं होने के लिए उम्मीदवारों की

अयोग्यता पर प्रतिबंध है, का उस उद्देश्य के साथ कोई औचित्य संबंध नहीं है जिसे हासिल करने की मांग की गई है।

(17) यह अपीलकर्ता का मामला है कि प्रतिपक्षी द्वारा जारी आदेश दिनांक 17.05.2021 के अनुसार, उसका नाम अनुमोदित सूची, अर्थात् ए/जीडी-11/2009 से हटा दिया गया था और इस तरह उसके पदोन्नत होने के सभी रास्ते बिखर गए हैं।

(18) इस प्रकार, अपीलकर्ता ने रिट-ए संख्या-18903 वर्ष 2021 को प्राथमिकता दी, जिसमें दिनांक 02.05.2023 के आक्षेपित आदेश के तहत, एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता के पदोन्नति आदेश को रद्द करने में कोई अवैधता या विकृति या संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं पाया और इस तरह रिट याचिका खारिज कर दी। यह दिनांक 02.05.2023 का आदेश है, जिसे तत्काल इंट्रा न्यायालय अपील में चुनौती दी गई है।

B. प्रस्तुतियाँ

(19) अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि एचआईवी पॉजिटिव होने के अकेले आधार पर अपीलकर्ता को पदोन्नति से इनकार करना मनमाना और भेदभावपूर्ण है क्योंकि दो समान रूप से स्थित व्यक्ति, जिन्हें भर्ती किया गया था और अपीलकर्ता से जूनियर थे, सहायक उप-निरीक्षक के पद पर काम कर रहे हैं, जबकि अपीलकर्ता अपनी ओर से बिना किसी गलती के कांस्टेबल के पद पर काम कर रहा है। उनके अनुसार, स्थायी आदेश/परिपत्र

/सी.आर.पी.एफ. मैनुअल के अनुसार, एचआईवी पॉजिटिव से पीड़ित अपीलकर्ता जैसे रंगरूट की पोस्टिंग के लिए एकमात्र आवश्यकता उस स्थान पर है जहां एआरटी सुविधा उपलब्ध है और किसी कठिन और एकांत स्थान पर नहीं। यह तर्क दिया गया था कि सी.आर.पी.एफ. की भर्ती मेट्रो और टीयर-1 शहरों सहित देश की लंबाई और चौड़ाई में तैनात की जाती है, जहां एआरटी सुविधा आसानी से उपलब्ध है। इसलिए, जैसा कि अपीलकर्ता उपरोक्त शर्त के अधीन सभी कर्तव्यों के लिए फिट है, अपीलकर्ता की तरह कर्मचारियों को पदोन्नति से इनकार करने के पीछे कोई तर्क नहीं है, जो शेप-II श्रेणी में हैं।

(20) स्थायी आदेश संख्या-4/2008 के खंड 4.13 पर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि स्थायी आदेश संख्या-4/2008 का खंड 4.13 खंड 25.5 (जी) के विरोधाभासी है क्योंकि खंड 4.13 उन पदधारियों की पदोन्नति के संबंध में प्रतिबंध निर्धारित करता है जो शेप-I चिकित्सा श्रेणी में नहीं हैं, जबकि खंड 25.5 (जी) निर्धारित करता है कि शेप (पी) 2 चिकित्सा श्रेणी के पदाधिकारी सभी कर्तव्यों के लिए फिट हैं। उनका तर्क यह है कि क्लॉज 4.13 इस कारण से तर्कहीन है कि जैसे-जैसे कोई अवलंबी सेवा में पदानुक्रम में ऊपर जाता है, आवश्यक शारीरिक सहनशक्ति अपेक्षाकृत कम हो जाती है। मोरेसो, एक कांस्टेबल के रूप में, अपीलकर्ता की शारीरिक दक्षता की आवश्यकता उच्च पदों पर पदोन्नत होने के बाद की आवश्यकता से बहुत अधिक है। इस प्रकार, अपीलकर्ता का यह तर्क है कि जब प्रतिवादियों

ने उसे कांस्टेबल के काम के लिए फिट पाया है, जिसके लिए अधिक शारीरिक सहनशक्ति की आवश्यकता होती है, तो यह समझना मुश्किल है कि हेड कांस्टेबल के पदोन्नति पद के लिए उसकी किस क्षमता की कमी होगी, जिसके लिए सभी परिस्थितियों में कांस्टेबल की तुलना में कम शारीरिक सहनशक्ति की आवश्यकता होती है।

(21) अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि अनुमोदित सूची से अपीलकर्ता का नाम हटाना उसके मौलिक और नागरिक अधिकारों का प्रत्यावर्तन और उल्लंघन है और जो अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना नहीं किया जा सकता था, हालांकि, प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ता का नाम अनुमोदित सूची से हटाने से पहले उसकी पदोन्नति को रद्द करने के बराबर है, अपीलकर्ता को कभी भी किसी भी प्रकार का कोई नोटिस नहीं दिया गया था, हालांकि उसे 26.02.2013 के आदेश के तहत नियमित रूप से पदोन्नत किया गया था।

(22) अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि यह प्रतिवादियों का एक स्वीकृत मामला है कि अपीलकर्ता को सभी पहलुओं में फिट पाया गया था और उसे हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति दी गई थी और उसकी नई तैनाती के स्थान पर शामिल होने के बाद ही, उसे एचआईवी पॉजिटिव के रूप में निदान किया गया था। उनके अनुसार, हेड कांस्टेबल (जनरल इयूटी) के पद पर अपीलकर्ता की पदोन्नति, पदोन्नति आदेश जारी करने से पहले उसके काम, आचरण और चिकित्सा

स्थिति के मूल्यांकन के आधार पर दी गई थी और इस प्रकार, उसे रद्द नहीं किया जा सकता है।

(23) इस प्रकार, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि निर्णय और आदेश पारित करते समय एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय मामले के पूर्वोक्त पहलुओं को ध्यान में नहीं रखा है, इसलिए, वह प्रार्थना करता है कि प्रस्तुत विशेष अपील को न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने की अनुमति दी जाए।

(24) दूसरी ओर, भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता की उपरोक्त प्रस्तुतियों का विरोध किया है और तर्क दिया है कि सी.आर.पी.एफ. में कांस्टेबल (सामान्य इयूटी) के पद से हेड कांस्टेबल (सामान्य इयूटी) के पद पर पदोन्नति के लिए आवश्यक पात्रता शर्त यह है कि व्यक्ति को शापीईआई की चिकित्सा श्रेणी में होना चाहिए। उनके अनुसार, प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ता श्रेणी-2 की चिकित्सा श्रेणी में आता है और इस तरह अपीलकर्ता के पास हेड कांस्टेबल (सामान्य इयूटी) के पद पर पदोन्नति की अपेक्षित पात्रता का अभाव है। इसलिए, एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को सही तरीके से खारिज किया है।

(25) भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि सी.आर.पी.एफ. मैनुअल के खंड-11.2 के पैरा-6 में अनुमोदित सूची की समीक्षा का प्रावधान है जो वार्षिक समीक्षा का प्रावधान करता है और

सक्षम प्राधिकारी द्वारा दक्षता के अपेक्षित मानकों को बनाए रखने में विफल रहने वाले व्यक्तियों के नामों को अनुमोदित सूची से हटाया जा सकता है। उनके अनुसार, इस तरह का निष्कासन अनुमोदित सूची के लिए पुनर्विचार किए जाने के लिए व्यक्ति के लिए एक स्थायी रोक नहीं होना था, बशर्ते कि हटाने की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति से पहले कोई कार्रवाई शुरू नहीं की जानी है। वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, सी.आर.पी.एफ. मैनुअल के खंड 11.5 के अनुसार कांस्टेबल के पद से हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के लिए विचार किए जाने की अनिवार्य शर्तों में से एक यह है कि भर्ती चिकित्सा श्रेणी शेष-1 में होनी चाहिए, लेकिन प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ता इस अनिवार्य पात्रता शर्त को पूरा नहीं करता है। इसलिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा उनकी पदोन्नति से इनकार किया गया था।

(26) एसजीटी चमन लाल बनाम भारत संघ और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए: (2018) 14 एस.सी.सी. 455, लेफ्टिनेंट कर्नल नितिशा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य: (2021) 15 एस.सी.सी. 125, भारत संघ बनाम देवेंद्र कुमार पंत और अन्य: (2009) 14 एस.सी.सी. 546, और ए.आई.आर. कमोडोर नवीन जैन बनाम भारत संघ और अन्य: 2019 (10) एस.सी.सी. 34, भारत संघ के वरिष्ठ अधिवक्ता ने दृढ़ता से तर्क दिया है कि एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश के माध्यम से रिट याचिका को सही तरीके से खारिज कर दिया है और प्रार्थना की है कि आक्षेपित आदेश इस

न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप के योग्य नहीं है।

C. प्रासंगिक अधिनियम/नियम/स्थायी आदेश

(27) हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर अपना विचारशील विचार किया है और इस विशेष अपील पर इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड का भी अध्ययन किया है।

(28) आगे बढ़ने से पहले, कानून के कुछ संगत प्रावधानों, विशेषकर वे प्रावधानों, जो इस विषय पर लागू हैं, हेड कांस्टेबल (सामान्य ड्यूटी) के पद पर पदोन्नति चाहने वाले सी.आर.पी.एफ. के भर्ती के अधिकार से संबंधित प्रावधानों पर ध्यान देना उपयुक्त होगा।

C.1. केंद्रीय पुलिस बल अधिनियम, 1949
और केंद्रीय पुलिस बल नियम, 1955

(29) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल में भर्ती केन्द्रीय पुलिस बल अधिनियम, 1949 (जिसे इसके बाद सी.आर.पी.एफ. अधिनियम, 1949 कहा गया है) द्वारा शासित किया जाता है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ सशस्त्र केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के गठन और विनियमन का प्रावधान है। सी.आर.पी.एफ. अधिनियम, 1949 की धारा 3 में बल के गठन का प्रावधान है, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"3. बल का गठन-(1) वहाँ केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुरक्षित एक सशस्त्र बल बना रहेगा और जिसे केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल कहा जाता है।

(2) बल का गठन ऐसी रीति से किया जाएगा और बल के सदस्य ऐसा वेतन, पेंशन और अन्य पारिश्रमिक प्राप्त करेंगे, जो विहित किया जाए।

(30) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 की धारा 8 में बल का अधीक्षण, नियंत्रण और प्रशासन केन्द्र सरकार में निहित है। सी.आर.पी.एफ. अधिनियम, 1949 की धारा 18 नियम बनाने की शक्ति से संबंधित है, जो निम्नानुसार है: -

(1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिये उपबन्ध कर सकेंगे, अर्थात:-

(क) बल के सदस्यों के वर्गों और श्रेणियों और उनके वेतन, पेंशन और अन्य पारिश्रमिक तथा बल में उनकी सेवा की शर्तों का विनियमन करना;

(ख) इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन किन्हीं कृत्यों का प्रयोग करने के लिए

प्राधिकृत अधिकारियों की शक्तियों और कर्तव्यों का विनियमन करना;

(ग) बल के सदस्यों के लिए सेवा की अवधि नियत करना;

(घ) धारा 11 के तहत मामूली दंड के पुरस्कार को विनियमित करना, और उस धारा के तहत आदेशों से अपील या संशोधन, या उस धारा के तहत लगाए गए जुर्माने की छूट, और धारा 13 के तहत की गई कटौती की छूट;

(ङ) हथियारों और गोलाबारूद की हानि या चोरी की दशा में बल के सदस्यों के अनेक या सामूहिक दायित्व को विनियमित करना;

(च) इस अधिनियम के अधीन उद्भूत दांडिक मामलों के निपटान के लिए और उस कारागृह को विनिर्दिष्ट करने के लिए जिसमें ऐसे किसी मामले में सिद्धदोष व्यक्ति को रखा जा सकेगा।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, सत्र में रहते हुए, तीस दिन की कुल अवधि के लिए, जो एक सत्र में या दो या अधिक क्रमिक सत्रों में समाविष्ट हो सकेगा, और यदि सत्र के ठीक बाद या पूर्वोक्त क्रमिक सत्रों की समाप्ति से पहले, दोनों सदन नियम में कोई संशोधन करने में सहमत हैं, या दोनों सदन सहमत हैं कि नियम नहीं बनाया जाना चाहिए, इसके बाद नियम केवल ऐसे संशोधित रूप में प्रभावी होगा या कोई प्रभाव नहीं होगा,

जैसा भी मामला हो; इसलिए, हालांकि, ऐसा कोई भी संशोधन या विलोपन उस नियम के तहत पहले किए गए किसी भी काम की वैधता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।

(31) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 की उपर्युक्त धारा 18 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियमावली, 1955 (जिसे इसके बाद केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियमावली, 1955 कहा गया है) नामक नियम बनाए हैं। सी.आर.पी.एफ. नियम, 1955 के अध्याय IX में बल के सदस्य की पदोन्नति से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। सी.आर.पी.एफ. नियम, 1955 के नियम 55 में प्रावधान है कि सभी पदोन्नतियां योग्यता के आधार पर शासित होंगी और अन्य चीजें समान होने पर वरिष्ठता को पदोन्नति के लिए गिना जाएगा। सी.आर.पी.एफ. नियम, 1955 के नियम 55 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:

"अध्याय - IX

पदोन्नति के लिए नियम

खंड- I सामान्य सिद्धांत

55. मेरिट: (क) सभी पदोन्नति योग्यता द्वारा शासित होगी। समान वरिष्ठता होने के कारण अन्य बातों को पदोन्नति के लिए गिना जाएगा। पदोन्नति के लिए, बल के एक सदस्य को कमांडेंट, सहायक कमांडेंट या कंपनी कमांडर द्वारा योग्य और अनुशंसित होना चाहिए, जैसा भी मामला हो।

(ख) अपवादिक कारणों से कमांडेंट किसी अयोग्य हैड कांस्टेबल को उप-निरीक्षक के पद पर या किसी अयोग्य उप-निरीक्षक को सूबेदार (निरीक्षक) के पद पर क्रमशः उप महानिरीक्षक या महानिरीक्षक के पूर्व अनुमोदन से पदोन्नत कर सकता है, बशर्ते कि किसी भी मामले में ऐसी पदोन्नतियां ऐसे रैंकों में स्वीकृत संख्या के दस प्रतिशत से अधिक न हों।

(32) नियमावली, 1955 के नियम 61 में अनुमोदित अभ्यर्थियों की सूची रखने का प्रावधान है। नियमावली, 1955 के नियम 62 में अनुमोदित अभ्यर्थियों की सूची तैयार करने की प्रक्रिया का प्रावधान है। नियम, 1955 के नियम 61 और 62 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"61. अनुमोदित अभ्यर्थियों की सूचियों का अनुरक्षण: नियम 62 के उपनियम (ख) के अधीन अनुरक्षित किये जाने के लिए अपेक्षित विभिन्न रैंकों में पदोन्नति के लिए अनुमोदित अभ्यर्थियों की सूचियाँ कमांडेंट के कार्यालय में रखी जायेंगी और नियम 55 के उपबन्धों के अनुसार इन सूचियों से सामान्यतः पदोन्नतियाँ की जायेंगी।

62. अनुमोदित उम्मीदवारों की सूची तैयार करना: (ए) कमांडेंट विशेष कारणों से, किसी भी योग्य उम्मीदवार को अगले उच्च रैंक पर पदोन्नत कर सकता है जिसका नाम उपयुक्त अनुमोदित सूची में नहीं है। सूबेदारों (निरीक्षकों) और उप-निरीक्षकों के मामले

में क्रमशः महानिरीक्षक और उप महानिरीक्षक की पूर्व स्वीकृति प्राप्त की जाएगी।

(ख) पदोन्नति पूरे बल में सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में से की जाएगी और इस उद्देश्य के लिए कमांडेंट विभिन्न रैंकों में पदोन्नति के लिए अलग-अलग सूचियां रखेगा जैसा कि नीचे दिखाया गया है: -

(1) सूची 'ए' जिसमें लांस नायक के रैंक में पदोन्नति के लिए उपयुक्त कांस्टेबलों के नाम शामिल हैं।

(2) सूची 'बी' जिसमें नायक के रैंक में पदोन्नति के लिए उपयुक्त लांस नायकों के नाम शामिल हैं।

(3) सूची ग जिसमें हेड कांस्टेबल के रैंक में पदोन्नति के लिए उपयुक्त नायकों के नाम शामिल हैं।

(4) सूची घ जिसमें उपनिरीक्षकों के रैंक में पदोन्नति के लिए उपयुक्त हेड कांस्टेबलों के नाम दिए गए हैं।

(5) सूबेदार (निरीक्षक) के रैंक में पदोन्नति के लिए उपयुक्त उपनिरीक्षकों के नामों वाली सूची 'ई'।

(ग) सामान्यतया सूची क में केवल उन्हीं व्यक्तियों को शामिल करने पर विचार किया जाएगा जिन्होंने ड्रिल अनुदेशकों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम

उत्तीर्ण किया है और हिन्दी, रोमन और हिन्दी संख्यात्मक पढ़ने और लिखने में सक्षम होने के लिए पर्याप्त रूप से शिक्षित हैं। हेड कांस्टेबल के रैंक से ऊपर पदोन्नति के लिए उच्च शैक्षणिक योग्यता आवश्यक है, लेकिन सामान्य मानक कांस्टेबल से लांस नायक के पद पर पदोन्नति के लिए तृतीय श्रेणी और नायक से हेड कांस्टेबल के लिए द्वितीय श्रेणी का होगा। पदोन्नति के लिए चुने गए व्यक्ति के पास एक अधिकारी बनाने की पहल, शक्ति और नेतृत्व होना चाहिए। नायकों और उससे ऊपर के उम्मीदवारों की पदोन्नति सूची में शामिल लोगों को कम से कम एक वर्ष के लिए परीक्षा पर रखा जाएगा और सूची में शामिल जो अपेक्षित मानक को पूरा नहीं करते हैं, उनके नाम समय-समय पर हटा दिए जाएंगे। सूची ए, बी और सी के नामों की प्रविष्टि कमांडेंट द्वारा की जाएगी और सूची डी और ई की प्रविष्टि क्रमशः पुलिस उप महानिरीक्षक और पुलिस महानिरीक्षक के अनुमोदन से कमांडेंट द्वारा की जाएगी।

(33) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियमावली, 1955 के नियम 67 में हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के लिए अपेक्षित अर्हता निर्धारित की गई है, जो निम्नानुसार है:-

"67. हेड कांस्टेबल: हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति कमांडेंट द्वारा कंपनी कमांडरों की सिफारिशों पर नियम 55 के

सामान्य प्रावधानों के अधीन नियम 62 में निर्दिष्ट सूची 'सी' से वरिष्ठता के अनुसार की जाएगी। इस तरह के पदोन्नति के लिए अपेक्षित योग्यता वरिष्ठ कैडर पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करना और द्वितीय श्रेणी के शिक्षा प्रमाणपत्र या मैट्रिकुलेशन या समकक्ष या उच्चतर शैक्षणिक योग्यता प्रमाण पत्र (जीएसआर 527 दिनांक 6.6.1981) का कब्जा है।

(34) सी.आर.पी.एफ. नियम, 1955 के उपर्युक्त नियम 67 के अवलोकन से पता चलता है कि हेड कांस्टेबल के रैंक में पदोन्नति कमांडेंट द्वारा कंपनी कमांडरों की सिफारिशों पर नियम 55 के सामान्य प्रावधानों के अध्याधीन नियम 62 में उल्लिखित सूची ग से वरिष्ठता के अनुसार की जाएगी। इसके अलावा, हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के लिए दो चीजें अनिवार्य की गई हैं, पहला सीनियर कैडर कोर्स पास करना और दूसरा द्वितीय श्रेणी का शिक्षा प्रमाणपत्र या मैट्रिक या समकक्ष या उच्चतर शैक्षणिक योग्यता प्रमाण पत्र होना।

C.2. स्थापना मैनुअल सी.आर.पी.एफ., 1976

(35) स्थापना मैनुअल सी.आर.पी.एफ., 1976 (11.5.2022 तक संशोधित) भारत सरकार के प्राधिकरण, गृह मंत्रालय के तहत प्रकाशित किया गया था, दिनांक 21.04.1976 और बाद में सरकार और महानिदेशक, सी.आर.पी.एफ. द्वारा समय-समय पर जारी किए गए कार्यकारी आदेश। कांस्टेबल से हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति का मानदंड सी.आर.पी.एफ.

की स्थापना नियमावली, 1976 के पैरा-11.5 में निर्धारित किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

"11.5 एपीपीडी सूची- 'ए' (जीडी) सीटी से एचसी में पदोन्नति के लिए।

निम्नलिखित शर्तों को पूरा करने वाले सीटी एपीडी सूची- 'ए' / जीडी में शामिल करने के लिए विचार किए जाने के लिए पात्र होंगे: -

i) ड्यूटी बटालियन में तीन साल सहित कांस्टेबल के रूप में न्यूनतम पांच साल की नियमित सेवा पूरी करनी चाहिए।

ii) सेक्शन कमांडर कोर्स (एस.सी.सी.)/हेड कांस्टेबल प्रमोशनल कोर्स (एच.सी.पी.सी.) या आवश्यकता के अनुसार डीजी, सी.आर.पी.एफ. द्वारा निर्धारित कोई अन्य कोर्स क्वालिफाइड होना चाहिए।

iii) मेडिकल श्रेणी शेष-1 में होना चाहिए।

iv) पिछले पांच वर्षों में गोपनीय कार्ड में प्रतिकूल रिपोर्ट नहीं होनी चाहिए।

v) पिछले पांच वर्षों में बड़ी सजा नहीं होनी चाहिए।

vi) सेवा का अच्छा रिकॉर्ड होना चाहिए।

कांस्टेबल जो समय-समय पर महानिदेशालय द्वारा अधिसूचित एक

विशेष वरिष्ठता तक उपरोक्त शर्तों को पूरा करते हैं और इस विषय पर स्थायी आदेशों के अनुसार चयन बोर्ड द्वारा फिट पाए जाते हैं, उन्हें जीसी/प्रिंसिपल/कमांडेंट के डीआईजीपी द्वारा तैयार की गई अनुमोदित सूची-ए (जीडी) पर लाया जाएगा और उनके विवरण रैंज/सेक्टर/जोन अधिकारियों पर विधिवत समेकित डीजीई, स्थापित शाखा को भेजे जाएंगे। बल स्तर की वरिष्ठता पर सूचियों की व्यवस्था करने के बाद, महानिदेशालय महानिदेशालय इसे सभी संबंधितों की सूचना के लिए परिचालित करेगा और रिक्ति की उपलब्धता के अनुसार पदोन्नति पर उन्हें जारी किया जाएगा।

टिप्पणी -1: जहां कनिष्ठ जिन्होंने अपनी अर्हक अथवा पात्रता सेवा पूरी कर ली है, पदोन्नति के लिए विचार किया जा रहा है, उनके वरिष्ठों पर भी विचार किया जाएगा बशर्ते कि वे ऐसी अर्हक अथवा पात्रता सेवा के आधे से अधिक अथवा दो वर्ष, इनमें से जो भी कम हो, अपेक्षित अर्हता अथवा पात्रता सेवा से कम न हों और जिन्होंने ऐसी अर्हक पात्रता पहले ही पूरी कर चुके कनिष्ठों के साथ अगली उच्चतर ग्रेड में पदोन्नति के लिए अपनी परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूरी कर ली हो सेवा।

टिप्पणी-2: पदोन्नति के लिए न्यूनतम अर्हक सेवा की गणना करने के प्रयोजन के लिए, 1 जनवरी, 2006 से पहले किसी अधिकारी द्वारा नियमित

आधार पर प्रदान की गई सेवा, जिस तारीख से छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर संशोधित वेतन संरचना को बढ़ाया गया है, आयोग की सिफारिशों के आधार पर विस्तारित वेतन के तदनुसूची वेतनमान और ग्रेड वेतन में प्रदान की गई सेवा माना जाएगा।

टिप्पणी -3 उन हेड कांस्टेबलों के मामलों में फील्ड सेवा की गुणात्मक आवश्यकता को माफ कर दिया गया माना जाएगा जो भारत पुलिस खेलों में बल का प्रतिनिधित्व करके केंद्रीय खेलों या खेलों में सक्रिय रूप से लगे हुए हैं या जो कम से कम राष्ट्रीय स्तर पर भाग लेने वाली टीमों के कोच या प्रशिक्षक के रूप में कार्य करते हैं या प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण स्टाफ तैनात करते हैं।

C.3. स्थायी आदेश

(36) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियम, 1955 के अध्याय II के अंतर्गत नियम 4 केन्द्र सरकार और बल के कतिपय अधिकारियों की शक्तियों से संबंधित है, जो निम्नानुसार है:-

"4. केन्द्रीय सरकार और बल के कुछ अधिकारियों की शक्तियाँ:

(क) उन सभी मामलों में, जिनमें इन नियमों का विशिष्टतया उपबंध नहीं किया गया है, केन्द्र सरकार अथवा महानिदेशक द्वारा अथवा अपर महानिदेशक अथवा महानिरीक्षक द्वारा

उनके निदेशों के अधीन समय-समय पर जारी अनुदेश बल के कार्यकरण को विनियमित करेंगे। (GSR-784 दिनांक 8/10/88 के तहत प्रतिस्थापित)

(ख) दिनांक 8-10-88 के साकानि 784

(ग) दिनांक 8-10-88 के साकानि 784 द्वारा लोप किया गया;

(37) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियमावली, 1955 की धारा 4 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों के अनुसरण में सक्षम प्राधिकारी द्वारा समय-समय पर स्थायी आदेश जारी किए गए हैं।

(38) महानिदेशक, सी.आर.पी.एफ. ने एनजी (कार्यकारी, व्यापार और सिग्नल सहित तकनीकी) कर्मियों की पदोन्नति को नियंत्रित करने के लिए पूर्व के स्थायी आदेश संख्या-4/79, 3/95 और 1/96 (बाद के सभी परिशिष्टों/संशोधनों सहित) के अधिक्रमण में स्थायी आदेश संख्या-6/99 जारी किया था। स्थायी आदेश संख्या-6/99 के खंड ए में पदोन्नति के लिए पात्रता शर्तें निर्धारित की गई हैं। खंड (ए) का उपखंड (I) कांस्टेबल के पद से हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति से संबंधित है, जो निम्नानुसार पढ़ता है: -

"(ए) (आई) कांस्टेबल से हेड कांस्टेबल :-

क) भर्ती की तारीख से सीटी के रूप में न्यूनतम 8 साल की सेवा पूरी करनी चाहिए।

ख) जूनियर कैडर कोर्स और सेक्शन कमांडर कोर्स में अर्हता प्राप्त होनी चाहिए।

ग) पिछले पांच वर्षों में गोपनीय कार्ड में प्रतिकूल रिपोर्ट नहीं होनी चाहिए।

घ) पिछले पांच वर्षों में बड़ी सजा नहीं होनी चाहिए।

ई) सेवा रिकॉर्ड आम तौर पर अच्छा होना चाहिए।

(39) पदोन्नति पाठ्यक्रमों के लिए संक्षिप्त विवरण और पात्रता स्थायी आदेश संख्या-06/1999 के खंड बी में निर्धारित की गई है। स्थायी आदेश संख्या-06/1999 के खंड बी का उप-खंड (I) सेक्शन कमांडर कोर्स (एस.सी.सी.) के पदोन्नति पाठ्यक्रम से संबंधित है, जिसे कांस्टेबल के रैंक से हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के लिए पात्र होने के लिए बल के एक सदस्य द्वारा अर्हता प्राप्त करना आवश्यक है। स्थायी आदेश संख्या-06/1999 के खंड (बी) के उपखंड (आई) के तहत के रूप में पढ़ता है: -

"B. संक्षिप्त विवरण और प्रचार पाठ्यक्रमों के लिए पात्रता

I. कांस्टेबल से हेड कांस्टेबल तक

i) भर्ती की तारीख से कांस्टेबल के रूप में सात साल की सेवा पूरी करनी चाहिए।

ii) जेसीसी में उत्तीर्ण होना चाहिए;

(iii) कांस्टेबलों को एस.सी.सी. के लिए उनकी वरिष्ठता के अनुसार सख्ती से विस्तृत किया जाएगा।

जा सके। भारत सरकार के परामर्श से नीति में निम्नलिखित बिन्दुओं को भी शामिल किया जा सकता है -

iv) प्रशिक्षण संस्थान में 6 सप्ताह की अवधि का एस.सी.सी. आयोजित किया जाएगा और यदि आवश्यक हो तो प्रशिक्षण निदेशालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार आवश्यकता के अनुसार जोन / सेक्टर / रैंज द्वारा अवधारित किया जाएगा।

एक- सभी कार्यों में प्रभावित कर्मियों की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देना।

दो- तैनाती/पदोन्नति/सामाजिक गतिविधियों में कोई भेदभाव नहीं।

v) नोट: तीन से अधिक मौके स्वीकार्य होंगे।

ग- पीएलडब्ल्यूएचए के लिए स्व-सहायता समूह का सृजन।

(40) महानिदेशक सी.आर.पी.एफ. ने 03.09.2006 को एक स्थायी आदेश संख्या-06/2006 भी जारी किया है, जिसमें बल के सदस्यों के जागरूकता, रोकथाम, पहचान, उपचार और पुनर्वास के लिए एचआईवी/एड्स पर कार्य योजना निर्धारित की गई है। उपरोक्त स्थायी आदेश संख्या-06/2006 में 'एचआईवी/एड्स मामलों का प्रबंधन' शीर्षक के तहत, यह निम्नानुसार कहा गया है: "चूंकि सी.आर.पी.एफ. एक सशस्त्र बल है और ज्यादातर देश भर में अशांत क्षेत्रों में तैनात है। इसलिए, कर्मियों की शारीरिक फिटनेस के उच्च मानक को बनाए रखने की आवश्यकता है। एचआईवी संक्रमण एक ऐसी समस्या/रोग है जो लंबे समय में कई चरणों में व्यक्ति की शारीरिक सहनशक्ति को कम करता है। इसलिए, एचआईवी संक्रमण के संबंध में स्थायी आदेश-1/2003 (एस/ओ-1/2003 समीक्षाधीन है) में संशोधन करने की आवश्यकता है ताकि चिकित्सा वर्गीकरण और अमान्यकरण के लिए नई शेष प्रणाली शुरू की

घ- देखभाल और सहायता के लिए पर्यावरण को सक्षम करना।

ई- परिवार के सदस्यों और अन्य लोगों द्वारा देखभाल।

(41) इसके बाद, महानिदेशक सी.आर.पी.एफ. ने स्थायी आदेश संख्या-04/2008: केंद्रीय अर्धसैनिक बलों में स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली- स्थायी आदेश संख्या-1/2003 के अधिक्रमण में 15.12.2008 को सीपीएमएफ में कर्मियों की चिकित्सा परीक्षा और वर्गीकरण के लिए निर्देश जारी किए हैं। स्थायी आदेश 04/2008 में सी.आर.पी.एफ. में वार्षिक चिकित्सा जांच करने और योद्धक अधिकारियों और अन्य कार्मिकों के वर्गीकरण के लिए अनुदेश/प्रक्रिया निर्धारित की गई है। खण्ड-4 में वार्षिक चिकित्सा जांच का उल्लेख है। स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के उप-खंड 4.10 वार्षिक चिकित्सा परीक्षा (एएमई) के लिए प्रक्रिया निर्धारित करता है, जो निम्नानुसार है: -

"4.10 एएमईए के लिए प्रक्रिया: एएमई से गुजरने वाले व्यक्तिगत अधिकारी/कर्मचारी एएमई के लिए रिपोर्ट करते समय विधिवत प्रमाणित प्रोफार्मा 3 में अपने मूल स्वास्थ्य कार्ड और पिछले वर्ष के एएमई की उपलब्धता सुनिश्चित करेंगे। कोई भी नया स्वास्थ्य कार्ड तब तक नहीं खोला जाएगा जब तक कि सीओआई अवधारित नहीं किया गया हो और संबंधित नियंत्रण अधिकारी की संतुष्टि के लिए पिछले स्वास्थ्य कार्ड के खोने की जिम्मेदारी तय न की गई हो।

ब - एएमई के पूरा होने पर चिकित्सा अधिकारी बोर्ड चिकित्सा वर्गीकरण का समर्थन करेगा। एमओ बोर्ड रिकॉर्ड के लिए यूनिट/अस्पताल स्तर पर रखे जाने वाले रजिस्टर में निष्कर्षों/टिप्पणियों को भी दर्ज करेगा।

ग. जब कभी कोई व्यक्ति एएमई के समय शेप सिस्टम के किसी भी कारक में पहले से ही अस्थायी कम चिकित्सा श्रेणी (एल.एम.सी.) में होता है और उसका पुनर्वर्गीकरण मेडिकल बोर्ड अगले 3 महीनों के भीतर होता है, तो एएमई उपयुक्त रूप से उन्नत होगा ताकि दोनों एक साथ किए जा सकें। यदि अंतर 6 महीने या उससे अधिक है, तो दोनों अलग-अलग आयोजित किए जाएंगे।

घ. एएमई में चिकित्सा श्रेणी एक वर्ष के लिए वैध रहेगी जब तक कि उसकी चिकित्सा श्रेणी को बाद की बीमारियों या चोट के कारणों से बदल नहीं दिया गया है, उस मामले में, परिवर्तित ग्रेड अगले एएमई तक प्रबल होगा

या अस्थायी एल.एम.सी. के लिए पहले सिफारिश किए जाने पर पुनर्वर्गीकरण किया जाएगा।

ई- दिल्ली में अन्य सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के साथ प्रतिनियुक्ति पर अधिकारियों का एएमई दिल्ली में उनके संबंधित बल सीएच/स्टेशन अस्पतालों में किया जाएगा। अन्य, जो दिल्ली से दूर हैं, वे किसी भी सीपीएफ के निकटतम संबंधित सीएच में इसे करवाएंगे, जिसके लिए वे अपने प्रशासनिक अधिकारियों के माध्यम से अग्रिम रूप से आवेदन करेंगे।

च - पिछले वर्ष की एएमई रिपोर्ट, जैसा भी मामला हो, एएमए/मेडिकल बोर्ड को उपलब्ध कराई जाएगी, यूनिट द्वारा पिछली यूनिट से इस पर जोर देते समय, बल के सदस्य को ट्रांसफर / अटैचमेंट पर यूनिट में प्राप्त किया जाता है। यदि रिपोर्ट प्राप्त नहीं होती है तो इकाई एएमई से पहले अग्रिम रूप से इसकी मांग करेगी।

छ- शरीर के वजन की जांच परिशिष्ट-ई/एफ में दिए गए चार्ट के अनुसार की जाएगी। अधिक वजन पाए जाने वालों का पैन-III 23.5 (ई) में दिशानिर्देशों के अनुसार निपटान किया जाएगा।

(42) उपर्युक्त स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के खंड 4.13 में कहा गया है कि शेप-I योद्धा कार्मिकों की पदोन्नति के लिए आवश्यक शर्त है और ऐसे कार्मिकों के मामले में जिनकी बीमारी स्थायी प्रकृति की है और जो शेप-I नहीं हैं, उन्हें पदोन्नति के लिए अयोग्य घोषित

किया जाएगा, भले ही वे अन्यथा शेष-1 प्राप्त कर लें। अस्थायी प्रकृति की बीमारी, डीपीसी उन्हें शेष-1 प्राप्त करने के बाद पदोन्नति विषय के लिए उपयुक्त के रूप में ग्रेड देगी। खंड 4.13 निम्नानुसार पढ़ता है:

उन्होंने कहा, "सीपीएमएफ में सभी समूहों/रैंकों/कैंडरों में सभी युद्धरत कर्मियों की पदोन्नति के लिए चिकित्सा श्रेणी आकार-1 एक अनिवार्य शर्त होगी। उन लोगों के मामले में जिनकी बीमारी स्थायी प्रकृति की है और जो शेष-1 नहीं हैं, उन्हें डीपीसी द्वारा पदोन्नति के लिए विचार किया जाएगा, लेकिन पदोन्नति के लिए अयोग्य घोषित किया जाएगा, भले ही वे पदोन्नति के लिए अन्यथा हों। उन कर्मियों के मामले में, जिनकी बीमारी अस्थायी प्रकृति की है, अन्यो के साथ-साथ पदोन्नति हेतु उनके मामलों पर विचार करने के बाद, यदि वे अन्यथा फिट हैं, तो डीपीसी उन्हें शेष-1 चिकित्सा श्रेणी प्राप्त करने के अध्यधीन पदोन्नति के लिए उपयुक्त के रूप में ग्रेड देगी। जैसे ही वे शेष-1 चिकित्सा श्रेणी पुन प्राप्त कर लेंगे, उन्हें डीपीसी की सिफारिशों के अनुसार पदोन्नत कर दिया जाएगा। लेकिन वे वापस मजदूरी के हकदार नहीं होंगे। हालांकि वे अपनी वरिष्ठता बरकरार रखेंगे।

(43) उपर्युक्त स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के भाग-II में निहित खंड-5 चिकित्सा वर्गीकरण की प्रक्रिया से संबंधित है। उपर्युक्त स्थायी आदेश के खंड 5.3 में बल के सदस्यों की उपयुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए निम्नानुसार कोड अक्षरों शेष के संदर्भ में वर्गीकरण सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं: -

"एस-साइकोलॉजिकल

H- श्रवण

A- उपांग

P- शारीरिक क्षमता

ई- नेत्र दृष्टि।

(44) उपर्युक्त स्थायी आदेश के खंड 54 में यह निर्धारित किया गया है कि बल के सदस्यों की कार्यात्मक क्षमताओं को वर्ष 1 से 5 के पैमाने में श्रेणीबद्ध किया जाएगा जो घटती कार्यात्मक प्रभावकारिता और बढ़ती नियोजनीयता सीमाओं को दर्शाता है। उपर्युक्त कारकों (शेष) के अनुसार उपर्युक्त प्रत्येक कार्यात्मक क्षमता और नियोजनीयता के संबंध में विस्तृत दिशानिर्देश उपर्युक्त स्थायी आदेश के भाग-IV में दिए गए हैं। इस समय, भाग-IV में निहित खंड 22.4 प्रासंगिक है, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"22.4. "पी" कारक (शारीरिक क्षमता)

यह कारक शारीरिक क्षमता, शक्ति, धीरज, गतिशीलता, चपलता और एक व्यक्ति के बारे में विवरण में वर्णन करने के लिए आच्छादित करेगा, जिसे चिकित्सा / शल्य चिकित्सा स्थितियों द्वारा प्रतिबंधित किया जा सकता है और जो अभिनेताओं के तहत आच्छादित नहीं किए जाते हैं।

संख्या त्मक ग्रेडिंग	कार्यात्मक क्षमता	रोजगार की सीमाएं	पी-3	सीमित शारीरिक क्षमता और सहनशक्ति के साथ बड़ी अक्षमता है।	अनुचित तनाव को शामिल नहीं करने वाले गतिहीन कर्तव्यों के लिए फिट। चिकित्सा द्वारा सलाह के अनुसार रोजगार क्षमता को प्रतिबंधित किया जा सकता है प्राधिकरण जैसे :- एक। वर्ष भर 75% उच्च आर्द्रता स्तर वाले स्थानों से बचने के लिए। जन्म। पास में विशेषज्ञ सेवाओं तक पहुंच प्राप्त करें। ग. पानी, आग या भारी मशीनरी के पास हथियारों की ड्राइविंग/हैंडलिंग से बचने के लिए। (घ) रेगिस्तानी/हिमा च्छादित क्षेत्रों
पी-1	पूर्ण कार्यात्मक क्षमता और शारीरिक सहनशक्ति है माइनर impairment पूरी तरह से नियंत्रण में है, लेकिन पूर्ण है शारीरिक सहनशक्ति	कहीं भी सभी कर्तव्यों के लिए फिट सभी कर्तव्यों के लिए फिट कहीं भी लेकिन के तहत चिकित्सा अवलोकन, कोई नहीं रोजगार प्रतिबंध।			
पी-2	मध्यम शारीरिक क्षमता और सहनशक्ति है। संवैधानिक चयापचय / संक्रामक रोग ऑपरेटिव प्रक्रियाओं से पीड़ित, लेकिन अब अच्छी तरह से स्थिर हो गया है।	गंभीर की आवश्यकता नहीं है कर्तव्यों के लिए फिट तनाव। उच्च ऊंचाई पर रोजगार में प्रतिबंध हो सकता है (पहाड़ी इलाकों और अत्यधिक ठंडे क्षेत्रों में 2,700 मीटर / 9,000 फीट से ऊपर)			

		आदि में कार्य की अधिकता को सीमित करना। च) होज़, काउंटर इंसर्जेंसी ऑपरेशंस आदि में सक्रिय भागीदारी को प्रतिबंधित करना (स्टाफ लॉजिस्टिक्स और संबद्ध सहायता कर्तव्यों को छोड़कर)
पी-4	अस्पताल में चिकित्सा आधार पर बीमार /	बल कर्तव्यों के लिए अस्थायी रूप से अयोग्य
पी-5	शारीरिक क्षमता और सहनशक्ति पर सकल सीमाएं	बल सेवा के लिए स्थायी रूप से अयोग्य

(45) पूर्वोक्त स्थायी आदेश का खंड 5.5 कार्यात्मक क्षमता पैमाने निर्धारित करता है, जो निम्नानुसार पढ़ता है: -

"5.5. कार्यात्मक क्षमता स्केल

1. कहीं भी सभी कर्तव्यों के लिए फिट
2. गंभीर शारीरिक/मानसिक तनाव से जुड़े कर्तव्यों में सीमाओं को छोड़कर सभी कर्तव्यों के लिए फिट। उन्हें दृष्टि और श्रवण की पूर्ण तीक्ष्णता की भी आवश्यकता होगी।

3. एस फैक्टर को छोड़कर, नियमित या गतिहीन कर्तव्यों के लिए फिट लेकिन रोजगार की सीमाएं हैं; (ii) भाग-IV में यथा विनिर्दिष्ट प्रत्येक कारक के सामने वर्गीकरण में यथा उल्लिखित कार्य-वार और भू-भाग-वार दोनों।

4. अस्पताल में भर्ती / बीमारी की छुट्टी के कारण बल में कर्तव्यों के लिए अस्थायी रूप से अयोग्य।

5. बल में किसी भी प्रकार के लिए सेवा के लिए स्थायी रूप से अयोग्य।

(46) उपर्युक्त स्थायी आदेश के खंड-6 में कहा गया है कि अस्थायी निम्न चिकित्सा श्रेणी के लिए निर्धारित समय पर पुनर्वर्गीकरण चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित होना अनिवार्य है और स्थायी निम्न चिकित्सा श्रेणी को दो वर्ष के बाद संशोधित किया जाना है। पूर्वोक्त स्थायी आदेश का खंड-6 निम्नानुसार है: -

"अस्थायी एल.एम.सी में रखे गए व्यक्तियों के लिए यह अनिवार्य है कि वे पुनर्वर्गीकरण मेडिकल बोर्ड के समक्ष निर्धारित समय पर उपस्थित हों, जैसा कि पिछली मेडिकल बोर्ड की कार्यवाही/चिकित्सा परीक्षा में दिया गया था। किसी भी अस्थायी एल.एम.सी. के मामले में कोई प्रारंभिक समयपूर्व समीक्षा की अनुमति नहीं दी जाएगी, चाहे अवधि कुछ भी हो। स्थायी एल.एम.सी. में, व्यक्ति की दो साल बाद समीक्षा की जाएगी। हालांकि प्रारंभिक समीक्षा का अनुरोध किया जा सकता है, एएमए प्रमाणित करता है कि व्यक्ति की

स्थिति में भौतिक रूप से सुधार हुआ है, साथ ही ठोस आधार पर एक तकनीकी रिपोर्ट भी है। यूनिट कमांडेंट द्वारा व्यक्ति के सामान्य प्रदर्शन को प्रमाणित करने की सिफारिश की जानी चाहिए और इसे शीघ्र समीक्षा या अन्यथा प्रदान करने के लिए निदेशक (चिकित्सा) को भेज दिया जाएगा।

(47) खण्ड-9 में कहा गया है कि कारक में अस्थायी वर्गीकरण अधिकतम 24 सप्ताह की अवधि के लिए अनुमेय होगा। यदि किसी व्यक्ति को अनुमेय अवधि से परे अवलोकन की आवश्यकता होती है, तो उसे 'एस' फैक्टर को छोड़कर स्थायी एल.एम.सी. में रखा जाएगा। परिशिष्ट-डी के अनुसार प्रोफार्मा में समीक्षा के लिए एक विशेषज्ञ द्वारा दी गई राय केवल तीन महीने की अवधि के लिए मान्य होगी।

(48) उपर्युक्त स्थायी आदेश के खंड-15 में निम्न चिकित्सा वर्गीकरण के संबंध में मेडिकल बोर्ड के निष्कर्षों के विरुद्ध अपील का प्रावधान है। उपर्युक्त स्थायी आदेश के खंड-16 और 17 में निम्न चिकित्सा श्रेणी में कर्मिकों का पुनर्वर्गीकरण निर्धारित किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

"15- एल.एम.सी. में कर्मियों का पुनर्वर्गीकरण

जब किसी को शेष-वन से कम चिकित्सा श्रेणी में रखा जाता है, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, तो उसके लिए समय पर पुनर्वर्गीकरण मेडिकल बोर्ड के समक्ष उपस्थित होना अनिवार्य है। इस बात पर

फिर से जोर दिया जाता है कि यह उस इकाई/प्रतिष्ठान की जिम्मेदारी है जिसमें अधिकारी इस अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए सेवा कर रहा है। यूनिट/कमांडेंट/ओसी द्वारा यह सुनिश्चित किया जाएगा कि यदि बोर्ड देय है तो उसे स्टेशन के बाहर अस्थायी रूप से ड्यूटी पर वार्षिक अवकाश/लंबी आकस्मिक छुट्टी पर नहीं भेजा जाएगा। एसओ और ओआरएस के मामले में संबंधित यूनिट/जीसी/कम्पोजिट अस्पताल के एमओ आईसी से और अधिकारियों के मामले में निदेशक (चिकित्सा) से पूर्व अनुमति प्राप्त करने के बाद ही उसे पाठ्यक्रम/अस्थायी ड्यूटी के लिए छोड़ा जा सकता है; मेडिकल बोर्ड को स्थगित करने या इसे उस स्टेशन को धारण करने के लिए पर्याप्त औचित्य के साथ कम से कम 2 सप्ताह पहले, जिस पर व्यक्ति लंबे समय तक अटैचमेंट ड्यूटी पर आगे बढ़ रहा है:

17. जब एएमई की अवधि के दौरान कोई पुनर्वर्गीकरण मेडिकल बोर्ड/परीक्षा देय होती है, तो व्यक्ति पहले पुनर्वर्गीकरण से गुजरेगा और बाद में अवधारित होने पर एएमई में ताजा चिकित्सा श्रेणी परिलक्षित होगी। जब एएमई पुनर्वर्गीकरण से पहले गिरता है तो दोनों को एक दूसरे से स्वतंत्र रखा जाएगा और किसी भी परिस्थिति में, पुनर्वर्गीकरण मेडिकल बोर्ड की तारीख बदल दी जाएगी। स्थायी एल.एम.सी. बोर्ड के मामले में, इसे पहले अवधारित करने के लिए 3 महीने तक उसके बाद एएमई द्वारा, प्रीपोन किया जाना है।

(49) खंड 22.5 (जी) एचआईवी/एड्स मामलों से संबंधित है, जो निम्नानुसार पढ़ता है: -

"ऐसे व्यक्ति जो केवल एचआईवी पॉजिटिव हैं, लेकिन स्पर्शोन्मुख हैं, उन्हें पी-2 वर्गीकृत किया जाएगा और समय-समय पर निगरानी की जानी आवश्यक होगी। जो लोग एचआईवी पॉजिटिव हैं और अवसरवादी संक्रमण (एड्स रोग) के साथ या बिना रोगसूचक हैं, उनकी शारीरिक / चिकित्सा स्थिति पर मूल्यांकन किया जाएगा और निरंतर एआरटीवी की सुविधा के लिए एम्बुलेटरी होने पर पी-3 स्थायी में रखा जाएगा, बशर्ते कि वे प्रबंधन योजना के साथ पूरी तरह से सहयोग करें। यदि विकलांगता प्रतिशत 50% से अधिक हो जाता है, तो व्यक्ति को पी-5 में रखा जाएगा एचआईवी पॉजिटिव कर्मियों के लिए चिकित्सा वर्गीकरण नीचे दिए गए अनुसार किया जाएगा:

पी -1	एचआईवी पॉजिटिव स्पर्शोन्मुख एआरटी सीडी 4 पर नहीं, सीडी 8 सामान्य गणना अन्य पैरामीटर जैसे वायरल लोड सामान्य	कहीं भी सभी कर्तव्यों के लिए फिट
पी -2	एचआईवी पॉजिटिव वजन घटाने से अधिक 10% CD4 (200 सेल्स/माइक्रोलाइट ऊपर) CD8, सामान्य सीमा के भीतर गणना	कहीं भी सभी कर्तव्यों के लिए फिट (ख) ऐसे कठिन और एकान्त स्थानों पर

	करें कुल लिम्फोसाइट काउंट 1200/mm ³ से ऊपर माइनर म्यूकोक्यूटेनियस मैनिफेशन/एआरटी के साथ या उसके बिना मामूली संक्रमण	जहां एआरटी सुविधाएं उपलब्ध हैं, अधिमानत वहां पर स्थित है।
पी -3	एचआईवी पॉजिटिव वजन घटाने से अधिक 10% सीडी 4 गिनती 200 से कम कोशिकाओं/माइक्रोलाइट वायरल लोड 50, 000 प्रतियों से अधिक अस्पष्टीकृत पुरानी, 1 महीने से अधिक दस्त/बुखार अवसरवादी संक्रमण:- (1) पल्मोनरी टीबी (2) ओरल थ्रश (3) हरपीज ज़ोस्टर 1 महीने से अधिक (4) एआरटी पर	केवल गतिहीन कर्तव्यों के लिए फिट और केवल स्थानों पर अग्रिम चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हैं।

	ल्यूकोप्लाकिया आदि	
पी -4	एचआईवी से संबंधित बीमारियों/एड्स के कारण अस्पताल में भर्ती होना/छुट्टी	बल कर्तव्यों के लिए अस्थायी अयोग्य
पी -5	एआरटी के प्रति असंतुष्ट प्रतिक्रिया, (सीडी 4 एआरटी के साथ 200 सेल्स/माइक्रोलीटर से कम गिनती) एचआईवी वेस्टिंग सिंड्रोम, न्यूरोलॉजिकल/साइकिया ट्रिक समस्याओं को अक्षम करना प्रसारित तपेदिक खराब शारीरिक सहनशक्ति एड्स से जुड़ी विकृतियां कार्यात्मक विकलांगता 50% से अधिक	किसी भी प्रकार की सेवा के लिए स्थायी रूप से अनुपयुक्त, अमान्यकर ण।

"(ए) कांस्टेबल (जीडी / बग / पुरुष / पीटीआर)
हेड कांस्टेबल को: -

क) नियुक्ति की तारीख से कांस्टेबल (जीडी /
बग / माली / पेंटर) के रूप में न्यूनतम 3
साल की सेवा पूरी करनी चाहिए, जिसमें ड्यूटी
बीएन में तीन साल की सेवा शामिल है।

ख) योग्य अनुभाग कमांडर कोर्स या हेड
कांस्टेबल प्रमोशनल कोर्स (एस.सी.सी. या
एच.सी.पी.सी.) होना चाहिए।

ग) सेवा रिकार्ड अच्छा होना चाहिए अर्थात्
पिछले पांच वर्षों में गोपनीय कार्ड (एपीएआर)
में बड़ी सजा और प्रतिकूल रिपोर्ट नहीं होनी
चाहिए।

घ) गोपनीय कार्ड (एपीएआर) में पिछले पांच
वर्षों की ग्रेडिंग में से, नवीनतम वर्ष की ग्रेडिंग
सहित कम से कम 'अच्छा' होना चाहिए अर्थात्
एपीपीडी के आहरण से पहले का वर्ष। तालिका।

(50) इसके बाद, 12.03.2015 को,
महानिदेशक सी.आर.पी.एफ. ने स्थायी
आदेश संख्या-6/1999 के अधिक्रमण में
स्थायी आदेश संख्या-01/2015 जारी किया
है, जिसमें एनजीओ (जीडी) कार्यकारी
कार्मिक (पुरुष) को कांस्टेबल से हेड
कांस्टेबल तक विभिन्न रैंकों में पदोन्नत
करने की प्रक्रिया निर्धारित की गई है।
स्थायी आदेश संख्या-01/2015 के खंड 3(ए)
में कांस्टेबल (जीडी/पीयूजी/ /माली/पीटीआर)
से हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति के
लिए पात्रता शर्तें निर्धारित की गई हैं, जो
निम्नानुसार हैं: -

ई) चिकित्सा आकार प्रणाली पर मौजूदा निर्देशों
के अनुसार चिकित्सा श्रेणी शेष-1 में होना
चाहिए।

D. विश्लेषण

(51) अधिनियम, नियमों, स्थापना मैनुअल
और समय-समय पर उत्तरदाताओं द्वारा जारी
किए गए स्थायी आदेशों को ऊपर देखने के
बाद, इस न्यायालय का विचार है कि इस
विशेष अपील को अपने विशिष्ट तथ्यों और
परिस्थितियों में तय किया जाना है।

(52) विशेष अपील पर उपलब्ध अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को 28.08.1993 को कांस्टेबल (सामान्य ड्यूटी) के पद पर भर्ती किया गया था। हालांकि अपीलकर्ता ने 13 साल की सेवा पूरी कर ली थी और सी.आर.पी.एफ. नियम, 1955 के नियम 67 के अनुसार वर्ष 2006 में अनिवार्य रूप से आवश्यक वरिष्ठ कैडर कोर्स (एस.सी.सी.) से सफलतापूर्वक गुजर चुका था, लेकिन अपीलकर्ता को हेड कांस्टेबल के रूप में पदोन्नत नहीं किया गया था, स्थायी आदेश संख्या-06/1999 का हवाला देता है, जिसमें हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नत होने के लिए कांस्टेबल के रूप में केवल 8 साल की सेवा पूरी करने का प्रावधान था।

(53) जैसे-जैसे तथ्य सामने आते हैं, यह पाया जाता है कि अपीलकर्ता को एचआईवी पॉजिटिव पाया गया था और 18.02.2008 को एंटी-रेट्रोवायरल थेरेपी के लिए भेजा गया था और वर्ष 2009 में स्पष्ट रूप से चिकित्सा वर्गीकरण शेष-2 भी दिया गया था। तथापि, उनकी वार्षिक चिकित्सा परीक्षा (एएमई) वर्ष 2011 में अवधारित की गई थी जिसके द्वारा उन्हें शेष-1 श्रेणी में घोषित किया गया था। इसलिए, अपीलकर्ता की बीमारी और सेवा रिकॉर्ड की प्रकृति को देखते हुए, उसका नाम विशेष अनुमोदित सूची-ए/जीडी (पुरुष) (11 वर्ष 2009) में लाया गया था और उसे वरिष्ठता संख्या-8545-ए भी प्रदान किया गया था। इसके बाद, दिनांक 26.02.2013 के आदेश के तहत, अपीलकर्ता को हेड कांस्टेबल (जनरल ड्यूटी) के पद पर पदोन्नत किया गया और

जम्मू और कश्मीर जोन, श्रीनगर सेक्टर में तैनात किया गया।

(54) यह रिकॉर्ड पर उपलब्ध है कि अपीलकर्ता 16वीं बटालियन, जम्मू और कश्मीर जोन से संबंधित है, लेकिन वह वर्ष 2008 से जनवरी, 2022 तक 93वीं बटालियन, लखनऊ में तैनात है और आज तक वह मथुरा में तैनात है। इस प्रकार, इन सभी वर्षों के दौरान अपीलकर्ता की पोस्टिंग या तो स्थिर रही है या गंभीर नहीं है। जाहिर है, पदोन्नति आदेश दिनांक 26.02.2013 के बाद, अपीलकर्ता को 183 बटालियन में तैनात किया गया था, हालांकि अमेठी से राहत न मिलने के कारण, अपीलकर्ता को फिर से 17.05.2013 को वार्षिक चिकित्सा परीक्षा के लिए भेजा गया था, जिसमें उसे चिकित्सकीय रूप से शेष-II (T-24) के रूप में वर्गीकृत किया गया था और उक्त बीमारी के लिए नियमित उपचार की सलाह दी गई थी।

(55) दिनांक 17.05.2013 की वार्षिक चिकित्सा परीक्षण के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलकर्ता की चिकित्सा स्थिति की ग्रेडिंग एस-आई, एच-आई, ए-आई, पी-2, ई-आई थी, जो दर्शाती है कि अपीलकर्ता को शारीरिक क्षमता से संबंधित केवल 'पी' कारक की कमी पाई गई थी। हालांकि, स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के भाग- IV के खंड 22.4 में निहित 'पी-2', जो चिकित्सा वर्गीकरण की प्रक्रिया से संबंधित है, सारणीबद्ध चार्ट में "गंभीर तनाव की आवश्यकता नहीं वाले कर्तव्यों के लिए फिट" से मेल खाता है। उक्त वर्गीकरण निम्नानुसार निकाला गया है:

संख्यात्मक ग्रेडिंग	कार्यात्मक क्षमता	रोजगार की सीमाएं
पी-2	मध्यम शारीरिक क्षमता और सहनशक्ति है। संवैधानिक चयापचय / संक्रामक रोग ऑपरेटिव प्रक्रियाओं से पीड़ित, लेकिन अब अच्छी तरह से स्थिर हो गया है।	गंभीर तनाव की आवश्यकता वाले कर्तव्यों के लिए फिट। उच्च ऊंचाई पर रोजगार में प्रतिबंध हो सकता है (पहाड़ी इलाकों और अत्यधिक ठंडे क्षेत्रों में 2,700 मीटर / 9,000 फीट से ऊपर)

(56) अपीलकर्ता की चिकित्सा स्थिति की उपरोक्त ग्रेडिंग इंगित करती है कि यद्यपि उसे शेप-2 में रखा गया है, लेकिन वह ड्यूटी के लिए शारीरिक रूप से फिट है और रोजगार योग्यता सीमा इंगित करती है कि उसे उच्च दृष्टिकोण पर रोजगार में प्रतिबंध हो सकता है।

(57) इस न्यायालय ने पाया कि सी.आर.पी.एफ. इस तथ्य के प्रति संवेदनशील और सजग था कि एचआईवी पॉजिटिव रंगरूटों के साथ उनके अन्य रंगरूटों से अलग व्यवहार नहीं किया जा सकता था, जो पदोन्नति और सेवा की अन्य शर्तों के संबंध में इस विकलांगता से पीड़ित नहीं थे। स्थायी आदेश संख्या-04/2008 का खंड 22.5 (जी)

एचआईवी/एड्स मामलों के मामले से संबंधित है, जो निरपवाद रूप से कहता है कि एचआईवी पॉजिटिव भर्ती की "पी-2" श्रेणी कठिन और एकान्त स्थानों को छोड़कर कहीं भी सभी कर्तव्यों के लिए उपयुक्त होगी, अधिमानतः जहां एआरटी सुविधाएं उपलब्ध हैं। यद्यपि, खंड 4.13 और खंड 22.5 (जी) एक ही स्थायी आदेश से पैदा हुए हैं, हालांकि वे स्पष्ट अंतर पर हैं, क्योंकि एक तरफ सामान्य खंड 4.13 एक भर्ती को शेप-1 में होने के लिए निर्धारित करता है, जबकि एचआईवी पॉजिटिव से संबंधित विशेष प्रावधान कहते हैं कि एक कार्मिक भी शेप-2 दवा की स्थिति वाला ड्यूटी के लिए फिट है।

(58) इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया कि सी.आर.पी.एफ. के महानिदेशक ने भी 03.09.2006 को एक स्थायी आदेश संख्या-06/2006 जारी किया है, जिसमें बल के सदस्यों की जागरूकता, रोकथाम, पहचान, उपचार और पुनर्वास के लिए एचआईवी/एड्स पर कार्य योजना निर्धारित की गई है। उपरोक्त स्थायी आदेश संख्या-06/2006 में 'एचआईवी/एड्स मामलों का प्रबंधन' शीर्षक के तहत, खंड (बी) में विशेष रूप से कहा गया है कि भारत सरकार के परामर्श से पर्याप्त नीति बनाई जानी चाहिए, ताकि इन एचआईवी संक्रमित कर्मचारियों की तैनाती/पदोन्नति और सामाजिक गतिविधियों में कोई भेदभाव न हो।

(59) इसके अलावा, अभिलेखों से यह समझा जा सकता है कि चिकित्सा श्रेणी पी-2 किसी भी तरह से व्यक्ति के पदोन्नति के अवसर को प्रभावित नहीं करती है बल्कि केवल रोजगार

की सीमाओं के लिए निर्धारित करती है, यह ध्यान में रखते हुए कि पदोन्नति रोजगार की घटना के अलावा और कुछ नहीं है। हालांकि, स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के खंड 4.13 में केवल यह कहकर प्राथमिकता दी गई है कि चिकित्सा श्रेणी शेष-1 सभी योद्धाओं के कर्मियों की पदोन्नति के लिए आवश्यक शर्त होगी। "लड़ाकू कार्मिक" शब्द का बहुत महत्व है क्योंकि इस शब्द का अर्थ उन कर्मियों से है जो वास्तविक लड़ाई ड्यूटी में शामिल हैं, जिसमें आम तौर पर विभिन्न प्रकार के हथियारों को संभालना और उपयोग करना और लोगों के साथ वास्तविक जुड़ाव शामिल है जो अशांति पैदा करते हैं या सार्वजनिक अमन और शांति को डिस्टर्ब करते हैं। जबकि गैर-लड़ाकू पदों के धारक वे हैं जो लड़ाकों के काम को सुविधाजनक बनाते हैं, जिसमें आपूर्ति, प्रशासन, परिवहन, सामान्य रसद, खुफिया जानकारी एकत्र करने आदि जैसी सेवाएं शामिल हैं। उक्त खंड 4.13 मुख्य रूप से 'लड़ाकू' कर्मियों से संबंधित है और इसे स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के खंड 22.5 (जी) को ध्यान में रखते हुए बोर्ड भर में सभी पर लागू नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, उक्त खंड स्वयं शेष-1 की आवश्यकता को कम करता है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि जिन कर्मियों की बीमारी स्थायी प्रकृति की है और जो शेष-1 नहीं हैं, उन्हें पदोन्नति के लिए अयोग्य घोषित किया जाएगा, भले ही वे अन्यथा शेष-1 प्राप्त कर लें और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि बीमारी अस्थायी प्रकृति की है, तो डीपीसी उन्हें शेष-1 प्राप्त करने के अधीन पदोन्नति के लिए उपयुक्त के रूप में ग्रेड देगा। इस प्रकार, एक

कार्मिक अपने चिकित्सा मूल्यांकन के अनुसार युद्धक पद पर जा सकता है और आ सकता है। हालांकि, इस न्यायालय के विचार में, उक्त खंड पदोन्नति के अवसर से संबंधित नहीं है, खासकर जब एचआईवी पॉजिटिव कर्मियों के लिए अधिनियम, 1949 या नियम वर्ष 1995 में कोई समान प्रतिबंध नहीं है। इसी तरह के प्रभाव के लिए स्थापना मैनुअल सी.आर.पी.एफ. 1976 के खंड 11.5(iii) और खंड 11.6(iii) है, जिसमें उम्मीदवारों की अयोग्यता का निर्धारण शामिल है जो शेष-1, पदोन्नत होने के लिए चिकित्सा श्रेणी में नहीं हैं और स्थायी आदेश वर्ष 2015 दिनांक 12.03.2015 के खंड 3(ए)(ई) और खंड 3(बी)(ई) शामिल हैं।

(60) यह न्यायालय इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकता है कि यह सामान्य ज्ञान है कि एक बार जब कोई कार्मिक सेवा में पदानुक्रम में ऊपर चला जाता है, तो उसके शारीरिक सहनशक्ति की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होती है और इस अर्थ में यह अच्छी तरह से समझा जा सकता है कि अपीलकर्ता जो वर्तमान में प्रदर्शन कर रहा है और कांस्टेबल के पद के लिए शारीरिक रूप से फिट पाया जाता है, उसे हमेशा हेड कांस्टेबल के कम शारीरिक रूप से स्थायी कर्तव्यों के लिए फिट पाया जा सकता है। उक्त सादृश्य इस अजीब तथ्य को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है कि अपीलकर्ता के एएमई में, अपीलकर्ता की केवल शारीरिक सहनशक्ति को 'पी-2' के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जबकि शेष में अन्य सभी आवश्यकताओं को एक (1) दिया गया है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उक्त

चिकित्सा स्थितियां सुसंगत हैं जैसा कि 30.01.2016, 13.04.2019 और 24.06.2021 को आयोजित चिकित्सा परीक्षा से पाया जा सकता है।

(61) इसके अलावा, इस न्यायालय का विचार है कि भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा भारत के नागरिक को गारंटीकृत एक मौलिक अधिकार है। भारत में एचआईवी/एड्स की स्थिति के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता है। यहां तक कि समय-समय पर जारी किए गए सी.आर.पी.एफ. के स्थायी आदेश भी इन प्रभावित कर्मियों को समान दर्जा और अवसर प्रदान करने के उनके विश्वास को दोहराते हैं। एचआईवी/एड्स रोगियों को हर जगह समान उपचार का अधिकार है और उन्हें एचआईवी/एड्स की स्थिति के आधार पर रोजगार के मामलों में नौकरी के अवसर से वंचित नहीं किया जा सकता है या उनके साथ रोजगार के मामलों में भेदभाव नहीं किया जा सकता है। पदोन्नति के मामले में भी, उक्त गैर-भेदभाव विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (अधिनियम वर्ष 1995) की धारा 47 में प्रतिध्वनित होता है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है:

"47. सरकारी रोजगारों में गैर-भेदभाव -

(i) कोई भी प्रतिष्ठान ऐसे कर्मचारी को नहीं छोड़ेगा या रैंक में कमी नहीं करेगा जो अपनी सेवा के दौरान निशक्तता प्राप्त कर लेता है।

बशर्ते कि, यदि कोई कर्मचारी, विकलांगता प्राप्त करने के बाद उस पद के लिए उपयुक्त नहीं है जो वह धारण कर रहा था, तो उसे उसी वेतनमान और सेवा लाभों के साथ किसी अन्य पद पर स्थानांतरित किया जा सकता है;

परन्तु यह और कि यदि कर्मचारी को किसी पद पर समायोजित करना संभव न हो तो उसे उपयुक्त पद उपलब्ध न होने तक या अधिवषता की आयु प्राप्त कर लेने, इनमें से जो भी पहले हो, अधिसंख्य पद पर रखा जा सकेगा।

(2) किसी व्यक्ति को केवल उसकी विकलांगता के आधार पर पदोन्नति से वंचित नहीं किया जाएगा:

परन्तु समुचित सरकार, किसी प्रतिष्ठान में किए गए कार्य के प्रकार को ध्यान में रखते हुए, अधिसूचना द्वारा और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, यदि कोई हो, जो ऐसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, किसी प्रतिष्ठान को इस धारा के उपबंधों से छूट दे सकेगी।

(62) पूर्वोक्त धारा के अवलोकन से पता चलता है कि धारा-47 की उपधारा (2) में यह अधिदेश दिया गया है कि किसी व्यक्ति को केवल उसकी निशक्तता के आधार पर पदोन्नति से वंचित नहीं किया जाएगा।

E. निष्कर्ष

(63) अपीलकर्ता ने 2010(2) एल.एल.आर. पंजाब और हरियाणा 228 में रिपोर्ट किए गए "बिश्मभर दत्त बनाम भारत संघ और अन्य" में माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश को आईटीबीपी के एक समान रूप से तैनात कर्मियों की पदोन्नति के मुद्दे पर फैसला करने के लिए बुलाया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आईटीबीपी पर लागू विभिन्न विवादों के साथ-साथ विभागीय निर्देशों को रिकॉर्ड करने के बाद उस निर्णय में कहा कि नीति और नियमों में अयोग्य श्रेणी में आने वाले लोगों को छोड़कर अर्धसैनिक बलों की नौकरी में एचआईवी पॉजिटिव कर्मियों को जारी रखने का प्रावधान किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उस मामले में पाया कि यद्यपि याचिकाकर्ता को वर्ष 1995 में एचआईवी पॉजिटिव पाया गया था, लेकिन वह 2010 में आदेश पारित होने तक सेवा में बना रहा और इस तरह यह निष्कर्ष निकाला कि उसे पदोन्नति से वंचित करने का कोई कारण नहीं था।

(64) प्रस्तुत मामले के तथ्यों में, इस न्यायालय को रती भर भी संदेह नहीं है कि पूर्वोक्त निर्णय में प्रेरक प्रभाव है। अपीलकर्ता को वर्ष 2008 में एचआईवी पॉजिटिव पाया गया था और उसे वर्ष 2013 में पदोन्नत किया गया था और उसे 2014 में पदोन्नति से उलट दिया गया था और आज भी लगभग 9 वर्षों के बाद, अपीलकर्ता उत्तरदाताओं के साथ कांस्टेबल के रूप में कार्यरत है और शेप-2 की उसी चिकित्सा स्थिति में है। इस न्यायालय ने पाया

कि अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किए गए उपरोक्त निर्णय में स्थायी आदेश संख्या-04/2008 के भाग-IV के खंड 22.4 के समान शारीरिक सहनशक्ति का एक समान चार्ट है, जो चिकित्सा वर्गीकरण की प्रक्रिया से संबंधित है। चूंकि, अपीलकर्ता को कर्तव्यों के लिए फिट पाया गया है, इसलिए इस न्यायालय को यह भी कोई कारण नहीं मिलता है कि उसको पदोन्नति क्यों नहीं दी जा सकती थी।

(65) इस न्यायालय का विचार है कि चूंकि एक व्यक्ति, जो अन्यथा फिट है, को केवल इस आधार पर रोजगार से वंचित नहीं किया जा सकता है कि वह एचआईवी पॉजिटिव है और यह सिद्धांत पदोन्नति देने तक भी विस्तारित है। किसी भी मामले में, किसी व्यक्ति की एचआईवी स्थिति रोजगार में पदोन्नति से इनकार करने का आधार नहीं हो सकती है क्योंकि यह भेदभावपूर्ण होगा और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), 16 (राज्य रोजगार में गैर-भेदभाव का अधिकार) और 21 (जीवन का अधिकार) में निर्धारित सिद्धांतों का उल्लंघन करेगा।

(66) उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, जबकि हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 24.05.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हैं, यह घोषित किया जाता है कि अपीलकर्ता पदोन्नति के पूर्ण लाभ का हकदार होगा जैसा कि उन लोगों को दिया जाता है जो एचआईवी पॉजिटिव से पीड़ित नहीं हैं। प्रस्तुत मामले में लागू सभी निर्देश और आदेश, जो अपीलकर्ता को पदोन्नति के पदों पर कब्जा

करने के अवसर या अधिकार से वंचित करते हैं, एतद्वारा रद्द किए जाते हैं। उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे अपीलकर्ता के कनिष्ठ(ओं) को पदोन्नत किए जाने की तारीख से परिणामी आदेश जारी करें।

(67) पूर्वोक्त शर्तों में अपील की अनुमति दी जाती है।

(68) लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 1267

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायाधी देवेन्द्र कुमार

उपाध्याय,

माननीय न्यायाधी ओम प्रकाश शुक्ला,

रिट ए संख्या 18675 वर्ष 2020

दिनेश चंद्र वर्मा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

शिरीष कुमार

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

**मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अपर महा
न्यायधिवक्ता, गौरव मेहरोत्रा**

**सेवा लाभ - घरेलू सहायक भत्ता - सेवानिवृत्त
उपाध्यक्ष, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (कैट)**

**नियम, 1985 के नियम 15-ए के तहत
अधिकार - सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय
न्यायाधीशों के साथ समानता - आदेश
सांविधिक एवं बाध्यकारी है।**

नियम 15-ए, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं सेवा शर्तें) नियम, 1985 के अनुसार, अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की सेवा शर्तें एवं सुविधाएं सेवा में कार्यरत उच्च न्यायालय न्यायाधीशों के समान होंगी, जो उच्च न्यायालय न्यायाधीश (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1954 एवं उच्च न्यायालय न्यायाधीश (यात्रा भत्ते) नियम, 1956 द्वारा निर्धारित हैं। सेवानिवृत्ति लाभ जिसमें घरेलू सहायक भत्ता शामिल है, 1954 अधिनियम की धारा 2(जीजी) के अंतर्गत "पेंशन" में आता है, जिसमें मौद्रिक पेंशन एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभ शामिल हैं। अतः, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सेवानिवृत्त उपाध्यक्ष, जिन्होंने पूर्व में यूपी जिला न्यायपालिका में सेवा दी और जिन्हें 2007 तक यह भत्ता मिला, को घरेलू सहायक भत्ता न देना मनमाना एवं सांविधिक आदेशों का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता घरेलू सहायक भत्ते का अधिकारी है एवं समय-समय पर संशोधन होगा। राज्य को निर्देश है कि दो महीने में बकाया भुगतान बिना ब्याज के करे।

उद्धृत मामलों की सूची:

देवेन्द्र कुमार अग्रवाल बनाम यू.ओ.आई., 102
(2003) डीएलटी 461

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,
और माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,
द्वारा पदत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार, श्री शैलेंद्र कुमार सिंह, राज्य-प्रतिवादियों के लिए मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री प्रखर मिश्रा, श्री गौरव मेहरोत्रा, इलाहाबाद उच्च न्यायालय का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता और श्री देव ऋषि कुमार, भारत संघ के अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता, जो प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 के तहत बनाए गए एक वैधानिक न्यायाधिकरण, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के सेवानिवृत्त उपाध्यक्ष हैं, ने राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक 26.12.2019 के आदेश को चुनौती देने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का उपयोग किया है, जिसके तहत घरेलू सहायता भत्ते के लाभ का दावा करने वाले उनके अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा आगे यह भी प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादियों को दिनांक 01.03.2008 से प्रभावी सरकारी आदेश दिनांक 20.04.1999 में निहित प्रावधानों के अनुसार उक्त भत्ते का भुगतान करने का निर्देश जारी किया जाए, साथ ही समय-समय पर संशोधन और 12% की दर से ब्याज के साथ बकाया राशि का भुगतान किया जाए।

3. याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में उसके अभ्यावेदन को खारिज करने वाला दिनांक

26.12.2019 का आरोपित आदेश, इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा रिट याचिका संख्या 29103 (एस/बी) 2017 में पारित दिनांक 03.07.2019 के आदेश के अनुपालन में पारित किया गया था, जिसे दिनांक 31.07.2019 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया था।

4. उक्त आदेश द्वारा इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 09.08.2017 के आदेश को रद्द करते हुए राज्य सरकार के विधि एवं न्याय विभाग को निर्देश दिया कि वह सरकारी आदेश दिनांक 05.04.2007, कार्यालय जापन दिनांक 21.02.2003 और केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की शर्तें) नियम, 1985 (जिसे आगे नियम, 1985 कहा जाएगा) के नियम 15-ए के आलोक में याचिकाकर्ता के दावे पर पुनर्विचार करे और निर्णय ले।

5. याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य में जिला न्यायपालिका के सदस्य रहे हैं और जिला जज के पद पर काम करते हुए उन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली और चयन होने पर केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सदस्य के रूप में शामिल हुए। बाद में उन्हें उक्त अधिकरण का उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया शुरुआत में, उनकी सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें दिनांक 31.12.2007 तक घरेलू सहायता भत्ता का भुगतान किया गया था, हालांकि, बाद की तिमाहियों के लिए उन्हें यह भत्ता नहीं दिया गया और तदनुसार उन्होंने अधिकारियों के समक्ष अपना मामला उठाया।

उन्होंने इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का भी आह्वान किया और रिट याचिका नाम से रिट याचिका संख्या 29103 (एस/बी) 2017 दाखिल की, जो कि जैसा कि ऊपर देखा गया है, राज्य सरकार के कानून और न्याय विभाग को उनके दावे पर पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ तय किया गया था। हालांकि, राज्य सरकार ने दिनांक 26.12.2019 के आदेश पारित करके उनके दावे को अस्वीकार कर दिया है, जिसे इस रिट याचिका में हमारे समक्ष चुनौती दी गई है।

6. नियम, 1985 को केंद्र सरकार द्वारा प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 35 (2) (सी) द्वारा प्रदत्त शक्तियों के तहत तैयार किया गया, विधिक प्रकृति के होने के कारण इन नियमों का कार्यकारी प्रभाव है। उक्त नियम केंद्रीय सरकार द्वारा केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तों को विनियमित करने के लिए तैयार किए गए हैं। नियम 15-ए के अनुसार, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को उपलब्ध सेवा की शर्तें और अन्य सुविधाएं वही होंगी जो उच्च न्यायालय के सेवारत न्यायाधीश को स्वीकार्य हैं, जैसा कि उच्च न्यायालय न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1954 (इसके बाद 'अधिनियम, 1954' के रूप में संदर्भित) और उच्च न्यायालय न्यायाधीश (यात्रा भत्ते) नियम, 1956 (इसके बाद 'नियम, 1956' के रूप में संदर्भित) में

निहित है। नियम 1985 का नियम 15-ए नीचे उद्धृत किया गया है:-

“15-ए। उक्त नियमों के नियम 4 से 15 में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को उपलब्ध सेवा की शर्तें और अन्य सुविधाएं वही होंगी जो उच्च न्यायालय के सेवारत न्यायाधीश को स्वीकार्य हैं जैसा कि उच्च न्यायालय न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1954 और उच्च न्यायालय न्यायाधीश (यात्रा भत्ते) नियम, 1956 में निहित हैं।

7. नियम 1985 के पूर्वोक्त नियम 15-ए का मात्र अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को सेवा की शर्तें और अन्य सुविधाएं वही होंगी जो अधिनियम, 1954 में निहित प्रावधानों के अनुसार उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को स्वीकार्य हैं।

8. उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सेवा की कुछ शर्तों को विनियमित करने के प्रयोजनार्थ संसद ने अधिनियम, 1954 पारित किया है। 'पेंशन' को किसी न्यायाधीश को या उसके संबंध में देय किसी भी प्रकार की पेंशन के रूप में परिभाषित किया गया है और इसमें मृत्यु या सेवानिवृत्ति लाभों के रूप में देय कोई परिदान या अन्य राशि या रकम शामिल हैं। अधिनियम 1954 की धारा 2 (जीजी) का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"2(जीजी) 'पेंशन' का अर्थ किसी न्यायाधीश को या उसके संबंध में देय किसी भी प्रकार की पेंशन है और इसमें मृत्यु या सेवानिवृत्ति लाभों के रूप में देय कोई परिदान या अन्य राशि या रकम शामिल हैं।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि कोई सेवानिवृत्ति लाभ सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उपलब्ध है, तो वही केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को भी उपलब्ध होगा।

9. इस प्रकार, अधिनियम 1954 की धारा 2(जीजी) में आने वाले 'पेंशन' अभिव्यक्ति की परिभाषा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पेंशन का अर्थ न्यायाधीश के संबंध में देय किसी भी प्रकार की पेंशन नहीं है, बल्कि इसमें मृत्यु या सेवानिवृत्ति लाभों के रूप में देय परिदान या अन्य राशि या रकम भी शामिल हैं। इस प्रकार, यदि कोई राशि सेवानिवृत्ति लाभों के रूप में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को देय है, तो ऐसी राशि भी अभिव्यक्ति 'पेंशन' की परिभाषा में शामिल होगी।

10. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के बाद घरेलू सहायक भत्ते के हकदार हैं। नियम 1985 के नियम 15-ए के आदेश के अनुसार, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी अधिनियम, 1954 में निहित उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उपलब्ध सुविधाओं के हकदार हैं।

11. चूंकि अधिनियम, 1954 की धारा 2(जीजी) में वर्णित 'पेंशन' की परिभाषा में सेवानिवृत्ति लाभों के माध्यम से देय कोई भी राशि शामिल है, हमारी राय में, हमें

12. जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, नियम 15-ए प्रकृति में वैधानिक है और इस प्रकार, उक्त नियम सभी संबंधितों को बाध्य करता है।

13. यह भी ध्यान देने योग्य है कि नियम 1985 के नियम 15-ए में, ध्यान देने योग्य शब्द "करेगा" है जो उसमें आता है और तदनुसार यह अनिवार्य है। इस प्रकार, नियम 1985 का अधिदेश यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उपलब्ध सेवा की शर्तें और अन्य सुविधाएं केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को भी उपलब्ध कराई जाएंगी। नियम 15-ए में प्रयुक्त भाषा की अनिवार्य प्रकृति प्रत्यर्थियों के लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध कराना अनिवार्य बनाती है, जिसमें हमारी राय में घरेलू सहायक भत्ता भी शामिल होगा। घरेलू सहायक भत्ते का लाभ वास्तव में एक सेवानिवृत्ति लाभ है और इसलिए इसे अधिनियम 1954 की धारा 2(जीजी) में वर्णित 'पेंशन' में शामिल किया जाएगा।

14. उपर्युक्त चर्चा के अलावा, हम कुछ अन्य तथ्यों पर भी ध्यान दे सकते हैं जो याचिकाकर्ता के मामले को दृढ़ करते हैं।

15. माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 07.08.2014 के पत्र के माध्यम से, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 11 में उपलब्ध है, राज्य सरकार को याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करने की सिफारिश पहले ही कर दी है।

16. हम माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के एक फैसले **श्री देवेंद्र कुमार अग्रवाल बनाम भारत संघ के मामले में जो 102 (2003) डी.एल.टी. 461 में आख्यापित किया गया है** का भी हवाला दे सकते हैं। उक्त मामले में याचिकाकर्ता द्वारा कुछ दावे किए गए थे, जो केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप में सेवानिवृत्त भी हुए थे। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने उक्त मामले में दिनांक 07.11.2002 को दिए गए निर्णय के माध्यम से माना कि नियम 1985 के नियम 15-ए और सेवा शर्तों के अनुसार पेंशन का अनुदान उक्त मामले के याचिकाकर्ता पर लागू होना चाहिए और उसकी पेंशन अधिनियम 1954 की पहली अनुसूची के भाग- III के अनुसार निर्धारित की जानी है।

17. माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय के अनुपालन में, भारत सरकार के कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा दिनांक 21.02.2003 को उक्त निर्णय दिनांक 07.11.2002 के कार्यान्वयन के लिए एक पत्र जारी किया गया था। इसके बाद राज्य सरकार ने अपने कार्यालय आदेश दिनांक 12.11.2009 के माध्यम से माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय

के अनुपालन में पेंशन का लाभ उक्त श्री डी.के.अग्रवाल को प्रदान किया है।

18. यह भी ध्यान देने योग्य है कि अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने से पहले श्री डी.के.अग्रवाल ने उत्तर प्रदेश राज्य में जिला न्यायपालिका में भी काम किया था और वे जिला न्यायाधीश के रूप में सेवानिवृत्त हुए थे।

19. इस प्रकार, याचिकाकर्ता का मामला श्री डी.के.अग्रवाल के मामले के समान ही है और तदनुसार हमें कोई कारण नहीं दिखता कि श्री डी.के.अग्रवाल को उपलब्ध कराए गए लाभों को इस मामले में याचिकाकर्ता को देने से इनकार क्यों किया जाए।

20. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, भारत सरकार ने अपने दिनांक 21.02.2003 के पत्र में, जो कि श्री डी.के.अग्रवाल के मामले में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के दिनांक 07.11.2002 के निर्णय का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए जारी किया गया था, अनुरोध किया है कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के उक्त उपाध्यक्षों के संबंध में पेंशन लाभ, जिन्होंने न्यायाधिकरण में अपनी नियुक्ति से पहले भारत संघ या राज्य के अधीन कोई पेंशन योग्य पद धारण किया है, को अधिनियम 1954 में प्रदान की गई विधि के अनुसार संशोधित किया जाए।

21. उपरोक्त सभी कारणों से, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता घरेलू सहायक भत्ते का भी हकदार है।

22. राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक 26.12.2019 के आदेश में दर्शाए गए कारणों पर आते हुए, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए जा रहे लाभ को अस्वीकार कर दिया गया है, हम देख सकते हैं कि राज्य सरकार ने उक्त आदेश में कहा है कि पेंशन के संबंध में नियम 1956, अर्थात् उच्च न्यायालय न्यायाधीश (यात्रा भत्ता) नियम, 1956 में स्पष्ट प्रावधान उपलब्ध नहीं है।

23. आरोपित आदेश में आगे दिया गया कारण यह है कि चूंकि उक्त नियम 1956 पेंशन लाभ/घरेलू सहायता भत्ते के लिए कोई प्रावधान नहीं करते हैं, ऐसे में याचिकाकर्ता अपने दावे का हकदार नहीं है। आरोपित आदेश पारित करते समय राज्य सरकार द्वारा दिया गया एक अन्य कारण यह है कि समानता के आधार पर कोई भी पेंशनभोगी केवल वैधानिक नियमों के तहत ही कोई दावा कर सकता है, अन्यथा नहीं। राज्य सरकार द्वारा दिनांक 26.12.2019 को आरोपित आदेश पारित करते समय बताए गए उपरोक्त कारण पूरी तरह से असमर्थनीय और भ्रामक हैं, क्योंकि वैधानिक प्रावधान जहां याचिकाकर्ता घरेलू सहायता भत्ते के भुगतान के लिए अपना दावा प्रस्तुत कर सकता है, नियम 1985 के नियम 15-ए में उपलब्ध है, जो स्पष्ट रूप से अनिवार्य करता है कि सेवा की शर्तें और अन्य सुविधाएं केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को उपलब्ध कराई जाएंगी, जो अधिनियम, 1954 में निहित प्रावधानों के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को स्वीकार्य हैं। हम पहले ही अधिनियम, 1954 की धारा 2(जीजी) में होने वाली अभिव्यक्ति

'पेंशन' की परिभाषा पर ध्यान दे चुके हैं, जिसमें न केवल आर्थिक पेंशन बल्कि अन्य सेवानिवृत्ति लाभ भी शामिल हैं। तदनुसार, यदि घरेलू सहायता भत्ते का लाभ जैसे कोई सेवानिवृत्ति लाभ अधिनियम, 1954 में निहित प्रावधानों के अनुसार सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उपलब्ध कराया गया है

24. ऊपर की गई चर्चा और दिए गए कारणों के आधार पर, हम राज्य सरकार द्वारा दिनांक 26.12.2019 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करते समय बताए गए कारणों से सहमत नहीं हैं।

25. परिणामस्वरूप, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक 26.12.2019 के विवादित आदेश, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 15 में निहित है, को रद्द किया जाता है। संबंधित प्रत्यर्थी को निर्देश जारी किया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को घरेलू सहायता भत्ते का लाभ दिनांक 01.03.2008 से समय-समय पर संशोधन, यदि कोई हो, के साथ आज से एक महीने के भीतर उपलब्ध कराए। उन्हें अगले दो महीनों के भीतर उक्त भत्ते का बकाया भी दिया जाएगा। हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वह ब्याज के भुगतान के हकदार नहीं होंगे।

26. यह आदेश विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा सभी संबंधितों को तुरंत सूचित किया जाएगा।

27. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 7 ILRA 1271

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पांडिया,

सिविल विविध पुनर्विलोकन आवेदन संख्या

293 वर्ष 2021

में

सिविल विविध रिट याचिका संख्या 9803 वर्ष

2021

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया

...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ एवं अन्य

..प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सुरेश चंद्र पांडेय

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अंजनी कुमार
चौरसिया

सिविल विधि - वित्तीय संपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूत हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 47 नियम 1 - पुनर्विलोकन आवेदन, अभिलेख पर स्पष्ट त्रुटि, वैकल्पिक उपाय, ऋण वसूली अधिकरण, क्रमिक पुनर्विलोकन आवेदन, दंडात्मक व्यय। यूनियन बैंक ऑफ इंडिया द्वारा पुनर्विलोकन

आवेदन दाखिल कर दिनांक 19 अप्रैल 2021 को पारित उस निर्णय की पुनः समीक्षा की गई, जिसके द्वारा उसकी सिविल विशेष रिट याचिका (संख्या 9803 वर्ष 2021) को खारिज किया गया था, जो अपर जिला मजिस्ट्रेट, (एडीएम) मेरठ के दिनांक 30 अक्टूबर 2019 के आदेश को चुनौती देने हेतु दाखिल की गई थी, जिसमें बैंक का प्रतिभूत हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 14 के अंतर्गत संपत्ति के भौतिक अधिग्रहण हेतु आवेदन अस्वीकृत किया गया था। रिट याचिका इस आधार पर खारिज की गई कि प्रतिभूत हित प्रवर्तन अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत ऋण वसूली अधिकरण (डीआरटी) में वैधानिक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, जिसमें *यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन* (2010) 8 एससीसी 110 के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की गई। बैंक ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि धारा 17 का उपाय केवल ऋणग्राही, जामिन, पट्टेदार अथवा किरायेदार के लिए है, सुरक्षित ऋणदाता के लिए नहीं, तथा याचिका की अस्वीकृति अभिलेख पर स्पष्ट त्रुटि है। पूर्व पुनर्विलोकन आवेदन (संख्या 168/2021) समान आधारों पर दिनांक 9 सितंबर 2021 को अस्वीकृत किया गया था, बिना पुनः आवेदन करने की अनुमति के। पुनर्विलोकन आवेदन गुण-दोष के आधार पर तथा समान आधारों पर दूसरा आवेदन होने के कारण अस्वीकार किया गया तथा ₹50,000 की दंडात्मक व्यय एक माह के भीतर महानिबंधक के समक्ष जमा कर उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, इलाहाबाद को प्रेषित करने का निर्देश दिया गया। विलंब निवारण आवेदन स्वीकृत किया गया। दिनांक 19 अप्रैल 2021

के निर्णय में कोई अभिलेख पर स्पष्ट त्रुटि नहीं पाई गई। अस्वीकृति सत्यवती टंडन वाद में स्थापित विधि के अनुसार थी, जो अनुच्छेद 226 लागू करने से पहले धारा 17 के वैधानिक उपाय को अपनाना आवश्यक बताया गया है। बैंक का यह तर्क कि धारा 17 केवल ऋणग्राही अथवा जामिन पर लागू होती है, युक्तिसंगत परीक्षण का विषय है, स्पष्ट त्रुटि नहीं। आदेश 47 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत समान आधारों पर क्रमिक पुनर्विलोकन आवेदन ग्राह्य नहीं है। पूर्व पुनर्विलोकन आवेदन संख्या 168 वर्ष 2021 अस्वीकृत की गई थी, बिना पुनः आवेदन करने की अनुमति के तथा कोई नवीन साक्ष्य अथवा आदेश 47 के अनुरूप पर्याप्त कारण प्रस्तुत नहीं किया गया।

पुनर्विलोकन आवेदन अस्वीकार किया गया।

संदर्भित मामलों की सूची:

1. छज्जू राम बनाम नेकी, एआईआर 1922 पीसी 112: कोई कानून की गलत व्याख्या के लिए समीक्षा नहीं।
2. टी.सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा, एआईआर 1954 एससी 440
3. हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक, एआईआर 1955 एससी 233
4. पटेल नरशी ठाकरशी बनाम प्रद्युम्न सिंहजी, (1971) 3 एससीसी 844
5. अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम अरिबम पिशाक शर्मा, (1979) 4 एससीसी 389
6. कर्नल अवतार सिंह सेखों बनाम यू.ओ.आई., 1980 सप्प एससीसी 562

7. एस. नागराज बनाम सेंट ऑफ कर्ण, 1993 सप्लीमेंट (4) एससीसी 595
8. मीरा भांजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी, (1995) 1 एससीसी 170
9. परसियन देवी बनाम सुमित्री देवी, (1997) 8 एससीसी 715
10. लिली थॉमस बनाम यू.ओ.आई., (2000) 6 एससीसी 224
11. कॉमन कॉज बनाम यू.ओ.आई., (2003) 10 एससीसी 264
12. केरल स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम हाईटेक इलेक्ट्रोथर्मिक्स, (2005) 6 एससीसी 651
13. जैन स्टूडियोज लिमिटेड बनाम शिन सैटेलाइट पब्लिक कंपनी लिमिटेड, (2006) 5 एससीसी 501
14. पश्चिम बंगाल स्टेट बनाम कमल सेनगुप्ता, (2008) 8 एससीसी 612
15. कमलेश वर्मा बनाम मायावती, (2013) 8 एससीसी 320
16. राम साहू बनाम विनोद कुमार रावत, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससीसी 896
17. एस. मधुसूदन रेड्डी बनाम वी.एस. नारायण रेड्डी, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससीसी 1034
18. दिल्ली सरकार बनाम के.एल. राठी स्टील्स लिमिटेड, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 288
19. इरतजा अली बनाम जिला न्यायाधीश मुरादाबाद, (1982) 2 एआरसी 514
20. विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश के जिला न्यायाधीश, 2022 (11) एडीजे 25 (खण्ड पीठ)
21. वाई.पी. चावला बनाम एम.पी. तिवारी, एआईआर 1992 एससी 1360

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला, और माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा पदत)

सिविल प्रकीर्ण माफी आवेदन पर आदेश:-

1- (पक्षों के अधिवक्ताओं को) सुना।

2. बहाली आवेदन दाखिल करने में देरी के लिए दिखाया गया कारण पर्याप्त है। देरी को माफ किया जाता है।

3. आवेदन की अनुमति है।

सिविल प्रकीर्ण समीक्षा आवेदन पर आदेश:-

1. श्री सौरभ पांडेय, समीक्षा-आवेदक के अधिवक्ता श्री सुरेश चंद्र पांडे, ब्रीफ़ होल्डर और प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री अंजनी कुमार चौरसिया को सुना।

2. वर्तमान समीक्षा आवेदन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 9803 वर्ष 2021 (यूनियन बैंक ऑफ़ इंडिया बनाम अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ और 2 अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.04.2021 की समीक्षा के लिए दायर किया गया है।

3. प्रस्तुत मामले में संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), मेरठ द्वारा 30.10.2019 को लिए गए निर्णय को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की गई थी, जिसके द्वारा सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 की उप-धारा 1 के तहत बैंक द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

4. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को इस न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 19.04.2021 के माध्यम से याचिकाकर्ता को वैधानिक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर खारिज कर दिया था, जैसा कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष प्रदान किया गया था। रिट कोर्ट द्वारा दिनांक 19.04.2021 को पारित आदेश इस प्रकार है:-

उन्होंने कहा, "इस मामले को वीडियो कांफ्रेंस के जरिए उठाया गया।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता सुरेश चंद्र पांडेय पेश होते हैं।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता प्रतिवादी संख्या-1 की ओर से उपस्थित हैं। इस याचिका में चुनौती वित्तीय परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति ब्याज अधिनियम, 2002 के प्रवर्तन की धारा 14 के तहत अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व) द्वारा पारित दिनांक 30.11.2019 के आदेश को चुनौती दी गई है।

यूनाइटेड बैंक ऑफ़ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन और अन्य, (2010) 8 एस.सी.सी. 110 के मामले में जिसमें पैराग्राफ 42 और 43 में यह अवधारित किया गया है:

"42. एक और कारण है कि आक्षेपित आदेश को अपास्त क्यों किया जाना चाहिए। यदि प्रतिवादी संख्या-1 को धारा 13(4) के तहत

जारी नोटिस या धारा 14 के तहत की गई कार्रवाई के खिलाफ कोई ठोस शिकायत थी, तो वह धारा 17(1) के तहत आवेदन दायर करके उपाय का लाभ उठा सकता था। धारा 17(1) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'कोई व्यक्ति' व्यापक महत्व की है। यह न केवल उधारकर्ता बल्कि गारंटर या किसी अन्य व्यक्ति को भी अपने दायरे में लेता है जो धारा 13(4) या धारा 14 के तहत की गई कार्रवाई से प्रभावित हो सकता है। ट्रिब्यूनल और अपीलीय ट्रिब्यूनल दोनों को धारा 17 और 18 के तहत अंतरिम आदेश पारित करने का अधिकार है और एक निश्चित समय सीमा के भीतर मामलों का फैसला करना आवश्यक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सरफेसी अधिनियम के तहत पीड़ित व्यक्ति के लिए उपलब्ध उपचार त्वरित और प्रभावी दोनों हैं।

43. दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने स्थापित कानून की अनदेखी की कि यदि पीड़ित व्यक्ति के लिए एक प्रभावी उपाय उपलब्ध है, उच्च न्यायालय आमतौर पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका पर विचार नहीं करेगा और यह नियम करें, उपकर, फीस, अन्य प्रकार के सार्वजनिक धन और बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों के बकायों की वसूली से जुड़े मामलों में अधिक कठोरता के साथ लागू होता है। हमारे विचार से, लोक देयताओं आदि की वसूली के लिए की गई कार्रवाई को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर कार्रवाई करते समय उच्च न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसे बकायों की वसूली के लिए संसद और राज्य विधान मंडलों द्वारा अधिनियमित विधान अपने आप में संहिता हैं क्योंकि उनमें

न केवल देय राशियों की वसूली के लिए व्यापक प्रक्रिया निहित है बल्कि किसी भी पीड़ित की शिकायत के निवारण के लिए अर्ध न्यायिक निकायों के गठन की भी परिकल्पना की गई है, इसलिए, ऐसे सभी मामलों में, उच्च न्यायालय को इस बात पर जोर देना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपचार का लाभ उठाने से पहले, एक व्यक्ति को संबंधित कानून के तहत उपलब्ध उपायों का उपयोग करना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मददेनजर याचिकाकर्ता के पास ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष सरफेसी अधिनियम की धारा 17 के तहत उक्त आदेश के खिलाफ एक उपाय है, इसलिए, हम किसी भी तरह के अनुग्रह के इच्छुक नहीं हैं।

नतीजतन, याचिकाकर्ता को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष अपनी शिकायत का निवारण करने की स्वतंत्रता के साथ याचिका खारिज कर दी जाती है।"

5. उपरोक्त अंतिम निर्णय दिनांक 19.04.2021 की समीक्षा करने के लिए, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, वर्तमान समीक्षा आवेदन में विभिन्न आधार लिए गए हैं। हमारे समक्ष जो मूल आधार लिया गया है और तर्क दिया गया है वह यह है कि अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अंतर्गत वैकल्पिक उपाय केवल उधारकर्ता, गारंटर, पट्टेदार, किरायेदार के लिए उपलब्ध है न कि प्रतिभूत ऋणदाता के लिए। आगे यह तर्क दिया गया है कि सत्यमति टंडन (उपरोक्त) के

मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, जिस पर रिट याचिका को खारिज करते समय भरोसा किया गया था, का पूर्व निर्धारित मामले पर कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि समान सौदे एक बहुत ही विशिष्ट क्षेत्र पर, अर्थात्, वित्तीय संस्थान के हितों की रक्षा के लिए काम करते हैं। आगे यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिका को खारिज करने वाला आदेश दिनांक 19.04.2021 एक गलती से ग्रस्त है जो पेटेंट, प्रकट और स्वयं स्पष्ट है। आगे यह तर्क दिया गया है कि वैकल्पिक उपाय इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए एक पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, यदि चुनौती दी गई कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है।

6. आगे बढ़ने से पहले सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद सी.पी.सी. के रूप में संदर्भित) के आदेश XLVII नियम-1 के साथ-साथ तय कानून के अनुसार समीक्षा के दायरे को ध्यान में रखना उचित होगा।

7. किसी निर्णय के विरुद्ध पुनरीक्षण आवेदन दायर करने के लिए उपलब्ध आधारों को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLVII में निम्नलिखित शब्दों में निर्धारित किया गया है:

1. निर्णय की समीक्षा के लिए आवेदन -

(1) कोई भी व्यक्ति जो स्वयं को व्यथित समझता है-

(ए) एक डिक्री या आदेश द्वारा जिसमें से एक अपील की अनुमति दी जाती है, लेकिन जिसमें से कोई अपील नहीं की गई है,

(बी) एक डिक्री या आदेश द्वारा जिसमें से कोई अपील की अनुमति नहीं है, या

(ग) लघु वाद न्यायालय (खफीफा) से एक संदर्भ पर एक निर्णय द्वारा, और जो नए और महत्वपूर्ण मामले या सबूत की खोज से, जो उचित परिश्रम के प्रयोग के बाद उसके ज्ञान में नहीं था या उस समय उसके द्वारा पेश नहीं किया जा सकता था जब डिक्री पारित की गई थी या आदेश दिया गया था, या रिकॉर्ड पर कुछ स्पष्ट गलती या त्रुटि के कारण या किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए, पारित डिक्री या उसके खिलाफ किए गए आदेश की समीक्षा प्राप्त करने की इच्छा, उस न्यायालय को निर्णय की समीक्षा के लिए आवेदन कर सकती है जिसने डिक्री पारित की या आदेश दिया।

(2) एक पक्षकार जो किसी डिक्री या आदेश से अपील नहीं कर रहा है, किसी अन्य पक्ष द्वारा अपील के लंबित होने के बावजूद निर्णय की समीक्षा के लिए आवेदन कर सकता है, सिवाय इसके कि जहां ऐसी अपील का आधार आवेदन और अपीलकर्ता के लिए सामान्य है, या जब प्रतिवादी होने के नाते, वह अपीलीय न्यायालय को वह मामला पेश कर सकता है जिस पर वह समीक्षा के लिए आवेदन करता है।

[स्पष्टीकरण- यह तथ्य कि विधि के किसी प्रश्न पर विनिश्चय, जिस पर न्यायालय का निर्णय आधारित है, किसी अन्य मामले में उच्चतर न्यायालय के उत्तरवर्ती विनिश्चय द्वारा उलट दिया गया है या उपांतरित कर दिया गया है, ऐसे निर्णय के पुनर्विलोकन का आधार नहीं होगा।

8. पूर्वोक्त प्रावधानों पर एक नज़र यह स्पष्ट करती है कि एक समीक्षा आवेदन निम्नलिखित पर बनाए रखा जाएगा:

(i) ऐसे नए और महत्वपूर्ण मामलों या साक्ष्यों की खोज करना, जो सम्यक तत्परता के प्रयोग के पश्चात् आवेदक की जानकारी में नहीं थे या डिब्री पारित करते समय या आदेश देते समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किए जा सके;

(ii) रिकॉर्ड पर कुछ स्पष्ट गलती या त्रुटि के कारण; नहीं तो

(iii) किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए।

9. छज्जू राम बनाम नेकी ए.आई.आर. 1922 पीसी 112 के मामले में प्रिवी काउंसिल; बिशेश्वर प्रताप साही बनाम परथ नाथ ए.आई.आर. 1934 पीसी 213; में यह माना गया कि इस आधार पर समीक्षा नहीं की जा सकती है कि निर्णय कानून के गलत प्रदर्शन पर आगे बढ़ा। इसके अलावा, न्यायालय के पास समीक्षा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है क्योंकि उसकी राय थी कि कानून का एक अलग निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था। यह भी देखा गया कि यदि कोई निर्णय कानून में गलत है तो यह समीक्षा का आदेश देने का आधार नहीं है। यदि किसी अदालत ने गलती से एक बिंदु तय किया है, तो त्रुटि अभिलेखों में प्रथम दृष्ट्या स्पष्ट नहीं हो सकती है या इसके अनुरूप भी नहीं हो सकती है। इसलिए, बाद की घटनाएं या तथ्य यह है कि न्यायालय ने बाद के मामले में एक अलग दृष्टिकोण लिया, समीक्षा देने के लिए पर्याप्त कारण नहीं

10. कार्यवाही में प्रथम दृष्ट्या स्पष्ट त्रुटि के रूप में क्या कहा जा सकता है, टीसी बसप्पा बनाम टी. नागप्पा, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 440 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस पर निपटा और विचार किया गया है। यह माना जाता है कि इस तरह की त्रुटि एक त्रुटि है जो एक स्पष्ट त्रुटि है और केवल गलत निर्णय नहीं है।

11. हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक, ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 233 के मामले में, यह निम्नानुसार देखा गया है:

"यह आवश्यक है कि यह केवल एक त्रुटि से अधिक कुछ होना चाहिए; यह एक ऐसा होना चाहिए जो रिकॉर्ड में प्रकट होना चाहिए। इस मामले के संदर्भ में वास्तविक कठिनाई, हालांकि, सिद्धांत के बयान में इतनी नहीं है जितनी कि किसी विशेष मामले के तथ्यों के लिए इसके आवेदन में। कब कोई त्रुटि मात्र त्रुटि बनकर रह जाती है, और अभिलेख के मुख पर स्पष्ट त्रुटि बन जाती है? दोनों पक्षों के अधिवक्ता किसी भी स्पष्ट नियम का सुझाव देने में असमर्थ थे जिसके द्वारा त्रुटियों के दो वर्गों के बीच की सीमा का सीमांकन किया जा सकता था।"

12. पटेल नरशी ठकर्शी और अन्य बनाम श्री प्रद्युम्न सिंहजी अर्जुन सिंह जी (1971)3 एस.सी.सी. 844 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

4..... यह सुस्थापित है कि समीक्षा करने की शक्ति अंतर्निहित शक्ति नहीं है। इसे कानून द्वारा या तो विशेष रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान ध्यान में नहीं लाया गया जिससे यह पता लगाया जा सके कि सरकार के पास अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने की शक्ति है। यदि सरकार के पास अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं थी, तो यह स्पष्ट है कि इसका प्रतिनिधि अपने आदेश की समीक्षा नहीं कर सकता था...

13. अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम अरिबम पिशाक शर्मा (1979) 4 एस.सी.सी. 389 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक आयुक्त द्वारा पारित एक आदेश की जांच कर रहा था, जो अपीलकर्ता के पक्ष में गए पहले के फैसले की समीक्षा कर रहा था, जबकि उत्तरदाताओं द्वारा दायर एक समीक्षा आवेदन का फैसला करते हुए, जिन्होंने यह आधार लिया कि पूर्ववर्ती न्यायालय ने दो महत्वपूर्ण दस्तावेजों की अनदेखी की थी जो दिखाते थे कि उत्तरदाताओं के कब्जे में थे? अपीलकर्ता ने अपने घर तक पहुंचने के लिए सुखदायक अधिकारों की मांग की थी। उक्त अपील को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ अनुमति दी गई थी:

3...यह सच है जैसा कि इस न्यायालय ने शिवदेव सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (1979) 4 एस.सी.सी. 389 में देखा है, संविधान के अनुच्छेद 226 में ऐसा कुछ भी

नहीं है जो उच्च न्यायालय को पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करने से रोकता हो जो पूर्ण क्षेत्राधिकार वाले प्रत्येक न्यायालय में न्याय की हत्या को रोकने या उसके द्वारा की गई गंभीर और तुच्छ त्रुटियों को ठीक करने में निहित है। लेकिन, समीक्षा की शक्ति के प्रयोग की निश्चित सीमाएं हैं। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग नए और महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज पर किया जा सकता है, जो उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद समीक्षा की मांग करने वाले व्यक्ति के ज्ञान में नहीं था या उस समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था जब आदेश दिया गया था; इसका प्रयोग किया जा सकता है जहां रिकॉर्ड में कुछ स्पष्ट गलती या त्रुटि पाई जाती है; इसका प्रयोग किसी भी समान आधार पर भी किया जा सकता है। लेकिन, इसका प्रयोग इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि निर्णय गुण-दोष के आधार पर गलत था। यह अपील की अदालत का प्रांत होगा। समीक्षा की शक्ति को अपीलीय शक्ति के साथ क्षमिit नहीं किया जाना चाहिए जो एक अपीलीय अदालत को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई सभी प्रकार की त्रुटियों को ठीक करने में सक्षम बना सकता है।
(महत्व सन्निविष्ट)

14. कर्नल अवतार सिंह सेखों बनाम भारत संघ और अन्य 1980 पूरक एस.सी.सी. 562 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि पहले के आदेश की समीक्षा तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि अदालत संतुष्ट न हो जाए कि आदेश पर प्रकट होने वाली महत्वपूर्ण

त्रुटि के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या होगी या इसके प्रभाव को कम कर देगी। की गई टिप्पणियां निम्नानुसार हैं:

12. एक समीक्षा एक नियमित प्रक्रिया नहीं है। यहां हमने श्री कपिल को विस्तार से सुनने का संकल्प लिया ताकि बिना सुने पक्ष को ठेस पहुंचाने की भावना दूर की जा सके। लेकिन हम अपने पहले के आदेश की समीक्षा तब तक नहीं कर सकते जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि आदेश पर प्रकट होने वाली महत्वपूर्ण त्रुटि, इसकी दृढ़ता को कम करती है या न्याय की हत्या का परिणाम है। साऊ चंद्रकांटे और अन्य शेख हबीब (1975) 1 एस.सी.सी. 674 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

किसी फैसले की समीक्षा एक गंभीर कदम है और इसकी अनिच्छा से सहारा लेना केवल तभी उचित है जब न्यायिक गिरावट के कारण एक स्पष्ट चूक या पेटेंट गलती या गंभीर त्रुटि की तरह हो। वर्तमान चरण एक प्रयोगहीन जमीन नहीं है, बल्कि पहले के आदेश की समीक्षा है जिसमें अंतिमता की सामान्य विशेषता है। (महत्व सन्निविष्ट)

15. एस. नागराज और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य 1993 पूरक (4) एस.सी.सी. 595 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने समझाया कि कब एक समीक्षा क्षेत्राधिकार को वैधानिक या अंतर्निहित माना जा सकता है और इस प्रकार अवधारित किया जा सकता है:

18. न्याय एक ऐसा गुण है जो सभी बाधाओं को पार करता है। न तो प्रक्रिया के नियम और

न ही कानून की तकनीकी इसके रास्ते में खड़े हो सकते हैं। न्यायालय का आदेश किसी के प्रति पक्षपाती नहीं होना चाहिए। स्थिरता के लिए स्टेयर डिसीसिस के नियम का पालन किया जाता है, लेकिन यह प्रशासनिक कानून में उतना अनम्य नहीं है जितना कि सार्वजनिक कानून में। यहां तक कि कानून भी न्याय के आगे झुक जाता है। उच्च न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली रिट अधिकारिता की पूरी अवधारणा इक्विटी और निष्पक्षता पर आधारित है। यदि अदालत को पता चलता है कि आदेश एक गलती के तहत पारित किया गया था और उसने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं किया होगा, लेकिन गलत धारणा के लिए, जो वास्तव में मौजूद नहीं थी और इसके अपराध के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या/हानि होगी, तो इसे किसी भी सिद्धांत पर त्रुटि को सुधारने से नहीं रोका जा सकता है। किसी आदेश को वापस लेने के लिए गलती को वैध कारण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अंतर गलती की प्रकृति और सुधार के दायरे में निहित है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि यह तथ्य या कानून का है या नहीं। लेकिन जिस जड़ से सत्ता प्रवाहित होती है, वह अन्याय से बचने की चिंता है। यह या तो वैधानिक है या अंतर्निहित है। उत्तरार्द्ध वहां उपलब्ध है जहां गलती न्यायालय की है।

16. फिर से, मीरा भांजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी (1995) 1 एस.सी.सी. 170 में, अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम अरिबम पिशाक शर्मा (1979) 4 एस.सी.सी. 389 के एक अंश को अनुमोदन के साथ उद्धृत करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर कहा कि

समीक्षा कार्यवाही अपील के माध्यम से नहीं है और इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम-1 के दायरे और सीमा तक सख्ती से सीमित किया जाना चाहिए।

9. आदेश 47, नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत, यदि रिकॉर्ड पर कोई स्पष्ट गलती या त्रुटि है, एक निर्णय अन्य बातों के साथ-साथ समीक्षा के लिए खुला हो सकता है। एक त्रुटि जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, शायद ही रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि कहा जा सकता है जो अदालत को सिविल प्रक्रिया के आदेश 47 नियम-1 के तहत समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए उचित ठहराता है। इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, आदेश 47, नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत, किसी गलत निर्णय को 'फिर से सुनने और सुधारने' की अनुमति नहीं है। यह याद रखना चाहिए कि एक समीक्षा याचिका का एक सीमित उद्देश्य होता है और इसे 'भेष में अपील' होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। [महत्व सन्निविष्ट]

17. पारशन देवी और अन्य बनाम सुमित्रा देवी और अन्य : (1997) 8 एस.सी.सी. 715 में, यह कहते हुए कि एक त्रुटि जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और जिसे तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, को न्यायालय के लिए रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"7. यह अच्छी तरह से तय है कि समीक्षा कार्यवाही को सख्ती से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम-1 के दायरे और सीमा तक सीमित किया जाना चाहिए। तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, 1964 एस.सी.आर (5) 174 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

11. हालांकि, अब हम इस बात से चिंतित हैं कि क्या सितंबर 1959 के आदेश में बयान कि मामले में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है, 'रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि' है। तथ्य यह है कि पहले के अवसर पर न्यायालय ने तथ्यों की एक समान स्थिति पर अवधारित किया था कि कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हुआ था, जो अपने आप में निर्णायक नहीं होगा, क्योंकि पहले का आदेश स्वयं गलत हो सकता है। इसी तरह, भले ही बयान गलत था, इसका मतलब यह नहीं होगा कि यह 'रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि' थी, क्योंकि एक अंतर है जो वास्तविक है, हालांकि यह हमेशा केवल गलत निर्णय और एक निर्णय के बीच उजागर करने में सक्षम नहीं हो सकता है, जिसे 'स्पष्ट त्रुटि' द्वारा दूषित माना जा सकता है। एक समीक्षा किसी भी तरह से भेष में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना और सही किया जाता है, लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए झूठ बोलता है।

18. नियम के तहत निर्दिष्ट त्रुटि, रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि होनी चाहिए और ऐसी नहीं जिसे खोजा जाना है। अनुच्छेद 137 के दायरे और सीमा पर चर्चा करते हुए, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णयों की समीक्षा करने

का अधिकार देता है और लिली थॉमस बनाम भारत संघ में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLVII नियम-1 के तहत समीक्षा क्षेत्राधिकार की रूपरेखा पर चर्चा करने के दौरान (2000) 6 एस.सी. 224 में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

54. अनुच्छेद 137 इस न्यायालय को संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून या संविधान के अनुच्छेद 145 के तहत बनाए गए किसी भी नियम के प्रावधानों के अधीन अपने निर्णयों की समीक्षा करने का अधिकार देता है। संविधान के अनुच्छेद 145 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए सर्वोच्च न्यायालय के नियम यह निर्धारित करते हैं कि दीवानी मामलों में, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम-1 में निर्दिष्ट किसी भी आधार पर समीक्षा निहित है जो प्रदान करता है:

56. इसलिए, यह इस प्रकार है कि समीक्षा की शक्ति का प्रयोग गलती के सुधार के लिए किया जा सकता है लेकिन किसी दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं। ऐसी शक्तियों का प्रयोग शक्ति के प्रयोग से संबंधित कानून की सीमाओं के भीतर किया जा सकता है। समीक्षा को भेष में अपील की तरह नहीं माना जा सकता है। इस विषय पर दो विचारों की मात्र संभावना समीक्षा का आधार नहीं है। एक बार पुनरीक्षण याचिका खारिज हो जाने के बाद पुनर्विचार की आगे की याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता। बड़ी खंडपीठों की बाध्यकारी प्रकृति की प्रथा का पालन करने

और समान शक्ति वाले समन्वित क्षेत्राधिकार वाली न्यायपीठों द्वारा अलग-अलग विचार न लेने के कानून के नियम का पालन और व्यवहार किया जाना चाहिए। हालांकि, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 या अनुच्छेद 32 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए और इस बात से संतुष्ट होने पर कि पहले के फैसलों के परिणामस्वरूप किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों या किसी अन्य कानून के तहत बनाए गए अधिकारों से वंचित किया गया है, पहले के फैसले के बावजूद एक अलग दृष्टिकोण ले सकता है।

58. अन्यथा भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 सपठित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के आदेश XL के तहत परिकल्पित कोई आधार समीक्षा याचिका में दलील नहीं दी गई है या सरला मुद्गल मामले में निर्णय की समीक्षा के प्रयोजनों के लिए बहस के दौरान हमारे सामने प्रचार नहीं किया गया है। यह याचिकाकर्ताओं का मामला नहीं है कि उन्होंने किसी भी नए और महत्वपूर्ण मामले की खोज की है जो उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद उनके ज्ञान में नहीं था या निर्णय पारित करने के समय न्यायालय के नोटिस में नहीं लाया जा सकता था। हमारे समक्ष उठाई गई सभी दलीलों को वास्तव में याचिकाकर्ताओं की ओर से उस बेंच के समक्ष संबोधित किया गया था, जिसने उन दलीलों पर विचार करने के बाद सरला मुद्गल मामले में फैसला सुनाया था। हमें समीक्षा की आवश्यकता वाले रिकॉर्ड पर कोई गलती या स्पष्ट त्रुटि नहीं मिली है। नियम के अंतर्गत विचारित त्रुटि ऐसी होनी चाहिए जो अभिलेख में स्पष्ट दिखाई दे और

न कि ऐसी त्रुटि हो जिसे बाहर निकाला जाए और तलाशी ली जाए। यह अनजाने की त्रुटि होनी चाहिए। फैसले की समीक्षा की मांग करने वाले पक्षों की ओर से पेश अधिवक्ता द्वारा ऐसी कोई त्रुटि नहीं बताई गई है। केवल यह तर्क दिया गया था कि धारा 494 की व्याख्या करने वाला निर्णय कुछ मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है। निर्णय की समीक्षा के लिए कोई अन्य पर्याप्त कारण नहीं दिखाया गया है। शब्द "आदेश 47 नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता में दिखाई देने वाले किसी भी अन्य पर्याप्त कारण" का अर्थ "नियम में निर्दिष्ट लोगों के समान कम से कम आधार पर पर्याप्त कारण" होना चाहिए, जैसा कि छज्जू राम बनाम नेकी राम: ए.आई.आर. 1922 पी.सी. 112 में अवधारित किया गया था और मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था। बनाम मोस्ट रेव मार पौलोज अथानासियस : 1955 एस.सी.आर 520। कार्यवाही में स्पष्ट त्रुटि एक त्रुटि है जो कानून के प्रावधानों की स्पष्ट अज्ञानता या अवहेलना पर आधारित है। टीसी बसप्पा बनाम टी. नागप्पा : 1955 एस.सी.आर 250 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसी त्रुटि एक त्रुटि है जो एक स्पष्ट त्रुटि है और केवल गलत निर्णय नहीं है। हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद: ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 233 में, यह अवधारित किया गया था:

यह आवश्यक है कि यह केवल एक त्रुटि से अधिक कुछ होना चाहिए; यह एक ऐसा होना चाहिए जो रिकॉर्ड में प्रकट होना चाहिए। इस मामले के संदर्भ में वास्तविक कठिनाई,

हालांकि, सिद्धांत के बयान में इतनी नहीं है जितनी कि किसी विशेष मामले के तथ्यों के लिए इसके आवेदन में। कब कोई त्रुटि, केवल त्रुटि बनकर रह जाती है और अभिलेख के चेहरे पर स्पष्ट त्रुटि बन जाती है? दोनों पक्षों के अधिवक्ता किसी भी स्पष्ट नियम का सुझाव देने में असमर्थ थे जिसके द्वारा त्रुटियों के दो वर्गों के बीच की सीमा का सीमांकन किया जा सकता था।

पहले प्रतिवादी के लिए श्री पाठक ने छागला, सी.जे. की कुछ टिप्पणियों के बल पर तर्क दिया - 'बटुक के व्यास बनाम सूरत बोरोग नगर पालिका: आई.एल.आर 1953 बम 191, कि रिकॉर्ड में कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं कही जा सकती है यदि यह स्वयं स्पष्ट नहीं थी और यदि इसे स्थापित करने के लिए परीक्षा या तर्क की आवश्यकता थी। यह परीक्षण अधिकांश मामलों में निर्णय के लिए संतोषजनक आधार प्रदान कर सकता है। लेकिन ऐसे मामले होने चाहिए जिनमें यह परीक्षण भी टूट सकता है, क्योंकि न्यायिक राय भी भिन्न होती है, और एक त्रुटि जिसे एक न्यायाधीश द्वारा स्वयं स्पष्ट माना जा सकता है, दूसरे द्वारा इस पर विचार नहीं किया जा सकता है। तथ्य यह है कि रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि त्रुटि को ठीक से या संपूर्ण रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है, इसकी प्रकृति में निहित अनिश्चितता का एक तत्व है, और इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर न्यायिक रूप से निर्धारित करने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।

इसलिए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं ने सरला मुद्गल मामले में निर्णय की समीक्षा के लिए उच्चतम न्यायालय के नियमों के आदेश XL और आदेश 47 नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता सपठित अनुच्छेद 137 के अर्थ के भीतर कोई मामला नहीं बनाया है। याचिका गलत है और इसमें कोई तथ्य नहीं है। (महत्व सन्निविष्ट)

में तब तक चुनौती नहीं दी जा सकती जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि रिकॉर्ड में या किसी कारण से स्पष्ट त्रुटि है। हमारे समक्ष यह तर्क नहीं दिया गया है कि अभिलेख में कोई स्पष्ट त्रुटि है। समीक्षा याचिकाकर्ता को साक्ष्य की मूल्यांकन के सवाल पर बहस करने की अनुमति देने के लिए एक समीक्षा याचिका को भेस में अपील में परिवर्तित करना होगा।

19. यह भी स्थापित कानून है कि समीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, न्यायालय एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता है, भले ही किसी मामले में दो विचार संभव हों। केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम हाईटेक इलेक्ट्रोथर्मिक्स एंड हाइड्रोपावर लिमिटेड और अन्य (2005) 6 एस.सी.सी. 651 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

10.....एक समीक्षा याचिका में न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला नहीं है कि वह सबूतों का पुनर्मूल्यांकन करे और एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचे, भले ही यह संभव हो। बोर्ड के अधिवक्ता ने हमें प्रभावित करने की कोशिश की कि पक्षों के बीच आदान-प्रदान किए गए पत्राचार ने इस न्यायालय द्वारा पहुंचे निष्कर्ष का समर्थन नहीं किया। हमें डर है कि इस तरह की दलील को समीक्षा याचिका में आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। रिकॉर्ड पर साक्ष्य के मूल्यांकन पूरी तरह से अपीलीय अदालत के अधिकार क्षेत्र में है। यदि पेश किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन पर, अदालत तथ्य की खोज दर्ज करती है और निष्कर्ष पर पहुंचती है, तो उस निष्कर्ष को समीक्षा याचिका

20. समीक्षा आवेदन दाखिल करने की आड़ में, किसी पक्ष को निर्णय में पहुंचे निष्कर्षों को फिर से खोलने के लिए पुराने और खारिज किए गए तर्कों को दोहराने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। पुनरीक्षण की शक्ति को अपीलीय शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए जो माननीय उच्चतम न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई त्रुटियों को सुधारने में सक्षम बनाती है। इस बिंदु को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जैन स्टूडियो लिमिटेड बनाम शिन सैटेलाइट पब्लिक कंपनी लिमिटेड: (2006) 5 एस.सी.सी. 501 में स्पष्ट किया गया है जहां यह इस प्रकार अवधारित किया गया था:

11. जहां तक गुण-दोष के आधार पर आवेदक की शिकायत का संबंध है, प्रतिद्वंदी के अधिवक्ता का यह कहना सही है कि वस्तुतः आवेदक वही राहत चाहता है जो मुख्य मामले पर बहस करते समय मांगी गई थी और उसे अस्वीकार कर दिया गया था। एक बार इस तरह की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिए जाने के बाद, कोई समीक्षा याचिका नहीं होगी जो मूल मामले की पुनः सुनवाई को बदल दे। यह स्थापित कानून है कि समीक्षा की शक्ति को

अपीलीय शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है जो एक अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई सभी त्रुटियों को ठीक करने के लिए एक उच्चतर न्यायालय को सक्षम बनाता है। यह किसी मूल मामले की पुनरावृत्ति नहीं है। पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति निष्कर्ष वाले निर्णयों को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त नहीं है। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग अत्यधिक सावधानी और सतर्कता के साथ और केवल असाधारण मामलों में ही किया जा सकता है।

12. जब आवेदक द्वारा मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रार्थना उस समय की गई थी जब मध्यस्थता याचिका पर सुनवाई हुई थी और उसे खारिज कर दिया गया था, तो समीक्षा याचिका दायर करके अप्रत्यक्ष विधि द्वारा वही राहत नहीं मांगी जा सकती है। मेरी राय में ऐसी याचिका 'दूसरी पारी' की प्रकृति की है जो अनुमेय और अनुचित है और इसे मंजूर नहीं किया जा सकता।

21. पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम कमल सेनगुप्ता और अन्य (2008) 8 एस.सी.सी. 612 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने समीक्षा याचिकाकर्ता की आवश्यकता पर जोर दिया, जो एक नए मामले या सबूत की खोज के आधार पर अदालत का दरवाजा खटखटाता है, यह प्रदर्शित करने के लिए कि यह उसके ज्ञान में नहीं था और इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"इस स्तर पर यह देखना उचित है कि जहां नए मामले या सबूत की खोज के आधार पर

समीक्षा की मांग की जाती है, तो ऐसा मामला या सबूत प्रासंगिक होना चाहिए और इस तरह के चरित्र का होना चाहिए कि यदि वह पेश किया गया होता, तो वह निर्णय बदल सकता था। दूसरे शब्दों में, केवल नए या महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज पूर्व विचारोत्तेजक औचित्य की समीक्षा के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। इतना ही नहीं, पुनर्विचार की मांग करने वाले पक्ष को यह भी दिखाना होगा कि इस तरह का अतिरिक्त मामला या सबूत उसके ज्ञान में नहीं था और उचित परिश्रम के बाद भी, इसे पहले अदालत के समक्ष पेश नहीं किया जा सका था।

शीर्षक वाले फैसले में, 'स्पष्ट गलती या त्रुटि' शब्द पर निम्नलिखित शब्दों में चर्चा की गई है:

22. शब्द 'स्पष्ट गलती या त्रुटि' अपने बहुत अर्थ में एक त्रुटि है जो मामले के रिकॉर्ड से प्रति से स्पष्ट है और विस्तृत परीक्षा, जांच और तथ्यों या कानूनी स्थिति की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है दर्शाता है। यदि कोई त्रुटि स्वतः स्पष्ट नहीं है और उसका पता लगाने के लिए लंबी बहस और तर्क की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, तो इसे आदेश 47 नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता या अधिनियम की धारा 22 (3) (एफ) के उद्देश्य से रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि के रूप में नहीं माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी आदेश या निर्णय को केवल इसलिए ठीक नहीं किया जा सकता क्योंकि यह कानून में गलत है या इस आधार पर

कि तथ्य या कानून के बिंदु पर न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा एक अलग दृष्टिकोण अपनाया जा सकता था। किसी भी मामले में, समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए, संबंधित अदालत/न्यायाधिकरण अपने फैसले/निर्णय पर अपील में नहीं जा सकता है।

22. कमलेश वर्मा बनाम मायावती और अन्य (2013)8 एस.सी.सी. 320 में समीक्षा क्षेत्राधिकार पर निर्णयों की एक शृंखला पर चर्चा करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि समीक्षा कार्यवाही को सख्ती से आदेश XLVII नियम-1, सिविल प्रक्रिया संहिता के दायरे और सीमा तक सीमित किया जाना चाहिए। जब समीक्षा आवेदन में उठाए जाने वाले बिंदु पर पहले विचार किया जा चुका है और उसका उत्तर दिया जा चुका है, तब पक्ष केवल इसलिए आक्षेपित निर्णय को चुनौती देने के हकदार नहीं हैं क्योंकि एक वैकल्पिक दृष्टिकोण संभव है। समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के सिद्धांतों को संक्षेप में नीचे दिए गए मामले में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था:

20. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, समीक्षा के निम्नलिखित आधार कानून द्वारा निर्धारित बनाए रखने योग्य हैं:

20.1. समीक्षा कब बनाए रखी जाएगी:

(I) नए और महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज, जो उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद,

याचिकाकर्ता के ज्ञान के भीतर नहीं था या उसके द्वारा पेश नहीं किया जा सकता था;

(ii) रिकॉर्ड पर स्पष्ट गलती या त्रुटि;

(iii) कोई अन्य पर्याप्त कारण।

छज्जू राम बनाम नेकी में "कोई अन्य पर्याप्त कारण" शब्द की व्याख्या की गई है और इस न्यायालय द्वारा मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस बनाम मोस्ट रेव मार पौलोज अथानासियस में अनुमोदित किया गया है, जिसका अर्थ है "नियम में निर्दिष्ट लोगों के अनुरूप कम से कम आधार पर पर्याप्त कारण"। इन्हीं सिद्धांतों को यूनियन ऑफ इंडिया बनाम सुंदर मँगनीज एंड आयरन ऑरेस लिमिटेड में दोहराया गया है।

20.2. समीक्षा कब बनाए रखने योग्य नहीं होगी:

(i) पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति निष्कर्ष वाले अधिनिर्णयों को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त नहीं है।

(ii) असंगत आयात की छोटी-मोटी चूकें।

(iii) पुनरीक्षण कार्यवाहियों को मामले की मूल सुनवाई के बराबर नहीं माना जा सकता।

(iv) समीक्षा तब तक अनुरक्षणीय नहीं है जब तक कि आदेश में प्रकट होने वाली

वास्तविक त्रुटि इसके प्रभाव को कम न कर दे अथवा इसके परिणामस्वरूप न्याय की हत्या/हानि न हो जाए।

(v) एक समीक्षा किसी भी तरह के भेस में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना जाता है और सही किया जाता है लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए निहित है।

(vi) इस विषय पर केवल दो मतों की संभावना समीक्षा का आधार नहीं हो सकती।

(vii) अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि ऐसी त्रुटि नहीं होनी चाहिए जिसे ढूँढकर खोजना पड़े।

(viii) अभिलेख में साक्ष्य का मूल्यांकन पूर्णतः अपीलीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता है, इसे पुनर्विचार याचिका में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(ix) समीक्षा तब अनुरक्षणीय नहीं है जब मुख्य मामले पर बहस करते समय मांगी गई उसी राहत को अस्वीकार कर दिया गया हो।

23. राम साहू (मृत) द्वारा विधि परामर्शी और अन्य बनाम विनोद कुमार रावत और अन्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 896 में, पिछले निर्णयों का हवाला देते हुए और आदेश XLVII नियम-1 सपठित धारा 114 के दायरे और सीमा पर विस्तार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 114 समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने के लिए कोई पूर्ववर्ती शर्त नहीं रखती है; और न ही

यह धारा न्यायालय को किसी निर्णय की समीक्षा करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने से रोकती है। हालांकि, न्यायालय द्वारा केवल आदेश XLVII नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित आधारों पर ही एक आदेश की समीक्षा की जा सकती है। उक्त शक्ति का प्रयोग अंतर्निहित शक्ति के रूप में नहीं किया जा सकता है और न ही समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने की आड़ में अपीलीय शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

24. हाल ही में एस. मधुसूदन रेड्डी बनाम बनाम नारायण रेड्डी और अन्य के मामले में 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1034 में प्रतिपादित किया गया था, यह फिर से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था कि समीक्षा का न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अपील के समान नहीं है। एक निर्णय समीक्षा के लिए खुला हो सकता है, यदि रिकॉर्ड पर कोई स्पष्ट गलती या त्रुटि है, लेकिन एक त्रुटि जिसे तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जा सकता है, रिकॉर्ड पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है। पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ -31 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"जैसा कि कानून के उपरोक्त प्रदर्शन से देखा जा सकता है, यह इस न्यायालय द्वारा कई न्यायिक घोषणाओं में लगातार अवधारित किया गया है कि न्यायालय का समीक्षा का अधिकार क्षेत्र, अपील के समान नहीं है। एक निर्णय समीक्षा के लिए खुला

हो सकता है यदि कोई गलती या रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि त्रुटि है, लेकिन एक त्रुटि जिसे तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, को न्यायालय के लिए आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. के तहत समीक्षा की अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि त्रुटि के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करने की आइ में, न्यायालय एक गलती को सुधार सकता है लेकिन पहले लिए गए दृष्टिकोण को केवल इसलिए प्रतिस्थापित नहीं कर सकता क्योंकि किसी मामले में दो विचार लेने की संभावना है। एक निर्णय समीक्षा के लिए भी खुला हो सकता है जब निर्णय पारित होने के बाद साक्ष्य का कोई नया या महत्वपूर्ण मामला सामने आया है, इस शर्त के अधीन कि इस तरह के साक्ष्य समीक्षा की मांग करने वाले पक्ष के ज्ञान के भीतर नहीं थे या उचित परिश्रम के बावजूद आदेश दिए जाने पर इसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किए जा सकते थे। रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि के मुकाबले एक गलत निर्णय के बीच एक स्पष्ट अंतर है। एक गलत निर्णय को उच्चतर न्यायालय द्वारा ठीक किया जा सकता है, हालांकि रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि को केवल समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके ठीक किया जा सकता है। फिर भी एक निर्णय की समीक्षा के लिए आदेश XLVII नियम-1 में संदर्भित एक और परिस्थिति को "किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए" के रूप में वर्णित किया गया है। उक्त वाक्यांश का अर्थ "आधार पर पर्याप्त कारण, कम से कम नियम में निर्दिष्ट लोगों के समान" के रूप में

समझाया गया है (संदर्भ: छज्जू राम बनाम नेकी राम और मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस और अन्य। मोस्ट रेव मार पौलोज अथानासियस)

25. इसी सिद्धांत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के मामले में सचिव, भूमि और भवन विभाग और अन्य बनाम केएल राठी स्टील्स लिमिटेड और अन्य के माध्यम से 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 288 में दोहराया है।

26. हालांकि, आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. में अभिव्यक्ति "किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए" अपने दायरे के भीतर लेने के लिए पर्याप्त व्यापक है और कई परिस्थितियों या स्थितियों को दायरे में लेती है जो आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. के पहले भाग में नहीं आती हैं जो दो आधार हैं (i) और (ii) इस फैसले के पैरा 4 को संदर्भित किया गया है, हमारे विचार में, उक्त प्रावधान का स्पष्टीकरण जमीन (iii) में एक निर्णय की समीक्षा के लिए एक आधार के रूप में "किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए" अभिव्यक्ति के अपवाद को बाहर करता है। स्पष्टीकरण अपवाद की प्रकृति में होने के कारण आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. में "किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए" अभिव्यक्ति के दायरे से बाहर पड़ा जाना है। दूसरे शब्दों में, यदि कानून के प्रश्न पर, किसी न्यायालय के निर्णय को उच्चतर न्यायालय के बाद के निर्णय द्वारा उलट दिया जाता है और उसे

उक्त बाद के निर्णय के आधार पर फिर से खोला जाता है, तो न्यायालय के निर्णयों की, यहां तक कि पक्षों के बीच भी, कोई अंतिमता नहीं होगी। इसलिए, यह देखा गया है कि यहां तक कि एक गलत निर्णय या आदेश भी पक्षकारों के लिए बाध्यकारी है, भले ही बाद में उस निर्णय को एक उच्चतर न्यायालय के बाद के निर्णय में उलट दिया जाए। अन्यथा, अराजकता होगी और न्यायालय के किसी भी निर्णय की कोई अंतिमता नहीं होगी जो सार्वजनिक नीति के खिलाफ है। प्रचलित कानून के अनुसार सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय उक्त निर्णय के पक्षकारों पर बाध्यकारी हैं। केवल इसलिए कि उस निर्णय को बाद में किसी अन्य मामले में उच्चतर न्यायालय के बाद के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया जाता है, वही ऐसे निर्णय की समीक्षा के लिए आधार नहीं होगा।

27. इस संदर्भ में, आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. के स्पष्टीकरण के उद्देश्य और लक्ष्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है और इस पर जोर दिया जाना चाहिए। हमारे विचार में, आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. का स्पष्टीकरण "किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए" अभिव्यक्ति के अपवाद की प्रकृति में है। इसका मतलब यह होगा कि यदि किसी न्यायालय के दिमाग में किसी निर्णय की समीक्षा के लिए पर्याप्त कारण है, तो यह आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. के स्पष्टीकरण में शामिल आधार/कारण पर नहीं हो सकता है। इस प्रकार, स्पष्टीकरण में

उल्लिखित परिस्थितियां एक अपवाद होंगी और "किसी अन्य पर्याप्त कारण से" के दायरे और सीमा से बाहर हैं।

28. वस्तु और विषयवस्तु के साथ-साथ धारा में निहित शब्दों के अर्थ की व्याख्या करने के लिए कभी-कभी एक स्पष्टीकरण एक खंड में जोड़ा जाता है। किसी चीज को शामिल करने या मुख्य अधिनियमन के दायरे से कुछ को बाहर करने या उसमें आने वाले कुछ शब्दों के अर्थ को बाहर करने के लिए एक स्पष्टीकरण जोड़ा जा सकता है। यहां तक कि एक नकारात्मक स्पष्टीकरण जो कुछ प्रकारों या एक श्रेणी को धारा के दायरे से बाहर करता है, यह दिखाने का प्रभाव हो सकता है कि श्रेणी अपवादित प्रकारों को छोड़कर इसके भीतर शामिल है। मुख्य धारा के परंतुक के रूप में कार्य करने के लिए एक स्पष्टीकरण भी जोड़ा जा सकता है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वाई.पी. चावला और अन्य बनाम एम.पी. तिवारी और अन्य ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 1360 के मामले में माना गया है। जब कोई स्पष्टीकरण एक परंतुक की प्रकृति में होता है, तो इसका उपयोग सामान्य प्रावधान से विशेष मामलों को हटाने और विशेष रूप से उनके लिए प्रदान करने के लिए किया जाता है। कभी-कभी कानून के एक संदिग्ध बिंदु को स्पष्ट करने के लिए एक स्पष्टीकरण जोड़ा जाता है क्योंकि प्रस्तुत मामले में आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. का स्पष्टीकरण वर्ष 1976 में किए गए संशोधन द्वारा डाला गया है। [स्रोत: जीपी सिंह का "वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत" - 15 वां संस्करण]

29. यह भी विशेष मामलों के लिए अधिनियमन खंड को रोकने के लिए इरादा एक अपवाद की प्रकृति में है। प्रस्तुत मामले में स्पष्टीकरण एक परंतुक की प्रकृति में होने के कारण आदेश XLVII नियम-1 सी.पी.सी. में जो कहा गया है उसे छोड़कर एक योग्यता या प्रावधान है जो समीक्षा की मांग करने के लिए आधार बताता है। इसलिए, प्रावधान के उद्देश्य और इरादे को इसका पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। स्पष्टीकरण का लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित तीन सूक्तियों से संबंधित हो सकता है:

(i) निमो डेबेट बिस वेक्सरी प्रो ऊना एट एडेम कॉसा (किसी भी व्यक्ति को एक ही कारण के लिए दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए);

(ii) फिनिस लिटियम के लिए ब्याज पुनर्वितरण (यह राज्य के हित में है कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए); और

(iii) रेस जुडीकाटा प्रो वेरिटेट ओसिपटर (एक न्यायिक निर्णय को सही के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए)।

30. ये कहावतें इंगित करेंगी कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए अन्यथा व्यक्तियों के अधिकार अंतहीन भ्रम में पड़ जाएंगे और न्याय प्रभावित होगा।

31. इसी समय, निर्णयों की एक पंक्ति है जिसमें माना गया है कि "किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए" के लिए समीक्षा की शक्ति का प्रयोग उसमें प्रावधान में उल्लिखित दो कारणों के अनुरूप होना चाहिए, अर्थात्-

"1) जो नए और महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज से, जो उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद, उसके ज्ञान के भीतर नहीं था या उस समय उसके द्वारा पेश नहीं किया जा सकता था जब डिफेंडी पारित की गई थी या आदेश दिया गया था; नहीं तो

2) रिकॉर्ड में कुछ स्पष्ट गलती या त्रुटि के कारण।

32. हाल ही में विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में 2022 (11) ए.डी.जे. 25 (डीबी) में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 114 और आदेश 47 नियम-1 के पूरे इतिहास और दायरे पर विचार किया है और समीक्षा के दायरे को समझाया है।

33. जैसा कि कानून के उपरोक्त प्रदर्शन से देखा जा सकता है, यह कई न्यायिक घोषणाओं में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लगातार अवधारित किया गया है कि न्यायालय का समीक्षा का अधिकार क्षेत्र अपील के समान नहीं है। एक निर्णय समीक्षा के लिए खुला हो सकता है यदि रिकॉर्ड में कोई स्पष्ट गलती या त्रुटि है, लेकिन एक त्रुटि जिसे तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, को न्यायालय के लिए रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है ताकि वह आदेश XLVII नियम-1 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत समीक्षा की अपनी शक्तियों

का प्रयोग करे। समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करने की आइ में, न्यायालय एक गलती को सुधार सकता है लेकिन पहले लिए गए दृष्टिकोण को केवल इसलिए प्रतिस्थापित नहीं कर सकता क्योंकि किसी मामले में दो विचार लेने की संभावना है। एक निर्णय समीक्षा के लिए भी खुला हो सकता है जब निर्णय पारित होने के बाद, इस शर्त के अधीन कि इस तरह के साक्ष्य समीक्षा की मांग करने वाले पक्ष के ज्ञान के भीतर नहीं थे या उचित परिश्रम के अभ्यास के बावजूद आदेश दिए जाने पर इसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किए जा सकते थे, कोई नया या महत्वपूर्ण साक्ष्य सामने आया है। रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि के मुकाबले एक गलत निर्णय के बीच एक स्पष्ट अंतर है। एक गलत निर्णय को (माननीय उच्चतर न्यायालय) द्वारा ठीक किया जा सकता है, हालांकि रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि को केवल समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके ठीक किया जा सकता है।

34. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

35. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने और समीक्षा आवेदन में किए गए कथनों को देखने के बाद, न्यायालय की राय है कि ये सभी आधार याचिकाकर्ता के लिए उस समय उपलब्ध थे जब रिट याचिका में तर्क दिए गए थे। रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि वर्तमान समीक्षा आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम-1 के दायरे में कैसे आएगा। समीक्षा आवेदन जिन

आधारों पर सुनवाई योग्य है, उनके संबंध में हमारे द्वारा पहले ही विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।

36. समीक्षा आवेदन में निहित आधारों के साथ-साथ याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों के अवलोकन से, हमारी राय है कि समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करने की आइ में समीक्षा करने के लिए रिकॉर्ड में कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं है, न्यायालय गलती को सुधार सकता है लेकिन पहले लिए गए दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है क्योंकि इसमें दो विचार लेने की संभावना है। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, यह 100 साल से अधिक समय पहले छज्जू राम (उपरोक्त) के मामले में प्रिवी अधिवक्ता द्वारा पहले ही माना जा चुका है, जिसका बाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ विभिन्न उच्च न्यायालय द्वारा आज तक पालन किया गया था कि इस आधार पर समीक्षा नहीं की जा सकती है कि निर्णय कानून के गलत प्रदर्शन पर आगे बढ़ा।

37. एक प्रासंगिक तथ्य जिसे आवेदक के अधिवक्ता द्वारा इंगित किया जाना चाहिए था, हालांकि रिकॉर्ड पर हालांकि उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक ने पहले रिट याचिका संख्या 9803 वर्ष 2021 में पारित निर्णय दिनांक 19.04.2021 की समीक्षा के लिए उसी आधार पर एक समीक्षा आवेदन संख्या 168 वर्ष 2021 दायर किया था, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 09.09.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया है, जो निम्नानुसार है:-

"इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक-याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 19.4.2021 के आदेश की समीक्षा करने की प्रार्थना की है।

समीक्षा आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम-1 के अनुरूप नहीं है।

समीक्षा आवेदन अत्यधिक गलत है।
तदनुसार इसे अस्वीकार किया जाता है। "

38. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि आवेदक को उसी आधार पर नए सिरे से समीक्षा आवेदन दायर करने की कोई स्वतंत्रता नहीं दी गई थी। इसलिए, उसी आधार पर दूसरा समीक्षा आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है। इस संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है कि मूल निर्णय के खिलाफ लगातार समीक्षा आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है।

39. कॉमन कॉज ए रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम भारत संघ और एक अन्य (2003) 10 एस.सी.सी. 264 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"अनुच्छेद 32 के तहत दायर एक रिट याचिका में निर्णय देने के बाद, एक समीक्षा याचिका दायर की गई थी, और उस समीक्षा याचिका पर विचार किया गया था और अंत में निपटाया गया था। वर्तमान आवेदन समीक्षा किए गए फैसले के खिलाफ एक समीक्षा याचिका होने का दावा करता है। यह आवेदन पूरी तरह से गलत है और लगातार समीक्षा याचिका दायर करने का कहीं भी कोई प्रावधान

नहीं है। तदनुसार पुनर्विचार याचिका खारिज की जाती है।

40. (1998)7 एस.सी.सी. 445 में रिपोर्ट किए गए एम. सत्यनारायण मूर्ति और अन्य बनाम मंडल राजस्व अधिकारी सह भूमि अधिग्रहण अधिकारी के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फिर से यही दृष्टिकोण लिया गया था। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि उसी आदेश के खिलाफ दूसरा पुनर्विचार आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है और ये कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, खासकर तब जब कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था। उपर्युक्त पुनरीक्षण आवेदन को खारिज करते समय इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 5000/- रुपए का जुर्माना भी लगाया गया था। उपर्युक्त मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

पीठ ने कहा, "इस पुनर्विचार याचिका को दायर करने में दो साल और 32 दिन की देरी हुई है। विलंब के लिए क्षमा मांगने वाले आवेदन में निहित विलंब का स्पष्टीकरण पूर्णतः असंतोषजनक है और बिल्कुल भी औचित्यपूर्ण नहीं है। इसके अलावा, हम यह भी पाते हैं कि याचिकाकर्ताओं ने पहले भी इसी आदेश के खिलाफ एक समीक्षा याचिका संख्या, 214 वर्ष 1995 दायर की थी, जिसे इस न्यायालय ने 22-2-1995 को खारिज कर दिया था। पुनरीक्षण याचिका के ज्ञापन और विलंब के लिए क्षमा मांगने वाले

आवेदन दोनों में, यद्यपि इस तथ्य का उल्लेख किया गया है, लेकिन पुनरीक्षण याचिका की संख्या और उस तारीख को भी को खाली छोड़ दिया गया है जिस पर इसे खारिज कर दिया गया था। यह उस लापरवाही को दर्शाता है जिसमें यह दूसरी समीक्षा याचिका दायर की गई है। एक ही आदेश के खिलाफ लगातार समीक्षा याचिकाओं का सहारा लेने की अनुमति नहीं है, क्योंकि रिकॉर्ड पर कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं की गई है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता अनावश्यक रूप से स्वतंत्रता ले रहे हैं। दूसरी पुनर्विचार याचिका दायर करना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। इसलिए, हम इस समीक्षा याचिका को अस्पष्टीकृत अत्यधिक देरी और 5000 रुपये के जुर्माने के आधार पर खारिज करते हैं। रजिस्ट्री में जमा किए जाने के बाद लागत के संवितरण के संबंध में निर्देश जारी किए जाएंगे।

41. 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1034 में रिपोर्ट किए गए मधुसूदन रेड्डी बनाम नारायण रेड्डी और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फिर से यही दृष्टिकोण अपनाया गया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 35 में यह माना गया था कि एक ही आदेश के खिलाफ क्रमिक समीक्षा आवेदन का सहारा अस्वीकार्य है, खासकर तब जब उत्तरदाता किसी भी परिस्थिति में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने में बुरी तरह विफल रहे हैं जो उन्हें नियमों के दायरे में समीक्षा क्षेत्राधिकार लागू करने का अधिकार देगा।

पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 36 में यह माना गया था कि समीक्षा आवेदनों का दूसरा सेट अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग से कम नहीं था और उच्च न्यायालय द्वारा इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए था क्योंकि यह बनाए रखने योग्य नहीं है। पैराग्राफ संख्या 35 और 36 नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं: -

35. हमारी राय में, अन्यथा भी, एक ही आदेश के खिलाफ लगातार समीक्षा याचिकाओं का सहारा लेने की अनुमति नहीं है, खासकर जब प्रतिवादी किसी भी परिस्थिति में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने में बुरी तरह विफल रहे हैं जो उन्हें नियमों के दायरे में समीक्षा क्षेत्राधिकार को लागू करने का हकदार होगा। नियमों के तहत, उत्तरदाताओं को "वास्तविक" दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन नए दस्तावेज/सबूत जो उनके ज्ञान में नहीं थे और उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद भी ऐसा नहीं हो सकता था, जो तालिकाओं को उनके पक्ष में मोड़ सकता था, न ही उनके द्वारा रिकॉर्ड में कोई स्पष्ट त्रुटि की गई है।

36. इसके बाद समीक्षा के लिए एक आवेदन 3-4-1979 को किया गया था। यदि दिनांक 21-3-1979 के आदेश में कुछ स्पष्ट त्रुटि थी, तो निश्चित रूप से इसे पहले समीक्षा आवेदन में इंगित किया जाना चाहिए था जो 3-4-1979 को किया गया था, लेकिन वास्तव में, याचिकाकर्ता ने लगातार समीक्षा आवेदनों को रखने के अधिकार का दावा किया है। उसे ऐसा अधिकार नहीं दिया जा

सकता। फिर याचिकाकर्ता ने एक निरर्थक पुनरीक्षण दायर किया, इसके बाद, उसने एक रिट याचिका दायर की और अंत में तत्काल दूसरी समीक्षा याचिका दायर की गई।

42. उसी के अलावा, इस न्यायालय ने इरतजा अली बनाम जिला न्यायाधीश मुरादाबाद और अन्य के मामले में (1982) 2 ए.आर.सी. 514 में भी कहा कि क्रमिक समीक्षा आवेदन बनाए रखने योग्य नहीं हैं, भले ही पहले समीक्षा आवेदन को निरर्थक के रूप में खारिज कर दिया गया था। संबंधित पैराग्राफ नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

इसके बाद 3-4-1979 को समीक्षा के लिए आवेदन किया गया। यदि दिनांक 21-3-1979 के आदेश में कुछ स्पष्ट त्रुटि थी, तो निश्चित रूप से इसे पहले समीक्षा आवेदन में इंगित किया जाना चाहिए था जो 3-4-1979 को किया गया था, लेकिन वास्तव में, याचिकाकर्ता ने लगातार समीक्षा आवेदनों को रखने के अधिकार का दावा किया है।

4. उसे ऐसा अधिकार नहीं दिया जा सकता। फिर याचिकाकर्ता ने एक निरर्थक पुनरीक्षण दायर किया, इसके बाद, उसने एक रिट याचिका दायर की और अंत में तत्काल दूसरी समीक्षा याचिका दायर की गई। इसलिए दूसरी समीक्षा याचिका उसी आधार पर विचार योग्य नहीं है।

43. मामले के इस दृष्टिकोण में, हम दृढ़ राय के हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर वर्तमान समीक्षा आवेदन दूसरा समीक्षा आवेदन है जो पोषणीय नहीं है। पुनरीक्षण आवेदन कानून की प्रक्रिया और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए दायर किया गया है, इसलिए इसे अनुकरणीय लागत के साथ खारिज किया जा सकता है।

44. ऊपर किए गए उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, वर्तमान समीक्षा आवेदन को योग्यता के आधार पर खारिज किया जाता है क्योंकि समीक्षा कार्यवाही को मूल सुनवाई के साथ बराबर नहीं किया जा सकता है और एक समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील के रूप में नहीं है जिससे एक कथित गलत निर्णय को फिर से सुना और सही किया जाता है।

45. वर्तमान समीक्षा आवेदन कार्रवाई के एक ही कारण के लिए दूसरी समीक्षा आवेदन होने के नाते पोषणीयता के आधार पर भी खारिज किया जाता है।

46. तदनुसार, यह समीक्षा आवेदन 50,000/- रुपये (पचास हजार रुपये) की लागत के साथ खारिज किया जाता जाता है, जिसे आवेदक आज से एक महीने की अवधि के भीतर इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के पास जमा करेगा। ऐसी लागत जमा करने पर, इसे 'उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति, इलाहाबाद' के खाते में प्रेषित किया जाएगा।

(2023) 7 ILRA 1287

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

रिट-ए संख्या 2000885/2005

नैपाल सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद एवं
अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री रविन्द्र कुमार, गौरव मेहरोत्रा, के.एन.
विश्वकर्मा, रानी सिंह, रविन्द्र कुमार

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

आर.के. मेहरोत्रा, अनुराग श्रीवास्तव, महेश चंद्र,
मनोज सिंह, ओ.पी. श्रीवास्तव, पुनीत चंद्राविषय: सेवा विधि - अनुशासनात्मक कार्यवाही
- वित्तीय अनियमितताएँ - सेवा से बर्खास्तगी -
प्राकृतिक न्याय

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद में कार्यरत एक अधिशासी अभियंता को, 29.07.2004 को, उनकी सेवानिवृत्ति से दो दिन पूर्व, वर्ष 2002 की लेखा परीक्षण प्रतिवेदन में अम्बेडकर नगर में निर्माण कार्यों में वित्तीय अनियमितताओं के आरोपों के आधार पर सेवा से बर्खास्त किया गया। 30.07.2002 को आठ आरोपों की एक आरोपपत्र निर्गत की गई। याचिकाकर्ता ने यह आरोप लगाया कि अभिलेखों की आपूर्ति नहीं

की गई, जिससे उनके प्रतिरक्षण में बाधा उत्पन्न हुई। दो आरोप सिद्ध पाए गए तथा याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति के कारण कारण बताओ सूचना का प्रकाशन समाचार पत्रों में किया गया। 20.07.2004 को अनुशासनात्मक जांच प्रतिवेदन उपलब्ध कराया गया तथा तत्पश्चात सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया। याचिकाकर्ता द्वारा उक्त आदेश को प्रक्रिया संबंधी त्रुटियों, पक्षपात तथा असंगत दंड के आधार पर चुनौती दी गई। न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन अनिवार्य है, किंतु जब उपलब्ध साक्ष्यों से आरोप पुष्ट होते हैं तथा अभियुक्त कर्मों द्वारा आंशिक रूप से दोष स्वीकार किया जाता है, उस स्थिति में सेवा से बर्खास्तगी विधिसंगत मानी जाती है। यह भी स्पष्ट किया गया कि जब व्यक्तिगत रूप से कारण बताओ सूचना की सेवा संभव न हो, उस स्थिति में समाचार पत्र में उसका प्रकाशन पर्याप्त माना जा सकता है।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स मगध शुगर एंड एनर्जी लिमिटेड बनाम राज्य बिहार एवं अन्य। सिविल अपील संख्या 5728 वर्ष 2021
2. व्हेलपूल कॉर्प बनाम ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार उद्धरण: (1998) 8 एससीसी 1
3. राजेंद्र प्रसाद उपाध्याय बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य। उद्धरण: (2012) 93 एएलआर 403 (सभी), दुर्गा एंटरप्राइज (प्रा.) लिमिटेड बनाम प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार एवं अन्य। उद्धरण: (2004) 13 एससीसी 665

4. राज्य उत्तर प्रदेश व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा उद्धरण: (2010) 2 एससीसी 772

5. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक उद्धरण: (2009) 2 एससीसी 570

6. राधे कांत खरे बनाम यू.पी. कोऑपरेटिव शुगर फैक्ट्रीज फेडरेशन लिमिटेड: (2002) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1575

7. श्रीमती माज़दा बेगम व अन्य बनाम यू.पी. व अन्य: (2017) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2909

8. मोनी शंकर बनाम यू.ओ.आई. व अन्य: (2008) 2 एससीसी 484

9. एम. बनाम बिजलानी बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य: (2006) 5 एससीसी 88

10. चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम रघुनाथ सिंह राणा: (2016) 12 एससीसी 204

11. श्रीमती चिंता यादव बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट एवं अन्य। उद्धरण: (2008) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2125

12. सुभाष यादव बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट एवं अन्य। उद्धरण: (2008) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2121

13. एस.आर. तिवारी बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य। उद्धरण: (2013) 6 एससीसी 602

14. यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम बोडुपल्ली गोपालस्वामी। उद्धरण: (2011) 13 एससीसी 553

15. चरणजीत लांबा बनाम कमांडिंग ऑफिसर, सेना दक्षिणी कमान एवं अन्य। उद्धरण: (2010) 11 एससीसी 314

16. अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड बनाम मुकुल कुमार चौधरी एवं अन्य। उद्धरण: (2009) 15 एससीसी 620

17. दिनेश कुमार वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट एवं अन्य। उद्धरण: रिट-ए संख्या 20837 वर्ष 2020, निर्णय दिनांक 24.03.2022

18. प्रकाश चंद्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट और अन्य। उद्धरण: रिट-ए संख्या 2555 वर्ष 2022, निर्णय दिनांक 07.05.2022

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पदत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा तथा प्रतिवादी (यों) के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत चंद्रा को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक - 1 के रूप में अन्तर्विष्ट प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आक्षेपित सेवामुक्ति आदेश दिनांकित 29.07.2004 को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के साथ प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के पश्चात् के लाभों सहित सभी लाभों का भुगतान करने का आदेश देने हेतु परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने की अग्रेतर प्रार्थना की है।

3. वर्तमान रिट याचिका के उत्पन्नकर्ता संक्षिप्त तथ्य निम्नवत् हैं:

क्रमांक	प्रकरण के प्रासंगिक तथ्य		
क.	याचिकाकर्ता को आदेश दिनांकित 08.07.1970 द्वारा सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था। वर्ष 1982 में, उसे उक्त पद पर स्थायी कर दिया गया। इसके पश्चात्, उसे उ.प्र. आवास विकास परिषद् (संक्षेप में, "परिषद्") में अधिशाषी अभियंता के पद पर पदोन्नत किया गया।		आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय अन्वेषण प्रारम्भ किया गया तथा उसे आरोप पत्र दिया गया। आरोप पत्र दिनांकित 30.07.2002 में याचिकाकर्ता के विरुद्ध आठ आरोप लगाए गए थे।
ख.	वर्ष 1996 में, राज्य सरकार ने अम्बेडकर नगर नाम से एक नया जनपद सृजित किया तथा परिषद् को समाहर्ता भवन के निर्माण का कार्य दिया गया। इसके अनुसरण में, वर्ष 1996-97 में एक निर्माण इकाई की स्थापना की गयी तथा याचिकाकर्ता को उपरोक्त इकाई के परियोजना प्रबंधक के रूप में तैनात किया गया।	ड.	जब याचिकाकर्ता को आरोप पत्र के साथ संलग्न आवश्यक अभिलेख नहीं प्राप्त हुए, तो उसने पत्र दिनांकित 01.08.2002 तथा 14.08.2002 के माध्यम से आवश्यक अभिलेख उपलब्ध कराने का अनुरोध किया तथा माप पुस्तिकाओं, पीसीआर पत्रावलियों की मांग की।
ग.	वर्ष 2002 में, श्री आर. एन. गोयल, अधीक्षण अभियंता, लोक निर्माण विभाग द्वारा, याचिकाकर्ता द्वारा परियोजना प्रबंधक के रूप में किये गये जमा कार्य का एक निरीक्षण किया गया। अधीक्षण अभियंता ने याचिकाकर्ता से उत्तर मांगे बिना, पत्र दिनांकित 27.07.2002 के माध्यम से अपनी आख्या प्रस्तुत की तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय अन्वेषण प्रारम्भ करने की अनुशंसा की।	च.	पत्र दिनांकित 07.10.2002 के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने विलम्ब वर्जित करने हेतु उत्तर प्रस्तुत किया, हालांकि, उसने उल्लेख किया कि बार-बार अनुरोध के बावजूद, उसे कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं कराया गया।
घ.	27.07.2002 को उक्त आख्या के	छ.	याचिकाकर्ता के विरुद्ध आठ आरोपों में से दो आरोप साबित पाये गये ।
		ज.	24.06.2004 को, याचिकाकर्ता को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जो उसे 01.07.2004 को प्राप्त हुआ, जिसमें प्रासंगिक साक्ष्य के साथ उत्तर प्रस्तुत करने हेतु 15 दिवसों का समय निर्धारित किया गया।
		झ.	याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर 07.07.2004 को

	पंजीकृत डाक के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा परिषद् की अन्वेषण आख्या तथा निष्कर्ष आख्या की प्रति उपलब्ध कराने का अनुरोध किया। इस संबंध में उसने 14.07.2004 को एक अनुस्मारक भी भेजा ।
ज.	याचिकाकर्ता को अन्वेषण आख्या दिनांकित 22.04.2004 की प्रति 20.07.2004 को प्राप्त हुयी। पत्र दिनांकित 19.07.2004 के माध्यम से उसे एक सप्ताह के भीतर उत्तर प्रस्तुत करने को कहा गया।
ट.	आक्षेपित आदेश के अवलोकन दर्शाता है कि याचिकाकर्ता का उत्तर समयान्तर्गत प्रस्तुत नहीं किया गया।
ठ.	आवास परिषद के कई अधिकारियों को दंडित किये जाने का समाचार, 25.06.2004 को समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ। याचिकाकर्ता अभियन्ता संघ तथा अन्य सीधी भर्ती से चयनित अभियन्ताओं का महासचिव था।
ड.	अभियन्ता संघ एवं डिप्लोमा अभियन्ता संघ, उ.प्र. आवास एवं विकास परिषद, लखनऊ ने महासचिवों द्वारा हस्ताक्षरित एक विरोध पत्र दिया कि याचिकाकर्ता के प्रकरण में, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था तथा उसका उत्तर प्रतीक्षारत था, फिर भी समाचार दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित

	किया गया तथा टीवी चैनलों पर भी प्रसारित किया गया।
ढ.	याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति अर्थात् 31.07.2005 से ठीक दो दिवस पूर्व 29.07.2005 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध सेवामुक्ति का आक्षेपित आदेश पारित किया गया।
ण.	याचिकाकर्ता ने कई अनुरोध किए तथा प्रकरण पर पुनर्विचार हेतु अधिकारियों से संपर्क किया, परन्तु जब उनके अनुरोधों पर ध्यान नहीं दिया गया, तो वर्तमान रिट याचिका दायर की गयी।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि सेवामुक्ति का आक्षेपित आदेश दिनांकित 29.07.2005 विधि की दृष्टि में गलत, अवैध तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। उन्होंने अग्रेतर कथन किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रारम्भ की गई पूरी कार्यवाही सेवा विनियमन की घोर अवहेलना है।

5. उन्होंने अगला कथन किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रारम्भ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही परिषद के विनियमन की घोर अवहेलना करते हुए संपादित की गयी है। उन्होंने कथन किया कि आरोप पत्र तथा अन्वेषण आख्या के संबंध में प्रासंगिक अभिलेख याचिकाकर्ता को कभी भी उपलब्ध नहीं कराए गए तथा न ही उसे इसका निरीक्षण करने की अनुमति दी गई, जिससे उस पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

6. उन्होंने अग्रेतर कथन किया कि याचिकाकर्ता को सेवा से बाहर करने की पक्षपाती मानसिकता वाले प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को उचित उत्तर देने हेतु प्रासंगिक अभिलेख उपलब्ध नहीं कराए तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध सेवामुक्ति का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया।

7. उन्होंने अगला कथन किया कि अन्वेषण अधिकारी ने प्रकरण के तथ्यों तथा परिस्थितियों पर अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया तथा प्राधिकारियों के आदेश पर पृवत्त हुये, जो इस तथ्य से स्वतः स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आठ आरोपों में से, छह आरोप निराधार मनमाने तथा बिना कोई कारण निर्दिष्ट किये हैं।

8. उन्होंने अग्रेतर कथन किया कि सेवामुक्ति का आक्षेपित आदेश भेदभावपूर्ण प्रकृति का है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 16 के प्रावधानों के विरुद्ध है।

9. उन्होंने अंततः कथन किया कि भले ही आरोप संख्या 3 तथा 6 याचिकाकर्ता के विरुद्ध साबित पाए जाते हैं, फिर भी याचिकाकर्ता को दिया गया दीर्घ दण्ड आरोपों के गैर अनुपाती है, इसलिए, दण्ड की मात्रा अत्यधिक तथा मनमानी प्रकृति की है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

सांविधिक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता एक पूर्ण बाधा नहीं है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
मेसर्स मगध शुगर एंड एनर्जी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य व अन्य	दीवानी पुनरावेदन संख्या 5728/ 2021 में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांकित 24.09.2021	19, 20, 21, 22 एवं 25
व्हालपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार, ट्रेड मार्क्स	1998 (8) एससीसी 1	15, 16, 17, 18, 19, 20 एवं 21
राजेंद्र प्रसाद उपाध्याय बनाम. उ.प्र. राज्य व अन्य	विशेष पुनरावेदन संख्या पृष्ठ 23, संख्या 5827/ 2021 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांकित 29.03.2012: (2012) 93 एएलआर 403 (इला)	पृष्ठ संख्या 23, 24, 25 एवं 26
यदि कोई रिट याचिका लंबे समय तक लंबित रही तथा तर्कों का आदान-प्रदान हो चुका हो, तो प्रकरण को वैकल्पिक उपाय हेतु निर्वासित नहीं किया जा सकता, इस बिन्दु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:		

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
दुर्गा एंटरप्राइज (पी) लिमिटेड व एक अन्य बनाम प्रमुख सचिव उ.प्र. शासन व अन्य	(2004) एससीसी 665	13 3
प्रत्येक आरोप को साक्षियों द्वारा स्वतंत्र रूप से तथा पृथक रूप से साबित किया जाना चाहिए तथा मौखिक अन्वेषण अनिवार्य है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:		
निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा	(2010) एससीसी 772	2 28, 29, 30, 33, 34, 35, 38, 39, 41 एवं 42
रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक	(2009) एससीसी 570	2 14, 15, 17 एवं 21
राधे कांत खरे बनाम उ.प्र. सहकारी चीनी फैक्टरीज फेडरेशन लिमिटेड	(2002) एससीसी ऑनलाइन इला 1575	6, 7, 8, 9 एवं 22
अन्वेषण अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक		

अधिकारी है तथा मात्र विभाग का प्रतिनिधि नहीं है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
श्रीमती माज़दा बेगम व अन्य बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य	(2017) एससीसी ऑनलाइन इला 2909	43

अन्वेषण अधिकारी / अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा जिन अभिलेखों पर विश्वास किया गया, उसे दोषी कर्मचारी को प्रदान किया जाना चाहिए, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
उ.प्र. राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा	(2010) एससीसी 772	2 24, 29 एवं 31

→ न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय इस बात पर विचार करने की स्वत्वाधिकारी हैं कि साक्ष्य के प्रासंगिक भागों को गणना में लिया गया अथवा नहीं, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
मोनी शंकर बनाम भारत संघ व अन्य	(2008) एससीसी 484	2 17

अनुचित अन्वेषण आख्या पर आधारित आदेश, जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण दूषित है, पोषणीय

नहीं है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:		
एमवी बिजलानी बनाम भारत संघ	(2006) एससीसी 88	5, 21, 25, 26, 27 एवं 28
अनुशासनात्मक अन्वेषण की अनिवार्य आवश्यकता, जहां आरोपों का खंडन किया जाता है, एक अन्वेषण आयोजित करना है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:		
निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
चमोली जनपद सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम रघुनाथ सिंह राणा	(2016) एससीसी 204	12 एवं 22.4
दोषी कर्मचारी द्वारा कारण बताओ नोटिस का प्रस्तुत उत्तर संतोषजनक क्यों नहीं था, इस तर्क के अभाव में, पारित दंडादेश पोषणीय नहीं रह सकता है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया::		
निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
श्रीमती चिंता यादव बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य	(2008) एससीसी ऑनलाइन इला 2125	59, 60 एवं 21
सुभाष यादव बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य	(2008) एससीसी ऑनलाइन इला	8 एवं 9

	2121	
दण्ड का परिमाण अपराध की गंभीरता से इतना गैरअनुपातिक है कि माननीय न्यायालय का अंतःकरण झकझोर देता है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:		
निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
एस. आर. तिवारी बनाम भारत संघ व एक अन्य	(2013) 6 एससीसी 602	6, 17, 24, 25, 26, 30, 31 एवं 34
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम बोडुपल्ली गोपालस्वामी	(2011) 13 एससीसी 553	28, 30, 33, 34, 46, 47, 48 एवं 49
चरणजीत लांबा बनाम कमांडिंग ऑफिसर, दक्षिणी सेना कमान व अन्य	(2010) 11 एससीसी 314	12, 13, 14 एवं 19
दिया गया दण्ड, जोकि आरोपों से बहुत अधिक है, प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता है तथा न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे के अन्तर्गत हस्तक्षेप हेतु उन्मुक्त रहता है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:		
निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ

अध्यक्ष-सह- प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड तथा एक अन्य बनाम मुकुल कुमार चौधरी एवं अन्य	(2009) 15 एससीसी 620	18, 19 एवं 20

आरोपों को साबित / खण्डन करने हेतु अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अन्वेषण की तिथि, समय तथा स्थान तय करना आवश्यक है, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
दिनेश कुमार वर्मा बनाम उ.प्र. राज्य व एक अन्य	रिट - ए संख्या 20837 / 2020 में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांकित 24.03.2022	5, 7, 11 एवं 12
प्रकाश चंद्र अग्रवाल बनाम उ.प्र. राज्य व एक अन्य	रिट - ए संख्या 2555/ 2022 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांकित 07.05.2022	4, 5, 6, 7 एवं 11
संजय मिश्रा बनाम निदेशक एसजीपीजीआई व एक अन्य	रिट याचिका संख्या 1192 (एस / एस) / 2008 में पारित निर्णय	15, 16, 17 एवं 18

	तथा आदेश दिनांकित 18.09.2019	

सार्वजनिक कार्यालय से जुड़े कर्तव्य के निर्वहन में दक्षता अथवा उच्चतम मानकों की प्राप्ति की न्यूनता स्वयमेव कदाचार गठित नहीं करेगी, इस बिंदु पर उन्होंने निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया:

निर्णय	उद्धरण	पैराग्राफ
भारत संघ व अन्य बनाम जे. अहमद	(1979) 2 एससीसी 286	7, 9 एवं 11

10. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि संपरीक्षा विभाग ने विशेष संपरीक्षा आख्या प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध अंबेडकर नगर में किए गए जमा कार्य में वित्तीय अनियमितताएं पायी गयीं। इसके पश्चात्, संपरीक्षा आख्या के दृष्टिगत याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक अन्वेषण प्रारम्भ किया गया। यह कथन किया गया कि याचिकाकर्ता को पूर्ण अवसर प्रदान करते हुए अन्वेषण आख्या विधि के अनुसार प्रस्तुत की गयी है।

11. उन्होंने अग्रेतर कथन किया कि आरोपों से संबंधित प्रासंगिक अभिलेख याचिकाकर्ता को पत्र दिनांकित 14.07.2004 के माध्यम से प्रदान किए गए थे। उन्होंने कथन किया कि समुचित अन्वेषण के पश्चात्, 30.07.2002 को साक्ष्यों के साथ याचिकाकर्ता को आठ आरोपों वाली एक चार्जशीट सेवित करायी गयी तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप संख्या 3 तथा 6 को साबित पाया गया।

12. उन्होंने अग्रतर कथन किया कि याचिकाकर्ता ने स्वयं उसके विरुद्ध आरोपों को स्वीकार किया तथा अनुरोध किया कि उसे लघु दण्ड दिया जाना चाहिए, जो स्वयं साबित करता है कि अन्वेषण न्यायसंगत एवं उचित था। उन्होंने कथन किया कि कारण बताओ नोटिस दिनांकित 24.06.2004 याचिकाकर्ता को सेवित नहीं की जा सकी क्योंकि वह अपने कार्यालय/ निवास पर उपलब्ध नहीं था तथा उसके परिवार के सदस्यों ने भी इसे प्राप्त करने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात्, याचिकाकर्ता के सूचनार्थ उक्त नोटिस 29.06.2004 को दैनिक समाचार पत्रों दैनिक जागरण तथा टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित किया गया।

13. उन्होंने अंततः प्रस्तुत किया कि अन्वेषण आख्या अभिलेखी तथा अन्य साक्ष्यों पर आधारित थी तथा उसी के आधार पर, याचिकाकर्ता के विरुद्ध सेवामुक्ति का आदेश पारित किया गया है, जोकि न्यायोचित तथा वैध है।

14. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिये गये तर्कों पर विचार किया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

15. प्रकरण में अंतर्निहित विवाद को सुलझाने हेतु, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किये गये निर्णयों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

- याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किये गये निर्णय:

क) मेसर्स मगध शुगर एण्ड एनर्जी लिमिटेड (उपरोक्त) :

19. जब एक प्रभावी तथा कारगर वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है तो एक उच्च न्यायालय सामान्य तौर पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा, एक वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व स्वयमेव उच्च न्यायालय को कुछ आकस्मिकताओं में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकता है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा व्हीरपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार, मुंबई 19 तथा हरबंसलाल साहनी बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड में निश्चित रूप दिया गया है। हाल ही में, राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य व अन्य में, इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ, जिनमें हममें से एक (न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड) हिस्सा थे, ने एक वैकल्पिक उपाय की उपस्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार के उपयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों का सारांश दिया है। इस न्यायालय ने अवलोकन किया:

"28. विधि के जो सिद्धांत प्रकट होते हैं वे हैं:

(i) संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट जारी करने की शक्ति का प्रयोग न मात्र मौलिक अधिकारों को लागू करने हेतु किया जा सकता है, बल्कि किसी अन्य उद्देश्य हेतु भी किया जा सकता है।

(ii) उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका पर विचार न करने का विवेकाधिकार है। उच्च

न्यायालय की शक्ति पर लगाए गए प्रतिबंधों में से एक है जहां व्यथित व्यक्ति को एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है;

(iii) वैकल्पिक उपाय के नियम के अपवाद उत्पन्न होते हैं जहां

(क) रिट याचिका संविधान के भाग III द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु दायर की गई हो;

(ख) नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ हो; (ग) आदेश अथवा कार्यवाही पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना हो; या (घ) किसी विधि की वैधता को चुनौती दी गई हो;

(iv) एक वैकल्पिक उपाय उचित प्रकरण में संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को अपनी शक्तियों से वंचित नहीं करता है, हालांकि सामान्य तौर पर, जब विधि द्वारा एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय प्रदान किया गया हो तो एक रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए;

(v) जब किसी संविधि द्वारा सृजित अधिकार, जो स्वयं अधिकार या दायित्व को लागू करने हेतु उपाय या प्रक्रिया निर्धारित करता है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत विवेकाधीन उपाय को लागू करने से पूर्व उस विशेष संविधिक उपाय का अवलम्ब लेना होगा। संविधिक उपायों की निःशेषण का यह नियम नीति, सुविधा तथा विवेक का नियम है; तथा

(vi) ऐसे प्रकरणों में जहां तथ्य के विवादित प्रश्न हैं, उच्च न्यायालय एक रिट याचिका में

क्षेत्राधिकार को अस्वीकार करने का निर्णय ले सकता है। हालांकि, यदि उच्च न्यायालय का वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण यह है कि विवाद की प्रकृति हेतु उसके रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग की आवश्यकता है, तो ऐसे दृष्टिकोण में सहजता से हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।"

वैकल्पिक उपायों के सिद्धांत तथा इसके अपवादों को हाल ही में सहायक राज्य कर आयुक्त बनाम मेसर्स कमर्शियल स्टील लिमिटेड के निर्णय में भी दोहराया गया। हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम वी. एस. गुजरात अंबुजा सीमेंट लिमिटेड में, इस न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यदि कर प्राधिकारियों द्वारा अपने क्षेत्राधिकार के दायरे से बाहर कार्य किया है तो एक रिट याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष संधार्य है। इस न्यायालय ने अवलोकन किया:

"23. जहां किसी संविधि के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का आरोप है अथवा निर्विवाद तथ्यों पर जब कर प्राधिकारियों द्वारा ऐसा क्षेत्राधिकार धारण किया जाता है जोकि उनको उपलब्ध नहीं है, तो ऐसे आधार हो सकते हैं जिन पर रिट याचिकाओं पर विचार किया जा सकता है। परन्तु सामान्य तौर पर, उच्च न्यायालय को रिट याचिकाओं पर तब तक विचार नहीं करना चाहिए जब तक कि यह न दर्शाया जाए कि प्रकरण में कुछ अधिक भी हो, कुछ ऐसा है जो अधिकारी के क्षेत्राधिकार के मूल तक जाता हो, कुछ ऐसा हो जो दर्शाता हो कि रिट याचिकाकर्ता को संविधि द्वारा प्रदान किए गए उपायों को अपनाने हेतु बाध्य करना स्पष्ट अन्याय का प्रकरण होगा।

इस न्यायालय द्वारा एल हृदय नारायण बनाम आईटीओ [(1970) 2 एससीसी 355: एआईआर 1971 एससी 33] में टिम्पणी की गयी कि यदि वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के बावजूद उच्च न्यायालय ने एक याचिका पर विचार किया तथा गुण-दोष के आधार पर पक्षों को सुना तो सांविधिक उपायों के निःशेषण न होने के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा इसे खारिज करना सामान्यतः अनुचित होगा; जब तक उच्च न्यायालय यह नहीं पाता कि इसमें तथ्यात्मक विवाद सम्मिलित हैं तथा रिट याचिका में उनसे व्यवहृत करना वांछनीय नहीं होगा।"

20. उपरोक्त सिद्धांत को इस न्यायालय के तीन- न्यायाधीशों की पीठ द्वारा अधिशासी अभियन्ता बनाम सीताराम राइस मिल में दोहराया गया। उस प्रकरण में, विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 126 (1) के अन्तर्गत बिजली के अनधिकृत उपयोग के आधार पर निर्धारिती को कारण बताओ नोटिस / अनंतिम मूल्यांकन आदेश जारी किया गया था तथा विद्युत शुल्क के भुगतान की मांग की गई थी। निर्धारिती ने दलील दी कि धारा 126 उस पर लागू नहीं होती तथा उसने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट क्षेत्राधिकार अन्तर्गत, कर प्राधिकारियों के इस तरह का नोटिस जारी करने के क्षेत्राधिकार को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार किया। जब उच्च न्यायालय के निर्णय का पुनरावेदन इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तो यह व्यवस्था दी गयी कि उच्च न्यायालय ने राजस्व अधिकारियों के क्षेत्राधिकार पर उठाई गई चुनौती के संबंध में अपने क्षेत्राधिकार का

प्रयोग करने में कोई त्रुटि नहीं की है। इस न्यायालय ने निम्नलिखित प्रेक्षण किये:

"81. क्या न्यायालयों को प्रकरण के गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेना चाहिए अथवा क्या उन्हें प्रकरण के तथ्यों में उत्पन्न होने वाले प्रारंभिक वाद-विषय अथवा क्षेत्राधिकार संबंधी वाद - विषय का उत्तर देना चाहिए तथा प्रकरण को सक्षम प्राधिकारी द्वारा गुण-दोष के आधार पर विचार करने हेतु भेज देना चाहिए? पुनः, यह कुछ सीमा तक पूर्ण स्पष्टता के साथ निर्दिष्ट करना कठिन है कि क्षेत्राधिकार के ऐसे प्रयोग को नियंत्रित करने वाले किसी भी सिद्धांत को बताया जा सके। यह हमेशा किसी दिए गए प्रकरण के तथ्यों पर निर्भर करेगा। हमारा सुविचारित मत है कि न्याय प्रशासन का हित बेहतर ढंग से सेवित होगा यदि न्यायालयों द्वारा मात्र वर्तमान प्रकार के प्रकरणों की सुनवाई की जाती है जहां उनमें क्षेत्राधिकार के प्राथमिक प्रश्न सम्मिलित हों अथवा वे प्रकरण जो क्षेत्राधिकार के मूल तक जाते हों तथा जहां अधिकारियों ने अधिनियम के प्रावधानों से परे कार्य किया हो।

82. यह तर्क दिया गया है तथा कुछ सीमा तक सही भी है कि उच्च न्यायालय को मात्र इस कारण से अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इन्कार नहीं करना चाहिए कि कोई सांविधिक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, जबकि प्रकरण उपरोक्त श्रेणी के मामलों में आता हो। यह स्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय/ न्यायाधिकरण व्यर्थ में क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे। विधि स्वयं कोई ऐसा कार्य करने का प्रयास नहीं करेगी जोकि व्यर्थ हो, न ही

उसे लागू करने का प्रयास करेगा जो तुच्छ हो-विधि किसी को भी व्यर्थ तथा निरर्थक कार्य करने हेतु बाध्य नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में, यदि न्यायाधिकरण द्वारा क्षेत्राधिकार का प्रयोग प्रथम दृष्टया किसी भी बताए गए कारण से व्यर्थ क्षेत्राधिकार का प्रयोग प्रतीत होता है, तो उच्च न्यायालय हेतु अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग से हस्तक्षेप करना स्वीकार्य होगा। यह वाद-विषय अब अनिर्णीत नहीं है तथा इस न्यायालय के निर्णयों की एक शृंखला द्वारा तय किया जा चुका है, जिसे विस्तार से उल्लेख करना हमें पूर्णतया से अनावश्यक प्रतीत होता है... " (बल दिया गया)

21. भारत संघ बनाम हरियाणा राज्य 25 में मूल्यांकन प्राधिकारियों ने टेलीफोनों की आपूर्ति हेतु किराये पर बिक्री कर लगाया। आरोपित राशि को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएँ दायर की गयीं। रिट याचिकाएँ इस आधार पर खारिज कर दी गयीं कि सांविधिक पुनरावेदन का वैकल्पिक उपाय उपलब्ध था। इन आदेशों के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष पुनरावेदन दायर किया गया। पुनरावेदन अनुमत किया गया तथा प्रकरण को निर्धारण हेतु उच्च न्यायालय को वापस भेजा गया क्योंकि इसमें विधिक प्रश्न सम्मिलित था कि क्या टेलीफोन की आपूर्ति बिक्री के समतुल्य थी।

22. पुनरावेदनकर्ता का प्रकरण यह नहीं है कि प्रतिवादियों ने उस पर लगाए गए शुल्क तथा जुर्माने की गलत गणना की है। पुनरावेदनकर्ता का तर्क है कि राज्य सरकार के पास बीएसईबी

को बिजली की बिक्री पर करारोपण की शक्ति नहीं है। इस प्रकार, याचिका सरकार द्वारा क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर प्रहार करती है। वैकल्पिक उपाय के नियम पर ऊपर चर्चा किए गए विधि के दृष्टिगत, यदि प्राधिकरण के आदेश को अधिकार तथा क्षेत्राधिकार के अभाव के कारण चुनौती दी जाती है, जो कि विधि का एक विशुद्ध प्रश्न है, तो उच्च न्यायालय अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है।

25. हमारा सुविचारित मत है कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करने से इन्कार करके त्रुटि की है तथा नए सिरे से निस्तारण हेतु कार्यवाही को उच्च न्यायालय को वापस बहाल करना उचित होगा। प्रतिप्रेषण पर निर्णय को सुविधाजनक बनाने हेतु, हमने गुण-दोष के आधार पर पक्षों की व्यापक दलीलें दर्ज की हैं, परन्तु प्रकरण को उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से मूल्यांकन हेतु उन्मुक्त छोड़ते हैं। तदनुसार, हम पुनरावेदन को अनुमत करते हैं तथा सीडब्ल्यूजेसी संख्या 4300/2015 से उत्पन्न उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांकित 18 सितंबर 2017 को रद्द करते हैं। रिट याचिका को नवीन निर्धारण हेतु उच्च न्यायालय की पत्रावली में बहाल किया जाता है। लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के उपरोक्त शर्तों के अनुसार पुनरावेदन का निस्तारण किया जाता है।

ख) व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त) :

15. संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय को प्रकरण के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रिट याचिका पर विचार करने या

न करने का विवेकाधिकार है। परन्तु उच्च न्यायालय ने अपने ऊपर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं जिनमें से एक यह है कि यदि कोई प्रभावी तथा प्रभावोत्पादक उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय सामान्य तौर पर अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा। परन्तु इस न्यायालय द्वारा लगातार व्यवस्था दी गयी है कि वैकल्पिक उपाय, कम से कम तीन आकस्मिकताओं में बाधा के रूप में कार्य नहीं करेगा, अर्थात्, जहां किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु रिट याचिका दायर की गई हो या जहां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ हो या जहां आदेश अथवा कार्यवाही पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना हो या किसी अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई हो। इस बिन्दु पर बहुत सारे निर्णयज विधि हैं, परन्तु न्यायिक भंवर के इस दायरे को कम करने हेतु, हम संसांविधिक विधि के विकासवादी युग के कुछ पुराने निर्णयों का आश्रय लेंगे क्योंकि वे अभी भी प्रासंगिक हैं।

16. राशिद अहमद बनाम नगरपालिका परिषद, कैराना ने निर्धारित किया कि पर्याप्त विधिक उपाय का अस्तित्व एक कारक है जिसे रिट अनुदत्त के प्रकरण में ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसका अनुसरण दूसरे राशिद प्रकरण में किया गया, अर्थात्, के. एस. राशिद एंड संस बनाम आयकर अन्वेषण आयोग, जिसमें उपरोक्त प्रस्ताव को दोहराया गया तथा व्यवस्था दी गयी कि जहां विकल्प उपाय उपलब्ध हो, वहाँ अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत एक याचिका में हस्तक्षेप से इन्कार विवेकाधिकार का सम्यक् उपयोग होगा। हालाँकि, इस प्रस्ताव को, "जब तक कि इस

हेतु सम्यक् आधार न हों", महत्वपूर्ण शब्दों द्वारा गुण-सम्पन्न किया गया, जिसने संकेत दिया कि वैकल्पिक उपाय एक पूर्ण रोक के रूप में कार्य नहीं करेगा तथा असाधारण परिस्थितियों में अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका पर विचार किया जा सकता है।

17. उ.प्र. राज्य बनाम मो. नूह में एक विशिष्ट तथा स्पष्ट नियम निम्नानुसार निर्धारित किया गया:

"परन्तु रिट किए जाने से पूर्व सांविधिक उपायों का निःशेषण की आवश्यकता वाला यह नियम विधि के नियम के बजाय नीति, सुविधा तथा विवेक का नियम है तथा ऐसे कई उदाहरण हैं जहां इस तथ्य के बावजूद कि क्षुब्ध पक्ष के पास अन्य पर्याप्त उपाय थे, उत्प्रेषण की रिट जारी की गयी।"

18. इस प्रस्ताव पर इस न्यायालय की संविधान पीठ ने ए.वी. वेंकटेश्वरन, सीमा शुल्क समाहर्ता बनाम रामचंद शोभराज वाधवानी में विचार किया तथा निम्नलिखित शब्दों में इसकी पुष्टि की तथा इसका पालन किया:

"इस न्यायालय के निर्णयों में जो अंश हमने उद्धृत किये हैं, इंगित करते हैं (1) कि विद्वान महान्यायाभिकर्ता ने पर्याप्त वैकल्पिक उपाय के अस्तित्व के प्रभाव के बारे में सामान्य नियम हेतु जो दो अपवाद तैयार किए थे, वे किसी भी तरह से संपूर्ण नहीं थे, तथा (2) कि उनसे परे भी उच्च न्यायालय में याचिका पर विचार करने का निहित विवेकाधिकार था तथा वैकल्पिक उपाय के

अस्तित्व के बावजूद याचिकाकर्ता को अनुतोष अनुदत्त किया गया। हमें मात्र यह जोड़ने की आवश्यकता है कि सामान्य सिद्धांतों की व्यापक पद्धतियां जिन पर न्यायालय को कार्य करना चाहिए, स्पष्ट रूप से निर्धारित की जा चुकी हैं, प्रत्येक विशेष प्रकरण के तथ्यों पर उनका आवेदन आवश्यक रूप से विभिन्न व्यक्तिगत तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए जिससे न्यायालय के विवेकाधिकार का उचित प्रयोग शासित होना चाहिए, तथा यह कि ऐसे प्रकरण में जोकि इस प्रकार सर्वोपरि रूप से विवेक का विषय है, यह संभव नहीं है या यदि ऐसा होता भी, तो अनम्य नियम बनाना वांछनीय नहीं होगा जिसे हर प्रकरण, जोकि न्यायालय के समक्ष आता है, में कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए।"

19. कलकत्ता डिस्काउंट कंपनी लिमिटेड बनाम आईटीओ, कंपनीज जनपद में एक और संविधान पीठ के निर्णय में निर्धारित किया गया:

"हालांकि निषेधाज्ञा या उत्प्रेषण की रिट किसी कार्यकारी प्राधिकारी के विरुद्ध जारी नहीं की जाएगी, उच्च न्यायालयों के पास एक उचित प्रकरण में एक आदेश जारी करने की शक्ति है जो एक कार्यकारी प्राधिकारी को क्षेत्राधिकार के बिना कार्य करने से रोकती है। जहां बिना क्षेत्राधिकार के कार्य करने वाले कार्यकारी प्राधिकारी की ऐसी कार्यवाही विषयगत होती है अथवा किसी व्यक्ति को लंबी कार्यवाहियों तथा अनावश्यक उत्पीड़न के अधीन कर सकती है, उच्च न्यायालय ऐसे परिणामों को रोकने हेतु उचित आदेश या निर्देश जारी करेंगे। आयकर

अधिनियम की धारा 34 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार के बिना कार्य करने वाले आयकर अधिकारी के विरुद्ध उत्प्रेषण तथा निषेधाज्ञा जारी की जा सकती है।

20. तब से बहुत कुछ हो चुका है, परन्तु इन निर्णयों पर कोई संक्षारक प्रभाव नहीं पड़ा है, जोकि पुराने होने के बावजूद, इस क्षेत्र में लागू हैं, जिसके परिणामस्वरूप, वैकल्पिक सांविधिक उपायों के बावजूद, संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका पर विचार करने का उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बारे में विधि अप्रभावित है, विशेष रूप से ऐसे प्रकरण में जहां जिस प्राधिकारी के विरुद्ध रिट दायर की गई है, उसके पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं था अथवा उसने बिना किसी विधिक आधार के क्षेत्राधिकार को हड़पने का प्रयास किया।

21. ऐसा होने पर, इस तर्क का अन्वेषण किए बिना कि पुनरावेदनकर्ता को जारी किया गया कारण-बताओ नोटिस पूर्णतया क्षेत्राधिकार विहीन था तथा प्रकरण की परिस्थितियों में निबन्धक का "प्राधिकरण" की तरह कार्य करना न्यायोचित नहीं था, उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका को प्रारंभिक चरण पर निरस्त करना न्यायोचित नहीं था।

ग) राजेन्द्र प्रसाद उपाध्याय (उपरोक्त) :

जहां तक विधि का प्रस्ताव है कि वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व एक पूर्ण बाधा नहीं है, इसमें किसी भी निर्णय की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि अच्छी

तरह से स्थापित है। उपरोक्त विधिक स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत करने हेतु हम इसे निम्नानुसार दोहराते हैं-

(i) सांविधिक वैकल्पिक उपाय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका पर विचार करने हेतु उच्च न्यायालय के लिए पूर्ण बाधा नहीं है।

(ii) सांविधिक वैकल्पिक उपाय के अस्तित्व में होने पर एक रिट याचिका पर विचार करने से इन्कार करना वृहद स्तर पर निम्नलिखित विचारों पर आधारित एक स्वयं लगाया गया प्रतिबंध है, अर्थात्;

(क) वैकल्पिक उपाय पर्याप्त, प्रभावोत्पादक तथा त्वरित है।

(ख) तथ्यों के जटिल तथा आक्षेपित प्रश्न से जुड़ी रिट याचिकाओं को सांविधिक वैकल्पिक फोरम में निर्वासित किया जा सकता है;

(iv) यदि सांविधिक उपाय, जोकि पर्याप्त हो, होने के बावजूद एक रिट याचिका पर विचार किया गया तथा उक्त याचिका काफी लंबे समय तक लंबित रही तो याचिकाकर्ता को वैकल्पिक उपाय में निर्वासित करने का कोई औचित्य नहीं होगा, जब तक कि ऐसा करने हेतु वैध तथा ठोस कारण न हों।

(v) भले ही वैकल्पिक फोरम में पर्याप्त वैकल्पिक, प्रभावोत्पादक त्वरित उपाय उपलब्ध हो, उच्च न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में रिट याचिका पर विचार कर सकता है।

(क) किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु,

(ख) जहां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ हो,

(ग) जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना हो, या

(घ) अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गयी हो ।

यह प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों तथा परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि सांविधिक उपाय की उपलब्धता के आलोक में रिट याचिका पर विचार करने के विवेक का प्रयोग किया जाना है अथवा नहीं। ऐसी रिट याचिका पर विचार करने या याचिकाकर्ता को वैकल्पिक मंच पर जाने हेतु कहने हेतु इसे खारिज करने हेतु कोई बाधक सूत्र या सख्त नियम नहीं हो सकता है।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर रिट याचिका को खारिज करते हुए विभागीय अन्वेषण में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की दलील पर स्वयं को संबोधित नहीं किया तथा पुनरावेदनकर्ता को विभागीय उपाय का लाभ उठाने हेतु निर्वासित कर दिया, हमारा सुविचारित मत है कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही में बचाव के उचित अवसर से इन्कार के प्रकरणों में, रिट याचिका पूर्णतया पोषणीय है तथा इसे वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर सामान्य तौर पर खारिज नहीं किया

जाएगा, जैसी स्थिति वर्तमान प्रकरण में थी। चूंकि रिट याचिका बिना प्रतिशपथपत्र मंगाये पहली तिथि को ही खारिज कर दी गयी, इसलिए, यह उचित होगा कि प्रकरण को गुण-दोष के आधार पर रिट याचिका पर निर्णय लेने हेतु विद्वान एकल न्यायाधीश के पास वापस भेज दिया जाये।

प्रकरण को ध्यान में रखते हुए विशेष पुनरावेदन को अनुमत किया जाता है तथा रिट याचिका संख्या 529 (एसएस) / 2022 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांकित 30.1.2012 को रद्द किया जाता है। प्रकरण को विधि के अनुसार गुण-दोष के आधार पर तय करने के अनुरोध के साथ विद्वान एकल न्यायाधीश को वापस भेजा जाता है। जब भी प्रकरण सूचीबद्ध होगा, पक्ष रिट न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे।

लागत सहज की गयी।

घ) दुर्गा एंटरप्राइज (पी) लिमिटेड व एक अन्य (उपरोक्त):

3. उच्च न्यायालय को, रिट याचिका पर विचार करने के पश्चात्, जिसमें दलीलें भी पूरी हो चुकी थीं, पक्षों को दीवानी वाद में निर्वासित करने के बजाय प्रकरण को गुण-दोष के आधार पर तय करना चाहिए था।

ङ) उ.प्र. राज्य व अन्य (उपरोक्त) :

28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक अन्वेषण अधिकारी एक स्वतंत्र

निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग / अनुशासनात्मक प्राधिकारी / सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का अन्वेषण करना है, यहां तक कि दोषी कर्मचारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखने हेतु कि क्या बिना खंडन किए गए साक्ष्य यह मानने हेतु पर्याप्त हैं कि आरोप साबित हो गए हैं।

वर्तमान प्रकरण में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि यह निष्कर्ष निकालने हेतु कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप साबित हो गए हैं, किसी भी मौखिक साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया।

29. उपरोक्त के अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के आधार पर विभागीय अन्वेषण नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुसार संचालित की जानी थी। यह नैसर्गिक न्याय के नियमों की मूल आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही में, जिसकी परिणति कर्मचारी को दंड देने के रूप में हो सकती है, सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिये।

30. जब किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय अन्वेषण किया जाता है तो इसे अनौपचारिक कार्यवाही नहीं माना जा सकता। अन्वेषण की कार्यवाहियाँ भी बंद विवेक से नहीं की जा सकती हैं। अन्वेषण अधिकारी को पूर्णतः निष्पक्ष होना चाहिए। नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन करना आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न मात्र न्याय किया जाए बल्कि उसे स्पष्ट रूप से किया हुआ देखा भी जाए। नैसर्गिक न्याय के

नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि एक सरकारी कर्मचारी के साथ कार्यवाही में, जिसकी परिणति सेवा से सेवामुक्ति / निष्कासन सहित दण्ड के रूप में हो सकती है, निष्पक्ष रूप से व्यवहृत किया जाए।

33. जैसा कि वर्तमान प्रकरण में पूर्व देखा गया है, न केवल प्रतिवादी को उन अभिलेखों तक पहुंच से इन्कार कर दिया गया जिन पर उसके विरुद्ध विश्वास किया जाना था, परन्तु उसकी अनसुनी कर निंदा की गई क्योंकि अन्वेषण अधिकारी अन्वेषण के संचालन हेतु कोई तिथि तय करने में विफल रहा। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में एक भी साक्षी से पूछताछ नहीं की गयी। इसलिए, उच्च न्यायालय ने सही प्रेक्षण किया कि पूरी कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन तथा निष्पक्षता की पूर्ण उपेक्षा से संचालित होने के कारण दूषित हो गयी।

प्रतिवादी को कार्यवाही के किसी भी स्तर पर आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों के विरुद्ध स्पष्टीकरण देने का कोई अवसर नहीं प्राप्त हुआ।

34. काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ में इस न्यायालय ने एक सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने हेतु प्राधिकारियों द्वारा आश्रित किये गए अभिलेखों की प्रतियों की आपूर्ति की आवश्यकता वाले नियम के औचित्य को स्पष्ट रूप से बताया। उस प्रकरण में अन्वेषण कार्यवाही को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि साक्षियों के बयान तथा अभिलेखों की

प्रतियां उपलब्ध न कराने के परिणामस्वरूप नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ है। पुनरावेदनकर्ता ने अभिलेखों की प्रतियों के साथ-साथ प्रारंभिक अन्वेषण में साक्षियों के बयानों को उपलब्ध कराये जाने हेतु अनुरोध किया था। पुनरावेदनकर्ता द्वारा किया गया ऐसा अनुरोध अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

35. प्रभावी तरीके से आरोपों की पूर्ति हेतु साक्षियों के बयानों में अभिलेखों तक पहुंच के महत्व पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया: (काशीनाथ दीक्षित प्रकरण, एससीसी पृष्ठ 234-35 पैरा 10)

"10. जब कोई सरकारी कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर रहा है, तो वह अपने विरुद्ध आरोपों को प्रभावी तरीके से सामना करने हेतु उचित अवसर प्रदान किये जाने का स्वत्वाधिकारी है। तथा विभागीय अन्वेषण का सामना करने वाला कोई भी व्यक्ति प्रभावी ढंग से आरोपों का सामना नहीं कर सकता है जब तक उसके विरुद्ध इस्तेमाल किए जाने वाले प्रासंगिक बयानों तथा अभिलेखों की प्रतियां उसे उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं। ऐसी प्रतियों के अभाव में, संबंधित कर्मचारी अपना बचाव कैसे तैयार कर सकता है, साक्षियों से जिरह कैसे कर सकता है तथा विसंगतियों को यह दर्शाने हेतु कैसे इंगित कर सकता है कि आरोप अविश्वसनीय हैं? यह समझना कठिन है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने इस संबंध में पुनरावेदनकर्ता

द्वारा किए गए विशिष्ट अनुरोध के बावजूद अड़ियल रुख क्यों अपनाया तथा प्रतियां उपलब्ध कराने से इनकार कर दिया। शायद अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने इसे प्रतिष्ठा का मुद्दा बना लिया। यदि अनुशासनात्मक ने स्वयं से यह प्रश्न पूछा होता: 'सामग्री उपलब्ध कराने में क्या हानि है ? तथा पक्ष-विपक्ष पर विचार किया होता, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने इतना कठोर तथा अड़ियल रवैया नहीं अपनाया होता। एक ओर, विभागीय अन्वेषण में लगाए गए समय तथा प्रयास के व्यर्थ होने का संकट था यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती कि इन सामग्रियों की आपूर्ति में विफलता पुनरावेदनकर्ता को स्वयं का बचाव करने हेतु उचित अवसर से वंचित करने के समान होगी। दूसरी ओर अभिलेखों तथा बयानों की प्रतियां उपलब्ध कराने से अनुशासनात्मक प्राधिकारी कोई जोखिम नहीं उठा रहे थे। इसमें कुछ भी गोपनीय या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था।"

38. विधि का उपरोक्त प्रस्ताव तिरलोक नाथ बनाम भारत संघ में दोहराया गया जिसमें यह व्यवस्था दी गयी कि अभिलेख आपूर्ति न किया जाना उचित अवसर से वंचित करने के समान हैं। निम्नवत् यह व्यवस्था दी गयी कि: (एसएलआर पृष्ठ 764- 65) "

... अगर उन्होंने ऐसा करने का निर्णय किया होता, तो अभिलेख पुनरावेदनकर्ता के लिए उन साक्षियों से, जिन्होंने उसके विरुद्ध गवाही दी थी, जिरह करने हेतु उपयोगी होते।

पुनः यदि पुनरावेदनकर्ता को अभिलेखों की प्रतियां उपलब्ध करायी गयी होतीं, उसे पढ़ने

के पश्चात्, नियम के अन्तर्गत वह अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता था तथा मौखिक अन्वेषण किये जाने हेतु कह सकता था। इसलिए, हमारे मत में अन्वेषण अधिकारी द्वारा पुनरावेदनकर्ता को अभिलेखों की प्रतियां उपलब्ध कराने में विफलता जैसे कि प्रथम सूचना आख्या तथा शिदिपुरा हाउस में दर्ज किए गए बयान तथा अन्वेषण के दौरान यह व्यवस्था दी जानी चाहिए कि अन्वेषण में अपना बचाव करने में पुनरावेदनकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह किया है।

39. विधि का यह प्रस्ताव कि विभागीय अन्वेषण का सामना कर रहा एक सरकारी कर्मचारी सभी प्रासंगिक बयानों, अभिलेखों तथा अन्य सामग्रियों का स्वत्वाधिकारी है ताकि उसे आरोपों के विरुद्ध विभागीय अन्वेषण में स्वयं का बचाव करने का उचित अवसर मिल सके, बिना किसी पुनरावृत्ति की आवश्यकता के यह बहुत अच्छी तरह से स्थापित है। फिर भी इस प्रकरण के तथ्यों के दृष्टिगत हम पंजाब राज्य बनाम भगत राम में इस न्यायालय द्वारा बतायी गयी विधि पर पुनः बल दे सकते हैं: (एससीसी पृष्ठ 156, पैरा 6-8)

"6. राज्य ने तर्क दिया कि प्रतिवादी बयानों की प्रतियां प्राप्त करने का स्वत्वाधिकारी नहीं था। राज्य का तर्क यह था कि प्रतिवादी को साक्षियों से जिरह करने का अवसर दिया गया था तथा जिरह के दौरान प्रतिवादी को साक्षियों के बयानों का सामना करते हुए साक्षियों से जिरह करने का अवसर दिया गया था। यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी को साक्ष्य के सार से परिचित कराने हेतु रुपरेखा पर्याप्त थी।

7. प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध कारण बताने के उचित अवसर का अर्थ यह है कि सरकारी कर्मचारी को उन आरोपों, जिन पर अन्वेषण संस्थित है, के विरुद्ध स्वयं का बचाव करने का उचित अवसर दिया जाना है। सरकारी कर्मचारी को अपने दोष से इन्कार करने तथा अपनी निर्दोषिता साबित करने का अवसर दिया जाना चाहिए। वह ऐसा तभी कर सकता है जब उसे बताया जाए कि उसके विरुद्ध क्या आरोप हैं। वह अपने विरुद्ध प्रस्तुत किये गये साक्षियों से जिरह करके ऐसा कर सकता है। बयानों की उपलब्ध कराये जाने का उद्देश्य यह है कि सरकारी कर्मचारी अपने के विरुद्ध अन्वेषण हेतु प्रस्तावित साक्षियों के पिछले बयानों का सन्दर्भ देने में सक्षम होगा। जब तक सरकारी कर्मचारी को बयान नहीं दिए जाएंगे तब तक वह प्रभावी तथा उपयोगी जिरह नहीं कर पाएगा।

8. सरकारी सेवक को अन्वेषण के दौरान परीक्षित किये गए तथा सरकारी सेवक के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में अन्वेषण में प्रस्तुत किए गए साक्षियों के बयानों की प्रतियां देने से इन्कार करना अन्यायपूर्ण तथा अनुचित है। एक रुपरेखा सरकारी कर्मचारी को प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध कारण बताने का उचित अवसर देने की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है।"

41. हमारे मत में पुनरावेदनकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 937/ 2003 में उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों को जानबूझकर गलत समझा। उपरोक्त आदेश के संदर्भ में प्रतिवादी को पुनरावेदनकर्ता द्वारा आवश्यक

अभिलेखों की आपूर्ति पर आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत करना आवश्यक था। यही कारण है कि उच्च न्यायालय ने बाद में रिट याचिका संख्या 793/2004 में 7-6-2004 को एक अंतरिम आदेश पारित करते हुए

पुनरावेदनकर्ता को 23-7-2003 को खण्डपीठ द्वारा पारित आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया था। हमारे मत में प्रासंगिक अभिलेखों की आपूर्ति के बिना एकपक्षीय आख्या तैयार करने में अन्वेषण अधिकारियों के कार्यों के परिणामस्वरूप प्रतिवादी के साथ घोर अन्याय हुआ है। यह निष्कर्ष अपरिवर्तनीय है कि प्रतिवादी को अन्वेषण कार्यवाही में अपना बचाव करने का उचित अवसर देने से इन्कार कर दिया गया।

42. हमारे मत में, पुनरावेदनकर्तागण कोई उचित स्पष्टीकरण देने में बुरी तरह विफल रहे हैं कि प्रतिवादी को अभिलेख क्यों नहीं उपलब्ध कराये गये। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने बहुत ही उचित रूप से निष्कासन के आदेश को रद्द कर दिया।

च) रूप सिंह नेगी (उपरोक्त) :

14. निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध न्यायिक कार्यवाही है। अन्वेषण अधिकारी एक अर्ध न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी पर लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। अन्वेषण अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्रियों पर विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। अन्वेषण अधिकारी द्वारा सभी

आरोपियों के विरुद्ध अन्वेषण के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। उक्त अभिलेखों को साबित करने हेतु किसी साक्षी को परीक्षित नहीं कराया गया। प्रबंधन के साक्षियों ने मात्र अभिलेख प्रस्तुत किए तथा उनकी अन्तर्वस्तु को साबित नहीं किया। अन्य बातों के अलावा, अन्वेषण अधिकारी द्वारा प्रथम सूचना आख्या पर विश्वास किया गया था जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

15. हमने यहां पूर्व में देखा है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा जिस एकमात्र बुनियादी साक्ष्य पर विश्वास किया गया है, वह पुलिस के समक्ष पुनरावेदनकर्ता द्वारा किया गया कथित स्वीकारोक्ति था। पुनरावेदनकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने हेतु मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे थाने में प्रताड़ित किया गया था।

पुनरावेदनकर्ता के बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति साबित होनी चाहिए थी। यह दर्शाने हेतु कुछ साक्ष्य अभिलेख में लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट

पुस्तक चुराने में सम्मिलित था। स्वीकार्य रूप से, कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष साक्ष्य भी नहीं था। आख्या का सार दर्शाता है कि अन्वेषण अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई साक्ष्य नहीं छोड़ा गया था।

17. मोनी शंकर बनाम भारत संघ व अन्य [(2008) 3 एससीसी 484] में, इस न्यायालय ने व्यवस्था दी कि:

17. विभागीय कार्यवाही अर्धन्यायिक है। यद्यपि साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान उक्त कार्यवाही में लागू नहीं होते हैं, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय इस बात पर विचार करने के स्वत्वाधिकारी हैं कि क्या किसी दोषी अधिकारी की ओर से कदाचार का अनुमान लगाते समय प्रासंगिक साक्ष्य को ध्यान में रखा गया है तथा अप्रासंगिक तथ्यों को उसमें से बाहर रखा गया है। तथ्यों का अनुमान उन साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए जोकि विधिक सिद्धांतों की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हों। इस प्रकार, न्यायाधिकरण इस आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने का स्वत्वाधिकारी था कि विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, भले ही उसे सीधे तौर पर लिया गया हो, का प्रत्यक्ष मूल्य पूरी तरह से सही होना चाहिए, साक्ष्य के दायित्व की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए, अर्थात् - संभाव्यता की प्रबलता। यदि ऐसे साक्ष्यों पर, आनुपातिकता के सिद्धांत की कसौटी पर खरा नहीं उतरने पर, न्यायाधिकरण का हस्तक्षेप करना अपने क्षेत्राधिकार में था। हमें अभिलेख पर रखना चाहिए कि अनुचितता का सिद्धांत आनुपातिकता के सिद्धांत का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।"

21. 15. एक बार पुनः एम. वी. बिजलानी बनाम भारत संघ व अन्य (2006) 5 एससीसी 88 में, इस न्यायालय ने व्यवस्था दी कि:

"25 हालांकि विभागीय कार्यवाही में आरोपों को आपराधिक मुकदमे की तरह साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है, अर्थात् सभी उचित संदेहों से परे, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अन्वेषण अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है, जिसे अभिलेखों का विश्लेषण कर इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर आरोपों को साबित करने की संभावना थी। ऐसा करते समय, वह किसी भी अप्रासंगिक तथ्य पर विचार नहीं कर सकता। वह किसी प्रासंगिक तथ्य पर विचार करने से इन्कार नहीं कर सकता।

वह साक्ष्य का भार परिवर्तित नहीं कर सकता। वह मात्र अनुमानों के आधार पर साक्षियों के प्रासंगिक साक्ष्य को अस्वीकार नहीं कर सकता है। वह उन आरोपों का अन्वेषण नहीं कर सकता है जिनके लिये दोषी अधिकारी पर आरोप नहीं लगाया गया था। "

छ) राधे कांत खरे (उपरोक्त) :

6. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने सुभाष चंद्र शर्मा बनाम उ. प्र. सहकारी स्पिनिंग मिल्स, 1999 (4) एडब्ल्यूसी 3227 : 2000 (1) उ.प्र. एलबीईसी 541 में, जिसमें हममें से एक (माननीय न्यायमूर्ति एम. काटजू) सदस्य थे, यह विधि स्थापित की गयी। विधि निम्नवत् है:

"कर्मचारी को आरोप-पत्र दिए जाने के पश्चात्, मौखिक अन्वेषण आवश्यक है, चाहे कर्मचारी इस हेतु अनुरोध करे अथवा नहीं। इसलिए, उसे

अन्वेषण की तिथि, समय तथा स्थान बताते हुए एक नोटिस जारी किया जाना चाहिए। उस तिथि पर कर्मचारी के विरुद्ध मौखिक तथा अभिलेखी साक्ष्य पहले उसकी उपस्थिति में प्रस्तुत किए जाने चाहिए देखें, ए. सी. सी. लिमिटेड बनाम देयर वर्कमेन (1963) यू एलएलजे 396 (एससी)। सामान्य तौर पर, यदि कर्मचारी का अन्वेषण पहले किया जाता है, तो यह अवैध है देखें, आनंद जोशी बनाम एम. एस.एफ.सी., 1991 एलआईसी 1666 (बीओएम); एस. डी. शर्मा बनाम ट्रेड फेयर अथॉरिटी ऑफ इंडिया, (1985) // एलएलजे 193 तथा सेंट्रल रेलवे बनाम रघुबीर सरन, (1983) 11 एलएलजे 261 निःसंदेह, कुछ असाधारण मामलों में कर्मचारी को पहले साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु कहा जा सकता है देखें, फायरस्टोन टायर एंड रबर कंपनी लिमिटेड बनाम देयर वर्कर्स, एआईआर 1968 एससी 236, परन्तु सामान्य तौर पर नियम यह है कि पहले नियोक्ता को अपना साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा। इस सिद्धान्त का कारण यह है कि आरोपपत्रित कर्मचारी को न मात्र अपने ऊपर लगे आरोपों के बारे में पता होना चाहिए, बल्कि उसके विरुद्ध साक्ष्यों के बारे में भी पता होना चाहिए ताकि वह उसका उचित उत्तर दे सके। जहां किसी साक्षियों का अन्वेषण नहीं किया गया तथा कोई प्रदर्श या अभिलेख नहीं बनाया गया, परन्तु सीधे कर्मचारी को अपने प्रकरण के समर्थन में अपने साक्ष्य तथा अभिलेख पेश करने हेतु कहा गया, यह अवैध है देखें, पी. सी. थॉमस बनाम मुथोली को-ऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, 1978 एलआईसी 1428 (केआर तथा मीनगल्स टी एस्टेट बनाम देयर वर्कर्स, एआईआर 1963 एससी 1719)

/

7. यह भी आवश्यक है कि सामान्य तौर पर नियोक्ता के सभी साक्षियों का बयान कर्मचारी की उपस्थिति में दर्ज किया जाना चाहिए जब तक कि प्रकरण में अन्यथा कार्य करने हेतु बाध्यकारी कारण न हों देखें, केसोराम कॉटन मिल्स बनाम गंगाधर, एआईआर 1964 एससी 708 तथा सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम प्रकाश चंद, एआईआर 1969 एससी 983, आदि। यदि कर्मचारी की अनुपस्थिति में साक्षियों का अन्वेषण किया जाता है तथा उनके दर्ज किए गए बयान भी उसे उपलब्ध नहीं कराए गए तो यह प्रक्रिया अवैध है देखें, टाटा ऑयल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम देयर वर्कमेन, (1963) // एलएलजे 78; भारत जनरल नेविगेशन तथा रेलवे कंपनी लिमिटेड बनाम इट्स इम्पलाइज, (1961) // एलएलजे 372 (एससी): भारत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम जय सिंह (1961) // एलएलजे 644 (एससी): सुर इनेमल एंड स्टैम्पिंग वर्क्स लिमिटेड बनाम देयर वर्कमेन, एआईआर 1963 एससी 1914 तथा वैश्य बैंक बनाम एन.एम. पैट, 1994 एलआईसी 1429 (कांत) आदि।

8. मीनग्लास टी एस्टेट बनाम देयर वर्कर्स, एआईआर 1963 एससी 1719 में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेक्षण किया, "यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि जिस व्यक्ति को आरोप का उत्तर देना वांछित है उसे न मात्र आरोप ज्ञात होना चाहिए बल्कि उन बयानों को भी जानना चाहिए जिसके द्वारा आरोप का समर्थन किया जाता है। उसे निष्पक्ष अवसर दिया जाना चाहिए कि वह आरोप के समर्थन में साक्ष्य

सुने तथा जिरह के माध्यम से ऐसे प्रासंगिक प्रश्न पूछे, जैसा वह चाहता है। फिर उसे अपने विरुद्ध दिए गए साक्ष्य का खंडन करने का मौका दिया जाना चाहिए। यह इस चरित्र के अन्वेषण की सबसे मूलभूत आवश्यकता है तथा यदि अन्वेषण के परिणाम को स्वीकार किया जाना है तो यह आवश्यकता काफी सीमा तक पूरी की जानी चाहिए।

9. एस. सी. गिरोत्रा बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, 1995 (सप्प) 3 एससीसी 212 में, सर्वोच्च न्यायालय ने सेवामुक्ति आदेश को रद्द कर दिया जोकि कर्मचारी को जिरह का अवसर दिए बिना पारित किया गया था। उ.प्र. राज्य बनाम सी. एस. शर्मा. एआईआर 1968 एससी 158 में, सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि किसी कर्मचारी को अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने तथा साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर न देना कार्यवाही को दूषित कर देता है। न्यायालय ने यह भी व्यवस्था दी कि अन्वेषण में, आरोपों के समर्थन में साक्षियों का अन्वेषण किया जाना चाहिए, तथा दोषी को उन साक्षियों से जिरह करने तथा अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए। पंजाब नेशनल बैंक बनाम ए.आई. पी. एन. बी. ई. फेडरेशन, एआईआर 1960 एससी 160 (देखें पैराग्राफ 66), सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि ऐसी पूछताछ में साक्ष्य को आरोप-पत्रित कर्मचारी की उपस्थिति में दर्ज किया जाना चाहिए तथा उसे ऐसे साक्ष्य का खंडन करने का अवसर दिया जाना चाहिए।"

22. हमारे मत में, 12.6.1985 को हुये कथित अन्वेषण में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का

पूरी तरह से उल्लंघन हुआ था तथा इसलिए सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के दृष्टिगत यह बिल्कुल भी वैध अन्वेषण नहीं था। चूंकि याचिकाकर्ता पर दीर्घ दण्ड आरोपित किया जा रहा था, इसलिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने से पूर्व उचित मौखिक अन्वेषण होना चाहिए था, परन्तु स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं किया गया।

ज) श्रीमती माज़दा बेगम व अन्य (उपरोक्त) :

33. इस न्यायालय ने पूर्व में भी सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक, उ.प्र. सहकारिता स्पिनिंग मिल्स फेडरेशन लिमिटेड, कानपुर तथा अन्य, 2000 (1) उ. प्र. एलबीईसी 541 में यही दृष्टिकोण अपनाया तथा कहा :-

"हमारे मत में याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र का उत्तर देने के पश्चात् अन्वेषण हेतु एक तिथि तय की जानी चाहिए थी तथा याचिकाकर्ता को अन्वेषण की तिथि, समय तथा स्थान के बारे में सूचित किया जाना चाहिए था तथा उस तिथि पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध मौखिक तथा अभिलेखी साक्ष्य उसकी उपस्थिति में प्रस्तुत किया जाना चाहिए था तथा उसे अपने विरुद्ध साक्षियों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए था तथा साथ ही उसे अपने साक्षियों तथा साक्ष्य को प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए था। यदि याचिकाकर्ता इस सूचना के उत्तर में अन्वेषण हेतु उपस्थित होने हेतु विफल रहा होता तो एक पक्षीय अन्वेषण आयोजित किया

जाना चाहिए था, परन्तु अन्वेषण आयोजित किए बिना याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त नहीं की जानी चाहिए थी। वर्तमान प्रकरण में ऐसा प्रतीत होता है कि कोई नियमित अन्वेषण आयोजित नहीं किया गया। आरोप-पत्र पर याचिकाकर्ता के उत्तर के पश्चात् उसे कारण बताओ नोटिस दिया गया तथा उसके पश्चात् सेवामुक्ति आदेश पारित किया गया। हमारे मत में यह सही विधिक प्रक्रिया नहीं थी तथा नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ था। चूंकि अन्वेषण हेतु कोई तिथि तय नहीं की गई थी तथा न ही ऐसा कोई अन्वेषण आयोजित हुआ जिसमें साक्ष्य दिए गए हों, हमारे मत में, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन है।" "मीनग्लास टी एस्टेट बनाम द वर्कमेन, एआईआर 1963 एससी 1719 में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेक्षण किया "यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि जिस व्यक्ति को आरोप का उत्तर देना वांछित है उसे न मात्र आरोप ज्ञात होना चाहिए बल्कि वे बयान भी ज्ञात होने चाहिए जिसके द्वारा आरोप का समर्थन किया गया। उसे निष्पक्ष मौका दिया जाना चाहिए कि वह आरोप के समर्थन में साक्ष्य सुने तथा जिरह के माध्यम से ऐसे प्रासंगिक प्रश्न पूछें, जैसा वह चाहता है। फिर उसे अपने विरुद्ध दिए गए साक्ष्य का खंडन करने का मौका दिया जाना चाहिए। यह इस चरित्र के अन्वेषण की सबसे मूलभूत आवश्यकता है तथा यदि अन्वेषण के परिणाम को स्वीकार किया जाना है तो यह आवश्यकता काफी सीमा तक पूरी होनी चाहिए। "

झ) उ.प्र. राज्य व अन्य (उपरोक्त) :

24. इस स्तर पर प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर ध्यान देना उचित होगा जो इस प्रकार हैं:

"1. सलोन जगत पुर रोड से संबंधित कार्य, 3054- पीडब्ल्यू कार्य योजना के माध्यम से निविदा संख्या 5 / एई-2 दिनांकित 10.06.1996 के माध्यम से श्री जितेंद्र मोहन बाजपेयी, ठेकेदार को दिया गया था। निविदा का अंतिम भुगतान तत्कालीन अधिशासी अभियन्ता श्री आकाश दीप सोनकर द्वारा किया जा चुका है तथा तदुसार 193047/- रुपये का भुगतान चेक क्रमांक 13/256064 दिनांकित 02.08.1996 द्वारा किया जाना था। उसके पश्चात् आपने यह भुगतान चेक क्रमांक 78/001355 दिनांकित 31.12.1998 के माध्यम से राशि 193047/- रुपये का भुगतान संख्या 142 दिनांकित 31.12.1998 के माध्यम से किया। रोकड़ बही भाग - 73 के पृष्ठ 138 पर, प्रविष्टि संख्या अस्पष्ट की गयी है। आपने जानबूझकर सरकार को नुकसान पहुंचाने हेतु उपरोक्त प्रविष्टि की तथा दिनांक 31.12.1998 को वाउचर संख्या 142 के माध्यम से राशि 193047 हेतु दो बार भुगतान किया तथा राशि 193047 रुपये को 134305 में बदल दिया गया है। इसलिए 58742 रुपये का भुगतान जो पूर्व ही किया जा चुका है, को उपरोक्त प्रविष्टि में भुगतान किया गया नहीं दिखाया गया है।

इस प्रकार आपने जान-बूझकर षडयंत्र रचकर कपटपूर्ण कृत्य करके सरकार को हानि पहुंचायी तथा 58742/- रुपये की वसूली वाउचर क्रमांक 141 दिनांकित 21.3.2000

के माध्यम से ठेकेदार से की गयी, जिसका कारण बताया गया कि वाउचर क्रमांक 142 दिनांकित 31.12.1998 के माध्यम से सलोन जगत पुर रोड पर कार्य हेतु अधिक भुगतान किये जाने के कारण 58742 रुपये की कटौती की गयी है। वाउचर संख्या 142 दिनांक 31.12.1998 में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि भुगतान की जाने वाली राशि के संबंध में चेक जारी करने के पश्चात् किस कारण से कटौती की गयी जोकि आपकी ओर से गलत मंशा को दर्शाता है। आपने वाउचर राशि में कटौती के उल्लेख के संबंध में गलत प्रविष्टियां की हैं जो कि वित्तीय हस्तपुस्तिका धारा-5 (भाग-1) पैरा 4 डी तथा 83 का उल्लंघन साबित होती है। वाउचर संख्या 141 दिनांकित 31.03.2000 तथा इस तरह की प्रविष्टि से यह साबित होता है कि संभागीय लेखा अधिकारी ने चेक के माध्यम से उक्त भुगतान के संबंध में 0185777/- रुपये का चेक जारी कर दिया तथा सहायक अभियन्ता द्वारा 0185777/- रुपये राशि का चेक पारित कर दिया गया। चेक जारी करते समय भुगतान की जाने वाली राशि में से 58742/- रुपये की कटौती आपके आचरण को संदिग्ध बनाती है तथा आप इस संबंध में कदाचार हेतु जिम्मेदार पाए जाते हैं।

अतः आपको उ.प्र. सरकारी सेवक आचरण नियमावली 1956 के पैरा 3 अनुसार कदाचार का दोषी पाया जाता है। ॥. आपने मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स, करहल मैनपुरी को पत्र ज्ञापांक-2/कैम्प-72-99 दिनांक 17.07.1999 के माध्यम से मोबाइल पैचर 6 की आपूर्ति हेतु आदेश पारित किया था, मैसर्स बी. एन. ट्रेडर्स,

करहल मैनपुरी द्वारा उक्त आपूर्ति के संबंध में रसीद संख्या 149 प्रस्तुत की गयी। 129600/- रुपये की राशि हेतु आपूर्ति सहायक अभियन्ता द्वारा पास कर दी गयी तथा आपके द्वारा 129600/- रुपये की राशि चेक क्रमांक 96/002075 दिनांकित 16.11.1999 द्वारा पास किया गया था। चेक दिनांकित 16.11.1999 आपके नाम पर जारी किया गया जोकि बी. एन. ट्रेडर्स को बैंक ड्राफ्ट द्वारा भुगतान हेतु प्रदान किया गया। इस चेक के स्थान पर आपने मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स को चेक संख्या 005/003492 दिनांकित 13.11.1999, 129600/- रुपये हेतु जारी किया तथा जिसे उनके द्वारा भुनाया जाना था।

अभिलेखों से स्पष्ट है कि मूल चेक दिनांकित 31.11.1999 को काटकर सेल्फ लिखा गया तथा चेक आपके द्वारा भुनाया गया। चेक बुक के प्रतिपर्ण में मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स का नाम दर्ज है।

अतः, आपके द्वारा गलत तरीके से स्वयं के नाम से फर्जी प्रविष्टि कर चेक भुना लिया गया तथा राशि रोकड़ बही में नहीं ली गयी। अतः, इस संबंध में फर्जीवाड़ा सिद्ध होता है। आपने मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स के पक्ष में 08.03.2000 को 129600/- रुपये भारतीय स्टेट बैंक, रायबरेली से बैंक ड्राफ्ट बनवाया। ड्राफ्ट के प्रारूप के आवेदन पत्र में मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स का नाम अंकित है जबकि ड्राफ्ट आपूर्ति के संबंध में आदेश मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स, करहल, मैनपुरी फर्म के पक्ष में कर दिया गया। अतः बैंक ड्राफ्ट मैनपुरी के पते पर भेजा जाना था। मेसर्स बी.एन. ट्रेडर्स, करहल,

मैनपुरी ने 28.07.2000 को मुख्य अभियन्ता, लखनऊ को सूचित किया कि आपने भुगतान मैनपुरी की फर्म के पते पर कर दिया है। इस संबंध में बैंक ड्राफ्ट मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स के नाम से बनाया गया तथा ड्राफ्ट की धनराशि आपके रिश्तेदार के नाम पर प्राप्त हुयी तथा इस प्रकार मेसर्स बी. एन. ट्रेडर्स को कोई भुगतान नहीं किया गया। आपने चेक काटा था तथा वित्तीय हस्तपुस्तिका की धारा 6 के पैरा 77 तथा वित्तीय हस्तपुस्तिका की धारा 5, भाग -1 के पैरा 19-22 का उल्लंघन किया गया। चेक से फर्म का नाम काटकर अपना नाम (स्वयं) दर्ज कर भुगतान प्राप्त करना दर्शाता है कि भुगतान धोखाधड़ी करने के पश्चात् प्राप्त किया गया।

पुनः इस कृत्य को छुपाने हेतु आपने 129600/- रुपये का ड्राफ्ट संख्या पीएल 00008/392289 दिनांकित 08.03.2000 एसबीआई, रायबरेली से बनवाया। बैंक ड्राफ्ट फर्म के करहल, मैनपुरी पते का नहीं बल्कि लखनऊ के पते का बनाया गया था ताकि धोखाधड़ी की जा सके तथा फर्म को इस तरह का कोई भुगतान न किया गया। फर्म ने आरोप लगाया है कि आपने धोखाधड़ी करने के पश्चात् भुगतान प्राप्त किया था, इसलिए आपको 129600/- रुपये की धनराशि के दुरुपयोग के संबंध में अभिलेखों में धोखाधड़ी एवं वित्तीय नियमों का उल्लंघन करने से दोषी तथा कदाचारी पाया गया जाता है। आपको उ.प्र. सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 के पैरा 3 के अनुसार कदाचार हेतु भी दोषी ठहराया जाता है।

III. प्रकरण संख्या 37/98 मेसर्स इंडियन कोल सप्लायर्स बनाम उ.प्र. सरकार के मध्य निर्णय हेतु संस्थगित किया गया। प्रकरण का निर्णय 05.01.2000 को हुआ जिसके अनुसार संबंधित फर्म द्वारा विभाग से ब्याज सहित 26,00,000/- रुपये का भुगतान की मांग की गयी। यह तथ्य आपकी ज्ञान में है कि उक्त प्रकरण में पुनरावेदन का विकल्प सरकार द्वारा खारिज कर दिया गया। ऐसी स्थिति में आपने वाद - विषयों के निर्धारण के दौरान समझौते की वैधता के संबंध में उचित तरीके से बचाव तैयार नहीं किया। प्रकरण मात्र न्यायालय शुल्क की कमी के आधार पर खारिज कर दिया गया। आपने जानबूझकर सरकार की अनुमति के बिना विशेष अधिवक्ता नियुक्त किया, न्यायालय शुल्क का भुगतान नहीं किया तथा मेसर्स इंडियन कोला सप्लायर्स के साथ मिलीभगत करके ठेकेदार को लाभ पहुंचाने हेतु न्यायालय के समक्ष कमजोर पक्ष प्रस्तुत कर सरकार को 26,00,000/- रुपये का नुकसान पहुंचाया। उपरोक्त कृत्य वित्तीय हस्तपुस्तिका के पैरा 9.01, 9.02 एवं 9.03 एवं 30प्र0 सरकारी सेवक आचरण नियमावली 1956 के पैरा 3 का उल्लंघन है।"

29. उपरोक्त के अलावा भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के आधार पर विभागीय अन्वेषण नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुसार आयोजित किया जाना चाहिए था। नैसर्गिक न्याय के नियमों की यह मूलभूत आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही, जिसकी परिणति कर्मचारी

को दंड देने के रूप में हो सकती है, में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

31. शौघनेसी बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 345 यूएस 206 (1953) (न्यायमूर्ति जैक्सन) में, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने कहा:

"प्रक्रियात्मक निष्पक्षता तथा नियमितता स्वतंत्रता का अपरिहार्य सार है। गंभीर ठोस विधियों को चालू रखा जा सकता है यदि उसे न्यायपूर्वक तथा निष्पक्ष रूप से लागू किया जाए।"

ज) मोनी शंकर (उपरोक्त) :

17. विभागीय कार्यवाही अर्धन्यायिक है। यद्यपि साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान उक्त कार्यवाही में लागू नहीं होते हैं, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय इस बात पर विचार करने के स्वत्वाधिकारी हैं कि क्या किसी दोषी अधिकारी की ओर से कदाचार का अनुमान लगाते समय साक्ष्य का प्रासंगिक खण्ड ध्यान में रखा गया है तथा अप्रासंगिक तथ्यों को इससे बाहर रखा गया है। तथ्यों का निष्कर्ष उन साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए जोकि विधिक सिद्धांतों की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हों। इस प्रकार, न्यायाधिकरण इस आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने का स्वत्वाधिकारी था कि विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, भले ही उसे सीधे तौर पर लिया गया हो, का प्रत्यक्ष मूल्य पूरी तरह से सही होना चाहिए, साक्ष्य के दायित्व

की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए, अर्थात् संभाव्यता की प्रबलता। यदि ऐसे साक्ष्यों के आनुपातिकता के सिद्धांत की कसौटी पर खरा नहीं उतरने पर, न्यायाधिकरण का हस्तक्षेप करना अपने क्षेत्राधिकार में था। हमें अभिलेख में रखना चाहिए कि अनुचितता का सिद्धांत आनुपातिकता के सिद्धांत का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

ट) एमवी बिजलानी (उपरोक्त) :

21. पुनरावेदनकर्ता के विरुद्ध अन्वेषण करते समय, अन्वेषण अधिकारी ने विभाग की ओर से परीक्षित कराये गये साक्ष्यों द्वारा दिए गए बयानों की सत्यता या अन्यथा के बारे में कोई कारण बताए बिना प्रतिकूल टिप्पणियाँ की। वे विभाग द्वारा परीक्षित कराये गये थे। यदि उन्होंने झूठी गवाही दी थी तो उनसे जिरह की जानी चाहिए थी। मात्र इसलिए कि उनके साक्ष्य पूरी तरह से विभाग के विरुद्ध थे, इसका तात्पर्य यह नहीं होगा कि उन्होंने झूठी गवाही दी। अन्वेषण अधिकारी ने मत व्यक्त किया:

"उन्होंने एसीई-8 का रखरखाव नहीं किया क्योंकि अगर एसीई-8 का रखरखाव किया गया होता तो श्री एम. वी. बिजलानी, जेईटी जगदलपुर द्वारा 25.12.1973 को तैयार किया गया अभिलेख संख्या 1 अर्थात् ईएसटी जगदलपुर का संख्यात्मक खाता तैयार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि श्री बिजलानी द्वारा पूर्व में तैयार किया गया कोई भी एसीई-8 होता तो, उन्होंने निश्चित रूप से दूसरा एसीई - 8 (डीओसी - 1) प्रस्तुत करने

पर आपत्ति जतायी होती, जो कथित तौर पर जेई (सतर्कता) द्वारा उसे दिखाए गए अभिलेख के आधार पर तैयार किया गया था। एसडीओटी रायपुर के अनुसार, एसीई-8 (अभिलेख 20) में ईएसटी जगदलपुर को तांबे के तार 150 पाउंड / मील जारी करने की तिथि 22.10.1969, 30.10.1969 तथा 02.12.1969 को क्रमशः 2204 पाउंड, 2218 पाउंड तथा 4398 पाउंड उल्लिखित किया गया। ईएसटी जगदलपुर के ACE-8 (DOC-1) में तार की उपरोक्त मात्रा की प्रविष्टियाँ नहीं हैं।

25. यह सत्य है कि न्यायिक समीक्षा में न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है। हालाँकि, अनुशासनात्मक कार्यवाहियाँ, अर्ध-आपराधिक प्रकृति की होने के कारण, आरोप को साबित करने हेतु कुछ साक्ष्य होने चाहिए। यद्यपि विभागीय कार्यवाही में आरोपों को आपराधिक विचारण की तरह साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है, अर्थात् सभी उचित संदेहों से परे, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अन्वेषण अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है, जिसे अभिलेखों का विश्लेषण कर इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर आरोपों को साबित करने की संभावना थी। ऐसा करते समय, वह किसी भी अप्रासंगिक तथ्य पर विचार नहीं कर सकता। वह किसी प्रासंगिक तथ्य पर विचार करने से इन्कार नहीं कर सकता। वह साक्ष्य का भार परिवर्तित नहीं कर सकता। वह मात्र अनुमानों के आधार पर साक्ष्यों की प्रासंगिक साक्ष्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। वह उन आरोपों का अन्वेषण नहीं कर सकता है जिसके लिये दोषी अधिकारी पर

आरोप नहीं लगाया गया।

26. अन्वेषण अधिकारी की आख्या उपर्युक्त बुराइयों से ग्रस्त है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथा पुनरावेदनीय प्राधिकारी के आदेश भी जोकि उक्त अन्वेषण आख्या पर आधारित हैं, इस प्रकार वैध नहीं माने जा सकते। हमने न्यायाधिकरण के प्रकरण को निपटाने के तरीके पर भी गौर किया। इसके निष्कर्षों पर, उच्च न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि उसने पुनरावेदनकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर गहराई से विचार नहीं किया है। इस प्रकार, न्यायाधिकरण भी अपने कर्तव्यों का ठीक से निर्वहन करने में विफल रहा।

27. हमने जो विचार अपनाए हैं, उनके आधार पर दिए गए निर्णय पूर्णतया अरक्षणीय हैं।

28. अतः पुनरावेदन अनुमत की जाती है। उक्त आदेश का परिणाम प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजना होगा। हालाँकि, हमारी ऐसा करने की मंशा नहीं है क्योंकि आरोप वर्ष 1969-1970 से संबंधित हैं। इन कार्यवाहियों के लंबित रहने से पुनरावेदनकर्ता ने बहुत नुकसान झेला है। इसलिए, यदि उसने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त नहीं की है, तो उसे सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। हालाँकि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि, उसने लंबे समय से कार्य नहीं किया है, हम निर्देश देते हैं कि उसे मात्र पिछले वेतन का 50% ही भुगतान किया जाए। वह इस पुनरावेदन की लागत का भी स्वत्वाधिकारी है। अधिवक्ता का शुल्क 5000/- रुपये निर्धारित किया जाता है।

ठ) चमोली जनपद सहकारी बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) :

22.2. अनुशासनात्मक अन्वेषण की अनिवार्य आवश्यकता, अर्थात् जब आरोपों का खंडन किया जाता है तो अन्वेषण किया जाना तथा दोषी को अन्वेषण आख्या सेवित किये जाने, का वर्तमान प्रकरण में उल्लंघन किया गया है।

22.4. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने बिना किसी अन्वेषण के प्रतिवादी 1 कर्मचारी को दिनांक 4-5-1993 को कारण बताओ नोटिस जारी किया तथा इसके पश्चात् वर्ष 2000 में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा बिना कोई कदम उठाए लिया गया संकल्प स्पष्ट रूप से अरक्षणीय है। उच्च न्यायालय ने बैंक को, यदि वह चाहे तो, छः माह की अवधि के भीतर नए सिरे से अन्वेषण करने की छूट देकर सेवामुक्ति आदेश को सही ढंग से रद्द कर दिया।

ड) श्रीमती चिंता यादव (उपरोक्त) :

60. जिन आरोपों पर हमने चर्चा कर चुके हैं, वे पूरी तरह से साबित करते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूर्व की रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष के बावजूद, सिर्फ इसलिए कि राज्य को नई अन्वेषण करने की स्वतंत्रता दी गई थी परन्तु, वास्तव में, बिना किसी साक्ष्य के अन्वेषण अधिकारी के पास उपलब्ध प्रासंगिक स्वीकार्य सामग्री की अनदेखी करके, वही आरोप साबित

पाए गये। सभी आरोप किसी भी भौतिक साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं थे तथा ऐसी आख्या के आधार पर औपचारिक अन्वेषण मात्र याचिकाकर्ता को बाहर करने के उद्देश्य से आयोजित की गई थी, हालांकि इस तरह की कार्यवाही हेतु उसके विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है।

61. घटनाओं का क्रम तथा तरीका जिसके अन्तर्गत अन्वेषण प्रारम्भ हुआ, पहले एक राजनीतिक दल से संबंधित, श्री उमेश चंद्र यादव की शिकायत पर, फिर दोबारा श्री के.एन. खरवार, जोकि अपर मुख्य अधिकारी थे, जिनके विरुद्ध लगे आरोप... तथा दुर्भावनापूर्ण लगाये गये हैं, के अनुपालन पर, इस तथ्य के साथ हालाँकि शिकायत किसी शपथपत्र द्वारा समर्थित नहीं थी तथा न ही वह नियमावली, 1997 के अनुसार थी परन्तु उस पर विचार किया गया तथा वह इस तथ्य के बावजूद कि जिन आरोपों पर कार्यवाही की गई है अलग से याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई प्रकरण न बनाते हैं, दर्शाते हैं कि उसकी प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियों पर रोक लगाने तथा गैर-विद्यमान आरोपों पर औपचारिक अन्वेषण करने हेतु, आक्षेपित आदेश पारित किया गया। अतः आदेश निरस्त किये जाने योग्य है, जिसे एतद्वारा निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता को अब से अपने वित्तीय तथा प्रशासनिक दोनों कार्यों का निर्वहन करना अनुमत होगा।

ढ) सुभाष यादव (उपरोक्त) :

8. अब उपरोक्त उद्धृत निर्णय की कसौटी पर

वर्तमान प्रकरण के तथ्यों का प्रतिपादन किया जा रहा है। वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिस पर याचिकाकर्ता ने 14.2.2008 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया। आक्षेपित आदेश में जिलाधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर भी ध्यान दिया तथा जिलाधिकारी ने उस उत्तर का उल्लेख करना प्रारम्भ कर दिया जोकि याचिकाकर्ता को जारी किया गया तथा जिसके अनुसार याचिकाकर्ता ने अपना उत्तर प्रस्तुत किया। जिलाधिकारी ने, बिना कोई कारण बताए कि उक्त उत्तर संतोषजनक क्यों नहीं है, अग्रेतर यह उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता द्वारा जो उत्तर प्रस्तुत किया गया है वह असंतोषजनक है। एक बार जब उत्तर प्रस्तुत कर दिया गया तो जिलाधिकारी द्वारा इसका कारण बताया जाना चाहिए था कि उक्त उत्तर असंतोषजनक क्यों है। एक बार जब कोई कारण नहीं बताया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर असंतोषजनक क्यों है तो कारण बताओ नोटिस जारी करने का उद्देश्य ही विफल तथा भंग हो गया। इस बारे में, स्वीकार्य रूप से उत्तर प्रस्तुत किया गया है तथा जिलाधिकारी ने आदेश पारित करते समय यह उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर असंतोषजनक है तथा याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर असंतोषजनक क्यों है, इसका कोई कारण नहीं बताया गया, पारित आदेश रक्षणीय नहीं है।

9. फलस्वरूप, जिलाधिकारी, बरेली द्वारा पारित आदेश दिनांकित 11.7.2008 को रद्द किया जाता है। जिलाधिकारी, बरेली को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की

तिथि से अगले छः सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार करने के पश्चात् प्रकरण में नया निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है।

ण) एस. आर. तिवारी (उपरोक्त) :

6. इस प्रकार, इस न्यायालय के विचारार्थ उत्पन्न प्रश्न यह हैं कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी गई अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड साबित किए गए अपराध के अनुपात में है तथा क्या प्रतिवादियों ने अवमानना याचिकाओं में जानबूझकर इस न्यायालय द्वारा यह व्यवस्था देते हुये पारित आदेश दिनांकित 5.10.2012, कि दण्ड पर तब तक कार्यान्वित नहीं किया जाए जब तक कि इसे अगली सुनवाई के समय न्यायालय में प्रस्तुत न कर दिया जाए, का उल्लंघन किया है।

17. हमने स्वीकार्य सीमा के भीतर प्रकरण पर पुनर्विचार किया। प्रकरण आरोप संख्याओं 4 तथा 6 तक ही सीमित रह गया क्योंकि अन्य सभी आरोपों ने किसी न किसी स्तर पर अपना महत्व खो दिया तथा हमें मात्र उक्त आरोपों पर निदेश करना होगा।

24. दण्ड की मात्रा पर हस्तक्षेप के प्रश्न पर, इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में विचार किया जा चुका है, तथा यह व्यवस्था दी गयी कि यदि दिया गया दण्ड कदाचार की गंभीरता से असंगत है, यह मनमाना होगा, तथा इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिदेश का उल्लंघन होगा।

रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ व अन्य, एआईआर 1987 एससी 2386 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार प्रेक्षण किया:

"परन्तु दण्ड को अपराध तथा अपराधी के अनुरूप होना चाहिए। यह प्रतिशोधात्मक या अनुचित रूप से कठोर नहीं होना चाहिए। यह अपराध के प्रति इतना असंगत नहीं होना चाहिए कि अंतरात्मा को झटका लगे तथा अपने आप में पूर्वाग्रह का निर्णायक साक्ष्य हो। आनुपातिकता का सिद्धांत, न्यायिक समीक्षा की अवधारणा के हिस्से के रूप में, यह सुनिश्चित करेगा कि उस पहलू पर भी, जो अन्यथा, सेना न्यायालय के विशिष्ट कार्यक्षेत्र के भीतर है, यदि दण्ड के संबंध में भी न्यायालय का निर्णय तर्क की अपमानजनक अवहेलना है, तो दण्ड को संशोधन से प्रतिरक्षित नहीं होगा। वर्तमान प्रकरण वर्तमान प्रकरण में, दण्ड इतना अधिक कठोरतापूर्वक असंगत है तथा इसमें हस्तक्षेप न्यायसंगत है। इसे न्यायिक समीक्षा में असंशोधित रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।" (बल दिया गया) (भारत संघ व एक अन्य बनाम जी. गनयुथम (मृतक, विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से), एआईआर 1997 एससी 3387: उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम जे. पी. सारस्वत, (2011) 4 एससीसी 545: चंद्र कुमार चोपड़ा बनाम भारत संघ व अन्य, (2012) 6 एससीसी 369; तथा रजिस्ट्रार जनरल, पटना उच्च न्यायालय बनाम पांडे गजेंद्र प्रसाद व अन्य, एआईआर 2012 एससी 2319 : भी देखें)।

25. बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ व

अन्य, एआईआर 1996 एससी 484 में, इस न्यायालय ने अपने पूर्व के विभिन्न निर्णयों का परीक्षण करने के पश्चात् प्रेक्षण किया कि न्यायिक समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करते हुए, न्यायालय "सामान्य रूप से" अपने स्वयं के निष्कर्ष या शास्ति को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। हालाँकि, यदि किसी प्राधिकारी द्वारा लगायी गयी शास्ति न्यायालय की "अंतरात्मा को झकझोरता है", तो यह उचित रूप से या तो प्राधिकारी को लगाए गए जुर्माने पर पुनर्विचार करने का निर्देश देकर तथा असाधारण तथा दुर्लभ मामलों में, मुकदमेबाजी को घटाने हेतु, स्वयं ही उसके समर्थन में ठोस कारणों के साथ उचित शास्ति आरोपित कर अनुतोष को ढालेगा। आनुपातिकता के वाद-विषय का परीक्षण करते समय, न्यायालय उन परिस्थितियों पर भी विचार कर सकती है जिनके अन्तर्गत कदाचार कारित किया गया था। किसी दिए गए प्रकरण में, उपलब्ध परिस्थितियों ने अभियुक्त को एक निश्चित तरीके से कार्य करने हेतु मजबूर किया होगा, हालाँकि उसका ऐसा करने का इरादा नहीं था। यदि आदेश को रद्द कर दिया जाता है अथवा किसी अन्य शास्ति से प्रतिस्थापित किया जाता है, तो न्यायालय प्रभाव का आगे परीक्षण कर सकता है। हालाँकि, यह मात्र बहुत ही दुर्लभ मामलों में होता है कि न्यायालय, मुकदमेबाजी को घटाने हेतु, सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिये गये दण्ड के स्थान पर दण्ड की मात्रा के बारे में अपना दृष्टिकोण प्रतिस्थापित करने के बारे में सोच सकता है।

26. वी. रमन्ना बनाम ए. पी. एसआरटीसी व अन्य, एआईआर 2005 एससी 3417 में, इस

न्यायालय ने न्यायिक समीक्षा के दायरे पर विचार किया कि दण्ड की मात्रा में मात्र तभी अनुज्ञेय है यदि यह पाया जाता है कि यह आरोपों की गंभीरता के अनुरूप नहीं है तथा यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि दण्ड की मात्रा के संबंध में न्यायिक समीक्षा का दायरा मात्र तभी स्वीकार्य है जब यह पाया जाए कि यह "न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देने वाला है, इस अर्थ में कि यह तर्क या नैतिक मानकों की अवहेलना थी" सामान्य तौर पर, यदि लगाया गया दंड आश्चर्यजनक रूप से अनुपातहीन है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को आरोपित शास्ति पर पुनर्विचार करने का निर्देश देना उचित होगा। हालाँकि, मुकदमेबाजी को घटाने हेतु, असाधारण तथा दुर्लभ मामलों में, न्यायालय स्वयं इसके समर्थन में ठोस कारण दर्ज करके उचित शास्ति आरोपित कर सकता है।

30. किसी न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों को अनुचित माना जा सकता है यदि निष्कर्ष प्रासंगिक सामग्री को अनदेखा या छोड़ कर या अप्रासंगिक/अस्वीकार्य सामग्री पर विचार करके निकाले गए हों। निष्कर्ष को अनुचित भी कहा जा सकता है यदि यह "साक्ष्य के भार के विपरीत" है, या यदि निष्कर्ष इतने अपमानजनक रूप से तर्क की अवहेलना करता है कि अतार्किकता के दोष से ग्रस्त है। यदि कोई निर्णय बिना किसी साक्ष्य या पूरी तरह से अविश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर लिया जाता है तथा कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसा नहीं करेगा, तो आदेश अनुचित हो जाएगा। परन्तु यदि अभिलेख पर कुछ साक्ष्य है जो स्वीकार्य है तथा जिस पर

विश्वास किया जा सकता है, तो निष्कर्षों को अनुचित नहीं माना जाएगा तथा निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

31. इसलिए, जहां कदाचार, घोर अनियमितता या अवैधता का साक्ष्य है, वहां हस्तक्षेप अनुज्ञेय है।

34. साबित आरोप मात्र आरोप संख्या 4 तथा 6 ही रहे तथा दोनों ही प्रकरणों में कदाचार गंभीर प्रकृति के कदाचार के बजाय प्रशासनिक प्रकृति का प्रतीत होता है। विभाग का यह प्रकरण नहीं था कि पुनरावेदनकर्ता अनुरक्षक वाहन अपने साथ ले गया। मात्र एक वाहन था जो उसके उपयोग हेतु एक आधिकारिक वाहन था तथा आरोप संख्या 6 आंशिक रूप से साबित होता है। इसके दृष्टिगत, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देता है तथा किसी भी तरह से इसे पुनरावेदनकर्ता द्वारा कारित तथा उसके विरुद्ध साबित किए गए अपराध के अनुपात में या अनुरूप नहीं माना जा सकता है। एकमात्र दण्ड जिसे अपराध के अनुरूप माना जा सकता था, वह भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित था कि संचयी प्रभाव के बिना एक वर्ष हेतु दो वेतन वृद्धि रोक दी जाए। उचित दण्ड दिये हेतु प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास भेजना उचित होगा। हालाँकि, प्रकरण के उतार-चढ़ाव भरे इतिहास को देखते हुए तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुनरावेदनकर्ता 11 माह तक निलंबित रहा, उसने 19 महीने तक सेवामुक्ति का आदेश झेला तथा दिसंबर 2013 में सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंचने के पश्चात्

सेवानिवृत्त हो जाएगा, प्रकरण के तथ्य इस न्यायालय द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति के दण्ड को भारत संघ द्वारा प्रस्तावित दण्ड से प्रतिस्थापित करने, अर्थात् बिना संचयी प्रभाव के एक वर्ष हेतु दो वेतन वृद्धि रोकने को न्यायसंगत ठहराते हैं।

त) यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (उपरोक्त) :

28. यह हमें अंतिम प्रश्न पर ले जाता है कि क्या सेवामुक्ति का दण्ड आश्चर्यजनक रूप से आरोपों की गंभीरता के अनुरूप नहीं है, सेना न्यायालय द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया का अंश के रूप में आरोपित दण्ड के न्यायिक समीक्षा से संबंधित सिद्धांतों को रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ 1987 (4) एससीसी 611 में वर्णित किया गया, जहां इस न्यायालय ने एक सेना न्यायालय द्वारा दिये गये दण्ड में इस आधार पर हस्तक्षेप किया कि यह आश्चर्यजनक रूप से अपराध की गंभीरता के निम्नलिखित तर्क पर अनुपातहीन था:

"न्यायिक समीक्षा सामान्य तौर पर किसी निर्णय के विरुद्ध निर्देशित नहीं होती है, परन्तु "निर्णय लेने की प्रक्रिया" के विरुद्ध निर्देशित है। दण्ड के चयन तथा मात्रा का प्रश्न सेना - न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा विवेक के अंतर्गत है। परन्तु दण्ड को अपराध तथा अपराधी के अनुरूप होना चाहिए। यह प्रतिशोधात्मक या अनावश्यक रूप से कठोर नहीं होना चाहिए। यह अपराध के प्रति इतना असंगत नहीं होना चाहिए कि अंतरात्मा को झकझोर दे तथा अपने आप में पक्षपात का निर्णायक साक्ष्य बन जाए। न्यायिक समीक्षा

की अवधारणा के अंश के रूप में, आनुपातिकता का सिद्धांत यह सुनिश्चित करेगा कि किसी ऐसे पहलू पर भी, जो अन्यथा, सेना-न्यायालय के अनन्य कार्यक्षेत्र के भीतर है, यदि दण्ड के संबंध में भी न्यायालय का निर्णय तर्क का एक अपमानजनक अवज्ञा है, तो दण्ड संशोधन से अछूता नहीं रहेगा। तर्कहीनता तथा दुराग्रह न्यायिक समीक्षा के मान्यता प्राप्त आधार हैं।"

30. प्रथम प्रतिवादी के विरुद्ध जो आरोप साबित पाये जाते हैं, वे हैं:

(i) धोखाधड़ी के इरादे से प्रथम प्रतिवादी ने मांस के अनुबंध संचालन अधिकारी होने के नाते, ठेकेदार से मांस के हिस्से के रूप में 'हृदय' के साथ मांस की स्वीकृति कराई, यह जानते हुए कि यह अनुबंध की विशेष शर्तों के पैरा 86 के अनुसार शर्तों का स्वीकार्य हिस्सा नहीं था। (देखें प्रथम आरोप);

(ii) प्रथम प्रतिवादी, आपूर्ति डिपो के प्रभारी कमांडेंट के रूप में यह सुनिश्चित करने में विफल रहा कि अनुबंध की विशेष शर्तों के पैरा 51 (ए) के अनुसार कसाईखाने में आवश्यक स्टॉक आरक्षित के रूप में बनाए रखा गया था (देखें चौथा आरोप);

(iii) कसाईखाने के संचालन के समग्र नियंत्रण हेतु जिम्मेदार कमांडेंट के रूप में प्रथम प्रतिवादी, कसाईखाने हेतु मानक संचालन प्रक्रिया को लागू करने में अनुचित रूप से विफल रहा, जिसके परिणामस्वरूप 'मृत' जानवरों को पृथक नहीं किया गया तथा ठेकेदार के अन्य जानवरों के साथ मिश्रित

करने की अनुमति दे दी गयी।

थ) चरणजीत लांबा (उपरोक्त) :

12. आनुपातिकता का सिद्धांत, जिसे लॉर्ड डिप्लॉक ने भविष्य की संभावना के रूप में देखा था, अब एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त आधार है, जिस पर एक रिट न्यायालय किसी कर्मचारी पर लगाए गए दण्डादेश में हस्तक्षेप कर सकता है यदि वह कदाचार की प्रकृति हेतु इतना अपमानजनक गैरअनुपातिक है कि यह न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देता है। इस स्तर पर हम संक्षेप में इस न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने वर्षों से विशिष्ट तथ्य स्थितियों हेतु आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू किया है।

13. भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (1983) 2 एससीसी 442 में इस न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यदि आरोपित शास्ति कदाचार की गंभीरता के गैर अनुपातिक है, तो यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।

11. रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ व अन्य (1987) 4 एससीसी 611 में, यह न्यायालय एक ऐसे प्रकरण से व्यवहृत था जहां याचिकाकर्ता ने अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के बारे में सीधे उच्च अधिकारियों को अभ्यावेदन दिया था। उसे उस अपराध हेतु एक वर्ष के सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया था। दण्ड भोगने के दौरान उसने खाना खाने से इन्कार कर दिया। अगले दिन आयोजित सारांश सेना न्यायालय ने उसे एक और वर्ष हेतु कारावास

भोगने तथा सेवा से सेवामुक्ति का दण्ड दिया। इस न्यायालय ने व्यवस्था दी कि दोषी पर आरोपित दण्ड उसके द्वारा किए गए अपराध की गंभीरता से पूरी तरह से असंगत था। इसी तरह भूतपूर्व-नायक सरदार सिंह बनाम भारत संघ व अन्य (1991) 3 एससीसी 213 में भी दोषी को छुट्टी पर घर जाते समय अधिकृत ब्रांडी की एक बोतल के बजाय ब्रांडी की चार बोतलें ले जाते हुए पाया गया। उसे तीन माह का सश्रम कारावास तथा सेवा से सेवामुक्ति का दण्ड दिया गया, जिसे इस न्यायालय ने उनके विरुद्ध साबित अपराध की गंभीरता से असंगत पाया।

19. एक दोषी पर आरोपित दण्ड का प्रकृति तथा सामान्य तौर पर कदाचार के अनुरूप होना न मात्र निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता तथा गैर-भेदभावपूर्ण व्यवहार की आवश्यकता है, यहां तक कि आपराधिक गुणवत्ता वाले लोग भी दावा करने के स्वत्वाधिकारी हैं परन्तु संविधान के अनुच्छेद 14 का अंश होने के रूप में मान्यता प्राप्त है। ऊपर संदर्भित पुराने निर्णयों से यह भी स्पष्ट है कि भारत में न्यायालयों ने आनुपातिकता के सिद्धांत को न्यायिक समीक्षा के एक आधार के रूप में मान्यता दी है। यह कहने के पश्चात् कि हमें यह याद रखने की आवश्यकता है कि अनुशासनात्मक मामलों में दण्ड की मात्रा कुछ ऐसी चीज़ है जो मुख्य रूप से अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास निहित है। उस प्रकरण हेतु रिट न्यायालय या प्रशासनिक न्यायाधिकरण का क्षेत्राधिकार यह पता लगाने तक सीमित है कि क्या दण्ड इतना अपमानजनक गैरअनुपातिक है कि उसमें सद्भावना की कमी

का संकेतक हो ।

द) अध्यक्ष सह प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड व एक अन्य (उपरोक्त) :-

18. 25. पुनः, कोयंबटूर जनपद केंद्रीय सहकारी बैंक बनाम कोयंबटूर जनपद केंद्रीय सहकारी बैंक कर्मचारी संघ व एक अन्य में, इस न्यायालय ने आनुपातिकता के सिद्धांत पर विचार किया तथा यह व्यवस्था दी कि:

"19. जहां तक आनुपातिकता का सिद्धांत संबंधित है, इसमें कोई प्रतिवाद नहीं है कि उक्त सिद्धांत न मात्र हमारी विधिक प्रणाली में आ चुका है बल्कि बना हुआ है। प्रशासनिक विधि के तेजी से विकास तथा विभिन्न प्रशासनिक प्राधिकारियों द्वारा विवेकाधीन शक्तियों के संभव दुरुपयोग के नियंत्रण की आवश्यकता तथा अनिवार्यता हेतु न्यायालयों द्वारा कुछ सिद्धांत विकसित किए गए हैं। यदि किसी प्राधिकारी द्वारा की गई कार्यवाही विधि के विपरीत, अनुचित, तर्कहीन या अन्यथा अविवेकी है, तो न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग कर ऐसी कार्यवाही में हस्तक्षेप कर सकता है। शक्ति का प्रयोग करने के ऐसे तरीकों में से एक, जो विधि हेतु जाना जाता है, "आनुपातिकता का सिद्धांत" है।

18. "आनुपातिकता" एक सिद्धांत है जहां न्यायालय प्रक्रिया, विधि या तरीके से संबंधित है, जिससे निर्णय-निर्माता ने अपनी प्राथमिकताओं का आदेश दिया है, किसी निष्कर्ष या किसी निर्णय पर पहुंचा है।

निर्णय लेने के सार में प्रकरण के कारकों तथा विचारों को सापेक्ष महत्व देना सम्मिलित है। इस प्रकार आनुपातिकता का सिद्धांत अभ्यास की वास्तविक प्रकृति- अनुमेय प्राथमिकताओं के नियम का विस्तार, पर ध्यान केंद्रित करता है।

19. डी स्मिथ का कथन है कि "आनुपातिकता" में "संतुलन परीक्षण" तथा "आवश्यकता परीक्षण" सम्मिलित है। जबकि पूर्ववर्ती (संतुलन परीक्षण) अत्यधिक कठोर दण्ड या अधिकारों या हितों के उल्लंघन तथा प्रासंगिक विचारों के स्पष्ट असंतुलन के अन्वेषण की अनुमति देता है, पश्चात्पूर्वी (आवश्यकता परीक्षण) हेतु कम से कम प्रतिबंधात्मक विकल्प हेतु मानव अधिकारों के उल्लंघन की आवश्यकता होती है। [प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा (1995), पृष्ठ 601-05, पैरा 13.085; वेड एंड फोर्सिथ: प्रशासनिक विधि (2005), पृष्ठ 366 भी देखें]

20. इंग्लैंड के हैल्सबरी की विधियों (चतुर्थ संस्करण), पुनः जारी, खण्ड 1(1), पृष्ठ 144-45, पैरा 78 में, यह कहा गया है: "न्यायालय विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग को निरस्त करेंगे, जिसमें प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य तथा उस हेतु उपयोग किए गए साधनों के मध्य कोई उचित संबंध नहीं है, अथवा जहां प्रशासनिक निकायों या विचारण न्यायालयों द्वारा आरोपित किये गये दंड प्रासंगिक कदाचार से पूर्णतया समानुपातिक नहीं हैं। आनुपातिकता का सिद्धांत (2007) 4 एससीसी 669 यूरोपीय विधि में अच्छी तरह से स्थापित है, तथा इसे आंग्ल न्यायालयों द्वारा लागू

किया जाएगा जहां यूरोपीय विधि घरेलू न्यायालयों में लागू किया जा सकता है। आंग्ल विधि में आनुपातिकता का सिद्धांत अभी भी विकास के चरण में है; आनुपातिकता की न्यूनता को सामान्य तौर पर आंग्ल विधि में समीक्षा हेतु एक पृथक आधार के रूप में नहीं माना जाता है, बल्कि इसे स्पष्ट अतार्किकता का एक संकेत माना जाता है।

21. इस सिद्धांत की उत्पत्ति प्रशासनिक विधि के क्षेत्र में हुई है। देश के मामलों को प्रशासित करने में सरकार तथा उसके विभागों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी नीति या मंशा की अभिव्यक्ति का सम्मान करें तथा विवेक का दुरुपयोग किए बिना नागरिकों के साथ पूर्ण व्यक्तिगत विचार करें। इसमें कोई "सोच विचार कर चुनना", सरकारी मानदंडों की चयनात्मक प्रयोज्यता या अन्याय, मनमानी या अनुचितता नहीं हो सकता। "किसी समस्या को हल करने के लिए वास्तव में आवश्यक से अधिक कठोर उपायों का उपयोग करना" अनुमत नहीं है। जैसा कि कई बार कहा गया है: "जहां छीलने का चाकू पर्याप्त है, युद्ध कुल्हाड़ी को बाहर रखा जाता है"।

22. सिविल सेवा संघ परिषद् बनाम सिविल सेवा मंत्री (1985 एसी 374: (1984) 3 डब्ल्यूएलआर 1174: (1984) 3 इला ईआर 935 (एचएल) के प्रसिद्ध निर्णय में लॉर्ड डिप्लॉक ने घोषणा की: (इला ईआर पृष्ठ 950 एच- जे) "मुझे लगता है कि न्यायिक समीक्षा आज एक ऐसे स्तर पर विकसित हो गई है, विकास के चरणों का कोई विश्लेषण दोहराए बिना, कोई भी उन आधारों को सहजता से

तीन शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकृत कर सकता है जिन पर प्रशासनिक कार्यवाही न्यायिक समीक्षा द्वारा नियंत्रण के अधीन है। मैं प्रथम आधार को 'अवैधता', द्वितीय को 'अतार्किकता' तथा तृतीय को 'प्रक्रियात्मक अनौचित्य' कहूंगा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रकरण-दर-प्रकरण के आधार पर आगे का विकास समय के साथ अग्रतर आधार नहीं जोड़ सकता है। मेरे मन में विशेष रूप से भविष्य में 'आनुपातिकता' के सिद्धांत को संभावित रूप से अपनाने की बात है... " (बल दिया गया)

23. सिविल सेवा संघ परिषद् को पश्चात् के कई मामलों में आंग्ल न्यायालयों द्वारा दोहराया गया। हम उन सभी प्रकरणों का संदर्भ देना करना आवश्यक नहीं समझते।

24. जहां तक हमारी विधिक प्रणाली संबंधित है, सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित है। सिविल सेवा संघ परिषद् से पूर्व, इस न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यदि किसी नियोक्ता द्वारा किसी कर्मचारी को दिया गया दण्ड अत्यधिक, अनुपातहीन रूप से उच्च या अनुचित रूप से कठोर है, तो वह न्यायिक समीक्षा से प्रतिरोध का दावा नहीं कर सकता है, तथा ऐसे उचित प्रकरणों में न्यायालय दण्ड में हस्तक्षेप करने हेतु हमेशा उन्मुक्त है।

25. हिंद कंस्ट्रक्शन एवं इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम वर्कमेन (एआईआर 1965 एससी 917) में, कुछ कर्मचारी किसी विशेष दिन को छुट्टी मानकर काम से अनुपस्थित रहे। उन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। औद्योगिक न्यायाधिकरण ने कार्यवाही को रद्द कर दिया। इस न्यायालय ने व्यवस्था दी

कि अनुपस्थिति को बिना वेतन छुट्टी के रूप में माना जा सकता था। कामगारों को चेतावनी दी जा सकती थी तथा जुर्माना लगाया जा सकता था (परन्तु) "यह विचार करना असंभव है कि कोई अन्य विवेकशील नियोक्ता अपने पूरे स्थायी कर्मचारियों को इस तरह से सेवामुक्ति का चरम दण्ड देगा।" (एआईआर पृष्ठ 919, पैरा 7) (बल दिया गया) न्यायालय ने निष्कर्ष दिया कि कामगारों पर आरोपित दण्ड "न मात्र गंभीर तथा त्रुटि के अनुपात में अधिक था, बल्कि ऐसा था जो, हमारे निर्णय में, किसी भी विवेकशील नियोक्ता द्वारा आरोपित नहीं किया गया होगा" । (एआईआर पृष्ठ 919-20, पैरा 7) (बल दिया गया)

26. फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री बनाम वर्कमेन ((1972) 1 एससीसी 40] में, फेडरेशन के कर्मचारी के विरुद्ध आरोप यह था कि उसने फेडरेशन तथा इंटरनेशनल चैंबर ऑफ कॉमर्स को विधिक नोटिस जारी किया, जिससे फेडरेशन- नियोक्ता की बदनामी हुई। कर्मचारी के विरुद्ध आंतरिक अन्वेषण किया गया तथा उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गयीं। दण्ड को कथित तथा स्थापित कदाचार की तुलना में अधिक घोषित किया गया। इस न्यायालय ने प्रेक्षण किया कि: (एससीसी पृष्ठ 62, पैरा 34) । "फेडरेशन ने एक छोटी सी बात को एक पहाड़ बना दिया था तथा एक तुच्छ प्रकरण को प्रतिष्ठा तथा ख्याति को नुकसान पहुंचाने वाला बना दिया।"

27. उपरिसंदर्भित रणजीत ठाकुर में एक सैन्य

अधिकारी ने, उसे दिया गया खाना न खा कर, अपने वरिष्ठ अधिकारी की वैध आज्ञा का पालन नहीं किया। सेना - न्यायालय की कार्यवाही प्रारम्भ की गई तथा एक वर्ष के सश्रम कारावास का दण्ड आरोपित किया गया। उसे इस अयोग्यता के साथ सेवा से भी बर्खास्त कर दिया गया कि वह भविष्य में रोजगार हेतु अयोग्य हो जायेगा।

28. आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू करते हुये तथा सिविल सेवा संघ परिषद् का पालन करते हुये, न्यायमूर्ति वेंकटचलैया, (जैसा कि उस समय श्रीमान् जी थे) ने प्रेक्षण किया: (एससीसी पृष्ठ 620, पैरा 25) "दंड का चयन तथा उसकी मात्रा सेना न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा विवेकाधिकार का प्रश्न है। परन्तु दण्ड अपराध तथा अपराधी के अनुरूप होना चाहिए। यह प्रतिशोधात्मक या अनावश्यक रूप से कठोर नहीं होना चाहिए। यह अपराध के प्रति इतना असंगत नहीं होना चाहिए कि अंतरात्मा को झकझोर दे तथा अपने आप में पक्षपात का निर्णायक साक्ष्य बन जाए। न्यायिक समीक्षा की अवधारणा के अंश के रूप में, आनुपातिकता का सिद्धांत यह सुनिश्चित करेगा कि किसी ऐसे पहलू पर भी, जो अन्यथा, सेना न्यायालय के विशेष कार्यक्षेत्र के भीतर है, यदि दण्ड के संबंध में भी न्यायालय का निर्णय तर्क की अपमानजनक अवज्ञा है, तो दण्ड संशोधन से अछूता नहीं रहेगा। तर्कहीनता तथा दुराग्रह न्यायिक समीक्षा के मान्यता प्राप्त आधार हैं।" (बल दिया गया)

19. इस प्रकार, आनुपातिकता का सिद्धांत

हमारे न्यायशास्त्र में न्यायिक समीक्षा की अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अवधारणा है। कदाचार का आरोप सिद्ध हो जाने के पश्चात् दण्ड निर्धारित करने की विवेकाधीन शक्ति निर्णयकर्ता के विवेकाधीन क्षेत्र तथा एकमात्र शक्ति के अंतर्गत आती है, परन्तु ऐसी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन है यदि इसका उपयोग ऐसे तरीके से किया जाता है जो त्रुटि के अनुपात में अधिक है। दिया गया दण्ड, जो आरोपों तक पहुंच से अत्यधिक है, प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता है तथा न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे के अन्तर्गत हस्तक्षेप हेतु उन्मुक्त है।

20. दण्ड की मात्रा के प्रश्न से निपटने के दौरान लागू किए जाने वाले परीक्षणों में से एक यह होगा कि क्या कोई विवेकशील नियोक्ता समान परिस्थितियों में ऐसी दण्ड देगा? स्वाभाविक तौर पर, एक विवेकशील नियोक्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह दण्ड देने से पूर्व कदाचार के परिमाण, मात्रा और स्तर तथा अन्य सभी प्रासंगिक परिस्थितियाँ पर विचार करे तथा अप्रासंगिक प्रकरणों को वर्जित करे।

ध) दिनेश कुमार वर्मा (उपरोक्त) :

5. ऊपर उद्धृत किये गये आक्षेपित निर्णय के पैराग्राफ 15 को पढ़ने पर, हम पाते हैं कि न्यायाधिकरण ने स्पष्ट रूप से दर्ज किया है कि दोषी कर्मचारी ने आरोप पत्र के अपने उत्तर में या तो आरोपों को स्वीकार कर लिया है या उसके द्वारा प्रस्तुत उत्तर विधि के अनुरूप सही नहीं है, इसलिए, प्रकरण ऐसा था कि इसमें कोई और साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता

नहीं थी। इस प्रकार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए उचित तरीके से दंडादेश पारित किया। न्यायाधिकरण के इस निष्कर्ष पर इस न्यायालय के समक्ष आपत्ति जतायी गयी है तथा यह दृढ़ता से तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र के उत्तर में अपना उत्तर प्रस्तुत करते समय अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इन्कार किया, इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी आरोप को स्वीकार करना स्पष्ट रूप से अनुचित है तथा न्यायाधिकरण को अभिलेख पर उपलब्ध तर्कों के विपरीत ऐसा कोई भी निष्कर्ष दर्ज नहीं करना चाहिए था। अग्रेतर यह तर्क दिया गया कि एक बार जब याचिकाकर्ता की ओर से उसके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इन्कार कर दिया गया था, तो अन्वेषण अधिकारी को विधि के अनुसार उचित अवसर प्रदान करके, अर्थात् अनुशासनात्मक कार्यवाही आयोजित करने की तिथि, समय तथा स्थान तय करके आगे बढ़ना चाहिए था। यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप उसके समर्थन में कुछ अभिलेखी साक्ष्यों पर निर्भर थे, इसलिए, वे आरोप पत्र के उत्तर में याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार करने मात्र से साबित नहीं होते हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में रिट - ए संख्या 10552/2016: डॉ. अतुल दरबारी बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य; रिट याचिका संख्या 32680 (एस/एस)/2019 (सुरेश राम बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य); (2009) 2 एससीसी 570: रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक : (2006) 5 एससीसी 88 : एम. वी. बिजलानी बनाम

भारत संघ: (2005) 1 उ.प्र. एलबीईसी 276 : अतुल कुमार बनाम उ. प्र. निर्यात निगम : (2006) 3 एससीसी 167 : भारत संघ व अन्य बनाम एससी पाराशर; (2008) ईएससी (इला) 1673 : श्रीमती चिंता यादव बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य; (2009) 1 उ.प्र. एलबीईसी 189: सुभाष यादव बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य; (2003) 11 एससीसी 519: राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य व अन्य; रिट याचिका संख्या 992 (एस/बी) / 2010: अमर कुमार बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण लखनऊ व अन्य; (2011) 4 एससीसी 591: एस. एन. नरूला बनाम भारत संघ व अन्य; (2011) 4 एससीसी 589: भारत संघ व अन्य बनाम एस. के. कपूर; (2009) 13 एससीसी 603: हरभजन सिंह बनाम पंजाब राज्य; (2013) 2 एससीसी 41 : प्रबंधक, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम साजू पी पॉल व एक अन्य में दिए गए कई निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया। यह भी ज्ञात हुआ है कि याचिकाकर्ता ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में जिन अभिलेखों पर विश्वास किया था, उनकी सामग्री पर विवाद किया था तथा दावा याचिका में इस आशय की दलीलें दी गई थीं। इसलिए, बचाव में जो दलील दी गई थी उसके विपरीत न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है। न्यायालय को कारण बताओ नोटिस के प्रतितर में दिये गये उत्तर का अवलोकन कराया गया, जहां याचिकाकर्ता ने अपनी शिकायत दोहरायी परन्तु अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने फिर भी इस तरह के बचाव की अनदेखी करके अन्वेषण आख्या पर विश्वास किया। यह तर्क दिया गया कि

विद्वान न्यायाधिकरण की मुहर के अन्तर्गत अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की पुष्टि, स्पष्ट रूप से गलत तथा अनुचित है।

7. हम यह दोहरा सकते हैं कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा आयोजित अन्वेषण कार्यवाही कोई कोरी औपचारिकता नहीं होती है। ऐसी कार्यवाहियों का उद्देश्य उन भौतिक निष्कर्षों को निकालना है जिन्हें अन्वेषण अधिकारी किसी वाद-विषय में आकर्षित साक्ष्य के मानक के अनुसार इसकी स्वीकार्यता का आकलन करने के प्रयोजनों हेतु मौखिक तथा अभिलेखी साक्ष्यों को उद्घाटित करके अभिलेख पर ला सकता है। जहां साक्ष्य स्वीकार्य पाया जाता है, उस आधार पर एक निष्कर्ष अन्वेषण अधिकारी द्वारा दर्ज किया जा सकता है तथा उसके पश्चात् ही अन्वेषण आख्या कोई शास्ति आरोपित करने हेतु एक विश्वसनीय सामग्री बन जाती है। आरोप चाहे कितने भी गंभीर क्यों न हों, जैसा कि उपलब्ध प्रकरण है, अन्वेषण की कार्यवाही निर्धारित मानदंडों के अनुसार होनी चाहिए तथा यह अर्ध न्यायिक कार्य हमें स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण दिखता है। इसी प्रकार, प्रथमदृष्टया किसी अभिलेख की तिथि तथा हस्ताक्षर के संबंध में इन्कार नहीं किया जा सकता है तथापि इसकी अंतर्वस्तु पर विवाद हो सकता है। अंतर्वस्तु को साबित करने हेतु प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को, दोषी कर्मचारी को उचित अवसर देते हुये, अंतर्वस्तु को प्रमाणित करने हेतु ऐसे अधिकारी को बुलाना पड़ सकता है। हम आश्वस्त हैं कि अन्वेषण करने तथा ऐसी आख्या पर निर्भरता के संबंध में प्रक्रियात्मक दुर्बलता पर बहुत बड़ा आक्रमण

है।

11. हम इस तथ्य पर भी ध्यान देते हैं कि सामान्यतः कुल मिलाकर राज्य प्राधिकारियों द्वारा आयोजित की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाहियाँ, अन्वेषण के प्रकरण में विधि के सुस्थापित सिद्धांतों का पालन नहीं करती है जैसा कि उपलब्ध प्रकरण में है। यह उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन तथा पुनरावेदन) नियमावली, 1999 के अन्तर्गत सन्निहित कर्तव्य की अवहेलना है। अन्वेषण में अनियमितताएं अनुशासनहीनता हेतु पर्याप्त गुंजाइश छोड़ती हैं तथा दोषी उन सभी मामलों में दंडित नहीं होते हैं जहां प्रक्रियात्मक उल्लंघन उनके कदाचार को छिपा देते हैं। विसंगतियाँ सेवा न्यायशास्त्र के उद्देश्यों के विपरीत अनुशासनात्मक कार्यवाही को भी लम्बा खींचती हैं। अनुशासनात्मक अन्वेषण हेतु प्रशिक्षित कर्मचारी न होने में राज्य की निष्क्रिय भूमिका को हर प्रकरण में हल्के में नहीं लिया जा सकता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही का समापन सुधार तथा अनुशासन में होना चाहिए। हम विधि के अनुसार अन्वेषण करने में विफल रहने पर अधिकारी से वसूली योग्य लागत राज्य पर आरोपित सकते थे, परन्तु इस तथ्य को कि एक नया अन्वेषण हो सकता है, न्यायालय उचित प्रकरण में ऐसी शक्ति देखते हुए का प्रयोग सुरक्षित रखती है।

12. ऊपर दर्ज कारणों से, रिट याचिका की अनुमत की जाती है। आक्षेपित निर्णय साथ ही साथ दण्डादेश दिनांकित 23 जनवरी, 2019 को रद्द किया जाता है। हालाँकि,

अनुशासनात्मक प्राधिकारी को याचिकाकर्ता द्वारा उसे जारी आरोप पत्र के उत्तर में प्रस्तुत उत्तर के चरण से अन्वेषण आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता दी जाती है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अन्वेषण की कार्यवाही छः माह की अवधि के भीतर सख्ती से विधि के अनुसार पूर्ण की जाएगी।

न) प्रकाश चंद्र अग्रवाल (उपरोक्त) :

4. मैंने अन्वेषण आख्या के साथ-साथ आक्षेपित दंड आदेश का भी अवलोकन किया। इसके अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि अन्वेषण अधिकारी, वास्तव में, न केवल 1999 की नियमावली के नियम -7 द्वारा प्रविधानित की गई प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहा, बल्कि दोषी कर्मचारी पर यह साबित करने का भार भी डाल दिया कि वह दोषी नहीं है। चर्चा की प्रथम पंक्ति में, अन्वेषण अधिकारी का कथन है कि, दोषी कर्मचारी अपने आरोप-पत्र / बयानों के उत्तर के माध्यम से कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका जो यह साबित कर सके कि दोषी कर्मचारी गलत आरोपित किया गया है।

5. वर्तमान प्रकरण में, अपर मुख्य सचिव को अभिलेख सहित तलब किया गया था।

आज वह अभिलेख के साथ न्यायालय में उपस्थित हैं तथा उनकी सहायता के साथ-साथ पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहायता से अभिलेख का अवलोकन किया गया। विद्वान स्थायी अधिवक्ता भी प्रकरण के अभिलेख से यह दर्शा नहीं सके कि अन्वेषण के संचालन में

1999 की नियमावली के नियम - 7 के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है तथा साक्ष्य हेतु कोई तिथि, समय तथा स्थान तय किया गया हो अथवा विश्वास किये गये / तलब साक्ष्य याचिकाकर्ता को प्रदान किया गया हो।

6. हालाँकि प्रकरण साधारण है क्योंकि इसे वापस भेजा जाना है, परन्तु, इस न्यायालय के समक्ष दायर किए गए प्रकरणों में बड़ी संख्या में यह पाया जाता है कि दीर्घ शास्ति के संबंध में अन्वेषण 1999 की नियमावली के नियम 7 के उल्लंघन में किया जाता है। वर्तमान प्रकरण उसी का एक ज्वलंत उदाहरण है। अन्वेषण अधिकारी एक विशेष सचिव है तथा दण्ड देने वाला प्राधिकारी एक प्रमुख सचिव है। फिर भी अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण करने में तथा दण्ड देने वाले प्राधिकारी द्वारा दंडादेश जारी होने से पूर्व उसे रोकने में असफल रहने से घोर त्रुटि कारित हुयी है। नियम-7 का अनुपालन करना मात्र अन्वेषण अधिकारी का कर्तव्य नहीं है परन्तु दण्डादेश पारित करते समय दण्ड देने वाले प्राधिकारी का भी कर्तव्य है कि यह सुनिश्चित करे कि अन्वेषण निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार आयोजित किया गया है।

7. प्रदेश में पिछले कुछ समय से बड़ी संख्या में ऐसी गलतियां हो रही हैं। राज्य सरकार ने 22.04.2015 को एक विस्तृत शासनादेश जारी किया था जिसमें विस्तार से बताया गया था कि लघु शास्ति या दीर्घ शास्ति के संबंध में किस तरह से अन्वेषण किया जाना चाहिए। शासनादेश में विस्तार से व्याख्या करता है कि

पूर्व से नियम -7 में क्या निर्धारित है। जब अन्वेषण अभी भी उचित तरीके से नहीं किया जा रहे थे, तो पुनः, रिट - ए संख्या 12110 / 2020; 'उ.प्र. राज्य व अन्य बनाम विजय आनन्द तिवारी' में पारित इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 13.01.2021 के अन्तर्गत, राज्य सरकार द्वारा नियम-7 के अनुपालन हेतु शासनादेश दिनांकित 10.02.2021 जारी किया गया। उपरोक्त दो शासनादेशों के बावजूद, अभी भी अन्वेषण उचित तरीके से नहीं किये जा रहे हैं। यह दुखद है कि उक्त दोनों शासनादेशों का भी अधिकारियों द्वारा अनुपालन नहीं किया जा रहा है। यह भी देखा गया है कि बड़ी संख्या में प्रकरणों में, प्रतिप्रेषण के पश्चात् जब अन्वेषण दोबारा किया जाता है, तो वही प्रक्रियात्मक त्रुटि पुनः की जाती है तथा पुनः नियम -7 के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना अन्वेषण आख्या प्रस्तुत की जाती है। इससे इस न्यायालय पर अनावश्यक मुकदमेबाजी का बोझ भी पड़ रहा है। नियम-7 का अनुपालन सुनिश्चित करना अन्वेषण अधिकारी के साथ-साथ दण्ड प्राधिकारी का भी कर्तव्य है।

11. चूंकि, वर्तमान प्रकरण में, स्वीकार्य रूप से, नियम-7 का उल्लंघन है क्योंकि अन्वेषण अधिकारी द्वारा जिन अभिलेखों पर विश्वास किया गया था, वे याचिकाकर्ता को कभी भी प्रदान नहीं किए गए तथा न ही नियम -7 के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए अन्वेषण किया गया, अर्थात् विभाग के साक्षियों को बुलाना, जिरह का मौका देना, दोषी कर्मचारी/ याचिकाकर्ता को अपने साक्षियों को बुलाने का अवसर प्रदान करना, इसलिए

आक्षेपित आदेश दिनांकित 11.04.2022 टिक नहीं सकता तथा निरस्त किया जाता है।

प) संजय मिश्रा बनाम निदेशक एसजीपीजीआई व एक अन्य (उपरोक्त) :

13. उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन तथा पुनरावेदन) नियमावली, 1999, जो कि याचिकाकर्ता पर स्वीकार्य रूप से लागू होते हैं, स्पष्ट रूप से उस प्रक्रिया को इंगित करते हैं जो अन्वेषण कार्यवाही के दौरान दोषी कर्मचारी को अपना प्रकरण प्रस्तुत करने हेतु सुनवाई का उचित तथा पर्याप्त अवसर प्रदान करने के संबंध में विभागीय कार्यवाहियों में अपनाई जाने वाली आवश्यक प्रक्रिया है। उक्त अवसर के मुख्य पहलुओं में से एक स्पष्ट रूप से दोषी कर्मचारी को उक्त अन्वेषण कार्यवाहियों में उसके विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों का खण्डन करने का अवसर प्रदान किया जाना है। उक्त अवसर न मात्र अभिलेखों का खण्डन करने की प्रकृति में है, बल्कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अन्वेषण कार्यवाही में प्रस्तुत किए गए साक्षियों से जिरह करने तक भी विस्तारित है।

15. संपूर्ण अन्वेषण आख्या तथा आक्षेपित आदेश का अवलोकन मात्र इस तथ्य को स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया तथा मात्र उसके विरुद्ध प्रस्तुत पुलिस आख्या के आधार पर सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। याचिकाकर्ता हेतु विद्वान अधिवक्ता ने उ.प्र. राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा 2010 खण्ड 2 एससीसी पृष्ठ 772 में प्रतिवेदित के प्रकरण पर विश्वास व्यक्त किया जोकि स्पष्ट रूप से

उस प्रक्रिया को इंगित करता है जिसका किसी भी विभागीय अन्वेषण में पालन किया जाना आवश्यक है, जोकि अर्ध न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति में है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से व्यवस्था दी है कि यदि किसी मौखिक साक्ष्य का परीक्षण नहीं किया गया है तथा अभिलेखों को साबित नहीं किया गया है, तो उन्हें, यह निष्कर्ष निकालने हेतु ध्यान में नहीं रखा जा सकता कि दोषी कर्मचारी के विरुद्ध आरोप साबित हुये। अग्रेतर यह व्यवस्था दी गयी कि अन्वेषण की कार्यवाही बंद विवेक से नहीं की जा सकती तथा अन्वेषण अधिकारी को पूर्णतया निष्पक्ष होना चाहिए। नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन करना आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न मात्र न्याय किया जाए बल्कि उसे स्पष्ट रूप से किया हुआ देखा भी जाए। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि दोषी कर्मचारी को कार्यवाहियों में, जिसके परिणामस्वरूप दीर्घ शास्ति आरोपित जा सकता है, निष्पक्ष सुनवाई का मौका मिले।

16. याचिकाकर्ता के पिछले आचरण, जिसे अन्वेषण कार्यवाही में ध्यान में रखा गया है, के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मोहम्मद यूनुस खान बनाम उ. प्र. राज्य व अन्य, 2010 खंड 10 एससीसी पृष्ठ 539 में प्रतिवेदित के प्रकरण पर विश्वास व्यक्त किया है जिसमें यह स्पष्ट रूप से व्यवस्था दी गयी है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी दण्ड देने में किसी कर्मचारी के पिछले आचरण पर विचार करना चाहता है, तो दोषी इसकी सूचना पाने का अधिकारी है तथा

आरोप पत्र में ऐसा कोई अनुच्छेद सम्मिलित होना चाहिए अथवा कम से कम उसे दंड आरोपित करने के पूर्व कारण बताओ नोटिस के स्तर पर इसकी सूचना दी जानी चाहिए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि वे वर्तमान परिस्थितियों पर पूरी तरह से लागू होते हैं, क्योंकि सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई प्रक्रिया का बिल्कुल भी पालन नहीं किया गया, हालाँकि 1999 की नियमावली के अनुसार इसका पालन करना आवश्यक था। इसके अलावा, याचिकाकर्ता को उसके पूर्व के आचरण के कारण उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों हेतु दोषी माना गया है, परन्तु न तो आरोप-पत्र तथा न ही कारण बताओ नोटिस यह दर्शाता है कि उसके विरुद्ध ऐसा कोई आरोप लगाया गया तथा इसलिए, उपरोक्त निष्कर्ष मोहम्मद यूनुस खान (उपरोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के भी विरुद्ध हैं।

18. निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने के उपरोक्त दो आधार अर्थात् पुलिस आख्या तथा याचिकाकर्ता का पिछला आचरण मान्य नहीं हैं तथा इस तरह सेवामुक्ति आदेश की तरह याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूरी अन्वेषण कार्यवाहियाँ दूषित हैं।

फ) भारत संघ व अन्य बनाम जे. अहमद (उपरोक्त) :

7. विवाद को समझने हेतु प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर दृष्टि डालना बेहतर होगा। वे इस प्रकार निम्नवत् हैं:

" (i) नौगोंग जनपद में होने वाले व्यापक दंगे के विरुद्ध, पर्याप्त चेतावनी से अवगत कराने के बावजूद, कोई भी प्रभावी निवारक उपाय करने में पूर्णतया विफल रहना।

(ii) जब वास्तव में दंगे फैले तो अपने अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों को उचित निर्देश देने में नेतृत्व की पूर्ण कमी दर्शायी तथा शांति एवं व्यवस्था पुनर्स्थापित करने हेतु पुलिस के साथ समन्वय स्थापित करने में विफल रहे:

(iii) स्थिति को व्यक्तिगत नियंत्रण में लेने तथा आवश्यक पर्यवेक्षण करने हेतु, शहर के भीतर अथवा ग्रामीण दंगाग्रस्त क्षेत्रों का व्यक्तिगत रूप से समय पर दौरा नहीं किया;

(iv) सरकार को दंगे की वास्तविकता तथा विस्तार क्षेत्र के बारे में सूचित नहीं किया गया;

(v) पूर्ण अयोग्यता, दूरदर्शिता की कमी, दृढ़ता तथा त्वरित एवं दृढ़ निर्णय लेने की क्षमता की कमी को दर्शाया तथा इस प्रकार नौगोंग शहर के साथ-साथ नौगोंग जिले के ग्रामीण इलाकों में विधि तथा व्यवस्था के पूर्ण रूप से भंग होने हेतु काफी सीमा तक जिम्मेदार रहे। इस प्रकार आपने स्वयं को किसी भी जिम्मेदार पद पर रहने हेतु पूरी तरह से अयोग्य साबित कर दिया।"

9. ऊपर सूचीबद्ध पांच आरोपों पर एक दृष्टि में यह आभास होगा कि प्रतिवादी बहुत

कुशल अधिकारी नहीं था। कुछ लापरवाही हेतु उसे जिम्मेदार ठहराया जा रहा है तथा उप आयुक्त पद के अधिकारी से अपेक्षित गुणों की कुछ कमी को आरोप के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। अर्थात्, आरोप संख्या 2 नेतृत्व की कमी की गुणवत्ता को संदर्भित करता है तथा आरोप संख्या 5 अयोग्यता, दूरदर्शिता की कमी, दृढ़ता की कमी तथा अनिर्णय को दर्शाता है। ये ऐसे गुण हैं जिनकी एक वरिष्ठ अधिकारी से निस्संदेह अपेक्षा की जाती है तथा ये इस बात पर विचार करते समय बहुत प्रासंगिक हो सकते हैं कि किसी व्यक्ति को उच्च पद पर पदोन्नत किया जाना चाहिए या नहीं या पदोन्नत किया गया है, तो क्या उसे उच्च पद पर बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं या पद धारण करने हेतु व्यक्ति की योग्यता तय करने हेतु ये प्रासंगिक हो सकते हैं, परन्तु उन्हें अनुशासन तथा पुनरावेदन नियमावली के नियम 4 के अनुसार लोप या कृत्यों के स्तर तक उदात्त नहीं किया जा सकता है ताकि नियम 3 के अन्तर्गत शास्ति दिया जा सके। पद हेतु योग्यता, उसे धारण करने की क्षमता, किसी पद हेतु अपेक्षित दक्षता, पद से जुड़े कार्यों का निर्वहन करने की क्षमता, पदधारक के कुछ कृत्य या लोप से पृथक वस्तुयें हैं जिन्हें कदाचार के रूप में कहा जा सकता है ताकि नियमावली के अन्तर्गत शास्ति दिया जा सके। अनुशासन तथा पुनरावेदन नियमावली के नियम 4 द्वारा विचारित शब्द 'कृत्य तथा लोप' को अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियमावली, 1954 (संक्षेप में 'आचरण नियम') के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। सरकार ने आचरण नियमावली के माध्यम से अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों हेतु एक आचार

संहिता निर्धारित की है। नियम 3 सामान्य प्रकृति का है जोकि यह प्रावधान करता है कि सेवा का प्रत्येक सदस्य हर समय पूर्ण सत्यनिष्ठा तथा कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखेगा। सत्यनिष्ठा का अभाव, यदि सिद्ध हो जाए, तो निःसंदेह यह आवश्यक दंडनीय होगा। किसी जिम्मेदार पद पर बैठे अधिकारी की उच्चतम अपेक्षाओं पर खरा उतरने में विफलता अथवा योग्यता या नेतृत्व के गुणों की कमी, कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफलता नहीं मानी जाएगी। ऐसा प्रतीत होता है कि 'कर्तव्य के प्रति समर्पण' अभिव्यक्ति का प्रयोग कर्तव्य के प्रति उदासीनता या सहजता या हल्केपन का विरोध करने वाली किसी बात के लिये किया गया है। यदि आचरण नियमावली में मात्र नियम 3 होता तो किसी स्थिति में कदाचार क्या है यह सुनिश्चित करना कठिन होता। परन्तु आचरण नियमावली के नियम 4 से 18 सेवा के सदस्यों हेतु आचार संहिता निर्धारित करते हैं तथा यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि आचरण के निर्धारित नियमों के विपरीत या उल्लंघन में कोई कृत्य या लोप अनुशासनात्मक कार्यवाही हेतु कदाचार माना जाएगा। यह आचार संहिता संपूर्ण नहीं होने के कारण यह कहना विवेकपूर्ण नहीं होगा कि मात्र वह कृत्य या लोप जो आचरण नियमावली के विभिन्न प्रावधानों के विपरीत है उन्हें ही अनुशासन तथा पुनरावेदन नियमावली के प्रयोजन हेतु कदाचार माना जाएगा। आचरण नियमावली में निषेध स्पष्ट रूप से उपबंधित करते हैं कि अपेक्षित आचार संहिता के विपरीत कोई कृत्य या लोप निश्चित रूप से कदाचार होगा। कोई अन्य कृत्य या लोप भी कदाचार

हो सकते हैं। कर्तव्य के प्रति समर्पण को निर्धारित करने वाले सामान्य नियम 3 को छोड़कर, विभिन्न आरोपों में आचरण नियमावली के अपमान में या उनके विपरीत किसी भी कृत्य या लोप को निर्दिष्ट नहीं किया गया है। हालाँकि, यह विश्वास करना कठिन है कि दक्षता की कमी, उच्च पद पर रहते हुए प्रशासनिक क्षमता के उच्चतम मानक प्राप्त करने में विफलता स्वयं में कदाचार होगी। यदि ऐसा है तो औसत मूल्यांकन प्राप्त प्रत्येक अधिकारी कदाचार का दोषी होगा। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, इस प्रकरण में आरोप स्पष्ट रूप से प्रतिवादी पर गंभीर लोप के रूप में दक्षता की कमी, दूरदर्शिता की कमी तथा अनिर्णय का संकेत देते हैं। व्यक्तिगत योग्यता के व्यक्तिगत चरित्र में ये कमियाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रयोजन हेतु कदाचार नहीं होंगी।

11. आचरण नियमावली में निर्धारित आचार संहिता स्पष्ट रूप से सेवा के सदस्य से अपेक्षित आचरण को इंगित करती है। इससे यह होगा कि वह आचरण जो आचरण नियमावली के संदर्भ में सरकारी कर्मचारी हेतु निन्दनीय है, कदाचार होगा। यदि कोई सेवक सेवा में अपने कर्तव्य के उचित तथा निष्ठावान निर्वहन के साथ असंगत तरीके से आचरण करता है, तो यह कदाचार है [पियर्स बनाम फोस्टर (1) देखें]। सेवा के अनुबंध की एक आवश्यक शर्त की अवहेलना कदाचार हो सकती है [विधियाँ बनाम लंदन क्रॉनिकल (संकेतक समाचार पत्र) (2) देखें]। यह दृष्टिकोण शारदाप्रसाद आँकारप्रसाद तिवारी बनाम मंडल अधीक्षक, मध्य रेलवे, नागपुर मंडल, नागपुर

(1), तथा सतुभा के. वाघेला बनाम मूसा रज़ा
(2) में अपनाया गया था। उच्च न्यायालय ने
स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश में कदाचार की
परिभाषा पर ध्यान दिया है जोकि इस प्रकार
निम्नवत् है:

"कदाचार का अर्थ है, रुग्ण नीयत से उत्पन्न
कदाचार; लापरवाही के कृत्य, निर्णय की
त्रुटियाँ, या निर्दोष गलती, कदाचार का गठन
नहीं करते हैं।"

दूसरों के मध्य औद्योगिक न्यायशास्त्र में,
आदतन या घोर लापरवाही कदाचार है परन्तु
प्रबंधन, उत्कल मशीनरी लिमिटेड बनाम
वर्कमेन, सुश्री शांति पटनायक में, कर्मचारी के
वचन देने को शासित करने वाले स्थायी आदेश
की अनुपस्थिति में, कार्य संपादन के संदर्भ में
दंडात्मक रूप में अभ्याक्रमण करते हुये
असंतोषजनक कार्य को कदाचार माना गया।
एस. गोविंदा मेनन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया
(4) में, तरीका, जिसके तहत सेवा के एक
सदस्य ने अपने अर्धन्यायिक कार्य को सम्पन्न
किया, से सत्ता के दुरुपयोग का प्रकट होने पर
अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ किये जाने
हेतु कदाचार माना गया। निर्णय में चूक या
त्रुटि का एक कृत्य सामान्य तौर पर कदाचार
नहीं माना जायेगा हालाँकि यदि ऐसी त्रुटि या
चूक जिसके परिणामस्वरूप गंभीर या नृशंस
परिणाम होते हैं तो यह कदाचार हो सकता
है जैसा कि इस न्यायालय ने पी. एच.
कल्याणी बनाम एयर फ्रांस, कलकत्ता में
व्यवस्था दी थी, जिसमें यह पाया गया था
कि लोड-शीट तथा बैलेंस चार्ट का अन्वेषण
करते समय कर्मचारी द्वारा की गई दो

गलतियों से विमान के साथ संभावित दुर्घटना
तथा मानव जीवन की संभावित हानि
सम्मिलित होगी तथा इसलिए, गंभीर परिणामों
के संदर्भ में कार्य में लापरवाही को कदाचार
माना गया। हालाँकि, यह विश्वास करना कठिन
है कि सार्वजनिक कार्यालय से संबद्ध कर्तव्य
के निर्वहन में दक्षता या उच्चतम मानकों की
प्राप्ति में कमी स्वयमेव कदाचार का गठन
करेगा। कर्तव्य पालन में लापरवाही हो सकती
है तथा कर्तव्य पालन में चूक या विकासशील
स्थिति का मूल्यांकन करने में निर्णय की त्रुटि
कर्तव्य निर्वहन में लापरवाही हो सकती है,
परन्तु उसको कदाचार नहीं माना जाएगा जब
तक कि लापरवाही के परिणामस्वरूप सीधे तौर
पर होने वाले परिणाम ऐसे न हों कि अपूरणीय
या परिणामी क्षति इतनी भारी होगी कि दोषी
होने का परिमाण बहुत अधिक हो। एक त्रुटि
लापरवाही का संकेत हो सकती है तथा
अभियोज्यता का परिमाण लापरवाही की
गंभीरता का संकेत दे सकती है। जानबूझकर
की गई दुष्टता या द्वेष की तुलना में
लापरवाही अक्सर अधिक नुकसान पहुंचा
सकती है। संतरी के उत्कृष्ट उदाहरण को नज़र
अंदाज कर देना जो अपनी चौकी पर सोता है
तथा दुश्मन को निकलने देता है, ऐसे अन्य
अधिक परिचित उदाहरण जिनमें एक रेलवे
केबिनमैन उसी ट्रैक पर एक ट्रेन को संकेत
देता है जहां एक स्थिर ट्रेन है जिससे सिर के
बल टक्कर हो जाती है; एक नर्स अंतःशिरा
सुचिकाभरण दे रही है जिसे अंतः पेशीय दिया
जाना चाहिए था जिससे तत्काल मृत्यु हो जाती
है; एक पायलट ने इंजन में खराबी दिखाते हुए
एक उपकरण को नजरअंदाज कर दिया तथा
विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिससे भारी

जानमाल की हानि हो गयी। अनुपयुक्त सहानुभूति एक बड़ी बुराई हो सकती है (नवीनचंद्र शकरचंद शाह बनाम प्रबंधक, अहमदाबाद को-ऑप डिपार्टमेंट स्टोर्स लिमिटेड (1) देखें)। परन्तु किसी भी प्रकरण में, कर्तव्य के पालन में दक्षता के उच्चतम मानक प्राप्त करने में विफलता का एक अनुमान लगाने की अनुमति देने वाली लापरवाही कदाचार गठित नहीं करेगी न ही आचरण नियमावली के नियम 3 के प्रयोजन हेतु, क्योंकि यह कर्तव्य के प्रति समर्पण की कमी को इंगित करेगी।

16. दूसरी ओर, प्रतिवादी (यों) के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष अन्वेषण आख्या दिनांकित 22.04.2004, याचिकाकर्ता की सुनवाई की आख्या दिनांकित 12.04.2004, आरोप पत्र दिनांकित 30.07.2002, कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिनांकित 24.07.2004, दण्ड आदेश दिनांकित 31.07.2004 न प्राप्त होने का पत्र, कार्यालय आदेश दिनांकित 29.07.2004, विभाग के दण्ड के नियम, आवश्यक अभिलेखों के संबंध में याचिकाकर्ता की मांग दिनांकित 07.07.2004, पत्र दिनांकित 19.07. 2004 तथा कारण बताओ नोटिस दिनांकित 24.06.2004 प्रस्तुत किया।

17. प्रकरण पर समग्र रूप से विचार करने के साथ-साथ अभिलेख तथा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किये गये निर्णयों के अवलोकन से यह परिलक्षित होता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध जनपद अम्बेडकर नगर में किये गये जमा कार्य में वित्तीय अनियमितताएं पायी गयीं तथा संपरीक्षा आख्या के आधार पर, याचिकाकर्ता के विरुद्ध अन्वेषण प्रारम्भ किया गया तथा आरोपों से

संबंधित प्रासंगिक अभिलेख याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराए गए तथा आठ आरोपों वाली एक चार्जशीट याचिकाकर्ता पर सेवित की गयी तथा आरोप संख्या 3 तथा 6 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध साबित पाया गया।

18. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने स्वयं अपने ऊपर लगे आरोपों को स्वीकार किया तथा अनुरोध किया कि उसे लघु शास्ति दी जाये, जिससे यह स्वयं साबित होता है कि उसके विरुद्ध आरोप साबित हुये। याचिकाकर्ता पर कारण बताओ नोटिस सेवित नहीं हो सकी क्योंकि वह अपने कार्यालय / निवास पर उपलब्ध नहीं था तथा उसके परिवार के सदस्यों ने भी इसे प्राप्त करने से इन्कार कर दिया तथा उसके पश्चात्, याचिकाकर्ता की जानकारी हेतु उक्त नोटिस 29.06.2004 को दैनिक समाचार पत्रों, अर्थात् दैनिक जागरण तथा टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित किया गया।

19. उपरोक्त से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप संख्या 3 तथा 6 सही साबित हुए थे तथा उसके विरुद्ध अन्वेषण की कार्यवाही प्रारम्भ करते समय उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया गया था।

20. इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि आक्षेपित आदेश दिनांकित 29.07.2004 याचिकाकर्ता के विरुद्ध उचित रूप से पारित किया गया है तथा इसमें कोई अवैधता नहीं है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया गया, वे याचिकाकर्ता की सहायता नहीं करते हैं तथा

वर्तमान प्रकरण के तथ्यों तथा परिस्थितियों से भिन्न हैं।

21. रिट याचिका में गुण का अभाव है तथा इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 7 ILRA 1323

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या: 254 वर्ष 2023

अभिषेक कुमार सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सिद्धार्थ खरे

प्रतिक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री आशीष मिश्रा,
श्री फुजैल अहमद अंसारी, श्री राहुल श्रीवास्तव

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860

- धारा 420, 467, 468, 471, 472, 120-ख

- सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 - धारा

66 - परीक्षा नियम, 1982 - नियम 7 -

सहायक समीक्षा अधिकारी - नैतिक अधमता -

अभ्यर्थन की निरस्तीकरण - आपराधिक

प्रकरण - आवेदन प्रपत्र में उद्घाटन -

शासनादेश, 1958 - नियुक्ति हेतु उपयुक्तता -

इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1976

याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2

(महापंजीयक) द्वारा दिनांक 01.10.2022 को पारित उस आदेश को चुनौती दी, जिसके माध्यम से सहायक समीक्षा अधिकारी (ए.आर.ओ.) पद हेतु उसका अभ्यर्थन निरस्त कर दिया गया। यह निरस्तीकरण भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 472, 120-ख, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 की धारा 66 एवं परीक्षा नियम, 1982 के नियम 7 के अंतर्गत दर्ज दो लंबित आपराधिक मामलों के कारण किया गया, जिन्हें नैतिक अधमता से युक्त माना गया। याचिकाकर्ता ने विज्ञापन संख्या 01/ समीक्षा अधिकारी एवं सहायक समीक्षा अधिकारी./2021 के अंतर्गत आवेदन किया था तथा चयन प्रक्रिया में सफल हुआ था, किंतु उसने ऑनलाइन आवेदन प्रपत्र में उक्त आपराधिक प्रकरणों का उद्घाटन नहीं किया तथा दस्तावेज सत्यापन के समय दिनांक 02.04.2022 को हलफनामा प्रस्तुत कर पहली बार इनका उल्लेख किया। चयन समिति ने मा. मुख्य न्यायाधीश की स्वीकृति से याचिकाकर्ता का अभ्यर्थन अस्वीकार कर दिया। न्यायालय ने नैतिक अधमता से संबंधित लंबित आपराधिक प्रकरणों एवं आवेदन प्रपत्र में उद्घाटन न किए जाने के आधार पर अभ्यर्थन निरस्तीकरण को वैध सिद्ध किया।

रिट याचिका खारिज कर दी गई।

संदर्भित मामलों की सूची:

1. यू.ओ.आई. बनाम मेथु मेदा, (2022) 1 एससीसी 1
2. इम्तियाज अहमद मल्ला बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, एआईआर 2023 एससी 1308

3. सतीश चंद्र यादव बनाम यूओआई, 2022 एससीसी ऑनलाइन 1300

4. इलाहाबाद बैंक बनाम दीपक कुमार भोला, (1997) 4 एससीसी 1

5. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम पी. सौप्रमण्येन, (2019) 18 एससीसी 135

6. अजीत कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए संख्या 31466 वर्ष 2010

7. शिवेंद्र कुमार पासवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए संख्या 17092 वर्ष 2021

8. मोहम्मद इमरान बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2019) 17 एससीसी 696

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव, जे.
द्वारा पदत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री श्रवण कुमार दुबे, और प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री एफ.ए. अंसारी का पक्ष रखने वाले अधिवक्ता श्री राहुल श्रीवास्तव को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित 01.10.2022 के आदेश को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि उसके खिलाफ लंबित आपराधिक मामले 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 17 अगस्त 2021 के विज्ञापन संख्या 01/आर.ओ. और ए.आर.ओ./2021 के तहत सहायक समीक्षा अधिकारियों के 350 पदों को भरने के

लिए पात्र उम्मीदवारों से ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किए गए थे। याचिकाकर्ता ने ओबीसी/शारीरिक रूप से विकलांग श्रेणी के तहत उक्त पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए आवेदन किया।

4. याचिकाकर्ता चयन के प्रत्येक चरण में उपस्थित हुआ और उसे उक्त पद के लिए सफल घोषित किया गया।

5. चयन समिति द्वारा एक सूचना जारी किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता को दस्तावेज सत्यापन के लिए 06.04.2022 को उपस्थित होने के लिए कहा गया था। याचिकाकर्ता को इस आशय का एक हलफनामा भी प्रस्तुत करना था कि उसके खिलाफ कोई आपराधिक मामला लंबित है या नहीं। याचिकाकर्ता ने दस्तावेज सत्यापन के दौरान दिनांक 02.04.2022 को एक हलफनामा प्रस्तुत किया, जिसमें उसके खिलाफ दर्ज दो प्राथमिकी के विवरण का खुलासा किया गया; (i) थाना ताजगंज, जिला आगरा में भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0172/2019; (ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 472 और 120बी, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 की धारा 66 और परीक्षा नियमावली, 1982 की धारा 7 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0389/2021।

6. प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 01.10.2022 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को इस आधार पर रद्द कर दिया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित दो आपराधिक

मामले 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं। उक्त आदेश रिट याचिका में लागू किया गया है।

7. आगे कहा गया है कि मुकदमा अपराध संख्या 0172/2019 में भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 और 468 के तहत 14.03.2020 को चार्जशीट दायर की गई है। उक्त आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता को सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा जमानत आवेदन संख्या 1375/2019 में पारित आदेश दिनांक 18.03.2019 के माध्यम से जमानत पर बढ़ा दिया गया है। मुकदमा अपराध संख्या 0384/2021 के संबंध में, यह कहा गया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 472 और 120-बी और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 की धारा 66 और परीक्षा नियम, 1982 की धारा 7 के तहत 17.10.2021 को आरोप पत्र दायर किया गया है। उक्त आपराधिक मामले में, याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 26707/2021 में पारित दिनांक 11.08.2021 के आदेश के माध्यम से जमानत पर भी बढ़ा दिया गया है।

8. आगे यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करते समय, 28.04.1958 के सरकारी आदेश में विचार की गई प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। यह भी आरोप लगाया गया है कि आक्षेपित आदेश ने उस धारा का विज्ञापन नहीं किया जिसके तहत प्राथमिकी दर्ज किया गया है और याचिकाकर्ता का आचरण है, और इस प्रकार, आक्षेपित आदेश यांत्रिक रूप से पारित किया गया है।

9. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने ऑनलाइन आवेदन पत्र में अपने खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों के बारे में विवरण का खुलासा नहीं किया। यह तथ्य रिट याचिका के अनुलग्नक 2 के रूप में संलग्न ऑनलाइन आवेदन पत्र से स्पष्ट है, जिसमें याचिकाकर्ता ने 'आपराधिक कार्यवाही' के कॉलम में निम्नानुसार भरा है: -

"आपराधिक कार्यवाही।

क्या आप पर कभी न्यायालय ने मुकदमा चलाया है, दोषी ठहराया है या बरी किया है?	नहीं	क्या आपके खिलाफ कभी कोई आपराधिक शिकायत का मामला दर्ज किया गया है?	नहीं."

10. आगे कहा गया है कि विज्ञापन में ऑनलाइन आवेदन पत्र भरने के लिए अध्याय-9 के तहत सामान्य निर्देश दिए गए थे। सामान्य निर्देशों के तहत, यह विशेष रूप से कहा गया है कि यदि कोई उम्मीदवार अपूर्ण या गलत जानकारी प्रदान करता हुआ पाया जाता है, तो उम्मीदवार इसके लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होगा, और गलत और अधूरी जानकारी के आधार पर, आवेदन पत्र को बिना किसी कारण / सूचना दिए चयन के किसी भी चरण में अस्वीकार कर दिया जाएगा। सामान्य निर्देश में यह भी प्रावधान है कि उम्मीदवार को आवेदन पत्र में विवरण का खुलासा करना आवश्यक है कि उसके खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है या उसके खिलाफ

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, और किसी भी तथ्य को छिपाने से अयोग्य घोषित किया जा सकता है और उसकी उम्मीदवारी रद्द हो सकती है।

11. जवाबी हलफनामे में यह भी कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने विज्ञापन के अध्याय -9 के तहत आवश्यक ऑनलाइन आवेदन पत्र में आपराधिक मामलों की लंबितता का खुलासा नहीं किया है, इसलिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी रद्द कर दी गई है।

12. प्रतिवादियों ने जवाबी हलफनामे में आगे कहा कि याचिकाकर्ता दस्तावेज सत्यापन के लिए 06.04.2022 को उपस्थित हुए, और याचिकाकर्ता ने पहली बार 02.04.2022 के हलफनामे में अपने खिलाफ दर्ज दो प्राथमिकी के विवरण का खुलासा किया। इसके बाद, याचिकाकर्ता से संबंधित मामले को एजेंडा संख्या 6 पर भर्ती समिति के समक्ष रखा गया, जिसने 20.09.2022 की अपनी बैठक में याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अस्वीकार करने का संकल्प लिया है क्योंकि जिन अपराधों के तहत याचिकाकर्ता पर आरोप लगाया गया है, वे 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं। भर्ती समिति के दिनांक 20.09.2022 के संकल्प को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा 30.09.2022 को विधिवत रूप से देखा गया था। इसके अनुपालन में, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

13. उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि लागू आदेश किसी भी स्वतंत्र दिमाग का

खुलासा नहीं करता है क्योंकि लागू आदेश गूढ़ है। यह तर्क दिया गया है कि पहली नियुक्ति से पहले सरकारी कर्मचारी के चरित्र और पूर्ववृत्त के सत्यापन के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया 28.04.1958 के सरकारी आदेश में प्रदान की गई है, जिसे इस आधार पर किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द करने से पहले पालन करना होगा कि उसका चरित्र और पूर्ववृत्त उसे पद के लिए उपयुक्त बनाने के लिए नहीं है।

14. तर्क को विस्तार से बताते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यदि संबंधित जिले के जिला मजिस्ट्रेट जहां उम्मीदवार रहता है, उम्मीदवार के चरित्र और पूर्ववृत्त के सत्यापन पर यह राय बनाता है कि उक्त रिपोर्ट उम्मीदवार के लिए प्रतिकूल है, तो ऐसी प्रतिकूल रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले उम्मीदवार को सुनने का अवसर आवश्यक है। उक्त तर्क के समर्थन में, उन्होंने रिट-ए संख्या 31466/2010 में पारित अजीत कुमार बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है और शिवेंद्र कुमार पासवान बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य रिट-ए संख्या 17092/2021 में पारित किए गए हैं।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि आज तक, याचिकाकर्ता के खिलाफ दो आपराधिक मामले लंबित हैं, और उपरोक्त दो आपराधिक मामलों में उसके खिलाफ आरोप साबित होना बाकी है। इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि दो आपराधिक मामलों की लंबितता को सहायक

समीक्षा अधिकारी के पद के लिए याचिकाकर्ता के लिए गैर-उपयुक्त आधार नहीं बनाया जा सकता है।

16. आगे यह तर्क दिया गया है कि मोहम्मद इमरान बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2019) 17 एससीसी 696 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता की अपील को स्वीकार कर लिया है, जिसे 'नैतिक अधमता' के आधार पर नियुक्ति से इनकार कर दिया गया था। उपरोक्त निर्णय के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 2 को यह विचार करना चाहिए था कि आरोप की प्रकृति और याचिकाकर्ता का आचरण ऐसा है कि यह 'नैतिक अधमता' की परिभाषा के अंतर्गत आता है, जबकि ऐसा कोई विचार-विमर्श आक्षेपित आदेश से परिलक्षित नहीं होता है।

17. यह भी आग्रह किया जाता है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिकारी और कर्मचारी (सेवा की शर्तें और आचरण) नियम, 1976 (इसके बाद 'नियम, 1976' के रूप में संदर्भित) के तहत दिनांक 14.11.2021 की अधिसूचना संख्या 70 के साथ, महानिबंधक श्रेणी-2 (गैर-राजपत्रित), श्रेणी-3 और श्रेणी-4 के पदों पर नियुक्ति, पदोन्नति आदि के मामलों में नियुक्ति प्राधिकारी है। तदनुसार, यह तर्क दिया जाता है कि किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी को नियुक्त करने या रद्द करने का निर्णय नियुक्ति प्राधिकारी यानी महानिबंधक के स्तर पर शक्तियों के स्वतंत्र प्रयोग द्वारा लिया जाना चाहिए था, न कि

भर्ती समिति द्वारा, क्योंकि चयन के बाद, भर्ती समिति की भूमिका समाप्त हो जाती है, और भर्ती समिति के पास उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द करने के संबंध में निर्णय लेने की कोई शक्ति नहीं होती है।

18. यह भी आग्रह किया जाता है कि यह न्यायालय उक्त आदेश की वैधता का परीक्षण करते हुए याचिकाकर्ता की नियुक्ति को रद्द करने के लिए आक्षेपित आदेश में दिए गए कारणों से परे नहीं जा सकता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि तत्काल मामले में, आक्षेपित आदेश में कोई आधार नहीं है कि आवेदन पत्र में तथ्य को छिपाया गया था, इसलिए, इस तरह का आधार वर्तमान मामले के तथ्यों में आक्षेपित आदेश को बनाए रखने के लिए मान्य नहीं है।

19. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता के दावे पर नए सिरे से विचार करने के लिए मामले को प्रतिवादी संख्या 2 को भेजा जा सकता है।

20. प्रतिवादियों के अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र से यह स्पष्ट है कि उसने आवेदन पत्र में अपने खिलाफ लंबित दो आपराधिक मामलों का खुलासा नहीं किया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि विज्ञापन में सामान्य निर्देशों के तहत, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि उम्मीदवार द्वारा आवेदन पत्र में कोई छिपाया या गलत जानकारी दी जाती है, तो वह इसके लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होगा, और उसकी उम्मीदवारी बिना किसी कारण/ सूचना के

चयन के किसी भी चरण में रद्द कर दी जाएगी। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि किसी पद के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता पर विचार करना नियुक्ति प्राधिकारी का अधिकार क्षेत्र है, और इस मामले में, भर्ती समिति द्वारा प्रस्ताव पारित किया गया था और इसे 30.09.2022 को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा गया था, जिन्होंने भर्ती समिति के संकल्प का अवलोकन किया, और इसलिए, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

21. इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि नियुक्ति प्राधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में आपराधिक मामलों में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की जांच कर सकता है, और यदि वह पाता है कि आरोप ऐसे हैं जो 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं, तो याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी हमेशा खारिज की जा सकती है।

22. आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ दो प्राथमिकी में आरोप गंभीर हैं जो 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि भर्ती समिति का प्रस्ताव, जिसे माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा पढ़ा गया है, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सहायक समीक्षा अधिकारी के पद के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता के संबंध में विचार-विमर्श किया गया था, और चूंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप ऐसे हैं जो 'नैतिक अधमता' की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

23. यह भी आग्रह किया जाता है कि दिनांक 14.11.2021 की अधिसूचना संख्या 70 द्वारा, माननीय मुख्य न्यायाधीश ने न्यायालय के महानिबंधक को नियमों के नियम 4 से नियम 15 (जी) के नियम 4 में निर्दिष्ट श्रेणी-2 (गैर-राजपत्रित), श्रेणी-3 और श्रेणी-4 पदों पर नियुक्ति, पदोन्नति आदि के सभी मामलों के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी होने का निर्देश दिया है। 1976 और उक्त अधिसूचना के तहत, महानिबंधक नियुक्ति प्राधिकारी के रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि वर्तमान मामले में, माननीय मुख्य न्यायाधीश ने भर्ती समिति के संकल्प का अवलोकन किया है, और इसलिए, याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने का निर्णय माननीय मुख्य न्यायाधीश का माना जाता है, जो संस्थान के प्रमुख हैं और जो नियमों के नियम 2 (1) के अनुसार नियुक्ति प्राधिकारी हैं, 1976 में, इसलिए, याचिकाकर्ता की यह आपत्ति कि प्रतिवादी संख्या 2 को अपनी उम्मीदवारी रद्द करने के लिए एक स्वतंत्र अभ्यास करना चाहिए था, गलत है।

24. मैंने पक्षकारों की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

25. अभिलेख से निकले निर्विवाद तथ्य यह हैं कि दिनांक 17.08.2021 के विज्ञापन के तहत, याचिकाकर्ता ने सहायक समीक्षा अधिकारी के पद पर ओबीसी/शारीरिक विकलांग श्रेणी के तहत नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए एक ऑनलाइन आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता को सफल घोषित किया गया था

और तदनुसार, 06.04.2022 को दस्तावेज़ सत्यापन के लिए उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता को इस आशय का एक हलफनामा भी प्रस्तुत करना था कि उसके खिलाफ कोई आपराधिक मामला लंबित है या नहीं। याचिकाकर्ता ने 06.04.2022 को दस्तावेज़ सत्यापन के समय दिनांक 02.04.2022 को एक हलफनामा प्रस्तुत किया, जिसमें पहली बार उसके खिलाफ दर्ज दो प्राथमिकी के विवरण का खुलासा किया गया, जो निम्नानुसार हैं: -

I) प्राथमिकी दिनांक 19.02.2019 को याचिकाकर्ता के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 0172/2019, भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 के तहत दर्ज किया गया। थाना-ताजगंज, जनपद आगरा पर दिनांक 14.03.2022 को भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 एवं 468 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया है। उक्त आपराधिक मामले में, याचिकाकर्ता को सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा दिनांक 18.03.2019 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया है।

II) प्राथमिकी दिनांक 08.06.2021 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 0389/2021 दर्ज किया गया। उक्त आपराधिक मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 472 और 120बी, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 की धारा 67 और परीक्षा नियम 1982 की धारा 7 के तहत 17.10.2021 को आरोप पत्र दायर किया गया है। याचिकाकर्ता को भी उक्त आपराधिक मामले में इस न्यायालय द्वारा आपराधिक

विविध जमानत आवेदन संख्या 26707/2021 के आदेश दिनांक 11.08.2021 द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था।।

26. याचिकाकर्ता द्वारा यह भी विवादित नहीं है कि उसने आवेदन पत्र में अपने खिलाफ लंबित दो आपराधिक मामलों का खुलासा नहीं किया। हालांकि, प्रत्युत्तर हलफनामे में, यह कहा गया है कि असावधानी के कारण आवेदन पत्र में उक्त जानकारी नहीं भरी जा सकी क्योंकि आवेदन पत्र याचिकाकर्ता द्वारा साइबरकैफे में लोगों की मदद से भरा गया था, और उनकी गलती के कारण, 'आपराधिक मामले की लंबितता' के बारे में कॉलम भरा नहीं गया था।

27. उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, अब यह न्यायालय संबंधित वकीलों द्वारा उठाए गए तर्क का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ता है।

28. अब, दिनांक 28.04.1958 के सरकारी आदेश में प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन न करने के बारे में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की पहली प्रस्तुति पर आते हुए, 28.05.1958 के सरकारी आदेश के प्रासंगिक अनुच्छेद को पुनः प्रस्तुत करना उचित है: -

"3 (ए)। उत्तर प्रदेश सरकार के तहत किसी भी सेवा के लिए प्रत्येक सीधी भर्ती के लिए उत्पादन करना आवश्यक होगा: -

(i)

(ii) दो व्यक्तियों से चरित्र प्रमाण पत्र। नियुक्ति प्राधिकारी उन व्यक्तियों के बारे में

आवश्यकताएं निर्धारित करेगा जिनसे वह इन प्रमाणपत्रों की इच्छा रखता है।

(ख)

(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा या राज्य सरकार द्वारा बर्खास्त किए गए व्यक्तियों को भी इस सरकार के अधीन किसी सेवा में नियुक्ति के लिए अयोग्य माना जाएगा।

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन राज्य सेवाओं में सीधी भर्ती के मामले में, उम्मीदवारों को उपरोक्त अनुच्छेद 3 (ए) में उल्लिखित प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की आवश्यकता के अलावा, नियुक्ति प्राधिकारी सभी मामलों को एक साथ पुलिस उप महानिरीक्षक, खुफिया और जिला मजिस्ट्रेट [गृह जिले और जिले (ओं) के पास भेजेगा, जहां उम्मीदवार ने परीक्षा की तारीख से पांच साल के भीतर एक वर्ष से अधिक समय तक निवास किया है। जांच] उम्मीदवार के बारे में पूर्ण विवरण देना। जिला मजिस्ट्रेट उम्मीदवारों के संबंध में रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक से प्राप्त करेगा जो जिला पुलिस अभिलेख और स्थानीय खुफिया इकाई के अभिलेख से परामर्श करेंगे। जिला पुलिस या जिला आसूचना इकाई मौके पर कोई पूछताछ नहीं करेगी, बल्कि अपने अभिलेख से रिपोर्ट करेगी कि उम्मीदवार के खिलाफ कुछ है या नहीं, लेकिन यदि किसी विशिष्ट मामले में जिला मजिस्ट्रेट, नियुक्ति प्राधिकारी के कहने पर मौके पर जांच के लिए कहता है, तो स्थानीय पुलिस या स्थानीय खुफिया इकाइयां ऐसा करेंगी और उसे परिणाम की रिपोर्ट करेंगी। जिला मजिस्ट्रेट तब नियुक्ति प्राधिकारी को अपने विचारों की रिपोर्ट करेगा। जहां जिला पुलिस या स्थानीय खुफिया

इकाइयां किसी उम्मीदवार के बारे में प्रतिकूल रिपोर्ट करती हैं, जिला मजिस्ट्रेट अपनी रिपोर्ट भेजने से पहले उम्मीदवार को सुन सकते हैं।

29. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ऊपर दिए गए सरकारी आदेश के अनुच्छेद -3 (सी) पर अधिक जोर दिया है, यह तर्क देने के लिए कि जैसा कि 28.04.1958 का सरकारी आदेश, जो याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार उच्च न्यायालय के कर्मचारियों की भर्ती के संबंध में लागू होता है, यह प्रावधान करता है कि नियुक्ति प्राधिकारी एक साथ सभी मामलों को पुलिस उप महानिरीक्षक को भेजेगा, इंटेलिजेंस और जिला मजिस्ट्रेट (गृह जिले और जिले के जहां उम्मीदवार जांच की तारीख के पांच साल के भीतर एक वर्ष से अधिक समय तक रहता है) उम्मीदवार के बारे में पूर्ण विवरण देता है। इसके बाद, जिला मजिस्ट्रेट पुलिस अधीक्षक से उम्मीदवार के संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करेगा, जो ऊपर दिए गए अनुच्छेद 3 (सी) में वर्णित आवश्यक जांच करेगा, और जिला मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। इसके बाद जिला मजिस्ट्रेट नियुक्ति प्राधिकारी को अपने विचारों की रिपोर्ट देगा। इसमें यह भी प्रावधान है कि जहां जिला पुलिस या स्थानीय खुफिया इकाइयां किसी उम्मीदवार के बारे में प्रतिकूल रिपोर्ट करती हैं, जिला मजिस्ट्रेट अपनी रिपोर्ट भेजने से पहले उम्मीदवार को सुन सकते हैं।

30. अब, प्रश्न यह उठता है कि क्या दस्तावेज सत्यापन के समय दिनांक 28-04-1958 के सरकारी आदेश के अंतर्गत विचारित प्रक्रिया लागू होती है या नहीं।

31. इस मामले में, यह अभिलेख पर स्वीकार किया जाता है कि दस्तावेज़ सत्यापन के दौरान, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 02.04.2022 को एक हलफनामा प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पहली बार हलफनामे में उसके खिलाफ लंबित दो आपराधिक मामलों के विवरण का खुलासा किया गया है। दस्तावेज़ सत्यापन का उद्देश्य याचिकाकर्ता द्वारा हलफनामे में दिए गए दस्तावेज़ और अन्य जानकारी के आधार पर नियुक्ति की पेशकश के लिए एक उम्मीदवार की उपयुक्तता का आकलन करना है। जब तक किसी उम्मीदवार द्वारा दस्तावेज़ सत्यापन की प्रक्रिया सफलतापूर्वक पूरी नहीं हो जाती, तब तक नियुक्ति की पेशकश जारी करने का चरण नहीं आएगा और इस प्रकार, इस स्तर पर, सरकारी कर्मचारी के चरित्र और पूर्ववृत्त को सत्यापित करने का कोई सवाल ही नहीं है।

32. दस्तावेज़ सत्यापन के समय, यदि यह पाया जाता है कि कोई उम्मीदवार इस कारण से उपयुक्त नहीं है कि उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ वास्तविक नहीं हैं या उम्मीदवार के पास अपेक्षित योग्यता या आपराधिक मामला नहीं है, तो वह 'नैतिक अधमता' की परिभाषा के अंतर्गत आने वाले गंभीर और गंभीर प्रकृति का है, उनकी उम्मीदवारी रद्द की जा सकती है और नियुक्ति की पेशकश का चरण अभी तक नहीं आया है। इस संबंध में, दिनांक 28.04.1958 के सरकारी आदेश के विषय पर एक नज़र डालना उचित होगा, जिसमें लिखा है "सरकारी कर्मचारियों की पहली नियुक्ति से पहले उनके चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन"।

33. इस प्रकार, दिनांक 28.04.1958 के सरकारी आदेश के विषय से यह स्पष्ट है कि सरकारी कर्मचारियों की पहली नियुक्ति से पहले उनके चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन किया जाना आवश्यक है। इस मामले में, वह चरण अभी तक नहीं आया है क्योंकि दस्तावेज़ सत्यापन के समय, याचिकाकर्ता ने पहली बार अपने खिलाफ दो आपराधिक मामलों के लंबित होने का खुलासा किया, और भर्ती समिति ने उसकी उम्मीदवारी पर विचार किया और पाया कि वह नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं है, तदनुसार, उसने याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने का निर्णय लिया, और भर्ती समिति के संकल्प को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा 30.09.2022 को विधिवत रूप से देखा गया था।

34. अब याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए फैसले पर आते हुए, यह न्यायालय ध्यान दे सकता है कि अजीत कुमार (पूर्व) के मामले में, याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर उप-निरीक्षक के पद के लिए विचार के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता का शारीरिक परीक्षण किया गया, हालांकि, उसे प्रशिक्षण के लिए नहीं भेजा गया, जिसके कारण याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका को प्राथमिकता दी, जिसमें इस न्यायालय ने अधिकारियों को निर्णय लेने का निर्देश दिया। इस न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में, याचिकाकर्ता थाना-चजलेट, जिला, मुरादाबाद के उप-निरीक्षक की रिपोर्ट/टिप्पणी के आधार पर उपयुक्त नहीं था। इस न्यायालय ने पाया कि नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता का चरित्र सत्यापन 28.04.1958

के सरकारी आदेश के अनुसार नहीं किया गया था, नतीजतन, इस न्यायालय ने आदेश को रद्द कर दिया और मामले को भेज दिया।

35. उपरोक्त मामला वर्तमान मामले के तथ्यों से अलग है क्योंकि अजीत कुमार (पूर्व) के मामले में, याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को थाना-चजलेट, जिला मुरादाबाद के उप-निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत कुछ रिपोर्ट/टिप्पणियों के आधार पर खारिज कर दिया गया था, जबकि इस मामले में, दस्तावेज सत्यापन के दौरान वह चरण अभी तक नहीं आया है। याचिकाकर्ता के खिलाफ दो आपराधिक मामलों का खुलासा प्रकाश में आया, और वह नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं था क्योंकि उसके खिलाफ लंबित आपराधिक मामले 'नैतिक पतन' के दायरे में आते हैं।

36. शिवेंद्र कुमार पासवान (पूर्व) के मामले में भी, कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को भारतीय दंड संहिता की धारा 354, 323, 504 और 506 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 100/2016 वाले आपराधिक मामले के लंबित होने के आधार पर खारिज कर दिया गया था। उक्त मामले में, एक चरित्र सत्यापन रिपोर्ट मांगी गई थी, और जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को चरित्र सत्यापन की रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से आरोप लगाया कि 28.04.1958 के सरकारी आदेश के प्रावधान का पालन न करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट को उनके खिलाफ नहीं पढ़ा जा सकता है क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता को उनकी

उम्मीदवारी को अस्वीकार करने के लिए प्रतिकूल राय बनाने से पहले सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि चूंकि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिकूल राय बनाने से पहले याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था, इसलिए, जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है, नतीजतन, इस न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया और मामले को संबंधित प्राधिकरण को सौंप दिया।

37. वर्तमान मामले के तथ्य शिवेंद्र कुमार पासवान (पूर्व) के मामले में तथ्यों से उतने ही अलग हैं जितने वर्तमान मामले में चरित्र सत्यापन का चरण अभी तक नहीं आया है।

38. उपरोक्त चर्चा को देखते हुए, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई इस दलील को पाया कि 28.04.1958 के सरकारी आदेश के तहत विचार की गई प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है और इसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

39. अब याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दूसरी दलील पर आते हैं कि क्या लागू आदेश सरसरी तौर पर और उचित विचार के बिना पारित किया गया है, और क्या आपराधिक मामलों की लंबितता, जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप साबित होना बाकी है, नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के लिए गैर-उपयुक्त आधार हो सकता है; यह न्यायालय नोट कर सकता है कि पद के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता का

आकलन करना नियोक्ता का अनन्य अधिकार क्षेत्र है, और केवल इसलिए कि उम्मीदवार ने उसके खिलाफ आपराधिक मामले की लंबितता का खुलासा किया है, और यह कि वह आपराधिक मामले में बरी हो गया है, उसे स्वचालित रूप से रोजगार के लिए हकदार नहीं करेगा। किसी उम्मीदवार की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए नियोक्ता की शक्ति पर एकमात्र शर्त यह है कि उसका निर्णय मनमानी या पूर्वाग्रह को प्रतिबिंबित नहीं करेगा या इसमें दुर्भावना की बू नहीं आनी चाहिए।

40. इस संबंध में, भारत संघ और अन्य बनाम मेथु मेड़ा 2022 (1) एससीसी 1 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुच्छेद 21 को पुनः प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा: -

"21. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, कानून अच्छी तरह से तय है। यदि किसी व्यक्ति को संदेह का लाभ देते हुए, नैतिक पतन से जुड़े अपराध के आरोप से बरी कर दिया जाता है या क्योंकि गवाह मुकर जाते हैं, तो यह स्वचालित रूप से उसे रोजगार के लिए हकदार नहीं करेगा, वह भी अनुशासित बल में। नियोक्ता को स्क्रीनिंग समिति द्वारा जारी परिपत्रों के अनुसार अपनी उम्मीदवारी पर विचार करने का अधिकार है। केवल कथित अपराधों का खुलासा और मुकदमे का परिणाम पर्याप्त नहीं है। उक्त स्थिति में, नियोक्ता को उम्मीदवार को नियुक्ति देने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। उच्च न्यायालय की एकल पीठ और खंडपीठ दोनों ने उक्त कानूनी स्थिति पर विचार नहीं किया है, जैसा कि लागू आदेशों में ऊपर चर्चा की गई है। इसलिए,

2013 की रिट याचिका संख्या 3897 और यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेथु मेड़ा 2013 एससीसी ऑनलाइन एमपी 10701 में खंडपीठ में उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश कानून में टिकाऊ नहीं हैं, जैसा कि यहां ऊपर चर्चा की गई है।

41. इम्तियाज अहमद मल्ला बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य एआईआर 2023 एससी 1308 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि पुलिस पदानुक्रम में सर्वोच्च पदाधिकारी होने के नाते महानिदेशक पुलिस में भर्ती के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता पर विचार करने के लिए सबसे अच्छा न्यायाधीश था। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 13 और 14 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"13. उम्मीदवार के खिलाफ आपराधिक अभियोजन, गिरफ्तारी या आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में प्रासंगिक जानकारी या झूठी जानकारी को दबाने के संबंध में, अवतार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने सटीक दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं। इसके अनुच्छेद 38.5 में कहा गया है:

"38.5. ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने एक समाप्त आपराधिक मामले की सच्चाई से घोषणा की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

14. उपर्युक्त सभी मामलों में, पुलिस बल में सत्यनिष्ठा और आचरण के उच्च मानक की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया गया है। उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में इसमें शामिल मुद्दों के प्रत्येक पहलू पर विस्तार से विचार किया है, जबकि एकल पीठ के आदेश को बरकरार रखते हुए कहा है कि पुलिस पदानुक्रम में सर्वोच्च पदाधिकारी होने के नाते महानिदेशक पुलिस बल में शामिल होने के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता पर विचार करने के लिए सबसे अच्छा न्यायाधीश था। आक्षेपित आदेश उचित और उचित होने के नाते, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं।

42. इसलिए उपर्युक्त दो निर्णयों को पढ़ने से, इस बिंदु पर कानून कि उम्मीदवार की उपयुक्तता का आकलन करना नियोक्ता का अनन्य अधिकार क्षेत्र है, अब प्रासंगिक नहीं है।

43. इस मामले में, यह अभिलेख पर आया है कि याचिकाकर्ता द्वारा हलफनामे में दो आपराधिक मामलों के विवरण का खुलासा करने पर, मामले को भर्ती समिति को भेजा गया था, जिसने एजेंडा संख्या 6 पर 20.09.2022 की अपनी बैठक में याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने का संकल्प लिया। भर्ती समिति के संकल्प को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

उन्होंने कहा, "उम्मीदवार पर आईपीसी की धारा 420, 467, 468, 471, 120 बी और आईटी अधिनियम की धारा 66 बी के तहत

आरोप लगाए गए हैं। उम्मीदवार का अपराध नैतिक पतन के दायरे में आता है क्योंकि उसे नियुक्ति की पेशकश नहीं की जा सकती है और उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी जाती है।

44. उपरोक्त संकल्प को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा 30.09.2022 को विधिवत रूप से देखा गया था। इस प्रकार, उपरोक्त तथ्य से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने का निर्णय माननीय मुख्य न्यायाधीश का माना जाता है और संस्थान के प्रमुख होने के नाते, उनके पास उच्च न्यायालय में कर्मचारियों की उपयुक्तता का आकलन करने की शक्ति है।

45. इस बिंदु पर, यह उल्लेख करना उचित है कि उच्च न्यायालय में नियुक्ति की मांग करने वाला उम्मीदवार त्रुटिहीन चरित्र और उच्च ईमानदारी का होना चाहिए, और उसका पूर्ववृत्त साफ होना चाहिए। उच्च न्यायालय अभिलेख का न्यायालय है और यदि कोई व्यक्ति जिसकी ईमानदारी संदिग्ध है या उसकी पृष्ठभूमि साफ नहीं है, उसे नियुक्त किया जाता है, तो यह संस्था को उतना ही नुकसान पहुंचा सकता है जितना कि न्यायालय के अभिलेख गलत या छेड़छाड़ किए जाने से वादियों को अत्यधिक पूर्वाग्रह होगा और न्यायिक प्रणाली में जनता का विश्वास भी डगमगा जाएगा जिसके परिणामस्वरूप अंततः संस्था की प्रतिष्ठा को गंभीर नुकसान होगा।

46. यह दलील कि न्यायालय की राय में आक्षेपित आदेश सरसरी तौर पर पारित किया गया है, भी गलत है क्योंकि भर्ती समिति के

प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से यह निर्णय लेने में प्रस्ताव पारित करने में दिमाग के उपयोग का खुलासा किया गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं, जिस प्रस्ताव को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा 30.09.2022 को विधिवत रूप से देखा गया था।

47. मुकदमा अपराध संख्या 0172/2019 में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप है कि नालंदा टाउन, शमशाबाद रोड, आगरा के सामने ज्ञान भारती कॉलेज ऑफ एजुकेशन में आयोजित आरपीएफ सीबीटी ऑनलाइन परीक्षा में याचिकाकर्ता ने उक्त केंद्र में प्रवेश किया और कुछ जाली पहचान-पत्र के आधार पर वह किसी अन्य उम्मीदवार के लिए परीक्षा में शामिल हुआ। उक्त प्राथमिकी में आरोप प्रतिरूपण का है, और तदनुसार, उस पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 और 468 के तहत आरोप लगाया गया था।

48. केस अपराध संख्या 0389/2021 में, याचिकाकर्ता पर फिर से प्रतिरूपण का आरोप लगाया गया है क्योंकि वह पुलिस विभाग में कांस्टेबल के पद के लिए एक प्रतियोगी परीक्षा में राम प्रकाश और पंकज नामक दो उम्मीदवारों के लिए उपस्थित हुआ था। इसके बाद उन पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 472 और 120बी, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 की धारा 66 और परीक्षा नियम, 1982 की धारा 7 के तहत आरोप लगाए गए।

49. अब, न्यायालय विचार करता है कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ उपरोक्त आरोप 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं; निम्नलिखित शब्दकोशों में परिभाषित 'नैतिक अधमता' के अर्थ पर एक नज़र डालना उपयुक्त होगा: -

"नैतिक अधमता- "निजी और सामाजिक कर्तव्यों में आधार, नीचता, या भ्रष्टता का कार्य, जो मनुष्य अपने साथी व्यक्ति, या सामान्य रूप से समाज के प्रति है, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिकार और कर्तव्य के स्वीकृत और प्रथागत नियम के विपरीत है। (ब्लैक लॉ डिक्शनरी) (6 वां संस्करण)।

नैतिक अधमता - "निजी और सामाजिक कर्तव्यों में आधार, नीचता या भ्रष्टता का एक कार्य जो एक आदमी अपने साथी पुरुषों या सामान्य रूप से समाज के लिए करता है, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिकार और कर्तव्य के स्वीकृत और प्रथागत नियम के विपरीत है" (बाउवियर लॉ डिक्शनरी)।

नैतिक अधमता- "बुरा विश्वास, बुरी प्रतिष्ठा, भ्रष्टाचार, अपवित्रता, अपराध, बदनाम, अपमान, शर्म, अपराध, कटुता, दुर्व्यवहार, विकृति, शर्म, बुराई, गलत। (बर्टन लीगल थिसॉरस)"

50. इस स्तर पर, शीर्ष न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना भी उचित होगा जो वर्तमान मामले के तथ्यों में सहायक होंगे।

51. इलाहाबाद बैंक और अन्य बनाम दीपक कुमार भोला 1997 (4) एसएससी 1 मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने 'नैतिक कदाचार' से जुड़े अपराध के लिए आपराधिक मुकदमे के लंबित रहने के दौरान एक कर्मचारी के खिलाफ पारित निलंबन आदेश को बरकरार रखा, जहां कर्मचारी पर जालसाजी करने और गलत तरीके से पैसे निकालने के अपराध का आरोप लगाया गया था, जिसे वह वापस लेने का हकदार नहीं था। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 8 और 9 को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"नैतिक पतन" से जुड़ा अपराध क्या है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। लेकिन "नैतिक अधमता" शब्द का जो भी अर्थ दिया जा सकता है, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि "नैतिक पतन" से जुड़े सबसे गंभीर अपराधों में से एक वह होगा जहां आम जनता के पैसे से निपटने वाली बैंकिंग कंपनी में कार्यरत व्यक्ति जालसाजी करता है और गलत तरीके से धन निकालता है जिसे वह वापस लेने का हकदार नहीं है।

9. पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1996) 4 एससीसी 17 में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि "नैतिक अधमता" अभिव्यक्ति का अर्थ क्या है और यह निम्नानुसार देखा गया:-

"नैतिक अधमता" एक अभिव्यक्ति है जिसका उपयोग कानूनी और सामाजिक भाषा में आचरण का वर्णन करने के लिए किया जाता है जो स्वाभाविक रूप से आधारित, नीच, भ्रष्ट या भ्रष्टता दिखाने वाला कोई संबंध रखता है।

इस अभिव्यक्ति को बालेश्वर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर बनारस एआईआर 1959 ऑल 71 में अधिक विस्तार से समझाया गया है जहां इसे निम्नानुसार देखा गया था:

"नैतिक अधमता" शब्द को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। लेकिन इसका मतलब है कि न्याय, ईमानदारी, विनम्रता या अच्छी नैतिकता के विपरीत कुछ भी किया गया है। इसका अर्थ है उस व्यक्ति के चरित्र या स्वभाव की भ्रष्टता और दुष्टता, जिस पर विशेष आचरण का आरोप लगाया गया है। किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया प्रत्येक झूठा बयान नैतिक अधमता नहीं हो सकता है, लेकिन ऐसा तब होगा जब यह किसी भी निजी और सामाजिक कर्तव्य को करने में नीचता या भ्रष्टता का खुलासा करता है जो एक व्यक्ति अपने साथी या सामान्य रूप से समाज के प्रति करता है। इसलिए यदि किसी निश्चित आचरण के लिए आरोपित व्यक्ति का कर्तव्य है, या तो किसी अन्य व्यक्ति के प्रति या सामान्य रूप से समाज के प्रति, एक विशिष्ट तरीके से कार्य करना या ऐसा नहीं करना और वह अभी भी इसके विपरीत कार्य करता है और जानबूझकर ऐसा करता है, तो उसके आचरण को नीचता और भ्रष्टता के कारण माना जाना चाहिए। यह मनुष्य और मनुष्य के बीच स्वीकृत प्रथागत नियम और कर्तव्य के विपरीत होगा"

52. भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम पी. सुपरमनियन 2019 (18) एससीसी 135 के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने 'नैतिक अधमता' की परिभाषा पर विचार

करने के बाद उन परीक्षणों को निर्धारित किया जा सकता है कि किसी अपराध में 'नैतिक अधमता' शामिल है या नहीं। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 12 और 13 को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"इसमें कोई संदेह नहीं है कि बैंक के प्रबंधन पर एक कर्मचारी की सेवाओं को बंद करने का दायित्व है, जिसे नैतिक अधमता से जुड़े अपराध के लिए आपराधिक न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है। यद्यपि प्रत्येक अपराध समाज के खिलाफ एक अपराध है, बैंकिंग विनियमन अधिनियम के अनुसार सेवा से बंद करना केवल नैतिक अधमता से जुड़े अपराध करने के लिए हो सकता है। ऐसे कार्य जो चरित्र की भ्रष्टता और दुष्टता का खुलासा करते हैं, उन्हें नैतिक अधमता से जुड़े अपराधों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। किसी अपराध में नैतिक अधमता शामिल है या नहीं, यह तथ्यों और मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

13. आमतौर पर, नैतिक पतन से जुड़े अपराध का न्याय करने के लिए लागू किए जा सकने वाले परीक्षण हैं: -

(क) क्या दोषसिद्धि का कार्य ऐसा था जो सामान्य रूप से नैतिक विवेक या समाज को झकझोर सकता था;

(ख) क्या इस कृत्य के पीछे का उद्देश्य आधार था; और

(ग) क्या किए गए कृत्य के कारण अपराधियों को भ्रष्ट चरित्र का माना जा सकता है या ऐसा व्यक्ति जिसे समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाना था।

53. उपरोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में, यह न्यायालय इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या दो आपराधिक मामलों में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों में 'नैतिक अधमता' शामिल है या नहीं।

54. अब, दो आपराधिक मामलों में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि उसने उनकी मदद करने के लिए प्रतियोगी परीक्षा में बैठने के लिए किसी अन्य व्यक्ति का रूप धारण किया। याचिकाकर्ता का उक्त कृत्य, यदि दोषसिद्धि की ओर जाता है, तो सामान्य रूप से समाज के नैतिक विवेक को झटका लगेगा; यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ दो प्राथमिकी में कथित अपराध करने का कारण एक आधार था; और इस तरह के अपराध का अपराधी भ्रष्ट चरित्र का व्यक्ति और एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसे समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाएगा। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप 'नैतिक अधमता' के दायरे में आने के लिए सुपरमनियन (पूर्व) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुच्छेद 13 में दर्ज तीन मापदंडों को पूरा करता है।

55. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने मोहम्मद इमरान (पूर्व) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते

हुए कहा है कि चूंकि उक्त निर्णय याचिकाकर्ता के मामले को छिपाव करता है, इसलिए, लागू आदेश कानून में टिकाऊ नहीं है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि जिस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में उक्त निर्णय पारित किया गया था, वह वर्तमान मामले के तथ्यों से अलग है। उक्त मामले में, अपीलकर्ता न्यायिक सेवा में सफल रहा। हालांकि, एक आपराधिक मामले के कारण सत्यापन रिपोर्ट के आधार पर उनकी उम्मीदवारी रद्द कर दी गई थी। उक्त आपराधिक मामले में अपीलकर्ता को नियुक्ति के लिए वर्ष 2009 में परीक्षा पास करने से बहुत पहले 28.10.2004 को भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 366 और 34 के तहत आरोप से बरी कर दिया गया था। उन्होंने उक्त जानकारी का सच्चाई से खुलासा किया था। शीर्ष न्यायालय ने अपीलकर्ता को बरी करने वाले सत्र न्यायालय के फैसले पर विस्तार से विचार किया है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अपीलकर्ता का मामला 'नैतिक अधमता' के दायरे में आता है या नहीं। अभिलेख से यह भी पाया गया कि अपीलकर्ता के साथ गलत तरीके से भेदभाव किया गया था क्योंकि प्रतिवादी ने सुधीर गुलाबराव बर्डे को नियुक्त किया था, जिसे आपराधिक अभियोजन का भी सामना करना पड़ा था और उसे बरी कर दिया गया था। इसके अलावा, उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने चरित्र सत्यापन की एक गोपनीय रिपोर्ट और अपीलकर्ता की पृष्ठभूमि भी मांगी, और गोपनीय रिपोर्ट का विश्लेषण करने के बाद, शीर्ष न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता को अयोग्य ठहराने में प्रतिवादियों की कार्रवाई मनमानी थी। याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की प्रकृति को देखते हुए तत्काल

मामले में तथ्य अलग-अलग हैं। इस प्रकार, उक्त निर्णय भी याचिकाकर्ता की सहायता के लिए नहीं आता है।

56. अब, जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील है कि चूंकि दो आपराधिक मामलों में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप अभी तक साबित नहीं हुए हैं, इसलिए, दो आपराधिक मामलों के लंबित होने को याचिकाकर्ता को नियुक्ति के लिए अयोग्य ठहराने के आधार के रूप में नहीं लिया जा सकता है, यह ध्यान रखना उचित है कि कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो नियोक्ता को किसी कर्मचारी के खिलाफ लंबित आपराधिक मामले पर विचार नहीं करने का आदेश देता है। जो परीक्षण अभी तक नौकरी के लिए उनकी उपयुक्तता का आकलन करने के लिए समाप्त नहीं हुआ है। नियोक्ता को एक उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है, जो नियोक्ता की राय में उपयुक्त नहीं है और न ही नियोक्ता को इस आधार पर उसकी उपयुक्तता का आकलन करते समय लंबित आपराधिक मामलों में उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोपों को नजरअंदाज करने के लिए कहा जा सकता है कि आपराधिक मामले में मुकदमा अभी भी लंबित है और उम्मीदवार का दोष अभी तक साबित नहीं हुआ है।

57. इस मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता पर गंभीर अपराधों का आरोप लगाया गया है और यह एक आपराधिक मामला नहीं है, लेकिन दोनों आपराधिक

मामलों में, याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप गंभीर हैं, और याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की गंभीरता को देखते हुए, कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों में 'नैतिक अधमता' शामिल नहीं है।

58. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की उक्त प्रस्तुति गलत है।

59. जवाबी हलफनामे में, प्रतिवादी संख्या 2 ने कहा कि याचिकाकर्ता ने सहायक समीक्षा अधिकारी के पद के लिए उसके द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र में अपने खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों का खुलासा नहीं किया है, इसलिए, उसकी उम्मीदवारी को रद्द कर दिया गया है।

60. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद नहीं करते हैं कि याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र में अपने खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों का खुलासा नहीं किया है, लेकिन वह प्रस्तुत करता है कि आक्षेपित आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी की अस्वीकृति केवल इस आधार पर है कि वह 'नैतिक अधमता' से संबंधित अपराधों में शामिल है। और यह न्यायालय आक्षेपित आदेश की वैधता पर विचार करने के लिए आक्षेपित आदेश में बताए गए कारणों से परे नहीं जा सकता है।

61. यह सच है कि आक्षेपित आदेश इस आधार पर पारित किया गया है कि

याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप 'नैतिक अधमता' के दायरे में आता है, लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, यह न्यायालय अभिलेख पर स्वीकार किए गए तथ्यों पर दिए गए मामले में ऐसी याचिका को देख सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या याचिकाकर्ता अनुच्छेद के तहत अपने अधिकार क्षेत्र में इस न्यायालय द्वारा किसी भी राहत का हकदार है या नहीं। भारत के संविधान की धारा 226 याचिकाकर्ता के खिलाफ दो आपराधिक मामले, जैसा कि ऊपर वर्णित है, 'नैतिक अधमता' के दायरे में आते हैं।

62. आवेदन पत्र में निहित सामान्य निर्देश यह निर्धारित करते हैं कि यदि आवेदन पत्र में कोई गलत जानकारी प्रस्तुत की जाती है, तो ऐसे उम्मीदवार का आवेदन अस्वीकार कर दिया जाएगा। सामान्य अनुदेशों के अध्याय-9 के संगत खंड नीचे प्रस्तुत किए गए हैं:-

"9.15. यदि कोई उम्मीदवार गलत जानकारी प्रदान करता हुआ पाया जाता है या भविष्य में किसी भी समय पहचान गलत साबित होती है, तो उम्मीदवार को लागू कानून के अनुसार दंडात्मक कार्रवाई का सामना करना पड़ सकता है।

9.17. उम्मीदवारों को सही और पूरी जानकारी के साथ ऑनलाइन आवेदन पत्र को सावधानीपूर्वक भरना आवश्यक है। यदि कोई अपूर्ण या झूठी जानकारी दी जाती है, तो उम्मीदवार इसके लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होगा और झूठी और अधूरी जानकारी के आधार

पर, आवेदन पत्र को बिना किसी कारण / सूचना दिए चयन के किसी भी चरण में अस्वीकार कर दिया जाएगा। आवेदन पत्र में जाति के संबंध में कोई गलत प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने या गलत श्रेणी/उपश्रेणी का संकेत देने पर या किसी अन्य चूक के मामले में, इलाहाबाद में माननीय न्यायिक न्यायालय चयन के किसी भी स्तर पर उम्मीदवारी को अस्वीकार कर सकता है और सभी आवश्यक कार्रवाई कर सकता है।

9.27. उम्मीदवार को ऑनलाइन आवेदन पत्र में विवरण का खुलासा करना होगा, यदि उसके खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है या उसके खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी) दर्ज की गई है। किसी भी तथ्य को छिपाने पर उसकी उम्मीदवारी रद्द हो सकती है।

63. सामान्य अनुदेश के खंड 9.15 से यह स्पष्ट है कि यदि किसी उम्मीदवार द्वारा दी गई जानकारी गलत है या भविष्य में किसी भी समय पहचान गलत साबित होती है, तो उम्मीदवार को लागू कानून के अनुसार दंडात्मक कार्रवाई का सामना करना पड़ सकता है। खंड 9.17 स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि यदि यह पाया जाता है कि किसी उम्मीदवार ने गलत या गलत जानकारी दी है, तो उम्मीदवार इसके लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होगा और उसकी उम्मीदवारी बिना किसी कारण / सूचना के खारिज कर दी जाएगी।

64. खंड 9.27 में आगे कहा गया है कि एक उम्मीदवार को ऑनलाइन आवेदन पत्र में

विवरण का खुलासा करना होगा, यदि उसके खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है या उसके खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी) दर्ज की गई है। ऐसे किसी भी तथ्य को छिपाने पर उसकी उम्मीदवारी रद्द हो सकती है। इसलिए खंड 9.27 विशिष्ट है और यह प्रावधान करता है कि एक उम्मीदवार को अपने खिलाफ किसी भी आपराधिक मामले के लंबित होने का खुलासा करना होगा या उसके खिलाफ पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है और ऐसी जानकारी प्रस्तुत नहीं करने पर उसकी उम्मीदवारी रद्द हो सकती है।

65. इस मामले में, याचिकाकर्ता इस तथ्य से अच्छी तरह से अवगत था कि उसके खिलाफ दो आपराधिक मामले लंबित हैं, लेकिन इसके बावजूद, उसने आवेदन पत्र में इसका खुलासा नहीं किया। याचिकाकर्ता ने जवाबी हलफनामे में कहा है कि चूंकि आवेदन पत्र साइबरकैफे में व्यक्तियों की मदद से साइबरकैफे में भरा गया था और उनकी असावधानी के कारण, उक्त जानकारी आवेदन पत्र में नहीं भरी जा सकी। इस संबंध में, यह ध्यान रखना उचित है कि एक उम्मीदवार से आवेदन पत्र भरते समय निर्देशों को ध्यान से पढ़ने की उम्मीद की जाती है, और उम्मीदवार आवेदन पत्र में निहित शर्तों से बाध्य होता है, और इस तरह यह दलील लेने के लिए खुला नहीं है कि यह एक अनजाने में त्रुटि थी।

66. तर्क के लिए, यदि यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता ने अनजाने में आपराधिक मामलों के लंबित होने के बारे में जानकारी प्रस्तुत नहीं की होगी, लेकिन साथ ही, इस बात से भी

इनकार नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर उक्त जानकारी को छिपाया होगा, यह जानते हुए कि आपराधिक मामलों में उसके खिलाफ आरोप गंभीर हैं, और उक्त जानकारी प्रस्तुत करने पर, उसका आवेदन पत्र अस्वीकार किया जा सकता है। उक्त जानकारी प्रस्तुत न करना स्पष्ट रूप से उम्मीदवार के चरित्र को दर्शाता है।

67. यह न्यायालय इस मामले पर विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता भर्ती समिति द्वारा सही ढंग से अनुपयुक्त है, उम्मीदवार के पूर्ववृत्त और चरित्र का पता लगाने के लिए उन तथ्यों को भी देख सकता है। इस संबंध में, सतीश चंद्र यादव बनाम भारत संघ 2022 एससीसी ऑनलाइन 1300 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुच्छेद 90 को पुनः प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा: -

"ऐसी परिस्थितियों में, हमने कानून के व्यापक सिद्धांतों को शॉर्टलिस्ट करने के लिए कुछ अभ्यास किया, जिन्हें वर्तमान प्रकृति के मुकदमों पर लागू किया जाना चाहिए। सिद्धांत इस प्रकार हैं:

क) प्रत्येक मामले की जांच संबंधित सार्वजनिक नियोक्ता द्वारा अपने नामित अधिकारियों के माध्यम से पूरी तरह से की जानी चाहिए - विशेष रूप से, पुलिस बल के लिए भर्ती के मामले में, जो व्यवस्था बनाए रखने और अराजकता से निपटने के लिए एक कर्तव्य के अधीन हैं, क्योंकि जनता के विश्वास को प्रेरित करने की उनकी क्षमता समाज की सुरक्षा के लिए एक कवच है।

बी) यहां तक कि ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने एक संपन्न आपराधिक मामले की सच्चाई से और सही घोषणा की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। आपराधिक मामले में बरी होने से उम्मीदवार स्वतः ही इस पद पर नियुक्ति का हकदार नहीं हो जाएगा। यह नियोक्ता के लिए अभी भी खुला होगा कि वह पूर्ववृत्त पर विचार करे और जांच करे कि क्या संबंधित उम्मीदवार पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त और उपयुक्त है।

ग) भौतिक जानकारी को दबाने और गिरफ्तारी, अभियोजन, दोषसिद्धि आदि से संबंधित सत्यापन फॉर्म में गलत बयान देने से कर्मचारी के चरित्र, आचरण और पूर्ववृत्त पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यदि यह पाया जाता है कि कर्मचारी ने पद के लिए अपनी फिटनेस या उपयुक्तता पर असर डालने वाले मामलों के संबंध में गलत जानकारी को दबाया या दिया था, तो उसे सेवा से समाप्त किया जा सकता है।

(घ) युवाओं, कैरियर की संभावनाओं और उम्मीदवारों की आयु के बारे में सामान्यीकरण, जिससे अपराधियों के आचरण को क्षमा किया जाता है, न्यायिक निर्णय में प्रवेश नहीं किया जाना चाहिए और इससे बचा जाना चाहिए।

ड) न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या संबंधित प्राधिकारी जिसकी कार्रवाई को चुनौती दी जा रही है, उसने दुर्भावनापूर्ण कार्य किया है।

च) क्या प्राधिकरण के निर्णय में पक्षपात का कोई तत्व है?

छ) क्या संबंधित प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई जांच की प्रक्रिया निष्पक्ष और उचित थी?

68. शीर्ष न्यायालय ने सतीश चंद्र यादव (पूर्व) के फैसले के अनुच्छेद 90 (सी) में कहा है कि भौतिक जानकारी को दबाने और गिरफ्तारी, अभियोजन, दोषसिद्धि आदि से संबंधित सत्यापन फॉर्म में गलत बयान देने से कर्मचारी के चरित्र, आचरण और पूर्ववृत्त पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है और यदि यह पाया जाता है कि किसी उम्मीदवार द्वारा तथ्य को दबाया गया है, यह सेवा की समाप्ति का परिणाम हो सकता है।

69. आवेदन पत्र में किसी उम्मीदवार के खिलाफ आपराधिक मामले के लंबित होने के बारे में जानकारी प्राप्त करने का उद्देश्य चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता का आकलन करना है क्योंकि इसका उम्मीदवार के चरित्र और पूर्ववृत्त पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

70. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों के लिए, यह न्यायालय पाता है कि चूंकि याचिकाकर्ता आवेदन पत्र में निहित निर्देशों से बाध्य था और उसने आवेदन पत्र में अपने खिलाफ लंबित दो आपराधिक मामलों के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत नहीं की थी, इसलिए यह न्यायालय उक्त तथ्य को ध्यान में रख सकता है, हालाँकि, याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अस्वीकार करने के लिए,

याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थना की गई राहत को अस्वीकार करने के लिए आक्षेपित आदेश में यह आधार नहीं हो सकता है।

71. अब, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की अंतिम दलील पर आते हैं कि महानिबंधक को नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते शक्ति के स्वतंत्र प्रयोग में याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी के बारे में निर्णय लेना चाहिए था; न्यायालय की राय में उक्त निवेदन भी गलत है। उच्च न्यायालय कर्मचारी नियम, 1976 के नियम 2 (एन) में 'नियुक्ति प्राधिकारी' को परिभाषित किया गया है और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"2. परिभाषाएँ:- इन नियमों में जब तक कि संदर्भ की अन्यथा आवश्यकता न हो-

(ड) 'नियुक्ति प्राधिकारी' से न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या ऐसा अन्य न्यायाधीश या अधिकारी अभिप्रेत है जो वह निदेश दे।

72. माननीय मुख्य न्यायाधीश ने नियम, 1976 के नियम 2 (एन) के साथ पढ़े गए भारत के संविधान के अनुच्छेद 229 के खंड 1 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए और उक्त नियमों के नियम 6 के अधीन रहते हुए न्यायालय के महानिबंधक को नियुक्ति, पदोन्नति, आदि के सभी मामलों के संबंध में उपर्युक्त नियमों के नियम 4 से 15 (जी) में निर्दिष्ट श्रेणी II (अराजपत्रित), श्रेणी -III और श्रेणी -IV पदों पर नियुक्ति प्राधिकारी होने का निर्देश दिया है।

73. इस प्रकार, महानिबंधक उस शक्ति का प्रयोग करता है जो माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियम, 1976 के नियम 2 (एन) के साथ पढ़े गए भारत के संविधान के अनुच्छेद 229 (2) के तहत शक्ति के प्रयोग में उसे प्रत्यायोजित की गई है।

74. इस मामले में, जवाबी हलफनामे में प्रतिवादियों का विशिष्ट मामला यह है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी की अस्वीकृति के संबंध में भर्ती समिति द्वारा पारित प्रस्ताव को 30.09.2022 को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा देखा गया था, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने का निर्णय माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा लिया गया माना जाएगा, इसलिए, उपरोक्त प्रस्तुतीकरण में भी योग्यता का अभाव है और इसे अस्वीकार कर दिया जाता है।

75. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों के लिए, रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और तदनुसार, लागत के बारे में बिना किसी आदेश के खारिज कर दिया जाता है।

(2023) 7 ILRA 1339

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.06.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति श्री अशुतोष श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 10209 सन् 2023

कुल भूषण मिश्र एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सत्येन्द्र चंद्र त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी के अधिवक्ता, श्री बिपिन बिहारी पांडेय

याचिकाकर्ता, जो कि जनपद बेसिक शिक्षा बोर्ड के अधीन प्राथमिक शिक्षण संस्थानों में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं, ने दिनांक 02.06.2023 के शासनादेश के खंड 1 तथा खंड 15, एवं दिनांक 08.06.2023 को सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्गत परिपत्र को चुनौती दी है। याचिका में यह मांग की गई कि जनपदांतरण की प्रक्रिया न्यूनतम सेवा अवधि (पुरुष शिक्षकों के लिए पाँच वर्ष, महिला शिक्षिकाओं के लिए दो वर्ष) की शर्त के बिना संपादित की जाए तथा पारस्परिक स्थानांतरणों को ऑनलाइन स्थानांतरण प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाए। उक्त रिट याचिका का निस्तारण इस प्रकार किया गया कि शासनादेश एवं परिपत्र को दी गई चुनौती अस्वीकार कर दी गई, परन्तु न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि ऑनलाइन प्रवेश के उद्घाटन के पश्चात याचिकाकर्ता पारस्परिक स्थानांतरण हेतु आवेदन कर सकते हैं, जबकि न्यूनतम सेवा अवधि की शर्त को शैक्षिक स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु एक वैध नीतिगत निर्णय मानते हुए स्वीकार किया गया।

उद्धृत उदाहरण:

1. अनुरुद्ध कुमार त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश (रिट याचिका संख्या 4950 वर्ष 2018)
2. कामिनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश (रिट याचिका संख्या 8532/2018):
3. एस.के. नौसाद रहमान बनाम यू.ओ.आई. [एआईआर 2022 एससी 1494]:
4. असम के न्यायाधीश बनाम रंगा मुहम्मद [एआईआर 1967 एससी 903]
5. बैंक ऑफ इंडिया बनाम जगजीत सिंह मेहता [(1992) 1 एससीसी 306]
6. यू.ओ.आई. बनाम एस.एल. अब्बास [(1993) 4 एससीसी 357]

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा और माननीय आशुतोष श्रीवास्तव न्यायमूर्ति, न्यायमूर्ति द्वारा पदत)

1. वर्तमान रिट में याचिकाकर्ता जिला बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित प्राथमिक संस्थान में कार्यरत सहायक अध्यापक हैं। याचिकाकर्ता सं0 1 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कौशाम्बी द्वारा दिनांक 10.03.2019 को नियुक्त किया गया था तथा वह ब्लॉक नेवादा, जिला कौशाम्बी में तैनात है। याचिकाकर्ता सं0 2 ब्लॉक धनुपुर, जिला प्रयागराज में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त है जहां याचिकाकर्ता सं0 2 फतेहपुर जिले का निवासी है। दोनों याचिकाकर्ता अंतर जिला स्थानांतरण चाहते हैं। उन्होंने शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 के खंड 1 तथा 15 के साथ-साथ सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा जारी परिणामी परिपत्र दिनांकित 08.06.2023

को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। साथ ही यह प्रार्थना की गई है कि प्रत्यर्थागण को उनकी अन्तर जनपदीय स्थानांतरण आवेदन पर संबंधित जिले में पांच साल की सेवा की शर्त लगाए बिना विचार करने तथा उ.प्र. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली, 1981 (एतदपश्चात 1981 की नियमावली के रूप में संदर्भित) के नियम 21 के अनुसार उनके स्थानांतरण को मंजूरी देने का आदेश देने के लिए की गई है।

2. यह विवादित नहीं है कि दोनों याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तें 1981 की नियमावली द्वारा विनियमित हैं। नियम 21 में स्थानांतरण का प्रावधान है, जो कि नीचे उद्धृत है:

“21. स्थानांतरण की प्रक्रिया - किसी भी शिक्षक का ग्रामीण स्थानीय क्षेत्र से शहरी स्थानीय क्षेत्र में या इसके विपरीत या उसी जिले के एक शहरी स्थानीय क्षेत्र से दूसरे शहरी स्थानीय क्षेत्र में या एक जिले के स्थानीय क्षेत्र से दूसरे जिले के स्थानीय क्षेत्र में, शिक्षक के अनुरोध या उसकी सहमति के बिना स्थानांतरण नहीं किया जाएगा तथा दोनों ही मामलों में बोर्ड का अनुमोदन आवश्यक होगा।”

3. 1981 की नियमावली के अतिरिक्त, प्रत्यर्थागण ने उ.प्र. बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 (एतदपश्चात ‘1972 का अधिनियम’ के रूप में संदर्भित) की धारा 19(1) में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए उ.प्र. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) (तैनाती) नियमावली, 2008 (एतदपश्चात ‘2008 की नियमावली’ कहा

जाएगा) बनाई है। 2008 की नियमावली का नियम 8 प्रासंगिक है तथा इसे आगे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“8. तैनाती - (1)(क) विकलांग अभ्यर्थियों से उनकी योग्यता के क्रम में विद्यालयों के लिए तीन विकल्प पूछे जाएंगे तथा ऐसे विकल्प प्राप्त होने के पश्चात विकलांग अभ्यर्थियों को उनके द्वारा दिए गए विकल्पों एवं रिक्तियों के आधार पर पदस्थापित किया जाएगा।

(ख) महिला अध्यापकों को उनकी योग्यता के क्रम के आधार पर सामान्य एवं पिछड़े ब्लाक से तीन-तीन विद्यालयों का विकल्प अपने हस्ताक्षर से प्रस्तुत करना होगा तथा तदनुसार इनमें से किसी एक विद्यालय में पदस्थापना दी जाएगी।

(ग) पुरुष अध्यापकों की पदस्थापना नियम 7 के अन्तर्गत तैयार रोस्टर में अभ्यर्थियों के क्रम के अनुसार की जाएगी।

(2)(क) नवनियुक्त पुरुष अध्यापकों को प्रारम्भ में कम से कम पांच वर्ष की अवधि के लिए पिछड़े क्षेत्रों में अनिवार्य रूप से पदस्थापित किया जाएगा।

(ख) नवनियुक्त महिला अध्यापकों को भी कम से कम दो वर्ष की अवधि के लिए पिछड़े क्षेत्रों में अनिवार्य रूप से पदस्थापित किया जाएगा।

(ग) जिले के अन्दर सामान्य ब्लाक से पिछड़े ब्लाक में पारस्परिक स्थानान्तरण की अनुमति इस शर्त के साथ दी जाएगी कि पारस्परिक

स्थानान्तरण पर पिछड़े ब्लाक में अध्यापक को उस ब्लाक में अनिवार्य रूप से पांच वर्ष तक सेवा करनी होगी। पारस्परिक स्थानान्तरण केवल उन अध्यापकों के मामले में ही अनुमत होगा जिनकी सेवा अवधि पांच वर्ष से अधिक शेष हो।

(घ) सामान्य परिस्थितियों में पुरुष एवं महिला अध्यापकों के सम्बन्ध में अंतर-जिला स्थानान्तरण के लिए आवेदन उनकी पदस्थापना के पांच वर्ष के अन्दर स्वीकार नहीं किए जाएंगे। परन्तु विशेष परिस्थितियों में महिला शिक्षिकाओं के अन्तरजनपदीय स्थानान्तरण हेतु आवेदन उनके पति के निवास स्थान अथवा ससुराल के जिले में स्वीकार किये जायेंगे।

(ङ) यदि नवनियुक्त अथवा प्रोन्नत अध्यापकों की तैनाती के कारण पिछड़े ब्लाकों के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय संतृप्त हो जाते हैं अर्थात् इन विद्यालयों में अध्यापक का कोई पद रिक्त नहीं है तो इन संतृप्त ब्लाकों में से सामान्य ब्लाकों के रिक्त पदों पर विकलांग एवं महिला अध्यापिकाओं को उनकी पसंद के अनुसार समायोजित किया जा सकेगा।

(च) एक पिछड़े ब्लाक से दूसरे पिछड़े ब्लाक में पुरुष/महिला अध्यापकों के पारस्परिक स्थानान्तरण पर विचार किया जा सकेगा।

(3) एक जनपद से दूसरे जनपद में स्थानांतरित अध्यापकों को इन नियमों के प्रावधानों के अनुसार तैनाती दी जायेगी।”

4. इस याचिका में चुनौती दिये गये शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 के खण्ड 1 एवं 15 को निम्नांकित किया जाता है:-

“(1) जनपद में नियमित सेवाविधि शिक्षिका के लिए 02 वर्ष एवं शिक्षक के लिए 05 वर्ष होना अनिवार्य होगा। सेवाविधि की गणना कार्यरत जनपद के दिनांक से की जाएगी।

(15) शैक्षिक सत्र 2023-24 के लिए अन्तरजनपदीय एवं पारस्परिक स्थानान्तरण की समस्त प्रक्रिया शासनदेश के क्रम में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र लखनऊ से विचार विमर्श के उपरान्त समस सारणी के अनुसार ऑनलाइन किया जाएगा। ऑफलाइन आवेदन पत्र पर किसी भी दशा में विचार नहीं किया जाएगा।”

5. दिनांक 08.06.2023 के परिपत्र को इस आधार पर भी चुनौती दी गई है कि बोर्ड ने सहायक अध्यापकों के अंतर-जिला स्थानान्तरण के लिए आवेदन आमंत्रित किए हैं, परन्तु ऐसा करते समय आपसी सहमति से स्थानान्तरण को बाहर रखा गया है। यह आग्रह किया गया है कि एक बार जब शिक्षकों के स्थानान्तरण के लिए बोर्ड द्वारा आवेदनों पर विचार किया जा रहा है, तो अधिकारियों के लिए उन शिक्षकों को शामिल न करने का कोई औचित्य नहीं है जो पारस्परिक स्थानान्तरण चाहते हैं।

6. याचिकाकर्ताओं की शिकायत अनिवार्य रूप से द्विस्तरीय है। उनकी शिकायत का प्रथम भाग यह है कि सहायक अध्यापकों के स्थानान्तरण के लिए आवेदन आमंत्रित करते

समय आपसी सहमति से स्थानान्तरण चाहने वाले शिक्षकों को बाहर रखने का कोई औचित्य नहीं है। द्वितीय, यह आग्रह किया गया है कि स्थानान्तरण के लिए आवेदन करने से पूर्व एक पुरुष शिक्षक द्वारा पाँच साल की सेवा का प्रतिबंध मनमाना तथा भेदभावपूर्ण है। यह भी आग्रह किया गया है कि 2008 के नियम शिक्षकों के स्थानान्तरण को विनियमित नहीं करते हैं तथा चूंकि 1981 के नियम 21 में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है, इसलिए पांच वर्ष की सेवा का लगाया गया प्रतिबंध अनुचित और मनमाना है।

7. याचिकाकर्ता ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 का अवलम्ब लेते हुए कथन किया है कि यह नीति स्कूलों में सेवा की सभ्य तथा सुखद शर्तों पर विचार करती है तथा इसलिए, संबंधित जिले में सेवा की न्यूनतम अवधि पर कोई प्रतिबंध लगाए बिना, पारस्परिक स्थानान्तरण के अनुरोध पर उदारतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। एस.के. नौसाद रहमान व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 1494 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय तथा असम राज्य बनाम रंगा मुहम्मद, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 903 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए कथन किया गया है कि स्थानान्तरण के मामले में 2008 के नियम लागू नहीं होंगे।

8. बेसिक शिक्षा बोर्ड की ओर से प्रस्तुत सुश्री अर्चना सिंह ने भी एस.के. नौसाद रहमान (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, विशेषतः उसके पैराग्राफ 25 से 29 का

अवलम्ब लेते हुए कथन किया कि याचिकाकर्ता अधिकार के तौर पर स्थानांतरण के हक का दावा नहीं कर सकते। उन्होंने आगे कहा कि कुछ तकनीकी गड़बड़ियों के कारण अब तक ऑनलाइन ट्रांसफर पोर्टल को आपसी स्थानांतरण के लिए विस्तारित नहीं किया गया है तथा यह प्रक्रिया जल्द ही शुरू की जाएगी। उन्होंने आगे कहा कि जब भी याचिकाकर्ता ऐसे ट्रांसफर के लिए आवेदन करेंगे तो उनके मामलों पर नीति के अनुसार विचार किया जाएगा।

9. हमने याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री सत्येंद्र चंद्र त्रिपाठी, जिला बेसिक शिक्षा परिषद की ओर से सुश्री अर्चना सिंह तथा राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

10. स्वीकृत रूप से दोनों याचिकाकर्ता सहायक शिक्षक हैं। स्थानांतरण सहित उनकी सेवा शर्तें 1981 के नियमों द्वारा शासित हैं। ऊपर उद्धृत नियम 21, शिक्षक के ग्रामीण स्थानीय क्षेत्र से शहरी स्थानीय क्षेत्र में या इसके विपरीत या एक ही जिले के एक स्थानीय क्षेत्र से दूसरे स्थानीय क्षेत्र में या एक जिले के स्थानीय क्षेत्र से दूसरे जिले के स्थानीय क्षेत्र में स्थानांतरण की प्रक्रिया प्रदान करता है, सिवाय शिक्षक के अनुरोध पर या उसकी सहमति के तथा दोनों ही मामलों में बोर्ड की मंजूरी आवश्यक होगी। सहायक शिक्षक के स्थानांतरण के लिए अपनाई जाने वाली कार्यप्रणाली बोर्ड द्वारा तैयार की गई प्रतीत होती है, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पैरा 5.3 के अनुरूप है, जिसमें विशेष रूप से यह प्रावधान है कि शिक्षकों के स्थानांतरण

ऑनलाइन कम्प्यूटरीकृत प्रणाली के माध्यम से किए जाएंगे जो पारदर्शिता सुनिश्चित करता है। नीति का खंड 5.3 यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“5.3. अत्यधिक शिक्षक स्थानांतरण की हानिकारक प्रथा को रोका जाएगा, ताकि छात्रों को उनके प्रेरणास्त्रोत तथा शैक्षिक वातावरण में निरंतरता मिले। स्थानांतरण बहुत ही विशेष परिस्थितियों में होगा, जिसे राज्य सरकार/केंद्र शासित प्रदेश द्वारा संरचित विधि से किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, स्थानांतरण एक ऑनलाइन कम्प्यूटरीकृत प्रणाली के माध्यम से किए जाएंगे जो पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।”

11. जहां तक पारस्परिक स्थानांतरण की अनुमति नहीं दिए जाने के संबंध में याचिकाकर्ताओं की शिकायत का संबंध है, हम शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 के अवलोकन से पाते हैं कि यह बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों के अंतर-जिला स्थानांतरण तथा पारस्परिक स्थानांतरण के लिए भी नीति निर्धारित करता है। याचिकाकर्ताओं की शिकायत है कि बोर्ड ने ऑनलाइन पोर्टल पर आवेदन आमंत्रित करते समय केवल अंतर-जिला स्थानांतरण के लिए आवेदनों को प्रतिबंधित कर दिया है तथा पारस्परिक स्थानांतरण के लिए आवेदनों को अलग रखा है।

12. प्रत्यर्थीगण की ओर से यह स्वीकार किया गया है कि अभी तक केवल अंतर-जिला

स्थानांतरण के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए हैं। हालांकि, एक स्पष्ट बयान दिया गया है कि कुछ तकनीकी गड़बड़ियों के कारण पारस्परिक स्थानांतरण के लिए प्रक्रिया शुरू नहीं की गई है तथा प्रक्रिया जल्द ही शुरू की जाएगी। इसलिए, सुश्री अर्चना सिंह द्वारा किया गया कथन, जहां तक पहली बात पर उनकी शिकायत का संबंध है, याचिकाकर्ता को पर्याप्त रूप से संरक्षण प्रदान करता है।

13. यह स्थानांतरण के लिए आवेदन करने के लिए पांच वर्ष की सेवा अवधि की आवश्यकता से संबंधित तर्क का द्वितीय भाग है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है। नियम 21 को पूर्व में ही ऊपर दोहराया जा चुका है जो स्थानांतरण के लिए प्रक्रिया प्रदान करता है।

14. 1981 के नियम के भाग 2 में सहायक अध्यापक के संवर्ग तथा संख्या का उल्लेख है। नियम 4(1) के अनुसार, 1981 के नियम के अंतर्गत प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र के लिए सेवा का अलग संवर्ग निर्धारित किया गया है। उप-नियम (2) के अनुसार, शिक्षण स्टाफ का संवर्ग राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से समय-समय पर बोर्ड द्वारा निर्धारित किया जाएगा। 1981 के नियम में दो प्रकार के स्थानीय क्षेत्र पर विचार किया गया है, अर्थात् “ग्रामीण स्थानीय क्षेत्र” तथा “शहरी स्थानीय क्षेत्र”। यह भेद मुख्य रूप से इसलिए किया गया क्योंकि ग्रामीण स्थानीय क्षेत्र पर प्रारंभिक अधिकार क्षेत्र जिला पंचायत द्वारा प्रयोग किया जाता था, जबकि शहरी स्थानीय क्षेत्र के लिए या तो नगर निगम, नगर पंचायत, टाउन एरिया या अधिसूचित क्षेत्र अपने अधिकार क्षेत्र

का प्रयोग करता था। ऐसे संवर्ग पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले प्राधिकरण में परिवर्तन हुआ है, किन्तु जिले में दो अलग-अलग संवर्ग मौजूद हैं। नियम 21 ग्रामीण क्षेत्र से शहरी स्थानीय क्षेत्र में या इसके उलट या शहरी स्थानीय क्षेत्र से उसी जिले के दूसरे स्थानीय क्षेत्र में या एक जिले के स्थानीय क्षेत्र से दूसरे जिले के स्थानीय क्षेत्र में केवल शिक्षक के अनुरोध या सहमति से स्थानांतरण की अनुमति देता है तथा दोनों ही मामलों में बोर्ड की मंजूरी आवश्यक है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि एक शिक्षक का एक संवर्ग से दूसरे संवर्ग में स्थानांतरण या तो उसकी सहमति से या शिक्षक के अनुरोध पर ही स्वीकार्य होगा। हालांकि, दोनों ही परिस्थितियों में बोर्ड की मंजूरी आवश्यक है। अन्यथा, एक संवर्ग से दूसरे संवर्ग में स्थानांतरण पर मनन नहीं किया गया।

15. 1981 के नियम, बोर्ड द्वारा स्थानांतरण के अनुरोध को मंजूरी देने के लिए मानदंड निर्धारित नहीं करते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्थानांतरण निष्पक्ष तथा एकसमान तरीके से किए जाते हैं, सक्षम प्राधिकारी के लिए ऐसे स्थानांतरणों को मंजूरी देने के लिए मानदंड निर्धारित करना सदा स्वतंत्र रहता है। शैक्षणिक सत्र 2023-24 के लिए स्थानांतरण हेतु मानदंड स्पष्ट रूप से राज्य द्वारा शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 द्वारा तैयार किए गए हैं। याचिकाकर्ता शासनादेश के खंड 1 तथा 15 से व्यथित हैं। खंड 1 में कहा गया है कि महिला शिक्षक को दो वर्ष तथा पुरुष शिक्षक को पांच वर्ष पूर्ण करने होंगे, तब ही उनके स्थानांतरण पर

विचार किया जाएगा। चुनौती दिए गए शासनादेश के खंड 15 में निर्दिष्ट किया गया है कि स्थानांतरण प्रक्रिया ऑनलाइन प्रारूप में एन.आई.सी. के परामर्श से की जाएगी। किसी भी परिस्थिति में ऑफलाइन आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

16. जहां तक स्थानांतरण के लिए ऑनलाइन प्रक्रिया का सहारा लेने का प्रश्न है, हम पाते हैं कि इस संबंध में निर्देश राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के खंड 5.3 के अनुरूप है, जिसके अनुसार ऑनलाइन कम्प्यूटरीकृत प्रणाली के माध्यम से स्थानांतरण किए जाने की आवश्यकता है, जो पारदर्शिता सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त, हमें शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 में कोई त्रुटि नहीं मिली है; जिसके अनुसार यह प्रक्रिया ऑनलाइन प्रक्रिया के आधार पर एन.आई.सी. लखनऊ के परामर्श से की जानी है। ऑनलाइन की जाने वाली प्रक्रिया, प्रथम दृष्टया, किसी भी तरह के मनमर्जी से चयन की संभावना को समाप्त करती है तथा इसके पारदर्शी होने की अपेक्षा है। अन्यथा, ऑनलाइन की जाने वाली प्रक्रिया न तो किसी विधिक प्रावधान का उल्लंघन करती है तथा न ही किसी संवैधानिक योजना के विपरीत है। इसलिए, हमें शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 के खंड 15 में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं, जिसमें प्रक्रिया को ऑनलाइन किया गया तथा जिसके चलते ऑफलाइन प्रारूप में आवेदन अस्वीकार किए गए हैं। इसलिए, स्थानांतरण नीति के संबंध में शासनादेश के खंड 15 को दी गई चुनौती विफल हो जाती है।

17. जहां तक शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 के खंड 1 का संबंध है, इसके अनुसार नियम 21 के अंतर्गत स्थानांतरण के लिए आवेदन करने से पूर्व, एक महिला शिक्षक को जिले में दो वर्ष की सेवा पूर्ण करनी होगी, जबकि पुरुष शिक्षक के लिए यह अवधि पांच वर्ष निर्धारित की गई है। महिला शिक्षकों के लिए दो वर्ष तथा पुरुष शिक्षकों के लिए पांच वर्ष की न्यूनतम अवधि पर जोर देने का निर्णय विभिन्न रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा विचार का विषय रहा है। जहां तक बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय में नियुक्त एक पुरुष सहायक अध्यापक के संबंध में निर्णय का संबंध है, इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 4950/2018 (अनुरुद्ध कुमार त्रिपाठी बनाम उ.प्र. राज्य व 5 अन्य) में पैरा 19 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

“19. उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में यह माना जाता है कि नियम 8(2)(घ) नियमावली 2008 के साथ-साथ इस प्रयोजन हेतु बनाई गई नीति के अनुसार, बेसिक स्कूल में पुरुष सहायक अध्यापक का स्थानांतरण सामान्यतः पिछड़े क्षेत्र में 05 वर्ष की प्रारंभिक नियुक्ति पूर्ण करने के बाद ही किया जा सकता है। हालांकि असाधारण या आपवादिक परिस्थितियों में, बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा स्थानांतरण के लिए आवेदन पर ऐसे कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व भी विचार किया जा सकता है। यह प्रश्न कि किसी दिए गए मामले में असाधारण परिस्थितियां मौजूद हैं या नहीं, इस पर बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा जांच की जानी है।”

उपरोक्त टिप्पणी, नियम 8(2)(घ) 2008 में प्रयुक्त भाषा पर अवलम्ब लेते हुए किया गया प्रतीत होता है, जिसमें “सामान्य परिस्थितियों में” अभिव्यक्ति निहित है तथा इसलिए इसमें बोर्ड द्वारा निर्धारित की जाने वाली असाधारण परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से सम्मिलित नहीं किया गया है।

18. कामिनी सिंह बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य, रिट याचिका संख्या 8532/2018 में इस न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब किया गया है, जिसमें 2008 के नियम 8 के उप-नियम (2) के उप-नियम (डी) की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि शिक्षकों का उनके लिंग के आधार पर वर्गीकरण अस्वीकार्य है। खंडपीठ द्वारा निम्नलिखित शब्दों में इस विवाद को खारिज कर दिया:-

“उपरोक्त नियमों को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट है कि सहायक शिक्षक का पद जिला संवर्ग का पद है तथा नियुक्ति प्राधिकारी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी है। चयन होने पर, नियम 2008 के प्रावधानों के अनुसार एक शिक्षक की तैनाती की जानी है। दूसरे शब्दों में, अंतर-जिला स्थानांतरण, नियुक्ति से संबंधित सामान्य नियम का एक अपवाद है तथा जिले के भीतर ब्लॉकों में शिक्षकों की पोस्टिंग अनिवार्य है।”

इस बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन के पश्चात, खंडपीठ ने आगे निम्नलिखित टिप्पणी की:-

“याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन प्राधिकारियों पर अवलम्ब लिया गया है, वे सहायक नहीं हैं। नियम 8(2)(डी) का मुख्य भाग लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करता है, कोई भी शिक्षक पांच साल की सेवा के पश्चात जिले के बाहर स्थानांतरण की मांग कर सकता है, जो पुरुष तथा महिला दोनों शिक्षकों पर समान रूप से लागू होता है, विवाहित महिला शिक्षिका के संबंध में विवाह के पश्चात स्थानांतरण की मांग करने के लिए आक्षेपित नियम द्वारा अपवाद बनाया गया है। अनिवार्य तैनाती की अनिवार्यता वाले नियम का उद्देश्य जिले के दूरदराज के क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों में शिक्षक उपलब्ध कराने के उद्देश्य तथा नीति को प्राप्त करना है, जो अंततः विद्यार्थियों एवं विशेषकर शिक्षक विहीन विद्यालयों हेतु हितकर है। यदि जिले से बाहर स्थानांतरण के बार-बार अनुरोध पर विचार किया जाता है तो विद्यालयों का कामकाज ठप्प हो जाएगा, इसलिए, नियमों के अनुसार अंतर-जिला स्थानांतरण हेतु आवेदन करने से पूर्व शिक्षक की पांच वर्ष की तैनाती होना अनिवार्य है। यह नियम विवाहित महिला शिक्षक को छोड़कर पुरुष/महिला शिक्षकों पर समान रूप से लागू होता है। विवाह के पश्चात जिले का विकल्प बदल जाता है, इसलिए, विवाहित महिला शिक्षक को वैवाहिक स्थिति के कारण बदली हुई परिस्थितियों में अंतर-जिला स्थानांतरण लेने की अनुमति आक्षेपित नियम के अंतर्गत दी गई है।

जब किसी कानून को समान संरक्षण से वंचित करने के रूप में चुनौती दी जाती है; न्यायालय द्वारा निर्धारण के लिए प्रश्न यह

नहीं है कि क्या इससे असमानता उत्पन्न हुई है, अपितु यह है कि क्या कोई ऐसा अंतर है जो विधि के उद्देश्य से न्यायसंगत तथा उचित संबंध रखता है। मात्र भेदभाव या व्यवहार की असमानता या भार की असमानता, समान संरक्षण अनुच्छेद के निषेध के भीतर भेदभाव नहीं है। अनुच्छेद के संचालन को आकर्षित करने के लिए, यह दिखाना आवश्यक है कि चयन या भेदभाव अनुचित या मनमाना है; अर्थात् यह उस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किसी भी तर्कसंगत आधार पर आधारित नहीं है जिसे नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने ध्यान में रखा है। इसलिए, जब किसी विधि को अनुच्छेद 14 में आश्वासन के विरुद्ध बताते हुए चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय का प्रथम कर्तव्य अधिनियम/नियम के उद्देश्य तथा नीति की जांच करना है, जिसे इसके शीर्षक, प्रस्तावना तथा प्रावधानों की जांच से पता लगाया जाना चाहिए तथा फिर यह पता लगाना चाहिए कि क्या विधि द्वारा किए गए वर्गीकरण का उस उद्देश्य से उचित संबंध है जिसे विधायिका/नियम बनाने वाला प्राधिकारी प्राप्त करना चाहता है। (द्वारा: सूरज मल बनाम बिस्वनाथ, केदार नाथ बाजोरिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, पी.बी. रॉय बनाम भारत संघ)

ऊपर बताए गए कारणों से, नियम 2008 के नियम 8 के उप-नियम (2) के उप-खंड (डी) की वैधता को लेकर उठाई गई चुनौती विफल हो जाती है। रिट याचिका में कोई बल नहीं होने के कारण, तदनुसार, उसे निरस्त किया जाता है।”

19. याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत किया गया तर्क कि स्थानांतरण के मामले में 2008 के नियम लागू नहीं होंगे, हमें प्रभावित नहीं करता है। इस संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क अनिवार्य रूप से असम राज्य (उपरोक्त) के निर्णय के पैरा 9 में माननीय सर्वाेच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी पर आधारित है, जिसे आगे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“9. अपने सामान्य शब्दकोश अर्थ में “तैनात करना” शब्द का अर्थ या तो (क) किसी को किसी स्थान पर तैनात करना हो सकता है, या (ख) किसी को कोई पद पर नियुक्त करने, अर्थात् कोई पद या नौकरी पर नियुक्त करना, विशेष रूप से वह जिस पर कोई व्यक्ति नियुक्त किया जाता है, हो सकता है। वेबस्टर की न्यू वर्ल्ड शब्दकोश (1962) देखें। इस मामले में विवाद इसलिए उत्पन्न हुआ है क्योंकि राज्य सरकार दो अर्थों में से प्रथम अर्थ लागू करती है तथा उच्च न्यायालय दूसरा। अनुच्छेद 233 में ‘पोस्टिंग’ शब्द स्पष्ट रूप से दूसरा अर्थ रखता है। यह शब्द ‘नियुक्ति’ तथा ‘पदोन्नति’ शब्दों के साथ आता है तथा उनसे अपना तात्पर्य लेता है। ये शब्द उस चरण को इंगित करते हैं जब कोई व्यक्ति प्रथम बार कोई पद या नौकरी प्राप्त करता है तथा संबद्धता द्वारा ‘पोस्टिंग’ का अर्थ है जिला न्यायाधीशों के संवर्ग में किसी पद पर नियुक्त या पदोन्नत व्यक्ति को नियुक्त करना। यह कि किसी शब्द को उन शब्दों के संयोजन के कारण एक विशेष अर्थ दिया जा सकता है जिनमें यह आता है, निर्माण का एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त सिद्धांत है। मैक्सवेल (“ऑन इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स”, 11वां

संस्करण, पृष्ठ 321 तथा उसके बाद के पृष्ठ) इस सिद्धांत के अनुप्रयोग के कई उदाहरण देते हैं, जिनमें से एक यहाँ दिया जा सकता है। “सार्वजनिक सैरगाह के स्थान” शब्द “सड़कों तथा गलियों” के साथ जोड़े जाने पर बहुत अलग अर्थ ग्रहण करते हैं, जबकि वही शब्द ‘घरों’ के साथ जोड़े जाने पर अलग अर्थ ग्रहण करते। इसी प्रकार ‘पोस्टिंग’ शब्द को ‘स्थानांतरण’ के अर्थ में नहीं समझा जा सकता, जब संयोजन में नियुक्ति तथा पदोन्नति का विचार शामिल हो। वास्तव में यह अर्थ बिल्कुल बेमेल है क्योंकि ‘स्थानांतरण’ नियुक्ति तथा पदोन्नति से परे एक चरण में संचालित होता है। यदि ‘पोस्टिंग’ का अर्थ ‘स्थानांतरण’ होता तो डाफ्ट्समैन ने इसे ‘नियुक्ति’ तथा ‘पदोन्नति’ के मध्य रखना मुश्किल से चुना होता तथा वह आसानी से ‘स्थानांतरण’ शब्द का उपयोग कर सकता था। इसलिए, यह इस प्रकार है कि अनुच्छेद 233 के अंतर्गत, राज्यपाल का संबंध मात्र जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा संवर्ग में तैनाती से है, परन्तु पहले से नियुक्त या पदोन्नत तथा संवर्ग में तैनात किए गए जिला न्यायाधीशों के स्थानांतरण से नहीं। पश्चातवर्ती स्पष्ट रूप से जिला न्यायाधीशों के नियंत्रण का मामला है जो माननीय उच्च न्यायालय में निहित है। ‘पोस्टिंग’ शब्द का यह अर्थ तब तथा अधिक स्पष्ट हो जाता है जब कोई अनुच्छेद 234 तथा 235 के प्रावधानों को पढ़ता है। इनमें से पहले अनुच्छेद के द्वारा नियुक्ति के प्रश्न पर अलग से विचार किया गया है, परन्तु इनमें से दूसरे अनुच्छेद के द्वारा राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित तथा जिला न्यायाधीश के पद से निम्न कोई पद

धारण करने वाले व्यक्तियों की तैनाती तथा पदोन्नति भी उच्च न्यायालय में निहित है। अनुच्छेद में दो बार प्रयुक्त ‘पोस्ट’ शब्द का स्पष्ट रूप से अर्थ स्थिति या नौकरी है न कि स्टेशन या स्थान तथा ‘पोस्टिंग’ का स्पष्ट रूप से अर्थ किसी पद या नौकरी पर नियुक्ति होना चाहिए न कि किसी स्टेशन या न्यायालय का प्रभारी बनाना। अनुच्छेद 235 में शब्द संयोजन अधिक स्पष्ट है, परन्तु चूंकि पिछले लेख में ‘पोस्टिंग’ शब्द उसी विषय-वस्तु से संबंधित है, इसलिए इसका प्रयोग निश्चित रूप से उसी अर्थ में किया गया था तथा इस प्रकार यह निष्कर्ष बिल्कुल स्पष्ट है।”

20. उपरोक्त अवलोकन एक राज्य में जिला न्यायाधीशों पर प्रयोग की जाने वाली स्थानांतरण की शक्ति के संदर्भ में किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि स्थानांतरण करने का अधिकार माननीय उच्च न्यायालय के पास था तथा राज्य सरकार ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं थी। माननीय उच्च न्यायालय की राय को सर्वोच्च महत्व दिए जाने का निर्देश दिया गया। इस प्रकार ‘पदस्थापन’ तथा ‘स्थानांतरण’ के बीच चर्चा की गई। हालाँकि, वर्तमान मामले में तथ्यात्मक परिदृश्य बिल्कुल भिन्न है। याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तें 1981 के नियमों द्वारा शासित हैं। हालाँकि, विभिन्न स्थानीय क्षेत्रों में शिक्षकों की नियुक्ति के संदर्भ में 2008 के विशिष्ट नियम बनाए गए हैं। 2008 के नियमों में विभिन्न संस्थाओं में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए तैयार किए जाने वाले विद्यालयों की सूची पर विचार किया गया है। नियम 8 में विभिन्न संस्थाओं में

शिक्षकों की नियुक्ति के लिए अपनाए जाने वाले तरीके को निर्धारित किया गया है। इसमें प्रावधान है कि सामान्य परिस्थितियों में नव नियुक्त शिक्षकों को महिला शिक्षकों के मामले में दो वर्ष तथा पुरुष शिक्षकों के मामले में पाँच वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद ही अंतर-जिला स्थानांतरण की अनुमति दी जाएगी। 2008 के नियमों में नव पदोन्नत शिक्षकों की तैनाती का भी प्रावधान है। हालांकि 2008 के नियमों को तैनाती नियम कहा जाता है, परन्तु इसका उद्देश्य न केवल शिक्षकों की प्रारंभिक तैनाती से प्रभावी ढंग से निपटना है, अपितु यह भी निर्दिष्ट करता है कि संस्थान में तैनात ऐसे शिक्षक ब्लॉक में पाँच वर्ष की प्रारंभिक सेवा के पश्चात पारस्परिक स्थानांतरण सहित स्थानांतरण के हकदार होंगे। नियम 8(1)(डी) इस संबंध में विशिष्ट है। नियम 8(1)(डी) की वैधता को इस न्यायालय ने पहले ही यथावत रखा है।

21. नियम 8(1)(डी) न तो 1972 के अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है, न ही 1981 के नियमों के विपरीत है। 2008 के तैनाती नियम वास्तव में विभिन्न संस्थानों में शिक्षकों की तैनाती के मानदंड निर्धारित करते हैं तथा ऐसा करते समय, सामान्य परिस्थितियों में स्थानांतरण चाहने की पात्रता को महिला शिक्षकों के लिए दो वर्ष तथा पुरुष शिक्षकों के लिए पाँच वर्ष तक सीमित करते हैं। पुरुष शिक्षक को पाँच वर्ष तथा महिला शिक्षिका को दो वर्ष की सेवा की शर्त अनिवार्य रूप से नीतिगत मामला है तथा जब तक यह किसी अधिनियम, नियम या विनियमन का उल्लंघन नहीं करता है, तब

तक हम ऐसी नीति में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित नहीं होंगे क्योंकि इसे मनमाना नहीं दिखाया गया है।

22. बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित बेसिक शिक्षा संस्थानों में सहायक अध्यापक ग्रामीण स्थानीय क्षेत्र तथा शहरी स्थानीय क्षेत्र दोनों में विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। इन शिक्षकों को भर्ती की एक प्रतिस्पर्धी प्रक्रिया के आधार पर नियुक्त किया जाता है तथा उनकी तैनाती भी उनकी योग्यता के साथ-साथ उनके द्वारा तैनाती स्थल के बारे में चुने गए विकल्प को ध्यान में रखते हुए की जाती है। ऐसे उद्देश्यों के लिए रोस्टर का भी पालन किया जाता है।

23. इस प्रकार किसी शिक्षक को विशेष संवर्ग तथा पदस्थापन स्थान का आवंटन उसकी योग्यता तथा उसके द्वारा चुने गए विकल्प के आधार पर होता है। कुछ वर्षों तक स्थानांतरण के लिए आवेदन स्वीकार न करने का एक विशेष उद्देश्य है क्योंकि शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे आरंभ में उन्हें आवंटित विशिष्ट संवर्ग में कार्य करें अन्यथा शिक्षक अपनी नियुक्ति के दिन से ही अपने इच्छित स्थान पर स्थानांतरण की योजना बनाना शुरू कर देंगे। शिक्षकों के पास करने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य होता है तथा उनकी चिंता छात्रों को उचित शिक्षण प्रदान करने की होनी चाहिए। सामान्य परिस्थितियों में स्थानांतरण की पात्रता को कुछ वर्षों तक सीमित करके राज्य/बोर्ड स्पष्ट रूप से शिक्षकों को उनकी नियुक्ति के तुरंत बाद अपनी इच्छित तैनाती के लिए लालायित होने से हतोत्साहित करना चाहता है। इस प्रकार शिक्षकों को स्थानांतरण की अनुमति देने से पहले कुछ वर्षों तक संवर्ग

में सेवा करने की अनिवार्यता को मनमाना नहीं कहा जा सकता है तथा न ही किसी वैध आधार पर नीति पर सवाल उठाया जा सकता है।

24. सहायक शिक्षक के लिए संवर्ग में स्थानांतरण पर सामान्यतः विचार नहीं किया जाता है। नियम 21 के अनुसार एक संवर्ग से दूसरे संवर्ग में स्थानांतरण सशर्त है तथा इसके लिए बोर्ड की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। इसलिए, इन संस्थानों में स्थानांतरण को अधिकार के रूप में दावा करने की शर्त नहीं है। इस प्रकार राज्य/बोर्ड को स्थानांतरण के लिए आवेदन स्वीकार करने के लिए एक समान मानदंड/प्रक्रिया निर्धारित करने में न्यायोचित ठहराया जाएगा।

25. हमारे द्वारा ऊपर किए गए विचार-विमर्श के दृष्टिगत, सामान्य परिस्थितियों में स्थानांतरण के लिए आवेदन स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगाने की राज्य की नीति में हमें कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं मिलती है, जब तक कि शिक्षक ने संवर्ग में सेवा की निर्दिष्ट अवधि पूर्ण नहीं कर ली हो। अन्यथा भी, यह न्यायालय पहले ही स्पष्ट कर चुका है कि असाधारण परिस्थिति में न्यूनतम अवधि माफ की जा सकती है, बशर्ते बोर्ड स्थानांतरण के लिए असाधारण परिस्थिति के अस्तित्व के संबंध में संतुष्ट हो। दादा-दादी आदि की वृद्धावस्था, जो स्थानांतरण के लिए दिए गए तर्क है, स्थानांतरण के लिए असाधारण परिस्थिति नहीं होगी। इन विचारों की अन्यथा बोर्ड द्वारा पहली बार में जांच की जानी आवश्यक है।

26. हम 2008 के नियमों की प्रयोज्यता को केवल तैनाती नियमों के रूप में नामित करने के आधार पर खारिज करने के लिए इच्छुक नहीं हैं क्योंकि हम पहले ही मान चुके हैं कि सामान्य परिस्थितियों में, स्थानांतरण की मांग करने से पहले न्यूनतम सेवा अवधि की आवश्यकता 1981 के नियमों या किसी प्रावधान या अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है। नियमों को तैनाती नियम के रूप में नामित करना अन्यथा निर्णायक नहीं है।

27. हम एस.के. नौसाद (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का लाभप्रद रूप से उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 25 से 29 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

“25. दूसरा, स्थानांतरण तथा पोस्टिंग से संबंधित कार्यकारी निर्देश तथा प्रशासनिक निर्देश स्थानांतरण या पोस्टिंग का दावा करने का एक अपरिवर्तनीय अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। सेवा में नियोजित व्यक्तियों की व्यक्तिगत सुविधा प्रशासन की व्यापक आवश्यकताओं के अधीन है।

26. तीसरा, नीतियां जो यह निर्धारित करती हैं कि जीवनसाथी की तैनाती अधिमानतः तथा जहां तक संभव हो, एक ही स्टेशन पर होनी चाहिए, प्रशासन की आवश्यकता के अधीन हैं। इस संदर्भ में, माननीय न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा (तत्कालीन विद्वान मुख्य न्यायाधीश) ने बैंक ऑफ इंडिया बनाम जगजीत सिंह मेहता (बैंक

ऑफ इंडिया बनाम जगजीत सिंह मेहता, (1992) 1 एस.सी.सी. 306 : 1992 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 268, में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए कथन किया: (एस.सी.सी. पी.पी. 308-09, पैरा 5)

“5. इसमें कोई संदेह नहीं है कि सामान्यतः तथा जहाँ तक संभव हो पति तथा पत्नी, जो दोनों कार्यरत हैं, को एक ही स्थान पर नियुक्त किया जाना चाहिए, भले ही उनके नियोक्ता अलग-अलग हों। इस तरह के कदम की वांछनीयता स्पष्ट है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी नियुक्ति का स्थान हमेशा उनकी पसंद का होना चाहिए, भले ही प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुसार निर्णय लेते समय उनकी पसंद को ध्यान में रखा जा सकता है। अखिल भारतीय सेवाओं के मामले में, दोनों को अलग-अलग स्थानों पर नियुक्त किए जाने से होने वाली कठिनाई कई बार अपरिहार्य हो सकती है, विशेषकर तब जब वे अलग-अलग सेवाओं से संबंधित हों तथा उनमें से एक को दूसरे की नियुक्ति के स्थान पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता हो। व्यवसाय तथा किसी विशेष सेवा का चयन करते समय, दंपति को इस कारक को ध्यान में रखना चाहिए तथा ऐसी कठिनाई का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए, यदि प्रशासनिक आवश्यकताएँ तथा स्थानांतरण नीति प्रशासन की आवश्यकताओं तथा अन्य कर्मचारियों की आवश्यकताओं का त्याग किए बिना दोनों को एक स्थान पर नियुक्त करने की अनुमति नहीं देती है। ऐसे मामले में दंपति को कैरियर की संभावनाओं तथा पारिवारिक

जीवन के बीच की दहलीज पर अपना चुनाव करना पड़ता है। भारत में किसी भी स्थान पर स्थानांतरण की घटना के साथ अखिल भारतीय सेवा में इस तरह की पदोन्नति या किसी नियुक्ति को स्वीकार करके कैरियर की संभावनाओं को प्राथमिकता देने के पश्चात, एक स्थान पर एक साथ रहने वाले जोड़े की आवश्यकता को कम महत्व देते हुए, वे अधिकार के रूप में अखिल भारतीय सेवा की सामान्य घटनाओं से मुक्त होने तथा इस आधार पर किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरण से बचने का दावा नहीं कर सकते हैं कि ऐसा करने से पति-पत्नी अलग-अलग स्थानों पर तैनात हो जाएंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दिशा-निर्देशों के अनुसार दोनों पति-पत्नी को यथासंभव एक ही स्थान पर तैनात किया जाना चाहिए, परन्तु इससे कोई भी पति-पत्नी अधिकार के रूप में ऐसी तैनाती का दावा करने में सक्षम नहीं हो जाते हैं, यदि विभागीय अधिकारी इसे व्यवहार्य नहीं मानते हैं। मात्र एक चीज की आवश्यकता है कि विभागीय अधिकारी प्रशासन की आवश्यकताओं के साथ-साथ इस पहलू पर भी विचार करें तथा दोनों पति-पत्नी को एक स्थान पर एक साथ रहने दें, यदि यह प्रशासनिक आवश्यकताओं तथा अन्य कर्मचारियों के दावे को किसी भी तरह की हानि के बिना संभव है।

27. उपरोक्त सिद्धांत को यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एस.एल. अब्बास (यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एस.एल. अब्बास, (1993) 4 एस.सी.सी. 357 : 1994 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 230, में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था, जिसमें न्यायालय ने माना था कि

स्थानांतरण सेवा की एक घटना है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 359, पैरा 7)

“7. किसे कहाँ स्थानांतरित किया जाना चाहिए, यह उचित प्राधिकारी को तय करने का मामला है। जब तक स्थानांतरण का आदेश दुर्भावना से प्रभावित नहीं होता है या किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करके नहीं किया जाता है, तब तक न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। स्थानांतरण का आदेश देते समय, निःसन्देह, प्राधिकारी को इस विषय पर सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखना चाहिए। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति अपने स्थानांतरण के संबंध में कोई प्रतिनिधित्व करता है, तो उचित प्राधिकारी को प्रशासन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उस पर विचार करना चाहिए। दिशा-निर्देशों में कहा गया है कि जहाँ तक संभव हो, पति और पत्नी को एक ही स्थान पर नियुक्त किया जाना चाहिए। हालांकि उक्त दिशा-निर्देश सरकारी कर्मचारी को विधिक रूप से लागू करने योग्य अधिकार प्रदान नहीं करते हैं।

28. चौथा, सिविल सेवाओं से संबंधित अधिकारियों की भर्ती तथा सेवा की शर्तों पर लागू मानदंड निम्नलिखित में निर्धारित किए जा सकते हैं:

(1) सक्षम विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून;

(2) संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियम; तथा

(3) संघ के अधीन सिविल सेवाओं के मामले में संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत जारी कार्यकारी निर्देश तथा राज्यों के अधीन सिविल सेवाओं के मामले में अनुच्छेद 162।

29. पांचवां, जहाँ कार्यकारी निर्देशों तथा अनुच्छेद 309 के अंतर्गत बनाए गए नियमों के बीच संघर्ष होता है, नियम प्रबल होना चाहिए। अनुच्छेद 309 के अंतर्गत बनाए गए नियमों तथा उपयुक्त विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के बीच टकराव की स्थिति में, कानून प्रबल होता है। जहाँ नियम अस्थाई हैं या ऐसी स्थिति में जब नियमों में अंतर है, कार्यकारी निर्देश नियमों में बताई गई बातों का पूरक हो सकते हैं। (भारत संघ बनाम सोमसुंदरम विश्वनाथ (1989) 1 एस.सी.सी. 175, पैरा 6 : 1989 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 150)”

28. एस.के. नौसाद रहमान (उपरोक्त) के निर्णय के पैरा 43, 51, 52 तथा 53, जिन पर याचिकाकर्ताओं ने अवलम्ब लिया है, उस सिद्धांत को मान्यता देते हैं कि न्यायिक समीक्षा के प्रयोग में न्यायालय कार्यपालिका को कोई विशेष नीति तैयार करने का निर्देश नहीं दे सकता है। फिर भी, किसी नीति की वैधता का आकलन संवैधानिक मापदंडों की कसौटी पर किया जा सकता है। इसकी नीति बनाते समय संवैधानिक मूल्यों को भी ध्यान में रखा जाता है। मामले के तथ्यों में, हमें नीति संवैधानिक मापदंडों या संवैधानिक मूल्यों का उल्लंघन करने वाली नहीं लगती है। इसलिए, याचिकाकर्ता एस.के. नौसाद

रहमान (उपरोक्त) के निर्णय के पैरा 43, 51, 52, 53 में निहित अवलोकन से कोई सार नहीं निकाल सकते हैं।

(2023) 7 ILRA 1350

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली,

रिट-ए संख्या 2000264 सन् 2000

29. उपरोक्त विचार-विमर्श तथा चर्चा के दृष्टिगत, हम निम्नलिखित शर्तों पर रिट याचिका का निस्तारण करते हैं:

(i) शासनादेश दिनांकित 02.06.2023 के खंड 1 तथा 15 के साथ-साथ परिपत्र दिनांकित 08.06.2023 को दी गई चुनौती विफल हो गई तथा निरस्त की जाती है।

(ii) बोर्ड द्वारा दिए गए कथन के दृष्टिगत कि अंतर-जिला स्थानांतरण के लिए ऑनलाइन आवेदन जल्द ही स्वीकार किए जाएंगे, तथा पात्र सहायक शिक्षकों के दावे का निपटारा किया जाएगा, यह प्रावधान किया जाता है कि बोर्ड पारस्परिक स्थानांतरण के लिए ऑनलाइन पोर्टल को जल्द से जल्द, अधिमानतः छह सप्ताह के भीतर खोलेगा तथा पात्र शिक्षकों के दावे का विधि अनुसार निपटारा किया जाएगा।

(iii) नीति में निहित शर्त, सामान्य परिस्थितियों में, स्थानांतरण चाहने से पहले पुरुष शिक्षक के लिए संवर्ग में न्यूनतम पांच वर्ष की सेवा अवधि तथा महिला शिक्षकों के लिए दो वर्ष की सेवा अवधि की अनिवार्यता होती है। तदनुसार ऐसी नीति को चुनौती विफल है।

(iv) पक्षकार अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे।

डॉ. एस.सी. अस्थाना ...याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

एस.के. कालिया, चिन्मय मिश्रा, गौरव मेहरोत्रा,
एस.ई. चिटाम्बर, शिखा सिन्हा

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सेवा विधि - विदेशी प्रतिनियोजन - अनधिकृत
अनुपस्थिति - अनुशासनात्मक कार्यवाही -
तिरस्कार प्रविष्टि - पदोन्नति अस्वीकृत - सेवा
का नियमितीकरण - दंड की निरस्तीकरण

याचिकाकर्ता, जो कि प्रांतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा (पीएमएचएस) में एक चिकित्सा अधिकारी के पद पर कार्यरत थे, ने अनापत्ति प्रमाणपत्र एवं अर्जित अवकाश प्राप्त करने के पश्चात नाइजीरिया में विदेशी प्रतिनियोजन ग्रहण किया। राज्य सरकार द्वारा दिनांक (16.04.1981 से 09.01.1985) तक की विदेशी प्रतिनियोजन अवधि को नियमित कर दिया गया तथा याचिकाकर्ता को सामान्य भविष्य निधि (जीपीएफ), बीमा तथा पेंशन अंशदान जमा करने का निर्देश दिया गया,

जिसे याचिकाकर्ता ने पालन किया। इसके उपरान्त भी, याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप में अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई, जिसके परिणामस्वरूप एक तिरस्कार प्रविष्टि प्रदान की गई तथा एक वेतनवृद्धि रोक दी गई। याचिकाकर्ता को पदोन्नति तथा अवकाश लाभों से भी वंचित कर दिया गया। निर्णय में कहा गया कि, एक बार जब राज्य सरकार द्वारा विदेशी प्रतिनियोजन को नियमित कर दिया गया, तो अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत तथा तिरस्कार प्रविष्टि दिया जाना मनमाना एवं अवैध है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध जानबूझकर अनुपस्थित रहने का कोई निष्कर्ष अभिलेखित नहीं किया गया, अतः अनुपस्थिति को दुराचरण नहीं माना जा सकता। अनुशासनाधिकारी द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों तथा उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 का पालन नहीं किया गया। फलस्वरूप, दिनांक 25.04.1996 (तिरस्कार प्रविष्टि एवं दंडादेश) तथा दिनांक 09.12.1998 (अवकाश अस्वीकृति आदेश) को निरस्त कर दिया गया। याचिकाकर्ता को परिणामी सेवा लाभ प्राप्त करने का अधिकारी माना गया।

रिट याचिका स्वीकृत।

उद्धृत मामलों की सूची:

1. दिनेश कुमार वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट एवं अन्य
2. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम एस.सी. पाराशर उद्धरण: (2006) 3 एससीसी 167
3. कृष्णकांत बी. परमार बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य (2012) 3 एससीसी 178

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पदत)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा और प्रतिपक्षी के लिए अतिरिक्त मुख्य शासकीय अधिवक्ता को राज्य के लिए सुना।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें प्रतिपक्षियों को 1984 से याचिकाकर्ता को 3000-4500/-रुपये का वरिष्ठ वेतनमान, 1990 से 16 साल की सेवा पूरी करने के बाद 3700-5000/-रुपये का समयकालिक वेतनमान जारी करने का आदेश दिया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता के सभी पदोन्नतियों को उसके कनिष्ठों से प्रभावी रूप से संयुक्त निदेशक के पद तक पदोन्नत किया गया है। याचिकाकर्ता को निन्दा प्रविष्टि और दंड देने के दिनांक 25-04-1996 के आदेश और दिनांक 09-12-1998 के आदेश, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की अनुमति अस्वीकार कर दी गई है, को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने का अनुरोध किया गया है।

3. प्रस्तुत रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य:

A	याचिकाकर्ता को 21.08.1974 को तदर्थ आधार पर प्रांतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं में चिकित्सा अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया था।
B	वर्ष 1975 में, याचिकाकर्ता यूपी लोक सेवा आयोग के समक्ष पेश

	हुआ और उसकी नियुक्ति को आयोग ने मंजूरी दे दी
C	याचिकाकर्ता ने वर्ष 1976 में भारत सरकार की फॉरेन असाइनमेंट स्कीम के विशेषज्ञों के पैनल में नामांकन/पंजीकृत होने के लिए सरकार को एक अभ्यावेदन दिया।
D	दिनांक 29.06.1978 को विदेशी समनुदेशन योजना में विशेषज्ञों के पैनल में शामिल किए जाने के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी स्वीकार कर ली गई थी और उसे एक विशेषज्ञ के रूप में पंजीकृत किया गया था तथा याचिकाकर्ता और गौगोला, नाइजीरिया राज्य के प्राधिकारियों के बीच एक करार किया गया था।
E	27.01.1981 को, नाइजीरिया में याचिकाकर्ता के प्रवास से संबंधित पासपोर्ट के उद्देश्य से अतिरिक्त निदेशक (प्रशासन) द्वारा अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया गया था।
F	11.02.1981 को, याचिकाकर्ता को 15 दिनों के लिए अर्जित अवकाश मंजूर किया गया था।
G	16.02.1981 को याचिकाकर्ता को उन्नाव से मुक्त कर दिया गया।
H	18.03.1981 को, याचिकाकर्ता निदेशक को सूचित करने के बाद नाइजीरिया के लिए रवाना हुआ।
I	दिनांक 16-10-1984 को राज्य सरकार द्वारा उन्नाव स्थित अस्पताल अधीक्षक को एक पत्र जारी किया गया था जिसमें यह कहा गया

	था कि याचिकाकर्ता को एक माह के भीतर पीएचएमएस में अपनी नियुक्ति प्रस्तुत करनी चाहिए।
J	दिनांक 09.11.1984 को याचिकाकर्ता के परिवार को दिनांक 16.10.1984 का पत्र प्राप्त हुआ।
K	दिनांक 17-11-1984 को याचिकाकर्ता की पत्नी ने नाइजीरिया में याचिकाकर्ता को एक पत्र भेजा जिसमें उक्त पत्र के बारे में सूचित किया गया और संयुक्त निदेशक से समय देने का अनुरोध किया गया।
L	दिनांक 10.01.1985 को सूचना प्राप्त होने पर याचिकाकर्ता नाइजीरिया से वापस लौटा और अपनी ज्वाइनिंग प्रस्तुत की, जिसे स्वीकार कर लिया गया लेकिन उसे तैनाती नहीं दी गई।
M	दिनांक 20.03.1985 को राज्य सरकार ने निदेशक को पत्र लिखकर कहा कि याचिकाकर्ता को किसी भी जिले में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात किया जा सकता है।
N	12.04.1985 को, याचिकाकर्ता को लखनऊ में स्वास्थ्य निदेशालय में चिकित्सा अधिकारी (आरक्षित इयूटी) के रूप में तैनात किया गया था।
O	15.04.1985 को, याचिकाकर्ता निदेशालय में अपनी पोस्टिंग स्थान पर शामिल हो गया।
P	दिनांक 07.07.1988 को राज्य सरकार ने निदेशक (प्रशासन) को निदेश दिया कि चूंकि नाइजीरिया में याचिकाकर्ता के ठहरने की अवधि

	नियमित कर दी गई है, इसलिए उक्त अवधि के लिए जीपीएफ, बीमा और पेंशन अंशदान की राशि याचिकाकर्ता से जमा करवाई जाए।
Q	07.10.1989 को, संयुक्त निदेशक ने सरकार को सूचित किया कि याचिकाकर्ता ने जीपीएफ और जीआईएस की राशि जमा कर दी है।
R	31.08.1990 को याचिकाकर्ता को आरोप पत्र दिया गया।
S	दिनांक 10-09-1990 को याचिकाकर्ता ने उक्त आरोप-पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत किया।
T	28.10.1991 को, याचिकाकर्ता को उसकी अनधिकृत अनुपस्थिति को स्पष्ट करने के लिए कारण बताओ नोटिस दिया गया था।
U	दिनांक 26.11.1991 को याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध 1991 की संख्या 7628 (एस/बी) वाली एक रिट याचिका दायर की। रिट याचिका को समय से पहले खारिज कर दिया गया था।
V	दिनांक 22-11-1993 को याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट उपलब्ध कराई गई थी।
W	16.06.1995 को याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र/कारण बताओ नोटिस में उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों का विस्तृत जवाब प्रस्तुत किया।
X	25.04.1996 को याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान की गई थी।

Y	मई, 1996 के महीने में, याचिकाकर्ता ने उक्त प्रतिकूल टिप्पणी के खिलाफ अभ्यावेदन दिया।
Z	04.07.1996 को, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।
Aa	09.07.1997 को, याचिकाकर्ता के कनिष्ठों को पदोन्नत किया गया था लेकिन पदोन्नति के लिए उनके नाम पर विचार नहीं किया गया था।
Ab	दिनांक 24-10-1997 को राज्य सरकार ने महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण को 1989-90 और 1994-95 की वाषक गोपनीय रिपोर्टें (एसीआर) उपलब्ध कराने का निदेश दिया।
Ac	दिनांक 25-10-1997 को उक्त एसीआर सरकार को उपलब्ध कराई गई थी।
Ad	29.01.1998 को, याचिकाकर्ता को 3700-5000/- रुपये का समय मान देने का निर्णय याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था।
Ae	मई, 1998 में, याचिकाकर्ता ने अपनी पदोन्नति और अन्य सेवा लाभों के लिए अभ्यावेदन दिया।
Af	दिनांक 09.07.1998 को याचिकाकर्ता के कनिष्ठ अधिकारियों को संयुक्त निदेशक के पद पर सैद्धांतिक पदोन्नति प्रदान की गई थी।
Ag	09.12.1998 को, याचिकाकर्ता को

	सूचित किया गया था कि 16.01.1981 से 09.04.1985 की अवधि के बीच छुट्टी मंजूर करना संभव नहीं था।
Ah	उक्त छुट्टी को मंजूरी नहीं देने और याचिकाकर्ता को पदोन्नति नहीं देने में प्रतिपक्षियों के कृत्य और कार्रवाई से व्यथित होकर, प्रस्तुत रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

सरकार ने याचिकाकर्ता की विदेशी असाइनमेंट अवधि को नियमित किया है और दूसरी तरफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के अनुसरण में उसे निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि सरकारी आदेश दिनांक 09.11.1984 के अनुपालन में, याचिकाकर्ता नाइजीरिया से वापस आया और अपने कर्तव्यों में शामिल हो गया और राज्य सरकार ने दिनांक 07.07.1988 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की विदेशी असाइनमेंट अवधि को नियमित कर दिया था, इसलिए, याचिकाकर्ता को दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

5. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों ने मनमाने और अवैध तरीके से याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी विदेश असाइनमेंट अवधि के दौरान कर्तव्यों से गैरकानूनी अनुपस्थिति के आरोप के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की और अनुशासनात्मक कार्यवाही के अनुसरण में याचिकाकर्ता को निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई।

6. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि डीजीएमई ने याचिकाकर्ता को निंदा प्रविष्टि प्रदान करते समय कानून में गलती की है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक तरफ राज्य

7. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि निंदा प्रविष्टि के याचिकाकर्ता को सजा देते समय, जिस वर्ष से प्रविष्टि संबंधित है, उसका उल्लेख नहीं किया गया है और मनमाने ढंग से याचिकाकर्ता की एक वेतन वृद्धि को यह स्पष्ट किए बिना रोक दिया गया है कि यह स्थायी या अस्थायी है या नहीं।

8. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता 10 साल की सेवा पूरी करने के बाद वरिष्ठ वेतनमान में पदोन्नति का हकदार था यानी 3000-4500 रुपये और 16 साल की सेवा पूरी करने के बाद 3700-5000 रुपये का समय वेतनमान लेकिन उसे प्रदान नहीं किया गया है।

9. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्ष 1989-1995 के लिए याचिकाकर्ता का चरित्र रोल प्रस्तुत नहीं किया गया है और बाद में वर्ष 1997 तक की सभी वार्षिक चरित्र रोल प्रविष्टियां राज्य सरकार को उपलब्ध कराई गई थीं, जिसके कारण उच्च पद के लिए याचिकाकर्ता की पदोन्नति पर विचार नहीं किया जा सका।

10. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की पदोन्नति पर विचार करने और उसे अन्य लाभ प्रदान करने के लिए प्रतिपक्षी कानूनी दायित्व के तहत हैं और

छुट्टी देने से इनकार करने का आदेश दिनांक 09.12.1998 बिल्कुल मनमाना है क्योंकि उक्त छुट्टी नाइजीरिया जाने से पहले याचिकाकर्ता द्वारा लागू की गई थी और याचिकाकर्ता ने पेंशन और ग्रेच्युटी आदि की राशि भी जमा की है, जैसा कि मई 1998 में प्रतिपक्षियों द्वारा गणना की गई थी। अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने दिनेश कुमार वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में निर्णयों पर भरोसा किया; रिट ए सं-20837 वर्ष 2020 का निर्णय और आदेश दिनांक 24.03.2022, भारत संघ और अन्य बनाम एससी पराशर; (2006)3 एस.सी.सी.167 और कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य; (2012)3 एस.सी.सी.178 द्वारा किया गया।

11. दूसरी ओर, अतिरिक्त मुख्य शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का आवेदन गृह मंत्रालय, भारत सरकार को दिनांक 21.06.1978 के पत्र के माध्यम से इस शर्त के साथ अग्रेषित किया गया था कि चयन के मामले में, उसे अपने मूल पद से इस्तीफा देना होगा और उसके लिए कोई ग्रहणाधिकार उपलब्ध नहीं होगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को नाइजीरिया के लिए पासपोर्ट की व्यवस्था करने के लिए इस शर्त के साथ अनापत्ति प्रमाण पत्र दिया गया था कि नाइजीरिया जाने से पहले, उसे राहत देने के संबंध में आवश्यक निर्देश मिलेंगे, हालांकि, अपने मूल पद से इस्तीफा दिए बिना और बिना अनुमति के, वह नाइजीरिया के लिए रवाना हो गया और याचिकाकर्ता को नाइजीरिया के लिए प्रस्थान करने के लिए

छुट्टी की कोई मंजूरी उपलब्ध नहीं थी, इसलिए, उन्हें एक महीने के भीतर पीएमएचएस कैडर के तहत अपने कर्तव्यों को फिर से शामिल करने का निर्देश दिया गया।

12. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को इस तथ्य के मद्देनजर कर्तव्यों से अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था कि याचिकाकर्ता अपनी इच्छा से नाइजीरिया गया था, उसे जारी किए गए निर्देशों/निर्देशों की अनदेखी करेगा।

13. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि इयूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति को नियमित करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को राज्य सरकार ने दिनांक 09.12.1998 के सरकारी आदेश के तहत खारिज कर दिया है और अनधिकृत अनुपस्थिति आदेशों का दोषी पाए जाने पर, उसकी सेवा पुस्तिका में प्रतिकूल प्रविष्टि की गई थी।

14. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि द्वितीय श्रेणी से श्रेणी-1 पद पर पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी राज्य सरकार को भेज दी गई थी, जिसमें उनका नाम क्रम संख्या 890 पर था, हालांकि, विभागीय चयन समिति ने विभागीय जांच के लंबित होने के कारण उन्हें उपयुक्त नहीं पाया, इसलिए, पदोन्नति के अनुदान के लिए उनके मामले पर विचार नहीं किया गया था।

15. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की विदेश सेवा यानी

16.04.1981 से 09.01.1985 के लिए कोई छुट्टी नहीं दी गई थी और छुट्टी के नियमों में ढील देने का कोई कारण नहीं था, इसलिए उसकी छुट्टी को मंजूरी देना संभव नहीं था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को 3700-5000 रुपये का वेतनमान गलत तरीके से दिनांक 29.01.1998 के आदेश के माध्यम से दिया गया था, जिसे 30.10.2002 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था।

16. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने समय-समय पर जारी सरकारी आदेशों के अनुसार 10 साल की नियमित और निरंतर सेवा को पूरा नहीं किया, इसलिए, उसे 3000-4500 रुपये का समय मान स्वीकृत नहीं किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता इस माननीय न्यायालय से कोई राहत पाने का अह नहीं है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है।

17. जवाब में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 21.06.1978 का पत्र याचिकाकर्ता को कभी नहीं बताया गया था और उसे उक्त शर्त के बारे में सूचित नहीं किया गया था कि नाइजीरिया में शामिल होने पर, उसके लिए कोई ग्रहणाधिकार उपलब्ध नहीं होगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों द्वारा दिनांक 11.02.1981 के आदेश से इनकार नहीं किया गया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को अर्जित अवकाश स्वीकृत किया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर 18.03.1981 के आवेदन को भी प्रतिपक्षियों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है, जिसके तहत उन्होंने

प्रतिपक्षियों को नाइजीरिया में शामिल होने के बारे में सूचित किया था।

18. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को चिकित्सक, जिला अस्पताल, उन्नाव के पद से सेवा से विधिवत मुक्त कर दिया गया था, क्योंकि उसने नाइजीरिया जाने से पहले दिनांक 16.02.1981 के पत्र द्वारा प्रभार सौंप दिया था।

19. उन्होंने प्रस्तुत किया कि नाइजीरिया में याचिकाकर्ता की सेवा को नियमित माना जाता है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जारी रखा जाता है कि राज्य सरकार ने दिनांक 07.07.1988 के आदेश के तहत वर्ष 16.04.1981 से 09.01.1985 की अवधि को नियमित कर दिया है - जिस अवधि के दौरान याचिकाकर्ता विदेशी असाइनमेंट पर रहा, जैसा कि दिनांक 07.07.1988 के आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता को जीपीएफ की राशि जमा करने की आवश्यकता थी, उक्त अवधि के लिए बीमा और पेंशन योगदान, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत जमा किया गया है और उक्त तथ्य से याचिकाकर्ता द्वारा इनकार नहीं किया गया है, इसलिए, दिनांक 31.08.1990 को आरोप पत्र जारी करने का कोई अवसर नहीं था।

20. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को कभी भी इस आशय का कोई आदेश नहीं दिया गया है कि उसे कक्षा-II से कक्षा-I पद पर पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था।

21. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेखों पर सामग्री के साथ-साथ याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि न्याय निर्णयों का अवलोकन किया है।

22. मामले में शामिल विवाद को हल करने के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

आ) दिनेश कुमार वर्मा (उपरोक्त):

9. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता को बड़ी और छोटी दोनों तरह की सजा दी गई है और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, भारत संघ और अन्य बनाम एससी पाराशर (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसे अस्वीकार्य माना जाता है। इस संबंध में, विशेष रूप से पैराग्राफ-12 पर भरोसा किया गया है, जिसमें से प्रासंगिक उद्धरण यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"12 जबकि संचयी प्रभाव से वेतन के समयमान में कमी सीसीएस नियमों के नियम 11 के खंड (v) के अर्थ के भीतर एक बड़ा दंड है, वरिष्ठता की हानि और राशि की वसूली लघु दंड के दायरे में आएगी, जैसा कि खंड (iii) और (iii) (क) द्वारा परिकल्पित है। इसलिए, अनुशासनात्मक प्राधिकरण, हमारी राय में, एक ही आदेश द्वारा छोटे और बड़े दोनों दंड लगाने में अवैध रूप से और अधिकार क्षेत्र के बिना कार्य करता है। कानून में इस तरह की कार्रवाई नहीं की जा सकती थी।

ख) भारत संघ और अन्य (उपरोक्त):

"12. प्रतिपक्षी पर लगाया गया जुर्माना मामूली जुर्माना और बड़ी शास्ति का एक मिश्रण है। प्रतिपक्षी को तीन दंड दिए गए हैं: (1) संचयी प्रभाव के साथ तीन साल की अवधि के लिए समय-वेतनमान के न्यूनतम में कमी; (2) वरिष्ठता की हानि; और (3) वसूली वर्ष सरकार द्वारा 74,34189 पी रुपये यानी 18,58547 पी रुपये की हानि का 25 प्रतिशत। 18 (अठारह) समान मासिक किश्तों में जिप्सी को नुकसान के कारण। जबकि संचयी प्रभाव से वेतनमान में कमी सीसीएस नियमावली के नियम 11 के खंड (v) के अर्थ के भीतर एक बड़ा दंड है, वरिष्ठता की हानि और राशि की वसूली लघु दंड के दायरे में आएगी, जैसा कि खंड (iii) और (iii) (a) द्वारा परिकल्पित है। इसलिए, अनुशासनात्मक प्राधिकरण, हमारी राय में, एक ही आदेश द्वारा छोटे और बड़े दोनों दंड लगाने में अवैध रूप से और अधिकार क्षेत्र के बिना कार्य करता है। कानून में इस तरह की कार्रवाई नहीं की जा सकती थी।"

c) कृष्णकांत बी. परमार (उपरोक्त):

"16. अनधिकृत अनुपस्थिति का उल्लेख करने वाले अपीलकर्ता के मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप लगाया कि वह कर्तव्य की भक्ति बनाए रखने में विफल रहा और उसका व्यवहार एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय था। इस प्रश्न का निर्णय किए बिना ये फैसला नहीं किया जा सकता है कि क्या ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति का अर्थ कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या सरकारी कर्मचारी के लिए

अशोभनीय व्यवहार है, इस प्रश्न का निर्णय किए बिना नहीं किया जा सकता है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है या बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण है।

17. यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है जिसके तहत रिपोर्ट करना या कर्तव्य करना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है। बिना किसी आवेदन या पूर्व अनुमति के इयूटी से अनुपस्थिति अनधिकृत अनुपस्थिति हो सकती है, लेकिन इसका मतलब हमेशा जानबूझकर किया जाना नहीं होता है। ऐसी अलग-अलग घटनाएं हो सकती हैं जिनके कारण एक कर्मचारी अपने नियंत्रण से परे बाध्यकारी परिस्थितियों जैसे बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होने आदि सहित इयूटी से दूर रह सकता है, लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

18. विभागीय कार्यवाही में, यदि इयूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, इस तरह के निष्कर्ष की अनुपस्थिति में, अनुपस्थिति कदाचार नहीं होगी।

23. दिनेश कुमार वर्मा (उपरोक्त) के मामले में, 23.01.2019 के सजा के आदेश को चुनौती देते हुए दावा याचिका दायर की गई थी,

जिसके तहत याचिकाकर्ता को तीन दंड दिए गए थे। पहली सजा संचयी प्रभाव से 03 वेतनवृद्धियों को रोकने से संबंधित थी। दूसरी सजा के माध्यम से एक निंदा प्रविष्टि लगाई गई थी और तीसरा, याचिकाकर्ता की अखंडता को भी रोक दिया गया था। ट्रिब्यूनल ने दलीलों के आदान-प्रदान पर और पक्षों के वकीलों को सुनने के बाद, केवल अखंडता को रोकने की सजा को रद्द करने की सीमा तक दावा याचिका की अनुमति दी। उक्त मामले में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि राज्य प्राधिकारियों द्वारा की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही जांच करने के मामले में कानून के सुव्यवस्थित सिद्धांतों का पालन नहीं करती है। न्यायालय ने माना कि यह उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के तहत सन्निहित कर्तव्य की उपेक्षा है। जांच में अनियमितताएं अनुशासनहीनता के लिए पर्याप्त गुंजाइश छोड़ देती हैं और दोषी उन सभी मामलों में दंडित नहीं हो पाते हैं, जहां प्रक्रियात्मक उल्लंघन उनके कदाचार को ढाल देते हैं। विसंगतियां सेवा न्यायशास्त्र की वस्तुओं के विपरीत अनुशासनात्मक कार्यवाही को भी लम्बा खींचती हैं। अनुशासनात्मक जांच के लिए प्रशिक्षित स्टाफ न रखने की राज्य की निष्क्रिय भूमिका को प्रत्येक मामले में हल्के ढंग से नहीं देखा जा सकता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही सुधार और अनुशासन में परिणत होनी चाहिए और ऊपर दर्ज कारणों से, रिट याचिका की अनुमति दी गई और 23.01.2019 के सजा आदेश को अपास्त किया गया। हालांकि, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को याचिकाकर्ता द्वारा जारी किए गए आरोप पत्र के जवाब में प्रस्तुत उत्तर के

चरण से जांच के साथ आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी गई थी।

न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देशों को इस प्रभाव से अलग रखा गया था:

24. भारत संघ और अन्य (उपरोक्त) के मामले में, यह माना गया है कि प्रतिपक्षी पर लगाया गया जुर्माना, मामूली जुर्माना और बड़ी शास्ति का एक मिश्रण है। प्रतिपक्षी को तीन दंड दिए गए हैं: (1) संचयी प्रभाव के साथ तीन साल की अवधि के लिए वेतन के समयमान में कमी; (2) वरिष्ठता की हानि; और (3) वसूली वर्ष सरकार द्वारा 74,341.89 करोड़ रुपए की हानि का 25% वसूली। यानी 18,585.47 रुपये। 18 (अठारह) समान मासिक किस्तों में जिप्सी को नुकसान के कारण। जबकि संचयी प्रभाव से वेतन के समयमान में कमी सीसीएस नियमों के नियम 11 के खंड (v) के अर्थ के भीतर एक बड़ा दंड है, वरिष्ठता की हानि और राशि की वसूली लघु दंड के दायरे में आएगी, जैसा कि खंड (iii) और (iii) (ए) द्वारा परिकल्पित है। इसलिए, अनुशासनात्मक प्राधिकरण, हमारी राय में, एक ही आदेश द्वारा छोटे और बड़े दोनों दंड लगाने में अवैध रूप से और अधिकार क्षेत्र के बिना कार्य करता है। कानून में इस तरह की कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। परिणाम में, अपील की अनुमति दी गई और उच्च न्यायालय के आदेश में संशोधन के लिए निर्देश जारी किया गया था कि दंड, जो प्रतिपक्षी पर लगाया जा सकता था, संचयी प्रभाव के साथ तीन साल की अवधि के लिए वेतन में कमी थी और इस प्रकार, यदि उसके मामले को उक्त अवधि के बाद पदोन्नति के लिए माना जाता है, आगे कोई निर्देश जारी करने की आवश्यकता नहीं है और उच्च

"याचिकाकर्ता डीपीसी के आधार पर वरिष्ठता का हकदार होगा जो 7-4-1997 को आयोजित किया गया था जब उसके तत्काल जूनियर को सेकेंड-इन-कमांड के पद पर पदोन्नत किया गया था। याचिकाकर्ता उन सभी परिणामी लाभों का भी हकदार होगा जो वरिष्ठता के नुकसान की सजा के कारण इनकार कर दिए गए थे", और निर्देश जारी किया गया था कि दंड संचयी प्रभाव के साथ तीन साल की अवधि के लिए वेतन के समयमान के न्यूनतम वेतन में कटौती होगी।

25. कृष्णकांत बी. परमार (उपरोक्त) के मामले में, अपीलकर्ता, जो सुरक्षा सहायक के रूप में काम कर रहा था, को 02.09.1996 को विभागीय रूप से कार्यवाही की गई थी। आरोप पत्र प्राप्त होने पर, अपीलकर्ता ने दिनांक 07.10.1996 के अपने उत्तर द्वारा आरोप से इनकार किया और अपने नियंत्रण अधिकारी - श्री पी वेंकटेश्वरलू के खिलाफ विशिष्ट रुख के साथ पक्षपात का भी आरोप लगाया कि उन्हें उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने और कार्यालय में उपस्थित होने से रोका गया था। उन्होंने उन कारणों के बारे में भी बताया कि आखिर किस अवधि के लिये उन्होंने छुट्टी के लिये आवेदन दिया था। विभागीय कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता को दूसरी जगह स्थानांतरित कर दिया गया था, जिसे उसके वरिष्ठ अधिकारी के खिलाफ पक्षपात का आरोप लगाते हुए केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई थी।

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने दिनांक 15-11-2000 के आदेश के तहत यह निर्णय देते हुए आदेश को रद्द कर दिया कि स्थानांतरण का आदेश कानून और तथ्यों में दुर्भावना के कारण दूषित है, जिसकी गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा 17-08-2001 को पुष्टि की गई थी। लगभग सात वर्षों के बाद विवेचनाधिकारी ने 28.04.2003 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की और माना कि अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप सभी उचित संदेह से परे साबित हो गया है, उसे केंद्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1)(ii) और 3(1)(iii) के उल्लंघन का दोषी ठहराया गया है।

अपीलकर्ता ने कैट के समक्ष बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती दी, जिसने अपने आदेश दिनांक 04.05.2004 द्वारा आवेदन पर विचार करने से इनकार कर दिया और अपीलकर्ता को अपील के वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाने की अनुमति दी। तदनुसार, अपीलकर्ता ने 17.05.2004 को निदेशक, खुफिया ब्यूरो के समक्ष एक अपील दायर की, जिसमें विवेचनाधिकारी द्वारा की गई खामियों को उजागर किया गया था, और नियंत्रण अधिकारी के खिलाफ पक्षपात का भी आरोप लगाया गया था जिसने उसे झूठी करने से रोका और उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर किए। अपीलीय प्राधिकारी ने उपरोक्त आपत्तियों पर चर्चा किए बिना दिनांक 30.11.2011 के आदेश द्वारा अपील को खारिज कर दिया और कहा कि "अधोहस्ताक्षरी उसी निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अपीलकर्ता को अस्थायी सेवा नियमों के तहत सेवा से मुक्त कर दिया जाना चाहिए था जब उसकी ओर से अनुशासनहीनता का पहला

उदाहरण देखा गया था" और माना कि अपीलकर्ता -श्री के.पी. परमार के खिलाफ आरोप कि वह अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा, संदेह से परे स्थापित किया गया है और इसलिए, निदेश दिया कि "सक्षम अपीलीय प्राधिकारी होने के नाते अधोहस्ताक्षरी, एतद्वारा श्री के.बी. परमार द्वारा 02.12.2003 के अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश के खिलाफ प्रस्तुत अपील दिनांक 17.05.2004 को खारिज कर देता है, दोनों समय-वर्जित होने के साथ-साथ कोई योग्यता नहीं होने के कारण और उक्त श्री के.बी. परमार को सेवा से हटाने के दंड की पुष्टि करता है।

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष मूल आवेदन संख्या-619 वर्ष 2004 में सजा का आदेश और अपीलीय आदेश, जिसे दिनांक 28-09-2005 के आदेश और निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था और गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी। उक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील की अनुमति दी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किए गए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश; केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय को अलग रखा गया था। अपीलकर्ता को सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया गया था और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आरोपित अधिकारी को बहुत नुकसान हुआ है, क्योंकि कार्यवाही 1996 में एक निश्चित अवधि के लिए झूठी से अनुपस्थिति के लिए तैयार की गई थी, अनुशासनात्मक कार्यवाही को आगे की कार्यवाही के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रेषित

नहीं किया गया था और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता ने लंबे समय तक काम नहीं किया है, यह निर्देश दिया गया था कि अपीलकर्ता को वापस मजदूरी का 50% भुगतान किया जाए।

26. इस मामले में, याचिकाकर्ता को 21.08.1974 को चिकित्सा अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया था। उन्होंने वर्ष 1976 में भारत सरकार की फॉरेन असाइनमेंट स्कीम के विशेषज्ञों के पैनल में नामांकित/पंजीकृत होने के लिए सरकार को एक अभ्यावेदन दिया और फॉरेन असाइनमेंट स्कीम में विशेषज्ञों के पैनल में शामिल होने के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को स्वीकार कर लिया गया। 27.01.1981 को, नाइजीरिया में याचिकाकर्ता के प्रवास से संबंधित पासपोर्ट के उद्देश्य से अतिरिक्त निदेशक (प्रशासन) द्वारा एक अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया गया था। 11.02.1981 को, याचिकाकर्ता को 15 दिनों के लिए अर्जित अवकाश मंजूर किया गया था। 18.03.1981 को, याचिकाकर्ता निदेशक को सूचित करने के बाद नाइजीरिया के लिए रवाना हुआ। दिनांक 16-10-1984 को राज्य सरकार द्वारा उन्नाव स्थित अस्पताल अधीक्षक को एक पत्र जारी किया गया था जिसमें यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता को एक माह के भीतर पीएचएमएस में अपनी नियुक्ति प्रस्तुत करनी चाहिए। इसके अनुसरण में, दिनांक 10-01-1985 को याचिकाकर्ता, सूचना प्राप्त होने पर, नाइजीरिया से वापस लौटा और अपनी ज्वाइनिंग प्रस्तुत की, जिसे स्वीकार कर

लिया गया लेकिन उसे तैनाती नहीं दी गई। इसके बाद, 07.07.1988 को, राज्य सरकार ने निदेशक (प्रशासन) को निर्देश दिया कि चूंकि नाइजीरिया में याचिकाकर्ता के रहने की अवधि नियमित कर दी गई है, इसलिए उक्त अवधि के लिए जीपीएफ, बीमा और पेंशन योगदान की राशि उससे जमा की जाए और उसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता संयुक्त निदेशक ने राज्य सरकार को सूचित किया कि याचिकाकर्ता ने जीपीएफ और जीआईएस की राशि जमा कर दी है।

27. इसके बाद, 31.08.1990 को, याचिकाकर्ता को एक आरोप पत्र दिया गया, जिसका उत्तर उसके द्वारा 10.09.1990 को प्रस्तुत किया गया। 28.10.1991 को, याचिकाकर्ता को उसकी अनधिकृत अनुपस्थिति की व्याख्या करने के लिए कारण बताओ नोटिस दिया गया था। जांच रिपोर्ट की प्रति याचिकाकर्ता को 22.11.1993 को प्रदान की गई और उसने 16.06.1995 को आरोप पत्र/कारण बताओ नोटिस में अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों का जवाब प्रस्तुत किया। दिनांक 25-04-1996 को याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान की गई थी जिसके विरुद्ध मई, 1996 में एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया था जिसे दिनांक 04-07-1996 को अस्वीकृत कर दिया गया था। 09.07.1997 को, याचिकाकर्ता के कनिष्ठों को पदोन्नत किया गया था लेकिन पदोन्नति के लिए उनके नाम पर विचार नहीं किया गया था। दिनांक 09.07.1998 को याचिकाकर्ता के कनिष्ठ अधिकारियों को संयुक्त निदेशक के पद पर सैद्धांतिक पदोन्नति प्रदान की गई थी और दिनांक 09.12.1998 को याचिकाकर्ता को

सूचित किया गया था कि 16.01.1981 से 09.04.1985 की अवधि के बीच छुट्टी मंजूर करना संभव नहीं था।

28. याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी विदेश असाइनमेंट अवधि के दौरान कर्तव्यों से गैरकानूनी अनुपस्थिति के आरोप के लिए एक अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और अनुशासनात्मक कार्यवाही के अनुसरण में उसे एक निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई थी और निंदा प्रविष्टि के याचिकाकर्ता को सजा देते समय, याचिकाकर्ता की एक वेतन वृद्धि को यह स्पष्ट किए बिना रोक दिया गया है कि यह स्थायी है या अस्थायी।

29. याचिकाकर्ता को फिजिशियन, जिला अस्पताल, उन्नाव के पद से सेवा से मुक्त कर दिया गया और उसने नाइजीरिया जाने से पहले दिनांक 16.02.1981 के पत्र द्वारा प्रभार सौंप दिया। नाइजीरिया में याचिकाकर्ता की सेवा को नियमित किया गया माना जाता है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जारी रखा जाता है कि राज्य सरकार ने दिनांक 07.07.1988 के आदेश के तहत वर्ष 16.04.1981 से 09.01.1985 की अवधि को नियमित कर दिया है - जिस अवधि के दौरान याचिकाकर्ता विदेशी असाइनमेंट पर रहा, जैसा कि दिनांक 07.07.1988 के आदेश के अनुसार, उसे जीपीएफ की राशि जमा करने की आवश्यकता थी; उक्त अवधि के लिए बीमा और पेंशन योगदान, जिसे उसके द्वारा विधिवत जमा किया गया है और उक्त तथ्य को प्रतिपक्षियों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए दिनांक 31.08.1990 को

आरोप पत्र जारी करने का कोई अवसर नहीं था।

30. प्रतिपक्षियों ने याचिकाकर्ता को निंदा प्रविष्टि प्रदान करते समय कानून में गलती की, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक तरफ राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता की विदेशी असाइनमेंट अवधि को नियमित कर दिया है और दूसरी तरफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के अनुसरण में उसे निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई थी।

31. राज्य प्राधिकारियों द्वारा की जाने वाली अनुशासनिक कार्यवाहियां जांच कराने के मामले में कानून के सुस्थापित सिद्धांतों का पालन नहीं करती हैं। यह उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के तहत सन्निहित कर्तव्य की उपेक्षा के समान है। जांच में अनियमितताएं अनुशासनहीनता के लिए पर्याप्त गुंजाइश छोड़ देती हैं और दोषी उन सभी मामलों में दंडित नहीं हो पाते हैं, जहां प्रक्रियात्मक उल्लंघन उनके कदाचार को ढाल देते हैं। विसंगतियां सेवा न्यायशास्त्र की वस्तुओं के विपरीत अनुशासनात्मक कार्रवाई को भी लम्बा खींचती हैं। अनुशासनात्मक जांच के लिए प्रशिक्षित स्टाफ न रखने की राज्य की निष्क्रिय भूमिका को प्रत्येक मामले में हल्के ढंग से नहीं देखा जा सकता है। अनुशासनात्मक कार्रवाई सुधार और अनुशासन में परिणत होनी चाहिए।

32. विभागीय कार्यवाही में, यदि इयूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह

साबित करने की आवश्यकता होती है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है और इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में, अनुपस्थिति कदाचार नहीं होगी।

33. ऊपर दर्ज किए गए कारणों और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता को निंदा प्रवेश और सजा देने वाले दिनांक 25.04.1996 के आक्षेपित आदेश और दिनांक 09.12.1998 के आदेश, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की छुट्टी को खारिज कर दिया गया है, एतद्वारा रद्द किया जाता है।

34. रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है।

35. अनुप्रवृत्तियाँ।

36. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 7 ILRA 1358

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला,

रिट-ए संख्या 902 सन् 2011,

अन्य वादों से सम्बद्ध

अनूप कुमार सक्सेना एवं अन्य...याचिकाकर्तागण
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

शोभित मोहन शुक्ला, क्षेमेन्द्र शुक्ला

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता अभिनव त्रिवेदी,
आई.पी. सिंह, संजय भसीन, शुभम त्रिपाठी,
विनायक सक्सेना

ए. सेवा विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - याचिकाकर्तागण द्वारा दिनांक 08.01.1988 को पारित शासी निकाय के संकल्प के अंतर्गत प्रदत्त वेतनमान लाभों की वापसी को चुनौती दी गई थी। प्रमुख विवाद यह था कि क्या वर्ष 1988 के उक्त शासी निकाय संकल्प के अंतर्गत प्राप्त लाभ, राज्य सरकार की दिनांक (दिनांक 05.03.1991) की उस परवर्ती नीति के साथ विधिक रूप से सह-अस्तित्व में रह सकते हैं, जिसके अंतर्गत संस्थान संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान के कर्मचारियों के वेतनमान को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), नई दिल्ली के समकक्ष किया गया था। निर्णय में यह माना गया कि दिनांक 05.03.1991 के शासनादेश के द्वारा प्रदत्त एम्स समता के साथ-साथ वर्ष 1988 के शासी निकाय निर्णय के अधीन वेतन लाभों का विस्तार विधिसम्मत नहीं है। विभिन्न आधारों पर दोहरे वित्तीय लाभ असंवहनीय हैं। वर्ष 1988 का निर्णय, संस्थान संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 1983 की धारा 25(3) के अधीन अपेक्षित राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना, कभी विधिपूर्वक अनुमोदित नहीं किया गया था; अतः उसका वर्ष 1994 में क्रियान्वयन एवं वर्ष 2002-2003 में किया गया विस्तार विधिसम्मत अधिकार के अभाव

में किया गया था। एक बार जब एम्स के कर्मचारियों के साथ वेतन समता को 01.01.1986 से प्रभावी रूप से लागू कर दिया गया, तो वर्ष 1988 का निर्णय अप्रभावी हो गया एवं अप्रासंगिक ठहराया गया। याचिकाकर्तागण को लाभों की वापसी से पूर्व कारण बताओ सूचना पत्र प्रदान किए गए थे तथा यह विषय संस्थागत एवं वैधानिक स्तरों पर, अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत निरीक्षक द्वारा भी, विचाराधीन रहा। यद्यपि शासी निकाय अधिनियम की धारा 19(2)(छ) के अंतर्गत पदों की सृष्टि अथवा उन्मूलन कर सकता है, परंतु वेतनमानों में ऐसा पुनरीक्षण जो वित्तीय दायित्व को प्रभावित करता हो, के लिए अधिनियम की धारा 25(3) के अंतर्गत राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति अनिवार्य है। फलस्वरूप, लाभों की वापसी एवं उसके परिणामस्वरूप पारित आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिकाएं आधारहीन पाई गईं एवं निरस्त कर दी गईं। (प्रस्तर 1 से 149 तक)

रिट याचिका खारिज की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मल्लिकार्जुन राव एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य आदि (1990) एआईआर एससी 1251: (1990) 2 एससीसी 707: (1990) 1 स्केल 705

2. गोवा राज्य कॉप. बैंक लिमिटेड बनाम कृष्ण नाथ ए. (मृत) एलआर एवं अन्य के माध्यम से, सिविल अपील संख्या 10596 वर्ष 2010 में सुप्रीम कोर्ट

3. केनरा बैंक बनाम वी.के. अवस्थी (2005) 6 एससीसी 321

4. चरण लाल साहू बनाम यू.ओ.आई. (1990) एआईआर सी 1480

5. कर्नल बी.जे. अक्कारा (सेवानिवृत्त) बनाम जी.ओ.आई. एवं अन्य (2006) 11 एससीसी 709

6. सेंट पुंज व अन्य बनाम रफीक मसीह (2015) 4 एससीसी 334

7. थॉमस डेनियल बनाम सेंट केर व अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 536

8. एस.आई. रूप लाल व अन्य बनाम एलजी मुख्य सचिव के माध्यम से, दिल्ली व अन्य (2000) एआईआर एससी 594=(2000) 1 एससीसी 644

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा पदत)

विश्लेषण की सुविधा के लिए इस निर्णय को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है:

सूचकांक

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
A	परिचय	4
B	एसजीपीजीआई अधिनियम	9
C	मामले के तथ्य	15
	(i) शासी निकाय की सिफारिश दिनांक 08-01-1988	15
	(ii) शासनादेश दिनांक 05-03-1991	17

	(iii) ए.ए.सी.ओ. की नियुक्ति	18
	(iv) दिनांक 03-01-1997 की संवर्ग समीक्षा	19
	(v) 27-11-2001 को संवर्ग की पुनर्संरचना	21
	(vi) ए.ए.सी.ओ. का मामला	21
	(vii) मंत्रिस्तरीय और सचिवीय मामले में दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय का कार्यान्वयन	23
	(viii) ए.ए.सी.ओ.एस और सहायक लेखाकारों के बीच विवाद	25
D	पक्षगण का विवाद	31
E	चर्चा और खोज	52
F	समाप्ति	103

A. प्रस्तावना

(1) क्या संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान (इसके संक्षिप्त नाम 'एसजीपीजीआई या संस्थान' में इसके संक्षिप्त नाम 'एसजीपीजीआई या संस्थान' में संदर्भित किया जाएगा) के गैर-संकाय कर्मचारियों को दिनांक 01.08.1990 और 05.03.1991 के सरकारी आदेश के माध्यम से एम्स कर्मचारी के साथ वेतनमान समानता नीति के कार्यान्वयन के बाद भी विभागाध्यक्ष (एच.ओ.डी.) कर्मचारियों के साथ वेतनमान में लाभ या समानता को बढ़ाया जा सकता है, यह मुख्य मुद्दा है जो

रिट याचिका के इस समूह में न्यायालय का इस पर ध्यान आकर्षित करता है। इन संवर्गों में वरिष्ठता सूची पर उक्त वेतन-समानता के कार्यान्वयन के परिणामी प्रभाव से संबंधित एक सहायक मुद्दा अन्य मुद्दा है, जिसे इन याचिकाओं में भी निर्धारित किया जाना है।

(2) एसजीपीजीआई के "लेखा संवर्ग, मंत्रालयी संवर्ग और सचिवीय संवर्ग" में इन गैर-संकाय कर्मचारियों को दिनांक 08.01.1988 की शासी निकाय की सिफारिश के कार्यान्वयन में शिथिलता कथित रूप से याचिकाकर्ताओं द्वारा तर्क दिए गए मामले के इन गुच्छा के लिए स्वयंसिद्ध कारण है, जबकि राज्य और एसजीपीजीआई ने तर्क दिया है कि उक्त सिफारिश को दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में कानून के अनुसार लागू नहीं किया जा सकता था।

(3) जाहिर है, याचिकाकर्ताओं के दो समूहों द्वारा रिट याचिकाओं का वर्तमान समूह दायर किया गया है; याचिकाकर्ताओं का पहला समूह एसजीपीजीआई के लेखाओं, मंत्रिस्तरीय और सचिवीय संवर्गों में नियोजित है और याचिकाकर्ताओं का दूसरा समूह एसजीपीजीआई में कार्यरत सहायक लेखा-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर हैं।

(4) मामले का सार यह है कि जहां तक लेखा संवर्ग का संबंध है, 1988 से 1991 के बीच 1200-2040/- रुपये के वेतनमान में लेखा लिपिक और कैशियर के पद पर नियुक्त व्यक्तियों को सहायक लेखाकारों के पदों पर उनके कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से या

08.01.1988 से उच्च वेतनमान वर्ष 1400-12300 के साथ पदोन्नति दी गई है जो भी बाद में हो, दिनांक 02.07.1994 के आदेश के तहत वेतन के अंतर का भुगतान किया गया है, जो सभी दिनांक 08.01.1988 के सामान्य निकाय संकल्प की सिफारिश के कारण हुआ है।

(5) इसी प्रकार, सचिवीय संवर्ग के लिए अक्टूबर, 1991 में नियुक्त व्यक्तिगत आशुलिपिकों को 1200-2040/- रुपये के वेतनमान में नियुक्त किया गया है और उन्हें दिनांक 02.04.2003 के आदेश द्वारा कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से 1640-2900/- रुपये का वेतनमान प्रदान किया गया है और वेतन के अंतर का भुगतान किया गया था। जहां तक मंत्रालयिक संवर्ग का संबंध है, व्यक्तिगत टाइपिस्टों, जिन्हें वर्ष 1988 से 1994 के दौरान 950-1500/- के वेतनमान में नियुक्त किया गया था, को उनके कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से अगला उच्च पद और 1200-2040 रुपये का वेतनमान प्रदान किया गया है और उन्हें 03 वर्षों के बाद अगला उच्च पद और वेतनमान 1400-2300 रुपये दिया गया है; और एक अन्य अगला उच्च पद और 05 साल के बाद 1640 -2900 रुपये का वेतनमान दिनांक 20.03.2002 के आदेश द्वारा प्रदान किया गया है। इन सभी पदोन्नतियों और वेतनमानों की मंजूरी भी दिनांक 08.01.1988 के आम सभा संकल्प के कार्यान्वयन द्वारा की गई है। इसके अलावा, इन व्यक्तियों को पदोन्नति और वरिष्ठता सूची में भी लाभ दिया गया है।

(6) तथापि, इसी प्रकार के प्रोन्नति और वेतनमान लाभ मंत्रालयिक संवर्गों के कुछ अन्य कर्मचारियों और एसजीपीजीआई में नियुक्त सहायक लेखा-सह-कम्प्यूटर प्रचालकों (ए.ए.सी.ओ.) को भी नहीं दिए गए थे, जिन्होंने भी संस्थान द्वारा समय-समय पर तैयार की गई वरिष्ठता सूची को चुनौती दी है।

(7) प्रस्तुत निर्णय के तहत, यह न्यायालय निम्नलिखित रिट याचिकाओं का निपटान करने का प्रस्ताव करता है, जो कानून के सामान्य प्रश्न को उठाता है: -

क्रम सं-	व्यक्तियों	राहत का दावा
1.	रिट-ए-902/2011 (अनूप कुमार सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) इस रिट के याचिकाकर्ता अनिवार्य रूप से याचिका कैडर खातों से संबंधित है	एसजीपीजीआई के अध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 15.01.2010 के आदेश को रद्द करते हुए एसजीपीजीआई को दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के लाभ को वापस लेने का निर्देश दिया गया और याचिकाकर्ता को 02.07.1994

		को विस्तारित किया गया। साथ ही सभी को रद्द करने की भी मांग की गई है; शासी निकाय के दिनांक 06.03.2010 के निर्णय जैसे परिणामी आदेश, (घ) अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत संस्थान के निदेशक द्वारा जारी दिनांक 11-10-2010 के आदेश और एसजीपीजीआई के विजिटर द्वारा पारित आदेश दिनांक 11-10-2010 को जारी किया गया था।		बनाम एसजीपीजीआई)	जाना और दिनांक 36 जुलाई, 1998 के तहत याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अभ्यावेदन के निपटान के बाद वरिष्ठता सूची प्रकाशित करने के लिए एसजीपीजीआई को निर्देश देने की प्रार्थना की गई विजिटर को अधिनियम का।
			यह रिट याचिका इस अर्थ में निरर्थक हो गई है कि यद्यपि वरिष्ठता सूची को रद्द नहीं किया गया था, तथापि इन याचिकाकर्ताओं को विजिटर के समक्ष अपने सभी मुद्दों को उठाने की अनुमति दी गई थी और सभी मुद्दों को उठाने के बाद, दिनांक 27062014 को एक अन्य वरिष्ठता सूची प्रकाशित की गई थी, जिसे एक अन्य रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई है, जिस पर वर्तमान मामलों के साथ निर्णय भी लिया जा रहा है.		
2.	*रिट-ए-639/1999 (महेश चन्द्र	दिनांक 21-12-1998 की वरिष्ठता सूची को रद्द किया	3.	रिट-ए-6545/2007 (राम नरेश मौर्य बनाम	परमादेश रिट की प्रार्थना की गई है कि सचिव,

	उत्तर प्रदेश राज्य) इस रिट याचिका के याचिकाकर्ता अनिवार्य रूप से लेखा संवर्ग से संबंधित हैं और उन्हें 25.05.1992 को सहायक लेखाकार-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया था	चिकित्सा शिक्षा की अध्यक्षता में उच्च स्तरीय समिति की सिफारिश, शासनादेश दिनांक 25.01.2006 एवं 06.09.2006 के निदेशानुसार उत्तर प्रदेश सरकार, और उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट दिनांक 07.11.2005 को रखने के लिए, संस्थान को अनुपालन करने का निर्देश दिया जाए। कानून की राय और उत्तर प्रदेश सरकार के वित्त विभाग के शासी निकाय के समक्ष संस्थापित		4. रिट-ए-903/2011 (अरूण कुमार जैसवाल & एएमपी; अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) इस रिट के याचिकाकर्ता अनिवार्य रूप से याचिका मंत्रिस्तरीय है कैडर याचिकाकर्ता संख्या-12, 17, 22, 33 को अनुमति दी गई, आदेश दिनांक 23.05.2018 के तहत वापस लें;	करने के लिए; अध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 15.01.2010 के आदेश को रद्द करते हुए एसजीपीजीआई को शासी निकाय के निर्णय का लाभ वापस लेने का निर्देश दिया गया दिनांक 08.01.1988 को याचिकाकर्ता के लिए इसे बढ़ा दिया गया और 02.07.1994 को याचिकाकर्ता को बढ़ा दिया गया। साथ ही सभी को रद्द करने की भी मांग की गई है। शासी निकाय के दिनांक

		06.03.2010 के निर्णय जैसे परिणामी आदेश, आदेश अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत संस्थान के निदेशक द्वारा जारी दिनांक 11-10-2010 के आदेश और विजिटर द्वारा पारित आदेश दिनांक 11-10-2011 को जारी किया गया था।		29.03.2018 के आदेश द्वारा वापस लेने की अनुमति दी गई थी।	याचिकाकर्ता के लिए इसे बढ़ा दिया गया और 02.07.1994 को याचिकाकर्ता को बढ़ा दिया गया।
5.	रिट-ए-904/2011 (महेन्द्र कुमार वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) इस रिट याचिका का याचिकाकर्ता अनिवार्य रूप से सचिवीय संवर्ग से संबंधित है	अध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 15.01.2010 के आदेश को रद्द करते हुए एसजीपीजीआई को शासी निकाय के निर्णय का लाभ वापस लेने का निर्देश दिया गया		याचिकाकर्ता सं-7 को दिनांक 24.01.2019 के आदेश द्वारा वापस लेने की अनुमति दी गई थी	साथ ही सभी को रद्द करने की भी मांग की गई है। शासी निकाय के दिनांक 06.03.2010 के निर्णय जैसे परिणामी आदेश, आदेश संस्थान के निदेशक द्वारा जारी दिनांक 11-10-2010 के आदेश और दिनांक 25-01-2011 के आदेश अधिनियम की धारा 36 के तहत कुलाध्यक्ष द्वारा पारित किया गया।
	याचिकाकर्ता संख्या-5 और 6 को दिनांक	दिनांक 08.01.1988 को		याचिकाकर्ता संख्या-8, 9 और 10 ने सीएमए संख्या-155962/2022 के माध्यम से रिट याचिका वापस लेने की मांग की;	

6.	#WRIT-ए-3607/2014 (दिनेश चंद्र श्रीवास्तव और अन्य। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)	लेखा अधिकारी के 4 पदों को भरने के लिए डीपीसी आयोजित करने और याचिकाकर्ताओं को पात्र उम्मीदवार मानने की प्रार्थना।
# दिनांक 07082014 के आदेश के तहत मामले का निपटान कर दिया गया था जिसमें दिनांक 28092014 से 2 माह के भीतर डीपीसी आयोजित करने का निर्देश दिया गया था। इसके अलावा, रिट ए-902/2011 में पारित यथास्थिति आदेश का कोई प्रभाव नहीं होगा। इसके बाद, दिलीप सिंह और महेश चंद्र द्वारा सीएमए संख्या 132871/2014 द्वारा रिकॉल आवेदन दायर किया गया है, जिसमें दिनांक 07.08.2014 के आदेश को वापस लेने की प्रार्थना की गई है। इस प्रकार, उक्त आवेदन और निपटान भी लंबित है।		
7.	रिट-ए-3948/2014 (दिलीप सिंह और अन्य। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)	दिनांक 27.06.2014 के कार्यालय जापन द्वारा जारी वरिष्ठता सूची को रद्द करना
8.	रिट-ए-1400/2015	दिनांक 20.02.2015

(दिनेश चंद्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)	के आदेश को और डीपीसी का आयोजन 04.02.2015 को किया गया, रद्द करना।

B- एसजीपीजीआई अधिनियम:

(8) प्रस्तुत मामले के तथ्यों को बताने से पहले, एसजीपीजीआई अधिनियम के प्रावधान को समझना लाभदायक होगा, जो मूल कानून है जिसके तहत शासी निकाय और अन्य पदाधिकारी संस्थान के प्रबंधन और दिन-प्रतिदिन के मामलों के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं।

(9) एसजीपीजीआई संविधि के अंतर्गत सृजित एक स्वायत्त संस्थान है, जिसका नाम संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुवज्ञान संस्थान अधिनियम, 1983 (जिसे इसके बाद 'अधिनियम 1983' कहा गया है) है। अधिनियम की धारा 41 की उप-धारा (2) के अनुसरण में, पहला नियम 2011 में बनाया गया था। इस प्रकार, वर्ष 2011 में एसजीपीजीआई की पहली संविधि तैयार करने के बाद, सरकार के नियम और विनियम तब तक लागू नहीं होते जब तक कि संस्थान द्वारा इसे अपनाया न जाए। चूंकि, विवाद 2011 से पहले के युग से संबंधित है, उक्त विनियमन वर्तमान संदर्भ में बहुत कम मदद करता है। हालाँकि, मूल अधिनियम अपने आप में प्रमुखता प्राप्त करता है।

(10) ऐतिहासिक रूप से, एसजीपीजीआई की स्थापना उत्तर प्रदेश राज्य के एक अधिनियम द्वारा की गई थी, जिसे आमतौर पर 'संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 1983' के रूप में जाना जाता है। अधिनियम, 1983 की धारा 4 में संस्थान की संरचना का प्रावधान है और अधिनियम, 1983 की धारा 7 में संस्थान के उद्देश्य का प्रावधान है। अधिनियम, 1983 की धारा 8 संस्थान के कार्यों से संबंधित है और अधिनियम, 1983 की धारा 9 कहती है कि संस्थान के अधिकारी कौन होंगे। अधिनियम, 1983 की धारा 10 में कहा गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य का राज्यपाल संस्थान का कुलाध्यक्ष होगा और धारा 10 के साथ-साथ अधिनियम, 1983 की धारा 34 और 36 के तहत कुलाध्यक्ष को कुछ व्यापक शक्तियां दी गई हैं। इसी प्रकार, अधिनियम, 1983 की धारा 11 में कहा गया है कि संस्थान का अध्यक्ष उत्तर प्रदेश राज्य का मुख्य सचिव होगा, जो संस्थान के शासी निकाय का अध्यक्ष भी होगा और ऐसी बैठकों की अध्यक्षता करेगा। उक्त धारा राष्ट्रपति को कुछ शक्ति भी प्रदान करती है। अधिनियम, 1983 की धारा 12 और 13 निदेशक की नियुक्ति और अधिनियम, 1983 के तहत उसकी शक्तियों और कर्तव्यों से संबंधित है।

(11) अधिनियम, 1983 की धारा 17 में उल्लेख किया गया है कि संस्थानों के प्राधिकारी कौन होंगे और (क) शासी निकाय; (ख) शैक्षिक बोर्ड; (ग) वित्त समिति; (घ) संस्थान के प्रोफेसरों और विभागाध्यक्षों की नियुक्ति के लिए चयन समिति; (ङ) खंड (घ) में विनिर्दिष्ट शिक्षकों से भिन्न शिक्षकों की

नियुक्ति के लिए चयन समिति; (च) ऐसे अन्य प्राधिकारी जो नियमों में विनिर्दिष्ट किये जाएँ, संस्थान के प्राधिकारी होंगे।

(12) अधिनियम, 1983 की धारा 18 इस बात से संबंधित है कि शासी निकाय में कौन शामिल होगा, जिसमें अध्यक्ष और निदेशक सहित वर्ष 13 व्यक्तियों के नाम शामिल हैं। उक्त खंड में निम्नलिखित की गणना की गई है:

"18. शासी निकाय--

(क) राष्ट्रपति;

(ख) निदेशक;

(ग) उत्तर प्रदेश सरकार के चिकित्सा, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग में पदेन;

(घ) वित्त विभाग में उत्तर प्रदेश सरकार के सचिव, पदेन;

(ङ) चिकित्सा शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश, पदेन;

(च) उत्तर प्रदेश में राज्य चिकित्सा महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों में से दो प्रधानाचार्य

बारी-बारी से राज्य सरकार द्वारा नामित किए जाएंगे;

(छ) संस्थान में विभागाध्यक्ष होने के नाते दो व्यक्तियों को विहित रीति से चक्रानुक्रम में

नामनिर्देशित किया जाना;

(ज) संस्थान के शिक्षकों में से दो व्यक्तियों का चयन विहित रीति से किया जाएगा;

(i) कुलाध्यक्ष द्वारा नामित किए जाने वाले दो व्यक्ति।

(2) किसी पदेन सदस्य की पदावधि तब तक बनी रहेगी जब तक वह वह पद धारण करता है जिसके आधार पर वह सदस्य है,

(3) उपधारा (1) के खंड (च) या खंड (छ) या खंड (i) के अधीन नामनिर्दिष्ट किसी सदस्य की पदावधि उसके नामांकन की तारीख से तीन वर्ष की होगी।

(4) उपधारा (1) के खंड (ज) के अधीन किसी सदस्य की पदावधि उस वर्ष की, जिसमें वह निर्वाचित हुआ है, जनवरी के प्रथम दिन से दो वर्ष की होगी।

(5) किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए नाम-निर्देशित सदस्य की पदावधि उस सदस्य की शेष अवधि तक बनी रहेगी, जिसके स्थान पर उसे नामनिर्देशित किया गया है।

(6) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन नामनिर्देशित कोई सदस्य तब तक पद पर बना रहेगा जब तक उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को सदस्य के रूप में नामनिर्देशित नहीं कर दिया जाता है।

(7) शासी निकाय ऐसे समय और स्थान पर अधिवेशन करेगा जो सभापति समय-समय पर आयोजित करे; बशर्ते कि शासी निकाय तीन महीने में कम से कम एक बार बैठक करेगा।

(8) शासी निकाय द्वारा किसी बैठक में या अन्यथा या अपनी शक्ति के प्रयोग में या अपने कृत्यों के निर्वहन में व्यवसाय के संचालन के लिए पालन की जाने वाली प्रक्रिया वह होगी जो विनियमों में निर्धारित की जा सकती है।

(9) ऐसे नियंत्रण और निर्बंधों के अधीन रहते हुए, जो विहित किये जाएँ, शासी निकाय इस अधिनियम के अधीन किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने या किन्हीं कृत्यों का निर्वहन करने के लिये ऐसी समितियाँ गठित कर सकेगा, जो वह ठीक समझे।

(13) अधिनियम, 1983 की धारा 19 में उल्लेख किया गया है कि शासी निकाय संस्थान के मामलों के सामान्य अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के लिए जिम्मेदार होगा। उक्त धारा में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है:

"19. शासी निकाय के कृत्य - (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, शासी निकाय संस्थान के कार्यकलाप के साधारण अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के लिये उत्तरदायी होगा

(2) उपधारा (1) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, शासी निकाय

(क) संस्थान के कार्यों के प्रशासन और कार्यकरण से संबंधित नीति के प्रश्नों पर

संस्थान के निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए कदम उठाएगा;

(ख) संस्थान में अध्ययन पाठ्यक्रम संस्थापित करेगा और सभी अकादमिक विषयों पर, जिनके अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित परीक्षाओं से संबंधित विषय भी हैं, विद्या बोर्ड की सलाह पर विनिश्चय करेगा;

(ग) संस्थान की संपत्ति और निधियों को धारण और नियंत्रित करेगा;

(घ) संस्थान की ओर से किसी चल या स्थावर संपत्ति का अर्जन या अंतरण कर सकेगा;

(ङ) विशिष्ट प्रयोजनों के लिए संस्थान के निपटान में रखी गई किसी भी निधि का प्रशासन करेगा;

(च) संस्थान के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के पदों का सृजन या उन्हें समाप्त कर सकेगा;

(छ) संस्थान के वित्त, लेखा, निवेश, संपत्ति, कारबार और अन्य सभी प्रशासनिक कार्यों का प्रबन्ध और विनियमन कर सकेगा और उस प्रयोजन के लिये ऐसे अभिकर्ता को नियुक्त कर सकेगा जो वह ठीक समझे;

(ज) संस्थान से संबंधित किसी भी धन (ट्रस्ट और संपन्न संपत्ति से किसी भी

आय सहित) को ऐसे स्टॉक, फंड, शेयरों या प्रतिभूतियों में निवेश कर सकता है जो समय-समय पर ठीक समझेगा;

(i) संस्थानों की ओर से संविदाओं में प्रवेश कर सकते हैं, उनमें परिवर्तन कर सकते हैं, कार्य कर सकते हैं और उन्हें रद्द कर सकते हैं;

(ज) इस अधिनियम और शासक तथा उसके अधीन बनाए गए विनियमों के अनुसार संस्थान से संबंधित अन्य सभी विषयों का विनियमन और अवधारण कर सकेगा।

(14) इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1983 की धारा 21 वित्त समिति के गठन और उसके कर्तव्यों के बारे में कहती है। धारा 21 में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है:

"21. वित्त समिति. (1) वित्त समिति निम्नलिखित से मिलकर बनेगी:-

(क) निदेशक, जो समिति का अध्यक्ष भी होगा;

(ख) सचिव, जो चिकित्सा, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग में उत्तर प्रदेश सरकार का है

या उनके नामिती हैं;

(ग) वित्त विभाग में उत्तर प्रदेश सरकार का सचिव, या उसका नामिती;

(घ) शासी निकाय द्वारा उसके सदस्यों में से दो व्यक्तियों को नामनिर्देशित किया जाना;

(ई) कार्यकारी रजिस्ट्रार;

(च) वित्त अधिकारी, जो समिति का सचिव भी होगा।

(2) वित्त समिति, संस्थान की आय और संसाधनों को ध्यान में रखते हुए, आगामी वित्तीय वर्ष के लिए आवर्ती और अनावर्ती व्यय के संबंध में पालन की जाने वाली सीमाओं और सिद्धांतों सहित संस्थान की संपत्ति और निधियों के प्रशासन से संबंधित मामलों पर शासी निकाय को सलाह देगी।

(3) वित्त समिति के पास ऐसी अन्य शक्तियाँ और कर्तव्य होंगे जो विहित किये जाएँ।

(15) अधिनियम, 1983 की धारा 29 में कहा गया है कि संस्थान के सभी आदेशों और निर्णयों को अध्यक्ष या संस्थान द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य या अधिकारी के हस्ताक्षर द्वारा अधिप्रमाणित किया जाएगा और अन्य सभी लिखतों को इस निमित्त उसी रीति से प्राधिकृत निदेशक या संस्थान के किसी अन्य अधिकारी के हस्ताक्षर द्वारा अधिप्रमाणित किया जाएगा। अधिनियम, 1983 की धारा 30 किसी भी रिक्तियों आदि के कारण संस्थान द्वारा किसी भी कार्यवाही के अमान्यकरण की रक्षा करती है, जबकि

अधिनियम, 1983 की धारा 33 संस्थान पर राज्य सरकार के नियंत्रण को निर्धारित करती है, जो इस अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है और इस अधिनियम के तहत संस्थान के मामलों के कुशल प्रशासन के प्रयोजनों के लिए, अधिनियम, 1983 की धारा 35 राज्य सरकार को प्रमुखता देती है, यदि अधिनियम, 1983 के तहत शक्ति के प्रयोग और उसके कार्यों के निर्वहन के संबंध में संस्थान और राज्य सरकार के बीच कोई विवाद है। अधिनियम, 1983 की धारा 36 में कुलाध्यक्ष के संदर्भ की बात कही गई है और अधिनियम, 1983 के तहत संस्थान के प्रशासन से उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के प्रश्नों पर विचार करने की व्यापक शक्ति दी गई है।

(16) यद्यपि विनियम बनाने की शक्ति से संबंधित अधिनियम, 1983 की धारा 41 में कहा गया है कि संस्थान, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, किसी ऐसे मामले के लिए उपबंध करने के लिए विनियम बना सकेगा जिसका विनियम द्वारा उपबंध किया जाना है या किया जा सकता है, तथापि, अधिनियम, 1983 के अधीन बनाए गए किसी विनियम पर तर्क नहीं दिया गया है या वर्ष 2011 से पहले इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया है।

C. मामले के तथ्य

(i) शासी निकाय की सिफारिश दिनांक 08-01-1988

(17) चूंकि, रिट याचिकाओं के इन समूहों में सामान्य तथ्य शामिल हैं, इसलिए लीड मैटर

के रिट-ए-902 वर्ष 2011 होने के तथ्यों को इस न्यायालय के विचार के लिए लिया जा रहा है। रिट याचिका में किए गए कथन के अनुसार, याचिकाकर्ताओं को 1987-1990 की अवधि के दौरान कैशियर/लेखा लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था। यह संस्करण एसजीपीजीआई की वित्त समिति की 16.09.1987 को हुई बैठक से सामने आती है, जिसमें राज्य सरकार के विभागाध्यक्षों (एच.ओ.डी.) के कार्यालयों में ऐसे कर्मचारियों के लिए उपलब्ध अधिकतम अनुमेय वेतनमानों के बराबर अनुसचिवीय स्टाफ, लेखा स्टाफ और सचिवीय कर्मचारियों के वेतनमानों में संशोधन के संबंध में सिद्धांत रूप से निर्णय लिया गया था। उक्त समिति की बैठक में संस्थान में समान पद के लिए विभागाध्यक्षों में ऐसे कर्मचारियों के बराबर योग्यता रखने पर भी सहमति हुई थी।

(18) उपर्युक्त बैठक के आधार पर, वित्त समिति ने 31.10.1987 को आयोजित अपनी बैठक में संस्थान के लेखाओं/मंत्रालयी/सचिवीय संवर्गों में कार्यरत कर्मचारियों के वेतनमान/पुनर्पदनाम को संशोधित करने का निर्णय लिया, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि 400-615/- रुपये के वेतनमान वाले लेखा लिपिक/लेखा लिपिक-सह-कैशियर/कैशियर के पदों को 515-860/- रुपये के वेतनमान वाले सहायक लेखाकारों के पद पर पुनः पदनामित किया जाए।

(19) स्पष्टतया, उपर्युक्त निर्णय को शासी निकाय द्वारा दिनांक 08.01.1988 की बैठक में अनुसमर्थन दिया गया था और संस्थान के

निकाय द्वारा 22.04.1988 को अनुमोदित भी किया गया था। उपर्युक्त निर्णय के कार्यान्वयन और शासी निकाय के अनुसमर्थन को टाला गया जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 14-12-1992 को अभ्यावेदन प्राप्त हुआ। अभ्यावेदन की एक श्रृंखला के बाद, दिनांक 02.07.1994 को ही एसजीपीजीआई के निदेशक ने शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के उक्त निर्णय को लागू करने के बारे में सोचा और इस प्रकार याचिकाकर्ताओं को 08.01.1988 से या उनके कार्यभार ग्रहण करने की संबंधित तिथि से, जो भी बाद में हो, पूर्व के वेतनमान और मौजूदा वेतनमान 400-615/- रुपये (1200-2040/- रुपये) के स्थान पर 515-860/- रुपये (संशोधित 1400-2300/- रुपये) के वेतनमान में सहायक लेखाकार के रूप में फिर से पदनामित किया गया।

(ii) शासनादेश दिनांक 05-03-1991

(20) उक्त संशोधन "चुनौतियों में" रहा है क्योंकि इसे 08.01.1988 और 01.07.1994 की मध्यवर्ती अवधि के दौरान पदनाम और वेतनमान से संबंधित कुछ अन्य एक साथ विकास के संदर्भ के बिना लागू किया गया था। गौरतलब है कि राज्य सरकार ने एसजीपीजीआई के सभी कर्मचारियों और अधिकारियों के वेतन को एम्स, नई दिल्ली के कर्मचारियों के बराबर संशोधित करने पर सैद्धांतिक सहमति व्यक्त की, जिसके परिणामस्वरूप 01.08.1990 को सरकारी आदेश जारी किया गया जिसमें वित्त विभाग की सहमति से वेतनमानों में संशोधन का प्रावधान किया गया। उक्त घटनाक्रम को आगे

बढ़ाते हुए, राज्य सरकार ने स्वीकार किया कि दिनांक 05.03.1991 को एक अन्य सरकारी आदेश जारी किया गया जिसमें एसजीपीजीआई के कर्मचारियों के वेतनमान को एम्स, नई दिल्ली के कर्मचारियों के बराबर संशोधित किया गया। उक्त संशोधन के अनुसार कैशियर/लेखा लिपिकों को 1200-2040/- रुपये का पुनरीक्षित वेतनमान उपलब्ध कराया गया था, जबकि सहायक लेखाकारों को 1400-2300/- रुपये के वेतनमान में प्रवेश दिया गया था। स्पष्टतया, वेतनमान में उक्त संशोधन दिनांक 01-08-1990 के सरकारी आदेश के पारित होने के पश्चात् गठित समतुल्यता समिति (रणधार समिति) की सिफारिश के आधार पर किया गया था।

(iii) ए.ए.सी.ओ. की नियुक्ति

(21) वर्ष 1992 में इन कैशियर/लेखा लिपिकों को सहायक लेखाकार के पद पर पदोन्नत करने के लिए विभागीय पदोन्नति समिति (डीपीसी) का गठन किया गया था। तथापि, उक्त डीपीसी को रोक लिया गया था और संस्थान ने सहायक लेखाकार-सह-कम्प्यूटर ऑपरेटर (ए.ए.सी.ओ.) के पद पर सीधे चयन करने के लिए विज्ञापन जारी किया था। याचिकाकर्ताओं ने आशंका जताई कि उक्त सीधी भर्ती सहायक लेखाकार के उनके पद के बराबर की जा रही थी, जिसके लिए वे प्रतिस्पर्धा कर रहे थे, उन्होंने एक रिट याचिका दायर की जिसमें संख्या-2358 वर्ष 1992 थी, जिसमें संस्थान का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता के बयान पर इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 24.04.1992

को एक आदेश पारित किया गया था कि दो संवर्गों यानी "सहायक लेखाकार" और "सहायक लेखाकार-सह-कम्प्यूटर ऑपरेटर" का विलय नहीं किया जा रहा है जैसा कि उन्होंने अलग योग्यता का संकेत दिया था। उक्त मामले के तथ्यों पर, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने संस्थान को जल्द से जल्द डीपीसी आयोजित करने का निर्देश दिया, जो 7 सितंबर, 1991 से लंबित था।

(22) स्पष्ट रूप से, डीपीसी पूर्वोक्त निदेश के अनुसार आयोजित नहीं की गई थी, तथापि, संस्थान ने सहायक लेखाकार-सह-कम्प्यूटर ऑपरेटर के पद पर भर्ती के साथ आगे बढ़ाया, जो रिट याचिकाओं के अन्य सेट में याचिकाकर्ता हैं और संस्थान द्वारा तैयार की गई वरिष्ठता सूची को हरी झंडी दिखाई है।

(iv) दिनांक 03-01-1997 की संवर्ग समीक्षा

(23) इसी बीच, शासी निकाय ने दिनांक 03.01.1997 को आयोजित अपनी 43वीं बैठक में वित्त समिति की दिनांक 01.01.1997 की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए संस्थान के कर्मचारियों के संबंध में संवर्ग समीक्षा के साथ-साथ वेतनमान और पदोन्नति के अवसर प्रदान किए। एसजीपीजीआई के गैर-संकाय कर्मचारियों के लिए संवर्ग समीक्षा और पदोन्नति नीति को शासी निकाय द्वारा 03.01.1997 को एम्स, नई दिल्ली के समान अनुमोदित किया गया था। शासी निकाय ने अपनी 43वीं बैठक में सभी कर्मचारियों को भर्तों के एम्स पैकेज को समान रूप से लागू करने का निर्णय लिया और भविष्य में भी एम्स में होने वाले बदलावों

की तरह एसजीपीजीआई में बदलावों को लागू करने का सैद्धांतिक रूप से निर्णय लिया। इस प्रकार, रिट याचिकाओं के पहले सेट (रिट संख्या-90 वर्ष 2011, 903 वर्ष 2011 और 904 वर्ष 2011) के याचिकाकर्ताओं द्वारा लिया गया आधार यह है कि एम्स के साथ कैडर संरचना की समानता 03.01.1997 से प्रभावी थी, न कि 05.03.1991 से जैसा कि पूर्ववर्ती पैराग्राफ में उल्लेख किया गया है। इस न्यायालय के अनुसार, एसजीपीजीआई के कर्मचारियों पर एम्स के भत्ते का पैकेज लागू होने की तारीख क्या थी, यह निर्धारण 05.03.1991 के सरकारी आदेश से ही स्पष्ट है और प्रस्तुत मामले के तथ्यों को देखते हुए आगे विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है।

(24) रिट ए - 902 वर्ष 2011 में याचिकाकर्ताओं ने अपने मामले को पुष्ट करने के लिए शासी निकाय द्वारा 03.01.1997 को अनुमोदित वित्त और लेखा संवर्ग के पुनर्गठन की मुख्य विशेषता को भी चिह्नित किया है और तर्क दिया है कि सहायक लेखाकार के 22 पद प्रवेश स्तर पर अनुमोदित किए गए थे, जिनमें से 8 पद संस्थान में उपलब्ध थे। 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय द्वारा लेखा लिपिकों के पुनः नामित पद से 8 पदों पर विचार किया गया था, कैशियर के 4 पद को इस पद में मिला दिया गया था और वरिष्ठ लेखा परीक्षक के शेष 2 पद को भी 08.01.1988 से सहायक लेखाकार के रूप में पुनः पदनामित किया गया था। इस प्रकार, उनके द्वारा यह कहा गया था कि लेखा लिपिक/कैशियर के नामकरण में कोई भी पद लेखा संवर्ग में नहीं रहा और पुनर्गठन के बाद

उक्त संवर्ग में प्रवेश पद 1400-2300/- रुपये के वेतनमान में सहायक लेखाकार था न कि 1200-2040/- रुपये के वेतनमान में लेखा लिपिक/कैशियर था।

(25) इन याचिकाकर्ताओं ने कहा है कि संवर्ग पुनर्गठन के अनुसार, कनिष्ठ लेखा अधिकारी के नए पद एम्स के समान सृजित किए गए थे और उक्त पद एक पदोन्नति पद था, जिसे सहायक लेखाकारों में से भरा जाना था, जिन्होंने ग्रेड में 5 वर्ष की सेवा की थी और पदोन्नति के लिए मानदंड वरिष्ठता थी बशर्ते कि अयोग्य की अस्वीकृति हो। तदनुसार, कुछ याचिकाकर्ताओं को दिनांक 23-12-1998 के आदेश द्वारा कनिष्ठ लेखा अधिकारी के रूप में पदोन्नत किया गया था और अन्य को दिनांक 03-01-2002 के आदेश द्वारा पदोन्नत किया गया था।

(v) 27-11-2001 को संवर्ग का पुनर्गठन

(26) इसके अतिरिक्त, संवर्ग की एक अन्य पुनर्संरचना दिनांक 27-11-2001 को शासी निकाय द्वारा अनुसमथत वित्त समिति द्वारा 08-10-2001 को प्रभावी की गई थी, जिसमें सहायक लेखाकार और कनिष्ठ लेखा अधिकारी के पद के बीच सहायक लेखा अधिकारी का एक नया पद सृजित किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 18.03.2002 के कुछ कार्यालय जापन के माध्यम से 03.01.2002 से सहायक लेखा अधिकारी के रूप में आगे पदोन्नत होने का दावा किया।

(vi) ए.ए.सी.ओ. का मामला

(27) शासी निकाय द्वारा दिनांक 03-01-1997 को किए गए प्रावधान के अनुसार, ए.ए.सी.ओ. के पद को कम्प्यूटर संवर्ग में वर्गीकृत किया गया था। हालांकि, इस वर्गीकरण के खिलाफ ए.ए.सी.ओ. के पद पर व्यक्तियों द्वारा अभ्यावेदन दिए गए थे। ए.ए.सी.ओ. द्वारा दिनांक 06-06-1997 को उन्हें लेखा संवर्ग में आमेलित करने और उन्हें कनिष्ठ लेखा अधिकारी, सहायक लेखाकार से उच्चतर पद के रूप में पुनः पदनामित करने के लिए एक संयुक्त अभ्यावेदन दिया गया था।

(28) ए.ए.सी.ओ. के अभ्यावेदनों पर, वित्त समिति ने अपनी 40 वीं बैठक में ए.ए.सी.ओ. के सहायक लेखाकार के स्तर पर लेखा संवर्ग के साथ 1400-2300 रुपये के वेतनमान में विलय करने पर सहमति व्यक्त की। वित्त समिति ने आगे सिफारिश की कि सहायक लेखाकार के साथ उनकी वरिष्ठता का निर्धारण पैनल की तारीख से किया जाएगा जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया गया था। कि उपर्युक्त वित्त समिति की सिफारिशों को शासी निकाय द्वारा 04-05-1998 को हुई अपनी बैठक में अनुमोदित कर दिया गया था।

(29) कि शासी निकाय द्वारा 04.05.1998 को लिए गए निर्णय के आलोक में, 26.09.1998 को एक अनंतिम वरिष्ठता सूची प्रकाशित की गई थी और आपत्तियां मांगी गई थीं और अंतिम वरिष्ठता सूची 21.12.1998 को प्रकाशित की गई थी। दिनांक 26.09.1998 के आदेश में आगे कहा गया है कि ए.ए.सी.ओ. को सहायक लेखाकार के स्तर पर लेखा संवर्ग

में 1400-2300/- रुपये के वेतनमान में मिला दिया गया था।

(30) इस बीच, 08.01.1988 के निर्णय के कार्यान्वयन से पहले सीधी भर्ती के माध्यम से सहायक लेखाकार-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्त व्यक्तियों (रिट संख्या-902 वर्ष 2011 के याचिकाकर्ताओं के संबंध में) दिनांक 02.07.1994 के आदेश के माध्यम से, शासी निकाय द्वारा दो संवर्गों के विलय और 04.05.1998 के सरकारी आदेश के निर्णय के बाद, याचिकाकर्ताओं के ऊपर और ऊपर वरिष्ठता के अपने मामले को आंदोलन करना शुरू कर दिया और रिट भी दायर की याचिका संख्या-2939 (एस.एस.) वर्ष 1998, 5609 (एस.एस.) वर्ष 1998, 639 (एस.एस.) वर्ष 1999 और संख्या-6545 (एस.एस.) वर्ष 2007, जिसके द्वारा उन्होंने अपनी वरिष्ठता, विलय और 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के गलत कार्यान्वयन को चुनौती दी थी। इस प्रकार, रिट-ए-639 वर्ष 1999 के नेतृत्व में रिट याचिका का दूसरा सेट इस ए.ए.सी.ओ. द्वारा उक्त दो पदों के विलय के बाद 21.12.1998 को जारी संयुक्त वरिष्ठता सूची को चुनौती देते हुए दायर किया गया, जिसे वर्तमान सामान्य (संयुक्त) निर्णय में इस न्यायालय द्वारा भी तय किया जाना है।

(31) इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने 13.12.1999 को रिट याचिका संख्या-639 (एस.एस.) वर्ष 1999 की सुनवाई करते हुए, बशर्ते कि पदोन्नति, जब तक कि वरिष्ठता विवाद को सरकार द्वारा अंतिम रूप से निर्धारित नहीं किया जाता है, दिनांक

21.12.1998 की वरिष्ठता सूची, जिसे चुनौती दी गई है, के अनुसरण में नहीं होगी। दिनांक 21.12.1998 की वरिष्ठता सूची की पुष्टि संस्थान द्वारा दिनांक 14.07.2000 के आदेश द्वारा की गई थी।

(32) एक और 'कैंडर समीक्षा और पदोन्नति नीति' को 27.11.2001 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित किया गया था और वरिष्ठता के क्रम में पात्र कर्मचारियों को 03.01.2002 से पदोन्नत किया गया था, लेकिन सूची में कनिष्ठ होने के कारण, इन ए.ए.सी.ओ. को पदोन्नत होने से बाहर रखा गया था। इस प्रकार, इन याचिकाकर्ताओं में वरिष्ठता सूची को चुनौती दी गई है।

(vii) शासी और सचिवीय संवर्ग के लिए दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय का कार्यान्वयन:

(33) जहां तक लेखा संवर्ग के कर्मचारियों का संबंध है, शासी निकाय की दिनांक 08-01-1988 की सिफारिश दिनांक 02-07-1994 को कार्यान्वित की गई, तथापि, जहां तक अन्य दो संवर्गों नामत मंत्रिस्तरीय और सचिवालयीय का संबंध है, यद्यपि शासी निकाय की दिनांक 08-01-1988 की सिफारिश 01-01-1998 को कार्यान्वित की जाने लगी, तथापि, बाद में दिनांक 06-03-1998 के आदेश द्वारा इसे रद्द कर दिया गया और इस प्रकार इन दोनों संवर्गों के कर्मचारियों ने विजिटर के समक्ष अधिनियम, 1983 की धारा 36 के अंतर्गत संदर्भ याचिका दायर की गई थी, जिसमें दिनांक

23-08-1999 के आदेश के तहत विजिटर द्वारा इस मुद्दे को चिकित्सा शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश राज्य को भेजा गया था। बाद में, दिनांक 13-02-2002 के कार्यालय आदेश के तहत राज्य सरकार ने निर्णय को कार्यान्वित करने का निर्णय लिया और दिनांक 01-01-1998 के पूर्व कार्यान्वयन आदेश को भी उचित माना और दिनांक 06-03-1998 के निरस्तीकरण के आदेश को रद्द कर दिया।

(34) इस प्रकार, एसजीपीजीआई ने दिनांक 20.03.2002 और 02.04.2003 को कार्यालय आदेश जारी किए कि शासी निकाय के निर्णय दिनांक 08.01.1988 से क्रमशः मंत्रिस्तरीय और सचिवीय संवर्गों को दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के लाभ प्रदान किए जाएं, जो राज्य सरकार के दिनांक 13.02.2002 के निर्देश के अनुसरण में है। स्पष्टतया, दिनांक 08.01.1988 और 13.02.2002 के बीच की अवधि में मंत्रालयिक संवर्ग में नियुक्त कुछ कर्मचारियों ने शासी निकाय के निर्णय के देर से कार्यान्वयन से व्यथित महसूस किया क्योंकि 08-01-1988 से कर्मचारियों को भर्ती किए गए वेतन की तुलना में उनका वेतन अपेक्षाकृत कम था क्योंकि वेतनमान समान था, तथापि अधिक वेतनवृद्धियां प्रदान किए जाने के कारण उनका वेतन अधिक हो गया था। हालांकि, वरिष्ठता से संबंधित कोई मुद्दा नहीं था क्योंकि इसे संरक्षित किया गया था।

(viii) ए.ए.सी.ओ.एस और सहायक लेखाकारों के बीच विवाद

(35) इसी बीच, राज्य सरकार ने दिनांक 15-05-2000 के कार्यालय आदेश द्वारा यह निर्णय देते हुए विवाद को विराम दिया कि दोनों संवर्गों के विलय की तारीख के समान वेतनमान में कार्यरत व्यक्तियों की वरिष्ठता का निर्धारण उनकी मूल नियुक्ति की तारीख से किया जाएगा और विभिन्न वेतनमानों वाले पदधारियों की वरिष्ठता उच्चतर वेतनमानों के आधार पर निर्धारित की जाएगी। इस प्रकार, जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट-ए-902 वर्ष 2011 में कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता और ए.ए.सी.ओ. दोनों का 04.05.1998 को समान वेतनमान था यानी 1400-2300 रुपये, विलय की तारीख पर, संस्थान के निदेशक ने राज्य सरकार के दिनांक 15.05.2000 के कार्यालय आदेश के अनुरूप 14.07.2000 को एक आदेश जारी किया जिसमें 21.12.1998 की पूर्व वरिष्ठता सूची की पुष्टि की गई थी।

(36) उपर्युक्त पृष्ठभूमि में और कर्मचारियों के बीच प्रासंगिक विवाद होने के कारण, संस्थान की वित्त समिति ने इस मुद्दे की जांच करने के लिए दिनांक 10.03.2005 के अपने निर्णय के तहत एक उप-समिति का गठन किया। उप-समिति ने दिनांक 07-11-2005 को हुई अपनी बैठक में शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय के कार्यान्वयन को अवैध घोषित किया, तथापि, 03.01.997 (?) और 27.11.2001 को संवर्ग के पुनर्गठन को वैध और सही माना गया। इस प्रकार, उप-समिति ने लेखा संवर्ग, मंत्रालयिक संवर्ग और सचिवालयी संवर्ग के कर्मचारियों को दिए गए लाभों को वापस लेने की सिफारिश की और वसूली करने की भी सिफारिश की।

(37) जाहिर है, दिनांक 07.11.2005 की सिफारिश ए.ए.सी.ओ. के लाभ के लिए थी, जो याचिकाकर्ताओं पर वरिष्ठता के लिए होड़ कर रहे थे और इस तरह उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका संख्या-6545 वर्ष 2007 को दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उपसमिति की 07.11.2005 की उक्त सिफारिश को आगे बढ़ाने के लिए प्रार्थना की गई थी। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने रिट याचिका संख्या-6545 (एस/एस) 2007 में पारित दिनांक 15.10.2007 के एक आदेश के तहत, शासी निकाय को कानून के अनुसार कार्रवाई करने का निर्देश दिया, हालांकि शासी निकाय ने 15.10.2007 के अपने निर्णय के माध्यम से एक और उप-समिति के गठन का निर्देश दिया, जिसमें फिर से 08.01.1988 के शासी निकाय की सिफारिश से संबंधित मामले पर विचार किया जाना था।

(38) दिनांक 15-10-2007 के निर्णय के अनुसार दूसरी उप-समिति गठित की गई थी और इसमें प्रधान सचिव, विधि विभाग, प्रधान सचिव, वित्त विभाग, वित्त अधिकारी, एसजीपीजीआई और चिकित्सा अधीक्षक/एसजीपीजीआई के सदस्य सचिव शामिल थे। प्रधान सचिव की अनुपस्थिति में 16-01-2008 को हुई बैठक में दूसरी उप-समिति इस निर्णय पर पहुंची कि शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय के कार्यान्वयन के कारण लेखा संवर्ग में कोई विसंगति नहीं थी और उसने इसे जारी रखने की सिफारिश की। समिति ने सचिवीय संवर्ग में किसी निर्णय का प्रस्ताव नहीं किया क्योंकि

उक्त संवर्ग में कोई विवाद नहीं था, हालांकि जहां तक मंत्रालयिक संवर्ग का संबंध था, समिति ने कर्मचारियों के वेतन संरक्षण का प्रस्ताव किया जो कर्मचारी की तुलना में कम प्रतीत होता था, जिसे 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय का लाभ दिया गया था। उक्त वेतन संरक्षण दिनांक 02.04.2003 के आदेश से दिया गया था, जिसके आधार पर शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के निर्णय को लागू किया गया था।

(39) इसके अतिरिक्त, दूसरी समिति के दिनांक 16-01-2008 के प्रस्ताव/रिपोर्ट को दिनांक 01-03-2008 को शासी निकाय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था जिसने संस्थान से राज्य सरकार के वित्त विभाग के परामर्श से कार्यान्वयन पर अंतिम निर्णय लेने की सिफारिश की थी। हालांकि, मंत्रालयिक संवर्ग के कई कर्मचारियों ने दिनांक 02.04.2003 और 20.03.2002 के कार्यालय आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए वर्ष 2009 की रिट याचिका दायर की और 07.11.2005 की पहली उप-समिति की रिपोर्ट और बाद के सरकारी आदेश दिनांक 25.01.2006 और 06.09.2006 के आलोक में शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के निर्णय पर अंतिम निर्णय लेने के लिए निर्देश मांगे गए थे और इस तरह उन्हें समान लाभ देने के लिए निर्देश मांगा गया था। समिति की दिनांक 16-01-2008 की रिपोर्ट के आलोक में यह संख्या उनके कनिष्ठ अधिकारियों के समतुल्य है। इसके अतिरिक्त, जहां तक उक्त रिट याचिका का संबंध है, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 15-10-2009 के आदेश द्वारा संस्थान के

अध्यक्ष को कानून के अनुसार शासी निकाय की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए और एक मौखिक और तर्कसंगत आदेश द्वारा निर्णय लेने का निदेश दिया।

(40) उपर्युक्त निदेश के अनुसरण में, संस्थान के अध्यक्ष, जो अधिनियम, 1983 की धारा 11 के अनुसार राज्य सरकार के मुख्य सचिव भी हैं, ने दिनांक 15-01-2010 को एक निर्णय लिया जिसमें यह टिप्पणी की गई थी कि एक बार संस्थान के गैर-शिक्षण कर्मचारियों को एम्स कर्मचारी के वेतन समता का लाभ दिया गया था। शासी निकाय के दिनांक 08-01-1998 के निर्णय के कार्यान्वयन से पूर्व, याचिकाकर्ताओं को कोई लाभ प्रदान करना राज्य सरकार द्वारा जारी आदेशों के विरुद्ध था और राज्य द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था और इस प्रकार कार्यान्वयन के योग्य नहीं था और तदनुसार वसूली के लिए सिफारिश की गई थी।

(41) संस्थान के अध्यक्ष का दिनांक 15.01.2010 का उक्त निर्णय संस्थान के शासी निकाय के समक्ष रखा गया था। इसके बाद शासी निकाय ने दिनांक 06-03-2010 की अपनी सिफारिश द्वारा अध्यक्ष के निर्णय का अनुमोदन कर दिया और संस्थान के निदेशक को कानून के अनुसार तदनुसार कार्य करने के लिए प्राधिकृत किया। तत्पश्चात्, संस्थान के निदेशक ने रिट याचिकाओं के प्रथम सेट के याचिकाकर्ताओं को दिनांक 01-07-2010 को कारण बताओ नोटिस जारी किया और उनसे अपना उत्तर/अभ्यावेदन दाखिल करने को कहा।

(42) इसके अतिरिक्त, एसजीपीजीआई के निदेशक के उक्त कारण बताओ नोटिस के अभ्यावेदन का भी कोई परिणाम नहीं निकला, क्योंकि एसजीपीजीआई के निदेशक ने दिनांक 11-10-2010 के अपने आदेश के तहत अध्यक्ष/शासी निकाय के पूर्व आदेश को दोहराया, सिवाय इस तथ्य के कि याचिकाकर्ताओं की स्थिति अब दिनांक 05-03-1991 के सरकारी आदेश के अनुसार निर्धारित की जानी थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं ने तीन आदेशों से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष 7570 वर्ष 2010 की एक रिट याचिका दायर की, जिसमें इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने अधिनियम, 1983 की धारा 36 के मद्देनजर मामले को विजिटर को भेजकर दिनांक 02.11.2010 के आदेश के तहत उक्त रिट याचिका का निपटारा किया।

(43) इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 1983 की धारा 36 के अनुसार कुलाध्यक्ष के समक्ष एक विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, तथापि उक्त संदर्भ को भी दिनांक 25-01-2011 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था और इस प्रकार याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिकाओं का पहला सेट दायर किया है जिसमें एसजीपीजीआई के अध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 15-01-2010 के आदेश को रद्द करने की मांग की गई है जिसमें एसजीपीजीआई को शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय का लाभ वापस लेने का निदेश दिया गया है और याचिकाकर्ताओं को 02.07.1994 से 02.07.1994 तक का समय दिया गया है। इसके अतिरिक्त, सभी परिणामी आदेशों, जैसे

शासी निकाय का दिनांक 06-03-2010 का निर्णय, संस्थान के निदेशक द्वारा जारी दिनांक 11-10-2010 का आदेश और अधिनियम, 1983 की धारा 36 के अंतर्गत कुलाध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 25-01-2011 का आदेश, को रद्द करने की भी मांग की गई है।

(44) जैसा कि पूर्वोक्त तथ्यों में पहले ही बताया जा चुका है, इसी तरह की दो अन्य याचिकाएं रिट संख्या-903 वर्ष 2011 और 904 वर्ष 2011 क्रमशः मंत्रिस्तरीय और सचिवीय संवर्ग के समान परिस्थितिजन्य कर्मचारियों द्वारा दायर की गई थीं। इन याचिकाओं का राज्य, एसजीपीजीआई के साथ-साथ सहायक लेखा-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर (ए.ए.सी.ओ.) के रूप में नियुक्त कर्मचारियों द्वारा विरोध किया गया था, जिन्होंने समान व्यवहार का दावा किया था और इस तरह वरिष्ठता सूची, समान व्यवहार और डीपीसी की घोषणा/कार्यान्वयन को चुनौती देते हुए पांच रिट याचिकाएं दायर की हैं, जिसमें रिट संख्या-639 वर्ष 1999, रिट संख्या-6545 वर्ष 2007 और रिट संख्या-3948 वर्ष 2014 वरिष्ठता सूची को चुनौती देने के लिए है और रिट याचिका संख्या-3607 (एस/एस) वर्ष 2014 थी, डीपीसी और रिट संख्या-1400 (एस/एस) वर्ष 2015 की घोषणा / कार्यान्वयन के लिए दायर किया गया।

(45) यद्यपि, उक्त याचिकाकर्ताओं को राहत प्रदान करते हुए रिट याचिका संख्या-3607 (एस/एस) वर्ष 2014 दिनांक 07.08.2014 के आदेश द्वारा निपटाया गया था, तथापि, बाद

में सी.एम.आवेदन संख्या-132871 वर्ष 2014 दिलीप सिंह और महेश चंद द्वारा दिनांक 07.08.2014 के उक्त आदेश को वापस लेने की प्रार्थना की गई है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर कि दिनांक 07.08.2014 का आदेश भौतिक तथ्य छिपाकर प्राप्त किया गया है। चूंकि लंबित सीएम आवेदन संख्या-132871 वर्ष 2014 में शामिल मुद्दा रिट याचिका संख्या-3607 (एस/एस) वर्ष 2014 अन्य उपरोक्त रिट याचिकाओं के समान है, पक्षकारों की सहमति से, इस सामान्य (संयुक्त) आदेश द्वारा इसका निर्णय लिया जा रहा है।

D. पक्षकारों का तर्क

(46) श्री एस. के. कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री असित चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री शोभित मोहन शुक्ला, रिट याचिका संख्या-902 वर्ष 2011, 903 वर्ष 2011 और 904 वर्ष 2011 में याचिकाकर्ताओं का प्रतिकार करने वाले अधिवक्ता, श्री संजय भसीन, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शुभम त्रिपाठी, एसजीपीजीआई के विद्वान अधिवक्ता, श्री जगदंबिका प्रसाद त्रिपाठी, श्री एचएस तिवारी को सुना, श्री राजेन्द्र सिंह चौहान, श्री वी.पी.नाग, श्री गिरीश चन्द्र सिन्हा, श्री एस.पी.सिंह, श्री आई.पी.सिंह, संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्तागण को सुना।

(47) वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.के. काली ने अपनी करिश्माई सादगी में प्रस्तुत किया कि सभी याचिकाकर्ताओं को वर्ष 1987 से लेखा, मंत्रिस्तरीय और सचिवालय संवर्ग में

एसजीपीजीआई में नियुक्त किया गया था और उनके द्वारा क्रमशः तीन रिट दायर की गई हैं। उन्होंने तर्क दिया कि वित्त समिति ने 31.10.1987 को आयोजित अपनी बैठक में लेखा, मंत्रिस्तरीय और सचिवीय कैडर के कर्मचारियों को संशोधित/पुनः नामित करने का निर्णय लिया, जो 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय का आधार बने। हालांकि, इस बीच, राज्य सरकार ने दिनांक 01.08.1990 के सरकारी आदेश के तहत चौथे वेतन आयोग का वेतनमान प्रदान करने के लिए सिद्धांत रूप में सहमति व्यक्त की, जो एम्स, नई दिल्ली के समान 01.01.1986 से लागू था।

(48) तदनुसार, समतुल्यता समिति की सिफारिश के आधार पर दिनांक 01.01.1986 से दिनांक 05.03.1991 के शासनादेश द्वारा कर्मचारियों के वेतनमानों को संशोधित किया गया था। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संशोधन के दौरान, 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय की समिति को रिपोर्ट नहीं की गई थी और इसके परिणामस्वरूप लेखा लिपिक को एम्स में अपर डिवीजन क्लर्क का वेतनमान यानी 400-615 / - संशोधित रुपये 1200-2040 दिया गया था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि दिनांक 08.01.1988 के निर्णय पर विचार किया गया होता, तो लेखा लिपिक को सहायक लेखाकार के रूप में नामित किया जाता और उस स्तर पर ही 1400-2300 रुपये का वेतनमान दिया जाता और उसके बाद किसी भी विवाद का कोई अवसर नहीं होता।

(49) याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, याचिकाकर्ताओं द्वारा अभ्यावेदन दिए गए थे और उक्त अभ्यावेदन को देखते हुए, संस्थान ने एक समिति का गठन किया और उनके दावों पर विचार करने के बाद, उक्त उद्देश्य के लिए एक डीपीसी का गठन किया गया और याचिकाकर्ताओं को लेखा लिपिक के पद से सहायक लेखाकार के रूप में फिर से पदनामित किया गया। चूंकि, लेखा लिपिक का असंशोधित वेतनमान 400-615/- रुपये और सहायक लेखाकार का 515 से 860/- रुपये था, इसलिए पुनः पदनाम के बाद, याचिकाकर्ताओं को दिनांक 02.07.1994 के आदेश द्वारा सहायक लेखाकार का संशोधित वेतनमान अर्थात् 1400-2300/- रुपये दिया गया था।

(50) याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि उप-समिति की 07.11.2005 की सिफारिश ने गलत तरीके से घोषित किया है कि शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय का कार्यान्वयन अवैध है, जबकि दूसरी ओर यह कहा गया है कि 3-1-1997 और 27-11-2001 को आयोजित पुनर्गठन को लागू माना जाए, भले ही उक्त पुनर्गठन 8-1-1988 के शासी निकाय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए किया गया था। उनके अनुसार, उप-समिति का निर्णय विरोधाभासी था और इस तरह लेखा, मंत्रालयी और सचिवीय संवर्गों के कर्मचारियों को भर्ती लाभ वापस लेने की सिफारिश और वसूली करने के लिए आगे की सिफारिश अवैध थी।

(51) यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि अधिनियम, 1983 में संस्थान के कर्मचारियों की सेवा शर्तों के विनियमन के लिए कोई अन्य प्रावधान नहीं है, इसलिए, सामान्य खंड अधिनियम के अनुसार, अधिनियम की धारा 19(2)(एफ) के तहत प्रदान किए गए पदों को बनाने और समाप्त करने के लिए शासी निकाय को दी गई शक्ति, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, 1983 में संस्थान के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करने की शक्ति शामिल है। इस प्रकार, एसजीपीजीआई के अध्यक्ष का दिनांक 15-01-2010 का इस आशय का आक्षेपित निर्णय कि शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय को इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि इसे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया है, गलत धारणा में है और कानूनी रूप से मान्य नहीं है। उनके अनुसार, संस्थान में किसी भी पद के सृजन के लिए राज्य सरकार की मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी, जैसा कि इस तथ्य से देखा जा सकता है कि वर्ष 2009 में धारा 19(2)(एफ) में संशोधन किया गया था, जिसमें अब उक्त उद्देश्य के लिए राज्य सरकार की मंजूरी की आवश्यकता है। वह प्रस्तुत करता है कि किसी भी मामले में जब 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के अनुसरण में वेतनमान के भुगतान के उद्देश्य से आवश्यक बजट राज्य सरकार द्वारा आवंटित किया गया था, तो अधिनियम की धारा 25 की आवश्यकता का अनुपालन किया गया है और यह राज्य सरकार द्वारा 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के निहित अनुमोदन को इंगित करता है।

(52) वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह कहते हुए अपनी बात रखने का प्रयास किया है कि शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के निर्णय और एम्स के दिनांक 05.03.1991 के समतुल्य वेतनमान देने का निर्णय दोनों सह-अस्तित्व में हो सकते हैं क्योंकि उक्त दोनों निर्णय न तो एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं और न ही संस्थान के कर्मचारियों के लिए दोनों निर्णयों को लागू करने में कोई अवैधता थी। याचिकाकर्ताओं को उपरोक्त दो लाभों का अनुदान याचिकाकर्ताओं को दोहरे लाभ स्वीकार करने के लिए नहीं कहा जा सकता है, लेकिन एसजीपीजीआई के अध्यक्ष का आदेश स्पष्ट रूप से उक्त धारणा पर आधारित है। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि 15-01-2010 के आक्षेपित आदेश में दिए गए अन्य कारण कानूनी रूप से मान्य नहीं हैं और 03-01-1997 के शासी निकाय के निर्णय को कानूनी रूप से धारा 41(1)(एफ) की कसौटी पर परीक्षण अधिनियम, 1983 की कसौटी पर नहीं किया जा सकता है क्योंकि आज तक संस्थान द्वारा कोई नियम नहीं बनाया गया है और इसलिए, अधिनियम, 1983 की धारा 19(2)(एफ) के मददेनजर, शासी निकाय कैडर की समीक्षा करने और संस्थान के कर्मचारियों को वेतनमान और पदोन्नति के अवसर प्रदान करने के लिए पूरी तरह से सक्षम था। वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोर देकर कहा कि जब 3-1-1997 के शासी निकाय के निर्णय के लिए राज्य सरकार के पूर्वव्यापी अनुमोदन की सिफारिश की जा सकती है, तो 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के लिए क्यों नहीं, हालांकि इस देरी से चरण में यह कैडर में अराजक स्थिति पैदा करेगा। उन्होंने इस बात

पर भी जोर दिया कि 03.01.1997 की कैडर समीक्षा में, 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के अनुसार पदों के पुनः पदनाम पर विचार किया गया था।

(53) वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, एसजीपीजीआई के अध्यक्ष ने दिनांक 15-01-2010 के आक्षेपित आदेश को पारित करते समय यह धारणा बनाने का प्रयास किया है कि संस्थान राज्य सरकार के अधीन है लेकिन राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए कार्यालय आदेश को अवैध मानते हुए उन्होंने संस्थान के अध्यक्ष के रूप में नहीं बल्कि वरिष्ठ प्राधिकारी के रूप में कार्य किया है। दिनांक 15-01-2010 के आक्षेपित आदेश का आशय यह दर्शाता है कि संस्थान के अध्यक्ष ने भी राज्य सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के विरुद्ध अपील में बैठने का प्रयास किया है और शासी निकाय के उस निर्णय को रद्द कर दिया है जिसका वह अध्यक्ष है।

(54) वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि एम्स के साथ कथित समानता 1997 से दी गई थी न कि 1991 से, जैसा कि संस्थान के निदेशक के दिनांक 13-10-2008 के एक पत्र से भी स्पष्ट है जो एम्स के निदेशक को संबोधित है। इस प्रकार, उनके अनुसार, विजिटर इस बात की जांच करने में विफल रहे हैं कि याचिकाकर्ताओं को एम्स की समानता कब प्रदान की गई है और दूसरी बात यह है कि क्या 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के लाभ को स्वीकार करना याचिकाकर्ता को दोहरी सेवा लाभ स्वीकार करने के बराबर है या नहीं। दिनांक 15-01-2010 और 11-01-

2010 के निर्णय की पुष्टि करने के लिए, विजिटर ने हालांकि 07-11-2005 की पहली उप-समिति की बैठक के निर्णय का उल्लेख किया है, लेकिन 16-01-2008 के दूसरे उपसमिति के निर्णय पर विचार करने में पूरी तरह से विफल रहा है। दिनांक 16-01-2008 के निर्णय के संबंध में रती भर भी कुछ नहीं कहा गया है। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार ने भी दिनांक 20-10-2010 के अपने आदेश के तहत यह माना है कि दिनांक 3-1-1997 के अनुमोदन निर्णय को कार्योत्तर स्वीकृति प्रदान करने का कोई अवसर और प्रयोजन नहीं है क्योंकि उक्त निर्णय को पहले ही कार्यान्वित किया जा चुका है। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय का आदेश, जिसके अनुसरण में एसजीपीजीआई के अध्यक्ष ने दिनांक 15-01-2010 को आक्षेपित आदेश पारित किया है, मामले की योग्यता से संबंधित नहीं था। इसके अलावा, वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के साथ पद से पद की समानता आज तक कभी भी प्रदान नहीं की गई है और इसलिए दिनांक 08-01-1988 के निर्णय से मिलने वाले लाभों को छीनने का एकमात्र आधार गलत है और वर्ष 1997 में संवर्ग पुनर्गठन करते समय, दिनांक 08-01-1988 के निर्णय पर विचार किया गया था। मूल आक्षेपित आदेश, जहां से विवाद शुरू हुआ है अर्थात् दिनांक 15-01-2010 का आदेश, अवैध और मनमाना होने के अलावा, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है क्योंकि दिनांक 06-03-2010 का अनुवर्ती निर्णय भी पूर्वाग्रहों पर आधारित है क्योंकि अंतिम निर्णय लिए जाने के बाद कारण बताओ नोटिस जारी करने का निर्णय

और कुछ नहीं बल्कि ढकोसला है और छलावा है।

(55) याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 08.01.1988 के निर्णय को सही ढंग से लागू किया गया था क्योंकि इसने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) के साथ समानता के कथित अनुदान पर कोई बाधा या प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला था। वास्तव में, दिनांक 08-01-1988 का निर्णय और इसका कार्यान्वयन संस्थान के कर्मचारियों की सेवा शर्तों और वेतनमान के संबंध में संस्थान द्वारा लिए गए किसी अन्य निर्णय के अनादर में नहीं है। इस स्थिति की कल्पना एक काल्पनिक स्थिति से की जा सकती है कि यदि दिनांक 08.01.1988 के निर्णय को 1988 में ही लागू कर दिया गया होता, तो उक्त लाभों के अनुदान के संबंध में किसी भी प्रकार का कोई प्रश्न नहीं उठता। उक्त निर्णय को कर्मचारियों का मनोबल बढ़ाने के लिए लागू किया गया था।

(56) वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, संस्थान के शासी निकाय ने दिनांक 03-01-1997 को आयोजित अपनी 43वीं बैठक में संवर्ग समीक्षा के साथ-साथ संस्थान के कर्मचारियों के संबंध में वेतनमानों और पदोन्नति के अवसरों की समीक्षा की। उक्त निर्णय वित्त समिति की 01-01-1997 को हुई बैठक में की गई सिफारिशों पर आधारित था। 03-01-1997 को शासी निकाय ने सभी कर्मचारियों को भत्ते के एम्स पैकेज को समान रूप से लागू करने का निर्णय

लिया और भविष्य में एम्स में परिवर्तनों के साथ संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान, परिपासू में परिवर्तनों को लागू करने का सिद्धांत रूप में निर्णय लिया। इस प्रकार, वास्तव में एम्स के साथ संवर्ग संरचना की समानता 3-01-1997 से दी गई थी, न कि 1-08-1990 से। इसके अलावा, उनके अनुसार, 08-01-1988 के वेतनमान के उपरोक्त कैंडर पुनर्गठन/संशोधन को 03-01-1997 को कैंडर पुनर्गठन की समीक्षा करते समय ध्यान में रखा गया था। दिनांक 03-01-1997 को की गई संवर्ग समीक्षा के माध्यम से टाइपिस्ट/कनिष्ठ लिपिक (भंडार) और आतिथ्य लिपिक के पदों को 'डाईंग संवर्ग' घोषित किया गया था और दो मौजूदा टंकक और कनिष्ठ लिपिक और आतिथ्य लिपिक को उपर्युक्त पद पर 03 वर्ष का अनुभव पूरा होने पर चरणबद्ध तरीके से अवर श्रेणी सहायक के पद में मिला दिया गया था। कैंडर संरचना के सोपान से यह भी पता चलता है कि यह 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय पर आधारित था। इस प्रकार, एम्स के साथ समानता को दिनांक 3-1-1997 के उपर्युक्त निर्णय द्वारा अनुमोदित किया गया था, फिर भी वास्तविक समानता प्रदान नहीं की गई है। वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार एम्स में एलडीसी, यूडीसी, हेड क्लर्क और कार्यालय अधीक्षक के पद मौजूद हैं लेकिन संस्थान में एलडीए, यूडीए और कार्यालय अधीक्षक के पद मौजूद हैं। यह कहा गया था कि टाइपिस्ट के पहले मौजूदा पद को दिनांक 8-1-1988 के पूर्व निर्णय को ध्यान में रखते हुए दिनांक 3-1-1997 के निर्णय द्वारा डाईविंग कैंडर के रूप में घोषित किया गया था। इस प्रकार, एम्स को समानता प्रदान नहीं की गई है। लेखा और सचिवालय के संवर्ग में भी यही स्थिति थी।

(57) वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा लिया गया अगला आधार यह है कि याचिकाकर्ताओं को सेवा लाभ वापस लेने का आक्षेपित निर्णय लेते समय, जो कि 08.01.1988 से वर्ष 2002 में याचिकाकर्ताओं को उपलब्ध कराया गया था, उन्हें कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया है क्योंकि याचिकाकर्ताओं को न तो कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है और न ही उन्हें निर्णय से पहले अधिकारियों के समक्ष अपना मामला रखने का अवसर दिया गया है। शासी निकाय दिनांक 06.03.2010। उत्तरदाताओं की ओर से इस तरह की कार्रवाई प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण अनादर में है और इस तरह इसे कानून की नजर में बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उनके अनुसार, लेखा संवर्ग में, याचिकाकर्ताओं, जिन्हें सहायक लेखाकार के रूप में नामित किया गया था और उन्हें उच्च पद पर पदोन्नत किया गया है, उन्हें पद पर रखा जाएगा, क्योंकि लेखा लिपिक का पद अस्तित्व में नहीं है और मंत्री संवर्ग में अन्य पद भी अस्तित्व में नहीं हैं। याचिकाकर्ताओं का तर्क यह है कि एसजीपीजीआई के अध्यक्ष द्वारा याचिकाकर्ताओं को बहुत पहले उपलब्ध कराए गए सेवा लाभों को रद्द करने के लिए लिया गया कोई भी आधार कानून की नजर में या तथ्यों पर मान्य नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया कि यद्यपि दिनांक 11.10.2010 के आदेश को पारित करने से पहले, याचिकाकर्ताओं को अवसर प्रदान करने की कवायद 01.07.2010 के कार्यालय आदेश के अनुसरण में की गई थी, लेकिन तथ्य की बात के रूप में उक्त अवसर कुछ और नहीं बल्कि एक ढकोसला था क्योंकि 06.03.2010 को

अंतिम निर्णय लेने के बाद, याचिकाकर्ताओं को अवसर प्रदान करने का कोई उद्देश्य नहीं था।

(58) वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, संपूर्ण अभ्यास दुर्भावनापूर्ण और मनमौजी है और कर्मचारियों के एक निश्चित वर्ग को लाभ देने के लिए उन्मुख है। विजिटर ने एक पूर्व-निर्धारित धारणा में याचिकाकर्ताओं द्वारा उनकी संदर्भ याचिका में उठाए गए आधारों को ठीक से समझे बिना संदर्भ याचिका का निर्णय लिया है। इस प्रकार, वह रिट याचिका संख्या-902 वर्ष 2011, 903 वर्ष 2011 और 904 वर्ष 2011 की अनुमति देने के लिए प्रार्थना करता है।

(59) दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश राज्य के अनुसार, एसजीपीजीआई के अध्यक्ष द्वारा दिनांक 15.01.2010 का आदेश पारित किया गया था और उसके बाद इसे शासी निकाय के समक्ष 06.03.2010 को आयोजित इसकी 68वीं बैठक में विचार-विमर्श और निर्णय के लिए रखा गया था। शासी निकाय ने एसजीपीजीआई के अध्यक्ष के आदेश को अनुमोदित किया और शासी निकाय की दिनांक 08.1.1988 की पूर्व सिफारिश के आधार पर जारी दिनांक 02.07.1994, 20.3.2002 और 02.04.2003 के कार्यालय आदेशों को रद्द करने की सिफारिश की। तत्पश्चात्, विभिन्न अभ्यावेदनों पर विचार करते हुए और एसजीपीजीआई के अध्यक्ष के अनुमोदन के बाद, एसजीपीजीआई के निदेशक ने दिनांक 11-10-2010 को दिनांक 11-10-2010 को आक्षेपित आदेश पारित किया जिसमें शासी निकाय द्वारा 08-01-1988 को इसकी बैठक में लिए गए निर्णय

के कार्यान्वयन को रद्द करने के लिए यह उल्लेख किया गया था कि मंत्रालयिक और सचिवीय संवर्ग के कर्मचारियों को उनके पदनाम और वेतनमान बहाल किया जाएगा। दिनांक 3-1-1997 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित पदोन्नति नीति की संवर्ग पुनर्संरचना के अनुसार, राज्य सरकार की कार्योत्तर स्वीकृति के अध्यक्षीन और लेखा विभाग के कर्मचारियों को उक्त शासी निकाय के निर्णय के अनुसार लाभ प्रदान किए जाएंगे।

(60) राज्य के स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग के अनुसार, याचिकाकर्ताओं और अन्य लाभार्थी कर्मचारियों ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-7570 (एस/एस) वर्ष 2010, 7571(एस/एस) वर्ष 2010 और 7572 (एस/एस) वर्ष 2010 को दायर की, जिसमें उक्त सभी रिट याचिकाओं का निपटारा दिनांक 02.11.2010 के आदेश के तहत याचिकाकर्ताओं को विजिटर के समक्ष अपने अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता के साथ किया गया था, जो एक महीने के भीतर और जब तक निर्णय लेंगे तब आक्षेपित आदेशों पर रोक रहेगी। अधिवक्ता ने मुखर रूप से तर्क दिया है कि इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 02.11.2010 के आदेश के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं/कर्मचारियों ने विजिटर के समक्ष प्रस्तुत किया, जिन्होंने संस्थान के अध्यक्ष और निदेशक और उत्तर प्रदेश सरकार के चिकित्सा शिक्षा विभाग के सचिव से टिप्पणियां मांगी और प्रासंगिक तथ्यों, सरकारी आदेशों, वैधानिक निकायों के निर्णयों और अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करने के बाद, कुलाध्यक्ष ने दिनांक 25-01-2011 को स्वभाषी

और तर्कसंगत आदेश पारित किया और इस प्रकार दिनांक 15-01-2010, 11-10-2010 के आदेशों और शासी निकाय की 06-03-2010 की सिफारिश को सही ठहराया।

(61) जाहिरा तौर पर, राज्य ने यह प्रस्तुत करके एक मामला बनाने की कोशिश की है कि 16.09.1987 और 31.10.1987 की वित्त समिति की बैठकों के संकल्प को शासी निकाय द्वारा 08.01.1988 की बैठक में अनुमोदित किया गया था, जिसके द्वारा संस्थान के अनुसचिवीय कर्मचारियों (यानी कार्यालय अधीक्षक, वरिष्ठ सहायक/यूडीए, वरिष्ठ लिपिक/एलडीए, सरकारी विभागों में विभागाध्यक्षों के कार्यालयों में कर्मचारियों को उपलब्ध वेतनमानों के समतुल्य (वरिष्ठ लेखा लिपिक/कैशियर/कैशियर/अभिलेख कीपर एवं अन्य) के पदों पर नियुक्ति की गई थी। तत्पश्चात्, सरकार ने अखिल भारतीय आयुर्वज्ञान संस्थान, नई दिल्ली (जिसे इसके बाद एम्स कहा गया है) में एसजीपीजीआई के संकाय को उनके समकक्षों के समतुल्य वेतनमान और भत्ते प्रदान करने की स्वीकृति प्रदान की। बाद में, सरकार के दिनांक 01.08.1990 के आदेश के तहत एसजीपीजीआई के कर्मचारियों को भी समान लाभ प्रदान किए गए थे। इसके बाद दिनांक 05.03.1991 के शासनादेश के तहत याचिकाकर्ताओं सहित कर्मचारियों को 01.01.1986 से संशोधित वेतनमान प्रदान किया गया, जिस तारीख से कर्मचारियों द्वारा दिए गए विकल्प को ध्यान में रखते हुए चौथे वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार वेतनमान संशोधित किया गया था और उन्होंने

एम्स के कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता का कभी विरोध नहीं किया। राज्य के अधिवक्ता के अनुसार, रिट-ए संख्या-902 वर्ष 2011 में सभी याचिकाकर्ताओं के वेतनमान को एम्स, नई दिल्ली के समान सरकारी आदेश दिनांक 05.03.1991 द्वारा संशोधित करके 1200- 2040 (चौथा वेतन आयोग) कर दिया गया था और बकाया (वेतन का अंतर) के साथ संशोधित वेतन का भुगतान भी किया गया था। इस प्रकार, उन्होंने दोहराया है कि लेखा संवर्ग के संबंध में वर्ष 1994 में 08.01.1988 के शासी निकाय के संकल्प का पूर्वव्यापी प्रभाव से कार्यान्वयन अनुचित था। इसके अलावा, अधिवक्ता के अनुसार, दिनांक 5.3.1991 और 09.07.1991 के सरकारी आदेशों के तहत, अनुसचिवीय कर्मचारियों और सचिवीय संवर्गों को संशोधित वेतनमान 1.1.1986 से या कार्यभार ग्रहण करने के बाद, जो भी बाद में हो, प्रदान किए गए थे और बकाया (वेतन का अंतर) के साथ संशोधित वेतन का भुगतान भी किया गया था।

(62) अधिवक्ता ने कहा है कि लेखा लिपिक/कैशियर के पद पर नियुक्त कर्मचारियों (वेतनमान 400-615 रुपये/1200-2010 रुपये) को 08.01.1988 से या उनके कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से 470-735/1400-2300 रुपये (संशोधित) के वेतनमान में सहायक लेखाकार के रूप में पुनः पदनामित किया गया था और उनके कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से, अवैध रूप से और इसके संबंध में बकाया राशि का भुगतान भी उन्हें किया गया था।

(63) राज्य के अधिवक्ता ने आगे स्पष्ट किया है कि शासी निकाय के अनुमोदन का शीर्षक "संवर्ग पुनर्गठन, वेतनमान और संस्थान के कर्मचारियों के लिए पदोन्नति के अवसर" था, जिसे संक्षेप में "कैडर समीक्षा रिपोर्ट" के रूप में जाना जाता है और जिसे संस्थान के सभी कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए 03.01.1997 से ही प्रभावी बनाया गया था और जून के महीने से पदोन्नति की गई थी। 1997 के बाद। शासी निकाय द्वारा 03.01.1997 को मंत्रिस्तरीय संवर्ग संरचना को भी अनुमोदित किया गया था।

(64) राज्य के अधिवक्ता के अनुसार, 08.1.1988 को शासी निकाय की बैठक द्वारा अनुशंसित आशुलिपिक का वेतनमान 570-1100 रुपये (संशोधित 1640-2900 रुपये) था और यदि यह वेतनमान देना सही था, तो उन्हें आशुलिपिक के रूप में नामित किया गया होगा और 09.07.1991 के सरकारी आदेश के तहत किए गए उनके पदोन्नति को रद्द कर दिया जाना चाहिए क्योंकि याचिकाकर्ताओं की दायर की के अनुसार लाभ नहीं दिया जा सकता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि जब भी याचिकाकर्ताओं को 09.07.1991 के सरकारी आदेश के तहत पदोन्नति और नियमितीकरण के लाभ दिए गए थे, उन्होंने विरोध नहीं किया, और दूसरी ओर, उन्होंने 08.01.1988 को शासी निकाय की बैठक द्वारा प्रस्तावित वेतनमान को भी स्वीकार किया। यह तर्क दिया गया था कि आशुलिपिक के पद के लिए वेतनमान 03.01.1997 और 27.11.2001 को आयोजित अपनी बैठक में शासी निकाय द्वारा 1200-2040 / 4000-6000 रुपये के रूप में

स्वीकृत किया गया था। इस प्रकार, इन परिस्थितियों में, शासी निकाय द्वारा दिनांक 08.01.88 को उनकी ज्वाइनिंग की तारीख से 1640-2900 रुपये (पूर्व-संशोधित 570-1100 रुपये) का वेतनमान देना अवैध और गलत था।

(65) राज्य के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं सहित संस्थान के सभी संवर्गों में पदोन्नतियां वर्ष 27.11.2001 की कैडर समीक्षा रिपोर्ट के अनुमोदन के अनुसार की गई थीं और इस तरह, यह 08.01.1988 को आयोजित अपनी बैठक में शासी निकाय द्वारा पारित पूर्व संकल्प के आवेदन के लिए अवैध और अनुचित था। अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि शासी निकाय के दिनांक 8.1.1988 के निर्णय के अनुसार बकाया राशि के भुगतान में अवैधता जानने पर, याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली शुरू की गई थी, जिसमें एक रिट याचिका संख्या-2843 (एस/एस) वर्ष 2005 (अनिल कुमार राय और अन्य बनाम निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस) दायर की गई थी, जिसे प्रतिनिधित्व करने की स्वतंत्रता के साथ निपटाया गया था। इस प्रकार, राज्य के अधिवक्ता के अनुसार, संस्थान दिनांक 08.01.1988 की शासी निकाय की सिफारिश के गलत कार्यान्वयन के अपने कारण की पैरवी कर रहा था, जब से इसे 07.11.2005 की पहली समिति की रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से खोजा गया था, जिसने उक्त सिफारिश को अवैध घोषित किया था और वसूली के लिए भी सिफारिश की थी।

(66) कानूनी आधार पर, राज्य के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम, 1983 की धारा 19(2)(एफ) के तहत पदों को बनाने/समाप्त करने की शासी निकाय की शक्ति में वेतनमानों को संशोधित करने की शक्ति शामिल नहीं है। वेतनमान के प्रत्येक संशोधन में वित्तीय निहितार्थ शामिल होते हैं और बजट की आवश्यकता होती है, क्योंकि आवर्ती प्रकृति की होने के कारण अधिनियम, 1983 की धारा 25(3) के अनुसार राज्य सरकार का अनुमोदन अपेक्षित होता है जबकि शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए कोई अनुमोदन प्रदान नहीं किया गया था। इसके अलावा, अधिवक्ता के अनुसार, एक बार जब 01.08.1990 का सरकारी आदेश और 05.03.1991 और 09.07.1991 के सरकारी आदेश जारी किए गए, जिसमें 01.01.1986 से एम्स के कर्मचारियों के साथ समानता दी गई (01.01.1986 से वास्तविक भुगतान या कार्यभार ग्रहण करने की तारीख), शासी निकाय का निर्णय 08.01.1988 अप्रभावी हो गया और बाद में उसका कार्यान्वयन किसी भी आधार पर टिकाऊ/पुख्ता नहीं था। वह प्रस्तुत करता है कि कर्मचारियों के वेतनमान का सौंपे गए कर्तव्यों के साथ संबंध होना चाहिए, इसलिए राज्य सरकार में एच.ओ.डी. के कार्यालय से जुड़े कर्मचारियों के साथ समानता का दावा नहीं किया जा सकता है, एक बार एम्स के साथ समानता का दावा नहीं किया जा सकता है, पूर्वव्यापी रूप से बढ़ाया गया है और बकाया राशि का भुगतान भी बिना विरोध के दिए गए और प्राप्त विकल्प के आधार पर किया जाता है।

(67) इस प्रकार, राज्य के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि कर्मचारी नीतियों के दो सेटों से उत्पन्न दोहरे लाभों का दावा नहीं कर सकते हैं और न ही इस तरह से इसे संस्थान के कर्मचारियों के बीच लागू किया जा सकता है, जिसमें कुछ एम्स के साथ समानता प्राप्त कर सकते हैं और कुछ सरकार में एच.ओ.डी. कार्यालयों के कर्मचारियों और एम्स के कर्मचारियों के साथ वेतन-समानता प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने यह कहते हुए अपने तर्क का समापन किया कि अवैधता को बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और अदालत की प्रक्रिया और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के किसी भी प्रयास को प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए और न ही किसी को अन्यायपूर्ण लाभ प्राप्त करने की अनुमति दी जा सकती है।

(68) श्री संजय भसीन, वरिष्ठ अधिवक्ता ने एसजीपीजीआई के लिए श्री शुभम त्रिपाठी के साथ तर्कों का नेतृत्व किया। वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करने के लिए अपना तर्क व्यक्त किया है कि मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश के आदेश और 6.3.2010 को लिए गए शासी निकाय के निर्णय के अनुसरण में, संस्थान के निदेशक ने 1 जुलाई 2010 को कार्यालय आदेश जारी किया, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं और अन्य लाभार्थियों को सुनवाई का अवसर दिया गया और उनसे यह वांछित था कि वे अपने अभ्यावेदन प्रस्तुत करें कि 02.07.1994 को जारी किए गए आदेश क्यों, 20-3-2002 और 02-4-2003 को रद्द नहीं किया जाना चाहिए। आगे यह भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि मंत्रालयिक

और सचिवीय संवर्ग के कर्मचारियों को उनके पदनाम और वेतनमान को 3.1.1997 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित "पदोन्नति नीति के कैंडर पुनर्गठन" के अनुसार बहाल किया जाएगा, बशर्ते कि राज्य सरकार की कार्योत्तर मंजूरी हो और खातों के कर्मचारियों को शासी निकाय के निर्णय के अनुसार लाभ दिया जाएगा।

(69) वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, सांविधिक निकायों के निर्णयों और अधिनियम में दिए गए सांविधिक प्रावधानों के मद्देनजर, कुलाध्यक्ष ने 25.01.2011 को एक आदेश पारित किया जो स्व-भाषी और तर्कसंगत है। विजिटर ने दिनांक 15-01-2010, 11-10-2010 के आदेशों और 06-03-2010 को लिए गए शासी निकाय के निर्णय में कोई अवैधता नहीं पाई और जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ताओं और अन्य के सभी अभ्यावेदन खारिज कर दिए गए। इस प्रकार, उन्होंने तर्क दिया है कि चूंकि मुख्य सचिव के दिनांक 15.01.2010 के आदेश और 06.03.2010 को लिए गए शासी निकाय के निर्णय के खिलाफ निदेशक और आगंतुक द्वारा याचिकाकर्ताओं और अन्य को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया है, इसलिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के संबंध में याचिकाकर्ताओं का तर्क प्रमाणित नहीं होता है और तदनुसार रिट याचिका में कुछ भी पर्याप्त शेष नहीं है और यह खारिज होने के योग्य है।

(70) वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं को तीसरे वेतन आयोग के अनुसार 400-615 रुपये के वेतनमान में लेखा

लिपिक/कैशियर के पद पर नियुक्त किया गया था। इन सभी याचिकाकर्ताओं के वेतनमान को एम्स, नई दिल्ली के समान दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश द्वारा 1200-2040 रुपये (चौथा वेतन आयोग) में संशोधित किया गया था और उन्हें बकाया (वेतन का अंतर) के साथ संशोधित वेतन प्रदान किया गया था। इस प्रकार, शासी निकाय द्वारा 1994 में 08.01.1988 को आयोजित अपनी बैठक में पारित पूर्व संकल्प को भूतलक्षी प्रभाव से लेखा संवर्ग के पदधारियों पर लागू करना अवैध और अनुचित था। वरिष्ठ अधिवक्ता ने श्रमसाध्य रूप से प्रस्तुत किया है कि दिनांक 5.3.1991 और 09.07.1991 के सरकारी आदेश द्वारा स्वीकृत संशोधित वेतनमान 1.1.1986 से मंत्रालयिक और सचिवीय संवर्गों के कर्मचारियों को दिए गए थे या उनकी शामिल होने की तारीख, जो भी बाद में और बकाया (वेतन का अंतर) के साथ संशोधित वेतन का भुगतान किया गया था और इस तरह, 08.01.1988 को आयोजित अपनी बैठक में शासी निकाय द्वारा पारित पूर्व प्रस्ताव को लागू करना वर्ष 2002-03 में भूतलक्षी प्रभाव से 1000 करोड़ रुपए की वृद्धि हुई है, ये अवैध और अनुचित था।

(71) वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, 03.01.1997 और 27.11.2001 की कैंडर समीक्षा रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि पहले टाइपिस्ट का पद कर्मचारी/प्रशासन कैंडर में प्रवेश स्तर था और इसे निचली श्रेणी सहायक में बदल दिया गया था, जिसे सीधी भर्ती द्वारा भरा जाना था। इसके अतिरिक्त, वेतनमान पद के कार्य/कर्तव्य

की प्रकृति के अनुरूप होने चाहिए और इसे विभागाध्यक्ष कर्मचारियों के वेतनमानों के साथ लापरवाहिक/मनमाने ढंग से तब तक समान नहीं किया जा सकता था जब तक कि यह स्थापित करने के लिए कोई अध्ययन न किया गया हो कि वे विभागाध्यक्ष वेतनमान के हकदार होने के लिए उसी प्रकार के कर्तव्यों/कार्यों का निष्पादन करते हैं। वह प्रस्तुत करता है कि, एक बार जी.ओ. दिनांक 01.08.1990 (सैद्धांतिक रूप से एम्स के साथ समानता) और जी.ओ. दिनांक 05.03.1991(एम्स-लेखा संवर्ग के साथ समानता) और 09.07.1991(एम्स-मंत्रिस्तरीय और सचिवीय कैडर के साथ समानता) को पूर्वव्यापी रूप से 01.01.1986 से एम्स के साथ समानता देते हुए जारी किया गया था और 01.01.1986 (या शामिल होने की तारीख) से बकाया राशि का वास्तविक भुगतान किया गया था, 08.01.1988 का जीबी निर्णय निरर्थक हो गया और प्रभावी रूप से सरकारी आदेशों द्वारा ओवरराइड किया गया।

(72) वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया है कि एच.ओ.डी. कर्मचारियों के साथ समानता का दोहरा लाभ/दूसरा लाभ एम्स के साथ समानता के निष्पादन/कार्यान्वयन के बाद पूर्वव्यापी रूप से विस्तारित नहीं किया जा सकता था। किसी भी स्थिति में, एक ही संस्थान में नीतियों के दो सेट लागू नहीं किए जा सकते हैं जहां एक संवर्ग के कुछ कर्मचारियों को एम्स के साथ-साथ एच.ओ.डी. के समता कर्मचारियों के साथ समानता का दोहरा लाभ मिलता है और दूसरे को केवल एम्स के साथ समानता का लाभ मिलता है।

उन्होंने आगे कहा कि राज्य सरकार जिसने एसजीपीजीआई के कर्मचारियों और अधिकारियों को 05.03.1991 के जी.ओ. और अन्य के माध्यम से एम्स में अपने समकक्षों के समान वेतनमान और भत्तों में समानता को सैद्धांतिक रूप से मंजूरी दी थी, ने रणधार समिति की रिपोर्ट के प्रस्ताव और अन्य प्रासंगिक तथ्यों के अनुसार चौथे वेतन आयोग के संशोधित वेतनमान जारी किए। रणधार समिति ने एम्स में अपने समकक्षों की तुलना में एसजीपीजीआई कर्मचारियों के वेतनमानों में समानता का विस्तार से वर्णन किया था।

(73) वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर भी दिया गया है, जो चुनौती के मुख्य आधारों में से एक है, 08.01.1988 के शासी निकाय के संकल्प के अवैध और गलत कार्यान्वयन को रद्द करने से पहले, यह कहना सरासर झूठ है कि उन्हें नहीं सुना गया है। इसके अलावा, चूंकि 6 मार्च, 2010 को लिए गए शासी निकाय के निर्णय से पहले प्रश्नगत मुद्दे के संबंध में कोई अंतिम राय नहीं दी गई थी, इसलिए, 6 मार्च, 2010 से पहले कोई भी संचार करने का प्रश्न नहीं उठता था और जैसे ही राय बनाई गई थी, याचिकाकर्ताओं को निदेशक द्वारा उनके दिनांक 1 जुलाई के आदेश के तहत सुनवाई का अवसर दिया गया था। उनके अनुसार, यह अच्छी तरह से तय है कि अदालत को कभी भी वादी को कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करके अवैधता को बनाए रखने की अनुमति नहीं देनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना अदालत का बाध्य कर्तव्य है कि बेईमानी और कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग

करने के किसी भी प्रयास को प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए और अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई गलत नहीं है, कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग से किसी के लिए अनधिकृत या अन्यायपूर्ण लाभ। किसी को भी अनुचित लाभ या अन्यायपूर्ण लाभ कमाने के लिए न्यायिक प्रक्रिया का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। वह यह दर्शाने के लिए दिनांक 20-10-2010 के पत्र पर भी भरोसा करते हैं कि बजट के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है और कार्योत्तर अनुमोदन न देने का एकमात्र कारण लम्बे समय का अंतराल और दिनांक 03-01-1997 की संवर्ग पुनर्संरचना के कार्यान्वयन का प्रभाव था जो पहले ही किया जा चुका था। बहस के अंत में, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं का कथन कि प्रस्तुत विवाद संस्थान के देर से निर्णय लेने के कारण हुआ है, गलत है क्योंकि समय-समय पर संस्थान द्वारा विभिन्न समितियों का गठन किया गया था, जिन्होंने 08.01.88 के शासी निकाय के संकल्प के कार्यान्वयन को वापस लेने की भी सिफारिश की थी। तथापि, उक्त वापसी केवल 2010 में की जा सकी।

E. चर्चा और निष्कर्ष

(74) इस न्यायालय ने, पक्षकारों के अधिवक्ता की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर अपना उत्सुक विचार व्यक्त करते हुए, यह विचार किया है कि प्रस्तुत निर्णय दो अतिव्यापी भागों में होना चाहिए। पहला आदेश (i) एसजीपीजीआई के अध्यक्ष द्वारा पारित दिनांक 15.01.2010 के आक्षेपित आदेशों की शुचिता से संबंधित होगा,

(ii) शासी निकाय का दिनांक 06.03.2010 का आदेश, (iii) संस्थान के निदेशक द्वारा जारी आदेश दिनांक 11.10.2010 और (iv) अधिनियम की धारा 36 के तहत एसजीपीजीआई के विजिटर द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2011; एसजीपीजीआई को 08.01.1988 के शासी निकाय के सभी आक्षेपित आदेश, निर्णय के लाभ को वापस लेने और 02.07.1994, 20.03.2002 और 02.04.2003 को लागू करने का निर्देश देते हुए, दूसरा लेखा संवर्ग की वरिष्ठता सूची पर इसका परिणाम होगा जैसा कि लेखाकार-सह-कम्प्यूटर प्रचालकों द्वारा याचिकाओं के वर्तमान समूह में विरोध किया गया है।

(75) प्रारंभ में, यह न्यायालय 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के कार्यान्वयन की वैधता की जांच करेगा। स्पष्टतया, अभिलेखों से यह पता चलता है कि शासी निकाय की दिनांक 08-01-1988 की सिफारिश राज्य सरकार के विभागाध्यक्षों के कार्यालयों में ऐसे स्टाफ को उपलब्ध अधिकतम अनुमेय वेतनमानों के समतुल्य गैर-संकाय कर्मचारियों को संशोधित वेतनमान प्रदान करने से संबंधित है। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सिफारिश को तत्काल कार्यान्वित नहीं किया गया था और इस बीच, राज्य सरकार ने दिनांक 17.10.1989 के आदेश के तहत एसजीपीजीआई के संकाय को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), नई दिल्ली में उनके समकक्षों के समान वेतनमान और भत्ते प्रदान करने और एसजीपीजीआई के गैर-संकाय कर्मचारियों की मांग पर मंजूरी दे दी थी। राज्य सरकार द्वारा दिनांक 01-08-1990 के

आदेश द्वारा गैर-संकाय कर्मचारियों को भी यही लाभ प्रदान किए गए थे।

कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य अन्य लाभों के हकदार नहीं होंगे।

(76) परिणामस्वरूप, दिनांक 01.08.1990 के सरकारी आदेश को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार ने दिनांक 05.03.1991 और 09.07.1991 के सरकारी आदेशों के तहत लेखा संवर्ग, मंत्रालयिक संवर्ग और सचिवीय संवर्ग से संबंधित कर्मचारियों सहित संस्थान के गैर-संकाय कर्मचारियों को संशोधित वेतनमान प्रदान किया और यह वेतन संशोधन 01.01.1986 से प्रभावी किया गया, जिस तारीख से चौथे वेतन आयोग के पैमाने को संशोधित किया गया था।

(77) तथ्यों के पूर्वोक्त प्रकटीकरण से तीन बातें स्पष्ट हैं। प्रथमतः, शासी निकाय ने यद्यपि 08-01-1988 को राज्य सरकार के विभागाध्यक्षों के कार्यालयों में ऐसे स्टाफ को उपलब्ध अधिकतम अनुमेय वेतनमानों के साथ वेतन-समानता की सिफारिश की थी, तथापि इसे कार्यान्वित नहीं किया गया और इस बीच एसजीपीजीआई के इन गैर-संकाय कर्मचारियों को 05-03-1991 को एम्स के साथ वेतन-समानता प्रदान की गई। दूसरे, इन गैर-संकाय कर्मचारियों को उनकी मांग पर एम्स के समान वेतन प्रदान किया गया था। तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दिनांक 5.3.1991 के सरकारी आदेश में विशेष रूप से दर्ज किया गया है कि एम्स के साथ संशोधित वेतनमान और वेतन-समानता संस्थान के गैर-संकाय कर्मचारियों द्वारा दिए गए विकल्प के आधार पर दी जा रही थी और वे राज्य सरकार के

(78) यह बल्कि मनोरंजक है और इस न्यायालय को इस बात की मूल्यांकन करना मुश्किल है कि जब एसजीपीजीआई के गैर-संकाय कर्मचारियों को एम्स के साथ वेतन-समानता प्रदान की गई थी, तो वे राज्य सरकार में विभागाध्यक्षों (एच.ओ.डी.) के कार्यालयों में ऐसे कर्मचारियों के लिए उपलब्ध अधिकतम अनुमेय वेतनमान के साथ आगे वेतन-समानता का दावा कैसे कर सकते हैं, जैसा कि 08.01.1988 की शासी निकाय की सिफारिश में संकल्प लिया गया था। इन गैर-संकाय कर्मचारियों को राज्य के एच.ओ.डी. के कर्मचारियों के साथ वेतन-समानता के साथ-साथ एम्स, नई दिल्ली के कर्मचारियों के साथ वेतन-समानता का दावा करके दो बार लाभान्वित नहीं किया जा सकता है। ये कर्मचारी या तो राज्य सरकार के एच.ओ.डी. के कर्मचारियों के साथ समानता के हकदार हो सकते हैं या एम्स, नई दिल्ली के साथ और दोनों के साथ नहीं। इसके अतिरिक्त, इस तथ्य के अतिरिक्त कि इन गैर-संकाय कर्मचारियों को उनकी मांग के अनुसार एम्स के साथ वेतन-समानता प्रदान की गई थी, इस मामले के अभिलेखों से पता चलता है कि एम्स के साथ वेतन-समानता को इन कर्मचारियों द्वारा बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया गया था और उक्त स्वीकृति के बाद ही उन्हें वेतन-समता और बकाया राशि का भुगतान किया गया था। अब, जबकि इन कर्मचारियों ने पहले ही उक्त लाभों को स्वीकार कर लिया है, उनके लिए यह उचित नहीं है कि वे फिर से

08.01.1988 के शासी निकाय संकल्प के कार्यान्वयन की मांग करें। इसके अलावा, यहां तक कि दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश में भी सुस्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि वे राज्य सरकार के कर्मचारियों को स्वीकार्य अन्य लाभों के हकदार नहीं होंगे।

(79) इन गैर-संकाय कर्मचारियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि दिनांक 08.01.1988 की शासी निकाय की सिफारिश दिनांक 05.03.1991 को जारी करते समय अधिकारियों के ध्यान में नहीं लाई गई थी और यदि उक्त संकल्प को प्राधिकारियों के ध्यान में लाया गया होता, तो सिफारिश को दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश में ही लागू कर दिया गया होता और केवल समय का लाभ तदनुसार उस बिंदु पर बढ़ा दिए जाते। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि कार्यान्वयन में शिथिलता आक्षेपित आदेशों का मूल कारण है। यद्यपि, पहली बार में, वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क आकर्षक प्रतीत होता है, हालांकि रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि उक्त तर्क केवल एक मृगतृष्णा है। वास्तव में, उक्त तर्क इस अदालत को आत्म-पराजय के रूप में प्रतीत होता है। तथ्य और रिकॉर्ड की बात के रूप में, 05.03.1991 का सरकारी आदेश दिनांक 18.07.1989 के शासी निकाय संकल्प के अनुसरण में था, जिसे 08.01.1988 के आक्षेपित संकल्प के बाद पारित किया गया था, जो निम्नानुसार कई शब्दों में कहता है:

बयान में कहा गया, "संचालन निकाय ने एसजीपीजीआई में नर्सों और तकनीकी कर्मचारियों के एम्स ग्रेड को लागू करने के

अपने पहले के फैसले को नोट किया। यह मामला अभी भी सरकार के पास लंबित है। प्रशासन और अन्य कर्मचारियों के संबंध में, शासी निकाय ने कहा कि राज्य ने पहले ही सैद्धांतिक रूप से निर्णय लिया है कि राज्य कर्मचारियों का वेतन केंद्रीय कर्मचारियों के बराबर होगा। यह सुनिश्चित करने के लिए कि एसजीपीजीआई में सभी श्रेणियों के पद आच्छादित किए गए हैं, शासी निकाय ने सिफारिश की कि संस्थान को एम्स, नई दिल्ली में लागू ग्रेड और अन्य फ्रिंज लाभों और एसजीपीजीआई में ग्रेड और अब समकक्ष समिति की सिफारिशों पर राज्य सरकार द्वारा संशोधित किए जा रहे ग्रेड के संदर्भ में पोस्ट-टू-पोस्ट समानता की गहन जांच करनी चाहिए। यदि कोई विसंगतियां हैं तो वित्त समिति द्वारा इनकी जांच की जानी चाहिए और इसकी सिफारिशें अगले शासी निकाय के समक्ष लाई जानी चाहिए।

(80) उपर्युक्त संकल्प में स्पष्ट शब्दों में परिकल्पना की गई है कि राज्य सरकार ने सिद्धांत रूप में पहले ही निर्णय ले लिया है कि राज्य कर्मचारियों का वेतन केन्द्रीय कर्मचारियों के समतुल्य होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए कि एसजीपीजीआई में सभी श्रेणियों के पद शामिल हैं, शासी निकाय ने कहा है कि संस्थान ने एम्स में लागू ग्रेड और अन्य अनुषंगी लाभों के संदर्भ में पोस्ट टू पोस्ट समानता की गहन जांच पहले ही कर ली है। इसमें कहा गया है कि राज्य सरकार द्वारा अब जिन ग्रेड को संशोधित किया जा

रहा है, वे समतुल्यता समिति की सिफारिशों पर हैं। इस प्रकार, इस बात से परहेज नहीं किया जा सकता है कि दिनांक 05.03.1991 को सरकारी आदेश जारी करते समय अधिकारियों को 08.01.1988 के पहले के संकल्प के बारे में पता नहीं था, वास्तव में उक्त पहले के संकल्प से न निपटकर, इसने रचनात्मक रूप से इसे खारिज कर दिया है। इसके अतिरिक्त, संकल्प में विसंगतियों, यदि कोई हों, का भी उल्लेख किया गया है और इस संबंध में कहा गया है कि वित्त समिति इसकी जांच करेगी और उसे अगले शासी निकाय के समक्ष लाया जाएगा। इस प्रकार, यह कहना कि दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश को शासी निकाय के संकल्प दिनांक 08.01.1988 की सिफारिश पर ध्यान दिए बिना लागू किया गया था, एक मिथ्या नाम होगा। यह आश्चर्यजनक है कि दिनांक 18.07.1989 का संकल्प, जो शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के संकल्प के काफी समय बाद था, दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश के माध्यम से लागू किया गया, जबकि दिनांक 19.07.1988 के शासी निकाय संकल्प के कार्यान्वयन से पहले या उसके बाद 02/07/1994 तक दिनांक 08.01.1988 के संकल्प के कार्यान्वयन के लिए कोई सरकारी आदेश जारी नहीं किया गया था जो पुनः केवल एक कार्यालय-आदेश था न कि सरकारी आदेश, जो भूसी को अनाज से (सुसंगत को महत्वहीन बातों से) अलग करता है कि दिनांक 19-07-1989 के संकल्प के बाद, दिनांक 08.01.1988 के पूर्ववर्ती शासी निकाय के संकल्प को लागू करने का कोई अवसर नहीं था और न ही कोई इरादा था। आदर्श रूप से,

उक्त संकल्प को शासी निकाय के दिनांक 19.07.1989 के संकल्प के तुरंत बाद या 05.03.1991 के बाद किसी भी परिस्थिति में वापस ले लिया गया होता, जिससे विवाद शुरू हो जाता।

(81) हालांकि, पूर्वोक्त संदर्भ में, इस न्यायालय को मल्लिकार्जुन राव और अन्य आदि बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य आदि के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय की याद दिलाई जाती है। ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 1251: (1990) 2 एस.सी.सी. 707: 1990 (1) स्केल 705, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि भारत का संविधान न्यायालयों को नीति के मामलों में कार्यपालिका को निर्देश देने या सलाह देने की, या किसी भी मामले का उपदेश देने के लिए, जो संविधान के तहत, विधानमंडल या कार्यपालिका के क्षेत्र में आता है, अनुमति नहीं देता है। इसलिए, यह न्यायालय केवल 08.01.1988 को शासी निकाय की पूर्ववर्ती सिफारिश के अनुचित कार्यान्वयन के कानूनी परिणामों को इंगित कर सकता है, जो कि 05.03.1991 के सरकारी आदेश के मद्देनजर एम्स, नई दिल्ली के साथ संस्थान के कर्मचारियों की वेतन-समानता के कार्यान्वयन के बाद है और इससे अधिक कुछ नहीं।

(82) संगत रूप से, राज्य सरकार ने दिनांक 05-03-1991 के सरकारी आदेश के तहत चौथे वेतन आयोग के उपर्युक्त संशोधित वेतनमान रंधार समिति अथवा समतुल्यता समिति के प्रस्ताव के अनुसार जारी किए थे जिसमें एसजीपीजीआई कर्मचारियों के वेतनमानों में

एम्स के समकक्ष कर्मचारियों के वेतनमानों के समतुल्यता की सिफारिश की गई थी। इसके अतिरिक्त, चूंकि वेतन संशोधन 01-01-1986 से, जिस तारीख से चौथे वेतन आयोग के वेतनमान को संशोधित किया गया था, इन कर्मचारियों को वेतन प्रदान किया गया था और संशोधित वेतनमान के अनुसार वेतन की बकाया राशि का भुगतान भी किया गया था। संशोधित वेतनमान का परिणाम निम्नलिखित चार्ट के अनुसार है:

क्रम सं.	पद का नाम	मौजूदा वेतनमान	शासनादेश दिनांक के बाद संशोधित वेतनमान 05.03.1991
1	लेखा लिपिक	400-615	1200-2040
2	रोकड़िया	400-615	1200-2040
3	टाइपिस्ट	354-550	950-1500
4	लोअर डिवीजन बिक्री सहायक	400-615	1200-2040
5	अपर डिवीजन बिक्री सहायक	470-735	1400-2300
6	स्टेनोग्राफर	515-860	1200-2040

(83) यह रिकॉर्ड से उपलब्ध है कि एम्स के कर्मचारियों के साथ पूर्वोक्त वेतन-समानता के कार्यान्वयन के बाद, रिट-ए संख्या-902 वर्ष 2011, 903 वर्ष 2011 और 904 वर्ष 2011 के याचिकाकर्ताओं ने 08.01.1988 की शासी

निकाय की सिफारिश के कार्यान्वयन के लिए संस्थान का प्रतिनिधित्व करना शुरू कर दिया, जिसे तकनीकी रूप से दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश के तुरंत बाद वापस ले लिया गया था, जिसमें एम्स के साथ वेतन-समानता प्रदान की गई थी। किसी भी स्थिति में, संस्थान ने इन कर्मचारियों की मांग को पूरा करते हुए शासी निकाय की दिनांक 08.01.1988 की सिफारिश को चरणबद्ध तरीके से कार्यान्वित किया और इस प्रकार प्रथम चरण में, लेखा संवर्ग के कर्मचारियों को वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 02.07.1994 के आदेश के तहत लाभ प्रदान किए गए थे। इस प्रकार, लेखा लिपिक/कैशियर (वेतनमान 400-615/1200-2010) के पद पर नियुक्त कर्मचारियों को 08.01.1988 से या उनके कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से 470-735/1400-2300 (संशोधित) के वेतनमान में सहायक लेखाकार के रूप में पुनः पदनामित किया गया और फिर से इसके संबंध में बकाया राशि का भुगतान भी उन्हें किया गया। इस प्रकार, दिनांक 05.03.1991 के उपर्युक्त सरकारी आदेश और शासी निकाय की दिनांक 08.01.1988 की सिफारिश के कारण याचिकाकर्ताओं को दोहरे वित्तीय लाभ के साथ-साथ वेतनमान में लाभ हुआ है।

(84) यह कहना एक बात है कि लेखा लिपिक/कैशियर के पद पर कार्यरत जिन कर्मचारियों को दिनांक 05.03.1991 के शासनादेश के तहत एम्स वेतनमान के समतुल्य प्रदान किया गया था, उन्हें उस समय सहायक लेखाकार (वेतनमान वर्ष 1400-2300)

का वेतनमान दिया गया होता और यह कहना दूसरी बात है कि सहायक लेखाकार का उक्त वेतनमान शासी निकाय की सिफारिश दिनांक 08.01.1988। याचिकाकर्ताओं ने स्वीकार किया कि किसी भी समय दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश द्वारा वेतनमान के कथित गलत अनुदान को चुनौती नहीं दी और लाभ लेने के केवल 32 वर्षों के बाद यह तर्क देने का कमजोर प्रयास करने की कोशिश की है कि दिनांक 05.03.1991 का सरकारी आदेश इन लेखा लिपिक/कैशियर पर गलत तरीके से लागू किया गया था और यह केवल एक वेतन-संशोधन था और उक्त जी.ओ. को गलती से लागू नहीं किया गया था। इन याचिकाकर्ताओं को दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश के कार्यान्वयन के समय ही 1400-2300 रुपये के वेतनमान में सहायक लेखाकार के रूप में नामित किया गया होगा।

(85) इस तथ्य के अलावा कि पूर्वोक्त पहलू पर बहस करने के लिए दिन में बहुत देर हो चुकी है, उक्त सादृश्य बेतुका प्रतीत होता है, खासकर जब यह रिट याचिकाओं में दी गई दलीलों के अनुरूप नहीं है। इसके अलावा, इन कर्मचारियों का आचरण स्पष्ट रूप से संदेह से परे नहीं लगता है क्योंकि रिकॉर्ड पर एक भी दस्तावेज नहीं है जो यह बताता हो कि ये कर्मचारी 05.03.1991 से पहले दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय संकल्प के कार्यान्वयन यानी एम्स के साथ वेतन-समानता के कार्यान्वयन के लिए आंदोलन कर रहे हैं। तथापि, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के साथ ये समता प्रदान किए जाने के बाद, ये कर्मचारी अपनी गहरी नींद से पुनर्जीवित हो

गए और दिनांक 08-01-1988 के शासी निकाय के संकल्प के कार्यान्वयन के लिए आंदोलन करना शुरू कर दिया। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि इन कर्मचारियों ने पहले राज्य सरकार द्वारा एम्स की समान वेतन समानता के कार्यान्वयन की प्रतीक्षा की और तत्पश्चात् दिनांक 08-01-1988 के शासी निकाय के संकल्प के कार्यान्वयन की मांग करने का अवसर लिया, जो स्पष्ट रूप से संस्थान और राज्य सरकार के दुलमुल रवैये के स्पष्ट कारणों से सफल रहा।

(86) इस न्यायालय को सूचित किया गया है कि संस्थान में अनियमितताओं के संबंध में जन प्रतिनिधियों की कई शिकायतें राज्य सरकार को प्राप्त हुई थीं, जिन्होंने जांच का आदेश दिया था और संस्थान के तत्कालीन अतिरिक्त निदेशक श्री राकेश कुमार गोयल, आईएएस को जांच अधिकारी के रूप में नामित किया गया था। प्रासंगिक रूप से, संस्थान के कर्मचारियों के केवल एक वर्ग के संबंध में दिनांक 8.1.1988 की शासी निकाय की सिफारिशों के कार्यान्वयन का मुद्दा भी श्री गोयल द्वारा पूछताछ किए गए मुद्दों में से एक था। प्रासंगिक फाइलों और अभिलेखों की जांच करने के बाद, श्री गोयल ने 7-11-2008 को राज्य सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी और इस मुद्दे को अवैध पाया और दोषी अधिकारियों की पहचान की और जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या-8785 (एम/बी) वर्ष 2009 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के निर्देश पर, संस्थान के दोषी अधिकारियों के खिलाफ विभागीय कार्यवाही चल रही है।

(87) इस मामले का एक और पहलू है। जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, जहां तक लेखा संवर्ग के कर्मचारियों का संबंध है, शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के संकल्प को 02/07/1994 को देर से लागू किया गया था, यानी संकल्प के लगभग छह साल बाद और इस अदालत ने विशेष परिस्थितियों में इसे अनुचित और संदिग्ध माना है। हालांकि, मंत्रिस्तरीय कैडर और सचिवीय कैड का मामला अधिक नाजुक और बदतर लगता है जहां तक कार्यान्वयन की तारीख का संबंध है। जाहिर है, लेखा संवर्ग के कर्मचारियों के लिए उपरोक्त मांग लागू होने के बाद, अन्य दो श्रेणियों, अर्थात् मंत्रिस्तरीय संवर्ग और सचिवीय संवर्ग ने 08.01.1988 को आयोजित अपनी बैठक में लिए गए शासी निकाय के निर्णय के कार्यान्वयन के लिए, अर्थात् राज्य सरकार के विभागाध्यक्ष के साथ समानता की अपनी मांग तेज कर दी।

(88) मंत्रालयिक संवर्ग की इस मांग को 01-01-1998 को कार्यान्वित किया गया था लेकिन बाद में 06-03-1998 को रद्द कर दिया गया था और इस मुद्दे की पुनः जांच करने का निदेश दिया गया था। इसके बाद यह मामला संस्थान के साथ-साथ राज्य सरकार के चक्कर लगा रहा था और अंततः राज्य सरकार ने दिनांक 13-02-2002 के कार्यालय आदेश के तहत शासी निकाय के दिनांक 13-02-2002 के निर्णय को कार्यान्वित करने का निर्णय लिया दिनांक 08.01.1988 से दिनांक 08.01.198 के आदेश को सही माना और इसके परिणामस्वरूप दिनांक 01.01.1998 के आदेश को सही ठहराया और दिनांक

06.03.1998 के रद्दीकरण के आदेश को रद्द कर दिया। इस प्रकार, संस्थान सचिवालय संवर्ग और मंत्रालयिक संवर्ग के लिए, दिनांक 08-01-1988 से उक्त संवर्गों के सदस्यों को शामिल होने की उक्त तिथि / तारीख से निर्णय का लाभ देने के लिए, क्रमशः 20-03-2002 और 02-04-2003 को कार्यालय आदेश जारी किए। इस प्रकार, जहां तक मंत्रिस्तरीय और सचिवीय संवर्ग का संबंध है, दिनांक 08.01.1988 का शासी निकाय संकल्प लगभग 14 और 15 वर्षों के बाद लागू किया गया और वह भी संस्थान के संवर्ग प्रतिबंध को शासी निकाय संकल्प दिनांक 03.01.1997 और 27.11.2001 के तहत लागू किए जाने के बाद।

(89) स्पष्टतया, शासी निकाय ने दिनांक 03-01-1997 की अपनी सिफारिश के तहत संस्थान के कर्मचारियों के लिए संवर्ग पुनर्संरचना, वेतनमान और पदोन्नति के अवसर संक्षिप्त रूप में संवर्ग समीक्षा रिपोर्ट के रूप में जाना जाता है और जिसे संस्थान के सभी कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए 03-01-1997 से ही प्रभावी बनाया गया था। उपर्युक्त संवर्ग पुनर्गठन को ध्यान में रखते हुए, लेखा लिपिक, कैशियर और वरिष्ठ लेखा परीक्षक के पद को सहायक लेखाकार के रूप में पुनः पदनामित किया गया था। लेखा लिपिक का पद समाप्त कर दिया गया। इसी तरह मिनिस्ट्रीयल कैडर में टाइपिस्ट का पद भी समाप्त कर दिया गया। शासी निकाय ने सभी कर्मचारियों को भत्ते के एम्स पैकेज को समान रूप से लागू करने का भी निर्णय लिया और भविष्य में एम्स में बदलावों के अनुरूप

एसजीपीजीआई में परिवर्तनों को लागू करने के लिए सैद्धांतिक रूप से निर्णय लिया। इसके अलावा, कैडर का एक और पुनर्गठन 08-01-2001 को किया गया था और 2711-2001 के शासी निकाय द्वारा अनुसमर्थन किया गया था। संवर्ग संरचना में शामिल एकमात्र परिवर्तन यह था कि कार्यालय अधीक्षक और प्रशासनिक अधिकारी के पदों के बीच सहायक प्रशासनिक अधिकारी के नाम से एक और पद डाला/सृजित किया गया था। दिनांक 03.01.1997 और 27.11.2001 की उपर्युक्त सरकारी भवन बैठक के बाद मंत्रिस् तरीय और सचिवीय संवर्ग के संवर्ग प्रतिबंध को एक सारणीबद्ध चार्ट में निम्नलिखित रूप में दर्शाया जा सकता है:

मंत्रालयिक संवर्ग:

पद का नाम	वेतनमान	पदोन्नति के लिए अनुभव	टिप्पणियां
प्रशासन अधिकारी	2200-4000	सहायक के रूप में 5 वर्ष एडीएम अधिकारी	
सहायक प्रशासन अधिकारी*	2000-3500	सहायक के रूप में 5 वर्ष एडीएम अधिकारी	यह पोस्ट जोड़ा गया था द्वारा 27.11.2001
कार्यालय अधीक्षक	1640-2900	यूडीए के रूप में 5 वर्ष	
यूडीए	1400-2300	यूडीए के रूप में 5 वर्ष	

एलडीए	1200-2040	टाइपिस्ट के रूप में 3 साल	टाइपिस्ट के पद को मृत घोषित कर दिया गया और टाइपिस्ट जो है और पास करेगा कंप्यूटर टेस्ट एलडीए के रूप में पदोन्नत किया जाएगा।
टाइपिस्ट	950-1500		पद घोषित अत्यधिक

सचिवीय संवर्ग:

पद का नाम	दिनांक 9.7.1991 और 3.1.1997 के शासनादेश द्वारा स्वीकृत	जीबी द्वारा स्वीकृत दिनांक 27.11.2001	पदोन्नति के लिए अनुभव
स्टेनोग्राफर	1200-2040	4000-6000	सीधी भर्ती
व्यक्तिगत सहायक	1400-2600	5500-9000	स्टेनोग्राफर के रूप में 5 साल
निजी सचिव	2000-3500	6500-10500	व्यक्तिगत रूप से 7 साल बिक्री सहायक।
निदेशक को पुनश्च:	3000-4500	10000-15200	निजी के रूप में 8 साल सेक्रेटरी

* निदेशक के निजी सचिव के निजी सचिव को शासी निकाय द्वारा दिनांक 3-1-1997 को प्रधान निजी सचिव के रूप में पुनः पदनामित किया गया था।

(90) इस प्रकार, उल्लिखित संवर्ग समीक्षा के अनुसार अनुसचिवीय/प्रशासनिक संवर्ग में टाइपिस्ट के पूर्व प्रवेश स्तर के पद को सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने के लिए अवर श्रेणी सहायक में परिवर्तित कर दिया गया था। जाहिरा तौर पर, दिनांक 03.01.1997 की उपर्युक्त "कैडर समीक्षा रिपोर्ट" के मद्देनजर, मंत्रालयिक संवर्ग से संबंधित कर्मचारियों को (950-1500 रुपये का वेतनमान) दिनांक 10.06.1997 के कार्यालय आदेश द्वारा 03.01.1997 से) 1200- 2040 रुपये के वेतनमान में अवर श्रेणी सहायक के पद पर टाइपिस्ट के पद से पदोन्नत किया गया था। तथापि, अत्यंत बेतुके तरीके से और दिनांक 08.01.1988 के 14/15 वर्षीय शासी निकाय संकल्प के त्रुटिपूर्ण कार्यान्वयन के कारण, दिनांक 18.3.2002 और 02.04.2003 के आदेश के अनुसरण में इन कर्मचारियों को टाइपिस्ट के पद पर कार्यभार ग्रहण करने की उनकी तारीख से अवर श्रेणी सहायक/कार्यालय सहायक ग्रेड-III (वेतनमान 1200-2040 रुपये) के उच्च पद पर रखा गया था और आगे उन्हें उच्च श्रेणी सहायक/कार्यालय सहायक ग्रेड-II (वेतनमान में) के पद पर रखा गया था (ख) वर्ष 1991-95 के बीच 03 वर्षों के बाद 1400-2300 रुपये (1400-2300 रुपये प्रति सैनिधि) के कुछ कर्मचारियों को उक्त "मंत्रालयिक संवर्ग" से संबंधित कुछ कर्मचारियों को 1996 से 05 वर्षों के बाद अगले उच्च पद अर्थात् कार्यालय अधीक्षक/कार्यालय सहायक ग्रेड-1(1640-2900 रुपये के वेतनमान में) में रखा गया था, जो स्पष्ट रूप से गलत है और सिफारिश का गलत कार्यान्वयन है।

(91) इसके अलावा, जहां तक "सचिवीय संवर्ग" का संबंध है, दिनांक 5.3.1991 और 9.7.1991 के सरकारी आदेश और 03.01.1997 और 27.11.2011 की कैडर समीक्षा रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आशुलिपिक का पद 1200-2040 रुपये के वेतनमान में स्वीकृत किया गया था, जबकि जाहिर तौर पर उन्हें उनकी नियुक्ति की तारीख, जो भी बाद में हो, शासी निकाय के संकल्प दिनांक 08.01.1988 के कार्यान्वयन को ध्यान में रखते हुए, 08.01.1988 से 1640-2900 रुपये का वेतनमान दिया गया है। इसी प्रकार, कर्मचारियों को वेतनमान वर्ष 1400-2600 में 3.1.1997 को लिए गए शासी निकाय के निर्णय के अनुसरण में जारी कार्यालय ज्ञापन दिनांक 10.6.1997 के माध्यम से 3.1.1997 से निजी सहायक के पद पर पदोन्नत किया गया था, हालांकि बाद में उन्हें एम्स के समान 3.1.1997 से 1640-2900 रुपये का वेतनमान दिया गया था।

(92) यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रस्तुत मामले के रिकॉर्ड के अनुसार, वित्त समिति ने दिनांक 16.09.1987 के अपने संकल्प के तहत राज्य के विभागाध्यक्ष के कर्मचारियों के साथ वेतन-समानता के साथ पद और वेतनमान का नाम भी प्रस्तावित किया था, जिसे 08.01.1988 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि चूंकि दिनांक 8.1.1988 की शासी निकाय की बैठक की सिफारिशों को राज्य सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था, यहां तक कि कैडर समीक्षा बैठक में

प्रस्तावित नामों (कार्यालय सहायक ग्रेड-1, कार्यालय सहायक ग्रेड-II, कार्यालय सहायक ग्रेड-III) द्वारा कोई पद नहीं बनाया गया था। इसलिए याचिकाकर्ताओं को 2002-03 में भूतलक्षी प्रभाव से इन पदों का लाभ और उच्च वेतनमान देना बिल्कुल निरर्थक है। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं को 08.01.1988 को आयोजित अपनी बैठक में शासी निकाय द्वारा पारित संकल्प के कार्यान्वयन के नाम पर बहुत ही मनमाने, अवैध और भेदभावपूर्ण तरीके से उच्च पदों और वेतनमानों का लाभ दिया गया है, जो कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है।

(93) इसके अलावा, यह न्यायालय इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकता है कि एक बार जी.ओ. दिनांक 01.08.1990 और जी.ओ. दिनांक 05.03.1991(एम्स लेखा संवर्ग के साथ समानता) और 09.07.1991 (एम्स मिनिस्ट्रियल और सचिवीय आदेश के साथ समानता) एम्स के साथ पूर्वव्यापी रूप से 01.01.1986 से समानता देते हुए जारी किए गए थे और 01.01.1986 (या शामिल होने की तारीख) से बकाया राशि का वास्तविक भुगतान किया गया था, 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय की सिफारिश निरर्थक हो गई और प्रभावी रूप से सरकार द्वारा ओवरराइड की गई आदेश भी। इस प्रकार, ऐसा लगता है कि इन याचिकाकर्ताओं को दोहरा लाभ दिया गया है, पहले उन्हें एम्स के साथ समानता का लाभ दिया गया है जैसा कि संस्थान के अन्य कर्मचारियों के साथ भी किया गया है और दूसरा बाद में 08.01.1988 की शासी निकाय की पूर्ववर्ती सिफारिश को लागू करके, जैसा कि 6 या 14/15 वर्षों के बाद संस्थान के अन्य

कर्मचारियों के साथ नहीं किया गया है। उक्त सिफारिश स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण प्रतीत होती है और हमारे संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत प्रतिपादित समानता की अवधारणा से प्रभावित होती है।

(94) किसी भी मामले में, उपर्युक्त कार्यान्वयन इस तथ्य के मददेनजर गलत था कि यह दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश और दिनांक 08.01.1988 की सिफारिश के कार्यान्वयन के कारण याचिकाकर्ताओं को दोहरा लाभ देने के बराबर है, यह भी देखा गया है कि 08.10.1988 के शासी निकाय संकल्प के उक्त कार्यान्वयन में कानून के बल का अभाव है क्योंकि इसे राज्य सरकार द्वारा कभी भी मंजूरी नहीं दी गई थी।

(95) हालांकि, गैर-संकाय कर्मचारियों के वरिष्ठ वकीलों द्वारा यह तर्क देने का प्रयास किया गया है कि मौजूदा कानून और अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकार से किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी, हालांकि यह न्यायालय इस मुद्दे को अन्यथा पाता है।

(96) अभिलेखों से उपलब्ध अनुसार, एसजीपीजीआई अधिनियम, 1983 नामक संविधि के अंतर्गत सृजित एक स्वायत्त संस्थान है। अधिनियम की धारा 41 की उपधारा (2) के अनुसरण में, पहला नियम 2011 में बनाया गया था। इस प्रकार, वर्ष 2011 में एसजीपीजीआई की पहली संविधि तैयार करने के बाद, सरकार के नियम और विनियम तब तक लागू नहीं होते जब तक कि संस्थान द्वारा इसे नहीं अपनाया जाता।

(97) चूंकि, यह मुद्दा 2011 से पहले के युग से संबंधित है, जब विनियम अस्तित्व में नहीं थे, अधिनियम वर्ष 1983 ही लागू होगा। इसके अलावा, राज्य सरकार ने दिनांक 07-08-1992 के शासनादेश द्वारा शासी निकाय द्वारा दिनांक 22-03-1990 को आयोजित अपनी बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार एसजीपीजीआई के विनियमों के प्रख्यापन तक एसजीपीजीआई के कर्मचारियों पर राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू नियमों/विनियमों को लागू करने के लिए अपनी सहमति दे दी है।

(98) अधिनियम, 1983 की धारा 19(2)(एफ) पर याचिकाकर्ताओं द्वारा यह तर्क देने के लिए भरोसा किया गया है कि शासी निकाय एकमात्र प्राधिकरण है, जो संस्थान के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के पद को बनाने या समाप्त करने के लिए जिम्मेदार है और परिणामस्वरूप संस्थान में किसी भी पद के सृजन के लिए राज्य सरकार की मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने यह तर्क देने की कोशिश की है कि उक्त प्रावधान की व्याख्या की जा सकती है और इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि शासी निकाय संस्थान के कर्मचारियों के वेतनमान में संशोधन के लिए एकमात्र प्राधिकरण है। उन्होंने वर्ष 2009 में किए गए संशोधन पर भी भरोसा किया है कि उक्त संशोधन के बाद केवल बयान सरकार द्वारा अनुमोदन अनिवार्य हो गया है और उक्त वर्ष से पहले, किसी अनुमोदन की आवश्यकता नहीं थी। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, जब 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के अनुसरण में वेतनमान के भुगतान के उद्देश्य से

आवश्यक बजट राज्य सरकार द्वारा आवंटित किया गया था, तो अधिनियम, 1983 की धारा 25 की आवश्यकता का अनुपालन किया गया है और यह राज्य सरकार द्वारा 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के निहित अनुमोदन को इंगित करता है।

(99) प्रथम द्रष्टया, तर्क में कुछ बल प्रतीत होता है, हालांकि धीरे-धीरे उक्त बल कम हो जाता है क्योंकि यह अधिनियम, 1983 की धारा 19(2)(एफ) के प्रावधान को शाब्दिक अर्थ देता है। धारा 19(2)(एफ) कई शब्दों में कहती है; *शासी निकाय "संस्थान के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के पदों को बना या समाप्त कर सकता है"*। वेतनमानों का संशोधन या किसी भी वित्तीय निहितार्थ को वहन करने के लिए संस्थान का अधिकार उक्त उप-धारा से स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। हालांकि, मुद्दा यह है कि क्या उक्त प्रावधान का अर्थ यह लगाया जा सकता है कि इसमें वेतनमानों को संशोधित करने की शक्ति शामिल है। इस अदालत को याद दिलाया जाता है कि अनिवार्य रूप से 08.01.1988 की शासी निकाय की सिफारिश संस्थान के गैर-संकाय सदस्यों को विभागाध्यक्ष के साथ वेतन में समानता प्रदान करने से संबंधित है, न कि याचिकाकर्ताओं द्वारा लगाए गए पद का निर्माण या समाप्ति। यहां तक कि इस पद के सृजन और उन्मूलन को वर्ष 2009 के संशोधन के बाद पूर्व अनुमोदन के अध्यधीन बनाया गया है। इस प्रकार, यह कहना कि अधिनियम, 1983 की धारा 19(1)(एफ) की व्याख्या वेतनमान को संशोधित करने के लिए शासी निकाय को शक्तियां देने के लिए की जा सकती है, चीजों

के सही नहीं होंगे, खासकर जब वेतनमान के प्रत्येक संशोधन में वित्तीय निहितार्थ शामिल होते हैं और बजट की आवश्यकता होती है, प्रकृति में आवर्ती होने के नाते और इस तरह अधिनियम 1983 की धारा 25 के अनुसार राज्य सरकार के अनुमोदन की आवश्यकता होती है।

(100) यद्यपि यह तर्क दिया जा सकता है कि अधिनियम 1983 में विशेष रूप से वेतनमानों के निर्धारण के लिए शक्ति या प्राधिकरण से संबंधित कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन एक बार जब हम अधिनियम, 1983 की धारा 25 के प्रावधानों को देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि व्यय वाले वेतनमानों में संशोधन की उक्त शक्ति वास्तव में उक्त धारा में अंतर्निहित है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है

"25. (1) ऐसे प्रारूप में और ऐसे समय पर, प्रत्येक वर्ष जो विहित किया जाए, अगले वित्तीय वर्ष के संबंध में एक बजट तैयार किया जाएगा, जिसमें संस्थान की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय को दर्शाया जाएगा और वह राज्य सरकार को ऐसी रीति से अग्रेषित किया जाएगा जो विहित की जाये।

(2) शासी निकाय ऐसे निदेश का अनुपालन करेगा जो राज्य सरकार द्वारा दिया जाए और अंतिम रूप से बजट का अनुमोदन करेगा।

(3) संस्थान के लिए यह विधिपूर्ण नहीं होगा कि वह ऐसे अनुदान के निबंधनों के

अनुसार व्यय करे, जो या तो बजट में संस्वीकृत न किया गया हो या संस्थान को अनुदत्त निधियों की दशा में, बजट की मंजूरी के पश्चात्, राज्य सरकार या भारत सरकार, या किसी अंतर्राष्ट्रीय संगठन या फाउंडेशन या किसी अन्य अभिकरण द्वारा ऐसे अनुदान के निबंधनों के अनुसार व्यय करे:

परन्तु अचानक या अप्रत्याशित परिस्थितियों की दशा में, निदेशक द्वारा बजट में स्वीकृत न किए गए पंद्रह हजार रुपए से अनधिक अनावर्ती व्यय किया जा सकेगा और वह ऐसे सभी व्ययों के संबंध में राज्य सरकार को तुरंत सूचित करेगा।

(101) स्पष्ट रूप से, अधिनियम, 1983 की धारा 25 (1) प्रकट और सुस्पष्ट शब्दों में कहती है कि संस्थान को अगले वित्तीय वर्ष के संबंध में एक बजट तैयार करने के लिए अनिवार्य किया गया है, जिसमें संस्थान की अनुमानित प्राप्तियां और व्यय दर्शाए गए हों और इसे राज्य सरकार को भेजा जाएगा। शासी निकाय की दिनांक 08.01.1988 की सिफारिश द्वारा परिकल्पित लाभों को बढ़ाने में संस्थान का व्यय शामिल है, जिसके लिए बजट बनाना अनिवार्य है और धारा 25(1) की अपेक्षा के अनुसार, अगले वित्तीय वर्ष में इसे शुरू करने से पहले अनुमानित व्यय को अधिसूचित किया जाना है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1983 की धारा 25(2) में संस्थान की ओर से राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेशों का अनुपालन करने की बाध्यता निर्धारित की गई है और

उसके बाद ही संस्थान अंतिम रूप से बजट का अनुमोदन कर सकता है। इस प्रकार, संस्थान द्वारा बजट बनाने और व्यय को शामिल करने में राज्य सरकार की भूमिका और जिम्मेदारी सर्वोपरि है। अधिनियम, 1983 की धारा 25(3) केवल किसी आपातकालीन व्यय के मामले में संस्थान की रक्षा करती है, जिसे स्वीकृत नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप पुनः यह अभिप्राय है कि राज्य सरकार द्वारा व्यय की मंजूरी अनिवार्य है। इसके अलावा, यह परंतुक संस्थान की "अचानक या अप्रत्याशित परिस्थितियों", "पंद्रह हजार रुपये से अधिक नहीं होने वाले गैर-आवर्ती व्यय" के लिए पूर्व स्वीकृति के बिना खर्च करने की शक्ति को सीमित और कम करता है और आगे यह ऐसे सभी खर्चों की राज्य सरकार को तत्काल सूचना देता है।

(102) दिनांक 08.01.1988 की सामान्य सभा की सिफारिश के तहत याचिकाकर्ता को दिए गए लाभ को कल्पना की किसी भी ताकत से आपातकाल के रूप में नहीं माना जा सकता है, न ही यह गैर-आवर्ती और पंद्रह हजार से कम है। इसके अलावा, यह न्यायालय अधिनियम, 1983 की धारा 41(1)(एफ) के प्रावधान से आंखें मूंद नहीं सकता है, जो कहता है कि संस्थान राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के साथ संस्थान के अधिकारियों, शिक्षकों और कर्मचारियों के कार्यालय के कार्यकाल, वेतन और भत्ते और सेवा की अन्य शर्तों के लिए नियम बना सकता है, जिसका अर्थ है कि अधिनियम में संस्थान के कर्मचारियों की सेवा शर्तों के लिए विशिष्ट रूप से कोई उपबंध नहीं है। चूंकि, उस प्रासंगिक समय में, कोई

विनियम मौजूद नहीं थे क्योंकि वे केवल 2011 को अस्तित्व में आए थे, यह अधिनियम, 1983 है जिसे उस संदर्भ में पढ़ा और समझा जाना चाहिए और इस प्रकार अधिनियम, 1983 की धारा 25 उस तरीके को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जिसमें संस्थान के वेतनमान के संशोधन से संबंधित व्यय की व्याख्या की जा सकती है।

(103) इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1983 की धारा 23 में यह प्रावधान है कि राज्य सरकार अधिनियम, 1983 के अंतर्गत संस्थान की शक्तियों का प्रयोग करने और उसके कृत्यों के निर्वहन के लिए प्रत्येक वित्तीय वर्ष में संस्थान को कुछ धनराशि का भुगतान कर सकती है। इस प्रकार अधिनियम, 1983 की धारा 23 के साथ-साथ धारा 24 और 19 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार की अब तक महत्वपूर्ण भूमिका है जहां तक संस्थान के बजट और धन जारी करने से संबंधित मुद्दे संबंधित हैं। प्रस्तुत मामले में, चूंकि इसमें शामिल मुद्दा बजट में वृद्धि के साथ-साथ आवर्ती व्यय भी है, इसलिए राज्य की सहमति अनिवार्य थी, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में तर्क दिया गया है।

(104) इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1983 की धारा 33 और 35 के उपबंधों सहित अधिनियम वर्ष 1983 के सादे पठन से यह अपरिहार्य समझ पैदा होती है कि जहां तक संस्थान के किसी कर्मचारी के व्यय, बजट अथवा भत्ते की मंजूरी का संबंध है, संस्थान राज्य सरकार का सेवक था। उस संदर्भ में, याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिनांक 20.10.2010

के पत्र पर भरोसा भी सही नहीं है, क्योंकि उक्त पत्र के सादे पढ़ने से पता चलता है कि बजट के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है और कार्योत्तर अनुमोदन नहीं देने का एकमात्र कारण लंबे समय का अंतराल और दिनांक 03.01.1997 के कैडर पुनर्गठन के कार्यान्वयन का प्रभाव था जो पहले ही किया जा चुका था। इस अदालत को डर है कि वह वरिष्ठ अधिवक्ता की व्याख्या और तर्क लेने में असमर्थ है और इस तरह यह मानता है कि जहां तक 08.01.1988 की आम सभा की सिफारिश के अनुसार वेतनमान के संशोधन का संबंध है, राज्य सरकार से मंजूरी अनिवार्य थी। इस प्रकार, राज्य सरकार की मंजूरी के बिना दिनांक 02.07.1994, 20.03.2002 और 02.04.2003 के कार्यालय आदेश को कानून के अधिकार के बिना माना जाता है।

(105) याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं को संस्थान द्वारा 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय का लाभ देने के लिए 41.45 लाख रुपये की राशि मंजूर की गई थी, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि राज्य ने उक्त लाभों के लिए मंजूरी दे दी है। दुर्भाग्य से, यह अदालत वरिष्ठ अधिवक्ता के वकीलों के उक्त तर्क से सहमत होने में सक्षम नहीं है, क्योंकि यदि राज्य सरकार द्वारा गलत आधार पर राशि/बजट जारी किया गया है क्योंकि उस समय 08.01.88 के कार्यान्वयन के संबंध में निर्णय प्रचलित था, इसे किए गए अवैधता को बनाए रखने का कारण नहीं माना जा सकता है। किसी भी मामले में, कानून अच्छी तरह से तय है कि न्यायालय को कभी भी वादी को

कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करके अवैधता को बनाए रखने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। यह सुनिश्चित करना न्यायालय का बाध्य कर्तव्य है कि कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग और बेईमानी को प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए और न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग से किसी को भी गलत, अनधिकृत या अन्यायपूर्ण लाभ न हो। किसी को भी अनुचित लाभ या अन्यायपूर्ण लाभ कमाने के लिए न्यायिक प्रक्रिया का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसी विचार को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील सं-10596 वर्ष 2010 इन रे: गोवा स्टेट कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम कृष्ण नाथ ए (मृत) में एलआरएस और अन्य के माध्यम से दोहराया गया था।

(106) इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि इन संवर्गों के कर्मचारियों को हस्तक्षेप करने वाली सेवाओं पर विचार किए बिना गैर-मौजूदा पदों पर वापस कर दिया जाएगा, भी सही नहीं है, क्योंकि सभी पद जिन पर ये कर्मचारी काम कर रहे हैं जैसे एलडीए, यूडीए, कार्यालय अधीक्षक आज भी मौजूद हैं और चूंकि समानता एम्स में उनके समकक्षों के साथ होनी चाहिए, उनकी पदोन्नतियों का निर्धारण 03.01.1997 और 27.11.2001 की कैडर समीक्षा रिपोर्ट के अनुसार संस्थान में याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई सेवा के वर्षों के अनुसार किया जाएगा। एकमात्र परिवर्तन यह है कि ये कर्मचारी/याचिकाकर्ता उन पदोन्नत पदों को फिर से शुरू करेंगे जिन पर उन्हें

03.1.1997 और 27.11.2001 की कैडर समीक्षा रिपोर्ट के अनुसार पदोन्नत किया गया था, जैसा कि अन्य संवर्गों में संस्थान के सभी कर्मचारियों के संबंध में किया गया है। केवल अनुचित लाभ जो उन्हें दिया गया था और संस्थान के अन्य कर्मचारियों को नहीं, ठीक किया जाएगा, जैसा कि मुख्य सचिव, निदेशक और विजिटर द्वारा आक्षेपित आदेशों में विस्तार से बताया गया है।

(107) न्यायालय के सचेतन लोग शासी निकाय की दिनांक 08.01.1988 की सिफारिश के कार्यान्वयन के लिए कोई कानूनी तर्क खोजने में असमर्थ हैं, विशेष रूप से जब राज्य सरकार द्वारा दिनांक 05.03.1991 के सरकारी आदेश के तहत जारी संशोधित वेतनमान आदेश 01.01.1986 से प्रभावी किए गए थे। दूसरे शब्दों में, चूंकि एसजीपीजीआईएमएस के कर्मचारियों को एम्स में उनके समकक्षों के बराबर वेतनमानों और भत्तों में समानता 01.01.1986 से दी गई थी, इसलिए 08.01.1988 को आयोजित अपनी बैठक में लिए गए शासी निकाय के निर्णय को पूर्वव्यापी रूप से लागू करने के लिए, जिसमें राज्य सरकार के विभागाध्यक्षों के साथ समानता का प्रस्ताव किया गया था, पूरी तरह से अवैध प्रतीत होता है, चूंकि एक समय में कर्मचारियों के एक ही सेट पर दो अलग-अलग मानक नहीं लगाए जा सकते हैं।

(108) याचिकाकर्ताओं ने 6 मार्च, 2010 को आयोजित शासी निकाय की 68वीं बैठक के निर्णय और मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक 15-01-2010 और

संस्थान के निदेशक द्वारा पारित दिनांक 11-10-2010 के आदेश और संस्थान के कुलाध्यक्ष (उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल) द्वारा पारित दिनांक 25-01-2011 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है। हालांकि, इस अदालत ने पाया कि ये सभी आदेश अच्छी तरह से विचार-विमर्श किए गए हैं, तर्कपूर्ण हैं और उक्त न्यायसंगत, उचित और कानूनी निर्णय पर पहुंचने में याचिकाकर्ताओं के सेवा इतिहास का पता लगाया है।

(109) इस न्यायालय ने पाया कि संस्थान के मुख्य सचिव/अध्यक्ष ने अपने दिनांक 15.1.2010 के आदेश के बिंदु संख्या-3.5, 7 और 7.2 में अनियमितता के मुद्दे पर स्पष्ट रूप से विचार किया है और निदेशक ने अपने आदेश दिनांक 11.10.2010 के पृष्ठ संख्या-19 में भी इसका उल्लेख किया है, इस आशय का कि राज्य सरकार के अनुमोदन के बाद दिनांक 05.03.1991 को जी.ओ., संस्थान के कर्मचारियों और अन्य अधिकारियों को 01.01.1986 से एम्स के समान वेतनमानों और भत्तों में समानता प्रदान करने के लिए जारी किया गया था और इस तरह 08.01.1988 को आयोजित शासी निकाय की बैठक में लिए गए निर्णय को लागू करने का कोई अवसर और औचित्य नहीं था। अध्यक्ष और निदेशक दोनों ने शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के निर्णय को लागू करने का सुझाव देने के लिए संस्थान की सक्षमता का मुद्दा, और वह भी भूतलक्षी प्रभाव से, उठाया है। अध्यक्ष और निदेशक ने ठीक ही कहा है कि शासी निकाय के पुराने निर्णय के पूर्वोक्त लाभ का विस्तार करके, संस्थान ने उन

कर्मचारियों को पूरी तरह से अवैध छलांग लगाने और कूदने की मांग की है जो न तो योग्य थे और न ही पद और वेतनमान पर संस्थान में भर्ती किए गए थे, दिनांक 02.07.1994 के कार्यालय आदेशों के तहत, 20-3-2002 और 02-04-2003 से शुरू किए गए हैं।

(110) दिलचस्प बात यह है कि 8.1.1988 के सरकारी निकाय के निर्णय के अनुसार किसी भी याचिकाकर्ता को नियुक्त नहीं किया गया था। वास्तव में, उन्हें बाद के शासी निकाय की मंजूरी और सरकारी आदेशों द्वारा अनुमोदित पदों और वेतनमानों पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने स्वयं यह कहा है और इसलिए, 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय को लागू करने की कोई आवश्यकता, अवसर और औचित्य नहीं था। शासी निकाय ने 08-01-1988 को नए नामावली और वेतनमानों का प्रस्ताव किया था लेकिन शासी निकाय द्वारा प्रस्तावित नामावली वाले पदों की कोई संख्या स्वीकृत नहीं की गई थी, इसलिए गैर-विद्यमान पदों का लाभ किसी भी कर्मचारी को नहीं दिया जा सकता है। इस तथ्य को संस्थान के निदेशक द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 11-10-2010 के पृष्ठ संख्या-24 के अंतिम पैराग्राफ में भी कहा गया है।

(111) इसके अलावा, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि 3.1.1997 की कैडर समीक्षा रिपोर्ट में पहले से ही सभी प्रासंगिक आदेशों, तथ्यों और शासी निकाय द्वारा लिए गए सभी पिछले निर्णयों पर विचार किया गया था, इसलिए वेतनमानों और संरचना को लागू करके

3.1.1997 की बैठक में लिए गए शासी निकाय के निर्णय को दरकिनार करना पूरी तरह से अवैध और मनमाना था, जिसे पहले ही 3.1.1997 को अनुमोदित कैडर समीक्षा रिपोर्ट द्वारा अधिक्रमित किया गया था।

(112) इसलिए, सभी कर्मचारियों और अधिकारियों को 3.1.1997 और 27.11.2001 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित कैडर समीक्षा रिपोर्ट के अनुसार पदोन्नत किया जाना है और यह कैडर समीक्षा रिपोर्ट पहली बार, और वह भी विभिन्न संवर्गों में सभी श्रेणियों के कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए, बनाई गई थी। संस्थान के वरिष्ठ अधिवक्ता की ओर से यह सही है कि दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय संकल्प के इस अवैध कार्यान्वयन के कारण, संस्थान में अराजकता थी क्योंकि केवल मंत्रालयी, सचिवीय और लेखा संवर्ग के कर्मचारियों को न केवल पुनः पदनाम के आधार पर बल्कि बढ़े हुए वेतनमानों के आधार पर उच्च पदों पर रखा गया था जिस पर उन्हें न तो नियुक्त किया गया था और न ही उन्होंने आवेदन किया था या पात्र थे। वह अपने सबमिशन में सही है कि अन्य संवर्गों के अन्य कर्मचारियों और अधिकारियों ने इस पर नाराजगी जताई और समान व्यवहार की मांग की और कर्मचारियों के विभिन्न वर्गों के कई अभ्यावेदन थे और उनमें से कुछ ने इस न्यायालय का दरवाजा भी खटखटाया और रिट याचिकाएं दायर कीं।

(113) इसके अलावा, यह न्यायालय इसे सर्वोपरि महत्व का मानता है कि 8.1.1988 के शासी निकाय के संकल्प को 1994 तक लागू

नहीं किया गया था क्योंकि इसे तत्कालीन प्रचलित प्रथा और प्रक्रिया और अधिनियम वर्ष 1983 में दिए गए प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं पाया गया था, लेकिन इसे वर्ष 1994 में और उसके बाद 2002-03 में लागू किया गया। स्पष्टतया, संस्थान के मुख्य सचिव और अध्यक्ष भी अपने दिनांक 15-01-2010 के आदेश के बिन्दु सं-41 में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं और आगे निदेशक ने भी अपने दिनांक 11-10-2010 के आदेश के पृष्ठ सं-19 के अंतिम पैरा में इसका उल्लेख किया है। शासी निकाय की दिनांक 8.1.1988 की सिफारिशों को लागू करने की यह कार्रवाई भी कई जांच अधिकारियों/समितियों द्वारा उनकी रिपोर्टों में दिए गए कारणों से अवैध, मनमानी और भेदभावपूर्ण पाई गई थी।

(114) इस न्यायालय को सरकार स्तर की समिति (श्री प्रशांत त्रिवेदी, सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के चिकित्सा शिक्षा विभाग की अध्यक्षता में) द्वारा दिनांक 7-11-2005 की अपनी रिपोर्ट में दिए गए तर्क में भी समर्थन मिलता है, जिसमें समिति ने सिफारिश की थी कि चूंकि एम्स, नई दिल्ली के बराबर वेतनमान पहले ही एसजीपीजीआई के सभी कर्मचारियों को दिए जा चुके हैं, (याचिकाकर्ताओं/मंत्रालयी, लेखा और सचिवीय संवर्ग के कर्मचारियों सहित) ने दिनांक 1-8-1990 और 5-3-1991 के सरकारी आदेश दिनांक 1.1.1.1986 से प्रभावी और संवर्ग संरचना और पदोन्नति नीति को शासी निकाय द्वारा 3.1.1997 और 27.11.2001 को अनुमोदित किया गया है, वर्ष 1994 और

2002-03 के दौरान केवल अत भूतलक्षी प्रभाव से लेखा मंत्रालयी और सचिवालयी संवर्ग के सभी खातों को रद्द किया जाना चाहिए और तदनुसार वसूली की जानी चाहिए। इस संदर्भ में संस्थान के मुख्य सचिव एवं अध्यक्ष ने भी अपने दिनांक 15.1.2010 के आदेश के बिन्दु संख्या-3.13 एवं 4.5 में इस निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की है।

(115) इसके अलावा, मुख्य सचिव द्वारा दिनांक 13-2-2002 के कार्यालय ज्ञापन की अवैधता को अपने दिनांक 15-1-2010 के आदेश में विस्तार से बताया गया है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि दिनांक 13-2-2002 को कार्यालय ज्ञापन जारी करना पूर्णतः अवैध था, क्योंकि यह उत्तर प्रदेश के वित्त विभाग की सहमति के बिना जारी किया गया था और इसलिए भी कि यह उत्तर प्रदेश कार्य नियम, 1975 में निर्धारित प्रावधानों के विरुद्ध था। चूंकि शासी निकाय ने दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय के निष्पादन को रद्द करने का निर्णय भी लिया है, जिसे दिनांक 2-7-1994, 20.03.2002 और 02.04.2003 के आदेशों द्वारा निष्पादित किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा सामने रखे गए मामले में कुछ भी नहीं बचा है।

(116) जहां तक 6 सदस्यीय समिति की दिनांक 16.01.2008 की रिपोर्ट के संबंध में वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क का संबंध है, शासी निकाय ने व्यापक विचार-विमर्श के बाद 01.03.2008 को आयोजित अपनी 62वीं बैठक में एक बहुत ही विशिष्ट टिप्पणी की कि उक्त

समिति में नामित अधिकांश सदस्यों के कार्यवृत्त पर उनके हस्ताक्षर नहीं हैं। सचिव, वित्त द्वारा यह भी बताया गया कि उत्तर प्रदेश सरकार के वित्त विभाग के प्रतिनिधि उपस्थित नहीं थे। तदनुसार, यह संकल्प लिया गया कि शासी निकाय संस्थान के अध्यक्ष को वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के परामर्श से समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन पर अंतिम निर्णय लेने के लिए अधिकृत कर रहा है।

(117) इसके अतिरिक्त, समिति द्वारा दिनांक 16-01-2008 को हुई अपनी बैठक में की गई सिफारिशें भी सशर्त थीं क्योंकि यह विशेष रूप से कहा गया था कि दिनांक 8-1-1988 के शासी निकाय के निर्णय को कार्यान्वित करते समय यह सुनिश्चित किया जाएगा कि एम्स से कोई विचलन न हो और आगे यह भी कहा गया कि सिफारिशें इस शर्त पर की जा रही हैं कि राज्य सरकार के स्थापना और वित्त विभाग से परामर्श किया जाना चाहिए और उनकी सहमति प्राप्त की जानी चाहिए प्रस्ताव को संस्थान के शासी निकाय के समक्ष रखा जाएगा। चूंकि न तो वित्त विभाग के प्रधान सचिव और न ही वित्त विभाग से कोई अन्य अधिकृत प्रतिनिधि बैठक का हिस्सा थे, इसलिए यह मानना गलत है कि केवल समिति में नामित किया जाना वित्त विभाग की सहमति माना जाएगा और इसे खाली औपचारिकता होना सही नहीं है। केवल एक समिति का सदस्य होने और इसमें भाग नहीं लेने का मतलब होगा कि उस व्यक्ति/संबंधित विभाग की सहमति प्राप्त नहीं की गई है, खासकर जब उस विशेष विभाग के किसी अन्य

व्यक्ति द्वारा भी इसका प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था। यह केवल उक्त कारण के कारण था कि समिति ने अंतिम रूप से शासी निकाय के समक्ष अपनी सिफारिशें रखने से पहले वित्त और स्थापना विभाग की सहमति लेने की सशर्त टिप्पणी की।

(118) 06.03.2010 को आयोजित आक्षेपित शासी निकाय की बैठक के एजेंडा आइटम सं-3 के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि 15.01.2010 के आक्षेपित कार्यालय आदेश में की गई सिफारिशों के कार्यान्वयन से पहले, विस्तृत विचार-विमर्श आयोजित किए गए थे, जिसके बाद शासी निकाय ने अंतिम निर्णय लिया था। शासी निकाय ने राष्ट्रपति को वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के साथ परामर्श करने के बाद 08.01.88 के कार्यान्वयन से संबंधित मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए अधिकृत किया था। इस प्रकार, अध्यक्ष/मुख्य सचिव को रिट याचिका संख्या-6555 (एस/एस) वर्ष 2009 (मुकेश कुमार श्रीवास्तव और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 15.01.2009 के आदेश के अलावा 08.01.88 के कार्यान्वयन और इसके कार्यान्वयन और प्रभाव से संबंधित पूरे मुद्दे को देखने के लिए अधिकृत किया गया था। चूंकि इस अदालत ने मुख्य सचिव को कानून के अनुसार आदेश पारित करने का निर्देश दिया था, इसलिए वह आदेश पारित करने के लिए पूरी तरह अधिकृत थे। इसके अलावा, एसजीपीजीआई अधिनियम, 1983 की धारा 11 के अनुसार राज्य के मुख्य सचिव संस्थान के अध्यक्ष भी हैं और इसलिए कुछ याचिकाकर्ता का यह तर्क कि अध्यक्ष को

निर्देश दिया गया था और मुख्य सचिव द्वारा आदेश पारित किया गया था, भी सही नहीं है।

(119) इसके अलावा, याचिकाकर्ता का कथन कि प्रस्तुत विवाद संस्थान के देर से निर्णय लेने के कारण हुआ है, गलत है और इसमें कोई दम नहीं है, क्योंकि समय-समय पर संस्थान द्वारा विभिन्न समितियों का गठन किया गया है, जिन्होंने 08.01.1988 के शासी निकाय के संकल्प के कार्यान्वयन को वापस लेने की सिफारिश भी की थी, तथापि, उक्त वापसी केवल 2010 में ही की जा सकी। इसके अतिरिक्त, दिनांक 08-01-1988 के आदेश को दिनांक 06-03-1998 को वापस ले लिया गया था और एक उच्च स्तरीय जांच समिति द्वारा दिनांक 07-11-2005 की अपनी रिपोर्ट में दिनांक 07-11-2002 और 02-04-2003 के आदेश को अवैध और गलत तरीके से जारी किए गए आदेश पाए गए हैं, तथापि, रिट याचिकाओं के इस समूह के लंबित होने के कारण उक्त के परिणामी प्रभाव को कार्यान्वित नहीं किया जा सका। चूंकि, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ताओं को दोहरे लाभ की अनुमति नहीं थी, इसलिए 08.10.1988 की शासी निकाय की सिफारिश के कार्यान्वयन को कानून में खराब माना जाता है।

(120) याचिकाकर्ता के लिए वरिष्ठ वकीलों द्वारा बहुत मुखर तर्क दिया गया अगला आधार यह है कि इन कर्मचारियों को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया है और उन्हें पहली बार संस्थान के निदेशक द्वारा जारी किए गए कारण बताओ नोटिस दिनांक 1.07.2010 का जवाब दाखिल करने के लिए

कहा गया था। उनके अनुसार, उन्हें संस्थान के अध्यक्ष या शासी निकाय के समक्ष सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और इस तरह दिया गया अवसर केवल एक छलावा था।

(121) जाहिर है, इस अदालत ने पाया कि 6 मार्च 2010 को लिए गए शासी निकाय के निर्णय से पहले प्रश्न में मुद्दे के संबंध में कोई अंतिम राय नहीं बनाई गई थी, इसलिए, 6 मार्च 2010 से पहले कोई संचार करने का सवाल ही नहीं उठता है और जब तक कोई राय बनाई गई थी, तब तक याचिकाकर्ताओं को निदेशक द्वारा 1 जुलाई के अपने आदेश के तहत सुनवाई का अवसर दिया गया था, 2010. इसके अलावा, "केनरा बैंक बनाम वी.के. अवस्थी" (2005)6 एस.सी.सी. 321 के मामले में, जिसमें उस मामले में प्रतिपक्षी को 6.08.1992 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था और उसे जवाब देने के लिए 15 दिन का समय दिया गया था। प्रतिपक्षी उत्तर देने में विफल रहा और परिणामस्वरूप 17.08.1992 को सेवा से समाप्त कर दिया गया। प्रतिपक्षी ने तर्क दिया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया था और उच्च न्यायालय ने उक्त विवाद को बरकरार रखते हुए बैंक को अनुशासनात्मक समिति के समक्ष प्रतिपक्षी को उचित सुनवाई प्रदान करने का निर्देश दिया। इसलिए बैंक ने उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की। बैंक ने प्रतिपक्षी को अपीलकर्ता प्राधिकारी के समक्ष व्यक्तिगत सुनवाई प्रदान की। उस मामले से संबंधित मुद्दा यह था कि अपीलकर्ता प्राधिकरण के समक्ष प्रतिपक्षी को बैंक द्वारा प्रदान की गई निर्णय सुनवाई के बाद 'ऑडी अल्टरम पार्टम' के

साथ सहमति है या नहीं। सर्वोच्च न्यायालय ने चरण लाल साहू बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1990सी 1480 पर भरोसा किया, जहां न्यायालय ने कहा कि 'निर्णय के बाद की सुनवाई पूर्व-निर्णयात्मक सुनवाई की प्रक्रियात्मक कमी को दूर कर सकती है'। अतः यदि किसी प्रकरण की कार्यवाही में कोई कमी है तो निर्णय के बाद होने वाली सुनवाई का उपयोग कर उसका समाधान किया जा सकता है। इसलिए अदालत ने अपील की अनुमति दी और माना कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का कोई उल्लंघन नहीं देखा गया था और प्रस्तुत अपील में निर्णय के बाद की सुनवाई पूर्व निर्णायक सुनवाई के उद्देश्य को पूरा करती है। किसी भी मामले में, रिट याचिका के एक समूह में 02.11.2010 को पारित इस माननीय न्यायालय के आदेशों को ध्यान में रखते हुए, 7570/2010, 7571/2010 और 7572/2010, याचिकाकर्ताओं को संस्थान के विजिटर के समक्ष सुनवाई का एक और अवसर मिला और याचिकाकर्ताओं और संबंधित अन्य पक्षों को सुनने के बाद, विजिटर ने दिनांक 25.01.2011 को आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन खारिज कर दिए गए हैं, उसमें दिए गए कई कारणों और आधारों पर निराधार होना। उपरोक्त के मददेनजर, यह माना जाता है कि याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया है।

(122) इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि शासी निकाय दिनांक 18.07.1989 द्वारा एम्स, नई दिल्ली के साथ समानता प्रदान करने के साथ-साथ 01.08.1990 और 05.03.1991 के शासनादेशों को 01.01.1986 से प्रभावी करते हुए, 08.01.1988 का पूर्व शासी निकाय निर्णय (राज्य विभाग में विभागाध्यक्ष के कर्मचारियों के साथ वेतनमान की समानता) को हटा दिया गया है

और यह लागू नहीं है। परिणामस्वरूप, दिनांक 02.07.1999, 01.01.1988, 20.03.2002 और 02.04.2003 जैसे आदेश, जिनमें उत्तर प्रदेश के विभागाध्यक्ष के कर्मचारियों के साथ समानता दी गई है, को अवैध और बिना किसी प्रभाव के माना जाता है।

(123) उपरोक्त के मददेनजर, इस न्यायालय ने पाया कि आक्षेपित आदेशों ने किसी भी तरह से पेड़ के लिए लकड़ी को याद नहीं किया है और जाहिर तौर पर अध्यक्ष/मुख्य सचिव द्वारा दिनांक 15.01.2010 के आदेश के तहत एक बहुत विस्तृत और तर्कसंगत आदेश पारित किया गया है। इसके अलावा, इस अदालत को 6 मार्च 2010 को आयोजित शासी निकाय की 68 वीं बैठक के निर्णय और संस्थान के निदेशक द्वारा पारित दिनांक 11.10.2010 के आदेश और संस्थान के विजिटर (उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल) द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2011 के आदेश में कोई त्रुटि नहीं मिलती है। आक्षेपित आदेशों में सभी प्रासंगिक तथ्यों पर सही विचार किया गया है और इस मामले में गंभीर अवैधता पाई गई है और इसलिए दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय के संकल्प के कार्यान्वयन से उत्पन्न होने वाले लाभों को रद्द/वापस लेने का आदेश पारित किया गया है। विवादित आदेश तथ्यों और परिस्थितियों में निष्पक्ष, उचित और कानूनी हैं। याचिकाकर्ता द्वारा आक्षेपित आदेशों के खिलाफ हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं बनाया गया है।

(124) जहां तक भुगतान की गई अधिक राशि की वसूली का संबंध है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में लगातार यह निर्णय दिया है कि यदि कर्मचारी

के किसी गलत बयानी या धोखाधड़ी के कारण अतिरिक्त राशि का भुगतान नहीं किया गया था या यदि वेतन/भत्ते की गणना के लिए गलत सिद्धांत लागू करके या नियम/आदेश की किसी विशेष व्याख्या के आधार पर नियोक्ता द्वारा ऐसा अतिरिक्त भुगतान किया गया था जो बाद में त्रुटिपूर्ण पाए जाने पर परिलब्धियों अथवा भत्तों का ऐसा अधिक भुगतान वसूली योग्य नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कर्नल बीजे अक्करा (सेवानिवृत्त) बनाम भारत सरकार और अन्य 2006 एस.सी.सी. 709 के मामले में एक समान प्रश्न पर निम्नानुसार विचार किया है:

"27. विचार किया जाने वाला अंतिम प्रश्न यह है कि क्या परिपत्र दिनांक 76/1999 की गलत व्याख्या/समझ के कारण किए गए अतिरिक्त भुगतान की वसूली के खिलाफ राहत दी जानी चाहिए। इस न्यायालय ने किसी कर्मचारी से परिलब्धियों/भत्तों के अत्यधिक गलत भुगतान की वसूली के खिलाफ लगातार राहत दी है, यदि निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाता है (साहिब राम बनाम हरियाणा राज्य [1995 पूरक (1) एस.सी.सी. 18: 1995 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 248], श्याम बाबू वर्मा बनाम भारत संघ [(1994) 2 एस.सी.सी. 521: 1994 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 683: (1994) 27 एटीसी 121], भारत संघ बनाम एम. भास्कर [(1996) 4 एस.सी.सी. 416: 1996 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 967] और वी. गंगाराम बनाम क्षेत्रीय संयुक्त निदेशक

[(1997)6 एस.सी.सी. 139: 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1652]):

(क) कर्मचारी की ओर से किसी गलत बयानी या धोखाधड़ी के कारण अधिक भुगतान नहीं किया गया था।

(ख) नियोक्ता द्वारा वेतन/भत्ते की गणना के लिए गलत सिद्धांत लागू करके अथवा नियम/आदेश की किसी विशेष व्याख्या के आधार पर ऐसा अधिक भुगतान किया गया था, जिसे बाद में त्रुटिपूर्ण पाया गया है।

28. इस तरह की राहत, अतिरिक्त भुगतान की वसूली को रोकने, अदालतों द्वारा कर्मचारियों में किसी भी अधिकार के कारण नहीं, बल्कि इक्विटी में, कर्मचारियों को उस कठिनाई से राहत देने के लिए न्यायिक विवेक के प्रयोग में दी जाती है जो वसूली लागू होने पर होगी। एक सरकारी कर्मचारी, विशेष रूप से सेवा के निचले पायदान पर रहने वाला कर्मचारी, जो भी परिलब्धियां प्राप्त करता है, उसे अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए खर्च करता है। यदि उसे लंबी अवधि के लिए अतिरिक्त भुगतान प्राप्त होता है, तो वह इसे खर्च करेगा, वास्तव में विश्वास करते हुए कि वह इसका हकदार है। चूंकि अतिरिक्त भुगतान की वसूली के लिए किसी भी बाद की कार्रवाई से उसे अनुचित कठिनाई होगी, इसलिए उस संबंध में राहत प्रदान की जाती है। लेकिन जहां कर्मचारी को जान था कि प्राप्त भुगतान देय या गलत तरीके से भुगतान किए

गए भुगतान से अधिक था, या जहां गलत भुगतान के थोड़े समय के भीतर त्रुटि का पता लगाया जाता है या ठीक किया जाता है, अदालतें वसूली के खिलाफ राहत नहीं देंगी। मामला न्यायिक विवेक के दायरे में होने के कारण, अदालतें किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर वसूली के खिलाफ ऐसी राहत देने से इनकार कर सकती हैं।

29. इसी सिद्धांत पर, पेंशनभोगी यह निर्देश भी मांग सकते हैं कि गलत भुगतान की वसूली नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि सेवारत कर्मचारियों की तुलना में पेंशनभोगी अधिक नुकसानदेह स्थिति में होते हैं। अतिरिक्त गलत भुगतान की वसूली के किसी भी प्रयास से उन्हें अनुचित कठिनाई होगी। याचिकाकर्ता अतिरिक्त भुगतान के संबंध में किसी भी गलत बयानी या धोखाधड़ी के दोषी नहीं हैं। कार्यान्वयन विभागों द्वारा गलत समझ के कारण, एनपीए को बढ़ाने के उद्देश्य से न्यूनतम वेतन में जोड़ा गया था। इसलिए हमारा विचार है कि प्रतिपक्षी 7.6.1999 के परिपत्र के अनुसरण में पेंशन के लिए किए गए किसी भी अतिरिक्त भुगतान की वसूली नहीं करेंगे, जब तक कि 11.9.2001 के स्पष्टीकरण परिपत्र के जारी नहीं हो जाते। जहां तक 11.9.2001 के परिपत्र के बाद किए गए किसी भी अतिरिक्त भुगतान का संबंध है, जाहिर है कि भारत संघ अतिरिक्त वसूली का हकदार होगा क्योंकि उक्त परिपत्र की वैधता को बरकरार रखा

गया है और पेंशनभोगियों को पहले की गई गलत गणना के संबंध में नोटिस पर रखा गया है।

(125) इसी तरह, "पंजाब राज्य और अन्य बनाम रफीक मसीह", (2015) 4 एस.सी.सी. 334 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कर्मचारियों के इशारे पर बिना किसी गलती या गलत बयानी के लाभार्थी कर्मचारियों को उनके अधिकारों से अधिक गलत तरीके से दिए गए मौद्रिक लाभ की वसूली के लिए राज्य द्वारा पारित एक आदेश की वैधता की जांच की। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने किसी कर्मचारी को होने वाली कठिनाई की स्थितियों पर विचार किया, यदि वसूली नियोक्ता को प्रतिपूत करने का निदेश दिया जाता है और उसे अस्वीकार कर दिया जाता है, लाभार्थी कर्मचारियों को ऐसी वसूली से छूट दी जाती है। यह इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"8. दो पक्षों के बीच, यदि एक दृढ़ संकल्प उस पक्ष के पक्ष में किया जाता है, जो दोनों में से कमजोर है, दूसरे के लिए कोई गंभीर नुकसान के बिना (जो वास्तव में एक कल्याणकारी राज्य है), तो हल किया गया मुद्दा न्याय की अवधारणा के अनुरूप होगा, जो भारत के नागरिकों को भारत के संविधान की प्रस्तावना में भी सुनिश्चित किया गया है। नियोक्ता द्वारा वसूली के जिस अधिकार का पीछा किया जा रहा है, उसकी तुलना संबंधित कर्मचारी पर वसूली के प्रभाव से करनी होगी। यदि संबंधित कर्मचारी से वसूली का प्रभाव, राशि की वसूली के लिए नियोक्ता के संबंधित

अधिकार की तुलना में अधिक अनुचित, गलत अनुचित होगा, तो वसूली को प्रभावित करना अन्यायपूर्ण और मनमाना होगा। ऐसी स्थिति में, कर्मचारी का अधिकार असंतुलित हो जाएगा, और इसलिए नियोक्ता के ठीक होने के अधिकार को ग्रहण कर लेगा।

XXX XXX

18. वसूली के मुद्दे पर कर्मचारियों को नियंत्रित करने वाली कठिनाई की सभी स्थितियों को पोस्ट करना संभव नहीं है, जहां नियोक्ता द्वारा गलती से उनकी पात्रता से अधिक भुगतान किया गया है। जैसा कि यह हो सकता है, ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों के आधार पर, हम एक तैयार संदर्भ के रूप में, निम्नलिखित कुछ स्थितियों को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसमें नियोक्ताओं द्वारा वसूली, कानून में अस्वीकार्य होगी:

(i) श्रेणी-III और श्रेणी-IV सेवा (अथवा समूह ग और समूह घ सेवा) से संबंधित कर्मचारियों से वसूली।

(ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों, अथवा उन कर्मचारियों से वसूली, जो वसूली के आदेश के एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं।

(iii) वसूली का आदेश जारी होने से पहले कर्मचारियों से वसूली, जब पांच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए अधिक भुगतान किया गया हो।

(iv) उन मामलों में वसूली जहां किसी कर्मचारी से उच्च पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए गलत तरीके से अपेक्षित किया गया है और तदनुसार भुगतान किया गया है, भले ही उससे अवर पद पर कार्य करने की अपेक्षा की गई हो।

(v) किसी अन्य मामले में, जहां अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है, कि कर्मचारी से की गई वसूली, अन्यायपूर्ण या कठोर या इस हद तक मनमानी होगी, जो नियोक्ता के अधिकार के न्यायसंगत संतुलन से कहीं अधिक होगी।

(126) इसके अतिरिक्त, हाल ही में माननीय उच्चतम न्यायालय ने थॉमस डेनियल बनाम केरल राज्य एवं अन्य एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 536) के मामले में दिनांक 10-11-2008 को अपने निर्णय में यह निर्णय दिया है कि अपनी सेवानिवृत्ति के लगभग 10 वर्षों के बाद, सेवा में रहते हुए एक कर्मचारी को त्रुटि के कारण दी गई वेतन वृद्धि की वसूली के समान प्रश्न का निर्धारण करने का अवसर था। माननीय न्यायालय ने स्थापित कानून के इतिहास का पता लगाने के बाद उक्त राशि की वसूली की अनुमति देने से इनकार कर दिया और वसूली नोटिस को रद्द कर दिया।

(127) जहां तक प्रस्तुत मामले के तथ्यों का संबंध है, यह राज्य या संस्थान का मामला नहीं है कि इन कर्मचारियों द्वारा गलत बयानी या धोखाधड़ी के कारण, उन्हें अतिरिक्त राशि

का भुगतान किया गया है। वास्तव में, अधिक राशि का भुगतान दिनांक 08-01-1988 के शासी निकाय संकल्प के त्रुटिपूर्ण कार्यान्वयन के कारण किया गया है, जिसे अध्यक्ष/मुख्य सचिव द्वारा दिनांक 15-01-2010 के आदेश, 6 मार्च, 2010 को आयोजित शासी निकाय के निर्णय, संस्थान के निदेशक द्वारा पारित आदेश दिनांक 11-10-2010 के आदेश और दिनांक 25-01-2011 के आदेश द्वारा आक्षेपित आदेशों द्वारा वापस ले लिया गया है/रद्द कर दिया गया है। संस्थान के कुलाध्यक्ष (उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल) द्वारा पारित किया गया। इस प्रकार, इस अदालत का विचार है कि पहले से भुगतान की गई अतिरिक्त राशि की वसूली का प्रयास अनुचित होगा।

(128) जहां तक दूसरे विवाद का संबंध है, वह लेखा संवर्ग के कर्मचारियों के बीच वरिष्ठता विवाद से संबंधित है। यहां विवाद कैडरों के पुनर्गठन के कारण उभरा है। प्रथम दृष्टया संस्थान के लेखाकार-सह-कम्प्यूटर प्रचालक के लिए कम्प्यूटर संवर्ग होने के नाते एक पृथक संवर्ग का गठन किया गया था। संस्थान के शासी निकाय की दिनांक 03.01.1997 की संवर्ग समीक्षा बैठक के निर्णय के कारण यह आवश्यक हो गया था। इन लेखाकार-सह-कम्प्यूटर प्रचालक के अभ्यावेदन के परिणामस्वरूप इस प्रकार सृजित पृथक संवर्ग को मौजूदा लेखा संवर्ग के साथ पुनः समामेलित करने का प्रस्ताव किया गया था। उक्त मुद्दा 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के गलत कार्यान्वयन से बढ़ गया था, जिसके परिणामस्वरूप कुछ कर्मचारी, जो मूल

रूप से रैंक में जूनियर थे, ने वरिष्ठता में उन लोगों के अलावा उच्च पद प्राप्त किया जो लेखा संवर्ग में उनसे वरिष्ठ थे। वरिष्ठता विवाद की बारीकियों को शुरू करने से पहले, घटनाओं के कालानुक्रमिक मोड़ पर तल्लीन करना अनिवार्य है, जिसके परिणामस्वरूप उक्त विवाद हुआ।

(129) याचिकाओं के दूसरे सेट के याचिकाकर्ताओं को 515-860/- रुपये के असंशोधित वेतनमान में क्रमशः 12.2.1990 और 20.7.1990 को सहायक लेखाकार सह कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया था। संशोधित वेतनमान सभी गैर-संकाय कर्मचारियों को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के समान स्वीकार्य बनाया गया था, जिसे दिनांक 1-8-1990 और 05-03-1991 के सरकारी आदेश द्वारा 01-01-1986 अथवा कार्यभार ग्रहण करने की तारीख, जो भी बाद में हो, से प्रभावी बनाया गया था।

(130) 'सहायक लेखाकार' और 'सहायक लेखाकार सह कंप्यूटर ऑपरेटर' (ए.ए.सी.सी.ओ., संक्षेप में) के पदों के लिए वेतनमान 1400-2300/- रुपये के रूप में स्वीकृत किया गया था और इसे 1.1.1986 से या कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से, जो भी बाद में हो, स्वीकार्य बनाया गया था और लेखा लिपिक और कैशियर के पद के लिए वेतनमान 1200-2040 रुपये के रूप में स्वीकृत किया गया था। जैसा कि ऊपर कहा गया है, याचिकाकर्ताओं (ए.ए.सी.सी.ओ.) को उनकी ज्वाइनिंग की तारीख से 1400-2300 रुपये का संशोधित वेतनमान स्वीकृत किया गया था,

जबकि लेखा क्लर्क और कैशियर को 1200-2040 रुपये के संशोधित वेतनमान को मंजूरी दी गई थी।

(131) जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 08.01.1988 को लिए गए शासी निकाय के पूर्ववर्ती निर्णय को लेखा लिपिक और कैशियर पर लागू किया गया था (02.07.1994 को) और व्यक्तियों को गलत तरीके से स्वीकृत किया गया था, 08.01.1988 से 1400-2300 रुपये का वेतनमान या उनकी शामिल होने की तारीख से, जो भी बाद में था। 02.07.1994 को 08.01.1988 के शासी निकाय के निर्णय के आधार पर की गई कार्रवाई का निर्णय पूर्वोक्त पैराग्राफ में कर्मचारियों के खिलाफ किया गया है।

(132) एसजीपीजीआई के गैर-संकाय कर्मचारियों के लिए 'कैंडर समीक्षा और पदोन्नति नीति' के अनुसार, जिसे एम्स, नई दिल्ली के समान 03.01.1997 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित किया गया था, रिट याचिका के दूसरे सेट के इन याचिकाकर्ताओं के पद को कंप्यूटर कैंडर में वर्गीकृत किया गया था। हालांकि, इन याचिकाकर्ताओं द्वारा उन्हें लेखा संवर्ग में आमेलित करने और उन्हें कनिष्ठ लेखा अधिकारी, सहायक लेखाकार से उच्चतर पद के रूप में पदनामित करने के लिए अभ्यावेदन दिए गए थे।

(133) उपर्युक्त के मददेनजर, संस्थान की वित्त समिति ने 1400-2300 रुपये के वेतनमान में सहायक लेखाकार के स्तर पर लेखा संवर्ग के साथ ए.ए.सी.सी.ओ. के विलय पर सहमति

व्यक्त की। वित्त समिति ने आगे सिफारिश की कि सहायक लेखाकार के साथ उनकी वरिष्ठता का निर्धारण पैनल की तारीख से किया जाएगा जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया गया था। उक्त वित्त समिति की सिफारिशों को शासी निकाय द्वारा दिनांक 04-05-1998 को हुई अपनी बैठक में अनुमोदित कर दिया गया था।

(134) इस प्रकार, शासी निकाय द्वारा 04.05.1998 को लिए गए निर्णय के आलोक में, 26.09.1998 को एक अनंतिम वरिष्ठता सूची प्रकाशित की गई थी और आपत्तियां मांगी गई थीं और अंतिम वरिष्ठता सूची 21.12.1998 को प्रकाशित की गई थी। दिनांक 26.09.1998 के आदेश में आगे कहा गया है कि ए.ए.सी.सी.ओ. को सहायक लेखाकार के स्तर पर लेखा संवर्ग में 1400-2300/- रुपये के वेतनमान में मिला दिया गया था।

(135) जाहिर है, ये याचिकाकर्ता उक्त वरिष्ठता सूची से खुश नहीं थे और इस तरह इन ए.ए.सी.सी.ओ. ने संस्थान द्वारा प्रकाशित वरिष्ठता सूची के खिलाफ समय-समय पर अभ्यावेदन दिए और रिट याचिका संख्या-2939 (एस.एस.) वर्ष 1998, 5609 (एस.एस.) वर्ष 1998, 639 वर्ष 1999 (एस.एस.) और 6545 वर्ष 2007 (एस.एस.) दायर की, जिससे उन्होंने अपनी वरिष्ठता को चुनौती दी थी; सरकार ने दिनांक 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय का विलय और गलत कार्यान्वयन आदि के संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की है। जाहिर है, रिट याचिका संख्या-2939 (एस.एस.) वर्ष 1998 का निर्णय अधिनियम, 1983 की धारा 36 के तहत आगंतुक के समक्ष वैकल्पिक

उपाय के आधार पर किया गया था। इसी प्रकार एसजीपीजीआई के कथन के आधार पर रिट याचिका संख्या-5609 (एस.एस.) वर्ष 1998 का निर्णय लिया गया कि याचिकाकर्ता की आपत्ति का निर्णय पहले कानून के अनुसार किया जाएगा और उसके बाद ही वरिष्ठता सूची प्रकाशित की जाएगी।

(136) उपर्युक्त अभ्यावेदन को ध्यान में रखते हुए कुलाध्यक्ष ने अपने दिनांक 28.8.1999 के आदेश में यह टिप्पणी की कि लेखा संवर्ग की वरिष्ठता निर्धारित करने में प्रथम दृष्टया त्रुटि है, किन्तु अंतिम आदेश पारित नहीं किया और इस मुद्दे को आवश्यक जांच एवं व्यवस्था के लिए चिकित्सा शिक्षा विभाग को भेज दिया। इस प्रकार, इस न्यायालय ने 13.12.1999 को रिट याचिका संख्या-639 (एस.एस.)/1999 पर सुनवाई करते हुए प्रावधान किया कि पदोन्नति 21.12.1998 की वरिष्ठता सूची के अनुसरण में नहीं होगी, जिसे चुनौती दी जा रही है, जब तक कि वरिष्ठता विवाद को सरकार द्वारा अंतिम रूप से निर्धारित नहीं किया जाता है। तथापि, इसी बीच, दिनांक 21-12-1998 की वरिष्ठता सूची की संस्थान द्वारा दिनांक 14-07-2000 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई थी।

(137) एक और 'कैंडर समीक्षा और पदोन्नति नीति' को 27.11.2001 को शासी निकाय द्वारा अनुमोदित किया गया था और वरिष्ठता के क्रम में पात्र कर्मचारियों को 03.01.2002 से पदोन्नत किया गया था, लेकिन सूची में जूनियर होने के कारण, ए.ए.सी.सी.ओ. को 08.01.1988 के शासी निकाय के संकल्प के प्रभाव के कारण पदोन्नत होने से छोड़ दिया

गया था। इसी बीच, शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय के आधार पर दिए गए लाभों की संस्थान प्राधिकारियों द्वारा बार-बार जांच की गई और उसमें दिए गए कारणों से इसे गलत, अनियमित और अवैध पाया गया। इस प्रकार, एक और रिट याचिका संख्या-6555/2009 (एस.एस.) इस माननीय न्यायालय के समक्ष मंत्री संवर्ग के वरिष्ठ कर्मचारियों द्वारा दायर की गई थी और पक्षगण को सुनने के बाद, इस माननीय न्यायालय ने 15.10.2009 को आदेश पारित किया और उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव को निर्देश दिया कि वे मुद्दे/अभ्यावेदन पर निर्णय लें और तीन महीने के भीतर शीघ्रता से तर्कसंगत आदेश पारित करें।

(138) संस्थान के अध्यक्ष (मुख्य सचिव) ने उपर्युक्त रिट याचिका संख्या-6555/2009 (एस.एस.) में माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 15.10.2009 के आदेश के अनुपालन में 15.1.2010 को आक्षेपित आदेश पारित किए कि शासी निकाय के निर्णय दिनांक 8.1.1988 के आधार पर जारी आदेश अनुचित, गलत, अनियमित और वापस लेने योग्य थे। तथापि, उन्होंने आगे एक महत्वपूर्ण मुद्दा होने के कारण इसे विचार-विमर्श और निर्णय के लिए संस्थान के शासी निकाय के समक्ष रखने का आदेश दिया। शासी निकाय ने दिनांक 08-01-1988 के शासी निकाय के निर्णय के आधार पर जारी किए गए सभी आदेशों को 06-03-2010 को वापस लेने का निर्णय लिया।

(139) शासी निकाय के उपर्युक्त निर्णय और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को ध्यान में रखते

हुए, एसजीपीजीआई के निदेशक ने दिनांक 01-07-2010 के आदेश द्वारा संबंधित कर्मचारियों को सुनवाई का अवसर प्रदान किया और उनके अभ्यावेदनों, संगत तथ्यों, आदेशों पर विचार करने के पश्चात् संस्थान के प्राधिकारियों के उत्तरवर्ती निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् सभी आदेशों को वापस लेने के लिए दिनांक 11-10-2010 को अंतिम आदेश पारित किया। शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के निर्णय के आधार पर जारी किया गया।

(140) संबंधित कर्मचारियों ने दिनांक 15.1.2010, 11.10.2010 के आदेशों और शासी निकाय के निर्णय दिनांक 6.3.2010 के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-7570 वर्ष 2010 (एस.एस.), 7571 वर्ष 2010 (एस.एस.) और 7572 वर्ष 2010 (एस.एस.) दायर की। इस न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के बाद, 02.11.2010 को रिट याचिका का निपटारा किया और निर्देश दिया कि विजिटर अपने समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा संदर्भ की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर मामले का फैसला कर सकता है और तब तक आक्षेपित आदेशों के संचालन पर रोक रहेगी। यदि संदर्भ उस दिन से दो सप्ताह की अवधि के भीतर नहीं किया जाता है, तो पारित आदेश का कोई लाभ नहीं होगा।

(141) कुलाध्यक्ष ने संबंधित कर्मचारियों के अभ्यावेदनों और पक्षकारों के प्रतिउत्तर के साथ-साथ संस्थान के रुख पर विचार करने के बाद दिनांक 25-01-2011 को आदेश पारित किया जिसके द्वारा यह आदेश दिया गया कि संस्थान के निदेशक, अध्यक्ष और शासी

निकाय द्वारा आदेश पारित करने में कोई अवैधता नहीं है और तदनुसार विजिटर द्वारा अभ्यावेदनों को योग्यता से रहित होने के कारण खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार, सभी आदेशों को संबंधित कर्मचारियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-902/2011, 903/2011 (एस.एस.) और 904/2011 (एस.एस.) दायर करके चुनौती दी गई, जिसमें अंतरिम आदेश दिनांक 24.02.2011 द्वारा यथास्थिति आदेश पारित किया गया था।

(142) रिट याचिका संख्या-902/2011 (एस.एस.), 903/2011 (एस.एस.) और 904/2011 (एस.एस.) के याचिकाकर्ताओं की स्थिति जैसा कि यह आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले थी, को 'यथास्थिति' बनाए रखने के लिए इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा 24.2.2011 को पारित अंतरिम आदेश के आलोक में बनाए रखा जा रहा है।

(143) इसी बीच, याचिकाकर्ता संवर्ग की अनंतिम वरिष्ठता सूची दिनांक 04062014 को प्रकाशित की गई थी और आपतियां मांगी गई थीं। हालांकि, याचिकाकर्ताओं और अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों द्वारा दी गई आपतियों को उनकी वरिष्ठता की स्थिति में बदलाव किए बिना निपटाया गया था, इस न्यायालय के 'यथास्थिति' आदेश दिनांक 24.2.2011 के आलोक में और अंतिम वरिष्ठता सूची 27.6.2014 को प्रकाशित की गई थी, जिसमें टिप्पणी कॉलम में उल्लेख किया गया है - 'माननीय उच्च न्यायालय के यथास्थिति आदेश के कारण पदनाम', जिसके खिलाफ रिट याचिका संख्या-3948/2014

(एस.एस.) इस अदालत के समक्ष दायर की गई और बाद में सभी रिट याचिकाओं को दिनांक 11.08.2014 के आदेश के तहत मामले के वर्तमान समूह (बंच) से जोड़ा गया।

(144) अनिवार्यतः वरिष्ठता के लिए विवाद तीन गुना है, पहला यह है कि इसे तैयार नहीं किया गया था क्योंकि दिनांक 24.02.2011 के यथास्थिति आदेश ने उक्त वरिष्ठता सूची पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और दूसरा, लेखा संवर्ग में आमेलित ये लेखाकार-सह-कंप्यूटर संवर्ग कैशियर और लेखा लिपिक की तुलना में अधिक योग्य और उच्च वेतनमान के पात्र थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखा संवर्ग के कुछ कर्मचारियों को बढ़ा दिया गया है और उन्हें 08.01.1988 के शासी निकाय आदेश के कार्यान्वयन का लाभ दिया गया है।

(145) एस.आई रूप लाल और अन्य बनाम उपराज्यपाल मुख्य सचिव, दिल्ली और अन्य के माध्यम से: ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 594 (2000) एस.सी.सी. 644 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि अकेले किसी व्यक्ति द्वारा धारित पद का वेतन भी उनकी समानता पर विचार करने और उनकी स्थिति को समान होने का निर्धारण करने के लिए निर्धारण कारक नहीं हो सकता है, और न केवल दो पदों से जुड़े कर्तव्यों की प्रकृति और जिम्मेदारी को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, बल्कि (i) भर्ती के तरीकों में समानता/असमानता, और (ii) उनके संबंधित चयन के लिए निर्धारित योग्यताएं, और (iii) ऐसे किसी भी चयन की प्रक्रिया।

(146) इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामले में, यह स्पष्ट है कि "लेखा संवर्ग" से संबंधित कर्मचारियों (कैशियर, लेखा लिपिक आदि) और लेखाकार-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर के बीच समानता या समानता का कोई भी दावा समाप्त हो जाता है और वाष्पित हो जाता है जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित पिछले तीन परीक्षणों की निहाई पर परीक्षण किया जाता है, जिन्हें सुविधा के लिए, इस न्यायालय द्वारा (i) (ii) और (iii) के रूप में क्रमांकित किया गया है।

(147) प्रस्तुत मामलों में, लेखा संवर्ग में व्यक्तियों के दो समूहों के बीच अंतर इतना प्रकट और स्पष्ट है कि इस तरह के अंतर और भेद का अस्तित्व समाप्त नहीं हो सकता है। कुछ कर्मचारी दिनांक 08.01.1988 के शासी निकाय संकल्प के कार्यान्वयन का लाभ उठाते हुए वरिष्ठता में चढ़ गए हैं, जो कानून के अनुसार अनुमेय नहीं था और इस निर्णय के मद्देनजर, जिसने पूर्वोक्त शासी निकाय संकल्प के कार्यान्वयन को गलत पाया है, और बदली हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक नई वरिष्ठता सूची तैयार करने की आवश्यकता है।

(148) इस प्रकार, दिनांक 27.06.2014 को यथा प्रकाशित वरिष्ठता सूची को कानून के अनुसार कायम नहीं रखा जा सकता है। इसके अलावा, जैसा कि ए.ए.सी.ओ. द्वारा ठीक ही कहा गया है, वरिष्ठता को नए सिरे से निर्धारित करने की आवश्यकता थी, क्योंकि कई नए पदधारी शामिल हो गए थे जिनके नाम वरिष्ठता सूची में शामिल किए जाने योग्य थे और पहले की वरिष्ठता सूची के कई व्यक्ति सेवानिवृत्त हो गए थे, जिनके नाम छोड़े जाने योग्य थे।

किसी भी मामले में, यह अदालत संस्थान के अधिवक्ता की दलीलों में से एक को मूकदर्शक नहीं बना सकती है, कि इस अदालत के 'यथास्थिति' आदेश के आलोक में ए.ए.सी.सी.ओ. की वरिष्ठता की स्थिति में कोई बदलाव करने की बहुत कम गुंजाइश थी।

F. निष्कर्ष

(149) पूर्वोक्त सभी कारणों से इन रिट याचिकाओं का निस्तारण निम्नलिखित निदेशों के साथ किया जाता है:-

(i) 6 मार्च, 2010 को आयोजित शासी निकाय की 68वीं बैठक के निर्णय, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक 15-01-2010, संस्थान के निदेशक द्वारा पारित कार्यालय आदेश दिनांक 11-10-2010 और संस्थान के कुलाध्यक्ष (उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल) द्वारा पारित आदेश दिनांक 25-01-2011 के निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(ii) इसके मद्देनजर, दिनांक 02.07.1994, 20.03.2002 और 02.04.2003 के कार्यालय आदेशों के तहत शासी निकाय के दिनांक 08.01.1988 के निर्णय के कार्यान्वयन को अवैध माना जाता है और इस तरह उन्हें अलग रखा जाता है;

(iii) तथापि, शासी निकाय के दिनांक 08-01-1988 के निर्णय के कार्यान्वयन के मद्देनजर याचिकाकर्ताओं को किए गए अधिक भुगतान की वसूली, दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, अनुचित पाई गई है;

(iv) दिनांक 24.02.2011 (उपरोक्त) का यथास्थिति आदेश निरस्त किया जाता है;

(v) पहले से भुगतान की गई अतिरिक्त राशि की वसूली को छोड़कर, जिसे इस न्यायालय ने अनुचित पाया है, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित दिनांक 15-01-2010 के आदेश, संस्थान के निदेशक द्वारा पारित शासी निकाय के दिनांक 06-03-2010 के निर्णय और दिनांक 11-10-2010 के कार्यालय आदेश, संस्थान के विजिटर (उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल) द्वारा पारित दिनांक 25-01-2011 के आदेश का अक्षरशः अनुपालन करने का निदेश दिया जाता है; और सभी पदोन्नति, पद, वेतनमान, डीपीसी, अन्य सेवा लाभों आदि की पुनर्व्यवस्था का आकलन और गणना इन आदेशों और दिनांक 03.01.1997 की कैडर समीक्षा बैठक के आलोक में आज से दो महीने की अवधि के भीतर की जानी है;

(vi) दिनांक 27.06.2014 को प्रकाशित वरिष्ठता सूची रद्द की जाती है। संस्थान को निदेश दिया जाता है कि वह ऊपर की गई टिप्पणियों और अध्यक्ष के दिनांक 15.01.2010, शासी निकाय दिनांक 06.03.2010, निदेशक दिनांक 11.10.2010 और विजिटर के दिनांक 15.01.2011 के निर्णयों के आलोक में आज से दो महीने के भीतर "लेखा संवर्ग" के कर्मचारियों की नई वरिष्ठता सूची तैयार करे;

(vii) सभी रिट याचिकाओं और लंबित आवेदनों का निपटान उपर्युक्त शर्तों में किया जाता है।

(viii) लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।
